ओ३म्

वेद

भाषा भाष्य
संपूर्ण

ओ३म्
ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्
दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५
दयानन्द संस्थान

प्रकाशकः-

दयानन्द-संस्थान

नई दिल्ली-५

आर्य समाज कटरा प्रयाग
बे-
२८०
ओ३म्
वेद
यजुर्वेद
सामवेद
भाषा भाष्य
संपूर्ण

प्रकाशक—
पंडिता राकेश रानी
मंत्री—दयानन्द संस्थान
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

दूरभाष : ५६६६३६

परम पिता परमात्मा की अमृत वाणी के प्रकाशन यज्ञ की सफलता के लिए
प्राप्त आहुतियां

क्रम	नाम	राशि
१.	श्री डा० नारायणदास जी, गोहाटी	२००१-००
२.	श्री मनोहर विद्यालंकार, दिल्ली	१००१-००
३.	श्री राय रतन लाल जी, गाजियाबाद	१००१-००
४.	श्री अनन्त राम जी गुप्त, कानपुर	१००१-००
५.	आर्य महिला केन्द्रीय सभा, अमृतसर	१००१-००
६.	आर्य समाज लक्कड़ बाजार, शिमला	१००१-००
७.	श्री ओमप्रकाश गोयल, दिल्ली	१००१-००
८.	श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्रीमती दुर्गादेवीजी, गोहाटी	१००१-००
९.	श्री बाबा हरिदास बनखण्डी आश्रम, जोनायचा	१००१-००
१०.	श्री वैद्य योगीराज आयुर्वेदालंकार, दीनानगर	१००१-००
११.	श्रीमती चन्द्रकांता विद्यालंकृता, नागपुर	५०१-००
१२.	श्री किशनलाल रामचन्द्र, हैदराबाद	५०१-००
१३.	श्री मन्त्री आर्य समाज, जींद	५०१-००
१४.	श्री मा० बद्रीप्रसाद गुप्त, जींद	५०१-००
१५.	श्री पं० हरिश्चन्द्र जी, जींद	५०१-००
१६.	श्री माता भगवती देवी जी, जींद	५०१-००
१७.	श्री पं० रामस्वरूप जी, जींद	५०१-००
१८.	श्री बलदेव वानप्रस्थी, चांदपुर	५०१-००
१९.	श्रीमती माता जानकी देवी तथा श्री किशनदास जी, दिल्ली की स्मृति में	५०१-००
२०.	डा० जगन्नाथ जी व श्रीमती भगवती देवी की स्मृति में	५०१-००
२१.	श्रीमती कौशल्या देवी, अमृतसर	५०१-००
२२.	श्री एच० पी० आर्य, बेलगाछी	:०१-००
२३.	श्री खोड़ाभाई, लक्ष्मण भाई, शंखधर	५०१-००
२४.	श्री बी० शिवानन्द, नैटाल	५०१-००
२५.	श्री ला० बेलीराम जी, करनाल	५०१-००
२६.	श्रीमती राज सूरी, दिल्ली	५०१-००
२७.	भारत टैक्सटाइल्स, कलकत्ता	५०१-००
२८.	श्री मायादास भगवानदास, तिनसुकिया	५०?-००
२९.	श्री बनारसीदास गुप्ता, दिल्ली	५०१-००
३०.	श्री सूर्यकांत मिश्र, रुड़की	५०१-००
३१.	श्रीमती प्रेमवती दरगन, ज्वालापुर	५०१-००
३२.	श्री वेदप्रकाश अग्रवाल, आगरा छावनी	५०१-००
३३.	स्वर्गीया सुशीला देवी धर्मपत्नी श्री आनन्दप्रिय जसपुर, नैनीताल, की स्मृति में—	५०१-००

भेंट—मूल्य

दयानन्द संस्थान द्वारा
प्रकाशित प्रथम संस्करण

दीपमाला, संवत् २०३०

मुद्रक—
सैनी प्रिंटर्स
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

22·19

अपनी बात

'ज्ञान'-का पावन दर्शन 'वेद' की ऋचाओं के रूप में धरती के पथ-प्रदर्शन के लिए परम-पिता परमात्मा ने प्रदान किया। सृष्टि के आरम्भ में इस ईश्वरीय ज्ञान को पाकर मनुष्य को ज्ञान-नेत्र मिले। वेद-मार्ग पर चलकर भू-मंडल स्वर्ग बना और जब-जब इस ज्ञान को विस्मृत किया गया तब-तब भूमि पर पाप-अज्ञान का आवरण छाया और सभी के दुःखों का कारण बना।

मनुष्य कैसे मनुष्य बने, मनुष्य बनकर कैसे परस्पर व्यवहार करे, इस की उदात्त प्रेरणाएँ वेद की प्रत्येक-ऋचा में ध्वनित हैं। इनके स्वाध्याय, मनन आचरण से मानवता का विकास हुआ है और होता रहेगा।

ज्ञान, कर्म, उपासना और जीवन-धर्म की व्यावहारिकता से परिपूर्ण वेद-वाणी का ही यह प्रभाव था कि भारत लाखों वर्ष पूर्व भी ज्ञान और विज्ञान की दृष्टि से आज से भी कहीं उन्नत और विकसित था। 'वेद' की विस्मृति सत्य और ज्ञान की उपेक्षा है, इस तथ्य को जान-समझ कर ही हम 'वेद' की गौरव-गरिमा का मूल्यांकन करने में समर्थ हो सकेंगे।

आज आवश्यकता है कि प्रभु पुत्र वेद का स्वाध्याय करें, उस के दिखाए प्रकाश से अपनी राह ज्योतित कर सभी 'देव' बनने का प्रयास करें। प्रभु की कल्याणी वाणी 'वेद' की किरणों के प्रकाश में दुःख-दारिद्रय, कष्ट-क्लेश कहीं शेष नहीं रह सकता। जीवन के प्रत्येक पल में आनन्द सुधा का पान करते हुए मनुष्य शांति-गंगा में स्नान कर जीवन-यात्रा के पथ पर अविराम गति से बढ़ सकता है।

यज्ञमय जीवन के द्वारा प्रभु का साक्षात्कार करते हुए हम गति-बल-प्रेरणा पाकर मोक्ष की ओर अग्रसर हों, हमारे जीवन वेद-माता के निर्देशन में जगन्नियन्ता परमात्म देव की गोदी में स्थान पाकर उस प्रकाश पुंज का सामीप्य अनुभव कर सकें, जिसे प्राप्त करने के लिये ही यह मानव देह हमें प्राप्त हुयी है।

श्रद्धा-आदर और सर्वस्वसमर्पण की पवित्र भावना से हम—यजुर्वेद और सामवेद का यह भाषा-भाष्य प्रभु-पुत्रों की सेवा में सादर अर्पित करते हुए कामना करते हैं कि इनके दर्शन-मनन-स्मरण से प्रत्येक मानव मन का अन्धकार दूर हो। यजुर्वेद के भाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती और सामवेद के भाष्यकार महर्षि के व्याख्याकार श्रेष्ठ वैदिक विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री हैं। हमें विश्वास है कि इन दोनों वेदों के भाष्य आप के मानस को नयी शक्ति-भक्ति-प्रेरणा और उल्लास प्रदान करेंगे।

सामवेद भाष्य के प्रकाशन की प्रेरणा के लिए महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज के हम हृदय से आभारी हैं। कार्य संपादन में जिन-जिन का भी सहयोग जाने-अनजाने मिला, सभी का हार्दिक धन्यवाद!

परमात्मा की वाणी के प्रसार का यज्ञ आधा निर्विघ्न पूर्ण हुआ। प्रभु की कृपा से शेष कार्य भी शीघ्र पूर्ण होगा। धर्म की शक्ति, ज्ञान का प्रसार, और सत्य की विजय सर्वत्र होगी, इसी आशा और विश्वास के साथ यह पावन धर्म ग्रंथ आपको सेवा में सादर अर्पित है।

ज्ञान-ज्योति की शुभ्र किरण का जग में हो विस्तार,
प्रभु की वाणी के स्वर गूंजें, फैलें शुद्ध विचार।
जन मानस में सत्य-सुधा की गूंजे जय-जयकार,
धर्म ध्वजा फहराए भू पर, स्वर्ग बने संसार।

इसी भावना से अर्पित है, प्रभु वाणी कल्याणी,
सब को दे यह शक्ति प्रभु की, मंगलमय वरदानी।
वेदामृत का पान सभी को दिव्य बना सकता है।
वेद ज्ञान ही इस धरती को राह दिखा सकता है॥

प्रभु के आशीर्वाद और मंगल-कामनाओं के साथ

—भारतेन्द्रनाथ

अध्यक्ष दयानन्द-संस्थान
नई दिल्ली-५

॥ ओ३म् ॥

अथ यजुर्वेदभाषाभाष्यारम्भः क्रियते ॥

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वरः । तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च ।
ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरम् । भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया ।१।
चतुस्त्र्यंकैरंकैरवनिसहितैर्विक्रमसरे । शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ ।
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमतीष्टं सुविदुषां प्रमाणैर्निर्बद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि ।२।

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ।।१।।

भाषार्थः—अब यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया है ॥

जो निर्गुण गुणपुञ्ज से देत सुकृत विज्ञान । प्रणतपाल जगदीश्वरहि करि प्रणाम तहि ध्यान ।१।
ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय । पर-उपकार विचारि करि शीघ्र सुबोध निधाय ।२।
शतपथ ब्राह्मण आदि पुनि निघण्टु निरुक्त निहारि । यजुर्वेद जो क्रियापर बनौं ताहि विचारि ।३।
एक सहस्र नवशत अधिक विक्रमसर चौंतीस । पौष शुक्ल तेरसि तिथि दिन अधीश वागीश ॥४॥

विक्रम के संवत् १९३४ पौष सुदि १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद के भाष्य बनाने का आरम्भ किया जाता है । (विश्वानि०) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका में कर दिया है ।

ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश के द्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस-जिस प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो-जो अङ्ग वा साधन हैं सो सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं क्योंकि जबतक क्रिया करने का दृढ़ ज्ञान न हो तबतक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रियाप्रकाश अविद्या की निवृत्ति अधर्म्म में अप्रवृत्ति तथा धर्म्म और पुरुषार्थ का संयोग करना है । जो कर्म्मकांड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकांड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है । कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन प्राण वायु इन्द्रिय और शरीर के चलाये विना एक क्षण भर रह सके क्योंकि जीव अल्पज्ञ एकदेशवर्ती चेतन है । इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मंत्रों से सब पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि (ऋक्) और (यजुः) इन शब्दों का अर्थ भी यही है जिस से मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग सब शिल्पक्रिया सहित विद्याओं को सिद्धि श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्व प्रकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का खर्च करें इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है। और भी इन शब्दों का अभिप्राय भूमिका में प्रकट कर दिया है वहाँ देख लेना चाहिये क्योंकि उक्त भूमिका चारों वेदों की एक ही है ॥

इस यजुर्वेद में सब चालीस अध्याय हैं उन एक-एक अध्याय में कितने-कितने मंत्र हैं सो निम्नांकित कोष्ठ में बनाके सब लिख दिया है और चालीसों अध्याय के मिल के १९७५ (उन्नीस पचहत्तर) मन्त्र हैं ॥

अध्यायः	मंत्राः	अध्यायः	मंत्राः	अध्यायः	मंत्राः	अध्यायः	मंत्राः
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५८	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७

—(स्वामी) दयानन्द सरस्वती

अथ यजुर्वेदभाषाभाष्य

इषे त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । इषे त्वेत्यारभ्य भागंपर्य्यन्तस्य स्वराड्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । अग्रे सर्वस्य ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम उत्तम कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये इस बात का प्रकाश किया है—

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वं स्तेनऽईशत माघशंꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जो (**सविता**) सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाला सम्पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त (**देवः**) सब सुखों के देने और सब विद्या के प्रसिद्ध करनेवाला परमात्मा है । सो (**वः**) तुम, हम और अपने मित्रों के जो (**वायवः**) सब क्रियाओं के सिद्ध करानेहारे स्पर्शगुणवाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियां (**स्थ**) हैं उनको (**श्रेष्ठतमाय**) अत्युत्तम (**कर्मणे**) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिये (**प्रार्पयतु**) अच्छी प्रकार संयुक्त करे । हम लोग (**इषे**) अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (**ऊर्जे**) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये (**भागम्**) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (**त्वा**) उक्त गुणवाले और (**त्वा**) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देनेहारे आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं । हे मित्र लोगो ! तुम भी ऐसे होकर (**आप्यायध्वम्**) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों । हे भगवन् ! जगदीश्वर ! हम लोगों के (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (**प्रजावतीः**) जिनके बहुत सन्तान हैं तथा जो (**अनमीवाः**) व्याधि और (**अयक्ष्माः**) जिन में राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं वे (**अघ्न्या**) जो-जो गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य हैं, जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन्द्रियाँ वा पृथिवी आदि लोक हैं उन को सदैव (**प्रार्पयतु**) नियत कीजिये । हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिये कोई (**अघशंसः**) पापी वा (**स्तेनः**) चोर, डाकू (**मा ईशत**) मत उत्पन्न हो तथा आप इस (**यजमानस्य**) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन करनेवाले मनुष्य के (**पशून्**) गौ, घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (**पाहि**) निरन्तर रक्षा कीजिये जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो (**अस्मिन्**) इस धार्मिक (**गोपतौ**) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहनेवाले सज्जन मनुष्य के समीप (**बह्वीः**) बहुत से उक्त पदार्थ (**ध्रुवाः**) निश्चल सुख के हेतु (**स्यात**) हों ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को सदैव परमेश्वर और धर्मयुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्वेद को पढ़के गुण और गुणी को ठीक-ठीक जानकर सब पदार्थों के सम्प्रयोग से पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अत्युत्तम क्रियाओं से युक्त होना चाहिये कि जिससे परमेश्वर की कृपापूर्वक सब मनुष्यों को सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि हो । सब लोगों को चाहिये कि अच्छे-अच्छे कामों से प्रजा की रक्षा तथा उत्तम-उत्तम गुणों से पुत्रादि की शिक्षा सदैव करें कि जिससे प्रबल रोग, विघ्न और चोरों का अभाव होकर प्रजा और पुत्रादि सब सुखों को प्राप्त हों यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है । हे मनुष्य लोगो ! आओ अपने मिलके जिसने इस संसार में आश्चर्यरूप पदार्थ रचे हैं उस जगदीश्वर के लिये सदैव धन्यवाद देवें । वही परमदयालु ईश्वर अपनी कृपा से उक्त कामों को करते हुए मनुष्यों की सदैव रक्षा करता है ॥ १ ॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वह यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि । परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त मनुष्य ! तू जो (**वसोः**) यज्ञ (**पवित्रम्**) शुद्धि का हेतु (**असि**) है (**द्यौः**) जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होनेवाला (**असि**) है जो (**पृथिवी**) वायु के साथ देशदेशान्तरों में फैलनेवाला (**असि**) है जो (**मातरिश्वनः**) वायु को (**घर्मः**) शुद्ध करनेवाला (**असि**) है जो (**विश्वधाः**) संसार का धारण करनेवाला (**असि**) है । तथा जो (**परमेण**) उत्तम (**धाम्ना**) स्थान से (**दृꣳहस्व**) सुख का बढ़ानेवाला है इस यज्ञ का (**मा**) मत (**ह्वाः**) त्याग कर । तथा (**ते**) तेरा (**यज्ञपतिः**) यज्ञ की रक्षा करनेवाला यजमान भी उसको (**मा**) न (**ह्वार्षीत्**) त्यागे । धात्वर्थ के अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है अर्थात् एक जो इस लोक और परलोक के सुख के लिये विद्या, ज्ञान और धर्म के सेवन से वृद्ध अर्थात् बड़े-बड़े विद्वान् हैं उनका सत्कार करना । दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभगुण, विद्या, सुख, धर्म और सत्य का नित्य दान करना है ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं उससे पवित्रता का प्रकाश, पृथिवी का राज्य, वायुरूपी प्राण के तुल्य राजनीति, प्रताप, सब की रक्षा, इस लोक और परलोक में सुख की वृद्धि, परस्पर कोमलता से वर्तना और कुटिलता का त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं इसलिये सब मनुष्यों को परोपकार तथा अपने सुख के लिये विद्या और पुरुषार्थ के साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ कैसा सुख करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥३

पदार्थ—जो (**वसोः**) यज्ञ (**शतधारम्**) असंख्यात संसार का धारण करने और (**पवित्रम्**)शुद्धि करनेवाला कर्म (**असि**) है तथा जो (**वसोः**) यज्ञ (**सहस्रधारम्**) अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड को धारण करने और (**पवित्रम्**) शुद्धि का निमित्त सुख देनेवाला है (**त्वा**) उस यज्ञ को (**देवः**) स्वयं प्रकाशस्वरूप (**सविता**) वसु आदि तेंतीस देवों का उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर (**पुनातु**) पवित्र करे । हे जगदीश्वर ! आप हम लोगों से सेवित (**वसोः**) जो यज्ञ है उस (**पवित्रेण**) शुद्धि के निमित्त, वेद के विज्ञान (**शतधारेण**) बहुत विद्याओं को धारण करनेवाले वेद और (**सुप्वा**) अच्छी प्रकार पवित्र करनेवाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिये । हे विद्वान् पुरुष वा जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्य ! तू (**काम्**) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन-कौन वाणी के अभिप्राय को (**अधुक्षः**) अपने मन में पूर्ण करना अर्थात् जानना चाहता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का सेवन करके पवित्र होते हैं उन्हीं को जगदीश्वर बहुतसा ज्ञान देकर अनेक प्रकार के सुख देता है परन्तु जो लोग ऐसी क्रियाओं के करनेवाले वा परोपकारी होते हैं वे ही सुख को प्राप्त होते हैं आलस्य करनेवाले कभी नहीं । इस मन्त्र में 'कामधुक्षः' इन पदों से वाणी के विषय में प्रश्न है ॥ ३ ॥

सा विश्वायुरित्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जो पूर्वोक्त मन्त्र में तीन प्रश्न कहे हैं उनके उत्तर अगले मन्त्र में क्रम से प्रकाशित किये हैं—

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष ॥४॥

पदार्थ—हे (**विष्णो**) व्यापक ईश्वर ! आप जिस वाणी का धारण करते हैं (**सा**) वह (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु की देनेवाली (**सा**) वह (**विश्वकर्मा**) जिससे कि सम्पूर्ण क्रियाकाण्ड सिद्ध होता है और (**सा**) वह (**विश्वधायाः**) सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करनेवाली है । पूर्व मन्त्र में जो प्रश्न है उसके उत्तर में यही तीन प्रकार की वाणी ग्रहण करने योग्य है इसी से मैं (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर का (**भागम्**) सेवन करने योग्य यज्ञ को (**सोमेन**) विद्या से सिद्ध किये रस अथवा आनन्द से (**आ तनच्मि**) अपने हृदय में दृढ़ करता हूँ तथा हे परमेश्वर ! (**हव्यम्**) पूर्वोक्त यज्ञ सम्बन्धी देने-लेने योग्य द्रव्य वा विज्ञान की(**रक्ष**)निरन्तर रक्षा कीजिये ॥४॥

भावार्थ—वाणी तीन प्रकार की होती है अर्थात् प्रथम वह जो कि ब्रह्मचर्य में पूर्ण विद्या पढ़ने या पूर्ण आयु होने के लिये सेवन की जाती है । दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रिया वा उद्योगों से सुखों को देनेवाली विस्तार से प्रकट की जाती है और तीसरी वह जो इस संसार में सब मनुष्यों के शरीर और आत्मा के सुख की वृद्धि वा ईश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान को देनेवाली वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम में विद्वानों से उपदेश की जाती है । इस तीन प्रकार की वाणी के विना किसी को सब सुख नहीं हो सकते क्योंकि इसी से पूर्वोक्त यज्ञ तथा व्यापक ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करना योग्य है । ईश्वर की यह आज्ञा है कि जो नियम से किया हुआ यज्ञ संसार में रक्षा का हेतु और प्रेम सत्यभावसे प्रार्थित ईश्वर विद्वानों की सर्वदा रक्षा करता है वही सब का अध्यक्ष है परन्तु जो क्रिया में कुशल धार्मिक, परोपकारी मनुष्य हैं वे ही ईश्वर और धर्म को जानकर मोक्ष और सम्यक् क्रियासाधनों से इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त वाणी का व्रत क्या है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्नें व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्में राध्यताम् । इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥५॥

पदार्थ—हे (**व्रतपते**) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और (**अग्ने**) सत्य उपदेश करनेवाले परमेश्वर ! मैं (**अनृतात्**) जो झूठ से अलग (**सत्यम्**) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करने हारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (**व्रतम्**) सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है उसका (**उपैमि**) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ (**मे**) मेरे (**तत्**) उस सत्यव्रत को आप (**राध्यताम्**) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (**अहम्**) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को (**शकेयम्**) समर्थ होऊँ और मैं (**इदम्**) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (**चरिष्यामि**) करूँगा ॥ ५ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ, सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सब का हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुख का हेतु है यही सब का आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसी का त्याग करना है । इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हे परमेश्वर ! हम लोग वेदों में आप के प्रकाशित किये सत्य धर्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन्! आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्यधर्म का पालन करके अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें । जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं वैसे ही हम लोग भी आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालनेवाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुँचानेवाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये । शतपथ ब्राह्मण के बीच इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है कि मनुष्यों का आचरण दो प्रकार का होता है एक सत्य और दूसरा झूठ का अर्थात् जो पुरुष वाणी, मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूठ का आचरण करनेवाले हैं वे असुर, राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥५॥

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किसने सत्य करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मैं त्वा युनक्ति तस्मैं त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥६॥

पदार्थ—(**कः**)कौन (**त्वा**) तुझको अच्छी अच्छी क्रियाओं के सेवन करने के लिये (**युनक्ति**) आज्ञा देता है (**सः**) सो जगदीश्वर (**त्वा**) तुम को विद्या आदिक शुभ गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् वा विद्यार्थी होने को(**युनक्ति**) आज्ञा देता है (**कस्मै**) वह किस-किस प्रयोजन के लिये (**त्वा**) मुझ और तुझको (**युनक्ति**) युक्त करता है (**तस्मै**) पूर्वोक्त सत्यव्रत के आचरण रूप यज्ञ के लिये (**त्वा**) धर्म के प्रचार करने में उद्योगी को (**युनक्ति**) आज्ञा देता है (**सः**) वही ईश्वर (**कर्मणे**) उक्त श्रेष्ठकर्म करने के लिये (**वाम्**) कर्म करने और करानेवालों को नियुक्त करता है (**वेषाय**) शुभगुण और विद्याओं में व्याप्ति के लिये (**वाम्**) विद्या पढ़ने और पढ़ानेवाले तुम लोगों को उपदेश करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर से ईश्वर जीवों के लिये उपदेश करता है । जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत करता है तो इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वर ही पुरुषार्थ और अच्छी-अच्छी क्रिया के करने की तुम्हारे लिये वेद के द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है । इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्यामिरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है तो वह उत्तर देवे कि सर्वव्यापक जगदीश्वर फिर वह पूछे कि वह हमको किस-किस प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है, उसका उत्तर देवे कि सुख और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्य विद्या और धर्म के प्रचार के लिये । मैं और आप दोनों को कौन-कौन काम करने के लिये वह ईश्वर उपदेश करता है । इस का परस्पर उत्तर देवे कि यज्ञ करने के लिये । फिर वह कौन-कौन पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है । इस का उत्तर देवे कि सब विद्याओं की प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत होना चाहिये अर्थात् एक तो अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्त्ती राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढके उनका प्रचार करना चाहिये । किसी मनुष्य को पुरुषार्थ को छोड़के आलस्य में कभी नहीं रहना चाहिये ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । प्राजापत्या जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाववाले मनुष्यों का निषेध करें इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥७॥

पदार्थ—मुझको चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (**रक्षः**) दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाववाले मनुष्य को (**प्रत्युष्टम्**) निश्चय करके निर्मूल करूँ तथा (**अरातयः**) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं उनको (**प्रत्युष्टाः**) प्रत्यक्ष निर्मूल (**रक्षः**) वा दुष्ट स्वभाव दुष्ट गुण विद्याविरोधी स्वार्थी मनुष्य और (**निष्टप्तम्, अरातयः**) छलयुक्त होके विद्या के ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को (**निष्टप्ताः**) निरन्तर संतापयुक्त करूँ । इस प्रकार करके (**अन्तरिक्षम्**) सुख के सिद्ध करनेवाले उत्तम स्थान और (**उरु**) अपार सुख को (**अन्वेमि**) प्राप्त होऊँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़ कर विद्या और धर्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि अधर्म के व्यवहारों से अलग करना चाहिये तथा उनको बहु प्रकार ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को विद्या, धर्म, पुरुषार्थ और नाना प्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

धूरसीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सबके धारण करनेवाले ईश्वर और पदार्थ विद्या की सिद्धि हेतु भौतिक अग्नि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः । देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥८॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! आप (**धूः**) सब दोषों के नाश और जगत् की रक्षा करनेवाले (**असि**) हैं इस कारण हम लोग इस बुद्धि से (**देवानाम्**) विद्वानों को विद्या, मोक्ष और सुख में (**वह्नितमम्**) यथायोग्य पहुँचाने (**सस्नितमम्**) अतिशय कर के शुद्ध करने (**पप्रितमम्**) सब विद्या और आनन्द से संसार को पूर्ण करने (**जुष्टतमम्**) धार्मिक भक्तजनों को सेवा करने योग्य और (**देवहूतमम्**) विद्वानों की स्तुति करने योग्य आप की नित्य उपासना करते हैं । (**यः**) जो कोई द्वेषी छली, कपटी, पापी कामक्रोधादियुक्त मनुष्य (**अस्मान्**) धर्मात्मा और सब को सुख से युक्त करनेवाले हम लोगों को (**धूर्वति**) दुःख देता है और (**यम्**) जिस पापीजन को(**वयम्**) हम लोग (**धूर्वामः**) दुःख देते हैं (**तम्**) उसको आप (**धूर्व**) शिक्षा कीजिये तथा जो सब से द्रोह करने वा सब को दुःख देता है उस को भी आप सदैव (**धूर्व**) ताड़ना कीजिये । हे शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्य! तू जो भौतिक अग्नि (**धूः**) सब पदार्थों को छेदन और अन्धकार का नाश करनेवाला(**असि**) है तथा जो कला चलाने की चतुराई से यानों में विद्वानों को (**वह्नितमम्**) सुख पहुँचाने (**सस्नितमम्**) शुद्धि होने का हेतु (**पप्रितमम्**) शिल्पविद्या का मुख्य साधन (**जुष्टतमम्**) कारीगर लोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो (**देवहूतमम्**) विद्वानों को स्तुति करने योग्य अग्नि है उसको (**वयम्**) हम लोग (**धूर्वामः**) ताड़ते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो (**अस्मान्**) हम लोगों को (**धूर्वति**) पीड़ा करता है (**तम्**) उस (**धूर्वन्तम्**) पीड़ा करनेवाले अग्नि को (**धूर्व**) यानादिकों में युक्त कर तथा हे वीरपुरुष ! तुम (**यः**)जो दुष्ट शत्रु (**अस्मान्**) हम लोगों को (**धूर्वति**) दुःख देता है (**तम्**) उसको (**धूर्व**) नष्ट कर तथा जो कोई चोर आदि है उसका भी (**धूर्व**) नाश कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर सब जगत् को धारण कर रहा है वह पापी, दुष्ट जीवों को उनके किये हुए पापों के अनुकूल दण्ड देकर दुःखयुक्त और धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम कर्मों के अनुसार फल देके उनकी रक्षा करता है । वही सब सुखों की प्राप्ति, आत्मा की शुद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देनेवाला विद्वानों के स्तुति करने योग्य तथा प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है दूसरा कोई नहीं । तथा यह प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं की क्रियाओं को सिद्ध करने तथा उनका मुख्य साधन और पृथिवी आदि पदार्थों में अपने प्रकाश अथवा उनकी प्राप्ति से श्रेष्ठ है । क्योंकि जिससे सिद्ध की हुई आग्नेय आदि उत्तम शस्त्रास्त्रविद्या से शत्रुओं का पराजय होता है इससे यह भी विद्या की युक्तियों से होम और विमान आदि के सिद्ध करने के लिये सेवा करने के योग्य है ॥ ८ ॥

अह्रुतमसीत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् । विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥९॥

पदार्थ—हे ऋत्विग् मनुष्य ! तुम जो अग्नि से बढ़ा हुआ (**अह्रुतम्**) कुटिलता-रहित (**हविर्धानम्**) होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है उस को (**दृंहस्व**) बढ़ाओ किन्तु किसी समय में (**मा ह्वाः**) उसका त्याग मत करो तथा यह (**ते**) तुम्हारा (**यज्ञपतिः**) यजमान भी उस यज्ञ के अनुष्ठान को (**मा ह्वार्षीत्**) न छोड़े । इस प्रकार तुम लोग (**पञ्च**) एक तो ऊपर को चेष्टा होना 'दूसरा नीचे को' तीसरा चेष्टा से अपने अङ्गों को संकोचना चौथा उनका फैलाना पाँचवाँ चलना-फिरना आदि इन पांच प्रकार के कर्मों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उसको अग्नि में (**यच्छन्ताम्**) हवन करो (**त्वा**) वह जो हवन किया हुआ द्रव्य है उसको (**विष्णुः**) जो व्यापनशील सूर्य्य है वह (**अपहतम्, रक्षः**) दुर्गन्धादि दोषों का नाश करता हुआ (**उरुवाताय**) अत्यन्त वायु की शुद्धि वा सुख की वृद्धि के लिये (**क्रमताम्**) चढ़ा देता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़कर शिक्षा देनेवाले के शिष्य होके विशेष ज्ञान और क्रिया से भौतिक अग्नि की विद्या को जानकर उसका अनुष्ठान करते हैं तभी शिल्पविद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दारिद्रय

और दुखों से छूटकर सब सुखों को प्राप्त होते हैं इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिये आज्ञा दी है, जिनका पालन करना सबको उचित है ॥ ६ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

उस यज्ञ के फल का ग्रहण किससे होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥१०॥

पदार्थ—मैं (**सवितुः**) सब जगत् के उत्पन्नकर्त्ता, सकल ऐश्वर्य के दाता तथा (**देवस्य**) संसार का प्रकाश करनेहारे और सब सुखदायक परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (**अश्विनोः**) सूर्य्य और चन्द्रमा के (**बाहुभ्याम्**) बल और वीर्य्य से तथा (**पूष्णः**) पुष्टि करनेवाले प्राण के (**हस्ताभ्याम्**) ग्रहण और त्याग से (**अग्नये**) अग्निविद्या के सिद्ध करने के लिये (**जुष्टम्**) विद्या पढ़नेवाले जिस कर्म की सेवा करते हैं (**त्वा**) उसे (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ । इसी प्रकार (**अग्नीषोमाभ्याम्**) अग्नि और जल की विद्या से (**जुष्टम्**) विद्वानों ने जिस कर्म को चाहा है उसके फल को (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ ॥ १० ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों का समागम वा अच्छे प्रकार अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर की उत्पन्न की हुई प्रत्यक्ष सृष्टि अर्थात् संसार में सकल विद्या की सिद्धि के लिये सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि और जल आदि पदार्थों के प्रकाश से सब के बल वीर्य्य की वृद्धि के अर्थ अनेक विद्याओं को पढ़के उनका प्रचार करना चाहिये अर्थात् जैसे जगदीश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उनकी धारणा से सब का उपकार किया है वैसे ही हम लोगों को भी नित्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ १० ॥

भूताय त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

यज्ञशाला आदिक घर कैसे बनाने चाहियें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳ रक्ष ॥११॥

पदार्थ—मैं जिस यज्ञ को (**भूताय**) प्राणियों के सुख तथा (**अरातये**) दारिद्र्य आदि दोषों के नाश के लिये (**अदित्या**) वेदवाणी वा विज्ञान प्रकाश के (**उपस्थे**) गुणों में (**सादयामि**) स्थापना करता हूँ और (**त्वा**) उसको कभी (**न**) नहीं छोड़ता हूँ । हे विद्वान् लोगो ! तुम को उचित है कि (**पृथिव्याम्**) विस्तृत भूमि में (**दुर्य्याः**) अपने घर (**दृंहन्ताम्**) बढ़ाने चाहियें । मैं (**पृथिव्याः नाभौ**) पृथिवी के बीच में जिन गृहों में (**स्वः**) जल आदि सुख के पदार्थों को (**अभिविख्येषम्**) सब प्रकार से देखूँ और (**उर्वन्तरिक्षम्**) उक्त पृथिवी में बहुतसा अवकाश देकर सुख से निवास करने योग्य स्थान रचकर (**त्वा**) आपको (**अन्वेमि**) प्राप्त होता हूँ । हे (**अग्ने**) जगदीश्वर ! आप (**हव्यम्**) हमारे देने-लेने योग्य पदार्थों की (**रक्ष**) सर्वदा रक्षा कीजिये ॥ यह प्रथम पक्ष हुआ ॥ अब दूसरा पक्ष—हे अग्ने परमेश्वर ! मैं (**भूताय**) संसारी जीवों के सुख तथा (**अरातये**) दरिद्रता का विनाश और दान आदि धर्म करने के लिये (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**नाभौ**) बीच में सबके स्वामी तथा उपासनीय जानकर (**स्वः**) सुखस्वरूप (**त्वा**) आपको (**अभिविख्येषम्**) प्रकाश करता हूँ तथा आपकी कृपा से मेरे घर आदि पदार्थ और उनमें रहनेवाले मनुष्य आदि प्राणी (**दृंहन्ताम्**) वृद्धि को प्राप्त हों और मैं (**पृथिव्याम्**) विस्तृत भूमि में (**उरु**) बहुत से (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशयुक्त स्थान को निवास के लिये (**अदित्या, उपस्थे**) सर्वत्र व्यापक आपके समीप सदा (**अन्वेमि**) प्राप्त होता हूँ । कदाचित् (**त्वा**) आपका (**न, सादयामि**) त्याग नहीं करता हूँ । हे जगदीश्वर! आप मेरे (**हव्यम्**) अर्थात् उत्तम पदार्थों की सर्वदा (**रक्ष**) रक्षा कीजिये । यह दूसरा पक्ष हुआ । तथा तीसरा और भी कहते हैं—मैं शिल्पविद्या का जाननेवाला यज्ञ को करता हुआ (**भूताय**) सांसारिक प्राणियों के सुख और (**अरातये**) दरिद्रता आदि दोषों के विनाश वा सुख से दान आदि धर्म करने की इच्छा से (**पृथिव्या नाभौ**) इस पृथिवी पर शिल्पविद्या की सिद्धि करनेवाला जो (**अग्ने**) अग्नि है उसको हवन करने वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये (**सादयामि**) स्थापन करता हूँ क्योंकि उक्त शिल्पविद्या इसी से सिद्ध होती है (**अदित्याः, उपस्थे**) तथा जो अन्तरिक्ष में स्थित मेघमण्डल में (**हव्यम्**) होम द्वारा पहुँचे हुए उत्तम-उत्तम पदार्थों की (**रक्ष**) रक्षा करनेवाला है इसीलिये इस अग्नि को (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में स्थापन करके (**उर्वन्तरिक्षम्**) बड़े अवकाशयुक्त स्थान और विविध प्रकार के सुखों को (**अन्वेमि**) प्राप्त होता हूँ अथवा इसी प्रयोजन के लिये (**त्वा**) इस अग्नि को पृथिवी में स्थापन करता हूँ । इस प्रकार श्रेष्ठ कर्मों को करता हुआ (**स्वः**) अनेक सुखों को(**अभिविख्येषम्**) देखूँ तथा मेरे (**दुर्य्याः**) घर और उनमें रहनेवाले मनुष्य (**दृंहन्ताम्**) शुभ गुण और सुख से वृद्धि को प्राप्त हों इसलिये इस भौतिक अग्नि का भी त्याग मैं कभी (**न**) नहीं करता हूँ । यह तीसरा अर्थ हुआ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और ईश्वर ने आज्ञा दी है कि हे मनुष्य लोगो ! मैं तुम्हारी रक्षा इसलिये करता हूँ कि तुम लोग पृथिवी पर सब प्राणियों को सुख पहुँचाओ तथा तुम को योग्य है कि वेदविद्या, धर्म के अनुष्ठान और अपने पुरुषार्थ द्वारा विविध प्रकार के सुख सदा बढ़ाने चाहियें । तुम सब ऋतुओं में सुख देने के योग्य बहुत अवकाशयुक्त सुन्दर घर बनाकर सर्वदा सुख सेवन करो और मेरी सृष्टि में जितने पदार्थ हैं उनसे अच्छे-अच्छे गुणों को खोजकर अथवा अनेक विद्याओं को प्रकट करते हुए फिर उक्त गुणों का संसार में अच्छे प्रकार प्रचार करते रहो कि जिससे सब प्राणियों को उत्तम सुख बढ़ता रहे तथा तुम को चाहिये कि मुझको सब जगह व्याप्त, सब का साक्षी, सब का मित्र, सब सुखों का बढ़ानेहारा, उपासना के योग्य और सर्वशक्तिमान् जानकर सब का उपकार, विविध विद्या की वृद्धि धर्म में प्रवृत्ति, अधर्म से निवृत्ति, क्रियाकुशलता की सिद्धि और यज्ञक्रिया के अनुष्ठान आदि करने में सदा प्रवृत्त रहो ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य ऋषिः स एव । अप्सवितारौ देवते । भुरिगत्यष्टिः छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अग्नि में जिस द्रव्य का होम किया जाता है वह मेघमण्डल को प्राप्त होके किस प्रकार का होकर क्या गुण करता है इस बात का उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है—

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रऽइममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! तुम जैसे (**सवितुः**) परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (**अच्छिद्रेण**) निर्दोष और (**पवित्रेण**) पवित्र करने का हेतु जो (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य की (**रश्मिभिः**) किरण हैं उन से (**वैष्णव्यौ**) यज्ञ-सम्बन्धी प्राण और अपान की गति (**पवित्रे**) पदार्थों के भी पवित्र करने में हेतु (**स्थः**) हों और जैसे उक्त सूर्य्य की किरणों से (**अग्रेगुवः**) आगे समुद्र वा अन्तरिक्ष में चलें (**अग्रेपुवः**) प्रथम पृथिवी में रहनेवाली सोम ओषधि के सेवन करने तथा (**देवीः**) दिव्यगुणयुक्त (**वः**) वह (**आपः**) जल पवित्र हों । वैसे (**नयत**) पवित्र पदार्थों का होम अग्नि में करो वैसे ही मैं भी (**अद्य**) आज के दिन (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) पूर्वोक्त क्रियासम्बन्धी यज्ञ को प्राप्त करके (**अग्रे**) जो प्रथम (**सुधातुम्**) श्रेष्ठ मन आदि इन्द्रिय और सुवर्ण आदि धनवाला (**यज्ञपतिम्**) यज्ञ का नियम से पालक तथा (**देवयुवम्**) विद्वान् और श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होने वा उनको प्राप्त कराने (**यज्ञपतिम्**) यज्ञ की इच्छा करनेवाला मनुष्य है उसको (**उत्पुनामि**) पवित्र करता हूँ ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालंकार है । जो पदार्थ संयोग से विकार को प्राप्त होने हैं वे अग्नि के निमित्त से अतिसूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायु के बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी हो जाते हैं परन्तु जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि-जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती इससे विद्वानों को चाहिये कि होमक्रिया और वायु, अग्नि, जल आदि पदार्थ वा शिल्पविद्या से अच्छी-अच्छी सवारी बनाके अनेक प्रकार के लाभ उठावें अर्थात् अपनी मनःकामना सिद्धि करके औरों की भी कामना सिद्धि करें । जो जल इस पृथिवी से अन्तरिक्ष को चढ़कर वहाँ से लौटकर फिर पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त होते हैं वे प्रथम और जो मेघ में रहनेवाले हैं वे दूसरे कहाते हैं । ऐसी शतपथ ब्राह्मण में मेघ का वृत्र तथा सूर्य्य का इन्द्र नाम से वर्णन करके युद्धरूप कथा के प्रकाश से मेघविद्या दिखलाई है ॥ १२ ॥

युष्मा इन्द्रो वृणीतेत्यस्य ऋषिः पूर्वोक्तः । इन्द्रो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अग्नय त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । दैव्याय कर्म्मणे इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्त जल किस प्रकार के हैं वा इन्द्र और वृत्र का युद्ध कैसे होता है सो अगले मन्त्र में कहा गया है—

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। दैव्याय कर्म्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥१३॥

पदार्थ—यह (**इन्द्रः**) सूर्य्यलोक (**वृत्रतूर्य्ये**) मेघ के वध के लिये (**युष्मा**) पूर्वोक्त जलों को (**अवृणीत**) स्वीकार करता है जैसे जल (**इन्द्रम्**) वायु को (**अवृणीध्वम्**) स्वीकार करते हैं वैसे ही (**यूयम्**) हे मनुष्यो ! तुम लोग उन जल ओषधि रसों को शुद्ध करने के लिये (**वृत्रतूर्य्ये**) मेघ के शीघ्रवेग (**प्रोक्षिताः**) संसारी पदार्थों के सींचनेवाले जलों को (**अवृणीध्वम्**) स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध (**स्थ**) होते हैं वैसे तुम भी शुद्ध होओ । इसलिये मैं यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाला (**दैव्याय**) सब को शुद्ध करनेवाले (**कर्म्मणे**) उत्क्षेपण=उछालना, अवक्षेपण=नीचे फेंकना, आकुञ्चन=सिमेटना, प्रसारण=फैलाना, गमन=चलना आदि पांच प्रकार के कर्म हैं उनके और (**देवयज्यायै**) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों की दिव्य क्रिया के लिये तथा (**अग्नये**) भौतिक अग्नि से सुख के लिए (**जुष्टम्**) अच्छी क्रियाओं से सेवन करने योग्य (**त्वा**) उस यज्ञ को (**प्रोक्षामि**) करता हूँ तथा (**अग्नीषोमाभ्याम्**) अग्नि और सोम से वर्षा के निमित्त (**जुष्टम्**) प्रीति देनेवाला और प्रीति से सेवने योग्य (**त्वा**) उक्त यज्ञ को (**प्रोक्षामि**) मेघमण्डल में पहुँचाता हूँ इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये हुए जल (**शुन्धध्वम्**) अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं । (**यत्**) जिस कारण यज्ञ की शुद्धि से (**वः**) पूर्वोक्त जलों के अशुद्धि आदि दोष

(**पराजघ्नुः**) निवृत्त हों (**तत्**) उन जलों की शुद्धि को मैं (**शुन्धामि**) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूँ" यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है। हे यज्ञ करनेवाले मनुष्यो ! (**यत्**) जिस कारण (**इन्द्रः**) सूर्य्यलोक (**वृत्रतूर्य्ये**) मेघ के वध के निमित्त (**युष्माः**) पूर्वोक्त जल और (**इन्द्रम्**) पवन को (**अवृणीत**) स्वीकार करता है तथा जिस कारण सूर्य्य ने (**वृत्रतूर्य्ये**) मेघ की शीघ्रता के निमित्त (**युष्माः**) पूर्वोक्त जलों को (**प्रोक्षिताः**) पदार्थ सींचनेवाले (**स्थ**) किये हैं इससे (**यूयम्**) तुम (**त्वा**) उक्त यज्ञ को सदा स्वीकार करके (**नयत**) सिद्धि को प्राप्त करो। इस प्रकार हम सबलोग (**दैव्याय**) श्रेष्ठ कर्म वा (**देवयज्यायै**) विद्वान् और दिव्य गुणों की श्रेष्ठ क्रियाओं के तथा (**अग्नये**) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (**जुष्टम्**) प्रीति करानेवाले यज्ञ को (**प्रोक्षामि**) सेवन करें तथा (**अग्नीषोमाभ्याम्**) अग्नि और सोम से प्रकाशित होनेवाले (**त्वा**) उक्त यज्ञ को (**प्रोक्षामि**) मेघमण्डल में पहुँचावें। हे मनुष्यो ! इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थ वा सब मनुष्यों को (**शुन्धध्वम्**) शुद्ध करो (**यत्**) और जिससे (**वः**) तुम लोगों के अशुद्धि आदि दोष हैं वे सदा (**पराजघ्नुः**) निवृत्त होते रहें। वैसे ही मैं वेद का प्रकाश करनेवाला तुम लोगों के शोधन अर्थात् शुद्धि प्रकार को (**शुन्धामि**) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूँ। यह इस मन्त्र का दूसरा अर्थ है॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य्य को इसलिये रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश कर के उनके रस और जल को छिन्न-भिन्न कर दें जिससे वे वायुमण्डल में जाकर फिर वहाँ से पृथिवी पर आके सबको सुख और शुद्धि करनेवाले हों। इससे मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा श्रेष्ठ सुख बढ़ाने के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये जिससे इस संसार के सब रोग आदि दोष नष्ट होकर उस में शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें। इसी प्रयोजन के लिये मैं ईश्वर तुम सबों को उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूँ कि हे मनुष्यो ! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कर्मों को नित्य किया करो तथा उक्त रीति से वायु अग्नि और जल के गुणों को शिल्पक्रिया में युक्त करके अनेक यान आदि यन्त्रकला बनाकर अपने पुरुषार्थ से सदैव सुखयुक्त हों॥ १३ ॥

शर्मासीत्यस्य पूर्वोक्त ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का है और किस प्रकार से करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारा घर (**शर्म**) सुख देनेवाला (**असि**) हो। उस घर से (**रक्षः**) दुष्टस्वभाववाले प्राणी (**अवधूतम्**) अलग करो और (**अरातयः**) दान आदि धर्मरहित शत्रु (**अवधूताः**) दूर हों। उक्त गृह (**अदित्याः**) पृथिवी की (**त्वक्**) त्वचा के तुल्य (**असि**) हो (**अदितिः**) ज्ञानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को (**प्रतिवेत्तु**) सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो (**वानस्पत्यः**) वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने (**पृथुबुध्नः**) अतिविस्तारयुक्त अन्तरिक्ष में रहने तथा (**ग्रावा**) जल का ग्रहण करनेवाला (**अद्रिः**) मेघ (**असि**) है उस और इस विद्या को (**अदितिः**) जगदीश्वर तुम्हारे लिये (**वेत्तु**) कृपा करके जनावें। विद्वान् पुरुष भी (**अदित्याः**) पृथिवी की (**त्वक्**) त्वचा के समान (**त्वा**) उक्त घर की रचना को (**प्रतिवेत्तु**) जानें॥ १४ ॥

भावार्थ—ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तार-युक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बना के उस में सुखपूर्वक वास करो तथा उसमें रहनेवाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो फिर उसमें सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है उस का अनुष्ठान करके नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करना चाहिये क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। हविष्कृदिति याजुषी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व। हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

पदार्थ—मैं सब जनों के सहित जिस हवि अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिये (**बृहद्ग्रावासि**) बड़े-बड़े पत्थर (**असि**) हैं और (**वानस्पत्यः**) काष्ठ के मूसल आदि पदार्थ (**देवेभ्यः**) विद्वान् वा दिव्यगुणों के लिये उस यज्ञ को (**देववीतये**) श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् वा विविध भोगों की प्राति के लिये (**प्रतिगृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ। हे विद्वान् मनुष्य ! तुम (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**सु शमि**) अच्छे प्रकार दुःख शान्त करनेवाले (**हविः**) यज्ञ करने योग्य पदार्थ को (**शमीष्व, शमीष्व**) अत्यन्त शुद्ध करो। जो मनुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पढ़ते वा पढ़ाते हैं उन्हीं को यह (**हविष्कृत्**) हविः अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करनेवाली जो कि यज्ञ का विस्तार करने के लिये वेद के पढ़ने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध वाणी है सो प्राप्त होती है॥ १५ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उस का फल जानके शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं तब वह सुगन्धि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम करके दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस को सब मनुष्य हविष्कृत् अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करनेवाला उत्तम मनुष्य है ऐसा बार बार कहकर सत्कार करें॥ २५ ॥

कुक्कुटोऽसीत्यस्य ऋषिः स एव। वायुर्देवता। ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। देवो वः सवितेत्यस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी यह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयꣳ सङ्घातꣳ सङ्घातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥१६॥

पदार्थ—जिस कारण यह यज्ञ (**मधुजिह्वः**) जिस में मधुर गुणयुक्त वाणी हो। तथा (**कुक्कुटः**) चोर वा शत्रुओं का विनाश करनेवाला (**असि**) है। और (**इषम्**) अन्न आदि पदार्थ वा (**ऊर्जम्**) विद्या आदि बल और उत्तम से उत्तम रस को देता है। इसी से उसका अनुष्ठान सदा करना चाहिए। हे विद्वान् लोगो ! तुम उक्त गुणों को देनेवाला जो तीन प्रकार का यज्ञ है उसके अनुष्ठान और गुण के ज्ञाता (**असि**) हो, अतः हम लोगों को भी उसके गुणों का (**आवद**) उपदेश करो जिससे (**वयम्**) हम लोग (**त्वया**) तुम्हारे साथ (**संघातं संघातम्**) जिन में उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संग्रामों को बारम्बार (**आ, जेष्म**) सब प्रकार से जीतें क्योंकि आप युद्धविद्या के जाननेवाले (**असि**) हैं इसी से सब मनुष्य (**वर्षवृद्धम्**) शस्त्र और अस्त्रविद्या की वर्षा को बढ़ानेवाले (**त्वा**) आप तथा (**वर्षवृद्धम्**) वृष्टि के बढ़ानेवाले उक्त यज्ञ को (**प्रतिवेत्तु**) जानें। इस प्रकार संग्राम करके सब मनुष्यों को (**परापूतम्**) पवित्रता आदि गुणों को छोड़नेवाले (**रक्षः**) दुष्ट मनुष्य तथा (**परापूताः**) शुद्धि को छोड़नेवाले और (**अरातयः**) दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन तथा (**रक्षः**) डाकुओं का जैसे (**अपहतम्**) नाश हो सके वैसा प्रयत्न सदा करना चाहिये जैसे यह (**हिरण्यपाणिः**) जिसका ज्योति हाथ है ऐसा जो (**वायुः**) पवन, है वह (**अच्छिद्रेण**) एकरस (**पाणिना**) अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और सूर्य्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थों को (**प्रतिगृभ्णातु**) ग्रहण करता है (**हिरण्यपाणिः**) वा जैसे किरण हैं हाथ जिस के वह (**हिरण्याणिः**) किरण व्यवहार से (**सविता**) वृष्टि वा प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु (**देवः**) प्रकाशमय सूर्य्यलोक (**वः**) उन पदार्थों को (**विविनक्तु**) अलग-अलग अर्थात् परमाणुरूप करता है वैसे ही परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पाणिना**) अपने उपदेशरूप व्यवहार से सब विद्याओं को (**विविनक्तु**) प्रकाश करें वैसे ही कृपा करके प्रीति के साथ (**वः**) तुम को अत्यन्त आनन्द करने के लिये (**प्रतिगृभ्णातु**) ग्रहण करते हैं॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान, संग्राम में शत्रुओं का पराजय, अच्छे-अच्छे गुणों का ज्ञान विद्वानों की सेवा दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने ताप से छिन्न-भिन्न करनेवाला अग्नि वा सूर्य्य और उनका धारण करनेवाला वायु है ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों को उत्पन्न करनेवाली उन्नति सदा करनी चाहिये।१६।

धृष्टिरसीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवताः। ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब अग्निशब्द से किस किस का ग्रहण किया जाता और इससे क्या क्या कार्य्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

धृष्टिरस्यपाऽग्नेऽअग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेधा देवयजं वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥१७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) परमेश्वर ! आप (**धृष्टिः**) प्रगल्भ अर्थात् अत्यन्त निर्भय (**असि**) हैं इस कारण (**निष्क्रव्यादम्**) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (**आमादम्**) कच्चे पदार्थ जलाने और (**देवयजम्**) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों से मिलाप करानेवाले (**अग्निम्**) भौतिक वा विद्युत् बिजुलीरूप अग्नि को आप (**सेध**) सिद्ध कीजिये। इस प्रकार हम लोगों के मङ्गल अर्थात् उत्तम-उत्तम सुख होने के लिये शास्त्रों की शिक्षा करके दुःखों को (**अपजहि**) दूर कीजिये और आनन्द को (**आवह**) प्राप्त कीजिये तथा हे परमेश्वर ! आप (**ध्रुवम्**) निश्चल सुख देनेवाले (**असि**) हैं इससे (**पृथिवीम्**) विस्तृतभूमि वा उसमें रहनेवाले मनुष्यों को (**दृंह**) उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिये। हे अग्ने जगदीश्वर ! जिस कारण आप अत्यन्त प्रशंसनीय हैं इससे मैं (**भ्रातृव्यस्य**) दुष्ट वा शत्रुओं के (**वधाय**) विनाश के लिये (**ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि**) ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख वा दुःख व्यवहार के देनेवाले (**त्वा**) आपको (**उपदधामि**) हृदय में स्थापन करता हूँ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥ तथा हे विद्वान् यजमान ! जिस कारण यह (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**धृष्टिः**) अतितीक्ष्ण (**असि**) है तथा

निकृष्ट पदार्थों को छोड़कर उत्तम पदार्थों से (**देवयजम्**) विद्वान् वा दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाले यज्ञ को (**आवह**) प्राप्त कराता है इससे तुम (**निष्क्रव्यादम्**) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़के (**आमादम्**) कच्चे पदार्थ जलाने और (**देवयजम्**) विद्वान् वा दिव्य गुणों के प्राप्त करनेवाले (**अग्निम्**) प्रत्यक्ष वा बिजुलीरूप अग्नि को (**आवह**) प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करनेवाले लोगों को शास्त्रों की उत्तम-उत्तम शिक्षाओं के साथ उसका उपदेश (**सेध**) करो तथा उसके अनुष्ठान में जो दोष हों उनको (**अपजहि**) विनाश करो जिस कारण यह अग्नि सूर्य्यरूप से (**ध्रुवम्**) निश्चल (**असि**) है इसी कारण यह आकर्षणशक्ति से (**पृथिवीम्**) विस्तृत भूमि वा उसमें रहनेवाले प्राणियों को (**दृंह**) दृढ़ करता है इसीसे मैं (**त्वा**) उस (**ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि**) ब्राह्मण, क्षत्रिय वा जीवमात्र के सुखदुःख को अलग-अलग करानेवाले भौतिक अग्नि को (**भ्रातृव्यस्य**) दुष्ट वा शत्रुओं के (**वधाय**) विनाश के लिये हवन करने की वेदी वा विमान आदि यानों में (**उपदधामि**) स्थापन करता हूँ ॥ यह दूसरा अर्थ हुआ ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने यह भौतिक अग्नि आम अर्थात् कच्चे पदार्थ जलानेवाला बनाया है इस कारण भस्मरूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है । जिससे कि मनुष्य कच्चे कच्चे पदार्थों को पका कर खाते हैं वह आमात् तथा जिस करके सब प्राणियों का खाया हुआ अन्न आदि द्रव्य पकता है वह जाठर और जिससे मनुष्य लोग मरे हुए शरीर को जलाते हैं, वह क्रव्यात् अग्नि कहाता है और जिससे दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाली विद्युत् बनी है तथा जिससे पृथिवी का धारण और आकर्षण करनेवाला सूर्य्य बना है और जिसे वेदविद्या के जाननेवाले ब्राह्मण वा धनुर्वेद के जाननेवाले क्षत्रिय वा सब प्राणिमात्र सेवन करते हैं तथा जो सब संसारी पदार्थों में वर्त्तमान परमेश्वर है, वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है तथा जो क्रियाओं की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि है, यह भी यथायोग्य कार्य्यद्वारा सेवा करने के योग्य है ॥१७॥

अग्ने ब्रह्मेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । धर्त्रमसीति मध्यस्यार्ची त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्ची पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में दोनों अर्थों का प्रकाश किया है—

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चितं स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥१८॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) परमेश्वर ! आप (**धरुणम्**) सबके धारण करनेवाले (**असि**) हैं इससे मेरी (**ब्रह्म**) वेद मन्त्रों से की हुई स्तुति को (**गृभ्णीष्व**) ग्रहण कीजिये तथा (**अन्तरिक्षम्**) आत्मा में स्थित जो अक्षय ज्ञान है उसको (**दृंह**) बढ़ाइये । मैं (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रुओं के (**वधाय**) विनाश के लिये (**ब्रह्मवनि**) सब मनुष्यों के सुख के निमित्त वेद के शाखा शाखान्तर द्वारा विभाग करनेवाले ब्राह्मण तथा (**क्षत्रवनि**) राजधर्म के प्रकाश करनेहारे (**सजातवनि**) जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी मूर्तिमान् पदार्थ हैं इनका प्राणियों के लिये अलग अलग प्रकाश करनेवाले (**त्वा**) आपको (**उपदधामि**) हृदय के बीच में धारण करता हूँ । हे सब के धारण करनेवाले परमेश्वर ! जो आप (**धर्त्रम्**) लोकों के धारण करनेवाले (**असि**) हैं इससे कृपा करके हम लोगों में (**दिवम्**) अत्युत्तम ज्ञान को (**दृंह**) बढ़ाइये और मैं (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रुओं के (**वधाय**) विनाश के लिये (**ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि**) उक्त वेद राज्य वा परस्पर समान विद्या वा राज्यादि व्यवहारों को यथायोग्य विभाग करनेवाले (**त्वा**) आपको (**उपदधामि**) बारम्बार अपने हृदय में धारण करता हूँ । तथा मैं (**त्वा**) आपको सर्वव्यापक जानकर (**विश्वाभ्यः**) सब (**आशाभ्यः**) दिशाओं से सुख होने के निमित्त बारम्बार (**उपदधामि**) अपने मन में धारण करता हूँ । हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर (**चितः**) विज्ञानी (**ऊर्ध्वचितः**) उक्त ज्ञानवाले पुरुषों की प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर धरके तथा (**भृगूणाम्**) जिनसे विद्या आदि गुणों को प्राप्त होते हैं ऐसे (**अङ्गिरसाम्**) प्राणों के (**तपसा**) प्रभाव से (**तप्यध्वम्**) तपो और तपाओ ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा भी कहते हैं ॥ हे विद्वान् धर्मात्मा पुरुष ! जिस (**अग्ने**) भौतिक अग्नि से (**धरुणम्**) सबका धारण करनेवाला तेज (**ब्रह्म**) वेद और (**अन्तरिक्षम्**) आकाश में रहनेवाले पदार्थ ग्रहण वा वृद्धियुक्त किये जाते हैं (**त्वा**) उसको तुम होम वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये (**गृभ्णीष्व**) ग्रहण करो (**दृंह**) वा विद्यायुक्त क्रियाओं से बढ़ाओ और मैं भी (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रुओं के (**वधाय**) विनाश के लिये (**त्वा**) उस (**ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि**) संसारी मूर्तिमान् पदार्थों के प्रकाश करने वा राजगुणों के दृष्टान्तरूप से प्रकाश करनेवाले भौतिक अग्नि को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में (**उपदधामि**) स्थापन करता हूँ । ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे अनेक सुखों को धारण करता है । इसी प्रकार सब लोगों का (**धर्त्रम्**) धारण करनेवाला वायु (**असि**) है तथा (**दिवम्**) प्रकाशमय सूर्य्यलोक को (**दृंह**) दृढ़ करता है । हे मनुष्यो ! जैसे उसको मैं (**भ्रातृव्यस्य**) अपने शत्रुओं के (**वधाय**) विनाश के लिये (**ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि**) वेद राज्य वा परस्पर समान उत्तम उत्तम शिल्पविद्याओं को यथायोग्य कार्य्यों में युक्त करनेवाले उस भौतिक अग्नि को (**उपदधामि**) स्थापन करता हूँ वैसे तुम भी उत्तम उत्तम क्रियाओं में युक्त करके विद्या के बल से (**दृंह**) उसको बढ़ाओ । हे विद्या चाहनेवाले पुरुष ! जो पवन, पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकों को धारण कर रहा है उसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये यथायोग्य कार्यों में लगाकर उनकी विद्या से (**दृंह**) वृद्धि करो तथा जैसे हम अपने शत्रुओं के विनाश के लिए (**ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, सजातवनि**) अग्नि के उक्त गुणों के समान वायु को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में (**उपदधामि**) संयुक्त करते हैं वैसे ही तुम भी अपने अनेक दुःखों के विनाश के लिये उसको यथायोग्य कार्यों में संयुक्त करो । हे मनुष्यो ! जैसे मैं वायुविद्या का जाननेवाला (**त्वा**) उस अग्नि वा वायु को (**विश्वाभ्यः**) सब (**आशाभ्यः**) दिशाओं से सुख होने के लिये यथायोग्य शिल्पव्यवहारों में (**उपदधामि**) धारण करता हूँ वैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या वा होम करने के लिये (**चितः, ऊर्ध्वचितः, स्थ**) पदार्थों के भरे हुए पात्र वा सवारियों में स्थापन किये हुए कलायन्त्रों को (**भृगूणाम्**) जिनसे पदार्थों को पकाते हैं उन (**अङ्गिरसाम्**) अङ्गारों के (**तपसा**) ताप से (**तप्यध्वम्**) उक्त पदार्थों को तपाओ ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो ! तुम विद्वानों की उन्नति तथा मूर्खपन का नाश वा सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य बढ़ने के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि वा सब का धारण करनेवाला वायु, अग्निमय सूर्य्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यज्ञसिद्धि वा विमान आदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इनको सिद्ध करके दुःखों को दूर करके शत्रुओं को जीतो ॥१८॥

शर्मासीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इसके अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूप और इसके अंग अगले मन्त्र में उपदेश किये हैं—

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिव स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो यज्ञ (**शर्म**) सुख का देनेवाला (**असि**) है और (**अदितिः**) नाशरहित है तथा जिससे (**रक्षः**) दुःख और दुष्टस्वभावयुक्त मनुष्य (**अवधूतम्**) विनाश को प्राप्त तथा (**अरातयः**) दान आदि धर्मों से रहित पुरुष (**अवधूताः**) नष्ट (**असि**) होते हैं और जो (**अदित्याः**) अन्तरिक्ष वा पृथिवी के (**त्वक्**) त्वचा के समान (**असि**) है (**त्वा**) उसे (**प्रति वेत्तु**) जानो और जिस विद्यारूप उक्त यज्ञ से (**पर्वती**) बहुत ज्ञानवाली (**दिवः**) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों की (**स्कम्भनीः**) रोकने वाली (**असि**) है तथा (**पार्वतेयी**) मेघ की कन्या अर्थात् पृथिवी के तुल्य (**धिषणा**) वेदवाणी (**असि**) है (**अदित्याः**) पृथिवी के (**त्वक्**) शरीर के तुल्य विस्तार को प्राप्त होती है (**त्वा**) उसे (**प्रतिवेत्तु**) यथावत् जानो और जिस सत्संगतिरूप यज्ञ से (**पर्वती**) उत्तम उत्तम ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाली (**धिषणा**) द्यौः अर्थात् प्रकाशरूपी बुद्धि (**असि**) प्राप्त होती है (**त्वा**) उसे भी (**प्रतिवेत्तु**) जानो ॥१९॥

भावार्थ—मनुष्यों को अपने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके उनसे यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृष्टि वा बुद्धि का बढ़ाने वाला है वह अग्नि और मन से शुद्ध किया हुआ सूर्य्य के प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है ॥१९॥

धान्यमसीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥२०॥

पदार्थ—जो (**धान्यम्**) यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला सुख का हेतु रोग का नाश करनेवाला तथा चावल आदि अन्न वा (**पयः**) जल (**असि**) है वह (**देवान्**) विद्वान् वा जीव तथा इन्द्रियों को (**धिनुहि**) तृप्त करता है इस कारण हे मनुष्यो ! मैं जिस प्रकार (**त्वा**) उसे (**प्राणाय**) अपने जीवन के लिये वा (**त्वा**) उसे (**उदानाय**) स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा (**त्वा**) उसे (**व्यानाय**) सब शुभ गुण, शुभ कर्म वा विद्या के अङ्गों के फैलाने के लिये तथा (**दीर्घाम्**) बहुत दिनों तक (**प्रसितिम्**) अत्युत्तम सुखबन्धनयुक्त (**आयुषे**) पूर्ण आयु के भोगने के लिये (**धाम्**) धारण करता हूँ वैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उसको नित्य धारण करो । जैसे (**वः**) हम लोगों को (**हिरण्यपाणिः**) जिसका मोक्ष देना ही व्यवहार है ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा (**देवः, सविता**) सब ऐश्वर्य्य का दाता ईश्वर (**अच्छिद्रेण**) अपनी व्याप्ति वा (**पाणिना**) उत्तम व्यवहार से (**महीनाम्**) वाणियों के (**चक्षुषे**) प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये (**प्रत्यगृभ्णातु**) अपने अनुग्रह से ग्रहण करता है वैसे ही हम भी उस ईश्वर को (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पाणिना**) स्तुतियों से ग्रहण करें और जैसे (**हिरण्यपाणिः**) पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (**देवः, सविता**) सूर्य्यलोक (**महीनाम्**) लोकलोकान्तरों की पृथिवियों में नेत्र सम्बन्धी व्यवहार के लिये (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर तीव्र प्रकाश से (**पयः**) जल को (**प्रतिगृभ्णातु**) ग्रहण करके अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे ही

हम लोग भी उसे (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पाणिना**) व्यवहार से (**महीनाम्**) पृथिवी के (**चक्षुषे**) पदार्थों की दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए अन्न, जल और पवन आदि पदार्थ हैं, वे सब की शुद्धि, वल, पराक्रम और दृढ़ दीर्घ आयु के लिये समर्थ होते हैं । इससे सब मनुष्यों को यज्ञकर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेदचतुष्टयी अर्थात् चारों वेदों की वाणी है, उसके प्रत्यक्ष कराने के लिये ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा तथा अपना पुरुषार्थ करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर कृपा करता है, वैसे ही हम लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य कृपा करनी चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर आत्मा और वेदों में सत्य ज्ञान तथा सूर्यलोक संसार में मूर्तिमान् पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है, वैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सब के सुख के लिये सम्पूर्ण विद्या मनुष्यों को दृष्टिगोचर करा के नित्य प्रकाशित करनी चाहिये और उनसे हमको पृथिवी का चक्रवर्त्ती राज्य आदि अनेक उत्तम-उत्तम सुखों को उत्पन्न निरन्तर करना चाहिये ॥२०॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । आदो सं वपामीत्यस्य गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । अन्त्यस्य विराट्निचृत् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

जिन ओषधियों से अन्न बनता है, वे यज्ञादि करने से कैसे शुद्ध होती हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सं वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन । सꣳ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**सवितुः**) सकल ऐश्वर्य्य के देनेवाले (**देवस्य**) परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष संसार में, सूर्य्यलोक के प्रकाश में (**अश्विनोः**) सूर्य्य और भूमि के तेज की (**बाहुभ्याम्**) दृढ़ता से (**पूष्णः**) पुष्टि करनेवाले वायु के (**हस्ताभ्याम्**) प्राण और अपान से (**त्वा**) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ का (**संवपामि**) विस्तार करता हूँ, वैसे ही तुम भी उसको विस्तार से सिद्ध करो । जैसे इस उत्पन्न किये हुए संसार में (**ओषधीभिः**) यवादि ओषधियों से (**आपः**) जल और (**ओषधयः**) ओषधि (**रसेन**) आनन्दकारक रस से तथा (**जगतीभिः**) उत्तम ओषधियों से (**रेवतीः**) उत्तम जल और जैसे (**मधुमतीभिः**) अत्यन्त मधुर रसयुक्त ओषधियों से (**मधुमतीः**) अत्यन्त उत्तम रसरूप जल, ये सब मिलकर वृद्धियुक्त होते हैं, वैसे हम सब लोगों को भी ओषधियों से जल और ओषधि, उत्तम जल से तथा सब उत्तम ओषधियों से उत्तम रसयुक्त जल तथा अत्युत्तम मधुर रसयुक्त ओषधियों से प्रशंसनीय रसरूप जल इन सबों को यथायोग्य परस्पर (**संपृच्यन्ताम्**) युक्ति से वैद्यक वा शिल्पशास्त्र की रीति से मेल करना चाहिये ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् मनुष्यों को ईश्वर के उत्पन्न किये हुए सूर्य्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस संसार में अनेक प्रकार से संप्रयुक्त करने योग्य पदार्थों को मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल करके उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये । जैसे जल अपने रस से ओषधियों को बढ़ाता है और वे उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोग नाश करने से सुखदायक होती हैं और जैसे ईश्वर कारण से कार्य्य को यथावत् रचता है तथा सूर्य्य सब जगत् को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों का आकर्षण करता है तथा वायु रस को धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को पुष्ट करता है, वैसे हम लोगों को भी यथावत् संस्कारयुक्त संयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानों का सङ्ग तथा विद्या की उन्नति से वा होम, शिल्पकार्य्यरूपी यज्ञों से वायु और वर्षाजल की शुद्धि सदा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

जनयत्यै त्वेत्यस्यर्षिः पूर्वोक्तः । प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य यज्ञो देवता । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**जनयत्यै**) सर्वसुख उत्पन्न करनेवाली राज्य लक्ष्मी के लिये (**त्वा**) उस यज्ञ को (**संयौमि**) अग्नि के बीच में पदार्थों को छोड़कर युक्त करता हूँ, वैसे ही तुम लोगों को भी अग्नि के संयोग से सिद्ध करना चाहिये । जो हम लोगों का (**इदम्**) यह संस्कार किया हुआ हवि (**अग्नेः**) अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है (**इदम्**) वह विस्तार को प्राप्त होकर (**अग्नीषोमयोः**) अग्नि और सोम के बीच पहुँचकर (**इषे**) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये होता है और जो (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु और (**उरुप्रथाः**) बहुत सुख का देनेवाला (**घर्मः**) यज्ञ (**असि**) है, उसका जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूँ, वैसे (**त्वा**) उसको हे पुरुषो ! तुम भी (**उरु प्रथस्व**) विस्तृत करो । इस प्रकार विस्तार करनेवाले (**ते**) तुम्हारे लिये (**यज्ञपतिः**) यज्ञ का स्वामी (**अग्निः**) यज्ञ सम्बन्धी अग्नि (**ते, सविता**) अन्तर्यामी (**देवः**) जगदीश्वर (**उरु प्रथताम्**) अनेक प्रकार सुख को बढ़ावे (**ते, त्वचं**) तुम्हारे शरीर को (**मा हिंसीत्**) कभी नष्ट न करे तथा वह परमेश्वर (**वर्षिष्ठे**) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ (**अधिनाके**) जो अत्युत्तम सुख है उसमें (**त्वा**) तुम को (**श्रपयतु**) सुख से युक्त करे । यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा कहते हैं ॥ हे मनुष्य ! जैसे मैं जो (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु तथा (**उरुप्रथाः**) बहुत सुख का देनेवाला (**घर्मः**) यज्ञ (**असि**) है (**त्वा**) उस यज्ञ को (**जनयत्यै**) राज्यलक्ष्मी तथा (**इषे**) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये (**संयौमि**) संयुक्त करता हूँ तथा उसकी सिद्धि के लिये (**इदम्**) यह (**अग्नेः**) अग्नि के बीच में और (**इदम्**) यह (**अग्नीषोमयोः**) अग्नि और सोम के बीच में संस्कार किया हुआ हवि (**संवपामि**) छोड़ता हूँ, वैसे तुम भी उस यज्ञ को (**उरु प्रथस्व**) विस्तार को प्राप्त करो जिस कारण यह (**अग्निः**) भौतिक अग्नि (**ते**) तुम्हारे (**त्वचम्**) शरीर को (**मा हिंसीत्**) रोगों से नष्ट न करे और जैसे (**देवः**) जगदीश्वर (**सविता**) अन्तर्यामी (**वर्षिष्ठे**) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ जो (**अधिनाके**) अत्युत्तम सुख है, उसमें (**त्वा**) उस यज्ञ को अग्नि के बीच में परिपक्व करता है, वैसे तुम भी उस यज्ञ को (**श्रपयतु**) परिपक्व करो और (**ते**) तुम्हारे (**यज्ञपतिः**) यज्ञ का स्वामी भी उस यज्ञ को (**उरु प्रथताम्**) विस्तारयुक्त करे ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार जानना चाहिये । मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी, सकल आयु, अन्न आदि पदार्थ रोग नाश और सब सुखों का विस्तार हो, उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उसके विना वायु और वृष्टिजल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के विना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता इसलिये ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है ॥ २२ ॥

मा भेर्मेत्यस्यर्षिः स एव । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

निःशंक होकर उक्त यज्ञ सबको करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मा भेर्मा संविक्थाऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥२३॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम (**अतमेरुः**) श्रद्धालु होकर (**यजमानस्य**) यजमान के यज्ञ के अनुष्ठान से (**मा भेः**) भय मत करो और उससे (**मा संविक्थाः**) मत चलायमान हो । इस प्रकार (**यज्ञः**) यज्ञ करते हुए तुम को उत्तम-से-उत्तम (**अतमेरुः**) ग्लानिरहित श्रद्धावान् (**प्रजा**) सन्तान (**भूयात्**) प्राप्त हो और मैं (**त्वा**) भौतिक अग्नि को उक्त गुणयुक्त तथा (**एकताय**) सत्य सुख के लिये (**द्विताय**) वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा (**त्रिताय**) अग्नि, कर्म और हवि के होने के लिये (**संयौमि**) निश्चल करता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान कभी न होना चाहिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे-अच्छे कार्यों से ही उत्तम उत्तम सन्तान, शारीरिक, वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥ २३ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव । द्यौविद्युतौ देवते । स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥२४॥

पदार्थ—मैं (**सवितुः**) अन्तर्यामी प्रेरणा करने (**देवस्य**) सब आनन्द के देनेवाले परमेश्वर की (**प्रसवे**) प्रेरणा में (**अश्विनोः**) सूर्य्य चन्द्र और अध्वर्य्युओं के (**बाहुभ्यां**) बल और वीर्य्य से तथा (**पूष्णः**) पुष्टिकारक वायु के (**हस्ताभ्याम्**) जो कि ग्रहण और त्याग के हेतु उदान और अपान हैं उनसे (**देवेभ्यः**) विद्वान् वा दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिये (**अध्वरकृतम्**) यज्ञ से सुखकारक (**त्वा**) उस कर्म को (**आददे**) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ और मेरा किया हुआ जो यज्ञ है सो (**इन्द्रस्य**) सूर्य्य का (**सहस्रभृष्टिः**) जिसमें अनेक प्रकार के पदार्थों के पचाने का सामर्थ्य वा (**शततेजाः**) अनेक प्रकार का तेज तथा (**दक्षिणः**) प्राप्त करनेवाला (**बाहुः**) किरणसमूह (**असि**) है और जिस (**इन्द्रस्य**) सूर्य्य वा मेघमण्डल का (**तिग्मतेजाः**) तीक्ष्ण तेज वाला (**वायुः**) वायु हेतु (**असि**) है उससे हमको अनेक प्रकार के सुख तथा (**द्विषतः**) शत्रुओं का (**वधः**) नाश करना चाहिये ॥ २४ ॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्यों को अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जिस में भौतिक अग्नि के संयोग से ऊपर को अच्छे-अच्छे पदार्थ छोड़े जाते हैं वह सूर्य्य की किरणों में स्थिर होता है तथा पवन उसको धारण करता है और वह सबके उपकार के लिये हजारों सुखों को प्राप्त कराके दुःखों का विनाश करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

पृथिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ कहां जाके क्या करने वाला होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२५॥

पदार्थ—हे (**देव**) सूर्य्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा (**सवितः**) राज्य और ऐश्वर्य्य के देनेवाले परमेश्वर ! (**ते**) आपकी कृपा से मैं (**देवयजनि**) विद्वानों के यज्ञ करने की जगह (**ते**) यह जो (**पृथिवि**) भूमि है उसके और (**ओषध्याः**) जो यवादि ओषधि हैं उनके (**मूलम्**) वृद्धि करनेवाले मूल को (**मा, हिंसिषम्**) नाश न करूँ और मैं (**पृथिव्याम्**) अनेक प्रकार सुखदायक भूमि में (**यः**) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ वह (**व्रजम्**) जलवृष्टिकारक मेघ को (**गच्छ**) प्राप्त हो, वहाँ जाकर (**गोष्ठानम्**) सूर्य्य की किरणों के गुणों से (**वर्षतु**) वर्षाता है और (**द्यौः**) सूर्य्य के प्रकाश को (**वर्षतु**) वर्षाता है । हे वीर पुरुषो ! आप (**अस्याम्**) इस उत्कृष्ट पृथिवी में (**यः**) जो कोई अधर्मात्मा, डाकू (**अस्मान्**) सबके उपकार करनेवाले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से (**द्वेष्टि**) विरोध करता है (**च**) और (**यम्**) जिस दुष्ट शत्रु से (**वयम्**) धार्मिक शूर हम लोग (**द्विष्मः**) विरोध करें (**तम्**) उस दुष्ट (**परम्**) शत्रु को (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) वन्धनों से (**बधान**) बाँधो और उसको (**अतः**) इस बन्धन से कभी(**मा, मौक्**) मत छोड़ो ॥ २५ ॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञ और ओषधियाँ इनका नाश कभी न करना चाहिये जो यज्ञ-अग्नि में हवन किये हुए पदार्थों का धूम मेघमण्डल को जाकर शुद्धि के द्वारा अत्यन्त सुख उत्पन्न करनेवाला होता है इससे यह यज्ञ किसी पुरुष को कभी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवी पर अनेक बन्धनों से बांधे और उनको कभी न छोड़े जिससे कि वे दुष्ट कर्मों से निवृत्त हों और सब मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर ईर्ष्या-द्वेष से अलग होकर एक दूसरे की सब प्रकार सुख की उन्नति के लिये सदा यत्न करें ॥ २५ ॥

अपाररुमित्यस्य सर्वस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । पूर्वार्द्धे स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । उत्तरार्धे भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर इस यज्ञ से क्या क्या कार्य सिद्ध होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२६॥

पदार्थ—हे (**देव**) सर्वानन्द के देनेवाले जगदीश्वर ! (**सवितः**) सब प्राणियों में अन्तर्यामी, सत्य प्रकाश करनेहारे आपकी कृपा से हम लोग परस्पर उपदेश करें कि जैसे यह सबका प्रकाश करनेवाला सूर्य्यलोक इस पृथिवी में अनेक बन्धन के हेतु किरणों से खैंचकर पृथिवी आदि सब पदार्थों को बाँधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बाँधकर अच्छे-अच्छे गुणों का प्रकाश करो और जैसे मैं (**पृथिव्यै**) पृथिवी में (**देवयजनात्**) विद्वान् लोग जिस संग्राम से अच्छे-अच्छे पदार्थ वा उत्तम-उत्तम विद्वानों की संगति को प्राप्त होते हैं उससे (**अररुम्**) दुष्ट स्वभाववाले शत्रुजन को (**अपवध्यासम्**) मारता हूँ वैसे ही तुम लोग भी उसको मारो तथा जैसे मैं (**व्रजम्**) उत्तम उत्तम गुण जताने वाले सज्जनों के संग को प्राप्त होता हूँ वैसे तुम भी उसको (**गच्छ**) प्राप्त हो । जैसे मैं (**गोष्ठानम्**) पठन-पाठन व्यवहार की बतानेवाली मेघ की गर्जना के समतुल्य वेदवाणी को अच्छे-अच्छे शब्दरूपी बूँदों से हर्षाता हूँ वैसे तुम भी (**वर्षतु**) वर्षाओ जैसे मेरी विद्या की (**द्यौः**) शोभा सब को दृष्टिगोचर है वैसे (**ते**) तुम्हारी भी विद्या सुशोभित हो । जैसे मैं (**यः**) जो मूर्ख (**अस्मान्**) विद्या का प्रचार करनेवाले हम लोगों से (**द्वेष्टि**) विरोध करता है (**च**) और (**यम्**) जिस विद्याविरोधीजन को (**वयम्**) हम विद्वान् लोग (**द्विष्मः**) दुष्ट समझते हैं (**तम्**) उस (**परम्**) विद्या के शत्रु को (**अस्याम्**) इस सब पदार्थों की धारण करने और विविध सुख देनेवाली (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**शतेन**) बहुत से (**पाशैः**) बन्धनों से नित्य बाँधता हूँ कभी उससे उसको नहीं त्यागता वैसे हे वीर लोगो ! तुम भी उसको (**बधान**) बाँधो कभी उसको (**अतः**) उस बन्धन से (**मा, मौक्**) मत छोड़ो और जो दुष्टजन हम लोगों से विरोध करे तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें उसको उस बन्धन से कोई मनुष्य न छोड़े । इस प्रकार सब लोग उसको उपदेश करते रहें कि हे (**अररो**) दुष्टपुरुष ! तू (**दिवम्**) प्रकाश, उन्नति को (**मा पप्तः**) मत प्राप्त हो तथा (**ते**) तेरा (**द्रप्सः**) आनन्द देनेवाली विद्यारूपी रस (**द्याम्**) आनन्द को (**मा, स्कन्**) मत प्राप्त करे । हे श्रेष्ठों के मार्ग चाहनेवाले मनुष्यो ! जैसे मैं (**व्रजम्**) विद्वानों के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त होता हूँ वैसे तुम भी (**गच्छ**) उसको प्राप्त हो । जैसे यहाँ (**द्यौः**) सूर्य का प्रकाश (**गोष्ठानम्**) पृथिवी का स्थान अन्तरिक्ष को सींचता है वैसे ही ईश्वर वा विद्वान् पुरुष (**ते**) तुम्हारी कामनाओं को (**वर्षतु**) वर्षावें अर्थात् क्रम से पूरी करें । जैसे यह (**देव**) व्यवहार का हेतु (**सवितः**) सूर्य्यलोक (**अस्याम्**) इस बीज बोने योग्य (**पृथिव्याम्**) बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) बन्धन के हेतु किरणों से आकर्षण के साथ पृथिवी आदि सब पदार्थों को बाँधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बाँधो और (**यः**) जो न्यायविरोधी (**अस्मान्**) न्यायाधीश हम लोगों से (**द्वेष्टि**) कोप करता है (**च**) और (**यम्**) अन्यायकारी जन पर (**वयम्**) सम्पूर्ण हितसम्पादन करनेवाले हम लोग (**द्विष्मः**) कोप करते हैं (**तम्**) उस (**परम्**) शत्रु को (**अस्याम्**) इस (**पृथिव्याम्**) उक्त गुणवाली पृथिवी में (**शतेन**) अनेक (**पाशैः**) साम, दान दण्ड और भेद आदि उद्योगों से बाँधता हूँ और जैसे मैं उसको उस दण्ड से **बाँधकर** कभी नहीं छोड़ता वैसे ही तुम भी (**बधान**) बाँधो अर्थात् बन्धनरूप दण्ड सदा दो, कभी उसको (**मा, मौक्**) मत छोड़ो ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करनेवाले कार्य्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये । जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिये उनका बन्धन करना चाहिये । परस्पर प्रीति के साथ विद्या और शरीर का बल सम्पादन करके क्रिया तथा कलायन्त्रों से अनेक यान बनाकर सबको सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

गायत्रेणेत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ का ग्रहण वा अनुष्ठान किससे करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥२७॥

पदार्थ—जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ (**सुक्ष्मा**) यह पृथिवी शोभायमान (**असि**) होती है (**च**) तथा जिससे सुखकारक गुण (**च**) अथवा मनुष्यों के साथ यह (**शिवा**) मङ्गल की देनेवाली (**असि**) होती है (**च**) तथा जिस करके उत्तम से उत्तम सुखों के साथ यह पृथिवी (**स्योना**) सुख उत्पन्न करनेवाली (**असि**) होती है (**च**) और जिससे उत्तम उत्तम सुख करनेवाले और चलने के साथ यह (**सुषदा**) सुख में स्थिति करने योग्य (**असि**) होती है (**च**) तथा जिन उत्तम यव आदि अन्नों के साथ यह (**ऊर्जस्वती**) अन्नवाली (**असि**) होती है (**च**) और जिन उत्तम मधुर आदि रसवाले फलों से यह पृथिवी (**पयस्वती**) प्रशंसा करने योग्य रसवाली (**असि**) होती है (**त्वा**) उस यज्ञ को मैं यज्ञविद्या का जाननेवाला मनुष्य (**गायत्रेण**) गायत्री (**छन्दसा**) जो कि चित्त को प्रफुल्लित करनेवाला है उससे (**परिगृह्णामि**) सब प्रकार से सिद्ध करता हूँ और मैं (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुभ् (**छन्दसा**) जो कि स्वतन्त्रतारूप से आनन्द का देनेवाला है उससे (**त्वा**) पदार्थसमूह को (**परिगृह्णामि**) सब प्रकार से इकट्ठा करता हूँ तथा मैं (**जागतेन**) जगती जो कि (**छन्दसा**) अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करनेवाला है उससे (**त्वा**) उस भौतिक अग्नि को (**परिगृह्णामि**) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ ॥ २७ ॥

भावार्थ—वेद का प्रकाश करनेवाला ईश्वर हम लोगों के प्रति कहता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोगों को वेदमन्त्रों के विना पढ़े और उनके अर्थों के विना जाने यज्ञ का अनुष्ठान वा सुखरूप फल को प्राप्त होना और सब शुभ गुणयुक्त सुखकारी अन्न जल और वायु आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते इससे यह तीन प्रकार के यज्ञ की सिद्धि यत्नपूर्वक सम्पादन करके सदा सुख ही में रहना चाहिये और जो इस पृथिवी में वायु जल तथा ओषधियों को दूषित करनेवाले दुर्गन्ध अपगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं वे सर्वदा निवारण करने चाहियें ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्येत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । विराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

वे दोष कैसे निवारण करने और वहाँ मनुष्यों को फिर क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् । यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोसि ॥२८॥

पदार्थ—हे (**विरप्शिन्**) महाशय महागुणवान् जगदीश्वर ! आपने (**याम्**) जिस (**स्वधाभिः**) अन्न आदि पदार्थों से युक्त और (**जीवदानुम्**) प्राणियों को जीवन देनेवाले पदार्थ तथा (**पृथिवीम्**) बहुत सी प्रजायुक्त पृथिवी को (**उदादाय**) ऊपर उठाकर (**चन्द्रमसि**) चन्द्रलोक के समीप स्थापन की है इस कारण (**ताम्**) उस पृथिवी को (**धीरासः**) धीर बुद्धिवाले पुरुष प्राप्त होकर आपके (**अनुदिश्य**) अनुकूल चल कर (**यजन्ते**) यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करते हैं । जैसे—(**चन्द्रमसि**) आनन्द में वर्त्तमान होकर (**धीरासः**) बुद्धिमान् पुरुष (**याम्**) जिस (**जीवदानुम्**)

जीवों की हितकारक (**पृथिवीम्**) पृथिवी के (**अनुदिश्य**) आश्रित होकर सेना और शस्त्रों को (**उदादाय**) क्रम से लेकर (**विसृपः**) जो कि युद्ध करनेवाले पुरुषों के प्रभाव दिखाने योग्य और (**क्रूरस्य**) शत्रुओं के अंग विदीर्ण करनेवाले संग्राम के बीच में शत्रुओं को जीतकर राज्य को (**ऐरयन्**) प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष (**पुरा**) पहले समय में प्राप्त हुए जिन क्रियाओं से (**प्रोक्षणीः, उ**) अच्छी प्रकार पदार्थों को सींच के उनको (**आसादय**) सम्पादन करते हैं वैसे ही (**विरप्शिन्**) महान् ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुष ! तू भी उसको प्राप्त होके ईश्वर का पूजन तथा पदार्थ सिद्धि करने वाली उत्तम उत्तम क्रियाओं का सम्पादन कर। जैसे (**द्विषतः**) शत्रुओं का (**वधः**) नाश (**असि**) हो वैसे कामों को करके नित्य आनन्द में वर्त्तमान रह ॥ २८ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने क्रम से अन्तरिक्ष में पृथिवी, पृथिवियों के समीप चन्द्रलोक, चन्द्रलोकों के समीप पृथिवी, एक दूसरे के समीप तारालोक और सबके बीच में अनेक सूर्य्यलोक तथा इन सब में नाना प्रकार की प्रजा रचकर स्थापना की है वही परमेश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है। जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते तब तक राज्यसुख को नहीं प्राप्त हो सकते क्योंकि विना युद्ध और बल के शत्रुजन कभी नहीं डरते तथा विद्वान् लोग विद्या, न्याय और विनय के बिना यथावत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नहीं हो सकते इस कारण सबको जितेन्द्रिय होकर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सबके सुख के लिये उत्तम उत्तम प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः ।
अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ।
प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः ।
अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥२९॥

पदार्थ—मैं जिस (**अनिशितः**) अतिविस्तृत (**सपत्नक्षित्**) शत्रुओं के नाश करनेवाले संग्राम से (**प्रत्युष्टं रक्षः**) विघ्नकारी प्राणी और (**प्रत्युष्टा अरातयः**) जिनमें सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त (**असि**) होते हैं वा (**निष्टप्तं रक्षः**) जिस बन्धन से बाँधने योग्य (**निष्टप्ता अरातयः**) विद्या के विघ्न करनेवाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते हैं (**त्वा**) उस (**वाजिनम्**) वेग आदि गुणवाले संग्राम को (**वाजेध्यायै**) जो कि अन्न आदि पदार्थों से बलवान् करने के योग्य सेना है उसके लिये युद्ध के साधनों को (**संमार्ज्मि**) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ अर्थात् उनके दोषों का विनाश करता हूँ और मैं जिस (**सपत्नक्षित्**) शत्रु का नाश करनेवाले और (**अनिशिता**) अति विस्तारयुक्त सेना से (**प्रत्युष्टं रक्षः**) परसुख का न सहने वाला मनुष्य वा (**प्रत्युष्टा अरातयः**) उक्त अवगुणवाले अनेक मनुष्य (**निष्टप्तं रक्षः**) जुआ खेलने और परस्त्रीगमन करने तथा (**निष्टप्ता अरातयः**) औरों को सब प्रकार से दुःख देनेवाले मनुष्य अच्छी प्रकार निकाले जाते हैं (**त्वा**) उस (**वाजिनीम्**) बल और वेग आदि गुणवाली सेना को (**वाजेध्यायै**) बहुत साधनों से प्रकाशित करने के लिये (**संमार्ज्मि**) अच्छी प्रकार उत्तम उत्तम शिक्षाओं से शुद्ध करता हूँ। यह प्रथम अर्थ हुआ और जो कि (**अनिशितः**) बड़ी क्रियाओं से सिद्ध होने योग्य वा (**सपत्नक्षित्**) दोषों वा शत्रुओं के विनाश करनेहारे (**प्रत्युष्टं रक्षः**) विघ्नकारी प्राणी और (**प्रत्युष्टा अरातयः**) जिसमें सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त (**असि**) होते हैं, वा (**निष्टप्तं रक्षः**) जिस बन्धन से बाँधने योग्य (**निष्टप्ता अरातयः**) विद्या के विघ्न करनेवाले निरन्तर सन्ताप को प्राप्त होते हैं (**त्वा**) उस (**वाजिनम्**) यज्ञ को (**वाजेध्यायै**) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (**संमार्ज्मि**) शुद्धता से सिद्ध करता हूँ। इस प्रकार जिस (**सपत्नक्षित्**) शत्रुओं का नाश करनेवाली (**अनिशिता**) अतिविस्तारयुक्त क्रिया से (**प्रत्युष्टं रक्षः**) विघ्नकारी प्राणी और (**प्रत्युष्टा अतरायः**) दुर्गुण तथा नीच मनुष्य नष्ट होते हैं (**निष्टप्तं रक्षः**) काम क्रोध आदि राक्षसी भाव दूर होते हैं (**निष्टप्ता अरातयः**) जिसमें दुःख तथा दुर्गन्ध आदि दोष नष्ट (**असि**) होते हैं (**त्वा**) उस (**वाजिनीं**) सत्क्रिया को (**वाजेध्यायै**) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (**सम्मार्ज्मि**) भली प्रकार सिद्ध करता हूँ। इसी प्रकार आप भी इस यज्ञ तथा सत्क्रिया को पवित्रतापूर्वक सिद्ध करो। यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ २९ ॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्यों को विद्या और शुभ गुणों के प्रकाश और दुष्ट शत्रुओं की निवृत्ति के लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये तथा सदैव श्रेष्ठ शिक्षा, शस्त्र अस्त्र और सत्पुरुषयुक्त उत्तम सेना से श्रेष्ठों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश करना चाहिये जिसे करके अशुद्धि आदि दोषों के विनाश होने से सर्वत्र शुद्ध गुण प्रवृत्त हो सकते हैं ॥ २९ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ किस प्रकार का और कौन फल का देनेवाला होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ।
अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥३०॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो आप (**अदित्यै**) पृथिवी के (**रास्ना**) रस आदि पदार्थों के उत्पन्न करनेवाले (**असि**) हैं (**विष्णोः**) व्यापक (**वेष्पः**) पृथिवी आदि सब पदार्थों में प्रवर्त्तमान भी (**असि**) हैं तथा (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि के (**जिह्वा**) जीभरूप (**असि**) हैं वा (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**धाम्ने धाम्ने**) जिनमें कि वे विद्वान् सुखरूप पदार्थों को प्राप्त होते हैं जो तीनों धाम अर्थात् स्थान नाम और जन्म हैं उन धर्मों की प्राप्ति के तथा (**यजुषे यजुषे**) यजुर्वेद के मन्त्र मन्त्र का आशय प्रकाशित होने के लिये (**सुहूः**) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य है इस प्रकार के (**त्वा**) आपको मैं (**अदब्धेन**) प्रेमसुखयुक्त (**चक्षुषा**) विज्ञान से (**ऊर्ज्जे**) पराक्रम (**अदित्यै**) पृथ्वी तथा (**देवेभ्यः**) श्रेष्ठ गुणों वा (**धाम्ने धाम्ने**) स्थान, नाम और जन्म आदि पदार्थों की प्राप्ति तथा (**यजुषे यजुषे**) यजुर्वेद के मन्त्र मन्त्र के आशय जानने के लिये (**त्वा**) आपको (**अवपश्यामि**) ज्ञानरूपी नेत्रों से देखता हूँ आप भी कृपा करके (**मे**) मुझको विदित और मेरे पूजन को प्राप्त (**भव**) हूजिये। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा कहते हैं ॥ जिस कारण यह यज्ञ (**अदित्यै**) अन्तरिक्ष के सम्बन्धी (**रास्ना**) रसादि पदार्थों की क्रिया का कारण (**असि**) है (**विष्णोः**) यज्ञ सम्बन्धी कार्यों का (**वेष्पः**) व्यापक (**असि**) है (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि का (**जिह्वा**) जिह्वा रूप (**असि**) है (**देवेभ्यः**) तथा दिव्य गुण (**धाम्ने धाम्ने**) कीर्ति स्थान और जन्म इनकी प्राप्ति वा (**मे**) मेरे लिये (**यजुषे यजुषे**) यजुर्वेद के मन्त्र मन्त्र का आशय जानने के लिये (**सुहूः**) अच्छी प्रकार प्रशंसा करने योग्य (**भव**) होता है इस कारण (**त्वा**) उस यज्ञ को मैं (**अदब्धेन**) सुखपूर्वक (**चक्षुषा**) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रों से (**अवपश्यामि**) देखता हूँ तथा (**त्वा**) उसे (**अदित्यै**) पृथिवी आदि पदार्थ (**देवेभ्यः**) उत्तम उत्तम गुण (**ऊर्जे**) पराक्रम (**धाम्ने धाम्ने**) स्थान स्थान तथा (**यजुषे यजुषे**) यजुर्वेद के मन्त्र मन्त्र से हित होने के लिये (**अवपश्यामि**) क्रिया की कुशलता से देखता हूँ ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को जैसे यह जगदीश्वर वस्तु वस्तु में स्थित तथा वेद के मन्त्र मन्त्र में प्रतिपादित और सेवन करने योग्य है वैसे ही यह यज्ञ वेद के प्रति मन्त्र से अच्छी प्रकार सिद्ध, प्रतिपादित विद्वानों ने सेवित किया हुआ सब प्राणियों के लिये पदार्थ पदार्थ में पराक्रम और बल के पहुँचाने के योग्य होता है ॥ ३० ॥

सवितुस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वार्द्धे जगती छन्दः । निषादः स्वरः । तेजोऽसीत्यस्याऽनुष्टप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ कैसे पवित्र होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः ।
सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः ।
तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥३१॥

पदार्थ—जो यज्ञ (**सवितुः**) परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये संसार में (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पवित्रेण**) पवित्र तथा (**सूर्य्यस्य**) प्रकाशमय सूर्य्य की (**रश्मिभिः**) किरणों के साथ मिलाके सब पदार्थों को शुद्ध करता है (**त्वा**) यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं (**उत्पुनामि**) उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूँ। इसी प्रकार (**सवितुः**) परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए संसार में (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पवित्रेण**) शुद्धिकारक (**सूर्य्यस्य**) जो कि ऐश्वर्य्य हेतुओं के प्रेरक प्राण के (**रश्मिभिः**) अन्तराशय के प्रकाश करनेवाले गुण हैं उनसे (**वः**) तुम लोगों को तथा प्रत्यक्ष पदार्थों को यज्ञ करके (**उत्पुनामि**) पवित्र करता हूँ। हे ब्रह्मन् ! जिस कारण आप (**तेजोऽसि**) स्वयंप्रकाशवान् (**शुक्रमसि**) शुक्र (**अमृतमसि**) नाशरहित (**धामासि**) सब पदार्थों का आधार (**नामासि**) वन्दना करने योग्य (**देवानाम्**) विद्वानों के (**प्रियम्**) प्रीतिकारक (**अनाधृष्टम्**) तथा किसी की भयता में न आने योग्य वा (**देवयजनमसि**) विद्वानों के पूजा करने योग्य हैं इससे मैं (**त्वा**) आपका ही आश्रय करता हूँ ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ जिस कारण यह यज्ञ (**तेजोऽसि**) प्रकाश और (**शुक्रमसि**) शुद्धि का हेतु (**अमृतमसि**) मोक्ष सुख का देने तथा (**धामासि**) सब अन्न आदि पदार्थों की पुष्टि करने वा (**नामासि**) जल का हेतु (**देवानाम्**) श्रेष्ठ गुणों की (**प्रियम्**) प्रीति कराने तथा (**अनाधृष्टम्**) किसी को खण्डन करने के योग्य नहीं अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट और (**देवयजनम्**) विद्वान् जनों को परमेश्वर का पूजन करानेवाला (**असि**) है इस कारण इस यज्ञ से मैं (**सवितुः**) जगदीश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए संसार में (**अच्छिद्रेण**) निरन्तर (**पवित्रेण**) अति शुद्ध यज्ञ वा (**सूर्य्यस्य**) ऐश्वर्य्य उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के गुण अथवा ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करनेवाले सूर्य्य की (**रश्मिभिः**) विज्ञानादि प्रकाश वा किरणों से (**वः**) तुम लोग वा प्रत्यक्ष पदार्थों को (**उत्पुनामि**) पवित्र करता हूँ ॥ यह दूसरा अर्थ हुआ ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर यज्ञ विद्या के फल को जानता है कि जो तुम लोगों से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह सूर्य की किरणों के साथ रहकर अपने निरन्तर शुद्ध गुण से सब पदार्थों को पवित्र करता है तथा वह उसके द्वारा सब पदर्थों को सूर्य की किरणों से तेजवान् शुद्ध उत्तम रस वाले सुखकारक प्रसन्नता का हेतु दृढ़ और यज्ञ करानेवाले पदार्थों को उत्पन्न करके उनके भोजन वस्त्र से शरीर की पुष्टि बुद्धि और बल आदि शुद्ध गुणों को सम्पादन करके सब जीवों को सुख देता है ॥ ३१ ।

ईश्वर ने इस अध्याय में मनुष्यों को शुद्ध कर्म के अनुष्ठान, दोष और शत्रुओं की निवृत्ति, यज्ञक्रिया के फल को जानने, अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करने, विद्या के विस्तार करने, धर्म के अनुकूल प्रजा पालन, धर्म के अनुष्ठान में निर्भयता से स्थिर होने, सबके साथ मित्रता से वर्त्तने, वेदों से सब विद्याओं को ग्रहण करने और कराने को शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने को आज्ञा दी है सो यह सब मनुष्यों को अनुष्ठान करने के योग्य है ॥

卐

॥ अथ द्वितीयाध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥१॥

कृष्णोऽसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता ।
निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दूसरे अध्याय में परमेश्वर ने उन विद्याओं की सिद्धि करने के लिये विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो जो प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित की हैं । उनमें से वेद आदि पदार्थों के बनाने को हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं उन में से प्रथम मन्त्र में यज्ञ सिद्ध करने के लिये साधन अर्थात् उनकी सिद्धि के निमित्त कहे हैं—

कृष्णो॑ऽस्याखरे॒ष्ठोऽग्नये॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ वेदि॑रसि ब॒र्हिषे॑ त्वा॒ जुष्टां॒ प्रोक्षा॑मि ब॒र्हिर॑सि स्रु॒ग्भ्यस्त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि ॥१॥

पदार्थ—जिस कारण यह यज्ञ (**आखरेष्ठः**) वेदी की रचना से खुदे हुए स्थान में स्थिर होकर (**कृष्णः**) भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्मरूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त (**असि**) होता है इससे (**अग्नये**) भौतिक अग्नि के बीच में हवन करने के लिये (**जुष्टम्**) प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए (**त्वा**) उस यज्ञ अर्थात् होम की सामग्री को (**प्रोक्षामि**) घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूँ । और जिस कारण यह (**वेदिः**) वेदी अन्तरिक्ष में स्थित (**असि**) होती है इससे मैं (**बर्हिषे**) होम किये हुए पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने के लिये (**जुष्टाम्**) प्रीति सम्पादन की हुई (**त्वा**) उस वेदि को (**प्रोक्षामि**) अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूँ तथा जिस कारण यह (**बर्हिः**) जल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्धि करानेवाला (**असि**) होता है इससे (**त्वा**) उसकी शुद्धि के लिये जो कि शुद्ध किया हुआ (**जुष्टम्**) पुष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हवि है उसको मैं (**स्रुग्भ्यः**) स्रुवा आदि साधनों से अग्नि में डालने के लिये (**प्रोक्षामि**) शुद्ध करता हूँ ॥१ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री लेके उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्नि में होम करके किया हुआ यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब ओषधियों को पुष्ट करता है । उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है ॥ १ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । स्वराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करनेवाला होता है सो
अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

अदि॑त्यै व्युन्द॑नमसि॒ विष्णो॑ स्तु॒पोऽस्यूर्ण॑म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वास॒स्थां दे॒वेभ्यो॒ भुव॑पतये॒ स्वाहा॒ भुव॑नपतये॒ स्वाहा॒ भू॒ताना॒ं पत॑ये॒ स्वाहा॒ ॥२॥

पदार्थ—जिस कारण यह यज्ञ (**अदित्यै**) पृथिवी के (**व्युन्दनम्**) विविध प्रकार के ओषधि आदि पदार्थों का सींचनेवाला (**असि**) होता है इससे मैं उसका अनुष्ठान करता हूँ और (**विष्णोः**) इस यज्ञ की सिद्धि कराने हारा (**स्तुपः**) शिखारूप (**ऊर्णम्रदसम्**) उलूखल (**असि**) है इससे मैं (**त्वा**) उस अन्न के छिलके दूर करनेवाले पत्थर और उलूखल को (**स्तृणामि**) पदार्थों से ढांपता हूँ तथा वेदी (**देवेभ्यः**) विद्वान् और दिव्य सुखों के हित कराने के लिए (**असि**) होती है इससे उसको मैं (**स्वासस्थाम्**) ऐसी बनाता हूँ कि जिस में होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिससे संसार का पति, भुवन अर्थात् लोकलोकान्तरों का पति, संसारी पदार्थों का स्वामी और परमेश्वर प्रसन्न होता है तथा भौतिक अग्नि सुखों का सिद्ध करानेवाला होता है इस कारण (**भुवपतये स्वाहा, भुवनपतये स्वाहा, भूतानां पतये स्वाहा**) उक्त परमेश्वर की प्रसन्नता और आज्ञापालन के लिये उस वेदी के गुणों से जो कि सत्यभाषण अर्थात् अपने पदार्थों को मेरे हैं यह कहना वा श्रेष्ठवाक्य आदि उत्तम वाणीयुक्त वेद है उसके मन्त्रों के साथ स्वाहा शब्द का अनेक प्रकार. उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों का विधान किया जाता है, इस प्रयोजन के लिये भी वेदी को रचता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुमको वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन करके सब प्राणियों के सुख तथा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार क्रियायुक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही बोलना चाहिये और जैसे मैं न्याय से सब विश्व का पालन करता हूँ वैसे ही तुम लोगों को भी पक्षपात छोड़कर सब प्राणियों के पालन से सुख सम्पादन करना चाहिये ॥ २ ॥

गंधर्वस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । आद्यस्य भुरिगार्च्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । मध्यभागस्य(भुरिग्)अर्च्चीपंक्तिश्छन्दः । अन्त्यस्य पंक्तिश्छन्दः । उभयत्र पंचमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है सो
अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

ग॒न्ध॒र्वस्त्वा॑ वि॒श्वाव॑सुः परि॑दधातु विश्व॒स्यारि॑ष्ट्यै यज॑मानस्य परि॒धिर॑स्य॒ग्निरि॒डऽई॑डि॒तः । इन्द्र॑स्य बा॒हुर॑सि॒ दक्षि॑णो॒ विश्व॒स्यारि॑ष्ट्यै यज॑मानस्य परि॒धिर॑स्य॒ग्निरि॒डऽई॑डि॒तः । मि॒त्रावरु॑णौ त्वोत्तर॒तः परि॑धत्तां ध्रु॒वेण॒ धर्म॑णा विश्व॒स्यारि॑ष्ट्यै यज॑मानस्य परि॒धिर॑स्य॒ग्निरि॒डऽई॑डि॒तः ॥३॥

पदार्थ—विद्वान् लोगों ने जिस(**गन्धर्वः**) पृथिवी वा वाणी के धारण करने वाले (**विश्वावसुः**) विश्व को बसानेवाले (**परिधिः**) सब ओर से सब वस्तुओं को धारण करनेवाले (**इडः**) स्तुति करने योग्य (**अग्निः**) सूर्य्यरूप अग्नि की (**ईडितः**) स्तुति (**असि**) की है, जो (**विश्वस्य**) संसार के वा विशेष करके (**यजमानस्य**) यज्ञ करनेवाले विद्वान् के (**अरिष्ट्यै**) दुःखनिवारण से सुख के लिये इस यज्ञ को (**परिदधातु**) धारण करता है इससे विद्वान् (**त्वा**) उसको विद्या की सिद्धि के लिये (**परिदधातु**) धारण करे और विद्वानों से जो वायु (**इन्द्रस्य**) सूर्य्य का (**बाहुः**) बल और (**दक्षिणः**) वर्षा की प्राप्ति कराने अथवा (**परिधिः**) शिल्पविद्या का धारण करानेवाला तथा (**इडः**) दाह प्रकाश आदि गुण वाला होने से स्तुति के योग्य (**ईडितः**) खोजा हुआ और (**अग्निः**) प्रत्यक्ष अग्नि (**असि**) है । वे वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्प विद्या में युक्त किये हुये (**यजमानस्य**) शिल्प विद्या के चाहनेवाले वा (**विश्वस्य**) सब प्राणियों के (**अरिष्ट्यै**) सुख के लिये (**असि**) होते हैं और जो ब्रह्मांड में रहने और गमन वा आगमन स्वभाववाले (**मित्रावरुणौ**) प्राण और अपान वायु हैं वे (**ध्रुवेण**) निश्चल (**धर्मणा**) अपनी धारण शक्ति से (**उत्तरतः**) पूर्वोक्त वायु और अग्नि से उत्तर अर्थात् उपरान्त समय में (**विश्वस्य**) चराचर जगत् वा (**यजमानस्य**) सब से मित्रभाव में वर्त्तने वाले सज्जन पुरुष के (**अरिष्ट्यै**) सुख के हेतु (**त्वा**) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (**परिधत्ताम्**) सब प्रकार से धारण करते हैं तथा जो विद्वानों से (**इडः**) विद्या की प्राप्ति के लिये प्रशंसा करने के योग्य और (**परिधिः**) सब शिल्पविद्या की सिद्धि को घेरने से अवधि तथा (**ईडितः**) विद्या की इच्छा करनेवालों से प्रशंसा को प्राप्त (**अग्निः**) बिजुलीरूप अग्नि (**असि**) है वह भी इस यज्ञ को सब प्रकार से धारण करता है। इन के गुणों को मनुष्य यथावत् जान के उपयोग करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने जो सूर्य्य विद्युत् और प्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार का अग्नि रचा है वह विद्वानों से शिल्पविद्या के द्वारा यन्त्रादिकों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक कार्य्यों को सिद्ध करने वाला होता है ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रमित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में उक्त दो अर्थों का प्रकाश किया है—

वी॒तिहो॑त्रं त्वा कवे द्यु॒मन्त॒ꣳ समि॑धीमहि । अग्ने॑ बृ॒हन्त॑मध्व॒रे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**कवे**) सर्वज्ञ तथा हरएक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञान वाले (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! हम लोग (**अध्वरे**) मित्रभाव के रहने में (**बृहन्तम्**) सब के लिये बड़े से बड़े अपार सुख के बढ़ाने और (**द्युमन्तम्**) अत्यन्त प्रकाशवाले वा (**वीतिहोत्रम्**) अग्निहोत्र आदि यज्ञों को विदित करानेवाले (**त्वा**) आप को (**समिधीमहि**) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें । यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ । हम लोग (**अध्वरे**) अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं उस उत्तम यज्ञ में जिस में कि (**वीतिहोत्रम्**) पदार्थों की प्राप्ति कराने के हेतु अग्निहोत्र आदि क्रिया सिद्ध होती है और (**द्युमन्तम्**) अत्यन्त प्रचण्ड ज्वालायुक्त (**बृहन्तम्**) बड़े-बड़े कार्य्यों को सिद्ध कराने तथा (**कवे**) पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले (**त्वा**) उस (**अग्ने**) भौतिक अग्नि को (**समिधीमहि**) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करें । यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—संसार में जितने क्रियाओं के साधन वा क्रियाओं से सिद्ध होने वाले पदार्थ हैं उन सबको ईश्वर ही ने रचकर अच्छी प्रकार धारण किया है, मनुष्यों को उचित है कि उनकी सहायता से, गुण ज्ञान और उत्तम-उत्तम क्रियाओं की अनुकूलता से अनेक प्रकार उपकार लेने चाहियें ॥ ४ ॥

समिदसीत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचृद्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स॒मिद॑सि॒ सूर्य्य॑स्त्वा पु॒रस्ता॑त् पा॒तु कस्या॑श्चिद॒भिश॑स्त्यै । स॒वि॒तुर्बा॒हू स्थ॒ऽऊर्ण॑म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वास॒स्थं दे॒वेभ्य॒ऽआ त्वा॒ वस॑वो रु॒द्राऽआ॑दि॒त्याः स॑दन्तु ॥५॥

पदार्थ—(**चित्**) जैसे कोई कोई मनुष्य सुख के लिये क्रिया से सिद्ध किये पदार्थों की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे ही यह यज्ञ (**समित्**) वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित (**असि**) होता है (**त्वा**) उसको (**सूर्य्यः**) ऐश्वर्य्य का हेतु सूर्य्यलोक (**कस्याः**) सब पदार्थों की (**अभिशस्त्यं**) प्रकटता करने के लिये (**पुरस्तात्**) पहिले ही से उनकी (**पातु**) रक्षा करनेवाला होता है तथा जो कि (**सवितुः**) सूर्य्यलोक के (**बाहू**) बल और वीर्य्य (**स्थः**) हैं जिन से यह यज्ञ विस्तार को प्राप्त होता है (**त्वा**) जिस (**ऊर्णम्रदसम्**) सुख के विघ्नों के नाश करने (**स्वासस्थम्**) और श्रेष्ठ अन्तरिक्षरूपी आसन में स्थित होनेवाले यज्ञ को (**वसवः**) अग्नि आदि आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण, ये वसु (**रुद्राः**) प्राण, अपान, व्यान उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा, ये रुद्र (**आदित्याः**) बारह महीने (**सदन्तु**) प्राप्त करते हैं। (**त्वा**) उसी (**ऊर्णम्रदसम्**) अत्यन्त सुख बढ़ाने (**स्वासस्थम्**) और अन्तरिक्ष में स्थिर होने वाले यज्ञ को मैं भी सुख की प्राप्ति वा (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों को सिद्ध करने के लिये (**आस्तृणामि**) अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि मनुष्यों को वसु, रुद्र और आदित्यसंज्ञक पदार्थों से जो-जो काम सिद्ध हो सकते हैं, सो-सो सब प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं तथा अग्नि के बीच जिन-जिन पदार्थों का प्रक्षेप अर्थात् हवन किया जाता है, सो-सो सूर्य्य और वायु को प्राप्त होता है। वे ही उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं जिस से कि पृथिवी में दिव्य ओषधि आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उनसे जीवों को नित्य सुख होता है, इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ५ ॥

घृताच्यसीत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता सर्वस्य । षट्षष्टितमाक्षरपर्यन्तं ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । अग्ने निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । सर्वस्य धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ से क्या-क्या प्रिय सुख सिद्ध होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसदऽआसीद । ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

पदार्थ—जो (**नाम्ना, जुहूः**) हवि अग्नि में डालने के लिये सुख की उत्पन्न करनेवाली (**घृताची**) घृत को प्राप्त करनेवाली आदान क्रिया (**असि**) है (**सा**) वह यज्ञ में युक्त की हुई सार ग्रहण की क्रिया है सो (**प्रियेण**) सुखों से तृप्त करने वाला शोभायमान (**धाम्ना**) स्थान के साथ वर्त्तमान होके (**इदम्**) यह (**प्रियम्**) जिसमें तृप्त करनेवाले (**सदः**) उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं उनको (**आसीद**) सिद्ध करती है। जो (**नाम्ना**) प्रसिद्धि से (**उपभृत्**) समीप प्राप्त हुए पदार्थों को धारण करने तथा (**घृताची**) जल को प्राप्त कराने वाली हस्तक्रिया (**असि**) है (**सा**) वह यज्ञ में युक्त की हुई (**प्रियेण**) प्रीति के हेतु (**धाम्ना**) स्थल से (**इदम्**) यह ओषधि आदि पदार्थों का समूह (**प्रियम्**) जो कि आरोग्यपूर्वक सुखदायक और (**सदः**) दुःखों का नाश करनेवाला है उनको (**आसीद**) अच्छी प्रकार प्राप्त करती है तथा जो (**नाम्ना, ध्रुवा**) स्थिर सुखों वा (**घृताची**) आयु के निमित्त की देने वाली विद्या (**असि**) होती है (**सा**) वह अच्छी प्रकार उत्तम कार्यों में युक्त की हुई (**प्रियेण**) प्रीति उत्पन्न करनेवाले (**धाम्ना**) स्थिरता के निमित्त से (**इदम्**) इस (**प्रियम्**) आनन्द करानेवाले जीवन वा (**सदः**) वस्तुओं को (**आसीद**) प्राप्त करता है। जिस क्रिया करके (**प्रियेण**) प्रपन्नता के करनेहारे (**धाम्ना**) हृदय से (**प्रियम्**) प्रसन्नता करनेवाला (**सदः**) ज्ञान (**आसीद**) अच्छी प्रकार प्राप्त होता है (**सा**) वह विज्ञानरीति सब को नित्य सिद्ध करनी चाहिये। हे (**विष्णो**) व्यापकेश्वर ! जैसे जो-जो (**ऋतस्य योनौ**) शुद्ध यज्ञ में (**ध्रुवा**) स्थिर वस्तु (**असदन्**) हो सके वैसे ही उनकी निरन्तर (**पाहि**) रक्षा कीजिये तथा कृपा कर के (**यज्ञं**) यज्ञ की (**पाहि**) रक्षा कीजिये (**यज्ञन्यम्**) यज्ञ प्राप्त करने (**यज्ञपतिम्**) यज्ञ को पालन करने हारे यजमान की (**पाहि**) रक्षा करो और यज्ञ को प्रकाशित करनेवाले (**माम्**) मुझे (**च**) भी (**पाहि**) पालिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो यज्ञ पूर्वोक्त मन्त्र में वसु, रुद्र और आदित्य से सिद्ध होने के लिये कहा है वह वायु और जल की शुद्धि के द्वारा सब स्थानों और सब वस्तुओं को प्रीति कराने हारे उत्तम सुख को बढ़ानेवाले कर देता है सब मनुष्यों को उनकी वृद्धि वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर की प्रार्थना और सदा अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ६ ॥

अग्ने वाजजिदित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥७॥

पदार्थ—जिससे यह (**अग्ने**) अग्नि (**वाजजित्**) अर्थात् जो उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त करानेवाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है इससे मैं (**त्वा**) उस (**वाजम्**) वेगवाले (**सरिष्यन्तम्**) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने और (**वाजजितम्**) वाज अर्थात् युद्ध को जितानेवाले भौतिक अग्नि को (**सम्मार्ज्मि**) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ यज्ञ में युक्त किये हुए जिस अग्नि से (**देवेभ्यः**) सुखकारक पूर्वोक्त वसु आदि से सुख के लिये (**नमः**) अत्यन्त मधुर श्रेष्ठ जल तथा (**पितृभ्यः**) पालन के हेतु जो वसन्त आदि ऋतु हैं उनसे जो आरोग्य के लिये (**स्वधा**) अमृतात्मक अन्न किये जाते हैं वे (**सुयमे**) बल वा पराक्रम के देनेवाले उस यज्ञ से (**मे**) मेरे लिये (**भूयास्तम्**) होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मन्त्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है। क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट देखने में आती है वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों को छिन्न भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है और यान वा अस्त्र-शस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन वा विजय का हेतु होकर वसन्त आदि ऋतुओं से उत्तम-उत्तम पदार्थों का सम्पादन करके अन्न और जल को शुद्ध वा सुख देनेवाले कर देता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ७ ॥

अस्कन्नमद्येत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यꣳसंभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात् ॥८॥

पदार्थ—मैं (**देवेभ्यः**) उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिये जो (**अस्कन्नम्**) निश्चल सुखदायक (**आज्यम्**) घृत आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ हैं उसको (**अंघ्रिणा**) पदार्थ पहुँचानेवाले अग्नि से (**अद्य**) आज (**संभ्रियासम्**) धारण करूं और (**त्वा**) उसका मैं (**मावक्रमिषम्**) कभी उल्लंघन न करूं। तथा हे अग्ने जगदीश्वर ! (**ते**) आप के (**वसुमतीम्**) पदार्थ देनेवाले (**छायाम्**) आश्रय को (**उपस्थेषम्**) प्राप्त होऊँ। जो यह (**अग्ने**) अग्नि (**विष्णोः**) यज्ञ के (**स्थानम्**) ठहरने का स्थान (**असि**) है उसके भी (**वसुमतीम्**) उत्तम पदार्थ देनेवाले (**छायाम्**) आश्रय को मैं (**उपस्थेषम्**) प्राप्त होकर यज्ञ को सिद्ध करता हूँ तथा जो (**ऊर्ध्वः**) आकाश और जो (**अध्वरः**) यज्ञ अग्नि में ठहरनेवाला (**आ**) सब प्रकार से (**अस्थात्**) ठहरता है उसको (**इन्द्रः**) सूर्य्य और वायु धारण करके (**वीर्य्यम्**) कर्म अथवा पराक्रम को (**अकृणोत्**) करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध होकर बहुत सा अन्न उत्पन्न करनेवाले होते हैं उसको सिद्ध करने के लिये मनुष्यों को बहुत सी सामग्री जोड़नी चाहिये। जैसे मैं सर्वत्र व्यापक हूँ मेरी आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं करनी चाहिये किन्तु जो असंख्यात सुखों का देनेवाला मेरा आश्रय है उसको सदा ग्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिसको सूर्य्य अपनी किरणों से खैंच कर वायु के योग से ऊपर मेघमण्डल में स्थापन करता है और फिर वह उसको वहां से मेघ द्वारा गिरा देता है और जिससे पृथिवी पर बड़ा सुख उत्पन्न होता है उस यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है ॥ ८ ॥

अग्ने वेरित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) परमेश्वर ! जो (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशमय सूर्यलोक और पृथिवी यज्ञ की (**अवताम्**) रक्षा करते हैं उनकी (**त्वम्**) आप (**वेः**) रक्षा करो तथा जैसे यह भौतिक अग्नि (**होत्रम्**) यज्ञ और (**दूत्यम्**) दूत कर्म को प्राप्त होकर (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशमय सूर्य्यलोक और पृथिवी की रक्षा करता है, वैसे हे भगवन्! (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**स्विष्टकृत्**) उनकी इच्छानुकूल अच्छे अच्छे कार्य्यों के करनेवाले आप हम लोगों की (**अव**) रक्षा कीजिये जो यह (**आज्येन**) यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ने योग्य घृत आदि उत्तम उत्तम पदार्थ (**हविषा**) संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्तूरी केसर आदि पदार्थ वा (**ज्योतिषा**) प्रकाशयुक्त लोकों के साथ (**ज्योतिः**) प्रकाशमय किरणों से (**स्विष्टकृत्**) अच्छे अच्छे वांछित कार्य्य सिद्ध करानेवाला (**इन्द्रः**) सूर्य्यलोक भी (**द्यावापृथिवी**) हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्य की रक्षा करनेवाला (**अभूत्**) होता है वैसे आप (**ज्योतिः**) विज्ञानरूप ज्योति के दान से हम लोगों की (**अव**) रक्षा कीजिये इस कर्म को (**स्वाहा**) वेदवाणी कहती है ॥ ९ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो जो अग्नि पृथिवी सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों को जान के होम और दूत-सम्बन्धी कर्म का अनुष्ठान करना योग्य है सो सो उनके लिये वांछित सुख के देनेवाले होते हैं। अष्टम मन्त्र से कहे हुए साधन का फल नवमे मन्त्र से प्रकाशित किया है ॥ ९ ॥

मयीदमित्यस्य ऋषिः स एव । इन्द्रो देवता । भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में उक्त यज्ञ से उत्पन्न होनेवाले फल का उपदेश किया है—

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (मयि) मुझ में (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिह्न तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और सब सुखों को सिद्ध करानेवाले जो विद्वानों को दिया है जिसको वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं उन्हें तथा (रायः) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को (दधातु) नित्य स्थापन करे और उसकी कृपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से (मघवानः) जिनमें कि बहुत धन राज्य आदि पदार्थ विद्यमान हैं जिन करके हम लोग पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त हों वैसे धन (नः) हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को (सचन्ताम्) प्राप्त हों तथा इसी प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकार करनेवाले धर्मात्माओं की (आशिषः) कामना (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों और ऐसे ही (नः) हमारी (आशिषः) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो क्रिया हैं वे भी (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों तथा इसी प्रकार (माता) धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करनेहारी विद्या और (पृथिवी) बहुत सुख देनेवाली भूमि है (उपहूता) जिसको राज्य आदि सुख के लिये मनुष्य क्रम से प्राप्त होते हैं वह (माम्) सुख की इच्छा करनेवाले मुझको (उपह्वयताम्) अच्छी प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह (अग्निः) जिस भौतिक अग्नि को कि (आग्नीध्रात्) इन्धनादि से प्रज्वलित करते हैं वह वांछित सुखों का करनेवाला होकर (नः) हमारे सुखों का आगमन करावें क्योंकि ऐसे ही अच्छी प्रकार होम को प्राप्त होके चाहे हुए कार्यों को सिद्ध करनेहारा होता है (स्वाहा) सब मनुष्यों के करने के लिये वेदवाणी इस कर्म को कहती है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थी, परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वे ही श्रेष्ठ ज्ञान, उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं और नहीं। जो सबको मान्य देने के कारण इस मन्त्र में पृथिवी शब्द से भूमि और विद्या का प्रकाश किया है सो ये सब मनुष्यों को उपकार में लाने के योग्य है। ईश्वर ने इस वेदमन्त्र से यही प्रकाशित किया है तथा जो नवम मन्त्र से अग्नि आदि पदार्थों से इच्छित सुख की प्राप्ति कही है वही बात दशम मन्त्र से प्रकाशित की है ॥ १० ॥

उपहूतेत्यस्य ऋषिः स एव । द्यावापृथिवी देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में उक्त अर्थ को दृढ़ किया है—

उप॑हूतो द्यौष्पि॒तोप॒ मां द्यौष्पि॒ता ह्व॑यताम॒ग्निराग्नी॑ध्रात् स्वाहा॑ ।
दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्ब्रा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
प्रति॑गृह्णाम्य॒ग्नेष्ट्वा॒स्ये॑न॒ प्राश्ना॑मि ॥११॥

पदार्थ—मुझ से जो (द्यौः) प्रकाशमय (पिता) सर्वपालक ईश्वर (उपहूतः) प्रार्थना किया हुआ (माम्) सुख भोगनेवाले मुझको (उपह्वयताम्) अच्छी प्रकार स्वीकार करे इसी प्रकार जो (द्यौः) प्रकाशवान् (पिता) सब उत्तम क्रियाओं के पालने का हेतु सूर्य्यलोक मुझ से (उपहूतः) क्रियाओं में प्रयुक्त किया हुआ (माम्) सब सुख भोगनेवाले मुझको विद्या के लिये (उपह्वयताम्) युक्त करता है तथा जो (अग्निः) जाठराग्नि (स्वाहा) अच्छे भोजन किये हुए अन्न को (आग्नीध्रात्) उदर में अन्न के कोठे में पचा देता है उससे मैं (देवस्य) हर्ष देने (सवितुः) और सबके उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए (प्रसवे) संसार में विद्यमान और (त्वा) उस उक्त भोग को (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) आकर्षण और धारण गुणों से तथा (पूष्णः) पुष्टि के हेतु समान वायु के (हस्ताभ्याम्) शोधन वा शरीर के अङ्ग अङ्ग में पहुँचाने के गुण से (प्रतिगृह्णामि) अच्छी प्रकार ग्रहण करता हूं ग्रहण करके (अग्नेः) प्रज्वलित अग्नि के बीच में पकाकर (त्वा) उस भोजन करने योग्य अन्न को (आस्येन) अपने मुख से (प्राश्नामि) भोजन करता हूं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने आत्मा की शुद्धि के लिये अनन्त विद्या के प्रकाश करनेवाले परमेश्वर पिता का आह्वान अर्थात् अच्छी प्रकार नित्य सेवन करना चाहिये तथा विद्या की सिद्धि के लिये उदर की अग्नि को दीप्त कर और नेत्रों से अच्छी प्रकार देख के संस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अन्न का नित्य भोजन करना चाहिये। सब भोग इस संसार में जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये पदार्थ हैं उनसे सिद्ध होते हैं वह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार से भोगना चाहिये और वैसे ही औरों को वर्त्ताना चाहिये। जो पूर्वमन्त्र से पृथिवी में विद्या से प्राप्त होने वा मान्य के करानेवाले पदार्थ कहे हैं उनका भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनुष्यों को करना चाहिये। ऐसा इस मन्त्र से प्रतिपादन किया है ॥ ११ ॥

एतन्त इत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये और किसने यह विद्या का प्रबन्ध प्रकाशित किया है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

ए॒तं ते॑ देव सवितर्य॒ज्ञं प्राहु॒र्बृह॒स्पत॑ये ब्र॒ह्मणे॑ ।
तेन॑ य॒ज्ञम॑व॒ तेन॑ य॒ज्ञप॑तिं॒ तेन॒ माम॑व ॥१२॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य सुख वा उत्तम गुण देने तथा (सवितः) सब ऐश्वर्य का विधान करनेवाले जगदीश्वर ! वेद और विद्वान् आपके प्रकाशित किये हुए (एतम्) इस पूर्वोक्त यज्ञ को (प्राहुः) अच्छी प्रकार कहते हैं कि जिससे (बृहस्पतये) बड़ों में बड़ी जो वेदवाणी है उसके पालन करनेवाले (ब्रह्मणे) चारों वेदों के पढ़ने से ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् के लिये सुख और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं। इस (यज्ञम्) यज्ञ सम्बन्धी धर्म से (यज्ञपतिम्) यज्ञ को करने वा सब प्राणियों को सुख देनेवाले विद्वान् और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से (मा) मेरी भी (अव) रक्षा कीजिये ॥१२॥

भावार्थ—ईश्वर ने सृष्टि के आदि में दिव्यगुण वाले अग्नि, वायु, रवि और अङ्गिरा ऋषियों के द्वारा चारों वेद के उपदेश से सब मनुष्यों के लिये विद्या प्राप्ति के साथ यज्ञ के अनुष्ठान की विधि का उपदेश किया है जिससे सब की रक्षा होती है क्योंकि विद्या और शुद्धि क्रिया के बिना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नहीं हो सकती इसलिये हम सबको उचित है कि परस्पर प्रीति के साथ अपनी वृद्धि और रक्षा यत्न से करनी चाहिये। जो ग्यारहवें मन्त्र से यज्ञ का फल कहा है उसका प्रकाश परमेश्वर ही ने किया है ऐसा इस मन्त्र में विधान है ॥१२॥

मनोजूतिरित्यस्य ऋषिः स एव । बृहस्पतिर्देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

जिससे यज्ञ किया जा सकता है सो विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

मनो॑ जू॒तिर्जु॑षता॒माज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञमि॒मं त॑नो॒त्वरि॑ष्टं य॒ज्ञꣳ समि॒मं द॑धातु । विश्वे॑ दे॒वास॑ऽइ॒ह मा॑दयन्ता॒मो३म्प्रति॑ष्ठ ॥१३॥

पदार्थ—(जूतिः) अपने वेग से सब जगह जानेवाला (मनः) विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन (आज्यस्य) यज्ञ की सामग्री का (जुषताम्) सेवन करे (बृहस्पतिः) बड़े बड़े जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ हैं उसका जो पति अर्थात् पालन करने हारा ईश्वर है वह (इमम्) इस प्रकट और अप्रकट (अरिष्टम्) अहिंसनीय (यज्ञम्) सुखों के भोगरूपी यज्ञ को (तनोतु) विस्तार करे तथा (इमम्) इस (अरिष्टम्) जो छोड़ने योग्य नहीं (यज्ञम्) जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विज्ञान की प्राप्तिरूप यज्ञ है इसको (संदधातु) अच्छी प्रकार धारण करावे। हे (विश्वेदेवासः) सकल विद्वान् लोगो ! तुम इन पालन करने योग्य दो यज्ञों का धारण वा विस्तार करके (इह) इस संसार वा अपने मन में (मादयन्ताम्) आनन्दित होओ। हे (ओ३म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर ! आप (बृहस्पतिः) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे (इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्यादि को स्थापन कीजिये ॥१३॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम्हारा मन अच्छे ही कामों में प्रवृत्त हो तथा मैंने जो संसार में यज्ञ करने की आज्ञा दी है उसका उक्त प्रकार से यथावत् अनुष्ठान करके सुखी हो तथा औरों को भी सुखी करो। (ओम्) यह परमेश्वर का नाम है जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है वैसे ही परमेश्वर के साथ (ओम्) ओंकार का सम्बन्ध है तथा अच्छे कामों के बिना किसी की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती इसलिये सब मनुष्यों को सर्वथा अधर्म छोड़कर धर्म कामों का ही सेवन करना योग्य है जिससे संसार में निश्चय करके अविद्यारूपी अन्धकार निवृत्त होकर विद्यारूपी सूर्य्य प्रकाशित हो। बारहवें मन्त्र से जिस यज्ञ का प्रकाश किया था उसके अनुष्ठान से सब मनुष्यों की प्रतिष्ठा वा सुख होते हैं यह इसमें प्रकाशित किया है ॥१३॥

एषा त इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वोऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । अग्ने वाजजिदित्यत्र निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यज्ञ में अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

ए॒षा ते॑ऽअग्ने स॒मित्तया॒ वर्ध॑स्व॒ चा च॒ प्याय॑स्व ।
व॒र्धि॒षी॒महि॑ च व॒यमा च॒ प्यासिषीमहि ।
अग्ने॑ वाजजि॒द्वाजं॑ त्वा ससृ॒वाꣳसं॒ वाज॒जित॒ꣳ सम्मा॑र्ज्मि ॥१४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (ते) आपकी जो (एषा) यह (समित्) अच्छी प्रकार पदार्थों की प्रकाश करनेवाली वेदविद्या है (तया) उससे हम लोगों की की हुई स्तुति को प्राप्त होकर आप नित्य (वर्धस्व) हमारे ज्ञान में वृद्धि को प्राप्त हूजिये (च) और उस वेदविद्या से हम लोगों की भी नित्य वृद्धि कीजिये। इसी प्रकार हे भगवन् ! आप के गुणों को जनानेहारे हम लोगों से (च) भी प्रकाशित होकर आप (प्यायस्व) हमारे आत्माओं में वृद्धि को प्राप्त हूजिये। इसी प्रकार हम को भी बढ़ाइये। हे भगवन् ! (अग्ने) विज्ञानस्वरूप विजय देने और (वाजजित्) सब के वेग को जीतनेवाले परमेश्वर ! हम लोग (वाजम्) जो कि ज्ञानस्वरूप (ससृवांसम्) अर्थात् सब को जाननेवाले (त्वा) आपकी (वर्धिषीमहि) स्तुतियों से वृद्धि तथा प्राप्ति करें (च) और आप कृपा करके हमको भी सब के वेग के जीतने तथा ज्ञानवान् अर्थात् सब के मन के व्यवहारों को जाननेवाले कीजिये और जैसे हम लोग आपकी (आप्यासिषीमहि) अधिक अधिक स्तुति करें वैसे ही आप भी हम लोगों को सब उत्तम उत्तम गुण और सुखों से (आप्यायस्व) वृद्धियुक्त कीजिये। हम आपके आश्रय को प्राप्त होकर तथा आपकी आज्ञा के पालने से (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध होते हैं ॥ १ ॥ जो (एषा) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि है (ते) उसकी (समित्) बढ़ाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीप्त करनेवाली लकड़ियों का समूह है (तया) उससे यह अग्नि (वर्धस्व) बढ़ता और (आप्यायस्व) परिपूर्ण भी होता है। हम लोग (त्वा) उस (वाजम्) वेग और (ससृवांसम्) शिल्पविद्या के गुणों को देने तथा (वाजजितम्) संग्राम के जिताने के साधन अग्नि को विद्या की वृद्धि के लिये (वर्धिषीमहि) बढ़ाते हैं (च) और (आप्यासिषीमहि) कलाओं में परिपूर्ण भी करते हैं जिससे यह शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानों तथा वेग वाले शिल्पविद्या के गुणों की प्राप्ति से संग्राम को जितानेवाले हमको विजय के साथ बढ़ाता है इससे (त्वा) उस अग्नि को हम (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं ॥१४॥

पदार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। और एक एक अर्थ के दो दो क्रियापद आदर के लिये जानने चाहियें। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने और क्रिया की कुशलता में उन्नति को प्राप्त होते हैं वे, विद्या और सुख में सब को आनन्दित

कर और दुष्ट शत्रुओं को जीतकर शुद्ध होके सुखी होते हैं। जो आलस्य करने वाले हैं वे ऐसे कभी नहीं सो सकते और चार चकारों से ईश्वर की धर्मयुक्त आज्ञा सूक्ष्म वा स्थूलता से अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य्य भी अनेक प्रकार के हैं ऐसा समझना चाहिये। जो तेरहवें मन्त्र में वेदविद्या कही है उस से सुख के लिये यज्ञ का सन्धान तथा पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है ॥१४॥

अग्नीषोमयोरिति सर्वस्य ऋषिः स एव । अग्नीषोमौ देवते । पूर्वार्द्धे ब्राह्मीबृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । उत्तरार्द्धे इन्द्राग्नी देवते । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब उस यज्ञ से क्या क्या दूर करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि । इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

पदार्थ—मैं (**अग्नीषोमयोः**) प्रसिद्ध भौतिक अग्नि और चन्द्रलोक के (**उज्जितिम्**) दुःख से सहने योग्य शत्रुओं को (**अनूज्जेषम्**) यथाक्रम से जीतूं और (**वाजस्य**) युद्ध के (**प्रसवेन**) उत्पादन से विजय करनेवाले (**मा**) अपने आप को (**प्रोहामि**) अच्छी प्रकार शुद्ध तर्कों से युक्त करूं। जो मुझ से अच्छी प्रकार विद्या से क्रियाकुशलता में युक्त किये हुए (**अग्नीषोमौ**) उक्त अग्नि और चन्द्रलोक हैं वे (**यः**) जो कि अन्याय में वर्त्तने वाला दुष्ट मनुष्य (**अस्मान्**) न्याय करनेवाले हम लोगों को (**द्वेष्टि**) शत्रुभाव से वर्त्तता है (**यं च**) और जिस अन्याय करनेवाले से (**वयम्**) न्यायाधीश हम लोग (**द्विष्मः**) विरोध करते हैं (**तम्**) उस शत्रु वा रोग को (**अपनुदताम्**) दूर करते हैं और मैं भी (**एनम्**) इस दुष्ट शत्रु को (**वाजस्य**) यान वेगादिगुणों से युक्त सेना वाले संग्राम की (**प्रसवेन**) अच्छी प्रकार प्रेरणा से (**अपोहामि**) दूर करता हूँ मैं (**इन्द्राग्न्योः**) वायु और विद्युत्रूप अग्नि की (**उज्जितिम्**) विद्या से अच्छी प्रकार उत्कर्ष को (**अनूज्जेषम्**) अनुक्रम से प्राप्त होऊँ और मैं (**वाजस्य**) ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की प्राप्ति के (**प्रसवेन**) ऐश्वर्य्य के अर्थ उत्पादन से वायु और बिजुली की विद्या के जाननेवाले (**माम्**) अपने आपको नित्य (**प्रोहामि**) अच्छी प्रकार तर्कों से सुखों को प्राप्त होता हूँ और मुझ से जो अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (**इन्द्राग्नी**) वायु और विद्युत् अग्नि है—वह (**यः**) जो मूर्ख मनुष्य (**अस्मान्**) हम विद्वान् लोगों से (**द्वेष्टि**) अप्रीति से वर्त्तता है (**च**) और (**यम्**) जिस मूर्ख से (**वयम्**) हम विद्वान् लोग (**द्विष्मः**) अप्रीति से वर्त्तते हैं (**तम्**) उस वैर करनेवाले मूढ़ को (**अपनुदताम्**) दूर करते हैं तथा मैं भी (**एनम्**) इसे (**वाजस्य**) विज्ञान के (**प्रसवेन**) प्रकाश से (**अपोहामि**) अच्छी अच्छी शिक्षा दे कर शुद्ध करता हूँ ॥१५॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अग्नि और जल के मेल से कलाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा वायु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दरिद्रता के विनाश और शत्रुओं के पराजय से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर और उन मूढ़ मनुष्यों को विद्वान् करके अनेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के योग्य हैं। इस प्रकार अच्छे प्रयत्न से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी योग्य है। पूर्व मन्त्र में जो कार्य प्रकाश किया उसकी पुष्टि इस मन्त्र से की है ॥१५॥

वसुभ्यस्त्वेति सर्वस्य ऋषिः स एव । पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवताः । निचृद्वार्ची पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । व्यन्तुवय इत्यारभ्या अन्तपर्य्यन्तस्याग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् । व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह । चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

पदार्थ—हम लोग (**वसुभ्यः**) अग्नि आदि आठ वसुओं से (**त्वा**) उस यज्ञ को तथा (**रुद्रेभ्यः**) पूर्वोक्त एकादश रुद्रों से (**त्वा**) पूर्वोक्त यज्ञ को और (**आदित्येभ्यः**) बारह महीनों से (**त्वा**) उस क्रियासमूह को नित्य उत्तम तर्कों से जानें और यज्ञ से ये (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्य का प्रकाश और भूमि (**संजानाथाम्**) जो उनसे शिल्पविद्या उत्पन्न हो सके उनके सिद्ध करनेवाले हों और (**मित्रावरुणौ**) जो सब जीवों का बाहिर के प्राण और जीवों के शरीर में रहनेवाला उदानवायु है वे (**वृष्ट्या**) शुद्ध जल की वर्षा से (**त्वा**) जो संसार सूर्य्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उसकी (**अवताम्**) रक्षा करते हैं (**वयः**) जैसे पक्षी अपने अपने ठिकानों को रचते और (**व्यन्तु**) प्राप्त होते हैं वैसे उन छन्दों से (**रिहाणः**) पूजन करनेवाले हम लोग (**त्वा**) उस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और जो यज्ञ में हवन की आहुति (**पृश्निः**) अन्तरिक्ष में स्थिर और (**वशा**) शोभित (**भूत्वा**) होकर (**मरुताम्**) पवनों के संग से (**दिवम्**) सूर्य्य के प्रकाश को (**गच्छ**) प्राप्त होती है वह (**ततः**) वहाँ से (**नः**) हम लोगों के सुख के लिये (**वृष्टिम्**) वर्षा को (**आवह**) अच्छे प्रकार वर्षाती है उस वर्षा का जल (**पृषतीः**) नाड़ी और नदियों को प्राप्त होता है। जिस कारण यह अग्नि (**चक्षुष्पाः**) नेत्रों की रक्षा करनेवाला (**असि**) है इससे (**मे**) हमारे (**चक्षुः**) नेत्रों के बाहिरले भीतरले विज्ञान की (**पाहि**) रक्षा करता है ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते हैं वह वायु के साथ मेघमण्डल में जाकर सूर्य्य से खिचे हुए जल को शुद्ध करती है, फिर वहाँ से वह जल पृथिवी में आकर ओषधियों को पुष्ट करता है। वह उक्त आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये क्योंकि उसके फल को जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे। जो यह अग्नि सूर्य्यरूप होकर सब को प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टिव्यवहार की पालना होती है। ये जो वसु आदि देव कहाते हैं इनसे विद्या के उपकारपूर्वक दुष्ट गुण और दुष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये, यही सबका पूजन अर्थात् सत्कार है। जो पूर्व मन्त्र में कहा था उसका इससे विशेषता करके प्रकाश किया है ॥१६॥

यं परिधिमित्यस्य ऋषिर्देवलः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

यं परिधिं पर्य्यधत्थाऽअग्ने देवपणिभिर्गुह्यमानः । तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष मेत्त्वदपचेतयाताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सर्वत्र व्यापक ईश्वर ! आप (**देवपणिभिः**) दिव्य गुण वाले विद्वानों की स्तुतियों से (**गुह्यमानः**) अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होते हुए (**यम्**) उन गुणों के अनुकूल (**जोषम्**) प्रीति से सेवन के योग्य (**परिधिम्**) प्रभुता को (**पर्य्यधत्थाः**) निरन्तर धारण करते हैं (**तम्**) आपकी उसको (**इत्**) ही (**एषः**) मैं (**अनुभरामि**) अपने हृदय में धारण करता हूँ तथा मैं (**त्वत्**) आप से (**मा, अपचेतयातै**) कभी प्रतिकूल न होऊँ और (**अग्ने**) हे जगदीश्वर ! आपकी सृष्टि में जो मैंने (**प्रियम्**) प्रीति बढ़ाने और (**पाथः**) शरीर की रक्षा करनेवाला अन्न (**अपीतम्**) पाया है उससे भी कभी (**मा, अपचेतयातै**) प्रतिकूल न होऊँ ॥१॥ हे जगदीश्वर ! (**ते**) आपकी सृष्टि में (**एषः**) यह (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**देवपणिभिः**) दिव्य गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के व्यवहारों से (**गुह्यमानः**) अच्छी प्रकार स्वीकार किया हुआ (**यम्**) जिस (**परिधिम्**) विद्यादि गुणों से धारण (**जोषम्**) और प्रीति करने योग्य कर्म को (**पर्य्यधत्थाः**) सब प्रकार से धारण करता है (**तमित्**) उसी को मैं (**अनुभरामि**) उसके पीछे स्वीकार करता हूँ और उससे कभी (**मा, अपचेतयातै**) प्रतिकूल नहीं होता हूँ तथा मैंने जो (**अग्नेः**) इस अग्नि के सम्बन्ध से (**प्रियम्**) प्रीति देने और (**पाथः**) शरीर की रक्षा करनेवाला अन्न (**अपीतम्**) ग्रहण किया है उसको मैं (**जोषम्**) अत्यन्त प्रीति के साथ नित्य (**अनुभरामि**) क्रम से पाता हूँ ॥२॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पहिले अन्वय में अग्निशब्द से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रति वस्तु में व्यापक होने से सब पदार्थों का धारण करनेवाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है उसकी सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये। जो मनुष्य उसकी आज्ञा नित्य पालते हैं वे प्रिय सुख को प्राप्त होते हैं तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश, दाह और वेग आदि गुण वाला मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है उससे भी मनुष्यों को क्रिया की कुशलता के द्वारा उत्तम उत्तम व्यवहार सिद्ध करने चाहियें जिससे कि उत्तम उत्तम सुख सिद्ध होवें। जो पूर्व मन्त्र से वृष्टि आदि पदार्थों का साधक कहा है उसका इस मन्त्र से व्यापकत्व प्रकाश किया है ॥१७॥

संस्रवेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वह यज्ञ कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः । इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ॥१८

पदार्थ—हे (**बृहन्तः**) वृद्धि को प्राप्त होने (**प्रस्तरेष्ठाः**) उत्तम न्याय विद्यारूपी आसन में स्थित होनेवाले (**परिधेयाः**) सब प्रकार से धारणावती बुद्धियुक्त (**च**) और (**इमाम्**) इस प्रत्यक्ष (**वाचम्**) चार वेदों की वाणी का उपदेश करनेवाले (**देवाः**) विद्वानो ! तुम (**इषा**) अपने ज्ञान से (**संस्रवभागाः**) घृतादि पदार्थों के होम में छोड़नेवाले (**स्थ**) होओ तथा (**स्वाहा**) अच्छे अच्छे वचनों से (**वाट्**) प्राप्त होने और सुख बढ़ानेवाली क्रिया को प्राप्त होकर (**अस्मिन्**) प्रत्यक्ष (**बर्हिषि**) ज्ञान और कर्मकाण्ड में (**मादयध्वम्**) आनन्दित होओ वैसे ही औरों को भी आनन्दित करो। इस प्रकार उक्त ज्ञान को कर्मकाण्ड में उक्त वेदवाणी की प्रशंसा करते हुए तुम लोग अपने विचार से उत्तम ज्ञान को प्राप्त होने वाली क्रिया को प्राप्त होकर (**बृहन्तः**) बढ़ने और (**प्रस्तरेष्ठाः**) उत्तम कामों में स्थित होनेवाले (**विश्वे**) सब (**देवाः**) उत्तम उत्तम पदार्थ (**परिधेयाः**) धारण करो वा औरों को धारण कराओ और उनकी सहायता से उक्त ज्ञान वा कर्मकाण्ड में सदा (**मादयध्वम्**) हर्षित होओ ॥१८॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि जो धार्मिक पुरुषार्थी वेदविद्या के प्रचार वा उत्तम व्यवहार में वर्त्तमान हैं उन्हीं को बड़े बड़े सुख होते हैं। जो पूर्व मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अर्थ कहे हैं उनसे ऐसे ऐसे उपकार लेना चाहिये सो इस मन्त्र में कहा है ॥१८॥

घृताचीस्थ इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निवायू देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳसुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् । यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ॥ १९ ॥

पदार्थ—जो अग्नि और वायु (**धुर्य्यौ**) यज्ञ के मुख्य अङ्ग को प्राप्त कराने वाले (**च**) और (**सुम्ने**) सुखरूप (**स्थः**) हैं तथा (**घृताची**) जल को प्राप्त करानेवाली क्रियाओं को कराने हारे (**स्थ,**) हैं और सब जगत् को (**पातम्**) पालते हैं वे मुझ से अच्छी प्रकार उत्तम-उत्तम क्रिया, कुशलता में युक्त (**मा**) मुझे, यज्ञ करनेवालों को (**सुम्ने**) सुख में (**धत्तम्**) स्थापन करते (हैं) जैसे यह (**यज्ञ**) जगदीश्वर (**च**) और (**नमः**) नम्र होना (**ते**) तेरे लिये (**शिवे**) कल्याण में (**उपसंतिष्ठस्व**) समीप स्थित होते हैं, वे वैसे ही (**मे**) मेरे लिये भी स्थित होते हैं इस कारण जैसे मैं यज्ञ का अनुष्ठान करके (**सुम्ने**) सुख मे स्थित होता हूँ वैसे तुम भी उस में (**संतिष्ठस्व**) स्थित होओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! रस के परमाणु करने, जगत् के पालन के निमित्त सुख करने, क्रियाकाण्ड के हेतु और ऊपर को तथा टेढ़े वा सूधे जानेवाले अग्नि वायु के गुणों से कार्य्यों को सिद्ध करो । इस से तुम लोग सुखों में अच्छी प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझ को ही बार-बार नमस्कार करो ॥ १६ ॥

अग्नेऽदब्धायो इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निसरस्वत्यौ देवते । भुरिग्ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है —

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (**अदब्धायो**) निर्विघ्न आयु देनेवाले (**अग्ने**) जगदीश्वर ! आप (**अशीतमम्**) चराचर संसार में व्यापक यज्ञ को (**दुरिष्ट्यै**) दुष्ट अर्थात् वेदविरुद्ध यज्ञ से (**पाहि**) रक्षा कीजिये (**मा**) मुझे (**दिद्योः**) अति दुःख से (**पाहि**) बचाइये तथा (**प्रसित्यै**) भारी-भारी बन्धनों से (**पाहि**) अलग रखिये (**दुरद्मन्यै**) जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से (**पाहि**) बचाइये और (**नः**) हमारे लिये (**अविषम्**) विष आदि दोषरहित (**पितुम्**) अन्नादि पदार्थ (**कृणु**) उत्पन्न कीजिये तथा (**नः**) हम लोगों को (**सुषदा**) सुख से स्थिरता को देनेवाले घर में (**स्वाहा, वाट्**) वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होनेवाली उत्तम क्रियाओं में स्थिर (**कृणु**) कीजिये, जिससे हम लोग (**यशोभगिन्यै**) सत्यवचन आदि उत्तम कर्मों की सेवन करनेवाली (**सरस्वत्यै**) पदार्थों के प्रकाशित कराने में उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी के लिये (**स्वाहा**) धन्यवाद वा (**संवेशपतये**) अच्छी प्रकार जिन पृथिव्यादि लोकों में प्रवेश करते हैं उनके पति अर्थात् पालन करनेहारे जो (**अग्नये**) आप हैं उनके लिये (**स्वाहा**) धन्यवाद और (**नमः**) नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् जगदीश्वर ! आपने जो यह (**अदब्धायो**) निर्विघ्न आयु का निमित्त (**अग्ने**) भौतिक अग्नि बनाया है वह भी (**अशीतमम्**) सर्वत्र व्यापक यज्ञ को (**दुरिष्ट्यै**) दुष्ट यज्ञ से (**पाहि**) रक्षा करता है तथा (**मा**) मुझे (**दिद्योः**) अति दुःखों से (**पाहि**) बचाता है (**प्रसित्यै**) बड़े-बड़े दारिद्र्य के बन्धनों से (**पाहि**) बचाता है तथा (**दुरद्मन्यै**) दुष्ट भोजन करानेवाली क्रियाओं से (**पाहि**) बचाता है और (**नः**) हमारे (**पितुम्**) अन्न आदि पदार्थ (**अविषम्**) विष आदि दोषरहित (**कृणु**) कर देता है वह (**सुषदा**) सुख से स्थिति देनेवाले घर अथवा दूसरे जन्मों में (**स्वाहा, वाट्**) वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होने वाली क्रियाओं का हेतु है हम लोग उस (**संवेशपतये**) पृथिव्यादि लोकों के पालनेवाले (**अग्नये**) भौतिक अग्नि को ग्रहण करके (**स्वाहा**) होम तथा उसके साथ (**यशोभगिन्यै, सरस्वत्यै**) उक्त गुण वाली वेदवाणी की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) परमात्मा का धन्यवाद करते हैं ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को जो सर्वव्यापक सब प्रकार से रक्षा करने, उत्तम जन्म देने, उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देनेवाला जगदीश्वर है, उसी का सेवन सदा करना योग्य है तथा जो यह अपनी सृष्टि में परमेश्वर ने भौतिक अग्नि प्रत्यक्ष सूर्य्यलोक और बिजुली रूप से प्रकाशित किया है वह भी अच्छी प्रकार विद्या से उपकार लेने में संयुक्त किया हुआ सब प्रकार से रक्षा और उत्तम भोग का हेतु होता है । जिसकी कीर्ति के निमित्त सत्यलक्षणयुक्त वेदवाणी से उत्तम जन्म अथवा सब पदार्थों से अच्छी-अच्छी विद्या प्रकाशित होती हैं वे सब विद्वानों के स्वीकार करने योग्य है । इस मन्त्र में (नमः) और (यज्ञ) ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लिये हैं ॥ २० ॥

वेदोऽसीत्यस्य वामदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (**देव**) शुभ गुणों के देनेहारे जगदीश्वर ! (**त्वम्**) आप (**वेदः**) चराचर जगत् के जाननेवाले (**असि**) हैं सब जगत् को (**वेद**) जानते हैं तथा (**येन**) जिस विज्ञान वा वेद से (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**वेदः**) पदार्थों के जाननेवाले (**अभवः**) होते हैं (**तेन**) उस विज्ञान के प्रकाश से आप (**मह्यम्**) मेरे लिये जो कि मैं विशेष ज्ञान की इच्छा कर रहा हूँ (**वेदः**) विज्ञान देनेवाले (**भूयाः**) हूजिये । हे (**गातुविदः**) स्तुति के जाननेवाले (**देवाः**) विद्वानो ! जिस वेद से मनुष्य सब विद्याओं को जानते हैं उससे तुम लोग (**गातुम्**) विशेष ज्ञान को (**वित्त्वा**) प्राप्त होकर (**गातुम्**) प्रशंसा करने योग्य वेद को (**इत**) प्राप्त हो। हे (**मनसस्पते**) विज्ञान से पालन करनेहारे (**देव**) सर्वजगत्प्रकाशक परमेश्वर आप (**इमम्**) प्रत्यक्ष अनुष्ठान करने योग्य (**यज्ञम्**) क्रियाकाण्ड से सिद्ध होनेवाले यज्ञ रूप संसार को (**स्वाहा**) क्रिया के अनुकूल (**वाते**) पवन के बीच (**धाः**) स्थित कीजिये । हे विद्वानो ! उस विज्ञान से विशेष ज्ञान देनेवाले परमेश्वर ही की नित्य उपासना करो ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को जिस वेद जाननेवाले परमेश्वर ने वेदविद्या प्रकाशित की है उस की उपासना करके उसी वेदविद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करके सब का हित सम्पादन करना चाहिये क्योंकि वेदों के विज्ञान के विना तथा उसमें जो-जो कहे हुए काम हैं उनके किये विना मनुष्यों को भी सुख नहीं हो सकता । तुम लोग वेदविद्या से जो सबका साक्षी ईश्वर देव है उसको सब जगह व्यापक मानके नित्य धर्म में रहो ॥ २१ ॥

सं बर्हिरित्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यज्ञ में चढ़ा हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में ठहर कर किसके साथ रहता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

सं बर्हिरङ्क्ताꣳ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः । समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तुम (**यत्**) जब हवन करने योग्य द्रव्य को (**हविषा**) होम करने योग्य (**घृतेन**) घी आदि सुगन्धियुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे तब वह (**आदित्यैः**) बारह महीना (**वसुभिः**) अग्नि आदि आठों निवास के स्थान और (**मरुद्भिः**) प्रजा के जनों के साथ मिल के सुख को (**समंक्ताम्**) अच्छी प्रकार प्रकाश करेगा (**इन्द्रः**) सूर्य्यलोक जो यज्ञ में छोड़ा हुआ (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हवि (**संगच्छतु**) पहुँचाता है उससे (**सम्**) अच्छी प्रकार मिश्रित हुए (**विश्वदेवेभिः**) अपनी किरणों से (**दिव्यम्**) जो उस के प्रकाश में इकट्ठा होनेवाला (**नभः**) जल को (**समंक्ताम्**) अच्छी प्रकार प्रकट करता है ।२२।

भावार्थ—जो हवि अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में वायु जल और सूर्य्य की किरणों के साथ मिल कर इधर उधर फैलकर आकाश में ठहरनेवाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता है । इससे मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तम-उत्तम साधनों से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २२ ॥

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः ।मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि में किसलिये पदार्थ छोड़ा जाता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति । पोषाय रक्षसां भागोसि ॥ २३ ॥

पदार्थ—(**कः**) कौन सुख चाहनेवाला यज्ञ का अनुष्ठाता पुरुष (**त्वा**) उस यज्ञ को (**विमुञ्चति**) छोड़ता है अर्थात् कोई यज्ञ को छोड़ता है (**त्वा**) उस को (**सः**) यज्ञ का पालन करने हारा परमेश्वर भी (**विमुञ्चति**) छोड़ देता है जो यज्ञ का करनेवाला मनुष्य पदार्थ समूह को यज्ञ में छोड़ता है (**त्वा**) उसको (**कस्मै**) किस प्रयोजन के लिये अग्नि के बीच में (**विमुञ्चति**) छोड़ता है (**तस्मै**) जिससे सब सुख प्राप्त हो तथा (**पोषाय**) पुष्टि आदि गुण के लिये (**त्वा**) उस पदार्थ समूह को (**विमुञ्चति**) छोड़ता है । जो पदार्थ सब के उपकार के लिये यज्ञ के बीच में नहीं युक्त किया जाता वह (**रक्षसाम्**) दुष्ट प्राणियों का (**भागः**) अंश (**असि**) होता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के करने कराने वा आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है वह सब सुखों से हीन होकर और दुष्ट मनुष्य से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुःखी रहता है । किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है उसके लिये क्या होता है । वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उसको छोड़ देता है । फिर वह पूछता है कि ईश्वर उसको किसलिये छोड़ देता है । वह उत्तर देनेवाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये । जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है वह सुखों से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है ॥ २३ ॥

सं वर्चसेत्यस्य ऋषिः स एव । त्वष्टा देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से हम लोग किस-किस पदार्थ को प्राप्त होते हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ २४ ॥

पदार्थ—हम लोग पुरुषार्थी होकर (**वर्चसा**) जिस में सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं उस वेद का पढ़ना वा (**पयसा**) जिससे पदार्थों को जानते हैं उस ज्ञान (**मनसा**) जिससे सब व्यवहार विचारे जाते हैं उस अन्तःकरण (**शिवेन**) सब सुख और (**तनूभिः**) जिन में विपुल सुख प्राप्त होते हैं उन शरीरों के साथ (**रायः**)

श्रेष्ठ विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को (**समगन्महि**) अच्छी प्रकार प्राप्त हों सो (**सुदत्रः**) अच्छी प्रकार सुख देने और (**त्वष्टा**) दुःखों तथा प्रलय के समय सब पदार्थों का सूक्ष्म करनेवाला ईश्वर कृपा करके हमारे लिये (**रायः**) उक्त विद्या आदि पदार्थों को (**संविदधातु**) अच्छी प्रकार विधान करे और हमारे (**तन्वः**) शरीर की (**यत्**) जितनी (**विलिष्टम्**) व्यवहारों की सिद्धि करने की परिपूर्णता है उसे (**समनुमार्ष्टु**) अच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करे ॥ २४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सब कामना परिपूर्ण करनेवाले परमेश्वर की आज्ञा पालन करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन, विज्ञान, शरीर का बल, मन की शुद्धि, कल्याण की सिद्धि तथा उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति सदैव करनी चाहिये। इस सम्पूर्ण यज्ञ की धारणा वा उन्नति से सब सुखों को प्राप्त होके औरों को सुख प्राप्त करना चाहिये तथा सब व्यवहार और पदार्थों को नित्य शुद्ध करना चाहिये ॥२४॥

दिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्य विष्णुर्देवता दिवीत्यारम्भ द्विष्म इत्यन्तस्य निचृदार्ची । तथाऽन्तरिक्षमित्यारम्भ द्विष्मःपर्यंतस्यार्ची पंक्तिश्छन्दः । पंचम स्वरः । पृथिव्यामित्यारभ्यान्तपर्य्यन्तस्य जगती छन्दो निषादः स्वरश्च ॥

वह यज्ञ तीनों लोकों में विस्तृत होकर कौन-कौन सुख का साधन होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

दि॒वि विष्णु॒र्व्य॑क्रꣳस्त॒ जाग॑तेन॒ च्छन्द॑सा॒ ततो॒ निर्भ॑क्तो॒ यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मोऽन्तरि॑क्षे॒ विष्णु॒र्व्य॑क्रꣳस्त॒ त्रैष्टु॑भेन॒ च्छन्द॑सा॒ तत॒ो निर्भ॑क्तो॒ यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः । पृ॒थि॒व्यां विष्णु॒र्व्य॑क्रꣳस्त गाय॒त्रेण॒ च्छन्द॑सा॒ तत॒ो निर्भ॑क्तो॒ यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मोऽस्मद॒न्नाद॒स्यै प्र॑ति॒ष्ठाया॒ऽअग॑न्म॒ स्वः॒ सं ज्योति॑षाभूम ॥२५॥

पदार्थ—(**जागतेन**) सब लोकों के लिये सुख देने वाले (**छन्दसः**) आह्लादकारक जगती छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह (**विष्णुः**) अन्तरिक्ष में ठहरने वाले पदार्थों में व्यापक यज्ञ (**दिवि**) सूर्य के प्रकाश में (**व्यक्रंस्त**) जाता है वह फिर (**ततः**) वहाँ से (**निर्भक्तः**) विभाग अर्थात् परमाणुरूप होके सब जगत् को तृप्त करता है (**यः**) जो विरोधी शत्रु (**अस्मान्**) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों से (**द्वेष्टि**) विरोध करता है (**च**) तथा (**यम्**) दण्ड देकर शिक्षा करने योग्य जिस दुष्ट प्राणी से (**वयम्**) हम लोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (**द्विष्मः**) अप्रीति करते हैं उसको उसी यज्ञ से दूर करते हैं। हम लोगों ने जो यह (**विष्णुः**) यज्ञ (**त्रैष्टुभेन**) तीन प्रकार के सुख करने और (**छन्दसा**) स्वतन्त्रता देने वाले त्रिष्टुप् छन्द से अग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है वह (**अन्तरिक्षे**) आकाश में (**व्यक्रंस्त**) पहुँचता है वह फिर (**ततः**) उस अन्तरिक्ष से (**निर्भक्तः**) अलग हो के वायु और वर्षा जल की शुद्धि से सब संसार को सुख पहुँचाता है (**यः**) जो दुःख देने वाले प्राणी (**अस्मान्**) सब के उपकार करने वाले हम लोगों को (**द्वेष्टि**) दुःख देता है (**च**) तथा (**यम्**) सब के अहित करने वाले दुष्ट को (**वयम्**) हम लोग सब के हित करनेवाले (**द्विष्मः**) पीड़ा देते हैं उसे उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं। हम लोगों से जो (**विष्णुः**) यज्ञ (**गायत्रेण**) संसार की रक्षा सिद्ध करने और (**छन्दसा**) अति आनन्द करनेवाले गायत्री छन्द से निरन्तर किया जाता है। (**पृथिव्याम्**) विस्तारयुक्त इस पृथिवी में (**व्यक्रंस्त**) विविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृत होता है (**ततः**) उस पृथिवी से (**निर्भक्तः**) अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि करता है (**यः**) जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी (**अस्मान्**) हम लोग जो कि न्याय करने वाले हैं उन से (**द्वेष्टि**) वैर करता है (**च**) तथा (**यम्**) जिस शत्रु जन से (**वयम्**) हम लोग न्यायाधीश (**द्विष्मः**) वैर करते हैं उसका इस उक्त यज्ञ से नित्य निषेध करते हैं। हम लोग (**अस्मात्**) यज्ञ से शोधा हुआ प्रत्यक्ष (**अन्नात्**) जो भोजन करने योग्य अन्न है उससे (**स्वः**) सुखरूपी स्वर्ग को (**अगन्म**) प्राप्त हों तथा (**अस्यै**) इस प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाली (**प्रतिष्ठायै**) प्रतिष्ठा अर्थात् जिस में सत्कार को प्राप्त होते हैं उसके लिये (**ज्योतिषा**) विद्या और धर्म के प्रकाश से संयुक्त (**समभूम**) अच्छी प्रकार हों ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो जो मनुष्य लोग सुगन्धि आदि पदार्थ अग्नि में छोड़ते हैं वे अलग-अलग होकर सूर्य के प्रकाश तथा भूमि में फैलकर सब सुखों को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि पदार्थ शिल्पविद्यासिद्ध कलायन्त्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं वे सब सूर्य्यप्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुख से विहार करते हैं। जो पदार्थ सूर्य्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुरूप होके अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवी पर आते हैं फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा वहां से भूमि को आते जाते हैं वे भी संसार को सुख देते हैं। मनुष्यों को उचित है कि इसी प्रकार वार वार पुरुषार्थ से दोष, दुःख और शत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना भुगवाना चाहिए तथा यज्ञ से शुद्ध वायु, जल, ओषधि और अन्न की शुद्धि के द्वारा आरोग्य बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि से अत्यन्त सुख को प्राप्त होके विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिए ॥ २५ ॥

स्वयंभूरित्यस्य ऋषिः स एव । ईश्वरो देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है—

स्व॒यं॒भूर॑सि॒ श्रेष्ठो॑ र॒श्मिर्व॑र्चो॒दाऽअ॑सि॒ वर्चो॑ मे देहि । सूर्य॑स्या॒वृत॒मन्वाव॑र्ते ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप विद्वान् वा (**श्रेष्ठः**) अत्यन्त प्रशंसनीय और (**रश्मिः**) प्रकाशमान वा (**स्वयंभूः**) अपने आप होने वाले (**असि**) हैं तथा (**वर्च्चोदा**) विद्या देने वाले (**असि**) हैं इसी से आप (**मे**) मुझे (**वर्च्चः**) विज्ञान और प्रकाश (**देहि**) दीजिये मैं (**सूर्य्यस्य**) जो आप चराचर जगत् के आत्मा हैं उनके (**आवृतम्**) निरन्तर सज्जन जन जिस में वर्तमान होते हैं उस उपदेश को (**अन्वावर्ते**) स्वीकार करके वर्त्तता हूँ ॥ २६ ॥

भावार्थ—परमेश्वर का कोई माता वा पिता नहीं है किन्तु वही सब का माता पिता है तथा उस से बढ़ कर कोई विज्ञानप्रकाशक विद्या देने वाला नहीं है। जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही की आज्ञा में वर्त्तमान रहना चाहिये, वैसे ही जो विद्वान् भी प्रकाश वाले पदार्थों में अवधिरूप और व्यवहार विद्या का हेतु है, जिस के उपदेशरूप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वह क्यों न सेवना चाहिये ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपत इत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्याग्निर्देवता । पूर्वार्द्धे निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । उत्तरार्द्धे गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को इस के अनुष्ठान से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

अग्ने॑ गृहपते सुगृहप॒तिस्त्वया॑ऽग्ने॒ऽहं गृ॒हप॑तिना भूयासꣳ सुगृहप॒तिस्त्वं मया॑ऽग्ने गृ॒हप॑तिना भूयाः । अ॒स्थू॒रि णौ॒ गार्ह॑पत्यानि सन्तु श॒तꣳ हि॒माः सूर्य॑स्या॒वृत॒मन्वाव॑र्ते ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे (**गृहपते**) घर के पालन करने हारे (**अग्ने**) परमेश्वर और विद्वान् (**त्वम्**) आप (**सुगृहपतिः**) ब्रह्मांड, शरीर और निवासार्थ घरों के उत्तमता से पालन करनेवाले (**असि**) हैं उस (**गृहपतिना**) उक्त गुणवाले (**त्वया**) आपके साथ (**अहम्**) मैं (**सुगृहपतिः**) अपने घर का उत्तमता से पालन करने हारा (**भूयासम्**) होऊँ। हे परमेश्वर ! विद्वन् वा (**मया**) जो मैं श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करनेवाला (**गृहपतिना**) धर्मात्मा और पुरुषार्थी मनुष्य हूँ। उस मुझसे आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करनेहारे (**भूयाः**) हूजिये। इसी प्रकार (**नौ**) जो हम स्त्री पुरुष घर के पति हैं सो हमारे (**गार्हपत्यानि**) अर्थात् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं। वे (**अस्थूरि**) जैसे निरालस्यता हो वैसे सिद्ध (**सन्तु**) हों। इस प्रकार अपने वर्त्तमान में वर्त्तते हुए हम स्त्री वा पुरुष (**सूर्य्यस्य**) आप और विद्वान् के (**आवृतम्**) वर्त्तमान अर्थात् जिसमें अच्छी प्रकार रात्रि वा दिन होते हैं उसमें (**शतं हिमाः**) सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्तें ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हम दोनों स्त्रीपुरुष पुरुषार्थी होकर जो इन सब पदार्थों की स्थिति के योग्य संसाररूपी घर का निरन्तर रक्षा करनेवाला जगदीश्वर और विद्वान् है उसका आश्रय करके भौतिक अग्नि आदि पदार्थों से स्थिर सुख करनेवाले सब काम सिद्ध करते हुए सौ वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियता से सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें ॥ ६ ॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब जो सत्याचरण से सुख होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

अग्ने॑ व्रतपते व्र॒तम॑चारिषं॒ तद॑शकं॒ तन्मे॑ऽराधी॒दम॒हं य॑ऽए॒वाऽस्मि॒ सो॒ऽस्मि ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (**व्रतपते**) न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे (**अग्ने**) सत्यस्वरूप परमेश्वर ! आपने जो कृपा करके (**मे**) मेरे लिये (**व्रतम्**) सत्यलक्षण आदि प्रसिद्ध नियमों से युक्त सत्याचरण व्रत को (**अराधि**) अच्छी प्रकार सिद्ध किया है (**तत्**) उस अपने आचरण करने योग्य सत्य नियम को (**अशकम्**) जिस प्रकार मैं करने को समर्थ होऊं (**अचारिषम्**) अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रकार कर सकूँ वैसा मुझको कीजिये (**यः**) जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है (**तदेवाहम्**) उसी को भोगता हूँ अब भी जो मैं जैसा करनेवाला (**अस्मि**) हूँ वैसे कर्म के फल भोगने वाला (**अस्मि**) होता हूँ ॥ २८ ॥

भावार्थ—मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूँ वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूँ और भोगूंगा। सब प्राणी अपने कर्म से विरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इससे सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख नहीं हो ॥ २८ ॥

अग्नय इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब संसारी अग्नि और चन्द्रमा कैसे गुण वाले हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

अ॒ग्नये॑ कव्य॒वाह॑नाय॒ स्वाहा॒ सोमा॑य पितृ॒मते॒ स्वाहा॑ । अप॑हता॒ऽअसु॑रा॒ रक्षा॑ꣳसि वेदि॒षदः॑ ॥ २९ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि (**कव्यवाहनाय**) विद्वानों को हित देने, कर्मों की प्राप्ति कराने तथा (**अग्नये**) सब पदार्थों को अपने आप एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाने वाले भौतिक अग्नि का ग्रहण करके सुख के लिये (**स्वाहा**) वेदवाणी से (**पितृमते**) जिसमें वसन्त आदि ऋतु पालन के हेतु होने से पितर संयुक्त होते हैं (**सोमाय**) जिससे ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं उस सोमलता को लेके (**स्वाहा**) अपने पदार्थों को धारण करनेवाले धर्म से युक्त विधान करके जो (**वेदिषदः**) इस पृथिवी में रमण करनेवाले (**रक्षांसि**) औरों को दुःखदायी स्वार्थीजन तथा (**असुराः**) दुष्ट स्वभाववाले मूर्ख हैं उनको (**अपहताः**) विनष्ट कर देना चाहिये ॥ २९ ॥

भावार्थ—विद्वानों से युक्ति के साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उनके लिये उत्तम उत्तम कार्यों की प्राप्ति करनेवाला होता है मनुष्यों को यह यत्न नित्य करना चाहिये कि जिससे संसार के उपकार से सब सुख और पृथिवी के दुष्टजन वा दोषों की निवृत्ति हो जाय ॥ २९ ॥

ये रूपाणीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

उक्त असुर कैसे लक्षणों वाले होते हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना॒ऽअसु॑राः सन्तः॑ स्व॒धया॒ चर॑न्ति । प॒रा॒पुरो॑ नि॒पुरो॒ ये भर॑न्त्य॒ग्निष्टाँल्लो॒कात् प्रणु॑दात्य॒स्मात् ॥ ३० ॥

पदार्थ—(**ये**) जो दुष्ट मनुष्य (**रूपाणि**) ज्ञान के अनुकूल अपने अन्तःकरणों में विचारे हुए भावों को (**प्रतिमुञ्चमानाः**) दूसरे के सामने छिपा कर विपरीत भावों के प्रकाश करने हारे (**असुराः**) धर्म को ढाँपते (**सन्तः**) हैं(**स्वधया**) पृथिवी में जहाँ तहाँ (**चरन्ति**) जाते आते हैं तथा जो (**परापुरः**) संसार से उलटे अपने सुखकारी कामों को नित्य सिद्ध करने के लिये यत्न करने (**निपुरः**) और दुष्ट स्वभावों को परिपूर्ण करनेवाले (**सन्तः**) हैं अर्थात् जो अन्याय से औरों के पदार्थों को धारण करते हैं (**तान्**) उन दुष्टों को (**अग्निः**) जगदीश्वर (**अस्मात्**) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से (**प्रणुदाति**) दूर करे ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो दुष्ट मनुष्य अपने मन, वचन और शरीर से झूठे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं ईश्वर उनको दुःखयुक्त करता है और नीच योनियों में जन्म देता है कि वे अपने पापों के फलों को भोग के फिर भी मनुष्य देह के योग्य होते हैं इससे सब मनुष्यों को योग्य है कि ऐसे दुष्ट मनुष्य वा पापों से बचकर सदैव धर्म का ही सेवन किया करें ॥ ३० ॥

अत्र पितर इत्यस्यर्षिः स एव । पितरो देवताः । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोगों को धर्मात्मा ज्ञानी विद्वान् पुरुषों का कैसा सत्कार करना योग्य है सो अगले मन्त्र में कहा है—

अत्र॑ पितरो मादयध्वं यथाभा॒गमा वृ॑षायध्वम् ।
अमी॑मदन्त पि॒तरो॑ यथाभा॒गमा वृ॑षायिषत ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे (**पितरः**)उत्तम विद्या वा शिक्षाओं और विद्यादान से पालन करनेवाले विद्वान् लोगो ! (**अत्र**) हमारे सत्कारयुक्त व्यवहार अथवा स्थान में (**यथाभागम्**) यथायोग्य पदार्थों के विभाग को (**आवृषायध्वम्**) अच्छी प्रकार जैसे कि आनन्द देनेवाले बैल अपनी घास को चरते हैं वैसे पाओ और (**मादयध्वम्**) आनन्दित भी हो तथा आप हम लोगों के जिस प्रकार (**यथाभागम्**) यथायोग्य अपनी अपनी बुद्धि के अनुकूल गुण विभाग को प्राप्त हों वैसे (**आवृषायिषत**) विद्या और धर्म की शिक्षा करनेवाले हो और (**अमीमदन्त**) सब को आनन्द दो ॥३१॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य लोग माता और पिता आदि धार्मिक सज्जन विद्वानों को समीप आये हुए देखकर उनकी सेवा करें। प्रार्थनापूर्वक वाक्य कहें कि हे पितरो ! आप लोगों का आना हमारे उत्तम भाग्य से होता है सो आओ और जो अपने व्यवहार में यथायोग्य और भोग आसन आदि पदार्थों को हम देते हैं उनको स्वीकार करके सुख को प्राप्त हो तथा जो जो आपके प्रिय पदार्थ हमारे लाने योग्य हों उस उस की आज्ञा दीजिये क्योंकि सत्कार को प्राप्त होकर आप प्रश्नोत्तर विधान से हम लोगों को स्थूल और सूक्ष्म विद्या वा धर्म के उपदेश से यथावत् वृद्धियुक्त कीजिये । आप से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग अच्छे अच्छे कामों को करके तथा औरों से अच्छे काम कराके सब प्राणियों का सुख और विद्या की उन्नति नित्य करें ॥ ३१ ॥

नमो व इत्यस्यर्षिः स एव । पितरो देवताः । मन्यवे पर्यन्तस्य ब्राह्मी बृहती । अग्रे निचृद् बृहती च छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब पितृयज्ञ किस प्रकार से और किस प्रयोजन के लिये किया जाता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य॒ नमो॑ वः पितरः॒ शोषा॑य॒ नमो॑ वः पितरो॒ जीवा॑य॒ नमो॑ वः पितरः॒ स्व॒धायै॒ नमो॑ वः पितरो॒ घोरा॑य॒ नमो॑ वः पितरो॒ म॒न्यवे॒ नमो॑ वः पितरः॒ पित॑रो॒ नमो॑ वो गृ॒हान्नः॑ पितरो द॒त्त स॒तो वः॑ पितरो दे॒ष्मैतद्वः॑ पितरो॒ वास॑ः ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे (**पितरः**) विद्या के आनन्द को देनेवाले विद्वान् लोगो ! (**रसाय**) विज्ञानरूपी आनन्द की प्राप्ति के लिये (**वः**) तुम को हमारा (**नमः**) नमस्कार हो । हे (**पितरः**) दुःख का विनाश और रक्षा करनेवाले विद्वानो ! (**शोषाय**) दुःख और शत्रुओं की निवृत्ति के लिये (**वः**) तुमको हमारा (**नमः**) नमस्कार हो । हे (**पितरः**) धर्मयुक्त जीविका के विज्ञान करानेवाले विद्वानो ! (**जीवाय**) जिससे प्राण का स्थिर धारण होता है उस जीविका के लिये (**वः**) तुम को हमारा (**नमः**) शील धारण विदित हो । हे (**पितरः**) विद्या अन्न आदि भोगों की शिक्षा करने हारे विद्वानो ! (**स्वधायै**) अन्न, पृथिवी, राज्य और न्याय के प्रकाश के लिये (**वः**) तुम को हमारा (**नमः**) नम्रीभाव विदित हो । हे (**पितरः**) पाप और आपत्काल के निवारक विद्वान् लोगो ! (**घोराय**) दुःखसमूह की निवृत्ति के लिये (**वः**) तुम को हमारा (**नमः**) क्रोध का छोड़ना विदित हो । हे (**पितरः**) श्रेष्ठों के पालन करने हारे विद्वानो ! (**मन्यवे**) दुष्टाचरण करनेवाले दुष्ट जीवों में क्रोध करने के लिये (**वः**) तुम को हमारा (**नमः**) सत्कार विदित हो । हे (**पितरः**) ज्ञानी विद्वानो ! (**व**) तुम को विद्या के लिये (**नमः**) हमारी विज्ञान ग्रहण करने की इच्छा विदित हो । हे (**पितरः**) प्रीति के साथ रक्षा करनेवाले विद्वानो ! (**वः**) तुम्हारे सत्कार होने के लिये हमारा (**नमः**) सत्कार करना तुम को विदित हो । आप लोग (**नः**) हमारे (**गृहान्**) घरों में नित्य आओ और आके रहो । हे (**पितरः**) विद्या देनेवाले विद्वानो ! (**नः**) हमारे लिये शिक्षा और विद्या नित्य (**दत्त**) देते रहो । हे पिता माता आदि विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (**वः**) तुम्हारे लिये जो जो (**सतः**) विद्यमान पदार्थ हैं वे नित्य (**देष्म**) देवें । हे (**पितरः**) सेवा करने योग्य पितृ लोगो ! हमारे दिये (**वासः**) इस वस्त्रादि को ग्रहण कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में अनेक वार (नमः) यह पद अनेक शुभगुण और सत्कार प्रकाश करने के लिये धरा है । जैसे वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद् हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु, रस, शोष, जीव, अन्न, कठिनता और क्रोध के उत्पन्न करनेवाले होते हैं वैसे ही पितर भी अनेक विद्याओं के उपदेश से मनुष्यों को निरन्तर सुख देते हैं । इस से मनुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उत्तम उत्तम पदार्थों से सन्तुष्ट करके उनसे विद्या के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें ।

आधत्त इत्यस्य ऋषिः स एव । पितरो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त पितरों को क्या क्या करना चाहिये सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

आध॑त्त पितरो॒ गर्भं॑ कुमा॒रं पुष्क॑रस्रजम् । यथे॒ह पुरु॒षोऽस॑त् ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे (**पितरः**) विद्यादान से रक्षा करनेवाले विद्वान् पुरुषो ! आप (**यथा**) जैसे यह ब्रह्मचारी (**इह**) इस संसार वा हमारे कुल में अपने शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य (**असत्**) हो वैसे (**गर्भम्**) गर्भ के समान (**पुष्करस्रजम्**) विद्या ग्रहण के लिये फूलों की माला धारण किये हुये (**कुमारम्**) ब्रह्मचारी को (**आधत्त**) अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये ॥३३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुरुष और स्त्रियों को चाहिये कि विद्यार्थी, कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें । जैसे क्रम क्रम से गर्भ के बीच देह बढ़ता है वैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी अच्छी शिक्षा से ब्रह्मचारी, कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त करें तथा (उनका) पालन करें वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुरुषार्थयुक्त होकर सदा सुखी हों, यह अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ३३ ॥

ऊर्जमित्यस्यर्षिः स एव । आपो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

उक्त पितर कौन कौन पदार्थों से सत्कार करने योग्य हैं सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

ऊर्जं॒ वह॑न्तीर॒मृतं॑ घृ॒तं पयः॑ की॒ला॒लं॑ परि॒स्रुत॑म् ।
स्व॒धा स्थ॑ त॒र्पय॑त मे पि॒तॄन् ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे पुत्रादिको ! तुम (**मे**) मेरे (**पितॄन्**) पूर्वोक्त गुण वाले पितरों को (**ऊर्जम्**) अनेक प्रकार के उत्तम उत्तम रस (**वहन्तीः**) सुख प्राप्त करनेवाले स्वादिष्ट जल (**अमृतम्**) सब रोगों को दूर करनेवाले ओषधि मिष्टादि पदार्थ (**पयः**) दूध (**घृतम्**) घी (**कीलालम्**) उत्तम उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (**परिस्रुतम्**) रस से चूते हुए पके फलों को देके (**तर्पयत**) तृप्त करो । इस प्रकार तुम उनके सेवन से विद्या को प्राप्त होकर (**स्वधाः**) परधन का त्याग करके अपने धन के सेवन करने वाले (**स्थ**) होओ ॥३४॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता, माता आदि वा विद्या के देनेवाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं । जैसे कि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम पाले हैं वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं जिससे हम लोगों के बीच में विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों ॥३४॥

ईश्वर ने इस दूसरे अध्याय में जो जो वेद आदि यज्ञ के साधनों का बनाना, यज्ञ का फल गमन वा साधन, सामग्री का धारण, अग्नि के दूतपन का प्रकाश, आत्मा और इन्द्रियादि पदार्थों की शुद्धि, सुखों का भोग, वेद का प्रकाश, पुरुषार्थ का सन्धान युद्ध में शत्रुओं का जीतना, शत्रुओं का निवारण, द्वेष का त्याग, अग्नि आदि पदार्थों को सवारियों में युक्त करना, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेना, ईश्वर में प्रीति, अच्छे अच्छे गुणों का विस्तार और सब की उन्नति करना, वेद शब्द के अर्थ का वर्णन, वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पुरुषार्थ का ग्रहण, उत्तम उत्तम पदार्थों का स्वीकार करना, यज्ञ में होम किये हुए पदार्थों का तीनों लोक में जाना आना, स्वयंभू शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि में होम, दुष्टों का निवारण और जिन जिन का सेवन करना कहा है उन उन का सेवन मनुष्यों को प्रीति के साथ करना अवश्य है । इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥३४॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

卐

॥ अथ तृतीयोऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

तत्र समिधेत्यस्य प्रथममन्त्रस्याङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब तीसरे अध्याय के पहिले मन्त्र में भौतिक अग्नि का किस किस काम में उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है—

स॒मिधा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम् । आस्मि॒न् ह॒व्या जु॑होतन ॥१

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! तुम (**समिधा**) जिन इन्धनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उन लकड़ी घी आदिकों से (**अग्निम्**) भौतिक अग्नि को (**बोधयत**) उद्दीपन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे (**अतिथिम्**) अतिथि को अर्थात् जिसके आने जाने वा निवास का कोई दिन नियत नहीं है उस संन्यासी का सेवन करते हैं वैसे अग्नि का (**दुवस्यत**) सेवन करो और (**अस्मिन्**) इस अग्नि में (**हव्या**) सुगन्ध कस्तूरी केसर आदि मिष्ट गुड़ शक्कर आदि पुष्ट घी दूध आदि रोग को नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुडूची आदि ओषधि, इन चार प्रकार के साकल्य को (**आजुहोतन**) अच्छे प्रकार हवन करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन, अन्न, जल, वस्त्र और प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते हैं वैसे ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कलायन्त्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन, घी, जलादि से अग्नि को प्रज्वलित करके वायु वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रचना नित्य करनी चाहिये ॥ १ ॥

सुसमिद्धायेत्यस्य सुश्रुत ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुस॑मिद्धाय शो॒चिषे॑ घृ॒तं ती॒व्रं जु॑होतन । अ॒ग्नये॑ जा॒तवे॑दसे ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम (**सुसमिद्धाय**) अच्छे प्रकार प्रकाशरूप (**शोचिषे**) शुद्ध किये हुए दोषों को निवारण करने वा (**जातवेदसे**) सब पदार्थों में विद्यमान (**अग्नये**) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (**तीव्रम्**) सब दोषों के निवारण करने में तीक्ष्ण स्वभाव वाले (**घृतम्**) घी मिष्ट आदि पदार्थों को (**जुहोतन**) अच्छे प्रकार गेरो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रज्वलित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने वा शुद्ध किये हुए पदार्थों को गेर कर इष्ट सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ २ ॥

तं त्वेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त अग्नि की नित्य वृद्धि करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तं त्वा॑ स॒मिद्भि॑रङ्गिरो घृ॒तेन॑ वर्द्धयामसि । बृ॒हच्छो॑चा यविष्ठ्य ॥३॥

पदार्थ—हम लोग जो (**अङ्गिरः**) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (**यविष्ठ्य**) पदार्थों के भेद करने में अति बलवान् (**बृहत्**) बड़े तेज से युक्त अग्नि (**शोच**) प्रकाश करता है (**त्वा**) उसको (**समिद्भिः**) काष्ठादि वा (**घृतेन**) घी आदि से (**वर्द्धयामसि**) बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जो सब गुणों से बलवान् पूर्व कहा हुआ अग्नि है वह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी घी आदि साधनों से सेवन करके निरन्तर वृद्धियुक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

उपत्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में कहा है—

उप॑ त्वाग्ने ह॒विष्म॑तीर्घृ॒ताची॑र्यन्तु हर्यत । जु॒षस्व॑ स॒मिधो॒ मम॑ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**हर्यत**) प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य (**अग्ने**) प्रसिद्ध अग्नि (**मम**) यज्ञ करने वाले मेरे (**समिधः**) लकड़ी घी आदि पदार्थों को (**जुषस्व**) सेवन करता है जिस प्रकार (**तम्**) उस अग्नि को घी आदि पदार्थ (**यन्तु**) प्राप्त हों वैसे तुम (**हविष्मतीः**) श्रेष्ठ हवियुक्त (**घृताचीः**) घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन सञ्चित करो ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जब इस अग्नि में काष्ठ घी आदि पदार्थों की आहुति छोड़ते हैं तब वह उनको अति सूक्ष्म कर के वायु के साथ देशान्तर को प्राप्त कराके दुर्गन्धादि दोषों के निवारण से सब प्राणियों को सुख देता है ऐसा सब मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ ४ ॥

भूर्भुवः स्वरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निवायुसूर्य्या देवताः । दैवी बृहती छन्दः । द्यौरिवेत्यस्य निचृद् बृहती छन्दः । उभयत्र मध्यमः स्वरः ॥

फिर उस अग्नि का किस लिए उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

भूर्भुवः स्व॒र्द्यौरि॑व भू॒म्ना पृ॑थि॒वीव॑ वरि॒म्णा ।
तस्या॑स्ते पृथिवि देवयजनि पृ॒ष्ठे॑ऽग्निम॑न्ना॒दम॑न्ना॒द्याया द॑धे ॥५॥

पदार्थ—मैं (**अन्नाद्याय**) भक्षण योग्य अन्न के लिये (**भूम्ना**) विभु अर्थात् ऐश्वर्य्य से (**द्यौरिव**) आकाश में सूर्य्य के समान (**वरिम्णा**) अच्छे अच्छे गुणों से (**पृथिवीव**) विस्तृत भूमि के तुल्य (**ते**) प्रत्यक्ष वा (**तस्याः**) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाशयुक्त लोक में रहने वाली (**देवयजनि**) देव अर्थात् विद्वान् लोग जहां यज्ञ करते हैं वा (**पृथिवी**) भूमि के (**पृष्ठे**) पृष्ठ के ऊपर (**भूः**) भूमि (**भुवः**) अन्तरिक्ष (**स्वः**) दिव अर्थात् प्रकाशस्वरूप सूर्य्यलोक इनके अन्तर्गत रहने तथा (**अन्नादम्**) यव आदि सब अन्नों को भक्षण करने वाले (**अग्निम्**) प्रसिद्ध अग्नि को (**आदधे**) स्थापन करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । हे मनुष्य लोगो ! तुम ईश्वर से तीन लोकों के उपकार करने वा अपनी व्याप्ति से सूर्य प्रकाश के समान तथा उत्तम उत्तम गुणों से पृथिवी के समान अपने अपने लोकों में निकट रहने वाले रचे हुए अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिये यत्न के साथ उपयोग करो ॥ ५ ॥

आयमित्यस्य सर्प्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है इस विषय को अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

आयं गौः पृश्नि॑रक्रमी॒दस॑दन् मा॒तर॑ पु॒रः । पि॒तर॑ञ्च प्र॒यन्त्स्वः॑ ॥६॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह प्रत्यक्ष (**गौः**) गोलरूपी पृथिवी (**पितरम्**) पालन करने वाले (**स्वः**) सूर्य्यलोक के (**पुरः**) आगे आगे वा (**मातरम्**) अपनी योनिरूप जलों के साथ सहवर्त्तमान (**प्रयन्**) अच्छी प्रकार चलती हुई (**पृश्निः**) अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश में (**आक्रमीत्**) चारों तरफ घूमती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिससे यह भूगोल पृथिवी जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुई अन्तरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणों से सबकी रक्षा करने वाले सूर्य के चारों तरफ क्षण क्षण घूमती है इसी से दिन रात्रि शुक्ल वा कृष्ण पक्ष, ऋतु और अयन आदि काल विभाग क्रम से सम्भव होते हैं ॥ ६ ॥

अन्तरित्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒न्तश्च॑रति रोच॒नास्य प्रा॒णाद॑पान॒ती । व्य॑ख्यन् महि॒षो दिव॑म् ॥७॥

पदार्थ—जो (**अस्य**) इस अग्नि की (**प्राणात्**) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच में ऊपर जाने वाले वायु से (**अपानती**) नीचे को जाने वाले वायु को उत्पन्न करती हुई (**रोचना**) दीप्ति अर्थात् प्रकाशरूपी बिजुली (**अन्तः**) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य में (**चरति**) चलती है वह (**महिषः**) अपने गुणों से बड़ा अग्नि (**दिवम्**) सूर्य्यलोक को (**व्यख्यत्**) प्रकट करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जो विद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यों के अन्तःकरण में रहने वाली जो अग्नि की कान्ति है वह प्राण और अपान वायु के साथ युक्त होकर प्राण, अपान, अग्नि और प्रकाश आदि चेष्टाओं के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है ॥ ७ ॥

त्रिंशद्धामेत्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिꣳशद्धा॑म॒ वि रा॑जति॒ वाक् प॑त॒ङ्गाय॑ धीयते । प्रति॒ वस्तो॒रह॒ द्युभिः॑ ॥८

पदार्थ—मनुष्यों को जो अग्नि (**द्युभिः**) प्रकाश आदि गुणों से (**प्रतिवस्तोः**) प्रतिदिन (**त्रिंशत्**) अन्तरिक्ष, आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि जो तीस (**धाम**) स्थान हैं उनको (**विराजति**) प्रकाशित करता है उस (**पतङ्गाय**) चलने चलाने आदि गुणों से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिये (**प्रतिवस्तोः**) प्रतिदिन विद्वानों को (**अह**) अच्छे प्रकार (**वाक्**) वाणी (**धीयते**) अवश्य धारण करनी चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहने वाले बिजुलीरूप अग्नि से प्रकाशित होती है उसके गुणों के प्रकाश के लिये विद्वानों को उपदेश वा श्रवण नित्य करना चाहिये ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निसूर्यौ देवते । पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । ज्योतिरित्यस्य याजुषी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि और सूर्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ॥९॥

पदार्थ—(**अग्निः**) परमेश्वर (**स्वाहा**) सत्य कथन करने वाली वाणी को (**ज्योतिः**) जो विज्ञान प्रकाश से युक्त करके सब मनुष्यों के लिये विद्या को देता है इसी प्रकार (**अग्निः**) जो प्रसिद्ध अग्नि (**ज्योतिः**) शिल्पविद्या साधनों के प्रकाश को देता है (**सूर्यः**) जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर (**ज्योतिः**) सबके आत्माओं में प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपदेश करता है कि (**स्वाहा**) मनुष्य जैसा अपने हृदय से जानता हो वैसे ही बोले। तथा जो (**सूर्यः**) अपने प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक (**ज्योतिः**) मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है (**अग्निः**) जो सब विद्याओं का प्रकाश करनेवाला परमेश्वर मनुष्यों के लिये (**वर्च्चः**) सब विद्याओं के अधिकरण चारों वेदों को प्रकट करता है। तथा जो (**ज्योतिः**) बिजुलीरूप से शरीर वा ब्रह्माण्ड में रहने वाला अग्नि (**वर्च्चः**) विद्या और वृष्टि का हेतु है (**सूर्यः**) जो सब विद्याओं का प्रकाश करनेवाला जगदीश्वर सब मनुष्यों के लिये (**स्वाहा**) वेदवाणी से (**वर्च्चः**) सकल विद्याओं का प्रकाश और (**ज्योतिः**) बिजुली, सूर्य प्रसिद्ध और अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो (**सूर्यः**) सूर्यलोक भी (**वर्च्चः**) शरीर और आत्माओं के बल का प्रकाश करता है तथा जो (**सूर्यः**) प्राणवायु (**वर्च्चः**) सकल विद्या के प्रकाश करनेवाले ज्ञान को बढ़ाता है और (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हवन किये हुए पदार्थों को अपने रचे हुए पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाता है वही परमात्मा सब मनुष्यों का उपास्यदेव और भौतिक अग्नि कार्य्यसिद्धि का साधन है ॥ ९ ॥

भावार्थ—स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मन्त्र में ग्रहण किया है अग्नि अर्थात् ईश्वर ने सामर्थ्य करके कारण से अग्नि आदि सब जगत् उत्पन्न करके प्रकाशित किया है उनमें से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर वेद के द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्या का प्रकाश करते हैं ॥९॥

सजूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते। पूर्वार्द्धस्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

भौतिक अग्नि और सूर्य ये दोनों किस की सत्ता से वर्त्तमान हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा। सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—(**अग्निः**) जो भौतिक अग्नि (**देवेन**) सब जगत् को ज्ञान देने वा (**सवित्रा**) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर के उत्पन्न किये हुए जगत् के साथ (**सजूः**) तुल्य वर्तमान (**जुषाणः**) सेवन करता वा (**इन्द्रवत्या**) बहुत बिजुली से युक्त (**रात्र्या**) अन्धकार रूप रात्रि के साथ (**स्वाहा**) वाणी को सेवन करता हुआ (**वेतु**) सब पदार्थों में व्याप्त होता है इसी प्रकार (**सूर्यः**) जो सूर्यलोक (**देवेन**) सब को प्रकाश करनेवाले वा (**सवित्रा**) सब के अन्तर्यामी परमेश्वर के उत्पन्न वा धारण किये हुए जगत् के साथ (**सजूः**) तुल्य वर्तमान (**जुषाणः**) सेवन करता वा (**इन्द्रवत्या**) सूर्यप्रकाश से युक्त (**उषसा**) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के साथ (**स्वाहा**) अग्नि में होम की हुई आहुतियों को (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ व्याप्त होकर हवन किये हुए पदार्थों को (**वेतु**) देशान्तरों में पहुँचाता है, उसी से सब व्यवहार सिद्ध करें ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है वह इसी की सत्ता से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दीपक आदि रूप से रात्रि के व्यवहारों को सिद्ध करता है। इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान् द्रव्यों के प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्धि करनेहारा है, इनको जानो ॥१०॥

उपेत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है—

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरेऽअस्मे च शृण्वते ॥११॥

पदार्थ—(**अध्वरम्**) क्रियामय यज्ञ को (**उपप्रयन्तः**) अच्छे प्रकार जानते हुए हम लोग (**अस्मे**) जो हम लोगों के (**आरे**) दूर वा (**च**) निकट में (**शृण्वते**) यथार्थ सत्यासत्य को सुननेवाले (**अग्नये**) विज्ञानस्वरूप अन्तर्यामी जगदीश्वर है इसीके लिये (**मन्त्रम्**) ज्ञान को प्राप्त करानेवाले मन्त्रों को (**वोचेम**) नित्य उच्चारण वा विचार करें ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यों को वेदमन्त्रों के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्ठान को करके जो ईश्वर भीतर बाहर सब जगह व्याप्त होकर सब व्यवहारों को सुनता वा जानता हुआ वर्त्तमान है इस कारण उससे भय मानकर अधर्म करने की इच्छा भी न करनी चाहिये। जब मनुष्य परमात्मा को जानता है तब समीपस्थ और जब नहीं जानता तब दूरस्थ है ऐसा निश्चय जानना चाहिये ॥११॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है—

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ १२ ॥

पदार्थ—(**अयम्**) जो यह कार्य कारण से प्रत्यक्ष (**ककुत्**) सब से बड़ा (**मूर्द्धा**) सब के ऊपर विराजमान (**अग्निः**) जगदीश्वर (**दिवः**) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक और (**पृथिव्याः**) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों का (**पतिः**) पालन करता हुआ (**अपाम्**) प्राणों के (**रेतांसि**) वीर्यों की (**जिन्वति**) रचना को जानता है उसीको पूज्य मानो ॥१॥ (**अयम्**) यह अग्नि (**ककुत्**) सब पदार्थों से बड़ा (**दिवः**) प्रकाशमान पदार्थों के (**मूर्द्धा**) ऊपर विराजमान (**पृथिव्याः**) प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोकों के (**पतिः**) पालन का हेतु होकर (**अपाम्**) जलों के (**रेतांसि**) वीर्यों को (**जिन्वति**) प्राप्त करता है ॥२॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जगदीश्वर प्रकाश वा अप्रकाशरूप दो प्रकार का जगत् अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों को रच कर पालन करके प्राणों में बल को धारण करता है तथा भौतिक अग्नि पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु होकर बिजुली जाठर आदि रूप से प्राण वा जलों के वीर्यों को उत्पन्न करता है ॥१२॥

उभा वामिन्द्राग्नी इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया है—

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधसः सह मादयध्यै। उभा दाताराविषाꣳ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥

पदार्थ—मैं जो (**उभा**) दो (**दातारौ**) सुख देने के हेतु (**इन्द्राग्नी**) वायु और अग्नि हैं (**वाम्**) उनको (**आहुवध्यै**) गुण जानने के लिये (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ (**राधसः**) उत्तम सुखयुक्त राज्यादि धनों के भोग के (**सह**) साथ (**मादयध्यै**) आनन्द के लिये (**वाम्**) उन (**उभा**) दोनों को (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ तथा (**इषाम्**) सब को इष्ट (**रयीणाम्**) अत्यन्त उत्तम चक्रवर्ति राज्य आदि धन वा (**वाजस्य**) अत्यन्त उत्तम अन्न के (**सातये**) अच्छे प्रकार भोग करने के लिये (**उभौ**) उन दोनों को (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ ॥१३॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जान कर कार्यों में संप्रयुक्त करके अपने अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सब भूगोल के राज्य आदि धनों को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं इनसे भिन्न मनुष्य नहीं ॥१३॥

अयन्त इत्यस्य देववातभरतावृषी। अग्निर्देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः। तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जगदीश्वर! (**ते**) आपकी सृष्टि में जो (**ऋत्वियः**) ऋतु ऋतु में प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से (**जातः**) प्रसिद्ध हुआ (**अरोचथाः**) सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि रूप से प्रकाश वाले लोकों की (**आरोह**) उन्नति को सब ओर से बढ़ाता है और जो (**नः**) हमारे (**रयिम्**) राज्य आदि धन को बढ़ाता है (**तम्**) उस अग्नि को (**जानन्**) जानते हुए आप उससे (**नः**) हमारे (**रयिम्**) सब भूगोल के राज्य आदि से सिद्ध हुए धन को (**वर्द्धय**) वृद्धियुक्त कीजिये ॥१४॥

भावार्थ—मनुष्यों को जो सब काल में यथावत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्य्यों की सिद्धिरूप कारण से सब को सुख देता है उस अग्नि को यथावत् जानकर उसका उपयोग करके सब कार्य्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥१४॥

अयमिहेत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१५॥

पदार्थ—(**अप्नवानः**) विद्या सन्तान अर्थात् विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देने वाले (**भृगवः**) यज्ञविद्या के जाननेवाले विद्वान् लोग (**इह**) इस संसार में (**वनेषु**) अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य (**अध्वरेषु**) उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में (**विशेविशे**) प्रजा के प्रति (**विभ्वम्**) व्याप्त स्वभाव वा (**चित्रम्**) आश्चर्यगुणवाले (**यम्**) जिस ईश्वर और अग्नि को (**विरुरुचुः**) विशेष करके प्रकाशित करते हैं (**अयम्**) वही (**धातृभिः**) यज्ञक्रिया के धारण करनेवाले विद्वान् लोगों को (**ईड्यः**) खोज करने योग्य (**प्रथमः**) यज्ञक्रिया का आदि साधन (**होता**) यज्ञ का ग्रहण करनेवाला (**यजिष्ठः**) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है, उसका (**इह**) इस संसार में (**धायि**) धारण करते हैं ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख्य करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥१५॥

अस्य प्रत्नामित्यस्याऽवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम् ॥१६॥

पदार्थ—(**अह्रयः**) सब विद्याओं को व्याप्त करनेवाले विद्वान् लोग (**अस्य**) इस भौतिक अग्नि की (**सहस्रसाम्**) असंख्यात कार्यों को देने वा (**ऋषिम्**) कार्य-सिद्धि के प्राप्ति का हेतु (**प्रत्नाम्**) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्त्तमान (**द्युतम्**) कारण में रहनेवाली दीप्ति को जानकर (**शुक्रम्**) शुद्ध कार्यों को सिद्ध करनेवाले (**पयः**) जल को (**अनु दुदुह्रे**) अच्छे प्रकार पूरण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूरण करते हैं ॥१६॥

भावार्थ—मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है वैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये ॥१६॥

तनूपा इत्यस्याऽवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्च्चोदाऽअग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ॥१७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जगदीश्वर! (**यत्**) जिस कारण आप (**तनूपाः**) सब मूर्तिमान् पदार्थों के शरीरों की रक्षा करनेवाले (**असि**) हैं इससे आप (**मे**) मेरे (**तन्वम्**) शरीर की (**पाहि**) रक्षा कीजिये। हे (**अग्ने**) परमेश्वर! आप (**आयुर्दाः**) सब को आयु के देनेवाले (**असि**) हैं वैसे (**मे**) मेरे लिये (**आयुः**) पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन (**देहि**) दीजिये हे (**अग्ने**) सर्वविद्यामय ईश्वर! जैसे आप (**वर्च्चोदाः**) सब मनुष्यों को विज्ञान देनेवाले (**असि**) हैं वैसे (**मे**) मेरे लिये भी ठीक ठीक गुण ज्ञानपूर्वक (**वर्च्चः**) पूर्ण विद्या को (**देहि**) दीजिये। हे (**अग्ने**) सब कामों को पूर्ण करनेवाले परमेश्वर! (**मे**) मेरे (**तन्वाः**) शरीर में (**यत्**) जितना (**ऊनम्**) बुद्धि बल और शौर्य आदि गुण कर्म हैं (**तत्**) उतना अङ्ग (**मे**) मेरा (**आपृण**) अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये ॥१॥ (**अग्ने**) यह भौतिक अग्नि (**यत्**) जैसे (**तनूपाः**) पदार्थों की रक्षा का हेतु (**असि**) है वैसे जाठराग्नि रूप से (**मे**) मेरे (**तन्वम्**) शरीर की (**पाहि**) रक्षा करता है (**अग्ने**) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि (**आयुर्दाः**) सब के जीवन का हेतु (**असि**) है वैसे (**मे**) मेरे लिये लिये भी (**आयुः**) जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को (**देहि**) देता है (**अग्ने**) यह अग्नि जैसे (**वर्च्चोदाः**) विज्ञानप्राप्ति का हेतु (**असि**) है वैसे (**मे**) मेरे लिये भी (**वर्च्चः**) विद्याप्राप्ति के निमित्त बुद्धिबलादि को (**देहि**) देता है तथा (**अग्ने**) जो कामना के पूर्ण करने में हेतु भौतिक अग्नि है वह (**यत्**) जितना (**मे**) मेरे (**तन्वाः**) शरीर में बुद्धि आदि सामर्थ्य (**ऊनम्**) कम है (**तत्**) उतना गुण (**आपृण**) पूर्ण करता है ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुनिमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्गों की पूर्णता रची है, इसी से सब पदार्थ अपने अपने स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार परमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के पालन का मुख्य साधन है ॥१७॥

इन्धानास्त्वेत्यस्याऽवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है—

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽ अदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (**चित्रावसो**) आश्चर्यरूप धन वाले (**अग्ने**) परमेश्वर! (**अदब्धासः**) दम्भ, अहङ्कार और हिंसादि दोषरहित (**वयस्वन्तः**) प्रशंसनीय पूर्ण अवस्थायुक्त (**सहस्वन्तः**) अत्यन्त सहन स्वभावसहित (**अदाभ्यम्**) मानने योग्य (**सपत्नदम्भनम्**) शत्रुओं के नाश करने (**वयस्कृतम्**) अवस्था की पूर्ति करने (**सहस्कृतम्**) सहन करने कराने तथा (**द्युमन्तम्**) अनन्त प्रकाश वाले (**त्वा**) आपका (**इन्धानाः**) उपदेश और श्रवण कराते हुए हम लोग (**शतम्**) सौ वर्ष तक वा सौ से अधिक (**हिमाः**) हेमन्त ऋतुयुक्त (**समिधीमहि**) अच्छे प्रकार प्रकाश करें वा जीवें, इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो (**ते**) आपकी कृपा से सब दुःखों से (**पारम्**) पार होकर (**स्वस्ति**) सुख को (**अशीय**) प्राप्त होऊँ ॥१॥ (**अदब्धासः**) दम्भ, अहङ्कार, हिंसादि दोषरहित (**वयस्वन्तः**) पूर्ण अवस्थायुक्त (**सहस्वन्तः**) अत्यन्त सहन करनेवाले (**त्वा**) उस (**अदाभ्यम्**) उपयोग करने योग्य (**सपत्नदम्भनम्**) आग्नेयादि शस्त्र अस्त्रविद्या में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने (**वयस्कृतम्**) अवस्था को बढ़ाने (**सहस्कृतम्**) सहन का हेतु (**द्युमन्तम्**) अच्छे प्रकार प्रकाशयुक्त (**अग्ने**) कार्यों को प्राप्त करानेवाले भौतिक अग्नि को (**इन्धानाः**) प्रज्वलित करते हुए हम लोग (**शतम्**) सौ वर्ष पर्यन्त (**हिमाः**) हेमन्तऋतुयुक्त (**समिधीमहि**) जीवें इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो यह (**चित्रावसो**) आश्चर्यरूप धन के प्राप्ति का हेतु अग्नि है (**ते**) उसके प्रकाश से दारिद्र्य आदि दुःखों से (**पारम्**) पार होकर (**स्वस्ति**) अत्यन्त सुख को (**अशीय**) प्राप्त होऊँ ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ, ईश्वर की उपासना तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेके दुःखों से पृथक् होकर उत्तम सुखों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षण भर भी आलस्य में नहीं रहना किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसा अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये ॥१८॥

सन्त्वमित्यस्यावत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी परमेश्वर और अग्नि कैसे हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

सं त्वमग्ने सूर्य्यस्य वर्च्चसागथाः समृषीणाꣳ स्तुतेन। सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्च्चसा सं प्रजया सꣳ रायस्पोषेण ग्मिषीय ॥१९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जगदीश्वर! जो आप (**सूर्य्यस्य**) सब के अन्तर्गत प्राण वा (**ऋषीणाम्**) वेदमन्त्रों के अर्थों को देखनेवाले विद्वानों की जिस (**संस्तुतेन**) स्तुति करने (**संप्रियेण**) प्रसन्नता से मानने (**संवर्चसा**) विद्याध्ययन और प्रकाश करने (**धाम्ना**) स्थान (**समायुषा**) उत्तम जीवन (**संप्रजया**) सन्तान वा राज्य और (**रायस्पोषेण**) उत्तम धनों के भोग पुष्टि के साथ (**समगथाः**) प्राप्त होते हैं। उसी के साथ (**अहम्**) मैं भी सब सुखों को (**संग्मिषीय**) प्राप्त होऊँ ॥१॥ जो (**अग्ने**) भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए सबों के (**समगथाः**) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता है उस सिद्ध किये हुए अग्नि के साथ (**अहम्**) मैं व्यवहार के सब सुखों को (**संग्मिषीय**) प्राप्त होऊँ ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन, अपना पुरुषार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१९॥

अन्धस्थेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। आपो देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में यज्ञ से शुद्ध किये ओषधि आदि पदार्थों का उपदेश किया है—

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज्ज स्थोर्ज्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

पदार्थ—जो (**अन्धः**) बलवान् वृक्ष वा ओषधि आदि पदार्थ (**स्थ**) हैं (**वः**) उनके प्रकाश से मैं (**अन्धः**) वीर्य को पुष्ट करने वाले अन्नों को (**भक्षीय**) ग्रहण करूँ। जो (**महः**) बड़े बड़े वायु आदि वा विद्या आदि पदार्थ (**स्थ**) हैं (**वः**) उनसे मैं (**महः**) बड़ी बड़ी क्रियाओं को सिद्धि करनेवाले कर्मों का (**भक्षीय**) सेवन करूँ जो (**ऊर्जः**) जल, दूध, घी, मिष्ट वा फल आदि रसवाले पदार्थ (**स्थ**) हैं (**वः**) उनसे मैं (**ऊर्जम्**) पराक्रमयुक्त रस का (**भक्षीय**) भोग करूँ और जो (**रायस्पोषः**) अनेक गुणयुक्त पदार्थ (**स्थ**) हैं (**वः**) उन चक्रवर्तिराज्य और श्री आदि पदार्थों के मैं (**रायस्पोषम्**) उत्तम उत्तम धनों के भोग का (**भक्षीय**) सेवन करूँ ॥२०॥

भावार्थ—मनुष्यों को जगत् के पदार्थों के गुण ज्ञान पूर्वक क्रिया के कुशलता से उपकार को ग्रहण करके सब सुखों का भोग करना चाहिये ॥२०॥

रेवतीरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब विद्वानों के सत्कार के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये। इहैव स्त मापगात ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो (**रेवतीः**) विद्या, धन, इन्द्रिय, पशु और पृथिवी के राज्य आदि से युक्त श्रेष्ठ नीति (**स्त**) हैं वे (**अस्मिन्**) इस (**योनौ**) जन्मस्थल (**अस्मिन्गोष्ठे**) इन्द्रिय वा पशु आदि के रहने के स्थान (**अस्मिँल्लोके**) संसार वा (**अस्मिन् क्षये**) अपने रचे हुए घरों में (**रमध्वम्**) रमण करें ऐसी इच्छा करते हुए तुम लोग (**इहैव**) इन्हीं में प्रवृत्त होओ अर्थात् (**मापगात**) इनसे दूर कभी मत जाओ ॥२१॥

भावार्थ—जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हैं वहाँ प्रजा विद्या उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर सुखों से युक्त होती है। इससे मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नित्य समागम बना रहे अर्थात् कभी हम लोग विरोध से पृथक् न होवें ॥२१॥

सꣳहितेत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वार्द्धस्य भुरिगासुरी गायत्री। उपत्वेत्यन्तस्य गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में अग्निशब्द से बिजुली के कर्मों का उपदेश किया है—

सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन। उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्तऽएमसि ॥२२॥

पदार्थ—(**नमः**) अन्न को (**भरन्तः**) धारण करते हुए हम लोग (**धिया**) अपनी बुद्धि वा कर्म से जो (**अग्ने**) अग्नि बिजुली रूप से सब पदार्थों के (**संहिता**)

साथ (ऊर्जा) वेग वा पराक्रम आदि गुणयुक्त (विश्वरूपी) सब पदार्थों में रूप-गुणयुक्त (गोपत्येन) इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करनेवाले जीव के साथ वर्त्तमान से (मा) मुझ में (आविश) प्रवेश करता है (त्वा) उस (दोषावस्तः) रात्रि को अपने तेज से दूर करनेवाले (अग्ने) विद्युद्रूप अग्नि को (दिवेदिवे) ज्ञान के प्रकाश होने के लिये प्रतिदिन (उपमसि) समीप प्राप्त करते हैं ॥२२॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जिस ईश्वर ने सब जगह मूर्त्तिमान् द्रव्यों में बिजुलीरूप से परिपूर्ण सब रूपों का प्रकाश करने चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु विचित्र गुण वाला अग्नि रचा है उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये ॥ २२ ॥

राजन्तमित्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम् । वर्द्ध॑मान॒ꣳ स्वे दमे॑ ॥२३॥

पदार्थ—(नमः) अन्न से सत्कारपूर्वक (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म से (अध्वराणाम्) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ वा (गोपाम्) इन्द्रिय पृथिव्यादि की रक्षा करने (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य) अनादि सत्यस्वरूप कारण के (दीदिविम्) व्यवहार को करने वा (स्वे) अपने (दमे) मोक्षरूप स्थान में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होनेवाले परमात्मा को (उपेमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥१॥ जिस परमात्मा ने (अध्वराणाम्) शिल्पविद्यासाध्य यज्ञ वा (गोपाम्) पश्वादि की रक्षा करने वाला (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य) जल के (दीदिविम्) व्यवहार को प्रकाश करता वा (स्वे) अपने (दमे) शान्तस्वरूप में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अग्नि प्रकाशित किया है उसको (नमः) सत्क्रिया से (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि और कर्म से (उपेमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥२॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, इमसि, इन छः पदों की अनुवृत्ति पूर्वमन्त्र से जाननी चाहिये । परमेश्वर आदि रहित सत्यकारणरूप से सम्पूर्ण कार्यों को रचता और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सब व्यवहारों को सिद्ध करता है, ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥२३॥

स न इत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर ही का उपदेश किया है—

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व । सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥२४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जो आप कृपा करके जैसे (सूनवे) अपने पुत्र के लिये (पितेव) पिता अच्छे-अच्छे गुणों को सिखलाता है वैसे (नः) हमारे लिये (सूपायनः) श्रेष्ठ ज्ञान के देनेवाले (भव) हैं वैसे (सः) सो आप (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लिये निरन्तर (सचस्व) संयुक्त कीजिये ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे सब के पालन करनेवाले परमेश्वर ! जैसे कृपा करनेवाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ-श्रेष्ठ शिक्षा देकर विद्या, धर्म, अच्छे-अच्छे स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ श्रेष्ठ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये ॥ २४ ॥

अग्ने त्वमित्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने॒ त्वं नो॒ऽअन्त॑मऽउ॒त त्रा॒ता शि॒वो भ॑वा वरू॒थ्यः॑ ।
वसु॑र॒ग्निर्वसु॑श्रवा॒ऽअच्छा॑ नक्षि द्यु॒मत्त॑मꣳ र॒यिं दाः॑ ॥२५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब की रक्षा करनेवाले जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (वसुश्रवाः) सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ कानों को देने (वसुः) सब प्राणी जिसमें वास करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में वसने हारे और (अग्निः) विज्ञान-प्रकाशयुक्त (नक्षि) सब जगह व्याप्त अर्थात् रहनेवाले हैं सो आप (नः) हम लोगों के (अन्तमः) अन्तर्यामी वा जीवन के हेतु (त्राता) रक्षा करनेवाले (वरूथ्यः) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वाभाव में होने (शिवः) तथा मङ्गलमय मङ्गल करनेवाले (भव) हूजिये और (उत) भी (नः) हम लोगों के लिये (द्युमत्तमम्) उत्तम प्रकाशों से युक्त (रयिम्) विद्याचक्रवर्ति आदि धनों को (अच्छ दाः) अच्छे प्रकार दीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर और हमारी रक्षा करने वा सब सुखों के साधनों का देनेवाला कोई नहीं है क्योंकि वही अपने सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है ॥ २५ ॥

तन्त्वेत्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे॒ सखि॑भ्यः । स नो॑ बोधि श्रु॒धी हव॑मुरु॒ष्या णो॑ऽअघाय॒तः स॑मस्मात् ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्धस्वरूप (दीदिवः) स्वयं प्रकाशमान आनन्द के देनेवाले जगदीश्वर ! हम लोग वा (नः) अपने (सखिभ्यः) मित्रों के (सुम्नाय) सुख के लिये (तं त्वा) आप से (ईमहे) याचना करते हैं तथा जो आप (नः) हम को (बोधि) अच्छे प्रकार विज्ञान को देते हैं (सः) सो आप (नः) हमारे (हवम्) सुनने सुनाने योग्य स्तुतिसमूह यज्ञ को (श्रुधि) कृपा करके श्रवण कीजिये और (नः) हम को (समस्मात्) सब प्रकार (अघायतः) पापाचरणों से अर्थात् दूसरे को पीड़ा करने रूप पापों से (उरुष्य) अलग रखिये ॥२६॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही आचरण भी करना कि जिससे प्रार्थित किया हुआ परमेश्वर अधर्म से अलग होने की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को अपनी सत्ता से पापों से पृथक् कर देता है वैसे ही उन मनुष्यों को भी पापों से बचकर धर्म के करने में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ २६ ॥

इड एह्यदित इत्यस्य श्रुतबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसकी प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इड॒ऽएह्यदि॑त॒ऽएहि॒ काम्या॒ऽएत॑ । मयि॑ वः काम॒धर॑णं भूयात् ॥२७॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से (इडे) यह पृथिवी मुझ को राज्य करने के लिये (एहि) अवश्य प्राप्त हो तथा (अदिते) सब सुखों को प्राप्त करने वाली नाशरहित राजनीति (एहि) प्राप्त हो । इसी प्रकार हे मघवन् अपना पृथिवी और राजनीति के द्वारा (काम्याः) इष्ट-इष्ट पदार्थ (एत) प्राप्त हों तथा (मयि) मेरे बीच में (वः) उन पदार्थों की (कामधरणम्) स्थिरता (भूयात्) यथावत् हो ।२७।

भावार्थ—मनुष्यों को उत्तम उत्तम पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उनकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थ करना चाहिये । कोई मनुष्य अच्छी वा बुरी कामना के विना क्षणभर भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता इससे सब मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना को छोड़कर धर्मयुक्त व्यवहारों की जितनी इच्छा बढ़ सके उतनी बढ़ानी चाहिये ॥ २७ ॥

सोमानमित्यस्य प्रबन्धुर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उस जगदीश्वर की किसलिये प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सो॒मान॒ꣳ स्वर॑णं कृणु॒हि ब्र॑ह्मणस्पते । क॒क्षीव॑न्तं॒ यऽऔ॑शि॒जः ॥२८॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणस्पते) सनातन वेदशास्त्र के पालन करनेवाले जगदीश्वर ! आप (यः) जो मैं (औशिजः) सब विद्याओं के प्रकाश करनेवाले विद्वान् के पुत्र के तुल्य हूँ उस मुझ को (कक्षीवन्तम्) विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त (स्वरणम्) सब विद्याओं का कहने और (सोमानम्) ओषधियों के रसों का निकालने तथा विद्या की सिद्धि करनेवाला (कृणुहि) कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । पुत्र दो प्रकार के होते हैं, एक तो औरस अर्थात् जो अपने वीर्य से उत्पन्न होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये विद्वान् किया जाता है । हम सब मनुष्यों को इसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि जिससे हम लोग विद्या से प्रकाशित सब क्रियाओं में कुशल और प्रीति से विद्या के पढ़ानेवाले पुत्रों से युक्त हों ॥ २८ ॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यो रे॒वान् योऽअ॑मीव॒हा व॑सु॒वित् पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः ।
स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः ॥२९॥

पदार्थ—(यः) जो वेदशास्त्र का पालन करने (रेवान्) विद्या आदि अनन्त धनवान् (अमीवहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने (वसुवित्) सब वस्तुओं को यथावत् जानने (पुष्टिवर्द्धनः) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (तुरः) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है (सः) वह (नः) हम लोगों को उत्तम-उत्तम कर्म वा गुणों के साथ (सिषक्तु) संयुक्त करे ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है । मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उनको पुरुषार्थ भी करना चाहिये । जैसे विद्या आदि धन वाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुन कर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्या आदि धनवाला नहीं हो सकता, किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करनेवाला है, वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें । जैसे वह वस्तुओं को यथावत् जानता है, वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थविद्याओं को यथावत् जानें । जैसे वह सब की पुष्टि को बढ़ाता है, वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ावें । जैसे वह अच्छे-अच्छे कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है, वैसे मनुष्य भी उत्तम-उत्तम कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं, वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम उत्तम गुण वा कर्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥२९॥

मा न इत्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मा नः शꣳसो॒ऽअर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य ।
रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे (**ब्रह्मणस्पते**) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (**नः**) हमारी वेदविद्या (**मा, प्रणक्**) कभी नष्ट मत हो और जो (**अररुषः**) दान आदि धर्म-रहित परधन ग्रहण करने वाले (**मर्त्यस्य**) मनुष्य की (**धूर्तिः**) हिंसा अर्थात् द्रोह है उस से (**नः**) हम लोगों की निरन्तर (**रक्ष**) रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सदा उत्तम-उत्तम काम करना और बुरे-बुरे काम छोड़ना तथा किसी के साथ द्रोह वा दुष्टों का सङ्ग भी न करना और धर्म की रक्षा वा परमेश्वर की उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये ॥ ३० ॥

महि त्रीणामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उसकी प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

महि॑ त्री॒णामवो॑ऽस्तु द्यु॒क्षं मि॒त्रस्या॑र्य॒म्णः । दु॒रा॒धर्षं॒ वरु॑णस्य ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे (**ब्रह्मणस्पते**) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (**मित्रस्य**) बाहर वा भीतर रहनेवाला जो प्राणवायु तथा (**अर्यम्णः**) जो आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों को धारण करनेवाला सूर्य्यलोक और (**वरुणस्य**) जल (**त्रीणाम्**) इन तीनों के प्रकाश से (**नः**) हम लोगों के (**द्युक्षम्**) जिस में नीति का प्रकाश निवास करता है वा (**दुराधर्षम्**) अतिकष्ट से ग्रहण करने योग्य दृढ़ (**महि**) बड़े वेदविद्या की (**अवः**) रक्षा (**अस्तु**) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (**ब्रह्मणस्पते, नः**) इन दो पदों की अनुवृत्ति जाननी चाहिये । मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा औरों की न्यायपूर्वक रक्षा करके यथावत् राज्य का पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

नहि तेषामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

न॒हि तेषा॑म॒मा च॒न नाध्व॑सु वार॒णेषु॑ । ईशे॑ रि॒पुर॒घश॑ꣳसः ॥ ३२ ॥

पदार्थ—जो ईश्वर की उपासना करनेवाले मनुष्य हैं (**तेषाम्**) उनके (**अमा**) गृह (**अध्वसु**) मार्ग और (**वारणेषु**) चोर, शत्रु, डाकू, व्याघ्र आदि के निवारण करनेवाले संग्रामों में (**चन**) भी (**अघशंसः**) पापरूप कर्मों का कथन करने वाला (**रिपुः**) शत्रु (**नहि**) नहीं स्थित होता और (**न**) न उनको क्लेश देने को समर्थ हो सकता उस ईश्वर और धार्मिक विद्वानों के प्राप्त होने को मैं (**ईशे**) समर्थ होता हूँ ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो धर्मात्मा वा सबके उपकार करने वाले मनुष्य हैं उनको भय कहीं नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु नहीं होता ॥ ३२ ॥

ते हीत्यस्य वारुणिः सप्तधृतिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आदित्यों के क्या क्या कर्म हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ते हि पु॒त्रासो॒ऽअदि॑तेः प्र जी॒वसे॒ मर्त्या॑य । ज्योति॒र्यच्छ॒न्त्यज॑स्रम् ॥ ३३ ॥

पदार्थ—जो (**अदितेः**) नाशरहित कारणरूपी शक्ति के (**पुत्रासः**) बाहिर भीतर रहने वाले प्राण, सूर्यलोक, पवन और जल आदि पुत्र हैं (**ते**) वे (**हि**) ही (**मर्त्याय**) मनुष्यों के मरने वा (**जीवसे**) जीने के लिये (**अजस्रम्**) निरन्तर (**ज्योतिः**) तेज या प्रकाश को (**यच्छन्ति**) देते हैं ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो ये कारणरूपी समर्थ पदार्थों के उत्पन्न हुए प्राण, सूर्यलोक, वायु वा जल आदि पदार्थ हैं वे ज्योति अर्थात् तेज को देते हुए सब प्राणियों के जीवन वा मरने के लिये निमित्त होते हैं ॥ ३३ ॥

कदा चनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

क॒दा च॒न स्त॒रीर॑सि॒ नेन्द्र॑ सश्चसि दा॒शुषे॑ ।
उपो॒पेन्नु म॑घव॒न् भूय॒ऽइन्नु ते॒ दानं॑ दे॒वस्य॑ पृच्यते ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सुख देने वाले ईश्वर ! जो आप (**स्तरीः**) सुखों से आच्छादन करने वाले (**असि**) हैं और (**दाशुषे**) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्य के लिये (**कदाचन**) कभी (**इत्**) ज्ञान को (**नु**) शीघ्र (**सश्चसि**) प्राप्त (**न**) नहीं करते तो उस काल में हे (**मघवन्**) विद्यादि धन वाले जगदीश्वर ! (**देवस्य**) कर्म फल को देने वाले (**ते**) आपके (**दानम्**) दिये हुए (**इत्**) ही ज्ञान को (**दाशुषे**) विद्यादि देने वाले के लिये (**भूयः**) फिर (**नु**) शीघ्र (**उपोपपृच्यते**) प्राप्त (**कदाचन**) कभी (**न**) नहीं होता ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर कर्म के फल को देने वाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तत् स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हम लोग (**सवितुः**) सब जगत् के उत्पन्न करने वा (**देवस्य**) प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो (**वरेण्यम्**) अति श्रेष्ठ (**भर्गः**) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करने वाला (**तेजः**) स्वरूप है (**तत्**) उसको (**धीमहि**) धारण करें और (**यः**) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है वह अपनी करुणा करके (**नः**) हम लोगों की (**धियः**) बुद्धियों को उत्तम उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (**प्रचोदयात्**) प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यन्त शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें । किस प्रयोजन के लिये जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे, खोटे गुण और कर्मों से अलग करके अच्छे अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे इसलिये । और प्रार्थना का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जैसी प्रार्थना करनी हो वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

परि त इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

परि॑ ते दू॒डभो॒ रथो॒ऽस्माँ२ऽअ॑श्नोतु वि॒श्वतः॑ । येन॒ रक्ष॑सि दा॒शुषः॑ ॥ ३६ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (**येन**) जिस ज्ञान से (**दाशुषः**) विद्यादि दान करने वाले विद्वानों को (**विश्वतः**) सब ओर से (**रक्षसि**) रक्षा करते और जो (**ते**) आपका (**दूडभः**) दुःख से भी नहीं नष्ट होने योग्य (**रथः**) सब को जानने योग्य विज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिये है वह (**अस्मान्**) आपकी आज्ञा के सेवन करने वाले हम लोगों को (**परि**) सब प्रकार (**अश्नोतु**) प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर वा विज्ञानों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और अपना पुरुषार्थ नित्य करना चाहिए जिससे हम लोग अविद्या अधर्म आदि दोषों को त्याग करके उत्तम उत्तम विद्या, धर्म आदि शुभगुणों को प्राप्त होके सदा सुखी होवें ॥ ३६ ॥

भूर्भुवरित्यस्य वामदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उस जगदीश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

भूर्भुवः॒ स्वः॒ सुप्र॒जाः प्र॒जाभिः॑ स्याꣳ सु॒वीरो॑ वी॒रैः सु॒पोषः॒ पोषैः॑ ।
नर्य॑ प्र॒जां मे॑ पाहि॒ शꣳस्य॑ प॒शून् मे॑ पाह्यथर्य॑ पि॒तुं मे॑ पाहि ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे (**नर्य**) नीतियुक्त मनुष्यों पर कृपा करनेवाले परमेश्वर ! आप कृपा करके (**मे**) मेरी (**प्रजाम्**) पुत्र आदि प्रजा की (**पाहि**) रक्षा कीजिये वा (**मे**) मेरे (**पशून्**) गौ घोड़े हाथी आदि पशुओं की (**पाहि**) रक्षा कीजिये । हे (**अथर्य**) सन्देह रहित जगदीश्वर ! आप (**मे**) मेरे (**पितुम्**) अन्न की (**पाहि**) रक्षा कीजिये । हे (**शंस्य**) स्तुति करने योग्य ईश्वर ! आपकी कृपा से मैं (**भूर्भुवः स्वः**) जो प्रियस्वरूप प्राण, बल का हेतु उदान तथा सब चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है, उनके साथ युक्त होके (**प्रजाभिः**) अपने अनुकूल स्त्री, पुत्र, विद्या, धर्म, मित्र, भृत्य, पशु आदि पदार्थों के साथ (**सुप्रजाः**) उत्तम विद्या, धर्म-युक्त प्रजा सहित वा (**वीरैः**) शौर्य, धैर्य, विद्या शत्रुओं के निवारण प्रजा के पालन में कुशलों के साथ (**सुवीरः**) उत्तम शूरवीरयुक्त और (**पोषैः**) पुष्टिकारक पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ (**सुपोषः**) उत्तम पुष्टि उत्पादन करनेवाला (**स्याम्**) नित्य होऊँ ॥ ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञा के पालन का आश्रय लेकर उत्तम उत्तम नियमों से वा उत्तम प्रजा, शूरता, पुष्टि आदि कारणों से प्रजा पालन करके निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ ३७ ॥

आगन्मेत्यस्यासुरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—

आ ग॑न्म वि॒श्ववे॑दसम॒स्मभ्यं॑ वसु॒वित्त॑मम् ।
अग्ने॑ स॒म्राड॒भि द्यु॒म्नम॒भि सह॒ऽआ य॑च्छस्व ॥ ३८ ॥

पदार्थ—हे (**सम्राट्**) प्रकाशस्वरूप (**अग्ने**) जगदीश्वर ! आप (**अस्मभ्यम्**) उपासना करनेवाले हम लोगों के लिये (**द्युम्नम्**) प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा (**सहः**) उत्तम बल को (**अभ्यायच्छस्व**) सब ओर से विस्तारयुक्त करते हो

इसलिये हम लोग (**वसुवित्तमम्**) पृथिवी आदि लोकों के जानने वा (**विश्ववेदसम्**) सब सुखों के जाननेवाले आपको (**अभ्यागमम्**) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥१॥ जो यह (**सम्राट्**) प्रकाश होनेवाला (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**अस्मभ्यम्**) यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले हम लोगों के लिये (**द्युम्नम्**) उत्तम उत्तम यश वा (**सहः**) उत्तम उत्तम बल को (**अभ्यायच्छस्व**) सब प्रकार विस्तारयुक्त करता है उस (**वसुवित्तमम्**) पृथिवी आदि लोकों को सूर्यरूप से प्रकाश करके प्राप्त कराने वा (**विश्ववेदसम्**) सब सुखों को जनानेवाले अग्नि को हम लोग (**अभ्यागमम्**) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उसके अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति, यश और बल का विस्तार करना चाहिए ॥३८॥

अयमग्निरित्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः।
अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआ यच्छस्व ॥ ३९ ॥

पदार्थ—हे (**गृहपते**) घर के पालन करनेवाले (**अग्ने**) परमेश्वर ! जो (**अयम्**) यह (**गृहपतिः**) स्थान विशेषों के पालन हेतु (**गार्हपत्यः**) घर के पालन करनेवालों के साथ संयुक्त (**प्रजायाः वसुवित्तमः**) प्रजा के लिये सब प्रकार धन प्राप्त करानेवाले हैं सो आप जिस कारण (**द्युम्नम्**) सुख और प्रकाश से युक्त धन को (**अभ्यायच्छस्व**) अच्छी प्रकार दीजिये। तथा (**सहः**) उत्तम बल पराक्रम (**अभ्यायच्छस्व**) अच्छी प्रकार दीजिये ॥ १ ॥ जिस कारण जो (**गृहपतिः**) उत्तम स्थानों के पालन का हेतु (**प्रजायाः**) पुत्र मित्र स्त्री और भृत्य आदि प्रजा को (**वसुवित्तमः**) द्रव्यादि को प्राप्त कराने वा (**गार्हपत्यः**) गृहों के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (**अयम्**) यह (**अग्ने**) बिजुली सूर्य वा प्रत्यक्षरूप से अग्नि है इससे वह (**गृहपते**) घरों का पालन करनेवाला (**अग्ने**) अग्नि हम लोगों के लिये (**अभिद्युम्नम्**) सब ओर से उत्तम उत्तम धन वा (**सहः**) उत्तम उत्तम बलों को (**अभ्यायच्छस्व**) सब प्रकार से विस्तारयुक्त करता है ॥३६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा में प्रवृत्त होके कार्य्य की सिद्धि के लिये इस अग्नि को संयुक्त करते हैं तब वह अग्नि अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तार युक्त करता है। क्योंकि यह प्रजा में पदार्थों की प्राप्ति के लिये अत्यन्त सिद्धि करने हारा है ॥३६॥

अयमग्निः पुरीष्य इत्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भौतिक अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः।
अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआ यच्छस्व ॥ ४० ॥

पदार्थ—हे (**पुरीष्य**) कर्मों के पूर्ण करने में अतिकुशल (**अग्ने**) उत्तम से उत्तम पदार्थों के प्राप्त कराने वाले विद्वान् ! आप जो (**अयम्**) यह (**पुरीष्यः**) सब सुखों के पूर्ण करने में अत्युत्तम (**रयिमान्**) उत्तम उत्तम धनयुक्त (**पुष्टिवर्द्धनः**) पुष्टि को बढ़ानेवाला (**अग्निः**) भौतिक अग्नि है उससे हम लोगों के लिये (**अभिद्युम्नम्**) उत्तम उत्तम ज्ञान को सिद्ध करनेवाले धन वा (**अभिसहः**) उत्तम उत्तम शरीर और आत्मा के बलों को (**आयच्छस्व**) सब प्रकार से विस्तारयुक्त कीजिये ॥ ४० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की कृपा वा अपने पुरुषार्थ से अग्निविद्या को सम्पादन करके अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करना चाहिये ॥४०॥

गृहामेत्यस्यासुरिर्ऋषिः। वास्तुरग्निर्देवता। आर्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है—

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रतऽएमसि।
ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥४१॥

पदार्थ—हे ब्रह्मचर्याश्रम से सब विद्याओं को ग्रहण किये गृहाश्रमी तथा (**ऊर्जम्**) शौर्यादि पराक्रमों को (**बिभ्रतः**) धारण किये और (**गृहाः**) ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए मनुष्यो ! तुम गृहस्थाश्रम को यथावत् प्राप्त होओ उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से (**मा बिभीत**) मत डरो तथा (**मा वेपध्वम्**) मत कम्पो तथा पराक्रमों को धारण किये हुए हम लोग (**गृहान्**) गृहस्थाश्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को (**एमसि**) नित्य प्राप्त होते रहें और (**वः**) तुम लोगों में स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वर्त्तमान (**सुमनाः**) उत्तम ज्ञान (**सुमेधाः**) उत्तम बुद्धि युक्त (**मनसा**) विज्ञान से (**मोदमानः**) हर्ष उत्साह युक्त (**ऊर्जम्**) अनेक प्रकार के बलों को (**बिभ्रत्**) धारण करता हुआ मैं अत्यन्त सुखों को (**एमि**) निरन्तर प्राप्त होऊं ॥४१॥

भावार्थ—मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन करके युवावस्था में स्वयंवर के विधान की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव, विद्या, रूप, बुद्धि और बल आदि गुणों को देखकर विवाह कर तथा शरीर आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न करके सब साधनों से अच्छे अच्छे व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये तथा किसी मनुष्य को गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नहीं करना चाहिये क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये और इस गृहस्थाश्रम के विना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती ॥४१॥

येषामित्यस्यशंयुर्ऋषिः। वास्तुपतिरग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह गृहस्थाश्रम कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

पदार्थ—(**प्रवसन्**) प्रवास करता हुआ अतिथि (**येषाम्**) जिन गृहस्थों का (**अध्येति**) स्मरण करता वा (**येषु**) जिन गृहस्थों में (**बहुः**) अधिक (**सौमनसः**) प्रीतिभाव है उन (**गृहान्**) गृहस्थों का हम अतिथि लोग (**उपह्वयामहे**) नित्यप्रति प्रशंसा करते हैं जो प्रीति रखनेवाले गृहस्थ लोग हैं (**ते**) वे (**जानतः**) जानते हुए धार्मिक (**नः**) हम अतिथि लोगों को (**जानन्तु**) यथावत् जानें ॥४२॥

भावार्थ—गृहस्थों को सब धार्मिक अतिथि लोगों के वा अतिथि लोगों को गृहस्थों के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टों के साथ नहीं तथा उन विद्वानों के सङ्ग से परस्पर वार्तालाप कर विद्या की उन्नति करनी चाहिये और जो परोपकार करनेवाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उनकी सेवा गृहस्थों को निरन्तर करनी चाहिये, औरों की नहीं ॥४२॥

उपहूता इत्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः। वास्तुपतिर्देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उस गृहस्थाश्रम को कैसे सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपहूताऽइह गावऽउपहूतोऽअजावयः। अथोऽअन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः॥४३

पदार्थ—(**इह**) इस गृहस्थाश्रम वा संसार में (**वः**) तुम लोगों के (**शान्त्यै**) सुख (**नः**) हम लोगों की (**क्षेमाय**) रक्षा के (**गृहेषु**) निवास करने योग्य स्थानों में जो (**गावः**) दूध देनेवाली गौ आदि पशु (**उपहूताः**) समीप प्राप्त किये वा (**अजावयः**) भेड़ बकरी आदि पशु (**उपहूताः**) समीप प्राप्त हुए (**अथो**) इसके अनन्तर (**अन्नस्य**) प्राण धारण करनेवाले (**कीलालः**) अन्न आदि पदार्थों का समूह (**उपहूताः**) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो मैं गृहस्थ हूं सो (**शंयोः**) सब सुखों के साधनों से (**शिवम्**) कल्याण वा (**शंयोः**) सुख से (**शग्मम्**) उत्तम सुखों को (**प्रपद्ये**) प्राप्त होऊं ॥४३॥

भावार्थ—गृहस्थों को योग्य है कि उपासना वा उसकी आज्ञा के पालने से गौ हाथी घोड़े आदि पशु तथा खाने पीने योग्य स्वादु भक्ष्य पदार्थों का संग्रह कर अपनी वा औरों की रक्षा करके विज्ञान धर्म विद्या और पुरुषार्थ से इस लोक वा परलोक के सुखों को सिद्ध करें, किसी भी पुरुष को आलस्य में नहीं रहना चाहिये किन्तु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ती राज्य आदि धनों को संग्रह कर उनकी अच्छे प्रकार रक्षा करके उत्तम सुखों को प्राप्त हों इससे अन्यथा मनुष्यों को न वर्त्तना चाहिये क्योंकि अन्यथा वर्त्तने वालों को सुख कभी नहीं होता ॥४३॥

प्रघासिन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

गृहस्थ मनुष्यों को क्या क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः ॥४४॥

पदार्थ—हम लोग (**करम्भेण**) अविद्यारूपी दुःख होने से अलग होके (**सजोषसः**) बराबर प्रीति के सेवन करने (**रिशादसः**) दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने (**प्रघासिनः**) पके हुए पदार्थों के भोजन करनेवाले अतिथि लोग और (**मरुतः**) अतिथि (**च**) और यज्ञ करनेवाले विद्वान् लोगों को (**हवामहे**) सत्कार पूर्वक नित्यप्रति बुलाते रहें ॥४४॥

भावार्थ—गृहस्थों को उचित है कि वैद्य, शूरवीर और यज्ञ को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक सेवा करके उनसे उत्तम उत्तम विद्या वा शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें ॥४४॥

यद् ग्राम इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतो देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर अगले मन्त्र में गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है—

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥४५॥

पदार्थ—(**वयम्**) कर्म के अनुष्ठान करनेवाले हम लोग (**यद् ग्रामे**) जो गृहस्थों में सेवित ग्राम (**यत् अरण्ये**) वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो (**यत्सभायाम्**) विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हों और (**यत् इन्द्रिये**) योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों उसमें स्थिर हो के जो (**एनः**) पाप वा अधर्म (**चकृम**) करा वा करेंगे सब (**अवयजामहे**) दूर करते रहें तथा

जो जो उन उन उक्त स्थानों में (स्वाहा) सत्यवाणी से पुण्य वा धर्माचरण (चक्रम) करना योग्य है (तत्) उस उस को (यजामहे) प्राप्त होते रहें ॥४५॥

भावार्थ—चारों आश्रमों में रहनेवाले मनुष्यों को मन वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग करके विद्वानों की सभा, विद्या तथा उत्तम उत्तम शिक्षा का प्रचार करके प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

मो षू ण इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रमारुतौ देवते । भुरिक्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर और शूरवीर के सहाय से युद्ध में विजय होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मो षू ण॑ऽइन्द्रात्र॑ पृत्सु दे॒वैरस्ति॒ हि ष्मा॑ ते शुष्मिन्नव॒याः ।
म॒हश्चि॒द्यस्य॑ मी॒ढुषो॑ य॒व्या ह॒विष्म॑तो म॒रुतो॒ वन्द॑ते॒ गीः ॥ ४६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शूरवीर ! आप (अत्र) इस लोक में (पृत्सु) युद्धों में (देवैः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (सु) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये तथा (मो) मत हनन कीजिये । हे (शुष्मिन्) पूर्ण बलयुक्त शूरवीर ! (हि) निश्चय करके (चित्) जैसे (ते) आपकी (महः) बड़ी (गीः) वेदप्रमाणयुक्त वाणी (मीढुषः) विद्या आदि उत्तम गुणों के सींचने वा (हविष्मतः) उत्तम उत्तम हवि अर्थात् पदार्थयुक्त (मरुतः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करनेवाले विद्वानों के (वन्दते) गुणों का प्रकाश करती है जैसे विद्वान् लोग आपके गुणों का हम लोगों के अर्थ निरन्तर प्रकाश करके आनन्दित होते हैं वैसे जो (अवयाः) यज्ञ करनेवाला यजमान है वह आपकी आज्ञा से जिन (यव्या) उत्तम उत्तम यव आदि अन्नों को अग्नि में होम करता है वे पदार्थ सब प्राणियों को सुख देनेवाले होते हैं ॥४६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को संग्रह करके युद्ध में शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्त्ति राज्य को प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बड़े आनन्द को सेवन करते हैं तब उत्तम राज्य होता है ॥४६॥

अक्रन्नित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

कौन कौन मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने को योग्य होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अक्र॒न् कर्म॑ कर्म॒कृतः॑ स॒ह वा॒चा म॑यो॒भुवा॑ ।
दे॒वेभ्यः॒ कर्म॑ कृ॒त्वास्तं॒ प्रेत॑ सचाभुवः ॥४७॥

पदार्थ—जो मनुष्य लोग (मयोभुवा) सत्यप्रिय मङ्गल के करानेवाली (वाचा) वेदवाणी वा अपनी वाणी के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर सङ्गी होकर (कर्मकृतः) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अभीष्ट कर्म को (अक्रन्) करते हैं वे (देवेभ्यः) विद्वान् वा उत्तम उत्तम गुण सुखों के लिये (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा) अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्णसुखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं ॥४७॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़ कर पुरुषार्थ ही में निरन्तर रहके मूर्खपन को छोड़ कर वेद विद्या से शुद्ध की हुई वाणी के साथ सदा वर्त्तें और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करें । जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वे ही अच्छे अच्छे सुखयुक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं, अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते हैं ॥४७॥

अवभृथेत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले यजमान के कर्मों का उपदेश किया है—

अव॑भृथ निचुम्पुण निचे॒रुर॑सि निचुम्पुणः । अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मेनो॑ऽयासि॒षमव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतं पुरु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि ॥ ४८ ॥

पदार्थ—हे (अवभृथ) विद्या धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध (निचुम्पुणः) धैर्य से शल्यविद्या को पढ़ानेवाले विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (निचुम्पुणः) ज्ञान को प्राप्त कराने वा (निचेरुः) निरन्तर विद्या का संग्रह करनेवाला (देवैः) प्रकाशस्वरूप मन आदि इन्द्रियों से (देवकृतम्) किया वा (मर्त्यैः) मरणधर्मवाले (मर्त्यकृतम्) शरीरों से किये हुये (एनः) पापों को (अव अयासिषम्) दूर कर शुद्ध होता हूँ वैसे तू भी (असि) हो। हे (देव) जगदीश्वर ! आप हम लोगों की (पुरुराव्णः) बहुत दुःख देने वा (रिषः) मारने योग्य शत्रु वा पाप से (पाहि) रक्षा कीजिये अर्थात् दूर कीजिये ॥४८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पाप की निवृत्ति धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना निरन्तर करके जो मन वाणी वा शरीर से पाप होते हैं उनसे दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो उसके दुःखरूप फल को जानकर फिर दूसरी बार उसको कभी न करें किन्तु सब काल में शुद्ध कर्मों के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें ॥४८॥

पूर्णदर्वीत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यज्ञ में हवन किया हुआ पदार्थ कैसा होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पू॒र्णा द॑र्वि॒ परा॑ पत॒ सुपू॑र्णा॒ पुन॒रा प॑त ।
व॒स्नेव॒ वि क्री॑णावहा॒ऽइष॒मूर्ज॑ꣳ शतक्रतो ॥४९॥

पदार्थ—जो (दर्वि) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करनेवाली (पूर्णा) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुति (परापत) होम हुए पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से (सुपूर्णा) पूर्ण हुई (पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथिवी में उत्तम जलरस को प्राप्त करती है उससे हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर ! आप की कृपा से हम यज्ञ कराने और करनेवाले विद्वान् होता और यजमान दोनों (इषम्) उत्तम उत्तम अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त वस्तुओं को (वस्नेव) वैश्यों के समान (विक्रीणावहै) दें वा ग्रहण करें ॥४९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जब मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि जल को शुद्ध करते हुए पृथिवी को आते हैं जिससे यव आदि ओषधि शुद्ध होकर सुख और पराक्रम के देने वाली होती हैं । जैसे कोई वैश्य लोग रुपया आदि को दे ले कर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों को खरीदते वा बेचते हैं वैसे सब हम लोग भी अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोड़कर वर्षा वा अनेक सुखों को खरीदते हैं, खरीदकर फिर वृष्टि और सुखों के लिये अग्नि में हवन करते हैं ॥४९॥

देहि म इत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सब आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहारों का उपदेश किया है—

दे॒हि मे॒ ददा॑मि ते॒ नि मे॑ धेहि॒ नि ते॑ दधे ।
नि॒हार॑ञ्च॒ हरा॑सि मे नि॒हारं॒ नि ह॑राणि ते॒ स्वाहा॑ ॥ ५० ॥

पदार्थ—हे मित्र ! तुम (स्वाहा) जैसे सत्यवाणी हृदय में कहे वैसे (मे) मुझको यह वस्तु (देहि) दे वा मैं (ते) मुझ को यह वस्तु (ददामि) देऊँ वा देऊँगा तथा तू (मे) मेरी यह वस्तु (निधेहि) धारण कर मैं (ते) तुम्हारी यह वस्तु (निदधे) धारण करता हूँ और तू (मे) मुझ को (निहारम्) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को (हरासि) ले। मैं (ते) तुझको (निहारम्) पदार्थों का मोल (निहराणि) निश्चय करके देऊँ (स्वाहा) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से करें अन्यथा से व्यवहार सिद्ध नहीं होते हैं ॥५०॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को देना लेना पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहियें । जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु हमको देना, मैं यह नहीं देता तथा देऊँगा, ऐसा कहे तो वैसा ही करना तथा किसी ने कहा कि मेरी यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ, जब इच्छा करूँ तब तुम दे देना । इसी प्रकार मैं तुम्हारी यह वस्तु रख लेता हूँ, जब तुम इच्छा करोगे तब देऊँगा वा उसी समय में तुम्हारे पास आऊँगा वा तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहियें और ऐसे व्यवहारों के विना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्यों की सिद्धि नहीं होती और इन दोनों के विना कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥५०॥

अक्षन्नित्यस्य गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उस यज्ञादि व्यवहार से क्या क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अक्ष॒न्नमी॑मदन्त॒ ह्यव॑ प्रि॒याऽअ॑धूषत ।
अस्तो॑षत॒ स्वभा॑नवो॒ विप्रा॒ नवि॑ष्ठया म॒ती योजा॒ न्विन्द्र ते॒ हरी॑ ॥५१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभा के स्वामी ! जो (ते) आपके सम्बन्धी मनुष्य (स्वभानवः) अपनी ही दीप्ति से प्रकाश होवे वा (अव प्रियाः) औरों को प्रसन्न करानेवाले (विप्राः) विद्वान् लोग (नविष्ठया) अत्यन्त नवीन (मती) बुद्धि से (हि) निश्चय करके परमात्मा की (अस्तोषत) स्तुति और (अक्षन्) उत्तम उत्तम अन्नादि पदार्थों को भक्षण करते हुए (अमीमदन्त) आनन्द को प्राप्त होते और उसी से वे शत्रु वा दुःखों को (न्वधूषत) शीघ्र कम्पित करते हैं वसे ही यज्ञ में (इन्द्र) हे सभापते ! (ते) आपके सहाय से इस यज्ञ में निपुण हों और तू (हरी) अपने बल और पराक्रम को हम लोगों के साथ (योज) संयुक्त कर ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवीन नवीन ज्ञान वा क्रिया की वृद्धि करते रहें । जैसे मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग वा शास्त्रों के पढ़ने से नवीन नवीन बुद्धि नवीन नवीन क्रिया को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को अनुष्ठान करना चाहिये ॥५१॥

सुसंदृशमित्यस्य गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सु॒सं॒दृशं॑ त्वा व॒यं मघ॑वन् वन्दिषी॒महि॑ ।
**प्र नू॒नं पू॒र्णव॑न्धुर स्तु॒तो या॑सि॒ वशाँ॒२ऽअनु॒ योजा॒ न्विन्द्र ते॒ हरी॑ ॥५२

पदार्थ—हे (**मघवन्**) उत्तम उत्तम विद्यादि धनयुक्त (**इन्द्र**) परमात्मन् ! तू (**वयम्**) हम लोग (**सुसंदृशम्**) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखनेवाले (**त्वा**) आपकी (**नूनम्**) निश्चय करके (**वन्दिषीमहि**) स्तुति करें तथा हम लोगों से (**स्तुतः**) स्तुति किये हुए आप (**वशान्**) इच्छा किये हुए पदार्थों को (**यासि**) प्राप्त कराते हो और (**ते**) अपने (**हरी**) बल पराक्रमों को आप (**अनुप्रयोज**) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त कीजिये ॥ १ ॥ (**वयम्**) हम लोग (**सुसंदृशम्**) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने वा (**मघवन्**) धन को प्राप्त कराने तथा (**पूर्णबन्धुरः**) सब जगत् के बन्धन के हेतु (**त्वा**) उस सूर्यलोक की (**नूनम्**) निश्चय करके (**वन्दिषीमहि**) स्तुति अर्थात् इसके गुण प्रकाश करके (**स्तुतः**) स्तुति किया हुआ यह हम लोगों को (**वशान्**) उत्तम, उत्तम व्यवहारों को सिद्धि करानेवाली कामनाओं को (**यासि**) प्राप्त करता है (**नु**) जैसे (**ते**) इस सूर्य के (**हरी**) धारण आकर्षण गुण जगत् में युक्त होते हैं वैसे आप हम लोगों को विद्या की सिद्धि करने वाले गुणों को (**अनुप्रयोज**) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को सब जगत् के हित करनेवाले जगदीश्वर ही की स्तुति करनी और किसी की न करनी चाहिये क्योंकि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है वैसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्तजनों के आत्माओं में विज्ञान को उत्पन्न करने से सब सत्य व्यवहारों को प्रकाशित करता है। इससे ईश्वर को छोड़कर और किसी की उपासना कभी न करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

मनो न्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । अतिपादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इसके आगे मन के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मनो॒ न्वाह्वा॑महे नाराश॒ꣳसेन॒ स्तोमे॑न । पि॒तॄ॒णां च॒ मन्म॑भिः ॥५३॥

पदार्थ—हम लोग (**नाराशंसेन**) पुरुषों के अत्यन्त प्रशंसनीय (**स्तोमेन**) स्तुतियुक्त व्यवहार और (**पितृणाम्**) पालना करनेवाले ऋतु वा ज्ञानवान् मनुष्यों के (**मन्मभिः**) जिनसे सब गुण जाने जाते हैं उन गुणों के साथ (**मनः**) संकल्प-विकल्पात्मक चित्त को (**न्वाह्वामहे**) सब ओर से हटाके दृढ़ करते हैं ॥५३॥

भावार्थ—मनुष्यों को मनुष्यजन्म की सफलता के लिये विद्या आदि गुणों से युक्त मन को करना चाहिये। जैसे ऋतु अपने अपने गुणों को क्रम क्रम से प्रकाशित करते हैं तथा जैसे विद्वान् लोग क्रम क्रम से अनेक प्रकार की अन्य-अन्य विद्याओं को साक्षात्कार करते हैं, वैसा ही पुरुषार्थ करके सब मनुष्यों को निरन्तर विद्या और प्रकाश की प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

आ न एत्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह मन कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ न॑ऽएतु॒ मनः॒ पुनः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे॑ । ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥५४॥

पदार्थ—(**नः**) जो स्मरण करनेवाला चित्त (**ज्योक्**) निरन्तर (**सूर्यम्**) परमेश्वर, सूर्यलोक वा प्राण को (**दृशे**) देखने वा (**क्रत्वे**) उत्तम विद्या वा उत्तम कर्मों की स्मृति वा (**जीवसे**) सौ वर्ष से अधिक जीने (**च**) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये है वह (**नः**) हम लोगों को (**पुनः**) बार बार, जन्म जन्म में (**आ**) सब प्रकार से (**एतु**) प्राप्त हो ॥ ५४ ॥

भावार्थ—मनुष्य उत्तम कर्मों के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि वा जन्म जन्म में उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें जिससे मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम उत्तम धर्मों का सेवन कर सकें ।५४।

पुनर्न इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पुन॑र्नः पि॒तरो॒ मनो॒ ददा॑तु॒ दैव्यो॒ जनः॑ । जी॒वं व्रात॒ꣳसचेमहि । ५५॥

पदार्थ—हे (**पितरः**) उत्पादक वा अन्न शिक्षा वा विद्या को देकर रक्षा करनेवाले पिता आदि लोग आपकी शिक्षा से यह (**दैव्यः**) विद्वानों के बीच में उत्पन्न हुआ (**जनः**) विद्या वा धर्म से दूसरे के लिये उपकारों को प्रकट करनेवाला विद्वान् पुरुष(**नः**) हम लोगों के लिये (**पुनः**) इस जन्म वा दूसरे जन्म में (**मनः**) धारणा करनेवाली बुद्धि को (**ददातु**) देवे जिससे (**जीवन्**) ज्ञानसाधनयुक्त जीवन वा (**व्रातम्**) सत्य बोलने आदि गुण समुदाय को (**सचेमहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥ ५५ ॥

भावार्थ—विद्वान् माता पिता आचार्यों की शिक्षा के विना मनुष्यों का जन्म सफल नहीं होता और मनुष्य भी उस शिक्षा के विना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने को समर्थ नहीं हो सकते। इससे सब काल में विद्वान् माता, पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा के बल वाले करें ॥ ५५ ॥

वयमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सोम शब्द से ईश्वर और ओषधियों के रसों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

व॒यꣳ सो॑म व्र॒ते तव॒ मन॑स्त॒नूषु॒ बिभ्र॑तः । प्र॒जाव॑न्तः सचेमहि ॥५६॥

पदार्थ—हे (**सोम**) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर ! (**तव**) आपको (**व्रते**) सत्यभाषण आदि धर्मों के अनुष्ठान में वर्तमान होके (**तनूषु**) बड़े बड़े सुखयुक्त शरीरों में (**मनः**) अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्ति को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए और (**प्रजावन्तः**) बहुत पुत्र आदि राष्ट्र आदि धन वाले होके हम लोग (**सचेमहि**) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ १ ॥ (**तव**) इस (**सोम**) सोमलता आदि ओषधियों के (**व्रते**) सत्य सत्य गुण ज्ञान के सेवन में (**तनूषु**) सुखयुक्त शरीरों में (**मनः**) चित्त की वृत्ति को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**प्रजावन्तः**) पुत्र राज्य आदि धनवाले होकर (**वयम्**) हम लोग (**सचेमहि**) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ २ ॥ ५६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। ईश्वर की आज्ञा में वर्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन सुखों को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मनुष्य नहीं ॥ ५६ ॥

एष त इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ए॒ष ते॑ रुद्र भा॒गः स॒ह स्वस्राम्बि॑कया॒ तं जु॑षस्व॒ स्वाहा॑ । ए॒ष ते॑ रुद्र भा॒गऽआ॒खुस्ते॑ प॒शुः ॥ ५७ ॥

पदार्थ—हे (**रुद्र**) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलानेवाले विद्वन् ! जो (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**भागः**) सेवन करने योग्य पदार्थ समूह है, उस को तू (**अम्बिकया**) वेदवाणी वा (**स्वस्रा**) उत्तम विद्या वा क्रिया के (**सह**) साथ (**जुषस्व**) सेवन कर तथा हे (**रुद्र**) विद्वन् ! जो (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**भागः**) धर्म से सिद्ध अंश वा (**स्वाहा**) वेदवाणी है उसका सेवन कर और हे (**रुद्र**) विद्वन् ! जो (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**आखुः**) खोदने योग्य शस्त्र वा (**पशुः**) भोग्य पदार्थ है (**तम्**) उसको (**जुषस्व**) सेवन कर ॥ १ ॥ जो (**एषः**) यह (**रुद्र**) प्राण है (**ते**) जिसका (**एषः**) यह (**भागः**) है जिसको (**अम्बिकया**) वाणी वा (**स्वस्रा**) विद्याक्रिया के (**सह**) साथ (**जुषस्व**) सेवन करता वा जो (**ते**) जिसका (**स्वाहा**) सत्य वाणीरूप (**भागः**) भाग है और जो इसके (**आखुः**) खोदनेवाले पदार्थ वा (**पशुः**) दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं जिसका यह (**जुषस्व**) सेवन करता है उसका सेवन सब मनुष्य सदा करें ॥ ५७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्दविद्या को पढ़कर आनन्द को भोगता है विद्या को प्राप्त होकर वैसे विद्वान् भी सुखी होता है। जैसे यह प्राण श्रेष्ठ शब्दविद्या से प्रिय आनन्ददायक होता है, वैसे सुशिक्षित विद्वान् भी सब को सुख करनेवाला होता है। इन दोनों के विना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥

अव रुद्रमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में रुद्र शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है—

अव॑ रु॒द्रम॑दीम॒ह्यव॑ दे॒वं त्र्य॑म्बकम् । यथा॑ नो॒ वस्य॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नः॒ श्रेय॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नो व्यवसा॒यया॑त् ॥५८

पदार्थ—हम लोग (**त्र्यम्बकम्**) तीनों काल में एकरस ज्ञानयुक्त (**देवम्**) देने वा (**रुद्रम्**) दुष्टों को रुलानेवाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दुःखों को (**अवादीमहि**) अच्छे प्रकार नष्ट करें (**यथा**) जैसे परमेश्वर (**नः**) हम लोगों को (**वस्यसः**) उत्तम उत्तम वास करनेवाले (**अवाकरत्**) अच्छे प्रकार करे (**यथा**) जैसे (**नः**) हम लोगों को (**श्रेयसः**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**करत्**) करे (**यथा**) जैसे (**नः**) हम लोगों को (**व्यवसाययात्**) निश्चय वाले करे वैसे सुख पूर्वक निवास कराने वा उत्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देनेवाले परमेश्वर ही की प्रार्थना करें ॥ ५८ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य ईश्वर की उपासना वा प्रार्थना के विना सब दुःखों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि वही परमेश्वर सब सुखपूर्वक निवास वा उत्तम उत्तम सत्य निश्चयों को कराता है इससे जैसी उसकी आज्ञा है उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥ ५८ ॥

भेषज मत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । स्वराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में कहा है—

भे॒ष॒जम॑सि भेष॒जं गवेऽश्वा॑य॒ पुरु॑षाय भेष॒जम् । सु॒खम्मे॒षाय॑ मे॒ष्यै ॥५९॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो आप (**भेषजम्**) शरीर, अन्तःकरण, इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोग नाश करनेवाले (**असि**) हैं (**भेषजम्**) अविद्यादि क्लेशों को दूर करनेवाले (**असि**) हैं सो आप (**नः**) हम लोगों के (**गवे**) गौ आदि (**अश्वाय**) घोड़ा आदि (**पुरुषाय**) सब मनुष्य (**मेषाय**) मेढ़ा और (**मेष्यै**) भेड़ आदि के लिये (**सुखम्**) उत्तम उत्तम सुखों को अच्छी प्रकार दीजिये ।५९।

भावार्थ—किसी मनुष्य का परमेश्वर की उपासना के विना शरीर आत्मा और प्रजा का दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता इससे उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने और ओषधियों के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु आदि के दुःखों को यत्न से निवृत्त करके सुखों को सिद्ध करना उचित है ॥५९॥

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । रुद्रो देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

त्र्य॑म्बकं यजामहे सु॒गन्धिं॑ पुष्टि॒वर्ध॑नम् । उ॒र्वा॒रु॒कमि॑व॒ बन्ध॑नान्मृ॒त्यो-

मुक्षीय माऽमृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥

पदार्थ—हम लोग जो (**सुगन्धिम्**) शुद्ध गन्धयुक्त (**पुष्टिवर्धनम्**) शरीर, आत्मा और समाज के बल को बढ़ानेवाला (**त्र्यम्बकम्**) रुद्ररूप जगदीश्वर है, उसकी (**यजामहे**) निरन्तर स्तुति करें । इनकी कृपा से (**उर्वारुकमिव**) जैसे खर्बूजा फल पक कर (**बन्धनात्**) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के तुल्य होता है वैसे हम लोग भी (**मृत्योः**) प्राण वा शरीर के वियोग से (**मुक्षीय**) छूट जावें (**अमृतात्**) और मोक्षरूप सुख से (**मा**) श्रद्धारहित कभी न होवें तथा हम लोग (**सुगन्धिम्**) उत्तम गन्धयुक्त (**पतिवेदनम्**) रक्षा करने हारे स्वामी को देनेवाले (**त्र्यम्बकम्**) सब के अध्यक्ष जगदीश्वर का (**यजामहे**) निरन्तर सत्कारपूर्वक ध्यान करें और इसके अनुग्रह से (**उर्वारुकमिव**) जैसे खरबूजा पक कर (**बन्धनात्**) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के समान मिष्ट होता है, वैसे हम लोग भी (**इतः**) इस शरीर से (**मुक्षीय**) छूट जावें (**अमुतः**) मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म के फल से (**मा**) पृथक् न होवें ॥ ६० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़ कर किसी का पूजन न करें क्योंकि वेद से अविहित और दुःखरूप फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी की उपासना न करनी चाहिये । जैसे खर्बूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पक कर समय के अनुसार लता से छूटकर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवें कभी मोक्ष की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न होवें, और न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें । जैसे व्यवहार के सुखों के लिये अन्न जल आदि की इच्छा करते हैं वैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्त धर्म और मुक्ति होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें ॥ ६० ॥

एतत्त इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगास्तारपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया है—

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि । अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासाऽअहिंसन्नः शिवोऽतीहि ॥६१॥

पदार्थ—हे (**रुद्र**) शत्रुओं को रुलानेवाले युद्धविद्या में कुशल सेनाध्यक्ष विद्वन् ! (**अवततधन्वा**) युद्ध के लिये विस्तारपूर्वक धनु को धारण करते (**पिनाकावसः**) पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र से शत्रुओं के बल को पीस के अपनी रक्षा करने (**कृत्तिवासः**) चमड़े और कवचों के समान दृढ़ वस्त्रों के धारण करने (**शिवः**) सब सुखों के देने और (**परः**) उत्तम सामर्थ्यवाले शूरवीर पुरुष ! आप (**मूजवतः**) मूँज घास आदि युक्त पर्वत से परे दूसरे देश में शत्रुओं को (**अतीहि**) प्राप्त कीजिये (**एतत्**) जो यह (**ते**) आपका (**अवसम्**) रक्षण करना है (**तेन**) उससे (**नः**) हम लोगों को (**अहिंसन्**) हिंसा को छोड़कर रक्षा करते हुए आप (**अतीहि**) सब प्रकार से हम लोगों का सत्कार कीजिये ॥ ६१ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम शत्रुओं से रहित होकर राज्य को निष्कंटक करके सब अस्त्र शस्त्रों का सम्पादन करके दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिससे दुष्ट शत्रु सुखी और सज्जन लोग दुःखी कदापि न होवें ॥ ६१ ॥

त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्य को कैसी आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (**यत्**) जो (**देवेषु**) विद्वानों के वर्त्तमान में (**त्र्यायुषम्**) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु वर्त्तता जो (**जमदग्नेः**) चक्षु आदि इन्द्रियों का (**त्र्यायुषम्**) शुद्धि, बल और पराक्रमयुक्त तीन गुणा आयु और जो (**कश्यपस्य**) ईश्वरप्रेरित (**त्र्यायुषम्**) तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष से अधिक भी आयु विद्यमान है (**तत्**) उस शरीर आत्मा और समाज को आनन्द देनेवाले (**त्र्यायुषम्**) तीनसौ वर्ष से अधिक आयु को (**नः**) हम लोगों को प्राप्त कीजिये ॥ ६२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में चक्षुः सब इन्द्रियों में और परमेश्वर सब रचना करने हारों में उत्तम है, ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये और (त्र्यायुषम्) इसी पदवी की चार बार आवृत्ति होने से तीनसौ वर्ष से अधिक चारसौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का ग्रहण किया है । इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करके और अपना पुरुषार्थ करना उचित है सो प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्द-पूर्वक तीनसौ वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं, वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्काररूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को सुख करने वाले विद्या विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त होकर तीनसौ वा चारसौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक भोगें ॥ ६२ ॥

शिवो नामासीत्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे के गुणों का उपदेश किया है—

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः । नि वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ॥ ६३ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर और उपदेश करनेहारे विद्वन् ! जो आप (**स्वधिति**) अविनाशी होने से वज्रमय (**असि**) हैं जिस (**ते**) आपका (**शिवः**) सुखस्वरूप विज्ञान का देनेवाला (**नाम**) नाम (**असि**) है सो आप मेरे (**पिता**) पालन करनेवाले (**असि**) हैं (**ते**) आपके लिए मेरा (**नमः**) सत्कारपूर्वक नमस्कार (**अस्तु**) विदित हो तथा आप (**मा**) मुझे (**मा**) मत (**हिंसीः**) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आपको (**आयुषे**) आयु के भोगने (**अन्नाद्याय**) अन्न आदि के भोगने (**सुप्रजास्त्वाय**) उत्तम उत्तम पुत्र आदि वा चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने (**सुवीर्य्याय**) उत्तम शरीर आत्मा का बल पराक्रम होने और (**रायस्पोषाय**) विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिए (**वर्त्तयामि**) वर्त्तता और वर्त्ताता हूँ । इस प्रकार वर्त्तने से सब दुःखों को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्यरूप से निश्चय करके अन्तर्यामिरूप आपका आश्रय करके सभों में वर्त्तता हूँ ॥ ६३ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य मङ्गलमय सब की पालना करनेवाले परमेश्वर की आज्ञा पालन के विना संसार वा परलोक के सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं होता । न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करना चाहिये । जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है, उसका सर्वत्र अनादर होता है । इस से सब मनुष्यों को आस्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है ॥ ६३ ॥

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन, अग्नि के स्वभाव वा अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवी के भ्रमण का लक्षण, अग्नि शब्द से ईश्वर वा भौतिक अर्थ का प्रतिपादन, अग्निहोत्र के मन्त्रों का प्रकाश, ईश्वर का उपस्थान, अग्नि का स्वरूपकथन, ईश्वर की प्रार्थना, उपासना वा इन दोनों का फल, ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन, सूर्य्य की किरणों के कार्य का वर्णन, निरन्तर उपासना, गायत्री मन्त्र का प्रतिपादन यज्ञ के फल का प्रकाश, भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन, गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण, इन्द्र और पवनों के कार्य का वर्णन पुरुषार्थ का आवश्यक करना, पापों से निवृत्त होना, यज्ञ की समाप्ति आवश्यक करनी, सत्य से लेने देने आदि व्यवहार करना, विद्वान् वा ऋतुओं के स्वभाव का वर्णन, चार प्रकार के अन्तःकरण का लक्षण, रुद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन, तीनसौ वर्ष अवश्य आयु का संपादन करना और धर्म से आयु आदि पदार्थों के ग्रहण का वर्णन किया है । इससे दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इस तीसरे अध्याय के अर्थकी संगति जाननी चाहिये ॥ ६३ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

तत्रेदमगन्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अबोषध्यौ देवते । विराड् ब्राह्मीजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब चौथे अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में जल के गुण स्वभाव और कृत्य का उपदेश किया है—

एदम॑गन्म देव॒यज॑नं पृथि॒व्या यत्र॑ दे॒वासो॒ऽअजु॑षन्त॒ विश्वे॑ । ऋ॒क्सा॒मा॒भ्या॑ᳩं सं॒तर॑न्तो॒ यजु॑र्भी रा॒यस्पोषे॑ण॒ समि॒षा म॑देम । इ॒माऽआपः॒ शमु॑ मे सन्तु दे॒वीः । ओष॑धे॒ त्राय॑स्व॒ स्वधि॑ते॒ मैनं॑ᳪ हिᳪसीः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (पृथिव्याः) भूमि पर मनुष्यजन्म को प्राप्त हो के जो (इदम्) यह (देवयजनम्) विद्वानों का यजन पूजन वा उनके लिए दान हैं उसको प्राप्त होके (यत्र) जिस देश में (ऋक्सामाभ्याम्) ऋग्वेद, सामवेद तथा (यजुर्भिः) यजुर्वेद के मन्त्रों में कहे कर्म (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि (समिषा) उत्तम उत्तम विद्या आदि की इच्छा वा अन्न आदि से दुःखों के (सन्तरन्तः) अन्त को प्राप्त होते हुए (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् हम लोग सुखों को (अगन्म) प्राप्त हों (अजुषन्त) सब प्रकार से सेवन करें (मदेम) सुखी रहें (उ) और भी (मे) मेरे सुनियम, विद्या, उत्तम शिक्षा से सेवन किये हुए (इमाः) ये (देवीः) शुद्ध (आपः) जल सुख देनेवाले होते हैं वैसे वहां तू भी उनको प्राप्त हो (जुषस्व) सेवन और आनन्द कर । वे जल आदि पदार्थ भी तुझको (शम्) सुख करनेवाले (सन्तु) होवें जैसे (ओषधे) सोमलता आदि ओषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है, वैसे तू भी हम लोगों की (त्रायस्व) रक्षा कर (स्वधिते) रोग नाश करने में वज्र के समान होकर (एनम्) इस यजमान वा प्राणिमात्र को (मा हिंसीः) कभी मत मार ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य लोग ब्रह्मचर्यपूर्वक अङ्ग और उपनिषद् सहित चारों वेदों को पढ़कर औरों को पढ़ा कर विद्या को प्रकाशित कर और विद्वान् होके उत्तम कर्मों के अनुष्ठान से सब प्राणियों को सुखी करें, वैसे ही इन विद्वानों का सत्कार कर इनसे वैदिक विद्या को प्राप्त होकर शरीर वा आत्मा की पुष्टि से धन का अत्यन्त सञ्चय करके सब मनुष्यों को आनन्दित होना चाहिये ॥ १ ॥

आपो अस्मानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन जलों से क्या क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

आपो॑ऽअ॒स्मान् मा॒तरः॑ शुन्धयन्तु घृ॒तेन॑ नो घृत॒प्वः॑ पुनन्तु । विश्व॑ᳪ हि रि॒प्रं प्र॒वह॑न्ति दे॒वीरुदिदा॑भ्यः॒ शुचि॒रा पू॒त ए॑मि । दी॒क्षा॒त॒प॒सो॒स्त॒नूर॑सि॒ तां त्वा॑ शि॒वाᳩं श॒ग्मां परि॑ दधे भ॒द्रं वर्णं॒ पुष्य॑न् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (भद्रम्) अति सुन्दर (वर्णम्) प्राप्त होने योग्य रूप को (पुष्यन्) पुष्ट करता हुआ मैं जो (घृतप्वः) घृत को पवित्र करने (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (मातरः) माता के समान पालन करनेवाले (आपः) जल (रिप्रम्) व्यक्त वाणी को प्राप्त करने वा जानने योग्य (विश्वम्) सब को (प्रवहन्ति) प्राप्त करते हैं जिनसे विद्वान् लोग (अस्मान्) हम मनुष्य लोगों को (शुन्धयन्तु) बाह्य देश को पवित्र करें और जो (घृतेन) घृतवत् पुष्ट करने योग्य जल हैं जिनसे (नः) हम लोगों को सुखी कर सकें उनसे (पुनन्तु) पवित्र करें । जैसे मैं (इत्) भी (उत्) अच्छे प्रकार (आभ्यः) इन जलों में (शुचिः) पवित्र तथा (आपूतः) शुद्ध होकर (दीक्षातपसोः) ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम उत्तम नियम सेवन से जो धर्मानुष्ठान के लिए (तनूः) शरीर (असि) है जिस (शिवाम्) कल्याणकारी (शग्माम्) सुखस्वरूप शरीर को (एमि) प्राप्त होता और (परिदधे) सब प्रकार धारण करता हूं वैसे तुम लोग भी उन जल और (ताम्) उस (त्वाम्) अत्युत्तम शरीर को धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जो सब सुखों को प्राप्त कराने, प्राणों का धारण कराने तथा माता के समान, पालन के हेतु जल हैं उनसे सब प्रकार पवित्र होके इन को शोध कर मनुष्यों को नित्य सेवन करना चाहिये जिस से सुन्दर वर्ण रोगरहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिए ॥ २ ॥

महीनामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मेघो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जलसमूह से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

म॒ही॒नां पयो॑ऽसि वर्चो॒दाऽअ॑सि॒ वर्चो॑ मे देहि । वृ॒त्रस्या॑सि क॒नीन॑कश्चक्षु॒र्दाऽअ॑सि॒ चक्षु॑र्मे देहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो यह (महीनाम्) पृथिवी आदि के (पयः) जल रस का निमित्त (असि) है (वर्चोदाः) दीप्ति का देनेवाला (असि) है जो (मे) मेरे लिए (वर्चः) प्रकाश को (देहि) देता है जो (वृत्रस्य) मेघ का (कनीनकः) प्रकाश करनेवाला (असि) है वा (चक्षुर्दाः) नेत्र के व्यवहार को सिद्ध करनेवाला (असि) है, वह सूर्य्य (मे) मेरे लिए (चक्षुः) नेत्रों के व्यवहार को (देहि) देता है ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को जानना उचित है कि जिस सूर्य्य के प्रकाश के बिना वर्षा की उत्पत्ति वा नेत्रों का व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होता, जिसने इस सूर्य्यलोक को रचा है उस परमेश्वर को कोटि असंख्यात धन्यवाद देते रहें ॥ ३ ॥

चित्पतिर्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृद्ब्राह्मीपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

जिस ने सूर्य्य आदि सब जगत् को बनाया है, वह परमात्मा हमारे लिये क्या क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

चि॒त्पति॑र्मा पुनातु वा॒क्पति॑र्मा पुनातु दे॒वो मा॑ सवि॒ता पु॑ना॒त्वच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । तस्य॑ ते पवित्रपते प॒वित्र॑पूतस्य॒ यत्का॑मः पु॒ने तच्छ॑केयम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पवित्रपते) पवित्रता के पालन करने हारे परमेश्वर ! (चित्पतिः) विज्ञान के स्वामी (वाक्पतिः) वाणी को निर्मल और (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले (देवः) दिव्य स्वरूप आप (पवित्रेण) शुद्ध करनेवाले (अच्छिद्रेण) अविनाशी विज्ञान वा (सूर्यस्य) सूर्य और प्राण के (रश्मिभिः) प्रकाश और गमनागमनों से (मा) मुझ और मेरे चित्त को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझ और मेरी वाणी को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझ तथा मेरे चक्षु को (पुनातु) पवित्र कीजिये । जिस (पवित्रपूतस्य) शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान आदि गुणों से पवित्र (ते) आप की कृपा से (यत्कामः) जिस उत्तम कामनायुक्त मैं (पुने) पवित्र होता हूं, जिस (ते) आपकी उपासना से (तत्) उस अत्युत्तम कर्म के करने को (शकेयम्) समर्थ होऊं उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जिस वेद के जानने वा पालन करनेवाले परमेश्वर ने वेदविद्या, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य्य आदि शुद्धि करनेवाले पदार्थ प्रकाशित किये हैं उसकी उपासना तथा पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्यों को पूर्ण कामना और पवित्रता को संपादन अवश्य करना चाहिए ॥ ४ ॥

आ वो देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस किस प्रकार का पुरुषार्थ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

आ वो॑ देवासऽईमहे वा॒मं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे । आ वो॑ देवासऽआ॒शिषो॑ य॒ज्ञिया॑सो हवामहे ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (देवासः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगो ! जैसे हम लोग (वः) तुम को (प्रयति) सुखयुक्त (अध्वरे) हिंसा करने अयोग्य यज्ञ के अनुष्ठान में (वः) तुम्हारे (वामम्) प्रशंसनीय गुणसमूह की (आ ईमहे) अच्छे प्रकार याचना करते हैं । हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! जैसे हम लोग इस संसार में आप लोगों से (यज्ञियाः) यज्ञ को सिद्ध करने योग्य (आशिषः) इच्छाओं को (आ हवामहे) अच्छे प्रकार स्वीकार कर सकें वैसे ही हम लोगों के लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के प्रसङ्ग से उत्तम उत्तम विद्याओं का सम्पादन कर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करके इन विद्वानों का सङ्ग और सेवा सदा करें ॥५॥

स्वाहा यज्ञमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किस किस प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

स्वाहा॑ य॒ज्ञं मन॑सः॒ स्वाहो॒रोर॒न्तरि॑क्षा॒त् ।
स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳬ स्वाहा॒ वाता॒दार॑भे॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (**स्वाहा**) वेदोक्त (**स्वाहा**) उत्तम शिक्षा सहित (**स्वाहा**) विद्याओं का प्रकाश (**स्वाहा**) सत्य और सब जीवों के कल्याण करने हारी वाणी और (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई उत्तम क्रिया से (**उरोः**) बहुत (**अन्तरिक्षात्**) आकाश और (**वातात्**) वायु की शुद्धि कर के (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ (**मनसः**) विज्ञान और ठीक ठीक क्रिया से (**यज्ञम्**) यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुरुषार्थ का (**आरभे**) नित्य आरम्भ करता हूँ, वैसे तुम लोग भी करो ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यों के द्वारा जो वेद की रीति और मन वचन कर्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह आकाश में रहनेवाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके सब को सुखी करता है ॥६॥

आकूत्यै प्रयुज इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यब्बृहस्पतयो देवताः । पूर्वार्धस्य पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । आपो देवीरित्युत्तरस्यार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किसलिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

आकू॑त्यै प्र॒युजे॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ मे॒धायै॒ मन॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ दी॒क्षायै॒ तप॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ सर॑स्वत्यै पू॒ष्णेऽग्नये॒ स्वाहा॑ । आपो॑ देवीर्बृहतीर्वि॑श्वशंभुवो॒ द्यावा॑पृथि॒वीऽउरो॑ऽअन्तरिक्ष । बृह॒स्पत॑ये ह॒विषा॑ विधेम॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**आकूत्यै**) उत्साह (**प्रयुजे**) उत्तम उत्तम धर्मयुक्त क्रियाओं (**अग्नये**) अग्नि के प्रदीपन (**स्वाहा**) वेदवाणी के प्रचार (**सरस्वत्यै**) विज्ञानयुक्त वाणी (**पूष्णे**) पुष्टि करने (**बृहस्पतये**) बड़े बड़े अधिपतियों के होने (**अग्नये**) बिजुली की विद्या के ग्रहण (**स्वाहा**) पढ़ने पढ़ाने से विद्या (**मेधायै**) बुद्धि की उन्नति (**मनसे**) विज्ञान की वृद्धि (**अग्नये**) कारणरूप (**स्वाहा**) सत्यवाणी की प्रवृत्ति (**दीक्षायै**) धर्मनियम और आचरण की रीति (**तपसे**) प्रताप (**अग्नये**) जाठराग्नि के शोधन (**स्वाहा**) उत्तम स्तुतियुक्त वाणी से (**बृहतीः**) महागुण सहित (**विश्वशम्भुवः**) सब के लिये सुख उत्पन्न करनेवाले (**देवीः**) दिव्यगुणसम्पन्न (**आपः**) प्राण वा जल से (**स्वाहा**) सत्य भाषण (**द्यावापृथिवी**) भूमि और प्रकाश की शुद्धि के अर्थ (**उरो**) बहुत सुख सम्पादक (**अन्तरिक्ष**) अन्तरिक्ष में रहनेवाले पदार्थों को शुद्ध और जिस (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया वा वेदवाणी से यज्ञ सिद्ध होता है, उन सबों को (**हविषा**) सत्य और प्रेमभाव से (**विधेम**) सिद्ध करें, वैसे तुम भी किया करो ॥७॥

भावार्थ—यज्ञ के अनुष्ठान के विना उत्साह, बुद्धि, सत्यवाणी, धर्माचरण की रीति, तप, धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इनके विना कोई भी मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता । इससे सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान करके सबके लिये सब प्रकार आनन्द प्राप्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।
विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

पदार्थ—जैसे (**विश्वः**) सब (**मर्त्तः**) मनुष्य (**नेतुः**) सब को प्राप्त वा (**देवस्य**) सब का प्रकाश करनेवाले परमेश्वर के साथ (**सख्यम्**) मित्रता और गुण कर्म समूह को (**वुरीत**) स्वीकार और (**विश्वः**) सब (**राये**) धन की प्राप्ति के लिये (**इषुध्यति**) बाणों को धारण करे वह (**द्युम्नम्**) धन को (**वृणीत**) स्वीकार करे, वैसे हे मनुष्य ! इस सबका अनुष्ठान करके (**स्वाहा**) सत्क्रिया से तुम भी (**पुष्यसे**) पुष्ट हो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना करके परस्पर मित्रपन का सम्पादन कर युद्ध में दुष्टों को जीत के राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होकर सुखी रहना चाहिये ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोरित्यस्यांगिरस ऋषयः । विद्वान् देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि कैसे करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऋ॒क्सा॒मयोः॒ शिल्पे॑ स्थ॒स्ते वा॒मार॑भे॒ ते मा॑ पात॒मास्य य॒ज्ञस्यो॒दृचः॑ ।
शर्मा॑सि॒ शर्म॑ मे यच्छ॒ नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हिᳬसीः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो मैं (**ऋक्सामयोः**) ऋग्वेद और सामवेद के पढ़ने के पीछे (**उदृचः**) जिसमें अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है (**अस्य**) इस (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के सम्बन्धी (**वाम्**) ये (**शिल्पे**) मन वा प्रसिद्ध क्रिया से सिद्ध की हुई कारीगरी की जो विद्यायें (**स्थः**) हैं (**ते**) उन दोनों को (**आरभे**) आरम्भ करता हूँ तथा जो (**मा**) मेरी (**आ**) सब ओर से (**पातम्**) रक्षा करते हैं (**ते**) वे (**स्थः**) हैं, उनको विद्वानों के सकाश से ग्रहण करता हूँ । हे विद्वन् मनुष्य ! (**ते**) उस तेरे लिए (**मे**) मेरा (**नमः**) अन्नादि सत्कारपूर्वक नमस्कार (**अस्तु**) विदित हो तथा तुम (**मा**) मुझको चलायमान मत करो और (**यत्**) जो (**शर्म**) सुख (**असि**) है उस (**शर्म**) सुख को (**मे**) मेरे लिए (**यच्छ**) देओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सकाश से वेदों को पढ़कर शिल्पविद्या वा हस्तक्रिया को साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिरूप कार्य्यों को सिद्ध करके सुखों की उन्नति करें ॥ ९ ॥

ऊर्गसीत्यस्यांगिरस ऋषयः । यज्ञो देवता । कृधीत्यन्तस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उच्छ्रयस्वेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वह शिल्पविद्या यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऊर्ग॑स्याङ्गिर॒स्यूर्ण॑म्रदा॒ऽऊर्जं॒ मयि॑ धेहि । सोम॑स्य नी॒विर॑सि॒ विष्णोः॒ शर्मा॑सि॒ शर्म॒ यज॑मान॒स्येन्द्र॑स्य॒ योनि॑र॒सि सु॒ऽस॒स्याः कृ॒षीस्कृ॑धि । उच्छ्र॑यस्व वनस्पतऽऊ॒र्ध्वो मा॑ पा॒ह्यᳬह॑स॒ऽआस्य य॒ज्ञस्यो॒दृचः॑ ॥१०॥

पदार्थ—हे (**वनस्पते**) प्रकाशनीय विद्याओं का प्रचार करनेवाले विद्वान् मनुष्य ! तू जो (**आङ्गिरसि**) अग्नि आदि पदार्थों से सिद्ध की हुई (**ऊर्णम्रदाः**) आच्छादन का प्रकाश वा (**ऊर्क्**) पराक्रम तथा अन्नादि को करनेवाली शिल्पविद्या (**असि**) है अथवा जो (**ऊर्जम्**) पराक्रम वा अन्न आदि को धारण करती (**असि**) है, जो (**सोमस्य**) उत्पन्न पदार्थ समूह का (**नीविः**) संवरण करनेवाली (**असि**) है, जो (**विष्णोः**) शिल्पविद्या में व्यापक बुद्धि (**यजमानस्य**) शिल्पविद्या को जाननेवाले (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्त मनुष्य के (**शर्म**) सुख का (**योनिः**) निमित्त (**असि**) है, जो (**अस्य**) इस (**उदृचः**) ऋचाओं के प्रत्यक्ष करनेवाले (**यज्ञस्य**) शिल्पक्रिया साध्य यज्ञ की (**शर्म**) सुख करानेवाली (**असि**) है, उसको (**मयि**) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करनेवाले मुझमें (**आ धेहि**) अच्छे प्रकार धारण कर (**सुसस्याः**) उत्तम उत्तम धान्य उत्पन्न करने वा (**कृषीः**) खेती वा खेंचनेवाली क्रियाओं को (**कृधि**) सिद्ध कर (**ऊर्ध्वः**) ऊपर स्थित होनेवाले (**मा**) मुझको (**उच्छ्रयस्व**) उत्तम धान्यवाली खेती का सेवन कराओ और (**अंहसः**) पाप वा दुःखों से (**पाहि**) रक्षा कर । जो विमान आदि यानों और यज्ञ में (**वनस्पते**) वृक्ष की शाखा ऊँची स्थापन की जाती है उसको भी (**उच्छ्रयस्व**) उपयोग में लाओ ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से शिल्प विद्या का साक्षात्कार और प्रचार करके सब मनुष्यों को समृद्धियुक्त करना चाहिये ॥ १० ॥

व्रतं कृणुतेत्यस्याङ्गिरस ऋषयः । अग्निर्देवता । पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ये देवा इत्युत्तरस्यार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अनेक अर्थ वाले अग्नि को जानकर उससे क्या क्या उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

व्र॒तं कृ॑णुता॒ग्निर्ब्रह्मा॒ग्निर्य॒ज्ञो वन॒स्पति॑र्य॒ज्ञियः॑ । दैवीं॒ धियं॑ मनामहे सुमृ॒डीका॑म॒भिष्ट॑ये वर्चो॒धां य॒ज्ञवा॑हसᳬ सु॒तीर्था नो॑ऽअस॒द्वशे॑ । ये दे॒वा मनो॑जाता म॒नोयुजो॒ दक्ष॑क्रतव॒स्ते नो॒ऽवन्तु॒ ते नः॑ पान्तु॒ तेभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ११ ॥

पदार्थ—हम लोग जो (**ब्रह्म**) ब्रह्मपदवाच्य (**अग्निः**) अग्नि नाम से प्रसिद्ध (**असत्**) है, जो (**यज्ञः**) अग्निसंज्ञक और जो (**वनस्पतिः**) वनों का पालन करनेवाला यज्ञ (**अग्निः**) अग्नि नामक है उसकी उपासना कर वा उससे उपकार लेकर (**अभिष्टये**) इष्टसिद्धि के लिए जो (**सुतीर्था**) जिससे अत्युत्तम दुःखों से तारनेवाले वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं, उस (**सुमृडीकाम्**) उत्तम सुखयुक्त (**वर्चोधाम्**) विद्या वा दीप्ति को धारण करने तथा (**दैवीम्**) दिव्यगुणसम्पन्न (**धियम्**) बुद्धि वा क्रिया को (**मनामहे**) जानें (**ये**) जो (**दक्षक्रतवः**) शरीर, आत्मा के बल, प्रज्ञा वा कर्म से युक्त (**मनोजाताः**) विज्ञान से उत्पन्न हुए (**मनोयुजः**) सत् असत् के ज्ञान से युक्त (**देवाः**) विद्वान् लोग (**वशे**) प्रकाशयुक्त कर्म में वर्त्तमान हैं वा जिनसे (**स्वाहा**) विद्यायुक्त वाणी प्राप्त होती है (**तेभ्यः**) उनसे पूर्वोक्त प्रज्ञा की (**मनामहे**) याचना करते हैं (**ते**) वे (**नः**) हम लोगों को (**अवन्तु**) विद्या, उत्तम क्रिया तथा शिक्षा आदिकों में प्रवेश [करायें] और (**नः**) हम लोगों की निरन्तर (**पान्तु**) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को, जिसकी अग्नि संज्ञा है उस ब्रह्म को जान और उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करना चाहिए। विद्वान् लोग जिस बुद्धि से यज्ञ को सिद्ध करते हैं उससे शिल्पविद्याकारक यज्ञों को सिद्ध करके विद्वानों के सङ्ग से विद्या को प्राप्त होके स्वतन्त्र व्यवहार में सदा रहना चाहिए क्योंकि बुद्धि के विना कोई भी मनुष्य सुख को नहीं बढ़ा सकता। इससे विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों के लिए ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या और बुद्धि की शिक्षा करके निरन्तर रक्षा करें और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर वा विद्वानों के उत्तम उत्तम प्रिय कर्मों का आचरण किया करें ॥ ११ ॥

श्वात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवताः। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

इसका अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽअस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः। ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो हम ने (**पीताः**) पिये (**अस्माकम्**) मनुष्यों के (**अन्तः**) मध्य वा (**उदरे**) शरीर के भीतर स्थित हुए (**अस्मभ्यम्**) मनुष्यादिकों के लिए (**सुशेवाः**) उत्तम सुखयुक्त (**अनमीवाः**) ज्वरादि रोग समूह से रहित (**अयक्ष्माः**) क्षयी आदि रोगकारक दोषों से रहित (**अनागसः**) पाप दोष निमित्तों से पृथक् (**ऋतावृधः**) सत्य को बढ़ाने वा (**अमृताः**) नाशरहित अमृतरसयुक्त (**देवीः**) दिव्यगुणसम्पन्न (**आपः**) प्राण वा जल है (**ताः**) उनको आप लोग (**स्वदन्तु**) अच्छे प्रकार सेवन किया करो। इसका अनुष्ठान करके (**यूयम्**) तुम सब मनुष्य सुखों को भोगने वाले (**भवत**) नित्य होओ ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग वा उत्तम शिक्षा से विद्या को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षित शुद्ध किये हुए, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने और रोगों को दूर करने वाले जल आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिए क्योंकि विद्या वा आरोग्यता के विना कोई भी मनुष्य निरन्तर कर्म करने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे इस कार्य्य का सर्वदा अनुष्टान करना चाहिए ॥ १२ ॥

इयन्त इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवताः। भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर वे जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम्।
अंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमा विशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य! जैसे (**ते**) तेरा जो (**इयम्**) यह (**यज्ञिया**) यज्ञ के योग्य (**तनूः**) शरीर (**अपः**) जल प्राण वा (**प्रजाम्**) प्रजा की रक्षा करता है, जिस को तू नहीं छोड़ता, मैं भी अपने शरीर को विना पूर्ण आयु भोगे प्रमाद से बीच में (**न मुञ्चामि**) नहीं छोड़ता हूँ। हे मनुष्यो! जैसे तुम (**पृथिव्या**) भूमि के साथ वैभवयुक्त होते (**अंहोमुचः**) दुःखों को छुड़ाने वा (**स्वाहाकृताः**) वाणी से सिद्ध किये हुए (**अपः**) जल और (**पृथिवीम्**) भूमि को (**आविशत**) अच्छे प्रकार विज्ञान से प्रवेश करते हो मैं इन से ऐश्वर्य्यसहित और इनमें प्रविष्ट होता हूँ वैसे तू भी (**सम्भव**) हो और प्रवेश कर ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि विद्या से परस्पर पदार्थों का मेल और सेवन कर रोगरहित शरीर तथा आत्मा की रक्षा करके सुखी रहना चाहिए ॥ १३ ॥

अग्ने त्वमित्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि।
रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥

पदार्थ—(**अग्ने**) जो अग्नि (**प्रबुधे**) जगने के समय (**सुजागृहि**) अच्छे प्रकार जगाता वा जिससे (**वयम्**) जगत् के कर्मानुष्ठान करने वाले हम लोग (**सुमन्दिषीमहि**) आनन्दपूर्वक सोते हैं। जो (**अप्रयुच्छन्**) प्रमादरहित होके (**नः**) प्रमादरहित हम लोगों की (**रक्ष**) रक्षा तथा प्रमादसहितों को नष्ट करता और जो (**नः**) हम लोगों के साथ (**पुनः**) वार वार इसी प्रकार (**कृधि**) व्यवहार करता है, उसको युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जो अग्नि सोने, जागने, जीने तथा मरने का हेतु है, उसका युक्ति से सेवन करना चाहिए ॥ १४ ॥

पुनर्मन इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

जीव अग्नि वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म में प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्। वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ १५ ॥

पदार्थ—जिसके सम्बन्ध वा कृपा से (**मे**) मुझ को जो (**मनः**) विज्ञानसाधक मन (**आयुः**) उमर (**पुनः**) फिर फिर (**आगन्**) प्राप्त होता (**मे**) मुझ को (**प्राणः**) शरीर का आधार प्राण (**पुनः**) फिर (**आगन्**) प्राप्त होता (**आत्मा**) सब में व्यापक सब के भीतर की सब बातों को जाननेवाले परमात्मा का विज्ञान (**आगन्**) प्राप्त होता (**मे**) मुझको (**चक्षुः**) देखने के लिये नेत्र (**पुनः**) फिर (**आगन्**) प्राप्त होते और (**श्रोत्रम्**) शब्द को ग्रहण करनेवाले कान (**आगन्**) प्राप्त होते हैं वह (**अदब्धः**) हिंसा करने अयोग्य (**तनूपाः**) शरीर वा आत्मा की रक्षा करने और (**वैश्वानरः**) शरीर को प्राप्त होनेवाला (**अग्निः**) अग्नि वा विश्व को प्राप्त होनेवाला परमेश्वर (**नः**) हम लोगों को (**अवद्यात्**) निन्दित (**दुरितात्**) पाप से उत्पन्न हुए दुःख वा दुष्ट कर्मों से (**पातु**) पालन करता है ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब जीव सोने वा मरण आदि व्यवहार को प्राप्त होते हैं, तब जो जो मन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान होकर फिर जगने वा जन्मान्तर में जिन कार्य्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं, वे इन्द्रिय जिस विद्युत् अग्नि आदि के सम्बन्ध परमेश्वर की सत्ता वा व्यवस्था से शरीर वाले होकर कार्य्य करने को समर्थ होते हैं। अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सबकी रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पापरूप कर्मों से अलग कर धर्म में प्रवृत्त कर वार वार मनुष्य जन्म को प्राप्त कराकर दुष्टाचार वा दुःखों से पृथक् करके इस लोक वा परलोक के सुखों को प्राप्त कराता है, वह क्यों न उपयुक्त और उपास्य होना चाहिये ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः।
पंचमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

त्वमग्ने व्रतपाऽअसि देवऽआ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः।
रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥१६॥

पदार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य्य के देनेवाले (**अग्ने**) जगदीश्वर! जो (**त्वम्**) आप (**मर्त्येषु**) मनुष्यों में (**व्रतपाः**) सत्य धर्माचरण की रक्षा (**सविता**) सब जगत् को उत्पन्न करने (**यज्ञेषु**) सत्कार वा उपासना आदि में (**ईड्यः**) स्तुति के योग्य (**नः**) हम लोगों के लिये (**वसोः**) धन के (**दाता**) दान करनेवाले (**वसु**) धन को (**अदात्**) देते हैं सो (**इयत्**) प्राप्त करते हुए आप (**भूयः**) वारंवार अत्यन्त धन (**आरास्व**) दीजिये (**आभर**) सब सुखों से पोषण कीजिये ॥१॥ (**त्वम्**) जो (**अग्ने**) अग्नि (**मर्त्येषु**) मरण धर्म वाले मनुष्यों के कार्यों में (**व्रतपाः**) नियमाचरण का पालन (**देवः**) प्रकाश करने (**यज्ञेषु**) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (**ईड्यः**) खोजने योग्य (**सोमः**) ऐश्वर्य को देने (**सविता**) जगत् को प्रेरणा करने (**देवः**) प्रकाशमान अग्नि है वह (**नः**) हम लोगों के लिये (**वसोः**) धन को (**दाता**) प्राप्त (**इयत्**) कराता हुआ (**भूयः**) अत्यन्त (**वसु**) धन को (**अदात्**) देता और (**आरास्व**) धन को देने का निमित्त होके (**आभर**) सब प्रकार के सुखों को धारण करता है ॥ २ ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि जैसे सत्यस्वरूप सब जगत् को उत्पन्न करने और सकल सुखों के देनेवाले जगदीश्वर ही की उपासना को करके सुखी रहें इसी प्रकार कार्यसिद्धि के लिये अग्नि को संप्रयुक्त करके सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १६ ॥

एषा त इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

इनको सेवन करके मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजङ्गच्छ।
जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (**शुक्र**) वीर्य्य पराक्रम वाले विद्वन् मनुष्य! (**ते**) तेरा जो (**विष्णवे**) परमेश्वर वा यज्ञ के लिये तैंने जिसको (**धृता**) धारण किया है (**तया**) उस से तू (**जूः**) ज्ञानी वा वेगवाला होके (**एतत्**) इस (**वर्चः**) विज्ञान और तेजयुक्त (**सम्भर**) सम्पन्न हो अच्छे प्रकार विज्ञान करने के लिये (**तनूः**) शरीर (**असि**) है उससे तू (**भ्राजम्**) प्रकाश को (**गच्छ**) प्राप्त और (**धृता**) धारण किये (**मनसा**) विज्ञान से पुरुषार्थ को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके विज्ञानयुक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्यपन को बढ़ा कर यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें ॥ १७ ॥

तस्यास्त इत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। स्वराडार्षीबृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

वह वाणी और बिजुली कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर! (**सत्यसवसः**) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त वा जगत् के निमित्त कारणरूप (**ते**) आपके (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए संसार में आपकी कृपा से जो (**स्वाहा**) वाणी वा बिजुली है (**तस्याः**) उन दोनों के सकाश से विद्या करके युक्त मैं जो (**शुक्रम्**) शुद्ध (**असि**) है (**चन्द्रम्**) आह्लादकारक (**असि**) है और

(**वैश्वदेवम्**) सब देव अर्थात् विद्वानों को सुख देनेवाला (**असि**) है (**तत्**) उस (**यन्त्रम्**) सङ्कोचन, विकाशन, चालन, बन्धन करनेवाले यन्त्र को (**अशीय**) प्राप्त होऊं ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस सृष्टि में विद्या से कलायन्त्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का ग्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १८ ॥

चिदसीत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । निचृद् ब्राह्मीपंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली किस प्रकार की हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

चिद॑सि म॒नासि॒ धीर॑सि॒ दक्षि॑णासि क्ष॒त्रिया॑सि य॒ज्ञिया॒स्यदि॑तिरस्युभ॒यतः॑शी॒र्ष्णी । सा नः॑ सु॒प्राची॒ सुप्र॑तीच्येधि मि॒त्रस्त्वा॑ प॒दि ब॑ध्नीतां पू॒षाऽध्व॑नस्पा॒त्विन्द्रा॑या॒ध्य॑क्षाय ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (**सत्यसवसः**) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (**ते**) आपके (**प्रसवे**) उत्पन्न किये संसार में जो (**चित्**) विद्या व्यवहार को चितानेवाली (**असि**) है जो (**मना**) ज्ञान साधन कराने हारी (**असि**) है जो (**धीः**) प्रज्ञा और कर्म को प्राप्त करनेवाली (**असि**) है जो (**दक्षिणा**) विज्ञान विजय को प्राप्त करने (**क्षत्रिया**) राजा के पुत्र के समान वर्त्ताने हारी (**असि**) है जो (**यज्ञिया**) यज्ञ को कराने योग्य (**असि**) है जो (**उभयतःशीर्ष्णी**) दोनों प्रकार से शिर के समान उत्तम गुण युक्त और (**अदितिः**) नाशरहित वाणी वा बिजुली (**असि**) है (**सा**) वह (**नः**) हम लोगों के लिये (**सुप्राची**) पूर्वकाल और (**सुप्रतीची**) पश्चिम काल में सुख देने हारी (**एधि**) हो जो (**पूषा**) पुष्टि करने हारा (**मित्रः**) सब का मित्र होकर मनुष्यपन के लिये (**त्वा**) उस वाणी और बिजुली को (**पदि**) प्राप्ति योग्य उत्तम व्यवहार में (**अध्यक्षाय**) अच्छे प्रकार व्यवहार को देखने (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य वाले परमात्मा, अध्यक्ष और श्रेष्ठ व्यवहार के लिये (**बध्नीताम्**) बन्धनयुक्त करें सो आप (**अध्वनः**) व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करनेवाले मार्ग के मध्य में (**नः**) हम लोगों की निरन्तर (**पातु**) रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से (ते, सत्यसव सः प्रसवे) इन तीन पदों की अनुवृत्ति भी आती है। मनुष्यों को बाह्य आभ्यन्तर की रक्षा करके सब ने उत्तम वाणी वा बिजुली वर्त्तनी है वही भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल में सुखों की करानेवाली है ऐसा जानना चाहिये। जो कोई मनुष्य प्रीति से परमेश्वर, सभाध्यक्ष और उत्तम कामों में आज्ञा के पालन के लिये सत्य वाणी और उत्तम विद्या को ग्रहण करता है, वही सब की रक्षा कर सकता है ॥ १९ ॥

अनु त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । पूर्वार्द्धस्य साम्नी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः । उत्तरार्द्धस्य भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह वाणी और बिजुली कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अनु॑ त्वा मा॒ता म॑न्यता॒मनु॑ पि॒ताऽनु॒ भ्राता॒ सग॒र्भ्योऽनु॒ सखा॒ सयू॑थ्यः । सा दे॑वि दे॒वमच्छे॒हीन्द्रा॑य॒ सोम॑ꣳ रु॒द्रस्त्वा व॑र्त्तयतु स्व॒स्ति सोम॑सखा॒ पुन॒रेहि ॥ २० ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (**रुद्रः**) परमेश्वर वा ४४ (चवालीस) वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य्याश्रम सेवन से पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् (**त्वा**) तुझको जिस वाणी वा बिजुली तथा (**सोमम्**) उत्तम पदार्थसमूह और (**स्वस्ति**) सुख को (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**आवर्त्तयतु**) प्रवृत्त करे और जो (**सा**) वह (**सोमसखा**) विद्याप्रकाशयुक्त वाणी और (**देवि**) दिव्यगुणयुक्त बिजुली (**देवम्**) उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होती है वैसे उसको तू (**पुनः**) वार वार (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**इहि**) प्राप्त हो और इसको ग्रहण करने के लिये (**त्वा**) तुझ को (**माता**) उत्पन्न करनेवाली जननी (**अनुमन्यताम्**) अनुमति अर्थात् आज्ञा देवे इसी प्रकार (**पिता**) उत्पन्न करनेवाला जनक (**सगर्भ्यः**) तुल्य गर्भ में होने वाला (**भ्राता**) भाई, और (**सयूथ्यः**) समूह में रहनेवाला (**सखा**) मित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवें, उसको तू (**पुनरेहि**) अत्यन्त पुरुषार्थ करके वारम्वार प्राप्त हो ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। प्रश्नः—मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये ? उत्तरः—जैसे धर्मात्मा, विद्वान्, माता, पिता, भाई मित्र आदि सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हों, वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तें, वैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिये ॥२०॥

वस्वीत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । विराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह वाणी वा बिजुली किस प्रकार की है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वस्व्य॒स्यदि॑तिरस्यादि॒त्यासि॑ रु॒द्रासि॑ च॒न्द्रासि॑ । बृह॒स्पति॑ष्ट्वा सु॒म्ने र॑म्णातु रु॒द्रो वसु॑भि॒रा च॑के ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे जो (**वस्वी**) अग्नि आदि विद्या सम्बन्धी जिसकी सेवा २४ चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करनेवालों ने की हुई (**असि**) है जो (**अदितिः**) प्रकाशकारक (**असि**) है जो (**रुद्रा**) प्राणवायु सम्बन्ध वाली जिसको ४४ चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे प्राप्त हुए हों वैसी (**असि**) है जो (**आदित्या**) सूर्य्यवत् सब विद्याओं का प्रकाश करनेवाली जिसका ग्रहण ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी (**असि**) है। जो (**चन्द्रा**) आह्लाद करनेवाली (**असि**) है जिसको (**बृहस्पतिः**) सर्वोत्तम (**रुद्रः**) दुष्टों को रुलानेवाला परमेश्वर वा विद्वान् (**सुम्ने**) सुख में (**रम्णातु**) रमणयुक्त करता और जिस (**वसुभिः**) पूर्णविद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा बिजुली की (**आचके**) निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिसकी मैं इच्छा करता हूँ वैसे तू भी (**त्वा**) उसको (**रम्णातु**) रमणयुक्त वा इसको सिद्ध करने की इच्छा कर ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे वाणी, बिजुली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्त्तमान हुए अनेक व्यवहार की सिद्धि के हेतु हैं और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्मसेवनपूर्वक होके विद्वानों ने की हो वैसी वाणी और बिजुली मनुष्यों को विज्ञान पूर्वक क्रियाओं से संप्रयोग की हुई बहुत सुखों के करनेवाली होती है ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अदि॑त्यास्त्वा मू॒र्द्धन्नाजि॑घर्मि देव॒यज॑ने पृथि॒व्याऽइडा॑यास्प॒दम॑सि घृ॒तव॒त् स्वाहा॑ । अ॒स्मे र॑मस्वा॒स्मे ते॒ बन्धु॒स्त्वे रायो॒ मे रायो॒ मा व॒यꣳ रा॒यस्पोषे॑ण॒ वियौ॑ष्म॒ तोतो॒ रायः॑ ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तू जैसे (**देवयजने**) विद्वानों के यजन वा दान में इस (**अदित्याः**) अन्तरिक्ष (**पृथिव्याः**) भूमि और (**इडायाः**) वाणी को (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार यज्ञ करनेवाली क्रिया के मध्य जो (**मूर्द्धन्**) सब के ऊपर वर्त्तमान (**घृतवत्**) पुष्टि करनेवाले घृत के तुल्य (**पदम्**) जानने वा प्राप्त होने योग्य पदवी (**असि**) है वा जिसको मैं (**आ, जिघर्मि**) प्रदीप्त करता हूँ वैसे (**त्वा**) उसको प्रदीप्त कर और जो (**अस्मे**) हम लोगों में विभूति रमण करती है वह तुम लोगों में भी (**रमस्व**) रमण करे जिसको मैं रमण कराता हूँ उस को तू भी (**रमस्व**) रमण करा जो (**अस्मे**) हम लोगों का (**बन्धुः**) भाई है वह (**ते**) तेरा भी हो जो (**रायः**) विद्यादि धनसमूह (**त्वे**) तुझ में है वह (**मे**) मुझ में भी हो, जो (**तोतः**) जानने प्राप्त करने योग्य (**रायः**) विद्याधन मुझ में है सो तुझ में भी हो (**रायः**)जो तुम्हारी और हमारी समृद्धि हैं वे सब के सुख के लिये हों इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम (**वयम्**) हम और सब लोग (**रायस्पोषेण**) धन की पुष्टि से कभी (**मा, वियौष्म**) अलग न होवें ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सत्यविद्या, धर्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिल्पविद्या से संप्रयोग की हुई बिजुली आदि विद्या को सब मनुष्यों के लिये उपदेश वा ग्रहण और सुख दुःख की व्यवस्था को भी तुल्य ही जानके सब ऐश्वर्य्य को परोपकार में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कभी न करना चाहिये कि जिससे किसी की विद्या धन आदि ऐश्वर्य की हानि होवे ॥ २२ ॥

समख्य इत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । आस्तारपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सम॑ख्ये दे॒व्या धि॒या सं दक्षि॑णयो॒रुच॑क्षसा । मा म॒ऽआयुः॒ प्रमो॑षी॒र्मोऽअ॒हं तव॑ वी॒रं वि॑देय॒ तव॑ देवि सं॒दृशि॑ ॥२३॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे (**अहम्**) मैं (**दक्षिणया**) ज्ञानसाधक अज्ञाननाशक (**उरुचक्षसा**) बहुत प्रकट वचन वा दर्शनयुक्त (**देव्या**) देदीप्यमान (**धिया**) प्रज्ञा वा कर्म से (**तव**) उस (**देवि**) सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त वाणी वा बिजुली के (**संदृशि**) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार जीवन को (**समख्ये**) कथन से प्रकट करता हूँ वह (**मे**) मेरे (**आयुः**) जीवन को (**मा, प्रमोषीः**) नाश न करे उस को मैं अविद्या से (**मो**) नष्ट न करूं (**तव**) हे सब के मित्र ! अन्याय से आप के (**वीरम्**) शूरवीर को (**मा, संविदेय**) प्राप्त न होऊं वैसे ही तू भी पूर्वोक्त सब करके अन्याय से मेरे शूरवीरों को प्राप्त मत हो ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि शुद्ध कर्म वा प्रज्ञा से वाणी वा बिजुली की विद्या को ग्रहण कर उमर को बढ़ा और विद्यादि उत्तम उत्तम गुणों में अपने संतान और वीरों को संपादन करके सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

एष त इत्यस्य वत्स ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः । अन्त्यस्य दशाक्षरस्य याजुषी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किस के प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करने हारा विद्वानों को पूछे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

ए॒ष ते॑ गाय॒त्रो भा॒गऽइति॑ मे॒ सोमा॑य ब्रू॒तादे॒ष ते॒ त्रैष्टु॑भो भा॒गऽइति॑ मे॒ सोमा॑य ब्रू॒तादे॒ष ते॒ जाग॑तो भा॒गऽइति॑ मे॒ सोमा॑य ब्रू॒ताच्छन्दो॒ना-

मानांꣳ साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतात् । अस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा वि चिन्वन्तु ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तू कौन इस यज्ञ का (**गायत्रः**) वेदस्थ गायत्री छन्दयुक्त मन्त्रों के समूह से प्रतिपादित (**भागः**) सेवने योग्य भाग हैं (**इति**) इस प्रकार विद्वान् से पूछ । जैसे वह विद्वान् (**ते**) तुझ को उस यज्ञ का यह प्रत्यक्ष भाग हैं (**इति**) इसी प्रकार से (**सोमाय**) पदार्थविद्या संपादन करनेवाले (**मे**) मेरे लिये (**ब्रूतात्**) कहे । तू कौन इस यज्ञ का (**त्रैष्टुभः**) त्रिष्टुप् छन्द से प्रतिपादित (**भागः**) भाग है (**इति**) इसी प्रकार विद्वान् से पूछ । जैसे वह (**ते**) तुझ को उस यज्ञ का (**एषः**) यह भाग है (**इति**) इसी प्रकार प्रत्यक्षता से समाधान (**सोमाय**) उत्तम रस के संपादन करनेवाले (**मे**) मेरे लिये (**ब्रूतात्**) कहे । तू कौन इस यज्ञ का (**जागतः**) जगती छन्द से कथित (**भागः**) अंश है (**इति**) इस प्रकार आप्त से पूछ । जैसे वह (**ते**) तुझ को उस यज्ञ का (**एषः**) यह प्रसिद्ध भाग है (**इति**) इसी प्रकार (**सोमाय**) पदार्थविद्या को संपादन करनेवाले (**मे**) मेरे लिये उत्तर (**ब्रूतात्**) कहे । जैसे आप (**छन्दोनामानाम्**) उष्णिक् आदि छन्दों के मध्य में कहे हुए यज्ञ के उपदेश में (**साम्राज्यम्**) भले प्रकार राज्य को (**गच्छ**) प्राप्त हो (**इति**) इसी प्रकार (**सोमाय**) ऐश्वर्य्ययुक्त (**मे**) मेरे लिए सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने का उपाय (**ब्रूतात्**) कहिये और जिस कारण आप (**अस्माकः**) हम लोगों को (**शुक्रः**) पवित्र करनेवाले उपदेशक (**असि**) हैं वैसे मैं (**ते**) आपके (**ग्रह्यः**) ग्रहण करने योग्य (**विचितः**) उत्तम उत्तम धनादि द्रव्य और गुणों से संयुक्त शिष्य हूँ । आप मुझ को सब गुणों से बढाइये इस कारण मैं (**त्वा**) आपको वृद्धियुक्त करता हूँ और सब मनुष्य (**त्वा**) आप वा इस यज्ञ तथा मुझको (**विचिन्वन्तु**) वृद्धि-युक्त करें ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्य लोग विद्वानों से पूछकर सब विद्याओं का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओं का यथावत् ग्रहण करावें । परस्पर अनुग्रह करने वा कराने से सब वृद्धियों को प्राप्त होकर विद्या और चक्रवर्त्ति आदि राज्य को सेवन करें ॥ २४ ॥

अभि त्यमित्यस्य वत्स ऋषिः सविता देवता । पूर्वस्य विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । सुक्रतुरित्युत्तरस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में ईश्वर, राजसभा और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है—

अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः । प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥ २५ ॥

पदार्थ—मैं (**यस्य**) जिस सच्चिदानन्दादिलक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन के (**सवीमनि**) उत्पन्न हुए संसार में (**ऊर्ध्वा**) उत्तम (**अमतिः**) स्वरूप (**भाः**) प्रकाशमान (**अदिद्युतत्**) प्रकाशित हुआ है । जिसकी (**कृपा**) करुणा (**स्वः**) सुख को करती है (**हिरण्यपाणिः**) जिसने सूर्य्यादि ज्योति व्यवहार में उत्तम गुण कर्मों को युक्त किया हो (**सुक्रतुः**) जिस उत्तम प्रज्ञा वा कर्मयुक्त ईश्वर, सभा-स्वामी और प्रजाजन ने (**स्वः**) सूर्य्य और सुख को (**अमिमीत**) स्थापित किया हो (**त्यम्**) उस (**ओण्योः**) द्यावापृथिवी वा (**सवितारम्**) अग्नि आदि को उत्पन्न और संप्रयोग करने तथा (**कविक्रतुम्**) सर्वज्ञ वा क्रान्तदर्शन (**रत्नधाम्**) रमणीय रत्नों को धारण करने (**सत्यसवम्**) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (**प्रियम्**) प्रीतिकारक (**मतिम्**) वेदादि शास्त्र वा विद्वानों के मानने योग्य (**कविम्**) वेदविद्या का उपदेश करने तथा (**देवम्**) सुख देनेवाले परमेश्वर, सभाध्यक्ष और प्रजाजन का (**अर्चामि**) पूजन करता हूँ वा जिस (**त्वा**) आपको (**प्रजाभ्यः**) उत्पन्न हुई सृष्टि से पूजित करता हूँ । उस आपकी सृष्टि में (**प्रजाः**) मनुष्य आदि (**अनुप्राणन्तु**) आयु का भोग करें (**त्वम्**) और आप कृपा करके (**प्रजाः**) प्रजा के ऊपर जीवों के अनुकूल (**अनुप्राणिहि**) अनुग्रह कीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले निराकार, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन समूह ही का सत्कार करना चाहिये उनसे भिन्न और किसी का नहीं । विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा-पुरुषों के लिए इस परमेश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन के सत्कार का उपदेश नित्य करें जिससे सब मनुष्य उनकी आज्ञा के अनुकूल सदा वर्त्तते रहें और जैसे प्राण में सब जीवों की प्रीति होती है वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर आदि में भी अत्यन्त प्रेम करें ॥ २५ ॥

शुक्रं त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

मनुष्यों को क्या-क्या साधन करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन । सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥ २६ ॥

पदार्थ—जैसे (**सग्मे**) पृथिवी के साथ वर्त्तमान यज्ञ में (**तपसः**) प्रताप-युक्त अग्नि वा तपस्वी अर्थात् धर्मात्मा विद्वान् का (**तनूः**) शरीर (**असि**) है, उसको शिल्पविद्या वा सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ (**पशुना**) विक्रय किये हुए गौ आदि पशुओं करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके (**प्रजापतेः**) प्रजा के पालन हेतु सूर्य्य का (**वर्णः**) स्वीकार करने योग्य तेज (**क्रीयसे**) क्रय होता है उस (**सहस्रपोषम्**) असंख्यात पुष्टि को प्राप्त होके मैं (**पुषेयम्**) पुष्ट होऊँ । हे विद्वान् मनुष्य ! जो (**ते**) आपको (**गोः**) पृथिवी के राज्य के सकाश से (**चन्द्राणि**) सुवर्ण आदि धातु प्राप्त हैं वे (**अस्मे**) हम लोगों के लिए भी हों जैसे मैं (**परमेण**) उत्तम (**शुक्रेण**) शुद्ध भाव से (**शुक्रम्**) शुद्धिकारक यज्ञ (**चन्द्रेण**) सुवर्ण से (**चन्द्रम्**) सुवर्ण और (**अमृतेन**) नाशरहित विज्ञान से (**अमृतम्**) मोक्षसुख को (**क्रीणामि**) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी (**त्वा**) उसको ग्रहण कर ॥ २६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि शरीर मन वाणी और धन से परमेश्वर की उपासना आदि लक्षणयुक्त यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करके असंख्यात अतुल पुष्टि को प्राप्त करें ॥ २६ ॥

मित्रो न इत्यस्य वत्स ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के संग कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

मित्रो नऽएहि सुमित्रधऽइन्द्रस्योरुमा विश दक्षिणमुशन्नुशन्तꣳ स्योनः स्योनम् । स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे (**स्वान**) उपदेश करने (**भ्राज**) प्रकाश को प्राप्त होने (**अंघारे**) छल के शत्रु (**बम्भारे**) विचार-विरोधियों के शत्रु (**हस्त**) प्रसन्न (**सुहस्त**) अच्छे प्रकार हस्तक्रिया को जानने और (**कृशानो**) दुष्टों को कृश करने (**सुमित्रधः**) उत्तम मित्रों को धारण करने (**मित्रः**) सब के मित्र (**स्योनः**) सुख की (**उशन्**) कामना करने हारे सभाध्यक्ष ! आप (**नः**) हम लोगों को (**आ, इहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (**दक्षिणम्**) उत्तम सङ्गयुक्त (**उरुम्**) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा स्वीकार करने योग्य (**उशंतम्**) कामना करने योग्य (**स्योनम्**) सुख को (**आविश**) प्रवेश कीजिये । हे सभाध्यक्षो ! (**एते**) जो (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् के (**सोमक्रयणाः**) सोम अर्थात् उत्तम पदार्थों का क्रय करने हारे प्रजा और भृत्य आदि मनुष्य (**वः**) तुम लोगों की रक्षा करें और आप लोग भी उनकी (**रक्षध्वम्**) रक्षा सदा किया करो । जैसे वे शत्रु लोग (**तान्**) उन (**वः**) तुम लोगों की हिंसा करने में समर्थ (**मा, दभन्**) न हों वैसे ही सम्यक् प्रीति से परस्पर मिल के वर्तों ॥ २७ ॥

भावार्थ—राज्य और प्रजापुरुषों को उचित है कि परस्पर प्रीति, उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् वर्त्तें, शत्रुओं का निवारण, अविद्या वा अन्यायरूप अन्धकार का नाश और चक्रवर्ति राज्य आदि का पालन करके सदा आनन्द में रहें ॥ २७ ॥

परि माग्न इत्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । उत्तरार्द्धस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ, मध्य और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज ।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ऽअनु ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जगदीश्वर ! आप कृपा करके जिस कर्म से मैं (**स्वायुषा**) उत्तमतापूर्वक प्राण धारण करनेवाले (**आयुषा**) जीवन से (**अमृतान्**) जीवनमुक्त और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपी आनन्दों को (**उदस्थाम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं उससे (**मा**) मुझको संयुक्त करके (**दुश्चरितात्**) दुष्टाचरण से (**उद्बाधस्व**) पृथक् करके (**मा**) मुझको (**सुचरिते**) उत्तम-उत्तम धर्माचरणयुक्त व्यवहार में (**अन्वाभज**) अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि अधर्म के छोड़ने और धर्म के ग्रहण करने के लिए सत्य प्रेम से कामना करें क्योंकि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्मों से छुड़ा कर धर्म ही में प्रवृत्त कर देता है परन्तु सब मनुष्यों को यह करना अवश्य है कि जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही में रहकर संसार वा मोक्षरूपी सुखों को सब प्रकार से सेवन करें ॥ २८ ॥

प्रति पन्थामित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रहण से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग (**येन**) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (**विश्वाः**) सब (**द्विषः**) शत्रु सेना वा दुःख देने वाली भोगक्रियाओं को (**परिवृणक्ति**) सब प्रकार से दूर करता और (**वसु**) सुख करने वाले धन को (**विन्दते**) प्राप्त होता है उस (**अनेहसम्**) हिंसारहित (**स्वस्तिगाम्**) सुखपूर्वक जाने योग्य (**पन्थाम्**) मार्ग को (**प्रत्यपद्महि**) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादि त्याग, विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्म मार्ग के प्रकाश के लिए ईश्वर की प्रार्थना, धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें ॥ २९ ॥

अदित्यास्त्वगसीत्यस्य वत्स ऋषिः । वरुणो देवता । पूर्वस्य स्वराड्याजुषी त्रिष्टुप् छन्दः । अस्तम्नादित्यन्तस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अगले मंत्र में ईश्वर, सूर्य्य और वायु के गुणों का उपदेश किया है—

अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सदऽआसीद । अस्तभ्नाद् द्यां वृषभोऽअन्तरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः । आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिससे (**वृषभः**) श्रेष्ठ गुणयुक्त आप (**अदित्याः**) पृथिवी के (**त्वक्**) आच्छादन करनेवाले (**असि**) हैं (**अदित्यै**) पृथिवी आदि सृष्टि के लिए (**सदः**) स्थापन करने योग्य (**आसीद**) व्यवस्था को स्थापन करते वा (**द्याम्**) सूर्य्य आदि को (**अस्तम्नात्**) धारण करते (**वरिमाणम्**) अत्यन्त उत्तम (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**अमिमीत**) रचते और (**सम्राट्**) अच्छे प्रकार प्रकाश को प्राप्त हुए सब के अधिपति आप (**पृथिव्याः**) अन्तरिक्ष के बीच में (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**आसीदत्**) स्थापन करते हो इससे (**तानि**) ये (**विश्वा**) सब (**वरुणस्य**) श्रेष्ठरूप (**ते**) आपके (**इत्**) ही (**व्रतानि**) सत्य स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (**अपद्महि**) जानते हैं ॥१॥ जो (**वृषभः**) अत्युत्तम (**सम्राट्**) अपने आप प्रकाशमान सूर्य्य और वायु (**अदित्याः**) पृथिवी आदि के (**त्वक्**) आच्छादन करनेवाले (**असि**) हैं, वा (**अदित्यै**) पृथिवी आदि सृष्टि के लिए (**सदः**) लोकों को (**आसीद**) स्थापन (**द्याम्**) प्रकाश का (**अस्तभ्नात्**) धारण (**वरिमाणम्**) श्रेष्ठ (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**अमिमीत**) रचना और (**पृथिव्याः**) आकाश के मध्य में (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**आसीदत्**) स्थापन करते हैं (**तानि**) वे (**विश्वा**) सब (**ते**) उस (**वरुणस्य**) सूर्य्य और वायु के (**इत्**) ही (**व्रतानि**) स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (**अपद्महि**) जानते हैं ॥ २ ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार और पूर्व मन्त्र से (अपद्महि) इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये । जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य्य और वायु आदि को सब प्रकार व्याप्त होकर रच कर धारण करता है इसी प्रकार सूर्य्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है ॥ ३० ॥

वनेष्वित्यस्य वत्स ऋषिः । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्रियासु । हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्य्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ३१ ॥

पदार्थ—जो (**वरुणः**) अत्युत्तम परमेश्वर, सूर्य्य वा प्राणवायु हैं वे (**वनेषु**) किरण वा वनों के (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**विततान**) विस्तारयुक्त किया वा करता (**अर्वत्सु**) अत्युत्तम वेगादि गुणयुक्त विद्युत् आदि पदार्थ और घोड़े आदि पशुओं में (**वाजम्**) वेग (**उस्रियासु**) गौओं में (**पयः**) दूध (**हृत्सु**) हृदयों में (**क्रतुम्**) प्रज्ञा वा कर्म (**विक्षु**) प्रजा में (**अग्निम्**) अग्नि (**दिवि**) प्रकाश में (**सूर्यम्**) आदित्य (**अद्रौ**) पर्वत वा मेघ में (**सोमम्**) सोमवल्ली आदि ओषधी और श्रेष्ठ रस को (**अदधात्**) धारण किया करते हैं, उसी ईश्वर की उपासना और उन्हीं दोनों का उपयोग करें ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभावयुक्त गुणों को स्थापन और विज्ञान आदि गुणों को नियत करके पवन, सूर्य आदि को विस्तारयुक्त करता है वैसे सूर्य्य और वायु भी सब के लिए सुखों का विस्तार करते हैं ॥ ३१ ॥

सूर्य्यस्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सूर्य्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (**यत्र**) जहां आप (**एतशेभिः**) विज्ञान आदि गुणों से (**भ्राजमानः**) प्रकाशमान (**विपश्चिता**) मेधावी विद्वान् से (**ईयसे**) विज्ञात होते हो वा जहां प्राणवायु वा बिजुली (**एतशेभिः**) वेगादि गुण वा (**विपश्चिता**) विद्वान् से (**भ्राजमानः**) प्रकाशित होकर (**ईयसे**) विज्ञात होते हैं और जहां आप प्राण तथा बिजुली (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य वा बिजुली और (**अग्नेः**) भौतिक अग्नि के (**अक्ष्णः**) देखने के साधन (**कनीनकम्**) प्रकाश करनेवाले (**चक्षुः**) नेत्रों को (**आरोह**) देखने के लिए कराते वा कराती हैं, वही हम लोग आपकी उपासना और उन दोनों का उपयोग करें ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर, प्राण और बिजुली के गुणों को जान, उपासना वा कार्य्यसिद्धि करते हैं वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा सिद्ध करते रहें ॥३२॥

उस्रावेतमित्यस्य वत्स ऋषिः । सूर्य्यविद्वांसौ देवते । पूर्वस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । स्वस्तीत्यन्तस्य याजुषी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सूर्य और विद्वान् कैसे हैं और उन से शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें सो अगले मन्त्र में कहा है—

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ । स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्या और शिल्पक्रिया को प्राप्त होने की इच्छा करनेवाले (**ब्रह्मचोदनौ**) अन्न और विज्ञान प्राप्ति के (**अनश्रू**) अव्यापी (**अवीरहणौ**) वीरों का रक्षण करने (**उस्रौ**) ज्योतियुक्त और निवास के हेतु (**धूर्षाहौ**) पृथिवी और धर्म के भार को धारण करनेवाले विद्वान् (**आ इतम्**) सूर्य्य और वायु को प्राप्त होते वा (**युज्येथाम्**) युक्त करते और (**यजमानस्य**) धार्मिक यजमान के (**गृहान्**) घरों को (**स्वस्ति**) सुख से (**गच्छतम्**) गमन करते हैं वैसे तुम भी उनको युक्ति से संयुक्त करके कार्यों को सिद्ध किया करो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य और विद्वान् सब पदार्थों को धारण करने हारे सहनयुक्त और प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त कराते हैं वैसे ही शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् से यानों में युक्ति से सेवन किये हुए अग्नि और जल सवारियों को चला के सर्वत्र सुखपूर्वक गमन कराते हैं ॥ ३३ ॥

भद्रो मेऽसीत्यस्य वत्स ऋषिः । यजमानो देवता । पूर्वस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । मा त्वेत्यस्य भुरिगार्ची बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । श्येनो भूत्वेत्यस्य विराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उस यान से विद्वान् को क्या क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि । मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृकाऽअघायवो विदन् । श्येनो भूत्वा परा पत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सँस्कृतम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे (**भुवः**) पृथिवी के (**पते**) पालन करनेवाले विद्वान् मनुष्य ! तू (**मे**) मेरे (**भद्रः**) कल्याण करनेवाला बन्धु (**असि**) है सो तू (**नौ**) मेरा और तेरा (**संस्कृतम्**) संस्कार किया हुआ यान है (**तत्**) उससे (**विश्वानि**) सब (**धामानि**) स्थानों को (**अभि प्रच्यवस्व**) अच्छे प्रकार जा जिससे सब जगह जाते हुए (**त्वा**) तुझ को जैसे (**परिपरिणः**) छल से रात्रि में दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करनेवाले (**वृकाः**) चोर (**मा विदन्**) प्राप्त न हों और परदेश को जाने वाले (**त्वा**) तुझ को जैसे (**परिपन्थिनः**) मार्ग में लूटनेवाले डाकू (**मा विदन्**) प्राप्त न होवें जैसे परमैश्वर्य्ययुक्त (**त्वा**) तुझ को (**अघायवः**) पाप की इच्छा करनेवाले दुष्ट मनुष्य (**मा विदन्**) प्राप्त न हों वैसा कर्म सदा किया कर (**श्येनः**) श्येन पक्षी के समान वेगबलयुक्त (**भूत्वा**) होकर उन दुष्टों से (**परापत**) दूर रह और इन दुष्टों को भी दूर कर ऐसी क्रिया करके (**यजमानस्य**) धार्मिक यजमान के (**गृहान्**) घर वा देश देशान्तरों को (**गच्छ**) जा कि जिससे मार्ग में कुछ भी दुःख न हो ॥३४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम-उत्तम विमान आदि यानों को रच, उन में बैठ, उनको यथायोग्य चला, श्येन पक्षी के समान द्वीप वा देश देशान्तर को जा, धनों को प्राप्त करके वहाँ से आ और दुष्ट प्राणियों से अलग रह कर सब काल में स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें ॥३४॥

नमो मित्रस्येत्यस्य वत्स ऋषिः । सूर्य्यो देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर ईश्वर और सूर्य्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्य्यत । दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्य्याय शंसत ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (**मित्रस्य**) सब के सुहृत् (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**दिवः**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का (**ऋतम्**) सत्य स्वरूप है (**तत्**) उस चेतन की सेवा करते हैं । वैसे तुम भी उस का सेवन सदा (**सपर्य्यत**) किया करो और जैसे उस (**महः**) बड़े (**दूरेदृशे**) दूरस्थित पदार्थों को दिखाने (**चक्षसे**) सब को देखने (**देवजाताय**) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (**केतवे**) विज्ञान-

स्वरूप (**देवाय**) दिव्यगुणयुक्त (**पुत्राय**) पवित्र करनेवाले (**सूर्य्याय**) चराचरात्मा परमेश्वर को (**नमः**) नमस्कार करते हैं वैसे तुम भी (**प्रशंसत**) उसकी स्तुति किया करो ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! जो (**मित्रस्य**) प्रकाश (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**दिवः**) प्रकाशस्वरूप सूर्य्यलोक का (**ऋतम्**) यथार्थ स्वरूप है (**तत्**) उस प्रकाशस्वरूप को तुम भी विद्या से (**सपर्य्यत**) सेवन किया करो। जैसे हम लोग जिस (**चक्षसे**) सब के दिखाने (**देवजाताय**) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (**केतवे**) ज्ञान कराने, अग्नि के (**पुत्राय**) पुत्र (**दूरेदृशे**) दूर स्थित हुए पदार्थों को दिखाने (**महः**) बड़े (**देवाय**) दिव्यगुण वाले (**सूर्य्याय**) सूर्य्य के लिये प्रवृत्त होओ ॥३५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को जिसकी कृपा वा प्रकाश से चोर डाकू आदि अपने कार्य्यों से निवृत्त हो जाते हैं उसी की प्रशंसा और गुणों की प्रसिद्धि करनी और परमेश्वर के समान समर्थ वा सूर्य्य के समान कोई लोक नहीं, ऐसा जानना चाहिये ॥३५॥

वरुणस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। विराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमा सीद ॥ ३६ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस से आप (**वरुणस्य**) उत्तम जगत् के (**उत्तम्भनम्**) अच्छे प्रकार प्रतिबन्ध करनेवाले (**असि**) हैं। जो (**वरुणस्य**) वायु के (**स्कम्भसर्जनी**) आधाररूपी पदार्थों के उत्पन्न करने (**वरुणस्य**) सूर्य्य के (**ऋतसदनी**) जलों का गमनागमन करनेवाली क्रिया (**स्थः**) हैं उनको धारण किये हुए हैं (**वरुणस्य**) उत्तम (**ऋतसदनम्**) पदार्थों का स्थान (**असि**) हैं (**वरुणस्य**) उत्तम (**ऋतसदनम्**) सत्यरूपी बोधों के स्थान को (**आसीद**) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं इससे आपका आश्रय हम लोग करते हैं ॥१॥ जो (**वरुणस्य**) जगत् का (**उत्तम्भनम्**) धारण करनेवाला (**असि**) है। जो (**वरुणस्य**) वायु के (**स्कम्भसर्जनी**) आधारों को उत्पन्न करने वा जो (**वरुणस्य**) सूर्य्य के (**ऋतसदनी**) जलों का गमनागमन करानेवाली क्रिया (**स्थः**) हैं उनका धारण करने तथा जो (**वरुणस्य**) उत्तम (**ऋतसदनम्**) सत्य पदार्थों का स्थानरूप (**असि**) है वह (**वरुणस्य**) उत्तम (**ऋतसदनम्**) पदार्थों के स्थान को (**आसीद**) अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है, उसका उपयोग क्यों न करना चाहिये ॥३६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई परमेश्वर के विना सब जगत् के रचने वा धारण, पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई सूर्य्य के विना भूमि आदि जगत् के प्रकाश और धारण करने को भी समर्थ नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

या ते धामानीत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

फिर ये कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्य्यान् ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर जैसे विद्वान् लोग (**या**) जिन (**ते**) आपके (**धामानि**) स्थानों को (**हविषा**) देने लेने योग्य द्रव्यों से (**यजन्ति**) सत्कारपूर्वक ग्रहण करते हैं वैसे हम लोग भी (**ता**) उन (**विश्वा**) सभों को ग्रहण करें जैसे (**ते**) आपका वह यज्ञ विद्वानों को (**गयस्फानः**) अपत्य धन और घरों के बढ़ाने (**प्रतरणः**) दुःखों से पार करने (**सुवीरः**) उत्तम वीरों का योग कराने (**अवीरहा**) कायर दरिद्रतायुक्त अवीर अर्थात् पुरुषार्थ रहित मनुष्य और शत्रुओं को मारने तथा (**परिभूः**) सब प्रकार से सुख करानेवाला है वैसे वह आपकी कृपा से हम लोगों के लिये (**अस्तु**) हो वा जिसको विद्वान् लोग (**यजन्ति**) यजन करते हैं उस (**यज्ञम्**) यज्ञ को हम लोग भी करें। हे (**सोम**) सोमविद्या को संपादन करनेवाले विद्वन् ! जैसे हम लोग इस यज्ञ को करके घरों में आनन्द करें, जानें, इसमें कर्म करें, वैसे तू भी इसको करके (**दुर्य्यान्**) घरों में (**प्रचर**) सुख का प्रचार कर, जान और अनुष्ठान कर ॥३७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वान् लोग ईश्वर में प्रीति संसार में यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं वैसा ही सब मनुष्यों को करना उचित है ॥३७॥

इस अध्याय में शिल्पविद्या, वृष्टि की पवित्रता का सम्पादन, विद्वानों का सङ्ग, यज्ञ का अनुष्ठान, उत्साह आदि की प्राप्ति, युद्ध का करना, शिल्पविद्या की स्तुति, यज्ञ के गुणों का वर्णन, सत्यव्रत का धारण, अग्नि, जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना, यज्ञानुष्ठान, माता पिता और पुत्रादिकों का आपस में अनुकरण, यज्ञ की व्याख्या, दिव्य बुद्धि की प्राप्ति, परमेश्वर का अर्चन, सूर्यगुण वर्णन, पदार्थों के क्रय विक्रय का उपदेश, मित्रता करना, धर्ममार्ग में प्रचार करना, परमेश्वर वा सूर्य्य के गुणों का प्रकाश, चोर आदि का निवारण, ईश्वर सूर्य्यादि गुण वर्णन और यज्ञ का फल कहा है। इससे इस अध्याय के अर्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

अब चौथे अध्याय की पूर्ति के पश्चात् पाचवें अध्याय के भाष्य का अरम्भ किया जाता है—

अग्नेस्तनूरित्यस्य गोतम ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

किस किस प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैं जो हवि (**अग्नेः**) विजुली प्रसिद्ध रूप अग्नि के (**तनूः**) शरीर के समान (**असि**) है (**त्वा**) उसको (**विष्णवे**) यज्ञ की सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूँ जो (**सोमस्य**) जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थ समूह की (**तनूः**) विस्तारपूर्वक सामग्री (**असि**) है (**त्वा**) उसको (**विष्णवे**) वायु की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूँ जो (**अतिथेः**) संन्यासी आदि का (**आतिथ्यम्**) अतिथिपन वा उनकी सेवारूप कर्म (**असि**) है (**त्वा**) उनको (**विष्णवे**) विज्ञान यज्ञ की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूँ जो (**श्येनाय**) श्येनपक्षी के समान शीघ्र जानने के लिये (**असि**) है (**त्वा**) उस द्रव्य को अग्नि आदि में छोड़ता हूँ जो (**विष्णवे**) सब विद्या कर्मयुक्त (**सोमभृते**) सोमों को धारण करनेवाले यजमान के लिये सुख (**असि**) है (**त्वा**) उसको ग्रहण करता हूँ। जो (**अग्नये**) अग्नि बढ़ाने के लिये काष्ठ आदि हैं (**त्वा**) उसको स्वीकार करता हूँ। जो (**रायस्पोषदे**) धन की पुष्टि देने वा (**विष्णवे**) उत्तम कर्म विद्या की व्याप्ति के लिये समर्थ पदार्थ हैं (**त्वा**) उसको ग्रहण करता हूँ वैसे इन सबका सेवन तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पूर्वोक्त फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें ॥१॥

अग्नेर्जनित्रमित्यस्य गोतम ऋषिः। विष्णुर्यज्ञो देवता। पूर्वस्यार्षी गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः। गामन्त्रेत्युत्तरस्यार्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒ग्नेर्ज॒नित्र॑मसि॒ वृष॑णौ स्थऽउ॒र्वश्य॑स्या॒युर॑सि पु॒रूरवा॑ऽअसि। गा॒य॒त्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं जो (**अग्नेः**) आग्नेय अस्त्रादि की सिद्धि करने हारे अग्नि के (**जनित्रम्**) उत्पन्न करने वाला हवि (**असि**) है (**वृषणौ**) जो वर्षा करानेवाले सूर्य्य और वायु (**स्थः**) हैं जो (**उर्वशी**) बहुत सुखों के प्राप्त करानेवाली क्रिया (**असि**) है जो (**आयुः**) जीवन (**असि**) है जो (**पुरूरवाः**) बहुत शास्त्रों के उपदेश करने का निमित्त (**असि**) है (**त्वा**) उस अग्नि (**गायत्रेण**) गायत्री (**छन्दसा**) आनन्दकारक स्वच्छन्द क्रिया से (**मन्थामि**) विलोडन करता हूँ (**त्वा**) उस सोम आदि ओषधिसमूह (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुप् (**छन्दसा**) छन्द से (**मन्थामि**) विलोडन करता हूं (**त्वा**) और उस शत्रु दुःखसमूह को (**जागतेन**) जगती (**छन्दसा**) छन्द से (**मन्थामि**) ताड़न करके निवारण करता हूँ वैसे ही तुम भी किया करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा सेवन किये हुए यज्ञ से दूसरे मनुष्यों के लिये परोपकार करें ॥२॥

भवतं न इत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षीपंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

यजमान और यज्ञ की सिद्धि करनेवाले विद्वान् कैसे होने चाहियें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

भव॑तं नः॒ सम॑नसौ॒ सचे॑तसावरे॒पसौ॑। मा य॒ज्ञꣳहिꣳसिष्टं॒ मा य॒ज्ञप॑तिं जा॒तवे॑दसौ शि॒वौ भ॑वतम॒द्य नः॑ ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (**अरेपसौ**) प्राकृत मनुष्यों के भाषणरूपी वचन से रहित (**समनसौ**) तुल्य विज्ञानयुक्त (**सचेतसौ**) तुल्य ज्ञानज्ञापनयुक्त (**जातवेदसौ**) वेद और उपविद्याओं को सिद्ध किये हुए पढ़ने पढ़ानेवाले विद्वान् (**नः**) हम लोगों के लिये उपदेश करनेवाले (**भवतम्**) होवें। जो (**यज्ञम्**) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ वा (**यज्ञपतिम्**) विद्याप्रद यज्ञ के पालन करनेवाले यजमान को (**मा हिंसिष्टम्**) न पीड़ित करें। वे (**अद्य**) आज (**नः**) हम लोगों के लिये (**शिवौ**) मङ्गल करनेवाले (**भवतम्**) होवें ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि विद्या प्रचार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा मङ्गलाचरण को न छोड़ें क्योंकि यही सर्वोत्तम कर्म है ॥३॥

अग्नावग्निरित्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः।

विद्युत् और विद्वान् अग्नि कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒ग्नाव॒ग्निश्च॑रति॒ प्रवि॑ष्ट॒ऽऋषी॑णां पु॒त्रोऽअ॑भिशस्ति॒पावा॑। स नः॑ स्यो॒नः सु॒यजा॑ यजे॒ह दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यꣳ सद॒मप्र॑युच्छ॒न्त्स्वाहा॑ ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (**अभिशस्तिपावा**) सब प्रकार हिंसा करनेवालों से रहित (**अग्नौ**) विद्युत् अग्नि की विद्या में (**प्रविष्टः**) प्रवेश करने कराने (**ऋषीणाम्**) वेदादि शास्त्रों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जनाने वालों का (**पुत्रः**) पढ़ा हुआ (**स्योनः**) सर्वथा सुखकारी (**सुयजा**) विद्याओं को अच्छी प्रकार प्रत्यक्ष सङ्ग कराने हारा (**अग्निः**) प्रकाशात्मा (**अप्रयुच्छन्**) प्रमादरहित अध्यापक विद्वान् (**चरति**) जो (**नः**) हम लोगों के लिये (**इह**) इस संसार में (**देवेभ्यः**) विद्वान् वा दिव्य गुणों से (**हव्यम्**) लेने देने योग्य पदार्थ वा (**सदम्**) ज्ञान और (**स्वाहा**) हवन करने योग्य उत्तम अन्नादि को प्राप्त करता है (**सः**) सो आप (**यज**) सब विद्याओं को प्राप्त कराइये ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि कार्य्य कारण के भेद से दो प्रकार का निश्चित अर्थात् जो कार्यरूप से सूर्यादि और कारण रूप से विद्युत् अग्नि सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों में प्रवेश कर रहा है उसका इस संसार में विद्या से संप्रयोग कर कार्यों में उपयोग करना चाहिये ॥४॥

आपतये त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। विद्युद्देवता। पूर्वस्यार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। अनाधृष्टमित्यग्रस्य भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

मनुष्यों को किस किस प्रयोजन के लिये परमात्मा की प्रार्थना, विजुली का स्वीकार करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आप॑तये त्वा॒ परि॑पतये गृह्णामि॒ तनू॒नप्त्रे॑ शाक्व॒राय॒ शक्व॑न॒ऽओजि॑ष्ठाय। अना॑धृष्टमस्यनाधृ॒ष्यं दे॒वाना॒मोजोऽन॑भिशस्त्यभिशस्ति॒पाऽअ॑नभिशस्ते॒न्यमञ्ज॑सा स॒त्यमुप॑गेषꣳ स्वि॒ते मा॑ धाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—मैं हे परमात्मन् ! जिस से आप हिंसारूप कर्मों से अलग रहने और रखनेवाले हैं इससे (**त्वा**) आपको (**आपतये**) सब प्रकार से स्वामी होने (**परिपतये**) सब ओर से रक्षा (**शाक्वराय**) सब सामर्थ्य की प्राप्ति (**शक्वने**) शूरवीर युक्त सेना (**ओजिष्ठाय**) जिसमें सर्वोत्कृष्ट पराक्रम होता है, उस विद्या के होने और (**तनूनप्त्रे**) जिससे उत्तम शरीर होता है उनके लिये (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूं। आप अपनी कृपा से उस (**देवानाम्**) विद्वानों का (**अनाधृष्टम्**) जिस का अपमान कोई नहीं कर सकता (**अनाधृष्यम्**) किसी के अपमान करने योग्य नहीं है (**अनभिशस्ति**) किसी के हिंसा करने योग्य नहीं है (**अभिशस्तेन्यम्**) अहिंसारूप धर्म की प्राप्ति कराने हारा (**सत्यम्**) अविनाशी (**ओजः**) तेज है, उसका ग्रहण कराके (**स्विते**) अच्छे प्रकार जिस व्यवहार में सब सुख प्राप्त होते हैं, उसमें (**मा**) मुझको (**धाः**) धारण करें कि जिससे (**सत्यम्**) सत्य व्यवहार को (**उपगेषम्**) जान कर करूं ॥ ५ ॥

मैं जो (**अनाधृष्टम्**) न हटाने (**अनाधृष्यम्**) न किसी से नष्ट करने (**अनभिशस्ति**) न हिंसा करने (**अनभिशस्तेन्यम्**) और हिंसारहित धर्म प्राप्त कराने योग्य (**देवानाम्**) विद्वान् वा पृथिवी आदिकों के मध्य में (**सत्यम्**) कारणरूप नित्य (**ओजः**) पराक्रम स्वरूप वाली (**अभिशस्तिपाः**) हिंसा से रक्षा का निमित्त रूप बिजुली (**असि**) है जो (**मा**) मुझे (**स्विते**) उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (**धाः**) धारण करती है (**अञ्जसा**) सहजता से (**ओजिष्ठाय**) अत्यन्त तेजस्वी (**आपतये**) अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार (**परिपतये**) जिस में सब प्रकार पालन करने वाले होते हैं (**तनूनप्त्रे**) जिस से उत्तम शरीरों को प्राप्त होते हैं (**शाक्वराय**) शक्ति के उत्पन्न करने और (**शक्वने**) शक्ति वाली वीरसेना की प्राप्ति के लिये है (**त्वा**) उसको (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ कि जिससे उन सत्य कारणरूप पदार्थों को (**उपगेषम्**) जान सकूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान के बिना सत्य सुख और बिजुली आदि विद्या और क्रियाकुशलता के बिना संसार के सब सुख नहीं हो सकते, इसलिये यह कार्य्य पुरुषार्थ से सिद्ध करना चाहिये ॥ ५ ॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वह परमात्मा और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने॑ व्रतपा॒स्त्वे व्र॑तपा॒ या तव॑ त॒नूरि॒यꣳ सा मयि॒ यो मम॑ त॒नूरे॒षा सा त्वयि॑। स॒ह नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्यनु॑ मे दी॒क्षां दी॒क्षाप॑ति॒र्मन्य॑ता॒मनु॒ तप॒स्तप॑स्पतिः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जिसलिये हे (**अग्ने, व्रतपते**) जगदीश्वर ! आप वा विजुली सत्यधर्मादि नियमों के (**व्रतपाः**) पालन करनेवाले हैं इसलिये (**त्वे**) उस आप वा बिजुली में मैं (**व्रतपाः**) पूर्वोक्त व्रतों के पालन करनेवाली क्रियावाला होता हूँ (**या**) जो (**इयम्**) यह (**तव**) आप और उसकी (**तनूः**) विस्तृत व्याप्ति है (**सा**) वह (**मयि**) मुझ में (**यो**) जो (**एषा**) यह (**मम**) मेरा (**तनूः**) शरीर है (**सा**) सो (**त्वयि**) आप वा उसमें है (**व्रतानि**) जो ब्रह्मचर्य्यादि व्रत हैं वे मुझ में हों और जो (**मे**) मुझ में हैं वे (**त्वयि**) तुम्हारे में हैं जो आप वा वह (**तपस्पतिः**) जितेन्द्रियत्वादिपूर्वक धर्मानुष्ठान के पालन निमित्त हैं सो (**मे**) मेरे लिये (**तपः**) पूर्वोक्त तप को (**अनुमन्यताम्**) विज्ञापित कीजिये वा करती है और जो आप वा वह (**दीक्षापतिः**) व्रतोपदेशों के रक्षा करने वाले हैं सो (**मे**) मेरे लिये (**दीक्षाम्**) व्रतोपदेश को (**अनुमन्यताम्**) आज्ञा कीजिये वा करती है इसलिये भी (**नौ**) मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हों कि जिस से दोनों की विद्यावृद्धि सदा होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर प्रेम वा उपकार बुद्धि से परमात्मा वा बिजुली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्ठान से पुरुषार्थ में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

अꣳशुरित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। आद्यस्यार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। आप्यायेत्यन्तस्यार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर वह ईश्वर विजुली और विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सो॒माप्या॑यता॒मिन्द्रा॑यैकधन॒विदे॑। आ तुभ्य॒मिन्द्रः॒ प्याय॑ता॒मा त्वमिन्द्रा॑य प्यायस्व। आप्या॑यया॒स्मान्त्सखी॑न्त्स॒न्न्या मे॒धया॑ स्व॒स्ति ते॑ देव सोम सु॒त्याम॑शीय। एष्टा रायः॒ प्रेषे भगा॑यऽऋ॒तमृ॑तवा॒दिभ्यो॒ नमो॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) पदार्थविद्या को जानने वा (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न जगदीश्वर ! विद्वन् ! विद्युद्वा जिससे (**ते**) आप वा इस विद्युत् का सामर्थ्य (**अंशुरंशुः**) अवयव अवयव, अङ्ग अङ्ग को (**आप्यायताम्**) रक्षा से बढ़ा अथवा बढ़ाती है (**इन्द्रः**) जो आप वा विजुली (**एकधनविदे**) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होनेवाले (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्ययुक्त मेरे लिये (**आप्यायाम्**) बढ़ावें वा बढ़ाती है (**आप्यायस्व**) वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है। वह आप बिजुली आदि पदार्थ के ठीक ठीक पदार्थों की प्राप्ति को (**सन्न्या**) प्राप्ति करानेवाली (**मेधया**) प्रज्ञा से (**अस्मान्**) हम (**सखीन्**) सब के मित्रों को (**आप्यायस्व**) बढ़ाइये वा बढ़ावे जिससे (**स्वस्ति**) सुख सदा बढ़ता रहे। (**सोम**) हे पदार्थविद्या को जाननेवाले

ईश्वर वा विद्वान् ! आप की शिक्षा वा बिजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्याम्) उत्तम उत्तम उत्पन्न करनेवाली क्रिया में कुशल होके (**इषे**) सिद्धि की इच्छा वा अन्न आदि (**भगाय**) ऐश्वर्य्य के लिये (**एष्टाः**) अभीष्ट सुखों को प्राप्त कराने वाले (**रायः**) धनसमूहों को (**अशीय**) प्राप्त होऊं और (**ऋतवादिभ्यः**) सत्यवादी विद्वानों को यह धन देके सत्य विद्या और (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) प्रकाश वा भूमि से (**ऋतम्**) अन्न को प्राप्त होऊं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करनेवाली ओषधियों और अनेक प्रकार के धनों का ग्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब आनन्दों को भोगें ॥ ७ ॥

या त इत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वस्य विराडार्षी बृहती छन्दः। या त इति द्वितीयस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या तेऽअग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम को (**या**) जो (**ते**) इस (**अग्ने**) बिजुली रूप अग्नि का (**अयःशया**) सुवर्णादि में सोने (**वर्षिष्ठा**) अत्यन्त बड़ा (**गह्वरेष्ठा**) आभ्यन्तर में रहनेवाला (**तनूः**) शरीर (**उग्रम्**) क्रूर भयङ्कर (**वचः**) वचन को (**अपावधीत्**) नष्ट करता और (**त्वेषम्**) प्रदीप्त (**वचः**) शब्द वा (**स्वाहा**) उत्तमता से हवन किये हुए अन्न को (**अपावधीत्**) दूर करता और जो (**ते**) इस (**अग्ने**) बिजुलीरूप अग्नि का (**वर्षिष्ठा**) अत्यन्त विस्तीर्ण (**गह्वरेष्ठा**) आभ्यन्तर में स्थित होने (**रजःशया**) लोकों में सोनेवाला (**तनूः**) शरीर (**उग्रम्**) क्रूर (**वचः**) कथन को (**अपावधीत्**) नष्ट करता है (**त्वेषम्**) प्रदीप (**वचः**) कथन वा (**स्वाहा**) उत्तम वाणी को (**अपावधीत्**) नष्ट करता है उसको जान के उससे कार्य्य लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहनेवाली जो बिजुली की व्याप्ति है उस को अच्छे प्रकार जानकर उपयुक्त करके सब दुःखों का नाश करें ॥ ८ ॥

तप्तायनीत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। प्रथमस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। विदेदग्निरित्यस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। नाम्नेहीत्यस्य निचृद्ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्। विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। अनु त्वा देववीतये ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्या के ग्रहण करनेवाले विद्वन् ! जैसे मैं (**यत्**) जो (**तप्तायनी**) स्थापनीय वस्तुओं के स्थान वाली विद्युत् ज्वाला (**असि**) है वा जो (**वित्तायनी**) भोग्य वा प्रतीत पदार्थों को प्राप्त करानेवाली बिजुली (**असि**) है (**त्वा**) उसकी विद्या को जानता हूँ वैसे तू भी इस को (**मे**) मुझ से (**एहि**) प्राप्त हो। जैसे यह (**यत्**) जो (**अग्निः**) प्रसिद्ध अग्नि (**नभः**) जल वा प्रकाश को प्राप्त कराना हुआ (**मा**) मुझ को (**व्यथितात्**) भय से (**अवतात्**) रक्षा करता वा (**नाथितात्**) ऐश्वर्य से (**अवतात्**) रक्षा करता है वैसे तुझ से सेवन किया हुआ यह तेरी भी रक्षा करेगा। जैसे मैं (**तेन**) उस साधन से जो (**अग्ने**) जाठर रूप (**अङ्गिरः**) अङ्गों में रहनेवाला अग्नि (**आयुना**) जीवन वा (**नाम्ना**) प्रसिद्धि से (**अस्याम्**) इस (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**नाम**) प्रसिद्ध है (**त्वा**) उसको जानता हूँ वैसे तू भी इसको (**मे**) मुझ से (**एहि**) अच्छे प्रकार जान। जैसे मैं (**तेन**) इस ज्ञान से (**यत्**) जो (**अनाधृष्टम्**) नहीं नष्ट होने योग्य (**यज्ञियम्**) यज्ञाङ्गसमूह (**नाम**) प्रसिद्ध तेज है (**त्वा**) उसको (**देववीतये**) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (**त्वा**) उस यज्ञ को (**आदधे**) धारण करता हूँ वैसे तू उस से इस की उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये धारण कर और वैसे सब मनुष्य भी उस से इस को (**विदेत्**) प्राप्त होवें। जैसे मैं (**तेन**) जो (**द्वितीयस्याम्**) दूसरी (**पृथिव्याम्**) भूमि में (**अग्ने अङ्गिरः**) अङ्गारों में रहनेवाला अग्नि (**आयुना**) जीवन वा (**नाम्ना**) प्रसिद्धि से (**नाम**) प्रसिद्ध है वा (**यः**) जो (**नभः**) सुख को देता है (**तेन, त्वा**) उसमें उसको प्राप्त हुआ हूँ वैसे तू उससे इसको (**ऐहि**) जान और सब मनुष्य भी उससे इसको (**विदेत्**) प्राप्त हों। जैसे मैं (**तेन**) पुरुषार्थ से जो (**अनाधृष्टम्**) प्रगल्भगुणसहित (**यज्ञियम्**) यज्ञसम्बन्धी (**नाम**) प्रसिद्ध तेज है (**त्वा**) उसे भोगों की प्राप्ति के लिये (**आदधे**) धारण कारण करता हूँ तथा तू उसके लिये धारण कर और सब मनुष्य भी (**विदेत्**) धारण करें। जैसे मैं (**तेन**) उस क्रियाकौशल से जो (**अग्निः**) अग्नि (**आयुना**) जीवन वा प्रसिद्ध से (**अङ्गिरः**) अङ्गों का सूर्यरूप से पोषण करता हुआ (**नाम**) प्रसिद्धि है वा जो (**नभः**) आकाश को प्रकाशित करता है (**त्वा**) उसको धारण करता हूँ वैसे तू उसको धारण कर वा सब लोग भी (**अनुविदेत्**) उस को ठीक ठीक जान के कार्य सिद्ध करे। जैसे मैं (**तेन**) इन्धनादि सामग्री से जो (**अनाधृष्टम्**) प्रगल्भसहित (**यज्ञियम्**) शिल्पविद्यासम्बन्धी (**नाम**) प्रसिद्ध तेज है (**त्वा**) उस को विद्वानों की प्राप्ति के लिये (**आदधे**) धारण करता हूँ वैसे तू उससे उसकी प्राप्ति के लिये (**अन्वेहि**) खोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से सम्प्रयोग करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्रसिद्ध सूर्य बिजुली रूप से तीन प्रकार का अग्नि सब लोगों में बाहिर भीतर रहनेवाला है उसको जानें और जनाकर सब मनुष्यों को कार्यसिद्धि का सम्पादन करना और कराना चाहिये ॥९॥

सिंह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।

अब अगले मन्त्र में सब विद्याओं की मुख्य सिद्धि करनेवाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है—

सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः। शुन्धस्व सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ १० ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जो (**सपत्नसाही**) जिससे शत्रुओं को सहन करते हैं वह (**देवेभ्यः**) उत्तम गुण शूरवीरों के लिए (**कल्पस्व**) पढ़ा और उपदेश करके प्राप्त कर (**सिंही**) जो दोषों को नष्ट करने वा शब्दों का उच्चारण करने वाली वाणी (**असि**) है उसको (**देवेभ्यः**) विद्वान् दिव्यगुण वा विद्या की इच्छा वाले मनुष्यों के लिए (**शुन्धस्व**) शुद्धता से प्रकाशित कर। जो (**सपत्नसाही**) दोषों को हनन वा (**सिंही**) अविद्या के नाश करनेवाली वाणी (**असि**) है उसको (**देवेभ्यः**) धार्मिकों के लिये (**शुन्धस्व**) शुद्ध कर और जो (**सपत्नसाही**) दुष्ट स्वभाव और (**सिंही**) दुष्ट दोषों को नाश करनेवाली वाणी (**असि**) है उसको (**देवेभ्यः**) सुशील विद्वानों के लिए (**शुम्भस्व**) शोभायुक्त कर ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई, दूसरी सत्य भाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुणसहित, उनका स्वीकार करें ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा और कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (**प्रचेताः**) उत्तम ज्ञानयुक्त (**इन्द्रघोषः**) परमात्मा, वेदविद्या और बिजुली का घोष अर्थात् शब्द अर्थ और सम्बन्धों के बोधवाला (**विश्वकर्मा**) सब कर्मवाला मैं (**विज्ञान**) पढ़ना पढ़ाना वा होमरूप यज्ञ से (**इदम्**) आभ्यन्तर में रहनेवाले (**तप्तम्**) तप्त जल (**बहिर्धा**) बाहर धारण होनेवाले शीतल (**वाः**) जल को (**निःसृजामि**) सम्पादन करता वा निःक्षेप करता हूँ वैसे आप भी कीजिये। जो (**वसुभिः**) अग्नि आदि पदार्थ वा चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए मनुष्यों के साथ वर्त्तमान (**इन्द्रघोषः**) परमेश्वर जीव और बिजुली के अनेक शब्द सम्बन्धी वाणी है उसको (**पुरस्तात्**) पूर्वदेश से जैसे मैं रक्षा करता हूँ वैसे आप भी (**पातु**) रक्षा करो जो (**रुद्रैः**) प्राण वा चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (**प्रचेताः**) उत्तम ज्ञान करने वाली वाणी है उसकी (**पश्चात्**) पश्चिम देश से रक्षा करता हूँ वैसे आप भी (**पातु**) रक्षा करें जो (**पितृभिः**) ज्ञानी वा ऋतुओं के साथ वर्त्तमान (**मनोजवाः**) मन के समान वेगवाली वाणी है उसका (**दक्षिणतः**) दक्षिण देश से पालन करता हूँ वैसे आप भी (**पातु**) रक्षा करें जो (**आदित्यैः**) बारह महीनों वा अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (**विश्वकर्मा**) सब कर्मयुक्त वाणी है उसकी (**उत्तरतः**) उत्तर देश से पालन करता हूँ वैसे आप भी (**पातु**) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो वसु रुद्र आदित्य और पितरों से सेवन की हुई वा यज्ञ को सिद्ध करनेवाली वाणी वा जल को सेवन, विद्या वा उत्तम क्रिया के साथ बिजुली है उसके सेवन में निरन्तर वर्त्तें ॥ ११ ॥

सिंह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सिंह्यसि स्वाहा सिंह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिंह्यसि ब्रह्मवनिः

क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳह्यु-स्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥

पदार्थ—मैं जो (**आदित्यवनिः**) मासों का सेवन और सिंही क्रूरत्व आदि दोषों को नाश करनेवाली (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्र से संस्कारयुक्त वाणी (**असि**) है, जो (**ब्रह्मवनिः**) परमात्मा वेद और वेद के जाननेवाले मनुष्यों के सेवन और (**सिंही**) बल के जाड्यपन को दूर करनेवाली (**स्वाहा**) पढ़ने पढ़ाने व्यवहारयुक्त वाणी (**असि**) है जो (**क्षत्रवनिः**) राज्य धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और (**सिंही**) चोर डाकू अन्याय को नाश करनेवाली (**स्वाहा**) राज्य-व्यवहार में कुशल वाणी (**असि**) है जो (**रायस्पोषवनिः**) विद्या धन की पुष्टि का सेवन और (**सिंही**) अविद्या को दूर करनेवाली (**स्वाहा**) वाणी (**असि**) है, जो (**सुप्रजावनिः**) उत्तम प्रजा का सेवन और (**सिंही**) सब दुष्टों का नाश और (**स्वाहा**) व्यवहार से धन को प्राप्त करानेवाली वाणी (**असि**) है और जो (**यजमानाय**) विद्वानों के पूजन करनेवाले यजमान के लिए (**स्वाहा**) दिव्य विद्या सम्पन्न वाणी (**देवान्**) विद्वान् दिव्यगुण वा भोगों को (**आवह**) प्राप्त करती है (**त्वा**) उसको (**भूतेभ्यः**) सब प्राणियों के लिए (**यज्ञात्**) यज्ञ से (**निःसृजामि**) सम्पादन करता हूँ ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (यज्ञात्) (निः) (सृजामि) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है। मनुष्यों को उचित है कि पढ़ना पढ़ाना आदि से इस प्रकार लक्षणयुक्त वाणी प्राप्त कर इसे सब मनुष्यों को पढ़ा कर सदा आनन्द में रहें ॥ १२ ॥

ध्रुवोऽसीत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो यज्ञ (**ध्रुवः**) निश्चल (**पृथिवीम्**) भूमि को बढ़ाता (**असि**) है उसको तुम (**दृंह**) बढ़ाओ जो (**ध्रुवक्षित्**) निश्चित सुख और शास्त्रों का निवास करानेवाला (**असि**) है वा (**अन्तरिक्षम्**) आकाश में रहने वाले पदार्थों को पुष्ट करता है उसको तुम (**दृंह**) बढ़ाओ जो (**अच्युतक्षित्**) नाशरहित पदार्थों को निवास करानेवाला (**असि**) है वा (**दिवम्**) विद्यादि प्रकाश को प्रकाशित करता है उसको तुम (**दृंह**) बढ़ाओ जो (**अग्नेः**) बिजुली आदि अग्नि वा (**पुरीषम्**) पशुओं की पूर्ति करनेवाला यज्ञ (**असि**) है उसका अनुष्ठान तुम किया करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विद्या क्रिया से सिद्ध वा त्रिलोकी के पदार्थों को पुष्ट करनेवाले विद्या क्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को रक्खें ॥ १३ ॥

युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषिः । सविता देवता । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में योगी और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥१४

पदार्थ—जैसे जो (**विहोत्राः**) देने लेने वाले (**विप्राः**) बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे जिस (**बृहतः**) सब से बड़े (**विप्रस्य**) अनन्त ज्ञान कर्मयुक्त (**विपश्चितः**) सब विद्या सहित (**सवितुः**) सकल जगत् के उत्पादक (**देवस्य**) सब के प्रकाश करनेवाले महेश्वर की (**मही**) बड़ी (**परिष्टुतिः**) सब प्रकार की स्तुतिरूप (**स्वाहा**) सत्यवाणी को जान उसमें (**मनः**) मन को (**युञ्जते**) युक्त करते हैं (**उत**) और (**धियः**) बुद्धियों को भी (**युञ्जते**) स्थिर करते हैं वैसे (**वयुनावित्**) उत्तम कर्मों को जाननेवाला (**एकः**) सहाय रहित मैं उसको जान उसमें अपना मन और बुद्धि को (**विदधे**) सदा निश्चल विधान कर रखता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर में ही मन बुद्धि को युक्त कर विद्वानों के सङ्ग से विद्या को पा सुखी हों अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें ॥ १४ ॥

इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥१५

पदार्थ—(**विष्णुः**) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है उसको (**विचक्रमे**) रचता हुआ (**इदम्**) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (**त्रेधा**) तीन प्रकार का धारण करता है (**अस्य**) इस प्रकाशवान् प्रकाशरहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ (**इदम्**) इस (**समूढम्**) अच्छे प्रकार विचार करके कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को (**पांसुरे**) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है वही सब मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवने योग्य है ॥ १५ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाशवाले सूर्यादि, दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है उस सब को कारण से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है उनमें से ओषधि आदि पृथिवी में, प्रकाश आदि सूर्यलोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है। इस लिखे हुए शतपथ के प्रमाण से गय शब्द से प्राणों का ग्रहण किया है इसमें महीधर जो कहता है त्रिविक्रम अर्थात् वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है यह उसका कहना सर्वथा मिथ्या है ॥ १५ ॥

इरावतीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतःस्वरः ।

अगले मन्त्र में ईश्वर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है—

इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या । व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (**विष्णो**) सर्वव्यापी जगदीश्वर ! जो आप जिस (**इरावती**) उत्तम अन्नयुक्त (**धेनुमती**) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा वा पशुयुक्त (**सूयवसिनी**) बहुत मिश्रित, अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि वा वाणी (**पृथिवीम्**) भूमि (**हि**) निश्चय करके (**स्वाहा**) वेदवाणी वा (**भूतम्**) उत्पन्न हुए सब जगत् को (**मयूखैः**) ज्ञानप्रकाशकादि गुणों से (**अभितः**) सब ओर से (**दाधर्थ**) धारण और (**रोदसी**) प्रकाश वा पृथिवीलोक का (**व्यस्कभ्नाः**) सम्यक् स्तम्भन करते हो उन (**मनवे**) विज्ञानयुक्त (**दशस्या**) दशन अर्थात् दाँतों के बीच में स्थित जिह्वा के समान आचरण करने वाले आपके लिये (**एते**) ये हम लोग सब जगत् को निवेदन करते हैं ॥ १ ॥ जो (**विष्णो**) व्यापनशील प्राण जो (**इरावती**) उत्तम अन्नयुक्त (**धेनुमती**) पशुसहित (**सूयवसिनी**) बहुत मिश्रित अमिश्रित पदार्थ वाली भूमि वा वाणी है उस (**पृथिवीम्**) भूमि (**स्वाहा**) वा इन्द्रिय को (**मयूखैः**) किरणों अपने बल आदि (**अभितः**) सब प्रकार (**दाधर्थ**) धारण करता वा (**रोदसी**) प्रकाश भूमि को (**व्यस्कभ्नाः**) स्तम्भन करता है उस (**दशस्या**) दशन और दांत के समान आचरण करने वा (**मनवे**) विज्ञापनयुक्त सूर्य के लिये (**भूतं हि**) निश्चय करके सब जगत् को करने के लिये ईश्वर ने दिया है ऐसा (**एते**) ये सब हम लोग जानते हैं ॥ २ ॥ ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत् को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है वैसे ही परमेश्वर और प्राण ने अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत् को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है ॥ १६ ॥

देवश्रुतावित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे प्राण और अपान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

देवश्रुतौ देवेष्वा घोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमा वदतं देवी दुर्येऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे जो (**देवेषु**) विद्वान् वा दिव्यगुणों में (**देवश्रुतौ**) विद्वानों से श्रवण किये हुए प्राण अपान वायु (**घोषतम्**) व्यक्त शब्द करें और जो (**प्राची**) प्राप्त करने वा (**कल्पयन्ती**) सामर्थ्य वाली प्रकाश भूमि (**ऊर्ध्वम्**) उत्तम गुणयुक्त (**यज्ञम्**) विज्ञान वा शिल्पमय यज्ञ को (**प्रेतम्**) जनाते रहें (**नयतम्**) प्राप्त करें (**मा जिह्वरतम्**) कुटिल गति वाले न हों जो (**देवी**) दिव्यगुण सम्पन्न (**दुर्ये**) गृहरूप (**स्वयं**) अपने (**गोष्ठम्**) किरण और अवयवों के स्थान के (**आवदतम्**) उपदेश निमित्तक हों (**आयुः**) आयु को (**मा निर्वादिष्टम्**) नष्ट न करें (**प्रजाम्**) उत्पन्न हुई सृष्टि को (**मा निर्वादिष्टम्**) न नष्ट करें और वे (**पृथिव्याः**) आकाश के मध्य (**अत्र**) इस (**वर्ष्मन्**) सुख से सेवनयुक्त जगत् में (**रमेथाम्**) रमण करें तथा किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जितना जगत् अन्तरिक्ष में वर्त्तता है उतने से बहुत बहुत उत्तम सुखों का सम्पादन करना चाहिये ॥ १७ ॥

विष्णोर्नु कमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में व्यापक ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि । योऽअस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥१८

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**यः**) जो (**विचक्रमाणः**) जगत् रचने के लिये कारण के अंशों को युक्त करता हुआ (**उरुगायः**) बहुत अर्थों को वेद द्वारा उपदेश करने वाला जगदीश्वर (**पार्थिवानि**) पृथिवी के विकार अर्थात् पृथिवी के गुणों से उत्पन्न होने वाले या अन्तरिक्ष में विदित (**त्रेधा**) तीन प्रकार के (**रजांसि**) लोकों को (**विममे**) अनेक प्रकार से रचता है जो (**उत्तरम्**) पिछले अवयवों के (**सधस्थम्**) साथ रहने वाले कारण को (**अस्कभायत्**) रोक रखता है (**यः**) जो (**विष्णवे**) उपासनादि यज्ञ के लिये आश्रय किया जाता है उस (**विष्णोः**) व्यापक परमेश्वर के (**वीर्याणि**) पराक्रमयुक्त कर्मों का (**प्रवोचम्**) कथन करूं और हे परमेश्वर ! (**नु**) शीघ्र ही (**कम्**) सुखस्वरूप (**त्वा**) आपका आश्रय करता हूँ ॥ १८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने पृथिवी सूर्य और त्रसरेणु आदि भेद से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है उसी की उपासना करनी चाहिये ॥ १८ ॥

दिवो वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या मुहो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्र यच्छ दक्षिणादोत सुव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (विष्णो) सर्वव्यापी परमेश्वर ! आप कृपा करके हम लोगों को (दिवः) प्रसिद्धि वा बिजुलीरूप अग्नि से (वसुना) द्रव्य के साथ (आपृणस्व) सुखों से पूर्ण कीजिये और (पृथिव्याः) भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ (उत) भी (वा) अथवा (महः) महत्तत्त्व अव्यक्त और (उत) भी (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुखों को (हि) निश्चय करके पूर्ण कीजिये (विष्णो) सब में प्रविष्ट ईश्वर ! आप (दक्षिणात्) दक्षिण (उत) और (सव्यात्) वाम पार्श्व से सुखों को दीजिये (त्वा) उस आप को (विष्णवे) योग विज्ञान यज्ञ के लिये पूजन करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस व्यापक परमेश्वर ने महत्तत्त्व सूर्य भूमि अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा उन में रहने वाले ओषधि आदि वा मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये सुखों को धारण करता है उसी की उपासना करें ॥ १६ ॥

प्र तद्विष्णुरित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२०॥

पदार्थ—(यस्य) जिसके (उरुषु) अत्यन्त (त्रिषु, विक्रमणेषु) विविध प्रकार के कर्मों में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (अधिक्षियन्ति) निवास करते हैं और (वीर्येण) अपने पराक्रम से (भीमः) भय करने वाले (कुचरः) निन्दित प्राणिवध को करने और (गिरिष्ठाः) पर्वत में रहने वाले (मृगः) सिंह के (न) समान पापियों को खोज दुःख देता हुआ (प्रस्तवते) उपदेश करता है (तत्) इस से उसको कभी न भूलना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इच्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोकों का नियम करता है ॥२० ॥

विष्णो रराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थ—जो यह अनेक प्रकार का जगत् है वह (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से (रराटम्) उत्पन्न होकर प्रकाशित है (विष्णोः) सर्वसुख प्राप्त करनेवाले ईश्वर से (स्यूः) विस्तृत (असि) है । सब जगत् (वैष्णवम्) यज्ञ का साधन (असि) है और (विष्णोः) सब में प्रवेश करनेवाले जिस ईश्वर के (श्नप्त्रे) जड़ चेतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है उस सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर ! हम लोग (त्वा) आप को (विष्णवे) यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये आश्रय करते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर ही रचने और धारण करनेवाला व्यापक इष्टदेव है ऐसा जानकर सब कामनाओं की सिद्धि करें ॥ २१ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । आदद इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपि कृन्तामि । बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (देवस्य) सबको प्रकाश करने आनन्द देने वा (सवितुः) सकल जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में जिस यज्ञ को (आददे) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी (त्वा) उसको ग्रहण कर जैसे मैं (नारी) यज्ञक्रिया वा (इदम्) यज्ञ के अनुष्ठान का ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी ग्रहण कर जैसे (अहम्) मैं (रक्षसाम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुओं के (ग्रीवाः) शिरों को भी (अपिकृन्तामि) छेदन करता हूँ वैसे तुम भी छेदन करो । जैसे मैं इस अनुष्ठान से (बृहद्रवाः) बड़ाई पा या बड़ा होता हूँ वैसे तू भी हो और जैसे मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (बृहतीम्) बड़ी (वाचम्) वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तू भी (वद) कर ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्यों में उपयोग कर सुखों को प्राप्त करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर सब सुखों को पहुंचना चाहिये ॥ २२ ॥

रक्षोहणमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य याजुषी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । मध्यमस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । यम्मे सबन्धुरित्युत्तरस्य स्वराड् ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

सृष्टि से मनुष्यों को किस का उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (बलगहनम्) बलों को बिडोलने और (रक्षोहणम्) राक्षसों के हनन करनेवाले कर्म और (वैष्णवीम्) व्यापक ईश्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान करके (यम्) जिस (बलगम्) बल प्राप्त करानेवाले यज्ञ को (उत्किरामि) उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हूँ (तम्) उस यज्ञ को वैसे ही तू भी (इदम्) इसको प्रकाशित कर और जैसे (मे) मेरा (निष्ट्यः) यज्ञ में कुशल (अमात्यः) मेधावी विद्वान् मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (इदम्) भूगर्भ विद्या की परीक्षा के लिये स्थान को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे (तम्) उसको तेरा भी भृत्य खोदे । जैसे (अहम्) भूगर्भविद्या का जाननेवाला मैं (यम्) जिस (बलगम्) बल प्राप्त करनेवाले खेती आदि यज्ञ वा (इदम्) खननरूपी कर्म को (उत्किरामि) अच्छे प्रकार सम्पादन करता हूँ वैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (समानः) सदृश वा असदृश मनुष्य (यम्) जिस कर्म को (निचखान) खनन करता है वैसे तेरा भी खोदे, जैसे (अहम्) पढ़ने पढ़ाने वाला मैं (यम्) जिस (बलगम्) आत्मबल प्राप्त करनेवाले यज्ञ वा (इदम्) इस पढ़ने पढ़ाने रूपी कार्य को (उत्किरामि) संपन्न करता हूँ वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसा (मे) मेरा (सबन्धुः) तुल्य बन्धु मित्र वा (असबन्धुः) तुल्य बन्धु रहित अमित्र (यम्) जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे उसको तेरा भी करे, जैसे (अहम्) सब का मित्र मैं (यम्) जिस (बलगम्) राज्यबल प्राप्त करनेवाले यज्ञ वा (इदम्) इस कार्य को (उत्किरामि) संपन्न करता हूँ वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसे (सजातः) साथ उत्पन्न हुआ (असजातः) साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (कृत्याम्) उत्तम क्रिया को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस क्रिया को निःसन्देह करे । जैसे मैं इस सब कर्म को (उत्किरामि) सम्पादन करता हूँ वैसे तुम भी करो ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनुकरण कभी न करना चाहिये ॥ २३ ॥

स्वराडसीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । सूर्यविद्वांसौ देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जिस कारण आप (स्वराट्) अपने आप प्रकाशमान (असि) हैं इससे (सपत्नहा) शत्रुओं के मारनेवाले होते हों, जिस कारण तुम (सत्रराट्)यज्ञों में प्रकाशमान हो इससे (अभिमातिहा) अभिमानयुक्त मनुष्यों को मारने वाले होते हो, जिस से (जनराट्) धार्मिक विद्वानों में प्रकाशित हैं इस से (रक्षोहा) राक्षस दुष्टों को मारने वाले होते हैं, जिससे आप (सर्वराट्) सब में प्रकाशित हैं, इससे (अमित्रहा) अमित्र अर्थात् शत्रुओं के मारने वाले होते हैं ॥ १ ॥ जिस कारण यह सूर्यलोक (स्वराट्) अपने आप (असि) प्रकाशित है इससे (सपत्नहा) मेघ के अवयवों को काटने वाला होता है, जिस कारण यह (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशित (असि) है इससे (अभिमातिहा) अभिमानकारक चोर आदि का हनन करने वाला होता है, जिस कारण यह (जनराट्) धार्मिक

विद्वानों के मन में प्रकाशित (**असि**) है, इससे (**रक्षोहा**) राक्षस वा दुष्टों का हनन करने वाला होता है। जिससे यह (**सर्वराट्**) सब में प्रकाशमान (**असि**) है इससे (**अमित्रहा**) दुष्टों को दण्ड देने का निमित्त होता है ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही तू भी सब शत्रुओं को निवारण कर प्रजा को सुखी कर ॥ २४ ॥

रक्षोहण इत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। बलगहना उपेत्युत्तरस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

यजमान सभा आदि के अध्यक्ष यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री का ग्रहण करावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

रक्षोहणो वो बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो बलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो बलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां बलगहनाऽउप दधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां बलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! जैसे तुम (**रक्षोहणः**) दुःखों का नाश करने वाले हो वैरी शत्रुओं के बल को अस्तव्यस्त करने हारा मैं (**वैष्णवान्**) यज्ञ देवता वाले (**वः**) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से (**प्रोक्षामि**) इन घमण्डी मनुष्यों को शुद्ध करूं, जैसे आप (**रक्षोहणः**) अधर्मात्मा दुष्ट दस्युओं को मारने वाले हैं वैसे (**बलगहनः**) शत्रुसेना की थाह लेने वाला मैं (**वैष्णवान्**) यज्ञ सम्बन्धी (**वः**) तुम को सुखों से सत्य कर दुष्टों को (**अवनयामि**) दूर करता हूँ जैसे (**बलगहनः**) अपनी सेना को व्यूहों की शिक्षा से विलोडन करने वाला मैं (**रक्षोहणः**) शत्रुओं को मारने वा (**वैष्णवान्**) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (**वः**) तुम को (**अवस्तृणामि**) सुख से आच्छादित करता हूं वैसे तुम भी किया करो, जैसे (**रक्षोहणौ**) राक्षसों के मारने वा (**बलगहनौ**) बलों को विलोडन करने वाले (**वाम्**) यज्ञपति वा यज्ञ कराने वाले विद्वान् का धारण करते हो वैसे मैं भी (**उपदधामि**) धारण करता हूं जैसे (**रक्षोहणौ**) राक्षसों के मारने (**बलगहनौ**) बलों को विलोडने वाले (**वाम्**) प्रजा सभाध्यक्ष आप (**वैष्णवी**) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानों की क्रिया वा (**वैष्णवम्**) जो विष्णु सम्बन्धी ज्ञान है इन सब को तर्क से जानते हैं वैसे मैं भी (**पर्यूहामि**) तर्क से अच्छे प्रकार जानूं और जैसे आप सब लोग (**वैष्णवाः**) व्यापक परमेश्वर की उपासना करने वाले (**स्थ**) हैं वैसा मैं भी होऊं ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को परमेश्वर की उपासनायुक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा के बल को पूर्ण कर के यज्ञ से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जीतकर सब भूमि के राज्य की पालना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः। यवोऽसीत्युत्तरस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किस लिये इस यज्ञ को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (**सवितुः**) सब जगत् के उत्पन्न करने और (**देवस्य**) सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किये हुए संसार में (**अश्विनोः**) प्राण और अपान के (**बाहुभ्याम्**) बल और वीर्य तथा (**पूष्णः**) अतिपुष्ट वीर के (**हस्ताभ्याम्**) प्रबल प्रतापयुक्त भुजा और दण्ड से अनेक उपकारों को (**आददे**) लेता वा (**इदम्**) इस जगत् की रक्षा कर (**रक्षसाम्**) दुष्टकर्म करने वाले प्राणियों के (**ग्रीवाः**) शिरों का (**अपि, कृन्तामि**) छेदन ही करता हूं तथा जैसे पदार्थों का उत्तम गुणों से मेल करता हूँ वैसे तू भी उपकार ले और (**यवय**) उत्तम गुणों से पदार्थों का मेल कर वैसे मैं (**द्वेषः**) ईर्ष्या आदि दोष वा (**अरातीः**) शत्रुओं को (**अस्मत्**) अपने से दूर करता हूँ वैसे तू भी (**यवय**) दूर करा। हे विद्वन् ! जैसे हम लोग (**दिवेः**) ऐश्वर्य्यादि गुण के प्रकाश होने के लिए (**त्वा**) तुझको (**अन्तरिक्षाय**) आकाश में रहने वाले पदार्थ को शोधने के लिए (**त्वा**) तुझ को (**पृथिव्यै**) पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि होने के लिए (**त्वा**) तुझ को सेवन करते हैं वैसे तुम लोग भी करो। जैसे (**पितृषदनम्**) विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान (**असि**) है और जिस से (**पितृषदनाः**) जैसे ज्ञानियों में ठहर पवित्र होते हैं वैसे मैं शुद्ध होऊं तथा सब मनुष्य (**शुन्धन्ताम्**) अपनी शुद्धि करें और हे स्त्री ! तू भी यह सब इसी प्रकार कर ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि ठीक-ठीक क्रियाक्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान करके सब प्रकार से अपनी शुद्धि करें ॥ २६ ॥

उद्दिवमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सभापति और अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उद्दिवꣳ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे परमविद्वन् ! जैसे (**त्वा**) आपको (**मारुतः**) वायु (**ध्रुवेण**) निश्चल (**धर्मणा**) धर्म से (**मिनोतु**) प्रयुक्त करे (**मित्रावरुणौ**) प्राण और अपान भी धर्म से प्रयुक्त करते हैं वैसे आप कृपा करके लोगों के लिए (**दिवम्**) विद्या गुणों के प्रकाश को (**उत्तभान**) अज्ञान से उखाड़ देओ तथा (**अन्तरिक्षम्**) सब पदार्थों के अवकाश को (**पृण**) परिपूर्ण कीजिए (**पृथिव्याम्**) भूमि पर (**द्युतानः**) सद्विद्या के गुणों का विस्तार करते हुए आप सुखों को (**दृंहस्व**) बढ़ाइए (**ब्रह्म**) वेदविद्या को (**दृंह**) बढ़ाइए (**क्षत्रम्**) राज्य को बढ़ाइए (**आयुः**) अवस्था को (**दृंह**) बढ़ाइए और (**प्रजाम्**) उत्पन्न हुई प्रजा को (**दृंह**) वृद्धियुक्त कीजिए। इसीलिए मैं (**ब्रह्मवनि**) ब्रह्मविद्या को सेवन वा करने कराने (**क्षत्रवनि**) राज्य को सेवन करने कराने (**रायस्पोषवनि**) और धनसमूह की पुष्टि को सेवने वा सेवन कराने वाले आप को (**पर्यूहामि**) सब प्रकार के तर्कों से निश्चय करता हूँ वैसे आप मुझ को सर्वथा सुखदायक हूजिए और आप को सब मनुष्य तर्कों से जानें ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान सब को सुख देता है वैसे यह यज्ञ भी विद्या गुण को बढ़ाकर सब जीवों को सुख देता है, यह जानो ॥ २७ ॥

ध्रुवासीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

पदार्थ— हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री ! जैसे तू (**प्रजया**) राज्य वा अपने संतानों और (**पशुभिः**) हाथी घोड़े गाय आदि पशुओं के सहित (**अस्मिन्**) इस (**आयतने**) जगत् वा अपने स्थान वा सब के सत्कार कराने के योग्य यज्ञ में (**ध्रुवा**) दृढ़ संकल्प (**असि**) है वैसे (**अयम्**) यह (**यजमानः**) यज्ञ करने वाला तेरा पति यजमान भी (**ध्रुवः**) दृढ़ संकल्प है। तुम दोनों (**घृतेन**) घृत आदि सुगंधित पदार्थों से (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि को (**पूर्येथाम्**) परिपूर्ण करो। हे यज्ञ करने वाली स्त्री ! तू (**इन्द्रस्य**) अत्यन्त ऐश्वर्य को भी अपने यज्ञ से (**छदिः**) प्राप्त करनेवाली (**असि**) है। अब तू और तेरा पति यह यजमान (**विश्वजनस्य**) संसार का (**छाया**) सुख करने वाला (**भूयात्**) हो ॥ २८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से दृढ़ विद्या और सुखों को पाकर दुखों को छोड़ें उनका सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्ठान सदा ही करते रहें ॥ २८ ॥

परि त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

ईश्वर और सभाध्यक्ष से क्या क्या होने को योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

परि त्वा गिर्वणो गिरऽइमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे (**गिर्वणः**) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर वा सभाध्यक्ष ! (**इमाः**) ये मेरी की हुई (**विश्वतः**) समस्त (**गिरः**) स्तुतियें (**परि**) सब प्रकार से (**भवन्तु**) हों और उसी समय की ही न हों किन्तु (**वृद्धायुम्**) वृद्धों के समान आचरण करने वाले आपके (**अनु**) पश्चात् (**वृद्धयः**) अत्यन्त बढ़ती हुई और (**जुष्टयः**) प्रीति करने योग्य (**जुष्टाः**) प्यारी हों ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे संपूर्ण उत्तम गुण कर्म्मों के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और सभापति स्तुति करने योग्य हैं वैसे ही तुम लोगों को भी होना चाहिए ॥२९॥

इन्द्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि। ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष ! जैसे (वैश्वदेवम्) समस्त पदार्थों का निवास स्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप (ऐन्द्रम्) सब के आधार हैं इसीसे हम लोगों को (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य का (स्यूः) संयोग करनेवाले (असि) हैं और (इन्द्रस्य) सूर्य आदि लोक वा राज्य को (ध्रुवः) निश्चल करनेवाले (असि) हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। जैसे सकल ऐश्वर्य्य का देने वाला जगदीश्वर है वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यों को होना चाहिए ॥३०॥

विभूरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः । श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिससे आप जैसे व्यापक आकाश और ऐश्वर्य्ययुक्त राजा होता है वैसे (विभूः) व्यापक और ऐश्वर्य्ययुक्त (असि) हैं (वह्निः) जैसे होम किये पदार्थों को योग्य स्थान में पहुंचानेवाला अग्नि है वैसे (हव्यवाहनः) हवन करने के योग्य पदार्थों को सम्पादन करनेवाले (असि) हैं जैसे जीवों में प्राण हैं वैसे (प्रचेताः) चेत करनेवाले (श्वात्रः) विद्वान् (असि) हैं जैसे सूत्रात्मा पवन सब में व्याप्त है वैसे (विश्ववेदाः) विश्व को जानने (तुथः) ज्ञान को बढ़ानेवाले (असि) हैं इससे आप सत्कार करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर और विद्वान् का सत्कार करना कभी न छोड़ें क्योंकि अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है इसलिये इनको जानें ॥३१॥

उशिगसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः । सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उशिक्) कान्तिमान् (असि) हैं (अङ्घारिः) खोटे चलन वाले जीवों के शत्रु वा (कविः) क्रान्तप्रज्ञ (असि) हैं (बम्भारिः) बन्धन के शत्रु वा तारादि तन्तुओं के विस्तार करनेवाले (असि) हैं (दुवस्वान्) प्रशंसनीय सेवायुक्त स्वयं (शुन्ध्यूः) शुद्ध (असि) हैं (मार्जालीयः) सब को शोधनेवाले (सम्राट्) और अच्छे प्रकार प्रकाशमान (असि) हैं (कृशानुः) पदार्थों को अति सूक्ष्म (पवमानः) पवित्र और (परिषद्यः) सभा में कल्याण करने वालों को मारने वाले (असि) हैं जैसे (प्रतक्वा) हर्षित और (नभः) दूसरे के पदार्थ हर लेने वाले (असि) हैं (हव्यसूदनः) जैसे होम के द्रव्य को यथायोग्य व्यवहार में लाने वाले और (मृष्टः) सुख दुःख को सहन करने और करानेवाले (असि) हैं जैसे (स्वर्ज्योतिः) अन्तरिक्ष को प्रकाश करनेवाले और (ऋतधामा) सत्यधाम युक्त (असि) हैं वैसे ही उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानते हैं ॥३२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिए ॥ ३२ ॥

समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

पदार्थ—जैसे परमेश्वर (समुद्रः) सब प्राणियों का गमनागमन कराने हारे (विश्वव्यचाः) जगत् में व्यापक और (अजः) अजन्मा (असि) है (एकपात्) जिसके एक पाद में विश्व है (अहिः) वा व्यापनशील (बुध्न्यः) तथा अन्तरिक्ष में होनेवाला (असि) है और (वाक्) वाणीरूप (असि) है (ऐन्द्रम्) परमैश्वर्य्य का (सदः) स्थान रूप है और (ऋतस्य) सत्य के (द्वारौ) मुखों को (मा सन्ताप्तम्) सन्ताप करानेवाला नहीं है (अध्वपते) हे धर्म्मव्यवहार के मार्गों को पालन करने हारे विद्वानो ! वैसे तुम भी संताप न करो। हे ईश्वर ! (मा) मुझ को (अध्वनाम्) धर्मशिल्प के मार्ग से (प्रतिर) पार कीजिये और (मे) मेरे (अस्मिन्) इस (देवयाने) विद्वानों के जाने आने योग्य (पथि) मार्ग में जैसे (स्वस्ति) सुख (भूयात्) हो वैसा अनुग्रह कीजिये ॥३३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर वा जगत् के कारणरूप जीव को अनादित्व होने वा जन्म न होने से अविनाशीपन है। परमेश्वर की कृपा, उपासना सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ के साथ वर्त्तमान हुए मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उसमें सुख होता है और आलसी मनुष्यों को नहीं होता ॥३३॥

मित्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरा स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिंसिष्ट ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे (सगराः) अन्तरिक्ष अवकाश युक्त (अग्नयः) अच्छे अच्छे पदार्थों को प्राप्त करनेवाले विद्वान् लोगो ! तुम (मा) मुझको (मित्रस्य) मित्र की दृष्टि से (ईक्षध्वम्) देखिये। आप (सगराः) विद्योपदेश अवकाशयुक्त (स्थ) हूजिये और जैसे आप (अग्नयः) संसाधित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं वैसे (सगरेण) अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (रौद्रेण) शत्रुओं को रोदन करनेवाली (नाम्ना) प्रसिद्ध (अनीकेन) सेना से (मा) मुझे (पात) पालिये (अग्नयः) जैसे ज्ञानी लोग सब प्रकार सब को सुख देते हैं वैसे (पिपृत) सुखों से पूरण कीजिये (गोपायत) और सब ओर से पालन कीजिये और कभी (मा) मुझ को (मा हिंसिष्ट) नष्ट मत कीजिये (वः) इससे आपके लिए (मे) मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥३४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुखी करते हैं वैसे इन विद्वानों को कार्यों के करने में चतुर और विद्यायुक्त होकर विद्यार्थी लोग सेवा से सुखी करें ॥३४॥

ज्योतिरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है—

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां समित् । त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यऽउरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा । जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे (सोम) ऐश्वर्य्य देनेवाले जगदीश्वर ! आप (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (विश्वरूपम्) सब रूपयुक्त (ज्योतिः) सब के प्रकाश करनेवाले (समित्) अच्छे प्रकाशित (असि) हैं (तनूकृद्भ्यः) शरीरों को संपादन करने (द्वेषोभ्यः) और द्वेष करनेवाले जीवों तथा (अन्यकृतेभ्यः) अन्य मनुष्यों के किये हुए दुष्ट कर्म्मों से (यन्ता) नियम करनेवाले (असि) हैं उन से (उरु) बहुत (वरूथम्) उत्तम गृह (स्वाहा) वाणी (अप्तुः) व्यापक (आज्यस्य) विज्ञान को (जुषाणः) सेवन करता हुआ मनुष्य (स्वाहा) वेदवाणी को (वेतु) जाने ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जिससे परमेश्वर सब लोकों का नियम करनेवाला है इससे ये नियम में चलते हैं ॥३५॥

अग्ने नयेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वरप्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सबको अच्छे मार्ग में पहुंचाने (देव) और सब आनन्दों को देनेवाले (विद्वान्) समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर ! आप कृपा से (राये) मोक्षरूप उत्तम धन के लिये (सुपथा) जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम कर्म, विज्ञान वा प्रजा को प्राप्त होते हैं वैसे (अस्मान्) हम लोगों को (नय) प्राप्त कीजिये और (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) दुःखफलरूपी पाप को (अस्मत्) हम लोगों से (युयोधि) दूर कीजिये। हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) अत्यन्त (नम उक्तिम्) नमस्काररूप वाणी को (विधेम) कहते हैं ॥३६॥

भावार्थ—अत्रोपमालङ्कारः। जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन करके इस लोक के सुखों को उनके कर्मानुसार देता है वैसे ही न्याय करने हारे भी किया करें ॥३६॥

अयं न इत्यस्य गस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर की उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है—

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥३७॥

पदार्थ—यह (**अग्निः**) परमेश्वर का उपासक जन (**नः**) हम प्रजास्थ जीवों की (**वरिवः**) निरन्तर रक्षा (**कृणोतु**) करे । जैसे कोई वीर पुरुष अपनी सेना को लेकर संग्राम में निन्दित दुष्ट वैरियों को पहिले ही जा घेरता है वैसे (**अयम्**) यह युद्ध करने में कुशल सेनापति (**वाजसातौ**) संग्राम में दुष्ट शत्रुओं को (**पुरः**) पहिले ही (**एतु**) जा घेरे और जैसे (**अयम्**) यह वीरों को हर्ष देनेवाला सेनापति दुष्ट शत्रुओं को (**प्रभिन्दन्**) छिन्न भिन्न करता हुआ (**वाजान्**) संग्रामों को (**जयतु**) जीते (**अयम्**) यह विजय कराने वाला सेनापति (**जर्हृषाणः**) निरन्तर प्रसन्न होकर (**स्वाहा**) युद्ध के प्रबन्ध की श्रेष्ठ बोलियों को बोलता हुआ (**जयतु**) अच्छी तरह जीते ॥३७॥

भावार्थ—जो लोग परमेश्वर की उपासना नहीं करते हैं उनका विजय सर्वत्र नहीं होता । जो अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुषों का सत्कार करके सेना नहीं रखते हैं उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है इससे मनुष्यों को चाहिए कि दो प्रबन्ध अर्थात् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा वीरों की रक्षा सदा करते रहें ॥३७॥

उरु विष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे है यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

पदार्थ—जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है वैसे हे विद्यादि गुणों में व्याप्त होनेवाले वीर पुरुष ! अपने विद्या के फल को (**उरु**) बहुत (**वि**) अच्छी तरह (**क्रमस्व**) पहुँच (**क्षयाय**) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य (**नः**) हम लोगों को (**कृधि**) कीजिए । हे (**घृतयोने**) विद्यादि सुशिक्षायुक्त पुरुष ! जैसे अग्नि घृत पी के प्रदीप्त होता है वैसे तू भी अपने गुणों में (**घृतम्**) घृत को (**प्रप्र पिब**) बारम्बार पीके शरीर बलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज् आदि विद्वान् लोग (**यज्ञपतिम्**) यजमान की रक्षा करते हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं वैसे तू भी (**स्वाहा**) यज्ञ की क्रिया से (**यज्ञम्**) यज्ञ के (**तिर**) पार हो ॥३८॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालने से सब जीवों को सुख देता है वैसे आनन्द में हम सभों को रहना उचित है । जैसे अग्नि काष्ठ आदि इन्धन वा घृत आदि पदार्थों को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है वैसे हम लोगों को भी शत्रुओं को जीत प्रकाशित होना चाहिए और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करनेवाले यजमान को पाकर अपने कामों को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा सभापति को पाकर अपने अपने सुखों को सिद्ध किया करें ॥३८॥

देव सवितरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । सोमसवितारौ देवते । आद्यस्य साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । एतत्त्वमित्युत्तरस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है—

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् । एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ२ऽउपागाऽइदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥

पदार्थ—हे (**देव**) सब विद्याओं के प्रकाश करनेवाले ऐश्वर्य्यवान् विद्वान् सभाध्यक्ष ! जैसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्य्य को रखता हूँ वैसे तू जो (**एषः**) यह (**ते**) तेरा (**सोमः**) ऐश्वर्य्यसमूह है (**तम्**) उसको (**रक्षस्व**) रख । जैसे मुझ को शत्रुजन दुःख नहीं दे सकते हैं वैसे (**त्वाम्**) तुझे भी (**मा दभन्**) न दे सकें । हे (**देव**) सुख के देने और (**सोम**) सज्जनों के मार्ग में चलाने हारे राजा ! (**त्वम्**) तू (**एतत्**) इस कारण सभाध्यक्ष और (**देवः**) परिपूर्ण विद्या प्रकाश में स्थित हुआ (**देवान्**) श्रेष्ठ विद्वानों के (**उप**) समीप (**अगाः**) जा और मैं भी जाऊं । जैसे मैं (**इदम्**) इस आचरण को करके (**रायः**) अत्यन्त धन की (**पुष्टचा**) पुष्टताई के साथ (**मनुष्यान्**) विचारवान् पुरुष और (**देवान्**) विद्वानों को प्राप्त होकर (**वरुणस्य**) दुःख से तिरस्कार करनेवाले दुष्टजन के (**पाशात्**) बन्धन से (**मुच्ये**) छूटूं वैसे तू भी (**निः**) निरन्तर छूट ॥३९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस अप्राप्त ऐश्वर्य्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति हो उसकी रक्षा और उन्नति, धार्मिक मनुष्यों का सङ्ग और इससे सज्जनों का सत्कार तथा धर्म का अनुष्ठान कर विज्ञान को बढ़ा के दुःखबन्धन से छूटें ॥३९॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने व्रतपास्ते व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि । यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥ ४० ॥

पदार्थ—(**व्रतपाः**) जैसे सत्य का पालने हारा विद्वान् हो वैसे (**अग्ने**) हे विशेष ज्ञानवान् पुरुष ! जो मेरा (**व्रतपाः**) सत्यविद्या गुणों का पालने हारा आचार्य्य (**अभूत्**) हुआ था वैसे मैं (**ते**) तेरा होऊं (**या**) जो (**तव**) तेरी (**तनूः**) विद्या आदि गुणों में व्याप्त होनेवाला देह है (**सा**) वह (**मयि**) तेरे मित्र मुझ में भी हो (**एषा**) यह (**त्वयि**) मेरे मित्र मुझ में भी हो (**या**) जो (**मम**) मेरी (**तनूः**) विद्या की फैलावट है (**सा**) वह (**त्वयि**) मेरे पढ़ाने वाले तुझ में हो (**इयम्**) यह (**मयि**) तेरे शिष्य मुझ में बुद्धि हो (**व्रतपते**) हे सत्य आचरणों के पालने हारे ! जैसे सत्य गुण सत्य उपदेश रक्षक विद्वान् होता है वैसे मैं और तू (**यथायथम्**) यथायुक्त मित्र होकर (**व्रतानि**) सत्य आचरणों का वर्त्ताव वर्तें । हे मित्र ! जैसे (**तव**) तेरा (**दीक्षापतिः**) यथोक्त उपदेश का पालनेहारा तेरे लिए (**दीक्षाम्**) सत्य का उपदेश (**अमंस्त**) करना जान रहा है वैसे मेरा मेरे लिए (**अनु**) जाने । जैसे तेरा (**तपस्पतिः**) अखंड ब्रह्मचर्य्य का पालनेहारा आचार्य तेरे लिए (**तपः**) पहिले क्लेश और पीछे सुख देने हारे ब्रह्मचर्य्य को करना जान रहा है वैसे मेरा अखंड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा मेरे लिए जाने ॥ ४० ॥

भावार्थ—जैसे पहिले विद्या पढ़ानेवाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होना चाहिए । जब तक मनुष्य सुख दुःख हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते इससे मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें ॥ ४० ॥

उरु विष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थ—जैसे सब पदार्थों में व्याप्त होने वाला पवन चलता है वैसे हे विद्या गुणों में व्याप्त होनेवाले विद्वन् ! (**उरु**) अत्यन्त विस्तारयुक्त (**क्षयाय**) विद्योन्नति के लिए (**विक्रमस्व**) अपनी विद्या के अंगों से परिपूर्ण हो और (**नः**) हम लोगों को सुखी (**कृधि**) कर । जैसे जल का निमित्त विजुली है वैसे हे पदार्थ ग्रहण करने वाले विद्वन् ! बिजुली के समान (**घृतम्**) जल (**पिब**) पी और जैसे मैं यज्ञपति को दुःख से पार करता हूँ वैसे तू भी (**स्वाहा**) अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्मों को सेवन करके (**प्रप्रतिर**) दुःखों से अच्छे प्रकार पार हो ॥ ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिए ॥४१॥

अत्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध मनुष्य न सेवने चाहियें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अत्यन्याँ२ऽअगां नान्याँ२ऽउपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः । तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ ४२ ॥

पदार्थ—हे (**वनस्पते**) सब बूटियों के रखनेवाले (**देव**) विद्वान् जन ! जैसे तू (**अन्यान्**) विद्वानों के विरोधी मूर्ख जनों को छोड़ के (**अन्यान्**) मूर्खों के विरोधी विद्वानों के समीप जाता है वैसे मैं भी विद्वानों के विरोधियों को छोड़ (**उप**) समीप (**अगाम्**) जाऊं । जो तू (**परेभ्यः**) उत्तमों से (**परः**) उत्तम और (**अवरेभ्यः**) छोटों से (**अर्वाक्**) छोटे हों (**तम्, त्वाम्**) उन्हें मैं (**अविदम्**) पाऊं । जैसे (**देवाः**) विद्वान् लोग (**देवयज्यायै**) उत्तम गुण देने के लिए (**त्वा**) तुझ को चाहते हैं वैसे हम लोग भी (**त्वा**) तुझे (**जुषामहे**) चाहें और हम लोग (**देवयज्यायै**) अच्छे अच्छे गुणों का संग होने के लिए (**त्वा**) तुझे चाहते हैं वैसे और भी ये लोग चाहें । जैसे ओषधियों का समूह (**विष्णवे**) यज्ञ के लिए सिद्ध होकर सब की रक्षा करता है वैसे हे रोगों को दूर करने और (**स्वधिते**) दुःखों का विनाश करनेवाले विद्वान् जन ! हम लोग (**त्वा**) तुझे यज्ञ के लिए चाहते हैं । श्रेष्ठ विद्वान् जन ! जैसे मैं इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता वैसे तू भी (**एनम्**) इस यज्ञ को (**मा**) मत (**हिंसीः**) बिगाड़ ॥ ४२ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि नीच व्यवहार और नीच पुरुषों को छोड़ के अच्छे अच्छे व्यवहार तथा उत्तम विद्वानों को नित्य चाहें और उत्तमों से उत्तम तथा न्यूनों से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें । यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक दूसरे के मेल से सुखी हों ॥ ४२ ॥

द्यां मा लेखीरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध करानेवाली जो विद्या है उस का नित्य सेवन करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

द्यां मा लेंखीरुन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभव अयथ्हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभंगाय । अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो वि रौह सहस्रवल्शा वि वयथ्रुहेम ।। ४३ ।।

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं सूर्य्य के समान होकर (द्याम्) उस के प्रकाश को दृष्टिगोचर नहीं करता हूँ वैसे तू भी उसको (मा, लेखीः) दृष्टिगोचर मत कर । जैसे मैं (अन्तरिक्षम्) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहीं बिगाड़ता हूँ वैसे तू भी उसको (मा, हिंसीः) मत बिगाड़ । जैसे मैं (पृथिव्या) पृथिवी के साथ होता हूँ वैसे तू भी उसके साथ (सम्, भव) हो (हि) जिस कारण जैसे (तेतिजानः) अत्यन्त पना (स्वधितिः) वज्र शत्रुओं का विनाश कर के ऐश्वर्य्य को देता है (अतः) इस कारण (अयम्) यह (त्वा) तुझे (महते) अत्यन्त श्रेष्ठ (सौभगाय) सौभाग्यपन के लिए सम्पन्न करे और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य्य को (प्रणिनाय) प्राप्त करते हैं वैसे तुझे ऐश्वर्य पहुंचावें । हे (देव) आनन्दयुक्त (वनस्पते) वनों की रक्षा करनेवाले विद्वन् ! जैसे (शतवल्शः) सैकड़ों अंकुरों वाला पेड़ फलता है वैसे तू भी इस उक्त प्रशंसनीय सौभाग्यपन से (वि, रोह) अच्छी तरह फल और जैसे (सहस्रवल्शाः) हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले वैसे हम लोग भी उक्त सौभाग्यपन से फलें फूलें ।। ४३ ।।

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस संसार में किसी को विद्या के प्रकाश का अभ्यास अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को न छोड़ना चाहिए ।। ४३ ।।

इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन, विद्वान् और परमात्मा की प्रार्थना, विद्या और विद्वान् की व्याप्ति का निरूपण, अग्नि, आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ का विवरण, योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और सूर्य के कर्म्म का कहना, प्राण और अपान की क्रिया का निरूपण, सब के नियम करनेवाले परमेश्वर की व्याप्ति का कहना, यज्ञ का अनुष्ठान, सृष्टि से उपकार लेना, सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना, सविता और सभाध्यक्ष के कर्म का उपदेश, यज्ञ से सिद्धि, ईश्वर और सभाध्यक्ष से कार्य्यों की सिद्धि तथा उनके स्वरूप और कर्मों का वर्णन, ईश्वर और विद्वानों का वर्त्ताव और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन, ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार, इन अर्थों के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अर्थों की सङ्गति चतुर्थाध्याय के अर्थों से जाननी चाहिये ।।

।। इति पञ्चमोऽध्यायः ।।

।। अथ षष्ठाध्यायारम्भः ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ।।१।।

अथ देवस्य त्वेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । सविता देवता । पंक्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः । यवोऽसीत्यस्यासुरी द्विवेत्यस्य च भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दसी । ऋषभः स्वरः ।।

अब पांचवें अध्याय के पश्चात् षष्ठाध्याय (६) का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राज्याभिषेक के लिये अच्छी शिक्षायुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आचार्य्यादि विद्वान् लोग क्या क्या उपदेश करें यह उपदेश किया है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहथ्रक्षसां ग्रीवाऽअपि कृन्तामि । यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ।। १ ।।

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (पितृषदनाः) पितरों में रहनेवाले विद्वान् लोग (देवस्य) प्रकाशमय और (सवितुः) सब, विश्व के उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और उत्तम वीर्य्य से तथा (पूष्णः) पुष्टि का निमित्त जो प्राण है उस के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण से (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं वैसे ही मैं (आददे) ग्रहण करता हूँ जैसे मैं (रक्षसाम्) दुष्ट काम करनेवाले जीवों के (ग्रीवाः) गले (कृन्तामि) काटता हूँ वैसे (त्वम्) तू (अपि) भी काट । हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण तू (यवः) संयोग विभाग करनेवाला (असि) है इस कारण (अस्मत्) मुझ से (द्वेषः) द्वेष अर्थात् अप्रीति करनेवाले वैरियों को (यवय) अलग कर और (अरातीः) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं उन को (यवय) पृथक् कर । जैसे मैं न्याय व्यवहार से रक्षा करने योग्य जन (दिवे) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिए (त्वाम्) न्याय प्रकाश करनेवाले तुझ को (अन्तरिक्षाय) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने के लिए (त्वाम्) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देनेवाले को तथा (पृथिव्यै) भूमि के राज्य के लिए (त्वा) तुझ राज्य विस्तार करनेवाले को पवित्र करता हूँ वैसे ये लोग भी (त्वा) आप को (शुन्धन्ताम्) पवित्र करें जैसे तू (पितृषदनम्) विद्वानों के घर के समान (असि) है पिता के सदृश सब प्रजा को पाला कर । हे सभापति की नारि स्त्री ! तू भी ऐसा ही किया कर ।। १ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्या में अतिविचक्षण पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते हैं वे सुखसंयुक्त होते हैं ।। १ ।।

अग्रेणीरित्यस्य शाकल्य ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । देवस्त्वेत्यस्य स्वराट् पंक्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर वह तिलक किया हुआ सभाध्यक्ष कैसे वर्ते इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्रेणीरसि स्वावेशऽउन्नेतॄणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्यामग्रेणास्पृक्षऽआन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳहीः ।। २ ।।

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (अग्रेणीः) पढ़ानेवाला अपने शिष्यों को वा पिता अपने पुत्रों को उन के पठनारंभ से ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय धार्मिकतायुक्त करता है वैसे हम सभों के लिए तू (असि) है (उन्नेतॄणाम्) जैसे उत्कर्षता पहुंचानेवालों का राज्य हो वैसे (स्वावेशः) अच्छे गुणों में प्रवेश करने वाले के समान होकर तू (एतस्य) इस राज्य के पालने को (वित्तात्) जान । हे राजन् ! जैसे (त्वा) तुझे सभासद् जन (सुपिप्पलाभ्यः) अच्छे-अच्छे फलोंवाली (ओषधीभ्यः) ओषधियों से (मध्वा) निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से (अनक्तु) सींचें वैसे प्रजाजन भी तुझे सींचें । तू इस राज्य में अपने (अग्रेण) प्रथम यश से (द्याम्) विद्या और राजनीति के प्रकाश को (अस्पृक्षः) स्पर्श कर (मध्येन) मध्य अर्थात् तदन्तर बढ़ाये हुए यश से (आन्तरिक्षम्) धर्म के विचार करने के मार्ग को (आप्राः) पूरा कर और (उपरेण) अपने राज्य के नियम से (पृथिवीम्) इस भूमि के राज्य को प्राप्त होकर (अदृंहीः) दृढ़कर बढ़ता न जा और (देवः) समस्त राजाओं का राजा (सविता) सब जगत् को अन्तर्यामीपन से प्रेरणा देनेवाला जगदीश्वर (त्वा) तुझ को राजा कर के तेरे पर (स्थास्यति) अधिष्ठाता होकर रहेगा ।। २ ।।

भावार्थ—प्रजा पुरुषों के स्वीकार किये विना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता तथा राजा आदि सभा जिस को आदर से न चाहे वह मन्त्री होने को वा

कोई पुरुष अपनी कीर्त्ति की उत्तरोत्तर दृढ़ता के विना सेना का ईश्वर यथायोग्य न्याय से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मण्डल की ईश्वरता के योग्य नहीं हो सकता ॥ २ ॥

या ते धामानीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । आर्च्युष्णिक् छन्दः । अत्राहेत्यस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ब्रह्मवनित्वेत्यस्य निचृत्प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह वाणिज्य कर्म करनेवाले मनुष्य उसको कैसा जानकर आश्रय करते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽअयासः । अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि । ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! (या) जिन में (ते) तेरे (धामानि) धाम अर्थात् जिन में प्राणी सुख पाते हों उन स्थानों को हम (गमध्यै, उश्मसि) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य्य का प्रकाश है वैसे (यत्र) जिन में (उरुगायस्य) स्तुति करने के योग्य (विष्णोः) सर्वव्यापक परमेश्वर की (भूरिशृङ्गाः) अत्यन्त प्रकाशित (गावः) किरणें चैतन्यकला (अयासः) फैली हैं (अत्र, अह) इन्हीं में (तत्) उस परमेश्वर का (परमम्) सब प्रकार उत्तम (पदम्) और प्राप्त होने योग्य परमपद विद्वानों ने (भूरि, अव, भारि) बहुधा अवधारण किया है इस कारण (त्वा) तुझे (ब्रह्मवनि) परमेश्वर वा वेद का विज्ञान (क्षत्रवनि) राज्य और वीरों की चाहना (रायस्पोषवनि) धन की पुष्टि के विभाग करनेवाले आप को मैं (पर्यूहामि) विविध तर्कों से समझता हूँ कि तू (ब्रह्म) परमात्मा और वेद को (दृꣳह) दृढ़ कर अर्थात् अपने चित्त में स्थिर कर वह (क्षत्रम्) राज्य और धनुर्वेदवेत्ता क्षत्रियों को (दृꣳह) उन्नति दे (आयुः) अपनी अवस्था को (दृꣳह) बढ़ा अर्थात् ब्रह्मचर्य्य से दृढ़ कर तथा (प्रजाम्) अपने संतान वा रक्षा करने योग्य प्रजाजनों को (दृꣳह) उन्नति दे ॥ ३ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानों की कामना के विना कोई भी पुरुष सुख नहीं पा सकता न कोई जन परमेश्वर का अनादर करके चक्रवर्ती राज्य भोगने के योग्य होता है न ही कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था संतान और प्रजा की रक्षा के विना अच्छी उन्नति कर सकता है ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्म्माणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभापति अपने सभासद् आदि को क्या क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे सभासदो ! जैसे (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (युज्यः) सदाचारयुक्त (सखा) मित्र (विष्णोः) उस व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जो संसार का बनाना पालन और संहार करना सत्यगुण है उनको देखता हुआ मैं (यतः) जिस ज्ञान से (व्रतानि) अपने मन में सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) बाँध रहा अर्थात् नियम कर रहा हूँ वैसे उसी ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणों को (पश्यत) दृढ़ता से देखो कि जिससे राज्यादि कामों में सत्य व्यवहार करने वाले होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर से प्रीति और सत्याचरण के विना कोई भी मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव को देखने के योग्य नहीं हो सकता न वैसे हुए विना राज्यकर्मों को यथार्थ न्याय से सेवन कर सकता है न सत्य धर्माचार से रहित जन राज्य बढ़ाने को कभी समर्थ हो सकता है ॥ ४ ॥

तद्विष्णोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त मन्त्र के विषय में जो अनुष्ठान कहा है उससे क्या सिद्ध होता है यह अगले मन्त्र में कहा है—

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे सभ्यजनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से (सूरयः) स्तुति करनेवाले वेदवेत्ता जन (विष्णोः) संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाले परमेश्वर के जिस (परमम्) अत्यन्त उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद को (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आततम्) व्याप्त (चक्षुः) नेत्र के (इव) समान (सदा) सब समय में (पश्यन्ति) देखते हैं (तत्) उसको तुम लोग भी निरन्तर देखो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (पश्यत) इस पद का अनुवर्त्तन किया जाता है और पूर्णोपमालङ्कार है । निर्वृत्त अर्थात् छुट गये हैं पाप जिनके वे विद्वान् लोग अपनी विद्या के प्रकाश से जैसे ईश्वर के गुणों को देख के सत्य धर्माचारयुक्त होते हैं वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये ॥ ५ ॥

परिवीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विद्वांसो देवताः । आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । दिवः सूनुरसीत्यस्य भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह उपासना करने वाला सभाध्यक्ष किस प्रकार का होता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम् । दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोकऽआरण्यस्ते पशुः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष राजन् ! तू (परिवीः) सब विद्याओं में अच्छे आप्त होने वाले के समान (असि) है (त्वाम्) तुझे (दैवीः) विद्वानों के (विशः) संतान के समान प्रजा (परि, व्ययन्ताम्) सर्वव्याप्त अर्थात् सब ठिकाने व्याप्त हुए तेरे कार्यकारी हों (दिवः) प्रकाश के पुञ्ज सूर्य से (सूनुः) उत्पन्न हुए किरण समुदाय के तुल्य तू (असि) है (ते) तेरा (पृथिव्याम्) पृथिवी से (लोकः) राजधानी का देश हो और (आरण्यः) बनैले सिंहादि दुष्ट पशु तेरे वश्य भी हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—राज्य का आचरण करते हुए राजा को प्रजा लोग प्राप्त होकर अपने पदार्थों का कर चुकावें और वह राजा उन प्रजाओं की रक्षा करने के लिए सिंह और शूकर वा अन्य और दुष्ट जीव तथा डाकू चोर उठाईगीरे और गाँठ कटे आदि दुष्ट जनों को दण्ड से वश में कर अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म में प्रवृत्त करें ॥ ६ ॥

उपावीरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः त्वष्टा देवता । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह प्रजाजनों के प्रति क्या करे और वे प्रजाजन उस राजा के प्रति क्या करें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् । देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (त्वष्टः) सब दुःखों के छेदन करनेवाले सभाध्यक्ष ! जिससे तू (उपावीः) शरणागत पालक सदृश (असि) है इसी से (दैवीः) विद्वानों से सम्बन्ध रखनेवाली दिव्यगुण सम्पन्न (विशः) प्रजा जैसे (उशिजः) श्रेष्ठ गुण शोभित कामना के योग्य (वह्नितमान्) अतिशय धर्म मार्ग में चलने और चलानेवाले (देवान्) विद्वानों को (उपप्रागुः) प्राप्त हुए वैसे तुझे भी प्राप्त होते हैं जैसे तेरे आश्रय से प्रजा धनाढ्य होके सुखी हो वैसे तू भी प्राप्त हुए प्रजाजनों से सत्कृत होकर (रमस्व) हर्षित हो जैसे तू प्रजा के पदार्थों को भोगता है वैसे प्रजा भी तेरे (हव्या) भोगने योग्य अमूल्य (वसु) धनादि पदार्थों को (स्वदन्ताम्) भोगें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे गुण के ग्रहण करनेवाले उत्तम गुणवान् विद्वान् का सेवन करते हैं वैसे न्याय करने में चतुर राजा का सेवन प्रजाजन करते हैं इसी से परस्पर की प्रीति से सब की उन्नति होती है ॥ ७ ॥

रेवती रमध्वमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ऋतस्य त्वेत्यस्य निचृत् प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पिता आदि रक्षकजन अपने सन्तानों को कैसे पढ़ाने वालों को कैसे दें ? और वह उन को कैसे स्वीकार करें, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

रेवतो रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि । ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (रेवतीः) अच्छे धनवाले सन्तानो ! तुम विद्या और अच्छी शिक्षा में (रमध्वम्) रमो । हे (बृहस्पते) वेदवाणी के पालनेवाले विद्वन् ! आप (ऋतस्य) सत्य न्याय व्यवहार से प्राप्त (वसूनि) धन अर्थात् हम लोगों के दिये द्रव्य आदि पदार्थों को (धारय) स्वीकार कीजिये (**अब अध्यापक का उपदेश शिष्य के लिए है**) हे राजन् ! प्रजा पुरुष ! वा (मानुषः) सर्व शास्त्र का विचार करनेवाला मैं (पाशेन) अविद्या बन्धन से तुझे (प्रति मुञ्चामि) छुटाता हूँ तू विद्या और अच्छी शिक्षाओं में धृष्ट हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वानों को अपनी शिक्षा से कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणियों को परमेश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों का बोध कराना चाहिए कि जिससे वे मूर्खपनरूपी बन्धन को छोड़ के सदा सुखी हों ॥ ८ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सविता आश्विनौ पूषा च देवताः । प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । अग्नीषोमाभ्यामित्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नि युनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे शिष्य ! मैं (सवितुः) समस्त ऐश्वर्ययुक्त (देवस्य) वेदविद्या प्रकाश करनेवाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) गुणों से वा (पूष्णः) पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से (त्वाम्) तुझे (आददे) स्वीकार करता हूँ तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझको जो ब्रह्मचर्य धर्म के अनुकूल जल और ओषधि हैं उन (अद्भ्यः) जल और (ओषधीभ्यः) गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से (नियुनज्मि) नियुक्त करता हूं तुझे मेरे समीप रहने के लिए तेरी (माता) जननी (अनु, मन्यताम्) अनुमोदित करे (पिता) पिता अनुमोदित करे (सगर्भ्यः) सहोदर (भ्राता) भाई (अनु) अनुमोदित करे (सखा) मित्र (अनु) अनुमोदित करे और (सयूथ्यः) तेरे सहवासी (अनु) अनुमोदित करें (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझको (प्र उक्षामि) उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य्य के नियम पालने के लिये अभिषिक्त करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस संसार में माता पिता बन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को चाहिये कि अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य करावें जिससे वे गुणवान् हों ॥९॥

अपां पेरुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवता । प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । सन्त इत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या, उत्तम शिक्षा ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुरु किया करे यह अगले मन्त्र में कहा है—

अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः । सं ते प्राणो वातेन गच्छताᳪ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥१०॥

पदार्थ—हे शिष्य ! तू (अपाम्) जल आदि पदार्थों का (पेरुः) रक्षा करनेवाला (असि) है, संसारस्थ जीव तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए (देवीः) दिव्य सुख देनेवाले (आपः) जलों को (चित्) और (स्वात्तम्) धर्मयुक्त व्यवहार से प्राप्त हुए पदार्थों को (देवहविः) विद्वानों के भोगने के समान (संस्वदन्तु) अच्छी तरह से भोगें (आशिषा) मेरे आशीर्वाद से (ते) तेरे (अङ्गानि) शिर आदि अवयव (यजत्रैः) यज्ञ करानेवालों के साथ (सम्) सम्यक् नियुक्त हों और (प्राणः) प्राण (वातेन) पवित्र वायु के संग (सङ्गच्छताम्) उत्तमता से रमण करे और तू (यज्ञपतिः) विद्याप्रचाररूपी यज्ञ का पालन करनेहारा हो ॥ १० ॥

भावार्थ—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । जो यज्ञ में दी हुई आहुति हैं वे सूर्य से उपस्थित रहती हैं अर्थात् सूर्य की आकर्षणशक्ति से परमाणुरूप होकर सब पदार्थ पृथिवी के ऊपर आकाश में हैं उसी पृथिवी का जल ऊपर खिंचकर वर्षा होती है उस वर्षा से अन्न और अन्न से सब जीवों को सुख होता है इस परम्परा सम्बन्ध से यज्ञशोधित जल और होम किये द्रव्य को सब जीव भोगते हैं ॥ १० ॥

घृतेनाक्तावित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । वातो देवता । भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब यज्ञ करने और करानेवालों के कर्त्तव्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाᳪ रेवति यजमाने प्रियं धाऽआ विश । उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव । वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (घृतेन, अक्तौ) घृतप्रसक्त अर्थात् घृत चाहने और यज्ञ के कराने हारो ! तुम (पशून्) गौ आदि पशुओं को (त्रायेथाम्) पालो, तुम एक एक जन (देवेन) सर्वगत (वातेन) पवन से (सजूः) समान प्रीति करते हुए समान (उरोः) विस्तृत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुए (प्रियम्) प्रिय सुख को (रेवति) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त (यजमाने) यज्ञ करनेवाले धनी पुरुष में (धाः) स्थापन करो तथा (आविश) उसके अभिप्राय को प्राप्त होओ और (अस्य) इसके (हविषः) होम के योग्य पदार्थ को (त्मना) आप ही निष्पादन किये हुए के समान (यज) अग्नि में होमो अर्थात् यज्ञ की किसी क्रिया का विपरीत भाव न करो और (अस्य) इसके (तन्वा) शरीर के साथ (सम्, भव) एकीभाव रक्खो किन्तु विरोध से द्विधा आचरण मत करो । हे (वर्षो) यज्ञकर्म से सर्व सुख पहुँचाने वालो ! (देवेभ्यः, स्वाहा, देवेभ्यः, स्वाहा) सत्कर्म के अनुष्ठान से प्रकाशित धर्मिष्ठ ज्ञानी पुरुष जो कि यज्ञ देखने की इच्छा करते हुए वार वार यज्ञ में आते हैं उन विद्वानों के लिए अच्छे सत्कार करानेवाली वाणियों को उच्चारण करते हुए यज्ञपति को (वर्षीयसि) सर्व सुख वर्षानेवाले यज्ञ में (धाः) अभियुक्त करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—यज्ञ के लिए घृत आदि पदार्थ चाहनेवाले मनुष्य को गाय आदि पशु रखने चाहिये और घृतादि अच्छे अच्छे पदार्थों से अग्निहोत्र से लेकर उत्तम उत्तम यज्ञों से जल और पवन की शुद्धि कर सब प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिए ॥ ११ ॥

माहिर्भूरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

वह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि । घृतस्य कुल्याऽउप‌ऽऋतस्य पथ्याऽअनु ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (आतान) अच्छे प्रकार सुख से विस्तार करनेवाले विद्वन् ! तू (मा) मत (अहिः) सर्प के समान कुटिलमार्गगामी और (मा) मत (पृदाकुः) मूर्खजन के समान अभिमानी वा व्याघ्र के समान हिंसा करनेवाला (भूः) हो (ते) (नमः) सब जगह तेरे सुख के लिए अन्न आदि पदार्थ पहले ही प्रवृत्त हो रहे हैं और (अनर्वा) अश्व आदि सवारी के बिना निराश्रय पुरुष जैसे (घृतस्य) जल की (कुल्याः) बड़ी धाराओं को प्राप्त हो वैसे (ऋतस्य) सत्य के (पथ्याः) मार्गों को प्राप्त हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि दुष्ट जीवों के समान धर्म-मार्ग में कुटिल न होना चाहिए किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिए ॥१२॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ॥ गान्धारः स्वरः ॥

अब ब्रह्मचारी बालक और ब्रह्मचारिणी कन्याओं को गुरुपत्नियों का कैसे मान करना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है—

देवीरापः शुद्धा वोड्ढ्वᳪ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे कुमारियो ! तुम जैसे (आपः) श्रेष्ठगुणों में रमण करनेवाली (शुद्धाः) सत्कर्माऽनुष्ठान से पवित्र (देवीः) विद्या प्रकाशवती विदुषी स्त्रीजन (देवेषु) श्रेष्ठ विद्वान् पतियों के निमित्त (सुपरिविष्टाः) और उन की सेवा करने को सन्मुख प्रवृत्त होकर अपने समान पतियों को (वोढ्वम्) प्राप्त होती हैं और वे विद्वान् पतिजन उन स्त्रियों को प्राप्त होते हैं वैसे तुम हो और हम भी (परिवेष्टा) उस कर्म की योग्यता को (भूयास्म) पहुँचें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विदुषी अर्थात् विद्वानों की स्त्री पातिव्रत धर्म में तत्पर रहती हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्या भी उन के गुण और स्वभाव वाली हों और ब्रह्मचारी भी गुरुजनों की शिक्षा से स्त्री और पुरुष आदि की रक्षा करने में तत्पर हों ॥ १३ ॥

वाचं त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने-अपने विद्यार्थियों को अच्छे-अच्छे गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं यह अगले मन्त्र में कहा है—

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं से (ते) तेरी (वाचम्) जिस से बोलता है उस वाणी को (शुन्धामि) शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानुकूल करता हूँ (ते) तेरे (चक्षुः) जिस से देखता है उस नेत्र को (शुन्धामि) शुद्ध करता हूँ (ते) तेरी (नाभिम्) जिस से नाड़ी आदि बांधे जाते हैं उस नाभि को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ (ते) तेरे (मेढ्रम्) जिससे मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ (ते) तेरे (पायुम्) जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ (चरित्रान्) समस्त व्यवहारों को (शुन्धामि) पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूँ तथा गुरुपत्नी पक्ष में सर्वत्र "करती हूँ" वह योजना करनी चाहिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिए कि वेद और उपवेद तथा वेद के अङ्ग और उपाङ्गों की शिक्षा से देह इन्द्रिय अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की संतुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें ॥ १४ ॥

मनस्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

फिर भी प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में उक्त अर्थ का प्रकाश किया है—

मनस्तऽआ प्यायतां वाक्तऽआ प्यायतां प्राणस्तऽआ प्यायतां चक्षुस्तऽआ प्यायताᳪ श्रोत्रं तऽआ प्यायताम् । यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳪ हिᳪसीः ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे शिष्य ! मेरी शिक्षा से (**ते**) तेरा (**मनः**) मन(**आप्यायताम्**) पर्य्याप्त गुणयुक्त हो (**ते**) तेरा (**प्राणः**) प्राण (**आप्यायताम्**) बलादि गुणयुक्त हो (**ते**) तेरी (**चक्षुः**) दृष्टि (**आप्यायताम्**) निर्मल हो (**ते**) तेरे (**श्रोत्रम्**) कर्ण (**आप्यायताम्**) सद्गुण व्याप्त हों (**ते**) तेरा (**यत्**) जो (**क्रूरम्**) दुष्ट व्यवहार है वह (**निः, स्त्यायताम्**) दूर हो और (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**आस्थितम्**) निश्चय है वह (**आप्यायताम्**) पूरा हो इस प्रकार से (**ते**) तेरा समस्त व्यवहार (**शुध्यतु**) शुद्ध हो और (**अहोभ्यः**) प्रतिदिन तेरे लिए (**शम्**) सुख हो । हे (**ओषधे**) प्रवर अध्यापक ! आप (**एनम्**) इस शिष्य की (**त्रायस्व**) रक्षा कीजिये और (**मा, हिंसीः**) व्यर्थ ताड़ना मत कीजिये । हे (**स्वधिते**) प्रशस्ताध्यापिके ! तू इस कुमारिका शिष्या की (**त्रायस्व**) रक्षा कर और इस को अयोग्य ताड़ना मत दे ॥ १५ ॥

भावार्थ—सत्कर्म करने से सब की उन्नति होती है इस से सब मनुष्यों को चाहिए कि सुशिक्षा पाकर समस्त सत्कर्मों का अनुष्ठान करें इसी से अध्यापक जन गुण ग्रहण कराने ही के लिए शिष्यों को ताड़ना देते हैं वह उनकी ताड़ना अत्यन्त सुख की करनेवाली होती है । स्त्री और पुरुष इस प्रकार उपदेश करें कि हे सर्वोत्तम अध्यापक ! यह आपका विद्यार्थी जैसे शीघ्र विद्वान् हो जाय वैसा प्रयत्न कीजिये । हे प्रिये ! यह कन्या जिस प्रकार अतिशीघ्र विद्यायुक्त हो वैसा काम कर ॥ १५ ॥

रक्षसां भाग इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते ॥

ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब शिष्यवर्गों में से प्रति शिष्य को यथायोग्य उपदेश करना अगले मन्त्र में कहा है—

रक्ष॑सां भा॒गो॑ऽसि॒ निर॑स्त॒ꣳ रक्ष॑ऽइ॒दम॒हꣳ रक्षो॒ऽभिति॑ष्ठामी॒दम॒हꣳ रक्षो॑ऽव॑ बाधऽइ॒दम॒हꣳ रक्षो॑ऽध॒मं तमो॑ नयामि । घृ॒तेन॑ द्यावापृथिवी॒ प्रोर्णु॑वाथा॒ं वायो॒ वे स्तो॒काना॑म॒ग्निराज्य॑स्य वेतु॒ स्वाहा॒ स्वाहा॑कृतेऽ-ऊ॒र्ध्वन॑भसं मारु॒तं ग॑च्छतम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे दुष्टकर्म करनेवाले जन ! तू (**रक्षसाम्**) दुष्टों अर्थात् परार्थ नाश कर अपना अभीष्ट करनेवालों का (**भागः**) भाग (**असि**) है इस कारण (**रक्षः**) राक्षस स्वभावी तू (**निरस्तम्**) निकल जा (**अहम्**) मैं (**इदम्**) ऐसे (**रक्षः**) स्वार्थसाधक को (**अभितिष्ठामि**) तिरस्कार करने के लिए सन्मुख होता हूँ और केवल सन्मुख ही नहीं किन्तु (**अहम्**) मैं (**इदम्**) ऐसे (**रक्षः**) दुष्ट जन को (**अवबाधे**) अत्यन्त तिरस्कार के साथ पीटता हूँ जिस से वह फिर सामने न हो और (**अहम्**) मैं (**इदम्**) ऐसे (**रक्षः**) दुष्ट जन को (**अधमम्**) दुःसह दुःख को (**नयामि**) पहुंचाता हूँ । अब श्रेष्ठ गुणग्राही शिष्य के लिए उपदेश है । हे वायो ! गुणग्राहक सत् असत् व्यवहार की विवेचना करनेवाला तू (**स्तोकानाम्**) सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारों को (**वेः**) जान और तेरे यज्ञशोधित जल से (**द्यावापृथिवी**) सूर्य और भूमि (**प्रोर्णुवाथाम्**) अच्छे प्रकार आच्छादित हों (**अग्निः**) समस्त विद्यायुक्त विद्वान् तेरे घृत आदि पदार्थ के (**स्वाहा**) अच्छे होम किये हुए को (**वेतु**) जाने तथा (**स्वाहाकृते**) हवन किये हुए स्नेहद्रव्य को प्राप्त पूर्वोक्त जो सूर्य और भूमि हैं वे (**ऊर्ध्वनभसम्**) तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए जल को ऊपर पहुंचानेवाले (**मरुतम्**) पवन को (**गच्छतम्**) प्राप्त हों ॥ १६ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् श्रेष्ठ और अनिष्ट के विवेक करनेवाले विद्वान् लोग अपने शिष्यों में यथायोग्य शिक्षा विधान करते हैं यज्ञकर्म से जल और पवन की शुद्धि उस की शुद्धि से वर्षा और उस से सब प्राणियों को सुख उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

इदमाप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आपो देवताः । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब निर्दोष जल से क्या सम्भावना करनी चाहिए यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हताव॒द्यं च॒ मलं॒ च॒ यत् । यच्चा॑भिदु॒द्रोहानृ॑तं॒ यच्च॑ शे॒पेऽअ॑भी॒रुण॑म् । आपो॑ मा॒ तस्मा॒देन॑सः॒ पव॑मानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

पदार्थ—भो (**आपः**) सर्वविद्याव्यापक विद्वान् लोगो ! आप जैसे (**आपः**) जल शुद्धि करते हैं वैसे मेरा (**यत्**) जो (**अवद्यम्**) अकथनीय निन्द्यकर्म (**च**) और विकार तथा (**यत्**) जो (**मलम्**) अविद्यारूपी मल है (**इदम्**) इस को (**प्रवहत**) बहाइये अर्थात् दूर कीजिये (**च**) और (**यत्**) जो मैं (**अनृतम्**) झूठ मूठ किसी से (**दुद्रोह**) द्रोह करता होऊं (**च**) और (**यत्**) जो (**अभीरुणम्**) निर्भय निरपराधी पुरुष को (**शेपे**) उलाहने देता हूँ (**तस्मात्**) उस उक्त (**एनसः**) पाप से (**मा**) मुझे अलग रक्खो (**च**) और जैसे (**पवमानः**) पवित्र व्यवहार (**मा**) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखता है वैसे (**च**) अन्य मनुष्यों को भी रक्खे ॥ १७ ॥

भावार्थ—जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि का निदान है वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कामों को करें । मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥ १७ ॥

सं त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । रेडसीत्यस्य दैवीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब रण में युद्ध करनेवाला शिष्य कैसा हो यह अगले मन्त्र में कहा है—

सं ते॒ मनो॒ मन॑सा॒ सं प्रा॒णः प्रा॒णेन॑ गच्छताम् । रेड॑स्य॒ग्निष्ट्वा॑ श्रीणा॒त्वाप॑स्त्वा॒ सम॑रिण॒न्वात॑स्य त्वा॒ ध्राज्यै॑ पू॒ष्णो रꣳह्या॑ऽऊ॒ष्मणो॑ व्यथिष॒त्प्रयु॑तं॒ द्वेषः॑ ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे युद्धशील शूरवीर ! संग्राम में (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**मनसा**) विद्याबल और (**प्राणः**) प्राण (**प्राणेन**) प्राण के साथ (**सम्, गच्छताम्**) संगत हो । हे वीर ! तू (**रेट्**) शत्रुओं को मारनेवाला (**असि**) है (**त्वा**) तुझे (**अग्निः**) युद्ध से उत्पन्न हुए क्रोध का अग्नि (**श्रीणातु**) अच्छे पचावे तू (**प्रयुतम्**) करोड़ों प्रकार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है तुझको तज्जन्य (**ऊष्मणः**) गरमी का (**द्वेषः**) द्वेष मत (**व्यथिषत**) अत्यन्त पीड़ायुक्त करे जिस से (**वातस्य, ध्राज्यै**) पवन की गति के तुल्य गति के लिए वा (**पूष्णः**) पुष्टिकारक सूर्य के (**रंह्यै**) वेग के तुल्य वेग के लिए अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्ति होने के लिए (**आपः**) अच्छे-अच्छे जल (**सम्, अरिणन्**) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अपने बल के बढ़ानेवाले अन्न जल और शस्त्र अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मार कर संग्राम जीतें ॥१८॥

घृतं घृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।

ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिए यह अगले मन्त्र में कहा है—

घृ॒तं घृ॑तपावानः पिबत॒ वसां॑ वसापावानः पिबता॒न्तरि॑क्षस्य ह॒विर॑सि॒ स्वाहा॑ । दिशः॑ प्र॒दिश॑ऽआ॒दिशो॑ वि॒दिश॑ऽ उ॒द्दिशो॑ दि॒ग्भ्यः स्वाहा॑ ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (**घृतपावानः**) जल के पीनेवाले वीर पुरुषो ! तुम (**घृतम्**) अमृतात्मक जल को (**पिबत**) पिओ । हे (**वसापावानः**) नीति के पालनेवाले वीरो ! तुम (**वसाम्**) जो वीर रस की वाणी अर्थात् शत्रुओं को स्तंभन करनेवाली है उस को (**पिबत**) पिओ । हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूहादि सेनारचक प्रत्येक वीर को तू जिस से (**अन्तरिक्षस्य**) आकाश की (**हविः**) रुकावट अर्थात् युद्ध में बहुतों के बीच शत्रुओं को घेरना (**असि**) है उस (**स्वाहा**) शोभन वाणी से जो (**दिशः**) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण (**प्रदिशः**) आग्नेयी नैर्ऋति वायवी और ऐशानी उपदिशा (**आदिशः**) आमने सामने मुहाने की दिशा (**विदिशः**) पीछे की दिशा और (**उद्दिशः**) जिस ओर शत्रु लक्षित हों वे दिशा हैं उन सब (**दिग्भ्यः**) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को बांट के शत्रुओं को जीतो ॥ १९ ॥

भावार्थ—सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी २ सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्ट कर युद्ध के समय चक्रव्यूह, श्येनव्यूह तथा शंकटव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मों से सब दिशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओं को घेर घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । त्वष्टा देवता ।

ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

ऐ॒न्द्रः प्रा॒णोऽअङ्गे॑ऽअङ्गे॒ नि दी॑ध्यदै॒न्द्रऽउ॑दा॒नोऽअङ्गे॑ऽअङ्गे॒ निधी॑तः । देव॑ त्वष्ट॒र्भूरि॑ ते॒ सꣳस॑मेतु॒ सल॑क्ष्मा॒ यद्विषु॑रूपं॒ भवा॑ति । दे॒व॒त्रा यन्त॒मव॑से॒ सखा॒योऽनु॑ त्वा॒ मा॒ता पि॒तरो॑ मदन्तु ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (**त्वष्टः**) शत्रुबलविदारक (**देव**) दिव्यविद्यासम्पन्न सेनापति ! आप (**अवसे**) रक्षा आदि के लिए (**अङ्गे अङ्गे**) जैसे अङ्ग अङ्ग में (**ऐन्द्रः**) इन्द्र अर्थात् जीव जिस का देवता है वह सब शरीर में ठहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को तिरस्कार करता हुआ आप ही प्रकाशित होता है वैसे आप संग्राम में सब शत्रुओं का तिरस्कार करते हुए (**निदीध्यत्**) प्रकाशित हूजिये अथवा (**अङ्गे अङ्गे**) जैसे अङ्ग २ में (**उदानः**) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुँचानेवाला उदान-वायु प्रवृत्त है वैसे अपने विभव से सब वीरों को उन्नति देते हुए संग्राम में (**निधीतः**) निरंतर स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हूजिये (**यत्**) जो (**ते**) आप का (**विषुरूपम्**) विविध रूप (**सलक्ष्म**) परस्पर युद्ध का लक्षण (**भवाति**) हो वह (**संग्रामे**) संग्राम में (**भूरि**) विस्तार से (**संसम्, एतु**) प्रवृत्त हो । हे सेनाध्यक्ष ! तेरी रक्षा के लिए सब शूरवीर पुरुष (**सखायः**) मित्र हो के वर्त्तें (**माता**) माता (**पितरः**) पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभचिन्तक (**देवत्रा**) देवों अर्थात् विद्वानों धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (**यंतम्**) प्राप्त होते हुए (**त्वा**) तेरा (**अनुमदन्तु**) अनुमोदन करें ॥ २० ॥

भावार्थ—सेनापति सब प्राणियों का मित्रभाव वर्त्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान प्रवर्त्तमान हैं, वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजापुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं को जीतें ॥ २० ॥

समुद्रं गच्छेत्यादेर्दीर्घतमा ऋषिः । सेनापतिर्देवता । याजुष्य उष्णिषश्छन्दांसि । ऋषभः स्वरः ॥

अब राज्यकर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है—

समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा । मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मना पृण स्वाहा ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू (**स्वाहा**) बड़े बड़े अश्वतरी नाव अर्थात् धूआंकश आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ (**समुद्रम्**) समुद्र को (**गच्छ**) जा (**स्वाहा**) खगोलप्रकाश करनेवाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**गच्छ**) जा (**स्वाहा**) वेदवाणी से (**देवम्**) प्रकाशमान (**सवितारम्**) सब को उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर को (**गच्छ**) जान (**स्वाहा**) वेद और सज्जनों के सङ्ग से शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (**मित्रावरुणौ**) प्राण और उदान को (**गच्छ**) जान (**स्वाहा**) ज्योतिषविद्या से (**अहोरात्रे**) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (**गच्छ**) जान (**स्वाहा**) वेदाङ्ग विज्ञानसहित वाणी से (**छन्दांसि**) ऋग्यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों को (**गच्छ**) अच्छे प्रकार से जान (**स्वाहा**) भूमियान आकाश मार्ग विमान और भूगोल वा भूगर्भ आदि यान बनाने की विद्या से (**द्यावापृथिवी**) भूमि और सूर्यप्रकाशस्थ अभीष्ट देश देशान्तरों को (**गच्छ**) जान और प्राप्त हो (**स्वाहा**) संस्कृत वाणी से (**यज्ञम्**) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को (**गच्छ**) प्राप्त हो (**स्वाहा**) वैद्यक विद्या से (**सोमम्**) ओषधिसमूह अर्थात् सोमलतादि को (**गच्छ**) जान (**स्वाहा**) जल के गुण और अवगुणों को बोध कराने वाली विद्या से (**दिव्यम्**) व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (**नभः**) जल को (**गच्छ**) जान और (**स्वाहा**) बिजुली आग्नेयास्त्रादि तारबरकी तथा प्रसिद्ध सब कलायंत्रों को प्रकाशित करने वाली विद्या से (**अग्निम्**) विद्युत् रूप अग्नि को (**गच्छ**) अच्छी प्रकार जान और (**मे**) मेरे (**मनः**) मन को (**हार्दि**) प्रीतियुक्त (**यच्छ**) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्त और (**ते**) तेरे (**धूमः**) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का धूंआं (**दिवम्**) सूर्य्यप्रकाश को तथा (**ज्योतिः**) उस की लपट (**स्वः**) अन्तरिक्ष को (**गच्छतु**) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में (**स्वाहा**) काष्ठ आदि पदार्थों को भस्म कर उस (**भस्मना**) भस्म से (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**आपृण**) ढांप दे ॥ २१ ॥

भावार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष राज्य और वनिज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायंत्रों को बनाकर तथा सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपार्जन करें ॥ २१ ॥

माप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वरुणो देवता । ब्राह्मी स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । सुमित्रिया न इत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वनिजव्यापार करने के लिए राज्यप्रबन्ध अगले मन्त्र में कहा है—

मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (**राजन्**) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (**आपः**) जल और (**ओषधीः**) अन्न पान पदार्थ तथा किराने आदि वनज के पदार्थों को (**मा**) मत (**हिंसी**) नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (**ततः**) उस (**धाम्नः धाम्नः**) स्थान स्थान से (**नः**) हम लोगों को (**मा**) मत (**मुञ्च**) त्यागो । हे (**वरुण**) न्याय करने वाले सभापति ! किये हुए न्याय में (**अघ्न्याः**) न मारने योग्य गौ आदि पशुओं की शपथ है (**इति**) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी (**शपामहे**) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे । हे वरुण ! आपके राज्य में (**नः**) हम लोगों को (**आपः**) जल और ओषधियां (**सुमित्रियाः**) श्रेष्ठमित्र के तुल्य (**सन्तु**) हों तथा (**यः**) जो (**अस्मान्**) हम लोगों से (**द्वेष्टि**) वैर रखता है (**च**) और (**वयम्**) हम लोग (**यम्**) जिससे (**द्विष्मः**) वैर करते हैं (**तस्मै**) उस के लिये वे ओषधियां (**दुर्मित्रियाः**) दुःख देने वाले शत्रु के तुल्य (**सन्तु**) हों ॥ २२ ॥

भावार्थ—राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेवें किन्तु राज्य पालन के लिए राजपुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डाकू चोर लम्पट लवाड़ कपटी कुमार्गी अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देवेंगे ॥ २२ ॥

हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अध्यन्नसूर्या देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किससे क्या क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ२ऽआ विवासति । हविष्मान्देवो ऽअध्वरो हविष्माँ२ऽअस्तु सूर्य्यः ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! तुम उन कामों को किया करो कि जिन से (**इमाः**) ये (**आपः**) जल (**हविष्मतीः**) अच्छे अच्छे दान और आदान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (**हविष्मान्**) पवन उपकार अनुपकार को (**आ**) अच्छे प्रकार (**विवासति**) प्राप्त होता है (**देवः**) सुख का देनेवाला (**अध्वरः**) यज्ञ भी (**हविष्मान्**) परमानन्दप्रद (**सूर्य्यः**) तथा सूर्यलोक भी (**हविष्मान्**) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (**अस्तु**) हो ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुँचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम उत्तम सुख का करने वाला होता है ॥ २३ ॥

अग्नेर्व इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आर्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अमूर्य्येत्यस्य त्रिपाद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है—

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! (**अमूः**) वे (**याः**) जो स्वयंवर विवाह से पतियों को स्वीकार किए हुए हैं उन के समान जो (**इन्द्राग्न्योः**) सूर्य और बिजुली के गुणों को (**भागधेयीः**) अलग अलग जानने वाली (**स्थ**) हैं (**मित्रावरुणयोः**) प्राण और उदान के गुणों को (**भागधेयीः**) अलग अलग जानने वाली (**स्थ**) हैं (**विश्वेषाम्**) विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के (**भागधेयीः**) सेवनेवाली (**स्थ**) हैं उन (**वः**) तुम सभी को (**अपन्नगृहस्य**) जिसको गृहकृत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानुष्ठान करनेवाले और (**अग्नेः**) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की (**सदसि**) सभा में मैं (**सादयामि**) स्थापित करता हूँ और जो (**याः उप, सूर्ये**) सूर्यलोक गुणों में (**उप**) उपस्थित होती हैं (**वा**) अथवा (**याभिः**) जिन के (**सह**) साथ (**सूर्य**) सूर्यलोक वर्त्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर हैं (**ताः**) वे सब (**नः**) हमारे (**अध्वरम्**) घर के काम काज को विवाह करके (**हिन्वन्तु**) बढ़ावें ॥ २४ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचारी और अपने तुल्य गुण कर्म स्वाभावयुक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह करके सदा सुखी रहें और जिस का पति वा जिस की स्त्री मर जाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

हृदे त्वेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्षी विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे क्या-क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है—

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे ब्रह्मचारिणी कन्या ! तू जैसे हम सब (**देवेषु**) अपने सुख देने वाले पतियों के निकट रहने और (**होत्राः**) अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली हैं वैसी हो और जैसे हम (**हृदे**) सौहार्द सुख के लिए (**त्वा**) तुझे वा (**मनसे**) भला बुरा विचारने के लिए (**त्वा**) तुझे वा (**दिवे**) सब सुखों के प्रकाश करने के लिए (**त्वा**) तुझे वा (**सूर्य्याय**) सूर्य्य के सदृश गुणों के लिए (**त्वा**) तुझे शिक्षा करती है वैसे तू भी (**दिवि**) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त (**इमम्**) इस (**अध्वरम्**) निरन्तर सुख देनेवाले गृहाश्रमरूपी यज्ञ को (**उर्ध्वम्**) उन्नति (**यच्छ**) दिया कर ॥ २५ ॥

भावार्थ—जैसे अपने पतियों की सेवा करती हुई उनके समीप रहने वाली पतिव्रता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कामों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिए ॥ २५ ॥

सोम राजन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । शृणोत्वित्यस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में किया है—

सोमं राजन्विश्वास्त्वं प्रजाऽउपावरोह विश्वास्त्वां प्रजाऽउपावरोहन्तु। शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः। श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त (**राजन्**) समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष ! (**त्वम्**) तू पिता के तुल्य (**विश्वाः**) समस्त (**प्रजाः**) प्रजा-जनों का (**उपावरोह**) समीपवर्ती होकर रक्षा कर और (**त्वाम्**) तुझे (**विश्वाः**) समस्त (**प्रजाः**) प्रजा जन पुत्र के समान (**उपावरोहन्तु**) आश्रित हों। हे सभाध्यक्ष ! आप जैसे (**समिधा**) प्रदीप्त करने वाले पदार्थ से (**अग्निः**) सर्व गुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (**मे**) मेरी (**हवम्**) प्रगल्भवाणी को (**शृणोतु**) सुन के न्याय से प्रकाशित हूजिये (**च**) और (**आपः**) सब गुणों में व्याप्य (**धिषणाः**) विद्या बुद्धियुक्त (**देवीः**) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्रीजनों के न्याय को (**शृण्वंतु**) सुनें। हे (**ग्रावाणः**) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो ! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से (**श्रोत**) सुनो तथा (**देवः**) विद्या से प्रकाशित (**सविता**) ऐश्वर्यवान् सभापति (**विदुषः**) विद्वानों के (**यज्ञम्**) यज्ञ के (**न**) समान (**मे**) हमारे प्रजा लोगों के (**हवम्**) निवेदन को (**स्वाहा**) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो वैसे (**शृणोतु**) सुने ॥ २६ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्यव्यवहारों की पालना करें ॥ २६ ॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। आपो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव को वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है—

देवीरापोऽअपां नपाद्यो वऽऊर्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः। तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे (**आपः**) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (**देवीः**) शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो ! तुम राजसेवी (**स्थ**) हो (**शुक्रपेभ्यः**) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणयुक्त विद्वानों के लिए (**येषाम्**) जिन (**वः**) तुम्हारा बली रूप विद्वानों का (**यः**) जो (**अपां नपात्**) जलों के नाशरहित स्वाभाविक (**ऊर्मिः**) जलतरंग के सदृश प्रजारक्षक (**इन्द्रियावान्**) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और (**मदिन्तमः**) आनन्द देनेवाला (**हविष्यः**) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न (**भागः**) भाग है वे तुम सब (**तम्**) उसको (**स्वाहा**) आदर के साथ ग्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (**देवत्रा**) दिव्य भोग देते हैं वैसे तुम भी इस को आनन्द (**दत्त**) देओ ॥ २७ ॥

भावार्थ—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में संमति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त सभापति को राजा मान कर राज्य पालन के लिए कर देकर न्याय को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

कार्षिरसीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। प्रजा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या-क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है—

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽउन्नयामि। समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे वैश्यजन ! तू (**कार्षिः**) हल जोतने योग्य (**असि**) है (**त्वा**) तुझे (**समुद्रस्य**) अन्तरिक्ष के (**अक्षित्यै**) परिपूर्ण होने के लिए (**सम् उत् नयामि**) अच्छे प्रकार उत्कर्ष देता हूँ तुम सब लोग (**अद्भिः**) यज्ञशोधित जलों से (**आपः**) जल और (**ओषधीभिः**) ओषधियों से (**ओषधीः**) ओषधियों को (**सम् अग्मत**) प्राप्त होओ ॥ २८ ॥

भावार्थ—क्षेत्र आदि स्थानों में अनेक ओषधियां उत्पन्न होती हैं, ओषधियों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ, यज्ञों से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु ऊंचे होते हैं उन से आकाश भरा रहता है इस कारण विद्वान् लोग निर्बुद्धि जनों को खेती बारी ही के कामों में रखते हैं क्योंकि वे विद्या का अभ्यास करने को समर्थ ही नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

यमग्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब वह अध्यापक को क्या कहता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जब कभी विवेक के करने वाले आप ! (**पृत्सु**) संग्रामों में (**यम्**) जिस मनुष्य की (**अव**) रक्षा करते और (**वाजेषु**) अन्न आदि पदार्थों की सिद्धि करने के निमित्त (**यम्**) जिसको (**जुनाः**) नियुक्त करते हो (**सः**) वह (**शश्वतीः**) निरन्तर अनादिरूप (**इषः**) अपनी प्रजाओं का (**यन्ता**) निर्वाह करने हारा होता है अर्थात् उन के नियमों को पहुँचाता है ॥ २९ ॥

भावार्थ—गुरुजनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है ॥ २९ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सविता देवता। स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब सभापति कर धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार करे यह गुरुजन का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम्। उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥

पदार्थ—सब सुख देने (**सवितुः**) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किए हुए संसार में (**अश्विनोः**) सूर्य और चन्द्रमा के (**बाहुभ्याम्**) बल और पराक्रम गुणों से (**पूष्णः**) पुष्टि करने वाले सोम आदि ओषधिगण के (**हस्ताभ्याम्**) रोगनाश करने और धातुओं की समता रखनेवाले गुणों से (**त्वा**) तुझ कर धन देनेवाले को (**आददे**) स्वीकार करता हूँ। तू (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य वाले मेरे लिए (**उत्तमेन**) उत्तम अर्थात् सभ्यता की (**पविना**) वाणी से (**इमम्**) इस (**गभीरम्**) अत्यन्त समझने योग्य (**सुषूतमम्**) सब पदार्थों से उत्पन्न हुए (**ऊर्जस्वन्तम्**) राज्य को बलिष्ठ करने वाले (**मधुमन्तम्**) समस्त मधु आदि श्रेष्ठ पदार्थयुक्त (**पयस्वन्तम्**) दुग्ध आदि सहित कर धन को (**अध्वरम्**) निष्कपट (**कृधि**) कर दे (**देवश्रुतः**) श्रेष्ठ राज्य गुणों को सुनने वाले तुम मेरे (**निग्राभ्यः**) निरन्तर स्वीकार करने योग्य (**स्थ**) हों (**मा**) मुझे इस कर के देने से (**तर्प्पयत**) तृप्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थ—प्रजाजनों की योग्यता है कि सभाध्यक्ष को प्राप्त होकर उस के लिए अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दें जिस कारण राजा, प्रजापालन के लिए संसार में उत्पन्न हुआ है इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है ॥ ३० ॥

मनो म इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। प्रजासभ्यराजानो देवताः। उष्णिषश्छन्दांसि। ऋषभः स्वरः ॥

अब राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

मनो मे तर्प्पयत वाचं मे तर्प्पयत प्राणं मे तर्प्पयत चक्षुर्मे तर्प्पयत श्रोत्रं मे तर्प्पयतात्मानं मे तर्प्पयत प्रजां मे तर्प्पयत पशून्मे तर्प्पयत गणान्मे तर्प्पयत गणा मे मा वि तृषन् ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे सभ्यजनो और प्रजाजनो ! तुम अपने गुणों से (**मे**) मेरे (**मनः**) मन को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो (**मे**) मेरी (**वाचम्**) वाणी को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो (**मे**) मेरे (**प्राणम्**) प्राण को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो (**मे**) मेरे (**चक्षुः**) नेत्रों को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो (**मे**) मेरे (**श्रोत्रम्**) कानों को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो (**मे**) मेरे (**आत्मानम्**) आत्मा को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो (**मे**) मेरी (**प्रजाम्**) संतानादि प्रजा को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो (**मे**) मेरे (**पशून्**) गौ, हाथी, घोड़े आदि पशुओं को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो (**मे**) मेरे (**गणान्**) सेवकों को (**तर्प्पयत**) तृप्त करो जिससे (**मे**) मेरे (**गणाः**) राज्य वा प्रजा कर्माधिकारी वा सेवकजन कामों में (**मा**) मत (**वितृषन्**) उदास हों ॥ ३१ ॥

भावार्थ—राज्य का प्रबन्ध सभाधीन ही होने के योग्य है जिससे प्रजाजन राजसेवक और राजपुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने अपने कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे को आनन्दित करते रहें ॥ ३१ ॥

इन्द्राय त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सभापतीराजा देवता। पञ्चपाज्ज्योतिष्मती जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किसलिए प्रजाजनों को सभापति का स्वीकार करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतऽइन्द्राय त्वादित्यवतऽइन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! (**वसुमते**) जिस कर्म में चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन कर अच्छे अच्छे विद्वान् होते हैं (**रुद्रवते**) जिसमें चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं उस (**इन्द्राय**) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष के लिए (**त्वा**) आपको ग्रहण करते है (**आदित्यवते**) जिसमें अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन कर सूर्य्यसदृश परम विद्वान् होते हैं उस (**इन्द्राय**) उत्तम गुण पाने के लिए (**त्वा**) आपके (**अभिमातिघ्ने**) जिस कर्म में बड़े बड़े अभिमानी शत्रुजन मारे जायं उस (**इन्द्राय**) परमोत्कृष्ट शत्रुविदारककाम के लिये (**त्वा**) आप (**सोमभृते**) उत्तम ऐश्वर्य धारण करने हारे (**श्येनाय**) युद्धादि कामों में श्येनपक्षी के तुल्य लपट झपट मारनेवाले

(त्वा) आप (रायस्पोषदे) धन की दृढ़ता देने के लिये और (अग्नये) विद्युत् आदि पदार्थों के गुण प्रकाश कराने के लिये (त्वा) आपको हम स्वीकार करते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य वरुण और धनाढ्य के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार करानेवाला सब को सुख देवे उसी को राजा मानना चाहिये ॥३२॥

यत्त इत्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः । सोमो देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुंचा सकता है यह अगले मन्त्र में कहा है—

यत्ते॑ सोम दि॒वि ज्योति॒र्यत्पृ॑थि॒व्यां यदु॒रावु॒न्तरि॑क्षे ।

तेना॒स्मै यज॑मानयोरु रा॒ये कृ॒ध्यधि॑ दा॒त्रे वो॑चः ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्य के निमित्त प्रेरणा करने हारे सभापति ! (ते) तेरा (यत्) जो (दिवि) सूर्यलोक में (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यत्) जो (उरौ) विस्तृत (अन्तरिक्षे) आकाश में (ज्योतिः) जैसे ज्योति हो वैसा राजकर्म है (तेन) उससे तू (अस्मै) इस परोपकार के अर्थ (यजमानाय) यज्ञ करते हुए यजमान के लिए (उरु, कृधि) अत्यन्त उपकार कर तथा (राये) धन बढ़ने के लिए (अधि, वोचः) अधिक अधिक राज्यप्रबन्ध कर ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को निरालस्य करता रहे जिससे वे पुरुषार्थी होकर पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें ॥३३॥

श्वात्रा स्थ इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी पथ्या बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब उक्त सभाध्यक्षादिकों की स्त्री कैसे कर्म्म करनेवाली हों यह अगले मन्त्र में कहा है—

श्वा॒त्रा स्थ॑ वृत्र॒तुरो॒ राधो॑गूर्त्ताऽअ॒मृत॑स्य॒ पत्नीः॑ ।

ता दे॑वीर्दे॑व॒त्रेमं य॒ज्ञं न॑य॒तोप॑हूताः॒ सोम॑स्य पिबत ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे (देवीः) विद्यायुक्त स्त्रियो ! तुम (वृत्रतुरः) बिजुली के सदृश मेघ की वर्षा के तुल्य सुखदायक की गति तुल्य चलने (राधोगूर्त्ताः) धन का उद्योग करने (पत्न्यः) और यज्ञ में सहाय देनेवाली (स्थ) हों (देवत्रा) तथा अच्छे अच्छे गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियों में प्रीति से स्थित हों (इदम्) इस यज्ञ को (नयत) सिद्धि को प्राप्त किया कीजिये और (उपहूताः) बुलाई हुई अपने पतियों के साथ (अमृतस्य) अति स्वादयुक्त सोम आदि ओषधियों के रस को (पिबत) पीओ ॥३४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वानों की पत्नी स्त्रीजन स्वधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार पुरुष उन अपनी स्त्रियों को निरन्तर प्रसन्न करें ऐसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें ॥३४॥

मा भेर्मेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष परस्पर कैसा वर्त्ताव वर्त्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मा भे॒र्मा संवि॑क्था॒ऽऊर्ज्जं॑ धत्स्व॒ धिष॑णे वी॒ड्वी स॒ती वी॑डयेथा॒मूर्ज्जं॑ दधाथा॒म् । पा॒प्मा ह॒तो न सोमः॑ ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे स्त्री ! तू (विड्वी) शरीरात्मबलयुक्त होती हुई पति से (मा, भेः) मत डर (मा संविक्थाः) मत कंप और (उर्ज्जम्) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को (धत्स्व) धारण कर । हे पुरुष ! तू भी वैसे ही अपनी स्त्री से वर्त्त । तुम दोनों स्त्री पुरुष (धिषणे) सूर्य्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो जिससे (वीडयेथाम्) दृढ़ बल वाले हों ऐसा वर्त्ताव वर्तते हुए तुम दोनों का (पाप्मा) अपराध (हतः) नष्ट हो और (सोमः) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण बढ़ा कर एक दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो ॥३५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्त्तें कि जिससे उनका परस्पर भय और उद्वेग नष्ट होकर आत्मा की दृढ़ता, उत्साह और गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़े और वे दोष तथा दुःख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आह्लादित हों ॥३५॥

प्रागपागित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सोमो देवता । उष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

अब उनके पुत्र क्या क्या करें और वे पुत्रों को कैसे पालें यह अगले मन्त्र में कहा है—

प्रागपा॒गुद॑गध॒राक्स॒र्वत॑स्त्वा॒ दिश॒ऽआ धा॑वन्तु । अम्ब॒ निष्प॑र स॒मरी॑र्विदाम् ॥ ३६ ॥

पदार्थ—हे (अम्ब) प्रेम से प्राप्त होनेवाली माता ! जो तेरी (अरीः) संतानादि प्रजा (प्राक्) पूर्व (अपाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (अधराक्) दक्षिण और भी (सर्वतः) सब (दिशः) दिशाओं से (त्वा) तुझे (आ, धावंतु) धाय धाय प्राप्त हों उन्हें (निः, पर) निरन्तर प्यार कर और वे भी तुझे (सम्) अच्छे भाव से जानें ॥३६॥

भावार्थ—माता और पिता को योग्य है कि अपने संतानों को विद्यादि अच्छे अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उनके शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिससे वे नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता पिता की सब प्रकार सेवा करें ॥ ३६ ॥

त्वमङ्ग इत्यस्य गोतम ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

अब प्रजाजन किये हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

त्वम॒ङ्ग प्रशं॑ꣳसिषो दे॒वः श॑विष्ठ॒ मर्त्य॑म् ।

न त्वद॒न्यो म॑घवन्नस्ति मर्डि॒तेन्द्र॒ ब्रवी॑मि ते॒ वचः॑ ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे (अंग, शविष्ठ) अत्यन्त बलयुक्त (मघवन्) महाराज के समान (इन्द्र) ऋद्धि सिद्धि देनेहारे सभापते ! (त्वम्) आप (मर्त्यम्) प्रजास्थ मनुष्य को (प्रशंसिषः) प्रशंसायुक्त कीजिये । आप (देवः) देव अर्थात् शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतने वाले हैं (न) नहीं (त्वदन्यः) तुम से अन्य (मर्डिता) सुख देने वाला है ऐसा मैं (ते) आप को (वचः) पूर्वोक्त राज्यप्रबन्ध के अनुकूल वचन (ब्रवीमि) कहता हूँ ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे ईश्वर सर्वसुहृत् पक्षपातरहित है वैसे सभापति राज्यधर्म्मानुवर्त्ती राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा निन्दनीय की निन्दा दुष्ट को दण्ड श्रेष्ठ की रक्षा कर के सब का अभीष्ट सिद्ध करे ॥३७॥

इस अध्याय में राज्य के अभिषेकपूर्वक शिक्षा, राज्य का कृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, सभाध्यक्षादिकों का काम, विष्णु का परम पद वर्णन, सभाध्यक्ष को ईश्वरोपासना करनी, राजा प्रजा का आपस में कृत्य, गुरु को शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना, यज्ञ का अनुष्ठान, होम किये द्रव्य के फल का वर्णन, विद्वानों के लक्षण, मनुष्यकृत्य, मनुष्यों का परस्पर वर्तमान दुष्ट दोष निवृत्ति फल, ईश्वर से क्या क्या प्रार्थना करनी चाहिये, रण में योद्धा का वर्णन, युद्धकृत्य निरूपण, युद्ध में परस्पर वर्त्ताव का प्रकार, वीरों को उत्साह देना, राज्यप्रबन्ध का कारण और साध्य साधन, राजा के प्रति ईश्वरोपदेश, राज्यकर्म का अनुष्ठान, राजा और प्रजा का कृत्य, राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्त्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्ष करना, प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा प्रजा को स्वीकार करने के योग्य सभापति का लक्षण, प्रजा और राजसभा की परस्पर प्रतिज्ञा करनी, सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन, प्रजा सुख के लिये सभापति के कर्त्तव्य कामों का अनुष्ठान, सभापत्यादिकों की पत्नियों को क्या करना चाहिये, स्त्री पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव, माता पिता के प्रति सन्तानों का काम और सभापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है, इससे पञ्चम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की संगति है, ऐसा जानना चाहिये ।

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तमाऽध्यायारम्भः ॥

अब सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

वाचस्पतय इत्यस्य गोतम ऋषिः । प्राणो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में सृष्टि के निमित्त बाहर और भीतर के व्यवहार का उपदेश है—

वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअंशुभ्यां गभस्तिपूतः ।
देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य तू (**वाचः**) वाणी के (**पतये**) पालन हारे ईश्वर के लिये (**पवस्व**) पवित्र हो (**वृष्णः**) बलवान् पुरुष के (**अंशुभ्याम्**) भुजाओं के समान बाहर भीतर का व्यवहार होने के लिये जैसे (**गभस्तिपूतः**) सूर्य्य की किरणों से पदार्थ पवित्र होते हैं वैसे शास्त्रों से (**देवाः**) दिव्य गुण युक्त विद्वान् होकर (**येषाम्**) जिन विद्वानों की (**भागः**) सेवन करने के योग्य है उन (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**पवस्व**) पवित्र हो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब जीवों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करनेवाले नित्य पवित्र परमात्मा को जान और विद्वानों के संग से विद्यादि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी को बोलने वाले हों ॥१॥

मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वर्त्तें यह अगले मंत्र में कहा है—

मधुमतीर्नऽइषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन् ! आप (**नः**) हम लोगों के लिए (**मधुमतीः**) मधुरादिगुणसहित (**इषः**) अन्न आदि पदार्थों को (**कृधि**) कीजिये तथा हे (**सोम**) शुभ कर्मों में प्रेरणा करनेवाले विद्वान् ! मैं (**यत्**) जिससे (**ते**) आपका (**अदाभ्यम्**) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (**जागृवि**) प्रसिद्ध (**नाम**) नाम है (**तस्मै**) उस (**सोमाय**) ऐश्वर्य की प्राप्ति और (**ते**) आपके लिए अर्थात् आपकी आज्ञा वर्त्तने के लिए (**स्वाहा**) सत्यधर्म्म युक्त क्रिया (**स्वाहा**) सत्य वाणी और (**उरु, अन्तरिक्षम्**) अवकाश को (**एमि**) प्राप्त होता हूँ ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों को सम्पादन करें वैसे ही औरों के लिये भी दिया करें और जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा करे वैसे ही औरों की आप भी किया करें जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुण वाले होते हैं वैसे आप भी हों ॥२॥

स्वांकृत इत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर अगले मंत्र में आत्मक्रिया का निरूपण किया है—

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**अंशो**) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो तू (**दिव्येभ्यः**) दिव्य (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**पार्थिवः**) पृथिवी पर प्रसिद्ध (**इन्द्रियेभ्यः**) इन्द्रियां और (**मरीचिपेभ्यः**) किरणों के समान पवित्र करनेवाले (**देवेभ्यः**) विद्वानों और वायु आदि पदार्थों के लिए (**स्वाङ्कृतः**) स्वयं सिद्ध (**असि**) है उस (**त्वा**) तुझको (**मनः**) विज्ञान और (**स्वाहा**) वेद वाणी (**अष्टु**) प्राप्त हों । हे (**सुभव**) श्रेष्ट गुणवान् होनेवाले मैं (**सूर्य्याय**) सर्वप्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये (**त्वम्**) तेरी (**ईडे**) प्रशंसा करता हूँ तू भी (**तत्**) उस प्रशंसा के योग्य (**सत्यम्**) सत्य परमात्मा को प्रीति से ग्रहण कर (**उपरिप्रुता**) सब से उत्तम उत्कर्ष पाने हारे तूने (**भंगेन**) मर्दन से (**असौ**) यह अज्ञानरूप शत्रु (**फट्**) झट (**हतः**) मारा उस (**त्वाम्**) तुझे (**प्राणाय**) जीवन के लिए प्रशंसित करता और (**व्यानाय**) विविध प्रकार के सुख प्राप्त करने के लिए (**त्वा**) तुझे प्रशंसा देता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जीव आप ही स्वयंसिद्ध अनादिरूप है इससे इन को चाहिये कि देह प्राण इन्द्रियों और अन्त-करण को निर्मल धर्म्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त होकर परमेश्वर की उपासना में स्थिर हो तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को झट पट मार और भलों की रक्षा करके आनन्दित रहें ॥३॥

उपयामगृहीत इत्यस्य गोतम ऋषिः । मघवा देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे यह उपदेश अगले मंत्र में किया है—

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोमम् ।
उरुष्य रायऽएषो यजस्व ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे योग चाहनेवाले ! जिससे तू (**उपयामगृहीतः**) योग में प्रवेश करनेवाले नियमों से ग्रहण किये हुए के समान (**असि**) है इस कारण (**अन्तः**) भीतरले जो प्राणादि पवन, मन और इन्द्रियां हैं इनको (**यच्छ**) नियम में रख । हे (**मघवन्**) परमपूजित धनी के समान ! तू (**सोमम्**) योगविद्यासिद्ध ऐश्वर्य्य को (**पाहि**) रक्षा कर (**उरुष्य**) और जो अविद्या आदि क्लेश हैं उनको अत्यन्त योगविद्या के बल से नष्ट कर जिससे (**रायः**) ऋद्धि और (**इषः**) इच्छासिद्धियों को (**आयजस्व**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । योग के जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि यम नियम आदि योग के अङ्गों से चित्त आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ऋद्धि सिद्धियों को सिद्ध करें ॥ ४ ॥

अन्तस्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब ईश्वर जो योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है उसके लिए विज्ञान का उपदेश अगले मन्त्र से करता है—

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्य्यामे मघवन् मादयस्व ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) योगी ! मैं परमेश्वर (**ते**) तेरे (**अन्तः**) हृदयाकाश में (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्य भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थों को (**दधामि**) स्थापित करता हूँ तथा (**उरु**) विस्तृत (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश को (**अन्तः**) शरीर के भीतर (**दधामि**) धारता हूँ (**सजूः**) मित्र के समान तू (**देवेभ्यः**) विद्वानों से विद्या को प्राप्त होके (**अवरैः, परैः, च**) थोड़े वा बहुत योग व्यवहारों से (**अन्तर्य्यामे**) भीतरले नियमों में वर्त्तमान होकर अन्य सब को (**मादयस्व**) प्रसन्न किया कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर का यह उपदेश है कि ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उतने ही मेरे ज्ञान में वर्त्तमान हैं । योगविद्या को नहीं जानने वाला उनको नहीं देख सकता और मेरी उपासना के विना कोई योगी नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

स्वाङ्कृतोसीत्यस्य गोतम ऋषिः । योगी देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर योगविद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है—

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा ॥६

पदार्थ—हे (**सुभव**) शोभन ऐश्वर्य्ययुक्त योगी ! तू (**स्वाङ्कृतः**) अनादि काल से स्वयंसिद्ध (**असि**) है । मैं (**दिव्येभ्यः**) शुद्ध (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और (**मरीचिपेभ्यः**) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से (**त्वा**) तुझको स्वीकार करता हूँ (**पार्थिवेभ्यः**) पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिए भी (**त्वा**) तुझको स्वीकार करता हूँ (**सूर्य्याय**) सूर्य्य के समान योग प्रकाश करने के लिए वा (**उदानाय**) उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थ (**त्वाम्**) तुझे ग्रहण करता हूँ जिससे (**त्वा**) तुझ योग चाहने वाले को (**मनः**) योग समाधियुक्त मन और (**स्वाहा**) सत्यानुष्ठान करने की क्रिया (**अष्टु**) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करनेवाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उसको स्वीकार नहीं करता जब तक जिसको ईश्वर स्वीकार नहीं करता तब तक उसका पूरा-पूरा आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता तब तक उसको अत्यन्त सुख भी नहीं होता ॥ ६ ॥

आ वायो भूषेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर योगी का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है—

आ वायो भूष शुचिपाऽउप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार । उपो तेऽअन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥७॥

पदार्थ—हे (शुचिपाः) अत्यन्त शुद्धता को पालने और (वायो) पवन के तुल्य योग क्रियाओं में प्रवृत्त होनेवाले योगी ! तू (सहस्रम्) हजारों (नियुतः) निश्चित शमादिक गुणों को (आभूष) सब प्रकार सुभूषित कर । हे (विश्ववार) समस्त गुणों के स्वीकार करनेवाले ! जो (ते) तेरा (अद्यम्) अच्छी तृप्ति देने वाला (अन्धः) अन्न है उस को (उपो) तेरे समीप (अयामि) पहुँचाता हूँ । हे (देव) योग बल से आत्मा को प्रकाश करने वाले ! (यस्य) जिससे तेरा (पूर्वपेयम्) श्रेष्ठ योगियों को रक्षा करने के योग्य योगबल है जिसको तू (दधिषे) धारण कर रहा है (वायवे) उस योग के जानने के लिए (त्वा) तुझे स्वीकार करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता ईश्वर के तुल्य अच्छे-अच्छे गुणों में व्याप्त होता है और अन्न वा जल के सदृश सुख देता है वही योग के बीच में समर्थ होता है ॥ ७ ॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । इन्द्रवायू इत्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीत इत्यस्यार्षी स्वराड् गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह योगी कैसा होता है यह अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि । उपयामगृहीतोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्रवायू) प्राण और सूर्य के समान योगशास्त्र के पढ़ने-पढ़ाने वालो ! (हि) जिससे (इमे) ये (सुताः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) सुखकारक जलादि पदार्थ (वाम्) तुम दोनों को (उशन्ति) प्राप्त होते हैं इससे तुम (प्रयोभिः) इन मनोहर पदार्थों के साथ ही (आगतम्) जानो । हे योग चाहने वाले ! तू इस योग पढ़ाने वाले अध्यापक से (वायवे) पवन के तुल्य योगसिद्धि को पाने के लिए अथवा योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिए (उपयामगृहीतः) योग के यम नियमों के साथ स्वीकार किया गया (असि) है । हे भगवन् योगाध्यापक ! (एषः) यह योग (ते) तुम्हारा (योनिः) सब दुःखों के निवारण करनेवाले घर के समान है और (इन्द्रवायुभ्याम्) बिजुली और प्राणवायु के समान योगवृद्धि और समाधि चढ़ाने और उतारने की शक्तियों से (जुष्टम्) प्रसन्न हुए (त्वा) आपको और हे योग चाहनेवाले ! (सजोषोभ्याम्) सेवन किए हुए उक्त गुणों से प्रसन्न हुए (त्वा) तुझे मैं अपने सुख के लिए चाहता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—वे ही लोग पूर्णयोगी और सिद्ध हो सकते हैं जो कि योगविद्याभ्यास करके ईश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का यत्न किया करते और यम नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिद्धों का सेवन करते हैं वे भी इस योग सिद्धि को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं ॥ ८ ॥

अयं वामित्यस्य गृत्समद ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीतोसीत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म अगले मन्त्र में कहा है—

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमऽऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳ हवम् । उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान (ऋतावृधा) सत्य विज्ञान वर्द्धक योगविद्या के पढ़ने वालो ! (वाम्) तुम्हारा (अयम्) यह (सोमः) योग का ऐश्वर्य (सुतः) सिद्ध किया हुआ है उससे तुम (इह) यहां (मम) योगविद्या से प्रसन्न होने वाले मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुतम्) सुनो, हे यजमान ! जिससे तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ (इत्) ही (असि) है इससे मैं (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझको ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का ग्रहण श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश सुन और यमनियमों को धारण करके योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ९ ॥

राया वयमित्यस्य त्रिसदस्युर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

राया वयꣳ ससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः । तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥ १० ॥

पदार्थ—(हे ससवांसः) भले बुरे के अलग-अलग करनेवाले (देवाः) विद्वानो ! आप और (वयम्) हम लोग (यवसेन) तृण घास भुसा से (गावः) गौ आदि पशुओं के समान (हव्येन) ग्रहण करने के योग्य (राया) धन से (मदेम) हर्षित हों और हे (मित्रावरुणा) प्राण के समान उत्तम जनो ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हमारे लिए (विश्वाहा) सब दिनों में (अनपस्फुरन्तीम्) ठीक-ठीक ज्ञान देनेवाली (धेनुम्) वाणी को (धत्तम) धारण कीजिये । हे यजमान ! जिससे (ते) तेरा (एषः) यह विद्याबोध (योनिः) घर है इससे (ऋतायुभ्याम्) सत्य व्यवहार चाहनेवालों के सहित (त्वा) तुझको हमलोग स्वीकार करते हैं ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ और विद्वानों के संग से परोपकार की सिद्धि और कामना को पूर्ण करनेवाली वेदवाणी को प्राप्त होकर आनन्द में रहें ॥ १० ॥

या वां कशेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) सूर्य्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने-पढ़ाने वालो ! (या) जो (वाम्) तुम्हारी (मधुमती) प्रशंसनीय मधुरगुणयुक्त (सूनृतावती) प्रभात समय में क्रम-क्रम से प्रदीप्त होने वाली उषा के समान (कशा) वाणी है (तया) उससे (यज्ञम्) ईश्वर से संग कराने हारे योगरूपी यज्ञ को (मिमिक्षतम्) सिद्ध करना चाहो । हे योग पढ़नेवाले ! तू (उपयामगृहीतः) यमनियमादिकों से स्वीकार किया गया (असि) है (ते) तेरा (एषः) यह योग (योनिः) घर के समान सुखदायक है इससे (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ और हे योगाध्यापक ! (माध्वीभ्याम्) माधुर्य्य के लिए जो श्रेष्ठ नीति और योगरीति हैं उनके साथ वर्त्तमान (त्वा) आपका हम लोग आश्रय करते हैं अर्थात् समीपस्थ होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । योगी लोग मधुर प्यारी वाणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य वैसे योगी का सदा आश्रय करें ॥ ११ ॥

तं प्रत्नथेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में योगी के गुणों का उपदेश किया है—

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम् । प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे । उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्र णयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे योगिन् ! (उपयामगृहीतः) योग के अंगों अर्थात् शौच आदि नियमों के ग्रहण करनेवाले (असि) हैं (ते) आपका (एषः) यह योगयुक्त स्वभाव (योनिः) सुख का हेतु है । योग से आप (अपमृष्टः) अविद्यादि दोषों से अलग हुए (शण्डः) शमादि गुणयुक्त (असि) हैं (यासु) जिन योगक्रियाओं में आप (वर्द्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (विश्वथा) समस्त (प्रत्नथा) प्राचीन महर्षि (पूर्वथा) पूर्वकाल के योगी और (इमथा) वर्त्तमान योगियों के समान (ज्येष्ठतातिम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (बर्हिषदम्) हृदयाकाश में स्थिर (स्वर्विदम्) सुख लाभ करने (प्रतीचीनम्) अविद्यादि दोषों के प्रतिकूल होने (आशुम्) शीघ्र सिद्धि देने (उदयन्तम्) उत्कर्ष पहुँचाने और (धुनिम्) इन्द्रियों को कंपानेवाले (वृजनम्) योगबल को (दोहसे) परिपूर्ण करते हैं (तम्) उस योगबल को (शुक्रपाः) जो कि योगबल की रक्षा करने हारे (देवाः) योगबल के प्रकाश से प्रकाशित योगी लोग हैं, वे (त्वा) आप को (प्रणयन्तु) अच्छे प्रकार पहुँचावें । उस योगबल को प्राप्त हुए (शण्डाय) शमदमादिगुणयुक्त आपके लिए उसी योग की (अनाधृष्टा) दृढ़ वीरता (असि) हो, आप उस (वीरताम्) वीरता की (पाहि) रक्षा कीजिये (अनु) वह रक्षा को प्राप्त हुई वीरता (त्वा) आपको पाले ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे योगविद्या की इच्छा करनेवाले ! जैसे शमदमादि गुणयुक्त पुरुष योगबल से विद्याबल की उन्नति कर सकता है, वही अविद्यारूपी अन्धकार का विध्वंस करनेवाली योगविद्या सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे यथोचित सुख देती है वैसे आपको दे ॥ १२ ॥

सुवीर इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदार्षीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे योगिन् ! (**सुवीरः**) श्रेष्ठ वीर के समान योगबल को प्राप्त हुए आप (**वीरान्**) अच्छे-अच्छे गुणयुक्त पुरुषों को (**प्रजनयन्**) प्रसिद्ध करते हुए (**परीहि**) सब जगह भ्रमण कीजिये । इसी प्रकार (**यजमानम्**) धन आदि पदार्थों को देनेवाले उत्तम पुरुषों के (**अभि**) सन्मुख (**रायः**) धन की (**पोषेण**) पुष्टि से (**संजग्मानः**) संगत हूजिये और आप (**दिवा**) सूर्य्य और (**पृथिव्या**) पृथिवी के गुणों के साथ (**शुक्रः**) अति बलवान् (**शुक्रशोचिषा**) सबको शोधनेवाले सूर्य्य की दीप्ति से (**निरस्तः**) अन्धकार के समान पृथक् हुए ही योगबल के प्रकाश से विषयवासना से छूटे हुए (**शण्डः**) शमदमादि गुणयुक्त (**शुक्रस्य**) अत्यन्त योग-बल के (**अधिष्ठानम्**) आधार (**असि**) हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—शमदमादि गुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर योगी-जन अपनी योगविद्या के प्रचार से योगविद्या चाहनेवालों का आत्मबल बढ़ाता हुआ सब जगह सूर्य्य के समान प्रकाशित होता है ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्य त इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब शिष्य को पढ़ाने की युक्ति अगले मन्त्र में कही है—

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम । सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्निः ॥१४॥

पदार्थ—हे (**देव**) योगविद्या चाहने वाले (**सोम**) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य ! हम अध्यापक लोग (**ते**) तेरे लिए (**सुवीर्य्यस्य**) जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े उसके समान (**अच्छिन्नस्य**) अखण्ड (**रायः**) योगविद्या से उत्पन्न हुए धन की (**पोषस्य**) दृढ़पुष्टि के (**ददितारः**) देनेवाले (**स्याम**) हों । जो यह (**प्रथमा**) पहिली (**विश्ववारा**) सब ही सुखों के स्वीकार करानेयोग्य (**संस्कृतिः**) विद्यासुशिक्षाजनित नीति है (**स**) वह तेरे लिए इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो (**वरुणः**) श्रेष्ठ (**अग्निः**) अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है (**सः**) वह (**प्रथमः**) सबसे प्रथम तेरा (**मित्रः**) मित्र हो ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । योगविद्या में संपन्न शुद्धचित्त युक्त योगियों को योग्य है कि जिज्ञासुओं के लिए नित्य योग और विद्यादान देकर उन्हें शारीरिक और आत्म बल से युक्त किया करें ॥ १४ ॥

स प्रथम इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्वामी और सेवक के कर्म्म को अगले मंत्र में कहा है—

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्माऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा । तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहाया-ड्ग्नीत् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे शिष्यो ! तुम लोग जैसे वह पूर्व मंत्र से प्रतिपादित (**प्रथमः**) आदि मित्र (**चिकित्वान्**) विज्ञानवान् (**बृहस्पतिः**) सब विद्यायुक्त वाणी का पालने वाला जिस ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न करता है वैसे (**तस्मै**) उस (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिए (**स्वाहा**) सत्य वाणी और (**सुतम्**) निष्पादित श्रेष्ठ व्यवहार का (**आजुहोत**) अच्छे प्रकार ग्रहण करो और जैसे (**यत्**) जो (**होत्राः**) योग स्वीकार करने के योग्य वा (**याः**) जो (**मध्वः**) माधुर्य्यादिगुणयुक्त (**स्विष्टाः**) जिनसे कि अच्छे २ इष्ट काम बनते हैं (**याः**) वा जो ऐसी हैं कि (**सुहुताः**) जिन से अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्म सिद्ध होते हैं (**सुप्रीताः**) और अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं वे विद्वान् स्त्रीजन (**अग्नीत्**) या कोई अच्छी प्रेरणा को प्राप्त हुआ विद्वान् योगी (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**अयाट्**) सभों को सत्कृत करता और तृप्त रहता है । आप लोग उन स्त्रियों और उस योगी के समान (**तृम्पन्तु**) तृप्त हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे योगी विद्वान् और योगिनी विद्वानों की स्त्रीजन परमैश्वर्य्य के लिए यत्न करें और जैसे सेवक स्वामी का सेवन करता है वैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन-उन कामों में प्रवृत्त होकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुंचें ॥ १५ ॥

अयं वेन इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयाम इत्यस्य साम्नी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभाध्यक्ष राजा को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मंत्रों में किया है—

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपाँ संङ्गमे सूर्य्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे शिल्पविधि के जानने वाले सभाध्यक्ष विद्वन् ! आप (**उपयामगृहीतः**) सेना आदि राज्य के अंगों से युक्त (**असि**) हैं । इस से मैं (**रजसः**) लोकों के मध्य (**पृश्निगर्भाः**) जिन में अवकाश अधिक है उन लोगों के (**ज्योतिर्जरायुः**) तारागणों को ढांपने वाले के समान (**अयम्**) यह (**वेनः**) अति मनोहर चंद्रमा (**चोदयत्**) यथायोग्य अपने-अपने मार्ग में अभियुक्त करता है (**इमम्**) इस चन्द्रमा को (**अपाम्**) जलों और (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य के (**संगमे**) सम्बन्धी आकर्षणादि विषयों में (**शिशुम्**) शिक्षा के योग्य बालक को (**मतिभिः**) विद्वान् लोग अपनी बुद्धियों से (**रिहन्ति**) सत्कार करके (**न**) समान आदर के साथ ग्रहण कर रहे हैं और मैं (**मर्काय**) दुष्टों को शान्त करने और श्रेष्ठ व्यवहारों के स्थापना करने के लिए (**विमाने**) अनन्त अन्तरिक्ष में (**त्वा**) तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिए स्वीकार करता हूँ ॥ १६॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष को चाहिए कि सूर्य्य और चन्द्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शान्त कर के श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आह्लाद देवे ॥ १६ ॥

मनो न येष्वित्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्र णयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १७॥

पदार्थ—हे शिल्पविद्या में चतुर सभापते ! (**एषः**) यह राजधर्म (**ते**) तेरा (**योनिः**) सुखपूर्वक स्थिरता का स्थान है । जैसे तू (**यः**) जो (**तुविनृम्ण**) अत्यन्त धनयुक्त प्रजा का पालने वाला वा (**विपः**) बुद्धिमान् प्रजाजन ये तुम दोनों (**येषु**) जिन हवनादि कर्म्मों में (**शर्य्याभिः**) वेगों से (**तिग्मम्**) वज्र के तुल्य अतिदृढ़ (**मनः**) मन के (**न**) समान वेग से (**द्रवन्तौ**) चलते हुए (**शच्या**) बुद्धि के साथ (**आवनुथः**) परस्पर कामना करते हो वैसे प्रत्येक प्रजापुरुष (**अस्य**) इस प्रजापति का (**गभस्तौ**) अंगुली-निर्देश से (**आदिशम्**) सब दिशाओं में तेज जैसे हो वैसे शत्रुओं को (आ, **अश्रीणीत**) अच्छे प्रकार दुःख दिया करे (**मर्कः**) मरण के तुल्य दुःख देने और कुढङ्ग चालचलन रखने वाला शत्रु (**अपमृष्टः**) दूर हो और तू (**प्रजाः**) प्रजा का (**पाहि**) पालन कर (**मंथिपाः**) शत्रुओं को मंथने वाले वीरों के रक्षक (**देवाः**) विद्वान् लोग (**त्वा**) तुझे (**प्र, नयन्तु**) प्रसन्न करें । हे प्रजाजनो ! तुम जिससे (**अनाधृष्टा**) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन (**असि**) हो उस राजा की रक्षा किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—प्रजापुरुष राज्यकर्म्म में जिस राजा का आश्रय करें वह उन की रक्षा करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शंका समाधान के साथ कहें । राजा के नौकर चाकर भी न्यायकर्म्म ही से प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ १७ ॥

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिए यह अगले मंत्र में कहा है—

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थि-नोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

पदार्थ—भो न्यायाधीश ! (**सुप्रजाः**) उत्तम प्रजायुक्त आप (**प्रजाः**) प्रजाजनों को (**प्रजनयन्**) प्रकट करते हुए (**रायः**) धन की (**पोषेण**) दृढ़ता के साथ (**यजमान्**) यज्ञादि अच्छे कर्मों के करने वाले पुरुष को (**अभि**) (**परि**) (**इहि**) सर्वदा धन की वृद्धि से युक्त कीजिए (**मन्थी**) वाद विवाद के मंथन करने और (**दिवा**) सूर्य्य वा (**पृथिव्या**) पृथिवी के (**संजग्मानः**) तुल्य धीरतादि गुणों में वर्त्तने वाले आप (**मन्थिनः**) सदसद्विवेचन करने योग्य गुणों के (**अधिष्ठान्**) आधार के समान (**असि**) हो इस कारण तुम्हारी (**मन्थिशोचिषा**) सूर्य्य की दीप्ति के समान न्यायादीप्ति से (**मर्कः**) मृत्यु देने वाला अन्यायी (**निरस्तः**) निवृत्त होवे ॥ १८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । न्यायधीश राजा को चाहिए कि धर्म्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरन्तर पालन करे॥१८॥

ये देवास इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजा और सभासदों के काम अगले मंत्र में कहे गये हैं—

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ १९ ॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**महिना**) अपनी महिमा से (**दिवि**) विद्युत् के स्वरूप में (**एकादश**) ग्यारह अर्थात् प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा (**देवासः**) दिव्यगुणयुक्त देव (**स्थ**) हैं (**पृथिव्याम्**) भूमि के (**अधि**) ऊपर (**एकादश**) ग्यारह अर्थात्पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहंकार महत्तत्व और प्रकृति (**स्थ**) हैं तथा (**अप्सुक्षितः**) प्राणों में ठहरने वाले (**एकादश**) ग्यारह श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव गुदा, लिंग और मन (**स्थ**) हैं (**ते**) वे जैसे अपने-अपने कामों में वर्त्तमान हैं वैसे हे (**देवासः**) राजसभा के सभासदो ! आप

लोग यथायोग्य अपने-अपने कामों में वर्त्तमान होकर (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) राजा और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का (**जुषध्वम्**) सेवन किया करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । जैसे अपने-अपने कामों में प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिकों में सब पदार्थ हैं वैसे राजसभासदों को चाहिए कि अपने-अपने न्यायमार्ग में प्रवृत्त रहें ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र में कही है—

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २० ॥

पदार्थ—हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले ! जिस कारण आप (**उपयामगृहीतः**) विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्र बोध से युक्त (**असि**) हैं इससे (**यज्ञम्**) राजा और प्रजा की पालना कराने हारे यज्ञ को (**पाहि**) पालो और (**स्वाग्रयणः**) जैसे उत्तम विज्ञानयुक्त कर्म्मों को पहुंचाने वाले होते हैं वैसे (**आग्रयणः**) उत्तम विचारयुक्त कर्म्मों को प्राप्त होने वाले हूजिए इस से (**यज्ञपतिम्**) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को (**पाहि**) पालो यह (**विष्णुः**) जो समस्त अच्छे गुण और कर्म्मों को ठीक-ठीक जानने वाला विद्वान् है वह (**इन्द्रियेण**) मन और धन से (**त्वाम्**) तुझे (**पातु**) पाले और तुम उस (**विष्णुम्**) विद्वान् की (**पाहि**) रक्षा करो (**सवनानि**) ऐश्वर्य्य देने वाले कामों की (**अभि**) सब प्रकार से (**पाहि**) रक्षा करो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के विना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के संग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के विना ऐश्वर्य्य की उन्नति के विना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता ॥ २० ॥

सोमः पवत इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । सोमो देवता । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । एष त इत्यस्य याजुषी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजा का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे यह (**सोमः**) सौम्यगुण सम्पन्न राजा (**अस्मै**) इस (**ब्रह्मणे**) परमेश्वर वा वेद को जानने के लिए (**पवते**) पवित्र होता है (**अस्मै**) इस (**क्षत्राय**) क्षत्रिय धर्म के लिए (**पवते**) ज्ञानवान् होता है (**अस्मै**) इस (**सुन्वते**) समस्त विद्या के सिद्धान्त को निष्पादन (**यजमानाय**) और उत्तम संग करने हारे विद्वान् के लिए (**पवते**) निर्मल होता है (**इषे**) अन्न के गुण और (**ऊर्ज्जे**) पराक्रम के लिए (**पवते**) शुद्ध होता है (**अद्भ्यः**) जल और प्राण वा (**ओषधीभ्यः**) सोम आदि ओषधियों को (**पवते**) जानता है (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य्य और पृथिवी के लिए (**पवते**) शुद्ध होता है (**सुभूताय**) अच्छे व्यवहार के लिए (**पवते**) बुरे कामों से बचता है । वैसे (**सोमः**) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथोक्त जाने माने और आप भी वैसा पवित्र रहे । हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन ! जिस (**ते**) आप का (**एषः**) यह राजधर्म्म (**योनिः**) घर है । उस (**त्वा**) आप को (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए तथा (**त्वा**) आप को (**विश्वेभ्यः**) संपूर्ण दिव्यगुणों के लिए हम लोग स्वीकार करते हैं ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिए हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उन के उपकार के लिए धर्म्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वैसे ही सभ्य पुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्त्तें । जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करनेवाला होता है वही राजा और सभापुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्मात्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है । इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कैसे मनुष्य को सेनापति करे यह अगले मन्त्र में कहा है—

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वतऽउक्थाव्यं गृह्णामि । यत्तऽइन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेनापते ! तू (**उपयामगृहीतः**) अच्छे नियमों से विद्या को पढ़नेवाला (**असि**) है, इस हेतु से (**बृहद्वते**) जिस के अच्छे बड़े-बड़े कर्म हैं (**वयस्वते**) और जिसकी दीर्घ आयु है, उस (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यवाले सभापति के लिए (**उक्थाव्यम्**) प्रशंसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्रविद्यावाले (**त्वा**) तेरा (**गृह्णामि**) ग्रहण जैसे मैं करता हूं, वैसे (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**बृहत्**) अत्यन्त (**वयः**) जीवन है (**तस्मै**) उस के पालन करने के अर्थ और (**विष्णवे**) ईश्वर-ज्ञान वा वेदज्ञान के लिए (**त्वा**) तुझे (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूं और (**एषः**) यह सेना का अधिकार (**ते**) तेरा (**योनिः**) स्थित होने के लिए स्थान है । हे सेनापते ! (**उक्थेभ्यः**) प्रशंसा योग्य वेदोक्त कर्मों के लिए (**त्वा**) तुझे (**देवेभ्यः**) और विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिए (**देवाव्यम्**) उन के पालन करनेवाले (**त्वा**) तुझ को (**यज्ञस्य**) राज्यपालनादि व्यवहार के (**आयुषे**) बढ़ाने के लिए (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

भावार्थ—सब विद्याओं के जाननेवाले विद्वान् को योग्य है कि राज्यव्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा करने के लिए अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र विद्या में परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले वीर पुरुष को सेनापति के काम में युक्त करे और सभापति तथा सेनापति को चाहिए कि परस्पर सम्मति कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्यान्त्वेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् छन्दांसि । गान्धारः स्वरः । इन्द्राबृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरश्च ॥

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे यह अगले मन्त्र में कहा है—

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करनेवाला मैं (**यज्ञस्य**) अग्निहोत्र से लेकर राज्य पालन पर्य्यन्त यज्ञ की (**आयुषे**) उन्नति होने के लिए (**मित्रावरुणाभ्याम्**) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों के अर्थ (**देवाव्यम्**) विद्वानों की रक्षा करनेवाले (**त्वा**) तुझ को (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ । हे सेनापते विद्वन् ! (**यज्ञस्य**) सत्संगति करने की (**आयुषे**) उन्नति के लिए (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यवान् पुरुष के अर्थ (**देवाव्यम्**) विद्वानों की रक्षा करनेवाले (**त्वा**) तुझ को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूं । हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण ! (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्या के कामों की सिद्धि की (**आयुषे**) प्राप्ति के लिए (**इन्द्राग्निभ्याम्**) बिजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ (**देवाव्यम्**) दिव्य विद्या बोध की रक्षा करनेवाले (**त्वा**) तुझ को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ । हे शिल्पिन् ! (**यज्ञस्य**) क्रिया चतुराई का (**आयुषे**) ज्ञान होने के (**इन्द्रावरुणाभ्याम्**) बिजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ (**देवाव्यम्**) उन की विद्या जाननेवाले (**त्वा**) तुझ को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ । हे अध्यापक ! (**यज्ञस्य**) पढ़ने पढ़ाने की (**आयुषे**) उन्नति के लिए (**इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्**) राजा और शास्त्रवेत्ताओं के अर्थ (**देवाव्यम्**) प्रशंसित योगविद्या के जानने और प्राप्त करानेवाले (**त्वा**) तुझ को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ । हे विद्वन् ! (**यज्ञस्य**) विज्ञान की (**आयुषे**) बढ़ती के लिए (**इन्द्राविष्णुभ्याम्**) ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ (**देवाव्यम्**) ब्रह्मज्ञानी को तृप्त करनेवाले (**त्वा**) तुझ को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ ॥२३॥

भावार्थ—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिए सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता कराता रहे ॥ २३ ॥

मूर्द्धानमित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इसके अनन्तर विद्वानों का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥

पदार्थ—जैसे (**देवाः**) धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेद की शिक्षा से (**दिवः**) प्रकाशमान सूर्य के (**मूर्द्धानम्**) शिर के समान (**पृथिव्याः**) पृथिवी के गुणों को (**अरतिम्**) प्राप्त होने वाले (**ऋते**) सत्य मार्ग में (**आजातम्**) सत्य व्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (**वैश्वानरम्**) समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुँचाने और (**जनानाम्**) सत्पुरुषों के (**अतिथिम्**) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और (**आसन्**) अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख में (**पात्रम्**) समस्त शिल्प व्यवहार की रक्षा करने (**कविम्**) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त होने वाले (**अग्निम्**) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को (**सम्राजम्**) एकचक्र राज्य करने वाले के समान (**आ**)

अच्छे प्रकार से (जनयंत) प्रकाशित करते हैं वैसे सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सत्पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओं से यानों और शस्त्रास्त्र विद्या में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जीता करते हैं वैसे ही अन्य सब मनुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है ॥ २४ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । वैश्वानरो देवता । याजुष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ध्रुवोसीत्यस्य ध्रुवमित्यस्य च विराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि । अथा नऽइन्द्रऽइद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! आप (उपयामगृहीतः) शास्त्रप्राप्त नियमों से स्वीकार किए जाते (असि) हैं, ऐसे ही (ध्रुवः) स्थिर (असि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन आप में भूमि स्थिर हो रही है और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रुवतमः) अत्यन्त स्थिर (असि) हैं तथा (अच्युतानाम्) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशीपन बसाने वाले हैं (एषः) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश (ते) आप के (योनिः) निवास स्थान के समान हैं (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों को सत्य मार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिए (ध्रुवेण) दृढ़ (मनसा) मन और (वाचा) वाणी से (सोमम्) समस्त जगत् के उत्पन्न कराने वाले (त्वा) आप को (ध्रुवम्) निश्चयपूर्वक जैसे हो वैसे (अवनयामि) स्वीकार करता हूं (अथ) इस के अनन्तर (इन्द्रः) सब दुःख के विनाश करने वाले आप (नः) हमारे (विशः) प्रजाजनों को (असपत्नाः) शत्रुओं से रहित और (समनसः) एक मन अर्थात् एक दूसरे के चाहनेवाले (इत्) ही (करत्) कीजिए ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो नित्य पदार्थों में नित्य और स्थिरों में भी स्थिर परमेश्वर है, उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ २५ ॥

यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है—

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्तेऽअꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् । अध्वर्य्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे यज्ञपते ! (यः) जो (ते) तेरा (द्रप्सः) यज्ञ के पदार्थों का समूह (स्कन्दति) पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेरे यज्ञ से युक्त (ग्रावच्युतः) मेघमण्डल से छूटा हुआ (अंशुः) यज्ञ के पदार्थों का विभाग (धिषणयोः) प्रकाश भूमि के (पवित्रात्) पवित्र (उपस्थात्) गोद के समान स्थान से (वा) अथवा (यः) जो (अध्वर्य्योः) यज्ञ करने वालों से (वा) अथवा (परि) सब से प्रकाशित होता है इस से (तम्) उस यज्ञ को मैं (ते) तेरे लिए (स्वाहा) सत्यवाणी और (मनसा) मन से (वषट्कृतम्) किए हुए संकल्प के समान (जुहोमि) देता हूँ अर्थात् उसके फलदायक होने से तेरे लिए उस पदार्थ को पहुँचाता हूँ जिस लिए यज्ञ का अनुष्ठान करनेहारा तू (देवानाम्) विद्वानों के लिए (उत्क्रमणम्) ऊंची श्रेणी को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य्य के समान (असि) है इससे तुझ को सुख प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । होता आदि विद्वान् लोग अत्यन्त दृढ़ सामग्री से यज्ञ करते हुए जिन सुगन्धि आदि पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं वे पवन और जलादि पदार्थों को पवित्र कर उसके साथ पृथिवी पर आ और सब प्रकार के रोगों को निवृत्त करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञपतिर्देवता । प्राणायेत्यस्य चासुर्य्यनुष्टुप्, उदानायेत्यस्यासुर्य्युष्णिक्, व्यानायेत्यस्य वाचेम इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामित्यस्यासुरी गायत्री, श्रोत्रायेत्यस्यासुर्य्यनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि । अनुष्टुभो गान्धारो गायत्र्याः षड्ज उष्णिज ऋषभश्च स्वरः ॥

फिर पठनपाठन यज्ञ के करने वाले का विषय अगले मंत्र में कहा है—

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्य वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे (वर्चोदाः) यथायोग्य विद्या पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञकर्म करनेवाले ! आप (मे) मेरे (प्राणाय) हृदयस्थ जीवन के हेतु प्राणवायु और (वर्चसे) वेदविद्या के प्रकाश के लिये (पवस्व) पवित्रता से वर्त्तें । हे (वर्चोदाः) ज्ञानदीप्ति के देने वाले जाठराग्नि के समान आप (मे) मेरे (व्यानाय) सब शरीर में रहने वाले पवन और (वर्चसे) अन्न आदि पदार्थों के लिये (पवस्व) पवित्रता से प्राप्त होवें । हे (वर्चोदाः) विद्याबल देने वाले ! आप (मे, उदानाय) श्वास से ऊपर को आने वाले उदान-संज्ञक पवन और (वर्चसे) पराक्रम के लिये (पवस्व) ज्ञान दीजिये । हे (वर्चोदाः) सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप (मे) मेरी (वाचे) वाणी और (वर्चसे) प्रगल्भता के लिये (पवस्व) प्रवृत्त हूजिये (वर्चोदा) विज्ञान देने वाले आप (मे) मेरे (क्रतूदक्षाभ्याम्) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और (वर्चसे) अच्छे बोध के लिये (पवस्व) शिक्षा कीजिये । हे (वर्चोदाः) शब्दज्ञान के देने वाले यज्ञपति ! आप (मे) मेरे (श्रोत्राय) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये (वर्चसे) शब्दों के अर्थ और सम्बन्ध का (पवस्व) उपदेश करें । हे (वर्चोदसौ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों (मे) मेरे (चक्षुर्भ्याम्) नेत्रों के लिये (वर्चसे) शुद्ध सिद्धांत के प्रकाश को (पवेथाम्) प्राप्त हूजिये ॥ २७ ॥

भावार्थ—जो विद्या की वृद्धि के लिये पठनपाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है ॥२७ ॥

आत्मन इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञपतिर्देवता । ब्राह्मी बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (वर्चोदाः) योग और ब्रह्मविद्या देनेवाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (आत्मने) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये (वर्चसे) अपने आत्मा के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदाः) उक्त विद्या देने वाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (ओजसे) आत्मबल होने के लिये (वर्चसे) योगबल को (पवस्व) जनाइये । हे (वर्चोदाः) बल देने वाले ! (मे) मेरे (आयुषे) जीवन के लिये (वर्चसे) रोग छुड़ाने वाले औषध को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदसौ) योगविद्या के पढ़ने पढ़ाने वालो ! तुम दोनों (मे) मेरी (विश्वाभ्यः) समस्त (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वर्चसे) सद्गुण प्रकाश करने को (पवेथाम्) प्राप्त कराया करो ॥ २८ ॥

भावार्थ—योगविद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्णविद्या के विना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इसके विना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ २८ ॥

कोऽसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्दः भूर्भुवःस्वरित्यस्य भुरिक्साम्नी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

सभापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनों को क्या २ कहे यहो अगले मन्त्र में कहा है—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ २९ ॥

पदार्थ—सभा सेना और प्रजा में रहने वाले हम लोग पूछते हैं कि तू (कः) कौन (असि) है (कतमः) बहुतों के बीच कौनसा (असि) है (कस्य) किसका (असि) है (कः) क्या (नाम) तेरा नाम (असि) है (यस्य) जिस (ते) तेरी (नाम) संज्ञा को (अमन्महि) जानें और (यम्) जिस (त्वा) तुझ को (सोमेन) धन आदि पदार्थों से (अतीतृपाम) तृप्त करें । यह कह उन से सभापति कहता है कि (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्मसुख की कामना करनेवाला मैं तुम (प्रजाभिः) प्रजालोगों के साथ (सुप्रजाः) श्रेष्ठ प्रजा वाला (वीरैः) तुम वीरों से (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरयुक्त (पोषैः) पुष्टिकारक पदार्थों से (सुपोषः) अच्छा पुष्ट (स्याम्) होऊँ अर्थात् तुम सब लोगों से पृथक् न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है ॥ २९ ॥

भावार्थ—सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा करके उन सभों की उन्नति देवे और अति प्रबल वीरों को सेना में रक्खे जिससे कि बहुत सुख बढ़ानेवाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य साम्नी गायत्री द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप् तृतीयचतुर्थपंचमानां साम्नी गायत्री षष्ठस्यासुर्य्यनुष्टुप् सप्तमाष्टमयोर्याजुषी पंक्तिर्नवमस्य साम्नी गायत्री दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप् एकादशस्य साम्नी गायत्री द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप् त्रयोदशस्यासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि । अत्र गायत्र्या षड्जः, अनुष्टुभो गांधारः, पंक्तेः पञ्चमः, उष्णिज ऋषभश्च स्वराः ॥

फिर भी विषयान्तर से वही उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यंहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जिससे आप (उपयामगृहीतः) अच्छे अच्छे राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किए हुए (असि) हैं, इससे (त्वा) आपको (मधवे) चैत्रमास की सभा के लिए अर्थात् चैत्रमास प्रसिद्ध सुख करानेवाले व्यवहार की रक्षा के लिए हम लोग स्वीकार करते हैं, सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा वा सेनाजनो ! तुम में से एक-एक (उपयामगृहीतः) अच्छे-अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इसलिए तुमको चैत्रमास के सुख के लिए स्वीकार करता हूँ इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिए राजा, राजसभासद्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक-दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३० ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष राजा को चाहिए कि यथोचित समय को प्राप्त होकर श्रेष्ठ राजव्यवहार से प्रजाजनों के लिए सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करे ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राज्य के व्यवहार से नियत राजकर्म्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्राग्नीऽआगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥३१॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद ! तुम दोनों (आगतम्) आओ मिलकर (गीर्भिः) अच्छी शिक्षायुक्त वाणियों से हमारे लिए (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (नभः) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो तथा (इषिता) पढ़ाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से (अस्य) इस सुख की (पातम्) रक्षा करो । वे राजा और सभासद् कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तू (उपयामगृहीतः) प्रजा के धर्म्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझको (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिए हम लोग वैसा ही मानते हैं (एषः) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) घर है (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिए (त्वा) तुझको हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके राजकार्य्यों में युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें ॥ ३१ ॥

आ घा ये अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपेत्यस्याच्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहा है—

आ घाऽयेऽअग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥ ३२ ॥

पदार्थ—(ये) वेदविद्या सम्पन्न विद्वान् सभासद् (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि (घ) ही को (इन्धते) प्रकाशित करते और (आनुषक्) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ के यथोक्त क्रम से (बर्हिः) अन्तरिक्ष का (आ, स्तृणन्ति) आच्छादन करते हैं तथा (येषाम्) जिनका (युवा) सर्वाङ्ग पुष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर सर्वविद्या विचक्षण तरुण अवस्था और (इन्द्रः) सकलैश्वर्य्ययुक्त सभापति (सखा) मित्र है (अग्नीन्द्राभ्याम्) उन अग्नि और सूर्य्य के समान प्रकाशमान सभासदों से (उपयामगृहीतः) प्रजाधर्म्म से युक्त तू ग्रहण किया गया (असि) है । जिस (ते) तेरा (एषः) न्याययुक्त सिद्धान्त (योनिः) घर के सदृश है उस (त्वा) तुझको प्राप्त हुए हम लोग (अग्नीन्द्राभ्याम्) उक्त महापदार्थों के लिए (त्वा) तुझको उपदेश करते हैं ॥३२॥

भावार्थ—राजधर्म्म में सब काम सभा के आधीन होने से विचार-सभाओं में प्रवृत्त राजमार्गी जनों में से दो तीन वा बहुत सभासद् मिलकर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्त्ताव रखें ॥३२॥

ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपयाम इत्यस्यार्ची बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है—

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवासऽआगत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे (चर्षणीधृतः) मनुष्यों की पुष्टि संतुष्टि करने और (ओमासः) उत्तम उत्तम गुणों से रक्षा करने हारे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वानो ! तुम (दाश्वांसः) उत्कृष्ट ज्ञान को देने हुए (दाशुषः) दान करने वाले उत्तम जन का (सुतम्) जो अच्छे कामों के करने में ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला है उसके (आ, गत) सम्मुख आओ । हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले बालक ! तू (उपयामगृहीतः) पढ़ाने के नियमों से ग्रहण किया हुआ (असि) है, इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए अर्थात् उन की सेवा करने को आज्ञा देता हूं, जिसलिए (ते) तेरा (एषः) यह विद्या और अच्छी २ शिक्षा का संग्रह होना (योनिः) कारण है इसलिए (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या और अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूं ॥ ३३॥

भावार्थ—सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और कन्याओं के लिए निरन्तर विद्यादान करें । राजा और धनी आदि लोगों के धन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान् वा विदुषी स्त्रियों को धन आदि अच्छे २ पदार्थों को देकर उनकी सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र वा आठ २ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य्य सेवन और अच्छी शिक्षा किए जाने के लिए विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें वे भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें ॥ ३३ ॥

विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपयाम इत्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रतिदिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विश्वे देवासऽआगत शृणुता मऽइमꣳ हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादित गुणकर्म्मस्वभाववाले (विश्वेदेवासः) समस्त विद्वान् लोगो ! आप हमारे समीप (आगत) आइए और हम लोगों के दिए हुए (इदम्) इस (बर्हिः) आसन पर (आ निषीदत) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिए (मे) मेरी (हवम्) इस स्तुतियुक्त वाणी को (श्रृणुत) सुनिए । गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति कहे कि हे पुत्र ! जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) विद्वानों का ग्रहण किया हुआ (असि) है इस से हम (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सौंपें जिसलिए (एषः) यह समस्त विद्या का संग्रह (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इसलिए (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) समस्त उक्त महाशयों से विद्या दिलाना चाहते हैं ॥ ३४ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पण्डित लोग उन की परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तीक्ष्णबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयाम इत्यस्याष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

अब राजा पढ़ाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्र मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शार्य्यातेऽअपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सब विघ्नों के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी (मरुत्वः) प्रशंसनीय धर्म्मयुक्त प्रजा पालने हारे सभापति राजन् ! आप (इह) इस संसार में (यथा) जैसे (शार्य्याते) अपने हाथ पैरों के परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार में (सुतस्य) अभ्यास किए हुए विद्या रस को (अपिबः) पी चुके हो वैसे (सोमम्) समस्त अच्छे गुण ऐश्वर्य और सुख करने वाले

पठनपाठन-रूपी यज्ञ को (**पाहि**) पालो । हे (**शूर**) धर्म्मविरोधियों को दण्ड देने वाले ! (**तव**) तुम्हारे (**शर्म्मन्**) राज्य घर में (**सुयज्ञाः**) अच्छे पढ़ने वाले विद्वानों के समान (**कवयः**) बुद्धिमान् लोग (**तव**) तुम्हारी (**प्रणीती**) उत्तम नीति का (**आविवासन्ति**) सेवन करते हैं । हे शूर ! जिस कारण तुम (**उपयामगृहीतः**) प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए (**असि**) हो, इस से (**त्वा**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य और (**मरुत्वते**) प्रजा-सम्बन्ध के लिए हम लोग चाहते हैं कि जो (**ते**) (**एषः**) यह विद्या का प्रचार (**योनिः**) घर के समान है । इससे (**त्वा**) तुम को (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य और (**मरुत्वते**) प्रजा पालन सम्बन्ध के लिए मानते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायाधीशों की न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो उस को कभी उल्लङ्घन न करें वैसे वे राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा को उल्लङ्घन न करें जो सब गुणों से उत्तम हो उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तम नीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे ॥३५॥

मरुत्वन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य द्वितीयभागस्यार्षी तृतीयस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते । उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥ ३६ ॥

पदार्थ—(**कवयः**) पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग (**नूतनाय**) नवीन २ (**अवसे**) रक्षा आदि गुणों के लिए (**मरुत्वन्तम्**) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (**वृषभम्**) सब से उत्तम (**वावृधानम्**) अत्यन्त शुभगुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त (**अकवारिम्**) समस्त धर्मविरोधी दुष्टों का निवारण करनेवाले (**दिव्यम्**) शुद्ध (**विश्वासाहम्**) सर्व सहनशील (**उग्रम्**) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त (**सहोदाम्**) महायता (**शासम्**) और सब को शिक्षा देनेवाले (**तम्**) उस पूर्वोक्त (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्ययुक्त सभापति को निम्नलिखित प्रकार से (**हुवेम**) स्वीकार करें । हे मुख्य सभासद् राजन् ! तू जिस कारण (**उपयामगृहीतः**) समस्त बड़े बड़े और छोटे छोटे नियमों की सामग्री से सहित (**असि**) है, इस से (**त्वा**) तुझ को (**मरुत्वते**) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्यवान् सभापति होने के लिए स्वीकार करते हैं (**एषः**) यह सभा में न्याय करने का काम (**ते**) तेरा (**योनिः**) घर के तुल्य है इस से (**त्वा**) तुझे (**मरुत्वते**) उत्तम प्रजा से युक्त (**इन्द्राय**) अत्यन्त ऐश्वर्य के पालन और वृद्धि होने के लिए स्वीकार करते हैं और जिस कारण तू (**उपयामगृहीतः**) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त (**असि**) है, इस से (**मरुताम्**) प्रजाजनों का (**ओजसे**) बल बढ़ाने के लिए (**त्वा**) तुझे ग्रहण करते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (कवयः) इस पद की अनुवृत्ति आती है । प्रजाजनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् शूरवीर हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्य न्याययुक्त धर्म्म कार्य्य से प्रजा के उत्साह की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

सजोषेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्, उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दसी । धैवतः स्वरः ॥

अब सेनापति का काम अगले मन्त्र में कहा है—

सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् । जहि शत्रूँ२ऽरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३७॥

पदार्थ—ईश्वर कहता है कि हे (**इन्द्र**) सब सुखों के धारण करने हारे (**शूर**) शत्रुओं के नाश करने में निर्भय ! जिस से तू (**उपयामगृहीतः**) सेना के अच्छे अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ (**असि**) है इससे (**मरुत्वते**) जिस में प्रशंसनीय वायु की अस्त्रविद्या है उस (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य पहुंचानेवाले युद्ध के लिए (**त्वा**) तुझ को उपदेश करता हूँ कि (**ते**) तेरा (**एषः**) यह सेनाधिकार (**योनिः**) इष्ट सुखदायक है इस से (**मरुत्वते, इन्द्राय**) उक्त युद्ध के लिए यत्न करते हुए तुझ को मैं अङ्गीकार करता हूँ और (**सजोषाः**) सब के समान प्रीति करनेवाला (**सगणः**) अपने मित्रजनों के सहित तू (**मरुद्भिः**) जैसे पवन के साथ (**वृत्रहा**) मेघ के जल को छिन्न भिन्न करनेवाला सूर्य्य (**सोमम्**) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है वैसे सब पदार्थों के रस को (**पिब**) सेवन कर और इस से (**विद्वान्**) ज्ञानयुक्त हुआ तू (**शत्रून्**) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्ट जनों का (**जहि**) विनाश कर (**अथ**) इस के अनन्तर (**मृधः**) जहां दुष्ट जन दूसरे के दुःख से अपने मन को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को (**अपनुदस्व**) दूर कर और (**नः**) हम लोगों को (**विश्वतः**) सब जगह से (**अभयम्**) भय रहित (**कृणुहि**) कर ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य्य वायु और बिजुली के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है वैसे राजा को चाहिए कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मारकर प्रजा को सुख धर्म्मात्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥ ३७ ॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः । उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सभाध्यक्ष के लिए अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

मरुत्वाँ२ऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय । आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्म्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) शत्रुओं के जीतनेवाले सभापते ! जिस कारण आप (**उपयामगृहीतः**) राजनियमों से स्वीकार किये हुए (**असि**) हो इसलिए हम लोग तुम को (**मरुत्वते**) जिस में अच्छे अच्छे अस्त्रों और शस्त्रों का काम है उस (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य को प्राप्त करनेवाले युद्ध के लिए युक्त करते हैं जिस से (**ते**) आपका (**एषः**) यह युद्ध परमैश्वर्य्य का (**योनिः**) कारण है इसलिए (**त्वा**) तुम को (**मरुत्वते, इन्द्राय**) उस युद्ध के लिए कहते हैं कि आप (**प्रतिपत्**) प्रत्येक बड़े-बड़े विचार के कामों में (**राजा**) प्रकाशमान (**मरुत्वान्**) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और (**वृषभः**) अत्यन्त श्रेष्ठ हो इससे (**रणाय**) युद्ध और (**मदाय**) आनन्द के लिए (**अनुष्वधम्**) प्रत्येक भोजन में (**सोमम्**) सोमलतादि पुष्ट करनेवाली ओषधियों के रस को (**पिब**) पीओ (**सुतानाम्**) उत्तम सत्कारों से बनाये हुए अन्नों के (**मध्वः**) मधुर रस की (**ऊर्मिम्**) लहरी को अपने (**जठरे**) उदर में (**आसिञ्चस्व**) अच्छे प्रकार स्थापन करो ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को चाहिए कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥ ३८ ॥

महानित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । उपयामेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर अपने गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

महाँ२ऽइन्द्रो नवदा चर्षणिप्राऽउत द्विबर्हाऽअमिनः सहोभिः । अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्त्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥३९॥

पदार्थ—हे भगवन् जगदीश्वर ! जिस कारण आप (**उपयामगृहीतः**) योगाभ्यास से ग्रहण करने के योग्य (**असि**) हैं इस से (**महेन्द्राय**) अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य के लिए हम लोग (**त्वा**) आप की उपासना हमारे लिए (**योनिः**) कल्याण का कारण है इस से (**त्वा**) तुम को (**महेन्द्राय**) परमैश्वर्य्य पाने के लिए हम सेवन करते हैं जो (**महान्**) सर्वोत्तम अत्यन्त पूज्य (**नृवत्**) मनुष्यों के तुल्य (**आ**) अच्छे प्रकार (**चर्षणिप्राः**) सब मनुष्यों को सुखों से परिपूर्ण करने (**द्विबर्हाः**) व्यवहार और परमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त(**अस्मद्र्यक्**) हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जाननेवाले (**अमिनः**) अतुल पराक्रमयुक्त (**कर्त्तृभिः**) अच्छे कर्म्म करनेवाले जीवों ने (**सुकृतः**) अच्छे कर्म्म करनेवाले के समान ग्रहण किये हुए और (**इन्द्रः**) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य वाले आप हैं उन्हीं का आश्रय किये हुए समस्त हम लोग (**सहोभिः**) अच्छे अच्छे बलों के साथ(**वीर्य्याय**) परम उत्तम बल की प्राप्ति के लिए (**वावृधे**) दृढ़ उत्साहयुक्त होते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता । जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है वैसे ही राजा को भी चाहिए कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥ ३९ ॥

महानिन्द्र इत्यस्य वत्स ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीगायत्री छन्दः । उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

महाँ२ऽइन्द्रो यऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ऽइव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥४०॥

पदार्थ—हे अनादिसिद्ध योगिन् सर्वव्यापी ईश्वर ! जो आप योगियों के (**उपयामगृहीतः**) यमनियमादि योग के अङ्गों से स्वीकार किये हुए (**असि**) हैं इस कारण हम लोग (**त्वा**) आप को (**महेन्द्राय**) योग से प्रकट होनेवाले अच्छे ऐश्वर्य के लिए आश्रय करते हैं (**ते**) आपका (**एषः**) यह योग हमारे कल्याण का (**योनिः**) निमित्त है इसलिए (**त्वा**) आपका (**महेन्द्राय**) मोक्ष करानेवाले ऐश्वर्य के लिए ध्यान करते हैं (**यः**) जो (**महान्**) बड़े २ गुण कर्म्म और स्वभाववाला (**वृष्टिमान्**) वर्षने वाले (**पर्जन्य, इव**) मेघ के तुल्य (**वत्सस्य**) स्तुतिकर्त्ता की (**स्तोमैः**) स्तुतियों से (**ओजसा**) अनन्त बल के साथ प्रकाशित होता है उस ईश्वर को जानकर योगी (**वावृधे**) अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

भावार्थ—जैसे मेघ वर्षा समय में अपने जल के समूह से सब पदार्थों को तृप्त करता हुआ उन्नति देता है वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करनेवाले योगी पुरुष के योग को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ४० ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

इस के पीछे सूर्य्य की उपमा से ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यꣳ स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थ—जैसे किरण (विश्वाय) समस्त जगत् के प्रयोजन के (दृशे) देखने जानने के लिए (जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए सब पदार्थों को जानता वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है (त्यम्) उस (सूर्य्यम्, देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य्य को (उ) तर्क के साथ (उत् वहन्ति) प्राप्त कराते हैं वैसे विद्वान् के (केतवः) प्रकृष्ट ज्ञान और (स्वाहा) सत्य वाणी या उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जैसे प्राणियों के लिए सूर्य्य की किरणें उस को प्रकाशित करती हैं वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियां ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं ॥ ४१ ॥

चित्रं देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥४२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को अति उचित है कि जो (सूर्य्यः) सविता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (देवानाम्) नेत्र आदि के समान विद्वानों (मित्रस्य) मित्र वा प्राण (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान और (अग्नेः) अग्नि के (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) बलवत्तर सेना के तुल्य प्रसिद्ध (चक्षुः) प्रभाव के दिखलाने वाले गुणों को (उत्, अगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (जगतः) जङ्गम प्राणी और (तस्थुषः) स्थावर संसारी पदार्थों का (आत्मा) आत्मा के तुल्य होकर (द्यावापृथिवी) आकाश तथा भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अप्राः) व्याप्त होने के समान परमात्मा है उसी की उपासना निरन्तर किया करो ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जिस कारण परमेश्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त सूर्य्य के तुल्य स्वयं प्रकाशमान और सूत्रात्मा वायु के सदृश सब का अन्तर्यामी है इस से सब जीवों के लिए सत्य और असत्य को बोध करानेवाला है जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र नहीं ॥ ४२ ॥

अग्ने नयेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता । भुरिगार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना अगले मन्त्र में कही है—

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करनेवाले परमेश्वर ! आप (सुपथा) सत्यविद्या धर्म्मयोगयुक्त मार्ग से (राये) योग की सिद्धि के लिए (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) योग के विज्ञानों को (नय) पहुंचाइये जिस से हम लोग (स्वाहा) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत (नमउक्तिम्) नमस्कारपूर्वक स्तुति को (विधेम) करें । हे (देव) योगविद्या को देनेवाले ईश्वर ! (विद्वान्) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जाननेवाले आप कृपा करके (जुहुराणम्) हम लोगों के अन्तःकरण के कुटिलतारूप (एनः) दुष्ट कर्म्मों को (अस्मत्) योगानुष्ठान करनेवाले हम लोगों से (युयोधि) दूर कर दीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थ—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के विना योगसिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेमभक्तियुक्त होकर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है उस को वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है ॥ ४३ ॥

अयमित्यस्यांगिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब संग्राम में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

पदार्थ—(अयम्) यह प्रथम (अग्निः) वैद्यक विद्या का प्रकाश करनेवाला वैद्य (स्वाहा) वैद्यक और युद्ध को शिक्षायुक्त वाणी से (वाजसातौ) युद्ध में (नः) हम लोगों को (वरिवः) सुखकारक सेवन (कृणोतु) करे (अयम्) यह दूसरा युद्ध करनेवाला मुख्य वीर (प्रभिन्दन्) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ (मृधः) संग्राम के (पुरः) आगे (एतु) चले (अयम्) यह तीसरा वीर रसकारक उपदेश करनेवाला योद्धा (वाजान्) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त वीरों को (जयतु) उत्साहयुक्त करता रहे (अयम्) यह चौथा वीर (जर्हृषाणः) निरन्तर आनन्दयुक्त होकर (शत्रून्) धर्म्मविरोधी शत्रुजनों को (जयतु) जीते ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जब युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों उन में से एक तो वैद्यकशास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करने हारा वैद्य, दूसरा सब वीरों को हर्ष देनेवाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करनेवाला हो, तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥ ४४ ॥

रूपेणेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृज्जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥४५

पदार्थ—हे सेना और प्रजाजनो ! जैसे मैं (रूपेण) अपने दृष्टिगोचर आकार से (वः) तुम्हारे (रूपम्) स्वरूप को (अभि, आ, अगाम्) प्राप्त होता हूं । वैसे (विश्ववेदाः) सब को जाननेवाले परमात्मा के समान सभापति (वः) तुम लोगों को (वि, भजतु) पृथक् २ अपने २ अधिकार में नियत करे । हे सभापते ! (तुथः) सब से अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप (स्वः) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य्य के समान (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (अंतरिक्षम्) अविनाशी राजनीति वा ब्रह्मविज्ञान को (वि) अनेक प्रकार से (पश्य) देखो और सभा के बीच में (सदस्यैः) सभासदों के साथ सत्य मार्ग से (प्र, यतस्व) विशेष २ यत्न करो तथा हे (चन्द्रदक्षिणाः) सुवर्ण के दान करनेवाले राजपुरुषो ! तुम लोग धर्म्म को (वीत) विशेषता से प्राप्त होओ ॥ ४५ ॥

भावार्थ—सभापति को चाहिए कि अपने पुत्रों के तुल्य प्रजा सेना के पुरुषों को प्रसन्न रक्खे और परमेश्वर तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे । धार्मिक सभ्यजनों की तीन सभा होनी चाहिए उन में से एक राजसभा जिस के आधीन राज्य के सब कार्य्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें, दूसरी विद्यासभा जिस से विद्या का प्रचार अनेकविधि किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे और तीसरी धर्म्मसभा जिससे धर्म्म की उन्नति और अधर्म्म की हानि निरन्तर की जाय । सब लोगों को उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय मार्ग से अलग हो, धर्म्म का सेवन और सभाजनों के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार से विचार करके सत्य और असत्य के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

पदार्थ—हे प्रजा सभा और सेना के मनुष्यो ! जैसे मैं (अद्य) आज (ब्राह्मणम्) वेद और ईश्वर को जानने वाला (पितृमन्तम्) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से जिस के सर्वथा रक्षक हैं (पैतृमत्यम्) पितृभाव को प्राप्त (ऋषिम्) वेदार्थ विज्ञान कराने वाला ऋषि (आर्षेयम्) जो ऋषिजनों के इस योग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त (सुधातुदक्षिणम्) जिस के अच्छी अच्छी पुष्टिकारक दक्षिणारूप धातु हैं उस (प्रदातारम्) अच्छे दानशील पुरुष को (विदेयम्) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग (अस्मद्राताः) हमारे लिए अच्छे गुणों के देनेवाले होकर (देवत्रा) शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के (आगच्छत) समीप आओ और शुभ गुणों में (आविशत) प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उत्साही पुरुष को क्या नहीं प्राप्त हो सकता । कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋषि लोगों के प्रकाशित किए हुए योगविज्ञान को न सिद्ध कर सके । कोई भी विद्वान् अच्छे गुण कर्म्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाताजनों को कृपणता कभी नहीं आती है इस से जो देनेवाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र धार्मिक सर्वोपकारक विद्वानों को देते हैं उनकी अचल कीर्त्ति क्योंकर न हो ॥ ४६ ॥

अग्नये त्वेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वरुणो देवता । आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या,
रुद्राय त्वेत्यस्य स्वराट् प्राजापत्या, बृहस्पतयेत्वेत्यस्य निचृदार्चो, यमाय
त्वेत्यस्य विराडार्ची जगत्यश्छन्दांसि । निषादः स्वरः ॥

अब किस प्रयोजन के लिए दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीयायुर्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय

त्वा मह्यं वरु॑णो ददातु सो॒ऽमृ॒त॒त्वम॑शीय हयो॑ दा॒त्रऽए॑धि वयो॒ मह्यं॑ प्रति॒ग्रही॒त्रे ॥ ४७ ॥

पदार्थ—हे वसुसंज्ञक पढ़ानेवाले ! (अग्नये) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य का सेवन करके अग्नि के समान तेजस्वी होनेवाले (मह्यम्) मेरे लिए (त्वा) तुझ अध्यापक को (वरुणः) सर्वोत्तम विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) अपने शुद्ध कर्म्मों से सिद्ध किए सत्य आनन्द को (अशीय) प्राप्त होऊं उस (दात्रे) दानशील विद्वान् का (आयुः) बहुत कालपर्य्यन्त जीवन (एधि) बढ़ाइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करनेवाले (मह्यम्) मुझ विद्यार्थी के लिए (मयः) सुख बढ़ाइये । हे दुष्टों को रुलाने वाले अध्यापक ! जिस (रुद्राय) चवालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले (मह्यम्) मेरे लिए (त्वा) रुद्र नामक पढ़ानेवाले आपको (वरुणः) अत्युत्तम गुणयुक्त (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के साधनों को (अशीय) प्राप्त होऊं उस (दात्रे) विद्या देनेवाले विद्वान् के लिए (प्राणः) योगविद्या का बल (एधि) प्राप्त कराइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करनेवाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था का सुख प्राप्त कीजिए । हे सूर्य्य के समान तेजस्वि अध्यापक ! जिस (बृहस्पतये) अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन की इच्छा करने वाले (मह्यम्) मेरे लिए (त्वा) पूर्णविद्या पढ़ानेवाले आप को (वरुणः) पूर्णविद्या से शरीर और आत्मा के बलयुक्त विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) विद्या के आनन्द का (अशीय) भोग करूं उस (दात्रे) पूर्णविद्या देनेवाले महाविद्वान् के अर्थ (त्वक्) सरदी गरमी के स्पर्श का सुख (एधि) बढ़ाइये और (प्रतिग्रहीत्रे) पूर्ण विद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ शिष्य के लिए (मयः) पूर्ण विद्या का सुख उन्नत कीजिए । हे गृहाश्रम से होनेवाले विषय सुख से विमुख विरक्त सत्योपदेश करने हारे आप्त विद्वन् ! जिस (यमाय) गृहाश्रम के सुख के अनुराग से होने वाले (मह्यम्) मेरे लिए (त्वा) सर्वदोषरहित उपदेश करने वाले आप को (वरुणः) सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के सुख को (अशीय) प्राप्त होऊं । उस (दात्रे) ब्रह्मविद्या देनेवाले महाविद्वान् के लिए (हयः) ब्रह्मज्ञान की वृद्धि (एधि) कीजिए और (प्रतिग्रहीत्रे) मोक्षविद्या के ग्रहण करनेवाले (मह्यम्) मेरे लिए (वयः) तीनों अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिए ॥ ४७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तम गुण वाला सब विद्याओं में सब से बढ़कर विद्वान् हो उस के आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानों की परीक्षा करके अपनी अपनी कन्या और पुत्रों को उन उन के पढ़ाने योग्य विद्वानों से पढ़वावें और पढ़ने वालों को भी चाहिए कि अपनी अपनी अधिक न्यून बुद्धि को जान के अपने अपने अनुकूल अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए उनसे निरन्तर विद्या का ग्रहण करें ॥ ४७ ॥

कोऽदादित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । आत्मा देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है—

कोऽदा॒त्कस्मा॑ऽअदा॒त्कामो॑ऽदा॒त्कामा॑यादात् । कामो॑ दा॒ता कामः॑ प्रतिग्रही॒ता कामै॒तत्ते॑ ॥ ४८ ॥

पदार्थ—(कः) कौन कर्म्मफल को (अदात्) देता और (कस्मै) किस के लिए (अदात्) देता है । इन दो प्रश्नों के उत्तर (कामः) जिसकी कामना सब करते हैं वह परमेश्वर (अदात्) देता और (कामाय) कामना करनेवाले जीवों को (अदात्) देता है । अब विवेक करते हैं कि (कामः) जिसकी योगी जन कामना करते हैं वह परमेश्वर (दाता) देनेवाला है (कामः) कामना करनेवाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेनेवाला है । हे (काम) कामना करने वाले जीव ! (ते) तेरे लिए मैंने वेदों के द्वारा (एतत्) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस संसार में कर्म्म करनेवाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है । यहाँ यह जानना चाहिए कि कामना के बिना कोई आंख का पलक भी नहीं हिला सकता । इस कारण जीव कामना करे परन्तु धर्म्मसम्बन्धी कामना करे अधर्म्म की नहीं । यह निश्चय कर जानना चाहिए कि जो इस विषय में मनु जी ने कहा है वह वेदानुकूल है । जैसे इस संसार में अति कामना प्रशंसनीय नहीं और कामना के बिना कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिए धर्म्म की कामना करनी और अधर्म्म की नहीं क्योंकि वेदों का पढ़ना पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का आचरण करना आदि कामना इच्छा के बिना कभी सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥ इस संसार में तीनों काल में इच्छा के बिना कोई क्रिया नहीं दीख पड़ती जो जो कुछ किया जाता है सो सो सब इच्छा ही का व्यापार है । इसलिए श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करनी इतर दुष्ट कामों की नहीं ॥ ४८ ॥

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव, आत्मा का कर्म्म, आत्मा में मन की प्रवृत्ति, प्रथम सिद्ध योगी के लिए ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना, योग का लक्षण, पढ़ने पढ़ाने वालों की रीति, योगविद्या के अभ्यास करने वालों का वर्त्ताव, योगविद्या से अन्तःकरण की शुद्धि, योगाभ्यासी का लक्षण, गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार, स्वामी सेवक का वर्त्ताव, न्यायाधीश को प्रजा के रक्षा करने की रीति, राजपुरुष और सभासदों का कर्म्म, राजा का उपदेश, राजाओं का कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापति का करना, पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना, विद्वानों का कर्त्तव्य कर्म्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय, प्रजाजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव, राजा और प्रजा के जनों का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ाने का विषय, विद्या की वृद्धि करना, राजा का कर्त्तव्य, सेनापति का कर्म्म, सभाध्यक्ष की क्रिया, ईश्वर के गुणों का वर्णन, उसकी प्रार्थना, शूरवीरों को युद्ध का अनुष्ठान, सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य्य सेवन की रीति और ईश्वर की जीवों के प्रति उपदेश, इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की षष्ठाध्याय के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ अथाष्टमोऽध्यायारम्भः ॥

अब आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है—

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

उपयाम इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । बृहस्पतिस्सोमो देवता । आर्ची पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उसके प्रथम मन्त्र में गृहस्थ धर्म के लिए ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिए यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽस्यादि॒त्येभ्य॑स्त्वा । विष्ण॑ऽउरुगाये॒ष ते॒ सोम॒स्तꣳ र॑क्षस्व॒ मा त्वा॑ दभन् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं (आदित्येभ्यः) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनों की सभा में (त्वा) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूं आप (उपयामगृहीतः) शास्त्र के नियम और उपनियमों को ग्रहण करने वाले (असि) हो । हे (विष्णो) समस्त श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठ जन ! (ते) आपका (एषः) यह गृहस्थाश्रम (सोमः) सोमलता आदि के तुल्य ऐश्वर्य्य का बढ़ाने वाला है (तम्) उसकी (रक्षस्व) रक्षा करें । हे (उरुगाय) बहुत शास्त्रों को पढ़ने वाले ! (त्वा) आप को काम के बाण जैसे (मा दभन्) दुःख देनेवाले न होवें वैसा साधन कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिए कि अपने सदृश रूप गुण कर्म स्वभाव और विद्या वाला अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के योग्य अन्तःकरण से जिस पर प्रीति हो ऐसे पति को स्वयंवर विधि से स्वीकार करके उसकी सेवा किया करें । ऐसे ही कुमार ब्रह्मचारी लोगों को भी चाहिए कि अपने अपने समान युवती स्त्रियों का पाणिग्रहण करें, इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिए और परस्पर अत्यन्त विषय की लोलुपता तथा वीर्य का विनाश कभी न करें किन्तु सदा ऋतुगामी हों । दश सन्तानों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्छी शिक्षा देकर अपने ऐश्वर्य की वृद्धि कर प्रीतिपूर्वक रमण करें जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग

अप्रीति और व्यभिचार आदि दोष न हों वैसा वर्त्ताव वर्त्त कर आपस में एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल में किया करें ॥ १ ॥

कदा चन इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । गृहपतिर्मघवा देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽआदित्येभ्यस्त्वा ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य से युक्त पति ! जिस कारण आप (कदा) कभी (चन) भी (स्तरीः) अपने स्वभाव को छिपाने वाले (न) नहीं (असि) हैं इस कारण (दाशुषे) दान देने वाले पुरुष के लिए (उपोप) समीप (सश्चसि) प्राप्त होते हैं । हे (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त भर्त्ता ! (देवस्य) विद्वान् (ते) आप का जो (दानम्) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन आदि पदार्थों का देना है (इत्) वही (नु) शीघ्र (भूयः) अधिक करके मुझ को (पृच्यते) प्राप्त होवे । इसी से मैं स्त्रीभाव से (आदित्येभ्यः) प्रति महीने सुख देनेवाले आपका आश्रय करती हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—विवाह की कामना करने वाली युवती स्त्री को चाहिए कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक ही स्त्री को चाहने वाला जितेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उसके साथ विवाह करके आनन्द में रहे ॥ २ ॥

कदा चन प्रयुच्छसीत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—

कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य सवनं तऽइन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥३॥

पदार्थ—इस मन्त्र में नकार का अध्याहार आकांक्षा के होने से होता है । हे पते ! आप जो (कदा) कभी (चन) भी (प्र, युच्छसि) प्रमाद नहीं करते हो तो अपने (उभे) दोनों (जन्मनी) वर्त्तमान और परजन्म को (पासि) निरन्तर पालते हो । हे (आदित्य) विद्या गुणों में सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो (ते) आपके (सवनम्) उत्पत्ति धर्मयुक्त कार्य्य सिद्ध करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय के (आ, तस्थौ) वश में रहें तो आप (दिवि) प्रकाशित व्यवहारों में (अमृतम्) अविनाशी सुख को प्राप्त हो जावें । हे (तुरीय) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करनेवाले ! (आदित्येभ्यः) प्रति मास के सुख के लिए (त्वा) दृढेन्द्रिय आप को मैं स्त्री स्वीकार करती हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़ कर परस्त्री का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो संयमी अपनी ही स्त्री का चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता वह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगे ? इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें अन्य का नहीं ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥४॥

पदार्थ—हे (आदित्यासः) सूर्य्यलोकों के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान ! आप जो (देवानाम्) विद्वान् (वः) आप लोगों का यह (यज्ञः) स्त्रीपुरुषों के वर्त्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार (सुम्नम्) सुख को (प्रति, एति) निश्चय करके प्राप्त करता है और (या) जो (अंहोः) गृहाश्रम के सुख को सिद्ध करने वाली (अर्वाची) अच्छी शिक्षा और विद्याभ्यास के पीछे विज्ञानप्राप्ति का हेतु (वरिवोवित्तरा) सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली आप लोगों की (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग में (आ) निरन्तर (ववृत्यात्) प्रवृत्त होवे जो (आदित्येभ्यः) आप्त विद्वानों से उत्तम विद्या और शिक्षा जो (त्वा) तुझ को (असत्) प्राप्त हो (चित्) उस बुद्धि से ही युक्त हम दोनों स्त्री पुरुष को (मृडयन्तः) सदा सुख देते (भवत) रहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—विवाह करके स्त्रीपुरुषों को चाहिए कि जिस जिस काम से विद्या अच्छी शिक्षा धन सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें ॥ ४ ॥

विवस्वन्नित्यस्य कुत्स ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य प्राजापत्याऽनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः। श्रदित्युत्तरस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽएधते गृहे ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (विवस्वन्) विविध प्रकार के स्थानों में वसने वाले (आदित्य) अविनाशीस्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! (एषः) यह जो (ते) आपका (सोमपीथः) जिस में सोमलता आदि ओषधियों के रस पीने में आवें ऐसा गृहाश्रम है (तस्मिन्) उसमें आप (विश्वाहा) सब दिन (मत्स्व) आनन्दित रहो । हे (नरः) गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो ! आप लोग (अस्मै) इस (वचसे) गृहाश्रम के वाग् व्यवहार के लिए (श्रत्) सत्य ही का (दधातन) धारण करो (यत्) जिस (गृहे) गृहाश्रम में (दम्पती) स्त्रीपुरुष (वामम्) प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को (अश्नुतः) प्राप्त होते हैं उस में (आशीर्दा) कामना देनेवाला (अरपः) निष्पाप धर्मात्मा (पुमान्) पुरुषार्थी (पुत्रः) वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है और वह उत्तम (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है (अध) इस के अनन्तर वह विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से (एधते) बढ़ता है ॥ ५॥

भावार्थ—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षापूर्वक स्वयंवर विवाह और सत्य आचरणों से संतानों को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके नित्य उन्नति पावें ॥५॥

वाममद्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (देव) सुख देने (सवितः) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेवाले मुख्यजन ! आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (अद्य) आज (वामम्) अति प्रशंसनीय सुख (उ) और आज ही क्या किन्तु (श्वः) अगले दिन (वामम्) उक्त सुख तथा (दिवेदिवे) दिन दिन (वामम्) उस सुख को (सावीः) उत्पन्न कीजिये जिससे हम लोग आप की कृपा से उत्पन्न हुई (अया) इस (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि से (भूरेः) अनेक पदार्थों से युक्त (वामस्य) अत्यन्त सुन्दर (क्षयस्य) गृहाश्रम के बीच में (वामभाजः) प्रशंसनीय कर्म करनेवाले (हि) ही (स्याम) होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—गृहस्थजनों को चाहिये कि ईश्वर के अनुग्रह से प्रशंसनीय बुद्धियुक्त मङ्गलकारी गृहाश्रमी होकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिस से तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में अत्यन्त सुखी हों ॥६॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता गृहपतिर्देवता । विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे पुरुष ! तुम से जैसे मैं नियम और उपनियमों से ग्रहण करी गई हूँ वैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) विवाह नियम से ग्रहण किया (असि) है जैसे आप (चनोधाः, चनोधाः) अन्न अन्न के धारण करनेवाले (असि) हैं और (सावित्रः) सविता समस्त संतानादि सुख उत्पन्न करनेवाले आपको अपना इष्टदेव माननेवाले (असि) हैं वैसे मैं भी हूँ । जैसे आप (मयि) मेरे निमित्त (चनः) अन्न को (धेहि) धरिये, वैसे मैं भी आपके निमित्त धारण करूं जैसे आप (यज्ञम्) दृढ़ पुरुषों के सेवने योग्य धर्म व्यवहार को (जिन्व) प्राप्त हों वैसे मैं भी प्राप्त होऊं और जैसे (सवित्रे) सन्तानों की उत्पत्ति के हेतु (भगाय) धनादि सेवनीय (देवाय) दिव्य ऐश्वर्य के लिये (यज्ञपतिम्) गृहाश्रम को पालने हारे आपको मैं प्रसन्न रक्खूं वैसे आप भी (जिन्व) तृप्त कीजिये ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विवाहित स्त्री पुरुषों को योग्य है कि लाभ के अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ सन्तानोत्पत्ति का आचरण करें ॥७॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः । आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । सुशर्म्मेत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ को सेवने योग्य धर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः ।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे पते ! जैसे मैंने आपको (उपयामगृहीतः) नियम उपनियमों से ग्रहण किया (असि) है और (सुप्रतिष्ठानः) अच्छी प्रतिष्ठा और (सुशर्मा)

अच्छे घर वाले (**असि**) हो उन (**बृहदुक्षाय**) अत्यन्त वीर्य देनेवाले आपको (**नमः**) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ चित्त को प्रसन्न करनेवाला अन्न उचित समय पर देती हूँ जिस आप का (**एषः**) यह (**योनिः**) सुखदायक महल है (**त्वा**) उस आपको (**विश्वेभ्यः**) सब (**देवभ्यः**) दिव्य सुखों के लिये सेवन करती हूँ और (**त्वा**) आपको (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये नियुक्त करती हूँ वैसे आप मुझको कीजिये ॥८॥

भावार्थ—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखनेवाले पुरुष का सब ऋतुओं में सुख देनेवाला घर हो और आप वीर्यवान् हो उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करे और उसके लिये यथोचित समय पर सुख देवे तथा आप उस पति से उचित समय में दिव्य सुख भोगे और वे स्त्री पुरुष दोनों विद्वानों का सत्संग किया करें ॥८॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्य प्राजापत्यागायत्री, बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्यार्ष्युष्णिक्, अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षी पंक्तिश्च छन्दांसि । क्रमेणषड्जर्षभपञ्चमाः स्वराः ॥

फिर गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम तऽइन्दोरिन्द्रियावतः । पत्नीवतो ग्रहाँ२ऽऋद्ध्यासम् । अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत् । अहꣳसूर्य्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (**देव**) अति मनोहर पते ! जिस आप को मैं कुमारी ने (**उपयामगृहीतः**) विवाह नियमों से स्वीकार किया (**असि**) है उन (**इन्दोः**) सोमगुणसम्पन्न (**इन्द्रियावतः**) बहुत धन वाले और (**पत्नीवतः**) यज्ञ समय में प्रशंसनीय स्त्रीग्रहण करनेवाले (**बृहस्पतिसुतस्य**) और बड़ी वेदवाणी के पालनेवाले के पुत्र (**ते**) आप के गृह और सम्बन्धियों को प्राप्त होके मैं (**परस्तात्**) आगे और (**अवस्तात्**) पीछे के समय में (**ऋध्यासम्**) सुखों से बढ़ती जाऊं (**यत्**) जिस (**देवानाम्**) विद्वानों की (**गुहा**) बुद्धि में स्थित (**अन्तरिक्षम्**) सत्य विज्ञान को मैं (**एमि**) प्राप्त होती हूँ उसी को तू भी प्राप्त हो और जो (**मे**) मेरा (**पिता**) पालन करने हारा (**अभूत**) हो (**अहम्**) मैं (**उभयतः**) उसके अगले पिछले उन शिक्षा विषयों से जिस (**सूर्य्यम्**) चर अचर के आत्मा रूप परमेश्वर को (**ददर्श**) देखूं उसी को तू भी देख ॥९॥

भावार्थ—स्त्री और पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे की परीक्षा कर के अपने समान गुण कर्म्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुरुषार्थ और विद्यायुक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों जिसके माता और पिता विद्वान् न हों उनके सन्तान भी उत्तम नहीं हो सकते इससे अच्छी और पूर्ण विद्या को ग्रहण करके ही गृहाश्रम के आचरण करें इसके पूर्व नहीं ॥९॥

अग्ना३इ पत्नीवन्नित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) समस्त सुख पहुँचानेवाले स्वामिन् ! (**सजूः**) समान प्रीति करनेवाले आप मेरे (**देवेन**) दिव्य सुख देनेवाले (**त्वष्ट्रा**) समस्त दुःख विनाश करनेवाले गुण के साथ (**स्वाहा**) सत्यवाणीयुक्त क्रिया से (**सोमम्**) सोमवल्ली आदि ओषधियों के विशेष आसव को (**पिब**) पीओ । हे (**पत्नीवन्**) प्रशंसनीय यज्ञसंबंधिनी स्त्री को ग्रहण करने (**वृषा**) वीर्य्य सींचने (**रेतोधाः**) वीर्य्य धारण करने (**प्रजापतिः**) और सन्तानादि के पालनेवाले ! जो आप (**असि**) हैं वह (**मयि**) मुझ विवाहित स्त्री में (**रेतः**) वीर्य्य को (**धेहि**) धारण कीजिये । हे स्वामिन् ! मैं (**वृष्णः**) वीर्य्य सींचने (**रेतोधसः**) पराक्रम धारण करने (**प्रजापतेः**) सन्तान आदि की रक्षा करनेवाले (**ते**) आपके संग से (**रेतोधाम्**) वीर्य्यवान् अति पराक्रमयुक्त पुत्र को (**अशीय**) प्राप्त होऊं ॥१०॥

भावार्थ—इस संसार में मनुष्यजन्म को पाकर स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य उत्तम विद्या अच्छे गुण और पराक्रमयुक्त होकर विवाह करें । विवाह की मर्यादा ही से सन्तानों की उत्पत्ति और रतिक्रीड़ा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहें विना विवाह के स्त्री पुरुष वा पुरुष स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें जिससे मनुष्यशक्ति की बढ़ती होवे इससे गृहाश्रम का आरम्भ स्त्री पुरुष करें ॥१०॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा । हर्य्योर्धाना स्थ सहसोमाऽइन्द्राय ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे पते ! आप (**उपयामगृहीतः**) गृहाश्रम के लिए हुए (**असि**) हैं (**हारियोजनः**) घोड़ों को जोड़नेवाले सारथि के समान (**हरिः**) यथायोग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलानेवाले (**असि**) हैं इस कारण (**हरिभ्याम्**) अच्छी शिक्षा को पाए हुए घोड़े से युक्त रथ में विराजमान (**त्वा**) आप की मैं सेवा करूं । तुम लोग गृहाश्रम करनेवाले (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (**सहसोमाः**) उत्तम गुणयुक्त होकर (**हर्य्योः**) वेगादि गुणवाले घोड़ों को (**धानाः**) स्थानादिकों में स्थापन करनेवाले (**स्थ**) होओ ॥११॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सद्गुण सद्विद्या युक्त होकर विवाह की इच्छा करनेवाले कन्या और पुरुष युवावस्था को पहुंच और परस्पर एक दूसरे के धन की उन्नति को अच्छे प्रकार देख कर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दुःख की उन्नति होती है । इसलिये उक्त गुणों से विवाह कर आनन्दित हुए प्रतिदिन ऐश्वर्य की उन्नति करें ॥११॥

यस्त इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब गृहस्थों की मित्रता अगले मन्त्र में कही है—

यस्तेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य तऽइष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे प्रियवीर पुरुष मित्र ! जो आप (**उपहूतः**) मुझ से सत्कार को प्राप्त होकर (**अश्वसनिः**) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों और (**गोसनिः**) संस्कृत वाणी भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देनेवाले (**असि**) हैं उन (**शस्तोक्थस्य**) प्रशंसित ऋग्वेद के सूक्तयुक्त (**इष्टयजुषः**) इष्ट सुखकार यजुर्वेद के भागयुक्त वा (**स्तुतस्तोमस्य**) सामवेद के गान के प्रशंसा करने हारे (**ते**) आप का (**यः**) जो (**भक्षः**) चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थ है उसको आप से सत्कृत हुई मैं (**भक्षयामि**) भोजन करूं तथा हे प्रिय सखि ! जो तू अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों के देने और संस्कृत वाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे अच्छे पदार्थ देने वाली है उस प्रशंसनीय ऋक्सूक्त यजुर्वेद भाग से स्तुति किये हुए सामगान करनेवाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है उसको अच्छे मान से बुलाया हुआ मैं भोजन करता हूँ ॥१२॥

भावार्थ—अच्छे उत्साह बढ़ानेवाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करनेवाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्र और बन्धुजन आदि को बुला कर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्विलास को करें ॥१२॥

देवकृतस्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः । मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्न्युष्णिक्, पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत्साम्न्युष्णिक्, एनस इत्यस्य प्रजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् च छन्दांसि । ऋषभः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है—

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसऽएनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सब के उपकार करनेवाले मित्र ! आप (**देवकृतस्य**) दान देनेवाले के (**एनसः**) अपराध के (**अवयजनम्**) विनाश करनेवाले (**असि**) हो (**मनुष्यकृतस्य**) साधारण मनुष्यों के किये हुए (**एनसः**) अपराध के (**अवयजनम्**) विनाश करनेवाले (**असि**) हो (**पितृकृतस्य**) पिता के किये हुए (**एनसः**) विरोध आचरण के (**अवयजनम्**) अच्छे प्रकार हरनेवाले (**असि**) हो (**आत्मकृतस्य**) अपने किये हुए (**एनसः**) पाप के (**अवयजनम्**) दूर करनेवाले (**असि**) हो (**एनसः**) अधर्म्म अधर्म्म के (**अवयजनम्**) नाश करने हारे (**असि**) हो (**विद्वान्**) जानता हुआ मैं (**यत्**) जो (**च**) कुछ भी (**एनः**) अधर्म्माचरण (**चकार**) किया, करता हूँ वा करूं (**अविद्वान्**) अनजान में (**यत्**) जो (**च**) कुछ भी किया करता हूँ वा करूं (**तस्य**) उस (**सर्वस्य**) सब (**एनसः**) दुष्ट आचरण के (**अवयजनम्**) दूर करनेवाले आप (**असि**) हैं ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करनेवाले जनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें । जाने वा विना जाने अपने कर्त्तव्य अर्थात् जिस को किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरों के किए हुए अपराध को औरों से छुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों ॥१३॥

सं वर्चसेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी मित्रकृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१४॥

पदार्थ—हे सब विद्याओं के पढ़ाने (**त्वष्टा**) सब व्यवहारों के विस्तारकारक (**सुदत्रः**) अत्युत्तम दान के देनेवाले विद्वन् ! आप (**संशिवेन**) ठीक ठीक कल्याण

कारक (मनसा) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण (संवर्चसा) अच्छे अध्ययन अध्यापनके प्रकाश (पयसा) जल और अन्न से (यत्) जिस (तन्वः) शरीर की (विलिष्टम्) विशेष न्यूनता को (अनुमार्ष्टु) अनुकूल शुद्धि से पूर्ण और (रायः) उत्तम धनों को (विदधातु) विधान करो। उस देह और शरीरों को हम लोग (तनूभिः) ब्रह्मचर्य्य व्रतादि सुनियमों से बलयुक्त शरीरों से (समगन्महि) सम्यक् प्राप्त हों ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को नीरोग और मन को धर्म में निवेश करके सदा सुख की उन्नति करें और जो कुछ न्यूनता हो उसको परिपूर्ण करें, तथा जैसे कोई मित्र तुम्हारे सुख के लिए वर्त्ताव वर्त्ते वैसे उसके सुख के लिए आप भी वर्त्तो ॥१४॥

समिन्द्रेत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मित्र का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है—

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सन्देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥१५॥

पदार्थ—हे (मघवन्) पूज्य धनयुक्त (इन्द्र) सत्यविद्यादि ऐश्वर्य्य सहित (सम्) सम्यक् पढ़ाने और उपदेश करनेहारे! आप जिससे (सम्, मनसा) उत्तम अन्तःकरण से (सम्) अच्छे मार्ग (गोभिः) गौओं वा (सम्, स्वस्त्या) अच्छे अच्छे वचन युक्त सुखरूप व्यवहारों में (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान वा धन से विद्या और (यत्) जो (यज्ञियानाम्) यज्ञ के पालन करने वाले को करनेयोग्य (देवानाम्) विद्वानों की (स्वाहा) सत्य वाणीयुक्त (सुमतौ) श्रेष्ठ बुद्धि में (देवकृतम्) विद्वानों के किये कर्म्म हैं उनको (स्वाहा) सत्य वाणी से (नः) हम लोगों को (सन्नेषि) सम्यक् प्रकार से प्राप्त करते हो, इसीसे आप हमारे पूज्य हो ॥१५॥

भावार्थ—गृहस्थ जनों को विद्वान् लोग इसलिए सत्कार करने योग्य हैं कि वे बालकों को अपनी शिक्षा से गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनों को ऐश्वर्य्य-युक्त करते हैं ॥१५॥

संवर्चसा इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सं वर्च्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे आप्त अत्युत्तम विद्वानो! आप लोगों की सुमति में प्रवृत्त हुए हम लोग जो आप लोगों के मध्य (सुदत्रः) विद्या के दान से विज्ञान को देने और (त्वष्टा) अविद्यादि दोषों का नष्ट करनेवाला विद्वान् हम को (संवर्च्चसा) उत्तम दिन और (पयसा) रात्रि से (सशिवेन) अति कल्याणकारक (मनसा) विज्ञान से (यत्) जिस (तन्वः) शरीर से हानिकारक कर्म्म को (अनुमार्ष्टु) दूर करे और (रायः) पुष्टिकारक द्रव्यों को (विदधातु) प्राप्त करावें उस और उन पदार्थों को (समगन्महि) प्राप्त हों ॥१६॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के संग से धर्म्मार्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करते रहें ॥१६॥

धाता रातिरित्यस्यात्रिर्ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर गृहस्थों के कर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवोऽअग्निः। त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳ रराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा ॥१७॥

पदार्थ—हे गृहस्थो! तुम (धाता) गृहाश्रम धर्म्म धारण करने (रातिः) सब के लिए सुख देने (सविता) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने (प्रजापतिः) सन्तानादि के पालने (निधिपाः) विद्या आदि (ऋद्धि) अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने (देवः) दोषों के जीतने (अग्निः) अविद्यारूप अन्धकार के दाह करने (त्वष्टा) सुख के बढ़ाने और (विष्णुः) समस्त उत्तम उत्तम शुभ गुण कर्म्मों में व्याप्त होनेवालों के सदृश होके (प्रजया) अपने सन्तानादि के साथ (संरराणाः) उत्तम दानशील होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इदम्) इस गृहकार्य्य को (जुषन्ताम्) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर (यजमानाय) यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले के लिए जिस बल से उत्तम २ बली पुरुष बढ़ते जायं उस (द्रविणम्) धन को (दधात) धारण करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम में रहके अच्छे गुण कर्मों का धारण, ऐश्वर्य्य की उन्नति तथा रक्षा, प्रजापालन, योग्य पुरुषों को दान, दुःखियों का दुःख छुड़ाना, शत्रुओं के जीतने और शरीरात्मबल में प्रवृत्ति आदि गुण धारण करें ॥ १७ ॥

सुगा व इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर गृहकर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुगा वो देवाः सदनाऽअकर्म्म यऽआजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः। भरमाणा वहमाना हवीꣳष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥१८॥

पदार्थ—हे (वसवः) श्रेष्ठ गुणों में रमण करनेवाले (देवाः) व्यवहारी जनो! (ये) जो (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (इदम्) इस (सवनम्) ऐश्वर्य का (जुषाणाः) सेवन (भरमाणाः) धारण करने (वहमानाः) औरों से प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिए (सुगा) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य (सदना) जिनके निमित्त पुरुषार्थ किया जाता है उन (हवींषि) देने लेने योग्य (वसूनि) धनों को (अकर्म) प्रकट कर रहे और (आजग्म) प्राप्त हुए हैं (अस्मे) हमारे लिए उन (वसूनि) धनों को आप (धत्त) धरो ॥ १८ ॥

भावार्थ—जैसे पिता पति श्वशुर सासू मित्र और स्वामी पुत्र कन्या स्त्री स्नुषा सखा और भृत्यों का पालन करते हुए सुख देते हैं वैसे पुत्रादि भी इनकी सेवा करना उचित समझें ॥ १८ ॥

याँ२ऽआ वह इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी घर का काम अगले मन्त्र में कहा है—

याँ२ऽआ वहऽउशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वेऽअग्ने सधस्थे। जक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेऽसुं घर्मꣳ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥१९॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य स्वभाव वाले अध्यापक! तू (स्वे) अपने (सधस्थे) साथ बैठने के स्थान में (यान्) जिन (उशतः) विद्या आदि अच्छे २ गुणों की कामना करते हुए (देवान्) विद्वानों को (आ, अवहः) प्राप्त हो (तान्) उनको धर्म्म में (प्र, ईरय) नियुक्त कर। हे गृहस्थ! (जक्षिवांसः) अन्न खाते और (पपिवांसः) पानी पीते हुए (विश्वे) सब तुम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (घर्मम्) अन्न और यज्ञ तथा (असुम्) श्रेष्ठ बुद्धि वा (स्वः) अत्यन्त सुख को (अनु, आ, तिष्ठत) प्राप्त होकर सुखी रहो ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक से विद्या और श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त जो बालक सत्य धर्म्म कर्म्म में वर्त्तने वाले हों वे सुखभागी हों और नहीं ॥ १९ ॥

वयमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

अब व्यवहार करनेवाले गृहस्थ के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वयꣳ हि त्वा प्रयति यज्ञेऽअस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह। ऋधगयाऽऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुप याहि विद्वान्त्स्वाहा ॥२०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञान देनेवाले (वयम्) हम लोग (इह, प्रयति) इस प्रयत्नसाध्य (यज्ञे) गृहाश्रमरूप यज्ञ में (त्वा) तुझको (होतारम्) सिद्ध करने वाला (अवृणीमहि) ग्रहण करें (विद्वान्) सब विद्यायुक्त (प्रजानन्) क्रियाओं के जानने वाले आप (ऋधक्) समृद्धिकारक (यज्ञम्) गृहाश्रमरूप यज्ञ को (स्वाहा) शास्त्रोक्त क्रिया से (उप, याहि) समीप प्राप्त हो (उत) और केवल प्राप्त ही नहीं किन्तु (अयाः) उससे दान सत्संग श्रेष्ठ गुण वालों का सेवन कर (हि) निश्चय करके (अस्मिन्) इस (ऋधक्) अच्छी ऋद्धि सिद्धि के बढ़ाने वाले गृहाश्रम के निमित्त में (अशमिष्ठाः) शान्त्यादि गुणों को ग्रहण करके सुखी हो ॥ २० ॥

भावार्थ—सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें ॥ २० ॥

देवा गातुवित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है—

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (गातुविदः) अपने गुण कर्म और स्वभाव से पृथिवी के आने जाने को जानने (देवाः) तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशंसा के साथ प्रचार करनेवाले विद्वान् लोगो! तुम (गातुम्) भूगर्भविद्यायुक्त भूगोल को (वित्त्वा) जान कर (गातुम्) पृथिवी राज्य आदि उत्तम कामों के उपकार को (इत) प्राप्त हूजिये। हे (मनसस्पते) इन्द्रियों के रोकनेहारे (देव) श्रेष्ठ विद्याबोधसम्पन्न विद्वानो! तुम में से प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ (स्वाहा) धर्म बढ़ाने वाली क्रिया से (इमम्) इस गृहाश्रम रूप (यज्ञम्) सब सुख पहुँचाने वाले यज्ञ को (वाते) विशेष जानने योग्य व्यवहारों में (धाः) धारण करो ॥ २१ ॥

भावार्थ—गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भ-विद्याओं को जान इन्द्रियों को जीत परोपकारी होकर और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणिमात्र को सुखी करें ॥ २१ ॥

यज्ञ यज्ञमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। भुरिक् साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। एष इत्यस्य विराडार्ची बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यज्ञं यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा।

एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ॥२२॥

पदार्थ—हे (यज्ञ) सत्कर्मों से संगत होनेवाले गृहाश्रमी ! तू (स्वाहा) सत्य २ क्रिया से (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कारपूर्वक गृहाश्रम को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपतिम्) संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वाम्) अपने (योनिम्) घर और स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपते) गृहाश्रम धर्म्मपालक तू (ते) तेरा जो (एषः) यह (सहसूक्तवाकः) ऋग् यजुः साम और अथर्व वेद के सूक्त और अनुवाकों से कथित (सर्ववीरः) जिससे आत्मा और शरीर के पूर्ण बलयुक्त समस्त वीर प्राप्त होते हैं (यज्ञः) प्रशंसनीय प्रजा की रक्षा के निमित्त विद्याप्रचाररूप यज्ञ है (तम्) उसको तू (स्वाहा) सत्यविद्या न्याय प्रकाश करनेवाली वेदवाणी से (जुषस्व) प्रीति से सेवन कर ॥ २२ ॥

भावार्थ—प्रजाजन गृहस्थ पुरुष बड़े-बड़े यत्नों से घर के कार्यों को उत्तम रीति से करें। राजभक्ति राजसहायता और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम को सब प्रकार से पालें और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को संतुष्ट करे ॥ २२ ॥

माहिर्भूरित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आद्यस्य याजुष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। उरुमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। नम इत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में राजा के लिये उपदेश किया है—

माहिर्भूर्मा पृदाकुः। उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवाऽउ। अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्। नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे राजन् सभापते ! तू (वरुणस्य) उत्तम ऐश्वर्य के वास्ते (उरुम्) बहुत गुणों से युक्त न्याय को (अकः) कर (सूर्याय) चराचर के आत्मा जगदीश्वर के विज्ञान होने (सूर्याय) और प्रजागणों का यथायोग्य धर्म्म प्रकाश में चलने के लिए (पंथाम्) न्यायमार्ग को (चकार) प्रकाशित कर (उत) और कभी (अपवक्ता) झूठ बोलने वाला (हृदयाविधः) धर्मात्माओं के मन को संताप देनेवाले के (चित्) सदृश (पृदाकुः) खोटे वचन कहनेवाला (मा) मत हो और (अहिः) सर्प के समान क्रोधरूपी विष का धारण करनेवाला (मा) मत (भूः) हो और जैसे (वरुणस्य) वीर गुण वाले तेरा (अभिष्ठितः) अति प्रकाशित (नमः) वज्रस्वरूप दण्ड और (पाशः) बन्धन करने की सामग्री प्रकाशमान रहे वैसे प्रयत्न को सदा किया कर ॥ २३ ॥

भावार्थ—प्रजाजनों को चाहिए कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतनेवाला धर्मात्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चित्त लगावे और सब के लिये सुख करनेवाला सत्पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा वा प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को न करें, जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दण्ड देवे किन्तु कभी अपराधी को दण्ड दिये बिना न छोड़े और निरपराधी को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे। इस प्रकार सब कोई न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने २ प्रत्येक कामों के चिन्तवन में रहें जिससे अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखनेवाले और शत्रु न हों और विद्या तथा धर्म के मार्गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण होके सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

अग्नेरनीकमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्नेरनीकमपऽआ विवेशापान्नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्यम्। दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे गृहस्थ ! तू (अग्नेः) अग्नि की (अनीकम्) लपटरूपी सेना के प्रभाव और (अपः) जलों को (आ, विवेश) अच्छी प्रकार समझ (अपाम्) उत्तम व्यवहार सिद्धि करानेवाले गुणों को जानकर (नपात्) अविनाशीस्वरूप ! तू (असुर्यम्) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन को (प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमेदमे) घर २ में (समिधम्) जिस क्रिया से ठीक २ प्रयोजन निकले उसको (यक्षि) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्वा) जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा) सत्यव्यवहार से (उत, चरण्यत्) देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥ २४ ॥

भावार्थ—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इससे गृहस्थ जन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें ॥ २४ ॥

समुद्रे त इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः। यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥२५॥

पदार्थ—हे (यज्ञपते) जैसे गृहाश्रम धर्म्म के पालने हारे ! हमलोग (स्वाहा) प्रेमास्पदवाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (सूक्तोक्तौ) उस प्रबन्ध कि जिसमें वेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी अच्छी बातें हैं और (नमोवाके) वेद प्रमाणसिद्ध अन्न और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप (समुद्रे) आर्द्र व्यवहार और (अप्सु) सब प्रमाणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृदयम्) हृदय को संतुष्टि में (विधेम) नियत करें वैसे उससे जानी हुई (ओषधीः) यव गेहूं चना सोमलतादि सुख देनेवाले पदार्थ (आ, विशंतु) प्राप्त हों (उत) और न केवल ये ही किन्तु (आपः) अच्छे जल भी तुझको सुख करनेवाले हों ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुरुष गृहस्थों को सत्यविद्या को ग्रहण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के कामों में सबको युक्त करें जिससे गृहाश्रम चाहने और करनेवाले पुरुष शरीर और आत्मा का बल बढ़ावें ॥ २५ ॥

देवीराप इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मन्त्र में किया जाता है—

देवीरापऽएष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत। देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे (आपः) समस्त शुभ गुण कर्म्म और विद्याओं में व्याप्त होने वाली (देवीः) अति शोभायुक्त स्त्रीजनो ! तुम सब (यः) जो (एषः) यह (वः) तुम्हारा (गर्भः) गर्भ (लोकः) पुत्र पति आदि के साथ सुखदायक है (तम्) उसको (सुप्रीतम्) श्रेष्ठ प्रीति के साथ (सुभृतम्) जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय वैसे (बिभृत) धारण और उसकी रक्षा करो। हे (देव) दिव्य गुणों से मनोहर (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त ! तू जो (एषः) यह (ते) तुम्हारा (लोकः) देखने योग्य पुत्र स्त्री भृत्यादि सुखकारक गृहाश्रम है (तस्मिन्) इसके निमित्त (शम्) सुख (च) और शिक्षा (वक्ष्व) पहुंचा (च) तथा इसकी रक्षा (परिवक्ष्व) सब प्रकार कर ॥ २६ ॥

भावार्थ—पढ़ी हुई स्त्री यथोक्त विवाह की विधि से विद्वान् पति को प्राप्त होकर उसको आनन्दित कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूल गर्भ को धारण करे। वह पति भी स्त्री की रक्षा और उसकी प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो ॥ २६ ॥

अवभृथेत्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। अवदेवैरित्यस्य स्वराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर गृहस्थ धर्म्म में स्त्री का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि। देवानाꣳ समिदसि ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे (अवभृथ) गर्भ को धारण करने के पश्चात् उसकी रक्षा करने (निचुम्पुण) और मन्द २ चलनेवाले पति ! आप (निचुम्पुणः) नित्य मन हरने और (निचेरुः) धर्म्म के साथ नित्य द्रव्य का संचय करनेवाले (असि) हैं तथा (देवानाम्) विद्वानों के बीच में (समित्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (असि) हैं। हे (देव) सबसे अपनी जय चाहनेवाले ! (देवैः) विद्वान् और (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के साथ वर्त्तमान आप, जो मैं (देवकृतम्) कामी पुरुषों वा (मर्त्यकृतम्) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनः) अपराध को (अयासिषम्) प्राप्त होना चाहूं उस (पुरुराव्णः) बहुत से अपराध करनेवालों के (रिषः) धर्म्म छुड़ाने वाले काम से मुझे (पाहि) दूर रख ॥ २७ ॥

भावार्थ—स्त्री अपने पति की नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य आनन्दित चित्त आपको प्रतिदिन चाहती हूँ वैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो जिससे मैं दुष्टाचरण करनेवाले मनुष्य के किये हुए अपराध की भागिनी किसी प्रकार न होऊँ ॥ २७ ॥

एजत्वित्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। एवायमित्यस्यापि साम्न्यासुर्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है—

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽएजति। एवायं दशमास्योऽअस्रज्जरायुणा सह ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुष ! जैसे (वायुः) पवन (एजति) कम्पता है वा जैसे (समुद्रः) समुद्र (एजति) अपनी लहरों से उछलता है वैसे तुम्हारा (अयम्) यह (दशमास्यः) पूर्ण दश महीने का गर्भ (एजतु) क्रम २ से बढ़े और ऐसे बढ़ता हुआ (अयम्) यह (दशमास्यः) दश महीने में परिपूर्ण होकर ही (अस्रत्) उत्पन्न होवे ॥ २८ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्यधर्म्म से शरीर की पुष्टि, मन की संतुष्टि और विद्या की वृद्धि को प्राप्त होकर और विवाह किये हुए जो स्त्री पुरुष हों वे यत्न के साथ गर्भ को रक्खें कि जिससे वह दश महीने के पहिले गिर न जाय क्योंकि जो गर्भ दश महीने से अधिक दिनों का होता है वह प्रायः बल और बुद्धि वाला होता है और जो इससे पहिले होता है वह वैसा नहीं होता ॥ २८ ॥

यस्या इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है—

यस्यैं ते युज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरुण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमुꣳ स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (यस्यै) जिस (ते) तेरी (हिरण्ययी) रोगरहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्यै) जिससे तेरा (यज्ञियः) यज्ञ के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्य) जिस गर्भ के (अह्रुता) सुन्दर सीधे (अङ्गानि) अङ्ग हैं (तम्) उसको (मात्रा) गर्भ की कामना करनेवाली तेरे साथ समागम करके (स्वाहा) धर्म्मयुक्त क्रिया से (सम्, अजीगमम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ ॥ २९ ॥

भावार्थ—पुरुष को चाहिये कि गृहाश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना वीर्य्य की बढ़ती शुद्धि से उसकी उन्नति करें, स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ को प्राप्त हो के उसकी स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और बल वाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २९ ॥

पुरुदस्म इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है—

पुरुदुस्मो विषुरूपऽइन्दुरुन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः । एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमुष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताꣳ स्वाहा ॥३०॥

पदार्थ—(पुरुदस्मः) जिनके गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है (विषुरूपः) जिसने जन्मक्रम से अनेक रूप रूपान्तर विद्या-विषयों में प्रवेश किया है (इन्दुः) जो परमैश्वर्य्य को सिद्ध करनेवाला (धीरः) समस्त व्यवहारों में ध्यान देनेहारा पुरुष है वह गृहस्थ धर्म्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (महिमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करे, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान करके जिस (एकपदीम्) जिसमें एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिसमें दो अर्थात् संसारसुख और मोक्षसुख (त्रिपदीम्) जिससे वाणी मन और शरीर तीनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिससे चारों धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदीम्) और जिससे आठों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं उस (स्वाहा) समस्त विद्यायुक्त वाणी को जानकर सब गृहस्थ जन (भुवना) जिनमें प्राणिमात्र निवास किया करते हैं उन घरों की (प्रथन्ताम्) प्रशंसा करें और उससे सब मनुष्यों को (अनु) अनुकूलता से बढ़ावें ॥ ३० ॥

भावार्थ—विवाह किये हुए स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम की विद्या को सब प्रकार जानकर उसके अनुसार संतानों को उत्पन्न कर मनुष्य को बढ़ा और उन को ब्रह्मचर्य्य नियम से समस्त अङ्ग उपांगसहित विद्या का ग्रहण कराके उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होके आनन्दित करें ॥ ३० ॥

मरुतो यस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में भी गृहस्थधर्म्म का विषय कहा है—

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे (विमहसः) विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य (मरुतः) विद्वान् गृहस्थ लोगो ! तुम (यस्य) जिस गृहस्थ के (क्षये) घर में सुवर्ण उत्तम रूप (दिवः) दिव्य गुण स्वभाव वा प्रत्येक कामों के करने की रीति को (पाथ) प्राप्त हों (सः, हि) वह (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार वाणी और पृथिवी की पालना करनेवाला (जनः) मनुष्य सेवा के योग्य है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य उत्तम शिक्षा विद्या शरीर और आत्मा का बल आरोग्य पुरुषार्थ ऐश्वर्य सज्जनों का संग आलस्य का त्याग यम नियम और उत्तम सहाय के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा नहीं जा सकता (इसके विना धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती इसलिये इसका पालन सब को बड़े यत्न से करना चाहिये) ॥ ३१ ॥

मही द्यौरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मही द्यौः पृथिवी चं नऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों (मही) अति प्रशंसनीय (द्यौः) दिव्य पुरुष की आकृतियुक्त पति और अति प्रशंसनीय (पृथिवी) बढ़े हुए शील और क्षमा धारण करने आदि की सामर्थ्य वाली तू (भरीमभिः) धीरता जोर सब को संतुष्ट करनेवाले गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से (नः) हमारा (च) औरों का भी (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को (मिमिक्षताम्) मन्त्रों से अभिषिक्त और (पिपृताम्) परिपूर्ण करना चाहो ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्यलोक जलादि पदार्थों को खींच और वर्षा कर रक्षा और पृथिवी आदि पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे यह पति श्रेष्ठ गुण और पदार्थों का संग्रह करके देने से रक्षा और विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करता है तथा जिस प्रकार यह पृथिवी सब प्राणियों को धारण कर उनकी रक्षा करती है वैसे स्त्री गर्भ आदि व्यवहारों को धारण कर सब की पालना करती है । इस प्रकार स्त्री और पुरुष इकट्ठे होकर स्वार्थ को सिद्ध कर मन वचन और कर्म से सब प्राणियों को भी सुख देवें ॥ ३२ ॥

आतिष्ठेत्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

उपयामेत्यस्य आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रकारान्तर से गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है —

आ तिष्ठ वृत्रहुन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३३॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं को मारने वाले गृहाश्रमी ! तू (ग्रावा) मेघ के तुल्य सुख बरसाने वाला है (ते) तेरे जिस रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा रथ में (ब्रह्मणा) जल वा धन से (हरी) धारण और आकर्षण अर्थात् खींचने के समान घोड़े (युक्ता) युक्त किये जाते हैं उस गृहाश्रम करने की (आतिष्ठ) प्रतिज्ञा कर इस गृहाश्रम में (ते) तेरा जो (मनः) मन (अर्वाचीनम्) मन्दपन को पहुँचाता है उस को (वग्नुना) वेदवाणी से शान्त कर जिस से तू (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम करने की सामग्री ग्रहण किये हुए (असि) है इस कारण (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूँ । (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूँ, कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिए (त्वा) तुझ को आज्ञा देता हूँ ॥ ३३ ॥

भावार्थ—गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमैश्वर्य्य पाने के लिये गृहाश्रम ही सेवना उचित है ॥ ३३ ॥

युक्ष्वा हीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य पूर्ववच्छन्दः स्वरश्च ॥

अब राजविषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा नऽइन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा करने और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले ! तुम (केशिना) जिन के अच्छे २ बाल हैं उन (वृषणा) बैल के समान बलवान् (कक्ष्यप्रा) अभीष्ट देश तक पहुँचानेवाले (हरी) यान के चलानेहारे घोड़ों को (रथे) रथ में (युक्ष्व) जोड़ो (अथ) इसके अनन्तर (नः) हम लोगों की (गिराम्) विनयपत्रों को (उपश्रुतिम्) प्रार्थना को (हि) चित्त देकर (चर) जानो । आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम की सामग्री को ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस कारण (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिए (त्वा) तुझको उपदेश करता हूँ कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम के लिये (त्वा) तुझे आज्ञा देता हूँ ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से "रथे" यह पद अर्थ से आता है । प्रजा, सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आपको शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रहने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों को अच्छी शिक्षा देकर आनन्दित और बल वाले रखने चाहिये फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य और ऐश्वर्य की भी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्ववत् ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रमिद्धरी वहुतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप युज्ञं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले सभाध्यक्ष ! आप जो (हरी) हरणकारक बल और आकर्षणरूप घोड़ों से (अप्रतिधृष्टशवसम्) जिस ने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य बढ़ाने और सेना रखने वाले सेना समूह को (वहतः) बहाते हैं उन से युक्त होकर (ऋषीणाम्) वेदमन्त्र जानने वाले विद्वानों और (च) वीरों के (स्तुतीः) गुणों के ज्ञान और (मानुषाणाम्) साधारण मनुष्यों के (यज्ञम्) सङ्गम करने योग्य व्यवहार और (च) उनकी पालना करो और (उप) समीप प्राप्त हो जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) निमित्त राज्य धर्म्म है जो तू (उपयामगृहीतः) सब सामग्री से संयुक्त है उस (त्वा) तुझ को (षोडशिने)

षोडश कलायुक्त (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिए प्रजा सेनाजन आश्रय लेवें और हम भी लेवें ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (इन्द्र, सोमपाः, चर) इन तीन पदों की योजना होती है। राजा, राज्यकर्म्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को यह योग्य है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर औरों का उपकार सदा किया करें ॥ ३५ ॥

यस्मान्नेत्यस्य विवस्वान् ऋषिः । परमेश्वरो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति यऽआविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥३६

पदार्थ—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (परः) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (जातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आविवेश) व्याप्त हो रहा है (सः) वह (प्रजया) सब संसार से (संरराणः) उत्तम दाता होता हुआ (षोडशी) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश दशों इन्द्रिय मन अन्न वीर्य तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापतिः) संसार मात्र के स्वामी परमेश्वर (त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) ज्योति अर्थात् सूर्य्य बिजुली और अग्नि को (सचते) सब पदार्थों में स्थापित करता है ॥ ३६ ॥

भावार्थ—गृहाश्रम की इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिए कि जो सर्वत्र व्याप्त सब लोकों का रचने और धारण करनेवाला दाता न्यायकारी सनातन अर्थात् सदा ऐसा ही बना रहता है, सत् अविनाशी चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव और सब पदार्थों से अलग रहने वाला छोटे से छोटा बड़े से बड़ा सर्वशक्तिमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम वा जिस के समान नहीं है उसकी उपासना करें ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानृषिः । सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते । साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । तयोरहमित्यस्य विराडार्ची त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽएतम् । तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे प्रजाजन ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त (च) राज्य के अंग, उपाङ्गसहित (सम्राट्) सब जगह एकचक्र राज करने वाला राजा (वरुणः) अति उत्तम (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति है (तौ) वे दोनों (अग्रे) प्रथम (ते) तेरा (भक्षम्) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा करें और (अहम्) मैं (तयोः) उनका (एतम्) इस (भक्षम्) स्थित पदार्थ का (अनु) पीछे (भक्षयामि) सेवन करके कराऊं। ऐसे करते हुए हम तुम सब को (सोमस्य) विद्यारूपी ऐश्वर्य्य के बीच (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विद्याओं की प्रकाशक (वाक्) वेदवाणी है उस से (स्वाहा) सब मनुष्य (तृप्यतु) संतुष्ट रहें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—प्रजा के बीच अपनी अपनी सभाओं सहित राजा होने के योग्य दो होते हैं। एक चक्रवर्त्ती अर्थात् एक चक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल-मण्डल का ईश्वर हो। ये दोनों प्रकार के राजाजन उत्तम-उत्तम न्याय नम्रता, सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजाजनों से यथायोग्य राज्य-कर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्य वचन का आचरण करें। इस प्रकार धर्म्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को संतोष देकर आप संतोष पावें। आपत्काल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥ ३७ ॥

अग्ने पवस्वेत्यस्य वैखानस ऋषिः । राजादयो गृहपतयो देवताः । भुरिक् त्रिपाद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपयामेत्यस्य स्वराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः । अग्ने वर्चस्विन्नित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्य्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे । अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥

पदार्थ—हे (स्वपाः) उत्तम-उत्तम काम तथा (वर्चस्विन्) सुन्दर प्रकार से वेदाध्ययन करने वाले (अग्ने) सभापति ! आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम (वर्चः) वेद का पढ़ना तथा (मयि) निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि जन में (रयिम्) धन और (पोषम्) पुष्टि को (दधत्) धारण करते हुए (पवस्व) पवित्र हूजिए (उपयामगृहीतः) राज्य व्यवहार के लिए हम से स्वीकार किये हुए (असि) आप हैं (त्वा) तुझको (वर्चसे) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिए (अग्नये) वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिए हम स्वीकार करते हैं (ते) तुम्हारी (एषः) यह (योनिः) राजभूमि निवासस्थान है (त्वा) तुझ को (वर्चसे) हम लोग अपने विद्या प्रकाश सब प्रकार सुख के लिए बार बार प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं। हे तेजधारी सभापते राजन् ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) उत्तम उत्तम विद्वानों में (वर्चस्वान्) प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले (असि) हैं वैसे (अहम्) मैं (मनुष्येषु) विचारशील पुरुषों में आपके सदृश (भूयासम्) होऊं ॥ ३८ ॥

भावार्थ—राजा आदि सभ्य जनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम उत्तम विद्या और अच्छे अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें जिस से समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म्म प्रचार करने में उत्तम होवें ॥ ३८ ॥

उत्तिष्ठन्नित्यस्य वैखानस ऋषिः । राजादयो गृहस्था देवताः । उत्तिष्ठन्नित्यस्योपेत्येतस्य चार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । इन्द्रेत्यस्याच्युर्ष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रेऽअवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजसऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३९

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य रखने वाले वा ऐश्वर्य में रमने वाले सभापते ! आप (चमू) सेना के साथ (सुतम्) उत्पादन किए हुए (सोमम्) सोम को (पीत्वी) पीके (ओजसा) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के बल के (सह) साथ (उत्तिष्ठन्) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए (शिप्रे) युद्धादि कर्मों से डाढ़ी और नासिका आदि अङ्गों को (अवेपयः) कम्पाओ अर्थात् यथायोग्य कामों में अङ्गों की चेष्टा करो। हम लोगों से आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये (असि) हैं इस से (त्वा) आप को सावधानता से (इन्द्राय) परमैश्वर्य देने वाले जगदीश्वर की प्राप्ति के लिए सेवन करते हैं (ओजसे) अत्यन्त पराक्रम और (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिए (त्वा) आप को प्रेरणा करते हैं, हे (ओजिष्ठ) अत्यन्त तेजधारी जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वालों में (ओजिष्ठः) अत्यन्त पराक्रम वाले (असि) हैं, वैसे ही मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) होऊं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खाने पीने के पदार्थों से शरीर के बल को उन्नति देवें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और परमेश्वर की उपासना भी यथोक्त व्यवहारों में करें ॥ ३९ ॥

अदृश्रमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गृहपतयो राजादयो देवताः । अदृश्रमित्यस्य सूर्य्येत्यस्य चार्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है—

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ऽअनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

पदार्थ—जैसे (अस्य) इस जगत् के पदार्थों में (भ्राजन्तः) प्रकाश को प्राप्त हुई (रश्मयः) कान्ति (केतवः) वा उन पदार्थों को जनाने वाले (अग्नयः) सूर्य्य विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं वैसे ही (जनान्) मनुष्यों को (अनु) एक अनुकूलता के साथ (अदृश्रम्) मैं दिखलाऊं। हे सभापते ! आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं, जिन (ते) आपका (एषः) यह राज्यकर्म्म (योनिः) ऐश्वर्य्य का कारण है उन (त्वा) आपको (भ्राजाय) जिलाने वाले (सूर्य्याय) प्राण के लिए चिताता हूं तथा उन्हीं आपको (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशित (सूर्य्याय) चराचरात्मा जगदीश्वर के लिए भी चिताता हूँ। हे (भ्राजिष्ठ) अति पराक्रम से प्रकाशमान (सूर्य्य) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्रकाशमान जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) समस्त विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान (भ्राजिष्ठः) अत्यन्त प्रकाशित हैं वैसे मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) प्रकाशमान होऊं ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में सूर्य्य की किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और सभासद् जन शुभ गुण कर्म्म और स्वभावों में प्रकाशमान हों, क्योंकि ऐसा है कि मनुष्यशरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का सङ्ग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दुर्लभ नहीं है। इस से सब मनुष्यों को चाहिए कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न किया करें ॥४०॥

उदु त्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्य्यो देवता । पूर्वस्य निचृदार्षी । उपयामेत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वरपक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उदु॒ त्यं जा॒तवे॑दसं दे॒वं व॑हन्ति के॒तवः॑। दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य॑म्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ सूर्या॑य त्वा भ्रा॒जाये॒ष ते॒ योनिः॒ सूर्या॑य त्वा भ्रा॒जाय॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थ—(जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता वा प्राप्त कराता वा वेद और संसार के पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं (देवम्) शुद्धस्वरूप जगदीश्वर जिसको (विश्वाय) संसार के उपकार के लिए (दृशे) ज्ञानचक्षु से देखने को (केतवः) किरणों के तुल्य सर्व अंशों में प्रकाशमान विद्वान् (उत्, वहन्ति) अपने उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (उ) तर्क वितर्क के साथ (त्यम्) उस जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त हों। हे जगदीश्वर ! जो आप हम लोगों ने (भ्राजाय) प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त (सूर्य्याय) प्राण के लिए (उपयामगृहीतः) यम नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आपको उक्त कामना के लिए समस्त जन स्वीकार करें और हे ईश्वर ! जिन (ते) आपका (एषः) यह कार्य्य और कारण की व्याप्ति से एक अनुमान होना (योनिः) अनुपम प्रमाण है उन (त्वा) आपको (भ्राजाय) प्रकाशमान (सूर्य्याय) ज्ञानरूपी सूर्य्य को पाने के लिए एक कारण जानते हैं ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है ॥ ४१ ॥

आजिघ्रेत्यस्य कुसुरुविन्दुर्ऋषिः। पत्नी देवता। स्वराड्ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में स्त्री के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ जि॑घ्र क॒लशं॑ म॒ह्या त्वा॑ विश॒न्त्विन्द॑वः। पुन॑रू॒र्जा नि व॑र्त्तस्व॒ सा नः॑ स॒हस्रं॑ धुक्ष्वो॒रुधा॑रा॒ पय॑स्वती॒ पुन॒र्मा वि॑शताद्र॒यिः ॥ ४२ ॥

पदार्थ—हे (महि) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री ! जो तू (उरुधारा) विद्या और अच्छी अच्छी शिक्षाओं को अत्यंत धारण करने (पयस्वती) प्रशंसित अन्न और जल रखने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (कलशम्) नवीन घट का (आजिघ्र) आघ्राण कर अर्थात् उस को जल से पूर्ण कर उस की उत्तम सुगन्धि को प्राप्त हो (पुनः) फिर (त्वा) तुझे (सहस्रम्) असंख्यात (इन्दवः) सोम आदि ओषधियों के रस (आविशन्तु) प्राप्त हों जिस से तू दुःख से (निवर्त्तस्व) दूर रहे अर्थात् कभी तुझ को दुःख न प्राप्त हो। तू (ऊर्जा) पराक्रम से (नः) हम को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर (पुनः) पीछे (मा) मुझे (रयिः) धन (आविशतात्) प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

भावार्थ—विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिससे वृद्धि बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें ॥४२॥

इडे रन्त इत्यस्य कुसुरुविन्दुर्ऋषिः। पत्नी देवता। आर्षीपंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इडे॒ रन्ते॒ हव्ये॒ काम्ये॒ चन्द्रे॒ ज्योतेऽदि॑ते॒ सर॑स्वति॒ महि॒ विश्रु॑ति। ए॒ता ते॑ऽअघ्न्ये॒ नामा॑नि दे॒वेभ्यो॑ मा सु॒कृतं॑ ब्रूतात् ॥ ४३ ॥

पदार्थ—हे (अघ्न्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्मा से विनाश को प्राप्त न होनेवाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुणयुक्त (हव्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देनेवाली (विश्रुति) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशंसित विज्ञानवाली पत्नी ! उक्त गुण प्रकाश करनेवाले (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम हैं तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझको (सुकृतम्) उत्तम उपदेश (ब्रूतात्) किया कर ॥४३॥

भावार्थ—जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने-अपने पति और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म्म सिखलावे जिससे किसी तरह वे अधर्म की ओर न डिगें। वे दोनों स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें ॥४३॥

वि न इत्यस्य शास ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म्म के निमित्त राजपक्ष में कुछ उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि न॑ऽइन्द्र॒ मृधो॑ जहि नी॒चा य॑च्छ पृतन्य॒तः। योऽअ॒स्माँ२ऽअ॑भि॒दास॒त्यध॑रं गमया॒ तमः॑। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा वि॒मृध॑ऽए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा वि॒मृधे॑ ॥ ४४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नः) हमारे (पृतन्यतः) हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करनेहारे शत्रुओं को (जहि) मार और उन (नीचा) नीचों को (यच्छ) वश में ला और जो शत्रुजन (अस्मान्) हम लोगों को (अभिदासति) सब प्रकार दुःख देवे उस (विमृधः) दुष्ट को (तमः) जैसे अन्धकार को सूर्य्य नष्ट करता है वैसे (अधरम्) अधोगति को (गमय) प्राप्त करा जिस (ते) तेरा (एषः) उक्त कर्म्म करना (योनिः) राज्य का कारण है इससे तू हम लोगों से (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्री से ग्रहण किया हुआ (असि) है इसी से (त्वा) तुझको (विमृधः) जिसमें बड़े बड़े युद्ध करनेवाले शत्रुजन हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य देनेवाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं (त्वा) तुझको (विमृधे) जिसके शत्रु नष्ट हो गये हैं उस (इन्द्राय) राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म्म से अपना वर्त्ताव न वर्त्ते ॥४४॥

भावार्थ—जो खोटे काम करनेवाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को उन्नति देकर सब को दुःख देना चाहे, उसको राजा सब प्रकार से दण्ड दे। तो भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयों को न छोड़े तो उसको मार डाले अथवा नगर से इसको दूर निकाल बन्द रक्खे ॥४४॥

वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषिः। ईश्वरसभेशौ राजानौ देवते। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। आद्यस्य धैवतः परस्य गान्धारः स्वरश्च ॥

अब गृहस्थ कर्म में राजा और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वा॒चस्पतिं॑ वि॒श्वक॑र्म्माणमू॒तये॑ मनो॒जुवं॒ वाजे॑ऽअ॒द्या हु॑वेम। स नो॒ विश्वा॑नि॒ हव॑नानि जोषद्वि॒श्वश॑म्भू॒रव॑से सा॒धुक॑र्म्मा। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा वि॒श्वक॑र्म्मणऽए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा वि॒श्वक॑र्म्मणे ॥ ४५ ॥

पदार्थ—हम (अद्य) अब (वाजे) विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिन (वाचः) वेदवाणी के (पतिम्) स्वामी वा रक्षा करनेवाले (विश्वकर्म्माणम्) जिनके सब धर्म्मयुक्त कर्म्म हैं जो (मनोजुवम्) मन चाहती गति का जाननेवाला है उस परमेश्वर वा सभापति को (हुवेम) चाहते हैं सो आप (साधुकर्म्मा) अच्छे अच्छे कर्म्म करनेवाले (विश्वशम्भुः) समस्त सुख को उत्पन्न करानेवाले जगदीश्वर वा सभापति (नः) हमारे (अवसे) प्रेम बढ़ाने के लिए (विश्वानि, हवनानि) दिए हुए सब प्रार्थनावचनों को (जोषत्) प्रेम से मानें जिन (ते) आपका (एषः) यह उक्त कर्म्म (योनिः) एक प्रेमभाव का कारण है वे आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इससे (विश्वकर्म्मणे) समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिए (त्वा) आपकी प्रार्थना तथा (विश्वकर्मणे) समस्त काम की सिद्धि के लिए शिल्पक्रिया-कुशलता से उत्तम ऐश्वर्य्य वाले आपका सेवन करते हैं ॥४५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो परमेश्वर वा न्यायाधीश सभापति हमारे किये हुए कामों को जांच कर उनके अनुसार हम को यथायोग्य नियमों में रखता है, जो किसी को दुःख देनेवाले छल कपट के काम को नहीं करता, जिस परमेश्वर वा सभापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहार सिद्धि को पाकर धर्मशील होता है वही ईश्वर परमार्थसिद्धि व सभापति व्यवहारसिद्धि के निमित्त हम लोगों को सेवने योग्य है ॥४५॥

विश्वकर्म्मन्नित्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है—

विश्व॑कर्म्मन् ह॒विषा॒ वर्द्ध॑नेन त्रा॒तार॒मिन्द्र॑मकृणोरव॒ध्यम्। तस्मै॒ विशः॒ सम॑नमन्त पू॒र्वीर॒यमु॒ग्रो वि॒हव्यो॒ यथास॑त्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा वि॒श्वक॑र्म्मणऽए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा वि॒श्वक॑र्म्मणे ॥४६

पदार्थ—हे (विश्वकर्म्मन्) समस्त अच्छे काम करनेवाले जन ! आप (वर्द्धनेन) वृद्धि के निमित्त (हविषा) ग्रहण करने योग्य विज्ञान से (अवध्यम्) जिस बुरे व्यसन और अधर्म्म से रहित (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य देने तथा (त्रातारम्) समस्त प्रजाजनों की रक्षा करनेवाले सभापति को (अकृणोः) कीजिए कि (तस्मै) उसे (पूर्वीः) प्राचीन धार्मिक जनों ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है वे (विशः) प्रजाजन (समनमन्त) अच्छे प्रकार मानें जैसे (अयम्) यह सभापति (उग्रः) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमत्कारी और (विहव्यः) अनेक प्रकार के राज्यसाधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आदि रखनेवाला (असत्) हो वैसे प्रजा भी इसके साथ वर्त्ते ऐसी युक्ति कीजिये। (उपयामगृहीतः) यहाँ से ले कर मन्त्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिए ॥४६॥

भावार्थ—इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करनेवाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूलें किन्तु उनकी अनुमति में सब कोई अपना-अपना वर्त्ताव रक्खें, प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी ऋद्धि को नहीं पहुँचता और ईश्वर वा राजा के विना प्रजाजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करनेवाले काम भी नहीं कर सकते, इससे प्रजाजन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्म्म के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥४६॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता। विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥ ४७ ॥

पदार्थ—हे (**विश्वकर्म्मन्**) अच्छे अच्छे कर्म्म करनेवाले जन ! मैं जो (**ते**) आपका (**अनुष्टुप्**) अज्ञान का छुड़ानेवाला (**अभिगरः**) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसावाक्य है उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेदमन्त्र गायत्रीछन्द के अर्थ को जनानेवाले (**त्वा**) आप को (**अग्नये**) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिए (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ वा (**त्रिष्टुप्छन्दसम्**) परम ऐश्वर्य्य देने वाले त्रिष्टुप् छन्दयुक्त वेदमन्त्रों का अर्थ करानेहारे (**त्वा**) आपको (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिए (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ (**जगच्छन्दसम्**) समस्त जगत् के दिव्य दिव्य गुण कर्म्म और स्वभाव के बोधक वेदमन्त्रों का अर्थविज्ञान करानेवाले (**त्वा**) आप को (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) अच्छे अच्छे गुण कर्म्म और स्वभावों के लिए (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ (**उपयामगृहीतः**) उक्त सब काम के लिये हम लोगों ने आपको सब प्रकार स्वीकार कर रक्खा (**असि**) है ॥४७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (विश्वकर्म्मन्) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थविद्या साधन करानेवाली क्रियाओं का उत्तम बोध करानेवाले गायत्री आदि छन्दयुक्त ऋग्वेदादि वेदों के बोध होने के लिए उत्तम पढ़ानेवाले का सेवन करें क्योंकि उत्तम पढ़ाने वाले के विना किसी को विद्या नहीं प्राप्त हो सकती ॥४७॥

व्रेशीनां त्वेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । याजुषी त्रिष्टुप् । कुकूननानामित्यस्य याजुषी जगती । भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्यस्य च याजुषी त्रिष्टुप्, शुक्रं त्वेत्यस्य साम्नी बृहती छन्दांसि । तेषु त्रिष्टुभो धैवतः, जगत्या निषादः, बृहत्या मध्यमश्च स्वराः ॥

अब गार्हस्थ्य कर्म्म में पत्नी अपने पति को उपदेश देती है, यह अगले मन्त्र में कहा है—

व्रेशीनां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । कुकूननानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । भन्दनानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । मदिन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । मधुन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । शुक्रं त्वा शुक्रऽआ धूनोम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥

पदार्थ—हे (**पत्मन्**) धर्म्म में न चित्त देनेवाले पते ! (**व्रेशीनाम्**) जलों के समान निर्मल विद्या और सुशीलता में व्याप्त जो पराई पत्नियां हैं उनमें व्यभिचार से वर्त्तमान (**त्वा**) तुम को मैं वहां से (**आधूनोमि**) अच्छे प्रकार डिगाती हूँ । हे (**पत्मन्**) अधर्म्म में चित्त देनेवाले पते ! (**कुकूननानाम्**) निरन्तर शब्दविद्या से नम्रीभाव को प्राप्त हो रही हुई औरों की पत्नियों के समीप मूर्खपन से जानेवाले (**त्वा**) तुझ को मैं (**आ, धूनोमि**) वहां से अच्छे प्रकार छुड़ाती हूँ । हे (**पत्मन्**) कुचाल में चित्त देनेवाले पते ! (**भन्दनानाम्**) कल्याण का आचरण करती हुई परपत्नियों के समीप अधर्म से जानेवाले (**त्वा**) तुझको वहां से मैं (**आ**) अच्छे प्रकार (**धूनोमि**) पृथक् करती हूँ । हे (**पत्मन्**) चञ्चल चित्त वाले पते ! (**मदिन्तमानाम्**) अत्यन्त आनन्दित परपत्नियों के समीप उनको दुःख देते हुए (**त्वा**) तुम को मैं वहां से (**आ**) वार वार (**धूनोमि**) कम्पती हूँ । हे (**पत्मन्**) कठोरचित्त पते ! (**मधुन्तमानाम्**) अतिशय करके मीठी मीठी बोलने वाली परपत्नियों के निकट कुचाल से जाते हुए (**त्वा**) तुमको मैं (**आ**) अच्छे प्रकार (**धूनोमि**) हटाती हूँ । हे (**पत्मन्**) अविद्या में रमण करनेवाले ! (**अह्नः**) दिन के (**रूपे**) रूप में अर्थात् (**सूर्यस्य**) सूर्य की फैली हुई किरणों के समय में घर में संगति की चाह करते हुए (**शुक्रम्**) शुद्ध वीर्य वाले (**त्वा**) तुम को (**शुक्रे**) वीर्य के हेतु (**आ**) भले प्रकार (**धूनोमि**) छुड़ाती हूँ ॥४८॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य की किरणों को प्राप्त होकर संसार के पदार्थ शुद्ध होते हैं वैसे ही दुराचारी पुरुष अच्छी शिक्षा और स्त्रियों के सत्य उपदेश से दण्ड को पाकर पवित्र होते हैं । गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त दुःख देने और कुल को भ्रष्ट करनेवाले व्यभिचार कर्म्म से सदा दूर रहें क्योंकि इस से शरीर और आत्मा के बल का नाश होने से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं होती ॥४८॥

ककुभमित्यस्य देवा ऋषयः । विश्वेदेवा प्रजापतयो देवताः । विराट् प्राजापत्या जगती छन्दः । निषादः स्वरः । यत्ते सोमेत्यस्य भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब फिर गृहस्थों को राजपक्ष में उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ककुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वन् ! आप (**यत्**) जिस (**वृषभस्य**) सब सुखों के वर्षानेवाले आपका (**ककुभम्**) दिशाओं के समान शुद्ध (**बृहत्**) बड़ा (**रूपम्**) सुन्दर स्वरूप (**रोचते**) प्रकाशमान होता है सो आप (**शुक्रस्य**) शुद्ध धर्म्म के (**पुरोगाः**) अग्रगामी वा (**सोमस्य**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के (**पुरोगाः**) अग्रगन्ता (**शुक्रः**) शुद्ध (**सोमः**) सोमगुणसम्पन्न ऐश्वर्य्ययुक्त हूजिये जिससे आपका (**अदाभ्यम्**) प्रशंसा करने योग्य (**नाम**) नाम (**जागृवि**) जाग रहा है (**तस्मै**) उसी के लिए (**त्वा**) आपको (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ और हे (**सोम**) उत्तम कामों में प्रेरक ! (**तस्मै**) उस (**सोमाय**) श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्त हुए (**ते**) आपके लिए (**स्वाहा**) सत्य वाणी प्राप्त हो ॥४९॥

भावार्थ—सभाजन और प्रजाजनों को चाहिए कि जिसकी पुण्य, प्रशंसा, सुन्दररूप, विद्या, न्याय, विनय, शूरता, तेज, अपक्षपात, मित्रता, सब कामों में उत्साह, आरोग्य, बल, पराक्रम, धीरज, जितेन्द्रियता, वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजापालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मानें ॥४९॥

उशिक् त्वमित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

पदार्थ—हे (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न (**सोम**) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजन् ! आप (**उशिक्**) अति मनोहर होके (**अग्नेः**) उत्तम विद्वान् के (**प्रियम्**) प्रेम उत्पन्न करानेवाले (**पाथः**) रक्षायोग्य व्यवहार को (**अपि**) निश्चय से (**इहि**) प्राप्त करो और जानो । हे (**देव**) दानशील (**सोम**) हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति करानेवाले ! आप (**वशी**) जितेन्द्रिय होकर (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्य वाले धार्मिक जन के (**प्रियम्**) प्रेम उत्पन्न करानेवाले (**पाथः**) जानने योग्य कर्म को (**अपि**) निश्चय से (**इहि**) जानो । हे (**देव**) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान (**सोम**) ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप (**अस्मत्सखा**) हम लोग जिनके मित्र हैं ऐसे आप होकर (**विश्वेषाम्**) समस्त (**देवानाम्**) विद्वानों के प्रेम उत्पन्न करानेहारे (**पाथः**) विज्ञान के आचरण को (**अपि**) निश्चय से (**इहि**) प्राप्त हो तथा जानो ॥५०॥

भावार्थ—राजा राजपुरुष सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ, अच्छे अच्छे नियम और मित्रभाव से धार्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग को चलें क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये विना कोई विद्या धर्म्म सबसे एक प्रीतिभाव और ऐश्वर्य्य को नहीं पा सकता है ॥५०॥

इह रतिरित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो गृहस्था देवताः । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब गार्हस्थ्य धर्म्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥५१॥

पदार्थ—हे गृहस्थो ! तुम लोगों की (**इह**) इस गृहाश्रम में (**रतिः**) प्रीति (**इह**) इसमें (**धृतिः**) सब व्यवहारों की धारणा (**इह**) इसीमें (**स्वधृतिः**) अपने पदार्थों की धारणा (**स्वाहा**) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य क्रिया हो तुम (**इह**) इस गृहाश्रम में (**रमध्वम्**) रमण करो । हे गृहाश्रम पुरुष ! तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस (**मात्रे**) पुत्र का मान करने वाली के लिये (**धरुणम्**) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को (**उपसृजन्**) उत्पन्न कर और वह (**धरुणः**) उक्त गुण वाला पुत्र (**मातरम्**) उस अपनी माता का (**धयन्**) दूध पीवे । वैसे (**अस्मासु**) हम लोगों के निमित्त (**रायः**) धन की (**पोषम्**) समृद्धि को (**स्वाहा**) सत्यभाव से (**दीधरत्**) उत्पन्न कीजिए ॥५१॥

भावार्थ—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रक्खें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥५१॥

सत्रस्येत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सत्रस्यऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृताऽअभूम । दिवं पृथिव्याऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (**सत्रस्य**) प्राप्त हुए राजप्रजा व्यवहाररूप यज्ञ के (**ऋद्धिः**) समृद्धिरूप (**असि**) हैं । आप के संग से हम लोग (**ज्योतिः**) विज्ञान के प्रकाश को (**अगन्म**) प्राप्त होवें और (**अमृताः**) मोक्ष पाने के योग्य (**अभूम**) हों (**दिवः**) सूर्यादि (**पृथिव्याः**) पृथिवी आदि लोकों के (**अधि**) बीच (**अरुहाम**)

पूर्ण वृद्धि को पहुँचें (देवान्) विद्वानों दिव्य दिव्य भोगों (ज्योतिः) विज्ञानविषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त होवें ॥५२॥

भावार्थ—जब तक सब की रक्षा करनेवाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्षसुख से अधिक कोई सुख है ॥ ५२ ॥

युवमित्यस्य देवा ऋषयः । गृहपतयो देवताः । पूर्वस्यार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । दूरे चेत्यस्यासुर्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । भूर्भुवरित्यस्य विराट्-प्राजापत्या पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् । अस्माकँ शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

पदार्थ—हे (पुरोयुधा) युद्ध समय में आगे लड़ने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन ! (युवम्) तुम दोनों (यः) जो (नः) हमारी (पृतन्यात्) सेना से लड़ना चाहे (तन्तम्, इत्) उसी २ को (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रविद्या के बल से (हतम्) मारो और (यत्) जो (अस्माकम्) हमारे शत्रुओं की (गहनम्) दुर्जय सेना हमारी सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो और (यत्) जो २ (छन्त्सत्) बल को बढ़ावे उस २ को (चत्ताय) आनन्द बढ़ाने के लिए (इद्धतम्) अवश्य मारो और (दूरे) दूर पहुंचा दो । हे (शूर) शत्रुओं को सुख से बचानेवाले सभापते ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब प्रकार से (परिदर्षीष्ट) विदीर्ण कर दीजिये जिस से हम लोग (भूः) इस भूलोक (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुखरूप लोक में (प्रजाभिः) अपने सन्तानों से (सुप्रजाः) प्रशंसित सन्तानों वाले (वीरैः) वीरों से (सुवीराः) बहुत अच्छे २ वीरों वाले और (पोषैः) पुष्टियों से (सुपोषाः) अच्छी २ पुष्टिवाले (विश्वतः) सब ओर से (स्याम) होवें ॥ ५३ ॥

भावार्थ—जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी न हों तब तक सेनावीर आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के बिना कभी विजय नहीं होता तथा जब तक शत्रुओं को निर्मूल करने हारे सभापति आदि नहीं होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी हो सकते हैं ॥ ५३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धोऽअच्छेतः । सविता सन्यां विश्वकर्म्मा दीक्षायाम्पूषा सोमक्रयण्याम् ॥५४॥

पदार्थ—हे गृहस्थो ! तुम ने यदि (व्याहृतायाम्) उच्चारित उपदिष्ट की हुई (वाचि) वेदवाणी में (परमेष्ठी) परमानन्दस्वरूप में स्थित (प्रजापतिः) समस्त प्रजा के स्वामी को (अच्छेतः) अच्छे प्रकार प्राप्त (विश्वकर्म्मा) सब विद्या और कर्म्मों को जाननेवाले सर्वथा श्रेष्ठ सभापति को (दीक्षायाम्) सभा के नियमों के धारण में (सोमक्रयण्याम्) ऐश्वर्य्य ग्रहण करने में (पूषा) सब को पुष्ट करने हारे उत्तम वैद्य को और (सन्याम्) जिस से सनातन सत्य प्राप्त हो उस में (सविता) सब जगत् का उत्पादक (अभिधीतः) सुविचार से धारण किया (अन्धः) उत्तम सुसंस्कृत अन्न का सेवन किया तो सदा सुखी हो ॥ ५४ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर वेदविद्या से अपने सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के बिना निरन्तर सुख क्यों कर हो सकता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्टऽऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥ ५५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वानों ने (क्रयाय) व्यवहारसिद्धि के लिए (इन्द्रः) बिजुली (मरुतः) पवन (असुरः) मेघ (पण्यमानः) स्तुति के योग्य (मित्रः) सखा (शिपिविष्टः) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (विष्णुः) सर्वशरीरव्याप्त धनंजय वायु और इन में से एक २ पदार्थ (नरंधिषः) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (विष्णुः) हिरण्यगर्भ ईश्वर (ऊरौ) ढापने आदि क्रियाओं में (आसन्नः) संनिकट वा (उपोत्थितः) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (क्रीतः) व्यवहार में वर्त्ता हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥ ५५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों की क्रियाकुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

प्रोह्यमाण इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा गृहस्था देवताः । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रोह्यमाणः सोमऽआगतो वरुणऽआसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽइन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः ॥ ५६ ॥

पदार्थ – हे गृहस्थो ! तुम को इस ईश्वर की सृष्टि में (आसन्द्याम्) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (आगत) आया हुआ पुरुष जैसे विराजमान हो वैसे (प्रोह्यमाणः) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (सोमः) ऐश्वर्य्य का समूह (वरुणः) सहायकारी पुरुष के समान जल का समूह (आग्नीध्रे) बहुत इन्धनों में (अग्निः) अग्नि (उपावह्रियमाणः) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए (अथर्वा) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (हविर्द्धाने) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में (इन्द्रः) बिजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

भावार्थ—तर्क के बिना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के बिना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता ॥ ५६ ॥

विश्वेदेवा इत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब गृहस्थ कर्म्म में कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वे देवा अꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽआप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥ ५७ ॥

पदार्थ —हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वानो ! तुम्हारे जो (अंशुषु) अलग २ संसार के पदार्थों में (न्युप्तः) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार (आप्रीतपाः) अच्छी प्रीति के साथ (विष्णुः) व्याप्त होने वाली बिजुली (आप्याय्यमानः) अति बढ़े हुए के समान (यमः) सूर्य्य (सूयमानः) उत्पन्न होने हारा (विष्णुः) व्यापक अव्यक्त (संभ्रियमाणः) अच्छे प्रकार पुष्ट किया हुआ (वायुः) प्राण (पूयमानः) पवित्र किया हुआ (शुक्रः) पराक्रम का समूह (पूतः) शुद्ध (शुक्रः) शीघ्र चेष्टा करने हारा और (मथी) विलोडने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए (क्षीरश्रीः) दुग्धादि पदार्थों को पकाने और (सक्तुश्रीः) प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

विश्वे देवाश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृतो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशꣳसाः ॥५८॥

पदार्थ—जिन विद्वानों ने यज्ञ-विधान से (चमसेषु) मेघों में सुगंधित आदि वस्तु (उन्नीतः) ऊंचे पहुँचाया (असुः) अपना जीवन (उद्यतः) अच्छे यत्न में लगा रक्खा (रुद्रः) जीव को पवित्र कर (हूयमानः) स्वीकार किया (नृचक्षः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला (प्रतिख्यातः) जिन्होंने वादानुवाद से चाहा (वातः) बाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु से शुद्ध किये फल (भक्ष्यमाणः) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ (भक्षः) खाइए (नाराशंसाः) प्रशंसाकर मनुष्यों के उपदेशक (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् (पितरः) उन सब के उपकारकों को ज्ञानी समझने चाहियें ॥ ५८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि पुष्टि मधुरता और रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उन का होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा औषधियों का सेवन कर के शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५८ ॥

सन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्षी बृहती छन्दः । निषादः स्वरः । या पत्येते इत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा । या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णूऽअगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥ ५९ ॥

पदार्थ—जिन्होंने (अवभृथाय) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र करने के लिये (अभ्यवह्रियमाणः) भोगने योग्य (सलिलः) जिस में उत्तम जल है वह व्यवहार (उद्यतः) नियम से सम्पादन किया (सिन्धः) नदियाँ (सन्नः)

निर्माण की (समुद्रः) समुद्र (प्रप्लुतः) अपने उत्तम गुणों से पाया है वे विद्वान् लोग (ययोः) जिन के (ओजसा) बल से (रजांसि) लोक लोकान्तर (स्कभिता) स्थित हैं (या) जो (वीर्येभिः) और पराक्रमों से (वीरतमा) अत्यन्त वीर (शविष्ठा) नित्य बल सम्पादन करने वाले (सहोभिः) बलों से (अप्रतीता) मूर्खों को जानने के अयोग्य (विष्णु) व्याप्त होने हारे (वरुणा) अतिश्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य (पूर्वहूतौ) जिस का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो जो (पत्येते) श्रेष्ठ सज्जनों को प्राप्त होते हैं उन यज्ञकर्म भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को (अगन्) प्राप्त होते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ५६ ॥

भावार्थ—यज्ञ आदि व्यवहारों के विना गृहाश्रम में सुख नहीं होता ॥ ५६॥

देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराट् साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी यज्ञ विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

देवान् दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

पदार्थ—जो (यज्ञः) पूर्वोक्त सब के करने योग्य यज्ञ (दिवम्) विद्या के प्रकाश और (देवान्) दिव्य भोगों को प्राप्त करता है जिस को विद्वान् लोग (अगन्) प्राप्त हों (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) विद्यादि गुण (अष्टु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (अन्तरिक्षम्) मेघमण्डल और (मनुष्यान्) मनुष्यों को प्राप्त होता है जिस को भद्र मनुष्य (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) धनादि पदार्थ (अष्टु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (पृथिवीम्) पृथिवी और (पितॄन्) वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता है। जिस को आप्त लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) प्रत्येक ऋतु का सुख (अष्टु) प्राप्त हो जो (यज्ञः, कम्) यज्ञ किसी (च, लोकम्) लोक को प्राप्त होता है (यम्) जिस को धर्मात्मा लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मे) मेरा (भद्रम्) कल्याण (अभूत्) हो ॥ ६० ॥

भावार्थ—जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुष्यों को क्यों न करना चाहिए ॥ ६० ॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे य इमं यज्ञꣳस्वधया ददन्ते । तेषां छिन्नꣳ सम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मो अप्येतु देवान् ॥ ६१ ॥

पदार्थ—(ये) जो (चतुस्त्रिंशत्) आठों वसु ग्यारह रुद्र बारह आदित्य इन्द्र प्रजापति और प्रकृति (तन्तवः) सूत के समान (यज्ञम्) सुख उत्पन्न करने हारे यज्ञ को (वितत्निरे) विस्तार करते हैं अथवा (ये) जो (स्वधया) अन्न आदि उत्तम पदार्थों से (इमम्) इस यज्ञ को (ददन्ते) देते हैं (तेषाम्) उन का जो (छिन्नम्) अलग किया हुआ यज्ञ (एतत्) उस को (स्वाहा) सत्य क्रिया वा सत्य वाणी से (सम्, दधामि) इकट्ठा करता हूं (उ)और वही (घर्मः) यज्ञ (देवान्) विद्वानों को (अपि) निश्चय से (एतु) प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

भावार्थ—इस प्रत्यक्ष चराचर जगत् के चौंतीस (३४) तत्त्व कारण हैं जो उनके गुण और दोषों को जानते हैं उन्हीं को सुख मिलता है ॥ ६१ ॥

यज्ञस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर यज्ञ का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान । स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाꣳ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥६२॥

पदार्थ—हे (यज्ञ) संगति करने योग्य विद्वन् ! आप जो (यज्ञस्य) यज्ञ का (पुरुत्रा) बहुत पदार्थों में (विततः) विस्तृत (अष्टधा) आठों दिशाओं से आठ प्रकार का (दोहः) परिपूर्ण सामग्रीसमूह है (सः) वह (दिवम्) सूर्य्य के प्रकाश को (अन्वाततान) ढांप कर फिर फैलने देता है (सः) वह आप सूर्य्य के प्रकाश में यज्ञ करने वाले गृहस्थ तू उस यज्ञ को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर जो (मे) मेरी (प्रजायाम्) प्रजा में (विश्वम्) सब (महि) महान् (रायः) धनादि पदार्थों की (पोषम्) समृद्धि को वा (आयुः) जीवन को वार २ विस्तारता है उस को मैं (स्वाहा) सत्ययुक्त क्रिया से (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ ६२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें ॥ ६२ ॥

आपवस्वेत्यस्य कश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य किसके तुल्य यज्ञ का सेवन करें यह अगले मन्त्र में कहा है—

आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमा भर स्वाहा ॥ ६३ ॥

पदार्थ—हे सोम ऐश्वर्य्य चाहने वाले गृहस्थ ! तू (स्वाहा) सत्य वाणी वा सत्य क्रिया से (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (अश्ववत्) अश्व आदि उत्तम पशुओं के समान (वीरवत्) प्रशंसित वीरों के तुल्य (गोमन्तम्) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले (वाजम्) अन्नादिमय यज्ञ का (आभर) आश्रय रख और उस से संसार को (आ) अच्छे प्रकार (पवस्व) पवित्र कर ॥ ६३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें तदनन्तर वीरों को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें ॥ ६३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थधर्म सेवन के लिए ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार, गृहस्थ धर्म का वर्णन, राजा प्रजा और सभापति आदि का कर्त्तव्य कहा है इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय में कहे अर्थ की संगति जाननी चाहिए ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ अथ नवमाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न ऽआ सुव ॥१॥

देव सवितरित्यस्य इन्द्राबृहस्पती ऋषी । सविता देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग चक्रवर्ती राजा को कैसा २ उपदेश करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य गुण युक्त (सवितः) संपूर्ण ऐश्वर्यवाले राजन् ! आप (भगाय) सब ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (यज्ञम्) सबको सुख देनेवाले राजधर्म का (प्र , सुव) प्रचार और (यज्ञपतिम्) राजधर्म के रक्षक पुरुष को (प्र , सुव) प्रेरणा कीजिये जिससे (दिव्यः) प्रकाशमान दिव्य गुणों में स्थित (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण और वृद्धि को शुद्ध करनेवाला (वाचस्पतिः) पढ़ने पढ़ाने और उपदेश से विद्या का रक्षक सभापति राज पुरुष है वह (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करे और हमारे (वाजम्) अन्न को सत्यवाणी से (स्वदतु) अच्छे प्रकार भोगे ॥ १ ॥

भावार्थ—न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है ॥ १ ॥

ध्रुवसदं त्वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । ध्रुवसदमिति पूर्वस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । अप्सुसदमित्यस्य विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याधिकार में स्वीकार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं (**इन्द्राय**) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये जो आप (**उपयामगृहीतः**) योगविद्या के प्रसिद्ध अङ्ग यम के सेवनेवाले पुरुषों ने स्वीकार किये (**असि**) हो उस (**ध्रुवसदम्**) निश्चल विद्या विनय और योगधर्मों में स्थित (**नृषदम्**) नायक पुरुषों में अवस्थित (**मनःसदम्**) विज्ञान में स्थिर (**जुष्टम्**) प्रीतियुक्त (**त्वा**) आपका (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ । जिस (**ते**) आपका (**एषः**) यह (**योनिः**) सुखनिमित्त है उस (**जुष्टतमम्**) अत्यन्त सेवनीय (**त्वा**) आपका (**गृह्णामि**) धारण करता हूँ । हे राजन् ! मैं (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य धारण के लिये जो आप (**उपयामगृहीतः**) प्रजा और राजपुरुषों ने स्वीकार किये (**असि**) हो । उस (**अप्सुसदम्**) जलों के बीच चलते हुए (**घृतसदम्**) घी आदि पदार्थों को प्राप्त हुए और (**व्योमसदम्**) विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए (**जुष्टम्**) सबके प्रिय (**त्वा**) आपका (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ । हे सबकी रक्षा करनेहारे सभाध्यक्ष राजन् ! जिस (**ते**) आपका (**एषः**) यह (**योनिः**) सुखदायक घर है उस (**जुष्टतमम्**) अति प्रसन्न (**त्वा**) आपको (**इन्द्राय**) दुष्ट शत्रुओं को मारने के लिए (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ । हे सब भूमि में प्रसिद्ध राजन् ! मैं (**इन्द्राय**) विद्या योग और मोक्ष रूप ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए जो आप (**उपयामगृहीतः**) साधन उपसाधनों से युक्त (**असि**) हो उस (**पृथिविसदम्**) पृथिवी में भ्रमण करते हुए (**अन्तरिक्षसदम्**) आकाश में चलनेवाले (**दिविसदम्**) न्याय के प्रकाश में नियुक्त (**देवसदम्**) धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित (**नाकसदम्**) सब दुःखों से रहित परमेश्वर और धर्म में स्थिर (**जुष्टम्**) सेवनीय (**त्वा**) आपका (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ । हे सब सुख देने और प्रजापालन करनेहारे राजपुरुष ! जिस (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**योनिः**) रहने का स्थान है उस (**जुष्टतमम्**) अत्यन्त प्रिय (**त्वा**) आपको (**इन्द्राय**) समग्र सुख देने के लिए (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजप्रजाजनो ! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य भोगने कि लिए जगत् रच के सबके लिए सुख देता वैसा ही आचरण तुम लोग करो कि जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष फलों की प्राप्ति सुगम होवे ॥ २ ॥

अपामित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर प्रजाजनों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अपाᳬ रसमुद्वयसᳬ सूर्ये सन्तᳬ समाहितम् । अपाᳬ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! मैं (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (**वः**) तुम्हारे लिए (**सूर्य**) सूर्य के प्रकाश में (**सन्तम्**) वर्त्तमान (**समाहितम्**) सर्व प्रकार चारों ओर धारण किये (**उद्वयसम्**) उत्कृष्ट जीवन के हेतु (**अपाम्**) जलों के (**रसम्**) सार का ग्रहण करता हूँ (**यः**) जो (**अपाम्**) जलों के (**रसस्य**) सार का (**रसः**) वीर्य धातु है (**तम्**) उस (**उत्तमम्**) कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये (**गृह्णामि**) स्वीकार करता हूँ जो आप (**उपयामगृहीतः**) साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार किये गये (**असि**) हो उस (**इन्द्राय**) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (**जुष्टम्**) प्रीतिपूर्वक वर्त्तनेवाले आपका (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ जिस (**ते**) आपका (**एषः**) यह (**योनिः**) घर है उस (**जुष्टतमम्**) अत्यन्त सेवनीय (**त्वा**) आप को (**इन्द्राय**) परम सुख होने के लिये (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषों को शरीर और आत्मा के बल बढ़ाने के लिये ब्रह्मचर्य ओषधिविद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करे जिससे मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें ॥ ३ ॥

ग्रहा इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । राजधर्मराजादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिए कि आप्त विद्वान् की अच्छे प्रकार परीक्षा करके संग करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जᳬ समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजप्रजा पुरुष ! जैसे (**अहम्**) मैं गृहस्थजन (**विप्राय**) बुद्धिमान पुरुष के सुख के लिये (**मतिम्**) बुद्धि को देता हूँ वैसे तू भी किया कर (**व्यन्तः**) जो सब विद्याओं में व्याप्त (**ऊर्जाहुतयः**) बल और जीवन बढ़ने के लिये दान देने और (**ग्रहाः**) ग्रहण करनेहारे गृहस्थ लोग हैं जैसे (**तेषाम्**) उन (**विशिप्रियाणाम्**) अनेक प्रकार के धर्मयुक्त कर्मों में मुख और नासिकावालों के (**मतिम्**) बुद्धि (**इषम्**) अन्न आदि और (**ऊर्जम्**) पराक्रम को (**समग्रभम्**) ग्रहण कर चुका हूँ वैसे तुम भी ग्रहण करो । हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे तू (**उपयामगृहीतः**) राज्य और गृहाश्रम की सामग्री से सहित वर्त्तमान (**असि**) है वैसे मैं भी होऊं । जैसे मैं (**इन्द्राय**) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (**जुष्टम्**) प्रसन्न (**त्वा**) आपको (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी मुझे ग्रहण कर जिस (**ते**) तेरा (**एषः**) यह (**योनिः**) घर है उस (**इन्द्राय**) शत्रुओं को नष्ट करने के लिए (**जुष्टतमम्**) अत्यन्त प्रसन्न (**त्वा**) तुझे मैं जैसे वह और तुम दोनों युक्त कर्म में (**संपृचौ**) संयुक्त (**स्थः**) हो वैसे (**भद्रेण**) सेवने योग्य सुखदायक ऐश्वर्य से (**मा**) मुझको (**संपृङ्क्तम्**) संयुक्त करो जैसे तुम (**पाप्मना**) अधर्मी पुरुष से (**विपृचौ**) पृथक् (**स्थः**) हो इसमें (**मा**) मुझको भी (**विपृंक्तम्**) पृथक् करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा और प्रजा में गृहस्थ लोग बुद्धिमान् सन्तान वा विद्यार्थी के लिये विद्या होने की बुद्धि देते दुष्ट आचरणों से पृथक् रखते कल्याणकारक कर्मों का सेवन कराते और दुष्टसंग छुड़ाके सत्संग कराते हैं वे ही इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं इनसे विपरीत नहीं ॥ ४ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब किसलिये सेनापति की प्रार्थना यहां करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजᳬ सेत् । वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥५॥

पदार्थ—हे वीर पुरुष (**यस्याम्**) जिसमें (**त्वम्**) आप (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा के (**वाजसाः**) संग्रामों का विभाग करनेवाले (**वज्रः**) वज्र के समान शत्रुओं के काटनेवाले (**असि**) हो उस (**त्वया**) रक्षक आपके साथ (**अयम्**) यह पुरुष (**वाजम्**) संग्राम का (**सेत्**) प्रबन्ध करे जहाँ (**इदम्**) प्रत्यक्ष वर्त्तमान (**विश्वम्**) सब (**भुवनम्**) जगत् (**आविवेश**) प्रविष्ट है और जहां (**देवः**) सब का प्रकाशक (**सविता**) सब जगत् का उत्पादक परमात्मा (**नः**) हमारा (**धर्म्म**) धारण (**साविषत्**) करे (**तस्याम्**) उसमें (**नाम**) प्रसिद्ध (**वाजस्य**) संग्राम के (**प्रसवे**) ऐश्वर्य में (**मातरम्**) मान्य देनेहारी (**अदितिम्**) अखंडित (**महीम्**) पृथिवी को (**वचसा**) वेदोक्त न्याय के उपदेश रूप वचन से हम लोग (**नु**) शीघ्र (**करामहे**) ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो यह भूमि प्राणियों के लिए सौभाग्य के उत्पन्न करने, माता के समान रक्षा और सबको धारण करनेहारी प्रसिद्ध है उसका विद्या न्याय और धर्म के योग से राज्य के लिए तम लोग सेवन करो ॥ ५ ॥

अप्स्वन्तरित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । अश्वो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री-पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः । देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजᳬ सेत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**देवीः**) दिव्यगुणवाली (**आपः**) अन्तरिक्ष में व्यापक स्त्री-पुरुष लोगो ! तुम (**यः**) जो (**वः**) तुम्हारा (**समुद्रस्य**) सागर के (**ककुन्मान्**) प्रशस्त चञ्चल गुणों से युक्त (**वाजसाः**) संग्रामों के सेवने के हेतु (**प्रतूर्त्तिः**) अतिशीघ्र चलनेवाला समुद्र के (**ऊर्मिः**) आच्छादन करनेहारे तरंगोंके समान पराक्रम और जो (**अप्सु**) प्राण के (**अन्तः**) मध्य में (**अमृतम्**) मरण धर्म रहित कारण और जो (**अप्सु**) जलों के मध्य अल्प मृत्यु से छुड़ानेवाला (**भेषजम्**) रोगनिवारक औषध के समान गुण है जिससे (**अयम्**) यह सेनापति (**वाजम्**) संग्राम और अन्न का प्रबन्ध करे (**तेन**) उससे (**अपाम्**) उक्त प्राणों और जलों की (**प्रशस्तिषु**) गुण प्रशंसाओं में (**वाजिनः**) प्रशंसित बल और पराक्रमवाले (**अश्वा**) कुलीन घोड़ों के समान वेगवाले (**भवत**) हूजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्रियों को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर, जल के समान शान्तस्वभाव, वीर पुत्रों को उत्पन्न करने, नित्य ओषधियों को सेवने और जलादि पदार्थों को ठीक २ जाननेवाली होवें इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणों के वेत्ता पुरुषों से संयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी होते हैं ॥ ६ ॥

वातो वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सेनापतिर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके वेगवाले हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंꣳशतिः ।
तेऽअग्रेऽश्वमयुञ्जँस्तेऽ अस्मिन् जवमादधुः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् लोग (**वातः**) वायु के (**वा**) समान (**मनः**) मन के (**वा**) समतुल्य और जैसे (**सप्तविंशतिः**) सत्ताईस (**गन्धर्वाः**) वायु इन्द्रिय और भूतों के धारण करने हारे (**अस्मिन्**) इस जगत् में (**अग्रे**) पहिले (**अश्वम्**) व्यापकता और वेगादि गुणों को (**अयुंजन्**) संयुक्त करते हैं (**ते**) वे ही (**जवम्**) उत्तम वेग को (**आदधुः**) धारण करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो एक समष्टि वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय (एकादश) बारहवां मन, तथा इसके साथ श्रोत्र आदि दश इन्द्रिय और पांच सूक्ष्मभूत ये सब २७ (सत्ताईस) पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् में पहिले रचे हैं । जो पुरुष इनके गुण कर्म और स्वभाव को ठीक २ जान और यथायोग्य कार्यों में संयुक्त करके अपनी २ ही स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

वातरंहेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

उस राजा को विद्वान् लोग क्या-क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमानऽइन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसऽआ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥८॥

पदार्थ—हे (**वाजिन्**) शास्त्रोक्त क्रिया कुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन् ! जिस (**त्वा**) आपको (**विश्ववेदसः**) समस्त विद्याओं के जानने हारे (**मरुतः**) विद्वान् लोग राज्य और शिल्प विद्याओं के कार्यों में (**युञ्जन्तु**) युक्त और (**त्वष्टा**) वेगादि गुणविद्या का जानने हारा मनुष्य (**ते**) आपके (**पत्सु**) पगों में (**जवम्**) वेग को (**आदधातु**) अच्छे प्रकार धारण करे । वह आप (**वातरंहाः**) वायु के समान वेगवाले (**भव**) हूजिए और (**युज्यमानः**) सावधान होके (**दक्षिणः**) प्रशंसित धर्म के चलने के बल से युक्त होके (**इन्द्रस्येव**) परम ऐश्वर्य वाले राजा के समान (**श्रिया**) शोभायुक्त राज्य संपत्ति वा वाणी से सहित (**एधि**) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । राजसम्बन्धी स्त्री पुरुषो ! आप लोग अभिमान रहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों की उन्नति देखकर प्रसन्न होनेवाले होकर विद्वानों के साथ मिलके राजधर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठके अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्न करके श्रीमान् हुआ कीजिये ॥ ८ ॥

जव इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । वीरो देवता । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा होवे यह अगले मन्त्र में कहा है—

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तोऽअचरच्च वाते ।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥९॥

पदार्थ—हे (**वाजिन्**) श्रेष्ठ शास्त्रबोध और योगाभ्यास से युक्त सेना वा सभा के स्वामी राजन् ! (**ते**) आपका (**यः**) जो (**जवः**) वेग (**गुहा**) बुद्धि में (**निहितः**) स्थित है (**यः**) जो (**श्येने**) पक्षी में जैसा (**परीत्तः**) सब ओर दिया हुआ (**च**) और जैसे (**वाते**) वायु में (**अचरत्**) विचरता है (**तेन**) उस से (**नः**) हम लोगों के (**बलेन**) सेना वा पराक्रम से (**बलवान्**) बहुत बल से युक्त (**भव**) हूजिये । हे (**वाजिन्**) वेगयुक्त राजपुरुष ! उसी बल से (**समने**) संग्राम में (**पारयिष्णुः**) दुःख के पार करने और (**वाजजित्**) संग्राम के जीतने वाले हूजिये । हे (**वाजिनः**) प्रशंसित वेग से युक्त योद्धा लोगो ! तुम (**बृहस्पतेः**) बड़ों की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष की (**भागम्**) सेवा को प्राप्त होके (**वाजम्**) बोध वा अन्नादि पदार्थों को (**सरिष्यन्तः**) प्राप्त होते हुए (**वाजजितः**) संग्राम के जीतने हारे होओ और सुगन्धियुक्त पदार्थों का (**अवजिघ्रत**) सेवन करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शीघ्रकारी होके अपनी सब सभासद् सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख से युक्त कर धर्मात्माओं की निरंतर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥९॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । विराडुत्कृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य लोगों को उचित है कि विद्वानों का अनुकरण करें मूढ़ों का नहीं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! जैसे (**अहम्**) मैं सभाध्यक्ष राजा (**सत्यसवसः**) जिसका ऐश्वर्य और जगत् का कारण सत्य है उस (**देवस्य**) सब ओर से प्रकाशमान (**बृहस्पतेः**) बड़े प्रकृत्यादि पदार्थों के रक्षक (**सवितुः**) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (**सवे**) उत्पन्न किये जगत् में (**उत्तमम्**) सब से उत्तम (**नाकम्**) सब दुखों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप को (**रुहेयम्**) आरूढ़ होऊं । हे राजा के सभासद् लोगो ! जैसे (**अहम्**) मैं परोपकारी पुरुष (**सत्यसवसः**) सत्य न्याय से युक्त (**देवस्य**) सब सुख देने (**सवितुः**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेहारे (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य के सहित चक्रवर्ती राजा के (**सवे**) ऐश्वर्य में (**उत्तमम्**) प्रशंसा के योग्य (**नाकम्**) दुखःरहित भोग को प्राप्त होके (**रुहेयम्**) आरूढ़ होऊं । हे पढ़ने पढ़ाने हारे विद्याप्रिय लोगो ! जैसे (**अहम्**) मैं विद्या चाहने हारा जन (**सत्यप्रसवसः**) जिससे अविनाशी प्रकट बोध हो उस (**देवस्य**) सम्पूर्ण विद्या और शुभ गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त (**सवितुः**) समग्र विद्याबोध के उत्पन्नकर्त्ता (**बृहस्पतेः**) उत्तम वेदवाणी की रक्षा करने हारे वेदवेदांगोपांगों के पारदर्शी के (**सवे**) उत्पन्न किये विज्ञान में (**उत्तमम्**) सबसे उत्तम (**नाकम्**) सब दुःखों से रहित आनन्द को (**अरुहम्**) आरूढ़ हुआ हूँ । हे विजयप्रिय लोगो ! जैसे (**अहम्**) मैं योद्धा मनुष्य (**सत्यप्रसवसः**) जिससे सत्य न्याय विनय और विजयादि उत्पन्न हो उस (**देवस्य**) धनुर्वेद युद्धविद्या के प्रकाशक (**सवितुः**) शत्रुओं के विजय में प्रेरक (**इन्द्रस्य**) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे पुरुष की (**सवे**) प्रेरणा में (**उत्तमम्**) विजयनामक उत्तम (**नाकम्**) सब सुख देनेहारे संग्राम को (**अरुहम्**) आरूढ़ हुआ हूं वैसे आप भी सब लोग आरूढ़ हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिए कि परस्पर विरोध को छोड़ ईश्वर चक्रवर्ती राज्य और समग्र विद्याओं का सेवन करके सब सुखों को प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें ॥ १० ॥

बृहस्पत इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब उपदेश करने और सुननेवालों का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत ।
इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**बृहस्पते**) सम्पूर्ण विद्याओं का प्रचार और उपदेश करने हारे राजपुरुष ! आप (**वाजम्**) विज्ञान वा संग्राम को (**जय**) जीतो । हे विद्वानो ! तुम लोग इस (**बृहस्पतये**) राजपुरुष के लिए (**वाचम्**) वेदोक्त सुशिक्षा से प्रसिद्ध वाणी को (**वदत**) पढ़ाओ और उपदेश करो इस (**बृहस्पतिम्**) राजा वा सर्वोत्तम अध्यापक को (**वाजम्**) विद्याबोध व युद्ध को (**जापयत**) बढ़ाओ और जिताओ । हे (**इन्द्र**) विद्या के ऐश्वर्य का प्रकाश वा शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे राजपुरुष ! आप (**वाजम्**) परम ऐश्वर्य वा शत्रुओं के विजयरूपी युद्ध को (**जय**) जीतो । हे युद्ध विद्या में कुशल विद्वानो ! तुम लोग इस (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले राजपुरुष के लिये (**वाजम्**) राजधर्म का प्रचार करने हारी वाणी को (**वदत**) कहो इस (**इन्द्रम्**) राजपुरुष को (**वाजम्**) संग्राम को (**जापयत**) जिताओ ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे वेदविद्या का प्रचार और शत्रुओं का विजय सुगम हो और उपदेशक तथा योद्धा लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राज्य में वेदादि शास्त्र पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति और अपना राजा विजयरूपी आभूषणों से सुशोभित होवे कि जिससे अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार से स्थिर होवे ॥ ११ ॥

एषा व इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । स्वराडतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को अति उचित है कि सब समय में सब प्रकार से सत्य ही बोलें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (**वनस्पतयः**) किरणों के समान न्याय के पालने हारे राजपुरुषो ! तुम लोग (**यया**) जिससे (**बृहस्पतिम्**) वेदशास्त्र के पालने हारे विद्वान् को (**वाजम्**) वेदशास्त्र के बोध को (**अजीजपत**) बढ़ाओ (**बृहस्पतिम्**) बड़े राज्य के रक्षक राजपुरुष के संग्राम को (**अजीजपत**) जिताओ (**सा**) वह (**एषा**) पूर्व कही वा आगे जिसको कहेंगे (**वः**) तुम लोगों की (**संवाक्**) राजनीति में स्थित अच्छी वाणी (**सत्या**) सत्यस्वरूप (**अभूत**) होवे । हे (**वनस्पतयः**) सूर्य की किरणों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करने हारे राजपुरुषो ! तुम लोग (**यया**) जिससे

(इन्द्रम्) परमऐश्वर्य प्राप्त कराने हारे सेनापति को (वाजम्) युद्ध को (अजीजपत) जिताओ (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष को (वाजम्) अत्युत्तम लक्ष्मी को प्राप्त कराने हारे उद्योग को (अजीजपत) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें (सा) वह (एषा) आगे पीछे जिसका प्रतिपादन किया है (वः) तुम लोगों की (संवाक्) विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकाश करनेवाली वाणी (सत्या) सदा सत्यभाषणादि लक्षणों से युक्त (अभूत) होवे ॥ १२ ॥

भावार्थ—राजा उसके नौकर और प्रजापुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को असत्य कभी न होने दें जितना कहें उतना ठीक ठीक करें जिसकी वाणी सब काल में सत्य होती है वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विश्वास और वे सुखों को नहीं बढ़ा सकते ॥ १२ ॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि धर्मात्मा राजपुरुषों का अनुकरण करें अन्य तुच्छबुद्धियों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवस्याहं सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जैसे (अहम्) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण सेनापति (सत्यप्रसवसः) जिसके बनाये जगत् में कारणरूप से पदार्थ नित्य हैं उस (सवितुः) सब ऐश्वर्य को देने (देवस्य) सबके प्रकाशक (वाजजितः) विज्ञान आदि से उत्कृष्ट (बृहस्पतेः) उत्तम वेदवाणी के पालने हारे जगदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये इस ऐश्वर्य में (वाजम्) संग्राम को (जेषम्) जीतूं वैसे तुम लोग भी जीतो । हे (वाजिनः) विज्ञानरूपी वेग से युक्त (वाजजितः) संग्राम को जीतने हारे ! (योजना) बहुत कोशों से शत्रुओं को (मिमानाः) देख और (अध्वनः) शत्रुओं के मार्गों को रोकते हुए तुम लोग जैसे (काष्ठम्) दिशाओं में (गच्छत) चलते हो वैसे हम लोग भी चलें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । योद्धा लोग सेनाध्यक्षों के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओं को जीत और उनके मार्गों को रोक सकते हैं और इन अध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करते हों वहीं जाके उनको वश में करें ॥ १३ ॥

एष स्येत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

जब सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले होवें तभी विजय प्राप्त होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽआसनि । क्रतुं दधिक्राऽअनु सᳬसनिष्यदत्पथामङ्काᳬस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थ—जैसे (स्यः) वह (एषः) और यह (वाजी) वेगयुक्त (आसनि) मुख और (ग्रीवायाम्) कण्ठ में (बद्धः) बंधा (क्रतुम्) कर्म अर्थात् गति को (संसनिष्यदत्) अतीव फैलाता हुआ (पथाम्) मार्गों के (अंकांसि) चिह्नों को (अनु) समीप (आपनीफणत्) अच्छे प्रकार चलता हुआ (दधिक्राः) धारण करने हारों को चलाने हारा घोड़ा (क्षिपणिम्) सेना को जाता है वैसे ही (अपि कक्षे) इधर उधर के ठीक ठीक अवयवों में सेनापति अपनी सेना को (स्वाहा) सत्य वाणी से (तुरण्यति) वेगयुक्त करता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुए वीरपुरुष घोड़ों के समान दौड़ते हुए शीघ्र शत्रुओं को मार सकते हैं, जो सेनापति उत्तम कर्म्म करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता वह प्रशंसित हुआ विजय को प्राप्त होता है अन्यथा पराजय ही होता है ॥ १४ ॥

उतेत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सेनापति आदि राजपुरुष कैसा पराक्रम करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः । श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥१५॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! जो (ऊर्जा) पराक्रम और (स्वाहा) सत्यक्रिया के (सह) साथ (अस्य) इस (द्रवतः) रसप्रद वृक्ष का पत्ता और (तुरण्यतः) शीघ्र उड़ने वाले (वेः) पक्षी के (पर्णम्) पंखों के (न) समान (उत) और (प्रगर्धिनः) अत्यन्त इच्छा करने (ध्रजतः) चाहते हुए (श्येनस्येव) बाजपक्षी के समान तथा (तरित्रतः) अति शीघ्र चलते हुए (दधिक्राव्णः) घोड़े के सदृश (अंकसम्) अच्छे लक्षणयुक्त मार्ग में (परि, अनु, वाति) सब प्रकार अनुकूल चलता है (स्म) वही पुरुष शत्रुओं को जीत सकता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वीर पुरुष नीलकण्ठ श्येनपक्षी और घोड़े के समान पराक्रमी होते हैं उनके शत्रुलोग सब ओर से विलाय जाते हैं ॥ १५ ॥

शन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भयन्तोऽहिं वृकᳬ रक्षाᳬसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १६ ॥

पदार्थ—जो (मितद्रवः) नियम से चलने (स्वर्काः) जिनका अन्न वा सत्कार सुन्दर हो वे योद्धा लोग (अहिम्) मेघ के समान चेष्टा करते और बढ़े हुए (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दूसरों को क्लेश देने हारे डाकुओं के (जम्भयन्तः) हाथ-पांव तोड़ते हुए (वाजिनः) श्रेष्ठ युद्धविद्या के जाननेवाले वीर पुरुष (नः) हम (देवताता) विद्वान् लोगों के कर्मों तथा (हवेषु) संग्रामों में (सनेमि) सनातन (शम्) सुख को (भवन्तु) प्राप्त होवें (अस्मत्) हमारे लिये (अमीवाः) रोगों के समान वर्त्तमान शत्रुओं को (युयवन्) पृथक् करें ॥ १६ ॥

भावार्थ—श्रेष्ठ प्रजापुरुषों के पालने में तत्पर और रोगों के समान शत्रुओं के नाश करनेहारे राजपुरुष ही सबको सुख दे सकते हैं अन्य नहीं ॥ १६ ॥

ते न इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये कर देवें और इसीलिये राजपुरुष ग्रहण करें अन्यथा नहीं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ते नोऽअर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः । सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनᳬ समिथेषु जभ्रिरे ॥१७॥

पदार्थ—(ये) जो (अर्वन्तः) ज्ञानवान् (हवनश्रुतः) ग्रहण करने योग्य शास्त्रों को सुनने (वाजिनः) प्रशंसित बुद्धिमान् (मितद्रवः) शास्त्रयुक्त विषय को प्राप्त होने (सहस्रसाः) असंख्य विद्या के विषयों के सेवने और (सनिष्यवः) अपने आत्मा की सुन्दर भक्ति करनेहारे राजपुरुष (मेधसाता) समागमों के दान से युक्त (समिथेषु) संग्रामों में (नः) हमारे बड़े (धनम्) ऐश्वर्य्य को (जभ्रिरे) धारण करें वे (विश्वे) सब विद्वान् लोग हमारा (हवम्) पढ़ने पढ़ाने से होने वाले बोध शब्दों और वादी प्रतिवादियों के विवाद को (शृण्वन्तु) सुनें ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो ये राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा करें नहीं तो न लें हम भी उनको कर न देवें । इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिये अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं यह निश्चित है ॥ १७ ॥

वाजेवाज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब ये राजा और प्रजा के पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥१८॥

पदार्थ—हे (ऋतज्ञाः) सत्यविद्या के जानने हारे (अमृताः) अपने २ स्वरूप से नाशरहित जीते ही मुक्तिसुख को प्राप्त (वाजिनः) वेगयुक्त (विप्राः) विद्या और अच्छी शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषो ! तुमलोग (वाजे वाजे) संग्राम संग्राम के बीच (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस को (पिबत) पीओ । हमारे धनों से (तृप्ताः) तृप्त होके (मादयध्वम्) आनन्दित होओ और (देवयानैः) जिनमें विद्वान् लोग चलते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से सदा (यात) चलो ॥ १८ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ और सुन्दर शिक्षा से ठीक-ठीक बोध को प्राप्त होकर धर्मात्मा विद्वानों के मार्ग से सदा चलें, अन्य मार्ग से नहीं । तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अन्न आदि से युक्त रसों का सेवन कर प्रजा की रक्षा से ही आनन्द को प्राप्त होवें और प्रजापुरुषों को निरन्तर प्रसन्न रक्खें ॥ १८ ॥

आ मा वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को धर्माचरण से किस-किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे । आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमोऽअमृतत्वेन गम्यात् । वाजिनो वाजजितो वाजᳬ ससृवाᳬसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥१९

पदार्थ—हे पूर्वोक्त विद्वान् लोगो ! जिन आप लोगों के सहाय से (वाजस्य) वेदादि शास्त्रों के अर्थों के बोधों का (प्रसवः) सुन्दर ऐश्वर्य्य (मा) मुझ को (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त होवे (इमे) ये (विश्वरूपे) सब रूप विषयों के सम्बन्धी (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि का राज्य (च) और (अमृतत्वेन) सब रोगों की निवृत्तिकारक गुण के साथ (सोमः) सोमवल्ली आदि ओषधि विज्ञान मुझको प्राप्त हो और (पितरा मातरा) विद्यायुक्त पिता माता (आगन्ताम्) प्राप्त होवें

वे आप (**वाजिनः**) प्रशंसित वलवान् (**वाजजितः**) संग्राम के जीतनेवाले (**वाजम्**) संग्राम को प्राप्त हुए (**निमृजानाः**) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग (**बृहस्पतेः**) बड़ी सेना के स्वामी के (**भागम्**) सेवने योग्य भाग को (**अवजिघ्रत**) निरन्तर प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वान् के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के धर्म का आचरण करते हैं उनको इस लोक और परलोक में परमैश्वर्य्य का साधक राज्य विद्वान् माता पिता और नीरोगता प्राप्त होती है । जो पुरुष विद्वानों का सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सब सुखों को भोगते हैं । इस से विरुद्ध चलने हारे नहीं ॥ १६ ॥

आपय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या-क्या प्राप्त होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझको (**आपये**) सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये (**स्वाहा**) सत्य क्रिया (**स्वापये**) सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते (**स्वाहा**) धर्मयुक्त क्रिया (**क्रतवे**) बुद्धि बढ़ने के लिये (**स्वाहा**) पढ़ाने की प्रवृत्ति करानेहारी क्रिया (**वसवे**) विद्या निवास के लिये (**स्वाहा**) सत्य वाणी (**अहर्पतये**) पुरुषार्थपूर्वक गणितविद्या से दिन पालने के लिये कालगति को जानने हारी वाणी (**मुग्धाय**) मोह प्राप्ति के निमित्त (**अह्ने**) दिन होने के लिये (**स्वाहा**) विज्ञानयुक्त वाणी (**वैनंशिनाय**) नष्टस्वभावयुक्त कर्मों में रहने हारे (**मुग्धाय**) मूर्ख के लिये (**स्वाहा**) चिताने वाली वाणी (**आन्त्यायनाय**) नीच प्राप्ति वाले (**विनंशिने**) नष्टस्वभावयुक्त पुरुष के लिये (**स्वाहा**) पदार्थों की जानने हारी वाणी (**भुवनस्य पतये**) संसार के स्वामी ईश्वर के लिये (**स्वाहा**) योगविद्या को प्रकट करने हारी बुद्धि और (**अधिपतये**) सब अधिष्ठाताओं के ऊपर रहनेवाले पुरुष के लिये (**स्वाहा**) सब व्यवहारों को जनाने हारी वाणी (**गम्यात्**) प्राप्त होवे वैसा प्रयत्न आलस्य छोड़कर किया करो ॥ २० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त होवें कि जिससे सब सुख सदा मिलते रहें ॥ २० ॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारी (**आयुः**) अवस्था (**यज्ञेन**) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर (**कल्पताम्**) समर्थ होवे (**प्राणः**) जीवन का हेतु बलकारी प्राण (**यज्ञेन**) धर्मयुक्त विद्याभ्यास से (**कल्पताम्**) समर्थ होवे (**चक्षुः**) नेत्र (**यज्ञेन**) प्रत्यक्ष विषय के शिष्टाचार से (**कल्पताम्**) समर्थ हो (**श्रोत्रम्**) कान (**यज्ञेन**) वेदाभ्यास से (**कल्पताम्**) समर्थ हो और (**पृष्ठम्**) पूछना (**यज्ञेन**) संवाद से (**कल्पताम्**) समर्थ हो (**यज्ञः**) यज धातु का अर्थ (**यज्ञेन**) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से (**कल्पताम्**) समर्थित हो जैसे हम लोग (**प्रजापतेः**) सब के पालने हारे ईश्वर के समान धर्मात्मा राजा के (**प्रजाः**) पालने योग्य सन्तानों के सदृश (**अभूम**) होवें तथा (**देवाः**) विद्वान् हुए (**अमृताः**) जीवन मरण से छूटे (**स्वः**) मोक्ष-सुख को (**अगन्म**) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

भावार्थ—मैं ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले पुरुष ही की प्रजा होओ अन्य किसी मूर्ख क्षुद्राशय पुरुष की प्रजा होना स्वीकार कभी मत करो । जैसे मुझको न्यायाधीश मान मेरी आज्ञा में वर्त्त और अपना सब कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो, वैसे जो पुरुष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे उसी को सभापति राजा मानो ॥ २१ ॥

अस्मे इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । दिशो देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमत क्रतुरस्मे वर्चाꣳसि सन्तु वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर (**कृष्यै**) खेती के लिये (**त्वा**) तुझे (**क्षेमाय**) रक्षा के लिये (**त्वा**) तुझे (**रय्यै**) सम्पत्ति के लिये (**त्वा**) तुझे और (**पोषाय**) पुष्टि के लिये (**त्वा**) तुझको नियुक्त करता हूँ । जो तू (**ध्रुवः**) दृढ़ (**यन्ता**) नियमों से चलनेहारा (**असि**) है (**धरुणः**) धारण करनेवाला (**यमनः**) उद्योगी (**असि**) है जिस (**ते**) तेरी (**इयम्**) यह (**राट्**) शोभायुक्त है इस (**मात्रे**) मान्य की हेतु (**पृथिव्यै**) विस्तारयुक्त भूमि से (**नमः**) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों इस (**मात्रे**) मान्य देनेहारी (**पृथिव्यै**) पृथिवी को अर्थात् भूगर्भविद्या को जान के इससे (**नमः**) अन्न जलादि पदार्थ प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और वर्त्तो कि जो (**अस्मे**) हमारे (**इन्द्रियम्**) मन आदि इन्द्रिय हैं वे (**वः**) तुम्हारे लिये हों जो (**अस्मे**) हमारा (**नृम्णम्**) धन है वह (**वः**) तुम्हारे लिये हो (**उत**) और जो (**अस्मे**) हमारे (**क्रतुः**) बुद्धि वा कर्म है (**वः**) तुम्हारे हित के लिये हों जो हमारे (**वर्चांसि**) पढ़ा पढ़ाया और अन्न हैं वे (**वः**) तुम्हारे लिये (**सन्तु**) हों, जो यह सब तुम्हारा है वह हमारा भी है ऐसा आचरण आपस में करो ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सदैव पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहो और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न हो उनकी रक्षा करके यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो वैसा यत्न करो। कभी विरोध मत करो कोई अपना कार्य्य सिद्धकर उसका तुम भी किया करो ॥२२॥

वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उनको इस विषय में कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु । ताऽअस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (**अग्रे**) प्रथम (**प्रसवः**) ऐश्वर्य्ययुक्त होकर (**वाजस्य**) वैद्यकशास्त्र बोधसम्बन्धी (**इमम्**) इस (**सोमम्**) चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करनेहारे (**राजानम्**) विद्या न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा को (**सुषुवे**) ऐश्वर्य्ययुक्त करता हूँ । जैसे उसकी रक्षा में (**ओषधीषु**) पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाली यव आदि ओषधियों और (**अप्सु**) जलों के बीच वर्त्तमान ओषधि हैं (**ताः**) वे (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**मधुमतीः**) प्रशस्त मधुर गुणवाली (**भवन्तु**) हों । जैसे (**स्वाहा**) सत्य क्रिया के साथ (**पुरोहिताः**) सबके हितकारी हम लोग (**राष्ट्रे**) राज्य में निरन्तर (**जागृयाम**) आलस्य छोड़कर जागते रहें वैसे तुम भी वर्त्ता करो ॥ २३ ॥

भावार्थ—शिष्ट मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्याओं की चतुराई रोगरहित और सुन्दर गुणों से शोभायमान पुरुष को राज्याधिकार देकर उसकी रक्षा करनेवाला वैद्य ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे इसके शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का आवेश न हो । इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मन्त्री आदि भृत्यों और प्रजाजनों को रोगरहित करें । जिस से ये राज्य के सज्जनों के पालने और दुष्टों के ताड़ने में प्रयत्न करते रहें, राजा और प्रजा के पुरुष परस्पर पिता पुत्र के समान सदा वर्त्तें ॥२३॥

वाजस्येमामित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिग्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा किसका आश्रय लेकर किसके साथ क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् । अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳ सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (**वाजस्य**) राज्य के मध्य में (**प्रसवः**) उत्पन्न हुए (**सम्राट्**) अच्छे प्रकार राजधर्म्म में प्रवर्त्तमान मैं (**इमाम्**) इस भूमि को (**दिवम्**) प्रकाशित और (**इमा**) इन (**विश्वा**) सब और (**भुवनानि**) घरों को (**शिश्रिये**) अच्छे प्रकार आश्रय करता हूँ वैसे तुम भी इसको अच्छे प्रकार शोभित करो और जो (**स्वाहा**) धर्म्मयुक्त सत्यवाणी से (**प्रजानन्**) जानता हुआ (**अदित्सन्तम्**) राज्य-कर देने की इच्छा न करनेवाले से (**दापयति**) दिलाता है (**सः**) सो (**नः**) हमारे (**सर्ववीरम्**) सब वीरों के प्राप्त कराने हारे (**रयिम्**) धन को (**नियच्छतु**) ग्रहण करे ॥ २४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य लोगो ! मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जान कर जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो उसी को चक्रवर्ती राजा करो और जो कर देनेवालों से कर दिलावे वह मन्त्री होने को योग्य होवे, जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ हो उसे सेनापति करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोषाध्यक्ष करो ॥ २४ ॥

वाजस्य न्वित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानोऽअस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थ—जो (**वाजस्य**) वेदादि शास्त्रों से उत्पन्न बोध को (**स्वाहा**) सत्यनीति से (**प्रसवः**) प्राप्त होकर (**विद्वान्**) सम्पूर्ण विद्या को जानने वाला पुरुष

(आ) अच्छे प्रकार (बभूव) होवे (च) और (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) माण्डलिक राजनिवास स्थानों और (सनेमि) सनातन नियम धर्मसहित वर्त्तमान (प्रजाम्) पालने योग्य प्रजाओं को (पुष्टिम्) पोषण (नु) शीघ्र (वर्धयमानः) बढ़ाता हुआ (परि) सब ओर से (याति) प्राप्त होता है वह (अस्मे) हम लोगों का राजा होवे ॥ २५ ॥

भावार्थ—ईश्वर सबसे उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुम जो प्रशंसित गुण कर्म स्वभाव वाला राज्य की रक्षा में समर्थ हो उसको सभाध्यक्ष करके आप्तनीति से चक्रवर्ती राज्य करो ॥ २५ ॥

सोमंमित्यस्य तापस ऋषिः । सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्यबृहस्पतयो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर कैसे राजा का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सोम॑थ्ंराजा॑नमव॑सेऽग्निम॒न्वार॑भामहे ।

आ॒दि॒त्या॒न्विष्णु॑थ्ंसूर्य॑ं ब्र॒ह्माण॑ं च॒ बृह॒स्पति॒ꣳ स्वाहा॑ ॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (अवसे) रक्षा आदि के अर्थ (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर (सूर्य्यम्) विद्वानों में सूर्य्यवद्विद्वान् (ब्रह्माणम्) साङ्गोपाङ्ग चार वेदों को पढ़नेवाले (बृहस्पतिम्) बड़ों के रक्षक (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले (सोमम्) शान्त गुणसम्पन्न (राजानम्) धर्माचरण से प्रकाशमान राजा और (आदित्यान्) विद्या के लिए जिनने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रख कर पूर्ण विद्या पढ़ सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्ग से विद्या पढ़ के गृहाश्रम का (आरभामहे) आरम्भ करें वैसे तुम भी किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थ—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिए ब्रह्मचर्य्य व्रतादि से विद्या के पारगन्ता विद्वानों के बीच जिसने अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य व्रत किया हो ऐसे राजा को स्वीकार करके सच्ची नीति को बढ़ावें ॥ २६ ॥

अर्य्यमणमित्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा किन को किस में प्रेरणा करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒र्य्य॒मण॒ं बृह॒स्पति॒मिन्द्र॒ं दाना॑य चोदय ।

वाच॒ं विष्णु॒ꣳ सर॑स्वतीꣳ सवि॒तार॑ं च वा॒जिन॒ꣳ स्वाहा॑ ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप (स्वाहा) सत्य नीति से (दानाय) विद्यादि दान के लिए (अर्य्यमणम्) पक्षपातरहित न्याय करने (बृहस्पतिम्) सब विद्याओं को पढ़ाने (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य्ययुक्त (वाचम्) वेदवाणी (विष्णुम्) सब के अधिष्ठाता (सवितारम्) वेदविद्या तथा सब ऐश्वर्य उत्पन्न करने (वाजिनम्) अच्छे वन वेग से युक्त शूरवीर और (सरस्वतीम्) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विज्ञानयुक्त पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री को अच्छे कर्मों में (चोदय) सदा प्रेरणा किया कीजिए ॥२७॥

भावार्थ—ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् होकर सब न्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म्म बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रेरणा करें जिससे विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हों ॥ २७ ॥

अग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर वह राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने॒ऽअच्छा॑ वदे॒ह नः॑ प्रति॑ नः सु॒मना॑ भव ।

प्र नो॑ यच्छ सहस्रजि॒त् त्वꣳ हि ध॑नदाऽअसि॒ स्वाहा॑ ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् आप (इह) इस समय में (स्वाहा) सत्य वाणी से (नः) हम को (अच्छ) अच्छे प्रकार (वद) सत्य उपदेश कीजिये (नः) हमारे ऊपर (सुमनाः) मित्रभावयुक्त (भव) हूजिए (हि) जिस से (सहस्रजित्) आप बिना सहाय हजार को जीतने (धनदाः) ऐश्वर्य्य देने वाले (असि) हैं इससे (नः) हमारे लिए (प्रयच्छ) दीजिए ॥ २८ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा, प्रजा और सेनाजन मनुष्यों से सदा सत्यप्रिय वचन कहे उन को धन दे, उस से धन ले, शरीर और आत्मा का बल बढ़ा और नित्य शत्रुओं को जीतकर धर्म से प्रजा को पाले ॥ २८ ॥

प्र न इत्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्रजा और सन्तानों से राजा और माता आदि कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र नो॑ यच्छत्वर्य्य॒मा प्र पू॒षा बृह॒स्पतिः॑ । प्र वाग्दे॒वी द॑दातु नः॒ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

पदार्थ—जैसे (अर्य्यमा) न्यायाधीश (नः) हमारे लिए उत्तम शिक्षा (प्रयच्छतु) देवे जैसे (पूषा) पोषण करनेवाला शरीर और आत्मा की पुष्टि की शिक्षा (प्र) अच्छे प्रकार देवे जैसे (बृहस्पतिः) विद्वान् (प्र, स्वाहा) अत्युत्तम विद्या देवे वैसे (वाक्) उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त (देवी) प्रकाशमान पढ़ानेवाली माता हमारे लिए सत्यविद्यायुक्त वाणी का (प्रददातु) उपदेश सदा किया करे ॥ २९ ॥

भावार्थ—यहाँ जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आदि स्त्री सदा प्रजा और पुत्रादिकों को सत्य सत्य उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा को निरन्तर ग्रहण करावें जिससे प्रजा और पुत्र पुत्री आदि सदा आनन्द में रहें ॥ २९ ॥

देवस्येत्यस्य तापस ऋषिः । सम्राड् देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कहाँ कैसे को राजा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑ं पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । सर॑स्वत्यै वा॒चो य॒न्तुर्य॒न्त्रिये॑ दधामि॒ बृह॒स्पते॑ष्ट्वा॒ साम्रा॑ज्येना॒भिषि॑ञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे सब अच्छे गुण स्वभावयुक्त विद्वन् ! (असौ) यह मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले ईश्वर (देवस्य) प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किए संसार में (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिल्पविद्यायुक्त (वाचः) वेदवाणी के मध्य (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के समान धारण पोषण गुणयुक्त (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) तुम को (दधामि) धारण करता हूँ और (बृहस्पतेः) बड़े विद्वान् के (यंत्रिये) कारीगरी विद्या से सिद्ध किए राज्य में (साम्राज्येन) चक्रवर्ती राजा के गुण से सहित (त्वा) तुझ को (अभि) सब ओर से (सिंचामि) सुगन्धित रसों से मार्जन करता हूँ ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी, बल पराक्रम पुष्टियुक्त चतुर सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्रजापालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिए अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें ॥३०॥

अग्निरेकेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ाया करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒ग्निरेका॑क्षरेण प्रा॒णमुद॑जय॒त् तमुज्जे॑षमश्विनौ॒ द्व्यक्षरेण द्वि॒पदो॑ मनु॒ष्या॒नुद॑जयतां॒ तानुज्जे॑षं॒ विष्णु॒स्त्र्यक्षरे॒ण त्रीँल्लो॒कानुद॑जय॒त्तानुज्जे॑ष॒ꣳ सोम॒श्चतु॑रक्षरे॒ण चतु॑ष्पदः प॒शूनुद॑जय॒त्तानुज्जे॑षम् ॥३१॥

पदार्थ—हे राजन् ! (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान आप जैसे (एकाक्षरेण) चित्ताहारी एक अक्षर की दैवी गायत्री छन्द से (प्राणम्) शरीर में स्थित वायु के समान प्रजाजनों को (उत्, जेषम्) उत्तम नीति से (अजयत्) उत्तम करें वैसे (तम्) उसको मैं भी (उत्, जेषम्) उत्तम करूं । हे राजप्रजाजनो ! (अश्विनौ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान आप जैसे (द्व्यक्षरेण) दो अक्षर की दैवी उष्णिक् छन्द से जिन (द्विपदः) दो पैर वाले (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों को (उज्जयताम्) उत्तम करो वैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं । हे सर्वप्रधान पुरुष ! (विष्णुः) परमेश्वर के समान न्यायकारी आप जैसे (त्र्यक्षरेण) तीन अक्षर की दैवी अनुष्टुप् छन्द से जिन (त्रीन्) जन्म स्थान और नामवाची (लोकान्) देखने योग्य लोकों को (उदजयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं । हे (सोम) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले न्यायाधीश ! आप जैसे (पशून्) हिरणादि पशुओं को (उदजयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ावे तो उसको भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावें और जो ऐसा न करे तो उसको प्रजा भी कभी न बढ़ावे ॥३१॥

पूषेत्यस्य तापस ऋषिः । पूषादयो मन्त्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजाजन किनके दृष्टान्तों से क्या-क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पू॒षा पञ्चा॑क्षरेण॒ पञ्च॒ दिश॒ऽउद॑जय॒त्ताऽउज्जे॑षꣳ सवि॒ता षड॑क्षरेण॒ षड् ऋ॒तूनुद॑जय॒त्तानुज्जे॑षं म॒रुतः॑ स॒प्ताक्षरेण स॒प्त ग्रा॒म्यान् प॒शूनुद॑जय॒ꣳस्तानुज्जे॑षं बृह॒स्पति॑र॒ष्टाक्ष॑रेण गाय॒त्रीमुद॑जय॒त्तामुज्जे॑षम् ॥३२

पदार्थ—हे राजन् ! (पूषा) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करनेवाले आप जैसे (पञ्चाक्षरेण) पाँच अक्षर की दैवी पंक्ति से (पञ्च) पूर्वादि चार और एक ऊपर नीचे की (दिशः) दिशाओं को (उदजयत्) उत्तम कीर्त्ति से भरते हो वैसे (ताः) उनको मैं भी (उज्जेषम्) श्रेष्ठ कीर्त्ति से भर देऊं । हे राजन् ! (सविता) सूर्य्य के समान आप जैसे (षडक्षरेण) छः अक्षरों की दैवी त्रिष्टुप् से जिन (षट्) छः (ऋतून्) वसन्तादि ऋतुओं को (उदजयत्) शुद्ध करते हो वैसे (तान्) उनको मैं भी (उज्जेषम्) शुद्ध करूं । हे सभाजनो ! (मरुतः)

वायु के समान आप जैसे (सप्ताक्षरेण) सात अक्षरों की दैवी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊंट, बकरी, भेड़ और गधा इन सात (ग्राम्यान्) गांव के (पशून्) पशुओं को (उदजयत्) बढ़ाते हो वैसे (तान्) उनको मैं भी बढ़ाऊं। हे सभेश ! (बृहस्पतिः) समस्त विद्याओं के जाननेवाले विद्वान् के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याजुषी अनुष्टुप् से जिस (गायत्रीम्) गान करनेवाले की रक्षा करनेवाली विद्वान् स्त्री की (उदजयत्) प्रतिष्ठा करते हो वैसे (ताम्) उसकी मैं भी (उज्जेषम्) प्रतिष्ठा करूं ॥३२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो राजा सब का पोषक, जिसकी सब दिशाओं में कीर्त्ति, ऐश्वर्य्ययुक्त, सभा के कामों में चतुर, पशुओं का रक्षक और वेदों का ज्ञाता हो, उसी को राजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उन्नति देवें ॥३२॥

मित्र इत्यस्य तापस ऋषिः । मित्रादयो मन्त्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत्तᳬ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥३३॥

पदार्थ—हे राजन् ! (मित्रः) सबके हितकारी आप जैसे (नवाक्षरेण) नव अक्षर की याजुषी बृहती से जिस (त्रिवृत्तम्) कर्म्म उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्) स्तुति के योग को (उदजयत्) उत्तमता से जानते हो वैसे (ताम्) उसको मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं । हे प्रशंसा के योग्य सभेश ! (वरुणः) सब प्रकार से श्रेष्ठ आप जैसे (दशाक्षरेण) दश अक्षरों की याजुषी पंक्ति से जिस (विराजम्) विराट् छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उदजयत्) प्राप्त हुए हो वैसे (ताम्) उसको मैं भी (उज्जेषम्) प्राप्त होऊं (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य देने वाले आप जैसे (एकादशाक्षरेण) ग्यारह अक्षरों की आसुरी पंक्ति से जिस (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाची को (उदजयत्) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे (ताम्) उसको मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं । हे सभ्य जनो (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानो ! आप जैसे (द्वादशाक्षरेण) बारह अक्षरों की साम्नी गायत्री से जिस (जगतीम्) जगती से कही हुई नीति का (उदजयत्) प्रचार करते हो वैसे (ताम्) उसको मैं भी (उज्जेषम्) प्रचार करूं ॥३३॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शिक्षा कर इन प्रजाजनों को उत्तम गुणयुक्त विद्वान् करें जिससे ये ऐश्वर्य्य के भागी होकर राजभक्त हों ॥३३॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषिः । वस्वादयो मंत्रोक्ता देवताः । वसव इत्यस्य निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । आदित्या इत्यस्य निचृद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म्म कार्य का उपदेश अगले मंत्र में किया है—

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशᳬ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषᳬ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशᳬ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम् । आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशᳬ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशᳬस्तोममुदजयत्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशᳬ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे राजादि सभ्य जनो (वसवः) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़नेवाले विद्वानो ! आप लोग जैसे (त्रयोदशाक्षरेण) तेरह अक्षरों की आसुरी अनुष्टुप् वेदस्थ छन्द से जिस (त्रयोदशम्) दश प्राण जीव महत्तत्त्व और अव्यक्त कारणरूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ समूह को (उदजयन्) श्रेष्ठता से जानें वैसे (तम्) उसको मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं । हे बल पराक्रम और पुरुषार्थयुक्त (रुद्राः) चवालीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ने हारे विद्वानो ! जैसे आप (चतुर्दशाक्षरेण) चौदह अक्षरों की साम्नी उष्णिक् छन्द से (चतुर्दशम्) दश इन्द्रिय मन बुद्धि चित्त और अहंकाररूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थविद्या को (उदजयन्) प्रशंसित करें वैसे मैं भी (तम्) उसको (उज्जेषम्) प्रशंसित करूं । हे (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण करने हारे पूर्ण विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त बल से युक्त सूर्य्य के समान प्रकाशमान विद्वानो ! आप लोग जैसे (पञ्चदशाक्षरेण) पन्द्रह अक्षरों की आसुरी गायत्री से (पञ्चदशम्) चार वेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद,धनुर्वेद,गांधर्ववेद (गानविद्या) तथा अर्थवेद (शिल्पशास्त्र) छः अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्तछन्द और ज्योतिष) मिल के चौदह उनका संख्यापूरक पन्द्रहवां क्रियाकुशलतारूप (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को (उदजयन्) अच्छे प्रकार से जानें वैसे मैं भी (तम्) उसको (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं । हे (अदितिः) आत्मरूप से नाशरहित सभाध्यक्ष राजा की विदुषी स्त्री अखण्डित ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप जैसे (षोडशाक्षरेण) सोलह अक्षर की साम्नी अनुष्टुप् से (षोडशम्) प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों की व्याख्यायुक्त (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जानें वैसे मैं भी (तम्) उसको (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं । हे नरेश ! (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक आप जैसे (सप्तदशाक्षरेण) सत्रह अक्षरों की निचृदार्ची छन्द से (सप्तदशम्) चार वर्ण, चार आश्रम, सुनना, विचारना, ध्यान करना, अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त का रक्षण, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए को अच्छे मार्ग से सबके उपकार में खर्च करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष का अनुष्ठानरूप (स्तोमम्) अच्छे प्रकार प्रशंसनीय को उत्तमता से जानें वैसे मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं ॥३४॥

भावार्थ—हे मनुष्य लोगो ! इन चार मन्त्रों से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा उसका अनुष्ठान कर तुम सुखी होओ ॥३४॥

एष त इत्यस्य वरुण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदुत्कृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य चक्रवर्ती राज्य सेवने को योग्य होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यऽउत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽउपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे (निर्ऋते) सदैव सत्याचरणयुक्त राजन् ! (ते) आपका जो (एषः) यह (भागः) सेवने योग्य है उसको (अग्निनेत्रेभ्यः) अग्नि के प्रकाश के समान नीतियुक्त (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) सत्य वाणी (पुरःसद्भ्यः) जो प्रथम सभा वा राज्य में स्थित हो उन (देवेभ्यः) न्यायाधीश विद्वानों से (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया (यमनेत्रेभ्यः) जिनकी वायु के समान सर्वत्र गति (दक्षिणासद्भ्यः) जो दक्षिण दिशा में राजप्रबन्ध के लिये स्थित हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) दानक्रिया (विश्वदेवनेत्रेभ्यः) सब विद्वानों के तुल्य नीति के ज्ञानी (पश्चात्सद्भ्यः) जो पश्चिम दिशा में राजकर्मचारी हों उन (देवेभ्यः) दिव्य सुख देनेहारे विद्वानों से (स्वाहा) उत्साहकारक वाणी (मित्रावरुणनेत्रेभ्यः) प्राण और अपान के समान वा (मरुन्नेत्रेभ्यः) ऋत्विक् यज्ञ के कर्त्ता (वा) सत्पुरुष के समान न्यायकारक वा (उत्तरासद्भ्यः) जो उत्तम दिशा में न्यायाधीश हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से दूतकर्म की कुशल क्रिया (सोमनेत्रेभ्यः) चन्द्रमा के समान ऐश्वर्य्ययुक्त होकर सब को आनन्ददायक (उपरिसद्भ्यः) विद्या विनय धर्म और ईश्वर की सेवा करने हारे (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) आप्त पुरुषों की वाणी को प्राप्त होके तू सदा धर्म का (जुषस्व) सेवन किया कर ॥३५॥

भावार्थ—हे राजन् सभाध्यक्ष ! जब आप सब ओर से उत्तम विद्वानों से युक्त होकर सब प्रकार की शिक्षा को प्राप्त सभा का करने हारा सेना का रक्षक उत्तम सहाय से सहित होकर सनातन वेदोक्त राजधर्मनीति से प्रजा का पालन कर इस लोक और परलोक में सुख ही को प्राप्त होवे, जो कर्म से विरुद्ध रहेगा तो तुझ को सुख भी न होगा । कोई भी मनुष्य मूर्खों के सहाय से सुख की वृद्धि नहीं कर सकता और न कभी विद्वानों के अनुसार चलनेवाला मनुष्य सुख को छोड़ देता है इस से राजा सर्वदा विद्या धर्म और आप्त विद्वानों के सहाय से राज्य की रक्षा किया करे। जिसकी सभा वा राज्य में पूर्णविद्यायुक्त धार्मिक मनुष्य सभासद् वा कर्मचारी होते हैं और जिसके सभा वा राज्य में मिथ्यावादी व्यभिचारी अजितेन्द्रिय कठोर वचनों के बोलनेवाले अन्यायकारी चोर और डाकू आदि नहीं होते और आप भी इसी प्रकार का धार्मिक हो तो वही पुरुष चक्रवर्त्ती राज्य करने के योग्य होता है इससे विरुद्ध नहीं ॥३५॥

ये देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विकृतिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग सर्वत्र घूमघाम कर विद्या ग्रहण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ये देवाऽअग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राऽउपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष राजन् ! आप (ये) जो (अग्निनेत्राः) बिजुली आदि पदार्थों के समान जाननेवाले (पुरःसदः) जो सभा वा देश वा पूर्व की दिशा में स्थित (देवाः) विद्वान् हैं (तेभ्यः) उनसे (स्वाहा) सत्यवाणी (ये) जो (यमनेत्राः) अहिंसादि योगाङ्ग रीतियों में निपुण (दक्षिणासदः) दक्षिण दिशा में स्थित (देवाः) योगी और न्यायाधीश हैं (तेभ्यः) उनसे (स्वाहा) सत्यक्रिया (ये) जो (पश्चात्सदः) पश्चिम दिशा में (विश्वदेवनेत्राः) सब पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता (देवाः) सब विद्या जानने वाले विद्वान् हैं (तेभ्यः) उनसे (स्वाहा) दण्डनीति (ये) जो (उत्तरासदः) प्रश्नोत्तरों का समाधान करनेवाले उत्तर दिशा में (वा) नीचे ऊपर स्थित (मित्रावरुणनेत्राः) प्राण उदान के समान सब धर्मों के बताने वाले (वा) अथवा (मरुन्नेत्राः) ब्रह्माण्ड के वायु में नेत्र-

विज्ञान और (देवाः) सब को सुख देनेवाले विद्वान् हैं (तेभ्यः) उनसे (स्वाहा) सबके उपकारक विद्या को सेवन करो और (ये) जो (उपरिसदः) ऊंचे आसन वा व्यवहार में स्थित (दुवस्वन्तः) बहुत प्रकार से धर्म के सेवन से युक्त (सोमनेत्राः) सोम आदि ओषधियों के जानने तथा (देवाः) आयुर्वेद को जाननेहारे हैं उनसे (स्वाहा) अमृतरूपी ओषधिविद्या का सेवन कीजिये ॥३६॥

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! तुम लोग जब धार्मिक सुशील विद्वान् होकर सब दिशाओं में स्थित सब विद्याओं के जाननेवाले आप विद्वानों की परीक्षा और सत्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त होंगे तब यह तुम्हारे समीप आके तुम्हारे साथ सङ्ग करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्धि करावें। जो देशदेशान्तर तथा द्वीप द्वीपान्तर में विद्या नम्रता अच्छी शिक्षा काम की चतुराई को ग्रहण करते हैं वे ही सबको अच्छे सुख करानेवाले होते हैं ॥३६॥

अग्ने सहस्वेत्यस्य देववात ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी राजा आदि किस प्रकार वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने सहस्व पृतनाऽअभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब विद्या जाननेवाले विद्वान् राजन् ! (दुष्टरः) दुःख से तरने योग्य (तरन्) शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप (यज्ञवाहसि) जिसमें राजधर्मयुक्त राज्य में (अभिमातीः) अभिमान आनन्दयुक्त (पृतनाः) बल और अच्छी शिक्षायुक्त वीर सेना को (सहस्व) सहो (अरातीः) दुःख देनेवाले शत्रुओं को (अपास्य) दूर निकालिये और (वर्चः) विद्या बल और न्याय को (धाः) धारण कीजिये ॥३७॥

भावार्थ—राजादि सभा सेना के स्वामी लोग अपनी दृढ़ विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त सेना के सहित आप अजय और शत्रुओं को जीतते हुए भूमि पर उत्तम यज्ञ का विस्तार करें ॥३७॥

देवस्य त्वेत्यस्य देववात ऋषिः । रक्षोघ्नो देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

प्रजाजन राज्य में कैसे सभाधीश का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । उपांशोर्वीर्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा । रक्षसां त्वा वधायाऽवधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सवितुः) ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करनेवाले (देवस्य) प्रकाशित न्याययुक्त (प्रसवे) ऐश्वर्य्य में (उपांशोः) समीपस्थ सेना से (वीर्य्येण) सामर्थ्य से (अश्विनोः) चन्द्रमा के समान सेनापति के (बाहुभ्याम्) भुजों से (पूष्णः) पुष्टिकारक वैद्य के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (रक्षः) राक्षसों के (वधाय) नाश के अर्थ (त्वा) आपको (जुहोमि) ग्रहण करता हूँ। जैसे तूने (रक्षः) दुष्ट को (हतम्) नष्ट किया वैसे हम लोग भी (अवधिष्म) दुष्टों को मारें जैसे (असौ) वह दुष्ट (हतः) नष्ट हो जाय वैसे हम लोग इन सबको (अवधिष्म) नष्ट करें ॥३८॥

भावार्थ—प्रजाजनों को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करने हारे वीर जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें ॥३८॥

सविता त्वेत्यस्य देववात ऋषिः । रक्षोघ्नो देवता । अतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

सभ्य मनुष्य राजा को किस-किस विषय में प्रेरणा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

सविता त्वा सवानाꣳ सुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳ सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाचऽइन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

पदार्थ—हे सभापते राजन् ! जो तू (सवानाम्) ऐश्वर्य्य के (सविता) सूर्य्य के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्निः) पावक के सदृश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सोमः) सोमवल्ली के सदृश (धर्म्मपतीनाम्) धर्म के पालने हारों के मध्य में (सत्यः) सज्जनों में सज्जन (वरुणः) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्रः) सखा के तुल्य (वाचे) वेदवाणी के लिए (बृहस्पतिः) महाविद्वान् के सदृश (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिए (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य से युक्त के तुल्य (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं के लिए (रुद्रः) शुद्ध वायु के सदृश है उस (त्वा) तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में (सुवताम्) प्रेरणा करें ॥ ३९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आपको अधर्म से लौटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा करें उन्हीं का सङ्ग सदा करो औरों का नहीं ॥ ३९ ॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ॥
धैवतः स्वरः ॥

किस-किस प्रयोजन के लिए कैसे राजा का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ ४० ॥

पदार्थ—हे प्रजास्थ (देवाः) विद्वान् लोगो ! तुम जो (एषः) यह (सोमः) चन्द्रमा के समान प्रजा में प्रियरूप (वः) तुम क्षत्रियादि और हम ब्राह्मणादि और जो (अमी) परोक्ष में वर्त्तमान हैं उन सब का राजा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) उस उत्तम पुरुष का (पुत्रम्) पुत्र (अमुष्यै) उस विद्यादि गुणों से श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् स्त्री के पुत्र को (अस्यै) इस (विशे) प्रजा के लिये इसी पुरुष को (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसा के योग्य (महते) बड़े (जानराज्याय) धार्मिक जनों के राज्य करने (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त (इन्द्रियाय) धन के वास्ते (असपत्नम्) शत्रु रहित (सुवध्वम्) कीजिये ॥ ४०॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजा के मनुष्यो ! तुम जो विद्वान् माता और पिता से अच्छे प्रकार सुरक्षित कुलीन बड़े उत्तम २ गुण कर्म और स्वभावयुक्त जितेन्द्रियादि गुणयुक्त ४८ (अड़तालीस) वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या से सुशील शरीर और आत्मा के पूर्ण बलयुक्त धर्म से प्रजा का पालक प्रेमी विद्वान् हो उस को सभापति राजा मान कर चक्रवर्त्तिराज्य का सेवन करो ॥ ४० ॥

इस अध्याय में राजधर्म के वर्णन से इस अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

॥ अथ दशमाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

अपो देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के अनुकूल चलें इस विषय का उपदेश किया है—

अपो दे॒वा मधु॑मतीरगृभ्ण॒न्नूर्ज॑स्वती राज॒स्व॒श्चिता॑नाः । याभि॑र्मि॒त्रावरु॑णाव॒भ्यषि॑ञ्च॒न् याभि॒रिन्द्र॒मन॑य॒न्नत्यरा॑तीः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (देवाः) चतुर विद्वान् लोग (याभिः) जिन क्रियाओं से (मित्रावरुणौ) प्राण तथा उदान को (अभ्यषिञ्चन्) सब प्रकार सींचते और जिन क्रियाओं से (इन्द्रम्) बिजुली को प्राप्त और (अरातीः) शत्रुओं को (अनयन्) जीतते हैं उन क्रियाओं से (मधुमतीः) प्रशंसनीय मधुरादि गुणयुक्त (उर्जस्वतीः) बल पराक्रम बढ़ाने (चितानाः) चेतनता देने और (राजस्वः) ज्ञान-प्रकाश-युक्त राज्य को प्राप्त करानेहारे (अपः) जल वा प्राणों को (अगृभ्णन्) ग्रहण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परीक्षा करके उन से उपयोग लेवें । शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रीति से वर्त्तें और इन जल तथा प्राणों से उपकार लेवें ॥ १ ॥

वृष्ण ऊर्मिरित्यस्य वरुण ऋषिः । वृषा देवता । स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या-क्या माँगें यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

वृष्णा॑ऽऊ॒र्मिर॑सि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॒ वृष्णा॑ऽऊ॒र्मिर॑सि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देहि वृषसे॒नो॑ऽसि राष्ट्र॒दा राष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॑ वृषसे॒नो॑ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देहि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जिस कारण आप (वृष्णः) सुख के वर्षाकारक ज्ञान के प्राप्त कराने (राष्ट्रदाः) राज्य के देने हारे (असि) हैं इस से (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिए (वृष्णः) सुख की वृष्टि करने वाले राज्य के (ऊर्मिः) जानने और (राष्ट्रदाः) राज्य प्रदान करने हारे (असि) हैं (अमुष्मै) उस राज्य की रक्षा करने वाले को (राष्ट्रम्) न्याय से प्रकाशित राज्य को (देहि) दीजिये (राष्ट्रदाः) राजाओं के कर्मों के देने हारे (वृषसेनः) बलवान् सेना से युक्त (असि) हैं (मे) प्रत्यक्ष वर्त्तमान मेरे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिए तथा (राष्ट्रदाः) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले (वृषसेनः) आनन्दित पुष्टसेना से युक्त (असि) हैं इस से आप (अमुष्मै) उस परोक्ष पुरुष के लिए (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष दुष्ट प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के अधिकार और शोभा को देता है उस के लिये चक्रवर्त्ती राज्य का अधिकार होना योग्य है ॥ २ ॥

अर्थेत इत्यस्य वरुण ऋषिः । अपां पतिर्देवता । पूर्वस्याभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः । देहीत्यस्य निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा मन्त्री सेना और प्रजा के पुरुष आपस में किस प्रकार वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒र्थेत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒र्थेत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ द॒त्तौज॑स्वती स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहौज॑स्वती स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ द॒त्ताप॑ः परिवाहि॒णी॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहाप॑ः परिवाहि॒णी॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ द॒त्तापां पति॑रसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॒ऽपां पति॑रसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दे॒ह्यपां गर्भो॑ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॒ऽपां गर्भो॑ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देहि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग (अर्थेतः) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य सेवने हारे सभासद् (स्थ) होवें आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिए जो तुम लोग (अर्थेतः) पदार्थों को जानते हुए (राष्ट्रदा) राज्य देने वाले (स्थ) हो वे तुम लोग (अमुष्मै) राज्य के रक्षक उस पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिए । जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (ओजस्वतीः) विद्या बल और पराक्रम से युक्त हुई रानी लोग आप (राष्ट्रदाः) राज्य देनेहारी (स्थ) हैं वे (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो आप लोग (ओजस्वतीः) जितेन्द्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य की देने वाली (स्थ) हैं वे आप लोग (अमुष्मै) विद्या बल और पराक्रम से युक्त पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिए । जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति से (परिवाहिणीः) अपने समान प्यारी (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिए । जो तुम लोग (परिवाहिणीः) अपने अनुकूल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली (आपः) आत्मा के समान प्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं वे आप (अमुष्मै) उस ब्रह्मचारी वीर पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिए । हे सभाध्यक्ष ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) जलाशयों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं सो (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिए । हे सभापति ! जो आप (स्वाहा) सत्य वचनों से (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) प्राणों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं वे (अमुष्मै) उस प्राणियों के पोषक पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिए । हे वीर पुरुष राजन् ! जो आप (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) सेनाओं के बीच (गर्भः) गर्भ के समान रक्षित (असि) हैं सो आप (मे) विचारशील मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिए । हे राजन् ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) प्रजाओं के विषय (गर्भः) स्तुति के योग्य (असि) हैं सो आप (अमुष्मै) उस प्रशंसित पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उनकी स्त्रियां हों उन को चाहिए कि अपनी उन्नति के लिए दूसरों की उन्नति को सह के मनुष्यों को राज्य के योग्य कर और आप भी चक्रवर्त्ती राज्य का भोग किया करें ऐसा न हो कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि कर के अपने राज्य का भङ्ग करें ॥ ३ ॥

सूर्य्यत्वचस इत्यस्य वरुण ऋषिः । सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । पूर्वस्य जगती छन्दः । निषादः स्वरः । सूर्य्यवर्चस इति द्वितीयस्य स्वराड् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । व्रजक्षित इति तृतीयस्य शविष्ठा इति चतुर्थस्य च स्वराड् विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । व्रजक्षितस्येत्यस्य स्वराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । शक्वरीस्थेत्यस्य भुरिगाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । मधुमतीरित्यस्य भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसा होके किस २ के लिए क्या २ देना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सूर्य्य॑त्वचस स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒ सूर्य्य॑त्वचस स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्त सूर्य्य॑वर्चस स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒ सूर्य॑वर्चस स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुस्मै॑ दत्त॒ मान्दा॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒ मान्दा॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्त व्रज॒क्षित॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॑ व्रजक्षित॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्त॒ वाशा॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒ वाशा॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्त॒ शवि॑ष्ठा स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒ शवि॑ष्ठा स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्त॒ शक्व॑री स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒ शक्व॑री स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्त जन॒भृत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॑ जन॒भृत॑स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्त विश्वभृत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ दत्त॒ स्वाहा॑ विश्वभृत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्म द॒त्ताप॑ः स्वराज॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्त । मधु॑मती॒र्मधु॑मतीभिः पृच्यन्तां महि॑ क्षत्रं क्ष॒त्रिया॑य व॒न्वा॒नाऽअना॑धृष्टाः सीदत स॒हौज॑सो महि॑ क्ष॒त्रं क्ष॒त्रिया॑य दध॑तीः ॥४॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम लोग (**सूर्यत्वचसः**) सूर्य के समान अपने न्याय-प्रकाश से सब तेज को ढाँकनेवाले होते हुए (**स्वाहा**) सत्यन्याय के साथ (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेहारे (**स्थ**) हो इसलिये (**मे**) मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिये । हे मनुष्यो ! जिस कारण (**सूर्यत्वचसः**) सूर्य्यप्रकाश के समान विद्या पढ़ने वाले होते हुए तुम लोग (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेहारे (**स्थ**) हो इसलिये (**अमुष्मै**) उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष के लिए (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिये । हे विद्वान् मनुष्यो ! (**सूर्यवर्चसः**) सूर्य के समान तेजधारी होते हुए तुम लोग (**स्वाहा**) सत्य वाणी से (**राष्ट्रदाः**) राज्यदाता (**स्थ**) हो इस कारण (**मे**) तेजस्वी मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिये जिस कारण (**सूर्यवर्चसः**) सूर्य्य के समान प्रकाशमान होते हुए आप लोग (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेहारे (**स्थ**) हो इसलिये (**अमुष्मै**) उस प्रकाशमान पुरुष के लिए (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिये । जिस कारण (**मान्दाः**) मनुष्यों को आनन्द देनेहारे होते हुए आप लोग (**स्वाहा**) सत्य वचनों के साथ (**राष्ट्रदाः**) राज्य देने वाले (**स्थ**) हो इसलिए (**मे**) आनन्द देनेहारे मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए जिसलिये आप लोग (**मान्दाः**) प्राणियों को सुख देनेवाले होके (**राष्ट्रदाः**) राज्यदाता (**स्थ**) हो इसलिए (**अमुष्मै**) उस सुखदाता जन को (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिये । जिस कारण आप लोग (**व्रजक्षितः**) गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए (**स्वाहा**) सत्य क्रियाओं के सहित (**राष्ट्रदाः**) राज्यदाता (**स्थ**) हैं इसलिए (**मे**) पशुरक्षक मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिस कारण आप लोग (**व्रजक्षितः**) स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेहारे (**स्थ**) हैं इससे (**अमुष्मै**) उस गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिए राज्य को (**दत्त**) दीजिये । जिसलिए आप लोग (**वाशाः**) कामना करते हुए (**स्वाहा**) सत्य नीति से (**राष्ट्रदाः**) राज्यदाता (**स्थ**) हैं इसलिए (**मे**) इच्छायुक्त मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिस कारण आप लोग (**वाशाः**) इच्छायुक्त होते हुए (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेवाले (**स्थ**) हैं इसलिए (**अमुष्मै**) उस इच्छायुक्त पुरुष के लिए (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिस कारण आप लोग (**शविष्ठाः**) अत्यन्त बलवाले होते हुए (**स्वाहा**) सत्य पुरुषार्थ से (**राष्ट्रदाः**) राज्यदाता (**स्थ**) हैं इस कारण (**मे**) बलवान् मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिस कारण आप लोग (**शविष्ठाः**) अति पराक्रमी (**राष्ट्रदाः**) राज्य-दाता (**स्थ**) हैं इस कारण (**अमुष्मै**) उस अति पराक्रमी जन के लिये (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । हे राणी लोगो ! जिसलिए आप (**शक्वरीः**) सामर्थ्य वाली होती हुई (**स्वाहा**) सत्य पुरुषार्थ से (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेहारी (**स्थ**) हैं इसलिए (**मे**) सामर्थ्यवान् मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिस कारण आप (**शक्वरीः**) सामर्थ्ययुक्त (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेवाली (**स्थ**) हैं इस कारण (**अमुष्मै**) उस सामर्थ्ययुक्त पुरुष के लिए (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिसलिए आप लोग (**जनभृतः**) श्रेष्ठ मनुष्यों का पोषण करनेहारी होती हुई (**स्वाहा**) सत्य कर्मों के साथ (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेवाली (**स्थ**) हैं इसलिए (**मे**) श्रेष्ठ-गुणयुक्त मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिसलिए आप (**जनभृतः**) सज्जनों का धारण करनेहारे (**राष्ट्रदाः**) राज्यदाता (**स्थ**) हैं इसलिए (**अमुष्मै**) उस सत्यप्रिय पुरुष के लिए (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । हे सभाध्यक्षादि राजपुरुषो ! जिसलिए आप लोग (**विश्वभृतः**) सब संसार का पोषण करनेवाले होते हुए (**स्वाहा**) सत्य वाणी के साथ (**राष्ट्रदा.**) राज्य देनेहारे (**स्थ**) हैं इसलिए (**मे**) सब के पोषक मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिसलिए आप लोग (**विश्वभृतः**) विश्व को धारण करने हारे (**राष्ट्रदाः**) राज्यदाता (**स्थ**) हैं इसलिए (**अमुष्मै**) उस धारण करनेवाले मनुष्य के लिए (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिस कारण आप लोग (**आपः**) सब विद्या और धर्म विषय में व्याप्ति वाले होते हुए (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**राष्ट्रदाः**) राज्य देनेहारे (**स्थ**) हैं इस कारण (**मे**) शुभगुणों में व्याप्त मुझे (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । जिसलिए आप लोग (**आपः**) सब विद्या और धर्म मार्ग को जानने हारे (**स्वराजः**) आप से आप ही प्रकाशमान (**राष्ट्रदाः**) राज्यदाता (**स्थ**) हैं इसलिए (**अमुष्मै**) उस धर्मज्ञ पुरुष के लिए (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दत्त**) दीजिए । हे सज्जन स्त्री लोगो ! आपको चाहिए कि (**क्षत्रियाय**) राजपूतों के लिए (**महि**) बड़े पूजा के योग्य (**क्षत्रम्**) क्षत्रियों के राज्य को (**वन्वानाः**) चाहती हुई (**सहौजसः**) बल पराक्रम के सहित वर्त्तमान (**क्षत्रियाय**) राजपूतों के लिए (**महि**) बड़े (**क्षत्रम्**) राज्य को (**दधतीः**) धारण करती हुई (**अनाधृष्टाः**) शत्रुओं के वश में न आने वाली (**मधुमतीः**) मधुर आदि रसवाली ओषधी (**मधुमतीभिः**) मधुरादि गुण-युक्त वसन्त आदि ऋतुओं से सुखों को (**पृच्यन्ताम्**) सिद्ध किया करें । हे सज्जन पुरुषो ! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को (**सीदत**) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! जो सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्द देने गौ आदि पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करनेवाले स्वाधीन हैं वे ही औरों के लिए राज्य देने और आप सेवन करने को समर्थ होते हैं अन्य नहीं ॥ ४ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । भुरिग् धृतिश्छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

राजा लोगों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा राजाओं के समान अपने सब काम करें और क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायी तथा लंपटी के तुल्य कदापि न हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सोम॑स्य त्विषि॑रसि तवे॑व मे त्विषि॒र्भू॑यात् । अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ घोषा॑य॒ स्वाहा॒ श्लोका॑य॒ स्वाहाꣳशा॑य॒ स्वाहा॒ भगा॑य॒ स्वाहा॑र्य॒म्णे स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे आप (**सोमस्य**) ऐश्वर्य्य के (**त्विषिः**) प्रकाश करने हारे (**असि**) हैं वैसा मैं भी होऊं जिससे (**तवेव**) आप के समान (**मे**) मेरा (**त्विषिः**) विद्याओं का प्रकाश होवे जैसे आप ने (**अग्नये**) बिजुली आदि के लिए (**स्वाहा**) सत्य वाणी और प्रियाचरणयुक्त विद्या (**सोमाय**) ओषधि जानने के लिए (**स्वाहा**) वैद्यक की पुरुषार्थयुक्त विद्या (**सवित्रे**) सूर्य्य को समझने के लिए (**स्वाहा**) भूगोल विद्या (**सरस्वत्यै**) वेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जानने वाली वाणी के लिए (**स्वाहा**) व्याकरणादि वेदों के अङ्गों का ज्ञान (**पूष्णे**) प्राण तथा पशुओं की रक्षा के लिए (**स्वाहा**) योग और व्याकरण की विद्या (**बृहस्पतये**) बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिए (**स्वाहा**) ब्रह्म-विद्या (**इन्द्राय**) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के बोध के लिए (**स्वाहा**) विचार-विद्या (**घोषाय**) सत्य और प्रियभाषण से युक्त वाणी के लिए (**स्वाहा**) सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या (**श्लोकाय**) तत्त्वज्ञान का साधक शास्त्र श्रेष्ठ काव्य गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिए (**स्वाहा**) छन्द और शुभ मूल काव्यशास्त्र आदि की विद्या (**अंशाय**) परमाणुओं के समझने के लिए (**स्वाहा**) सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान (**भगाय**) ऐश्वर्य्य के लिए (**स्वाहा**) पुरुषार्थज्ञान (**अर्यम्णे**) न्यायाधीश होने के लिए (**स्वाहा**) राजनीति विद्या को ग्रहण करते हैं वैसे मुझे भी करना अवश्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसी आशंसा (इच्छा) करनी चाहिए कि जैसे सत्य-वादी धर्मात्मा राजा लोगों के गुण कर्म स्वभाव होते हैं वैसे ही हम लोगों के भी होवें ॥ ५ ॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवताः । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्या ग्रहण करें वैसे कन्या भी पढ़ें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प॒वित्रे॑ स्थो वैष्ण॒व्यौ॑ सवि॒तुर्वः॑ प्रस॒वऽउत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । अनि॑भृष्टमसि वा॒चो ब॒न्धुस्त॑पो॒जाः सोम॑स्य दा॒त्रम॑सि॒ स्वाहा॑ राज॒स्वः॑ ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे सभापति राजपुरुष ! जिस लिए आप (**वाचः**) वेदवाणी के (**अनिभृष्टम्**) भृष्टतारहित आचरण किए (**बन्धुः**) भाई (**असि**) हैं (**सोमस्य**) ओषधियों के काटने वाले (**तपोजाः**) ब्रह्मचर्य्यादि तप से प्रसिद्ध (**असि**) हैं आप की आज्ञा से (**सवितुः**) सब जगत् को उत्पन्न करनेहारे ईश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न हुए जगत् में (**वैष्णव्यौ**) सब विद्या अच्छी शिक्षा शुभ गुण कर्म और स्वभाव में व्यापनशील और (**पवित्रे**) शुद्ध आचरणवाली (**स्थः**) तुम दोनों हो । हे पढ़ाने परीक्षा करने और पढ़नेहारी स्त्री लोगो ! मैं (**सवितुः**) ईश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किए इस जगत् में (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य की (**रश्मिभिः**) किरणों के समान (**अच्छिद्रेण**) छेदरहित (**पवित्रेण**) विद्या अच्छी शिक्षा धर्मज्ञान जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्य आदि करके पवित्र किये हुए से (**वः**) तुम लोगों को (**उत्पुनामि**) अच्छे प्रकार पवित्र करता हूँ तुम लोग (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**राजस्वः**) राजाओं में वीरों को उत्पन्न करनेवाली हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा आदि पुरुषो ! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिए शुद्ध विद्या की परीक्षा करनेवाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो । जिस से ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त हो के जवान हुई प्रिय वर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न करें ॥ ६ ॥

सधमाद इत्यस्य वरुण ऋषिः । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

राजाओं को यह अवश्य चाहिए कि सब प्रजा और अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और सुशिक्षायुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स॒ध॒मादो॑ द्यु॒म्निनी॒राप॑ऽए॒ताऽअना॑धृष्टाऽअप॒स्यो॒ वसा॑नाः । प॒स्त्या॒सु च॒क्रे वरु॑णः स॒धस्थ॑म॒पाꣳ शिशु॑र्मा॒तृत॑मास्व॒न्तः ॥७॥

पदार्थ—जो (**वरुणः**) श्रेष्ठ राजा हो वह (**एताः**) विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई (**सधमादः**) एक साथ प्रसन्न होनेवाली (**द्युम्निनीः**) प्रशंसनीय धन कीर्ति से युक्त (**अनाधृष्टाः**) जो किसी से न दबें (**आपः**) जल के समान शान्तियुक्त (**वसानाः**) वस्त्र और आभूषणों से ढपीं हुई (**पस्त्यासु**) घरों के (**अपस्यः**) कामों में चतुर विद्वान् स्त्री होवें उन (**अपाम्**) विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो (**शिशुः**) बालक हो उस को (**मातृतमासु**) अति मान्य करने हारी धायियों के (**अन्तः**) समीप के स्थान में शिक्षा के लिए रक्खें ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सब स्त्रियों को विद्वान् और उन से उत्पन्न हुए बालकों को विद्यायुक्त धायियों के आधीन करे कि जिस से किसी के बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के विना न रहें और स्त्री भी निर्बल न हो ॥ ७ ॥

क्षत्रस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सब प्रजापुरुषों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सब ओर से रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

क्षत्रस्योल्वमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत् । दृवासि रुजासि क्षुमासि । पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप (**क्षत्रस्य**) अपने राजकुल में (**उल्वम्**) बलवान् (**असि**) हैं (**क्षत्रस्य**) क्षत्रिय पुरुष को (**जरायु**) वृद्धावस्था देनेहारे (**असि**) हैं (**क्षत्रस्य**) राज्य के (**योनिः**) निमित्त (**असि**) हैं (**क्षत्रस्य**) राज्य के (**नाभिः**) प्रबन्धकर्त्ता (**असि**) हैं (**इन्द्रस्य**) सूर्य के (**वार्त्रघ्नम्**) मेघ का नाश करनेहारे के समान कर्मकर्त्ता (**असि**) हैं (**मित्रस्य**) मित्र के मित्र (**असि**) हैं (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठ (**असि**) हैं (**दृवा**) शत्रुओं के विदारण करने वाले (**असि**) हैं (**रुजा**) शत्रुओं को रोगातुर करनेहारे (**असि**) हैं और (**क्षुमा**) सत्य का उपदेश करने हारे (**असि**) हैं जो (**अयम्**) यह वीर पुरुष (**त्वया**) आप राजा के साथ (**वृत्रम्**) मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को (**वधेत्**) मारे (**एनम्**) इस (**प्राञ्चम्**) प्रथम प्रबन्ध करनेवाले (**एनम्**) राजपुरुष की तुम लोग (**दिग्भ्यः**) सब दिशाओं में (**पात**) रक्षा करो इस (**तिर्यञ्चम्**) तिर्छे खड़े हुए (**एनम्**) राजपुरुष की (**पात**) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो कन्या और पुत्रों में स्त्री और पुरुषों में विद्या बढ़ाने वाला कर्म है वही राज्य का बढ़ाने शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि की प्रवृत्ति कराने वाला होता है । इसी कर्म से सब कालों और सब दिशाओं में रक्षा होती है ॥ ८ ॥

आविर्मर्य्या इत्यस्य वरुण ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य को चाहिए कि अपना स्वभाव अच्छा करके आप्त विद्वान् आदि को अवश्य प्राप्त होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आविर्मर्य्याऽआवित्तोऽअग्निर्गृहपतिरावित्तऽइन्द्रो वृद्धश्रवाऽआवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदाऽआवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**मर्य्याः**) मनुष्यो ! तुम लोग जो (**गृहपतिः**) घरों के पालन करने हारे (**अग्निः**) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पुरुष को (**आविः**) प्रकटता से (**आवित्तः**) प्राप्त वा निश्चय करके जाना (**वृद्धश्रवाः**) श्रेष्ठता से सब शास्त्रों को सुने हुए (**इन्द्रः**) शत्रुओं के मारने हारे सेनापति को (**आविः**) प्रकटता से (**आवित्तः**) प्राप्त हो वा जाना (**धृतव्रतौ**) सत्य आदि व्रतों को धारण करने हारे (**मित्रावरुणौ**) मित्र और श्रेष्ठ जनों को (**आविः**) प्रकटता से (**आवित्तौ**) प्राप्त वा जाना (**विश्ववेदाः**) सब ओषधियों को जानने हारे (**पूषा**) पोषणकर्त्ता वैद्य को (**आविः**) प्रसिद्धि से (**आवित्तः**) प्राप्त हुए (**विश्वशम्भुवौ**) सब के लिए सुख देने हारे (**द्यावापृथिवी**) बिजुली और भूमि को (**आविः**) प्रकटता से (**आवित्ते**) जाने (**उरुशर्म्मा**) बहुत सुख देने वाली (**अदितिः**) विद्वान् माता को प्रसिद्ध (**आवित्ता**) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जावें ॥९॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य लोग श्रेष्ठ विद्वानों, उत्तम विदुषी माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त नहीं होते तब तक सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति करने को समर्थ नहीं होते ॥ ९ ॥

अवेष्टा इत्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करके किस-किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्तऽऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप (**अवेष्टाः**) विरोधी का सङ्ग करने वाले (**दंदशूकाः**) दूसरों को दुःख देने के लिए काट खाने वाले हैं, उन को जीत के (**प्राचीम्**) पूर्व दिशा में (**आरोह**) प्रसिद्ध हों उस (**त्वा**) आप को (**गायत्री**) पढ़ा हुआ गायत्री छन्द (**रथन्तरम्**) रथों से जिसके पार हों ऐसा वन (**साम**) सामवेद (**त्रिवृत्**) तीन मन वाणी और शरीर के बलों का बोध कराने वाला (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य (**वसन्तः**) वसन्त (**ऋतुः**) ऋतु (**ब्रह्म**) वेद ईश्वर और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकुलरूप (**द्रविणम्**) धन (**अवतु**) प्राप्त होवे ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होते हैं वे शत्रुओं को जीत के ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो सकते हैं ॥ १० ॥

दक्षिणामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्ची पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्मऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् राजन् ! जिस (**त्वा**) आप को (**त्रिष्टुप्**) इस नाम के छन्द से सिद्ध विज्ञान (**बृहत्**) बड़ा (**साम**) सामवेद का भाग (**पञ्चदशः**) पाँच प्राण अर्थात् प्राण अपान, व्यान, उदान, समान; पाँच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण; पांच भूत अर्थात् जल, भूमि, अग्नि, वायु और आकाश, इन पन्द्रह की पूर्त्ति करने हारा (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य (**ग्रीष्मः, ऋतुः**) ग्रीष्म ऋतु (**क्षत्रम्**) क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रियकुलरूप और (**द्रविणम्**) राज्य से प्रकट हुआ धन (**अवतु**) प्राप्त हो । वह आप (**दक्षिणाम्**) दक्षिण दिशा में (**आरोह**) प्रसिद्ध हूजिए और शत्रुओं को जीतिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रियकुल को बढ़ावे उस का तिरस्कार शत्रुजन कभी न कर सकें ॥ ११ ॥

प्रतीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिए कि वैश्य कुल को नित्य बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षाऽऋतुर्विड् द्रविणम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे राजपुरुष ! जिस (**त्वा**) आप को (**जगती**) जगती छन्द में कहा हुआ अर्थ (**वैरूपम्**) विविध प्रकार के रूपों वाला (**साम**) सामवेद का अंश (**सप्तदश**) पांच कर्म इन्द्रिय, पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय पाँच महाभूत अर्थात् सूक्ष्म भूत, कार्य्य और कारण इन सत्रह का पूरण करने वाला (**स्तोमः**) स्तुतियों का समूह (**वर्षाः**) वर्षा (**ऋतुः**) ऋतु (**द्रविणम्**) द्रव्य और (**विट्**) वैश्यजन (**अवतु**) प्राप्त हों । सो आप (**प्रतीचीम्**) पश्चिम दिशा को (**आरोह**) आरूढ़ और धन को प्राप्त हूजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष राजनीति के साथ वैश्यों की उन्नति करें वे ही लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥१२॥

उदीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳ सामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सभापति राजा ! आप (**उदीचीम्**) उत्तर की दिशा में (**आरोह**) प्रसिद्धि को प्राप्त हूजिये। जिससे (**अनुष्टुप्**) जिसको पढ़ के सब विद्याओं से दूसरों की स्तुति करें वह छन्द (**वैराजम्**) अनेक प्रकार के अर्थों से शोभायमान (**साम**) सामवेद का भाग (**एकविंशः**) सोलह कला, चार पुरुषार्थ के अवयव और एक कर्ता इन इक्कीस को पूरण करनेहारा (**स्तोमः**) स्तुति का विषय (**शरत्**) शरद (**ऋतुः**) ऋतु (**द्रविणम्**) ऐश्वर्य्य और (**फलम्**) फलरूप सेवाकारक शूद्रकुल (**त्वा**) आपको (**अवतु**) प्राप्त होवे ॥१३॥

भावार्थ—जो पुरुष आलस्य को छोड़ सब समय में पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं वे अच्छे फलों को भोगते हैं ॥१३॥

ऊर्ध्वामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रबल विद्या से अनेक पदार्थों को जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप जो (**ऊर्ध्वाम्**) ऊपर की दिशा में (**आरोह**) प्रसिद्ध होवें तो (**त्वा**) आपको (**पंक्तिः**) पंक्ति नाम का पढ़ा हुआ छन्द (**शाक्वररैवते**) शक्वरी और रेवती छन्द से युक्त (**सामनी**) सामवेद के पूर्व उत्तर दो अवयव (**त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ**) तीन काल नव अङ्कों की विद्या और तैंतीस वसु आदि पदार्थ जिन दोनों से व्याख्यान किये गये हैं उनके पूर्ण करनेवाले (**स्तोमौ**) स्तोत्रों के दो भेद (**हेमन्तशिशिरौ, ऋतू**) हेमन्त और शिशिर ऋतु (**वर्चः**) ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या का पढ़ना और (**द्रविणम्**) ऐश्वर्य्य (**अवतु**) तृप्त करे और (**नमुचेः**) दुष्ट चोर का (**शिरः**) मस्तक (**प्रत्यस्तम्**) नष्ट भ्रष्ट होवे ॥१४॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार विहार युक्त होके विद्या योगाभ्यास और सत्संगों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं, वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और इनको कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता ॥१४॥

सोमेत्यस्य वरुण ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

राजा और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर आपस में एक दूसरे की रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सोम॑स्य त्विषि॑रसि तवे॑व मे त्विषि॑र्भूयात् । मृत्योः पाह्योजो॑ऽसि सहो॑ऽस्यमृत॑मसि ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे परम आप्त विद्वन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य का (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं (ओजः) पराक्रमयुक्त (असि) हैं वैसा मैं भी होऊं (तवेव) आपके समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्या प्रकाश से भाग्योदय (भूयात्) हो आप मुझ को (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) बचाइये ॥१५॥

भावार्थ—हे पुरुषो ! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा के लिये भी इच्छा करें, जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राजपुरुष भी प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें ॥१५॥

हिरण्यरूपावित्यस्य वरुण ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । स्वराडार्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हो और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उनको बुद्धिमान् विद्वान् बनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

हिर॑ण्यरूपाऽउषसो॑ विरो॒कऽउ॒भावि॑न्द्राऽउदि॑थः सूर्य॑श्च । आरो॑हतं वरुण मित्र॒ गर्त्तं॑ तत॑श्चक्षाथा॒मदि॑तिं॒ दितिं॑ च मि॒त्रोऽसि वरु॑णोऽसि ॥१६॥

पदार्थ—हे उपदेश करनेहारे (मित्र) सब के सुहृद् ! जिसलिये आप (मित्रः) सुख देनेवाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारनेहारे बलवान् सेनापति ! जिसलिए आप (वरुणः) सबसे उत्तम (असि) हैं इसलिए आप दोनों (गर्त्तम्) उपदेश करनेवाले के घर पर (आरोहतम्) जाओ (अदितिम्) अविनाशी (च) और (दितिम्) नाशवान पदार्थों का (चक्षाथाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्यरूपौ) प्रकाशस्वरूप (उभौ) दोनों (इन्द्रौ) परमैश्वर्य्य करनहारे जैसे (विरोके) विविध प्रकार की रुचि करानेहारे व्यवहार में (सूर्य्यः) सूर्य्य (च) और चन्द्रमा (उषसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं वैसे तुम दोनों जन (उदिथः) विद्याओं का उपदेश करो ॥१६॥

भावार्थ—जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करनेहारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहां सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता । जहाँ यह बात नहीं होती वहां अन्धपरम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं ॥१६॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पूर्वोक्त कार्य्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राज्याऽधिकार देना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सोम॑स्य त्वा द्यु॒म्नेना॒भिषि॑ञ्चाम्य॒ग्नेर्भ्राज॑सा॒ सूर्य॑स्य वर्च॒सेन्द्र॑स्येन्द्रि॒येण॑ । क्ष॒त्राणां॑ क्ष॒त्रप॑तिरे॒ध्यति॑ दि॒द्यून् पा॑हि ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे प्रशंसित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा ! जैसे मैं जिस तुझ को (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (द्युम्नेन) यशरूप प्रकाश से (अग्नेः) अग्नि के समान (भ्राजसा) तेज से (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इन्द्रस्य) बिजुली के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों सहित (त्वा) आपको (अभिषिञ्चामि) राज्याधिकारी करता हूँ । वैसे वे आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल में जो उत्तम हों उनके बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालनेहारे (अत्येधि) अति तत्पर हूजिये और (दिद्यून्) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करनेहारे व्यवहारों की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिए ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि गुणयुक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उसको राज्य का अधिकार देवें और उस राजा को चाहिये कि राज्याऽधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करनेहारे प्रजापुरुषों को निरन्तर बढ़ावें ॥१७॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट् ब्राह्मी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सत्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से लेके अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचारयुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इ॒मं दे॑वाऽअसप॒त्नꣳ सु॑वध्वं महते क्ष॒त्राय॑ महते ज्यैष्ठ्या॑य महते जान॑राज्या॒येन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॑ । इ॒मम॒मुष्य॑ पु॒त्रम॒मुष्यै॑ पु॒त्रम॒स्यै॑ वि॒शऽए॒ष वो॑ऽमी राजा॒ सोमो॒ऽस्माकं॑ ब्राह्मणाना॒ꣳ राजा॑ ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (देवाः) वेद शास्त्रों को जाननेहारे सेनापति लोग ! आप जो (एषः) यह उपदेशक वा सेनापति (वः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है । जो (अमी) वे धर्मात्मा राजपुरुष हैं उनका (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपूत के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्यै) प्रशंसा करने योग्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करनेवाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्त्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपत्नम्) जिसका कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र को (सुवध्वम्) उत्पन्न करो ॥१८॥

भावार्थ—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें । जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें तो इनकी उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥१८॥

प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषिः । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जगत् में राजा और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्र पर्व॑तस्य वृ॒ष॒भस्य॑ पृ॒ष्ठान्नाव॑श्चरन्ति स्व॒सिच॑ऽइया॒नाः ताऽआव॑वृत्रन्नध॒रागुद॑क्ता॒ऽअहिं॒ बु॒ध्न्य॒मनु॒ रीय॑माणाः । विष्णो॑र्वि॒क्रम॑णमसि विष्णो॒र्विक्रा॑न्तमसि॒ विष्णोः॑ क्रा॒न्तम॑सि ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे राजा के कारीगर पुरुष ! जो तू (स्वसिचः) जिनको अपने लोग जलसे सींचते हैं (इयानाः) चलते हुए (उदक्ताः) फिर फिर ऊपर को जावें (अहि बुध्न्यम्) अन्तरिक्ष में रहनेवाले मेघ के (अनुरीयमाणाः) पीछे पीछे जाने से चलते हुए (नावः) समुद्र के ऊपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान (वृषभस्य) वर्षा करने हारे (पर्वतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) ऊपर के भाग से (प्रचरन्ति) चलते हैं जिनसे तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के इस जगत् में (विक्रमणम्) पराक्रम सहित (असि) है (विष्णोः) व्यापक वायु के बीच (विक्रान्तम्) अनेक प्रकार चलने हारा (असि) है और (विष्णोः) व्यापक बिजुली के बीच (क्रान्तम्) चलने का आधार (असि) है जो (अधराक्) मेघ से नीचे (आववृत्रन्) मेघ के समान विचरते हैं उन विमानादि यानों को तू सिद्ध कर ॥१९॥

भावार्थ—जैसे मेघ वर्ष के भूमि के तले को प्राप्त होके पुनः आकाश को प्राप्त होता है । वह जल नदियों में जाके पीछे समुद्र को प्राप्त होता है । जो जल के भीतर अर्थात् जिनके ऊपर नीचे जल होता है । वैसे ही सब कारीगर लोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बनाके भूमि जल और आकाश मार्ग से अभीष्ट देशों में यथेष्ट जाना आना करें । जब तक ऐसे यान नहीं बनाते तब तक द्वीप द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं जा सकता । जैसे पक्षी अपने शरीररूप संघात को आकाश में उड़ा ले चलते हैं वैसे चतुर कारीगर लोगों को चाहिये कि इस अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिरावें ॥१९॥

प्रजापत इत्यस्य देववात ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॒ परि॒ ता ब॑भूव । यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ऽअस्तु व॒यम॒मुष्य॑ पि॒ताऽसाव॒स्य पि॒ता व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो र॒यीणा॒ꣳ स्वाहा॑ । रुद्र॒ यत्ते॒ क्रिवि॒ परं॒ नाम॒ तस्मि॑न् हु॒तम॑स्यमे॒ष्टम॑सि॒ स्वाहा॑ ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (प्रजापते) प्रजा के स्वामी ईश्वर ! जो (एतानि) जीव प्रकृति आदि वस्तु (विश्वा) सब (रूपाणि) इच्छा रूप आदि गुणों से युक्त हैं (ता) उनके ऊपर आप से (अन्य) दूसरा कोई (न) नहीं (परिबभूव) जान सकता (ते) आपके सेवन से (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामनावाले होते हुए (वयम्) हम लोग (जुहुमः) आपका सेवन करते हैं वह वह पदार्थ आपकी कृपा से (नः) हम लोगों के लिये (अस्तु) प्राप्त होवे । जैसे आप (अमुष्य) उस परोक्ष जगत् के (पिता) रक्षा करने हारे हैं (असौ) सो आप इस प्रत्यक्ष जगत् के रक्षक हैं । वैसे हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (रयीणाम्) विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के (पतयः) रक्षा करनेवाले (स्याम) हों । हे (रुद्र) दुष्टों को रुलानेहारे परमेश्वर ! (ते) आपका जो (क्रिवि) दुःखों से छुड़ाने का हेतु (परम्) उत्तम (नाम) नाम है (तस्मिन्) उसमें आप (हुतम्) स्वीकार किये (असि) हैं (अमेष्टम्) घर में इष्ट (असि) हैं उन आपको हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से ग्रहण करते हैं ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सब जगत् में व्याप्त सब के लिये माता पिता के समान वर्त्तमान दुष्टों को दण्ड देने हारा

उपासना करने को इष्ट है उसी जगदीश्वर की उपासना करो । इस प्रकार के अनुष्ठान से तुम्हारा सब कामना अवश्य सिद्ध हो जायेंगी ॥२०॥

इन्द्रस्येत्यस्य देववात ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि। अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप (**अरिष्टः**) किसी के मारने में न आनेवाले (**अर्जुनः**) प्रशंसा के योग्य रूप से युक्त (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य्य वाले का (**वज्रः**) शत्रुओं के लिये वज्र के समान (**असि**) है जिस (**त्वा**) आप को (**अव्यथायै**) पीड़ा न होने के लिये (**प्रशास्त्रोः**) सब को शिक्षा देनेवाले (**मित्रावरुणयोः**) सभा और सेना के स्वामी की (**प्रशिषा**) शिक्षा से मैं (**युनज्मि**) समाहित करता हूँ (**मरुताम्**) ऋत्विज लोगों के (**प्रसवेन**) करने से (**स्वधायै**) अपनी चीज को धारण करना रूप राजनीति के लिये जिस (**त्वा**) आपका योगाभ्यास से चिन्तन करता हूँ (**मनसा**) विचारशील मन (**इन्द्रियेण**) जीव ने सेवे हुए इन्द्रिय से जिस (**त्वा**) आपको हम लोग (**समापाम**) सम्यक् प्राप्त होते हैं सो आप (**जय**) दुष्टों को जीत के निश्चिन्त उत्कृष्ट हूजिये ॥ २१ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि राजा और प्रजापुरुषों को धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिये सदा शिक्षा देवें । जिससे वे किसी को पीड़ा देने रूप राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें । सब प्रकार बलवान् होके शत्रुओं को जीतें जिससे कभी धन सम्पत्ति की हानि न होवे ॥२१॥

मा त इत्यस्य देववात ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्रजापुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मा तऽइन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासोऽअब्रह्मता विदसाम । तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (**देव**) प्रकाशमान (**इन्द्र**) सभापति राजन् ! (**वज्रहस्त**) जिसके हाथों में वज्र के समान शस्त्र हो उस आपके साथ (**वयम**) हम राजप्रजा-पुरुष (**ते**) आपके सम्बन्ध में (**अयुक्तासः**) अधर्मकारी (**मा**) न होवें (**ते**) आपकी (**अब्रह्मता**) वेद तथा ईश्वर में रहित निष्ठा (**मा**) न हो और न (**विदसाम**) नष्ट करें जो (**तुराषाट्**) शीघ्रकारी शत्रुओं को सहने हारे आप जिन (**रश्मीन्**) घोड़े के लगाम की रस्सी और (**स्वश्वान्**) सुन्दर घोड़ों को (**यमसे**) नियम से रखते हैं और जिस (**रथम्**) रथ के ऊपर (**अधितिष्ठ**) बैठें । उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता होवें ॥२२॥

भावार्थ—राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे। वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछौने पर बैठें और एकसा व्यवहार करनेवाले होवें और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फंसे ॥२२॥

अग्नय इत्यस्य देववात ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मोऽअहं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राजपुरुष हम लोग (**गृहपतये**) गृहाश्रम के स्वामी (**अग्नये**) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (**स्वाहा**) सत्यनीति (**सोमाय**) सोमलता आदि ओषधि और (**वनस्पतये**) वनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये (**स्वाहा**) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (**मरुताम्**) प्राणों वा ऋत्विज् लोगों के (**ओजसे**) बल के लिये (**स्वाहा**) योगाभ्यास और शान्ति की देनेहारी वाणी और (**इन्द्रस्य**) जीव के (**इन्द्रियाय**) मन इन्द्रिय के लिये (**स्वाहा**) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो । हे (**पृथिवि**) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (**मातः**) मान्य करनेहारी जननी ! तू (**मा**) मुझ को (**मा**) मत (**हिंसीः**) बुरी शिक्षा से दुःख दे और (**त्वाम्**) तुझ को (**अहम्**) मैं भी (**मो**) न दुःख देऊं ॥ २३ ॥

भावार्थ—राजा आदि राजपुरुषों को प्रजा के हित प्रजापुरुषों को राजपुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्त्तना चाहिये । माता को योग्य है कि बुरी शिक्षा और मूर्खता रूप अविद्या देकर सन्तानों की बुद्धि नष्ट न करे और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें ॥२३॥

हंस इत्यस्य वामदेव ऋषिः । सूर्य्यो देवता । भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ईश्वर की उपासनापूर्वक सबके लिए न्याय और अच्छी शिक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत् ॥२४

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिए कि जो परमेश्वर (**हंसः**) सब पदार्थों को स्थूल करता (**शुचिषत्**) पवित्र पदार्थों में स्थित (**वसुः**) निवास करता और कराता (**अन्तरिक्षसत्**) अवकाश में रहता (**होता**) सब पदार्थ देता ग्रहण करता और प्रलय करता (**वेदिषत्**) पृथिवी में व्यापक (**अतिथिः**) अभ्यागत के समान सत्कार करने योग्य (**दुरोणसत्**) घर में स्थित (**नृषत्**) मनुष्यों के भीतर रहता (**वरसत्**) उत्तम पदार्थों में वसता (**ऋतसत्**) सत्यप्रकृति आदि नामवाले कारण में स्थित (**व्योमसत्**) पोल में रहता (**अब्जाः**) जलों को प्रसिद्ध करता (**गोजाः**) पृथिवी आदि तत्त्वों को उत्पन्न करता (**ऋतजाः**) सत्यविद्याओं के पुस्तक वेदों को प्रसिद्ध करता (**अद्रिजाः**) मेघ पर्वत और वृक्ष आदि को रचता (**ऋतम्**) सत्यस्वरूप और (**बृहत्**) सबसे बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करनेहारे ब्रह्म परमात्मा की ही उपासना करें क्योंकि उसकी उपासना के विना किसी को धर्म अर्थ काम मोक्ष से होनेवाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

इयदित्यस्य वामदेव ऋषिः । सूर्यो देवता । आर्षीजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्ज्जं मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! आप (**इयत्**) इतना (**आयुः**) जीवन (**मयि**) मुझमें (**धेहि**) धरिये जिससे आप (**युङ्**) सबको समाधि करानेवाले (**असि**) हैं (**वर्चः**) स्वयं प्रकाशस्वरूप (**असि**) हैं इस कारण (**उर्क्**) अत्यन्त बलवान् (**असि**) हैं इसलिए (**ऊर्जम्**) बल पराक्रम को (**मयि**) मेरे में (**धेहि**) धारण कीजिये । हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! (**वीर्य्यकृतः**) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य और परमात्मा के आश्रय से (**वाम्**) तुम राजप्रजापुरुषों के (**बाहू**) बल और पराक्रम को (**अभ्युपावहरामि**) सब प्रकार तुम्हारे समीपमें स्थापन करता हूँ ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवन आदि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

स्योनासीत्यस्य वामदेव ऋषिः । आसन्दी राजपत्नी देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों का न्याय विद्या उनको शिक्षा स्त्री लोग ही करें और पुरुषों के लिए पुरुष । इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि । स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे राणी ! जिसलिए आप (**स्योना**) सुखरूप (**असि**) हैं (**सुषदा**) सुन्दर व्यवहार करनेवाली (**असि**) हैं (**क्षत्रस्य**) राज्य के न्याय के (**योनिः**) करनेवाली (**असि**) हैं इसलिए आप (**स्योनाम्**) सुखकारक अच्छी शिक्षा में (**आसीद**) तत्पर हूजिए (**सुषदाम्**) अच्छे सुख देनेहारी विद्या को (**आसीद**) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए तथा कराइये और (**क्षत्रस्य**) क्षत्रिय कुल की (**योनिः**) राजनीति को (**आसीद**) सब स्त्रियों को जनाइये ॥ २६ ॥

भावार्थ—राजाओं की स्त्रियों को चाहिए कि सब स्त्रियों के लिए न्याय और अच्छी शिक्षा देवें और स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भययुक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ ही नहीं सकती ॥ २६ ॥

निषसादेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । पिपीलिका मध्या विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

राजा के समान राणी भी राजधर्म का आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥२७॥

पदार्थ—हे राणी ! जैसे आपका (**धृतव्रतः**) सत्य का आचरण और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का धारण करनेहारा (**सुक्रतुः**) सुन्दर बुद्धि वा क्रिया से युक्त

(**वरुणः**) उत्तमपति (**साम्राज्याय**) चक्रवर्ति राज्य होने और उसके काम करने के लिये (**पस्त्यासु**) न्यायघरों में (**आ**) निरन्तर (**नि**) नित्य ही (**ससाद**) बैठ के न्याय करे वैसे तू भी न्यायकारिणी हो ॥ २७ ॥

भावार्थ—जैसे चक्रवर्त्ती राजा चक्रवर्ती राज्य की रक्षा के लिये न्याय की गद्दी पर बैठ के पुरुषों का ठीक ठीक न्याय करे वैसे ही नित्यप्रति राणी स्त्रियों का न्याय करे। इससे क्या आया कि जैसा नीति विद्या और धर्म से युक्त पति हो वैसा ही स्त्री को भी होना चाहिए ॥ २७ ॥

अभिभूरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । यजमानो देवता । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा होके किसके लिये क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजाऽइन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः । बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (**बहुकार**) बहुत सुखों (**श्रेयस्कर**) कल्याण और (**भूयस्कर**) वार वार अनुष्ठान करनेवाले (**ब्रह्मन्**) आत्मविद्या को प्राप्त हुए जैसे जिस (**ते**) आपके (**एताः**) ये (**पञ्च**) पूर्व आदि चार और ऊपर नीचे एक (**दिशः**) पाँच दिशा सामर्थ्ययुक्त हों वैसे मेरे लिये आपकी पत्नी की कीर्ति से भी (**कल्पन्ताम्**) सुखयुक्त होवें। जैसे आप (**अभिभूः**) दुष्टों का तिरस्कार करनेवाले (**असि**) हैं (**सविता**) ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेहारे (**असि**) हैं (**सत्यप्रसवः**) सत्य की प्रेरणा से सुन्दर सुखयुक्त (**रुद्रः**) शत्रु और दुष्टों को रुलानेवाले (**असि**) हैं (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य के (**वज्रः**) प्राप्त करानेहारे (**असि**) हैं वैसे मैं भी होऊं जैसे मैं आपके वास्ते ऋद्धि सिद्धि करूं वैसे (**तेन**) उससे (**मे**) मेरे लिये (**रध्य**) कार्य करने का सामर्थ्य कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसा पुरुष सब दिशाओं में कीर्तियुक्त वेदों को जानने धनुर्वेद और अर्थवेद की विद्या में प्रवीण सत्य करने और सबको सुख देनेवाला धर्मात्मा पुरुष होवे उसकी स्त्री भी वैसी ही होवे उनको राजधर्म में स्थापना करके बहुत सुख और बहुत सी शोभा को प्राप्त हों ॥ २८ ॥

अग्निरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के जन किसके समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा । स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे राजन् वा राजपत्नि ! जैसे (**पृथुः**) महापुरुषार्थयुक्त धर्म का (**पतिः**) रक्षक (**जुषाणः**) सेवक (**अग्निः**) बिजुली के समान व्यापक (**सजातानाम्**) उत्पन्न हुए पदार्थों के रक्षक के साथ वर्त्तमान पदार्थों के (**मध्यमेष्ठ्याय**) मध्य में स्थित होके (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**आज्यस्य**) घृत आदि होम के पदार्थों को प्राप्त कराता हुआ (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**रश्मिभिः**) किरणों के साथ होम किये पदार्थों को फैला के सुख देता है वैसे (**धर्मणः**) न्याय के (**पतिः**) रक्षक (**पृथुः**) बड़ (**जुषाणः**) सेवा करनेवाला (**अग्निः**) तेजस्वी आप राज्य को (**वेतु**) प्राप्त हूजिए। वैसे ही हे (**स्वाहाकृताः**) सत्य काम करनेवाले सभासद् पुरुषो वा स्त्री लोगो ! तुम (**यतध्वम्**) प्रयत्न किया करो ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजा और प्रजा के पुरुषो तथा राणी वा राणी के सभासदो ! तुम लोग प्रसिद्ध सूर्य और विद्युत् अग्नि के समान वर्त्त पक्षपात छोड़ एक जन्म में मध्यस्थ होके न्याय करो। वैसे यह अग्नि सूर्य के प्रकाश में और वायु में सुगन्धियुक्त द्रव्यों को प्राप्त करा वायु जल और ओषधियों की शुद्धि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है वैसे ही न्याययुक्त कर्मों के साथ आचरण करनेवाले होके सब प्रजाओं को सुखयुक्त करो ॥ २९ ॥

सवित्रेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा वा राणी को कैसा गुणों से युक्त होना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे प्रजा और राजपुरुषो ! जैसे मैं (**प्रसवित्रा**) प्रेरणा करनेवाले वायु (**सवित्रा**) संपूर्ण चेष्टा उत्पन्न करनेहारे के समान शुभ कर्म (**सरस्वत्या**) प्रशंसित विज्ञान और क्रिया से युक्त (**वाचा**) वेदवाणी के समान सत्यभाषण (**त्वष्ट्रा**) छेदक और प्रतापयुक्त सूर्य के समान न्याय (**रूपैः**) सुखरूप (**पूष्णा**) पृथिवी (**पशुभिः**) गौ आदि पशुओं के समान प्रजा के पालन (**इन्द्रेण**) बिजुली (**अस्मे**) हम (**बृहस्पतिना**) बड़ों के रक्षक चार वेदों के जाननेहारे विद्वान् के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार (**ओजसा**) बल (**वरुणेन**) जल के समुदाय (**तेजसा**) तीक्ष्ण ज्योति के समान शत्रुओं के चलाने (**अग्निना**) अग्नि (**राज्ञा**) प्रकाशमान आनन्द के होने (**सोमेन**) चन्द्रमा (**दशम्या**) दशसंख्या को पूर्ण करनेवाली (**देवतया**) प्रकाशमान और (**विष्णुना**) व्यापक ईश्वर के समान शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (**प्रसूतः**) प्रेरणा किया हुआ मैं (**प्रसर्पामि**) अच्छे प्रकार चलता हूं वैसे तुम लोग भी चलो ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्यादि गुणों से युक्त पिता के समान रक्षा करनेहारा हो वह राजा होने के योग्य है और जो पुत्र के समान वर्त्तमान करे वह प्रजा होने योग्य है ॥ ३० ॥

अश्विभ्यामित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे होके क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे राजा तथा प्रजापुरुषो ! तुम (**अश्विभ्याम्**) सूर्य चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक (**पच्यस्व**) शुद्ध बुद्धिवाले हो (**सरस्वत्यै**) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिए (**पच्यस्व**) उद्यत हो (**सुत्राम्णे**) अच्छी रक्षा करनेहारे (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य के लिये (**पच्यस्व**) दृढ़ पुरुषार्थ करो (**पवित्रेण**) शुद्ध धर्म के आचरण से (**वायुः**) वायु के समान (**पूतः**) निर्दोष (**प्रत्यङ्**) पूजा को प्राप्त (**सोमः**) अच्छे गुणों से युक्त ऐश्वर्यवाले (**अतिस्रुतः**) अत्यन्त ज्ञानवान् (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर के (**युज्यः**) योगाभ्याससहित (**सखा**) मित्र हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि सत्यवादी धर्मात्मा आप्त अध्यापक और उपदेशक से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो शुद्ध धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र योग के अङ्गों से ईश्वर की उपासना और संपत्ति होने के लिये प्रयत्न करके आपस में मित्रभाव से वर्त्तें ॥ ३१ ॥

कुविदङ्गेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा आदि सभा के पुरुष किसके तुल्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे (**अङ्ग**) ज्ञानवान् राजन् ! जो (**कुवित्**) बहुत ऐश्वर्यवाले आप (**अश्विभ्याम्**) विद्या को प्राप्त हुए शिक्षक लोगों के लिये (**उपयामगृहीतः**) ब्रह्मचर्य के नियमों से स्वीकार किये (**असि**) हैं उन (**सरस्वत्यै**) विद्यायुक्त वाणी के लिये (**त्वा**) आपको और (**सुत्राम्णे**) अच्छी रक्षा के लिये (**त्वा**) आपका हम लोग स्वीकार करते हैं। उनके लिये सत्कार के साथ भोजन आदि दीजिये। जैसे (**यवमन्त**) बहुत जौ आदि धान्य से युक्त खेती करनेहारे लोग (**इहेह**) इस व्यवहार में (**यवम्**) यवादि अन्न को (**अनुपूर्वम्**) क्रम से (**दान्त**) लुनते (काटते) हैं। भुस से (**चित्**) भी (**यवम्**) जवों को (**वियूय**) पृथक् करके रक्षा करते हैं वैसे सत्य असत्य को ठीक ठीक विचार के इन की रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे खेती करनेवाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी मे अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा करके भोगते और असार को फेंकते हैं और जैसे ठीक २ राज्य का भाग राजा को देते हैं वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिए कि अत्यन्त परिश्रम से इनकी रक्षा न्याय के आचरण से ऐश्वर्य को उत्पन्न कर और सुपात्रों के लिये देते हुए आनन्द को भोगें ॥ ३२ ॥

युवमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सभा और सेनापति प्रयत्न से वैश्यों की रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

युवꣳसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पतीऽइन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे (**सचा**) मिले हुए (**विपिपाना**) विविध राज्य के रक्षक (**शुभः**) कल्याणकारक व्यवहार के (**पती**) पालन करनेहारे (**अश्विना**) सूर्य चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति (**युवम्**) तुम दोनों (**नमुचौ**) जो अपने दुष्ट कर्म को न छोड़े (**आसुरे**) मेघ के व्यवहार में (**कर्मसु**) खेती आदि कर्मों में वर्त्तमान (**सुरामम्**) अच्छी तरह जिसमें रमण करें ऐसे (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवाले धनी की निरन्तर (**आवतम्**) रक्षा करो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है राज्य की रक्षा के विना किसी चेष्टावान् नर की कार्य में निर्विघ्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती और न प्रजाजनों के अनुकूल हुए विना राजपुरुषों की स्थिरता होती है। इसलिये वन के सिंहों के समान परस्पर सहायी होके सब राज और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहें ॥ ३३ ॥

पुत्रमिवेत्यस्य शुनः शेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥३४॥

पदार्थ—हे (मघवन्) विशेष धन के होने से सत्कार के योग्य (इन्द्राय) सब सभाओं के मालिक राजन् ! (यत्) जो आप (शचीभिः) अपनी बुद्धियों के बल से (सुरामम्) अच्छा आराम देनेहारे रस को (व्यपिब) विविध प्रकार से पीवें उस आपका (सरस्वती) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणी के समान स्त्री (अभिष्णक्) सेवन करे (अश्विना) राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए (उभा) तुम दोनों सेनापति और न्यायाधीश (काव्यैः) परम विद्वान् धर्मात्मा लोगों ने किये (दंसनाभिः) कर्मों से (पुत्रम्) जैसे माता पिता (पुत्रम्) अपने सन्तान की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की (आवथुः) रक्षा करो ॥ ३४ ॥

भावार्थ—सब अच्छे-अच्छे गुणों से युक्त राजधर्म का सेवनेहारा धर्मात्मा अध्यापक और पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष अपने हृदय को प्यारी अपने योग्य अच्छे लक्षणों से युक्त रूप और लावण्य आदि गुणों से शोभायमान विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे । जो कि निरन्तर पति के अनुकूल हो और पति भी उसके संमति का हो । राजा अपने मन्त्री नौकर और स्त्री के सहित प्रजाओं में सत्पुरुषों की रीति पर पिता के समान और प्रजापुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्त्तें । इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिलके आनंदित होवें ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतभाषाऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये दशमोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥ १० ॥

॥ अथैकादशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

युञ्जान इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है । इस के प्रथम मन्त्र में योगाभ्यास और भूगर्भ विद्या का उपदेश किया है—

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरत् ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाला मनुष्य (तत्वाय) उन परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान के लिये (प्रथमम्) पहिले (मनः) विचारस्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में युक्त करता हुआ (अग्नेः) पृथिवी आदि में रहनेवाली बिजुली के (ज्योतिः) प्रकाश को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे वह योगी और भूगर्भ-विद्या का जानने वाला होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो पुरुष योगाभ्यास और भूगर्भविद्या किया चाहे वह यम आदि योग के अङ्ग और क्रिया-कौशलों से अपने हृदय के शुद्ध तत्त्वों को जान बुद्धि को प्राप्त और इन को गुण कर्म तथा स्वभाव से जान के उपयोग लेवे । फिर जो प्रकाशमान सूर्य्यादि पदार्थ हैं उन का भी प्रकाशक ईश्वर है उस को जान और अपने आत्मा में निश्चय करके अपने और दूसरों के सब प्रयोजनों को सिद्ध करें ॥ १ ॥

युक्तेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । शंकुमती गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है—

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । स्वर्ग्याय शक्त्या ॥२॥

पदार्थ—हे योग और तत्त्वविद्या को जानने की इच्छा करनेहारे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) योगाभ्यास किए (मनसा) विज्ञान और (शक्त्या) सामर्थ्य से (देवस्य) सब को चिताने तथा (सवितुः) समग्र संसार को उत्पन्न करनेहारे ईश्वर के (सवे) जगत् रूप इस ऐश्वर्य में (स्वर्ग्याय) सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश की अधिकाई से धारण करें वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि में समाहित हुए योगाभ्यास और तत्त्वविद्या को यथाशक्ति सेवन करें उनमें सुन्दर आत्मज्ञान के प्रकाश से युक्त हुए योग और पदार्थविद्या का अभ्यास करें तो अवश्य सिद्धियों को प्राप्त हो जावें ॥ २ ॥

युक्त्वायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

पदार्थ—जिन को (सविता) योग के पदार्थों के ज्ञान के करनेहारा जन परमात्मा में मन को (युक्त्वाय) युक्त करके (धिया) बुद्धि से (दिवम्) विद्या के प्रकाश को (स्व) सुख को (यतः) प्राप्त कराने वाले (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) विज्ञान को (करिष्यतः) जो करेंगे उन (देवान्) दिव्य गुणों को (प्रसुवाति) उत्पन्न करे (तान्) उनको अन्य भी उत्पादक जन उत्पन्न करें ॥ ३॥

भावार्थ—जो पुरुष योगाभ्यास करते हैं वे अविद्या आदि क्लेशों को हटाने वाले शुद्ध गुणों को प्रकट कर सकते हैं । जो उपदेशक पुरुष से योग और तत्त्वज्ञान को प्राप्त होके ऐसा अभ्यास करे वह भी इन गुणों को प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

युञ्जत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

योगाभ्यास करके मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥

पदार्थ—जो (होत्राः) दान देने लेने के स्वभाव वाले (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष जिस (बृहतः) बड़े (विपश्चितः) सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त आप्त पुरुष के समान वर्त्तमान (विप्रस्य) सब शास्त्रों के जाननेहारे बुद्धिमान् पुरुष से विद्याओं को प्राप्त हुए विद्वानों से विज्ञानयुक्त जन (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न और (देवस्य) सब प्रकाशक जगदीश्वर की (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुति है उस तत्त्वज्ञान के विषय में जैसे (मनः) अपने चित्त को (युंजते) समाधान करते और (धियः) अपनी बुद्धियों को युक्त करते हैं वैसे ही (वयुनावित्) प्रकृष्ट ज्ञान वाला (एकः) अन्य के सहाय की अपेक्षा से रहित (इत्) ही मैं (विदधे) विधान करता हूं ॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो नियम से आहार विहार करने हारे जितेन्द्रिय पुरुष एकांत देश में परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे तत्त्वज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं ॥ ४ ॥

युजेवामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः । शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५॥

पदार्थ—हे योगशास्त्र के ज्ञान की इच्छा करनेवाले मनुष्यो ! आप लोग जैसे (श्लोकः) सत्य वाणी से संयुक्त मैं (नमोभिः) सत्कारों से जिस (पूर्व्यम्) पूर्व के योगियों ने प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) सब से बड़े व्यापक ईश्वर को (युजे) अपने आत्मा से युक्त करता हूँ वह ईश्वर (वाम्) तुम योग के अनुष्ठान और उपदेश करने हारे दोनों को (सूरेः) विद्वान् को (पथ्येव) उत्तम गति के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है वैसे (व्येतु) विविध प्रकार से प्राप्त होवे । जैसे (विश्वे) सब (पुत्राः) अच्छे सन्तानों के तुल्य आज्ञाकारी मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अमृतस्य) अविनाशी ईश्वर के योग से (दिव्यानि) सुख के प्रकाश में होने वाले (धामानि) स्थानों को (आतस्थुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे मैं भी उनको प्राप्त होऊं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें । उनके संग से योग की विधि को जान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें । जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योग विधि सहज में प्राप्त होती है । कोई भी जीवात्मा इस संग और ब्रह्मज्ञान के विना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये उस योगविधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें ॥ ५ ॥

यस्य प्रयाणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किसकी उपासना करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यस्य प्रयाणमन्वन्यऽइद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा । यः पार्थिवानि विममे सऽएतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥६॥

पदार्थ—हे योगी पुरुषो ! तुम को चाहिये कि (यस्य) जिस (देवस्य) सर्व सुख देनेहारे ईश्वर के (महिमानम्) स्तुति विषय को (प्रयाणम्) कि जिस से प्राप्त होवे उस के (अनु) पीछे (अन्ये) जीवादि और (देवाः) विद्वान् लोग (ययुः) प्राप्त होवें (यः) जो (एतशः) सब जगत् में अपनी व्याप्ति से प्राप्त हुआ (सविता) सब जगत् का रचने हारा (देवः) शुद्धस्वरूप भगवान् (महित्वना) अपनी महिमा और (ओजसा) पराक्रम से (पार्थिवानि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) सब लोकों को (विममे) विमान आदि यानों के समान रचता है वह (इत्) ही निरन्तर उपासनीय मानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग सब जगत् के बीच २ पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने, रचने और सुख देनेहारे शुद्ध सर्वशक्तिमान् सब के हृदयों में व्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं वे ही सुख पाते हैं अन्य नहीं ॥ ६ ॥

देव सवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (देव) सत्य योगविद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (सवितः) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करनेहारे परमेश्वर ! आप (नः) हमारे (यज्ञम्) सुखों को प्राप्त करानेहारे व्यवहार को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये तथा (यज्ञपतिम्) इस सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये (गन्धर्वः) पृथिवी को धरके (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और (केतपूः) विज्ञान से पवित्र करनेहारे आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिए और (वाचस्पतिः) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) स्वादिष्ट अर्थात् कोमल मधुर कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या को सिद्ध कर सकते हैं वे सत्यवादी होके सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ स्वर्जितम् । ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सवितः) अन्तर्यामिरूप से प्रेरणा करने हारे जगदीश्वर आप (नः) हमारे (इमम्) पीछे कहे और आगे जिसको कहेंगे उस (देव्याम्) दिव्य गुणों की जिससे रक्षा हो (सखिविदम्) मित्रों को जिससे प्राप्त हों (सत्राजितम्) सत्य को जिससे जीतें (धनजितम्) धन को जिससे उन्नति होवे (स्वर्जितम्) सुख को जिससे बढ़ावें और (ऋचा) ऋग्वेद से जिस की (स्तोमम्) स्तुति हो उस (यज्ञम्) विद्या और धर्म का संयोग कराने हारे यज्ञ को (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (प्रणय) प्राप्त कीजिये (गायत्रेण) गायत्री आदि छन्दों से (गायत्रवर्तनि) गायत्री आदि छन्दों की गानविद्या (बृहत) बड़े (रथन्तरम्) अच्छे २ यानों से जिस के पार हों उस मार्ग को (समर्धय) अच्छे प्रकार बढ़ाये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़ ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं वे संपत् को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य भूमि आदि तत्त्वों से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! मैं जिस (त्वा) आप को (देवस्य) सूर्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (सवितुः) सब ऐश्वर्य में (अश्विनोः) प्राण और उदान के (बाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक बिजुली के (हस्ताभ्याम्) कारण और आकर्षण (अङ्गिरस्वत्) अंगारों के समान (आददे) ग्रहण करता हूँ सो आप (गायत्रेण) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थात्) एक स्थान से (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य और (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मन्त्र से निकले (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (अंगिरस्वत्) चिह्नों के सदृश (पुरीष्यम्) जल को उत्पन्न करने हारे (अग्निम्) बिजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को (आभर) धारण कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जाननेहारे विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा करने और पृथिवी आदि पदार्थों में रहनेवाले अग्नि को स्वीकार करें ॥ ९ ॥

अभ्रिरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम खनितुꣳ सधस्थ आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे कारीगर पुरुष ! जो (त्वया) तेरे साथ (सधस्थे) एक स्थान में वर्त्तमान (वयम्) हम लोग जो (अभ्रिः) भूमि खोदने और (नारी) विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्य्यों को सिद्ध करने हारी लोहे आदि की कस्सी (असि) है जिससे कारीगर लोग भूगर्भविद्या को जान सकें उस को ग्रहण करके (जागतेन) जगती मन्त्र से विधान किये (छन्दसा) सुखदायक स्वतन्त्र साधन से (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (अग्निम्) विद्युत आदि अग्नि को (खनितुम्) खोदने के लिये (आशकेम) सब प्रकार समर्थ हों उस को तू बना ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त करके सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्वविद्या को प्राप्त होके ऐसा कर सकते हैं ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १० ॥

हस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उसी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

हस्तऽआधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥११

पदार्थ—(सविता) ऐश्वर्य को उत्पन्न करनेहारा कारीगर मनुष्य (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के योग से (हिरण्ययीम्) तेजोमय शुद्ध धातु से बने (अभ्रिम्) खोदने के शस्त्र को (हस्ते) हाथ में लिये हुए (अंगिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अग्नेः) विद्युत् आदि अग्नि के

(ज्योतिः) तेज को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जैसे लोहा और पत्थरों में बिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है। उस की विद्या को ठीक २ जान और कार्यों में उपयुक्त करके इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

प्रतूर्त्तमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। वाजी देवता। आस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम्।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥१२॥

पदार्थ—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान से युक्त विद्वन्! जिस (ते) आपका शिल्पविद्या से (दिवि) सूर्य्य के प्रकाश में (परमम्) उत्तम (जन्म) प्रसिद्ध (तव) आपका (अन्तरिक्षे) आकाश में (नाभिः) बन्धन और (पृथिव्याम्) इस पृथिवी में (योनिः) निमित्त प्रयोजन है सो आप विमानादि यानों के अधिष्ठाता होकर (वरिष्ठाम्) अत्यन्त उत्तम (सम्वतम्) अच्छे प्रकार विभाग की हुई गति को (प्रतूर्त्तम्) अतिशीघ्र (इत्) ही (अनु) पश्चात् (आ, द्रव) अच्छे प्रकार चलिये ॥१२॥

भावार्थ—जब मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीच में परम प्रयत्न के साथ प्रसिद्ध हो और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना आना करते हैं तब उनको धन की प्राप्ति सुगम होती है ॥१२॥

युञ्जाथामित्यस्य कुश्रिर्ऋषिः। वाजी देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या कहां जोड़ना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

युञ्जाथाᳬ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू।
अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (वृषण्वसू) सूर्य और वायु के समान सुख वर्षाने वा सुख में बसने हारे कारीगर तथा उसके स्वामी लोगो! (युवम्) तुम दोनों (अस्मिन्) इस (यामे) यान में (रासभम्) जल और अग्नि के वेगगुणरूप अश्व तथा (अस्मयुम्) हम को ले चलने तथा (भरन्तम्) धारण करनेहारे (अग्निम्) प्रसिद्ध वा बिजुली रूप अग्नि को (युञ्जाथाम्) युक्त करो ॥१३॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस विमान आदि यान में यन्त्र कला जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं ॥१३॥

योगेयोग इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

प्रजाजन कैसे पुरुष को राजा मानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥१४॥

पदार्थ—हे (सखायः) परस्पर मित्रता रखने हारे लोगो! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (योगेयोगे) जिस जिसमें (वाजेवाजे) हों सङ्ग्राम सङ्ग्राम के बीच (तवस्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष को राजा (हवामहे) मानते हैं वैसे ही तुम लोग भी मानो ॥१४॥

भावार्थ—जो मनुष्य परस्पर मित्र होके एक दूसरे की रक्षा के लिये अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा मानते हैं वे सब विघ्नों से अलग हो के सुख की उन्नति कर सकते हैं ॥१४॥

प्रतूर्वन्नित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। गणपतिर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि। उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे राजन्! (स्वस्तिगव्यूतिः) सुख के साथ जिसका मार्ग है ऐसे आप (सयुजा) एक साथ युक्त करनेवाली (पूष्णा) बल पुष्टि से युक्त अपनी सेना के (सह) साथ (अशस्तीः) निन्दित शत्रुओं की सेनाओं को (प्रतूर्वन्) मारते हुए (एहि) प्राप्त हूजिये। शत्रुओं के देशों का (अवक्रामन्) उल्लङ्घन करते हुए (एहि) आइये (मयोभूः) सुख को उत्पन्न करते आप (रुद्रस्य) शत्रुओं को रुलाने हारे अपने सेनापति के (गाणपत्यम्) सेना समूह के स्वामीपन को (एहि) प्राप्त हूजिये और (अभयानि) अपने राज्य में सब प्राणियों को भयरहित (कृण्वन्) करते हुए (अन्तरिक्षम्, उरु) परिपूर्ण आकाश को (वीहि) विविध प्रकार से प्राप्त हूजिये ॥१५॥

भावार्थ—राजा को अति उचित है कि अपनी सेना को सदैव अच्छी शिक्षा हर्ष उत्साह और पोषण से युक्त रक्खे। जब शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहे तब अपने राज्य को उपद्रवरहित कर युक्ति तथा बल से शत्रुओं को मारे और सज्जनों की रक्षा करके सर्वत्र सुन्दर कीर्ति फैलावे ॥१५॥

पृथिव्या इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन्! जैसे हम लोग (पृथिव्याः) भूमि और अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक स्थान से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) अच्छा सुख देनेहारे (अग्निम्) भूमिमण्डल की बिजुली को (अच्छ) उत्तम रीति से (इमः) प्राप्त होते और जैसे (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुखदायक (अग्निम्) अन्तरिक्षस्थ बिजुली को (भरिष्यामः) धारण करें वैसे आप भी (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुख देनेवाले (अग्निम्) पृथिवी पर वर्त्तमान अग्नि को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें मूर्खवत् नहीं और सब काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें ॥१६॥

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग किसके समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः।
अनु सूर्य्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवीऽआततन्थ ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन्! आप जैसे (प्रथमः, जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में पहिले ही विद्यमान सूर्य्यलोक और (अग्निः, उषसाम्) उषःकाल से (अग्रम्) पहिले ही (अहानि) दिनों को (अन्वख्यत्) प्रसिद्ध करता है (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (अग्रम्) पहिले (पुरुत्रा) बहुत (रश्मीन्) किरणों को (अन्वाततन्थ) फैलाता तथा (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी लोक को प्रसिद्ध करता है। वैसे विद्या के व्यवहारों की प्रवृत्ति कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कारण रूप विद्युत् और कार्य्यरूप प्रसिद्ध अग्नि क्रम से सूर्य्य, उषःकाल और दिनों को उत्पन्न करके पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं। वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य विद्या धर्म्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाशयुक्त करें ॥ १७ ॥

आगत्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब सभापति राजा किस के समान क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आगत्य वाज्यध्वानᳬ सर्वा मृधो विधूनुते।
अग्निᳬ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे राजन्! आप जैसे (वाजी) वेगवान् घोड़ा (अध्वानम्) अपने मार्ग को (आगत्य) प्राप्त हो के (सर्वाः) सब (मृधः) संग्रामों को (विधूनुते) कंपाता है और जैसे गृहस्थ पुरुष (चक्षुषा) नेत्रों से (महति) सुन्दर (सधस्थे) एक स्थान में (अग्निम्) अग्नि का (निचिकीषते) चयन किया चाहता है वैसे सब संग्रामों को कंपाइये और घर घर में विद्या का प्रचार कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। गृहस्थों को चाहिये कि घोड़ों के समान जाना आना कर, शत्रुओं को जीत, आग्नेयादि अस्त्रविद्या को सिद्ध कर अपने बलाऽबल को विचार और राग द्वेष आदि दोषों की शान्ति करके अधर्मी शत्रुओं को जीत ॥ १८ ॥

आक्रम्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य जन्म पा और विद्या पढ़ के पश्चात् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम्।
भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा! (त्वम्) आप (रुचा) प्रीति से शत्रुओं को (आक्रम्य) पादाक्रान्त कर (पृथिवीम्) भूमि के राज्य और (अग्निम्) विद्या की (इच्छ) इच्छा कीजिये और (भूम्याः) पृथिवी के बीच (नः) हम लोगों को (वृत्वाय) स्वीकार करके हमारे लिये (ब्रूहि) भूगर्भ और अग्निविद्या का उपदेश कीजिये (यतः) जिस से (वयम्) हम लोग (तम्) उस विद्या में (खनेम) प्रविष्ट होवें ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि भूगर्भ और अग्नि विद्या से पृथिवी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों को उत्साह के साथ प्राप्त होवें और जो पृथिवी को खोदने वाले नौकर चाकर हैं उन को इस विद्या का उपदेश करें ॥ १९ ॥

द्यौस्त इत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृदार्षी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

द्यौस्ते॑ पृ॒ष्ठं पृ॑थि॒वी स॒धस्थ॑मा॒त्मान्तरि॑क्षꣳ समु॒द्रो योनिः॑ ।
वि॒ख्याय॒ चक्षु॑षा॒ त्वम॒भि ति॑ष्ठ पृतन्य॒तः ॥ २० ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (**ते**) आप का (**द्यौः**) प्रकाश के तुल्य विनय (**पृष्ठम्**) इधर का व्यवहार (**पृथिवी**) भूमि के समान (**सधस्थम्**) साथ स्थिति (**अन्तरिक्षम्**) आकाश के समान अविनाशी धैर्ययुक्त (**आत्मा**) अपना स्वरूप और (**समुद्रः**) समुद्र के तुल्य (**योनिः**) निमित्त है सो (**त्वम्**) आप (**चक्षुषा**) विचार के साथ (**विख्याय**) अपना ऐश्वर्य प्रसिद्ध करके (**पृतन्यतः**) अपनी सेना को लड़ाने की इच्छा करते हुए मनुष्य के (**अभि**) सन्मुख (**तिष्ठ**) स्थित हूजिए ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष न्याय मार्ग के अनुसार चले उत्साह स्थान और आत्मा जिसके दृढ़ हो विचार से सिद्ध करने योग्य जिसके प्रयोजन हों उसकी सेना वीर होती है वह निश्चय विजय करने को समर्थ होवे ॥२०॥

उत्क्रामेत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । द्रविणोदा देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उत्क्रा॑म मह॒ते सौभ॑गाया॒स्मादा॒स्थाना॑द् द्रविणो॒दा वा॑जिन् ।
व॒यꣳ स्या॑म सुम॒तौ पृ॑थि॒व्याऽअ॒ग्निं खन॑न्तऽउ॒पस्थे॑ऽअस्याः ॥२१॥

पदार्थ—हे (**वाजिन्**) ऐश्वर्य को प्राप्त हुए विद्वान् ! जैसे (**द्रविणोदाः**) धनदाता (**अस्याः**) इस (**पृथिव्याः**) भूमि के (**अस्मात्**) इस (**आस्थानात्**) निवास के स्थान से (**उपस्थे**) समीप में (**अग्निम्**) अग्नि विद्या का (**खनन्तः**) खोज करते हुए (**वयम्**) हम लोग (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए (**सुमतौ**) अच्छी बुद्धि में प्रवृत्त (**स्याम**) होवें वैसे आप (**उत्काम**) उन्नति को प्राप्त हूजिए ॥ २१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में ऐश्वर्य पाने के लिए निरन्तर उद्यत रहें और आपस में हिल मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से रत्नों को प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

उदक्रमीदित्यस्य मयोभूर्ऋषिः । द्रविणोदा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य इस संसार में किसके समान होके किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उद॑क्रमीद् द्रविणो॒दा वा॒ज्यर्वाकः॒ सु लो॒कꣳ सुकृ॑तं पृथि॒व्याम् ।
तत॑ः खनेम सु॒प्रती॑कम॒ग्निꣳ स्वो॒ रुहा॑णा॒ऽअधि॒नाक॑मुत्त॒मम् ॥२२॥

पदार्थ—हे भूगर्भ विद्या के जानने हारे विद्वन् ! (**द्रविणोदाः**) धनदाता आप जैसे (**वाजी**) बल वाला (**अर्वा**) घोड़ा ऊपर को उछलता है वैसे (**पृथिव्याम्**) पृथिवी के बीच (**अधि, उदक्रमीत्**) सब से अधिक उन्नति को प्राप्त हूजिये (**सुकृतम्**) धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य (**सुलोकम्**) अच्छा देखने योग्य (**उत्तमम्**) अति श्रेष्ठ (**नाकम्**) सब दुःखों से रहित सुख को (**अकः**) सिद्ध कीजिये (**ततः**) इसके पश्चात् (**स्वः**) सुखपूर्वक (**रुहाणाः**) प्रकट होते हुए हम लोग भी इस पृथिवी पर (**सुप्रतीकम्**) सुन्दर प्रीति का विषय (**अग्निम्**) व्यापक बिजुली रूप अग्नि का (**खनेम**) खोज करें ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी पर घोड़े अच्छी अच्छी चाल चलते हैं वैसे हम तुम सब मिल कर पुरुषार्थी हो पृथिवी आदि की पदार्थविद्या को प्राप्त हों और दुःखों को दूर करके सबसे उत्तम सुख को प्राप्त हों ॥२२॥

आत्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य व्यापक वायु को किस साधन से जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आ त्वा॑ जिघर्मि॒ मन॑सा घृ॒तेन॑ प्रतिक्षि॒यन्तं॒ भुव॑ना॒नि॒ विश्वा॑ ।
पृ॒थुं ति॑र॒श्चा वय॑सा बृ॒हन्तं॒ व्यचि॑ष्ठ॒मन्नै॑ रभ॒सं दृशा॑नम् ॥२३॥

पदार्थ—हे ज्ञान चाहनेवाले पुरुष ! जैसे मैं (**मनसा**) मन तथा (**घृतेन**) घी के साथ (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकस्थ वस्तुओं में (**प्रतिक्षियन्तम्**) प्रत्यक्ष निवास और निश्चयकारक (**तिरश्चा**) तिरछे चलने रूप (**वयसा**) जीवन से (**पृथुम्**) विस्तारयुक्त (**बृहन्तम्**) बड़े (**अन्नैः**) जौ आदि अन्नों के साथ (**रभसम्**) बल वाले (**व्यचिष्ठम्**) अतिशय करके फेंकनेवाले (**दृशानम्**) देखने योग्य वायु के गुणों को (**आजिघर्मि**) अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूं वैसे (**त्वाम्**) आपको भी इस वायु के गुणों का धारण कराता हूं ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों को वायु में पहुंचा उस सुगन्ध से रोगों को दूर कर अधिक अवस्था को प्राप्त होवें ॥२३॥

आ विश्वत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ वि॒श्वत॑ः प्र॒त्यञ्चं॑ जिघर्म्यर॒क्षसा॒ मन॑सा॒ तज्जु॑षेत ।
मर्य॑श्रीः स्पृह॒यद्व॑र्णोऽअ॒ग्निर्ना॑भि॒मृशे॑ त॒न्वा॒ जर्भु॑राणः ॥ २४ ॥

पदार्थ - हे मनुष्य ! (**न**) जैसे (**विश्वतः**) सब ओर से (**अग्निः**) बिजुली और प्राण वायु शरीर में व्यापक होके (**अभिमृशे**) सहनेवाले के लिये हितकारी हैं जैसे (**तन्वा**) शरीर से (**जर्भुराणः**) शीघ्र हाथ पांव आदि अङ्गों को चलाता हुआ (**स्पृहयद्वर्णः**) इच्छा वालों ने स्वीकार किये हुए के समान (**मर्य्यश्रीः**) मनुष्यों की शोभा के तुल्य वायु के समान वेग वाला होके मैं जिस (**प्रत्यञ्चम्**) शरीर के वायु को निरन्तर चलानेवाली विद्युत् को (**अरक्षसा**) राक्षसों की दुष्टता से रहित (**मनसा**) चित्त से (**आजिघर्मि**) प्रकाशित करता हूं वैसे (**तत्**) उस तेज को (**जुषेत**) सेवन कर ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग लक्ष्मी प्राप्त कराने हारे अग्नि आदि पदार्थों को जान और उनको कार्यों में संयुक्त करके धनवान् होओ ॥२४॥

परिवाजपतिरित्यस्य सोमक ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ कैसे होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

परि॒ वाज॑पतिः क॒विर॒ग्निर्ह॒व्यान्य॑क्रमीत् । दध॒द्रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ ॥२५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (**वाजपतिः**) अन्न आदि की रक्षा करनेहारे गृहस्थों के समान (**कविः**) बहुदर्शी दाता गृहस्थ पुरुष (**दाशुषे**) दान देने योग्य विद्वान् के लिये (**रत्नानि**) सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थ (**दधत्**) धारण करते हुए के समान (**अग्निः**) प्रकाशमान पुरुष (**हव्यानि**) देने योग्य वस्तुओं को (**परि**) सब ओर से (**अक्रमीत्**) प्राप्त होता है उसको तू जान ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अग्निविद्या के सहाय से पृथिवी के पदार्थों से धन को प्राप्त हो अच्छे मार्ग में खर्च कर और धर्मात्माओं को दान दे के विद्या के प्रचार से सब को सुख पहुँचावे ॥२५॥

परि त्वेत्यस्य पायुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

कैसा सेनापति करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

परि॑ त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्रꣳ॑ सहस्य धीमहि ।
धृ॒षद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे ह॒न्तारं॑ भङ्गु॒राव॑ताम् ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे (**सहस्य**) अपने को बल चाहनेवाले (**अग्ने**) अग्निवत् विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष ! जैसे (**वयम्**) हम लोग (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**भंगुरावताम्**) खोटे स्वभाव वालों के (**पुरम्**) नगर को अग्नि के समान (**हन्तारम्**) मारने (**धृषद्वर्णम्**) दृढ़ सुन्दर वर्ण से युक्त (**विप्रम्**) विद्वान् (**त्वा**) आपको (**परि**) सब प्रकार से (**धीमहि**) धारण करें वैसे तू हम को धारण कर ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि न्याय से प्रजा की रक्षा करने अग्नि के समान शत्रुओं को मारने और सब काल में सुख देने हारे पुरुष को सेनापति करें ॥२६॥

त्वमग्न इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर सभाध्यक्ष कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वम॑ग्ने॒ द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ ।
त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचि॑ः ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे (**नृपते**) मनुष्यों के पालनेहारे (**अग्ने**) अग्नि के समान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् ! (**त्वम्**) आप (**द्युभिः**) दिनों के समान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से सूर्य्य के समान (**त्वम्**) आप (**आशुशुक्षणिः**) शीघ्र शीघ्र दुष्टों को मारने हारे (**त्वम्**) आप (**अद्भ्यः**) वायु वा जलों से (**त्वम्**) आप (**अश्मनः**) मेघ वा पाषाणादि से (**त्वम्**) आप (**वनेभ्यः**) जङ्गल वा किरणों से (**त्वम्**) आप (**ओषधीभ्यः**) सोमलता आदि ओषधियों से (**त्वम्**) आप (**नृणाम्**) मनुष्यों के बीच (**शुचिः**) पवित्र (**परि**) सब प्रकार (**जायसे**) प्रसिद्ध होते हो इस कारण आपका आश्रय लेके हम लोग भी ऐसे ही होवें ॥२७॥

भावार्थ—जो राजा सभासद् वा प्रजा का पुरुष सब पदार्थों से गुण ग्रहण और विद्या तथा क्रिया की कुशलता से उपकार ले सकता धर्म के आचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है वही सब सुखों को प्राप्त हो सकता है, अन्य आलसी पुरुष नहीं ॥ २७ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् प्रकृतिश्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामि । ज्योतिष्मन्तं त्वाऽग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतम् । शिवं प्रजाभ्योऽहिंसन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामः ॥२८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) भूगर्भ तथा शिल्पविद्या के जाननेहारे विद्वन् ! जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के (बाहुभ्याम्) आकर्षण तथा धारण रूप बाहुओं के समान और (पूष्णः) प्राण के (हस्ताभ्याम्) बल और पराक्रम के तुल्य (त्वा) आपको आगे करके (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थात्) एक स्थान से (पुरीष्यम्) पूर्ण सुख देनेहारे (ज्योतिष्मन्तम्) बहुत ज्योति वाले (अजस्रेण) निरन्तर (भानुना) दीप्ति से (दीद्यतम्) अत्यन्त प्रकाशमान (पुरीष्यम्) सुन्दर रक्षा करने (अग्निम्) वायु में रहने वाली बिजुली को (अङ्गिरस्वत्) वायु के समान (खनामि) सिद्ध करता हूँ और जैसे (त्वा) आपका आश्रय लेके हम लोग (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक प्रदेश से (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा वायु के समान वर्त्तमान (अहिंसन्तम्) जो कि ताड़ना न करे ऐसे (पुरीष्यम्) पालनहारे पदार्थों में उत्तम (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवम्) मङ्गलकारक (अग्निम्) अग्नि को (खनामः) प्रकट करते हैं वैसे सब लोग किया करें ॥२८॥

भावार्थ—जो राज्य और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहनेवाले बिजुली रूपी अग्नि को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध करके कार्य्यों में प्रयुक्त करते हैं वे कल्याणकारक ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं। कोई भी उत्पन्न हुआ पदार्थ बिजुली की व्याप्ति के बिना खाली नहीं रहता ऐसा तुम सब लोग जानो ॥२८॥

अपां पृष्ठमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसी बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् । वर्धमानो महाँ२ऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस कारण (अग्नेः) सर्वत्र अभिव्याप्त बिजुली रूप अग्नि के (योनिः) संयोग वियोगों के जानने (महान्) पूजनीय (वर्धमानः) विद्या तथा क्रिया की कुशलता से नित्य बढ़नेवाले आप (असि) हैं। इसलिये (अभितः) सब ओर से (पिन्वमानम्) जल वर्षाते हुए (अपाम्) जलों के (पृष्ठम्) आधारभूत (पुष्करे) अन्तरिक्ष में वर्तमान (दिवः) दीप्ति के (मात्रया) विभाग से बढ़े हुए (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जिसमें ऊपर को जल उठते हैं उस समुद्र (च) और वहाँ के सब पदार्थों को जान के (वरिम्णा) बहुत्व के साथ (आप्रथस्व) अच्छे प्रकार सुखों को विस्तार करनेवाले हूजिये ॥२९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग पृथिवी आदि स्थूल पदार्थों में बिजुली जिस प्रकार वर्तमान है वैसे ही जलों में भी है ऐसा समझ और उससे उपकार ले के बड़े बड़े विस्तारयुक्त सुखों को सिद्ध करो ॥२९॥

शर्म चेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । दम्पती देवते । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या-क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽछिद्रे बहुलेऽउभे । व्यचस्वती सं वसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम् ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (शर्म) गृहाश्रम (च) और उसकी सामग्री को प्राप्त हुए (स्थः) हो (वर्म) सब ओर उसके सहायकारी पदार्थों को (उभे) दो (बहुले) बहुत अर्थों को ग्रहण करनेहारे (व्यचस्वती) सुख की प्राप्ति से युक्त (अच्छिद्रे) निर्दोष बिजुली और अन्तरिक्ष के समान जिस घर में धर्म अर्थ के कार्य्य (स्थः) हैं उस घर में (भृतम्) पोषण करनेहारे (पुरीष्यम्) रक्षा करने में उत्तम (अग्निम्) अग्नि को ग्रहण करके (संवसाथाम्) अच्छे प्रकार आच्छादन करके वसो ॥ ३० ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोगों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य्य के साथ सत्कार और उपकारपूर्वक क्रिया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से युक्त सब ऋतुओं में सुखदायक सब ओर की रक्षा और अग्नि आदि साधनों से युक्त घरों को बना के उनमें सुखपूर्वक निवास करें ॥ ३० ॥

संवसाथामित्यस्य गृत्समद ऋषिः । जायापती देवते । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

संवसाथाᳫं स्वर्विदा समीची उरसा त्मना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जो (समीची) अच्छे प्रकार पदार्थों को जानने (भरिष्यन्ती) और सब का पालन करने हारे (स्वर्विदा) सुख को प्राप्त होते हुए (ज्योतिष्मन्तम्) अच्छे प्रकार से युक्त (अन्तः) सब पदार्थों के बीच वर्त्तमान (अग्निम्) बिजुली को (इत्) ही (त्मना, उरसा) अपने अन्तःकरण से (अजस्रम्) निरन्तर (संवसाथाम्) अच्छी तरह आच्छादन करो तो लक्ष्मी को भोग सको ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो गृहस्थ मनुष्य बिजुली को उत्पन्न करके ग्रहण कर सकते हैं वे व्यवहार में दरिद्र कभी नहीं होते ॥ ३१ ॥

पुरीष्य इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुष बिजुली को कैसे उत्पन्न करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पुरीष्योऽसि विश्वभराऽअथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने । त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥३२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) क्रिया की कुशलता को सिद्ध करने हारे विद्वन् ! जो (वाघतः) शास्त्रवित् आप (पुरीष्यः) पशुओं को सुख देने हारे (असि) हैं उस (त्वा) आपका (अथर्वा) रक्षक (प्रथमः) उत्तम (विश्वभराः) सब का पोषक विद्वान् (विश्वस्य) सब संसार के (मूर्ध्नः) ऊपर वर्त्तमान (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से (अधि) समीप अग्नि को (निरमन्थत्) नित्य मन्थन करके ग्रहण करता है वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष होवें वे अपने अच्छे विचार और पुरुषार्थ से अग्नि आदि की पदार्थविद्या को प्रसिद्ध करके सब मनुष्यों को शिक्षा करें ॥ ३२ ॥

तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधेऽअथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥३३॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (अथर्वणः) रक्षक विद्वान् का (पुत्रः) पवित्र शिष्य (दध्यङ्) सुखदायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ (ऋषिः) वेदार्थ जाननेहारा (उ) तर्क वितर्क के साथ सम्पूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिस (वृत्रहणम्) सूर्य्य के समान शत्रुओं को मारने और (पुरन्दरम्) शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने वाले आपको (ईधे) तेजस्वी करता है वैसे उन आपको सब विद्वान् लोग विद्या और विनय से उन्नतियुक्त करें ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो पुरुष और स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़ के विद्वान् वा विदुषी होवें वे राजपुरुष और राजकन्याओं को विद्वान् और विदुषी करके उनसे धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करवावें ॥ ३३ ॥

तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयᳪं रणेरणे ॥३४॥

पदार्थ—हे वीर पुरुष ! जो आप (पाथ्यः) अन्न जल आदि पदार्थों की सिद्धि में कुशल (वृषा) पराक्रमी शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं (तम्) पूर्वोक्त पदार्थविद्या जानने (धनञ्जयम्) शत्रुओं के धन जीतने (उ) और (दस्युहन्तमम्) अतिशय करके डाकुओं को मारनेवाले (त्वा) आपको वीरों की सेना राजधर्म्म की शिक्षा से (समीधे) प्रदीप्त करें ॥ ३४ ॥

भावार्थ—राजा तथा राजपुरुषों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा विद्वानों से विनय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चोरों को मार शत्रुओं को जीतकर परम ऐश्वर्य्य की उन्नति करें ॥ ३४ ॥

सीदेत्यस्य देवश्रवो देववातावृषी । होता देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् का क्या काम है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सीद होतः स्वऽउ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञᳫं सुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (होतः) दान देनेवाले (चिकित्वान्) विज्ञान से युक्त आप (लोके) देखने योग्य (स्वे) सुख में (सीद) स्थिर हूजिये (सुकृतस्य) अच्छे करने योग्य कर्म करने हारे धर्मात्मा के (योनौ) कारण में (यज्ञम्) धर्मयुक्त राज्य और प्रजा के व्यवहार को (सादय) प्राप्त कराइये (हविषा) देने लेने योग्य न्याय से (देवान्) विद्वानों वा दिव्य गुणों को (यजासि) सत्कार सेवा संयोग कीजिये (यजमाने) राजा आदि मनुष्यों में (वयः) बड़ी उमर को (धाः) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोगों को चाहिये कि इस जगत् में दो कर्म निरन्तर करें। प्रथम ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोगरहित बल से युक्त और पूर्ण अवस्था वाला करें। दूसरे विद्या और क्रिया की कुशलता के ग्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार साधें कि जिससे सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुए सब काल में आनन्द भोगें ॥ ३५ ॥

नि होतेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है—

नि होता॑ होतृ॒षद॑ने॒ विदा॑नस्त्वे॒षो दी॑दि॒वाँ२ऽअ॑सदत्सु॒दक्षः॑ । अद॑ब्धव्रतप्रमतिर्वसि॑ष्ठः सहस्रम्भ॒रः शुचि॑जिह्वोऽअ॒ग्निः ॥ ३६ ॥

पदार्थ—जो जन मनुष्य जन्म को पाके (होतृषदने) दानशील विद्वानों के स्थान में (दीदिवान्) धर्मयुक्त व्यवहार का चाहने (त्वेषः) शुभगुणों से प्रमाणमान (विदानः) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने (शुचिजिह्वः) सत्यभाषण से पवित्र वाणीयुक्त (सुदक्षः) अच्छे बलवाला (अदब्धव्रतप्रमतिः) रक्षा करने योग्य धर्माचरणरूपी व्रतों से उत्तम बुद्धियुक्त (वसिष्ठः) अत्यन्त वसने (सहस्रम्भरः) असंख्य शुभगुणों को धारण करनेवाला (होता) शुभगुणों का ग्राहक पुरुष निरन्तर (न्यसदत्) स्थित होवे तो वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त हो जावे ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जब माता पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देके पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थितिपूर्वक पढ़वावें तब वे कन्या और पुत्र सूर्य्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों ॥ ३६ ॥

संसीदस्वेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इस पठनपाठन विषय में अध्यापक कैसा होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सᳪसी॑दस्व म॒हाँ२ अ॑सि॒ शोच॑स्व देव॒वीत॑मः । वि धू॒मम॑ग्ने अरु॒षं मि॑येध्य सृ॒ज प्र॑शस्त दर्श॒तम् ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे (प्रशस्त) प्रशंसा के योग्य (मियेध्य) दुष्टों को पृथक् करने वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् ! (देववीतमः) विद्वानों को अत्यन्त इष्ट आप (विधूमम्) निर्मल (दर्शतम्) देखने योग्य (अरुषम्) सुन्दर रूप को (सृज) सिद्ध कीजिये तथा (शोचस्व) पवित्र हूजिये । जिस कारण आप (महान्) बड़े-बड़े गुणों में युक्त विद्वान् (असि) हैं इसलिए पढ़ाने की गद्दी पर (संसीदस्व) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों का अत्यन्त प्रिय अच्छे रूप गुण और लावण्य से युक्त पवित्र बड़ा धर्मात्मा आप्त विद्वान् होवे वही शास्त्रों के पढ़ाने को समर्थ होता है ॥ ३७ ॥

अपो देवीरित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । न्यङ्कुसारिणी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आगे जल आदि पदार्थों के शोधने से प्रजा में क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अपो दे॒वीरुप॑ सृज॒ मधु॑मतीरय॒क्ष्माय॑ प्र॒जाभ्यः॑ । तासा॑मा॒स्थाना॑दु॒ज्जिह॑ता॒मोष॑धयः सुपिप्प॒लाः ॥ ३८ ॥

पदार्थ—हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष ! आप (मधुमतीः) प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त (देवीः) पवित्र (अपः) जलों को (उपसृज) उत्पन्न कीजिये जिससे (तासाम्) उन जलों के (अस्थानात्) आश्रय से (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों वाली (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियों को (प्रजाभ्यः) रक्षा करने योग्य प्राणियों के (अयक्ष्माय) यक्ष्मा आदि रोगों की निवृत्ति के लिये (उज्जिहताम्) प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रक्खे । एक तो सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु वर्षा जल और ओषधियों को शुद्ध करें । दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोगरहित रक्खें । इस कर्म के विना संसार में सार्वजनिक सुख नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥

सं त इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वायुर्देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष का कर्त्तव्यकर्म अगले मन्त्र में कहा है—

सं ते॑ वा॒युर्मा॑त॒रिश्वा॑ दधातू॒त्ताना॑या॒ हृद॑यं॒ यद्विक॑स्तम् । यो दे॒वानां॒ चर॑सि प्राण॒थेन॒ कस्मै॑ देव॒ वष॑डस्तु॒ तुभ्य॑म् ॥ ३९ ॥

पदार्थ—हे पत्नि राणी ! (उत्तानायाः) बड़े शुभ लक्षणों के विस्तार से युक्त (ते) आपका (यत्) जो (विकस्तम्) अनेक प्रकार से शिक्षा को प्राप्त हुआ (हृदयम्) अन्तःकरण हो उसको यज्ञ से शुद्ध हुआ (मातरिश्वा) आकाश में चलनेवाला (वायुः) पवन (संदधातु) अच्छे प्रकार पुष्ट करे । हे (देव) अच्छे सुख देनेहारे पति स्वामी ! (यः) जो विद्वान् आप (प्राणथेन) सुख के हेतु प्राणवायु से (देवानाम्) धर्मात्मा विद्वानों का जिस अनेक प्रकार से शिक्षित हृदय को (चरसि) प्राप्त होते हो उस (कस्मै) सुखस्वरूप (तुभ्यम्) आपके लिए मुझसे (वषट्) क्रिया की कुशलता (अस्तु) प्राप्त होवे ॥ ३९ ॥

भावार्थ—पूर्ण जवान पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे उसके साथ विरुद्ध आचरण कभी न करे । जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उसका अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य संभालें ॥ ३९ ॥

सुजात इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

सुजा॑तो॒ ज्योति॑षा स॒ह शर्म॒ वरू॑थ॒मास॑द॒त्स्वः॑ । वासो॑ अग्ने वि॒श्वरू॑पᳪ सं व्य॑यस्व विभावसो ॥ ४० ॥

पदार्थ—हे (विभावसो) प्रकाशसहित धन से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! (ज्योतिषा) विद्याप्रकाश के साथ (सुजातः) अच्छे प्रसिद्ध आप (स्वः) सुखदायक (वरूथम्) श्रेष्ठ (शर्म) घर को (आसदत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए (विश्वरूपम्) अनेक चित्र विचित्ररूपी (वासः) वस्त्र को (संव्ययस्व) धारण कीजिए ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विवाहित स्त्री पुरुषों को चाहिए कि जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि को सदा पवित्र रक्खें ॥ ४० ॥

उदु तिष्ठेत्यस्य विश्वमना ऋषिः । अग्निर्देवता भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी विद्वानों का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है—

उदु॑ तिष्ठ स्वध्वरा॒वा॑ नो॒ दे॒व्या धि॒या । दृ॒शे च॒ भा॒सा बृ॑ह॒ता सु॑शु॒क्वनि॒राग्ने॑ या॒हि सु॑श॒स्तिभिः॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थ—हे (स्वध्वर) अच्छे माननीय व्यवहार करनेवाले सज्जन विद्वान् गृहस्थ ! आप निरन्तर (उत्तिष्ठ) पुरुषार्थ से उन्नति को प्राप्त होके अन्य मनुष्यों को प्राप्त सदा किया कीजिए (देव्या) शुद्ध विद्या और शिक्षा से युक्त (धिया) बुद्धि वा क्रिया से (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिए । हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान ! (सुशुक्वनिः) अच्छे पवित्र पदार्थों के विभाग करने हारे आप (उ) तर्क के साथ (दृशे) देखने को (बृहता) बड़े (भासा) प्रकाश रूप सूर्य के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दर प्रशंसित गुणों के साथ सब विद्याओं को (याहि) प्राप्त हूजिए और हमारे लिए भी सब विद्याओं को प्राप्त कीजिए ॥ ४१ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोगों को चाहिए कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दान से सब मनुष्यों की निरंतर रक्षा करें क्योंकि अच्छी शिक्षा के विना मनुष्यों के सुख के लिये और कोई भी आश्रय नहीं है । इसलिये सब को उचित है कि आलस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्व इत्यस्य कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । उपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले अगले मन्त्र में कहा है—

ऊ॒र्ध्व ऊ॒ षु ण॑ऽऊ॒तये॒ तिष्ठा॑ दे॒वो न स॑वि॒ता । ऊ॒र्ध्वो वाज॑स्य॒ सनि॑ता॒ यद॒ञ्जिभि॑र्वा॒घद्भि॑र्वि॒ह्वया॑महे ॥ ४२ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक विद्वान् ! आप (ऊर्ध्वः) ऊपर प्रकाश में रहनेवाले (देवः) प्रकाशक (सविता) सूर्य के (न) समान (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (सुतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्थिति हूजिये (यत्) जो आप (अञ्जिभिः) प्रकट करने हारे किरणों के सदृश (वाघद्भिः) युद्ध विद्या में कुशल बुद्धिमानों के साथ (वाजस्य) विज्ञान के (सनिता) सेवन हारे हूजिये (उ) उसी को हम लोग (विह्वयामहे) विशेष करके बुलाते हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अध्यापक और उपदेशक विद्वान् को चाहिये कि जैसे सूर्य भूमि और चन्द्रमा आदि लोकों से ऊपर स्थित होके अपनी किरणों से सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है । वैसे उत्तम गुणों से विद्या और न्याय का प्रकाश करके सब प्रजाओं को सदा सुशोभित करें ॥ ४२ ॥

स जात इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पिता पुत्र का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है—

स जा॒तो गर्भो॑ऽअसि॒ रोद॑स्यो॒रग्ने॒ चारु॒र्विभृ॑त॒ ओष॑धीषु । चि॒त्रः शिशुः॒ परि॒ तमा॑ᳪस्य॒क्तून्प्र मा॒तृभ्यो॒ऽअधि॒ कनि॑क्रदद् गाः ॥ ४३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो आप जैसे (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी में (जातः) प्रसिद्ध (चारुः) सुन्दर (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में (विभृतः) विशेष करके धारण वा पोषण किया (चित्रः) आश्चर्यरूप (गर्भः) स्वीकार करने योग्य सूर्य (मातृभ्यः) मान्य करनेहारी माता अर्थात् किरणों से (तमांसि) रात्रियों तथा (अक्तून्) अन्धेरों को (पर्य्यधिकनिक्रदत्) सब ओर से अधिक करके चलता हुआ (गाः) चलाता है वैसे ही (शिशुः) बालक (गाः) विद्या को प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जैसे ब्रह्मचर्य आदि अच्छे नियमों से उत्पन्न किया पुत्र विद्या पढ़ के माता पिता को सुख देता है वैसे ही माता पिता को चाहिये कि प्रजा को सुख देवें ॥ ४३ ॥

स्थिरो भवेत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता अपने सन्तानों को किस प्रकार शिक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स्थिरो भव वीड्वङ्गऽआशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त पुत्र ! तू विद्याग्रहण के लिए (स्थिरः) दृढ़ (भव) हो (वाजी) नीति को प्राप्त होके (वीडवङ्गः) दृढ़ अति बलवान् अवयवों से युक्त (आशुः) शीघ्र कर्म करने वाला (भव) हो तू (अग्नेः) अग्निसंबन्धी (सुषद)सुन्दर व्यवहारों में स्थित और (पुरीषवाहणः) पालन आदि शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाला (पृथुः) सुख का विस्तार करनेहारा (भव) हो ॥ ४४॥

भावार्थ—हे अच्छे सन्तानो ! तुम को चाहिये कि ब्रह्मचर्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल पूर्ण दृढ़ कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अस्त्र विद्या से शत्रुओं का विनाश करो इस प्रकार माता पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें ॥ ४४ ॥

शिव इत्यस्य चित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् पथ्या बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उनको प्रजा में कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः । मा द्यावापृथिवी अभिऽशोचीर्माऽन्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥४५॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) प्राणों के समान प्रिय सुसन्तान ! तू (मानुषीभ्यः) मनुष्य आदि (प्रजाभ्यः) प्रसिद्ध प्रजाओं के लिए (शिवः) कल्याणकारी मङ्गलमय (भव) हो (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि के विषय में (मा) मत (अभिशोचीः) अति शोच मत कर (अन्तरिक्षम्) अवकाश के विषय में (मा) मत शोच कर और (वनस्पतीन्) वट आदि वनस्पतियों का शोच मत कर ॥ ४५ ॥

भावार्थ—सुसन्तानों को चाहिये कि प्रजा के प्रति मङ्गलाचारी हो के पृथिवी आदि पदार्थों के विषय में शोकरहित होवें किन्तु इन सब पदार्थों की रक्षा का विधान कर उपकार के लिए उत्साह के साथ प्रयत्न करें ॥ ४५ ॥

प्रैतु वाजीत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा । वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् । अग्नऽआ याहि वीतये ॥ ४६ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् उत्तम सन्तान ! तू (कनिक्रदत्) चलते और (नानदत्) शीघ्र शब्द करते हुए (रासभः) देने योग्य (पत्वा) चलने वाले वा (वाजी) घोड़ा के समान (आयुषः) नियत वर्षों की अवस्था से (पुरा) पहिले (मा) न (प्रैतु) मरे (पुरीष्यम्) रक्षा के हेतु पदार्थों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली (भरन्) धारण करता हुआ (मापादि) इधर उधर मत भाग जैसे (वृषा) अति बलवान् (अपाम्) जलों के (समुद्रियम्) समुद्र में हुए (गर्भम्) स्वीकार करने योग्य (वृषणम्) वर्षा करने हारे (अग्निम्) सूर्य्य को (भरन्) धारण करता हुआ (वीतये) सुखों की व्याप्ति के लिये (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—राजा आदि मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म्मयुक्त व्यवहार की उन्नति करावें ॥ ४६ ॥

ऋतमित्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या-क्या आचरण करना और क्या-क्या छोड़ना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः । ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः । व्यस्यन् विश्वाऽअनिराऽअमीवा निषीदन्नोऽअप दुर्मतिं जहि ॥ ४७ ॥

पदार्थ—हे सुसन्तानो ! जैसे हम लोग (ऋतम्) यथार्थ (सत्यम्) नाश-रहित (ऋतम्) अव्यभिचारी (सत्यम्) सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना (पुरीष्यम्) रक्षा के साधनों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली को (अंगिरस्वत्) वायु के तुल्य (भरामः) धारण करते हैं (एतम्) इस पूर्वोक्त (आयन्तम्) प्राप्त हुए (शिवम्) मंगलकारी (अग्निम्) बिजुली को प्राप्त हो के तुम लोग भी (अभिमोदध्वम्) आनन्दित रहो जो (ओषधयः) जो आदि ओषधि (युष्माः) तुम्हारे (प्रति) लिये प्राप्त होवें उन को हम लोग धारण करते हैं वैसे तुम भी करो । हे वैद्य ! आप (विश्वाः) सब (अनिराः) जो निरन्तर देने योग्य न हों (अमीवाः) ऐसी रोगों की पीड़ा (व्यस्यन्) अनेक प्रकार से अलग करते और (अत्र) इस आयुर्वेदविद्या में (निषीदन्) स्थिति हो के (नः) हम लोगों को (दुर्मतिम्) दुष्ट बुद्धि को (अपजहि) सब प्रकार दूर कीजिये । इस प्रकार वैद्य की प्रार्थना करो ॥ ४७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी पर-कारण ब्रह्म दूसरा कारण यथार्थ अविनाशी अव्यक्त जीव सत्यभाषणादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अग्नि और ओषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के ज्वर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषों को छुड़ा के मद्य आदि द्रव्यों के त्याग से अच्छी बुद्धि कर और सुख को प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहो और कभी इससे विपरीत आचरण कर सुख को छोड़ के दुःखसागर में मत गिरो ॥ ४७ ॥

ओषधय इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों को क्या-क्या आचरण करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ओषधयः प्रति गृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः । अयं वो गर्भऽऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमाऽसदत् ॥ ४८ ॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! तुम लोग जो (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिन से (अयम्) यह (ऋत्वियः) ठीक ऋतुकाल को प्राप्त हुआ (गर्भ) गर्भ (वः) तुम्हारे (प्रत्नम्) प्राचीन (सधस्थम्) नियत स्थान गर्भाशय को प्राप्त होवे उस (पुष्पवतीः) श्रेष्ठ पुष्पों वाली (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त ओषधियों को (प्रतिगृभ्णीत) निश्चय करके ग्रहण करो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—माता पिता को चाहिए कि अपनी कन्याओं को व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यक शास्त्र पढ़ावें, जिससे ये कन्या लोग रोगों का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाली ओषधियों को जान और अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४८ ॥

वि पाजसेत्यस्योत्कील ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या-क्या प्रतिज्ञा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसोऽअमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

पदार्थ—हे पते ! जो आप (पृथुना) विस्तृत (वि) विविध प्रकार के (पाजसा) बल के साथ (शोशुचानः) शीघ्र शुद्धता से सदा वर्तें और (अमीवाः) रोगों के समान प्राणियों को पीड़ा देनेहारी (रक्षसः) दुष्ट (द्विषः) शत्रुरूप व्यभिचारिणी स्त्रियों को (बाधस्व) ताड़ना देवें तो मैं (बृहतः) बड़े (सुशर्मणः) अच्छे शोभायमान (सुहवस्य) सुन्दर लेना देना व्यवहार जिस में हो ऐसे (अग्नेः) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान आपके (शर्मणि) सुखकारक घर में और (प्रणीतौ) उत्तम धर्मयुक्त नीति में आप की स्त्री (स्याम) होऊं ॥ ४९ ॥

भावार्थ—विवाह के समय में स्त्री पुरुष को चाहिए कि व्यभिचार को छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का सङ्ग सर्वथा छोड़ आपस में भी अति विषयासक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होके परस्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले संतानों को उत्पन्न करें क्योंकि स्त्री वा पुरुष के लिए अप्रिय, आयु का नाशक, निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं है इसलिए इस व्यभिचारी कर्म को सब प्रकार छोड़ और धर्माचरण करने वाला होके पूर्ण अवस्था के सुख को भोगें ॥ ४९ ॥

आपो हि ष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥५०॥

पदार्थ—हे (आपः) जलों के समान शुभ गुणों में व्याप्त होने वाली श्रेष्ठ स्त्रियो ! जो तुम लोग (मयोभुवः) सुख भोगने वाली (स्थ) हो (ताः) वे तुम (ऊर्जे) बलयुक्त पराक्रम और (महे) बड़े २ (चक्षसे) अपने योग्य (रणाय) संग्राम के लिए (नः) हम लोगों को (हि) निश्चय करके (दधातन) धारण करो ॥ ५० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे स्त्री अपने पतियों को रक्खें वैसे पति भी अपनी २ स्त्रियों को सदा सुख देवें । ये दोनों युद्धकर्म में भी पृथक् २ न बसें अर्थात् इकट्ठे ही सदा वर्ताव रक्खें ॥ ५० ॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥५१॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! (वः) तुम्हारा और (नः) हमारा (इह) गृहाश्रम में जो (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) कर्त्तव्य आनन्द है (तस्य) उस का (मातरः, उशतीरिव) जैसे कामयमाना माता अपने पुत्रों को सेवन करती हैं वैसे (भाजयत) सेवन करो ॥ ५१ ॥

भावार्थ—स्त्रियों को चाहिए कि जैसे माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं वैसे अपने-अपने पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें । ऐसे ही अपनी २ स्त्रियों की पति भी सेवा करें । जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ५१ ॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

तस्मा॒ऽअरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ । आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ ५२ ॥

पदार्थ—हे (आपः) जलों के समान शान्त स्वभाव से वर्त्तमान स्त्रियो ! जो तुम लोग (नः) हम लोगों के (क्षयाय) निवासस्थान के लिये (जिन्वथ) तृप्त और (जनयथ) अच्छे सन्तान उत्पन्न करो उन (वः) तुम लोगों को हम लोग (अरम्) सामर्थ्य के साथ (गमाम) प्राप्त होवें । जिस धर्मयुक्त व्यवहार की प्रतिज्ञा करो उसका पालन करने वाली होओ और उसी का पालन करने वाले हम लोग भी होवें ॥ ५२ ॥

भावार्थ—जिस पुरुष की जो स्त्री वा जिस स्त्री का जो पुरुष हो वे आपस में किसी का अनिष्टचिन्तन कदापि न करें ऐसे ही सुख और सन्तानों से शोभायमान हो के धर्म्म से घर के कार्य्य करें ॥ ५२ ॥

मित्र इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । मित्रो देवताः । उपरिष्टाद् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मि॒त्रः स॒ᳪसृज्य॑ पृथि॒वीं भूमिं॑ च॒ ज्योति॑षा स॒ह ।
सु॒जा॑तं जा॒तवे॑दसमय॒क्ष्माय॑ त्वा॒ सᳪसृ॑जामि प्र॒जाभ्यः॑ ॥ ५३ ॥

पदार्थ—हे पते ! जो आप (मित्रः) सब के मित्र होके (प्रजाभ्यः) पालने योग्य प्रजाओं को (अयक्ष्माय) आरोग्य के लिए (ज्योतिषा) विद्या और न्याय को अच्छी शिक्षा के प्रकाश के (सह) साथ (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष (च) और (भूमिम्) पृथिवी के साथ (संसृज्य) सम्बन्ध करके मुझ को सुख देते हो । उस (सुजातम्) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (जातवेदसम्) वेदों के जानने हारे (त्वा) आपको मैं (संसृजामि) प्रसिद्ध करती हूँ ॥ ५३ ॥

भावार्थ—स्त्रीपुरुषों को चाहिए कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त हो वे अच्छे २ सन्तानों को उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

रुद्रा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । रुद्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

रु॒द्राः स॒ᳪसृज्य॑ पृथि॒वीं बृ॒हज्ज्योतिः॒ समी॑धिरे ।
तेषां॑ भा॒नुरज॑स्र॒ऽइच्छु॒क्रो दे॒वेषु॑ रोचते ॥ ५४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! (इत्) जैसे (रुद्राः) प्राणवायु के अवयवरूप समानादि वायु (संसृज्य) सूर्य्य को उत्पन्न करके (पृथिवीम्) भूमि को (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) प्रकाश के साथ (समीधिरे) प्रकाशित करते हैं (तेषाम्) उन से उत्पन्न हुआ (शुक्रः) कान्तिमान् (भानुः) सूर्य्य (देवेषु) दिव्य पृथिवी आदि में (अजस्रः) निरन्तर (रोचते) प्रकाश करता है वैसे ही विद्यारूपी न्याय सूर्य्य को उत्पन्न कर के प्रजापुरुषों को प्रकाशित और उन से प्रजाओं में दिव्य सुख का प्रचार करो ॥ ५४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे वायु सूर्य्य का, सूर्य्य प्रकाश का, नेत्रों से देखने के व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस के सुख के साधन उपसाधन करने वाले होके सुखों को सिद्ध करें ॥ ५४ ॥

संसृष्टामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । सिनीवाली देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों को कैसी दासी रखनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स॒ᳪसृ॒ष्टां वसु॑भी रु॒द्रैर्धीरैः॑ कर्म॒ण्यां᳖ मृदं॑म् । हस्ता॑भ्यां मृ॒द्वीं कृ॒त्वा सि॑नीवा॒ली कृ॑णोतु॒ ताम् ॥ ५५ ॥

पदार्थ—हे पते ! आप जैसे कारीगर मनुष्य (हस्ताभ्याम्) हाथों से (कर्मण्याम्) क्रिया से सिद्ध की हुई (मृदम्) मट्टी को योग्य करता है वैसे (धीरैः) अच्छा संयम रखने (वसुभिः) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए (रुद्रैः) और जिन्हों ने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन से विद्या बल को पूर्ण किया हो उन्हों से (संसृष्टाम्) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई हो उस ब्रह्मचारिणी युवती को (मृद्वीम्) कोमल गुण स्वभाव वाली (कृणोतु) कीजिए और जो स्त्री (सिनीवाली) प्रेमबद्ध कन्याओं को बलवान् करने वाली है (ताम्) उसको अपनी स्त्री करके सुखी कीजिये ॥ ५५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कुम्हार आदि कारीगर लोग जल से मट्टी को कोमल कर उससे घड़े आदि पदार्थ बना के सुख के काम सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् माता पिता से शिक्षा को प्राप्त हुई हृदय को प्रिय ब्रह्मचारिणी कन्याओं को पुरुष लोग विवाह के लिये ग्रहण कर के सब काम सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

सिनीवालीत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सि॒नी॒वा॒ली सु॑कप॒र्दा सु॑कुरी॒रा स्वौ॑प॒शा । सा तुभ्य॑मदिते म॒ह्योखां द॑धातु॒ हस्त॑योः ॥ ५६ ॥

पदार्थ—हे (महि) सत्कार के योग्य (अदिते) अखंडित आनन्द भोगने वाली स्त्री ! जो (सिनीवाली) प्रेम से युक्त (सुकपर्दा) अच्छे केशों वाली (सुकुरीरा) सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने हारी और (स्वौपशा) अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनानेवाली जिस (तुभ्यम्) तेरे (हस्तयोः) हाथों में (उखाम्) दाल आदि रांधने की बटलोई को (दधातु) धारण करे (सा) उसका तू सेवन कर ॥ ५६ ॥

भावार्थ—श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर दासियों को रक्खें कि जिससे सब पाक आदि की सेवा ठीक ठीक समय पर होती रहे ॥५६॥

उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उ॒खां कृ॑णोतु श॒क्त्या बा॒हुभ्या॒मदि॑तिर्धि॒या । मा॒ता पु॒त्रं यथो॒पस्थे॒ साऽग्निं बि॑भर्तु॒ गर्भ॒ऽआ । म॒खस्य॒ शिरो॑ऽसि ॥ ५७ ॥

पदार्थ—हे गृहस्थ पुरुष ! जिस कारण तू (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तमांग के समान (असि) है इस कारण आप (धिया) बुद्धि वा कर्म से तथा (शक्त्या) पाकविद्या के सामर्थ्य और (बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (उखाम्) पकाने की बटलोई को (कृणोतु) सिद्ध कर जो (अदितिः) जननी आपकी स्त्री है (सा) वह (गर्भे) अपनी कोख में (यथा) जैसे माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रम्) पुत्र को सुखपूर्वक बैठावे वैसे (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य्य को धारण करे ॥५७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । कुमार स्त्रीपुरुषों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर बल बुद्धि और पराक्रमयुक्त सन्तान उत्पन्न होने के लिये वैद्यकशास्त्र की रीति से बड़ी बड़ी ओषधियों से पाक बना के और विधिपूर्वक गर्भाधान करके पीछे पथ्य से रहें और आपस में मित्रता के साथ वर्त्त के पुत्रों के गर्भाधानादि कर्म्म किया करें ॥५७॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवताः ।
पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य चोत्कृती छन्दसी । षड्जः स्वरः ।

फिर स्त्री पुरुष क्या करके क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वस॑वस्त्वा कृण्वन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वाऽसि॑ पृथि॒व्य॑सि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाᳪ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यᳪ सु॒वीर्य॑ᳪ सजा॒तान्यज॑मानाय रु॒द्रास्त्वा॑ कृण्वन्तु॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वाऽस्य॒न्तरि॑क्षमसि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाᳪ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यᳪ सु॒वीर्य॑ᳪ सजा॒तान्यज॑मानायाऽऽदि॒त्यास्त्वा॑ कृण्वन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वाऽसि॒ द्यौर॑सि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाᳪ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यᳪ सु॒वीर्य॑ᳪ सजा॒तान्यज॑मानाय॒ विश्वे॑ त्वा दे॒वा वै॑श्वान॒राः कृ॑ण्वन्त्वानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वाऽसि॒ दिशो॑ऽसि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाᳪ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यᳪ सु॒वीर्य॑ᳪ सजा॒तान्यज॑मानाय ॥ ५८ ॥

पदार्थ—हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) धनंजय प्राणवायु के समतुल्य (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (पृथिव्यसि) विस्तृत सुख करनेहारी है उस (त्वा) तुझको (गायत्रेण) वेद में विधान किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से (वसवः) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य रहनेवाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) करें । हे कुमार ब्रह्मचारी पुरुष ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) प्राणवायु के समान निश्चल है और (पृथिवी) पृथिवी के समान क्षमायुक्त (असि) है जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) उक्त वसुसंज्ञक विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपादन किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से मेरा पति (कृण्वन्तु) करें ।

सो तू (**मयि**) अपनी प्रिय पत्नी मुझ में (**प्रजाम्**) सुन्दर सन्तानों (**रायः**) धन की (**पोषम्**) पुष्टि (**गौपत्यम्**) गौ पृथिवी वा वाणी के स्वामीपन और (**सुवीर्य्यम्**) सुन्दर पराक्रम को (**धारय**) स्थापन कर। मैं तू दोनों (**सजातान्**) एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को (**यजमानाय**) विद्या देने हारे आचार्य्य को विद्या ग्रहण के लिये समर्पण करें। हे स्त्रि ! जो तू (**अंगिरस्वत्**) आकाश के समान (**ध्रुवा**) निश्चल (**असि**) है और (**अन्तरिक्षम्**) अविनाशी प्रेमयुक्त (**असि**) है उस (**त्वा**) तुझको (**रुद्राः**) रुद्रसंज्ञक चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवने हारे विद्वान् लोग (**त्रैष्टुभेन**) वेद में कहे हुए (**छन्दसा**) त्रिष्टुप्छन्द से मेरी स्त्री (**कृण्वन्तु**) करें। हे वीर पुरुष ! जो तू आकाश के समान निश्चल है और दृढ़ प्रेम से युक्त है जिस तुझको चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे विद्वान् लोग वेद में प्रतिपादन किये त्रिष्टुप्छन्द से मेरा स्वामी करें। वह तू (**मयि**) अपनी प्रिय पत्नी मुझ में (**प्रजाम्**) बल तथा धर्म से युक्त सन्तानों (**रायः**) राज्यलक्ष्मी की (**पोषम्**) पुष्टि (**गोपत्यम्**) पढ़ाने के अधिष्ठातृत्व और (**सुवीर्य्यम्**) अच्छे पराक्रम को (**धारय**) धारण कर मैं तू दोनों (**सजातान्**) एक उदर से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर वेदविद्या की शिक्षा होने के लिये (**यजमानाय**) अङ्ग उपाङ्गों के सहित वेद पढ़ाने हारे अध्यापक को देवें। हे विदुषी स्त्री ! जो तू (**अङ्गिरस्वत्**) आकाश के समान (**ध्रुवा**) अचल (**असि**) है (**द्यौः**) सूर्य के सदृश प्रकाशमान (**असि**) है उस (**त्वा**) तुझको (**आदित्याः**) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करके पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वान् लोग (**जागतेन**) वेद में कहे (**छन्दसा**) जगती छन्द से मेरी पत्नी (**कृण्वन्तु**) करें। हे विद्वान् पुरुष ! जो तू आकाश के तुल्य दृढ़ और सूर्य के तुल्य तेजस्वी है उस तुझको अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवनेवाले पूर्ण विद्या से युक्त धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदोक्त जगती छन्द से मेरा पति करें। वह तू (**मयि**) अपनी प्रिय भार्य्या मुझ में (**प्रजाम्**) शुभगुणोंसे युक्त सन्तानों (**रायः**) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी को (**पोषम्**) पुष्टि (**गोपत्यम्**) सम्पूर्ण विद्या के स्वामीपन और (**सुवीर्यम्**) सुन्दर पराक्रम को (**धारय**) धारण कर। मैं तू दोनों (**सजातान्**) अपने सन्तानों को जन्म से उपदेश करके सब विद्या ग्रहण करने के लिये (**यजमानाय**) क्रिया कौशल के सहित सब विद्याओं के पढ़ानेहारे आचार्य को समर्पण करें हे सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त पत्नि ! जो तू (**अङ्गिरस्वत्**) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान (**ध्रुवा**) निश्चल (**असि**) है और (**दिशः**) सब दिशाओं में कीर्तिवाली (**असि**) है। उस तुझको (**वैश्वानराः**) सब मनुष्यों में शोभायमान (**विश्वे**) सब (**देवाः**) उपदेशक विद्वान् लोग (**आनुष्टुभेन**) वेद में कहे गये (**छन्दसा**) अनुष्टुप्छन्द से मेरे आधीन (**कृण्वन्तु**) करें। हे पुरुष ! जो तू सूत्रात्मा वायु के सदृश स्थित है (**दिशः**) सब दिशाओं में कीर्तिवाला (**असि**) है जिस (**त्वा**) तुझको सब प्रजा में शोभायमान सब विद्वान् लोग मेरे आधीन करें। सो आप (**मयि**) मुझ में (**प्रजाम्**) शुभलक्षणयुक्त सन्तानों (**रायः**) सब ऐश्वर्य्य की (**पोषम्**) पुष्टि (**गोपत्यम्**) वाणी की चतुराई और (**सुवीर्य्यम्**) सुन्दर पराक्रम को (**धारय**) धारण कर। मैं तू दोनों जने अच्छा उपदेश होने के लिये (**सजातान्**) अपने सन्तानों को (**यजमानाय**) सत्य के उपदेशक अध्यापक के समीप समर्पण करें ॥५८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब स्त्री पुरुष एक दूसरे की परीक्षा करके आपस में दृढ़ प्रीतिवाले होवें तब वेदोक्त रीति से यज्ञ का विस्तार और वेदोक्त नियमानुसार विवाह करके धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करें। जब कन्या पुत्र आठ वर्ष के हों तब माता पिता उनको अच्छी शिक्षा देवें। इसके पीछे ब्रह्मचर्य्य धारण करा के विद्या पढ़ाने के लिये अपने घर से बहुत दूर आप्त विद्वान् पुरुषों और आप्त विदुषी स्त्रियों की पाठशालाओं में भेज देवें। वहां पाठशाला में जितने धन का खर्च करना उचित हो उतना करें क्योंकि सन्तानों को विद्यादान के विना कोई उपकार वा धर्म नहीं बन सकता। इसलिए इसका निरन्तर अनुष्ठान किया करें ॥५८॥

अदित्या इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदितिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अदि॑त्यै रास्ना॒स्यदि॑तिष्टे॒ बिलं॑ गृभ्णातु। कृ॒त्वाय॒ सा म॒ही-मु॒खां मृ॒न्मयीं॒ योनि॑म॒ग्नये॑। पु॒त्रेभ्यः॒ प्राय॑च्छ॒दादि॑तिः श्र॒पया॒निति॑॥५९॥

पदार्थ—हे पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री ! जिस कारण तू (**अदित्यै**) विद्याप्रकाश के लिये (**रास्ना**) दानशील (**असि**) है इसलिए (**ते**) तुझ से (**बिलम्**) ब्रह्मचर्य्य को धारण (**कृत्वाय**) करके (**अदितिः**) पुत्र और कन्या को (**गृभ्णातु**) ग्रहण करें सो (**सा**) तू (**अदितिः**) माता (**मृन्मयीम्**) मट्टी की (**योनिम्**) मिली और पृथक् (**महीम्**) बड़ी (**उखाम्**) पकाने की बटलोई को (**अग्नय**) अग्नि के निकट (**पुत्रेभ्यः**) पुत्रों को (**प्रायच्छत्**) देवे विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त होकर बटलोई में (**इति**) इस प्रकार (**श्रपयान्**) अन्नादि पदार्थों को पकाओ ॥ ५९ ॥

भावार्थ—लड़के पुरुषों और लड़कियां स्त्रियों की पाठशाला में जा ब्रह्मचर्य्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखें और आहार विहार भी अच्छे नियम से सेवें। कभी विषय की कथा न सुनें। मद्य-मांस आलस्य और अत्यन्त निद्रा को त्याग के पढ़ानेवाले की सेवा और उसके अनुकूल वर्त्त के अच्छे नियमों को धारण करें ॥५९॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः।
स्वराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर विद्वान् लोग पढ़नेहारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को कैसे शुद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वस॑वस्त्वा धूपयन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्रु॒द्रास्त्वा॑ धूपयन्तु॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वदा॑दि॒त्यास्त्वा॑ धूपयन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्विश्वे॑ त्वा दे॒वा वै॑श्वान॒रा धू॑पय॒न्त्वानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वदिन्द्र॑स्त्वा धूपयतु॒ वरु॑णस्त्वा धूपयतु॒ विष्णु॑स्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

पदार्थ—हे ब्रह्मचारिन् वा ब्रह्मचारिणि ! जो (**वसवः**) प्रथम विद्वान् लोग (**गायत्रेण**) वेद के (**छन्दसा**) गायत्री छन्द से (**त्वा**) तुझको (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणों के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान (**धूपयन्तु**) संस्कारयुक्त करें (**रुद्राः**) मध्यम विद्वान् लोग (**त्रैष्टुभेन**) वेदोक्त (**छन्दसा**) त्रिष्टुप्छन्द से (**अङ्गिरस्वत्**) विज्ञान के समान (**त्वा**) तेरा (**धूपयन्तु**) विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें (**आदित्याः**) सर्वोत्तम अध्यापक विद्वान् लोग (**जागतेन, छन्दसा**) वेदोक्त जगती छन्द से (**अङ्गिरस्वत्**) ब्रह्माण्ड के शुद्ध वायु के सदृश (**त्वा**) तेरा (**धूपयन्तु**) धर्मयुक्त व्यवहार के ग्रहण से संस्कार करें (**वैश्वानराः**) सब मनुष्यों में सत्य धर्म और विद्या के प्रकाश करनेवाले (**विश्वे**) सब (**देवाः**) सत्योपदेष्टा विद्वान् लोग (**आनुष्टुभेन**) वेदोक्त अनुष्टुप् (**छन्दसा**) छन्द से (**अङ्गिरस्वत्**) बिजुली के समान (**त्वा**) तेरा (**धूपयन्तु**) सत्योपदेश से संस्कार करें (**इन्द्रः**) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा (**त्वा**) तेरा (**धूपयन्तु**) राजनीति विद्या से संस्कार करे (**वरुणः**) श्रेष्ठ न्यायाधीश (**त्वा**) तुझको (**धूपयतु**) न्यायक्रिया से संयुक्त करे और (**विष्णुः**) सब विद्या और योगाङ्गों का वेत्ता योगिजन (**त्वा**) तुझको (**धूपयतु**) योगविद्या से संस्कारयुक्त करे, तू इन सबकी सेवा किया कर ॥ ६० ॥

भावार्थ—सब अध्यापक स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि सब श्रेष्ठ क्रियाओं से कन्या पुत्रों को विद्या और शिक्षा से युक्त शीघ्र करें। जिससे ये पूर्ण ब्रह्मचर्य्य ही कर के गृहाश्रम आदि का यथोक्त काल में आचरण करें ॥६०॥

अदितिष्ट्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदित्यादयो लिंगोक्ता देवताः।
भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः। उखेवरुत्रीत्युत्तरस्य
प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विदुषी स्त्रियां कन्याओं को उत्तम शिक्षा से धर्मात्मा विद्यायुक्त करके इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अदि॑तिष्ट्वा दे॒वी वि॒श्वदे॑व्यावती पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गिर॒स्वत् ख॑नत्ववट दे॒वानां॑ त्वा॒ पत्नी॑र्दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गिर॒स्वद्द॑धतूखे धि॒षणा॑स्त्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वद॒भीन्ध॑तामुखे॒ वरू॑त्रीष्ट्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वच्छ्र॑पयन्तूखे॒ ग्नास्त्वा॑ दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गिर॒स्वत्प॑चन्तूखे॒ जन॑य॒स्त्वाच्छि॑न्नपत्रा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वत्प॑चन्तूखे ॥ ६१ ॥

पदार्थ—हे (**अवट**) बुराई और निन्दारहित बालक (**विश्वदेव्यावती**) सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली (**अदितिः**) अखंड विद्या पढ़ानेहारी (**देवी**) विदुषी स्त्री (**पृथिव्याः**) भूमि के (**सधस्थे**) एक शुभस्थान में (**त्वा**) तुझको (**अङ्गिरस्वत्**) अग्नि से समान (**खनतु**) जैसे भूमि को खोद के कूप जल निष्पन्न करते हैं वैसे विद्यायुक्त करे। हे (**उखे**) ज्ञानयुक्त कुमारी ! (**देवानाम्**) विद्वानों की (**पत्नीः**) स्त्री जो (**विश्वदेव्यावतीः**) सम्पूर्ण विद्वानों में अधिक विद्यायुक्त (**देवीः**) विदुषी (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**सधस्थे**) एक स्थान में (**अङ्गिरस्वत्**) प्राण के सदृश (**त्वा**) तुझ को (**दधतु**) धारण करें। हे (**उखे**) विज्ञान की इच्छा करनेवाली (**विश्वदेव्यावतीः**) सब विद्वानों में उत्तम (**धिषणाः**) प्रशंसित वाणीयुक्त बुद्धिमती (**देवीः**) विद्यायुक्त स्त्री लोग (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**सधस्थे**) एक स्थान मे (**त्वा**) तुझको (**अङ्गिरस्वत्**) प्राण के तुल्य (**अभीन्धताम्**) प्रदीप्त करें। हे (**उखे**) अन्न आदि पकाने की बटलोई के समान विद्या को धारण करने हारी कन्ये ! (**विश्वदेव्यावतीः**) उत्तम विदुषी (**वरूत्रीः**) विद्या ग्रहण के लिए स्वीकार करने योग्य (**देवीः**) रूपवती स्त्री लोग (**पृथिव्याः**) भूमि के (**सधस्थे**) एक शुद्ध स्थान में (**त्वा**) तुझको (**अङ्गिरस्वत्**) सूर्य के तुल्य (**श्रपयन्तु**) शुद्ध तेजस्विनी करे। हे (**उखे**) ज्ञान चाहने हारी कुमारी ! (**विश्वदेव्यावतीः**) बहुत विद्यावानों में उत्तम (**देवीः**) शुद्ध विद्या से युक्त (**ग्नाः**) वेदवाणी को जाननेवाली स्त्री लोग (**पृथिव्याः**) भूमि के एक (**सधस्थे**) उत्तम स्थान में (**त्वा**) तुझ को (**अङ्गिरस्वत्**) बिजुली के तुल्य (**पचन्तु**) दृढ़ बलधारिणी करें। हे (**उखे**) ज्ञान की इच्छा रखनेवाली कुमारी ! (**विश्वदेव्यावतीः**) उत्तम विद्या पढ़ी (**अच्छिन्नपत्राः**) अखण्डित नवीन शुद्ध वस्त्रों को धारने वा यानों में चलनेवाली (**जनयः**) शुभगुणों से प्रसिद्ध (**देवीः**) दिव्य गुणों की देने हारी स्त्री लोग (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**सधस्थे**) उत्तम प्रदेश में (**त्वा**) तुझको (**अङ्गिरस्वत्**) ओषधियों के रस के समान (**पचन्तु**) संस्कारयुक्त करें। हे कुमारी कन्ये ! तू इन पूर्वोक्त सब स्त्रियों से ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या ग्रहण कर ॥६१॥

भावार्थ—माता पिता आचार्य्य और अतिथि अर्थात् भ्रमणशील विरक्त पुरुषों को चाहिये कि जैसे रसोइये बटलोई आदि पात्रों में अन्न का संस्कार करके उत्तम सिद्ध करते हैं। वैसे ही बाल्यावस्था से लेके विवाह से पहिले पहिले लड़कों और लड़कियों को उत्तम विद्या और शिक्षा से सम्पन्न करें ॥६१॥

मित्रस्यत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उसके ऐश्वर्य की निरन्तर रक्षा करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मि॒त्रस्य॑ चर्षणी॒धृतोऽवो॑ दे॒वस्य॑ सान॒सि ।
द्यु॒म्नं चि॒त्रश्र॑वस्तमम् ॥ ६२ ॥

पदार्थ—हे स्त्री तू ! (**चर्षणीधृतः**) अच्छी शिक्षा से मनुष्यों का धारण करने हारे (**मित्रस्य**) मित्र (**देवस्य**) कमनीय अपने पति के (**चित्रश्रवस्तमम्**) आश्चर्यरूप अन्नादि पदार्थ जिससे हों ऐसे (**सानसि**) सेवन योग्य प्राचीन (**द्युम्नम्**) धन की (**अवः**) रक्षा कर ॥६२॥

भावार्थ—घर पर काम करने में कुशल स्त्री को चाहिए कि घर के भीतर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक ठीक बढ़ाया करे ॥६२॥

देवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । भुरिग्बृहतीछन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वस्त्वा॑ सवि॒तोद्व॑पतु सुपा॒णिः स्व॑ङ्गु॒रिः सु॑बा॒हुरु॒त शक्त्या॑ ।
अव्य॑थमाना पृथि॒व्यामाशा॒ दिश॒ऽआ पृ॑ण ॥ ६३ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (**सुबाहुः**) अच्छे जिसके भुजा (**सुपाणिः**) सुन्दर हाथ और (**स्वङ्गुरिः**) शोभायुक्त जिसकी अंगुली हों ऐसा (**सविता**) सूर्य के समान ऐश्वर्य्यदाता (**देवः**) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से युक्त पति (**शक्त्या**) अपने सामर्थ्य से (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर स्थित (**त्वा**) तुझको (**उद्वपतु**) वृद्धि के साथ गर्भवती करे । और तू भी अपने सामर्थ्य से (**अव्यथमाना**) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी (**आशाः**) इच्छा और कीर्ति से सब (**दिशः**) दिशाओं को (**आपृण**) पूरण कर ॥६३॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि आपस में प्रसन्न एक दूसरे को हृदय से चाहनेवाले परस्पर परीक्षा कर अपनी अपनी इच्छा से स्वयम्वर विवाह कर अत्यन्त विषयासक्ति को त्याग ऋतुकाल में गमन करनेवाले होकर अपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें । क्योंकि इसीसे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रकट और बल की हानि भी नहीं होती इसलिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥६३॥

उत्थायेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उ॒त्थाय॑ बृह॒ती भ॒वोदु॑ तिष्ठ ध्रु॒वा त्वम् ।
मित्रै॒तां त॑ उ॒खां परि ददा॒म्यभि॑त्या एषा मा भे॑दि ॥ ६४॥

पदार्थ—हे विदुषि कन्ये ! तू (**ध्रुवा**) मङ्गल कार्य्यों में निश्चित बुद्धि वाली और (**बृहती**) बड़े पुरुषार्थ से युक्त (**भव**) हो । विवाह करने के लिये (**उत्तिष्ठ**) उद्यत हो (**उत्थाय**) आलस्य छोड़ के उठकर इस पति का स्वीकार कर । हे (**मित्र**) मित्र (**ते**) तेरे लिये (**एताम्**) इस (**उखाम्**) प्राप्त होने योग्य कन्या को (**अभित्यै**) भय रहित होने के लिए (**परिददामि**) सब प्रकार देता हूँ (**उ**) इसलिये तू (**एषा**) इस प्रत्यक्ष प्राप्त हुई स्त्री को (**मा भेदि**) भिन्न मत कर ॥ ६४ ॥

भावार्थ—कन्या और वर को चाहिये कि अपनी अपनी प्रसन्नता से कन्या पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा करके ग्रहण करने की इच्छा करें । जब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे तभी माता पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और ये दोनों आपस में भेद वा व्यभिचार कभी न करें । किन्तु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री होकर मिल के चलें ॥ ६४ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः । धृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर उन स्त्री पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

वस॑वस्त्वाऽऽछृ॑न्दन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्रु॒द्रास्त्वा॒ऽऽ-छृ॑न्दन्तु त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वदा॑दि॒त्यास्त्वाऽऽछृ॑न्दन्तु जाग॑तेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्विश्वे॑ त्वा दे॒वा वै॑श्वान॒रा आछृ॑न्द॒न्त्वानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वत् ॥ ६५ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! (**वसवः**) प्रथम विद्वान् लोग (**गायत्रेण**) श्रेष्ठ विद्याओं का जिससे गान किया जावे उस वेद के विभाग रूप स्तोत्र (**छन्दसा**) गायत्री छन्द से जिस (**त्वा**) तुझको (**अङ्गिरस्वत्**) अग्नि के तुल्य (**आछृन्दन्तु**) प्रकाशमान करें (**रुद्राः**) मध्यम विद्वान् लोग (**त्रैष्टुभेन**) कर्म उपासना और ज्ञान जिससे स्थिर हों उस (**छन्दसा**) वेद के स्तोत्र भाग से (**अङ्गिरस्वत्**) प्राण के समान (**त्वा**) तुझको (**आछृन्दन्तु**) प्रज्वलित करें (**आदित्याः**) उत्तम विद्वान् लोग (**जागतेन**) जगत् की विद्या प्रकाश करने हारे (**छन्दसा**) वेद के स्तोत्रभाग से (**त्वा**) तुझको (**अङ्गिरस्वत्**) सूर्य्य के सदृश तेजधारी (**आछन्दन्तु**) शुद्ध करें (**वैश्वानराः**) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (**देवाः**) सत्य उपदेश देने हारे (**विश्वे**) सब विद्वान् लोग (**आनुष्टुभेन**) विद्या ग्रहण के पश्चात् जिससे दुःखों को छुड़ावे उस (**छन्दसा**) वेदभाग से (**त्वा**) तुझको (**अङ्गिरस्वत्**) समस्त ओषधियों के रस के समान (**आछृन्दन्तु**) शुद्ध करें ॥६५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों को चाहिये कि जो विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री लोग तुम को शरीर और आत्मा का बल कराने हारे उपदेश से सुशोभित करें उनकी सेवा और सत्संग निरन्तर करो और अन्य तुच्छ बुद्धि वाले पुरुषों वा स्त्रियों का सङ्ग कभी मत करो ॥६५॥

आकूतिमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः ।
विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आकू॑तिम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॒ मनो॑ मे॒धाम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑ चि॒त्तं विज्ञा॑तम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑ वा॒चो विधृ॑तिम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ मन॑वे॒ स्वाहा॒ऽग्नये॑ वैश्वान॒राय॒ स्वाहा॑ ॥ ६६ ॥

पदार्थ—वे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग वेद के गायत्री आदि मन्त्रों से (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**आकूतिम्**) उत्साह देनेवाली क्रिया के (**प्रयुजम्**) प्रेरणा करने हारे (**अग्निम्**) प्रसिद्ध अग्नि को (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**मनः**) इच्छा के साधन को (**मेधाम्**) बुद्धि और (**प्रयुजम्**) सम्बन्ध करने हारी (**अग्निम्**) बिजुली को (**स्वाहा**) सत्य व्यवहारों से (**विज्ञातम्**) जाने हुए विषय के (**प्रयुजम्**) व्यवहारों में प्रयोग किये (**अग्निम्**) अग्नि के समान प्रकाशित (**चित्तम्**) चित्त को (**स्वाहा**) योगक्रिया की रीति से (**वाचः**) वाणियों को (**विधृतिम्**) विविध प्रकार की धारणा को (**प्रयुजम्**) संप्रयोग किये हुए (**अग्निम्**) योगाभ्यास से उत्पन्न की हुई बिजुली को (**प्रजापतये**) प्रजा के स्वामी (**मनवे**) मननशील पुरुष के लिये (**स्वाहा**) सत्यवाणी को और (**अग्नये**) विज्ञानस्वरूप (**वैश्वानराय**) सब मनुष्यों के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये (**स्वाहा**) धर्मयुक्त क्रिया को युक्त करा के निरन्तर (**आछृन्दन्तु**) अच्छे प्रकार शुद्ध करो ॥६६॥

भावार्थ—यहां पूर्व मन्त्र से (**आछृन्दन्तु**) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों को पढ़ और उत्साह आदि को बढ़ा कर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ॥६६॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । सविता देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।
विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥६७॥

पदार्थ—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं (**विश्वः**) सब (**मर्त्तः**) मनुष्य (**नेतुः**) सब के नायक (**देवस्य**) सब जगत् के प्रकाशक परमेश्वर के (**सख्यम्**) मित्रता को (**वुरीत**) स्वीकार करें (**विश्वः**) सब मनुष्य (**राये**) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (**इषुध्यति**) वाणादि आयुधों को धारण करें (**स्वाहा**) सत्यवाणी और (**द्युम्नम्**) प्रकाशयुक्त यश वा अन्न को (**वृणीत**) ग्रहण करें और जैसे इससे तू (**पुष्यसे**) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होवें ॥६७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । गृहस्थ मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्ति कराने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥६७॥

मा स्वित्यस्य आत्रेय ऋषिः । अम्बा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या क्या कहें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मा सु भि॑त्था॒ मा सु रि॒षोऽम्ब॑ धृष्णु वी॒रय॑स्व॒ सु ।
अ॒ग्निश्चे॒दं क॑रिष्यथः ॥ ६८ ॥

पदार्थ—हे (**अम्ब**) माता ! तू हमको विद्या से (**मा**) मत (**सुभित्थाः**) छुड़ावे और (**मा**) मत (**सुरिषः**) दुःख दे (**धृष्णु**) दृढ़ता से (**सुवीरयस्व**) सुन्दर आरम्भ किये कर्म्म की समाप्ति कर । ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों (**अग्निः**) अग्नि के समान (**च, इदम्**) करने योग्य इस सब कर्म्म को (**करिष्यथः**) आचरण करो ॥६८॥

भावार्थ—माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिससे ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें । और जो करने योग्य हो वही करें न करने योग्य कभी न करें ॥६८॥

दृंहस्वेत्यस्यात्रेय ऋषि । अम्बा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर पति अपनी स्त्री से क्या क्या कहे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दृꣳह॑स्व देवि पृथिवि स्व॒स्तय॑ऽआसु॒री मा॒या स्व॒धया॑ कृ॒ताऽसि॑ ।
जुष्टं॑ दे॒वेभ्य॑ इ॒दम॑स्तु ह॒व्यमरि॑ष्टा॒ त्वमुदि॑हि य॒ज्ञे अ॒स्मिन् ॥६९॥

पदार्थ—हे (पृथिवि) भूमि के समान विद्या के विस्तार को प्राप्त हुई (देवि) विद्या से युक्त पत्नि ! तू ने (स्वस्तये) सुख के लिये (स्वधया) अन्न वा जल से जो (आसुरी) प्राणपोषक पुरुषों की (माया) बुद्धि है उसको (कृता) सिद्ध किया (असि) है। उससे तू मुझ पति को (दृंहस्व) उन्नति दे (अरिष्टा) हिंसा रहित हुई (अस्मिन्) इस (यज्ञे) सङ्ग करने योग्य गृहाश्रम में (उदिहि) प्रकाश को प्राप्त हो जो तूने (जुष्टम्) सेवन किया (इदम्) यह (हव्यम्) देने लेने योग्य पदार्थ है वह (देवेभ्यः) विद्वानों वा उत्तम गुण होने के लिये (अस्तु) होवे ॥६९॥

भावार्थ—जो स्त्री पति को प्राप्त होके घर में वर्त्तती है वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिए प्रयत्न करे। सब अन्न आदि खाने पीने के पदार्थ रुचिकारक बनवावे वा बनावे और किसी को दुःख वा किसी के साथ वैरबुद्धि कभी न करे ॥६९॥

द्वन्न इत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

फिर वह स्त्री अपने पति से कैसे कैसे कहे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

द्रुन्नः सुर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रोऽअद्भुतः ॥ ७० ॥

पदार्थ—हे पते ! (द्रुन्नः) वृक्षादि ओषधि ही जिनके अन्न हैं ऐसे (सर्पिरासुतिः) घृत आदि पदार्थों को शोधने वाले (प्रत्नः) सनातन (होता) देने लेने हारे (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (सहसः) बलवान् के (पुत्रः) पुत्र (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुण कर्म और स्वभाव से युक्त आप सुख होने के लिये इस गृहाश्रम के बीच शोभायमान हूजिये ॥७०॥

भावार्थ—यहां पूर्व मन्त्र से (स्वस्तये, अस्मिन्, यज्ञे, उदिहि) इन चार पदों की अनुवृत्ति आती है। कन्या को उचित है कि जिसका पिता ब्रह्मचर्य्य से बलवान् हो और जो पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि पदार्थों को इकट्ठा कर सके उस शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह करके निरन्तर सुख भोगे ॥७०॥

परस्या इत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

फिर पति अपनी स्त्री को क्या क्या उपदेश करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

परस्याऽअधि संवतोऽवराँ२ऽअभ्यातर ।
यत्राहमस्मि ताँ २ऽअव ॥ ७१ ॥

पदार्थ—हे कन्ये ! जिस (परस्याः) उत्तम कन्या तेरा मैं (अधि) स्वामी हुआ चाहता हूँ सो तू (संवतः) संविभाग को प्राप्त हुए (अवरान्) नीच स्वभावों को (अभ्यातर) उल्लङ्घन कर और (यत्र) जिस कुल में (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (तान्) उन उत्तम मनुष्यों की (अव) रक्षा कर ॥७१॥

भावार्थ—कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल और विद्या वाले वा बराबर के पति को स्वीकार करे किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाले को नहीं। जिसके साथ विवाह करे उसके सम्बन्धी और मित्रों को सब काल में प्रसन्न रक्खे ॥७१॥

परमस्या इत्यस्य वारुणिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः।
ऋषभः स्वरः॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या क्या कहे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

पुरमस्याः परावतो रोहिदश्वऽइहागहि ।
पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥ ७२ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पावक के समान तेजस्विन् विज्ञानयुक्त पते ! (रोहिदश्वः) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों से युक्त (पुरीष्यः) पालने में श्रेष्ठ (पुरुप्रियः) बहुत मनुष्यों की प्रीति रखने वाले (त्वम्) आप (इह) इस गृहाश्रम में (परावत) दूर देश से (परमस्याः) अति उत्तम गुण और स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति सुन के (आगहि) आइये और उस के साथ (मृधः) दूसरों के पदार्थों की आकांक्षा करनेहारे शत्रुओं का (तर) तिरस्कार कीजिए ॥ ७२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अपनी कन्या वा पुत्र का समीप देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जावे उतना ही अधिक सुख होवे निकट करने में कलह ही होता है ॥ ७२ ॥

यदग्ने इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर स्त्रीपुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या क्या प्रतिज्ञा करें और करावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दुध्मसि ।
सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवा अवस्था को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष वा स्त्री ! आप जैसे (कानि कानिचित्) कोई-कोई भी वस्तु (ते) तेरी हैं वे हम लोग (दारूणि) काष्ठ के पात्र में (दध्मसि) धारण करें (यत्) जो कुछ हमारी चीज है (तत्) सो (सर्वम्) सब (ते) तेरी (अस्तु) होवे जो हमारा (घृतम्) घृतादि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को तू (जुषस्व) सेवन कर। जो कुछ तेरा पदार्थ है सो सब हमारा है, जो तेरा घृतादि पदार्थ है उसको हम ग्रहण करें ॥ ७३ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रक्खें किन्तु ईर्ष्या से आपस में कभी भेद न करें जिस से सब के लिये सब सुखों की वृद्धि होवे और विघ्न न उठें इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी परस्पर वर्त्तें ॥ ७३ ॥

यदत्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडानुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रोऽअतिसर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए पते ! आप और (उपजिह्विका) जिस की जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल अर्थात् वश में हो ऐसी स्त्री (यत्) जो (अत्ति) भोजन करे (यत्) जो (वम्रः) मुख से बाहर निकाला प्राणवायु (अतिसर्पति) अत्यन्त चलता है (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) तेरा (अस्तु) होवे। जो तेरा (घृतम्) घी आदि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को (जुषस्व) सेवन किया कर ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता हो उस के अनुकूल स्त्री पुरुष दोनों वर्त्तें। जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का है वह स्त्री का भी होवे। इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिए किन्तु आपस में मिलकर आनन्द भोगें ॥ ४७ ॥

अहरहरित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर गृहस्थ लोग आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥७५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! (अहरहः) नित्यप्रति (तिष्ठते) वर्त्तमान (अश्वायेव) जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ आगे धरते हैं वैसे (अस्मै) इस गृहस्थ पुरुष के लिए (अप्रयावम्) अन्याय से पृथक् गृहाश्रम के योग्य (घासम्) भोगने योग्य पदार्थों को (भरन्तः) धारण करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि तथा (इषा) अन्नादि से (संमदन्तः) सम्यक् आनन्द को प्राप्त हुए (प्रतिवेशाः) धर्म्म विषयक प्रवेश में निश्चित हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य को (मारिषाम) कभी नष्ट न करें ॥ ७५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। गृहस्थ मनुष्यों को चाहिए कि घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये जो दूध आदि पदार्थों को पशुओं के पालक नित्य इकट्ठें करते हैं वैसे अपने ऐश्वर्य को बढ़ाके सुख देवें और धन के अहंकार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें किन्तु दूसरों की वृद्धि वा धन देख के सदा आनन्द मानें ॥ ७५ ॥

नाभेत्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर ये मनुष्य लोग आपस में कैसे संवाद करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नाभा पृथिव्याः समिधानेऽअग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।
इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥

पदार्थ—हे गृही लोगो ! जैसे हम लोग (बृहते) बड़े (रायः) लक्ष्मी के (पोषाय) पुष्ट करने हारे पुरुष के लिए (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा) बीच (समिधाने) अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए (अग्नौ) अग्नि में और (पृतनासु) सेनाओं में (सासहिम्) अत्यन्त सहनशील (इरम्मदम्) अन्न से आनन्दित होने वाले (बृहदुक्थम्) बड़ी प्रशंसा से युक्त (यजत्रम्) संग्राम करने योग्य (अग्निम्) बिजुली के समान शीघ्रता करने हारे (जेतारम्) विजयशील सेनापति पुरुष को (हवामहे) बुलाते हैं। वैसे तुम लोग भी इसको बुलाओ ॥ ७६ ॥

भावार्थ—पृथिवी का राज्य करते हुए मनुष्यों को चाहिये कि आग्नेय आदि अस्त्रों और तलवार आदि शस्त्रों का संचय कर और पूर्ण बुद्धि तथा शरीरबल से युक्त पुरुष को सेनापति करके निर्भयता के साथ वर्त्तें ॥ ७६ ॥

याः सेना इत्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

राजपुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न से चोर आदि दुष्टों का बार-बार निवारण करें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

याः सेनाऽअभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाऽउत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्तेऽअग्नेऽपिदधाम्यास्ये ॥ ७७ ॥

पदार्थ—हे सेना और सभा के स्वामी ! जैसे मैं (याः) जो (अभित्वरीः) सम्मुख होके युद्ध करने हारी (आव्याधिनीः) बहुत रोगों से युक्त वा ताड़ना देने हारी (उगणाः) शस्त्रों को लेके विरोध में उद्यत हुई (सेनाः) सेना हैं उन (उत) और (ये) जो (स्तेनाः) सुरंग लगा के दूसरों के पदार्थों को हरने वाले (च) और (ये) जो (तस्कराः) द्यूत आदि कपट से दूसरों के पदार्थ लेने हारे हैं (तान्) उनको (ते) इस (अग्ने) अग्नि के (आस्ये) जलती हुई लपट में (अपिदधामि) गेरता हूँ वैसे तू भी इन को इस में धरा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिए कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हों उनका निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हों तथा डाकू चोर खोटे वचन बोलनेहारे मिथ्यावादी व्यभिचारी मनुष्य होवें उन को अग्नि से जलाने आदि भयंकर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर वश में करें ॥ ७७ ॥

दंष्ट्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर उन दुष्टों को किस-किस प्रकार ताड़ना करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लून् जम्भ्यैस्तस्कराँ२ऽउत ।
हनुभ्याꣳ स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान् ॥७८॥

पदार्थ—हे (भगवः) ऐश्वर्य वाले सभा सेना के स्वामी ! जैसे (त्वम्) आप (जम्भ्यैः) मुख के जीभ आदि अवयवों और (दंष्ट्राभ्याम्) तीक्ष्ण दाँतों से जिन (मलिम्लून्) मलीन आचरण वाले सिंह आदि को और (हनुभ्याम्) मसूड़ों से (तस्करान्) चोरों के समान वर्त्तमान (सुखादितान्) अन्याय से दूसरों के पदार्थों को भोगने और (स्तेनान्) रात में भीति आदि फोड़ तोड़ के पराया माल मारने हारे मनुष्यों को (खाद) जड़ से नष्ट करें वैसे (तान्) उनको हम लोग (उत) भी नष्ट करें ॥ ७८ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि गौ आदि बड़े उपकार के पशुओं को मारने वाले सिंह आदि वा मनुष्य हों उन तथा जो चोर आदि मनुष्य हैं उनको अनेक प्रकार के बन्धनों से बाँध ताड़ना दे नष्ट कर वश में लावें ॥ ७८ ॥

ये जनेष्वित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । सेनापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर ये राजपुरुष किस-किस का निवारण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने ।
ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९॥

पदार्थ—हे सभापते ! मैं सेनाध्यक्ष (ये) जो (जनेषु) मनुष्यों में (मलिम्लवः) मलीन स्वभाव से आते जाते (स्तेनासः) गुप्त चोर जो (वने) वन में (तस्कराः) प्रसिद्ध चोर लुटेरे और (ये) जो (कक्षेषु) कटरी आदि में (अघायवः) पाप करते हुए जीवन की इच्छा करने वाले हैं (तान्) उन को (ते) आप के (जम्भयोः) फैलाये मुख में ग्रास के समान (दधामि) धरता हूँ ॥ ७९ ॥

भावार्थ—सेनापति आदि राजपुरुषों का यही मुख्य कर्त्तव्य है जो ग्राम और वनों में प्रसिद्ध चोर तथा लुटेरे आदि पापी पुरुष हैं उन को राजा के आधीन करें ॥ ७९ ॥

यो अस्मभ्यमित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥८०॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के स्वामिन् ! आप (यः) जो (जनः) मनुष्य (अस्मभ्यम्) हम धर्मात्माओं के लिये (अरातीयात्) शत्रुता करे (यः) जो (नः) हमारे साथ (द्वेषते) दुष्टता करे (च) और हमारी (निन्दात्) निन्दा करे (यः) जो (अस्मान्) हम को (धिप्सात्) दम्भ दिखावे और हमारे साथ छल करे (तम्) उस (सर्वम्) सब को (भस्मसा) जला के सम्पूर्ण भस्म (कुरु) कीजिए ॥ ८० ॥

भावार्थ—अध्यापक उपदेशक और राजपुरुषों को चाहिए कि पढ़ाने शिक्षा उपदेश और दण्ड से निरन्तर विरोध का विनाश करें ॥ ८० ॥

संशितमित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । पुरोहितयजमानौ देवते । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

अब पुरोहित यजमान आदि से किस-किस पदार्थ की इच्छा करें—

सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम् ।
सꣳशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (यस्य) जिस यजमान पुरुष का (पुरोहितः) प्रथम धारण करने हारा (अस्मि) हूँ उसका और (मे) मेरा (संशितम्) प्रशंसा के योग्य (ब्रह्म) वेद का विज्ञान और उस यजमान का (संशितम्) प्रशंसा के योग्य (वीर्य्यम्) पराक्रम प्रशंसित (बलम्) बल (संशितम्) और प्रशंसा के योग्य (जिष्णु) जय का स्वभाववाला (क्षत्रम्) क्षत्रियकुल होवे ॥ ८१ ॥

भावार्थ—जो जिसका पुरोहित और जो जिसका यजमान हो वे दोनों आपस में जिस विद्या के योग बल और धर्माचरण से आत्मा की उन्नति और ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर का बल बढ़े वही कर्म निरन्तर किया करें ॥ ८१ ॥

उदेषामित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । सभापतिर्यजमानो देवता ।
विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उदेषां बाहूऽअतिरमुद्वर्चोऽअथो बलम् ।
क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ२ऽअहम् ॥ ८२ ॥

पदार्थ—(अहम्) मैं यजमान वा पुरोहित (ब्रह्मणा) वेद और ईश्वर के ज्ञान देने से (एषाम्) इन पूर्वोक्त चोर आदि दुष्टों के (बाहू) बल और पराक्रम को (उदतिरम्) अच्छे प्रकार उल्लंघन करूँ इनके (वर्चः) तेज तथा (बलम्) सामर्थ्य को और (अमित्रान्) शत्रुओं को (उत्क्षिणोमि) मारता हूँ (अथो) इस को पश्चात् (स्वान्) अपने मित्रों के तेज और सामर्थ्य को (उन्नयामि) वृद्धि के साथ प्राप्त करूँ ॥ ८२ ॥

भावार्थ—राजा आदि यजमान तथा पुरोहितों को चाहिए कि पापियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के सब पदार्थों की वृद्धि सदैव सब प्रकार से किया करें ॥ ८२ ॥

अन्नपत इत्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । यजमानपुरोहितौ देवते ।
उपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को इस संसार में कैसे कैसे वर्त्तना इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्रप्र दातारं तारिषऽ ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८३ ॥

पदार्थ—हे (अन्नपते) ओषधि अन्नों के पालन करने हारे यजमान वा पुरोहित ! आप (नः) हमारे लिए (अनमीवस्य) रोगों के नाश से सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्रप्रदेहि) अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इस अन्न के (दातारम्) देनेहारे को (तारिषः) तृप्त कर तथा (नः) हमारे (द्विपदे) दो पग वाले मनुष्यादि तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले गौ आदि पशुओं के लिए (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कर ॥ ८३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें और दूसरों को देवें । मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें । जिससे ईश्वर की सृष्टिक्रमानुकूल आचरण से सब के सुखों की सदा उन्नति होवे ॥ ८३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सभा और सेना के अध्यक्ष और प्रजा के मनुष्यों को करने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का ग्यारहवां (११) अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

दृ॒शा॒नो रु॒क्मऽउ॒र्व्या व्य॑द्यौद् दु॒र्मर्ष॒मायुः॑ श्रि॒ये रु॑चा॒नः ।
अ॒ग्निर॒मृतो॑ऽअभव॒द्वयो॑भि॒र्यदे॑नं॒ द्यौरज॑नयत्सु॒रेताः॑ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (दृशानः) दिखलाने हारा (द्यौः) स्वयं प्रकाश-स्वरूप (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (उर्व्या) अति स्थूल भूमि के साथ सब मूर्तिमान् पदार्थों को (व्यद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है वैसे जो (श्रिये, रुचानः) सौभाग्य लक्ष्मी के अर्थ रुचिकर्त्ता (रुक्मः) सुशोभित जन (अभवत्) होता और जो (सुरेताः) उत्तम वीर्ययुक्त (अमृतः) नाशरहित (दुर्मर्षम्) शत्रुओं से दुःख से निवारण के योग्य (आयुः) जीवन को (अजनयत्) प्रकट करता है (वयोभिः) अवस्थाओं के साथ (एनम्) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता हो उस को तुम सदा निरन्तर सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से परमेश्वर को निश्चय कराते है वैसे ही मनुष्य को होना चाहिए ॥ १ ॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नक्तो॒षासा॒ सम॑नसा॒ विरू॑पे धा॒पये॑ते॒ शिशु॒मेक॑ꣳ समी॒ची ।
द्यावा॒क्षामा॑ रु॒क्मोऽअ॒न्तर्वि॑भा॑ति दे॒वाऽअ॒ग्निं धा॑रयन् द्रविणो॒दाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (अग्निम्) बिजुली को (द्रविणोदाः) बलदाता (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करें जो (रुक्मः) रुचिकारक हो के (अन्त) अन्तःकरण में (विभाति) प्रकाशित होता है जो (समनसा) एक विचार से विदित (विरूपे) अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध रूप युक्त (समीची) सब प्रकार सब को प्राप्त होनेवाली (द्यावाक्षामा) प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोषासा) रात्रि और दिन जैसे (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को दो माता, (धापयेते) दूध पिलाती हैं वैसे उस को तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जननी माता और धायी बालक को दूध पिलाती हैं वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करती हैं और जो बिजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है इस बात का तुम सब निश्चय करो ॥२॥

विश्वारूपाणीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः । सविता देवता ।
विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में परमेश्वर के कृत्य का उपदेश किया है—

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद् भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॒ण्योऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वरेण्यः) ग्रहण करने योग्य (कविः) जिस की दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है वा सर्वज्ञ (सविता) सब संसार का उत्पादक जगदीश्वर वा सूर्य्य (उषसः) प्रातःकाल का समय (प्रयाणम्) प्राप्त करने को (अनुविराजति) प्रकाशित होता है (विश्वा) सब (रूपाणि) पदार्थों के स्वरूप (प्रतिमुञ्चते) प्रसिद्ध करता है और (द्विपदे) मनुष्यादि दो पगवाले (चतुष्पदे) तथा गौ आदि चार पगवाले प्राणियों के लिए (नाकम्) सब दुःखों से पृथक् (भद्रम्) सेवने योग्य सुख को (व्यख्यत्) प्रकाशित करता और (प्रासावीत्) उन्नति करता है ऐसे उस सूर्य्यलोक को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जिस परमेश्वर ने सम्पूर्ण रूपवान् द्रव्यों का प्रकाशक प्राणियों के सुख का हेतु प्रकाशमान सूर्यलोक रचा है उसी की भक्ति सब मनुष्य करें ॥ ३ ॥

सुपर्णोऽसीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः । गरुत्मान् देवता । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सु॒प॒र्णो॒ऽसि ग॒रुत्माँ॑स्त्रि॒वृत्ते॒ शिरो॑ गाय॒त्रं चक्षु॑र्बृहद्रथन्त॒रे प॒क्षौ । स्तोम॑ऽआ॒त्मा छन्दा॒ꣳस्यङ्गा॑नि॒ यजू॑ꣳषि॒ नाम॑ । साम॑ ते त॒नूर्वा॑मदे॒व्यं य॑ज्ञाय॒ज्ञियं॒ पुच्छं॒ धिष्ण्याः॑ श॒फाः । सु॒प॒र्णो॒ऽसि ग॒रुत्मा॒न्दिवं॑ गच्छ॒ स्वः॑ पत ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस से (ते) आपका (त्रिवृत्) तीन कर्म्म उपासना और ज्ञानों से युक्त (शिरः) दुःखों का जिस से नाश हो (गायत्रम्) गायत्री छन्द से कहे विज्ञानरूप अर्थ (चक्षुः) नेत्र (बृहद्रथन्तरे) बड़े २ रथों के सहाय से दुःखों को छुड़ानेवाले (पक्षौ) इधर उधर के अवयव (स्तोमः) स्तुति के योग्य ऋग्वेद (आत्मा) अपना स्वरूप (छन्दांसि) उष्णिक् आदि छन्द (अङ्गानि) कान आदि (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र (नाम) नाम (यज्ञायज्ञियम्) ग्रहण करने और छोड़ने योग्य व्यवहारों के योग्य (वामदेव्यम्) वामदेव ऋषि ने जाने वा पढ़ाये (साम) तीसरे सामवेद (ते) आपका (तनूः) शरीर है इससे आप (गरुत्मान्) महात्मा (सुपर्णः) सुन्दर सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त (असि) है । जिस से (धिष्ण्याः) शब्द करने के हेतुओं में साधु (शफा) खुर तथा (पुच्छम्) बड़ी पूंछ के समान अन्त्य का अवयव है उसके समान जो (गरुत्मान्) प्रशंसित शब्दोच्चारण से युक्त (सुपर्णः) सुन्दर उड़ने वाला (असि) है उस पक्षी के समान आप (दिवम्) सुन्दर विज्ञान को (गच्छ) प्राप्त हूजिये और (स्वः) सुख को (पत) ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फल और मूलों से युक्त वृक्ष शोभित होते हैं वैसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने हारे सुशोभित होते हैं । जैसे पशु पूंछ आदि अवयवों से अपने कार्य करते और जैसे पक्षी पंखों से आकाश मार्ग से जाते आते आनन्दित होते हैं वैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ के साथ सुखों को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

विष्णोः क्रम इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः । विष्णुर्देवता ।
भुरिगुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है—

विष्णोः॒ क्रमो॑ऽसि सपत्न॒हा गा॑य॒त्रं छन्द॒ऽआरो॑ह पृथि॒वीमनु॒ विक्र॑मस्व॒ विष्णोः॒ क्रमो॑ऽस्यभिमाति॒हा त्रैष्टु॑भं॒ छन्द॒ऽआरो॑हा॒न्तरि॑क्ष॒मनु॒ विक्र॑मस्व॒ । विष्णोः॒ क्रमो॑ऽस्यरातीय॒तो ह॒न्ता जाग॑तं॒ छन्द॒ऽआरो॑ह॒ दिव॒मनु॒ विक्र॑मस्व॒ विष्णोः॒ क्रमो॑ऽसि शत्रूय॒तो ह॒न्ताऽऽनु॑ष्टुभं॒ छन्द॒ऽआरो॑ह॒ दिशोऽनु॒ विक्र॑मस्व ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जिससे आप (विष्णोः) व्यापक जगदीश्वर के (क्रमः) व्यवहार के शोधक (सपत्नहा) और शत्रुओं के मारने हारे (असि) हो इससे (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दः) शुद्ध अर्थ पर (आरोह) आरूढ़ हूजिये (पृथिवीम्) पृथिव्यादि पदार्थों से (अनुविक्रमस्व) अपने अनुकूल व्यवहार साधिये तथा जिस कारण आप (विष्णोः) व्यापक कारण के (क्रमः) कार्य्यरूप (अभिमातिहा) अभिमानियों को मारने हारे (असि) हैं इस से आप (त्रैष्टुभम्) तीन प्रकार के सुखों से संयुक्त (छन्दः) बलदायक वेदार्थ को (आरोह) ग्रहण और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अनुविक्रमस्व) अनुकूल व्यवहार में युक्त कीजिये जिस से आप (विष्णोः) व्यापनशील बिजुली रूप अग्नि के (क्रमः) जानने हारे (अरातीयतः) विद्या आदि दान के विरोधी पुरुष के (हन्ता) नाश करने हारे (असि) हैं इस से आप (जागतम्) जगत् को जानने का हेतु (छन्दः) सृष्टिविद्या को बलयुक्त करने हारे विज्ञान को (आरोह) प्राप्त हूजिये और (दिवम्) सूर्य आदि अग्नि को (अनुविक्रमस्व) अनुक्रम से उपयुक्त कीजिये जो आप (विष्णोः) हिरण्यगर्भ वायु के (क्रमः) ज्ञापक तथा (शत्रूयतः) अपने को शत्रु का आचरण करनेवाले पुरुषों के (हन्ता) मारनेवाले (असि) हैं सो आप (आनुष्टुभम्) अनुकूलता के साथ सुख सम्बन्ध के हेतु (छन्दः) आनन्दकारक वेद भाग को (आरोह) उपयुक्त कीजिये और (दिशः) पूर्व आदि दिशाओं के (अनुविक्रमस्व) अनुकूल प्रयत्न कीजिये ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वेदविद्या से भूगर्भविद्याओं का निश्चय तथा पराक्रम से उनकी उन्नति करके रोग और शत्रुओं का नाश करें ॥ ५ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अक्र॑न्दद॒ग्नि स्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑हद्वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन् ।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धोऽअख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो सभापति (सद्यः) एक दिन में (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (द्यौः) सूर्य्य प्रकाश रूप (अग्निः) विद्युत् अग्नि के समान (स्तनयन्निव) शब्द करता हुआ शत्रुओं को (अक्रन्दत्) प्राप्त होता है जैसे (क्षामा) पृथिवी (वीरुधः) वृक्षों को फल फूलों से युक्त करती है वैसे प्रजाओं के लिये सुखों को (रेरिहत्) अच्छे बुरे कर्मों का शीघ्र फल देता है जैसे सूर्य (इद्धः) प्रदीप्त और

(समञ्जन्) सम्यक् पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (व्यख्यत्) प्रसिद्ध करता और (भानुना) अपनी दीप्ति के साथ (अन्तः) सब लोकों के बीच (आभाति) प्रकाशित होता है । वैसे जो सभापति शुभ गुण कर्मों से प्रकाशित हो उसको तुम लोग राजकार्य्यों में संयुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सब लोकों के बीच में स्थित हुआ सब को प्रकाशित और आकर्षण करता है और जैसे पृथिवी बहुत फलों को देती है वैसे ही मनुष्य को राज्य के कार्य्यों में अच्छे प्रकार से उपयुक्त करो ॥ ६ ॥

अग्न इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा निर्वर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन ।
सुन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अभ्यावर्त्तिन्) सन्मुख होके वर्त्तनेवाले (अग्ने) तेजस्वी पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष ! आप (आयुषा) बड़े जीवन (वर्चसा) अन्न तथा पढ़ने आदि (प्रजया) सन्तानों (धनेन) धन (सन्या) सब विद्याओं का विभाग करने हारी (मेधया) बुद्धि (रय्या) विद्या की शोभा और (पोषेण) पुष्टि के साथ (अभिनिवर्त्तस्व) निरन्तर वर्त्तमान हूजिये और (मा) मुझको भी इन उक्त पदार्थों से संयुक्त कीजिये ॥७॥

भावार्थ—मनुष्य लोग भूगर्भादि विद्या के विना ऐश्वर्य्य को प्राप्त नहीं कर सकते और बुद्धि के विना विद्या भी नहीं हो सकती ॥७॥

अग्ने अङ्गिर इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर विद्याभ्यास करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्नेऽअङ्गिरः शुतं ते सन्त्वावृतः सुहस्रं तऽउपावृतः ।
अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नुष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पदार्थविद्या के जानने हारे (अङ्गिरः) विद्या के रसिक विद्वान् पुरुष ! जिस पुरुषार्थी (ते) आप की अग्नि के समान (शतम्) सैकड़ों (आवृतः) आवृत्तिरूप क्रिया और (सहस्रम्) हजार (ते) आपके (उपावृतः) आवृत्तिरूप सुखों के भोग (सन्तु) होवें (अध) इसके पश्चात् आप इनसे (पोषस्य) पोषक मनुष्य की (पोषेण) रक्षा से (नष्टम्) परोक्ष भी विज्ञान को (नः) हमारे लिये (पुनः) फिर भी (आकृधि) अच्छे प्रकार कीजिये तथा विगड़ी हुई (रयिम्) प्रशंसित शोभा को (पुनः) फिर भी (नः) हमारे अर्थ (आकृधि) अच्छे प्रकार कीजिये ॥८॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विद्याओं में सैकड़ों आवृत्ति और शिल्प विद्याओं में हजारह प्रकार की प्रवृत्ति से विद्याओं का प्रकाश करके सब प्राणियों के लिए लक्ष्मी और सुख उत्पन्न करें ॥८॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर पढ़ाने हारे का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है—

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नऽइषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी अध्यापक विद्वान् जन ! आप (नः) हम लोगों को (अंहसः) पापों से (पुनः) बार-बार (निवर्त्तस्व) बचाइये (पुनः) फिर हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये और (पुनः) फिर (इषा) तथा (आयुषा) अन्न से (ऊर्जा) पराक्रमयुक्त कर्मों को प्राप्त कीजिये ॥९॥

भावार्थ—विद्वान् लोगों को चाहिये कि सब उपदेश के योग्य मनुष्यों को पापों से निरन्तर हटा के शरीर और आत्मा के बल से युक्त करें और आप भी पापों से बच के परम पुरुषार्थी होवें ॥९॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! आप दुष्ट व्यवहारों से (निवर्त्तस्व) पृथक् हूजिये (विश्वप्स्न्या) सब भोगनेवाले योग्य पदार्थों को भुगवाने हारी (धारया) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करने का हेतु वाणी तथा (रय्या) धन के (सह) साथ (विश्वतः) सब ओर से (परि) सब प्रकार (पिन्वस्व) सुखों का सेवन कीजिये ॥१०॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि कभी अधर्म्म का आचरण न करें और दूसरों को वैसा उपदेश भी न करें इस प्रकार सब शास्त्र और विद्याओं से विराजमान हुए प्रशंसा के योग्य होवें ॥१०॥

आ त्वेत्यस्य ध्रुव ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे शुभ गुण और लक्षणों से युक्त सभापति राजन् ! (त्वा) आपको राज्य की रक्षा के लिये मैं (अन्तः) सभा के बीच (आहार्षम्) अच्छे प्रकार ग्रहण करूं । आप सभा में (अभूः) विराजमान हूजिये (अविचाचलिः) सर्वथा निश्चल (ध्रुवः) न्याय से राज्यपालन में निश्चित बुद्धि होकर (तिष्ठ) स्थिर हूजिये (सर्वाः) सम्पूर्ण (विशः) प्रजा (त्वा) आपको (वाञ्छन्तु) चाहना करें (त्वत्) आपके पालने से (राष्ट्रम्) राज्य (माधिभ्रशत्) नष्टभ्रष्ट न होवे ॥ ११ ॥

भावार्थ—उत्तम प्रजाजनों को चाहिए कि सबसे उत्तम पुरुष को सभाध्यक्ष राजा मान के उसको उपदेश करें कि आप जितेन्द्रिय हुए सब काल में धार्मिक पुरुषार्थी हूजिये । आपके बुरे आचरणों से राज्य कभी नष्ट न होवे । जिससे सब प्रजापुरुष आपके अनुकूल वर्त्तें ॥११॥

उदुत्तममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उदुत्तमं वरुण पाशमुस्मदवाधमं वि मध्यमᳬ श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (वरुण) शत्रुओं को बांधने (आदित्य) स्वरूप से अविनाशी सूर्य्य के समान सत्य न्याय के प्रकाशक सभापति विद्वन् ! आप (अस्मत्) हम से (अधमम्) निकृष्ट (मध्यमम्) मध्यस्थ और (उत्तमम्) उत्तम (पाशम्) बन्धन को (उदवविश्रथाय) विविध प्रकार से छुड़ाइये (अथ) इसके पश्चात् (वयम्) हम प्रजा के पुरुष (अदितये) पृथिवी के अखण्डित राज्य के लिये (तव) आपके (व्रते) सत्य न्याय के पालनरूप नियम में (अनागसः) अपराध रहित (स्याम) होवें ॥१२॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल सत्य आचरणों में वर्त्तमान हुए धर्मात्मा मनुष्य पाप के बन्धनों से छूट के सभी सुखी होते हैं वैसे ही उत्तम राजा को प्राप्त होके प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं ॥१२॥

अग्रे बृहन्नित्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता भुरिगार्षीपंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है—

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वोऽअस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्गऽआ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप (अग्रे) पहिले से जैसे सूर्य्य (स्वङ्गः) सुन्दर अवयवों से युक्त (आजातः) प्रकट हुआ (बृहन्) बड़ा (उषसाम्) प्रभातों के (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में (अस्थात्) स्थिर होता और (रुशता) सुन्दर (भानुना) दीप्ति तथा (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमसः) अन्धकार को (निर्जगन्वान्) निरन्तर पृथक् करता हुआ (आगात्) सब लोक लोकान्तरों को प्राप्त होता है (विश्वा) सब (सद्मानि) स्थूल स्थानों को (अप्राः) प्राप्त होता है उसके समान प्रजा के बीच आप हूजिये ॥१३॥

भावार्थ—जो सूर्य्य के समान श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशित सत्पुरुषों की शिक्षा से उत्कृष्ट बुरे व्यसनों से अलग सत्य न्याय से प्रकाशित सुन्दर अवयव वाला सर्वत्र प्रसिद्ध सब के सत्कार और जानने योग्य व्यवहारों का ज्ञाता और दूतों के द्वारा सब मनुष्यों के आशय को जाननेवाला शुद्ध न्याय से प्रजाओं में प्रवेश करता है वही पुरुष राजा होने के योग्य होता है ॥१३॥

हंस इत्यस्य त्रित ऋषिः । जीवेश्वरौ देवते । स्वराड् जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में परमात्मा और जीव के लक्षण कहे हैं—

हुᳬसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत् ॥१४॥

पदार्थ—हे प्रजा के पुरुषो ! तुम लोग जो (हंसः) दुष्ट कर्मों का नाशक (शुचिषत्) पवित्र व्यवहारों में वर्त्तमान (वसुः) सज्जनों में वसने वा उनको वसानेवाला (अन्तरिक्षसत्) धर्म के अवकाश में स्थित (होता) सत्य का ग्रहण करने और करानेवाला (वेदिषत्) सब पृथिवी वा यज्ञ के स्थान में स्थित (अतिथिः) पूजनीय वा राज्य की रक्षा के लिये यथोचित समय में भ्रमण करनेवाला (दुरोणसत्) ऋतुओं में सुखदायक आकाश में व्याप्त वा घर में रहनेवाला (नृषत्) सेना आदि के नायकों का अधिष्ठाता (वरसत्) उत्तम विद्वानों की आज्ञा में स्थित (ऋतसत्) सत्याचरणों में आरूढ़ (व्योमसत्) आकाश के समान सर्वव्यापक ईश्वर वा

जीवस्थित (अब्जाः) प्राणों के प्रकट करनेहारा (गोजः) इन्द्रिय वा पशुओं को प्रसिद्ध करने हारा (ऋतजाः) सत्य विज्ञान को उत्पन्न करनेहारा (अद्रिजाः) मेघों का वर्षानेवाला विद्वान् (ऋतम्) सत्यस्वरूप (बृहत्) अनन्त ब्रह्म और जीव को जाने उस पुरुष को सभा का स्वामी राजा बना के निरन्तर आनन्द में रहो ॥१४॥

भावार्थ—जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओं को पालने और सुख देने को समर्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है। और ऐसे राजा के विना प्रजाओं को सुख भी नहीं हो सकता ॥१४॥

सीद त्वमित्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

माता का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है—

सीदु त्वं मातुरस्याऽउपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान्।
मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरुन्तरस्याᳬं शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥१५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्या को चाहने वाले पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्याम्) इस माता के विद्यमान होने में (विभाहि) प्रकाशित हो (शुक्रज्योतिः) शुद्ध आचरणों के प्रकाश से युक्त (विद्वान्) विद्यावान् आप पृथिवी के समान आधार (मातुः) इस माता की (उपस्थे) गोद में (सीद) स्थित हूजिये इस माता से (विश्वानि) सब प्रकार की (वयुनानि) बुद्धियों को प्राप्त हूजिये। इस माता को (अन्तः) अन्तःकरण में (मा) मत (तपसा) सन्ताप से तथा (अर्चिषा) तेज से (मा) मत (अभिशोचीः) शोकयुक्त कीजिये। किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त होके प्रकाशित हूजिये ॥१५॥

भावार्थ—जो विदुषी माता द्वारा विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किया माता का सेवक जैसे माता पुत्रों को पालती है वैसे प्रजाओं का पालन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्य्य से प्रकाशित होवे ॥१५॥

अन्तरग्न इत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर राजा क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे।
तस्यास्त्वᳬ हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) वेदों के ज्ञाता (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् ! आप जिस (उखायाः) प्राप्त हुई प्रजा के नीचे अग्नि के समान (स्वे) अपने (सदने) पढ़ने के स्थान में (तपन्) शत्रुओं को संताप कराते हुए (अन्तः) मध्य में (रुचा) प्रीति से वर्त्तो (तस्याः) उस प्रजा के (हरसा) प्रज्वलित तेज से आप शत्रुओं का निवारण करते हुए (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सभाध्यक्ष राजा को चाहिए कि न्याय करने की गद्दी पर बैठ के अत्यन्त प्रीति के साथ राज्य के पालनरूप कार्यों को करे वैसे प्रजाओं को चाहिए कि राजा को सुख देती हुई दुष्टों को ताड़ना करें ॥१६॥

शिवो भूत्वेत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽअथो सीद शिवस्त्वम्।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं को जलानेवाले विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) आप (मह्यम्) हम प्रजाजनों के लिए (शिवाः) मङ्गलाचरण करने हारे (भूत्वा) होकर (इह) इस संसार में (शिवः) मङ्गलकारी हुए (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में रहने हारी प्रजाओं को (शिवाः) मङ्गलाचरण से युक्त (कृत्वा) करके (स्वम्) अपने (योनिम्) राजधर्म के आसन पर (आसदः) बैठिए और (अथो) इसके पश्चात् राजधर्म में (सीद) स्थिर हूजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि आप धर्मात्मा होके प्रजा के मनुष्यों को धार्मिक कर और न्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय किया करे ॥१७॥

दिवस्परीत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दिवस्परि प्रथमं जज्ञेऽअग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणाऽअजस्रमिन्धानऽएनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे सभापति राजन् ! जो (अग्निः) अग्नि के समान आप (अस्मत्) हम लोगों से (दिवः) बिजुली के (परि) ऊपर (जज्ञे) प्रकट होते हैं उन (एनम्) आपको (प्रथमम्) पहिले जो (जातवेदाः) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध उत्पन्न हुए उस आपको (द्वितीयम्) दूसरे जो (नृमणः) मनुष्यों में विचारशील आप (तृतीयम्) तीसरे (अप्सु) प्राण वा जल क्रियाओं में विदित हुए उस आपको (अजस्रम्) निरन्तर (इन्धानः) प्रकाशित करता हुआ विद्वान् (जरते) सब प्रकार स्तुति करता है सो आप (स्वाधीः) सुन्दर ध्यान से युक्त प्रजाओं को प्रकाशित कीजिये ॥१८॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम के सहित विद्या तथा शिक्षा का ग्रहण दूसरे गृहाश्रम से धन का सञ्चय तीसरे वानप्रस्थ आश्रम से तप का आचरण और चौथे संन्यास लेकर वेदविद्या और धर्म का नित्य प्रकाश करें ॥१८॥

विद्मा त इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विद्मा तेऽअग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यतऽआजगन्थ ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (ते) आप के जो (त्रेधा) तीन प्रकार से (त्रयाणि) तीन कर्म हैं उनको हम लोग (विद्म) जानें। हे स्थानों के स्वामी ! (ते) आप के जो (विभृत) विशेष करके धारण करने योग्य (पुरुत्रा) बहुत (धाम) नाम जन्म और स्थानरूप हैं उनको हम लोग (विद्म) जानें। हे विद्वान् पुरुष ! (ते) आपका (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में स्थित गुप्त (परमम्) श्रेष्ठ (नाम) नाम है उसको हम लोग (विद्म) जानें (यतः) जिस कारण आप (आजगन्थ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें (तम्) उस (उत्सम्) कूप के तुल्य तर करने हारे आपको (विद्म) हम लोग जानें ॥१९॥

भावार्थ—प्रजा के पुरुष और राजा को योग्य है कि राजनीति के कामों, सब स्थानों और सब पदार्थों के नामों को जानें। जैसे कुएँ से जल निकाल खेत आदि को तृप्त करते हैं वैसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा को और राजा प्रजाओं को तृप्त करे ॥१९॥

समुद्र इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समुद्रे त्वा नृमणाऽअप्स्वन्तर्नृचक्षाऽईधे दिवो अग्नऽऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाᳬंसमपामुपस्थे महिषाऽअवर्धन् ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (नृमणाः) नायक पुरुषों को विचारने वाला मैं जिस (त्वा) आपको (समुद्रे) आकाश में अग्नि के समान (ईधे) प्रदीप्त करता हूँ (नृचक्षा) बहुत मनुष्यों का देखने वाला मैं (अप्सु) अन्न वा जलों के (अन्तः) बीच प्रकाशित करता हूँ (दिवः) सूर्य के प्रकाश के (ऊधन्) प्रातःकाल में प्रकाशित करता हूँ (तृतीये) तीसरे (रजसी) लोक में (तस्थिवांसम्) स्थित हुए सूर्य के तुल्य जिस आपको (अपाम्) जलों के (उपस्थे) समीप (महिषः) महात्मा विद्वान् लोग (अवर्धन्) उन्नति को प्राप्त करें सो आप हम लोगों की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥२०॥

भावार्थ—प्रजा के बीच वर्त्तमान सब श्रेष्ठ पुरुष राजकार्यों को और राजपुरुष प्रजापुरुषों को नित्य बढ़ाते रहें ॥ २० ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

अब मनुष्यों को कैसा होना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (द्यौः) सूर्यलोक (अग्निः) विद्युत् अग्नि (स्तनयन्निव) शब्द करते हुए के समान (वीरुधः) ओषधियों को (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (सद्यः) शीघ्र (हि) ही (अक्रन्दन्) पदार्थों को इधर उधर चलाता (क्षामा) पृथिवी को (रेरिहत्) कंपाता और यह (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (इद्धः) प्रकाशमान होकर (भानुना) किरणों के साथ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (ईम्) सब ओर से (व्यख्यत्) विख्यात करता है और ब्रह्माण्ड के (अन्तः) बीच (आभाति) अच्छे प्रकार शोभायमान होता है वैसे तुम लोग भी होओ ॥ २१ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने जिसलिए सूर्यलोक को उत्पन्न किया है इसीलिए वह बिजुली के समान सब लोकों का आकर्षण कर और ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाने का हेतु और सब भूगोलों के बीच जैसे शोभायमान होता है वैसे राजा आदि पुरुषों को भी होना चाहिए ॥ २१ ॥

श्रीणामित्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

इन राजकार्यों में कैसे पुरुष को राजा बनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः।
वसुः सूनुः सहसोऽअप्सु राजा विभात्यग्रऽउषसामिधानः ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जो पुरुष (उषसाम्) प्रभात समय के (अग्रे) आरम्भ में (इधानः) प्रदीप्यमान सूर्य के समान (श्रीणाम्) सब उत्तम लक्ष्मियों के मध्य (उदारः) परीक्षित पदार्थों का देने (रयीणाम्) धनों का (धरुणः) धारण करने (मनीषाणाम्) बुद्धियों का (प्रार्पणः) प्राप्त कराने और (सोमगोपाः) ओषधियों वा ऐश्वर्यों की रक्षा करने (सहसः) ब्रह्मचर्य किये जितेन्द्रिय बलवान् पिता का (सूनुः) पुत्र (वसुः) ब्रह्मचर्याश्रम करता हुआ (अप्सु) प्राणों में (राजा) प्रकाशयुक्त होकर (विभाति) शुभ गुणों का प्रकाश करता हो उस को सब का अध्यक्ष करो ॥ २२ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि सुपात्रों को दान देने धन का व्यर्थ खर्च न करने सब को विद्या बुद्धि देने जिसने ब्रह्मचर्याश्रम जिसने किया हो अपने इन्द्रिय जिसके वश में हों योग के यम आदि आठ अङ्गों के सेवन से प्रकाशमान सूर्य के समान अच्छे गुण कर्म्म और स्वभावों से सुशोभित और पिता के समान अच्छे प्रजाओं का पालन करने हारा पुरुष हो उसको राज्य करने के लिए स्थापित करें ॥ २२ ॥

विश्वस्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्चीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽआ रोदसीऽअपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जो विद्वान् (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोकों का (केतुः) पिता के समान रक्षक प्रकाशने हारा (गर्भः) उन के मध्य में रहने (जायमानः) उत्पन्न होने वाला (परायन्) शत्रुओं को प्राप्त होता हुआ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (अपृणात्) पूरण कर्त्ता हो (वीडुम्) अत्यन्त बलवान् (अद्रिम्) मेघ को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करे (पञ्च) पाँच (जनाः) प्राण (अग्निम्) बिजुली को (अयजन्त) संयुक्त करते हैं (चित्) इसी प्रकार जो विद्या आदि शुभ गुणों का प्रकाश करे उस को न्यायाधीश राजा मानो ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य लोक अपनी आकर्षण शक्ति से सब को धारण करता और मेघ को काटने वाला तथा प्राणों से प्रसिद्ध हुये के समान सब विद्याओं को जताने और जैसे माता गर्भ की रक्षा करे वैसे प्रजा का पालने हारा विद्वान् पुरुष हो उस को राज्याधिकार देना चाहिये ॥ २३ ॥

उशिगित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्त्ति धूममरुषम्भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ईश्वर ने (मर्त्येषु) मनुष्यों में जो (उशिक्) मानने योग्य (पावकः) पवित्र करने हारा (अरतिः) ज्ञान वाला (सुमेधाः) अच्छी बुद्धि से युक्त (अमृतः) मरणधर्मरहित (अग्निः) आकाररूप ज्ञान का प्रकाश (निधायि) स्थापित किया है जो (शुक्रेण) शीघ्रकारी (शोचिषा) प्रकाश से (द्याम्) सूर्यलोक को (इनक्षत्) व्याप्त होता हुआ (धूमम्) धुएं (अरुषम्) रूप को (भरिभ्रत्) अत्यन्त धारण वा पुष्ट करता हुआ (उदियर्त्ति) प्राप्त होता है उसी ईश्वर की उपासना करो वा उस अग्नि से उपकार लेओ ॥ २४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि कार्य्य कारण के अनुसार ईश्वर के रचे हुए सब पदार्थों को ठीक २ जान के अपनी बुद्धि बढ़ावें ॥ २४ ॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या २ जानना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जिस कारण (दृशानः) दिखाने हारा (रुक्मः) रुचि का हेतु (श्रिये) शोभा का (रुचानः) प्रकाशक (दुर्मर्षम्) सब दुखों से रहित (आयुः) जीवन करता हुआ (अमृतः) नाशरहित (अग्निः) तेजस्वरूप (उर्व्या) पृथिवी के साथ (व्यद्यौत्) प्रकाशित होता है (वयोभिः) व्यापक गुणों के साथ (अभवत्) उत्पन्न होता और जो (द्यौः) प्रकाशक (सुरेताः) सुन्दर पराक्रम वाला जगदीश्वर (यत्) जिस के लिये (एनम्) इस अग्नि को (अजनयत्) उत्पन्न करता है उस ईश्वर आयु और विद्युत् रूप अग्नि को जानो ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य गुण कर्म और स्वभावों के सहित जगत् रचने वाले अनादि ईश्वर और जगत् के कारण को ठीक २ जान के उपासना करते और उपयोग लेते हैं वे चिरंजीव होकर लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

यस्त इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग कैसे रसोइया का स्वीकार करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यस्तेऽअद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्योऽअच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे (भद्रशोचे) सेवने योग्य दीप्ति से युक्त (यविष्ठ) तरुण अवस्था वाले (देव) दिव्य भोगों के दाता (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (यः) जो (ते) आपका (घृतवन्तम्) बहुत घृत आदि पदार्थों से संयुक्त (अभि) सब प्रकार से (सुम्नम्) सुखरूप (देवभक्तम्) विद्वानों के सेवने योग्य (अपूपम्) भोजन के योग्य पदार्थों वाला (वस्यः) अत्यन्त भोग्य (अच्छ) अच्छे २ पदार्थों को (कृणवत्) बनावे (तम्) उस (प्रतरम्) पाक बनाने हारे पुरुष को आप (अद्य) आज (प्रणय) प्राप्त हूजिये ॥ २६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए अति उत्तम व्यञ्जन और शष्कुली आदि तथा शाक आदि स्वाद से युक्त रुचिकारक पदार्थों को बनाने वाले पाचक पुरुष का ग्रहण करें ॥ २६ ॥

आ तमित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्नऽउक्थऽउक्थऽआभज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियोऽअग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥२७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप जो (सौश्रवसेषु) सुन्दर धन वालों में वर्त्तमान हो (तम्) उस को (आभज) सेवन कीजिये जो (शस्यमाने) स्तुति के योग्य (उक्थे उक्थे) अत्यन्त कहने योग्य व्यवहार में (प्रियः) प्रीति रक्खे (सूर्य्ये) स्तुतिकारक पुरुषों में हुए व्यवहार (अग्ना) और अग्निविद्या में (प्रियः) सेवने योग्य (जातेन) उत्पन्न हुए और (जनित्वैः) उत्पन्न होने वालों के साथ (उद्भवति) उत्पन्न होवे और शत्रुओं को (उद्भिनदत्) उच्छिन्न भिन्न करे (तम्) उस को आप (आभज) सेवन कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो पाक करने में साधु सब का हितकारी अन्न और व्यंजनों को अच्छे प्रकार बनावे उसको अवश्य ग्रहण करें ॥ २७ ॥

त्वामग्न इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वामग्ने यजमानाऽअनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्य्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥२८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जिस (त्वाम्) आपका आश्रय लेकर (उशिजः) बुद्धिमान् (यजमानाः) संगतिकारक लोग (त्वया) आपके (सह) साथ (विश्वा) सब (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य (अनुद्यून) दिनों से (वसु) द्रव्यों को (दधिरे) धारण करें (द्रविणम्) धन की (इच्छमानाः) इच्छा करते हुए (गोमन्तम्) सुन्दर किरणों के रूप से युक्त (व्रजम्) मेघ वा गोस्थान को (विवव्रुः) विविध प्रकार से ग्रहण करें वैसे हम लोग भी होवें ॥ २८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि प्रयत्नशील विद्वानों के संग से पुरुषार्थ के साथ विद्या और सुख को नित्यप्रति बढ़ाते जावें ॥ २८ ॥

अस्तावीत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन विद्वानों के संग से क्या होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अस्ताव्यग्निर्नराᳬ सुशेवो वैश्वानरऽऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे (देवाः) शत्रुओं को जीतने की इच्छावाले विद्वानो ! जिन (ऋषिभिः) ऋषि तुम लोगों ने (नराम्) नायक विद्वानों में (सुशेवः) सुन्दर सुखयुक्त (वैश्वानरः) सब मनुष्यों के आधार (अग्निः) परमेश्वर की (अस्तावि) स्तुति की है जो तुम लोग (अस्मे) हमारे लिये (सुवीरम्) जिससे सुन्दर वीरपुरुष हों उस (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (धत्त) धारण करो उसके आश्रित (सोमगोपाः) ऐश्वर्य के रक्षक हम लोग (अद्वेषे) द्वेष करने के अयोग्य प्रीति के विषय में (द्यावापृथिवी) प्रकाशरूप राजनीति और पृथिवी के राज्य का (हुवेम) ग्रहण करें ॥२९॥

भावार्थ—जो सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर के सेवक धर्मात्मा विद्वान् लोग हैं वे परोपकारी होने से आप्त यथार्थवक्ता होते हैं ऐसे पुरुषों के सत्संग के विना स्थिर विद्या और राज्य को कोई भी नहीं कर सकता ॥ २९ ॥

समिधाग्निमित्यस्य विरूपाक्ष ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किनका सेवन करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे गृहस्थो ! तुम लोग जैसे (समिधा) अच्छे प्रकार इन्धनों से (अग्निम्) अग्नि को प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करनेवाले विद्वान् पुरुष की (दुवस्यत) सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत अन्न तथा (घृतैः) घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम करके जगदुपकार करते हैं । वैसे (अतिथिम्) जिस के आने जाने के समय का नियम न हो उस उपदेशक पुरुष को (बोधयत) स्वागत उत्साहादि से चैतन्य करो और (अस्मिन्) इस जगत् में (हव्या) देने योग्य पदार्थों को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार दिया करो ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों ही की सेवा और सुपात्रों को दान दिया करें जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का हवन करके संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान करके जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के विश्व को सुखी करें ॥ ३० ॥

उदु त्वेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वानों को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उदु त्वा विश्वे देवाऽअग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जिस (त्वा) आपको (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (चित्तिभिः) अच्छे विज्ञानों के साथ अग्नि के समान (उदुभरन्तु) पुष्ट करें (सः) सो (विभावसुः) जिनसे विविध प्रकार की शोभा वा विद्या प्रकाशित हो (सुप्रतीकः) सुन्दर लक्षण से युक्त (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) मङ्गलमय वचनों के उपदेशक (भव) हूजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जैसे विद्वानों से विद्या का सञ्चय करता है वह वैसे ही दूसरों के लिये विद्या का प्रचार करे ॥ ३१ ॥

प्रेदग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करके किसको प्राप्त होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्या प्रकाश करने हारे विद्वन् ! (त्वम्) तू जैसे (ज्योतिष्मान्) ज्योतियों से युक्त सूर्य्य (शिवेभिः) मङ्गलकारी (अर्चिभिः) सत्कार के साधन (बृहद्भिः) बड़े २ (भानुभिः) प्रकाशगुणों से (इत्) ही (भासन्) प्रकाशमान है वैसे (प्रयाहि) सुखों को प्राप्त हूजिये और (तन्वा) शरीर से (प्रजाः) पालने योग्य प्राणियों को (मा) मत (हिंसीः) मारिये ॥३२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे सेनापति आदि राजपुरुषों के सहित राजन् ! आप अपने शरीर से किसी अनपराधी प्राणी को न मार के विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजाओं का पालन करके जीते हुए संसार के सुख को और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के सुख को प्राप्त हूजिये ॥ ३२ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राज्य का प्रबन्ध कैसे करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥३३॥

पदार्थ—हे प्रजा के लोगो ! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे (द्यौः) सूर्य प्रकाश करता है वैसे विद्या और न्याय का प्रकाश करने और (अग्निः) पावक के तुल्य शत्रुओं का नष्ट करने हारा विद्वान् (स्तनयन्निव) बिजुली के समान (अक्रन्दत्) गर्जना और (वीरुधः) वन के वृक्षों की (समञ्जन्) अच्छे प्रकार रक्षा करता हुआ (क्षामा) पृथिवी पर (रेरिहत्) युद्ध करे (जज्ञानः) राजनीति से प्रसिद्ध हुआ (इद्धः) शुभ लक्षणों से प्रकाशित (सद्यः) शीघ्र (व्यख्यत्) धर्मयुक्त उपदेश करे तथा (भानुना) पुरुषार्थ के प्रकाश से (हि) ही (रोदसी) अग्नि और भूमि को (अन्तः) राजधर्म में स्थिर करता हुआ (आभाति) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है वह पुरुष राजा होने के योग्य है ऐसा निश्चित जानो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । वन के वृक्षों की रक्षा के विना बहुत वर्षा और रोगों की न्यूनता नहीं होती और बिजुली के तुल्य दूर के समाचारों के ग्रहण किये विना शत्रुओं को मारने और विद्या तथा न्याय के प्रकाश के विना अच्छा स्थिर राज्य ही नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥

प्रप्रायमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कैसे पुरुष को राज्य व्यवहार में नियुक्त करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्योऽअतिथिः शिवो नः ॥३४॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि (यत्) जो (अयम्) यह (अग्निः) सेनापति (सूर्य्यः) सूर्य्य के (न) समान (बृहद्भाः) अत्यन्त प्रकाश से युक्त (प्र) अति प्रकर्ष के साथ (रोचते) प्रकाशित होता है (यः) जो (यः) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (पूरुम्) पूर्ण बलयुक्त सेनाध्यक्ष के निकट (अभितस्थौ) सब प्रकार स्थिर होवे (दैव्यः) विद्वानों का प्रिय (अतिथिः) नित्य भ्रमण करनेवाला अतिथि (शिवः) मङ्गलदाता विद्वान् पुरुष (दीदाय) विद्या और धर्म को प्रकाशित करे जिसको मैं (भरतस्य) सेवने योग्य राज्य का रक्षक (शृण्वे) सुनता हूँ उसको सेना का अधिपति करो ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य को चाहिये कि जिस पुण्यकीर्ति पुरुष का शत्रुओं में विजय और विद्याप्रचार सुना जावे उस कुलीन पुरुष का सेना को युद्ध कराने हारा अधिकारी करें ॥ ३४ ॥

आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । आपो देवताः । आर्षीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सब मनुष्यों को स्वयंवर विवाह करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्वꣳ सुरभाऽउ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो (आपः) पवित्र जलों के तुल्य सम्पूर्ण शुभगुण और विद्याओं में व्याप्त बुद्धि (देवीः) सुन्दर रूप और स्वभाव वाली कन्या (सुरभौ) ऐश्वर्य के प्रकाश से युक्त (लोके) देखने योग्य लोकों में अपने पतियों को प्रसन्न करें उनको (प्रतिगृभ्णीत) स्वीकार करो तथा उनको सुखयुक्त (कृणुध्वम्) करो जो (एतत्) यह (भस्म) प्रकाशक तेज है (तस्मै) उसके लिये जो (सुपत्नीः) सुन्दर (जनयः) विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रसिद्ध हुई स्त्री नमती है उसके प्रति आप लोग भी (नमन्ताम्) नम्र हूजिये (उ) और तुम स्त्री पुरुष दोनों मिल के (पुत्रम्) पुत्र को (मातेव) माता के तुल्य (अप्सु) प्राणों में (एनम्) इस पुत्र को (बिभृत) धारण करो ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर प्रसन्नता के साथ स्वयंवर विवाह धर्म के अनुसार पुत्रों को उत्पन्न और उनको विद्वान् करके गृहाश्रम के ऐश्वर्य की उन्नति करें ॥ ३५ ॥

अप्स्वग्न इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब जीव किस-किस प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सन् जायसे पुनः ॥३६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्वान् जीव ! जो तू (सधिः) सहनशील (अप्सु) जलों में (ओषधिः) सोमलता आदि ओषधियों को (अनुरुध्यसे) प्राप्त होता है (सः) वह तू (गर्भे) गर्भ में (सन्) स्थित होकर (पुनः) फिर-फिर जन्म मरण (तव) तेरे हैं ऐसा जान ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो जीव शरीर को छोड़ते हैं वे वायु और ओषधि आदि पदार्थों में भ्रमण करते-करते गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण करके प्रकट होते हैं ॥ ३६ ॥

गर्भो असीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर जीव कहां-कहां जाता है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) दूसरे शरीर को प्राप्त होनेवाले जीव ! जिससे तू अग्नि के समान जो (ओषधीनाम्) सोमलता आदि वा यवादि ओषधियों के (गर्भः) दोषों के मध्य (गर्भः) गर्भ (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वनस्पतियों के बीच (गर्भः) शोधक (विश्वस्य) सब (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार के मध्य (गर्भः) ग्रहण करने हारा और जो (अपाम्) प्राण वा जलों का (गर्भः) गर्भरूप भीतर रहने हारा (असि) है इसलिये तू अज अर्थात् स्वयं जन्मरहित (असि) है ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जो बिजुली के समान सब के अन्तर्गत जीव जन्म लेने वाले हैं उनको जानो ॥ ३७ ॥

प्रसद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । धवतः स्वरः ॥

मरण समय में शरीर का क्या होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ३८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशमान पुरुष सूर्य्य के समान (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाश से युक्त जीव ! तू (भस्मना) शरीर दाह के पीछे (पृथिवीम्) पृथिवी (च) अग्नि आदि और (अपः) जलों के बीच (योनिम्) देह दाह के कारण को (प्रसद्य) प्राप्त हो और (मातृभिः) माताओं के उदर में बास करके (पुनः) फिर (आसदः) शरीर को प्राप्त होता है ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे जीवो ! तुम लोग जब शरीर को छोड़ो तब यह शरीर राख रूप करके पृथिवी आदि के पांच भूतों के साथ युक्त करो । तुम और तुम्हारे माता के शरीर में गर्भाशय में पहुँच फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो ॥३८॥

पुनरासद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पुन॑रा॒सद्य॒ सद॑नम॒पश्च॑ पृथि॒वीम॑ग्ने ।
शेषे॑ मा॒तुर्यथो॒पस्थे॒ऽन्तर॑स्या॒ᳪ शि॒वत॑मः ॥ ३९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) इच्छा आदि गुणों से प्रकाशित जन ! जिस कारण तू (अपः) जलो (च) और (पृथिवीम्) भूमितल के (सदनम्) स्थान को (पुनः) फिर फिर (आसद्य) प्राप्त होके (अस्याम्) इस माता के (अन्तः) गर्भाशय में (शिवतमः) मङ्गलकारी होके (यथा) जैसे बालक (मातुः) माता की (उपस्थे) गोद में (शेषे) सोता है वैसे ही माता की सेवा में मङ्गलकारी हो ॥ ३९ ॥

भावार्थ—पुत्रों को चाहिये कि जैसे माता अपने पुत्रों को सुख देती है वैसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओं को निरन्तर आनन्दित करें और माता पिता के साथ विरोध कभी न करें और माता पिता को भी चाहिये कि अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें ॥३९॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षीगायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर पुत्र को माता पिता के विषयों में परस्पर योग्य वर्तमान करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पुन॑रू॒र्जा निव॑र्त्तस्व॒ पुन॑रग्न इ॒षायु॑षा । पुन॑र्नः पा॒ह्यᳪह॑सः ॥ ४० ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजस्विन् माता पिता ! आप (इषायुषा) अन्न और जीवन के साथ (नः) हम लोगों को बढ़ाइये (पुनः) वारम्वार (अंहसः) दुष्ट आचरणों से (पाहि) रक्षा कीजिये । हे पुत्र ! तू (ऊर्जा) पराक्रम के साथ पापों से (निवर्त्तस्व) अलग हूजिये और (पुनः) फिर हम लोगों को भी पापों से पृथक् रखिये ॥४०॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् माता पिता अपने सन्तानों को विद्या और अच्छी शिक्षा से दुष्टाचारों से पृथक् रक्खें वैसे ही सन्तानों को भी चाहिए कि इन माता पिताओं को बुरे व्यवहारों से निरन्तर बचावें । क्योंकि इस प्रकार किये विना सब मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकते ॥४०॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसे वर्तना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है—

स॒ह र॒य्या निव॑र्त्त॒स्वाग्ने॒ पिन्व॑स्व॒ धार॑या ।
वि॒श्वप्स्न्या॑ वि॒श्वत॒स्परि॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप (विश्वप्स्न्या) सब पदार्थों के भोगने का साधन (धारया) अच्छी संस्कृत वाणी के (सह) साथ (विश्वतस्परि) सब संसार के बीच (नि) निरन्तर (वर्त्तस्व) वर्तमान हूजिये और हम लोगों का (पिन्वस्व) सेवन कीजिये ॥४१॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि इस जगत् में अच्छी बुद्धि और पुरुषार्थ के साथ श्रीमान् होकर अन्य मनुष्यों का भी धन्यवाद करें ॥४१॥

बोधा म इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग आपस में कैसे पढ़ें और पढ़ावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

बोधा॑ मे॒ऽअ॒स्य वच॑सो यविष्ठ॒ मᳪहि॑ष्ठस्य॒ प्रभृ॑तस्य स्वधावः ।
पीय॑ति त्वो॒ऽअनु॑ त्वो गृणाति व॒न्दारु॑ष्टे त॒न्वं॑ वन्देऽअग्ने ॥ ४२ ॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त जवान (स्वधावः) प्रशंसित बहुत अन्नों वाले (अग्ने) उपदेश के योग्य श्रोता जन ! तू (मे) मेरे (प्रभृतस्य) अच्छे प्रकार से धारण वा पोषण करनेवाले (महिष्ठस्य) अत्यन्त कहने योग्य बड़े तेरी जो (त्वः) यह निन्दक पुरुष (पीयति) निन्दा करे (त्वः) कोई (अनु) परोक्ष में (गृणाति) स्तुति करे उस (ते) आपके (तन्वम्) शरीर को (वन्दारुः) अभिवादनशील मैं स्तुति करता हूँ ॥४२॥

भावार्थ—जब कोई किसी को पढ़ावे वा उपदेश करे तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े वा सुने । जब सत्य वा मिथ्या का निश्चय हो जावे तब सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे । ऐसे करने में कोई निन्दा और कोई स्तुति करे तो कभी न छोड़े और मिथ्या का ग्रहण कभी न करे । यही मनुष्यों के लिये विशेष गुण है ॥ ४२ ॥

स बोधीत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग क्या करके किसको प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स बो॑धि सू॒रिर्म॒घवा॒ वसु॑पते॒ वसु॑दावन् ।
यु॒यो॒ध्य॒स्मद् द्वेषा॑ᳪसि वि॒श्वक॑र्मणे॒ स्वाहा॑ ॥ ४३ ॥

पदार्थ—हे (वसुपते) धनों के पालक (वसुदावन्) सुपुत्रों के लिए धन देनेवाले ! जो (मघवा) प्रशंसित विद्या से युक्त (सूरिः) बुद्धिमान् आप सत्य को (बोधि) जानें (सः) सो आप (विश्वकर्म्मणे) सम्पूर्ण शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश करते हुए आप (अस्मत्) हम से (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों को (युयोधि) पृथक् कीजिये ॥४३॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य के साथ जितेन्द्रिय हो द्वेष को छोड़ धर्मानुसार उपदेश कर और सुन के प्रयत्न करते हैं वे ही धर्मात्मा विद्वान् लोग सम्पूर्ण सत्य असत्य के जानने और उपदेश करने के योग्य होते हैं और अन्य हठ अभिमान युक्त क्षुद्र पुरुष नहीं ॥ ४३ ॥

पुनस्त्वेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्यों के संकल्प सिद्ध होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पुन॑स्त्वाऽऽदि॒त्या रु॒द्रा वस॑वः॒ समि॑न्धतां॒ पुन॑र्ब्र॒ह्माणो॑ वसुनीथ य॒ज्ञैः ।
घृ॒तेन॒ त्वं त॒न्वं॑ वर्धयस्व स॒त्याः स॑न्तु॒ यज॑मानस्य॒ कामाः॑ ॥४४॥

पदार्थ—हे (वसुनीथ) वेदादि शास्त्रों के बोधरूप और सुवर्णादि धन प्राप्त करानेवाले ! आप (यज्ञैः) पढ़ने पढ़ाने आदि क्रियारूप यज्ञों और (घृतेन) अच्छे संस्कार किये हुए घी आदि वा जल से (तन्वम्) शरीर को नित्य (वर्धयस्व) बढ़ाइये (पुनः) पढ़ने पढ़ाने के पीछे (त्वा) आपको (आ दित्याः) पूर्ण विद्या के बल से युक्त (रुद्राः) मध्यस्थ विद्वान् और (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (ब्रह्माणः) चार वेदों को पढ़ के ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् (समिन्धताम्) सम्यक् प्रकाशित करें । इस प्रकार के अनुष्ठान से (यजमानस्य) यज्ञ सत्संग और विद्वानों का सत्कार करनेवाले पुरुष की (कामाः) कामना (सत्याः) सत्य (सन्तु) होवें ॥४४॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रयत्न के साथ सब विद्याओं को पढ़ और पढ़ा के वारम्वार सत्संग करते हैं कुपथ्य और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के रोग को हटा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं के संकल्प सत्य होते हैं दूसरों के नहीं ॥ ४४ ॥

अपेतेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

सन्तान और पिता माता परस्पर किन किन कर्मों का आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अपे॑त॒ वीत॒ वि च॑ सर्प॒तातो येऽत्र॒ स्थ पु॑रा॒णा ये च॒ नूत॑नाः ।
अदा॑द्य॒मोऽव॒सानं॑ पृथि॒व्याऽअक्र॑न्नि॒मं पि॒तरो॑ लो॒कम॑स्मै ॥ ४५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! (ये) जो (अत्र) इस समय (पृथिव्याः) भूमि के बीच वर्त्तमान) पुराणाः) प्रथम विद्या पढ़ चुके (च) और (ये) जो (नूतनाः) वर्त्तमान समय में विद्याभ्यास करने हारे (पितरः) पिता पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा करनेवाले (स्थ) होवें (ते) वे (अस्मै) इस सत्यसंकल्पी मनुष्य के लिये (इमम्) इस (लोकम्) वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को (अक्रन्) सिद्ध करें जिन तुम लोगों को (यमः) प्राप्त हुआ परीक्षक पुरुष (अवसानम्) अवकाश वा अधिकार को (अदात्) देवे वे तुम लोग (अतः) इस अधर्म से (अपेत) पृथक् रहो और धर्म्म को (वीत) विशेष कर प्राप्त होओ (अत्र) और इसी में (विसर्पत) विशेषता से गमन करो ॥४५॥

भावार्थ—माता पिता और आचार्य्य का यही परम धर्म है जो सन्तानों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा का प्राप्त कराना । जो अधर्म से पृथक् और धर्म्म से युक्त परोपकार में प्रीति रखनेवाले वृद्ध और जवान विद्वान् लोग हैं वे निरन्तर सत्य उपदेश से अविद्या का निवारण और विद्या की प्रवृत्ति करके कृतकृत्य होवें ॥४५॥

संज्ञानमित्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

पढ़ने पढ़ाने वाले क्या करके सुखी हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सं॒ज्ञान॑मसि काम॒धर॑णं॒ मयि॑ ते काम॒धर॑णं भूयात् । अ॒ग्नेर्भस्मा॑-स्य॒ग्नेः पुरी॑षमसि॒ चित॑ स्थ परि॒चित॑ऽऊर्ध्व॒चितः॑ श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जिस (संज्ञानम्) पूरे विज्ञान को प्राप्त (असि) हुए हो जो आप (अग्नेः) अग्नि से हुई (भस्म) राख के समान दोषों को भस्म करते (असि) हो (अग्नेः) बिजुली के जिस (पुरीषम्) पूर्ण बल को प्राप्त हुए (असि) हो उस विज्ञान भस्म और बल को मेरे लिये भी दीजिये जिस (ते) आपका जो (कामधरणम्) सङ्कल्पों का आधार अन्तःकरण है वह (कामधरणम्) कामना का आधार (मयि) मुझ में (भूयात्) होवे । जैसे तुम लोग विद्या आदि शुभगुणों से (चितः) इकट्ठे हुए (परिचितः) सब पदार्थों को सब ओर से इकट्ठे करने हारे (ऊर्ध्वचितः) उत्कृष्ट गुणों के संचयकर्त्ता पुरुषार्थ को (श्रयध्वम्) सेवन करो वैसे हम लोग भी करें ॥४६॥

भावार्थ—जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिये कि सर्दैव विद्वानों से विद्या की इच्छा कर प्रश्न किया करें कि जितना तुम लोगों में पदार्थों का विज्ञान है उतना सब तुम लोग हम लोगों में धारण करो और जितनी हस्तक्रिया आप जानते हैं उतनी सब हम लोगों का सिखाइये ॥४६॥

अयं स इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को उत्तम आचरणों के अनुसार वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अयꣳ सोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥४७॥

पदार्थ—हे (**जातवेदः**) विज्ञान को प्राप्त हुए विद्वान् ! जैसे (**ससवान्**) दान देते (**सन्**) हुए आप (**स्तूयसे**) प्रशंसा के योग्य हो (**अयम्**) यह (**अग्निः**) अग्नि और (**इन्द्रः**) सूर्य्य (**यस्मिन्**) जिसमें (**सोमम्**) सब ओषधियों के रस को धारण करता है जिस (**सुतम्**) सिद्ध हुए पदार्थ को (**जठरे**) पेट में मैं (**दधे**) धारण करता हूँ (**सः**) वह मैं (**वावशानः**) शीघ्र कामना करता हुआ (**सहस्रियम्**) साथ वर्त्तमान अपनी स्त्री को धारण करता हूँ आपके साथ (**वाजम्**) अन्न आदि पदार्थों को (**अत्यम्**) व्याप्त होने योग्य के (**न**) समान (**सप्तिम्**) घोड़े को (**दधे**) धारण करता हूँ वैसा ही तू भी हो ॥४७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार और उपमालंकार हैं । जैसे बिजुली और सूर्य, सब रसों का ग्रहण कर जगत् को रसयुक्त करते हैं वा जैसे पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द भोगते है वैसे मैं इस सब का धारण करता हूँ जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो वैसे मैं भी प्रशंसा के योग्य होऊं ॥ ४७ ॥

अग्ने यत्त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अध्यापक लोगों को निष्कपटता से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

पदार्थ—हे (**यजत्र**) संगम करने योग्य (**अग्ने**) विद्वन् ! (**यत्**) जिस (**ते**) आपका अग्नि के समान (**दिवि**) द्योतनशील आत्मा में (**वर्चः**) विज्ञान का प्रकाश (**यत्**) जो (**पृथिव्याम्**) पृथिवी (**ओषधीषु**) यवादि ओषधियों और (**अप्सु**) प्राणों वा जलों में (**वर्चः**) तेज है (**येन**) जिससे (**नृचक्षाः**) मनुष्यों को दिखानेवाला (**भानुः**) सूर्य (**अर्णवः**) बहुत जलों को वर्षाने हारा (**त्वेषः**) प्रकाश है (**येन**) जिससे (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**उरु**) बहुत (**आ, ततन्थ**) विस्तारयुक्त करते हो (**सः**) सो आप वह सब हम लोगों में धारण कीजिये ॥ ४८ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालंकार है । इस जगत् में जिसको सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान जैसा होवे वैसा ही शीघ्र दूसरों को बतावे जो कदाचित् दूसरों को न बतावे तो वह नष्ट हुआ किसी को प्राप्त नहीं हो सके ॥ ४८ ॥

अग्ने दिव इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने दिवोऽअर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ२ऽऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्तऽआपः ॥४९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् ! जो आप (**दिवः**) प्रकाश से (**अर्णम्**) विज्ञान को (**याः**) जो (**आपः**) प्राण वा जल (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य के (**रोचने**) प्रकाश में (**परस्तात्**) पर है (**च**) और (**याः**) जो (**अवस्तात्**) नीचे (**उपतिष्ठन्ते**) समीप में स्थित हैं उनको (**अच्छ**) सम्यक् (**जिगासि**) स्तुति करते हो (**ये**) जो (**धिष्ण्याः**) बोलनेवाले हैं उन (**देवान्**) दिव्यगुण विद्यार्थियों वा विद्वानों के प्रति विज्ञान को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**ऊचिषे**) कहते हो सो आप हमारे लिये उपदेश कीजिये ॥४९॥

भावार्थ—जो अच्छे विचार से बिजुली और सूर्य के किरणों में ऊपर नीचे रहनेवाले जलों और वायुओं के बोध को प्राप्त होते हैं वे दूसरों को निरन्तर उपदेश करें ॥ ४९ ॥

पुरीष्यास इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को द्वेषादिक छोड़ के आनन्द में रहना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पुरीष्यासोऽअग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवाऽइषो महीः ॥ ५० ॥

पदार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि (**प्रावणेभिः**) विज्ञानों के साथ वर्त्तमान हुए (**अनमीवाः**) रोगरहित (**अद्रुहः**) द्रोह से पृथक् (**सजोषसः**) एक प्रकार की सेवा और प्रीति वाले (**पुरीष्यासः**) पूर्ण गुणक्रियाओं में निपुण (**अग्नयः**) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वान् लोग (**यज्ञम्**) विद्याविज्ञान दान और ग्रहणरूप यज्ञ और (**महीः**) बड़ी बड़ी (**इषः**) इच्छाओं को (**जुषन्ताम्**) सेवन करें ॥५०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली अनुकूल हुई समान भाव से पदार्थों का सेवन करती है वैसे ही रोग द्रोहादि दोषों से रहित आपस में प्रीति वाले होके विद्वान् लोग विज्ञान बढ़ानेवाले यज्ञ को विस्तृत करके बड़े बड़े सुखों को निरन्तर भोगें ॥ ५० ॥

इडामग्न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य गर्भाधानादि संस्कारों से बालकों का संस्कार करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! (**ते**) आपकी (**सा**) वह (**सुमतिः**) सुन्दर बुद्धि (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**भूत्**) होवे जिससे आपका (**नः**) और हमारा जो (**विजावा**) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का उत्पादक (**सूनुः**) उत्पन्न होनेवाला (**तनयः**) पुत्र (**स्यात्**) होवे उस बुद्धि से उस (**हवमानाय**) विद्या ग्रहण करते हुए के लिये (**इडाम्**) स्तुति के योग्य वाणी को (**गोः**) वाणी के सम्बन्धी (**शश्वत्तमम्**) अनादि रूप अत्यन्त वेदज्ञान को और (**पुरुदंसम्**) बहुत कर्म जिससे सिद्ध हों ऐसे (**सनिम्**) ऋग्वेदादि वेदविभाग को (**साध**) सिद्ध कीजिये और हे अध्यापक हम लोग भी सिद्ध करें ॥ ५१ ॥

भावार्थ—माता पिता और आचार्य्य को चाहिये कि सावधानी से गर्भाधान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान उत्पन्न करके उनमें वेद ईश्वर और विद्यायुक्त बुद्धि उत्पन्न करें क्योंकि ऐसा अन्यधर्म अपत्य सुख का हितकारी कोई नहीं है ऐसा निश्चय रखना चाहिये ॥ ५१ ॥

अयं त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता और पुत्रादिकों को परस्पर क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।
तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ ५२ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान शुद्ध अन्तःकरण वाले विद्वान् पुरुष ! जो (**ते**) आपका (**ऋत्वियः**) ऋतुकाल में प्राप्त हुआ (**अयम्**) यह प्रत्यक्ष (**योनिः**) दुःखों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है (**यतः**) जिससे (**जातः**) उत्पन्न हुए आप (**अरोचथाः**) प्रकाशित होवें (**तम्**) उसको (**जानन्**) जानते हुए आप (**आरोह**) शुभगुणों पर आरूढ़ हूजिये (**अथ**) इसके पश्चात् (**नः**) हम लोगों के लिये (**रयिम्**) प्रशंसित लक्ष्मी को (**वर्धय**) बढ़ाइये ॥ ५२ ॥

भावार्थ—हे माता पिता और आचार्य्य ! तुम लोग पुत्र और कन्याओं को धर्मानुकूल सेवन किये ब्रह्मचर्य से श्रेष्ठ विद्या को प्रसिद्ध कर उपदेश करो । हे सन्तानो ! तुम लोग सत्यविद्या और सदाचार के साथ हमको अच्छी सेवा और धन से निरन्तर सुखयुक्त करो ॥ ५२ ॥

चिदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५३ ॥

पदार्थ—हे कन्ये ! जो तू (**चित्**) चिताई (**असि**) हुई (**तया**) उस (**देवतया**) दिव्यगुण प्राप्त कराने हारी विदुषी स्त्री के साथ (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणों के तुल्य (**ध्रुवा**) निश्चल (**सीद**) स्थिर हो । हे ब्रह्मचारिणी ! जो तु (**परिचित्**) विविध विद्या को प्राप्त हुई (**असि**) है सो तू (**तया**) उस (**देवतया**) धर्मानुष्ठान से युक्त दिव्यसुखदायक क्रिया के साथ (**अंगिरस्वत्**) ईश्वर के समान (**ध्रुवा**) अचल (**सीद**) अवस्थित हो ॥ ५३ ॥

भावार्थ—सब माता पिता और पढ़ानेहारी विदुषी स्त्रियों को चाहिये कि कन्याओं को सम्यक् बुद्धिमती करें । हे कन्या लोगो ! तुम जो पूर्ण अखंडित ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवती होकर अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके गृहाश्रम का सेवन करो तो सब सुखों को प्राप्त हो और सन्तान भी अच्छे होवें ॥ ५३ ॥

लोकं पृणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५४ ॥

पदार्थ—हे कन्ये ! जिस (**त्वा**) तुझको (**योनौ**) बन्ध के छेदक मोक्ष-प्राप्ति के हेतु (**अस्मिन्**) इस विद्या के बोध में (**इन्द्राग्नी**) माता पिता तथा (**बृहस्पतिः**) बड़ी २ वेदवाणियों की रक्षा करनेवाली अध्यापिका स्त्री (**असीषदन्**) प्राप्त करावें उसमें (**त्वम्**) तू (**ध्रुवा**) दृढ़ निश्चय के साथ (**सीद**) स्थित हो (**अथो**) इसके अनन्तर (**छिद्रम्**) छिद्र को (**पृण**) पूर्ण कर और (**लोकम्**) देखने योग्य प्राणियों को (**पृण**) तृप्त कर ॥ ५४ ॥

भावार्थ—माता पिता और आचार्यों को चाहिये कि इस प्रकार की धर्म्म-युक्त विद्या और शिक्षा करें कि जिसको ग्रहण कर कन्या लोग चिन्तारहित हो सब बुरे व्यसनों को त्याग और समावर्तन संस्कार के पश्चात् विवाह करके पुरुषार्थ के साथ आनन्द में रहें ॥ ५४ ॥

ता अस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ताऽअ॑स्य सू॒द॑दोहसः॒ सोम॑ꣳ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
जन्म॑न्दे॒वानां॒ विश॑स्त्रि॒ष्वा रो॑च॒ने दि॒वः ॥ ५५ ॥

पदार्थ—जो (**देवानाम्**) दिव्य विद्वान् पतियों की (**सूददोहसः**) सुन्दर रसोइया और गौ आदि के दुहनेवाले सेवकों वाली (**पृश्नयः**) कोमल शरीर सूक्ष्म अङ्गयुक्त स्त्री दूसरे (**जन्मन्**) विद्यारूप जन्म में विदुषी होके (**दिवः**) दिव्य (**अस्य**) इस गृहाश्रम के (**सोमम्**) उत्तम ओषधियों के रस से युक्त भोजन (**श्रीणन्ति**) पकाती हैं (**ताः**) वे ब्रह्मचारिणी (**आरोचने**) अच्छी रुचिकारक व्यवहार में (**त्रिषु**) तीनों अर्थात् गत आगामी और वर्त्तमान कालविभागों में सुख देनेवाली होती तथा (**विशः**) उत्तम सन्तानों को भी प्राप्त होती हैं ॥ ५५ ॥

भावार्थ—जब अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए युवा विद्वानों की अपने सदृश रूप और गुण से युक्त स्त्री होवें तो गृहाश्रम में सर्वदा सुख और अच्छे सन्तान उत्पन्न होवें । इस प्रकार किये विना संसार का सुख और शरीर छूटने के पश्चात् मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वेत्यस्य सुतजेतृमधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमार और कुमारियों को इस प्रकार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रं॒ विश्वा॑ अवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिरः॑ ।
र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑ना॒ꣳ सत्प॑तिं॒ पति॑म् ॥ ५६ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (**विश्वाः**) सब (**गिरः**) वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणी (**समुद्रव्यचसम्**) समुद्र की व्याप्ति के समान व्याप्ति जिसमें हो उन (**वाजानाम्**) संग्रामों और (**रथीनाम्**) प्रशंसित रथोंवाले वीर पुरुषों में (**रथीतमम्**) अत्यन्त प्रशंसित रथवाले (**सत्पतिम्**) सत्य ईश्वर वेद धर्म वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (**पतिम्**) सब ऐश्वर्य के स्वामी को (**अवीवृधन्**) बढ़ावें और (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य को बढ़ावें वैसे सब प्राणियों को बढ़ाओ ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जो कुमार और कुमारी दीर्घ ब्रह्मचर्य सेवन से साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़ और अपनी-अपनी प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करें । धर्मयुक्त व्यवहार से व्यभिचार को छोड़ के सुन्दर सन्तानों को उत्पन्न करके परोपकार करने में प्रयत्न करें वे इस संसार और परलोक में सुख भोगें । और इनसे विरुद्धजनों को नहीं हो सकता ॥ ५६ ॥

समितमित्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पश्चात् विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समि॒त॒ꣳसं क॑ल्पेथा॒ꣳ संप्रि॑यौ रोचि॒ष्णू सु॑मन॒स्यमा॑नौ ।
इष॒मूर्ज॑म॒भि सं॒वसा॑नौ ॥ ५७ ॥

पदार्थ—हे विवाहित स्त्रीपुरुषो ! तुम (**संप्रियौ**) आपस में सम्यक् प्रीति वाले (**रोचिष्णू**) विषयाशक्ति से पृथक् प्रकाशमान (**सुमनस्यमानौ**) मित्र विद्वान् पुरुषों के वर्त्तमान (**संवसानौ**) सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से युक्त हुए (**इषम्**) इच्छा को (**समितम्**) इकट्ठे प्राप्त होओ और (**ऊर्जम्**) पराक्रम को (**अभि**) सन्मुख (**संकल्पेथाम्**) एक अभिप्राय में समर्पित करो ॥ ५७ ॥

भावार्थ—जो स्त्रीपुरुष सर्वथा विरोध को छोड़ के एक दूसरे की प्रीति में तत्पर विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण धारण करनेवाले होके प्रयत्न करें तो घर में कल्याण और आरोग्य बढ़े । और जो परस्पर विरोधी हों तो दुःखसागर में अवश्य डूबें ॥ ५७ ॥

सं वामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुपरिष्टाद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना ही वेदों को पढ़ावें और उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सं वां॒ मना॑ꣳसि॒ सं व्र॒ता समु॑ चि॒त्तान्याक॑रम् ।
अग्ने॑ पुरीष्याधि॒पा भ॑व॒ त्वं न॒ऽइष॒मूर्जं॒ यज॑मानाय धेहि ॥५८॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! जैसे मैं आचार्य (**वाम्**) तुम दोनों के (**संमनांसि**) एक धर्म्म में तथा संकल्प विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को (**संव्रता**) सत्य-भाषणादि (**उ**) और (**सम्, चित्तानि**) सम्यक् जाने हुए कर्मों में (**आ**) अच्छे प्रकार (**अकरम्**) करूँ । वैसे तुम दोनों मेरी प्रीति के अनुकूल विचारो । हे (**पुरीष्य**) रक्षा के योग्य व्यवहारों में हुए (**अग्ने**) उपदेशक आचार्य वा राजन् ! (**त्वम्**) आप (**नः**) हमारे (**अधिपाः**) अधिक रक्षा करनेहारे (**भव**) हूजिये (**यजमानाय**) धर्मानुकूल सत्संग के स्वभाव वाले पुरुष वा ऐसी स्त्री के लिये (**इषम्**) अन्न आदि उत्तम पदार्थ और (**ऊर्जम्**) शरीर तथा आत्मा के बल को (**धेहि**) धारण कीजिये ॥ ५८ ॥

भावार्थ—उपदेशक मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना सब मनुष्यों का एक धर्म्म एक कर्म्म एक प्रकार की चित्तवृत्ति और बराबर सुख दुःख जैसे हों वैसे ही शिक्षा करें । सब स्त्री पुरुषों को योग्य है कि आप्त विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक मान के सेवन करें और उपदेशक वा अध्यापक इनके ऐश्वर्य और पराक्रम को बढ़ावें । और सब मनुष्यों के एक धर्म आदि के विना आत्माओं में मित्रता नहीं होती और मित्रता के विना निरन्तर सुख भी नहीं हो सकता ॥ ५८ ॥

अग्ने त्वमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

किन को पढ़ाने और उपदेश के लिये नियुक्त करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने॒ त्वं पु॒री॒ष्यो॒ र॒यि॒मान् पु॑ष्टि॒माँ२ऽअ॑सि ।
शि॒वाः कृ॒त्वा दिशः॒ सर्वाः॒ स्वं योनि॑मि॒हाऽस॑दः ॥ ५९ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) उपदेशक विद्वन् ! जिससे (**त्वम्**) आप (**इह**) इस संसार में (**पुरीष्यः**) एक मत के पालने में तत्पर (**रयिमान्**) विद्या विज्ञान और धन से युक्त और (**पुष्टिमान्**) प्रशंसित शरीर और आत्मा के बल से सहित (**असि**) हैं इसलिये (**सर्वाः**) सब (**दिशः**) उपदेश के योग्य प्रजा (**शिवाः**) कल्याणरूपी उपदेश से युक्त (**कृत्वा**) करके (**स्वम्**) अपने (**योनिम्**) सुखदायक दुःखनाशक उपदेश के घर को (**आसदः**) प्राप्त हूजिये ॥ ५९ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा परोप-कार में प्रीति रखनेवाले विद्वान् होवें उनको प्रजा में धर्मोपदेश के लिये नियुक्त करें और उपदेशकों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ सब को अच्छी शिक्षा से एक धर्म में निरन्तर विरोध को छोड़ के सुखी करें ॥ ५९ ॥

भवतन्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । दम्पती देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर सब को चाहिये कि विद्या देने के लिये आप्त विद्वानों की प्रार्थना करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

भव॑तं नः॒ सम॑नसौ॒ सचे॑तसावरे॒पसौ॑ ।
मा य॒ज्ञꣳ हिꣳसिष्टं॒ मा य॒ज्ञप॑तिं जातवेदसौ शि॒वौ भ॑वतम॒द्य नः॑ ॥६०

पदार्थ—हे विवाह कये हुए स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों (**नः**) हम लोगों के लिये (**समनसौ**) एक से विचार और (**सचेतसौ**) एक से बोध वाले (**अरेपसौ**) अपराधरहित (**भवतम्**) हूजिये (**यज्ञम्**) प्राप्त होने योग्य धर्म को (**मा**) मत (**हिंसिष्टम्**) बिगाड़ो और (**यज्ञपतिम्**) उपदेश से धर्म के रक्षक पुरुष को (**मा**), मत मारो (**अद्य**) आज (**नः**) हमारे लिये (**जातवेदसौ**) सम्पूर्ण विज्ञान को प्राप्त हुए (**शिवौ**) मङ्गलकारी (**भवतम्**) हूजिये ॥ ६० ॥

भावार्थ—स्त्रीपुरुष जनों को चाहिये कि सत्य उपदेश और पढ़ाने के लिये सब विद्याओं से युक्त प्रगल्भ निष्कपट धर्मात्मा सत्यप्रिय पुरुषों को नित्य प्रार्थना और उन की सेवा करें । और विद्वान् लोग सब के लिये ऐसा उपदेश करें कि जिससे सब धर्मा-चरण करनेवाले हो जावें ॥ ६० ॥

मातेवेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । पत्नी देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

माता किसके तुल्य सन्तानों को पालती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मा॒तेव॑ पु॒त्रं पृ॑थि॒वी पु॑री॒ष्य॒म॒ग्निꣳ स्वे योना॑वभारु॒खा ।
तां विश्वै॑र्दे॒वैर्ऋ॒तुभिः॑ संविदा॒नः प्र॒जाप॑तिर्वि॒श्वक॑र्मा॒ वि मु॑ञ्चतु ॥६१॥

पदार्थ—जो (**उखा**) जानने योग्य (**पृथिवी**) भूमि के समान वर्त्तमान विद्वान् स्त्री (**स्वे**) अपने (**योनौ**) गर्भाशय में (**पुरीष्यम्**) पुष्टिकारक गुणों में हुए (**अग्निम्**) बिजुली के तुल्य अच्छे प्रकाश से युक्त गर्भरूप (**पुत्रम्**) पुत्र को (**मातेव**) माता के समान (**अभाः**) पुष्ट वा धारण करती है (**ताम्**) उसको (**संविदानः**) सम्यक् बोध करता हुआ (**विश्वकर्मा**) सब उत्तम कर्म करनेवाला (**प्रजापतिः**) परमेश्वर (**विश्वैः**) सब (**देवैः**) दिव्य गुणों और (**ऋतुभिः**) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ निरन्तर दुःख से (**विमुञ्चतु**) छुड़ावे ॥ ६१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे माता सन्तानों को उत्पन्न कर पालती है वैसे ही पृथिवी कारणरूप बिजुली को प्रसिद्ध करके रक्षा करती है । जैसे परमेश्वर ठीक-ठीक पृथिवी आदि के गुणों को जानता और नियत समय पर मरे हुओं और पृथिवी आदि को धारण कर अपनी-अपनी नियत परिधि से चला के प्रलय समय में सब को भिन्न करता है वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि अपनी बुद्धि के अनुसार इन सब पदार्थों को जान के कार्य्यसिद्धि के लिये प्रयत्न करें ॥ ६१ ॥

असुन्वन्तमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

स्त्री लोग कैसे पतियों की इच्छा न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा तऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥६२॥

पदार्थ—हे (**निर्ऋते**) पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान (**देवि**) विद्वान् स्त्री ! तू (**अस्मत्**) हम से भिन्न (**स्तेनस्य**) अप्रसिद्ध चोर और (**तस्करस्य**) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी को छोड़ के (**अन्यम्**) भिन्न की (**इच्छ**) इच्छा कर और (**असुन्वन्तम्**) अभिषव आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित (**अयजमानम्**) दान-धर्म से रहित पुरुष की (**इच्छ**) इच्छा कर और तू जिस (**इत्याम्**) प्राप्त होने योग्य क्रिया को (**अन्विहि**) ढूंढे (**सा**) तेरी हो तथा उस (**तुभ्यम्**) तेरे लिये (**नमः**) अन्न वा सत्कार (**अस्तु**) होवे ॥ ६२ ॥

भावार्थ—हे स्त्रियो ! तुम लोगों को चाहिये कि पुरुषार्थरहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो । आप्त पुरुषों की नीति के तुल्य नीति वाले पुरुषों को ग्रहण करो । जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान से मनुष्यों को संयुक्त करती है वैसी होओ । ऐसे गुणों वाली तुम को हम नमस्कार करते हैं । जैसे हम लोग आलसी चोरों के साथ न वर्त्तें वैसे तुम लोग भी मत वर्त्तो ॥ ६२ ॥

नमः सु त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

फिर ये स्त्री कैसी हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाकेऽअधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥

पदार्थ—हे (**निर्ऋते**) निरन्तर सत्य आचरणों से युक्त स्त्री ! जिस (**ते**) तेरे (**तिग्मतेजः**) तीव्र तेजों वाले (**अयस्मयम्**) सुवर्णादि और (**नमः**) अन्नादि पदार्थ हैं सो (**त्वम्**) तू (**एतम्**) इस (**बन्धम्**) बांधने के हेतु अज्ञान का (**सुविचृत**) अच्छे प्रकार (**यमेन**) न्यायाधीश तथा (**यम्या**) न्याय करने हारी स्त्री के साथ (**संविदाना**) सम्यक् बुद्धियुक्त होकर (**एनम्**) इस अपने पति को (**उत्तमे**) उत्तम (**नाके**) आनन्द भोगने में (**अधिरोहय**) आरूढ़ कर ॥ ६३ ॥

भावार्थ—हे स्त्रियो ! तुम को चाहिये कि जैसे यह पृथिवी अग्नि तथा सुवर्ण अन्नादि पदार्थों से सम्बन्ध रखती है वैसे तुम भी होओ । जैसे तुम्हारे पति न्यायाधीश होकर अपराधी और अपराधरहित मनुष्यों का सत्य न्याय से विचार करके अपराधियों को दण्ड देवें और अपराधरहितों का सत्कार करते हैं तुम लोगों के लिये अत्यन्त आनन्द देते हैं वैसे तुम लोग भी होओ ॥ ६३ ॥

यस्यास्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यस्यास्ते घोरऽआसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाऽहं परि वेद विश्वतः ॥६४॥

पदार्थ—हे (**घोरे**) दुष्टों को भय करने हारी स्त्री ! (**यस्याः**) जिस सुन्दर नियम युक्त (**ते**) तेरे (**आसन्**) मुख में (**एषाम्**) इन (**बन्धानाम्**) दुःख देते हुए रोकने वालों के (**अव, सर्जनाय**) त्याग के लिये अमृतरूप अन्नादि पदार्थों को (**जुहोमि**) देता हूँ जो (**जनः**) मनुष्य (**भूमिरिति**) पृथिवी के समान (**याम्**) जिस (**त्वा**) तुझ को (**प्रमन्दते**) आनन्दित करता है उस तुझ को (**अहम्**) मैं (**विश्वतः**) सब ओर से (**निर्ऋतिम्**) पृथिवी के समान (**त्वा, परि**) सब प्रकार से (**वेद**) जानूं । सो तू भी इस प्रकार मुझको जान ॥ ६४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे पति अपने आनन्द के लिये स्त्रियों का ग्रहण करते हैं । वैसे ही स्त्री भी पतियों का ग्रहण करें । इस गृहाश्रम में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति सुख का कोश होता है । खेतरूप स्त्री और बीजरूप पुरुष जो इन शुद्ध बलवान् दोनों के समागम से उत्तम विविध प्रकार के सन्तान हों तो सर्वदा कल्याण ही बढ़ता रहता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६४ ॥

यं ते देवीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यजमानो देवता । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

विवाह समय में कैसी २ प्रतिज्ञा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् । तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥ ६५ ॥

पदार्थ—स्त्री कहे कि हे पते ! (**निर्ऋतिः**) पृथिवी के समान मैं (**ते**) तेरे (**ग्रीवासु**) कण्ठों में (**अविचृत्यम्**) न छोड़ने योग्य (**यम्**) जिस (**पाशम्**) धर्मयुक्त बन्धन को (**आबबन्ध**) अच्छे प्रकार बांधती हूँ (**तम्**) उस को (**ते**) तेरे लिए भी प्रवेश करती हूँ (**आयुषः**) अवस्था के साधन अन्न के (**न**) समान (**वि, स्यामि**) प्रविष्ट होती हूँ (**अथ**) इसके पश्चात् (**मध्यात्**) मैं तू दोनों में से कोई भी नियम से विरुद्ध न चले जैसे मैं (**एतम्**) इस (**पितुम्**) अन्नादि पदार्थ को भोगती हूँ वैसे (**प्रसूतः**) उत्पन्न हुआ तू इस अन्नादि को (**अद्धि**) भोग । हे स्त्री ! (**या**) जो (**देवी**) दिव्य गुणों वाली तू (**इदम्**) इस पतिव्रतरूप धर्म से संस्कार किये हुए प्रत्यक्ष नियम को (**चकार**) करे उस (**भूत्यै**) ऐश्वर्य करने हारी तेरे लिये (**नमः**) अन्नादि पदार्थ को देता हूँ ॥ ६५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विवाह समय में जिन व्यभिचार के त्याग आदि नियमों को करें उनसे विरुद्ध कभी न चलें क्योंकि पुरुष जब विवाहसमय में स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तभी पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का और जितना स्त्री का है वह सब पुरुष का समझा जाता है । जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री के निकट जावे वा स्त्री दूसरे पुरुष की इच्छा करे तो वे दोनों चोर के समान पापी होते हैं इस लिये स्त्री की सम्मति के विना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के विना स्त्री कुछ भी काम न करें यही स्त्री पुरुष में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि जो व्यभिचार को सब समय में त्याग दे ॥ ६५ ॥

निवेशन इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः
धैवतः स्वरः ॥

कैसे स्त्री पुरुष गृहाश्रम करने के योग्य होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे शचीभिः ।
देवऽइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

पदार्थ—जो (**सत्यधर्मा**) सत्य धर्म से युक्त (**सविता**) सब जगत् के रचने वाले (**देव इव**) ईश्वर के समान (**निवेशनः**) स्त्री का साथी (**सङ्गमनः**) शीघ्रगति से युक्त (**शचीभिः**) बुद्धि वा कर्मों से (**वसूनाम्**) पृथिवी आदि पदार्थों के (**विश्वा**) सब (**रूपा**) रूपों को (**अभिचष्टे**) देखता है (**इन्द्रः**) सूर्य्य के (**न**) समान (**समरे**) युद्ध में (**पथीनाम्**) चलते हुए मनुष्यों के सम्मुख (**तस्थौ**) स्थित होवे वही गृहाश्रम के योग्य होता है ॥ ६६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे ईश्वर ने सब के उपकार के लिये कारण से कार्यरूप अनेक पदार्थ रच उपयुक्त करे हैं । जैसे सूर्य मेघ के साथ युद्ध करके जगत् का उपकार करता है वैसे रचनाक्रम के विज्ञान सुन्दर क्रिया से पृथिवी आदि पदार्थों से अनेक व्यवहार सिद्ध कर प्रजा को सुख देवें ॥ ६६ ॥

सीरा इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । कृषीवलाः कवयो देवता । गायत्रीच्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब खेती करने की विद्या अगले मन्त्र में कही है—

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**धीराः**) ध्यानशील (**कवयः**) बुद्धिमान् लोग (**सीराः**) हलों और (**युगा**) जुआ आदि को (**युञ्जन्ति**) युक्त करते और (**सुम्नया**) सुख के साथ (**देवेषु**) विद्वानों में (**पृथक्**) अलग (**वितन्वते**) विस्तारयुक्त करते वैसे सब लोग इस खेती कर्म का सेवन करें ॥ ६७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षा से कृषिकर्म की उन्नति करें । जैसे योगी नाड़ियों में परमेश्वर को समाधियोग से प्राप्त होते हैं । वैसे ही कृषिकर्म द्वारा सुखों को प्राप्त होवें ॥ ६७॥

युनक्तेत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । कृषीवलाः कवयो वा देवताः । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है —

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽइत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥६८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (**इह**) इस पृथिवी वा बुद्धि में साधनों को (**वितनुध्वम्**) विविध प्रकार से विस्तारयुक्त करो (**सीरा**) खेती के साधन हल आदि वा नाड़ियां और (**युगा**) जुआओं को (**युनक्त**) युक्त करो (**कृते**) हल आदि से जोते वा योग के अङ्गों से शुद्ध किये अन्तःकरण (**योनौ**) खेत में (**बीजम्**) यव आदि वा सिद्धि के मूल को (**वपत**) बोया करो (**गिरा**) खेती विषयक कर्मों की उपयोगी सुशिक्षित वाणी (**च**) और अच्छे विचार से (**सभराः**) एक प्रकार के धारण और पोषण में युक्त (**श्रुष्टिः**) शीघ्र हूजिये जो (**सृण्यः**) खेतों में उत्पन्न हुए यव आदि अन्य जाति के पदार्थ हैं उन में जो (**नेदीयः**) अत्यन्त समीप (**पक्वम्**) पका हुआ (**असत्**) होवे वह (**इत्**) ही (**नः**) हम लोगों को (**आ, इयात्**) प्राप्त होवे ॥ ६८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि विद्वानों से योगाभ्यास और खेती करने हारों से कृषि कर्म की शिक्षा को प्राप्त हो और अनेक साधनों को बना के खेती और योगाभ्यास करो । इस से जो-जो अन्नादि पका हो उस-उस का ग्रहण कर भोजन करो और दूसरों को कराओ ॥ ६८ ॥

शुनमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीवला देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

शुनꣳसु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशाऽअभि यन्तु वाहैः । शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पलाऽओषधीः कर्त्तनास्मे ॥ ६९ ॥

पदार्थ—जो (कीनाशाः) परिश्रम से क्लेशभोक्ता खेती करनेहारे हैं वे (फालाः) जिन से पृथिवी को जोतें उन फालों से (वाहैः) बैल आदि के साथ वर्त्तमान हल आदि से (भूमिम्) पृथिवी को (विकृषन्तु) जोतें और (शुनम्) सुख को (अभियन्तु) प्राप्त होवें (हविषा) शुद्ध किये घी आदि से शुद्ध (तोशमाना) सन्तोषकारक (शुनासीरा) वायु और सूर्य्य के समान खेती के साधन (अस्मे) हमारे लिये (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त (ओषधीः) जौ आदि (कर्त्तन) करें और उन ओषधियों से (सु) सुन्दर (शुनम्) सुख भोगें ॥६९॥

भावार्थ—जो चतुर खेती करने हारे गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचार के साथ खेती करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं । इन खेतों में विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नहीं डालने चाहियें किन्तु बीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोवें कि जिस से अन्न भी रोगरहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की बुद्धि को बढ़ावे ॥ ६९ ॥

घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीवला देवताः । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व ॥७०॥

पदार्थ—(विश्वैः) सब (देवैः) अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् (मरुद्भिः) मनुष्यों की (अनुमता) आज्ञा से प्राप्त हुआ (पयसा) जल वा दुग्ध से (ऊर्जस्वतीः) पराक्रम सम्बन्धी (पिन्वमाना) सींचा वा सेवन किया हुआ (सीता) पटेला (घृतेन) घी तथा (मधुना) सहत वा शक्कर आदि से (समज्यताम्) संयुक्त करो (सीते) पटेला (अस्मान्) हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से (पयसा) जल से (अभ्याववृत्स्व) वार २ वर्त्ताओ ॥ ७० ॥

भावार्थ—सब विद्वानों को चाहिए कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें । जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कार- युक्त करें ॥ ७० ॥

लाङ्गलमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीवला देवताः । विराट् पंक्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवꣳ सोमपित्सरु । तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहणम् ॥७१॥

पदार्थ—हे किसानो ! तुम लोग जो (सोमपित्सरु) जौ आदि ओषधियों के रक्षकों को टेढ़ा चलावें (पवीरवत्) प्रशंसित फाल से युक्त (सुशेवम्) सुन्दर सुखदायक (लाङ्गलम्) फाले के पीछे जो दृढ़ता के लिये काष्ठ लगाया जाता है वह (च) और (प्रफर्व्यम्) चलाने योग्य (प्रस्थावत्) प्रशंसित प्रस्थान वाला (रथवाहनम्) रथ के चलने का साधन है जिस से (अविम्) रक्षा आदि के हेतु (पीवरीम्) सब पदार्थों को भुगाने का हेतु स्थूल (गाम्) पृथिवी को (उद्वपति) उखाड़ते हैं (तत्) उसको तुम सिद्ध करो ॥ ७१ ॥

भावार्थ—किसान लोगों को उचित है कि मोटी मट्टी अन्न आदि की उत्पत्ति से रक्षा करने हारी पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल आदि साधनों से जोत एकसार कर सुन्दर संस्कार किये बीज के उत्तम धान्य उत्पन्न करके भोगें ॥७१ ॥

कामित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । आर्ची
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पकानेहारी स्त्री अच्छे यत्न से सुन्दर अन्न और व्यञ्जनों को बनावे
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्यऽओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥

पदार्थ—हे (कामदुघे) इच्छा को पूर्ण करने हारी रसोइया स्त्री ! तू पृथिवी के समान सुन्दर संस्कार किये अन्नों से (मित्राय) मित्र (वरुणाय) उत्तम विद्वान् (च) अतिथि अभ्यागत (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य से युक्त (अश्विभ्याम्) प्राण अपान (पूष्णे) पुष्टिकारक जन (प्रजाभ्यः) सन्तानों और (ओषधीभ्यः) सोमलता आदि ओषधियों से (कामम्) इच्छा को (धुक्ष्व) पूर्ण कर ॥ ७२ ॥

भावार्थ—जो स्त्री वा पुरुष भोजन बनावे उस को चाहिये कि पकाने की विद्या सीख प्रिय पदार्थ पका और उनका भोजन करा के सब को रोगरहित रक्खें ॥ ७२ ॥

विमुच्यध्वमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अघ्न्या देवताः । भुरिगार्षी गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को गौ आदि पशुओं को बढ़ा उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर आनन्द में रहना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे तुम लोग (अघ्न्याः) रक्षा के योग्य (देवयानाः) दिव्य भोगों की प्राप्ति के हेतु गौओं को प्राप्त हो सुन्दर संस्कार किये अन्नों का भोजन करके रोगों से (विमुच्यध्वम्) पृथक् रहते हो वैसे हम लोग भी बचें । जैसे तुम लोग (तमसः) रात्रि के (पारम्) पार को प्राप्त होते हो वैसे हम भी (अगन्म) प्राप्त होवें । जैसे तुम लोग (अस्य) इस सूर्य्य के (ज्योतिः) प्रकाश को व्याप्त होते हो वैसे हम भी (आपाम) व्याप्त होवें ॥ ७३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं को कभी न मारें न मरवावें तथा न किसी को मारने दें । जैसे सूर्य के उदय से रात्रि निवृत्त होती है वैसे वैद्यकशास्त्र की रीति से पथ्य अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचो ॥ ७३ ॥

सजूरब्द इत्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अश्विनौ देवते । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सजूरब्दोऽअयवोभिः सजूरुषाऽअरुणीभिः । सजोषसावश्विना दꣳसोभिः सजूः सूरऽएतशेन सजूर्वैश्वानरऽइडया घृतेन स्वाहा ॥७४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम सब लोग स्त्री पुरुष जैसे (अयवोभिः) एक रस क्षणादि काल के अवयवों से (सजूः) संयुक्त (अब्दः) वर्ष (अरुणीभिः) लाल कान्तियों के (सजूः) साथ वर्त्तमान (उषाः) प्रभात समय (दंसोभिः) कर्मों से (सजोषसौ) एकसा वर्त्ताव वाले (अश्विना) प्राण और अपान के समान स्त्री पुरुष वा (एतशेन) चलते घोड़े के समान व्याप्तिशील वेगवाले किरण निमित्त पवन के (सजूः) साथ वर्त्तमान (सूरः) सूर्य (इडया) अन्न आदि का निमित्तरूप पृथिवी वा (घृतेन) जल से (स्वाहा) सत्यवाणी के (सजूः) साथ (वैश्वानरः) बिजुलीरूप अग्नि वर्त्तमान है वैसे ही प्रीति से वर्त्तें ॥ ७४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों में जितनी परस्पर मित्रता हो उतना ही सुख और जितना विरोध उतना ही दुःख होता है । उस से सब लोग स्त्री पुरुष परस्पर उपकार करने के साथ ही सदा वर्त्तें ॥ ७४ ॥

या ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को अवश्य ओषधि सेवन कर रोगों से बचना चाहिए
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (याः) जो (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी (देवेभ्यः) पृथिवी आदि से (त्रियुगम्) तीन वर्ष (पुरा) पहिले (पूर्वाः) पूर्ण सुख दान में उत्तम (जाताः) प्रसिद्ध हुई जो (बभ्रूणाम्) धारण करने हारे रोगियों के (शतम्) सौ (च) और (सप्त) सात (धामानि) जन्म वा नाड़ियों के मर्मों में व्याप्त होती हैं उनको (नु) शीघ्र (मनै) जानूं ॥ ७५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो पृथिवी और जल में ओषधि उत्पन्न होती है उन तीन वर्ष के पीछे ठीक-ठीक पकी हुई को ग्रहण कर वैद्यकशास्त्र के अनुकूल विधान से सेवन करें । सेवन की हुई वे ओषधि शरीर के सब अंशों में व्याप्त हो के शरीर के रोगों को छुड़ा सुखों को शीघ्र करती हैं ॥ ७५ ॥

शतं व इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस को सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत ॥ ७६ ॥

पदार्थ—हे (शतक्रत्वः) सैकड़ों प्रकार की बुद्धि वा क्रियाओं से युक्त मनुष्यो ! (यूयम्) तुम लोग जिन के (शतम्) सैकड़ों (उत) वा (सहस्रम्) हजारहों (रुहः) नाड़ियों के अंकुर हैं उन ओषधियों से (मे) मेरे (इमम्) इस शरीर को (अगदम्) नीरोग (कृत) करो (अध) इसके पश्चात् (वः) आप अपने शरीरों को भी रोगरहित करो जो (वः) तुम्हारे असंख्य (धामानि) मर्म्म स्थान हैं उनको प्राप्त होओ । हे (अम्ब) माता ! तू भी ऐसा आचरण कर ॥ ७६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सब से पहिले ओषधियों का सेवन, पथ्य का आचरण और नियमपूर्वक व्यवहार करके शरीर को रोगरहित करें क्योंकि इसके

विना धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षों का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७६ ॥

ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसी ओषधियों का सेवन करना चाहिए वह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।

अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ ७७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अश्वा, इव) घोड़ों के समान (सजित्वरीः) शरीरों के साथ संयुक्त रोगों को जीतने वाले (वीरुधः) सोमलता आदि (पारयिष्णवः) दुःखों से पार करने के योग्य (पुष्पवतीः) प्रशंसित पुष्पों से युक्त (प्रसूवरीः) सुख देनेहारी (ओषधीः) ओषधियों को प्राप्त होकर (प्रतिमोदध्वम्) नित्य आनन्द भोगो ॥ ७७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे घोड़ों पर चढ़े वीर पुरुष शत्रुओं को जीत विजय को प्राप्त होके आनन्द करते हैं वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पथ्याहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं ॥ ७७ ॥

ओषधीरितीत्यस्य भिषगृषिः । चिकित्सुर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे । सनेयमश्वं गां वासऽआत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥

पदार्थ—हे (ओषधीः) ओषधियों के (इति) समान सुखदायक (देवीः) सुन्दर विदुषी स्त्री (मातरः) माता ! मैं पुत्र (वः) तुम को (तत्) श्रेष्ठ पथ्यरूप कर्म्म (उपब्रुवे) समीपस्थित होकर उपदेश करूं । हे (पुरुष) पुरुषार्थी श्रेष्ठ सन्तानो ! मैं माता (तव) तेरे (अश्वम्) घोड़े आदि (गाम्) गौ आदि वा पृथिवी आदि (वासः) वस्त्र आदि वा घर और (आत्मानम्) जीव को निरन्तर (सनेयम्) सेवन करूं ॥ ७८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जौ आदि ओषधि सेवन की हुई शरीरों को पुष्ट करती हैं वैसे ही माता विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश से सन्तानों को पुष्ट करें । जो माता का धन है वह भाग सन्तान का और जो सन्तान का है वह माता का ऐसे सब परस्पर प्रीति से वर्त्त कर निरन्तर सुख को बढ़ावें ॥ ७८ ॥

अश्वत्थ इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग नित्य कैसा विचार करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।

गोभाजऽइत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ओषधियों के समान (यत्) जिस कारण (वः) तुम्हारा (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है । और (वः) तुम्हारा (पर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया है इस से (गोभाजः) पृथिवी को सेवन करते हुए (किल) ही (पूरुषम्) अन्न आदि से पूर्ण देहवाले पुरुष को (सनवथ) ओषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए (इत्) इस संसार में (असथ) रहो ॥ ७९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिए कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है इससे शरीर को रोगों से बचा कर धर्म्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें । जैसे ओषधि तृण आदि फल फूल पत्ते स्कन्ध और शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही रोगरहित शरीरों से शोभायमान हों ॥ ७९ ॥

यत्रौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

बार २ श्रेष्ठ वैद्यों का सेवन करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।

विप्रः सऽउच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्र) जिन स्थलों में (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी होती हों उन को जैसे (राजानः) राजधर्म से युक्त वीरपुरुष (समिताविव) युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त होते हैं वैसे (समग्मत) प्राप्त हो जो (रक्षोहा) दुष्ट रोगों का नाशक (अमीवचातनः) रोगों को निवृत्त करनेवाला (विप्र) बुद्धिमान् (भिषक्) वैद्य हो (सः) वह तुम्हारे प्रति (उच्यते) ओषधियों के गुण का उपदेश करे और ओषधियों का तथा उस वैद्य का सेवन करो ॥ ८० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जीत के राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य से शिक्षा को प्राप्त हुए तुम लोग ओषधियों की विद्या को प्राप्त हो । जिस शुद्ध देश में ओषधि हों वहां उन को जान के उपयोग में लाओ और दूसरों के लिए भी बताओ ॥ ८० ॥

अश्वावतीमित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अश्वावतीᳬं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।

आवित्सि सर्वाऽओषधीरस्माऽअरिष्टतातये ॥ ८१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अरिष्टतातये) दुःखदायक रोगों के छुड़ाने के लिये (अश्वावतीम्) प्रशंसित शुभगुणों से युक्त (सोमावतीम्) बहुत रस से सहित (उदोजसम्) अति पराक्रम बढ़ाने हारी (ऊर्जयन्तीम्) बल देती हुई श्रेष्ठ ओषधियों को (आ) सब प्रकार (अवित्सि) जानूं कि जिससे (सर्वाः) सब (ओषधीः) ओषधि (अस्मै) इस मेरे लिये सुख देवें । इसलिए तुम लोग भी प्रयत्न करो ॥ ८१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि रोगों का निदान चिकित्सा ओषधि और पथ्य के सेवन से निवारण करें तथा ओषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लेवें कि जिससे रोगों की निवृत्ति होकर पुरुषार्थ की वृद्धि होवे ॥ ८१ ॥

उच्छुष्मा इत्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

ओषधियों का क्या निमित्त है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।

धनᳬं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥

पदार्थ—हे (पूरुष) पुरुष शरीर में सोनेवाले वा देहधारी ! (धनम्) ऐश्वर्य्य बढ़ानेवाले को (सनिष्यन्तीनाम्) सेवन करती हुई (ओषधीनाम्) सोमलता वा जौ आदि ओषधियों के सम्बन्ध से जैसे (शुष्माः) प्रशंसित बल करनेहारी (गावः) गौ वा किरण (गोष्ठादिव) अपने स्थान से बछड़ों वा पृथिवी को और ओषधियों का तत्त्व (तव) तेरी (आत्मानम्) आत्मा को (उदीरते) प्राप्त होता है उन सब की तू सेवा कर ॥ ८२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे रक्षा की हुई गौ अपने दूध आदि से अपने बच्चों और मनुष्य आदि को पुष्ट करके बलवान् करती है । वैसे ही ओषधियां तुम्हारे आत्मा और शरीरों को पुष्ट कर पराक्रमी करती हैं जो कोई न खावे तो क्रम से बल और बुद्धि की हानि हो जावे । इसलिए ओषधि ही बल बुद्धि का निमित्त है ॥ ८२ ॥

इष्कृतिरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अच्छे प्रकार सेवन की हुई ओषधि क्या करती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इष्कृतिर्नाम वो माताऽथो यूयᳬं स्थ निष्कृतीः ।

सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यूयम्) तुम लोग जो (वः) तुम्हारी (इष्कृतिः) कार्य्यसिद्धि करने हारी (माता) माता के समान ओषधि (नाम) प्रसिद्ध है उस की सेवा के तुल्य सेवन की हुई ओषधियों को जाननेवाले (स्थ) होओ (पतत्रिणीः) चलनेवाली (सीराः) नदियों के समान (निष्कृतीः) प्रत्युपकारों को सिद्ध करनेवाले (स्थन) होओ (अथो) इस के अनन्तर (यत्) जो क्रिया वा ओषधी अथवा वैद्य (आमयति) रोग बढ़ावे उस को (निष्कृथ) छोड़ो ॥ ८३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे माता पिता तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे तुम भी उनकी सेवा करो । जो जो काम रोगकारी हो उस २ को छोड़ो । इस प्रकार सेवन की हुई ओषधि माता के समान प्राणियों को पुष्ट करती हैं ॥ ८३ ॥

अति विश्वा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कैसे रोग निवृत्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनऽइव व्रजमक्रमुः ।

ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥ ८४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (परिष्ठाः) सब ओर से स्थित (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोमलता और जौ आदि ओषधी (व्रजम्) जैसे गोशाला को (स्तेन इव) भित्ति फोड़ के चोर जावे वैसे पृथिवी फोड़ के (अत्यक्रमुः) निकलती हैं (यत्) जो (किञ्च) कुछ (तन्वः) शरीर का (रपः) पापों के फल के समान रोगरूप दुःख है उस सब को (प्राचुच्यवुः) नष्ट करती हैं उन ओषधियों को युक्ति से सेवन करो ॥ ८४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे गौओं के स्वामी से धमकाया हुआ चोर भित्ति को फांद के भागता है वैसे ही श्रेष्ठ ओषधियों से ताड़ना किये रोग नष्ट हो के भाग जाते हैं ॥ ८४ ॥

यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्तऽआदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यथा) जिस प्रकार (पुरा) पूर्व (वाजयन्) प्राप्त करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (इमाः) इन (ओषधीः) ओषधियों को (हस्ते) हाथ में (आदधे) धारण करता हूं जिन से (जीवगृभः) जीव के ग्राहक व्याधि और (यक्ष्मस्य) क्षयी राजरोग का (आत्मा) मूलतत्त्व (नश्यति) नष्ट हो जाता है । उन ओषधियों को श्रेष्ठ युक्तियों से उपयोग में लाओ ॥ ८५ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि सुन्दर हस्तक्रिया से ओषधियों को साधन कर ठीक २ क्रम से उपयोग में ला और क्षयी आदि बड़े रोगों को निवृत्त करके नित्य आनन्द के लिए प्रयत्न करें ॥ ८५ ॥

यस्यौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ठीक २ सेवन की हुई ओषधि रोगों को कैसे न नष्ट करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्वऽउग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यस्य) जिसके (अङ्गमङ्गम्) सब अवयवों और (परुष्परु) मर्म २ के प्रति वर्त्तमान है उसके उस (उग्रः) तीव्र (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (मध्यमशीरिव) बीच के मर्मस्थानों को काटते हुए के समान (विबाधध्वे) विशेष कर निवृत्त कर (ततः) उसके पश्चात् (ओषधीः) ओषधियों को (प्रसर्पथ) प्राप्त होओ ॥ ८६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोक शास्त्र के अनुसार ओषधियों का सेवन करें तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं ॥ ८६ ॥

साकमित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे २ रोगों को नष्ट करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

पदार्थ—हे वैद्य विद्वान् पुरुष ! (किकिदीविना) ज्ञान बढ़ाने हारे (चाषेण) आहार से (साकम्) ओषधियुक्त पदार्थों के साथ (यक्ष्म) राजरोग (प्रपत) हट जाता है जैसे उस (वातस्य) वायु (ध्राज्या) गति के (साकम्) साथ (नश्य) नष्ट हो और (निहाकया) निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के (साकम्) साथ दूर हो वैसा प्रयत्न कर ॥ ८७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ओषधियों का सेवन योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से वर्त्तें ॥ ८७ ॥

अन्या व इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

युक्ति से मिलाई हुई ओषधियां रोगों को नष्ट करती हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अन्या वोऽअन्यामवत्वन्यान्यस्याऽउपावत ।
ताः सर्वाः संविदानाऽइदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! (संविदानाः) आपस में संवाद करती हुई तुम लोग (मे) मेरे (इदम्) इस (वचः) वचन को (प्रावत) पालन करो (ताः) उन (सर्वाः) ओषधियों की (अन्याः) दूसरी (अन्यस्याः) दूसरी की रक्षा के समान (उपावत) समीप से रक्षा करो जैसे (अन्या) एक (अन्याम्) दूसरी की रक्षा करती है वैसे (वः) तुम लोगों को पढ़ाने हारी स्त्री (अवतु) तुम्हारी रक्षा करे ॥ ८८ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती हैं वैसे ही अनुकूलता से मिलाई हुई ओषधी सब रोगों से रक्षा करती हैं । हे स्त्रियो ! तुम लोग ओषधिविद्या के लिए परस्पर संवाद करो ॥ ८८ ॥

या इत्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

रोगों के निवृत्त होने के लिए ही ओषधि ईश्वर ने रची है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ ८९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (याः) जो (फलिनीः) बहुत फलों से युक्त (याः) जो (अफलाः) फलों से रहित (याः) जो (अपुष्पाः) फूलों से रहित (च) और जो (पुष्पिणीः) बहुत फूलों वाली (बृहस्पतिप्रसूताः) वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ने उत्पन्न की हुई ओषधि (नः) हमको (अंहसः) दुःखदायी रोग से जैसे (मुञ्चन्तु) छुड़ावें (ताः) वे तुम लोगों को भी वैसे रोगों से छुड़ावें ॥ ८९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो ईश्वर ने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिए ओषधी रची हैं उनसे वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रोगों को निवृत्त कर और पापों से अलग रह कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मेत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

कौन-कौन ओषधि किस-किस से छुड़ाती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ ९० ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! आप जैसे वे महौषधि रोगों से पृथक् करती हैं (शपथ्यात्) शपथसम्बन्धी कर्म (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में हुए अपराध से (अथो) इसके पश्चात् (यमस्य) न्यायाधीश के (पड्वीशात्) न्याय के विरुद्ध आचरण से (उत) और (सर्वस्मात्) सब (देवकिल्बिषात्) विद्वानों के विषय अपराध से (मा) मुझको (मुञ्चन्तु) पृथक् रक्खें वैसे तुम लोगों को भी पृथक् रक्खें ॥ ९० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि प्रमादकारक पदार्थों को छोड़ के अन्य पदार्थों का भोजन करें और कभी सौगन्द, श्रेष्ठों का अपराध, न्याय से विरोध और मूर्खों के समान ईर्ष्या न करें ॥ ९० ॥

अवपतन्तीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अध्यापक लोग सब को उत्तम ओषधी जनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अवपतन्तीरवदन्दिवऽओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ ९१ ॥

पदार्थ—हम लोग जो (दिवः) प्रकाश से (अवपतन्तीः) नीचे को आती हुई (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिनका विद्वान् लोग (पर्य्यवदन्) सब ओर से उपदेश करते हैं । जिनसे (यम्) जिस (जीवम्) प्राणधारण को (अश्नवामहै) प्राप्त होवें (सः) वह (पूरुषः) पुरुष (न) कभी न (रिष्याति) रोगों से नष्ट होवे ॥ ९१ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिए दिव्य ओषधिविद्या को देवें जिससे सब लोग पूरी अवस्था को प्राप्त होवें । इन ओषधियों को कोई भी कभी नष्ट न करे ॥ ९१ ॥

या ओषधीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्री लोग अवश्य ओषधिविद्या ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳ हृदे ॥ ९२ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जिससे (त्वम्) तू (याः) जो (शतविचक्षणाः) असंख्यात शुभगुणों से युक्त (बह्वीः) बहुत (सोमराज्ञीः) सोम जिनमें राजा अर्थात् सर्वोत्तम (ओषधीः) ओषधी हैं (तासाम्) उनके विषय में (उत्तमा) उत्तम विद्वान् (असि) है इससे (शम्) कल्याणकारिणी (हृदे) हृदय के लिये (अरम्) समर्थ (कामाय) इच्छासिद्धि के लिये योग्य होती है हमारे लिये उनका उपदेश कर ॥ ९२ ॥

भावार्थ—स्त्रियों को चाहिये कि ओषधिविद्या का ग्रहण अवश्य करें क्योंकि इसके विना पूर्णकामना सुखप्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती ॥ ९२ ॥

या इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्यो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे सन्तानों को उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै सं दत्त वीर्य्यम् ॥ ९३ ॥

पदार्थ—हे विवाहित पुरुष ! (याः) जो (सोमराज्ञीः) सोम जिनमें उत्तम है वे (बृहस्पतिप्रसूताः) बड़े कारण के रक्षक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई (ओषधीः) ओषधियाँ (पृथिवीम्, अनु) भूमि के ऊपर (विष्ठिताः) विशेषकर स्थित हैं उनसे (अस्यै) इस स्त्री के लिये (वीर्य्यम्) बीज का दान दे । हे विद्वानो ! आप इन ओषधियों का विज्ञान सब मनुष्यों के लिये (संदत्त) अच्छे प्रकार दिया कीजिये ॥९३॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को उचित है कि बड़ी बड़ी ओषधियों का सेवन करके सुन्दर नियमों के साथ गर्भ धारण करें और ओषधियों का विज्ञान विद्वानों से सीखें ॥ ९३ ॥

याश्चेदमित्यस्य वरुण ऋषिः । भिषजो देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

शुद्ध देशों से ओषधियों का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

'याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।

सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥ ९४ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग (याः) जो (च) विदित हुई और जिनको (उपशृण्वन्ति) सुनते हैं (याः) जो (च) समीप हों और जो (दूरम्) दूर देश में (परागताः) प्राप्त हो सकती हैं उन (सर्वाः) सब (वीरुधः) वृक्ष आदि ओषधियों को (संगत्य) निकट प्राप्त कर (इदम्) इस (वीर्य्यम्) शरीर के पराक्रम को वैद्य मनुष्य लोग जैसे सिद्ध करते हैं वैसे उन ओषधियों का विज्ञान (अस्यै) इस कन्या को (संदत्त) सम्यक् प्रकार से दीजिये ॥९४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग, जो ओषधियां दूर वा समीप में रोगों को हरने और बल करने हारी सुनी जाती हैं उनको उपकार में लाके रोगरहित होओ ॥ ९४ ॥

मा व इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।

द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये ओषधि को (खनामि) उपाड़ता वा खोदता हूँ वह (खनिता) खोदी हुई (वः) तुम को (मा) न (रिषत्) दुःख देवे जिससे (वः) तुम्हारे और (अस्माकम्) हमारे (द्विपात्) दो पग वाले मनुष्य आदि तथा (चतुष्पात्) गौ आदि (सर्वम्) सब प्रजा उस ओषधि से (अनातुरम्) रोगों के दुःखों से रहित (अस्तु) होवे ॥९५॥

भावार्थ—जो पुरुष जिन ओषधियों को खोदे वह उनकी जड़ न मेटे जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगों को हटाता रहे, ओषधियों की परम्परा को बढ़ाता रहे कि जिससे सब प्राणी रोगों के दुःखों से बच के सुखी होवें ॥९५॥

ओषधय इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

क्या करने से ओषधियों का विज्ञान बढ़े यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा ।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि । ९६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जो (सोमेन, राज्ञा) सर्वोत्तम सोमलता के (सह) साथ वर्त्तमान (ओषधयः) ओषधी हैं उनके विज्ञान के लिये आप लोग (समवदन्त) आपस में संवाद करो । हे वैद्य (राजन्) राजपुरुष ! हम लोग (ब्राह्मणः) वेदों और उपवेदों का वेत्ता पुरुष (यस्मै) जिस रोगी के लिये इन ओषधियों का ग्रहण (कृणोति) करता है (तम्) उस रोगी को रोगसागर से उन ओषधियों से (पारयामसि) पार पहुंचाते हैं ॥९६॥

भावार्थ—वैद्य लोगों को योग्य है कि आपस में प्रश्नोत्तरपूर्वक निरन्तर ओषधियों के ठीक ठीक ज्ञान से रोगों से रोगी पुरुषों को पार कर निरन्तर सुखी करें । और जो इनमें उत्तम विद्वान् हो वह सब मनुष्यों को वैद्यकशास्त्र पढ़ावे ॥९६॥

नाशयित्रीत्यस्य वरुण ऋषिः । भिषग्वरा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

जितने रोग हैं उतनी ओषधी हैं उन का सेवन करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नाशयित्री बलासस्यार्शसऽउपचितामसि ।

अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥

पदार्थ—हे वैद्य लोगो ! जो (बलासस्य) प्रवृद्ध हुए कफ की (अर्शसः) गुदेन्द्रिय की व्याधि वा (उपचिताम्) अन्य बढ़े हुए रोगों की (नाशयित्री) नाश करने हारी (असि) ओषधि है (अथो) और जो (शतस्य) असंख्यात (यक्ष्माणाम्) राजरोगों अर्थात् भगन्दरादि और (पाकारोः) मुखरोगों और मर्मों का छेदन करने हारे शूल की (नाशनी) निवारण करने हारी (असि) है उस ओषधी को तुम लोग जानो ॥९७॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं उतनी ही उनकी नाश करनेहारी ओषधी भी हैं, इन ओषधियों को नहीं जाननेहारे पुरुष रोगों से पीड़ित होते हैं । जो रोगों की ओषधी जानें तो उन रोगों की निवृत्ति करके निरन्तर सुखी होवें ॥९७॥

त्वां गन्धर्वा इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

कौन-कौन ओषधी का खनन करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।

त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥ ९८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस ओषधी से रोगी (यक्ष्मात्) क्षयरोग से (अमुच्यत) छूट जाय और जिस ओषधी को उपयुक्त करो (त्वाम्) उसको (गन्धर्वाः) गानविद्या में कुशल पुरुष (अखनन्) ग्रहण करें (त्वाम्) उसको (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य (त्वाम्) उसको (बृहस्पतिः) वेदज्ञ जन और (त्वाम्) उसको (सोमः) सुन्दर गुणों से युक्त (विद्वान्) सब शास्त्रों का वेत्ता (राजा) प्रकाशमान राजा (त्वाम्) उस ओषधी को खोदे ॥९८॥

भावार्थ—जो कोई ओषधी जड़ों से, कोई शाखा आदि से, कोई पुष्पों, कोई फलों और कोई सब अवयवों करके रोगों से बचाती हैं । उन ओषधियों का सेवन मनुष्यों को यथावत् करना चाहिये ॥९८॥

सहस्वेत्यस्य वरुण ऋषिः । ओषधिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सहस्व मेऽअरातीः सहस्व पृतनायतः ।

सहस्व सर्वं पाप्मानꣳ सहमानास्योषधे ॥ ९९ ॥

पदार्थ—(ओषधे) ओषधी के सदृश ओषधीविद्या की जानने हारी स्त्री ! जैसे ओषधी (सहमाना) बल का निमित्त (असि) है (मे) मेरे रोगों का निवारण करके बल बढ़ाती है वैसे (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर अपने (पृतनायतः) सेनायुद्ध की इच्छा करते हुओं को (सहस्व) सहन कर और (सर्वम्) सब (पाप्मानम्) रोगादि को (सहस्व) सहन कर ॥९९॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों के सेवन से बल बढ़ा और प्रजा के तथा अपने शत्रुओं और पापी जनों को वश में करके सब प्राणियों को सुखी करें ॥९९॥

दीर्घायुस्त इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । विराड्बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य कैसे हो के दूसरों को कैसे करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दीर्घायुस्तऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।

अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥ १०० ॥

पदार्थ—हे (ओषधे) ओषधि के तुल्य ओषधियों के गुण दोष जानने हारे पुरुष ! जिससे (ते) तेरी जिस ओषधि का (खनिता) सेवन करने हारा (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये (च) और जिस पुरुष के लिये (खनामि) खोदूं उससे तू (दीर्घायुः) अधिक अवस्था वाला हो (अथो) और (दीर्घायुः) बड़ी अवस्था वाला (भूत्वा) होकर (त्वम्) तू जो (शतवल्शा) बहुत अंकुरों से युक्त ओषधि है (त्वा) उस को सेवन करके सुखी हो और (वि, रोहतात्) प्रसिद्ध हो ॥१००॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ओषधियों के सेवन से अधिक अवस्था वाले होओ और धर्म का आचरण करने हारे होकर सब मनुष्यों को ओषधियों के सेवन से दीर्घ अवस्था वाले करो ॥१००॥

त्वमुत्तमासीत्यस्य वरुण ऋषिः । भिषजो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह ओषधी किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षाऽउपस्तयः ।

उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं योऽअस्माँ२ऽअभिदासति ॥ १०१ ॥

पदार्थ—हे वैद्यजन ! (यः) जो (अस्मान्) हमको (अभिदासति) अभीष्ट सुख देता है (सः) वह (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारा (उपस्तिः) संगी (अस्तु) हो जो (उत्तमा) उत्तम (ओषधे) ओषधी (असि) है (तव) जिसके (वृक्षाः) वट आदि वृक्ष (उपस्तयः) समीप इकट्ठे होनेवाले हैं उस ओषधी से हमारे लिये सुख दे ॥१०१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विरोधी वैद्य की ओषधी कभी न ग्रहण करें किन्तु जो वैद्यकशास्त्रज्ञ जिसका कोई शत्रु न हो धर्मात्मा सब का मित्र सर्वोपकारी है उससे ओषधिविद्या ग्रहण करें ॥१०१॥

मा मेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । को देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

अब किस लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।

यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०२॥

पदार्थ—(यः) जो (सत्यधर्मा) सत्यधर्म वाला जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (वा) अथवा (यः) जो (दिवम्) सूर्य आदि जगत् को (च) और (पृथिवी) तथा (अपः) जल और वायु को

(व्यानट्) उत्पन्न करके व्याप्त होता है (चन्द्राः) और जो चन्द्रमा आदि लोकों को (जजान) उत्पन्न करता है। जिस (कस्मै) सुखस्वरूप सुख करने हारे (देवाय) दिव्य सुखों के दाता विज्ञानस्वरूप ईश्वर का (हविषा) ग्रहण करने योग्य भक्तियोग से हम लोग (विधेम) सेवन करें। वह जगदीश्वर (मा) मुझको (मा) नहीं (हिंसीत्) कुसंग से ताड़ित होने देवे ॥१०२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सत्यधर्म की प्राप्ति और ओषधि आदि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करें ॥१०२॥

अभ्यावर्त्तस्वेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः।
ऋषभः स्वरः॥

पृथिवी के पदार्थों का विज्ञान कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह।
वपां तेऽअग्निरिषितोऽअरोहत् ॥ १०३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य! तू जो (पृथिवि) भूमि (यज्ञेन) संगम के योग्य (पयसा) जल के (सह) साथ वर्त्तती है उसको (अभ्यावर्त्तस्व) दोनों ओर से शीघ्र वर्त्ताव कीजिये जो (ते) आपके (वपाम्) बोने को (इषितः) प्रेरणा किया (अग्निः) अग्नि (अरोहत्) उत्पन्न करता है वह अग्नि गुण कर्म और स्वभाव के साथ सब को जानना चाहिये ॥१०३॥

भावार्थ—जो पृथिवी सब का आधार उत्तम रत्नादि पदार्थों की दाता जीवन का हेतु बिजुली से युक्त है उसका विज्ञान भूगर्भविद्या से सब मनुष्यों को करना चाहिये ॥ १०३ ॥

अग्ने यत्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग् गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

किसलिये अग्नि विद्या का खोज करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने यत्तशुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम्।
तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष! (यत्) जो अग्नि का (शुक्रम्) शीघ्रकारी (यत्) जो (चन्द्रम्) सुवर्ण के समान आनन्द देने हारा (यत्) जो (पूतम्) पवित्र (च) और (यत्) जो (यज्ञियम्) यज्ञानुष्ठान के योग्य स्वरूप है (तत्) वह (ते) आपके और (देवेभ्यः) दिव्यगुण होने के लिये (भरामसि) हम लोग धारण करें ॥१०४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण और कर्मों की सिद्धि के लिये बिजुली आदि अग्निविद्या को विचारें ॥१०४॥

इषमूर्जमित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। विद्वान् देवता। विराट्त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

अब ठीक-ठीक आहार विहार करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इषमूर्जमहमितऽआदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम्।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥१०५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (अहम्) मैं (इतः) इस पूर्वोक्त विद्युत्स्वरूप से (आदम्) भोगने योग्य (इषम्) अन्न (ऊर्ज्जम्) पराक्रम (महिषस्य) बड़े (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) कारण (धाराम्) धारण करनेवाली वाणी को प्राप्त होऊं जैसे अन्न और पराक्रम (मा) मुझको (आविशतु) प्राप्त हो जिससे मेरे (गोषु) इन्द्रियों और (तनूषु) शरीर में प्रविष्ट हुई (सेदिम्) दुःख का हेतु (अनिराम्) जिसमें अन्न का भोजन भी न कर सकें ऐसी (अमीवाम्) रोगों से उत्पन्न हुई पीड़ा को (आ, जहामि) छोड़ता हूँ वैसे तुम लोग भी करो ॥१०५॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि का जो वीर्य्य आदि से युक्त स्वरूप है उसको प्रदीप्त करने से रोगों का नाश करें। इन्द्रिय और शरीर को स्वस्थ रोग रहित करके कार्य्य कारण की जानने हारी विद्यायुक्त वाणी को प्राप्त होवें और युक्ति से आहार विहार भी करें ॥१०५॥

अग्ने तवेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्तेऽअर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

पदार्थ—हे (बृहद्भानो) अग्नि के समान अत्यन्त विद्याप्रकाश से युक्त (विभावसो) विविध प्रकार की कान्ति में बसने हारे (कवे) अत्यन्त बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् पुरुष! जिस से आप (शवसा) बल के साथ (दाशुषे) दान के योग्य विद्यार्थी के लिये (उक्थ्यम्) कहने योग्य (वाजम्) विज्ञान को (दधासि) धारण करते हो इससे (तव) आपका अग्नि के समान (महि) अति पूजने योग्य (श्रवः) सुनने योग्य शब्द (वयः) यौवन और (अर्चयः) दीप्ति (भ्राजन्ते) प्रकाशित होती है ॥१०६॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के समान गुणी और आप्तों के तुल्य श्रेष्ठ कीर्त्तियों से प्रकाशित होते हैं वे परोपकार के लिये दूसरों को विद्या विनय और धर्म का निरन्तर उपदेश करें ॥ १०६ ॥

पावकवर्चेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

माता पिता सन्तानों के प्रति क्या २ करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पावकवर्चाः शुक्रवर्चाऽअनूनवर्चाऽउदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसीऽउभे ॥ १०७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (पुत्रः) पुत्र ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में (विचरन्) विचरता हुआ विद्या को प्राप्त होता और (भानुना) प्रकाश से (पावकवर्चाः, शुक्रवर्चाः) बिजुली और सूर्य के प्रकाश के समान न्याय करने और (अनूनवर्चाः) पूर्ण विद्याऽभ्यास करने हारा और जैसे (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी परस्पर सम्बन्ध करते हैं जैसे (इयर्षि) विद्या को प्राप्त होता राज्य का (पृणक्षि) संबन्ध करता और (मातरा) माता पिता की (उपावसि) रक्षा करता है इससे तू धर्मात्मा है ॥ १०७ ॥

भावार्थ—मातापिताओं को यह अति उचित है कि सन्तानों को उत्पन्न कर बाल्यावस्था में आप शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य करा आचार्य के कुल में भेज के विद्यायुक्त करें। सन्तानों को चाहिए कि विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त हो और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य्य को बढ़ा के अभिमान और मत्सररहित प्रीति से माता पिता की मन वाणी और कर्म्म से यथावत् सेवा करें ॥ १०७ ॥

ऊर्जो नपादित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

माता पिता और पुत्र कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वेऽइषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) बुद्धि और धन से युक्त पुत्र! जिस (त्वे) तुझ में (भूरिवर्पसः) बहुत प्रशंसा के योग्य रूपों से युक्त (चित्रोतयः) आश्चर्य के तुल्य रक्षा आदि कर्म्म करने वाली (वामजाताः) प्रशंसा के योग्य कुलों वा कर्मों में प्रसिद्ध विद्याप्रिय अध्यापक माता आदि विद्वान् स्त्रियें (इषः) अन्नों को (संदधुः) धरें भोजन करावें सो तू (सुशस्तिभिः) उत्तमप्रशंसायुक्त क्रियाओं के साथ (धीतिभिः) अङ्गुलियों से बुलाया हुआ (ऊर्जः, नपात्) धर्म के अनुकूल पराक्रमयुक्त सब के हित को धारण सदा किये हुए (मन्दस्व) आनन्द में रह ॥ १०८ ॥

भावार्थ—जिन कुमार और कुमारियों की माता विद्याप्रिय विद्वान् हों वे ही निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं और जिन माता पिताओं के सन्तान विद्या अच्छी शिक्षा और ब्रह्मचर्य्य सेवन से शरीर और आत्मा के बल से युक्त धर्म का आचरण करने वाले हैं वे ही सदा सुखी हों ॥ १०८ ॥

इरज्यन्नित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्य कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र म कहा है—

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायोऽअमर्त्य।
सदर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥

पदार्थ—हे (अमर्त्य) नाश और संसारी मनुष्यों के स्वभाव से रहित (अग्ने) अग्नि के समान पुरुषार्थी! जो (इरज्यन्) ऐश्वर्य्य का सञ्चय करते हुए आप (दर्शतस्य) देखने योग्य (वपुषः) रूप का (सानसिम्) सनातन (क्रतुम्) बुद्धि का (पृणक्षि) सम्बन्ध करते हो और उसी बुद्धि में विशेष करके (विराजसि) शोभित होते हो (सः) सो आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (जन्तुभिः) मनुष्यादि प्राणियों से (रायः) धनों का (प्रथयस्व) विस्तार कीजिये ॥ १०९ ॥

भावार्थ—जो पुरुष मनुष्यों के लिये सनातन वेदविद्या को देता और सुन्दर आचार में विराजमान हो वही ऐश्वर्य्य को प्राप्त होके दूसरों के लिये प्राप्त करा सकता है ॥ १०९ ॥

इष्कर्त्तारमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

कौन पुरुष परोपकारी होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥ ११० ॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष! जो आप (अध्वरस्य) बढ़ाने योग्य यज्ञ के (इष्कर्त्तारम्) सिद्ध करने वाले (प्रचेतसम्) उत्तम बुद्धिमान् (वामस्य) प्रशंसित

(महः) बड़े (राधसः) धन से (रातिम्) देने और (क्षयन्तम्) निवास करने वाले पुरुष और (सुभगाम्) सुन्दर ऐश्वर्य्य की देनेहारी (महीम्) पृथिवी तथा (इषम्) अन्न आदि को और (सानसिम्) प्राचीन (रयिम्) धन को (दधाति) धारण करते हो इस से हम लोगों को सत्कार करने योग्य हो ॥ ११० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करे वैसे ही दूसरों के लिये भी करे वही आप्त सत्कार के योग्य होवे ॥ ११० ॥

ऋतावानमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किनका अनुहार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (जनाः) विद्या और विज्ञान से प्रसिद्ध मनुष्य (गिरा) वाणी से (सुम्नाय) सुख के लिये (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (श्रुत्कर्णम्) बहुश्रुत (विश्वदर्शतम्) सब देखने हारे (सप्रथस्तमम्) अत्यन्तविद्या के विस्तार के साथ वर्त्तमान (ऋतावानम्) बहुत सत्याचरण से युक्त (महिषम्) बड़े (अग्निम्) विद्वान् को (मानुषा) मनुष्यों के (युगा) वर्ष वा सत्ययुग आदि (पुरः) प्रथम (दधिरे) धारण करते हुए वैसे विद्वान् को और इन वर्षों को तू भी धारण कर यह (त्वा) तुझे सिखाता हूँ ॥ १११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सत्पुरुष हो चुके हों उन्हीं का अनुकरण मनुष्य लोग करें अन्य अधर्मियों का नहीं ॥ १११ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

राजपुरुष क्या करके कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥

पदार्थ—हे (सोम) चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त राजपुरुष ! जैसे सोमगुणयुक्त विद्वान् के संग से (ते) तेरे लिये (वृष्ण्यम्) वीर्य्य पराक्रम वाले पुरुष के कर्म को (विश्वतः) सब ओर से (समेतु) संगत हो उससे आप (आप्यायस्व) बढ़िये (वाजस्य) विज्ञान और वेग से संग्राम के जानने हारे (संगथे) युद्ध में विजय करनेवाले (भव) हूजिये ॥ ११२ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को नित्य पराक्रम बढ़ा के शत्रुओं से विजय को प्राप्त होना चाहिये ॥ ११२ ॥

सं त इत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

शरीर और आत्मा के बल से युक्त पुरुष किसको प्राप्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥११३॥

पदार्थ—हे (सोम) शान्तियुक्त पुरुष ! जिस (ते) तुम्हारे लिये (पयांसि) जल वा दुग्ध (संयन्तु) प्राप्त होवें (अभिमातिषाहः) अभिमानयुक्त शत्रुओं को सहनेवाले (वाजाः) धनुर्वेद के विज्ञान (सम्) प्राप्त होवें (उ) और (वृष्ण्यानि) पराक्रम (सम्) प्राप्त होवें सो (आप्यायमानः) अच्छे प्रकार बढ़ते हुए आप (दिवि) प्रकाशस्वरूप ईश्वर में (अमृताय) मोक्ष के लिये (उत्तमानि, श्रवांसि) उत्तम श्रवणों को (धिष्व) धारण कीजिये ॥ ११३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल को नित्य बढ़ाते हैं वे योगाभ्यास से परमेश्वर में मोक्ष के आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ११३ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

संसार में कौन वृद्धि को प्राप्त होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः । भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

पदार्थ—हे (मदिन्तम) अत्यन्त आनन्दी (सोम) ऐश्वर्य्य वाले पुरुष ! आप (अंशुभिः) किरणों से सूर्य्य के समान (विश्वेभिः) सब साधनों से (आप्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (सप्रथस्तमः) अत्यन्त विस्तारयुक्त सुख करने हारे (सखा) मित्र हुए (नः) हमारे (वृधे) बढ़ाने के लिये (भव) तत्पर हूजिये ॥ ११४ ॥

भावार्थ—इस संसार में सब का हित करने हारा पुरुष सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है, ईर्ष्या करनेवाला नहीं ॥ ११४ ॥

आ त इत्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य लोग किसको वश में करके आनन्द को प्राप्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥ ११५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! (त्वाङ्कामया) तुझको कामना करने के हेतु (गिरा) वाणी से जिस (ते) तेरा (मनः) चित्त जैसे (परमात्) अच्छे (सधस्थात्) एक से स्थान से (चित्) भी (वत्सः) बछड़ा गौ को प्राप्त होवे वैसे (आ, यमत्) स्थिर होता है सो तू मुक्ति को क्यों न प्राप्त होवे ॥ ११५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि मन और वाणी को सदैव अपने वश में रक्खें ॥ ११५ ॥

तुभ्यं ता इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्यं ताऽअङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरस्तम) अतिशय करके सार के ग्राहक (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! जो (विश्वाः) सब (सुक्षितयः) श्रेष्ठ मनुष्यों वाली प्रजा (पृथक्) अलग (कामाय) इच्छा के साधक (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (येमिरे) प्राप्त होवे (ताः) उन प्रजाओं की आप निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ११६ ॥

भावार्थ—जहाँ प्रजा के लोग धर्मात्मा राजा को प्राप्त होके अपनी-अपनी इच्छा पूरी करते हैं वहाँ राजा की वृद्धि क्यों न होवे ॥ ११६ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापति ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग कैसे होकर क्या क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशक (एकः) एक ही असहाय परमेश्वर के सदृश (कामः) स्वीकार के योग्य (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान सभापति (भूतस्य) हो चुके और (भव्यस्य) आनेवाले समय के (प्रियेषु) इष्ट (धामसु) जन्म स्थान और नामों में (विराजति) प्रकाशित होवे वही राज्य का अधिकारी होने योग्य है ॥ ११७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों के अनुकूल अपने कर्म और स्वभाव करते हैं वे ही चक्रवर्ती राज्य भोगने के योग्य होते हैं ॥ ११७ ॥

इस अध्याय में स्त्री, पुरुष, राजा, प्रजा, खेती और पठन-पाठन आदि कर्म का वर्णन है । इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिये ॥

॥ यह बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ अथ त्रयोदशाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

य॰ ३० । ३ ॥

तत्र मयि गृह्णामीत्याद्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेरहवें अध्याय का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को पहिली अवस्था में क्या-क्या करना चाहिये यह विषय कहा है—

**मयि॑ गृह्णा॒म्यग्रे॑ अ॒ग्निꣳ रा॒यस्पोषा॑य सुप्रजा॒स्त्वाय॑ सु॒वीर्य्या॑य ।
माम॑ु दे॒वताः॑ सचन्ताम् ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे कुमार वा कुमारियो ! जैसे मैं (**अग्रे**) पहिले (**मयि**) मुझ में (**रायः**) विज्ञान आदि धन के (**पोषाय**) पुष्टि (**सुप्रजास्त्वाय**) सुन्दर प्रजा होने के लिये और (**सुवीर्य्याय**) रोगरहित सुन्दर पराक्रम होने के अर्थ (**अग्निम्**) उत्तम विद्वान् को (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ जिससे (**माम्**) मुझको (**उ**) ही (**देवताः**) उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुण (**सचन्ताम्**) मिलें वैसे तुम लोग भी करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को यह उचित है कि ब्रह्मचर्य्ययुक्त कुमारावस्था में वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से पदार्थविद्या उत्तम कर्म और ईश्वर की उपासना तथा ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करें । जिससे श्रेष्ठ गुण और आप्त विद्वानों को प्राप्त होके उत्तम धन सन्तानों और पराक्रम को प्राप्त होवें ॥१॥

अपां पृष्ठमित्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब परमेश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है —

**अ॒पां पृ॒ष्ठम॑सि॒ योनि॑र॒ग्नेः स॑मु॒द्रम॒भितः॒ पिन्व॑मानम् ।
वर्ध॑मानो म॒हाँ२ऽआ च॒ पुष्क॑रे दि॒वो मात्र॑या वरि॒म्णा प्र॑थस्व ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जो तू (**अभितः**) सब ओर से (**अपाम्**) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर आकाश दिशा विजुली और प्राणों वा जलों के (**पृष्ठम्**) अधिकरण (**समुद्रम्**) आकाश के समान सागर (**पिन्वमानम्**) सींचते हुए समुद्र को (**अग्नेः**) बिजुली आदि अग्नि के (**योनिः**) कारण (**दिवः**) प्रकाशित पदार्थों का (**मात्रया**) निर्माण करनेहारी बुद्धि से (**पुष्करे**) हृदयरूप अन्तरिक्ष में (**वर्धमानः**) उन्नति को प्राप्त हुए (**च**) और (**महान्**) सबसे श्रेष्ठ वा सब के पूज्य (**असि**) हो सो आप हमारे लिए (**वरिम्णा**) व्यापक शक्ति से (**आ, प्रथस्व**) प्रसिद्ध हूजिए ॥२॥

भावार्थ—मनुष्यों को जिस सत्, चित् और आनन्दस्वरूप, सब जगत् का रचने हारा, सर्वत्र व्यापक, सबसे उत्तम और सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना से संपूर्ण विद्यादि अनन्त गुण प्राप्त होते हैं उसका सेवन क्यों न करना चाहिए ॥ २ ॥

ब्रह्म जज्ञानमित्यस्य वत्सार ऋषिः । आदित्यो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस स्वरूप वाला ब्रह्म उपासना के योग्य है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**ब्रह्म॑ ज॒ज्ञानं॑ प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द्वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒नऽआ॑वः ।
स बु॒ध्न्या॑ऽउप॒माऽअ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ विवः॑ ॥ ३ ॥**

पदार्थ—जो (**पुरस्तात्**) सृष्टि की आदि में (**जज्ञानम्**) सबका उत्पादक और ज्ञाता (**प्रथमम्**) विस्तारयुक्त और विस्तारकर्त्ता (**ब्रह्म**) सब से बड़ा जो (**सुरुचः**) सुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर रुचि का विषय (**वेनः**) ग्रहण के योग्य जिस (**अस्य**) इसके (**बुध्न्याः**) जलसम्बन्धी आकाश में वर्त्तमान सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथिवी और नक्षत्र आदि (**विष्ठाः**) विविध स्थलों में स्थित (**उपमाः**) ईश्वरज्ञान के दृष्टान्त लोक हैं उन सबको (**सः**) वह (**आवः**) अपनी व्याप्ति से आच्छादन करता है वह ईश्वर (**विसीमतः**) मर्य्यादा से (**सतः**) विद्यमान देखने योग्य (**च**) और (**असतः**) अव्यक्त (**च**) और कारण के (**योनिम्**) आकाशरूप स्थान को (**विवः**) ग्रहण करता है उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगों को नित्य अवश्य करनी चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस ब्रह्म के जानने के लिए प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सब लोक दृष्टान्त जो सर्वत्र व्याप्त हुआ सबका आवरण और सभी का प्रकाश करता है और सुन्दर नियम के साथ अपनी-अपनी कक्षा में सब लोकों को रखता है वही अन्तर्य्यामी परमात्मा सब मनुष्यों के निरन्तर उपासना के योग्य है इससे अन्य कोई पदार्थ सेवने योग्य नहीं ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ऽआसीत् ।
स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो इस (**भूतस्य**) उत्पन्न हुए संसार का (**जातः**) रचने और (**पतिः**) पालन करने हारा (**एकः**) सहाय की अपेक्षा से रहित (**हिरण्यगर्भः**) सूर्यादि तेजोमय पदार्थ का आधार (**अग्रे**) जगत् रचने के पहिले (**समवर्त्तत**) वर्त्तमान (**आसीत्**) था (**सः**) वह (**इमाम्**) इस संसार को रचके (**उत**) और (**पृथिवीम्**) प्रकाशरहित और (**द्याम्**) प्रकाशसहित सूर्यादि लोकों को (**दाधार**) धारण करता हुआ उस (**कस्मै**) सुखरूप प्रजा पालने वाले (**देवाय**) प्रकाशमान परमात्मा की (**हविषा**) आत्मादि सामग्री से (**विधेम**) सेवा में तत्पर हों वैसे तुम लोग भी इस परमात्मा का सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको योग्य है कि सब प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से प्रथम परमेश्वर ही विद्यमान था, जीव गाढ़ निद्रा सुषुप्ति में लीन और जगत् का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एकरस स्थिर था, जिसने सब जगत् को रचके धारण किया और अन्त्य समय में प्रलय करता है उसी परमात्मा को उपासना के योग्य मानो ॥ ४ ॥

द्रप्स इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**द्र॒प्सश्च॑स्कन्द पृथि॒वीमनु॒ द्यामि॒मं च॒ योनि॒मनु॒ यश्च॒ पूर्वः॑ ।
स॒मा॒नं योनि॒मनु॑ सं॒चर॑न्तं द्र॒प्सं जु॑हो॒म्यनु॑ स॒प्त होत्राः॑ ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं जिसके (**सप्त**) पांच प्राण मन और आत्मा ये सात (**होत्राः**) अनुग्रहण करने हारे (**यः**) जो (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**द्याम्**) प्रकाश (**च**) और (**योनिम्**) कारण के अनुकूल जो (**पूर्वः**) सम्पूर्ण स्वरूप (**द्रप्सः**) आनन्द और उत्साह को (**अनु**) अनुकूलता से (**चस्कन्द**) प्राप्त होता है उस (**योनिम्**) स्थान के (**अनु**) अनुसार (**संचरन्तम्**) संचारी (**समानम्**) एक प्रकार के (**द्रप्सम्**) सर्वत्र अभिव्याप्त आनन्द को मैं (**अनुजुहोमि**) अनुकूल ग्रहण करता हूँ वैसे तुम लोग भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि जिस जगदीश्वर के आनन्द और स्वरूप का सर्वत्र लाभ होता है उसकी प्राप्ति के लिये योगाभ्यास करो ॥ ५ ॥

नमोऽस्त्वित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिर्देवता च । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को संसार में कैसे वर्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**नमो॑ऽस्तु स॒र्पेभ्यो॒ ये के च॑ पृथि॒वीमनु॑ ।
येऽअ॒न्तरि॑क्षे॒ ये दि॒वि तेभ्यः॑ स॒र्पेभ्यो॒ नमः॑ ॥ ६ ॥**

पदार्थ—जो (**के**) कोई इस जगत् में लोक लोकान्तर और प्राणी हैं (**तेभ्यः**) उन (**सर्पेभ्यः**) लोकों के जीवों के लिए (**नमः**) अन्न (**अस्तु**) हो (**ये**) जो (**अन्तरिक्षे**) आकाश में (**ये**) जो (**दिवि**) प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोकों में (**च**) और (**ये**) जो (**पृथिवीम्**) भूमि के (**अनु**) ऊपर चलते हैं उन (**सर्पेभ्यः**) प्राणियों के लिए (**नमः**) अन्न प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जितने लोक दीख पड़ते हैं और जो नहीं दीख पड़ते हैं वे सब अपनी-अपनी कक्षा में नियम से स्थिर हुए आकाश मार्ग में घूमते उन सबों में जो प्राणी चलते हैं उनके लिए अन्न भी ईश्वर ने रचा है कि जिससे इन सबका जीवन होता है इस बात को तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

या इषव इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । स एव देवता च । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**याऽइष॑वो यातु॒धाना॑नां॒ ये वा॒ वन॒स्पतीँ॑१ऽरनु॑ ।
ये वा॑व॒टेषु॒ शेर॑ते॒ तेभ्यः॑ स॒र्पेभ्यो॒ नमः॑ ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (**याः**) जो (**यातुधानानाम्**) पराये पदार्थों को प्राप्त हो के धारण करनेवाले जनों की (**इषवः**) गति हैं (**वा**) अथवा (**ये**)

जो (वनस्पतीन्) वट आदि वनस्पतियों के (अनु) आश्रित रहते हैं और (ये) जो (वा) अथवा (अवटेषु) गुप्तमार्गों में (शेरते) सोते हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) चञ्चल दुष्ट प्राणियों के लिये (नमः) वज्र चलाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो मार्गों और वनों में उचक्के दुष्ट प्राणी एकान्त में दिन के समय सोते हैं उन डाकुओं और सर्पों को शस्त्र, ओषधि आदि से निवारण करें ॥ ७ ॥

ये वामीत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कंटक और दुष्ट प्राणी कैसे हटाने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (अमी) वे परोक्ष रहनेवाले (दिवः) बिजुली के (रोचने) प्रकाश में (वा) अथवा (ये) जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिषु) किरणों में (वा) अथवा (येषाम्) जिनका (अप्सु) जलों में (सदः) स्थान (कृतम्) बना है (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) दुष्ट प्राणियों को (नमः) वज्र मारो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो जलों में, आकाश में, दुष्ट प्राणी वा सर्प रहते हैं उनको शस्त्रों से निवृत्त करें ॥ ८ ॥

कृणुष्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजपुरुषों को शत्रु कैसे बांधने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ऽइभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! आप (पाजः) बल को (कृणुष्व) कीजिये (प्रसितिम्) जाल के (न) समान (पृथ्वीम्) भूमि को (याहि) प्राप्त हूजिये जिससे आप (अस्ता) फेंकने वाले (असि) हैं इससे (इभेन) हाथी के साथ (अमवान्) बहुत दूतों वाले (राजेव) राजा के समान (तपिष्ठैः) अत्यन्त दुःखदायी शस्त्रों से (प्रसितिम्) फाँसी को सिद्ध कर (रक्षसः) शत्रुओं को (द्रूणानः) मारते हुए (तृष्वीम्) शीघ्र (अनु) सन्मुख होकर (विध्य) ताड़ना कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सेनापति को चाहिये कि राजा के समान पूर्ण बल से युक्त हो अनेक फाँसियों से शत्रुओं को बाँध उनको बाण आदि शस्त्रों से ताड़ना दे और बन्दीगृह में बन्द करके श्रेष्ठ पुरुषों को पाले ॥ ९ ॥

तव भ्रमास इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह सेनापति क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तव भ्रमासऽआशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥१०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी सेनापते ! (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र आचरण करने हारे आप जो (तव) आपके (भ्रमासः) भ्रमणशील वीर पुरुष जैसे (विष्वक्) सब ओर से (आशुया) शीघ्र चलने हारी (उल्काः) बिजुली की गतियाँ जैसे (पतन्ति) श्येनपक्षी के समान शत्रुओं के दल में तथा शत्रुओं में गिरते हैं उनको (धृषता) दृढ़ सेना से (अनु) अनुकूल (स्पृश) प्राप्त हूजिये और (असन्दितः) अखण्डित हुए (जुह्वा) घी के हवन का साधन लपट अग्नि के (तपूंषि) तेज के समान शत्रुओं के ऊपर सब ओर से बिजुली को (विसृज) छोड़िये और (पतङ्गान्) घोड़ों को सुन्दर शिक्षायुक्त कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सेनापति और सेना के भृत्यों को चाहिये कि आपस में प्रीति के साथ बल बढ़ा वीर पुरुषों को हर्ष दे और सम्यक् युद्ध करा के अग्नि आदि अस्त्रों और भुशुण्डी आदि शस्त्रों से शत्रुओं के ऊपर बिजुली की वृष्टि करें जिससे शीघ्र विजय हो ॥ १० ॥

प्रतिस्पश इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशोऽअस्या अदब्धः ।
यो नो दूरेऽअघशंसो योऽअन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं के जलाने वाले पुरुष ! (ते) आपका और (नः) हमारा (यः) जो (व्यथिः) व्यथा देने हारा (अघशंसः) पाप करने में प्रवृत्त चोर शत्रुजन (दूरे) दूर तथा (यः) जो (अन्ति) निकट है वैसे वह हम लोगों को (माकिः) नहीं (आ, दधर्षीत्) दुःख देवे उस शत्रु के (प्रति) प्रति आप (तूर्णितमः) शीघ्र दण्डदाता होके (स्पशः) बन्धनों को (विसृज) रचिये और (अस्याः) इस वर्त्तमान (विशः) प्रजा के (पायुः) रक्षक (अदब्धः) हिंसारहित (भव) हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो समीप वा दूर रहने वाले प्रजाओं के दुःखदायी डाकू हैं उनको राजा आदि पुरुष साम, दाम, दण्ड और भेद से शीघ्र वश में लाके दया और न्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ ११ ॥

उदग्न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ२ऽओषतात्तिग्महेते । यो नोऽअरातिꣳसमिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजधारी सभा के स्वामी ! आप राजधर्म के बीच (उत्तिष्ठ) उन्नति को प्राप्त हूजिये धर्मात्मा पुरुषों के (प्रति) लिए (आतनुष्व) सुखों का विस्तार कीजिये । हे (तिग्महेते) तीव्र दण्ड देनेवाले राजपुरुष ! (अमित्रान्) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को (न्योषतात्) निरन्तर जलाइये । हे (समिधान) सम्यक् तेजधारी जन ! (यः) जो (नः) हमारे (अरातिम्) शत्रु को उत्साही (चक्रे) करता है (तम्) उसको (नीचा) नीची दशा में करके (शुष्कम्) सूखे (अतसम्) काष्ठ के (न) समान (धक्षि) जलाइये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा आदि सभ्यजनों को चाहिये कि धर्म और विनय में समाहित होके जल के समान मित्रों को शीतल करें । अग्नि के समान शत्रुओं को जलावें । जो उदासीन होकर शत्रुओं को बढ़ावे उसको दृढ़ बंधनों से बाँध के निष्कण्टक राज्य करें ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वो भवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह राजा किस प्रकार का हो इसका विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् । अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वान् पुरुष ! जिसलिये आप (ऊर्ध्वः) उत्तम (भव) हूजिये धर्म के (प्रति) अनुकूल होक (विध्य) दुष्ट शत्रुओं को ताड़ना दीजिये (अस्मत्) हमारे (स्थिरा) निश्चल (दैव्यानि) विद्वानों के रचे पदार्थों को (आविः) प्रकट (कृणुष्व) कीजिये सुखों को (तनुहि) विस्तारिये (यातुजूनाम्) पर पदार्थों के प्राप्त होने और वेगवाले शत्रुजनों के (जामिम्) भोजन के और (अजामिम्) अन्य व्यवहारों के स्थान को (अव) अच्छे प्रकार विस्तारपूर्वक नष्ट कीजिये और (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणीहि) बल के साथ मारिये इसलिये मैं (त्वा) आपको (अग्नेः) अग्नि के (तेजसा) प्रकाश के (अधि) सम्मुख (सादयामि) स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य्य को पाके उत्तम गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त होवें, प्रजाओं और दरिद्रों को निरन्तर सुख देवें । दुष्ट अधर्माचारी मनुष्यों को निरन्तर शिक्षा करें और सबसे उत्तम पुरुष को सभापति मानें ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजपुरुष कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (अयम्) यह (अग्निः) सूर्य्य (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच और (पृथिव्याः) भूमि का (मूर्द्धा) सब प्राणियों के शिर के समान उत्तम (ककुत्) सबसे बड़ा (पतिः) सब पदार्थों का रक्षक (अपाम्) जलों के (वीर्याणि) सारों से प्राणियों को (जिन्वति) तृप्त करता है वैसे आप भी हूजिये । मैं (त्वा) आपको (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (ओजसा) पराक्रम के साथ राज्य के लिए (सादयामि) स्थापना करता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य्य के समान गुण कर्म्म और स्वभाववाला न्याय से प्रजा के पालन में तत्पर धर्मात्मा विद्वान् हो उसको राज्याधिकारी सब लोग मानें ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (यत्र) जिस राज्य में आप जैसे (नियुद्भिः) वेग आदि गुणों के साथ वायु (रजसः) लोकों वा ऐश्वर्य्य का (नेता) चलाने हारा (दिवि) न्याय के प्रकाश में (मूर्द्धानम्) शिर को धारण करता है वैसे (यत्र) जहां (शिवाभिः) कल्याणकारक नीतियों के साथ (भुवः) अपनी पृथिवी के (यज्ञस्य) राजधर्म के पालन करने हारे होके (सचसे) संयुक्त होता अच्छे पुरुषों से राज्य को (दधिषे) धारण और (हव्यवाहम्) देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु (स्वर्षाम्) सुखों का सेवन करने हारी (जिह्वाम्) अच्छे विषयों की ग्राहक वाणी को (चकृषे) करते हो वहां सब सुख बढ़ते हैं यह निश्चत् जानिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिस राज्य में राजा आदि सब राजपुरुष मंगलाचरण करनेहारे धर्मात्मा होके धर्मानुकूल प्रजाओं का पालन करें वहां विद्या और अच्छी शिक्षा से होने वाले सुख क्यों न बढ़ें ॥ १५ ॥

ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजपत्नी कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा । मा त्वा समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽअव्यथमाना पृथिवीं दृंह ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे राजा की स्त्री ! जिस कारण (विश्वकर्मणा) सब धर्मयुक्त काम करने वाले अपने पति के साथ वर्त्तती हुई (आस्तृता) वस्त्र आभूषण और श्रेष्ठ गुणों से ढपी हुई (धरुणा) विद्या और धर्म की धारणा करने हारी (ध्रुवा) निश्चल (असि) है सो तू (अव्यथमाना) पीड़ा से रहित हुई (पृथिवीम्) अपनी राज्यभूमि को (दृंह) अच्छे प्रकार बढ़ा (त्वा) तुझ को (समुद्रः) जार लोगों का व्यवहार (मा) मत (वधीत्) सतावे और (सुपर्णः) सुन्दर रक्षा किये अवयवों से युक्त तेरा पति (मा) नहीं मारे ॥ १६ ॥

भावार्थ—जैसी राजनीति विद्या को राजा पढ़ा हो वैसी ही उसकी राणी भी पढ़ी होनी चाहिये सदैव दोनों परस्पर पतिव्रता स्त्रीव्रत हो के न्याय से पालन करें । व्यभिचार और काम की व्यथा से रहित होकर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न करके स्त्रियों का स्त्री राणी और पुरुषों का पुरुष राजा न्याय करे ॥ १६ ॥

प्रजापतिष्ट्वेत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा अपनी राणी को कैसे वर्त्तावे यह अगले मन्त्र में कहा है—

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे विदुषि स्त्री ! जैसे (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी (समुद्रस्य) समुद्र के (अपाम्) जलों से (एमन्) प्राप्त होने के (पृष्ठे) ऊपर नौका के समान (व्यचस्वतीम्) बहुत विद्या की प्राप्ति और सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) प्रशंसित कीर्ति वाली (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापन करे । जिस कारण तू (पृथिवी) भूमि के समान सुख देने वाली (असि) है इसलिये स्त्रियों के न्याय करने में (प्रथस्व) प्रसिद्ध हो वैसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करे ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुष आदि को चाहिये कि आप जिस-जिस राजकार्य में प्रवृत्त हों उस-उस कार्य में अपनी-अपनी स्त्रियों को भी स्थापन करें जो जो राजपुरुष जिन-जिन पुरुषों का न्याय करे उस-उस की स्त्री स्त्रियों का न्याय किया करें ॥ १७ ॥

भूरसीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह राणी कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे राणी ! जिससे तू (भूः) भूमि के समान (असि) है इस कारण (पृथिवीम्) पृथिवी को (यच्छ) निरन्तर ग्रहण कर जिसलिये तू (विश्वधाया) सब गृहाश्रम के और राजसम्बन्धी व्यवहारों और (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) राज्य को (धर्त्री) धारण करने हारी (भूमिः) पृथिवी के समान (असि) है इसलिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (दृंह) बढ़ा और जिस कारण तू (अदितिः) अखण्ड ऐश्वर्य्य वाले आकाश के समान क्षोभरहित (असि) है इसलिये (पृथिवीम्) भूमि को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़ ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो राजकुल की स्त्री पृथिवी आदि के समान धीरज आदि गुणों से युक्त हो तो वे ही राज्य करने के योग्य होती हैं ॥ १८ ॥

विश्वस्मा इत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो (अग्निः) विज्ञानयुक्त तेरा पति (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुख प्राप्त कराने हारी क्रिया और (छर्दिषा) प्रकाशयुक्त (शन्तमेन) अत्यन्त सुखदायक कर्म के साथ (विश्वस्मै) सम्पूर्ण (प्राणाय) जीवन के हेतु प्राण (अपानाय) दुःखों की निवृत्ति (व्यानाय) अनेक प्रकार के उत्तम व्यवहारों की सिद्ध (उदानाय) उत्तम बल (प्रतिष्ठायै) सत्कार और (चरित्राय) धर्म का आचरण करने के लिये जिस (त्वा) तेरी (अभिपातु) सन्मुख होकर रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिव्यस्वरूप पति के साथ (अङ्गिरस्वत्) जैसे कार्य्य कारण का सम्बन्ध है वैसे (ध्रुवा) निश्चल हो के (सीद) प्रतिष्ठायुक्त हो ॥ १९ ॥

भावार्थ—पुरुषों को योग्य है कि अपनी स्त्रियों के सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित होके प्रीतिपूर्वक आचरण और उनकी रक्षा निरन्तर करें और इसी प्रकार स्त्री लोग भी रहें । अपनी स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री की इच्छा न पुरुष और न अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संग स्त्री करे । ऐसे ही आपस में प्रीतिपूर्वक ही दोनों सदा वर्त्तें ॥ १९ ॥

काण्डात्काण्डादित्यस्याग्निर्ऋषिः । पत्नी देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषःपरुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥ २० ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! तू जैसे (सहस्रेण) असंख्यात (च) और (शतेन) बहुत प्रकार के साथ (काण्डात्काण्डात्) सब अवयवों और (परुषःपरुषः) गांठ गांठ से (परि) सब ओर से (प्ररोहन्ती) अत्यन्त बढ़ती हुई (दूर्वे) दूर्वा घास होती है वैसे (एव) ही (नः) हम को पुत्र पौत्र और ऐश्वर्य्य से (प्रतनु) विस्तृत कर ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे दूर्वा ओषधि रोगों का नाश और सुखों को बढ़ाने हारी सुन्दर विस्तारयुक्त होती हुई बढ़ती है वैसे ही विदुषी स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे ॥ २० ॥

या शतेनेत्यस्याग्निर्ऋषिः । पत्नी देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (इष्टके) ईंट के समान दृढ़ अवयवों से युक्त शुभ गुणों से शोभायमान (देवि) प्रकाशयुक्त स्त्री ! जैसे ईंट सैकड़ों संख्या में मकान आदि का विस्तार और हजारह से बहुत बढ़ा देती है वैसे (या) जो तू हम लोगों को (शतेन) सैकड़ों पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति से (प्रतनोषि) विस्तार युक्त करती और (सहस्रेण) हजारह प्रकार के पदार्थों से (विरोहसि) विविध प्रकार बढ़ाती है (तस्याः) उस (ते) तेरी (हविषा) देने योग्य पदार्थों से (वयम्) हम लोग (विधेम) सेवा करें ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सैकड़ों से हजारह ईंटें घर रूप बन के सब प्राणियों को सुख देती हैं वैसे जो श्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र पौत्र ऐश्वर्य्य और भृत्य आदि से सब को आनन्द देवें उनका पुरुष लोग निरन्तर सत्कार करें क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के विना शुभ गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते और ऐसे सन्तानों के विना माता पिता को सुख कब मिल सकता है ॥ २१ ॥

यास्त इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यास्तेऽअग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः । ताभिर्नोऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजधारिणी पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री ! (याः) जो (ते) तेरी रुचि है (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से युक्त (नः) हम को जैसे (रुचः) दीप्तियां (सूर्य्ये) सूर्य्य में (रश्मिभिः) किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) अच्छे प्रकार विस्तारयुक्त करती हैं वैसे तू भी अच्छे प्रकार विस्तृत सुखयुक्त कर और (अद्य) आज (रुचे) रुचि कराने हारे (जनाय) प्रसिद्ध मनुष्यों के लिए (नः) हम लोगों को प्रीतियुक्त (कृधि) कर ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य्य की दीप्ति सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचियुक्त करती हैं वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्य्यों का प्रकाश करती हैं । जिस कुल में स्त्री और पुरुष आपस में प्रीतियुक्त हों वहां सब विषयों में कल्याण ही होता है ॥ २२ ॥

या वो देवा इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । बृहस्पतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

या वो॑ दे॒वाः सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुचः॑ ।
इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभि॑ः सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! तुम सब लोग (याः) जो (वः) तुम्हारी (सूर्य्ये) सूर्य्य में (रुचः) रुचि और (याः) जो (गोषु) गौओं और (अश्वेषु) घोड़ों आदि में (रुचः) प्रीतियों के समान प्रीति है (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (नः) हमारे बीच (रुचम्) कामना (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्यवत् अध्यापक और उपदेशक जैसे धारण करें वैसे (धत्त) धारण करो । हे (बृहस्पते) पक्षपात छोड़के परीक्षा करानेहारे पूर्णविद्यायुक्त आप (नः) हमारी परीक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य लोगों की विद्वानों के संग और ईश्वर की रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तब तक विज्ञान कभी नहीं बढ़ सकता ॥२३॥

विराड्ज्योतिरित्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । प्रजापतिर्देवता । निचृद्बृहतीछन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वि॒राड् ज्योति॑रधारयत् स्व॒राड् ज्योति॑रधारयत् । प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयतु पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या ज्योति॑ष्मतीम् । विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒ ज्योति॑र्यच्छ । अ॒ग्निष्टेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ २४ ॥

पदार्थ—जो (विराट्) अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशमान स्त्री (ज्योतिः) विद्या की उन्नति को (अधारयत्) धारण करे करावे जो (स्वराट्) सब धर्म्मयुक्त व्यवहारों में शुद्धाचारी पुरुष (ज्योतिः) बिजुली आदि के प्रकाश को (अधारयत्) धारण करे करावे वे दोनों स्त्री पुरुष, सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होवें । हे स्त्रि ! जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विज्ञानयुक्त (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) सुन्दर देवस्वरूप पति के साथ तू (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा वायु के समान (ध्रुवा) दृढ़ता से (सीद) हो । हे पुरुष ! जो अग्नि के समान तेजधारिणी तेरी रक्षा को करनेहारी स्त्री है उस देवी के साथ तू प्राणों के समान प्रीतिपूर्वक निश्चय करके स्थित हो । हे स्त्रि ! (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक तेरा पति (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) सुख की चेष्टा के हेतु (अपानाय) दुःख हटाने के साधन (व्यानाय) सब सुन्दर गुण कर्म्म और स्वभावों के प्रचार के हेतु प्राणविद्या के लिये जिस (ज्योतिष्मतीम्) प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त (त्वा) तुझ को (सादयतु) उत्तम अधिकार पर स्थापित करे सो तू (विश्वम्) समग्र (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर और इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये अपने पति को स्थिर कर ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष सत्संग और विद्या के अभ्यास से विद्युत् आदि पदार्थविद्या और प्रीति को नित्य बढ़ाते हैं वे इस संसार में सुख भोगते हैं । पति स्त्री का और स्त्री पति का सत्कार करे इस प्रकार आपस में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें ॥२४॥

मधुश्चेत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । ऋतवो देवताः । पूर्वस्य भुरिगतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥
ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में वसन्त ऋतु का वर्णन किया है—

मधु॑श्च॒ माध॑वश्च॒ वास॑न्तिकावृ॒तूऽअ॒ग्नेर॑न्तः श्ले॒षोऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ऽओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः । येऽअ॒ग्नयः॒ सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वीऽइ॒मे वास॑न्तिकावृ॒तूऽअ॒भि॒ कल्प॑माना॒ऽइन्द्र॑मिव दे॒वाऽअ॒भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ २५ ॥

पदार्थ—जैसे (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) ज्येष्ठ महीने में हुए व्यवहार वा मेरी श्रेष्ठता के लिये जो (अग्नेः) गरमी के निमित्त अग्नि से उत्पन्न होनेवाले जिनके (अन्तःश्लेषः) भीतर बहुत प्रकार के वायु का सम्बन्ध (असि) होता है वे (मधुः) मधुर सुगन्धयुक्त चैत्र (च) और (माधवः) मधुर आदि गुण का निमित्त वैशाख (च) इनके सम्बन्धी पदार्थयुक्त (वासंतिकौ) वसन्त महीनों में हुए (ऋतू) सब को सुखप्राप्ति के साधन ऋतु सुख के लिये (कल्पेताम्) समर्थ होवें जिन चैत्र और वैशाख महीनों के आश्रय से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (आपः) जल भी मांग में (कल्पन्ताम्) आनन्ददायक हों (पृथक्) भिन्न भिन्न (ओषधयः) जौ आदि वा सोमलता आदि ओषधि और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि भी (कल्पन्ताम्) कार्य्यसाधक हों । हे (सव्रताः) निरन्तर वर्त्तमान सत्यभाषणादि व्रतों से युक्त (समनसः) विज्ञान वाले (देवाः) विद्वान् (ये) जो लोग (वासन्तिकौ, ऋतू) वसन्तऋतु में हुए चैत्र वैशाख और यज्ञों से (अन्तरा) बीच में हुए (अग्नयः) अग्नि हैं उन को (अभिकल्पमाना) सम्मुख होकर कार्य में युक्त करते हुए आप लोग (इन्द्रमिव) जैसे उत्तम ऐश्वर्य्य प्राप्त हों वैसे (अभिसंविशन्तु) सब ओर से प्रवेश करो जैसे (इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (तया) उस (देवतया) परमपूज्य परमेश्वर रूप देवता के सामर्थ्य के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (ध्रुवे) दृढ़ता से वर्त्तते हैं वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष सदा संयुक्त (सीदतम्) स्थिर रहो ॥२५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिए कि जिस वसन्त ऋतु में फल फूल उत्पन्न होता है और जिस में तीव्र प्रकाश रूखी पृथिवी, जल मध्यम, ओषधियां फल और फूलों से युक्त और अग्नि की ज्वाला भिन्न भिन्न होती हैं उसको युक्तिपूर्वक सेवन कर पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त होओ जैसे विद्वान् लोग अत्यन्त प्रयत्न के साथ सब ऋतुओं में सुख के लिये सम्पत्ति को बढ़ाते हैं वैसा तुम भी प्रयत्न करो ॥ २५ ॥

अषाढासीत्यस्य सविता ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अषा॑ढासि॒ सह॑माना॒ सह॒स्वारा॑तीः॒ सह॑स्व पृतनाय॒तः ।
स॒हस्र॑वीर्य्यासि॒ सा मा॑ जिन्व ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे पत्नी ! जो तू (अषाढा) शत्रु के असहने योग्य (असि) है तू (सहमाना) पति आदि का सहन करती हुई अपने पति के उपदेश का (सहस्व) सहन कर जो तू (सहस्रवीर्य्या) असंख्यात प्रकार पराक्रमों से युक्त (असि) है (सा) सो तू (पृतनायतः) अपने आप सेना से युद्ध की इच्छा करते हुए (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर और जैसे मैं तुझ को प्रसन्न रखता हूँ वैसे (मा) मुझ पति को (जिन्व) तृप्त किया कर ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्याश्रम से सेवन की हुई अत्यन्त बलवान् जितेन्द्रिय वसन्त आदि ऋतुओं के पृथक् पृथक् काम जानने, पति के अपराध क्षमा और शत्रुओं का निवारण करनेवाली उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को तृप्त करती है उसी को पति भी नित्य आनन्दित करता ही है ॥२६॥

मधुवाता इत्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

आगे के मन्त्र में वसन्त ऋतु के अन्य गुणों का वर्णन किया है—

मधु॒ वाता॑ऽऋताय॒ते मधु॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वः ।
माध्वी॑र्नः स॒न्त्वोष॑धीः ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे वसन्त ऋतु में (नः) हम लोगों के (वातः) वायु (मधु) मधुरता के साथ (ऋतायते) जल के समान चलते हैं (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (मधु) कोमलतापूर्वक (क्षरन्ति) वर्षते हैं और (ओषधीः) ओषधियां (माध्वीः) मधुर रस के गुण से युक्त (सन्तु) होवें वैसा प्रयत्न हम किया करें ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जब वसन्त ऋतु आता है तब पुष्प आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं उस ऋतु में घूमना डोलना पथ्य होता है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥२७॥

मधुनक्तमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मधु॒ नक्त॑मु॒तोषसो॒ मधु॑म॒त्पार्थि॑व॒ꣳ रजः॑ । मधु॒ द्यौर॑स्तु नः पि॒ता ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे वसन्त ऋतु में (नक्तम्) रात्रि (मधु) कोमलता से युक्त (उत) और (उषसः) प्रातःकाल से लेकर दिन मधुर (पार्थिवम्) पृथिवी की (रजः) द्व्यणुक वा त्रसरेणु आदि (मधुमत्) मधुर गुणों से युक्त और (द्यौः) प्रकाश भी (मधु) मधुरतायुक्त (पिता) रक्षा करने हारे के समान समय (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे वैसे युक्ति से उस वसन्त ऋतु का सेवन तुम भी किया करो ॥२८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब वसन्त ऋतु आता है तब पक्षी भी कोमल मधुर-मधुर शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं ॥ २८ ॥

मधुमानित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब वसन्त ऋतु में मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मधु॑मान्नो॒ वन॒स्पति॒र्मधु॑माँ२ऽअस्तु॒ सूर्य्यः॑ ।
माध्वी॒र्गावो॑ भवन्तु नः ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे वसन्त ऋतु में (नः) हमारे लिये (वनस्पतिः) पीपल आदि वनस्पति (मधुमान्) प्रशंसित कोमल गुणों वाले और (सूर्य्यः) सूर्य्य भी (मधुमान्) प्रशंसित कोमलतायुक्त (अस्तु) होवे और (नः) हमारे लिये (गावः) गौओं के समान (माध्वीः) कोमल गुणों वाली किरणें (भवन्तु) हों वैसा ही उपदेश करो ॥२६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग वसन्त ऋतु को प्राप्त होकर जिस प्रकार के पदार्थों के होम से वनस्पति आदि कोमल गुणयुक्त हों ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्त ऋतु के सुख को सब जने तुम लोग प्राप्त होओ ॥२६॥

अपामित्यस्य गोतम ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभि ताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजाऽअनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू वसन्त ऋतु में (अपाम्) जलों के (गम्भन्) आधारकर्त्ता मेघ में (सीद) स्थिर हो जिससे (सूर्य्यः) सूर्य्य (त्वा) तुझको (मा) न (अभिताप्सीत्) तपावे (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि बिजुली (त्वा) तुझको (मा) न (अभिताप्सीत्) तप्त करे (अच्छिन्नपत्राः) सुन्दर पूर्ण अवयवों वाली (प्रजाः) प्रजा (अनु, त्वा) तेरे अनुकूल और (दिव्या) शुद्ध गुणों से युक्त (वृष्टिः) वर्षा (सचताम्) प्राप्त होवे वैसे (अनुवीक्षस्व) अनुकूलता से विशेष करके विचार कर ॥३०॥

भावार्थ—मनुष्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के जलाशयस्थ शीतल स्थान का सेवन करें जिससे गर्मी से दुःखित न हों और जिस यज्ञ से वर्षा भी ठीक ठीक हो और प्रजा आनन्दित हो उसका सेवन करो ॥३०॥

त्रीन्त्समुद्रानित्यस्य गोतम ऋषिः । वरुणो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को उस वसन्त में सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभऽइष्टकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥३१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (अपाम्) प्राणों का (पतिः) रक्षक (वृषभः) वर्षा का हेतु (पुरीषम्) पूर्ण सुखकारक जल को (वसानः) धारण करता हुआ सूर्य्य (इष्टकानाम्) कामनाओं की प्राप्ति के हेतु पदार्थों के आधाररूप (त्रीन्) ऊपर नीचे और मध्य में रहनेवाले तीन प्रकार के (समुद्रान्) सब पदार्थों के स्थान भूत भविष्यत् और वर्त्तमान (स्वर्गान्) सुख प्राप्त कराने हारे लोकों को (समसृपत्) प्राप्त होता है वैसे आप भी प्राप्त हूजिये (यत्र) जिस धर्मयुक्त वसन्त के मार्ग में (सुकृतस्य) सुन्दर धर्म करने हारे पुरुष के (लोके) देखने योग्य स्थान वा मार्ग में (पूर्वे) प्राचीन लोग (परेताः) सुख को प्राप्त हुए (तत्र) उसी वसन्त के सेवनरूप मार्ग में आप भी (गच्छ) चलिये ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के मार्ग से चलते हुए शारीर, वाचिक और मानस तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त होवें और जिसमें कामना पूरी हो वैसा प्रयत्न करें । जैसे वसन्त आदि ऋतु अपने क्रम से वर्त्तते हुए अपने अपने चिह्न प्राप्त करते हैं वैसे ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होवें ॥३१॥

मही द्यौरित्यस्य गोतम ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । निचृद् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

माता पिता अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मही द्यौः पृथिवी च नऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे माता पिता ! जैसे (मही) बड़ा (द्यौः) सूर्य्यलोक (च) और (पृथिवी) भूमि सब संसार को सींचते और पालन करते हैं वैसे तुम दोनों (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सेवने योग्य विद्याग्रहणरूप व्यवहार को (मिमिक्षताम्) सेचन अर्थात् पूर्ण होने की इच्छा करो और (भरीमभिः) धारण पोषण कर्मों से (नः) हमारा (पिपृताम्) पालन करो ॥३२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वसन्त ऋतु में पृथिवी और सूर्य्य सब संसार का धारण प्रकाश और पालन करते हैं वैसे माता पिता को चाहिये कि अपने सन्तानों के लिये वसन्तादि ऋतुओं में अन्न विद्यादान और अच्छी शिक्षा करके पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थी करें ॥३२॥

विष्णोः कर्माणीत्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्यों को आचरण करना चाहिये इसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य की इच्छा करने हारे जीव का (युज्यः) उपासना करने योग्य (सखा) मित्र के समान वर्त्तमान है (यतः) जिसके प्रताप से यह जीव (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जगत् की रचना पालन प्रलय करने और न्याय आदि कर्मों और (व्रतानि) सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) स्पर्श करता है इसलिये इस परमात्मा के इन कर्मों और व्रतों को तुम लोग भी (पश्यत) देखो धारण करो ॥३३॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर का मित्र उपासक धर्मात्मा विद्वान् पुरुष परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों के अनुसार सृष्टि के क्रमों के अनुकूल आचरण करे और जाने वैसे ही अन्य मनुष्य करें और जानें ॥३३॥

ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विद्वान पुरुषों के समान विदुषी स्त्रियां भी उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्योऽअधि जातवेदाः । स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥३४॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे तू (धरुणा) शुभगुणों का धारण करने हारी (ध्रुवा) स्थिर (असि) है जैसे (एभ्यः) इन (योनिभ्यः) कारणों से (सः) वह (जातवेदाः) प्रसिद्ध पदार्थों में विद्यमान वायु (प्रथमम्) पहिले (अधिजज्ञे) अधिकता से प्रकट होता है वैसे (इतः) इस कर्म के अनुष्ठान से सर्वोपरि प्रसिद्ध हूजिये जैसे तेरा पति (गायत्र्या) गायत्री (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुप् (च) और (अनुष्टुभा) अनुष्टुप् मन्त्र से सिद्ध हुई विद्या से (प्रजानन्) बुद्धिमान् होकर (देवेभ्यः) अच्छे गुण वा विद्वानों से (हव्यम्) देनेलेने योग्य विज्ञान (वहतु) प्राप्त होवे वैसे इस विद्या से बुद्धिमती होके आप स्त्री लोगों से ब्रह्मचारिणी कन्या विज्ञान को प्राप्त होवें ॥३४॥

भावार्थ—मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमित्तों को जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शास्त्रों का उपदेश करते हैं वैसे ही स्त्रियों को भी चाहिये कि इन सृष्टिक्रम के निमित्तों को जान के स्त्रियों को वेदार्थसारोपदेशों को करें ॥ ३४ ॥

इषे राय इत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवताः । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽऊर्जेऽअपत्याय । सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे पुरुष ! जो तू (सम्राट्) विद्यादि शुभगुणों से स्वयं प्रकाशमान (असि) है । हे स्त्रि ! जो तू (स्वराट्) अपने आप विज्ञान सत्याचार से शोभायमान (असि) है सो तुम दोनों (इषे) विज्ञान (राये) धन (सहसे) बल (द्युम्ने) यश और अन्न (ऊर्जे) पराक्रम और (अपत्याय) सन्तानों की प्राप्ति के लिये (रमस्व) यत्न करो तथा (उत्सौ) कूपोदक के समान कोमलता को प्राप्त होकर (सारस्वतौ) वेदवाणी के उपदेश में कुशल होके तुम दोनों स्त्री पुरुष इन स्वशरीर और अन्नादि पदार्थों की (प्रावताम्) रक्षा आदि करो यह (त्वा) तुम को उपदेश देता हूं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—विवाह करके स्त्री पुरुष दोनों आपस में प्रीति के साथ विद्वान् होकर पुरुषार्थ से धनवान् श्रेष्ठगुणों से युक्त होके एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्म्मानुकूलता से वर्त्त के सन्तानों को उत्पन्न कर इस संसार में नित्य क्रीड़ा करें ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब शत्रुओं को कैसे जीतना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥

पदार्थ—हे (देव) श्रेष्ठविद्या वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (ये) जो (तव) आपके (साधवः) अभीष्ट साधनेवाले (अश्वासः) शिक्षित घोड़े (मन्यवे) शत्रुओं के ऊपर क्रोध के लिये (अरम्) सामर्थ्य के साथ (वहन्ति) रथ आदि यानों को पहुँचाते हैं उन को (हि) निश्चय करके (युक्ष्व) संयुक्त कीजिये ॥३६॥

भावार्थ—राजादि मनुष्यों को चाहिए कि वसन्त ऋतु में पहिले घोड़ों को शिक्षा दे और रथियों को रथों पर नियुक्त कर के शत्रुओं के जीतने के लिए यात्रा करें ॥ ३६ ॥

युक्ष्वा हीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

युक्ष्वा हि दे॑वहूत॑माँ२ऽअश्वाँ॑२ऽअग्ने र॒थीरि॑व ।

नि होता॑ पू॒र्व्यः स॑दः ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् पुरुष ! (**पूर्व्यः**) पूर्व विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त (**होता**) दानशील आप (**देवहूतमान्**) विद्वानों से स्पर्द्धा वा शिक्षा किये (**अश्वान्**) घोड़ों को (**रथीरिव**) शत्रुओं के साथ बहुत रथादि सेना अंगयुक्त योद्धा के समान (**युक्ष्व**) युक्त कीजिये (**हि**) निश्चय करके न्यायासन पर (**निषदः**) निरन्तर स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थ—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिए कि बड़े सेना के अङ्गयुक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अवयवों को कार्यों में संयुक्त करें और सभापति आदि को चाहिए कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त न्याय किया करें ॥ ३७ ॥

सम्यक् स्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे होके वाणी धारण करनी चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स॒म्यक् स्र॑वन्ति स॒रितो॒ न धेना॑ऽअ॒न्तर्हृ॒दा मन॑सा पू॒यमा॑नाः ।

घृ॒तस्य॒ धारा॑ऽअ॒भिचा॑कशीमि हिर॒ण्ययो॑ वेत॒सो मध्ये॑ऽअ॒ग्नेः ॥ ३८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अग्नेः**) बिजुली के (**मध्ये**) बीच में वर्त्तमान (**हिरण्ययः**) तेजो भाग के समान तेजस्वी कीर्ति चाहने और विद्या की इच्छा रखने वाला मैं जो (**घृतस्य**) जल की (**वेतसः**) वेगवाली (**धाराः**) प्रवाहरूप (**सरितः**) नदियों के (**न**) समान (**अन्तः**) भीतर (**हृदा**) अन्तःकरण के (**मनसा**) विज्ञानरूप वाले चित्त से (**पूयमानाः**) पवित्र हुई (**धेनाः**) वाणी (**सम्यक्**) अच्छे प्रकार (**स्रवन्ति**) चलती हैं उन को (**अभिचाकशीमि**) सन्मुख होकर सब के लिये शीघ्र प्रकाशित करता हूं वैसे तुम लोग भी इन वाणियों को प्राप्त होओ ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अधिक वा कम चलती शुद्ध हुई नदियां समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे ही विद्या शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निश्चल वाणी को प्राप्त होकर अन्यों को प्राप्त करावें ॥ ३८ ॥

ऋचे त्वेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिए उस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऋ॒चे त्वा॑ रु॒चे त्वा॑ भा॒से त्वा॒ ज्योति॑षे त्वा ।

अभू॑दि॒दं विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ वाजि॑नम॒ग्नेर्वै॑श्वान॒रस्य॑ च ॥ ३९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जिस तुझको (**विश्वस्य**) समस्त (**भुवनस्य**) संसार के सब पदार्थों (**च**) और (**वैश्वानरस्य**) संपूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (**अग्ने**) बिजुलीरूप (**वाजिनम्**) ज्ञानी लोगों का अवयवरूप (**इदम्**) यह विज्ञान (**अभूत्**) प्रसिद्ध हुआ है उस (**ऋचे**) स्तुति के लिए (**त्वा**) तुझ को (**रुचे**) प्रीति के वास्ते (**त्वा**) तुझ को (**भासे**) विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ (**त्वा**) तुझ को और (**ज्योतिषे**) न्याय के प्रकाश के लिए भी (**त्वा**) तुझ को हम लोग आश्रय करते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे उसी के सेवन से सब मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होवें ॥ ३९ ॥

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒ग्निर्ज्योति॑षा॒ ज्योति॑ष्मान् रु॒क्मो वर्च॑सा॒ वर्च॑स्वान् ।

स॒ह॒स्र॒दाऽअ॑सि स॒हस्रा॑य त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जो आप (**ज्योतिषा**) विद्या के प्रकाश से (**अग्निः**) अग्नि के तुल्य (**ज्योतिष्मान्**) प्रशंसित प्रकाशयुक्त (**वर्चसा**) अपने तेज से (**वर्चस्वान्**) ज्ञान देनेवाले और (**रुक्मः**) जैसे सुवर्ण सुख देवे वैसे असंख्य सुख के देने वाले (**असि**) है उन (**त्वा**) आप को (**सहस्राय**) अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिए हम लोग सत्कार करें ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि और सूर्य्य के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष हों उन से विद्या पढ़के पूर्ण विद्या के ग्राहक होवें ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वे विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ॒दि॒त्यं गर्भं॒ पय॑सा॒ सम॑ङ्धि स॒हस्र॑स्य प्र॒ति॒मां वि॒श्वरू॑पम् ।

परि॑वृङ्धि॒ हर॑सा॒ माभि म॑ꣳस्थाः श॒तायु॑षं कृणुहि ची॒यमा॑नः ॥४१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आप जैसे बिजुली (**पयसा**) जल से (**सहस्रस्य**) असंख्य पदार्थों की (**प्रतिमाम्**) परिमाण करने हारे सूर्य के समान निश्चय करने हारी बुद्धि और (**विश्वरूपम्**) सब रूप विषय को दिखाने हारे (**गर्भम्**) स्तुति के योग्य (**आदित्यम्**) सूर्य्य को धारण करती है वैसे अन्तःकरण को (**समङ्धि**) अच्छे प्रकार शोधिये (**हरसा**) प्रज्वलित तेज से रोगों को (**परि**) सब ओर से (**वृङ्धि**) हटाइये और (**चीयमानः**) वृद्धि को प्राप्त हो के (**शतायुषम्**) सौ वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को (**कृणुहि**) कीजिये और कभी (**मा**) मत (**अभिमंस्था**) अभिमान कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग सुगन्धित पदार्थों के होम से सूर्य्य के प्रकाश जल और वायु को शुद्ध कर और रोग रहित होकर सौ वर्ष जीने वाले संतानों को उत्पन्न करो, जैसे विद्युत् अग्नि से बनाये हुए सूर्य्य से रूप वाले पदार्थों का दर्शन और परिमाण होता है वैसे विद्या वाले सन्तान सुख दिखाने हारे होते हैं इस से कभी अभिमानी होके विषयासक्ति से विद्या और आयु का विनाश मत किया करो ॥ ४१ ॥

वातस्य जूतिमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् पुरुष को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वात॑स्य जू॒तिं वरु॑णस्य॒ नाभि॒मश्वं॑ जज्ञा॒नꣳ स॑रि॒रस्य॒ मध्ये॑ ।

शिशुं॑ न॒दीना॒ꣳ हरि॒मद्रि॑बुध्न॒मग्ने॒ मा हि॑ꣳसीः पर॒मे व्यो॑मन् ॥४२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) तेजस्विन् विद्वन् ! आप (**परमे, व्योमन्**) सर्वव्याप्त उत्तम आकाश में (**वातस्य**) वायु के (**मध्ये**) मध्य में (**जूतिम्**) वेगरूप (**अश्वम्**) अश्व को (**सरिरस्य**) जलमय (**वरुणस्य**) उत्तम समुद्र के (**नाभिम्**) बन्धन को और (**नदीनाम्**) नदियों के प्रभाव से (**जज्ञानम्**) प्रकट हुए (**शिशुम्**) बालक के तुल्य वर्त्तमान (**हरिम्**) नील वर्णयुक्त (**अद्रिबुध्नम्**) सूक्ष्म मेघ को (**मा**) मत (**हिंसीः**) नष्ट कीजिये ॥ ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि प्रमाद को छोड़ के आकाश में वर्त्तमान वायु के वेग और वर्षा के प्रबन्धरूप मेघ का विनाश न करके अपनी अपनी अवस्था को बढ़ावें ॥ ४२ ॥

अजस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अज॑स्र॒मिन्दु॑मरु॒षं भु॑र॒ण्युम॒ग्निमी॑डे पू॒र्वचि॑त्तिं॒ नमो॑भिः ।

स पर्व॑भिर्ऋतु॒शः कल्प॑मानो॒ गां मा हि॑ꣳसी॒रदि॑तिं वि॒राज॑म् ॥४३॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे मैं (**पर्वभिः**) पूर्ण साधन युक्त (**नमोभिः**) अन्नों के साथ वर्त्तमान (**इन्दुम्**) जलरूप (**अरुषम्**) घोड़े के सदृश (**भुरण्युम्**) पोषण करनेवाली (**पूर्वचित्तिम्**) प्रथम निश्चित (**अग्निम्**)बिजुली को (**अजस्रम्**) निरन्तर (ईडे) अधिकता से खोजता हूं उस को (**ऋतुशः**) प्रति ऋतु में (**कल्पमानः**) समर्थ होके करता हुआ (**अदितिम्**) अखण्डित (**विराजम्**) विविध प्रकार के पदार्थों से शोभायमान (**गाम्**) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूं वैसे ही (**सः**) सो आप इस अग्नि और इस पृथिवी को (**मा**) मत (**हिंसीः**) नष्ट कीजिये ॥४३॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अग्नि जल और अन्न का सेवन करके राज्य और पृथिवी की सदैव रक्षा करें जिससे सब सुख प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

वरूत्रीमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उस विद्वान् को क्या नहीं करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

व॒रू॒त्रीं त्वष्टु॒र्वरु॑णस्य॒ नाभि॒मविं॑ जज्ञा॒नाꣳ रज॑सः॒ पर॑स्मात् ।

म॒हीꣳ सा॑ह॒स्रीमसु॑रस्य मा॒यामग्ने॒ मा हि॑ꣳसीः पर॒मे व्यो॑मन् ॥४४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् पुरुष ! आप (**त्वष्टुः**) छेदनकर्त्ता सूर्य्य के (**वरूत्रीम्**) ग्रहण करने योग्य (**वरुणस्य**) जल की (**नाभिम्**) रोकने हारी (**परस्मात्**) श्रेष्ठ (**रजसः**) लोक से (**जज्ञानाम्**) उत्पन्न हुई (**असुरस्य**) मेघ की (**मायाम्**) जतानेवाली बिजुली को और (**साहस्रीम्**) असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देने हारी (**अविम्**) रक्षा आदि का निमित्त (**परमे**) सब से उत्तम (**व्योमन्**) आकाश के समान व्याप्त जगदीश्वर में वर्त्तमान (**महीम्**) विस्तारयुक्त पृथिवी को (**मा**) मत (**हिंसीः**) नष्ट कीजिये ॥ ४४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि जो यह पृथिवी उत्तम कारण से उत्पन्न हुई सूर्य्य जिसका आकर्षणकर्त्ता जल का आधार मेघ का निमित्त असंख्य सुख देने हारी परमेश्वर ने रची है उसको गुण कर्म और स्वभाव से जानके सुख के लिए उपयुक्त करें ॥ ४४ ॥

यो अग्निरित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस विद्वान् को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् जन ! (यः) जो (पृथिव्याः) पृथिवी के (शोकात्) सुखाने हारे अग्नि (उत, वा) अथवा (दिवः) सूर्य्य से (अग्नेः) बिजुलीरूप अग्नि से (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (अध्यजायत) उत्पन्न होता है (येन) जिस से (विश्वकर्म्मा) सब कर्मों का आधार ईश्वर (प्रजाः) प्रजाओं को (परि) सब ओर से (जजान) रचता है (तम्) उस अग्नि को (ते) तेरा (हेडः) क्रोध (परिवृणक्तु) सब प्रकार से छेदन करे ॥ ४५ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग जो अग्नि पृथिवी को फोड़ के और जो सूर्य्य के प्रकाश से बिजुली निकलती है उस विघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों को रक्षित रक्खो और जिस अग्नि से ईश्वर सब की रक्षा करता है उस अग्नि की विद्या जानो ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामित्यस्य विरूप ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥४६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो जगदीश्वर (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के बीच (चित्रम्) आश्चर्य्यरूप(अनीकम्) सेना के समान किरणों से युक्त (मित्रस्य) प्राण (वरुणस्य) उदान और (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि के (चक्षुः) दिखाने वाले (सूर्य्यः) सूर्य्य के समान (उदगात्) उदय को प्राप्त हो रहा है उस के समान (जगतः) चेतन (च) और (तस्थुषः) जड़ जगत् का (आत्मा) अन्तर्यामी हो के (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाशरूप जगत् और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ) अच्छे प्रकार (आप्राः) व्याप्त हो रहा है उसी जगत् के रचने पालन करने और संहार प्रलय करने हारे व्यापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह जगत् ऐसा नहीं कि जिस का कर्त्ता अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे, जो ईश्वर सब का अन्तर्य्यामी सब जीवों के पाप पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने हारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने हारा है उसी की उपासना से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों को सब मनुष्य प्राप्त होवें ॥ ४६ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः ।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) मनुष्य के जन्म को प्राप्त हुए (मेधाय) सुख की प्राप्ति के लिए (चीयमानः) बढ़े हुए (सहस्राक्षः) हजारह प्रकार की दृष्टि वाले राजन् ! तू (इमम्) इस (द्विपादम्) दो पगवाले मनुष्यादि और (मेधम्) पवित्रकारक फलप्रद (मयुम्) जंगली (पशुम्) गवादि पशु जीव को (मा) मत (हिंसीः) मारा कर उस (पशुम्) पशु की (जुषस्व) सेवा कर (तेन) उस पशु से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ तू (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो यह (ते) तेरे से (शुक्) शोक (मयुम्) शस्यादिनाशक जंगली पशु को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४७ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य सब के उपकार करने हारे पशुओं को कभी न मारे किन्तु इन की अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार लेके सब मनुष्यों को आनन्द देवें । जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु खेती और मनुष्यों की हानि हो उनको राजपुरुष मारें और बन्धन करें ॥ ४७ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह मनुष्य क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! तू (वाजिनेषु) संग्राम के कामों में (इमम्) इस (एकशफम्) एकखुरयुक्त (कनिक्रदम्) शीघ्र विकल व्यथा को प्राप्त हुए (वाजिनम्) वेगवाले (पशुम्) देखने योग्य घोड़े आदि पशु को (मा, हिंसीः) मत मार । मैं ईश्वर (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (आरण्यम्) जङ्गली (गौरम्) गौरपशु की (दिशामि) शिक्षा करता हूँ (तेन) उसके रक्षण से (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो (ते) तेरे से (गौरम्) श्वेत वर्ण वाले पशु के प्रति (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस शत्रु को हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उसको (ते) तुझसे (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को भी न मारें जिनके मारने से जगत् की हानि और न मारने से सबका उपकार होता है उनका सदैव पालन पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उनको मारें ।

इमꣳ साहस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजन् ! तू (जनाय) मनुष्यादि प्राणी के लिये (इमम्) इस (साहस्रम्) असंख्य सुखों का साधन (शतधारम्) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त (व्यच्यमानम्) अनेक प्रकार से पालन के योग्य (उत्सम्) कुएं के समान रक्षा करनेहारे वीर्य्यसेचक बैल और (घृतम्) घी को (दुहानाम्) पूर्ण करती हुई (अदितिम्) नहीं मारने योग्य गौ को (मा हिंसीः) मत मार और (ते) तेरे राज्य में जिस (आरण्यम्) वन में रहने वाले (गवयम्) गौ के समान नीलगाय से खेती की हानि होती हो तो उसको (अनुदिशामि) उपदेश करता हूँ (तेन) उसके मारने से सुरक्षित अन्न से (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा और (सरिरस्य) विस्तृत व्यापक आकाश के (मध्ये) मध्य में (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ तू (तन्वः) शरीर के मध्य में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक (तम्) उस (गवयम्) रोझ को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस (ते) तेरे शत्रु का (द्विष्मः) हम लोग द्वेष करें उसको भी (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि का काम, जिन गौ आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिनके दूध आदि से प्रजा की रक्षा होती है उनको कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उनको राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जंगल में रहनेवाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥ ४९ ॥

इममूर्णायुमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर किन पशुओं को न मारना और किन को मारना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।
उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५० ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्या को प्राप्त हुए राजन् ! तू (वरुणस्य) प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुख के (नाभिम्) संयोग करने हारे (इमम्) इस (द्विपदाम्) दो पगवाले मनुष्य पक्षी आदि (चतुष्पदाम्) चार पगवाले (पशूनाम्) गाय आदि पशुओं की (त्वचम्) चमड़े से ढांकने वाले और (त्वष्टुः) सुखप्रकाशक ईश्वर की (प्रजानाम्) प्रजाओं के (प्रथमम्) आदि (जनित्रम्) उत्पत्ति के निमित्त (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश में वर्त्तमान (ऊर्णायुम्) भेड़ आदि को (मा हिंसीः) मत मार (ते) तेरे लिये मैं ईश्वर (यम्) जिस (आरण्यम्) वनैले (उष्ट्रम्) हिंसक ऊंट को (अनुदिशामि) बतलाता हूँ (तेन) उससे सुरक्षित अन्नादि से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक उस जंगली ऊंट को (ऋच्छतु) प्राप्त हो और जिस द्वेषीजन से हम लोग (द्विष्मः) अप्रीति करें (तम्) उसको (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ५० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिये होती हैं और जो ऊँट भार उठाते हुए मनुष्यों को सुख देते हैं उनको जो दुष्टजन मारा चाहें उनको संसार के दुःखदायी समझो और उनको अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये ॥ ५० ॥

अज इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौनसे पशु न मारने और कौनसे मारने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः ।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! तू जो (हि) निश्चित (अजः) बकरा (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है (सः) वह (अग्रे) प्रथम (जनितारम्) उत्पादक को (अपश्यत्) देखता है जिससे (मेध्याः) पवित्र हुए (देवाः) विद्वान् (अग्रम्) उत्तम सुख और (देवताम्) दिव्यगुणों के (उपायन्) उपाय को प्राप्त होते हैं और जिससे (रोहम्) वृद्धियुक्त प्रसिद्धि को (आयन्) प्राप्त होवें (तेन) उससे उत्तम गुणों उत्तम सुख तथा (तेन) उससे वृद्धि को प्राप्त हो जो (आरण्यम्) बनैली (शरभम्) शेही (ते) तेरी प्रजा को हानि देने वाली है उसको (अनुदिशामि) बतलाता हूँ (तेन) उससे बचाये हुए पदार्थ से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर और (तम्) उस (शरभम्) शल्यकी को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो और (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें उसको (शोकात्) शोकरूप (अग्नेः) अग्नि से (शुक्) शोक अर्थात् शोक से बढ़ कर शोक अत्यन्तशोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ५१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि बकरे और मोर आदि श्रेष्ठ पशु पक्षियों को न मारें और इनकी रक्षा करके उपकार के लिये संयुक्त करें और जो अच्छे पशुओं और पक्षियों के मारने वाले हों उनको शीघ्र ताड़ना देवें । हां खेती को उजाड़ने हारे स्याही आदि पशु हैं उनको प्रजा की रक्षा के लिये मारें ॥ ५१ ॥

त्वं यविष्ठेत्यस्योशना ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर कैसे पशुओं की रक्षा करना और हनना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥५२॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवा ! (त्वम्) तू रक्षा किये हुये इन पशुओं से (दाशुषः) सुखदाता (नॄन्) धर्मरक्षक मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर इन (गिरः) सत्य वाणियों को (शृणुधि) सुन और (त्मना) अपने आत्मा से मनुष्य (उत) और पशुओं के (तोकम्) बच्चों की (रक्ष) रक्षा कर ॥५२॥

भावार्थ—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बढ़ाते हैं और कृपामय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥५२॥

अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः । आपो देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरेत्वेति मध्यस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । गायत्रेणेत्युत्तरस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वाऽयने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे शिक्षा करने वाला मैं (अपाम्) प्राणों की रक्षा के निमित्त (एमन्) गमनशील वायु में (त्वा) तुझको (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अपाम्) जलों की (ओद्मन्) आर्द्रतायुक्त ओषधियों में (त्वा) तुझको (सादयामि) स्थापन करता हूँ (अपाम्) प्राप्त हुये काष्ठों में (भस्मन्) राख में (त्वा) तुझको (सादयामि) संयुक्त करता हूँ (अपाम्) व्याप्त हुये बिजुली आदि अग्नि के (ज्योतिषि) प्रकाश में (त्वा) तुझको (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (अपाम्) अवकाश वाले (अयने) स्थान में (त्वा) तुझको (सादयामि) बैठाता हूँ (सदने) स्थिति के योग्य (अर्णवे) प्राणविद्या में (त्वा) तुझको (सादयामि) संयुक्त करता हूँ (सदने) गमनशील (समुद्रे) मन के विषय में (त्वा) तुझको (सादयामि) सम्बद्ध करता हूँ (सदने) प्राप्त होने योग्य (सरिरे) वाणी के विषय में (त्वा) तुझको (सादयामि) संयुक्त करता हूँ (अपाम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी (क्षये) घर में (त्वा) तुझको (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अपाम्) अनेक प्रकार के व्याप्त शब्दों के सम्बन्धी (सधिषि) उस पदार्थ में कि जिससे अनेक शब्दों के समान यह जीव सुनता है अर्थात् कान के विषय में (त्वा) तुझको (सादयामि) स्थित करता हूँ (अपाम्) जलों के (सदने) अन्तरिक्ष रूप स्थान में (त्वा) तुझको (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अपाम्) जलों के (सधस्थे) तुल्यस्थान में (त्वा) तुझको (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अपाम्) जलों के (योनौ) समुद्र में (त्वा) तुझको (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (अपाम्) जलों की (पुरीषे) रेती में (त्वा) तुझको (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (अपाम्) जलों के (पाथसि) अन्न में (त्वा) तुझको (सादयामि) प्रेरणा करता हूँ (गायत्रेण) गायत्री छन्द से निकले (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (त्वा) तुझको (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप मन्त्र से विहित (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझको (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (जागतेन) जागती छन्द में कहे (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (त्वा) तुझको (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् मन्त्र में कहे (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझको (सादयामि) प्रेरणा करता हूँ और (पाङ्क्तेन) पङ्क्ति मन्त्र से प्रकाशित हुए (छन्दसा) निर्मल अर्थ के साथ (त्वा) तुझको (सादयामि) प्रेरित करता हूँ वैसे ही तू वर्त्तमान रह ॥५३॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि सब पुरुषों को और सब स्त्रियों को वेद पढ़ा और जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके उनको उन पदार्थों से प्रयोजन साधने में प्रवृत्त करें ॥५३॥

अयं पुर इत्यस्योशना ऋषिः । प्राणा देवताः । स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को सृष्टि से कौन कौन उपकार लेने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (अयम्) यह (पुरो भवः) प्रथम होनेवाला अग्नि है (तस्य) उसका (भौवायनः) सिद्ध कारण से रचा हुआ (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण (प्राणायनः) प्राणों की रचना का हेतु (वसन्तः) सुगन्धि आदि में बसाने हारा वसन्त ऋतु (वासन्ती) वसन्त ऋतु का जिसमें व्याख्यान हो वह (गायत्री) गाते हुए का रक्षक गायत्रीमंत्रार्थ ईश्वर (गायत्र्यै) गायत्री मन्त्र का (गायत्रम्) गायत्री छन्द (गायत्रात्) गायत्री से (उपांशुः) समीप से ग्रहण किया जाय (उपांशोः) उस जप से (त्रिवृत्) कर्म उपासना और ज्ञान के सहित वर्त्तमान फल (त्रिवृतः) उस तीन प्रकार के फल से (रथन्तरम्) रमणीय पदार्थों से तारने हारा सुख और (वसिष्ठः) अतिशय करके निवास का हेतु (ऋषिः) सुख प्राप्त कराने हारा विद्वान् (प्रजापतिगृहीतया) अपने सन्तानों के रक्षक पति को ग्रहण करने वाली (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) सन्तानोत्पत्ति के लिये (प्राणम्) बलयुक्त जीवन का ग्रहण करते हैं वैसे तेरे साथ मैं सन्तान होने के लिये बल का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥५४॥

भावार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुमको योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों को उपयोग में ला के परस्पर प्रीति के साथ अति विषय सेवन को छोड़ और सब संसार से बल का ग्रहण करके सन्तानों को उत्पन्न करो ॥५४॥

अयं दक्षिणेत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद्भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को ग्रीष्म ऋतु में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारꣳ स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब कर्मों का निमित्त वायु के समान विद्वान् चलता है (तस्य) उस वायु के योग से (वैश्वकर्मणम्) जिससे सब कर्म सिद्ध होते हैं वह (मनः) विचारस्वरूप प्रेरक मन (मानसः) मन की गर्मी से उत्पन्न के तुल्य (ग्रीष्मः) रसों का नाशक ग्रीष्म ऋतु (ग्रैष्मी) ग्रीष्म ऋतु के व्याख्यान वाला (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् छन्द (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द के (स्वारम्) ताप से हुआ तेज (स्वारात्) और तेज से (अन्तर्यामः) मध्याह्न के प्रहर में विशेष दिन और (अन्तर्यामात्) मध्याह्न के विशेष दिन से (पञ्चदशः) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी (पञ्चदशात्) उस पूर्णमासी से (बृहत्) बड़ा (भरद्वाजः) अन्न वा विज्ञान की पुष्टि और धारण का निमित्त (ऋषिः) शब्दज्ञान प्राप्त कराने हारा कान (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति राजा से ग्रहण की विद्या से न्याय का ग्रहण करता है वैसे मैं (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिए (मनः) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का ग्रहण करता है वैसे मैं (त्वया) तेरे साथ सब से विज्ञान का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥५५॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये प्राण का मन और मन का प्राण नियम करनेवाला है ऐसा जान के प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ॥५५॥

अयं पश्चादित्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद् धृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसा आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५६॥

पदार्थ—हे उत्तम मुख वाली स्त्री ! जैसे (अयम्) यह सूर्य्य के समान विद्वान् (विश्वव्यचाः) सब संसार को चारों ओर के प्रकाश से व्यापक होकर प्रकट करता (पश्चात्) पश्चिम दिशा में वर्त्तमान (तस्य) उस सूर्य्य का (वैश्वव्यचसम्) प्रकाशक किरणरूप (चक्षुः) नेत्र (चाक्षुष्यः) नेत्र से देखने योग्य (वर्षाः) जिस समय मेघ वर्षते हैं वह वर्षाऋतु (वार्षी) वर्षा ऋतु के व्याख्यान वाला (जगती) संसार में प्रसिद्ध जगती छन्द (जगत्याः) जगती छन्द से (ऋक्समम्) ऋचाओं के सेवन का हेतु विज्ञान (ऋक्समात्) उस विज्ञान से (शुक्रः) पराक्रम (शुक्रात्) पराक्रम से (सप्तदशः) सत्रह तत्त्वों का पूरक विज्ञान (सप्तदशात्) उस विज्ञान से (वैरूपम्) अनेक रूपों का हेतु जगत् का ज्ञान और जैसे (जमदग्निः) प्रकाशस्वरूप (ऋषिः) रूप का प्राप्त कराने हारा नेत्र (प्रजापतिगृहीतया) सन्तानरक्षक पति से ग्रहण की हुई विद्यायुक्त स्त्री के साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (चक्षुः) विद्यारूपी नेत्रों का ग्रहण करता है वैसे मैं तेरे साथ संसार से बल को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥५६॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिए कि सामवेद के पढ़ने से सूर्य आदि प्रसिद्ध जगत् को स्वभाव से जान के सब सृष्टि के गुणों के दृष्टान्त से अच्छा देखें और चरित्र ग्रहण करें ॥५६॥

इदमुत्तरादित्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब शरद् ऋतु में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन एकविꣳशएकविꣳशाद् वैराजं विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

पदार्थ—हे सौभाग्यवती ! जैसे (इदम्) यह (उत्तरात्) सब से उत्तर भाग में (स्वः) सुखों का साधन दिशारूप है (तस्य) उसके (सौवम्) सुख का साधन (श्रोत्रम्) कान (श्रौत्री) कान की सम्बन्धी (शरत्) शरदृतु (शारदी) शरद् ऋतु के व्याख्यान वाला (अनुष्टुप्) प्रवृद्ध अर्थ वाला अनुष्टुप् छन्द (अनुष्टुभः) उससे (ऐडम्) वाणी के व्याख्यान से युक्त मन्त्र (ऐडात्) उस मन्त्र से (मन्थी) पदार्थों के मथने का साधन (मन्थिनः) उस साधन से (एकविंशः) इक्कीस विद्याओं का पूर्ण करने हारा सिद्धान्त (एकविंशात्) उस सिद्धान्त से (वैराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक (साम) सामवेद के ज्ञान को प्राप्त हुआ (विश्वामित्रः) सब से मित्रता का हेतु (ऋषिः) शब्द ज्ञान कराने हारा कान और (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई बिजुली आदि के लिये (श्रोत्रम्) सुनने के साधन को ग्रहण करते हैं वैसे (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्रहण की (त्वया) तेरे साथ मैं प्रसिद्ध हुई बिजुली आदि से (श्रोत्रम्) सुनने के साधन कान को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥५७॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या पढ़ और विवाह करके बहुश्रुत होवें और सत्यवक्ता आप्त जनों से सुने बिना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती इसलिए सदैव सज्जनों का उपदेश सुन के सत्य का धारण और मिथ्या को छोड़ देवें ॥५७॥

इयमुपरीत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराडाकृतिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब हेमन्त ऋतु में किस प्रकार वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ् मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्म ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥

पदार्थ—हे विदुषी स्त्री ! जो (इयम्) यह (उपरि) सब से ऊपर विराजमान (मतिः) बुद्धि है (तस्यै) उस (मात्या) बुद्धि का होना वा कर्म (वाक्) वाणी और (वाच्यः) उसका होना वा कर्म (हेमन्तः) गर्मी का नाशक हेमन्त ऋतु (हैमन्ती) हेमन्त ऋतु के व्याख्यान वाला (पङ्क्तिः) पंक्ति छन्द (पङ्क्त्यै) उस पंक्ति छन्द का (निधनवत्) मृत्यु का प्रशंसित व्याख्यान वाला सामवेद का भाग (निधनवतः) उससे (आग्रयणः) प्राप्ति का साधन ज्ञान का फल (आग्रयणात्) उससे (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) बाहर और तेंतीस सामवेद के स्तोत्र (त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याम्) उन स्तोत्रों से (शाक्वररैवते) शक्ति और धन के साधक पदार्थों को जान के (विश्वकर्मा) सब सुकर्मों के सेवनेवाला (ऋषिः) वेदार्थ का वक्ता पुरुष वर्त्तता है वैसे मैं (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्रहण की (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वाचम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥५८॥

भावार्थ—स्त्रीपुरुषों को चाहिए कि विद्वानों की शिक्षारूप वाणी को सुन के अपनी बुद्धि बढ़ावें उस बुद्धि से हेमन्त ऋतु में कर्त्तव्य कर्म और सामवेद के स्तोत्रों को जान महात्मा ऋषि लोगों के समान वर्त्ताव कर विद्या और अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी का स्वीकार करके अपने सन्तानों के लिये भी इन वाणियों का उपदेश सदैव किया करें ॥५८॥

इस अध्याय में ईश्वर, स्त्रीपुरुष और व्यवहार का वर्णन करने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जानो ॥

यह तेरहवां (१३) अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ अथ चतुर्दशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

ध्रुवक्षितिरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब चौदहवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में स्त्रियों के लिए उपदेश किया है—

**ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवाऽसि ध्रुवं योनिमा सीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाऽश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१ ॥**

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो तू (साधुया) श्रेष्ठ धर्म के साथ (उख्यस्य) बटलोई में पकाये अन्न की सम्बन्धी और (प्रथमम्) विस्तारयुक्त (केतुम्) बुद्धि को (जुषाणा) प्रीति से सेवन करती हुई (ध्रुवक्षितिः) निश्चल वास करने और (ध्रुवयोनिः) निश्चल घर में रहने वाली (ध्रुवा) दृढ़धर्म्म से युक्त (असि) है सो तू (ध्रुवम्) निश्चल (योनिम्) घर में (आसीद) स्थिर हो (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के चाहने हारे (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) अच्छे प्रकार स्थापित करें ॥ १ ॥

भावार्थ—विदुषी पढ़ाने और उपदेश करने हारी स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहाश्रम और धर्मशिक्षा दे के इनको श्रेष्ठ करें ॥ १ ॥

कुलायिनीत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर पूर्वोक्त विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः । अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**स्योने**) सुख करने हारी ! जिस (**त्वा**) तुझ को (**वसवः**) प्रथम कोटि के विद्वान् और (**रुद्राः**) मध्य कक्षा के विद्वान् (**इमा**) इन (**ब्रह्म**) विद्याधनों के देने वाले गृहस्थों की (**अभि**) अभिमुख होकर (**गृणन्तु**) प्रशंसा करें सो तू (**सौभगाय**) सुन्दर संपत्ति होने के लिये इस विद्याधन को (**पीपिहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (**घृतवती**) बहुत जल और (**पुरन्धिः**) बहुत सुख धारण करने-वाली (**कुलायिनी**) प्रशंसित कुल की प्राप्ति से युक्त हुई (**पृथिव्याः**) अपनी भूमि के (**सदने**) घर में (**सीद**) स्थित हो (**अध्वर्यू**) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ चाहने वाले (**अश्विना**) सब विद्याओं में व्यापक और उपदेशक पुरुष (**त्वा**) तुझको (**इह**) इस गृहाश्रम में (**सादयताम्**) स्थापित करें ॥ २ ॥

भावार्थ—स्त्रियों को योग्य है कि साङ्गोपाङ्ग पूर्ण विद्या और धन ऐश्वर्य का सुख भोगने के लिये अपने सदृश पतियों से विवाह करके विद्या और सुवर्ण आदि धन को पाके सब ऋतुओं में सुख देने हारे घरों में निवास करें तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय को ही अगले मन्त्र में कहा है—

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाᳬसुम्ने बृहते रणाय । पितेवैधि सूनवऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! तू जैसे (**स्वैः**) अपने (**दक्षैः**) बलों और भृत्यों के साथ वर्त्तता हुआ (**देवानाम्**) धर्मात्मा विद्वानों के मध्य में वर्त्तमान (**बृहते**) बड़े (**रणाय**) संग्राम के लिये (**सुम्ने**) सुख के विषय (**दक्षपिता**) बलों वा चतुर भृत्यों का पालन करने हारा होके विजय से बढ़ता है वैसे (**इह**) इस लोक के मध्य में (**एधि**) बढ़ती रह (**सुम्ने**) सुख में (**आसीद**) स्थिर हो और (**पितेव**) जैसे पिता (**सूनवे**) अपने पुत्र के लिये सुन्दर सुख देता है वैसे (**सुशेवा**) सुन्दर सुख से युक्त (**स्वावेशा**) अच्छी प्रीति से सुन्दर शुद्ध शरीर वस्त्र अलंकार को धारण करती हुई अपने पति के साथ प्रवेश करनेहारी होके (**तन्वा**) शरीर के साथ प्रवेश कर और (**अध्वर्यू**) गृहाश्रमादि यज्ञ को अपने लिये इच्छा करने वाले (**अश्विना**) पढ़ाने और उपदेश करने हारे जन (**त्वा**) तुझ को (**इह**) इस गृहाश्रम में (**सादयताम्**) स्थित करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी अपने पतियों के साथ स्थित रहें । अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करें और नित्य ही वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीरों को संयुक्त करके वर्त्तें । विद्वान् लोग भी इन को सदा उपदेश करें और स्त्री भी इन विद्वानों के लिये सदा उपदेश करें ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणाऽऽयजस्वाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो (**स्तोमपृष्ठा**) स्तुतियों को जानने की इच्छायुक्त तू (**इह**) इस गृहाश्रम में (**पृथिव्याः**) पृथिवी की (**पुरीषम्**) रक्षा (**अप्सः**) सुन्दररूप और (**नाम**) नाम और (**घृतवती**) बहुत घी आदि प्रशंसित पदार्थों से युक्त (**असि**) है (**ताम्**) उस (**त्वा**) तुझ को (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अभिगृणन्तु**) सत्कार करें (**इह**) इसी गृहाश्रम में (**सीद**) वर्त्तमान रह और जिस (**त्वा**) तुझ को (**अध्वर्यू**) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रमादि यज्ञ चाहने वाले (**अश्विना**) व्यापक बुद्धि बढ़ाने और उपदेश करने हारे (**इह**) इस गृहाश्रम में (**सादयताम्**) स्थित करें सो तू (**अस्मे**) हमारे लिये (**प्रजावत्**) प्रशंसित सन्तान होने का साधन (**द्रविणा**) धन (**यजस्व**) दे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो स्त्री गृहाश्रम की विद्या और क्रिया-कौशल में विदुषी हों वे ही सब प्राणियों को सुख दे सकती हैं ॥ ४ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है—

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् । ऊर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो (**ते**) तेरा (**विश्वकर्मा**) सब शुभ कर्मों से युक्त (**ऋषिः**) विज्ञानदाता पति मैं (**अन्तरिक्षस्य**) अन्तःकरण के नाशरहित विज्ञान को (**धर्त्रीम्**) धारण करने (**दिशाम्**) पूर्वादि दिशाओं की (**विष्टम्भनीम्**) आधार और (**भुवनानाम्**) सन्तानोत्पत्ति के निमित्त घरों की (**अधिपत्नीम्**) अधिष्ठाता होने से पालन करने वाली (**त्वा**) तुझको सूर्य्य की किरण के समान (**अदित्याः**) पृथिवी के (**पृष्ठे**) पीठ पर (**सादयामि**) घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूँ जो तू (**अपाम्**) जलों की (**ऊर्मिः**) तरङ्ग के सदृश (**द्रप्सः**) आनन्दयुक्त (**असि**) है उस (**त्वा**) तुझ को (**इह**) इस गृहाश्रम में (**अध्वर्यू**) रक्षा के निमित्त यज्ञ को करने वाले (**अश्विना**) विद्या में व्याप्तबुद्धि अध्यापक और उपदेशक पुरुष (**सादयताम्**) स्थापित करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री अविनाशी सुख देनेहारी सब दिशाओं में प्रसिद्ध कीर्ति वाली विद्वान् पतियों से युक्त सदा आनन्दित हैं वे ही गृहाश्रम का धर्म पालने और उस की उन्नति के लिये समर्थ होती हैं, तेरहवें अध्याय में जो (मधुश्च०) कहा है वहाँ से यहाँ तक वसन्त ऋतु के गुणों की प्रधानता से व्याख्यान किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

शुक्रश्चेत्यस्योशना ऋषिः । ग्रीष्मर्तुर्देवता । निचृदुत्कृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है—

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! जैसे (**मम**) मेरे (**ज्यैष्ठ्याय**) प्रशंसा के योग्य होने के लिये जो (**शुक्रः**) शीघ्र धूल की वर्षा और तीव्र ताप से आकाश को मलिन करने हारा ज्येष्ठ (**च**) और (**शुचिः**) पवित्रता का हेतु आषाढ़ (**च**) ये दोनों मिल के प्रत्येक (**ग्रैष्मौ**) ग्रीष्म (**ऋतू**) ऋतु कहाते हैं । जिस (**अग्नेः**) अग्नि के (**अन्तःश्लेषः**) मध्य में कफ के रोग का निवारण (**असि**) होता है जिस से ग्रीष्म ऋतु के महीनों से (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और अन्तरिक्ष (**कल्पेताम्**) समर्थ होवें (**आपः**) जल (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों (**ओषधयः**) यव वा सोमलता आदि ओषधियां और (**अग्नयः**) बिजुली आदि अग्नि (**पृथक्**) अलग अलग (**कल्पन्ताम्**) समर्थ होवें । जैसे (**सामनसः**) विचारशील (**सव्रताः**) सत्याचारणरूप नियमों से युक्त (**अग्नयः**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी को (**अन्तरा, ग्रैष्मौ, ऋतू, अभिकल्पमानाः**) सन्मुख होकर समर्थ करते हुए (**देवाः**) विद्वान् लोग (**इन्द्रमिव**) बिजुली के समान उन अग्नियों की विद्या में (**अभिसंविशन्तु**) सब ओर से अच्छे प्रकार प्रवेश करें वैसे (**तया**) उस (**देवतया**) परमेश्वर देवता के साथ तुम दोनों (**इमे**) इन (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और पृथिवी को (**ध्रुवे**) निश्चलस्वरूप से इन का भी (**अङ्गिरस्वत्**) अवयवों के कारणरूप रस के समान (**सीदतम्**) विशेष कर के ज्ञान कर प्रवर्त्तमान रहो ॥ ६ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वसन्त ऋतु के व्याख्यान के पीछे ग्रीष्म ऋतु की व्याख्या करते हैं । हे मनुष्यो ! तुम लोग जो पृथिवी आदि पञ्चभूतों के शरीरसम्बन्धी वा मानस अग्नि हैं कि जिन के विना ग्रीष्म ऋतु नहीं हो सकता उन को जान और उपयोग में लाके सब प्राणियों को सुख दिया करो ॥ ६ ॥

सजूर्ऋतुभिरित्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः ।
सजूर्ऋतुभिरित्यस्य भुरिक्कृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः । सजूर्ऋतुभिरिति
द्वितीयस्य स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य
निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरश्च ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा । सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! जिस (**त्वा**) तुझको (**इह**) इस जगत् में (**अध्वर्यू**) रक्षा करनेहारे (**अश्विना**) सब विद्याओं में व्यापक पढ़ाने और उपदेश करनेवाले पुरुष और स्त्री (**वैश्वानराय**) सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त (**अग्नये**) अग्निविद्या के लिये (**सादयताम्**) नियुक्त करें और हम लोग भी जिस (**त्वा**) तुझको स्थापित करें सो तू (**ऋतुभिः**) वसन्त और वर्षा आदि ऋतुओं के साथ (**सजूः**) एकसी तृप्ति वा सेवा से युक्त (**विधाभिः**) जलों के साथ (**सजूः**) प्रीतियुक्त (**देवैः**) अच्छे गुणों के साथ (**सजूः**) प्रीतिवाली वा प्रीतिवाला और (**वयोनाधैः**) जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्दों के साथ सम्बन्ध के हेतु (**देवैः**) दिव्य सुख देनेहारे प्राणों के साथ (**सजूः**) समान सेवन से युक्त हो । हे पुरुषार्थयुक्त स्त्रि वा पुरुष ! जिस (**त्वा**) तुझको (**इह**) इस गृहाश्रम में (**वैश्वानराय**) सब जगत् के नायक (**अग्नये**) विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति के लिये (**अध्वर्यू**) रक्षक (**अश्विना**) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक (**सादयताम्**) स्थापित करें और जिस (**त्वा**) तुझको हम लोग नियत करें सो तू (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**सजूः**) पुरुषार्थी (**विधाभिः**) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के हेतु प्राणों की चेष्टाओं के साथ (**सजूः**) समान सेवनवाले (**वसुभिः**) अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ (**सजूः**) प्रीतियुक्त और (**वयोनाधैः**) विज्ञान का सम्बन्ध करानेहारे (**देवैः**) सुन्दर विद्वानों के साथ (**सजूः**) समान प्रीतिवाले हों । हे विद्या पढ़ने के लिये प्रवृत्त हुए ब्रह्मचारिणी वा ब्रह्मचारी ! जिस (**त्वा**) तुझको (**इह**) इस ब्रह्मचर्याश्रम में (**वैश्वानराय**) सब मनुष्यों के सुख के साधन (**अग्नये**) शास्त्रों के विज्ञान के लिये (**अध्वर्यू**) पालनेहारे (**अश्विना**) पूर्ण-विद्यायुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (**सादयताम्**) नियुक्त करें और जिस (**त्वा**) तुझको हम लोग स्थापित करें सो तू (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**सजूः**) अनुकूल सेवन वाले (**विधाभिः**) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के निमित्त प्राण की चेष्टाओं से (**सजूः**) समान प्रीतिवाले (**रुद्रैः**) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा इन ग्यारहों के (**सजूः**) अनुसार सेवा करनेहारे और (**वयोनाधैः**)वेदादि शास्त्रों के जनाने का प्रबन्ध करनेहारे (**देवैः**) विद्वानों के साथ (**सजूः**) बराबर प्रीति वाले हों । हे पूर्णविद्यावाले स्त्री वा पुरुष ! जिस (**त्वा**) तुझको (**इह**) इस संसार में (**वैश्वानराय**) सब मनुष्यों के लिये पूर्ण सुख के साथ (**अग्नये**) पूर्ण विज्ञान के लिये (**अध्वर्यू**) रक्षक (**अश्विना**) शीघ्र ज्ञानदाता लोग (**सादयताम्**) नियत करें और जिस (**त्वा**) तुझको हम नियुक्त करें सो तू (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**सजूः**) अनुकूल आचरण वाले (**विधाभिः**) विविध प्रकार की सत्यक्रियाओं के साथ (**सजूः**) समान प्रीतिवाले (**आदित्यैः**) वर्ष के बारह महीनों के साथ (**सजूः**) अनुकूल आहारविहार युक्त और (**वयोनाधैः**) पूर्ण विद्या के विज्ञान और प्रचार के प्रबन्ध करनेहारे (**देवैः**) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों के (**सजूः**) अनुकूल प्रीतिवाले हों । हे सत्य अर्थों का उपदेश करनेहारी स्त्री वा पुरुष ! जिस (**त्वा**) तुझको (**इह**) इस जगत् में (**वैश्वानराय**) सब मनुष्यों के हितकारी (**अग्नये**) अच्छी शिक्षा के प्रकाश के लिये (**अध्वर्यू**) ब्रह्मविद्या के रक्षक (**अश्विना**) शीघ्र पढ़ाने और उपदेश करनेहारे लोग (**सादयताम्**) स्थित करें और जिस (**त्वा**) तुझको हम लोग नियत करें सो तू (**ऋतुभिः**) काल क्षण आदि सब अवयवों के साथ (**सजूः**) अनुकूलसेवी (**विधाभिः**) सुखों में व्यापक सब क्रियाओं के (**सजूः**) अनुसार होकर (**विश्वैः**) सब (**देवैः**) सत्योपदेशक पतियों के साथ (**सजूः**) समान प्रीतिवाले और (**वयोनाधैः**) कामयमान जीवन का सम्बन्ध करानेहारे (**देवैः**) परोपकार के लिये सत्य असत्य के जाननेवाले जनों के साथ (**सजूः**) समान प्रीति वाले हों ॥७॥

भावार्थ—इस संसार में मनुष्य का जन्म पाके स्त्री तथा पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मचर्य्य-सेवन, विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ गुण कर्मों में आप प्रवृत्त होकर जिन अन्य लोगों को प्रवृत्त करें वे उनमें प्रवृत्त होकर परमेश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण करके सब ऋतुओं में आप सुखी रहें और अन्यों को सुखी करें ॥ ७ ॥

प्राणम्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । दम्पती देवते । निचृदतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्राणम्मे॑ पाह्यपानम्मे॑ पाहि व्यानम्मे॑ पाहि चक्षु॑र्म ऽउर्व्या विभा॑हि श्रोत्र॑म्मे श्लोकय । अपः पि॑न्वौष॑धीर्जिन्व द्विपाद॑व चतु॑ष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमे॑रय ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे पते वा स्त्रि ! तू (**ऊर्व्या**) बहुत प्रकार की उत्तम क्रिया से (**मे**) मेरे (**प्राणम्**) नाभि से ऊपर को चलनेवाले प्राणवायु की (**पाहि**) रक्षा कर (**मे**) मेरे (**अपानम्**) नाभि के नीचे गुह्येन्द्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की (**पाहि**) रक्षा कर (**मे**) मेरे (**व्यानम्**) विविध प्रकार की शरीर की संधियों में रहने वाले व्यान वायु की (**पाहि**) रक्षा कर (**मे**) मेरे (**चक्षुः**) नेत्रों को (**विभाहि**) प्रकाशित कर (**मे**) मेरे (**श्रोत्रम्**) कानों को (**श्लोकय**) शास्त्रों के श्रवण से संयुक्त कर (**अपः**) प्राणों को (**पिन्व**) पुष्ट कर (**ओषधीः**) सोमलता वा यव आदि ओषधियों को (**जिन्व**) प्राप्त हो (**द्विपात्**) मनुष्यादि दो पगवाले प्राणियों की (**अव**) रक्षा कर (**चतुष्पात्**) चार पगवाले गौ आदि की (**पाहि**) रक्षा कर और जैसे सूर्य्य (**दिवः**) अपने प्रकाश से (**वृष्टिम्**) वर्षा करता है वैसे घर के कार्यों को (**एरय**) अच्छे प्रकार प्राप्त कर॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री पुरुषों को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों का सुनना, ओषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें ॥ ८ ॥

मूर्धा वय इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । प्राजापत्यादयो देवता । पूर्वस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिः । पुरुष इत्युत्तरस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मूर्धा वयः॑ प्रजाप॑तिश्छन्दः॑ क्षत्रं वयो॒ मय॑न्दं छन्दो॑ विष्टम्भो वयोऽधिप॑तिश्छन्दो॑ विश्वक॑र्मा वयः॑ परमे॒ष्ठी छन्दो॑ बस्तो वयो॑ विबलं छन्दो॑ वृष्णिर्वयो॑ विशालं छन्दः॑ पुरु॑षो वय॑स्तन्द्रं छन्दो॑ व्याघ्रो वयोऽना॑धृष्टं छन्दः॑ सिंहो वय॑श्छदिश्छन्दः॑ पष्ठवाड् वयो॑ बृहती छन्द॑ऽउक्षा वयः॑ ककुप् छन्द॑ऽऋषभो वयः॑ सतोबृहती छन्दः॑ ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! (**मूर्धा**) शिर के तुल्य उत्तम ब्राह्मण का कुल (**प्रजापतिः**) प्रजा के रक्षक राजा के समान तू (**वयः**) कामना के योग्य (**मयन्दम्**) सुखदायक (**छन्दः**) बलयुक्त (**क्षत्रम्**) क्षत्रिय कुल को प्रेरणाकर (**विष्टम्भः**) वैश्यों की रक्षा का हेतु (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता पुरुष नृप के समान तू (**वयः**) न्याय विनय को प्राप्त हुए (**छन्दः**) स्वाधीन पुरुष को प्रेरणा कर (**विश्वकर्म्मा**) सब उत्तम कर्म करनेहारे (**परमेष्ठी**) सबके स्वामी राजा के समान तू (**वयः**) चाहने योग्य (**छन्दः**) स्वतन्त्रता को (**एरय**) बढ़ाइये (**बस्तः**) व्यवहारों से युक्त पुरुष के समान तू (**वयः**) अनेक प्रकार के व्यवहारों में व्यापी (**विबलम्**) विविध बल के हेतु (**छन्दः**) आनन्द को बढ़ा (**वृष्णिः**) सुख के सींचने वाले के सदृश तू (**विशालम्**) विस्तारयुक्त (**वयः**) सुखदायक (**छन्दः**) स्वतन्त्रता को बढ़ा (**पुरुषः**) पुरुषार्थयुक्त जन के तुल्य तू (**वयः**) चाहने योग्य (**तन्द्रम्**) कुटुम्ब के धारणरूप कर्म्म और (**छन्दः**) बल को बढ़ा (**व्याघ्रः**) जो विविध प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार सूंघता है उस जन्तु के तुल्य राजा तू (**वयः**) चाहने योग्य (**अनाधृष्टम्**) दृढ़ (**छन्दः**) बल को बढ़ा (**सिंहः**) पशु आदि को मारनेहारे सिंह के समान पराक्रमी राजा तू (**वयः**) पराक्रम के साथ (**छदिः**) निरोध और (**छन्दः**) प्रकाश को बढ़ा (**पष्ठवाट्**) पीठ से बोझ उठानेवाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य तू (**बृहती**) बड़े (**वयः**) बलयुक्त (**छन्दः**) पराक्रम को प्रेरणा कर (**उक्षा**) सींचने हारे बैल के तुल्य शूद्र तू (**वयः**) अति बल का हेतु (**ककुप्**) दिशाओं और (**छन्दः**) आनन्द को बढ़ा (**ऋषभः**) शीघ्रगन्ता पशु के तुल्य भृत्य तू (**वयः**) बल के साथ (**सतोबृहती**) उत्तम बड़ी (**छन्दः**) स्वतन्त्रता की प्रेरणा कर ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से एरय पद की अनुवृत्ति आती है । स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्राह्मण आदि वर्णों को स्वतन्त्र वेदादि शास्त्रों का प्रचार आलस्यादि त्याग और शत्रुओं का निवारण करके बड़े बल को सदा बढ़ाया करे ॥ ९ ॥

अनड्वानित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अनड्वान् वयः॑ पंक्तिश्छन्दो॑ धेनुर्वयो॒ जग॑ती छन्दस्त्र्यविर्व॑यस्त्रिष्टुप् छन्दो॑ दित्यवाड् वयो॑ विराट् छन्दः॑ पंचाविर्वयो॑ गायत्री छन्द॑स्त्रिवत्सो वय॑ऽउष्णिक् छन्द॑स्तुर्य्यवाड् वयो॑ऽनुष्टुप् छन्दः॑ ॥१०॥

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! (**अनड्वान्**) गौ और बैल के समान बलवान् होके तू (**पंक्तिः**) प्रकट (**छन्दः**) स्वतन्त्र (**वयः**) बल की प्रेरणा कर (**धेनुः**) दूध देनेहारी गौ के समान तू (**जगती**) जगत् के उपकारक (**छन्दः**) आनन्द की (**वयः**) कामना को बढ़ा (**त्र्यविः**) तीन भेड़ बकरी और गौ के अध्यक्ष के तुल्य वृद्धियुक्त होके तू (**त्रिष्टुप्**) कर्म्म उपासना और ज्ञान की स्तुति के हेतु (**छन्दः**) स्वतन्त्र (**वयः**) उत्पत्ति को बढ़ा (**दित्यवाड्**) पृथिवी खोदने से उत्पन्न हुए जौ आदि को प्राप्त करानेहारी क्रिया के तुल्य तू (**विराट्**) विविध प्रकाशयुक्त (**छन्दः**) आनन्दकारक (**वयः**) प्राप्ति को बढ़ा (**पंचाविः**) पाँच इन्द्रियों की रक्षा के हेतु ओषधि के समान तू (**गायत्री**) गायत्री (**छन्दः**) मन्त्र के (**वयः**) विज्ञान को बढ़ा (**त्रिवत्सः**) कर्म उपासना और ज्ञान को चाहनेहारे के तुल्य तू (**उष्णिक्**) दुःखों के नाशक (**छन्दः**) स्वतन्त्र (**वयः**) पराक्रम को बढ़ा और (**तुर्य्यवाट्**) चारों वेदों की प्राप्ति करानेहारे पुरुष के समान तू (**अनुष्टुप्**) अनुकूल स्तुति का निमित्त (**छन्दः**) सुखसाधक (**वयः**) इच्छा को प्रतिदिन बढ़ाया कर ॥१०॥

पदार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे खेती करनेहारे लोग बैल आदि साधनों की रक्षा से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके सबको सुख देते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग विद्या का प्रचार करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । इन्द्राग्नी देवते । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रा॑ग्नीऽअव्य॑थमानामिष्ट॑कां दृंहतं युवम् ।
पृष्ठेन द्यावा॑पृथिवीऽअन्तरि॑क्षं च विबा॑धसे ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राग्नी**) बिजुली और सूर्य्य के समान वर्त्तमान स्त्री पुरुषो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**अव्यथमानाम्**) जमी हुई बुद्धि को प्राप्त होके (**इष्टकाम्**)

ईंट के समान गृहाश्रम को (दृंहतम्) दृढ़ करो। जैसे (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पृष्ठेन) पीठ से आकाश को बांधे हैं वैसे तुम दुःख और शत्रुओं की बाधा करो। हे पुरुष! जैसे तू इस अपनी स्त्री की पीड़ा को (विबाधसे) विशेष करके हटाता है वैसे यह स्त्री भी तेरी पीड़ा को हरा करे ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली और सूर्य्य जल वर्षा के ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं वैसे ही स्त्री पुरुष कुटुम्ब को बढ़ावें जैसे प्रकाश और पृथिवी आकाश का आवरण करते हैं वैसे गृहाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करें ॥११॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वकर्मर्षिः। वायुर्देवता। विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि! (विश्वकर्मा) सम्पूर्ण शुभ कर्म करने में कुशल पति जिस (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विज्ञान वा सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) उत्तम विस्तृत विद्या वाली (अन्तरिक्षस्य) प्रकाश के (पृष्ठे) एक भाग में (त्वा) तुझको (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान (व्यानाय) व्यान और (उदानाय) उदानरूप शरीर के वायु तथा (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा (चरित्राय) और शुभ कर्मों के आचरण के लिए (अन्तरिक्षम्) जलादि को (यच्छ) दिया कर (अन्तरिक्षम्) प्रशंसित शुद्ध किये जल से युक्त अन्न और धनादि को (दृंह) बढ़ा और (अन्तरिक्षम्) मधुरता आदि गुणयुक्त रोगनाशक आकाशस्थ सब पदार्थों को (मा हिंसीः) नष्ट मत कर जिस (त्वा) तुझको (वायुः) प्राण के तुल्य प्रिय पति (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुखरूप क्रिया (छर्दिषा) प्रकाश और (शन्तमेन) अति सुखदायक विज्ञान से तुझको (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिव्य सुख देनेवाली क्रिया के साथ वर्त्तमान पतिरूप देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) व्यापक वायु के समान (ध्रुवा) निश्चल ज्ञान से युक्त (सीद) स्थिर हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे वैसे स्त्री भी पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे जिससे निरन्तर आनन्द बढ़े ॥१२॥

राज्ञ्यसीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। दिशो देवताः। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि! जो तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्य (राज्ञी) प्रकाशमान (असि) है (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त (असि) है (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के सदृश (सम्राट्) चक्रवर्ती राजा के सदृश अच्छे सुखयुक्त पृथिवी पर प्रकाशमान (असि) है (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा के तुल्य (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (असि) है (बृहती) बड़ी (दिक्) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य (अधिपत्नी) घर में अधिकार को प्राप्त हुई (असि) है सो तू सब पति आदि को तृप्त कर ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे दिशा सब ओर से अभिव्याप्त बोध करने हारी चंचलतारहित वैसे ही स्त्री शुभ गुण कर्म और स्वभावों से युक्त होवे ॥१३॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। वायुर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि! जिस (ज्योतिष्मतीम्) बहुत विज्ञान वाली (त्वा) तुझको (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान की पुष्टि के लिये (अन्तरिक्षस्य) जल के (पृष्ठे) ऊपरले भाग में (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों का चाहनेहारा पति (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर जो (वायुः) प्राण के समान प्रिय (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) देवस्वरूप पति के साथ (ध्रुवा) दृढ़ (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के समान (सीद) स्थिर हो ॥१४॥

भावार्थ—स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम के साथ आप विद्वान् हो के शरीर आत्मा वा बल बढ़ाने के लिए अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान देवे। यहां तक ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥१४॥

नभश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋतवो देवताः। स्वराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब वर्षा ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है—

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो! तुम दोनों जो (नभः) प्रवर्तित मेघों वाला श्रावण (च) और (नभस्यः) वर्षा का मध्यभागी भाद्रपद (च) ये दोनों (वार्षिकौ) वर्षा (ऋतू) ऋतु के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित होने के लिए हैं जिन में (अग्नेः) उष्ण तथा (अन्तःश्लेषः) जिन के मध्य में शीत का स्पर्श (असि) होता है जिनके साथ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि समर्थ होते हैं उनके भोग में तुम दोनों (कल्पेताम्) समर्थ हो जैसे ऋतु योग से (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधि वा (अग्नयः) अग्नि (पृथक्) जल से अलग समर्थ होते हैं वैसे (सव्रताः) एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम (समनसः) एक प्रकार का ज्ञान देने हारे (अग्नयः) तेजस्वी लोग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि वर्षा ऋतु के गुणों में समर्थ होते हैं उन को (वार्षिकौ, ऋतू) वर्षाऋतुरूप (अभिकल्पमानाः) सब ओर से सुख के लिए समर्थ करते हुए विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) बिजुली के समान प्रकाश और बल को (तया) उस (देवतया) दिव्य वर्षा ऋतु के साथ (अभिसंविशन्तु) सन्मुख होकर अच्छे प्रकार स्थित होवें (अन्तरा) उन दोनों महीनों में प्रवेश करके (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान परस्पर प्रेमयुक्त (ध्रुवे) निश्चल (सीदतम्) रहो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के समान वर्षा ऋतु में वह सामग्री ग्रहण करें जिस से सब सुख होवें ॥ १५ ॥

इषश्चेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। ऋतवो देवताः। भुरिगुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब शरद् ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में किया है—

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। शारदावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (इषः) चाहने योग्य क्वार महीना (च) और (ऊर्जः) सब पदार्थों के बलवान् होने का हेतु कार्तिक (च) ये दोनों (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित सुख होने के लिए होते हैं। जिन के (अन्तःश्लेषः) मध्य में (किञ्चित्) शीतस्पर्श (असि) होता है वे (द्यावापृथिवी) अवकाश और पृथिवी को (कल्पेताम्) समर्थ करें (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (सव्रताः) सब कार्यों के नियम करने हारे (अग्नयः) शरीर के अग्नि (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ये) जो (अन्तरा) बीच में (समनसः) मन के सम्बन्धी (अग्नयः) बाहर के भी अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि को (कल्पेताम्) समर्थ करें (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के दो महीनों में (इन्द्रमिव) परमैश्वर्य के तुल्य (अभिकल्पमानाः) सब ओर से आनन्द की इच्छा करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) प्रवेश करें (तया) उस (देवतया) दिव्य शरद् ऋतु रूप देवता के नियम के साथ (ध्रुवे) निश्चल सुख वाले (सीदतम्) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोगों को (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित सुख होने के लिए भी होने योग्य हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं उन को यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो ॥ १६ ॥

आयुर्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। छन्दांसि देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे

पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! तू शरद् ऋतु में (मे) मेरी (आयुः) अवस्था की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (व्यानम्) व्यान की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (पिन्व) अच्छी शिक्षा से युक्त कर (मे) मेरे (मनः) मन को (जिन्व) तृप्त कर (मे) मेरे (आत्मानम्) चेतन आत्मा की (पाहि) रक्षा कर और (मे) मेरे लिए (ज्योतिः) विज्ञान का (यच्छ) दान कर ॥ १७ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें ॥ १७ ॥

मा च्छन्द इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्द स्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (मा) परिमाण का हेतु (छन्दः) आनन्दकारक (प्रमा) प्रमाण का हेतु बुद्धि (छन्दः) बल प्रतिमा जिससे प्रतीति निश्चय की क्रिया हेतु (छन्दः) स्वतन्त्रता (अस्रीवयः) बल और कान्तिकारक अन्नादि पदार्थ (छन्दः) बलकारी विज्ञान (पङ्क्तिः) पांच अवयवों से युक्त योग (छन्दः) प्रकाश (उष्णिक्) स्नेह (छन्दः) प्रकाश (बृहती) बड़ी प्रकृति (छन्दः) आश्रय (अनुष्टुप्) सुखों का आलम्बन (छन्दः) भोग (विराट्) विविध प्रकार की विद्याओं का प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (गायत्री) गाने वाले का रक्षक ईश्वर (छन्दः) उसका बोध (त्रिष्टुप्) तीन सुखों का आश्रय (छन्दः) आनन्द और (जगती) जिस में सब जगत् चलता है उस (छन्दः) पराक्रम को ग्रहण कर और जानके सबको सुखयुक्त करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य निश्चय के हेतु आनन्द आदि से साध्य, धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते हैं वे सुखों से शोभायमान होते हैं ॥ १८ ॥

पृथिवी छन्द इत्यस्य विश्वदेवर्षिः । पृथिव्यादयो देवताः । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग जैसे (पृथिवी) भूमि (छन्दः) स्वतन्त्र (अन्तरिक्षम्) आकाश (छन्दः) आनन्द (द्यौः) प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (समाः) वर्ष (छन्दः)वृद्धि (नक्षत्राणि) तारे लोक (छन्दः) स्वतन्त्र (वाक्) वाणी (छन्दः) सत्य (मनः) मन (छन्दः) निष्कपट (कृषिः) जोतना (छन्दः) उत्पत्ति (हिरण्यम्) सुवर्ण (छन्दः) सुखदायी (गौः) गौ (छन्दः) आनन्दहेतु (अजा) बकरी (छन्दः) सुख का हेतु और (अश्वः) घोड़े आदि (छन्दः) स्वाधीन हैं वैसे विद्या, विनय और धर्म के आचरण विषय में स्वाधीनता से वर्त्तो ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री पुरुषों को चाहिए कि शुद्ध विद्या क्रिया स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य्य बढ़ावें ॥ १९ ॥

अग्निर्देवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः भुरिग् । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोगों को योग्य है कि (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (देवताः) दिव्य गुण वाला (वातः) पवन (देवता) शुद्धगुणयुक्त (सूर्य्यः) सूर्य्य (देवता) अच्छे गुणों वाला (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (देवता) शुद्ध गुण युक्त (वसवः) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (देवता) दिव्यगुण वाले (रुद्राः) प्राण आदि ११ ग्यारह वा मध्यम कक्षा के विद्वान् (देवता) शुद्ध गुणों वाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम कक्षा के विद्वान् लोग (देवता) शुद्ध (मरुतः) मननकर्त्ता विद्वान् ऋत्विग् लोग (देवता) दिव्य गुण वाले (विश्वे) सब (देवता) अच्छे गुणों वाले विद्वान् मनुष्य वा दिव्य पदार्थ (देवता) देवसंज्ञा वाले हैं (बृहस्पतिः) बड़े बचन वा ब्रह्माण्ड का रक्षक परमात्मा (देवता, इन्द्रः) बिजुली वा उत्तम धन (देवता) दिव्य गुणयुक्त और (वरुणः) जल वा श्रेष्ठ गुणों वाला पदार्थ (देवता) अच्छे गुणों वाला है इन को तुम निश्चय जानो ॥२०॥

भावार्थ—इस संसार में जो अच्छे गुणों वाले पदार्थ हैं वे दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं जो देवतों का देवता होने से महादेव सब का धारक रचक रक्षक सब की व्यवस्था और प्रलय करने हारा सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है उस सब के अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें ॥ २० ॥

मूर्द्धासीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विदुषी स्त्री कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मूर्धाऽसि राड् ध्रुवाऽसि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी । आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो तू सूर्य्य के तुल्य (मूर्धा) उत्तम (असि) है (राड्) प्रकाशमान निश्चल के समान (ध्रुवा) निश्चल शुद्ध (असि) है (धरुणा) पुष्टि करने हारी (धरणी) आधार रूप पृथिवी के तुल्य (धर्त्री) धारण करने हारी (असि) है उस (त्वा) तुझे (आयुषे) जीवन के लिये उस (त्वा) तुझे (वर्चसे) अन्न के लिये उस (त्वा) तुझे (कृष्यै) खेती होने के लिये और उस (त्वा) तुझ को (क्षेमाय) रक्षा होने के लिये मैं सब ओर से ग्रहण करता हूं ॥ २१ ॥

भावार्थ—जैसे स्थित उत्तमांग शिर से सब का जीवन राज्य से लक्ष्मी, खेती से अन्न आदि पदार्थ और निवास से रक्षा होती है सो यह सब का आधारभूत माता के तुल्य मान्य करने हारी पृथिवी है वैसे ही विदुषी स्त्री को होना चाहिये ॥२१॥

यन्त्रीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर स्त्री कैसी होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवाऽसि धरित्री । इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो तू (यन्त्री) यन्त्र के तुल्य स्थित (राड्) प्रकाशयुक्त (यन्त्री) यन्त्र का निमित्त पृथिवी के समान (असि) है (यमनी) आकर्षण शक्ति से नियम करने हारी (ध्रुवा) आकाश, सदृश, दृढ़, निश्चल (धर्त्री) सब शुभगुणों का धारण करनेवाली (असि) है (त्वा) तुझको (इषे) इच्छा सिद्धि के लिये (त्वा) तुझको (ऊर्जे) पराक्रम की प्राप्त के लिये (त्वा) तुझको (रय्यै) लक्ष्मी के लिये और (त्वा) तुझको (पोषाय) पुष्टि होने के लिये मैं ग्रहण करता हूं ॥२२॥

भावार्थ—जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमायुक्त आकाश के समान निश्चल और यन्त्रकला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है वह कुल का प्रकाश करनेवाली है ॥२२॥

आशुस्त्रिवृदित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । गर्भा इत्युत्तरस्य भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब संवत्सर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस वर्त्तमान संवत् में (आशुः) शीघ्र (त्रिवृत्) शीत और उष्ण के बीच वर्त्तमान (भान्तः) प्रकाश (पञ्चदशः) पन्द्रह प्रकार का (व्योमा) आकाश के समान विस्तारयुक्त (सप्तदशः) सत्रह प्रकार का (धरुणः) धारण गुण (एकविंशः) इक्कीस प्रकार का (प्रतूर्त्तिः) शीघ्र गति वाला (अष्टादशः) अठारह प्रकार का (तपः) सन्तापी गण (नवदशः) उन्नीस प्रकार का (अभीवर्त्तः) सम्मुख वर्त्तनेवाला गुण (सविंशः) इक्कीस प्रकार की (वर्चः) दीप्ति (द्वाविंशः) बाईस प्रकार का (सम्भरणः) अच्छे प्रकार धारणकारक गुण (त्रयोविंशः) तेईस प्रकार का (योनिः) संयोग वियोगकारी गुण (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार की (गर्भाः) गर्भ धारण की शक्ति (पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार का (ओजः) पराक्रम (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (क्रतुः) कर्म्म वा बुद्धि (एकत्रिंशः) एकतीस प्रकार की (प्रतिष्ठा) सब की स्थिति का निमित्त क्रिया (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीस प्रकार की (ब्रध्नस्य) बड़े ईश्वर की (विष्टपम्) व्याप्ति (चतुस्त्रिंशः) चौंतीस प्रकार का (नाकः) आनन्द (षट्त्रिंशः) छत्तीस

प्रकार का (विवर्त्तः) विविध प्रकार से वर्त्तने का आधार (अष्टाचत्वारिंशः) अड़तालीस प्रकार का (धर्त्रम्) धारण और (चतुष्टोमः) चार स्तुतियों का आधार है उसको संवत्सर जानो ॥२३॥

भावार्थ—जिस संवत्सर के सम्बन्धी भूत भविष्यत् और वर्तमान काल आदि अवयव हैं उसके सम्बन्ध से ही ये सब संसार के व्यवहार होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥२३॥

अग्नेर्भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । मेधाविनो देवताः । भुरिग्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्य किस प्रकार विद्या पढ़ के कैसा आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒ग्नेर्भा॒गो॒ऽसि दी॒क्षाया॒ आधि॑पत्यं॒ ब्रह्म॑ स्पृ॒तं त्रि॒वृत्स्तोम॑ । इन्द्र॑स्य भा॒गो॒ऽसि॒ विष्णो॒राधि॑पत्यं क्ष॒त्रꣳ स्पृ॒तं प॑ञ्चद॒श स्तोमो॑ नृ॒चक्ष॑सां भा॒गो॒ऽसि धा॒तुराधि॑पत्यं ज॒नित्र॑ꣳ स्पृ॒तꣳ स॑प्तद॒श स्तोमो॑ मि॒त्रस्य॑ भा॒गो॒ऽसि॒ व॑रु॒णस्याधि॑पत्यं दि॒वो वृ॒ष्टिर्वात॑ स्पृ॒त एक॑वि॒ꣳश स्तोमः॑ ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जो तू (अग्नेः) सूर्य्य का (भागः) विभाग के योग्य संवत्सर के तुल्य (असि) है सो तू (दीक्षायाः) ब्रह्मचर्य्य आदि की दीक्षा का (स्पृतम्) प्रीति से सेवन किये हुए (आधिपत्यम्, ब्रह्म) ब्राह्मण कुल के अधिकार को प्राप्त हो जो (त्रिवृत्) शरीर वाणी और मानस साधनों से शुद्ध वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुति के योग्य (इन्द्रस्य) बिजुली वा उत्तम ऐश्वर्य्य के (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (स्पृतम्) प्रीति से सेवने योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म के अनुकूल राजकुल के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (पञ्चदशः) पन्द्रह का पूरक (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता (नृचक्षसाम्) मनुष्यों से कहने योग्य पदार्थों के (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (धातुः) धारणकर्त्ता के (स्पृतम्) ईप्सित (जनित्रम्) जन्म और (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (सप्तदशः) सत्रह संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के योग्य (मित्रस्य) प्राण का (भागः) विभाग के समान (असि) है सो तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ जलों के (आधिपत्यम्) स्वामीपन को प्राप्त हो जो तू (वातः, स्पृतः) उचित पवन और (एकविंशः) इक्कीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के साधन के समान (असि) है सो तू (दिवः) प्रकाशरूप सूर्य्य से (वृष्टिः) वर्षा होने का हवन आदि उपाय कर ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष बाल्यावस्था से लेकर सज्जनों ने उपदेश की हुई विद्याओं के ग्रहण के लिये प्रयत्न करके अधिकारी होते हैं वे स्तुति के योग्य कर्मों को कर और उत्तम हो के विधान के सहित काल को जान के दूसरों को जनावें ॥ २४ ॥

वसूनां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः । स्वराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वसू॑नां भा॒गो॒ऽसि रु॒द्राणा॒माधि॑पत्यं॒ चतु॑ष्पात् स्पृ॒तं च॑तुर्वि॒ꣳश स्तोमः॑ । आ॒दि॒त्यानां॑ भा॒गो॒ऽसि म॒रुता॒माधि॑पत्यं॒ गर्भाः॑ स्पृ॒ताः प॑ञ्चवि॒ꣳश स्तोमः॑ । अदि॑त्यै भा॒गो॒ऽसि पू॒ष्णऽआधि॑पत्य॒मोज॑स्पृ॒तं त्रि॑ण॒वस्तोमः॑ । दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्भा॒गो॒ऽसि॒ बृह॒स्पते॒राधि॑पत्यꣳ स॒मीची॒र्दिश॑ स्पृ॒ताश्च॑तुष्टो॒मः ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो तू (वसूनाम्) अग्नि आदि आठ वा प्रथम कक्षा के विद्वानों का (भागः) सेवने योग्य (असि) है सो (रुद्राणाम्) दश प्राण आदि ग्यारवां जीव वा मध्यकक्षा के विद्वानों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता (आदित्यानाम्) बारह महीनों वा उत्तम कक्षा के विद्वानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है सो तू (चतुष्पात्) गौ आदि पशुओं का (स्पृतम्) सेवन कर (मरुताम्) मनुष्य वा पशुओं का (आधिपत्यम्) अधिष्ठाता हो जो तू (पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (अदित्यै) अखण्डित आकाश का (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (पूष्णः) पुष्टिकारक पृथिवी से (स्पृतम्) सेवन योग्य (ओजः) बल को प्राप्त होके (आधिपत्यम्) अधिकार को (प्राप्नुहि) प्राप्त हो जो तू (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (देवस्य) सुखदाता (सवितुः) पिता का (भागः) विभाग (असि) है सो तू (बृहस्पतेः) बड़ी वेदरूपी वाणी के पालक ईश्वर के दिये हुए (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (चतुष्टोमः) चार वेदों से कहने योग्य स्तुतिकर्त्ता है सो तू (गर्भाः) गर्भ के तुल्य विद्या और शुभ गुणों से आच्छादित (स्पृताः) प्रीतिमान् सज्जन लोग जिनको जानते हैं उन (समीचीः) सम्यक् प्राप्ति के साधन (स्पृताः) प्रीति का विषय (दिशः) पूर्व दिशाओं को जान ॥२५॥

भावार्थ—जो सुन्दर स्वभाव आदि गुणों का ग्रहण करते हैं वे विद्वानों के प्यारे होके सब के अधिष्ठाता होते हैं और जो सब के ऊपर अधिकारी हों वे मनुष्यों में पिता के समान वर्त्तें ॥२५॥

यवानां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋभवो देवताः । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह शरद् ऋतु में कैसे वर्त्ते यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यवा॑नां भा॒गो॒ऽस्यय॑वाना॒माधि॑पत्यं प्र॒जा स्पृ॒ताश्च॑तुश्चत्वारि॒ꣳश स्तोमः॑ । ऋ॒भू॒णां भा॒गो॒ऽसि॒ विश्वे॑षां दे॒वाना॒माधि॑पत्यं भू॒तꣳ स्पृ॒तं त्र॑यस्त्रि॒ꣳश स्तोमः॑ ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जो तू (यवानाम्) मिले हुए पदार्थों का सेवन करने हारा शरद् ऋतु के समान (असि) है जो (अयवानाम्) पृथक् पृथक् धर्म वाले पदार्थों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त होकर (स्पृताः) प्रीति से (प्रजाः) पालने योग्य प्रजाओं को प्रेमयुक्त करता है जो (चतुश्चत्वारिंशः) चवालीस संख्या का पूर्ण करनेवाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है (विश्वेषाम्) सब विद्वानों के (भूतम्) हो चुके (स्पृतम्) सेवन किये हुए (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो कर जो (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के विषय के समान (असि) है सो तू हम लोगों से सत्कार के योग्य है ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो ये पीछे के मन्त्र में शरद् ऋतु के गुण कहे हैं उनका यथावत् सेवन करें। यह शरद् ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥२६॥

सहश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋतवो देवताः । पूर्वस्य भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः । ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब हेमन्त ऋतु के विधान को अगले मन्त्र में कहा है—

सह॑श्च सह॒स्य॑श्च॒ हैम॑न्तिकावृ॒तू॒ऽअ॒ग्नेर॑न्तःश्लेषो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ऽओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः । ये॒ऽअ॒ग्नयः॒ सम॑नसो॒ऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी॒ऽइ॒मे । हैम॑न्तिकावृ॒तू॒ऽअ॒भि॒कल्प॑माना॒ऽइन्द्र॑मिव दे॒वाऽअ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे मित्रजन ! जो (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) वृद्ध जनों के होने के लिये (सहः) बलकारी अगहन (च) और (सहस्यः) बल में प्रवृत्त हुआ पौष (च) ये दोनों महीने (हैमन्तिकौ, ऋतू) हेमन्त ऋतु में हुए अपने चिह्न जाननेवाले (अङ्गिरस्वत्) उस ऋतु के प्राण के समान (सीदतम्) स्थिर हैं जिस ऋतु के (अन्तःश्लेषः) मध्य में स्पर्श होता है उसके समान तू (असि) है सो तू उस ऋतु से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियाँ और (अग्नयः) सफेदाई से युक्त अग्नि (पृथक्) पृथक् पृथक् (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ऐसा जान (ये) जो (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (अन्तरा) भीतर प्रविष्ट होनेवाले (सव्रताः) नियमधारी (समनसः) अविरुद्ध विचार करनेवाले लोग (इमे) इन (ध्रुवे) दृढ़ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (कल्पन्ताम्) समर्थित करें (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य्य के तुल्य (हैमन्तिका, ऋतू) हेमन्त ऋतु के दोनों महीनों को (अभिकल्पमानाः) सन्मुख होकर समर्थ करनेवाले (देवाः) दिव्य गुण बिजुली के समान (अभिसंविशन्तु) प्रवेश कर। वे सज्जन लोग (तया) उस (देवतया) प्रकाशस्वरूप परमात्मा देव के साथ प्रेमबद्ध हो के नियम से आहार और विहार करके सुखी हों ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को योग्य है कि यथायोग्य सुख के लिये हेमन्त ऋतु में पदार्थों का सेवन करें और वैसे ही दूसरों को भी सेवन करावें ॥२७॥

एकयेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृद्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब यह ऋतुओं का चक्र किसने रचा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

एक॑यास्तुवत प्र॒जाऽअ॑धीयन्त प्र॒जाप॑ति॒रधि॑पतिरासीत् । ति॒सृभि॑रस्तुवत॒ ब्रह्मा॑सृज्यत॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒रधि॑पतिरासीत् । प॒ञ्चभि॑रस्तुवत भू॒तान्य॑सृज्यन्त भू॒तानां॒ पति॒रधि॑पतिरासीत् । स॒प्तभि॑रस्तुवत सप्त॒ऽऋ॒षयो॒ऽसृज्यन्त धा॒ताधि॑पतिरासीत् ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (अधिपतिः) सब का अध्यक्ष परमेश्वर (आसीत्) है उसकी (एकया) एक वाणी से (अस्तुवत) स्तुति करो और जिसने सब (प्रजाः) प्रजा के लोगों को वेदद्वारा (अधीयन्त) विद्यायुक्त किये हैं जो (ब्रह्मणस्पतिः) वेद का रक्षक (अधिपतिः) सब का स्वामी परमात्मा (आसीत्) है जिसने यह (ब्रह्म) सकलविद्यायुक्त वेद को (असृज्यत) रचा है उसकी (तिसृभिः) प्राण उदान और व्यान वायु की गति से (अस्तुवत)

स्तुति करो जिसने (**भूतानि**) पृथिवी आदि भूतों को (**असृज्यन्त**) रचा है जो (**भूतानाम्**) सब भूतों का (**पतिः**) रक्षक (**अधिपतिः**) रक्षकों का भी रक्षक (**आसीत्**) है उसकी सब मनुष्य (**पञ्चभिः**) समान वायु चित्त बुद्धि अहंकार और मन से (**अस्तुवत**) स्तुति करें जिसने (**सप्तऋषयः**) पांच मुख्य प्राण, महत्तत्त्व समष्टि और अहंकार सात पदार्थ (**असृज्यन्त**) रचे हैं जो (**धाता**) धारण वा पोषणकर्ता (**अधिपतिः**) सब का स्वामी (**आसीत्**) है उसकी (**सप्तभिः**) नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और इच्छा तथा प्रयत्नों से (**अस्तुवत**) स्तुति करो ॥ २८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि सब जगत् के उत्पादक न्यायकर्त्ता परमात्मा की स्तुति करें, सुनें, विचारें और अनुभव करें। जैसे हेमन्त ऋतु में सब पदार्थ शीतल होते हैं वैसे ही परमेश्वर की उपासना करके शान्तिशील होवें ॥२८॥

नवभिरस्तुवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ईश्वरो देवता । पूर्वस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । त्रयोदशभिरित्युत्तरस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह जगत् का रचनेवाला कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत् । एकादशभिरस्तुवत ऽऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवाऽअधिपतयऽआसन् । त्रयोदशभिरस्तुवत मासाऽअसृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् । पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् । सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिसने (**पितरः**) रक्षक मनुष्य (**असृज्यन्त**) उत्पन्न किये हैं जहां (**अदितिः**) रक्षा के योग्य (**अधिपत्नी**) अत्यन्त रक्षक माता (**आसीत्**) होवे उस परमात्मा की (**नवभिः**) नव प्राणों से (**अस्तुवत**) गुण प्रशंसा करो जिसने (**ऋतवः**) वसन्त आदि ऋतु (**असृज्यन्त**) रचे हैं जहां (**आर्त्तवाः**) उन उन ऋतुओं के गुण (**अधिपतयः**) अपने अपने विषय में अधिकारी (**आसन्**) होते हैं उसकी (**एकादशभिः**) दश प्राणों और ग्यारहवें आत्मा से (**अस्तुवत**) स्तुति करो जिसने (**मासाः**) चैत्रादि बारह महीने (**असृज्यन्त**) रचे हैं (**पञ्चदशभिः**) पन्द्रह तिथियों के सहित (**संवत्सरः**) संवत्सर (**अधिपतिः**) सब काल का अधिकारी रचा (**आसीत्**) है उसकी (**त्रयोदशभिः**) दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा और दो प्रतिष्ठाओं से (**अस्तुवत**) स्तुति करो जिससे (**इन्द्रः**) परम सम्पत्ति का हेतु सूर्य्य (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता उत्पन्न किया (**आसीत्**) है जिसने (**क्षत्रम्**) राज्य वा क्षत्रियकुल को (**असृज्यत**) रचा है उसको (**सप्तदशभिः**) दश पाँव की अंगुली, दो जंघा, दो जानु, दो प्रतिष्ठा और एक नाभि से ऊपर का अङ्ग, इन सत्रहों से (**अस्तुवत**) स्तुति करो जिसने (**बृहस्पतिः**) बड़े बड़े पदार्थों का रक्षक वैश्य (**अधिपतिः**) अधिकारी रचा (**आसीत्**) है और (**ग्राम्याः**) ग्राम के (**पशवः**) गौ आदि पशु (**असृज्यन्त**) रचे हैं उस परमेश्वर की पूर्वोक्त सब पदार्थों से युक्त होके (**अस्तुवत**) स्तुति करो ॥२९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जिसने काल के विभाग करने वाले सूर्य्य आदि पदार्थ रचे हैं उस परमेश्वर की उपासना करो ॥२९॥

नवदशभिरित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । जगदीश्वरो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । पञ्चविंशत्येत्यस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रेऽअधिपत्नीऽआस्ताम् । एकविंशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् । त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् । पञ्चविंशत्यास्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् । सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्राऽआदित्याऽअनुव्यायँस्तऽएवाधिपतयऽआसन् ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिसने उत्पन्न किये (**अहोरात्रे**) दिन और रात्रि (**अधिपत्नी**) सब काम कराने के अधिकारी (**आस्ताम्**) हैं जिसने (**शूद्रार्य्यौ**) शूद्र और आर्य्य द्विज ये दोनों (**असृज्येताम्**) रचे हैं उस की (**नवदशभिः**) दश प्राण पांच महाभूत, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारों से (**अस्तुवत**) स्तुति करो। जिसने उत्पन्न किया (**वरुणः**) जल (**अधिपतिः**) जो प्राण के समान प्रिय अधिष्ठाता (**आसीत्**) है जिसने (**एकशफाः**) जुड़े हुए खुरों वाले घोड़े आदि (**पशवः**) पशु (**असृज्यन्त**) रचे हैं उस की (**एकविंशत्या**) मनुष्यों के इक्कीस अवयवों से (**अस्तुवत**) स्तुति करो जिसने बनाया (**पूषा**) पुष्टिकारक भूगोल (**अधिपतिः**) रक्षा करने वाला (**आसीत्**) है जिसने (**क्षुद्राः**) अतिसूक्ष्म जीवों से लेकर नकुल पर्यन्त (**पशवः**) पशु (**असृज्यन्त**) रचे हैं उस की (**त्रयोविंशत्या**) पशुओं के तेईस अवयवों से (**अस्तुवत**) स्तुति करो। जिसने बनाया हुआ (**वायुः**) वायु (**अधिपतिः**) पालने हारा (**आसीत्**) है जिसने (**आरण्याः**) वन के (**पशवः**) सिंह आदि पशु (**असृज्यन्त**) रचे हैं (**पञ्चविंशत्या**) अनेकों प्रकार के छोटे-छोटे वन्य पशुओं के अवयवों के साथ अर्थात् उन अवयवों की कारीगरी के साथ (**अस्तुवत**) प्रशंसा करो जिसने बनाये (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि (**ऐताम्**) प्राप्त हैं जिस के बनाने से (**वसवः**) अग्नि आदि आठ पदार्थ वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (**रुद्राः**) प्राण आदि वा मध्यम विद्वान् (**आदित्या**) बारह महीने वा उत्तम विद्वान् (**अनुव्यायन्**) अनुकूलता से उत्पन्न हैं (**ते, एव**) वे अग्नि आदि ही वा विद्वान् लोग (**अधिपतयः**) अधिष्ठाता (**आसन्**) होते हैं उस की (**सप्तविंशत्या**) सत्ताईस वन के पशुओं के गुणों से (**अस्तुवत**) स्तुति करो ॥३०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र डाकू मनुष्य भी रचे हैं जिसने स्थूल तथा सूक्ष्म प्राणियों के शरीर अत्यन्त छोटे पशु और इन की रक्षा के साधन पदार्थ रचे और जिस की सृष्टि में न्यून विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥३०॥

नवविंशत्येत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत् । एकत्रिंशतास्तुवत प्रजाऽ असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतयऽ आसन् । त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिन के बनाने से (**सोमः**) ओषधियों में उत्तम ओषधि (**अधिपतिः**) स्वामी (**आसीत्**) है जिनसे उन (**वनस्पतयः**) पीपल आदि वनस्पतियों को (**असृज्यन्त**) रचा है उस परमात्मा की (**नवविंशत्या**) उनतीस प्रकार के वनस्पतियों के गुणों से (**अस्तुवत**) स्तुति करो और जिसने उत्पन्न किये (**यवाः**) समष्टिरूप बने पर्वत आदि (**च**) और त्रसरेणु आदि (**अयवाः**) भिन्न भिन्न प्रकृति के अवयव सत्व रजस् और तमोगुण (**च**) तथा परमाणु आदि (**अधिपतयः**) मुख्य कारण रूप अव्यक्त (**आसन्**) हैं उन (**यवाः**) प्रसिद्ध ओषधियों को जिसने (**असृज्यन्त**) रचा है उस ईश्वर को (**एकत्रिंशता**) इकत्तीस प्रजा के अवयवों से (**अस्तुवत**) प्रशंसा करो। जिसके प्रभाव से (**भूतानि**) प्रकृति के परिणाम महत्तत्व के उपद्रव (**अशाम्यन्**) शान्त हों जो (**प्रजापतिः**) प्रजा का रक्षक (**परमेष्ठी**) परमेश्वर के समान आकाश में व्यापक होके स्थित परमेश्वर (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) है उस की (**त्रयस्त्रिंशता**) महाभूतों के तेतीस गुणों से (**अस्तुवत**) प्रशंसा करो ॥३१॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर ने लोकों की रक्षा के लिये वनस्पति आदि ओषधियों को रच के धारण और व्यवस्थित किया है उसी की उपासना मनुष्यों को करनी चाहिये ॥३१॥

इस अध्याय में वसन्तादि ऋतुओं के गुण वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की संगति पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

॥ यह चौदहवां (१४) अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

अग्ने जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजा और राजपुरुषों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है—

अग्ने॑ जा॒तान् प्रणु॑दा नः स॒पत्ना॒न् प्र त्यजा॑ता॑नुद जातवेदः ।
अधि॑ नो ब्रूहि सु॒मना॒ऽअहे॑ड॒ँस्तव॑ स्याम॒ शर्म॑ँस्त्रि॒वरू॑थ॒ऽउ॒द्भौ ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् वा सेनापति ! आप (नः) हमारे (जातान्) प्रसिद्ध (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र, नुद) दूर कीजिये । हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बलवान् ! आप (अजातान्) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (नुद) प्रेरणा कीजिये और हमारा (अहेडन्) अनादर न करते हुए (सुमनाः) प्रसन्नचित्त आप (नः, प्रति) हमारे प्रति (अधिब्रूहि) अधिक उपदेश कीजिये जिससे हम लोग (तव) आप के (उद्भौ) उत्तम पदार्थों से युक्त (त्रिवरूथे) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों सुखों के हेतु (शर्मन्) घर में (स्याम) सुखी होवें ॥१॥

भावार्थ—राजा आदि न्यायाधीश सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं को निश्चय करके वश में करें और किसी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधर्मी का सत्कार भी कभी न करें जिस से सब सज्जन लोग विश्वासपूर्वक राज्य में वसें ॥१॥

सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सह॑सा जा॒तान् प्र णु॑दा नः स॒पत्ना॒न् प्रत्यजा॑तान् जातवेदो नुदस्व ।
अधि॑ नो ब्रूहि सुमन॒स्यमा॑नो व॒यꣳ स्या॑म॒ प्र णु॑दा नः स॒पत्ना॑न् ॥२॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुये राजन् ! आप (नः) हमारे (सहसा) बल के सहित (जातान्) प्रसिद्ध हुये (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्रणुद) जीतिये और उन (प्रति, अजातान्) युद्ध में छिपे हुए शत्रुओं के सेवक मित्रभाव से प्रसिद्धों को (नुदस्व) पृथक् कीजिये तथा (सुमनस्यमानः) अच्छे प्रकार विचारते हुये आप (नः) हमारे लिये (अधिब्रूहि) अधिकता से विजय के विधान का उपदेश कीजिये (वयम्) हम लोग आप के सहायक (स्याम) होवें जिन (नः) हमारे (सपत्नान्) विरोध में प्रवृत्त सम्बन्धियों को आप (प्रणुद) मारें उन को हम लोग भी मारें ॥२॥

भावार्थ—राजा को चाहिये कि जो राज्य के सेवक शत्रुओं के निवारण करने में यथाशक्ति प्रयत्न न करें उन को अच्छे प्रकार दण्ड देवें और जो अपने सहायक हों उन का सत्कार करें ॥२॥

षोडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । दम्पती देवते ब्राह्मी । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—

षो॒ड॒शी स्तोम॒ऽओजो॒ द्रवि॑णं चतुश्चत्वारि॒ꣳश स्तोमो॒ वर्चो॒ द्रवि॑णम् । अ॒ग्नेः पुरी॑षम॒स्यप्सो॒ नाम॒ तां त्वा॒ विश्वे॒ऽअ॒भि गृ॑णन्तु दे॒वाः । स्तोम॑पृष्ठा घृ॒तव॑तीह सी॑द प्र॒जाव॑द॒स्मे द्रवि॒णा य॑जस्व ॥३॥

पदार्थ—जो (षोडशी) प्रशंसित सोलह कलाओं से युक्त (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ओजः) पराक्रम (द्रविणम्) धन जो (चतुश्चत्वारिंशः) चवालीस संख्या को पूर्ण करने वाला ब्रह्मचर्य का आचरण (स्तोमः) स्तुति का साधन (नाम) प्रसिद्ध (वर्चः) पढ़ना और (द्रविणम्) बल को देती है । जो (अग्नेः) अग्नि की (पुरीषम्) पूर्ति को प्राप्त (अप्सः) दूसरे के पदार्थों के भोग की इच्छा से रहित (असि) हो उस (त्वा) पुरुष तथा (ताम्) स्त्री की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (स्तोमपृष्ठा) इष्ट स्तुतियों को जनाने वाली (घृतवती) प्रशंसित घी आदि पदार्थों से युक्त (इह) इस गृहाश्रम में (सीद) स्थित हो और (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) बहुत सन्तानों के हेतु (द्रविणा) धन को (यजस्व) दिया कर ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सोलह कला रूप जगत् में विद्यारूप बल को फैला और गृहाश्रम करके विद्यादानादि कर्मों को निरन्तर किया करें ॥३॥

एवश्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुख बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ए॒वश्छन्दो॒ वरि॑व॒श्छन्दः॑ श॒म्भूश्छन्दः॑ परि॒भूश्छन्द॑ऽआ॒च्छच्छन्दो॒ मन॒श्छन्दो॒ व्यच॒श्छन्दः॒ सिन्धु॒श्छन्दः॑ समु॒द्रश्छन्दः॑ सरि॒रं छन्दः॑ क॒कुप् छन्द॑स्त्रिक॒कुप्छन्दः॑ का॒व्यं छन्दो॑ऽअङ्कु॒पं छन्दो॑ऽक्षरप॑ङ्क्ति॒श्छन्दः॑ प॒दप॑ङ्क्ति॒श्छन्दो॑ विष्टा॒रप॑ङ्क्ति॒श्छन्दः॑ क्षु॒रश्छन्दो॒ भ्रज॒श्छन्दः॑ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उत्तम प्रयत्न से (एवः) आनन्ददायक ज्ञान (वरिवः) सत्यसेवनरूप (छन्दः) सुखदायक (शम्भूः) सुख का अनुभव (छन्दः) आनन्दकारी (परिभूः) सब ओर से पुरुषार्थी (छन्दः) सत्य का प्रकाशक (आच्छत्) दोषों का हटाना (छन्दः) जीवन (मनः) संकल्प विकल्पात्मक (छन्दः) प्रकाशकारी (व्यचः) शुभ गुणों की व्याप्ति (छन्दः) आनन्दकारक (सिन्धुः) नदी के तुल्य चलना (छन्दः) स्वतन्त्रता (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीरता (छन्दः) प्रयोजनसिद्धिकारी (सरिरम्) जल के तुल्य कोमलता (छन्दः) जल के समान शान्ति (ककुप्) दिशाओं के तुल्य उज्ज्वल कीर्ति (छन्दः) प्रतिष्ठा देनेवाला (त्रिककुप्) अध्यात्मादि तीन सुखों को प्राप्त करनेवाला कर्म (छन्दः) आनन्दकारक (काव्यम्) दीर्घदर्शी कवि लोगों ने बनाया (छन्दः) प्रकाशक विज्ञानदायक (अङ्कुपम्) टेढ़ी गति वाला जल (छन्दः) उपकारी (अक्षरपङ्क्तिः) परलोक (छन्दः) आनन्दकारी (पदपङ्क्तिः) यह लोक (छन्दः) सुखसाधक (विष्टारपङ्क्तिः) सब दिशा (छन्दः) सुख का साधक (क्षुरः) छुरा के समान पदार्थों का छेदक सूर्य्य (छन्दः) विज्ञानस्वरूप (भ्रजः) प्रकाशमय (छन्दः) स्वच्छ आनन्दकारी पदार्थ सुख के लिये सिद्ध करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म में पुरुषार्थ करने से सब के प्रिय होना अच्छा समझते हैं वे सब सृष्टि के पदार्थों से सुख लेने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आ॒च्छच्छन्दः॑ प्र॒च्छच्छन्दः॑ सं॒यच्छन्दो॑ वि॒यच्छन्दो॑ बृ॒हच्छन्दो॑ रथन्त॒रञ्छन्दो॑ निका॒यश्छन्दो॑ विव॒धश्छन्दो॒ गिर॒श्छन्दो॒ भ्रज॒श्छन्दः॑ स॒ꣳस्तुप् छन्दो॑ऽनु॒ष्टुप् छन्द॑ऽए॒वश्छन्दो॒ वरि॑व॒श्छन्दो॒ वय॒श्छन्दो॑ वय॒स्कृच्छन्दो॒ विष्प॑र्द्धा॒श्छन्दो॑ विशा॒लं छन्द॑श्छ॒दिश्छन्दो॑ दूरोह॒णं छन्द॑स्त॒न्द्रं छन्दो॑ऽअङ्का॒ङ्कं छन्दः॑ । ५ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि (आच्छत्) अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति करने हारा कर्म (छन्दः) प्रकाश (प्रच्छत्) प्रयत्न से दुष्ट स्वभाव को दूर करने वाला कर्म (छन्दः) उत्साह (संयत्) संयम (छन्दः) बल (वियत्) विविध यत्न का साधक (छन्दः) धैर्य्य (बृहत्) बहुत वृद्धि (छन्दः) स्वतन्त्रता (रथन्तरम्) समुद्ररूप संसार से पार करनेवाला पदार्थ (छन्दः) स्वीकार (निकायः) संयोग का हेतु वायु (छन्दः) स्वीकार (विवधः) विशेष करके पदार्थों के रहने का स्थान अन्तरिक्ष (छन्दः) प्रकाशरूप (गिरः) भोगने योग्य अन्न (छन्दः) ग्रहण (भ्रजः) प्रकाशरूप अग्नि (छन्दः) ले लेना (संस्तुप्) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों को जनाने हारी वाणी (छन्दः) आनन्दकारक (अनुष्टुप्) सुनने के पीछे शास्त्रों को जानने हारी मन की क्रिया (छन्दः) उपदेश (एवः) प्राप्ति (छन्दः) प्रयत्न (वरिवः) विद्वानों की सेवा (छन्दः) स्वीकार (वयः) जीवन (छन्दः) स्वाधीनता (वयस्कृत्) अवस्थावर्द्धक जीवन के साधन (छन्दः) ग्रहण (विष्पर्द्धाः) विशेष करके जिससे ईर्ष्या करे वह (छन्दः) प्रकाश (विशालम्) विस्तीर्ण कर्म (छन्दः)

ग्रहण करना (छदिः) विघ्नों का हटाना (छन्दः) सुखों को पहुंचाने वाला (दूरोहणम्) दुःख से चढ़ने योग्य (छन्दः) बल (तन्द्रम्) स्वतन्त्रता करना (छन्दः) प्रकाश और (अङ्काङ्कम्) गणितविद्या का (छन्दः) सम्यक् स्थापन करना स्वीकार और प्रचार के लिये प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधीनता को निरन्तर स्वीकार करें ॥ ५ ॥

रश्मिनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराडभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है—

रश्मिना॑ स॒त्याय॑ स॒त्यं जि॑न्व॒ प्रेति॑ना॒ धर्म्म॑णा॒ धर्मं॑ जि॒न्वान्वि॑त्या दि॒वा दिवं॑ जिन्व स॒न्धिना॒न्तरि॑क्षेणा॒न्तरि॑क्षं जिन्व प्रति॒धिना॑ पृथि॒व्या पृ॑थि॒वीं जि॑न्व वि॒ष्टम्भे॑न॒ वृष्ट्या॒ वृष्टिं॑ जिन्व प्र॒वयाऽह्ना॒हर्जि॑न्वानु॒या रात्र्या॒ रात्री॑ञ्जिन्वो॒शिजा॒ वसु॑भ्यो॒ वसू॑न् जिन्व प्र॒केते॑नादि॒त्येभ्य॑ऽआदि॒त्याञ्जि॑न्व ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू (रश्मिना) किरणों से (सत्याय) वर्त्तमान में हुए सूर्य्य के तुल्य नित्य सुख और स्थूल पदार्थों के लिये (सत्यम्) अव्यभिचारी कर्म को (जिन्व) प्राप्त हो (प्रेतिना) उत्तम ज्ञान युक्त (धर्मणा) न्याय के आचरण से (धर्मम्) धर्म को (जिन्व) जान (अन्वित्या) खोज के हेतु (दिवा) धर्म के प्रकाश से (दिवम्) सत्य के प्रकाश को (जिन्व) प्राप्त हो (सन्धिना) सन्धिरूप (अन्तरिक्षेण) प्रकाश से (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (जिन्व) जान (पृथिव्या) भूगर्भविद्या के (प्रतिधिना) सम्बन्ध से (पृथिवीम्) भूमि को (जिन्व) जान (विष्टम्भेन) शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा (वृष्ट्या) वर्षा की विद्या से (वृष्टिम्) वर्षा को (जिन्व) जान (प्रवया) कान्तियुक्त (अह्ना) प्रकाश की विद्या से (अहः) दिन को (जिन्व) जान (अनुया) प्रकाश के पीछे चलनेवाली (राव्या) रात्रि की विद्या से (रात्रीम्) रात्रि को (जिन्व) जान (उशिजा) कामनाओं से (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं की विद्या से (वसून्) उन अग्नि आदि वसुओं को (जिन्व) जान और (प्रकेतेन) उत्तम विज्ञान से (आदित्येभ्यः) बारह महीनों की विद्या से (आदित्यान्) बारह महीनों को (जिन्व) तत्त्वस्वरूप से जान ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि जैसे पदार्थों की परीक्षा से अपने आप पदार्थविद्या को जानें वैसे ही दूसरों के लिये भी उपदेश करें ॥ ६ ॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

गृहाश्रमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तन्तु॑ना रा॒यस्पोषे॑ण रा॒यस्पोषं॑ जिन्व स॒ꣳसर्पे॑ण श्रु॒ताय॑ श्रु॒तं जि॑न्वै॒डेनौष॑धीभि॒रोष॑धीर्जिन्वोत्त॒मेन॑ त॒नूभि॑स्त॒नूर्जि॑न्व वयो॒धसाधी॑ते॒नाधी॑तं जिन्वाभि॒जिता॒ तेज॑सा॒ तेजो॑ जिन्व ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (तन्तुना) विस्तारयुक्त (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को (जिन्व) प्राप्त हो (संसर्पेण) सम्यक् प्राप्ति से (श्रुताय) श्रवण के लिये (श्रुतम्) शास्त्र के सुनने को (जिन्व) प्राप्त हो (ऐडेन) अन्न के संस्कार और (ओषधीभिः) यव तथा सोमलता आदि ओषधियों की विद्या से (ओषधीः) ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (उत्तमेन) उत्तम धर्म के आचरणयुक्त (तनूभिः) शुद्ध शरीरों से (तनूः) शरीरों को (जिन्व) प्राप्त हो (वयोधसा) जीवन के धारण करने हारे (आधीतेन) अच्छे प्रकार पढ़े से (आधीतम्) सब ओर से धारण की हुई विद्या को (जिन्व) प्राप्त हो (अभिजिता) सन्मुख शत्रुओं को जीतने के हेतु (तेजसा) तीक्ष्ण कर्म से (तेजः) दृढ़ता को (जिन्व) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विस्तारयुक्त पुरुषार्थ के ऐश्वर्य को प्राप्त हो के सब प्राणियों का हित सिद्ध करें ॥ ७ ॥

प्रतिपदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्र॒ति॒पद॑सि प्रति॒पदे॑ त्वानु॒पद॑स्यनु॒पदे॑ त्वा सं॒पद॑सि स॒म्पदे॑ त्वा॒ तेजो॑ऽसि॒ तेज॑से त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे पुरुषार्थिनि विदुषी स्त्री ! जिस कारण तू (प्रतिपत्) प्राप्त होने के योग्य लक्ष्मी के तुल्य (असि) है इसलिये (प्रतिपदे) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को जो (अनुपत्) पीछे प्राप्त होने वाली शोभा के तुल्य (असि) है जो उस (अनुपदे) विद्याऽध्ययन के पश्चात् प्राप्त होने योग्य (त्वा) तुझ को जो तू (संपत्) सम्पत्ति के तुल्य (असि) है उस (सम्पदे) ऐश्वर्य के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (तेजः) तेज के समान (असि) है इसलिये (तेजसे) तेज होने के लिये (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—सब सुख सिद्ध होने के लिये तुल्य गुण कर्म्म और स्वभाव वाले स्त्री पुरुष स्वयंवर विवाह से परस्पर एक दूसरे का स्वीकार कर के आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

त्रिवृदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्रि॒वृद॑सि त्रि॒वृते॑ त्वा प्र॒वृद॑सि प्र॒वृते॑ त्वा वि॒वृद॑सि वि॒वृते॑ त्वा स॒वृद॑सि स॒वृते॑ त्वाऽऽक्र॒मो॑ऽस्याक्र॒माय॑ त्वा संक्र॒मो॑ऽसि संक्र॒माय॑ त्वोत्क्र॒मो॑ऽस्युत्क्र॒माय॑ त्वोत्क्रा॑न्तिरस्युत्क्रान्त्यै॑ त्वाऽधिपति॑नो॒र्जोर्जं॑ जिन्व ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जो तू (त्रिवृत्) सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण के सह वर्त्तमान अव्यक्त कारण का जानने हारा (असि) है उस (त्रिवृते) तीन गुणों से युक्त कारण के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (प्रवृत्) जिस कार्यरूप से प्रवृत्त संसार का ज्ञाता (असि) है उस (प्रवृते) कार्यरूप संसार को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (विवृत्) जिस विविध प्रकार से प्रवृत्त जगत् का उपकारकर्त्ता (असि) है उस (विवृते) जगदुपकार के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (सवृत्) जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने हारा (असि) है उस (सवृते) साधर्म्य पदार्थों के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (आक्रमः) अच्छे प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष का जानने वाला (असि) है उस (आक्रमाय) अन्तरिक्ष को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (संक्रमः) सम्यक् पदार्थों को जानता (असि) है उस (संक्रमाय) पदार्थ ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (उत्क्रमः) ऊपर मेघमण्डल की गति का ज्ञाता (असि) है उस (उत्क्रमाय) मेघमण्डल की गति जानने के लिये (त्वा) तुझ को तथा हे स्त्री ! जो तू (उत्क्रान्तिः) सम विषम पदार्थों के उल्लंघन के हेतु विद्या को जानने हारी (असि) है उस (उत्क्रान्त्यै) गमनविद्या के जानने के लिये (त्वा) तुझको सब प्रकार ग्रहण करते हैं (अधिपतिना) अपने स्वामी के सह वर्त्तमान तू (ऊर्जा) पराक्रम से (ऊर्जम्) बल को (जिन्व) प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों के जाने विना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता इसलिये कार्य कारण दोनों को यथावत् जान के अन्य मनुष्यों के लिये उपदेश करना चाहिये ॥ ९ ॥

राज्ञ्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वसवो देवताः । पूर्वस्य विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणों वाले हैं यह अगले मंत्र में कहा है—

रा॒ज्ञ्य॑सि॒ प्राची॒ दिग्वस॑वस्ते दे॒वाऽअधि॑पतयो॒ऽग्निर्हे॑ती॒नां प्र॑तिध॒र्त्ता त्रि॒वृत् त्वा॒ स्तोमः॑ पृथि॒व्याꣳश्र॑य॒त्वाज्य॑मु॒क्थमव्य॑थायै स्तभ्नातु रथन्त॒रꣳ साम॒ प्रति॑ष्ठित्याऽअ॒न्तरि॑क्ष॒ऽऋष॑यस्त्वा प्रथम॒जा दे॒वेषु॑ दि॒वो मात्र॑या वरि॒म्णा प्र॑थन्तु विध॒र्त्ता चा॒यमधि॑पतिश्च ते त्वा॒ सर्वे॑ संविदा॒ना नाक॑स्य पृ॒ष्ठे स्व॒र्गे लो॒के यज॑मानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी जैसे जिसके (वसवः) अग्न्यादिक (देवाः) प्रकाशमान (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं वैसे ही तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के समान (राज्ञी) राणी (असि) है जैसे (हेतीनाम्) वज्रादि शस्त्रास्त्रों का (प्रतिधर्त्ता) प्रत्यक्ष धारण करता (त्रिवृत्) विद्युत् भूमिस्थ और सूर्यरूप से तीन प्रकार वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुतियुक्त गुणों से सहित (अग्निः) महाविद्युत् धारण करनेवाली है वैसे (त्वा) तुझको तेरा पति मैं धारण करता हूँ तू (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव्यथायै) पीड़ा न होने के लिये (उक्थम्) प्रशंसनीय (आज्यम्) घृत आदि पदार्थों को (श्रयतु) धारण कर (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (रथन्तरम्) रथादि से तारनेवाले (साम) सिद्धान्त कर्म को (स्तभ्नातु) धारण कर जैसे (अन्तरिक्षे) आकाश में (दिवः) बिजुली का (मात्रया) लेश सम्बन्ध और (वरिम्णा) महापुरुषार्थ से (देवेषु) विद्वानों में (प्रथमजाः) पूर्व हुए (ऋषयः) वेदार्थवित् विद्वान् (त्वा) तुझको शुभगुणों से विशालबुद्धि करें (च) और जैसे (अयम्) यह (विधर्त्ता) विविध रीति से धारणकर्त्ता तेरा पति तुझसे वर्ते वैसे उसके साथ तू वर्त्ता कर (च) और जैसे (सर्वे) सब (संविदानाः) अच्छे विद्वान् लोग (नाकस्य) अविद्यमान दुःख के (पृष्ठे) मध्य में (स्वर्गे) जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख प्राप्ति (लोके) दर्शनीय है उसमें (त्वा) तुझको (च) और (यजमानम्) तेरे पति को (सादयन्तु) स्थापन करें वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पूर्व दिशा इसलिये उत्तम कहाती है कि जिससे सूर्य प्रथम वहां उदय को प्राप्त होता है । जो पूर्व दिशा से वायु चलता है वह किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है किसी में नहीं और यह अग्नि

सब पदार्थों को धारण करता तथा वायु के संयोग से बढ़ता है जो पुरुष इन वायु और अग्नि को यथार्थ जानते हैं वे संसार में प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं ॥ १० ॥

विराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । रुद्रा देवताः । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवाऽअधिपतयऽइन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा । प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो तू (**विराट्**) विविध पदार्थों से प्रकाशमान (**दक्षिणा,-दिक्**) दक्षिण दिशा के तुल्य (**असि**) है जिस (**ते**) तेरा पति (**रुद्राः**) वायु (**देवाः**) दिव्य गुणयुक्त वायु (**अधिपतयः**) अधिष्ठाताओं के समान (**हेतीनाम्**) वज्रों का (**प्रतिधर्त्ता**) निश्चय के साथ धारण करनेवाला (**पञ्चदशः**) पन्द्रह संख्या का पूरक (**स्तोमः**) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थों का भागी और (**इन्द्रः**) सूर्य्य (**त्वा**) तुमको (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**श्रयतु**) सेवन करे (**अव्यथायै**) मानस भय से रहित तेरे लिए (**प्रउगम्**) कथनीय (**उक्थम्**) उपदेश के योग्य वचन को (**स्तभ्नातु**) स्थिर करे तथा (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा के लिए (**बृहत्**) बहुत अर्थ से युक्त (**साम**) सामवेद को स्थिर करे और जैसे (**अन्तरिक्षे**) आकाशस्थ (**देवेषु**) कमनीय पदार्थों में (**प्रथमजाः**) पहिले हुए (**ऋषयः**) ज्ञान के हेतु प्राण (**दिवः**) प्रकाशकारक अग्नि के लेश और (**वरिम्णा**) बहुत्व के साथ वर्त्तमान हैं वैसे विद्वान् लोग (**त्वा**) तुझको (**प्रथन्तु**) प्रसिद्ध करें जैसे (**विधर्त्ता**) विविध प्रकार के आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों का धारण (**च**) तथा पोषण करनेवाला (**अधिपतिः**) सब प्रकार पदार्थों में उत्तम सूर्य (**त्वा**) तुझको पुष्ट करे वैसे (**संविदानाः**) सम्यक् विचारशील विद्वान् लोग हैं (**ते**) वे (**सर्वे**) सब (**नाकस्य**) दुःखरहित आकाश के (**पृष्ठे**) सेचक भाग में (**स्वर्गे**) सुखकारक (**लोके**) जानने योग्य देश में (**त्वा**) तुझको (**च**) और (**यजमानम्**) यज्ञविद्या के जाननेवाले पुरुष को (**सादयन्तु**) स्थापित करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ वर्त्तमान सूर्य को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का आश्रय कर के इस विद्या को जनावें वैसे स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान् होके दूसरों को पढ़ावें ॥ ११ ॥

सम्राडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । आदित्या देवताः । पूर्वस्य निचृद् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवाऽअधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपᳬं साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१२॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो तू (**प्रतीची**) पश्चिम (**दिक्**) दिशा के समान (**सम्राट्**) सम्यक् प्रकाशित (**असि**) है उस (**ते**) तेरा पति (**आदित्याः**) बिजुली से युक्त प्राण वायु (**देवाः**) दिव्य सुखदाता (**अधिपतयः**) स्वामियों के तुल्य (**अयम्**) यह (**सप्तदशः**) सत्रह संख्या का पूरक (**च**) और (**स्तोमः**) स्तुति के योग्य (**वरुणः**) जलसमुदाय के समान (**हेतीनाम्**) बिजुलियों का (**प्रतिधर्त्ता**) धारण करनेवाला (**अधिपतिः**) स्वामी (**त्वा**) तुझको (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**श्रयतु**) सेवन करे (**अव्यथायै**) स्वरूप से अचल तेरे लिये (**मरुत्वतीयम्**) बहुत मनुष्यों के व्याख्यान से युक्त (**उक्थम्**) कथन योग्य वेदवचन तथा (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा के लिये (**वैरूपम्**) विविध रूपों के व्याख्यान से युक्त (**साम**) सामवेद को (**स्तभ्नातु**) ग्रहण करे और जो (**दिवः**) प्रकाश के (**मात्रया**) भाग से (**वरिम्णा**) बहुत्व के साथ (**अन्तरिक्षे**) आकाश में (**प्रथमजाः**) विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुए (**ऋषयः**) गतियुक्त वायु (**देवेषु**) दान के हेतु अवयवों में वर्त्तमान हैं वैसे (**त्वा**) तुझको विद्वान् लोग (**प्रथन्तु**) प्रसिद्ध उपदेश करें । जैसे (**विधर्त्ता**) जो विविध रत्नों का धारने हारा है (**च**) यह भी (**अधिपतिः**) अध्यक्ष स्वामी राजा प्रजाओं को सुख में रखता है वैसे (**ते**) तेरे मध्य में (**सर्वे**) सब (**संविदानाः**) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुए (**त्वा**) तुझको (**च**) और (**यजमानम्**) विद्वानों के सेवक पुरुष को (**नाकस्य**) दुःखरहित देश के (**पृष्ठे**) एक भाग में (**स्वर्गे**) सुखप्रापक (**लोके**) दर्शनीय स्थान में (**सादयन्तु**) स्थापित करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग पश्चिम दिशा और वहाँ के पदार्थों को दूसरों के लिए जानते हैं वैसे स्त्री पुरुष अपने संतानों आदि को विद्यादि गुणों से सुशोभित करें ॥ १२ ॥

स्वराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । मरुतो देवता । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे दोनों कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवाऽअधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविᳬंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु । वैराजᳬं साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (**स्वराट्**) स्वयं प्रकाशमान (**उदीची**) उत्तर (**दिक्**) दिशा (**असि**) है वैसा (**ते**) तेरा पति हो जिस दिशा के (**मरुतः**) वायु (**देवाः**) दिव्यरूप (**अधिपतयः**) अधिष्ठाता हैं उनके सदृश जो (**एकविंशः**) इक्कीस संख्या का पूरक (**स्तोमः**) स्तुति का साधक (**सोमः**) चन्द्रमा (**हेतीनाम्**) वज्र के समान वर्त्तमान किरणों का (**प्रतिधर्त्ता**) धारनेहारा पुरुष (**त्वा**) तुझको (**पृथिव्याम्**) भूमि में (**श्रयतु**) सेवन करे (**अव्यथायै**) इन्द्रियों के भय से रहित तेरे लिए (**निष्केवल्यम्**) जिसमें केवल एक स्वरूप का वर्णन हो वह (**उक्थम्**) कहने योग्य वेदभाग तथा (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा के लिए (**वैराजम्**) विराट्रूप का प्रतिपादक (**साम**) सामवेद का भाग (**स्तभ्नातु**) ग्रहण करे (**च**) और जैसे तेरे मध्य में (**अन्तरिक्षे**) अवकाश में स्थित (**देवेषु**) इन्द्रियों में (**प्रथमजाः**) मुख्य प्रसिद्ध (**दिवः**) ज्ञान के (**मात्रया**) भागों से (**वरिम्णा**) अधिकता के साथ वर्त्तमान (**ऋषयः**) बलवान् प्राण हैं वैसे (**अयम्**) यही इन प्राणों का (**विधर्त्ता**) विविध शीत को धारणकर्त्ता (**च**) और (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता है (**ते**) वे (**सर्वे**) सब इस विषय में (**संविदानाः**) सम्यक् बुद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिज्ञा से (**त्वा**) तुझको (**प्रथन्तु**) प्रसिद्ध करें और (**नाकस्य**) उत्तम सुखरूप लोक के (**पृष्ठे**) ऊपर (**स्वर्गे**) सुखदायक (**लोके**) लोक में (**त्वा**) तुझको (**च**) और (**यजमानम्**) यजमान पुरुष को (**सादयन्तु**) स्थित करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग आधार के सहित चन्द्रमा आदि पदार्थों और आधार के सहित प्राणों को यथावत् जान के संसारी कार्यों में उपयुक्त करके सुख को प्राप्त होते हैं । वैसे अध्यापक स्त्री पुरुष कन्या पुत्रों को विद्या ग्रहण के लिए उपयुक्त करके आनन्दित करें ॥ १३ ॥

अधिपत्न्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवाऽअधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिᳬंशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याᳬं श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽउक्थेऽअव्यथायै स्तभ्नीताᳬं शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानञ्च सादयन्तु ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जो तू (**बृहती**) बड़ी (**अधिपत्नी**) सब विद्याओं के ऊपर वर्त्तमान (**दिक्**) दिशा के समान (**असि**) है उस (**ते**) तेरा पति (**विश्वे**) सब (**देवाः**) प्रकाशक सूर्य्यादि पदार्थ (**अधिपतयः**) अधिष्ठाता हैं । वैसे जो (**बृहस्पतिः**) विश्व का रक्षक (**हेतीनाम्**) बड़े लोकों का (**प्रतिधर्त्ता**) प्रतीति के साथ धारण करनेवाले सूर्य्य के तुल्य वह तेरा पति (**त्वा**) तुझको (**च**) और (**त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ**) त्रिणव और तेंतीस (**स्तोमौ**) स्तुति के साधन (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**अव्यथायै**) पीड़ा रहितता के लिए (**वैश्वदेवाग्निमारुते**) सब विद्वान् और अग्नि वायुओं के व्याख्यान करनेवाले (**उक्थे**) कहने योग्य वेद के दो भागों का (**श्रयताम्**) आश्रय करे और जैसे (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठा होने के लिए (**शाक्वर-रैवते**) शक्वरी और रेवती छन्द से कहे अर्थों से (**सामनी**) सामवेद के दो भागों को (**स्तभ्नीताम्**) संगत करो । जैसे वे (**अन्तरिक्षे**) अवकाश में (**प्रथमजाः**) आदि में हुए (**ऋषयः**) धनञ्जय आदि सूक्ष्म स्थूल वायुरूप प्राण (**देवेषु**) दिव्य गुण वाले पदार्थों में (**दिवः**) प्रकाश की (**मात्रया**) मात्रा और (**वरिम्णा**) अधिकता से (**त्वा**) तुझको प्रसिद्ध करते हैं उनको मनुष्य लोग (**प्रथन्तु**) प्रख्यात करें जैसे (**अयम्**) यह (**अधिपतिः**) स्वामी (**विधर्त्ता**) विविध प्रकार से सबको धारण करनेहारा सूर्य है जैसे (**संविदानाः**) सम्यक् सत्यप्रतिज्ञायुक्त ज्ञानवान् विद्वान् लोग (**त्वा**) तुझको (**नाकस्य, पृष्ठे**) सुखदायक देश के ऊपरि (**स्वर्गे**) सुखरूप (**लोके**) स्थान में स्थापित करते हैं (**ते**) वे (**सर्वे**) सब (**यजमानम्**) तेरे पुरुष और तुझको (**सादयन्तु**) स्थित करें वैसे तुम स्त्री पुरुष दोनों वर्त्ता करो ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब के बीच की दिशा सबसे अधिक है वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का बल अधिक है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अयं पुर इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वसन्त ऋतुर्देवता । विकृतिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अब किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒यं पु॒रो हरि॑केशः सूर्य॑रश्मि॒स्तस्य॑ रथगृ॒त्सश्च॒ रथौ॑जाश्च सेनानीग्राम॒ण्यौ॑ । पु॒ञ्जि॒क॒स्थ॒ला च॑ क्रतुस्थ॒ला चा॑प्स॒रसौ॑ । दङ्क्ष्णवः॑ प॒शवो॑ हे॒तिः पौरु॑षेयो व॒धः प्रहे॑ति॒स्तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां जम्भे॑ दध्मः ॥१५॥

पदार्थ—जो (अयम्) यह (पुरः) पूर्वकाल में वर्त्तमान (हरिकेशः) हरितवर्ण केश के समान हरणशील और क्लेशकारी ताप से युक्त (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणें हैं (तस्य) उनका (रथगृत्सः) बुद्धिमान् सारथि (च) और (रथौजाः) रथ के चलने के वाहन (च) इन दोनों के तथा (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्राम के अध्यक्ष के समान अन्य प्रकार के भी किरण होते हैं उन किरणों की (पुञ्जिकस्थला) सामान्य प्रधान दिशा (च) और (क्रतुस्थला) प्रज्ञाकर्म को जतानेवाली उपदिशा (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में चलनेवाली अप्सरा कहाती हैं जो (दङ्क्ष्णवः) मांस और घास आदि पदार्थों को खानेवाले व्याघ्र आदि (पशवः) हानिकारक पशु हैं उनके ऊपर (हेतिः) बिजुली गिरे । जो (पौरुषेयः) पुरुषों के समूह (वधः) मारनेवाले और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के तुल्य नाश करने वाले हैं (तेभ्यः) उनके लिए (नमः) वज्र का प्रहार (अस्तु) हो और जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं (ते) वे उन पशुओं से (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हमको (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे रक्षक हम लोग (यम्) जिस हिंसक से (द्विष्मः) विरोध करें (च) और (यः) जो हिंसक (नः) हमसे (द्वेष्टि) विरोध करे (तम्) उसको हम लोग (एषाम्) इन व्याघ्रादि पशुओं के (जम्भे) मुख में (दध्मः) स्थापन करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के किरण हरे वर्णवाले हैं उसके साथ लाल पीले आदि वर्णवाले भी किरण रहते हैं वैसे ही सेनापति और ग्रामाध्यक्ष वर्त्त के रक्षक होवें । जैसे राजा आदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिंह आदि पशुओं को रोक के गौ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग अच्छी शिक्षा अधर्माचरण से पृथक् रख धर्म में चला के हम सब मनुष्यों की रक्षा करके द्वेषियों का निवारण करें । यह भी सब वसन्त ऋतु का व्याख्यान है ॥ १५ ॥

अयं दक्षिणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । ग्रीष्मर्तुर्देवता । प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒यं द॑क्षि॒णा वि॒श्वक॑र्मा॒ तस्य॑ रथस्व॒नश्च॒ रथे॑चित्रश्च सेनानीग्राम॒ण्यौ॑ । मे॒न॒का च॑ सहज॒न्या चा॑प्स॒रसौ॑ यातु॒धाना॑ हे॒ती रक्षा॑ᳬसि॒ प्रहे॑ति॒स्तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु ते नो॑ऽवन्तु॒ ते मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां जम्भे॑ दध्मः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब चेष्टारूप कर्मों का हेतु वायु (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से चलता है (तस्य) उस वायु के (रथस्वनः) रथ के शब्द के समान शब्दवाला (च) और (रथेचित्रः) रमणीय रथ में चिह्नयुक्त आश्चर्य कार्यों का करनेवाला (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान वर्त्तमान (मेनका) जिससे मनन किया जाय वह (च) और (सहजन्या) एक साथ उत्पन्न हुई (च) ये दोनों (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष में रहने वाली किरणादि अप्सरा हैं जो (यातुधाना) प्रजा को पीड़ा देनेवाले हैं उनके ऊपर (हेतिः) वज्र जो (रक्षांसि) दुष्ट कर्म करनेवाले हैं उनके ऊपर (प्रहेतिः) प्रकृष्ट वज्र के तुल्य (तेभ्यः) उन प्रजापीड़क आदि के लिये (नमः) वज्र का प्रहार (अस्तु) हो ऐसा करके जो न्यायाधीश शिक्षक हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हमको (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उसको (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) व्याघ्र के समान मुख में (दध्मः) धारण करते हैं वैसा प्रयत्न करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्थूल सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग लेने को जानते हैं वे शत्रुओं का निवारण करके सबको आनन्दित करते हैं । यह भी ग्रीष्म ऋतु का शेष व्याख्यान है ऐसा जानो ॥ १६ ॥

अयं पश्चादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वर्षर्तुर्देवता । विराट् कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒यं प॒श्चाद् वि॒श्वव्य॑चा॒स्तस्य॒ रथ॑प्रो॒तश्चास॑मरथश्च सेनानीग्राम॒ण्यौ॑ । प्र॒म्लोच॑न्ती चानु॒म्लोच॑न्ती चाप्स॒रसौ॑ । व्या॒घ्रा हे॒तिः स॒र्पाः प्रहे॑ति॒स्तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां जम्भे॑ दध्मः ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (पश्चात्) पीछे से (विश्वव्यचाः) विश्व में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि है उस के (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामपति के समान (रथप्रोतः) रमणीय तेजःस्वरूप में व्याप्त (च) और (असमरथः) जिस के समान दूसरा रथ न हो वह (च) ये दोनों (प्रम्लोचन्ती) अच्छे प्रकार सब ओषधि आदि पदार्थों को शुष्क कराने वाली (च) तथा (अनुम्लोचन्ती) पश्चात् ज्ञान का हेतु प्रकाश (च) ये दोनों (अप्सरसौ) क्रियाकारक आकाशस्थ किरण हैं जैसे (हेतिः) साधारण वज्र के तुल्य तथा (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान (व्याघ्राः) सिंहों के तथा (सर्पाः) सर्पों के समान प्राणियों को दुःखदायी जीव हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्रप्रहार (अस्तु) हो और जो इन पूर्वोक्तों से रक्षा करें (ते) वे (नः) हमारे (अवन्तु) रक्षक हों (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें तथा (ते) वे हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे जिस को हम (एषाम्) इन सिंहादि के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें (तम्) उस को वे रक्षक लोग भी सिंहादि के मुख में धरें ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह वर्षा ऋतु का शेष व्याख्यान है । इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहार विहार करना चाहिये ॥१७॥

अयमुत्तरादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शरदृतुर्देवता । भुरिगतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒यमु॑त्त॒रात् सं॒यद्व॑सु॒स्तस्य॒ तार्क्ष्य॒श्चारि॑ष्टनेमिश्च सेनानीग्राम॒ण्यौ॑ । वि॒श्वाची॑ च घृ॒ताची॑ चाप्स॒रसा॒वापो॑ हे॒तिर्वातः॒ प्रहे॑ति॒स्तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां जम्भे॑ दध्मः ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (उत्तरात्) उत्तर दिशा से (संयद्वसुः) यज्ञ को संगत करने हारे के तुल्य शरद् ऋतु है (तस्य) उस के (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान (तार्क्ष्यः) तीक्ष्ण तेज को प्राप्त कराने वाला आश्विन (च) और (अरिष्टनेमिः) दुःखों को दूर करने वाला कार्त्तिक (च) ये दोनों (विश्वाची) सब जगत् में व्यापक (च) और (घृताची) घी वा जल को प्राप्त कराने वाली दीप्ति (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों की गति हैं जहां (आपः) जल (हेतिः) वृद्धि के तुल्य वर्त्तने और (वातः) प्रिय पवन (प्रहेतिः) अच्छे प्रकार बढ़ाने हारे के समान आनन्ददायक होता है उस वायु को जो लोग युक्ति के साथ सेवन करते हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम (यम्) जिससे (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को (एषाम्) इन जल वायुओं के (जम्भे) दुःखदायी गुणरूप मुख में (दध्मः) धरें वैसे तुम लोग भी वर्त्तो ॥ १८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह शरद् ऋतु का शेष व्याख्यान है । इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के साथ कार्यों में प्रवृत्त हों ॥ १८ ॥

अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । हेमन्तर्तुर्देवता । निचृत्कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒यमु॒पर्य॒र्वाग्व॑सु॒स्तस्य॒ सेन॒जिच्च॑ सु॒षेण॑श्च सेनानीग्राम॒ण्यौ॑ । उ॒र्वशी॑ च पू॒र्वचि॑त्तिश्चाप्स॒रसा॑ववस्फू॒र्जन् हे॒तिर्वि॒द्युत्प्रहे॑ति॒स्तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां जम्भे॑ दध्मः ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (उपरि) ऊपर वर्त्तमान (अर्वाग्वसुः) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु है (तस्य) उस के (सेनजित्) सेना से जीतने वाला (च) और (सुषेणः) सुन्दर सेनापति (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के तुल्य वर्त्तमान अगहन और पौष महीने(उर्वशी) बहुत खाने का हेतु आन्तर्य दीप्ति (च) और (पूर्वचित्तिः) आदि ज्ञान का हेतु (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में रहने वाली (अवस्फूर्जन्) भयंकर घोष करते हुए (हेतिः) वज्र के तुल्य (विद्युत्) बिजुली के चलाने हारे और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) मिलें (ते) वे (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उसको हम लोग (एषाम्) इन हिंसक प्राणियों के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें । वैसे तुम लोग भी उस को धरो ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह भी हेमन्त ऋतु की शेष व्याख्या है । मनुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके बलवान् हों ॥ १९ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस प्रकार बल बढ़ाना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒ग्निर्मू॒र्द्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः॑ पृथि॒व्याऽअ॒यम् ।
अ॒पाᳬरेताᳬसि जिन्वति ॥२०॥

पदार्थ—जैसे हेमन्त ऋतु में (अयम्) यह प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के बीच (मूर्द्धा) शिर के तुल्य सूर्य्यरूप से वर्त्तमान (ककुत्पतिः) दिशाओं का रक्षक हो के (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) पराक्रमों को (जिन्वति) पूर्णता से तृप्त करता है वैसे ही मनुष्यों को बलवान् होना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जाठराग्नि को बढ़ा संयम से आहार विहार करके नित्य बल बढ़ाते रहें ॥२०॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒यम॒ग्निः स॑हस्रि॒णो वाज॑स्य श॒तिन॒स्पतिः॑ । मू॒र्द्धा क॒वी र॑यी॒णाम् ॥२१

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अयम्) यह (अग्निः) हेमन्त ऋतु में वर्त्तमान (सहस्रिणः) प्रशस्त असंख्य पदार्थों से युक्त (शतिनः) प्रशंसित गुणों के सहित अनेक प्रकार वर्त्तमान (वाजस्य) अन्न तथा (रयीणाम्) धनों का (पतिः) रक्षक (मूर्द्धा) उत्तम अङ्ग के तुल्य (कविः) समर्थ है वैसे ही तुम लोग भी हो ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया अग्नि बहुत अन्न धन प्राप्त कराता है वैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को ऐश्वर्यवान् कर देता है ॥ २१ ॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वाम॑ग्ने॒ पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत । मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घतः॑ ॥२२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन्! जैसे (अथर्वा) रक्षक (वाघतः) अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने हारा बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष (पुष्करात्) अन्तरिक्ष के (अधि) बीच तथा (मूर्ध्नः) शिर के तुल्य वर्त्तमान (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के बीच अग्नि को (निरमन्थत) निरन्तर मन्थन करके ग्रहण करे वैसे ही (त्वाम्) तुझ को मैं बोध कराता हूँ ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान आकाश तथा पृथिवी के सकाश से बिजुली का ग्रहण कर आश्चर्य रूप कर्मों को सिद्ध करें ॥ २२ ॥

भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भिः॒ सच॑से शि॒वाभिः॑ ।
दि॒वि मू॒र्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म् ॥२३।

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जैसे यह प्रत्यक्ष अग्नि (नियुद्भिः) संयोग विभाग कराने हारी क्रिया तथा (शिवाभिः) मङ्गलकारिणी दीप्तियों के साथ वर्त्तमान (भुवः) प्रगट हुये (यज्ञस्य) कार्यों के साधक संगत व्यवहार (च) और (रजसः) लोकसमूह को (नेता) आकर्षण करता हुआ सम्बन्ध कराता है और (यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशमान अपने स्वरूप में (मूर्द्धानम्) उत्तमाङ्ग के तुल्य वर्त्तमान सूर्य को धारण करता तथा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली (स्वर्षाम्) सुखदायक (जिह्वाम्) वाणी को (चकृषे) प्रवृत्त करता है वैसे तू शुभ गुणों के साथ (सचसे) युक्त होता और सब विद्याओं को (दधिषे) धारण कराता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर से नियुक्त किया हुआ अग्नि सब जगत् को सुखकारी होता है वैसे ही विद्या के ग्राहक अध्यापक लोग सब मनुष्यों को सुखकारी होते हैं ऐसा सब को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अबोधीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑नां॒ प्रति॑ धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् ।
य॒ह्वाऽइ॑व॒ प्र व॒यामु॒ज्जिहा॑नाः॒ प्र भा॒नवः॑ सिस्रते॒ नाक॒मच्छ॑ ॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (समिधा) प्रज्वलित करने के साधनों से यह (अग्निः) अग्नि (अबोधि) प्रकाशित होता है (आयतीम्) प्राप्त होते हुये (उषासम्) प्रभात समय के (प्रति) समीप (जनानाम्) मनुष्यों को (धेनुमिव) दूध देने वाली गौ के समान है। जिस अग्नि के (यह्वा इव) महान् धार्मिक जनों के समान (प्र) उत्कृष्ट (वयाम्) व्यापक सुख की नीति को (उज्जिहानाः) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हुये (प्र) उत्तम (भानवः) किरण (नाकम्) सुख को (अच्छ) अच्छे प्रकार (सिस्रते) प्राप्त करते हैं उस को तुम लोग सुखार्थ संयुक्त करो ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे दुग्ध देने वाली सेवन की हुई गौ दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुखी करती है और जैसे आप्त विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों की उन्नति करते हैं वैसे ही यह अग्नि है ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

अवोचामेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अवो॑चाम क॒वये॒ मेध्या॑य॒ वचो॑ व॒न्दारु॑ वृष॒भाय॒ वृष्णे॑ । गवि॑ष्ठिरो॒
नम॑सा॒ स्तोम॑म॒ग्नौ दि॒वीव॑ रु॒क्मम॑रु॒व्यञ्च॒मश्रे॑त् ॥ २५ ॥

पदार्थ—हम लोग जैसे (गविष्ठिरः) किरणों में रहनेवाली विद्युत् (दिवीव) सूर्यप्रकाश के समान (उरुव्यचम्) विशेष करके बहुतों में गमनशील (रुक्मम्) सूर्य का (अश्रेत्) आश्रय करती है वैसे (मेध्याय) सब शुभ लक्षणों से युक्त पवित्र (वृषभाय) बली (वृष्णे) वर्षा के हेतु (कवये) बुद्धिमान् के लिये (वन्दारु) प्रशंसा के योग्य (वचः) वचन को और (अग्नौ) जाठराग्नि में (नमसा) अन्न आदि से (स्तोमम्) प्रशस्त कार्यों को (अवोचाम) कहें ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि सुशील शुद्धबुद्धि विद्यार्थी के लिये परम प्रयत्न से विद्या देवें जिससे वह विद्या पढ़ के सूर्य के प्रकाश में घटपटादि को देखते हुए के समान सब को यथावत् जान सकें ॥२५॥

अयमिहेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒यमि॒ह प्र॑थ॒मो धा॑यि धा॒तृभि॒र्होता॒ यजि॑ष्ठोऽअध्व॒रेष्वीड्यः॑ ।
यमप्न॑वानो॒ भृग॑वो विरुरु॒चुर्वने॑षु चि॒त्रं वि॒भ्वं᳖ वि॒शेवि॑शे ॥२६॥

पदार्थ—जो (इह) इस जगत् में (अध्वरेषु) रक्षा के योग्य व्यवहारों में (ईड्यः) खोजने योग्य (यजिष्ठः) अतिशय करके यज्ञ का साधक (होता) घृतादि का ग्रहणकर्त्ता (प्रथमः) सर्वत्र विस्तृत (अयम्) यह प्रत्यक्ष अग्नि (धातृभिः) धारणशील पुरुषों ने (धायि) धारण किया है (यम्) जिस को (वनेषु) किरणों में (चित्रम्) आश्चर्यरूप से (विभ्वम्) व्यापक अग्नि को (विशेविशे) समस्त प्रजा के लिये (अप्नवानः) रूपवान् (भृगवः) पूर्णज्ञानी (विरुरुचुः) विशेष करके प्रकाशित करते हैं उस अग्नि को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ २६ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग अग्निविद्या को आप धार के दूसरों को सिखावें ॥२६॥

जनस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

जन॑स्य गो॒पाऽअ॑जनिष्ट॒ जागृ॑विर॒ग्निः सु॒दक्षः॑ सुवि॒ताय॒ नव्य॑से ।
घृ॒तप्र॑तीको बृह॒ता दि॑वि॒स्पृशा॑ द्यु॒मद्वि भा॑ति भर॒तेभ्यः॒ शुचिः॑ ॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (जनस्य) उत्पन्न हुए संसार का (गोपाः) रक्षक (जागृविः) जागने रूप स्वभाव वाला (सुदक्षः) सुन्दर बल का हेतु (घृतप्रतीकः) घृत के बढ़ने हारा (शुचिः) पवित्र (अग्निः) बिजुली (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) उत्पन्न करने योग्य ऐश्वर्य के लिये (अजनिष्ट) प्रकट हुआ है और (बृहता) बड़े (दिविस्पृशा) प्रकाश में स्पर्श से (भरतेभ्यः) सूर्यों से (द्युमत्) प्रकाशयुक्त हुआ (विभाति) शोभित होता है उस को तुम लोग जानो ॥२७॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐश्वर्य्य प्राप्ति का विशेष कारण सृष्टि के सूर्यों का निमित्त बिजुली रूप तेज है उसको जान के उपकार लिया करें ॥२७॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वाम॑ग्ने॒ऽअङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒तमन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने ।
स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः॒ सहो॑ म॒हत् त्वामा॑हुः॒ सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः ॥२८

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) प्राणवत्प्रिय (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (सः) वह (मथ्यमानः) मथन किया हुआ अग्नि प्रसिद्ध होता है वैसे तू विद्या से (जायसे) प्रकट होता है जिस को (महत्) बड़े (सहः) बलयुक्त (सहसः) बलवान् वायु से (पुत्रम्) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य (वनेवने) किरण वा पदार्थ पदार्थ में (शिश्रियाणम्) आश्रित (गुहा) बुद्धि में स्थित (हितम्) हितकारी (त्वाम्) उस अग्नि

को (आहुः) कहते हैं (अङ्गिरसः) विद्वान् लोग (अन्वविन्दन्) प्राप्त होते हैं उस का बोध (त्वाम्) तुझे कराता हूं ॥ २८ ॥

भावार्थ—अग्नि दो प्रकार का होता है । एक मानस दूसरा वाह्य, इस में आभ्यन्तर को युक्त आहर विहारों से और वाह्य को मन्थनादि से सब विद्वान् सेवन करें वैसे इतर जन भी सेवन किया करें ॥ २८ ॥

सखा इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे होके अग्नि को जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥२९॥

पदार्थ—हे (सखाय) मित्रो ! (क्षितीनाम्) मननशील मनुष्य (वः) तुम्हारे (ऊर्जः) वल के (नप्त्रे) पौत्र के तुल्य वर्त्तमान (सहस्वते) वहुत वल वाले (वर्षिष्ठाय) अत्यन्त वड़े (अग्नये) अग्नि के लिये जिस (सम्यञ्चम्) सुन्दर सत्कार के हेतु (इषम्) अन्न को (च) और (स्तोमम्) स्तुतियों को (समाहुः) अच्छे प्रकार कहते हैं वैसे तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो ॥ २९ ॥

भावार्थ—यहां पूर्व मन्त्र से (आहुः) इस पद की अनुवृत्ति आती है । कारीगरों को चाहिये कि सब के मित्र होकर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थविद्या का अनुष्ठान करें । जो विजुली कारणरूप वल से उत्पन्न होती है वह पुत्र के तुल्य है और जो सूर्य्यादि के प्रकाश से उत्पन्न होती है सो पौत्र के समान है ऐसा जानना चाहिये ॥ २९ ॥

संसमिदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

वैश्य को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य्यऽआ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥३०॥

पदार्थ—हे (वृषन्) वलवान् (अग्ने) प्रकाशमान (अर्यः) वैश्य ! जो तू (संसमायुवसे) सम्यक् अच्छे प्रकार सम्वन्ध करते हो (इडः) प्रशंसा के योग्य (पदे) प्राप्ति के योग्य अधिकार में (समिध्यसे) सुशोभित होते हो (सः) सो तू (इत्) ही अग्नि के योग से (नः) हमारे लिये (विश्वानि) सव (वसूनि) धनों को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कर ॥ ३० ॥

भावार्थ—राजाओं से रक्षा प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिये और अपने राजपुरुषों के लिये सम्पूर्ण धन धारण करें ॥ ३० ॥

त्वामित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥३१॥

पदार्थ—हे (पुरुप्रिय) वहुतों के प्रसन्न करने हारे वा वहुतों के प्रिय (चित्रश्रवस्तम) आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थों से युक्त (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (विक्षु) प्रजाओं में (हव्याय) स्वीकार के योग्य अन्नादि उत्तम पदार्थों को (वोढवे) प्राप्ति के लिए जिस (शोचिष्केशम्) सुखाने वाली सूर्य की किरणों के तुल्य तेजस्वी (त्वाम्) आपको (जन्तवः) मनुष्य लोग (हवन्ते) स्वीकार करते हैं उसी को हम लोग भी स्वीकार करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि जिस अग्नि को जीव सेवन करते हैं उस से भार पहुंचाना आदि कार्य भी सिद्ध किया करें ॥ ३१ ॥

एना व इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एना वोऽअग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (वः) तुम्हारे लिये (एना) उस पूर्वोक्त (नमसा) ग्रहण के योग्य अन्न से (नपातम्) दृढ़ स्वभाव (प्रियम्) प्रीतिकारक (चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेतना करानेहारे (अरतिम्) चेतना रहित (स्वध्वरम्) अच्छे रक्षणीय व्यवहारों से युक्त (अमृतम्) कारणरूप से नित्य (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के (दूतम्) सब ओर चलनेहारे (अग्निम्) विजुली की और (ऊर्जः) पराक्रमों को (आहुवे) स्वीकार करूं वैसे तुम लोग भी मेरे लिये ग्रहण करो ॥३२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध करें उनको तुम लोग भी स्वीकार करो ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् ।
स योजतेऽअरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (विश्वस्य) सब भूगोलों के (दूतम्) तपाने वाले सूर्य्यरूप (अमृतम्) कारणरूप से अविनाशिस्वरूप (विश्वस्य) सम्पूर्ण पदार्थों को (दूतम्) ताप से जलानेवाले (अमृतम्) जल में भी व्यापक कारणरूप अग्नि को स्वीकार करूं वैसे (विश्वभोजसा) जगत् के रक्षक (अरुषा) रूपवान् सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है (सः) वह योजते युक्त करता है जो (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार ग्रहण किया हुआ (दुद्रवत्) शरीरादि में चलता है (सः) वह तुम लोगों को जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (आहुवे) इस पद की अनुवृत्ति आती है तथा (विश्वस्य दूतममृतम्) इन तीनों पदों की दो वार आवृत्ति से स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के अग्नि का ग्रहण होता है । वह सब अग्नि कारणरूप से नित्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

स दुद्रवदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳ राधो जनानाम् ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सः) वह अग्नि (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान (दुद्रवत्) चलता है तथा (सः) वह (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार निमन्त्रण किये विद्वान् के तुल्य (दुद्रवत्) जाता है (सुब्रह्मा) अच्छे प्रकार चारों वेदों के ज्ञाता (यज्ञः) समागम के योग्य (सुशमी) अच्छे शान्तिशील पुरुष के समान जो (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं और (जनानाम्) मनुष्यों का (देवम्) अभीप्सित (राधः) धनरूप है उस अग्नि को तुम लोग उपयोग में लाओ ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वेगवान् अन्य पदार्थों को वेग देने वाला शान्तिकारक पृथिव्यादि पदार्थों का प्रकाशक अग्नि है उसका विचार क्यों न करना चाहिये ॥३४॥

अग्ने वाजस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है यह विषय अगले मंत्र में कहा है—

अग्ने वाजस्य गोमतऽईशानः सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥३५॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलवान् पुरुष के (यहो) सन्तान ! (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् आप अग्नि के तुल्य (गोमतः) प्रशस्त गौ और पृथिवी से युक्त (वाजस्य) अन्न के (ईशानः) स्वामी समर्थ हुए (अस्मे) हमारे लिए (महि) वड़े (श्रवः) धन को (धेहि) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अच्छी रीति से उपयुक्त किया अग्नि वहुत धन देता है ऐसा जानना चाहिये ॥३५॥

स इधान इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सऽइधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥३६॥

पदार्थ—हे (पुर्वणीक) वहुत सेना वाले राजपुरुष विद्वान् ! (गिरा) वाणी से (ईडेन्यः) खोजने योग्य (वसुः) निवास का हेतु (कविः) समर्थ (इधानः) प्रदीप्त (सः) उन पूर्वोक्त (अग्निः) के समान (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (रेवत्) प्रशंसित धनयुक्त पदार्थों को (दीदिहि) प्रकाशित कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् को चाहिये कि अग्नि के गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश के तुल्य मनुष्यों के लिये ऐश्वर्य की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

क्षपो राजन्नित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३७॥

पदार्थ—हे (तिग्मजम्भः) तीक्ष्ण अवयवों के चलानेवाले (राजन्) प्रकाशमान (अग्ने) विद्वान् जन ! (सः) सो पूर्वोक्त गुणयुक्त आप जैसे तीक्ष्ण तेजयुक्त अग्नि (क्षपः) रात्रियों (उत) और (वस्तोः) दिन के (उत) ही (उषसः) प्रभात और सायंकाल के प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे (त्मना) तीक्ष्ण स्वभाव युक्त अपने आत्मा से (रक्षसः) दुष्ट जनों को रात्रि के समान (प्रतिदह) निश्चय करके भस्म कीजिये ॥३७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे प्रभात दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि को जानते हैं वैसे राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है ऐसा जानें ॥३७॥

भद्रो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रोऽअध्वरः।
भद्राऽउत प्रशस्तयः ॥३८॥

पदार्थ—हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य वाले विद्वान् पुरुष! जैसे (आहुतः) धर्म्म के तुल्य सेवन किया मित्ररूप (अग्निः) अग्नि (भद्रः) सेवने योग्य (भद्रा) कल्याणकारी (रातिः) दान (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) रक्षणीय व्यवहार (उत) और (भद्राः) कल्याण करनेवाली (प्रशस्तयः) प्रशंसा होवे वैसे आप (नः) हमारे लिये हूजिये ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सेवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं वैसे आप्त विद्वान् लोगों को भी जानें ॥३८॥

भद्रा उतेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भद्राऽउत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।
येना समत्सु सासहः ॥३९॥

पदार्थ—हे (सुभग) शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष! आप (येन) जिससे हमारे (वृत्रतूर्ये) युद्ध में (भद्रम्) कल्याणकारी (मनः) विचारशक्तियुक्त चित्त (उत) और (भद्राः) कल्याण करने हारी (प्रशस्तयः) प्रशंसा के योग्य प्रजा और जिससे (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) अत्यन्त सहनशील वीर पुरुष हों वैसा कर्म (कृणुष्व) कीजिये ॥३९॥

भावार्थ—यहां (सुभग, नः) इन दो पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है। विद्वान् राजा को चाहिये कि ऐसे कर्म का अनुष्ठान करे जिससे प्रजा और सेना उत्तम हों ॥३९॥

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्।
वनेमा तेऽअभिष्टिभिः ॥४०॥

पदार्थ—हे (सुभग) सुन्दर लक्ष्मीयुक्त पुरुष! आप (येन) जिसके प्रताप से हमारे (समत्सु) युद्धों में (सासहः) शीघ्र सहना हो उसको तथा (भूरि) बहुत प्रकार (शर्धताम्) बल करते हुए (स्थिरा) स्थिर सेना के साधनों को (अवतनुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाइये (ते) आपकी (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के अनुसार वर्त्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥४०॥

भावार्थ—यहां भी (सुभग, नः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। विद्वानों को उचित है कि बहुत बलयुक्त वीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ावें जिससे वे लोग उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥४०॥

अग्निं तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्तऽआशवोऽस्तं नित्यासो वाजिनऽइषंꣳ स्तोतृभ्यऽआ भर ॥४१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष! (यः) जो (वसुः) सर्वत्र रहनेवाला अग्नि है (यम्) जिस (अग्निम्) वाणी के समान अग्नि को (धेनवः) गौ (अस्तम्) घर को (यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्यासः) कारणरूप से विनाश रहित (वाजिनः) वेगवाले (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) घोड़े (अस्तम्) घर को प्राप्त होते हैं वैसे मैं (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) मानता हूं और (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकारक विद्वानों के लिये (इषम्) अच्छे अन्नादि पदार्थों को धारण करता हूं वैसे ही तू उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें कि जैसे हम लोग आचरण करें वैसा तुम भी करो। जैसे गौ आदि पशु दिन में इधर उधर भ्रमण कर सायङ्काल अपने घर आके प्रसन्न होते हैं वैसे विद्या के स्थान को प्राप्त होके तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥४१॥

सोऽअग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सोऽअग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरयऽइषꣳ स्तोतृभ्यऽआ भर ॥४२॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष! जैसे मैं (यः) जो (वसुः) निवास का हेतु (अग्निः) अग्नि है उसकी (गृणे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूं (यम्) जिसको (धेनवः) वाणी (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती है और (रघुद्रुवः) धीरज से चलनेवाले (अर्वन्तः) प्रशंसित ज्ञानी (सुजातासः) अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने हारे विद्यार्थियों के लिये (इषम्) ज्ञान को (सम्) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे (सः) वह पढ़ानेहारा ईश्वरादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) ज्ञान से धारण कर ॥४२॥

भावार्थ—अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चल के पहुँचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुँचावें ॥४२॥

उभे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीषऽआसनि।
उतो नऽउत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पतऽइषꣳ स्तोतृभ्यऽआ भर ॥४३॥

पदार्थ—हे (सुश्चन्द्र) सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष! आप (सर्पिषः) घी के (दर्वी) चलाने पकड़ने की दो कर्छी से (श्रीणीषे) पकाने के समान (आसनि) मुख में (उभे) पढ़ाने की दो क्रियाओं को (आभर) धारण कीजिये। हे (शवसः) बल के (पते) रक्षकजन तू (उक्थेषु) कहने सुनने योग्य वेदविभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (उत्पुपूर्याः) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥४३॥

भावार्थ—जैसे ऋत्विज लोग घृत को शोध कर्छी से अग्नि में होम कर और वायु तथा वर्षाजल को रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोधकर उनको विद्यादान देके आत्माओं को पवित्र कर सब को सुखी करें ॥४३॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम्।
ऋध्यामा तऽओहैः ॥४४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अध्यापक जन! हम लोग (ते) आप से (ओहैः) विद्या का सुख देने वाले (स्तोमैः) विद्या की स्तुतिरूप वेद के भागों से (अद्य) आज (अश्वम्) घोड़े के (न) समान (भद्रम्) कल्याणकारक (क्रतुम्) बुद्धि के (न) समान (तम्) उस (हृदिस्पृशम्) आत्मा के साथ गन्ध करने वाले विद्याबोध को प्राप्त हो के निरन्तर (ऋध्याम) बुद्धि को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। अध्येता लोगों को चाहिये कि जैसे अच्छे शिक्षित घोड़े से अभीष्ट स्थान में शीघ्र पहुंच जाते हैं जैसे विद्वान् लोग सब शास्त्रों के बोध से युक्त कल्याण करने हारी बुद्धि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को प्राप्त होते हैं वैसे उन अध्यापकों से पूर्ण विद्या पढ़ प्रशंसित बुद्धि को पाके आप उन्नति को प्राप्त हों तथा वेद के पढ़ाने और उपदेश से अन्य सब मनुष्यों की भी उन्नति करें ॥ ४४ ॥

अधा हीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥४५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् जन! जैसे तू (भद्रस्य) आनन्दकारक (दक्षस्य) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (साधोः) अच्छे मार्ग में प्रवर्त्तमान (ऋतस्य) सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की (बृहतः) बड़े विषय वा ज्ञानरूप (क्रतोः) बुद्धि से (रथीः) प्रशंसित रमणसाधन यानों से युक्त (बभूथ) हूजिये वैसे (अध) मङ्गलाचरणपूर्वक (हि) निश्चय करके हम भी होवें ॥४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई वृद्धि को प्राप्त होके विद्वान् लोग बढ़ते हैं वैसे ही अध्येता लोगों को बढ़ाना चाहिये ॥४५॥

एभिर्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है—

एभिर्नोऽअर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमनाऽअनीकैः ॥४६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष ! आप (नः) हमारे लिये (विश्वेभिः) सब (अनीकैः) सेनाओं के सहित राजा के तुल्य (सुमनाः) मन से सुखदाता (भव) हूजिये (एभिः) इन पूर्वोक्त (अर्कैः) पूजा के योग्य विद्वानों के सहित (नः) हमारे लिये (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाशक (अर्वाङ्) नीचों को उत्तम करने को जानने वाले (स्वः) सुख के (न) समान हूजिये ॥४६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे राजा अच्छी शिक्षा बल युक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है वैसे ही बुद्धि आदि गुणों से अविद्या से हुये क्लेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी होवें ॥४६॥

अग्नि ँ होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । यऽऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥४७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (ऊर्ध्वया) ऊर्ध्वगति के साथ (स्वध्वरः) शुभ कर्म करने से अहिंसनीय (देवाच्या) विद्वानों के सत्कार के हेतु (कृपा) समर्थ क्रिया से (देवः) दिव्य गुणों वाला पुरुष (शोचिषा) दीप्ति के साथ (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार हवन किये (सर्पिषः) घी और (घृतस्य) जल के सकाश से (विभ्राष्टिम्) विविध प्रकार की ज्योतियों को (अनुवष्टि) प्रकाशित करता है उस (होतारम्) सुख के दाता (जातवेदसम्) उत्पन्न हुये सब पदार्थों में विद्यमान (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र के समान (वसुम्) धनदाता (दास्वन्तम्) दानशील (जातवेदसम्) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध (अग्निम्) तेजस्वी अग्नि के (न) समान (विप्रम्) आप्त ज्ञानी का मैं (मन्ये) सत्कार करता हूँ वैसे तुम लोग भी उस को मानो ॥४७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छे प्रकार सेवन किये विद्वान् लोग विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा से सब को आर्य करते हैं वैसे युक्ति से सेवन किया अग्नि अपने गुण कर्म और स्वभावों से सब के सुख की उन्नति करता है ॥४७॥

अग्ने त्वन्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने त्वं नो अन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (त्वम्) आप जैसे यह (वसुः) धनदाता (वसुश्रवाः) अन्न और धन का हेतु (अग्निः) अग्नि (रयिम्) धन को (दाः) देता है वैसे (नः) हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (त्राता) रक्षक (वरूथ्यः) श्रेष्ठ (उत) और (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये । हे (शोचिष्ठ) अति तेजस्वी (दीदिवः) बहुत प्रकाशों से युक्त वा कामना वाले विद्वन् ! जैसे हम लोग (त्वा) तुझको (सखिभ्यः) मित्रों से (सुम्नाय) सुख के लिए (नूनम्) निश्चय (ईमहे) मांगते है वैसे (तम्) उस तुझको सब मनुष्य चाहें जैसे मैं (द्युमत्तमम्) प्रशंसित प्रकाशों से युक्त तुझको (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षि) प्राप्त होता हूँ वैसे तू हमको प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मित्र अपने मित्रों को चाहते और उनकी उन्नति करते हैं वैसे विद्वान् सब का मित्र सबको सुख देवे ॥४८॥

येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

येनऽऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धानाऽअग्निꣳ स्वराभरन्तः ।
तस्मिन्नहं निदधे नाकेऽअग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम् ॥४९॥

पदार्थ—(येन) जिस (तपसा) धर्मानुष्ठानरूप कर्म से (इन्धानाः) प्रकाशमान (स्वः) सुख को (आभरन्तः) अच्छे प्रकार धारण करते हुए (ऋषयः) वेद का अर्थ जाननेवाले ऋषि लोग (सत्रम्) सत्य विज्ञान से युक्त (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (आयन्) प्राप्त हों (तस्मिन्) उस कर्म के होते (नाके) दुःखरहित प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त (मनवः) विचारशील विद्वान् लोग (यम्) जिस (स्तीर्णबर्हिषम्) आकाश को आच्छादन करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (आहुः) कहते हैं उस को (अहम्) मैं (निः, दधे) धारण करता हूँ ॥४९॥

भावार्थ—जिस प्रकाश से वेदपारग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर बिजुली आदि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धि युक्त होना चाहिये ॥ ४९ ॥

तं पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठेऽअधि रोचने दिवः ॥५०॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! जैसे तुम लोग (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (गृभ्णानाः) ग्रहण करते हुए (दिवः) प्रकाशयुक्त (सुकृतस्य) सुन्दर वेदोक्त कर्म (अधि) में वा (रोचने) रुचिकारक (तृतीये) विज्ञान से हुए (पृष्ठे) जानने को इष्ट (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्त्तमान (पत्नीभिः) अपनी-अपनी स्त्रियों (पुत्रैः) वृद्धावस्था में हुए दुःख से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) बन्धुओं (उत, वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णादि के साथ (नाकम्) आनन्द को प्राप्त होते हो वैसे ही इन सबके सहित हम लोग भी (अनु, गच्छेम) अनुगत हों ॥ ५० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, कन्या, माता, पिता, सेवक और पड़ोसियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से धर्मात्मा पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ५० ॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥५१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (चेकितानः) विज्ञानयुक्त (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक आप (वाचः) वाणी के (मध्यम्) बीच हुए उपदेश को प्राप्त होके जैसे (अयम्) यह (भुरण्युः) पुष्टिकर्त्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (निहितः) निरन्तर स्थिर किया (दविद्युतत्) उपदेश से सब को प्रकाशित करता और धर्म पर (आ, रुहत्) आरूढ़ होता है उसके साथ (ये) जो लोग (पृतन्यवः) युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं उनको (अधस्पदम्) अपने अधिकार से च्युत जैसे हो वैसा (कृणुताम्) कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड में सूर्यलोक को स्थापन करके सबको सुख पहुँचाता है वैसे ही राज्य में विद्या और बल को धारण कर शत्रुओं को जीत के प्रजा के मनुष्यों का सुख से उपकार करें ॥ ५१ ॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगों को वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् ।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यऽउप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥५२॥

पदार्थ—जो (अयम्) यह (वीरतमः) अपने बल से शत्रुओं को अत्यन्त व्याप्त होने तथा (वयोधाः) सब के जीवन को धारण करने वाला (सहस्रियः) असंख्य योद्धाजनों के समान योद्धा (सरिरस्य) आकाश के (मध्ये) बीच (विभ्राजमानः) विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होते हुये (अग्निः) अग्नि के तुल्य सेनापति आप (द्योतताम्) प्रकाशित हूजिये और (दिव्यानि) अच्छे (धाम) जन्म कर्म और स्थानों को (उप, प्र, याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा जनों के साथ निवास कर प्रमाद को छोड़ और जितेन्द्रियता से अवस्था बढ़ा के विद्या और धर्म के अनुष्ठान से पवित्र होके परोपकारी होवें ॥ ५२ ॥

संप्रच्यवध्वमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः
पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सम्प्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् । पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताꣳसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥५३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग विद्याओं को (उपसंप्रयात) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (देवयानान्) धार्मिकों के (पथः) मार्गों से (संप्रच्यवध्वम्) सम्यक् चलो, धर्म को (कृणुध्वम्) करो। हे (अग्ने) विद्वान् पितामह ! (त्वयि) तुम्हारे बने रहते ही (पितरा) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्य

को (कृण्वाना) करते हुये (युवाना) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो और स्वयंवर विवाह कर (पुनः) पश्चात् (एतम्) गर्भाधानादि रीति से यथोक्त (तन्तुम्) सन्तान को (अन्वातांसीत्) अनुकूल उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

भावार्थ—कुमार स्त्री पुरुष धर्मयुक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ आप धार्मिक हो पूर्ण युवावस्था की प्राप्ति में कन्याओं की परीक्षा कर अत्यन्त प्रीति के साथ चित्त से परस्पर आकर्षित होके अपनी इच्छा से विवाह कर धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने माता पिता का सन्तोष कर के आप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चलें और जैसे धर्म के मार्गों को सरल करें वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें ॥ ५३ ॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वही पूर्वोक्त विषय अगले मंत्र में कहा है—

उद् बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳ सृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥५४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष ! तू (उद्बुध्यस्व) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सब के प्रति (प्रति, जागृहि) अविद्यारूप निद्रा को छोड़ के विद्या से चेतन हो (त्वम्) तू स्त्री (च) और (अयम्) यह पुरुष दोनों (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (सधस्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामी समय में सदा (इष्टापूर्त्ते) इष्ट सुख विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा सङ्ग करना और सत्यविद्या आदि का दान देना यह इष्ट और पूर्णबल, ब्रह्मचर्य, विद्या की शोभा, पूर्ण युवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्त्त इन दोनों को (सं, सृजेथाम्) सिद्ध किया करो (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) और (यजमानः) यज्ञ करने वाले पुरुष, तू इस एक स्थान में (अधि, सीदत) उन्नतिपूर्वक स्थिर होओ ॥५४॥

भावार्थ—जैसे अग्नि सुगंधादि के होम से इष्ट सुख देता और यज्ञकर्त्ता जन यज्ञ की सामग्री पूरी करता है वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री पुरुष इस जगत् में आचरण किया करें । जब विवाह के लिये दृढ़ प्रीति वाले स्त्री पुरुष हों तब विद्वानों को बुला के उन के समीप वेदोक्त प्रतिज्ञा करके पति और पत्नी बनें ॥५४॥

येन वहसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मंत्र में कहा है—

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥५५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष वा विदुषी स्त्री ! तू (देवेषु) विद्वानों में (स्वः) सुख को (गन्तवे) प्राप्त होने के लिय (येन) जिस प्रतिज्ञा किये कर्म से (सहस्रम्) गृहाश्रम के असंख्य व्यवहारों को (वहसि) प्राप्त होते हो तथा (येन) जिस विज्ञान से (सर्ववेदसम्) सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो (तेन) उससे (इमम्) इस गृहाश्रमरूप (यज्ञम्) संगति के योग्य यज्ञ को (नः) हम को (नय) प्राप्त कीजिये ॥५५॥

भावार्थ—विवाह की प्रतिज्ञाओं में यह भी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिए आचरण करो वैसे हम माता पिता आचार्य्य और अतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्त्ताव करो ॥५५॥

अयं त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।
तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् वा विदुषि ! (अयम्) यह (ते) तेरा (ऋत्वियः) ऋतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ (योनिः) घर है (यतः) जिस विद्या के पठन-पाठन से (जातः) प्रसिद्ध हुआ वा हुई तू (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उसको (जनन्) जानता वा जानती हुई (आ, रोह) धर्म पर आरूढ़ हो (अथ) इसके पश्चात् (नः) हमारी (रयिम्) सम्पत्ति को (वर्धय) बढ़ाया कर ॥ ५६ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष से विवाह में यह भी दूसरी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री पुरुष कृतकृत्य होते हो उस-उस को सदैव प्रसारित किया करो और पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ को बढ़ा के उसको अच्छे मार्ग में खर्च किया करो । यह सब हेमन्त ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥५६॥

तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शिशुरर्त्तुर्देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है—

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे शैशिरावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥५७॥

पदार्थ—हे ईश्वर ! (मम) मेरी (ज्यैष्ठ्याय) ज्येष्ठता के लिये (तपः) ताप बढ़ाने का हेतु माघ महीना (च) और (तपस्यः) तापवाला फाल्गुन मास (च) ये दोनों (शैशिरौ) शिशिर ऋतु में प्रख्यात (ऋतू) अपने चिह्नों को प्राप्त करनेवाले सुखदायी होते हैं । आप जिनके (अग्नेः) अग्नि के भी (अन्तःश्लेषः) मध्य में प्रविष्ट (असि) हैं उन दोनों से (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (सव्रताः) एक प्रकार के नियमों में वर्त्तमान (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (पृथक्) अलग-अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (समनसः) एक प्रकार के मन के निमित्तवाले हैं वे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि के (अन्तरा) बीच में होनेवाले (शैशिरौ) शिशिर ऋतु के साधक (ऋतू) माघ फाल्गुन महीनों को (अभिकल्पमानाः) समर्थ करते हैं । उन अग्नियों को (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य के तुल्य (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) ज्ञानपूर्वक प्रवेश करें । हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (तया) उस (देवतया) पूजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान वर्त्तमान इन आकाश भूमि के तुल्य (ध्रुवे) दृढ़ (सीदतम्) स्थिर होओ ॥ ५७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में ईश्वर से ही सुख चाहें । ईश्वर विद्युत् अग्नि के बीच व्याप्त है । इस कारण सब पदार्थ अपने-अपने नियम से कार्य में समर्थ होते हैं विद्वान् लोग सब वस्तुओं में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नियों के गुण दोष जानें स्त्री पुरुष गृहाश्रम में स्थिरबुद्धि होके शिशिर ऋतु के सुख को भोगें ॥ ५७ ॥

परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विदुषी देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥५८॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (परमेष्ठी) महान् आकाश में व्याप्त होकर स्थित परमेश्वर (ज्योतिष्मतीम्) प्रशस्त ज्ञानयुक्त (त्वा) तुझको (दिवः) प्रकाश के (पृष्ठे) उत्तम भाग में (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान आदि की यथार्थ क्रिया होने के लिये (सादयतु) स्थित करे । तू सब स्त्रियों के लिये (विश्वम्) समस्त (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर जिस (ते) तेरा (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) अच्छे गुणोंवाले पति के साथ वर्त्तमान (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (ध्रुवा) दृढ़ता से (सीद) स्थिर हो ॥ ५८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जिस परमेश्वर ने जो शरद् ऋतु बनाया है उसकी उपासनापूर्वक इस ऋतु को युक्ति से सेवन करके स्त्री पुरुष सदा सुख बढ़ाया करें ॥ ५८ ॥

लोकं पृणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥५९॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (त्वम्) तू इस (लोकम्) लोक तथा परलोक को (पृण) सुखयुक्त कर (छिद्रम्) अपनी न्यूनता को (पृण) पूरी कर और (ध्रुवा) निश्चलता से (सीद) घर में बैठ (अथो) इसके अनन्तर (इन्द्राग्नी) उत्तम धनी ज्ञानी तथा (बृहस्पतिः) अध्यापक (अस्मिन्) इस (योनौ) गृहाश्रम में (त्वा) तुझको (असीषदन्) स्थापित करें ॥ ५९ ॥

भावार्थ—अच्छी चतुर स्त्री को चाहिये कि घर के कार्यों के साधनों को पूरा करके सब कार्यों को सिद्ध करे । जैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों की गृहाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों में प्रीति हो वैसा उपदेश किया करे ॥ ५९ ॥

ताऽअस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब राजा प्रजा का धर्म अगले मन्त्र में कहा है—

ताऽअस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥६०॥

पदार्थ—जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त (देवानाम्) विद्वानों के (जन्मन्) जन्म विषय में (पृश्नयः) पूछनेहारी (सूददोहसः) रसोइयां और कार्यों के पूर्ण करनेवाले पुरुषों से युक्त (त्रिषु) वेद रीति से कर्म उपासना और ज्ञानों तथा

(दिवः) सबके अन्तःप्रकाशक परमात्मा के (रोचने) प्रकाश में वर्त्तमान (विशः) प्रजा हैं (ताः) वे (अस्य) इस सभाध्यक्ष राजा के (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रसों से युक्त भोजनीय पदार्थों को (आ) सब ओर से (श्रीणन्ति) पकाती हैं ॥ ६० ॥

भावार्थ—प्रजापालक पुरुषों को चाहिये कि सब प्रजाओं को विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण में नियुक्त करें और प्रजा भी स्वयं नियुक्त हों। इसके विना कर्म उपासना ज्ञान और ईश्वर का यथार्थ वोध कभी नहीं हो सकता ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वा इत्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ६१॥

पदार्थ—(विश्वाः) सब (गिरः) विद्या और शिक्षा से युक्त वाणी (समुद्रव्यचसम्) आकाश के तुल्य व्याप्तिवाले (रथीनाम्) शूरवीरों में (रथीतमम्) उत्तम शूरवीर (वाजानाम्) विज्ञानी पुरुषों के (सत्पतिम्) सत्य व्यवहारों और [विद्वानों] के रक्षक तथा प्रजाओं के (पतिम्) स्वामी (इन्द्रम्) परम सम्पत्तियुक्त सभापति राजा को (अवीवृधन्) बढ़ावें ॥ ६१ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा के जन राजधर्म से युक्त ईश्वर के समान वर्त्तमान न्यायाधीश सभापति को निरन्तर उत्साह देवें, ऐसे ही सभापति इन प्रजा और राजा के पुरुषों को भी उत्साही करें ॥ ६१ ॥

प्रोथदश्व इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।
आदस्य वातोऽअनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥६२

पदार्थ—हे राजन्! आप (यवसे) भूसा आदि के लिये (अश्वः) घोड़े के (न) समान प्रजाओं को (प्रोथत्) समर्थ कीजिये (यदा) जब (महः) बड़े (संवरणात्) आच्छादन से (अविष्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यस्थात्) स्थित होवें (आत्) पुनः (अस्य) इस (ते) आप का (व्रजनम्) चलने तथा (कृष्णम्) आकर्षण करने वाला (शोचिः) प्रकाश (अस्ति) है (अध) इसके पश्चात् (स्म) ही आप का (वातः) चलने वाला भृत्य (अनु, वाति) पीछे चलता है ॥ ६२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट होकर राज्य को बढ़ाती हैं ॥ ६२ ॥

आयोष्ट्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विदुषी देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाꣳ समुद्रस्य हृदये।
रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥६३॥

पदार्थ—हे स्त्रि! (या) जो तू (द्याम्) प्रकाश (पृथिवीम्) भूमि और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) वहुत (आ, भासि) प्रकाशित करती है उस (रश्मीवतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (भास्वतीम्) शोभा को प्राप्त हुई (त्वा) तुझको (आयोः) न्यायानुकूल चलने वाले चिरंजीवी पुरुष के (सदने) स्थान में और (अवतः) रक्षा करते हुए के (छायायाम्) आश्रय में (आ, सादयामि) अच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (हृदये) बीच (आ) शुद्ध प्रकार से मैं स्थित कराता हूँ ॥ ६३ ॥

भावार्थ—हे स्त्रि! अच्छे प्रकार पालने हारे पति के आश्रयरूप स्थान में समुद्र के तुल्य चञ्चलतारहित गम्भीरतायुक्त प्यारी तुझको स्थित करता हूँ। तू गृहाश्रम के धर्म का प्रकाश कर पति आदि को सुखी रख और तुझको भी पति आदि सुखी रक्खें ॥ ६३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। परमात्मा देवता। आकृतिश्छन्दः।
पंचमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष परस्पर कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवं दृꣳह दिवं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि! (परमेष्ठी) परमात्मा (विश्वस्मै) समग्र (प्राणाय) जीवन के सुख (अपानाय) दुःखनिवृत्ति (व्यानाय) नाना विद्याओं की व्याप्ति (उदानाय) उत्तम वल (प्रतिष्ठायै) सर्वत्र सत्कार और (चरित्राय) श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (दिवः) कमनीय गृहस्थ व्यवहार के (पृष्ठे) आधार में (प्रथस्वतीम्) वहुत प्रसिद्ध प्रशंसा वाली (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विद्या में व्याप्त जिस (त्वा) तुझको (सादयतु) स्थापित करे सो तू (दिवम्) न्याय के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर (दिवम्) विद्यारूप सूर्य को (दृꣳह) दृढ़ कर (दिवम्) धर्म के प्रकाश को (मा, हिꣳसीः) मत नष्ट कर (सूर्यः) चराचर जगत् का स्वामी ईश्वर (मह्या) वड़े अच्छे (स्वस्त्या) सत्कार (शन्तमेन) अतिशय सुख और (छर्दिषा) सत्यासत्य के प्रकाश से (त्वा) तुझको (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे वह तेरा पति और तू दोनों (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (ध्रुवे) निश्चल (सीदतम्) स्थिर रहो ॥६४॥

भावार्थ—परमेश्वर आज्ञा करता है कि जैसे शिशिर ऋतु सुखदायी होती है वैसे स्त्री पुरुष परस्पर सन्तोषी हो सब उत्तम कर्मों का अनुष्ठान कर और दुष्ट कर्मों को छोड़ के परमेश्वर की उपासना से निरन्तर आनन्द किया करें ॥ ६४ ॥

सहस्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। विद्वान् देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि
साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष वा विदुषी स्त्रि! जिस कारण तू (सहस्रस्य) असंख्यात पदार्थों से युक्त जगत् के (प्रमा) प्रमाण यथार्थ ज्ञान के तुल्य (असि) है (सहस्रस्य) असंख्य विशेष पदार्थों के (प्रतिमा) तोलन साधन के तुल्य (असि) है (सहस्रस्य) असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा) तोलने की तुला के समान (असि) है (साहस्रः) असंख्य पदार्थ और विद्याओं से युक्त (असि) है इस कारण (सहस्राय) असंख्य प्रयोजनों के लिये (त्वा) तुझको परमात्मा व्यवहार में स्थित करे ॥ ६५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यहां पूर्वमन्त्र से 'परमेष्ठी, सादयतु' इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। तीन साधनों से मनुष्यों के व्यवहार सिद्ध होते हैं। एक तो यथार्थ विज्ञान, दूसरा पदार्थ तोलने के लिये तोल के साधन वाट और तीसरा तराजू आदि। यह शिशिर ऋतु का वर्णन पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

इस अध्याय में ऋतुविद्या का प्रतिपादन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पन्द्रहवां (१५) अध्याय पूर्ण हुआ ॥

॥ अथ षोडशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

नमस्त इत्यस्य परमेष्ठी कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सोलहवें अध्याय का आरम्भ करते हैं । इसके प्रथम मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है—

नम॑स्ते रुद्र म॒न्यव॑ उ॒तो त॒ इष॑वे॒ नमः॑ । बा॒हुभ्या॑मु॒त ते॒ नमः॑ ॥१॥

पदार्थ—हे (**रुद्र**) रुद्र शत्रुओं को रुलानेहारे राजन् (**ते**) तेरे (**मन्यवे**) क्रोधयुक्त वीरपुरुष के लिये (**नमः**) वज्र प्राप्त हो (**उतो**) और (**इषवे**) शत्रुओं को मारनेहारे (**ते**) तेरे लिये (**नमः**) अन्न प्राप्त हो (**उत**) और (**ते**) तेरे (**बाहुभ्याम्**) भुजाओं से (**नमः**) वज्र शत्रुओं को प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थ—जो राज्य किया चाहें वे हाथ पांव का बल, युद्ध की शिक्षा तथा शस्त्र और अस्त्रों का संग्रह करें ॥१॥

या त इत्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । आर्षी स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब शिक्षक और शिष्य का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है—

या ते॑ रुद्र शि॒वा त॒नूरघो॒राऽपा॑पकाशिनी ।
तया॑ नस्त॒न्वा॒ शन्त॑मया॒ गिरि॑शन्ता॒भि चा॑कशीहि ॥२॥

पदार्थ—हे (**गिरिशन्त**) मेघ वा सत्य उपदेश से सुख पहुंचानेवाले (**रुद्र**) दुष्टों को भय और श्रेष्ठों के लिये सुखकारी शिक्षक विद्वान् (**या**) जो (**ते**) आप की (**अघोरा**) घोर उपद्रव से रहित (**अपापकाशिनी**) सत्य धर्मों को प्रकाशित करनेहारी (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**तनूः**) देह वा विस्तृत उपदेशरूप नीति है (**तया**) उस (**शन्तमया**) अत्यन्त सुख प्राप्ति करानेवाली (**तन्वा**) देह वा विस्तृत उपदेश की नीति से (**नः**) हम लोगों को आप (**अभि, चाकशीहि**) सब ओर से शीघ्र शिक्षा कीजिये ॥२॥

भावार्थ—शिक्षक लोग शिष्यों के लिये धर्मयुक्त नीति की शिक्षा दें और पापों से पृथक् करके कल्याणरूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त करें ॥२॥

यामिषुमित्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये—

यामिषुं॑ गिरिशन्त॒ हस्ते॑ बि॒भर्ष्यस्त॑वे ।
शि॒वां गि॑रित्र॒ तां कु॑रु॒ मा हि॑ꣳसीः॒ पुरु॑षं॒ जग॑त् ॥३॥

पदार्थ—हे (**गिरिशन्त**) मेघ द्वारा सुख पहुँचानेवाले सेनापति जिस कारण तू (**अस्तवे**) फेंकने के लिये (**याम्**) जिस (**इषुम्**) बाण को (**हस्ते**) हाथ में (**बिभर्षि**) धारण करता है इसलिये (**ताम्**) उसको (**शिवाम्**) मङ्गलकारी (**कुरु**) कर । हे (**गिरित्र**) विद्या के उपदेश को वा मेघों की रक्षा करने हारे राजपुरुष तू (**पुरुषम्**) पुरुषार्थ युक्त मनुष्यादि (**जगत्**) संसार को (**मा**) मत (**हिंसीः**) मार ॥३॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि युद्ध विद्या को जान और शस्त्र अस्त्रों को धारण करके मनुष्यादि श्रेष्ठ प्राणियों को क्लेश न देवें वा न मारें किन्तु मङ्गलरूप आचरण से सब की रक्षा करें ॥३॥

शिवेनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब वैद्य का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है—

शि॒वेन॒ वच॑सा त्वा॒ गिरि॒शाच्छा॑ वदामसि ।
यथा॑ नः॒ सर्व॒मिज्जग॑दय॒क्ष्मꣳ सु॒मना॒ अस॑त् ॥४॥

पदार्थ—हे (**गिरिश**) पर्वत वा मेघों में सोनेवाले रोगनाशक वैद्यराज तू (**सुमनः**) प्रसन्नचित्त होकर आप (**यथा**) जैसे (**नः**) हमारा (**सर्वम्**) सब (**जगत्**) मनुष्यादि जङ्गम और स्थावर राज्य (**अयक्ष्मम्**) क्षयी आदि राजरोगों से रहित (**असत्**) हो वैसे (**इत्**) ही (**शिवेन**) कल्याणकारी (**वचसा**) वचन से (**त्वा**) तुझको हम लोग (**अच्छ वदामसि**) अच्छा कहते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष वैद्यकशास्त्र को पढ़ पर्वतादि स्थानों की ओषधियों वा जलों की परीक्षा कर और सब के कल्याण के लिये निष्कपटता से रोगों को निवृत्त करके प्रियवाणी से वर्त्ते उस वैद्य का सब लोग सत्कार करें ॥४॥

अध्यवोचदित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । एकरुद्रो देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अध्य॑वोचदधिव॒क्ता प्र॑थ॒मो दैव्यो॑ भि॒षक् । अहीँ॑श्च॒ सर्वा॑ञ्ज॒म्भय॒न्त्सर्वा॑श्च यातुधा॒न्यो॒ऽधरा॒चीः परा॑ सुव ॥५॥

पदार्थ—हे रुद्र रोगनाशक वैद्य जो (**प्रथमः**) मुख्य (**दैव्यः**) विद्वानों में प्रसिद्ध (**अधिवक्ता**) सब से उत्तम कक्षा के वैद्यक शास्त्र को पढ़ाने तथा (**भिषक्**) निदान आदि को जान के रोगों को निवृत्त करनेवाले आप (**सर्वान्**) सब (**अहीन्**) सर्प के तुल्य प्राणान्त करनेहारे रोगों को (**च**) निश्चय से (**जम्भयन्**) ओषधियों से हटाते हुए (**अध्यवोचत**) अधिक उपदेश करें सो आप जो (**सर्वाः**) सब (**अधराचीः**) नीच गति को पहुँचानेवाली (**यातुधान्यः**) रोगकारिणी ओषधि वा व्यभिचारिणी स्त्रियां उनको (**परा**) दूर (**सुव**) कीजिये ॥५॥

भावार्थ—राजादि सभासद् लोग सबके अधिष्ठाता मुख्य धर्मात्मा जिसने सब रोगों वा ओषधियों की परीक्षा ली हो उस वैद्य को राज्य और सेना में रख के बल और सुख के नाशक रोगों तथा व्यभिचारिणी स्त्री और पुरुषों को निवृत्त करावें ॥५॥

असावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

वही राजधर्म का विषय अगले मंत्र में कहा है—

अ॒सौ यस्ता॒म्रो अ॑रु॒ण उ॒त ब॒भ्रुः सु॑म॒ङ्गलः॑ । ये चै॑नꣳ रु॒द्रा अ॒भितो॑ दि॒क्षु श्रि॒ताः स॑हस्र॒शोऽवै॑षाꣳ॒ हेड॑ ईमहे ॥६॥

पदार्थ—हे प्रजास्थ मनुष्यो (**यः**) जो (**असौ**) वह (**ताम्रः**) ताम्रवत् दृढ़ाङ्गयुक्त (**हेडः**) शत्रुओं का अनादर करनेहारा (**अरुणः**) सुन्दर गौराङ्ग (**बभ्रुः**) किञ्चित् पीला वा धुमेलावर्ण युक्त (**उत**) और (**सुमङ्गलः**) सुन्दर कल्याणकारी राजा हो (**च**) और (**ये**) जो (**सहस्रशः**) हजारहा (**रुद्राः**) दुष्ट कर्म करनेवालों को रुलानेहारे (**अभितः**) चारों ओर (**दिक्षु**) पूर्वादि दिशाओं में (**एनम्**) इस राजा के (**श्रिताः**) आश्रय से वसते हों (**एषाम्**) इन वीरों का आश्रय लेके हम लोग (**अवेमहे**) विरुद्धाचरण की इच्छा नहीं करते हैं ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो जो राजा अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करता चन्द्रतुल्य श्रेष्ठों को सुख देता न्यायकारी शुभलक्षणयुक्त और इसके तुल्य भृत्य राज्य में सर्वत्र वसें विचरें वा समीप में रहें उनका सत्कार करके उनसे दुष्टों का अपमान तुम लोग कराया करो ॥६॥

असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अ॒सौ योऽव॒सर्प॑ति॒ नील॑ग्रीवो॒ विलो॑हितः । उ॒तैनं॑ गो॒पा अ॑दृश्र॒न्नदृ॑श्रन्नुदहा॒र्य्यः᳖ स दृ॒ष्टो मृ॑डयाति नः ॥७॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**असौ**) वह (**नीलग्रीवः**) नीलमणियों की माला पहिने (**विलोहितः**) विविध प्रकार के शुभ गुण कर्म और स्वभाव से युक्त श्रेष्ठ (**रुद्रः**) शत्रुओं का हिंसक सेनापति (**अवसर्पति**) दुष्टों से विरुद्ध चलता है । जिस (**एनम्**) इसको (**गोपाः**) रक्षक भृत्य (**अदृश्रन्**) देख (**उत**) और (**उदहार्य्यः**) जल लानेवाली कहारी स्त्रियां (**अदृश्रन्**) देखें (**सः**) वह सेनापति (**दृष्टः**) देखा हुआ (**नः**) हम सब धार्मिकों को (**मृडयाति**) सुखी करे ॥७॥

भावार्थ—जो दुष्टों का विरोधी श्रेष्ठों का प्रिय दर्शनीय सेनापति सब सेनाओं को प्रसन्न करे वह शत्रुओं को जीत सके ॥७॥

नमोऽस्त्वित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

नमो॑ऽस्तु॒ नील॑ग्रीवाय सहस्रा॒क्षाय॑ मी॒ढुषे॑ । अथो॒ ये अ॑स्य॒ सत्वा॑नो॒ऽहन्तेभ्यो॑ऽकरं॒ नमः॑ ॥८॥

पदार्थ—(**नीलग्रीवाय**) जिस का कण्ठ और स्वर शुद्ध हो उस (**सहस्राक्षाय**) हजारहों भृत्यों के कार्य देखनेवाले (**मीढुषे**) पराक्रमयुक्त सेनापति के लिये मेरा दिया (**नमः**) अन्न (**अस्तु**) प्राप्त हो (**अथो**) इसके अनन्तर (**ये**) जो (**अस्य**)

इस सेनापति के अधिकार में (सत्वानः) सत्व गुण तथा बल से युक्त पुरुष हैं (तेभ्यः) उनके लिये भी (अहम्) मैं (नमः) अन्नादि पदार्थों को (अकरम्) सिद्ध करूं ॥८॥

भावार्थ—सभापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि अन्नादि पदार्थों से जैसा सत्कार सेनापति का करें वैसा ही सेना के भृत्यों का भी करें ॥८॥

प्रमुञ्चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

प्रमु॑ञ्च॒ धन्व॑न॒स्त्वमु॒भयो॒रार्त्न्यो॒र्ज्याम् ।

याश्च॑ ते॒ हस्त॒ इष॑वः॒ परा॒ ता भ॑गवो वप ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (भगवः) ऐश्वर्ययुक्त सेनापते (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (याः) जो (इषवः) बाण हैं (ताः) उनको (धन्वनः) धनुष् के (उभयोः) दोनों (आर्त्न्योः) पूर्व-पर किनारों की (ज्याम्) प्रत्यञ्चा में जोड़ के शत्रुओं पर (त्वम्) तू (प्र, मुञ्च) बल के साथ छोड़ (च) और जो तेरे पर शत्रुओं ने बाण छोड़े हुए हों उनको (परा, वप) दूर कर ॥९॥

भावार्थ—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि धनष् से बाण चला कर शत्रुओं को जीतें और शत्रुओं के फेंके हुए बाणों का निवारण करें ॥९॥

विज्यन्धनुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्युनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

विज्य॒न्धनुः॑ कप॒र्दिनो॒ विश॑ल्यो॒ बाण॑वाँ२॥ उ॒त ।

अने॑शन्नस्य॒ या इष॑व आ॒भुर॑स्य निषङ्ग॒धिः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे धनुर्वेद को जानने हारे पुरुषो (अस्यः) इस (कपर्दिनः) प्रशंसित जटाजूट को धारण करने हारे सेनापति का (धनुः) धनुष (विज्यम्) प्रत्यञ्चा से रहित न होवे तथा यह (विशल्यः) बाण के अग्रभाग से रहित और (आभुः) आयुधों से खाली मत हो (उत) और (अस्य) इस अस्त्रशस्त्रों को धारण करनेवाले सेनापति का (निषङ्गधिः) बाणादि शस्त्रास्त्र कोष खाली मत हो तथा यह (बाणवान्) बहुत बाणों से युक्त होवे (याः) जो (अस्य) इस सेनापति के (इषवः) बाण (अनेशन्) नष्ट हो जावें वे इसको तुम लोग नवीन देओ ॥१०॥

भावार्थ—युद्ध की इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिये कि धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि को दृढ़ और बहुत से बाणों को धारण करें सेनापति आदि को चाहिये कि लड़ते हुए अपने भृत्यों को देख के यदि उनके पास बाणादि युद्ध के साधन न रहें तो फिर-फिर भी दिया करें ॥१०॥

या त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

सेनापति आदि किससे कैसे उपदेश कराने योग्य हैं यह विषय अगले मंत्र में कहा है—

या ते॑ हे॒तिर्मी॑ढुष्टम॒ हस्ते॑ ब॒भूव॑ ते॒ धनुः॑ ।

तया॒स्मान्वि॒श्वत॒स्त्वम॑य॒क्ष्मया॒ परि॑भुज ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त वीर्य के सेचक सेनापते (या) जो (ते) तेरी सेना है और जो (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (धनुः) धनुष् तथा (हेतिः) वज्र (बभूव) हो (तया) उस (अयक्ष्मया) पराजय आदि की पीड़ा निवृत्त करने हारी सेना से और उस धनुष् आदि से (अस्मान्) हम प्रजा और सेना के पुरुषों की (त्वम्) तू (विश्वतः) सब ओर से (परि) अच्छे प्रकार (भुज) पालना कर ॥११॥

भावार्थ—विद्या और अवस्था में वृद्ध उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि सेनापति को ऐसा उपदेश करें कि आप लोगों के अधिकार में जितना सेना आदि बल है उससे सब श्रेष्ठों की सब प्रकार रक्षा किया करें और दुष्टों को ताड़ना दिया करें ॥ ११ ॥

परि इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

राजा और प्रजा के पुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

परि॑ ते॒ धन्व॑नो हे॒तिर॒स्मान्वृ॑णक्तु वि॒श्वतः॑ ।

अथो॒ य इ॑षु॒धिस्तवा॒रे अ॒स्मन्निधे॑हि॒ तम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे सेनापति जो (ते) आपके (धन्वनः) धनुष् की (हेतिः) गति है उस से (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वतः) सब ओर से (आरे) दूर में आप (परिवृणक्तु) त्यागिये (अथो) इसके पश्चात् (यः) जो (तव) आपका (इषुधिः) बाण रखने का घर अर्थात् तर्कस है (तम्) उसको (अस्मत्) हमारे समीप से (नि, धेहि) निरन्तर धारण कीजिये ॥१२॥

भावार्थ—राज और प्रजाजनों को चाहिये कि युद्ध और शस्त्रों का अभ्यास करके शस्त्रादि सामग्री सदा अपने समीप रक्खें उन सामग्रियों से एक दूसरे की रक्षा और सुख की उन्नति करें ॥१२॥

अवतत्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒व॒तत्य॒ धनु॒ष्ट्वꣳ सह॑स्राक्ष॒ शते॑षुधे ।

नि॒शीर्य॑ श॒ल्याना॒म्मुखा॑ शि॒वो नः॑ सु॒मना॑ भव ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (सहस्राक्ष) असंख्य युद्ध के कार्यों को देखने हारे (शतेषुधे) शस्त्र अस्त्रों के असंख्य प्रकाश से युक्त सेना के अध्यक्ष पुरुष (त्वम्) तू (धनुः) धनुष् और (शल्यानाम्) शस्त्रों के (मुखा) अग्रभागों का (अवतत्य) विस्तार कर तथा उनसे शत्रुओं को (निशीर्य) अच्छे प्रकार मार के (नः) हमारे लिये (सुमना) प्रसन्नचित्त (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये ॥१३॥

भावार्थ—राजपुरुष साम दाम दण्ड और भेदादि राजनीति के अवयवों के कृत्यों को सब ओर से जान पूर्ण शस्त्र अस्त्रों का संचय कर और उनको तीक्ष्ण करके शत्रुओं में कठोर चित्त दुःखदायी और अपनी प्रजाओं में कोमलचित्त सुख देनेवाले निरन्तर हों ॥१३॥

नमस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

नम॑स्त॒ आयु॑धा॒याना॑तताय धृ॒ष्णवे॑ ।

उ॒भाभ्या॑मु॒त ते॒ नमो॑ बा॒हुभ्या॒न्तव॒ धन्व॑ने ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे सभापति (आयुधाय) युद्ध करने (अनातताय) अपने आशय को गुप्त संकोच में रखने और (धृष्णवे) प्रगल्भता को प्राप्त होनेवाले (ते) आपके लिये (नमः) अन्न प्राप्त हो (उत) और (ते) भोजन करने हारे आपके लिये अन्न देता हूँ (तव) आपके (उभाभ्याम्) दोनों (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम से (धन्वने) योद्धा पुरुष के लिये (नमः) अन्न को नियुक्त करूं ॥१४॥

भावार्थ—सेनापति आदि राज्याधिकारियों को चाहिये कि अध्यक्ष और योद्धा दोनों को शस्त्र देके शत्रुओं से निःशङ्क अच्छे प्रकार युद्ध करावें ॥१४॥

मा नो महान्तमित्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या नहीं करना चाहिये—

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कम्मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम् । मा नो॑ वधीः पि॒तर॒म्मोत मा॒तर॒म्मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॒ रुद्र रीरिषः ॥ १५॥

पदार्थ—हे (रुद्र) युद्ध की सेना के अधिकारी विद्वन् पुरुष आप (नः) हमारे (महान्तम्) उत्तम गुणों से युक्त पूज्य पुरुष को (मा) मत (उत) और (अर्भकम्) छोटे क्षुद्र पुरुष को (मा) मत (नः) हमारे (उक्षन्तम्) गर्भाधान करने हारे को (मा) मत (उत) और (नः) हमारे (उक्षितम्) गर्भ को (मा) मत (नः) हमारे (पितरम्) पालन करने हारे पिता को (मा) मत (उत) और (नः) हमारी (मातरम्) मान्य करने हारी माता को भी (मा) मत (वधीः) मारिये । और (नः) हमारे (प्रियाः) स्त्री आदि के प्यारे (तन्वः) शरीरों को (मा) मत (रीरिषः) मारिये ॥१५॥

भावार्थ—योद्धा लोगों को चाहिये कि युद्ध के समय वृद्धों, बालकों, युद्ध से हटनेवालों ज्वानों, गर्भों, योद्धाओं के माता पितरों, सब स्त्रियों, युद्ध के देखने वा प्रबन्ध करनेवालों और दूतों को न मारें किन्तु शत्रुओं के सम्बन्धी मनुष्यों को सदा वश में रक्खें ॥१५॥

मा न स्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी जगतीच्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

मा न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॒ आयु॑षि॒ मा नो॒ गोषु॒ मा नो॒ अश्वे॑षु रीरिषः । मा नो॑ वी॒रान्रु॑द्र भा॒मिनो॑ वधीर्ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मित्त्वा॑ हवामहे ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (रुद्र) सेनापति तू (नः) हमारे (तोके) तत्काल उत्पन्न हुए सन्तान को (मा) मत (नः) हमारे (तनये) पांच वर्ष से ऊपर अवस्था के बालक को (मा) मत (नः) हमारी (आयुषि) अवस्था को (मा) मत (नः) हमारे (गोषु) गौ भेड़ बकरी आदि को (मा) मत (नः) हमारे और (अश्वेषु) घोड़े हाथी और ऊंट आदि को (मा) मत (रीरिषः) मार और (नः) हमारे (भामिनः) क्रोध को प्राप्त हुए (वीरान्) शूरवीरों को (मा) मत (वधीः) मार इससे (हविष्मन्तः) बहुतसे देने लेने योग्य वस्तुओं से युक्त हम लोग (सदम्) न्याय में स्थिर (त्वा) तुझको (इत्) ही (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥१६॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि अपने वा प्रजा के बालकों कुमार और गो घोड़े आदि वीर उपकारी जीवों की कभी हत्या न करें और बाल्यावस्था में विवाह कर व्यभिचार से अवस्था की हानि भी न करें गो आदि पशु दूध आदि पदार्थों को देने से जो सब का उपकार करते हैं उससे उन की सदैव वृद्धि करें ॥१६॥

नमो हिरण्यबाहव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

राज प्रजा के पुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः । शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥१७॥

पदार्थ—हे शत्रुताड़क सेनाधीश (**हिरण्यबाहवे**) ज्योति के समान तीव्र तेज युक्त भुजावाले (**सेनान्ये**) सेना के शिक्षक तेरे लिये (**नमः**) वज्र प्राप्त हो (**च**) और (**दिशाम्**) सब दिशाओं के राज्य भागों के (**पतये**) रक्षक तेरे लिये (**नमः**) अन्नादि पदार्थ मिले (**हरिकेशेभ्यः**) जिन में हरणशील सूर्य की किरण प्राप्त हों ऐसे (**वृक्षेभ्यः**) आम्रादि वृक्षों को काटने के लिये (**नमः**) वज्रादि शस्त्रों को ग्रहण कर (**पशूनाम्**) गो आदि पशुओं के (**पतये**) रक्षक तेरे लिये (**नमः**) सत्कार प्राप्त हो (**शष्पिञ्जराय**) विषयादि के बन्धनों से पृथक् (**त्विषीमते**) बहुत न्याय के प्रकाशों से युक्त तेरे लिये (**नमः**) नमस्कार और अन्न हो (**पथीनाम्**) मार्ग में चलने हारों के (**पतये**) रक्षक तेरे लिये (**नमः**) आदर प्राप्त हो (**हरिकेशाय**) हरे केशों वाले (**उपवीतिने**) सुन्दर यज्ञोपवीत से युक्त तेरे लिये (**नमः**) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों और (**पुष्टानाम्**) नीरोग पुरुषों की (**पतये**) रक्षा करने हारे के लिये (**नमः**) नमस्कार प्राप्त हो ॥१७॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठों के सत्कार भूख से पीड़ितों को अन्न देने चक्रवर्त्तिराज्य की शिक्षा पशुओं की रक्षा जाने आने वालों को डाकू और चोर आदि से बचाने यज्ञोपवीत के धारण करने और शरीरादि की पुष्टि के साथ प्रसन्न रहें ॥१७॥

नमो बभ्लुशायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः ॥ १८ ॥

पदार्थ—राजपुरुष आदि मनुष्यों को चाहिये कि (**बभ्लुशाय**) राज्यधारक पुरुषों में सोते हुये (**व्याधिने**) रोगी के लिये (**नमः**) अन्न देवें (**अन्नानाम्**) गेहूँ आदि अन्न के (**पतये**) रक्षक का (**नमः**) सत्कार करें (**भवस्य**) संसार की (**हेत्यै**) वृद्धि के लिये (**नमः**) अन्न देवें (**जगताम्**) मनुष्यादि प्राणियों के (**पतये**) स्वामी का (**नमः**) सत्कार करें (**रुद्राय**) शत्रुओं को रुलाने और (**आततायिने**) अच्छे प्रकार विस्तृत शत्रुसेना को प्राप्त होने वाले को (**नमः**) अन्न देवें (**क्षेत्राणाम्**) धान्यादि युक्त खेतों के (**पतये**) रक्षक को (**नमः**) अन्न देवें (**सूताय**) क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न हुये प्रेरक वीर पुरुष और (**अहन्त्यै**) किसी को न मारने हारी राजपत्नी के लिये (**नमः**) अन्न देवें और (**वनानाम्**) जङ्गलों की (**पतये**) रक्षा करने हारे पुरुष को (**नमः**) अन्नादि पदार्थ देवें ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो अन्नादि से सब प्राणियों का सत्कार करते हैं वे जगत् में प्रशंसित होते हैं ॥१८॥

नमो रोहितायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥ १९ ॥

पदार्थ—राज और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि (**रोहिताय**) मूलों की वृद्धि के कर्त्ता और (**स्थपतये**) स्थानों के स्वामी रक्षक सेनापति के लिये (**नमः**) अन्न (**वृक्षाणाम्**) आम्रादि वृक्षों के (**पतये**) अधिष्ठाता को (**नमः**) अन्न (**भुवन्तये**) आचारवान् (**वारिवस्कृताय**) सेवन करने हारे भृत्य को (**नमः**) अन्न और (**ओषधीनाम्**) सोमलतादि ओषधियों के (**पतये**) रक्षक वैद्य को (**नमः**) अन्न देवें (**मन्त्रिणे**) विचार करनेहारे राजमन्त्री और (**वाणिजाय**) वैश्यों के व्यवहार में कुशल पुरुष का (**नमः**) सत्कार करें (**कक्षाणाम्**) घरों में रहने वालों के (**पतये**) रक्षक को (**नमः**) अन्न और (**उच्चैर्घोषाय**) ऊंचे स्वर से बोलने तथा (**आक्रन्दयते**) दुष्टों को रुलाने वाले न्यायाधीश का (**नमः**) सत्कार और (**पत्तीनाम्**) सेना के अवयवों की (**पतये**) रक्षा करने हारे पुरुष का (**नमः**) सत्कार करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि धन आदि के रक्षक मनुष्यों को अन्नादि पदार्थ देके वृक्षों और ओषधि आदि पदार्थों की उन्नति करें ॥ १९ ॥

नमः कृत्स्नायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः ॥ २० ॥

पदार्थ—मनुष्य लोग (**कृत्स्नायतया**) सम्पूर्ण प्राप्ति के अर्थ (**धावते**) इधर उधर जाने आने वाले को (**नमः**) अन्न देवें (**सत्वनाम्**) प्राप्त पदार्थों की (**पतये**) रक्षा करने हारे का (**नमः**) सत्कार करें (**सहमानाय**) बलयुक्त और (**निव्याधिने**) शत्रुओं को निरन्तर ताड़ना देने हारे पुरुष को (**नमः**) अन्न देवें (**आव्याधिनीनाम्**) अच्छे प्रकार शत्रुओं की सेनाओं को मारने हारी अपनी सेनाओं के (**पतये**) रक्षक सेनापति का (**नमः**) आदर करें (**निषङ्गिणे**) बहुत से अच्छे बाण तलवार भुशुण्डी शतघ्नी अर्थात् बन्दूक तोप और तोमर आदि शस्त्र जिसके हों उसको (**नमः**) अन्न देवें (**निचेरवे**) निरन्तर पुरुषार्थ के साथ विचरने तथा (**परिचराय**) धर्म, विद्या, माता, स्वामी और मित्रादि की सब प्रकार सेवा करने वाले (**ककुभाय**) प्रसन्नमूर्ति पुरुष को (**नमः**) सत्कार करें (**स्तेनानाम्**) अन्याय से परधन लेने हारे प्राणियों को (**पतये**) जो दण्ड आदि से शुष्क करता हो उस को (**नमः**) वज्र से मारें (**अरण्यानाम्**) वन जङ्गलों के (**पतये**) रक्षक पुरुष को (**नमः**) अन्नादि पदार्थ देवें ॥२०॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि पुरुषार्थियों का उत्साह के लिये सत्कार, प्राणियों के ऊपर दया, अच्छी शिक्षित सेना को रखना, चोर आदि को दण्ड, सेवकों की रक्षा और वनों को नहीं काटना इस सब को कर राज्य की वृद्धि करें ॥२०॥

नमो वञ्चत इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥ २१ ॥

पदार्थ—राजपुरुष (**वञ्चते**) छल से दूसरों के पदार्थों को हरनेवाले (**परिवञ्चते**) सब प्रकार कपट के साथ वर्त्तमान पुरुष को (**नमः**) वज्र का प्रहार और (**स्तायूनाम्**) चोरी से जीने वालों के (**पतये**) स्वामी को (**नमः**) वज्र से मारें (**निषङ्गिणे**) राज्यरक्षा के लिये निरन्तर उद्यत (**इषुधिमते**) प्रशंसित बाणों को धारण करने हारे को (**नमः**) अन्न देवें (**तस्कराणाम्**) चोरी करने हारों को (**पतये**) उस कर्म में चलाने हारे को (**नमः**) वज्र और (**सृकायिभ्यः**) वज्र से सज्जनों को पीड़ित करने को प्राप्त होने और (**जिघांसद्भ्यः**) मारने की इच्छा वालों को (**नमः**) वज्र से मारें (**मुष्णताम्**) चोरी करते हुओं को (**पतये**) दण्ड प्रहार से पृथिवी में गिराने हारे का (**नमः**) सत्कार करें (**असिमद्भ्यः**) प्रशंसित खड्गों के सहित (**नक्तम्**) रात्रि में (**चरद्भ्यः**) घूमने वाले लुटेरों को (**नमः**) शस्त्रों से मारें और (**विकृन्तानाम्**) विविध उपायों से गांठ काट से परपदार्थों को लेने हारे गठिकटों को (**पतये**) मार के गिराने हारे का (**नमः**) सत्कार करें ॥२१॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि कपट व्यवहार से छलने और दिन या रात में अनर्थ करनेहारों को रोक के धर्मात्माओं का निरन्तर पालन किया करें ॥२१॥

नम उष्णीषिण इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ॥ २२ ॥

पदार्थ—हम राजा और प्रजा के पुरुष (**उष्णीषिणे**) प्रशंसित पगड़ी को धारण करनेवाले ग्रामपति और (**गिरिचराय**) पर्वतों में विचरनेवाले जंगली पुरुष का (**नमः**) सत्कार और (**कुलुञ्चानाम्**) बुरे स्वभाव से दूसरों के पदार्थ खोसने वालों को (**पतये**) गिरानेहारे का (**नमः**) सत्कार करते (**इषुमद्भ्यः**) बहुत बाणोंवाले को (**नमः**) अन्न (**च**) तथा (**धन्वायिभ्यः**) धनुषों को प्राप्त होने वाले (**वः**) तुम लोगों के लिये (**नमः**) अन्न (**आतन्वानेभ्यः**) अच्छे प्रकार सुख के फैलाने हारों का (**नमः**) सत्कार (**च**) और (**प्रतिदधानेभ्यः**) शत्रुओं के प्रति शस्त्र धारण करनेहारे (**वः**) तुमको (**नमः**) सत्कार प्राप्त (**आयच्छद्भ्यः**) दुष्टों को बुरे कर्मों से रोकने वालों को (**नमः**) अन्न देते (**च**) और (**अस्यद्भ्यः**) दुष्टों पर शस्त्रादि छोड़नेवाले (**वः**) तुम्हारे लिये (**नमः**) सत्कार करते हैं ॥२२॥

भावार्थ—राज और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि प्रधान पुरुष आदि का वस्त्र और अन्नादि के दान से सत्कार करें ॥ २२ ॥

नमो विसृजद्भ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदतिजगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

नमो॑ विसृजद्भ्यो॑ विद्ध्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ स्वपद्भ्यो॑ जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ शया॑नेभ्य॒ आसी॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒स्तिष्ठ॑द्भ्यो॒ धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम ऐसा सबको जनाओ कि हम लोग (विसृजद्भ्यः) शत्रुओं पर शस्त्रादि छोड़ने वालों को (नमः) अन्नादि पदार्थ (च) और (विद्धयद्भ्यः) शस्त्रों से शत्रुओं को मारते हुए (वः) तुमको (नमः) अन्न (स्वपद्भ्यः) सोते हुओं के लिये (नमः) वज्र (च) और (जाग्रद्भ्यः) जागते हुए (वः) तुमको (नमः) अन्न (शयानेभ्यः) निद्रालुओं को (नमः) अन्न (च) और (आसीनेभ्यः) आसन पर बैठे हुए (वः) तुम को (नमः) अन्न (तिष्ठद्भ्यः) खड़े हुओं को (नमः) अन्न (च) और (धावद्भ्यः) शीघ्र चलते हुए (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्न देवेंगे ॥ २३ ॥

भावार्थ—गृहस्थों को चाहिये कि करुणामय वचन बोल और अन्नादि पदार्थ देके सब प्राणियों को सुखी करें ॥ २३ ॥

नमः सभाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ आव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ उग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २४ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को सब के प्रति ऐसे कहना चाहिये कि हम लोग (सभाभ्यः) न्याय आदि के प्रकाश से युक्त स्त्रियों का (नमः) सत्कार (च) और (सभापतिभ्यः) सभाओं के रक्षक (वः) तुम राजाओं का (नमः) सत्कार करें (अश्वेभ्यः) घोड़ों को (नमः) अन्न (च) और (अश्वपतिभ्यः) घोड़ों के रक्षक (वः) तुम को (नमः) अन्न तथा (आव्याधिनीभ्यः) शत्रुओं की सेनाओं को मारनेहारी अपनी सेनाओं के लिये (नमः) अन्न देवें (च) और (विविध्यन्तीभ्यः) शत्रुओं के वीरों को मारती हुई (वः) तुम स्त्रियों का (नमः) सत्कार करें (उगणाभ्यः) विविध तर्कों वाली स्त्रियों को (नमः) अन्न (च) और (तृंहतीभ्यः) युद्ध में मारती हुई (वः) तुम स्त्रियों के लिये (नमः) अन्न देवें तथा यथायोग्य सत्कार किया करें ॥ २४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सभा और सभापतियों से ही राज्य की व्यवस्था करें । कभी एक राजा की आधीनता से स्थिर न हों क्योंकि एक पुरुष से बहुतों के हिताहित का विचार कभी नहीं हो सकता इससे ॥ २४ ॥

नमो गणेभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिक् शक्वरी
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

नमो॑ ग॒णेभ्यो॑ ग॒णप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ व्राते॑भ्यो॒ व्रात॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ गृत्से॑भ्यो॒ गृत्स॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ विरू॑पेभ्यो वि॒श्वरू॑पेभ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (गणेभ्यः) सेवकों को (नमः) अन्न (च) और (गणपतिभ्यः) सेवकों के रक्षक (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्न देवें (व्रातेभ्यः) मनुष्यों का (नमः) सत्कार (च) और (व्रातपतिभ्यः) मनुष्यों के रक्षक (वः) तुम्हारा (नमः) सत्कार (गृत्सेभ्यः) पदार्थों के गुणों को प्रकट करनेवाले विद्वानों का (नमः) सत्कार (च) तथा (गृत्सपतिभ्यः) बुद्धिमानों के रक्षक (वः) तुम लोगों का (नमः) सत्कार (विरूपेभ्यः) विविधरूप वालों का (नमः) सत्कार (च) और (विश्वरूपेभ्यः) सब रूपों से युक्त (वः) तुमलोगों का (नमः) सत्कार करें वैसे तुम लोग भी देओ सत्कार करो ॥ २५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार विद्वानों का सङ्ग समग्र शोभा और विद्याओं को धारण करके सन्तुष्ट हों ॥ २५ ॥

नमः सेनाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिगतिजगती
छन्दः । निषादः स्वरः ॥

नमः॒ सेना॑भ्यः सेना॒निभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ र॒थिभ्यो॑ अर॒थेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमः॑ क्ष॒त्तृभ्यः॑ संग्रही॒तृभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ म॒हद्भ्यो॑ऽअर्भ॒केभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुषो जैसे हम लोग (सेनाभ्यः) शत्रुओं को बांधनेहारे सेनास्थ पुरुषों का (नमः) सत्कार करते (च) और (वः) तुम (सेनानिभ्यः) सेना के नायक प्रधान पुरुषों को (नमः) अन्न देते हैं (रथिभ्यः) प्रशंसित रथोंवाले पुरुषों का (नमः) सत्कार (च) और (वः) तुम (अरथेभ्यः) रथों से पृथक् पैदल चलने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं (क्षत्तृभ्यः) क्षत्रिय की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुए वर्णसंकर के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ देते (च) और (वः) तुम (संग्रहीतृभ्यः) अच्छे प्रकार युद्ध की सामग्री को ग्रहण करने हारों का (नमः) सत्कार करते हैं (महद्भ्यः) विद्या और अवस्था से वृद्ध पूजनीय महाशयों को (नमः) अच्छा पकाया हुआ अन्नादि पदार्थ देते (च) और (वः) तुम (अर्भकेभ्यः) क्षुद्राशय शिक्षा के योग्य विद्यार्थियों का (नमः) निरन्तर सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी दिया किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि सब भृत्यों को सत्कार और शिक्षापूर्वक अन्नादि पदार्थों से उन्नति देके धर्म से राज्य का पालन करें ॥ २६ ॥

नमस्तक्षभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृच्छक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोगों को किन का सत्कार करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नम॒स्तक्ष॑भ्यो रथका॒रेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमः॑ कुला॒लेभ्यः॑ क॒र्मारे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ निषा॒देभ्यः॑ पुञ्जि॒ष्ठेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमः॑ श्व॒निभ्यो॑ मृग॒युभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे राजा आदि हम लोग (तक्षभ्यः) पदार्थों को सूक्ष्म क्रिया से बनानेहारे तुमको (नमः) अन्न देते (च) और (रथकारेभ्यः) बहुत से विमानादि यानों को बनानेहारे (वः) तुम लोगों का (नमः) परिश्रमादि का धन देके सत्कार करते हैं (कुलालेभ्यः) प्रशंसित मिट्टी के पात्र बनानेवालों को (नमः) अन्नादि पदार्थ देते (च) और (कर्मारेभ्यः) खड्ग बन्दूक और तोप आदि शस्त्र बनानेवाले (वः) तुम लोगों का (नमः) सत्कार करते हैं (निषादेभ्यः) वन और पर्वतादि में रह कर दुष्ट जीवों को ताड़ना देनेवाले तुम को (नमः) अन्नादि देते (च) और (पुञ्जिष्ठेभ्यः) श्वेतादि वर्णों वा भाषाओं में प्रवीण (वः) तुम्हारा (नमः) सत्कार करते हैं (श्वनिभ्यः) कुत्तों को शिक्षा करनेहारे तुमको (नमः) अन्नादि देते (च) और (मृगयुभ्यः) अपने आत्मा से वन के हरिण आदि पशुओं को चाहने वाले तुम लोगों का (नमः) सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जो पदार्थ विद्या को जान के अपूर्व कारीगरी युक्त पदार्थों को बनावें उनको पारितोषिक आदि देके प्रसन्न करें और जो कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से रक्षा कर तथा अच्छी शिक्षा देके उपयोग में लावें उनको सुख प्राप्त करावें ॥ २७ ॥

नमः श्वभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

मनुष्य लोग किन से कैसा उपकार लेवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमः॒ श्वभ्यः॒ श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नमः॑ श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम परीक्षक लोग (श्वभ्यः) कुत्तों को (नमः) अन्न देवें (च) और (वः) तुम (श्वपतिभ्यः) कुत्तों को पालने वालों को (नमः) अन्न देवें तथा सत्कार करें (च) तथा (भवाय) जो शुभगुणों में प्रसिद्ध हो उस जन का (नमः) सत्कार (च) और (रुद्राय) दुष्टों के रुलानेहारे वीर का सत्कार (च) तथा (शर्वाय) दुष्टों को मारनेवालों को (नमः) अन्नादि देते (च) और (पशुपतये) गौ आदि पशुओं के पालक को अन्न (च) और (नीलग्रीवाय) सुन्दर वर्ण वाले कण्ठ से युक्त (च) और (शितिकण्ठाय) तीक्ष्ण वा काले कण्ठ वाले को (नमः) अन्न देते और सत्कार करते हैं वैसे तुम भी दिया किया करो ॥ २८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से बढ़ा के उनसे उपकार लेवें और पशुओं के रक्षकों का सत्कार भी करें ॥ २८ ॥

नमः कपर्दिन इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को किनका सत्कार करना चाहिये—

नमः॑ कप॒र्दिने॑ च॒ व्यु॑प्तकेशाय च॒ नमः॑ सहस्रा॒क्षाय॑ च श॒तध॑न्वने च॒ नमो॑ गिरिश॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च ॥ २९ ॥

पदार्थ—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि (कपर्दिने) जटाधारी ब्रह्मचारी (च) और (व्युप्तकेशाय) समस्त केश मुड़ानेहारे संन्यासी (च) और संन्यास चाहते हुए को (नमः) अन्न देवें (च) तथा (सहस्राक्षाय) असंख्य शास्त्र के विषयादि को देखने वाले विद्वान् ब्राह्मण का (च) और (शतधन्वने) धनुष् आदि असंख्य शस्त्र विद्याओं के शिक्षक क्षत्रिय का (नमः) सत्कार करें (गिरिशयाय) पर्वतों के आश्रय से सोने हारे वानप्रस्थ का (च) और (शिपिविष्टाय) पशुओं के पालक वैश्य आदि (च) और शूद्र का (नमः) सत्कार करें (मीढुष्टमाय) वृक्ष बगीचा और खेत आदि को अच्छे प्रकार सींचने वाले किसान लोगों (च) और माली आदि को (इषुमते) प्रशंसित बाणों वाले वीर पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें और सत्कार करें ॥ २९ ॥

भावार्थ—गृहस्थों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कारपूर्वक विद्यादान करें और करावें। तथा संन्यासी आदि की सेवा करके विशेष विज्ञान का ग्रहण किया करें ॥ २९ ॥

नमो ह्रस्वायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

नमो॑ ह्र॒स्वाय॑ च वाम॒नाय॑ च॒ नमो॑ बृह॒ते च॒ वर्षी॑यसे च॒ नमो॑ वृ॒द्धाय॑ च स॒वृधे॑ च॒ नमोऽग्र्या॑य च प्रथ॒माय॑ च ॥३०॥

पदार्थ—जो गृहस्थ लोग (ह्रस्वाय) बालक (च) और (वामनाय) प्रशंसित ज्ञानी (च) तथा मध्यम विद्वान् को (नमः) अन्न देते हैं (बृहते) बड़े (च) और (वर्षीयसे) विद्या में प्रतिवृद्ध (च) तथा विद्यार्थी का (नमः) सत्कार (वृद्धाय) अवस्था में अधिक (च) और (सवृधे) अपने समानों के साथ बढ़ने वाले (च) तथा सबके मित्र का (नमः) सत्कार (च) और (अग्र्याय) सत्कर्म करने में सबसे पहिले उद्यत होनेवाले (च) तथा (प्रथमाय) प्रसिद्ध पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—गृहस्थ मनुष्यों को उचित है कि अन्नादि पदार्थों से बालक आदि का सत्कार करके अच्छे व्यवहार की उन्नति करें ॥ ३० ॥

नम आशवे इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब उद्योग कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नम॑ आ॒शवे॑ चाजि॒राय॑ च॒ नमः॒ शीघ्र्या॑य च॒ शीभ्या॑य च॒ नम॑ ऊ॒र्म्या॑य चावस्व॒न्या॑य च॒ नमो॑ नादे॒याय॑ च॒ द्वीप्या॑य च ॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो तुम लोग (आशवे) वायु के तुल्य मार्ग में शीघ्रगामी (च) और (अजिराय) असवारों को फेंकने वाले घोड़े (च) तथा हाथी आदि को (नमः) अन्न (शीघ्र्याय) शीघ्र चलने में उत्तम (च) और (शीभ्याय) शीघ्रता करनेहारों में प्रसिद्ध (च) तथा मध्यस्थ जन को (नमः) अन्न (ऊर्म्याय) जल तरङ्गों में वायु के समान वर्त्तमान (च) और (अवस्वन्याय) अनुत्तम शब्दों में प्रसिद्ध होने वाले के लिये (च) तथा दूर से सुनने हारे को (नमः) अन्न (नादेयाय) नदी में रहने (च) और (द्वीप्याय) जल के बीच टापू में रहने (च) तथा उनके सम्बन्धियों को (नमः) अन्न देते रहो तो आप लोगों को सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त हों ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो क्रियाकौशल से बनाये विमानादि यानों और घोड़ों से शीघ्र चलते हैं वे किस २ द्वीप वा देश को न जाके राज्य के लिये धन को नहीं प्राप्त होते किन्तु सर्वत्र जा आके सबको प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

नमो ज्येष्ठायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर कैसे सत्कार करने वाले हों यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

नमो॑ ज्ये॒ष्ठाय॑ च कनि॒ष्ठाय॑ च॒ नमः॑ पूर्व॒जाय॑ चापर॒जाय॑ च॒ नमो॑ मध्य॒माय॑ चापग॒ल्भाय॑ च॒ नमो॑ जघ॒न्या॑य च बु॒ध्न्या॑य च ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम लोग (ज्येष्ठाय) अत्यन्त वृद्धों (च) और (कनिष्ठाय) अतिबालकों का (नमः) सत्कार और अन्न (च) तथा (पूर्वजाय) ज्येष्ठभ्राता वा ब्राह्मण (च) और (अपरजाय) छोटे भाई वा नीच का (च) भी (नमः) सत्कार वा अन्न (मध्यमाय) बन्धु, क्षत्रिय वा वैश्य (च) और (अपगल्भाय) ढीठपन छोड़े हुये सरल स्वभाव वाले (च) इन सब का (नमः) सत्कार आदि(च) (जघन्याय) नीच कर्म कर्त्ता शूद्र वा म्लेच्छ (च) तथा (बुध्न्याय) अन्तरिक्ष में हुए मेघ के तुल्य वर्त्तमान दाता पुरुष का (नमः) अन्नादि से सत्कार करो ॥३२॥

भावार्थ—परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब (नमस्ते) इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों बड़े छोटों नीच उत्तमों उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणों ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें सब लोग इसी वेदोक्त प्रमाण से सर्वत्र शिष्टाचार में इसी वाक्य का प्रयोग करके परस्पर एक दूसरे का सत्कार करने से प्रसन्न होवें ॥३२॥

नमः सोभ्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

नमः॒ सोभ्या॑य च प्रति स॒र्या॑य च॒ नमो॒ याम्या॑य च॒ क्षेम्या॑य च॒ नमः॒ श्लोक्या॑य चावसा॒न्या॑य च॒ नमः॑ उर्व॒र्या॑य च॒ खल्या॑य च ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (सोभ्याय) ऐश्वर्ययुक्तों में प्रसिद्ध (च) और (प्रतिसर्याय) धर्मात्माओं में उत्पन्न हुए (च) तथा धनी धर्मात्माओं को (नमः) अन्न दे (याम्याय) न्यायकारियों में उत्तम (च) और (क्षेम्याय) रक्षा करने वालों में चतुर (च) और न्यायाधीशादि को (नमः) अन्न दे और (श्लोक्याय) वेदवाणी में प्रवीण (च) और (अवसान्याय) कार्यसमाप्ति व्यवहार में कुशल (च) तथा आरम्भ करने में उत्तम पुरुष का (नमः) सत्कार (उर्वर्याय) महान् पुरुषों के स्वामी (च) और (खल्याय) अच्छे अन्नादि पदार्थों के संचय करने में प्रवीण (च), और व्यय करने में विचक्षण पुरुष का (नमः) सत्कार करके इन सब को आप लोग आनन्दित करो ॥३३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में अनेक चकारों से और भी उपयोगी अर्थ लेना और उन का सत्कार करना चाहिये प्रजास्थ पुरुष न्यायाधीशों, न्यायाधीश प्रजास्थों का सत्कार पति आदि स्त्री आदि की और स्त्री आदि पति पुरुषों की प्रसन्नता करें ॥३३॥

नमो वन्यायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमो॒ वन्या॑य च॒ कक्ष्या॑य च॒ नमः॑ श्र॒वाय॑ च प्रतिश्र॒वाय॑ च॒ नम॑ आ॒शुषे॑णाय चा॒शुर॑थाय च॒ नमः॒ शूरा॑य चावभे॒दिने॑ च ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो लोग (वन्याय) जङ्गल में रहने (च) और (कक्ष्याय) वन के समीप कक्षाओं में (च) तथा गुफा आदि में रहने वालों को (नमः) अन्न देवें (श्रवाय) सुनने वा सुनाने के हेतु (च) और (प्रतिश्रवाय) प्रतिज्ञा करने (च) तथा प्रतिज्ञा को पूरी करने हारे का (नमः) सत्कार करें। (आशुषेणाय) शीघ्रगामिनी सेना वाले (च) और (आशुरथाय) शीघ्र चलने हारे रथों के स्वामी (च) तथा सारथि आदि को (नमः) अन्न देवें (शूराय) शत्रुओं को मारने (च) और (अवभेदिने) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले (च) तथा दूतादि का (नमः) सत्कार करें उन का सर्वत्र विजय होवे ॥३४॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि वन तथा कक्षाओं में रहने वाले अध्येता और अध्यापकों, बलिष्ठ सेनाओं, शीघ्र चलने हारे यानों में बैठने वाले वीरों और दूतों को अन्न धनादि से सत्कारपूर्वक उत्साह देके सदा विजय को प्राप्त हों ॥३४॥

नमो बिल्मिन इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

योद्धाओं की रक्षा कैसे करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

नमो॑ बि॒ल्मिने॑ च कव॒चिने॑ च॒ नमो॑ व॒र्मिणे॑ च वरू॒थिने॑ च॒ नमः॑ श्रु॒ताय॑ च श्रुतसे॒नाय॑ च॒ नमो॑ दुन्दु॒भ्या॑य चाहन॒न्या॑य च ॥३५॥

पदार्थ—हे राजन् और प्रजा के अध्यक्ष पुरुषो आप लोग (बिल्मिने) प्रशंसित धारण वा पोषण करने (च) और (कवचिने) शरीर के रक्षक कवच को धारण करने (च) तथा उन के सहायकारियों का (नमः) सत्कार करें (वर्मिणे) शरीर रक्षा के बहुत साधनों से युक्त (च) और (वरूथिने) प्रशंसित घरों वाले (च) तथा घर आदि के रक्षकों को (नमः) अन्नादि देवें (श्रुताय) शुभगुणों में प्रख्यात (च) और (श्रुतसेनाय) प्रख्यात सेना वाले (च) तथा सेनास्थों का (नमः) सत्कार (च) और (दुन्दुभ्याय) बाजे बजाने में चतुर बजन्तरी (च) तथा (आहनन्याय) वीरों को युद्ध में उत्साह बढ़ने के बाजे बजाने में कुशल पुरुष का (नमः) सत्कार कीजिये जिससे तुम्हारा पराजय कभी न हो ॥३५॥

भावार्थ—राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि योद्धा लोगों की सब प्रकार रक्षा, सब के सुखदायी घर, खाने पीने के योग्य पदार्थ, प्रशंसित पुरुषों का संग और अत्युत्तम बाजे आदि देके अपने अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें ॥३५॥

नमो धृष्णव इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

नमो॑ धृ॒ष्णवे॑ च प्रमृ॒शाय॑ च॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ चेषुधि॒मते॑ च॒ नम॑स्तीक्ष्णेषवे चायु॒धिने॑ च॒ नमः॑ स्वायु॒धाय॑ च सु॒धन्व॑ने च ॥३६॥

पदार्थ—जो राज और प्रजा के अधिकारी लोगो (धृष्णवे) दृढ़ (च) और (प्रमृशाय) उत्तम विचारशील (च) तथा कोमल स्वभाव वाले पुरुष को (नमः) अन्न देवें (निषङ्गिणे) बहुत शस्त्र वाले (च) और (इषुधिमते) प्रशंसित शस्त्र अस्त्र और कोश वाले का (च) भी (नमः) सत्कार और (तीक्ष्णेषवे) तीक्ष्ण शस्त्र अस्त्रों से युक्त (च) और (आयुधिने) अच्छे प्रकार तोप आदि से लड़ने वाले वीरों से युक्त अध्यक्ष पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें (स्वायुधाय) सुन्दर आयुधों वाले (च) और (सुधन्वने) अच्छे धनुषों से युक्त (च) तथा उन के रक्षकों को (नमः) अन्न देवें वे सदा विजय को प्राप्त होवें ॥३६॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो कुछ कर्म करें सो अच्छे प्रकार विचार और दृढ़ उत्साह से करें क्योंकि शरीर और आत्मा के बल के विना शस्त्रों का चलाना और शत्रुओं का जीतना कभी नहीं कर सकते इसलिये निरन्तर सेना की उन्नति करें ॥३६॥

नमः श्रुतायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग जल से कैसे उपकार लेवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमः॒ स्रुत्या॑य च॒ पथ्या॑य च॒ नमः॒ काट्या॑य च॒ नीप्या॑य च॒ नमः॒ कुल्या॑य च सर॒स्या॑य च॒ नमो॑ नादे॒याय॑ च वैश॒न्ताय॑ च ॥३७

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि (स्रुत्याय) स्रोता नाले आदि में रहने (च) और (पथ्याय) मार्ग में चलने (च) तथा मार्गादि को शोधने वाले को (नमः) अन्न दे (काट्याय) कूप आदि में प्रसिद्ध (च) और (नीप्याय) बड़े जलाशय में होने (च) तथा उस के सहायी का (नमः) सत्कार (कुल्याय) नहरों का प्रवन्ध करने (च) और (सरस्याय) तालाब के काम में प्रसिद्ध होने वाले का (नमः) सत्कार (च) और (नादेयाय) नदियों के तट पर रहने (च) और (वैशन्ताय) छोटे २ जलाशयों के जीवों को (च) और वापी आदि के प्राणियों को (नमः) अन्नादि देके दया प्रकाशित करें ॥३७॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि नदियों के मार्गों बम्बों कूपों जलप्रायः देशों बड़े और छोटे तलावों के जल को चला जहां जहां बांध और खेत आदि में छोड़ के पुष्कल अन्न फल वृक्ष लता गुल्म आदि को अच्छे प्रकार बढ़ावें ॥३७॥

नमः कूप्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

नमः॑ कूप्या॑य चावट्या॑य च॒ नमो॒ वीध्र्या॑य चातप्या॑य च॒ नमो॒ मेघ्या॑य च विद्युत्या॑य च॒ नमो॒ वर्ष्या॑य चावर्ष्या॑य च ॥ ३८ ॥

पदार्थ—मनुष्य लोग (कूप्याय) कूप के (च) और (अवट्याय) गड्ढों (च) तथा जङ्गलों के जीवों को (नमः) अन्नादि दे (च) और (वीध्र्याय) विविध प्रकाशों में रहने (च) और (आतप्याय) घाम में रहने वाले वा (च) खेती आदि के प्रवन्ध करने वाले को (नमः) अन्न दे (मेघ्याय) मेघ में रहने (च) और (विद्युत्याय) बिजुली से काम लेने वाले को (च) तथा अग्नि विद्या के जानने वाले को (नमः) अन्नादि दे (च) और (वर्ष्याय) वर्षा में रहने (च) तथा (अवर्ष्याय) वर्षा रहित देश में बसने वाले का (नमः) सत्कार करके आनन्दित होवें ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कूपादि से कार्य सिद्ध होने के लिये भृत्यों का सत्कार करें तो अनेक उत्तम २ कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥ ३८॥

नमो वात्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब मनुष्य जगत् के अन्य पदार्थों से कैसे उपकार लेवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमो॒ वात्या॑य च॒ रेष्म्या॑य च॒ नमो॑ वास्तव्या॑य च वास्तुपाय॑ च॒ नमः॒ सोमा॑य च रुद्राय॑ च॒ नम॑स्ताम्राय॑ चारुणाय च ॥३९॥

पदार्थ—जो मनुष्य (वात्याय) वायुविद्या में कुशल (च) और (रेष्म्याय) मारनेवालों में प्रसिद्ध को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (च) तथा (वास्तव्याय) निवास के स्थानों में हुए (च) और (वास्तुपाय) निवास स्थान के रक्षक का (नमः) सत्कार करें (च) तथा (सोमाय) धनाढ्य (च) और (रुद्राय) दुष्टों को रोदन कराने हारे को (नमः) अन्नादि देवें (च) तथा (ताम्राय) बुरे कामों से ग्लानि करने (च) और (अरुणाय) अच्छे पदार्थों को प्राप्त करानेहारे का (नमः) सत्कार करें वे लक्ष्मी से सम्पन्न होवें ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य वायु आदि के गुणों को जान के व्यवहारों में लगावें तब अनेक सुखों को प्राप्त हों ॥ ३९ ॥

नमः शङ्गव इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे सन्तोषी होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमः॑ शङ्गवे॑ च पशुपत॑ये च॒ नम॑ उग्राय॑ च भीमाय॑ च॒ नमो॑ऽग्रेवधाय॑ च दूरेवधाय॑ च॒ नमो॑ हन्त्रे च॒ हनी॑यसे च॒ नमो॑ वृक्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यो नम॑स्ताराय॑ ॥४०॥

पदार्थ—जो मनुष्य (शङ्गवे) सुख को प्राप्त होने (च) और (पशुपतये) गौ आदि पशुओं की रक्षा करनेवाले को (च) और गौ आदि को भी (नमः) अन्नादि पदार्थ देवें (उग्राय) तेजस्वी (च) और (भीमाय) डर दिखानेवाले का (च) भी (नमः) सत्कार करें (अग्रेवधाय) पहिले शत्रुओं को बांधने हारे (च) और (दूरेवधाय) दूर पर शत्रुओं को बांधने और मारने वाले को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (हन्त्रे) दुष्टों को मारने (च) और (हनीयसे) दुष्टों का अत्यन्त निर्मूल विनाश करने हारे को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (वृक्षेभ्यः) शत्रु को काटने वालों का वा वृक्षों का और (हरिकेशेभ्यः) हरे केशों वाले जवानों वा हरे पत्तों वाले वृक्षों का (नमः) सत्कार करें वा जलादि देवें और (ताराय) दुःख से पार करनेवाले पुरुष को (नमः) अन्नादि देवें वे सुखी हों ॥ ४० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं के पालन और भयङ्कर जीवों की शांति करने से सन्तोष करें ॥ ४० ॥

नमः शम्भवायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमः॑ शम्भवाय॑ च मयोभवाय॑ च॒ नमः॑ शङ्कराय॑ च मयस्कराय॑ च॒ नमः॑ शिवाय॑ च शिवत॑राय च ॥४१॥

पदार्थ—जो मनुष्य (शम्भवाय) सुख को प्राप्त करने हारे परमेश्वर (च) और (मयोभवाय) सुखप्राप्ति के हेतु विद्वान् (च) का भी (नमः) सत्कार (शंकराय) कल्याण करने (च) और (मयस्कराय) सब प्राणियों को सुख पहुँचाने वाले का (च) भी (नमः) सत्कार (शिवाय) मङ्गलकारी (च) और (शिवतराय) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करते हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि प्रेमभक्ति के साथ सब मङ्गलों के दाता परमेश्वर की ही उपासना और सेनाध्यक्ष का सत्कार करें जिससे अपने अभीष्ट कार्य्य सिद्ध हों ॥ ४१ ॥

नमः पार्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमः॒ पार्या॑य चावार्या॑य च॒ नमः॑ प्रतर॑णाय चोत्तर॑णाय च॒ नमस्तीर्थ्या॑य च॒ कूल्या॑य च॒ नमः॒ शष्प्या॑य च॒ फेन्या॑य च ॥४२॥

पदार्थ—जो मनुष्य (पार्याय) दुःखों से पार हुए (च) और (अवार्याय) इधर के भाग में हुए का (च) भी (नमः) सत्कार (च) तथा (प्रतरणाय) उस तट से नौकादि द्वारा इस पार पहुंचे वा पहुँचाने (च) और (उत्तरणाय) इस पार से उस पार पहुँचने वा पहुँचाने वाले का (नमः) सत्कार करें (तीर्थ्याय) वेदविद्या को पढ़ानेवालों और सत्यभाषणादि कामों में प्रवीण (च) और (कूल्याय) समुद्र तथा नदी आदि के तटों पर रहनेवाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (शष्प्याय) तृण आदि कार्यों में साधु (च) और (फेन्याय) फेन बुद्बुदादि के कार्यों में प्रवीण पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें वे कल्याण को प्राप्त होवें ॥ ४२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रख समुद्रादि के इस पार उस पार जा आके देश देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तरों में व्यवहार से धन की उन्नति करके अपना अभीष्ट सिद्ध करें ॥ ४२ ॥

नमः सिकत्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमः॑ सिकत्या॑य च प्रवाह्याय च॒ नमः॑ किंशिलाय॑ च क्षयणाय॑ च॒ नमः॑ कपर्दिने॑ च पुलस्तये॑ च॒ नम॑ इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥४३॥

पदार्थ—जो मनुष्य (सिकत्याय) वालू से पदार्थ निकालने में चतुर (च) और (प्रवाह्याय) बैल आदि के चलाने वालों में प्रवीण को (च) भी (नमः) अन्न (किंशिलाय) शिलावृत्ति करने (च) और (क्षयणाय) निवासस्थान में रहनेवाले को (च) भी (नमः) अन्न (कपर्दिने) जटाधारी (च) और (पुलस्तये) बड़े २ शरीरों को फेंकनेवाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (इरिण्याय) ऊसर भूमि से अति उपकार लेनेवाले (च) और (प्रपथ्याय) उत्तम धर्म के मार्गों में प्रवीण पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें वे सबके प्रिय होवें ॥ ४३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भविद्यानुसार बालू मिट्टी आदि से सुवर्णादि धातुओं को निकाल बहुत ऐश्वर्य को बढ़ा के अनाथों का पालन करें ॥४३॥

नमो व्रज्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमो॒ व्रज्या॑य च॒ गोष्ठ्या॑य च॒ नम॒स्तल्प्या॑य च॒ गेह्या॑य च॒ नमो॑ हृदय्या॑य च निवेष्प्याय च॒ नमः॒ काट्या॑य च गह्वरेष्ठाय॑ च ॥४४॥

पदार्थ—जो मनुष्य (व्रज्याय) क्रियाओं में प्रसिद्ध (च) और (गोष्ठ्याय) गौ आदि के स्थानों के उत्तम प्रबन्धकर्त्ता को (च)भी (नमः) अन्नादि देवें (तल्प्याय) खट्वादि के निर्माण में प्रवीण (च)और (गेह्याय) घरमें रहनेवाले को (च)भी(नमः) अन्न देवें (हृदय्याय) हृदय के विचार में कुशल (च) और (निवेष्प्याय) विषयों में निरन्तर व्याप्त होने में प्रवीण पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें (काट्याय) आच्छादित गुप्त पदार्थों को प्रकट करने (च) और (गह्वरेष्ठाय) गहन अति कठिन गिरिकंदराओं में उत्तम रहनेवाले पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें वे सुख को प्राप्त होवें ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य मेघ से उत्पन्न वर्षा और वर्षा से उत्पन्न हुए तृण आदि की रक्षा से गौ आदि पशुओं को बढ़ावें वे पुष्कल भोग को प्राप्त होवें ॥ ४४ ॥

नमः शुष्क्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमऽऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥ ४५ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (शुष्क्याय) नीरस पदार्थों में रहने (च) और (हरित्याय) सरस पदार्थों में प्रसिद्ध को (च) भी (नमः) जलादि देवें (पांसव्याय) धूलि में रहने (च) और (रजस्याय) लोक लोकांतरों में रहनेवाले का (च) भी (नमः) मान करें (लोप्याय) छेदन करने में प्रवीण (च) और (उलप्याय) फेंकने में कुशल पुरुष का (च) भी (नमः) मान करें (ऊर्व्याय) मारने में प्रसिद्ध (च) और (सूर्व्याय) सुन्दरता से ताड़ना करनेवाले का (च) भी (नमः) सत्कार करें उनके सब कार्य सिद्ध होवें ॥ ४५ ॥

भावार्थ—मनुष्य सुखाने और हरापन आदि करनेवाले शत्रुओं को जान के अपने कार्य सिद्ध करें ॥ ४५ ॥

नमः पर्णायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
स्वराट् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नमऽउद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नमऽआखिदते च प्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानांᳬ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नमऽआनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (पर्णाय) प्रत्युपकार से रक्षक को (च) और (पर्णशदाय) पत्तों को काटनेवाले को (च) भी (नमः) अन्न (उद्गुरमाणाय) उत्तम प्रकार से उद्यम करने (च) और (अभिघ्नते) सन्मुख होके दुष्टों को मारनेवाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (आखिदते) दीन निर्धनी (च) और (प्रखिदते) अति दरिद्री जन का (च) भी (नमः) सत्कार करें (इषुकृद्भ्यः) वाणों को बनवाने वाले को (नमः) अन्नादि देवें (च) और (धनुष्कृद्भ्यः) धनुष बनानेवाले (वः) तुम लोगों का (नमः) सत्कार करें (देवानाम्) विद्वानों को (हृदयेभ्यः) अपने आत्मा के समान प्रिय (किरिकेभ्यः) वाण आदि शस्त्र फेंकनेवाले (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्नादि देवें (विचिन्वत्केभ्यः) शुभ गुणों वा पदार्थों का संचय करने वालों का (नमः) सत्कार (विक्षिणत्केभ्यः) शत्रुओं के नाशक जनों का (नमः) सत्कार और (आनिर्हतेभ्यः) अच्छे प्रकार पराजय को प्राप्त हुए लोगों का (नमः) सत्कार करें वे सब ओर से धनी होते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सब ओषधियों से अन्नादि उत्तम पदार्थों का ग्रहण कर अनाथ मनुष्यादि प्राणियों को देके सबको आनन्दित करें ॥ ४६ ॥

द्राप इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । भुरिगार्षी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

द्रापेऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ् मो च नः किं चनाममत् ॥ ४७ ॥

पदार्थ—हे (द्रापे) निन्दित गति से रक्षक (अन्धसः) अन्न आदि के (पते) स्वामी (दरिद्र) दरिद्रता को प्राप्त हुए (नीललोहित) नीलवर्णयुक्त पदार्थों का सेवन करनेहारे राजा वा प्रजा के पुरुष ! तू (आसाम्) इन प्रत्यक्ष (प्रजानाम्) मनुष्यादि (च) और (एषाम्) इन (पशूनाम्) गो आदि पशुओं के रक्षक होके इनसे (मा, भेः) मत भय को प्राप्त कर (मा, रोङ्) मत रोग को प्राप्त कर (नः) हमको और अन्य (किम्) किसी को (चन) भी (मो, आममत्) रोगी करे ॥४७॥

भावार्थ—जो धनाढ्य हैं वे दरिद्रों का पालन करें तथा जो राजा और प्रजा के पुरुष हैं वे प्रजाके पशुओं को कभी न मारें जिससे प्रजा में सब प्रकार सबका सुख बढ़े ॥४७॥

इमा रुद्रायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्षी
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् ॥४८॥

पदार्थ—हे शत्रुरोदक वीरपुरुष ! (यथा) जैसे (अस्मिन्) इस (ग्रामे) ब्रह्माण्डसमूह में (अनातुरम्) दुःखरहित (पुष्टम्) रोगरहित होने से बलवान् (विश्वम्) सब जगत् (शम्) सुखी (असत्) हो वैसे हम लोग (द्विपदे) मनुष्यादि (चतुष्पदे) गौ आदि (तवसे) बली (कपर्दिने) ब्रह्मचर्य को सेवन किये (क्षयद्वीराय) दुष्टों के नाशक वीरों से युक्त (रुद्राय) पापी को रुलानेहारे सेनापति के लिये (इमाः) इन (मतीः) बुद्धिमानों का (प्रभरामहे) अच्छे प्रकार धारण पोषण करते हैं वैसे तू भी उसको धारण कर ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानों को चाहिये कि जैसे प्रजाओं में स्त्रीपुरुष बुद्धिमान् हों वैसा अनुष्ठान कर मनुष्य पश्वादियुक्त राज्य को रोगरहित पुष्टियुक्त और निरन्तर सुखी करें ॥ ४८ ॥

या ते रुद्र इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी । शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥४९॥

पदार्थ—हे (रुद्र) राजा के वैद्य तू (या) जो (ते) तेरी (शिवा) कल्याण करनेवाली (तनूः) देह वा विस्तारयुक्त नीति (शिवा) देखने में प्रिय (भेषजी) ओषधियों के तुल्य रोगनाशक और (रुतस्य) रोगी को (शिवा) सुखदायी (भेषजी) पीड़ा हरनेवाली है (तया) उससे (जीवसे) जीने के लिए (विश्वाहा) सब दिन (नः) हमको (मृड) सुखी कर ॥ ४९ ॥

भावार्थ—राजा के वैद्य आदि विद्वानों को चाहिये कि धर्म की नीति, ओषधि के दान, हस्तक्रिया की कुशलता और शस्त्रों से छेदन, भेदन करके रोगों से बचा के सब सेना और प्रजाओं को प्रसन्न करें ॥ ४९ ॥

परि न इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः । अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥५०॥

पदार्थ—हे (मीढ्वः) सुख वर्षानेहारे राजपुरुष ! आप जो (रुद्रस्य) सभापति राजा का (हेतिः) वज्र है उससे (त्वेषस्य) क्रोधादिप्रज्वलित (अघायोः) अपने आत्मा से दुष्टाचार करनेहारे पुरुष के सम्बन्ध से (नः) हम लोगों को (परि, वृणक्तु) सब प्रकार पृथक् कीजिये । जो (दुर्मतिः) दुष्टबुद्धि है उससे भी हमको बचाइये और जो (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धनवानों से प्राप्त हुई (स्थिरा) स्थिर बुद्धि है उसको (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक (तनयाय) कुमार पुरुष के लिये (परि, तनुष्व) सब ओर से विस्तृत करिये और इस बुद्धि से सबको निरन्तर (अव, मृड) सुखी कीजिये ॥ ५० ॥

भावार्थ—राजपुरुषों का धर्मयुक्त पुरुषार्थ वही है कि जिससे प्रजा की रक्षा और दुष्टों को मारना हो, इससे श्रेष्ठ वैद्य लोग सबको आरोग्य और स्वतन्त्रता के सुख की उन्नति करें जिससे सब सुखी हों ॥ ५० ॥

मीढुष्टम इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी
यवमध्या त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सभाध्यक्षादिकों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव । परमे वृक्षऽआयुधं निधाय कृत्तिं वसानऽआ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि ॥५१॥

पदार्थ—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त पराक्रमयुक्त (शिवतम) अति कल्याणकारी सभा वा सेना के पति ! आप (नः) हमारे लिये (सुमनाः) प्रसन्न चित्त से (शिवः) सुखकारी (भव) हूजिये (आयुधम्) खड्ग, भुशुण्डी और शतघ्नी आदि शस्त्रों का (निधाय) ग्रहण कर (कृत्तिम्) मृगचर्मादि की अङ्गरखी को (वसानः) शरीर में पहिने (पिनाकम्) आत्मा के रक्षक धनुष वा बखतर आदि को (बिभ्रत्) धारण किये हुए हम लोगों की रक्षा के लिये (आगहि) आइये (परमे) प्रबल (वृक्षे) काटने योग्य शत्रु की सेना में (आचर) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थ—सभा और सेना के अध्यक्ष आदि लोग अपनी प्रजाओं में मङ्गलाचारी और दुष्टों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी दाहक हों जिससे सब लोग धर्ममार्ग को छोड़ के अधर्म का आचरण कभी न करें ॥ ५१ ॥

विकिरिद्रेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्ष्यनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

प्रजा के पुरुष राजपुरुषों के साथ कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽअस्तु भगवः । यास्ते सहस्रᳬ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

पदार्थ—हे (विकिरिद्र) विशेषकर सूअर के समान सोने वा उत्तम सूअर की निंदा करनेवाले (विलोहित) विविध पदार्थों को आरूढ (भगवः) ऐश्वर्य्ययुक्त सभापते राजन् ! (ते) आपको (नमः) सत्कार प्राप्त (अस्तु) हो जिससे (ते) आपके (याः) जो (सहस्रम्) असंख्यात प्रकार की (हेतयः) उन्नति वज्रादि शस्त्र हैं (ताः) वे (अस्मत्) हमसे (अन्यम्) भिन्न दूसरे शत्रु को (निवपन्तु) निरन्तर छेदन करें ॥ ५२ ॥

भावार्थ—प्रजा के लोग राजपुरुषों से ऐसे कहें कि जो आप लोगों की उन्नति और शस्त्र अस्त्र हैं वे हम लोगों को सुख में स्थिर करें और इतर हमारे शत्रुओं का निवारण करें ॥ ५२ ॥

सहस्राणीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः ।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥

पदार्थ—हे (भगवः) भाग्यशाली सेनापते ! जो (तव) आपके (बाह्वोः) भुजाओं की सम्बन्धिनी (सहस्राणि) असंख्य (हेतयः) वज्रों की प्रबल गति हैं (तासाम्) उनके (ईशानः) स्वामीपन को प्राप्त आप (सहस्रशः) हजारों शत्रुओं के (मुखा) मुख (पराचीना) पीछे फेर के दूर (कृधि) कीजिये ॥ ५३ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को उचित है कि बाहुबल से राज्य को प्राप्त हो और असंख्य शूरवीर पुरुषों की सेनाओं को रख के सब शत्रुओं के मुख फेरें ॥ ५३ ॥

असंख्यातेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे उपकार ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽअधि भूम्याम् ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ये) जो (असंख्याता) संख्यारहित (सहस्राणि) हजारों (रुद्राः) जीवों के सम्बन्धी वा पृथक् प्राणादि वायु (भूम्याम्) पृथिवी (अधि) पर हैं (तेषाम्) उनके संबंध से (सहस्रयोजने) असंख्य चार कोश के योजनों वाले देश में (धन्वानि) धनुषों का (अव, तन्मसि) विस्तार करें वैसे तुम लोग भी विस्तार करो ॥ ५४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि प्रति शरीर में विभाग को प्राप्त हुए पृथिवी के संबंधी असंख्य जीवों और वायुओं को जानें, उनसे उपकार लें और उनके कर्त्तव्य को भी ग्रहण करें ॥ ५४ ॥

अस्मिन्नित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्मिन् महत्यर्णवे ऽन्तरिक्षे भवाऽअधि ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (अस्मिन्) इस (महति) व्यापकता आदि बड़े २ गुणों से युक्त (अर्णवे) बहुत जलों वाले समुद्र के समान अगाध (अन्तरिक्षे) सब के बीच अविनाशी आकाश मे (भवाः) वर्त्तमान जीव और वायु हैं (तेषाम्) उनको उपयोग में लाके (सहस्रयोजने) असंख्यात चार कोश के योजनों वाले देश में (धन्वानि) धनुषों वा अन्नादि धान्यों को (अवध्व, तन्मसि) अधिकता के साथ विस्तार करें वैसे तुम लोग भी करो ॥५५॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे पृथिवी के जीव और वायुओं से कार्य सिद्ध करते हैं वैसे आकाशस्थों से भी किया करें ॥ ५५॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । बहुरुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्राऽउपश्रिताः ।
तेषांꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (नीलग्रीवाः) कण्ठ में नील वर्ण से युक्त (शितिकण्ठाः) तीक्ष्ण वा श्वेत कण्ठ वाले (दिवम्) सूर्य्य को बिजुली जैसे वैसे (उपश्रिताः) आश्रित (रुद्राः) जीव वा वायु हैं (तेषाम्) उन के उपयोग से (सहस्रयोजने) असंख्य योजन वाले देश में (धन्वानि) शस्त्रादि को (अव, तन्मसि) विस्तार करें, वैसे तुम लोग भी करो ॥५६॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि अग्निस्थ वायुओं और जीवों को जान और उपयोग में लाके आग्नेय आदि अस्त्रों को सिद्ध करें ॥५६॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाऽअधः क्षमाचराः ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (नीलग्रीवाः) नील ग्रीवा वाले तथा (शितिकण्ठाः) काले कण्ठ वाले (शर्वाः) हिंसक जीव और (अधः) नीचे को वा (क्षमाचराः) पृथिवी में चलने वाले जीव हैं (तेषाम्) उनके (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में दूर करने के लिये (धन्वानि) धनुषों को हम लोग (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥५७॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो वायु भूमि से आकाश और आकाश से भूमि को जाते आते हैं उनमें जो अग्नि और पृथिवी आदि के अवयव रहते हैं उन को जान और उपयोग में लाके कार्य सिद्ध करें ॥५७॥

ये वृक्षेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग सर्पादि दुष्टों का निवारण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ये) जो (वृक्षेषु) आम्रादि वृक्षों में (शष्पिञ्जराः) रूप दिखाने से भय के हेतु (नीलग्रीवाः) नीली ग्रीवा युक्त काट खाने वाले (विलोहिताः) अनेक प्रकार के काले आदि वर्णों से युक्त सर्प आदि हिंसक जीव हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में निकाल देने के लिये (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) विस्तृत करें वैसा आचरण तुम लोग भी करो ॥५८॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो वृक्षादि में वृद्धि से जीने वाले सर्प हैं उन का भी यथाशक्ति निवारण करें ॥५८॥

ये भूतानामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग पढ़ाना और उपदेश किससे ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (ये) जो (भूतानाम्) प्राणी तथा अप्राणियों के (अधिपतयः) रक्षक स्वामी (विशिखासः) शिखारहित संन्यासी और (कपर्दिनः) जटाधारी ब्रह्मचारी लोग हैं (तेषाम्) उन के हितार्थ (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में हम लोग सर्वथा सर्वदा भ्रमण करते हैं और (धन्वानि) अविद्यादि दोषों के निवारणार्थ विद्यादि शस्त्रों का (अव, तन्मसि) विस्तार करते हैं वैसे हे राजपुरुषो ! तुम लोग भी सर्वत्र भ्रमण किया करो ॥५९॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो सूत्रात्मा और धनंजय वायु के समान संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग सब के शरीर तथा आत्मा की पुष्टि करते हैं उनसे पढ़ और उपदेश सुन कर सब लोग अपनी बुद्धि तथा शरीर की पुष्टि करें ॥५९॥

ये पथामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदाऽआयुर्युधः ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६०॥

पदार्थ—हम लोग (ये) जो (पथाम्) मार्गों के सम्बन्धी तथा (पथिरक्षयः) मार्गों में विचरने वाले जनों के रक्षकों के तुल्य (ऐलबृदाः) पृथिवी सम्बन्धी पदार्थों के वर्धक (आयुर्युधः) पूर्णायु वा अवस्था के साथ युद्ध करनेहारे भृत्य हैं (तेषाम्) उनके (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में (धन्वानि) धनुषों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥६०॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिएं कि जैसे राजपुरुष दिन रात प्रजाजनों की यथावत् रक्षा करते हैं वैसे पृथिवी और जीवनादि की रक्षा वायु करते हैं ऐसा जानें ॥६०॥

ये तीर्थानीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६१॥

पदार्थ—हम लोग (ये) जो (सृकाहस्ताः) हाथों में वज्र धारण किये हुए (निषङ्गिणः) प्रशंसित बाण और कोष से युक्त जनों के समान (तीर्थानि) दुःखों से पार करने हारे वेद आचार्य सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यादि अच्छे नियम अथवा जिनसे समुद्रादिकों को पार करते हैं उन नौका आदि तीर्थों का (प्रचरन्ति) प्रचार करते हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में (धन्वानि) शस्त्रों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥६१॥

भावार्थ—मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं उन में पहिले तो वे जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, सत्सङ्ग, ईश्वर की उपासना और सत्यभाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार उस पार जाने आने को समर्थ हों ॥६१॥

येऽन्नेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६२॥

पदार्थ—हम लोग (ये) जो (अन्नेषु) खाने योग्य पदार्थों में वर्त्तमान (पात्रेषु) पात्रों में (पिबतः) पीते हुए (जनान्) मनुष्यादि प्राणियों को (विविध्यन्ति) बाण के तुल्य घायल करते हैं (तेषाम्) उन को हटाने के लिये (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में (धन्वानि) धनुषों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥६२॥

भावार्थ—जो पुरुष अन्न को खाते और जलादि को पीते हुये जीवों को विष आदि से मार डालते हैं उनसे सब लोग दूर वर्त्तें ॥६२॥

य एतावन्त इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यऽएतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषांꣳसहस्रयोज ऽव धन्वानि तन्मसि ॥६३॥

पदार्थ—हम लोग (ये) जो (एतावन्तः) इतने व्याख्यात किये (च) और (रुद्राः) प्राण वा जीव (भूयांसः) इन से भी अधिक (च) सब प्राण तथा जीव (दिशः) पूर्वादि दिशाओं में (वितस्थिरे) विविध प्रकार से स्थित हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में (धन्वानि) आकाश के अवयवों को (अव, तन्मसि) विरुद्ध विस्तृत करते है ॥६३॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब दिशाओं में स्थित जीवों वा वायुओं को यथावत् उपयोग में लाते हैं उन के सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥६३॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
निचृद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६४॥

पदार्थ—(ये) जो सर्वहितकारी (दिवि) सूर्य्यप्रकाशादि के तुल्य विद्या और विनय में वर्त्तमान हैं (येषाम्) जिनके (वर्षम्) वृष्टि के समान (इषवः) बाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हम लोगों का किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व (दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन सर्वहितैषी राजपुरुषों के लिये हमारा (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे हम-लोग (यम्) जिससे (द्विष्मः) अप्रीति करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उसको (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिलाव के मुख में मूषे के समान पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥६४॥

भावार्थ—जैसे वायुओं के सम्बन्ध से वर्षा होती है वैसे जो सर्वत्र अधिष्ठित हों वे वीर पुरुष पूर्वादि दिशाओं में हमारे रक्षक हों हम लोग जिसको विरोधी जानें उसको सब ओर से घेर के वायु के समान बांधें ॥६४॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६५॥

पदार्थ—(ये) जो विमानादि यानों में बैठ के (अन्तरिक्षे) आकाश में विचरते हैं (येषाम्) जिनके (वातः) वायु के तुल्य (इषवः) बाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हमारा किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व (दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं में व्याप्त हुए हैं (तेभ्यः) उन सर्वहितैषियों को (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे और हम लोग (यम्) जिससे (द्विष्मः) अप्रीति करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उसको (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिडाल के मुख में मूषे के समान पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥६५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य आकाश में रहने वाले शुद्ध कारीगरों का सेवन करते हैं उनको ये सब ओर से बलवान् करके शिल्प विद्या की शिक्षा करें ॥६५॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६६॥

पदार्थ—(ये) जो भू-विमान आदि में बैठ के (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में विचरते हैं (येषाम्) जिन के (अन्नम्) खाने योग्य तण्डुलादि (इषवः) बाण-रूप हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हम लोगों का किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व (दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं को व्याप्त होते हैं (तेभ्यः) उन सर्वहितैषी राजपुरुषों के लिये हमारा (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे (नः) हमारी सब ओर से (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे और हम लोग (यम्) जिसको (द्विष्मः) अप्रसन्न करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उस को (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिडाली के मुख में मूषे के तुल्य पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥६६॥

भावार्थ—जो पृथिवी पर अन्नार्थी पुरुष हैं उन का अच्छे प्रकार पोषण कर उन्नति करनी चाहिये ॥६६॥

इस अध्याय में वायु, जीव, ईश्वर और वीरपुरुष के गुण तथा कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सोलहवां (१६) अध्याय पूरा हुआ ॥

॥ अथ सप्तदशाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

अश्मन्नूर्जमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । मरुतो देवता । अतिशक्वरी छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अब सत्रहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है ॥

इसके पहिले मन्त्र में वर्षा की विद्या का उपदेश किया है—

अश्म॒न्नूर्ज॒ं पर्व॑ते शिश्रिया॒णाम॒द्भ्यऽओष॑धीभ्यो॒ वन॒स्पति॑भ्यो॒ऽअधि॒ सम्भृ॑तं॒ पय॑ः । तां न॒ऽइष॒मूर्जं॑ धत्त मरुतः सꣳररा॒णाऽअश्म॑ꣳस्ते॒ क्षुन्मयि॑ त॒ऽऊर्ग्यं द्वि॒ष्मस्तं ते॒ शुग्ऋ॑च्छतु ॥१॥

पदार्थ—हे (**संरराणाः**) सम्यक् दानशील (**मरुतः**) वायुओं के तुल्य क्रिया करने में कुशल मनुष्यो ! तुम लोग (**पर्वते**) पहाड़ के समान आकारवाले (**अश्मन्**) मेघ के (**शिश्रियाणाम्**) अवयवों में स्थिर बिजुली तथा (**ऊर्जम्**) पराक्रम और अन्न को (**नः**) हमारे लिये (**अधि, धत्त**) अधिकता से धारण करो और (**अद्भ्यः**) जलाशयों (**ओषधिभ्यः**) जो आदि ओषधियों और (**वनस्पतिभ्यः**) पीपल आदि वनस्पतियों से (**सम्भृतम्**) सम्यक् धारण किये (**पयः**) रसयुक्त जल (**इषम्**) अन्न (**ऊर्जम्**) पराक्रम और (**ताम्**) उस पूर्वोक्त विद्युत् को धारण करो । हे मनुष्य ! जो (**ते**) तेरा (**अश्मन्**) मेघविषय में (**ऊर्क्**) रस वा पराक्रम है सो (**मयि**) मुझ में तथा जो (**ते**) तेरी (**क्षुत्**) भूख है वह मुझ में भी हो अर्थात् समान सुख दुःख मान के हम लोग एक दूसरे के सहायक हों और (**यम्**) जिस दुष्ट को हम लोग (**द्विष्मः**) द्वेष करें (**तम्**) उस को (**ते**) तेरा (**शुक्**) शोक (**ऋच्छतु**) प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य जलाशय और ओषध्यादि से रस का हरण कर मेघमण्डल में स्थापित करके पुनः वर्षाता है उससे अन्नादि पदार्थ होते हैं उसके भोजन से क्षुधा की निवृत्ति, क्षुधा की निवृत्ति से बल की बढ़ती, उससे दुष्टों की निवृत्ति और दुष्टों की निवृत्ति से सज्जनों के शोक का नाश होता है वैसे अपने समान दूसरों का सुख दुःख मान सबके मित्र होके एक दूसरे के दुःख का विनाश कर के सुख की निरन्तर उन्नति करें ॥ १ ॥

इमा म इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवताः । निचृद्विकृतिश्छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

अब इष्टका आदि के दृष्टान्त से गणित विद्या का उपदेश किया है—

इ॒मा मे॑ऽअग्न॒ऽइष्ट॑का धे॒नव॑ः स॒न्त्वेका॑ च॒ दश॑ च॒ दश॑ च श॒तं च॑ श॒तं च॑ स॒हस्रं॑ च स॒हस्रं॑ चा॒युतं॑ चा॒युतं॑ च नि॒युतं॑ च नि॒युतं॑ च प्र॒युतं॒ चार्बु॑दं च॒ न्यर्बुदं च समु॒द्रश्च मध्यं॒ चान्त॑श्च प॒रार्द्धश्चै॒ता मे॑ऽअग्न॒ऽइष्ट॑का धे॒नव॑ः स॒न्त्व॒मु॒त्रा॒मु॒ष्मिं॑ल्लो॒के ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् पुरुष ! जैसे (**मे**) मेरी (**इमाः**) ये (**इष्टकाः**) इष्ट सुख को सिद्ध करने हारी यज्ञ की सामग्री (**धेनवः**) दुग्ध देनेवाली गौओं के समान (**सन्तु**) होवें आपके लिये भी वैसी हों जो (**एका**) एक (**च**) दशगुणा (**दश**) दश (**च**) और (**दश**) दश (**च**) दशगुणा (**शतम्**) सौ (**च**) और (**शतम्**) सौ (**च**) दश गुणा (**सहस्रम्**) हजार (**च**) और (**सहस्रम्**) हजार (**च**) दशगुणा (**अयुतम्**) दश हजार (**च**) और (**अयुतम्**) दश हजार (**च**) दश गुणा (**नियुतम्**) लाख (**च**) और (**नियुतम्**) लाख (**च**) दश गुणा (**प्रयुतम्**) दश लाख (**च**) इसका दशगुणा क्रोड़ इसका दशगुणा (**अर्बुदम्**) दश क्रोड़ इसका दश गुणा (**न्यर्बुदम्**) अर्ब (**च**) इसका दशगुणा खर्ब इसका दश गुणा निखर्ब इसका दश गुणा महापद्म इसका दशगुणा शङ्कु इसका दशगुणा (**समुद्रः**) समुद्र (**च**) इसका दशगुणा (**मध्यम्**) मध्य (**च**) इसका दशगुणा (**अन्तः**) अन्त और (**च**) इसका दशगुणा (**परार्द्धश्च**) परार्द्ध (**एताः**) ये (**मे**) मेरी (**अग्ने**) हे विद्वन् ! (**इष्टकाः**) वेदी की ईंटें (**धेनवः**) गौओं के तुल्य (**अमुष्मिन्**) परोक्ष (**लोके**) देखने योग्य (**अमुत्र**) अगले जन्म में (**सन्तु**) हों वैसा प्रयत्न कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे अच्छे प्रकार सेवन की हुई गौ दुग्ध आदि के दान से सबको प्रसन्न करती है वैसे ही वेदी में चयन की हुई ईंटें वर्षा की हेतु होके वर्षादि के द्वारा सबको सुखी करती हैं । मनुष्यों को चाहिये कि एक (१) संख्या को दशवार गुणने से दश (१०) दश को दशवार गुणने से सौ (१००) उसको दश वार गुणने से हजार (१०००) उसको दशवार गुणने से दश हजार (१००००) उसको दशवार गुणने से लाख (१०००००) उसको दशवार गुणने से दश लाख (१००००००) इसको दशवार गुणने से क्रोड़ (१०००००००) इसको दश वार गुणने से दश क्रोड़ (१००००००००) इसको दश वार गुणने से अर्ब (१०००००००००) इसको दश वार गुणने से दश अर्ब (१००००००००००) इसको दश वार गुणने से खर्ब (१०००००००००००) इसको दशवार गुणने से दशखर्ब (१००००००००००००) इसको दश वार गुणने से नील (१००००००००००००००) इसको दश वार गुणने से दश नील (१०००००००००००००००) इसको दश वार गुणने से एक पद्म (१००-०००००००००००००) इसको दशवार गुणने से दशपद्म (१००००००००००००-००००) इसको दश वार गुणने से एक शङ्ख (१०००००००००००००००००) इस को दशवार गुणने से दश शङ्ख (१००००००००००००००००००) इन संख्याओं की संज्ञा पड़ती हैं । ये इतनी संख्या तो कहीं परन्तु अनेक चकारों के होने से और भी अङ्कगणित, बीजगणित और रेखागणित आदि की संख्याओं को यथावत् समझें । जैसे भूलोक में ये संख्या हैं वैसे अन्य लोकों में भी हैं । जैसे यहां इन संख्याओं से गणना की और अच्छे कारीगरों से चिनी हुई ईंटें घर के आकार को शीत, ऊष्ण, वर्षा और वायु आदि से मनुष्यादि की रक्षा कर आनन्दित करती हैं वैसे ही अग्नि में छोड़ी हुई आहुतियां जल, वायु और ओषधियों के साथ मिल के सब को आनन्दित करती हैं ॥ २ ॥

ऋतव इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री लोग पति आदि के साथ कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऋ॒तव॑ः स्थऽऋता॒वृध॑ऽऋतु॒ष्ठाः स्थ॑ऽऋता॒वृध॑ः । घृ॒त॒श्च्युतो॑ मधु॒श्च्युतो॑ वि॒राजो॒ नाम॑ काम॒दुघा॒ऽअक्षी॑यमाणाः ॥३॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जो तुम लोग (**ऋतवः**) वसंतादि ऋतुओं के समान (**स्थ**) हो तथा जो (**ऋतावृधः**) जल से नदियों के तुल्य सत्य के साथ उन्नति को प्राप्त होने वा (**ऋतुष्ठाः**) वसंतादि ऋतुओं में स्थित होने और (**ऋतावृधः**) सत्य को बढ़ाने वाली (**स्थ**) हो और जो तुम (**घृतश्च्युतः**) जिससे घी निकले उन (**मधुश्च्युतः**) मधुर रस से प्राप्त हुई (**अक्षीयमाणाः**) रक्षा करने योग्य (**विराजः**) विविध प्रकार के गुणों से प्रकाशमान तथा (**कामदुघाः**) कामनाओं को पूरण करनेहारी (**नाम**) प्रसिद्ध गौओं के सदृश हो वे तुम लोग हम लोगों को सुखी करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ऋतु और गौ अपने २ समय पर अनुकूलता से सब प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे ही अच्छी स्त्रियां सब समय में अपने पति आदि सब पुरुषों को तृप्त कर आनन्दित करें ॥ ३ ॥

समुद्रस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सभापति को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स॒मु॒द्रस्य॑ त्वाव॑कयाग्ने॒ परि॑ व्ययामसि । पा॒व॒कोऽअ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी सभापते ! जैसे हम लोग(**समुद्रस्य**) आकाश के बीच (**अवकया**) जिससे रक्षा करते हैं उस क्रिया के साथ वर्त्तमान (**त्वा**) आपको (**परि, व्ययामसि**) सब ओर से प्राप्त होते हैं वैसे (**पावकः**) पवित्रकर्त्ता आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य लोग समुद्र के जीवों की रक्षा कर सुखी करते हैं वैसे धर्मात्मा रक्षक सभापति अपनी प्रजाओं की रक्षा कर निरन्तर सुखी करे ॥ ४ ॥

हिमस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

हि॒मस्य॑ त्वा ज॒रायु॑णाग्ने॒ परि॑ व्ययामसि । पा॒व॒कोऽअ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् सभापते ! हम लोग (**हिमस्य**) शीतल को (**जरायुणा**) जीर्ण करनेवाले वस्त्र वा अग्नि से (**त्वा**) आपको (**परि, व्ययामसि**) सब प्रकार आच्छादित करते हैं वैसे (**पावकः**) पवित्रस्वरूप आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**शिवः**) मङ्गलमय (**भव**) हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे सभापते ! जैसे अग्नि वा वस्त्र शीत से पीड़ित प्राणियों को जाड़े से छुड़ा के प्रसन्न करता है वैसे ही आपका आश्रय किये हुए हम लोग दुःख से छूटे हुए सुख सेवनेवाले होवें ॥ ५ ॥

उप ज्मन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवंतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णᳬशिवं कृधि ॥६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्विनी विदुषि (**मण्डूकि**) अच्छे प्रकार अलङ्कारों से शोभित विदुषि स्त्रि ! तू (**ज्मन्**) पृथिवी पर (**नदीषु**) नदियों तथा (**वेतसे**) पदार्थों के विस्तार में (अव, तर) पार हो । जैसे अग्नि (**अपाम्**) प्राण वा जलों के (**पित्तम्**) तेज का रूप (**असि**) है वैसे तू (**ताभिः**) उन जल वा प्राणों के साथ (उप, आ, गहि) हमको समीप प्राप्त हो (**सा**) सो तू (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस (**पावकवर्णम्**) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (**यज्ञम्**) गृहाश्रमरूप यज्ञ को (**शिवम्**) कल्याणकारी (उप, आ, कृधि) अच्छे प्रकार कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री और पुरुष गृहाश्रम में प्रयत्न के साथ सब कार्यों को सिद्ध कर शुद्ध आचरण के सहित कल्याण को प्राप्त हों ॥ ६ ॥

अपामिदमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

गृहस्थ को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अपामिदं न्ययनᳬ समुद्रस्य निवेशनम् । अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यᳬशिवो भव ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जो (**इदम्**) यह आकाश (**अपाम्**) जलों वा प्राणों का (**न्ययनम्**) निश्चित स्थान है उस आकाशस्थ (**समुद्रस्य**) समुद्र की (**निवेशनम्**) स्थिति के तुल्य गृहाश्रम को प्राप्त होके (**पावकः**) पवित्र कर्म करनेहारे होते हुए आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) हूजिये (**ते**) आपके (**हेतयः**) वज्र वा उन्नति (**अस्मत्**) हम लोगों से (**अन्यान्**) अन्य दुष्टों को (**तपन्तु**) दुःखी करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग जैसे जलों का आधार समुद्र सागर का आधार भूमि उसका आधार आकाश है वैसे गृहस्थी के पदार्थों के आधार पर को बना और मङ्गलरूप आचरण करके श्रेष्ठों की रक्षा किया तथा डाकुओं को पीड़ा दिया करें ॥ ७ ॥

अग्ने पावकेत्यस्य वसुयुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आप्त विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**पावक**) मनुष्यों के हृदयों को शुद्ध करने वाले (**देव**) सुन्दर (**अग्ने**) विद्या का प्रकाश वा उपदेश करने हारे पुरुष ! आप (**मन्द्रया**) आनन्द को सिद्ध करने हारी (**जिह्वया**) सत्यप्रिय वाणी वा (**रोचिषा**) प्रकाश से (**देवान्**) विद्वान् वा दिव्य गुणों को (आ, वक्षि) उपदेश करते (**च**) और (**यक्षि**) समागम करते हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे आप्त उपदेशक विद्वान् सब प्राणियों को प्रसन्न करें ॥ ८ ॥

स न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२ऽइहावह ।
उप यज्ञᳬहविश्च नः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**पावक**) पवित्र (**दीदिवः**) तेजस्विन् वा शत्रुदाहक (**अग्ने**) सत्यासत्य का विभाग करने हारे विद्वन् ! (**सः**) पूर्वोक्त गुण वाले आप जैसे यह अग्नि (**नः**) हमारे लिये अच्छे गुणों वाले (**हविः**) हवन किये सुगन्धित द्रव्य को प्राप्त करता है वैसे (**इह**) इस संसार में (**यज्ञम्**) गृहाश्रम (**च**) और (**देवान्**) विद्वानों को (**नः**) हम लोगों के लिये (उप, आ, वह) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यह अग्नि अपने सूर्य्यादिरूप से सब पदार्थों से रस को ऊपर लेजा और वर्षा के उत्तम सुखों को प्रकट करता है वैसे ही विद्वान् लोग विद्यारूप रस को उन्नति दे के सब सुखों को उत्पन्न करें ॥ ९ ॥

पावकयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सेनापति को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचऽउषसो न भानुना । तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नु रणऽआ यो घृणे न ततृषाणोऽअजरः ॥१०॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**पावकया**) पवित्र करने और (**चितयन्त्या**) चेतनता कराने हारी (**कृपा**) शक्ति के साथ वर्त्तमान सेनापति जैसे (**भानुना**) दीप्ति से (**उषसः**) प्रभात समय शोभित होते हैं (**न**) वैसे (**क्षामन्**) राज्यभूमि में (**रुरुचे**) शोभित होता वा (**यः**) जो (**यामन्**) मार्ग वा प्रहर में जैसे (**एतशस्य**) घोड़े के बलों को (**नु**) शीघ्र (**तूर्वन्**) मारता है (**न**) वैसे (**घृणे**) प्रदीप्त (**रणे**) युद्ध में (**ततृषाणः**) प्यासे के (**न**) समान (**अजरः**) अजर अजेय जवान निर्भय (**आ**) अच्छे प्रकार होता वह राज्य करने को योग्य होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य और चन्द्रमा अपनी दीप्ति से शोभित होते हैं वैसे ही सती स्त्री के साथ उत्तम पति और उत्तम सेना से सेनापति अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥ १० ॥

नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

न्यायाधीश को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे ।
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यᳬशिवो भव ॥११॥

पदार्थ—हे सभापते ! (**हरसे**) दुःख हरने वाले (**ते**) तेरे लिये हमारा किया (**नमः**) सत्कार हो तथा (**शोचिषे**) पवित्र (**अर्चिषे**) सत्कार के योग्य (**ते**) तेरे लिये हमारा कहा (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) हो जो (**ते**) तेरी (**हेतयः**) वज्रादि शस्त्रों से युक्त सेना हैं वे (**अस्मत्**) हम लोगों से भिन्न (**अन्यान्**) अन्य शत्रुओं को (**तपन्तु**) दुःखी करें (**पावकः**) शुद्धि करने हारे आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**शिवः**) न्यायकारी (**भव**) हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अन्तःकरण के शुद्ध मनुष्यों को न्यायाधीश बनाकर और दुष्टों की निवृत्ति करके सत्य न्याय का प्रकाश करें ॥ ११ ॥

नृषद इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नृषदे वेडप्सुषदे वेड्बर्हिषदे वेड्वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥१२॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप (**नृषदे**) नायकों में स्थिर पुरुष होने के लिये (**वेट्**) न्यायासन पर बैठने (**अप्सुषदे**) जलों के बीच नौकादि में स्थिर होने वाले के लिये (**वेट्**) न्याय गद्दी पर बैठन (**बर्हिषदे**) प्रजा को बढ़ाने वाले व्यवहार में स्थिर होने के लिये (**वेट्**) अधिष्ठाता होने (**वनसदे**) वनों में रहने वाले के लिये (**वेट्**) न्याय में प्रवेश करने और (**स्वर्विदे**) सुख को जानने हारे के लिये (**वेट्**) उत्साह में प्रवेश करने वाले हूजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—जिस देश में न्यायाधीश, नौकाओं के चलाने, प्रजा को बढ़ाने, वन में रहने, सेनादि के नायक और सुख पहुँचाने हारे विद्वान् होते हैं वहीं सब सुखों की वृद्धि होती है ॥ १२ ॥

ये देवा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । प्राणो देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सन्यासियों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाᳯ संवत्सरीणमुप भागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञेऽअस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१३॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**देवानाम्**) विद्वानों में (**अहुतादः**) विना हवन किये हुए पदार्थ का भोजन करने हारे (**देवाः**) विद्वान् (**यज्ञियानाम्**) वा यज्ञ करने में कुशल पुरुषों में (**यज्ञियाः**) योगाभ्यासादि यज्ञ के योग्य विद्वान् लोग (**संवत्सरीणम्**) वर्ष भर पुष्ट किये (**भागम्**) सेवने योग्य उत्तम परमात्मा की (**उपासते**) उपासना करते हैं वे (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) समागमरूप यज्ञ में (**मधुनः**) शहत (**घृतस्य**) जल और (**हविषः**) हवन के योग्य पदार्थों के भाग को (**स्वयम्**) अपने आप (**पिबन्तु**) सेवन करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग इस संसार में अग्निक्रिया से रहित अर्थात् आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि सम्बन्धी बाह्य कर्मों को छोड़ के आभ्यन्तर अग्नि को धारण करने वाले संन्यासी हैं वे होम को नहीं किये भोजन करते हुए सर्वत्र विचर के सब मनुष्यों को वेदार्थ का उपदेश किया करें ॥ १३ ॥

ये इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । प्राणो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब उत्तम विद्वान् लोग कैसे होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरऽएतारोऽअस्य । येभ्यो नऽऋते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्याऽअधि स्नुषु ॥१४॥

पदार्थ—(ये) जो (देवाः) पूर्ण विद्वान् (देवेषु, अधि) विद्वानों में सबसे उत्तम कक्षा में विराजमान (देवत्वम्) अपने गुण कर्म और स्वभाव को (आयन्) प्राप्त होते हैं और (ये) जो (अस्य) इस (ब्रह्मणः) परमेश्वर को (पुरएतारः) पहिले प्राप्त होने वाले हैं (येभ्यः) जिनके (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (धाम) सुख का स्थान (न) नहीं (पवते) पवित्र होता (ते) वे विद्वान् लोग (न) न (दिवः) सूर्यलोक के प्रदेशों और (न) न (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि, स्नुषु) किसी भाग में अधिक वसते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो इस जगत् में उत्तम विद्वान् योगिराज यथार्थता से परमेश्वर को जानते हैं वे सम्पूर्ण प्राणियों को शुद्ध करने और जीवन्मुक्तिदशा में परोपकार करते हुए विदेहमुक्ति अवस्था में न सूर्यलोक और न पृथिवी पर नियम से वसते हैं किन्तु ईश्वर में स्थिर हो के अव्याहतगति से सर्वत्र विचरा करते हैं ॥ १४ ॥

प्राणदा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वान् और राजा कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्राणदाऽअंपानुदा व्यांनुदा वर्चोदा वंरिवोदाः । अन्याँस्तेऽ अस्मत्तंपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यंᳬ शिवो भंव ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् ! (ते) आपकी जो उन्नति वा शस्त्रादि (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (प्राणदाः) जीवन तथा बल को देने वा (अपानदाः) दुःख दूर करने के साधन को देने वा (व्यानदाः) व्याप्ति और विज्ञान को देने (वर्चोदाः) सब विद्याओं के पढ़ने के हेतु को देने और (वरिवोदाः) सत्य धर्म और विद्वानों की सेवा को व्याप्त कराने वाली (हेतयः) वज्रादि शस्त्रों की उन्नतियां (अस्मत्) हम से (अन्यान्) अन्य दुष्ट शत्रुओं को (तपन्तु) दुःखी करें उनके सहित (पावकः) शुद्धि का प्रचार करते हुए आप हम लोगों के लिये (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—वही राजा है जो न्याय को बढ़ाने वाला हो और वही विद्वान् है जो विद्या से न्याय को जनाने वाला हो और वह राजा नहीं हो जो कि प्रजा को पीड़ा दे और वह विद्वान् भी नहीं जो दूसरों को विद्वान् न करे और वे प्रजाजन भी नहीं जो नीतियुक्त राजा की सेवा न करें ॥ १५ ॥

अग्निरित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्निस्तिग्मेनं शोचिषा यासुद्विश्वं न्यत्रिणंम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (अग्निः) अग्नि (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) प्रकाश से (अत्रिणम्) भोगने योग्य (विश्वम्) सबको (यासत्) प्राप्त होता है कि जैसे (अग्निः) विद्युत् अग्नि (नः) हमारे लिये (रयिम्) धन को (नि, वनते) निरन्तर विभागकर्त्ता है वैसे हमारे लिये आप भी हूजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानों को चाहिये कि जैसे अग्नि अपने तेज से सूखे गीले सब तृणादि पदार्थों को जला देता है वैसे हमारे सब दोषों को भस्म कर गुणों को प्राप्त करें । जैसे बिजुली सब पदार्थों का सेवन करती है वैसे हम को सब विद्या का सेवन करा के अविद्या से पृथक् किया करें ॥१६॥

य इमा इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यऽइमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः । सऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽआविवेश ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऋषिः) ज्ञानस्वरूप (होता) सब पदार्थों को देने वा ग्रहण करने हारा (नः) हम लोगों का (पिता) रक्षक परमेश्वर (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को व्याप्त होके (न्यसीदत्) निरन्तर स्थित है और जो सब लोकों का (जुह्वत्) धारणकर्त्ता है (सः) वह (आशिषा) आशीर्वाद से हमारे लिये (द्रविणम्) धन को (इच्छमानः) चाहता और (प्रथमच्छत्) विस्तृत पदार्थों को आच्छादित करता हुआ (अवरान्) पूर्व आकाशादि को (आविवेश) अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है यह तुम जानो ॥ १७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य लोग जो सब जगत् को रचने, धारण करने, पालने तथा विनाश करने और सब जीवों के लिये सब पदार्थों को देने वाला परमेश्वर अपनी व्याप्ति से आकाशादि में व्याप्त हो रहा है उसी की उपासना करें ॥ १७ ॥

किं स्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित्कथासीत् । यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! इस जगत् का (अधिष्ठानम्) आधार (किं, स्वित्) क्या आश्चर्यरूप (आसीत्) है तथा (आरम्भणम्) इस कार्य-जगत् की रचना का आरम्भ कारण (कतमत्) बहुत उपादानों में क्या और वह (कथा) किस प्रकार से (स्वित्) तर्क के साथ (आसीत्) है कि (यतः) जिससे (विश्वकर्मा) सब सत्कर्मों वाला (विश्वचक्षाः) सब जगत् का द्रष्टा जगदीश्वर (भूमिम्) पृथिवी और (द्याम्) सूर्यादि लोक को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपनी महिमा से (व्यौर्णोत्) विविध प्रकार से आच्छादित करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको यह जगत् कहाँ वसता क्या इसका कारण और किसलिये उत्पन्न होता है, इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि जो जगदीश्वर कार्य-जगत् को उत्पन्न तथा अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करके सर्वज्ञता से सबको देखता है वह इस जगत् का आधार और निमित्तकारण है वह सर्वशक्तिमान् रचना आदि के सामर्थ्य से युक्त है जीवों को पाप पुण्य का फल देने भोगवाने के लिये इस सब संसार को रचा है ऐसा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

विश्वत इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवऽएकः ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (विश्वतश्चक्षुः) सब संसार को देखने (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर से सबको उपदेश करने हारा (विश्वतोबाहुः) सब प्रकार से अनन्त बल तथा पराक्रम से युक्त (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र व्याप्ति वाला (एकः) अद्वितीय सहायरहित (देवः) अपने आप प्रकाशस्वरूप (पतत्रैः) क्रियाशील परमाणु आदि से (द्यावाभूमी) सूर्य्य और पृथिवी लोक को (सं, जनयन्) कार्य्यरूप प्रकट करता हुआ (बाहुभ्याम्) अनन्त बल पराक्रम से सब जगत् को (सं, धमति) सम्यक् प्राप्त हो रहा है उसी परमेश्वर को अपना सब ओर से रक्षक उपास्यदेव जानो ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो सूक्ष्म से सूक्ष्म बड़े से बड़ा, निराकार, अनंत सामर्थ्य वाला, सर्वत्र अभिव्याप्त, प्रकाशस्वरूप अद्वितीय परमात्मा है वही अति सूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत् के रचने और विनाश करने को समर्थ है । जो पुरुष इसको छोड़ अन्य की उपासना करता है उससे अन्य जगत् में भाग्यहीन कौन पुरुष है ? ॥ १९ ॥

किं स्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

किꣳ स्विद्वनं कऽउ स वृक्षऽआस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥२०॥

पदार्थ—प्रश्न—हे (मनीषिणः) मन का निग्रह करनेवाले योगिजनो ! तुम लोग (मनसा) विज्ञान के साथ विद्वानों के प्रति (किं, स्वित्) क्या (वनम्) सेवने योग्य कारणरूप वन तथा (कः) कौन (उ) वितर्क के साथ (सः) वह (वृक्षः) छिद्यमान अनित्य कार्यरूप संसार (असि) है ऐसा (पृच्छत) पूछो कि (यतः) जिससे (द्यावापृथिवी) विस्तारयुक्त सूर्य्य और भूमि आदि लोकों को किसने (निष्टतक्षुः) भिन्न २ बनाया है । उत्तर—(यत्) जो (भुवनानि) प्राणियों के रहने के स्थान लोक लोकांतरों को (धारयन्) वायु, विद्युत् और सूर्य्यादि से धारण करता हुआ (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता है (तत्, इत्) उसी (उ) प्रसिद्ध ब्रह्म को इस सबका कर्त्ता जानो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मंत्र में तीन पादों से प्रश्न और अन्त्य के एक पाद से उत्तर दिया है । वृक्ष शब्द से कार्य और वन शब्द से कारण का ग्रहण है जैसे सब पदार्थों को पृथिवी, पृथिवी को सूर्य, सूर्य को विद्युत् और बिजुली को वायु धारण करता है वैसे ही इन सबको ईश्वर धारण करता है ॥ २० ॥

या त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

या ते धामानि परमाणि याऽवमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥२१॥

पदार्थ—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त (विश्वकर्मन्) सब उत्तम कर्म करने वाले जगदीश्वर ! (ते) आप की सृष्टि में (या) जो (परमाणि) उत्तम (या) जो (अवमा) निकृष्ट (या) जो (मध्यमा) मध्यकक्षा के (धामानि) सब पदार्थों के आधारभूत जन्मस्थान तथा नाम हैं (इमा) इन सब को (हविषि) देने लेने योग्य व्यवहार में (स्वयम्) आप (यजस्व) सङ्गत कीजिये (उत) और हमारे (तन्वम्) शरीर को (वृधानः) उन्नति करते हुए (सखिभ्यः) आपकी आज्ञापालक हम मित्रों के लिये (शिक्ष) शुभगुणों का उपदेश कीजिये ॥२१॥

भावार्थ—जैसे इस संसार में ईश्वर ने निकृष्ट मध्यम और उत्तम वस्तु तथा स्थान रचे हैं वैसे ही सभापति आदि को चाहिये कि तीन प्रकार के स्थान रच वस्तुओं को प्राप्त हो ब्रह्मचर्य से शरीर का बल बढ़ा और मित्रों को अच्छी शिक्षा देके ऐश्वर्ययुक्त होवें ॥२१॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्येऽअभितः सपत्नाऽइहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥२२॥

पदार्थ—हे (विश्वकर्मन्) सम्पूर्ण उत्तम कर्म करने हारे सभापति ! (हविषा) उत्तम गुणों के ग्रहण से (वावृधानः) उन्नति को प्राप्त हुआ जैसे ईश्वर (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्य्यादि लोक को सङ्गत करता है वैसे आप (स्वयम्) आप ही (यजस्व) सब के समागम कीजिये (इह) इस जगत् में (मघवा) प्रशंसित धनवान् पुरुष (सूरिः) विद्वान् (अस्तु) हो जिससे (अस्माकम्) हमारे (अन्ये) और (सपत्नाः) शत्रुजन (अभितः) सब ओर से (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त हों ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य, ईश्वर ने जिस प्रयोजन के लिये जो पदार्थ रचा है उस को वैसे जान के उपकार लेते हैं उनकी दरिद्रता और आलस्यादि दोषों का नाश होने से शत्रुओं का प्रलय होता और वे आप भी विद्वान् हो जाते हैं ॥२२॥

वाचस्पतिमित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा पुरुष राज्य के अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (वाचस्पतिम्) वेदवाणी के रक्षक (मनोजुवम्) मन के समान वेगवान् (विश्वकर्माणम्) सब कर्मों में कुशल महात्मा पुरुष को (वाजे) संग्राम आदि कर्म में (हुवेम) बुलावें (सः) वह (विश्वशम्भूः) सब के लिये सुखप्रापक (साधुकर्मा) धर्मयुक्त कर्मों का सेवन करने हारा विद्वान् (नः) हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अद्य) आज (विश्वानि) सब (हवनानि) ग्रहण करने योग्य कर्मों को (जोषत्) सेवन करे ॥२३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जिसने ब्रह्मचर्य नियम के साथ सब विद्या पढ़ी हों जो धर्मात्मा आलस्य और पक्षपात को छोड़ के उत्तम कर्मों का सेवन करता तथा शरीर और आत्मा के बल से पूरा हो उसको सब प्रजा की रक्षा करने में अधिपति राजा बनावें ॥२३॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥२४॥

पदार्थ—हे (विश्वकर्मन्) सम्पूर्ण शुभकर्मों के सेवन करनेहारे सब सभाओं के पति राजा ! आप (हविषा) ग्रहण करने योग्य (वर्द्धनेन) वृद्धि से जिस (अवध्यम्) मारने के अयोग्य (त्रातारम्) रक्षक (इन्द्रम्) उत्तम सम्पति वाले पुरुष को राजकार्य में सम्मतिदाता मन्त्री (अकृणोः) करो (तस्मै) उस के लिये (पूर्वीः) पहिले न्यायाधीशों ने प्राप्त कराई (विशः) प्रजाओं को (समनमन्त) अच्छे प्रकार नम्र करो (यथा) जैसे (अयम्) यह मन्त्री (उग्रः) मारने में तीक्ष्ण (विहव्यः) विविध प्रकार के साधनों से स्वीकार करने योग्य (असत्) होवे वैसा कीजिये ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सब सभाओं के अधिष्ठाता के सहित सब सभासद् उस पुरुष को राज्य का अधिकार देवें कि जो पक्षपाती न हो जो पिता के समान प्रजाओं की रक्षा न करें उन को प्रजा लोग भी कभी न मानें और जो पुत्र के तुल्य प्रजा की न्याय से रक्षा करें उनके अनुकूल प्रजा निरन्तर हों ॥२४॥

चक्षुष इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेनेऽअजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ताऽअददृहन्त पूर्वऽआदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२५॥

पदार्थ—हे प्रजा के पुरुषो ! आप लोग जो (चक्षुषः) न्याय दिखाने वाले उपदेशक का (पिता) रक्षक (मनसा) योगाभ्यास से शान्त अन्तःकरण (हि) ही से (धीरः) धीरजवान् (घृतम्) घी को (अजनत्) प्रकट करता है उस को अधिकार देके (एने) राज और प्रजा के दल (नम्नमाने) नम्र के तुल्य आचरण करते हुए (पूर्वे) पहिले से वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान मिले हुये जैसे (अप्रथेताम्) प्रख्यात होवें वैसे (इत्) ही (यदा) जब (अन्ताः) अन्त्य के अवयवों के तुल्य (अददृहन्त) वृद्धि को प्राप्त हों तब (आत्) उसके पश्चात् (इत्) ही स्थिरराज्य वाले होओ ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब मनुष्य राज और प्रजा के व्यवहार में एकसम्मति होकर सदा प्रयत्न करें तभी सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्थिर सुख वाले होवें ॥२५॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब परमेश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वकर्म्मा विमनाऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् परऽएकमाहुः ॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (विश्वकर्मा) जिस का समस्त जगत् का बनाना क्रियमाण काम और जो (विमनाः) अनेक प्रकार के विज्ञान से युक्त (विहायाः) विविध प्रकार के पदार्थों में व्याप्त (धाता) सब का धारण पोषण करने (विधाता) और रचने वाला (संदृक्) अच्छे प्रकार सब को देखता (परः) और सब से उत्तम है तथा जिसको (एकम्) अद्वितीय (आहुः) कहते अर्थात् जिस में दूसरा कहने में नहीं आता (आत्) और (यत्र) जिसमें (सप्तऋषीन्) पाँच प्राण सूत्रात्मा और धनञ्जय इन सात को प्राप्त होकर (इषा) इच्छा से जीव (सं, मदन्ति) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त होते (उत) और (तेषाम्) उन जीवों के (परमा) उत्तम (इष्टानि) सुख सिद्ध करने वाले कामों को सिद्ध करता है उस परमेश्वर की तुम लोग उपासना करो ॥२६॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सब जगत् का बनाने, धारण, पालन और नाश करने हारा एक अर्थात् जिसका दूसरा कोई सहायक नहीं हो सकता उसी परमेश्वर की उपासना अपने चाहे हुए काम के सिद्ध करने के लिये करना चाहिये ॥२६॥

यो न इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधाऽएकऽएव तᳪं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (नः) हमारा (पिता) पालन और (जनिता) सब पदार्थों का उत्पादन करने हारा तथा (यः) जो (विधाता) कर्मों के अनुसार फल देने तथा जगत् का निर्माण करने वाला (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों और (धामानि) जन्मस्थान वा नाम को (वेद) जानता (यः) जो (देवानाम्) विद्वानों वा पृथिवी आदि पदार्थों का (नामधाः) अपनी विद्या से नाम धरने वाला (एकः) एक अर्थात् असहाय (एव) ही है जिसको (अन्या) और (भुवना) लोकस्थ पदार्थ (यन्ति) प्राप्त होते जाते हैं (संप्रश्नम्) जिनके निमित्त अच्छे प्रकार पूछना हो (तम्) उस को तुम लोग जानो ॥२७॥

भावार्थ—जो पिता के तुल्य समस्त विश्व का पालने और सब को जानने हारा एक परमेश्वर है उसके और उस की सृष्टि के विज्ञान से ही सब मनुष्य परस्पर मिल के प्रश्न और उत्तर करें ॥२७॥

तऽआयजन्त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तऽआयजन्त द्रविणᳪं समस्माऽऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥२८॥

पदार्थ—(ये) जो (पूर्वे) पूर्ण विद्या से सब की पुष्टि (जरितारः) और स्तुति करने वाले के (न) समान (ऋषयः) वेदार्थ के जानने वाले (भूना) बहुत से (असूर्त्ते) परोक्ष अर्थात् अप्राप्त हुए वा (सूर्त्ते) प्रत्यक्ष अर्थात् पाये हुए (निषत्ते) स्थित वा स्थापित किये हुये (रजसि) लोक में (इमानि) इन प्रत्यक्ष (भूतानि) प्राणियों को (समकृण्वन्) अच्छे प्रकार शिक्षित करते हैं (ते) वे (अस्मै) इस ईश्वर की आज्ञा पालने के लिये (द्रविणम्) धन को (सम्, आ, यजन्त) अच्छे प्रकार सङ्गत करें ॥२८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में परमात्मा की आज्ञा पालने के लिये सृष्टिक्रम से तत्त्वों को जानते हैं वैसे ही अन्य लोग आचरण करें । जैसे धार्मिक जन धर्म्म के आचरण से धन को इकट्ठा करते हैं वैसे ही सब लोग उपार्जन करें ॥२८॥

परो दिवेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

परो दिवा परऽएना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कᳪं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥२९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (एना) इस (दिवा) सूर्य्य आदि लोकों से (परः) परे अर्थात् अत्युत्तम (पृथिव्या) पृथिवी आदि लोकों से (परः) परे (देवेभिः) विद्वान् वा दिव्य प्रकाशित प्रजाओं और (असुरैः)अविद्वान् तथा कालरूप प्रजाओं से (परः) परे (अस्ति) है (यत्र) जिसमें (आपः) प्राण (कं, स्वित्) किसी (प्रथमम्) विस्तृत (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (दध्रे) धारण करते हुए वा (यत्) जिसको (पूर्वे) पूर्णविद्या के अध्ययन करनेवाले (देवाः) विद्वान् लोग (समपश्यन्त) अच्छे प्रकार ज्ञानचक्षु से देखते हैं वह ब्रह्म है यह तुम लोग जानो ॥ २६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब से सूक्ष्म बड़ा अतिश्रेष्ठ सब का धारणकर्त्ता, विद्वानों का विषय अर्थात् समस्त विद्याओं का समाधानरूप अनादि और चेतनमात्र है वही ब्रह्म उपासना करने के योग्य है अन्य नहीं ॥ २६ ॥

तमिदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस ब्रह्म में (आपः) कारणमात्र प्राण वा जीव (प्रथमम्) विस्तारयुक्त अनादि (गर्भम्) सब लोकों की उत्पत्ति का स्थान प्रकृति को (दध्रे) धारण करते हुए वा जिसमें (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा और अन्तःकरणयुक्त योगिजन (समगच्छन्त) प्राप्त होते हैं वा जो (अजस्य) अनुत्पन्न अनादि जीव वा अव्यक्त कारणसमूह के (नाभौ) मध्य में (अधि) अधिष्ठातृपन से सब के ऊपर विराजमान (एकम्) आप ही सिद्ध (अर्पितम्) स्थित (यस्मिन्) जिस में (विश्वानि) समस्त (भुवनानि) लोकोत्पन्न द्रव्य (तस्थुः) स्थिर होते हैं तुम लोग (तमित्) उसी को परमात्मा जानो ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो जगत् का आधार योगियों को प्राप्त होने योग्य अन्तर्यामी आप अपना आधार सब में व्याप्त है उसी का सेवन सब लोग करें ॥ ३० ॥

न तं विदाथेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति ॥३१॥

पदार्थ—(हे) मनुष्यो ! जैसे ब्रह्म के न जानने वाले पुरुष (नीहारेण) धूम के आकार कुहर के समान अज्ञानरूप अन्धकार से (प्रावृताः) अच्छे प्रकार ढके हुए (जल्प्या) थोड़े सत्य असत्य वादानुवाद में स्थिर रहने वाले (असुतृपः) प्राणपोषक (च) और (उक्थशासः) योगाभ्यास को छोड़ शब्द अर्थ सम्बन्ध के खण्डन मण्डन में रमण करते हुए (चरन्ति) विचरते हैं वैसे हुए तुम लोग (तम्) उस परमात्मा को (न) नहीं (विदाथ) जानते हो (यः) जो (इमा) इन प्रजाओं को (जजान) उत्पन्न करता और जो ब्रह्म (युष्माकम्) तुम अधर्मी अज्ञानियों के प्रकाश से (अन्यत्) अर्थात् कार्य्यकारणरूप जगत् और जीवों से भिन्न (अन्तरम्) तथा सबों में स्थित भी दूरस्थ (बभूव) होता है उस अतिसूक्ष्म आत्मा के आत्मा अर्थात् परमात्मा को नहीं जानते हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत, आचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्म के अनुष्ठान, सत्संग और पुरुषार्थ से रहित हैं वे अज्ञानरूप अन्धकार में दबे हुए ब्रह्म को नहीं जान सकते जो ब्रह्म जीवों से पृथक् अन्तर्यामी सब का नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है उसके जानने को जिसका आत्मा पवित्र है वे ही योग्य होते हैं अन्य नहीं ॥३१॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देवऽआदिद् गन्धर्वोऽअभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! इस जगत् में (विश्वकर्मा) जिस के समस्त शुभ काम हैं वह (देवः) दिव्यस्वरूप वायु प्रथम (इत्) ही (अभवत्) होता है (आत्) इस के अनन्तर (गन्धर्वः) जो पृथिवी को धारण करता है वह सूर्य वा सूत्रात्मा वायु (अजनिष्ट) उत्पन्न और (ओषधीनाम्) यव आदि ओषधियों (अपाम्) जलों और प्राणों का (पिता) पालन करने हारा (हि) ही (द्वितीयः) दूसरा अर्थात् धनञ्जय तथा जो प्राणों के (गर्भम्) गर्भ अर्थात् धारण को (व्यदधात्) विधान करता है वह (पुरुत्रा) बहुतों का रक्षक (जनिता) जलों का धारण करने हारा मेघ (तृतीयः) तीसरा उत्पन्न होता है इस विषय को आप लोग जानो ॥३२॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में सब कामों के सेवन करने हारे जीव पहिले बिजुली अग्नि वायु और सूर्य पृथिवी आदि लोकों के धारण करने हारे हैं वे दूसरे और मेघ आदि तीसरे हैं उन में पहिले जीव अज अर्थात् उत्पन्न नहीं होते और दूसरे तीसरे उत्पन्न हुए हैं परन्तु वे भी कारणरूप से नित्य हैं ऐसा जानें ॥ ३२ ॥

आशुः शिशान इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सेनापति के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिषऽएकवीरः शतꣳ सेनाऽअजयत्साकमिन्द्रः ॥३३॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जो (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों वा उन की सम्बन्धिनी सेनाओं में (आशुः) शीघ्रकारी (शिशानः) पदार्थों को सूक्ष्म करनेवाला (वृषभः) बलवान् बैल के (न) समान (भीमः) भयंकर (घनाघनः) अत्यन्त आवश्यकता के साथ शत्रुओं का नाश करते (क्षोभणः) उन को कंपाने (संक्रन्दनः) अच्छे प्रकार शत्रुओं को रुलाने और (अनिमिषः) रात्रि दिन प्रयत्न करने हारा (एकवीरः) अकेला वीर (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाला सेना का अधिपति पुरुष हम लोगों के (साकम्) साथ (शतम्) अनेकों (सेनाः) उन सेनाओं को जिन से शत्रुओं को बांधते हैं (अजयत्) जीतता है उसी को सेनाधीश करो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो धनुर्वेद और ऋग्वेदादि शास्त्रों का जाननेवाला निर्भय सब विद्याओं में कुशल अति बलवान् धार्मिक अपने स्वामी के राज्य में प्रीति करनेवाला जितेन्द्रिय शत्रुओं का जीतने हारा तथा अपनी सेना को सिखाने और युद्ध कराने में कुशल वीर पुरुष हो उस को सेनापति के अधिकार पर नियुक्त करें ॥ ३३ ॥

संक्रन्दनेनेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नरऽइषुहस्तेन वृष्णा ॥३४॥

पदार्थ—हे (युधः) युद्ध करने हारे (नरः) मनुष्यो ! तुम (अनिमिषेण) निरन्तर प्रयत्न करते हुए (दुश्च्यवनेन) शत्रुओं को कष्ट प्राप्त करानेवाले (धृष्णुना) दृढ़ उत्साही (युत्कारेण) विविध प्रकार की रचनाओं से योद्धाओं को मिलाने और न मिलाने हारे (वृष्णा) बलवान् (इषुहस्तेन) बाण आदि शस्त्रों को हाथ में रखने (संक्रन्दनेन) और दुष्टों को अत्यन्त रुलाने हारे (जिष्णुना) जयशील शत्रुओं को जीतने और वा (इन्द्रेण) परम ऐश्वर्य करने हारे (तत्) उस पूर्वोक्त सेनापति आदि के साथ वर्त्तमान हुए शत्रुओं को (जयत) जीतो और (तत्) उस शत्रु की सेना के वेग वा युद्ध से हुए दुःख को (सहध्वम्) सहो ॥ ३४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग युद्धविद्या में कुशल सर्व शुभ लक्षण और बलपराक्रमयुक्त मनुष्य को सेनापति करके उस के साथ अधार्मिक शत्रुओं को जीत के निष्कंटक चक्रवर्त्ती राज्य भोगो ॥ ३४ ॥

सऽइषुहस्तैरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सऽइषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युधऽइन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३५॥

पदार्थ—(सः) वह सेनापति (इषुहस्तैः) शस्त्रों को हाथों में राखने हारे और अच्छे सिखाये हुए बलवान् (निषङ्गिभिः) जिनके भुशुण्डी "बन्दूक" शतघ्नी "तोप" और आग्नेय आदि बहुत अस्त्र विद्यमान हैं उन भृत्यों के साथ वर्त्तमान (सः) वह (संस्रष्टा) श्रेष्ठ मनुष्यों तथा शस्त्र और अस्त्रों का सम्बन्ध करनेवाला (वशी) अपने इन्द्रिय और अन्तःकरण को जीते हुए जो (संसृष्टजित्) प्राप्त शत्रुओं को जीतता (सोमपाः) बलिष्ठ ओषधियों के रस को पीता (बाहुशर्द्धी) भुजाओं में जिसके बल विद्यमान हो और (उग्रधन्वा) जिसका तीक्ष्ण धनुष् है (सः) वह (युधः) युद्धशील (अस्ता) शस्त्र और अस्त्रों को अच्छे प्रकार फेंकने तथा (इन्द्रः) शत्रुओं को मारने वाला और (गणेन) अच्छे सीखे हुए भृत्यों वा सेना वीरों ने (प्रतिहिताभिः) प्रत्यक्षता से स्वीकार की हुई सेना के साथ वर्त्तमान होता हुआ जनों को जीते ॥३५॥

भावार्थ—सब का ईश राजा वा सब सेनाओं का अधिपति अच्छे सीखे हुए वीर भृत्यों की सेना के साथ वर्त्तमान दुःख से जीतने योग्य शत्रुओं को भी जीत सके वैसे सब को करना चाहिये ॥ ३५ ॥

बृहस्पत इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ२ऽअपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥३६॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) धार्मिकों वृद्धों वा सेनाओं के रक्षक जन ! (रक्षोहा) जो दुष्टों को मारने (अमित्रान्) शत्रुओं को (अपबाधमानः) दूर करने (प्रमृणः)

अच्छे प्रकार मारने और (सेनाः) उनकी सेनाओं को (प्रभञ्जन्) भग्न करनेवाला तू (रथेन) रथसमूह से (युधा) युद्ध में शत्रुओं को (परि, दीया) सब ओर से काटता है सो (जयन्) उत्कर्ष अर्थात् जय को प्राप्त होता हुआ (अस्माकम्) हम लोगों के (रथानाम्) रथों की (अविता) रक्षा करनेवाला (एधि) हो ॥३६॥

भावार्थ—राजा सेनापति और अपनी सेना को उत्साह कराता तथा शत्रुसेना को मारता हुआ धर्मात्मा प्रजाजनों की निरन्तर उन्नति करे ॥ ३६ ॥

बलविज्ञाय इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमानऽउग्रः ।
अभिवीरोऽअभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥३७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) युद्ध की उत्तम सामग्री युक्त सेनापति ! (बलविज्ञायः) जो अपनी सेना को बली करना जानता (स्थविरः) वृद्ध (प्रवीरः) उत्तम वीर (सहस्वान्) अत्यन्त बलवान् (वाजी) जिस को प्रशंसित शास्त्रबोध है (सहमानः) जो सुख और दुःख को सहने तथा (उग्रः) दुष्टों के मारने में तीव्र तेज वाला (अभिवीरः) जिस के अभीष्ट अर्थात् तत्काल चाहे हुए काम के करनेवाले वा (अभिसत्वा) सब ओर से युद्धविद्या में कुशल रक्षा करनेहारे वीर हैं (सहोजाः) बल से प्रसिद्ध (गोवित्) वाणी, गौओं वा पृथिवी को प्राप्त होता हुआ ऐसा तू युद्ध के लिये (जैत्रम्) जीतने वाले वीरों से घेरे हुए (रथम्) पृथिवी, समुद्र और आकाश में चलने वाले रथ को (आ, तिष्ठ) आकर स्थित हो अर्थात् उस में बैठ ॥ ३७ ॥

भावार्थ—सेनापति वा सेना के वीर जब शत्रुओं से युद्ध की इच्छा करें तब परस्पर सब ओर से रक्षा और रक्षा के साधनों को संग्रह कर विचार और उत्साह के साथ वर्त्तमान आलस्य रहित होते हुए शत्रुओं को जीतने में तत्पर हों ॥ ३७ ॥

गोत्रभिदमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाताऽअनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायोऽअनु सꣳरभध्वम् ॥३८॥

पदार्थ—हे (सजाताः) एकदेश में उत्पन्न (सखायः) परस्पर सहाय करने वाले मित्रो ! तुम लोग (ओजसा) अपने शरीर और बुद्धि बल वा सेनाजनों से (गोत्रभिदम्) जो कि शत्रुओं के गोत्रों अर्थात् समुदायों को छिन्न भिन्न करता उनकी जड़ काटता (गोविदम्) शत्रुओं की भूमि को ले लेता (वज्रबाहुम्) अपनी भुजाओं में शस्त्रों को रखता (प्रमृणन्तम्) अच्छे प्रकार शत्रुओं को मारता (अज्म) जिस से वा जिस में शत्रुजनों को पटकते हैं उस संग्राम में (जयन्तम्) वैरियों को जीत लेता और (इमम्, इन्द्रम्) उन को विदीर्ण करता है इस सेनापति को (अनु, वीरयध्वम्) प्रोत्साहित करो और (अनु, संरभध्वम्) अच्छे प्रकार युद्ध का आरम्भ करो ॥ ३८ ॥

भावार्थ—सेनापति आदि तथा सेना के भृत्य परस्पर मित्र होकर एक दूसरे को अनुमोदन करा युद्ध का आरम्भ और विजय कर शत्रुओं के राज्य को पा और न्याय से प्रजा को पालन करके निरन्तर सुखी हों ॥ ३८ ॥

अभि गोत्राणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽअस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥३९॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (युत्सु) जिन से अनेक पदार्थों का मेल अमेल करें उन युद्धों में (सहसा) बल से (गोत्राणि) शत्रुओं के कुलों को (प्र, गाहमानः) अच्छे यत्न से गाहता हुआ (अदयः) निर्दय (शतमन्युः) जिस को सैकड़ों प्रकार का क्रोध विद्यमान है (दुश्च्यवनः) जो दुःख से शत्रुओं के गिराने योग्य (पृतनाषाट्) शत्रु की सेना को सहता है (अयुध्यः) और जो शत्रुओं के युद्ध करने योग्य नहीं है (वीरः) तथा शत्रुओं को विदीर्ण करता है वह (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं को (अभि, अवतु) सब ओर से पाले और (इन्द्रः) सेनाधिपति ही ऐसी आज्ञा तुम देओ ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जो धार्मिक जनों में करुणा करनेवाला और दुष्टों में दयारहित सब ओर से सब की रक्षा करनेवाला मनुष्य हो वही सेना के पालने में अधिकारी करने योग्य है ॥ ३९ ॥

इन्द्रऽआसामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रऽआसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽएतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥४०॥

पदार्थ—युद्ध में (अभिभञ्जतीनाम्) शत्रुओं की सेनाओं को सब ओर से मारती (जयन्तीनाम्) और शत्रुओं को जीतने में उत्साह को प्राप्त होती हुई (आसाम्) इन (देवसेनानाम्) विद्वानों की सेनाओं का (नेता) नायक (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य वाला शिक्षक सेनापति पीछे (यज्ञः) सब को मिलने वाला (पुरः) प्रथम (बृहस्पतिः) सब अधिकारियों का अधिपति (दक्षिणा) दाहिनी ओर और (सोमः) सेना को प्रेरणा अर्थात् उत्साह देनेवाला बाईं ओर (एतु) चले तथा (मरुतः) पवनों के समान वेग वाले बली शूरवीर (अग्रम्) आगे को (यन्तु) जावें ॥ ४० ॥

भावार्थ—जब राजपुरुष शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहें तब सब दिशाओं में अध्यक्ष तथा शूरवीरों को आगे और डरपने वालों को बीच में ठीक स्थापन कर भोजन आच्छादन वाहन अस्त्र और शस्त्रों के योग से युद्ध करें और वहां विद्वानों की सेना के अधीन मूर्खों की सेना करनी चाहिये उन सेनाओं को विद्वान् लोग अच्छे उपदेश से उत्साह देवें और सेनाध्यक्षादि पद्मव्यूह आदि बांध के युद्ध करावें ॥४०॥

इन्द्रस्येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञऽआदित्यानां मरुताꣳ शर्द्धऽउग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥४१॥

पदार्थ—(वृष्णः) वीर्यवान् (इन्द्रस्य) सेनापति (वरुणस्य) सब से उत्तम (राज्ञः) न्याय और विनय आदि गुणों से प्रकाशमान सब के अधिपति राजा के (भुवनच्यवानाम्) जो उत्तम घरों को प्राप्त होते (महामनसाम्) बड़े २ विचार वाले वा (जयताम्) शत्रुओं के जीतने को समर्थ (आदित्यानाम्) जिन्होंने ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य किया हो (मरुताम्) और जो पूर्ण विद्या बलयुक्त हैं उन (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों का (उग्रम्) जो शत्रुओं को असह्य (शर्द्धः) बल (घोषः) शूरता और उत्साह उत्पन्न करनेवाला विचित्र बाजों का स्वरालाप शब्द है वह युद्ध के आरम्भ से पहिले (उदस्थात्) उठे ॥ ४१ ॥

भावार्थ—सेनाध्यक्षों को चाहिये कि शिक्षा और युद्ध के समय मनोहर वीरभाव को उत्पन्न करने वाले अच्छे बाजों के बजाए हुए शब्दों से वीरों को हर्षित करावें तथा जो बहुत काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य और अधिक विद्या से शरीर और आत्मबलयुक्त हैं वे ही योद्धाओं की सेनाओं के अधिकारी करने योग्य हैं ॥४१॥

उद्धर्षयेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनाꣳसि ।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥४२॥

पदार्थ—सेना के पुरुष अपने स्वामी से ऐसे कहें कि हे (वृत्रहन्) मेघ को सूर्य के समान शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त सेनापति ! आप (मामकानाम्) हम लोगों के (सत्वनाम्) सेनास्थ वीर पुरुषों के (आयुधानि) जिनसे अच्छे प्रकार युद्ध करते हैं उन शस्त्रों का (उद्धर्षय) उत्कर्ष कीजिये । हमारे सेनास्थ जनों के (मनांसि) मनों को (उत्) उत्तम हर्षयुक्त कीजिये हमारे (वाजिनाम्) घोड़ों को (वाजिनानि) शीघ्र चालों को (उत्) बढ़ाइये तथा आप की कृपा से हमारे (जयताम्) विजय कराने वाले (रथानाम्) रथों के (घोषाः) शब्द (उद्यन्तु) उठें ॥ ४२ ॥

भावार्थ—सेनापति और शिक्षक जनों को चाहिये कि योद्धाओं के चित्तों को नित्य हर्षित करें और सेना के अङ्गों को अच्छे प्रकार उन्नति देकर शत्रुओं को जीतें ॥ ४२ ॥

अस्माकमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं याऽइषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीराऽउत्तरे भवन्त्वस्माँ२ऽउ देवा अवता हवेषु ॥४३॥

पदार्थ—हे (देवाः) विजय चाहने वाले विद्वानो ! तुम (अस्माकम्) हम लोगों के (समृतेषु) अच्छे प्रकार सत्य न्याय प्रकाश करने हारे चिह्न जिन में हों उन(ध्वजेषु) अपने वीर जनों के निश्चय के लिये रथ आदि यानों के ऊपर एक दूसरे से भिन्न स्थापित किये हुए ध्वजा आदि चिह्नों में नीचे अर्थात् उन की छाया में वर्त्तमान जो (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य करने वाला सेना का ईश और (अस्माकम्) हम लोगों की (याः) जो (इषवः) प्राप्त सेना हैं वह इन्द्र और (ताः) वे सेना (हवेषु) जिन में ईर्षा से शत्रुओं को बुलावें उन संग्रामों में (जयन्तु) जीतें (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर जन (उत्तरे) विजय के पीछे जीवनयुक्त (भवन्तु) हों (अस्मान्) हम लोगों की (उ) सब जगह युद्ध समय में (अवत) रक्षा करो ॥४३॥

भावार्थ—सेनाजन और सेनापति आदि को चाहिये कि अपने २ रथ आदि में भिन्न २ चिह्न को स्थापन करें जिससे यह इस का रथ आदि है ऐसा सब जानें और जैसे अश्व तथा वीरों का अधिक विनाश न हो वैसा ढंग करें क्योंकि परस्पर के पराक्रम के क्षय होने से निश्चल विजय नहीं होता है यह जानें ॥४३॥

अमीषामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥४४॥

पदार्थ—हे (अप्वे) शत्रुओं के प्राणों को दूर करने हारी राणी क्षत्रिया वीर स्त्री ! (अमीषाम्) उन सेनाओं के (चित्तम्) चित्त को (प्रतिलोभयन्ती) प्रत्यक्ष में लुभाने वाली जो अपनी सेना है उसके (अङ्गानि) अङ्गों को तू (गृहाण) ग्रहण कर अधर्म्म से (परेहि) दूर हो अपनी सेना को (अभि, प्रेहि) अपना अभिप्राय दिखा और शत्रुओं को (निर्दह) निरन्तर जला जिस से ये (अमित्राः) शत्रु जन (हृत्सु) अपने हृदयों में (शोकैः) शोकों से (अन्धेन) आच्छादित हुए (तमसा) रात्रि के अन्धकार के साथ (सचन्ताम्) संयुक्त रहें ॥ ४४ ॥

भावार्थ—सभापति आदि को योग्य है कि जैसे अतिप्रशंसित हृष्ट पुष्ट अङ्ग उपाङ्गादियुक्त शूरवीर पुरुषों की सेना का स्वीकार करें वैसे शूरवीर स्त्रियों की भी सेना स्वीकार करें और जिस स्त्रीसेना में अव्यभिचारिणी स्त्री रहें और उस सेना से शत्रुओं को वश में स्थापन करें ॥४४॥

अवसृष्टेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इषुर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥४५॥

पदार्थ—हे (शरव्ये) बाणविद्या में कुशल (ब्रह्मसंशिते) वेदवेत्ता विद्वान् से प्रशंसा और शिक्षा पाए हुए सेनाधिपति की स्त्री ! तू (अवसृष्टा) प्रेरणा को प्राप्त हुई (परा, पत) दूर जा (अमित्रान्) शत्रुओं को (गच्छ) प्राप्त हो और उन के मारने से विजय को (प्र, पद्यस्व) प्राप्त हो (अमीषाम्) उन दूर देश में ठहरे हुए शत्रुओं में से मारने के बिना (कं, चन) किसी को (मा, उच्छिषः) मत छोड़ ॥४५॥

भावार्थ—सभापति आदि को चाहिये कि जैसे युद्धविद्या से पुरुषों को शिक्षा करें वैसे स्त्रियों को भी शिक्षा करें । जैसे वीरपुरुष युद्ध करें वैसे स्त्री भी करें जो युद्ध में मारे जावें उन से शेष अर्थात् बचे हुए कातरों को निरन्तर कारागार में स्थापन करें ॥४५ ॥

प्रेता जयतेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । योद्धा देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रेता जयता नरऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ ॥४६॥

पदार्थ—हे (नरः) अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो ! तुम (यथा) जैसे शत्रुजनों को (इत) प्राप्त होओ और उन्हें (जयत) जीतो तथा (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेनापति (वः) तुम लोगों के लिये (शर्म्म) घर (प्र, यच्छतु) देवे (वः) तुम्हारी (बाहवः) भुजा (उग्राः) दृढ़ (सन्तु) हों और (अनाधृष्याः) शत्रुओं से न धमकाने योग्य (असथ) होओ वैसा प्रयत्न करो ॥४६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो शत्रुओं को जीतने वाले वीर हों उन का सेनापति धन अन्न गृह और वस्त्रादिकों से निरन्तर सत्कार करे तथा सेनास्थ जन जैसे बली हों वैसा व्यवहार अर्थात् व्यायाम और शस्त्र अस्त्रों का चलाना सीखें ॥४६॥

असौ येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । मरुतो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति नऽओजसा स्पर्द्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामीऽअन्योऽअन्यन्न जानन् ॥४७॥

पदार्थ—हे (मरुतः) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानो ! तुम (या) जो (असौ) वह (परेषाम्) शत्रुओं की (स्पर्द्धमाना) ईर्षा करती हुई (सेना) सेना (ओजसा) बल से (नः) हम लोगों के (अभि, आ, एति) सन्मुख सब ओर से प्राप्त होती है (ताम्) उसको (अपव्रतेन) छेदनरूप कठोर कर्म्म से और (तमसा) तोप आदि शस्त्रों के उठे हुए धूम वा मेघ पहाड़ के आकार जो अस्त्र का धूम होता है उस से (गूहत) ढांपो (अमी) ये शत्रुसेनास्थ जन (यथा) जैसे (अन्यः, अन्यम्) परस्पर एक दूसरे को (न) न (जानन्) जानें वैसा पराक्रम करो ॥४७॥

भावार्थ—जब युद्ध के लिये प्राप्त हुई शत्रुओं की सेनाओं में होते युद्ध करे तब सब ओर से शस्त्र और अस्त्रों के प्रहार से धूमधूली आदि से उस को ढांपकर जैसे ये शत्रुजन परस्पर अपने दूसरे को न जानें वैसा ढङ्ग सेनापति आदि को करना चाहिये ॥४७॥

यत्र बाणा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रबृहस्पत्यादयो देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव । तन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म्म यच्छतु विश्वाहा शर्म्म यच्छतु ॥४८॥

पदार्थ—(यत्र) जिस संग्राम में (विशिखा इव) बिना चोटी के वा बहुत चोटियों वाले (कुमाराः) बालकों के समान (बाणाः) बाण आदि शस्त्र अस्त्रों के समूह (संपतन्ति) अच्छे प्रकार गिरते हैं (तत्) वहाँ (बृहस्पतिः) बड़ी सभा वा सेना का पालने वाला (इन्द्रः) सेनापति (शर्म) आश्रय वा सुख को (यच्छतु) देवे और (अदितिः) नित्य सभासदों से शोभायमान सभा (विश्वाहा) सब दिन (नः) हम लोगों के लिये (शर्म) सुख सिद्ध करने वाले घर को (यच्छतु) देवे ॥४८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे बालक इधर-उधर दौड़ते हैं वैसे युद्ध के समय में योद्धा लोग भी चेष्टा करें जो युद्ध में घायल, क्षीण, थके, पसीजे, छिदे, भिदे, कटे, फटे अङ्गवाले और मूर्छित हों उनको युद्धभूमि से शीघ्र उठा सुखालय (शफाखाने) में पहुँचा औषध पट्टी कर स्वस्थ करें और जो मर जावें उनको विधि से दाह दें, राजजन उन के माता पिता स्त्री और बालकों की सदा रक्षा करें ॥४८॥

मर्माणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । सोमवरुणदेवा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥४९॥

पदार्थ—हे युद्ध करने वाले शूरवीर ! मैं (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मस्थलों अर्थात् जो ताड़ना किये हुए शीघ्र मरण उत्पन्न करनेवाले शरीर के अङ्ग हैं उन को (वर्मणा) देह की रक्षा करने हारे कवच से (छादयामि) ढांपता हूँ । यह (सोमः) शान्ति आदि गुणों से युक्त (राजा) और विद्या न्याय तथा विनय आदि गुणों से प्रकाशमान राजा (अमृतेन) समस्त रोगों के दूर करने वाली अमृतरूप ओषधि से (त्वा) तुझ को (अनु, वस्ताम्) पीछे ढांपे (वरुणः) सब से उत्तम गुणों वाला राजा (ते) तेरे (उरोः) बहुत गुण और ऐश्वर्य से भी (वरीयः) अत्यन्त ऐश्वर्य को (कृणोतु) करे तथा (जयन्तम्) दुष्टों को पराजित करते हुए (त्वा) तुझ (देवाः) विद्वान् लोग (अनु, मदन्तु) अनुमोदित करें अर्थात् उत्साह देवें ॥४९॥

भावार्थ—सेनापति आदि को चाहिए कि सब युद्धकर्त्ताओं के शरीर आदि की रक्षा सब ओर से करके इनको निरन्तर उत्साहित और अनुमोदित करें जिस से निश्चय करके सब से विजय को पावें ॥४९॥

उदेनमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत ।
रायस्पोषेण सᳬ सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥५०॥

पदार्थ—हे (घृतेन, आहुत) घृत से तृप्ति को प्राप्त हुए (अग्ने) प्रकाशयुक्त सेनापति तू (एनम्) इस जीतने वाले वीर को (उत्तराम्) जिस से उत्तमता से संग्राम को तरें विजय को प्राप्त हुई उस सेना को (उत्, नय) उत्तम अधिकार में पहुँचा (रायः, पोषेण) राजलक्ष्मी की पुष्टि से (सम्, सृज) अच्छे प्रकार युक्त कर (च) और (प्रजया) बहुत सन्तानों से (बहुम्) अधिकता को प्राप्त (कृधि) कर ॥५०॥

भावार्थ—जो सेना का अधिकारी वा भृत्य धर्मयुक्त युद्ध से दुष्टों को जीतें उसका सभा सेना के पति धनादिकों से बहुत प्रकार सत्कार करें ॥५०॥

इन्द्रेममित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी ।
समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदाऽअसत् ॥५१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुखों के धारण करने हारे सेनापति ! तू (सजातानाम्) समान अवस्था वाले (देवानाम्) विद्वान् योद्धाओं के बीच (इमम्) विजय को प्राप्त होते हुए इस वीरजन को (प्रतराम्) जिस से शत्रुओं के बलों को हटावें उस नीति को (नय) प्राप्त कर जिससे यह (वशी) इन्द्रियों का जीतने वाला (असत्) हो और (एनम्) इस को (वर्चसा) विद्या के प्रकाश से (सं, सृज) संसर्ग करा जिससे यह (भागदाः) अलग २ यथायोग्य भागों का देने वाला (असत्) हो ॥५१॥

भावार्थ—युद्ध में भृत्यजन शत्रुओं के जिन पदार्थों को पावें उन सबों को सभापति राजा स्वीकार न करें किन्तु उन में से यथायोग्य सत्कार के लिए योद्धाओं को सोलहवां भाग देवे । वे भृत्यजन जितना कुछ भाग पावें उसका सोलहवां भाग राजा के लिए देवें जो सब सभापति आदि जितेन्द्रिय हों तो उन का कभी पराजय न हो जो सभापति अपने हित को किया चाहे तो लड़नेहारे भृत्यों का भाग आप न लेवे ॥५१॥

यस्य कुर्म इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पुरोहित ऋत्विज् और यजमान के कृत्य को अगले मन्त्र में कहा है—

यस्य॑ कु॒र्मो गृ॒हे ह॒विस्तम॑ग्ने व॒र्द्धया॒ त्वम् ।
तस्मै॑ दे॒वाऽअधि॑ब्रुवन्न॒यं च॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥५२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् पुरोहित ! हम लोग (**यस्य**) जिस राजा के (**गृहे**) घर में (**हविः**) होम (**कुर्मः**) करें (**तम्**) उस को (**त्वम्**) तू (**वर्द्धय**) बढ़ा अर्थात् उत्साह दे तथा (**देवाः**) दिव्य२ गुण वाले ऋत्विज् लोग (**तस्मै**) उस को (**अधि, ब्रुवन्**) अधिक उपदेश करें (**च**) और (**अयम्**) यह (**ब्रह्मणः**) वेदों का (**पतिः**) पालन करने हारा यजमान भी उन को शिक्षा देवे ॥५२॥

भावार्थ—पुरोहित का वह काम है कि जिससे यजमान की उन्नति हो और जो जिसका जितना जैसा काम करे उस को उसी ढङ्ग उतना ही नियम किया हुआ मासिक धन देना चाहिये सब विद्वान् जन सब के प्रति सत्य का उपदेश करें और राजा भी सत्योपदेश करे ॥५२॥

उदु त्वेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सभापति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उदु॑ त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअग्ने॒ भर॑न्तु॒ चित्ति॑भिः ।
स नो॑ भव शि॒वस्त्वꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः ॥५३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् सभापति ! जिस (**त्वा**) तुझे (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् जन (**चित्तिभिः**) अच्छे २ ज्ञानों से (**उद्भरन्तु**) उत्कृष्टतापूर्वक धारण और उद्धार करें अर्थात् अपनी शिक्षा से तेरे अज्ञान को दूर करें (**सः, उ**) सोई (**त्वम्**) तू (**नः**) हम लोगों के लिये (**शिवः**) मङ्गल करने हारा (**सुप्रतीकः**) अच्छी प्रतीति करने वाले ज्ञान से युक्त (**विभावसुः**) तथा विविध प्रकार के विद्या सिद्धान्तों में स्थिर (**भव**) हो ॥५३॥

भावार्थ—जो जिन को विद्या देवें वे विद्या लेने वाले उन के सेवक हों ॥५३॥

पञ्च दिश इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । दिग् देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष के कृत्य को अगले मन्त्र में कहा है—

पञ्च॒ दिशो॒ दैवी॑र्य॒ज्ञम॑वन्तु दे॒वीरपाम॑तिं दु॒र्म॒तिं बाध॑मानाः ।
रा॒यस्पोषे॑ य॒ज्ञप॑तिमा॒भज॑न्ती रा॒यस्पोषे॒ऽअधि॑ य॒ज्ञोऽअ॑स्थात् ॥५४॥

पदार्थ—(**अप, अमतिम्**) अत्यन्त अज्ञान और (**दुर्मतिम्**) दुष्ट बुद्धि को (**बाधमानाः**) अलग करती हुई (**दैवीः**) विद्वानों की ये (**देवीः**) दिव्य गुण वाली पंडिता ब्रह्मचारिणी स्त्री (**पञ्च, दिशः**) पूर्व आदि चार और एक मध्यस्थ पाँच दिशाओं के तुल्य अलग २ कामों में बढ़ी हुई (**रायः, पोषे**) धन की पुष्टि करने के निमित्त (**यज्ञपतिम्**) गृहकृत्य वा राज्यपालन करने वाले अपने स्वामी को (**आभजन्तीः**) सब प्रकार सेवन करती हुई (**यज्ञम्**) संगति करने योग्य गृहाश्रम को (**अवन्तु**) चाहें जिससे यह (**यज्ञः**) गृहाश्रम (**राय, पोषे**) धन की पुष्टाई में (**अधि, अस्थात्**) अधिकता से स्थिर हो ॥५४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जिस गृहाश्रम में धार्मिक विद्वान् और प्रशंसायुक्त पण्डिता स्त्री होती हैं वहाँ दुष्ट काम नहीं होते जो सब दिशाओं में प्रशंसित प्रजा होवें तो राजा के समीप औरों से अधिक ऐश्वर्य्य होवे ॥५४॥

समिद्धेऽइत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यज्ञ कैसे करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया गया है ।

समि॑द्धेऽअ॒ग्नावधि॑ मामहा॒नऽउ॒क्थप॑त्र॒ऽईड्यो॑ गृभी॒तः ।
त॒प्तं घ॒र्म्मं प॑रि॒गृह्या॑यजन्तो॒र्जा यद्य॒ज्ञमय॑जन्त दे॒वाः ॥५५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (**देवाः**) विद्वान् जन (**समिद्धे**) अच्छे जलते हुए (**अग्नौ**) अग्नि में (**यत्**) जिस (**यज्ञम्**) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (**अयजन्त**) करते हैं वैसे जो (**अधि, मामहानः**) अधिक और अत्यन्त सत्कार करने योग्य (**उक्थपत्रः**) जिस के कहने योग्य विद्यायुक्त वेद के स्तोत्र हैं (**ईड्यः**) जो स्तुति करने तथा चाहने योग्य (**गृभीतः**) वा जिसको सज्जनों ने ग्रहण किया है उस (**तप्तम्**) तापयुक्त (**घर्मम्**) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (**ऊर्जा**) बल से (**परिगृह्य**) ग्रहण करके (**अयजन्त**) किया करो ॥५५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि संसार के उपकार के लिए जैसे विद्वान् लोग अग्निहोत्र आदि यज्ञ का आचरण करते हैं वैसे अनुष्ठान किया करें ॥५५॥

दैव्यायेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब यज्ञ कैसे करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दैव्या॑य ध॒र्त्रे जोष्ट्रे॑ देव॒श्रीः श्रीम॑नाः श॒तप॑याः ।
प॒रि॒गृह्य॑ दे॒वा य॒ज्ञमा॑यन् दे॒वा दे॒वेभ्यो॒ऽअध्व॒र्यन्तो॒ऽअस्थुः ॥५६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अध्वर्यन्तः**) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले (**देवाः**) विद्या के दाता विद्वान् लोग (**देवेभ्यः**) विद्वानों की प्रसन्नता के लिए गृहाश्रम वा अग्निहोत्रादि यज्ञ में (**अस्थुः**) स्थिर हों वा जैसे (**दैव्याय**) अच्छे २ गुणों में प्रसिद्ध हुए (**धर्त्रे**) धारणशील (**जोष्ट्रे**) तथा प्रीति करने वाले होता के लिए (**देवश्रीः**) जो सेवन की जाती वह विद्यारूप लक्ष्मी विद्वानों में जिस की विद्यमान हो (**श्रीमनाः**) जिसका कि लक्ष्मी में मन (**शतपयाः**) और जिसके सैकड़ों दूध आदि वस्तु हैं वह यजमान वर्त्तमान है वैसे (**देवाः**) विद्या के दाता तुम लोग विद्या को (**परिगृह्य**) ग्रहण करके (**यज्ञम्**) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम व अग्निहोत्र आदि को (**आयन्**) प्राप्त होओ ॥५६॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि धनप्राप्ति के लिये सदैव उद्योग करें जैसे विद्वान् लोग धनप्राप्ति के लिये प्रयत्न करें वैसे उनके अनुकूल अन्य मनुष्यों को भी यत्न करना चाहिए ॥ ५६ ॥

वीतमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वी॒तꣳ ह॒विः श॑मि॒तꣳ श॑मि॒ता य॒जध्यै॑ तु॒रीयो॑ य॒ज्ञो यत्र॑ ह॒व्यमेति॑ ।
ततो॑ वा॒काऽआ॒शिषो॑ नो जुषन्ताम् ॥५७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**शमिता**) शान्ति आदि गुणों से युक्त गृहाश्रमी (**यजध्यै**) यज्ञ करने के लिये (**वीतम्**) गमनशील (**शमितम्**) दुर्गुणों की शान्ति कराने वाले (**हविः**) होम करने योग्य पदार्थ को अग्नि में छोड़ता है जो (**तुरीयः**) चौथा (**यज्ञः**) प्राप्त करने योग्य यज्ञ है तथा (**यत्र**) जहाँ (**हव्यम्**) होम करने योग्य पदार्थ (**एति**) प्राप्त होता है (**ततः**) उन सबों से (**वाकाः**) जो कही जाती हैं वे (**आशिषः**) इच्छासिद्धि (**नः**) हम लोगों को (**जुषन्ताम्**) सेवन करें ऐसी इच्छा करो ॥५७॥

भावार्थ—अग्निहोत्र आदि यज्ञ में चार पदार्थ होते हैं अर्थात् बहुतसा पुष्टि सुगन्धि मिष्ट और रोग विनाश करने वाला होम का पदार्थ, उसका शोधन, यज्ञ का करने वाला तथा वेदी आग लकड़ी आदि । यथाविधि से हवन किया हुआ पदार्थ आकाश को जाकर फिर वहां से पवन वा जल के द्वारा आकर इच्छा की सिद्धि करने वाला होता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥५७॥

सूर्यरश्मिरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्यलोक के स्वरूप का कथन किया है—

सूर्य॑रश्मि॒र्हरि॑केशः पु॒रस्ता॑त्सवि॒ता ज्योति॒रुद॑याँ२ऽअज॑स्रम् ।
तस्य॑ पू॒षा प्र॑स॒वे या॑ति वि॒द्वान्त्स॒म्पश्य॒न्विश्वा॒ भुव॑नानि गो॒पाः ॥५८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**पुरस्तात्**) पहिले से (**सविता**) सूर्यलोक (**ज्योतिः**) प्रकाश का देता है जिसके (**हरिकेशः**) हरे रंग वाली (**सूर्य्यरश्मिः**) सूर्य्य की किरण वर्त्तमान हैं जो (**प्रसवे**) उत्पन्न हुए जगत् में (**अजस्रम्**) निरन्तर (**पूषा**) पुष्टि करने वाला है जिसको (**विद्वान्**) विद्यायुक्त पुरुष (**संपश्यन्**) अच्छे प्रकार देखता हुआ उस की विद्या को (**याति**) प्राप्त होता है (**तस्य**) उसके सकाश से (**गोपाः**) संसार की रक्षा करनेवाले पृथिवी आदि लोक और तारागण भी (**विश्वा**) समस्त (**भुवनानि**) लोक लोकान्तरों को (**उदयान्**) प्रकाशित करते हैं वह सूर्य्यमण्डल अतिप्रकाशमय है यह तुम जानो ॥५८॥

भावार्थ—जो यह सूर्य्यलोक है उसके प्रकाश में श्वेत और हरी रङ्ग विरङ्ग अनेक किरणें हैं जो सब लोकों की रक्षा करते हैं इसी से सब की सब प्रकार से सदा रक्षा होती है यह जानने योग्य है ॥५८॥

विमान इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । आदित्यो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर ने किसलिये सूर्य का निर्माण किया है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि॒मान॑ऽए॒ष दि॒वो मध्य॑ऽआस्तऽआप॒प्रिवा॒न्रोद॑सी॒ऽअ॒न्तरि॑क्षम् ।
स वि॒श्वाची॑र॒भिच॑ष्टे घृ॒ताची॑रन्त॒रा पूर्व॒मप॑रं च के॒तुम् ॥५९॥

पदार्थ—विद्यावान् पुरुष जो (**एषः**) यह सूर्य्यमण्डल (**दिवः**) प्रकाश के (**मध्ये**) बीच में (**विमानः**) विमान अर्थात् जो आकाशादि मार्गों में आश्चर्यरूप चलनेहारा है उस के समान और (**रोदसी**) प्रकाश भूमि और (**अन्तरिक्षम्**) अवकाश को (**आपप्रिवान्**) अपने तेज से व्याप्त हुआ (**आस्ते**) स्थिर हो रहा है (**सः**) वह (**विश्वाचीः**) जो संसार को प्राप्त होती अर्थात् अपने उदय से प्रकाशित करतीं वा (**घृताचीः**) जल को प्राप्त कराती हैं उन अपनी द्युतियों अर्थात् प्रकाशों को विस्तृत करता है (**पूर्वम्**) आगे दिन (**अपरम्**) पीछे रात्रि (**च**) और (**अन्तरा**) दोनों के बीच में (**केतुम्**) सब लोगों के प्रकाशक तेज को (**अभिचष्टे**) देखता है उसे जाने ॥५९॥

भावार्थ—जो सूर्य्यलोक ब्रह्माण्ड के बीच स्थित हुआ अपने प्रकाश से सब को व्याप्त हो रहा है वह सब का अच्छा आकर्षण करने वाला है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥५९॥

उक्षा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । आदित्यो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उ॒क्षा स॑मु॒द्रोऽअ॑रु॒णः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरावि॑वेश।
मध्ये॑ दि॒वो निहि॑तः॒ पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑ ॥ ६० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर ने (**दिवः**) प्रकाश के (**मध्ये**) बीच में (**निहितः**) स्थापित किया हुआ (**उक्षा**) वृष्टि-जल से सींचने वाला (**समुद्रः**) जिससे कि अच्छे प्रकार जल गिरते हैं (**अरुणः**) जो लाल रङ्ग वाला (**सुपर्णः**) तथा जिस से कि अच्छी पालना होती है (**पृश्निः**) वह विचित्र रङ्ग वाला सूर्यरूप तेज और (**अश्मा**) मेघ (**रजसः**) लोकों को (**अन्तौ**) बन्धन के निमित्त (**वि, चक्रमे**) अनेक प्रकार घूमता तथा (**पाति**) रक्षा करता है (**पूर्वस्य**) तथा जो पूर्ण (**पितुः**) इस सूर्य्यमण्डल के तेज उत्पन्न करने वाला बिजुलीरूप अग्नि है उस के (**योनिम्**) कारण में (**आ, विवेश**) प्रवेश करता है वह सूर्य्य और मेघ अच्छे प्रकार उपयोग करने योग्य है ॥६०॥

भावार्थ—मनुष्यों को ईश्वर के अनेक धन्यवाद कहने चाहियें क्योंकि जिस ईश्वर ने अपने जनाने के लिये जगत् की रक्षा का कारणरूप सूर्य्य आदि दृष्टान्त दिखाया है वह कैसे न सर्वशक्तिमान् हो ॥६०॥

इन्द्रं विश्वेत्यस्य मधुच्छन्दाः सुतजेता ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर जगत् बनाने वाले ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रं॒ विश्वा॑ अवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिरः॑ ।
र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑नाꣳ सत्प॑तिं॒ पति॑म् ॥ ६१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस (**समुद्रव्यचसम्**) अन्तरिक्ष की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले (**रथीनाम्**) प्रशंसायुक्त सुख के हेतु पदार्थ वालों में (**रथीतम्**) अत्यन्त प्रशंसित सुख के हेतु पदार्थों से युक्त (**वाजानाम्**) ज्ञानी आदि गुणी जनों के (**पतिम्**) स्वामी (**सत्पतिम्**) विनाशरहित वा विनाशरहित कारण और जीवों के पालने हारे (**इन्द्रम्**) परमात्मा को (**विश्वाः**) समस्त (**गिरः**) वाणी (**अवीवृधन्**) बढ़ाती अर्थात् विस्तार से कहती हैं उस परमात्मा की निरन्तर उपासना करो ॥६१॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि सब वेद जिस की प्रशंसा करते योगीजन जिस की उपासना करते और मुक्त पुरुष जिस को प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं उसी को उपासना के योग्य इष्टदेव मानें ॥६१॥

देवहूरित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒व॒हूर्य॒ज्ञऽआ च॑ वक्षत्सु॒म्न॒हूर्य॒ज्ञऽआ च॑ वक्षत् ।
यक्ष॑द॒ग्निर्दे॒वो दे॒वाँ२ऽआ च॑ वक्षत् ॥ ६२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**देवहूः**) विद्वानों को बुलाने वाला (**यज्ञः**) पूजा करने योग्य ईश्वर हम लोगों को सत्य (**आ, वक्षत्**) उपदेश करे (**च**) और असत्य से हमारा उद्धार करे वा जो (**सुम्नहूः**) सुखों को बुलाने वाला (**यज्ञः**) पूजन करने योग्य ईश्वर हम लोगों के लिये सुखों को (**आ, वक्षत्**) प्राप्त करे (**च**) और दुःखों का विनाश करे वा जो (**अग्निः**) आप प्रकाशमान (**देवः**) समस्त सुख का देने वाला ईश्वर हम लोगों को (**देवान्**) उत्तम गुणों वा भोगों को (**यक्षत्**) देवे (**च**) और (**आ, वक्षत्**) पहुँचावे अर्थात् कार्य्यान्तर से प्राप्त करे, उसको आप लोग निरन्तर सेवो ॥३२॥

भावार्थ—जो उत्तम शास्त्र जानने वाले विद्वानों से उपासना किया जाता तथा जो सुखस्वरूप और मङ्गल कार्य्यों का देने वाला परमेश्वर है उस की समाधियोग से मनुष्य उपासना करें ॥६२॥

वाजस्येत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वाज॑स्य मा प्रस॒वऽउ॑द्ग्रा॒भेणोद॑ग्रभीत् ।
अधा॑ स॒पत्ना॒निन्द्रो॑ मे निग्रा॒भेणाध॑राँ२ऽअकः ॥ ६३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**इन्द्रः**) पालन करने वाला (**वाजस्य**) विशेष ज्ञान का (**प्रसवः**) उत्पन्न करने वाला ईश्वर (**मा**) मुझे (**उद्ग्राभेण**) अच्छे ग्रहण करने के साधन (**उद्, अग्रभीत्**) ग्रहण करे वैसे जो (**अध**) इस के पीछे उसके अनुसार पालना करने और विशेष ज्ञान सिखाने वाला पुरुष (**मे**) मेरे (**सपत्नान्**) शत्रुओं को (**निग्राभेणः**) पराजय से (**अधरान्**) नीचे गिराया (**अकः**) करे, उसको तुम लोग भी सेनापति करो ॥६३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर पालना करे वैसे जो मनुष्य पालना के लिये धार्मिक मनुष्यों को अच्छे प्रकार ग्रहण करते और दण्ड देने के लिये दुष्टों को निग्रह अर्थात् नीचा दिखाते हैं वे ही राज्य कर सकते हैं ॥ ६३ ॥

उद्ग्राभमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है—

उ॒द्ग्रा॒भं च॑ निग्रा॒भं च॒ ब्रह्म॑ दे॒वाऽअ॑वीवृधन् ।
अधा॑ स॒पत्ना॑निन्द्रा॒ग्नी मे॑ विषू॒चीना॒न्व्य॒स्यता॑म् ॥ ६४ ॥

पदार्थ—(**देवाः**) विद्वान् जन (**उद्ग्राभम्**) अत्यन्त उत्साह से ग्रहण (**च**) और (**निग्राभं, च**) त्याग भी करके (**ब्रह्म**) धन को (**अवीवृधन्**) बढ़ावें (**अध**) इसके अनन्तर (**इन्द्राग्नी**) बिजुली और आग के समान दो सेनापति (**मे**) मेरे (**विषूचीनान्**) विरोधभाव को वर्त्तने वाले (**सपत्नान्**) वैरियों को (**व्यस्यताम्**) अच्छे प्रकार उठा २ के पटकें ॥ ६४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सज्जनों का सत्कार और दुष्टों को पीट मार धन को बढ़ा निष्कण्टक राज्य का सम्पादन करते हैं वे ही प्रशंसित होते हैं । जो राजा राज्य में बसने हारे सज्जनों का सत्कार और दुष्टों का निरादर करके अपने तथा प्रजा के ऐश्वर्य्य को बढ़ाता है, उसी के सभा और सेना की रक्षा करने वाले जन शत्रुओं का नाश कर सकें ॥ ६४ ॥

क्रमध्वमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

क्रम॑ध्वम॒ग्निना॒ नाक॒मुख्य॒ꣳ हस्ते॑षु॒ बिभ्र॑तः ।
दि॒वस्पृ॒ष्ठꣳ स्व॒र्ग॒त्वा मि॒श्रा दे॒वेभि॑राध्वम् ॥ ६५ ॥

पदार्थ—हे वीरो ! तुम (**अग्निना**) बिजुली से (**नाकम्**) अत्यन्त सुख और (**उख्यम्**) पात्र में पकाये हुए चावल दाल तर्कारी कढ़ी आदि भोजन को(**हस्तेषु**) हाथों में (**बिभ्रतः**) धारण किये हुए (**क्रमध्वम्**) पराक्रम करो (**देवेभिः**) विद्वानों से (**मिश्राः**) मिले हुए (**दिवः**) न्याय और विनय आदि गुणों के प्रकाश से उत्पन्न हुए दिव्य (**पृष्ठम्**) चाहे हुए (**स्वः**) सुख को (**गत्वा**) प्राप्त होकर (**आध्वम्**) स्थित होओ ॥ ६५ ॥

भावार्थ—राजपुरुष विद्वानों के साथ सम्बन्ध कर आग्नेय आदि अस्त्रों से शत्रुओं में पराक्रम करें तथा स्थिर सुख को पाकर वारम्वार अच्छा यत्न करें ॥६५॥

प्राचीमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्राची॒मनु॑ प्र॒दिशं॒ प्रेहि॑ वि॒द्वान॒ग्नेर॑ग्ने पु॒रोऽअ॑ग्निर्भवे॒ह ।
विश्वा॒ऽआशा॒ दीद्या॑नो॒ वि भा॒ह्यूर्जं॑ नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ॥ ६६ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) शत्रुओं के जलाने हारे सभापति ! तू (**प्राचीम्**) पूर्व (**प्रदिशम्**) दिशा की ओर को (**अनु, प्र, इहि**) अनुकूलता से प्राप्त हो (**इह**) इस राज्यकर्म में (**अग्नेः**) आग्नेय अस्त्र आदि के योग से (**पुरो, अग्निः**) अग्नि के तुल्य अग्रगामी (**विद्वान्**) कार्य्य के जनाने वाले विद्वान् (**भव**) होओ (**विश्वाः**) समस्त(**आशाः**) दिशाओं को (**दीद्यानः**) निरन्तर प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के समान हम लोगों के (**द्विपदे**) मनुष्यादि और (**चतुष्पदे**) गौ आदि पशुओं के लिये (**ऊर्जम्**) अन्नादि पदार्थ को (**धेहि**) धारण कर तथा विद्या विनय और पराक्रम से अभय का (**वि, भाहि**) प्रकाश कर ॥ ६६ ॥

भावार्थ—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं का अभ्यास कर युद्धविद्याओं को जान सब दिशाओं में स्तुति को प्राप्त होते हैं, वे मनुष्यों और पशुओं के खाने योग्य पदार्थों की उन्नति और रक्षा का विधान कर आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ६६ ॥

पृथिव्या इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । पिपीलिकामध्या बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर योगियों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पृ॒थि॒व्याऽअ॒हमुद॒न्तरि॑क्ष॒मारु॑हम॒न्तरि॑क्षा॒द्दिव॒मारु॑हम् ।
दि॒वो नाक॑स्य पृ॒ष्ठात् स्व॒र्ज्योति॑रगाम॒हम् ॥ ६७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे किये हुए योग के अङ्गों के अनुष्ठान संयमसिद्ध अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण (**अहम्**) मैं (**पृथिव्याः**) पृथिवी के बीच (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**उद्, आ, अरुहम्**) उठ जाऊं वा (**अन्तरिक्षात्**) आकाश से (**दिवम्**) प्रकाशमान सूर्यलोक को (**आ, अरुहम्**) चढ़ जाऊं वा (**नाकस्य**) सुख कराने हारे (**दिवः**) प्रकाशमान उस सूर्यलोक के (**पृष्ठात्**) समीप से (**स्वः**) अत्यन्त सुख और (**ज्योतिः**) ज्ञान के प्रकाश को (**अहम्**) मैं (**अगाम्**) प्राप्त होऊं वैसा तुम भी आचरण करो ॥ ६७ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती है, उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है, अन्यथा नहीं ॥ ६७ ॥

स्वर्यन्त इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वर्यन्तो नापेक्षन्तऽआ द्याᳬं रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारᳬं सुविद्वाᳬंसो वितेनिरे ॥६८॥

पदार्थ—(ये) जो (सुविद्वांसः) अच्छे पण्डित योगी जन (यन्तः) योगाभ्यास के पूर्ण नियम करते हुओं के (न) समान (स्वः) अत्यंत सुख को (अप,-ईक्षते) अपेक्षा करते हैं वा (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आ, रोहन्ति) चढ़ जाते अर्थात् लोकांतरों में इच्छापूर्वक चले जाते वा (द्याम्) प्रकाशमय योगविद्या और (विश्वतोधारम्) सब ओर से सुशिक्षायुक्त वाणी है जिस में (यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य उस यज्ञादि कर्म का (वितेनिरे) विस्तार करते हैं, वे अविनाशी सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे सारथि घोड़ों को अच्छे प्रकार सिखा और अभीष्ट मार्ग में चला कर सुख से अभीष्ट स्थान को शीघ्र जाता है, वैसे ही अच्छे विद्वान् योगी जन जितेन्द्रिय होकर नियम से अपने को अभीष्ट परमात्मा को पाकर आनन्द का विस्तार करते हैं ॥ ६८ ॥

अग्न इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् के व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥६९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (देवयताम्) कामना करते हुए जनों के बीच तू (प्रथमः) पहिले (प्रेहि) प्राप्त हो जिससे (देवानाम्) विद्वान् (उत) और (मर्त्यानाम्) अविद्वानों का तू व्यवहार देखने वाला है जिससे (इयक्षमाणाः) यज्ञ की इच्छा करने वाले (सजोषाः) एक सी प्रीतियुक्त (यजमानाः) सबको सुख देने हारे जन (भृगुभिः) परिपूर्ण विज्ञान वाले विद्वानों के साथ (स्वस्ति) सामान्य सुख और (स्वः) अत्यन्त सुख को (यन्तु) प्राप्त हों वैसा तू भी हो ॥ ६९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वान् और अविद्वानों के साथ प्रीति से बातचीत करके सुख को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ६९ ॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकᳬं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥७०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (समनसा) एकसे विज्ञानयुक्त (समीची) एकता चाहती हुई (विरूपे) अलग २ रूप वाली धाय और माता दोनों (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को दुग्ध पिलाती हैं वैसे (नक्तोषासा) रात्रि और प्रातःकाल की वेला जगत् को (धापयेते) दुग्ध सा पिलाती हैं अर्थात् अति आनन्द देती हैं वा जैसे (रुक्मः) प्रकाशमान अग्नि (द्यावाक्षामा, अन्तः) ब्रह्माण्ड के बीच में (वि,-भाति) विशेष करके प्रकाश करता है उस (अग्निम्) अग्नि को (द्रविणोदाः) द्रव्य के देने वाले (देवाः) शास्त्र पढ़े हुए जन (धारयन्) धारण करते हैं वैसे वर्त्ताव वर्त्तो ॥ ७० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिये कि जैसे संसार में रात्रि और प्रातःसमय की वेला अलग रूपों से वर्त्तमान और जैसे बिजुली अग्नि सब पदार्थों में व्याप्त वा जैसे प्रकाश और भूमि प्रतिसहनशील हैं वैसे अत्यन्त विवेचना करने और शुभगुणों में व्यापक होने वाले होकर पुत्र के तुल्य संसार को पालें ॥ ७० ॥

अग्न इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

फिर योगी के कर्मों के फलों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ।
त्वᳬं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७१॥

पदार्थ—हे (सहस्राक्ष) हजारों व्यवहारों में अपना विशेष ज्ञान वा (शतमूर्द्धन्) सैकड़ों प्राणियों में मस्तक वाले (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान योगिराज ! जिस (ते) आप के (शतम्) सैकड़ों (प्राणाः) जीवन के साधन (सहस्रम्, व्यानाः) सब क्रियाओं के निमित्त शरीरस्थ वायु तथा जो (त्वम्) आप (साहस्रस्य) हजारों जीव और पदार्थों का आधार जो जगत् उस के (रायः) धन के (ईशिषे) स्वामी हैं (तस्मै) उस (वाजाय) विशेष ज्ञान वाले (ते) आपके लिये हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (विधेम) सत्कारपूर्वक व्यवहार करें ॥७१॥

भावार्थ—जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्र आदि अङ्गों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है । अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है, उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ७१ ॥

सुपर्ण इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद । भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशऽउद्दृᳬंह ॥७२॥

पदार्थ—हे विद्वान् योगीजन ! आप (भासा) प्रकाश से (सुपर्णः) अच्छे अच्छे पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त और (गरुत्मान्) बड़े मन तथा आत्मा के बल से युक्त (असि) हैं, अतिप्रकाशमान आकाश में वर्त्तमान सूर्यमण्डल के तुल्य (पृथिव्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) ऊपर (सीद) स्थिर हो, वा वायु के तुल्य प्रजा को (आ, पृण) सुख दे, वा जैसे सूर्य (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (दिवम्) प्रकाशमय (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को वैसे तू राजनीति के प्रकाश से राज्य को (उत्, स्तभान) उन्नति पहुँचा, वा जैसे आग अपने (तेजसा) अतितीक्ष्ण तेज से (दिशः) दिशाओं को वैसे अपने तीक्ष्ण तेज से प्रजाजनों को (उद्, दृंह) उन्नति दे ॥ ७२ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब मनुष्य राग अर्थात् प्रीति और द्वेष वैर से रहित परोपकारी होकर ईश्वर के समान सब प्राणियों के साथ वर्त्ते तब सब सिद्धि को प्राप्त होवे ॥ ७२ ॥

आजुह्वान इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् गुणी जन कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया ।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥७३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) योगाभ्यास से प्रकाशित आत्मा युक्त (पुरस्तात्) प्रथम से (आजुह्वानः) सत्कार के साथ बुलाये (सुप्रतीकः) शुभगुणों को प्राप्त हुए (यजमानः) योगविद्या के देने वाले आचार्य्य ! आप (साधुया) श्रेष्ठ कर्मों से (अस्मिन्) इस (सधस्थे) एक साथ के स्थान में (स्वम्) अपने (योनिम्) परमात्मा रूप घर में (आ, सीद) स्थिर हो (च) और हे (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा वाले योगीजनो ! आप लोग श्रेष्ठ कामों से (उत्तरस्मिन्) उत्तर समय एक साथ सत्य सिद्धान्त पर (अधि, सीदत) अधिक स्थित होओ ॥ ७३ ॥

भावार्थ—जो अच्छे कामों को करके योगाभ्यास करने वाले विद्वान् के संग और प्रीति से परस्पर संवाद करते हैं, वे सब के अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते हैं ॥ ७३ ॥

ताᳬं सवितुरित्यस्य कण्व ऋषिः । सविता देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कौन ईश्वर को पा सकता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ताᳬं सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाᳬं सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥७४॥

पदार्थ—जैसे (कण्वः) बुद्धिमान् पुरुष (अस्य) इस (वरेण्यस्य) स्वीकार करने योग्य (सवितुः) योग के ऐश्वर्य के देने हारे ईश्वर की (याम्) जिस (चित्राम्) अद्भुत आश्चर्य रूप वा (विश्वजन्याम्) समस्त जगत् को उत्पन्न करती(प्रपीनाम्) अति उन्नति के साथ बढ़ती (सहस्रधाराम्) हजारों पदार्थों को धारण करने हारी (सुमतिम्) और यथातथ्य विषय को प्रकाशित करती हुई उत्तम बुद्धि तथा (पयसा) अन्न आदि पदार्थों के साथ (महीम्) बड़ी (गाम्) वाणी को (अदुहत्) परिपूर्ण करना अर्थात् क्रम से जान अपने ज्ञानविषयक करता है, वैसे (ताम्) उसको (अहम्) मैं (आ, वृणे) अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूँ ॥ ७४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मेधावीजन जगदीश्वर की विद्या को पाकर वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही इसको प्राप्त होकर और सामान्य जन को भी विद्या और योगवृद्धि के लिये उद्युक्त होना चाहिये ॥ ७४ ॥

विधेमेत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीᳬंषि जुहुरे समिद्धे ॥७५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) योगीजन ! (ते) तेरे (परमे) सबसे अति उत्तम योग के संस्कार से उत्पन्न हुए पूर्व (जन्मन्) जन्म में वा (त्वे) तेरे वर्त्तमान जन्म में (अवरे) न्यून (सधस्थे) एक साथ स्थान में वर्त्तमान हम लोग (स्तोमैः) स्तुतियों से (विधेम) सत्कारपूर्वक तेरी सेवा करें तू हम लोगों को (यस्मात्) जिस (योनेः) स्थान से (उदारिथ) अच्छे २ साधनों के सहित प्राप्त हो (तम्) उस स्थान को मैं (प्र, यजे) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं और जैसे होम करने वाले लोग (समिद्धे) अच्छे प्रकार जलते हुए अग्नि में (हवींषि) होम करने योग्य वस्तुओं को (जुहुरे) होमते हैं, वैसे योगाग्नि में हम लोग दुःखों के होम का (विधेम) विधान करें ॥ ७५ ॥

भावार्थ—इस संसार में योग के संस्कार से युक्त जिस जीव का पवित्र भाव से जन्म होता है वह संस्कार की प्रबलता से योग ही के जानने की चाहना करने वाला होता है और उसका जो सेवन करते हैं वे भी योग की चाहना करने वाले होते हैं, उक्त सब योगीजन जैसे अग्नि इन्धन को जलाता है वैसे समस्त दुःख अशुद्धि भाव को योग से जलाते हैं ॥ ७५ ॥

प्रेद्ध इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रेद्धोऽअग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वाᳬं शश्वन्तऽउपयन्ति वाजाः ॥७६॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण (अग्ने) आग के समान दुःखों के विनाश करने हारे योगीजन ! आप (पुरः) पहिले (प्रेद्धः) अच्छे तेज से प्रकाशमान हुए (अजस्रया) नाशरहित निरन्तर (सूर्म्या) ऐश्वर्य्य के प्रवाह से (नः) हम लोगों को (दीदिहि) चाहें (शश्वन्तः) निरन्तर वर्त्तमान (वाजाः) विशेष ज्ञानवाले जन (त्वाम्) आपको (उप, यन्ति) प्राप्त होवें ॥ ७६ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य शुद्धात्मा होकर औरों का उपकार करते हैं, तब वे भी सर्वत्र उपकारयुक्त होते हैं ॥ ७६ ॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भद्रᳬं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा तऽओहैः ॥७७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान पराक्रम वाले विद्वन् ! जो (अश्वम्) घोड़े के (न) समान वा (क्रतुम्) बुद्धि के (न) समान (भद्रम्) कल्याण और (हृदिस्पृशम्) हृदय में स्पर्श करने वाला है (तम्) उस पूर्व मन्त्र में कहे तुझ को (स्तोमैः) स्तुतियों से (अद्य) आज प्राप्त होकर (ते) आप के (ओहैः) पालन आदि गुणों से (ऋध्याम) वृद्धि को पावें ॥७७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे शरीर आदि में स्थिर हुए बिजुली आदि से वृद्धि वेग और बुद्धि के सुख बढ़े वैसे विद्वानों की लिखावट और पालन आदि से मनुष्य आदि सब वृद्धि को पाते हैं ॥७७॥

चित्तिमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । विराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवाऽइहागमन्वीतिहोत्राऽऋतावृधः । पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यᳬं हविः ॥७८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे मैं (मनसा) विज्ञान वा (घृतेन) घी से (चित्तिम्) जिस क्रिया से सञ्चय करते हैं उसको (जुहोमि) ग्रहण करता हूँ वा जैसे (इह) इस जगत् में (वीतिहोत्राः) सब ओर से प्रकाशमान जिन का यज्ञ है वे (ऋतावृधः) सत्य से बढ़ने और (देवाः) कामना करते हुए विद्वान् लोग (भूमनः) अनेक रूप वाले (विश्वस्य) समस्त संसार के (विश्वकर्म्मणे) सब के करने योग्य काम को जिसने किया है उस (पत्ये) पालनेहारे जगदीश्वर के लिये (अदाभ्यम्) नष्ट न करने और (हविः) होमने योग्य सुख करने वाले पदार्थ का (विश्वाहा) सब दिनों होम करने को (आगमन्) आते हैं और मैं होमने योग्य पदार्थों को (जुहोमि) होमता हूँ, वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥७८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे काष्ठों में चिना हुआ अग्नि घी से बढ़ता है वैसे विज्ञान से बढ़ूं वा जैसे ईश्वर की उपासना करने हारे विद्वान् संसार के कल्याण करने का प्रयत्न करते हैं वैसे मैं भी यत्न करूं ॥७८॥

सप्त त इत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । अग्निर्देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सप्त तेऽअग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तऽऋषयः सप्त धाम प्रियाणि । सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥७९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! जैसे आग के (सप्त, समिधः) सात जलाने वाले (सप्त, जिह्वाः) वा सात काली कराली आदि लपटरूप जीभ वा (सप्त, ऋषयः) सात प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, देवदत्त, धनञ्जय वा (सप्त, धाम, प्रियाणि) सात पियारे धाम अर्थात् जन्म, स्थान, नाम, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष वा (सप्त, होत्राः) सात प्रकार के ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले हैं वैसे (ते) तेरे हों, जैसे विद्वान् उस अग्नि को (सप्तधा) सात प्रकार से (यजन्ति) प्राप्त होते हैं वैसे (त्वा) तुझ को प्राप्त होवें, जैसे यह अग्नि (घृतेन) घी से और (स्वाहा) उत्तम वाणी से (सप्त, योनीः) सात संचयों को सुख से प्राप्त होता है वैसे तू (आ, पृणस्व) सुख से प्राप्त हो ॥७९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईंधन से अग्नि बढ़ता है वैसे विद्या आदि शुभगुणों से समस्त मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होवें, जैसे विद्वान् जन अग्नि में घी आदि को होम के जगत् का उपकार करते हैं वैसे हम लोग भी करें ॥७९॥

शुक्रज्योतिरित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । मरुतो देवताः । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च ।
शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यᳬंहाः ॥८०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (शुक्रज्योतिः) शुद्ध जिसका प्रकाश (च) और (चित्रज्योतिः) अद्भुत जिसका प्रकाश (च) और (सत्यज्योतिः) विनाशरहित जिसका प्रकाश (च) और (ज्योतिष्मान्) जिसके बहुत प्रकाश हैं (च) और (शुक्रः) शीघ्र करने वाला वा शुद्धस्वरूप (च) और (अत्यंहा) जिस ने दुष्ट काम को दूर किया (च) और (ऋतपाः) सत्य की रक्षा करने वाला ईश्वर है, वैसे तुम लोग भी होओ ॥८०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस जगत् में बिजुली वा सूर्य आदि प्रभा और शुद्धि के करने वाले पदार्थों को बना कर ईश्वर ने जगत् शुद्ध किया है वैसे ही शुद्धि सत्य और विद्या के उपदेश की क्रियाओं से विद्वान् जनों को मनुष्यादि शुद्ध करने चाहियें, इस मन्त्र में अनेक चकारों के होने से यह भी ज्ञात होता है कि सब के ऊपर प्रीति आदि गुण भी विधान करने चाहियें ॥८०॥

ईदृङ् चेत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । मरुतो देवताः । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

फिर विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च ।
मितश्च संमितश्च सभराः ॥८१॥

पदार्थ—जो पुरुष (ईदृङ्) इस के तुल्य (च) भी (अन्यादृङ्) और के समान (च) भी (सदृङ्) समान देखने वाला (च) भी (प्रतिसदृङ्) उस उस के प्रति सदृश देखने वाला (च) भी (मितः) मान को प्राप्त (च) भी (संमितः) अच्छे प्रकार परिमाण किया गया (च) और जो (सभराः) समान धारणा को करने वाले वर्त्तमान हैं, वे व्यवहार सम्बन्धी कार्य्यसिद्धि कर सकते हैं ॥८१॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के तुल्य उत्तम और ईश्वर के समान काम को करके सत्य का धारण करता और असत्य का त्याग करता है वही योग्य है ॥८१॥

ऋतश्चेत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । मरुतो देवताः । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च ।
धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः ॥८२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (ऋतः) सत्य का जानने वाला (च) भी (सत्यः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (च) भी (ध्रुवः) दृढ़ निश्चययुक्त (च) भी (धरुणः) सब का आधार (च) भी (धर्त्ता) धारण करने वाला (च) भी (विधर्त्ता) विशेष कर के धारण करने वाला अर्थात् धारकों का धारक (च) भी और (विधारयः) विशेष करके सब व्यवहार का धारण कराने वाला परमात्मा है, सब लोग उसी की उपासना करें ॥८२॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या उत्साह सज्जनों का सङ्ग और पुरुषार्थ से सत्य और विशेष ज्ञान को धारण कर अच्छे स्वभाव को धारण करते हैं वे ही आप सुखी हो सकते और दूसरों को कर भी सकते हैं ॥८२॥

ऋतजिदित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । मरुतो देवताः । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च ।
अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः ॥८३॥

पदार्थ—जो (ऋतजित्) विशेष ज्ञान को बढ़ाने हारा (च) और (सत्यजित्) कारण तथा धर्म को उन्नति देने वाला (च) और (सेनजित्) सेना को जीतने हारा (च) और (सुषेणः) सुन्दर सेना वाला (च) और (अन्तिमित्रः) समीप में सहाय करने हारे मित्र वाला (च) और (दूरे अमित्रः) शत्रु जिससे दूर भाग गये हों (च) और अन्य भी जो इस प्रकार का हो वह (गणः) गिनने योग्य होता है ॥८३॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या और सत्य आदि कामों की उन्नति करें तथा मित्रों की सेवा और शत्रुओं से वैर करें, वे ही लोक में प्रशंसा योग्य होते हैं ॥८३॥

ईदृक्षास इत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । मरुतो देवताः । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ई॒दृक्षास॑ऽए॒ता॒दृक्षा॑सऽऊ॒ षु णः॑ स॒दृक्षा॑सः॒ प्रति॑सदृक्षा॒स॒ऽएत॑न ।
मि॒तास॑श्च॒ सम्मि॑तासो नो॒ऽअ॒द्य सभ॑रसो मरुतो य॒ज्ञेऽअ॒स्मिन् ॥८४॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो ! जो (**ईदृक्षासः**) इस लक्षण से युक्त (**एतादृक्षासः**) इन पहिले कहे हुओं के सदृश (**सदृक्षासः**) पक्षपात को छोड़ समान दृष्टि वाले (**प्रतिसदृक्षासः**) शास्त्रों को पढ़े हुए सत्य बोलने वाले धर्मात्माओं के सदृश हैं वे आप (**नः**) हम लोगों को (**सु, आ, इतन**) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (**उ**) वा (**मितासः**) परिमाणयुक्त जानने योग्य (**संमितासः**) तुला के समान सत्य झूठ को पृथक् पृथक् करने (**च**) और (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) यज्ञ में (**सभरसः**) अपने समान प्राणियों की पुष्टि पालना करने वाले हों वे (**अद्य**) आज (**नः**) हम लोगों की रक्षा करें और उनका हम लोग भी निरन्तर सत्कार करें ॥८४॥

भावार्थ—जब धार्मिक विद्वान् जन कहीं मिलें, जिनके समीप जावें, पढ़ावें और शिक्षा देवें तब वे उन सब लोगों को सत्कार करने योग्य हैं ॥८४॥

स्वतवानित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । चातुर्मास्या मरुतो देवताः । स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स्व॒तवाँ॑श्च प्रघा॒सी च॑ सान्त॒पन॑श्च गृहमेधी च॑ ।
क्री॒डी च॑ शा॒की चो॑ज्जे॒षी ॥८५॥

पदार्थ—जो (**स्वतवान्**) अपनों की वृद्धि कराने वाला (**च**) और(**प्रघासी**) जिसके बहुत भोजन करने योग्य पदार्थ विद्यमान हैं ऐसा (**च**) और (**सान्तपनः**) अच्छे प्रकार शत्रुजनों को तपाने (**च**) और (**गृहमेधी**) जिसका प्रशंसायुक्त घर में सङ्ग ऐसा (**च**) और (**क्रीडी**) अवश्य खेलने के स्वभाव वाला (**च**) और (**शाकी**) अवश्य शक्ति रखने का स्वभाव वाला (**च**) भी हो वह (**उज्जेषी**) मन से अत्यन्त जीतने वाला हो ॥८५॥

भावार्थ—जो बहुत बल और अन्न के सामर्थ्य से युक्त गृहस्थ होता है वह सब जगह विजय को प्राप्त होता है ॥८५॥

इन्द्रमित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । मरुतो देवताः । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे परस्पर वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रं॒ दैवी॒र्विशो॑ म॒रुतो॒ऽनु॑वर्त्मानोऽभव॒न्यथेन्द्रं॒ दैवी॒र्विशो॑ म॒रुतो॒ऽनु॑वर्त्म॒ानोऽभ॑वन् । ए॒वमि॒मं यज॑मानं॒ दैवी॑श्च॒ विशो॑ मानु॒षीश्चानु॑वर्त्मा॑नो भवन्तु ॥८६॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप वैसे अपना वर्त्ताव कीजिये (**यथा**) जैसे (**दैवीः**) विद्वान् जनों के ये (**विशः**) प्रजाजन (**मरुतः**) ऋतु २ में यज्ञ कराने वाले विद्वान् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्ययुक्त राजा के (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूल मार्ग से चलने वाले (**अभवन्**) होवें वा जैसे (**मरुतः**) प्राण के समान प्यारे (**दैवीः**) शास्त्र जानने वाले दिव्य (**विशः**) प्रजाजन (**इन्द्रम्**) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर के (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूल आचरण करने हारे (**अभवन्**) हों (**एवम्**) ऐसे (**दैवीः**) शास्त्र पढ़े हुए (**च**) और (**मानुषीः**) मूर्ख (**च**) ये दोनों (**विशः**) प्रजाजन (**इमम्**) इस (**यजमानम्**) विद्या और अच्छी शिक्षा से सुख देने हारे सज्जन के (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूल आचरण करने वाले (**भवन्तु**) हों ॥ ८६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रजाजन राजा आदि राजपुरुषों के अनुकूल वर्त्तें वैसे ये लोग भी प्रजाजनों के अनुकूल वर्त्तें । जैसे अध्यापन और उपदेश करने वाले सब के सुख के लिए प्रयत्न करें वैसे सब लोग इन के सुख के लिये प्रयत्न करें ॥ ८६ ॥

इममित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इ॒मꣳ स्तन॒मूर्ज॑स्वन्तं धया॒पां प्रपी॑नमग्ने सरि॒रस्य॒ मध्ये॑ ।
उत्सं॑ जुषस्व॒ मधु॑मन्तमर्व॑न्त्समु॒द्रियꣳ॒ सद॑न॒मावि॑शस्व ॥८७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान पुरुष ! तू (**प्रपीनम्**) अच्छे दूध से भरे हुए (**स्तनम्**) स्तन के समान (**इमम्**) इस (**ऊर्जस्वन्तम्**) प्रशंसित बल करते हुए (**अपाम्**) जलों के रस को (**धय**) पी (**सरिरस्य**) बहुतों के (**मध्ये**) बीच में (**मधुमन्तम्**) प्रशंसित मधुरतादि गुणयुक्त (**उत्सम्**) जिससे पदार्थ गीले होते हैं उस कूप को (**जुषस्व**) सेवन कर, हे वा (**अर्वन्**) घोड़ों के समान वर्त्ताव रखने हारे जन ! तू (**समुद्रियम्**) समुद्र में हुए स्थान कि (**सदनम्**) जिस में जाते हैं उसमें (**आ, विशस्व**) अच्छे प्रकार प्रवेश कर ॥८७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बालक और बछड़े स्तन के दूध को पी के बढ़ते हैं वा जैसे घोड़ा शीघ्र दौड़ता है वैसे मनुष्य यथायोग्य भोजन और शयनादि आराम से बढ़े हुए वेग से चलें, जैसे जलों से भरे हुए समुद्र के बीच नौका में स्थित होकर जाते हुए सुखपूर्वक पारावार अर्थात् इस पार से उस पार पहुँचते हैं वैसे ही अच्छे साधनों से व्यवहार के पार और अवार को प्राप्त होवें ॥ ८७ ॥

घृतमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को अग्नि कहां कहां खोजना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

घृतं मि॑मिक्षे घृ॒तम॑स्य॒ योनि॑र्घृ॒ते श्रि॒तो घृ॒तम्व॑स्य॒ धाम॑ ।
अ॒नु॒ष्व॒धमाव॑ह मा॒दय॑स्व स्वाहा॑कृतं वृषभ वक्षि ह॒व्यम् ॥८८॥

पदार्थ—हे समुद्र में जाने वाले मनुष्य ! आप (**घृतम्**) जल को (**मिमिक्षे**) सींचना चाहो (**उ**) वा (**अस्य**) इस आग का (**घृतम्**) घी (**योनिः**) घर है जो (**घृते**) घी में (**श्रितः**) आश्रय को प्राप्त हो रहा है वा (**घृतम्**) जल (**अस्य**) इस आग का (**धाम**) धाम अर्थात् ठहरने का स्थान है उस अग्नि को तू (**अनुष्वधम्**) अन्न की अनुकूलता को (**आ, वह**) पहुँचा । हे (**वृषभ**) वर्षाने वाले जन ! तू जिस कारण (**स्वाहाकृतम्**) वेदवाणी से सिद्ध किये (**हव्यम्**) लेने योग्य पदार्थ को (**वक्षि**) चाहता वा प्राप्त होता है इसलिये हम लोगों को (**मादयस्व**) आनन्दित कर ॥ ८८ ॥

भावार्थ—जितना अग्नि जल में है उतना जलाधिकरण अर्थात् जल में रहने वाला कहाता है जैसे घी से अग्नि बढ़ता है वैसे जल से सब पदार्थ बढ़ते हैं और अन्न के अनुकूल घी आनन्द कराने वाला होता है, इससे उक्त व्यवहार की चाहना सब लोगों को करनी चाहिये ॥ ८८ ॥

समुद्रादित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्ताव रखना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स॒मु॒द्रादू॒र्मिर्मधु॑मा॒ँ२ऽउदा॑र॒दुपा॒ꣳशुना॒ सम॑मृ॒तत्वमा॑नट् ।
घृ॒तस्य॒ नाम॒ गुह्यं॒ यदस्ति॑ जि॒ह्वा दे॒वाना॑म॒मृत॑स्य॒ नाभिः॑ ॥८९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो (**समुद्रात्**) अन्तरिक्ष से (**अंशुना**) किरणसमूह के साथ (**मधुमान्**) मिठास लिये हुए (**ऊर्मिः**) जलतरङ्ग (**उदारत्**) ऊपर को पहुँचे वह (**सममृतत्वम्**) अच्छे प्रकार अमृतरूप स्वाद के (**उपानट्**) समीप में व्याप्त हो अर्थात् अतिस्वाद को प्राप्त होवे (**यत्**) जो (**घृतस्य**) जल का (**गुह्यम्**) गुप्त (**नाम**) नाम (**अस्ति**) है और जो (**देवानाम्**) विद्वानों की (**जिह्वा**) वाणी (**अमृतस्य**) मोक्ष का (**नाभिः**) प्रबन्ध करने वाली है उस सब का सेवन करो ॥ ८९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि, मिले हुए जल और भूमि के विभाग से अर्थात् उनमें से जल पृथक् कर मेघमण्डल को प्राप्त करा उसको भी मीठा कर देता है (**तथा**) जो जलों का कारणरूप नाम है वह गुप्त अर्थात् कारणरूप जल अत्यन्त छिपे हुए और जो मोक्ष है यह सब विद्वानों के उपदेश से ही मिलता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८९ ॥

वयमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

व॒यं नाम॒ प्र ब्र॑वामा घृ॒तस्या॒स्मिन् य॒ज्ञे धा॑रयामा॒ नमो॑भिः ।
उप॑ ब्र॒ह्मा शृ॑णवच्छ॒स्यमा॑नं॒ चतुः॑शृङ्गोऽवमीद् गौ॒रऽए॒तत् ॥९०॥

पदार्थ—जिसको (**चतुःशृङ्गः**) जिसके चारों वेद सींगों के समान उत्तम हैं वह (**गौरः**) वेदवाणी में रमण करने वा वेदवाणी को देने और (**ब्रह्मा**) चारों वेदों को जानने वाला विद्वान् (**अवमीत्**) उपदेश करे वा (**उप, शृणवत्**) समीप में सुने वा (**घृतस्य**) घी वा जल का (**शस्यमानम्**) प्रशंसित हुआ गुप्त (**नाम**) नाम है (**एतत्**) इसको (**वयम्**) हम लोग औरों के प्रति (**प्र, ब्रवाम**) उपदेश करें और (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) गृहाश्रम व्यवहार में (**नमोभिः**) अन्न आदि पदार्थों के साथ (**धारयाम**) धारण करें ॥९०॥

भावार्थ—मनुष्य लोग मनुष्य-देह को पाकर सब पदार्थों के नाम और अर्थों को पढ़ाने वालों से सुन कर औरों के लिए कहें और इस सृष्टि में स्थित पदार्थों से समस्त कामों की सिद्धि करावें ॥९०॥

चत्वारीत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब यज्ञ के गुणों वा शब्दशास्त्र के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है—

च॒त्वारि॒ शृङ्गा॒ त्रयो॑ऽअस्य॒ पादा॒ द्वे शी॒र्षे स॒प्त हस्ता॑सोऽअस्य ।
त्रिधा॑ ब॒द्धो वृ॑ष॒भो रो॑रवीति म॒हो दे॒वो मर्त्याँ॑२ऽआवि॑वेश ॥९१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस (**अस्य**) इस के (**त्रयः**) प्रातःसवन, मध्यन्दिनसवन और सायसवन ये तीन (**पादाः**) प्राप्ति के साधन (**चत्वारि**) चार वेद (**शृङ्गा**) सींग (**द्वे**) दो (**शीर्षे**) अस्तकाल और उदयकाल शिर वा जिस (**अस्य**) इसके (**सप्त, हस्तासः**) गायत्री आदि छन्द सात हाथ हैं वा जो (**त्रिधा**) मन्त्र ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से (**बद्धः**) बंधा हुआ (**महः**) बड़ा (**देवः**) प्राप्त करने योग्य (**वृषभः**) सुखों को सब ओर स वर्षाने वाला यज्ञ (**रोरवीति**) प्रातः, मध्य और सांय सवन क्रम से शब्द करता हुआ (**मर्त्यान्**) मनुष्यों को (**आ, विवेश**) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है, उस का अनुष्ठान करके सुखी होओ ॥९१॥

द्वितीयपक्ष—हे मनुष्यो ! तुम जिस (**अस्य**) इस के (**त्रयः**) भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीन काल (**पादाः**) पग (**चत्वारि**) नाम आख्यात उपसर्ग और निपात चार (**शृङ्गा**) सींग (**द्वे**) दो (**शीर्षे**) नित्य और कार्य शिर वा जिस (**अस्य**) इस के (**सप्त, हस्तासः**) प्रथमा आदि सात विभक्ति सात हाथ वा जो (**त्रिधा, बद्धः**) हृदय कण्ठ और शिर इन तीन स्थानों में बंधा हुआ (**महः**) बड़ा (**देवः**) शुद्ध अशुद्ध का प्रकाशक (**वृषभः**) सुखों का वर्षाने वाला शब्दशास्त्र (**रोरवीति**) ऋक् यजुः साम और अथर्ववेद से शब्द करता हुआ (**मर्त्यान्**) मनुष्यों को (**आ, विवेश**) प्रवेश करता है, उस का अभ्यास करके विद्वान् होओ ॥९१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उभयोक्ति अर्थात् उपमान के न्यूनाधिक धर्मों के कथन से रूपक और श्लेषालङ्कार है । जो मनुष्य यज्ञविद्या और शब्दविद्या को जानते हैं वे महाशय विद्वान् होते हैं ॥९१॥

त्रिधेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्रऽएकꣳ सूर्य्य एकञ्जजान वेनादेकꣳ स्वधया निष्टतक्षुः ॥९२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**देवासः**) विद्वान् जन (**पणिभिः**) व्यवहार के ज्ञाता स्तुति करने वालों ने (**त्रिधा**) तीन प्रकार से (**हितम्**) स्थित किये और (**गवि**) वाणी में (**गुह्यमानम्**) छिपे हुए (**घृतम्**) प्रकाशित ज्ञान को (**अनु, अविन्दन्**) खोजने के पीछे पाते हैं (**इन्द्रः**) बिजुली जिस (**एकम्**) एक विज्ञान और (**सूर्यः**) सूर्य (**एकम्**) एक विज्ञान को (**जजान**) उत्पन्न करते तथा (**वेनात्**) अति सुन्दर मनोहर बुद्धिमान् से तथा (**स्वधया**) आप धारण की हुई क्रिया से (**एकम्**) अद्वितीय विज्ञान को (**निः**) निरन्तर (**ततक्षुः**) अतितीक्ष्ण सूक्ष्म करते हैं, वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥९२॥

भावार्थ—तीन प्रकार के स्थूल सूक्ष्म और कारण के ज्ञान कराने हारे बिजुली तथा सूर्य के प्रकाश के तुल्य प्रकाशित बोध को आप्त अर्थात् उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानों से जो मनुष्य प्राप्त हों, वे अपने ज्ञान को व्याप्त करें ॥९२॥

एता इत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिये,
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एताऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धाराऽअभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽआसाम् ॥९३॥

पदार्थ—जो (**रिपुणा**) शत्रु चोर से (**न, अवचक्षे**) न काटने योग्य (**शतव्रजाः**) सैकड़ों जन के मार्ग हैं (**एताः**) वे वाणी (**हृद्यात्, समुद्रात्**) हृदयाकाश से (**अर्षन्ति**) निकलती हैं (**आसाम्**) इन वैदिक धर्मयुक्त वाणियों के (**मध्ये**) बीच जो अग्नि में (**घृतस्य**) घी की (**धाराः**) धाराओं के समान मनुष्यों में गिरी हुई प्रकाशित होती हैं उन की (**हिरण्ययः**) तेजस्वी (**वेतसः**) अतिसुन्दर मैं (**अभि, चाकशीमि**) सब ओर से शिक्षा करता हूँ ॥९३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उपदेशक विद्वान् लोग जो वाणी पवित्र विज्ञानयुक्त अनेक मार्गों वाली शत्रुओं से अखण्डय और घी का प्रवाह अग्नि को जैसे उत्तेजित करता है वैसे श्रोताओं को प्रसन्न करने वाली हैं उन वाणियों को प्राप्त होते हैं, वैसे सब मनुष्य अच्छे यत्न से इन को प्राप्त होवें ॥९३॥

सम्यगित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एतेऽअर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाऽइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥९४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अन्तः, हृदा**) शरीर के बीच में (**मनसा**) शुद्ध अन्तःकरण से (**पूयमानाः**) पवित्र हुई (**धेनाः**) वाणी (**सरितः**) नदियों के (**न**) समान (**सम्यक्**) अच्छे प्रकार (**स्रवन्ति**) प्रवृत्त होती हैं उनको जो (**एते**) ये वाणी के द्वारा (**घृतस्य**) प्रकाशित आन्तरिक ज्ञान की (**ऊर्मयः**) लहरें (**क्षिपणोः**) हिंसक जन के भय से (**ईषमाणाः**) भागते हुए (**मृगा इव**) हरिणों के तुल्य (**अर्षन्ति**) उठती तथा सबको प्राप्त होती हैं उनको भी तुम लोग जानो ॥ ९४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे नदी समुद्रों को जाती है वैसे ही आकाशस्थ शब्दसमुद्र से (आकाश का शब्द गुण है इससे) वाणी विचरती हैं, तथा जैसे समुद्र की तरंगें चलती हैं वा जैसे बहेलियों से डरपे हुए मृग इधर-उधर भागते हैं वैसे ही सब प्राणियों की शरीरस्थ विज्ञान से पवित्र हुई वाणी प्रचार को प्राप्त होती हैं । जो लोग शास्त्र के अभ्यास और सत्य वचन आदि से वाणियों को पवित्र करते हैं वे ही शुद्ध होते हैं ॥ ९४ ॥

सिन्धोरित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धाराऽअरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥९५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**प्राध्वने**) जल चलने के उत्तम मार्ग में (**सिन्धोरिव**) नदी की जैसे (**शूघनासः**) शीघ्र चलने हारी (**वातप्रमियः**) वायु से जानने योग्य लहरें गिरें और (**न**) जैसे (**काष्ठाः**) संग्राम के प्रदेशों को (**भिन्दन्**) विदीर्ण करता तथा (**ऊर्मिभिः**) शत्रुओं को मारने के श्रम से उठे पसीने रूप जल से पृथिवी को (**पिन्वमानः**) सींचता हुआ (**अरुषः**) चालाक (**वाजी**) वेगवान् घोड़ा गिरे वैसे जो (**यह्वाः**) बड़ी गम्भीर (**घृतस्य**) विज्ञान की (**धाराः**) वाणी (**पतयन्ति**) उपदेशक के मुख से निकल के श्रोताओं पर गिरती हैं उनको तुम जानो ॥ ९५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी दो उपमालङ्कार हैं । जो नदी के समान कार्यसिद्धि के लिये शीघ्र धावने वाले वा घोड़े के समान वेग वाले जन जिनकी सब दिशाओं में कीर्त्ति प्रवर्त्तमान हो रही है और परोपकार के लिये उपदेश से बड़े-बड़े दुःख सहते हैं तथा उनके श्रोताजन संसार के स्वामी होते हैं और नहीं ॥ ९५ ॥

अभिप्रवन्तेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासोऽअग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥९६॥

पदार्थ—(**स्मयमानासः**) किञ्चित् हंसने से प्रसन्नता करने (**कल्याण्यः**) कल्याण के लिये आचरण करने तथा (**समनेव, योषाः**) एक से चित्त वाली स्त्रियाँ जैसे पतियों को प्राप्त हों वैसे जो (**समिधः**) शब्द अर्थ और सम्बन्धों से सम्यक् प्रकाशित (**घृतस्य**) शुद्ध ज्ञान की (**धाराः**) वाणी (**अग्निम्**) तेजस्वी विद्वान् को (**अभि, प्रवन्त**) सब ओर से पहुँचती और (**नसन्त**) प्राप्त होती हैं (**ताः**) उन वाणियों का (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ (**जातवेदाः**) ज्ञानी विद्वान् (**हर्यति**) कान्ति को प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे प्रसन्नचित्त आनन्द को प्राप्त सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने अपने पतियों को प्राप्त होती हैं वैसे ही विद्या तथा विज्ञानरूप आभूषण से शोभित वाणी विद्वान् पुरुष को प्राप्त होती हैं ॥ ९६ ॥

कन्याऽइवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कन्याऽइव वहतुमेतवा उऽअञ्ज्यञ्जानाऽअभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽअभि तत्पवन्ते ॥९७॥

पदार्थ—(**अञ्जि**) चाहने योग्य रूप को (**अञ्जानाः**) प्रकट करती हुई (**वहतुम्**) प्राप्त होने वाले पति को (**एतवै**) प्राप्त होने के लिए (**कन्या इव**) जैसे कन्या शोभित होती हैं वैसे (**यत्र**) जहाँ (**सोमः**) बहुत ऐश्वर्य्य (**सूयते**) उत्पन्न होता (**उ**) और (**यत्र**) जहाँ (**यज्ञः**) यज्ञ होता है (**तत्**) वहाँ जो (**घृतस्य**) ज्ञान की (**धाराः**) वाणी (**अभि, पवन्ते**) सब ओर से पवित्र होती हैं उन को मैं (**अभि, चाकशीमि**) अच्छे प्रकार वारवार प्राप्त होता हूँ ॥ ९७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कन्या स्वयम्वर के विधान से अपनी इच्छा के अनुकूल पतियों का स्वीकार करके शोभित होती हैं वैसे ऐश्वर्य्य उत्पन्न होने के अवसर और यज्ञसिद्धि में विद्वानों की वाणी पवित्र हुई शोभायमान होती हैं ॥ ९७ ॥

अभ्यर्षतेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विवाहित स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥९८॥

पदार्थ—हे विवाहित स्त्रीपुरुषो ! तुम उत्तम वर्त्ताव से (**सुष्टुतिम्**) अच्छी प्रशंसा तथा (**आजिम्**) जिससे उत्तम कामों को जानते हैं उस संग्राम और (**गव्यम्**) वाणी में होने वाले बोध वा गौ में होने वाले दूध दही घी आदि को (**अभ्यर्षत**) सब ओर से प्राप्त होओ (**देवता**) विद्वान् जन (**अस्मासु**) हम लोगों में (**भद्रा**) अति आनन्द कराने वाले (**द्रविणानि**) धनों को (**धत्त**) स्थापित करो (**नः**) हम लोगों

को (इमम्) इस (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य गृहाश्रम व्यवहार को (नयत) प्राप्त कराओ जो (घृतस्य) प्रकाशित विज्ञान से युक्त (धाराः) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी विद्वानों को (मधुमत्) मधुर आलाप जैसे हो वैसे (पवन्ते) प्राप्त होती हैं उन वाणियों को हमको प्राप्त कराओ ॥ ९८ ॥

भावार्थ—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि परस्पर मित्र होकर संसार में विख्यात होवें, जैसे अपने लिये वैसे औरों के लिये भी अत्यन्त सुख करने वाले धनों को उन्नतियुक्त करें, परम पुरुषार्थ से गृहाश्रम की शोभा करें और वेदविद्या का निरन्तर प्रचार करें ॥ ९८ ॥

धामन्नित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर और राजा का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

धाम॑न्ते विश्वं॒ भुव॑न॒मधि॑ श्रि॒तम॒न्तः स॑मु॒द्रे हृ॒द्य॒न्तरायु॑षि ।

अ॒पामनी॑के समि॒थे यऽआभृ॑त॒स्तम॑श्याम॒ मधु॑मन्तं तऽऊ॒र्मिम् ॥९९॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस (ते) आपके (धामन्) जिसमें कि समस्त पदार्थों को आप धरते हैं (अन्तः, समुद्रे) उस आकाश के तुल्य सबके बीच व्याप्तस्वरूप में (विश्वम्) सब (भुवनम्) प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान संसार (अधि,श्रितम्) आश्रित होके स्थित है उसको हम लोग (अश्याम) प्राप्त होवें । हे सभापते ! (ते) तेरे (अपाम्) प्राणों के (अन्तः) बीच (हृदि) हृदय में तथा (आयुषि) जीवन के हेतु प्राणधारियों के (अनीके) सेना और (समिथे) संग्राम में (यः) जो भार (आभृतः) भलीभाँति धरा है (तम्) उसको तथा (मधुमन्तम्) प्रशंसायुक्त मधुर गुणों से भरे हुए (ऊर्मिम्) बोध को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ९९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जगदीश्वर की सृष्टि में परम प्रयत्न से मित्रों की उन्नति करें और समस्त सामग्री को धारण करके यथायोग्य आहार और विहार अर्थात् परिश्रम से शरीर की आरोग्यता का विस्तार कर अपना और पराया उपकार करें ॥ ९९ ॥

इस अध्याय में सूर्य, मेघ, गृहाश्रम और गणित की विद्या तथा ईश्वर आदि की पदार्थ विद्या के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ एकता है, यह समझना चाहिये ॥

यह सत्रहवां (१७) अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

॥ अथ अष्टादशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

वाजश्च म इत्यस्य देवा ऋषयः । अग्निर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अठारहवें अध्याय का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को ईश्वर वा धर्मानुष्ठानादि से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वाज॑श्च मे प्रस॒वश्च॑ मे॒ प्रय॑तिश्च मे॒ प्रसि॑तिश्च मे धी॒तिश्च॑ मे॒ क्रतु॑श्च मे॒ स्वर॑श्च मे श्लोक॑श्च मे॒ श्र॒वश्च॑ मे॒ श्रुति॑श्च मे॒ ज्योति॑श्च मे॒ स्व॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१॥

पदार्थ—(मे) मेरा (वाजः) अन्न (च) विशेषज्ञान (मे) मेरा (प्रसवः) ऐश्वर्य्य (च) और उसके ढङ्ग (मे) मेरा (प्रयतिः) जिस व्यवहार से अच्छा यत्न बनता है सो (च) और उसके साधन (मे) मेरा (प्रसितिः) प्रबन्ध (च) और रक्षा (मे) मेरी (धीतिः) धारण (च) और ध्यान (मे) मेरी (क्रतुः) श्रेष्ठबुद्धि (च) उत्साह (मे) मेरी (स्वरः) स्वतन्त्रता (च) उत्तम तेज (मे) मेरी (श्लोकः) पदरचना करने हारी वाणी (च) कहना (मे) मेरा (श्रवः) सुनना (च) और सुनाना (मे) मेरी (श्रुतिः) जिससे समस्त विद्या सुनी जाती है वह वेदविद्या (च) और उसके अनुकूल स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र (मे) मेरी (ज्योतिः) विद्या का प्रकाश होना (च) और दूसरे को विद्या का प्रकाश करना (मे) मेरा (स्वः) सुख (च) और अन्य का सुख (यज्ञेन) सेवन करने योग्य परमेश्वर वा जगत् के उपकारी व्यवहार से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको अन्न आदि पदार्थों से सब के सुख के लिये ईश्वर की उपासना और जगत् के उपकारक व्यवहार की सिद्धि करनी चाहिये जिससे सब मनुष्यादिकों की उन्नति हो ॥ १ ॥

प्राणश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रा॒णश्च॑ मेऽपा॒नश्च॑ मे व्या॒नश्च॒ मेऽसु॑श्च मे चि॒त्तं च॑ म॒ऽआधी॑तं च मे॒ वाक् च॑ मे॒ मन॑श्च मे॒ चक्षु॑श्च मे॒ श्रोत्रं॑ च मे॒ दक्ष॑श्च मे॒ बलं॑ च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥२॥

पदार्थ—(मे) मेरा (प्राणः) हृदय जीवनमूल (च) और कण्ठ देश में रहने वाला पवन (मे) मेरा (अपानः) नाभि से नीचे को जाने (च) और नाभि में ठहरने वाला पवन (मे) मेरे (व्यानः) शरीर की सन्धियों में व्याप्त (च) और धनञ्जय जो कि शरीर के रुधिर आदि को बढ़ाता है वह पवन (मे) मेरा (असुः) नाग आदि प्राण का भेद (च) तथा अन्य पवन (मे) मेरी (चित्तम्) स्मृति अर्थात् सुधि रहनी (च) और बुद्धि (मे) मेरा (आधीतम्) अच्छे प्रकार किया हुआ निश्चित ज्ञान (च) और रक्षा किया हुआ विषय (मे) मेरी (वाक्) वाणी (च) और सुनना (मे) मेरी (मनः) संकल्प विकल्प रूप अन्तःकरण की वृत्ति (च) अहङ्कारवृत्ति (मे) मेरा (चक्षुः) जिससे कि मैं देखता हूँ वह नेत्र (च) और प्रत्यक्ष प्रमाण (मे) मेरा (श्रोत्रम्) जिससे कि मैं सुनता हूँ वह कान (च) और प्रत्येक विषय पर वेद का प्रमाण (मे) मेरी (दक्षः) चतुराई (च) और तत्काल भान होना तथा (मे) मेरा (बलम्) बल (च) और पराक्रम ये सब (यज्ञेन) धर्म के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग साधनों के सहित अपने प्राण आदि पदार्थों को धर्म के आचरण करने में संयुक्त करें ॥ २ ॥

ओजश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ओज॑श्च मे॒ सह॑श्च मऽआ॒त्मा च॑ मे त॒नूश्च॑ मे॒ शर्म॑ च मे॒ वर्म॑ च मेऽङ्गा॑नि॒ च॒ मेऽस्थी॑नि च मे परू॑ꣳषि च मे॒ शरी॑राणि च म॒ऽआयु॑श्च मे ज॒रा च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥३॥

पदार्थ—(मे) मेरे (ओजः) शरीर का तेज (च) और मेरी सेना (मे) मेरे (सहः) शरीर का बल (च) तथा मन (मे) मेरा (आत्मा) स्वरूप और (च) मेरा सामर्थ्य (मे) मेरा (तनूः) शरीर (च) और सम्बन्धीजन (मे) मेरा (शर्म) घर (च) और घर के पदार्थ (मे) मेरी (वर्म) रक्षा जिससे हो वह बख्तर (च) और शस्त्र अस्त्र (मे) मेरे (अङ्गानि) शिर आदि अङ्ग (च) और अङ्गुली आदि प्रत्यङ्ग (मे) मेरे (अस्थीनि) हाड़ (च) और भीतर के अङ्ग प्रत्यङ्ग अर्थात् हृदय मांस नसें आदि (मे) मेरे (परूंषि) मर्मस्थल (च) और जीवन के कारण (मे) मेरे (शरीराणि) सम्बन्धियों के शरीर (च) और अत्यन्त छोटे छोटे देह के अङ्ग (मे) मेरी (आयुः) उमर (च) तथा जीवन के साधन अर्थात् जिनसे जीते हैं (मे) मेरा (जरा) बुढ़ापा (च) और जवानी ये सब पदार्थ (यज्ञेन) सत्कार के योग्य परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥३॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि धार्मिक सज्जनों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने के लिये बली सेना आदि जनों को प्रवृत्त करें ॥ ३ ॥

ज्यैष्ठ्यं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(मे) मेरी (ज्यैष्ठ्यम्) प्रशंसा (च) और उत्तम पदार्थ (मे) मेरा (आधिपत्यम्) स्वामीपन (च) और स्वकीय द्रव्य (मे) मेरा (मन्युः) अभिमान (च) और शान्ति (मे) मेरा (भामः) क्रोध (च) और उत्तम शील (मे) मेरा (अमः) न्याय से पाये हुए गृहादि (च) और पाने योग्य पदार्थ (मे) मेरा (अम्भः) जल (च) और दूध दही घी आदि पदार्थ (मे) मेरा (जेमा) जीत का होना (च) और विजय (मे) मेरा (महिमा) बड़प्पन (च) प्रतिष्ठा (मे) मेरी (वरिमा) बड़ाई (च) और उत्तम वर्त्ताव (मे) मेरा (प्रथिमा) फैलाव (च) और फैले हुए पदार्थ (मे) मेरा (वर्षिमा) बुढ़ापा (च) और लड़काई (मे) मेरी (द्राघिमा) बढ़वार (च) और छुटाई (मे) मेरा (वृद्धम्) प्रभुता को पाए हुए बहुत प्रकार का धन आदि पदार्थ (च) और थोड़ा पदार्थ तथा (मे) मेरी (वृद्धिः) जिस अच्छी क्रिया से वृद्धि को प्राप्त होते हैं वह (च) और उससे उत्पन्न हुआ सुख उक्त समस्त पदार्थ (यज्ञेन) धर्म की रक्षा करने से (कल्पन्ताम्) समर्थित होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मित्रजनो ! तुम यज्ञ की सिद्धि और समस्त जगत् के हित के लिये प्रशंसित पदार्थों को संयुक्त करो ॥ ४ ॥

सत्यं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥

पदार्थ—(मे) मेरा (सत्यम्) यथार्थ विषय (च) और सब का हित करना (मे) मेरी (श्रद्धा) श्रद्धा अर्थात् जिससे सत्य को धारण करते हैं (च) और उक्त श्रद्धा की सिद्धि देनेवाले पदार्थ (मे) मेरा (जगत्) चेतन सन्तान आदि वर्ग (च) और उस में स्थिर हुए पदार्थ (मे) मेरा (धनम्) सुवर्ण आदि धन (च) और धान्य अर्थात् अनाज आदि (मे) मेरा (विश्वम्) सर्वस्व (च) और सबों पर उपकार (मे) मेरी (महः) बड़ाई से भरी हुई प्रशंसा करने योग्य वस्तु (च) और सत्कार (मे) मेरा (क्रीडा) खेलना विहार (च) और उसके पदार्थ (मे) मेरा (मोदः) हर्ष (च) और अति हर्ष (मे) मेरा (जातम्) उत्पन्न हुआ पदार्थ (च) तथा जो होता है (मे) मेरा (जनिष्यमाणम्) जो उत्पन्न होने वाला (च) और जितना उससे सम्बन्ध रखने वाला (मे) मेरा (सूक्तम्) अच्छे प्रकार कहा हुआ (च) और अच्छे प्रकार विचारा हुआ (मे) मेरा (सुकृतम्) उत्तमता से किया हुआ काम (च) और उसके साधन ये उक्त सब पदार्थ (यज्ञेन) सत्य और धर्म की उन्नति करने रूप उपदेश से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या का पठन पाठन श्रवण और उपदेश करते वा कराते हैं वे नित्य उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

ऋतं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगति शक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६॥

पदार्थ—(मे) मेरा (ऋतम्) यथार्थ विज्ञान (च) और उसकी सिद्धि करनेवाला पदार्थ (मे) मेरा (अमृतम्) आत्मस्वरूप वा यज्ञ से बचा हुआ अन्न (च) तथा पीने योग्य रस (मे) मेरा (अयक्ष्मम्) यक्ष्मा आदि रोगों से रहित शरीर आदि (च) और रोगविनाशक कर्म (मे) मेरा (अनामयत्) रोग आदि रहित आयु (च) और इसकी सिद्धि करनेवाली ओषधियाँ (मे) मेरा (जीवातुः) जिससे जीते हैं वा जो जिलाता है वह व्यवहार (च) और पथ्य भोजन (मे) मेरा (दीर्घायुत्वम्) अधिक आयु का होना (च) ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों को अपने वश में रखना आदि कर्म (मे) मेरा (अनमित्रम्) मित्र (च) और पक्षपात को छोड़ के काम (मे) मेरा (अभयम्) न डरपना (च) और शूरपन (मे) मेरा (सुखम्) अति उत्तम आनन्द (च) और इसको सिद्ध करनेवाला (मे) मेरा (शयनम्) सो जाना (च) और उस काम की सिद्धि करानेवाला पदार्थ (मे) मेरा (सूषाः) वह समय कि जिसमें अच्छी प्रातःकाल की वेला हो (च) और उक्त काम का सम्बन्ध करनेवाली क्रिया तथा (मे) मेरा (सुदिनम्) सुदिन (च) और उपयोगी कर्म ये सब (यज्ञेन) सत्य वचन बोलने आदि व्यवहारों से (कल्पन्ताम्) समर्थित होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्यभाषण आदि कामों को करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

यन्ता चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । निचृद् भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥७॥

पदार्थ—(मे) मेरा (यन्ता) नियम करनेवाला (च) और नियमित पदार्थ (मे) मेरा (धर्त्ता) धारण करनेवाला (च) और धारण किया हुआ पदार्थ (मे) मेरी (क्षेमः) रक्षा (च) और रक्षा करनेवाला (मे) मेरी (धृतिः) धारणा (च) और सहनशीलता (मे) मेरे सम्बन्ध का (विश्वम्) जगत् (च) और उस के अनुकूल मर्यादा (मे) मेरा (महः) बड़ा कर्म (च) और बड़ा व्यवहार (मे) मेरी (संवित्) प्रतिज्ञा (च) और जाना हुआ विषय (मे) मेरा (ज्ञात्रम्) जिससे जानता हूँ वह ज्ञान (च) और जानने योग्य पदार्थ (मे) मेरी (सूः) प्रेरणा करनेवाली चित्त की वृत्ति (च) और उत्पन्न हुआ पदार्थ (मे) मेरी (प्रसूः) जो उत्पत्ति करानेवाली वृत्ति (च) और उत्पत्ति का विषय (मे) मेरे (सीरम्) खेती की सिद्धि करानेवाले हल आदि (च) और खेती करनेवाले तथा (मे) मेरा (लयः) लय अर्थात् जिसमें एकता को प्राप्त होना हो वह विषय (च) और जो मुझ में एकता को प्राप्त हुआ वह विद्यादि गुण ये उक्त सब (यज्ञेन) अच्छे नियमों के आचरण से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो शम दम आदि गुणों से युक्त अच्छे अच्छे नियमों को भलीभांति पालन करें वे अपने चाहे हुए कामों की सिद्ध करावें ॥ ७ ॥

शं चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥८॥

पदार्थ—(मे) मेरा (शम्) सर्व सुख (च) और सुख की सब सामग्री (मे) मेरा (मयः) प्रत्यक्ष आनन्द (च) और इसके साधन (मे) मेरा (प्रियम्) पियारा (च) और इसके साधन (मे) मेरी (अनुकामः) धर्म के अनुकूल कामना (च) और इसके साधन (मे) मेरा (कामः) काम अर्थात् जिससे वा जिसमें कामना करें (च) तथा (मे) मेरा (सौमनसः) चित्त का अच्छा होना (च) और इसके साधन (मे) मेरा (भगः) ऐश्वर्य का समूह (च) और इसके साधन (मे) मेरा (द्रविणम्) बल (च) और इसके साधन (मे) मेरा (भद्रम्) अति आनन्द देने योग्य सुख (च) और सुख के साधन (मे) मेरा (श्रेयः) मुक्ति सुख (च) और इसके साधन (मे) मेरा (वसीयः) अतिशय करके वसनेवाला (च) और इसकी सामग्री (मे) मेरी (यशः) कीर्त्ति (च) और इसके साधन (यज्ञेन) सुख की सिद्धि करनेवाले ईश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥८॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जिस काम से सुख आदि की वृद्धि हो उस काम का निरन्तर सेवन करें ॥ ८ ॥

ऊर्क् चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥९॥

पदार्थ—(मे) मेरा (ऊर्क्) अच्छा संस्कार किया अर्थात् बनाया हुआ अन्न (च) और सुगन्धि आदि पदार्थों से युक्त व्यञ्जन (मे) मेरी (सूनृता) प्रियवाणी (च) और सत्य वचन (मे) मेरा (पयः) दूध (च) और उत्तम पकाये ओषधि आदि पदार्थ (मे) मेरा (रसः) सब पदार्थों का सार (च) और बड़ी बड़ी ओषधियों से निकाला हुआ रस (मे) मेरा (घृत) घी (च) और उसका संस्कार करने तपाने आदि से सिद्ध हुआ पक्वान्न (मे) मेरा (मधु) सहत (च) और खांड गुड़ आदि (मे) मेरा (सग्धिः) एकसा भोजन (च) और उत्तम भोग साधन (मे) मेरी (सपीतिः) एकसा जिस में जल का पान (च) और जो चूसने योग्य पदार्थ (मे) मेरा (कृषिः) भूमि की जुताई (च) और गेहूँ आदि अन्न (मे) मेरी (वृष्टिः) वर्षा (च) और होम की आहुतियों से पवन आदि की शुद्धि करना (मे) मेरा (जैत्रम्) जीतने का स्वभाव (च) और अच्छे शिक्षित सेना आदि जन तथा (मे) मेरे (औद्भिद्यम्) भूमि को तोड़ फोड़ के निकलने वाले वृक्षों वा वनस्पतियों का होना (च) और फूल फल ये सब पदार्थ (यज्ञेन) समस्त रस और पदार्थों की बढ़ती करनेवाले कर्म से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥९॥

भावार्थ—मनुष्य समस्त उत्तम रसयुक्त पदार्थों को इकट्ठा करके उनको समय समय के अनुकूल होमादि उत्तम व्यवहारों में लगावें ॥ ९ ॥

रयिश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मंत्र में कहा है—

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१०॥

पदार्थ—(मे) मेरी (रयिः) विद्या की कान्ति (च) और पुरुषार्थ (मे) मेरे (रायः) प्रशंसित धन (च) और पक्वान्न आदि (मे) मेरे (पुष्टम्) पुष्ट पदार्थ (च) और आरोग्यपन (मे) मेरी(पुष्टिः) पुष्टि (च) और पथ्य भोजन (मे) मेरा (विभु) सब विषयों में व्याप्त मन आदि (च) [और] परमात्मा का ध्यान (मे) मेरा (प्रभु) समर्थ व्यवहार (च) और सब सामर्थ्य (मे) मेरा (पूर्णम्) पूर्ण काम का करना (च) और उस का साधन (मे) मेरे (पूर्णतरम्) आभूषण गौ भैंस घोड़ा छेरी तथा अन्न आदि पदार्थ (च) और सब का उपकार करना (मे) मेरा (कुयवम्) निन्दित यवों से न मिला हुआ अन्न (च) और धान चावल आदि अन्न (मे) मेरा (अक्षितम्) अक्षय पदार्थ (च) और तृप्ति (मे) मेरा (अन्नम्) खाने योग्य अन्न (च) और मसाला आदि तथा (मे) मेरी (अक्षुत्) क्षुधा की तृप्ति (च) और प्यास आदि की तृप्ति ये सब पदार्थ (यज्ञेन) प्रशंसित धनादि देनेवाले परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥१०॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमपुरुषार्थ और ईश्वर की भक्ति प्रार्थना से विद्या आदि धन पाकर सब का उपकार सिद्ध करना चाहिये ॥ १० ॥

वित्तं चेत्यस्य देवा ऋषयः । श्रीमदात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च मऽऋद्धं च मऽऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

पदार्थ—(मे) मेरा (वित्तम्) विचारा हुआ विषय (च) और विचारा (मे) मेरा (वेद्यम्) विचारने योग्य विषय (च) और विचारने वाला (मे) मेरा (भूतम्) व्यतीत हुआ विषय (च) और वर्त्तमान (मे) मेरा (भविष्यत्) होने वाला (च) और सब समय का उत्तम व्यवहार (मे) मेरा (सुगम्) सुगम मार्ग (च) और उचित कर्म (मे) मेरा (सुपथ्यम्) सुगम युक्ताहार विहार का होना (च) और सब कामों में प्रथम कारण (मे) मेरा (ऋद्धम्) अच्छी वृद्धि को प्राप्त पदार्थ (च) और सिद्धि (मे) मेरी (ऋद्धिः) योग से पाई हुई अच्छी वृद्धि (च) और तुष्टि अर्थात् सन्तोष (मे) मेरा (क्लृप्तम्) सामर्थ्य को प्राप्त हुआ काम (च) और कल्पना (मे) मेरी (क्लृप्तिः) सामर्थ्य की कल्पना (च) और तर्क (मे) मेरा (मतिः) विचार (च) और पदार्थ पदार्थ का विचार करना (मे) मेरी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि तथा (च) अच्छी निष्ठा ये सब (यज्ञेन) शम दम आदि नियमों से युक्त योगाभ्यास से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो शम आदि नियमों से युक्त संयम को प्राप्त योग का अभ्यास करते और ऋद्धि सिद्धि को प्राप्त हुए हैं वे औरों को भी अच्छे प्रकार ऋद्धि सिद्धि दे सकते हैं ॥ ११ ॥

व्रीहयश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । धान्यदा आत्मा देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१२॥

पदार्थ—(मे) मेरे (व्रीहयः) चावल (च) और साठी के धान (मे) मेरे (यवाः) जो (च) और अरहर (मे) मेरे (माषाः) उरद (च) और मटर (मे) मेरा (तिलाः) तिल (च) और नारियल (मे) मेरे (मुद्गाः) मूंग (च) और उस का बनाना (मे) मेरे (खल्वाः) चणे (च) और उनका सिद्ध करना (मे) मेरी (प्रियङ्गवः) कंगुनी (च) और उसका बनाना (मे) मेरे (अणवः) सूक्ष्म चावल (च) और उनका पाक (मे) मेरा (श्यामाकाः) समा (च) और मडुआ पटेरा चेना आदि छोटे अन्न (मे) मेरा (नीवाराः) पसाई के चावल जो कि विना बोए उत्पन्न होते हैं (च) और इन का पाक (मे) मेरे (गोधूमाः) गेहूं (च) और उन को पकाना तथा (मे) मेरी (मसूराः) मसूर (च) और इनका सम्बन्धी अन्य अन्न ये सब (यज्ञेन) सब अन्नों के दाता परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि चावल आदि से अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए भात आदि को बना अग्नि में होम करें तथा आप खावें, औरों को खवावें ॥ १२ ॥

अश्मा चेत्यस्य देवा ऋषयः । रत्नधनवानात्मा देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१३॥

पदार्थ—(मे) मेरा (अश्मा) पत्थर (च) और हीरा आदि रत्न मेरी (मृत्तिका) अच्छी माटी (च) और साधारण माटी (मे) मेरे (गिरयः) मेघ और (च) बद्दल (मे) मेरे (पर्वताः) बड़े छोटे पर्वत (च) और पर्वतों में होने वाले पदार्थ (मे) मेरी (सिकताः) बड़ी बालू (च) और छोटी छोटी बालू (मे) मेरे (वनस्पतयः) बड़ आदि वृक्ष (च) और आम आदि वृक्ष (मे) मेरा (हिरण्यम्) सब प्रकार का धन (च) तथा चांदी आदि (मे) मेरा (अयः) लोहा (च) और शस्त्र (मे) मेरा (श्यामम्) नीलमणि व लहसुनिया आदि (च) और चन्द्रकान्तमणि (मे) मेरा (लोहम्) सुवर्ण (च) तथा कान्तिसार आदि (मे) मेरा (सीसम्) सीसा (च) और लाख (मे) मेरा (त्रपु) जस्ता (च) और पीतल आदि ये सब (यज्ञेन) सङ्ग करने योग्य व्यवहार से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग पृथिवीस्थ पदार्थों को अच्छी परीक्षा से जान के इनसे रत्न और अच्छे अच्छे धातुओं को पाकर सब के हित के लिये उपयोग में लावें ॥ १३ ॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । अग्न्यादियुक्त आत्मा देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निश्च मऽआपश्च मे वीरुधश्च मऽओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशवऽआरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१४॥

पदार्थ—(मे) मेरा (अग्निः) अग्नि (च) और बिजुली आदि (मे) मेरे (आपः) जल (च) और जल में होने वाले रत्न मोती आदि (मे) मेरे (वीरुधः) लता गुच्छा (च) और शाक आदि (मे) मेरी (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि (च) और फल पुष्पादि (मे) मेरे (कृष्टपच्याः) खेतों में पकते हुए अन्न आदि (च) और उत्तम अन्न (मे) मेरे (अकृष्टपच्याः) जो जङ्गल में पकते हैं वे अन्न (च) और जो पर्वत आदि स्थानों में पकने योग्य हैं वे अन्न (मे) मेरे (ग्राम्याः) गांव में हुए गौ आदि (च) और नगर में ठहरे हुए तथा (मे) मेरे (आरण्याः) वन में होने हारे मृग आदि (च) और सिंह आदि (पशवः) पशु (मे) मेरा (वित्तम्) पाया हुआ पदार्थ (च) और सब धन (मे) मेरी (वित्तिः) प्राप्ति (च) और पाने योग्य (मे) मेरा (भूतम्) रूप (च) और नाना प्रकार का पदार्थ तथा (मे) मेरा (भूतिः) ऐश्वर्य (च) और उस का साधन ये सब पदार्थ (यज्ञेन) मेल करने योग्य शिल्प विद्या से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि की विद्या से सङ्गति करने योग्य शिल्पविद्या रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

वसु चेत्यस्य देवा ऋषयः । धनादियुक्त आत्मा देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च मऽएमश्च मऽइत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१५॥

पदार्थ—(मे) मेरा (वसु) वस्तु (च) और प्रिय पदार्थ वा पियारा काम (मे) मेरी (वसतिः) जिस में वसते हैं वह वस्ती (च) और भृत्य (मे) मेरा (कर्म) काम (च) और करने वाला (मे) मेरा (शक्तिः) सामर्थ्य (च) और प्रेम (मे) मेरा (अर्थः) सब पदार्थों को इकट्ठा करना (च) और इकठ्ठा करने वाला (मे) मेरा (एमः) अच्छा यत्न (च) और बुद्धि (मे) मेरी (इत्या) वह रीति जिससे व्यवहारों को जानता हूं (च) और युक्ति तथा (मे) मेरी (गतिः) चाल (च) और उछलना आदि क्रिया ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पुरुषार्थ के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मनुष्य समस्त अपना सामर्थ्य आदि सब के हित के लिए हम करते हैं वे ही प्रशंसा युक्त होते हैं ॥१५॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । अग्न्यादिविद्याविदात्मा देवता । निचृदतिशक्वरी छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निश्च मऽइन्द्रश्च मे सोमश्च मऽइन्द्रश्च मे सविता च मऽइन्द्रश्च मे सरस्वती च मऽइन्द्रश्च मे पूषा च मऽइन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६॥

पदार्थ—(मे) मेरा (अग्निः) प्रसिद्ध सूर्यरूप अग्नि (च) और पृथिवी पर मिलने वाला भौतिक (मे) मेरा (इन्द्रः) बिजुलीरूप अग्नि (च) तथा पवन (मे) मेरा (सोमः) शान्तिगुण वाला पदार्थ वा मनुष्य (च) और वर्षा मेघ जल (मे) मेरा (इन्द्रः) अन्याय को दूर करने वाला सभापति (च) और सभासद् (मे) मेरा (सविता) ऐश्वर्ययुक्त काम (च) और इसके साधन (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त अविद्या का नाश करने वाला अध्यापक (च) और विद्यार्थी (मे) मेरा (सरस्वती) प्रशंसित बोध वा शिक्षा से भरी हुई वाणी (च) और सत्य बोलने वाला (मे) मेरा (इन्द्रः) विद्यार्थी की जड़ता का विनाश करने वाला उपदेशक (च) और सुनने वाले (मे) मेरा (पूषा) पुष्टि करने वाला (च) और योग्य आहार-भोजन, विहार सोना आदि (मे) मेरा जो (इन्द्रः) पुष्टि करने की विद्या में रम रहा है वह (च) और वैद्य (मे) मेरा (बृहस्पतिः) बड़े बड़े व्यवहारों की रक्षा करने वाला (च) और राजा तथा (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य को बढाने वाला उद्योगी (च) और सेनापति ये सब (यज्ञेन) विद्या और ऐश्वर्य की उन्नति करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को अच्छे विचार से अपने सब पदार्थ उत्तमों का पालन करने और दुष्टों को शिक्षा देने के लिये निरन्तर युक्त करने चाहियें ॥१६॥

मित्रश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । मित्रैश्वर्यसहित आत्मा देवता । स्वराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१७॥

पदार्थ—(मे) मेरा (मित्रः) प्राण अर्थात् हृदय में रहने वाला पवन (च) और समान नाभिस्थ पवन (मे) मेरा (इन्द्रः) बिजुलीरूपी अग्नि (च) और तेज (मे)मेरा (वरुणः) उदान अर्थात् कण्ठ में रहने वाला पवन (च) और समस्त शरीर में विचरने हारा पवन (मे) मेरा (इन्द्रः) सूर्य (च) और धारणाकर्षण (मे) मेरा (धाता) धारण करने हारा (च) और धीरज (मे) मेरा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का प्राप्त कराने वाला (च) और न्याययुक्त पुरुषार्थ (मे) मेरा (त्वष्टा) पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला अग्नि (च) और शिल्प अर्थात् कारीगरी (मे) मेरा (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करने हारा राजा (च) तथा कारीगरी (मे) मेरे (मरुतः) इस ब्रह्माण्ड में रहने वाले और पवन (च) और शरीर के धातु (मे) मेरी (इन्द्रः) सर्वत्र व्यापक बिजुली (च) और उस का काम (मे) मेरे (विश्वे) समस्त पदार्थ (च) और सर्वस्व (देवाः) उत्तम गुणयुक्त पृथिवी आदि (मे) मेरे लिये (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का दाता (च) और उस का उपयोग ये सब (यज्ञेन) पवन की विद्या के विधान करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥१७॥

भावार्थ—मनुष्य प्राण और बिजुली की विद्या को जान और इनकी सब जगह सब ओर से व्याप्ति को जानकर अपने बहुत जीवन को सिद्ध करें ॥१७॥

पृथिवी चेत्यस्य देवा ऋषयः । राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८॥

पदार्थ—(मे) मेरी (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि (च) और उसमें स्थित जो पदार्थ (मे) मेरी (इन्द्रः) बिजुलीरूप क्रिया (च) और बल देने वाली व्यायाम आदि क्रिया (मे) मेरा (अन्तरिक्षम्) विनाशरहित आकाश (च) और आकाश में ठहरे हुए सब पदार्थ (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य का आधार (च) और उसका करना (मे) मेरी (द्यौः) प्रकाश के काम कराने वाली विद्या (च) और इसके सिद्ध करने वाले पदार्थ (मे) मेरा (इन्द्रः) सब पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य आदि (च) और छिन्न भिन्न करने योग्य पदार्थ (मे) मेरी (समाः) वर्षों (च) और क्षण, पल, विपल, घटी, मुहूर्त्त, दिन आदि (मे) मेरा (इन्द्रः) समय के ज्ञान का निमित्त (च) और गणितविद्या (मे) मेरे (नक्षत्राणि) नक्षत्र अर्थात् जो कारण रूप से स्थिर रहते किन्तु नष्ट नहीं होते वे लोक (च) और उनके साथ सम्बन्ध रखने वाले प्राणी आदि (मे) मेरी (इन्द्रः) लोक लोकान्तरों में स्थित होने वाली बिजुली (च) और बिजुली से संयोग करते हुए उन लोकों में रहने वाले पदार्थ (मे) मेरी (दिशः) पूर्व आदि दिशा (च) और उन में ठहरी हुई वस्तु तथा (मे) मेरा (इन्द्रः) दिशाओं के ज्ञान का देने वाला (च) और ध्रुव का तारा ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पृथिवी और समय के विशेष ज्ञान देने वाले काम से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग पृथिवी आदि पदार्थों और उन में ठहरी हुई बिजुली आदि को जब तक नहीं जानते तब तक ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होते ॥१८॥

अंशुश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । पदार्थविदात्मा देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अंशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपांशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१९॥

पदार्थ—(मे) मेरा (अंशुः) व्याप्ति वाला सूर्य (च) और उसका प्रताप (मे) मेरा (रश्मिः) भोजन करने का व्यवहार (च) और अनेक प्रकार का भोजन (मे) मेरा (अदाभ्यः) विनाश रहित (च) और रक्षा करने वाला (मे) मेरा (अधिपति) स्वामी (च) और जिस में स्थिर हो वह स्थान (मे) मेरा (उपांशु) मन में जप का करना (च) और एकान्त का विचार (मे) मेरा (अन्तर्यामः) मध्य में जाने वाला पवन (च) और बल (मे) मेरा (ऐन्द्रवायवः) बिजुली और पवन के साथ सम्बन्ध करने वाला काम (च) और जल (मे) मेरा (मैत्रावरुणः) प्राण और उदान के साथ चलने हारा वायु (च) और व्यान पवन (मे) मेरा (आश्विनः) सूर्य चन्द्रमा के बीच में रहने वाला तेज (च) और प्रभाव (मे) मेरा (प्रतिप्रस्थानः) चलने चलने के प्रति वर्त्ताव रखने वाला (च) भ्रमण (मे) मेरा (शुक्रः) शुद्ध स्वरूप (च) और वीर्य करने वाला तथा (मे) मेरा (मन्थी) विलोने के स्वभाव वाला (च) और दूध वा काष्ठ आदि ये सब पदार्थ (यज्ञेन) अग्नि के उपयोग से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥१९॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्यप्रकाशादिकों से भी उपकारों को लेवें तो विद्वान् हो कर क्रिया की चतुराई को क्यों न पावें ॥ १९॥

आग्रयणश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञानुष्ठानात्मा देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२०॥

पदार्थ—(मे) मेरा (आग्रयणः) अगहन आदि महीनों में सिद्ध हुआ यज्ञ (च) और इस की सामग्री (मे) मेरा (वैश्वदेवः) समस्त विद्वानों से सम्बन्ध करने वाला विचार (च) और इसका फल (मे) मेरा (ध्रुवः) निश्चल व्यवहार (च) और इसके साधन (मे) मेरा (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का सत्कार (च) तथा सत्कार करने वाला (मे) मेरा (ऐन्द्राग्नः) पवन और बिजुली से सिद्ध काम (च) और इस के साधन (मे) मेरा (महावैश्वदेवः) समस्त बड़े लोगों का यह व्यवहार (च) इन के साधन (मे) मेरे (मरुत्वतीयाः) पवनों का सम्बन्ध करने हारे व्यवहार (च) तथा इन का फल (मे) मेरा (निष्केवल्यः) निरन्तर केवल सुख हो जिसमें वह काम (च) और इसके साधन (मे) मेरा (सावित्रः) सूर्य का यह प्रभाव (च) और इससे उपकार (मे) मेरा (सारस्वतः) वाणी-सम्बन्धी व्यवहार (च) और इनका फल (मे) मेरा (पात्नीवतः) प्रशंसित यज्ञसम्बन्धिनी स्त्री वाले का काम (च) इस के साधन (मे) मेरा (हारियोजनः) घोड़ों को रथ में जोड़ने वाले का यह आरम्भ (च) इस की सामग्री (यज्ञेन)पदार्थों के मेल करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२०॥

भावार्थ—जो मनुष्य कार्यकाल की क्रिया और विद्वानों के सङ्ग का आश्रय लेकर विवाहित स्त्री का नियम किये हों वे पदार्थविद्या को क्यों न जानें ॥२०॥

स्रुचश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञाङ्गवानात्मा देवता विराड्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२१॥

पदार्थ—(मे) मेरे (स्रुचः) स्रुवा आदि (च) और उन की शुद्धि (मे) मेरे (चमसाः) यज्ञ वा पाक बनाने के पात्र (च) और उन के पदार्थ (मे) मेरे (वायव्यानि) पवनों में अच्छे पदार्थ (च) और पवनों की शुद्धि करने वाले काम (मे) मेरा (द्रोणकलशः) यज्ञ की क्रिया का कलश (च) और विशेष परिमाण (मे) मेरे (ग्रावाणः) शिलवट्टा आदि पत्थर (च) और उखली मूशल (मे) मेरे (अधिषवणे) सोमवल्ली आदि ओषधि जिनसे कूटी पीसी जावे वे साधन (च) और कूटना पीसना (मे) मेरा (पूतभृत्) पवित्रता जिससे मिलती हो वह सूप आदि (च) और बुहारी आदि (मे) मेरा (आधवनीयः) अच्छे प्रकार धोने आदि का पात्र (च) और नलिका आदि यन्त्र अर्थात् जिस नली नरकुल की चोंगी आदि से तारागणों को देखते हैं वह (मे) मेरी (वेदिः) होम करने की वेदि (च) और चौकोना आदि (मे) मेरा (बर्हि) समीप में वृद्धि देने वाला वा कुशसमूह (च) और जो यज्ञ-समय के योग्य पदार्थ (मे) मेरा (अवभृथः) यज्ञसमाप्ति समय का स्नान (च) और चन्दन आदि का अनुलेपन करना तथा (मे) मेरा (स्वगाकारः)

जिससे अपने पदार्थों को प्राप्त होते हैं उस कर्म को जो करे वह (च) और पदार्थ को पवित्र करना ये सब (यज्ञेन) होम करने की क्रिया से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२१॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य यज्ञ करने को समर्थ होते हैं जो साधन उपसाधन रूप यज्ञ के सिद्ध करने की सामग्री को पूरी करते हैं ॥२१॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञवानात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥

पदार्थ—(मे) मेरे (अग्निः) आग (च) और उसका काम में लाना (मे) मेरा (घर्मः) घाम (च) और शान्ति (मे) मेरी (अर्कः) सत्कार करने योग्य विशेष सामग्री (च) और उसकी शुद्धि करने का व्यवहार (मे) मेरा (सूर्यः) सूर्य (च) और जीविका का हेतु (मे) मेरा (प्राणः) जीवन का हेतु वायु (च) और बाहर का पवन (मे) मेरे (अश्वमेधः) राज्य देश (च) और राजनीति (मे) मेरी (पृथिवी) भूमि (च) और इस में स्थित सब पदार्थ (मे) मेरी (अदितिः) अखण्ड नीति (च) और इन्द्रियों को वश मे रखना (मे) मेरी (दितिः) खण्डित सामग्री (च) और अनित्य जीवन वा शरीर आदि (मे) मेरे (द्यौः) धर्म का प्रकाश (च) और दिन रात (मे) मेरा (अंगुलयः) अंगुली (शक्वरयः) शक्ति (दिशः) पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण दिशा (च) और ईशान वायव्य नैर्ऋत्य आग्नेय उपदिशा ये सब (यज्ञेन) मेल करने योग्य परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२२॥

भावार्थ—जो प्राणियों के सुख के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, वे महाशय होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥२२॥

व्रतं चेत्यस्य देवा ऋषयः । कालविद्याविदात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

व्रतं च मऽऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रेऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥

पदार्थ—(मे) मेरे (व्रतम्) सत्य आचरण के नियम की पालना (च) और सत्य कहना और सत्य उपदेश (मे) मेरे (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (च) और उत्तरायण दक्षिणायन (मे) मेरा (तपः) प्राणायाम तथा धर्म का आचरण (च) शीत उष्ण आदि का सहना (मे) मेरा (संवत्सरः) साल (च) तथा कल्प महाकल्प आदि (मे) मेरे (अहोरात्रे) दिन रात (ऊर्वष्ठीवे) जङ्घा और घोंटू (बृहद्रथन्तरे) बड़ा पदार्थ अत्यन्त सुन्दर रथ तथा (च) घोड़े वा बैल (यज्ञेन) धर्मज्ञान आदि के आचरण और कालचक्र के भ्रमण के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो पुरुष नियम किये हुए समय में काम और निरन्तर धर्म का आचरण करते हैं वे ही चाही हुई सिद्धि को पाते हैं ॥२३॥

एका चेत्यस्य देवा ऋषयः । विषमाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता । पूर्वार्द्धस्य संकृतिश्छन्दः । एकविंशतिश्चेत्युत्तरस्य विराट् संकृतिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब गणितविद्या के मूल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मऽएकविंशतिश्च मऽएकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मऽएकत्रिंशच्च मऽएकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥

पदार्थ—(यज्ञेन) मेल करने अर्थात् योग करने से (मे) मेरी (एका) एक संख्या (च) और दो (मे) मेरी (तिस्रः) तीन संख्या (च) फिर (मे) मेरी (तिस्रः) तीन (च) और दो (मे) मेरी (पञ्च) पांच (च) फिर (मे) मेरी (पञ्च) पाँच (च) और दो (मे) मेरी (सप्त) सात (च) फिर (मे) मेरी (सप्त) सात (च) और दो (मे) मेरी (नव) नौ (च) फिर (मे) मेरी (नव) नौ (च) और दो (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह (च) फिर (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह (च) और दो (मे) मेरी (त्रयोदश) तेरह (च) फिर (मे) मेरी (त्रयोदश) तेरह (च) और दो (मे) मेरी (पञ्चदश) पन्द्रह (च) फिर (मे) मेरी (पञ्चदश) पन्द्रह (च) और दो (मे) मेरी (सप्तदश) सत्रह (च) फिर (मे) मेरी (सप्तदश) सत्रह (च) और दो (मे) मेरी (नवदश) उन्नीस (च) फिर (मे) मेरी (नवदश) उन्नीस (च) और दो (मे) मेरी (एकविंशतिः) इक्कीस (च) फिर (मे) मेरी (एकविंशतिः) इक्कीस (च) और दो (मे) मेरी (त्रयोविंशतिः) तेईस (च) फिर (मे) मेरी (त्रयोविंशतिः) तेईस (च) और दो (मे) मेरी (पञ्चविंशतिः) पच्चीस (च) फिर (मे) मेरी (पञ्चविंशतिः) पच्चीस (च) और दो (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (च) फिर (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (च) और दो (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) फिर (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) और दो (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) फिर (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) और दो (मे) मेरी (त्रयस्त्रिंशत्) तेंतीस (च) और आगे भी इसी प्रकार संख्या (कल्पन्ताम्) समर्थ हों । यह एक योगपक्ष है ॥२४॥

अब दूसरा पक्ष—

(यज्ञेन) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (च) और संख्या दो के वियोग अर्थात् अन्तर से (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों वैसे (मे) मेरी (त्रयस्त्रिंशत्) तेंतीस संख्या (च) दो के देने अर्थात् वियोग से (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) फिर (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) फिर (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस समर्थ हों, ऐसे सब संख्याओं में जानना चाहिये ।। यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥

अब तीसरा पक्ष—

(मे) मेरी (एका) एक संख्या (च) और (मे) मेरे (तिस्रः) तीन संख्या (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (तिस्रः) तीन संख्या (च) और (मे)मेरी (पञ्च) पांच संख्या (च) परस्परगुणित, (मे) मेरी (पञ्च) पांच संख्या (च) और (मे) मेरी (सप्त) सात संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (सप्त) सात संख्या (च) और (मे) मेरी (नव) नव संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (नव) नव संख्या (च) और (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह संख्या (च) परस्पर गुणित, इस प्रकार अन्य संख्या (यज्ञेन) उक्त वार वार योग अर्थात् गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ यह गुणन विषय से तीसरा पक्ष है ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में (यज्ञेन) इस पद से जोड़ना घटाना लिये जाते हैं, क्योंकि जो यज् धातु का सङ्गतिकरण अर्थ है उससे सङ्ग कर देना अर्थात् किसी संख्या को किसी संख्या से योग कर देना वा यज् धातु का जो दान अर्थ है उससे ऐसी सम्भावना करनी चाहिये कि किसी संख्या का दान अर्थात् व्यय करना निकाल डालना यही अन्तर है । इस प्रकार गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन,घनमूल भागजाति, प्रभागजाति आदि जो गणित के भेद हैं वे योग और अन्तर ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि किसी संख्या को किसी संख्या से एकवार मिला दे तो योग कहाता है, जैसे २+४=६ अर्थात् २ में ४ जोड़े तो ६ होते हैं । ऐसे यदि अनेक वार संख्या में संख्या जोड़े तो उसको गुणन कहते हैं, जैसे २×४=८ अर्थात् २ को ४ वार अलग अलग जोड़े वा २ को ४ चार से गुणे तो ८ होते हैं । ऐसे ही ४ को ४ चौगुना कर दिया तो ४ का वर्ग १६ हुए, ऐसे ही अन्तर से भाग, वर्गमूल, घनमूल आदि निष्पन्न होते हैं । अर्थात् किसी संख्या में किसी संख्या को जोड़ देवे वा किसी प्रकारान्तर से घटा देवे, इसी योग वा वियोग से बुद्धिमानों को यथामति कल्पना से व्यक्त अव्यक्त अङ्कगणित और बीजगणित आदि समस्त गणितक्रिया उत्पन्न होती है, इस कारण इस मन्त्र में दो के योग से उत्तरोत्तर संख्या वा दो के वियोग से पूर्व पूर्व संख्या अच्छे प्रकार दिखलाई है वैसे गुणन का भी कुछ प्रकार दिखलाया है, यह जानना चाहिए ॥२४॥

चतस्रश्चेत्यस्य पूर्ववेवा ऋषयः । समाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । चतुर्विंशतिश्चेत्युत्तरस्याकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सब अंकों के गणित विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥

पदार्थ—(यज्ञेन) मेल करने अर्थात् योग करने में (मे) मेरी (चतस्रः) चार संख्या (च) और चारि संख्या (मे) मेरी (अष्टौ) आठ संख्या (च) फिर (मे) मेरी (अष्टौ) आठ संख्या (च) और चारि (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) फिर (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) और चारि (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) फिर (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) और चारि (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) फिर (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) और चारि (मे) मेरी (चतुर्विंशतिः) चौबीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुर्विंशतिः) चौबीस (च) और चारि (मे) मेरी (अष्टाविंशतिः) अट्ठाईस (च) फिर (मे) मेरी (अष्टाविंशतिः) अट्ठाईस (च) और चारि (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस (च) और (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्)

छत्तीस (च) और चारि (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) फिर (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) और चारि (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) और चारि (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस (च) और आगे भी उक्त-विधि से संख्या (कल्पन्ताम्) समर्थ हों यह प्रथम योगपक्ष है ॥ २५ ॥

अब दूसरा पक्ष

(यज्ञेन) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (च) और और संख्या चारि के वियोग से जैसे (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों वैसे (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) फिर (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस इस प्रकार सब संख्याओं में जानना चाहिए । यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥ २५ ॥

अब तीसरा पक्ष—

(मे) मेरी (चतस्रः) चारि संख्या (च) और (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) और (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) और (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) और (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) परस्पर गुणी, इस प्रकार संख्या आगे भी (यज्ञेन) उक्त वार वार गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों । यह गुणनविषय से तीसरा पक्ष है ॥ २५ ॥

भावार्थ—पिछले मन्त्र में एक संख्या को लेकर दो के योग वियोग से विषम संख्या कही । इससे पूर्व मन्त्र में क्रम से आई हुई एक दो और तीन संख्या को छोड़ इस मन्त्र में चारि के योग वा वियोग से चौथी संख्या को लेकर सम संख्या प्रतिपादन की । इन दोनों मन्त्रों से विषम संख्या और सम संख्याओं का भेद जान के बुद्धि के अनुकूल कल्पना से सब गणित विद्या जाननी चाहिए ॥२५॥

त्र्यविश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । पशुविद्याविदात्मा देवता । ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पशुपालन विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२६॥

पदार्थ—(मे) मेरा (त्र्यविः) तीन प्रकार का भेड़ों वाला (च) और इससे भिन्न सामग्री (मे) मेरी (त्र्यवी) तीन प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री (च) और इनसे उत्पन्न हुए घृतादि (मे) मेरे (दित्यवाट्) खण्डित क्रियाओं में हुए विघ्नों को पृथक् करने वाला (च) और इसके सम्बन्धी (मे) मेरी (दित्यौही) उन्हीं क्रियाओं को प्राप्त कराने हारी गाय आदि (च) और उसकी रक्षा (मे) मेरी (पञ्चाविः) पांच प्रकार की भेड़ो वाला (च) और उसके घृतादि (मे) मेरी (पञ्चावी) पांच प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री (च) और इसके उद्योग आदि (मे) मेरा (त्रिवत्सः) तीन बछड़े वाला (च) और उसके बछड़े आदि (मे) मेरी (त्रिवत्सा) तीन बछड़े वाली गौ (च) और उसके घृतादि (मे) मेरा (तुर्यवाट्) चौथे वर्ष को प्राप्त हुआ बैल आदि (च) और इसको काम में लाना (मे) मेरी (तुर्यौही) चौथे वर्ष को प्राप्त गौ (च) और इसकी शिक्षा ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पशुओं के पालन के विधान से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में गो छाग और भेड़ के उपलक्षण से अन्य पशुओं का भी ग्रहण होता है । जो मनुष्य पशुओं को बढ़ाते हैं वे इनके रसों से आढ्य होते हैं ॥२६॥

पष्ठवाट् चेत्यस्य देवा ऋषयः । पशुपालनविद्याविदात्मा देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मऽउक्षा च मे वशा च मऽऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२७॥

पदार्थ—(मे) मेरे (पष्ठवाट्) पीठ से भार उठाने हारे हाथी ऊंट आदि (च) और उनके सम्बन्धी (मे) मेरी (पष्ठौही) पीठ से भार उठाने हारी घोड़ी ऊंटनी आदि (च) और उनसे उठाये गये पदार्थ (मे) मेरा (उक्षा) वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ (च) और वीर्य धारण करने वाली गौ आदि (मे) मेरी (वशा) वन्ध्या गौ (च) और वीर्यहीन बैल (मे) मेरा (ऋषभः) समर्थ बैल (च) और बलवती गौ (मे) मेरी (वेहत्) गर्भ गिराने वाली (च) और सामर्थ्यहीन गौ (मे) मेरा (अनड्वान्) हल और गाड़ी आदि को चलाने में समर्थ बैल (च) और गाड़ीवान आदि (मे) मेरी (धेनुः) नवीन ब्यानी दूध देने हारी गाय (च) और उसको दोहने वाला जन ये सब (यज्ञेन) पशुशिक्षारूप यज्ञकर्म से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥२७॥

भावार्थ—जो पशुओं को अच्छी शिक्षा देके कार्यों में संयुक्त करते हैं वे अपने प्रयोजन सिद्ध करके सुखी होते हैं ॥२७॥

वाजायेत्यस्य देवा ऋषयः । संग्रामादिविदात्मा देवता । पूर्वस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः । इयमित्युत्तरस्यार्ची बृहती छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब कैसी वाणी का स्वीकार करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा । इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमनऽऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥२८॥

पदार्थ—जिस विद्वान् में (वाजाय) संग्राम के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्रसवाय) ऐश्वर्य वा सन्तानोत्पत्ति के अर्थ (स्वाहा)) पुरुषार्थ बलयुक्त सत्य वाणी (अपिजाय) ग्रहण करने के अर्थ (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रतवे) विज्ञान के लिये (स्वाहा) योगाभ्यासादि क्रिया (वसवे) निवास के लिये (स्वाहा) धनप्राप्ति करने हारी क्रिया (अहर्पतये) दिनों के पालन करने हारे के लिये (स्वाहा) काल-विज्ञान को देने हारी क्रिया (अह्ने) दिन के लिये वा (मुग्धाय) मूढ़जन के लिये (स्वाहा) वैराग्य युक्त क्रिया (मुग्धाय) मोह को प्राप्त हुए के लिये (वैनंशिनाय) विनाशी अर्थात् विनष्ट होनेहारे को जो बोध उसके लिये (स्वाहा) सत्य हितोपदेश करने वाली वाणी (विनंशिने) विनाश होने वाले स्वभाव के अर्थ वा (आन्त्यायनाय) अन्त में घर जिस का हो उसके लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (आन्त्याय) नीच वर्ण में उत्पन्न हुए (भौवनाय) भुवन सम्बन्धी के लिये (स्वाहा) उत्तम उपदेश (भुवनस्य) जिस संसार में सब प्राणीमात्र होते हैं उसके (पतये) स्वामी के अर्थ (स्वाहा) उत्तम वाणी (अधिपतये) पालने वालों को अधिष्ठाता के अर्थ (स्वाहा) राजव्यवहार को जानने हारी क्रिया तथा (प्रजापतये) प्रजा के पालन करने वाले के अर्थ (स्वाहा) राजधर्म प्रकाश करने हारी नीति स्वीकार की जाती है तथा जिस (ते) आपकी (इयम्) यह (राट्) विशेष प्रकाशमान नीति है और जो (यमनः) अच्छे गुणों के ग्रहणकर्त्ता आप (मित्राय) मित्र के लिये (यन्ता) उचित सत्कार करने हारे (असि) हैं उन (त्वा) आप को (ऊर्जे) पराक्रम के लिये (त्वा) आप को (वृष्ट्यै) वर्षा के लिये और (त्वा) आप को (प्रजानाम्) पालन के योग्य प्रजाओं के (आधिपत्याय) अधिपति होने के लिये हम स्वीकार करते हैं ॥ २८॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मयुक्त वाणी और क्रिया से सहित वर्त्तमान रहते हैं वे सुखों को प्राप्त होते हैं और जो जितेन्द्रिय होते हैं वे राज्य के पालन में समर्थ होते हैं ॥२८॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञानुष्ठातात्मा देवता । पूर्वस्य स्वराड्विकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । स्तोमश्चेत्यस्य ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब क्या क्या यज्ञ की सिद्धि के लिये युक्त करना चाहिए, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬं श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्चऽऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च । स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम प्रजापतेः प्रजाऽअभूम वेट् स्वाहा ॥२९॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तेरे प्रजाजनों के स्वामी होने के लिये (आयुः) जिस से जीवन होता है वह आयुर्दा (यज्ञेन) परमेश्वर और अच्छे महात्माओं के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हो (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण वायु (यज्ञेन) सङ्ग करने से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) परमेश्वर वा विद्वान् के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हों (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हों (वाक्) वाणी (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हों (मनः) संकल्पविकल्प करने वाला मन (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो (आत्मा) जो कि शरीर इन्द्रिय तथा प्राण आदि पवनों को व्याप्त होता है वह आत्मा (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने वाला विद्वान् (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ हो (ज्योतिः) न्याय का प्रकाश (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ हो (स्वः) सुख (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ हो (पृष्ठम्) जानने की इच्छा (यज्ञेन) पठनरूप यज्ञ से (कल्पताम्) समर्थ हो (यज्ञः) पाने योग्य धर्म (यज्ञेन) सत्यव्यवहार से (कल्पताम्) समर्थ हो (स्तोमः) जिसमें स्तुति होती है वह अथर्ववेद (च) और (यजुः) जिससे जीव सत्कार आदि करता है वह यजुर्वेद (च) और (ऋक्) स्तुति का साधक ऋग्वेद (च) और (साम) सामवेद (च) और (बृहत्) अत्यन्त बड़ा वस्तु (च) और सामवेद का (रथन्तरम्) रथन्तर नाम वाला

स्तोत्र (च) भी ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से समर्थ हो। हे (देवाः) विद्वानो ! जैसे हम लोग (अमृताः) जन्म मरण के दुःख से रहित हुए (स्वः) मोक्ष सुख को (अगन्म) प्राप्त हों वा (प्रजापतेः) समस्त संसार के स्वामी जगदीश्वर की (प्रजाः) पालन योग्य प्रजा (अभूम) हों तथा (वेट्) उत्तम क्रिया और (स्वाहा) सत्य वाणी से युक्त (अभूम) हों वैसे तुम भी होओ ॥२९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यहां पूर्व मन्त्र से (ते, आधिपत्याय) इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। मनुष्य धार्मिक विद्वान् जनों के अनुकरण से यज्ञ के लिये सब समर्पण कर परमेश्वर और राजा को न्यायाधीश मान के न्यायपरायण होकर निरन्तर सुखी हों ॥२९॥

वाजस्येत्यस्य देवा ऋषयः। राज्यवानात्मा देवता। स्वराड् जगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को कैसे किसकी उपासना करना चाहिए, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाज॑स्य॒ नु प्र॑स॒वे मा॒तरं॑ म॒हीमदि॑तिं॒ नाम॒ वच॑सा करामहे। यस्या॑मि॒दं विश्वं॒ भुव॑नमावि॒वेश॒ तस्यां॑नो दे॒वः स॑वि॒ता धर्म॑ साविषत् ॥३०॥

पदार्थ—(वाजस्य) विविध प्रकार के उत्तम अन्न के (प्रसवे) उत्पन्न करने में (नु) ही वर्त्तमान हम लोग (मातरम्) मान्य की हेतु (अदितिम्) कारणरूप से नित्य (महीम्) भूमि को (नाम) प्रसिद्धि में (वचसा) वाणी से (करामहे) युक्त करें (यस्याम्) जिस पृथिवी में (इदम्) यह प्रत्यक्ष (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) स्थूल जगत् (आविवेश) व्याप्त है (तस्याम्) उस पृथिवी में (सविता) समस्त ऐश्वर्य युक्त (देवः) शुद्धस्वरूप ईश्वर (नः) हमारी (धर्म) उत्तम कर्मों की धारणा को (साविषत्) उत्पन्न करे ॥३०॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने सब का आधार जो भूमि बनाई और वह सब को धारण करती है वही ईश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है ॥६०॥

विश्वेऽअद्येत्यस्य देवा ऋषयः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में प्राणियों के कर्त्तव्य विषय को कहा है—

विश्वे॑ऽअ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ऽऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः। विश्वे॑ नो दे॒वाऽअव॒साग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ऽअ॒स्मे ॥३१॥

पदार्थ—इस पृथिवी में (अद्य) आज (विश्वे) सब (मरुतः) पवन (विश्वे) सब प्राणी और पदार्थ (विश्वे) सब (समिद्धाः) अच्छे प्रकार लपट दे रहे हुए (अग्नयः) अग्नियों के समान मनुष्य लोग (नः) हमारी (ऊती) रक्षा आदि के साथ (भवन्तु) प्रसिद्ध हों (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अवसा) पालन आदि से रहित (आ, गमन्तु) आवें अर्थात् आकर हम लोगों की रक्षा करें जिससे (अस्मे) हम लोगों के लिये (विश्वम्) समस्त (द्रविणम्) धन और (वाजः) अन्न (अस्तु) प्राप्त हो ॥३१॥

भावार्थ—जो मनुष्य आलस्य को छोड़ विद्वानों का सङ्ग कर इस पृथिवी में प्रयत्न करते हैं वे समस्त अति उत्तम पदार्थों को पाते हैं ॥३१॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषयः। अन्नवान् विद्वान् देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

अब विद्वान् और प्रजाजन कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वाजो॑ नः स॒प्त प्र॒दिश॒श्चत॑स्रो वा परा॒वतः॑। वाजो॑ नो॒ विश्वै॑र्दे॒वैर्धन॑साताव॒िहाव॑तु ॥३२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (विश्वैः) सब (देवैः) विद्वानों के साथ (वाजः) अन्नादि (इह) इस लोक में (धनसातौ) धन के विभाग करने में (नः) हम लोगों को (अवतु) प्राप्त होवे (वा) अथवा (नः) हम लोगों का (वाजः) शास्त्रज्ञान और वेग (सप्त) सात (प्रदिशः) जिन का अच्छे प्रकार उपदेश किया जाय उन लोक लोकान्तरों वा (परावतः) दूर दूर जो (चतस्रः) पूर्व आदि चार दिशा उन को पाले अर्थात् उक्त सब पदार्थों की रक्षा करे वैसे इनकी रक्षा तुम भी निरन्तर किया करो ॥३२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि बहुत अन्न से अपनी रक्षा तथा इस पृथिवी पर सब दिशाओं में अच्छी कीर्ति हो इस प्रकार सत्पुरुषों का सन्मान किया करें ॥३२॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषयः। अन्नपतिर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या क्या चाहने योग्य है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाजो॑ नोऽअ॒द्य प्र सु॑वाति॒ दानं॒ वाजो॑ दे॒वाँ२ऽऋ॒तुभिः॑ कल्पयाति। वाजो॒ हि॒ मा॒ सर्व॑वीरं ज॒जान॒ विश्वा॒ऽआशा॒ वाज॑पतिर्जयेयम् ॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अद्य) आज जो (वाजः) अन्न (नः) हमारे लिये (दानम्) दान दूसरे को देना (प्रसुवाति) चितावे और (वाजः) वेगरूप गुण (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (देवान्) अच्छे अच्छे गुणों को (कल्पयाति) प्राप्त होने में समर्थ करे वा जो (हि) ही (वाजः) अन्न (सर्ववीरम्) सब वीर जिस से हों ऐसे अति बलवान् (मा) मुझको (जजान) प्रसिद्ध करे उस सब से ही मैं (वाजपतिः) अन्नादि का अधिष्ठाता होकर (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं को (जयेयम्) जीतूं वैसे तुम भी जीता करो ॥३३॥

भावार्थ—जितने इस पृथिवी पर पदार्थ हैं उन सभों में अन्न ही अत्यन्त प्रशंसा के योग्य हैं जिससे अन्नवान् पुरुष सब जगह विजय को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

वाजः पुरस्तादित्यस्य देवा ऋषयः। अन्नपतिर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अन्न ही सब की रक्षा करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाजः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नो॒ वाजो॑ दे॒वान् ह॒विषा॑ वर्द्धयाति। वाजो॒ हि॒ मा॒ सर्व॑वीरं च॒कार॒ सर्वा॒ आशा॒ वाज॑पतिर्भवेयम् ॥३४॥

पदार्थ—जो (वाजः) अन्न (हविषा) देने लेने और खाने से (पुरस्तात्) पहिले (उत) और (मध्यतः) बीच में (नः) हम लोगों को (वर्द्धयाति) बढ़ावे तथा जो (वाजः) अन्न (देवान्) दिव्यगुणों को बढ़ावे जो (हि) ही (वाजः) अन्न (मा) मुझ को (सर्ववीरम्) जिस से समस्त वीर पुरुष होते हैं ऐसा (चकार) करता है उससे मैं (वाजपतिः) अन्न आदि पदार्थों की रक्षा करनेवाला (भवेयम्) होऊँ और (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को जीतूं ॥ ३४ ॥

भावार्थ—अन्न ही सब प्राणियों को बढ़ाता है अन्न से ही प्राणी सब दिशाओं में भ्रमते हैं अन्न के विना कुछ भी नहीं कर सकते ॥ ३४ ॥

सं मा सृजामीत्यस्य देवा ऋषयः। रसविद्याविद्विद्वान् देवता। स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सं मा॑ सृजामि॒ पय॑सा पृथि॒व्याः सं मा॑ सृजाम्य॒द्भिरोष॑धीभिः। सो॒ऽहं वाज॑ꣳ सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) रस विद्या के जानने हारे विद्वान् ! जो मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (पयसा) रस के साथ (मा) अपने को (सं, सृजामि) मिलाता हूँ वा (अद्भिः) अच्छे शुद्ध जल और (ओषधीभिः) सोमलता आदि ओषधियों के साथ (मा) अपने को (संसृजामि) मिलाता हूँ (सः) सो (अहम्) मैं (वाजम्) अन्न का (सनेयम्) सेवन करूं इसी प्रकार तू भी आचरण कर ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे मैं वैद्यक शास्त्र की रीति से अन्न और पान आदि को करके सुखी होता हूँ वैसे तुम लोग भी प्रयत्न किया करो ॥ ३५ ॥

पयः पृथिव्यामित्यस्य देवा ऋषयः। रसविद्विद्वान् देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्य जल के रस को जानने वाले हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पयः॑ पृथि॒व्यां पय॒ऽओष॑धीषु॒ पयो॑ दि॒व्य॒न्तरि॑क्षे॒ पयो॑ धाः। पय॑स्वतीः प्र॒दिशः॑ सन्तु॒ मह्य॑म् ॥३६॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! तू (पृथिव्याम्) पृथिवी पर जिस (पयः) जल वा दुग्ध आदि के रस (ओषधीषु) ओषधियों में जिस (पयः) रस (दिवि) शुद्ध निर्मल प्रकाश वा (अन्तरिक्षे) सूर्य और पृथिवी के बीच में जिस (पयः) रस को (धाः) धारण करता है उस सब (पयः) जल वा दुग्ध के रस को मैं भी धारण करूं जो (प्रदिशः) दिशा विदिशा (पयस्वतीः) बहुत रस वाली तेरे लिये (सन्तु) हों वे (मह्यम्) मेरे लिये भी हों ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जल आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी आदि से उत्तम अन्न और रसों का संग्रह करके खाते और पीते हैं वे नीरोग होकर सब दिशाओं में कार्य की सिद्धि कर तथा जा आ सकते और बहुत आयु वाले होते हैं ॥ ३६ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य देवा ऋषयः। सम्राड् राजा देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

फिर मनुष्य कैसे को राजा मानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। सर॑स्वत्यै वा॒चो य॒न्तुर्य॒न्त्रेणा॒ग्नेः साम्रा॑ज्येना॒भिषि॑ञ्चामि ॥३७॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् ! जैसे मैं (त्वा) आप को (सवितुः) सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने हारा जो (देवस्य) आप ही प्रकाश को प्राप्त परमेश्वर उसके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के प्रताप और शीतलपन के समान (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (पूष्णः) पुष्टि करनेवाले प्राण के धारण और खींचने के समान (हस्ताभ्याम्) हाथों से (सरस्वत्यै)विज्ञान वाली (वाचः) वाणी के (यन्तुः) नियम करनेवाले (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि की (यन्त्रेण) कारीगरी से उत्पन्न किये हुए (साम्राज्येन) सब भूमि के राजपन से (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ अर्थात् अधिकार देता हूँ वैसे आप सुख से मेरा अभिषेक करें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि समस्त विद्या के जानने हारे होके सूर्य आदि के गुण कर्म सदृश स्वभाव वाले पुरुष को राजा मानें ॥ ३७ ॥

ऋताषाडित्यस्य देवा ऋषयः । ऋतुविद्याविद्विद्वान् देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (ऋताषाट्) सत्य व्यवहार को सहने वाला (ऋतधामा) जिसके ठहरने के लिये ठीक स्थान है वह (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने हारा (अग्निः) आग के समान है वह (तस्य) उस की (ओषधयः) ओषधि (अप्सरसः) जो कि जलों में दौड़ती हैं वे (मुदः) जिन में आनन्द होता है ऐसे (नाम) नाम वाली हैं (सः) वह (नः) हम लोगों के (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्रह्म को जानने वालों के कुल और (क्षत्रम्) राज्य वा क्षत्रियों के कुल की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (वाट्) जिससे कि व्यवहारों को यथायोग्य वर्त्ताव में जाता है और (ताभ्यः) उक्त उन ओषधियों के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया हो ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के समान दुष्ट शत्रुओं के कुल को दुःखरूपी अग्नि में जलाने वाला और ओषधियों के समान आनन्द का करनेवाला हो वही समस्त राज्य की रक्षा कर सकता है ॥ ३८ ॥

संहित इत्यस्य देवा ऋषयः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम । स न इदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो (संहितः) सब मूर्तिमान् वस्तु वा सत्पुरुषों के साथ मिला हुआ (सूर्यः) सूर्य (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करनेवाला है (तस्य) उस की (मरीचयः) किरणें (अप्सरसः) जो अन्तरिक्ष में जाती हैं वे (आयुवः) सब ओर से संयोग और वियोग करनेवाली (नाम) प्रसिद्ध हैं अर्थात् जल आदि पदार्थों का संयोग करती और छोड़ती हैं (ताभ्यः) उन अन्तरिक्ष में जाने आने वाली किरणों के लिये (विश्वसामा) जिसके समीप सामवेद विद्यमान वह आप (स्वाहा) उत्तम क्रिया से कार्यसिद्धि करो जिससे वे यथायोग्य काम में आवें जो आप (तस्मै) उस सूर्य के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करते हो (सः) वह आप (नः) हमारे (इदम्) इस (ब्रह्म) विद्वानों और (क्षत्रम्) शूरवीरों के कुल तथा (वाट्) कामों के निर्वाह करने की (पातु) रक्षा करो ॥३९॥

भावार्थ—मनुष्य सूर्य की किरणों का युक्ति के साथ सेवन कर विद्या और शूरवीरता को बढ़ाके अपने प्रयोजन को सिद्ध करें ॥ ३९ ॥

सुषुम्ण इत्यस्य देवा ऋषयः । चन्द्रमा देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से उपकार लेना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सूर्य्यरश्मिः) सूर्य की किरणों वाला (सुषुम्णः) जिससे उत्तम सुख होता (गन्धर्वः) और जो सूर्य की किरणों को धारण किये हैं वह (चन्द्रमाः) सब को आनन्दयुक्त करनेवाला चन्द्रलोक है (तस्य) उसके जो (नक्षत्राणि) अश्विनी आदि नक्षत्र और (अप्सरसः) आकाश में विद्यमान किरणें (भेकुरयः) प्रकाश को करनेवाली (नाम) प्रसिद्ध हैं वे चन्द्र की अप्सरा हैं (सः) वह जैसे (नः) हम लोगों के (इदम्) इस (ब्रह्म) पढ़ाने वाले ब्राह्मण और (क्षत्रम्) दुष्टों के नाश करने हारे क्षत्रियकुल की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उक्त उस प्रकार के चन्द्रलोक के लिये (वाट्) कार्यनिर्वाहपूर्वक (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (ताभ्यः) उन किरणों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तुम लोगों को प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ ४० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से भी उनकी विद्या से सुख सिद्ध करना चाहिये ॥ ४० ॥

इषिर इत्यस्य देवा ऋषयः । वातो देवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को पवन आदि से उपकार लेने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽअप्सरसऽऊर्जो नाम ।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इषिरः) जिससे इच्छा करते (विश्वव्यचाः) वा जिसकी सब संसार में व्याप्ति है वह (गन्धर्वः) पृथिवी और किरणों को धारण करता (वातः) सब जगह भ्रमण करनेवाला पवन है (तस्य) उस के जो (आपः) जल और प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान आदि भाग हैं वे (अप्सरसः) अन्तरिक्ष जल में जाने आने वाले और (ऊर्जः) बल पराक्रम के देनेवाले (नाम) प्रसिद्ध हैं जैसे (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) सत्य के उपदेश से सब की वृद्धि करनेवाले ब्राह्मणकुल तथा (क्षत्रम्) विद्या के बढ़ाने वाले राजकुल की (पातु) रक्षा करे वैसे तुम लोग भी आचरण करो (तस्मै) और उक्त पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की (वाट्) प्राप्ति तथा (ताभ्यः) उन जल आदि के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा उत्तम वाणी को युक्त करो ॥ ४१ ॥

भावार्थ—शरीर में जितनी चेष्टा और बल पराक्रम उत्पन्न होते हैं वे सब पवन से होते हैं और पवन ही प्राणरूप और जल गन्धर्व अर्थात् सब को धारण करने वाले हैं यह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

भुज्युरित्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग यज्ञ का अनुष्ठान करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽअप्सरसः स्तावा नाम
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (भुज्युः) सुखों के भोगने और (सुपर्णः) उत्तम उत्तम पालना का हेतु (गन्धर्वः) वाणी को धारण करनेवाला (यज्ञः) सङ्गति करने योग्य यज्ञकर्म है (तस्य) उस की (दक्षिणाः) जो सुपात्र अच्छे अच्छे धर्मात्मा विद्वानों को दक्षिणा दी जाती हैं वे (अप्सरसः) प्राणों में पहुँचने वाली (स्तावाः) जिनकी प्रशंसा की जाती है ऐसी (नाम) प्रसिद्ध हैं (सः) वह जैसे (नः) हमारे लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) विद्वान् ब्राह्मण और (क्षत्रम्) चक्रवर्ती राजा की (पातु) रक्षा करे वैसा तुम लोग भी अनुष्ठान करो (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की (वाट्) प्राप्ति (ताभ्यः) उक्त दक्षिणाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से उत्तम क्रिया को संयुक्त करो ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं यह जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

प्रजापतिरित्यस्य देवा ऋषयः । विश्वकर्मा देवता । विराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (विश्वकर्मा) समस्त कामों का हेतु (प्रजापतिः) और जो प्रजा का पालन वाला स्वामी मनुष्य है (तस्य) उसके (गन्धर्वः) जिससे वाणी आदि को धारण करता है (मनः) ज्ञान की सिद्धि करने हारा मन (ऋक्सामानि) ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्र (अप्सरसः) हृदयाकाश में व्याप्त प्राण आदि पदार्थों में जाती हुई क्रिया (एष्टयः) जिन से विद्वानों का सत्कार सत्य का सङ्ग और विद्या का दान होता है ये सब (नाम) प्रसिद्ध हैं जैसे (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) वेद और (क्षत्रम्) धनुर्वेद की (पातु) रक्षा करे वैसे (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (वाट्) धर्म की प्राप्ति और (ताभ्यः) उन उक्त पदार्थों के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से उपकार को करो ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थी विचारशील वेदविद्या के जानने वाले होते हैं वे ही संसार के भूषण होते हैं ॥ ४३ ॥

स न इत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तऽउपरि गृहा यस्य वेह ।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥४४॥

पदार्थ—हे (भुवनस्य) घर के (पते) स्वामी (प्रजापते) प्रजा की रक्षा करनेवाले पुरुष ! (इह) इस संसार में (यस्य) जिस (ते) तेरे (उपरि) अति उच्चता को देने हारे उत्तम व्यवहार में (गृहाः) पदार्थों के ग्रहण करने हारे गृहस्थ मनुष्य आदि (वा) वा (यस्य) जिसकी सब उत्तम क्रिया हैं (सः) सो तू (नः) हमारे (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के जानने हारे मनुष्य तथा (अस्मै) इस (क्षत्राय) राजधर्म में निरन्तर स्थित क्षत्रिय के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से (महि) बहुत (शर्म) घर और सुख को (यच्छ) दे ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों और क्षत्रियों के कुल को नित्य बढ़ाते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥

समुद्रोऽसीत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद्बृहतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।

मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा। अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥४५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो तू (नभस्वान्) जिसके समीप बहुत जल (आर्द्रदानुः) और शीतल गुणों का देनेवाला (समुद्रः) और जिसमें उलट पलट जल गिरते उस समुद्र के समान (असि) है वह (स्वाहा) सत्य क्रिया से (शम्भूः) उत्तम सुख और (मयोभूः) सामान्य सुख उत्पन्न करानेवाला होता हुआ (मा) मुझको (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो जो तू (मारुतः) पवनों का सम्बन्धी जानने हारा (मरुताम्) विद्वानों के (गणः) समूह के समान (असि) है वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (शम्भूः) विशेष परजन्म के सुख और (मयोभूः) इस जन्म में सामान्य सुख का उत्पन्न करनेवाला होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो, जो तू (दुवस्वान्) प्रशंसित सत्कार से युक्त (अवस्यूः) अपनी रक्षा चाहने वाले के समान (असि) है वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (शम्भूः) विशेष सुख और (मयोभूः) सामान्य अपने सुख का उत्पन्न करने हारा होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो ॥ ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य समुद्र के समान गम्भीर और रत्नों से युक्त कोमल पवन के तुल्य बलवान् विद्वानों के तुल्य परोपकारी और अपने आत्मा के तुल्य सब की रक्षा करते हैं वे ही सब के कल्याण और सुखों को कर सकते हैं ॥ ४५ ॥

यास्त इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नोऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥४६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वन् ! (याः) जो (सूर्ये) सूर्य वा प्राण में (रुचः) दीप्ति वा प्रीति हैं और जो (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) सब ओर से फैलाती हैं (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब (ते) अपनी दीप्ति वा प्रीतियों से (अद्य) आज (नः) हम लोगों को संयुक्त करो और (रुचे) प्रीति करने हारे (जनाय) मनुष्य के अर्थ (नः) हम लोगों को (कृधि) नियत करो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे परमेश्वर सूर्य आदि प्रकाश करने हारे लोकों का भी प्रकाश करने हारा है वैसे सब शास्त्र को यथावत् कहने वाला विद्वान् विद्वानों को भी विद्या देने हारा होता है जैसे ईश्वर इस संसार में सब प्राणियों को सत्य में रुचि और असत्य में अरुचि को उत्पन्न करता है वैसा विद्वान् भी आचरण करे ॥ ४६ ॥

या व इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥४७॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़े बड़े पदार्थों की पालना करने हारे ईश्वर और (देवाः) विद्वान् मनुष्यो ! (याः) जो (वः) तुम सबों की (सूर्ये) चराचर में व्याप्त परमेश्वर में अर्थात् ईश्वर की अपने में और तुम विद्वानों की ईश्वर में (रुचः) प्रीति हैं वा (याः) जो इन (गोषु) किरण इन्द्रिय और दुग्ध देनेवाली गौ और (अश्वेषु) अग्नि तथा घोड़ा आदि में (रुचः) प्रीति हैं वा जो इन में (इन्द्राग्नी) प्रसिद्ध बिजुली और आग वर्त्तमान हैं वे भी (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब प्रीतियों से (नः) हम लोगों में (रुचम्) प्रीति को (धत्त) स्थापन करो ॥ ४७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे परमेश्वर गौ आदि की रक्षा और पदार्थविद्या में सब मनुष्यों को प्रेरणा देता है वैसे ही विद्वान् लोग भी आचरण किया करें ॥ ४७ ॥

रुचं न इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥४८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों के (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में (रुचा) प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) धरो स्थापन करो (नः) हम लोगों के (राजसु) राजपूत क्षत्रियों में प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (कृधि) करो (विश्येषु) प्रजाजनों में हुए वैश्यों में तथा (शूद्रेषु) शूद्रों में प्रीति से (रुचम्) प्रीति को और (मयि) मुझ में भी प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) स्थापन करो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ ब्राह्मणादि वर्णों में समान प्रीति करता है वैसे ही विद्वान् लोग भी समान प्रीति करें जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्त्तमान हैं वे सब नीच और तिरस्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४८ ॥

तत्त्वेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्वानों के तुल्य आचरण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्रमोषीः ॥४९॥

पदार्थ—हे (उरुशंस) बहुतों की प्रशंसा करने हारे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् ! (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ (यजमानः) यज्ञ करनेवाला (अहेडमानः) सत्कार को प्राप्त हुआ पुरुष (हविर्भिः) होम करने के योग्य अच्छे बनाये हुए पदार्थों से जो (आ, शास्ते) आशा करता है (तत्) उसको मैं (यामि) प्राप्त होऊं तथा जिस उत्तम (आयुः) सौ वर्ष की आयुर्दा को (त्वा) तेरा आश्रय कर के मैं प्राप्त होऊं (तत्) उस को तू भी प्राप्त हो तू (इह) इस संसार में उक्त आयुर्दा को (बोधि) जान और तू (नः) हमारी उस आयुर्दा को (मा, प्र, मोषीः) मत चोर ॥ ४९ ॥

भावार्थ—सत्यवादी शास्त्रवेत्ता सज्जन विद्वान् जो चाहे वही चाहना मनुष्यों को भी करनी चाहिये किसी को किन्हीं विद्वानों का अनादर न करना चाहिये तथा स्त्री पुरुषों को ब्रह्मचर्य त्याग, अयोग्य आहार विहार, व्यभिचार अत्यन्त विषयासक्ति आदि खोटे कामों से आयुर्दा का नाश कभी न करना चाहिये ॥ ४९ ॥

स्वर्ण घर्म इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

कैसे जन पदार्थों को शुद्ध करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥५०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (घर्मः) प्रताप (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) तुल्य (अर्कः) अग्नि (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) सदृश (शुक्रः) वायु (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (ज्योतिः) बिजुली की चमक (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (सूर्यः) सूर्य हो वैसे तुम भी आचरण करो ॥ ५० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । यज्ञ के करनेवाले मनुष्य सुगन्धियुक्त आदि पदार्थों के होम से समस्त वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर सकते हैं जिससे रोग क्षय होकर सब की बहुत आयुर्दा हो ॥ ५० ॥

अग्निमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे नर सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳसुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।
तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳस्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥५१॥

पदार्थ—मैं (वयसा) आयु की व्याप्ति से (बृहन्तम्) बड़े हुए (दिव्यम्) शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध होने वाले (सुपर्णम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने में परिपूर्ण (अग्निम्) अग्नि को (शवसा) बलदायक (घृतेन) घी आदि सुगन्धित पदार्थों से (युनज्मि) युक्त करता हूँ (तेन) उस से (स्वः) सुख को (रुहाणाः) आरूढ़ हुए (वयम्) हम लोग (ब्रध्नस्य) बड़े से बड़े के (विष्टपम्) उस व्यवहार को कि जिससे सामान्य और विशेष भाव से प्रवेश हुए जीवों की पालना की जाती है और (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःखरहित सुखरूप स्थान है उसको (अधि, गमेम) प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अच्छे बनाए हुए सुगन्धि आदि से युक्त पदार्थों को आग में छोड़कर पवन आदि की शुद्धि से सब प्राणियों को सुख देते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

इमावित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳरक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने । ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रताप वाले विद्वान् ! (ते) आपके जो (इमौ) ये (पतत्रिणौ) उच्चश्रेणी को प्राप्त हुए (अजरौ) कभी नष्ट नहीं होते अजर अमर (पक्षौ) कार्य्यकारण रूप समीप के पदार्थ हैं (याभ्याम्) जिन से आप (रक्षांसि) दुष्ट प्राणियों वा दोषों को (अपहंसि) दूर बहा देते हैं (ताभ्याम्) उन से (उ) ही उस (सुकृताम्) सुकृती सज्जनों के (लोकम्) देखने योग्य आनन्द को हम लोग (पतेम) पहुँचें (यत्र) जिस आनन्द में (प्रथमजाः) सर्वव्याप्त परमेश्वर में प्रसिद्ध वा अतिविस्तारयुक्त वेद में प्रसिद्ध अर्थात् उस के जानने से कीर्ति

पाये हुए (पुराणाः) पहिले पढ़ने के समय नवीन (ऋषयः) वेदार्थ जानने वाले विद्वान् ऋषिजन (जग्मुः) पहुंचे ॥ ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन दोषों को खोके धर्म आदि अच्छे गुणों का ग्रहण कर ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्दयुक्त होते हैं वैसे उन को पाकर मनुष्यों को भी सुखी होना चाहिये ॥ ५२ ॥

इन्दुरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। इन्दुर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्दुर्दक्षः श्येनऽऋतावा हिर॑ण्यपक्षः शकुनो भु॑रण्युः।
महान्त्सधस्थे ध्रुवऽआ निष॑त्तो नम॑स्तेऽअस्तु मा मा॑ हिꣳसीः ॥५३॥

पदार्थ—हे विद्वन् सभापते ! जो आप (इन्दुः) चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव सहित (दक्षः) बल चतुराई युक्त (श्येनः) बाज के समान पराक्रमी (ऋतावा) जिन का सत्य का सम्बन्ध विद्यमान है (हिरण्यपक्षः) और सुवर्ण के लाभ वाले (शकुनः) शक्तिमान् (भुरण्युः) सब के पालने हारे (महान्) सब से बड़े (सधस्थे) दूसरे के साथ स्थान में (आ, निषत्तः) निरन्तर स्थित (ध्रुवः) निश्चल हुए (मा) मुझे (मा) मत (हिंसीः) मारो उन (ते) आप के लिये हमार (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस संसार में विद्वान् जन स्थिर होकर सब विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिस से वे हिंसा करने हारे न होवें ॥ ५३ ॥

दिव इत्यस्य गालव ऋषिः। इन्दुर्देवता। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य दीर्घजीवी होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोष॑धीनाम्।
विश्वायुः शर्म॑ सप्रथा नम॑स्पथे ॥५४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो आप (दिवः) प्रकाश अर्थात् प्रताप के (मूर्द्धा) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभिः) बन्धन के समान (अपाम्) जलों और (ओषधीनाम्) ओषधियों के (ऊर्क्) रस के समान (विश्वायुः) पूर्ण सौ वर्ष जीने वाले और (सप्रथाः) कीर्तियुक्त (असि) हैं सो आप (पथे) सन्मार्ग के लिये (नमः) अन्न (शर्म) शरण और सुख को प्राप्त होओ ॥ ५४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य न्यायवान् सहनशील औषध का सेवन करने और आहार विहार से यथायोग्य रहनेवाला इन्द्रियों को वश में रखता है वह सौ वर्ष की अवस्था वाला होता है ॥ ५४ ॥

विश्वस्येत्यस्य गालव ऋषिः। इन्दुर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

विश्व॑स्य मूर्द्धन्नधि॑ तिष्ठसि श्रितः स॑मुद्रे ते हृद॑यमप्स्वायुरपो द॑त्तोदधिं भिन्त। दिवस्पर्जन्या॑दन्तरि॑क्षात्पृथिव्यास्ततो॑ नो वृष्ट्या॑व ॥५५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो आप (विश्वस्य) सब संसार के (मूर्द्धन्) शिर पर (श्रितः) विराजमान सूर्य के समान (अधि, तिष्ठसि) अधिकार पाये हुए हैं जिन (ते) आपका (समुद्रे) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक परमेश्वर में (हृदयम्) मन (अप्सु) प्राणों में (आयुः) जीवन है उन (अपः) प्राणों को (दत्त) देते हो (उदधिम्) समुद्र का (भिन्त) भेदन करते हो जिससे सूर्य (दिवः) प्रकाश (अन्तरिक्षात्) आकाश (पर्जन्यात्) मेघ और (पृथिव्याः) भूमि से (वृष्ट्या) वर्षा के योग से सब चराचर प्राणियों की रक्षा करता है (ततः) इस से अर्थात् सूर्य के तुल्य (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा करो ॥ ५५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान सुख वर्षाने और उत्तम आचरणों के करने हारे हैं वे सब को सुखी कर सकते हैं ॥५५॥

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

इष्टो य॒ज्ञो भृगु॑भिराशीर्दा वसु॑भिः।
तस्य॑ न इष्टस्य॑ प्रीतस्य॑ द्रविणेहाग॑मेः ॥५६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (भृगुभिः) परिपूर्ण विज्ञान वाले (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने (आशीर्दाः) इच्छासिद्धि को देने वाला (यज्ञः) यज्ञ (इष्टः) किया है (तस्य) उस (इष्टस्य) किये हुए (प्रीतस्य) मनोहर यज्ञ के सकाश से (इह) इस संसार में आप (नः) हम लोगों के (द्रविण) धन को (आ, गमेः) प्राप्त हूजिये ॥५६॥

भावार्थ—जो विद्वानों के तुल्य अच्छा यत्न करते हैं वे इस संसार में बहुत धन को प्राप्त होते हैं ॥५६॥

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

इष्टोऽअ॒ग्निराहु॑तः पिपर्तु न इष्टꣳह॒विः। स्वगेदन्दे॒वेभ्यो नम॑ः ॥५७॥

पदार्थ—(हविः) संस्कार किये पदार्थों से (आहुतः) अच्छे प्रकार तृप्त वा हवन किया (इष्टः) सत्कार किया वा आहुतियों से बढ़ाया हुआ (अग्निः) यह सभा आदि का अध्यक्ष विद्वान् वा अग्नि (नः) हमारे (इष्टम्) सुख वा सुख के साधनों को (पिपर्त्तु) पूरा करे वा हमारी रक्षा करे (इदम्) यह (स्वगा) अपने को प्राप्त होने वाला (नमः) अन्न वा सत्कार (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये हो ॥५७॥

भावार्थ— मनुष्य अग्नि में अच्छे संस्कार से बनाये हुए जिस पदार्थ का होम करते हैं सो इस संसार में बहुत अन्न का उत्पन्न करने वाला होता है इस कारण इस से विद्वान् आदि सत्पुरुषों का सत्कार करना चाहिये ॥५७॥

यदेत्यस्य विश्वकर्मा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों के विषय में सत्य का निर्णय यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

यदाकू॑तात्स॒मसु॑स्रोद्धृदो वा मन॑सो वा संभृ॑तं चक्षु॑षो वा।
तद॑नुप्रेत॑ सुकृता॑मु लोकं यत्र॒ऽऋष॑यो ज॒ग्मुः प्र॑थम॒जाः पु॑राणाः ॥५८॥

पदार्थ—हे सत्य असत्य का ज्ञान चाहते हुए मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जो (आकूतात्) उत्साह (हृदः) आत्मा (वा) वा प्राण (मनसः) मन (वा) वा बुद्धि आदि तथा (चक्षुषः) नेत्रादि इन्द्रियों से उत्पन्न हुए प्रत्यक्षादि प्रमाणों से (वा) वा कान आदि इन्द्रियों से (संभृतम्) अच्छे प्रकार धारण किया अर्थात् निश्चय से ठीक जाना सुना देखा और अनुमान किया है (तत्) वह (समसुस्रोत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो इस कारण (प्रथमजाः) हम लोगों से पहिले उत्पन्न हुए (पुराणाः) हम से प्राचीन (ऋषयः) वेदविद्या के जानने वाले परमयोगी ऋषिजन (यत्र) जहां (जग्मुः) पहुंचें उस (सुकृताम्) सुकृति मोक्ष चाहते हुए सज्जनों के (उ) ही (लोकम्) प्रत्यक्ष सुख समूह वा मोक्षपद को (अनुप्रेत) अनुकूलता से पहुंचो ॥५८॥

भावार्थ—जब मनुष्य सत्य असत्य के निर्णय के जानने की चाहना करे तब जो जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से तथा सृष्टिक्रम, प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों से अच्छे अच्छे सज्जनों के आचार से आत्मा और मन के अनुकूल हो वह वह सत्य उससे भिन्न और झूठ है यह निश्चय करें जो ऐसे परीक्षा करके धर्म का आचरण करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥५८॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

एतꣳस॑धस्थ॒ परि॑ ते ददामि॒ यमा॒वहा॑च्छेव॒धिं जा॒तवे॑दाः।
अ॒न्वा॒ग॒न्ता य॒ज्ञप॑तिर्वो॒ऽअत्र॒ तꣳस्म॑ जानीत पर॒मे व्यो॑मन् ॥५९॥

पदार्थ—हे ईश्वर के ज्ञान चाहने वाले मनुष्यो और हे (सधस्थ) समान स्थान वाले सज्जन ! (जातवेदाः) जिसको ज्ञान प्राप्त है वह वेदार्थ को जानने वाला (यज्ञपतिः) यज्ञ की पालना करने वाले के समान वर्त्तमान पुरुष (यम्) जिस (शेवधिम्) सुखनिधि परमेश्वर को (आवहात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे (एतम्) इस को (अत्र) इस (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में व्याप्त परमात्मा को मैं (ते) तेरे लिये जैसे (परि, ददामि) सब प्रकार से देता हूँ, उपदेश करता हूँ (अन्वागन्ता) धर्म्म के अनुकूल चलने हारा मैं (वः) तुम सबों के लिये जिस परमेश्वर का (स्म) उपदेश करूं (तम्) उसको तुम (जानीत) जानो ॥५९॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों के अनुकूल आचरण करते हैं वे सर्वव्यापी अन्तर्यामी परमेश्वर के पाने को योग्य होते हैं ॥ ५९ ॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मर्षिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

एतं जा॑नाथ पर॒मे व्यो॑मन् देवाः सधस्था वि॒द रू॒पम॑स्य।
यदा॒गच्छा॑त् प॒थिभि॑र्देव॒यानै॑रिष्टापू॒र्त्ते कृ॑णवाथा॒विर॑स्मै ॥६०॥

पदार्थ—हे (सधस्थाः) एक साथ स्थान वाले (देवाः) विद्वानो ! तुम (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में व्याप्त (एतम्) इस परमात्मा को (जानाथ) जानो (अस्य) और इसके व्यापक (रूपम्) सत्य चैतन्यमात्र आनन्दमय स्वरूप को (विद) जानो (यत्) जिस सच्चिदानन्द-लक्षण परमेश्वर को (देवयानैः) धार्मिक विद्वानों के (पथिभिः) मार्गों से पुरुष (आगच्छात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे (अस्मै) इस परमेश्वर के लिए (इष्टापूर्त्ते) वेदोक्त यज्ञादि कर्म और उस के साधक स्मार्त्त कर्म को (आविः) प्रकाशित (कृणवाथ) किया करो ॥ ६० ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्वानों के सङ्ग योगाभ्यास और धर्म के आचरण से परमेश्वर को अवश्य जानें ऐसा न करें तो यज्ञ आदि श्रौत स्मार्त्त कर्मों को नहीं सिद्ध करा सकें और न मुक्ति पा सकें ॥६०॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य गालव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

उद्बु॑ध्यस्वाग्ने॒ प्रति॑ जागृहि॒ त्वमि॑ष्टापू॒र्त्ते सꣳसृ॑जेथाम॒यं च॑।
अ॒स्मिन्त्स॒धस्थे॒ऽअध्युत्त॑रस्मि॒न् विश्वे॑ देवा॒ यज॑मानश्च सीदत ॥६१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान ऋत्विक् पुरुष ! (त्वम्) तू (उद्, बुध्यस्व) उठ प्रबोध को प्राप्त हो (प्रति, जागृहि) यजमान को अविद्यारूप निद्रा से छुड़ा के विद्या में चेतन कर तू (च) और (अयम्) यह ब्रह्मविद्या का उपदेश करने हारा यजमान दोनों (इष्टापूर्त्ते) यज्ञसिद्धि कर्म और उसकी सामग्री को (संसृजेथाम्) उत्पन्न करो । हे (विश्वे) समग्र (देवाः) विद्वानो ! (च) और (यजमानः) विद्या देने तथा यज्ञ करने हारे यजमान ! तुम सब (अस्मिन्) इस (सधस्थे) एक साथ के स्थान में (उत्तरस्मिन्) उत्तम आसन पर (अधि, सीदत) बैठो ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जो चैतन्य और बुद्धिमान् विद्यार्थी हों वे पढ़ाने वालों को अच्छे प्रकार पढ़ाने चाहियें जो विद्या की इच्छा से पढ़ाने हारों के अनुकूल आचरण करने वाले हों और जो उनके अनुकूल पढ़ाने हारे हों वे परस्पर प्रीति से निरन्तर विद्याओं की बढ़ती करें और जो इन पढ़ने पढ़ाने हारों से पृथक् उत्तम विद्वान् हों वे इन विद्यार्थियों की सदा परीक्षा किया करें जिससे ये अध्यापक और विद्यार्थी लोग विद्याओं की बढ़ती करने में निरन्तर प्रयत्न किया करें वैसे ऋत्विज् यजमान और सभ्य परीक्षक विद्वान् लोग यज्ञ की उन्नति किया करें ॥ ६१ ॥

येनेत्यस्य देवश्रवदेववातावृषी । विश्वकर्माग्निर्वा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम् ।

तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ॥६२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पढ़ने वा पढ़ाने वाले पुरुष ! तू (येन) जिस पढ़ाने से (सहस्रम्) हजारों प्रकार के अतुल बोध को (सर्ववेदसम्) कि जिस में सब वेद जाने जाते हैं उस को (वहसि) प्राप्त होता और (येन) जिस पढ़ने से दूसरों को प्राप्त कराता है (तेन) उस से (इमम्) इस (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ को (नः) हम लोगों को (देवेषु) दिव्य गुण वा विद्वानों में (स्वर्गन्तवे) सुख के प्राप्त होने के लिये (नय) पहुँचा ॥६२॥

भावार्थ—जो धर्म के आचरण और निष्कपटता से विद्या देते और ग्रहण करते हैं वे ही सुख के भागी होते है ॥६२॥

प्रस्तरेणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्रियायज्ञ कैसे सिद्ध करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्र॒स्त॒रेण॑ परि॒धिना॑ स्रु॒चा वेद्या॑ च ब॒र्हिषा॑ ।

ऋ॒चेमं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ॥६३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (वेद्या) जिस में होम किया जाता है उस वेदी तथा (स्रुचा) होमने का साधन (बर्हिषा) उत्तम क्रिया (प्रस्तरेण) आसन (परिधिना) जो सब ओर धारण किया जाय उस यजुर्वेद (च) तथा (ऋचा) स्तुति वा ऋग्वेद आदि से (इमम्) इस पदार्थमय अर्थात् जिस में उत्तम भोजनों के योग्य पदार्थ होमे जाते हैं उस (यज्ञम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (देवेषु) दिव्य पदार्थ वा विद्वानों में (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (स्वः) संसार सम्बन्धी सुख (नः) हम लोगों को (नय) पहुँचाओ ॥ ६३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्म से पाये हुए पदार्थों तथा वेद की रीति से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे सब प्राणियों के उपकारी होते हैं ॥ ६३ ॥

यद्दत्तमित्यस्य विश्वकर्मर्षिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यद्द॒त्तं यत्प॑रा॒दानं॒ यत्पू॒र्त्तं याश्च॒ दक्षि॑णाः ।

तद॒ग्निर्वै॑श्वकर्म॒णः स्व॑र्दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥६४॥

पदार्थ—हे गृहस्थ विद्वन् ! आपने (यत्) जो (दत्तम्) अच्छे धर्मात्माओं को दिया वा (यत्) जो (परादानम्) और से लिया वा (यत्) जो (पूर्त्तम्) पूर्ण सामग्री (याश्च) और जो कर्म के अनुसार (दक्षिणाः) दक्षिणा दी जाती है (तत्) उस सब (स्वः) इन्द्रियों के सुख को (वैश्वकर्मणः) जिसके समग्र कर्म विद्यमान हैं उस (अग्निः) अग्नि के समान गृहस्थ विद्वान् आप (देवेषु) दिव्य धर्मसम्बन्धी व्यवहारों में (नः) हम लोगों को (दधत्) स्थापन करें ॥६४॥

भावार्थ—जो पुरुष और जो स्त्री गृहाश्रम किया चाहें वे विवाह से पूर्व प्रगल्भता अर्थात् अपने में बल पराक्रम परिपूर्णता आदि सामग्री कर ही के युवावस्था में स्वयम्वरविधि के अनुकूल विवाह कर धर्म से दान आदान मान सन्मान आदि व्यवहारों को करें ॥ ६४ ॥

यत्र धारा इत्यस्य विश्वकर्मर्षिः । यज्ञो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यत्र॒ धारा॒ अन॑पेता॒ मधो॑र्घृ॒तस्य॑ च॒ याः ।

तद॒ग्निर्वै॑श्वकर्म॒णः स्व॑र्दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥६५॥

पदार्थ—(यत्र) जिस यज्ञ में (मधोः) मधुरादि गुणयुक्त सुगन्धित द्रव्यों (च) और (घृतस्य) घृत के (याः) जिन (अनपेताः) संयुक्त (धाराः) प्रवाहों को विद्वान् लोग करते हैं (तत्) उन धाराओं से (वैश्वकर्मणः) सब कर्म होने का निमित्त (अग्निः) अग्नि (नः) हमारे लिये (देवेषु) दिव्य व्यवहारों में (स्वः) सुख को (दधत्) धारण करता है ॥ ६५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वेदि आदि को बना के सुगन्ध और मिष्टादियुक्त बहुत घृत को अग्नि में हवन करते हैं वे सब रोगों का निवारण करके अतुल सुख को उत्पन्न करते हैं ॥ ६५ ॥

अग्निरस्मीत्यस्य देवश्रवोदेववातावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒ग्निर॑स्मि॒ जन्म॑ना जा॒तवे॑दा घृ॒तं मे॒ चक्षु॑र॒मृतं॑ म आ॒सन् ।

अ॒र्कस्त्रि॒धातू॒ रज॑सो वि॒मानोऽज॑स्रो घ॒र्मो ह॒विर॑स्मि॒ नाम॑ ॥६६॥

पदार्थ—मैं (जन्मना) जन्म से (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (अग्निः) अग्नि के समान (अस्मि) हूँ जैसे अग्नि का (घृतम्) घृतादि (चक्षुः) प्रकाशक है वैसे (मे) मेरे लिये हो जैसे अग्नि में अच्छे प्रकार संस्कार किया (हविः) हवन करने योग्य द्रव्य होमा हुआ (अमृतम्) सर्वरोगनाशक आनन्दप्रद होता है वैसे (मे) मेरे (आसन्) मुख में प्राप्त हो जैसे (त्रिधातुः) सत्त्व रज और तमोगुण तत्त्व जिसमें हैं उस (रजसः) लोक लोकान्तर को (विमानः) विमान यान के समान धारण करता (अजस्रः) निरन्तर गमनशील (घर्मः) प्रकाश के समान यज्ञ कि जिससे सुगन्ध का ग्रहण होता है (अर्कः) जो सत्कार का साधन जिस का (नाम) प्रसिद्ध होना अच्छे प्रकार शोधा हुआ हवन करने योग्य पदार्थ है वैसे मैं (अस्मि) हूँ ॥ ६६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अग्नि होम किये हुए पदार्थ को वायु में फैला कर दुर्गन्ध का निवारण, सुगन्ध की प्रकटता और रोगों को निर्मूल (नष्ट) कर के सब प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही सब मनुष्यों को होना योग्य है ॥ ६६ ॥

ऋचो नामेत्यस्य देवश्रवोदेववातावृषी । अग्निर्देवता । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब ऋग्वेद आदि को पढ़के क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऋचो॒ नामा॑स्मि॒ यजू॑ᳪषि॒ नामा॑स्मि॒ सामा॑नि॒ नामा॑स्मि । ये अ॒ग्नयः॒ पाञ्च॑जन्या अ॒स्यां पृ॑थि॒व्यामधि॑ । तेषा॑मसि॒ त्वमु॑त्त॒मः प्र नो॑ जी॒वात॑वे सुव ॥६७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो मैं (ऋचः) ऋचाओं की (नाम) प्रसिद्धिकर्त्ता (अस्मि) हूँ (यजूंषि) यजुर्वेद की (नाम) प्रख्यातिकर्ता (अस्मि) हूँ (सामानि) सामवेद के मन्त्रगान का (नाम) प्रकाशकर्त्ता (अस्मि) हूँ उस मुझसे वेदविद्या का ग्रहण कर (ये) जो (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पाञ्चजन्याः) मनुष्यों के हितकारी (अग्नयः) अग्नि (अधि) सर्वोपरि हैं (तेषाम्) उनके मध्य (त्वम्) तू (उत्तमः) अत्युत्तम (असि) है सो तू (नः) हमारे (जीवातवे) जीवन के लिये सत्कर्मों में (प्र, सुव) प्रेरणा कर ॥ ६७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ऋग्वेद को पढ़ते वे ऋग्वेदी जो यजुर्वेद को पढ़ते वे यजुर्वेदी जो सामवेद को पढ़ते वे सामवेदी और जो अथर्ववेद को पढ़ते हैं वे अथर्ववेदी जो दो वेदों को पढ़ते हैं वे द्विवेदी जो तीन वेदों को पढ़ते वे त्रिवेदी और जो चार वेदों को पढ़ते हैं वे चतुर्वेदी जो किसी वेद को नहीं पढ़ते वे किसी संज्ञा को प्राप्त नहीं होते जो वेदवित् हों वे अग्निहोत्रादि यज्ञों से सब मनुष्यों के हित को सिद्ध करें जिससे उनकी उत्तम कीर्त्ति होवे और सब प्राणी दीर्घायु होवें ॥ ६७ ॥

वार्त्रहत्यायेत्यस्य इन्द्र ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सेनाध्यक्ष कैसे विजयी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वार्त्र॑हत्याय॒ शव॑से पृतनाषाह्या॑य च । इन्द्र॒ त्वा व॑र्तयामसि ॥६८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सेनापते ! जैसे हम लोग (वार्त्रहत्याय) विरुद्ध भाव से वर्त्तमान शत्रु के मारने में जो कुशल (शवसे) उत्तम बल (पृतनाषाह्याय) जिससे शत्रुसेना का बल सहन किया जाय उससे (च) और अन्य योग्य साधनों से युक्त (त्वा) तुझको (आ, वर्तयामसि) चारों ओर से यथायोग्य वर्त्ताया करें वैसे तू यथायोग्य वर्त्ता कर ॥ ६८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् जैसे सूर्य मेघ को वैसे शत्रुओं के मारने को शूरवीरों की सेना का सत्कार करता है वह सदा विजयी होता है ॥ ६८ ॥

सहदानुमित्यस्येन्द्र विश्वामित्रावृषी । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स॒हदा॑नुं पुरुहूत क्षि॒यन्त॑मह॒स्तमि॑न्द्र॒ सं पि॑ण॒क् कुणा॑रुम् ।

अ॒भि वृ॒त्रं वर्द्ध॑मानं॒ पिया॑रुमपा॒दमि॑न्द्र त॒वसा॑ जघन्थ ॥६९॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुत विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (इन्द्र) शत्रुओं को नष्ट करने हारे सेनापति ! जैसे सूर्य (सहदानुम्) साथ देने हारे (क्षियन्तम्) आकाश में निवास करने (कुणारुम्) शब्द करनेवाले (अहस्तम्) हस्त से रहित (पियारुम्) पान करने हारे (अपादम्) पादेन्द्रियरहित (अभि, वर्द्धमानम्) सब ओर से बढ़े हुए (वृत्रम्) मेघ को (सं, पिणक्) अच्छे प्रकार चूर्णीभूत करता है वैसे हे (इन्द्र) सभापति ! आप शत्रुओं को (तवसा) बल से (जघन्थ) मारा करो ॥ ६९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान प्रतापयुक्त होते हैं वे शत्रुरहित होते हैं ॥ ६९ ॥

वि न इत्यस्य शास ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सेनापति कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि नं इन्द्र मृधो जहि नीचा यंच्छ पृतन्यतः ।
योऽअस्माँ२ऽअंभिदासत्यधरं गमया तमः ॥७०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम बलयुक्त सेना के पति ! तू (मृधः) संग्रामों को (वि, जहि) विशेष करके जीत (पृतन्यतः) सेनायुक्त (नः) हमारे शत्रुओं को (नीचा) नीच गति को (यच्छ) प्राप्त कर (यः) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति) नष्ट करने की इच्छा करता है उस को (अधरम्) अधोगतिरूप (तमः) अन्धकार को (गमय) प्राप्त कर ॥ ७० ॥

भावार्थ—सेनापति को योग्य है कि संग्रामों को जीते उस विजयकारक संग्राम से नीचकर्म करनेहारों का निरोध करे राजा प्रजा में विरोध करानेहारे को अत्यन्त दण्ड देवे ॥७०॥

मृगो नेत्यस्य जय ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये इस विषयों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मृगो न भीमः कुंचरो गिरिष्ठाः पंरावत आ जंगन्था परस्याः ।
सृकꣳसꣳशायं पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥७१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनाओं के पति ! तू (कुचरः) कुटिल चाल चलता (गिरिष्ठाः) पर्वतों में रहता (भीमः) भयङ्कर (मृगः) सिंह के (न) समान (परावतः) दूरदेशस्थ शत्रुओं को (आ, जगन्थ) चारों ओर से घेरे (परस्याः) शत्रु की सेना पर (तिग्मम्) अति तीव्र (पविम्) दुष्टों को दण्ड से पवित्र करने हारे (सृकम्) वज्र के तुल्य शस्त्र को (संशाय) सम्यक् तीव्र करके (शत्रून्) शत्रुओं को (वि, ताढि) ताड़ित कर और (मृधः) संग्रामों को (वि, नुदस्व) जीत कर अच्छे कर्मों में प्रेरित कर ॥ ७१ ॥

भावार्थ—जो सेना के पुरुष सिंह के समान पराक्रम कर तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं के सेनाङ्गों का छेदन कर संग्रामों को जीतते हैं वे अतुल प्रशंसा को प्राप्त होते हैं इतर क्षुद्राशय मनुष्य विजयसुख को प्राप्त कभी नहीं हो सकते ॥ ७१ ॥

वैश्वानरो न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वैश्वानरो नं ऊतयऽ आ प्र यांतु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥७२॥

पदार्थ—हे सेना सभा के पति ! जैसे (वैश्वानरः) सम्पूर्ण नरों में विराजमान (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (परावतः) दूरदेशस्थ सब पदार्थों को प्राप्त होता है वैसे आप (ऊतये) रक्षादि के लिये (नः) हमारे समीप (आ, प्र, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये जैसे बिजुली सब में व्यापक होकर समीपस्थ रहती है वैसे (नः) हमारी (सुष्टुतीः) उत्तम स्तुतियों को (उप) अच्छे प्रकार सुनिये ॥ ७२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष सूर्य्य के समान दूरस्थ होकर भी न्याय से सब व्यवहारों को प्रकाशित कर देता है और जैसे दूरस्थ सत्यगुणों से युक्त सत्पुरुष प्रशंसित होता है वैसे ही राजपुरुषों को होना चाहिये ॥७२॥

पृष्टो दिवीत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पृष्टो दिवि पृष्टोऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टोऽअग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥७३॥

पदार्थ—मनुष्यों से कि जो (दिवि) प्रकाशस्वरूप सूर्य (पृष्टः) जानने के योग्य (अग्निः) अग्नि (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पृष्टः) जानने को इष्ट अग्नि तथा जल और वायु में (पृष्टः) जानने के योग्य पावक (सहसा) बलादि गुणों से युक्त (वैश्वानरः) विश्व में प्रकाशमान (पृष्टः) जानने के योग्य (अग्निः) बिजुली रूप अग्नि (विश्वाः) समग्र (ओषधीः) ओषधियों में (आ, विवेश) प्रविष्ट हो रहा है (सः) सो अग्नि (दिवा) दिन और (सः) वह अग्नि (नक्तम्) रात्रि में जैसे रक्षा करता वैसे सेना के पति आप (नः) हमको (रिषः) हिंसक जन से निरन्तर (पातु) रक्षा करें ॥ ७३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी में प्रकाशमान सब पदार्थों में व्यापक विद्युद्रूप अग्नि को विद्वानों से निश्चय कर कार्यों में संयुक्त करते हैं वे शत्रुओं से निर्भय होते हैं ॥ ७३ ॥

अश्यामेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब प्रजा और राजपुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अश्याम तं काममग्ने तवोतीऽअश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) युद्धविद्या के जानने हारे सेनापति ! हम लोग (तव) तेरी (ऊती) रक्षा आदि की क्रिया से (तम्) उस (कामम्) कामना को (अश्याम) प्राप्त हों । हे (रयिवः) प्रशस्त धन युक्त ! (सुवीरम्) अच्छे वीर प्राप्त होते हैं जिस से उस (रयिम्) धन को (अश्याम) प्राप्त हों (वाजयन्तः) संग्राम करते कराते हुए हम लोग (वाजम्) संग्राम में विजय को (अभ्यश्याम) अच्छे प्रकार प्राप्त हों । हे (अजर) वृद्धपन से रहित सेनापते ! हम लोग (ते) तेरे प्रताप से (अजरम्) अक्षय (द्युम्नम्) धन और कीर्ति को (अश्याम) प्राप्त हों ॥७४॥

भावार्थ—प्रजा के मनुष्यों को योग्य है कि राजपुरुषों की रक्षा से और राजपुरुष प्रजाजन की रक्षा से परस्पर सब इष्ट कामों को प्राप्त हों ॥ ७४ ॥

वयमित्यस्योत्कील ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुरुषार्थ से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रोऽअग्ने ॥७५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (उत्तानहस्ताः) उत्कृष्टता से अभय देने हारे हस्तयुक्त (वयम्) हम लोग (ते) आपके (नमसा) सत्कार से (उपसद्य) समीप प्राप्त होके (अद्य) आज ही (कामम्) कामना को (हि) निश्चय (ररिम) देते हैं जैसे (विप्रः) बुद्धिमान् (अस्रेधता) इधर उधर गमन अर्थात् चञ्चलतारहित स्थिर (मन्मना) बल और (यजिष्ठेन) अतिशय करके संयमयुक्त (मनसा) चित्त से (देवान्) विद्वानों और शुभ गुणों को प्राप्त होता है और जैसे तू (यक्षि) शुभ कर्मों में युक्त हो हम भी वैसे ही सङ्गत होवें ॥ ७५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थ से पूर्ण कामना वाले हों वे विद्वानों के सङ्ग से इस विषय को प्राप्त होने को समर्थ होवें ॥ ७५ ॥

धामच्छदग्निरित्यस्योत्कील ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सब विद्वानों को जो करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥७६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (देव) विद्वान् (धामच्छत्) जन्म स्थान नाम का विस्तार करने हारे (अग्निः) पावक (इन्द्रः) विद्युत् के समान अमात्य और राजा (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने हारा (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पठन पाठन से पालन करने हारा (सचेतसः) विज्ञान वाले (विश्वे, देवाः) सब विद्वान् लोग (नः) हमारे (शुभे) कल्याण के लिये (यज्ञम्) विज्ञान योगरूप क्रिया को (प्र, अवन्तु) अच्छे प्रकार कामना करें ॥ ७६ ॥

भावार्थ—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यादि प्राणियों के कल्याणार्थ निरन्तर सत्य उपदेश करें ॥ ७६ ॥

त्वमित्यस्योशना ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सभापति तथा सेनापति के कर्त्तव्य को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥७७॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त राजन् ! (त्वम्) तू (दाशुषः) विद्यादाता (नॄन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर और इन की (गिरः) विद्यायुक्त वाणियों को (शृणुधि) सुन । जो वीर पुरुष युद्ध में मर जावे उसके (तोकम्) छोटे सन्तानों की (उत) और स्त्री आदि की भी (त्मना) आत्मा से (रक्ष) रक्षा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थ—सभा और सेना के अधिष्ठाताओं को दो कर्म अवश्य कर्त्तव्य हैं, एक विद्वानों का पालन और उनके उपदेश का श्रवण, दूसरा युद्ध में मरे हुओं के सन्तान स्त्री आदि का पालन, ऐसे आचरण करनेवाले पुरुषों के सदैव विजय धन और सुख की वृद्धि होती है ॥ ७७ ॥

इस अठारहवें अध्याय में गणितविद्या राजा प्रजा और पढ़ने पढ़ाने हारे पुरुषों के कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पूर्व अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह यजुर्वेद भाष्य का अठारहवां (१८) अध्याय पूरा हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

卐 अथ एकोनविंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

स्वाद्वीमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उन्नीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है—

स्वा॒द्वीं त्वा॑ स्वा॒दुना॑ ती॒व्रां ती॒व्रेणा॒मृता॑म॒मृते॑न॒ मधु॑मती॒म्मधु॑मता सृजामि सꣳसोमे॑न सोमो॒ऽस्य॒श्विभ्यां॑ पच्यस्व॒ सर॑स्वत्यै पच्य॒स्वेन्द्रा॑य सुत्राम्णे॑ पच्यस्व ॥१॥

पदार्थ—हे वैद्यराज ! जो तू (**सोमः**) सोम के सदृश ऐश्वर्ययुक्त (**असि**) है उस (**त्वा**) तुझ को ओषधियों की विद्या में (**सं, सृजामि**) अच्छे प्रकार उत्तम शिक्षायुक्त करता हूँ जैसे मैं जिस (**स्वादुना**) मधुर रसादि के साथ (**स्वाद्वीम्**) सुस्वादयुक्त (**तीव्रेण**) शीघ्रकारी तीक्ष्ण स्वभाव सहित (**तीव्राम्**) तीक्ष्ण स्वभावयुक्त को (**अमृतेन**) सर्वरोगापहारी गुण के साथ (**अमृताम्**) नाशरहित (**मधुमता**) स्वादिष्ट गुणयुक्त (**सोमेन**) सोमलता आदि से (**मधुमतीम्**) प्रशस्त मीठे गुणों से युक्त ओषधि को सम्यक् सिद्ध करता हूँ वैसे तू इस को (**अश्विभ्याम्**) विद्यायुक्त स्त्री पुरुषों सहित (**पच्यस्व**) पका (**सरस्वत्यै**) उत्तम शिक्षित वाणी से युक्त स्त्री के अर्थ (**पच्यस्व**) पका (**सुत्राम्णे**) सब को दुःख से अच्छे प्रकार बचाने वाले (**इन्द्राय**) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के लिये (**पच्यस्व**) पका ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि वैद्यकशास्त्र की रीति से अनेक मधुरादि प्रशंसित स्वादयुक्त अत्युत्तम ओषधों को सिद्ध कर उन के सेवन से आरोग्य को प्राप्त होकर धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्न किया करें ॥ १ ॥

परीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सोमो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रो में कहा है—

परी॒तो षि॑ञ्चता सु॒तꣳ सोमो॒ य उ॑त्त॒मꣳ ह॒विः ।
द॒ध॒न्वान् यो नर्यो॑ऽअ॒प्स्व॒न्तरा सु॒षाव॒ सोम॒मद्रि॑भिः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! (**यः**) जो (**उत्तमम्**) उत्तम श्रेष्ठ (**हविः**) खाने योग्य अन्न (**सोमः**) प्रेरणा करने हारा विद्वान् (**इतः**) प्राप्त होवे (**यः**) जो (**नर्यः**) मनुष्यों में उत्तम (**दधन्वान्**) धारण करता हुआ (**अप्सु**) जलों के (**अन्तः**) मध्य में (**आसुषाव**) सिद्ध करे उस (**अद्रिभिः**) मेघों में (**सुतम्**) उत्पन्न हुए (**सोमम्**) ओषधिगण को तुम लोग (**परिसिञ्चत**) सब ओर से सींच के बढ़ाओ ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम ओषधियों को जल में डाल मंथन कर सार रस को निकाल इस से यथायोग्य जाठराग्नि को सेवन करके बल और आरोग्यता को बढ़ाया करें ॥ २ ॥

वायोरित्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वा॒योः पू॒तः प॒वित्रे॑ण प्र॒त्यङ् सोमो॒ऽअति॑द्रुतः । इन्द्र॑स्य॒ युज्यः॒ सखा॑ । वा॒योः पू॒तः प॒वित्रे॑ण प्राङ् सोमो॒ऽअति॑द्रुतः इन्द्र॑स्य॒ युज्यः॒ सखा॑ ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जो (**सोमः**) सोमलतादि ओषधियों का गुण (**प्राङ्**) जो प्रकृष्टता से (**अतिद्रुतः**) शीघ्रगामी (**वायोः**) वायु से (**पवित्रेण**) शुद्ध करनेवाले कर्म से (**पूतः**) पवित्र (**इन्द्रस्य**) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव का (**युज्यः**) योग्य (**सखा**) मित्र के समान रहता है और जो (**सोमः**) सिद्ध किया हुआ ओषधियों का रस (**प्रत्यङ्**) प्रत्यक्ष शरीरों से युक्त हो के (**अतिद्रुतः**) अत्यन्त वेग वाला (**वायोः**) वायु से (**पवित्रेण**) पवित्रता कर के (**पूतः**) शुद्ध और (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्त राजा का (**युज्यः**) अतियोग्य (**सखा**) मित्र के समान है उसका तुम निरन्तर सेवन किया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो ओषधि शुद्ध स्थल जल और वायु में उत्पन्न होती और पूर्व और पश्चात् होने वाले रोगों का शीघ्र निवारण करती हैं उन का मनुष्य लोग मित्र के समान सदा सेवन करें ॥ ३ ॥

पुनातीत्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्षी गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पु॒नाति॑ ते परि॒स्रु॒तꣳ सोम॒ꣳ सूर्य॑स्य दु॒हि॒ता ।
वारे॑ण॒ शश्व॑ता॒ तना॑ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जो (**तना**) विस्तीर्ण प्रकाश से (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**दुहिता**) कन्या के समान उषा (**शश्वता**) अनादिरूप (**वारेण**) ग्रहण करने योग्य स्वरूप से (**ते**) तेरे (**परिस्रुतम्**) सब ओर से प्राप्त (**सोमम्**) ओषधियों के रस को (**पुनाति**) पवित्र करती है उस में तू ओषधियों के रस का सेवन कर ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्योदय से पूर्व शौचकर्म करके यथानुकूल ओषधि का सेवन करते हैं वे रोगरहित हो कर सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मेत्यस्याभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

ब्रह्म॑ क्ष॒त्रं प॑वते॒ तेज॑ इन्द्रि॒यꣳ सुर॑या॒ सोमः॑ सु॒त आसु॑तो॒ मदा॑य । शु॒क्रेण॑ देव दे॒वताः॑ पिपृग्धि॒ रसे॒नान्नं॒ यज॑मानाय धेहि ॥५॥

पदार्थ—हे (**देव**) सुखदातः विद्वन् ! जो (**शुक्रेण**) शीघ्र शुद्ध करने हारे व्यवहार से (**मदाय**) आनन्द के लिये (**सुरया**) उत्पन्न होती हुई क्रिया से (**सुतः**) उत्पादित (**आसुतः**) अच्छे प्रकार रोगनिवारण के निमित्त सेवित (**सोमः**) ओषधियों का रस (**तेजः**) प्रगल्भता (**इन्द्रिय**) मन आदि इन्द्रियगण (**ब्रह्म**) ब्रह्मवित् कुल और (**क्षत्रम्**) न्यायकारी क्षत्रिय-कुल को (**पवते**) पवित्र करता है उस (**रसेन**) रस से युक्त (**अन्नम्**) अन्न को (**यजमानाय**) धर्मात्मा जन के लिये (**धेहि**) धारण कर (**देवताः**) विद्वानों को (**पिपृग्धि**) प्रसन्न कर ॥५॥

भावार्थ—इस जगत् में किसी मनुष्य को योग्य नहीं है कि जो श्रेष्ठ रस के विना अन्न खावे, सदा विद्या शूरवीरता बल और बुद्धि की वृद्धि के लिये महौषधियों के सारों को सेवन करना चाहिए ॥ ५ ॥

कुविदङ्गेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कु॒विद॒ङ्ग यव॑मन्तो॒ यवं॑ चि॒द्यथा॒ दान्त्य॑नुपू॒र्वं वि॒यूय॑ इ॒हेहै॑षां कृणु॒हि भोज॑नानि॒ ये ब॒र्हिषो॒ नम॑ उक्तिं॒ यज॑न्ति । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽस्य॒श्विभ्यां॑ त्वा॒ सर॑स्वत्यै॒ त्वेन्द्रा॑य त्वा सु॒त्राम्ण॑ऽए॒ष ते॒ योनि॒स्तेज॑से त्वा वी॒र्या॑य त्वा बला॑य त्वा ॥६॥

पदार्थ—हे (**अङ्ग**) मित्र ! (**ये**) जो (**बर्हिषः**) अन्नादि की प्राप्ति करानेवाले (**यवमन्तः**) यवादि धान्ययुक्त किसान लोग (**नमउक्तिम्**) अन्नादि की वृद्धि के लिये उपदेश (**यजन्ति**) देते हैं (**एषाम्**) उनके पदार्थों का (**इहेह**) इस संसार और इस व्यवहार में तू (**भोजनानि**) पालन वा भोजन आदि (**कृणुहि**) किया कर (**यथा**) जैसे ये किसान लोग (**यवम्**) यव को (**चित्**) भी (**वियूय**) वुषादि से पृथक् कर (**अनुपूर्वम्**) पूर्वापर की योग्यता से (**दान्ति**) काटते हैं वैसे तू इनके विभाग से (**कुवित्**) बड़ा बल प्राप्त कर जिस (**ते**) तेरी उन्नति का (**एषः**) यह (**योनिः**) कारण है उस (**त्वा**) तुझ को (**अश्विभ्याम्**) प्रकाश भूमि की विद्या के लिये (**त्वा**) तुझ को (**सरस्वत्यै**) कृषिकर्म प्रचार करने हारी उत्तम वाणी के लिये (**त्वा**) तुझ के (**इन्द्राय**) शत्रुओं के नाश करनेवाले (**सुत्राम्णे**) अच्छे रक्षक के लिये (**त्वा**) तुझ को (**तेजसे**) प्रगल्भता के लिये (**त्वा**) तुझ को (**वीर्याय**) पराक्रम के लिये (**त्वा**) तुझ को (**बलाय**) बल के लिये जो प्रसन्न करते हैं वा जिन से तू (**उपयामगृहीतः**) श्रेष्ठ व्यवहारों से स्वीकार किया हुआ (**असि**) है उन के साथ तू विहार कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजपुरुष कृषि आदि कर्म करने, राज्य में कर देने और परिश्रम करनेवाले मनुष्यों को प्रीति से रखते और सत्य उपदेश करते हैं वे इस संसार में सौभाग्य वाले होते हैं ॥ ६ ॥

नानेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराड् जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा और प्रजा कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोमऽएष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥७॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजा के जनो ! (नाना) अनेक प्रकार (सदः, कृतम्) स्थान किया हुआ (देवहितम्) विद्वानों का प्रियाचरण (वाम्) तुम दोनों को प्राप्त होवे जो (हि) निश्चय से (स्वाम्) अपने (योनिम्) कारण को (आविशन्ती) अच्छा प्रवेश करती हुई (शुष्मिणी) बहुत बल करनेवाली (सुरा) सोमवल्ली आदि की लता है (त्वम्) वह (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) बुद्धिरूप अवकाश में वर्त्तमान (असि) है उस को तुम दोनों प्राप्त होओ और प्रमादकारी पदार्थों का (मा) मत (संसृक्षाथाम्) संग किया करो, हे विद्वत्पुरुष ! जो (एषः) यह (सोमः) सोमादि ओषधिगण है उस का तथा (मा) मुझ को तू (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कर ॥७॥

भावार्थ—जो राजा प्रजा के सम्बन्धी मनुष्य बुद्धि, बल आरोग्य और आयु बढ़ानेहारे ओषधियों के रसों को सदा सेवन करते और प्रमादकारी पदार्थों का सेवन नहीं करते वे इस जन्म और परजन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले होते हैं ॥ ७ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् । एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥८॥

पदार्थ—हे राजप्रजाजन ! जो तू (उपयामगृहीत) प्राप्त धर्मयुक्त यमसम्बन्धी नियमों से संयुक्त (असि) है जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) घर है उस तेरा जो (आश्विनम्) सूर्य और चन्द्रमा के रूप के समान (तेजः) तीक्ष्ण कोमल तेज (सारस्वतम्) विज्ञानयुक्त वाणी का (वीर्यम्) तेज (ऐन्द्रम्) बिजुली के समान (बलम्) बल हो उस (त्वा) तुझ को (मोदाय) हर्ष के लिये (त्वा) तुझ को (आनन्दाय) परम सुख के अर्थ (त्वा) तुझे (महसे) महापराक्रम के लिये सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य चन्द्रमा के समान तेजस्वी विद्या पराक्रम वाले बिजुली के तुल्य अति बलवान् होके आप आनन्दित हों और अन्य सब को आनन्द किया करते हैं वे यहाँ परमानन्द को भोगते हैं ॥ ८ ॥

तेजोसीत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । शक्वरीश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥९॥

पदार्थ—हे सकल शुभगुणाकर राजन् ! जो तेरे में (तेजः) तेज (असि) है उस (तेजः) तेज को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये जो तेरे में (वीर्यम्) पराक्रम (असि) है उस (वीर्यम्) पराक्रम को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तेरे में (बलम्) बल (असि) है उस (बलम्) बल को (मयि) मुझ में भी (धेहि) धरिये जो तेरे में (ओजः) प्राण का सामर्थ्य (असि) है उस (ओजः) सामर्थ्य को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तुझ में (मन्युः) दुष्टों पर क्रोध (असि) है उस (मन्युम्) क्रोध को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तुझ में (सहः) सहनशीलता (असि) है उस (सहः) सहनशीलता को (मयि) मुझ में भी (धेहि) धारण कीजिये ॥९॥

भावार्थ—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि जिन शुभ गुण कर्म स्वभावों को विद्वान् लोग धारण करें उन को औरों में भी धारण करावें और जैसे दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करें वैसे धार्मिक मनुष्यों में प्रीति भी निरन्तर किया करें ॥९॥

या व्याघ्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति । श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥१०॥

पदार्थ—(या) जो (विषूचिका) विविध अर्थों की सूचना करने हारी राजा की राणी (व्याघ्रम्) जो कूद के मारता है उस बाघ को (वृकम्) बकरे आदि को मारने हारा भेड़िया (उभौ) इन दोनों को (पतत्रिणम्) शीघ्र चलने के लिये बहुवेग वाले और (श्येनम्) शीघ्र धावन करके अन्य पक्षियों को मारने हारे पक्षी और (सिंहम्) हस्ति आदि को (च) भी मारने वाले दुष्ट पशु को मार के प्रजा की (रक्षति) रक्षा करती है (सा) सो राणी (इमम्) इस राजा को (अंहसः) अपराध से (पातु) रक्षा करे ॥१०॥

भावार्थ—जैसे शूरवीर राजा स्वयं व्याघ्रादि को मारने न्याय से प्रजा की रक्षा करने और अपनी स्त्री को प्रसन्न करने को समर्थ होता है वैसे ही राजा की राणी भी होवे जैसे अच्छे प्रिय आचरण से राणी अपने पति राजा को प्रमाद से पृथक् करके प्रसन्न करती है वैसे राजा भी अपनी स्त्री को सदा प्रसन्न करे ॥१०॥

यदापिपेषेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । शक्वरीच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सन्तानों को अपने माता पिता के साथ कैसे वर्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्नेऽअनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया । सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जो (प्रमुदितः) अत्यन्त आनन्दयुक्त (पुत्रः) पुत्र दूध को (धयन्) पीता हुआ (मातरम्) माता को (आपिपेष) सब ओर से पीड़ित करता है उस पुत्र से मैं (अनृणः) ऋणरहित (भवामि) होता हूँ जिस से मेरे (पितरौ) माता पिता (अहतौ) हननरहित और (मया) मुझ से (भद्रेण) कल्याण के साथ वर्त्तमान हों । हे मनुष्यो ! तुम (संपृचः) सत्यसम्बन्धी (स्थ) हो (मा) मुझ को कल्याण के साथ (सं, पृङ्क्त) संयुक्त करो और (पाप्मना) पाप से (विपृचः) पृथक् रहने हारे (स्थ) हों इसलिये (मा) मुझे भी इस पाप से (विपृङ्क्त) पृथक् कीजिये और (तदेतत्) परजन्म तथा इस जन्म के सुख को प्राप्त कीजिये ॥११॥

भावार्थ—जैसे माता पिता पुत्र का पालन करते हैं वैसे पुत्र को माता पिता की सेवा करनी चाहिये सब मनुष्यों को इस जगत् में ध्यान देना चाहिये कि हम माता पिता का यथावत् सेवन करके पितृऋण से मुक्त होवें जैसे विद्वान् धार्मिक माता पिता अपने सन्तानों को पापरूप आचरण से पृथक् करके धर्माचरण में प्रवृत्त करें वैसे सन्तान भी अपने माता पिता को वर्त्ताव करावें ॥११॥

देवा यज्ञमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तान परस्पर कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना । वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रियाणि) उत्तम प्रकार विषयग्राहक नेत्र आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधतः) धारण करते हुए (भिषक्) चिकित्सा आदि वैद्यकशास्त्र के अङ्गों को जानने हारी (सरस्वती) प्रशस्त वैद्यकशास्त्र के ज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री और (भिषजा) आयुर्वेद के जानने हारे (अश्विना) ओषधिविद्या में व्याप्तबुद्धि दो उत्तम विद्वान् वैद्य ये तीनों और (देवाः) उत्तम ज्ञानीजन (वाचा) वाणी से (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (भेषजम्) रोगविनाशक औषध रूप (यज्ञम्) सुख देने वाले यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करें वैसे ही तुम लोग भी करो ॥१२॥

भावार्थ—जबतक मनुष्य लोग पथ्य ओषधि और ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर के आरोग्य, बल और बुद्धि को नहीं बढ़ाते तबतक सब सुखों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं होते ॥१२॥

दीक्षायामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि । क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (प्रायणीयस्य) जिस व्यवहार से उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं उसमें होने वाले की (दीक्षायै) यज्ञ के नियम-रक्षा के लिये (रूपम्) सुन्दर रूप और (तोक्मानि) अपत्य (क्रयस्य) द्रव्यों के बेचने का (रूपम्) रूप (शष्पाणि) छाँट फटक कर शुद्ध करने योग्य धान्य (सोमस्य) सोमलतादि के रस के सम्बन्धी (लाजाः) परिपक्व फूले हुए अन्न (सोमांशवः) सोम के विभाग और (मधु) सहत हैं उनको तुम लोग विस्तृत करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से "अतन्वत" इस क्रियापद की अनुवृत्ति आती है जो मनुष्य यज्ञ के योग्य सन्तान और पदार्थों को सिद्ध करते हैं वे इस संसार में सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

आतिथ्यरूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे जन कीर्ति वाले होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः । रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मासरम्) जिससे अतिथिजन महीनों में रमण करते हैं ऐसे (आतिथ्यरूपम्) अतिथियों का होना वा उनका सत्काररूप कर्म वा बड़े

वीर (महावीरस्य) पुरुष का (नग्नहुः) जो नग्न अकिञ्चनों का धारण करता है वह (रूपम्) रूप वा (उपसदाम्) गृहस्थादि के समीप में भोजनादि के अर्थ ठहरने हारे अतिथियों का (तिस्रः) तीन (रात्रीः) रात्रियों में निवास कराना (एतत्) यह रूप वा (सुरा) सोमरस (आसुता) सब ओर से सिद्ध की हुई क्रिया है उन सबका तुम लोग ग्रहण करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धार्मिक विद्वान् अतिथियों के सत्कार सङ्ग और उपदेशों को और वीरों के मान्य तथा दरिद्रों को वस्त्रादि दान अपने भृत्यों को निवास देना और सोमरस की सिद्धि को सदा करते हैं वे कीर्त्तिमान् होते हैं ॥ १४ ॥

सोमस्येत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमारी कन्याओं को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सोम॑स्य रू॒पं क्री॒तस्य॑ परि॒स्रुत्परि॑षिच्यते ।

अ॒श्विभ्यां॑ दु॒ग्धं भे॑ष॒जमिन्द्रा॑यै॒न्द्रꣳ सर॑स्वत्या ॥१५॥

पदार्थ—हे स्त्री लोगो ! जैसे (सरस्वत्या) विदुषी स्त्री से (क्रीतस्य) ग्रहण किये हुए (सोमस्य) सोमादि ओषधिगण का (परिस्रुत) सब ओर से प्राप्त होने वाला रस (रूपम्) सुस्वरूप और (अश्विभ्याम्) वैदिक विद्या में पूर्ण दो विद्वानों के लिये (दुग्धम्) दुग्ध हुआ (भेषजम्) ओषधरूप दूध तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये (ऐन्द्रम्) विद्युत्सम्बन्धी विशेष ज्ञान (परिषिच्यते) सब ओर से सिद्ध किया जाता है वैसे तुम भी आचरण करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकरण, धर्म्म, विद्या और आयुर्वेदादि को पढ़ स्वयंवर विवाह कर ओषधियों को और ओषधिवत् अन्न और दाल, कढ़ी आदि को अच्छा पका उत्तम रसों से युक्त कर, पति आदि को भोजन करा तथा स्वयं भोजन करके बल आरोग्य की सदा उन्नति किया करें ॥ १५ ॥

आसन्दीत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य को कैसे कार्य्य साधना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ॒स॒न्दी रू॒पꣳ रा॑जास॒न्द्यै वेद्यै॑ कु॒म्भी सु॑राधा॒नी ।

अन्त॑रऽउत्तरवे॒द्या रू॒पं का॑रोत॒रो भि॒षक् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को योग्य है कि यज्ञ के लिये (आसन्दी) जो सब ओर से सेवन की जाती है वह (रूपम्) सुन्दर क्रिया (राजासन्द्यै) राजा लोग जिसमें बैठते हैं उस (वेद्यै) सुख प्राप्ति कराने वाली वेदि के अर्थ (कुम्भी) धान्यादि पदार्थों का आधार (सुराधानी) जिसमें सोमरस धरा जाता है वह गगरी (अन्तरः) जिससे जीवन होता है यह अन्नादि पदार्थ (उत्तरवेद्याः) उत्तर की वेदी के (रूपम्) रूप को (कारोतरः) कर्मकारी और (भिषक्) वैद्य इन सब का संग्रह करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिस जिस कार्य के करने की इच्छा करे उस उसके समस्त साधनों का सञ्चय करे ॥ १६ ॥

वेद्या वेदिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किन जनों के कार्य्य सिद्ध होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वेद्या॒ वेदि॒ः समा॑प्यते ब॒र्हिषा॑ ब॒र्हिरि॑न्द्रि॒यम् ।

यूपे॑न॒ यूप॒ आप्यते॒ प्रणी॑तोऽअ॒ग्निर॒ग्निना॑ ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग (वेद्या) यज्ञ की समग्री से (वेदिः) वेदि और (बर्हिषा) महान् पुरुषार्थ से (बर्हिः) बड़ा (इन्द्रियम्) धन (समाप्यते) अच्छी प्रकार प्राप्त किया जाता है (यूपेन) मिले हुए वा पृथक् पृथक् व्यवहार से (यूपः) मिला हुआ व्यवहार के यत्न का प्रकाश और (अग्निना) बिजुली आदि अग्नि से (प्रणीतः) अच्छे प्रकार सम्मिलित (अग्निः) अग्नि (आप्यते) प्राप्त कराया जाता है । वैसे ही तुम लोग भी साधनों से साधन मिला कर सब सुखों को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम साधन से साध्य कार्य्य को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे ही साध्य की सिद्धि करने वाले होते हैं ॥ १७ ॥

हविर्धानमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारःस्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ह॒वि॒र्धानं॒ यद॒श्विनाग्नी॑ध्रं॒ यत्सर॑स्वती इन्द्रा॑यै॒न्द्रꣳ सद॑स्कृ॒तम् पत्नी॑शा॒लं गार्ह॑पत्यः ॥१८॥

पदार्थ—हे गृहस्थ पुरुषो ! जैसे विद्वान् (अश्विना) स्त्री और पुरुष (यत्) जो (हविर्धानम्) देने वा लेने योग्य पदार्थों का धारण जिसमें किया जाता वह और (यत्) जो (सरस्वती) विदुषी स्त्री (आग्नीध्रम्) ऋत्विज् का शरण करती हुई तथा विद्वानों ने (इन्द्राय) ऐश्वर्य से सुख देने हारे पति के लिये (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्य के सम्बन्धी (सदः) जिसमें स्थित होते हैं उस सभा और (पत्नीशालम्) पत्नी की शाला घर को (कृतम्) किया है सो यह सब (गार्हपत्यः) गृहस्थ का संयोगी धर्म ही है वैसे उस सब कर्त्तव्य को तुम भी करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विज् लोग सामग्री का संचय करके यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे प्रीतियुक्त स्त्री पुरुष घर के कार्यों को नित्य सिद्ध किया करें ॥ १८ ॥

प्रैषेभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसा विद्वान् सुख को प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रै॒षेभि॑ः प्रै॒षाना॑प्नोत्या॒प्रीभि॑रा॒प्रीर्य॒ज्ञस्य॑ ।

प्र॒या॒जेभि॑रनुया॒जान्व॑षट्का॒रेभि॑राहु॒तीः ॥१९॥

पदार्थ—जो विद्वान् (प्रैषेभिः) भेजने रूप कर्मों से (प्रैषान्) भेजने योग्य भृत्यों को (आप्रीभिः) सब ओर से प्रसन्नता करने हारी क्रियाओं से (आप्रीः) सर्वथा प्रीति उत्पन्न करनेहारी परिचारिका स्त्रियों को (प्रयाजेभिः) उत्तम यज्ञ के कर्मों से (अनुयाजान्) अनुकूल यज्ञ पदार्थों को और (यज्ञस्य) यज्ञ की (वषट्कारेभिः) क्रियाओं से (आहुतीः) अग्नि में छोड़ने योग्य आहुतियों को प्राप्त होता है वह सुखी रहता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो सुशिक्षित सेवकों तथा सेविकाओं वाला साधनों और उपसाधनों से युक्त श्रेष्ठ कार्यों को करता है वह सबकों सुखी करने में समर्थ होता है ॥ १९ ॥

पशुभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

प॒शुभि॑ः प॒शूना॑प्नोति पुरो॒डाशै॑र्ह॒वीꣳष्या ।

छन्दो॑भिः सामिधे॒नीर्या॒ज्या॒भिर्वषट्का॒रान् ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सद्गृहस्थ (पशुभिः) गवादि पशुओं से (पशून्) गवादि पशुओं को (पुरोडाशैः) पचन क्रियाओं से पके हुए उत्तम पदार्थों से (हवींषि) हवन करने योग्य उत्तम पदार्थों को (छन्दोभिः) गायत्री आदि छन्दों की विद्या से (सामिधेनीः) जिनसे अग्नि प्रदीप्त हों उन सुन्दर समिधाओं को (याज्याभिः) यज्ञ की क्रियाओं से (वषट्कारान्) जो धर्मयुक्त क्रिया को करते हैं उनको (आ,आप्नोति) प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो इस संसार में बहुत पशु वाला होम करके हुतशेष का भोक्ता वेदवित् और सत्य क्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसा को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

धानाः करम्भ इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन पदार्थ होम के योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

धा॒नाः क॑र॒म्भः सक्त॑वः परीवा॒पः पयो॒ दधि॑ ।

सोम॑स्य रू॒पꣳह॒विष॑ऽआ॒मिक्षा॑ वा॒जिनं॒ मधु॑ ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (हविषः) होम करने योग्य (सोमस्य) यन्त्र द्वारा खींचने योग्य ओषधिरूप रस के (रूपम्) रूप को (धानाः) भुने हुए अन्न (करम्भः) मथन का साधन (सक्तवः) सत्तू (परीवापः) सब ओर से बीज का बोना (पयः) दूध (दधि) दही (आमिक्षा) दही दूध मीठे का मिलाया हुआ (वाजिनम्) प्रशस्त अन्नों की सम्बन्धी सार वस्तु (मधु) और सहत के गुण को जानो ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो पदार्थ पुष्टिकारक सुगन्धयुक्त मधुर और रोगनाशक गुणयुक्त हैं वे होम करने के योग्य हविःसंज्ञक हैं ॥ २१ ॥

धानानामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य नीरोग रहते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

धा॒नाना॑ꣳ रू॒पं कुव॑लं परीवा॒पस्य॑ गो॒धूमा॑ः ।

सक्तू॑नाꣳरू॒पम्बद॑रमुप॒वाका॑ः कर॒म्भस्य॑ ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (धानानाम्) भुंजे हुए जौ आदि अन्नों का (कुवलम्) कोमल बेर सा रूप (परीवापस्य) पिसान आदि का (गोधूमाः) गेहूँ (रूपम्) रूप (सक्तूनाम्) सत्तुओं का (बदरम्) बेरफल के समान रूप (करम्भस्य) दही मिले हुए सत्तू का (उपवाकाः) समीप प्राप्त जौ (रूपम्) रूप है ऐसा जाना करो ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब अन्नों का सुन्दर रूप करके भोजन करते और कराते हैं वे आरोग्य को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

पयसो रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पय॑सो रू॒पं यद्यवा॑ द॒ध्नो रू॒पं क॒र्कन्धू॑नि ।

सोम॑स्य रू॒पं वा॒जिन॑ꣳ सौ॒म्यस्य॑ रू॒पमा॒मिक्षा॑ ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जो (यवाः) यव हैं उनको (पयसः) पानी वा दूध के (रूपम्) रूप (कर्कन्धूनि) मोटे पके हुए बेरी के फलों के समान (दध्नः) दही के (रूपम्) स्वरूप (वाजिनम्) बहुत अन्न के सार के समान (सोमस्य) सोम ओषधि के (रूपम्) स्वरूप और (आमिक्षा) दूध दही के संयोग से बने पदार्थ के समान (सौम्यस्य) सोमादि ओषधियों के सार होने के (रूपम्) स्वरूप को सिद्ध करो ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जिस जिस अन्न का सुन्दररूप जिस प्रकार हो उस उस के रूप को उसी प्रकार सदा सिद्ध करें ॥ २३ ॥

आ श्रावयेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे विद्वान् होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ श्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावोऽअनुरूपः ।
यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः ॥२४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! तू विद्यार्थियों को विद्या (आ, श्रावय) सब प्रकार से सुना जो (स्तोत्रियाः) स्तुति करने योग्य हैं उनको (प्रत्याश्रावः) पीछे सुनाया जाता है और (अनुरूपः) अनुकूल जैसा यज्ञ है वैसे (येयजामहाः) जो यज्ञ करते हैं (इति) इस प्रकार अर्थात् उन के समान (प्रगाथाः) जो अच्छे प्रकार गान किये जाते हैं उनको (यजेति) सङ्गत कर इस प्रकार (धाय्यारूपम्) धारण करने योग्य रूप को यथावत् जानें ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो परस्पर प्रीति से विद्या के विषयों को सुनते और सुनाते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥ २४ ॥

अर्द्धऽऋचैरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः गान्धारः स्वरः ॥

अध्यापकों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्द्धऽऋचैरुक्थानांꣳ रूपं पदैराप्नोति निविदः ।
प्रणवैः शस्त्राणांꣳ रूपं पयसा सोमऽआप्यते ॥२५॥

पदार्थ—जो विद्वान् (अर्द्धऋचैः) ऋचाओं के अर्ध भागों से (उक्थानाम्) कथन करने योग्य वैदिक स्तोत्रों का (रूपम्) स्वरूप (पदैः) सुबन्त तिङन्त पदों और (प्रणवैः) ओंकारों से (शस्त्राणाम्) शस्त्रों का (रूपम्) स्वरूप और (निविदः) जो निश्चय से प्राप्त होते हैं उनको (आप्नोति) प्राप्त होता है वा जिस विद्वान् से (पयसा) जल के साथ (सोमः) सोम ओषधि का रस (आप्यते) प्राप्त होता है सो वेद का जानने वाला कहाता है ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् के समीप वस के पढ़ के वेदस्थ पद वाक्य मन्त्र विभागों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों का यथावद्विज्ञान करते हैं वे संसार में अध्यापक होते हैं ॥ २५ ॥

अश्विभ्यामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सत्पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम् ।
वैश्वदेवꣳ सरस्वत्या तृतीयमाप्तꣳ सवनम् ॥२६॥

पदार्थ—जिन मनुष्यों ने (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा से प्रथम (प्रातःसवनम्) प्रातःकाल यज्ञक्रिया की प्रेरणा (इन्द्रेण) बिजुली से (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्य्यकारक दूसरा (माध्यन्दिनम्) मध्याह्न में होने और (सवनम्) आरोग्यता करने वाला होमादि कर्म और (सरस्वत्या) सत्यवाणी से (वैश्वदेवम्) सम्पूर्ण विद्वानों के सत्कार रूप (तृतीयम्) तीसरा सवन अर्थात् सायंकाल की क्रिया की यथावत् (आप्तम्) प्राप्त किया है वे जगत् के उपकारक हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन तीनों कालों में सब मनुष्यादि प्राणियों का हित करते हैं वे जगत् में सत्पुरुष होते हैं ॥ २६ ॥

वायव्यैरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥२७॥

पदार्थ—जो विद्वान् (वायव्यैः) वायु में होने वाले गुणों वा वायु जिनका देवता दिव्यगुणोत्पादक है उन पदार्थों से (वायव्यानि) वायु में होने वा वायु देवता वाले कर्मों का (सतेन) विभागयुक्त कर्म से (द्रोणकलशम्) द्रोणपरिमाण और कलश को (आप्नोति) प्राप्त होता है (कुम्भीभ्याम्) धान्य और जल के पात्रों से (अम्भृणौ) जिनसे जल धारण किया जाता है उन (सुते) सिद्ध किये हुए दो प्रकार के रसों को (स्थालीभिः) जिनमें पदार्थ धरते वा पकाते हैं उन स्थालियों से(स्थालीः) स्थालियों को (आप्नोति) प्राप्त होता है वही धनाढ्य होता है ॥ २७ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य वायु के कर्मों को न जान कर इसके कारण के विना परिमाणविद्या को इस विद्या के विना पाकविद्या को और इसके विना अन्न के संस्कार की क्रिया को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २७ ॥

यजुर्भिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सब लोग वेद का अभ्यास करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः ।
छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथऽआप्यते ॥२८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को जिन (यजुर्भिः) यजुर्वेदोक्त विद्या के अवयवों से (ग्रहाः) जिन से समस्त क्रियाकाण्ड का ग्रहण किया जाता है वे व्यवहार (ग्रहैः) ग्रहों से (स्तोमाः) पदार्थों के गुणों की प्रशंसा (च) और (विष्टुतीः) विविध स्तुतियां (छन्दोभिः) गायत्र्यादि छन्द वा विद्वान् और गुणों की स्तुति करने वालों से (उक्थाशस्त्राणि) कथन करने योग्य वेद के स्तोत्र और शस्त्र (आप्यन्ते) प्राप्त होते हैं तथा (साम्ना) सामवेद से (अवभृथः) शोधन (आप्यते) प्राप्त होता है उन का उपयोग यथावत् करना चाहिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य वेदाभ्यास के विना सम्पूर्ण साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं को प्राप्त होने योग्य नहीं होता ॥ २८ ॥

इडाभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इडा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

गृहस्थ पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः ।
शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् ॥२९॥

पदार्थ—जो विद्वान् (इडाभिः) पृथिवियों से (भक्षान्) भक्षण करने योग्य अन्नादि पदार्थों को (सूक्तवाकेन) जो सुन्दरता से कहा जाय उस के कहने से (आशिषः) इच्छा-सिद्धियों को (शंयुना) जिस से सुख प्राप्त होता है उससे (पत्नीसंयाजान्) जो पत्नी के साथ मिलते हैं उनको (समिष्टयजुषा) अच्छे इष्टसिद्धि करने वाले यजुर्वेद के कर्म से (संस्थाम्) अच्छे प्रकार के रहने के स्थान को (आप्नोति) प्राप्त होता है वह सुखी क्यों न होवे ॥ २९ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग वेदविज्ञान ही से पृथिवी के राज्यभोग की इच्छा और उसकी सिद्धि को प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

व्रतेनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥३०॥

पदार्थ—जो बालक कन्या वा पुरुष (व्रतेन) ब्रह्मचर्यादि नियमों से (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्य्यादि सत्कर्मों के आरम्भरूप दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) उस दीक्षा से (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा और धन को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस प्रतिष्ठा वा धनरूप से (श्रद्धाम्) सत्य के धारण में प्रीतिरूप श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त होता है वा उस (श्रद्धया) श्रद्धा से जिसने (सत्यम्) नित्य पदार्थ वा व्यवहारों में उत्तम परमेश्वर वा धर्म की (आप्यते) प्राप्ति की है वह सुखी होता है ॥३०॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्या अच्छी शिक्षा और श्रद्धा के विना सत्य व्यवहारों को प्राप्त होने और दुष्ट व्यवहारों के छोड़ने में समर्थ नहीं होता ॥३०॥

एतावद्रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।
तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥३१॥

पदार्थ—जो मनुष्य (यत्) जिस (देवैः) विद्वानों और (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा चार वेदों ने (यज्ञस्य) यज्ञ के (एतावत्) इतने (रूपम्) स्वरूप को (कृतम्) सिद्ध किया वा प्रकाशित किया है (तत्) उस (एतत्) इस (सर्वम्) समस्त को (सौत्रामणी) जिस में यज्ञोपवीतादि ग्रन्थियुक्त सूत्र धारण किये जाते हैं उस (सुते) सिद्ध किये हुए (यज्ञे) यज्ञ में (आप्नोति) प्राप्त होता है वह द्विज होने का आरम्भ करता है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि जितना यज्ञ के अनुष्ठान का अनुसन्धान किया जाता है उतना ही अनुष्ठान करके बड़े उत्तम यज्ञ के फल को प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

सुरावन्तमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगतीच्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमन्दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (महिषाः) महान् पूजनीय (स्वर्काः) उत्तम अन्न आदि पदार्थों से युक्त (यजमानाः) यज्ञ करनेवाले विद्वान् लोग (नमोभिः)

अन्नादि से (सुरावन्तम्) उत्तम सोमरसयुक्त (बर्हिषदम्) जो प्रशस्त आकाश में स्थिर होता उस (सुवीरम्) उत्तम शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त वीरों की प्राप्ति करने हारे (यज्ञम्) यज्ञ को (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं वे और (दिवि) शुद्ध व्यवहारों में तथा (देवतासु) विद्वानों में (सोमम्) ऐश्वर्य्य और (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त जन को (दधानाः) धारण करते हुए हम लोग (मदेम) आनन्दित हों ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्नादि ऐश्वर्य का सञ्चय कर उससे विद्वानों को प्रसन्न और सत्य विद्याओं में शिक्षा ग्रहण कर के सब के हितैषी हों वे इस संसार में पुत्र स्त्री के आनन्द को प्राप्त होवें ॥ ३२ ॥

यस्ते रस इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे पुरुष धन्यवाद के योग्य होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यस्ते॒ रसः॒ सम्भृ॑त॒ऽओष॑धीषु॒ सोम॑स्य॒ शुष्मः॒ सुर॑या सु॒तस्य॑ ।
तेन॑ जिन्व॒ यज॑मानं॒ मदे॑न॒ सर॑स्वतीम॒श्विना॒विन्द्र॑म॒ग्निम् ॥३३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यः) जो (ते) आप का (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में वर्त्तमान (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (सोमस्य) अंशुमान् आदि चौबीस प्रकार के भेद वाले सोम का (सुरया) उत्तम दानशील स्त्री ने (सम्भृतः) अच्छे प्रकार धारण किया हुआ (शुष्मः) बलकारी (रसः) रस है (तेन) उस (मदेन) आनन्ददायक रस से (यजमानम्) सब को सुख देनेवाले यजमान (सरस्वतीम्) उत्तम विद्यायुक्त स्त्री (अश्विनौ) विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त सभा और सेना के पति और (अग्निम्) पावक के समान शत्रु के जलाने हारे योद्धा को (जिन्व) प्रसन्न कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्य महौषधियों के सारों को आप सेवन कर अन्यों को सेवन कराके निरन्तर आनन्द बढ़ावें वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥ ३३ ॥

यमश्विनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यम॒श्विना॒ नमु॑चेरासु॒रादधि॒ सर॑स्व॒त्यसु॑नोदिन्द्रि॒याय॑ ।
इ॒मन्तꣳ शु॒क्रम्मधु॑मन्त॒मिन्दु॒ꣳ सोम॒ꣳ राजा॑नमि॒ह भ॑क्षयामि ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (इह) इस संसार में (इन्द्रियाय) धन और इन्द्रिय बल के लिये (यम्) जिस (नमुचेः) जल को जो नहीं छोड़ता (आसुरात्) उस मेघ-व्यवहार से (अधि) अधिक (शुक्रम्) शीघ्रबलकारी (मधुमन्तम्) उत्तम मधुरादिगुणयुक्त (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य करने हारे (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) पुरुषार्थ में प्रेरक सोम ओषधि को (सरस्वती) विदुषी स्त्री (असुनोत्) सिद्ध करती तथा (अश्विना) सभा और सेना के पति सिद्ध करते हैं (तम्, इमम्) उस इसको मैं (भक्षयामि) भोग करता और भोगवाता हूँ ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम अन्न रस के भोजन करने हारे होते हैं वे बलयुक्त इन्द्रियों वाले होकर सदा आनन्द को भोगते हैं ॥ ३४ ॥

यदत्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि सब को आनन्द करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यदत्र॑ रि॒प्तꣳ र॒सिनः॑ सु॒तस्य॒ यदिन्द्रो॒ऽअपि॑ब॒च्छची॑भिः ।
अ॒हं तद॑स्य॒ मन॑सा शि॒वेन॒ सोम॒ꣳ राजा॑नमि॒ह भ॑क्षयामि ॥३५॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (अहम्) मैं (इह) इस संसार में (अस्य) इस (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (रसिनः) प्रशंसित रसयुक्त पदार्थ का (यत्) जो भाग (अत्र) इस संसार ही में (रिप्तम्) लिप्त प्राप्त है वा (इन्द्रः) सूर्य्य (शचीभिः) आकर्षणादि कर्मों के साथ (यत्) जो (अपिबत्) पीता है (तत्) उस को और (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) ओषधियों के रस को (शिवेन) कल्याणकारक (मनसा) मन से (भक्षयामि) भक्षण करता और पीता हूँ वैसे तुम भी भक्षण किया और पिया करो ॥ ३५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य अपनी किरणों से जलों का आकर्षण कर और वर्षा के सब को सुखी करता है वैसे ही अनुकूल क्रियाओं से रसों का सेवन अच्छे प्रकार करके बल को बढ़ा कीर्त्ति से सब को तुम लोग आनन्दित करो ॥३५॥

पितृभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदष्टिस्त्रिष्टुप् छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

माता पिता पुत्रादि को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

पि॒तृभ्यः॑ स्वधा॒यिभ्यः॑ स्व॒धा नमः॑ पिताम॒हेभ्यः॑ स्वधा॒यिभ्यः॑ स्व॒धा नमः॑ । प्रपिताम॒हेभ्यः॑ स्वधा॒यिभ्यः॑ स्व॒धा नमः॑ । अक्ष॑न् पि॒तरो॒ऽमी॑मदन्त पि॒तरो॒ऽती॑तृपन्त पि॒तरः॒ पित॑रः॒ शुन्ध॑ध्वम् ॥३६॥

पदार्थ—हम पुत्र शिष्यादि मनुष्य (स्वधायिभ्यः) जिस स्वधा अन्न और जल को प्राप्त होने के स्वभाव वाले (पितृभ्यः) ज्ञानियों को (स्वधा) अन्न देते और (नमः) सत्कार करते (स्वधायिभ्यः) बहुत अन्न को चाहने वाले (पितामहेभ्यः) पिता के पिताओं को (स्वधा) सुन्दर अन्न देते तथा (नमः) सत्कार करते और (स्वधायिभ्यः) उत्तम अन्न के चाहने वाले (प्रपितामहेभ्यः) पितामह के पिताओं को (स्वधा) अन्न देते और उनका (नमः) सत्कार करते हैं वे हे (पितरः) पिता आदि ज्ञानियो ! आप लोग हम से अच्छे प्रकार बनाये हुए अन्न आदि का (अक्षन्) भोजन कीजिये । हे (पितरः) अध्यापक लोगो ! आप आनन्दित होके हम को (अमीमदन्त) आनन्दयुक्त कीजिये । हे (पितरः) उपदेशक लोगो ! आप तृप्त होकर हम को (अतीतृपन्त) तृप्त कीजिये । हे (पितरः) विद्वानो ! आप लोग शुद्ध होकर हमको (शुन्धध्वम्) शुद्ध कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थ—हे पुत्र शिष्य और पुत्रवधू आदि लोगो ! तुम उत्तम अन्नादि पदार्थों से पिता आदि वृद्धों का निरन्तर सत्कार किया करो तथा पितर लोग तुमको भी आनन्दित करें जैसे माता पितादि बाल्यावस्था में तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे ही तुम लोग वृद्धावस्था में उनकी सेवा यथावत् किया करो ॥ ३६ ॥

पुनन्तु मा पितर इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पु॒नन्तु॑ मा पि॒तरः॑ सो॒म्यासः॑ पु॒नन्तु॑ मा पिताम॒हाः । पु॒नन्तु॒ प्रपि॑तामहाः प॒वित्रे॑ण श॒तायु॑षा । पु॒नन्तु॑ मा पिताम॒हाः पु॒नन्तु॒ प्रपि॑तामहाः । प॒वित्रे॑ण श॒तायु॑षा विश्व॒मायु॒र्व्य॑श्नवै ॥३७॥

पदार्थ—(सोम्यासः) ऐश्वर्य से युक्त वा चन्द्रमा के तुल्य शान्त (पितरः) ज्ञान देने से पालक पितर लोग (पवित्रेण) शुद्ध (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु से (मा) मुझको (पुनन्तु) पवित्र करें अतिबुद्धिमान् चन्द्रमा के तुल्य आनन्दकर्त्ता (पितामहाः) पिताओं के पिता उस अतिशुद्ध सौ वर्षयुक्त आयु से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें । ऐश्वर्यदाता चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाले (प्रपितामहाः) पितामहों के पिता लोग शुद्ध सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवन से (मा) मुझको (पुनन्तु) पवित्र करें । विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त वा शान्तस्वभाव (पितामहाः) पिताओं के पिता (पवित्रेण) अतीव शुद्धानन्दयुक्त (शतायुषा) शतवर्षपर्य्यन्त आयु से मुझको (पुनन्तु) पवित्राचरणयुक्त करें । सुन्दर ऐश्वर्य के दाता वा शान्तियुक्त (प्रपितामहाः) पितामहों के पिता पवित्र धर्माचरणयुक्त सौ वर्ष पर्यन्त आयु से मुझको (पुनन्तु) पवित्र करें जिससे मैं (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) जीवन को (व्यश्नवै) प्राप्त होऊँ ॥३७॥

भावार्थ—पिता, पितामह और प्रपितामहों को योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को ब्रह्मचर्य, अच्छी शिक्षा और धर्मोपदेश से संयुक्त करके विद्या और उत्तमशील से युक्त करें । सन्तानों को योग्य है कि पितादि की सेवा और अनुकूल आचरण से पिता आदि सभों की नित्य सेवा करें, ऐसे परस्पर उपकार से गृहाश्रम में आनन्द के साथ वर्त्तना चाहिये ॥ ३७ ॥

अग्न आयूंषि इत्यस्य वैखानस ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अग्न॒ऽआयू॑ꣳषि पवस॒ऽआ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः ।
आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म् ॥३८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् पिता, पितामह और प्रपितामह ! जो आप (नः) हमारे (आयूंषि) आयुर्दाओं को (पवसे) पवित्र करें सो आप (ऊर्जम्) पराक्रम (च) और (इषम्) इच्छासिद्धि को (आ, सुव) चारों ओर से सिद्ध करिये और दूर और निकट बसने हारे (दुच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तों के समान मनुष्यों के सङ्ग को (बाधस्व) छुड़ा दीजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—पिता आदि लोग अपने सन्तानों में दीर्घ आयु पराक्रम और शुभ इच्छा का धारण कराके अपने सन्तानों को दुष्टों के सङ्ग से रोक और श्रेष्ठों के सङ्ग में प्रवृत्त कराके धार्मिक चिरंजीवी करें जिससे वे वृद्धावस्था में भी अप्रियाचरण कभी न करें ॥ ३८ ॥

पुनन्तु मा देवजना इत्यस्य वैखानस ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पु॒नन्तु॑ मा देवज॒नाः पु॒नन्तु॒ मन॑सा॒ धियः॑ ।
पु॒नन्तु॒ विश्वा॑ भू॒तानि॒ जात॑वेदः पुनी॒हि मा॑ ॥३९॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) उत्पन्न हुए जनों में ज्ञानी विद्वन् ! जैसे (देवजनाः) विद्वान् जन (मनसा) विज्ञान और प्रीति से (मा) मुझको (पुनन्तु) पवित्र करें और हमारी (धियः) बुद्धियों को (पुनन्तु) पवित्र करें और (विश्वा) सम्पूर्ण (भूतानि) भूत प्राणिमात्र मुझको (पुनन्तु) पवित्र करें वैसे आप (मा) मुझको (पुनीहि) पवित्र कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य यही है कि जो पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी सुन्दर शीलयुक्त निरन्तर किया करें ॥ ३९ ॥

पवित्रेणेत्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ१ऽरनु ॥४०॥

पदार्थ—हे (दीद्यत्) प्रकाशमान (देव) विद्या के देने हारे (अग्ने) विद्वन् ! आप (पवित्रेण) शुद्ध (शुक्रेण) वीर्य पराक्रम से स्वयं पवित्र होकर (मा) मुझको इससे (अनु, पुनीहि) पीछे पवित्र कर अपनी (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से अपनी प्रज्ञा और कर्म को पवित्र करके हमारी (क्रतून्) बुद्धियों वा कर्मों को पुनः पुनः पवित्र किया करो ॥ ४० ॥

भावार्थ—पिता अध्यापक और उपदेशक लोग स्वयं धार्मिक और विद्वान् होकर अपने सन्तानों को भी ऐसे ही धार्मिक योग्य विद्वान् करें ॥ ४० ॥

यत्त इत्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे शुद्ध होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥४१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर (ते) तेरे (अर्चिषि) सत्कार करने योग्य शुद्ध तेजःस्वरूप में (अन्तरा) सबसे भिन्न (यत्) जो (विततम्) विस्तृत सब में व्याप्त (पवित्रम्) शुद्धस्वरूप (ब्रह्म) उत्तम वेद विद्या है (तेन) उससे (मा) मुझको आप (पुनातु) पवित्र कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो देवों का देव पवित्रों का पवित्र व्याप्तों में व्याप्त अन्तर्यामी ईश्वर और उसकी विद्या वेद है उसके अनुकूल आचरण से निरंतर पवित्र हूजिये ॥ ४१ ॥

पवमान इत्यस्य वैखानस ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

फिर मनुष्यों को पुत्रादि कैसे पवित्र करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पवमानः सोऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥४२॥

पदार्थ—(यः) जो जगदीश्वर (नः) हमारे मध्य में (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से (पवमानः) पवित्र (विचर्षणिः) विविध विद्याओं का दाता है (सः) सो (अद्य) आज हमको पवित्र करने वाला और हमारा उपदेशक है (यः) सो (पोता) पवित्रस्वरूप परमात्मा (मा) मुझको (पुनातु) पवित्र करे ॥ ४२ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग ईश्वर के समान धार्मिक होकर अपने सन्तानों को धर्मात्मा करें ऐसे किए विना अन्य मनुष्यों को भी वे पवित्र नहीं कर सकते ॥४२॥

उभाभ्यामित्यस्य वैखानस ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

मनुष्यों को अधर्म से कैसे डरना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उभाभ्यान्देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मा पुनीहि विश्वतः ॥४३॥

पदार्थ—हे (देव) सुख के देने हारे (सवितः) सत्यकर्मों में प्रेरक जगदीश्वर आप (पवित्रेण) पवित्र वर्त्ताव (च) और (सवेन) सकलैश्वर्य्य तथा (उभाभ्याम्) विद्या और पुरुषार्थ से (विश्वतः) सब ओर से (माम्) मुझको (पुनीहि) पवित्र कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर सब मनुष्यों को शुद्धि और धर्म को ग्रहण कराता है उसी का आश्रय करके अधर्माचरण से सदा भय किया करो ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवीत्यस्य वैखानस ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा को कैसे राज्य बढ़ाना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥४४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वैश्वदेवी) सब विदुषी स्त्रियों में उत्तम (पुनती) सब की पवित्रता करती हुई (देवी) सकल विद्या और धर्म के आचरण से प्रकाशमान विद्याओं की पढ़ाने हारी ब्रह्मचारिणी कन्या हमको (आ, अगात्) प्राप्त होवे (यस्याम्) जिनके होने में (इमाः) ये (बह्व्यः) बहुतसी (तन्वः) विस्तृत विद्यायुक्त (वीतपृष्ठाः) विविध प्रश्नों को जानने हारी हों (तया) उससे अच्छी शिक्षा को प्राप्त भार्य्याओं को प्राप्त होकर (वयम्) हम लोग (सधमादेषु) समान स्थानों में (मदन्तः) आनन्दयुक्त हुए (रयीणाम्) धनादि ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जैसे राजा सब कन्याओं को पढ़ाने के लिए पूर्ण विद्यावाली स्त्रियों को नियुक्त करके सब बालिकाओं को पूर्णविद्या और सुशिक्षायुक्त करे वैसे ही बालकों को भी किया करे, जब ये सब पूर्णयुवावस्था वाले हों तभी स्वयंवर विवाह करावे ऐसे राज्य की वृद्धि को सदा किया करे ॥ ४४ ॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कहां मनुष्य सुखपूर्वक निवास करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषाँल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५॥

पदार्थ—(ये) जो (समानाः) सदृश (समनसः) तुल्य विज्ञानयुक्त (पितरः) प्रजा के रक्षक लोग (यमराज्ये) यथावत् न्यायकारी सभाधीश राजा के राज्य में हैं (तेषाम्) उनका (लोकः) सभा का दर्शन (स्वधा) अन्न (नमः) सत्कार और (यज्ञः) प्राप्त होने योग्य न्याय (देवेषु) विद्वानों में (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जहां बहुदर्शी अन्नादि ऐश्वर्य से संयुक्त सज्जनों से सत्कार को प्राप्त एक धर्म ही में जिनकी निष्ठा है उन विद्वानों की सभा सत्यन्याय को करती है उसी राज्य में सब मनुष्य ऐश्वर्य और सुख में निवास करते हैं ॥ ४५ ॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तान आपस में कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषाꣳ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतꣳ समाः ॥४६॥

पदार्थ—(ये) जो (अस्मिन्) इस (लोके) लोक में (जीवेषु) जीवते हुओं में (समानाः) समान गुण कर्म स्वभाव वाले (समनसः) समान धर्म में मन रखने हारे (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीते हुए पिता आदि हैं (तेषाम्) उनकी (श्रीः) लक्ष्मी (मयि) मेरे समीप (शतम्) सौ (समाः) वर्षपर्यन्त (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥ ४६ ॥

भावार्थ—सन्तान लोग जबतक पिता आदि जीवें तबतक उनकी सेवा किया करें पुत्र लोग जबतक पिता आदि की सेवा करें तबतक वे सत्कार के योग्य होवें और जो पिता आदि का धनादि वस्तु हो वह पुत्रों और जो पुत्रों का हो वह पिता आदि का रहे ॥ ४६ ॥

द्वे सृती इत्यस्य वैखानस ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

जीवों के दो मार्ग हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्वे सृतीऽअशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥४७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं जो (पितॄणाम्) पिता आदि (मर्त्यानाम्) मनुष्यों (च) और (देवानाम्) विद्वानों की (द्वे) दो गतियों (सृती) जिन में आते जाते अर्थात् जन्म मरण को प्राप्त होते हैं उनको (अशृणवम्) सुनता हूं (ताभ्याम्) उन दोनों गतियों से (इदम्) यह (विश्वम्) सब जगत् (एजत्) चलायमान हुआ (समेति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (उत) और (यत्) जो (पितरम्) पिता और (मातरम्) माता से (अन्तरा) पृथक् होकर दूसरे शरीर से अन्य माता पिता को प्राप्त होता है सो यह तुम लोग जानो ॥ ४७ ॥

भावार्थ—दो ही जीवों की गति हैं एक माता पिता से जन्म को प्राप्त होकर संसार में विषय-सुख के भोगरूप और दूसरी विद्वानों के सङ्ग आदि से मुक्ति-सुख के भोगरूप है, इन दोनों गतियों के साथ ही सब प्राणी विचरते हैं ॥ ४७ ॥

इदं हविरित्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

सन्तानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इदं हविः प्रजननं मेऽअस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये ।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त ॥४८॥

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान पति (मे) मेरे लिये (बहुलाम्) बहुत सुख देनेवाली (प्रजाम्) प्रजा को (करोतु) करे (मे) मेरा जो (इदम्) यह (प्रजननम्) उत्पत्ति करने का निमित्त (हविः) लेने देने योग्य (दशवीरम्) दश सन्तानों का उत्पन्न करने हारा (सर्वगणम्) सब समुदायों से सहित (आत्मसनि) जिसने आत्मा का सेवन (प्रजासनि) प्रजा का सेवन (पशुसनि) पशु का सेवन (लोकसनि) लोकों का अच्छे प्रकार सेवन और (अभयसनि) अभय का दानरूप कर्म होता है उस सन्तान को करे वह (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्तु) होवे । हे माता पिता आदि लोगो ! आप (अस्मासु) हमारे बीच में प्रजा (अन्नम्) अन्न (पयः) दूध और (रेतः) वीर्य को (धत्त) धारण करो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य से सकल विद्या की शिक्षाओं का संग्रह कर परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह कर के ऋतुगामी होकर विधिपूर्वक प्रजा की उत्पत्ति करते हैं उनकी वह प्रजा शुभगुणयुक्त होकर माता पिता आदि को निरन्तर सुखी करती है ॥ ४८ ॥

उदीरतामित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पिता आदि को कैसे होकर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उदीरतामवरऽउत्परासऽउन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं यऽईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (अवृकाः) चोर्यादि दोष रहित (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने हारे (पितरः) पिता आदि वड़े लोग (हवेषु) संग्रामादि व्यवहारों में (असुम्) प्राण को (उदीयुः) उत्तमता से प्राप्त हों (ते) वे (नः) हमारी (उत्, अवन्तु) उत्कृष्टता से रक्षा करें और जो (सोम्यासः) शान्त्यादिगुणसम्पन्न (अवरे) प्रथम अवस्था युक्त (परासः) उत्कृष्ट अवस्था वाले (मध्यमाः) बीच के विद्वान् (पितरः) पिता आदि लोग हैं वे हम को संग्रामादि कामों में (उदीरताम्) अच्छे प्रकार प्रेरणा करें ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जो जीते हुए प्रथम मध्यम और उत्तम चोरी आदि दोषरहित जानने के योग्य विद्या को जाननेहारे तत्वज्ञान को प्राप्त विद्वान् लोग हैं वे विद्या के अभ्यास और उपदेश से सत्य धर्म के ग्रहण कराने हारे कर्म से बाल्यावस्था में विवाह का निषेध करके सब प्रजाओं को पालें ॥ ४९ ॥

अङ्गिरस इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (नः) हमारे (अङ्गिरसः) सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानने और (नवग्वाः) नवीन नवीन ज्ञान के उपदेशों को करने हारे (अथर्वाणः) अहिंसक (भृगवः) परिपक्वविज्ञानयुक्त (सोम्यासः) ऐश्वर्य पाने योग्य (पितरः) पितादि ज्ञानी लोग हैं (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) उत्तम व्यवहार करने हारों की (सुमतौ) सुन्दर प्रज्ञा और (भद्रे) कल्याणकारक (सौमनसे) प्राप्त हुए श्रेष्ठ बोध में (वयम्) हम लोग प्रवृत्त (स्याम) होवें वैसे तुम (अपि) भी होओ ॥५०॥

भावार्थ—सन्तानों को योग्य है कि जो जो पिता आदि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म होवे उस उस का सेवन करें और जो जो अधर्मयुक्त हो उस उस को छोड़ देवें ऐसे ही पिता आदि बड़े लोग भी सन्तानों के अच्छे अच्छे गुणों का ग्रहण और बुरों का त्याग करें ॥ ५० ॥

ये न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः । तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥५१॥

पदार्थ—(ये) जो (नः) हमारे (सोम्यासः) शान्त्यादि गुणों के योग से योग्य (वसिष्ठाः) अत्यन्त धनी (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) पालन करने हारे ज्ञानी पिता आदि (सोमपीथम्) सोमपान को (अनूहिरे) प्राप्त होते और कराते हैं (तेभिः) उन (उशद्भिः) हमारे पालन की कामना करने हारे पितरों के साथ (हवींषि) लेने देने योग्य पदार्थों की (उशन्) कामना करने हारा (संरराणः) अच्छे प्रकार सुखों का दाता (यमः) न्याय और योगयुक्त सन्तान (प्रतिकामम्) प्रत्येक काम को (अत्तु) भोगे ॥ ५१ ॥

भावार्थ—पिता आदि पुत्रों के साथ और पुत्र पिता आदि के साथ सब सुख दुःखों के भोग करें और सदा सुख की वृद्धि और दुःख का नाश किया करें ॥५१॥

त्वꣳ सोम इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

त्वꣳ सोम प्र चिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् । तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥५२॥

पदार्थ—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त ! (प्र, चिकितः) विज्ञान को प्राप्त (त्वम्) तू (मनीषा) उत्तम प्रज्ञा से जिस (रजिष्ठम्) अतिशय कोमल सुखदायक (पन्थाम्) मार्ग को (नेषि) प्राप्त होता है उस को (त्वम्) तू मुझ को भी (अनु) अनुकूलता से प्राप्त कर । हे (इन्दो) आनन्दकारक चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान ! जो (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति के साथ वर्त्तमान (धीराः) योगीराज(पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे लिये (रत्नम्) उत्तम धन का (अभजन्त) सेवन करते हैं वे हम को नित्य सत्कार करने योग्य हों ॥५२॥

भावार्थ—जो सन्तान माता पिता आदि के सेवक होते हुए विद्या और विनय से धर्म का अनुष्ठान करते हैं वे अपने जन्म की सफलता करते हैं ॥५२॥

त्वयेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः । वन्वन्नवातः परिधीँऽरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥५३॥

पदार्थ—हे (पवमान) पवित्र स्वरूप पवित्रकर्मकर्त्ता और पवित्र करने हारे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त सन्तान (त्वया) तेरे साथ (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्वज (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग जिन धर्मयुक्त (कर्माणि) कर्मों को (चक्रुः) करनेवाले हुए (हि) उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें (अवातः) हिंसाकर्मरहित (वन्वन्) धर्म का सेवन करते हुए सन्तान तू (वीरेभिः) वीर पुरुष और (अश्वैः) घोड़े आदि के साथ (नः) हमारे शत्रुओं की (परिधीन्) परिधि अर्थात् जिन में चारों ओर से पदार्थों को धारण किया जाय उन मार्गों को (अपोर्णु) आच्छादन कर और हमारे मध्य में (मघवा) धनवान् (भव) हूजिये ॥५३॥

भावार्थ—मनुष्य लोग अपने धार्मिक पिता आदि का अनुकरण कर और शत्रुओं का निवारण करके अपनी सेना के अंगों को प्रशंसा से युक्त हुए सुखी होवें ॥ ५३ ॥

त्वꣳ सोमेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवीऽआ ततन्थ । तस्मै तऽइन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥५४॥

पदार्थ—हे (सोम) चन्द्रमा के सदृश आनन्दकारक उत्तम सन्तान ! (पितृभिः) ज्ञानयुक्त पितरों के साथ (संविदानः) प्रतिज्ञा करता हुआ जो (त्वम्) तू (अनु, द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के मध्य में धर्मानुकूल आचरण से सुख का (आ, ततन्थ) विस्तार कर । हे (इन्दो) चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन ! (तस्मै) उस (ते) तेरे लिये (वयम्) हम लोग (हविषा) लेने देने योग्य व्यवहार से सुख का (विधेम) विधान करें जिससे हम लोग (रयीणाम्) धनों के (पतयः) पालन करने हारे स्वामी (स्याम) हों ॥ ५४ ॥

भावार्थ—हे सन्तानो ! तुम लोग जैसे चन्द्रलोक पृथिवी के चारों ओर भ्रमण करता हुआ सूर्य की परिक्रमा देता है वैसे ही माता पिता आदि के अनुचर होओ जिससे तुम श्रीमन्त हो जाओ ॥ ५४ ॥

बर्हिषद इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् । तऽआगतावसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात ॥५५॥

पदार्थ—हे(बर्हिषदः) उत्तम सभा में बैठने हारे (पितरः) न्याय से पालना करने वाले पितर लोगो ! हम (अर्वाक्) पश्चात् जिन (वः) तुम्हारे लिये (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (इमा) इन (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों का (चकृम) संस्कार करते हैं उन का तुम लोग (जुषध्वम्) सेवन किया करो । वे आप लोग (शन्तमेन) अत्यन्त कल्याणकारक (अवसा) रक्षणादि कर्म के साथ (आ, गत) आवें (अथ) इसके अनन्तर (नः) हमारे लिये (शम्) सुख तथा (अरपः) सत्याचरण को (दधात) धारण करें और दुःख का (योः) हम से पृथक् रक्खें ॥५५॥

भावार्थ—जिन पितरों की सेवा सन्तान लोग करें वे अपने सन्तानों में अच्छी शिक्षा से सुशीलता को धारण करें ॥ ५५ ॥

आहमित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२ऽअवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः । बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्तऽइहागमिष्ठाः ॥५६॥

पदार्थ—(ये) जो (बर्हिषदः) उत्तम आसन में बैठने योग्य पितर लोग (इह) इस वर्त्तमान काल में (स्वधया) अन्नादि से तृप्त (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (पित्वः) सुगन्धयुक्त पान का (च) भी (आ, भजन्त) सेवन करते हैं (ते) वे (आगमिष्ठाः) हमारे पास आवें जो इस संसार में (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (नपातम्) नाशरहित (विक्रमणम्) विविध सृष्टिक्रम को (च) भी जानते हैं उस (सुविदत्रान्) उत्तम सुखादि के दान देनेहारे (पितॄन्) पितरों को (अहम्) मैं (अवित्सि) जानता हूं ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जो पितर लोग विद्या की उत्तम शिक्षा करते और कराते हैं वे पुत्र और कन्याओं के सम्यक् सेवन करने योग्य हैं ॥ ५६ ॥

उपहूता इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु । तऽआगमन्तु तऽइह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५७॥

पदार्थ—जो (सोम्यासः) ऐश्वर्य को प्राप्त होने के योग्य (पितरः) पितर लोग (बर्हिष्येषु) अत्युत्तम (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) रत्नादि से भरे हुए कोशों के निमित्त (उपहूताः) बुलाये हुए हैं (ते) वे (इह) इस हमारे समीप स्थान में (आ, गमन्तु) आवें (ते) वे हमारे वचनों को (श्रुवन्तु) सुनें वे (अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिक उपदेश से बोधयुक्त करें (ते) वे हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ५७ ॥

भावार्थ—जो विद्यार्थीजन अध्यापकों को बुला उनका सत्कार कर उन से विद्या ग्रहण की इच्छा करें उन विद्यार्थियों को वे अध्यापक भी प्रीतिपूर्वक पढ़ावें और सर्वथा विषयासक्ति आदि दुष्कर्मों से पृथक् रक्खें ॥ ५७ ॥

आयन्त्वित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । विराट्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५८॥

पदार्थ—जो (सोम्यासः) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमदमादि गुणयुक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (नः) हमारे (पितरः) अन्न और विद्या के दान से रक्षक जनक अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (ते) वे (देवयानैः) आप्त लोगों के जाने आने योग्य (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (आ, यन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पढ़ाने उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्त्तमान होके (स्वधया) अन्नादि से (मदन्तः) आनन्द को प्राप्त हुए (अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी (अवन्तु) सदा रक्षा करें ॥ ५८ ॥

भावार्थ—विद्यार्थियों को योग्य है कि विद्या और आयु में वृद्ध विद्वानों से विद्या और रक्षा को प्राप्त होकर सत्यवादी निष्कपटी परोपकारी उपदेशकों के मार्ग से जा आ के सब की रक्षा करें ॥ ५८ ॥

अग्निष्वात्ता इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥५९॥

पदार्थ—हे (सुप्रणीतयः) अत्युत्तम न्यायधर्म से युक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थ विद्या में निपुण (पितरः) पालन करने हारे पितरो ! आप लोग (इह) इस वर्त्तमान समय में विद्याप्रचार के लिये (आ, गच्छत) आओ (सदःसदः) जहाँ जहाँ बैठें उस उस घर में (सदत) स्थित होओ (प्रयतानि) अति विचार से सिद्ध किये हुए (हवींषि) भोजन के योग्य अन्नादि का (अत्त) भोग करो (अथ) इसके पश्चात् (बर्हिषि) विद्याप्रचाररूप उत्तम व्यवहार में स्थित होकर हमारे लिये (सर्ववीरम्) सब वीर पुरुषों को प्राप्त करानेहारे (रयिम्) धन को (दधातन) धारण कीजिये ॥ ५९ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग उपदेश के लिये घर घर के प्रति गमनागमन कर के सत्यधर्म का प्रचार करते हैं वे गृहस्थों में श्रद्धा से दिए हुए अन्नपानादि का सेवन करें सब को शरीर और आत्मा के बल से योग्य पुरुषार्थी करके श्रीमान् करें ॥५९॥

ये अग्निष्वात्ताः इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना कैसे करनी चाहिये इस
विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

येऽअग्निष्वात्ता येऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥६०॥

पदार्थ—(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अच्छे प्रकार अग्निविद्या के ग्रहण करने तथा (ये) जो (अनग्निष्वात्ताः) अग्नि से भिन्न अन्य पदार्थविद्याओं को जानने हारे वा ज्ञानी पितृलोग (दिवः) वा विज्ञानादि प्रकाश के (मध्ये) बीच (स्वधया) अपने पदार्थ के धारण करने रूप क्रिया से (मादयन्ते) आनन्द को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन पितरों के लिये (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान परमात्मा (एताम्) इस (असुनीतिम्) प्राणों को प्राप्त होने वाले (तन्वम्) शरीर को (यथावशम्) कामना के अनुकूल (कल्पयाति) समर्थ करे ॥६०॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमेश्वर ! जो अग्नि आदि की पदार्थविद्या को यथार्थ जान के प्रवृत्त करते और जो ज्ञान में तत्पर विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं उनके शरीरों को दीर्घायु कीजिये ॥६०॥

अग्निष्वात्तानित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशंसे सोमपीथं यऽआशुः ।
ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६१॥

पदार्थ—(ये) जो (सोमपीथम्) सोम आदि उत्तम ओषधिरस को (आशुः) पीवें जिन (ऋतुमतः) प्रशंसित वसन्तादि ऋतु में उत्तम कर्म करने वाले (अग्निष्वात्तान्) अच्छे प्रकार अग्निविद्या को जानने हारे पिता आदि ज्ञानियों को हम लोग (नाराशंसे) मनुष्यों के प्रशंसारूप सत्कार के व्यवहार में (हवामहे) बुलाते हैं (ते) वे (विप्रासः) बुद्धिमान् लोग (नः) हमारे लिये (सुहवाः) अच्छे दान देने हारे (भवन्तु) हों और (वयम्) हम उनकी कृपा से (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ ६१ ॥

भावार्थ—सन्तान लोग पदार्थविद्या और देश काल के जानने और प्रशंसित ओषधियों के रस को सेवन करनेहारे विद्या और अवस्था में वृद्ध पिता आदि को सत्कार के अर्थ बुला के उनके सहाय से धनादि ऐश्वर्य्य वाले हों ॥ ६१ ॥

आच्याजान्वित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६२॥

पदार्थ—हे (विश्वे) सब (पितरः) पितृलोगो ! तुम (केन, चित्) किसी हेतु से (नः) हमारी जो (पुरुषता) पुरुषार्थता है उसको (मा, हिंसिष्ट) मत नष्ट करो जिसमें हम लोग सुख को (कराम) प्राप्त करें (यत्) जो (वः) तुम्हारा (आगः) अपराध है उस को हम छुड़ावें तुम लोग (इमम्)इस (यज्ञम्) सत्कारक्रियारूप व्यवहार को (अभि,गृणीत) हमारे सन्मुख प्रशंसित करो हम (जानु) जानु अवयव को (आच्य) नीचे टेक के (दक्षिणतः) तुम्हारे दक्षिण पार्श्व में (निषद्य) बैठ के तुम्हारा निरन्तर सत्कार करें ॥ ६२ ॥

भावार्थ—जिन के पितृ लोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग इन के समीप जावें तब भूमि में घुटने टिका नमस्कार कर इनको प्रसन्न कर पितर लोग भी आशीर्वाद विद्या और अच्छी शिक्षा के उपदेश से अपने सन्तानों को प्रसन्न करके सदा रक्षा किया करें ॥ ६२ ॥

आसीनास इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

आसीनासोऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तऽइहोर्जं दधात ॥६३॥

पदार्थ—हे (पितरः) पितृ लोगो ! तुम (इह) इस गृहाश्रम में (अरुणीनाम्) गौरवर्णयुक्त स्त्रियों के (उपस्थे) समीप में (आसीनासः) बैठे हुए (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के और (दाशुषे) दाता (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (रयिम्) धन को (धत्त) धरो (तस्य) उस (वस्वः) धन के भागों को (प्र, यच्छत) दिया करो जिससे (ते) वे स्त्री आदि सब लोग (ऊर्जम्) पराक्रम को (दधात) धारण करें ॥६३॥

भावार्थ—वे ही वृद्ध हैं जो अपनी स्त्री ही के साथ प्रसन्न अपनी पत्नियों का सत्कार करने हारे सन्तानों के लिए यथायोग्य दायभाग और सत्पात्रों को सदा दान देते हैं और वे सन्तानों को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ६३ ॥

यमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥६४॥

पदार्थ—हे (कव्यवाहन) बुद्धिमानों के समीप उत्तम पदार्थ पहुंचाने हारे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाश युक्त ! (त्वम्) आप (गीर्भिः) कोमल वाणियों से (श्रवाय्यम्) सुनाने योग्य (देवत्रा) विद्वानों में (युजम्) युक्त करने योग्य (यम्) जिस (रयिम्) ऐश्वर्य्य को (मन्यसे) जानते हो (तम्) उस को (चित्) भी (नः) हमारे लिये (पनय) कीजिये ॥ ६४ ॥

भावार्थ—पिता आदि ज्ञानी लोगों को चाहिए कि पुत्रों और सत्पात्रों से प्रशंसित धन का संचय करें उस धन से उत्तम विद्वानों को ग्रहण कर उनको सत्यधर्म के उपदेशक बना के विद्या और धर्म का प्रचार करें और करावें ॥ ६४ ॥

योऽअग्निरित्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

योऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥६५॥

पदार्थ—(यः) जो (कव्यवाहनः) विद्वानों के श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त कराने हारा (अग्निः) अग्नि के समान विद्याओं में प्रकाशमान विद्वान् (ऋतावृधः) वेद विद्या से वृद्ध (पितॄन्) पितरों का (यक्षत्) सत्कार करे सो (इत्) ही (उ) अच्छे प्रकार (देवेभ्यः) विद्वानों (च) और (पितृभ्यः) पितरों के लिये (हव्यानि)

ग्रहण करने योग्य विज्ञानों का (प्रावोचति) अच्छे प्रकार सब ओर से उपदेश करता है ॥ ६५ ॥

भावार्थ—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या वाले होते हैं वे विद्वानों में विद्वान् और पितरों में पितर गिने जाते हैं ॥ ६५ ॥

त्वमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

त्वम॑ग्नऽईडि॒तः क॑व्यवाहनावा॑ड्ढ॒व्यानि॑ सु॒रभी॑णि कृ॒त्वी ।
प्रादाः॑ पि॒तृभ्यः॑ स्व॒धया॒ तेऽअक्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व प्र॒यता॑ ह॒वीᳬषि॑ ॥६६॥

पदार्थ—हे (कव्यवाहन) कवियों के प्रगल्भतादि कर्मों को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान पवित्र विद्वन् ! पुत्र ! (ईडितः) प्रशंसित (त्वम्) तू (सुरभीणि) सुगन्धादि युक्त (हव्यानि) खाने के योग्य पदार्थ (कृत्वी) करके (अवाट्) प्राप्त करता है उनको (पितृभ्यः) पितरों के लिये (प्रादाः) दिया कर (ते) वे पितर लोग (स्वधया) अन्नादि के साथ इन पदार्थों का (अक्षन्) भोग किया करें । हे (देव) विद्वन् दातः ! (त्वम्) तू (प्रयता) प्रयत्न से साधे हुए (हवींषि) खाने के योग्य अन्नों को (अद्धि) भोजन किया कर ॥ ६६ ॥

भावार्थ—पुत्रादि सब लोग अच्छे संस्कार किये हुए सुगन्धादि से युक्त अन्न पानों से पितरों को भोजन करा के आप भी इन अन्नों का भोजन करें यही पुत्रों की योग्यता है । जो अच्छे संस्कार किये हुए अन्न पानों को करते हैं वे रोगरहित होकर शतवर्ष पर्यन्त जीते हैं ॥ ६६ ॥

ये चेहेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ये चे॒ह पि॒तरो॒ ये च॒ नेह याँश्च॑ वि॒द्म याँ२ऽउ॑ च॒ न प्र॑वि॒द्म ।
त्वं वे॑त्थ॒ यति॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धाभि॑र्य॒ज्ञᳬ सुकृ॑तं जुषस्व ॥६७॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) नवीन तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वन् ! (ये) जो (इह) यहां (च) ही (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग हैं (च) और (ये) जो (इह) यहां (न) नहीं हैं (च) और हम (यान्) जिनको (विद्म) जानते (च) और (यान्) जिनको (न, प्रविद्म) नहीं जानते हैं उन (यति) यावत् पितरों को(त्वम्) आप (वेत्थ) जानते हो (उ) और (ते) वे आप को भी जानते हैं उनकी सेवारूप (सुकृतम्) पुण्यजनक (यज्ञम्) सत्काररूप व्यवहार को (स्वधाभिः) अन्नादि से (जुषस्व) सेवन करो ॥ ६७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रत्यक्ष वा जो अप्रत्यक्ष विद्वान् अध्यापक और उपदेशक हैं उन सब को बुला अन्नादि से सदा सत्कार करो जिससे आप भी सर्वत्र सत्कारयुक्त होओ ॥ ६७ ॥

इदमित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

इ॒दम्पि॒तृभ्यो॒ नमो॑ऽअस्त्व॒द्य ये पूर्वा॑सो॒ यऽउप॑रास ई॒युः ।
ये पार्थि॑वे॒ रज॒स्या निष॑त्ता॒ ये वा॑ नू॒नᳬ सु॑वृ॒जना॑सु वि॒क्षु ॥६८॥

पदार्थ—(ये) जो पितर लोग (पूर्वासः) हम से विद्या वा अवस्था में वृद्ध हैं (ये) जो (उपरासः) वानप्रस्थ वा संन्यासाश्रम को प्राप्त होके गृहाश्रम के विषयभोग से उदासीनचित्त हुए (ईयुः) प्राप्त हों (ये) जो (पार्थिवे) पृथिवी पर विदित (रजसि) लोक में (आ, निषत्ताः) निवास किये हुए (वा) अथवा (ये) जो (नूनम्) निश्चय करके (सुवृजनासु) अच्छी गति वाली (विक्षु) प्रजाओं में प्रयत्न करते हैं उन (पितृभ्यः) पितरों के लिए (अद्य) आज (इदम्) यह (नमः) सुसंस्कृत अन्न (अस्तु) प्राप्त हो ॥ ६८ ॥

भावार्थ—इस संसार में जो प्रजा के शोधने वाले हम से श्रेष्ठ विरक्ताश्रम अर्थात् संन्यासाश्रम को प्राप्त पिता आदि हैं वे पुत्रादि मनुष्यों को सदा सेवने योग्य हैं जो ऐसा न करें तो कितनी हानि हो ॥ ६८ ॥

अधेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अध॒ यथा॑ नः पि॒तरः॒ परा॑सः प्र॒त्नासो॑ऽअग्नऽऋ॒तमा॑शुषा॒णाः ।
शुचीद॑य॒न्दीधि॑तिमुक्थ॒शासः॒ क्षामा॑ भि॒न्दन्तो॑ऽअरु॒णीरप॑ व्रन् ॥६९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यथा) जैसे (नः) हमारे (परासः) उत्तम (प्रत्नासः) प्राचीन (उक्थशासः) उत्तम शिक्षा करने हारे (शुचि) पवित्र (ऋतम्) सत्य को (आशुषाणाः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (पितरः) पिता आदि ज्ञानी जन (दीधितिम्) विद्या के प्रकाश (अरुणीः) सुशीलता से प्रकाश वाली स्त्रियों और (क्षामा) निवासभूमि को (अयन्) प्राप्त होते हैं (अध) इस के अनन्तर अविद्या का (भिन्दन्तः) विदारण करते हुए (इत्) ही अन्धकाररूप आवरणों को (अप, व्रन्) दूर करते हैं उनका तू वैसे सेवन कर ॥ ६९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पिता आदि विद्या को प्राप्त करा के अविद्या का निवारण करते हैं वे इस संसार में सब लोगों से सत्कार करने योग्य हों ॥ ६९ ॥

उशन्त इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उ॒शन्त॑स्त्वा॒ नि धी॑मह्यु॒शन्तः॒ समि॑धीमहि ।
उ॒शन्नु॑श॒तऽआ व॑ह पि॒तॄन्ह॒विषे॒ऽअत्त॑वे ॥७०॥

पदार्थ—हे विद्या की इच्छा करने वाले अथवा पुत्र ! तेरी (उशन्तः) कामना करते हुए हम लोग (त्वा) तुझ को (नि, धीमहि) विद्या का निधिरूप बनावें (उशन्तः) कामना करते हुए हम तुझ को (समिधीमहि) अच्छे प्रकार विद्या से प्रकाशित करें (उशन्) कामना करता हुआ तू (हविषे) भोजन करने योग्य पदार्थ के (अत्तवे) खाने को (उशतः) कामना करते हुए हम (पितॄन्) पितरों को (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ७० ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग बुद्धिमान् जितेन्द्रिय कृतज्ञ परिश्रमी विचारशील विद्यार्थियों की नित्य कामना करें वैसे विद्यार्थी लोग भी ऐसे उत्तम अध्यापक विद्वान् लोगों की सेवा करके विद्वान् होवें ॥ ७० ॥

अपामित्यस्य शङ्ख ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सेनापति कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒पां फेने॑न॒ नमु॑चेः॒ शिर॑ऽइ॒न्द्रोद॑वर्त्तयः ।
विश्वा॒ यदज॑यः॒ स्पृधः॑ ॥७१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य्य के समान वर्त्तमान सेनापते ! जैसे सूर्य (अपाम्) जलों की (फेनेन) वृद्धि से (नमुचेः) अपने स्वरूप को न छोड़ने वाले मेघ के (शिरः) घनाकार बद्दलों को काटता है वैसे ही तू अपनी सेनाओं को (उदवर्त्तयः) उत्कृष्टता को प्राप्त कर (यत्) जो (विश्वाः) सब (स्पृधः) स्पर्द्धा करने हारी शत्रुओं की सेना है उन को (अजयः) जीत ॥ ७१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य से आच्छादित भी मेघ वारंवार उठता है वैसे ही वे शत्रु भी वारंवार उत्थान करते हैं । वे जब तक अपने बल को न्यून और दूसरों का बल अधिक देखते हैं तब तक शान्त रहते हैं ॥ ७१ ॥

सोमो राजेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन पुरुष मुक्ति को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सोमो॒ राजा॒मृतᳬ सु॒त ऋ॑जी॒षेणा॑जहान्मृ॒त्युम् । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ᳬ शु॒क्रमन्ध॑स॒ इन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥७२॥

पदार्थ—जो (ऋतेन) सत्य ब्रह्म के साथ (अन्धसः) सुसंस्कृत अन्नादि के सम्बन्धी (सत्यम्) विद्यमान द्रव्यों में उत्तम पदार्थ (विपानम्) विविध पान करने के साधन (शुक्रम्) शीघ्र कार्य कराने हारे (इन्द्रियम्) धन (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले जीव के (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (इदम्) जल (पयः) दुग्ध (अमृतम्) अमृतरूप ब्रह्म वा ओषधि के सार और (मधु) सहत का संग्रह करे सो (अमृतम्) अमृतरूप आनन्द को प्राप्त हुआ (सुतः) संस्कारयुक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान प्रेरक (राजा) न्यायविद्या से प्रकाशमान राजा (ऋजीषेण) सरल भाव से (मृत्युम्) मृत्यु को (अजहात्) छोड़ देवे ॥ ७२ ॥

भावार्थ—जो उत्तम शील और विद्वानों के सङ्ग से सब शुभलक्षणों को प्राप्त होते हैं वे मृत्यु के दुःख को छोड़ कर मोक्षसुख को ग्रहण करते हैं ॥ ७२ ॥

अद्भ्य इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अङ्गिरसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन पुरुष विज्ञान को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒द्भ्यः क्षी॒रं व्य॑पिबत् क्रुङ्ङा॑ङ्गिर॒सो धि॒या । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ᳬ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दम्पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥७३॥

पदार्थ—जो (आङ्गिरसः) अङ्गिरा विद्वान् से किया हुआ विद्वान् (धिया) कर्म के साथ (अद्भ्यः) जलों से (क्षीरम्) दूध को (क्रुङ्) क्रुञ्चा पक्षी के समान थोड़ा थोड़ा करके (व्यपिबत्) पीवे वह (ऋतेन) यथार्थ योगाभ्यास से (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त जीव के (अन्धसः) अन्नादि के योग से (इदम्) इस प्रत्यक्ष (सत्यम्) सत्य पदार्थों में अविनाशी (विपानम्) विविध शब्दार्थ सम्बन्धयुक्त (शुक्रम्) पवित्र (इन्द्रियम्) दिव्यवाणी और (पयः) उत्तम रस (अमृतम्) रोगनाशक ओषधि (मधु) मधुरता और (इन्द्रियम्) दिव्य श्रोत्र को प्राप्त होवे ॥ ७३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सत्याचरणादि कर्मों करके वैद्यक शास्त्र के विधान से युक्ताहार विहार करते हैं वे सत्य बोध और सत्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ ७३ ॥

सोममित्यस्य शङ्ख ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हुᳬसः शुचिषत् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬशुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७४॥

पदार्थ—जो (शुचिषत्) पवित्र विद्वानों में बैठता है (हंसः) दुःख का नाशक विवेकी जन (छन्दसा) स्वच्छन्दता के साथ (अद्भ्यः) उत्तम संस्कारयुक्त जलों से (सोमम्) सोमलतादि महौषधियों के सार रस को (व्यपिबत्) अच्छे प्रकार पीता है सो (ऋतेन) सत्य वेदविज्ञान से (अन्धसः) उत्तम संस्कार किये हुए अन्न के दोषनिवर्तक (शुक्रम्) शुद्धि करनेहारे (विपानम्) विविध रक्षा से युक्त (सत्यम्) परमेश्वरादि सत्य पदार्थों में उत्तम (इन्द्रियम्) विज्ञानरूप (इन्द्रस्य) योगविद्या से उत्पन्न हुए परम ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने हारे (इदम्) इस प्रत्यक्ष प्रतीति के आश्रय (पयः) उत्तम ज्ञान रस वाले (अमृतम्) मोक्ष (मधु) और मधु विद्यायुक्त (इन्द्रियम्) जीव ने सेवन किये हुए सुख को प्राप्त होने को योग्य होता है वही अखिल आनन्द को पाता है ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जो युक्ताहार विहार करने हारे वेदों को पढ़, योगाभ्यास कर अविद्यादि क्लेशों को छुड़ा, योग की सिद्धियों को प्राप्त हो और उन के अभिमान को भी छोड़ के कैवल्य को प्राप्त होते हैं वे ब्रह्मानन्द का भोग करते हैं ॥ ७४ ॥

अन्नात्परिस्रुत इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगति जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

कैसे राज्य की उन्नति करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७५॥

पदार्थ—जो (ब्रह्मणा) चारों वेद पढ़े हुए विद्वान् के साथ (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक सभाध्यक्ष राजा (परिस्रुतः) सब ओर से पके हुए (अन्नात्) जौ आदि अन्न से निकले (पयः) दुग्ध के तुल्य (सोमम्) ऐश्वर्ययुक्त (रसम्) साररूप रस और (क्षत्रम्) क्षत्रियकुल को (व्यपिबत्) ग्रहण करे सो (ऋतेन) विद्या तथा विनय से युक्त न्याय से (अन्धसः) अन्धकाररूप अन्याय के निवारक (शुक्रम्) पराक्रम करने हारे (विपानम्) विविध रक्षण के हेतु (सत्यम्) सत्य व्यवहारों में उत्तम (इन्द्रियम्) इन्द्रनामक परमात्मा ने दिये हुए (इन्द्रस्य) समग्र ऐश्वर्य के देने हारे राज्य की प्राप्ति कराने हारे (इदम्) इस प्रत्यक्ष (पयः) पीने के योग्य (अमृतम्) अमृत के तुल्य सुखदायक रस और (मधु) मधुरादि गुणयुक्त (इन्द्रियम्) राजादि पुरुषों ने सेवे हुए न्यायाचरण को प्राप्त होवे वह सदा सुखी होवे ॥ ७५ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों की अनुमति से राज्य को बढ़ाने की इच्छा करते हैं वे अन्याय की निवृत्ति करने और राज्य को बढ़ाने में समर्थ होते हैं ॥ ७५ ॥

रेत इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

शरीर से वीर्य कैसे उत्पन्न होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७६॥

पदार्थ—(इन्द्रियम्) पुरुष का लिंग इन्द्रिय (योनिम्) स्त्री की योनि में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ (रेतः) वीर्य को (वि, जहाति) विशेष कर छोड़ता है इससे अलग (मूत्रम्) प्रस्राव को छोड़ता है वह वीर्य (जरायुणा) जरायु से (आवृतः) ढका हुआ (गर्भः) गर्भरूप होकर जन्मता है (जन्मना) जन्म से (उल्वम्) आवरण को (जहाति) छोड़ता है वह (ऋतेन) बाहर के वायु से (अन्धसः) आवरण को निवृत्त करने हारे (विपानम्) विविध पान के साधन (शुक्रम्) पवित्र (सत्यम्) वर्त्तमान में उत्तम (इन्द्रस्य) जीव के सम्बन्धी (इन्द्रियम्) धन को और (इदम्) इस (पयः) रस के तुल्य (अमृतम्) नाशरहित (मधु) प्रत्यक्षादि ज्ञान के साधन (इन्द्रियम्) चक्षुरादि इन्द्रिय को प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

भावार्थ—प्राणी जो कुछ खाता पीता है परम्परा से वीर्य होकर शरीर का कारण होता है पुरुष का लिंग इन्द्रिय स्त्री के संयोग से वीर्य छोड़ता और इससे अलग मूत्र को छोड़ता है इससे जाना जाता है कि शरीर में मूत्र के स्थान से पृथक् स्थान में वीर्य रहता है वह वीर्य्य जिस कारण सब अंगों से उत्पन्न होता है इससे सब अंगों की आकृति उस में रहती है इसी से जिस के शरीर से वीर्य उत्पन्न होता है उसी की आकृति वाला सन्तान होता है ॥ ७६ ॥

दृष्ट्वेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब धर्म अधर्म कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाᳬ सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७७॥

पदार्थ—जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक परमेश्वर (ऋतेन) यथार्थ अपने सत्य विज्ञान से (सत्यानृते) सत्य और झूठ जो (रूपे) निरूपण किये हुए हैं उनको (दृष्ट्वा) ज्ञानदृष्टि से देखकर (व्याकरोत्) विविध प्रकार से उपदेश करता है जो (अनृते) मिथ्याभाषणादि में (अश्रद्धाम्) अप्रीति को (अदधात्) धारण कराता और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम्) प्रीति को धारण कराता और जो (अन्धसः) अधर्माचरण के निवर्त्तक (शुक्रम्) शुद्धि करने हारे (विपानम्) विविध रक्षा के साधन (सत्यम्) सत्यस्वरूप (इन्द्रियम्) चित्त को और जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त धर्म के प्रापक (इदम्) इस (पयः) अमृतरूप सुखदाता (अमृतम्) मृत्युरोगनिवारक (मधु) मानने योग्य (इन्द्रियम्) विज्ञान के साधन को धारण करे वह (प्रजापतिः) परमेश्वर सब का उपासनीय देव है ॥७७॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के आज्ञा किये धर्म का आचरण करते और निषेध किये हुए अधर्म का सेवन नहीं करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं जो ईश्वर धर्म अधर्म को न जनावे तो धर्माऽधर्म्म के स्वरूप का ज्ञान किसी को भी नहीं हो, जो आत्मा के अनुकूल आचरण करते और प्रतिकूलाचरण को छोड़ देते हैं वे ही धर्माधर्म के बोध से युक्त होते हैं इतर जन नहीं ॥ ७७ ॥

वेदेनेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब वेद के जानने वाले कैसे होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७८॥

पदार्थ—जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाला जीव (ऋतेन) सत्य विज्ञानयुक्त (वेदेन) ईश्वरप्रकाशित चारों वेदों से (सुतासुतौ) प्रेरित अप्रेरित धर्माधर्म्म (रूपे) स्वरूपों को (व्यपिबत्) ग्रहण करे सो (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त जीव के (अन्धसः) अन्नादि के (विपानम्) विविध पान के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम देने हारे (सत्यम्) सत्यधर्माचरण में उत्तम (इन्द्रियम्) धन और (इदम्) जलादि (पयः) दुग्धादि (अमृतम्) मृत्युधर्मरहित विज्ञान (मधु) मधुरादि गुण युक्त पदार्थ और (इन्द्रियम्) ईश्वर के दिये हुए ज्ञान को प्राप्त होवे ॥ ७८ ॥

भावार्थ—वेदों को जानने वाले ही धर्माधर्म्म के जानने तथा धर्म के आचरण और अधर्म के त्याग से सुखी होने को समर्थ होते हैं ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

कैसा जन बल बढ़ा सकता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसᳬ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७९॥

पदार्थ—जो (परिस्रुतः) सब ओर से प्राप्त (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी राजा आदि जन (ऋतेन) यथार्थ व्यवहार से (सत्यम्) वर्त्तमान उत्तम ओषधियों में उत्पन्न हुए रस को (दृष्ट्वा) विचार पूर्वक देख के (शुक्रेण) शुभ भाव से (शुक्रम्) शीघ्र सुख करने वाले (पयः) पान करने योग्य (सोमम्) महौषधि के रस को तथा (रसम्) विद्या के आनन्द रस को (व्यपिबत्) विशेष करके पीता वा ग्रहण करता है वह (अन्धसः) शुद्ध अन्नादि के प्रापक (विपानम्) विशेष पान से युक्त (शुक्रम्) वीर्य वाले (इन्द्रियम्) विद्वान् ने सेवे हुए इन्द्रिय को और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के (इदम्) इस (पयः) अच्छे रस वाले (अमृतम्) मृत्युकारक रोग के निवारक (मधु) मधुरादि गुणयुक्त और (इन्द्रियम्) ईश्वर के बनाये हुए धन को प्राप्त होवे ॥ ७९ ॥

भावार्थ—जो वैद्यक शास्त्र की रीति से उत्तम ओषधियों के रसों को बना उचित समय जितना चाहिये उतना पीवे वह रोगों से पृथक् होके शरीर और आत्मा के बल के बढ़ाने को समर्थ होता है ॥ ७९ ॥

सीसेनेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सविता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्यों को भी आचरण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति । अश्विना यज्ञᳬ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥८०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (कवयः) विद्वान् (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग (सीसेन) सीसे के पात्र के समान कोमल (ऊर्णासूत्रेण) ऊन से सूत्र के कम्बल के तुल्य प्रयोजनसाधक (मनसा) अन्तःकरण से (तन्त्रम्) कुटुम्ब के धारण के समान यन्त्रकलाओं को (वयन्ति) रचते हैं जैसे (सविता) अनेक विद्या-व्यवहारों में प्रेरणा करने हारा पुरुष और (सरस्वती) उत्तम विद्यायुक्त स्त्री तथा (अश्विना) विद्याओं में व्याप्त पढ़ाने और उपदेश करने हारे दो पुरुष (यज्ञम्) संगति मेल करने योग्य व्यवहार को करते हैं जैसे (भिषज्यन्) चिकित्सा की इच्छा करता हुआ (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य के (रूपम्) स्वरूप का विधान करता है वैसे तुम भी किया करो ॥ ८० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग अनेक धातु और साधन विशेषों से वस्त्रादि को बना के अपने कुटुम्ब का पालन करते हैं तथा पदार्थों के मेलरूप यज्ञ को कर पथ्य ओषधिरूप पदार्थों को देके रोगों से छुड़ाते और शिल्प क्रियाओं से प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं वैसे अन्य लोग भी किया करें ॥ ८० ॥

तदित्यस्य शंख ऋषिः । वरुणो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन पुरुष यज्ञ करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः सꣳरराणाः ।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माꣳसमभवन्न लाजाः ॥८१

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (संरराणाः) अच्छे प्रकार देने (तिस्रः) पढ़ाने पढ़ने और परीक्षा करनेहारे तीन (देवताः) विद्वान् लोग (शचीभिः) उत्तम प्रज्ञा और कर्मों के साथ (बहुधा) बहुत प्रकारों से जिस यज्ञ को और (शष्पैः) दीर्घ लोगों के साथ (लोमानि) लोमों को (दधुः) धारण करें और (तत्) उस (अस्य) इस यज्ञ के (अमृतम्) नाशरहित (रूपम्) रूप को तुम लोग जानो यह (तोक्मभिः) बालकों से (न) नहीं अनुष्ठान करने योग्य और (अस्य) इसके मध्य (त्वक्) त्वचा (मांसम्) मांस और (लाजाः) भुंजा हुआ सूखा अन्न आदि होम करने योग्य (न, अभवत्) नहीं होता इसको भी तुम जानो ॥ ८१ ॥

भावार्थ—जो बहुत काल पर्यन्त डाढ़ी मूंछ धारणपूर्वक ब्रह्मचारी अथवा पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय भद्रजन हैं वे ही यज धातु के अर्थ को जानने योग्य अर्थात् यज्ञ करने योग्य होते हैं अन्य बालबुद्धि अविद्वान् नहीं हो सकते वह हवनरूप ऐसा है कि जिसमें मांस क्षार खट्टे से भिन्न पदार्थ वा तीखा आदि गुणरहित सुगन्धित पुष्ट मिष्ट तथा रोगनाशकादि गुणों के सहित हो वही हवन करने योग्य होवे ॥ ८१ ॥

तदित्यस्य शंख ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्रियों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशोऽअन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥८२॥

पदार्थ—जिसको (सरस्वती) श्रेष्ठ ज्ञानयुक्त पत्नी (वयति) उत्पन्न करती है (तत्) उस (पेशः) सुन्दर स्वरूप (अस्थि) हाड़ (मज्जानम्) मज्जा (अन्तरम्) अन्तःस्थ को (मासरैः) परिपक्व ओषधि के सारों से (कारोतरेण) जैसे कूप से सब कामों को वैसे (गवाम्) पृथिव्यादि को (त्वचि) त्वचारूप उपरि भाग में (रुद्रवर्तनी) प्राण के मार्ग के समान मार्ग से युक्त (भिषजा) वैद्यक विद्या के जानने हारे (अश्विना) विद्याओं में पूर्ण दो पुरुष (दधतः) धारण करें ॥ ८२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वैद्यक शास्त्र के जानने हारे पति लोग शरीर को आरोग्य करके स्त्रियों को निरन्तर सुखी करें वैसे ही विदुषी स्त्री लोग भी अपने पतियों को रोगरहित किया करें ॥ ८२ ॥

सरस्वतीत्यस्य शंख ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों के समान अन्यों को आचरण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥८३॥

पदार्थ—(सरस्वती) उत्तम विज्ञानयुक्त स्त्री (मनसा) विज्ञान से (वेम) उत्पत्ति के (न) समान जिस (पेशलम्) उत्तम अङ्गों से युक्त (दर्शतम्) देखने योग्य (वपुः) शरीर वा जल को तथा (तसरम्) दुःखों के क्षय करनेहारे (रोहितम्) प्रकट हुए (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त (रसम्) आनन्द को देने हारे रस के (न) समान (वसु) द्रव्य को (वयति) बनाती है जिन (नासत्याम्) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता दोनों से (नग्नहुः) शुद्ध को ग्रहण करनेहारा (धीरः) ध्यानवान् तेरा पति है उन दोनों को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ८३ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् अध्यापक और उपदेशक सार सार वस्तुओं का ग्रहण करते हैं वैसे ही सब स्त्री पुरुषों को ग्रहण करने योग्य है ॥ ८३ ॥

पयसेत्यस्य शंख ऋषिः । सोमो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अपने कुल को श्रेष्ठ करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः ॥
अपामतिं दुर्मतिं बाधमानाऽऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात् ॥८४॥

पदार्थ—जो विद्वान् लोग (अमतिम्) नष्टबुद्धि (दुर्मतिम्) वा दुष्टबुद्धि को (अप, बाधमानाः) हटाते हुए जो (ऊवध्यम्) ऐसा है कि जिससे परिमाण अंगुल आदि काटे जायं अर्थात् बहुत नाश करने का साधन (वातम्) प्राप्त (सब्वम्) सब पदार्थों में सम्बन्ध वाला (पयसा) जल दुग्ध वा (सुरया) सोमलता आदि ओषधि के रस से उत्पन्न हुए (मूत्रात्) मूत्राधार इन्द्रिय से (जनित्रम्) सन्तानोत्पत्ति का निमित्त (अमृतम्) अल्पमृत्यु रोगनिवारक (शुक्रम्) शुद्ध (रेतः) वीर्य है (तत्) उसको (आरात्) समीप से (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं वे ही प्रजा वाले होते हैं ॥८४॥

भावार्थ—जो मनुष्यों के दुर्गुण और दुष्ट सङ्गों को छोड़ कर व्यभिचार से दूर रहते हुए वीर्य को बढ़ा के सन्तानों को उत्पन्न करते हैं वे अपने कुल को प्रशंसित करते हैं ॥ ८४ ॥

इन्द्र इत्यस्य शंख ऋषिः । सविता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को रोग से पृथक् होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान । यकृत्
क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥८५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रोग से शरीर की रक्षा करने हारा (सविता) प्रेरक (इन्द्रः) रोगनाशक (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (भिषज्यन्) चिकित्सा करता हुआ (हृदयेन) अपने आत्मा से (सत्यम्) यथार्थ भाव को (जजान) प्रसिद्ध करता और (पुरोडाशेन) अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए अन्न और (वायव्यैः) पवनों में उत्तम अर्थात् सुख देने वाले मार्गों से (यकृत्) जो हृदय से दहिनी ओर में स्थित मांसपिण्ड (क्लोमानम्) कण्ठनाड़ी (मतस्ने) हृदय के दोनों ओर के हाड़ों और (पित्तम्) पित्त को (न, मिनाति) नष्ट नहीं करता वैसे इने सबों की हिंसा तुम भी मत करो ॥ ८५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सद्वैद्य लोग स्वयं रोगरहित होकर अन्यों के शरीर में हुए रोग को जानकर रोगरहित निरन्तर किया करें ॥८५॥

आन्त्राणीत्यस्य शंख ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥८६॥

पदार्थ—युक्ति वाले पुरुष को योग्य है कि (शचीभिः) उत्तम बुद्धि और कर्मों से (स्थालीः) दाल आदि पकाने के वर्त्तनों को अग्नि के ऊपर धर ओषधियों का पाक बना (मधु) उसमें सहत डाल भोजन करके (आन्त्राणि) उदरस्थ अन्न पकाने वाली नाड़ियों को (पिन्वमानाः) सेवन करते हुए प्रीति के हेतु (गुदाः) गुदेन्द्रियादि तथा (पात्राणि) जिनसे खाया पिया जाय उन पात्रों को (सुदुघा) दुग्धादि से कामना सिद्ध करने वाली (धेनुः) गाय के (न) समान (प्लीहा) रक्तशोधक लोहू का पिण्ड (श्येनस्य) श्येन पक्षी के तथा (पत्रम्) पांख के (न) समान (माता) और माता के (न) तुल्य (आसन्दी) सब ओर से रस प्राप्त कराने हारी (नाभिः) नाभि नाड़ी (उदरम्) उदर को पुष्ट करती है ॥ ८६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य लोग उत्तम संस्कार किये हुए उत्तम अन्न और रसों से शरीर को रोगरहित करके प्रयत्न करते हैं वे अभीष्ट सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ८६ ॥

कुम्भ इत्यस्य शंख ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोऽअन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधारऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥८७॥

पदार्थ—जो (कुम्भः) कलश के समान वीर्यादि धातुओं से पूर्ण (वनिष्ठुः) सम विभाग करने हारा (जनिता) सन्तानों का उत्पादक (प्लाशिः) अच्छे प्रकार भोजन का करने वाला (व्यक्तः) विविध पुष्टियों से प्रसिद्ध (शचीभिः) उत्तम कर्मों करके (शतधारः) सैकड़ों वाणियों से युक्त (उत्सः) जिससे गीला किया जाता हे उस कूप के समान (दुहे) पूर्त्ति करने हारे व्यवहार में स्थित के (न) समान पुरुष और जो (कुम्भी) कुम्भी क सदृश स्त्री है इन दोनों को योग्य है कि (पितृभ्यः) पितरों को (स्वधाम्) अन्न देवें और (यस्मिन्) जिस (अग्रे) नवीन (योन्याम्) गर्भाशय के (अन्तः) बीच (गर्भः) गर्भ धारण किया जाता उसकी निरन्तर रक्षा करें ॥ ८७ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमालंकार है । स्त्री और पुरुष वीर्य वाले पुरुषार्थी होकर अन्नादि से विद्वान् को प्रसन्न कर धर्म से सन्तानों की उत्पत्ति करें ॥ ८७ ॥

मुखमित्यस्य शंख ऋषिः । सरस्वती देवता । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मुखꣳ सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती ।
चप्यन्न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥८८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (जिह्वा) जिससे रस ग्रहण किया जाता है वह (सरस्वती) वाणी के समान स्त्री (अस्य) इस पति के (सतेन) सुन्दर अवयवों से विभक्त शिर के साथ (शिरः) शिर करे तथा (आसन्) मुख के समीप (पवित्रम्) पवित्र (मुखम्) मुख करे इसी प्रकार (अश्विना) गृहाश्रम के व्यवहार में व्याप्त स्त्री पुरुष दोनों (इत) ही वर्त्तें तथा जो (अस्य) इस रोग से (पायुः) रक्षक (भिषक्) वैद्य (वालः) और बालक के (न) समान (वस्तिः) वास करने का हेतु पुरुष (शेपः) उपस्थेन्द्रिय को (हरसा) बल से (तरस्वी) करने हारा होता है वह (चप्यम्) शांति करने के (न) समान (सत्) वर्त्तमान में सन्तानोत्पत्ति का हेतु होवे उस सबको यथावत् करे ॥ ८८ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष गर्भाधान के समय में परस्पर मिल कर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, आंख के साथ आंख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ का धारण करें जिससे कुरूप और वक्राङ्ग संतान न होवे ॥ ८८ ॥

अश्विभ्यामित्यस्य शंख ऋषिः । अश्विनौ देवते । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥८९॥

पदार्थ—जैसे (ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने हारे (अश्विभ्यां) बहुभोजी स्त्री पुरुषों के साथ कोई भी विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (उतानि) बिने हुए विस्तृत वस्त्र (पक्ष्माणि) और ग्रहण किये हुए अन्य रेशम और दुशाले आदि को (वसाते) ओढ़ें, पहनें वा जैसे आप भी (छागेन) अजा आदि के दूध के साथ और (शृतेन) पकाये हुए (हविषा) ग्रहण करने योग्य होम के पदार्थ के साथ (तेजः) प्रकाश-युक्त (अमृतम्) अमृतस्वरूप (चक्षुः) नेत्र को (कुवलैः) अच्छे शब्दों और (गोधूमैः) गेहूँ के साथ (शुक्रम्) शुद्ध (असितम्) काले (पेशः) रूप के (न) समान स्वीकार करें वैसे अन्य गृहस्थ भी करें ॥ ८९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे क्रिया किये हुए स्त्री पुरुष प्रियदर्शन प्रियभोजनशील पूर्णसामग्री को ग्रहण करने हारे होते हैं वैसे अन्य गृहस्थ भी होवें ॥ ८९ ॥

अविरित्यस्य शंख ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर योगी का कर्त्तव्य अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥९०॥

पदार्थ—जैसे (ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने हारों के साथ (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञानयुक्त स्त्री (बदरैः) बेरों के समान (उपवाकैः) सामीप्यभाव किया जाय जिनसे उन कर्मों से (जजान) उत्पत्ति करती है वैसे जो (वीर्याय) वीर्य के लिये (नसि) नासिका में (प्राणस्य) प्राण का (अमृतः) नित्य (पन्थाः) मार्ग वा (मेषः) दूसरे से स्पर्द्धा करने वाला और (अविः) जो रक्षा करता है उसके (न) समान (व्यानम्) सब शरीर में व्याप्त वायु (नस्यानि) नासिका के हितकारक धातु और (बर्हिः) बढ़ाने हारा उपयुक्त किया जाता है ॥ ९० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे धार्मिक न्यायाधीश प्रजा की रक्षा करता है वैसे ही प्राणायामादि से अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए प्राण योगी की मन दुःखों से रक्षा करते हैं जैसे विदुषी माता विद्या और अच्छी शिक्षा से अपने सन्तानों को बढ़ाती है वैसे अनुष्ठान किये हुए योग के अङ्ग योगियों को बढ़ाते हैं ॥ ९० ॥

इन्द्रस्येत्यस्य शंख ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याᳫं श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥९१॥

पदार्थ—जैसे (ग्रहाभ्याम्) जिनसे ग्रहण करते हैं उन व्यवहारों के साथ (ऋषभः) ज्ञानी पुरुष (बलाय) योग सामर्थ्य के लिये (यवाः) यवों के (न) समान (कर्णाभ्याम्) कानों से (श्रोत्रम्) शब्दविषय को (अमृतम्) नीरोग जल को और (कर्कन्धु) जिससे कर्म को धारण करें उसको (सारघम्) एक प्रकार के स्वाद से युक्त (मधु) सहत (बर्हिः) वृद्धिकारक व्यवहार और (भ्रुवि) नेत्र और ललाट के बीच में (केसराणि) विज्ञानों अर्थात् सुषुम्ना में प्राण वायु का निरोध कर ईश्वर विषयक विशेष ज्ञानों को (मुखात्) मुख से उत्पन्न करता है वैसे यह सब (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य का (रूपम्) स्वरूप (जज्ञे) उत्पन्न होता है ॥ ९१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जैसे निवृत्ति मार्ग में परम योगी योगबल से सब सिद्धियों को प्राप्त होता है वैसे ही अन्य गृहस्थ लोगों को भी प्रवृत्ति मार्ग में सब ऐश्वर्य्य को प्राप्त होना चाहिये ॥ ९१ ॥

आत्मन्नित्यस्य शंख ऋषिः । आत्मा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम । केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिᳫंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥९२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके (आत्मन्) आत्मा में (उपस्थे) समीप स्थित होने में (वृकस्य) भेड़िया के (लोम) बालों के (न) समान वा (व्याघ्रलोम) बाघ के बालों के (न) समान (मुखे) मुख पर (श्मश्रूणि) दाढ़ी और मूंछ (शीर्षन्) शिर में (केशाः) बालों के (न) समान (शिखा) शिखा (सिंहस्य) सिंह के (लोम) बालों के समान (त्विषिः) कान्ति तथा (इन्द्रियाणि) श्रोत्रादि शुद्ध इन्द्रियां है वह (यशसे) कीर्ति और (श्रियै) लक्ष्मी के लिये प्राप्त होने को समर्थ होता है ॥ ९२ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमालंकार है । जो परमात्मा का उपस्थान करते हैं वे यशस्वी कीर्तिमान् होते हैं जो योगाभ्यास करते हैं वे भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान एकान्त देश का सेवन करके पराक्रम वाले होते हैं जो पूर्ण ब्रह्मचर्य करते हैं वे क्षत्रिय भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान पराक्रम वाले होते हैं ॥ ९२ ॥

अङ्गानीत्यस्य शंख ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपᳫं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥९३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (भिषजा) उत्तम वैद्य के समान रोगरहित(अश्विना) सिद्ध साधक दो विद्वान् जैसे (सरस्वती) योगयुक्त स्त्री (आत्मन्) अपने आत्मा में स्थित हुई (अङ्गानि) योग के अङ्गों का अनुष्ठान करके (आत्मानम्) अपने आत्मा को (समधात्) समाधान करती है वैसे ही (अङ्गैः) योगाङ्गों से जो (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्य का (रूपम्) रूप है (तत्) उसका समाधान करें जैसे योग को (दधानाः) धारण करते हुए जन (शतमानम्) सौ वर्ष पर्यन्त (आयुः) जीवन को धारण करते हैं वैसे (चन्द्रेण) आनंद से (अमृतम्) अविनाशी (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा का धारण करो ॥ ९३ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे रोगी लोग उत्तम वैद्य को प्राप्त हो औषध और पथ्य का सेवन कर के रोगरहित होकर आनन्दित होते हैं वैसे योग को जानने की इच्छा करने वाले योगी लोग इस को प्राप्त हो योग के अङ्गों का अनुष्ठान कर और अविद्या आदि क्लेशों से दूर होके निरंतर सुखी होते हैं ॥९३॥

सरस्वतीत्यस्य शंख ऋषिः । सरस्वती देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्त्ति ।
अपाᳫं रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳫं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥९४॥

पदार्थ—हे योग करनेहारे पुरुष ! जैसे (सरस्वती) विदुषी (पत्नी) स्त्री अपने पति से (योन्याम्) योनि के (अन्तः) भीतर (सुकृतम्) पुण्यरूप (गर्भम्) गर्भ को (बिभर्त्ति) धारण करती है वा जैसे (वरुणः) उत्तम (राजा) राजा (अश्विभ्याम्) अध्यापक और उपदेशक के साथ (अपाम्) जलों के (रसेन) रस से (अप्सु) प्राणों में (साम्ना) मेल के (न) समान सुख से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (श्रियै) लक्ष्मी के लिये (जनयन्) प्रकट करता हुआ विराजमान होता है वैसे तू हो ॥ ९४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे धर्मपत्नी पति की सेवा करती है और जैसे राजा साम दाम आदि से राज्य के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे ही विद्वान् योग के उपदेश की सेवा कर योग के अङ्गों से योग की सिद्धियों को बढ़ाया करे ॥ ९४ ॥

तेज इत्यस्य शंख ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

तेजः पशूनाᳫं हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।
अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोमऽ इन्दुः ॥९५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (सुतासुताभ्याम्) सिद्ध असिद्ध किये हुए(भिषजा) वैद्यक विद्या के जानने हारे (अश्विभ्याम्) विद्या में व्याप्त दो विद्वान् (पशूनाम्) गवादि पशुओं के सम्बन्ध से (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त होने वाले (पयसा) दूध से (तेजः) प्रकाशरूप (इन्द्रियावत्) कि जिसमें उत्तम इंद्रिय होते हैं उस (सारघम्) उत्तम स्वादयुक्त (मधु) मधुर (हविः) खाने पीने योग्य (दुग्धम्) दुग्धादि पदार्थ और (सरस्वत्या) विदुषी स्त्री से (अमृतः) मृत्युधर्मरहित नित्य रहने वाला (सोमः) ऐश्वर्य्य (इन्दुः) और उत्तम स्नेहयुक्त पदार्थ उत्पन्न किया जाता है, वे योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ९५ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गौ के चराने वाले गोपाल लोग गौ आदि पशुओं की रक्षा करके दूध आदि से संतुष्ट होते हैं वैसे ही मन आदि इंद्रियों को दुष्टाचार से पृथक् संरक्षण करके योगी लोगों को आनन्दित होना चाहिये ॥ ९५ ॥

इस अध्याय में सोम आदि पदार्थों के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का उन्नीसवां (१९) अध्याय पूरा हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ विंशाऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

क्षत्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । द्विपदा विराड् गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब बीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के आदि से राजधर्मविषय का वर्णन करते हैं—

क्ष॒त्रस्य॒ योनि॑रसि क्ष॒त्रस्य॒ नाभि॑रसि ।

मा त्वा॑ हिꣳसी॒न्मा मा॑ हिꣳसीः ॥१॥

पदार्थ—हे सभापते ! जिस से तू (क्षत्रस्य) राज्य का (योनिः) निमित्त (असि) है (क्षत्रस्य) राजकुल का (नाभिः) नाभि के समान जीवनहेतु (असि) है इससे (त्वा) तुझ को कोई भी (मा, हिंसीत्) मत मारे तू (मा) मुझे (मा, हिंसीः) मत मारे ॥ १ ॥

भावार्थ—स्वामी और भृत्यजन परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा करें कि राजपुरुष प्रजापुरुषों और प्रजापुरुष राजपुरुषों की निरन्तर रक्षा करें जिससे सब के सुख की उन्नति होवे ॥ १ ॥

निषसादेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

निष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒स्वा ।

साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतुः॑ मृ॒त्योः पा॑हि वि॒द्योत्पा॑हि ॥२॥

पदार्थ—हे सभापति ! आप (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और कर्मयुक्त (धृतव्रतः) सत्य का धारण करने हारे (वरुणः) उत्तम स्वभावयुक्त होते हुए (साम्राज्याय) भूगोल में चक्रवर्त्ती राज्य करने के लिए (पस्त्यासु) न्यायघरों में (आ, नि, षसाद) निरन्तर स्थित हूजिये तथा हम वीरों की (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) रक्षा कीजिये और (विद्योत्) प्रकाशमान अग्नि अस्त्रादि से (पाहि) रक्षा कीजिये ॥२॥

भावार्थ—जो धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला न्यायाधीश सभापति होवे सो चक्रवर्त्ती राज्य और प्रजा की रक्षा करने को समर्थ होता है अन्य नहीं ॥ २ ॥

देवस्येत्यस्याश्विनावृषी । सभेशो देवता । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । अ॒श्विनो॒र्भैष॑ज्येन॒ तेज॑से ब्रह्मवर्च॒साया॒भिषि॑ञ्चामि॒ । सर॑स्वत्यै॒ भैष॑ज्येन वी॒र्या॒यान्नाद्या॑यामि षि॑ञ्चामीन्द्र॑स्येन्द्रि॒येण॒ बला॑य श्रि॒यै यश॑से॒ऽभि षि॑ञ्चामि ॥३॥

पदार्थ—हे शुभ लक्षणों से युक्त पुरुष ! (सवितुः) सकल ऐश्वर्य्य के अधिष्ठाता (देवस्य) सब ओर से प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए जगत् में (अश्विनोः) सम्पूर्ण विद्या में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक के (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम से (पूष्णः) पूर्ण बल वाले वायुवत् वर्त्तमान पुरुष के (हस्ताभ्याम्) उत्साह और पुरुषार्थ से (अश्विनोः) वैद्यक विद्या में व्याप्त पढ़ाने और ओषधि करने हारे के (भैषज्येन) वैद्यकपन से (तेजसे) प्रगल्भता के लिये (ब्रह्मवर्चसाय) वेदों के पढ़ने के लिये (त्वा) तुझ को राज प्रजाजन में (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ (भैषज्येन) ओषधियों के भाव से (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिक्षा की हुई वाणी (वीर्याय) पराक्रम और (अन्नाद्याय) अन्नादि की प्राप्ति के लिये (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य वाले के (इन्द्रियेण) धन से (बलाय) पुष्ट होने (श्रियै) सुशोभायुक्त राजलक्ष्मी और (यशसे) पुण्य कीर्ति के लिए (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस जगत् में धर्मयुक्त कर्मों का प्रकाश करने के लिये शुभ गुण कर्म और स्वभाव वाले जन को राज्य पालन करने के लिये अधिकार देवें ॥ ३ ॥

कोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कोऽसि क॒त॒मोऽसि॒ कस्मै॑ त्वा॒ काय॑ त्वा ।

सुश्लो॑क॒ सुम॑ङ्गल॒ सत्य॑राजन् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (सुश्लोक) उत्तम कीर्ति और सत्य बोलने हारे (सुमङ्गल) प्रशस्त मङ्गलकारी कर्मों के अनुष्ठान करने और (सत्यराजन्) सत्यन्याय के प्रकाश करने हारा जो तू (कः) सुखस्वरूप (असि) है और (कतमः) अतिसुखकारी (असि) है इससे (कस्मै) सुखस्वरूप परमेश्वर के लिये (त्वा) तुझ को तथा (काय) परमेश्वर जिसका देवता उस मन्त्र के लिये (त्वा) तुझ को मैं अभिषेकयुक्त करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (अभि, षिञ्चामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है । जो सब मनुष्यों के मध्य में अतिप्रशंसनीय होवे वह सभापतित्व के योग्य होता है ॥ ४ ॥

शिरो म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

शिरो॑ मे॒ श्रीर्यशो॒ मुखं॒ त्विषिः॒ केशा॑श्च॒ श्मश्रू॑णि ।

राजा॑ मे प्रा॒णोऽअ॒मृत॑ꣳ स॒म्राट् चक्षु॑र्वि॒राट् श्रोत्र॑म् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! राज्य में अभिषेक को प्राप्त हुए (मे) मेरी (श्रीः) शोभा और धन (शिरः) शिरस्थानी (यशः) सत्कीर्ति का कथन (मुखम्) मुखस्थानी (त्विषिः) न्याय के प्रकाश के समान (केशाः) केश (च) और (श्मश्रूणि) दाढ़ी मूंछ (राजा) प्रकाशमान (मे) मेरा (प्राणः) प्राण आदि वायु (अमृतम्) मरणधर्मरहित चेतन ब्रह्म (सम्राट्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (चक्षुः) नेत्र (विराट्) विविधशास्त्र-श्रवणयुक्त (श्रोत्रम्) कान है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राज्य में अभिषिक्त राजा होवे सो शिर आदि अवयवों को शुभ कर्मों में प्रेरित रक्खे ॥ ५ ॥

जिह्वा म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जि॒ह्वा मे॑ भ॒द्रं वाङ्महो॒ मनो॑ म॒न्युः स्व॒राड् भामः॑ ।

मोदाः॑ प्र॒मो॒दा अ॒ङ्गुली॒रङ्गा॑नि मि॒त्रं मे॒ सहः॑ ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (मे) मेरी (जिह्वा) जीभ (भद्रम्) कल्याणकारक अन्नादि के भोग करने हारी (वाक्) जिससे बोला जाता है वह वाणी (महः) बड़ी पूजनीय वेदशास्त्र के बोध से युक्त (मनः) विचार करने वाला अन्तःकरण (मन्युः) दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करने हारा (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान बुद्धि (भामः) जिससे प्रकाश होता है (मोदाः) हर्ष उत्साह (प्रमोदा) प्रकृष्ट आनन्द के योग (अङ्गुलीः) अङ्गुलियां (अङ्गानि) और अन्य सब अङ्ग (मित्रम्) सखा और (सहः) सहन (मे) मेरे सहायक हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष ब्रह्मचर्य जितेन्द्रिय और धर्माचरण से पथ्य आहार करने, सत्य वाणी बोलने, दुष्टों में क्रोध का प्रकाश करने हारे आनन्दित हो अन्यों को आनन्दित करते हुए पुरुषार्थी सब के मित्र और बलिष्ठ होवें वे सर्वदा सुखी रहें ॥ ६ ॥

बाहूइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

बा॒हू मे॒ बल॑मिन्द्रि॒यꣳ हस्तौ॑ मे॒ कर्म॑ वी॒र्य॑म् ।

आ॒त्मा क्ष॒त्रमुरो॒ मम॑ ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (मे) मेरा (बलम्) बल और (इन्द्रियम्) धन (बाहू) भुजारूप (मे) मेरा (कर्म) कर्म और (वीर्यम्) पराक्रम (हस्तौ) हाथ रूप (मम) मेरा (आत्मा) स्वस्वरूप और (उरः) हृदय (क्षत्रम्) अति दुःख से रक्षा करने हारा हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि आत्मा अन्तःकरण और बाहुओं के बल को उत्पन्न कर सुख बढ़ावें ॥ ७ ॥

पृष्ठीरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पृ॒ष्ठीर्मे॑ रा॒ष्ट्रमु॒दर॒मꣳसौ॑ ग्री॒वाश्च॒ श्रोणी॑ ।

ऊ॒रूऽअ॑र॒त्नी जानु॑नी वि॒शो॒ मेऽङ्गा॑नि स॒र्वतः॑ ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (मे) मेरा (राष्ट्रम्) राज्य (पृष्ठी) पीठ (उदरम्) पेट (अंसौ) स्कन्ध (ग्रीवाः) कण्ठप्रदेश (श्रोणीः) कटिप्रदेश (ऊरू) जांघ (अरत्नी) भुजाओं का मध्यप्रदेश और (जानुनी) गोड़ का मध्यप्रदेश तथा (सर्वतः) सब ओर से (च) और (अङ्गानि) अङ्ग (मे) मेरे (विशः) प्रजाजन हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो अपने अङ्गों के तुल्य प्रजा को जाने वही राजा सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ८ ॥

नाभिर्म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

नाभि॑र्मे चि॒त्तं वि॒ज्ञानं॑ पा॒युर्मेऽप॑चितिर्भ॒सत् । आ॒न॒न्द॒न॒न्दाव॒ण्डौ मे॑ भगः सौभा॑ग्यं॒ पसः॑ । जङ्घा॑भ्यां प॒द्भ्यां धर्मो॑ऽस्मि वि॒शि राजा॒ प्रति॑ष्ठितः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (मे) मेरी (चित्तम्) स्मरण करने हारी वृत्ति (नाभिः) मध्यप्रदेश (विज्ञानम्) विशेष वा अनेक ज्ञान (पायुः) मूलेन्द्रिय (मे) मेरी (अपचितिः) प्रजाजनक (भसत्) योनि (आण्डौ) आण्ड के आकार वृषणावयव (आनन्दनन्दौ) संभोग के सुख से आनन्दकारक (मे) मेरा (भगः) ऐश्वर्य्य (पसः) लिंग और (सौभाग्यम्) पुत्र पौत्रादि युक्त होवे इसी प्रकार मैं (जङ्घाभ्याम्) जङ्घा और (पद्भ्याम्) पगों के साथ (विशि) प्रजा में (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा को प्राप्त (धर्मः) पक्षपातरहित न्यायधर्म के समान (राजा) राजा (अस्मि) हूँ जिससे तुम लोग मेरे अनुकूल रहो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सब अङ्गों से शुभ कर्म करता है सो धर्मात्मा होकर प्रजा में सत्कार के योग्य उत्तम प्रतिष्ठित राजा होवे ॥ ९ ॥

प्रतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । विराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्रति॑ क्ष॒त्रे प्रति॑ तिष्ठामि रा॒ष्ट्रे प्रत्यश्वे॑षु॒ प्रति॑ तिष्ठामि॒ गोषु॑ । प्रत्यङ्गे॑षु॒ प्रति॑ तिष्ठाम्या॒त्मन्प्रति॑ प्रा॒णेषु॒ प्रति॑ तिष्ठामि पु॒ष्टे प्रति॒ द्यावा॑पृथि॒व्योः प्रति॑ तिष्ठामि य॒ज्ञे ॥१०॥

पदार्थ—प्रजाजनों में प्रतिष्ठा को प्राप्त मैं राजा धर्मयुक्त व्यवहार से (क्षत्रे) क्षय से रक्षा करने हारे क्षत्रियकुल में (प्रति) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता (राष्ट्रे) राज्य में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता हूँ (अश्वेषु) घोड़े आदि वाहनों में (प्रति) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता (गोषु) गौ और पृथिवी आदि पदार्थों में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ (अङ्गेषु) राज्य के अंगों में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (आत्मन्) आत्मा में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ (प्राणेषु) प्राणों में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (पुष्टे) पुष्टि करने में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ (द्यावापृथिव्योः) सूर्य चन्द्र के समान न्याय प्रकाश और पृथिवी में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (यज्ञे) विद्वानों की सेवा सङ्ग और विद्यादानादि क्रिया में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ ॥ १० ॥

भावार्थ—जो राजा प्रिय अप्रिय को छोड़ न्यायधर्म से समस्त प्रजा का शासन सब राजकर्मों में चाररूप आंखों वाला अर्थात् राज्य के गुप्त हाल को देने वाले ही जिस के नेत्र के समान वैसा हो मध्यस्थ वृत्ति से सब प्रजाओं का पालन कर करा के निरन्तर विद्या की शिक्षा को बढ़ावे वही सब का पूज्य होवे ॥ १० ॥

त्रया इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । उपदेशका देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उपदेशक विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

त्रया दे॒वा एका॑दश त्रयस्त्रि॒ꣳशाः सु॒राध॑सः ।
बृह॒स्पति॑पुरोहिता दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे । दे॒वा दे॒वैर॑वन्तु मा ॥११॥

पदार्थ—जो (त्रयाः) तीन प्रकार के (देवाः) दिव्यगुण वाले (बृहस्पतिपुरोहिताः) जिन में कि बड़ों का पालन करने हारा सूर्य्य प्रथम धारण किया हुआ है (सुराधसः) जिन से अच्छे प्रकार कार्यों की सिद्धि होती वे (एकादश) ग्यारह (त्रयस्त्रिंशाः) तेंतीस दिव्यगुण वाले पदार्थ (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने हारे (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (सवे) परमैश्वर्य्ययुक्त उत्पन्न किये हुए जगत् में हैं उन (देवैः) पृथिव्यादि तेंतीस पदार्थों से सहित (मा) मुझ को (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) रक्षा और बढ़ाया करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र ये आठ और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय तथा ग्यारहवां जीवात्मा, बारह महीने, बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों की उन्नति करते हैं वे सर्वोपकारक होते हैं ॥ ११ ॥

प्रथमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र॒थ॒मा द्वि॒तीयै॑र्द्वि॒तीया॑स्तृ॒तीयै॑स्तृ॒तीयाः॑ स॒त्येन॑ स॒त्यं य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञो यजु॑र्भि॒र्यजू॑ꣳषि॒ साम॑भिः॒ सामा॑न्यृ॒ग्भिर्ऋचः॑ पुरो॒ऽनु॒वा॒क्याभिः पुरो॒ऽनु॒वा॒क्या या॒ज्याभि॑र्या॒ज्या व॑षट्का॒रैर्व॑षट्का॒रा आहु॑तिभि॒राहु॑तयो मे॒ कामा॒न्त्सम॑र्धयन्तु॒ भूः स्वाहा॑ ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (प्रथमाः) आदि में कहे पृथिव्यादि आठ वसु (द्वितीयैः) दूसरे ग्यारह प्राण आदि रुद्रों के साथ (द्वितीयाः) दूसरे ग्यारह रुद्र (तृतीयैः) तीसरे बारह महीनों के साथ (तृतीयाः) तीसरे महीने (सत्येन) नाशरहित कारण के सहित (सत्यम्) नित्यकारण (यज्ञेन) शिल्पविद्यारूप क्रिया के साथ (यज्ञः) शिल्पक्रिया आदि कर्म (यजुर्भिः) यजुर्वेदोक्त क्रियाओं से युक्त (यजूंषि) यजुर्वेदोक्त क्रिया (सामभिः) सामवेदोक्त विद्या के साथ (सामानि) सामवेदस्थ क्रिया आदि (ऋग्भिः) ऋग्वेदस्थ विद्या क्रियाओं के साथ (ऋचः) ऋग्वेदस्थ व्यवहार (पुरोनुवाक्याभिः) अथर्ववेदोक्त प्रकरणों के साथ (पुरोनुवाक्याः) अथर्ववेदस्थ व्यवहार (याज्याभिः) यज्ञ के सम्बन्ध में जो क्रिया है उन के साथ (याज्याः) यज्ञक्रिया (वषट्कारैः) उत्तम कर्मों के साथ (वषट्काराः) उत्तम क्रिया (आहुतिभिः) होम क्रियाओं के साथ (आहुतयः) आहुतियां (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ ये सब (भूः) भूमि में (मे) मेरी (कामान्) इच्छाओं को (समर्धयन्तु) अच्छे प्रकार सिद्ध करें वैसे मुझ को आप लोग बोध कराओ ॥१२॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक प्रथम वेदों को पढ़ा पृथिव्यादि पदार्थ विद्याओं को जना कार्य कारण के सम्बन्ध से उन के गुणों को साक्षात् करा के हस्तक्रिया से सब मनुष्यों को कुशल अच्छे प्रकार किया करें ॥ १२ ॥

लोमानीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ्म॒ आन॑ति॒राग॑तिः ।
मा॒ꣳसं म॒ उप॑नति॒र्वस्व॒स्थि म॒ज्जा म॒ आन॑तिः ॥१३॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जैसे (मम) मेरे (लोमानि) रोम वा (प्रयतिः) जिस से प्रयत्न करते हैं वा (मे) मेरी (त्वक्) त्वचा (आनतिः) वा जिससे सब ओर से नम्र होते हैं वा (मांसम्) मांस वा (आगतिः) आगमन तथा (मे) मेरा (वसु) द्रव्य (उपनतिः) वा जिससे नम्र होते हैं (मे) मेरे (अस्थि) हाड़ और (मज्जा) हाड़ों के बीच का पदार्थ (आनतिः) वा अच्छे प्रकार नमन होता हो वैसे तुम लोग प्रयत्न किया करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—अध्यापक उपदेशक लोगों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे सुशिक्षायुक्त सब पुरुष, सब कन्या सुन्दर अङ्ग और स्वभाव वाले दृढ़, बलयुक्त, धार्मिक विद्याओं से युक्त होवें ॥ १३ ॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यद्दे॑वा देवहेड॑नं॒ देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम् ।
अ॒ग्निर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यत्) जो (वयम्) हम (देवाः) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् तथा अन्य (देवासः) विद्वान् लोग परस्पर (देवहेडनम्) विद्वानों का अनादर (चकृम) करें (तस्मात्) उस (विश्वात्) समस्त (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्ट व्यसन से (अग्निः) पावक के समान सब विद्याओं में प्रकाशमान आप (मा) मुझ को (मुञ्चतु) पृथक् करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो कभी अकस्मात् भ्रान्ति से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे तो उसी समय क्षमा करावे जैसे अग्नि सब पदार्थों में प्रविष्ट हुआ सब को अपने स्वरूप में स्थिर करता है वैसे विद्वान् को चाहिये कि सत्य के उपदेश से असत्याचरण से पृथक् और सत्याचार में प्रवृत्त करके सब को धार्मिक करें ॥ १४ ॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वायुर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यदि॒ दिवा॒ यदि॒ नक्त॒मेना॑ꣳसि चकृ॒मा व॒यम् ।
वा॒युर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यदि) जो (दिवा) दिवस में (यदि) जो (नक्तम्) रात्रि में (एनांसि) अज्ञात अपराधों को (वयम्) हम लोग (चकृम) करें (तस्मात्) उस (विश्वात्) समग्र (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्ट व्यसन से (मा) मुझे (वायुः) वायु के समान वर्त्तमान आप्त (मुञ्चतु) पृथक् करे ॥१५॥

भावार्थ—जो दिवस और रात्रि में अज्ञान से पाप करे उस पाप से भी सब शिष्यों को शिक्षक लोग पृथक् किया करें ॥१५॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यदि॒ जाग्र॒द्यदि॒ स्वप्न॒ऽएना॑ꣳसि॒ चकृ॒मा व॒यम् ।
सूर्यो॑ मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यदि) जो (जाग्रत्) जाग्रत अवस्था और (यदि) जो (स्वप्ने) स्वप्नावस्था में (एनांसि) अपराधों को (वयम्) हम (चकृम) करें (तस्मात्) उस (विश्वात्) समग्र (एनसः) पाप और (अंहसः) प्रमाद से (सूर्यः) सूर्य के समान वर्त्तमान आप (मा) मुझ को (मुञ्चतु) पृथक् करें ॥१६॥

भावार्थ—जिस किसी दुष्ट चेष्टा को मनुष्य लोग करें विद्वान् लोग उस चेष्टा से उन सब को शीघ्र निवृत्त करें ॥१६॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याऽधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (वयम्) हम लोग (यत्) जो (ग्रामे) गांव में (यत्) जो (अरण्ये) जङ्गल में (यत्) जो (सभायाम्) सभा में (यत्) जो (इन्द्रिये) मन में (यत्) जो (शूद्रे) शूद्र में (यत्) जो (अर्ये) स्वामी वा वैश्य में (यत्) जो (एकस्य) एक के (अधि) ऊपर (धर्मणि) धर्म में तथा (यत्) जो और (एनः) अपराध (चकृम) करते हैं वा करने वाले हैं (तस्य) उस सब का आप (अवयजनम्) छुड़ाने के साधन है इससे महाशय (असि) हैं॥१७॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि कभी कहीं पापाचरण न करें जो कथंचित् करते बन पड़े तो उस सब को अपने कुटुम्ब और विद्वान् के सामने और राजसभा में सत्यता से कहें जो पढ़ाने और उपदेश करने हारे स्वयं धार्मिक होकर अन्य सब को धर्माचरण में युक्त करते हैं उनसे अधिक मनुष्यों को सुभूषित करने हारा दूसरा कौन है ॥१७॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वरुणो देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यदापोऽअघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥१८॥

पदार्थ—हे (वरुण) उत्तम प्रीति कराने और (देव) दिव्य बोध का देने हारा तू (यत्) जो (आपः) प्राण (अघ्न्या) मारने को अयोग्य गौएं (इति) इस प्रकार से वा हे (वरुण) सर्वोत्कृष्ट ! (इति) इस प्रकार से हम लोग (शपामहे) उलाहना देते हैं (ततः) उस अविद्यादि क्लेश और अधर्माचरण से (नः) हम को (मुञ्च) अलग कर हे (अवभृथ) ब्रह्मचर्य और विद्या से निष्णात (निचुम्पुण) मन्द गमन करने हारे ! तू (निचेरुः) निश्चित आनन्द का देने हारा और (निचुम्पुणः) निश्चित आनन्द युक्त (असि) है इस हेतु से (पुरुराव्णः) बहु दुःख देने हारी (रिषः) हिंसा से (पाहि) रक्षा कर (देवकृतम्) जो विद्वानों का किया (एनः) अपराध है उस को (देवैः) विद्वानों के साथ (अवायक्षि) नाश करता है जो (मर्त्यकृतम्) मनुष्यों का किया अपराध है उस को (मर्त्यैः) मनुष्यों के साथ से (अव) छुड़ा देता है ॥१८॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों को शिष्य जन ऐसे सत्यवादी सिद्ध करने चाहियें कि जो इन को कहीं शपथ करना न पड़े जो जो मनुष्यों को श्रेष्ठ कर्म का आचरण करना हो वह वह सब को आचरण करना चाहिये और अधर्मरूप हो वह किसी को न करना चाहिये ॥१८॥

समुद्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवताः । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः। सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१९॥

पदार्थ—हे शिष्य ! (ते) तेरा (हृदयम्) हृदय (समुद्रे) आकाशस्थ (अप्सु) प्राणों के (अन्तः) बीच में हो (त्वा) तुझ को (ओषधीः) ओषधियां (सं, विशन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (उत) और (आपः) प्राण वा जल अच्छे प्रकार प्रविष्ट हों जिससे (नः) हमारे लिये (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधि (सुमित्रियाः) उत्तम मित्र के समान सुखदायक (सन्तु) हों (यः) जो (अस्मान्) हमारा (द्वेष्टि) द्वेष करे (यं, च) और जिसका (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उसके लिये ये सब (दुर्मित्रियाः) शत्रुओं के समान (सन्तु) होवें ॥१९॥

भावार्थ—अध्यापक लोगों को इस प्रकार करने की इच्छा करना चाहिये जिससे शिक्षा करने योग्य मनुष्य अवकाशरहित प्राण तथा ओषधियों की विद्या जानने हारे शीघ्र हों ओषधि, जल और प्राण अच्छे प्रकार सेवा किये हुए मित्र के समान विद्वानों की पालना करें और अविद्वान् लोगों को शत्रु के समान पीड़ा देवें उनका सेवन और उनका त्याग अवश्य करें ॥ १९ ॥

द्रुपदादिवेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥२०॥

पदार्थ—हे (आपः) प्राण वा जलों के समान निर्मल विद्वान् लोगो ! आप (द्रुपदादिव, मुमुचानः) वृक्ष से जैसे फल, रस, पुष्प, पत्ता आदि अलग होते वा जैसे (स्विन्नः) स्वेदयुक्त मनुष्य (स्नातः) स्नान करके (मलादिव) मल से छूटता है वैसे वा (पवित्रेणेव) जैसे पवित्र करने वाले पदार्थ से (पूतम्) शुद्ध (आज्यम्) घृत होता है वैसे (मा) मुझ को (एनसः) अपराध से पृथक करके (शुन्धन्तु) शुद्ध करें ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । अध्यापक उपदेशक लोगों को योग्य है कि इस प्रकार सब को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिससे वे शुद्ध आत्मा, नीरोग शरीर और धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों ॥२०॥

उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब प्रकृति विषय में उपासना विषय कहा है—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से परे (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (सूर्यम्) सूर्य लोक वा चराचर के आत्मा परमेश्वर को (परि) सब ओर से (पश्यन्तः) देखते हुए (देवत्रा) दिव्य गुण वाले देवों में (देवम्) उत्तम सुख के देने वाले (स्वः) सुखस्वरूप (उत्तरम्) सब से सूक्ष्म (उत्तमम्) उत्कृष्ट स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (उदगन्म) उत्तमता से प्राप्त हों वैसे ही तुम लोग भी इस को प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के समान स्वप्रकाश सब आत्माओं का प्रकाशक महादेव जगदीश्वर है उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥२१ ॥

अप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि। पयस्वानग्नऽआगमन्तं मा सꣳ सृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥२२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् ! जो (पयस्वान्) प्रशंसित जल की विद्या से युक्त मैं तुझ को (आ, अगमम्) प्राप्त होऊं वा (अद्य) आज (रसेन) मधुरादि रस से युक्त (अपः) जलों को (अन्वचारिषम्) अनुकूलता से पान करूं (तम्) उस (मा) मुझ को (वर्चसा) साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन (प्रजया) प्रजा (च) और (धनेन) धन से (च) भी (सं, सृज) सम्यक् संयुक्त कर जिससे ये लोग और मैं सब हम सुख के लिये (समसृक्ष्महि) संयुक्त होवें ॥२२॥

भावार्थ—यदि विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश करने से अन्य लोगों को विद्वान् करें तो वे भी नित्य अधिक विद्या वाले हों ॥२२॥

एधोसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समिद्देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब प्रकरणगत विषय में फिर उपासना विषय कहते हैं—

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। समाववर्त्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (एधः) बढ़ाने हारे (असि) हैं (समित्) जैसे अग्नि का प्रकाशक इन्धन है वैसे मनुष्यों के आत्मा का प्रकाश करने हारे (असि) हैं और (तेजः) तीव्रबुद्धि वाले (असि) हैं इससे (तेजः) ज्ञान के प्रकाश को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कीजिये जो आप सर्वत्र (समाववर्त्ति) अच्छे प्रकार व्याप्त हो जिन आपने (पृथिवी) भूमि और (उषाः) उषा (सम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न की (सूर्यः) सूर्य (सम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् (सम्) उत्पन्न किया (उ) उसी (वैश्वानरज्योतिः) विश्व के नायक प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होके हम लोग (एधिषीमहि) नित्य बढ़ा करें जैसे मैं (स्वाहा) सत्य वाणी वा क्रिया से (भूः) सत्ता वाली प्रकृति (विभून्) व्यापक पदार्थ और (कामान्) कामों को (व्यश्नवै) प्राप्त होऊं और सुखी (भूयासम्) होऊं (उ) और वैसे तुम भी सिद्धकाम और सुखी होओ ॥२३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस शुद्ध सर्वत्र व्यापक सब के प्रकाशक जगत् के उत्पादन, धारण, पालन और प्रलय करन हारे ब्रह्म की उपासना करके तुम लोग जैसे आनन्दित होते हो वैसे इस को प्राप्त होके हम भी आनन्दित होवें आकाश काल और दिशाओं को भी व्यापक जानें ॥२३॥

अभ्यादधामीत्यस्याश्वतराश्विऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम् ॥२४॥

पदार्थ—हे (व्रतपते) सत्यभाषणादि कर्मों के पालन करने हारे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर ! (त्वयि) तुझ में स्थिर होके (अहम्) मैं (समिधम्) अग्नि में समिधा के समान ध्यान को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं जिससे (व्रतम्) सत्यभाषणादि व्यवहार (च) और (श्रद्धाम्) सत्य के धारण करने वाले नियम को

को (च) भी (उपैमि) प्राप्त होता हूं (दीक्षितः) ब्रह्मचर्य्यादि दीक्षा को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त हुआ मैं (त्वा) तुझे (इन्धे) प्रकाशित करता हूं ॥२४॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर ने करने के लिये आज्ञा दिये हुए सत्यभाषणादि नियमों को धारण करते हैं वे अतुल श्रद्धा को प्राप्त होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को करने में समर्थ होते हैं ॥२४॥

यत्र ब्रह्मेत्यस्याश्वतराश्विऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यत्र॒ ब्रह्म॑ च क्ष॒त्रं च॑ स॒म्यञ्चौ॒ चर॑तः स॒ह ।

तँल्लो॒कं पुण्यं॒ प्रज्ञे॑षं॒ यत्र॑ दे॒वाः स॒हाग्निना॑ ॥२५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (यत्र) जिस परमात्मा में (ब्रह्म) ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों का कुल (च) और (क्षत्रम्) विद्या शौर्यादि गुणयुक्त क्षत्रियकुल ये दोनों (सह) साथ (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार प्रीतियुक्त (च) तथा वैश्य आदि के कुल (चरतः) मिलकर व्यवहार करते हैं और (यत्र) जिस ब्रह्म में (देवाः) दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि लोक वा विद्वान् जन (अग्निना) बिजुली रूप अग्नि के(सह) साथ वर्तते हैं (तम्) उस (लोकम्) देखने के योग्य (पुण्यम्) सुखस्वरूप निष्पाप परमात्मा को (प्र, ज्ञेषम्) जानूं वैसे तुम लोग भी इस को जानो ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो ब्रह्म एक चेतनमात्र स्वरूप सब का अधिकारी पापरहित ज्ञान से देखने योग्य सर्वत्र व्याप्त सब के साथ वर्त्तमान है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है ॥२५॥

यत्रेत्यस्याश्वतराश्विऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यत्रेन्द्र॑श्च वा॒युश्च॑ स॒म्यञ्चौ॒ चर॑तः स॒ह ।

तँल्लो॒कं पुण्यं॒ प्रज्ञे॑षं॒ यत्र॑ से॒दिर्न वि॒द्यते॑ ॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (यत्र) जिस ईश्वर में (इन्द्रः) सर्वत्रव्याप्त बिजुली (च) और (वायुः) धनञ्जय आदि वायु (सह) साथ (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार मिले हुए (चरतः) विचरते हैं (च) और (यत्र) जिस ब्रह्म में (सेदिः) नाश वा उत्पत्ति (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है (तम्) उस (पुण्यम्) पुण्य से उत्पन्न हुए ज्ञान से जानने योग्य (लोकम्) सब को देखने हारे परमात्मा को (प्र ज्ञेषम्) जानूं वैसे इस को तुम लोग भी जानो ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो कोई विद्वान् वायु बिजुली और आकाशादि की सीमा को जानना चाहे तो अन्त को प्राप्त नहीं होता जिस ब्रह्म में ये सब आकाशादि विभु पदार्थ भी व्याप्य हैं उस ब्रह्म के अन्त के जानने को कौन समर्थ हो सकता है ॥२६॥

अंशुनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराडानुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अ॒ꣳशुना॑ ते अ॒ꣳशुः पृ॑च्यतां॒ परु॑षा॒ परुः॑ ।

ग॒न्धस्ते॒ सोम॑मवतु॒ मदा॑य॒ रसो॒ऽअच्यु॑तः ॥२७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ते) तेरे (अंशुना) भाग से (अंशुः) भाग और (परुषा) मर्म से (परुः) मर्म (पृच्यताम्) मिले तथा (ते) तेरा (अच्युतः) नाशरहित (गंधः) गंध और (रसः) रस पदार्थ सार (मदाय) आनन्द के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य की (अवतु) रक्षा करे ॥२७॥

भावार्थ—जब ध्यानावस्थित मनुष्य के मन के साथ इन्द्रियां और प्राण ब्रह्म में स्थिर होते हैं तभी वह नित्य आनन्द को प्राप्त होता है ॥२७॥

सिञ्चन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब विद्वानों के विषय में शरीरसम्बन्धी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सि॒ञ्चन्ति॒ परि॑ षिञ्च॒न्त्युत्सि॑ञ्चन्ति पु॒नन्ति॑ च ।

सुरा॑यै ब॒भ्र्वै॒ मदे॒ किन्त्वो॑ वदति॒ किन्त्वः॑ ॥२८॥

पदार्थ—जो (बभ्र्वै) बल के धारण करने हारे (सुरायै) सोम वा (मदे) आनन्द के लिये महौषधियों के रस को (सिञ्चन्ति) जाठराग्नि में सींचते सेवन करते (परि, सिञ्चन्ति) सब ओर से पीते (उत्सिञ्चन्ति) उत्कृष्टता से ग्रहण करते (च) और (पुनन्ति) पवित्र होते हैं वे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होते हैं और जो (किन्त्वः) क्या वह (किन्त्वः) क्या और ऐसा (वदति) कहता है वह कुछ भी नहीं पाता है ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो अन्नादि को पवित्र और संस्कार कर उत्तम रसों से युक्त करके युक्त आहार विहार से खाते पीते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं जो मूढ़ता से ऐसा नहीं करता वह बलबुद्धिहीन हो निरन्तर दुःख को भोगता है ॥ २८ ॥

धानावन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

धा॒नाव॑न्तं कर॒म्भिण॑मपू॒पव॑न्तमु॒क्थिन॑म् इन्द्र॑ प्रा॒तर्जु॑षस्व नः ॥२९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख की इच्छा करनेहारे विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त जन ! तू (नः) हमारे (धानावन्तम्) अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए धान्य अन्नों से युक्त (करम्भिणम्) और अच्छी क्रिया से सिद्ध किये और (अपूपवन्तम्) सुन्दरता से इकट्ठे किये हुए मालपुवे आदि से युक्त (उक्थिनम्) तथा उत्तम वाक्य से उत्पन्न हुए बोध को सिद्ध कराने हारे और भक्ष आदि से युक्त भोजन-योग्य अन्न रसादि को (प्रातः) प्रातःकाल (जुषस्व) सेवन किया कर ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो विद्या के पढ़ाने और उपदेशों से सब को सुभूषित और विश्व का उद्धार करने हारे विद्वान् जन अच्छे संस्कार किये हुए रसादि पदार्थों से युक्त अन्नादि का ठीक समय में भोजन करते हैं और जो उन को विद्या सुशिक्षा से युक्त वाणी का ग्रहण करावें वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥ २९ ॥

बृहदित्यस्य नृमेधपुरुषमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

बृ॒हदिन्द्रा॑य गायत॒ मरु॑तो वृत्र॒हन्त॑मम् ।

येन॒ ज्योति॒रज॑नयन्नृता॒वृधो॑ दे॒वं दे॒वाय॒ जागृ॑वि ॥३०॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने हारे आप (येन) जिससे (देवाय) दिव्यगुण वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य से युक्त ईश्वर के लिये (देवम्) दिव्य सुख देनेवाले (जागृवि) जागरूक अर्थात् अतिप्रसिद्ध (ज्योतिः) तेज पराक्रम को (अजनयन्) उत्पन्न करें उस (वृत्रहन्तमम्) अतिशय करके मेघ-हन्ता सूर्य के समान (बृहत्) बड़े सामगान को उक्त उस ईश्वर के लिये (गायत) गाओ ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वदा युक्त आहार और व्यवहार से शरीर और आत्मा के रोगों का निवारण कर पुरुषार्थ को बढ़ा के परमेश्वर का प्रतिपादन करनेहारे गान को किया करें ॥ ३० ॥

अध्वर्यो इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध्व॑र्यो॒ऽअद्रि॑भिः सु॒तꣳसोमं॑ प॒वित्र॒ऽआ न॑य ।

पु॒नी॒हीन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥३१॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यो) यज्ञ को युक्त करने हारे पुरुष ! तू (इन्द्राय) परमैश्वर्य-वान् के लिये (पातवे) पीने को (अद्रिभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमवल्ल्यादि ओषधियों के साररूप रस को (पवित्रे) शुद्ध व्यवहार में (आनय) लेआ उससे तू (पुनीहि) पवित्र हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—वैद्यराजों को योग्य है कि शुद्ध देश में उत्पन्न हुई ओषधियों के सारों को बना उस के दान से सब के रोगों की निवृत्ति निरन्तर करें ॥ ३१ ॥

यो भूतानामित्यस्य कौण्डिन्य ऋषिः । परमात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो भू॒ताना॒मधि॑पति॒र्यस्मिँ॑ल्लो॒काऽअधि॑ श्रि॒ताः । यऽई॒शे म॑ह॒तो म॒हाँस्तेन॑ गृह्णामि॒ त्वाम॒हं मयि॑ गृह्णामि॒ त्वाम॒हम् ॥३२॥

पदार्थ—हे सब के हित की इच्छा करनेहारे पुरुष ! (यः) जो (भूतानाम्) पृथिव्यादि तत्वों और उनसे उत्पन्न हुए कार्यरूप लोकों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता (महतः) बड़े आकाशादि से (महान्) बड़ा है (यः) जो (ईशे) सब का ईश्वर है (यस्मिन्) जिस में सब (लोकाः) लोक (अधिश्रिताः) अधिष्ठित आश्रित हैं (तेन) उससे (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं (गृहणामि) ग्रहण करता हूं (मयि) मुझ में (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं (गृहणामि) ग्रहण करता हूं ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो उपासक अनन्त ब्रह्म में निष्ठा रखने वाला ब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु को उपास्य नहीं जानता वही इस जगत् में विद्वान् माना जाना चाहिये ॥३२॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य काक्षीवतसुकीर्त्तिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्य॒श्विभ्यां॑ त्वा॒ सर॑स्वत्यै॒ त्वेन्द्रा॑य त्वा सु॒त्राम्ण॑ ए॒ष ते॒ योनि॑र॒श्विभ्यां॑ त्वा॒ सर॑स्वत्यै॒ त्वेन्द्रा॑य त्वा सु॒त्राम्णे॑ ॥३३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो तू (अश्विभ्याम्) पूर्ण विद्या वाले अध्यापक और उपदेशक से (उपयामगृहीतः) उत्तम नियमों के साथ ग्रहण किया हुआ (असि) है जिस (ते) तेरा (एषः) यह (अश्विभ्याम्) अध्यापक और उपदेशक के साथ (योनिः) विद्यासम्बन्ध है उस (त्वा) तुझ को (सरस्वत्यै) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिये (त्वा) तुझ को (इन्द्राय) उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य के लिये और (त्वा) तुझ को (सुत्राम्णे) अच्छे प्रकार रक्षा करनेहारे के लिये मैं ग्रहण करता हूं (सरस्वत्यै)

उत्तम गुण वाली विदुषी स्त्री के लिये (त्वा) तुझ को (इन्द्राय) परमोत्तम व्यवहार के लिये (त्वा) तुझ को और (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षा के लिये (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूं ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों से शिक्षा पाये हुए स्वयं उत्तम बुद्धिमान् जितेन्द्रिय अनेक विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रेम करने हारा होवे वही विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अधिष्ठाता करने योग्य होवे ॥ ३३ ॥

प्राणपा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

प्राणपा मेऽअपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे ।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥३४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिससे तू (मे) मेरे (प्राणपाः) प्राण का रक्षक (अपानपाः) अपान का रक्षक (मे) मेरे (चक्षुष्पाः) नेत्रों का रक्षक (श्रोत्रपाः) श्रोत्रों का रक्षक (च) और (मे) मेरी (वाचः) वाणी का (विश्वभेषजः) सम्पूर्ण ओषधिरूप (मनसः) विज्ञान का सिद्ध करने हारे मन का (विलायकः) विविध प्रकार से सम्बन्ध करनेवाला (असि) है इस से तू हमारे पिता के समान सत्कार करने योग्य है ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो बाल्यावस्था का आरम्भ कर विद्या और अच्छी शिक्षा से जितेन्द्रियपन विद्या सत्पुरुषों के साथ प्रीति तथा धर्मात्मा और परोपकारीपन को ग्रहण कराते हैं वे माता के समान और मित्र के समान जानने चाहियें ॥ ३४ ॥

अश्विनकृतस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदुपरिष्टाद्बृहती
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य ।
उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥३५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (उपहूतः) बुलाया हुआ मैं (ते) तेरा (अश्विनकृतस्य) जो सद्गुणों को व्याप्त होते हैं उनके लिये (सरस्वतिकृतस्य) विदुषी स्त्री के लिये (सुत्राम्णा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारे (इन्द्रेण) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजा के (कृतस्य) किये हुए (उपहूतस्य) समीप में लाये अन्नादि का (भक्षयामि) भक्षण करता हूं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वान् और ऐश्वर्ययुक्त जनों ने अनुष्ठान किये हुए का अनुष्ठान करें और अच्छी शिक्षा किये हुए पाककर्त्ता के बनाये हुए अन्न को खावें और सत्कार करने हारे का सत्कार किया करें ॥ ३५ ॥

समिद्ध इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

समिद्धऽइन्द्रऽउषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥३६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (पूर्वकृत्) पूर्व करने हारा (वावृधानः) बढ़ता हुआ (वज्रबाहुः) जिसके हाथ में वज्र है वह (उषसाम्) प्रभात वेलाओं की (अनीके) सेना में जैसे (पुरोरुचा) प्रथम विथुरी हुई दीप्ति से (समिद्धः) प्रकाशित हुआ (इन्द्रः) सूर्य्य (त्रिभिः) तीन अधिक (त्रिंशता) तीस (देवैः) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के साथ वर्त्तमान हुआ (वृत्रम्) मेघ को (जघान) मारता है (दुरः) द्वारों को (वि, ववार) प्रकाशित करता है वैसे अत्यन्त बलयुक्त योद्धाओं के साथ शत्रुओं को मार विद्या और धर्म के द्वारों को प्रकाशित कर ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोग सूर्य के समान विद्या धर्म के प्रकाशक हों विद्वानों के साथ शान्ति प्रीति के सत्य और असत्य के विवेक के लिये संवाद कर अच्छे प्रकार निश्चय करके सब मनुष्यों को संशयरहित करें ॥ ३६ ॥

नराशंस इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । तनूनपाद्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नराशंसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (नराशंसः) जो मनुष्यों से प्रशंसा किया जाता (यज्ञस्य) सत्य व्यवहार के (धाम) स्थान का और (प्रति, मिमानः) अनेक उत्तम पदार्थों का निर्माण करने हारा (शूरः) सब ओर से निर्भय (तनूनपात्) जो शरीर का पात न करने हारा (गोभिः) गाय और बैलों से (वपावान्) जिससे क्षेत्र बोये जाते हैं उस प्रशंसित उत्तम क्रिया से युक्त (मधुना) मधुरादि रस से (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (हिरण्यैः) सुवर्णादि पदार्थों से (चन्द्री) बहुत सुवर्णवान् (प्रचेताः) उत्तम प्रज्ञायुक्त विद्वान् (प्रति, यजति) यज्ञ करता कराता है सो हमारे आश्रय के योग्य है ॥ ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि किसी निन्दित, भीरु, अपने शरीर के नाश करने हारे, उद्यमहीन, आलसी, मूढ़ और दरिद्री का संग कभी न करें ॥ ३७ ॥

ईडित इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ईडितो देवैर्हरिवाँ२ऽअभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥३८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे (हरिवान्) उत्तम घोड़ों वाला (वज्रबाहुः) जिसकी भुजाओं में वज्र विद्यमान (पुरन्दरः) जो शत्रुओं के नगरों का विदीर्ण करने हारा सेनापति (गोत्रभित्) मेघ को विदीर्ण करने हारा सूर्य जैसे रसों का सेवन करे वैसे अपनी सेना का सेवन करता है वैसे (देवैः) विद्वानों से (ईडितः) प्रशंसित (अभिष्टिः) सब ओर से यज्ञ के करने हारे (आजुह्वानः) विद्वानों ने सत्कारपूर्वक बुलाये हुए (हविषा) सद्विद्या के दान और ग्रहण से (शर्द्धमानः) सहन करते (जुषाणः) और प्रसन्न होते हुए आप (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (उप, आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सेनापति सेना को और सूर्य मेघ को बढ़ा कर सब जगत् की रक्षा करता है वैसे धार्मिक अध्यापकों को अध्ययन करनेहारों के साथ पढ़ना और पढ़ाना कर विद्या से सब प्राणियों की रक्षा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

जुषाण इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जुषाणो बर्हिर्हरिवान्नऽइन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥३९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हरिवान्) जिस के हरणशील बहुत किरणें विद्यमान (उरुप्रथाः) बहुत विस्तारयुक्त (आदित्यैः) महीनों और (वसुभिः) पृथिव्यादि लोकों के (सजोषाः) साथ वर्त्तमान (इन्द्रः) जलों का धारणकर्त्ता सूर्य्य (पृथिव्याः) पृथिवी से (प्रदिशा) उपदिशा के साथ (प्रथमानम्) विस्तीर्ण (अक्तम्) प्रसिद्ध (प्राचीनम्) पुरातन (स्योनम्) सुखकारक स्थान को (सीदत्) स्थित होता है वैसे तू हमारे मध्य में हो ॥ ३९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि रात दिन प्रयत्न से आदित्य के तुल्य अविद्यारूपी अन्धकार का निवारण करके जगत् में बड़ा सुख प्राप्त करें जैसे पृथिवी से सूर्य बड़ा है वैसे अविद्वानों में विद्वान् को बड़ा जानें ॥ ३९ ॥

इन्द्रमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ताꣳ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥४०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (कवष्यः) बोलने में चतुर (वृषाणम्) अति वीर्यवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले (वीरम्) वीर पुरुष के प्रति (धावमानाः) दौड़ती हुई (जनयः) सन्तानों को जनने वाली स्त्रियां (दुरः) द्वारों को (यन्तु) प्राप्त हों वा जैसे (प्रथमानाः) प्रख्यात (सुवीराः) अत्युत्तम वीर पुरुष (महोभिः) अच्छे पूजित गुणों से युक्त (द्वारः) द्वार के तुल्य वर्त्तमान (देवीः) विद्यादि गुणों से प्रकाशमान (सुपत्नीः) अच्छी स्त्रियों को (अभितः) सब ओर से (वि, श्रयन्ताम्) विशेष कर आश्रय करें वैसे तुम भी किया करो ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस कुल वा देश में परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करते हैं वहां मनुष्य सदा आनन्द में रहते हैं ॥४०॥

उषासानक्तेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । उषासानक्ता देवते । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥४१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (पेशसा) रूप से (संवयन्ती) प्राप्त करने हारे (पयस्वती) रात्रि के अन्धकार से युक्त (सुदुघे) अच्छे प्रकार पूर्ण करनेवाले (बृहती) बढ़ते हुए (सुरुक्मे) अच्छे प्रकाश वाले (उषासानक्ता) रात्रि और दिन (ततम्) विस्तारयुक्त (देवानाम्) पृथिव्यादिकों के (देवम्) प्रकाशक (बृहन्तम्) बड़े (इन्द्रम्) सूर्य्यमंडल को (यजतः) संग करते हैं वैसे ही (तन्तुम्) विस्तार करने हारे (शूरम्) शूरवीर पुरुष को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब लोक सब से बड़े सूर्यलोक का आश्रय करते हैं वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष का आश्रय सब लोग करें ॥४१॥

दैव्येत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । दैव्याध्यापकोपदेशकौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्द्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥४२॥

पदार्थ—जो (दैव्या) दिव्य पदार्थों और विद्वानों में हुए (मिमाना) निर्माण करने हारे (होतारौ) दाता (सुवाचा) जिनकी सुशिक्षित वाणी वे विद्वान् (यज्ञस्य) संग करने योग्य व्यवहार के (मूर्द्धन्) ऊपर (प्रथमा) प्रथम वर्त्तमान (पुरुत्रा) बहुत (मनुषः) मनुष्यों को (दधाना) धारण करते हुए (मधुना) मधुरादिगुणयुक्त (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से (प्राचीनम्) पुरातन (ज्योतिः) प्रकाश और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (वृधातः) बढ़ाते हैं वे सब मनुष्यों के सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पढ़ाने और उपदेश से सब मनुष्यों को उन्नति देते हैं वे सम्पूर्ण मनुष्यों को सुभूषित करने हारे हैं ॥ ४२ ॥

तिस्रो देवीरित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । तिस्रो देव्यो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।

अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्त्तिः ॥४३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (विश्वतूर्त्तिः) जगत् में शीघ्रता करने हारी (देवी) प्रकाशमान (सरस्वती) उत्तम विज्ञानयुक्त वा (इडा) शुभ गुणों से स्तुति करने योग्य तथा (भारती) धारण और पोषण करनेहारी ये (तिस्रः) तीन (देवीः) प्रकाशमान शक्तियां (पयसा) शब्द अर्थ और सम्बन्ध रूप रस से (हविषा) देने लेने के व्यवहार और प्राण से (वर्द्धमाना) बढ़ती हुई (जनयः) सन्तानोत्पत्ति करने हारी (पत्नीः) स्त्रियों के (न) समान (अच्छिन्नम्) छेदभेदरहित (तन्तुम्) विस्तारयुक्त (इन्द्रम्) बिजुली का (जुषाणाः) सेवन करने हारी हैं उनका सेवन तुम लोग किया करो ॥ ४३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वानों से युक्त वाणी नाड़ी और धारण करने वाली शक्ति ये तीन प्रकार की शक्तियां सर्वत्र व्याप्त सर्वदा उत्पन्न हुई व्यवहार के हेतु हैं उनको मनुष्य लोग व्यवहारों में यथावत् प्रयुक्त करें ॥ ४३ ॥

त्वष्टेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । त्वष्टा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वज्जन के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।

वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥४४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (त्वष्टा) विद्युत् के समान वर्त्तमान विद्वान् (वृषा) सेचनकर्त्ता (इन्द्राय) परमैश्वर्य (वृष्णे) और पराये सामर्थ्य को रोकने हारे के लिये (शुष्मम्) बल को (अपाकः) अप्रशंसनीय (अचिष्टुः) प्राप्त होने हारा (यशसे) कीर्ति के लिये (पुरूणि) बहुत पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुए (भूरिरेताः) अत्यन्तपराक्रमी (वृषणम्) मेघ को (यजन्) सङ्गत करता (यज्ञस्य) सङ्गति से उत्पन्न हुए जगत् के (मूर्द्धन्) उत्तम भाग में (देवान्) विद्वानों की (समनक्तु) कामना करे वैसे तू भी कर ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जबतक मनुष्य शुद्धान्तःकरण नहीं होवे तबतक विद्वानों का सङ्ग, सत्यशास्त्र और प्राणायाम का अभ्यास किया करे जिससे शीघ्र शुद्धान्तःकरणवान् हो ॥ ४४ ॥

वनस्पतिरित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वनस्पतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।

इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥४५॥

पदार्थ—जो (पाशैः) दृढ़ बन्धनों से (वनस्पतिः) वृक्षसमूह का पालन करनेहारा (अवसृष्टः) आज्ञा दिये हुए पुरुष के (न) समान (त्मन्या) आत्मा के साथ (समञ्जन्) सम्पर्क करता हुआ (देवः) दिव्य सुख का देने हारा (शमिता) यज्ञ के (न) समान (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्य के (जठरम्) उदर के समान कोश को (पृणानः) पूर्ण करता हुआ (हव्यैः) खाने के योग्य (मधुना) सहत और (घृतेन) घृत आदि पदार्थों से (यज्ञम्) अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ को करता हुआ (स्वदाति) अच्छे प्रकार स्वाद लेवे वह रोगरहित होवे ॥ ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे वड़ आदि वनस्पति वढ़कर फलों को देता है जैसे बन्धनों से बंधा हुआ चोर पाप से निवृत्त होता है वा जैसे यज्ञ सब जगत् की रक्षा करता है वैसे यज्ञकर्त्ता युक्त आहार विहार करने वाला मनुष्य जगत् का उपकारक होता है ॥ ४५ ॥

स्तोकानामित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । स्वाहाकृतयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूरऽइन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।

घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवाऽअमृता मादयन्ताम् ॥४६॥

पदार्थ—जैसे (वृषायमाणः) बलिष्ठ होता हुआ (वृषभः) उत्तम (तुराषाट्) हिंसक शत्रुओं को सहने हारा (शूरः) शूरवीर ऐश्वर्यवाला (स्तोकानाम्) थोड़ों के (इन्दुम्) कोमल स्वभाव वाले मनुष्य के (प्रति) प्रति आनन्दित होता है वैसे (घृतप्रुषा) प्रकाश के सेवन करने वाले (मनसा) विज्ञान से और (स्वाहा) सत्य क्रिया से (मोदमानाः) आनन्दित होते हुए (अमृताः) आत्म स्वरूप से मृत्यु-धर्मरहित (देवाः) विद्वान् लोग (मादयन्ताम्) आप तृप्त होकर हम को आनन्दित करें ॥ ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य अल्पगुण वाले भी मनुष्य को देखकर स्नेहयुक्त होते हैं वे सब ओर से सब को सुखी कर देते हैं ॥४६॥

आयात्वित्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब राजधर्मविषय को अगले मन्त्रों म कहा है—

आयात्विन्द्रोऽवसऽउप नऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।

वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्नक्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥४७॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का धारण करने हारा (इह) इस वर्त्तमान काल में (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त हुआ (शूरः) निर्भय वीर पुरुष (पूर्वीः) पूर्व विद्वानों ने अच्छी शिक्षा से उत्तम की हुई (तविषीः) सेनाओं को (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ाने हारा जन (यस्य) जिस का (अभिभूति) शत्रुओं का तिरस्कार करने हारा (क्षत्रम्) राज्य (द्यौः) सूर्य के प्रकाश के (न) समान वर्त्तता है जो (नः) हम को (पुष्यात्) पुष्ट करे वह हमारे (अवसे) रक्षा आदि के लिये (उप, आ, यातु) समीप प्राप्त होवे और (सधमात्) समान स्थान वाला (अस्तु) होवे ॥ ४७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय और विद्या दोनों के प्रकाश करने हारे जिनकी सत्कृत हर्ष और पुष्टि से युक्त सेना वाले प्रजा की पुष्टि और दुष्टों का नाश करनेहारे हों वे राज्याधिकारी होवें ॥ ४७ ॥

आ न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आ नऽइन्द्रोऽदूरादा नऽआसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।

ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥४८॥

पदार्थ—जो (अभिष्टिकृत्) सब ओर से इष्ट सुख करे (वज्रबाहुः) जिस की वज्र के समान दृढ़ भुजा (नृपतिः) नरों का पालन करने हारा (ओजिष्ठेभिः) अति बल वाले योधाओं से (उग्रः) दुष्टों पर क्रोध करने और (तुर्वणिः) शीघ्र शत्रुओं का मारने हारे (इन्द्रः) शत्रुविदारक सेनापति (नः) हमारी (अवसे) रक्षादि के लिये (समत्सु) बहुत संग्रामों में (सङ्गे) प्रसंग में (दूरात्) दूर से (आसात्) और समीप से (आ, यासत्) आवे और (नः) हमारे (पृतन्यून्) सेना और संग्राम की इच्छा करने हारों की (आ) सदा रक्षा और मान्य करे वह हम लोगों का भी सदा माननीय होवे ॥ ४८ ॥

भावार्थ—वे ही पुरुष राज्य करने को योग्य होते हैं जो दूरस्थ और समीपस्थ सब मनुष्यादि प्रजाओं की यथावत् समीक्षण और दूत भेजने से रक्षा करते और शूरवीर का सत्कार भी निरन्तर करते हैं ॥ ४८ ॥

आ न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

आ नऽइन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।

तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥४९॥

पदार्थ—जो (मघवा) परम प्रशंसित धन युक्त (विरप्शी) महान् (अर्वाचीनः) विद्यादि बल से सन्मुख जाने वाला (वज्री) प्रशंसित शस्त्रविद्या की शिक्षा पाये हुए (इन्द्रः) ऐश्वर्य का दाता सेनाधीश (हरिभिः) अच्छी शिक्षा किये हुए घोड़ों से (नः) हम लोगों की (अवसे) रक्षा आदि के लिये (धनाय, च) और धन के लिये (वाजसातौ) संग्राम में (अनु, तिष्ठाति) अनुकूल स्थित हो वह (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्यन्याय पालन करने रूप राज्यव्यवहार को (अच्छ, आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जो युद्धविद्या में कुशल बड़े बलवान् प्रजा और धन की वृद्धि करनेहारे उत्तम शिक्षा युक्त हाथी और घोड़ों से युक्त कल्याण ही के आचरण करने-हारे हों वे ही राजपुरुष होवें ॥ ४९ ॥

त्रातारमित्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।

ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५०॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! जिस (हवेहवे) प्रत्येक संग्राम में (त्रातारम्) रक्षा करने (इन्द्रम्) दुष्टों के नाश करने (अवितारम्) प्रीति कराने (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य के देने (सुहवम्) सुन्दरता से बुलाये जाने (शूरम्) शत्रुओं का विनाश कराने (इन्द्रम्) राज्य का धारण करने और (शक्रम्) कार्यों में शीघ्रता करनेहारे (पुरुहूतम्) बहुतों से सत्कार पाये हुए तथा (इन्द्रम्) शत्रुसेना के विदारण करनेहारे तुझको (ह्वयामि) सत्कारपूर्वक बुलाता हूँ सो (मघवा) बहुत धनयुक्त (इन्द्रः) उत्तम सेना का धारण करनेहारा तू (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख का (धातु) धारण कर ॥ ५० ॥

भावार्थ—मनुष्य उसी पुरुष का सदा सत्कार करे जो विद्या न्याय और धर्म्म का सेवक सुशील और जितेन्द्रिय हुआ सब के सुख को बढ़ाने के लिये निरन्तर यत्न किया करे ॥ ५० ॥

इन्द्र इत्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राज विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ऽअवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषोऽअभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५१॥

पदार्थ—जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा (स्ववान्) स्वकीय बहुत उत्तम जनों से युक्त (विश्ववेदाः) समग्र धनवान् (सुमृडीकः) अच्छा सुख करने और (इन्द्रः) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला राजा (अवोभिः) न्यायपूर्वक रक्षणादि से प्रजा की रक्षा करे वह (द्वेषः) शत्रुओं को (बाधताम्) हटावे (अभयम्) सब को भयरहित (कृणोतु) करे और आप भी वैसा ही (भवतु) हो जिससे हम लोग (सुवीर्यस्य) अच्छे पराक्रम के (पतयः) पालने हारे (स्याम) हों ॥ ५१ ॥

भावार्थ—जो विद्या विनय से युक्त होके राजपुरुष प्रजा की रक्षा करनेहारे न हों तो सुख की वृद्धि भी न होवे ॥ ५१ ॥

तस्येत्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ२ऽइन्द्रोऽअस्मेऽआराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥५२॥

पदार्थ—जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार से रक्षा करने (स्ववान्) और प्रशंसित अपना कुल रखने हारा (इन्द्रः) पिता के समान वर्त्तमान सभा का अध्यक्ष (अस्मे) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (आरात्) दूर और समीप से (चित्) भी (सनुतः) सब काल में (युयोतु) दूर करे (तस्य) उस पूर्वोक्त (यज्ञियस्य) यज्ञ के अनुष्ठान करने योग्य राजा की (सुमतौ) सुन्दर मति में और (भद्रे) कल्याण करनेहारे (सौमनसे) सुन्दर मन में उत्पन्न हुए व्यवहार में (अपि) भी हम लोग राजा के अनुकूल बरतने हारे (स्याम) होवें और (सः) वह हमारा राजा और (वयम्) हम उसकी प्रजा अर्थात् उस के राज्य में रहने वाले हों ।५२।

भावार्थ—मनुष्यों को उसकी सम्मति में स्थिर रहना उचित है जो पक्षपात-रहित और न्याय से प्रजापालन में तत्पर हो ॥ ५२ ॥

आ मन्द्रैरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नियमन्वि न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ२ऽइहि ॥५३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य्य के बढ़ाने हारे सेनापति ! तू (मन्द्रैः) प्रशंसायुक्त (मयूररोमभिः) मोर के रोमों के सदृश रोमों वाले (हरिभि.) घोड़ों से युक्त होके (तान्) उन शत्रुओं के जीतने को (याहि) जा, वहां (त्वा) तुझ को (पाशिनः) बहुत पाशों से युक्त व्याध लोग (विम्) पक्षी को बांधने के (न) समान (केचित्) कोई भी (मा) मत (नि यमन्) बांधें, तू (अतिधन्वेव) बड़े धनुर्धारी के समान (एहि) अच्छे प्रकार आओ ॥ ५३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जब शत्रुओं के विजय को जावें तब सब ओर से अपने बल की परीक्षा कर पूर्ण सामग्री से शत्रुओं के साथ युद्ध करके अपना विजय करें, जैसे शत्रुलोग अपने को वश न करें वैसा युद्धारम्भ करें ॥ ५३ ॥

एवेदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासोऽअभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४॥

पदार्थ—हे (वसिष्ठासः) अतिशय वास करने हारे ! जिस (वृषणम्) बलवान् (वज्रबाहुम्) शस्त्रधारी (इन्द्रम्) शत्रु के मारने हारे को (अर्कैः) प्रशंसित कर्मों से विद्वान् लोग (अभ्यर्चन्ति) यथावत् सत्कार करते हैं (एव) उसी का (यूयम्) तुम लोग (इत्) भी सत्कार करो (सः) सो (स्तुतः) स्तुति को प्राप्त होके (नः) हमको और (गोमत्) उत्तम गाय आदि पशुओं से युक्त (वीरवत्) शूरवीरों से युक्त राज्य को (धातु) धारण करे और तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम को (सदा) सब दिन (पात) सुरक्षित रक्खो ॥ ५४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें वैसे राजपुरुषों की प्रजाजन भी रक्षा करें ॥ ५४ ॥

समिद्धो अग्निरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा: देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुषों का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

समिद्धोऽअग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः ।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमं शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥५५॥

पदार्थ—जैसे (इह) इस संसार में (धेनुः) दूध देने वाली गाय के समान (सरस्वती) शास्त्र विज्ञान युक्त वाणी (शुक्रम्) शुद्ध (सोमम्) ऐश्वर्य और (इन्द्रियम्) धन को परिपूर्ण करती है वैसे उसे मैं (दुहे) परिपूर्ण करूं । हे (अश्विना) शुभगुणों में व्याप्त स्त्री पुरुषो ! (तप्तः) तपा (विराट्) और विविध प्रकार से प्रकाशमान (सुतः) प्रेरणा को प्राप्त (समिद्धः) प्रदीप्त (घर्मः) यज्ञ के समान सङ्गति युक्त (अग्निः) पावक जगत् की रक्षा करता है वैसे मैं इस सब जगत् की रक्षा करूं ॥ ५५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस संसार में तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुष सूर्य के समान कीर्ति से प्रकाशमान पुरुषार्थी होके धर्म से ऐश्वर्य को निरन्तर संचित करें ॥ ५५ ॥

तनूपा इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा: देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब इस प्रकृत विषय में वैद्यविद्या के संचार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती ।
मध्वा रजांसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥५६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे (भिषजा) वैद्यकविद्या के जानने हारे (तनूपा) शरीर के रक्षक (उभा) दोनों (अश्विना) शुभ गुण कर्म स्वभावों में व्याप्त स्त्री पुरुष (सरस्वती) बहुत विज्ञान युक्त वाणी (मध्वा) मीठे गुण से युक्त (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में स्थित होकर (पथिभिः) मार्गों से (इन्द्राय) राजा के लिये (रजांसि) लोकों और (इन्द्रियम्) धन को धारण करें वैसे इनको (वहान्) प्राप्त हूजिये ॥ ५६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री पुरुष वैद्यकविद्या को न जानें तो रोगों को निवारण और शरीरादि की स्वस्थता को और धर्म व्यवहार में निरन्तर चलने को समर्थ नहीं होवें ॥ ५६ ॥

इन्द्रायेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा: देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब प्रधानता से वैद्यों के व्यवहार को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्रायेन्दुं सरस्वती नराशंसेन नग्नहुम् ।
अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥५७॥

पदार्थ—(अश्विना) वैद्यकविद्या में व्याप्त (भिषजा) उत्तम वैद्यजन (इन्द्राय) दुःखनाश के लिये (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (मधु) ज्ञानवर्द्धक कोमलता-दिगुणयुक्त (भेषजम्) औषध को (अधाताम्) धारण करें और (नराशंसेन) मनुष्यों से स्तुति किये हुए वचन से सरस्वती प्रशस्तविद्यायुक्त वाणी (नग्नहुम्) आनन्द कराने वाले विषय को ग्रहण करने वाले (इन्दुम्) ऐश्वर्य को धारण करे ॥ ५७ ॥

भावार्थ—वैद्य दो प्रकार के होते हैं एक ज्वरादि शरीररोगों के नाशक चिकित्सा करने हारे और दूसरे मन के रोग जो कि अविद्यादि मानस क्लेश हैं उनके निवारण करने हारे अध्यापक, उपदेशक हैं, जहां ये रहते हैं वहां रोगों के विनाश से प्राणी लोग शरीर और मन के रोगों से छूटकर सुखी होते हैं ॥५७॥

आजुह्वानेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा: देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।
इडाभिरश्विनाविषं समूर्जं सं रयिं दधुः ॥५८॥

पदार्थ—(आजुह्वाना) सब ओर से प्रशंसा की हुई (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवती स्त्री (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त पति के लिये (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रिय वा ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने हारे सुवर्ण आदि पदार्थों और (वीर्यम्) शरीर में बल के करने हारे घृतादि का तथा (अश्विनौ) सूर्य चन्द्र के सदृश वैद्यकविद्या के कार्य में प्रकाशमान वैद्यजन (इडाभिः) अति उत्तम ओषधियों के साथ (इषम्) अन्न आदि पदार्थ (समूर्जम्) उत्तम पराक्रम (रयिम्) और उत्तम धर्मश्री को (संदधुः) सम्यक् धारण करें ॥५८॥

भावार्थ—वे ही उत्तम विद्यावान् हैं जो मनुष्यों के रोगों का नाश करके शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं, वही पतिव्रता स्त्री जाननी चाहिये कि जो पति के सुख के लिये धन और घृत आदि वस्तु घर रखती है ॥५८॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा: देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अश्विना नमुचेः सुतं सोमं शुक्रं परिस्रुता ।
सरस्वती तमाभरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥५९॥

पदार्थ—जो (परिस्रुता) सब ओर से अच्छे चलनयुक्त (अश्विना) शुभ गुण कर्म स्वभावों में व्याप्त (सरस्वती) प्रशंसायुक्त स्त्री तथा पुरुष (बर्हिषा) सुख बढ़ाने वाले कर्म्म से (इन्द्राय) परमैश्वर्य के सुख के लिये और (नमुचेः) जो नहीं छोड़ता उस असाध्य रोग के दूर होने के लिये (शुक्रम्) वीर्यकारी (सुतम्) अच्छे सिद्ध किये (सोमम्) सोम आदि ओषधियों के समूह की (पातवे) रक्षा के लिये (तम्)

उस रस को (आ, अभरत्) धारण करती और करता है वे ही सर्वदा सुखी रहते हैं ॥५९॥

भावार्थ—जो अङ्ग उपाङ्ग सहित वेदों को पढ़ के हस्तक्रिया जानते हैं वे असाध्य रोगों को भी दूर करते हैं ॥५९॥

कवष्य इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

कुवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसीऽउभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥६०॥

पदार्थ—(सरस्वती) अति श्रेष्ठ ज्ञानवती मैं (इन्द्रः) बिजुली (अश्विभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा से (व्यचस्वतीः) व्याप्त होने वाली (कवष्यः) अत्यन्त प्रशंसित (दिशः) दिशाओं को (न) जैसे तथा (दुरः) द्वारों को (न) जैसे वा (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी को जैसे (न) वैसे (कामान्) कामनाओं को (दुहे) पूर्ण करती हूँ ॥६०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे बिजुली सूर्य चन्द्रमा से दिशाओं के और द्वारों के अन्धकार का नाश करती है वा जैसे पृथिवी और प्रकाश का धारण करती है वैसे पण्डिता स्त्री पुरुषार्थ से अपनी इच्छा पूर्ण करे ॥ ६० ॥

उषासानक्तमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः ।
संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥६१॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (सुपेशसा) अच्छे रूप वाले (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (सरस्वत्या) अच्छी उत्तम शिक्षा पाई हुई वाणी से (उषासा) प्रभात (नक्तम्) रात्रि (सायम्) संध्याकाल और (दिवा) दिन में (इन्द्रियैः) जीव के लक्षणों से (इन्द्रम्) बिजुली को (संजानाने) अच्छे प्रकार प्रकट करते हुए (समञ्जाते) प्रसिद्ध हैं वैसे तुम भी प्रसिद्ध होओ ॥६१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातःसमय रात्रि को और संध्याकाल दिन को निवृत्त करता है वैसे विद्वानों को चाहिए कि अविद्या और दुष्ट शिक्षा का निवारण करके सब लोगों को सब विद्याओं की शिक्षा में नियुक्त करें ॥६१॥

पातमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

अब विद्वद्विषय में सामयिक रक्षा विषय और भैषज्यादि विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पातं नोऽअश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥६२॥

पदार्थ—हे (दैव्या) दिव्यगुणयुक्त (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! तुम लोग (दिवा) दिन में (नक्तम्) रात्रि में (नः) हमारी (पातम्) रक्षा करो । हे (सरस्वति) बहुत विद्याओं से युक्त माता ! तू हमारी (पाहि) रक्षा कर । हे (होतारा) सब लोगों को सुख देने वाले (सचा) अच्छे मिले हुए (भिषजा) वैद्य लोगो ! तुम (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य देने वाले सोमलता के रस की (पातम्) रक्षा करो ॥६२॥

भावार्थ—जैसे अच्छे वैद्य रोग मिटाने वाली बहुत ओषधियों को जानते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक और माता पिता अविद्यारूप रोगों को दूर करने वाले उपायों को जानें ॥६२॥

तिस्र इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

फिर भैषज्यादि विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा ।
तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥६३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सरस्वती) अच्छे प्रकार शिक्षा पाई हुई वाणी (भारती) धारण करने हारी माता और (इडा) स्तुति के योग्य उपदेश करने हारी ये (तिस्रः) तीन और (अश्विना) अच्छे दो वैद्य (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (परिस्रुता) सब ओर से झरने के साथ (तीव्रम्) तीव्रगुणस्वभाव वाले (मदम्) हर्षकर्त्ता (सोमम्) ओषधि के रस वा प्रेरणा नाम के व्यवहार को (त्रेधा) तीन प्रकार से (सुषुवुः) उत्पन्न करें वैसे तुम भी इस की सिद्धि अच्छे प्रकार करो ॥६३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सोम आदि ओषधियों के रस को सिद्ध कर उसको पीके शरीर आरोग्य करके उत्तम वाणी शुद्ध बुद्धि और यथार्थ वक्तृत्व शक्ति की उन्नति करें ॥ ६३ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳ रूपमधुः सुते ॥६४॥

पदार्थ—(नः) हमारे लिये (अश्विना) विद्या सिखाने वाले अध्यापकोपदेशक (सरस्वती) विदुषी शिक्षा पाई हुई माता और (त्वष्टा) सूक्ष्मता करने वाला ये विद्वान् लोग (सुते) उत्पन्न हुए (इन्द्रे) परमैश्वर्य्य में (भेषजम्) सामान्य और (मधु, भेषजम्) मधुरादि गुणयुक्त औषध (यशः) कीर्ति (श्रियम्) लक्ष्मी और (रूपं रूपम्) रूप रूप को (अधुः) धारण करने को समर्थ होवें ॥६४॥

भावार्थ—जब मनुष्य लोग ऐश्वर्य को प्राप्त होवें तब इन उत्तम ओषधियों कीर्ति और उत्तम शोभा को सिद्ध करें ॥६४॥

ऋतुथेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥६५॥

पदार्थ—जैसे (धेनुः) दूध देने वाली गौ के समान (सरस्वती) अच्छी उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी (परिस्रुता) सब ओर से झरने वाली जलादि पदार्थ के साथ (ऋतुथा) ऋतुओं के प्रकारों से और (शशमानः) बढ़ता हुआ (इन्द्रः) ऐश्वर्य करने हारा (वनस्पतिः) वट आदि वृक्ष (मधु) मधुर आदि रस और(कीलालम्) अन्न को (अश्विभ्याम्) वैद्यों से कामनाओं को पूर्ण करता है वैसे मैं (दुहे) पूर्ण करूं ॥६५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छे वैद्यजन उत्तम उत्तम वनस्पतियों से सारग्रहण के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे सब को प्रयत्न करना चाहिये ॥६५॥

गोभिरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता ।
समधातꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥६६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अच्छी शिक्षा पाए हुए वैद्यो ! (मासरेण) प्रमाणयुक्त मांड (परिस्रुता) सब ओर से मधुर आदि रस से युक्त (सरस्वत्या) अच्छी शिक्षा और ज्ञान से युक्त वाणी से और (स्वाहा) सत्यक्रियाओं से तथा (इन्द्रे) परमैश्वर्य्य के होने (गोभिः) गौओं से दुग्ध आदि पदार्थों को जैसे (न) वैसे (मधु) मधुर आदि गुणों से युक्त (सुतम्) सिद्ध किये (सोमम्) ओषधियों के रस को तुम (समधातम्) अच्छे प्रकार धारण करो ॥ ६६ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमालङ्कार है । वैद्य लोग उत्तम हस्तक्रिया से सब ओषधियों के रस को ग्रहण करें ॥ ६६ ॥

अश्विना हविरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । भुरिगनुष्टुप्छन्दः
गान्धारः स्वरः ॥

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥६७

पदार्थ—(अश्विना) अच्छे वैद्य और (सरस्वती) अच्छी शिक्षायुक्त स्त्री (धिया) बुद्धि से (नमुचेः) नाशरहित कारण से उत्पन्न हुए कार्य से (हविः) ग्रहण करने योग्य (इन्द्रियम्) मन को (आसुरात्) मेघ से (शुक्रम्) पराक्रम और (मघम्) पूज्य (वसु) धन को (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (आजभ्रिरे) धारण करें ॥ ६७ ॥

भावार्थ—स्त्री और पुरुष को चाहिये कि ऐश्वर्य से सुख की प्राप्ति के लिये ओषधियों का सेवन किया करें ॥ ६७ ॥

यमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन् ।
स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥६८॥

पदार्थ—(सचा) संयोग किये हुए (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक तथा(सरस्वती) विदुषी स्त्री (नमुचौ) नाशरहित कारण से उत्पन्न (आसुरे) मेघ में होने के निमित्त घर में (हविषा) अच्छी बनाई हुई होम की सामग्री से (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्द्धयन्) बढ़ाते (सः) वह (मघम्) परमपूज्य (बलम्) बल का (बिभेद) भेदन करे ॥ ६८ ॥

भावार्थ—जो ओषधियों के रस को कर्त्तव्यता के गुणों से उत्तम करे वह रोग का नाश करने हारा होवे ॥ ६८ ॥

तमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तमिन्द्रं पुशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।
दधाना अभ्यनूषत हुविषा युज्ञ इन्द्रियैः ॥६९॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! (सचा) विद्या से युक्त (अश्विना) वैद्यकविद्या में चतुर अध्यापक और उपदेशक (उभा) दोनों (इन्द्रियैः) धनों से जिस (इन्द्रम्) बल आदि गुणों के धारण करने हारे सोम को धारण करें (तम्) उसको (सरस्वती) सत्य विज्ञान से युक्त स्त्री धारण करे और जिसको (पशवः) गौ आदि पशु धारण करें उसको (हविषा) सामग्री से (दधानाः) धारण करते हुए जन (यज्ञे) यज्ञ में (अभ्यनूषत) सब ओर से प्रशंसा करें ॥ ६९ ॥

भावार्थ—जो लोग धर्म्म के आचरण से धन के साथ धन को बढ़ाते हैं वे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ६९ ॥

य इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

य इन्द्रं इन्द्रियं दुधुः संविता वरुणो भगः ।
स सुत्रामा हुविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥७०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ये) जो लोग (इन्द्रे) ऐश्वर्य्य में (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वे सुखी होवें । इस कारण जो (भगः) सेवा करने के योग्य (वरुणः) श्रेष्ठ (सविता) ऐश्वर्य की इच्छा से युक्त (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षक (हविष्पतिः) होम करने योग्य पदार्थों की रक्षा करने हारा मनुष्य (यजमानाय) यज्ञ करने हारे के लिये धन को (सश्चत) सेवे (सः) वह प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे ॥ ७० ॥

भावार्थ—जैसे पुरोहित यजमान के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे यजमान भी पुरोहित के धन को बढ़ावे ॥ ७० ॥

सवितेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सुविता वरुणो दधुद्यजमानाय दाशुषे ।
आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥

पदार्थ—(वरुणः) उत्तम (सविता) प्रेरक (सुत्रामा) और अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा जन (दाशुषे) देनेवाले (यजमानाय) यजमान के लिये (वसु) द्रव्य को (दधत्) धारण करता हुआ (नमुचेः) धर्म को नहीं छोड़ने वाले के (बलम्) बल और (इन्द्रियम्) अच्छी शिक्षा से युक्त मन का (आ, अदत्त) अच्छे प्रकार ग्रहण करे ॥ ७१ ॥

भावार्थ—देने वाले पुरुष को अच्छे प्रकार सेवा करके उससे अच्छे पदार्थों को प्राप्त होकर जो सब के बल को बढ़ाता है वह बलवान् होता है ॥ ७१ ॥

वरुण इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

वरुणः क्षुत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना युज्ञमाशत ॥७२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वरुणः) उत्तम पुरुष (सविता) ऐश्वर्योत्पादक (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा सभा का अध्यक्ष (भगेन) ऐश्वर्य्य के साथ वर्त्तमान (क्षत्रम्) राज्य और (इन्द्रियम्) मन आदि (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी और (यज्ञम्) यज्ञ को प्राप्त होता है वैसे (यशसा) कीर्ति के साथ (बलम्) बल को (दधानाः) धारण करते हुए तुम (आशत) प्राप्त होओ ॥ ७२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । ऐश्वर्य्य के विना राज्य, राज्य के विना राज्यलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी के विना भोग प्राप्त नहीं होते इसलिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ७२ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं॑ बलम् ।
हुविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥७३॥

पदार्थ—(अश्विना) अध्यापक उपदेशक और (सरस्वती) सुशिक्षायुक्त विदुषी स्त्री (गोभिः) अच्छे प्रकार शिक्षायुक्त वाणी वा पृथिवी और गौओं तथा (अश्वेभिः) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये हुए घोड़ों और (हविषा) अङ्गीकार किये हुए पुरुषार्थ से (इन्द्रियम्) धन (वीर्यम्) पराक्रम (बलम्) बल और (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त (यजमानम्) सत्य अनुष्ठानरूप यज्ञ के करने हारे को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें ॥ ७३ ॥

भावार्थ—जो लोग जिनके समीप रहें उनको योग्य है कि वे उनको सब अच्छे गुण कर्मों और ऐश्वर्य आदि से उन्नति को प्राप्त करें ॥ ७३ ॥

ता नासत्येत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा ।
सरस्वती हुविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥७४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य वाले विद्वन् ! (ता) वे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (सुपेशसा) अच्छे रूप युक्त (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण का वर्त्ताव करने हारी (नरा) सबगुणप्रापक पढ़ाने और उपदेश करने वाली (हविष्मती) उत्तम ग्रहण करने योग्य पदार्थ जिसके विद्यमान वह (सरस्वती) विदुषी स्त्री और आप (कर्मसु) कर्मों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् पुरुष पढ़ने और उपदेश से सब को दुष्ट कर्मों से दूर करके अच्छे प्रकार कर्मों में प्रवृत्त कर रक्षा करते हैं वैसे ही ये सब के रक्षा करने के योग्य हैं ॥ ७४ ॥

ता भिषजेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती ।
स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥७५॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (ता) वे (भिषजा) शरीर और आत्मा के रोगों के निवारण करने हारे (सुकर्मणा) अच्छी धर्मयुक्त क्रिया से युक्त दो वैद्य (सा) वह (सुदुघा) अच्छे प्रकार इच्छा को पूरण करने हारी (सरस्वती) पूर्ण विद्या से युक्त स्त्री और (सः) वह (वृत्रहा) जो मेघ का नाश करता है उस सूर्य के समान (शतक्रतुः) अत्यन्त बुद्धिमान् (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वैसे तुम आचरण करो ॥ ७५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जगत् में जैसे विद्वान् लोग उत्तम आचरण वाले पुरुष के समान प्रयत्न करके विद्या और धन को बढ़ाते हैं वैसे सब मनुष्य करें ॥ ७५ ॥

युवमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है —

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥७६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पालन आदि कर्म करने हारे अध्यापक और उपदेशक (सचा) मिले हुए (युवम्) तुम दोनों और हे (सरस्वति) अतिश्रेष्ठ विज्ञान वाली प्रजा ! तू जैसे (नमुचौ) प्रवाह से नित्यस्वरूप (आसुरे) मेघ में और (कर्मसु) कर्मों में (सुरामम्) अतिसुन्दर (इन्द्रम्) परमैश्वर्य का (आवत) पालन करते हो वैसे (विपिपानाः) नाना प्रकार से रक्षा करने हारे होते हुए आचरण करो ॥७६॥

भावार्थ—जो लोग पुरुषार्थ से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर धन की रक्षा करके आनन्द को भोगते हैं वे सदा ही बढ़ते हैं ॥ ७६ ॥

पुत्रमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७॥

पदार्थ—हे (मघवन्) उत्तम धन (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन् ! तू (शचीभिः) बुद्धियों के साथ (यत्) जिससे (सुरामम्) अति रमणीय महौषधि के रस को (व्यपिबः) पीता है इससे सरस्वती उत्तम शिक्षावती स्त्री (त्वा) तुझको (अभिष्णक्) समीप सेवन करे (उभा) दोनों (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (काव्यैः) कवियों के किये हुए (दंसनाभिः) कर्मों से जैसे (पितरौ) माता पिता (पुत्रमिव) पुत्र का पालन करते हैं वैसे तेरी (आवथुः) रक्षा करें ॥ ७७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे माता पिता अपने सन्तानों की रक्षा करके सदा बढ़ावें वैसे अध्यापक और उपदेशक शिष्य की रक्षा करके विद्या से बढ़ावें ॥ ७७ ॥

यस्मिन्नित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वुशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥७८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (अश्वासः) घोड़े और (ऋषभासः) उत्तम बैल तथा (उक्षणः) अतिबली वीर्य के सेचन करने हारे बैल (वशाः) बन्ध्या गायें और (मेषाः) मेढ़ा (अवसृष्टासः) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये और (आहुताः) सब ओर से ग्रहण किये हुए (यस्मिन्) जिस व्यवहार में काम करने हारे हों उसमें तू (हृदा) अन्तःकरण से (सोमपृष्ठाय) सोमविद्या को पूछने और (कीलालपे) उत्तम अन्न के रस को पीने हारे (वेधसे) बुद्धिमान् (अग्नये) अग्नि के समान प्रकाशमान जन के लिये (चारुम्) अति उत्तम (मतिम्) बुद्धि को (जनय) प्रकट कर ॥ ७८ ॥

भावार्थ—पशु भी सुशिक्षा पाये हुए उत्तम कार्य सिद्ध करते हैं क्या फिर विद्या की शिक्षा से युक्त मनुष्य लोग सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते ॥ ७८ ॥

अहावीत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अहा॑व्यग्ने ह॒विरा॒स्ये॒ ते स्रु॒चीव घृ॒तं च॒म्वी॒व॒ सोमः॑ ।

वा॒ज॒सनि॑ꣳ र॒यिम॒स्मे सु॒वीरं॑ प्रश॒स्तं धे॑हि य॒शसं॑ बृ॒हन्त॑म् ॥ ७९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) उत्तम विद्यायुक्त पुरुष ! जिस तूने (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त (हविः) होम करने योग्य वस्तु (ते) तेरे (आस्ये) मुख में (घृतम्, स्रुचीव) जैसे घृत स्रुच् के मुख में और (चम्वीव) जैसे यज्ञ के पात्र में होम के योग्य वस्तु वैसे (अहावि) होमा है वह तू (अस्मे) हम लोगों में (प्रशस्तम्) बहुत उत्तम (सुवीरम्) अच्छे वीर पुरुषों के उपयोगी और (वाजसनिम्) अन्न विज्ञान आदि गुणों का विभाग (यशसम्) कीर्त्ति करने हारी (बृहन्तम्) बड़ी (रयिम्) राज्य लक्ष्मी को (धेहि) धारण कर ॥ ७९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । गृहस्थ पुरुषों को चाहिये कि उन्हीं का भोजन आदि से सत्कार करें जो लोग पढ़ाना उपदेश और अच्छे कर्मों के अनुष्ठान से जगत् में बल, पराक्रम, यश, धन और विज्ञान को बढ़ावें ॥ ७९ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अ॒श्विना॒ तेज॑सा॒ चक्षुः॑ प्रा॒णेन॒ सर॑स्वती वी॒र्य॒म् ।

वा॒चेन्द्रो॒ बले॒नेन्द्रा॑य दधु॒रिन्द्रि॒यम् ॥ ८० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सरस्वती) विद्यावती स्त्री (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक और (इन्द्रः) सभा का अधिष्ठाता (इन्द्राय) जीव के लिये (प्राणेन) जीवन के साथ (वीर्यम्) पराक्रम और (तेजसा) प्रकाश से (चक्षुः) प्रत्यक्ष नेत्र (वाचा) वाणी और (बलेन) बल से (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को (दधुः) धारण करें वैसे तुम भी धारण करो ॥ ८० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग जैसे जैसे विद्वानों के सङ्ग से विद्या को बढ़ावें वैसे वैसे विज्ञान में रुचि वाले होवें ॥ ८० ॥

गोमदू षु णेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विद्वानों के विषय में पशु आदिकों से पालना विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गोम॑दू॒ षु णा॑सत्या॒श्वा॑वद्यातमश्विना । व॒र्त्ती रु॑द्रा नृ॒पाय्य॑म् ॥ ८१ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार से युक्त (रुद्रा) दुष्टों को रोदन कराने हारे (अश्विना) विद्या से बढ़े हुए लोगो ! तुम जैसे (गोमत्) गौ जिसमें विद्यमान उस (वर्त्तिः) वर्त्तमान मार्ग (उ) और (अश्वावत्) उत्तम घोड़ों से युक्त (नृपाय्यम्) मनुष्यों के मान को (सुयातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वैसे हम लोग भी प्राप्त होवें ॥ ८१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । गाय, घोड़ा, हाथी आदि पालन किये पशुओं से अपनी और दूसरे की मनुष्यों को पालना करनी चाहिये ॥ ८१ ॥

न यदित्यस्य गृत्समदऋषिः । अश्विनौ देवते । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

न यत्परो॒ नान्त॑र आद॒धर्ष॑द्वृषण्वसू । दुः॒शꣳसो॒ मर्त्यो॑ रि॒पुः ॥ ८२ ॥

पदार्थ—हे (वृषण्वसू) श्रेष्ठों को वास कराने हारे सभा और सेना के पति ! तुम (यत्) जिससे (दुःशंसः) दुःख से स्तुति करने योग्य (परः) अन्य (मर्त्यः) मनुष्य (रिपुः) शत्रु (न) न हो और (न) न (अंतरः) मध्यस्थ हो कि जो हमको (आदधर्षत्) सब ओर से धर्षण करे उसको अच्छे यत्न से वश में करो ॥ ८२ ॥

भावार्थ— राजपुरुषों को चाहिये कि जो अति बलवान् अत्यन्त दुष्ट शत्रु होवे उसको बड़े यत्न से जीतें ॥ ८२ ॥

ता न इत्यस्य गृत्समदऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

ता न॒ आ वो॑ढमश्विना र॒यिं पि॒शङ्ग॑सन्दृशम् ।

धिष्ण्या॑ वरिवो॒विद॑म् ॥ ८३ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभा और सेना के पालने हारो ! (धिष्ण्या) जो बुद्धि के साथ वर्त्तमान (ता) वे तुम (नः) हमको (वरिवोविदम्) जिससे सेवन को प्राप्त हों और(पिशङ्गसंदृशम्)जो सुवर्ण के समान देखने में आता है उस(रयिम्) धन को (आ, वोढम्) सब ओर से प्राप्त करो ॥ ८३ ॥

भावार्थ—सभापति और सेनापतियों को चाहिये कि राज्य के सुख के लिये सब ऐश्वर्य को सिद्ध करें जिससे सत्यधर्म का आचरण बढ़े ॥ ८३ ॥

पावका न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पा॒व॒का नः॒ सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती ।

य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒याव॑सुः ॥ ८४ ॥

पदार्थ—हे पढ़ाने वाले और उपदेशक लोगो ! जैसे (वाजेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (वाजिनीवती) अच्छी उत्तम विद्या से युक्त (पावका) पवित्र करने हारी (धियावसुः) बुद्धि के साथ जिससे धन हो वह (सरस्वती) अच्छे संस्कार वाली वाणी (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (वष्टु) शोभित करे वैसे तुम लोग हम लोगों को शिक्षा करो ॥ ८४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशकों से विद्या और सुशिक्षा अच्छे प्रकार ग्रहण करके विज्ञान की वृद्धि सदा किया करें ॥ ८४ ॥

चोदयित्रीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब स्त्रियों की शिक्षा के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

चो॒द॒यि॒त्री सू॒नृता॑नां॒ चेत॑न्ती सुमती॒नाम् ।

य॒ज्ञं द॑धे॒ सर॑स्वती ॥ ८५ ॥

पदार्थ—हे स्त्री लोगो ! जैसे (सूनृतानाम्) सुशिक्षा पाई हुई वाणियों को (चोदयित्री) प्रेरणा करने हारी (सुमतीनाम्) शुभ बुद्धियों को (चेतन्ती) अच्छे प्रकार ज्ञापन करती (सरस्वती) उत्तम विज्ञान से युक्त हुई मैं (यज्ञम्) यज्ञ को (दधे) धारण करती हूं वैसे यह यज्ञ तुम को भी करना चाहिये ॥ ८५ ॥

भावार्थ—जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो वह सब स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो ॥ ८५ ॥

महो अर्ण इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

म॒हो अर्णः॒ सर॑स्वती॒ प्र चे॑तयति के॒तुना॑ ।

धियो॒ विश्वा॒ वि रा॑जति ॥ ८६ ॥

पदार्थ—हे स्त्री लोगो ! जैसे (सरस्वती) वाणी (केतुना) उत्तम ज्ञान से (महः) बड़े (अर्णः) आकाश में स्थित शब्दरूप समुद्र को (प्रचेतयति) उत्तम प्रकार से जतलाती है और (विश्वाः) सब (धियः) बुद्धियों को (वि, राजति) नाना प्रकार से प्रकाशित करती है वैसे विद्याओं में तुम प्रवृत्त होओ ॥ ८६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । कन्याओं को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य से विद्या और सुशिक्षाको समग्र ग्रहण करके अपनी बुद्धियों को बढ़ावें ॥ ८६ ॥

इन्द्रायाहीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सामान्य उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रा या॑हि चित्रभानो सु॒ता इ॒मे त्वा॒यवः॑ ।

अण्वी॑भि॒स्तना॑ पू॒तासः॑ ॥ ८७ ॥

पदार्थ—हे (चित्रभानो) चित्र विचित्र विद्याप्रकाशों वाले (इन्द्र) सभापति ! आप जो (इमे) ये (अण्वीभिः) अङ्गुलियों से (सुता) सिद्ध किये (तना) विस्तार युक्त गुण से (पूतासः) पवित्र (त्वायवः) जो तुम को मिलते हैं उन पदार्थों को (आ, याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ८७ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग अच्छी क्रिया से पदार्थों को अच्छे प्रकार शुद्ध करके भोजनादि करें ॥ ८७ ॥

इन्द्रायाहि धियेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर विद्वद्विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रा या॑हि धि॒येषि॒तो विप्र॑जूतः सु॒ताव॑तः ।

उप॒ ब्रह्मा॑णि वा॒घतः॑ ॥ ८८ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त ! (इषितः) प्रेरित और (विप्रजूतः) बुद्धिमानों से शिक्षा पाके वेगयुक्त (वाघतः) शिक्षा पाई हुई वाणी से जानने हारा तू (धिया) सम्यक् बुद्धि से (सुतावतः) सिद्ध किये (ब्रह्माणि) अन्न और धनों को (उप, आ, याहि) सब प्रकार से समीप प्राप्त हो ॥ ८८ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जिज्ञासा वाले पुरुषों से मिल के उन में विद्या के निधि को स्थापित करें ॥ ८८ ॥

इन्द्रायाहि तूतुजान इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥८९॥

पदार्थ—हे (हरिवः) अच्छे उत्तम घोड़ों वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य के बढ़ाने हारे विद्वन् ! आप (उपायाहि) निकट आइये (तूतुजानः) शीघ्र कार्य्य कारी हो के (नः) हमारे लिये (सुते) उत्पन्न हुए व्यवहार में (ब्रह्माणि) धर्मयुक्त कर्म से प्राप्त होने योग्य धन और (चनः) भोग के योग्य अन्न को (दधिष्व) धारण कीजिए ॥ ८९ ॥

भावार्थ—विद्या और धर्म बढ़ाने के लिये किसी को आलस्य न करना चाहिये ॥ ८९ ॥

अश्विनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳫं सोम्यं मधु ॥९०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सजोषसा) समान सेवन करने हारे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (सरस्वत्या) अच्छे प्रकार संस्कार पाई हुई वाणी से (मधु) मधुर आदि गुणयुक्त विज्ञान को (पिबताम्) पान करें और जैसे (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा (वृत्रहा) सूर्य के समान वर्त्ताव वर्त्तने वाला (सोम्यम्) सोमलता आदि ओषधिगण में हुए (मधु) मधुरादि गुण युक्त अन्न का (जुषन्ताम्) सेवन करें वैसे तुम लोगों को भी करना चाहिये ॥९०॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक अपने जैसे सब लोगों के विद्या और सुख बढ़ाने की इच्छा करें जिससे सब सुखी हों ॥९०॥

इस अध्याय में राज प्रजा, धर्म्म के अङ्ग और अङ्गि, गृहाश्रम का व्यवहार ब्राह्मण, क्षत्रिय, सत्यव्रत, देवों के गुण, प्रजा के पालक, अभय, परस्पर सम्मति, स्त्रियों के गुण धन आदि पदार्थों की वृद्धचादि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की इससे प्रथम अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का बीसवां (२०) अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

卐 अथैकविंशतितमाऽध्यायारम्भः 卐

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

इममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब इक्कीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र से विद्वानों के विषय में कहा है—

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥१॥

पदार्थ—हे (वरुण) उत्तम विद्वान् जन ! जो (अवस्यु) अपनी रक्षा की इच्छा करनेहारा मैं (इमम्) इस (त्वाम्) तुझ को (आ, चके) चाहता हूँ वह तू (मे) मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) सुन (च) और (अद्य) आज मुझ को (मृडय) सुखी कर ॥ १ ॥

भावार्थ—सब विद्या की इच्छा वाले पुरुषों को चाहिये कि अनुक्रम से उप-देश करने वाले बड़े विद्वान् की इच्छा करें, वह विद्यार्थियों के स्वाध्याय को सुन और उत्तम परीक्षा करके सब को आनन्दित करे ॥ १ ॥

तत्वेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशᳫंस मा नऽआयुः प्र मोषीः ॥२॥

पदार्थ—हे (वरुण) अति उत्तम विद्वान् पुरुष ! जैसे (यजमानः) यज मान (हविर्भिः) देने योग्य पदार्थों से (तत्) उसकी (आ, शास्ते) इच्छा करता है वैसे (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उस (त्वा) तुझ को (यामि) प्राप्त होता हूँ । हे (उरुशंस) बहुत लोगों से प्रशंसा किये हुए जन ! मुझ से (अहेडमानः) सत्कार को प्राप्त होता हुआ तू (इह) इस संसार में (नः) हमारे (आयुः) जीवन वा विज्ञान को (मा) मत (प्र, मोषीः) चुरा लेवे और शास्त्र का (बोधिः) बोध कराया कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य जिससे विद्या को प्राप्त हो वह उसको प्रथम नमस्कार करे जो जिस का पढ़ाने वाला हो वह उस को विद्या देने के लिये कपट न करे कदापि किसी को आचार्य का अपमान न करना चाहिये ॥ २ ॥

त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणो देवते । स्वराड्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाᳫंसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (यजिष्ठः) अतीव यजन करने (वह्नितमः) अत्यन्त प्राप्ति कराने और (शोशुचानः) शुद्ध करने हारे (विद्वन्) विद्यायुक्त जन ! (त्वम्) तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) विद्वान् का जो (हेडः) अनादर उस को (अव) मत (यासिसीष्ठाः) करे । हे तेजस्विन् ! तू जो (नः) हमारा अनादर हो उस को अङ्गीकार मत कर । हे शिक्षा करने हारे ! तू (अस्मत्) हम से (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेष आदि युक्त कर्मों को (प्र, मुमुग्धि) छुड़ा दे ॥३॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्वानों का अनादर और कोई भी विद्वान् विद्यार्थियों का असत्कार न करे, सब मिल के ईर्ष्या क्रोध आदि दोषों को छोड़ के सब के मित्र होवें ॥ ३ ॥

स त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणो देवते । स्वराड्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

स त्वं नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणᳫं रराणो वीहि मृडीकᳫं सुहवो नऽएधि ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन् ! जैसे (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात समय के (व्युष्टौ) नाना प्रकार के दाह में अग्नि (नेदिष्ठः) अत्यन्त समीप और रक्षा करने हारा है वैसे (सः) वह (त्वम्) तू (नः, ऊती) प्रीति से (नः) हमारा (अवमः) रक्षा करने हारा (भव) हो (नः) हम को (वरुणम्) उत्तम गुण वा उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुणीजन का (अव, यक्ष्व) मेल कराओ और (रराणः) रमण करते हुए तुम (मृडीकम्) सुख देने हारे को (वीहि) व्याप्त होओ (नः) हम को (सुहवः) शुभदान देनेहारे (एधि) हूजिए ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातः समय में सूर्य समीप स्थित होके सब समीप के मूर्त्त पदार्थों को व्याप्त होता है वैसे शिष्यों के समीप अध्यापक हो के इनको अपनी विद्या से व्याप्त करे ॥४॥

महीमित्यस्य वामदेव ऋषिः। आदित्या देवताः। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब पृथिवी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मुहीमू षु मातरंꣳ सुव्रुतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामुजरंन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (मातरम्) माता के समान स्थित (सुव्रतानाम्) जिनके शुभ सत्याचरण हैं उसको (ऋतस्य) प्राप्त हुए सत्य की (पत्नीम्) स्त्री के समान वर्त्तमान (तुविक्षत्राम्) बहुत धन वाली (अजरन्तीम्) जीर्णपन में रहित (उरूचीम्) बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने हारी (सुशर्माणम्) अच्छे प्रकार के गृह से और (सुप्रणीतिम्) उत्तम नीतियों से युक्त (उ) उत्तम (अदितिम्) अखण्डित (महीम्) पृथिवी को (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सु, हुवेम) ग्रहण करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता सन्तानों और पतिव्रता स्त्री पति का पालन करती है वैसे यह पृथिवी सब का पालन करती है ॥५॥

सुत्रामाणमित्यस्य गयप्लात ऋषिः। अदितिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब जलयान विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥६॥

पदार्थ—हे शिल्पि जनो ! जैसे हम (स्वस्तये) सुख के लिये (सुत्रामाणम्) अच्छे रक्षण आदि से युक्त (पृथिवीम्) विस्तार और (द्याम्) शुभ प्रकाश वाली (अनेहसम्) अहिंसनीय (सुशर्माणम्) जिस में सुशोभित घर विद्यमान उस (अदितिम्) अखण्डित (सुप्रणीतिम्) बहुत राजा और प्रजाजनों की पूर्ण नीति से युक्त (स्वरित्राम्) वा जिस में वल्ली पर वल्ली लगी हैं उस (अनागसम्) अपराधरहित और (अस्रवन्तीम्) छिद्ररहित (दैवीम्) विद्वान् पुरुषों की (नावम्) प्रेरणा करने हारी नाव पर (आ, रुहेम) चढ़ते हैं वैसे तुम लोग भी चढ़ो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस में बहुत घर, बहुत साधन, बहुत रक्षा करने हारे, अनेक प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों उस छिद्र रहित बड़ी नाव में स्थित होके समुद्र आदि जल के स्थानों में पारावार देशान्तर और द्वीपान्तर में जा आके भूगोल में स्थित देश और द्वीपों को जान के लक्ष्मीवान् होवें ॥६॥

सुनावमित्यस्य गयप्लात ऋषिः। स्वर्ग्या नौर्देवता। यवमध्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्राꣳ स्वस्तये ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (स्वस्तये) सुख के लिए (अस्रवन्तीम्) छिद्रादि दोष वा (अनागसम्) बनावट के दोषों से रहित (शतारित्राम्) अनेकों लङ्गर वाली (सुनावम्) अच्छी बनी नाव पर (आ, रुहेयम्) चढ़ूं वैसे इस पर तुम भी चढ़ो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग बड़ी नावों की अच्छी प्रकार परीक्षा करके और उनमें स्थिर होके समुद्र आदि के पारावार जायें जिन में बहुत लङ्गर आदि होवें वे नावें अत्यन्त उत्तम हों ॥७॥

आ न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू ॥८॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु के समान वर्त्तने हारे (सुक्रतू) शुभ बुद्धि वा उत्तम कर्मयुक्त शिल्पी लोगो ! तुम (घृतैः) जलों से (नः) हमारे (गव्यूतिम्) दो कोश को (उक्षतम्) सेचन करो और (आ, मध्वा) सब ओर से मधुर जल से (रजांसि) लोकों का सेचन करो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो शिल्प विद्या वाले लोग नाव आदि को जल आदि मार्ग से चलावें तो वे ऊपर और नीचे मार्गों में जाने को समर्थ हों ॥८॥

प्र बाहवेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है—

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नऽआ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन।
आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९॥

पदार्थ—(मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण उत्तम जन (बाहवा) दोनों बाहु के तुल्य (युवाना) मिलाने और अलग करने हारे तुम (नः) हमारे (जीवसे) जीने के लिये (मा) मुझ को (प्र, सिसृतम्) प्राप्त होओ (घृतेन) जल से (नः) हमारे (गव्यूतिम्) दो कोश पर्यन्त (आ, उक्षतम्) सब ओर से सेचन करो। नाना प्रकार की कीर्ति को (आ, श्रावयतम्) अच्छे प्रकार सुनाओ और (मे) मेरे (जने) मनुष्यगण में (इमा) इन (हवा) वाद विवादों को (श्रुतम्) सुनो ॥ ९ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक प्राण और उदान के समान सब के जीवन के कारण होवें, विद्या और उपदेश से सब के आत्माओं को जल से वृक्षों के समान सेचन करें ॥ ९ ॥

शमित्यस्यात्रेय ऋषिः। ऋत्विजो देवताः। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१०॥

पदार्थ—हे (स्वर्काः) अच्छे अन्न वा वज्र से युक्त और (मितद्रवः) प्रमाणित चलने और (देवताता) विद्वानों के समान वर्त्तने हारे (वाजिनः) अति उत्तम विज्ञान से युक्त (हवेषु) लेने देने में चतुर आप लोग (अहिम्) मेघ को सूर्य के समान (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दुष्ट जीवों का (जम्भयन्तः) विनाश करते हुए (नः) हमारे लिए (सनेमि) सनातन (शम्) सुख करने हारे (भवन्तु) होओ और (अस्मत्) हमारे (अमीवाः) रोगों को (युयवन्) दूर करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्धकार को हटा के सब को सुखी करता है वैसे विद्वान् लोग प्राणियों के शरीर और आत्मा के सब रोगों को निवृत्त करके आनन्दयुक्त करें ॥ १० ॥

वाजेवाज इत्यस्य आत्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥११॥

पदार्थ—हे (अमृताः) आत्मस्वरूप से अविनाशी (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने हारे (वाजिनः) विज्ञान वाले (विप्राः) बुद्धिमान् लोगो ! तुम (वाजेवाजे) युद्ध युद्ध में और (धनेषु) धनों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो और (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस का (पिबत) पान करो और उससे (मादयध्वम्) विशेष आनन्द को प्राप्त होओ और इससे (तृप्ताः) तृप्त होके (देवयानैः) विद्वानों के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग विद्यादान से और उपदेश से सब को सुखी करते हैं वैसे ही राजपुरुष रक्षा और अभयदान से सब को सुखी करें तथा धर्मयुक्त मार्गों में चलते हुए अर्थ, काम और मोक्ष इन तीन पुरुषार्थ के फलों को प्राप्त होवें ॥११॥

समिद्ध इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

समिद्धोऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः।
गायत्री छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥१२॥

पदार्थ—जैसे (समिद्धः) अच्छे प्रकार देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि (समिधा) उत्तम प्रकाश से (सुसमिद्धः) बहुत प्रकाशमान सूर्य (वरेण्यः) अङ्गीकार करने योग्य जन और (गायत्री, छन्दः) गायत्री छन्द (इन्द्रियम्) मन को प्राप्त होता है और जैसे (त्र्यविः) शरीर, इन्द्रिय, आत्मा इन तीनों की रक्षा करने और (गौः) स्तुति प्रशंसा करने हारा जन (वयः) जीवन को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग (दधुः) धारण करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग विद्या से सब के आत्माओं को प्रकाशित और सब को जितेन्द्रिय करके पुरुषों को दीर्घ आयु वाले करें ॥ १२ ॥

तनूनपादित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती।
उष्णिहा छन्दऽइन्द्रियं दित्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥१३॥

पदार्थ—जैसे (शुचिव्रतः) पवित्र धर्म के आचरण करने (तनूनपात्) शरीर को पड़ने न देने (तनूपाः) किन्तु शरीर की रक्षा करने हारा (च) और (सरस्वती) वाणी तथा (उष्णिहा) उष्णिह (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को धारण करता है वा जैसे (दित्यवाट्) खण्डनीय पदार्थों के लिये हित प्राप्त कराने और (गौः) स्तुति करने हारा जन (वयः) इच्छा को बढ़ाता है वैसे इन सब को विद्वान् लोग (दधुः) धारण करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग पवित्र आचरण वाले हैं और जिन की वाणी विद्याओं में सुशिक्षा पाई हुई है वे पूर्ण जीवन के धारण करने को योग्य हैं ॥ १३ ॥

इडाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

इडा॑भिर॒ग्निरीड्य॒: सोमो॑ दे॒वोऽअम॑र्त्यः।
अ॒नु॒ष्टुप् छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं पञ्चा॑वि॒र्गौर्वयो॑ दधुः ॥१४॥

पदार्थ—जैसे (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (सोमः) ऐश्वर्यवान् (ईड्यः) स्तुति करने वा खोजने के योग्य (देवः) दिव्य गुणी (पञ्चाविः) पांच से रक्षा को प्राप्त (गौः) विद्या से स्तुति के योग्य विद्वान् पुरुष (इडाभिः) प्रशंसाओं से (अनुष्टुप्, छन्दः) अनुष्टुप् छन्द (इन्द्रियम्) ज्ञान आदि व्यवहार को सिद्ध करने हारे मन और (वयः) तृप्ति को धारण करें वैसे इस को सब (दधुः) धारण करें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग धर्म से विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे सब मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य प्राप्त करा सकते हैं ॥ १४ ॥

सुबर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सु॒ब॒र्हिर॒ग्निः पू॑ष॒ण्वान्त्स्ती॒र्णब॑र्हि॒रम॑र्त्यः।
बृ॒ह॒ती छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं त्रि॒व॒त्सो गौर्वयो॑ दधुः ॥१५॥

पदार्थ—जैसे (पूषण्वान्) पुष्टि करने हारे गुणों से युक्त (स्तीर्णबर्हिः) आकाश को व्याप्त होने वाला (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (सुबर्हिः) आकाश को शुद्ध करने हारा (अग्निः) अग्नि के समान जन और (बृहती) बृहती (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को धारण करें और (त्रिवत्सः) त्रिवत्स अर्थात् देह, इन्द्रिय, मन जिस के अनुगामी वह (गौः) गौ के समान मनुष्य (वयः) तृप्ति को प्राप्त करे वैसे इस को सब लोग (दधुः) धारण करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि अन्तरिक्ष में चलता है वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म और निराकार पदार्थों की विद्या में चलते हैं जैसे गाय के पीछे बछड़ा चलता है वैसे अविद्वान् जन विद्वानों के पीछे चला करें और अपनी इन्द्रियों को वश में लावें ॥ १५ ॥

दुरो देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवता। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

अब वायु आदि पदार्थों के प्रयोजन विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

दुरो॑ दे॒वीर्दिशो॑ म॒हीर्ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पति॑:।
प॒ङ्क्तिश्छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं तु॑र्य॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (इह) यहां (देवीः) देदीप्यमान (महीः) बड़े (दुरः) द्वारे (दिशः) दिशाओं को (ब्रह्मा) अन्तरिक्षस्थ पवन (देवः) प्रकाशमान (बृहस्पतिः) बड़ों का पालन करने हारा सूर्य और (पङ्क्तिश्छन्दः) पङ्क्ति छन्द (इन्द्रियम्) धन तथा (तुर्यवाट्) चौथे को प्राप्त होने हारी (गौः) गाय (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें वैसे तुम लोग भी जीवन को धारण करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—कोई भी प्राणी अन्तरिक्षस्थ पवन आदि के विना नहीं जी सकता ॥ १६ ॥

उषे इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

उ॒षे य॒ह्वी सु॒पेश॑सा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअम॑र्त्याः।
त्रि॒ष्टुप् छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं प॑ष्ठ॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (इह) इस जगत् में (सुपेशसा) सुन्दर रूपयुक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारी (यह्वी) बड़ी (उषे) दहन करने वाली प्रभात वेला के समान दो स्त्री (अमर्त्याः) तत्त्वस्वरूप से नित्य (विश्वे) सब (देवाः) देदीप्यमान पृथ्वी आदि लोक (त्रिष्टुप्छन्दः) त्रिष्टुप्छन्द और (पष्ठवाट्) पीठ से उठाने वाला (गौः) बैल (वयः) उत्पत्ति और (इन्द्रियम्) धन को धारण करते हैं वैसे (दधुः) तुम लोग भी आचरण करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—जैसे पृथ्वी आदि पदार्थ परोपकारी हैं वैसे इस जगत् में मनुष्यों को होना चाहिये ॥ १७ ॥

दैव्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में वैद्य के तुल्य अन्यों को आचरण करना चाहिये इस विषय को कहा है—

दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजेन्द्रे॑ण स॒युजा॑ यु॒जा।
जग॑ती॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यम॑न॒ड्वान् गौर्वयो॑ दधुः ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से (सयुजा) ओषधि आदि का तुल्य योग करनेहारे (युजा) सावधान चित्त हुए (दैव्या) विद्वानों में निपुण (होतारा) विद्यादि के देने वाले (भिषजा) उत्तम दो वैद्य लोग (अनड्वान्) बैल (गौः) गाय और (जगती छंदः) जगती छन्द (वयः) सुन्दर (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वैसे इस को तुम लोग धारण करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वैद्यों से अपने और दूसरों के रोग मिटाके आप और दूसरे ऐश्वर्यवान् किये जाते हैं वैसे सब मनुष्यों को वर्त्तना चाहिये ॥ १८ ॥

तिस्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ति॒स्रऽइडा॒ सर॑स्वती॒ भार॑ती म॒रुतो॒ विश॑:।
वि॒राट् छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं धे॒नुर्गौर्न वयो॑ दधुः ॥१९॥

पदार्थ—जैसे (इह) इस जगत् में (इडा) पृथ्वी (सरस्वती) वाणी और (भारती) धारण वाली बुद्धि ये (तिस्रः) तीन (मरुतः) पवनगण (विशः) मनुष्य आदि प्रजा (विराट्) तथा अनेक प्रकार से देदीप्यमान (छन्दः) बल (इन्द्रियम्) धन को और (धेनुः) पान कराने हारी (गौः) गाय के (न) समान (वयः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करें वैसे सब मनुष्य लोग इस को धारण करके वर्त्ताव करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग सुशिक्षित वाणी, विद्या, प्राण और पशुओं से ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वैसे अन्य सब को प्राप्त होना चाहिये ॥ १९ ॥

त्वष्टेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

त्वष्टा॑ तु॒रीपो॒ऽअद्भु॑तऽइन्द्रा॒ग्नी पु॑ष्टि॒वर्ध॑ना।
द्विप॑दा॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यमु॒क्षा गौर्न वयो॑ दधुः ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जो (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुणकर्मस्वभावयुक्त (तुरीपः) शीघ्र प्राप्त होने (त्वष्टा) और सूक्ष्म करने हारे तथा (पुष्टिवर्द्धना) पुष्टि को बढ़ाने हारे (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि दोनों और (द्विपदा) दो पाद वाले (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय को (उक्षा) सेचन करने में समर्थ (गौ) बैल के (न) समान (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें उनको जानो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रसिद्ध अग्नि, विजुली, पेट में का अग्नि, वडवानल ये चार और प्राण, इन्द्रियां तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये ॥ २० ॥

शमितेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श॒मि॒ता नो॒ वन॒स्पति॑: सवि॒ता प्र॑सु॒वन् भग॑म्।
क॒कुप् छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं व॒शा वे॒हद्वयो॑ दधुः ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (शमिता) शान्ति देने हारा (वनस्पतिः) ओषधियों का राजा वा वृक्षों का पालक (सविता) सूर्य (भगम्) धन को (प्रसुवन्) उत्पन्न करता हुआ (ककुप्) ककुप् (छन्दः) छन्द और (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को तथा (वशा) जिसके सन्तान नहीं हुआ और (वेहत्) जो गर्भ को गिराती है वह (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (वयः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करे उस को तुम लोग जान के उपकार करो ॥ २१ ॥

भावार्थ—जिस मनुष्य से सर्वरोग की नाशक ओषधियां और ढांकने वाले उत्तम वस्त्र सेवन किये जाते हैं वह बहुत वर्षों तक जी सकता है ॥ २१ ॥

स्वाहेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं वरु॑णः सुक्ष॒त्रो भे॑षजं॒ कर॑त् ।
अति॑च्छन्दाऽइन्द्रि॒यं बृ॒हदृ॑षभो गौर्वयो॑ दधुः ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (वरुणः) श्रेष्ठ (सुक्षत्रः) उत्तम धनवान् जन (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यज्ञम्) संगममय (भेषजम्) औषध को (करत्) करें और जो (अतिच्छन्दाः) अतिच्छन्द और (ऋषभः) उत्तम (गौः) बैल (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (वयः) सुन्दर अपने व्यवहार को धारण करते हैं वैसे ही सब (दधुः) धारण करें इसको जानो ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग अच्छे पथ्य और औषध के सेवन से रोगों का नाश करते हैं और पुरुषार्थ से धन तथा आयु का धारण करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

वसन्तेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

व॒स॒न्तेन॒ऽऋ॒तुना॑ दे॒वा वस॑वस्त्रि॒वृता॑ स्तु॒ताः ।
र॒थ॒न्त॒रेण॒ तेज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वसवः) पृथिवी आदि आठ वसु वा प्रथम कक्षा वाले विद्वान् लोग (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त (स्तुताः) स्तुति को प्राप्त हुए (त्रिवृता) तीनों कालों में विद्यमान (वसन्तेन) जिस में सुख से रहते हैं उस प्राप्त होने योग्य वसन्त (ऋतुना) ऋतु के साथ वर्त्तमान हुए (रथन्तरेण) जहां रथ से तरते हैं उस (तेजसा) तीक्ष्ण स्वरूप से (इन्द्रे) सूर्य के प्रकाश में (हविः) देने योग्य (वयः) आयु बढ़ाने हारे वस्तु को (दधु) धारण करें उनको स्वरूप जानकर सङ्गति करो ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग रहने के हेतु दिव्य पृथिवी आदि लोकों वा विद्वानों की वसन्त में सङ्गति करें वे वसन्तसंबन्धी सुख को प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

ग्रीष्मेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मध्यम ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ग्री॒ष्मेण॒ऽऋ॒तुना॑ दे॒वा रु॒द्राः प॑ञ्चद॒शे स्तु॒ताः ।
बृ॒ह॒ता यश॑सा॒ बल॑ꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (स्तुताः) प्रशंसा किये हुए (रुद्राः) दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा वा मध्यम कक्षा के (देवाः) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् (पञ्चदशे) पन्द्रहवें व्यवहार में (ग्रीष्मेण) सब रसों के खेंचने और (ऋतुना) उष्णपन प्राप्त करनेहारे ग्रीष्म ऋतु वा (बृहता) बड़े (यशसा) यश से (इन्द्रे) जीवात्मा में (हविः) ग्रहण करने योग्य (बलम्) बल और (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें उन को तुम लोग जानो ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्वान् हुए अन्य मनुष्यों के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वे भाग्यवान् होते हैं ॥ २४ ॥

वर्षाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब उत्तम ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

व॒र्षाभि॑र्ऋ॒तुना॑दि॒त्या स्तोमे॑ सप्तद॒शे स्तु॒ताः ।
वै॒रू॒पेण॑ वि॒शौज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वर्षाभिः) जिस में मेघ वृष्टि करते हैं उस वर्षा (ऋतुना) प्राप्त होने योग्य ऋतु (वैरूपेण) अनेक रूपों के होने (ओजसा) जो बल और उस (विशा) प्रजा के साथ रहनेवाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम कल्प के विद्वान् (सप्तदशे) सत्रहवें (स्तोमे) स्तुति के व्यवहार में (स्तुताः) प्रशंसा किये हुए (इन्द्रे) जीवात्मा में (हविः) देने योग्य (वयः) काल के ज्ञान को (दधुः) धारण करते हैं उन को तुम लोग जानकर उपकार करो ॥२५॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग विद्वानों के संग से काल की स्थूल सूक्ष्म गति को जान के एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गमाते हैं वे नानाविध ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥२५॥

शारदेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

शा॒र॒देन॒ऽऋ॒तुना॑ दे॒वाऽएक॑वि॒ꣳश॒ऽऋ॒भव॑ स्तु॒ताः ।
वै॒रा॒जेन॑ श्रि॒या श्रिय॑ꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (एकविंशे) इक्कीसवें व्यवहार में (स्तुताः) स्तुति किये हुए (ऋभवः) बुद्धिमान् (देवाः) दिव्यगुणयुक्त (शारदेन) शरद् (ऋतुना) ऋतु वा (वैराजेन) विराट् छन्द में प्रकाशमान अर्थ के साथ (श्रिया) शोभा और लक्ष्मी के साथ वर्त्ताव वर्त्तने हारे जन (इन्द्रे) जीवात्मा में (श्रियम्) लक्ष्मी और (हविः) देने लेने योग्य (वयः) वाञ्छित सुख को (दधुः) धारण करें उन का तुम लोग सेवन करो ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोगरहित होते हैं वे लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥

हेमन्तेनेत्यस्य आत्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

हे॒म॒न्तेन॒ऽऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्रि॑ण॒वे म॒रुत॑ स्तु॒ताः ।
बले॑न॒ शक्व॑रीः सहो॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जो (त्रिणवे) सत्ताईसवें व्यवहार में (हेमन्तेन) जिस में जीवों के देह बढ़ते जाते हैं उस (ऋतुना) प्राप्त होने योग्य हेमन्त ऋतु के साथ वर्त्तते हुए (स्तुताः) प्रशंसा के योग्य (देवाः) दिव्यगुणयुक्त (मरुतः) मनुष्य (बलेन) मेघ से (शक्वरीः) शक्ति के निमित्त गौओं के (सहः) बल तथा (हविः) देने लेने योग्य (वयः) वाञ्छित सुख को (इन्द्रे) जीवात्मा में (दधुः) धारण करें उन का तुम सेवन करो ॥ २७ ॥

भावार्थ—जो लोग सब रसों को पकाने हारे हेमन्त ऋतु में यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे अत्यन्त बलवान् होते हैं ॥ २७ ॥

शैशिरेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

शै॒शि॒रेण॒ऽऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्र॑यस्त्रि॒ꣳशेऽमृता॑ स्तु॒ताः ।
स॒त्येन॑ रे॒वतीः॑ क्ष॒त्रꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अमृताः) अपने स्वरूप से नित्य (स्तुताः) प्रशंसा के योग्य (शैशिरेण, ऋतुना) प्राप्त होने योग्य शिशिर ऋतु से (देवाः) दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले (सत्येन) सत्य के साथ (त्रयस्त्रिंशे) तेंतीस वसु आदि के समुदाय में विद्वान् लोग (रेवतीः) धनयुक्त शत्रुओं की सेनाओं को कूद के जाने वाली प्रजाओं और (इन्द्रे) जीव में (हविः) देने लेने योग्य (क्षत्रम्) धन वा राज्य और (वयः) वाञ्छित सुख को (दधुः) धारण करें उन से पृथिवी आदि की विद्याओं का ग्रहण करो ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो लोग पीछे कहे हुए आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्य पदार्थों को जानते हैं वे अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । आन्यश्विन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

होता॑ यक्षत्स॒मिधा॒ग्निमि॒डस्प॒दे॒ऽश्विनेन्द्र॒ꣳ सर॑स्वतीम॒जो धू॒म्रो न गो॒धूमैः॒ कुव॑लैर्भेष॒जं मधु॒ शष्पै॒र्न तेज॑ऽइन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥२९॥

पदार्थ— हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे (होता) देने वाला (इडस्पदे) पृथिवी और अन्न के स्थान में (समिधा) इन्धनादि साधनों से (अग्निम्) अग्नि को (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य वा जीवों और (सरस्वतीम्) सुशिक्षायुक्त वाणी को (अजः) प्राप्त होने योग्य (धूम्रः) धुमैले मेढ़े के (न) समान कोई जीव (गोधूमैः) गेहूं और (कुवलैः) जिन से बल नष्ट हो उन बेरों से (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत करे वैसे (शष्पैः) हिंसाओं के (न) समान साधनों से जो (तेजः) प्रगल्भपन (मधु) मधुर जल (इन्द्रियम्) धन (पयः) दूध वा अन्न (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घृत (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उनके साथ (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग इस संसार में साधन और उपसाधनों से पृथिवी आदि की विद्या को जानते हैं वे सब उत्तम पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

होता॑ यक्षत्तनू॒नपा॒त्सर॑स्वती॒मवि॑र्मे॒षो न भे॑ष॒जं प॒था मधु॑मता॒ भर॑न्न॒श्विनेन्द्रा॑य वी॒र्यं॒ बद॑रैरुप॒वाका॑भिर्भेष॒जं तोक्म॑भिः॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३०॥

पदार्थ—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन ! जैसे (तनूनपात्) देह की ऊनता को पालने अर्थात् उस को किसी प्रकार पूरी करने और (होता) ग्रहण करनेवाला

जन (सरस्वतीम्) बहुत ज्ञान वाली वाणी को वा (अविः) भेड़ और (मेषः) बकरा के (न) समान (मधुमता) बहुत जलयुक्त (पथा) मार्ग से (भेषजम्) ओषध को (भरत्) धारण करता हुआ (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (वीर्यम्) पराक्रम को वा (बदरैः) बेर और (उपवाकाभिः) उपदेश रूप क्रियाओं से (भेषजम्) ओषध को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) जल और (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधियों के समूह (घृतम्) घृत और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो संगति करने हारे जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को प्राप्त होके पथ्याहार विहारों से पराक्रम बढ़ा और पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे जगत् के भूषक होते हैं ॥ ३० ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । अतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

होता॑ यक्षन्नरा॒शꣳसं॒ न न॒ग्नहुं॒ पति॒ꣳ सुर॑या भेष॒जं मे॒षः सर॑स्वती भि॒षग्रथो॒ न च॒न्द्र्य॒श्विनो॑र्व॒पा इन्द्र॑स्य वी॒र्यं॒ बद॑रैरुपवा॒काभि॑र्भेष॒जं तो॒क्मभिः॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३१॥

पदार्थ—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन ! जैसे (होता) देनेवाला (नराशंसम्) जो मनुष्यों से स्तुति किया जाय उसके (न) समान (नग्नहुम्) नग्न दुष्ट पुरुषों को कारागृह में डालने वाले (पतिम्) स्वामी वा (सुरया) जल के साथ (भेषजम्) ओषध को वा (इन्द्रस्य) दुष्टगण का विदारण करने हारे जन के (वीर्यम्) शूरवीरों में उत्तम बल को (यक्षत्) संगत करे तथा (मेषः) उपदेश करने वाला (सरस्वती) विद्यासंबन्धिनी वाणी (भिषक्) वैद्य और (रथः) रथ के (न) समान (चन्द्री) बहुत सुवर्ण वाला जन (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के मध्य (वपाः) क्रियाओं को वा (बदरैः) बेरों के समान (उपवाकाभिः) समीप प्राप्त हुई वाणियों के साथ (भेषजम्) ओषध को संगत करे वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) दूध (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो लोग लज्जाहीन पुरुषों को दंड देते स्तुति करने योग्यों की स्तुति और जल के साथ ओषध का सेवन करते हैं वे बल और नीरोगता को पाके ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥३१॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । विराडतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

होता॑ यक्षदि॒डेडि॒तऽआ॒जुह्वा॑नः॒ सर॑स्वती॒मिन्द्रं॒ बले॑न व॒र्धय॑न्नृ॒ष॒भेण॒ गवे॑न्द्रि॒यम॒श्विनेन्द्रा॑य भेष॒जं यवैः॑ क॒र्कन्धु॑भि॒र्मधु॑ ला॒जैर्न मास॑रं॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३२॥

पदार्थ—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन ! जैसे (इडा) स्तुति करने योग्य वाणी से (ईडितः) प्रशंसायुक्त (आजुह्वानः) सत्कार से आह्वान किया हुआ (होता) प्रशंसा करने योग्य मनुष्य (बलेन) बल से (सरस्वतीम्) वाणी और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (ऋषभेण) चलने योग्य उत्तम (गवा) बैल से (इन्द्रियम्) धन तथा (अश्विना) आकाश और पृथिवी को (यवैः) यव आदि अन्नों से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (भेषजम्) ओषध को (वर्द्धयन्) बढ़ाता हुआ (कर्कन्धुभिः) बेर की क्रिया को धारण करनेवालों से (मधु) मीठे (लाजैः) प्रफुल्लित अन्नों के (न) समान (मासरम्) भात को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधिसमूह (पयः) रस (घृतम्) घी (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को तथा विद्वानों की सेवा विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो पथ्य और ओषध के सेवन से रोगों का विनाश कर नीरोगता को प्राप्त हों ॥ ३२ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

होता॑ यक्षद्ब॒र्हिरूर्ण॑म्रदा भि॒षङ्नास॑त्या भि॒षजा॒श्विनाश्वा॒ शिशु॑मती भि॒षग्धे॒नुः सर॑स्वती भि॒षग्दुह॒ऽइन्द्रा॑य भेष॒जं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३३॥

पदार्थ—हे (होतः) हवन करनेहारे जन ! जैसे (होता) देने हारा (ऊर्णम्रदा) ढांपने हारों को मर्दन करनेवाले जन (भिषक्) वैद्य (शिशुमती) और प्रशंसित बालकों वाली (अश्वा) शीघ्र चलने वाली घोड़ी (दुहे) परिपूर्णता करने के लिये (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (यक्षत्) संगत करें वा जैसे (नासत्या) सत्यव्यवहार करने हारे (अश्विना) वैद्यविद्या में व्याप्त (भिषजा) उत्तम वैद्य मेल करें वा वैसे (भिषक्) रोग मिटाने और (धेनुः) दुग्ध देने वाली गाय वा (सरस्वती) उत्तम विज्ञान वाली वाणी (भिषक्) सामान्य वैद्य (इन्द्राय) जीव के लिये मेल करे वैसे जो (परिस्रुता) प्राप्त हुए रस के साथ (भेषजम्) जल (पयः) दूध (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्या और संगति से सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करें तो वायु और अग्नि के समान सब विद्याओं के सुखों को व्याप्त होवें ॥ ३३ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । भुरिगतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

होता॑ यक्ष॒द्दुरो॒ दिशः॑ कव॒ष्यो॒ न व्यच॑स्वतीर॒श्विभ्यां॒ न दुरो॒ दिश॒ऽइन्द्रो॒ न रोद॑सी दु॒घे दु॒हे धे॒नुः सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्रा॑य भेष॒जꣳ शु॒क्रं न ज्योति॑रिन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३४॥

पदार्थ—हे (होतः) देने हारे जन ! जैसे (होता) लेने हारा (कवष्यः) छिद्रसहित वस्तुओं के (न) समान (दुरः) द्वारों और (व्यचस्वतीः) व्याप्त होने वाली (दिशः) दिशाओं को वा (अश्विभ्याम्) इन्द्र और अग्नि से जैसे (न) वैसे (दुरः) द्वारों और (दिशः) दिशाओं को वा (इन्द्रः) बिजुली के (न) समान (दुघे) परिपूर्णता करनेवाले (रोदसी) आकाश और पृथिवी के और (धेनुः) गाय के समान (सरस्वती) विज्ञान वाली वाणी (इन्द्राय) जीव के लिये (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (शुक्रम्) वीर्य करनेवाले जल के (न) समान (भेषजम्) ओषध तथा (ज्योतिः) प्रकाश करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि को (दुहे) परिपूर्णता के लिये (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घी (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन किया कर ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य सब दिशाओं के द्वारों वाले सब ऋतुओं में सुखकारी घर बनावें वे पूर्ण सुख को प्राप्त होवें इन के सब प्रकार के उदय के सुख की न्यूनता कभी नहीं होवे ॥ ३४ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । भुरिगतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

होता॑ यक्षत्सु॒पेश॑सो॒षे नक्तं॒ दिवा॒श्विना॒ सम॑ञ्जाते॒ सर॑स्वत्या॒ त्विषि॒मिन्द्रे॒ न भे॑ष॒जꣳ श्ये॒नो न रज॑सा हृ॒दा श्रि॒या न मास॑रं॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३५॥

पदार्थ—हे (होतः) देनेहारे जन ! जैसे (सुपेशसा) सुन्दर स्वरूपवती (उषे) काम का दाह करनेवाली स्त्रियाँ (नक्तम्) रात्रि और (दिवा) दिन में (अश्विना) व्याप्त होने वाले सूर्य और चन्द्रमा (सरस्वत्या) विज्ञानयुक्त वाणी से (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् प्राणी में (त्विषिम्) प्रदीप्ति और (भेषजम्) जल को (समञ्जाते) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं उन के (न) समान और (रजसा) लोकों के साथ वर्त्तमान (श्येनः) विशेष ज्ञान करानेवाले विद्वान् के (न) समान (होता) लेने हारा (श्रिया) लक्ष्मी वा शोभा के (न) समान (हृदा) मन से (मासरम्) भात वा अच्छे संस्कार किये हुए भोजन के पदार्थों को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) सब ओषधि का रस (सोमः) सब ओषधिसमूह (घृतम्) जल (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे रातदिन सूर्य और चन्द्रमा सब को प्रकाशित करते और सुन्दर रूप यौवन सम्पन्न स्वधर्मपत्नी अपने पति की सेवा करती वा जैसे पाकविद्या जानने वाला विद्वान् पाककर्म का उपदेश करता है वैसे सब का प्रकाश और सब कामों का सेवन करो और भोजन के पदार्थों को उत्तमता से बनाओ ॥ ३५ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

होता॑ यक्ष॒द्दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजा॒श्विनेन्द्रं॒ न जागृ॑वि॒ दिवा॒ नक्तं॒ न भे॑ष॒जैः शूष॒ꣳ सर॑स्वती भि॒षक् सीसे॑न दुह॒ऽइन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३६॥

पदार्थ—हे (होतः) देने हारे जन ! जैसे (होता) लेनेहारा (दैव्या) दिव्य गुण वालों में प्राप्त (होतारा) ग्रहण करने और (भिषजा) वैद्य के समान

रोग मिटाने वाले (अश्विना) अग्नि और वायु को (इन्द्रम्) बिजुली के (न) समान (यक्षत्) संगत करे वा (दिवा) दिन और (नक्तम्) रात्रि में (जागृवि) जागती अर्थात् काम के सिद्ध करने में अतिचैतन्य (सरस्वती) वैद्यकशास्त्र जानने वाली उत्तम ज्ञानवती स्त्री और (भिषक्) वैद्य (भेषजैः) जलों और (सीसेन) धनुप के विशेष व्यवहार से (शूषम्) बल के (न) समान (इन्द्रियम्) धन को (दुहे) परिपूर्ण करते हैं वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दुग्ध (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे विद्वान् लोगो ! जैसे अच्छी वैद्यक-विद्या पढ़ी हुई स्त्री काम सिद्ध करने को दिन रात उत्तम यत्न करती हैं वा वैद्य लोग रोगों को मिटाके शरीर का बल बढ़ाते हैं वैसे रहके सबको आनन्दयुक्त होना चाहिये ॥ ३६ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७॥

पदार्थ—हे (होतः) विद्या देनेवाले विद्वज्जन ! जैसे (होता) विद्या लेने वाला (तिस्रः) तीन (देवीः) देदीप्यमान नीतियों के (न) समान (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) अच्छे प्रकार प्राप्त करे वा जैसे (अपसः) कर्मवान् (त्रिधातवः, त्रयः) सब विषयों को धारण करनेवाले सत्व रजस्तम गुण जिन में विद्यमान वे तीन अर्थात् अस्मद् युष्मद् और तद् पदवाच्य जीव (हिरण्ययम्) ज्योतिर्मय (रूपम्) नेत्र के विषय रूप को (इन्द्रे) बिजुली में प्राप्त करें वा (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा तथा (इडा) स्तुति करने योग्य (भारती) धारणा वाली बुद्धि के (न) समान (सरस्वती) अत्यन्त विदुषी (वाचा) विद्या और सुशिक्षायुक्त वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यवान् के लिये (महः) अत्यन्तम (इन्द्रियम्) धन की (दुहे) परिपूर्णता करती वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर प्राप्त हुये रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधिसमूह (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे हाड़, मज्जा और वीर्य शरीर में कार्य के साधन हैं वा जैसे सूर्य आदि और वाणी सब को जानने वाले हैं वैसे हो और सृष्टि की विद्या को प्राप्त होके लक्ष्मी वाले होओ ॥ ३७ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग्यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३८॥

पदार्थ—हे (होतः) लेने हारे ! जैसे (होता) ग्रहण करने वाला (सुरेतसम्) अच्छे पराक्रमी (ऋषभम्) बैल और (नर्यापसम्) मनुष्यों में अच्छे कर्म करने तथा (त्वष्टारम्) दुःख काटने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त जन को (अश्विना) वायु और बिजुली वा (भिषजम्) उत्तम वैद्य के (न) समान (सरस्वतीम्) बहुत विज्ञानयुक्त वाणी को (ओजः) बल के (न) समान (यक्षत्) प्राप्त करे (भिषक्) वैद्य (वृकः) वज्र के (न) समान (जूतिः) वेग (इन्द्रियम्) मन (रभसः) वेग (यशः) धन वा अन्न को (सुरया) जल से (भेषजम्) औषध को (श्रिया) धन के (न) समान क्रिया से (मासरम्) अच्छे पके हुए अन्न को प्राप्त करे वैसे (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त पुरुषार्थ से (पयः) पीने योग्य रस और (सोमः) ऐश्वर्य (घृतम्) घी और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य, धर्म के आचरण, विद्या और सत्संगति आदि से सब सुख को प्राप्त होते हैं वैसे मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥३८॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३९॥

पदार्थ—हे (होतः) लेने हारे ! जैसे (भिषक्) वैद्य (होता) वा लेने हारा (इन्द्राय) धन के लिए (वनस्पतिम्) किरणों को पालने और (शमितारम्) शान्ति देने हारे (शतक्रतुम्) अनन्त बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त जन को (भीमम्) भयकारक के (न) समान (मन्युम्) क्रोध वा (नमसा) वज्र से (व्याघ्रम्) सिंह और (राजानम्) देदीप्यमान राजा को (यक्षत्) प्राप्त करे वा (सरस्वती) उत्तम विज्ञान वाली स्त्री और (अश्विना) सभा और सेनापति (भामम्) क्रोध को (दुहे) परिपूर्ण करे वैसे (परिस्रुता) प्राप्त हुए पुरुषार्थ के साथ (इन्द्रियम्) धन (पयः) रस (सोमः) चन्द्र (घृतम्) घी (मधु) मधुर वस्तु (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य लोग विद्या से अग्नि, शान्ति से विद्वान्, पुरुषार्थ से बुद्धि और न्याय से राज्य को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे इस जन्म और परजन्म के सुख को प्राप्त होते हैं ॥३९॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदत्यष्ट्यौ छन्दसी ।
गान्धारः स्वरः ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳ सरस्वत्यै स्वाहाऽऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहसऽइन्द्रियꣳ स्वाहाग्निं न भेषजꣳ स्वाहा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳ सवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳ स्वाहा देवाऽआज्यपा जुषाणोऽअग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥४०॥

पदार्थ—हे (होतः) देने हारे जन ! जैसे (होता) ग्रहण करने हारा (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घी की (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा (स्तोकानाम्) स्वल्प (मेदसाम्) स्निग्ध पदार्थों की (स्वाहा) अच्छे प्रकार रक्षण क्रिया से (अग्निम्) अग्नि को (पृथक्) भिन्न भिन्न (स्वाहा) उत्तम रीति से (अश्विभ्याम्) राज्य के स्वामी और पशु के पालन करने वालों से (छागम्) दुःख के छेदन करने को (सरस्वत्यै) विज्ञानयुक्त वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (मेषम्) सेचन करने हारे को (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (स्वाहा) परमोत्तम क्रिया से (ऋषभम्) श्रेष्ठ पुरुषार्थ को (सहसे) बल (सिंहाय) और जो शत्रुओं का हनन-कर्त्ता उसके लिए (स्वाहा) उत्तम वाणी से (इन्द्रियम्) धन को (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (अग्निम्) पावक के (न) समान (भेषजम्) औषध (सोमम्) सोमलतादि ओषधिसमूह (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रियों को (स्वाहा) शान्ति आदि क्रिया और विद्या से (सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षक (इन्द्रम्) सेनापति को (भिषजाम्) वैद्यों के (पतिम्) पालन करने हारे (सवितारम्) ऐश्वर्य के कर्त्ता (वरुणम्) श्रेष्ठ पुरुष को (स्वाहा) निदान आदि विद्या से (वनस्पतिम्) वनों के पालन करने हारे को (स्वाहा) उत्तम विद्या से (प्रियम्) प्रीति करने योग्य (पाथः) पालन करने वाले अन्न के (न) समान (भेषजम्) उत्तम औषध को (यक्षत्) संगत करे वा जैसे (आज्यपाः) विज्ञान के पालन करनेहारे (देवाः) विद्वान् लोग और (भेषजम्) चिकित्सा करने योग्य को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (अग्निः) पावक के समान तेजस्वी जन संगत करें वैसे जो (परिस्रुता) चारों ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन किया कर ॥४०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य विद्या, क्रियाकुशलता और प्रयत्न से अग्न्यादि विद्या को जान के गौ आदि पशुओं का अच्छे प्रकार पालन करके सब के उपकार को करते हैं वे वैद्य के समान प्रजा के दुःख के नाशक होते हैं ॥४०॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताꣳ हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४१॥

पदार्थ—हे (होतः) देने हारे ! तू जैसे (होता) देने हारा (यक्षत्) अनेक प्रकार के व्यवहारों की संगत करे (अश्विनौ) पशु पालने वा खेती करने वाले (छागस्य) बकरा गौ भैंस आदि पशुसम्बन्धी वा (वपायाः) बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और (मेदसः) चिकने पदार्थ के (हविः) लेने देने योग्य व्यवहार का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) व्यवहारों की संगति कर हे (होतः) देने हारे जन ! तू जैसे (होता) लेने हारा (मेषस्य) मेढ़ा के (वपायाः) बीज को बढ़ाने वाली क्रिया और (मेदसः) चिकने पदार्थ सम्बन्धी (हविः) अग्नि आदि में छोड़ने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और (सरस्वतीम्) विशेष ज्ञान वाली वाणी का (जुषताम्) सेवन करे (यक्षत्) वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करे वैसे (यज) सब पदार्थों का यथायोग्य मेल कर हे (होतः) देने हारे ! तू जैसे (होता) लेने हारा (ऋषभस्य) बैल को (वपायाः) बढ़ने वाली रीति और (मेदसः) चिकने पदार्थ सम्बन्धी (हविः) देने योग्य पदार्थ और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य करनेवाले का (जुषताम्) सेवन करे वा यथायोग्य (यक्षत्) उक्त पदार्थों का मेल करे वैसे (यज) यथायोग्य पदार्थों का मेल कर ॥४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं वे आप भी बलवान् होते और जो पशुओं से उत्पन्न हुए दूध और उस से उत्पन्न हुए घी का सेवन करते वे कोमल स्वभाव वाले होते हैं और जो खेती करने आदि के लिए इन बैलों को युक्त करते हैं वे धनधान्ययुक्त होते हैं ॥४१॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। होत्रादयो देवताः। पूर्वस्य त्रिपाद् गायत्री छन्दः।
सुरामाण इत्यस्यातिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः। पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥४२॥

पदार्थ—हे (होतः) लेने हारे! जैसे (होता) देने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुषों (सरस्वतीम्) तथा विज्ञान की भरी हुई वाणी और (सुत्रामाणम्) प्रजाजनों की अच्छी रक्षा करने हारे (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा को (यक्षत्) प्राप्त हो वा (इमे) ये जो (सुरामाणः) अच्छे देने हारे (सोमाः) ऐश्वर्यवान् सभासद् (सुताः) जो कि अभिषेक पाये हुए हों वे (छागैः) विनाश करने योग्य पदार्थों वा बकरा आदि पशुओं (न) वैसे तथा (मेषैः) देखने योग्य पदार्थ वा मेंढ़ों (ऋषभैः) श्रेष्ठ पदार्थों वा बैलों और (शष्पैः) हिंसकों से जैसे (न) वैसे (तोक्मभिः) सन्तानों और (लाजैः) भुंजे अन्नों से (महस्वन्तः) जिन के सत्कार विद्यमान हों वे मनुष्य और (मदाः) आनन्द (मासरेण) पके हुए चावलों के साथ (परिष्कृताः) शोभायमान (शुक्राः) शुद्ध (पयस्वन्तः) प्रशंसित जल और दूध से युक्त (अमृताः) जिनमें अमृत एक रस (मधुश्चुतः) जिन से मधुरादि गुण टपकते वा (प्रस्थिताः) एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए (वः) तुम्हारे लिये पदार्थ बनाये हैं (तान्) उनको प्राप्त होवे वा जैसे (अश्विना) सुन्दर सत्कार पाये हुए पुरुष (सरस्वती) प्रशंसित विद्यायुक्त स्त्री (सुत्रामा) अच्छी रक्षा करने वाला (वृत्रहा) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् सज्जन (सोम्यम्) शीतलता गुण के योग्य (मधु) मीठेपन का (जुषन्ताम्) सेवन करें (पिबन्तु) पीवें (मदन्तु) परखें और समस्त विद्याओं को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब पदार्थों की यथायोग्य संगति किया कर॥४२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो संसार के पदार्थों की विद्या सत्य वाणी और भली भांति रक्षा करने हारे राजा को पाकर पशुओं के दूध आदि पदार्थों से पुष्ट होते हैं वे अच्छे रसयुक्त अच्छे संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ जो सुपरीक्षित हों उन को युक्ति के साथ खा और रसों को पी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के निमित्त अच्छा यत्न करते हैं वे सदैव सुखी होते हैं ॥४२॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। होत्रादयो देवताः। आद्यस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥ उत्तरस्योत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाश्विना जुषेताꣳ हविर्होतर्यज ॥४३॥

पदार्थ—हे (होतः) देने हारे! जैसे (होता) लेने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वालों को (यक्षत्) संगत करे और वे (अद्य) आज (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के (मध्यतः) बीच से (हविषः) लेने योग्य पदार्थ का (मेदः) चिकना भाग अर्थात् घी दूध आदि (उद्भृतम्) उद्धार किया हुआ (आत्ताम्) लेवें वा जैसे (द्वेषोभ्यः) दुष्टों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषों के समूह में उत्तम स्त्री के (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय करके (घस्ताम्) खावें वा जैसे (यवसप्रथमानाम्) जो जिनका पहिला अन्न (घासे अज्राणाम्) जो खाने में आगे पहुँचने योग्य (सुमत्क्षराणाम्) जिन के उत्तम उत्तम आनन्दों का कंपन आगमन (शतरुद्रियाणाम्) दुष्टों को रुलाने हारे सैकड़ों रुद्र जिनके देवता (पीवोपवसनानाम्) वा जिन के मोटे मोटे कपड़ों के ओढ़ने पहिरने (अग्निष्वात्तानाम्) वा जिन्होंने भलीभांति अग्निविद्या का ग्रहण किया हो इन सब प्राणियों के (पार्श्वतः) पार्श्वभाग (श्रोणितः) कटिप्रदेश (शितामतः) तीक्ष्ण जिसमें कच्चा अन्न उस प्रदेश (उत्सादतः) उपाड़ते हुए अंग और (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से व्यवहार वा (अवत्तानाम्) नमे हुए उत्तम अङ्गों (एव) ही के व्यवहार को (अश्विना) अच्छे वैद्य (करतः) करें और (हविः) उक्त पदार्थों से खाने योग्य पदार्थ का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) सब पदार्थों वा व्यवहारों की संगति किया कर ॥४३॥

भावार्थ—जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध आदि अच्छा अच्छा संस्कार और भोजन कर वैरभाव युक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके उत्तम खाना पहिरना करते हैं वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं ॥ ४३ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। पूर्वस्य याजुषी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः। हविष इत्युत्तरस्य स्वराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवꣳ सरस्वती जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४४॥

पदार्थ—हे (होतः) लेने हारे! जैसे (होता) देने वाला (अद्य) आज (मेषस्य) उपदेश को पाये हुए मनुष्य के (शितामतः) खरे स्वभाव से (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में प्रसिद्ध व्यवहार से जो (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) उद्धार किया अर्थात् निकाला उसको (सरस्वतीम्) और वाणी को (आ, अवयत्) प्राप्त होता तथा (यक्षत्) सत्कार करता और (द्वेषोभ्यः) शत्रुओं से (पुरा) पहिले तथा (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिनी स्त्री के (पुरा) प्रथम (नूनम्) निश्चय से (घसत्) खावे वा (घासे अज्राणाम्) जो भोजन करने में सुन्दर (यवसप्रथमानाम्) मिले न मिले हुए आदि (सुमत्क्षराणाम्) श्रेष्ट आनन्द की वर्षा कराने और (पीवोपवसनानाम्) मोटे कपड़े पहरने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निविद्या को भलीभांति ग्रहण किये हुए और (शतरुद्रियाणाम्) बहुतों के बीच विद्वानों का अभिप्राय रखने हारों के (पार्श्वतः) समीप और (श्रोणितः) कटिभाग से (उत्सादतः) शरीर से जो त्याग उससे वा (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग अङ्ग में (अवात्तनाम्) ग्रहण किये हुए व्यवहारों की विद्या को (करत्) ग्रहण करे (एवम्) ऐसे (सरस्वती) पण्डिता स्त्री उस का (जुषताम्) सेवन करे वैसे तू भी (हविः) ग्रहण करने योग्य व्यवहार की (यज) सङ्गति किया कर ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सज्जनों के सङ्ग से दुष्टों का निवारण कर युक्त आहार विहारों से आरोग्यपन को पाकर धर्म का सेवन करते वे कृतकृत्य होते हैं ॥ ४४ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। यजमानर्त्विजो देवताः। पूर्वस्य भुरिक्प्राजापत्योष्णिक्।
आवयदित्युत्तरस्य भुरिगभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४५॥

पदार्थ—हे (होतः) देने हारे! जैसे (होता) लेने हारा पुरुष (घासे अज्राणाम्) भोजन करने में प्राप्त होने (यवसप्रथमानाम्) जौ आदि अन्न वा मिले न मिले हुए पदार्थों को विस्तार करने और (सुमत्क्षराणाम्) भलीभांति प्रमाद का विनाश करने वाले (अग्निष्वात्तानाम्) जाठराग्नि अर्थात् पेट में भीतर रहने वाले आग से अन्न ग्रहण किये हुए (पीवोपवसनानाम्) मोटे पोढ़े उढ़ाने (शतरुद्रियाणाम्) और सैकड़ों दुष्टों को रुलाने हारे (अवत्तानाम्) उदारचित विद्वानों के (पार्श्वतः) और पास के अंग वा (श्रोणितः) क्रम से वा (शितामतः) तीक्ष्णता के साथ जिससे रोग छिन्न भिन्न हो गया हो उस अंग वा (उत्सादतः) त्यागमात्र वा (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से (हविः) रोग विनाश करने हारी वस्तु और (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को सिद्ध (करत्) करे और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला राजा उस का (जुषताम्) सेवन करे तथा वह राजा जैसे (अद्य) आज (ऋषभस्य) उत्तम (हविषः) लेने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में उत्पन्न हुआ (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) जो कि उत्तमता से पुष्ट किया गया अर्थात् सम्हाला गया हो उस को (आ, अवयत्) व्याप्त हो सब ओर से प्राप्त हो (द्वेषोभ्यः) वैरियों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिनी विद्या के सम्बन्ध से (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय के साथ (यक्षत्) सत्कार करे वा (एवम्) इस प्रकार (घसत्) भोजन करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग से दुष्टों को निवारण तथा श्रेष्ठ उत्तम जनों का सत्कार कर लेने योग्य पदार्थ को लेकर और दूसरों को ग्रहण करा सब की उन्नति करते हैं वे सत्कार करने योग्य होते हैं॥ ४५ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिगभिकृती छन्दसी।
ऋषभः स्वरः ॥

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित। यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य

हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयसऽइव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताᳬं हविर्होतर्यज ॥४६॥

पदार्थ—हे (**होतः**) देनेहारे ! जैसे (**होतः**) लेने हारा सत्पुरुष (**पिष्टतमया**) अति पिसी हुई (**रभिष्ठया**) अत्यन्त शीघ्रता से बढ़नेवाली वा जिसका बहुत प्रकार से प्रारम्भ होता है उस वस्तु और (**रशनया**) रश्मि के साथ (**यत्र**) जहां (**अश्विनोः**) सूर्य्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध से पालित (**छागस्य**) घाम को छेदने खाने हारा बकरा आदि पशु और (**हविषः**) देने योग्य पदार्थसम्बन्धी (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) उत्पन्न होने ठहरने की जगह और नाम वा (**यत्र**) जहां (**सरस्वत्याः**) नदी (**मेषस्य**) मेंढ़ा और (**हविषः**) ग्रहण करने पदार्थ-सम्बन्धी (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म, स्थान और नाम वा (**यत्र**) जहां (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्ययुक्त जन के (**ऋषभस्य**) प्राप्त होने और (**हविषः**) देने योग्य पदार्थ के (**प्रिया**) प्यारे मन के हरने वाले (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम वा (**यत्र**) जहाँ (**अग्नेः**) प्रसिद्ध और बिजुलीरूप अग्नि के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम वा (**यत्र**) जहां (**सोमस्य**) ओषधियों के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम वा (**यत्र**) जहां (**सुत्राम्णः**) भलीभाँति रक्षा करने वाले (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्ययुक्त उत्तम पुरुष के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम वा (**यत्र**) जहां (**सवितुः**) सब को प्रेरणा देने हारे पवन के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) उत्पन्न होने ठहरने की जगह और नाम वा (**यत्र**) जहां (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ पदार्थ के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म, स्थान और नाम वा (**यत्र**) जहाँ (**वनस्पतेः**) वट आदि वृक्षों के (**प्रिया**) उत्तम (**पाथांसि**) अन्न अर्थात् उन के पीने के जल वा (**यत्र**) जहां (**आज्यपानाम्**) गति अर्थात् अपनी कक्षा में घूमने से जीवों के पालने वाले (**देवानाम्**) पृथिवी आदि दिव्य लोकों का (**प्रिया**) उत्तम (**धामानि**) उत्पन्न होना उनके ठहरने की जगह और नाम वा (**यत्र**) जहां (**होतुः**) उत्तम सुख देने और (**अग्नेः**) विद्या से प्रकाशमान होने हारे अग्नि के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम हैं (**तत्र**) वहाँ (**एतान्**) इन उक्त पदार्थों की (**प्रस्तुत्येव**) प्रकरण से अर्थात् समय समय से चाहना सी कर और (**उपस्तुत्येव**) उनकी समीप प्रशंसा सी करके (**उपावस्रक्षत्**) उनको गुण कर्म स्वभाव से यथायोग्य कामों में उपार्जन करे अर्थात् उक्त पदार्थों का संचय करे (**रभीयस इव**) बहुत प्रकार से अतीव आरम्भ के समान (**कृत्वी**) करके कार्य्यों के उपयोग में लावे (**एवम्**) और इस प्रकार (**करत्**) उनका व्यवहार करे वा जैसे (**वनस्पतिः**) सूर्य आदि लोकों की किरणों की पालना करने हारा और (**देवः**) दिव्यगुणयुक्त अग्नि (**हविः**) संस्कार किये अर्थात् उत्तमता से बनाये हुए पदार्थ का (**जुषताम्**) सेवन करे और (**हि**) निश्चय से (**वनस्पतिम्**) वट आदि वृक्षों को (**अभि, यक्षत्**) सब ओर से पहुँचे अर्थात् बिजुली रूप से प्राप्त हो और (**अधित**) उनका धारण करे वैसे तू (**यज**) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर के उत्पन्न किये हुए पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान कर इन को कार्य की सिद्धि के लिये भलीभाँति युक्त करें तो वे अपने चाहे हुए सुखों को प्राप्त होवें ॥४६॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। पूर्वस्य भुरिगाकृतिरयाडित्युत्तरस्याऽऽकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

होता यक्षदग्निᳬं स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथाᳬंस्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्याऽइषः कृणोतु सोऽअध्वरा जातवेदा जुषताᳬं हविर्होतर्यज ॥४७॥

पदार्थ—हे (**होतः**) देने हारे ! जैसे (**होता**) लेने हारा (**स्विष्टकृतम्**) भली भाँति चाहे हुए पदार्थ से प्रसिद्ध किये (**अग्निम्**) अग्नि को (**यक्षत्**) प्राप्त और (**अयाट्**) उस की प्रशंसा करे वा जैसे (**अग्निः**) प्रसिद्ध आग (**अश्विनोः**) पवन बिजुली (**छागस्य**) बकरा आदि पशु (**हविषः**) और लेने योग्य पदार्थ के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम को (**अयाट्**) प्राप्त हो वा (**सरस्वत्याः**) वाणी (**मेषस्य**) सींचने वा दूसरे के जीतने की इच्छा करने वाले प्राणी (**हविषः**) और ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (**प्रिया**) प्यारे मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम की (**अयाट्**) प्रशंसा करे वा (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्त (**ऋषभस्य**) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा और (**हविषः**) ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम की (**अयाट्**) प्रशंसा करे वा (**अग्नेः**) बिजुली रूप अग्नि के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम की (**अयाट्**) प्रशंसा करे वा (**सोमस्य**) ऐश्वर्य्य के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम की (**अयाट्**) प्रशंसा करे वा (**सुत्राम्णः**) भलीभांति रक्षा करने वाले (**इन्द्रस्य**) सेनापति के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम की (**अयाट्**) प्रशंसा करे वा (**सवितुः**) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे उत्तम पदार्थज्ञान के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम की (**अयाट्**) प्रशंसा करे वा (**वरुणस्य**) सब से उत्तम जन और जल के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम की (**अयाट्**) प्रशंसा करे वा (**वनस्पतेः**) वट आदि वृक्षों के (**प्रिया**) तृप्ति कराने वाले (**पाथांसि**) फलों को (**अयाट्**) प्राप्त हो वा (**आज्यपानाम्**) जानने योग्य पदार्थ की रक्षा करने और रस पीने वाले (**देवानाम्**) विद्वानों के (**प्रिया**) प्यारे मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम का (**यक्षत्**) मिलाना वा सराहना करे वा (**होतुः**) जलादिक ग्रहण करने और (**अग्नेः**) प्रकाश करने वाले सूर्य्य के (**प्रिया**) मनोहर (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम की (**यक्षत्**) प्रशंसा करे (**स्वम्**) अपने (**महिमानम्**) बड़प्पन का (**आ, यजताम्**) ग्रहण करे वा जैसे (**जातवेदाः**) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुआ जो पुरुष (**एज्याः**) अच्छे प्रकार संगयोग्य उत्तम क्रियाओं और (**इषः**) चाहनाओं को (**कृणोतु**) करे (**सः**) वह (**अध्वरा**) न छोड़ने न विनाश करने योग्य यज्ञों का और (**हविः**) सङ्ग करने योग्य पदार्थ का (**जुषताम्**) सेवन करे वैसे तू (**यज**) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अपने चाहे हुए को सिद्ध करने वाले अग्नि आदि संसारस्थ पदार्थों को अच्छे प्रकार जानकर प्यारे मन से चाहे हुए सुखों को प्राप्त होते हैं वे अपने बड़प्पन का विस्तार करते हैं ॥४७॥

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। सरस्वत्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना। तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**सरस्वती**) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य के निमित्त (**देवम्**) दिव्य (**सुदेवम्**) सुन्दर विद्वान् पति की (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष (**अश्विना**) पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा (**चक्षुः**) आंख के (**तेजः**) तेज के (**न**) समान (**यज**) प्रशंसा वा सङ्गति करती है और जैसे विद्वान् जन (**वसुधेयस्य**) जिस में धन धारण करने योग्य हो उस व्यवहार सम्बन्धी (**वसुवने**) धन की प्राप्ति कराने के लिये (**अक्ष्योः**) आंखों के (**बर्हिषा**) अन्तरिक्ष अवकाश से अर्थात् दृष्टि से देख के (**इन्द्रियम्**) उक्त धन को (**दधुः**) धारण करते और (**व्यन्तु**) प्राप्त होते हैं वैसे इसको तू धारण कर और प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या अपने लिये मनोहर पति को पाकर आनन्द करती है वैसे विद्या और संसार के पदार्थ का बोध पाकर तुम लोगों को भी आनन्दित होना चाहिये ॥ ४८ ॥

देवीर्द्वार इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वानों का उपदेश कैसा होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवीर्द्वारोऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती। प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**अश्विना**) पवन और सूर्य्य वा (**सरस्वती**) विशेष ज्ञान वाली स्त्री और (**भिषजा**) वैद्य (**इन्द्रे**) ऐश्वर्य के निमित्त (**देवीः**) अतीव दीपते अर्थात् चमकाते हुए (**द्वारः**) पैठने और निकलने के अर्थ बने हुए द्वारों को प्राप्त होते हुए प्राणियों की (**नसि**) नासिका में (**प्राणम्**) जो श्वास आती उस के (**न**) समान (**वीर्य्यम्**) बल और (**द्वारः**) द्वारों अर्थात् शरीर के प्रसिद्ध नव छिद्रों को (**दधुः**) धारण करें (**वसुवने**) वा धन का सेवन करने के लिये (**वसुधेयस्य**) धनकोश के (**इन्द्रियम्**) धन को विद्वान् जन (**व्यन्तु**) प्राप्त हों वैसे तू (**यज**) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा का प्रकाश द्वारों से घर को पैठ घर के भीतर प्रकाश करता है वैसे विद्वानों का उपदेश कानों में प्रविष्ट होकर भीतर मन में प्रकाश करता है। ऐसे जो विद्या के साथ अच्छा यत्न करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥ ४९ ॥

देवी उषासावित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमास्यऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (देवीः) निरन्तर प्रकाश को प्राप्त (उषासौ) सायंकाल और प्रातःकाल की सन्धिवेला वा (सुत्रामा) भलीभांति रक्षा करने वाले (सरस्वती) विशेष ज्ञान की हेतु स्त्री (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (वसुवने) धन की सेवा करने वाले के लिये (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा जाय उस व्यवहार-सम्बन्धी (इन्द्रे) उत्तम ऐश्वर्य में (न) जैसे (बलम्) बल को वैसे (आस्ये) मुख में (वाचम्) वाणी को वा (उषाभ्याम्) सायंकाल और प्रातःकाल की वेला से (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें और सब को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ५० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य चन्द्रमा सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम यत्न करते हैं तथा सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला में सोने और आलस्य आदि को छोड़ ईश्वर का ध्यान करते हैं वे बहुत धन को पाते हैं ॥ ५० ॥

देवी जोष्ट्री इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वी जोष्ट्री॒ सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्र॑मवर्धयन् । श्रोत्रं॒ न कर्ण॑यो॒र्यशो॒ जोष्ट्री॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (देवी) प्रकाश देने वाली (जोष्ट्री) सेवने योग्य (सरस्वती) विशेष ज्ञान की निमित्त सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला तथा (अश्विना) पवन और बिजुलीरूप अग्नि (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयन्) बढ़ाते अर्थात् उन्नति देते हैं वा मनुष्य (जोष्ट्रीभ्याम्) संसार को सेवन करती हुई उक्त प्रातःकाल और सायङ्काल की वेलाओं से (कर्णयोः) कानों में (यशः) कीर्ति को (श्रोत्रम्) जिस से वचन को सुनता है उस कान के ही (न) समान (दधुः) धारण करते हैं वा (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा जाय उस कोशसम्बन्धी (वसुवने) धन को सेवन करने वाले के लिये (इन्द्रियम्) धन को (व्यन्तु) विशेषता से प्राप्त होते हैं वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥५१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सूर्य के कारणों को जानते हैं वे यशस्वी होकर धनवान् कान्तिमान् शोभायमान होते हैं ॥५१॥

देवी इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वीऽऊ॒र्जाहु॑ती॒ दुघे॑ सु॒दुघेन्द्रे॒ सर॑स्वत्य॒श्विना॑ भि॒षजा॑वतः । शु॒क्रं न ज्योति॒स्तन॑योराहु॑ती धत्तऽइन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे (देवी) मनोहर (दुघे) उत्तमता पूरण करने वाली प्रातः सायं वेला वा (इन्द्रे) परम ऐश्वर्य के निमित्त (ऊर्जाहुती) अन्न की आहुति (सरस्वती) विशेष ज्ञान कराने हारी स्त्री वा (सुदुघा) सुख पूरण करने हारे (भिषजा) अच्छे वैद्य (अश्विना) वा पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् (शुक्रम्) शुद्ध जल के (न) समान (ज्योतिः) प्रकाश की (अवतः) रक्षा करते हैं वैसे (स्तनयोः) शरीर में स्तनों की जो (आहुती) ग्रहण करने योग्य क्रिया है उनको (धत्त) धारण करो और (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा हुआ उस संसार के बीच (वसुवने) धन के सेवन करने वाले के लिए (इन्द्रियम्) धन को धारण करो जिससे उन उक्त पदार्थों को साधारण सब मनुष्य (व्यन्तु) प्राप्त हों, हे गुणों के ग्रहण करने हारे जन ! वैसे तू सब व्यवहारों की (यज) संगति किया कर ॥ ५२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छे वैद्य अपने और दूसरों के शरीरों की रक्षा करके वृद्धि करते कराते हैं वैसे सब को चाहिए कि धन की रक्षा करके उसकी वृद्धि करें जिससे इस संसार में अतुल सुख हो ॥५२॥

देवा देवानामित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । अतिजगतीच्छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑ । व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳ होतृ॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्त॒ यज॑ ॥५३॥

पदार्थ— हे विद्वानो ! आप लोग जैसे (देवानाम्) सुख देने हारे विद्वानों के बीच (होतारौ) शरीर के सुख देने वाले (देवा) वैद्यविद्या से प्रकाशमान (भिषजा) वैद्यजन (अश्विना) विद्या में रमते हुए (वषट्कारैः) श्रेष्ठ कामों से (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य को धारण करें (सरस्वती) प्रशंसित विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी वाली स्त्री (त्विषिम्) प्रकाश के (न) समान (हृदये) अन्तःकरण में (मतिम्) बुद्धि को धारण करे वैसे (होतृभ्याम्) देने वालों के साथ उक्त सद्वैद्य और वाणीयुक्त स्त्री को वा (वसुधेयस्य) कोश के (वसुवने) धन को बांटने वाले के लिये (इन्द्रियम्) शुद्ध मन को (दधुः) धारण करें और (व्यन्तु) प्राप्त हों। हे जन ! वैसे तू भी (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वानों में विद्वान् अच्छे वैद्य श्रेष्ठ क्रिया से सब को नीरोग कर कान्तिमान् धनवान् करते हैं वा जैसे विद्वानों की वाणी विद्यार्थियों के मन में उत्तम ज्ञान की उन्नति करती है वैसे साधारण मनुष्यों को विद्या और धन इकट्ठे करने चाहियें ॥५३॥

देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर माता पिता अपने सन्तानों को कैसे करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर॒श्विनेडा॒ सर॑स्वती । शूषं॒ न मध्ये॒ नाभ्या॒मिन्द्रा॑य दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५४॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी ! जैसे (तिस्रः) माता, पढ़ाने और उपदेश करने वाली ये तीन (देवीः) निरन्तर विद्या से दीपती हुई स्त्री (वसुधेयस्य) जिस में धन धरने योग्य है उस संसार के (मध्ये) बीच (वसुवने) उत्तम धन चाहने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (तिस्रः) उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन (देवीः) विद्या के प्रकाश को प्राप्त हुई कन्याओं को (दधुः) धारण करें वा (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे मनुष्य (इडा) स्तुति करने हारी स्त्री और (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञान युक्त स्त्री (नाभ्याम्) तोंदी में (शूषम्) बल वा सुख के (न) समान (इन्द्रियम्) मन को धारण करें वा जैसे ये सब उक्त पदार्थों को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू(यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे माता पढ़ाने और उपदेश करने हारी ये तीन पण्डिता स्त्री कुमारियों को पण्डिता कर उनको सुखी करती हैं वैसे पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् कुमार विद्यार्थियों को विद्वान् कर उन्हें अच्छे सभ्य करें ॥५४॥

देव इन्द्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । स्वराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

दे॒वऽइन्द्रो॒ नरा॒शꣳस॑स्त्रिवरू॒थः सर॑स्वत्या॒श्विभ्या॑मीयते॒ रथः॑ । रेतो॒ न रू॒पम॒मृतं॑ ज॒नित्र॒मिन्द्रा॑य॒ त्वष्टा॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑ वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (त्रिवरूथः) तीन अर्थात् भूमि, भूमि के नीचे और अन्तरिक्ष में जिस के घर हैं वह (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् (देवः) विद्वान् (सरस्वत्या) अच्छी शिक्षा की हुई वाणी से (नराशंसः) जो मनुष्य को भली भांति शिक्षा देते हैं उनको (अश्विभ्याम्) आग और पवन से जैसे (रथः) रमणीय रथ (ईयते) पहुंचाया जाता वैसे अच्छे मार्ग में पहुँचाता है वा जैसे (त्वष्टा) दुःख का विनाश करने हारा (जनित्रम्) उत्तम सुख उत्पन्न करने हारे (अमृतम्) जल और (रेतः) वीर्य्य के (न) समान (रूपम्) रूप को तथा (वसुधेयस्य) संसार के बीच (वसुवने) धन की सेवा करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिए (इन्द्रियाणि) कान आंख आदि इन्द्रियों को (दधत्) धारण करे वा जैसे उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग धर्मसम्बन्धी व्यवहार से धन को इकट्ठा करो तो जल और आग से चलाये हुए रथ के समान शीघ्र सब सुखों को प्राप्त होओ ॥५५॥

देवो देवैरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

दे॒वो दे॒वैर्वन॒स्पति॒र्हिर॑ण्यवर्णोऽअ॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्रा॑य पच्यते॒ मधु॑ । ओजो॒ न जू॒तिर्ऋ॑ष॒भो न भामं॒ वन॒स्पति॑र्नो॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑ वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्त॒ यज॑ ॥५६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (अश्विभ्याम्) जल और बिजुली रूपी आग से (देवैः) प्रकाश करनेवाले गुणों के साथ (देवः) प्रकाशमान (हिरण्यवर्णः) तेजः स्वरूप (वनस्पतिः) किरणों की रक्षा करने वाला सूर्यलोक वा (सरस्वत्या) बढ़ती हुई नीति के साथ (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला पीपल आदि वृक्ष (इन्द्राय) प्राणी के लिये (मधु) मीठा फल जैसे (पच्यते) पके वैसे पकता और सिद्ध होता वा (जूतः) वेग (ओजः) जल को (न) जैसे (भामम्) तथा क्रोध को (ऋषभः) बलवान् प्राणी के (न) समान (वनस्पतिः) वटवृक्ष आदि (वसुधेयस्य) सबके आधार संसार के बीच (नः) हम लोगों के लिये (वसुवने) वा धन चाहने वाले के लिये (इन्द्रियाणि) धनों को (दधत्) धारण कर रहा है जैसे इन सब उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) व्याप्त हों वैसे तू सब व्यवहारों की (यज) संगति किया कर ॥५६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! तुम जैसे सूर्य वर्षा से और नदी अपने जल से वृक्षों की भलीभांति रक्षा कर सब ओर से मीठे मीठे फलों को उत्पन्न कराती हैं वैसे सब के अर्थ सब वस्तु उत्पन्न करो और जैसे धार्मिक राजा दुष्ट पर क्रोध करता वैसे दुष्टों के प्रति अप्रीति कर अच्छे उत्तम जनों में प्रेम को धारण करो ॥५६॥

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। अतिशक्वरी छन्दः।
पंचमः स्वरः।

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनामध्व॒रे स्ती॒र्णम॒श्विभ्या॒मूर्ण॑म्रदाः सर॑स्वत्या स्यो॒नमि॑न्द्र ते॒ सदः॑। ई॒शायै॑ म॒न्युꣳ राजा॑नं ब॒र्हिषा॑ दधुरि॑न्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसुधेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अपने इन्द्रिय के स्वामी जीव ! जिस (**ते**) तेरा (**सरस्वत्या**) उत्तम वाणी के साथ (**स्योनम्**) सुख और (**सदः**) जिस में बैठते वह नाव आदि यान हैं और जैसे (**ऊर्णम्रदाः**) ढांपने वाले पदार्थों से शिल्प की वस्तुओं को मींजते हुए विद्वान् जन (**अश्विभ्याम्**) पवन और बिजुली से (**अध्वरे**) न विनाश करने योग्य शिल्पयज्ञ में (**वारितीनाम्**) जिन की जल में चाल है उन पदार्थों के (**स्तीर्णम्**) ढांपने वाले (**देवम्**) दिव्य (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष को वा (**ईशायै**) जिस क्रिया से ऐश्वर्य को मनुष्य प्राप्त होता उस के लिये (**मन्युम्**) विचार अर्थात् सब पदार्थों के गुण दोष और उन की क्रिया सोचने को (**राजानम्**) प्रकाशमान राजा के समान वा (**बर्हिषा**) अन्तरिक्ष से (**वसुधेयस्य**) पृथिवी आदि आधार के बीच (**वसुवने**) पृथिवी आदि लोकों की सेवा करनेहारे जीव के लिये (**इन्द्रियम्**) धन को (**दधुः**) धारण करें और इन को (**व्यन्तु**) प्राप्त हों वैसे तू सब पदार्थों की (**यज**) संगति किया कर ॥५७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। यदि मनुष्य आकाश के समान निष्कम्प निडर आनन्द देने हारे एकान्तस्थानयुक्त और जिनकी आज्ञा भंग न हो ऐसे पुरुषार्थी हों वे इस संसार के बीच धनवान् क्यों न हों ?॥५७॥

देवो अग्निरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः।। आद्यस्यात्यष्टिश्छन्दः।
गान्धारः स्वरः। स्विष्टोऽअग्निरित्युत्तरस्य निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

दे॒वोऽअ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वान्य॑क्षद्यथाय॒थꣳ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑ वा॒चा वा॒चꣳ सर॑स्वतीम॒ग्निꣳ सोम॑ꣳ स्विष्ट॒कृत् स्वि॑ष्ट॒ऽइन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सवि॒ता वरु॑णो भि॒षगि॒ष्टो दे॒वो वन॒स्पतिः॒ स्वि॒ष्टा दे॒वाऽआ॑ज्य॒पाः स्वि॑ष्टोऽअ॒ग्निर॒ग्निना॒ होता॑ हो॒त्रे स्वि॑ष्ट॒कृद्यशो॒ न दध॑दिन्द्रि॒यमू॒र्जम॑पचि॑तिꣳ स्व॒धां व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**वसुधेयस्य**) संसार के बीच में (**वसुवने**) ऐश्वर्य को सेवने वाले सज्जन मनुष्य के लिये (**स्विष्टकृत्**) सुन्दर चाहे हुए सुख का करने हारा (**देवः**) दिव्य सुन्दर (**अग्निः**) आग (**देवान्**) उत्तम गुण कर्म स्वभावों वाले पृथिवी आदि को (**यथायथम्**) यथायोग्य (**यक्षत्**) प्राप्त हो वा जैसे (**होतारा**) पदार्थों के ग्रहण करने हारे (**अश्विना**) पवन और बिजुलीरूप अग्नि (**इन्द्रम्**) सूर्य (**वाचा**) वाणी से (**सरस्वतीम्**) विशेष ज्ञानयुक्त (**वाचम्**) वाणी से (**अग्निम्**) अग्नि (**सोमम्**) और चन्द्रमा को यथायोग्य चलाते हैं वा जैसे (**स्विष्टकृत्**) अच्छे सुख का करनेवाला (**स्विष्टः**) सुन्दर और सब का चाहा हुआ (**सुत्रामा**) भली भांति पालने हारा (**इन्द्रः**) परमैश्वर्ययुक्त राजा (**सविता**) सूर्य (**वरुणः**) जल का समुदाय (**भिषक्**) रोगों का विनाश करने हारा वैद्य (**इष्टः**) संग करने योग्य (**देवः**) दिव्यस्वभाव वाला (**वनस्पतिः**) पीपल आदि (**स्विष्टाः**) सुन्दर चाहा हुआ सुख जिस से हो वे (**आज्यपाः**) पीने योग्य रस को पीने हारे (**देवाः**) दिव्य-स्वरूप विद्वान् (**अग्निना**) बिजुली के साथ (**स्विष्टः, होता**) देने वाला कि जिससे सुन्दर चाहा हुआ काम हो (**स्विष्टकृत्**) उत्तम चाहे हुए काम को करने वाला (**अग्निः**) अग्नि (**होत्रे**) देने वाले के लिए (**यशः**) कीर्ति करने हारे धन के (**न**) समान (**इन्द्रियम्**) जीव के चिह्न कान आदि इन्द्रियां (**ऊर्जम्**) बल (**अपचितिम्**) सत्कार और (**स्वाधम्**) अन्न को (**दधत्**) प्रत्येक को धारण करे वा जैसे उन उक्त पदार्थों को ये सब (**व्यन्तु**) प्राप्त हों वैसे तू (**यज**) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५८॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर के बनाये हुए इस मन्त्र में कहे यज्ञ आदि पदार्थों को विद्या से उपयोग के लिये धारण करते हैं वे सुन्दर चाहे हुए सुखों को पाते हैं ॥ ५८ ॥

अग्निमद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् प॒क्तीः पच॑न् पु॒रो॒डाशा॑न् ब॒ध्नन्न॒श्विभ्यां॒ छाग॒ꣳ सर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑यऽऋ॒ष॒भꣳ सु॒न्वन्न॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ऽइन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सु॒रासो॒मान् ॥५९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अयम्**) यह (**पक्तीः**) पचाने के प्रकारों को (**पचन्**) पचाता अर्थात् सिद्ध करता और (**पुरोडाशान्**) यज्ञ आदि कर्म में प्रसिद्ध पाकों को (**पचन्**) पचाता हुआ (**यजमानः**) यज्ञ करने हारा (**होतारम्**) सुखों के देने वाले (**अग्निम्**) आग को (**अवृणीत**) स्वीकार वा जैसे (**अश्विभ्याम्**) प्राण और अपान के लिये (**छागम्**) छेरी (**सरस्वत्यै**) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी के लिये (**मेषम्**) भेड़ और (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के लिये (**ऋषभम्**) बैल को (**बध्नन्**) बांधते हुए वा (**अश्विभ्याम्**) प्राण, अपान (**सरस्वत्यै**) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी और (**सुत्राम्णे**) भली भांति रक्षा करने हारे (**इन्द्राय**) राजा के लिये (**सुरासोमान्**) उत्तम रसयुक्त पदार्थों का (**सुन्वन्**) सार निकालते हैं वैसे तुम (**अद्य**) आज करो ॥ ५९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे पदार्थों को मिलाने हारे वैद्य अपान के लिये छेरी का दूध, वाणी बढ़ने के लिये भेड़ का दूध, ऐश्वर्य के बढ़ने के लिये बैल रोगनिवारण के लिये ओषधियों के रसों को इकट्ठा और अच्छे संस्कार किए हुए अन्नों का भोजन कर उससे बलवान् होकर दुष्ट शत्रुओं को बांधते हैं वैसे वे परम ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ५९ ॥

सूपस्था इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। धृतिश्छन्दः।
ऋषभः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सू॒प॒स्थाऽअ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभवद॒श्विभ्यां॒ छागे॑न॒ सर॑स्वत्यै मे॒षेणेन्द्रा॑यऽऋ॒ष॒भेणाक्षँ॒स्तान् मे॑द॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्र॑भीष॒ताऽवी॑वृधन्त पु॒रो॒डाशै॑रपु॒र॒श्विना॒ सर॑स्वतीन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सु॒रासो॒मान् ॥६०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अद्य**) आज (**सूपस्थाः**) भली भांति समीप स्थिर होने वाले और (**देवः**) दिव्य गुण वाला पुरुष (**वनस्पतिः**) वट वृक्ष आदि के समान जिस जिस (**अश्विभ्याम्**) प्राण और अपान के लिए (**छागेन**) दुःख विनाश करने वाले छेरी आदि पशु से (**सरस्वत्यै**) वाणी के लिए (**मेषेण**) मेंढ़ा से (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के लिए (**ऋषभेण**) बैल से (**अक्षन्**) भोग करें—उपयोग लें (**तान्**) उन (**मेदस्तः**) सुन्दर चिकने पशुओं के (**प्रति**) प्रति (**पचता**) पचाने योग्य वस्तुओं का (**अगृभीषत**) ग्रहण करें (**पुरोडाशैः**) प्रथम उत्तम संस्कार किए हुए विशेष अन्नों से (**अवीवृधन्त**) वृद्धि को प्राप्त हों (**अश्विना**) प्राण अपान (**सरस्वती**) प्रशंसित वाणी (**सुत्रामा**) भली भांति रक्षा करने हारा (**इन्द्रः**) परम ऐश्वर्यवान् राजा (**सुरासोमान्**) जो अर्क खीचने से उत्पन्न हों उन ओषधिरसों को (**अपुः**) पीवें वैसे आप (**अभवत्**) होओ ॥६०॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य छेरी आदि पशुओं के दूध आदि प्राण, अपान की रक्षा के लिए चिकने और पके हुए पदार्थों का भोजन कर उत्तम रसों को पीके वृद्धि को पाते हैं वे अच्छे सुख को प्राप्त होते हैं ॥६०॥

त्वामद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिग् विकृतिश्छन्दः।
मध्यमः स्वरः॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वाम॒द्यऽऋ॑षऽआर्षे॑यऽऋषीणां नपादवृणीता॒यं यज॑मानो ब॒हुभ्य॒ऽआ सङ्ग॑तेभ्यऽए॒ष मे॑ दे॒वेषु॒ वसु॒ वार्याय॑क्ष्यत॒ऽइति॒ ता या दे॒वा दे॑व॒ दाना॒न्यदु॒स्तान्य॑स्मा॒ऽआ च॒ शास्स्वा च॑ गुरस्वेषि॒तश्च॑ होत॒रसि॑ भद्र॒वाच्या॑य॒ प्रेषि॑तो मानु॑षः सूक्तवा॒काय॑ सू॒क्ता ब्रू॑हि ॥६१॥

पदार्थ—हे (**ऋषे**) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले वा हे (**आर्षेय**) मन्त्रार्थ जानने वालों में श्रेष्ठ पुरुष ! (**ऋषीणाम्**) मन्त्रों के अर्थ जानने वालों के (**नपात्**) सन्तान (**यजमानः**) यज्ञ करने वाला (**अयम्**) यह (**अद्य**) आज (**बहुभ्यः**) बहुत (**संगतेभ्यः**) योग्य पुरुषों से (**त्वाम्**) तुझको (**आ, अवृणीत**) स्वीकार करे (**एषः**) यह (**देवेषु**) विद्वानों में (**मे**) मेरे (**वसु**) धन (**च**) और (**वारि**) जल को स्वीकार करे हे (**देव**) विद्वान् ! जो (**आयक्ष्यते**) सब ओर से संगत किया जाता (**च**) और (**देवाः**) विद्वान् जन (**या**) जिन (**दानानि**) देने योग्य पदार्थों को (**अदुः**) देते हैं (**तानि**) उन सबों को (**अस्मै**) इस यज्ञ करने वाले के लिए (**आ, शास्व**) अच्छे प्रकार कहो और (**प्रेषितः**) पढ़ाया हुआ तू (**आ, गुरस्व**) अच्छे प्रकार उद्यम कर (**च**) और हे (**होतः**) देने हारे ! (**इषितः**) सबका चाहा हुआ (**मानुषः**) तू (**भद्रवाच्याय**) जिसके लिए अच्छा कहना होता और (**सूक्तवाकाय**) जिसके वचनों में अच्छे कथन अच्छे व्याख्यान हैं उस भद्रपुरुष के लिये (**सूक्ता**) अच्छी बोलचाल (**ब्रूहि**) बोलो (**इति**) इस कारण कि उक्त प्रकार से (**ता**) उन उत्तम पदार्थों को पाये हुए (**असि**) होते हो ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बहुत विद्वानों से अति उत्तम विद्वान् को स्वीकार कर वेदादि शास्त्रों की विद्या को पढ़कर महर्षि होवें वे दूसरों को पढ़ा सकें और जो देने वाले उद्यमी होवें वे विद्या को स्वीकार कर जो अविद्वान् हैं उन पर दया कर विद्या-ग्रहण के लिए रोष से उन मूर्खों को ताड़ना दें और उन्हें अच्छे सभ्य करें वे इस संसार में सत्कार करने योग्य हैं ॥६१॥

卐

इस अध्याय में वरुण अग्नि विद्वान् राजा प्रजा शिल्प अर्थात् कारीगरी वाणी घर अश्विन् शब्द के अर्थ ऋतु और होता आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ का पिछले अध्याय में कहे अर्थ के साथ मेल है यह जानना चाहिये ॥

यह इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

卐 अथ द्वाविंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दु॑रितानि परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥१॥

तेजोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋ॑षिः । सविता देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बाईसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में आप्त सकल शास्त्रों का जानने वाला विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तेजो॑ऽसि शु॒क्रम॒मृत॑मायु॒ष्पाऽआयु॑र्मे पाहि । दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्या॒माद॑दे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! मैं (**देवस्य**) सब के प्रकाश करने (**सवितुः**) और समस्त जगत् के उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (**प्रसवे**) उत्पन्न किए जिसमें कि प्राणी आदि उत्पन्न होते उस संसार में (**अश्विनोः**) पवन और बिजुलीरूप आग के धारण और खींचने आदि गुणों के समान (**बाहुभ्याम्**) भुजाओं और (**पूष्णः**) पुष्टि करने वाले सूर्य की किरणों के समान (**हस्ताभ्याम्**) हाथों से जिस (**त्वा**) तुझे (**आ, ददे**) ग्रहण करता हूँ वा जो तू (**अमृतम्**) स्व-स्वरूप से विनाशरहित (**शुक्रम्**) वीर्य्य और (**तेजः**) प्रकाश के समान जो (**आयुष्पाः**) आयुर्दा की रक्षा करने वाला (**असि**) है सो तू अपनी दीर्घ आयुर्दा करके (**मे**) मेरी (**आयुः**) आयु की (**पाहि**) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शरीर में रहने वाली बिजुली शरीर की रक्षा करती वा जैसे बाहरले सूर्य और पवन जीवन के हेतु हैं वैसे ईश्वर के बनाये इस जगत् में आप्त अर्थात् सकल शास्त्र का जाननेवाला विद्वान् होता है यह सबको जानना चाहिये ॥१॥

इमामित्यस्य यज्ञपुरुष ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को आयुर्दा कैसी वर्त्तनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इ॒माम॑गृभ्णन् र॒शना॑मृ॒तस्य॒ पूर्व॒ऽआयु॑षि वि॒दथे॑षु क॒व्या । सा नो॑ऽअ॒स्मिन्त्सु॒तऽआब॑भूवऽऋ॒तस्य॒ साम॑न्त्स॒रमा॒रप॑न्ती ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**ऋतस्य**) सत्य कारण के (**सरम्**) पाने योग्य शब्द को (**आरपन्ती**) अच्छे प्रकार प्रकट बोलती हुई (**आ, बभूव**) भली भांति विख्यात होती वा जिस (**इमाम्**) इसको (**ऋतस्य**) सत्यकारण की (**रशनाम्**) व्याप्त होने वाली डोर के समान (**विदथेषु**) यज्ञादिकों में (**पूर्वे**) पहिली (**आयुषि**) प्राण धारण करने हारी आयुर्दा के निमित्त (**कव्या**) कवि मेधावीजन (**अगृभ्णन्**) ग्रहण करें (**सा**) वह बुद्धि (**अस्मिन्**) इस (**सुते**) उत्पन्न हुए जगत् में (**नः**) हम लोगों के (**सामन्**) अन्त के काम में प्रसिद्ध होती अर्थात् कार्य की समाप्ति पर्य्यन्त पहुँचाती है ॥२॥

भावार्थ—जैसे डोर से बंधे हुए प्राणी इधर उधर भाग नहीं जा सकते वैसे युक्ति के साथ धारण की हुई आयु ठीक समय के विना नहीं भाग जाती ॥२॥

अभिधा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋ॑षिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अ॒भि॒धाऽअ॑सि॒ भुव॑नमसि य॒न्तासि॑ ध॒र्त्ता ।
स त्वम॒ग्निं वै॑श्वान॒रꣳ सप्र॑थसंगच्छ॒ स्वाहा॑कृतः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो तू (**भुवनम्**) जल के समान शीतल (**असि**) है (**अभिधाः**) कहने वाला (**असि**) है वा (**यन्ता**) नियम करने हारा (**असि**) है (**सः**) वह (**स्वाहाकृतः**) सत्यक्रिया से सिद्ध हुआ (**धर्त्ता**) सब व्यवहारों का धारण करने हारा (**त्वम**) तू (**सप्रथसम्**) विख्याति के साथ वर्त्तमान (**वैश्वानरम्**) समस्त पदार्थों में नायक (**अग्निम्**) अग्नि को (**गच्छ**) जान ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे सब प्राणी और अप्राणियों के जीने का मूल कारण जल और अग्नि है वैसे विद्वान् को सब लोग जानें ॥ ३ ॥

स्वगेत्यस्य प्रजापतिर्ऋ॑षिः । विश्वेदेवा देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

स्व॒गा त्वा॑ दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ ब्रह्म॒न्नश्वं॑ भ॒न्त्स्यामि॑ दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ तेन॑ राध्यासम् । तं ब॑धान दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ तेन॑ राध्नुहि ॥४॥

पदार्थ—हे (**ब्रह्मन्**) विद्या से वृद्धि को प्राप्त मैं (**त्वा**) तुझे (**स्वगा**) आप जाने वाला करता हूँ (**देवेभ्यः**) विद्वानों और (**प्रजापतये**) सन्तानों की रक्षा करने हारे गृहस्थ के लिए (**अश्वम्**) बड़े सर्वव्यापी उत्तम गुण को (**भन्त्स्यामि**) बांधूंगा (**तेन**) उससे (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों और (**प्रजापतये**) सन्तानों के पालने हारे गृहस्थ के लिए (**राध्यासम्**) अच्छे प्रकार सिद्ध होऊं (**तम्**) उसको तू (**बधान**) बांध (**तेन**) उससे (**देवेभ्यः**) दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वालों तथा (**प्रजापतये**) प्रजा पालने वाले के लिए (**राध्नुहि**) अच्छे प्रकार सिद्ध होओ ॥४॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्या अच्छी शिक्षा ब्रह्मचर्य और अच्छे सङ्ग से शरीर और आत्मा के अत्यन्त बल को सिद्ध दिव्य गुणों को ग्रहण और विद्वानों के लिए सुख देकर अपनी और पराई वृद्धि करें ॥ ४ ॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋ॑षिः । इन्द्रादयो देवताः । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किन को बढ़ावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र॒जाप॑तये त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मीन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि वा॒यवे॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यो॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ सर्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यो॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि । योऽअर्व॑न्तं॒ जिघा॑ꣳसति॒ तम॒भ्य॒मीति॒ वरु॑णः । प॒रो मर्त्तः॑ प॒रः श्वा ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**यः**) जो (**परः**) उत्तम और (**वरुणः**) श्रेष्ठ (**मर्त्तः**) मनुष्य (**अर्वन्तम्**) शीघ्र चलने हारे घोड़े को (**जिघांसति**) ताड़ना देने वा चलाने की इच्छा करता है । (**तम्**) उसको (**अभि,अमीति**) सब ओर से प्राप्त होता है और जो (**पर**) अन्य मनुष्य (**श्वा**) कुत्ते के समान वर्त्तमान अर्थात् दुष्कर्मी हैं उसको जो रोकता है उस (**प्रजापतये**) प्रजा की पालना करने वाले के लिए (**जुष्टम्**) प्रीति किए हुए (**त्वा**) तुझको (**प्रोक्षामि**) अच्छे प्रकार सींचता हूँ (**इन्द्राग्निभ्याम्**) जीव और अग्नि के लिए (**जुष्टम्**) प्रीति किए हुए (**त्वा**) तुझको (**प्रोक्षामि**) अच्छे प्रकार सींचता हूँ (**वायवे**) पवन के लिए (**जुष्टम्**) प्रीति किए हुए (**त्वा**) तुझको (**प्रोक्षामि**) अच्छे प्रकार सींचता हूँ (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए (**जुष्टम्**) प्रीति किए हुए (**त्वा**) तुझ को (**प्रोक्षामि**) अच्छे प्रकार सींचता हूँ (**सर्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) दिव्य पृथिवी आदि पदार्थों के लिए (**जुष्टम्**) प्रीति किए हुए (**त्वा**) तुझको (**प्रोक्षामि**) अच्छी प्रकार सींचता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम पशुओं के मारने की इच्छा करते हैं वे सिंह के समान मारने चाहियें और जो इन पशुओं की रक्षा करने को अच्छा यत्न करते हैं वे सबकी रक्षा करने के लिए अधिकार देने योग्य हैं ॥ ५ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋ॑षिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिगतिजगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒पां मोदा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॑ वा॒यवे॒ स्वाहा॑ विष्ण॑वे॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहा॑ मि॒त्राय॒ स्वाहा॒ वरु॑णाय॒ स्वाहा॑ ॥६॥

पदार्थ—यदि मनुष्य (**अग्नये**) अग्नि के लिये (**स्वाहा**) श्रेष्ठ क्रिया वा (**सोमाय**) ओषधियों के शोधने के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया वा (**अपाम्**) जलों के सम्बन्ध से जो (**मोदाय**) आनन्द होता है उस के लिये (**स्वाहा**) सुख पहुंचाने वाली क्रिया वा (**सवित्रे**) सूर्यमण्डल के अर्थ (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया वा (**वायवे**) पवन के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**विष्णवे**) विजुलीरूप आग में (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**इन्द्राय**) जीव के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**बृहस्पतये**) बड़ों की पालना करनेवाले के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**मित्राय**) मित्र के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**वरुणाय**) श्रेष्ठ के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया करें तो कौन कौन सुख न मिले ? ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आग में उत्तमता से सिद्ध किया हुआ घी आदि हवि होमा जाता है वह ओषधि जल सूर्य के तेज वायु और बिजुली को अच्छे प्रकार शुद्ध कर ऐश्वर्य को बढ़ाने प्राण अपान और प्रजा की रक्षारूप श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है कोई द्रव्यस्वरूप से नष्ट नहीं होता किन्तु अवस्थान्तर को पाके सर्वत्र ही परिणाम को प्राप्त होता है इसी से सुगन्ध मीठापन पुष्टि देने और रोगविनाश करने हारे गुणों से युक्त पदार्थ आग में छोड़कर ओषधि आदि पदार्थों की शुद्धि के द्वारा संसार का नीरोगपन सिद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥

हिंकारायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को जगत् कैसे शुद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

हिङ्काराय॒ स्वाहा॒ हिङ्कृ॑ताय॒ स्वाहा॒ क्रन्द॑ते॒ स्वाहा॑ऽवक्रन्दाय॒ स्वाहा॒ प्रोथ॑ते॒ स्वाहा॑ प्रप्रोथाय॒ स्वाहा॑ ग॒न्धाय॒ स्वाहा॑ घ्रा॒ताय॒ स्वाहा॒ निवि॑ष्टाय॒ स्वाहोप॑विष्टाय॒ स्वाहा॒ सन्दि॑ताय॒ स्वाहा॒ वल्ग॑ते॒ स्वाहासी॑नाय॒ स्वाहा॒ शया॑नाय॒ स्वाहा॒ स्वप॑ते॒ स्वाहा॒ जाग्र॑ते॒ स्वाहा॒ कूज॑ते॒ स्वाहा॒ प्रबु॑द्धाय॒ स्वाहा॑ वि॒जृम्भ॑माणाय॒ स्वाहा॒ विचृ॑ताय॒ स्वाहा॒ सꣳहा॑नाय॒ स्वाहोप॑स्थिताय॒ स्वाहाय॑नाय॒ स्वाहा॒ प्राय॑णाय॒ स्वाहा॑ ॥७॥

पदार्थ—जिन मनुष्यों ने (हिंकाराय) जो हिं ऐसा शब्द करता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (हिंकृताय) जिसने हिं शब्द किया उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रन्दते) बुलाते वा रोते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अवक्रन्दाय) नीचे होकर बुलाने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रोथते) सब कर्मों में परिपूर्ण के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रप्रोथाय) अत्यन्त पूर्ण के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (गन्धाय) सुगन्धित के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (घ्राताय) जो सूंघा गया उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निविष्टाय) जो निरन्तर प्रवेश करता बैठता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उपविष्टाय) जो बैठता उनके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (संदिताय) जो भली भांति दिया जाता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वल्गते) जाते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आसीनाय) बैठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शयानाय) सोते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (स्वपते) नींद जिस को प्राप्त हुई उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (जाग्रते) जागते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (कूजते) कूजते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रबुद्धाय) उत्तम ज्ञान वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विजृम्भमाणाय) अच्छे प्रकार जंभाई लेने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विचृताय) विशेष रचना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (संहायनाय) जिससे संघात पदार्थों का समूह किया जाता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उपस्थिताय) समीपस्थित हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आयनाय) अच्छे प्रकार विशेष ज्ञान के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रायणाय) पहुँचाने हारे के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की उन मनुष्यों को दुःख छूट के सुख प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ में जितना होम किया जाता है उतना सब प्राणियों के लिये सुख करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

यते स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रयत्नवन्तो जीवादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यते॒ स्वाहा॒ धाव॑ते॒ स्वाहो॑द्द्रा॒वाय॒ स्वाहोद्द्रु॑ताय॒ स्वाहा॑ शूका॒राय॒ स्वाहा॒ शूकृ॑ताय॒ स्वाहा॒ निष॑ण्णाय॒ स्वाहोत्थि॑ताय॒ स्वाहा॑ ज॒वाय॒ स्वाहा॒ बला॑य॒ स्वाहा॑ वि॒वर्त्त॑मानाय॒ स्वाहा॒ विवृ॑त्ताय॒ स्वाहा॑ विधून्वा॒नाय॒ स्वाहा॒ विधू॑ताय॒ स्वाहा॒ शुश्रू॑षमाणाय॒ स्वाहा॑ शृण्व॒ते स्वाहेक्ष॑माणाय॒ स्वाहेक्षि॑ताय॒ स्वाहा॒ वीक्षि॑ताय॒ स्वाहा॑ निमे॒षाय॒ स्वाहा॒ यदत्ति॒ तस्मै॒ स्वाहा॒ यत् पिब॑ति॒ तस्मै॒ स्वाहा॒ यन्मूत्रं॑ क॒रोति॒ तस्मै॒ स्वाहा॑ कु॒र्व॒ते स्वाहा॑ कृ॒ताय॒ स्वाहा॑ ॥८॥

पदार्थ—जो मनुष्य (यते) अच्छा यत्न करते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (धावते) दौड़ते हुए के लिये (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया (उद्द्रावाय) ऊपर को गये हुए गीले पदार्थ के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (उद्द्रुताय) उत्कर्ष को प्राप्त हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूकाराय) शीघ्रता करनेवाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूकृताय) शीघ्र किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निषण्णाय) निश्चय से बैठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उत्थिताय) उठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (जवाय) वेग के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (बलाय) बल के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विवर्त्तमानाय) विशेष रीति से वर्त्तमान होते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विवृत्ताय) विशेष रीति से वर्त्ताव किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विधून्वानाय) जो पदार्थ विधुनता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विधूताय) जिसने नानाप्रकार से विधुना उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रियां (शुश्रूषमाणाय) सुनना चाहते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शृण्वते) सुनते के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (ईक्षमाणाय) देखते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (ईक्षिताय) और से देखे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वीक्षिताय) भली भाँति देखे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निमेषाय) आंखों के पलक उठने बैठने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (अत्ति) खाता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (पिबति) पीता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (मूत्रम्) मूत्र (करोति) करता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (कुर्वते) करनेवाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (कृताय) किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो अच्छे यत्न और दौड़ने आदि क्रियाओं को सिद्ध करनेवाले काम तथा सुगन्धि आदि वस्तुओं के होम आदि कामों को करते हैं वे समस्त सुख और चाहे हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्रऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर के विषय में अगले मन्त्रों में कहा है—

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सवितुः) समस्त संसार उत्पन्न करनेहारे (देवस्य) आप से आप ही प्रकाशरूप सब के चाहने योग्य समस्त सुखों के देनेहारे परमेश्वर के जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम (भर्गः) समस्त दोषों के दाह करनेवाले तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग (धीमहि) धारण करते हैं (तत्) उसको तुम लोग धारण करो (यः) जो (नः) हम सब लोगों की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरे अर्थात् उनको अच्छे अच्छे कामों में लगावे वह अन्तर्यामी परमात्मा सब के उपासना करने के योग्य है ॥ ९ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सब के अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़ के उसकी जगह में अन्य किसी पदार्थ की उपासना का स्थापन कभी न करें, किस प्रयोजन के लिये कि जो हम लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ाके धर्म के आचरण में प्रवृत्त करे जिससे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त हो कर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये ॥९॥

हिरण्यपाणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ह्वये । स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं जिस (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (हिरण्यपाणिम्) जिसकी स्तुति करने में सूर्य आदि तेज है (पदम्) उस पाने योग्य (सवितारम्) समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले जगदीश्वर को (उपह्वये) ध्यान के योग से बुलाता हूं (सः) वह (चेत्ता) अच्छे ज्ञानस्वरूप होने से सत्य और मिथ्या का जानने वाला (देवता) उपासना करने योग्य इष्टदेव ही है यह तुम सब जानो ॥१०॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि इस मन्त्र से लेके पूर्वोक्त मन्त्र गायत्री जो कि गुरुमन्त्र है उसी के अर्थ का तात्पर्य है ऐसा जानें । चेतनस्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़ किसी अन्य जड़ की उपासना कभी न करें क्योंकि उपासना अर्थात् सेवा किया हुआ जड़ पदार्थ हानि लाभ कारक और रक्षा करनेहारा नहीं होता इससे चित्तवान् समस्त जीवों को चेतनस्वरूप जगदीश्वर ही की उपासना करनी योग्य है अन्य जड़ता आदि गुणयुक्त पदार्थ उपास्य नहीं ॥१०॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

दे॒वस्य॒ चेत॑तो म॒हीम्प्र स॑वि॒तुर्ह॑वामहे ।
सु॒म॒तिꣳ स॒त्यरा॑धसम् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सवितुः) समस्त संसार के उत्पन्न करने हारे (चेततः) चेतनस्वरूप (देवस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर की उपासना कर (महीम्) बड़ी (सत्यराधसम्) जिससे जीव सत्य को सिद्ध करता है उस (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को (प्र, हवामहे) ग्रहण करते हैं वैसे उस परमेश्वर की उपासना कर उस बुद्धि को तुम लोग प्राप्त होओ ॥११॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस चेतनस्वरूप जगदीश्वर ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है उसकी आराधना उपासना से सत्यविद्यायुक्त उत्तम बुद्धि को तुम लोग प्राप्त हो सकते हो किन्तु इतर जड़ पदार्थ की आराधना से कभी नहीं ॥११॥

सुष्टुतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सु॒ष्टु॒तिꣳ सु॑म॒तीवृधो॑ रा॒तिꣳ स॑वि॒तुरी॑महे ।
प्र दे॒वाय॑ मती॒विदे॑ ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सुमतीवृधः) जो उत्तम मति को बढ़ाता (सवितुः) सब को उत्पन्न करता उस ईश्वर की (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति कर इससे (मतीविदे) जो ज्ञान को प्राप्त होता है उस (देवाय) विद्या आदि गुणों की कामना करनेवाले मनुष्य के लिये (रातिम्) देने को (प्रेमहे) भली भांति मांगते हैं वैसे इस देने की क्रिया को इस ईश्वर से तुम लोग भी मांगो ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब जब परमेश्वर की प्रार्थना करनी योग्य हो तब तब अपने लिये वा और के लिये समस्त शास्त्र के विज्ञान से युक्त उत्तम बुद्धि ही मांगनी चाहिये जिस के पाने पर समस्त सुखों के साधनों को जीव प्राप्त होते हैं ॥१२॥

रातिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुपह्वये । आसवं देववीतये ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (महे) बड़ी (देववीतये) दिव्यगुण और विद्वानों की प्राप्ति के लिये (रातिम्) देने हारे (आसवम्) सब ओर से ऐश्वर्ययुक्त (सत्पतिम्) सत्य वा नित्य विद्यमान जीव वा पदार्थों की पालना करने और (सवितारम्) समस्त संसार को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर की (उपह्वये) ध्यान योग से समीप में स्तुति करूं वैसे तुम भी इसकी प्रशंसा करो ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि मनुष्य धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को चाहें तो परमात्मा की ही उपासना कर उस ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तें ॥ १३ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं मनामहे ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सवितुः) सकल ऐश्वर्य्य और (देवस्य) समस्त सुख देनेहारे परमात्मा के निकट से (मतिम्) बुद्धि और (आसवम्) समस्त ऐश्वर्य्य के हेतु को प्राप्त होकर उस (धिया) बुद्धि से समस्त (विश्वदेव्यम्) सब विद्वानों के लिये हित देनेहारे (भगम्) उत्तम ऐश्वर्य्य को (मनामहे) मांगते हैं वैसे तुम लोग भी मांगो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना से उत्तम बुद्धि को पाके उससे पूर्ण ऐश्वर्य्य का विधान कर सब प्राणियों के हित को सम्यक् सिद्ध करें ॥ १४ ॥

अग्निमित्यस्य सुतम्भर ऋषिः । अग्निर्देवता निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब यज्ञकर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निꣳ स्तोमेन बोधय समिधानोऽअमर्त्यम् ।
हव्या देवेषु नो दधत् ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (समिधानः) भली भांति दीपता हुआ अग्नि (देवेषु) दिव्य वायु आदि पदार्थों में (हव्या) लेने देने योग्य पदार्थों को (नः) हमारे लिये (दधत्) धारण करता है उस (अमर्त्यम्) कारणरूप अर्थात् परमाणुभाव से विनाश होने के धर्म से रहित (अग्निम्) आग को (स्तोमेन) इन्धनसमूह से (बोधय) चिताओ अर्थात् अच्छे प्रकार जलाओ ॥ १५ ॥

भावार्थ—यदि अग्नि में समिधा छोड़ दिव्य-दिव्य सुगन्धित पदार्थ को होमें तो यह अग्नि उस पदार्थ को वायु आदि में फैलाके सब प्राणियों को सुखी करता है ॥१५॥

स हव्यवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स हव्यवाडमर्त्यऽउशिग्दूतश्चनोहितः ।
अग्निर्धिया समृण्वति ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अमर्त्यः) मृत्युधर्म से रहित (हव्यवाट्) होमे हुए पदार्थ को एक देश से दूसरे देश में पहुंचाता (उशिक्) प्रकाशमान (दूतः) दूत के समान वर्त्तमान (चनोहितः) और जो अन्नों की प्राप्ति करानेवाला (अग्निः) अग्नि है (सः) वह (धिया) कर्म अर्थात् उसके उपयोगी शिल्प आदि काम से (सम्, ऋण्वति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—जैसे काम के लिये भेजा हुआ दूत करने योग्य काम को सिद्ध करने हारा होता है वैसे अच्छे प्रकार युक्त किया हुआ अग्नि सुखसम्बन्धी कार्य्य को सिद्ध करने हारा होता है ॥ १६ ॥

अग्निं दूतमित्यस्य विश्वरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अग्नि के गुणों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे ।
देवाँ२ऽ आसादयादिह ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इह) इस संसार में (देवान्) दिव्य भोगों को (आ, सादयात्) प्राप्त करावे उस (हव्यवाहम्) भोजन करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति कराने और (दूतम्) दूत के समान कार्यसिद्धि करनेहारे (अग्निम्) अग्नि को (पुरः) आगे (दधे) धरता हूं और तुम लोगों के प्रति (उप, ब्रुवे) उपदेश करता हूं कि तुम लोग भी ऐसे ही किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि दिव्य सुखों को देनेवाला है वैसे पवन आदि पदार्थ भी सुख देने में प्रवर्त्तमान हैं यह जानना चाहिये ॥ १७ ॥

अजीजन इत्यस्यारुणत्रसदस्यू ऋषी । पवमानो देवता । पिपीलिकामध्या विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर सूर्यरूप अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥१८॥

पदार्थ—हे (पवमान) पवित्र करने हारे अग्नि के समान पवित्र जन ! तू अग्नि (पुरन्ध्या) जिस क्रिया से नगरी को धारण करता उससे (रंहमाणः) जाता हुआ (सूर्यम्) सूर्य को (अजीजनः) प्रकट करता उसको और (शक्मना) कर्म वा (गोजीरया) गौ आदि पशुओं की जीवनक्रिया से (पयः) जल को मैं (विधारे) विशेष करके धारण करता (हि) ही हूँ ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो बिजुली सूर्य्य का कारण न होती तो सूर्य की उत्पत्ति कैसे होती, जो सूर्य न हो तो भूगोल का धारण और वर्षा से गौ आदि पशुओं का जीवन कैसे हो ॥ १८ ॥

विभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽअसि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि । देवाऽआशापालाऽएतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१९॥

पदार्थ—हे (आशापालाः) दिशाओं के पालने वाले (देवाः) विद्वानो ! तुम जो लोग (मात्रा) माता के समान वर्त्तमान पृथिवी से (विभूः) व्यापक (पित्रा) पिता रूप पवन से (प्रभूः) समर्थ और (अश्वः) मार्गों को व्याप्त होने वाला (असि) है (हयः) घोड़े के समान शीघ्र चलने वाला (असि) है (अत्यः) जो निरन्तर जाने वाला (असि) है (मयः) सुख का करने वाला (असि) है (अर्वा) जो सब को प्राप्त होने हारा (असि) है (सप्तिः) मूर्तिमान् पदार्थों का सम्बन्ध करने वाला (असि) है (वाजी) वेगवान् (असि) है (वृषा) वर्षा का करने वाला (असि) है (नृमणाः) सब प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त कराने हारे पदार्थों में मन के समान शीघ्र जाने वाला (असि) है (ययुः) जो प्राप्ति कराता वा जाता ऐसे (नाम) नाम वाला (असि) है जो (शिशुः) व्यवहार के योग्य विषयों को सूक्ष्म करती ऐसी (नाम) उत्तम वाणी (असि) है जो (आदित्यानाम्) महीनों के (पत्वा) नीचे गिरता (अन्विहि) अन्वित अर्थात् मिलता है (एतम्) इस (अश्वम्) व्याप्त होने वाले अग्नि को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (देवेभ्यः) दिव्य भोगों के लिये तथा (मेधाय) अच्छे गुणों के मिलाने, बुद्धि की प्राप्ति करने वा दुष्टों को मारने के लिये (प्रोक्षितम्) जल से सींचा हुआ (रक्षत) रक्खो जिससे (इह) इस संसार में (रन्तिः) रमण अर्थात् उत्तम सुख में रमना हो (इह) यहाँ (रमताम्) क्रीड़ा करें तथा (इह) यहाँ (धृतिः) सामान्य धारणा और (इह) यहाँ (स्वधृतिः) अपने पदार्थों की धारणा हो ॥१९॥

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त और समस्त वेग वाले पदार्थों में अतीव वेगवान् अग्नि को गुण कर्म और स्वभाव से जानते हैं, वे इस संसार में सुख से रमते हैं ॥ १९ ॥

कायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । आद्यस्य विराडतिधृतिः, उत्तरस्य निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब किस प्रयोजन के लिये होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२०॥

पदार्थ—जिन मनुष्यों ने (काय) सुख साधने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (कस्मै) सुखस्वरूप के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (कतमस्मै) बहुतों में जो वर्तमान उस के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (आधिम्) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता उस को प्राप्त होकर (स्वाहा) सत्यक्रिया (आधीताय) सब ओर से विद्यावृद्धि के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्रजापतये) प्रजाजनों की पालना करनेहारे के लिये (मनः) मन की (स्वाहा) सत्यक्रिया (विज्ञाताय) विशेष जाने हुए के लिये (चित्तम्) स्मृति सिद्ध कराने अर्थात् चेत दिलाने हारा चैतन्य मन (अदित्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (मह्यै) बड़ी (अदित्यै)

विनाशरहित वाणी के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**सुमृडीकायै**) अच्छा सुख करने हारी (**अदित्यै**) माता के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**सरस्वत्यै**) नदी के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**पावकायै**) पवित्र करने वाली (**सरस्वत्यै**) विद्यायुक्त वाणी के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**बृहत्यै**) बड़ी (**सरस्वत्यै**) विद्वानों की वाणी के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**पूष्णे**) पुष्टि करने वाले के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**प्रपथ्याय**) उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा (**पूष्णे**) पुष्टि के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**नरन्धिषाय**) जो मनुष्यों को उपदेश देता है उस (**पूष्णे**) पुष्टि करने हारे के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**त्वष्ट्रे**) प्रकाश करने वाले के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**तुरीपाय**) नौकाओं के पालने (**त्वष्ट्रे**) और विद्या प्रकाश करने हारे के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**पुरुरूपाय**) बहुत रूप और (**त्वष्ट्रे**) प्रकाश करने वाले के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**विष्णवे**) व्याप्त होने वाले के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**निभूयपाय**) निरन्तर आप रक्षित हो औरों की पालना करने हारे (**विष्णवे**) सर्वव्यापक के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया तथा (**शिपिविष्टाय**) वचन कहते हुए चैतन्य प्राणियों में व्याप्ति से प्रवेश हुए (**विष्णवे**) व्यापक ईश्वर के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया की वे कैसे न सुखी हों ॥ २० ॥

भावार्थ—जो विद्वानों के सुख, पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिये यज्ञक्रियाओं को करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २० ॥

विश्वो देवस्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वान् देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।
विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥२१॥

पदार्थ—जैसे (**विश्वः**) समस्त (**मर्त्तः**) मनुष्य (**नेतुः**) नायक अर्थात् सब व्यवहारों की प्राप्ति कराने हारे (**देवस्य**) विद्वान् की (**सख्यम्**) मित्रता को (**वुरीत**) स्वीकार करें वा जैसे (**विश्वः**) समस्त मनुष्य (**राये**) धन के लिये (**इषुध्यति**) याचना करता अर्थात् मंगनी मांगता वा वाणों को अपने अपने धनुष् पर धारता है वैसे (**स्वाहा**) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी से (**पुष्यसे**) पुष्टि के लिये (**द्युम्नम्**) धन और यश को (**वृणीत**) स्वीकार करे ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्य विद्वानों के साथ मित्र होकर विद्या और यश का ग्रहण कर धन और कान्तिमान् होकर उत्तम योग्य आहार वा अच्छे मार्ग से पुष्ट हों ॥ २१ ॥

आ ब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ ब्र॑ह्मन् ब्राह्म॒णो ब्र॑ह्मवर्च॒सी जा॑यता॒मा रा॒ष्ट्रे रा॑ज॒न्यः॒ शूर॑ऽ इष॒व्यो॒ऽतिव्या॒धी म॑हार॒थो जा॑यतां॒ दोग्ध्री॑ धे॒नुर्वोढा॑न॒ड्वाना॒शुः सप्तिः॒ पुर॑न्धि॒र्योषा॑ जि॒ष्णू र॑थे॒ष्ठाः स॒भेयो॒ युवास्य यज॑मानस्य वी॒रो जा॑यतां निका॒मे नि॑कामे नः प॒र्जन्यो॑ वर्षतु॒ फल॑वत्यो न॒ऽओष॑धयः पच्यन्तां॒ योगक्षे॒मो नः॑ कल्पताम् ॥२२॥

पदार्थ—हे (**ब्रह्मन्**) विद्यादिगुणों करके सब से बड़े परमेश्वर ! जैसे हमारे (**राष्ट्रे**) राज्य में (**ब्रह्मवर्चसी**) वेदविद्या से प्रकाश को प्राप्त (**ब्राह्मणः**) वेद और ईश्वर को अच्छा जानने वाला ब्राह्मण (**आ, जायताम्**) सब प्रकार से उत्पन्न हो (**इषव्यः**) बाण चलाने में उत्तम गुणवान् (**अतिव्याधी**) अतीव शत्रुओं को व्यधने अर्थात् ताड़ना देने का स्वभाव रखने वाला (**महारथः**) कि जिसके बड़े बड़े रथ और अत्यन्त बली वीर हैं ऐसा (**शूरः**) निर्भय (**राजन्यः**) राजपुत्र (**आ, जायताम्**) सब प्रकार से उत्पन्न हो (**दोग्ध्री**) कामना वा दूध से पूर्ण करने वाली (**धेनुः**) वाणी वा गौ (**वोढा**) भार ले जाने में समर्थ (**अनड्वान्**) बड़ा बलवान् बैल (**आशुः**) शीघ्र चलने हारा (**सप्तिः**) घोड़ा (**पुरन्धिः**) जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है वह (**योषा**) स्त्री (**रथेष्ठाः**) तथा रथ पर स्थिर होने और (**जिष्णुः**) शत्रुओं को जीतने वाला (**सभेयः**) सभा में उत्तम सभ्य (**युवा**)जवान पुरुष (**आ, जायताम्**) उत्पन्न हो (**अस्य यजमानस्य**) जो यह विद्वानों का सत्कार करता वा सुखों की संगति करता वा सुखों को देता है इस राजा के राज्य में (**वीरः**) विशेष ज्ञानवान् शत्रुओं को हटाने वाला पुरुष उत्पन्न हो (**नः**) हम लोगों के (**निकामे निकामे**) निश्चययुक्त काम काम में अर्थात् जिस जिस काम के लिये प्रयत्न करें उस उस काम में (**पर्जन्यः**) मेघ (**वर्षतु**) वर्षे (**ओषधयः**) ओषधि (**फलवत्यः**) बहुत उत्तम फलवाली (**नः**) हमारे लिये (**पच्यन्ताम्**) पकें (**नः**) हमारा (**योगक्षेमः**) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति लक्षण वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति (**कल्पताम्**) समर्थ हो वैसा विधान करो अर्थात् वैसे व्यवहार को प्रगट कराइये ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानों को ईश्वर की प्रार्थनासहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिये कि जिससे पूर्णविद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुणवाली स्त्री, सुख देनेहारे पशु, सभ्य मनुष्य, चाही हुई वर्षा, मीठे फलों से युक्त अन्न और ओषधि हों तथा कामना पूर्ण हो ॥ २२ ॥

प्राणायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर किसलिये होम का विधान करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रा॒णाय॒ स्वाहा॑ऽपा॒नाय॒ स्वाहा॑ व्या॒नाय॒ स्वाहा॒ चक्षु॑षे॒ स्वाहा॒ श्रोत्रा॑य॒ स्वाहा॑ वा॒चे स्वाहा॒ मन॑से॒ स्वाहा॑ ॥२३॥

पदार्थ—जिन मनुष्यों ने (**प्राणाय**) जो पवन भीतर से बाहर निकलता है उसके लिये (**स्वाहा**) योगविद्यायुक्त क्रिया (**अपानाय**) जो बाहर से भीतर को जाता है उस पवन के लिये (**स्वाहा**) वैद्यकविद्यायुक्त क्रिया (**व्यानाय**) जो विविध प्रकार के अङ्गों में व्याप्त होता है उस पवन के लिये (**स्वाहा**) वैद्यकविद्यायुक्त वाणी (**चक्षुषे**) जिस से प्राणी देखता है उस नेत्र इन्द्रिय के लिये (**स्वाहा**) प्रत्यक्षप्रमाणयुक्त वाणी (**श्रोत्राय**) जिस से सुनता है उस कर्णेन्द्रिय के लिये (**स्वाहा**) शास्त्रज्ञ विद्वान् के उपदेशयुक्त वाणी (**वाचे**) जिससे बोलता है उस वाणी के लिये (**स्वाहा**) सत्यभाषण आदि व्यवहारों से युक्त बोल चाल तथा (**मनसे**) विचार का निमित्त संकल्प और विकल्पवान् मन के लिये (**स्वाहा**) विचार से भरी हुई वाणी प्रयोग की जाती अर्थात् भलीभांति उच्चारण की जाती है वे विद्वान् होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, ओषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरवी, आलू, कसेरू, रतालू और शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे नीरोग होकर बुद्धि, बल, और आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते हैं ॥२३॥

प्राच्यै दिश इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । दिशो देवताः । निचृद्धृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर किसलिये होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्राच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒ दक्षि॑णायै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ प्र॒तीच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहोदी॑च्यै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहो॒र्ध्वायै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहावा॑च्यै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ ॥२४॥

पदार्थ—जिन विद्वानों ने (**प्राच्यै**) जो प्रथम प्राप्त होती है अर्थात् सूर्यमण्डल का संयोग करती उस (**दिशे**) दिशा के लिए (**स्वाहा**) ज्योतिः शास्त्र विद्यायुक्त वाणी (**अर्वाच्यै**) जो नीचे से सूर्यमण्डल को प्राप्त अर्थात् जब विषुमती रेखा से उत्तर का सूर्य नीचे नीचे गिरता है उस नीचे की (**दिशे**) दिश के लिये (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (**दक्षिणायै**) जो पूर्वमुख वाले पुरुष के दाहिनी बांह के निकट है उस दक्षिण (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) उक्त वाणी जो (**अर्वाच्यै**) निम्न है उस (**दिशे**) दिशा के लिए (**स्वाहा**) उक्त वाणी (**प्रतीच्यै**) जो सूर्यमण्डल के प्रतिमुख अर्थात् लौटने के समय में प्राप्त और पूर्वमुख वाले पुरुष के पीठ पीछे होती है उस पश्चिम (**दिशे**) दिशा के लिए (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्र युक्त वाणी (**अर्वाच्यै**) पश्चिम के नीचे जो (**दिशे**) दिशा है उस के लिए (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (**उदीच्यै**) जो पूर्वाभिमुख पुरुष के वामभाग को प्राप्त होती उस उत्तम (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (**अर्वाच्यै**) पृथिवी गोल में जो उत्तर दिशा के तले दिशा है उस (**दिशे**) दिशा के लिए (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (**ऊर्ध्वायै**) जो ऊपर को वर्त्तमान है उस (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (**अर्वाच्यै**) जो विरुद्ध प्राप्त होती ऊपर वाली दिशा के नीचे अर्थात् कभी पूर्व गिनी जाती कभी उत्तर कभी दक्षिण कभी पश्चिम मानी जाती है उस (**दिशे**) दिशा के लिए (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी और (**अर्वाच्यै**) जो सब से नीचे वर्त्तमान उस (**दिशे**) दिशा के लिए (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्र-विचारयुक्त वाणी तथा (**अर्वाच्यै**) पृथिवी गोल में जो उक्त प्रत्येक कोण दिशाओं के तले की दिशा है उस (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रविद्यायुक्त वाणी विधान की वे सब ओर कुशली अर्थात् आनन्दी होते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! चार मुख्य दिशा और चार उपदिशा अर्थात् कोण दिशा भी वर्त्तमान हैं । ऐसे ऊपर और नीचे की दिशा भी वर्त्तमान हैं । वे मिल कर सब दश होती हैं, वह जानना चाहिए और एक क्रम से निश्चय नहीं की हुई तथा अपनी अपनी कल्पना में समर्थ भी हैं, उनको उन उन के अर्थ में समर्थन करने की यह रीति है कि जहाँ मनुष्य आप स्थित हो उस देश को लेके सब की कल्पना होती है इसको जानो ॥ २४ ॥

अद्भ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जलादयो देवताः । अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अ॒द्भ्यः स्वाहा॑ वा॒र्भ्यः स्वाहो॑द॒काय॒ स्वाहा॒ तिष्ठ॑न्तीभ्यः॒ स्वाहा॒ स्रव॑न्तीभ्यः॒ स्वाहा॒ स्यन्द॑मानाभ्यः॒ स्वाहा॒ कूप्या॑भ्यः॒ स्वाहा॒ सूद्या॑भ्यः॒ स्वाहा॒ धार्या॑भ्यः॒ स्वाहा॑र्ण॒वाय॒ स्वाहा॑ समु॒द्राय॒ स्वाहा॑ सरि॒राय॒ स्वाहा॑ ॥२५॥

पदार्थ—जिन मनुष्यों ने यज्ञकर्मों में सुगन्धि आदि पदार्थ होमने के लिये (**अद्भ्यः**) सामान्य जलों के लिये (**स्वाहा**) उन को शुद्ध करने की क्रिया (**वार्भ्यः**) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम जलों के लिये (**स्वाहा**) उनको शुद्ध करने की क्रिया (**उदकाय**) पदार्थों को गीले करने वा सूर्य्य की किरणों से ऊपर को जाते हुए जल के लिये (**स्वाहा**) उनको शुद्ध करने वाली क्रिया (**तिष्ठन्तीभ्यः**) बहते हुए जलों के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**स्रवन्तीभ्यः**) शीघ्र बहते हुए जलों के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**स्यन्दमानाभ्यः**) धीरे धीरे चलते जलों के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**कूप्याभ्यः**) कुएं में हुए जलों के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**सूद्याभ्यः**) भली भांति भिगोने हारे अर्थात् वर्षा आदि से जो भिगोते हैं उन जलों के लिए (**स्वाहा**) उनके शुद्ध करने की क्रिया (**धार्याभ्यः**) धारण करने योग्य जो जल हैं उन के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**अर्णवाय**) जिस में बहुत जल हैं उस बड़े नद के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**समुद्राय**) जिस में अच्छे प्रकार नद महानद नदी महानदी झील झरना आदि के जल जा मिलते हैं उस सागर वा महासागर के लिए (**स्वाहा**) शुद्ध करने वाली क्रिया और (**सरिराय**) अति सुन्दर मनोहर जल के लिए (**स्वाहा**) उसकी रक्षा करनेवाली क्रिया विधान की है वे सब को सुख देने हारे होते हैं ॥२५॥

भावार्थ—जो मनुष्य आग में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमें वे जल आदि पदार्थों की शुद्धि करनेहारे हो पुण्यात्मा होते हैं और जल की शुद्धि से ही से सब पदार्थों की शुद्धि होती है यह जानना चाहिए ॥२५॥

वातायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वातादयो देवताः । विराडभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

वाता॑य॒ स्वाहा॑ धू॒माय॒ स्वाहा॒भ्राय॒ स्वाहा॑ मे॒घाय॒ स्वाहा॑ वि॒द्योत॑मानाय॒ स्वाहा॑ स्त॒नय॑ते॒ स्वाहा॑वस्फू॒र्ज॑ते॒ स्वाहा॑ व॒र्ष॑ते॒ स्वाहा॑व॒वर्ष॑ते॒ स्वाहो॒ग्रं वर्ष॑ते॒ स्वाहा॑ शी॒घ्रं वर्ष॑ते॒ स्वाहो॒द्गृ॒ह्ण॑ते॒ स्वाहो॒द्गृ॑हीताय॒ स्वाहा॑ प्रुष्ण॒ते स्वाहा॑ शीकाय॒ते स्वाहा॒ प्रुष्वा॑भ्यः॒ स्वाहा॑ ह्रादु॒नीभ्यः॒ स्वाहा॑ नीहा॒राय॒ स्वाहा॑ ॥२६॥

पदार्थ—जिन मनुष्यों ने (**वाताय**) जो बहता है उस पवन के लिये (स्वाहा) उस को शुद्ध करने वाली यज्ञ क्रिया (**धूमाय**) धूम के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**अभ्राय**) मेघ के कारण के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**मेघाय**) मेघ के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**विद्योतमानाय**) बिजुली से प्रवृत्त हुए सघन बद्दल के लिए (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**स्तनयते**) उत्तम शब्द करती हुई बिजुली के लिए (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**अवस्फूर्जते**) एक दूसरे के घिसने से वज्र के समान नीचे को चोट करते हुए विद्युत् के लिये (**स्वाहा**) शुद्ध करनेहारी यज्ञक्रिया (**वर्षते**) जो बद्दल वर्षता है उसके लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**अववर्षते**) मिलावट से तले ऊपर हुये बद्दलों में जो नीचे वाला है उस बद्दल के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**उग्रम्**) अतितीक्ष्णता से (**वर्षते**) वर्षते हुए बद्दल के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**शीघ्रम्**) शीघ्र लपट झपट से (**वर्षते**) वर्षते हुए बद्दल के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**उद्गृह्णते**) ऊपर से ऊपर बद्दलों के ग्रहण करने वाले बद्दल के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**उद्गृहीताय**) जिसने ऊपर से ऊपर जल ग्रहण किया उस बद्दल के लिए (**स्वाहा**) शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया (**पुष्णते**) पुष्टि करते हुए मेघ के लिए (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**शीकायते**) जो सींचता अर्थात् ठहर ठहर के वर्षता उस मेघ के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**प्रुष्वाभ्यः**) जो पूर्ण घनघोर वर्षा करते हैं उन मेघों के अवयवों के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**ह्रादुनीभ्यः**) अव्यक्त गड़गड़ शब्द करते हुए बद्दलों के लिए (**स्वाहा**) शुद्ध करने वाली यज्ञक्रिया और (**नीहाराय**) कुहर के लिये (**स्वाहा**) उस की शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया की है वे संसार के प्राणपियारे होते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथाविधि अग्निहोत्र आदि यज्ञों को करते हैं वे पवन आदि पदार्थों के शोधनेहारे होकर सब का हित करने वाले होते हैं ॥२६॥

अग्नये स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ पृथि॒व्यै स्वाहा॒ऽन्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ दि॒वे स्वाहा॑ दि॒ग्भ्यः स्वाहाऽऽशा॑भ्यः॒ स्वाहो॒र्व्यै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ ॥२७॥

पदार्थ—मनुष्यों को (**अग्नये**) जाठराग्नि अर्थात् पेट के भीतर अन्न पचाने वाली आग के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**सोमाय**) उत्तम रस के लिए (**स्वाहा**) सुन्दर क्रिया (**इन्द्राय**) जीव बिजुली और परम ऐश्वर्य्य के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**पृथिव्यै**) पृथिवी के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**अन्तरिक्षाय**) आकाश के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**दिवे**) प्रकाश के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**दिग्भ्यः**) पूर्वादि दिशाओं के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**आशाभ्यः**) एक दूसरी में जो व्याप्त हो रही अर्थात् ईशान आदि कोण दिशाओं के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**उर्व्यै**) समय को पाकर अनेक रूप दिखाने वाली अर्थात् वर्षा गर्मी सर्दी के समय के रूप की अलग अलग प्रतीति कराने वाली (**दिशे**) दिशा के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया और (**अर्वाच्यै**) नीचे की (**दिशे**) दिशा के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया अवश्य विधान करनी चाहिए ॥ २७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के द्वारा अर्थात् आग में होम कर ओषधि आदि पदार्थों में सुगन्धि आदि पदार्थ का विस्तार करें वे जगत् के हित करने वाले होवें ॥ २७ ॥

नक्षत्रेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । नक्षत्रादयो देवताः । भुरिगष्टी छन्दसी । मध्यमः स्वरः ॥

नक्ष॑त्रेभ्यः॒ स्वाहा॑ नक्ष॒त्रिये॑भ्यः॒ स्वाहा॑होरा॒त्रेभ्यः॒ स्वाहा॑र्द्धमा॒सेभ्यः॒ स्वाहा॒ मासे॑भ्यः॒ स्वाहा॑ऽऋ॒तुभ्यः॒ स्वाहा॑र्त्त॒वेभ्यः॒ स्वाहा॑ संवत्स॒राय॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳬं स्वाहा॑ च॒न्द्राय॒ स्वाहा॒ सूर्या॑य॒ स्वाहा॑ र॒श्मिभ्यः॒ स्वाहा॒ वसु॑भ्यः॒ स्वाहा॑ रु॒द्रेभ्यः॒ स्वाहा॑दि॒त्येभ्यः॒ स्वाहा॑ म॒रुद्भ्यः॒ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॒ स्वाहा॒ मूले॑भ्यः॒ स्वाहा॒ शाखा॑भ्यः॒ स्वाहा॒ वन॒स्पति॑भ्यः॒ स्वाहा॒ पुष्पे॑भ्यः॒ स्वाहा॒ फले॑भ्यः॒ स्वाहौष॑धीभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥२८॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि (**नक्षत्रेभ्यः**) जो पदार्थ कभी नष्ट नहीं होते उन के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**नक्षत्रियेभ्यः**) उक्त पदार्थों के समूहों के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञ क्रिया (**अहोरात्रेभ्यः**) दिन रात्रि के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अर्द्धमासेभ्यः**) शुक्ल कृष्ण पक्ष अर्थात् पखवाड़ों के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**मासेभ्यः**) महीनों के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**ऋतुभ्यः**) वसन्त आदि छः ऋतुओं के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञ किया (**आर्त्तवेभ्यः**) ऋतुओं में उत्पन्न हुए ऋतु ऋतु के पदार्थों के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञ क्रिया (**संवत्सराय**) वर्षों के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) प्रकाश और भूमि के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञ किया (**चन्द्राय**) चन्द्रलोक के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**सूर्य्याय**) सूर्य्यलोक के लिए (**स्वाहा**) यज्ञ क्रिया (**रश्मिभ्यः**) सूर्य्य आदि की किरणों के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**वसुभ्यः**) पृथिवी आदि लोकों के लिए (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**रुद्रेभ्यः**) दश प्राणों के लिए (**स्वाहा**) यज्ञ क्रिया (**आदित्येभ्यः**) काल के अवयव जो अविनाशी हैं उनके लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**मरुद्भ्यः**) पवनों के लिए (**स्वाहा**) उन के अनुकूल क्रिया (**विश्वेभ्यः**) समस्त (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों के लिए (**स्वाहा**) सुन्दर क्रिया (**मूलेभ्यः**) सभों की जड़ो के लिए (**स्वाहा**) तदनुकूल क्रिया (**शाखाभ्यः**) शाखाओं के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**वनस्पतिभ्यः**) वनस्पतियों के लिए (**स्वाहा**) उत्तमक्रिया (**पुष्पेभ्यः**) फूलों के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**फलेभ्यः**) फलों के लिए (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया और (**ओषधिभ्यः**) ओषधियों के लिए (**स्वाहा**) नित्य उत्तम क्रिया अवश्य करनी चाहिए ॥२८॥

भावार्थ—मनुष्य नित्य सुगन्ध्यादि पदार्थों को अग्नि में छोड़ अर्थात् दहन कर पवन और सूर्य की किरणों द्वारा वनस्पति, ओषधि, मूल, शाखा, पुष्प और फलादिकों में प्रवेश करा के सब पदार्थों की शुद्धि कर आरोग्यता की सिद्धि करें ॥२८॥

पृथिव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पृ॒थि॒व्यै स्वाहा॒न्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ दि॒वे स्वाहा॒ सूर्या॑य॒ स्वाहा॑ च॒न्द्राय॒ स्वाहा॒ नक्ष॑त्रेभ्यः॒ स्वाहा॒द्भ्यः स्वाहौष॑धीभ्यः॒ स्वाहा॒ वन॒स्पति॑भ्यः॒ स्वाहा॑ परिप्ल॒वेभ्यः॒ स्वाहा॑ चरा॒च॒रेभ्यः॒ स्वाहा॑ सरीसृ॒पेभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥२९॥

पदार्थ—जो मनुष्य (**पृथिव्यै**) विथरी हुई इस पृथिवी के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अन्तरिक्षाय**) अवकाश अर्थात् पदार्थों के बीच की पोल के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**दिवे**) बिजुली की शुद्धि के लिए (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**सूर्य्याय**) सूर्य्यमण्डल की उत्तमता के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**चन्द्राय**) चन्द्रमण्डल के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**नक्षत्रेभ्यः**) अश्विनी आदि नक्षत्रलोकों की उत्तमता के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अद्भ्यः**) जलों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**ओषधीभ्यः**) ओषधियों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**वनस्पतिभ्यः**) वट वृक्ष आदि के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**परिप्लवेभ्यः**) जो सब ओर से आते जाते उन तारागणों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**चराचरेभ्यः**) स्थावर जङ्गम जीवों और जड़ पदार्थों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया तथा (**सरीसृपेभ्यः**) जो रिंगते हैं उन सर्प्प आदि जीवों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करें तो वे सबकी शुद्धि करने को समर्थ हों ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो सुगन्धित आदि पदार्थों को पृथिवी आदि पदार्थों में अग्नि के द्वारा विस्तार के अर्थात् फैला के पवन और जल के द्वारा ओषधि आदि पदार्थों में प्रवेश करा सबको अच्छे प्रकार शुद्ध कर आरोग्यपन को सिद्ध कराते हैं वे आयुर्दा के बढ़ाने वाले होते हैं ॥ २९ ॥

असव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वस्वादयो देवताः । कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा ॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**असवे**) प्राणों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**वसवे**) जो इस शरीर में बसता है उस जीव के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**विभुवे**) व्याप्त होने वाले पवन के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**विवस्वते**) सूर्य के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**गणश्रिये**) जो पदार्थों के लिये समूहों की शोभा बिजुली है उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**गणपतये**) पदार्थों के समूहों के पालनेहारे पवन के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अभिभुवे**) सम्मुख होनेवाले के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**अधिपतये**) सबके स्वामी राजा के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**शूषाय**) बल और तीक्ष्णता के लिए (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**संसर्पाय**) जो भली भांति करके रिंगे उस जीव के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**चन्द्राय**) सुवर्ण के लिये (**स्वाहा**) उक्त क्रिया (**ज्योतिषे**) ज्योतिः अर्थात् सूर्य चन्द्र और तारागणों के प्रकाश के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया (**मलिम्लुचाय**) चोर के लिये (**स्वाहा**) उसके प्रबन्ध करने की क्रिया तथा (**दिवा, पतये**) दिन के पालनेहारे सूर्य के लिये (**स्वाहा**) उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि प्राण आदि की शुद्धि के लिये आग में पुष्टि करनेवाले आदि पदार्थ का होम करें ॥ ३० ॥

मधवे स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मासा देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाꣳहसस्पतये स्वाहा ॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (**मधवे**) मीठेपन आदि को उत्पन्न करनेहारे चैत्र के लिए (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**माधवाय**) मधुरपन में उत्तम वैशाख के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**शुक्राय**) जल आदि को पवन वेग से निर्मल करनेहारे ज्येष्ठ के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**शुचये**) वर्षा के योग से भूमि आदि को पवित्र करनेवाले आषाढ़ के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**नभसे**) भली भांति सघन घन बादलों की घनघोर सुनवाने वाले श्रावण के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**नभस्याय**) आकाश में वर्षा से प्रसिद्ध होनेहारे भादों के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**इषाय**) अन्न को उत्पन्न करानेवाले क्वार के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**ऊर्जाय**) बल और अन्न को उत्पन्न कराने वा बलयुक्त अन्न अर्थात् कुआर में फूले हुये बाजरा आदि अन्न को पकाने पुष्ट करनेहारे कातिक के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**सहसे**) बल देनेवाले अगहन के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**सहस्याय**) बल देने में उत्तम पौष के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**तपसे**) ऋतु बदलने से धीरे-धीरे शीत की निवृत्ति और जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति कराने वाले माघ के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**तपस्याय**) जीवों के शरीर में गरमी की प्रवृत्ति कराने में उत्तम फाल्गुन मास के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया और (**अंहसः**) महीनों में मिले हुए मलमांस के लिये (**पतये**) पालनेवाले के लिये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया का अनुष्ठान करो ॥३१॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र आदि यज्ञ और अपनी प्रकृति के योग्य आहार और विहार आदि को करते हैं वे नीरोग होकर बहुत जीने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥

वाजायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वाजादयो देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**वाजाय**) अन्न के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**प्रसवाय**) पदार्थों की उत्पत्ति करने के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**अपिजाय**) घर के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**क्रतवे**) बुद्धि वा कर्म के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**स्वः**) अत्यन्त सुख के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**मूर्ध्ने**) शिर की शुद्धि होने के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**व्यश्नुविने**) व्याप्त होने वाले वीर्य के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**आन्त्याय**) व्यवहारों के अन्त में होने वाले व्यवहार के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया अन्त में होने वाले (**भौवनाय**) जो संसार में प्रसिद्ध होता उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**भुवनस्य**) संसार की (**पतये**) पालना करने वाले स्वामी के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**अधिपतये**) सबके अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है उसके लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया तथा (**प्रजापतये**) सब प्रजाजनों की पालना करने वाले के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया को सब भली भांति युक्त करो ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्न, संतान, घर, बुद्धि और शिर आदि के शोधन से सुख बढ़ाने के लिये सत्यक्रिया को करते हैं वे परमात्मा की उपासना करके प्रजा के अधिक पालना करने वाले होते हैं ॥ ३२ ॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आयुरादयो देवताः । प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को अपना सर्वस्व अर्थात् सब पदार्थ समूह किसके अनुष्ठान के लिये भली भांति अर्पण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहाऽपानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहाऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारी (**आयुः**) आयु कि जिससे हम जीते हैं वह (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया से (**यज्ञेन**) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म विद्या आदि देने के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**प्राणः**) जीवाने का मूल कारण पवन (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया और (**यज्ञेन**) योगाभ्यास आदि के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**अपानः**) जिससे दुःख को दूर करता है वह पवन (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) श्रेष्ठ काम के साथ(**कल्पताम्**) समर्पित हो (**व्यानः**) सब सम्बन्धियों में व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है वह पवन (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया से (**यज्ञेन**) उत्तम काम के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**उदानः**) जिससे बली होता है वह पवन (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया से (**यज्ञेन**) उत्तम कर्म के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**समानः**) जिससे अंग अंग में अन्न पहुँचाया जाता है वह पवन (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) यज्ञ के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**चक्षुः**) नेत्र (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) सत्कर्म के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**श्रोत्रम्**) कान आदि इन्द्रियां जो कि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं (**स्वाहा**) अच्छी क्रिया से (**यज्ञेन**) सत्कर्म के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हों (**वाक्**) वाणी आदि कर्मेन्द्रियां (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) अच्छे काम के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हों (**मनः**) मन अर्थात् अन्तःकरण (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) सत्कर्म के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**आत्मा**) जीव (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) सत्कर्म के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**ब्रह्मा**) चार वेदों का जानने वाला (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) यज्ञादि सत्कर्म के साथ (**कल्पताम्**) समर्थ हो (**ज्योतिः**) ज्ञान का प्रकाश (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) यज्ञ के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**स्वः**) सुख (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) यज्ञ के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**पृष्ठम्**) पूछना वा जो बचा हुआ पदार्थ हो वह (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) यज्ञ के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो (**यज्ञः**) यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**यज्ञेन**) यज्ञ के साथ (**कल्पताम्**) समर्पित हो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जितना अपना जीवन शरीर, प्राण, अन्तःकरण, दशों इन्द्रियां और सब से उत्तम सामग्री हो उनको यज्ञ के लिये समर्पित करें जिससे पापरहित कृतकृत्य होके परमात्मा को प्राप्त होकर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुख को प्राप्त होवें ॥ ३३ ॥

एकस्मा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर किसके अर्थ यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याꣳ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को (**एकस्मै**) एक अद्वितीय परमात्मा के लिये (**स्वाहा**) सत्य क्रिया (**द्वाभ्याम्**) दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया (**शताय**) अनेक पदार्थों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**एकशताय**) एकसौ एक व्यवहार वा पदार्थों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया (**व्युष्ट्यै**) प्रकाशित हुई पदार्थों को जलाने की क्रिया के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया और (**स्वर्गाय**) सुख को प्राप्त होने के लिये (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया भलीभांति युक्त करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि, विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं वह ईश्वर तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करे जिससे संसार का सुख और मोक्ष सुख प्राप्त होवें ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में आयु, बुद्धि, अग्नि के गुण, कर्म, यज्ञ, गायत्री मन्त्र का अर्थ और सब पदार्थों के शोधने के विधान आदि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

अब बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ।

ॐ अथ त्रयोविंशाऽध्यायारम्भः ॐ

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

हिरण्यगर्भेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तेईसवें अध्याय का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ऽआसीत् ।
स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**भूतस्य**) उत्पन्न कार्यरूप जगत् के (**अग्रे**) पहिले (**हिरण्यगर्भः**) सूर्य चन्द्र तारे आदि ज्योति गर्भरूप जिस के भीतर हैं वह सूर्य आदि कारणरूप पदार्थों में गर्भ के समान व्यापक स्तुति करने योग्य (**समवर्त्तत**) अच्छे प्रकार वर्त्तमान और इस सब जगत् का (**एकः**) एक ही (**जातः**) प्रसिद्ध (**पतिः**) पालना करने हारा (**आसीत्**) होता है (**सः**) वह (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) विस्तारयुक्त पृथिवी (**उत**) और (**द्याम्**) सूर्य आदि लोकों को रच के इन को (**दाधार**) तीनों काल में धारण करता है उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप(**देवाय**) सुख देने हारे परमात्मा के लिये जैसे हम लोग (**हविषा**) सर्वस्व दान करके उस की (**विधेम**) परिचर्या सेवा करें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जब सृष्टि प्रलय को प्राप्त होकर प्रकृति में स्थिर होती है और फिर उत्पन्न होती है, उस का आगे जो एक जागता हुआ परमात्मा वर्त्तमान रहता है, तब सब जीव मूर्छा सी पाये हुए होते हैं । यह कल्प के अन्त में प्रकाशरहित पृथिवी आदि सृष्टि तथा प्रकाशसहित सूर्य आदि लोकों की सृष्टि का विधान धारण और सब जीवों के कर्मों के अनुकूल जन्म देकर सब के निर्वाह के लिये सब पदार्थों का विधान करता है, वही सब को उपासना करने योग्य देव है यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है —

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि प्र॒जाप॑तये त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒ः सूर्य॑स्ते महि॒मा । यस्तेऽह॑न्त्संवत्स॒रे म॑हि॒मा स॑म्ब॒भूव॒ यस्ते॑ वा॒यावन्तरि॑क्षे महि॒मा स॑म्ब॒भूव॒ यस्ते॑ दि॒वि सूर्ये॑ महि॒मा स॑म्ब॒भूव॒ तस्मै॑ ते महि॒म्ने प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑ दे॒वेभ्य॑ः ॥२॥

पदार्थ—हे भगवन् जगदीश्वर ! जो आप (**उपयामगृहीतः**) यम जो योगाभ्याससम्बन्धी काम हैं, उनसे समीप में साक्षात् किये अर्थात् हृदयाकाश में प्रगट किये हुए (**असि**) हैं उन (**जुष्टम्**) सेवा किये हुए वा प्रसन्न किये (**त्वा**) आपको (**प्रजापतये**) प्रजा पालन करने हारे राजा की रक्षा के लिये मैं (**गृह्णामि**) ग्रहण करता हूँ जिन (**ते**) आपकी (**एषः**) यह (**योनिः**) प्रकृति जगत् का कारण है जो (**ते**) आपका (**सूर्यः**) सूर्यमण्डल (**महिमा**) बड़ाई रूप तथा (**यः**) जो (**ते**) आपकी (**अहन्**) दिन और (**संवत्सरे**) वर्ष में नियम बन्धन द्वारा (**महिमा**) बड़ाई (**सम्बभूव**) संभावित है (**यः**) जो (**ते**) आपकी (**वायौ**) पवन और (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**महिमा**) बड़ाई (**सम्बभूव**) प्रसिद्ध है तथा (**यः**) जो (**ते**) आपकी (**दिवि**) बिजुली अर्थात् सूर्य आदि के प्रकाश और (**सूर्ये**) सूर्य में (**महिमा**) बड़ाई (**सम्बभूव**) प्रत्यक्ष है (**तस्मै**) उस (**महिम्ने, प्रजापतये**) प्रजापालनरूप बड़ाई वाले (**ते**) आपके लिये और (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) उत्तम विद्या युक्त बुद्धि सबको ग्रहण करनी चाहिये ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर के महिमा को यह सब जगत् प्रकाश (—प्रकाशित) करता है उस परमेश्वर की उपासना को छोड़ और किसी की उपासना उसके स्थान में नहीं करनी चाहिये और जो कोई कहे कि परमेश्वर के होने में क्या प्रमाण है, उसके प्रति जो यह जगत् वर्त्तमान है सो सब परमेश्वर का प्रमाण कराता है यह उत्तर देना चाहिये ॥ २ ॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

**यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ऽइद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑ ।
यऽईशे॑ऽअ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पद॒ः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**यः**) जो (**एकः**) एक (**इत्**) ही (**महित्वा**) अपनी महिमा से (**निमिषतः**) नेत्र आदि से चेष्टा को करते हुए(**प्राणतः**) प्राणी रूप (**द्विपदः**) दो पग वाले मनुष्य आदि वा (**चतुष्पदः**) चार पग वाले गौ आदि पशुसम्बन्धी इस (**जगतः**) संसार का (**राजा**) अधिष्ठाता (**बभूव**) होता है और (**यः**) जो (**अस्य**) इस संसार का (**ईशे**) सर्वोपरि स्वामी है उस (**कस्मै**) आनन्दस्वरूप (**देवाय**) अतिमनोहर परमेश्वर की (**हविषा**) विशेष भक्ति भाव से (**विधेम**) सेवा करें वैसे विशेष भक्तिभाव (का) आप लोगों को भी विधान करना चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो एक ही सब जगत् का महाराजाधिराज समस्त जगत् का उत्पन्न करने हारा सकल ऐश्वर्ययुक्त महात्मा न्यायाधीश है, उसी की उपासना से तुम सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को पाकर सन्तुष्ट होओ ॥ ३ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि प्र॒जाप॑तये त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॑श्च॒न्द्रमा॑स्ते महि॒मा । यस्ते॒ रात्रौ॑ संवत्स॒रे म॑हि॒मा स॑म्ब॒भूव॒ यस्ते॑ पृथि॒व्याम॒ग्नौ म॑हि॒मा स॑म्ब॒भूव॒ यस्ते॒ नक्ष॑त्रेषु च॒न्द्रम॑सि महि॒मा स॑म्ब॒भूव॒ तस्मै॑ ते महि॒म्ने प्र॒जाप॑तये दे॒वेभ्य॒ः स्वाहा॑ ॥४॥

पदार्थ—(हे) जगदीश्वर ! जो आप (**उपयामगृहीतः**) सत्कर्म अर्थात् योगाभ्यास आदि उत्तम काम से स्वीकार किये हुए (**असि**) हो उन (**त्वा, जुष्टम्**) सेवा किये हुए आपको (**प्रजापतये**) प्रजा की पालना करने वाले राजा की रक्षा के लिये मैं (**गृह्णामि**) ग्रहण करता अर्थात् मन में धरता हूँ जिन (**ते**) आपके संसार में (**एषः**) यह (**योनिः**) जल वा जिन (**ते**) आपका संसार में (**चन्द्रमाः**) चन्द्रलोक (**महिमा**) बड़प्पन वा जिन (**ते**) आपका (**यः**) जो (**रात्रौ**) रात्रि और (**संवत्सरे**) वर्ष में (**महिमा**) बड़प्पन (**सम्बभूव**) सम्भव हुआ, होता और होगा (**यः**) जो (**ते**) आपकी सृष्टि में (**पृथिव्याम्**) अन्तरिक्ष वा भूमि और (**अग्नौ**) आग में (**महिमा**) बड़प्पन (**सम्बभूव**) सम्भव हुआ, होता और होगा तथा जिन (**ते**) आपकी सृष्टि में (**यः**) जो (**नक्षत्रेषु**) कारणरूप से विनाश को न प्राप्त होने वाले लोक लोकान्तरों में और (**चन्द्रमसि**) चन्द्रलोक में (**महिमा**) बड़प्पन (**सम्बभूव**) सम्भव हुआ, होता और होगा उन (**ते**) आप (**तस्मै**) उस (**महिम्ने**) बड़प्पन (**प्रजापतये**) प्रजा पालने हारे राजा (**देवेभ्यः**) और विद्वानों के लिये (**स्वाहा**) सत्याचरणयुक्त क्रिया का हम लोगों को अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके महिमा सामर्थ्य से सब जगत् विराजमान जिस का अनन्त महिमा और जिसकी सिद्धि करने में रचना से भरा हुआ समस्त जगत् दृष्टान्त है, उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥ ४ ॥

युञ्जन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यु॒ञ्जन्ति॑ ब्र॒ध्नम॑रु॒षं चर॑न्त॒ं परि॑ त॒स्थुष॑ः ।
रोच॑न्ते रोच॒ना दि॒वि ॥५॥**

पदार्थ—जो पुरुष (**परि**) सब ओर से (**तस्थुषः**) स्थावर जीवों को(**चरन्तम्**) प्राप्त होते हुए बिजुली के समान वर्त्तमान (**अरुषम्**) प्राणियों के मर्मस्थल जिन में पीड़ा होने से प्राण का वियोग शीघ्र हो जाता है, उन स्थानों की रक्षा करने के लिये स्थिर होते हुए (**ब्रध्नम्**) सबसे बड़े सर्वोपरि विराजमान परमात्मा को अपने आत्मा के साथ (**युञ्जन्ति**) युक्त करते हैं, वे (**दिवि**) सूर्य में (**रोचनाः**) किरणों के समान (**रोचन्ते**) परमात्मा में प्रकाशमान होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाशमान है, वैसे सर्वजगत् में परमात्मा प्रकाशमान है । जो योगाभ्याससे उस अन्तर्यामी परमेश्वर को अपने आत्मा से युक्त करते हैं, वे सब ओर से प्रकाश को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

युञ्जन्त्यस्ये [त्यस्य] प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब किससे ईश्वर की प्राप्ति होने योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यु॒ञ्जन्त्य॑स्य॒ काम्या॒ हरी॒ विप॑क्षसा॒ रथे॑ ।
शोणा॑ धृ॒ष्णू नृ॒वाह॑सा ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे शिक्षा करने वाले सज्जन (काम्या) मनोहर (हरी) लेजाने हारे (विपक्षसा) जो कि विविध प्रकारों से भली भांति ग्रहण किये हुए (शोणा) लाल लाल रङ्ग से युक्त (धृष्णू) अतिपुष्ट (नृवाहसा) मनुष्यों को एक देश से दूसरे देश को पहुँचानेहारे दो घोड़ों को (रथे) रथ में (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं वैसे योगीजन (अस्य) इस परमेश्वर के बीच इन्द्रियां अन्तःकरण और प्राणों को युक्त करते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य अच्छे सिखाये हुए घोड़ों से युक्त रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र प्राप्त होते हैं, वैसे ही विद्या सज्जनों का संग और योगाभ्यास से परमात्मा को शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

यद्वात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किसका संग करे इस विषय को अगले मंत्र में कहते हैं—

यद्वातोऽअपोऽअगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एतᳬस्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि नः ॥७॥

पदार्थ—हे (स्तोतः) स्तुति करने हारे जन ! जैसे शिल्पी लोग (इन्द्रस्य) बिजुली के (प्रियाम्) अतिसुन्दर(तन्वम्) विस्तारयुक्त शरीर को (वातः) पवन के समान पाकर (यत्) जिस कलायन्त्र रूपी घोड़े और (अपः) जलों को (अगनीगन्) प्राप्त होते हैं वैसे (एतम्) इस (अश्वम्) शीघ्र चलने हारे कलायन्त्र रूप घोड़े को (अनेन) उक्त बिजुली रूप (पथा) मार्ग से आप प्राप्त होते (पुनः) फिर (नः) हम लोगों को (आ, वर्त्तयासि) भली भांति वर्त्तति अर्थात् इधर उधर ले जाते हो उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्य ! जो तुम को अच्छे मार्ग से चलाते हैं, उनके संग से तुम लोग पवन और बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

वसव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वाय्वादयो देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा । भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्यऽएतदन्नमत्त देवाऽएतदन्नमद्धि प्रजापते ॥८॥

पदार्थ—हे (प्रजापते) प्रजाजनों को पालने हारे राजन् ! (वसवः) प्रथम कक्षा के विद्वान् (गायत्रेण) गायत्री छन्द से कहने योग्य (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वाम्) आपको (अञ्जन्तु) चाहें (रुद्राः) मध्यम कक्षा के विद्वान् जन (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाश किये हुए (छन्दसा)स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आपको (अञ्जन्तु) चाहें वा (आदित्याः) उत्तम कक्षा के विद्वान् जन (जागतेन) जगती छन्द से प्रकाशित किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आपको (अञ्जन्तु) चाहें सो आप (एतत्) इस (अन्नम्) अन्न को (अद्धि) खाइये । हे (देवाः) विद्वानो ! तुम (यव्ये) यवों के खेत में उत्पन्न (गव्ये) गौ के दूध दही आदि उत्तम पदार्थ में मिले हुए (एतम्) इस (अन्नम्) अन्न को (अत्त) खाओ तथा (लाजीन्) अपनी अपनी कक्षा में चलते हुए (शाचीन्) प्रकट (भूः) इस प्रत्यक्ष लोक (भुवः) अन्तरिक्षस्थ लोक और (स्वः) प्रकाश में स्थिर सूर्य्यादि लोकों को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन अंगों और उपांगों (अंगों के अंगों) से युक्त चारों वेदों को मनुष्यों को पढ़ाते हैं वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥ ८ ॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वान् जनों को क्या क्या पूछना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः ।
किᳬस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग तुमको यह पूछते हैं कि (कः स्वित्) कौन (एकाकी) एकाकी अकेला (चरति) विचरता है (उ) और (कः, स्वित्) कौन (पुनः) वार वार (जायते) प्रकट होता है (किम्, स्वित्) क्या (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध और (किम्) क्या (उ) तो (महत्) बड़ा (आवपनम्) बीज बोने का स्थान है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इन उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहे हुए हैं यह जानना चाहिये । मनुष्यों को योग्य है कि सदा इसी प्रकार के प्रश्न किया करें ॥ ९ ॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पिछले मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर को कहते हैं—

सूर्य्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥१०॥

पदार्थ—हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यो ! (सूर्य्यः) सूर्य्य (एकाकी) विना सहाय अपनी कक्षा में (चरति) चलता है (पुनः) फिर इसी सूर्य्य के प्रकाश से (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक (जायते) प्रकाशित होता है (अग्निः) आग (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध (भूमिः) पृथिवी (महत्) बड़ा (आवपनम्) बोने का स्थान है इसको तुम लोग जानो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस संसार में सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से अपनी ही कक्षा में वर्तमान है और उसी के प्रकाश से चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं । अग्नि के समान शीत के हटाने को कोई वस्तु और पृथिवी के तुल्य बड़ा पदार्थों के बोने का स्थान नहीं है यह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ १० ॥

कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳬस्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग तुम्हारे प्रति पूछते हैं कि (का, स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) स्मरण का प्रथम पहिला विषय (आसीत्) हुआ है (किम्, स्वित्) कौन (बृहत्) बड़ा (वयः) उड़ने हारा पक्षी (आसीत्) है (का,स्वित्) कौन (पिलिप्पिला) पिलपिली चिकनी वस्तु (आसीत्) तथा (का, स्वित्)कौन (पिशङ्गिला) प्रकाश रूप को निगल जाने वाली वस्तु है ॥ ११ ॥

भावार्थ—इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं । जो विद्वानों के प्रति न पूछें तो आप विद्वान् भी न हों ॥ ११ ॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वदादयो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब पिछले प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं—

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥१२॥

पदार्थ—हे जानने की इच्छा करने वालो ! (पूर्वचित्तिः) प्रथम स्मृति का विषय (द्यौः) दिव्यगुण देने हारी वर्षा (आसीत्) है (बृहत्) बड़े (वयः) उड़ने हारे (अश्वः) मार्गों को व्याप्त होने वाले पक्षी के तुल्य अग्नि (आसीत्) है (पिलिप्पिला) वर्षा से पिलपिली चिकनी शोभायमान (अविः) अन्नादि से रक्षा आदि उत्तम गुण प्रगट करने वाली पृथिवी (आसीत्) है और (पिशङ्गिला) प्रकाशरूप को निगलने अर्थात् अन्धकार करने हारी (रात्रिः) रात (आसीत्) है यह तुम जानो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हवन और सूर्य रूपादि अग्नि के ताप से सब गुणों से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करने वाली वर्षा होती है । उस वर्षा से सब ओषधि आदि उत्तम पदार्थ युक्त पृथिवी होती और सूर्य रूप अग्नि से प्राणियों के विश्राम के लिये रात्रि होती है ॥ १२ ॥

वायुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मादयो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को मनुष्य कहां युक्त करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या । एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्माकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी जन ! (पचतैः) अच्छे प्रकार पाकों से (वायुः) स्थूल कार्यरूप पवन (छागैः) काटने की क्रियाओं से (असितग्रीवः) काली चोटियों वाला अग्नि और (चमसैः) मेघों से (न्यग्रोधः) वट वृक्ष (वृद्ध्या) उन्नति के साथ (शल्मलिः) सेंबरवृक्ष (त्वा) तुझको (अवतु) पाले जो (एषः) यह (राथ्यः) सड़कों में चलने में कुशल और (वृषा) सुखों की वर्षा करने हारा है (स्यः) वह (चतुर्भिः, षड्भिः, इत्) जिनसे गमन करता है उन चारों पगों से तुझको (आअगन्) प्राप्त हो (च) तथा जो (अकृष्णः) अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् (ब्रह्मा) चार वेदों को जानने हारा उत्तम विद्वान् (नः) हम लोगों को सब गुणों में (अवतु) पहुंचावे उस (अग्नये) विद्या से प्रकाशमान चारों वेदों को पढ़े हुए विद्वान् के लिये (नमः) अन्न देना चाहिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! पवन श्वास आदि के चलाने, आग अन्न आदि के पकाने, सूर्यमण्डल वर्षा, वृक्ष फल आदि, घोड़े आदि गमन और विद्वान् शिक्षा से तुम्हारी रक्षा करते हैं उनको तुम जानो और विद्वानों का सत्कार करो ॥ १३ ॥

सᳬशितो रश्मिनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सᳬशितो रश्मिना रथः सᳬशितो रश्मिना हयः ।
सᳬशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥१४॥

पदार्थ—जो मनुष्यों से (रश्मिना) किरणसमूह से (रथः) आनन्द को सिद्ध करनेवाला यान (संशितः) अच्छे प्रकार सूक्ष्म कारीगरी से बनाया (रश्मिना) लगाम की रस्सी आदि से (हयः) घोड़ा (संशितः) भली भांति चलने में तीक्ष्ण अर्थात् उत्तम क्रिया तथा (अप्सु) प्राणों में (अप्सुजाः) जो प्राणवायु रूप से संचार करनेवाला पवन वा वाष्प (सोमपुरोगवः) ओषधियों का बोध और ऐश्वर्य्य का योग जिस से पहिले प्राप्त होने वाला है वह (ब्रह्मा) बड़ा योगी विद्वान् (संशितः) अतिप्रशंसित किया जाय तो क्या क्या सुख न मिले ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पदार्थों के विशेष ज्ञान से विद्वान् होते हैं वे औरों को विद्वान् करके प्रशंसा को पावें ॥ १४ ॥

स्वमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पढ़ने वा उत्तम विद्या-बोध चाहने वाले कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥१५॥

पदार्थ—हे (वाजिन्) बोध चाहने वाले जन ! तू (स्वयम्) आप (तन्वम्) अपने शरीर को (कल्पयस्व) समर्थ कर (स्वयम्) आप अच्छे विद्वानों को (यजस्व) मिल और (स्वयम्) आप उनकी (जुषस्व) सेवा कर जिससे (ते) तेरी (महिमा) बड़ाई तेरा प्रताप (अन्येन) और के साथ (न) मत (संनशे) नष्ट हो ॥१५॥

भावार्थ—जैसे अग्नि आपसे आप प्रकाशित होता आप मिलता तथा आप सेवा को प्राप्त है जो बोध चाहने वाले जन आप पुरुषार्थयुक्त होते हैं उनका प्रताप, बड़ाई कभी नहीं नष्ट होती ॥ १५ ॥

न वा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न वाऽउएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी ! (यत्र) जहां (ते) वे (सुकृतः) धर्मात्मा योगी विद्वान् (आसते) बैठते और सुख को (ययुः) प्राप्त होते हैं वा (यत्र) जहां (सुगेभिः) सुख से जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से तू (देवान्) दिव्य अच्छे अच्छे गुण वा विद्वानों को (एषि) प्राप्त होता है और जहां (एतत्) यह पूर्वोक्त सब वृत्तान्त (उ) तो वर्त्तमान है और स्थिर हुआ तू (न) नहीं (म्रियसे) नष्ट हो (न, वै) नहीं (रिष्यसि) दूसरे का नाश करे (तत्र) वहां (इत्) ही(त्वा) तुझे (सविता) समस्त जगत् का उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर (देवः) जो कि आप प्रकाशमान है वह (दधातु) स्थापन करे ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने अपने रूप को जानें तो अविनाशीभाव को जान सकें जो धर्म्मयुक्त मार्ग से चलें तो अच्छे कर्म करने हारों के आनन्द को पावें जो परमात्मा की सेवा करें तो जीवों को सत्यमार्ग में स्थापन करें ॥१६॥

अग्निरित्यस्य प्रजापति र्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । अतिशक्वर्य्यौ छन्दसी । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पशु कौन हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः । वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः । सूर्य्यः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्य्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्याबोध चाहने वाले पुरुष ! (अस्मिन्) जिस देखने योग्य लोक में (सः) वह (अग्निः) अग्नि (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उस से जिस प्रकार यज्ञ करनेवाले (अयजन्त) यज्ञ करें उस प्रकार से तू यज्ञ कर जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस (लोकम्) देखने योग्य स्थान को (अजयत्) जीतता है वैसे इस को जीत यदि (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो वह (अग्निः) अग्नि (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) इन यज्ञ से शुद्ध किये हुए (अपः) जलों को (पिब) पी (यस्मिन्) जिस में (सः) वह (वायुः) पवन (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है और जिस से यज्ञ करनेवाले (अयजन्त) यज्ञ करें (तेन) उस से तू यज्ञ कर जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस वायुमण्डल के रहने के (लोकम्) लोक को (अजयत्) जीते वैसे तू जीत जो (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो वह (वायुः) पवन (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) इन (अपः) यज्ञ से शुद्ध किये हुए प्राण रूपी पवनों को (पिब) धारण कर (यस्मिन्) जिस में वह (सूर्य्यः) सूर्य्यमण्डल (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उस से (अयजन्त) यज्ञ करनेवाले यज्ञ करें जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस सूर्य्यमण्डल के ठहरने के (लोकम्) लोक को (अजयत्) जीतता है वैसे तू जीत जो तू (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो (सः) वह (सूर्यः) सूर्य्यमण्डल (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) यज्ञ से शुद्धि किये हुए (अपः) संसार में व्याप्त हो रहे सूर्यप्रकाशों को (पिब) ग्रहण कर ॥१७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानो किन्तु प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं न होमने योग्य हैं जो ऐसे जानकर सुगन्धि आदि अच्छे अच्छे पदार्थों को भली भांति बना आग में होम करने हारे होते हैं वे पवन और सूर्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहाँ से छूट कर ओषधि, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं। इस यज्ञकर्म के करनेवाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कारयुक्त होते हैं ॥१७॥

अथ प्राणायेत्यस्य मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या क्या जानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा । अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥१८॥

पदार्थ—हे (अम्बे) माता (अम्बिके) दादी (अम्बालिके) वा परदादी (कश्चन) कोई (अश्वकः) घोड़े के समान शीघ्रगामी जन जिस (कांपीलवासिनीम्) सुखग्राही मनुष्य को बसाने वाली (सुभद्रिकाम्) उत्तम कल्याण करने हारी लक्ष्मी को ग्रहण कर (ससस्ति) सोता है वह (मा) मुझे (न) नहीं (नयति) अपने वश में लाती इस से मैं (प्राणाय) प्राण के पोषण के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (अपानाय) दुःख के हटाने के लिये (स्वाहा) सुशिक्षित वाणी और (व्यानाय) सब शरीर में व्याप्त होने वाले अपने आत्मा के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी को युक्त करता हूं ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे माता, दादी, परदादी अपने अपने सन्तानों को अच्छी सिखावट पहुँचाती है वैसे तुम लोगों को भी अपने सन्तान शिक्षित करने चाहियें। धन का स्वभाव है कि जहां यह इकट्ठा होता है उन जनों को निद्रालु आलसी और कर्महीन कर देता है इस से धन पाकर भी मनुष्य को पुरुषार्थ ही करना चाहिये ॥ १८ ॥

गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । गणपतिर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥१९॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! हम लोग (गणानाम्) गणों के बीच (गणपतिम्) गणों के पालने हारे (त्वा) आप को (हवामहे) स्वीकार करते (प्रियाणाम्) अतिप्रिय सुन्दरों के बीच (प्रियपतिम्) अतिप्रिय सुन्दरों के पालने हारे (त्वा) आप की (हवामहे) प्रशंसा करते (निधीनाम्) विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करने हारों के बीच (निधिपतिम्) विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करने हारे (त्वा) आप को (हवामहे) स्वीकार करते हैं। हे (वसो) परमात्मन् ! जिस आप में सब प्राणी वसते हैं सो आप (मम) मेरे न्यायाधीश हूजिये जिस (गर्भधम्) गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे (त्वम्) आप (आ, अजासि) जन्मादि दोषरहित भली भांति प्राप्त होते हैं उस (गर्भधम्) प्रकृति के धर्ता आप को (अहम्) मैं (आ, अजानि) अच्छे प्रकार जानूं ॥१९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् की रक्षा चाहे हुए सुखों का विधान, ऐश्वर्य्यों का भली भांति दान, प्रकृति का पालन और सब बीजों का विधान करता है उसी जगदीश्वर की उपासना सब करो ॥१९॥

ता उभावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥२०॥

पदार्थ—हे राजाप्रजाजनो ! तुम (उभा) दोनों (तौ) प्रजा राजाजन जैसे (स्वर्गे) सुख से भरे हुए (लोके) देखने योग्य व्यवहार वा पदार्थ में (चतुरः) चारों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पदः) जो कि पाने योग्य हैं उन को (प्रोर्णुवाथाम्) प्राप्त होओ वैसे इन का हम अध्यापक और उपदेशक दोनों (संप्रसारयाव) विस्तार करें जैसे (रेतोधाः) आलिङ्गन अर्थात् दूसरे से मिलने को धारण करने और (वृषा) दुष्टों के सामर्थ्य वर्षाने अर्थात् उन की शक्ति को रोकने हारा (वाजी) विशेष ज्ञानवान् राजा प्रजाजनों में (रेतः) अपने पराक्रम को स्थापन करे वैसे प्रजाजन (दधातु) स्थापन करें ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा प्रजा पिता और पुत्र के समान अपना वर्त्ताव वर्त्तें तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल की सिद्धि को यथावत् प्राप्त हों जैसे राजा प्रजा के सुख और बल को बढ़ावें वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल की उन्नति करे ॥ २० ॥

उत्सक्थ्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । न्यायाधीशो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर राजा को दुष्टाचारी प्राणी भली भांति दण्ड देने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत्सक्थ्याऽअव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् ।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥२१॥

पदार्थ—हे (वृषन्) शक्तिमन् ! (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के बीच (जीवभोजनः) प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो उस पुरुष और स्त्री को बांध कर (उत्सक्थ्याः) ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करके और अपनी प्रजा के मध्य (अव, गुदम्) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और (अंजिम्) अपने प्रकट न्याय को (संचारय) भली भांति चलाओ ॥२१॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो विषय-सेवा में रमते हुए जन वा वैसी स्त्री व्यभिचार को बढ़ावें उन उन का प्रबल दण्ड से शिक्षा देनी चाहिए ॥२१॥

यकासकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति ।
आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥२२॥

पदार्थ—जिस (गभे) प्रजा में राजा अपने (पसः) राज्य को (आहन्ति) जाने वा प्राप्त हो वह (धारका) सुख को धारण करनेवाली प्रजा (निगल्गलीति) निरन्तर सुख को निगलती सी वर्त्तमान होती है और जिस से (यका) जो (असकौ) यह प्रजा (शकुन्तिका) छोटी चिड़िया के समान निर्बल है इससे इस प्रजा को (आहलक्) अच्छे प्रकार जो हल से भूमि करोदता है उस को प्राप्त होने वाला अर्थात् हल से जुती हुई भूमि से कर को लेने वाला राजा (वञ्चतीति) ऐसे वञ्चता अपना कर धन लेता है कि जैसे प्रजा को सुख प्राप्त हो ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से कर लेवे तो जैसे जैसे प्रजा नष्ट हो वैसे राजा भी नष्ट होता है । यदि विद्या और विनय से प्रजा की भली भांति रक्षा करे तो राजा सब ओर से वृद्धि को पावें ॥२२॥

यकोऽसकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

यकोऽसकौ शकुन्तकऽआहलगिति वञ्चति ।
विवक्षतऽइव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥२३॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यो) यज्ञ के समान आचरण करने हारे राजा ! (त्वम्) तू (नः) हम लोगों के प्रति (मा, अभिभाषथाः) झूठ मत बोलो और (विवक्षत इव) बहुत गप्प सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान (ते) तेरा (मुखम्) मुख मत हो यदि इस प्रकार (यकः) जो (असकौ) यह राजा गप्प सप्प करेगा तो (शकुन्तकः) निर्बल पखेरू के समान (आहलक्) भली भांति उच्छिन्न जैसे हो (इति) इस प्रकार (वञ्चति) ठगा जायगा ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा कभी झूठी प्रतिज्ञा करने और कटुवचन बोलनेवाला न हो तथा न किसी को ठगे जो यह राजा अन्याय करे तो आप भी प्रजाजनों से ठगा जाय ॥२३॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूमिसूर्यौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः ।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥२४॥

पदार्थ—हे राजन् ! यदि (ते) आप की (माता) पृथिवी के तुल्य सहनशील मान करने वाली माता (च) और (ते) आप का (पिता) सूर्य्य के समान तेजस्वी पालन करने वाला पिता (च) भी (वृक्षस्य) छेदन करने योग्य संसार रूप वृक्ष के राज्य की (अग्रम्) मुख्य श्री शोभा वा लक्ष्मी पर (रोहतः) आरूढ होते हैं आप का (पिता) पिता (गभे) प्रजा में (मुष्टिम्) मुट्ठी से धन लेने वाले राज्य को, धन लेकर (अतंसयत्) प्रकाशित करता है तो मैं (इति) इस प्रकार प्रजाजन (प्र, तिलामि) भली भांति उस राजा से प्रीति करता हूं ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो माता पिता और पृथिवी और सूर्य के तुल्य धैर्य और विद्या से प्रकाश को प्राप्त न्याय से राज्य को पाल कर उत्तम लक्ष्मी वा शोभा को पाकर प्रजा को सुशोभित कर अपने पुत्र को राजनीति से युक्त करें वे राज्य करने को योग्य हों ॥२४॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूमिसूर्यौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर माता पिता कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य क्रीडतः ।
विवक्षतऽइव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥२५॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मन्) चारों वेदों के जानने वाले सज्जन ! जिन (ते) सूर्य के समान तेजस्वी आप की (माता) पृथिवी के समान माता (च) और जिन (ते) आपका (पिता) पिता (च) भी (वृक्षस्य) संसाररूप राज्य के बीच (अग्रे) विद्या और राज्य की शोभा में (क्रीडतः) रमते हैं उन (ते) आप का (विवक्षत इव) बहुत कहा चाहते हुए मनुष्य के मुख के समान (मुखम्) मुख है उस से (त्वम्) तू (बहु) बहुत (मा) मत (वदः) कहा कर ॥२५॥

भावार्थ—जो माता पिता सुशील धर्मात्मा लक्ष्मीवान् कुलीन हों उन्होंने सिखाया हुआ ही पुत्र प्रमाणयुक्त थोड़ा बोलने वाला होकर कीर्ति को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजपुरुष किस की उन्नति करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥२६॥

पदार्थ—हे राजन् ! तू (गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार (हरन्निव) पहुंचाते हुए के समान (एनाम्) इस राज्यलक्ष्मीयुक्त (ऊर्ध्वाम्) उत्तम कक्षा वाली प्रजा को (उच्छ्रापय) सदा अधिक अधिक उन्नति दिया कर (अथ) अब (अस्यै) इस प्रजा के (मध्यम्) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर (शीते) शीतल (वाते) पवन में (पुनन्निव) खेती करने वालों की क्रिया से जैसे अन्न आदि शुद्ध हो वा पवन के योग से जल स्वच्छ हो वैसे आप (एधताम्) वृद्धि को प्राप्त हूजिए ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । राजा जैसे कोई बोझा लेजाने वाला अपने शिर वा पीठ पर बोझा को उठा पर्वत पर चढ़ उस भार को ऊपर स्थापन करे वैसे लक्ष्मी को उन्नति होने को पहुँचाने वा जैसे खेती करने वाले भूसा आदि से अन्न को अलग कर उस अन्न को खाके बढ़ते हैं वैसे सत्य न्याय से सत्य असत्य को अलग कर न्याय करने हारा राजा नित्य बढ़ता है ॥२६॥

ऊर्ध्वमेनमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद् गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥२७॥

पदार्थ—हे प्रजास्थ विद्वान् ! आप (गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार को (हरन्निव) पहुँचाने के समान (एनम्) इस राजा की (ऊर्ध्वम्) सब व्यवहारों में अग्रगन्ता (उच्छ्रयतात्) उन्नतियुक्त करें (अथ) इस के अनन्तर जैसे (अस्य) इस राज्य के (मध्यम्) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर (शीते) शीतल (वाते) पवन में (पुनन्निव) शुद्ध होते हुए अन्न आदि के समान (एजतु) उत्तम कर्मों में चेष्टा किया कीजिये ॥२७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जैसे सूर्य मेघमण्डल में जल के भार को पहुंचा और वहाँ से वरसा के सब को उन्नति देता है वैसे ही प्रजाजन राजपुरुषों को उन्नति दें और अधर्म के आचरण से डरें ॥ २७ ॥

यदस्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यदस्याऽअꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्याऽएजतो गोशफे शकुलाविव ॥२८॥

पदार्थ—(यत्) जो राजा वा राजपुरुष (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) अपराध का विनाश करने वाली प्रजा के (कृधु) थोड़े और (स्थूलम्) बहुत कर्म को (उपातसत्) सुशोभित करें वे दोनों (अस्याः) इसको (एजतः) कर्म कराते हैं और वे आप (गोशफे) गौ के खुर से भूमि में हुए गढ़ेले में (शकुलाविव) छोटी दो मछलियों के समान (मुष्कौ) प्रजा से पाये हुए कर को चोरते हुए कंपते हैं ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे एक दूसरे से प्रीति रखने वाली मछली छोटी ताल तलैया में निरन्तर बसती है वैसे राजा और राजपुरुष थोड़े भी कर के लाभ में न्यायपूर्वक प्रीति के साथ वर्त्तें और यदि दुःख को दूर करने वाली प्रजा के थोड़े बहुत उत्तम काम की प्रशंसा करें तो वे दोनों प्रजाजनों को प्रसन्न कर अपने में उनसे प्रीति करावें ॥ २८ ॥

यद्देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुः ।
सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥२९॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यथा) जैसे (सत्यस्य) सत्य (अधिभुवः) आँख के सामने प्रगट हुए प्रत्यक्ष व्यवहार के मध्य में वर्त्तमान (देवासः) विद्वान् लोग (सक्थ्ना) जांघ वा और अपने शरीर के अङ्ग से (नारी) स्त्री के समान (यत्) जिस (विष्टमिनम्) जिस में सुन्दर और बहुत गीले पदार्थ विद्यमान हैं (ललामगुम्) और जिस से मनोवाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं ऐसे न्याय को (प्राविषुः) व्याप्त हों वा जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन सत्य का (देदिश्यते) निरन्तर उपदेश करें वैसे आप आचरण करो ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे शरीर के अङ्गों से स्त्री पुरुष लखे जाते हैं वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य लखा जाता है उस सत्य से विद्वान् लोग जैसे पाने योग्य कोमलता को पावें वैसे राजा प्रजा के स्त्री पुरुष विद्या से नम्रता को पाकर सुख को ढूंढ़ें ॥ २९ ॥

यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसे आचरण करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।
शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥३०॥

पदार्थ—(यत्) जो राजा (हरिणः) हरिण जैसे (यवम्) खेत में उगे हुए जौ आदि को (अत्ति) खाता है वैसे (पुष्टम्) पुष्ट (पशु) देखने योग्य अपने प्रजाजन को (न) नहीं (मन्यते) मानता अर्थात् प्रजा को हृष्ट-पुष्ट नहीं देख के, खाता है वह (यत्) जो (अर्य्यजारा) स्वामी वा वैश्य कुल को अवस्था से बुड्ढा करने हारी दासी (शूद्रा) शूद्र की स्त्री के समान (पोषाय) पुष्टि के लिये (न) नहीं (धनायति) अपने धन को चाहता है ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो राजा पशु के समान व्यभिचार में वर्त्तमान प्रजा की पुष्टि को नहीं करता वह धनाढ्य शूद्रकुल की स्त्री जो कि जारकर्म करती हुई दासी है उस के समान शीघ्र रोगी होकर अपनी पुष्टि का विनाश करके धनहीनता से दरिद्र हुआ मरता है इस से राजा न कभी ईर्ष्या और न व्यभिचार का आचरण करे ॥ ३० ॥

यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा किस हेतु से नष्ट होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते ।
शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते ॥३१॥

पदार्थ—(यत्) जो (शूद्रः) मूर्खों के कुल में जन्मा हुआ मूढ़जन (अर्य्यायै) अपने स्वामी अर्थात् जिस का सेवक उसकी वा वैश्यकुल की स्त्री के अर्थ (जारः) जार अर्थात् व्यभिचार से अपनी अवस्था का नाश करने वाला होता है वह जैसे (पोषम्) पुष्टि का (न) नहीं (अनुमन्यते) अनुमान रखता वा (यत्) जो राजा (हरिणः) हरिण जैसे (यवम्) उगे हुए जौ आदि को (अत्ति) खाता है वैसे (पुष्टम्) धन सन्तान स्त्री सुख ऐश्वर्य्य आदि से पुष्ट अपने प्रजाजन को (बहु) अधिक (न) नहीं (मन्यते) मानता वह सब ओर से क्षीण नष्ट और भ्रष्ट होता है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा और राजपुरुष परस्त्रीवेश्यागमन के लिये पशु के समान अपना वर्त्ताव करते हैं उन को सब विद्वान् शूद्र के समान जानते हैं जैसे शूद्र मूर्खजन श्रेष्ठों के कुल में व्यभिचारी होकर सब को वर्णसंकर कर देता है वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रकुल में व्यभिचार करके वर्णसंकर के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

दधिक्राव्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा किस के समान क्या बढ़ावे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽआयूंषि तारिषत् ॥३२॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे मैं (दधिक्राव्णः) जो धारण पोषण करने वालों को प्राप्त होता (वाजिनः) बहुत वेगयुक्त (जिष्णोः) जीतने और (अश्वस्य) शीघ्र जाने वाला है उस घोड़े के समान पराक्रम को (अकारिषम्) करूं वैसे आप (नः) हम लोगों के (सुरभि) सुगन्धियुक्त (मुखा) मुखों के तुल्य पराक्रम को (प्र, करत्) भली भांति करो और (नः) हमारे (आयूंषि) आयुओं को (तारिषत्) उन की अवधि के पार पहुंचाओ ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जैसे घोड़ों के सिखाने वाले घोड़ों को पराक्रम की रक्षा के नियम से बलिष्ठ और संग्राम में जिताने वाले करते हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करने हारे कुमार और कुमारियों को पूरे ब्रह्मचर्य्य के सेवन से पण्डित पण्डिता कर इनको शरीर और आत्मा के बल के लिये प्रवृत्त करा के बहुत आयु वाले और अति युद्ध करने में कुशल बनावें ॥ ३२ ॥

गायत्रीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो विद्वान् जन (पंक्त्या) विस्तारयुक्त पंक्ति छन्द के (सह) साथ जो (गायत्री) गाने वाले की रक्षा करती हुई गायत्री (त्रिष्टुप्) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखों को रोकने वाला त्रिष्टुप् (जगती) जगत् के समान विस्तीर्ण अर्थात् फैली हुई जगती (अनुष्टुप्) जिस से पीछे से संसार के दुःखों को रोकते हैं वह अनुष्टुप् तथा (उष्णिहा) जिससे प्रातः समय की वेला को प्राप्त करता है उस उष्णिह् छन्द के साथ (बृहती) गम्भीर आशय वाली बृहती (ककुप्) ललित पदों के अर्थ से युक्त ककुप्छन्द (सूचीभिः) सूइयों से जैसे वस्त्र सिया जाता है वैसे (त्वा) तुझको (शम्यन्तु) शान्तियुक्त करें वा सब विद्याओं का बोध करावें उनका तू सेवन कर ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दों के अर्थ को बताने से मनुष्यों को विद्वान् करते हैं और सूई से फटे वस्त्र की सीवें त्यों अलग अलग मत वालों का सत्य में मिलाप कर देते हैं और उन को एक मत में स्थापन करते हैं वे जगत् के कल्याण करने वाले होते हैं ॥ ३३ ॥

द्विपदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३४॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन (सूचीभिः) सन्धियों को मिला देने वाली क्रियाओं से (याः) जो (द्विपदाः) दो दो पद वाली वा जो (चतुष्पदाः) चार चार पद वाली वा (त्रिपदाः) तीन पदों वाली (च) और (याः) जो (षट्पदाः) छः पदों वाली जो (विच्छन्दाः) अनेकविध पराक्रमों वाली (च) और (याः) जो (सच्छन्दाः) ऐसी हैं कि जिन में एक से छन्द हैं वे क्रिया (त्वा) तुम को ग्रहण कराके (शम्यन्तु) शान्ति सुख को प्राप्त करावें उनका नित्य सेवन करो ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य नियम से वीर्य्यवृद्धि को पहुंचा कर नीरोग जितेन्द्रिय और विषयासक्ति से रहित करके धर्मयुक्त व्यवहार में चलाते हैं वे सब के पूज्य अर्थात् सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥ ३४ ॥

महानाम्न्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३५॥

पदार्थ—हे ज्ञान चाहने हारे ! (सूचीभिः) सन्धान करने वाली क्रियाओं से जो (महानाम्न्यः) बड़े नाम वाली (रेवत्यः) बहुत प्रकार के धन और (प्रभूवरीः) प्रभुता से युक्त (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं के समान (मैघीः) वा मेघों की तड़फ (विद्युतः) जो बिजुली उन के समान (वाचः) वाणी (त्वा) तुझ को (शम्यन्तु) शान्तियुक्त करें उन का तू ग्रहण कर ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिन की वाणी दिशा के तुल्य सब विद्याओं में व्याप्त होने और मेघ में ठहरी हुई बिजुली के समान अर्थ का प्रकाश करने वाली हैं वे विद्वान् शान्ति से जितेन्द्रियता को प्राप्त होकर बड़ी कीर्ति वाले होते हैं ॥ ३५ ॥

नार्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब कन्या कितना ब्रह्मचर्य करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥

पदार्थ—हे पण्डिता पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री ! जो कुमारी (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धि से (ते) तेरी (लोम) अनुकूल आज्ञा को (विचिन्वन्तु) इकट्ठा करें वे (देवानाम्) पण्डितों की (नार्य्यः) पण्डितानी हों । हे कुमारी ! जो पण्डितों की (पत्न्यः) पण्डितानी होके (सूचीभिः) मिलाप की क्रियाओं से (दिशः) दिशाओं के समान शुद्ध पाकविद्या पढ़ी हुई हैं वे (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति और ज्ञान दें ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो कन्या प्रथम अवस्था में सोलह वर्ष की अवस्था से चौबीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य से विद्या उत्तम शिक्षा को पाकर अपने सदृश पुरुषों की पत्नी हों वे दिशाओं के समान उत्तम प्रकाशयुक्त कीर्ति वाली हों ॥ ३६ ॥

रजता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ॥
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥३७॥

पदार्थ—जैसे स्वयंवर विवाह से विवाही हुई स्त्री (**वाजिनः**) प्रशंसित बल युक्त (**अश्वस्य**) उत्तम गुणों में व्याप्त अपने पति के (**त्वचि**) उढ़ाने में (**युज्यन्ते**) संयुक्त की जाती अर्थात् पति को वस्त्र उढ़ाने आदि सेवा में लगाई जाती हैं वैसे (**कर्मभिः**) धर्मयुक्त क्रियाओं से (**रजताः**) अनुराग अर्थात् प्रीति को प्राप्त हुई (**हरिणीः**) जिन का प्रशंसित स्वीकार करना है वे (**सीसाः**) प्रेमवाली (**युजः**) सावधान चित्त उचित काम करने वाली (**शम्यन्तीः**) शान्ति को प्राप्त होती वा प्राप्त कराती हुई वा (**सिमा**) प्रेम से बन्धी स्त्री अपने हृदय से प्रिय पतियों को प्राप्त होके (**शम्यन्तु**) आनन्द भोगें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त आप विवाह को प्राप्त स्त्री पुरुष अपनी इच्छा से एक दूसरे से प्रीति किये हुए विवाह को करते हैं वे लावण्य अर्थात् अतिसुन्दरता गुण और उत्तम स्वभावयुक्त सन्तानों को उत्पन्न कर सदा आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ३७ ॥

कुविदङ्गेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभासदो देवताः । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब पढ़ने और पढ़ाने हारे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कुविदङ्ग यवमन्तो यवंचिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति ॥३८॥

पदार्थ—हे (**अङ्ग**) मित्र ! (**कुवित्**) बहुत विज्ञानयुक्त तू (**इहेह**) इस इस व्यवहार में (**एषाम्**) इन मनुष्यों से (**यथा**) जैसे (**यवमन्तः**) बहुत जौ आदि अन्नयुक्त खेती करने वाले (**यवम्**) जौ आदि अनाज के समूह को बुस आदि से (**वियूय**) पृथक् कर (**चित्**) और (**अनुपूर्वम्**) क्रम से (**दान्ति**) छेदन करते हैं उन के और (**ये**) जो (**बर्हिषः**) जल वा (**नमउक्तिम्**) अन्नसम्बन्धी वचन को (**यजन्ति**) कह कर सत्कार करते हैं उन के (**भोजनानि**) भोजनों को (**कृणुहि**) करो ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे पढ़ाने और पढ़ने वालो ! तुम लोग जैसे खेती करने हारे एक दूसरे के खेत को पारी से काटते और भूसा से अन्न को अलग कर औरों को भोजन कराके फिर आप भोजन करते हैं वैसे ही यहां विद्या के व्यवहार में निष्कपट भाव से विद्यार्थियों को पढ़ाने वालों की सेवा और पढ़ाने वालों को विद्यार्थियों की विद्यावृद्धि कर एक दूसरे को खान पान से सत्कार कर सब कोई आनन्द भोगें ॥ ३८ ॥

कस्त्वा छ्यतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापको देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः ॥
षड्जः स्वरः ॥

फिर पढ़ानेवाले विद्यार्थियों की कैसी परीक्षा लेवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति ।
क उ ते शमिता कविः ॥३९॥

पदार्थ—हे पढ़ने वाले विद्यार्थिजन ! (**त्वा**) तुझे (**कः**) कौन (**आछ्यति**) छेदन करता (**कः**) कौन (**त्वा**) तुझे (**विशास्ति**) अच्छा सिखाता (**कः**) कौन (**ते**) तेरे (**गात्राणि**) अङ्गों को (**शम्यति**) शान्ति पहुँचाता और (**कः**) कौन (**उ**) तो (**ते**) तेरा (**शमिता**) यज्ञ करनेवाला (**कविः**) समस्त शास्त्र को जानता हुआ पढ़ाने हारा है ॥ ३९ ॥

भावार्थ—अध्यापक लोग पढ़ने वालों के प्रति ऐसे परीक्षा में पूछें कि कौन तुम्हारे पढ़ने को काटते अर्थात् पढ़ने में विघ्न करते, कौन तुमको पढ़ने के लिये उपदेश देते हैं, कौन अङ्गों की शुद्धि और योग्य चेष्टा को जनाते हैं कौन पढ़ाने वाला है क्या पढ़ने योग्य है ऐसे ऐसे पूछ उत्तम परीक्षा कर उत्तम विद्यार्थियों को उत्साह देकर दुष्ट स्वभाव वालों को धिक्कार देके विद्या की उन्नति करावें ॥ ३९ ॥

ऋतव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ॥
गान्धारः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऋतवस्तऽऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥४०॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी जन ! जैसे (**ते**) तेरे (**ऋतवः**) वसन्त आदि ऋतु (**ऋतुथा**) ऋतु ऋतु के गुणों से (**पर्व**) पालना करें (**शमितारः**) वैसे पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ में शम दम आदि गुणों की प्राप्ति कराने हारे अध्यापक पढ़ने वालों को (**वि, शासतु**) विशेषता से उपदेश करें (**संवत्सरस्य**) और संवत् के (**तेजसा**) जल (**शमीभिः**) और कर्मों से (**त्वा**) तुझे (**शम्यन्तु**) शान्ति दें उनकी तू सदैव सेवा कर ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ऋतु पारी से अपने२ चिह्नों को प्राप्त होते हैं वैसे स्त्री पुरुष पारी से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ का धर्म, वानप्रस्थ वन में रहकर तप करना और संन्यास आश्रम को करके, ब्राह्मण और ब्राह्मणी पढ़ावें, क्षत्रिय और क्षत्रिया प्रजा की रक्षा करें, वैश्य और वैश्या खेती आदि की उन्नति करें और शूद्र शूद्रा उक्त ब्राह्मण आदि की सेवा किया करें ॥ ४० ॥

अर्द्धमासा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषि । प्रजा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब बालकों में माता आदि कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अर्द्धमासाः परूंषि ते मासाऽआ छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥४१॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी लोग ! (**अहोरात्राणि**) दिन रात (**अर्द्धमासाः**) उजेले अंधियारे पखवाड़े और (**मासाः**) चैत्रादि महीने जैसे आयु अर्थात् उमरों को काटते हैं वैसे (**ते**) तेरे (**परूंषि**) कठोर वचनों को (**शम्यन्तः**) शान्ति पहुँचाते हुए (**मरुतः**) उत्तम मनुष्य दुष्ट कामों का (**आच्छ्यन्तु**) विनाश करें और (**ते**) तेरे (**विलिष्टम्**) थोड़े भी कुव्यसन को (**सूदयन्तु**) दूर करें ॥ ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो माता पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा अतिथि लोग बालकों के दुष्ट गुणों को न निवृत्त करें तो वे शिष्ट अर्थात् उत्तम कभी न हों ॥ ४१ ॥

दैव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापको देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

अब पढ़ानेवाले आदि सज्जन कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दैव्याऽअध्वर्य्यवस्त्वा छ्यन्तु वि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४२॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी वा विद्यार्थिनी ! (**दैव्याः**) विद्वानों में कुशल (**अध्वर्यवः**) अपनी रक्षारूप यज्ञ को चाहते हुए अध्यापक उपदेशक लोग (**त्वा**) तुझे (**वि, शासतु**) विशेष उपदेश दें (**च**) और (**ते**) तेरे दोषों का (**आ, छ्यन्तु**) विनाश करें (**पर्वशः**) सन्धि सन्धि से (**गात्राणि**) अङ्गों को परखें (**सिमाः**) प्रेम से बँधी हुई (**शम्यन्तीः**) दुष्ट स्वभाव को दूर करती हुई माता आदि सती स्त्रियां भी ऐसी ही शिक्षा (**कृण्वन्तु**) करें ॥ ४२ ॥

भावार्थ—अध्यापक उपदेशक और अतिथि लोग जब बालकों को सिखलावें तब दोषों का विनाश कर उन को विद्या की प्राप्ति करावें ऐसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री भी कन्याओं के प्रति आचरण करें और वैद्यक शास्त्र की रीति से शरीर के अङ्गों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर औषधि भी देवें ॥ ४२ ॥

द्यौरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अध्यापकादि कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।
सूर्य्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥४३॥

पदार्थ—हे पढ़ने वा पढ़ाने हारी स्त्रियो ! जैसे (**द्यौः**) प्रकाशरूप बिजुली (**पृथिवी**) भूमि (**अन्तरिक्षम्**) आकाश (**वायुः**) पवन (**सूर्य्यः**) सूर्य्यलोक और (**नक्षत्रैः**) तारागणों के (**सह**) साथ चन्द्रलोक (**ते**) तेरे (**छिद्रम्**) प्रत्येक इन्द्रिय को (**पृणातु**) सुख देवें (**ते**) तेरे व्यवहार को सिद्ध करें (**ते**) तेरे (**साधुया**) उत्तम सत्य (**लोकम्**) देखने योग्य लोक को (**कृणोतु**) सिद्ध करें ॥ ४३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पृथिवी आदि सुख देने और सूर्य आदि पदार्थ प्रकाश करने वाले हैं वैसे ही पढ़ानेवाले और उपदेश करनेवाले वा पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री सबको अच्छे मार्ग में स्थापन कर विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करें ॥ ४३ ॥

शन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर माता आदि को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मंत्र में कहा है—

शन्ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः ।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥४४॥

पदार्थ—हे विद्या चाहने वाले ! जैसे पृथिवी आदि तत्त्व (**तव**) तेरे (**तन्वै**) शरीर के लिये (**शम्**) सुख हेतु (**अस्तु**) हो वा (**परेभ्यः**) अत्यन्त उत्तम (**गात्रेभ्यः**) अङ्गों के लिये (**शम्**) सुख (**उ**) और (**अवरेभ्यः**) उत्तमों से

न्यून मध्य तथा निकृष्ट अङ्गों के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो और (अस्थभ्यः) हड्डी (मज्जभ्यः) और शरीर में रहने वाली चरबी के लिये (शम्) सुखहेतु हो वैसे अपने उत्तम गुण कर्म और स्वभाव से अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये सुख के करने वाले हों ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता, पिता, पढ़ाने और उपदेश करने वालों को अपने सन्तानों के पुष्ट अंग और पुष्ट धातु हों जिनसे दूसरों के कल्याण करने के योग्य हों वैसे पढ़ाना और उपदेश करना चाहिये ॥ ४४ ॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वानों के प्रति प्रश्न ऐसे करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः ।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥४५॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! इस संसार में (कः, स्वित्) कौन (एकाकी) एका-एकी अकेला (चरति) चलता वा प्राप्त होता है (उ) और (कः, स्वित्) कौन(पुनः) फिर फिर (जायते) उत्पन्न होता (किं, स्वित्) कौन (हिमस्य) शीत का (भेष-जम्) औषध (किम, उ) और क्या (महत्) बड़ा (आवपनम्) अच्छे प्रकार सब बीज बोने का आधार है इस सबको आप कहिये ॥ ४५ ॥

भावार्थ—विना सहाय के कौन भ्रमता, कौन फिर फिर उत्पन्न होता शीत की निवृत्ति कर्त्ता कौन और बड़ा उत्पत्ति का स्थान क्या है इन सब प्रश्नों के समाधान अगले मन्त्र से जानने चाहियें ॥ ४५ ॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यादयो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सूर्य्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जानने की इच्छा करने वाले पुरुष ! (सूर्य्यः) सूर्यलोक (एकाकी) अकेला (चरति) स्वपरिधि में घूमता है (चन्द्रमाः) आनन्द देनेवाला चन्द्रमा (पुनः) फिर फिर (जायते) प्रकाशित होता है (अग्निः) पावक (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध और (महत्) बड़ा (आवपनम्) अच्छे प्रकार बोने का आधार कि जिसमें सब वस्तु बोते हैं (भूमिः) वह भूमि है ॥ ४६ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! सूर्य अपनी ही परिधि में घूमता है किसी लोकान्तर के चारों ओर नहीं घूमता । चन्द्रादि लोक उसी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं । अग्नि ही शीत का नाशक और सब बीजों के बोने को बड़ा क्षेत्र भूमि ही है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ४६ ॥

किं स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

किꣳस्वित्सूर्य्यसमं ज्योतिः किꣳसमुद्रसमꣳसरः ।
किꣳस्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (किं, स्वित्) कौन (सूर्यसमम्) सूर्य के समान (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (किम्) कौन (समुद्रसमम्) समुद्र के समान (सरः) जिसमें जल बहते वा गिरते वा आते जाते हैं ऐसा तालाब (किं, स्वित्) कौन (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयः) अति बड़ा और (कस्य) किसका (मात्रा) जिससे तोल हो वह परिमाण (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है ॥ ४७ ॥

भावार्थ—आदित्य के तुल्य तेजस्वी, समुद्र के समान जलाधार और भूमि से बड़ा कौन है और किसका परिमाण नहीं है इन चार प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

ब्रह्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मादयो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ब्रह्म सूर्य्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳसरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४८॥

पदार्थ—हे ज्ञान चाहने वाले जन ! तू (सूर्य्यसमम्) सूर्य्य के समान(ज्योतिः) स्वप्रकाशस्वरूप (ब्रह्म) सबसे बड़े अनन्त परमेश्वर (समुद्रसमम्) समुद्र के समान (सरः) ताल (द्यौः) अन्तरिक्ष (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयान्) बड़ा (इन्द्रः) सूर्य और (गोः) वाणी का (तु) तो (मात्रा) मान परिमाण (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है इसको जान ॥ ४८ ॥

भावार्थ—कोई भी, आप प्रकाशमान जो ब्रह्म है उसके समान ज्योति विद्यमान नहीं वा सूर्य के प्रकाश से युक्त मेघ के समान जल के ठहरने का स्थान वा सूर्य-मण्डल के तुल्य लोकेश वा वाणी के तुल्य व्यवहार का सिद्ध करने हारा कोई भी पदार्थ नहीं होता इसका निश्चय सब करें ॥ ४८ ॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टृसमाधातारौ देवते । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ३ ॥४९॥

पदार्थ—हे (देवसख) विद्वानों के मित्र ! यदि जो (त्वम्) तू (अत्र) यहां (मनसा) अन्तःकरण से (जगन्थ) प्राप्त हो तो (त्वा) तुझे (चितये) चेतन के लिये (पृच्छामि) पूछता हूं जो (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (येषु) जिन (त्रिषु) तीन प्रकार के (पदेषु) प्राप्त होने योग्य जन्म, नाम और स्थान में (एष्टः) अच्छे प्रकार इष्ट है (तेषु) उनमें व्याप्त हुआ (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) पृथिवी आदि लोकों को (आ, विवेश) भली भांति प्रवेश कर रहा है उस परमात्मा को भी तुझ से पूछता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! जो चेतनस्वरूप सर्वव्यापी पूजा, उपासना, प्रशंसा, स्तुति करने योग्य परमेश्वर है उसका मेरे लिये उपदेश करो ॥ ४९ ॥

अपीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेश ।
सद्यः पर्य्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवोऽअस्य पृष्ठम् ॥५०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगत् का रचनेहारा ईश्वर मैं (येषु) जिन (त्रिषु) तीन (पदेषु) प्राप्त होने योग्य जन्म नाम स्थानों में (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) जगत् (आविवेश) सब ओर से प्रवेश को प्राप्त हो रहा है (तेषु) उन जन्म नाम और स्थानों में (अपि) भी मैं व्याप्त (अस्मि) हूं (अस्य) इस (दिवः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों के (पृष्ठम्) ऊपरले भाग (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष (उत) और (द्याम्) समस्त प्रकाश को (एकेन) एक (अंगेन) अति मनोहर प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा देश से (सद्यः) शीघ्र (परि, एमि) सब ओर से प्राप्त हूं उस मेरी उपासना तुम सब किया करो ॥ ५० ॥

भावार्थ—जैसे सब जीवों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि मैं कार्य्य कारणात्मक जगत् में व्याप्त हूं मेरे विना एक परमाणु भी अव्याप्त नहीं है । सो मैं जहां जगत् नहीं है वहां भी अनन्त स्वरूप से परिपूर्ण हूं । जो इस अतिविस्तारयुक्त जगत् को आप लोग देखते हैं सो यह मेरे आगे अणुमात्र भी नहीं है इस बात का वैसे ही विद्वान् सबको जनावे ॥ ५० ॥

केष्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पुरुषेश्वरो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ईश्वर-विषय में दो प्रश्न कहते हैं—

केष्वन्तः पुरुषऽआ विवेश कान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किꣳस्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मन्) वेदज्ञविद्वन् ! (केषु) किन में (पुरुषः) सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर (अन्तः) भीतर (आ, विवेश) प्रवेश कर रहा है और (कानि) कौन (पुरुषे) पूर्ण ईश्वर में (अन्तः) भीतर (अर्पितानि) स्थापन किये हैं जिस ज्ञान से हम लोग (उप, वल्हामसि) प्रधान हों (एतत्) यह (त्वा) आपको पूछते हैं सो (किं, स्वित्) क्या है (अत्र) इसमें (नः) हमारे (प्रति) प्रति (वोचासि) कहिये ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इतर मनुष्यों को चाहिये कि चारों वेद के ज्ञाता विद्वान् को ऐसे पूछें कि, हे वेदज्ञ विद्वन् ! पूर्ण परमेश्वर किन में प्रविष्ट है और कौन उसके अन्तर्गत हैं । यह बात आपसे पूछी है यथार्थता से कहिये जिस के ज्ञान से हम उत्तम पुरुष हों ॥ ५१ ॥

पञ्चस्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—

पञ्चस्वन्तः पुरुषऽआविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽअस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

पदार्थ—हे जानने की इच्छा वाले पुरुष (पञ्चसु) पांच भूतों वा उनकी सूक्ष्म मात्राओं में (अन्तः) भीतर (पुरुषः) पूर्ण परमातमा (आ, विवेश) अपनी व्याप्ति से अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है (तानि) वे पञ्चभूत वा तन्मात्रा (पुरुषे) पूर्ण परमात्मा पुरुष के (अन्तः) भीतर (अर्पितानि) स्थापित किये हैं (एतत्) यह (अत्र) इस जगत् में (त्वा) आपको (प्रतिमन्वानः) प्रत्यक्ष जानता हुआ मैं समाधानकर्त्ता (अस्मि) हूं जो (मायया) उत्तम बुद्धि से युक्त तू (भवसि) होता है तो (मत्) मुझसे (उत्तरः) उत्तम समाधानकर्त्ता कोई भी (न) नहीं है, यह तू जान ॥ ५२ ॥

भावार्थ—परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! मेरे ऊपर कोई भी नहीं है। मैं ही सब का आधार सब में व्याप्त होके धारण करता हूं। मेरे व्याप्त होने से सब पदार्थ अपने अपने नियम में स्थित हैं। हे सब से उत्तम योगी विद्वान् लोगो ! आप लोग इस मेरे विज्ञान को जनाओ ॥५२॥

कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं—

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳस्विदासीद् बृहद्वयः।

का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत् पिशङ्गिला ॥५३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! इस जगत् में (का, स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) पूर्व अनादि समय में संचित होनेवाली (आसीत्) है (कि, स्वित्) क्या (बृहत्) बड़ा (वयः) उत्पन्न स्वरूप (आसीत्) है (का, स्वित्) कौन (पिलिप्पिला) पिलपिली चिकनी (आसीत्) है और (का, स्वित्) कौन (पिशङ्गिला) अवयवों को भीतर करने वाली (आसीत्) है यह आप को पूछता हूं ॥५३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं उनके समाधान अगले मन्त्र में देखने चाहियें ॥ ५३ ॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पूर्व मन्त्र के प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः।

अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥५४॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु मनुष्य ! (द्यौः) बिजुली (पूर्वचित्तिः) पहिला संचय (आसीत्) है (अश्वः) महत्तत्व (बृहत्) बड़ा (वयः) उत्पत्ति स्वरूप (आसीत्) है (अविः) रक्षा करने वाली प्रकृति (पिलिप्पिला) पिलपिली चिकनी (आसीत्) है (रात्रिः) रात्रि के समान प्रलय (पिशङ्गिला) सब अवयवों को निगलने वाला (आसीत्) है यह तू जान ॥ ५४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अतिसूक्ष्म विद्युत् है सो प्रथम परिमाण, महत्तत्व-रूप द्वितीय परिमाण और प्रकृति सब का मूल कारण परिमाण से रहित है और प्रलय सब स्थूल जगत् का विनाशरूप है यह जानना चाहिये ॥५४॥

का ईमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं—

काऽईमरे पिशङ्गिला काऽईं कुरुपिशङ्गिला।

कऽईमास्कन्दमर्षति कऽईं पन्थां वि सर्पति ॥५५॥

पदार्थ—(अरे) हे विदुषि स्त्रि ! (का, ईम्) कौन वार वार (पिशङ्गिला) रूप का आवरण करने हारी (का, ईम्) कौन वार वार (कुरुपिशङ्गिला) यवादि अन्नों के अवयवों को निगलने वाली (क, ईम्) कौन वार वार (आस्कन्दम्) न्यारी न्यारी चाल को (अर्षति) प्राप्त होता और (कः) कौन (ईम्) जल के (पन्थाम्) मार्ग को (वि, सर्पति) विशेष पसर के चलता है ॥५५॥

भावार्थ—किससे रूप का आवरण और किस से खेती आदि का विनाश होता कौन शीघ्र भागता और कौन मार्ग में पसरता है ये चार प्रश्न हैं इन के उत्तर अगले मन्त्र में जानो॥ ५५ ॥

अजेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला।

शशऽआस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥५६॥

पदार्थ—(अरे) हे मनुष्यो ! (अजा) जन्मरहित प्रकृति (पिशङ्गिला) विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलनेवाली (श्वावित्) सेही (कुरुपिशङ्गिला) किये हुए खेती आदि के अवयवों का नाश करती है (शशः) खरहा के तुल्य वेगयुक्त कृषि आदि में खरखराने वाला वायु (आस्कन्दम्) अच्छे प्रकार कूदके चलने अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को शीघ्र (अर्षति) प्राप्त होता और (अहिः) मेघ (पंथाम्) मार्ग में (वि, सर्पति) विविध प्रकार से जाता है इस को तुम जानो ॥५६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रकृति सब कार्यरूप जगत् का प्रलय करने हारी कार्य्यकारणरूप अपने कार्य को अपने में लय करने हारी है जो सेही खेती आदि का विनाश करती है जो वायु खरहा के समान चलता हुआ सब को सुखाता है और जो मेघ सांप के समान पृथिवी पर जाता है उन सब को जानो ॥५६॥

कत्यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं—

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः।

यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (अस्य) इस (यज्ञस्य) संयोग से उत्पन्न हुए संसार-रूप यज्ञ के (कति) कितने (विष्ठाः) विशेष कर संसाररूप यज्ञ जिसमें स्थित हों वे (कति) कितने इस के (अक्षराणि) जलादि साधन (कति) कितने (होमासः) देने लेने योग्य पदार्थ (कतिधा) कितने प्रकारों से (समिद्धः) ज्ञानादि के प्रकाशक पदार्थ समिध रूप (कति) कितने (होतारः) होता अर्थात् देने लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता (ऋतुशः) वसन्तादि प्रत्येक ऋतु में (यजन्ति) संगम करते हैं इस प्रकार (अत्र) इस विषय में (विदथा) विज्ञानों को (त्वा) आप से मैं (पृच्छम्) पूछता हूं ॥ ५७ ॥

भावार्थ—यह जगत् कहां स्थित है, कितने इस की उत्पत्ति के साधन, कितने व्यापार के योग्य वस्तु, कितने प्रकार का ज्ञानादि प्रकाशक वस्तु और कितने व्यवहार करने हारे हैं, इन पांच प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जान लेना चाहिये ॥५७॥

षडस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समिधा देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः।

यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५८॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु लोगो ! (अस्य) इस (यज्ञस्य) संगत जगत् के (षट्) छः ऋतु (विष्ठाः) विशेष स्थिति के आधार (शतम्) असंख्य (अक्षराणि) जलादि उत्पत्ति के साधन (अशीतिः) असंख्य (होमाः) देने लेने योग्य वस्तु (तिस्रः) आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन (ह) प्रसिद्ध (समिधः) ज्ञानादि की प्रकाशक विद्या (सप्त) पांच प्राण, मन और आत्मा सात (होतारः) देने लेने योग्य आदि व्यवहार के कर्त्ता (ऋतुशः) प्रति वसन्तादि ऋतु में (यजन्ति) संगत होते हैं उस जगत् के (विदथा) विज्ञानों को (ते) तेरे लिये मैं (प्रब्रवीमि) कहता हूं ॥५८॥

भावार्थ—हे ज्ञान चाहने वाले लोगो ! जिस जगत्रूप यज्ञ में छः ऋतु स्थिति के साधक, असंख्य जलादि वस्तु व्यवहारसाधक बहुत व्यवहार के योग्य पदार्थ और सब प्राणी अप्राणी होता आदि संगत होते हैं और जिस में ज्ञान आदि का प्रकाश करने वाली तीन प्रकार की विद्या हैं उस यज्ञ को तुम लोग जानो ॥५८॥

कोऽअस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं—

कोऽअस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम्।

कः सूर्य्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥५९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (अस्य) इस (भुवनस्य) सब के आधारभूत संसार के (नाभिम्) बन्धन के स्थान मध्यभाग को (कः) कौन (वेद) जानता (कः) कौन (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश को जानता (कः) कौन (बृहतः) बड़े (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल के (जनित्रम्) उपादान वा निमित्त कारण को (वेद) जानता और जो (यतोजाः) जिससे उत्पन्न हुआ है उस चन्द्रमा के उत्पादक को और (चन्द्रमसम्) चन्द्रलोक को (कः) कौन (वेद) जानता है इनका समाधान कीजिये ॥५९॥

भावार्थ—इस जगत् के धारणकर्त्ता बन्धन, भूमि सूर्य अन्तरिक्षों महान् सूर्य के कारण और चन्द्रमा जिससे उत्पन्न हुआ है उसको कौन जानता है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं यह जानना चाहिये ॥५९॥

वेदाहमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं—

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम्।

वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥६०॥

पदार्थ—हे जिज्ञासो पुरुष ! (अस्य) इस (भुवनस्य) सब के अधिकरण जगत् के (नाभिम्) बन्धन के स्थान कारणरूप मध्यभाग परब्रह्म को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूं तथा (द्यावापृथिवी) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकसमूहों और (अन्तरिक्षम्) आकाश को भी (वेद) मैं जानता हूं (बृहतः) बड़े (सूर्य्यस्य) सूर्यलोक के (जनित्रम्) उपादान तैजस कारण और निमित्तकारण ब्रह्म को (वेद) मैं जानता हूं (अथो) इस के अनन्तर (यतोजाः) जिस परमात्मा से उत्पन्न हुआ जो चन्द्र उस परमात्मा को तथा (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा को (वेद) मैं जानता हूं ॥ ६० ॥

भावार्थ—विद्वान् उत्तर देवे कि हे जिज्ञासु पुरुष ! इस जगत् के बन्धन अर्थात् स्थिति के कारण प्रकाशित अप्रकाशित मध्यस्थ आकाश इन तीनों लोकों के कारण और सूर्य्य चन्द्रमा के उपादान और निमित्तकारण इस सब को मैं जानता हूँ ब्रह्म ही इस सब का निमित्तकारण और प्रकृति उपादानकारण है ॥६०॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं—

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णोऽअश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥६१॥

पदार्थ—हे विद्वान् जन ! मैं (**त्वा**) आपको (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**अन्तम्, परम्**) परभाग अवधि को (**पृच्छामि**) पूछता (**यत्र**) जहां इस (**भुवनस्य**) लोक का (**नाभिः**) मध्य से खैंच के बन्धन करता है उसको (**पृच्छामि**) पूछता जो (**वृष्णः**) सेचनकर्त्ता (**अश्वस्य**) बलवान् पुरुष का (**रेतः**) पराक्रम है उस को (**पृच्छामि**) पूछना और (**वाचः**) तीन वेदरूप वाणी के (**परमम्**) उत्तम (**व्योम**) आकाशरूप स्थान को (**त्वा**) आप से (**पृच्छामि**) पूछता हूँ आप उत्तर कहिये ॥६१॥

भावार्थ—पृथिवी की सीमा क्या, जगत् का आकर्षण से बन्धन कौन, बली जन का पराक्रम कौन और वाणी का पारगन्ता कौन है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जानने चाहियें ॥ ६१ ॥

इयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहे हैं—

इयं वेदिः परोऽअन्तः पृथिव्याऽअयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयꣳ सोमो वृष्णोऽअश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥६२॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जन ! (**इयम्**) यह (**वेदिः**) मध्यरेखा (**पृथिव्याः**) भूमि के (**परः**) परभाग की (**अन्तः**) सीमा है (**अयम्**) यह प्रत्यक्ष गुणों वाला (**यज्ञः**) सब को पूजनीय जगदीश्वर (**भुवनस्य**) संसार की (**नाभिः**) नियत स्थिति का बन्धक है (**अयम्**) यह (**सोमः**) ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम (**वृष्णः**) पराक्रमकर्त्ता (**अश्वस्य**) बलवान् जन का (**रेतः**) पराक्रम है और (**अयम्**) यह (**ब्रह्मा**) चारों वेद का ज्ञाता (**वाचः**) तीन वेदरूप वाणी का (**परमम्**) उत्तम (**व्योम**) स्थान है तू इसको जान ॥ ६२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा की जावे तो वह ऊपर से भूमि के अन्त को प्राप्त होती हुई व्याससंज्ञक होती है । यही भूमि की सीमा है । सब लोकों के मध्य आकर्षणकर्त्ता जगदीश्वर है । सब प्राणियों को पराक्रमकर्त्ता ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम है और वेदपारग पुरुष वाणी का पारगन्ता है यह तुम जानो ॥ ६२ ॥

सुभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥६३॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जन ! (**यतः**) जिस जगदीश्वर से (**प्रजापतिः**) विश्व का रक्षक सूर्य (**जातः**) उत्पन्न हुआ है और जो (**सुभूः**) सुन्दर विद्यमान(**स्वयम्भूः**) जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्ति नाश रहित (**प्रथमः**) सब से प्रथम जगदीश्वर (**महति**) बड़े विस्तृत (**अर्णवे**) जलों से सम्बद्ध हुए संसार के (**अन्तः**) बीच (**ऋत्वियम्**) समयानुकूल प्राप्त (**गर्भम्**) बीज को (**दधे**) धारण करता है (**ह**) उसी की सब लोग उपासना करें ॥ ६३ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य लोग सूर्यादि लोकों के उत्तम कारण प्रकृति को और उस प्रकृति में उत्पत्ति की शक्ति को धारण करनेहारे परमात्मा को जानें तो वे जन इस जगत् में विस्तृत सुख वाले होवें ॥ ६३ ॥

होता यक्षदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः ।
जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥६४॥

पदार्थ—हे (**होतः**) दान देनेहारे जन ! जैसे (**होता**) ग्रहीता पुरुष (**सोमस्य**) सब ऐश्वर्य्य से युक्त (**महिम्नः**) बड़प्पन के होने से (**प्रजापतिम्**) विश्व के पालक स्वामी की (**यक्षत्**) पूजा करे वा उसको (**जुषताम्**) सेवन से प्रसन्न करे और (**सोमम्**) सब उत्तम ओषधियों के रस को (**पिबतु**) पीवे वैसे तू (**यज**) उस की पूजा कर और उत्तम ओषधि के रस को पिया कर ॥ ६४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में रचना आदि विशेष चिह्नों से परमात्मा के महिमा को जान के इस की उपासना करते हैं वैसे ही तुम लोग भी इस की उपासना करो जैसे ये विद्वान् युक्तिपूर्वक पथ्य पदार्थों का सेवन कर नीरोग होते हैं वैसे आप लोग भी हों ॥ ६४ ॥

प्रजापते नेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६५॥

पदार्थ—हे (**प्रजापते**) सब प्रजा के रक्षक स्वामिन् ईश्वर ! कोई भी (**त्वत्**) आप से (**अन्यः**) भिन्न (**ता**) उन (**एतानि**) इन पृथिव्यादि भूतों तथा (**विश्वा**) सब (**रूपाणि**) स्वरूपयुक्त वस्तुओं पर (**न**) नहीं (**परि, बभूव**) बलवान् है (**यत्कामाः**) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले होकर (**वयम्**) हम लोग आप की (**जुहुमः**) प्रशंसा करें (**तत्**) वह वह कामना के योग्य वस्तु (**नः**) हम को (**अस्तु**) प्राप्त हो (**ते**) आपकी कृपा से हम लोग (**रयीणाम्**) विद्या सुवर्ण आदि धनों के (**पतयः**) रक्षक स्वामी (**स्याम**) होवें ॥ ६५ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर से उत्तम, बड़ा, ऐश्वर्ययुक्त, सर्वशक्तिमान् पदार्थ कोई भी नहीं है तो उस के तुल्य भी कोई नहीं । जो सब का आत्मा, सबको रचने वाला, समस्त ऐश्वर्य का दाता ईश्वर है उसकी भक्तिविशेष और अपने पुरुषार्थ से इस लोक के ऐश्वर्य और योगाभ्यास के सेवन से परलोक के सामर्थ्य को हम लोग प्राप्त हों ॥६५॥

इस अध्याय में परमात्मा की महिमा, सृष्टि के गुण, योग की प्रशंसा, प्रश्नोत्तर, सृष्टि के पदार्थों की प्रशंसा, राजा प्रजा के गुण, शास्त्र आदि का उपदेश, पठन-पाठन, स्त्री पुरुषों के परस्पर गुण, फिर प्रश्नोत्तर, ईश्वर के गुण, यज्ञ की व्याख्या और रेखागणित आदि का वर्णन किया है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

अब तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

ॐ अथ चतुर्विंशाऽध्यायारम्भः ॐ

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

अश्व इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक्संकृतिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब चौबीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को पशुओं से कैसा उपकार लेना चाहिये इस विषय का वर्णन है—

अश्व॑स्तूप॒रो गो॑मृगस्ते प्रा॑जाप॒त्याः कृष्णग्री॑वऽआग्ने॒यो र॒राटे॑ पु॒रस्ता॑त्सारस्व॒ती मे॒ष्य॑धस्ता॒द्धन्वो॑राश्वि॒नाव॒धोरा॑मौ बा॒ह्वोः सौ॑मापौ॒ष्णः श्या॒मो नाभ्या॑ᳬ सौर्य॒या॒मौ श्वे॒तश्च॑ कृष्णश्च॑ पा॒र्श्वयो॑स्त्वा॒ष्ट्रौ लो॑म॒शस॑क्थौ स॒क्थ्योर्वा॑य॒व्यः श्वे॒तः पुच्छ॒ऽइन्द्रा॑य स्वप॒स्याय वे॒हद्वै॑ष्ण॒वो वा॑म॒नः ॥१॥

पदार्थ— हे मनुष्यो ! तुम जो (अश्वः) शीघ्र चलने हारा घोड़ा (तूपरः) हिंसा करने वाला पशु (गोमृगः) और गौ के समान वर्त्तमान नीलगाय है (ते) वे (प्राजापत्याः) प्रजापालक सूर्य देवता वाले अर्थात् सूर्यमण्डल के गुणों से युक्त (कृष्णग्रीवः) जिसकी काली गर्दन वह पशु (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (पुरस्तात्) प्रथम से (रराटे) ललाट के निमित्त (मेषी) मेंढ़ी (सारस्वती) सरस्वती देवता वाली (अधस्तात्) नीचे से (हन्वोः) ठोढ़ी वामदक्षिण भागों के और (बाह्वोः) भुजाओं के निमित्त (अधोरामौ) नीचे रमण करने वाले (आश्विनौ) जिनका अश्विदेवता वे पशु (सौमापौष्णः) सोम और पूषा देवता वाला (श्यामः) काले रंग से युक्त पशु (नाभ्याम्) तुन्दी के निमित्त और (पार्श्वयोः) बाईं दाहिनी ओर के निमित्त (श्वेतः) सुफेद रंग (च) और (कृष्णः) काला रंग वाला (च) और (सौर्ययामौ) सूर्य वा यमसम्बन्धी पशु वा (सक्थ्योः) पैरों की गांठियों के पास के भागों के निमित्त (लोमशसक्थौ) जिस के बहुत रोम विद्यमान ऐसे गांठियों के पास के भाग से युक्त (त्वाष्ट्रौ) त्वष्टा देवता वाले पशु वा (पुच्छे) पूंछ के निमित्त (श्वेतः) सुफेद रंग वाला (वायव्यः) वायु जिस का देवता है वह वा (वेहत्) जो कामोद्दीपन समय के विना बैल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गौ वा (वैष्णवः) विष्णु देवता वाला और (वामनः) नाटा शरीर से कुछ टेढ़े अंगवाला पशु इन सबों को (स्वपस्याय) जिसके सुन्दर-सुन्दर कर्म उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये संयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अंग के आनन्दनिमित्तक उक्त गुण वाले पशुओं को नियत करो ।१।

भावार्थ—जो मनुष्य अश्व आदि पशुओं से कार्य्यों को सिद्ध कर ऐश्वर्य्य की उन्नति देके धर्म के अनुकूल काम करें वे उत्तम भाग्य वाले हों । इस प्रकरण में सब स्थानों में देवता पद से उस पद के गुणयोग से पशु जानने चाहियें ॥ १ ॥

रोहित इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । निचृत्संकृतिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर कौन पशु कैसे गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

रोहि॑तो धू॒म्ररो॑हितः क॒र्कन्धु॑रोहित॒स्ते सौ॒म्या ब॒भ्रुर॑रु॒णब॑भ्रुः शुक॑बभ्रु॒स्ते वा॑रु॒णाः शि॑ति॒रन्ध्रो॒ऽन्यत॑शितिरन्ध्रः स॒मन्तशि॑तिरन्ध्र॒स्ते सा॑वि॒त्राः शि॑तिबा॒हुर॒न्यत॑ः शितिबा॒हुः स॒मन्तशि॑तिबा॒हुस्ते बा॑र्हस्प॒त्याः पृष॑ती क्षु॒द्रपृ॑षती स्थू॒लपृ॑षती॒ ता मै॑त्रावरु॒ण्यः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (रोहितः) सामान्य लाल (धूम्ररोहितः) धुमेला लाल और (कर्कन्धुरोहितः) पके बेर के समान लाल पशु हैं (ते) वे (सौम्याः) सोमदेवता अर्थात् सोम गुण वाले । जो (बभ्रुः) न्योला के समान धुमेला (अरुणबभ्रुः) ललामी लिये हुए न्योले के समान रंगवाला और (शुकबभ्रुः) सुग्गा की समता को लिये हुए न्योले के समान रंगयुक्त पशु हैं (ते) वे सब (वारुणाः) वरुण देवता वाले अर्थात् श्रेष्ठ जो (शितिरन्ध्रः) शितिरन्ध्र अर्थात् जिसके मर्म-स्थान आदि में सुपेदी (अन्यतःशितिरन्ध्रः) जो और अङ्ग से और अङ्ग में छेदसे हों वैसी जिसके जहां तहां सुपेदी (समन्तशितिरन्ध्रः) और जिसके सब ओर से छेदों के समान सुपेदी के चिह्न हैं (ते) वे सब (सावित्राः) सविता देवता वाले (शितिबाहुः) जिसके अगले भुजाओं में सुपेदी के चिह्न (अन्यतःशितिबाहुः) जिसके और अंग से और अङ्ग में सुपेदी के चिह्न और (समन्तशितिबाहुः) जिस के सब ओर से अगले गोड़ों में सुपेदी के चिह्न हैं ऐसे जो पशु हैं (ते) वे (बार्हस्पत्याः) बृहस्पति देवता वाले तथा जो (पृषती) सब अंगों से अच्छी छिटकी हुई सी (क्षुद्रपृषती) जिस के छोटे छोटे रंग बिरंग छींटे और (स्थूलपृषती) जिस के मोटे मोटे छींटे हैं (ताः) वे सब (मैत्रावरुण्यः) प्राण और उदान देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥२॥

भावार्थ—जो चन्द्रमा आदि के उत्तम गुणवाले पशु हैं उन से उन उन के गुण के अनुकूल काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहियें ॥ २ ॥

शुद्धवाल इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदतिजगतीछन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर कैसे गुण वाले पशु हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

शु॒द्धवा॑लः स॒र्वशु॑द्धवालो मणि॒वाल॒स्तऽआ॑श्वि॒नाः श्येत॑ः श्येता॒क्षो॒ऽरु॒णस्ते रु॒द्राय॑ पशु॒पत॑ये क॒र्णा यामाऽअ॑वलि॒प्ता रौ॒द्रा नभो॑रूपाः पा॒र्ज॒न्याः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (शुद्धवालः) जिसके शुद्ध बाल वा शुद्ध छोटे छोटे अंग (सर्वशुद्धवालः) जिसके समस्त शुद्ध बाल और (मणिवालः) जिसके मणि के समान चिलकते हुए बाल हैं ऐसे जो पशु (ते) वे सब (आश्विनाः) सूर्य चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य चन्द्रमा के समान दिव्य गुण वाले जो (श्येतः) सुपेद रंगयुक्त (श्येताक्षः) जिसका सुपेद आंखें और (अरुणः) जो लाल रंग वाला है (ते) वे (पशुपतये) पशुओं की रक्षा करने और (रुद्राय) दुष्टों को रुलानेहारे के लिये । जो ऐसे हैं कि (कर्णाः) जिन से काम करते हैं वे (यामाः) वायु देवता वाले (अवलिप्ताः) जिन के उन्नतियुक्त अंग अर्थात् स्थूल शरीर हैं वे (रौद्राः) प्राण-वायु आदि देवता वाले तथा (नभोरूपाः) जिन का आकाश के समान नीला रूप है ऐसे जो पशु हैं वे सब (पार्जन्याः) मेघ देवता वाले जानने चाहियें ॥३॥

भावार्थ—जो जिस पशु का देवता है वह उस का गुण है यह जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पृश्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतादयो देवताः । विराडतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

पृश्नि॑स्तिर॒श्चीन॑पृश्निरू॒र्ध्वपृ॑श्नि॒स्ते मा॑रु॒ताः फ॒ल्गूर्लो॑हितो॒र्णी प॑ल॒क्षी ताः सा॑रस्व॒त्यः प्लीहा॒कर्णः॑ शु॒ण्ठाक॒र्णो॑ऽध्यालोह॒कर्ण॒स्ते त्वा॒ष्ट्राः कृ॒ष्णग्री॑वः शि॑ति॒कक्षो॑ऽञ्जिस॒क्थस्तऽऐ॑न्द्रा॒ग्नाः कृ॒ष्णाञ्जि॒रल्पा॑ञ्जिर्म॒हाञ्जि॒स्तऽउ॑ष॒स्याः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पृश्निः) पूछने योग्य (तिरश्चीनपृश्निः) जिस का तिरछा स्पर्श और (ऊर्ध्वपृश्निः) जिसका ऊंचा वा उत्तम स्पर्श है (ते) वे (मारुताः) वायु देवता वाले । जो (फल्गूः) फलों को प्राप्त हों (लोहितोर्णी) जिसकी लाल ऊर्णा अर्थात् देह के बाल और (पलक्षी) जिसकी चंचल चपल आंखें ऐसे जो पशु हैं (ताः) वे (सारस्वत्यः) सरस्वती देवता वाले (प्लीहाकर्णः) जिस के कान में प्लीहा रोग के आकार चिह्न हों (शुण्ठाकर्णः) जिसके सूखे कान और जिस के (अध्यालोहकर्णः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले जो (कृष्णग्रीवः) काले गले वाले (शितिकक्षः) जिसके पांजर की ओर सुपेद अंग और (अञ्जिसक्थः) जिसकी प्रसिद्ध जङ्घा अर्थात् स्थूल होने से अलग विदित हों ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (ऐन्द्राग्नाः) पवन और बिजुली देवता वाले तथा (कृष्णाञ्जिः) जिसकी करोदी हुई चाल (अल्पाञ्जिः) जिसकी थोड़ी चाल और (महाञ्जिः) जिसकी बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (उषस्याः) उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥४॥

भावार्थ—जो पशु और पक्षी पवन गुण वा जो नदी गुण वा जो सूर्य गुण वा जो पवन और बिजुली गुण तथा जो प्रातःसमय की वेला के गुण वाले हैं उनसे उन्हीं के अनुकूल काम सिद्ध करने चाहियें ॥ ४ ॥

शिल्पा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्बृहतीछन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

शि॒ल्पा वै॑श्वदे॒व्यो रोहि॑ण्य॒स्त्र्यवयो॑ वा॒चेऽवि॑ज्ञाता॒ऽअदि॑त्यै॒ सरू॑पा धा॒त्रे व॑त्सत॒र्यो दे॒वाना॒ं पत्नी॑भ्यः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को (शिल्पाः) जो सुन्दर रूपवान् और शिल्पकार्यों की सिद्धि करने वाली (वैश्वदेव्यः) विश्वेदेव देवता वाले (वाचे) वाणी के लिये (रोहिण्यः) नीचे से ऊपर को चढ़ने योग्य (त्र्यवयः) जो तीन प्रकार की भेड़ें (अदित्यैः) पृथिवी के लिये (अविज्ञाताः) विशेषकर न जानी हुई भेड़ आदि (धात्रे) धारण करने के लिये (सरूपाः) एक से रूप वाली तथा (देवानाम्) दिव्यगुण वाले विद्वानों की (पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (वत्सतर्य्यः) अतीव छोटी छोटी थोड़ी अवस्था वाली बछिया जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो सब विद्वान् शिल्पविद्या से अनेकों यान आदि बनावें और पशुओं की पालना कर उनसे उपयोग लेवें वे धनवान् हों ॥ ५ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳪ रोहिता रुद्राणाᳪ श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (कृष्णग्रीवाः) ऐसे हैं कि जिनकी खिंची हुई गर्दन वा खिंचा हुआ खाना निगलना है (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले (शितिभ्रवः) जिनकी सुपेद भौंहें हैं वे (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं के । जो (रोहिताः) लाल रंग के हैं वे (रुद्राणाम्) प्राण आदि ग्यारह रुद्रों के । जो (श्वेताः) सुपेद रंग के और (अवरोकिणः) अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं वे (आदित्यानाम्) सूर्यसम्बन्धी महीनों के और जो (नभोरूपाः) ऐसे हैं जिनका जल के समान रूप है वे जीव (पार्जन्याः) मेघदेवता वाले अर्थात् मेघ के सदृश गुणों वाले जानने चाहियें ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि की खींचने की, पृथिवी आदि की धारण करने की, पवनों की अच्छे प्रकार पढ़ने की, सूर्य आदि की रोकने की और मेघों की जल वर्षाने की क्रिया को जानकर सब कामों में सम्यक् निरन्तर उपयुक्त किया करें ॥ ६ ॥

उन्नत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । अतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

उन्नतऽऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवाऽउन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽआग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (उन्नतः) ऊंचा (ऋषभः) और श्रेष्ठ (वामनः) नाटा पशु है (ते) वे (ऐन्द्रावैष्णवाः) बिजुली और पवन देवता वाले जो (उन्नतः) ऊंचा (शितिबाहुः) जिसका दूसरे पदार्थ को काटती छांटती भुजाओं के समान बल और (शितिपृष्ठः) जिसकी सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु हैं (ते) वे (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) वायु और सूर्य देवता वाले (शुकरूपाः) जिन का सुग्गों के समान रूप और (वाजिनाः) वेग वाले (कल्माषाः) कबरे भी हैं वे (आग्निमारुताः) अग्नि और पवन देवता वाले तथा जो (श्यामाः) काले रंग के हैं वे (पौष्णाः) पुष्टिनिमित्तक मेघ देवता वाले जानने चाहियें ॥७॥

भावार्थ—जो मनुष्य पशुओं की उन्नति और पुष्टि करते हैं वे नाना प्रकार के सुखों को पाते हैं ॥७॥

एता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्राग्न्यादयो देवताः । विराड्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

एताऽऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽअग्नीषोमीया वामनाऽअनड्वाहऽआग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतएन्यो मैत्र्यः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को (एताः) ये पूर्वोक्त (द्विरूपाः) द्विरूप पशु अर्थात् जिनके दो दो रूप हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) वायु और बिजुली के संगी जो (वामनाः) टेढ़े अङ्गों वाले व नाटे और (अनड्वाहः) बैल हैं वे (अग्नीषोमीयाः) सोम और अग्नि देवता वाले तथा (आग्नावैष्णवाः) अग्नि और वायु देवता वाले जो (वशाः) बन्ध्या गौ हैं वे (मैत्रावरुण्यः) प्राण और उदान देवता वाली और जो (अन्यतएन्यः) कहीं से प्राप्त हों वे (मैत्र्यः) मित्र के प्रिय व्यवहार में जानने चाहियें ॥८॥

भावार्थ—जो मनुष्य वायु और अग्नि आदि के गुणों वाले गौ आदि पशु हैं उनकी पालना करते हैं वे सब का उपकार करने वाले होते हैं ॥८॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्याऽअविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (कृष्णग्रीवाः) काले गले के हैं वे (आग्नेयाः) अग्निदेवता वाले जो (बभ्रवः) न्योले के रंग के समान रंग वाले हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले जो (श्वेताः) सुपेद हैं वे (वायव्याः) वायु देवता वाले । जो (अविज्ञाताः) विशेष चिह्न से कुछ न जाने गये वे (अदित्यै) जो कभी नाश नहीं होती उस उत्पत्तिरूप क्रिया के लिये जो (सरूपाः) ऐसे हैं कि जिन का एकसा रूप है वे (धात्रे) धारण करने हारे पवन के लिये । और जो (वत्सतर्यः) छोटी छोटी बछियां हैं वे (देवानाम्) सूर्य आदि लोकों की (पत्नीभ्यः) पालन करने वाली क्रियाओं के जानने चाहियें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो पशु जोतने और निगलने वाले अग्नि के समान वर्त्तमान जो ओषधि के समान गुणों को धारण करने और ढांपने वाले हैं वे पवन के समान वर्त्तमान जो नहीं जानने योग्य वे उत्पत्ति के लिये जो धारण करते हुए के तुल्य गुणयुक्त हैं वे धारण करने के लिये । तथा जो सूर्य की किरणों के समान वर्त्तमान पदार्थ हैं वे व्यवहारों की सिद्धि करने में अच्छे प्रकार युक्त करने चाहियें ॥९॥

कृष्णा भौमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अन्तरिक्षादयो देवताः । विराड्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

कृष्णा भौमा धूम्राऽआन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (कृष्णाः) काले रंग के वा खेत आदि के जुताने वाले हैं वे (भौमाः) भूमि देवता वाले । जो (धूम्राः) धुमेले हैं वे (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्ष देवता वाले । जो (दिव्याः) दिव्य गुण कर्म स्वभावयुक्त (बृहन्तः) बढ़ते हुए और (शबलाः) थोड़े सुपेद हैं वे (वैद्युताः) बिजुली देवता वाले । और जो (सिध्माः) मंगल कराने हारे हैं वे (तारकाः) दुःख के पार उतारने वाले जानने चाहियें ॥१०॥

भावार्थ—यदि मनुष्य जोतने आदि कार्यों के साधक पशु आदि पदार्थों को भूमि आदि में संयुक्त करें तो वे आनन्द मंगल को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

धूम्रानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वसन्तादयो देवताः । विराड्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥११॥

पदार्थ—जो मनुष्य (वसन्ताय) वसन्त ऋतु में सुख के लिये (धूम्रान्) धुमेले पदार्थों के (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु में आनन्द के लिये (श्वेतान्) सुपेद रंग के (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु में कार्यसिद्धि के लिये (कृष्णान्) काले रंग के वा खेती की सिद्धि कराने वाले (शरदे) शरद् ऋतु में सुख के लिये (अरुणान्) लाल रंग के (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु में कार्य साधने के लिये (पृषतः) मोटे और (शिशिराय) शिशिर ऋतु सम्बन्धी व्यवहार साधने के लिये (पिशङ्गान्) लालामी लिये हुए पीले पदार्थों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यों को जिस ऋतु में जो पदार्थ इकट्ठे करने वा सेवने योग्य हों उनको इकट्ठे और उनका सेवन कर नीरोग होके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने के व्यवहारों का आचरण करें ॥ ११ ॥

त्र्यवय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्साऽअनुष्टुभे तुर्यवाहऽउष्णिहे ॥१२॥

पदार्थ—जो (त्र्यवयः) ऐसे हैं कि जिनकी तीन भेड़ें हैं वे (गायत्र्यै) गाते हुओं की रक्षा करने वाली के लिये (पञ्चावयः) जिनके पांच भेड़ें हैं वे (त्रिष्टुभे) तीन अर्थात् शरीर, वाणी और मनसम्बन्धी सुखों के स्थिर करने के लिये । जो (दित्यवाहः) विनाश में न प्रसिद्ध हों उनकी प्राप्ति कराने वाले (जगत्यै) संसार की रक्षा करने की जो क्रिया उसके लिये (त्रिवत्साः) जिनके तीन स्थानों में निवास वे (अनुष्टुभे) पीछे से रोकने की क्रिया के लिये और (तुर्यवाहः) जो अपने पशुओं में चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं वे (उष्णिहे) जिस क्रिया से उत्तमता के साथ प्रसन्न हों उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें वे सुखी हों ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् जन पढ़े हुए गायत्री आदि छन्दों के अर्थों से सुखों को बढ़ाते हैं वैसे पशुओं के पालने वाले घी आदि पदार्थों को बढ़ावें ॥ १२ ॥

पष्ठवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विराजादयो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

पष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिछन्दसे ॥१३॥

पदार्थ—जिन मनुष्यों ने (विराजे) विराट्छन्द के लिये (पष्ठवाहः) जो पीठ से पदार्थों को पहुँचाते (बृहत्यै) बृहती छन्द के अर्थ को (उक्षाणः) वीर्य सींचने में समर्थ (ककुभे) ककुप् उष्णिक् छन्द के अर्थ को (ऋषभाः) अतिबलवान् प्राणी (पङ्क्त्यै) पङ्क्ति छन्द के अर्थ को (अनड्वाहः) लढ़ा पहुँचाने में समर्थ

बैलों को (अतिछन्दसे) अतिजगती आदि छन्द के अर्थ को (धेनवः) दूध देनेवाली गौएं स्वीकार कीं वे अतीव सुख पाते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् विराट् आदि छन्दों के लिये बहुत विद्याविषयक कामों को सिद्ध करते हैं वैसे ऊंट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग समस्त कामों को सिद्ध करें ॥ १३ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याऽउपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामा पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुमको जो (कृष्णग्रीवाः) काले गले वाले हैं वे(आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले । जो (बभ्रवः) सब का धारण पोषण करने वाले हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले । जो (उपध्वस्ताः) नीचे के समीप गिरे हुए हैं वे (सावित्राः) सविता देवता वाले । जो (वत्सतर्यः) छोटी छोटी बछिया हैं वे (सारस्वत्यः) वाणी देवता वाली । जो (श्यामाः) काले वर्ण के हैं वे (पौष्णाः) पुष्टि करनेहारे मेघ देवता वाले । जो (पृश्नयः) पूछने योग्य हैं वे (मारुताः) मनुष्य देवता वाले (बहुरूपाः) बहुरूपी अर्थात् जिनके अनेक रूप हैं वे (वैश्वदेवाः) समस्त विद्वान् देवता वाले और जो (वशाः) निरन्तर चिलकते हुए हैं वे (द्यावापृथिवीयाः) आकाश पृथिवी देवता वाले जानने चाहियें ॥ १४ ॥

भावार्थ—जैसे शिल्पविद्या जानने वाले विद्वान् जन अग्नि आदि पदार्थों से अनेक कार्य सिद्ध करते हैं वैसे खेती करनेवाले पुरुष पशुओं से बहुत कार्य सिद्ध करें ॥ १४ ॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्ताः सञ्चराऽएता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको (एताः) ये (उक्ताः) कहे हुए (संचराः) जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि देवता वाले । जो (कृष्णाः) खींचने वा जोतने हारे हैं (वारुणाः) वे वरुण देवता वाले और जो (पृश्नयः) चित्र विचित्र चिह्न युक्त (मारुताः) मनुष्य के से स्वभाव वाले (तूपराः) हिंसक हैं वे (कायाः) प्रजापति देवता वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो नाना प्रकार के देशों में आने जाने वाले पशु आदि प्राणी हैं उनसे मनुष्य यथायोग्य उपकार लेवें ॥ १५ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । शक्वरीछन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर किसके लिये कौन रक्षा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन (अनीकवते) प्रशंसित सेना रखने वाले (अग्नये) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी सेनाधीश के लिये (प्रथमजान्) विस्तार-युक्त कारण से उत्पन्न हुए (सान्तपनेभ्यः) जिनका अच्छे प्रकार ब्रह्मचर्य्य आदि आचरण है उन (मरुद्भ्यः) प्राण के समान प्रीति उत्पन्न करने वाले मनुष्यों के लिये (सवात्यान्) एक से पवन में हुए पदार्थों (गृहमेधिभ्यः) घर में जिनकी बीर बुद्धि है उन (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (बष्किहान्) बहुत काल के उत्पन्न हुओं (क्रीडिभ्यः) प्रशंसायुक्त विहार आनन्द करने वाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (संसृष्टान्) अच्छे प्रकार गुणयुक्त और (स्वतवद्भ्यः) जिनका आपसे निवास है उन (मरुद्भ्यः) स्वतन्त्र मनुष्यों के लिये (अनुसृष्टान्) मिलने वालों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वैसे ही तुम लोग इनको प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानों से विद्यार्थी और पशु पाले जाते हैं वैसे अन्य मनुष्यों को भी पालने चाहियें ॥ १६ ॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्राग्न्यादयो देवताः । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको जो (एताः) ये (ऐन्द्राग्नाः) वायु और बिजुली देवता वाले (प्राशृङ्गाः) जिनके उत्तम सींग हैं वे (माहेन्द्राः) महेन्द्र देवता वाले वा (बहुरूपाः) बहुत रंगयुक्त (वैश्वकर्मणाः) विश्वकर्म देवता वाले (संचराः) जिनमें अच्छे प्रकार आते जाते हैं वे मार्ग (उक्ताः) निरूपण किये उनमें जाना आना चाहिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानों ने पशुओं की पालना आदि के मार्ग कहे हैं वैसे ही वेद में प्रतिपादित हैं ॥ १७ ॥

धूम्रा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिगतिजगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितॄणाꣳसोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितॄणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको (सोमवताम्) सोमशान्ति आदि गुणयुक्त उत्पन्न करने वाले (पितॄणाम्) माता पिताओं के (बभ्रुनीकाशाः) न्योले के समान (धूम्राः) धुमेले रंगवाले (बर्हिषदाम्) जो सभा के बीच बैठते हैं उन (पितॄणाम्) पालना करने हारे विद्वानों के (कृष्णाः) काले रंगवाले (धूम्रनीकाशाः) धुआं के समान अर्थात् धुमेले और (बभ्रवः) पुष्टि करने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) जिन्होंने अग्निविद्या ग्रहण की है उन (पितॄणाम्) पालना करने हारे विद्वानों के (बभ्रुनीकाशाः) पालने हारे के समान (कृष्णाः) काले रंगवाले (पृषन्तः) मोटे अङ्गों से युक्त (त्रैयम्बकाः) जिनका तीन अधिकारों में चिह्न है वे प्राणी वा पदार्थ हैं यह जानना चाहिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो उत्पन्न करने और विद्या देने वाले विद्वान् हैं उनका घी आदि पदार्थ वा गौ आदि के दान से यथायोग्य सत्कार करना चाहिये ॥ १८ ॥

उक्ताः संचरा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिपाद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्ताः सञ्चराऽएताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (एताः) ये (शुनासीरीयाः) शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेती की सिद्धि करने वाले (संचराः) आनेजाने हारे (वायव्याः) पवन के समान दिव्यगुणयुक्त (श्वेताः) सुपेद रङ्ग वाले वा (सौर्याः) सूर्य के समान प्रकाशमान (श्वेताः) सुपेद रङ्ग के पशु (उक्ताः) कहे हैं उनको अपने कार्य्यों में अच्छे प्रकार निरन्तर नियुक्त करो ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो जिस पशु का देवता कहा है वह उस पशु का गुण ग्रहण करना चाहिये ॥ १९ ॥

वसन्तायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वसन्तादयो देवताः । विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर किसके लिये कौन अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककरा ञ्छिशिराय विककरान् ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! पक्षियों को जानने वाला जन (वसन्ताय) वसन्त ऋतु के लिये (कपिञ्जलान्) जिन कपिंजल नाम के विशेष पक्षियों (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु के लिये (कलविङ्कान्) चिरोटा नाम के पक्षियों (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु के लिये (तित्तिरीन्) तीतरों (शरदे) शरद् ऋतु के लिये (वर्त्तिकाः) बतकों (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु के लिये (ककरान्) ककर नाम के पक्षियों और (शिशिराय) शिशिर ऋतु के अर्थ (विककरान्) विककर नाम के पक्षियों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उनको तुम जानो ॥ २० ॥

भावार्थ—जिस जिस ऋतु में जो जो पक्षी अच्छे आनन्द को पाते हैं वे वे उस गुण वाले जानने चाहियें ॥ २० ॥

समुद्रायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वरुणो देवता । विराट् छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर कौन किसके अर्थ सेवन करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे जल के जीवों की पालना करने को जाननेवाला जन (समुद्राय) महाजलाशय समुद्र के लिये (शिशुमारान्) जो अपने बालकों को मार डालते हैं उन शिशुमारों (पर्जन्याय) मेघ के लिये (मण्डूकान्) मेंढकों (अद्भ्यः) जलों के लिये (मत्स्यान्) मछलियों (मित्राय) मित्र के समान सुख देते हुए सूर्य्य के लिये (कुलीपयान्) कुलीपय नाम के जङ्गली पशुओं और (वरुणाय) वरुण के लिये (नाक्रान्) नाके मगर जलजन्तुओं को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भावार्थ—जैसे जलचर जन्तुओं के गुण जानने वाले पुरुष उन जल के जन्तुओं को बढ़ा वा पकड़ सकते हैं वैसा आचरण और लोग भी करें ॥ २१ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

सोमा॑य हु॒ꣳसाना॒लभ॑ते वा॒यवे॑ ब॒लाका॑ऽइन्द्रा॒ग्निभ्यां॒ क्रुञ्चा॑न्मि॒त्राय॑ म॒द्गून्वरु॑णाय चक्रवा॒कान् ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों के गुण का विशेष ज्ञान रखनेवाला पुरुष (सोमाय) चन्द्रमा वा ओषधियों में उत्तम सोम के लिये (हंसान्) हंसों (वायवे) पवन के लिये (बलाकाः) बगुलियों (इन्द्राग्निभ्याम्) इन्द्र और अग्नि के लिये (क्रुञ्चान्) सारसों (मित्राय) मित्र के लिये (मद्गून्) जल के कौओं वा मुर्गाबियों और (वरुणाय) वरुण के लिये (चक्रवाकान्) चकई चकवों को(आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जो उत्तम पक्षी हैं वे अच्छे यत्न के साथ पालन कर बढ़ाने चाहियें ॥ २२ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अ॒ग्नये॑ कु॒टरू॑ना॒लभ॑ते॒ वन॒स्पति॑भ्य॒ऽउलू॑काना॒ग्नीषोमा॑भ्यां॒ चाषा॑न॒श्विभ्यां॑ म॒यूरा॑न्मि॒त्रावरु॑णाभ्यां क॒पोता॑न् ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे पक्षियों के गुण जानने वाला जन (अग्नये) अग्नि के लिये (कुटरून्) मुर्गों (वनस्पतिभ्यः) वनस्पति अर्थात् विना पुष्प फल देनेवाले वृक्षों के लिये (उलूकान्) उल्लू पक्षियों (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के लिये (चाषान्) नीलकण्ठ पक्षियों (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के लिये (मयूरान्) मयूरों तथा (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और वरुण के लिये (कपोतान्) कबूतरों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मुर्गा आदि पशु के गुणों को जानते हैं वे सदा इनको बढ़ाते हैं ॥ २३ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

सोमा॑य ल॒बाना॒लभ॑ते॒ त्वष्ट्रे॑ कौली॒काना॑गो॒षादी॑र्दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्यः कु॒लीका॑ देवजा॒मिभ्यो॒ऽग्नये॑ गृ॒हप॑तये पारु॒ष्णान् ॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों का काम जाननेवाला जन (सोमाय) ऐश्वर्य के लिये (लबान्) बटेरों (त्वष्ट्रे) प्रकाश के लिये (कौलीकान्) कौलीक नाम के पक्षियों (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (गोसादीः) जो गौओं को मारती हैं उन पखेरियों (देवजामिभ्यः) विद्वानों की बहिनियों के लिये (कुलीकाः) कुलीक नामक पखेरियों और (अग्नये) जो अग्नि के समान वर्त्तमान (गृहपतये) गृहपालन करने वाला उसके लिये (पारुष्णान्) पारुष्ण पक्षियों को (आ लभते) प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य पक्षियों के स्वभावज कामों को जानकर उनकी अनुहारि किया करते हैं वे बहुश्रुत के समान होते हैं ॥ २४ ॥

अह्न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । कालावयवा देवताः । विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अह्ने॑ पारा॒वता॑ना॒लभ॑ते॒ रात्र्यै॑ सीचा॒पूर॑होरा॒त्रयोः॑ स॒न्धिभ्यो॑ ज॒तूर्मासे॑भ्यो दात्यौ॒हान्त्सं॑वत्स॒राय॑ मह॒तः सु॑प॒र्णान् ॥२५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे काल का जानने वाला (अह्ने) दिवस के लिये (पारावतान्) कोमल शब्द करने वाले कबूतरों (रात्र्यै) रात्रि के लिये (सीचापूः) सीचापू नामक पक्षियों (अहोरात्रयोः) दिन रात्रि के (सन्धिभ्यः) सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकाल के लिये (जतूः) जतूनामक पक्षियों (मासेभ्यः) महीनों के लिये (दात्यौहान्) काले कौओं और (संवत्सराय) वर्ष के लिये (महतः) बड़े २ (सुपर्णान्) सुन्दर सुन्दर पंखों वाले पक्षियों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी इनको प्राप्त होओ ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य अपने अपने समय के अनुकूल क्रीड़ा करने वाले पक्षियों के स्वभाव को जानकर अपने स्वभाव को वैसा करें वे बहुत जानने वाले हों ॥ २५ ॥

भूम्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूम्यादयो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

भूम्या॑ आ॒खूना॒लभ॑ते॒ऽन्तरि॑क्षाय पा॒ङ्क्ता॑न् दि॒वे क॒शान् दि॒ग्भ्यो न॑कु॒लान् ब॒भ्रु॑कानवान्तरदि॒शाभ्यः॑ ॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे भूमि के जन्तुओं के गुण जानने वाला पुरुष (भूम्यै) भूमि के लिये (आखून्) मूषों (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष के लिये (पाङ्क्तान्) पंक्तिरूप से चलने वाले विशेष पक्षियों (दिवे) प्रकाश के लिये (कशान्) कशनाम के पक्षियों (दिग्भ्यः) पूर्व आदि दिशाओं के लिये (नकुलान्) नेउलों और (अवान्तरदिशाभ्यः) अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओं के लिये (बभ्रुकान्) भूरे भूरे विशेष नेउलों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य भूमि आदि के समान मूषे आदि के गुणों को जानकर उपकार करें वे बहुत विज्ञान वाले हों ॥ २६ ॥

वसुभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वस्वादयो देवताः । निचृद्बृहती छन्दः । मध्य स्वरः ॥

वसु॑भ्य॒ ऋश्या॑ना॒लभ॑ते रु॒द्रेभ्यो॒ रुरू॑नादि॒त्येभ्यो॒ न्यङ्कू॒न् विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॑ पृष॒तान्त्सा॒ध्येभ्यः॑ कुलु॒ङ्गान् ॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पशुओं के गुणों का जाननेवाला जन (वसुभ्यः) अग्नि आदि वसुओं के लिये (ऋश्यान्) ऋश्य जाति के हरिणों (रुद्रेभ्यः) प्राण आदि रुद्रों के लिये (रुरून्) रोजनामी जन्तुओं (आदित्येभ्यः) बारह महीनों के लिये (न्यङ्कून्) न्यङ्कुनामक पशुओं (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के लिये (पृषतान्) पृषत् जाति के मृगविशेषों और (साध्येभ्यः) सिद्ध करने के जो योग्य हैं उनके लिये (कुलुङ्गान्) कुलुङ्ग नाम के पशुविशेषों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य हरिण आदि के वेगरूप गुणों को जानकर उपकार करें वे अत्यन्त सुख को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

ईशानायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईशानादयो देवताः । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

ईशा॑नाय त्वा॒ पर॑स्वत॒ आ ल॑भते मि॒त्राय॑ गौ॒रान् वरु॑णाय महि॒षान् बृह॒स्पत॑ये गव॒याँस्त्वष्ट्र॒ उष्ट्रा॑न् ॥२८॥

पदार्थ—हे राजा ! जो मनुष्य (ईशानाय) समर्थ जन के लिये (त्वा) आप और (परस्वतः) परस्वत् नामी मृगविशेषों को (मित्राय) मित्र के लिये (गौरान्) गोरे मृगों को (वरुणाय) अतिश्रेष्ठ के लिये (महिषान्) भैंसों को (बृहस्पतये) बृहस्पति अर्थात् महात्माओं के रक्षक के लिये (गवयान्) नीलगायों को और (त्वष्ट्रे) त्वष्टा अर्थात् पदार्थविद्या से पदार्थों को सूक्ष्म करने वाले के लिये (उष्ट्रान्) ऊंटों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह धनधान्ययुक्त होता है ॥२८॥

भावार्थ—जो पशुओं से यथावत् उपकार लेवें वे समर्थ होवें ॥ २८ ॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

प्र॒जाप॑तये॒ पुरु॑षान् ह॒स्तिन॒ आ ल॑भते वा॒चे प्लु॒षीँश्चक्षु॑षे म॒शका॒ञ्छ्रोत्रा॑य भृ॒ङ्गाः ॥२९॥

पदार्थ—जो मनुष्य (प्रजापतये) प्रजा पालने हारे राजा के लिये (पुरुषान्) पुरुषों (हस्तिनः) और हाथियों (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषि नाम के जीवों (चक्षुषे) नेत्र के लिये (मशकान्) मशाओं और (श्रोत्राय) कान के लिये (भृङ्गाः) भौंरों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वह बली और पुष्ट इन्द्रियों वाला होता है ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो प्रजा की रक्षा के लिये चतुरङ्गिणी अर्थात् चारों दिशाओं को रोकने वाली सेना और जितेन्द्रियता का अच्छे प्रकार आचरण करते हैं वे धनवान् और कान्तिमान् होते हैं ॥ २९ ॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्र॒जाप॑तये च वा॒यवे॑ च गोमृ॒गो वरु॑णायार॒ण्यो मे॒षो य॒माय॒ कृष्णो॑ मनुष्यरा॒जाय॑ म॒र्कटः॑ शार्दू॒लाय॑ रो॒हिद्ऋ॑ष॒भाय॑ गव॒यी क्षि॑प्रश्ये॒नाय॒ वर्त्ति॑का॒ नील॑ङ्गोः कृमिः॑ समु॒द्राय॑ शिशु॒मारो॑ हि॒मव॑ते ह॒स्ती ॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को (प्रजापतये) प्रजा पालने वाले (च) और उस के सम्बन्धियों तथा (वायवे) वायु (च) और वायु के सम्बन्धी पदार्थों के लिये (गोमृगः) जो पृथिवी को युद्ध करता वह (वरुणाय) अतिउत्तम के लिये (आरण्यः) वन का (मेषः) मेंढ़ा (यमाय) न्यायाधीश के लिये (कृष्णः) काला हरिण (मनुष्यराजाय) मनुष्यों के राजा के लिये (मर्कटः) वानर (शार्दूलाय) बड़े सिंह अर्थात् केशरी के लिये (रोहित्) लालमृग (ऋषभाय) श्रेष्ठ सभ्य पुरुष के लिये (गवयी) नीलगाइनी (क्षिप्रश्येनाय) शीघ्र चलने हारे बाज पखेरू

के समान जो वर्त्तमान उस के लिये (वर्त्तिका) बतक (नीलङ्गोः) जो नील को प्राप्त होता उस छोटे कीड़े के हेतु (कृमिः) छोटा कीड़ा (समुद्राय) समुद्र के लिये (शिशुमारः) बालकों को मारने वाला शिशुमार और (हिमवते) जिस के अनेकों हिमखण्ड विद्यमान हैं उस पर्वत के लिये (हस्ती) हाथी अच्छे प्रकार युक्त करना चाहिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य मनुष्यसम्बन्धी उत्तम प्राणियों की रक्षा करते हैं वे साङ्गोपाङ्ग बलवान् होते हैं ॥ ३० ॥

मयुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राजापत्यादयो देवताः । स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मयुः प्रा॑जाप॒त्य उ॒लो ह॑लि॒क्ष्णो वृ॑षद॒ꣳशस्ते धा॒त्रे दि॒शां क॒ङ्को धु॒ङ्क्षाग्ने॒यी क॑लवि॒ङ्को लोहि॑ता॒हिः पु॑ष्करसा॒दस्ते त्वा॒ष्ट्रा वा॒चे क्रुञ्चः ॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (मयुः) किंनर निन्दित मनुष्य और जो (उलः) छोटा कीड़ा (हलिक्ष्णः) विशेष सिंह और (वृषदंशः) बिलार हैं (ते) वे (धात्रे) धारणा करने वाले के लिये (कङ्कः) जङ्गली चील्ह (दिशाम्) दिशाओं के हेतु (धुङ्क्षा) धुङ्क्षा नाम की पक्षिणी (आग्नेयी) अग्नि देवता वाली जो (कलविङ्कः) चिरौटा (लोहिताहिः) लाल सांप और (पुष्करसादः) तालाब में रहने वाला है (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले तथा (वाचे) वाणी के लिये (क्रुञ्चः) सारस जानना चाहिये ॥३१॥

भावार्थ—जो सियार और सांप आदि को वश में लाते हैं वे मनुष्य धुरन्धर होते हैं ॥ ३१ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

सोमा॑य कुल॒ङ्ग आ॑र॒ण्योऽजो नकु॑लः शका ते पौ॒ष्णाः क्रो॒ष्टा मा॒योरिन्द्र॑स्य गौ॒रमृ॑गः पि॒द्वो न्यङ्कुः कक्कु॒टस्तेऽनु॑मत्यै प्रति॒श्रुत्का॑यै चक्रवा॒कः ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुमने (सोमाय) सोम के लिये जो (कुलुङ्गः) कुलुङ्ग नामक पशु वा (आरण्यः) बनैला (अजः) बकरा (नकुलः) न्योला और (शका) सामर्थ्य वाला विशेष पशु है (ते) वे (पौष्णाः) पुष्टि करने वाले के सम्बन्धी वा (मायोः) विशेष सियार के हेतु (क्रोष्टा) सामान्य सियार वा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के अर्थ (गौरमृगः) गोरा हरिण वा जो (पिद्वः) विशेष मृग (न्यङ्कुः) किसी और जाति का हरिण और (कक्कटः) कक्कट नाम का मृग है (ते) वे (अनुमत्यै) अनुमति के लिये तथा (प्रतिश्रुत्कायै) सुने पीछे सुनाने वाली के लिये (चक्रवाकः) चकई चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्त किये जावें जो बहुत काम करने को समर्थ हो सकें ॥३२॥

भावार्थ—जो बनैले पशुओं से भी उपकार करना जानें वे सिद्ध कार्यों वाले होते हैं ॥३२॥

सौरीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मित्रादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

सौरी ब॒लाका॑ शा॒र्गः सृ॑ज॒यः श॑या॒ण्डक॒स्ते मै॒त्राः सर॑स्वत्यै॒ शारिः॑ पुरुष॒वाक् श्वा॒विद्भौ॒मी शा॑र्दू॒लो वृकः॑ पृदा॑कु॒स्ते म॒न्यवे॒ सर॑स्वते॒ शुकः॑ पुरुष॒वाक् ॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको (सौरी) जिसका सूर्य देवता है वह (बलाका) बगुलिया तथा जो (शार्गः) पपीहा पक्षी (सृजयः) सृजय नाम वाला और (शयाण्डकः) शयाण्डक पक्षी हैं (ते) वे (मैत्राः) प्राण देवता वाले (शारिः) सुग्गी (पुरुषवाक्) पुरुष के समान बोलने हारा शुग्गा (सरस्वत्यै) नदी के लिये (श्वावित्) सेही (भौमी) भूमि देवता वाली जो (शार्दूलः) केशरी सिंह (वृकः) भेड़िया और (पृदाकुः) सांप हैं (ते) वे (मन्यवे) क्रोध के लिये तथा (शुकः) शुद्ध करनेहारा सुवा पक्षी और (पुरुषवाक्) जिसकी मनुष्य की बोली के समान बोली है वह पक्षी (सरस्वते) समुद्र के लिये जानना चाहिये ॥३३॥

भावार्थ—जो बलाका आदि पशु पक्षी हैं उनमें से कोई पालने और कोई ताड़ना देने योग्य हैं यह जानना चाहिये ॥३३॥

सुपर्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । स्वराट्शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

सु॒प॒र्णः पा॑र्ज॒न्य आ॒तिर्वा॑ह॒सो दर्वि॑दा॒ ते वा॒यवे॒ बृह॒स्पत॑ये वा॒चस्पत॑ये पै॒ङ्गरा॒जोऽल॒ज आ॑न्तरि॒क्षः प्ल॒वो म॒द्गुर्मत्स्य॒स्ते न॑दीप॒तये॑ द्यावापृथि॒वी॒यः॑ कू॒र्मः ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको जो (सुपर्णः) सुन्दर गिरने वा जानेवाला पक्षी वह (पार्जन्यः) मेघ के समान गुण वाला जो (आतिः) आति नाम वाला पक्षी (वाहसः) अजगर सांप (दर्विदा) और काठ को छिन्न भिन्न करने वाला पक्षी है (ते) वे सब (वायवे) पवन के लिये (पैङ्गराजः) पैङ्गराज नाम का पक्षी (बृहस्पतये) बड़े बड़े पदार्थों और (वाचः, पतये) वाणी की पालना करने हारे के लिये (अलजः) अलज पक्षी (आन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष देवता वाला जो (प्लवः) जल में तरने वाला बतक पक्षी (मद्गुः) जल का कौआ और (मत्स्यः) मछली हैं (ते) वे सब (नदीपतये) समुद्र के लिये और जो (कूर्मः) कछुआ है वह (द्यावापृथिवीयः) प्रकाश भूमि देवता वाला जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो मेघ आदि के समान गुण वाले विशेष विशेष पशु पक्षी हैं वे काम के उपयोग के लिये युक्त करने चाहियें ॥ ३४ ॥

पुरुषमृग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । चन्द्रादयो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

पु॒रु॒ष॒मृ॒गश्च॒न्द्रम॑सो गो॒धा काल॑का दार्वाघा॒टस्ते वन॒स्पती॑नां कृक॒वाकुः॑ सावि॒त्रो ह॒ꣳसो वात॑स्य ना॒क्रो मक॑रः कुली॒पय॒स्तेऽकू॑पारस्य ह्रि॒यै शल्य॑कः ॥३५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (पुरुषमृगः) पुरुषों को शुद्ध करने हारा विशेष पशु वह (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के अर्थ जो (गोधा) गोह (कालका) कालका पक्षी और (दार्वाघाटः) कठफोरवा हैं (ते) वे (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों के सम्बन्धी जो (कृकवाकुः) मुर्गा वह (सावित्रः) सविता देवता वाला जो (हंसः) हंस है वह (वातस्य) पवन के अर्थ जो (नाक्रः) नाके का बच्चा (मकरः) मगर-मच्छ (कुलीपयः) और विशेष जलजन्तु हैं (ते) वे (अकूपारस्य) समुद्र के अर्थ और जो (शल्यकः) सेही है वह (ह्रियै) लज्जा के लिये जानना चाहिये ॥३५॥

भावार्थ—जो चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त विशेष पशु पक्षी हैं वे मनुष्यों को जानने चाहियें ॥ ३५ ॥

एणीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्विन्यादयो देवताः । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

ए॒ण्यह्नो॑ म॒ण्डूको॒ मूषि॑का ति॒त्ति॒रिस्ते स॒र्पाणां॑ लोपा॒श आ॑श्वि॒नः कृष्णो॒ रात्र्या॒ ऋक्षो॒ जतूः॑ सु॑षि॒लीका॒ त इ॑तरज॒ना॒नां जह॑का वैष्ण॒वी ॥३६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (ऐणी) हरिणी है वह (अह्नः) दिन के अर्थ जो (मण्डूकः) मेंडुका (मूषिका) मूषटी और (तित्तिरिः) तीतरि पक्षिणी हैं (ते) वे (सर्पाणाम्) सर्पों के अर्थ जो (लोपाशः) कोई वनचर विशेष पशु वह (आश्विनः) अश्वि देवता वाला जो (कृष्णः) काले रंग का हरिण आदि है वह (रात्र्यै) रात्रि के लिये जो (ऋक्षः) रीछ (जतूः) जतू नाम वाला और (सुषिलीका) सुषिलीका पक्षी है (ते) वे (इतरजनानाम्) और मनुष्यों के अर्थ और (जहका) अङ्गों का संकोच करने हारी पक्षिणी (वैष्णवी) विष्णु देवता वाली जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो दिन आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस उस गुण से जानने चाहियें ॥ ३६ ॥

अन्यवाप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अर्द्धमासादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अ॒न्य॒वा॒पोऽर्द्धमा॒साना॒मृश्यो॒ म॒यूरः॑ सुप॒र्णस्ते ग॑न्ध॒र्वाणा॑म॒पामु॒द्रो मा॒सान् क॒श्यपो॒ रोहि॒त्कु॒ण्डृणा॒ची गो॒लत्ति॒का तेऽप्स॒रसां॑ मृत्यवे॒ऽसि॒तः ॥३७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (अन्यवापः) कोकिला पक्षी है वह (अर्द्धमासानाम्) पखवाड़ों के अर्थ जो (ऋश्यः) ऋश्य जाति का मृग (मयूरः) मयूर और (सुपर्णः) अच्छे पंखों वाला विशेष पक्षी है (ते) वे (गन्धर्वाणाम्) गाने वालों के और (अपाम्) जलों के अर्थ जो (उद्रः) जलचर गिंगचा है वह (मासान्) महीनों के अर्थ जो (कश्यपः) कछुआ (रोहित्) विशेष मृग (कुण्डृणाची) कुण्डृणाची नाम की वन में रहने वाली और (गोलत्तिका) गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशुजाति है (ते) वे (अप्सरसाम्) किरण आदि पदार्थों के अर्थ और जो (असितः) काले गुण वाला विशेष पशु है वह (मृत्यवे) मृत्यु के लिये जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जो काल आदि गुण वाले पशु पक्षी हैं वे उपकार वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

वर्षाहूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वर्षादयो देवताः । स्वराड्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

व॒र्षा॒हूर्ऋ॒तूना॑मा॒खुः कशो॑ मान्था॒लस्ते पि॑तॄ॒णां बला॒याजग॒रो

वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥३८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (वर्षाहूः) वर्षा को बुलाती है वह मेंडुकी (ऋतूनाम्) वसन्त आदि ऋतुओं के अर्थ (आखुः) मूषा (कशः) सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और (मान्थालः) मान्थाल नामी विशेष जन्तु हैं (ते) वे (पितृणाम्) पालना करने वालों के अर्थ (बलाय) बल के लिये (अजगरः) बड़ा सांप (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुओं के अर्थ (कपिञ्जलः) कपिञ्जल नामक (कपोतः) जो कबूतर (उलूकः) उल्लू और (शशः) खरहा हैं (ते) वे (निर्ऋत्यै) निर्ऋति के लिये (वरुणाय) और वरुण के लिये (आरण्यः) वनेला (मेषः) मेढ़ा जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जो ऋतु आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उन गुणों से युक्त जानने चाहियें ॥ ३८ ॥

श्वित्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आदित्यादयो देवताः । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्याऽअरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥३९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (श्वित्रः) चित्र विचित्र रंग वाला पशुविशेष वह (आदित्यानाम्) समय के अवयवों के अर्थ, जो (उष्ट्रः) ऊंट (घृणीवान्) तेजस्वि विशेष पशु और (वार्ध्रीनसः) कण्ठ में जिस के थन ऐसा बड़ा बकरा है (ते) वे सब (मत्यै) बुद्धि के लिये, जो (सृमरः) नीलगाय वह (अरण्याय) वन के लिये, जो (रुरुः) मृगविशेष है वह (रौद्रः) रुद्र देवता वाला जो (क्वयिः) क्वयिनाम का पक्षी (कुटरुः) मुर्गा और (दात्यौहः) कौआ हैं (ते) वे (वाजिनाम्) घोड़ों के अर्थ और जो (पिकः) कोकिला है वह (कामाय) काम के लिये अच्छे प्रकार जानने चाहियें ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जो सूर्य आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस उस स्वभाव वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

खड्ग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवादयो देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥४०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को जो (खड्गः) ऊंचे और पैने सींगों वाला गैंड़ा है वह (वैश्वदेवः) सब विद्वानों का, जो (कृष्णः) काले रंग वाला (श्वा) कुत्ता (कर्णः) बड़े कानों वाला (गर्दभः) गदहा और (तरक्षुः) व्याघ्र हैं (ते) वे सब (रक्षसाम्) राक्षस दुष्टहिंसक हवपियों के अर्थ, जो (सूकरः) सूअर है वह (इन्द्राय) शत्रुओं को विदारने वाले राजा के लिये, जो (सिंहः) सिंह है वह (मारुतः) मरुत देवता वाला, जो (कृकलासः) गिरगिटान (पिप्पका) पिप्पका नाम की पक्षिणी और (शकुनिः) पक्षिमात्र है (ते) वे सब (शरव्यायै) जो शरवियों में कुशल उत्तम हैं उसके लिये और जो (पृषतः) पृषजाति के हरिण हैं वे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के अर्थ जानना चाहिये ॥ ४० ॥

भावार्थ—जो सब पशु पक्षी सब गुण भरे हैं उनको जानकर व्यवहारसिद्धि के लिये सब मनुष्य निरन्तर युक्त करें ॥ ४० ॥

इस अध्याय में पशु पक्षी रिंगने वाले सांप आदि, वन के मृग, जल में रहने वाले प्राणी और कीड़े मकोड़े आदि के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

अब चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

॥ अथ पञ्चविंशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

शादमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । पूर्वस्य भुरिक्छक्वरी । आदित्यानित्युत्तरस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पच्चीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किसको क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्ते गां दꣳष्ट्राभ्याꣳसरस्वत्याऽअग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजꣳहनुभ्यामप आस्येन वृषणमाण्डाभ्याम् । आदित्यान् श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याꣳशुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥१॥

पदार्थ—हे अच्छे ज्ञान की चाहना करते हुए विद्यार्थी जन ! (ते) तेरे (दद्भिः) दांतों से (शादम्) जिस में छेदन करता है उस व्यवहार को (दन्तमूलैः) दांतों की जड़ों और (बर्स्वैः) दांतों की पछाड़ियों से (अवकाम्) रक्षा करने वाली (मृदम्) मट्टी को (दंष्ट्राभ्याम्) डाढ़ों से (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञान वाली वाणी के लिये (गाम्) वाणी को (जिह्वायाः) जीभ से (अग्रजिह्वम्) जीभ के अगले भाग को (अवक्रन्देन) विकलतारहित व्यवहार से (उत्सादम्) जिस में ऊपर को स्थिर होती है उस (तालु) तालु को (हनुभ्याम्) ठोढ़ी के पास के भागों से (वाजम्) अन्न को (आस्येन) जिससे भोजन आदि पदार्थ को गीला करते उस मुख से (अपः) जलों को (आण्डाभ्याम्) वीर्य को अच्छे प्रकार धारण करने हारे आण्डों से (वृषणम्) वीर्य वर्षाने वाले अङ्ग को (श्मश्रुभिः) मुख के चारों ओर जो केश अर्थात् डाढ़ी उससे (आदित्यान्) मुख्य विद्वानों को (भ्रूभ्याम्) नेत्र-गोलकों के ऊपर जो भौं हैं उन से (पन्थानम्) मार्ग को (वर्त्तोभ्याम्) जाने आने से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि तथा (कनीनकाभ्याम्) तेज से भरे हुए काले नेत्रों के तारों के सदृश गोलों से (विद्युतम्) बिजुली को मैं समझाता हूं । तुझ को (शुक्लाय) वीर्य के लिये (स्वाहा) ब्रह्मचर्य क्रिया से और (कृष्णाय) विद्या खींचने के लिये (स्वाहा) सुन्दरशीलयुक्त क्रिया से (पार्याणि) पूरे करने योग्य (पक्ष्माणि) जो सब ओर से लेने चाहियें उन कामों वा पलकों के ऊपर के बिन्ने वा (अवार्याः) नदी आदि के प्रथम ओर होने वाले (इक्षवः) गन्नों के पौंडे वा (अवार्याणि) नदी आदि के पहिले किनारे पर होने वाले पदार्थ (पक्ष्माणि) सब ओर से जिनका ग्रहण करें वा लोम और (पार्याः) पालना करने योग्य (इक्षवः) ऊख जो गुड़ आदि के निमित्त हैं वे पदार्थ अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहियें ॥ १ ॥

भावार्थ—अध्यापक लोग अपने शिष्यों के अङ्गों को उपदेश से अच्छे प्रकार पुष्ट कर तथा आहार वा विहार का अच्छा बोध, समस्त विद्याओं की प्राप्ति, अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन और ऐश्वर्य की प्राप्ति करा के सुखयुक्त करें ॥१॥

वातमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । भुरगतिशक्वर्यौ छन्दसी ॥ धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वातं प्राणेनापानेन नासिकेऽउपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याꣳश्रोत्रं श्रोत्राभ्यां कर्णौ

तेदुनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणंस्तुपेन ॥२॥

पदार्थ—हे जानने को इच्छा करने वाले ! मेरे उपदेश के ग्रहण से तू (प्राणम्) प्राण और (अपानेन) अपान से (वातम्) पवन और (नासिके) नासिकाछिद्रों और (उपयामम्) प्राप्त हुए नियम की (अधरेण) नीचे के (ओष्ठेन) ओष्ठ से (उत्तरेण) ऊपर के (प्रकाशेन) प्रकाशरूप ओठ से (सदन्तरम्) बीच में विद्यमान मुख आदि स्थान को (अनूकाशेन) पीछे से प्रकाश होने वाले अङ्ग से (बाह्यम्) बाहर हुए अङ्ग को (मूर्ध्ना) शिर से (निवेष्यम्) जो निश्चय से व्याप्त होने योग्य उस को (निर्बाधेन) निरन्तर ताड़ना के हेतु के साथ (स्तनयित्नुम्) शब्द करने हारी (अशनिम्) बिजुली को (मस्तिष्केण) शिर की चरबी और और नशों से (विद्युतम्) अति प्रकाशमान बिजुली को (कनीनकाभ्याम्) दिपते हुए (कर्णाभ्याम्) शब्द को सुनवाने हारे पवनों से (कर्णौ) जिनसे श्रवण करता उन कानों को और (श्रोत्राभ्याम्) जिन गोल गोल छेदों से सुनता उन से (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय और (तेदनीम्) श्रवण करने की क्रिया (अधरकण्ठेन) कण्ठ के नीचे के भाग से (अपः) जलों (शुष्ककण्ठेन) सूखते हुए कण्ठ से (चित्तम्) विशेष ज्ञान सिद्ध कराने हारे अन्तःकरण के वर्त्ताव को (मन्याभिः) विशेष ज्ञान की क्रियाओं से (अदितिम्) न विनाश को प्राप्त होने वाली उत्तम बुद्धि को (शीर्ष्णा) शिर से (निर्ऋतिम्) भूमि को (निर्जर्जल्पेन) निरन्तर जीर्ण सब प्रकार परिपक्व हुए (शीर्ष्णा) शिर और (संक्रोशैः) अच्छे प्रकार बुलावाओं से (प्राणान्) प्राणों को प्राप्त हो तथा (स्तुपेन) हिंसा से (रेष्माणम्) हिंसक अविद्या आदि रोग का नाश कर ॥ २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि पहिली अवस्था में समस्त शरीर आदि साधनों से शारीरिक और आत्मिक बल को अच्छे प्रकार सिद्ध करें और अविद्या दुष्ट शिखावट निन्दित स्वभाव आदि रोगों को सब प्रकार हनन करें ॥ २ ॥

मशकानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

मुशकान्केशैरिन्द्रंस्वपसा वहेन बृहस्पतिंशकुनिसादेन कूर्मान्छफैराक्रमणंस्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावंसाभ्यांरुद्रं रोराभ्याम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (केशैः) शिर के बालों से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (शकुनिसादेन) जिससे पक्षियों को स्थिर कराता उस व्यवहार से (कूर्मान्) कछुओं और (मशकान्) मशों को (स्वपसा) उत्तम काम और (वहेन) प्राप्ति कराने से (बृहस्पतिम्) बड़ी वाणी के स्वामी विद्वान् को (स्थूराभ्याम्) स्थूल (ऋक्षलाभिः) चाल और ग्रहण करने आदि क्रियाओं से (कपिञ्जलान्) कपिञ्जल नामक पक्षियों को (जङ्घाभ्याम्) जङ्घाओं से (अध्वानम्) मार्ग और (जवम्) वेग को (अंसाभ्याम्) भुजाओं के मूल अर्थात् बगलों (बाहुभ्याम्) भुजाओं और (शफैः) खुरों से (आक्रमणम्) चाल को (जाम्बीलेन) जमुनी आदि के फल से (अरण्यम्) वन और (अग्निम्) अग्नि को (अतिरुग्भ्याम्) अतीव रुचि प्रीति और इच्छा से (पूषणम्) पुष्टि को तथा (दोर्भ्याम्) भुजदण्डों से (अश्विनौ) प्रजा और राजा को प्राप्त होओ और (रोराभ्याम्) कहने सुनने से (रुद्रम्) रुलाने हारे को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि बहुत उपायों से उत्तम गुणों की प्राप्ति और विघ्नों की निवृत्ति करें ॥ ३ ॥

अग्नेरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । स्वराड्धृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर किसको क्या क्रिया करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतांसप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको (अग्नेः) अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल (वायोः) पवन की (निपक्षतिः) निश्चित विषय का मूल (इन्द्रस्य) सूर्य की (तृतीया) तीन को पूरा करने वाली क्रिया (सोमस्य) चन्द्रमा की (चतुर्थी) चार को पूरा करने वाली (अदित्यै) अन्तरिक्ष की (पंचमी) पाँचवी (इन्द्राण्यै) स्त्री के समान वर्त्तमान जो बिजुलीरूप अग्नि की लपट उसकी (षष्ठी) छठी (मरुताम्) पवनों की (सप्तमी) सातवीं (बृहस्पतेः) बड़ों की पालना करने वाले महत्तत्त्व की (अष्टमी) आठवीं (अर्यम्णः) स्वामीजनों का सत्कार करने वाले की (नवमी) नवीं (धातुः) धारण करने हारे की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (द्वादशी) बारहवीं और (यमस्य) न्यायाधीश राजा की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया करनी चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको क्रिया के विशेष ज्ञान और साधनों से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ ४ ॥

इन्द्राग्न्योरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । स्वराड्विकृतिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर किसके अर्थ कौन होती है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयाऽपां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणांसप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (इन्द्राग्न्योः) पवन और अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल पहिली (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (निपक्षतिः) निश्चित पक्ष का मूल दूसरी (मित्रस्य) मित्र की (तृतीया) तीसरी (अपाम्) जलों की (चतुर्थी) चौथी (निर्ऋत्यै) भूमि की (पंचमी) पाँचवीं (अग्नीषोमयोः) गर्मी सर्दी को उत्पन्न करने वाले अग्नि तथा जल की (षष्ठी) छठी (सर्पाणाम्) सांपों की (सप्तमी) सातवीं (विष्णोः) व्यापक ईश्वर की (अष्टमी) आठवीं (पूष्णः) पुष्टि करने वाले की (नवमी) नवमी (त्वष्टुः) उत्तम दिपते हुए की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) जीव की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन की (द्वादशी) बारहवीं और (यम्यै) न्याय करने वाले की स्त्री के लिये (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया है उन सब को तथा (द्यावापृथिव्योः) प्रकाश और भूमि के (दक्षिणम्) दक्षिण (पार्श्वम्) ओर को और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (उत्तरम्) उत्तर ओर को जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि इन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान के लिये अनेक क्रियाओं को करके अपने अपने कामों को सिद्ध करें ॥ ५ ॥

मरुतामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

मरुतांस्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणंस्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को (मरुताम्) मनुष्यों के (स्कन्धाः) कंधा (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (प्रथमा) पहिली क्रिया और (कीकसा) निरन्तर शिखावटें (रुद्राणाम्) रुलाने हारे विद्वानों की (द्वितीया) दूसरी ताड़नरूप क्रिया (आदित्यानाम्) अखण्डित न्याय करने वाले विद्वानों की (तृतीया) तीसरी न्यायक्रिया (वायोः) पवनसम्बन्धी (पुच्छम्) पशु की पूंछ अर्थात् जिससे पशु अपने शरीर को पवन देता (अग्नीषोमयोः) अग्नि और जल सम्बन्धी (भासदौ) जो प्रकाश को देवें वे (क्रुञ्चौ) कोई विशेष पक्षी वा सारस (श्रोणिभ्याम्) चूतड़ों से (इन्द्राबृहस्पती) पवन और सूर्य (ऊरुभ्याम्) जाँघों से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अल्गाभ्याम्) परिपूर्ण चलने वाले प्राणियों से (आक्रमणम्) चाल तथा (कुष्ठाभ्याम्) निचोड़ और (स्थूराभ्यां) स्थूल पदार्थों से (बलम्) बल को सिद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को भुजाओं का बल, अपने अङ्ग की पुष्टि, दुष्टों को ताड़ना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहियें ॥ ६ ॥

पूषणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनंशेपेन प्रजांरेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (वनिष्ठुना) मांगने से (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (स्थूलगुदया) स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्त्तमान (अन्धाहीन्) अन्धे सांपों को (गुदाभिः) गुदेन्द्रियों के साथ वर्त्तमान (विह्रुतः) विशेष कुटिल (सर्पान्) सर्पों को (आन्त्रैः) आंतों से (अपः) जलों को (वस्तिना) नाभि के नीचे के भाग से (वृषणम्) अण्डकोष को (आण्डाभ्याम्) आंडों से (वाजिनम्) घोड़ा को (शेपेन) लिङ्ग और (रेतसा) वीर्य से (प्रजाम्) सन्तान को (पित्तेन) पित्त से (चाषान्) भोजनों को (प्रदरान्) पेट के अङ्गों को (पायुना) गुदेन्द्रिय से और (शकपिण्डैः) शक्तियों से (कूश्मान्) शिखावटों को निरन्तर लेओ ॥७॥

भावार्थ—जिस जिस से जो जो काम सिद्ध हो उस उस अङ्ग वा पदार्थ से वह वह काम सिद्ध करना चाहिये ॥ ७ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । निचृदभिकृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर किस किस के गुण पशुओं में है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान् हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳬं समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को उत्तम यत्न के साथ (इन्द्रस्य) बिजुली का (क्रोडः) ढुवना (अदित्यै) पृथिवी के लिये (पाजस्यम्) अन्नों में जो उत्तम वह (दिशाम्) दिशाओं की (जत्रवः) सन्धि अर्थात् उनका एक दूसरे से मिलना (अदित्यै) अखण्डित प्रकाश के लिये (भसत्) लपट ये सब पदार्थ जानने चाहियें तथा (जीमूतान्) मेघों को (हृदयौपशेन) जो हृदय में सोता है उस जीव से (पुरीतता) हृदयस्थ नाड़ी से (अन्तरिक्षम्) हृदय के अवकाश को (उदर्येण) उदर में होने हुए व्यवहार से (नभः) जल और (चक्रवाकौ) चकई चकवा पक्षियों के समान जो पदार्थ उन को (मतस्नाभ्याम्) गले के दोनों ओर के भागों से (दिवम्) प्रकाश को (वृक्काभ्याम्) जिन क्रियाओं से अवगुणों का त्याग होता है उनसे (गिरीन्) पर्वतों को (प्लाशिभिः) उत्तम भोजन आदि क्रियाओं से (उपलान्) दूसरे प्रकार के मेघों को (प्लीह्ना) हृदयस्थ प्लीहा अङ्ग से (वल्मीकान्) मार्गों को (क्लोमभिः) गीलेपन और (ग्लौभिः) हर्ष तथा ग्लानियों से (गुल्मान्) दाहिनी ओर उदर में स्थित जो पदार्थ उनको (हिराभिः) बढ़तियों से (स्रवन्तीः) नदियों को (ह्रदान्) छोटे बड़े जलाशयों को (कुक्षिभ्याम्) कोखों से (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जहां जल जाता उस समुद्र को (उदरेण) पेट और (भस्मना) जले हुए पदार्थ का जो शेषभाग उस राख से (वैश्वानरम्) सब के प्रकाश करनेहारे अग्नि को तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अनेक विद्याबोधों को प्राप्त होकर ठीक ठीक यथोचित आहार और विहारों से सब अंगों को अच्छे प्रकार पुष्ट कर रोगों की निवृत्ति करें तो वे धर्म अर्थ काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

विधृतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर किससे क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विधृतिं नाभ्या घृतᳬं रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाᳬंसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (नाभ्या) नाभि से (विधृतिम्) विशेष करके धारणा को (घृतम्) घी को (रसेन) रस से (अपः) जलों को (यूष्णा) क्वाथ किये रस से (मरीचीः) किरणों को (विप्रुड्भिः) विशेषतर पूरण पदार्थों से (नीहारम्) कुहर को (ऊष्मणा) गरमी से (शीनम्) जमे हुए घी को (वसया) निवासहेतु जीवन से (प्रुष्वाः) जिनसे सींचते हैं उन क्रियाओं को (अश्रुभिः) आंसुओं से (ह्रादुनीः) शब्दों की अप्रकट उच्चारण क्रियाओं को (दूषिकाभिः) विकाररूप क्रियाओं से (चित्राणि) चित्र विचित्र (रक्षांसि) पालना करने योग्य (अस्ना) रुधिरादि पदार्थों को (अङ्गैः) अंगों और (रूपेण) रूप से (नक्षत्राणि) तारागणों को और (त्वचा) मांस रुधिर आदि को ढांपने वाली खाल आदि से (पृथिवीम्) पृथिवी को जानकर (जुम्बकाय) अतिवेगवान् के लिए (स्वाहा) सत्य वाणी का प्रयोग अर्थात् उच्चारण करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को धारण आदि क्रियाओं से खोटे आचरण और रोगों की निवृत्ति और सत्यभाषण आदि धर्म के लक्षणों का विचार कर प्रवृत्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । हिरण्यगर्भो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेज वाले पदार्थ जिसके भीतर हैं वह परमात्मा (जातः) प्रादुर्भूत और (भूतस्य) उत्पन्न हुए जगत् का (एकः) असहाय एक (अग्रे) भूमि आदि सृष्टि से पहिले भी (पतिः) पालन करने हारा (आसीत्) है और सब का प्रकाश करने वाला (अवर्त्तत) वर्त्तमान हुआ (सः) वह (पृथिवीम्) अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी (उत) और (द्याम्) प्रकाश को (सम् दाधार) अच्छे प्रकार धारण करता है तथा जो (इमाम्) इस सृष्टि को बनाता हुआ अर्थात् जिसने सृष्टि की उस (कस्मै) सुख करने हारे (देवाय) प्रकाशमान परमात्मा के लिये (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से (विधेम) सेवन का विधान करें वैसे तुम लोग भी सेवन का विधान करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सूर्य आदि समस्त जगत् को बनाया और धारण किया है उसी की उपासना किया करो ॥ १० ॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

**यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (यः) जो सूर्य (प्राणतः) श्वास लेते हुए प्राणी और (निमिषतः) चेष्टा करते हुए (जगतः) संसार का (महित्वा) बड़ेपन से (एकः) असहाय एक (इत्) ही (राजा) प्रकाश करने वाला (बभूव) होता है (यः) तथा जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो दो पग वाले मनुष्यादि और (चतुष्पदः) चार चार पग वाले गो आदि पशुरूप जगत् का (ईशे) प्रकाश करता है उस (कस्मै) सुख करने हारे (देवाय) प्रकाशक जगदीश्वर के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य पदार्थ वा व्यवहार से (विधेम) सेवन करें वैसे तुम लोग भी अनुष्ठान किया करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य न हो तो स्थावर वृक्ष आदि और जङ्गम मनुष्यादि जगत् अपना अपना काम देने को समर्थ न हो । जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने वाला और ऐश्वर्य की प्राप्ति का हेतु है वह ईश्वर सब को युक्ति के साथ सेवने योग्य है ॥ ११ ॥

यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर सूर्य के वर्णन विषय को अगले मन्त्र मेंकहा है—

**यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रᳬं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस सूर्य के (महित्वा) बड़ेपन से (इमे) ये (हिमवन्तः) हिमालय आदि पर्वत आकर्षित और प्रकाशित हैं (यस्य) जिस के (रसया) स्नेह के (सह) साथ (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जिस में जल ठहरते हैं उस अन्तरिक्ष को (आहुः) कहते हैं तथा (यस्य) जिस की (इमाः) इन दिशा और (यस्य) जिसकी (प्रदिशः) विदिशाओं को (बाहू) भुजाओं के समान वर्त्तमान कहते हैं उस (कस्मै) सुखरूप (देवाय) मनोहर सूर्यमण्डल के लिये (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से हम लोग (विधेम) सेवन का विधान करें ऐसे ही तुम भी विधान करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने और सब पदार्थों से रस का लेनेहारा जिस के प्रताप से दिशा और विदिशाओं का विभाग होता है, वह सूर्यलोक युक्ति के साथ सेवन करने योग्य है ॥ १२ ॥

य आत्मदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उपासना किया ईश्वर क्या देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (आत्मदा) आत्मा को देने और (बलदा) बल देने वाला (यस्य) जिस की (प्रशिषम्) उत्तम शिक्षा को (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) सेवते (यस्य) जिसके समीप से सब व्यवहार उत्पन्न होते (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय (अमृतम्) अमृतस्वरूप और (यस्य) जिसकी आज्ञा का भंग (मृत्युः) मरण के तुल्य है (कस्मै) सुखरूप (देवाय) स्तुति के योग्य परमात्मा के लिये हम लोग (हविषा) होमने के पदार्थ से (विधेम) सेवा का विधान करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की उत्तम शिक्षा में की हुई मर्यादा में सूर्य आदि लोक नियम के साथ वर्त्तमान हैं, जिस सूर्य के विना जल की वर्षा और अवस्था का नाश नहीं होता वह सवितृमण्डल जिसने बनाया है उसी की उपासना सब मिलकर करें ॥१३॥

आ न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१४॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (नः) हम लोगों को (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) कल्याण करने वाले (अदब्धासः) जो विनाश को न प्राप्त हुए (अपरीतासः) औरों ने जो न व्याप्त किये अर्थात् सब कामों से उत्तम (उद्भिदः) जो दुःखों को विनाश करते वे (क्रतवः) यज्ञ वा बुद्धि बल (आ, यन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (यथा) जैसे (नः) हम लोगों की (सदम्) उस सभा को कि जिसमें स्थित होते हैं प्राप्त हुए (अप्रायुवः) जिनकी अवस्था नष्ट नहीं होती वे (देवाः) पृथिवी आदि पदार्थों के समान विद्वान् जन (इत्) ही (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि के लिये (रक्षितारः) पालना करने वाले (असन्) हों वैसा आचरण करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान और विद्वानों के संग से बहुत बुद्धियों को प्राप्त होकर सब ओर से धर्म का आचरण कर नित्य सब की रक्षा करने वाले होना चाहिये ॥ १४ ॥

देवानामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांꣳरातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानांꣳसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि हम लोगों को और (ऋजूयताम्) कठिन विषयों को सरल करते हुए (देवानाम्) देने वाले विद्वानों का (रातिः) विद्या आदि पदार्थों का देना (नः) हम लोगों को (अभि, नि, वर्त्तताम्) सब ओर से सिद्ध करे सब गुणों से पूर्ण करे (वयम्) हम लोग (देवानाम्) विद्वानों की (सख्यम्) मित्रता को (उप, सेदिम) अच्छे प्रकार पावें (देवाः) विद्वान् (नः) हम को (जीवसे) जीने के लिये (आयुः) जिससे प्राण का धारण होता उस आयुर्दा को (प्र, तिरन्तु) पूरी भुगावें वैसे तुम्हारे प्रति वर्त्ताव रक्खें ॥ १५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण शास्त्रवेत्ता विद्वानों के समीप से उत्तम बुद्धियों को पाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से आयु को बढ़ा के सदैव धार्मिक जनों के साथ मित्रता रक्खें ॥ १५ ॥

तान्पूर्वयेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् । अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (पूर्वया) अगले सज्जनों ने स्वीकार की हुई (निविदा) वेदवाणी से (दक्षम्) चतुर (अर्यमणम्) प्रजापालक (अस्रिधम्) न विनाश करने योग्य (भगम्) ऐश्वर्य कराने वाले (मित्रम्) सब के मित्र (अदितिम्) जिसकी वृद्धि कभी खण्डित नहीं होती उस (वरुणम्) श्रेष्ठ (सोमम्) ऐश्वर्यवान् तथा (अश्विना) पढ़ाने और पढ़ने वाले को (हूमहे) परस्पर हिरस करते हुए चाहते हैं । जैसे (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य वाली (सरस्वती) समस्त विद्याओं से पूर्ण वेदवाणी (नः) हमारे और तुम्हारे लिये (मयः) सुख को (करत्) करे वैसे (तान्) उन उक्त सज्जनों को तुम भी चाहो और सुख करो ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो जो वेद में कहा हुआ काम है उस उस काम का ही अनुष्ठान करें । जैसे अच्छे विद्यार्थी दूसरे की हिरस से अपनी विद्या को बढ़ाते हैं वैसे ही सब को विद्या बढ़ानी चाहिये । जैसे परिपूर्ण विद्यायुक्त माता अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा दे, विद्याओं की प्राप्ति करा, उन की विद्या बढ़ाती है वैसे ही सब को सब के लिये सुख देकर सब की वृद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तन्न इत्यस्य गोतम ऋषिः । वायुर्देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥१७॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पढ़ाने और पढ़ने हारे सज्जनो ! (धिष्ण्या) भूमि के समान धारण करने वाले (युवम्) तुम दोनों हम लोगों ने जो पढ़ा है उसको (शृणुतम्) सुनो । जैसे (नः) हम लोगों के लिये (वातः) पवन (तत्) उस (मयोभु) सुख करने हारी (भेषजम्) ओषधि को (वातु) प्राप्ति करे (तत्) उस ओषधि को (माता) मान्य देने वाली (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि तथा (तत्) उसको (पिता) पालना का हेतु (द्यौः) सूर्यमण्डल प्राप्त करे तथा (तत्) उसको (सोमसुतः) ओषधि और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने और (मयोभुवः) सुख की भावना कराने हारे (ग्रावाणः) मेघ प्राप्त करें (तत्) यह सब व्यवहार तुम्हारे लिये भी होवें ॥ १७ ॥

भावार्थ—जिसकी पृथिवी के समान माता और सूर्य के समान पिता हो वह सब ओर से कुशली सुखी होकर सब को नीरोग और चतुर करे ॥ १७ ॥

तमीशानमित्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है और किसलिये उपासना के योग्य है इस विषय को कहा है—

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षा आदि के लिये (जगतः) चर और (तस्थुषः) अचर जगत् के (पतिम्) रक्षक (धियंजिन्वम्) बुद्धि को तृप्त प्रसन्न वा शुद्ध करनेवाले (तम्) उस अखण्ड (ईशानम्) सब को वश में रखने वाले सब के स्वामी परमात्मा की (हूमहे) स्तुति करते हैं वह (यथा) जैसे (नः) हमारे (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (पूषा) पुष्टिकर्त्ता तथा (रक्षिता) रक्षा करने हारा (स्वस्तये) सुख के लिये (पायुः) सब का रक्षक (अदब्धः) नहीं मारने वाला (असत्) होवे वैसे तुम लोग भी उसकी स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करनेवाला होवे ॥ १८ ॥

भावार्थ—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जिस सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हम लोग करें तथा उसी को सुख और ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला जानें, उसी की उपासना तुम लोग भी करो और उसी को सबकी उन्नति करनेवाला जानो ॥ १८ ॥

स्वस्ति न इत्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये इस विषय को कहा है –

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वृद्धश्रवाः) बहुत सुनने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख जो (विश्ववेदाः) समस्त जगत् में वेद ही जिस का धन है वह (पूषा) सब का पुष्टि करनेवाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख जो (तार्क्ष्यः) घोड़े के समान (अरिष्टनेमिः) सुखों की प्राप्ति कराता हुआ (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख तथा जो (बृहस्पतिः) महत्तत्त्व आदि का स्वामी वा पालना करनेवाला परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख को (दधातु) धारण करे वह तुम्हारे लिये भी सुख को धारण करे ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने सुख को चाहें वैसे और के लिये भी चाहें जैसे कोई भी अपने लिये दुःख नहीं चाहता वैसे और के लिये भी न चाहें ॥ १९ ॥

पृषदश्वा इत्यस्य गोतमः ऋषिः । विद्वांसो देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कौन क्या करें इस विषय को अगले मंत्र में कहा है—

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥२०॥

पदार्थ—जो (पृश्निमातरः) जिनको मान्य देने वाला अन्तरिक्ष माता के तुल्य है उन वायुओं के समान (पृषदश्वाः) जिन के पुष्टि आदि से सींचे अङ्गों वाले घोड़े हैं वे (मरुतः) मनुष्य तथा (विदथेषु) संग्रामों में (शुभंयावानः) जो उत्तम सुख को प्राप्त होने और (जग्मयः) संग करनेवाले (अग्निजिह्वाः) जिन की अग्नि के समान प्रकाशित वाणी और (सूरचक्षसः) जिन का ऐश्वर्य वा प्रेरणा में दर्शन होवे ऐसे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् (मनवः) जन (अवसा) रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान हैं वे लोग (इह) इस संसार वा इस समय में (नः) हम लोगों को (आ, अगमन्) प्राप्त होवें ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को विद्वानों का संग सदैव प्रार्थना करने योग्य है । जैसे इस जगत् में सब वायु आदि पदार्थ सब मनुष्यों वा प्राणियों के जीवन के हेतु हैं वैसे इस जगत् में चेतनों में विद्वान् हैं ॥२०॥

भद्रमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२१॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) संग करनेवाले (देवाः) विद्वानो ! आप लोगों के साथ से हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) जिससे सत्यता जानी जावे उस वचन को (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) आँखों से (भद्रम्) कल्याण को (पश्येम) देखें (स्थिरैः) दृढ़ (अङ्गैः) अवयवों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये सुख करने हारी (आयुः) अवस्था है उस को (वि, अशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें, सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हों । मनुष्यों को चाहिये कि असत्य का सुनना, खोटा देखना, झूठी स्तुति प्रार्थना प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करें ॥ २१ ॥

शतमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर हमारे लिये कौन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२॥

पदार्थ—हे (**देवाः**) विद्वानो ! आप के (**अन्ति**) समीप स्थित (**नः**) हम लोगों के (**यत्र**) जिस व्यवहार में (**तनूनाम्**) शरीरों की (**जरसम्**) वृद्धावस्था और (**शतम्**) सौ (**शरदः**) वर्ष पूरे हों उस व्यवहार को (**नु**) शीघ्र (**चक्र**) करो (**यत्र**) जहां (**पुत्रासः**) बुढ़ापे के दुःखों से रक्षा करने वाले लड़के (**इत्**) ही (**पितरः**) पिता के समान वर्त्तमान (**भवन्ति**) होते हैं उस (**नः**) हम लोगों की (**गन्तोः**) चाल और (**आयुः**) अवस्था को (**मध्या**) पूरी अवस्था भोगने के बीच (**मा, रीरिषत**) मत नष्ट करो ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सदा दीर्घकाल अर्थात् अड़तालीस वर्ष प्रमाणे ब्रह्मचर्य सेवना चाहिये । जिससे पिता आदि के विद्यमान होते ही लड़के भी पिता हो जावें अर्थात् उनके भी लड़के हो जावें । और जब सौ वर्ष आयु बीते तभी शरीरों की वृद्धावस्था होवे । जो ब्रह्मचर्य के साथ कम से कम पच्चीस वर्ष व्यतीत होवें उससे पीछे भी अतिमैथुन करके जो लोग वीर्य का नाश करते हैं तो वे रोगसहित निर्बुद्धि होके अधिक अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥ २२ ॥

अदितिरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । द्यौरित्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब अदिति शब्द के अनेक अर्थ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको (**द्यौः**) कारणरूप से जो प्रकाश वह (**अदितिः**) अखण्डित (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष (**अदितिः**) अविनाशी (**माता**) सब जगत् की उत्पन्न करने वाली प्रकृति (**सः**) वह परमेश्वर (**पिता**) नित्य पालन करने हारा और (**सः**) वह (**पुत्रः**) ईश्वर के पुत्र के समान वर्त्तमान (**अदितिः**) कारणरूप से अविनाशी संसार (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि पदार्थ (**अदितिः**) कारणरूप से विनाशरहित (**पंच**) पांच (**जनाः**) मनुष्य वा प्राण (**अदितिः**) कारणरूप से अविनाशी तथा (**जातम्**) जो कुछ उत्पन्न हुआ कार्यरूप जगत् और (**जनित्वम्**) जो उत्पन्न होने वाला वह सब (**अदितिः**) कारणरूप से नित्य है यह जानना चाहिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जितने कुछ कार्यरूप जगत् को देखते हो वह अदृष्ट कारण रूप जानो । जगत् का बनाने वाला परमात्मा, जीव, पृथिवी आदि तत्त्व जो उत्पन्न हुआ वा जो होगा और जो प्रकृति वह सब स्वरूप से नित्य है कभी इसका अभाव नहीं होता और यह भी जानना चाहिये कि अभाव से भाव की उत्पत्ति कभी नहीं होती ॥ २३ ॥

मा न इत्यस्य गोतम ऋषिः । मित्रादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन हम लोगों के किस काम को न करें इस विषय को कहा है—

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ख्यन् ।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्तेः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॒णि ॥२४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (**मित्र**) प्राण के समान मित्र (**वरुणः**) उदान के समान श्रेष्ठ (**अर्यमा**) और न्यायाधीश के समान नियम करने वाला (**इन्द्रः**) राजा तथा (**ऋभुक्षाः**) महात्मा (**मरुतः**) जन (**नः**) हम लोगों की (**आयुः**) आयुर्दा को (**मा**) मत (**परिख्यन्**) विनाश करावें जिससे हम लोग (**देवजातस्य**) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध (**वाजिनः**) वेगवान् (**सप्तेः**) घोड़ा के समान उत्तम वीर पुरुष के (**विदथे**) युद्ध में (**यत्**) जिन (**वीर्याणि**) बलों को (**प्रवक्ष्यामः**) कहें उनका मत विनाश करावें, वैसा आप लोग उपदेश करें ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब मनुष्य अपने बलों को बढ़ाना चाहें वैसे औरों के भी बल को बढ़ाने की इच्छा करें ॥

यन्निर्णिजेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यन्नि॒र्णिजा॒ रेक्ण॑सा॒ प्रावृ॑तस्य रा॒तिं गृ॑भी॒ताम्मु॑ख॒तो नय॑न्ति ।
सुप्रा॑ङ॒जो मेम्य॑द्वि॒श्वरू॑प इन्द्रापू॒ष्णोः प्रि॒यमप्ये॑ति॒ पाथः॑ ॥२५॥

पदार्थ—(**यत्**) जो मनुष्य (**निर्णिजा**) सुन्दररूप और (**रेक्णसा**) धन से (**प्रावृतस्य**) युक्त जन की (**रातिम्**) देनी वा (**गृभीताम्**) ली हुई वस्तु को (**मुखतः**) आगे से (**नयन्ति**) प्राप्त कराते तथा जो (**मेम्यत्**) प्राप्त होता हुआ (**सुप्राङ्**) अच्छे प्रकार पूछने वाला (**विश्वरूपः**) संसार जिसका रूप वह (**अजः**) जन्म और मरण आदि दोषों से रहित अविनाशी जीव (**इन्द्रापूष्णोः**) बिजुली और पवन संबंधी (**प्रियम्**) मनोहर (**पाथः**) अन्न को (**अप्येति**) सब ओर से पाता है वे मनुष्य और वह जीव सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धन को पाकर अच्छे कामों में खर्च करते हैं वे सब कामनाओं को पाते हैं ॥ २५ ॥

एष इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर किसके साथ कौन पालना करने योग्य है इस विषय को कहा है—

ए॒ष छाग॑ः पु॒रो अश्वे॑न वा॒जिना॑ पू॒ष्णो भा॒गो नी॑यते वि॒श्वदे॑व्यः ।
अ॒भि॒प्रियं॒ यत्पु॑रो॒डाश॒मर्व॑ता॒ त्वष्टेदे॑नꣳ सौश्रव॒साय॑ जिन्वति ॥२६॥

पदार्थ—विद्वानों को चाहिये कि जो (**एषः**) यह (**पुरः**) प्रथम (**विश्वदेव्यः**) सब विद्वानों में उत्तम (**पूष्णः**) पुष्टि करने वाले का (**भागः**) सेवने योग्य (**छागः**) पदार्थों को छिन्न भिन्न करता हुआ प्राणी (**वाजिना**) वेगवान् (**अश्वेन**) घोड़ा के साथ (**नीयते**) प्राप्त किया जाता है और (**यत्**) जिस (**अभिप्रियम्**) सब ओर से मनोहर (**पुरोडाशम्**) पुरोडाश नामक यज्ञभाग को (**अर्वता**) पहुंचाते हुए घोड़े के साथ (**त्वष्टा**) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला (**एनम्**) उक्त भाग को (**सौश्रवसाय**) उत्तम कीर्त्तिमान् होने के लिये (**इत्**) ही (**जिन्वति**) पाकर प्रसन्न होता है वह सदैव पालने योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थ—यदि अश्वादिकों के साथ अन्य बकरी आदि पशुओं को बढ़ावें तो वे मनुष्य सुख की उन्नति करें ॥ २६ ॥

यद्धविष्यमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर किससे कौन क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यद्ध॑वि॒ष्य॒मृतु॒शो दे॑व॒यानं॒ त्रिर्मानु॑षाः॒ पर्यश्वं॒ नय॑न्ति ।
अत्रा॑ पू॒ष्णः प्र॑थ॒मो भा॒ग ए॑ति य॒ज्ञं दे॒वेभ्य॑ः प्रतिवे॒दय॑न्न॒जः ॥२७॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**मानुषाः**) मनुष्य (**ऋतुशः**) ऋतु ऋतु के योग्य (**हविष्यम्**) होम में चढ़ाने के पदार्थों के लिये हितकारी (**देवयानम्**) दिव्य गुण वाले विद्वानों की प्राप्ति कराने हारे (**अश्वम्**) शीघ्रगामी प्राणी को (**त्रिः**) तीनवार (**परि, नयन्ति**) सब ओर पहुँचाते हैं वा जो (**अत्र**) इस संसार में (**पूष्णः**) पुष्टिसम्बन्धी (**प्रथमः**) प्रथम (**भागः**) सेवने योग्य (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**यज्ञम्**) सत्कार को (**प्रतिवेदयन्**) जनाता हुआ (**अजः**) विशेष पशु बकरा (**एति**) प्राप्त होता है वह सदा रक्षा करने योग्य है ॥ २७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ऋतु ऋतु के प्रति उनके गुणों के अनुकूल आहार विहारों को करते तथा घोड़ा और बकरा आदि पशुओं से संगत हुए कामों को करते हैं वे अत्यन्त सुख को पाते हैं ॥ २७ ॥

होतेत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

होता॑ध्व॒र्युराव॑या अग्निमि॒न्धो ग्रा॑वग्रा॒भ उ॒त शꣳस्ता॒ सुवि॑प्रः ।
तेन॑ य॒ज्ञेन॒ स्व॑रंकृतेन॒ स्वि॑ष्टेन व॒क्षणा॒ऽआ पृ॑णध्वम् ॥२८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**होतः**) ग्रहण करने हारा वा (**आवयाः**) जिससे अच्छे प्रकार यज्ञ संग और दान करते वह वा (**अग्निमिन्धः**) अग्नि को प्रदीप्त करने हारा वा (**ग्रावग्राभः**) मेघ को ग्रहण करने हारा वा (**शंस्ता**) प्रशंसा करने हारा (**उत**) और (**सुविप्रः**) जिसके समीप अच्छे अच्छे बुद्धिमान् हैं वह (**अध्वर्युः**) अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला उत्तम जन जिस (**स्वरंकृतेन**) सुन्दर सुशोभित किये (**स्विष्टेन**) सुन्दर भाव से चाहे और (**यज्ञेन**) मिले हुए यज्ञ आदि उत्तम काम से (**वक्षणाः**) नदियों को पूर्ण करता अर्थात् यज्ञ करने से पानी वर्षा उस वर्षे हुए जल से नदियों को भरता वैसे (**तेन**) उस काम से तुम लोग भी (**आ, पृणध्वम्**) अच्छे प्रकार सुख भोगो ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सुगन्धि आदि से उत्तम बनाये हुए होम करने योग्य पदार्थों को अग्नि में छोड़ने से पवन और वर्षा जल आदि पदार्थों को शोध कर नदी नद आदि के जलों की शुद्धि करते हैं वे सदैव सुख भोगते हैं ॥ २८ ॥

यूपव्रस्का इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यू॒प॒व्र॒स्का॒ऽउ॒त ये यू॑पवा॒हाश्च॒षालं॒ ये अ॑श्वयू॒पाय॒ तक्ष॑ति ।
ये चार्व॑ते॒ पच॑नꣳ स॒म्भर॑न्त्यु॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्त्तिर्न॒ऽइन्वतु ॥२९॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**यूपव्रस्काः**) यज्ञ खंभा के छेदने बनाने (**उत**) और (**ये**) जो (**यूपवाहाः**) यज्ञस्तम्भ को पहुँचाने वाले (**अश्वयूपाय**) घोड़ा के बांधने के लिये (**चषालम्**) खंभा के खण्ड को (**तक्षति**) काटते छांटते (**ये, च**) और जो (**अर्वते**) घोड़ा के लिये (**पचनम्**) जिसमें पाक किया जाय उस काम को (**सम्भरन्ति**) अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते (**उतो**) और जो उत्तम यत्न करते हैं (**तेषाम्**) उनका (**अभिगूर्त्तिः**) सब प्रकार से उद्यम (**नः**) हम लोगों को (**इन्वतु**) व्याप्त और प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो कारुक शिल्पीजन घोड़ा के बांधने आदि काम के काठों से विशेष काम बनाते और जो वैद्य घोड़े आदि पशुओं की ओषधि और उनकी सजावट की सामग्रियों को इकट्ठा करते हैं वे सदा उद्यम करते हुए हम लोगों को प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

उप प्रागादित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन किनसे क्या लेवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उप॒ प्रागा॑त्सु॒मन्मे॑धायि॒ मन्म॑ दे॒वाना॒माशा॒ऽउप॑ वी॒तपृ॑ष्ठः ।
अन्वे॑नं॒ विप्रा॒ ऋष॑यो मदन्ति दे॒वानां॑ पु॒ष्टे च॑कृमा सु॒बन्धु॑म् ॥३०॥

पदार्थ—जिसने (**सुमत्**) आप ही (**देवानाम्**) विद्वानों का (**वीतपृष्ठः**) जिस का पिछला भाग व्याप्त वह उत्तम व्यवहार (**अधायि**) धारण किया वा जिस से इन के और (**मे**) मेरे (**मन्म**) विज्ञान को तथा (**आशाः**) दिशा दिशान्तरों को (**उप, प्र, अगात्**) प्राप्त हो वा जिस (**एनम्**) इस प्रत्यक्ष व्यवहार के (**अनु**)

अनुकूल (देवानाम्) विद्वानों के बीच (पुष्टे) पुष्ट बलवान् जन के निमित्त (ऋषयः) मन्त्रों का अर्थ जानने वाले (विप्राः) धीरबुद्धि पुरुष (उप, मदन्ति) समीप होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं उस (सुबन्धुम्) सुन्दर सुन्दर भाइयों वाले जन को हम लोग (चकृम) उत्पन्न करें ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो विद्वानों के समीप से उत्तम ज्ञान को पाके ऋषि होते हैं वे सब को विज्ञान देने से पुष्ट करते हैं जो परस्पर एक दूसरे की उन्नति कर परिपूर्ण काम वाले होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ ३० ॥

यद्वाजिन इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन किनसे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३१

पदार्थ—हे विद्वन् ! (वाजिनः) प्रशस्त वेग वाले (अस्य) इस (अर्वतः) बलवान् घोड़े का (यत्) जो (दाम) उदरबन्धन अर्थात् तंगी और (संदानम्) अगाड़ी पछाड़ी पैर आदि में बांधने की रस्सी वा (या) जो (शीर्षण्या) शिर में होने वाली (रशना) मुंह में व्याप्त (रज्जुः) रस्सी मुहेरा आदि (यत्, वा) अथवा जो (अस्य) इस घोड़े के (आस्ये) मुख में (तृणम्) घास दूब आदि विशेष तृण (प्रभृतम्) उत्तमता से धरी हो (ता) वे (सर्वा) सब पदार्थ (ते) तेरे हों और यह उक्त समस्त वस्तु (घ) ही (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोड़ों को अच्छी शिक्षा कर उनके सब अङ्गों के बन्धन सुन्दर सुन्दर तथा खाने पीने के श्रेष्ठ पदार्थ और उत्तम उत्तम औषध करते हैं वे शत्रुओं को जीतना आदि काम सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३१ ॥

यदश्वस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर कैसे कौन रक्षा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (मक्षिका) मक्खी (क्रविषः) चलते हुए (अश्वस्य) शीघ्र जाने वाले घोड़े का (आश) भोजन करती अर्थात् कुछ मल रुधिर आदि खाती (वा) अथवा (यत्) जो (स्वरौ) स्वर (स्वधितौ) वज्र के समान वर्त्तमान हैं वा (शमितुः) यज्ञ करने हारे के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो वस्तु (रिप्तम्) प्राप्त और (यत्) जो (नखेषु) नखों में प्राप्त (अस्ति) है (ताः) वे (सर्वाः) सब पदार्थ (ते) तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्यवहार (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) होवे ॥ ३२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसी घुड़शाल में घोड़े बांधने चाहियें जहां इनका रुधिर आदि मांछि आदि न पीवें । जैसे यज्ञ करने हारे के हाथ में लिपटे हुए हवि को धोने आदि से छुड़ाते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं के शरीर में लिपटी धूलि आदि को नित्य छुड़ावें ॥ ३२ ॥

यदूवध्यमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन किसलिये क्या न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धोऽअस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳ शृतपाकं पचन्तु ॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (उदरस्य) पेट के कोष्ठ से (यत्) जो (ऊवध्यम्) मलीन मल (अपवाति) निकलता और (यः) जो (आमस्य) न पचे कच्चे (क्रविषः) खाये हुए पदार्थ का (गन्धः) गन्ध (अस्ति) है (तत्) उसको (शमितारः) शान्ति करने अर्थात् आराम देने वाले (सुकृता) अच्छा सिद्ध (कृण्वन्तु) करें (उत) और (मेधम्) पवित्र (शृतपाकम्) जिसका सुन्दर पाक बने उस को (पचन्तु) पकावें ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो लोग यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को छोड़ सुगन्धि आदि युक्त सुन्दरता से बनाया पाक कर अग्नि में होम करें वे जगत् का हित चाहने वाले होते हैं ॥ ३३ ॥

यत्ते गात्रादित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य को किस से क्या निकालना चाहिये इस विषय को कहा है—

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (निहतस्य) निश्चय से श्रम किये हुए (ते) तेरे (अग्निना) अन्तःकरणरूप तेज से (पच्यमानात्) पकाये जाते (गात्रात्) अङ्ग से (यत्) जो (शूलम्) शीघ्र बोध का हेतु वचन (अभि, अवधावति) चारों ओर से निकलता है (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि पर (मा, आ, श्रिषत्) नहीं आता है तथा (तत्) वह (तृणेषु) तृणों पर (मा) नहीं आता किन्तु वह तो (उशद्भ्यः) सत्पुरुष (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (रातम्) दिया (अस्तु) होवे ॥ ३४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ज्वर आदि से पीड़ित अङ्ग हों उन को वैद्यजनों से नीरोग कराना चाहिये क्योंकि उन वैद्यजनों से जो औषध दिया जाता है वह रोगी जन के लिये हितकारी होता है ॥ ३४ ॥

ये वाजिनमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन रोकने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥३५॥

पदार्थ—(ये) जो (अर्वतः) घोड़े के (मांसभिक्षाम्) मांस के मांगने की (उपासते) उपासना करते (च) और (ये) जो घोड़ा को (ईम्) पाया हुआ मारने योग्य (आहुः) कहते हैं उनको (निः, हर) निरन्तर हरो, दूर पहुँचाओ (ये) जो (वाजिनम्) वेगवान् घोड़ा को (पक्वम्) पक्का सिखा के(परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (उतो) और (तेषाम्) उन का (सुरभिः) अच्छा सुगन्ध और (अभिगूर्त्तिः) सब ओर से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त हो उनके अच्छे काम हमको प्राप्त हों (इति) इस प्रकार दूर पहुँचाओ ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों को रोकने चाहियें जिस से मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो ॥ ३५ ॥

यन्नीक्षणमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर किस को क्या देखना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥३६॥

पदार्थ—(या) जो (ऊष्मण्या) गरमियों में उत्तम (अपिधाना) ढांपने (आसेचनानि) और सिचाने हारे (पात्राणि) पात्र वा (यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांस जिस में पकाया जाय उस (उखायाः) बटलोई का (नीक्षणम्) निकृष्ट देखना वा (चरूणाम्) पात्रों के (अङ्काः) लक्षण किये हुए (सूनाः) प्रसिद्ध पदार्थ तथा (यूष्णः) बढ़ाने वाले के (अश्वम्) घोड़े का (परि, भूषन्ति) सब ओर से सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ—यदि कोई घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावें तो उन को यथापराध अवश्य दण्ड देना चाहिये ॥ ३६ ॥

मात्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को मांस न खाना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥३७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान् जन जिस (इष्टम्) चाहे हुए (वीतम्) प्राप्त (अभिगूर्त्तम्) चारों ओर से जिस में उद्यम किया गया (वषट्कृतम्) ऐसी क्रिया से सिद्ध हुए (अश्वम्) वेगवान् घोड़े को (प्रति गृभ्णन्ति) प्रतीति से ग्रहण करते उस को तुम (अभि) सब ओर से (विक्त) जानो (त्वा) उसको (धूमगन्धिः) धुआं में गन्ध जिस का वह (अग्निः) अग्नि (मा) मत (ध्वनयीत्) शब्द करे वा (तम्) उस को (जघ्रिः) जिससे किसी वस्तु को सूंघते हैं वह (भ्राजन्ती) चमकती हुई (उखा) बटलोई (मा) मत हिंसवावें ॥३७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन मांसाहारियों को निवृत्त कर घोड़ा आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं वैसे तुम भी करो और अग्नि आदि के विघ्नों से अलग रक्खो ॥ ३७ ॥

निक्रमणमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । विराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (ते) तेरे (अर्वतः) घोड़े का (निक्रमणम्) निकलना (निषदनम्) बैठना (विवर्त्तनम्) विशेष कर वर्त्ताव वर्त्तना (च) और (यत्) जो (पड्वीशम्) पछाड़ी (यत्, च) और जो यह (पपौ) पीता (यत्, च) और जो (घासिम्) घास (जघास) खाता (ताः) वे (सर्वा) सब काम युक्ति के साथ हों और यह सब (देवेषु) दिव्य उत्तम गुण वालों में (अपि) भी (अस्तु) होवे ॥ ३८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप घोड़े आदि पशुओं को अच्छी शिक्षा तथा खान पान के देने से अपने सब कामों को सिद्ध किया करो ॥ ३८ ॥

यदश्वायेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

यदश्वा॑य॒ वास॑ उपस्तृ॒णन्त्य॑धीवा॒सं या हिर॑ण्यान्यस्मै ।
सं॒दान॒मर्व॑न्तं॒ पड्वी॑शं प्रि॒या दे॒वेष्वा या॑मयन्ति ॥३९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप (अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिये (यत्) जो (वासः) वस्त्र (अधीवासम्) चारजामा (सन्दानम्) मुहेरा आदि और (या) जिन (हिरण्यानि) सुवर्ण के बनाये हुए आभूषणों को (उपस्तृणन्ति) ढापते वा जिस (पड्वीशम्) पैरों से प्रवेश करते और (अर्वन्तम्) जाते हुए घोड़े को (आ, यामयन्ति) अच्छे प्रकार नियम में रखते हैं वे सब पदार्थ और काम (देवेषु) विद्वानों में (प्रिया) प्रीति देनेवाले हों ॥३९॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं की यथावत् रक्षा करके उपकार लेवें तो बहुत कार्यों की सिद्धि से उपकारयुक्त हों ॥ ३९ ॥

यत्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑ ।
स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ अध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते ब्रह्म॑णा सूदयामि ॥४०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ते) आपके (सादे) बैठने के स्थान में (महसा) बड़प्पन से (वा) अथवा (शूकृतस्य) जल्दी चिलाये हुये घोड़े के (कशया) कोड़े से (यत्) जिस कारण (पार्ष्ण्या) पसुली आदि स्थान (वा) वा कक्षाओं में जो उत्तम ताड़ना आदि काम वा (तुतोद) साधारण ताड़ना देना (ता) उन सबको (अध्वरेषु) यज्ञों में (हविषः) होमने योग्य पदार्थ सम्बन्धी (स्रुचेव) जैसे स्रुचा प्रेरणा देती वैसे करते हो (ता) वे (सर्वा) सब काम (ते) तेरे लिये (ब्रह्मणा) धन से (सूदयामि) प्राप्त करता हूं ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ के साधनों से होमने योग्य पदार्थों को प्रेरणा देते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं को अच्छी सिखावट की रीति से प्रेरणा देवें ॥ ४० ॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति ।
अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ॥४१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे घुड़चढ़ा चाबुकी जन (देवबन्धोः) जिसके विद्वान् बन्धु के समान उस (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (चतुस्त्रिंशत्) चौंतीस (वङ्क्रीः) टेढ़ी बेंढ़ी चालों को (सम्, एति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (अच्छिद्रा) छेद भेद रहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम ज्ञानों को (कृणोतु) करे वैसे उसके (परुष्परुः) प्रत्येक मर्मस्थान को (अनुघुष्य) अनुकूलता से बजाकर (स्वाधितिः) वज्र के समान वर्त्तमान तुम लोग रोगों को (वि, शस्त) विशेषता से छिन्न भिन्न करो ॥ ४१ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे घोड़ों को सिखाने वाला चतुर जन चौंतीस चित्र विचित्र गतियों को घोड़े को पहुँचाता और वैद्यजन प्राणियों को नीरोग करता है वैसे ही और पशुओं की रक्षा से उन्नति करनी चाहिये ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरित्यस्य गोतम ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर किस प्रकार पशु सिखाने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ऽऋ॒तुः ।
या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ताता॒ पिण्डा॑नां॒ प्र जु॑होम्य॒ग्नौ ॥४२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (एकः) अकेला (ऋतुः) वसन्त आदि ऋतु (त्वष्टुः) शोभायमान (अश्वस्य) घोड़े का (विशस्ता) विशेष करके रूपादि का भेद करनेवाला होता है वा जो (द्वा) दो (यन्तारा) नियम करनेवाले (भवतः) होते हैं (तथा) वैसे (या) जिन (ते) तुम्हारे (गात्राणाम्) अंगों वा (पिण्डानाम्) पिण्डों के (ऋतुथा) ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं (कृणोमि) करता हूं (ताता) उन उनको (अग्नौ) आग में (प्र, जुहोमि) होमता हूं ॥४२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे घोड़ों को सिखानेवाले ऋतु ऋतु के प्रति घोड़ों को अच्छा सिखलाते हैं वैसे गुरुजन विद्यार्थियों को क्रिया करना सिखलाते हैं वा जैसे अग्नि में पिण्डों का होम कर पवन की शुद्धि करते हैं वैसे विद्यारूपी अग्नि में अविद्यारूप भ्रमों को होम के आत्माओं की शुद्धि करते हैं ॥ ४२ ॥

मात्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । आत्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को आत्मादि पदार्थ कैसे शुद्ध करने चाहियें इस विषय को कहा है—

मा त्वा॑ तपत्प्रि॒य आ॒त्मापि॒यन्तं॒ मा स्वधि॑तिस्त॒न्व॒ आ ति॑ष्ठिपत्ते ।
मा ते॑ गृ॒ध्नुर॑विश॒स्ताति॒हाय॑ छि॒द्रा गात्रा॑ण्य॒सिना॒ मिथू॑ कः ॥४३॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (ते) आपका जो (प्रियः) प्रीति वा आनन्द देनेवाला वह (आत्मा) अपना निज रूप आत्मतत्त्व भी (अपियन्तम्) निश्चय से प्राप्त होते हुए (त्वा) आपको (अतिहाय) अतीव छोड़के (मा, तपत्) मत संताप को प्राप्त हो (स्वधितिः) वज्र (ते) आपके (तन्वः) शरीर के बीच (मा, तिष्ठिपत्) मत स्थित करावे आपके (छिद्रा) छिन्न भिन्न (गात्राणि) अङ्गों को (अविशस्ता) विशेष न काटने और (गृध्नुः) चाहनेवाला जन (मा) मत स्थित करावे तथा (असिना) तलवार से (मिथू) परस्पर मत (कः) चेष्टा करे ॥४३॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि अपने अपने आत्मा को शोक में न डालें किसी के ऊपर वज्र न छोड़ें और किसी का उपकार किया हुआ न नष्ट किया करें ॥ ४३ ॥

न वा इत्यस्य गोतम ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे रथ निर्माण करने चाहियें इस विषय को कहा है—

न वाऽउ॑ऽए॒तन्म्रि॑यसे॒ न रि॑ष्यसि दे॒वाँ२॥ऽइदे॑षि प॒थिभिः॑ सु॒गेभिः॑ ।
हरी॑ ते॒ युञ्जा॒ पृष॑तीऽअभूता॒मुपा॑स्थाद्वा॒जी धु॒रि रास॑भस्य ॥४४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! यदि (एतत्) इस पूर्वोक्त विज्ञान को पाते हो तो (न) न तुम (म्रियसे) मरते (न)न (व) ही (रिष्यसि) मारते हो किन्तु (सुगेभिः) सुगम (पथिभिः) मार्गों से (देवान्) विद्वानों (इत्) ही को (एषि) प्राप्त होते हो यदि (ते) आप के (पृषती) स्थूल शरीरयुक्त (युञ्जा) योग करने हारे घोड़े (हरी) पहुँचाने वाले (अभूताम्) हों (उ) तो (वाजी) वेगवान् एक घोड़ा (रासभस्य) अश्वजाति से सम्बन्ध रखने वाले खिच्चर की (धुरि) धारणा के निमित्त (उप, अस्थात्) उपस्थित हो ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जैसे विद्या से अच्छे प्रकार जिनका प्रयोग किया उन पवन जल और अग्नि से युक्त रथ में स्थित होके मार्गों को सुख से जाते हैं वैसे ही आत्मज्ञान से अपने स्वरूप को नित्य जान के मरण और हिंसा के डर को छोड़ दिव्य सुखों को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

सुगव्यमित्यस्य गोतमऋषिः । प्रजा देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किन से राज्य की उन्नति होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सु॒गव्यं॑ नो वा॒जी स्व॑श्व्यं॑ पुं॒सः पु॒त्राँ२॥ऽउ॒त वि॑श्वा॒पुष॑ꣳ र॒यिम् ।
अ॒ना॒गा॒स्त्वं नो॒ऽअदि॑तिः कृणोतु क्ष॒त्रं न॒ऽअश्वो॑ वनताꣳ ह॒विष्मा॑न् ॥४५॥

पदार्थ—जो (नः) हमारा (वाजी) घोड़ा (सुगव्यम्) सुन्दर गौओं के लिये सुखस्वरूप (स्वश्व्यम्) अच्छे घोड़ों में प्रसिद्ध हुए काम को करता है वा जो विद्वान् (पुंसः) पुरुषपन से युक्त पुरुषार्थी (पुत्रान्) पुत्रों (उत) और (विश्वापुषम्) समग्र पुष्टि करने वाले (रयिम्) धन को प्राप्त होता वा जैसे (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी भूमि (नः) हमारे लिये (अनागास्त्वम्) अपराधरहित होने को करती है वैसे आप (कृणोतु) करें वा जैसे (हविष्मान्) प्रशंसित सुख देने जिस में हैं वह (अश्वः) व्याप्तिशील प्राणी (नः) हम लोगों के (क्षत्रम्) राज्य को (वनताम्) सेवे वैसे आप सेवा किया करो ॥ ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघवीर्य्य पुरुषार्थ से धन पाये हुए न्याय से राज्य को उन्नति देवें वे सुखी होवें ॥ ४५ ॥

इमा नु कमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक्शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन धनवान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इ॒मा नु कं॒ भुव॑ना सीषधा॒मेन्द्र॑श्च॒ विश्वे॑ च दे॒वाः । आ॒दि॒त्यैरिन्द्रः॒ सग॑णो म॒रुद्भि॑र॒स्मभ्यं॑ भेष॒जा क॑रत् । य॒ज्ञं च॑ नस्त॒न्वं॑ च प्र॒जां चा॑दि॒त्यैरिन्द्रः॑ स॒ह सी॑षधाति ॥४६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् राजा (च) और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) भी (इमा) इन समस्त (भुवना) लोकों को धारण करते वैसे हम लोग (कम्) सुख को (नु) शीघ्र (सीषधाम) सिद्ध करें वा जैसे (सगणः) अपने सहचारी आदि गुणों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रः) सूर्य (आदित्यैः) महीनों के साथ वर्त्तमान समस्त लोकों को प्रकाशित करता वैसे (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ वैद्यजन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (भेषजा) ओषधियां (करत्) करे जैसे (आदित्यैः) उत्तम विद्वानों के (सह) साथ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सभापति (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि उत्तम काम (च) और (तन्वम्) शरीर (च) और (प्रजाम्) सन्तान आदि को (च) भी (सीषधाति) सिद्ध करे वैसे हम लोग सिद्ध करें ॥४६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के तुल्य नियम से वर्त्ताव रखके शरीर को नीरोग और आत्मा को विद्वान् बना तथा पूर्ण

ब्रह्मचर्य कर स्वयंवरविधि से हृदय को प्यारी स्त्री को स्वीकार कर उस में सन्तानों को उत्पन्न कर और अच्छी शिक्षा देके विद्वान् करते हैं वे धनपति होते हैं ॥४६॥

अग्ने त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳरयिन्दाः ॥४७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) वेदवेत्ता पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् आप (अग्निः) अग्नि के समान (नः) हम लोगों के (अन्तमः) समीपस्थ (त्राता) रक्षा करने वाले (शिवः) कल्याणकारक (उत) और (वरूथ्यः) घरों में उत्तम (वसुश्रवाः) जिन के श्रवण में बहुत धन और (वसु) विद्याओं में वसाने हारे हो ऐसे (भव) हूजिये जो (द्युमत्तमम्) अतीव प्रकाशवान् (रयिम्) धन हम लोगों के लिये (अच्छ, दाः) भली भांति देओ तथा हम को (नक्षि) प्राप्त होते हो सो (त्वम्) आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो ॥ ४७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सब के उपकारी वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता अध्यापक उपदेशक विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे सत्कार को प्राप्त हुए विद्वान् लोग भी सब के लिये उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देवें जिससे परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े बड़े सुखों का लाभ होवे ॥४७॥

तन्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को इस जगत् में कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को कहा है—

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥४८॥

पदार्थ—हे (शोचिष्ठ) उत्तम गुणों से प्रकाशमान (दीदिवः) विद्यादि गुणों से शोभायुक्त विद्वन् जो आप (नः) हम लोगों को (बोधि) बोध कराते (तम्) उन (त्वा) आपको (सुम्नाय) सुख और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (नूनम्) निश्चय से हम लोग (ईमहे) याचते हैं (सः) सो आप (नः) हम लोगों के लिये (हवम्) पुकारने को (श्रुधि) सुनिये और (समस्मात्) अधर्म के तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले (अघायतः) आत्मा के अपराध का आचरण करते हुए दुष्ट डाकू चोर लम्पट से हमारी (उरुष्य) रक्षा कीजिये ॥ ४८ ॥

भावार्थ—विद्यार्थी लोग पढ़ाने वालों के प्रति ऐसे कहें कि आप जो हम लोगों ने पढ़ा है उसकी परीक्षा लीजिये और हम को दुष्ट आचरण से पृथक् रखिये जिससे हम लोग सब के साथ मित्र के समान वर्त्ताव रक्खें ॥४८॥

इस अध्याय में संसार के पदार्थों के गुणों का वर्णन, पशु आदि प्राणियों को सिखलाना पालना, अपने अङ्गों की रक्षा, परमेश्वर की प्रार्थना, यज्ञ की प्रशंसा, बुद्धि का देना, धर्म में इच्छा, घोड़े के गुण कहना, उस की चाल आदि सिखलाना, आत्मा का ज्ञान और धन की प्राप्ति होने का विधान कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये ॥

अब पच्चीसवां (२५) अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

卐 अथ षड्विंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

अग्निरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । अभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब छब्बीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को तत्त्वों से यथावत् उपकार लेने चाहियें इस विषय का वर्णन किया है—

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सन्नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सन्नमतामदऽआदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदऽआपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदः । सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी । सकामाँ२॥ऽअध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो जैसे (मे) मेरे लिये (अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इसको (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे लिये (वायुः) पवन (च) और (अन्तरिक्षम्) आकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इसको (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे लिये (आदित्यः) सूर्य (च) और (द्यौः) उसका प्रकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इसको (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे अर्थ (आपः) जल (च) और (वरुणः) जल जिसका अवयव है वह (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे दोनों (अदः) इस को (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (अष्टमी) आठमी (भूतसाधनी) प्राणियों के कार्य्यों को सिद्ध करने हारी वा (सप्त) सात (संसदः) वे सभा जिन में अच्छे प्रकार स्थिर होते (सकामान्) समान कामना वाले (अध्वनः) मार्गों को करे वैसे तुम (कुरु) करो (अमुना) इस प्रकार से (मे) मेरे लिये (संज्ञानम्) उत्तम ज्ञान (अस्तु) प्राप्त होवे वैसे ही यह सब तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि अग्नि आदि पंचतत्त्वों को यथावत् जान के कोई उन का प्रयोग करे तो वे वर्त्तमान उस अत्युत्तम सुख की प्राप्ति कराते हैं ॥ १ ॥

यथेमामित्यस्य लौगाक्षिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर सब मनुष्यों के लिये वेद के पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवक आदि (च) और (अरणाय) और उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुए अन्त्यज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमाम्) इस प्रकट की हुई (कल्याणीम्) सुख देने वाली (वाचम्) चारों वेदरूप वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूं वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें । जैसे मैं (दातुः) दान देने वाले के संसर्गी (देवानाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये (प्रियः) मनोहर पियारा (भूयासम्) होऊं और (मे) मेरी (अयम्) यह (कामः) कामना (समृध्यताम्) उत्तमता से बढ़े तथा (मा) मुझे (अदः) वह परोक्षसुख (उप, नमतु) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आप को भी प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति इस उपदेश को करता है कि यह चारों वेदरूप कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिये मैंने उपदेश की है इस में किसी को अनधिकार नहीं है जैसे मैं पक्षपात को छोड़ के सब मनुष्यों में वर्त्तमान हुआ पियारा हूं वैसे आप भी होओ । ऐसे करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे ॥ २ ॥

बृहस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥३॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़े बड़े प्रकृति आदि पदार्थों और जीवों के पालने हारे ईश्वर ! जो आप (उपयामगृहीतः) प्राप्त हुए यम नियमादि योगसाधनों से जाने गये (असि) हैं उन (त्वा) आप को (बृहस्पतये) बड़ी वेद वाणी की पालना के लिये तथा, जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) प्रमाण है उन (बृहस्पतये) बड़े बड़े आप्त विद्वानों की पालना करने वाले के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं । हे भगवन् (ऋतप्रजात) जिन से सत्य उत्तमता से उत्पन्न हुआ वे (अर्यः) परमात्मा आप (जनेषु) मनुष्यों में (अर्हात्) योग्य काम से (यत्) जो (द्युमत्) प्रशंसित प्रकाशयुक्त मन (क्रतुमत्) वा प्रशंसित बुद्धि और कर्मयुक्त मन (अति विभाति) विशेष कर प्रकाशमान है वा (यत्) जो (शवसा) बल से (दीदयत्) प्रकाशित होता हुआ वर्त्तमान है (तत्) उस (चित्रम्) आश्चर्यरूप ज्ञान (द्रविणम्) धन और यश को (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) धारण स्थापन कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो जिससे बड़ा दयावान् न्यायकारी और अत्यन्त सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं वा जिसने वेद प्रकट करने द्वारा सब मनुष्य सुशोभित किये वा जिसने अद्भुत ज्ञान और धन जगत् में विस्तृत किया और जो योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य है वही ईश्वर हम सब लोगों को अति उपासना करने योग्य है यह तुम जानो ।३।

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराड्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥४॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) जिस की सैकड़ों प्रकार की बुद्धि और (गोमन्) प्रशंसित वाणी है सो ऐसे हे (इन्द्र) विद्वान् पुरुष आप (आ, याहि) आइये (इह) इस संसार में (विद्यद्भिः) विद्यमान (ग्रावभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रस को (पिब) पियो जिससे आप (उपयामगृहीतः) यम नियमों से इन्द्रियों को ग्रहण किये अर्थात् इन्द्रियों को जीते हुए (असि) हो इसलिये (गोमते) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त पुरुष के लिये और (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (त्वा) आप को और जिन (ते) आपका (एषः) यह (योनिः) निमित्त है उस (गोमते) प्रशंसित वाणी और (इन्द्राय) प्रशंसित ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करत हैं । ४।

भावार्थ—जो वैद्यकशास्त्र विद्या से और सिद्ध मेघों से उत्पन्न हुई ओषधियों का सेवन और योगाभ्यास करते हैं वे सुख तथा ऐश्वर्य्ययुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥५॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धि और कर्मयुक्त (वृत्रहन्) मेघहन्ता सूर्य के समान शत्रुओं के हनने वाले (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वान् आप (गोमद्भिः) जिन में बहुत चमकती हुई किरणें विद्यमान उन पदार्थों और (ग्रावभिः) गर्जनाओं से गर्जते हुए मेघों के साथ (आ, याहि) आइये और (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ऐश्वर्य करने हारे रस को (पिब) पीओ जिस कारण आप (गोमते) बहुत दूध देती हुई गौओं से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से आत्मा को ग्रहण किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (गोमते) प्रशंसित भूमि के राज्य से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये (योनिः) घर है उन (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्य ! जैसे मेघहन्ता सूर्य सब जगत् से रस पी के और वर्षा के सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे ही तू बड़ी बड़ी ओषधियों के रस को पी तथा ऐश्वर्य की उन्नति के लिये अच्छे प्रकार यत्न किया कर ॥ ५ ॥

ऋतावानमित्यस्य प्रावुराक्षिऋर्षिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऋतावानम्) जो जल का सेवन करता उस (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (ऋतस्य) जल और (ज्योतिषः) प्रकाश की (पतिम्) पालना करने हारे (घर्मम्) प्रताप को (अजस्रम्) निरन्तर (ईमहे) मांगते है वैसे तुम इस को मांगो जो आप (वैश्वानराय) संसार के नायक के लिये (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से मन को जीते हुए (असि) हैं उन (त्वा) आपको तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उन (त्वा) आप को (वैश्वानराय) समस्त संसार के हित के लिये सत्कार युक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि जल आदि मूर्त्तिमान् पदार्थों को अपने तेज से छिन्न भिन्न करता और निरन्तर जल खींचता है उसको जान के मनुष्य सब ऋतुओं में सुख करने हारे घर को पूर्ण करें बनावें ॥ ६ ॥

वैश्वानरस्येत्यस्य कुत्सऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥७॥

पदार्थ—हम लोग जैसे (राजा) प्रकाशमान (भुवनानाम्) लोकों के बीच (अभिश्रीः) सब ओर से ऐश्वर्य की शोभा से युक्त सूर्य (कम्) सुख को (हि) ही सिद्ध करता है और (इतः) इस कारण (जातः) प्रसिद्ध हुआ (इदम्) इस (विश्वम्) विश्व को (वि, चष्टे) प्रकाशित करता है वा जैसे (सूर्येण) सूर्य के साथ (वैश्वानरः) विजुली रूप अग्नि (यतते) यत्नवान् है वैसे हम लोग (वैश्वानरस्य) संसार के नायक परमेश्वर वा उत्तम सभापति की (सुमतौ) अति उत्तम देश काल को जानने हारी कपट छलादि दोष रहित बुद्धि में (स्याम) होवें हे विद्वन् ! जिससे आप (उपयामगृहीतः) सुन्दर नियमों से स्वीकृत (असि) हैं इस से (वैश्वानराय) अग्नि के लिये (त्वा) आपको तथा जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उन (त्वा) आप को भी (वैश्वानराय) अग्नि-साध्य कार्य साधने के लिये सत्कार करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा रात्रि को सुशोभित करता है वैसे उत्तम राजा से प्रजा प्रकाशित होती है और विद्वान् शिल्पी जन सर्वोपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है ॥ ७ ॥

वैश्वानर इत्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किसके समान क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वैश्वानरो न ऊतयऽआ प्रयातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥

पदार्थ—जैसे (वैश्वानरः) समस्त नायक जनों में प्रकाशमान विद्वान् (परावतः) दूर से (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (आ, प्र, यातु) अच्छे प्रकार आवे वैसे (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी मनुष्य (उक्थेन) प्रशंसा करने योग्य (वाहसा) व्यवहार के साथ प्राप्त हो जो आप (वैश्वानराय) प्रकाशमान् के लिये (उपयामगृहीतः) विद्या के विचार से युक्त (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह घर (वैश्वानराय) समस्त नायकों में उत्तम के लिये (योनिः) है उन (त्वा) आप को भी हम लोग स्वीकार करें ॥८॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य दूर देश से अपने प्रकाश से दूरस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन अपने सुन्दर उपदेश से दूरस्थ जिज्ञासुओं को प्रकाशित करते हैं ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर किन को किस से क्या मांगना चाहिये इस विषय को कहा है—

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पाञ्चजन्यः) पांच जनों वा प्राणों की क्रिया में उत्तम (पुरोहितः) पहिले हित करने हारा (पवमानः) पवित्र (ऋषिः) मन्त्रार्थ-वेत्ता और (अग्निः) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित है (तम्) उस (महागयम्) बड़े बड़े घर सन्तान वा धन वाले की जैसे हम लोग (ईमहे) याचना करें वैसे आप

(वर्चसे) पढ़ाने हारे और (अग्नये) विद्वान् के लिये (उपयामगृहीतः) समीप के नियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) निमित्त (वर्चसे) विद्याप्रकाश और (अग्नये) विद्वान् के लिये है उन (त्वा) आप की हम लोग प्रार्थना करते हैं वैसे तुम भी चेष्टा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि वेदवेत्ता विद्वानों से सदा विद्याप्राप्ति की प्रार्थना किया करें जिससे वे सब मनुष्य महत्त्व को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

महानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब राजा के सत्कार विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

म॒हाँ२॥ऽइन्द्रो॒ वज्र॑हस्तः षोड॒शी शर्म॑ यच्छतु ह॒न्तु पा॒प्मान॒ं यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॑। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्मह॒न्द्राय॑ त्वा ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वज्रहस्तः) जिस के हाथों में वज्र (षोडशी) सोलह कलायुक्त (महान्) बड़ा (इन्द्रः) और परम ऐश्वर्यवान् राजा (शर्म) जिस में दुःख विनाश को प्राप्त होते हैं उस घर को (यच्छतु) देवे (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों को (द्वेष्टि) वैरभाव से चाहता उस (पाप्मानम्) पापात्मा खोटे कर्म करने वाले को (हन्तु) मारे । जो आप (महेन्द्राय) बड़े बड़े गुणों से युक्त के लिये (उपयामगृहीतः) प्राप्त हुए नियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (महेन्द्राय) उत्तम गुण वाले के लिये (योनिः) निमित्त है उन (त्वा) आप का भी हम लोग सत्कार करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! जो तुम्हारे लिये सुख देवे, दुष्टों को मारे और महान् ऐश्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों को सदा सत्कार करने योग्य है ॥ १० ॥

तं व इत्यस्य नोधा गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तं वो॑ द॒स्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः ।
अ॒भि व॒त्सन्न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ऽइन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग (स्वसरेषु) दिनों में (धेनवः) गौएं (वत्सम्) जैसे बछड़े को (न) वैसे जिस (दस्मम्) दुःखविनाशक (ऋतीषहम्) चाल को सहने वाले (वसोः) धन और (अन्धसः) अन्न के (मन्दानम्) आनन्द को पाए हुए (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् सभापति की (वः) तुम्हारे लिये (गीर्भिः) वाणियों से (अभि, नवामहे) सब ओर से स्तुति करते हैं वैसे ही (तम्) उस सभापति को आप लोग भी सदा प्रीतिभाव से स्तुति कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे गौयें प्रतिदिन अपने अपने बछड़ों को पालती हैं वैसे ही प्रजाजनों की रक्षा करने वाला पुरुष प्रजा की नित्य रक्षा करे और प्रजा के लिये धन और अन्न आदि पदार्थों से सुखों को नित्य बढ़ाया करे ॥ ११ ॥

यद्वाहिष्ठमित्यस्य नोधा गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर वह रानी क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यद्वाहि॑ष्ठ॒न्तद॒ग्नये॑ बृ॒हद॑र्च विभावसो ।
म॒हि॒षीव॒ त्वद्र॒यिस्त्वद्वाजा॒ उदी॑रते ॥१२॥

पदार्थ—हे (विभावसो) प्रकाशित धनवाले विद्वन् ! (अग्नये) अग्नि के लिये (यत्) जो (बृहत्) बड़ा और (वाहिष्ठम्) अत्यन्त पहुँचाने हारा है उस का (अर्च) सत्कार करो (तत्) उस का हम भी सत्कार करें (महिषीव) और रानी के समान (त्वत्) तुम से (रयिः) धन और (त्वत्) तुम से (वाजाः) अन्न आदि पदार्थ (उत् ईरते) भी प्राप्त होते हैं उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे रानी सुख पहुंचाती और बहुत धन देने वाली होती है वैसे ही राजा के समीप से सब लोग धन और अन्य उत्तम उत्तम वस्तुओं को पावें ॥१२॥

एहीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

एह्यू॒ षु ब्रवा॑णि॒ तेऽग्न॑ इ॒त्थेत॑रा॒ गिरः॑ । ए॒भिर्व॑र्द्धास॒ इन्दु॑भिः ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशित बुद्धि वाले विद्वन् ! मैं (इत्था) इस हेतु से (ते) आप के लिये (इतराः) जिन को तुम ने नहीं जाना है उन (गिरः) वाणियों का (सु, ब्रवाणि) सुन्दर प्रकार से उपदेश करूं कि जिससे आप इन वाणियों को (आ, इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (उ) और (एभिः) इन (इन्दुभिः) जलादि पदार्थों से (वर्द्धासे) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—जिस शिक्षा से विद्यार्थी लोग विज्ञान से बढ़ें उसी शिक्षा का विद्वान् लोग उपदेश किया करें ॥ १३ ॥

ऋतव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । संवत्सरो देवता । भुरिग्बृहती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

ऋ॒तव॑स्ते य॒ज्ञं वित॑न्वन्तु॒ मासा॑ र॒क्षन्तु॑ ते॒ ह॒विः ।
सं॒व॒त्स॒रस्ते॑ य॒ज्ञं द॑धातु नः प्र॒जां च॒ परि॑पातु नः ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ते) आप के (यज्ञम्) सत्कार आदि व्यवहार को (ऋतवः) वसन्तादि ऋतु (वि, तन्वन्तु) विस्तृत करें (ते) आप के (हविः) होमने योग्य वस्तु की (मासाः) कार्त्तिक आदि महीने (रक्षन्तु) रक्षा करें (ते) आप के (यज्ञम्) यज्ञ को (नः) हमारा (संवत्सरः) वर्ष (दधातु) पुष्ट करे (च, नः) हमारी (प्रजाम्) प्रजा की (परि, पातु) सब ओर से आप रक्षा करो ॥१४॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि सब सामग्री से विद्यावर्द्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा की रक्षा किया करें ॥ १४ ॥

उपह्वर इत्यस्य वत्स ऋषिः । विद्वान् देवता । विराड्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णा२ सं॑ग॒मे च॑ न॒दीना॑म् ।
धि॒या विप्रो॑ अजायत ॥१५॥

पदार्थ—जो मनुष्य (गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) निकट (च) और (नदीनाम्) नदियों के (सङ्गमे) मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे वह (धिया) उत्तम बुद्धि वा कर्म से युक्त (विप्रः) विचारशील बुद्धिमान् (अजायत) होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग पढ़ के एकान्त में विचार करते हैं वे योगियों के तुल्य उत्तम बुद्धिमान् होते हैं ॥ १५ ॥

उच्चेत्यस्य महीयव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उ॒च्चा ते॑ जा॒तमन्ध॑सो दि॒वि सद्भू॒म्याद॑दे ।
उ॒ग्रꣳ शर्म॒ महि॒ श्रवः॑ ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! मैं (ते) आप के जिस (उच्चा) ऊंचे (अन्धसः) अन्न से (जातम्) प्रसिद्ध हुए (दिवि) प्रकाश में (सत्) वर्त्तमान (उग्रम्) उत्तम (महि) बड़े (श्रवः) प्रशंसा के योग्य (शर्म) घर को (आ, ददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ वह (भूमि) पृथिवी के तुल्य दृढ़ हो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य का प्रकाश और वायु जिस में पहुँचा करे ऐसे अन्नादि से युक्त बड़े ऊंचे घरों को बना के उन में बसने से सुख भोगें ॥ १६ ॥

स न इत्यस्य महीयव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

स न॒ इन्द्रा॑य॒ यज्य॑वे॒ वरु॑णाय म॒रुद्भ्यः॑ ।
व॒रि॒वो॒वित्परि॑ स्रव ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (सः) सो (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (नः) हमारे (इन्द्राय) परमैश्वर्य की (यज्यवे) सङ्गति और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के लिये (वरिवोवित्) सेवाकर्म को जानते हुए आप (परि, स्रव) सब ओर से प्राप्त हुआ करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—जिस विद्वान् ने जितना सामर्थ्य प्राप्त किया है उस को चाहिये कि उस सामर्थ्य से सब का सुख बढ़ाया करे ॥ १७ ॥

एनेत्यस्य महीयव ऋषिः । विद्वान् देवता । स्वराड्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना कैसी करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ए॒ना विश्वा॑न्य॒र्य आ द्यु॒म्नानि॒ मानु॑षाणाम् ।
सिषा॑सन्तो वनामहे ॥१८॥

पदार्थ—जो (अर्यः) ईश्वर (मानुषाणाम्) मनुष्यों की (एना) इन (विश्वानि) सब (द्युम्नानि) शोभायमान कीर्त्तियों की शिक्षा करता है उस की (सिषासन्तः) सेवा करने की इच्छा करते हुए हम लोग (आ, वनामहे) सुखों को मांगते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिये धनों, वेदों और खाने पीने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न किया है उसी की उपासना सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

अनुवीरैरित्यस्य मुद्गल ऋषिः । विद्वांसो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।

अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयन्देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१९॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (वयम्) हम लोग (पुष्टैः) पुष्ट (वीरैः) प्रशस्त बल वाले वीरपुरुषों की (अनु, पुष्यास्म) पुष्टि से पुष्ट हों । बलवती (गोभिः) गौओं की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों । बलवान् (अश्वैः) घोड़े आदि की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों (सर्वेण) सब की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों (द्विपदा) दो पग वाले मनुष्य आदि प्राणियों की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों और (चतुष्पदा) चार पग वाले गौ आदि की (अनु) पुष्टि से पुष्ट हों वैसे (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारे (यज्ञम्) धर्मयुक्त व्यवहार को (ऋतुथा) ऋतुओं से (नयन्तु) प्राप्त करें ॥१९॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि वीरपुरुषों और पशुओं को अच्छे प्रकार पुष्ट करके पश्चात् आप पुष्ट हों । और सदा वसन्तादि ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार किया करें ॥ १९ ॥

अग्न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सन्तान कैसे उत्तम हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप ।

त्वष्टारꣳ सोमपीतये ॥२०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अध्यापक वा अध्यापिके ! तू (इह) इस गृहाश्रम में अपने तुल्य गुणवाले पतियों वा (उशतीः) कामनायुक्त (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्रियों को और (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों के रस को पीने के लिये (त्वष्टारम्) तेजस्वी पुरुष को (उप, आ, वह) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त कर वा करें ॥ २० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कन्याओं को अच्छी शिक्षा दे विदुषी बना और स्वयंवर से प्रिय पतियों को प्राप्त करा के प्रेम से सन्तानों को उत्पन्न करावें तो वे सन्तान अत्यन्त प्रशंसित होते हैं ॥ २० ॥

अभीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कौन विद्वान् हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना ।

त्वꣳहि रत्नधा असि ॥२१॥

पदार्थ—हे (ग्नावः) प्रशस्त वाणी वाले (नेष्टः) नायक जन आप (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतु के साथ (नः) हमारे (यज्ञम्) उत्तम व्यवहार की (अभि, गृणीहि) सन्मुख स्तुति कीजिये जिस कारण (त्वं, हि) तुम ही (रत्नधाः) प्रसन्नता के हेतु वस्तु के धारणकर्त्ता (असि) हो इससे उत्तम ओषधियों के रसों को (पिब) पी ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो अच्छी शिक्षा को प्राप्त वाणी के संगत व्यवहार को जानने की इच्छा करें वे विद्वान् होवें ॥ २१ ॥

द्रविणोदा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत ।

नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (द्रविणोदाः) धन वा यश का देने वाला जन (ऋतुभिः वसन्तादि ऋतुओं के साथ (नेष्ट्रात्) विनय से रस को (पिपीषति) पिया चाहता है वैसे तुम लोग रस को (इष्यत) प्राप्त होओ (जुहोत) ग्रहण वा हवन करो (च) और (प्र, तिष्ठत) प्रतिष्ठा को प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! जैसे उत्तम वैद्य सुन्दर पथ्य भोजन और उत्तम विद्या से आप रोगरहित हुए दूसरों को रोगों से पृथक् करके प्रशंसा को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुम लोगों को भी अवश्य आचरण करना चाहिये ॥ २२ ॥

तवायमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिक्पंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

तवायꣳ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि ।

अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्यानिषद्या दधिष्वेमं जठरऽइन्दुमिन्द्र ॥२३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य की इच्छा वाले विद्वन् ! जो (तव) आपका (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्य का योग है उस को (त्वम्) आप (आ, इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (सुमनाः) धर्म कार्यों में प्रसन्नचित्त (अर्वाङ्) सन्मुख प्राप्त हुए (अस्य) इस अपने आत्मा के (शश्वत्तमम्) अधिकतर अनादि धर्म की (पाहि) रक्षा कीजिये (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम (यज्ञे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (निषद्य) निरन्तर स्थित होके (जठरे) जाठराग्नि में (इमम्) इस प्रत्यक्ष (इन्दुम्) रोगनाशक ओषधियों के रस को (आ, दधिष्व) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग सबके साथ सदा सन्मुखता को प्राप्त होके प्रसन्न चित्त हुए सनातन धर्म तथा विज्ञान का उपदेश किया करें, पथ्य अन्न आदि का भोजन करें और सदा पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहें ॥ २३ ॥

अमेवेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । विद्वान् देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।

अथा मदस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥२४॥

पदार्थ—हे (त्वष्टः) तेजस्वि विद्वन् ! (जुजुषाणः) प्रसन्नचित्त गुरु आदि की सेवा करते हुए (सुमद्गणः) सुन्दर प्रसन्न मण्डली वाले आप (देवेभिः) उत्तम गुण वाले (जनिभिः) जन्मों के साथ (अन्धसः) अन्नादि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में (मदस्व) आनन्दित हूजिये (अथ) इसके अनन्तर (अमेव) उत्तम घर के तुल्य औरों को आनन्दित कीजिये । हे विद्वान् लोगो ! (सुहवाः) सुन्दर प्रकार बुलाने हारे तुम लोग उत्तम घर के समान (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में (नः) हमको (आ, गन्तन) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये । इस स्थान में (हि) निश्चित होकर (नि, सदतन) निरन्तर बैठिये और (रणिष्टन) अच्छा उपदेश कीजिये ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो आप उत्तम व्यवहार में स्थित होके औरों को स्थित करें वे सदा आनन्दित हों । स्त्री पुरुष उत्कण्ठापूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें वे उत्तम गुण वाले होते हैं ॥ २४ ॥

स्वादिष्ठयेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।

इन्द्राय पातवे सुतः ॥२५॥

पदार्थ—हे(सोम) ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! आप जो (इन्द्राय) संपत्ति की (पातवे) रक्षा करने के लिये (सुतः) निकाला हुआ उत्तम रस है उसकी (स्वादिष्ठया) अति स्वादयुक्त (मदिष्ठया) अति आनन्द देने वाली (धारया) धारण करने हारी क्रिया से (पवस्व) पवित्र हूजिए ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्य सब रोगों के नाशक आनन्द देने वाले ओषधियों के रस को पी के अपने शरीर और आत्मा को पवित्र करते हैं वे धनाढच होते हैं ॥२५॥

रक्षोहेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।

द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२६॥

पदार्थ—जो (रक्षोहा) दुष्ट प्राणियों को मारने हारा (विश्वचर्षणिः) सब संसार का प्रकाशक विद्वान् (अयोहते) सुवर्ण से प्राप्त हुए (द्रोणे) बीस सेर अन्न रखने के पात्र में (सधस्थम्) समान स्थिति वाले (योनिम्) घर में (अभि, आ, असदत्) अच्छे प्रकार स्थित होवे वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होवे ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो अविद्या अज्ञान के नाशक विज्ञान के प्रकाशक सब ऋतुओं में सुखकारी सुवर्ण आदि से युक्त घरों में बैठ के विचार करें वे सुखी होते हैं ॥२६॥

इस अध्याय में पुरुषार्थ के फल, सब मनुष्यों को वेद पढ़ने सुनने का अधिकार, परमेश्वर, विद्वान् और सत्य का निरूपण, अग्न्यादि पदार्थ, यज्ञ, सुन्दर घरों को बनाना और उत्तम स्थान में स्थिति आदि कही है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

॥ अथ सप्तविंशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

समा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सत्ताईसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में आप्तों को कैसा आचरण करना चाहिये इस विषय को कहा है—

समास्त्वाऽग्न ऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सराऽऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! (**समाः**) वर्ष (**ऋतवः**) शरद् आदि ऋतु (**संवत्सराः**) प्रभवादि संवत्सर (**ऋषयः**) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले विद्वान् और (**यानि**) जो (**सत्या**) कर्म हैं वे (**त्वा**) आपको (**वर्द्धयन्तु**) बढ़ावें । जैसे अग्नि (**दिव्येन**) शुद्ध (**रोचनेन**) प्रकाश से (**विश्वाः**) सब (**प्रदिशः**) उत्तम गुणयुक्त (**चतस्रः**) चार दिशाओं को प्रकाशित करता है वैसे विद्या की (**सं, दीदिहि**) सुन्दर प्रकार कामना कीजिये और न्याययुक्त धर्म का (**आ, भाहि**) अच्छे प्रकार प्रकाश कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । आप्तपुरुषों को चाहिये कि सब काल में सत्य विद्या और उत्तम कामों का उपदेश करके सब शरीरधारियों के आरोग्य, पुष्टि, विद्या और सुशीलता को बढ़ावें जैसे सूर्य अपने सन्मुख के पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे सब मनुष्यों को शिक्षा से सदैव आनन्दित किया करें ॥ १ ॥

सं चेत्यस्याग्निर्ऋषिः । सामिधेन्यो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को ही उत्तम अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस विषय को कहा है—

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु माऽन्ये ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! आप (**सम्, इध्यस्व**) अच्छे प्रकार प्रकाशित हूजिये (**च**) और (**एनम**) इस जिज्ञासु जन को (**प्रबोधय**) अच्छा बोध कराइये (**च**) और (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) सौभाग्य होने के लिये (**उत्, तिष्ठ**) उद्यत हूजिये तथा (**उपसत्ता**) समीप बैठने वाले आप सौभाग्य को (**मा, रिषत्**) मत बिगाड़िये । हे (**अग्ने**) तेजस्वि जन ! (**ते**) आप के (**ब्रह्माणः**) चारों वेद के जानने वाले (**अन्ये**) भिन्न बुद्धि वाले (**च**) भी (**मा, सन्तु**) न हो जावें (**च**) और (**ते**) आप अपने (**यशसः**) यश कीर्ति की उन्नति को न बिगाड़िये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों से भिन्न इतर जनों को उत्तम अधिकार में नहीं युक्त करते सदा उन्नति के लिये प्रयत्न करते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं वे कीर्त्ति और ऐश्वर्य से युक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

त्वामित्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जिज्ञासु लोगों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) तेजस्वी विद्वन् ! अग्नि के समान वर्तमान जो (**इमे**) ये (**ब्राह्मणाः**) ब्रह्मवेत्ता जन (**त्वाम्**) आपको (**वृणते**) स्वीकार करते हैं उनके प्रति आप (**संवरणे**) सम्यक् स्वीकार करने में (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) हूजिये (**नः**) हमारे (**सपत्नहा**) शत्रुओं के दोषों के हननकर्त्ता हूजिये । हे (**अग्ने**) अग्निवत् प्रकाशमान ! (**अप्रयुच्छन्**) प्रमाद नहीं करते हुए (**च**) और (**अभिमातिजित्**) अभिमान को जीतने वाले आप (**स्वे**) अपने (**गये**) घर में (**जागृहि**) जागो अर्थात् गृहकार्य करने में निद्रा आलस्यादि को छोड़ो (**नः**) हमको शीघ्र चेतन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग ब्रह्म को स्वीकार करके आनन्द मङ्गल को प्राप्त होते और दोषों को निर्मूल नष्ट कर देते हैं वैसे जिज्ञासु लोग ब्रह्मवेत्ता विद्वानों को प्राप्त होके आनन्द मंगल का आचरण करते हुए बुरे स्वभावों के मूल को नष्ट करें और आलस्य को छोड़ के विद्या की उन्नति किया करें ॥ ३ ॥

इहैवेत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इहैवाग्नेऽअधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां तेऽअनिष्टृतः ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन् ! आप (**इह**) इस संसार में (**रयिम्**) लक्ष्मी को (**धारय**) धारण कीजिये (**पूर्वचितः**) प्रथम प्राप्त किये विज्ञानादि से श्रेष्ठ निरन्तर कर्म करने के स्वभाव वाले जन (**त्वा**) आप को (**मा, नि, क्रन्**) नीच गति को प्राप्त न करें । हे (**अग्ने**) विनय से शोभायमान सभापते ! (**ते**) आपका (**सुयमम्**) सुन्दर नियम जिस से चले वह (**क्षत्रम्**) धन वा राज्य (**अस्तु**) होवे जिससे (**उपसत्ता**) समीप बैठते हुए (**अनिष्टृतः**) हिंसा वा विघ्न को नहीं प्राप्त हो के (**एव**) ही आप (**अधि, वर्द्धताम्**) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त हूजिये (**तुभ्यम्**) आपके लिये राज्य वा धन सुखदायी होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप ऐसे उत्तम विनय को धारण कीजिये जिससे प्राचीन वृद्ध जन आप को बड़ा माना करें । राज्य में अच्छे नियमों को प्रवृत्त कीजिये जिससे आप और आपका राज्य विघ्न से रहित होकर सब ओर से बढ़े और प्रजाजन आपको सर्वोपरि माना करें ॥ ४ ॥

क्षत्रेणेत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप (**इह**) इस जगत् में वा राज्याधिकार में (**क्षत्रेण**) राज्य वा धन के साथ (**स्वायुः**) सुन्दर युवाऽवस्था का (**सम्, रभस्व**) अच्छे प्रकार आरम्भ कीजिये । हे (**अग्ने**) विद्या और विनय से शोभायमान राजन् ! (**मित्रेण**) धर्मात्मा विद्वान् मित्रों के साथ (**मित्रधेये**) मित्रों से धारण करने योग्य व्यवहार में (**यतस्व**) प्रयत्न कीजिये । हे (**अग्ने**) न्याय का प्रकाश करने हारे सभापति ! (**सजातानाम्**) एक साथ उत्पन्न हुए बराबर की अवस्था वाले (**राज्ञाम्**) धर्मात्मा राजाधिराजों के बीच (**मध्यमस्थाः**) मध्यस्थ—वादिप्रतिवादि के साक्षि (**एधि**) हूजिये और (**विहव्यः**) विशेषकर स्तुति के योग्य हुए (**दीदिहि**) प्रकाशित हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—सभापति राजा सदा ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, सत्य धर्म में प्रीति रखने वाले मन्त्रियों के साथ विचारकर्त्ता अन्य राजाओं के साथ अच्छी सन्धि रखने वाला, पक्षपात को छोड़ न्यायाधीश सब शुभ लक्षणों से युक्त हुआ दुष्ट व्यसनों से पृथक् हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को धीरज शान्ति अप्रमाद से धीरे धीरे सिद्ध करे ॥ ५ ॥

अति निह इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथाऽस्मभ्यꣳसहवीराꣳरयिन्दाः ॥६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) तेजस्वि सभापते ! आप (**अति, निहः**) निश्चय करके असत्य को छोड़ने वाले होते हुए (**स्रिधः**) दुष्टाचारियों को (**अति, सहस्व**) अधिक सहन कीजिये (**अचित्तिम्**) अज्ञान का (**अति**) अतिक्रमण कर (**अरातिम्**) दान के निषेध को सहन कीजिये हे (**अग्ने**) दृढ़ विद्या वाले तेजस्वि विद्वन् ! आप (**हि**) ही (**विश्वा**) सब (**दुरिता**) दुष्ट आचरणों का (**अति**) अधिक सहन कीजिये (**अथ**) इस के पश्चात् (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**सहवीराम्**) वीरपुरुषों से युक्त सेना और (**रयिम्**) धन को (**दाः**) दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो दुष्ट आचारों के त्यागी कुत्सित जनों के रोकने वाले अज्ञान तथा अदान को पृथक् करते और दुर्व्यसनों से पृथक् हुए सुख दुःख के सहने और वीरपुरुषों की सेना से प्रीति करनेवाले गुणों के अनुकूल जनों का ठीक सत्कार करते हुए न्याय से राज्य पालें वे सदा सुखी होवें ॥ ६ ॥

अनाधृष्य इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अच्छे प्रकार राजनीति का संग्रह करनेवाले राजन् ! जो आप (**अद्य**) इस समय (**इह**) इस राजा के व्यवहार में (**मानुषीः**) मनुष्य-सम्बन्धी (**भियः**) रोगशोकादि भयों को नष्ट कीजिये (**शिवेभिः**) कल्याणकारी सभ्य सज्जनों के साथ (**अनिष्टृतः**) दुःख से पृथक् हुए (**अनाधृष्यः**) अन्यों से नहीं धमकाने योग्य (**जातवेदाः**) विद्या को प्राप्त (**विराट्**) विशेषकर प्रकाशमान (**क्षत्रभृत्**) राज्य के पोषक हैं सो आप (**नः**) हमारी (**दीदिहि**) कामना कीजिये (**विश्वाः**) सब (**आशाः**) दिशाओं को (**प्रमुञ्चन्**) अच्छे प्रकार मुक्त करते हुए हमारी (**वृधे**) वृद्धि के लिये (**परि, पाहि**) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थ—जो राजा वा राजपुरुष प्रजाओं को सन्तुष्ट कर मंगलरूप आचरण करने और विद्याओं से युक्त न्याय में प्रसन्न रहते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे सब दिशाओं में प्रवृत्त कीर्ति वाले होवें ॥ ७ ॥

बृहस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳसꣳशितं चित्सन्तराꣳ सꣳशिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्वऽएनमनु मदन्तु देवाः ॥८॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़े सज्जनों के रक्षक (सवितः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त संपूर्ण विद्या के उपदेशक आप (एनम्) इस राजा को (संशितम्) तीक्ष्ण बुद्धि के स्वभाव वाला करते हुए (बोधय) चेतनायुक्त कीजिये और (सम्, शिशाधि) सम्यक् शिक्षा कीजिये (चित्) और (सन्तराम्) अतिशय करके प्रजा को शिक्षा कीजिये (एनम्) इस राजा को (महते) बड़े (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य होने के लिये (वर्धय) बढ़ाइये और (विश्वे) सब (देवाः) सुन्दर सभ्य विद्वान् (एनम्) इस राजा के (अनु, मदन्तु) अनुकूल प्रसन्न हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो राजसभा का उपदेशक है वह इन राजादि को दुर्व्यसनों से पृथक् कर और सुशीलता को प्राप्त कराके बड़े ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये प्रवृत्त करे ॥ ८ ॥

अमुत्रेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥९॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों के रक्षक विद्वन् ! आप (अमुत्रभूयात्) परजन्म में होने वाले (अभिशस्तेः) सब प्रकार के अपराध से (अमुञ्चः) छुटिये (अध) इस के अनन्तर (यत्) जो (यमस्य) धर्मात्मा नियमकर्त्ता जन की शिक्षा में रहे उस के (मृत्युम्) मृत्यु को छुड़ाइये । हे (अग्ने) उत्तम वैद्य आप जैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (शचीभिः) कर्म वा बुद्धियों से (भिषजा) रोगनिवारक पदार्थों को (प्रति, औहताम) विशेष तर्क से सिद्ध करें वैसे (अस्मात्) इससे (देवानाम्) विद्वानों के आरोग्य को सिद्ध कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक हैं जो इस लोक और परलोक में सुख होने के लिये सब को अच्छी शिक्षा करें जिससे ब्रह्मचर्यादि कर्मों का सेवन कर मनुष्य अल्पावस्था में मृत्यु और आनन्द की हानि को न प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

उद्वयमित्यस्याग्निर्ऋषिः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (ज्योतिः) प्रकाशमान सूर्यमण्डल को (पश्यन्तः) देखते हुए (स्वः) सुख के साधक (उत्तरम्) सब लोगों को दुःख से पार उतारने वाले (देवत्रा) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों में वर्त्तमान (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ (सूर्यम्) चराचर के आत्मा (देवम्) प्रकाशमान जगदीश्वर को (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कर्षपूर्वक प्राप्त हों वैसे उस ईश्वर को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् हुए स्वयं प्रकाशित बड़े देवता सब से उत्तम सब के अन्तर्यामी परमात्मा की ही उपासना करते हैं वे मुक्ति के सुख को भी अवश्य निर्विघ्न प्रीतिपूर्वक प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

ऊर्ध्वा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (अस्य) इस (सुप्रतीकस्य) सुन्दर प्रतीतिकारक कर्मों से युक्त (सूनोः) प्राणियों के गर्भों को छुड़ाने हारे (अग्नेः)अग्नि की (ऊर्ध्वाः) उत्तम (समिधः) सम्यक् प्रकाश करनेवाली समिधा तथा (ऊर्ध्वा) ऊपर को जाने वाले (द्युमत्तमा) अति उत्तम प्रकाशयुक्त (शुक्रा) शुद्ध (शोचींषि) तेज (भवन्ति) होते हैं उस को तुम जानो ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह ऊपर को उठाने वाला सब के देखने का हेतु सब की रक्षा का निमित्त अग्नि है उसको जान के कार्यों को निरन्तर सिद्ध किया करो ॥ ११ ॥

तनूनपादित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब वायु किस के समान कार्यसाधक है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (देवेषु) उत्तम गुण वाले पदार्थों में (देवः) उत्तम गुण वाला (असुरः) प्रकाशरहित वायु (विश्ववेदाः) सब को प्राप्त होने वाला (तनूनपात्) जो शरीर में नहीं गिरता (देवः) कामना करने योग्य (मध्वा) मधुर (घृतेन) जल के साथ (पथः) श्रोत्रादि के मार्गों को (अनक्तु) प्रकट करे उस को तुम जानो ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर बड़ा देव सब में व्यापक और सब को सुख करनेहारा है वैसा वायु भी है क्योंकि इस वायु के विना कोई कहीं भी नहीं जा सकता ॥ १२ ॥

मध्वेत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसो अग्ने ।
सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (नराशंसः) मनुष्यों की प्रशंसा करने (सुकृत्) उत्तम काम करने और (विश्वारः) प्रशंसा को स्वीकार करनेवाले (प्रीणानः) चाहना करते हुए (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाले (देवः) व्यवहार में चतुर आप (मध्वा) मधुर वचन से (यज्ञम्) संगत व्यवहार को (नक्षसे) प्राप्त होते हो उन आप को हम लोग प्रसन्न करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञ में सुगन्धादि पदार्थों के होम से वायु जल को शुद्ध कर सब को सुखी करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

अच्छेत्यस्याग्निर्ऋषिः । वह्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अग्नि से उपकार लेना चाहिये इस विषय को अगले मंत्रों में कहा है—

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा ।
अग्निꣳस्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह (ईडानः) स्तुति करता हुआ (वह्निः) विद्या का पहुँचाने वाला विद्वान् जन (प्रयत्सु) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य (अध्वरेषु) विघ्नों से पृथक् वर्त्तमान यज्ञों में (शवसा) बल (घृतेन) जल और (नमसा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान (अग्निम्) अग्नि तथा (स्रुचः) होम के साधन स्रुवा आदि को (अच्छ, एति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उस का तुम लोग सत्कार करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो अग्नि इन्धनों और जल से युक्त यानों में प्रयुक्त किया हुआ बल से शीघ्र चलता है उस को जानके उपकार में लाओ ॥ १४ ॥

स यक्षदित्यस्याग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ई मन्द्रा सुप्रयसः ।
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥१५॥

पदार्थ—(सः) वह पूर्वोक्त विद्वान् मनुष्य (सुप्रयसः) प्रीतिकारक सुन्दर अन्नादि के हेतु (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (महिमानम्) बड़प्पन को (यक्षत्) सम्यक् प्राप्त हो तथा (सः) वह (वसुः) निवास का हेतु (चेतिष्ठः) अतिशय कर जानने वाला (च) और (वसुधातमः) अत्यन्त धनों को धारण करने वाला हुआ (ईम्) जल तथा (मन्द्रा) आनन्ददायक होमने योग्य पदार्थों को प्राप्त होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो पुरुष इस प्रकार अग्नि के बड़प्पन को जाने सो अतिधनी होवे ॥ १५ ॥

द्वारो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । देव्यो देवताः । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः ।
उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥१६॥

पदार्थ—जो (विश्वे) सब (पत्यमानाः) मालिकपन करते हुए विद्वान् (उरुव्यचसः) बहुतों में व्यापक (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (धाम्ना) स्थान से (देवीः) प्रकाशित (द्वारः) द्वारों तथा (व्रता) सत्यभाषणादि व्रतों का (अनु, ददन्ते) अनुकूल उपदेश देते हैं वे सुन्दर ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥१६॥

भावार्थ—जो लोग अग्नि की विद्या के द्वारों को जानते हैं वे सत्य आचरण करते हुए अति आनन्दित होते हैं ॥ १६ ॥

ते अस्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता ।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ते) वे (उषासानक्ता) रात्रि और दिन (अस्य) इस पुरुष के (योनौ) घर में (दिव्ये) उत्तम रूपवाली (योषणे) दो स्त्रियों के (न) समान वर्त्तमान (नः) हमारे जिस (इमम्) इस (अध्वरम्) विनाश न करने योग्य (यज्ञम्) यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करें उस को तुम लोग जानो ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विदुषी स्त्री घर के कार्यों को सिद्ध करती है वैसे अग्नि से उत्पन्न हुए रात्रि दिन सब व्यवहार को सिद्ध करते हैं ॥ १७ ॥

दैव्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

दैव्या॑ होता॑रा ऊ॒र्ध्वम॑ध्व॒रं नो॑ऽग्नेर्जि॒ह्वाम॒भि गृ॑णीतम् ।

कृ॒णु॒तं नः॒ स्वि॑ष्टिम् ॥१८॥

पदार्थ—जो (दैव्या) विद्वानों में प्रसिद्ध हुए दो विद्वान् (होतारा) सुख के देने वाले (नः) हमारे (ऊर्ध्वम्) उन्नति को प्राप्त (अध्वरम्) नहीं बिगाड़ने योग्य व्यवहार को (अभि, गृणीतम्) सब ओर से प्रशंसा करें वे दोनों (नः) हमारी (स्विष्टिम्) सुन्दर यज्ञ के निमित्त (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वाम्) ज्वाला को (कृणुतम्) सिद्ध करें ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो जिज्ञासु और अध्यापक लोग अग्नि की विद्या को जानें तो विश्व की उन्नति करें ॥ १८ ॥

तिस्रो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । इडादयो लिङ्गोक्ता देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये इस विषय को कहा है—

ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॒दꣳ स॑दन्त्विडा॒ सर॑स्वती॒ भार॑ती ।

म॒ही गृ॑णा॒ना ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम लोग जो (मही) बड़ी (गृणाना) स्तुति करती हुई (इडा) स्तुति करने योग्य (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान वाली और (भारती) सब शास्त्रों को धारण करने हारी जो (तिस्रः) तीन (देवीः) चाहने योग्य वाणी (इदम्) इस (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों उन तीनों प्रकार की वाणियों को सम्यक् जानो ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य व्यवहार में चतुर सब शास्त्र की विद्याओं से युक्त सत्यादि व्यवहारों को धारण करने हारी वाणी को प्राप्त हों वे स्तुति के योग्य हुए महान् होवें ॥ १९ ॥

तन्न इत्यस्याग्निर्ऋषिः । त्वष्टा देवताः । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तन्न॑स्तु॒रीप॒मद्भु॑तं पुरु॒क्षु त्वष्टा॑ सु॒वीर्य॑म् ।

रा॒यस्पोषं॒ विष्य॑तु॒ नाभि॑म॒स्मे ॥२०॥

पदार्थ—(त्वष्टा) विद्या से प्रकाशित ईश्वर (अस्मे) हमारे (नाभिम्) मध्यप्रदेश के प्रति (तुरीपम्) शीघ्रता को प्राप्त होने वाले (अद्भुतम्) आश्चर्यरूप गुण कर्म और स्वभावों से युक्त (पुरुक्षु) बहुत पदार्थों में बसने वाले (सुवीर्यम्) सुन्दर बलयुक्त (तम्) उस प्रसिद्ध (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को देवे और (नः) हम लोगों को दुःख से (वि, स्यतु) छुड़ावे ॥२०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो शीघ्रकारी आश्चर्यरूप बहुतों में व्यापक धन वा बल है उस को तुम लोग ईश्वर की प्रार्थना से प्राप्त होके आनन्दित होओ ॥२०॥

वनस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

जिज्ञासु कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वन॑स्पते॒ऽव॑ सृ॒जा रर्रा॑ण॒स्त्मना॑ दे॒वेषु॑ ।

अ॒ग्निर्ह॒व्यꣳ श॑मि॒ता सू॑दयाति ॥२१॥

पदार्थ—हे (वनस्पते) सेवन योग्य शास्त्र के रक्षक जिज्ञासु पुरुष ! जैसे (शमिता) यज्ञसम्बन्धी (अग्निः) अग्नि (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्यों को (सूदयाति) सूक्ष्म कर वायु में पसारता है वैसे (त्मना) अपने आत्मा से (देवेषु) दिव्य गुणों के समान विद्वानों में (रराणः) रमण करते हुए ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (अव, सृज) उत्तम प्रकार से बनाओ ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शुद्ध आकाश आदि में अग्नि शोभायमान होता है वैसे विद्वानों में स्थित जिज्ञासु पुरुष सुन्दर प्रकाशित स्वरूप वाला होता है ॥२१॥

अग्ने स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने॒ स्वाहा॑ कृणुहि जातवेद॒ इन्द्रा॑य ह॒व्यम् ।

विश्वे॑ दे॒वा ह॒विरि॒दं जु॑षन्ताम् ॥२२॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! आप (इन्द्राय) उक्त ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (कृणुहि) प्रसिद्ध कीजिये (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (इदम्) इस (हविः) ग्रहण करने योग्य उत्तम वस्तु को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥२२॥

भावार्थ—जो मनुष्य ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये प्रयत्न करें तो सत्य परमात्मा और विद्वानों का सेवन किया करें ॥२२॥

पीवो अन्नेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा सन्तान सुखी करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पीवो॑अन्ना रयि॒वृधः॑ सुमे॒धाः श्वे॒तः सि॑षक्ति नि॒युता॑मभि॒श्रीः ।

ते वा॒यवे॒ सम॑नसो॒ वित॑स्थु॒र्विश्वेन्नरः॑ स्वप॒त्यानि॑ चक्रुः ॥२३॥

पदार्थ—जो (समनसः) तुल्य ज्ञान वाले (रयिवृधः) धन को बढ़ानेवाले (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धिमान् (नरः) नायक पुरुष (पीवोअन्ना) पुष्टिकारक अन्न वाले (विश्वा) सब (स्वपत्यानि) सुन्दर सन्तानों को (चक्रुः) करें (ते) वे (इत्) ही (वायवे) वायु की विद्या के लिये (वि, तस्थुः) विशेष कर स्थित हों जब (नियुताम्) निश्चित चलने हारे जनों का (अभिश्रीः) सब ओर से शोभायुक्त (श्वेतः) गमनशील वा उन्नति करनेहारा वायु सब को (सिषक्ति) सींचता है तब वह शोभायुक्त होता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सब के जीवन का मूल है वैसे उत्तम सन्तान सब के सुख के निमित्त होते हैं ॥२३॥

राय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

रा॒ये नु यं ज॒ज्ञतू॒ रोद॑सी॒मे रा॒ये दे॒वी धि॒षणा॑ धाति दे॒वम् ।

अध॑ वा॒युं नि॒युतः॑ सश्चत॒ स्वा उ॒त श्वे॒तं वसु॑धितिं निरे॒के ॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (इमे) ये (रोदसी) आकाश भूमि (राये) धन के अर्थ (यम्) जिसको (जज्ञतुः) उत्पन्न करें (देवीः) उत्तम गुण वाली (धिषणा) बुद्धि के समान वर्त्तमान स्त्री जिस (देवम्) उत्तम पति को (राये) धन के लिये (नु) शीघ्र (धाति) धारण करती है (अध) इस के अनन्तर (निरेके) निश्शङ्क स्थान में (स्वाः) अपने सम्बन्धी (नियुतः) निश्चय कर मिलाने वा पृथक् करने वाले जन (श्वेतम्) वृद्ध (उत) और (वसुधितम्) पृथिव्यादि वसुओं के धारण के हेतु (वायुम्) वायु को (सश्चत) प्राप्त होते हैं उस को तुम लोग जानो ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग बल आदि गुणों से युक्त सब के धारण करने वाले वायु को जान के धन और बुद्धि को बढ़ावें । जो एकान्त में स्थित हो के इस प्राण के द्वारा अपने स्वरूप और परमात्मा को जानना चाहें तो इन दोनों आत्माओं का साक्षात्कार होता है ॥२४॥

आप इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आपो॑ ह॒ यद्बृ॑ह॒तीर्विश्व॒माय॒न् गर्भं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर॒ग्निम् ।

ततो॑ दे॒वाना॒ꣳ सम॑वर्त्त॒तासु॒रेकः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥२५॥

पदार्थ—(बृहतीः) महत् परिमाण वाली (जनयन्तीः) पृथिव्यादि को प्रकट करने हारी (यत्) जिस (विश्वम्) सब में प्रवेश किये हुए (गर्भम्) सब के मूल प्रधान को (दधानाः) धारण करती हुई (आपः) व्यापक जलों की सूक्ष्म-मात्रा (आयन्) प्राप्त हों (ततः) उससे (अग्निम्) सूर्यादि रूप अग्नि को (देवानाम्) उत्तम पृथिव्यादि पदार्थों का सम्बन्धी (एकः) एक असहाय (असुः) प्राण (सम्, अवर्त्तत) सम्यक् प्रवृत्त करे उस (ह) ही (कस्मै) सुख के निमित्त (देवाय) उत्तम गुण युक्त ईश्वर के लिये हम लोग (हविषा) धारण करने से (विधेम) सेवा करने वाले हों ॥ २५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो स्थूल पञ्चतत्त्व दीख पड़ते हैं उनका सूक्ष्म प्रकृति के कार्य पञ्चतन्मात्र नामक से उत्पन्न हुए जानो जिनके बीच जो एक सूत्रात्मा वायु है वह सब धारण करता है यह जानो जो उस वायु के द्वारा योगाभ्यास से परमात्मा को जानना चाहो तो उसको साक्षात् जान सको ॥२५॥

यश्चिदित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन मनुष्य आनन्दित होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यश्चि॒दापो॑ महि॒ना प॒र्यप॑श्य॒द्दक्षं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर्य॒ज्ञम् ।

यो दे॒वेष्वधि॑ दे॒व एक॒ आसी॒त्कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥२६॥

पदार्थ—(यः) जो परमेश्वर (महिना) अपने व्यापकपन के महिमा से (दक्षम्) बल को (दधानाः) धारण करती (यज्ञम्) सङ्गत संसार को (जनयन्तीः) उत्पन्न करती हुई (आपः) व्याप्तिशील सूक्ष्म जल की मात्रा हैं उनको (पर्यपश्यत्) सब ओर से देखता है (यः) जो ईश्वर (देवेषु) उत्तम गुण वाले प्रकृति आदि और जीवों में (एकः) एक (अधि, देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला (आसीत्) है उस (चित्) ही (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सब

सुखों के दाता ईश्वर की हम लोग (हविषा) आज्ञापालन और योगाभ्यास के कारण से (विधेम) सेवा करें ॥२६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोग सब के द्रष्टा धर्त्ता कर्त्ता अद्वितीय अधिष्ठाता परमात्मा के जानने को नित्य योगाभ्यास करते हैं वे आनन्दित होते हैं ॥२६॥

प्रयाभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वान को कैसा होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रयाभिर्यासि दाश्वाᳬसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिᳬ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥

पदार्थ—हे (वायो) विद्वन् ! वायु के समान वर्त्तमान आप (प्र, याभिः) अच्छे प्रकार चाहने योग्य (नियुद्भिः) नियत गुणों से (इष्टये) अभीष्ट सुख के अर्थ (अच्छ, यासि) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हो (दुरोणे) घर में (नः) हमारे (सुभोजसम्) सुन्दर भोगने के हेतु (दाश्वांसम्) सुख के दाता (रयिम्) धन को (नि, युवस्व) निरन्तर मिश्रित कीजिये (वीरम्) विज्ञानादि गुणों को प्राप्त (गव्यम्) गौ के हितकारी (च) तथा (अश्व्यम्) घोड़े के लिये हितैषी (राधः) धन को (नि) निरन्तर प्राप्त कीजिये ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सब जीवन आदि इष्ट कर्मों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् पुरुष इस संसार में वर्त्ते ॥ २७ ॥

आ न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरᳬ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥

पदार्थ—हे (वायो) वायु के तुल्य बलवान् विद्वन् ! जैसे वायु (नियुद्भिः) निश्चित मिली या पृथक् जाने आने रूप (शतिनीभिः) बहुत कर्मों वाली (सहस्रिणीभिः) बहुत वेगों वाली गतियों से (अस्मिन्) इस (सवने) उत्पत्ति के आधार जगत् में (नः) हमारे (अध्वरम्) न बिगाड़ने योग्य (यज्ञम्) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (उप) निकट प्राप्त होता है वैसे आप (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (मादयस्व) और आनन्दित कीजिये । हे विद्वानो ! (यूयम्) आप लोग इस विद्या से (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (नः) हम लोगों की (सदा) सब काल में (पात) रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोग, जैसे वायु विविध प्रकार की चालों से सब पदार्थों को पुष्ट करते हैं वैसे ही अच्छी शिक्षा से सब को पुष्ट करें ॥ २८ ॥

नियुत्वानित्यस्य गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नियुत्वान् वायवा गह्ययᳬ शुक्रो अयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२९॥

पदार्थ—हे (वायो) वायु के तुल्य शीघ्रगन्ता (नियुत्वान्) नियमकर्त्ता ईश्वर ! आप जैसे (अयम्) यह (शुक्रः) पवित्रकर्त्ता (गन्ता) गमनशील वायु (सुन्वतः) रस खींचने वाले के (गृहम्) घर को प्राप्त होता है वैसे मुझ को (आ, गहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये जिससे आप ईश्वर (असि) हैं इससे (ते) आप के स्वरूप को मैं (अयामि) प्राप्त होता हूँ ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सब को शोधने और सर्वत्र पहुँचने वाला तथा सब को प्राण से भी प्यारा है वैसे ईश्वर भी है ॥२९॥

वायो शुक्र इत्यस्य पुरुमीढ ऋषिः । वायुर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—

वायो शुक्रोऽअयामि ते मध्वोऽअग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥३०॥

पदार्थ—हे (वायो) जो वायु के समान वर्त्तमान विद्वन् ! (शुक्रः) शुद्धिकारक आप हैं (ते) आप के (मध्वः) मधुर वचन के (अग्रम्) उत्तम भाग को (दिविष्टिषु) उत्तम संगतियों में मैं (अयामि) प्राप्त होता हूँ । हे (देव) उत्तम गुणयुक्त विद्वान् पुरुष ! (स्पार्हः) उत्तम गुणों की अभिलाषा से युक्त के पुत्र आप (नियुत्वता) वायु के साथ (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों का रस पीने के लिये (आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे वायु सब रस और गन्ध आदि को पीके सब को पुष्ट करता है वैसे तू भी सब को पुष्ट किया कर ॥ ३० ॥

वायुरित्यस्याजमीढ ऋषिः । वायुर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥३१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वायुः) पवन (नियुद्भिः) निश्चित (शिवाभिः) मङ्गलकारक क्रियाओं से (यज्ञम्) यज्ञ को (गन्) प्राप्त होता है वैसे (शिवः) मङ्गलस्वरूप (अग्रेगाः) अग्रगामी (यज्ञप्रीः) यज्ञ को पूर्ण करने हारे हुए आप (मनसा) मन की वृत्ति के (साकम्) साथ यज्ञ को प्राप्त हूजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस मन्त्र में (आ, याहि) इस पद की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है । जैसे वायु अनेक पदार्थों के साथ जाता आता है वैसे विद्वान् लोग धर्मयुक्त कर्मों को विज्ञान से प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

वाय इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥३२॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! (ये) जो (ते) आप के (सहस्रिणः) प्रशस्त सहस्रों मनुष्यों से युक्त (रथासः) सुन्दर आराम देने वाले यान हैं (तेभिः) उन के सहित (नियुत्वान्) समर्थ हुए आप (सोमपीतये) सोम ओषधि का रस पीने के लिये (आ, गहि) आइये ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे वायु की असंख्य रमण करने योग्य गति हैं वैसे अनेक प्रकार की गतियों से समर्थ होके ऐश्वर्य को भोगो ॥ ३२ ॥

एकयेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विᳬशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिᳬशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥३३॥

पदार्थ—हे (स्वभूते) अपने ऐश्वर्य से शोभायमान (वायो) वायु के तुल्य अर्थात् जैसे पवन (इह) इस जगत् में सङ्गति के लिये (एकया) एक प्रकार की गति (च) और (दशभिः) दशविध गतियों (च) और (द्वाभ्याम्) विद्या और पुरुषार्थ से (इष्टये) विद्या की सङ्गति के लिये (विंशती) दो बीसी (च) और (तिसृभिः) तीन प्रकार की गतियों से (च) और (त्रिंशता) तीस (च) और (नियुद्भिः) निश्चित नियमों के साथ यज्ञ को प्राप्त होता वैसे (वहसे) प्राप्त होते सो आप (ता) उन सब को (वि, मुञ्च) विशेष कर छोड़िये अर्थात् उन का उपदेश कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु इन्द्रिय प्राण और अनेक गतियों और पृथिव्यादि लोकों के साथ सब के इष्ट को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् भी सिद्ध करें ॥ ३३ ॥

तव वाय इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वायुर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब किसके तुल्य वायु का स्वीकार करें इस विषय को कहा है—

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाᳬस्या वृणीमहे ॥३४॥

पदार्थ—हे (ऋतस्पते) सत्य के रक्षक ! (जामातः) जमाई के तुल्य वर्त्तमान (अद्भुत) आश्चर्यरूप कर्म करनेवाले (वायो) बहुत बलयुक्त विद्वन् हम लोग जो (त्वष्टुः) विद्या से प्रकाशित (तव) आप के (अवांसि) रक्षा आदि कर्मों का (आ, वृणीमहे) स्वीकार करते हैं उन का आप भी स्वीकार करो ॥३४॥

भावार्थ—जैसे जमाई उत्तम आश्चर्य गुणों वाला सत्य ईश्वर का सेवक हुआ स्वीकार के योग्य होता है वैसे वायु भी स्वीकार करने योग्य है ॥३४॥

अभि त्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥३५॥

पदार्थ—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) सभापते ! (अदुग्धा इव) बिना दूध की (धेनवः) गौओं के समान हम लोग (अस्य) इस (जगतः) चर तथा (तस्थुषः) अचर संसार के (ईशानम्) नियन्ता (स्वर्दृशम्) सुखपूर्वक देखने योग्य ईश्वर के तुल्य (ईशानम्) समर्थ (त्वा) आप को (अभि, नोनुमः) सन्मुख से सत्कार वा प्रशंसा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आप पक्षपात छोड़ के ईश्वर के तुल्य न्यायाधीश होवें जो कदाचित् हम लोग कर भी न देवें तो भी हमारी रक्षा करें तो आप के अनुकूल हम सदा रहें ॥ ३५ ॥

न त्वावानित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । परमेश्वरो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर ही उपासना करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न त्वावाँ२ऽअन्यो दि॒व्यो न पार्थि॑वो न जा॒तो न ज॑निष्यते ।

अ॒श्वा॒यन्तो॑ मघवन्निन्द्र वाजिनो॑ ग॒व्यन्त॑स्त्वा हवामहे ॥३६॥

पदार्थ—हे (मघवन्) पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर ! (वाजिनः) वेगवाले (गव्यन्तः) उत्तम वाणी बोलते हुए (अश्वायन्तः) अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग (त्वा) आप की (हवामहे) स्तुति करते हैं क्योंकि जिस कारण कोई (अन्यः) अन्य पदार्थ (त्वावान्) आप के तुल्य (दिव्यः) शुद्ध (न) न कोई (पार्थिवः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (नः) न कोई (जातः) उत्पन्न हुआ और (नः) न (जनिष्यते) होगा इससे आप ही हमारे उपास्य देव हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ—न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है इसी से सब मनुष्यों को चाहिये कि इस को छोड़ अन्य किसी की उपासना इस के स्थान में कदापि न करें यही कर्म इस लोक परलोक में आनन्ददायक जानें ॥ ३६ ॥

त्वामिदित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वामिद्धि हवा॑महे सा॒तौ वाज॑स्य का॒रवः॑ ।

त्वां वृ॒त्रेष्विन्द्र सत्प॑तिं॒ नर॒स्त्वां काष्ठा॒स्वर्व॑तः ॥३७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के तुल्य जगत् के रक्षक राजन् ! (वाजस्य) विद्या वा विज्ञान से हुए कार्य के (हि) ही (कारवः) करनेवाले (नरः) नायक हम लोग (सातौ) रण में (त्वाम्) आपको जैसे (वृत्रेषु) मेघों में सूर्य को वैसे (सत्पतिम्) सत्य के प्रचार से रक्षक (त्वाम्) आप को (अर्वतः) शीघ्रगामी घोड़े के तुल्य सेना में देखें (काष्ठासु) दिशाओं में (त्वाम्) आप को (इत्) ही (हवामहे) ग्रहण करें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे सेना और सभा के पति तुम दोनों सूर्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक शिल्पियों का संग्रह करने और सत्य के प्रचार करने वाले होओ ॥ ३७ ॥

स त्वमित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विद्वान् क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स त्वं न॑श्चित्र वज्रहस्त धृष्णु॒या म॒हस्त॑वा॒नो ऽअ॑द्रिवः ।

गामश्व॑ꣳ र॒थ्य᳖मिन्द्र॒ सं कि॑र स॒त्रा वाजं॒ न जि॒ग्युषे॑ ॥३८॥

पदार्थ—हे (चित्र) आश्चर्यस्वरूप (वज्रहस्त) वज्र हाथ में लिये (अद्रिवः) प्रशस्त पत्थर के बने हुए वस्तुओं वाले (इन्द्र) शत्रुनाशक विद्वन् (धृष्णुया) ढीठता से (महः) बहुत (स्तवानः) स्तुति करते हुए (सः) सो पूर्वोक्त (त्वम्) आप (जिग्युषे) जय करनेवाले पुरुष के लिये तथा (नः) हमारे लिये (सत्रा) सत्य (वाजम्) विज्ञान के (न) तुल्य (गाम्) बैल तथा (रथ्यम्) रथ के योग्य (अश्वम्) घोड़े को (सं, किर) सम्यक् प्राप्त कीजिये ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मेघसम्बन्धी सूर्य वर्षा से सब को सम्बद्ध करता है वैसे विद्वान् सत्य के विज्ञान से सब के ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है ॥ ३८ ॥

कया न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कया॑ नश्चि॒त्र आ भु॑वदू॒ती स॒दावृ॑धः॒ सखा॑ ।

कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता ॥३९॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! (चित्रः) आश्चर्य कर्म करने हारे (सदावृधः) जो सदा बढ़ता है उस के (सखा) मित्र (आ, भुवत्) हूजिये (कया) किसी (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (नः) हमारी रक्षा कीजिये (कया) किसी (शचिष्ठया) अत्यन्त निकट सम्बन्धिनी (वृता) वर्त्तमान क्रिया से हम को युक्त कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जो आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला विद्वान् सब का मित्र हो और कुकर्मों की निवृत्ति करके उत्तम कर्मों से हम को युक्त करे उस का हम को सत्कार करना चाहिये ॥ ३९ ॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसे जन धन को प्राप्त होते इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मꣳहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः ।

दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥४०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (कः) सुखदाता (सत्यः) श्रेष्ठों में उत्तम (मंहिष्ठः) अति महत्वयुक्त विद्वान् (त्वा) आप को (अन्धसः) अन्न से हुए (मदानाम्) आनन्दों में (मत्सत्) प्रसन्न करे (आरुजे) अतिरोग के अर्थ ओषधियों को जैसे इकट्ठा करे (चित्) वैसे (दृढा) दृढ़ (वसु) द्रव्यों का सञ्चय करे सो हम को सत्कार के योग्य होवे ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सत्य में प्रीति रखने और आनन्द देनेवाला विद्वान परोपकार के लिये रोगनिवारणार्थ ओषधियों के तुल्य वस्तुओं का सञ्चय करे वही सत्कार के योग्य होवे ॥ ४० ॥

अभीषुण इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अ॒भी षु णः॒ सखी॑नामवि॒ता ज॑रितृ॒णाम् । श॒तं भ॑वास्यू॒तये॑ ॥४१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो आप (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्रों तथा (जरितृणाम्) स्तुति करनेवाले जनों के (अविता) रक्षक (ऊतये) प्रीति आदि के अर्थ (शतम्) सैकड़ों प्रकार से (सु, भवासि) सुन्दर रीति कर के हूजिये सो आप (अभि) सब ओर से सत्कार के योग्य हों ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने मित्रों के रक्षक असंख्य प्रकार का सुख देने हारे अनाथों की रक्षा मे प्रयत्न करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

यज्ञायज्ञेत्यस्य शम्युर्ऋषिः । यज्ञो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

य॒ज्ञाय॑ज्ञा वो ऽअ॒ग्नये॑ गि॒रागि॑रा च॒ दक्ष॑से ।

प्र प्र व॒यम॒मृत॑ं जा॒तवे॑दसं प्रि॒यं मि॒त्रं न श॑ꣳसिषम् ॥४२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अग्नये) अग्नि के लिये (च) और (गिरागिरा) वाणी वाणी से (दक्षसे) बल के अर्थ (यज्ञायज्ञा) यज्ञ यज्ञ में (वः) तुम लोगों की (प्र, प्र, शंसिषम्) प्रशंसा करूं (वयम्) हम लोग (जातवेदसम्) ज्ञानी (अमृतम्) आत्मरूप से अविनाशी (प्रियम्) प्रीति के विषय (मित्रम्) मित्र के (न) तुल्य तुम्हारी प्रशंसा करें वैसे तुम भी आचरण किया करो ॥ ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम शिक्षित वाणी से यज्ञों का अनुष्ठान कर बल बढ़ा और मित्रों के समान विद्वानों का सत्कार करके समागम करते हैं वे बहुत ज्ञान वाले धनी होते हैं ॥४२॥

पाहि न इत्यस्य भार्गवऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

आप्त धर्मात्मा जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पा॒हि नो॑ अग्न॒ एक॑या पा॒ह्यु॒त द्वि॒तीय॑या ।

पा॒हि गी॒र्भिस्ति॒सृभि॑रूर्जां पते पा॒हि च॑त॒सृभि॑र्वसो ॥४३॥

पदार्थ—हे (वसो) सुन्दर वास देने हारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! आप (एकया) उत्तम शिक्षा से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये (द्वितीयया) दूसरी अध्यापन क्रिया से (पाहि) रक्षा कीजिये (तिसृभिः) कर्म उपासना ज्ञान की जताने वाली तीन (गीर्भिः) वाणियों से (पाहि) रक्षा कीजिये हे (ऊर्जाम्) बलों के (पते) रक्षक आप हमारी (चतसृभिः) धर्म अर्थ काम और मोक्ष इनका विज्ञान करानेवाली चार प्रकार की वाणी से (उत) भी (पाहि) रक्षा कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थ—सत्यवादी धर्मात्मा आप्तजन उपदेश करने और पढ़ाने से भिन्न किसी साधन को मनुष्य का कल्याणकारक नहीं जानते इससे नित्यप्रति अज्ञानियों पर कृपा कर सदा उपदेश करते और पढ़ाते हैं ॥ ४३ ॥

ऊर्जो नपातमित्यस्य शम्युर्ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

ऊ॒र्जो नपा॑त॒ꣳ स हि॒नायम॑स्म॒युर्दाशे॑म ह॒व्यदा॑तये ।

भुव॒द्वाजे॑ष्ववि॒ता भुव॑द्वृ॒ध ऽउ॒त त्रा॒ता त॒नूना॑म् ॥४४॥

पदार्थ—हे विद्यार्थिन् ! (सः) सो आप (ऊर्जः) पराक्रम को (नपातम्) न नष्ट करने हारे विद्या बोध को (हिन) बढ़ाइये जिससे (अयम्) यह प्रत्यक्ष आप (अस्मयुः) हम को चाहने और (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षा करने वाले (भुवत्) होवें (उत) और (तनूनाम्) शरीरों के (वृधे) बढ़ने के अर्थ (त्राता) पालन करनेवाले (भुवत्) होवें इससे आपको (हव्यदातये) देने योग्य पदार्थों के देने के लिये हम लोग (दाशेम) स्वीकार करें ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जो पराक्रम और बल को न नष्ट करे, शरीर और आत्मा की उन्नति करता हुआ रक्षक हो उसके लिये आप्तजन विद्या देवें । जो इस से विपरीत लम्पट दुष्टाचारी निन्दक हो वह विद्याग्रहण में अधिकारी नहीं होता यह जानो ॥ ४४ ॥

संवत्सर इत्यस्य शम्युर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

सं॒व॒त्स॒रो॑ऽसि परिवत्स॒रो॑ऽसीदावत्स॒रो॑ऽसीद्वत्स॒रो॑ऽसि वत्स॒रो॑ऽसि ।

उ॒षस॑स्ते कल्पन्तामहोरा॒त्रास्ते॑ कल्पन्तामर्द्धमा॒सास्ते॑ कल्पन्ता॒ मासा॑स्ते॑

कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताᳬ संवत्सरस्ते कल्पताम् । प्रेत्याऽएत्य सं चाञ्च प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥४५॥

पदार्थ—हे विद्वन् वा जिज्ञासु पुरुष ! जिससे तू (**संवत्सरः**) संवत्सर के तुल्य नियम से वर्त्तमान (**असि**) है (**परिवत्सरः**) त्याज्य वर्ष के समान दुराचरण का त्यागी (**असि**) है (**इदावत्सरः**) निश्चय से अच्छे प्रकार वर्त्तमान वर्ष के तुल्य (**असि**) है (**इद्वत्सरः**) निश्चित संवत्सर के सदृश (**असि**) है (**वत्सरः**) वर्ष के समान (**असि**) है इससे (**ते**) तेरे लिये (**उषसः**) कल्याणकारिणी उषा प्रभातवेला (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों (**ते**) तेरे लिये (**अहोरात्राः**) दिन रातें मङ्गलदायक (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों (**ते**) तेरे अर्थ (**अर्द्धमासाः**) शुक्ल कृष्ण पक्ष (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों (**ते**) तेरे लिये (**मासाः**) चैत्र आदि महीने (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों (**ते**) तेरे लिये (**ऋतवः**) वसन्तादि ऋतु (**कल्पन्ताम्**) समर्थ हों (**ते**) तेरे अर्थ (**संवत्सरः**) वर्ष (**कल्पताम्**) समर्थ हों । (**च**) और तू (**प्रेत्यै**) उत्तम प्राप्ति के लिये (**सम्, अञ्च**) सम्यक् प्राप्त हो (**च**) और तू (**एत्यै**) अच्छे प्रकार जाने के लिये (**प्र, सारय**) अपने प्रभाव का विस्तार कर जिस कारण तू (**सुपर्णचित्**) सुन्दर रक्षा के साधनों का संचयकर्त्ता (**असि**) है इससे (**तया**) उस (**देवतया**) उत्तम गुणयुक्त समय रूप देवता के साथ (**अङ्गिरस्वत्**) सूत्रात्मा प्राण वायु के समान (**ध्रुवः**) दृढ़ निश्चल (**सीद**) स्थिर हो ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जो आप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं खोते सुन्दर नियमों से वर्त्तते हुए कर्त्तव्य कर्मों को करते, छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं उनके प्रभात काल, दिन रात, पक्ष, महीने, ऋतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं इसलिये उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर अच्छे मार्ग से चल शुभ गुणों और सुखों का विस्तार करें । सुन्दर लक्षणों वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्म ग्रहण और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें ॥ ४५ ॥

इस अध्याय में सत्य की प्रशंसा का जानना, उत्तम गुणों का स्वीकार, राज्य का बढ़ाना, अनिष्ट की निवृत्ति, जीवन को बढ़ाना, मित्र का विश्वास, सर्वत्र कीर्ति करना, ऐश्वर्य को बढ़ाना, अल्पमृत्यु का निवारण, शुद्धि करना, सुकर्म का अनुष्ठान, यज्ञ करना, बहुत धन का धारण, मालिकपन का प्रतिपादन, सुन्दर वाणी का ग्रहण, सद्गुणों की इच्छा, अग्नि की प्रशंसा, विद्या और धन का बढ़ाना, कारण का वर्णन धन का उपयोग, परस्पर की रक्षा, वायु के गुणों का वर्णन, आधार आधेय का कथन, ईश्वर के गुणों का वर्णन, शूरवीर के कृत्यों का कहना, प्रसन्नता करना, मित्र की रक्षा, विद्वानों का आश्रय, अपने आत्मा की रक्षा, वीर्य की रक्षा और युक्त आहार विहार कहे हैं इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताइसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

卐 अथ अष्टाविंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अट्ठाईसवें अध्याय का आरम्भ है उसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को यज्ञ से कैसे बल बढ़ाना चाहिये इस विषय का वर्णन किया है—

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यतऽओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१॥

पदार्थ—हे (**होतः**) यजमान ! तू जैसे (**होता**) शुभ गुणों का ग्रहणकर्त्ता जन (**समिधा**) ज्ञान के प्रकाश से (**इडः**) वाणी सम्बन्धी (**पदे**) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (**पृथिव्याः**) भूमि के (**नाभा**) मध्य और (**दिवः**) प्रकाश के (**अधि**) ऊपर (**वर्ष्मन्**) वर्षने हारे मेघमण्डल में (**इन्द्रम्**) विजुलीरूप अग्नि को (**यक्षत्**) सङ्गत करे उससे (**ओजिष्ठः**) अतिशय कर बली हुआ (**चर्षणीसहाम्**) मनुष्यों के झुण्डों को सहने वाले योद्धाओं में (**सम्, इध्यते**) सम्यक् प्रकाशित होता है और (**आज्यस्य**) घृत आदि को (**वेतु**) प्राप्त होवे (**यज**) वैसे समागम किया कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि वेदमन्त्रों से सुगन्धित आदि द्रव्य अग्नि में छोड़ मेघमण्डल को पहुँचा और जल को शुद्ध करके सब के लिये बल बढ़ावें ॥ १ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृज्जगतीछन्दः । निषाद स्वरः ॥

राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् । इन्द्रं देवᳬ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशᳬसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२॥

पदार्थ—हे (**होतः**) ग्रहण करने वाले पुरुष ! आप जैसे (**होता**) सुख का दाता (**ऊतिभिः**) रक्षाओं तथा (**मधुमत्तमैः**) अति मीठे जल आदि से युक्त (**पथिभिः**) धर्मयुक्त मार्गों से (**तनूनपातम्**) शरीरों के रक्षक (**जेतारम्**) जयशील (**अपराजितम्**) शत्रुओं से न जीतने योग्य (**स्वर्विदम्**) सुख को प्राप्त (**देवम्**) विद्या और विनय से सुशोभित (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यकारक राजा का (**यक्षत्**) सङ्ग करे (**नराशंसेन**) मनुष्यों से प्रशंसा की गई (**तेजसा**) प्रगल्भता से (**आज्यस्य**) जानने योग्य विषय को (**वेतु**) प्राप्त हो वैसे (**यज**) सङ्ग कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा लोग स्वयं राज्य के न्याय मार्ग में चलते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे पराजय को न प्राप्त होते हुए शत्रुओं के जीतने वाले हों ॥ २ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥

पदार्थ—हे (**होतः**) ग्रहीता पुरुष ! आप जैसे (**होता**) सुखदाता जन (**इडाभिः**) अच्छी शिक्षित वाणियों से (**अमर्त्यम्**) साधारण मनुष्यों से विलक्षण (**आजुह्वानम्**) स्पर्द्धा करते हुए (**ईडितम्**) प्रशंसित (**इन्द्रम्**) उत्तम विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजपुरुष को (**यक्षत्**) प्राप्त होवे जैसे यह (**वज्रहस्तः**) हाथों में शस्त्र अस्त्र धारण किये (**पुरन्दरः**) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाला (**सवीर्यः**) बलयुक्त (**देवः**) विद्वान् जन (**देवैः**) विद्वानों के साथ (**आज्यस्य**) विज्ञान से रक्षा करने योग्य राज्य के अवयवों को (**वेतु**) प्राप्त होवे वैसे (**यज**) समागम कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजाओं की पालना करें वैसे ही प्रजा इनको पिता के तुल्य सेवें जो आप्त विद्वानों की अनुमति से सब काम करें वे भ्रम को नहीं पावें ॥ ३ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । रुद्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

होता यक्षद् बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् ।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४॥

पदार्थ—हे (**होतः**) उत्तम दान के दाता पुरुष ! (**होता**) सुख चाहने वाला पुरुष जैसे (**सयुग्भिः**) एक साथ योग करनेवाले (**वसुभिः**) प्रथम कक्षा के (**रुद्रैः**) मध्यम कक्षा के और (**आदित्यैः**) उत्तम कक्षा के विद्वानों के साथ (**बर्हिषि**) उत्तम विद्वानों की सभा में (**निषद्वरम्**) जिसके निकट श्रेष्ठ जन बैठें उस (**वृषभम्**) सब से उत्तम बली (**नर्यापसम्**) मनुष्यों के उत्तम कामों का सेवन करने हारे (**इन्द्रम्**) नीति से शोभित राजा को (**यक्षत्**) प्राप्त होवे (**आज्यस्य**) करने योग्य न्याय की (**बर्हिः**) उत्तम सभा में (**आ, असदत्**) स्थित होवे और (**वेतु**) सुख को प्राप्त होवे वैसे (**यज**) प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पृथिवी आदि लोक प्राण आदि वायु तथा काल के अवयव महीने सब साथ वर्त्तमान हैं वैसे जो राज और

प्रजा के जन आपस में अनुकूल वर्त्त के सभा से प्रजा का पालन करें वे उत्तम प्रशंसा को पाते हैं ॥ ४ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय को कहा है—

होता यक्षदोजो न वीर्य॑ᳬ सहो द्वार इन्द्रमवर्द्धयन् । सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५॥

पदार्थ—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे जो (सुप्रायणाः) सुन्दर अवकाश वाले (द्वारः) द्वार (ओजः) जलवेग के (न) समान (वीर्यम्) बल (सहः) सहन और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें उन (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले (द्वारः) विद्या और विनय के द्वारों को (मीढुषे) स्निग्ध वीर्यवान् (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राजा के लिये (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति के योग्य संसार में विद्वान् लोग (वि, श्रयन्ताम्) विशेष सेवन करें (आज्यस्य) जानने योग्य राज्य के विषय को (व्यन्तु) प्राप्त हों और (होता) ग्रहीता जन (यक्षत्) यज्ञ करे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य इस संसार में विद्या और धर्म के द्वारों को प्रसिद्ध कर पदार्थविद्या को सम्यक् सेवन करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे अतुल सुखों को पाते हैं ॥ ५ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही । सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्द्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥६॥

पदार्थ—हे (होतः) सुखदाता जन ! आप जैसे (इन्द्रस्य) बिजुली की (सुदुघे) सुन्दर कामनाओं की पूरक (मातरा) माता के तुल्य वर्त्तमान (मही) बड़ी (धेनु, सवातरौ) वायु के साथ वर्त्तमान दुग्ध देने वाली दो गौ के (न) समान (उषे) प्रतापयुक्त भौतिक और सूर्यरूप अग्नि के (तेजसा) तीक्ष्ण प्रताप से (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त (वत्सम्) बालक को (वीताम्) प्राप्त हों तथा (होता) दाता (आज्यस्य) फेंकने योग्य वस्तु का (यक्षत्) संग करे और (अवर्द्धताम्) बढ़े वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! तुम जैसे वायु से प्रेरणा किए भौतिक और विद्युत् अग्नि सूर्यलोक के तेज को बढ़ाते हैं और जैसे दुग्धदात्री गौ के तुल्य वर्त्तमान प्रतापयुक्त दिन रात सब व्यवहारों के आरंभ और निवृत्ति कराने हारे होते हैं वैसे यत्न किया करो ॥ ६ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो गोतम ऋषिः । अश्विनौ देवते । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः । कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥७॥

पदार्थ—हे (होतः) युक्त आहार विहार के करने हारे वैद्यजन ! जैसे (होता) सुख देनेहारे आप (आज्यस्य) जानने योग्य निदान आदि विषय को (यक्षत्) संगत करते हैं (दैव्या) विद्वानों में उत्तम (होतारा) रोग को निवृत्त कर सुख के देनेवाले (सखाया) परस्पर मित्र (कवी) बुद्धिमान् (प्रचेतसौ) उत्तम विज्ञान से युक्त (देवौ) वैद्यक विद्या से प्रकाशमान (भिषजा) चिकित्सा करने वाले दो वैद्य (हविषा) यथायोग्य ग्रहण करने योग्य व्यवहार से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य के चाहने वाले जीव की (भिषज्यतः) चिकित्सा करते (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (इन्द्रियम्) धन को (धत्तः) धारण करते और अवस्था को (वीताम्) प्राप्त होते हैं वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ वैद्य रोगियों पर कृपा कर ओषधि आदि के उपाय से रोगों को निवृत्त कर ऐश्वर्य और आयुर्दा को बढ़ाते हैं वैसे तुम लोग सब प्राणियों में मित्रता की वृति कर सबके सुख और अवस्था को बढ़ाओ ॥ ७ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥८॥

पदार्थ—हे (होतः) सुख चाहने वाले जन ! जैसे (होता) विद्या का देने लेने वाला अध्यापक (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार को (यक्षत्) प्राप्त होवे जैसे (त्रिधातवः) हाड़, चर्बी और वीर्य इन तीन धातुओं के वर्धक(अपसः) कर्मों में चेष्टा करते हुए (त्रयः) अध्यापक, उपदेशक और वैद्य (तिस्रः) तीन (देवीः) सब विद्याओं की प्रकाशिका वाणियों के (न) समान (भेषजम्) औषध को (महीः) बड़ी (पूज्य) इडा प्रशंसा के योग्य (सरस्वती) बहुत विज्ञानवाली और (भारती) सुन्दर विद्या का धारण वा पोषण करने वाली (हविष्मतीः) विविध विज्ञानों के सहित (इन्द्रपत्नीः) जीवात्मा की स्त्रियों के तुल्य वर्तमान वाणी (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे (यज) उनको संगत कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रशंसित विज्ञानवती और उत्तम बुद्धिमती स्त्रियां अपने योग्य पतियों को प्राप्त होकर प्रसन्न होती हैं वैसे अध्यापक उपदेशक और वैद्य लोग स्तुति ज्ञान और योगधारणायुक्त तीन प्रकार की वाणियों को प्राप्त होकर आनन्दित होते है ॥ ८ ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजᳬ सुयजं घृतश्रियम् । पुरुरूपᳬ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९॥

पदार्थ—हे (होतः) शुभगुणों के दाता ! जैसे (होता) पथ्य आहार विहार कर्ता जन (त्वष्टारम्) धातुवैषम्य से हुए दोषों को नष्ट करने वाले सुन्दर पराक्रमयुक्त (मघोनम्) परम प्रशस्त धनवान् (पुरुरूपम्) बहुरूप (घृतश्रियम्) जल से शोभायमान (सुयजम्) सुन्दर संग करने वाले (भिषजम्) वैद्य (देवम्) तेजस्वी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (यक्षत्) संग करता है और (आज्यस्य) जानने योग्य वचन के (इन्द्राय) प्रेरक जीव के लिये (इन्द्रियाणि) कान आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी हुआ (वेतु) प्राप्त होता है वैसे तू (यज) संग कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग आप्त सत्यवादी रोगनिवारक सुन्दर ओषधि देने, धन ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले वैद्यजन का सेवन कर शरीर आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के बल को बढ़ा के परम ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

होता यक्षद्वनस्पतिᳬ शमितारᳬ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन्पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१०॥

पदार्थ—हे (होतः) दान देने हारे जन ! जैसे (होता) यज्ञकर्ता पुरुष (वनस्पतिम्) किरणों के स्वामी सूर्य के तुल्य (शमितारम्) यजमान (शतक्रतुम्) अनेक प्रकार की बुद्धि से युक्त (धियः) बुद्धि वा कर्म को (जोष्टारम्) प्रसन्न वा सेवन करते हुए पुरुष का (यक्षत्) संग करे (मध्वा) मधुर विज्ञान से (सुगेभिः) सुखपूर्वक गमन करने के आधार (पथिभिः) मार्गों करके (आज्यस्य) जानने योग्य संसार के (इन्द्रियम्) धन को (समञ्जन्) सम्यक् प्रकट करता हुआ (स्वदाति) स्वाद लेवे और (मधुना) मधुर (घृतेन) घी वा जल से (यज्ञम्) संगति के योग्य व्यवहार को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) तुम भी प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या बुद्धि धर्म और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले धर्मयुक्त मार्गों से चलते हुए सुखों को भोगें वे औरों को भी सुख देनवाले होते हैं ॥ १० ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

होता यक्षदिन्द्रᳬ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाᳬ स्वाहा स्वाहाकृतीनाᳬ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥११॥

पदार्थ—हे (होतः) विद्यादाता पुरुष ! जैसे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का दाता (होता) विद्योन्नति को ग्रहण करने हारा जन (आज्यस्य) जानने योग्य शास्त्र की (स्वाहा) सत्य वाणी को (मेदसः) चिकने धातु की (स्वाहा) यथार्थ क्रिया को (स्तोकानाम्) छोटे बालकों की (स्वाहा) उत्तम प्रिय वाणी को (स्वाहाकृतीनाम्) सत्य वाणी तथा क्रिया के अनुष्ठानों की (स्वाहा) होम क्रिया को और (हव्यसूक्तीनाम्) बहुत ग्रहण करने योग्य शास्त्रों के सुन्दर वचनों से युक्त बुद्धियों की (स्वाहा) उत्तम क्रियायुक्त (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (यक्षत्) प्राप्त होता है जैसे (स्वाहा) सत्यवाणी करके (आज्यस्य) स्निग्ध वचन को (जुषाणाः) प्रसन्न किये हुए (आज्यपाः) घी आदि को पीने वा उससे रक्षा करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष शरीर, आत्मा, सन्तान, सत्कार और विद्या वृद्धि करना चाहते हैं वे सब ओर से सुखयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

देवं बर्हिरिन्द्रᳬ सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्द्धयत् । वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतᳬ राया । बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१२

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (बर्हिष्मतः) अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध रखने वाले वायु जलों को (अति, अगात्) उल्लङ्घन कर जाता (वसुधेयस्य) जिसमें धनों का धारण होता है उस जगत् के (वसुवने) धनों के सेवने तथा (वेद्याम्) हवन के

कुण्ड में (स्तीर्णम्) समिधा और घृतादि से रक्षा करने योग्य (वस्तोः) दिन में (वृतम्) स्वीकार किया (अक्तोः) रात्रि में (भृतम्) धारण किया हवन किया हुआ द्रव्य नीरोगता को (प्र, अवर्द्धयत्) अच्छे प्रकार बढ़ावे तथा सुख को (वेतु) प्राप्त करे वैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष के तुल्य (राया) धन के साथ (देवम्) उत्तम गुण वाले (देवैः) विद्वानों के साथ (वीरवत्) वीरजनों के तुल्य वर्त्तमान (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले (सुदेवम्) सुन्दर विद्वान् का (यज) संग कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यजमान वेदि में समिधाओं में सुन्दर प्रकार चयन किये और घृत चढ़ाये हुए अग्नि को बढ़ा अन्तरिक्षस्थ वायु जल आदि को शुद्ध कर रोग के निवारण से सब प्राणियों को तृप्त करता है वैसे ही सज्जन जन धनादि से सबको सुखी करते हैं ॥ १२ ॥

देवीरित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिक् शक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

दे॒वीर्द्वारो॒ इन्द्र॑ꣳसङ्घा॒ते वी॒ड्वीर्याम॑न्नवर्द्धयन्। आ व॒त्सेन॒ तरु॑णेन कुमा॒रेण॑ च मीव॒तापार्वा॑णꣳ रेणु॒कका॑टं नुदन्तां वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वीड्वीः) विशेषकर स्तुति के योग्य (देवीः) प्रकाशमान (द्वारः) द्वार (रेणुककाटम्) धूलि से युक्त कूप अर्थात् अन्धकूपा को (यामन्) मार्ग में छोड़ के (तरुणेन) ज्वान (मीवता) शूर दुष्ट हिंसा करते हुए (च) और (कुमारेण) ब्रह्मचारी (वत्सेन) बछड़े के तुल्य जन के साथ वर्त्तमान (अर्वाणम्) चलते हुए घोड़े यथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (आ, अवर्धयन्) बढ़ाते हैं (वसुवने) धन के सेवने योग्य (संघाते) सम्बन्ध में (वसुधेयस्य) धनधारक संसार के विघ्न को (अप, नुदन्ताम्) प्रेरित करो और (व्यन्तु) प्राप्त होओ वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे बटोही जन मार्ग में वर्त्तमान कूप को छोड़ शुद्ध मार्ग कर प्राणियों को सुख से पहुँचाते हैं वैसे बाल्यावस्था में विवाहादि विघ्नों को हटा विद्या प्राप्त कराके अपने सन्तानों को सुख के मार्ग में चलावें ॥ १३ ॥

देवीत्यस्याश्विनावृषी। अहोरात्रे देवते। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

दे॒वी उ॒षासा॒नक्तेन्द्रं॑ य॒ज्ञे प्र॑य॒त्यह्वे॑ताम्। दे॒वीर्विशः॒ प्राया॑सिष्टाꣳ सुप्री॒ते सुधि॑ते वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (सुप्रीते) सुन्दर प्रीति के हेतु (सुधिते) अच्छे हितकारी (देवी) प्रकाशमान (उषासानक्ता) रात दिन (प्रयति) प्रयत्न के निमित्त (यज्ञे) सङ्गति के योग्य यज्ञ आदि व्यवहार में (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त यजमान को (अह्वेताम्) शब्द व्यवहार कराते (वसुधेयस्य) जिसमें धन धारण हो उस खजाने के (वसुवने) धन विभाग में (देवीः) न्यायकारी विद्वानों की इन (विशः) प्रजाओं को (प्र, अयासिष्टाम्) प्राप्त होते हैं और सब जगत् को (वीताम्) प्राप्त हों वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे दिन रात नियम से वर्त्तकर प्राणियों को शब्दादि व्यवहार कराते हैं वैसे तुम लोग नियम से वर्त्तकर प्रजाओं को आनन्द दे सुखी करो ॥ १४ ॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

दे॒वी जोष्ट्री॒ वसु॑धिती दे॒वमिन्द्र॑मवर्धताम्। अया॑व्य॒न्याघा द्वेषा॑ꣳस्या॒न्या व॑क्ष॒द्वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒ते व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वसुधिती) द्रव्य को धारण करने वाले (जोष्ट्री) सब पदार्थों को सेवन करते हुए (देवी) प्रकाशमान दिन रात (देवम्) प्रकाशस्वरूप (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढ़ाते हैं उन दिन रात के बीच (अन्या) एक (अघा) अन्धकाररूप रात्रि (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त जन्तुओं को (आ, अयावि) अच्छे प्रकार पृथक् करती और (अन्या) उन दोनों में से एक प्रातःकाल रूप उषा (वसु) धन तथा (वार्याणि) उत्तम जलों को (वक्षत्) प्राप्त करे (यजमानाय) पुरुषार्थी मनुष्य के लिये (वसुधेयस्य) आकाश के बीच (वसुवने) जिस में पृथिवी आदि का विभाग हो ऐसे जगत् में (शिक्षिते) जिन में मनुष्यों ने शिक्षा की ऐसे हुए दिन रात (वीताम्) व्याप्त होवें (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे रात दिन विभाग को प्राप्त हुए मनुष्यादि प्राणियों के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं। उन में से रात्रि प्राणियों को सुलाकर द्वेष आदि को निवृत्त करती और दिन उन द्वेषादि को प्राप्त और सब व्यवहारों को प्रकट करता है वैसे प्रातःकाल में योगाभ्यास से रागादि दोषों को निवृत्त और शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होओ ॥ १५ ॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवताः। भुरिगाकृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

दे॒वी ऊ॒र्जाहु॑ती दु॒घे सु॒दुघे॒ पय॒सेन्द्र॑मवर्द्धताम्। इष॒मूर्ज॑म॒न्या व॑क्ष॒त्सग्धि॒ꣳसपी॑तिम॒न्या नवे॑न॒ पूर्वं॒ दय॑माने पुरा॒णेन॒ नव॒मधा॑ता॒मूर्जमू॒र्जाहु॑ती ऊ॒र्जय॑माने॒ वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒ते व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य धारण करने योग्य ईश्वर के (वसुवने) धन दान के स्थान जगत् में वर्त्तमान विद्वानों ने (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य (वसु) धन को (शिक्षिते) जिन में शिक्षा की जावे वे रात दिन (यजमानाय) सङ्गति के लिये प्रवृत्त हुए जीव के लिये व्यवहार को (वीताम्) व्याप्त हों वैसे (ऊर्जाहुती) बल तथा प्राण को धारण करने और (देवी) उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले दिन रात (पयसा) जल से (दुघे) सुखों को पूर्ण और (सुदुघे) सुन्दर कामनाओं के बढ़ाने वाले होते हुए (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्धताम्) बढ़ाते हैं उन में से (अन्या) एक (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) बल को (वक्षत्) पहुँचाती और (अन्या) दिनरूप वेला (सपीतिम्) पीने के सहित (सग्धिम्) ठीक समान भोजन को पहुँचाती है (दयमाने) आवागमन गुण वाली अगली पिछली दो रात्रि प्रवृत्त हुई (नवेन) नये पदार्थ के साथ (पूर्वम्) प्राचीन और (पुराणेन) पुराणे के साथ (नवम्) नवीन स्वरूप वस्तु को (अधाताम्) धारण करे (ऊर्जयमाने) बल करते हुए (ऊर्जाहुती) अवस्था घटाने से बल को लेने हारे दिन रात (ऊर्जम्) जीवन को धारण करे वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे रात दिन अपने वर्त्तमान रूप से पूर्वापररूप को जनाने तथा आहार विहार को प्राप्त करने वाले होते हैं वैसे अग्नि में होमी हुई आहुति सब सुखों को पूर्ण करने वाली होती हैं। जो मनुष्य काल की सूक्ष्म वेला को भी व्यर्थ गमावें, वायु आदि पदार्थों को शुद्ध न करें, अदृष्ट पदार्थ को अनुमान से न जानें तो सुख को भी न प्राप्त हों ॥ १६ ॥

देवा इत्यस्याश्विनावृषी। अश्विनौ देवते। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्र॑मवर्द्धताम्। ह॒ताघ॑शꣳसा॒वाभा॑र्ष्टां॒ वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒तौ व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (दैव्या) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध (होतारा) जगत् के धर्त्ता (देवा) सुख देने हारे वायु और अग्नि (देवम्) दिव्यगुणयुक्त (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढ़ावें (हताघशंसौ) चोरों को मारने के हेतु हुए रोगों को (आ, अभार्ष्टाम्) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यजमानाय) कर्म में प्रवृत्त हुए जीव के लिये (शिक्षितौ) जताये हुए (वसुधेयस्य) सब ऐश्वर्य के आधार ईश्वर के (वसुवने) धन दान के स्थान जगत् में (वसु) धन और (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य जलों को (वीताम्) व्याप्त होवें वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्यलोक के निमित्त वायु और बिजुली को जान और उपयोग में लाके धनों का सञ्चय करें तो चोरों को मारने वाले होवें ॥ १७ ॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीः पति॒मिन्द्र॑मवर्धयन्। अस्पृ॑क्ष॒द्भार॑ती॒ दिव॑ꣳ रु॒द्रैर्य॒ज्ञꣳ सर॑स्वतीडा॒ वसु॑मती गृ॒हान्व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (रुद्रैः) प्राणों से (भारती) धारण करने हारी (दिवम्) प्रकाश को (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी (यज्ञम्) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (वसुमती) बहुत द्रव्यों वाली (इडा) प्रशंसा के योग्य वाणी (गृहान्) घरों वा गृहस्थों को धारण करती हुई (देवीः, तिस्रः) (तिस्रः, देवीः) तीन दिव्य क्रिया "यहां पुनरुक्ति आवश्यकता जताने के लिये है" (पतिम्) पालन करने हारे (इन्द्रम्) सूर्य के तुल्य तेजस्वी जीव को (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन दान में घरों को (व्यन्तु) प्राप्त हों उनको आप (यज) प्राप्त हूजिये और आप (अस्पृक्षत्) अभिलाषा कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—जैसे जल अग्नि और वायु की गति उत्तम क्रियाओं और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं वैसे जो मनुष्य सब विद्याओं का धारण करने सब क्रिया का हेतु और सब दोष गुणों को जताने वाली तीन प्रकार की वाणी को जानते हैं वे इस सब द्रव्यों के आधार संसार में लक्ष्मी को प्राप्त हो जाते हैं ॥ १८ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

दे॒व इन्द्रो॒ नरा॒शꣳस॑स्त्रिवरू॒थस्त्रि॑वन्धु॒रो दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत्। श॒तेन॑ शितिपृ॒ष्ठाना॒माहि॑तः स॒हस्रे॑ण॒ प्र व॑र्त्तते मि॒त्रावरु॒णेद॑स्य हो॒त्रमर्ह॑तो॒ बृह॒स्पति॑स्तो॒त्रम॒श्विनाऽऽध्व॑र्यवं वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥१९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (त्रिवन्धुरः) ऋषि आदि रूप तीन बन्धनों वाला (त्रिवरूथः) तीन सुखदायक घरों का स्वामी (नराशंसः) मनुष्यों की स्तुति करने और (इन्द्रः) ऐश्वर्य को चाहने वाला (देवः) जीव (शतेन) सैकड़ों प्रकार के कर्म से (देवम्) प्रकाशमान (इन्द्रम्) विद्युद्रूप अग्नि को (अवर्धयत्) बढ़ावे। जो (शितिपृष्ठानाम्) जिन को पीठ पर बैठने से शीघ्र गमन होते हैं उन पशुओं के बीच (आहितः) अच्छे प्रकार स्थिर हुआ (सहस्रेण) असङ्ख्य प्रकार के

पुरुषार्थ से (प्र, वर्त्तते) प्रवृत्त होता है (मित्रावरुणा) प्राण और उदान (अस्य, इत्) ही (होत्रम्) भोजन की (अर्हतः) योग्यता रखने वाले जीव के सम्बन्धी (वसुधेयस्य) संसार के (बृहस्पतिः) बड़े बड़े पदार्थों का रक्षक बिजुली रूप अग्नि (स्तोत्रम्) स्तुति के साधन (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (अध्वर्यवम्) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले जन को (वसुवने) धन मांगने वाले के लिये (वेतु) कमनीय करे वैसे (यज) सङ्ग कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विविध प्रकार के सुख करने वाले तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल का प्रबन्ध जिन में हो सके ऐसे घरों को बना उन में असङ्ख्य सुख पा और पथ्य भोजन करके मांगने वाले के लिये यथायोग्य पदार्थ देते हैं वे कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् । दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (देवैः) दिव्य प्रकाशमान गुणों के साथ वर्त्तमान (हिरण्यपर्णः) सुवर्ण के तुल्य चिलकते हुए पत्तों वाला (मधुशाखः) मीठी डालियों से युक्त (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला (देवः) उत्तम गुणों का दाता (वनस्पतिः) सूर्य की किरणों में जल पहुँचा कर उष्णता की शान्ति से किरणों का रक्षक वनस्पति (देवम्) उत्तम गुणों वाले (इन्द्रम्) दरिद्रता के नाशक मेघ को (अवर्धयत्) बढ़ावे (अग्रेण) अग्रगामी होने से (दिवम्) प्रकाश को (अस्पृक्षत्) चाहे (अन्तरिक्षम्) अवकाश, उस में स्थित लोकों और (पृथिवीम्) भूमि को (आ, अदृंहीत्) अच्छे प्रकार धारण करे (वसुधेयस्य) संसार के (वसुवने) धनदाता जीव के लिये (वेतु) उत्पन्न होवे वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वनस्पति ऊपर जल चढ़ाकर मेघ को बढ़ाते और सूर्य अन्य लोकों को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग विद्या को चाहने वाले विद्यार्थी को बढ़ाते है ॥ २० ॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हींष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (देवम्) दिव्य (वारितीनाम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के बीच वर्त्तमान (स्वासस्थम्) सुन्दर प्रकार स्थिति के आधार (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (आसन्नम्) निकटवर्ती (बर्हिः) आकाश (देवम्) उत्तम गुण वाले (इन्द्रम्) बिजुली को (अवर्धयत्) बढ़ाता है (अन्या) और (बर्हींषि) अन्तरिक्ष के अवयवों को (अभि, अभूत्) सब ओर से व्याप्त होवे (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच (वसुवने) पदार्थविद्या को चाहनेवाले जन के लिये (वेतु) प्राप्त होवे आप (यज) प्राप्त हूजिये ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सब ओर से व्याप्त आकाश सब पदार्थों को व्याप्त होता और सब के समीप है वैसे ईश्वर के निकटवर्ती जीव को जान के इस संसार में मांगने वाले सुपात्र के लिये धनादि का दान देवो ॥ २१ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२२॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे (स्विष्टकृत्) सुन्दर प्रकार इष्ट का साधक (देवः) उत्तम गुणों वाला (अग्निः) अग्नि (इन्द्रम्, देवम्) उत्तम गुणों वाले जीव को (अवर्धयत्) बढ़ावे यथा जैसे (स्विष्टम्) सुन्दर इष्ट को (कुर्वन्) सिद्ध करता और (स्विष्टकृत्) उत्तम इष्टकारी हुआ अग्नि (स्विष्टम्) अत्यन्त चाहे हुए कार्य को करता है वैसे (अद्य) आज (नः) हमारे लिये सुख को (करोतु) कीजिये (वेतु) धन को प्राप्त हूजिये और (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच (वसुवने) पदार्थविद्या को चाहते हुए मनुष्य के लिये (यज) दान कीजिये ॥२२।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गुण कर्म स्वभावों करके जाना गया कर्मों में नियुक्त किया अग्नि अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करता है वैसे विद्वानो को वर्त्तना चाहिये ॥ २२ ॥

अग्निमित्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय च्छागम् । सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय च्छागेन । अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे ॥२३॥

पदार्थ—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ जानने हारे विद्वन् ! जैसे (अयम्) यह (यजमानः) यज्ञ करने हारा पुरुष (अद्य) आज (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्ति के अर्थ (पक्तीः) पाकों को (पचन्) पकाता (पुरोडाशम्) होम के लिये पाक विशेष को (पचन्) पकाता और (छागम्) रोगों को नष्ट करने हारी बकरी को (बध्नन्) बांधता हुआ (होतारम्) यज्ञ करने में कुशल (अग्निम्) तेजस्वी विद्वान् को (अवृणीत) स्वीकार करे। जैसे (वनस्पतिः) किरणसमूह का रक्षक (देवः) प्रकाशयुक्त सूर्यमण्डल (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (छागेन) छेदन करने के साथ (अद्य) इस समय (अभवत्) प्रसिद्ध होवे (मेदस्तः) चिकनाई वा गीलेपन से (तम्) उस हुत पदार्थ को (अघत्) खाता (पचता) सब पदार्थों को पकाते हुए सूर्य से (सूपस्थाः) सुन्दर उपस्थान करने वाले हों वैसे (प्रति,अग्रभीत्) ग्रहण करता है (पुरोडाशेन) होम के लिये पकाये पदार्थ विशेष से (अवीवृधत्) अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे (त्वाम्) आप को (अद्य) मैं बढ़ाऊं और और आप भी वैसे ही वर्त्ताव कीजिये ॥२३

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रसोइये लोग साग आदि को काट कूट के अन्न और कढ़ी आदि पकाते हैं वैसे सूर्य सब पदार्थों को पकाता है जैसे सूर्य वर्षा के द्वारा सब पदार्थों को बढ़ाता है वैसे सब मनुष्यों को चाहिये कि सेवादि के द्वारा मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वानों को बढ़ावें ॥ २३ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् । गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२४॥

पदार्थ—हे (होतः) विद्यादि का ग्रहण करने हारे जन ! आप जैसे (होता) दाता पुरुष (अग्निम्) अग्नि के तुल्य (समिधानम्) सम्यक् प्रकाशमान (सुसमिद्धम्) सुन्दर शोभायमान (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य (महत्) बड़ा (यशः) कीर्त्ति (वयोधसम्) अभीष्ट अवस्था के धारक (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले योग (गायत्रीम्) सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाली गायत्री (छन्दः) स्वतन्त्रता (इन्द्रियम्) धन वा श्रोत्रादि इन्द्रियों (त्र्यविम्) तीन प्रकार से रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (वयः) जीवन को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) सङ्ग करे और (आज्यस्य) विज्ञान के रस को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप भी (यज) समागम कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष सत् विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं वे अतुल कीर्त्ति को पाकर आप सुखी होते और दूसरों को सुखी करते हैं ॥ २४ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् । उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२५॥

पदार्थ—हे (होतः) ज्ञान के यज्ञ के कर्त्तः ! जैसे (होता) शुभगुणों का ग्रहण करने वाला जन (तनूनपातम्) शरीरादि के रक्षक (उद्भिदम्) शरीर का भेदन कर निकलने वाले (गर्भम्) गर्भ को जैसे (अदितिः) माता धारण करती वैसे (यम्) जिसको (दधे) धारण करता है (वयोधसम्) अवस्था के वर्धक (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) सूर्य्य को (यक्षत्) हवन का पदार्थ पहुँचाता है (आज्यस्य) विज्ञानसम्बन्धी (उष्णिहम्) उष्णिक् छन्द से कहे हुए (छन्दः) बलकारी (इन्द्रियम्) जीव के श्रोत्रादि चिह्नों और (दित्यवाहम्) खण्डितों को पहुंचाने वाले (गाम्) वाणी और (वयः) सुन्दर २ पक्षियों को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होवे वैसे इन सब को आप (यज) संगत कीजिये ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे माता गर्भ और उत्पन्न हुए बालक की रक्षा करती है वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयुर्दा को बढ़ाओ ॥२५॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यं सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् । अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२६॥

पदार्थ—हे (होतः) यज्ञ करनेहारे जन । जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (वृत्रहन्तमम्) मेघ को अत्यन्त काटने वाले सूर्य को जैसे वैसे (इडाभिः) अच्छी शिक्षित वाणियों से (ईडेन्यम्) स्तुति करने योग्य (ईडितम्) प्रशंसित (सहः) बल (ईड्यम्) प्रशंसा के योग्य (सोमम्) सोम आदि ओषधिगण और (वयोधसम्) मनोहर प्राणों के धारक (इन्द्रम्) जीवात्मा को (यक्षत्) सङ्गत करे और (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि (अनुष्टुभम्) अनुकूल थांभने वाली (छन्दः) स्वतन्त्रता से (पञ्चाविम्) पांच प्राणों की रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (आज्यस्य) जानने योग्य जगत् के बीच (वयः) अभीष्ट वस्तु को (दधत्)

धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप इन सब को (यज) सङ्गत कीजिये ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य न्याय के साथ प्रशंसित गुण वाले सूर्य के तुल्य प्रशंसित हो के विज्ञान के योग्य वस्तुओं को जान के स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियपन और राज्य को धारण करते हैं वे प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ २६ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। स्वराडतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

होता॑ यक्षत्सु॒ब॒र्हिषं॑ पूष॒ण्वन्त॒मम॑र्त्य॒ꣳ सीद॑न्तं ब॒र्हिषि॑ प्रि॒येऽमृतेन्द्रं॒ वयो॒धस॑म्। बृ॒ह॒तीं छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं त्रि॒व॒त्सं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥२७॥

पदार्थ—हे (होतः) दान देने वाले पुरुष ! तू जैसे वह (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (अमृता) नाशरहित (बर्हिषि) आकाश के तुल्य व्याप्त (प्रिये) चाहने योग्य परमेश्वर के स्वरूप में (सीदन्तम्) स्थिर हुए (अमर्त्यम्) शुद्ध स्वरूप से मृत्युरहित (पूषण्वन्तम्) बहुत पोढ़ा (सुबर्हिषम्) सुन्दर अवकाश वा जलों वाला (वयोधसम्) व्याप्ति को धारण करने हारे (इन्द्रम्) अपने जीवस्वरूप का (यक्षत्) सङ्ग करे वह (आज्यस्य) जानने योग्य विज्ञान का सम्बन्धी (बृहतीम्) बृहती (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (त्रिवत्सम्) कर्म, उपासना, ज्ञान जिसको पुत्रवत् है उस वेदसम्बन्धी (गाम्) प्राप्त होने योग्य बोध तथा (वयः) मनोहर सुख को (दधत्) धारण करता हुआ कल्याण को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे इनको (यज) संगत करे ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य वेदपाठी ब्रह्मनिष्ठ योगी पुरुष का सेवन करते हैं वे सब अभीष्ट सुखों को प्राप्त होते हैं ॥२७॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

होता॑ यक्ष॒द्व्यच॑स्वतीः सुप्राय॒णा ऋ॑ता॒वृधो॒ द्वारो॑ दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययी॑र्ब्र॒ह्माण॒मिन्द्रं॒ वयो॒धस॑म्। प॒ङ्क्तिं छन्द॑ इ॒हेन्द्रि॒यं तु॑र्य॒वाहं॒ गां वयो॒ दध॒द्व्य॒न्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥२८॥

पदार्थ—हे (होतः) यज्ञ करने वाले पुरुष ! तू जैसे (इह) इस संसार में (होता) ग्रहीता जन (व्यचस्वतीः) निकलने के अवकाश वाले (सुप्रायणाः) सुन्दर निकलना जिन में हो (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने हारे (हिरण्ययीः) सुनहरी चित्रों वाले (देवीः) उत्तम गुणयुक्त (द्वारः) द्वारों को (वयोधसम्) कामना के योग्य विद्या तथा बोध आदि के धारण करने हारे (ब्रह्माणम्) चारों वेद के ज्ञाता (इन्द्रम्) विद्यारूप ऐश्वर्य वाले विद्वान् को (पंक्तिम्) पंक्ति (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) धन (तुर्यवाहम्) चौगुणा बोझ ले चलने हारे (गाम्) बैल और (वयः) गमन को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घृतादि के सम्बन्धी इन उक्त पदार्थों को (यक्षत्) संगत करें और जैसे मनुष्य को (व्यन्तु) प्राप्त होवें इन सब को (यज) प्राप्त हो ॥२८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग अत्युत्तम सुन्दर द्वारों वाले सुवर्णादि पदार्थों से युक्त घरों को बना के वहां निवास और विद्या का अभ्यास करें वे रोगरहित होते हैं ॥२८॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। अहोरात्रे देवते। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

होता॑ यक्षत्सु॒पेश॑सा सुशि॒ल्पे बृ॑ह॒तीऽउ॒भे नक्तो॒षासा॒ न द॑र्श॒ते विश्व॒मिन्द्रं॒ वयो॒धस॑म्। त्रि॒ष्टुभं॒ छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं प॑ष्ठ॒वाहं॒ गां वयो॒ दध॑द्वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥२९॥

पदार्थ—हे (होतः) यज्ञ करने हारे पुरुष ! तू जैसे (इह) इस जगत् में (बृहती) बड़े (उभे) दोनों (सुशिल्पे) सुन्दर शिल्पकार्य जिन में हों वे (दर्शते) देखने योग्य (नक्तोषासा) रात्रि दिन के (न) समान (सुपेशसा) सुन्दर रूप वाले अध्यापक उपदेशक दो विद्वान् (विश्वम्) सब (वयोधसम्) कामना के आधार (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द का अर्थ (छन्दः) बल (वयः) अवस्था (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय और (पष्ठवाहम्) पीठ पर भार ले चलने वाले (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त हों जैसे (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घृतादि पदार्थों के सम्बन्धी इन को (दधत्) धारण करता हुआ (होता) ग्रहणकर्त्ता पुरुष (यक्षत्) प्राप्त होवे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥२९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य करनेहारे शिल्पकार्यों को इस जगत् में सिद्ध करते हैं वे सुखी होते हैं ॥२९॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। अश्विनौ देवते। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

होता॑ यक्षत्प्रचे॑तसा दे॒वाना॑मुत्त॒मं यशो॒ होता॑रा॒ दैव्या॑ क॒वी स॒युजेन्द्रं॒ वयो॒धस॑म्। जग॑तीं॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यम॑न॒ड्वाहं॒ गां वयो॒ दध॑द्वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३०॥

पदार्थ—हे (होतः) दान देनेहारे पुरुष ! तू जैसे (देवानाम्) विद्वानों के सम्बन्धी (प्रचेतसा) उत्कृष्ट विज्ञान वाले (सयुजा) साथ योग रखने वाले (दैव्या) उत्तम कर्मों में साधु (होतारा) दाता (कवी) बुद्धिमान् पढ़ने पढ़ाने वा सुनने सुनाने हारे (उत्तमम्) उत्तम (यशः) कीर्त्ति (वयोधसम्) अभीष्ट सुख के धारक (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य (जगतीम्, छन्दः) जगती छन्द (वयः) विज्ञान (इन्द्रियम्) धन और (अनड्वाहम्) गाड़ी चलाने हारे (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त हों जैसे (आज्यस्य) जानने योग्य पदार्थ के बीच इन उक्त सब का (दधत्) धारण करता हुआ (होता) ग्रहणकर्त्ता जन (यक्षत्) प्राप्त होवे वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य पुरुषार्थ करें तो विद्या कीर्त्ति और धन को प्राप्त हो के माननीय होवें ॥३०॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। वाण्यो देवताः। भुरिक्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

होता॑ यक्ष॒त्पेश॑स्वतीस्ति॒स्रो दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययी॒र्भार॑तीर्बृह॒ती म॒हीः पति॒मिन्द्रं॒ वयो॒धस॑म्। वि॒राजं॒ छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं धे॒नुं गां न वयो॒ दध॑द्व्य॒न्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३१॥

पदार्थ—हे (होतः) यज्ञ करनेहारे जन ! जैसे (इह) इस जगत् में जो (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता जन (तिस्रः) तीन (हिरण्ययीः) सुवर्ण के तुल्य प्रिय (पेशस्वतीः) सुन्दर रूपों वाली (भारतीः) धारण करनेहारी (बृहतीः) बड़ी गम्भीर (महीः) महान् पुरुषों ने ग्रहण की (देवीः) दानशील स्त्रियों, तीन प्रकार की वाणियों, (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (पतिम्) रक्षक (इन्द्रम्) राजा (विराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक (छन्दः) विराट् छन्द, (वयः) कामना के योग्य वस्तु और (इन्द्रियम्) जीवों ने सेवन किये सुख को (यक्षत्) प्राप्त होता है वह (धेनुम्) दूध देनेहारी (गाम्) गौ के (न) समान हम को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे इन सब को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य विज्ञान के फल को (यज) प्राप्त हूजिये ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य कर्म उपासना और विज्ञान के जानने वाली वाणी को जानते हैं वे बड़ी कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं। जैसे धेनु बछड़ों को तृप्त करती है वैसे विद्वान् लोग मूर्ख बालबुद्धि लोगों को तृप्त करते हैं ॥३१॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

होता॑ यक्षत्सु॒रेत॑सं॒ त्वष्टा॑रं पुष्टि॒वर्द्ध॑नं रू॒पाणि॒ बिभ्र॑तं पृथ॒क् पुष्टि॒मिन्द्रं॒ वयो॒धस॑म्। द्वि॒पदं॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यमु॒क्षाणं॒ गां न वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३२॥

पदार्थ—हे (होतः) दान देनेहारे पुरुष ! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (सुरेतसम्) सुन्दर पराक्रम वाले (त्वष्टारम्) प्रकाशमान (पुष्टिवर्धनम्) जो पुष्टि से बढ़ाता उस (रूपाणि) सुन्दर रूपों को (पृथक्) अलग अलग (बिभ्रतम्) धारण करने हारे (वयोधसम्) बड़ी अवस्था वाले (पुष्टिम्) पुष्टियुक्त (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य को (द्विपदम्) दो पग वाले मनुष्यादि (छन्दः) स्वतन्त्रता (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय (उक्षाणम्) वीर्य सींचने में समर्थ (गाम्) जवान बैल के (न) समान (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान के सम्बन्धी पदार्थ का (यक्षत्) होम करे तथा (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) होम कीजिये ॥३२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढ़ावें। जो सन्तानों की चाहना करें तो शरीरादि की पुष्टि अवश्य करनी चाहिये। जैसे सूर्य रूप को जताने वाला है वैसे विद्वान् पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा का प्रकाश करने वाला होता है ॥ ३२ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

होता॑ यक्ष॒द्वन॒स्पति॑ꣳ शमि॒तार॑ꣳ श॒तक्र॑तु॒ꣳ हिर॑ण्यपर्णमु॒क्थिन॑ꣳ रश॒नां बिभ्र॑तं व॒शिं भग॒मिन्द्रं॒ वयो॒धस॑म्। क॒कुभं॒ छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं व॒शां वे॒हतं॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३३॥

पदार्थ—हे (होतः) दान देनेहारे जन ! जैसे (इह) इस संसार में (आज्यस्य) घी आदि उत्तम पदार्थ का (होता) होम करनेवाला (शमितारम्) शान्तिकारक (हिरण्यपर्णम्) तेजरूप रक्षाओं वाले (वनस्पतिम्) किरणपालक सूर्य के तुल्य (शतक्रतुम्) बहुत बुद्धि वाले (उक्थिनम्) प्रशस्त कहने योग्य वचनों से युक्त (रशनाम्) अङ्गुलि को (बिभ्रतम्) धारण करते हुए (वशिम्) वश में करने हारे (भगम्) सेवने योग्य ऐश्वर्य (वयोधसम्) अवस्था के धारक (इन्द्रम्) जीव (ककुभम्) अर्थ के निरोधक (छन्दः) प्रसन्नताकारक (इन्द्रियम्) धन (वशाम्) वन्ध्या तथा (वेहतम्) गर्भ गिराने हारी (गाम्) गौ और (वयः) अभीष्ट वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) यज्ञ करे तथा (वेतु) चाहना करे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के प्रकाश करनेहारे बुद्धिमान् अपने अङ्गों को धारण करते हुए विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होके औरों को देते वे प्रशंसा पाते हैं ॥३३॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अग्निर्देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

होता॑ यक्षत्स्वाहा॑कृतीर॒ग्निं गृ॒हप॑तिं पृथ॒ग्वरु॑णं भेष॒जं क॒विं क्ष॒त्रमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । अति॑छन्दसं॒ छन्द॑ इन्द्रि॒यं बृ॒हदृ॑ष॒भं गां वयो॒ दध॑द्व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥३४॥

पदार्थ—हे (होतः) यज्ञ करनेहारे जन ! तू जैसे (होता) ग्रहणकर्त्ता पुरुष (स्वाहाकृतीः) वाणी आदि से सिद्ध किया (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी (गृहपतिम्) घर के रक्षक (वरुणम्) श्रेष्ठ (पृथक्) अलग (भेषजम्) औषध (कविम्) बुद्धिमान् (वयोधसम्) मनोहर अवस्था को धारण करने हारे (इन्द्रम्) राजा (क्षत्रम्) राज्य (अतिछन्दसम्) अतिजगती आदि छन्द से कहे हुए अर्थ (छन्दः) गायत्री आदि छन्द (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय (ऋषभम्) अति उत्तम (गाम्) बैल और (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) घी की आहुति का (यक्षत्) होम करे और जैसे लोग इन सब को (व्यन्तु) चाहें वैसे (यज) होम यज्ञ कीजिये ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य वेदस्थ गायत्री आदि छन्द तथा अतिजगती आदि अतिछन्दों को पढ़ के अर्थ जाननेवाले होते हैं वे सब विद्याओं को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य बढ़ते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वं ब॒र्हिर्व॑यो॒धसं॑ दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत् । गा॒य॒त्र्या छन्द॑सेन्द्रि॒यं चक्षु॒रिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥३५॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (देवम्) उत्तम गुणों वाला (बर्हिः) अन्तरिक्ष (वयोधसम्) अवस्थावर्धक (देवम्) उत्तम रूप वाले (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयत्) बढ़ाता है अर्थात् चलने का अवकाश देता है और जैसे (गायत्र्या, छन्दसा) गायत्री छन्द से (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न (चक्षुः) नेत्र इन्द्रिय को और (वयः) जीवन को (इन्द्रे) जीव में (दधत्) धारण करता हुआ (वसुधेयस्य) द्रव्य के आधार संसार के (वसुवने) धन का विभाग करने हारे मनुष्य के लिये (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) समागम कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है वैसे वेदों का अभ्यास करने में बुद्धि बढ़ती है । जो इस जगत् में वेद के द्वारा सब सत्य विद्याओं को जानें वे सब ओर से बढ़ें ॥ ३५ ॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वीर्द्वारो॑ वयो॒धस॑ꣳ शु॒चिमिन्द्र॑मवर्धयन् । उ॒ष्णिहा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं प्रा॒णमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥३६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (देवीः) प्रकाशमान हुए (द्वारः) जाने आने के लिये द्वार (वयोधसम्) जीवन के आधार (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) शुद्ध वायु (इन्द्रियम्) जीवने से सेवे हुए (प्राणम्) प्राण को (इन्द्रे) जीव के निमित्त (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन को मांगने वाले के लिये (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं और (व्यन्तु) शोभायमान होवें वैसे (उष्णिहा, छन्दसा) उष्णिक् छन्द से इन पूर्वोक्त पदार्थों और (वयः) कामना के योग्य प्रिय पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुए (यज) हवन कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो घर समूहे द्वार वाले जिन में सब ओर से वायु आवे ऐसे हैं उनमें निवास करने से अवस्था, पवित्रता, बल और नीरोगता बढ़ती है इसलिये बहुत द्वारों वाले बड़े बड़े घर बनाने चाहियें ॥३६॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे बढ़ें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वीऽउ॒षासा॒नक्ता॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । अ॒नु॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं बल॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥३७॥

पदार्थ—हे विद्वन् जन ! जैसे (उषासानक्ता) दिन रात्रि के समान (देवी) सुन्दर शोभायमान पढ़ाने पढ़ने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्) जीवन को धारण करनेवाले (देवम्) उत्तम गुणयुक्त (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) उत्तम पतिव्रता स्त्री (देवम्) उत्तम स्त्रीव्रत लम्पटनादि दोषरहित पति को बढ़ावे वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें और जैसे (वसुधेयस्य) धनाऽधार कोष के (वसुवने) धन को चाहने वाले के अर्थ (वीताम्) उत्पत्ति करें वैसे (वयः) प्राणों के धारण को (दधत) पुष्ट करते हुए (अनुष्टुभा, छन्दसा) अनुष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) जीवन से सेवन किये (बलम्) बल को (यज) सङ्गत कीजिये ॥३७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे प्रीति से स्त्रीपुरुष और व्यवस्था से दिन रात बढ़ते हैं वैसे प्रीति और धर्म की व्यवस्था से आप लोग बढ़ा करें ॥ ३७ ॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब स्त्रीपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वी जोष्ट्री॒ वसु॑धिती दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । बृ॒ह॒त्या छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ श्रोत्र॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥३८॥

पदार्थ—हे विद्वान् जन ! जैसे (देवी) तेजस्विनी (जोष्ट्री) प्रीति वाली (वसुधिती) विद्या को धारण करने हारी पढ़ने पढ़ाने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्) प्राप्त हो के (अवर्धताम्) उन्नति को प्राप्त हो (बृहत्या, छन्दसा) बृहतीछन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) ईश्वर ने रचे हुए (श्रोत्रम्) शब्द सुनने के हेतु कान को (वीताम्) व्याप्त हों वैसे (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन की चाहना के अर्थ (वयः) उत्तम मनोहर सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञादि कीजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पढ़ाने और उपदेश करनेवाली स्त्रियां अपने सन्तानों अन्य कन्याओं वा स्त्रियों को विद्या तथा शिक्षा से बढ़ाती हैं वैसे स्त्री पुरुष परमप्रीति से विद्या के विचार के साथ अपने सन्तानों को बढ़ावें और आप बढ़ें ॥ ३८ ॥

देवी इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दे॒वीऽऊ॒र्जाहु॑ती दु॒घे सु॒दुघे॒ पय॒सेन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । प॒ङ्क्त्या छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ शु॒क्रमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥३९॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (दुघे) पदार्थों को पूर्ण करने और (सुदुघे) सुन्दर प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने हारी (देवी) सुगन्धि को देनेवाली (ऊर्जाहुती) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न की दो आहुति (पयसा) जल की वर्षा से (वयोधसम्) प्राणधारी (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) पतिव्रता विदुषी स्त्री (देवम्) व्यभिचारादि दोषरहित पति को बढ़ाती है वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें (पङ्क्तया, छन्दसा) पङ्क्ति छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम और (इन्द्रियम्) धन को (वीताम्) प्राप्त करें वैसे (वसुधेयस्य) धन के कोष के (वसुवने) धन का सेवन करने हारे के लिये (वयः) सुन्दर प्राप्त सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि में छोड़ी हुई आहुति मेघमण्डल को प्राप्त हो फिर आकर शुद्ध किये हुए जल से सब जगत् को पुष्ट करती है वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट किया करो ॥ ३९ ॥

देवा इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मंत्र में कहा है—

दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वौ दे॒वम॑वर्धताम् । त्रि॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं त्विषि॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥४०॥

पदार्थ—हे (होतारा) दानशील अध्यापक उपदेशक लोगो ! जैसे (दैव्या) कामना के योग्य पदार्थ बनाने में कुशल (देवा) चाहने योग्य दो विद्वान् (वयोधसम्) अवस्था के धारक (देवम्) कामना करते हुए (इन्द्रम्) जीवात्मा को जैसे (देवौ) शुभ गुणों की चाहना करते हुए माता पिता (देवम्) अभीष्ट पुत्र को बढ़ावें वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें (वसुधेयस्य) धनकोष के (वसुवने) धन सेवने वाले जन के लिये (वीताम्) प्राप्त हूजिये तथा हे विद्वन् पुरुष ! (त्रिष्टुभा, छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (त्विषिम्) प्रकाशयुक्त (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय और (वयः) सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञादि उत्तम कर्म कर ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे पढ़ने और उपदेश करने हारे विद्यार्थी और शिष्यों को तथा माता पिता सन्तानों को पढ़ाते हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष वेदविद्या से सब को बढ़ावें ॥ ४० ॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिग् जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजप्रजा का धर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं—

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर्वयो॒धसं॒ पति॒मिन्द्र॑मवर्धयन् । जग॑त्या॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ शू॒षमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥४१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (तिस्रः) तीन (देवीः) तेजस्विनी विदुषी (तिस्रः) तीन पढ़ाने उपदेश करने और परीक्षा लेने वाली (देवीः) विदुषी स्त्री

(**वयोधसम्**) जीवन धारण करने हारे (**पतिम्**) रक्षक स्वामी (**इन्द्रम्**) उत्तम ऐश्वर्य वाले चक्रवर्त्ती राजा को (**अवर्धयन्**) बढ़ावें तथा (**व्यन्तु**) व्याप्त होवें वैसे (**जगत्या छन्दसा**) जगती छन्द से (**इन्द्रे**) अपने आत्मा में (**शूषम् वयः**) शत्रुसेना में व्यापक होने वाले अपने बल तथा (**इन्द्रियम्**) कान आदि इन्द्रिय को (**दधत्**) धारण करते हुए (**वसुधेयस्य**) धनकोष के (**वसुवने**) धनदाता के अर्थ (**यज**) अग्निहोत्रादि यज्ञ कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा लेने वाले स्त्री पुरुष प्रजाओं में विद्या और श्रेष्ठ उपदेशों का प्रचार करें वैसे राजा इनकी यथावत् रक्षा करे इस प्रकार राजपुरुष और प्रजापुरुष आपस में प्रसन्न हुए सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हुआ करें ॥ ४१ ॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

दे॒वो न॒राश॑ꣳसो दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्द्धयत्। वि॒राजा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ रू॒पमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४२॥

पदार्थ—हे विद्वन् जन ! जैसे (**नराशंसः**) मनुष्यों से प्रशंसा करने योग्य (**देवः**) विद्वान् (**वयोधसम्**) बहुत अवस्था वाले (**देवम्**) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (**इन्द्रम्**) राजा को जैसे (**देवः**) विद्वान् (**देवम्**) विद्वान् को वैसे (**अवर्धयत्**) बढ़ावे (**विराजा, छन्दसा**) विराट् छन्द से (**इन्द्रे**) आत्मा में (**रूपम्**) सुन्दर रूप वाले (**इन्द्रियम्**) श्रोत्रादि इन्द्रिय को (**वेतु**) प्राप्त करे वैसे (**वसुधेयस्य**) धनकोष के (**वसुवने**) धन को सेवने वाले जन के लिये (**वयः**) अभीष्ट सुख को (**दधत्**) धारण करता हुआ तू (**यज**) सङ्गम वा दान कीजिये ॥ ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि कभी आपस मे ईर्ष्या करके एक दूसरे की हानि नहीं करें किन्तु सदैव प्रीति से उन्नति किया करें ॥ ४५ ॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

दे॒वो वन॒स्पति॑र्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्धयत्। द्वि॒प॑दा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं भग॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**वनस्पतिः**) वनों का रक्षक वट आदि (**देवः**) उत्तम गुणों वाला (**वयोधसम्**) अधिक उमर वाले (**देवम्**) उत्तम गुणयुक्त (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य को जैसे (**देवः**) उत्तम सभ्य जन (**देवम्**) उत्तम स्वभाव वाले विद्वान् को वैसे (**अवर्धयत्**) बढ़ावे (**द्विपदा**) दो पाद वाले (**छन्दसा**) छन्द से (**इन्द्रे**) आत्मा में (**भगम्**) ऐश्वर्य तथा (**इन्द्रियम्**) धन को (**वेतु**) प्राप्त हो वैसे (**वसुधेयस्य**) धनकोष के (**वसुवने**) धन को देनहारे के लिये (**वयः**) अभीष्ट सुख को (**दधत्**) धारण करता हुआ तू (**यज**) यज्ञ कर ॥ ४३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम को जैसे वनस्पति पुष्कल में जल को नीचे पृथिवी से आकर्षण करके वायु और मेघमण्डल में फैला के सब घास आदि की रक्षा करते और जैसे राजपुरुष राजपुरुषों की रक्षा करते हैं वैसे वर्त्त के ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिये ॥ ४३ ॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनां दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वं दे॒वम॑वर्धयत्। क॒कुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं यश॒ऽइन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४४॥

पदार्थ—हे विद्वन् जन ! जैसे (**वारितीनाम्**) अन्तरिक्ष के समुद्र का (**देवम्**) उत्तम (**बर्हिः**) जल (**वयोधसम्**) बहुत अवस्था वाले (**देवम्**) उत्तम (**इन्द्रम्**) राजा को और (**देवम्**) उत्तम गुणवान् (**देवम्**) प्रकाशमान प्रत्येक जीव को (**अवर्धयत्**) बढ़ाता है (**ककुभा, छन्दसा**) ककुप्छन्द से उत्तम ऐश्वर्य के निमित्त (**यशः**) कीर्त्ति तथा (**इन्द्रियम्**) जीव के चिह्नरूप श्रोत्रादि इन्द्रिय को (**वेतु**) प्राप्त होवे वैसे (**वसुधेयस्य**) धनकोष के (**वसुवने**) धन को सेवने हारे के लिये (**वयः**) अभीष्ट सुख को (**दधत्**) धारण करते हुए (**यज**) यज्ञ कीजिये ॥४४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे जल समुद्रों को भर और जीवों की रक्षा करके मोती आदि रत्नों को उत्पन्न करता है वैसे धर्म से धन के कोष को पूर्ण कर और अन्य दरिद्रियों की सम्यक् रक्षा करके कीर्त्ति को बढ़ाओ ॥ ४४ ॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

दे॒वोऽअ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्धयत्। अति॑च्छन्दसा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं क्ष॒त्रमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**स्विष्टकृत्**) सुन्दर अभीष्ट को सिद्ध करनेहारा (**देवः**) सर्वज्ञ (**अग्निः**) स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर (**वयोधसम्**) अवस्था के धारक (**देवम्**) धार्मिक (**इन्द्रम्**) जीव को जैसे (**देवः**) विद्वान् (**देवम्**) विद्यार्थी को वैसे (**अवर्धयत्**) बढ़ाता है (**अतिछन्दसा, छन्दसा**) अतिजगती आदि आनन्दकारक छन्द से (**इन्द्रे**) विद्या विनय से युक्त राजा के निमित्त (**वसुधेयस्य**) धनकोष के (**वसुवने**) धन के दाता के लिये (**वयः**) मनोहर वस्तु (**क्षत्रम्**) राज्य और (**इन्द्रियम्**) जीवने से सेवन किये हुए इन्द्रिय को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**वेतु**) व्याप्त होवे वैसे (**यज**) यज्ञादि उत्तम कर्म कीजिये ॥ ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर ने अपनी दया से सब पदार्थों को उत्पन्न कर और जीवों के लिये समर्पण करके जगत् की वृद्धि की है वैसे विद्या, विनय, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ और धर्म के अनुष्ठानों से राज्य को बढ़ाओ ॥ ४५ ॥

अग्निमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । आकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पु॒रो॒डाशं॑ ब॒ध्नन्निन्द्रा॑य वयो॒धसे॒ छाग॑म्। सू॒प॒स्थाऽअ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभव॒दिन्द्रा॑य वयो॒धसे॒ छागे॑न। अघ॒त्तं मे॑द॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्र॑भी॒दवी॑वृधत्पु॒रो॒डाशे॑न॒ त्वाम॒द्य ऽऋ॑षे ॥४६॥

पदार्थ—हे (**ऋषे**) मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान् पुरुष ! जैसे (**अयम्, यजमानः**) यज्ञ करने हारा (**अद्य**) इस समय (**पक्तीः**) नाना प्रकार के पाकों को (**पचन्**) पकाता और (**पुरोडाशम्**) यज्ञ में होमने के पदार्थ को (**पचन्**) पकाता हुआ (**अग्निम्**) तेजस्वी (**होतारम्**) होता को (**अद्य**) आज (**अवृणीत**) स्वीकार करे वैसे (**वयोधसे**) सब के जीवन को बढ़ाने हारे (**इन्द्राय**) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (**छागम्**) छेदन करनेवाले बकरी आदि पशु को (**बध्नन्**) बांधते हुए स्वीकार कीजिये जैसे आज (**वनस्पतिः**) वनों का रक्षक (**देवः**) विद्वान् (**वयोधसे**) अवस्थावर्धक (**इन्द्राय**) शत्रुविनाशक राजा के लिये (**छागेन**) छेदन के साथ उद्यत (**अभवत्**) होवे वैसे सब लोग (**सूपस्थाः**) सुन्दर प्रकार समीप रहने वाले हों वैसे (**पचता**) पकाये हुए (**पुरोडाशेन**) यज्ञपाक से (**मेदस्तः**) चिकनाई से (**त्वाम्**) आपको (**प्रति, अग्रभीत्**) ग्रहण करे और (**अवीवृधत्**) बढ़े वैसे हे यजमान और होता लोगो ! तुम दोनों यज्ञ के शेष भाग को (**अघत्तम्**) खाओ ॥४६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रसोइये लोग उत्तम अन्न व्यञ्जनों को बना के भोजन करावें वैसे ही भोक्ता लोग उनका मान्य करें जैसे बकरी आदि पशु घास आदि को खाके सम्यक् पचा लेते हैं वैसे ही भोजन किये हुए अन्नादि को पचाया करें ॥ ४६ ॥

इस अध्याय में होता के गुणों, वाणी और अश्वियों के गुणों, फिर भी होता के कर्त्तव्य, यज्ञ की व्याख्या और विद्वानों की प्रशंसा को कहा है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

ॐ अथैकोनत्रिंशाऽध्यायारम्भः ॐ

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

समिद्ध इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब उनतीसवें अध्याय का आरम्भ है मनुष्यों को अग्नि जलादि से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

समिद्धोऽअञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥१॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् जन ! जैसे (समिद्धः) सम्यक् जलाया (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ अग्नि (मतीनाम्) मनुष्यों के (कृदरम्) पेट और (मधुमत्) बहुत उत्तम गुणों वाले (घृतम्) जल वा घी को (पिन्वमानः) सेवन करता हुआ जैसे (वाजी) वेगवान् मनुष्य (वाजिनम्) शीघ्रगामी घोड़े को (वहन्) चलाता वैसे (देवानाम्) विद्वानों के (सधस्थम्) साथ स्थिति को (आ) प्राप्त करता है वैसे (प्रियम्) प्रीति के निमित्त स्थान को (वक्षि) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य जाठराग्नि को तेज रक्खें और बाहर के अग्नि को कलाकौशलादि में युक्त किया करें तो यह अग्नि घोड़े के तुल्य सवारियों को देशान्तर में शीघ्र पहुंचावें ॥ १ ॥

घृतेनेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥२॥

पदार्थ—हे (सप्ते) घोड़े के समान वेग से वर्त्तमान विद्वान् जन ! जैसे (वाजी, अपि) वेगवान् भी अग्नि (घृतेन) घी वा जल से (अञ्जन्) प्रकट हुआ (देवयानान्) विद्वान् लोग जिन में चलते हैं उन (पथः) मार्गों को (सम, एतु) सम्यक् प्राप्त होवे उसको (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानते हुए आप (देवान्) विद्वानों को (एहि) प्राप्त हूजिये जिससे (त्वा) आपके (अनु) अनुकूल (प्रदिशः) सब दिशा विदिशाओं को (सचन्ताम्) सम्बन्ध करें आप (अस्मै) इस (यजमानाय) यज्ञ करनेवाले पुरुष के लिये (स्वधाम्) अन्न को (धेहि) धारण कीजिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष अग्नि और जलादि से युक्त किये भाप से चलने वाले यानों से शीघ्र मार्गों में जा आ के सब दिशाओं में भ्रमण करें वे वहां २ सर्वत्र पुष्कल अन्नादि को प्राप्त कर बुद्धि से कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

ईड्य इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥३॥

पदार्थ—हे (वाजिन्) प्रशंसित वेग वाले (सप्ते) घोड़े के तुल्य पुरुषार्थी उत्साही कारीगर विद्वन् ! जिस कारण (जातवेदाः) प्रसिद्ध भोगों वाले (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त हुए आप (वसुभिः) पृथिवी आदि (देवैः) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के साथ (प्रीतम्) प्रशंसा को प्राप्त (वह्निम्) यज्ञ में होमे हुए पदार्थों को मेघमण्डल में पहुँचाने वाले अग्नि को (वहतु) प्राप्त कीजिये और जिस (त्वा) आप को (अग्निः) अग्नि पहुँचावे । इसलिये आप (ईड्यः) स्तुति के योग्य (च) भी (असि) हैं (वन्द्यः) नमस्कार करने योग्य (च) भी हैं (च) और (आशुः) शीघ्रगामी (च) तथा (मेध्यः) समागम करने योग्य (असि) हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी आदि विकारों से सवारी आदि को रच के उस में वेगवान् पहुंचाने वाले अग्नि को संप्रयुक्त करें वे प्रशंसा के योग्य मान्य होवें ॥३॥

स्तीर्णमित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! हम लोग जैसे (पृथिव्याम्) भूमि में (उरु) बहुत (पृथु) विस्तीर्ण (प्रथमानम्) प्रख्यात (स्तीर्णम्) सब ओर से अङ्ग उपांगों से पूर्ण यान और (बर्हिः) जल वा अन्तरिक्ष को (जुषाणा) सेवन करती हुई (सजोषाः) समान गुण वालों ने सेवन की (देवेभिः) दिव्य पदार्थों से (युक्तम्) युक्त (स्योनम्) सुख को (कृण्वाना) करती हुई (अदितिः) नाशरहित बिजुली सब को (सुविते) प्रेरणा किये मन्त्र में (दधातु) धारण करे उस को (सुष्टरीमा) सुन्दर रीति से विस्तार करें वैसे आप भी प्रयत्न कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो पृथिवी आदि में व्याप्त अखण्डित बिजुली विस्तृत बड़े बड़े कार्य्यों को सिद्ध कर सुख को उत्पन्न करती है उस को कार्यों में प्रयुक्त कर प्रयोजनों की सिद्धि करो ॥ ४ ॥

एता इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

कैसे द्वारों वाले घर हों फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

एताऽउ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणाऽउदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वः) तुम्हारी (एताः) ये दीप्ति (सुभगाः) सुन्दर ऐश्वर्यदायक (विश्वरूपाः) विविध प्रकार के रूपों वाले (ऋष्वाः) बड़े ऊंचे चौड़े (कवषाः) जिन में बोलने से शब्द की प्रतिध्वनि हो (शुम्भमानाः) सुन्दर शोभायुक्त (सतीः) हुए (देवीः) रङ्गों से चिलचिलाते हुए (उत्, आतैः) उत्तम रीति से निरन्तर जाने के हेतु (पक्षोभिः) बायें दहिने भागों से (श्रयमाणाः) सेवित पक्षियों की पङ्क्तियो के तुल्य (सुप्रायणाः) सुख से जाने के आधार (द्वारः) द्वार (वि, भवन्तु) सर्वत्र घरों में हों वैसे (उ) ही आप लोग भी बनावें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ऐसे द्वारों वाले घर बनावें कि जिनसे वायु न रुके । जैसे आकाश में बिना रुकावट के पक्षी सुखपूर्वक उड़ते हैं वैसे उन द्वारों में जावें आवें ॥ ५ ॥

अन्तरेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । मनुष्या देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वाᳬ सुहिरण्ये सुशिल्पेऽऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के प्रचारक दो विद्वानो ! जैसे मैं (अन्तरा) भीतर शरीर में (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदान (चरन्ती) प्राप्त होते हुए (यज्ञानाम्) सङ्गति के योग्य पदार्थों के (मुखम्) मुख्य भाग को (अभि, संविदाने) सब ओर से सम्यक् ज्ञान के हेतु (सुहिरण्ये) सुन्दर तेज युक्त (सुशिल्पे) सुन्दर कारीगरी जिस में हो (उषासा) प्रातः तथा सायकाल की वेलाओं को (ऋतस्य) सत्य के (योनौ) निमित्त (इह) इस घर में (सादयामि) स्थापन करता हूँ वैसे (वाम्) तुम दोनों मेरे लिये स्थापन करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सवेरे तथा सायंकाल की वेला शुद्ध स्थान में सेवी हुई मनुष्यों को प्राण उदान के समान सुखकारिणी होती हैं वैसे शुद्ध देश में बनाया बड़े २ द्वारों वाला घर सब प्रकार सुखी करता है ॥ ६ ॥

प्रथमेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब पढ़ने पढ़ाने वाले कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रथमा वाᳬसरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

पदार्थ—हे दो विद्यार्थियो ! जो (प्रथमा) पहिले (सरथिना) रथ वालों के साथ वर्त्तमान (सुवर्णा) सुन्दर गोरे वर्ण वाले दो विद्वान् (विश्वा) सब (भुवनानि) वसने के आधार लोकों को (पश्यन्तौ) देखते हुए (वाम्) तुम दोनों के (चोदना) प्रेरणारूप कर्मों को (मिमाना) जांचते हुए (ज्योतिः) प्रकाश को (प्रदिशा) अच्छे प्रकार जानते तथा (दिशन्ता) उच्चारण करते हुए तुम को (होतारा) दानशील (देवौ) तेजस्वी विद्वान् करें जैसे उनको मैं (अपिप्रयम्) तृप्त करता हूँ वैसे (वाम्) तुम दोनों उन विद्वानों को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्यार्थी लोग निष्कपटता से विद्वानों का सेवन करते हैं वे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं जो विद्वान् लोग कपट और आलस्य को छोड़ सब को सत्य का उपदेश करें तो वे सुखी कैसे न होवें ॥ ७ ॥

आदित्यैरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । सरस्वती देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्नऽआवीत् । इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो (आदित्यैः) पूर्ण विद्या वाले उत्तम विद्वानों ने उपदेश की (उपहूता) यथावत् स्पर्द्धा से ग्रहण की (भारती) सब विद्याओं को धारण और सब प्रकार की पुष्टि करने हारी वाणी (नः) हमारे लिये (यज्ञम्) सङ्गत हमारे योग्य बोध को सिद्ध करती है उस के (सह) साथ (नः) हम को (वष्टु) कामना वाले कीजिये जो (रुद्रैः) मध्य कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की (सरस्वती) उत्तम प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी (नः) हम को (आवीत्) प्राप्त होवे जो (सजोषाः) एक से विद्वानों ने सेवी (इडा) स्तुति की हेतु वाणी (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की हुई (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य आनन्द को सिद्ध करती है । हे मनुष्यो ! ये (देवीः) दिव्यरूप तीन प्रकार की वाणी हम को (अमृतेषु) नाशरहित जीवादि नित्य पदार्थों में धारण करें उनको तुम लोग भी हमारे अर्थ (धत्त) धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि उत्तम मध्यम निकृष्ट विद्वानों से सुनी वा पढ़ी विद्या तथा वाणी का स्वीकार करें किन्तु मूर्खों से नहीं, वह वाणी मनुष्यों को सब काल में सुख सिद्ध करने वाली होती है ॥ ८ ॥

त्वष्टेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । त्वष्टा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायतऽआशुरश्वः । त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥९॥

पदार्थ—हे (होतः) ग्रहण करनेहारे जन ! तू जैसे (त्वष्टा) विद्या आदि उत्तम गुणों से शोभित विद्वान् (देवकामम्) विद्वानों की कामना करनेहारे (वीरम्) वीर पुरुष को (जजान) उत्पन्न करता है जैसे (त्वष्टुः) प्रकाशरूप शिक्षा से (आशुः) शीघ्रगामी (अर्वा) वेगवान् (अश्वः) घोड़ा (जायते) होता है । जैसे (त्वष्टा) अपने स्वरूप से प्रकाशित ईश्वर (इदम्) इस (विश्वम्) सब (भुवनम्) लोकमात्र को (जजान) उत्पन्न करता है उस (बहोः) बहुविध संसार के (कर्त्तारम्) रचनेवाले परमात्मा का (इह) इस जगत् में (यक्षि) पूजन कीजिये वैसे हम लोग भी करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग विद्या चाहने वाले मनुष्यों को विद्वान् करें, शीघ्र जिसको शिक्षा हुई हो उस घोड़े के समान तीक्ष्णता से विद्या को प्राप्त होता है जैसे बहुत प्रकार के संसार का स्रष्टा ईश्वर सब की व्यवस्था करता है वैसे अध्यापक और अध्येता होवें ॥ ९ ॥

अश्व इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्तऽउप देवाँ२ऽऋतुशः पाथऽएतु । वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (देवलोकम्) सब को मार्ग दिखाने वाले विद्वानों के मार्ग को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानते हुए जैसे (घृतेन) जल से संयुक्त किया (अश्वः) शीघ्रगामी अग्नि (त्मन्या) आत्मा से (ऋतुशः) ऋतु ऋतु में (देवान्) उत्तम व्यवहारों को (समक्तः) सम्यक् प्रकट करता हुआ (पाथः) अन्न को (उप, एतु) निकट से प्राप्त हूजिये (अग्निना) अग्नि के साथ (वनस्पतिः) किरणों का रक्षक सूर्य (स्वदितानि) स्वादिष्ट (हव्या) भोजन के योग्य अन्नों को (वक्षत्) प्राप्त करे वैसे आत्मा से वर्त्ताव कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे सूर्य ऋतुओं का विभाग कर उत्तम सेवने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता है वैसे उत्तम अधम विद्यार्थी और विद्या अविद्या की अलग अलग परीक्षा कर अच्छे शिक्षित करें और अविद्या की निवृत्ति करें ॥ १० ॥

प्रजापतेरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने । स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! आप (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुए (प्रजापतेः) प्रजारक्षक ईश्वर के (तपसा) प्रताप से (वावृधानः) बढ़ते हुए (स्वाहाकृतेन) सुन्दर संस्काररूप क्रिया से सिद्ध हुए (हविषा) होम में देने योग्य पदार्थ से (यज्ञम्) यज्ञ को (दधिषे) धारते हो जो (पुरोगाः) मुखिया वा अगुआ (साध्याः) साधनों से सिद्ध करने योग्य (देवाः) विद्वान् लोग (हविः) ग्राह्य अन्न का (अदन्तु) भोजन करें उन को (याहि) प्राप्त हूजिये ॥११॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य के समान प्रजा के रक्षक धर्म से प्राप्त हुए पदार्थ के भोगने वाले होते हैं वे सर्वोत्तम गिने जाते हैं ॥ ११ ॥

यदक्रन्द इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । यजमानो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमानऽउद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहूऽउपस्तुत्यं महि जातं तेऽअर्वन् ॥१२॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वेग वाले विद्वान् पुरुष ! (यत्) जब (समुद्रात्) अन्तरिक्ष (उत, वा) अथवा (पुरीषात्) रक्षक परमात्मा से (प्रथमम्) पहिले (जायमानः) उत्पन्न हुए वायु के समान (उद्यन्) उदय को प्राप्त हुए (अक्रन्दः) शब्द करते हो तब (हरिणस्य) हरणशील वीरजन (ते) आप के (बाहू) भुजा (श्येनस्य) श्येनपक्षी के (पक्षा) पंखों के तुल्य बलकारी है यह (महि) महत् कर्म (जातम्) प्रसिद्ध (उपस्तुत्यम्) समीपस्थ स्तुति का विषय होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुआ वायु कर्मों को कराता वैसे मनुष्यों के शुभगुणों को तुम लोग ग्रहण करो जैसे पशुओं में घोड़ा वेगवान् है वैसे शत्रुओं को रोकने में वेगवान् श्येन पक्षी के तुल्य वीर पुरुषों की सेना वाले दृढ़ ढीठ होओ यदि ऐसे करो तो सब कर्म तुम्हारा प्रशंसित होवे ॥ १२ ॥

यमेनेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

यमेन दत्तं त्रितऽएनमायुनगिन्द्रऽएणं प्रथमोऽअध्यतिष्ठत् । गन्धर्वोऽअस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥१३॥

पदार्थ—हे (वसवः) विद्वन् ! जो (इन्द्रः) बिजुली (त्रितः) पृथिवी जल और आकाश से (यमेन) नियमकर्त्ता वायु ने (दत्तम्) दिये अर्थात् उत्पन्न किये (एनम्) इस अग्नि को (आयुनक्) युक्त करती है (एनम्) इस को प्राप्त हो के (प्रथमः) विस्तीर्ण प्रख्यात विद्युत् (अध्यतिष्ठत्) सर्वोपरि स्थित होती है (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करता हुआ (अस्य) इस सूर्य की (रशनाम्) रस्सी के तुल्य किरणों की गति को (अगृभ्णात्) ग्रहण करता है इस (सूरात्) सूर्यरूप से (अश्वम्) शीघ्रगामी वायु को (निरतष्ट) सूक्ष्म करता है उस को तुम लोग विस्तृत करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर ने इस संसार में जिस पदार्थ में जैसी रचना की है उस को तुम लोग विद्या से जानो और इस सृष्टिविद्या को ग्रहण कर अनेक सुखों को सिद्ध करो ॥ १३ ॥

असीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

असि यमोऽअस्यादित्योऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन । असि सोमेन समया विपृक्तऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥१४॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) वेगवान् अग्नि के समान जन ! जिससे तू (गुह्येन) गुप्त (व्रतेन) स्वभाव तथा (त्रितः) कर्म उपासना ज्ञान से युक्त (यमः) नियमकर्त्ता न्यायाधीश के तुल्य (असि) है (आदित्यः) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशित जैसा (असि) है विद्वान् के सदृश (असि) है (सोमेन) ऐश्वर्य के निकट (विपृक्तः) विशेषकर संबद्ध (असि) है । उस (ते) तेरे (दिवि) प्रकाश में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धनों को अर्थात् ऋषि देव पितृ ऋणों के बन्धनों को (आहुः) कहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि न्यायाधीश सूर्य और चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त होवें जैसे इस संसार के बीच वायु और सूर्य के आकर्षणों से बन्धन हैं वैसे ही परस्पर शरीर वाणी मन के आकर्षणों से प्रेम के बन्धन करें ॥ १४ ॥

त्रीणीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

त्रीणि तऽआहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे । उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा तऽआहुः परमं जनित्रम् ॥१५॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त विद्वान् जन ! (यत्र) जिस (दिवि) विद्या के प्रकाश में (ते) आप के (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धनों को विद्वान् लोग (आहुः) कहते हैं जहां (अप्सु) प्राणों में (त्रीणि) तीन जहां (अन्तः) बीच में और (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (त्रीणि) तीन बन्धनों को (आहुः) कहते हैं और (ते) आप के (परमम्) उत्तम (जनित्रम्) जन्म को कहते हैं जिससे (वरुणः) श्रेष्ठ हुए विद्वानों का (छन्त्सि) सत्कार करते हो (उतेव) उत्प्रेक्षा के तुल्य वे सब (मे) मेरे होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आत्मा मन और शरीर में ब्रह्मचर्य के साथ विद्याओं में नियत होके विद्या और सुशिक्षा का संचय करो । द्वितीय विद्याजन्म को पाकर पूजित होवो जिस जिस के साथ अपना जितना सम्बन्ध है उस को जानो ॥ १५ ॥

इमेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को घोड़ों के रखने से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है —

इमा ते॑ वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां॑ सनितुर्नि॒धाना॑ ।
अत्रा॑ ते भद्रा र॑शनाऽअ॑पश्यमृतस्य॒ याऽअ॑भिरक्ष॑न्ति गोपाः ॥१६॥

पदार्थ—हे (वाजिन्) घोड़े के तुल्य वेगादि गुणों से युक्त सेनाधीश ! जैसे मैं (ते) आप के (इमा) इन प्रत्यक्ष घोड़ों की (अवमार्जनानि) शुद्धि क्रियाओं और (इमा) इन (शफानाम्) सुमों के (सनितुः) रखने के नियम के (निधाना) स्थानों को (अपश्यम्) देखता हूं (अत्र) इस सना में (ते) आप के घोड़े की (याः) जो (भद्राः) सुन्दर शुभकारिणी (गोपाः) उपद्रव से रक्षा करनेहारी (रशनाः) लगाम की रस्सी (ऋतस्य) सत्य की (अभिरक्षन्ति) सब ओर से रक्षा करती हैं उनको मैं देखूं वैसे आप भी देखें ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग स्नान से घोड़े आदि की शुद्धि तथा उनके सुमों की रक्षा के लिये लोहे के बनाये नालों को संयुक्त और लगाम की रस्सी आदि सामग्री को संयुक्त कर कर अच्छी शिक्षा दे रक्षा करते हैं वे युद्धादि कार्यों में सिद्धि करनेवाले होते हैं ॥ १६ ॥

आत्मानमित्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यानरचना से क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आत्मानं॑ ते॒ मन॑सा॒राद॑जाना॒दवो दि॒वा प॒तय॑न्तं पत॒ङ्गम् ।
शिरो॑ऽअपश्यं प॒थिभिः सु॒गेभि॑ररे॒णुभि॒र्जेह॑मानं पत॒त्रि ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! मैं जैसे (मनसा) विज्ञान से (आरात्) निकट में (अवः) नीचे से (दिवा) आकाश के साथ (पतङ्गम्) सूर्य के प्रति (पतयन्तम्) चलते हुए (ते) आप के (आत्मानम्) आत्मास्वरूप को (अजानाम्) जानता हूं और (अरेणुभिः) धूलिरहित निर्मल (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन में चलना हो उन (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानम्) प्रयत्न के साथ जाते हुए (पतत्रि) पक्षीवत् उड़ने वाले (शिरः) दूर से शिर के तुल्य गोलाकार लक्षित होते विमानादि यान को (अपश्यम्) देखता हूं वैसे आप भी देखिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग सब से अतिवेग वाले शीघ्र चलाने हारे अग्नि के तुल्य अपने आत्मा को देखो, सम्प्रयुक्त किये अग्नि आदि के सहित यानों में बैठ के जल स्थल और आकाश में प्रयत्न से जाओ आओ, जैसे शिर उत्तम है वैसे विमान यान को उत्तम मानना चाहिये ॥१७॥

अत्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब शूरवीर लोग क्या करें इस विषय को कहा है—

अत्रा॑ ते रू॒पमु॑त्तमम॑पश्यं॒ जिगी॑षमाणमि॒षऽआ प॒दे गोः ।
य॒दा ते॒ मर्तो॒ऽअनु॒ भोग॒मान॒ळादिद्ग्रसि॑ष्ठ॒ऽओष॑धीरजीगः ॥१८॥

पदार्थ—हे वीर पुरुष ! (ते) आप के (जिगीषमाणम्) शत्रुओं को जीतते हुए (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) रूप और (गोः) पृथिवी के (पदे) प्राप्त होने योग्य (अत्र) इस व्यवहार में (इषः) अन्नों के दानों को (आ, अपश्यम्) अच्छे प्रकार देखूं (ते) आपका (मर्त्तः) मनुष्य (यदा) जब (भोगम्) भोग्य वस्तु को (आनट्) व्याप्त होता है तब (आत्, इत्) इसके अनन्तर ही (ग्रसिष्ठः) अति खाने वाले हुए आप (ओषधीः) ओषधियों को (अनु, अजीगः) अनुकूलता से भोगते हो ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम घोड़े आदि सेना के अङ्ग विजय करनेवाले हों वैसे शूरवीर विजय के हेतु होकर भूमि के राज्य में भोगों को प्राप्त हों ॥१८॥

अनु त्वेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे राजप्रजा के कार्य सिद्ध करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अनु॑ त्वा॒ रथो॒ऽअनु॒ मर्यो॑ऽअर्व॒न्ननु॒ गावोऽनु॒ भगः॑ क॒नीना॑म् ।
अनु॒व्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑युरनु॒ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्यं॑ ते ॥१९॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! (ते) आप के (कनीनाम्) शोभायमान मनुष्यों के बीच वर्त्तमान (देवाः) विद्वान् (व्रातासः) मनुष्य (अनु, वीर्यम्) बल पराक्रम के अनुकूल (अनु, ममिरे) अनुमान करें और (तव) आप की (सख्यम्) मित्रता को (अनु, ईयुः) अनुकूल प्राप्त हों (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल (रथः) विमानादि यान (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल वा पीछे आश्रित (मर्यः) साधारण मनुष्य (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल वा पीछे (गावः) गौ और (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल (भगः) ऐश्वर्य होवे ॥ १९ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य अच्छे शिक्षित होकर औरों को सुशिक्षित करें उन में से उत्तमों को सभासद् और सभासदों में से अत्युत्तम सभापति को स्थापन कर राजप्रजा के प्रधान पुरुषों की एक अनुमति से राजकार्यों को सिद्ध करें तो सब आपस में अनुकूल हो के सब कार्यों को पूर्ण करें ॥ १९ ॥

हिरण्यशृङ्ग इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को अग्न्यादि पदार्थों के गुण-ज्ञान से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

हिर॑ण्यशृङ्गो॒ऽयो॑ऽअस्य॒ पादा॒ मनो॑जवा॒ऽअव॑र॒ऽइन्द्र॑ऽआसीत् ।
दे॒वाऽइद॑स्य हवि॒रद्य॑माय॒न्योऽअर्व॑न्तं प्रथ॒मोऽअ॒ध्यति॑ष्ठत् ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अवरः) नवीन (हिरण्यशृङ्गः) शृङ्ग के तुल्य जिस के तेज हैं वह (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य वाला बिजुली के समान सभापति (आसीत्) होवे जो (प्रथमः) पहिला (अर्वन्तम्) घोड़े के तुल्य मार्ग को प्राप्त होते हुए अग्नि तथा (अयः) सुवर्ण का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता अर्थात् अग्नि-प्रयुक्त यान पर बैठ के चलाने वाली होवे राजा (अस्य) इसके (पादाः) पग (मनोजवाः) मन के तुल्य वेग वाले हों अर्थात् पग का चलना काम विमानादि से लेवे (देवाः) विद्वान् सभासद् लोग (अस्य) इस राजा के (हविरद्यम्) देने और भोजन करने योग्य अन्न को (इत्, आयन्) ही प्राप्त होवें उसको तुम लोग जानो ॥ २० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्न्यादि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् जानें वे बहुत अद्भुत कार्यों को सिद्ध कर सकें, जो प्रीति से राजकार्य्यों को सिद्ध करें वे सत्कार को और जो नष्ट करें वे दण्ड को अवश्य प्राप्त होवें ॥ २० ॥

ईर्मान्तास इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्या देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कैसे राजपुरुष विजय पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ई॒र्मान्ता॑सः सिलि॑कमध्यमासः॒ सꣳ शूर॑णासो दि॒व्यासो॒ऽअत्याः॑ ।
ह॒ꣳसाऽइ॑व श्रेणि॒शो य॑तन्ते॒ यदाक्षि॑षुर्दि॒व्यमज्म॒मश्वाः॑ ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो अग्नि आदि पदार्थों के तुल्य (ईर्मान्तासः) जिनका बैठने का स्थान प्रेरणा किया गया (सिलिकमध्यमासः) गदा आदि से लगा हुआ है मध्यप्रदेश जिनका ऐसे (शूरणासः) शीघ्र युद्ध में विजय के हेतु (दिव्यासः) उत्तम शिक्षित (अत्याः) निरन्तर चलने वाले (अश्वाः) शीघ्रगामी घोड़े (श्रेणिशः) पङ्क्ति बांधे हुए (हंसा इव) हंस पक्षियों के तुल्य (यतन्ते) प्रयत्न करते हैं और (दिव्यम्) शुद्ध (अज्मम्) मार्ग को (सम्, आक्षिषुः) व्याप्त होवें उनको तुम लोग प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन राजपुरुषों के सुशिक्षित उत्तम गति वाले घोड़े अग्न्यादि पदार्थों के समान कार्यसाधक होते हैं वे सर्वत्र विजय पाते हैं ॥ २१ ॥

तवेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । वायवो देवताः । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को अनित्य शरीर पाके क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॒र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ऽइव॒ ध्रजी॑मान् ।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥२२॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान वीर पुरुष ! जिस (तव) तेरा (पतयिष्णु) नाशवान् (शरीरम्) शरीर (तव) तेरे (चित्तम्) अन्तःकरण की वृत्ति (वात इव) वायु के सदृश (ध्रजीमान्) वेगवाली अर्थात् शीघ्र दूरस्थ विषयों के तत्त्व जानने वाली (तव) तेरे (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) जङ्गलों में (जर्भुराणा) शीघ्र धारण पोषण करने वाले (विष्ठिता) विशेषकर स्थित (शृङ्गाणि) शृङ्गों के तुल्य ऊंचे सेना के अवयव (चरन्ति) विचरते हैं सो तू धर्म का आचरण कर ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अनित्य शरीरों में स्थित हो नित्य कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे अतुल सुख पाते हैं और जो वन के पशुओं के तुल्य भृत्य और सेना हैं वे घोड़े के तुल्य शीघ्रगामी होके शत्रुओं को जीतने को समर्थ होते हैं ॥ २२ ॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्या देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कैसे विद्वान् हितैषी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उप॒ प्रागा॒च्छस॑नं वा॒ज्यर्वा॑ देव॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नः ।
अ॒जः पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒स्यानु॑ प॒श्चात्क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥२३॥

पदार्थ—जो (दीध्यानः) सुन्दर प्रकाशमान हुआ (अजः) फेंकने वाला (वाजी) वेगवान् (अर्वा) चालाक घोड़ा (देवद्रीचा) विद्वानों को प्राप्त होते हुए (मनसा) मन से (शसनम्) जिसमें हिंसा होती है उस युद्ध को (उप, प्र, अगात्)

अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होता है । विद्वानों से (अस्य) इसका (नाभिः) मध्यभाग अर्थात् पीठ (पुरः) आगे (नीयते) प्राप्त की जाती अर्थात् उस पर बैठते हैं उसको (पश्चात्) पीछे (रेभाः) सब विद्याओं की स्तुति करने वाले (कवयः) बुद्धिमान् जन (अनु, यन्ति) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग उत्तम विचार से घोड़ों को अच्छी शिक्षा दे और अग्नि आदि पदार्थों को सिद्ध कर ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ २३ ॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

कौन जन राज्यशासन करने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उप प्रागा॑त्पर॒मं यत्स॒धस्थ॒मर्वाँ॒२ऽअच्छा॑ पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ।
अ॒द्या दे॒वाञ्जुष्ट॑तमो॒ हि ग॒म्या॒ऽअथा शा॑स्ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥२४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यत्) जो (अर्वान्) ज्ञानी जन (जुष्टतमः) अतिशय कर सेवन किया हुआ (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) साथियों के स्थान (पितरम्) पिता (मातरम्) माता (च) और (देवान्) विद्वानों की (अद्य) इस समय (आ, शास्ते) अधिक इच्छा करता है (अथ) इसके अनन्तर (दाशुषे) दाता जन के लिये (वार्याणि) स्वीकार करने और भोजन के योग्य वस्तुओं को (उप, प्र, अगात्) प्रकर्ष करके समीप प्राप्त होता है उसको (हि) ही आप (अच्छ, गम्याः) प्राप्त हूजिये ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग न्याय और विनय से परोपकारों को करते हैं वे उत्तम २ जन्म श्रेष्ठ पदार्थों विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त हों और विद्वानों के सेवक होके महान् सुख को प्राप्त हो वे राज्यशासन करने को समर्थ होवें ॥ २४ ॥

समिद्ध इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

धर्मात्मा लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

समि॑द्धोऽअ॒द्य मनु॑षो दुरो॒णे दे॒वो दे॒वान्य॑जसि जातवेदः ।
आ च॒ वह॑ मित्रमहश्चिकि॒त्वान्त्वं दू॒तः क॒विर॑सि॒ प्रचे॑ताः ॥२५॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुए (मित्रमहः) मित्रों का सत्कार करने वाले विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (अद्य) इस समय (समिद्धः) सम्यक् प्रकाशित अग्नि के तुल्य (मनुषः) मननशील (देवः) विद्वान् हुए (यजसि) सङ्ग करते हो (च) और (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (दूतः) दुष्टों को दुःखदाई (प्रचेताः) उत्तम चेतनता वाला (कविः) सब विषयों में अव्याहतबुद्धि (असि) हो सो आप (दुरोणे) घर में (देवान्) विद्वानों वा उत्तम गुणों को (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि दीपक आदि के रूप से घरों को प्रकाशित करता है वैसे धार्मिक विद्वान् लोग अपने कुलों को प्रकाशित करते हैं जो सब के साथ मित्रवत् वर्त्तते हैं वे ही धर्मात्मा हैं ॥ २५ ॥

तनूनपादित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

तनू॑नपात्प॒थऽऋ॒तस्य॒ याना॒न्मध्वा॑ सम॒ञ्जन्त्स्व॑दया सुजिह्व ।
मन्मा॑नि धी॒भिरु॒त य॒ज्ञमृ॒न्धन्दे॑व॒त्रा च॑ कृणुह्यध्व॒रं नः॑ ॥२६॥

पदार्थ—हे (सुजिह्व) सुन्दर जीभ वा वाणी से युक्त (तनूनपात्) विस्तृत पदार्थों को न गिराने वाले विद्वान् जन ! आप (ऋतस्य) सत्य वा जल के (यानान्) जिनमें चलें उन (पथः) मार्गों को अग्नि के तुल्य (मध्वा) मधुरता अर्थात् कोमल भाव से (समञ्जन्) सम्यक् प्रकार करते हुए (स्वदय) स्वाद लीजिये अर्थात् प्रसन्न कीजिये (धीभिः) बुद्धियों वा कर्मों से (मन्मानि) यानों को (उत) और (नः) हमारे (अध्वरम्) नष्ट न करने और (यज्ञम्) संगत करने योग्य व्यवहार को (ऋन्धन्) सम्यक् सिद्ध करता हुआ (च) भी (देवत्रा) विद्वानों में स्थित होकर (कृणुहि) कीजिये ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । धार्मिक मनुष्यों को चाहिए कि पथ्य औषध पदार्थों का सेवन करके सुन्दर प्रकार प्रकाशित होवें, आप्त विद्वानों की सेवा में स्थित हो तथा बुद्धियों को प्राप्त हो के अहिंसारूप धर्म को सेवें ॥२६॥

नराशंसस्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

न॒रा॒शꣳस॑स्य महि॒मान॑मेषा॒मुप॑ स्तोषाम यज॒तस्य॑ य॒ज्ञैः ।
ये सु॒क्रत॑वः॒ शुच॑यो धिय॒न्धाः स्वद॑न्ति दे॒वाऽउ॒भया॑नि ह॒व्या ॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ये) जो (सुक्रतवः) सुन्दर बुद्धियों और कर्मों वाले (शुचयः) पवित्र (धियन्धाः) श्रेष्ठ धारणावती बुद्धि और कर्म को धारण करनेहारे (देवाः) विद्वान् लोग (उभयानि) दोनों शरीर आत्मा को सुखकारी (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों को (स्वदन्ति) भोगते हैं (एषाम्) इन विद्वानों के (यज्ञैः) सत्संगादि रूप यज्ञों से (नराशंसस्य) मनुष्यों से प्रशंसित (यजतस्य) सङ्ग करने योग्य व्यवहार के (महिमानम्) बड़प्पन को (उप, स्तोषाम) समीप प्रशंसा करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो लोग स्वयं पवित्र बुद्धिमान् वेद शास्त्र के वेत्ता नहीं होते वे दूसरों को भी विद्वान् पवित्र नहीं कर सकते । जिनके जैसे गुण जैसे कर्म हों उनकी धर्मात्मा लोगों को यथार्थ प्रशंसा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

आजुह्वान इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

आ॒जुह्वा॑न॒ऽईड्यो॒ वन्द्य॒श्चा या॑ह्यग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषाः॑ ।
त्वं दे॒वाना॑मसि यह्व होता॒ सऽए॑नान्यक्षीषि॒तो यजी॑यान् ॥२८॥

पदार्थ—हे (यह्व) बड़े उत्तम गुणों से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य पवित्र विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (देवानाम्) विद्वानों के बीच (होता) दानशील (यजीयान्) अति समागम करने हारे (असि) हैं (इषितः) प्रेरणा किये हुए (एनान्) इन विद्वानों का (यक्षि) सङ्ग कीजिये (सः) सो आप (वसुभिः) निवास के हेतु विद्वानो के साथ (सजोषाः) समान प्रीति निवाहने वाले (आजुह्वानः) अच्छे प्रकार स्पर्द्धा ईर्ष्या करते हुए (ईड्यः) प्रशंसा (च) तथा (वन्द्यः) नमस्कार के योग्य इन विद्वानों के निकट (आ, याहि) आया कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पवित्रात्मा प्रशंसित विद्वानों के संग से आप पवित्रात्मा होवें तो वे धर्मात्मा हुए सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होवें ॥ २८ ॥

प्राचीनमित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अन्तरिक्षं देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

प्रा॒चीनं॑ ब॒र्हिः प्र॒दिशा॑ पृथि॒व्या वस्तो॑र॒स्या वृ॑ज्यते॒ऽअग्रे॒ऽअह्ना॑म् ।
व्यु॑ प्रथते वित॒रं वरी॑यो दे॒वेभ्यो॒ऽअदि॑तये स्यो॒नम् ॥२९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के बीच (प्राचीनम्) सनातन (बर्हिः) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक ब्रह्म (वस्तोः) दिन के प्रकाश से (वृज्यते) अलग होता (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) आरम्भ प्रातःकाल में (देवेभ्यः) विद्वानों (उ) और (अदितये) अविनाशी आत्मा के लिये (वितरम्) विशेषकर दुःखों से पार करनेहारे (वरीयः) अतिश्रेष्ठ (स्योनम्) सुख को (वि, प्रथते) विशेषकर प्रकट करता उसको तुम लोग (प्रदिशा) वेद शास्त्र के निर्देश से जानो और प्राप्त होओ ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों के लिये सुख देवें वे सर्वोत्तम सुख को प्राप्त हों जैसे आकाश सब दिशाओं और पृथिव्यादि में व्याप्त है वैसे जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त है । जो लोग ऐसे ईश्वर की प्रातःकाल उपासना करते वे धर्मात्मा हुए विस्तीर्ण सुखों वाले होते हैं ॥ २९ ॥

व्यचस्वतीरित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

व्यच॑स्वतीरुर्वि॒या वि श्र॑यन्तां॒ पति॑भ्यो॒ न जन॑यः॒ शुम्भ॑मानाः ।
देवी॑र्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा दे॒वेभ्यो॑ भवत सुप्राय॒णाः ॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (उर्विया) अधिकता से शुभगुणों में (व्यचस्वतीः) व्याप्ति वाली (बृहतीः) महती (विश्वमिन्वाः) सब व्यवहारों में व्याप्त (सुप्रायणाः) जिनके होने में उत्तम घर हों (देवीः) आभूषणादि से प्रकाशमान (द्वारः) दरवाजों के (न) समान अवकाश वाली (पतिभ्यः) पाणिग्रहण विवाह करने वाले (देवेभ्यः) उत्तम गुणयुक्त पतियों के लिये (शुम्भमानाः) उत्तम शोभायमान हुई (जनयः) सब स्त्रियां अपने २ पतियों को (वि, श्रयन्ताम्) विशेषकर सेवन करें वैसे तुम लोग सब विद्याओं में व्यापक (भवत) होओ ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे व्यापक हुई दिशा अवकाश देने और सब के व्यवहारों की साधक होने से आनन्द देने वाली होती हैं वैसे ही आपस में प्रसन्न हुए स्त्री पुरुष उत्तम सुखों को प्राप्त होके अन्यों के हितकारी होवें ॥ ३० ॥

आ सुष्वयन्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजप्रजा धर्म अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ सु॒ष्वय॑न्ती यज॒ते॒ऽउपा॑के॒ऽउ॒षासा॒नक्ता॑ सदतां॒ नि योनौ॑ ।
दि॒व्ये॒ योष॑णे बृह॒ती सु॑रु॒क्मेऽअधि॒ श्रिय॑ꣳ शुक्र॒पिशं॒ दधा॑ने ॥३१॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! यदि (दिव्यं) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाली (योषणे) दो स्त्रियों के समान (सुरुक्मे) सुन्दर शोभायुक्त (बृहती) बड़ी (अधि) अधिक (श्रियम्) शोभा व लक्ष्मी को तथा (शुक्रपिशम्) प्रकाश और अन्धकाररूपों को (दधाने) धारण करती हुई (सुष्वयन्ती) सोती हुइयों के समान (उपाके) निकटवर्त्तिनी (उषासानक्ता) दिन रात (योनौ) कालरूप कारण में (नि, आ, सदताम्) निरन्तर अच्छे प्रकार चलते हैं उनको (यजते) सङ्गत करते तो अतोल शोभा को प्राप्त होओ ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे काल के

साथ वर्त्तमान रातदिन एक दूसरे से सम्बद्ध विलक्षण स्वरूप से वर्त्तते हैं वैसे राजा प्रजा परस्पर प्रीति के साथ वर्त्ता करें ॥ ३१ ॥

दैव्यावित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कारीगर लोगों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।

प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (दैव्या) विद्वानों में कुशल (होतारा) दानशील (प्रथमा) प्रसिद्ध (सुवाचा) प्रशंसित वाणी वाले (मिमाना) विधान करते हुए (यज्ञम्) संगतिरूप यज्ञ के (यजध्यै) करने को (मनुषः) मनुष्यों को (विदथेषु) विज्ञानों में (प्रचोदयन्ता) प्रेरणा करते हुए (प्रदिशा) वेदशास्त्र के प्रमाण से (प्राचीनम्) सनातन (ज्योतिः) शिल्प विद्या के प्रकाश का (दिशन्ता) उपदेश करते हुए (कारू) दो कारीगर लोग होवें उनसे शिल्प विज्ञान शास्त्र पढ़ना चाहिये ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में (कारू) शब्द में द्विवचन अध्यापक और हस्तक्रियाशिक्षक इन दो शिल्पियों के अभिप्राय से है । जो कारीगर होवें वे जितनी शिल्पविद्या जानें उतनी सब दूसरों के लिये शिक्षा करें जिस से उत्तर २ विद्या की सन्तति बढ़े ॥ ३२ ॥

आ न इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । वाग्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (भारती) शिल्पविद्या को धारण करनेहारी क्रिया (इडा) सुन्दर शिक्षित मीठी वाणी (सरस्वती) विज्ञान वाली बुद्धि (इह) इस शिल्पविद्या के ग्रहणरूप व्यवहार में (नः) हमको (तूयम्) वर्धक (यज्ञम्) शिल्पविद्या के प्रकाशरूप यज्ञ को (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (चेतयन्ती) जनाती हुई हमको (आ, एतु) सब ओर से प्राप्त होवे ये पूर्वोक्त (तिस्रः) तीन (देवीः) प्रकाशमान (इदम्) इस (बर्हिः) बढ़े हुए (स्योनम्) सुखकारी काम को (स्वपसः) सुन्दर कर्मों वाले हमको (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त कर ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस शिल्पव्यवहार में सुन्दर उपदेश और क्रियाविधि को जताना और विद्या का धारण इष्ट है । यदि इन तीन रीतियों को मनुष्य ग्रहण करें तो बड़ा सुख भोगें ॥ ३३ ॥

य इम इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यऽइमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा ।

तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥३४॥

पदार्थ—हे (होतः) ग्रहण करने वाले जन ! (यः) जो (यजीयान्) अतिसमागम करने वाला (इषितः) प्रेरणा किया हुआ (विद्वान्) सब ओर से विद्या को प्राप्त विद्वान् जैसे ईश्वर (इह) इस व्यवहार में (रूपैः) चित्र विचित्र आकारों से (इमे) इन (जनित्री) अनेक कार्यों को उत्पन्न करने वाली (द्यावापृथिवी) बिजुली और पृथिवी आदि (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अपिंशत्) अवयवरूप करता है वैसे (तम्) उस (त्वष्टारम्) वियोग संयोग अर्थात् प्रलय उत्पत्ति करनेहारे (देवम्) ईश्वर का (अद्य) आज तू (यक्ष) संग करता है इससे सत्कार करने योग्य है ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को इस सृष्टि में परमात्मा की रचनाओं की विशेषताओं को जान के वैसे ही शिल्पविद्या का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

उपावसृजेत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ऋतु २ में होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथऽऋतुथा हवींꣳषि ।

वनस्पतिः शमिता देवोऽअग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥३५॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! तू (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) भोगने योग्य अन्न आदि को (मधुना) मीठे कोमल आदि रसयुक्त (घृतेन) घी आदि से (समञ्जन्) सम्यक् मिलाते हुए (त्मन्या) अपने आत्मा से (हवींषि) लेने भोजन करने योग्य पदार्थों को (ऋतुथा) ऋतु २ में (उपावसृज) यथावत् दिया कर अर्थात् होम किया कर । उस तेने दिये (हव्यम्) भोजन के योग्य पदार्थ को (वनस्पतिः) किरणों का स्वामी सूर्य्य (शमिता) शान्तिकर्त्ता (देवः) उत्तम गुणों वाला मेघ और (अग्निः) अग्नि (स्वदन्तु) प्राप्त होवें अर्थात् हवन किया पदार्थ उनको पहुँचे ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु २ में होम किया करें जिससे वह द्रव्य सूक्ष्म हो और क्रम से अग्नि, सूर्य्य तथा मेघ को प्राप्त होके वर्षा के द्वारा सबका उपकारी होवे ॥ ३५ ॥

सद्य इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य सबको आनन्द कराता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।

अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥३६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अग्निः) विद्या से प्रकाशित विद्वान् (होतुः) ग्रहण करनेहारे पुरुष के (ऋतस्य) सत्य का (प्रदिशि) जिससे निर्देश किया जाता है उस (वाचि) वाणी में (यज्ञम्) अनेक प्रकार के व्यवहार को (वि, अमिमीत) विशेषकर निर्माण करता और (देवानाम्) विद्वानों में (पुरोगाः) अग्रगामी (अभवत्) होता है (अस्य) इसके (स्वाहाकृतम्) सत्य व्यवहार से सिद्ध किये वा होम किये से बचे (हविः) भोजन के योग्य अन्नादि को (देवाः) विद्वान् लोग (अदन्तु) खावें उसको सर्वोपरि विराजमान मानो ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य सब प्रकाशक पदार्थों के बीच प्रकाशक है वैसे जो विद्वानों में विद्वान् सबका उपकारी जन होता है वही सबको आनन्द का भुगवाने वाला होता है ॥ ३६ ॥

केतुमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विद्वांसो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आप्त लोग कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥३७॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (मर्याः) मनुष्य (अपेशसे) जिसके सुवर्ण नहीं है उसके लिये (पेशः) सुवर्ण को और (अकेतवे) जिस को बुद्धि नहीं है उसके लिए (केतुम्) बुद्धि को करते हैं उन (उषद्भिः) होम करने वाले यजमान पुरुषों के साथ बुद्धि और धन को (कृण्वन्) करते हुए आप (सम्, अजायथाः) सम्यक् प्रसिद्ध हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही आप्तजन हैं जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यों का भी सुख चाहते हैं उन्हीं के सङ्ग से विद्या की प्राप्ति अविद्या की हानि धन का लाभ और दरिद्रता का विनाश होता है ॥३७॥

जीमूतस्येवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्वान्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वीर राजपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।

अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥३८॥

पदार्थ—(यत्) जो (वर्मी) कवच वाला योद्धा (अनाविद्धया) जिस में कुछ भी घाव न लगा हो उस (तन्वा) शरीर से (समदाम्) आनन्द के साथ जहां वर्त्तें उन युद्धों के (उपस्थे) समीप में (प्रतीकम्) जिससे निश्चय करे उस चिह्न को (याति) प्राप्त होता है (सः) वह (जीमूतस्येव) मेघ के निकट जैसे बिजुली वैसे (भवति) होता है । हे विद्वन् ! जिस (त्वा) आप को (वर्मणः) रक्षा का (महिमा) महत्व (पिपर्त्तु) पाले सो (त्वम्) आप शत्रुओं को (जय) जीतिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मेघ की सेना सूर्य प्रकाश को रोकती है वैसे कवच आदि से शरीर का आच्छादन करे जैसे समीपस्थ सूर्य और मेघ का संग्राम होता है वैसे ही वीर राजपुरुषों को युद्ध और रक्षा भी करनी चाहिये ।३८।

धन्वनेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।

धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥३९।

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जैसे हम लोग जो (धनुः) शस्त्र अस्त्र (शत्रोः) वैरी की (अपकामम्) कामनाओं को नष्ट (कृणोति) करता है उस (धन्वना) धनुष् आदि शस्त्र अस्त्र विशेष से (गाः) पृथिवियों को और (धन्वना) उक्त शस्त्र विशेष से (आजिम्) संग्राम को (जयेम) जीतें (धन्वना) तोप आदि शस्त्र अस्त्रों से (तीव्राः) तीव्र वेग वाली (समदः) आनन्द के साथ वर्त्तमान शत्रुओं की सेनाओं को (जयेम) जीतें (धन्वना) धनुष् से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं को (जयेम) जीतें वैसे तुम लोग भी इस धनुष् आदि से जीतो ॥३९॥

भावार्थ—जो मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान की क्रियाओं में कुशल हों तो सब जगह ही उन का विजय प्रकाशित होवे जो विद्या विनय और शूरता आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य को चाहें तो कुछ भी अशक्य न हो ॥३९॥

वक्ष्यन्तीवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना ।

योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥४०॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जो (इयम्) यह (वितता) विस्तारयुक्त (धन्वन्) धनुष् में (अधि) ऊपर लगी (ज्या) प्रत्यंचा तांत (वक्ष्यन्तीव) कहने को उद्यत हुई विदुषी स्त्री के तुल्य (इत्) ही (आगनीगन्ति) शीघ्र बोध को प्राप्त कराती हुई जैसे (कर्णम्) जिसकी स्तुति सुनी जाती (प्रियम्) प्यारे (सखायम्) मित्र

के तुल्य वर्त्तमान पति को (परिषस्वजाना) सब ओर से सङ्ग करती हुई (योषेव) स्त्री बोलती वैसे (शिङ्क्ते) शब्द करती है (समने) संग्राम में (पारयन्ती) विजय को प्राप्त कराती हुई वर्त्तमान है उसके बनाने बांधने और चलाने को जानो ॥४०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि शस्त्र अस्त्रों की रचना सम्बन्ध और चलाना आदि क्रियाओं को जाने तो उपदेश करने और माता के तुल्य सुख देने वाली पत्नी और विजय सुख को प्राप्त हों ॥४०॥

त आचरन्ती इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यताᳬसंविदानेऽआर्त्नीऽइमे विष्फुरन्तीऽअमित्रान्॥४१॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! दो धनुष् की प्रत्यंचा (योषा) विदुषी (समनेव) प्राण के समान सम्यक् पति को प्यारी स्त्री स्वपति को और (मातेव) जैसे माता (पुत्रम्) अपने सन्तान को (बिभृताम्) धारण करें वैसे (उपस्थे) समीप में (आचरन्ती) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई (शत्रून्) शत्रुओं को (अप, विध्यताम्) दूर तक ताड़ना करें (इमे) ये (संविदाने) अच्छे प्रकार विज्ञान की निमित्त (आर्त्नी) प्राप्त हुई (अमित्रान्) शत्रुओं को (विष्फुरन्ती) विशेष कर चलायमान करती वर्त्तमान हैं (ते) उन दोनों का यथावत् सम्यक् प्रयोग करो अर्थात् उन को काम में लाओ।४१।

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे हृदय को प्यारी स्त्री पति को और विदुषी माता अपने पुत्र को अच्छे प्रकार पुष्ट करती हैं वैसे सम्यक् प्रसिद्ध काम देने वाली धनुष् की दो प्रत्यञ्चा शत्रुओं को पराजित कर वीरों को प्रसन्न करती हैं॥ ४१ ॥

बह्वीनामित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः॥४२॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जो (बह्वीनाम्) बहुत प्रत्यंचाओं का (पिता) पिता के तुल्य रखने वाला (अस्य) इस पिता का (बहुः) बहुत गुण वाले (पुत्रः) पुत्र के समान सम्बन्धी (पृष्ठे) पिछले भाग में (निनद्धः) निश्चित बंधा हुआ (इषुधिः) बाण जिसमें धारण किये जाते वह धनुष् (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ (समनाः) संग्रामों को (अवगत्य) प्राप्त होके (चिश्चा) चि, चि, चि ऐसा शब्द (कृणोति) करता है और जिससे वीर पुरुष (सर्वाः) सब (संकाः) इकट्ठी वा फैली हुई (पृतनाः) सेनाओं को (जयति) जीतता है उसकी यथावत् रक्षा करो ॥४२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे अनेक कन्याओं और बहुत पुत्रों का पिता अपत्य शब्द से संयुक्त होता है वैसे ही धनुष् प्रत्यंचा और बाण मिलकर अनेक प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करते हैं जिस के वाम हाथ में धनुष् पीठ पर बाण दाहिने हाथ से बाण को निकाल के धनुष् की प्रत्यंचा से संयुक्त कर छोड़ के अभ्यास से शीघ्रता करने की शक्ति को करता है वही विजयी होता है॥४२॥

रथ इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः।। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः॥४३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (सुषारथिः) सुन्दर सारथि घोड़ों वा अग्न्यादि को नियम में रखनेवाला (रथे) रमण करने योग्य पृथिवी जल वा आकाश में चलाने वाले यान में (तिष्ठन्) बैठा हुआ (यत्रयत्र) जिस जिस संग्राम वा देश में (कामयते) चाहता है वहां वहां (वाजिनः) घोड़ों वा वेग वाले अग्न्यादि पदार्थों को (पुरः) आगे (नयति) चलाता है जिन का (मनः) मन अच्छा शिक्षित (रश्मयः) लगाम की रस्सी वा किरण हस्तगत हैं (पश्चात्) पीछे से घोड़ों वा अग्न्यादि का (अनु, यच्छन्ति) अनुकूल निग्रह करते हैं उन (अभीशूनाम्) सब ओर से शीघ्र चलनेहारों के (महिमानम्) महत्त्व की तुम लोग (पनायत) प्रशंसा करो ॥४३॥

भावार्थ—जो राजा और राजपुरुष चक्रवर्त्ती राज्य और निश्चल विजय चाहें तो अच्छे शिक्षित मन्त्री अश्व आदि तथा अन्य चलाने वाली सामग्री अध्यक्षों शस्त्र अस्त्रों और शरीर आत्मा के बल को अवश्य सिद्ध करें॥४३॥

तीव्रानित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँ१ऽरनपव्ययन्तः॥४४॥

पदार्थ—हे वीर पुरुष ! जो (वृषपाणयः) जिन के बलवान् बैल आदि उत्तम प्राणी हाथों के समान रक्षा करने वाले हैं (रथेभिः) रमण के योग्य यानों के (सह) साथ (वाजयन्तः) वीर आदि को शीघ्र चलाने हारे (प्रपदैः) उत्तम पगों की चालों से (अमित्रान्) मित्रता रहित दुष्टों को (अवक्रामन्तः) धमकाते हुए (अश्वाः) शीघ्र चलाने हारे घोड़े (तीव्रान्) तीव्र (घोषान्) शब्दों को (कृण्वते) करते हैं और जो (अनपव्ययन्तः) व्यर्थ खर्च न कराते हुए योद्धा (शत्रून्) वैरियों को (क्षिणन्ति) क्षीण करते हैं उन को तुम लोग प्राण के तुल्य पालो ॥४४॥

भावार्थ—जो राजपुरुष हाथी, घोड़ा, बैल आदि भृत्यों और अध्यक्षों को अच्छी शिक्षा दे तथा अनेक प्रकार के यानों को बना के शत्रुओं के जीतने की अभिलाषा करते हैं तो उनका निश्चल दृढ़ विजय होता है॥४४॥

रथवाहनमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

रथवाहनᳬहविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुप शग्मᳬसदेम विश्वाहा वयᳬसुमनस्यमानाः॥४५॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! (अस्य) इस योद्धा जन के (यत्र) जिस यान में (रथवाहनम्) जिस से विमानादि यान चलते वह (हविः) ग्रहण करने योग्य अग्नि, इन्धन, जल, काठ और धातु आदि सामग्री तथा (आयुधम्) बन्दूक तोप खड्ग धनुष्य बाण शक्ति और पद्मफांसी आदि शस्त्र और (अस्य) इस योद्धा के (वर्म) कवच और (नाम) नाम (निहितम्) स्थित है (तत्र) उस यान में (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए (वयम) हम लोग (शग्मम्) सुख तथा उस (रथम्) रमण योग्य यान को (विश्वाहा) सब दिन (उप,सदेम) निकट प्राप्त होवें॥ ४५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस यान में अग्नि आदि तथा घोड़े आदि संयुक्त किये जाते उस में युद्ध की सामग्री धर नित्य उसकी देख भाल कर उस में बैठ और सुन्दर विचार से शत्रुओं के साथ सम्यक् युद्ध करके नित्य सुख को प्राप्त होओ ॥४५॥

स्वादुषंसद इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

स्वादुषᳬसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेनाऽइषुबलाऽअमृध्राः सतोवीराऽउरवो व्रातसाहाः॥४६॥

पदार्थ—हे युद्ध करने हारे वीर पुरुषो ! तुम लोग जो (स्वादुषंसदः) भोजन के योग्य अन्नादि पदार्थों को सम्यक् सेवने वाले (वयोधाः) अधिक अवस्था युक्त (कृच्छ्रेश्रितः) उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये कष्ट सेवते हुए (शक्तीवन्तः) सामर्थ्य वाले (गभीराः) महाशय (चित्रसेनाः) आश्चर्य गुण युक्त सेना वाले (इषुबलाः) शस्त्र अस्त्रों के सहित जिन की सेना (अमृध्राः) दृढ़ शरीर वाले (उरवः) बड़े बड़े जिनके जंघा और छाती (व्रातसाहाः) वीरों के समूहों को सहने वाले (सतोवीराः) विद्यमान सेना के बीच युद्धविद्या की शिक्षा को प्राप्त वीर (पितरः) पालन करनेहारे राजपुरुष हों उन का आश्रय ले युद्ध करो ॥४६॥

भावार्थ—उन्हीं का सदा विजय राज्य श्री प्रतिष्ठा बड़ी अवस्था बल और विद्या होती है जो अपने अधिष्ठाता आप्त सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित होते हैं॥४६॥

ब्राह्मणास इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। धनुर्वेदाऽध्यापका देवताः। विराट्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

किन का सत्कार करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवीऽअनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नोऽअघशᳬसऽईशत॥४७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सोम्यासः) उत्तम आनन्दकारक गुणों के योग्य (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले (पितरः) रक्षक (ब्राह्मणासः) वेद और ईश्वर के जानने हारे विद्वान् जन (नः) हमारे लिये कल्याण करने हारे और (अनेहसा) कारणरूप से अविनाशी (द्यावापृथिवी) प्रकाश पृथिवी (शिवे) कल्याणकारी हों (पूषा) पुष्टि करने हारा परमात्मा (नः) हम को (दुरितात्) दुष्ट अन्याय के आचरण से (पातु) बचावे जिससे (नः) हम को मारने को (अघशंस) पाप की प्रशंसा करने हारा चोर (माकिः) न (ईशत) समर्थ हो उन विद्वानों की तू रक्षा कर और चोरों को मार ॥४७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम को धर्मयुक्त कर्त्तव्य में प्रवृत्त कर दुष्ट आचरण से पृथक् रखते दुष्टाचारियों के बल को नष्ट और हमारी पुष्टि करते वे सदैव सत्कार करने योग्य हैं ॥४७॥

सुपर्णमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर राजधर्म अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुपर्णं वस्ते मृगोऽअस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यᳬसन्॥४८॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! (यत्र) जिस सेना में (नरः) नायक लोग हों जो (सुपर्णम्) सुन्दर पूर्ण रक्षा के साधन उस रथादि को (वस्ते) धारण करती और जहां (गोभिः) गौओं के सहित (दन्तः) जिसका दमन किया जाता उस (मृगः) कस्तूरी से शुद्ध करने वाले मृग के तुल्य (इषवः) बाण आदि शस्त्र विशेष चलते हैं जो (सन्नद्धा) सम्यक् गोष्ठी बंधी (प्रसूता) प्रेरणा की हुई शत्रुओं में (पतति) गिरती (च) और इधर उधर (अस्याः) इस सेना के वीर पुरुष (सम्, द्रवन्ति) सम्यक् चलते (च) और (वि) विशेषकर दौड़ते हैं (तत्र) उस सेना में (अस्मभ्यम्) हमारे लिये आप लोग (शर्म) सुख (यंसन्) देओ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि शत्रुओं से न धमकने वाली हृष्ट पुष्ट सेना सिद्ध करो उसमें सुन्दर परीक्षित योद्धा और अध्यक्ष रक्खो उन शस्त्र अस्त्रों के चलाने में कुशल जनों से विजय को प्राप्त होओ ॥४८॥

ऋजीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमोऽअधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥४९॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! आप (**ऋजीते**) सरल व्यवहार में (**नः**) हमारे शरीर से रोगों को (**परि, वृङ्धि**) सब ओर से पृथक् कीजिये जिससे (**नः**) हमारा (**तनूः**) शरीर (**अश्मा**) पत्थर के तुल्य दृढ़ (**भवतु**) हो जो (**सोमः**) उत्तम ओषधि है उस और जो (**अदितिः**) पृथिवी है उन दोनों को आप (**अधि, ब्रवीतु**) अधिकार उपदेश कीजिये और (**नः**) हमारे लिये (**शर्म**) सुख वा घर (**यच्छतु**) दीजिये ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषध, पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उन के शरीर दृढ़ होवें जैसे शरीरों का पृथिवी आदि का बना घर है वैसे जीव का यह शरीर घर है ॥४९॥

आजङ्घन्तीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजधर्म को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ऽउप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥५०॥

पदार्थ—हे (**अश्वाजनि**) घोड़ों को शिक्षा देने वाली विदुषी राणी ! जैसे वीर पुरुष (**एषाम्**) इन घोड़े आदि के (**सानु**) अवयव को (**आ, जङ्घन्ति**) अच्छे प्रकार शीघ्र ताड़ना करते हैं (**जघनान्**) ज्वानों को (**उप, जिघ्नते**) समीप से चलाते हैं वैसे तू (**समत्सु**) संग्रामों में (**प्रचेतसः**) शिक्षा से विशेष कर चेतन किये (**अश्वान्**) घोड़ों को (**चोदय**) प्रेरणा कर ॥५०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे राजा और राजपुरुष विमानादि रथ और घोड़ों के चलाने तथा युद्ध के व्यवहारों को जानें वैसे उनकी स्त्रियाँ भी जानें ॥ ५० ॥

अहिरिवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । महावीरः सेनापतिर्देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाꣳसं परि पातु विश्वतः ॥५१॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जो (**हस्तघ्नः**) हाथों से मारने वाले (**विद्वान्**) विद्वान् (**पुमान्**) पुरुषार्थी आप (**ज्यायाः**) प्रत्यञ्चा से (**हेतिम्**) बाण को चला के (**बाहुम्**) बाधा देनेवाले शत्रु को (**परिबाधमानः**) सब ओर निवृत्त करते हुए (**पुमांसम्**) पुरुषार्थी जन की (**विश्वतः**) सब प्रकार से (**परि, पातु**) चारों ओर से रक्षा कीजिये सो (**अहिरिव**) मेघ के तुल्य गर्जते हुए आप (**भोगैः**) उत्तम भोगों के सहित (**विश्वा**) सब (**वयुनानि**) विज्ञानों को (**परि, एति**) सब ओर से प्राप्त होते हो ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो विद्वान् भुजबल वाला शस्त्र अस्त्र के चलाने का ज्ञाता शत्रुओं को निवृत्त करता पुरुषार्थ से सब की रक्षा करता हुआ मेघ के तुल्य सुख और भोगों का बढ़ाने वाला हो वह सब मनुष्यों को विद्या प्राप्त कराने को समर्थ होवे ॥ ५१ ॥

वनस्पत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सुवीरो देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राजप्रजा धर्म इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूयाऽअस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धोऽअसि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥५२॥

पदार्थ—हे (**वनस्पते**) किरणों के रक्षक सूर्य के समान वन आदि के रक्षक विद्वन् राजन् ! आप (**अस्मत्सखा**) हमारे रक्षक मित्र (**प्रतरणः**) शत्रुओं के बल का उल्लङ्घन करने हारे (**सुवीरः**) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (**वीड्वङ्गः**) प्रशंसित अवयव वाले (**हि**) निश्चय कर (**भूयाः**) हूजिये जिस कारण आप (**गोभिः**) पृथिवी आदि के साथ (**सन्नद्धः**) सम्बन्ध रखते तत्पर (**असि**) हैं इसलिये हम को (**वीडयस्व**) दृढ़ कीजिये (**ते**) आप का (**आस्थाता**) युद्ध में अच्छे अच्छे प्रकार स्थिर रहने वाला वीर सेनापति (**जेत्वानि**) जीतने योग्य शत्रुओं को (**जयतु**) जीते ॥ ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के साथ किरणों और किरणों के साथ सूर्य का नित्य सम्बन्ध है वैसे राजा सेना तथा प्रजाओं का सम्बन्ध होने योग्य है जो सेनापति आदि जितेन्द्रिय शूरवीर हों तो सेना और प्रजा भी वैसी ही जितेन्द्रिय होवे ॥ ५२ ॥

दिव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरो देवता । विराट् जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहियें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

दिवः पृथिव्याः पर्योजऽउद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतꣳ सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ॥ ५३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (**दिवः**) सूर्य और (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**उद्भृतम्**) उत्कृष्टता से धारण किये (**ओजः**) पराक्रम को (**परि, यज**) सब ओर से दीजिये (**वनस्पतिभ्यः**) वट आदि वनस्पतियों से (**आभृतम्**) अच्छे प्रकार पुष्ट किये (**सहः**) बल को (**परि**) सब ओर से दीजिये (**अपाम्**) जलों के सम्बन्ध से (**ओज्मानम्**) पराक्रम वाले रस को (**परि**) चारों ओर से दीजिये तथा (**इन्द्रस्य**) सूर्य की (**गोभिः**) किरणों से (**आवृतम्**) युक्त चिलकते हुए (**वज्रम्**) वज्र के तुल्य (**रथम्**) यान को (**हविषा**) ग्रहण से सङ्गत कीजिये ॥ ५३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि पृथिवी आदि भूतों और उनसे उत्पन्न हुई सृष्टि के सम्बन्ध से बल और पराक्रमों को बढ़ावें और उनके योग से विमान आदि यानों को बनाया करें ॥ ५३ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥५४॥

पदार्थ—हे (**देव**) उत्तम विद्या वाले (**रथ**) रमणीयस्वरूप विद्वन् ! (**इमाम्**) इस (**हव्यदातिम्**) देने योग्य पदार्थों के दान को (**जुषाणः**) सेवते हुए (**सः**) पूर्वोक्त आप जो (**इन्द्रस्य**) बिजुली का (**वज्रः**) गिरना (**मरुताम्**) मनुष्यों की (**अनीकम्**) सेना (**मित्रस्य**) मित्र के (**गर्भः**) अन्तःकरण का आशय और (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ जन के (**नाभिः**) आत्मा का मध्यवर्ती विचार है उसको (**नः**) और हमको (**हव्या**) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (**प्रति गृभाय**) प्रतिग्रह अर्थात् स्वीकार कीजिये ॥ ५४ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों की सेना अतिश्रेष्ठ, बिजुली की विद्या, मित्र का आशय, आप्त सत्यवक्ताओं का विचार और विद्यादि का दान स्वीकार किये तथा दूसरों को दिये हैं वे सब ओर से मङ्गलयुक्त होवें ॥ ५४ ॥

उपश्वासयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयोऽअप सेध शत्रून् ॥५५॥

पदार्थ—हे (**दुन्दुभे**) नगाड़े के तुल्य गरजने हारे ! (**सः**) सो आप (**इन्द्रेण**) ऐश्वर्य से युक्त (**देवैः**) उत्तम विद्वान् वा गुणों के साथ (**सजूः**) संयुक्त (**दूरात्**) दूर से भी (**दवीयः**) अतिदूर (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**अपसेध**) पृथक् कीजिये (**पुरुत्रा**) बहुत विध (**पृथिवीम्**) आकाश (**उत**) और (**द्याम्**) बिजुली के प्रकाश को (**उप, श्वासय**) निकट जीवन धारण कराइये आप उन अन्तरिक्ष और बिजुली से (**विष्ठितम्**) व्याप्त (**जगत्**) संसार को (**मनुताम्**) मानो उस (**ते**) आपको राज्य आनन्दित होवे ॥ ५५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्युत् विद्या से हुए अस्त्रों से शत्रुओं को दूर फेंक ऐश्वर्य से विद्वानों को दूर से बुला के सत्कार करें अन्तरिक्ष और बिजुली से व्याप्त सब जगत् को जान विविध प्रकार की विद्या और क्रियाओं को सिद्ध करें वे जगत् को आनन्द कराने वाले होते हैं ॥ ५५ ॥

आक्रन्दयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । यादयितारो वीरा देवताः । भुरिक्
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आ क्रन्दय बलमोजो नऽआधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनाऽइतऽइन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥५६॥

पदार्थ—हे (**दुन्दुभे**) नगाड़ों के तुल्य जिनकी सेना गर्जती ऐसे सेनापते ! (**दुरिता**) दुष्ट व्यसनों को (**बाधमानः**) निवृत्त करते हुए आप (**नः**) हमारे लिये (**बलम्**) बल को (**आ, क्रन्दय**) पहुँचाइये (**ओजः**) पराक्रम को (**आ, धाः**) अच्छे प्रकार धारण कीजिये सेना को (**निष्टनिहि**) विस्तृत कीजिये जो (**दुच्छुनाः**) दुष्ट कुत्तों के तुल्य वर्त्तमान हैं उनको (**अप**) बुरे प्रकार रुलाइये जिस कारण आप (**मुष्टिः**) मूठों के तुल्य प्रबन्धकर्त्ता (**असि**) हैं इससे (**इतः**) इस सेना से (**इन्द्रस्य**) बिजुली के अवयवों को (**वीडयस्व**) दृढ़ कीजिये और सुखों को (**प्रोथ**) पूरण कीजिये ॥ ५६ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठों का सत्कार करें दुष्टों को रुलावें सब मनुष्यों के दुर्व्यसनों को दूर करके सुखों को प्राप्त करें ॥ ५६ ॥

आमूरित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वादयितारो वीरा देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त राजपुरुष ! आप (अमूः) उन शत्रुसेनाओं को (आ अज) अच्छे प्रकार दूर फेंकिये (केतुमत्) ध्वजा वाली (इमाः) इन अपनी सेनाओं को (प्रति, आवर्त्तय) लौटा लावो जैसे (दुन्दुभिः) नगाड़ा (वावदीति) अत्यन्त बजता है वैसे (नः) हमको (अश्वपर्णाः) घोड़ों का जिनमें पालन हो वे सेना (सम्, चरन्ति) सम्यक् विचरती हैं जो (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) प्रशंसित रथों पर चढ़े हुए वीर (नरः) नायक जन शत्रुओं को (जयन्तु) जीतें वे सत्कार को प्राप्त हों ॥ ५७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजपुरुष शत्रुओं की सेनाओं को निवृत्त करने और अपनी सेनाओं को युद्ध करने को समर्थ हों वे सर्वत्र शत्रुओं को जीत सकें ॥ ५७ ॥

आग्नेय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब कैसे पशु कैसे गुणों वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेवऽऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माषऽ ऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्णऽएकशितिपात्पेत्वः ॥५८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला अर्थात् अग्नि के उत्तम गुणों से युक्त है वह (कृष्णग्रीवः) काले गले वाला पशु जो (सारस्वती) सरस्वती वाणी के गुणों वाली वह (मेषी) भेड़ जो (सौम्यः) चन्द्रमा के गुणों वाला वह (बभ्रुः) धुमेला पशु जो (पौष्णः) पुष्टि आदि गुणों वाला वह (श्यामः) श्याम रङ्ग से युक्त पशु जो (बार्हस्पत्यः) बड़े आकाशादि के पालन आदि गुणयुक्त वह(शितिपृष्ठः) काली पीठ वाला पशु जो (वैश्वदेवः) सब विद्वानों के गुणों वाला वह (शिल्पः) अनेक वर्णयुक्त जो (ऐन्द्रः) सूर्य्य के गुणों वाला वह (अरुणः) लालरङ्गयुक्त जो (मारुतः) वायु के गुणों वाला वह (कल्माषः) खाखी रङ्ग युक्त जो (ऐन्द्राग्नः) सूर्य्य अग्नि के गुणों वाला वह (संहितः) मोटे दृढ़ अङ्गयुक्त जो (सावित्रः) सूर्य के गुणों से युक्त वह (अधोरामः) नीचे विचरने वाला पक्षी जो (एकशितिपात्) जिसका एक पग काला (पेत्वः) उड़नेवाला और (कृष्णः) काले रङ्ग से युक्त वह (वारुणः) जल के शान्त्यादि गुणों वाला है इस प्रकार इन सब को जानो ॥ ५८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिस २ देवता वाले जो २ पशु विख्यात हैं वे २ उन २ गुणों वाले उपदेश किये हैं ऐसा जानो ॥ ५८ ॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माषऽआग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥५९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अनीकवते) प्रशंसित सेना वाले (अग्नये) विज्ञान आदि गुणों के प्रकाशक सेनापति के लिये(रोहिताञ्जिः) लाल चिह्नों वाला (अनड्वान्) बैल (सावित्रौ) सूर्य के गुण वाले (अधोरामौ) नीचे भाग में श्वेत वर्ण वाले (पौष्णौ) पुष्टि आदि गुण युक्त (रजतनाभी) चांदी के वर्ण के तुल्य जिनकी नाभि (वैश्वदेवौ) सब विद्वानों के सम्बन्धी (तूपरौ) मुण्डे (पिशङ्गौ) पीले दो पशु (मारुतः) वायु देवता वाला (कल्माषः) खाखी रङ्गयुक्त (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (कृष्णः, अजः) काला बकरा (सारस्वती) वाणी के गुणों वाली (मेषी) भेड़ और (वारुणः) जल के गुणों वाला (पेत्वः) शीघ्रगामी पशु है उन सब को गुणों के अनुकूल काम में लाओ ॥ ५९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पशुओं के जितने गुण कहे हैं वे सब एक अग्नि में इकट्ठे हैं यह जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । पूर्वस्य विराट्प्रकृतिः, वैराजाभ्यामित्युत्तरस्य प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य कार्यसिद्धि कर सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपालऽइन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्रऽऔष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्याऽअष्टाकपालः ॥६०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि (त्रिवृते) सत्व रज और तमोगुण इन तीन गुणों से युक्त (राथन्तराय) रथों अर्थात् जलयानों से समुद्रादि को तरने वाले (गायत्राय) गायत्री छन्द से जताये हुए (अग्नये) अग्नि के अर्थ (अष्टाकपालः) आठ खपरों में संस्कार किया (पञ्चदशाय) पन्द्रहवें प्रकार के (त्रैष्टुभाय) त्रिष्टुप् छन्द से प्रख्यात (बार्हताय) बड़ों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (एकादशकपालः) ग्यारह खपरों में संस्कार किया पाक (विश्वेभ्यः) सब (जागतेभ्यः) जगती छन्द से जताये हुए (सप्तदशेभ्यः) सत्रहवें (वैरूपेभ्यः) विविध रूपों वाले (देवेभ्यः) दिव्य गुणयुक्त मनुष्यों के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में संस्कार किया पाक (आनुष्टुभाभ्याम्) अनुष्टुप् छन्द से प्रकाशित हुए (एकविंशाभ्याम्) इक्कीसवें (वैराजाभ्याम्) विराट् छन्द से जताये हुए (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के अर्थ (पयस्या) जलक्रिया में कुशल विद्वान् (बृहस्पते) बड़ों के रक्षक (पाङ्क्ताय) पान्तों में श्रेष्ठ (त्रिणवाय) कर्म उपासना और ज्ञानों से स्तुति किये (शाक्वराय) शक्ति से प्रकट हुए के लिये (चरुः) पाक विशेष (औष्णिहाय) उष्णिक् छन्द से जताये हुए (त्रयस्त्रिंशाय) तेंतीसवें (रैवताय) धन के सम्बन्धी (सवित्रे) ऐश्वर्य उत्पन्न करने हारे के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में संस्कार किया (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (चरुः) बटलोई में पका अन्न (अदित्यै) अखण्डित (विष्णुपत्न्यै) विष्णु व्यापक ईश्वर से रक्षित अन्तरिक्ष रूप के लिये (चरुः) पाक (वैश्वानराय) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्नये) बिजुलीरूप अग्नि के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में पका हुआ और (अनुमत्यै) पीछे मानने वाले के लिये (अष्टाकपालः) आठ खपरों में सिद्ध किया पाक बनाना चाहिये ॥ ६० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्न आदि के प्रयुक्त करने के लिये आठ प्रकार आदि के यन्त्रों को बनावें वे रचे हुए प्रसिद्ध पदार्थों से अनेक कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥६०॥

इस अध्याय में अग्नि, विद्वान्, घर, प्राण, अपान, अध्यापक, उपदेशक, वाणी, घोड़ा, अग्नि, विद्वान्, प्रशस्त पदार्थ, घर, द्वार, रात्रि, दिन, शिल्पी, शोभा, शस्त्र, अस्त्र, सेना, ज्ञानियों की रक्षा, सृष्टि से उपकार ग्रहण, विघ्ननिवारण, शत्रुसेना का पराजय, अपनी सेना का सङ्ग और रक्षा, पशुओं के गुण और यज्ञों का निरूपण होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

अब उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

अथ त्रिंशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

देवेत्यस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्रों में ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को कहा है—

देव॑ सवितः॒ प्र सु॑व य॒ज्ञं प्र सु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य ।
दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥१॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्यस्वरूप (सवितः) समस्त ऐश्वर्य से युक्त और जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर ! जो आप (दिव्यः) शुद्ध स्वरूप में हुआ (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने हारा (केतपूः) विज्ञान को पवित्र करने वाला राजा (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे और जो (वाचः) वाणी का (पतिः) रक्षक (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मीठी चिकनी कोमल प्रिय करे उस (यज्ञपतिम्) राज्य के रक्षक राजा को (भगाय) ऐश्वर्ययुक्त धन के लिये (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिये और (यज्ञम्) राजधर्मरूप यज्ञ को भी (प्र, सुव) सिद्ध कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्या की शिक्षा को बढ़ाने वाला शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त राज्य की रक्षा करने को यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने हारा धर्मात्माओं का रक्षक परमेश्वर का उपासक और समस्त शुभ गुणों से युक्त हो वही राजा होने के योग्य होता है ॥ १ ॥

तत्सवितुरित्यस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (सवितुः) समग्र जगत् के उत्पादक सब ऐश्वर्य तथा (देवस्य) सुख के देनेहारे ईश्वर के जो (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) जिस से दुःखों का नाश हो उस शुद्ध स्वरूप को जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करें वैसे (तत्) उस ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभाचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है जैसे राजा भी करे जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उस को पिता मानते हैं वैसे राजा को भी मानें जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव का आचरण करता है वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्त्ते जैसे परमेश्वर सब दोष क्लेश और अन्यायों से निवृत्त है वैसे राजा भी होवे ॥ २ ॥

विश्वानीत्यस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥३॥

पदार्थ—हे (देव) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (सवितः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा देने वाले परमेश्वर ! आप हमारे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुष्ट आचरण वा दुःखों को (परा, सुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारी धर्मयुक्त आचरण वा सुख है (तत्) उस को (नः) हमारे लिये (आ, सुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उपासना किया हुआ जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत्त कर श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी अधर्म से प्रजाओं को निवृत्त कर धर्म में प्रवृत्त करे और आप भी वैसा होवे ॥ ३ ॥

विभक्तारमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

वि॒भ॒क्तार॑ꣳ हवामहे॒ वसो॑श्चि॒त्रस्य॒ राध॑सः ।
स॒वि॒तारं॑ नृ॒चक्ष॑सम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (वसोः) सुखों के निवास के हेतु (चित्रस्य) आश्चर्यस्वरूप (राधसः) धन का (विभक्तारम्) विभाग करने हारे (सवितारम्) सब के उत्पादक (नृचक्षसम्) सब मनुष्यों के अन्तर्यामी स्वरूप से सब कामों के देखनेहारे परमात्मा की हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करें उसकी तुम लोग भी प्रशंसा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे परमेश्वर अपने अपने कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है वैसे आप भी देओ जैसे जगदीश्वर जैसा जिस का पाप वा पुण्यरूप जितना कर्म है उतना वैसा फल उस के लिये देता वैसे आप भी जिस का जैसा वस्तु वा जितना कर्म है उस को वैसा वा उतना फल दीजिये जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ के सब जीवों में वर्त्तता है वैसे आप भी हूजिये ॥ ४ ॥

ब्रह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः । परमेश्वरो देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को भी करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ब्रह्म॑णे ब्राह्म॒णं क्ष॒त्राय॑ राज॒न्यं॑ म॒रुद्भ्यो॒ वैश्यं॒ तप॑से शू॒द्रं तम॑से॒ तस्क॑रं नार॒काय॑ वीर॒हणं॑ पा॒प्मने॑ क्ली॒बमा॑क्र॒याया॑ऽअयो॒गूं कामा॑य पुँश्च॒लूमति॑क्रुष्टाय माग॒धम् ॥५॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप इस जगत् में (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के ज्ञान के प्रचार के अर्थ (ब्राह्मणम्) वेद ईश्वर के जानने वाले को (क्षत्राय) राज्य वा राज्य की रक्षा के लिये (राजन्यम्) राजपूत को (मरुद्भ्यः) पशु आदि प्रजा के लिये (वैश्यम्) प्रजाओं में प्रसिद्ध जन को (तपसे) दुःख से उत्पन्न होने वाले सेवन के अर्थ (शूद्रम्) प्रीति से सेवा करने तथा शुद्धि करनेहारे शूद्र को सब ओर से उत्पन्न कीजिये (तमसे) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए (तस्करम्) चोर को (नारकाय) दुःख बन्धन में हुए कारागार के लिये (वीरहणम्) वीरों को मारनेहारे जन को (पाप्मने) पापाचरण के लिये प्रवृत्त हुए (क्लीबम्) नपुंसक को (आक्रयायै) प्राणियों की जिसमें भागाभूगी होती उस हिंसा के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयोगूम्) लोहे के हथियार विशेष के साथ चलनेहारे जन को (कामाय) विषय सेवन के लिये प्रवृत्त हुई (पुंश्चलूम्) पुरुषों के साथ जिसका चित्त चलायमान उस व्यभिचारिणी स्त्री को और (अतिक्रुष्टाय) अत्यन्त निन्दा करने के लिये प्रवृत्त हुए (मागधम्) भाट को दूर पहुंचाइये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे जगदीश्वर जगत् में परोपकार के लिये पदार्थों को उत्पन्न करता और दोषों को निवृत्त करता है वैसे आप राज्य में सज्जनों की उन्नति कीजिये दुष्टों को निकालिये, दण्ड और ताड़ना भी दीजिये, जिससे शुभ गुणों की प्रवृत्ति और दुष्ट व्यसनों की निवृत्ति होवे ॥ ५ ॥

नृत्तायेत्यस्य नारायण ऋषिः । परमेश्वरो देवता । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ।

फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

नृ॒त्ताय॑ सू॒तं गी॒ताय॑ शैलू॒षं धर्मा॑य सभाच॒रं न॒रिष्ठा॑यै भीम॒लं न॒र्माय॑ रे॒भꣳ हसा॑य॒ कारि॒मान॒न्दाय॑ स्त्रीष॒खं प्र॒मदे॑ कुमारीपु॒त्रं मे॒धायै॑ रथका॒रं धैर्या॑य तक्षा॑णम् ॥६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (नृत्ताय) नाचने के लिये (सूतम्) क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए सूत को (गीताय) गाने के अर्थ (शैलूषम्) गाने हारे नट को (धर्माय) धर्म की रक्षा के लिये (सभाचरम्) सभा में विचरने हारे सभापति को (नर्माय) कोमलता के अर्थ (रेभम्) स्तुति करनेहारे को (आनन्दाय) आनन्द भोगने के अर्थ (स्त्रीषखम्) स्त्री से मित्रता रखनेवाले पति को (मेधायै) बुद्धि के लिये (रथकारम्) विमानादि को रचनेहारे कारीगर को (धैर्याय) धीरज के लिये (तक्षाणम्) महीन काम करनेवाले बढ़ई को उत्पन्न कीजिये (नरिष्ठायै) अति दुष्ट नरों की गोष्ठी के लिये प्रवृत्त हुए (भीमलम्) भयङ्कर विषयों को ग्रहण करनेवाले को (हसाय) हंसने के अर्थ प्रवृत्त हुए (कारिम्) उपहासकर्त्ता को और (प्रमदे) प्रमाद के लिये प्रवृत्त हुए (कुमारीपुत्रम्) विवाह से पहिले व्यभिचार से उत्पन्न हुए को दूर कर दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि परमेश्वर के उपदेश और राजा की आज्ञा से सब श्रेष्ठ धर्मात्मा जनों को उत्साह दें हंसी करने और भय देने वालों का निवृत्त करें अनेक सभाओं को बना के सब व्यवस्था और शिल्पविद्या की उन्नति किया करें ॥ ६ ॥

तपस इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

तपसे कौलालं मायायै कर्मारꣳ रूपाय मणिकारꣳ शुभे वपꣳ शरव्याया इषुकारꣳ हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥७॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (**तपसे**) वर्त्तन पकाने के ताप को झेलने के अर्थ (**कौलालम्**) कुम्हार के पुत्र को (**मायायै**) बुद्धि बढ़ाने के लिये (**कर्मारम्**) उत्तम शोभित काम करनेहारे को (**रूपाय**) सुन्दर स्वरूप बनाने के लिये (**मणिकारम्**) मणि के बनाने वाले को (**शुभे**) शुभ आचरण के अर्थ (**वपम्**) जैसे किसान खेत को वैसे विद्यादि शुभ गुणों के बोने वाले को (**शरव्यायै**) बाणों के बनाने के लिये (**इषुकारम्**) बाणकर्त्ता को (**हेत्यै**) वज्र आदि हथियार बनाने के अर्थ (**धनुष्कारम्**) धनुष् आदि के कर्त्ता को (**कर्मणे**) क्रियासिद्धि के लिये (**ज्याकारम्**) प्रत्यञ्चा के कर्त्ता को (**दिष्टाय**) और जिस से अतिरचना हो उस के लिये (**रज्जुसर्जम्**) रज्जु बनाने वाले को उत्पन्न कीजिये और (**मृत्यवे**) मृत्यु करने को प्रवृत्त हुए (**मृगयुम्**) व्याध को तथा (**अन्तकाय**) अन्त करनेवाले के हितकारी (**श्वनिनम्**) बहुत कुत्ते पालने वाले को अलग बसाइये ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर ने सृष्टि में रचनाविशेष दिखाये हैं वैसे शिल्पविद्या से सृष्टि के दृष्टान्त से विशेष रचना किया करें और हिंसक तथा कुत्तों के पालने वाले चण्डालादि को दूर बसावें ॥ ७ ॥

नदीभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वांसो देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (**नदीभ्यः**) नदियों को बिगाड़ने के लिये प्रवृत्त हुए (**पौञ्जिष्ठम्**) धानुक को (**ऋक्षीकाभ्यः**) गमन करने वाली स्त्रियों के अर्थ प्रवृत्त हुए (**नैषादम्**) निषाद के पुत्र को (**पुरुषव्याघ्राय**) व्याघ्र के तुल्य हिंसक पुरुष के हितकारी (**दुर्मदम्**) दुष्ट अभिमानी को (**गन्धर्वाप्सरोभ्यः**) गाने नाचने वाली स्त्रियों के लिए प्रवृत्त हुए (**व्रात्यम्**) संस्काररहित मनुष्य को (**प्रयुग्भ्यः**) प्रयोग करने वालों के अर्थ प्रवृत्त हुए (**उन्मत्तम्**) उन्माद रोग वाले को (**सर्पदेवजनेभ्यः**) सांप तथा मूर्खों के लिये हितकारी (**अप्रतिपदम्**) संशयात्मा को (**अयेभ्यः**) जो पदार्थ प्राप्त किये जाते उन के लिये प्रवृत्त (**कितवम्**) ज्वारी को (**ईर्यतायै**) कम्पन के लिये प्रवृत्त हुए (**अकितवम्**) जुआ न करनेहारे को (**पिशाचेभ्यः**) दुष्टाचार करने से जिन की आशा नष्ट हो गई वा रुधिरसहित कच्चा मांस खाने के लिये प्रवृत्त (**विदलकारीम्**) पृथक् पृथक् टुकड़ों को करनेहारी को और (**यातुधानेभ्यः**) मार्गों से जिनके धन आता उसके लिये प्रवृत्त हुई (**कण्टकीकारीम्**) कांटे बोने वाली को पृथक् कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे परमेश्वर दुष्टों से महात्माओं को दूर बसाता और दुष्ट परमेश्वर से दूर बसते हैं वैसे आप दुष्टों से दूर बसो और अपने से दुष्टों को दूर बसाइये वा सुशिक्षा से श्रेष्ठ कीजिये ॥ ८ ॥

सन्धय इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या एदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥९॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा सभापति राजन् ! आप (**सन्धये**) परस्त्रीगमन के लिये प्रवृत्त (**जारम्**) व्यभिचारी को (**गेहाय**) गृहपत्नी के सङ्ग के लिये प्रवृत्त हुए (**उपपतिम्**) पति की विद्यमानता में दूसरे व्यभिचारी पति को (**आर्त्यै**) कामपीड़ा के लिये प्रवृत्त हुए (**परिवित्तम्**) छोटे भाई का विवाह होने में बिना विवाहे ज्येष्ठ भाई को (**निर्ऋत्यै**) पृथिवी के लिये प्रवृत्त हुए (**परिविविदानम्**) ज्येष्ठ भाई के दाय को न प्राप्त हुए छोटे भाई को (**अराध्यै**) अविद्यमान पदार्थ को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त हुए (**एदिधिषुः पतिम्**) ज्येष्ठ पुत्री के विवाह से पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री के पति को (**निष्कृत्यै**) प्रायश्चित्त के लिये प्रवृत्त हुई (**पेशस्कारीम्**) शृङ्गार विशेष से रूप करनेहारी व्यभिचारिणी को (**सम्, ज्ञानाय**) उत्तम कामदेव को जगाने के अर्थ प्रवृत्त हुई (**स्मरकारीम्**) कामदेव को चेतन कराने वाली दूती को (**प्रकामोद्याय**) उत्कृष्ट कामों से उद्यत हुए के लिये (**उपसदम्**) साथी को (**वर्णाय**) स्वीकार के लिए प्रवृत्त हुए (**अनुरुधम्**) पीछे से रोकने वाले को (**बलाय**) बल बढ़ाने के अर्थ (**उपदाम्**) नजर भेंट वा घूंस को पृथक् कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे परमेश्वर जार आदि दुष्टजनों को दंड देता वैसे आप भी इन को दण्ड दीजिये और ईश्वर पाप छोड़ने वालों पर कृपा करता है वैसे आप धार्मिक जनों पर अनुग्रह किया कीजिये ॥ ९ ॥

उत्सादेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥१०॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (**उत्सादेभ्यः**) नाश करने को प्रवृत्त हुए (**कुब्जम्**) कुबड़े को (**प्रमुदे**) प्रबल कामादि के आनन्द के लिए (**वामनम्**) छोटे मनुष्य को (**द्वार्भ्यः**) आच्छादन के अर्थ (**स्रामम्**) जिस के नेत्रों से निरन्तर जल निकले उस को (**स्वप्नाय**) सोने के लिये (**अन्धम्**) अन्धे को और (**अधर्माय**) धर्माचरण से रहित के लिये (**बधिरम्**) बहिरे को पृथक् कीजिये और (**पवित्राय**) रोग की निवृत्ति करने के अर्थ (**भिषजम्**) वैद्य को (**प्रज्ञानाय**) उत्तम ज्ञान बढ़ाने के अर्थ (**नक्षत्रदर्शम्**) नक्षत्रों को देखने वा इनसे उत्तम विषयों को दिखानेहारे गणितज्ञ ज्योतिषी को (**आशिक्षायै**) अच्छे प्रकार विद्या-ग्रहण के लिये (**प्रश्निनम्**) प्रशंसित प्रश्नकर्त्ता को (**उपशिक्षायै**) उपवेदादि विद्या के ग्रहण के लिये (**अभि, प्रश्निनम्**) सब ओर से बहुत प्रश्न करने वाले को और (**मर्यादायै**) न्याय अन्याय की व्यवस्था के लिये (**प्रश्नविवाकम्**) प्रश्नों के विवेचन कर उत्तर देने वाले को उत्पन्न कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे ईश्वर पापाचरण के फल देने से लूले, लंगड़े, बौने चिपड़े, अंधे, बहिरे मनुष्यादि को करता और वैद्य, ज्योतिषी, अध्यापक, परीक्षक तथा प्रश्नोत्तरों के विवेचकों के अर्थ श्रेष्ठ कर्मों के फल देने से पवित्रता, बुद्धि, विद्या के ग्रहण, पढ़ने, परीक्षा लेने और प्रश्नोत्तर करने का सामर्थ्य देता है वैसे ही आप भी जिस जिस अङ्ग से मनुष्य विरुद्ध करते हैं उस उस अङ्ग पर दण्ड मारने और वैद्यादि की प्रतिष्ठा करने से राजधर्म की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥ १० ॥

अर्मेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्य्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥११॥

पदार्थ—हे ईश्वर वा राजन् ! आप (**अर्मेभ्यः**) प्राप्ति कराने वालों के लिये (**हस्तिपम्**) हाथियों के रक्षक को (**जवाय**) वेग के अर्थ (**अश्वपम्**) घोड़ों के रक्षक शिक्षक को (**पुष्ट्यै**) पुष्टि रखने के लिये (**गोपालम्**) गौओं के पालनेहारे को (**वीर्य्याय**) वीर्य्य बढ़ाने के अर्थ (**अविपालम्**) गड़रिये को (**तेजसे**) तेजवृद्धि के लिये (**अजपालम्**) बकरे बकरियों को (**इरायै**) अन्नादि के बढ़ाने के अर्थ (**कीनाशम्**) खेतिहर को (**कीलालाय**) अन्न के लिये (**सुराकारम्**) सोम ओषधियों से रस को निकालने वाले को और (**भद्राय**) कल्याण के अर्थ (**गृहपम्**) घरों के रक्षक को (**श्रेयसे**) धर्म, अर्थ और कामना की प्राप्ति के अर्थ (**वित्तधम्**) धन धारण करनेवालों को और (**आध्यक्ष्याय**) अध्यक्षों के स्वत्व के लिये (**अनुक्षत्तारम्**) अनुकूल सारथि को उत्पन्न कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि अच्छे शिक्षित हाथी आदि को रखने वाले पुरुषों को ग्रहण कर इन से बहुत से व्यवहार सिद्ध करें ॥ ११ ॥

भाया इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमवऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥१२॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (**भायै**) दीप्ति के लिये (**दार्वाहारम्**) काष्ठों को पहुंचाने वाले को (**प्रभायै**) कान्ति शोभा के लिये (**अग्न्येधम्**) अग्नि और इन्धन का (**ब्रध्नस्य**) घोड़े के (**विष्टपाय**) मार्ग के अर्थ (**अभिषेक्तारम्**) अभिषेक राजतिलक करने वाले को (**वर्षिष्ठाय**) अतिश्रेष्ठ (**नाकाय**) सब दुःखों से रहित सुखविशेष के लिये (**परिवेष्टारम्**) परोसने वाले को (**देवलोकाय**) विद्वानों के दर्शन के लिये (**पेशितारम्**) विद्या के अवयवों को जानने वाले को (**मनुष्यलोकाय**) मनुष्यपन को देखने को (**प्रकरितारम्**) विक्षेप करनेवाले को (**सर्वेभ्यः**) सब (**लोकेभ्यः**) लोकों के लिये (**उपसेक्तारम्**) उपसेचन करनेवाले को (**मेधाय**) सङ्गम के अर्थ (**वासःपल्पूलीम्**) वस्त्रों को शुद्ध करनेवाली ओषधि को और (**प्रकामाय**) उत्तम कामना की सिद्धि के लिये (**रजयित्रीम्**) उत्तम रङ्ग करनेवाली ओषधि को उत्पन्न प्रकट कीजिये और (**अवऋत्यै**) विरुद्ध प्राप्ति जिस में हो उस (**वधाय**) मारने के लिये प्रवृत्त हुए (**उपमन्थितारम्**) ताड़नादि से पीड़ा देने वाले दुष्ट को दूर कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—राजपुरुषादि मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वररचित सृष्टि से सब सामग्रियों को ग्रहण करें उन से शरीर का बल विद्या और न्याय का प्रकाश बड़ा सुख

राज्य का अभिषेक दुःखों का विनाश विद्वानों का संग मनुष्यों का स्वभाव वस्त्रादि की पवित्रता अच्छी सिद्ध करें और विरोध को छोड़ें ॥ १२ ॥

ऋतय इत्यस्य नारायण ऋषिः । ईश्वरो देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्याऽअश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥१३॥

पदार्थ—हे परमात्मन् वा राजन् ! आप (ऋतये) हिंसा करने के लिये प्रवृत्त हुए (स्तेनहृदयम्) चोर के तुल्य छली कपटी को और (वैरहत्याय) वैर तथा हत्या जिस कर्म में हो उस के लिये प्रवृत्त हुए (पिशुनम्) निन्दक को पृथक् कीजिये । (विविक्त्यै) विवेक करने के लिये (क्षत्तारम्) ताड़ना से रक्षा करने हारे धर्मात्मा को (औपद्रष्ट्याय) उपद्रष्टा होने के लिये (अनुक्षत्तारम्) धर्मात्मा के अनुकूलवर्त्ती को (बलाय) बल के अर्थ (अनुचरम्) सेवक को (भूम्ने) सृष्टि की अधिकता के लिये (परिष्कन्दम्) सब ओर से वीर्य्य सींचने वाले को (प्रियाय) प्रीति के अर्थ (प्रियवादिनम्) प्रियवादी को (अरिष्ट्यै) कुशलप्राप्ति के लिये (अश्वसादम्) घोड़ों के चलाने वाले को (स्वर्गाय) सुखविशेष के (लोकाय) देखने वा संचित करने के लिये (भागदुघम्) अंशों को पूर्ण करने वाले को (वर्षिष्ठाय) अतिश्रेष्ठ (नाकाय) सब दुःखों से रहित आनन्द के लिये (परिवेष्टारम्) सब ओर से व्याप्त विद्या वाले विद्वान् को प्रकट कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—राजा आदि उत्तम मनुष्यों को चाहिये कि दुष्टों के सङ्ग को छोड़ श्रेष्ठों का सङ्ग कर विवेक आदि को उत्पन्न कर सुखी होवें ॥ १३ ॥

मन्यव इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाऽभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥१४॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा सभापते राजन् ! आप (मन्यवे) आन्तर्य क्रोध के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयस्तापम्) लोह वा सुवर्ण को तपाने वाले को (क्रोधाय) बाह्य क्रोध के लिये प्रवृत्त हुए (निसरम्) निश्चित चलने वाले को (शोकाय) शोच के लिये प्रवृत्त हुए (अभिसर्त्तारम्) सन्मुख चलने वाले को और (यमाय) दण्ड देने के लिये प्रवृत्त हुई (असूम्) क्रोध से इधर उधर हाथ आदि फेंकने वाली को दूर कीजिये और (योगाय) योगाभ्यास के लिये (योक्तारम्) योग करनेवाले को (क्षेमाय) रक्षा के लिये (विमोक्तारम्) दुःख से छुड़ाने वाले को (उत्कूलनिकूलेभ्यः) ऊपर नीचे किनारों पर चढ़ाने उतारने के लिये (त्रिष्ठिनम्) जल स्थल और आकाश में रहने वाले विमानादि यानों से युक्त पुरुष को (वपुषे) शरीरहित के लिये (मानस्कृतम्) मन के किये विचारों में प्रवीण को (शीलाय) जितेन्द्रियता आदि उत्तम स्वभाव वाले के लिये (आञ्जनीकारीम्) प्रसिद्ध क्रियाओं के करने हारी स्वभाववाली स्त्री को और (निर्ऋत्यै) भूमि के लिये (कोशकारीम्) कोश का संचय करने वाली स्त्री को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! जो तपे लोहे के तुल्य क्रोध को प्राप्त हुए औरों को दुःख देने और धर्म नियमों को नष्ट करने वाले हों उनको दण्ड देकर योगाभ्यास करने वाले आदि का सत्कार कर सब जगह सवारी चलाने वालों को इकट्ठा कर तुमको यथावत् सुख बढ़ाना चाहिये ॥ १४ ॥

यमायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् प्रकृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाꣳ संवत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराꣳ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धꣳ साध्येभ्यश्चर्म्मम्नम् ॥१५॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (यमाय) नियमकर्त्ता के लिये (यमसूम्) नियन्ताओं को उत्पन्न करनेवाली को (अथर्वभ्यः) अहिंसकों के लिये (अवतोकाम्) जिसकी सन्तान बाहर निकल गई हो उस स्त्री को (संवत्सराय) प्रथम संवत्सर के अर्थ (पर्यायिणीम्) सब ओर से काल के क्रम को जानने वाली को (परिवत्सराय) दूसरे वर्ष के निर्णय के लिये (अविजाताम्) ब्रह्मचारिणी कुमारी को (इदावत्सराय) तीसरे इदावत्सर में कार्य साधने के अर्थ (अतीत्वरीम्) अत्यन्त चलने वाली को (इद्वत्सराय) पाँचवें इद्वत्सर के ज्ञान के अर्थ (अतिष्कद्वरीम्) अतिशयकर जानने वाली को (वत्सराय) सामान्य संवत्सर के लिये (विजर्जराम्) वृद्धा स्त्री को (संवत्सराय) चौथे अनुवत्सर के लिये (पलिक्नीम्) श्वेत केशोंवाली को (ऋभुभ्यः) बुद्धिमानों के अर्थ (अजिनसन्धम्) नहीं जीतने योग्य पुरुषों से मेल रखने वाले को (साध्येभ्यः) और साधने योग्य कार्यों के लिये (चर्मम्नम्) विज्ञान शास्त्र का अभ्यास करनेवाले पुरुष को उत्पन्न कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—प्रभव आदि ६० संवत्सरों में पांच पांच कर १२ बारह युग होते हैं उन प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर; ये पांच संज्ञा हैं उन सब काल के अवयवों के मूल संवत्सरों को विशेष कर जो स्त्री लोग यथावत् जान के व्यर्थ नहीं गंवातीं वे सब प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त होती हैं ॥ १५ ॥

सरोभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्त्तं तीर्थेभ्यऽआन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥१६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (सरोभ्यः) बड़े तालावों के लिये (धैवरम्) धीवर के लड़के को (उपस्थावराभ्यः) समीपस्थ निकृष्ट क्रियाओं के अर्थ (दाशम्) जिसको दिया जावे उस सेवक को (वैशन्ताभ्यः) छोटे छोटे जलाशयों के प्रबन्ध के लिये (बैन्दम्) निषाद के अपत्य को (नड्वलाभ्यः) नरसलवाली भूमि के लिये (शौष्कलम्) मच्छियों से जीवने वाले को और (विषमेभ्यः) विकट देशों के लिये (मैनालम्) कामदेव को रोकने वाले को (अवाराय) अपनी ओर आने के लिये (केवर्त्तम्) जल में नौका को इस पार उस पार पहुंचाने वाले को (तीर्थेभ्यः) तरने के साधनों के लिये (आन्दम्) बांधने वाले को उत्पन्न कीजिये (पाराय) हरिण आदि की चेष्टा को समाप्त करने को प्रवृत्त हुए (मार्गारम्) व्याध के पुत्र को (स्वनेभ्यः) शब्दों के लिये (पर्णकम्) रक्षा करने में निन्दित भील को (गुहाभ्यः) गुहाओं के अर्थ (किरातम्) बहेलिये को (सानुभ्यः) शिखरों पर रहने के लिये प्रवृत्त हुए (जम्भकम्) नाश करनेवाले को और (पर्वतेभ्यः) पहाड़ों से (किम्पूरुषम्) खोटे जंगली मनुष्य को दूर कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों के अनुकूल कर्मों से कहार आदि की रक्षा कर और बहेलिये आदि हिंसकों को छोड़ के उत्तम सुख पावें ॥ १६ ॥

बीभत्साया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्याऽअपगल्भꣳ सꣳशराय प्रच्छिदम् ॥१७॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (बीभत्सायै) धमकाने के लिये प्रवृत्त हुए (पौल्कसम्) भंगी के पुत्र को (पश्चादोषाय) पीछे दोष देने को प्रवृत्त हुए (ग्लाविनम्) हर्ष को नष्ट करने वाले को (अभूत्यै) दरिद्रता के अर्थ समर्थ (स्वपनम्) सोने को (व्यृद्ध्यै) संपत् के बिगाड़ने के अर्थ प्रवृत्त हुए (अपगल्भम्) प्रगल्भतारहित पुरुष को तथा (संशराय) सम्यक् मारने के लिये प्रवृत्त हुए (प्रच्छिदम्) अधिक छेदन करने वाले को पृथक् कीजिये और (वर्णाय) सुन्दर रूप बनाने के लिये (हिरण्यकारम्) सुनार वा सूर्य्य को (तुलायै) तोलने के अर्थ (वाणिजम्) बनिये के पुत्र को (विश्वेभ्यः) सब (भूतेभ्यः) प्राणियों के लिये (सिध्मलम्) सुख सिद्ध करने वाले जिसके सहायी हों उस जन को (भूत्यै) ऐश्वर्य होने के अर्थ (जागरणम्) प्रबोध को और (आर्त्यै) पीड़ा की निवृत्ति के लिये (जनवादिनम्) मनुष्यों की प्रशंसा के योग्य वाद विवाद करने वाले उत्तम मनुष्य को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य नीचों का संग छोड़ के उत्तम पुरुषों की सङ्गति करते हैं वे सब व्यवहारों की सिद्धि से ऐश्वर्य वाले होते हैं जो अनालसी होके सिद्धि के लिये यत्न करते वे सुखी और जो आलसी होते वे दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

अक्षराजायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृत्प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाणऽउप तिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्य्यं पाप्मने सैलगम् ॥१८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (अक्षराजाय) पासों से खेलने वालों के प्रधान के हितकारी (कितवम्) जुआ करने वाले को (मृत्यवे) मारने के अर्थ (गोव्यच्छम्) गौओं में बुरी चेष्टा करने वाले को (अन्तकाय) नाश के अर्थ (गोघातम्) गौओं के मारने वाले को (क्षुधे) क्षुधा के लिये (यः) जो (गाम्) गौ को मारता उस (विकृन्तन्तम्) काटते हुए को जो (भिक्षमाणः) भीख मांगता हुआ (उपतिष्ठति) उपस्थित होता है (दुष्कृताय) दुष्ट आचरण के लिये प्रवृत्त हुए उस (चरकाचार्य्यम्) भक्षण करने वालों के गुरु को (पाप्मने)

पापी के हितकारी (**संलगम्**) दुष्ट के पुत्र को दूर कीजिये (**कृताय**) किये हुए के अर्थ (**आदिनवदर्शम्**) आदि में नवीनों को देखने वाले को (**त्रेतायै**) तीन के होने के अर्थ (**कल्पिनम्**) प्रशंसित सामर्थ्य वाले को (**द्वापराय**) दो जिसके इधर सम्बन्धी हों उस के अर्थ (**अधिकल्पिनम्**) अधिकतर सामर्थ्ययुक्त को और (**आस्कन्दाय**) अच्छे प्रकार सुखाने के अर्थ (**सभास्थाणुम्**) सभा में स्थिर होने वाले को प्रकट वा उत्पन्न कीजिये ॥१८॥

भावार्थ—जो मनुष्य ज्योतिषी आदि सत्याचारियों का सत्कार करते और दुष्टाचारी गोहत्यारे आदि को ताड़ना देते हैं वे राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥१८॥

प्रतिश्रुत्काया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिग्धृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ।

प्रतिश्रुत्काया॑ऽअर्त्त॒नं घोषा॑य भ॒षमन्ता॑य बहु॒वा॒दिन॑मन॒न्ताय॒ मूक॑ꣳ शब्दा॑याडम्बराघा॒तं मह॑से वीणावा॒दं क्रोशा॑य तूणव॒ध्मम॑वरस्प॒राय॑ शङ्ख॒ध्मं वना॑य व॒नप॒म॒न्यतो॑ऽरण्याय दाव॒पम् ॥१९॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (**प्रतिश्रुत्कायै**) प्रतिज्ञा करने वाली के अर्थ (**अर्त्तनम्**) प्राप्ति कराने वाले को (**घोषाय**) घोषणे के लिये (**भषम्**) सब ओर से बोलने वाले को (**अन्ताय**) समीप वा मर्य्यादा वाले के लिये (**बहुवादिनम्**) बहुत बोलने वाले को (**अनन्ताय**) मर्यादा रहित के लिये (**मूकम्**) गूंगे को (**महसे**) बड़े के लिये (**वीणावादम्**) वीणा बजाने वाले को (**अवरस्पराय**) नीचे के शत्रुओं के अर्थ (**शङ्खध्मम्**) शङ्ख बजाने वाले को और (**वनाय**) वन के लिये (**वनपम्**) जङ्गल की रक्षा करने वाल को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये (**शब्दाय**) शब्द करने को प्रवृत्त हुए (**आडम्बराघातम्**) हल्ला गुल्ला करने वाले को (**क्रोशाय**) कोशने को प्रवृत्त हुए ((**तूणवध्मम्**) बाजे विशेष को बजाने वाले को (**अन्यतोरण्याय**) अन्य अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि से जहां वन हों उस देश की हानि के लिये (**दावपम्**) वन को जलाने वाले को दूर कीजिये ॥१९॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अपने स्त्री पुरुष आदि के साथ पढ़ाने और संवाद करने आदि व्यवहारों को सिद्ध करें ॥१९॥

नर्मायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिगतिजगती छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

न॒र्मा॑य पुँश्च॒लूꣳ हसा॑य॒ कारिं॒ याद॑से शाब॒ल्यां ग्रा॑म॒ण्यं॒ गण॑कम॒भि॒क्रोश॑कं॒ तान्मह॑से वीणावा॒दं पा॑णि॒घ्नं तूण॑व॒ध्मं तान्नृ॒त्ताया॑न॒न्दाय॑ तल॒वम् ॥२०॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (**नर्माय**) क्रीड़ा के लिये प्रवृत्त हुई (**पुंश्चलूम्**) व्यभिचारिणी स्त्री को (**हसाय**) हंसने को प्रवृत्त हुए (**कारिम्**) विक्षिप्त पागल को और (**यादसे**) जलजन्तुओं के मारने को प्रवृत्त हुई (**शाबल्याम्**) कबरे मनुष्य की कन्या को दूर कीजिये (**ग्रामण्यम्**) ग्रामाधीश (**गणकम्**) ज्योतिषी और (**अभिक्रोशकम्**) सब ओर से बुलाने वाले जन (**तान्**) इन सब को (**महसे**) सत्कार के अर्थ (**वीणावादम्**) वीणा बजाने (**पाणिघ्नम**) हाथों से वादित्र बजाने और (**तूणवध्मम्**) तूणव नामक बाजे को बजाने वाले (**तान्**) उन सब को (**नृत्ताय**) नाचने के लिये और (**आनन्दाय**) आनन्द के अर्थ (**तलवम्**) ताली आदि बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रसिद्ध कीजिये ॥२०॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि हंसी और व्यभिचारादि दोषों को छोड़ और गाने बजाने नाचने आदि की शिक्षा को प्राप्त होके आनन्दित होवें ॥२०॥

अग्नय इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अ॒ग्नये॒ पीवा॑नं पृथि॒व्यै पी॑ठस॒र्पिणं॑ वा॒यवे॑ चाण्डा॒लम॒न्तरि॑क्षाय वꣳशन॒र्त्तिनं॑ दि॒वे ख॑ल॒तिꣳ सूर्य्या॑य हर्य॒क्षं नक्ष॑त्रेभ्यः किर्मि॒रं च॒न्द्रम॑से कि॒लास॒मह्ने॑ शु॒क्लं पि॑ङ्गा॒क्षꣳ रात्र्यै॑ कृ॒ष्णं पि॑ङ्गा॒क्षम् ॥२१॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (**अग्नये**) अग्नि के लिये (**पीवानम्**) मोटे पदार्थ को (**पृथिव्यै**) पृथिवी के लिये (**पीठसर्पिणम्**) विना पगों के कढ़िरि के चलने वाले सांप आदि को (**अन्तरिक्षाय**) आकाश और पृथिवी के बीच में खेलने को (**वंशनर्त्तिनम्**) बांस से नाचने वाले नट आदि को (**सूर्याय**) सूर्य के ताप प्रकाश मिलने के लिये (**हर्यक्षम्**) बांदर की सी छोटी आंखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को (**चन्द्रमसे**) चन्द्रमा के तुल्य आनन्द देने के लिये (**किलासम्**) थोड़े श्वेतवर्ण वाले को और (**अह्ने**) दिन के लिये (**शुक्लम्**) शुद्ध (**पिङ्गलम्**) पीली आंखों वाले को उत्पन्न कीजिये (**वायवे**) वायु के स्पर्श के अर्थ (**चाण्डालम्**) भंगी को (**दिवे**) क्रीड़ा के अर्थ प्रवृत्त हुए (**खलतिम्**) गंजे को (**नक्षत्रेभ्यः**) राज्य विरोध के लिये प्रवृत्त हुओं के लिये (**किर्मिरम्**) कब्ररों को और (**रात्र्यै**) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए (**कृष्णम्**) काले रंग वाले (**पिङ्गाक्षम्**) पीले नेत्रों से युक्त पुरुष को दूर कीजिये ॥२१॥

भावार्थ—अग्नि स्थूल पदार्थों के जलाने को समर्थ होता है सूक्ष्म को नहीं। पृथिवी पर निरन्तर सर्पादि फिरते हैं किन्तु पक्षी आदि नहीं। भङ्गी के शरीर में आया वायु दुर्गन्धयुक्त होने से सेवने योग्य नहीं होता इत्यादि तात्पर्य जानना चाहिये ॥२१॥

अथैतानित्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृत्कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अथै॒तान॒ष्टौ विरू॑पा॒ना ल॑भ॒तेऽति॑दीर्घं॒ चाति॑ह्रस्वं॒ चाति॑स्थूलं॒ चाति॑कृशं॒ चाति॑शुक्लं॒ चाति॑कृष्णं॒ चाति॑कुल्वं॒ चाति॑लोमशं च । अशू॑द्रा॒ऽअब्रा॑ह्मणा॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः । मा॒ग॒धः पुँश्च॒ली कि॑त॒वः क्ली॒बोऽशू॑द्रा॒ऽअब्रा॑ह्मणा॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः ॥२२॥

पदार्थ—हे राजा लोगो ! जैसे विद्वान् (**अतिदीर्घम्**) बहुत बड़े (**च**) और (**अतिह्रस्वम्**) बहुत छोटे (**च**) और (**अतिस्थूलम्**) बहुत मोटे (**च**) और (**अतिकृशम्**) बहुत पतले (**च**) और (**अतिशुक्लम्**) अतिश्वेत (**च**) और (**अतिकृष्णम्**) बहुत काले (**च**) और (**अतिकुल्वम्**) लोमरहित (**च**) और (**अतिलोमशम्**) बहुत लोमों वाले की (**च**) भी (**एतान्**) इन (**विरूपान्**) अनेक प्रकार के रूपों वाले (**अष्टौ**) आठों को (**आ, लभते**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम लोग भी प्राप्त होओ (**अथ**) इसके अनन्तर जो (**अशूद्राः**) शूद्रभिन्न (**अब्राह्मणाः**) तथा ब्राह्मण भिन्न (**प्राजापत्याः**) प्रजापति देवता वाले हैं (**ते**) वे भी प्राप्त हों जो (**मागधः**) मनुष्यों में निन्दित जो (**पुंश्चली**) व्यभिचारिणी (**कितवः**) जुआरी (**क्लीबः**) नपुंसक (**अशूद्राः**) जिनमेंशूद्र और (**अब्राह्मणाः**) ब्राह्मण नहीं उन को दूर वसाना चाहिये और जो (**प्राजापत्याः**) राजा वा ईश्वर के सम्बन्धी हैं (**ते**) वे समीप में वसने चाहियें ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग छोटे बड़े पदार्थों को जान के यथायोग्य व्यवहार को सिद्ध करते हैं वैसे और लोग भी करें । सब लोगों को चाहिये कि प्रजा के रक्षक ईश्वर और राजा की आज्ञा सेवन तथा उपासना नित्य किया करें ॥२२॥

इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।

यह तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

ॐ अथैकत्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः ॐ

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

सहस्रशीर्षेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब इकतीसवें अध्याय का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में परमात्मा की उपासना, स्तुतिपूर्वक सृष्टिविद्या के विषय को कहते हैं—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सहस्रशीर्षा**) सब प्राणियों के हजारों शिर (**सहस्राक्षः**) हजारों नेत्र और (**सहस्रपात्**) असङ्ख्य पाद जिसके बीच में हैं ऐसा (**पुरुषः**) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक जगदीश्वर है (**सः**) वह (**सर्वतः**) सब देशों से (**भूमिम्**) भूगोल में (**स्पृत्वा**) सब ओर से व्याप्त हो के (**दशाङ्गुलम्**) पांच स्थूल भूत पांच सूक्ष्म भूत ये दश जिसके अवयव हैं उस सब जगत् को (**अति, अतिष्ठत**) उल्लङ्घकर स्थित होता अर्थात् सब से पृथक् भी स्थिर होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस पूर्ण परमात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर आंखें और पग आदि अवयव हैं जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहां जगत् नहीं वहां भी पूर्ण हो रहा है उस सब जगत् के बनानेवाले परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव परमेश्वर को छोड़ के अन्य की उपासना तुम कभी न करो किन्तु उस ईश्वर की उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करो ॥ १ ॥

पुरुष इत्यस्य नारायण ऋषिः । ईशानो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जो (**भूतम्**) उत्पन्न हुआ (**च**) और (**यत्**) जो (**भाव्यम्**) उत्पन्न होने वाला (**उत**) और (**यत्**) जो (**अन्नेन**) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से (**अतिरोहति**) अत्यन्त बढ़ता है उस (**इदम्**) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप (**सर्वम्**) समस्त जगत् को (**अमृतत्वस्य**) अविनाशी मोक्षसुख वा कारण का (**ईशानः**) अधिष्ठाता (**पुरुषः**) सत्य गुण कर्म स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा (**एव**) ही रचता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने जब जब सृष्टि हुई तब तब रची इस समय धारण करता फिर विनाश करके रचेगा । जिसके आधार से सब वर्त्तमान है और बढ़ता है उसी सब के स्वामी परमात्मा की उपासना करो इससे भिन्न की नहीं ॥ २ ॥

एतावानित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**अस्य**) इस जगदीश्वर का (**एतावान्**) यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड (**महिमा**) महत्त्वसूचक है (**अतः**) इस ब्रह्माण्ड से यह (**पुरुषः**) परिपूर्ण परमात्मा (**ज्यायान्**) अति प्रशंसित और बड़ा है (**च**) और (**अस्य**) इस ईश्वर के (**विश्वा**) सब (**भूतानि**) पृथिव्यादि चराचर जगत् एक (**पादः**) अंश है और (**अस्य**) इस जगत्स्रष्टा का (**त्रिपाद्**) तीन अंश (**अमृतम्**) नाशरहित महिमा (**दिवि**) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है ॥

भावार्थ—यह सब सूर्य्य चन्द्रादि लोकलोकान्तर चराचर जितना जगत् है वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक चतुर्थांश में ही रहता किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता । और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशि मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं । इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका महत्त्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है ॥ ३ ॥

त्रिपादित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥

पदार्थ—पूर्वोक्त (**त्रिपात्**) तीन अंशों वाला (**पुरुषः**) पालक परमेश्वर (**ऊर्ध्वः**) सब से उत्तम मुक्तिस्वरूप संसार से पृथक् (**उत्, ऐत्**) उदय को प्राप्त होता है (**अस्य**) इस पुरुष का (**पादः**) एक भाग (**इह**) इस जगत् में (**पुनः**) बार बार उत्पत्ति प्रलय के चक्र से (**अभवत्**) होता है (**ततः**) इसके अनन्तर (**साशनानशने**) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के (**अभि**) प्रति (**विष्वङ्**) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ (**वि, अक्रामत्**) विशेष कर व्याप्त होता है ॥४॥

भावार्थ—यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्य जगत् से पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को बार बार उत्पन्न करता है पीछे उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है ॥ ४ ॥

ततो विराडित्यस्य नारायण ऋषिः । स्रष्टा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**ततः**) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (**विराट्**) विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार (**अजायत**) उत्पन्न होता (**विराजः**) विराट् संसार के (**अधि**) ऊपर अधिष्ठाता (**पूरुषः**) परिपूर्ण परमात्मा होता है (**अथो**) इसके अनन्तर (**सः**) वह पुरुष (**पुरः**) पहिले से (**जातः**) प्रसिद्ध हुआ (**अति, अरिच्यत**) जगत् से अतिरिक्त होता है (**पश्चात्**) पीछे (**भूमिम्**) पृथिवी को उत्पन्न करता है उसको जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ही से सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है वह उस जगत् से पृथक् उसमें व्याप्त भी हुआ उसके दोषों से लिप्त न होके इस सब का अधिष्ठाता है । इस प्रकार सामान्य कर जगत् की रचना कह के विशेष कर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते हैं ॥ ५ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**तस्मात्**) उस पूर्वोक्त (**सर्वहुतः**) जो सब से ग्रहण किया जाता उस (**यज्ञात्**) पूजनीय पुरुष परमात्मा से सब (**पृषदाज्यम्**) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु (**सम्भृतम्**) सम्यक् सिद्ध उत्पन्न हुआ (**ये**) जो (**आरण्याः**) वन के सिंह आदि (**च**) और (**ग्राम्याः**) ग्राम में हुए गौ आदि हैं (**तान्**) उन (**वायव्यान्**) वायु के तुल्य गुणों वाले (**पशून्**) पशुओं को जो (**चक्रे**) उत्पन्न करता है उसको तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस सब को ग्रहण करने योग्य, पूजनीय परमेश्वर ने सब जगत् के हित के लिये दही आदि भोगने योग्य पदार्थों और ग्राम के तथा वन के पशु बनाये हैं उसकी सब लोग उपासना करो ॥ ६ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । स्रष्टेश्वरो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि (**तस्मात्**) उस पूर्ण (**यज्ञात्**) अत्यन्त पूजनीय (**सर्वहुतः**) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से (**ऋचः**) ऋग्वेद (**सामानि**) सामवेद (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होते (**तस्मात्**) उस परमात्मा से (**छन्दांसि**) अथर्ववेद (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होता और (**तस्मात्**) उस पुरुष से (**यजुः**) यजुर्वेद (**अजायत**) उत्पन्न होता है उसको जानो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं उस परमात्मा की उपासना करो । वेदों को पढ़ो और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्त के सुखी होओ ॥ ७ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

तस्मा॒दश्वा॑ऽअजायन्त॒ ये के चो॑भ॒याद॑तः ।
गावो॑ ह जज्ञिरे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जा॒ताऽअ॑जा॒वयः॑ ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को (**अश्वाः**) घोड़े तथा (**ये**) जो (**के**) कोई (**च**) गदहा आदि (**उभयादतः**) दोनों ओर ऊपर नीचे दांतों वाले हैं वे (**तस्मात्**) उस परमेश्वर से (**अजायन्त**) उत्पन्न हुए (**तस्मात्**) उसी से (**गावः**) गौवें [यह एक ओर दांतवालों का उपलक्षण है इससे अन्य भी एक ओर दांतवाले लिये जाते हैं] (**ह**) निश्चय कर (**जज्ञिरे**) उत्पन्न हुए और (**तस्मात्**) उससे (**अजावयः**) बकरी भेड़ (**जाताः**) उत्पन्न हुए हैं इस प्रकार जानना चाहिये ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग गौ घोड़े आदि ग्राम के सब पशु जिस सनातन पूर्ण पुरुष परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन कभी मत करो ॥ ८ ॥

तं यज्ञमित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न् पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः ।
तेन॑ दे॒वाऽअ॑यजन्त सा॒ध्याऽऋष॑यश्च॒ ये ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**ये**) जो (**देवाः**) विद्वान् (**च**) और (**साध्याः**) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (**ऋषयः**) मन्त्रार्थ जाननेवाले ज्ञानी लोग जिस (**अग्रतः**) सृष्टि से पूर्व (**जातम्**) प्रसिद्ध हुए (**यज्ञम्**) सम्यक् पूजने योग्य (**पुरुषम्**) पूर्ण परमात्मा को (**बर्हिषि**) मानस ज्ञान यज्ञ में (**प्र, औक्षन्**) सींचते अर्थात् धारण करते हैं वे ही (**तेन**) उसके उपदेश किये हुए वेद से और (**अयजन्त**) उसका पूजन करते हैं (**तम्**) उसको तुम लोग भी जानो ॥९॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें ॥९॥

यत्पुरुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

यत्पुरु॑षं॒ व्यद॑धुः कति॒धा व्य॑कल्पयन् ।
मुखं॒ किम॑स्यासी॒त्किं बा॒हू किमू॒रू पादा॑ऽउच्येते ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! आप (**यत्**) जिस (**पुरुषम्**) पूर्ण परमेश्वर को (**वि, अदधुः**) विविध प्रकार से धारण करते हो उसको (**कतिधा**) कितने प्रकार से (**वि, अकल्पयन्**) विशेषकर कहते हैं और (**अस्य**) इस ईश्वर की सृष्टि में (**मुखम्**) मुख के समान श्रेष्ठ (**किम्**) कौन (**आसीत्**) है (**बाहू**) भुजबल का धारण करने वाला (**किम्**) कौन (**ऊरू**) घोंटू के कार्य्य करनेहारे और (**पादौ**) पांव के समान नीच (**किम्**) कौन (**उच्येते**) कहे जाते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! इस संसार में असंख्य सामर्थ्य ईश्वर का है उस समुदाय में उत्तम अङ्ग मुख और बाहू आदि अङ्ग कौन हैं ? यह कहिये ॥१०॥

ब्राह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

ब्रा॒ह्म॒णो॑ऽस्य॒ मुख॑मासीद् बा॒हू रा॑ज॒न्यः॒ कृ॒तः ।
ऊ॒रू तद॑स्य॒ यद्वैश्यः॑ प॒द्भ्याᳪ शू॒द्रोऽअ॑जायत ॥११॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु लोगो ! तुम (**अस्य**) इस ईश्वर की सृष्टि में (**ब्राह्मणः**) वेद ईश्वर का ज्ञाता इनका सेवक वा उपासक (**मुखम्**) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (**आसीत्**) है (**बाहू**) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (**राजन्यः**) राजपूत (**कृतः**) किया (**यत्**) जो (**ऊरू**) जांघों के तुल्य वेगादि काम करने वाला (**तत्**) वह (**अस्य**) इसका (**वैश्यः**) सर्वत्र प्रवेश करनेहारा वैश्य है (**पद्भ्याम्**) सेवा और अभिमान रहित होने से (**शूद्रः**) मूर्खपन आदि गुणों से युक्त शूद्र (**अजायत**) उत्पन्न हुआ ये उत्तर क्रम से जानो ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या और शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हों वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्य्यों को सिद्ध करनेहारे हों वे क्षत्रिय, जो व्यवहार विद्या में प्रवीण हों वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण विद्याहीन पगों के समान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त हैं वे शूद्र करने और मानने चाहियें ।११।

चन्द्रमा इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

च॒न्द्रमा॒ मन॑सो जा॒तश्चक्षोः॒ सूर्यो॑ अजायत ।
श्रोत्रा॑द्वा॒युश्च॑ प्रा॒णश्च॒ मुखा॑द॒ग्निर॑जायत ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! इस पूर्ण ब्रह्म के (**मनसः**) ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से (**चन्द्रमाः**) चन्द्रलोक (**जातः**) उत्पन्न हुआ (**चक्षोः**) ज्योति स्वरूप सामर्थ्य से (**सूर्य्यः**) सूर्यमण्डल (**अजायत**) उत्पन्न हुआ (**श्रोत्रात्**) श्रोत्र नाम अवकाशरूप सामर्थ्य से (**वायुः**) वायु (**च**) तथा आकाश प्रदेश (**च**) और (**प्राणः**) जीवन के निमित्त दश प्राण और (**मुखात्**) मुख्य ज्योतिर्मय भक्षणस्वरूप सामर्थ्य से (**अग्निः**) अग्नि (**अजायत**) उत्पन्न हुआ है ऐसा तुम को जानना चाहिये ॥१२।

भावार्थ—जो यह सब जगत् कारण से ईश्वर ने उत्पन्न किया है उसमें चन्द्रलोक मनरूप सूर्य्यलोक नेत्ररूप वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य मुख के तुल्य अग्नि ओषधि और वनस्पति रोमों के तुल्य नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य हैं ऐसा जानना चाहिये ॥१२॥

नाभ्या इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

नाभ्या॑ऽआसीद॒न्तरि॑क्षᳪ शी॒र्ष्णो द्यौः सम॑वर्त्तत ।
प॒द्भ्यां भूमि॒र्दिशः॒ श्रोत्रा॒त्तथा॑ लो॒काँ२ऽअ॑कल्पयन् ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे इस पुरुष परमेश्वर के (**नाभ्याः**) अवकाशरूप मध्यम सामर्थ्य से (**अन्तरिक्षम्**) लोकों के बीच का आकाश (**आसीत्**) हुआ (**शीर्ष्णः**) शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से (**द्यौः**) प्रकाशयुक्त लोक (**पद्भ्याम्**) पृथिवी के कारणरूप सामर्थ्य से (**भूमिः**) पृथिवी (**सम्, अवर्त्तत**) सम्यक् वर्त्तमान हुई और (**श्रोत्रात्**) अवकाशरूप सामर्थ्य से (**दिशः**) पूर्व आदि दिशाओं को (**अकल्पयन्**) कल्पना करते हैं (**तथा**) वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य (**लोकान्**) लोकों को उत्पन्न हुए जानो ॥१३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जो इस सृष्टि में कार्यरूप वस्तु है वह वह सब विराट्रूप कार्यकारण का अवयवरूप है ऐसा जानना चाहिये ॥१३॥

यत्पुरुषेणेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत ।
व॒स॒न्तो॑ऽस्यासी॒दाज्यं॑ ग्री॒ष्मऽइ॒ध्मः श॒रद्ध॒विः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जब (**हविषा**) ग्रहण करने योग्य (**पुरुषेण**) पूर्ण परमात्मा के साथ (**देवाः**) विद्वान् लोग (**यज्ञम्**) मानसज्ञान यज्ञ को (**अतन्वत**) विस्तृत करते हैं (**अस्य**) इस यज्ञ के (**वसन्तः**) पूर्वाह्ण काल ही (**आज्यम्**) घी (**ग्रीष्मः**) मध्याह्न काल (**इध्मः**) इन्धन प्रकाशक और (**शरत्**) आधी रात (**हविः**) होमने योग्य पदार्थ (**आसीत्**) है । ऐसा जानो ॥१४॥

भावार्थ—जब बाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उपासनारूप मानस ज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें तब पूर्वाह्ण आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करना चाहिये ॥१४।

सप्तास्येत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स॒प्तास्या॑सन् परि॒धय॒स्त्रिः स॒प्त स॒मिधः॑ कृ॒ताः ।
दे॒वा यद्य॒ज्ञं त॑न्वा॒नाऽअब॑ध्न॒न् पुरु॑षं प॒शुम् ॥१५।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जिस (**यज्ञम्**) मानस ज्ञान यज्ञ को (**तन्वानाः**) विस्तृत करते हुए (**देवाः**) विद्वान् लोग (**पशुम्**) जानने योग्य (**पुरुषम्**) परमात्मा को हृदय में (**अबध्नन्**) बांधते है (**अस्य**) इस यज्ञ के (**सप्त**) सात गायत्री आदि छन्द (**परिधयः**) चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान (**आसन्**) हैं (**त्रिः, सप्त**) इक्कीस अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय और सत्व, रजस्, तमस् तीन गुण ये (**समिधः**) सामग्री रूप (**कृताः**) किये उस यज्ञ को यथावत् जानो ॥१५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानस यज्ञ को कर उससे पूर्ण ईश्वर को जान के सब प्रयोजनों को सिद्ध करो ॥१५॥

यज्ञेनेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**देवाः**) विद्वान् लोग (**यज्ञेन**) पूर्वोक्त ज्ञान यज्ञ से (**यज्ञम्**) पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वि ईश्वर की (**अयजन्त**) पूजा करते हैं (**तानि**) वे ईश्वर की पूजा आदि (**धर्माणि**) धारणारूप धर्म (**प्रथमानि**) अनादि रूप से मुख्य (**आसन्**) हैं (**ते**) वे विद्वान (**महिमानः**) महत्त्व से युक्त हुए (**यत्र**) जिस सुख में (**पूर्वे**) इस समय से पूर्व हुए (**साध्याः**) साधनों को किये हुए (**देवाः**) प्रकाशमान विद्वान् (**सन्ति**) हैं उस (**नाकम्**) सब दुःखरहित मुक्तिसुख को (**ह**) ही (**सचन्त**) प्राप्त होते हैं उसको तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१६॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि योगाभ्यास आदि से सदा ईश्वर की उपासना करें इस अनादिकाल से प्रवृत्त धर्म से मुक्तिसुख को पाके पहिले मुक्त हुए विद्वानों के समान आनन्द भोगें ॥१६॥

अद्भ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अद्भ्यः सम्भृ॑तः पृथि॒व्यै रसा॑च्च वि॒श्वक॑र्मणः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ ।
तस्य॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्रू॒पमे॑ति॒ तन्मर्त्य॑स्य दे॒वत्वमा॒जान॒मग्रे॑ ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अद्भ्यः**) जलों (**पृथिव्यै**) पृथिवी (**च**) और (**विश्वकर्मणः**) सब कर्म जिसके आश्रय से होते उस सूर्य से (**सम्भृतः**) सम्यक् पुष्ट हुआ उस (**रसात्**) रस से (**अग्रे**) पहिले यह सब जगत् (**सम्, अवर्त्तत**) वर्त्तमान होता है (**तस्य**) उस इस जगत् के (**तत्**) उस (**रूपम्**) स्वरूप को (**त्वष्टा**) सूक्ष्म करने वाला ईश्वर (**विदधत्**) विधान करता हुआ (**अग्रे**) आदि में (**मर्त्यस्य**) मनुष्य के (**आजानम्**) अच्छे प्रकार कर्त्तव्य कर्म और (**देवत्वम्**) विद्वत्ता को (**एति**) प्राप्त होता है ॥१७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण कार्य करने हारा परमेश्वर कारण से कार्य बनाता है सब जगत् के शरीरों के रूपों को बनाता है उसका ज्ञान और उसकी आज्ञा का पालन ही देवत्व है ऐसा जानो ॥१७॥

वेदाहमित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब विद्वान् जिज्ञासु के लिये कैसा उपदेश करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वेदा॒हमे॒तं पुरु॑षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्णं॒ तम॑सः प॒रस्ता॑त् ।
तमे॒व वि॑दि॒त्वाति॑ मृ॒त्युमे॑ति॒ नान्यः पन्था॑ वि॒द्यतेऽय॑नाय ॥१८॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! (**अहम्**) मैं जिस (**एतम्**) इस पूर्वोक्त (**महान्तम्**) बड़े २ गुणों से युक्त (**आदित्यवर्णम्**) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (**तमसः**) अन्धकार वा अज्ञान से (**परस्तात्**) पृथक् वर्त्तमान (**पुरुषम्**) स्वस्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को (**वेद**) जानता हूँ (**तम्, एव**) उसी को (**विदित्वा**) जान के आप (**मृत्युम्**) दुःखदायी मरण को (**अति, एति**) उल्लङ्घन कर जाते हो किन्तु (**अन्यः**) इस से भिन्न (**पन्थाः**) मार्ग (**अयनाय**) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये (**न, विद्यते**) नहीं विद्यमान है ॥१८॥

भावार्थ—यदि मनुष्य इस लोक परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सब से अति बड़े स्वयंप्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक् वर्त्तमान परमात्मा को जान के ही मरणादि अथाह दुःखसागर से पृथक् हो सकते हैं यही सुखदायी मार्ग है इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की मुक्ति का मार्ग नहीं है ॥ १८ ॥

प्रजापतिरित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र॒जाप॑तिश्चरति॒ गर्भे॑ऽअ॒न्तरजा॑यमानो बहु॒धा वि जा॑यते ।
तस्य॒ योनिं॒ परि॑ पश्यन्ति॒ धीरा॒स्तस्मि॑न्ह तस्थु॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अजायमानः**) अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला (**प्रजापतिः**) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (**गर्भे**) गर्भस्थ जीवात्मा और (**अन्तः**) सब के हृदय में (**चरति**) विचरता है और (**बहुधा**) बहुत प्रकारों से (**वि, जायते**) विशेषकर प्रकट होता (**तस्य**) उस प्रजापति के जिस (**योनिम्**) स्वरूप को (**धीराः**) ध्यानशील विद्वान् जन (**परि, पश्यन्ति**) सब ओर से देखते हैं (**तस्मिन्**) उसमें (**ह**) प्रसिद्ध (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोक लोकान्तर (**तस्थुः**) स्थित हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट हो के सर्वत्र विचरता है जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिये ॥ १९ ॥

यो देवेभ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । सूर्य्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब सूर्य्य कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो दे॒वेभ्य॑ऽआ॒तप॑ति॒ यो दे॒वानां॑ पु॒रोहि॑तः ।
पूर्वो॒ यो दे॒वेभ्यो॑ जा॒तो नमो॑ रु॒चाय॒ ब्राह्म॑ये ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो सूर्यलोक (**देवेभ्यः**) उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ (**आतपति**) अच्छे प्रकार तपता है (**यः**) जो (**देवानाम्**) पृथिवी आदि लोकों के (**पुरोहितः**) प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया (**यः**) जो (**देवेभ्यः**) पृथिवी आदि से (**पूर्वः**) प्रथम (**जातः**) उत्पन्न हुआ उस (**रुचाय**) रुचि कराने वाले (**ब्राह्मये**) परमेश्वर के सन्तान के तुल्य सूर्य्य से (**नमः**) अन्न उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सब के हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति का निमित्त सूर्य्य को बनाया है उसी परमेश्वर की उपासना करो ॥२०॥

रुचमित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वानों का कृत्य कहते हैं—

रुचं॑ ब्रा॒ह्मं ज॒नय॑न्तो दे॒वाऽअग्रे॒ तद॑ब्रुवन् ।
यस्त्वै॒वं ब्रा॑ह्म॒णो वि॒द्यात्तस्य॑ दे॒वाऽअ॑स॒न्वशे॑ ॥२१॥

पदार्थ—हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष ! जो (**रुचम्**) रुचिकारक (**ब्राह्मम्**) ब्रह्म के उपासक (**त्वा**) आप को (**जनयन्तः**) सम्पन्न करते हुए (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अग्रे**) पहिले (**तत्**) ब्रह्म जीव और प्रकृति के स्वरूप को (**अब्रुवन्**) कहें (**यः**) जो (**ब्राह्मणः**) ब्राह्मण (**एवम्**) ऐसे (**विद्यात्**) जाने (**तस्य**) उसके वे (**देवाः**) विद्वान् (**वशे**) वश में (**असन्**) हों ॥ २१ ॥

भावार्थ—यही विद्वानों का पहिला कर्त्तव्य है कि जो वेद ईश्वर और धर्मादि में रुचि, उपदेश, अध्यापन, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाना, ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

श्रीश्च त इत्यस्योत्तरनारायणऋषिः । आदित्यो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्रीश्च॑ ते ल॒क्ष्मीश्च॒ पत्न्या॑वहोरा॒त्रे पा॒र्श्वे नक्ष॑त्राणि रू॒पम॒श्विनौ॒ व्यात्त॑म् । इ॒ष्णन्नि॑षाणा॒मुं म॑ऽइषाण सर्वलो॒कं म॑ऽइषाण ॥२२॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस (**ते**) आप की (**श्रीः**) समग्र शोभा (**च**) और (**लक्ष्मीः**) सब ऐश्वर्य (**च**) भी (**पत्न्यौ**) दो स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान (**अहोरात्रे**) दिन रात (**पार्श्वे**) आगे पीछे जिस आप की सृष्टि में (**अश्विनौ**) सूर्य चन्द्रमा (**व्यात्तम्**) फैले मुख के समान (**नक्षत्राणि**) नक्षत्र (**रूपम्**) रूप वाले हैं सो आप (**मे**) मेरे (**अमुम्**) परोक्ष सुख को (**इष्णन्**) चाहते हुए (**इषाण**) चाहना कीजिये (**मे**) मेरे लिये (**सर्वलोकम्**) सब के दर्शन को (**इषाण**) प्राप्त कीजिये मेरे लिये सब सुखों को (**इषाण**) पहुँचाइये ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण, व्याप्ति, कृपा, पुरुषार्थ, सत्य रचना और सत्य नियम हैं वैसे ही तुम लोगों के भी हों जिससे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढ़े ॥ २२ ॥

इस अध्याय में ईश्वर सृष्टि और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतपरमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वती-स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वती-स्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्य एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वात्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१।

तदेवेत्यस्य स्वयम्भुब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब बत्तीसवें अध्याय का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में परमेश्वर कैसा है इस विषय को कहा है—

तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॑ च॒न्द्रमाः॑ ।
तदे॒व शु॒क्रं तद् ब्रह्म॒ ताऽआपः॒ स प्र॒जाप॑तिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (तत्) वह सर्वज्ञ सर्वव्यापी सनातन अनादि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्त्ता और सब का अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और स्वयंप्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय समय सब को ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (वायुः) अनन्त बलवान् और सब का धर्त्ता होने से वायु (तत्) वह (चन्द्रमाः) आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा (तत्, एव) वही (शुक्रम्) शीघ्रकारी वा शुद्ध भाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के ये अग्नि आदि गौण नाम हैं वैसे और भी इन्द्रादि नाम हैं उसी की उपासना फल वाली है ऐसा जानो ॥ १ ॥

सर्वं इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सर्वे॑ निमे॒षा ज॑ज्ञिरे वि॒द्युतः॒ पुरु॑षा॒दधि॑ ।
नैन॑मू॒र्ध्वं न ति॒र्यञ्चं॒ न मध्ये॒ परि॑ जग्रभत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (विद्युतः) विशेषकर प्रकाशमान (पुरुषात्) पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषाः) निमेष कलाकाष्ठा आदि काल के अवयव (अधि, जज्ञिरे) अधिकतर उत्पन्न होते हैं उस (एनम्) इस परमात्मा को कोई भी (न) न (ऊर्ध्वम्) ऊपर (न) न (तिर्यञ्चम्) तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे और (न) न (मध्ये) बीच में (परि, जग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है उसको तुम सेवो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके रचने से सब काल के अवयव उत्पन्न हुए और जो ऊपर नीचे बीच में पीछे दूर समीप कहा नहीं जा सकता जो सर्वत्र पूर्ण ब्रह्म है उस को योगाभ्यास से जान के सब आप लोग उपासना करो ॥ २ ॥

न तस्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । हिरण्यगर्भः परमात्मा देवता ।
निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

न तस्य॑ प्रति॒माऽअ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यशः॑ ।
हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भऽइत्ये॒ष मा मा॑ हिꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒तऽइत्ये॒षः ॥३।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिसका (महत्) पूज्य बड़ा (यशः) कीर्त्ति करनेहारा धर्मयुक्त कर्म का आचरण ही (नाम) नामस्मरण है जो (हिरण्यगर्भः) सूर्य्य विजुली आदि पदार्थों का आधार (इति) इस प्रकार (एषः) अन्तर्यामी होने से प्रत्यक्ष जिस की (मा) मुझ को (मा, हिंसीत्) मत ताड़ना दे वा वह अपने से मुझ को विमुख मत करे (इति) इस प्रकार (एषा) यह प्रार्थना वा बुद्धि और (यस्मात्) जिस कारण (न) नहीं (जातः) उत्पन्न हुआ (इति) इस प्रकार (एषः) यह परमात्मा उपासना के योग्य है। (तस्य) उस परमेश्वर की (प्रतिमा) प्रतिमा-परिमाण उसके तुल्य अवधि का साधन प्रतिकृति, मूर्ति वा आकृति (न, अस्ति) नहीं है। अथवा द्वितीय पक्ष यह है कि (हिरण्यगर्भः०) इस पच्चीसवें अध्याय में १० मन्त्र से १३ मन्त्र तक का (इति, एषः) यह कहा हुआ अनुवाक (मा, मा, हिंसीत्, इति) इसी प्रकार (एषा) यह ऋचा बारहवें अध्याय की १०२ मन्त्र हैं और (यस्मान्न जातः इत्येषः०) यह आठवें अध्याय के ३६, ३७ दो मन्त्र का अनुवाक (यस्य) जिस परमेश्वर की (नाम) प्रसिद्ध (महत्) महती (यशः) कीर्ति है (तस्य) उस का (प्रतिमा) प्रतिबिम्ब (तस्वीर) नहीं है ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो कभी देहधारी नहीं होता जिस का कुछ भी परिमाण सीमा का कारण नहीं है जिसकी आज्ञा का पालन ही नामस्मरण है जो उपासना किया हुआ अपने उपासकों पर अनुग्रह करता है वेदों के अनेक स्थलों में जिस का महत्त्व कहा गया है जो नहीं मरता न विकृत होता न नष्ट होता उसी की उपासना निरन्तर करो जो इससे भिन्न की उपासना करोगे तो इस महान् पाप से युक्त हुए आप लोग दुःख क्लेशों से नष्ट होगे ॥ ३ ॥

एष इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । आत्मा देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

ए॒षो ह॑ दे॒वः प्र॒दिशोऽनु॒ सर्वाः॒ पूर्वो॑ ह जा॒तः सऽउ॒ गर्भे॑ अ॒न्तः ।
सऽए॒व जा॒तः स ज॑नि॒ष्यमा॑णः प्र॒त्यङ् जना॑स्तिष्ठति स॒र्वतो॑मुखः ॥४॥

पदार्थ—हे (जनाः) विद्वानो ! (एषः) यह (ह) प्रसिद्ध परमात्मा (देवः) उत्तम स्वरूप (सर्वाः) सब दिशा और (प्रदिशः) विदिशाओं को (अनु) अनुकूलता से व्याप्त होके (सः, उ) वही (गर्भे) अन्तःकरण के (अन्तः) बीच (पूर्वः) प्रथम कल्प के आदि में (ह) प्रसिद्ध (जातः) प्रकटता को प्राप्त हुआ (सः, एव) वही (जातः) प्रसिद्ध हुआ (सः) वह (जनिष्यमाणः) आगामी कल्पों में प्रथम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा (सर्वतोमुखः) सब ओर से मुखादि अवयवों वाला अर्थात् मुखादि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ (तिष्ठति) अचल सर्वत्र स्थिर है। वही तुम लोगों को उपासना करने और जानने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—यह पूर्वोक्त ईश्वर जगत् को उत्पन्न कर प्रकाशित हुआ सब दिशाओं में व्याप्त हो के इन्द्रियों के विना सब इन्द्रियों के काम सर्वत्र व्याप्त होने से करता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थिर है वह भूत भविष्यत् कल्पों में जगत् की उत्पत्ति के लिये पहिले प्रगट होता है वह ध्यानशील मनुष्य के जानने योग्य है अन्य के जानने योग्य नहीं है ॥ ४ ॥

यस्मादित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमेश्वरो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

यस्मा॑ज्जा॒तं न पु॒रा किं च॒नैव य आ॑ब॒भूव॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
प्र॒जाप॑तिः प्र॒जया॑ सꣳररा॒णस्त्रीणि॒ ज्योती॑ꣳषि सचते॒ स षो॑ड॒शी ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्मात्) जिस परमेश्वर से (पुरा) पहिले (किम्, चन) कुछ भी (न जातम्) नहीं उत्पन्न हुआ (यः) जो सब ओर (आबभूव) अच्छे प्रकार से वर्त्तमान है जिसमें (विश्वा) सब (भुवनानि) वस्तुओं के आधार सब लोक वर्त्तमान हैं (सः, एव) वही (षोडशी) सोलह कला वाला (प्रजया) प्रजा के साथ (सम्, रराणः) सम्यक् रमण करता हुआ (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक अधिष्ठाता (त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) तेजोमय बिजुली, सूर्य्य, चन्द्रमारूप प्रकाशक ज्योतियों को (सचते) संयुक्त करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिससे ईश्वर अनादि है इस कारण उससे पहिले कुछ भी नहीं हो सकता वही सब प्रजाओं में व्याप्त जीवों के कर्मों को देखता और उनके अनुकूल फल देता हुआ न्याय करता है जिसने प्राण आदि सोलह वस्तुओं को बनाया है इससे वह षोडशी कहाता है (प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम) ये षोडश कला प्रश्नोपनिषद् में हैं यह सब षोडश वस्तुरूप जगत् परमात्मा में है उसी ने बनाया और वही पालन करता है ॥ ५ ॥

येनेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ढा येन॒ स्वः॒ स्तभि॒तं येन॒ नाकः॑ ।
योऽअ॒न्तरि॑क्षे॒ रज॑सो वि॒मानः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (येन) जगदीश्वर ने (उग्रा) तीव्र तेज वाले (द्यौः) प्रकाशयुक्त सूर्य्यादि पदार्थ (च) और (पृथिवी) भूमि (दृढा) दृढ़ की है (येन) जिसने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण किया (येन) जिसने (नाकः) सब दुःखों से रहित मोक्ष धारण किया (यः) जो (अन्तरिक्षे) मध्यवर्त्ती आकाश में वर्त्तमान (रजसः) लोक समूह का (विमानः) विविध मान करने वाला उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) स्वयं प्रकाशमान सकल सुखदाता ईश्वर के लिये हम लोग (हविषा) प्रेम भक्ति से (विधेम) सेवाकारी वा प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो समस्त जगत् का धर्त्ता सब सुखों का दाता मुक्ति का साधक आकाश के तुल्य व्यापक परमेश्वर है उसी की भक्ति करो ॥ ६ ॥

यं क्रन्दसीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । स्वराडतिजगती छन्दः ॥ निषादः स्वरः ॥

यं क्रन्द॑सी॒ऽअव॑सा तस्तभा॒नेऽअ॒भ्यैक्षे॑तां॒ मन॑सा॒ रेज॑माने ।
यत्राधि॒ सूर॒ऽउदि॑तो वि॒भाति॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ।
आपो॑ ह॒ यद्बृ॑ह॒तीर्यश्चि॒दाप॑: ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यम्**) जिस परमात्मा को प्राप्त अर्थात् उसके अधिकार में रहने वाले (**तस्तभाने**) सब को धारण करने हारे (**रेजमाने**) चलायमान (**क्रन्दसी**) स्वगुणों से प्रशंसा करने योग्य सूर्य्य और पृथिवी लोक (**अवसा**) रक्षा आदि से सब को धारण करते हैं (**यत्र**) जिस ईश्वर में (**सूरः**) सूर्य लोक (**अधि, उदितः**) अधिकतर उदय को प्राप्त हुआ (**यत्**) जो (**बृहतीः**) महत् (**आपः**) व्याप्त जल (**ह**) ही (**यः**) और जो कुछ (**चित्**) भी (**आपः**) आकाश है उसको भी (**विभाति**) विशेष कर प्रकाशित करता हुआ प्रकाशक होता है उस ईश्वर को अध्यापक और उपदेशक (**मनसा**) विज्ञान से (**अभि, ऐक्षेताम्**) आभिमुख्य कर देखते उस (**कस्मै**) सुखसाधक (**देवाय**) शुद्धस्वरूप परमात्मा के लिये (**हविषा**) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास से हम (**विधेम**) सेवा करने वाले हों उस को तुम लोग भी भजो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस सब ओर से व्यापक परमेश्वर में सूर्य्य पृथिवी आदि लोक भ्रमते हुए दीखते हैं जिसने प्राण और आकाश को भी व्याप्त किया उस अपने आत्मा में स्थित ईश्वर की तुम लोग उपासना करो ॥

वेन इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वे॒नस्तत्प॑श्य॒न्निहि॑तं॒ गुहा॒ सद्यत्र॒ विश्वं॒ भव॒त्येक॑नीडम् ।
तस्मि॑न्नि॒दꣳ सं च॒ वि चै॑ति॒ सर्व॒ꣳ सऽओत॒: प्रोत॑श्च वि॒भूः प्र॒जासु॑ ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्र**) जिसमें (**विश्वम्**) सब जगत् (**एकनीडम्**) एक आश्रय वाला (**भवति**) होता है (**तत्**) उस (**गुहा**) बुद्धि वा गुप्त कारण में (**निहितम्**) स्थित (**सत्**) नित्य चेतन ब्रह्म को (**वेनः**) पण्डित विद्वान् जन (**पश्यत्**) ज्ञानदृष्टि से देखता है (**तस्मिन्**) उसमें (**इदम्**) यह (**सर्वम्**) सब जगत् (**सम्, एति**) प्रलय समय में संगत होता (**च**) और उत्पत्ति समय में (**वि**) पृथक् स्थूलरूप (**च**) भी होता है (**सः**) वह (**विभूः**) विविध प्रकार व्याप्त हुआ (**प्रजासु**) प्रजाओं में (**ओतः**) ठाढ़े सूतों में जैसे वस्त्र (**च**) तथा (**प्रोतः**) आड़े सूतों में जैसे वस्त्र वैसे ओत प्रोत हो रहा है वही सब को उपासना करने योग्य है ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वान् ही जिसको बुद्धि बल से जानता जो सब आकाशादि पदार्थों का आधार प्रलय समय सब जगत् जिसमें लीन होता और उत्पत्ति समय में जिससे निकलता है और जिस व्याप्त ईश्वर के विना कुछ भी वस्तु खाली नहीं है उसको छोड़ किसी अन्य को उपास्य ईश्वर मत जानो ॥८॥

प्र तदित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र तद्वो॑चेद॒मृतं॒ नु वि॒द्वान् ग॑न्ध॒र्वो धाम॒ विभृ॑तं॒ गुहा॒ सत् ।
त्रीणि॑ प॒दानि॒ निहि॑ता॒ गुहा॑स्य॒ यस्तानि॒ वेद॒ स पि॒तुः पि॒ताऽस॑त् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**गन्धर्वः**) वेदवाणी को धारण करने वाला (**विद्वान्**) पण्डित (**गुहा**) बुद्धि में (**विभृतम्**) विशेष धारण किये (**अमृतम्**) नाशरहित (**धाम**) मुक्ति के स्थान (**तत्**) उस (**सत्**) नित्य चेतन ब्रह्म का (**नु**) शीघ्र (**प्र, वोचेत्**) गुणकर्मस्वभावों के सहित उपदेश करे और जो (**अस्य**) इस अविनाशी ब्रह्म के (**गुहा**) ज्ञान में (**निहिता**) स्थित (**पदानि**) जानने योग्य (**त्रीणि**) तीन उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय वा भूत, भविष्यत् वर्त्तमान काल हैं (**तानि**) उन को (**वेद**) जानता है (**सः**) वह (**पितुः**) अपने पिता वा सर्वरक्षक ईश्वर का (**पिता**) ज्ञान देने वा आस्तिकत्व से रक्षक (**असत्**) होवे ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग ईश्वर के मुक्तिसाधक बुद्धिस्थ स्वरूप का उपदेश करें ठीक २ पदार्थों के और ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव को जानें वे अवस्था में बड़े पितादिकों के भी रक्षा के योग्य होते हैं ऐसा जानो ॥९॥

स न इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

स नो॒ बन्धु॑र्जनि॒ता स वि॑धा॒ता धामा॑नि वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
यत्र॑ दे॒वाऽअ॒मृत॑मानशा॒नास्तृ॒तीये॒ धाम॑न्न॒ध्यैर॑यन्त ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्र**) जिस (**तृतीये**) जीव और प्रकृति के विलक्षण (**धामन्**) आधाररूप जगदीश्वर में (**अमृतम्**) मोक्ष सुख को (**आनशानाः**) प्राप्त होते हुए (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अध्यैरयन्त**) सर्वत्र अपनी इच्छापूर्वक विचरते हैं जो (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोक लोकान्तरों और (**धामानि**) जन्म स्थान नामों को (**वेद**) जानता है (**सः**) वह परमात्मा (**नः**) हमारा (**बन्धुः**) भाई के तुल्य मान्य सहायक (**जनिता**) उत्पन्न करने हारा (**सः**) वही (**विधाता**) सब पदार्थों और कर्म फलों का विधान करने वाला है यह निश्चय करो ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस शुद्धस्वरूप परमात्मा में योगिराज विद्वान् लोग मुक्तिसुख को प्राप्त हो आनन्द करते हैं उसी को सर्वज्ञ सर्वोत्पादक और सर्वदा सहायकार मानने चाहिये अन्य को नहीं ॥१०॥

परीत्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प॒रीत्य॑ भू॒तानि॑ प॒रीत्य॑ लो॒कान् प॒रीत्य॒ सर्वा॒: प्र॒दिशो॒ दिश॑श्च ।
उ॒प॒स्थाय॑ प्रथम॒जामृ॒तस्या॒त्मना॒त्मान॑म॒भि सं वि॑वेश ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो (**भूतानि**) प्राणियों को (**परीत्य**) सब ओर से व्याप्त हो के (**लोकान्**) पृथिवी सूर्यादि लोकों को (**परीत्य**) सब ओर से व्याप्त हो के (**च**) और ऊपर नीचे (**सर्वाः**) सब (**प्रदिशः**) आग्नेयादि उपदिशा तथा (**दिशः**) पूर्वादि दिशाओं को (**परीत्य**) सब ओर से व्याप्त हो के (**ऋतस्य**) सत्य के (**आत्मानम्**) स्वरूप वा अधिष्ठान को (**अभि, सम्, विवेश**) सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करता है (**प्रथमजाम्**) प्रथम कल्पादि में उत्पन्न चार वेदरूप वाणी को (**उपस्थाय**) पढ़ वा सम्यक् सेवन करके (**आत्मना**) अपने शुद्धस्वरूप वा अन्तःकरण से उस को प्राप्त हूजिये ॥११॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्म के आचरण, वेद और योग के अभ्यास तथा सत्संग आदि कर्मों से शरीर की पुष्टि और आत्मा तथा अन्तःकरण की शुद्धि को संपादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्त हो के सुखी होओ ॥११॥

परीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी स॒द्यऽइ॒त्वा परि॑ लो॒कान् परि॒ दिश॒: परि॒ स्व॑: ।
ऋ॒तस्य॒ तन्तु॒ वित॑तं वि॒चृत्य॒ तद॑पश्य॒त्तद॑भव॒त्तदा॑सीत् ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्य और भूमि को (**सद्यः**) शीघ्र (**इत्वा**) प्राप्त होके (**परि, अपश्यत्**) सब ओर से देखता है जो (**लोकान्**) देखने योग्य सृष्टिस्थ भूगोलों को शीघ्र प्राप्त हो के (**परि, अभवत्**) सब ओर से प्रकट होता जो (**दिशः**) पूर्वादि दिशाओं को शीघ्र प्राप्त हो के (**परि, आसीत्**) सब ओर से विद्यमान है जो (**स्वः**) सुख को शीघ्र प्राप्त हो के (**परि**) सब ओर से देखता है जो (**ऋतस्य**) सत्य के (**विततम्**) विस्तृत (**तन्तुम्**) कारण को (**विचृत्य**) विविध प्रकार से बांध के (**तत्**) उस सुख को देखता है जिस से (**तत्**) वह सुख हुआ और जिससे (**तत्**) वह विज्ञान हुआ है उसको यथावत् जान के उपासना करो ॥१२॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर ही का भजन करते और उस की रची सृष्टि को सुख के लिये उपयोग में लाते हैं वे इस लोक परलोक और विद्या से हुए सुख को शीघ्र प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥१२ ।

सदसस्पतिमित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सद॑स॒स्पति॒मद्भु॑तं प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म् ।
स॒निं मे॒धाम॑यासिष॒ꣳ स्वाहा॑ ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं (**स्वाहा**) सत्य क्रिया वा वाणी से जिस (**सदसः**) सभा, ज्ञान, न्याय वा दण्ड के (**पतिम्**) रक्षक (**अद्भुतम्**) आश्चर्य्य गुण कर्म स्वभाव वाले (**इन्द्रस्य**) इन्द्रियों के मालिक जीव के (**काम्यम्**) कमनीय (**प्रियम्**) प्रीति के विषय प्रसन्न करने हारे वा प्रसन्नरूप परमात्मा की उपासना और सेवा करके (**सनिम्**) सत्य असत्य का जिस से सम्यक् विभाग किया जाय उस (**मेधाम्**) उत्तम बुद्धि को (**अयासिषम्**) प्राप्त होऊं, उस ईश्वर की सेवा करके इस बुद्धि को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१३॥

भावार्थ—जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का सेवन करते हैं वे सब विद्याओं को पाकर शुद्ध बुद्धि से सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

यामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को ईश्वर से बुद्धि की याचना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यां मे॒धां दे॑वग॒णाः पि॒तर॑श्चो॒पास॑ते ।
तया॒ माम॒द्य मे॒धया॑ग्ने मे॒धावि॑नं कुरु॒ स्वाहा॑ ॥१४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) स्वयं प्रकाशरूप होने से विद्या के जताने हारे ईश्वर ! वा अध्यापक विद्वन् ! (**देवगणाः**) अनेकों विद्वान् (**च**) और (**पितरः**) रक्षा करने हारे ज्ञानी लोग (**याम्**) जिस (**मेधाम्**) बुद्धि वा धन को (**उपासते**) प्राप्त होके सेवन करते हैं (**तया**) उस (**मेधया**) बुद्धि वा धन से (**माम्**) मुझ को (**अद्य**) आज (**स्वाहा**) सत्य वाणी से (**मेधाविनम्**) प्रशंसित बुद्धि वा धन वाला (**कुरु**) कीजिये ॥१४॥

भावार्थ—मनुष्य लोग परमेश्वर की उपासना और आप्त विद्वान् की सम्यक् सेवा करके शुद्ध विज्ञान और धर्म से हुए धन को प्राप्त होने की इच्छा करें और दूसरों को भी ऐसे ही प्राप्त करावें ॥१४॥

मेधामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । परमेश्वरविद्वांसौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मेधां मे वरु॑णो ददातु मेधाम॒ग्निः प्र॒जाप॑तिः ।
मेधामिन्द्र॑श्च वा॒युश्च॑ मेधां धा॒ता द॑दातु मे॒ स्वाहा॑ ॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वरुणः) अति श्रेष्ठ परमेश्वर वा विद्वान् (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया से (मे) मेरे लिये (मेधाम्) शुद्ध बुद्धि वा धन को (ददातु) देवे (अग्निः) विद्या से प्रकाशित (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक (मेधाम्) बुद्धि को देवे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्यवान् (मेधाम्) बुद्धि को देवे (च) और (वायुः) बलदाता बलवान् (मेधाम्) बुद्धि को देवे (च) और (धाता) सब संसार वा राज्य का धारण करने हारा ईश्वर वा विद्वान् (मे) मेरे लिये बुद्धि धन को (ददातु) देवे वैसे तुम लोगों को भी देवे ॥१५॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे अपने लिये गुण कर्म स्वभाव और सुख को चाहें वैसे औरों के लिये भी चाहें । जैसे अपनी अपनी उन्नति की चाहना करें वैसे परमेश्वर और विद्वानों के निकट से अन्यों की उन्नति की प्रार्थना करें । केवल प्रार्थना ही न करें किन्तु सत्य आचरण भी करें । जब जब विद्वानों के निकट जावें तब तब सब के कल्याण के लिये प्रश्न और उत्तर किया करें ॥१५॥

इदं म इत्यस्य श्रीकाम ऋषिः । विद्वद्राजानौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

इ॒दं मे॒ ब्रह्म॑ च क्ष॒त्रं चो॒भे श्रिय॑मश्नुताम् ।
मयि॑ दे॒वा द॑धतु॒ श्रिय॒मुत्त॑मां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ॥१६॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा और हे विद्वन् ! तेरे पुरुषार्थ से(स्वाहा) सत्याचरणरूप क्रिया से (मे) मेरे (इदम्) ये (ब्रह्म) वेद ईश्वर का विज्ञान वा इनका ज्ञाता पुरुष (च) और (क्षत्रम्) राज्य धनुर्वेद विद्या और क्षत्रिय कुल (च) भी ये (उभे) दोनों (श्रियम्) राज्य की लक्ष्मी को (अश्नुताम्) प्राप्त हों जैसे (देवाः) विद्वान लोग (मयि) मेरे निमित्त (उत्तमाम्) अतिश्रेष्ठ (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को (दधतु) धारण करें ! हे जिज्ञासु जन ! (ते) तेरे लिये भी (तस्यै) उस श्री के अर्थ हम लोग प्रयत्न करें ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालन और विद्वानों की सेवा सत्कार से सब मनुष्यों के बीच से ब्राह्मण क्षत्रिय को सुन्दर शिक्षा विद्यादि सद्गुणों से संयुक्त और सब की उन्नति का विधान कर अपने आत्मा के तुल्य सब में वर्त्तें वे सब को पूजने योग्य होवें ॥१६॥

इस अध्याय में परमेश्वर विद्वान् और बुद्धि तथा धन की प्राप्ति के उपायों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

卐 अथ त्रयस्त्रिंशत्तमाध्यायारम्भः 卐

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

अस्येत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्नयो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेंतीसवें अध्याय का प्रारम्भ है इसके प्रथम द्वितीय मन्त्रों में अग्न्यादि पदार्थों को जान कार्य साधना चाहिये इस विषय को कहा है —

अ॒स्याज॒रासो॑ द॒माम॒रित्रा॑ऽअ॒र्चद्धू॑मासोऽअ॒ग्नयः॑ पाव॒काः ।
श्वि॒ती॒चयः॑ श्वा॒त्रासो॑ भुर॒ण्यवो॑ वन॒र्षदो॑ वा॒यवो॒ न सोमाः॑ ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अस्य) इस पूर्वोध्यायोक्त ईश्वर की सृष्टि में (अजरासः) एकसी अवस्था वाले (अरित्राः) शत्रुओं से बचाने हारे (अर्चद्धूमासः) सुगन्धित धूमों से युक्त (पावकाः) पवित्रकारक (श्वितीचयः) श्वेतवर्ण को संचित करने हारे (श्वात्रासः) धन को बढ़ाने के हेतु (भुरण्यवः) धारण करने हारे वा गमनशील (सोमाः) ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (वनर्षदः) वनों वा किरणों में रहने हारे (वायवः) पवनों के (न) समान (दमाम्) घरों के धारण करने हारे उन को तुम लोग जानो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अग्नि वायु आदि सृष्टिस्थ पदार्थों को जानें तो इनसे बहुत उपकारों को ग्रहण कर सकते हैं ॥१॥

हरय इत्यस्य विश्वरूप ऋषिः । अग्नयो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

हर॑यो धू॒मके॑तवो॒ वात॑जूता॒ऽउप॒ द्यवि॑ । यत॑न्ते॒ वृथ॑ग॒ग्नयः॑ ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (धूमकेतवः) जिन का जताने वाला धूम ही पताका के तुल्य है (वातजूताः) वायु से तेज को प्राप्त हुए (हरयः) हरणशील (अग्नयः) पावक (पृथक्) नाना प्रकार से (द्यवि) प्रकाश के निमित्त (उप, यतन्ते) यत्न करते हैं उनको कार्य्यसिद्धि के अर्थ उपयोग में लाओ ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिन का धूम ज्ञान कराने और वायु जलाने वाला है और जिन में हरणशीलता वर्त्तमान है वे अग्नि हैं ऐसा जानो ॥२॥

यजेत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यजा॑ नो मि॒त्रावरु॑णा॒ यजा॑ दे॒वाँ२ऽऋ॒तं बृ॒हत् ।
अग्ने॒ यक्षि॒ स्वं दम॑म् ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (नः) हमारे (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जनों तथा (देवान्) विद्वानों का (यज) सत्कार कीजिये (बृहत्) बड़े (ऋतम्) सत्य का (यज) उपदेश कीजिये जिससे (स्वम्) अपने (दमम्) घर को (यक्षि) संगत कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! हमारे मित्र, श्रेष्ठ और विद्वानों का सत्कार करने हारे सत्य के उपदेशक और अपने घर के कार्यों को सिद्ध करने हारे तुम लोग होओ ॥ ३ ॥

युक्ष्वेत्यस्य विश्वरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यु॒क्ष्वा हि दे॑व॒हूत॑माँ२ऽअश्वाँ॑२ऽअग्ने र॒थीरि॑व ।
नि होता॑ पू॒र्व्यः स॑दः ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (रथीरिव) सारथि के समान (देवहूतमान्) विद्वानों से अत्यन्त स्तुति किये हुए (अश्वान्) शीघ्रगामी अग्नि आदि वा घोड़ों को (युक्ष्व) युक्त कीजिये (पूर्व्यः) पूर्वज विद्वानों से विद्या को प्राप्त (होता) ग्रहण करते हुए (हि) निश्चय कर (नि, सदः) स्थिर हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे उत्तम शिक्षित सारथि घोड़ों से अनेक कार्यों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् जन अग्नि आदि से अनेक कार्यों को सिद्ध करें ॥ ४ ॥

द्वे इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

रात्रि दिन जगत् की रक्षा करनेवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेऽअन्यान्या वत्समुप धापयेते ।

हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रोऽअन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वर्थे) सुन्दर प्रयोजन वाली (द्वे) दो (विरूपे) भिन्न भिन्न रूप की स्त्रियां (चरतः) भोजनादि आचरण करती है और (अन्यान्या) एक एक अलग अलग समय में (वत्सम्) निरन्तर बोलने वाले एक बालक को (उप, धापयेते) निकट कर दूध पिलाती हैं उन दोनों में से (अन्यस्याम्) एक में (स्वधावान्) प्रशस्त शान्ति आदि अमृत तुल्य गुणयुक्त (हरिः) मन को हरने वाला पुत्र (भवति) होता और (शुक्रः) शीघ्रकारी (सुवर्चाः) सुन्दर तेजस्वी (अन्यस्याम्) दूसरी में हुआ (ददृशे) दीख पड़ता है वैसे ही सुन्दर प्रयोजन वाले दो काले श्वेत भिन्न रूप वाले रात्रि दिन वर्त्तमान है और एक एक भिन्न भिन्न समय में एक संसार रूप बालक को दुग्धादि पिलाते हैं उन दोनों में से एक रात्रि में अमृतरूप गुणों वाला मन का प्रसादक चन्द्रमा उत्पन्न होता और द्वितीय दिन रूप वेला में पवित्रकर्त्ता सुन्दर तेज वाला सूर्य रूप पुत्र दीख पड़ता है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में अनुभयाभेदरूपकालङ्कार है । जैसे दो स्त्रियां वा गायें सन्तान प्रयोजन वाली पृथक् पृथक् वर्त्तमान भिन्न भिन्न समय में एक बालक की रक्षा करें उन दोनों में से एक में हृदय को प्यारा महागुणी शान्तिशील बालक हो और दूसरी में शीघ्रकारी तेजस्वी शत्रुओं को दुःखदायी बालक होवे वैसे भिन्नस्वरूप वाले दो रात्रि दिन अलग अलग समय में एक संसाररूप बालक की पालना करते हैं । किस प्रकारः रात्रि अमृतवर्षक चित्त को प्रसन्न करनेहारे चन्द्रमारूप बालक को उत्पन्न करके और दिन रूप स्त्री तेजोमय सुन्दर प्रकाश वाले सूर्यरूप पुत्र को उत्पन्न करके ॥ ५ ॥

अयमित्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः ।

यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (धातृभिः) धारण करने वालों से (इह) इस संसार में (विशेविशे) प्रजा प्रजा के लिये (अयम्) यह (प्रथमः) विस्तार वाला (होता) सुखदाता (यजिष्ठः) अतिशय कर सङ्गत करनेवाला (अध्वरेषु) रक्षणीय व्यवहारों में (ईड्यः) खोजने योग्य विद्युत् आदि स्वरूप अग्नि (धायि) धारण किया जाता और जैसे (भृगवः) दृढ़ ज्ञान वाले (अप्नवानः) सुसन्तानों के सहित उत्तम शिष्य लोग (यम्) जिस (वनेषु) वनों वा किरणों में (चित्रम्) आश्चर्यरूप गुण कर्म स्वभाव वाले (विभ्वम्) व्यापक विद्युत्रूप अग्नि को (विरुरुचुः) विशेष कर प्रदीप्त करें वैसे उसको तुम लोग भी धारण और प्रकाशित करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग इस संसार में बिजुली की विद्या को जानते हैं वे सब प्रकार प्रजाओं को सब सुखों से युक्त करने को समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

त्रीणि शतेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कारीगर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिꣳशच्च देवा नव चासपर्यन् ।

औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्माऽआदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (त्रिंशत्) पृथिवी आदि तीस (च) और (नव) नव प्रकार के (च) ये सब और (देवाः) विद्वान् लोग (त्रीणि) तीन (शता) सौ (त्री) तीन (सहस्राणि) हजार कोश मार्ग में (अग्निम्) अग्नि को (असपर्यन्) सेवन करें (घृतैः) घी वा जलों से (औक्षन्) सींचें (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (अस्तृणन्) आच्छादित करें (अस्मै) इस अग्नि के अर्थ (होतारम्) हवन करनेवाले को (आत्, इत्) सब ओर से ही (नि, असादयन्त) निरन्तर स्थापित करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो शिल्पी विद्वान् लोग अग्नि जलादि पदार्थों को यानों में संयुक्त कर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट वेगों से अनेक सैकड़ों हजारों कोश मार्ग को जा सकें वे आकाश में भी जा आ सकते हैं ॥७॥

मूर्द्धानमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम् ।

कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (दिवः) आकाश के (मूर्द्धानम्) उपरिभाग में सूर्यरूप से वर्त्तमान (पृथिव्याः) पृथिवी को (अरतिम्) प्राप्त होने वाले (वैश्वानरम्) सब मनुष्यों के हितकारी (ऋते) यज्ञ के निमित्त (आ, जातम्) अच्छे प्रकार प्रकट हुए (कविम्) सर्वत्र दिखाने वाले (सम्राजम्) सम्यक् प्रकाशमान (जनानाम्) मनुष्यों के (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य प्रथम भोजन का भाग लेने वाले (पात्रम्) रक्षा के हेतु (आसन्) ईश्वर के मुखरूप सामर्थ्य में उत्पन्न हुए जो (अग्निम्) अग्नि को (आ, जनयन्त) अच्छे प्रकार प्रकट करें वैसे तुम लोग भी इस को प्रकट करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग पृथिवी जल वायु और आकाश में व्याप्त विद्युत्रूप अग्नि को प्रकट कर यन्त्र कलादि और युक्ति से चलावें वे किस किस कार्य को न सिद्ध करें ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य सूर्य के तुल्य दोषों को विनाशे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।

समिद्धः शुक्रऽआहुतः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (समिद्धः) सम्यक् प्रदीप्त (शुक्रः) शीघ्रकारी (अग्निः) सूर्य्यादि रूप अग्नि (वृत्राणि) मेघ के अवयवों को (जङ्घनत्) शीघ्र काटता है वैसे (द्रविणस्युः) अपने को धन चाहने वाले (आहुतः) बुलाये हुए आप (विपन्यया) विशेष व्यवहार की युक्ति से दुष्टों को शीघ्र मारिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे व्यवहार का जानने वाला पुरुष धन को पाके सत्कार को प्राप्त होकर दोषों को नष्ट करता है वैसे सूर्य्य मेघ को ताड़ना देता है ॥ ९ ॥

विश्वेभिरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्नऽइन्द्रेण वायुना ।

पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वि विद्वन् ! आप जैसे सूर्य (विश्वेभिः, धामभिः) धामों से (इन्द्रेण) धन के धारक (वायुना) बलवान् पवन के साथ (सोम्यम्) उत्तम ओषधियों में हुए (मधु) मीठे आदि गुण वाले रस को पीता है वैसे (मित्रस्य) मित्र के सब स्थानों से सुन्दर ओषधियों के रस को (पिब) पीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्य सब पदार्थों से रस को खींच के वर्षा के सब पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे विद्या और विनय से सब को पुष्ट करो ॥ १० ॥

आ यदित्यस्य पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आ यदिषे नृपतिं तेजऽआनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।

अग्निः शर्द्धमनवद्यं युवानꣳ स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जब (इषे) वर्षा के लिये (निषिक्तम्) अग्नि में घृतादि के पड़ने से निरन्तर बढ़ा हुआ (शुचि) पवित्र (तेजः) यज्ञ से उठा तेज (नृपतिम्) जैसे राजा का तेज व्याप्त हो वैसे सूर्य को (आ, आनट्) अच्छे प्रकार व्याप्त होता है तब (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (शर्द्धम्) बलहेतु (अनवद्यम्) निर्दोष (युवानम्) जवानी को करने हारे (स्वाध्यम्) जिन का सब चिन्तन करते (रेतः) ऐसे पराक्रमकारी वृष्टि जल को (द्यौः) आकाश के (अभीके) निकट (जनयत्) उत्पन्न करता (च) और (सूदयत्) वर्षा करता है ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि में होम किया द्रव्य तेज के साथ ही सूर्य को प्राप्त होता और सूर्य जलादि को आकर्षण कर वर्षा करके सब की रक्षा करता है वैसे राजा प्रजाओं से करों को ले, दुर्भिक्षकाल में फिर दे श्रेष्ठों को सम्यक् पालन और दुष्टों को सम्यक् ताड़ना देके प्रगल्भता और बल को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अग्न इत्यस्य विश्ववारा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।

सं जास्पत्यꣳ सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महाꣳसि ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् वा राजन् आप (महते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य के अर्थ (शर्द्ध) दुष्ट गुणों और शत्रुओं के नाशक बल को (आकृणुष्व) अच्छे प्रकार उन्नत कीजिये जिससे (तव) आपके (द्युम्नानि) धन वा यश (उत्तमानि) श्रेष्ठ (सन्तु) हों आप (जास्पत्यम्) स्त्री पुरुष के भाव को (सुयमम्) सुन्दर नियमयुक्त शास्त्रानुकूल ब्रह्मचर्ययुक्त (सम्, आ) सम्यक् अच्छे प्रकार कीजिये और आप (शत्रूयताम्) शत्रु बनने की इच्छा करते हुए मनुष्यों के (महांसि) तेजों को (अभि, तिष्ठ) तिरस्कृत कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो अच्छे संयम में रहने वाले मनुष्य हैं उनके बड़ा ऐश्वर्य, बल, कीर्ति, उत्तम स्वभाव वाली स्त्री और शत्रुओं का पराजय होता है ॥ १२ ॥

त्वामित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

त्वाᳬं हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।

इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान राजन् ! वा विद्वज्जन ! (हि) जिससे आप (नः) हम ब्रह्मचर्यादि सत्कर्मों में प्रवृत्त जनों के (महि) महत् गम्भीर वचन को (श्रोषि) सुनते हो इस से (मन्द्रतमम्) अतिशय कर प्रशंसादि से सत्कार को प्राप्त (त्वाम्) आप को (अर्कशोकैः) सूर्य के समान प्रकाश से युक्त जनों के साथ हम लोग (ववृमहे) स्वीकार करते हैं और (नृतमाः) अतिशय कर नायक श्रेष्ठजन (शवसा) बल से युक्त (इन्द्रम्) सूर्य के (न) समान तेजस्वी और (वायुम्) वायु के तुल्य वर्त्तमान बलवान् (देवता) दिव्य गुण युक्त (त्वा) आप को (राधसा) धन से (पृणन्ति) पालन वा पूर्ण करते हैं ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो दुःखों को सहन कर सूर्य के समान तेजस्वी और वायु के तुल्य बलवान् विद्वान् मनुष्य विद्या सुशिक्षा का ग्रहण करते हैं वे मेघ से सूर्य जैसे वैसे सब को आनन्द देने वाले उत्तम पुरुष होते हैं ॥१३॥

त्व इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्य जनों को वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।

त्वेऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।

यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (स्वाहुत) सुन्दर प्रकार से विद्या को ग्रहण किये हुए (अग्ने) विद्वन् ! (ये) जो (जनानाम्) मनुष्यों के बीच वीर पुरुष (यन्तारः) जितेन्द्रिय (मघवानः) बहुत धन से युक्त जन (गोनाम्) पृथिवी वा गौ आदि के (ऊर्वान्) हिंसकों को (दयन्त) मारते हैं वे (सूरयः) विद्वान् लोग (त्वे) आप के (प्रियासः) पियारे (सन्तु) हों ॥१४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर विद्वानों के पियारे हो, दुष्टों को मार और गौ आदि की रक्षा कर मनुष्यों के पियारे होते हैं वैसे तुम भी करो ॥१४॥

श्रुधीत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।

आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रोऽअर्य्यमा प्रातर्यावाणोऽअध्वरम् ॥१५॥

पदार्थ—हे (श्रुत्कर्ण) ऋषियों के वचनों को सुननेहारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन् ! वा राजन् ! आप (सयावभिः) जो साथ चलते उन (वह्निभिः) कार्यों का निर्वाह करनेहारे (देवैः) विद्वानों के साथ (अध्वरम्) रक्षा के योग्य राज्य के व्यवहार को (श्रुधि) सुनिये तथा (प्रातर्यावाणः) प्रातः काल राजकार्यों को प्राप्त करनेहारे (मित्रः) पक्षपातरहित सब का मित्र और (अर्यमा) वैश्य या अपने अधिष्ठाताओं को यथार्थ मानने वाला ये सब (बर्हिषि) अन्तरिक्ष के तुल्य सभा में (आ, सीदन्तु) अच्छे प्रकार बैठें ॥१५॥

भावार्थ—सभापति राजा को चाहिये कि अच्छे परीक्षित मन्त्रियों को स्वीकार कर उनके साथ सभा में बैठ विवाद करने वालों के वचन सुन के उन पर विचार कर यथार्थ न्याय करे ॥१५॥

विश्वेषामित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।

अग्निर्देवानामवऽआवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥१६॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप (विश्वेषाम्) सब (यज्ञियानाम्) पूजा सत्कार के योग्य (देवानाम्) विद्वानों के बीच (अदितिः) अखण्डित बुद्धि वाले (विश्वेषाम्) सब (मनुष्याणाम्) मनुष्यों में (अतिथिः) पूजनीय (अवः) रक्षा आदि को (आवृणानः) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हुए (सुमृडीकः) सुन्दर सुख देने वाले (जातवेदाः) विद्या और योग के अभ्यास से प्रसिद्ध बुद्धि वाले (अग्निः) तेजस्वी राजा (भवतु) हूजिये ॥१६॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब विद्वानों में गम्भीर बुद्धि वाला सब मनुष्यों में माननीय प्रजा की रक्षा आदि राजकार्य को स्वीकार करता सब सुखों का दाता और वेदादि शास्त्रों का जानने वाला शूरवीर हो उसी को राजा करें ॥१६॥

मह इत्यस्य लुशोधानाक ऋषिः । सविता देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

महोऽअग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।

श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवोऽअद्या वृणीमहे ॥१७॥

पदार्थ—हम राजपुरुष (महः) बड़े (समिधानस्य) प्रकाशमान (अग्नेः) विज्ञानवान् सभापति के (शर्मणि) आश्रय में (श्रेष्ठे) श्रेष्ठ (मित्रे) मित्र और (वरुणे) स्वीकार के योग्य मनुष्यों के निमित्त (अनागाः) अपराध रहित (स्याम) हों (अद्य) आज (सवितुः) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर की (सवीमनि) आज्ञा में वर्त्तमान (स्वस्तये) सुख के लिये (देवानाम्) विद्वानों के (तत्) उस वेदोक्त (अवः) रक्षा आदि कर्म को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं ॥१७॥

भावार्थ—धार्मिक विद्वान् राजपुरुषों को चाहिये कि अधर्म को छोड़ धर्म में प्रवृत्त हों परमेश्वर की सृष्टि में विविध प्रकार की रचना देख अपनी और दूसरों की रक्षा कर ईश्वर का धन्यवाद किया करें ॥१७॥

आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अध्यापक उपदेशक क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्तऽइन्द्र ।

याहि वायुर्न नियुतो नोऽअच्छा त्वᳬं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥१८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! (ते) आप के (जरितारः) स्तुति करने हारे (आपः) जलों के तुल्य (पिप्युः) बढ़ते हैं और (स्तर्यः) विस्तार के हेतु (गावः) किरणें (न) जैसे (ऋतम्) सत्य को (नक्षन्) व्याप्त होते हैं वैसे (वायुः) पवन के (न) तुल्य (वाजान्) विज्ञान वाले (नः) हम लोगों को और (नियुतः) वायु के वेग आदि गुणों को (त्वम्) आप (अच्छ) अच्छे प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये (हि) जिस कारण (धीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (वि, दयसे) विशेष कर कृपा करते हो इससे (चित्) भी सत्कार के योग्य हो ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों की स्तुति करने वाले उपदेशक और अध्यापक हों तो सब मनुष्य विद्या में व्याप्त हुए दया वाले हों ॥१८॥

गाव इत्यस्य पुरुमीढाजमीढावृषी । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

मनुष्यों को आभूषण आदि की रक्षा करनी चाहिये इस विषय को कहा है—

गावऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।

उभा कर्णा हिरण्यया ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (गावः) गौवें वा किरणें (उभा) दोनों (रप्सुदा) रूप देने वाली (मही) बड़ी आकाश पृथिवी की रक्षा करती है वैसे तुम लोग (हिरण्यया) सुवर्ण के आभूषण से युक्त (कर्णा) दोनों कानों और (यज्ञस्य) संगत यज्ञ के (अवतम्) वेदी आदि अवयवों की (उप, अवत) निकट रक्षा करो ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यकिरण और गौ आदि पशु सब वस्तुमात्र की रक्षा करते हैं वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सुवर्ण आदि के बने कुण्डल आदि आभूषण की सदा रक्षा करें ॥१९॥

यदद्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यदद्य सूरऽउदितेऽनागा मित्रोऽअर्य्यमा ।

सुवाति सविता भगः ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (अद्य) आज (सूरे) सूर्य के (उदिते) उदय होते अर्थात् प्रातःकाल (अनागाः) अधर्म के आचरण से रहित (मित्रः) सुहृद् (सविता) राज्य के नियमों से प्रेरणा करने हारा (भगः) ऐश्वर्यवान् (अर्य्यमा) न्यायकारी राजा स्वस्थता को (सुवाति) उत्पन्न करे वह राज्य करने के योग्य होवे ॥२०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के उदय होते अन्धकार निवृत्त होके प्रकाश के होने में सब लोग आनन्दित होते हैं वैसे ही धर्मात्मा राजा के होते प्रजाओं में सब प्रकार से स्वस्थता होती है ॥२०॥

आ सुत इत्यस्य सुनीतिर्ऋषिः । वेनो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आ सुते सिञ्चत श्रियᳬं रोदस्योरभिश्रियम् ।

रसा दधीत वृषभम् । तं प्रत्नथा । अयं वेनः ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (रसा) आनन्द देने वाले तुम लोग (सुते) उत्पन्न हुए जगत् में (वृषभम्) अतिबली (रोदस्योः) आकाश पृथिवी को (अभिश्रियम्) सब ओर से शोभित करने हारे (श्रियम्) शोभायुक्त सभापति राजा का (आ सिञ्चत) अच्छे प्रकार अभिषेक करो और वह सभापति तुम लोगों को (दधीत) धारण करे ॥२१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य की उन्नति से जगत् का प्रकाशक सुन्दरता आदि गुणों से युक्त अति बलवान् विद्वान् शूर पूर्ण अवयवों वाले मनुष्य को राज्य में अभिषेक करें और वह राजा प्रजाओं में सुख धारण करे ॥२१॥

आतिष्ठन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

अब विद्युत् अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वेऽअभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद्वृष्णोऽअसुरस्य नामा विश्वरूपोऽअमृतानि तस्थौ ॥२२॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! (विश्वे) सब आप जैसे (श्रियः) धनों वा शोभाओं को (वसानः) धारण करता हुआ (स्वरोचिः) स्वयमेव दीप्ति वाला (विश्वरूपः) सब पदार्थों में उन उन के रूप से व्याप्त अग्नि (चरति) विचरता और (अमृतानि) नाशरहित वस्तुओं में (तस्थौ) स्थित है वैसे इस (आतिष्ठन्तम्) अच्छे प्रकार स्थिर अग्नि को (परि, अभूषन्) सब ओर से शोभित कीजिये। जो (वृष्णः) वर्षा करने हारे (असुरस्य) हिंसक इस बिजुलीरूप अग्नि का (महत्) बड़ा (तत्) वह परोक्ष (नाम) नाम है उससे सब कार्यों को शोभित करो ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस कारण यह विद्युत्-रूप अग्नि सब पदार्थों में स्थित हुआ भी किसी को प्रकाशित नहीं करता इससे इस को असुर संज्ञा है जो इस विद्युत् विद्या को जानते हैं वे सब ओर से सुभूषित होते हैं ॥२२॥

प्र व इत्यस्य सुचीक ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्य को ईश्वर ही की पूजा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे।
इन्द्रस्य यस्य सुमखꣳ सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तुम (रोदसी) आकाश भूमि (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (सुमखम्) सुन्दर यज्ञ जिसमें हो ऐसे (नृम्णम्) धन (सहः) बल (च) और (महि) बड़े (श्रवः) यश को (सपर्यतः) सेवते हैं उस (विश्वानराय) सब मनुष्य जिसमें हो (महे) महान् (मन्दमानाय) आनन्दस्वरूप (विश्वाभुवे) सब को प्राप्त वा सब पृथिवी के स्वामी वा संसार जिससे हो ऐसे ईश्वर के अर्थ (प्र, अर्च) पूजन करो अर्थात् उसको मानो वह (वः) तुम्हारे लिये (अन्धसः) अन्नादि के सुख को देवे ॥ २३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसके उत्पन्न किये धन और बलादि को सब सेवते उसी महाकीर्ति वाले सब के स्वामी आनन्दस्वरूप सर्वव्याप्त ईश्वर की तुमको पूजा और प्रार्थना करनी चाहिये वह तुम्हारे लिये धनादि से होने वाले सुख को देगा ॥२३॥

बृहन्निदित्यस्य त्रिशोक ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्य परमेश्वर को ही मित्र करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

बृहन्निदिध्मऽएषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२४॥

पदार्थः—(येषाम्) जिन का (इध्मः) तेजस्वी (पृथुः) विस्तार युक्त (स्वरुः) प्रतापी (युवा) जवान् (बृहन्) महान् (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य वाला परमात्मा (सखा) मित्र है (एषाम्) उन (इत्) ही का (भूरि) बहुत (शस्तम्) स्तुति के योग्य कर्म होता है ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस का उत्तम परमेश्वर मित्र होवे वह जैसे इस ब्रह्माण्ड में सूर्य्य प्रताप वाला है वैसे प्रताप युक्त हो ॥ २४ ॥

इन्द्र इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महाँ२ऽअभिष्टिरोजसा ॥२५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने वाले विद्वन् ! जिस कारण आप (ओजसा) पराक्रम के साथ (महान्) बड़े (अभिष्टिः) सब ओर से सत्कार के योग्य (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) सोमादि ओषधियों के अवयवों और (अन्धसा) अन्न से (मत्सि) तृप्त होते हो इससे हम को (आ, इहि) प्राप्त हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस कारण अन्न आदि से मनुष्यादि प्राणियों के शरीरादि का निर्वाह होता है इससे इनके वृद्धि सेवन आहार और विहार यथावत् जानो ॥ २५ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्द्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः।
अहन् व्यꣳसमुशधग्वनेष्वाविर्धेनाऽअकृणोद्राम्याणाम् ॥२६॥

पदार्थः—(शर्द्धनीतिः) बल को प्राप्त (वर्पणीतिः) नाना प्रकार के रूपों वाला (उशधक्) पर पदार्थों को चाहने वाला चोरादि को नष्ट करनेहारा (इन्द्रः) सूर्य्य के तुल्य प्रतापी सभापति (वृत्रम्) प्रकाश को रोकने हारे मेघ के तुल्य धर्म के निरोधक दुष्ट शत्रु को (अवृणोत्) युद्ध के लिये स्वीकार करे (मायिनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले छली कपटी आदि को (प्र, अमिनात्) मारे जो (वनेषु) वनों में रहने वाले (व्यंसम्) कपटी हैं भुजा जिस की ऐसे चोर को (अहन्) मारे और (राम्याणाम्) आनन्द देने वाले उपदेशकों की (धेनाः) वाणियों को (आविः, अकृणोत्) प्रकट करे वही राजा होने को योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के तुल्य सुशिक्षित वाणियों को प्रकट करते, जैसे अग्नि वनों को वैसे दुष्ट शत्रुओं को मारते, दिन जैसे रात्रि को निवृत्त करे वैसे छल कपटता और अविद्यारूप अन्धकारादि को निवृत्त करते और बल को प्रकट करते हैं वे अच्छे प्रतिष्ठित राजपुरुष होते हैं ॥ २६ ॥

कुत इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं तऽइत्था।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्तेऽअस्मे॥
महाँ२ऽइन्द्रो यऽओजसा।
कदा चन स्तरीरसि। कदा चन प्रयुच्छसि ॥२७॥

पदार्थः—हे (सत्पते) श्रेष्ठ सत्य व्यवहार वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (इन्द्र) सभापते ! (माहिनः) महत्वयुक्त सत्कार को प्राप्त (त्वम्) आप (एकः) असहायी (सन्) होते हुए (कुतः) किस कारण (यासि) प्राप्त होते वा विचरते हो ? (किम्, ते, इत्था) इस प्रकार करने में आपका क्या प्रयोजन है ? । हे (हरिवः) प्रशंसित मनोहारी घोड़ों वाले राजन् ! (यत्) जिस कारण (अस्मे) हम लोग (ते) आपके हैं इससे (समराणः) सम्यक् चलते हुए आप (नः) हम को (सम्, पृच्छसे) पूछिये और (शुभानैः) मङ्गलमय वचनों के साथ (तत्) उस एकाकी रहने के कारण को (वोचेः) कहिये ॥२७॥

भावार्थः—राज प्रजापुरुषों को चाहिये कि सभाध्यक्ष राजा से ऐसा कहें कि हे सभापते ! आप को विना सहाय के कुछ राजकार्य न करना चाहिये किन्तु आप को उचित है कि सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के ताड़न में अस्मदादि के सहाययुक्त सदैव रहें, शुभाचरण से युक्त अस्मदादि शिष्टों की सम्मतिपूर्वक कोमल वचनों से सब प्रजाओं को शिक्षा करें ॥ २७ ॥

आ तदित्यस्य गोरीवितिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

आ तत्तऽइन्द्रायवः पनन्ताभि यऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीꣳ सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥२८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! (ये) जो (आयवः) सत्य को प्राप्त होने वाले प्रजाजन (सकृत्स्वम्) एक वार उत्पन्न करने वाली (पुरुपुत्राम्) बहुत अन्नादि व्यक्ति वाले पुत्रों से युक्त (सहस्रधाराम्) असंख्य सुवर्णादि धातु जिसमें धारारूप हों वा असंख्य प्राणिमात्र को धारण करने हारी (बृहतीम्) विस्तारयुक्त (महीम्) बड़ी भूमि को (दुदुक्षन्) दोहना चाहें अर्थात् उससे इच्छापूर्ति किया चाहें (ये) जो मनुष्य (गोमन्तम्) खोटे इन्द्रियों वाले लम्पट (ऊर्वम्) हिंसक जन को (अभि, तितृत्सान्) सन्मुख होकर मारने की इच्छा करें और जो (ते) आप के (तत्) उस राजकर्म की (आ, पनन्त) प्रशंसा करें उनकी आप उन्नति किया कीजिये ॥२८॥

भावार्थः—जो लोग राजभक्त दुष्ट हिंसक एक वार में बहुत फल फूल देने और सब को धारण करने वाली भूमि के दुहने को समर्थ हों वे राजकार्य करने के योग्य होवें ॥२८॥

इमामित्यस्य कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तऽआनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥२९॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! मैं (महीम्) सुन्दर पूज्य (इमाम्) इस (ते) आपकी (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (प्र, भरे) धारण करता हूँ (स्तोत्रे) स्तुति होने में (अस्य) इस मेरी (धिषणा) बुद्धि (यत्) जिस (ते) आप को (आनजे) प्रकट करती है (तम्) उस (शवसा) बल के साथ (सासहिम्) शीघ्र सहने वाले (इन्द्रम्) उत्तम बल के योग से शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे सभापति को (महः) महान् कार्य के (उत्सवे) करने योग्य आनन्द समय (च) और (प्रसवे) उत्पत्ति में (च) भी (देवासः) विद्वान् लोग (अनु, अमदन्) अनुकूलता से आनन्दित करें ॥२९॥

भावार्थः—जो राजादि मनुष्य विद्वानों से उत्तम बुद्धि वा वाणी को ग्रहण करते हैं वे सत्य के अनुकूल हुए आप आनन्दित होके औरों को प्रसन्न करते हैं ॥२९॥

विभ्राडित्यस्य विभ्राडृषिः। सूर्यो देवता। विराट् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो योऽअभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥३०॥

पदार्थः—(यः) जो (वातजूतः) वायु से वेग को प्राप्त सूर्य्य के तुल्य (विभ्राड्) विशेष कर प्रकाश वाला राजपुरुष (अविह्रुतम्) अखण्ड संपूर्ण (आयुः)

जीवन (यज्ञपतौ) युक्त व्यवहार पालक अधिष्ठाता में (दधत्) धारण करता हुआ (त्मना) आत्मा से (प्रजाः) प्रजाओं को (अभि, रक्षति) सब ओर से रक्षा करता हुआ (पुपोष) पुष्ट करता और (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (वि, राजति) विशेषकर प्रकाशमान होता है सो आप (बृहत्) बड़े (सोम्यम्) सोमादि ओषधियों के (मधु) मिष्टादि गुण युक्त रस का (पिबतु) पीजिये ॥३०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजादि मनुष्यो ! जैसे सूर्य वृष्टि द्वारा सब जीवों के जीवन पालन का करता है उसके तुल्य उत्तम गुणों से महान् हो के न्याय और विनय से प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करो ॥३०॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सूर्यमण्डल कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (देवम्) खिलखिलाते हुए (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (विश्वाय) संसार को (दृशे) देखने के लिये (केतवः) किरणें (उत्, वहन्ति) ऊपर को आश्चर्यरूप प्राप्त कराती हैं (त्यम्) उस (उ) ही को तुम लोग जानो ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य किरणों से संसार को दिखाता और आप सुशोभित होता वैसे विद्वान् लोग सब विद्या और शिक्षाओं को दिखाकर सुन्दर शोभायमान हों ॥३१॥

येनेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२ऽअनु ।

त्वं वरुण पश्यसि ॥३२॥

पदार्थ—हे (पावक) पवित्रकर्त्ता (वरुण) श्रेष्ठ विद्वन् वा राजन् ! (त्वम्) आप (येन) जिस (चक्षसा) प्रकट दृष्टि वा उपदेश से (भुरण्यन्तम्) रक्षा करते हुए (अनु, पश्यसि) अनुकूल देखते हो उससे (जनान्) हम आदि मनुष्यों को देखिये और आप के अनुकूल हम वर्त्ते ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे राजा और राजपुरुष जिस प्रकार के व्यवहार से प्रजाओं में वर्त्ते वैसे ही भाव से इनमें प्रजा लोग भी वर्त्ते ॥ ३२ ॥

दैव्यावित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

दैव्यावध्वर्यू ऽआ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा ।

मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे तं प्रत्नथा ।

अयं वेनः । चित्रं देवानाम् ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे (दैव्यौ) अच्छे उत्तम विद्वानों वा गुणों में प्रवीण (अध्वर्यू) अपने को अहिंसारूप यज्ञ को चाहते हुए दो पुरुषो ! आप (सूर्यत्वचा) जिसका बाहरी आवरण सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ऐसे (रथेन) चलने वाले विमानादि यान से (आ, गतम्) आइये और (मध्वा) कोमल सामग्री से (यज्ञम्) यात्रा, संग्राम वा हवनरूप यज्ञ को (सम्, अञ्जाथे) सम्यक् प्रकट करो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—राजादि मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य के प्रकाश के तुल्य विमानादि यान संग्राम में वाहनादि को उत्पन्न कर यात्रादि अनेक व्यवहारों को सिद्ध किया कर ॥ ३३ ॥

आ न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उपदेशक लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आ नऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देवऽएतु ।

अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥

पदार्थ—हे (युवानः) जवान ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़े हुए उपदेष्टा लोगो ! (यथा) जैसे (विश्वानरः) सब का नायक (देवः) उत्तम गुणों वाला (सविता) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान विद्वान् (इडाभिः) वाणियों से (विदथे) जताने योग्य व्यवहार में (सुशस्ति) सुन्दर प्रशंसायुक्त (नः) हमारे (विश्वम्) सब (जगत्) चेतन पुत्र गौ आदि को (आ, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे वैसे (अभिपित्वे) सम्मुख जाने में तुम लोग (मत्सथ) आनन्दित हूजिये जो (नः) हमारी (मनीषा) बुद्धि है उसको (अपि) भी शुद्ध कीजिये ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशस्वरूप शरीर और आत्मा से युवावस्था को प्राप्त सुशिक्षित जितेन्द्रिय सुशील होते हैं वे सब को उपदेश से ज्ञान कराने को समर्थ होते हैं ॥३४॥

यदद्येत्यस्य श्रुतकक्षसुकक्षावृषी । सूर्यो देवता । पिपीलिका मध्यानिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगाऽअभि सूर्य्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥३५॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) मेघहन्ता सूर्य्य के तुल्य शत्रुहन्ता (सूर्य्य) विद्यारूप ऐश्वर्य के उत्पादक (इन्द्र) अन्नदाता सज्जन पुरुष ! (ते) आप के (यत्) जो (अद्य) आज दिन (सर्वम्) सब कुछ (वशे) वश में है (तत्) उस को (कत्, च) कब (अभि, उत्, अगाः) सब ओर से उदित प्रकट सन्नद्ध कीजिये ॥३५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो पुरुष सूर्य के तुल्य अविद्यारूप अन्धकार और दुष्टता को निवृत्त कर सब को वशीभूत करते हैं वे अभ्युदय को प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥

तरणिरित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब राजपुरुष कैसे हों इस विषय को कहा है—

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य ।

विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ३६ ॥

पदार्थ—हे (सूर्य) सूर्य के तुल्य वर्त्तमान तेजस्विन् ! जैसे (तरणिः) अन्धकार से पार करने वाला (विश्वदर्शतः) सब को देखने योग्य (ज्योतिष्कृत्) अग्नि, विद्युत्, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे आदि को प्रकाशित करने वाले सूर्यलोक (रोचनम्) रुचिकारक (विश्वम्) समग्र राज्य को प्रकाशित करता है वैसे आप (असि) हैं जिस कारण न्याय और विनय से राज्य को (आ, भासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हो इसलिये सत्कार पाने योग्य हो ॥ ३६ ॥

भावार्थ— इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो राजपुरुष विद्या के प्रकाशक होवें तो सब को आनन्द देने को समर्थ होवें ॥ ३६ ॥

तत्सूर्यस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर के विषय में अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततꣳ सं जभार ।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥३७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जगदीश्वर अन्तरिक्ष के (मध्या) बीच (यदा) जब (हरितः) जिन में पदार्थ हरे जाते उन दिशाओं और (विततम्) विस्तृत कार्य जगत् को (सम्, जभार) संहार अपने में लीन करता (सिमस्मै) सब के लिये (रात्री) रात्रि के तुल्य (वासः) अन्धकाररूप आच्छादन को (तनुते) फैलाता और (आत्) इसके अनन्तर (सधस्थात्) एक स्थान से अर्थात् सर्व साक्षित्वादि से निवृत्त हो के एकाग्र (इत्) ही (अयुक्त) समाधिस्थ होता है (तत्) वह (कर्त्तोः) करने को समर्थ (सूर्यस्य) चराचर के आत्मा परमेश्वर का (देवत्वम्) देवतापन (तत्) वही उसका (महित्वम्) बड़प्पन तुम लोग जानो ॥३७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जिस ईश्वर से सब जगत् रचा, धारण पालन और विनाश किया जाता है उसी को और उसकी महिमा को जान के निरन्तर उसकी उपासना किया करो ॥३७॥

तन्मित्रस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।

अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥३८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (द्योः) प्रकाश के (उपस्थे) निकट वर्त्तमान अर्थात् अन्धकार से पृथक् (सूर्यः) चराचर का आत्मा (मित्रस्य) प्राण और (वरुणस्य) उदान के (तत्) उस (रूपम्) रूप को (कृणुते) रचता है जिससे मनुष्य (अभिचक्षे) देखता जानता है (अस्य) इस परमात्मा का (रुशत्) शुद्ध स्वरूप और (पाजः) बल (अनन्तम्) अपरिमित (अन्यत्) भिन्न है और (अन्यत्, कृष्णम्) अविद्यादि मलिन गुण वाले भिन्न जगत् को (हरितः) दिशा (सम्, भरन्ति) धारण करती है ॥३८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अनन्त ब्रह्म वह प्रकृति और जीवों से भिन्न है। ऐसे ही प्रकृति स्वरूप कारण विभु है उससे जो जो उत्पन्न होता वह वह समय पाकर ईश्वर के नियम से नष्ट हो जाता है जैसे जीव प्राण उदान से सब व्यवहारों को सिद्ध करते वैसे ईश्वर अपने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयों को करता है ॥३८॥

बण्महानित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

बण्महाँ२ऽअसि सूर्य्य बडादित्य महाँ२ऽअसि ।

महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ऽअसि ॥३९॥

पदार्थ—हे (सूर्य) चराचर के अन्तर्यामिन् ईश्वर ! जिस कारण आप (बट्) सत्य (महान्) महत्त्वादि गुण युक्त (असि) हैं। हे (आदित्य) अविनाशीस्वरूप ! जिससे आप (बट्) अनन्त ज्ञानवान् (महान्) बड़े (असि) हो (सतः) सत्यस्वरूप (महः) महान् (ते) आपका (महिमा) महत्त्व (पनस्यते) लोगों से स्तुति किया जाता। हे (देव) दिव्य गुणकर्मस्वभावयुक्त ईश्वर ! जिससे आप (अद्धा) प्रसिद्ध (महान्) महान् (असि) हैं इसलिये हमको उपासना करने के योग्य हैं ॥३९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर के महिमा को पृथिवी सूर्यादि पदार्थ जानते हैं जो सब से बड़ा है उसको छोड़ के किसी अन्य की उपासना नहीं करनी चाहिये ॥३९॥

बट्सूर्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिग् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

बट् सूर्य्य श्रवसा महाँ२ऽअसि सत्रा देव महाँ२ऽअसि ।

मह्ना देवानामसुर्य्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥४०॥

पदार्थ—हे (बट्) सत्य (सूर्य) सूर्य के तुल्य सब के प्रकाशक जिससे आप (श्रवसा) यश वा धन से (महान्) बड़े (असि) हो । हे (देव) उत्तम सुख के दाता (सत्रा) सत्य के साथ (महान्) बड़े (असि) हो । जिससे आप (देवानाम्) पृथिवी आदि वा विद्वानों के (पुरोहितः) प्रथम से हितकारी (मह्ना) महत्त्व से (असुर्यः) प्राणों के लिये हितैषी हुए (अदाभ्यम्) आस्तिकता से रक्षा करने योग्य (विभु) व्यापक (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप हैं इससे सत्कार के योग्य हैं ॥४०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने सब की पालना के लिये अन्नादि को उत्पन्न करने वाली भूमि और मेघ का प्रकाश करने वाला सूर्य रचा है वही परमेश्वर उपासना करने को योग्य है ॥४०॥

श्रायन्त इवेत्यस्य नृमेध ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

श्रायन्तऽइव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

वसूनि जाते जनमानऽओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥४१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ओजसा) सामर्थ्य से (जाते) उत्पन्न हुए और (जनमाने) उत्पन्न होने वाले जगत् में (सूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सब के अन्तर्यामी परमेश्वर का (श्रायन्त इव) आश्रय करते हुए के समान (विश्वा) सब (वसूनि) वस्तुओं को (प्रति, दीधिम) प्रकाशित करें और (भागम्, न) सेवने योग्य अपने अंश के तुल्य सेवन करें वैसे (इत्) ही (इन्द्रस्य) उत्तम ऐश्वर्य के भाग को तुम लोग (भक्षत) सेवन करो ॥४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो हम लोग परमेश्वर को सेवन करते हुए विद्वानों के तुल्य हों तो यहां सब ऐश्वर्य प्राप्त होवें ॥४१॥

अद्या देवा इत्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

विद्वान् लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अद्या देवाऽउदिता सूर्य्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीऽउत द्यौः ॥४२॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! जिस कारण (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (उदिता) उदय होते (अद्य) आज (अंहसः) अपराध से (नः) हम को (निः) निरन्तर बचाओ और (अवद्यात्) निन्दित दुःख से (निः, पिपृत) निरन्तर रक्षा करो (तत्) इस से (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) प्रकाश ये सब हमारा (मामहन्ताम्) सत्कार करें ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्य प्राणादि के तुल्य सब को सुखी करते और अपराध से दूर रखते हैं वे जगत् को शोभित करने वाले हैं ॥ ४२ ॥

आ कृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । सूर्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सूर्य्य मण्डल कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ज्योतिःस्वरूप रमणीय स्वरूप से (कृष्णेन) आकर्षण से परस्पर सम्बद्ध (रजसा) लोकमात्र के साथ (आ, वर्त्तमानः) अपने भ्रमण की आवृत्ति करता हुआ (भुवनानि) सब लोकों को (पश्यन्) दिखाता हुआ (देवः) प्रकाशमान (सविता) सूर्य्यदेव (अमृतम्) जल वा अविनाशी आकाशादि (च) और (मर्त्यम्) मरणधर्मा प्राणिमात्र को (निवेशयन्) अपने अपने प्रदेश में स्थापित करता हुआ (आ, याति) उदयास्त समय में आता जाता है सो ईश्वर का बनाया सूर्य्यलोक है ॥ ४३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे इन भूगोलादि लोकों के साथ सूर्य्य का आकर्षण है जो वृष्टिद्वारा अमृतरूप जल को बरसाता और जो मूर्त्त द्रव्यों को दिखाने वाला है वैसे ही सूर्य्य आदि लोक भी ईश्वर के आकर्षण से धारण किये हुए हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

प्र वावृज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब वायु सूर्य्य कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिटऽइयाते ।

विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥४४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (पूर्वहूतौ) पूर्वजों ने प्रशंसा किये हुए (सुप्रयाः) सुन्दर प्रकार चलने वाला (नियुत्वान्) शीघ्रकारी वेगादि गुणों वाला (वायुः) पवन और (पूषा) सूर्य (एषाम्) इन मनुष्यों के (स्वस्तये) सुख के लिये (प्र, वावृजे) प्रकर्षता से चलता है (विशाम्) प्रजाओं के बीच (विश्पतीव) प्रजारक्षक दो राजाओं के तुल्य (बीरिटे) अन्तरिक्ष में (आ, इयाते) आते जाते हैं वैसे (अक्तोः) रात्रि और (उषसः) दिन के (बर्हिः) जल को प्राप्त होते हैं ॥४४॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वायु सूर्य न्यायकारी राजा के समान पालक हैं वे ईश्वर के बनाये हैं यह जानना चाहिये ॥ ४४ ॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थों को जान के क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् ।

आदित्यान्मारुतं गणम् ॥४५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (इन्द्रवायू) बिजुली, पवन (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के रक्षक सूर्य्य (मित्रा) प्राण (अग्निम्) अग्नि (पूषणम्) पुष्टि-कारक (भगम्) ऐश्वर्य (आदित्यान्) बारह महीनों और (मारुतम्) वायुसम्बन्धि (गणम्) समूह को जान के उपयोग में लावें वैसे तुम लोग भी उनका प्रयोग करो ॥ ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिस्थ विद्युत् आदि पदार्थों को जान और सम्यक् प्रयोग कर कार्य्यों को सिद्ध करें ॥४५॥

वरुण इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । वरुणो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।

करतां नः सुराधसः ॥४६॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक विद्वान् लोगो ! जैसे (वरुणः) उदान वायु के तुल्य उत्तम विद्वान् और (मित्रः) प्राण के तुल्य प्रियमित्र (विश्वाभिः) समग्र (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं से (प्राविता) रक्षक (भुवत्) होवे वैसे आप दोनों (नः) हम को (सुराधसः) सुन्दर धन से युक्त (करताम्) कीजिये ॥४६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अध्यापक और उपदेशक लोग प्राणों के तुल्य सब में प्रीति रखने वाले और उदान के समान शरीर और आत्मा के बल को देने वाले हों वे ही सब के रक्षक सब को धनाढ्य करने को समर्थ होवें ॥ ४६ ॥

अधीत्यस्य कुत्सीदिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत्पिपीलिकामध्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ।

तं प्रत्नथा । अयं वेनः । ये देवासः । आ नऽइडाभिः ।

विश्वेभिः सोम्यं मधु । ओमासश्चर्षणीधृतः ॥४७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यदातः विद्वन् ! हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर ! हे (मरुतः) मनुष्यो ! तथा हे (अश्विना) अध्यापक उपदेशक लोगो ! तुम सब (सजात्यानाम्) हमारे सहयोगी (एषाम्) इन (नः) हमारे बीच (अधि) स्वामीपन को (इत) प्राप्त होओ ॥४७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् ईश्वर के समान पक्षपात छोड़ सम दृष्टि से हमारे विषय में वर्त्तें उन के विषय में हम भी वैसे ही वर्त्ता करें ॥४७॥

अग्न इत्यस्य प्रतिक्षत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अग्नऽइन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।

उभा नासत्या रुद्रोऽअध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्याप्रकाशक (इन्द्र) महान् ऐश्वर्य वाले (वरुण) अति श्रेष्ठ (मित्र) मित्र (मारुत) मनुष्यों में वर्त्तमान जन (उत) और (विष्णो) व्यापनशील (देवाः) विद्वान् तुम लोगो ! हमारे लिये (शर्द्धः) शरीर और आत्मा के बल को (प्र, यन्त) देओ (उभा) दोनों (नासत्या) सत्यस्वरूप अध्यापक और उपदेशक (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने हारा (ग्नाः) अच्छी शिक्षित वाणी (पूषा) पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान् (अध) और इसके अनन्तर (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञान वाली स्त्री ये सब हमारा (जुषन्त) सेवन करें ॥४८॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सेवन से विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर दूसरों को भी विद्वान् करें ॥४८॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य वत्सार ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अध्यापक और अध्येता लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इ॒न्द्रा॒ग्नी मि॒त्रावरु॒णादि॑तिꣳ स्वः॑ पृथि॒वीं द्यां म॒रुतः॒ पर्व॑ताँ२ऽअ॒पः ।
हु॒वे विष्णुं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॒ भगं॒ नु शꣳस॑ꣳ सवि॒तार॑मू॒तये॑ ॥४९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (इन्द्राग्नी) संयुक्त बिजुली और अग्नि (मित्रावरुणा) मिले हुए प्राण उदान (अदितिम्) अन्तरिक्ष (पृथिवीम्) भूमि (द्याम्) सूर्य (मरुतः) विचारशील मनुष्यों (पर्वतान्) मेघों वा पहाड़ों (अपः) जलों (विष्णुम्) व्यापक ईश्वर (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) ब्रह्माण्ड वा वेद के पालक ईश्वर (भगम्) ऐश्वर्य (शंसम्) प्रशंसा के योग्य (सवितारम्) ऐश्वर्यकारक राजा और (स्वः) सुख की (नु) शीघ्र (हुवे) स्तुति करूं वैसे उनकी तुम भी प्रशंसा करो ॥४९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अध्यापक और अध्येता को चाहिये कि प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को रक्षा आदि के लिये जानें ॥४९॥

अस्मे इत्यस्य प्रगाथ ऋषिः । महेन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अ॒स्मे रु॒द्रा मे॒हना॒ पर्व॑तासो वृत्र॒हत्ये॒ भर॑हूतौ स॒जोषाः॑ ।
यः शꣳस॑ते स्तुव॒ते धायि॑ प॒ज्रऽइन्द्र॑ज्येष्ठाऽअ॒स्माँ२ऽअ॑वन्तु दे॒वाः ॥५०

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पज्रः) संचित धन वाला जन जिनकी (शंसते) प्रशंसा और (स्तुवते) स्तुति करता और जिसने धन को (धायि) धारण किया है उस और (अस्मान्) हमारी जो (अस्मे) हमारे बीच (मेहना) धनादि को छोड़ने (रुद्राः) शत्रुओं का रुलाने और (पर्वतासः) उत्सवों वाले (वृत्रहत्ये) दुष्ट को मारने के लिये (भरहूतौ) संग्राम में बुलाने के विषय में (सजोषाः) एकसी प्रीति वाले (इन्द्रज्येष्ठाः) सभापति राजा जिनमें बड़ा है ऐसे (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) रक्षा करें वे तुम्हारी भी रक्षा करें ॥५०॥

भावार्थ—जो राजपुरुष पदार्थों की स्तुति करने वाले श्रेष्ठों के रक्षक दुष्टों के ताड़क युद्ध में प्रीति रखने वाले मेघ के तुल्य पालक प्रशंसा के योग्य हैं वे सब को सेवन योग्य होते हैं ॥५०॥

अर्वाञ्च इत्यस्य कूर्म ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अ॒र्वाञ्चो॑ऽअ॒द्या भ॑वता यजत्राऽआ वो॒ हार्दि॒ भय॑मानो॒ व्य॑येयम् ।
त्राध्वं॑ नो देवा नि॒जुरो॒ वृक॑स्य॒ त्राध्वं॑ क॒र्त्ताद॑व॒पदो॑ यजत्राः ॥५१॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) सङ्गति करने हारे (देवाः) विद्वानो ! तुम लोग (अद्य) आज (अर्वाञ्चः) हमारे सन्मुख (भवत) हूजिये अर्थात् हम से विरुद्ध विमुख मत रहिये (भयमानः) डरता हुआ मैं (वः) तुम्हारे (हार्दि) मनोगत को (आ, व्ययेयम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं (नः) हम को (निजुरः) हिंसक (वृकस्य) चोर वा व्याघ्र के सम्बन्ध से (त्राध्वम्) बचाओ । हे (यजत्राः) विद्वानों का सत्कार करने वाले लोगो ! तुम (अवपदः) जिसमें गिर पड़ते उस (कर्त्तात्) कूप वा गढ़े से हमारी (त्राध्वम्) रक्षा करो ॥५१॥

भावार्थ—प्रजापुरुषों को राजपुरुषों से ऐसे प्रार्थना करनी चाहिये कि हे पूज्य राजपुरुष विद्वानो ! तुम सदैव हमारे अविरोधी कपटादिरहित और भय के निवारक होओ । चोर व्याघ्रादि और मार्ग शोधने से गढ़े आदि से हमारी रक्षा करो ॥५१॥

विश्व इत्यस्य लुश ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विश्वे॑ऽअ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ऽऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः ।
विश्वे॑ नो दे॒वाऽअव॒सा ग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ऽअ॒स्मे ॥५२॥

पदार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! (अद्य) आज जैसे (विश्वे) सब आप लोग (विश्वे) सब (मरुतः) मरणधर्मा मनुष्य और (विश्वे) सब (समिद्धाः) प्रदीप्त (अग्नयः) अग्नि (ऊती) रक्षण क्रिया से (नः) हमारे रक्षक (भवन्तु) होवें (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अवसा) रक्षा आदि के साथ (नः) हम को (आ, गमन्तु) प्राप्त हों वैसे (विश्वम्) सब (द्रविणम्) धन और (वाजः) अन्न (अस्मे) इस मनुष्य के लिये (अस्तु) प्राप्त होवे ॥५२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जैसा सुख अपने लिये चाहें वैसा ही औरों के लिये भी, इस जगत् में जो विद्वान् हों वे आप अधर्माचरण से पृथक् हो के औरों को भी वैसे करें ॥५२॥

विश्वे देवा इत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वे॑ देवाः शृणु॒तेमꣳ हवं॑ मे॒ ये ऽअ॒न्तरि॑क्षे॒ य ऽउप॒ द्यवि॒ ष्ठ ।
ये ऽअ॑ग्निजि॒ह्वाऽउ॒त वा॒ यज॑त्राऽआ॒सद्या॒स्मिन् ब॒र्हिषि॑ मादयध्वम् ॥५३

पदार्थ—हे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोगो ! तुम (ये , अन्तरिक्षे) आकाश में (ये) जो (द्यवि) प्रकाश में (ये) जो (अग्निजिह्वाः) जिह्वा के तुल्य जिनके अग्नि हैं वे (उत) और (वा) अथवा (यजत्राः) सङ्गति करने वाले पूजनीय पदार्थ हैं उनके जानने वाले (स्थ) हूजिये (मे) मेरे (इमम्) इस (हवम्) पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार को (उप, शृणुत) निकट से सुनो (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) सभा वा आसन पर (आसद्य) बैठ कर (मादयध्वम्) आनन्दित होओ ॥५३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जितने भूमि अन्तरिक्ष और प्रकाश में पदार्थ हैं उनको जान विद्वानों की सभा कर विद्यार्थियों की परीक्षा कर विद्या सुशिक्षा को बढ़ा और आप आनन्दित हो के दूसरों को निरन्तर आनन्दित करो ॥५३॥

देवेभ्य इत्यस्य वामदेव ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

दे॒वेभ्यो॒ हि प्र॑थ॒मं य॒ज्ञिये॑भ्योऽमृत॒त्वꣳ सु॒वसि॑ भा॒गमु॑त्त॒मम् ।
आदिद्दा॒मान॑ꣳ सवित॒र्व्यू॑र्णुषेऽनूची॒ना जी॑वि॒ता मानु॑षेभ्यः ॥५४॥

पदार्थ—हे (सवितः) समस्त जगत् के उत्पादक जगदीश्वर ! (हि) जिससे आप (यज्ञियेभ्यः) यज्ञ-सिद्धि करनेहारे (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (उत्तमम्) श्रेष्ठ (प्रथमम्) मुख्य (अमृतत्वम्) मोक्षभाव (भागम्) सेवने योग्य सुख को (सुवसि) प्रेरित करते हो (आत्, इत्) इसके अनन्तर ही (दामानम्) सुख देने वाले प्रकाश और (अनूचीना) जानने के साधन (जीविता) जीवन के हेतु कर्मों को (मानुषेभ्यः) मनुष्यों के लिये (वि, ऊर्णुषे) विस्तृत करते हो इसलिये उपासना के योग्य हो ॥५४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! परमेश्वर ही के योग और विद्वानों के सङ्ग से सर्वोत्तम सुख वाले मोक्ष को प्राप्त होओ ॥५४॥

प्रवायुमित्यस्य ऋजिश्व ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र वा॒युमच्छा॑ बृह॒ती म॑नी॒षा बृ॒हद्र॑यिं वि॒श्ववा॑रꣳ रथ॒प्राम् ।
द्यु॒तद्या॑मा नि॒युतः॒ पत्य॑मानः क॒विः क॒विमि॑यक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यो) अच्छे प्रकार यज्ञ करनेहारे विद्वन् ! (नियुतः) निश्चयात्मक पुरुषों को (पत्यमानः) प्राप्त होते हुए (कविः) बुद्धिमान् विद्वान् आप जो तुम्हारी (बृहती) बड़ी तेज (मनीषा) बुद्धि है उससे (बृहद्रयिम्) बहुत धनों के निमित्त (विश्ववारम्) सब को ग्रहण करने हारे (रथप्राम्) विमानादि यानों को व्याप्त होने वाले (द्युतद्यामा) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले (वायुम्) प्राणादिस्वरूप वायु और (कविम्) बुद्धिमान् जन का (अच्छ, प्र, इयक्षसि) अच्छे प्रकार सङ्ग करना चाहते हो इससे सब के सत्कार के योग्य हो ॥५५॥

भावार्थ—जो विद्वान् को प्राप्त हो पूर्ण विद्या बुद्धि और समग्र धन को प्राप्त होवें वे सत्कार के योग्य हों ॥५५॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्र॑वायूऽइ॒मे सु॒ताऽउप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम् ।
इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि ॥५६॥

पदार्थ—हे (इन्द्रवायू) बिजुली और पवन की विद्या को जानने वाले विद्वानो ! तुम्हारे लिये (इमे) ये (सुताः) सिद्ध किये हुए पदार्थ हैं (हि) जिस कारण (इन्दवः) सोमादि ओषधियों के रस (वाम्) तुम को (उशन्ति) चाहते अर्थात् वे तुम्हारे योग्य हैं इससे (प्रयोभिः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों के सहित उनको (उप, आ, गतम्) निकट से अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥५६॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जिस कारण तुम लोग हमारे ऊपर कृपा करते हो इसलिये सब लोग तुमको मिलना चाहते हैं ॥५६॥

मित्रमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मि॒त्रꣳ हु॑वे पू॒तद॑क्षं॒ वरु॑णं च रि॒शाद॑सम् ।
धियं॑ घृ॒ताचीं॒ꣳ साध॑न्ता ॥५७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (धियम्) बुद्धि तथा (घृताचीम्) शीतलतारूप जल को प्राप्त होने वाली रात्रि को (साधन्ता) सिद्ध करते हुए (पूतदक्षम्) शुद्ध बलयुक्त (मित्रम्) मित्र और (रिशादसम्) दुष्ट हिंसक मारने हारे (वरुणम्) धर्मात्मा जन को (हुवे) स्वीकार करता हूँ वैसे इनको तुम लोग भी स्वीकार करो ॥५७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्राण और उदान बुद्धि और रात्रि को सिद्ध करते वैसे विद्वान् लोग सब उत्तम साधनों को ग्रहण कर कार्यों को सिद्ध करें ॥५७॥

दस्रेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अश्विनौ देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

दस्रा॑ यु॒वाक॑वः सु॒ता नास॑त्या वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
आ या॑तꣳ रुद्रवर्त्तनी । तं प्र॒त्नथा॑ । अ॒यं वे॒नः ॥५८॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) असत्य आचरण से पृथक् (**रुद्रवर्त्तनी**) दुष्टरोदक न्यायाधीश के तुल्य आचरण वाले (**दस्रा**) दुष्टों के निवारक विद्वानो ! जो (**वृक्तबर्हिषः**) यज्ञ से पृथक् अर्थात् भोजनार्थ (**युवाकवः**) तुम को चाहने वाले (**सुताः**) सिद्ध किये पदार्थ हैं उनको तुम लोग (**आ, यातम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥५८॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि जो विद्याओं की कामना करते हैं उनको विद्या देवें ॥५८॥

विदद्यदीत्यस्य कुशिक ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब स्त्री क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः ।

अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥५९॥

पदार्थ—(**यदि**) जो (**सरमा**) पति के अनुकूल रमण करने हारी (**प्रथमा**) प्रख्यात (**सुपदी**) सुन्दर पगों वाली (**अक्षराणाम्**) अकारादि वर्णों के (**रवम्**) बोलने को जानती हुई (**रुग्णम्**) रोगी प्राणी को (**विदत्**) जाने (**अग्रम्**) आगे (**नयत्**) पहुँचाने वाला (**सध्र्यक्**) साथ प्राप्त होता (**पूर्व्यम्**) प्रथम के लोगों ने प्राप्त किये (**महि**) महागुणयुक्त (**अद्रेः**) मेघ से उत्पन्न हुए (**पाथः**) अन्न को (**कः**) करे अर्थात् भोजनार्थ सिद्ध करे और पति को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**गात्**) प्राप्त होवे तो वह सुख को पावे ॥५९॥

भावार्थ—जो स्त्री वैद्य के तुल्य सब की हितकारिणी ओषधि के तुल्य अन्न बनाने को समर्थ हो और यथायोग्य बोलना भी जाने वह उत्तम सुख को निरन्तर पावे ॥५९॥

नहीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । वैश्वानरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब मनुष्य कैसे मोक्ष को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुरऽएतारमग्नेः ।

एमेनमवृधन्नमृताऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षेत्रजित्याय देवाः ॥६०॥

पदार्थ—जो (**अमृताः**) आत्मस्वरूप से मरणधर्म रहित (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अमर्त्यम्**) नित्य व्यापक रूप (**वैश्वानरम्**) सब के चलानेवाले (**एनम्**) इस अग्नि को (**क्षेत्रजित्याय**) जिस क्रिया से खेतों को जोतते उस भूमि राज्य के होने के लिये (**आ, अवृधन्**) अच्छे प्रकार बढ़ाते हैं वे (**ईम्**) सब ओर से (**अस्मात्**) इस (**वैश्वानरात्**) सब मनुष्यों के हितकारी (**अग्नेः**) अग्नि से (**पुरएतारम्**) पहिले पहुँचाने वाले (**अन्यम्**) भिन्न किसी को (**स्पशम्**) दूत (**नहि**) नहीं (**अविदन्**) जानते हैं ॥६०॥

भावार्थ—जो उत्पत्ति नाश रहित मनुष्य देहधारी जीव विजय के लिये उत्पत्ति नाश रहित जगत् के स्वामी परमात्मा की उपासना कर उससे भिन्न की उसके तुल्य उपासना नहीं करते हैं वे बन्ध को छोड़ मोक्ष को प्राप्त होवें ॥६०॥

उग्रेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभा सेनापति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उग्रा विघनिना मृधऽइन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडातऽईदृशे ॥६१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम जिन (**उग्रा**) अधिक बली तेजस्वी स्वभाव वाले (**मृधः**) और हिंसकों को (**विघनिना**) विशेष कर मारने हारे (**इन्द्राग्नी**) सभा सेनापति को (**हवामहे**) बुलाते हैं (**ता**) वे (**ईदृशे**) इस प्रकार के संग्रामादि व्यवहार में (**नः**) हम लोगों को (**मृडातः**) सुखी करते हैं ॥६१॥

भावार्थ—जो सभा और सेना के अध्यापक पक्षपात को छोड़ बल को बढ़ा के शत्रुओं को जीतते हैं वे सब को सुख देनेवाले होते हैं ॥६१॥

उपास्मायित्यस्य देवल ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पढ़ने पढ़ाने वाले कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ२ऽइयक्षते ॥६२॥

पदार्थ—हे (**नरः**) नायक अध्यापकादि लोगो ! तुम लोग (**देवान्**) विद्वानों को (**अभि**) सब ओर से (**इयक्षते**) सत्कार करना चाहते हुए (**अस्मै**) इस (**पवमानाय**) पवित्र करने हारे (**इन्दवे**) कोमल विद्यार्थी के लिये (**उपगायत**) निकटस्थ हो के शास्त्रों को पढ़ाया करो ॥६२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जिज्ञासु लोग अध्यापकों को सन्तुष्ट करना चाहते हैं वैसे अध्यापक लोग भी उनको पढ़ाने की इच्छा रक्खा करें ॥६२॥

ये त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।

ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ॥६३॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) उत्तम पूजित धन वाले सेनापति ! (**ये**) जो (**विप्राः**) बुद्धिमान् लोग (**अहिहत्ये**) जहाँ मेघ का काटना और (**गविष्टौ**) किरणों की सङ्गति हो उस संग्राम में जैसे किरणें सूर्य के तेज को वैसे (**त्वा**) आप को (**अवर्धन्**) उत्साहित करें । हे (**हरिवः**) प्रशंसित किरणों के तुल्य चिलकते घोड़ों वाले शूरवीर जन ! (**ये**) जो लोग (**शाम्बरे**) मेघ सूर्य के संग्राम में बिजुली के तुल्य (**त्वा**) आपको बढ़ावें (**ये**) जो (**नूनम्**) निश्चय कर आपको (**अनु,-मदन्ति**) अनुकूलता से आनन्दित होते हैं और (**ये**) जो आप की रक्षा करते हैं । हे (**इन्द्र**) उत्तम ऐश्वर्य वाले जन ! (**मरुद्भिः**) जैसे वायु के (**सगणः**) गण के साथ सूर्य रस को ग्रहण करे वैसे मनुष्यों के साथ (**सोमम्**) श्रेष्ठ ओषधि रस को (**पिब**) पीजिये ॥६३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मेघ और सूर्य के संग्राम में सूर्य का ही विजय होता है वैसे मूर्ख और विद्वानों के संग्रामों में विद्वानों का ही विजय होता है ॥६३॥

जनिष्ठा इत्यस्य गौरीवीति ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जनिष्ठाऽउग्रः सहसे तुराय मन्द्रऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।

अवर्द्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥६४॥

पदार्थ—हे राजन् ! (**धनिष्ठा**) अत्यन्त धनवती (**माता**) माता (**यत्**) जिस (**वीरम्**) शूरतादि गुणयुक्त आप पुत्र को (**दधनत्**) पुष्ट करती रही और (**चित्**) जैसे (**इन्द्रम्**) सूर्य्य को (**मरुतः**) वायु बढ़ावे वैसे सभासद् लोग जिस आप को (**अवर्धन्**) योग्यतादि से बढ़ावें सो आप (**अत्र**) इस राज्यपालन रूप व्यवहार में (**सहसे**) बल और (**तुराय**) शीघ्रता के लिये (**उग्रः**) तेजस्वि स्वभाव वाले (**मन्द्रः**) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त आनन्ददाता (**ओजिष्ठः**) अतिशय पराक्रमी और (**बहुलाभिमानः**) अनेक प्रकार के पदार्थों के अभिमान वाले हुए सुख को (**जनिष्ठाः**) उत्पन्न कीजिये ॥६४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो स्वयं ब्रह्मचर्य से शरीरात्मबल युक्त विद्वान् हुआ दुष्टों के प्रति कठिन स्वभाववाला श्रेष्ठ के विषय भिन्न स्वभाव वाला होता हुआ बहुत उत्तम सभ्यों से युक्त धर्मात्मा हुआ न्याय और विनय से राज्य की रक्षा करे वह सब ओर से बढ़े ॥६४॥

आ तू न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आ तू नऽइन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि ।

महान्महीभिरूतिभिः ॥ ६५ ॥

पदार्थ—हे (**वृत्रहन्**) शत्रुओं के विनाशक (**इन्द्रः**) उत्तम ऐश्वर्य वाले राजन् ! आप (**अस्माकम्**) हम लोगों की (**अर्द्धम्**) वृद्धि उन्नति को (**आ, गहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और (**महान्**) अत्यन्त पूजनीय हुए (**महीभिः**) बड़ी (**ऊतिभिः**) रक्षादि क्रियाओं से (**नः**) हम को (**तु, आ, वधनत्**) शीघ्र अच्छे प्रकार पुष्ट कीजिये ॥६५॥

भावार्थ—इस मन्त्र से पूर्व मन्त्र से (**दधनत्**) इस पद की अनुवृत्ति आती है । हे राजन् ! जैसे आप हमारे रक्षक और वर्द्धक हैं वैसे हम लोग भी आप को बढ़ावें, सब हम लोग प्रीति से मिल के दुष्टों को निवृत्त करके श्रेष्ठों को धनाढ्य करें ॥६५॥

त्वमिन्द्रेत्यस्य नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वाऽअसि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ॥६६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) उत्तम ऐश्वर्य देनेवाले राजन् ! जिस कारण (**त्वम्**) आप (**प्रतूर्तिषु**) जिसमें मारना होता उन संग्रामों में (**विश्वाः**) शत्रुओं की सब (**स्पृधः**) ईर्ष्यायुक्त सेनाओं को (**अभि, असि**) तिरस्कार करते हो तथा (**अशस्तिहा**) जिनकी कोई प्रशंसा न करे उन दुष्टों के हन्ता (**जनिता**) सुखों के उत्पन्न करने हारे (**विश्वतूः**) सब शत्रुओं को मारने वाले हुए (**त्वम्**) आप विजय वाले (**असि**) हो इससे (**तरुष्यतः**) हनन करनेवाले शत्रुओं को (**तूर्य्य**) मारिये ॥६६॥

भावार्थ—जो राजपुरुष अधर्मयुक्त कर्मों के निवर्त्तक सुखों के उत्पादक और युद्ध विद्या में कुशल हों वे शत्रुओं को जीतने को समर्थ हों ॥६६॥

अनु ते शुष्ममित्यस्य नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) शत्रुओं के नाशक राजन् ! जिस (**ते**) आप के (**तुरयन्तम्**) शत्रुओं को मारते हुए (**शुष्मम्**) शत्रुओं के सुखाने हारे बल को (**शिशुम्**) बालक को (**मातरा**) माता पिता (**न**) के समान (**क्षोणी**) अपनी पराई भूमि (**अनु, ईयतुः**) अनुकूल प्राप्त होती उस (**ते**) आपके (**मन्यवे**) क्रोध से (**विश्वाः, स्पृधः**) सब शत्रुओं की ईर्ष्या करनेहारी सेना (**श्नथयन्त**) नष्ट भ्रष्ट मारी जाती हैं (**यत्**) जिस (**वृत्रम्**) न्याय से निरोधक शत्रु को आप (**तूर्वसि**) मारते हो वह पराजित हो जाता है ॥६७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिन राजपुरुषों की हृष्ट पुष्ट युद्ध की प्रतिज्ञा करती हुई सेना हो वे सर्वत्र विजय को प्राप्त होवें ॥६७॥

यज्ञ इत्यस्य कुत्स ऋषिः । आदित्या देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।

आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ ६८

पदार्थ—हे (आदित्यासः) सूर्यवत्तेजस्वी पूर्णविद्या वाले लोगो ! जैसे (देवानाम्) विद्वानों का (यज्ञः) संगति के योग्य संग्रामादि व्यवहार (सुम्नम्) सुख करने को (प्रत्येति) उलटा प्राप्त होता है वैसे (मृडयन्तः) सुखी करने वाले (भवत) होवो । जैसे (वः) तुम्हारी (वरिवोवित्तरा) अत्यन्त सेवा को प्राप्त (अर्वाची) हमारे अनुकूल (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (आ, ववृत्यात्) अच्छे प्रकार वर्त्ते (अंहोः) अपराधी की (चित्) भी वैसे सुख करने वाली हमारे अनुकूल बुद्धि (असत्) होवे ॥६८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस देश में पूर्ण विद्या वाले राजकर्मचारी हों वहां सब की एकमति होकर अत्यन्त सुख बढ़े ॥६८॥

अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।

हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳसऽईशत ॥६९॥

पदार्थ—हे (सवितः) अनेक पदार्थों के उत्पादक तेजस्वि विद्वन् राजन् ! (त्वम्) आप (अदब्धेभिः) अहिंसित (शिवेभिः) कल्याणकारी (पायुभिः) रक्षाओं से (अद्य) आज (नः) हमारे (गयम्) प्रशंसा के योग्य सन्तान, धन और घर की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये (हिरण्यजिह्वः) सब के हित में रमण करने योग्य वाणी वाले हुए आप (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये जिससे (अघशंसः) पाप की प्रशंसा करने वाला दुष्ट चोर हम पर (माकिः) न (ईशत) समर्थ होवे ॥६९॥

भावार्थ—प्रजाजनों को राजपुरुषों से ऐसा सम्बोधन करना चाहिये कि तुम लोग हमारे सन्तान, धन, घर और पदार्थों की रक्षा से नवीन नवीन ऐश्वर्य को प्राप्त करा के हम को पीड़ा देनेहारे दुष्टों से दूर रक्खो ॥६९॥

प्र वीरयेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।

वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥७०॥

पदार्थ—हे राज प्रजा जनो ! जो (वाम्) तुम दोनों के (मधुमन्तः) प्रशंसित ज्ञानयुक्त (सुतासः) विद्या और उत्तम शिक्षा से सिद्ध किये गये (शुचयः) पवित्र मनुष्य (अध्वर्युभिः) हिंसा और अन्याय से पृथक् रहने वालों के साथ (वीरया) वीर पुरुषों से युक्त सेना से शत्रुओं को (प्र, दद्रिरे) अच्छे प्रकार विदीर्ण करते हैं उनके साथ हे (वायो) वायु के सदृश वर्त्तमान बलिष्ठ राजन् ! आप (नियुतः) निरन्तर संयुक्त नियुक्त होने वाले वायु आदि गुणों को (वह) प्राप्त कीजिये । और (अच्छ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (मदाय) आनन्द के लिये (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (अन्धसः) अन्न के रस को (पिब) पीजिये ॥७०॥

भावार्थ—जो पवित्र आचरण करने वाले राजप्रजा के हितपी विज्ञानयुक्त पुरुष वीरों की सेना से शत्रुओं को विदीर्ण करते हैं उनको प्राप्त हो के राजा आनन्दित होवे । राजा जैसा अपने लिये आनन्द चाहे वैसा राजप्रजाजनों के लिये भी चाहे ॥७०॥

गाव इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पृथिवी सूर्य कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गावऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥७१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (रप्सुदा) सुन्दर रूप देने वाले (उभा) दोनों (कर्णा) कार्यसाधक (हिरण्यया) ज्योतिःस्वरूप (मही) महत्परिमाण वाले सूर्य पृथिवी (यज्ञस्य) सङ्गत संसार के (अवतम्) कूप के तुल्य रक्षा करने वाले होते और (गावः) किरण भी रक्षक होवें । वैसे इनकी तुम लोग (उप, अवत) रक्षा करो ॥७१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे किसान लोग कूप के जल से खेतों और वाटिकाओं की सम्यक् रक्षा कर धनवान् होते वैसे पृथिवी सूर्य सब के धनकारक होते हैं ॥७१॥

काव्ययोरित्यस्य दक्ष ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अध्यापक और उपदेशक के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्थऽआ ॥७२॥

पदार्थ—हे (रिशादसा) अविद्यादि दोषों के नाशक अध्यापक उपदेशक लोगो ! (काव्ययोः) कवि विद्वानों ने बनाये व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादक ग्रन्थों के (आजानेषु) जिनसे विद्वान् होते उन पठनपाठनादि व्यवहारों में (क्रत्वा) बुद्धि से वा कर्म करके (दक्षस्य) कुशल पुरुष के (सधस्थे) जिस में साथ मिलकर बैठें उस (दुरोणे) घर में तुम लोग (आ) आया करो ॥७२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अध्यापक तथा उपदेशक लोग राजा प्रजा जनों को बुद्धिमान् बलयुक्त नीरोग आपस में प्रीति वाले धर्मात्मा और पुरुषार्थी करें वे पिता के तुल्य सत्कार करने योग्य हैं ॥७२॥

दैव्यावित्यस्य दक्ष ऋषिः । अध्वर्यू देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब यान बनाने का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा ।

मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे । तं प्रत्नथा । अयं वेनः ॥७३॥

पदार्थ—हे (दैव्यौ) विद्वानों में कुशल प्रवीण (अध्वर्यू) अपने आत्मा को अहिंसा धर्म चाहते हुए विद्वानो ! तुम दोनों (सूर्यत्वचा) सूर्य के तुल्य कान्ति वाले (रथेन) आनन्द के हेतु यान से (आ, गतम्) आया करो और आकर (मध्वा) मधुर भाषण से (यज्ञम्) चलने रूप व्यवहार को (सम्, अञ्जाथे) सम्यक् प्रकट किया करो ॥७३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि पृथिवी जल और अन्तरिक्ष में चलने वाले उत्तम शोभायमान सूर्य के तुल्य प्रकाशित यानों को बनावें और उनसे अभीष्ट कामनाओं को सिद्ध करें ॥७३॥

तिरश्चीन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।

रेतोधाऽआसन्महिमानऽआसन्त्स्वधाऽअवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (एषाम्) इन विद्युत् और सूर्य आदि की (तिरश्चीनः) तिरछे गमन वाली (विततः) विस्तारयुक्त (रश्मिः) किरण वा दीप्ति (अधः) नीचे (स्वित्) भी (आसीत्) है (उपरि) ऊपर (स्वित्) भी (आसीत्) है तथा (अवस्तात्) इधर से और (परस्तात्) उधर से (प्रयतिः) प्रयत्न वाली है उसके विज्ञान से (रेतोधाः) पराक्रम को धारण करने वाले (आसन्) हों तथा (महिमानः) पूज्य और (स्वधा) अपने धनादि पदार्थ के धारक होते हुए आप लोग उपकारी (आसन्) हूजिये ॥७४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस बिजुली की दीप्ति सब के भीतर रहती हुई सब दिशाओं में व्याप्त है वही सब को धारण करती है ऐसा तुम लोग जानो ॥७४॥

आ रोदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

आ रोदसीऽअपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसोऽअधारयन् ।

सोऽअध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो विद्युत् रूप अग्नि (रोदसी) सूर्य पृथिवी और (महत्) महान् (जातम्) प्रसिद्ध (स्वः) अन्तरिक्ष को (आ, अपृणत्) अच्छे प्रकार व्याप्त होता (एनम्) इस अग्नि को (अपसः) कर्म (आ, अधारयन्) अच्छे प्रकार धारण करते तथा जो (कविः) शब्द होने का हेतु अग्नि (अध्वराय) अहिंसा नामक शिल्पविद्या रूप यज्ञ के तथा (वाजसातये) वेग के सम्यक् सेवन के लिये ((अत्यः) मार्ग को व्याप्त होने वाले घोड़े के (न) समान विद्वानों ने (परि, नीयते) प्राप्त किया है (सः) वह (चनोहितः) पृथिवी आदि अन्न के लिये हितकारी है ऐसा तुम लोग जानो ॥७५॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अनेक प्रकार के विज्ञान और कर्मों से बिजुली रूप अग्नि की विद्या को प्राप्त हो के भूमि आदि में व्याप्त विभागकर्त्ता साधन किया हुआ यान आदि को शीघ्र पहुँचाने वाले अग्नि को कार्यों में उपयुक्त करें ॥७५॥

उक्थेभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सत्कार के योग्य हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।

आङ्गूषैराविवासतः ॥७६॥

पदार्थ—(या) जो (मन्दाना) आनन्द देनेवाले (वृत्रहन्तमा) धर्म का निरोध करने हारे पापियों के नाशक सभा सेनापति के (चित्) समान (गिरा) वाणी (आङ्गूषैः) अच्छे घोष और (उक्थेभिः) प्रशंसा योग्य स्तुतियों के साधक वेद के भागरूप मन्त्रों से शिल्प विज्ञान का (आविवासतः) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं उन अध्यापक उपदेशकों की मनुष्यों को (आ) अच्छे प्रकार सेवा करनी चाहिये ॥७३॥

भावार्थ—जो मनुष्य सभा सेनाध्यक्ष के तुल्य विद्यादि कार्य्यों के साधक सुन्दर उपदेशों से सब को विद्वान् करते हुए प्रवृत्त हों वे ही सब को सत्कार करने योग्य हों ॥७६॥

उप न इत्यस्य सुहोत्रऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब माता पिता अपने सन्तानों के प्रति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।

सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ७७ ॥

पदार्थ—(ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) सन्तान (अमृतस्य) नाशरहित परमेश्वर के सम्बन्ध की वा नित्य वेद की (गिरः) वाणियों को (उप, शृण्वन्तु) अध्यापकादि के निकट सुनें वे (नः) हमारे लिये (सुमृडीकाः) उत्तम सुख करनेहारे (भवन्तु) होवें ॥७७॥

भावार्थ—जो माता पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य के साथ वेदविद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त कर शरीर और आत्मा के बल वाले करें तो उन सन्तानों के लिये अत्यन्त हितकारी हों ॥७७॥

ब्रह्माणीत्यस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रमरुतौ देवते । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्मऽइयर्त्ति प्रभृतो मेऽअद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्य्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नोऽअच्छ ॥७८॥

पदार्थ—(सुतासः) विद्या और सुन्दर शिक्षा से युक्त ऐश्वर्य वाले (मतयः) बुद्धिमान् लोग (मे) मेरे लिये जिन (ब्रह्माणि) धनों की (प्रति, हर्यन्ति) प्रतीति से कामना करते और (इमा) इन (उक्था) प्रशंसा के योग्य वेदवचनों की (आ, शासते) अभिलाषा करते हैं और (शुष्मः) बलकारी (प्रभृतः) अच्छे प्रकार हवनादि से पुष्ट किया (अद्रिः) मेघ (मे) मेरे लिये जिस (शम्) सुख को (इयर्त्ति) पहुँचाता (ता) उनको (नः) हमारे लिये (हरी) हरणशील अध्यापक और अध्येता (अच्छ, वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥७८॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जिस कर्म से विद्या और मेघ की उन्नति हो उसको किया करो । जो लोग तुम से विद्या और सुशिक्षा चाहते हैं उनको प्रीति से देओ और जो आप से अधिक विद्यावाले हों उनसे तुम विद्या ग्रहण करो ॥७८॥

अनुत्तमित्यस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ऽअस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥

पदार्थ—हे (प्रवृद्ध) सब से श्रेष्ठ सर्वपूज्य (मघवन्) बहुत धनवाले ईश्वर जिस (ते) आपका (अनुत्तम्) अप्रेरित स्वरूप है (त्वावान्) आपके सदृश (देवता) पूज्य इष्टदेव (विदानः) विद्वान् (नु) निश्चय से कोई (न) नहीं है आप (जायमानः) उत्पन्न होने वाले (न) नहीं और (जातः) उत्पन्न हुए भी (न) नहीं हैं (यानि) जिन जगत् की उत्पत्ति आदि कर्मों को (करिष्या) करोगे तथा (कृणुहि) करते हो उनको कोई भी (नकिः) नहीं (आ, नशते) स्मरणशक्ति से व्याप्त होता, सो आप सब के उपास्य देव हो ॥७९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर समस्त ऐश्वर्य वाला किसी के सदृश नहीं, अनन्त विद्यायुक्त, न उत्पन्न होता न हुआ न होगा और सब से बड़ा है उसी की तुम लोग निरन्तर उपासना करो ॥७९॥

तदित्यस्य बृहद्दिव ऋषिः । महेन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥८०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यतः) जिससे (उग्रः) तेज स्वभाववाला (त्वेषनृम्णः) सुन्दर प्रकाशित धन से युक्त वीर पुरुष (जज्ञे) उत्पन्न हुआ, जो (जज्ञानः) उत्पन्न हुआ (शत्रून्) शत्रुओं को (सद्यः) शीघ्र (निरिणाति) निरन्तर मारता है, (विश्वे) सब (ऊमाः) रक्षादि कर्म करनेवाले लोग (यम्) जिसके (अनु) पीछे (मदन्ति) आनन्द करते हैं (तत्, इत्) वही ब्रह्म परमात्मा (भुवनेषु) लोकलोकान्तरों से (ज्येष्ठम्) सब में बड़ा मान्य और श्रेष्ठ (आस) है, ऐसा तुम जानो ॥८०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी उपासना से शूरवीरता को प्राप्त हो शत्रुओं को मार सकते हैं, जिसकी उपासना कर विद्वान् लोग आनन्दित होके सबको आनन्दित करते हैं उसी सबसे उत्कृष्ट सब के उपास्य परमेश्वर का सब लोग निश्चय करें ॥ ८० ॥

इमा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इमाऽउ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥८१॥

पदार्थ—हे (पुरूवसो) बहुत पदार्थों में वास करनेहारे परमात्मन् ! (याः) जो (इमाः) ये (मम) मेरी (गिरः) वाणी आपको (उ) निश्चय कर (वर्द्धन्तु) बढ़ावें उनको प्राप्त होके (पावकवर्णाः) अग्नि के तुल्य वर्णवाले तेजस्वी (शुचयः) पवित्र हुए (विपश्चितः) विद्वान् लोग (स्तोमैः) पदार्थविद्याओं की प्रशंसाओं से (अभि, अनूषत) सब ओर से प्रशंसा करें ॥८१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, उस ईश्वर की सत्ता के प्रतिपादन तथा अभ्यास और सत्यभाषण से अपनी वाणियों को शुद्ध कर विद्वान् होके सब पदार्थविद्याओं को प्राप्त होवें ॥८१॥

यस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यस्यायं विश्वऽआर्यो दासः शेवधिपाऽअरिः ।
तिरश्चिदर्य्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽअज्यते रयिः ॥८२॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यस्य) जिस आपका (अयम्) यह (विश्वः) सब (आर्य्यः) धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला पुरुष (दासः) सेवकवत् आज्ञाकारी (शेवधिपाः) धरोहर धन का रक्षक अर्थात् धर्मादि कार्य वा राजकर देने में व्यय करने हारा जन (अरिः) और शत्रु (पवीरवि) धनादि की रक्षा के लिये शस्त्र को प्राप्त होनेवाले और (रुशमे) हिंसक व्यवहार वा (अर्य्ये) धनस्वामी वैश्य आदि के निमित्त (तिरः) छिपनेवाला (चित्) भी (तुभ्य) आपके लिये (इत्) निश्चय से है (सः) वह आप (रयिः) धन के समान (अज्यते) प्राप्त होते हैं ॥८२॥

भावार्थ—जिस राजा के सब आर्य राज्यरक्षक और आज्ञापालक हैं जो धनादि कर का प्रदाता शत्रु उससे भी जिन आपने धनादि कर ग्रहण किया वे आप सब से उत्तम शोभा वाले हों ॥८२॥

अयमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत्सतोबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽइव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥८३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह सभापति राजा (ऋषिभिः) वेदार्थवेत्ता राजर्षियों के साथ (सहस्रम्) असंख्य प्रकार के ज्ञान को प्राप्त (सहस्कृतः) बल से संयुक्त (सत्यः) और श्रेष्ठ व्यवहारों वा विद्वानों में उत्तम चतुर है (अस्य) इसका (महिमा) महत्त्व (समुद्रइव) समुद्र वा अन्तरिक्ष के तुल्य (पप्रथे) प्रसिद्ध होता है तो (सः) वह पूर्वोक्त मैं प्रजाजन इस राजा के (यज्ञेषु) संगत राजकार्यों और (विप्रराज्ये) बुद्धिमानों के राज्य में (शवः) बल की (गृणे) स्तुति करता हूँ ॥८३॥

भावार्थ—जो राजादि राजपुरुष विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करनेवाले साहसी सत्य गुण, कर्म, स्वभावों से युक्त बुद्धिमान् के राज्य में अधिकार को पाये हुए संगत न्याय और विनय से युक्त कामों को करें उनकी आकाश के सदृश कीर्ति विस्तार को प्राप्त होती है ॥८३॥

अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳसऽईशत ॥८४॥

पदार्थ—हे (सवितः) समग्र ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! (त्वम्) आप (अद्य) आज (अदब्धेभिः) न बिगाड़ने योग्य (शिवेभिः) मङ्गलकारी (पायुभिः) अनेक प्रकार के रक्षा के उपायों से (नः) हमारी (गयम्) प्रजा की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये (हिरण्यजिह्वः) सब के हित में रमण करने योग्य वाणी से युक्त हुए (नव्यसे) अतिशय कर नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य के अर्थ (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये जिससे (अघशंसः) दुष्ट चोर हम पर (माकिः) न (ईशत) समर्थ वा शासक हों ॥८४॥

भावार्थ—राजाओं की योग्यता यह है कि सब प्रजा के सन्तानों को ब्रह्मचर्य, विद्यादान और स्वयंवर विवाह करा के और डाकुओं से रक्षा करके उन्नति करें ॥ ८४ ॥

आ नो इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयꣳ शुक्रो अयामि ते ॥८५॥

पदार्थ—हे (वायो) वायु के तुल्य वर्त्तमान राजन् ! जैसे मैं (अन्तः) अन्तःकरण में (पवित्रः) शुद्धात्मा (उपरि) उन्नति में (श्रीणानः) आश्रय करता हुआ (अयम्) यह (शुक्रः) शीघ्रकारी पराक्रमी हुआ (सुमन्मभिः) सुन्दर विज्ञानों से (ते) आप के (दिविस्पृशम्) विद्याप्रकाशयुक्त (यज्ञम्) सङ्गत व्यवहार को (अयामि) प्राप्त होता हूँ वैसे आप (नः) हमारे विद्याप्रकाशयुक्त उत्तम व्यवहार को (आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥८५॥

भावार्थ—मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वर्त्तमान वर्त्ताव से राजा प्रजाओं में चेष्टा करता है वैसे ही भाव से प्रजा राजा के विषय में वर्त्ते । ऐसे दोनों मिल के सब के न्याय के व्यवहार को पूर्ण करें ॥८५॥

इन्द्रवायू इत्यस्य तापस ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्वऽइज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमनाऽअसत् ॥८६॥

पदार्थ—हम लोग जिन (सुसन्दृशा) सुन्दर प्रकार से सम्यक् देखने वाले (सुहवा) सुन्दर बुलाने योग्य (इन्द्रवायू) राजप्रजाजनों को (इह) इस जगत् में (हवामहे) स्वीकार करते हैं (यथा) जैसे (सङ्गमे) संग्राम वा समागम में (नः) हमारे (सर्व, इत्) सभी (जनः) मनुष्य (अनमीवः) नीरोग (सुमनाः) प्रसन्न चित्त वाले (असत्) होवें, वैसे किया करें ॥८६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वैसे ही राजप्रजा-पुरुष प्रयत्न करें जैसे सब मनुष्य आदि प्राणी नीरोग प्रसन्न मन वाले होकर पुरुषार्थी हों ॥८६॥

ऋधगित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टयऽआचक्रे हव्यदातये ॥८७॥

पदार्थ—(यः) जो (देवतातये) विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिये (ऋधक्) समृद्धिमान् (मर्त्यः) मनुष्य (अभिष्टये) अभीष्ट सुख की प्राप्ति के अर्थ तथा (हव्यदातये) ग्रहण करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति के लिये (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के तुल्य राजप्रजाजनों का (नूनम्) निश्चित (आचक्रे) सेवन करता (सः) वह जन (इत्था) इस उक्त हेतु से (शशमे) शान्त उपद्रवरहित होता है ॥८७॥

भावार्थ—जो शम दम आदि गुणों से युक्त राजपुरुष और प्रजाजन इष्ट सुख की सिद्धि के लिये प्रयत्न करें वे अवश्य समृद्धिमान् होवें ॥८७॥

आ यातमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥८८॥

पदार्थ—हे (वृषणा) पराक्रम वाले (जेन्यावसू) जयशील जनों को बसाने वाले वा जीतने योग्य अथवा जीता है धन जिन्होंने ऐसे (अश्विना) विद्यादि शुभ गुणों में व्याप्त राजप्रजाजन तुम दोनों सुख को (आ, यातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ प्रजाओं को (उप, भूषतम्) सुशोभित करो (मध्वः) वैद्यकशास्त्र की रीति से सिद्ध किये मधुर रस को (पिबतम्) पीओ (पयः) जल को (दुग्धम्) पूर्ण करो अर्थात् कोई जल बिना दुःखी न रहे (नः) हम को (मा) मत (मर्धिष्टम्) मारो और धर्म से विजय को (आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥८८॥

भावार्थ—जो राजप्रजाजन सब को विद्या और उत्तम शिक्षा से सुशोभित करें सर्वत्र नहर आदि के द्वारा जल पहुँचावें श्रेष्ठों को न मार के दुष्टों को मारें वे जीतने वाले हुए अतोल लक्ष्मी को पाकर निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥८८॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (नः) हम को (ब्रह्मणः, पतिः) धन वा वेद का रक्षक अधिष्ठाता विद्वान् (प्र, एतु) प्राप्त होवे (सूनृता) सत्य लक्षणों से उज्ज्वल (देवी) शुभ गुणों से प्रकाशमान वाणी (प्र, एतु) प्राप्त हो (नर्यम्) मनुष्यों में उत्तम (पङ्क्तिराधसम्) समूह की सिद्धि करने हारे (यज्ञम्) सङ्गत धर्मयुक्त व्यवहारकर्त्ता (वीरम्) शूरवीर पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (अच्छ, नयन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त करें वैसे हम को प्राप्त होओ ॥८९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग विद्वानों, सत्य वाणी और सर्वोपकारी वीर पुरुषों को प्राप्त हों वे सम्यक् सुख की उन्नति करें ॥८९॥

चन्द्रमा इत्यस्य त्रित ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

चन्द्रमाऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ॥९०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (सुपर्णः) सुन्दर चालों से युक्त (चन्द्रमाः) शीतकारी चन्द्रमा (कनिक्रदत्) शीघ्र शब्द करते हींसते हुए (हरिः) घोड़ों के तुल्य (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (अप्सु) अन्तरिक्ष के (अन्तः) बीच (आ, धावते) अच्छे प्रकार शीघ्र चलता है और (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहने योग्य (बहुलम्) बहुत (पिशङ्गम्) सुवर्णादि के तुल्य वर्णयुक्त (रयिम्) शोभा कान्ति को (एति) प्राप्त होता है वैसे पुरुषार्थी हुए वेग से लक्ष्मी को प्राप्त होओ ॥९०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से प्रकाशित चन्द्र आदि लोक अन्तरिक्ष में जाते आते हैं जैसे उत्तम घोड़ा ऊंचा शब्द करता हुआ शीघ्र भागता है वैसे हुए तुम लोग अत्युत्तम अपूर्व शोभा को प्राप्त होके सब को सुखी करो ॥९०॥

देवन्देवमित्यस्य मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराट् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर राजधर्म विषय को कहा है—

देवं देवं वोऽवसे देवं देवमभिष्टये ।
देवं देवꣳ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥९१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (देव्या) प्रकाशमान (धिया) बुद्धि वा कर्म से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग जैसे (वः) तुम्हारे (अवसे) रक्षादि के लिये (देवन्देवम्) विद्वान् विद्वान् वा उत्तम उत्तम पदार्थ को (हुवेम) बुलावें वा ग्रहण करें तुम्हारे (अभिष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (देवन्देवम्) विद्वान् विद्वान् वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को तथा तुम्हारे (वाजसातये) वेगादि के सम्यक् सेवन के लिये (देवन्देवम्) विद्वान् विद्वान् वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को बुलावें वा स्वीकार करें वैसे तुम लोग भी ऐसा हमारे लिये करो ॥९१॥

भावार्थ—जो राजपुरुष सब प्राणियों के हित के लिये विद्वानों का सत्कार कर इन से सत्योपदेश का प्रचार करा सृष्टि के पदार्थों को जान और सब अभीष्ट सिद्ध कर संग्रामों को जीतते हैं वे उत्तम कीर्ति और बुद्धि को प्राप्त होते हैं ॥९१॥

दिवीत्यस्य मेध ऋषिः । वैश्वानरो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दिवि पृष्टोऽअरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहत् ।
क्ष्मया वृधानऽओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥९२॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (दिवि) आकाश में (पृष्टः) स्थित (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी (क्ष्मया) पृथिवी के साथ (वृधानः) बढ़ा हुआ (ओजसा) बल से (बृहत्) महान् (चनोहितः) ओषधियों को पकाने रूप सामर्थ्य से अन्नादि का धारक (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (तमः) रात्रिरूप अन्धकार को (बाधते) निवृत्त करता और (अरोचत) प्रकाशित होता है वैसे उत्तम गुणों से अविद्यारूप अन्धकार को निवृत्त करके तुम लोग भी प्रकाशित कीर्त्ति वाले हो ॥९२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग सूर्य अन्धकार को जैसे वैसे दुष्टाचार और अविद्यान्धकार को निवृत्त कर विद्या को प्रकाशित करें वे सूर्य के तुल्य सर्वत्र प्रकाशित प्रशंसा वाले हों ॥९२॥

इन्द्राग्नीत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब उषा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्राग्नीऽअपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिꣳशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९३॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) अध्यापक उपदेशक लोगो ! जो (इयम्) यह (अपात्) बिना पग की (पद्वतीभ्यः) बहुत पगों वाली प्रजाओं से (पूर्वा) प्रथम उत्पन्न होने वाली (आ, अगात्) आती है (शिरः) शिर को (हित्वी) छोड़ के अर्थात् बिना शिर की हुई प्राणियों की (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) शीघ्र बोलती अर्थात् कुक्कुट आदि के बोल से उषःकाल की प्रतीति होती इस से बोलना धर्म उषा में आरोपण किया जाता है (चरत्) विचरती है और (त्रिंशत्) तीस (पदा) प्राप्ति के साधन मुहूर्त्तों को (नि, अक्रमीत्) निरन्तर आक्रमण करती है वह उषा प्रातः की वेला तुम लोगों को जाननी चाहिये ॥९३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो वेग वाली पाद शिर आदि अवयवों से रहित प्राणियों के जगने से पहिले होने वाली जागने का हेतु प्राणियों के मुखों से शीघ्र बोलती हुई सी तीस मुहूर्त्त (साठ घड़ी) के अनन्तर प्रत्येक स्थान को आक्रमण करती है वह उषा निद्रा, आलस्य को छोड़ तुमको सुख के लिये सेवन करनी चाहिये ॥९३॥

देवास इत्यस्य मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कौन मनुष्य विद्वान् हो सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳ सरातयः ।
ते नोऽअद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥९४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सरातयः) बराबर दाता (समन्यवः) तुल्य क्रोध वाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोग (साकम्) साथ मिल के (अद्य) आज (नः) हमारे (मनवे) मनुष्य के लिये (स्म) प्रसिद्ध (वरिवोविदः) सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले (भवन्तु) हों (तु) और (ते) वे (अपरम्) भविष्यत् काल में (नः) हमारे (तुचे) पुत्रपौत्रादि सन्तान के अर्थ हमारे लिये सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले हों (ते, हि) वे ही तुम लोगों के लिये भी सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले हों ॥९४॥

भावार्थ—जो मनुष्य एक दूसरे के लिये सुख देवें जो मिल कर दुष्टों पर क्रोध करें वे पुत्र पौत्र वाले होके मनुष्यों के सुख की उन्नति के लिये समर्थ विद्वान् होने योग्य होते हैं ॥९४॥

अपाधमदित्यस्य नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य दुःखनिवारण में समर्थ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अपाधमद्भिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्तऽइन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥९५॥

पदार्थ—हे (बृहद्भानो) महान् किरणों के तुल्य प्रकाशित कीर्ति वाले (मरुद्गण) मनुष्यों वा पवनों के समूह से कार्य्यसाधक (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देने वाले सभापति राजा (देवाः) विद्वान् लोग (ते) आप की (सख्याय) मित्रता के अर्थ (येमिरे) संयम करते हैं और (द्युम्नी) बहुत प्रशंसारूप धन से युक्त (इन्द्रः) परमैश्वर्य वाले आप (अभि) (शस्तीः) सब से हिंसाओं को (अप, अधमत्) दूर धमकाते हो (अशस्तिहा) दुष्टों के नाशक (अभवत्) हूजिये ॥९५॥

भावार्थ—जो मनुष्य धार्मिक न्यायाधीशों वा धनाढ्यों से मित्रता करते हैं वे यशस्वी होकर सब दुःखनिवारण के लिये सूर्य के तुल्य होते हैं ॥९५॥

प्र व इत्यस्य नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र वऽइन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥९६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो! जो (शतक्रतुः) असंख्य प्रकार की बुद्धि वा कर्मों वाले सेनापति (शतपर्वणा) जिससे असंख्य जीवों का पालन हो ऐसे (वज्रेण) शस्त्र अस्त्र से (वृत्रहा) जैसे मेघहन्ता सूर्य (वृत्रम्) मेघ को वैसे (बृहते) बड़े (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये शत्रुओं को (हनति) मारता है और (वः) तुम्हारे लिये (ब्रह्म) धन वा अन्न को प्राप्त करता है उसका तुम लोग (प्र, अर्चत) सत्कार करो ॥९६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो लोग मेघ को सूर्य के तुल्य शत्रुओं को मार के तुम्हारे लिये ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं उनका सत्कार तुम करो। सदा कृतज्ञ हो के कृतघ्नता को छोड़ के प्राज्ञ हुए महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥९६॥

अस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। महेन्द्रो देवता। स्वराट् सतोबृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को परमात्मा की स्तुति करना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।
इमा उ त्वा। यस्यायम्। अयꣳ सहस्रम्। ऊर्ध्वऽऊ षु णः ॥९७

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य युक्त राजा (विष्णवि) व्यापक परमात्मा में (सुतस्य) उत्पन्न हुए (अस्य) इस संसार के (मदे) आनन्द के लिये (वृष्ण्यम्) पराक्रम (शवः) बल तथा जल को (अद्य) इस वर्त्तमान समय में (वावृधे) बढ़ाता है (अस्य) इस परमात्मा के (इत्) ही (महिमानम्) महिमा को (पूर्वथा) पूर्वज लोगों के तुल्य (आयवः) अपने कर्मफलों को प्राप्त होने वाले मनुष्य लोग (अनु, स्तुवन्ति) अनुकूल स्तुति करते हैं (तम्) उस की तुम लोग भी स्तुति करो ॥९७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो तुम लोग सर्वत्र व्यापक सब जगत् के उत्पादक सब के आधार और उत्तम ऐश्वर्य के प्रापक ईश्वर की आज्ञा और महिमा को जान के सब संसार का उपकार करो तो तुम को निरन्तर आनन्द प्राप्त होवे ॥९७॥

इस अध्याय में अग्नि, प्राण, उदान, दिन, रात, सूर्य, अग्नि, राजा, ऐश्वर्य, उत्तम यान, विद्वान्, लक्ष्मी, वैश्वानर, ईश्वर, इन्द्र, बुद्धि, वरुण, अश्वि, सूर्य, राजप्रजा, परीक्षक, इन्द्र और वायु आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

卐 अथ चतुस्त्रिंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

यज्जाग्रत इत्यस्य शिवसंकल्पऋषिः। मनो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब चौंतीसवें अध्याय का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में मन को वश करने का विषय कहते हैं—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर दूर (उत्, एति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) संकल्प विकल्पात्मक मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छा वाला (अस्तु) हो ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का सङ्ग करके अनेकविध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते हैं जो जागृतावस्था में विस्तृत व्यवहार वाला वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है। जो वेग वाले पदार्थों में अतिवेगवान् ज्ञान के साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्त्तक मन को वश में करते हैं वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मन को प्रवृत्त कर सकते हैं ॥१॥

येन कर्माणीत्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा विद्वन्! जब आपके सङ्ग से (येन) जिस (अपसः) सदा कर्म धर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि वा धर्मसंयुक्त व्यवहार वा योग यज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञानसम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं (यत्) जो (अपूर्वम्) सर्वोत्तम गुणकर्मस्वभाव वाला (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) हृदय में (यक्षम्) पूजनीय वा संगत एकीभूत हो रहा है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन विचार करता रूप मन (शिवसंकल्पम्) धर्मेष्ट (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना सुन्दर विचार विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें ॥२॥

यत् प्रज्ञानमित्यस्य शिवसंकल्प ऋषिः । मनो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वन् ! आपके जनाने से (यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेष कर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (उत) और भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्यस्वरूप (च) और लज्जादि कर्मों का हेतु (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तःकरण में आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशरूप (यस्मात्) जिससे (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मुझ जीवात्मा का (मनः) सब कर्मों का साधन रूप मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला (अस्तु) हो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप वृत्ति वाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने वाला प्राणियों के सब कर्मों का साधन अविनाशी मन है उसको न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो ॥३॥

येनेदमित्यस्य शिवसंकल्प ऋषिः । मनो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (येन) जिस (अमृतेन) नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्त्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) होने वाला (सर्वम्, इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) सब ओर से गृहीत होता अर्थात् जाना जाता है (येन) जिससे (सप्तहोता) सात मनुष्य होता वा पांच प्राण छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां ये सात लेने देने वाले जिसमें हों वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञानरूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) योगयुक्त चित्त (शिवसंकल्पम्) मोक्षरूप संकल्प वाला (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसाधनों से सिद्ध हुआ भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल का ज्ञाता सब सृष्टि का जानने वाला कर्म उपासना और ज्ञान का साधक है उसको सदा ही कल्याण में प्रिय करो ॥४॥

यस्मिन्नित्यस्य शिवसंकल्प ऋषिः । मनो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव, अराः) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरा लगे होते हैं वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (प्रतिष्ठिता) सब ओर से स्थित और (यस्मिन्) जिसमें अथर्ववेद स्थित है (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सब पदार्थसम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये, जिस मन के स्वस्थ रहने में वेदादि विद्याओं का आधार और जिस में सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो ॥५॥

सुषारथिरित्यस्य शिवसंकल्प ऋषिः । मनो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जो मन (सुषारथिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाड़ीवान् (अश्वानिव) लगाम से घोड़ों को सब ओर से चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियों को (नेनीयते) शीघ्र शीघ्र इधर उधर घुमाता है और (अभीशुभिः) जैसे रस्सियों से (वाजिनः) वेग वाले घोड़ों को सारथि वश में करता वैसे नियम में रखता (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्)हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्था रहित और (जविष्ठम्) अत्यन्त वेगवान् है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मङ्गलमय नियम में इष्ट (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य जिस पदार्थ में आसक्त है वही बल से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे प्राणियों को ले जाता और लगाम से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे वश में रखता, सब मूर्खजन जिस के अनुकूल वर्त्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है वह मन मनुष्यों को अपने वश में रखना चाहिये ॥६॥

पितुमित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अन्नं देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य शत्रुओं को जीत सकता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥७॥

पदार्थ—मैं (यस्य) जिसके (पितुम्) अन्न (महः) महान् (धर्माणम्) पक्षपात रहित न्यायाचरणरूप धर्म और (तविषीम्) बलयुक्त सेना की (नु) शीघ्र (स्तोषम्) स्तुति करता हूं वह राजपुरुष (त्रितः) तीनों काल में सूर्य जैसे (ओजसा) जल के साथ वर्त्तमान (विपर्वम्) जिसकी बादल रूप गांठ भिन्न भिन्न हों उस (वृत्रम्) मेघ को (वि, अर्दयत्) विशेष कर नष्ट करता है वैसे शत्रुओं के जीतने को समर्थ होता है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिसने सत्य-धर्म, बलवती सेना और पुष्कल अन्नादि सामग्री धारण की है वह जैसे सूर्य मेघ को वैसे शत्रुओं को जीत सकता है ॥७॥

अन्विदित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अनुमतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूंषि तारिषः ॥८॥

भावार्थ—हे (अनुमते) अनुकूल बुद्धि वाले सभापति विद्वन् ! (त्वम्) आप जिस को (शम्) सुखकारी (अनु, मन्यासै) अनुकूल मानो उससे युक्त (नः) हमको (कृधि) करो (क्रत्वे) बुद्धि (दक्षाय) बल वा चतुराई के लिये (नः) हम को (हिनु) बढ़ाओ (च) और (नः) हमारी (आयूंषि) अवस्थाओं को (इत्) निश्चय कर (प्र, तारिषः) अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये ।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे स्वार्थसिद्धि के अर्थ प्रयत्न किया जाता वैसे अन्यार्थ में भी प्रयत्न करें जैसे आप अपना कल्याण वृद्धि चाहते हैं वैसे औरों की भी चाहें इस प्रकार सब की पूर्ण अवस्था सिद्ध करें ॥८॥

अनु न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अनुमतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ॥९॥

पदार्थ—जो (अनुमतिः) अनुकूल विज्ञान वाला जन (अद्य) आज (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे (यज्ञम्) सुख देने के साधनरूप व्यवहार को (अनु, मन्यताम्) अनुकूल माने वह (च) और (हव्यवाहनः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी वा अग्निविद्या का विद्वान् तुम दोनों (दाशुषे) दानशील मनुष्य के लिये (मयः) सुखकारी (भवतम्) होओ ॥९॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्कर्मों के अनुष्ठान में अनुमति देने और दुष्टकर्मों के अनुष्ठान को निषेध करने वाले हैं वे अग्नि आदि की विद्या से सब के लिये सुख देवें ॥ ९ ॥

सिनीवालीत्यस्य गृत्समद ऋषिः । सिनीवाली देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब विदुषी कुमारी क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१०॥

पदार्थ—हे (सिनीवालि) प्रेमयुक्त बल करने हारी (पृथुष्टुके) जिसकी विस्तृत स्तुति, शिर के बाल वा कामना हो ऐसी (देवि) विदुषि कुमारी (या) जो तू (देवानाम्) विद्वानों की (स्वसा) बहिन (असि) है सो (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (आहुतम्) अच्छे प्रकार वर दीक्षादि कर्म्मों से स्वीकार किये पति का (जुषस्व) सेवन कर और (नः) हमारे लिये (प्रजाम्) सुन्दर सन्तान रूप प्रजा को (दिदिड्ढि) दे ॥१०॥

भावार्थ—हे कुमारियो ! तुम ब्रह्मचर्य्य आश्रम के साथ समस्त विद्याओं को प्राप्त हो युवति हो के अपने को अभीष्ट स्वयं परीक्षा किये वरने योग्य पतियों को आप वरो उन पतियों के साथ आनन्द कर प्रजा पुत्रादि को उत्पन्न किया करो ॥ १० ॥

पञ्चेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । सरस्वती देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥११॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि (सस्रोतसः) एक मन रूप प्रवाहों वाली (पञ्च) पांच (नद्यः) नदी के तुल्य प्रवाहरूप ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति जिस (सरस्वतीम्) प्रशस्त विज्ञान युक्त वाणी को (अपि, यन्ति) प्राप्त होती हैं, (सा, उ)

वह भी (सरित्) चलनेवाली (सरस्वती) वाणी (देशे) अपने निवासस्थान में (पञ्चधा) पांच ज्ञानेन्द्रियों के शब्दादि पांच विषयों का प्रतिपादन करने से पांच प्रकार की (उ) ही (अभवत्) होती है ऐसा जानें ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो वाणी पांच शब्दादि विषयों के आश्रित हुई नदी के तुल्य प्रवाह युक्त वर्त्तमान है उस को जानके यथावत् प्रचार कर मधुरलक्षण प्रयुक्त करें ॥११॥

त्वमग्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को ईश्वराज्ञा पालनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ ।

तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वान् ! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) प्रख्यात (अङ्गिराः) अवयवों के सारभूत रस के तुल्य वा जीवात्माओं को सुख देनेवाले (देवानाम्) विद्वानों के बीच (देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र (ऋषिः) ज्ञानी (अभवः) होवें इससे (तव) आपके (व्रते) स्वभाव वा नियम में (विद्मनापसः) प्रसिद्ध कर्मों वाले (भ्राजदृष्टयः) सुन्दर हथियारों से युक्त (कवयः) बुद्धिमान् (मरुतः) मनुष्य (अजायन्त) प्रकट होते हैं ॥१२॥

भावार्थ—यदि मनुष्य सबके मित्र विद्वान् जन और सबके हितैषी परमात्मा को मित्र मान विज्ञान के निमित्त कर्मों को कर प्रकाशित आत्मावाले हों तो वे विद्वान् होकर परमेश्वर की आज्ञा में वर्त्त सकें ॥१२॥

त्वन्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा और ईश्वर की कैसी सेवा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वन्नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य ।

त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेष॒ꣳ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१३॥

पदार्थ—हे (देव) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (अग्ने) राजन् वा ईश्वर (तव) आपके (व्रते) उत्तम नियम में वर्त्तमान (मघोनः) बहुत धनयुक्त हम लोगों को (तव) आपके (पायुभिः) रक्षादि के हेतु कर्म्मों से (त्वम्) आप (रक्ष) रक्षा कीजिये (च) और (नः) हमारे (तन्वः) शरीरों की रक्षा कीजिये । हे (वन्द्य) स्तुति के योग्य भगवन् ! जिस कारण आप (अनिमेषम्) निरन्तर (रक्षमाणः) रक्षा करते हुए (तोकस्य) सन्तान पुत्र (तनये) पौत्र और (गवाम्) गौ आदि के (त्राता) रक्षक (असि) हैं इसलिये हम लोगों को सर्वदा सत्कार और उपासना के योग्य हैं ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जो मनुष्य ईश्वर के गुणकर्मस्वभावों और आज्ञा की अनुकूलता में वर्तमान हैं और जिनकी ईश्वर और विद्वान् लोग निरन्तर रक्षा करनेवाले हैं वे लक्ष्मी, दीर्घावस्था और सन्तानों से रहित कभी नहीं होते ॥१३॥

उत्तानायामित्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उ॒त्ता॒नाया॒मव॑ भरा चिकि॒त्वान्त्स॒द्यः प्रवी॑ता॒ वृष॑णं जजान ।

अ॒रु॒षस्तू॑पो॒ रुश॑दस्य॒ पाज॒ इडा॑यास्पु॒त्रो व॒युने॑ऽजनिष्ट ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आप जैसे (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (प्रवीता) कामना करने हारा विद्वान् जन (उत्तानायाम्) उत्कर्षता के साथ विस्तीर्ण भूमि वा अन्तरिक्ष में (वृषणम्) वर्षा के हेतु यज्ञ को (जजान) प्रकट करता और (अरुषस्तूपः) रक्षक लोगों की उन्नति करने वाला (इडायाः) प्रशंसित स्त्री का (पुत्रः, वयुने) विज्ञान में (अजनिष्ट) प्रसिद्ध होता और (अस्य) इसका (रुशत्) सुन्दर रूप युक्त (पाजः) बल प्रसिद्ध होता है वैसे (सद्यः) शीघ्र (अव, भर) अपनी ओर पुष्ट कर ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से कन्या पुत्रों को द्विज करें तो ये सुख शीघ्र विद्वान् हो जावें ॥ १४ ॥

इडाया इत्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य राज्य के अधिकार पर स्थापित करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इडा॑यास्त्वा प॒दे व॒यं नाभा॑ पृथि॒व्या अधि॑ ।

जात॑वेदो॒ नि धी॑मह्य॒ग्ने ह॒व्याय॒ वोढ॑वे ॥१५॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) उत्पन्न बुद्धि वाले (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् राजन् ! (वयम्) अध्यापक तथा उपदेशक हम लोग (इडायाः) प्रशंसित वाणी की (पदे) व्यवस्था तथा (पृथिव्याः) विस्तृत भूमि के (अधि) ऊपर (नाभा) मध्यभाग में (त्वा) आपको (हव्याय) देने योग्य पदार्थों को (वोढवे) प्राप्त करने वा कराने के लिये (नि, धीमहि) निरन्तर स्थापित करते हैं ॥१५॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिस अधिकार में आप को हम लोग स्थापित करें उस अधिकार को धर्म और पुरुषार्थ से यथावत् सिद्ध कीजिये ॥१५॥

प्रमन्महे इत्यस्य नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्या और धर्म बढ़ाने चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र म॑न्महे शवसा॒नाय॑ शू॒षमा॑ङ्गू॒षं गिर्व॑णसे अङ्गिर॒स्वत् ।

सु॒वृ॒क्तिभि॑ स्तुव॒त ऋ॑ग्मि॒याया॒र्चामा॒र्कं नरे॒ विश्रु॑ताय ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सुवृक्तिभिः) निर्दोष क्रियाओं से (शवसानाय) विज्ञान के अर्थ (गिर्वणसे) सुशिक्षित वाणियों से युक्त (ऋग्मियाय) ऋचाओं को पढ़नेवाले (विश्रुताय) विशेष कर जिसमें गुण सुने जावें (स्तुवते) शास्त्र के अभिप्रायों को कहने (नरे) नायक मनुष्य के लिये (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (आङ्गूषम्) विद्या शास्त्र के बोधरूप (शूषम्) बल को (प्र, मन्महे) चाहते हैं और इस (अर्कम्) पूजनीय पुरुष का (अर्चाम) सत्कार करें वैसे इस विद्वान् के प्रति तुम लोग भी वर्त्तो ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार के योग्य का सत्कार और निरादर के योग्य का निरादर करके विद्या और धर्म को निरन्तर बढ़ाया करें ॥१६॥

प्र व इत्यस्य नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कौन पितर लोग हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्य॑ꣳशवसा॒नाय॒ साम॑ ।

येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (पदज्ञाः) जानने वा प्राप्त होने योग्य आत्मस्वरूप को जानने वाले (नः) हमारा (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए (अङ्गिरसः) सब सृष्टि की विद्या के अवयवों को जाननेवाले (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) रक्षक ज्ञानी लोग (येन) जिससे (महे) बड़े (शवसानाय) ब्रह्मचर्य और उत्तम शिक्षा से शरीर और आत्मा के बल से युक्त जन और (वः) तुम लोगों के अर्थ (आङ्गूष्यम्) सत्कार वा बल के लिये उपयोगी (साम) सामवेद और (गाः) सुशिक्षित वाणियों को (अविन्दन्) प्राप्त करावें उसीसे उनके लिये तुम लोग (महि) महत्सत्कार के लिये (नमः) उत्तम कर्म वा अन्न को (प्र, भरध्वम्) धारण करो ॥ १७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग तुमको विद्या और उत्तम शिक्षा से पण्डित धर्मात्मा करें उन्हीं प्रथम पठित लोगों को तुम पितर जानो ॥१७॥

इच्छन्तीत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आप्त का लक्षण कहते हैं—

इ॒च्छन्ति॑ त्वा सो॒म्यासः॒ सखा॑यः सु॒न्वन्ति॒ सोमं॒ दध॑ति॒ प्रयां॑ꣳसि ।

तिति॑क्षन्ते अ॒भिश॑स्तिं॒ जना॑ना॒मिन्द्र॒ त्वदा क॒श्चन हि प्र॑के॒तः ॥१८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष राजन् ! जो (सोम्यासः) ऐश्वर्य होने में उत्तम स्वभाव वाले (सखायः) मित्र हुए (सोमम्) ऐश्वर्यादि को (सुन्वन्ति) सिद्ध करते (प्रयांसि) चाहने योग्य विज्ञानादि गुणों को (दधति) धारण करते और (जनानाम्) मनुष्यों के (अभिशस्तिम्) दुर्वचन वाद विवाद को (आ, तितिक्षन्ते) अच्छे प्रकार सहते हैं उन का आप निरन्तर सत्कार कीजिये (हि) जिस कारण (त्वत्) आप से (प्रकेतः) उत्तम बुद्धिमान् (कः, चन) कोई भी नहीं है इससे (त्वा) आप को सब लोग (इच्छन्ति) चाहते हैं ॥१८॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस संसार में निन्दा स्तुति और हानि लाभादि को सहने वाले पुरुषार्थी सब के साथ मित्रता का आचरण करते हुए आप्त हों वे सब को सेवने और सत्कार करने योग्य हैं तथा वे ही सब के अध्यापक और उपदेशक होवें ॥१८॥

न त इत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । इन्द्रो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर सभाध्यक्ष राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न ते॑ दू॒रे प॑र॒मा चि॒द्रजा॒ꣳस्या तु प्र या॑हि हरिवो॒ हरि॑भ्याम् ।

स्थि॒राय॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा यु॒क्ता ग्रावा॑णः समिधा॒ने अ॒ग्नौ ॥१९॥

पदार्थ—हे (**हरिवः**) प्रशस्त घोड़ों वाले राजन् ! जैसे (**समिधाने**) प्रदीप्त किये हुए (**अग्नौ**) अग्नि में (**इमाः सवना**) ये प्रातःसवनादि यज्ञकर्म (**कृता**) किये जाते हैं (**तु**) इसी हेतु से (**ग्रावाणः**) गर्जना करने वाले मेघ (**युक्ताः**) इकट्ठे होके आते हैं वैसे (**स्थिराय**) दृढ़ (**वृष्णे**) सुखदायी विद्यादि पदार्थ के लिये (**हरिभ्याम्**) धारण और आकर्षण के वेगरूप गुणों से युक्त घोड़ों वा जल और अग्नि से (**आ, प्र, याहि**) अच्छे प्रकार आइये । इस प्रकार करने से (**परमा**) दूरस्थ (**चित्**) भी (**रजांसि**) स्थान (**ते**) आप के (**दूरे**) दूर (**न**) नहीं होते हैं ॥१६॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् लोगो ! जैसे अग्नि से उत्पन्न किये हुए वर्षा के मेघ पृथिवी के समीप होते आकर्षण से दूर भी जाते हैं वैसे अग्नि के यानों से गमन करने में कोई देश दूर नहीं होता इस प्रकार पुरुषार्थ करके सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को उत्पन्न करो ॥१६॥

अषाढमित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अषा॑ढं यु॒त्सु पृत॑नासु प॒प्रिꣳ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् ।
भ॒रे॒षु॒जाꣳ सु॑क्षि॒तिꣳ सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥२०॥

पदार्थ—हे (**सोम**) समस्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् वा सेनापते ! हम लोग जिन (**युत्सु**) युद्धों में (**अषाढम्**) असह्य (**पृतनासु**) मनुष्यों की सेनाओं में (**पप्रिम्**) पूर्ण बल विद्यायुक्त वा रक्षक (**स्वर्षाम्**) सुख का सेवन करने वा (**अप्साम्**) जलों वा प्राणों को देने वाले (**वृजनस्य**) बल के (**गोपाम्**) रक्षक (**भरेषुजाम्**) धारण करने योग्य संग्रामों में जीतने वाले (**सुक्षितिम्**) पृथिवी के सुन्दर राज्य वाले (**सुश्रवसम्**) सुन्दर अन्न वा कीर्तियों से युक्त (**जयन्तम्**)शत्रुओं को जीतने वाले (**त्वाम्**) आप को (**अनु, मदेम**) अनुमोदित करें ॥२०॥

भावार्थ—जिस राजा वा सेनापति के उत्तम स्वभाव से राजपुरुष सेनाजन और प्रजापुरुष प्रसन्न रहें और जिन की प्रसन्नता में राजा प्रसन्न हो वहां दृढ़ विजय उत्तम निश्चल ऐश्वर्य और अच्छी प्रतिष्ठा होती है ॥२०॥

सोम इत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सोमो॑ धे॒नुꣳ सोमो॒ अर्व॑न्तमा॒शुꣳ सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं॑ ददाति ।
सा॒द॒न्यं॑ वि॒द॒थ्यꣳ स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै ॥२१॥

पदार्थ—जो प्रजास्थ मनुष्य (**अस्मै**) इस धर्मिष्ठ राजा वा अध्यापक वा उपदेशक के लिये उचित पदार्थ (**ददाशत्**) देता है उसके लिये (**सोमः**) ऐश्वर्ययुक्त उक्त पुरुष (**धेनुम्**) विद्या की आधाररूप वाणी को (**ददाति**) देता (**सोमः**) सत्याचरण के प्रेरणा करने हारा राजादि जन (**अर्वन्तम्**) वेग से चलने वाले तथा (**आशुम्**) मार्ग को शीघ्र व्याप्त होने वाले घोड़े को देता और (**सोमः**) शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त राजादि (**कर्मण्यम्**) कर्मों से युक्त पुरुषार्थी (**सादन्यम्**) बैठाने आदि में प्रवीण (**विदथ्यम्**) यज्ञ करने में कुशल (**पितृश्रवणम्**) आचार्य पिता से विद्या पढ़ने वाले (**सभेयम्**) सभा में बैठने योग्य (**वीरम्**) शत्रुओं के बलों को व्याप्त होने वाले शूरवीर पुरुष को देता है ॥२१॥

भावार्थ—जो अध्यापक उपदेशक वा राजपुरुष सुशिक्षित वाणी, अग्नि आदि की तत्त्वविद्या पुरुष का ज्ञान और सभ्यता सब के लिये देवें वे सब को सत्कार करने योग्य हों ॥२१॥

त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

त्वमि॒मा ओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पो अ॑जनय॒स्त्वं गाः ।
त्वमा त॑तन्थो॒र्व॒न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ ॥२२॥

पदार्थ—हे (**सोम**) उत्तम सोमवल्ली ओषधियों के तुल्य रोगनाशक राजन् ! (**त्वम्**) आप (**इमाः**) इन (**विश्वाः**) सब (**ओषधीः**) सोम आदि ओषधियों को (**त्वम्**) आप सूर्य्य के तुल्य (**अपः**) जलों वा कर्म को और (**त्वम्**) आप (**गाः**) पृथिवी वा गौओं को (**अजनयः**) उत्पन्न वा प्रकट कीजिये (**त्वम्**) आप सूर्य्य के समान (**उरु**) बहुत अवकाश को (**आ, ततन्थ**) विस्तृत करते तथा (**त्वम्**) आप सूर्य्य जैसे (**ज्योतिषा**) प्रकाश से (**तमः**) अन्धकार को दबाता वैसे न्याय से अन्याय को (**वि, ववर्थ**) आच्छादित वा निवृत्त कीजिये, सो आप हम को माननीय हैं ॥२२॥

भावार्थ—जो मनुष्य जैसे ओषधि रोगों को वैसे दुःखों को हर लेते हैं प्राणों के तुल्य बलों को प्रकट करते तथा जो राजपुरुष सूर्य्य रात्रि को जैसे वैसे अधर्म और अविद्या के अन्धकार को निवृत्त करते हैं वे जगत् को पूज्य क्यों नहीं हों ? ॥२२॥

देवेनेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

दे॒वेन॑ नो॒ मन॑सा देव सोम रा॒यो भा॒गꣳ स॑हसावन्न॒भि यु॑ध्य ।
मा त्वा त॑न॒दीशि॑षे वी॒र्य॒स्यो॒भये॑भ्यः॒ प्र चि॑कित्स॒ गवि॑ष्टौ ॥२३॥

पदार्थ—हे (**सहसावन्**) अधिकतर सेनादि बल वाले (**सोम**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के प्रापक (**देव**) दिव्य गुणों से युक्त राजन् ! जो आप (**देवेन**) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त (**मनसा**) मन से (**रायः**) धन के (**भागम्**) अंश को (**नः**) हमारे लिये (**अभि, युध्य**) सब ओर से प्राप्त कीजिये जिस से आप (**वीर्यस्य**) वीरकर्म करने को (**ईशिषे**) समर्थ होते हो इस से (**त्वा**) आप को कोई (**मा**) न (**आ, तनत्**) दबावे सो आप (**गविष्टौ**) सुख विशेष की इच्छा के होते (**उभयेभ्यः**) दोनों इस लोक परलोक के सुखों के लिये (**प्र, चिकित्स**) रोग निवारण के तुल्य विघ्न निवृत्ति के उपाय को किया कीजिये ॥२३॥

भावार्थ—राजादि विद्वानों को चाहिये कि कपटादि दोषों को छोड़ शुद्ध भाव से सब के लिये सुख की चाहना करके पराक्रम बढ़ावें और जिस कर्म से दुःख की निवृत्ति तथा सुख की वृद्धि इस लोक परलोक में हो उसके करने में निरन्तर प्रयत्न करें ॥२३॥

अष्टावित्यस्याऽऽङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब सूर्य क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभः॑ पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न् ।
हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व आगा॒द्दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**हिरण्याक्षः**) नेत्र के समान रूप दर्शाने वाली ज्योतियों वाला (**देवः**) प्रेरक (**सविता**) सूर्य (**दाशुषे**) दानशील प्राणियों के लिये (**वार्याणि**) स्वीकार करने योग्य (**रत्ना**) पृथिवी के उत्तम पदार्थों को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**त्री**) तीन (**धन्व**) अवकाशरूप (**योजना**) अर्थात् बारह कोस और (**सप्त**) सात (**सिन्धून्**) पृथिवी के समुद्र से लेके मेघ के ऊपर ले अवयवों पर्यन्त समुद्रों को तथा (**पृथिव्याः**) पृथिवी सम्बन्धिनी (**अष्टौ**) आठ (**ककुभः**) दिशाओं को (**वि, अख्यत्**) प्रसिद्ध प्रकाशित करता है वैसे ही तुम लोग होओ ॥२४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से पृथिवी तक १२ कोस पर्यन्त हलके भारीपन से युक्त सात प्रकार के जल के अवयव और दिशा विभक्त होती तथा वर्षादि से सब को सुख दिया जाता वैसे शुभ गुण कर्म और स्वभावों से दिशाओं में कीर्ति फैला के अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को देने से मनुष्यादि प्राणियों को निरन्तर सुखी करो ॥२४॥

हिरण्यपाणिरित्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते ।
अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम्मृ॑णोति ॥२५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**हिरण्यपाणिः**) हाथों के तुल्य जलादि के ग्राहक प्रकाश रूप किरणों से युक्त (**विचर्षणिः**) विशेष कर सब को दिखाने वाला (**सविता**) सब पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु (**सूर्य्यम्**) सूर्य्यलोक जब (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश भूमि के (**अन्तः**) बीच (**ईयते**) उदय होकर घूमता है तब (**अमीवाम्**) व्याधिरूप अन्धकार को (**अप, बाधते**) दूर करता और जब (**वेति**) अस्त समय को प्राप्त होता तब (**कृष्णेन , रजसा**) काले अन्धकार रूप से (**द्याम्**) आकाश को (**अभि, ऋणोति**) सब ओर से व्याप्त होता है उस सूर्य्य को तुम लोग जानो ॥२५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य अपने समीपवर्त्ती लोकों का आकर्षण कर धारण करता है वैसे ही अनेक लोकों से शोभायमान सूर्यादि सब जगत् को सब ओर से व्याप्त हो और आकर्षण करके ईश्वर धारण करता है ऐसा जानो क्योंकि ईश्वर के विना सबका स्रष्टा तथा धर्त्ता अन्य कोई भी नहीं हो सकता ॥२५॥

हिरण्यहस्त इत्यस्य आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

हिर॑ण्यहस्तो॒ असु॑रः सुनी॒थः सु॑मृडी॒कः स्ववाँ॑ यात्व॒र्वाङ् ।
अ॒प॒सेध॑न्र॒क्षसो॑ यातु॒धाना॒नस्था॑द्दे॒वः प्र॑तिदो॒षं गृ॑णा॒नः ॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**हिरण्यहस्तः**) हाथों के तुल्य प्रकाशों वाला (**सुनीथः**) सुन्दर प्रकार प्राप्ति कराने (**असुरः**) जलादि को फेंकने वाला (**सुमृडीकः**) सुन्दर सुखकारी (**स्ववान्**) अपने प्रकाशादिक गुणों से युक्त (**देवः**) प्रकाशक सूर्य्यलोक (**यातुधानान्**) अन्याय से दूसरों के पदार्थों को धारण करने वाले (**रक्षसः**) डाकू चोर आदि को (**अपसेधन्**) निवृत्त करता अर्थात् डाकू चोर आदि सूर्योदय होने पर अपना काम नहीं बना सकते किन्तु प्रायः रात्रि को ही अपना काम बनाते हैं और (**प्रतिदोषम्**) मनुष्यों के प्रति जो दोष उसको (**गृणानः**) प्रकट करता हुआ (**अस्तात्**) उदय होता है वह (**अर्वाङ्**) अपने समीपवर्त्ती पदार्थों को प्राप्त होने वाला हमारे सुख के अर्थ (**यातु**) प्राप्त होवे वैसे तुम होओ ॥२६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मांगने वालों के लिये उदारता से सुवर्णादि दे तथा दुष्टाचारियों का तिरस्कार कर और धार्मिक जनों को सुख देके प्रतिदिन सूर्य्य के तुल्य प्रशंसित होओ ॥२६॥

ये त इत्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ये ते॒ पन्था॑ः सवितः पू॒र्व्यासो॑ऽरे॒णवः॑ सुकृ॑ता अ॒न्तरि॑क्षे ।
तेभि॑र्नो अ॒द्य प॒थिभि॑ः सु॒गेभी॒ रक्षा॑ च नो॒ अधि॑ च ब्रूहि देव ॥२७॥

पदार्थ—हे (सवितः) सूर्य के तुल्य ऐश्वर्य देने वाले (देव) विद्या और सुख के दाता आप्त विद्वान् पुरुष ! जिस(ते) आप के जैसे सूर्य के (अन्तरिक्षे) आकाश में गमन के शुद्ध मार्ग हैं वैसे (ये) जो (पूर्व्यासः) पूर्वज आप्तजनों ने सेवन किये (अरेणवः) धूलि आदि रहित (सुकृताः) सुन्दर सिद्ध किये (पन्थाः) मार्ग हैं (तेभिः) उन (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन में चलें ऐसे (पथिभिः) मार्गों से (अद्य) आज (नः) हम लोगों को चलाइये उन मार्गों से चलते हुए हमारी (रक्ष) रक्षा (च) भी कीजिये (च) तथा (नः) हम को (अधि, ब्रूहि) अधिकतर उपदेश कीजिये इसी प्रकार सब को चेतन कीजिये ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! तुम को चाहिये कि जैसे सूर्य के आकाश में निर्मल मार्ग हैं वैसे ही उपदेश और अध्यापन से विद्या धर्म और सुशीलता के दाता मार्गों का प्रचार करें ॥२७॥

उभेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।

अविद्रियाभिरूतिभिः ॥२८॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा के तुल्य अध्यापक उपदेशको ! (उभा) दोनों तुम लोग जिस जगह पर उत्तम रस को (पिबतम्) पिओ उस (शर्म) उत्तम आश्रय स्थान व सुख को (उभा) दोनों तुम (अविद्रियाभिः) छिद्ररहित (ऊतिभिः) रक्षणादि क्रियाओं से रक्षित घर को (नः) हमारे लिये (यच्छतम्) देओ ॥२८॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि सदा उत्तम घर बनाने के और निवास के उपदेशों को कर जहाँ पूर्ण रक्षा हो उस विषय में सब को प्रेरणा करें ॥२८॥

अप्नस्वतीमित्यस्य कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।

अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२९॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख के नाशक (वृषणा) सुख के वर्षाने वाले (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक लोगो ! तुम दोनों (अस्मे) हमारी (वाचम्) वाणी (च) और (मनीषाम्) बुद्धि को (अप्नस्वतीम्) प्रशस्त कर्मों वाली (कृतम्) करो (नः) हमारे (अद्यूत्ये) द्यूतरहित स्थान में हुए कर्म में (अवसे) रक्षा के लिए स्थित करो (वाजसातौ) धन का विभाग करने हारे सङ्ग्राम में (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (भवतम्) उद्यत होओ जिन (वाम्) तुम्हारी (नि, ह्वये) निरन्तर स्तुति करता हूँ वे दोनों आप मेरी उन्नति करो ॥२९॥

भावार्थ—जो मनुष्य निष्कपट आप्त दयालु विद्वानों का निरन्तर सेवन करते हैं वे प्रगल्भ धार्मिक विद्वान् होके सब ओर से बढ़ते और विजयी होते हुए सुखदायी होते हैं ॥२९॥

द्युभिरित्यस्य कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब सभासेनाधीश क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३०।

पदार्थ—हे (अश्विना) सभासेनाधीशो ! जैसे (अदितिः) पृथिवी (सिन्धुः) सात प्रकार का समुद्र (पृथिवी) आकाश (उत) और (द्यौः) प्रकाश (तत्) वे (नः) हमारा (मामहन्ताम्) सत्कार करें वैसे (मित्रः) मित्र तथा (वरुणः) दुष्टों को बाँधने वा रोकने वाले तुम दोनों (द्युभिः) दिन (अक्तुभिः) रात्रि (अरिष्टेभिः) अहिंसित (सौभगेभिः) श्रेष्ठ धनों के होने से (अस्मान्) हमारी (परि, पातम्) सब ओर से रक्षा करो ॥३०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभाधीश आदि विद्वान् लोग जैसे पृथिवी आदि तत्त्व सब प्राणियों की रक्षा करते हैं वैसे ही बढ़े हुए ऐश्वर्यों से दिन रात सब मनुष्यों को बढ़ावें ॥३०॥

आ कृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । सूर्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विद्युत् से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥३१।

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो (आ, कृष्णेन) आकर्षित हुए (रजसा) लोक समूह के साथ (वर्त्तमानः) वर्त्तमान निरन्तर (अमृतम्) नाशरहित कारण (च) और (मर्त्यम्) नाशसहित कार्य्य को (निवेशयन्) अपनी अपनी कक्षा में स्थित करता हुआ (हिरण्ययेन) तेजःस्वरूप (रथेन) रमणीयस्वरूप के सहित (सविता) ऐश्वर्य का दाता (देवः) देदीप्यमान विद्युत्रूप अग्नि (भुवनानि) संसारस्थ वस्तुओं को (याति) प्राप्त होता है उसको (पश्यन्) देखते हुए सम्यक् प्रयुक्त कीजिये ॥३१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजली कार्य और कारण को सम्यक् प्रकाशित कर सर्वत्र अभिव्याप्त तेजस्वरूप शीघ्रगामिनी सब का आकर्षण करने वाली है उसको देखते हुए सम्प्रयोग में अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाया करो ॥३१॥

आ रात्रीत्यस्य कुत्स ऋषिः । रात्रिर्देवता । पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब रात्रि का वर्णन अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः ।

दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्त्तते तमः ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (बृहती) बड़ी (रात्रि) रात (दिवः) प्रकाश के (सदांसि) स्थानों को (वि, तिष्ठसे) व्याप्त होती है, जिस रात्रि ने (पितुः) अपने तथा सूर्य के मध्यस्थ लोक के (धामभिः) सब स्थानों के साथ (पार्थिवम्) पृथिवी सम्बन्धी (रजः) लोक को (आ, अप्रायि) अच्छे प्रकार पूर्ण किया है और जिसका (त्वेषम्) अपनी कान्ति से बढ़ा हुआ (तमः) अन्धकार (आ) (वर्त्तते) आता जाता है उसका युक्ति के साथ सेवन करो ॥३२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पृथिव्यादि की छाया रात्रि में प्रकाश को रोकती अर्थात् सब का आवरण करती है उसका आप लोग यथावत् सेवन करें ॥६२॥

उष इत्यस्य गोतम ऋषिः । उषर्देवता । निचृत्परोष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उषःकाल का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं—

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।

येन तोकं च तनयं च धामहे ॥३३॥

पदार्थ—हे (वाजिनीवति) बहुत अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त (उषः) प्रातः समय की वेला के तुल्य कान्तिसहित वर्त्तमान स्त्रि ! जैसे अधिकतर अन्नादि ऐश्वर्य की हेतु प्रातःकाल की वेला जिस प्रकार के (चित्रम्) आश्चर्य स्वरूप को धारण करती (तत्) वैसे रूप को तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ, भर) अच्छे प्रकार पुष्ट कर (येन) जिससे हम लोग (तोकम्) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक (च) और (तनयम्) कुमारावस्था के लड़के को (च) भी (धामहे) धारण करें ॥३३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब शोभा से युक्त मङ्गल देने वाली प्रभात समय की वेला सब व्यवहारों को धारण करने वाली है यदि वैसी स्त्रियां हों तो वे सदा अपने अपने पति को प्रसन्न कर पुत्रपौत्रादि के साथ आनन्द को प्राप्त होवें ॥३३॥

प्रातरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।

प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳ हुवेम ॥३४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (प्रातः) प्रातःकाल (अग्निम्) पवित्र पवित्र वा स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा व अग्नि को (प्रातः) प्रातः समय (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य को (प्रातः) प्रभात समय (मित्रावरुणा) प्राण उदान को और (प्रातः) प्रभात समय (अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशक को (हवामहे) ग्रहण करें व बुलावें (प्रातः) प्रातः समय (भगम्) सेवन करने योग्य भाग (पूषणम्) पुष्टिकारक भोग (ब्रह्मणस्पतिम्) धन को वा वेद के रक्षक को (प्रातः) प्रभात समय (सोमम्) सोमादि ओषधिगण (उत) और (रुद्रम्) जीव को (हुवेम) ग्रहण वा स्वीकृत करें वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥३४॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रातःकाल परमेश्वर की उपासना, अग्निहोत्र, ऐश्वर्य की उन्नति का उपाय, प्राण और अपान की पुष्टि करना, अध्यापक, उपदेशक, विद्वानों तथा ओषधि का सेवन और जीवात्मा की प्राप्त होने व जानने को प्रयत्न करते हैं वे सब सुखों से सुशोभित होते हैं ॥३४॥

प्रातर्जितमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ऐश्वर्य का सम्पादन करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता ।

आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (प्रातः) प्रभात समय (यः) जो (विधर्त्ता) विविध पदार्थों को धारण करने हारा (आध्रः) न्यायादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र (चित्) भी (यम्) जिस ऐश्वर्य को (मन्यमानः) विशेष कर जानता हुआ (तुरः) शीघ्रकारी (चित्) भी (राजा) शोभायुक्त राजा है (यम्) जिस (भगम्) ऐश्वर्य को (चित्) भी (भक्षि, इति, आह) तू सेवन कर इस प्रकार ईश्वर उपदेश करता है उस(अदितेः) अविनाशी कारण के समान माता के (पुत्रम्) पुत्र रक्षक (जितम्) अपने पुरुषार्थ से प्राप्त (उग्रम्) उत्कृष्ट (भगम्) ऐश्वर्य को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे तुम लोग स्वीकार करो ॥३५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोगों को सदा प्रातःकाल से लेकर सोते समय तक यथाशक्ति सामर्थ्य से विद्या और

पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति कर आनन्द भोगना और दरिद्रों के लिये सुख देना चाहिये यह ईश्वर ने कहा है ॥३५॥

भग इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगवान् देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना आदि विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३६॥

पदार्थ—हे (भग) ऐश्वर्ययुक्त ! (प्रणेतः) पुरुषार्थ के प्रतिप्रेरक ईश्वर वा हे (भग) ऐश्वर्य के दाता ! (सत्यराधः) विद्यमान पदार्थों में उत्तम धनों वाले (भग) सेवने योग्य विद्वान् आप (नः) हमारी (इमाम्) इस वर्त्तमान (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देते हुए (उत्, अव) उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये । हे (भग) विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वान् ! आप (गोभिः) गौ आदि पशुओं (अश्वैः) घोड़े आदि सवारियों और (नृभिः) नायक कुलनिर्वाहक मनुष्यों के साथ (नः) हमको (प्र, जनय) प्रकट कीजिये । हे (भग) सेवा करते हुए विद्वान् ! जिससे हम लोग (नृवन्तः) प्रशस्त मनुष्यों वाले (प्रस्याम) अच्छे प्रकार हों वैसे कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जब जब ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का सङ्ग करें तब तब बुद्धि की ही प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें ॥ ३६ ॥

उतेदानीमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ऐश्वर्य की उन्नति का विषय अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानाᳩं सुमतौ स्याम ॥३७॥

पदार्थ—हे (मघवन्) उत्तम धनयुक्त ईश्वर वा विद्वान् ! (वयम्) हम लोग (इदानीम्) वर्त्तमान समय में (उत) और (प्रपित्वे) पदार्थों की प्राप्ति में (उत) और भविष्यत्काल में (उत) और (अह्नाम्) दिनों में (मध्ये) बीच (भगवन्तः, स्याम) समस्त ऐश्वर्य से युक्त हों (उत) और (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) उदय समय तथा (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) उत्तम बुद्धि में समस्त ऐश्वर्य युक्त (स्याम) हों ॥ ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि वर्त्तमान और भविष्यत् काल में योग के ऐश्वर्यों की उन्नति व लौकिक व्यवहार के बढ़ाने और प्रशंसा में निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ३७ ॥

भग इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगवान् देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

भग एव भगवाँ२ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥३८॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! जो (भग, एव) सेवनीय ही (भगवान्) प्रशस्त ऐश्वर्ययुक्त (अस्तु) होवे (तेन) उस ऐश्वर्यरूप ऐश्वर्य वाले परमेश्वर के साथ (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) समग्र शोभायुक्त (स्याम) होवें । हे (भग) सम्पूर्ण शोभायुक्त ईश्वर ! (तम्, त्वा) उन आपको (सर्व, इत्) समस्त ही जन (जोहवीति) शीघ्र पुकारता है । हे (भग) सकल ऐश्वर्य के दाता ! (सः) सो आप (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (पुर, एता) अग्रगामी (भव) हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो समस्त ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर है उसके और जो उसके उपासक विद्वान् हैं उनके साथ सिद्ध तथा श्रीमान् होओ, जो जगदीश्वर माता पिता के समान हम पर कृपा करता है उसकी भक्तिपूर्वक इस संसार में मनुष्यों को ऐश्वर्य वाले निरन्तर किया करो ॥ ३८ ॥

समध्वराय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥३९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (उषसः) प्रभात समय (दधिक्रावेव) अच्छे चलाये धारण करने वाले घोड़े के तुल्य (शुचये) पवित्र (पदाय) प्राप्त होने योग्य (अध्वराय) हिंसारूप अधर्म रहित व्यवहार के लिये (सम्, नमन्त) सम्यक् नमते अर्थात् प्रातः समय सत्व गुण की अधिकता से सब प्राणियों के चित्त शुद्ध नम्र होते हैं (अश्वाः) शीघ्रगामी (वाजिनः) घोड़े जैसे (रथमिव) रमणीय यान को वैसे (नः) हमको (अर्वाचीनम्) इस समय के (वसुविदम्) अनेक प्रकार के धनप्राप्ति के हेतु (भगम्) ऐश्वर्ययुक्त जन को प्राप्त करे वैसे इनको आप लोग (आ, वहन्तु) अच्छे प्रकार चलावें ॥ ३९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य प्रभात वेला के तुल्य विद्या और धर्म का प्रकाश करते और जैसे घोड़े यानों को वैसे शीघ्र समस्त ऐश्वर्य को पहुँचाते हैं वे पवित्र विद्वान् जानने योग्य हैं ॥ ३९ ॥

अश्वावतीरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । उषा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वरः ॥

अब विदुषी स्त्रियाँ क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४०॥

पदार्थ—हे विदुषी स्त्रियो ! जैसे (अश्वावतीः) प्रशस्त व्याप्तिशील जलों वाली (गोमतीः) बहुत किरणों से युक्त (वीरवतीः) बहुत वीर पुरुषों से संयुक्त (भद्राः) कल्याणकारिणी (घृतम्) शुद्ध जल को (दुहानाः) पूर्ण करती हुई (विश्वतः) सब ओर से (प्रपीताः) प्रकर्षता से बढ़ी हुई (उषासः) प्रभातवेला हमारी (सदम्) सभा को प्राप्त होतीं अर्थात् प्रकाशित वा प्रवृत्त करती हैं वैसे हमारी सभा को आप लोग (उच्छन्तु) समाप्त करो और (नः) हमारी (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्थता देने वाले सुखों से (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला जागते हुए मनुष्यों को सुख देने वाली होती हैं वैसे विदुषी स्त्रियां कुमारी विद्यार्थिनी कन्याओं के विद्या सुशिक्षा और सौभाग्य को बढ़ा के सदैव इन कन्याओं को आनन्दित किया करें ॥ ४० ॥

पूषन्नित्यस्य सुहोत्र ऋषिः । पूषा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर और आप्तजन के सेवक कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥४१॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टिकारक परमेश्वर वा आप्तविद्वन् ! (वयम्) हम लोग (तव) आपके (व्रते) स्वभाव वा नियम में इससे वर्त्तें कि जिससे (कदा, चन) कभी भी (न) न (रिष्येम) चित्त बिगाड़ें (इह) इस जगत् में (ते) आपके (स्तोतारः) स्तुति करने वाले हुए हम सुखी (स्मसि) होते हैं ॥४१॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के वा आप्त विद्वान् के गुणकर्मस्वभाव के अनुकूल वर्त्तते हैं वे कभी नष्ट सुख वाले नहीं होते ॥ ४१ ॥

पथस्पथ इत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः । पूषा देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं धियᳩं सीषधाति प्र पूषा ॥४२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वचस्या) वचन और (कामेन) कामना करके (कृतः) सिद्ध (पूषा) पुष्टिकर्त्ता जगदीश्वर वा आप्त जन (शुरुधः) शीघ्र दुःखों को रोकने वाले (चन्द्राग्राः) प्रथम से ही आनन्दकारी साधनों को (नः) हमारे लिये (रासत्) देवे (धियं धियम्) प्रत्येक बुद्धि वा कर्म को (प्रसीषधाति) प्रकर्षता से सिद्ध करे (सः) वह शुभ गुण कर्म स्वभावों को (अभि, आनट्) सब ओर से व्याप्त होता उस (अर्कम्) पूजनीय (पथस्पथः) प्रत्येक मार्ग के (परिपतिम्) स्वामी की हम लोग स्तुति करें ॥ ४२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सबके सुख के लिये वेद के प्रकाश की और आप्त पुरुष पढ़ाने की इच्छा करता जो सबके लिये श्रेष्ठ बुद्धि उत्तम कर्म और शिक्षा को देते हैं उन सब श्रेष्ठ मार्गों के स्वामियों का सदा सत्कार करना चाहिये ॥ ४२ ॥

त्रीणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥४३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अदाभ्यः) अहिंसा धर्मवाला होने से दयालु (गोपाः) रक्षक (विष्णुः) चराचर जगत् में व्याप्त परमेश्वर (धर्माणि) पुण्य रूप कर्मों का धारक पृथिव्यादि को (धारयन्) धारण करता हुआ (अतः) इस कारण से (त्रीणि) तीन (पदा) जानने वा प्राप्त होने योग्य कारण सूक्ष्म और स्थूलरूप जगत् का (वि, चक्रमे) आक्रमण करता है वही हम लोगों को पूजनीय है ॥ ४३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यरूप करके तीन प्रकार के जगत् को बनाया, सबको धारण किया और रक्षित किया है वही उपासना के योग्य इष्टदेव है ॥ ४३ ॥

तद्विप्रास इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाᳩंसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥४४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (जागृवांसः) अविद्यारूप निद्रा से उठ के चेतन हुए (विपन्यवः) विशेषकर स्तुति करने योग्य वा ईश्वर की स्तुति करने हारे (विप्रासः) बुद्धिमान् योगी लोग (विष्णोः) सर्वत्र अभिव्यापक परमात्मा का (यत्) जो (परमम्) उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य मोक्षदायी स्वरूप है (तत्) उसको (सम्, इन्धते) सम्यक् प्रकाशित करते हैं उनके सत्संग से तुम लोग भी वैसे होओ ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जो योगाभ्यासादि सत्कर्मों करके शुद्ध मन और आत्मावाले धार्मिक पुरुषार्थी जन हैं वे ही व्यापक परमेश्वर के स्वरूप को जानने और उसको प्राप्त होने योग्य होते हैं अन्य नहीं ॥ ४४ ॥

घृतवतीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥४५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वरुणस्य) सब से श्रेष्ठ जगदीश्वर के (धर्मणा) धारण करने रूप सामर्थ्य से (मधुदुघे) जल को पूर्ण करने वाली (सुपेशसा) सुन्दर रूप युक्त (पृथ्वी) विस्तारयुक्त (उर्वी) बहुत पदार्थों वाली (घृतवती) बहुत जल के परिवर्त्तन से युक्त (अजरे) अपने स्वरूप से नाशरहित (भूरिरेतसा) बहुत जलों से युक्त वा अनेक वीर्य वा पराक्रमों की हेतु (भुवनानाम्) लोक लोकान्तरों की (अभिश्रिया) सब ओर से शोभा करने वाली (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (विष्कभिते) विशेष कर धारण वा दृढ़ किये हैं उसी को उपासना के योग्य तुम लोग जानो ॥४५॥

भावार्थ—मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप दो प्रकार के जगत् को बना और धारण करके पालित किया है वही सर्वदा उपासना के योग्य है ॥ ४५ ॥

येन इत्यस्य विहव्य ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥४६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (नः) हमारे (सपत्नाः) शत्रु लोग हों (ते) वे (अप, भवन्तु) दूर हों अर्थात् पराजय को प्राप्त हों जैसे (ताम्) उन शत्रुओं को हम (इन्द्राग्निभ्याम्) वायु और विद्युत् के शस्त्रों से (अव, बाधामहे) पीड़ित करें और जैसे (वसवः) पृथिवी आदि वसु (रुद्राः) दश प्राण ग्यारहवां आत्मा और (आदित्याः) बारह महीने (उपरिस्पृशम्) उच्च स्थान पर बैठने (उग्रम्) तेजस्वभाव और (चेत्तारम्) सत्यासत्य को यथावत् जानने वाले (मा) मुझ को (अधिराजम्) अधिपति स्वामी समर्थ (अक्रन्) करें वैसे उन शत्रुओं का तुम लोग निवारण और मेरा सत्कार करो ॥४६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिसके अधिकार में पृथिवी आदि पदार्थ हों वही सब के ऊपर राजा होवे । जो राजा होवे वह शस्त्र अस्त्रों से शत्रुओं का निवारण कर निष्कण्टक राज्य करे ॥४६॥

आ नासत्येत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । अश्विनौ देवते । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब कौन जगत् के हितैषी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४७॥

पदार्थ—हे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (अश्विना) राज्य और प्रजा के विद्वानो ! जैसे तुम (इह) इस जगत् में (त्रिभिः) (एकादशैः) तेंतीस (देवेभिः) उत्तम पृथिवी आदि (आठ वसु, प्राणादि ग्यारह रुद्र, बारह महीनों तथा बिजुली और यज्ञ) तेंतीस देवताओं के साथ (मधुपेयम्) मधुर गुणों से युक्त पीने योग्य ओषधियों के रस को (आ, यातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वा उसके लिये आया करो (रपांसि) पापों को (मृक्षतम्) शुद्ध किया करो (द्वेषः) द्वेषादि दोषयुक्त प्राणियों का (निः, सेधतम्) खण्डन वा निवारण किया करो (सचाभुवा) सत्य पुरुषार्थ के साथ कार्यों में संयुक्त (भवतम्) होओ और (आयुः) जीवन को (प्र, तारिष्टम्) अच्छे प्रकार बढ़ाओ वैसे हम लोग होवें ॥४७॥

भावार्थ—वे ही लोग जगत् के हितैषी हैं जो पृथिवी आदि सृष्टि की विद्या को जान के दूसरों को ग्रहण करावें दोषों को दूर करें और अधिक काल जीवन के विधान का प्रचार किया करें ॥४७॥

एष व इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । मरुतो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥४८॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मरण धर्म वाले मनुष्यो ! (मान्दार्यस्य) प्रशस्त कर्मों के सेवक उदार चित्त वाले (मान्यस्य) सत्कार के योग्य (कारोः) पुरुषार्थी कारीगर का (एषः) यह (स्तोमः) प्रशंसा और (इयम्) यह (गीः) वाणी (वः) तुम्हारे लिये उपयोगी होवे तुम लोग (इषा) इच्छा वा अन्न के निमित्त से (वयाम्) अवस्था वाले प्राणियों के (तन्वे) शरीरादि की रक्षा के लिये (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ करो और हम लोग (जीरदानुम्) जीवन के हेतु (इषम्) विज्ञान वा अन्न तथा (वृजनम्) दुःखों के वर्जन वाले बल को (विद्याम) प्राप्त हों ॥४८॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव प्रशंसनीय कर्मों का सेवन और शिल्पविद्या के विद्वानों का सत्कार करके जीवन बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥४८॥

सहस्तोमा इत्यस्य प्राजापत्यो यज्ञ ऋषिः । ऋषयो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ऋषि कौन होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥४९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सहस्तोमाः) प्रशंसाओं के साथ वर्त्तमान वा जिनकी शास्त्रस्तुति एक साथ हो (सहछन्दसः) वेदादि का अध्ययन वा स्वतन्त्र सुख भोग जिनका साथ हो (आवृतः) ब्रह्मचर्य्य के साथ समस्त विद्या पढ़ और गुरुकुल से निवृत्त होके घर आये (सहप्रमाः) साथ ही जिन का प्रमाणादि यथार्थ ज्ञान हो (सप्त) पांच ज्ञानेन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा ये सात (दैव्याः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रवीण ध्यान वाले योगी (ऋषयः) वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता लोग (रथ्यः) सारथि (न) जैसे (रश्मीन्) लगाम की रस्सी को ग्रहण करता वैसे (पूर्वेषाम्) पूर्वज विद्वानों के (पन्थाम्) मार्ग को (अनु, दृश्य) अनुकूलता से देख के (अन्वालेभिरे) पश्चात् प्राप्त होते हैं । वैसे होकर तुम लोग भी आप्तों के मार्ग को प्राप्त होओ ॥४९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो रागद्वेषादि दोषों को दूर से छोड़ आपस में प्रीति रखने वाले हों, ब्रह्मचर्य्य से धर्म के अनुष्ठानपूर्वक समस्त वेदों को जान के सत्य असत्य का निश्चय कर सत्य को प्राप्त हों और असत्य को छोड़ के आप्तों के भाव से वर्त्तते हैं वे सुशिक्षित सारथियों के समान अभीष्ट धर्मयुक्त मार्ग में जाने को समर्थ होते और वे ही ऋषिसंज्ञक होते हैं ॥४९॥

आयुष्यमित्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब ऐश्वर्य और जय आदि सम्पादन विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥५०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (औद्भिदम्) दुःखों के नाशक (आयुष्यम्) जीवन के लिये हितकारी (वर्चस्यम्) अध्ययन के उपयोगी (रायः, पोषम्) धन की पुष्टि करने हारे (वर्चस्वत्) प्रशस्त अन्नों के हेतु (हिरण्यम्) तेजःस्वरूप सुवर्णादि ऐश्वर्य (जैत्राय) जय होने के लिए (माम्) मुझ को (आ, विशतात्) आवेश करे अर्थात् मेरे निकट स्थिर रहे वह तुम लोगों के निकट भी स्थिर होवे ॥५०॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने तुल्य सब को जानते और विद्वानों के साथ विचार कर सत्यासत्य का निर्णय करते हैं वे ही दीर्घ अवस्थापूर्ण विद्याओं, समग्र ऐश्वर्य और विजय को प्राप्त होते हैं ॥५०॥

न तदित्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ब्रह्मचर्य की प्रशंसा का विषय अगले मन्त्रों में कहते हैं—

न तद्रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते
दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥५१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (देवानाम्) विद्वानों का (प्रथमजम्) प्रथम अवस्था वा ब्रह्मचर्य्य आश्रम में उत्पन्न हुआ (ओजः) बल पराक्रम है (तत्) उसको (न, रक्षांसि) न अन्यों को पीड़ा विशेष देकर अपनी ही रक्षा करने हारे और (न, पिशाचाः) न प्राणियों के रुधिरादि को खाने वाले हिंसक म्लेच्छाचारी दुष्टजन (तरन्ति) उल्लंघन करते (यः) जो मनुष्य (एतत्) इस (दाक्षायणम्) चतुर को प्राप्त होने योग्य (हिरण्यम्) तेजःस्वरूप ब्रह्मचर्य्य को (बिभर्त्ति) धारण वा पोषण करता है (सः) वह (देवेषु) विद्वानों में (दीर्घम्, आयुः) अधिक अवस्था को (कृणुते) प्राप्त होता और (सः) वह (मनुष्येषु) मननशील जनों में (दीर्घम्, आयुः) बड़ी अवस्था को (कृणुते) प्राप्त करता है ॥५१॥

भावार्थ—जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ते हैं उनको न कोई चोर न दायभागी और न उनको भार होता है जो विद्वान् इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म के साथ वर्त्तते हैं वे विद्वानों और मनुष्यों में बड़ी अवस्था को प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते और दूसरों को आनन्दित करते हैं ॥५१॥

यदेत्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥५२॥

पदार्थ—जो (दाक्षायणाः) चतुराई और विज्ञान से युक्त (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए सज्जन लोग (शतानीकाय) सैकड़ों सेनावाले (मे) मेरे लिये (यत्) जिस (हिरण्यम्) सत्यासत्यप्रकाशक विज्ञान का (आ, अबध्नन्) निबन्धन करें (तत्) उसको मैं (शतशारदाय) सौ वर्ष तक जीवन के लिये (आ, बध्नामि) नियत करता हूँ। हे विद्वान् लोगो ! जैसे मैं (युष्मान्) तुम लोगों को प्राप्त होके (जरदष्टिः) पूर्ण अवस्था को व्याप्त होने वाला(असम्) होऊं वैसे तुम लोग मेरे प्रति उपदेश करो ॥५२॥

भावार्थ—एक ओर सैकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देने वाली होती है। जो लोग बहुत काल तक ब्रह्मचर्य धारण करके विद्वानों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण कर उसके अनुकूल वर्त्तते हैं वे थोड़ी अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥५२॥

उत न इत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः।

पञ्चमः स्वरः ॥

अब कौन सब के रक्षक होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।

विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥५३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में होने वाला (अहिः) मेघ के तुल्य और (पृथिवी) तथा (समुद्रः) अन्तरिक्ष के तुल्य (एकपात्) एक प्रकार के निश्चल अव्यभिचारी बोध वाला (अजः) जो कभी उत्पन्न नहीं होता वह परमेश्वर (नः) हमारे वचनों को (शृणोतु) सुने तथा (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने वाले (हुवानाः) स्पर्द्धा करते हुए (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उत) और (कविशस्ताः) बुद्धिमानों से प्रशंसा किये हुए (स्तुताः) स्तुति के प्रकाशक (मन्त्राः) विचार के साधक मन्त्र हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥५३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी आदि पदार्थ, मेघ और परमेश्वर सब की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और विद्वान् लोग सब को पालते हैं ॥५३॥

इमा इत्यस्य कूर्मगात्समद ऋषिः। आदित्या देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब वाणी का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।

शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥५४॥

पदार्थ—मैं (आदित्येभ्यः) तेजस्वी (राजभ्यः) राजाओं से जिन (इमाः) इन सत्य (गिरः) वाणियों को (जुह्वा) ग्रहण के साधन से (सनात्) नित्य (जुहोमि) ग्रहण स्वीकार करता हूँ उन (घृतस्नूः) जल के तुल्य अच्छे व्यवहार को शोधने वाली (नः) हम लोगों की वाणियों को (मित्रः) मित्र [(अर्यमा) न्यायकारी (भगः) ऐश्वर्यवान् (तुविजातः) बहुतों में प्रसिद्ध] (दक्षः) चतुर (अंशः) विभागकर्त्ता और (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (शृणोतु) सुने ॥५४॥

भावार्थ—विद्यार्थी लोगों ने आचार्य्यों से जिन सुशिक्षित वाणियों को ग्रहण किया उनको अन्य आप्त लोग सुन और अच्छे प्रकार परीक्षा करके शिक्षा करें ॥५४॥

सप्तेत्यस्य कण्व ऋषिः। अध्यात्मं प्राणा देवताः। भुरिग्जगती छन्दः।

निषादः स्वरः ॥

अब शरीर और इन्द्रियों का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥५५॥

पदार्थ—जो (सप्त, ऋषयः) विषयों अर्थात् शब्दादि को प्राप्त कराने वाले पाँच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि ये सात ऋषि इस (शरीरे) शरीर में (प्रतिहिताः) प्रतीति के साथ स्थिर हुए हैं वे ही (सप्त) सात (अप्रमादम्) जैसे प्रमाद अर्थात् भूल न हो वैसे (सदम्) ठहरने के आधार शरीर को (रक्षन्ति) रक्षा करते वे (स्वपतः) सोते हुए जन के (आपः) शरीर को व्याप्त होने वाला उक्त (सप्त) सात (लोकम्) जीवात्मा को (ईयुः) प्राप्त होते हैं (तत्र) उस लोक प्राप्ति समय में (अस्वप्नजौ) जिन को स्वप्न कभी नहीं होता (सत्रसदौ) जीवात्माओं की रक्षा करने वाले (च) और (देवौ) स्थिर उत्तम गुणों वाले प्राण और अपान (जागृतः) जागते हैं ॥५५॥

भावार्थ—इस शरीर में स्थिर व्यापक विषयों के जानने वाले अन्तःकरण के सहित पाँच ज्ञानेन्द्रिय ही निरन्तर शरीर की रक्षा करते और जब जीव सोता है तब उसी को आश्रय कर तमोगुण के बल से भीतर को स्थिर होते किन्तु बाह्य विषय का बोध नहीं कराते और स्वप्नावस्था में जीवात्मा की रक्षा में तत्पर तमोगुण से न दबे हुए प्राण और अपान जागते हैं अन्यथा यदि प्राण अपान भी सो जावें तो मरण का ही सम्भव करना चाहिये ॥५५॥

उत्तिष्ठेत्यस्य कण्व ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। निचृद्बृहती छन्दः।

मध्यमः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुष क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥५६॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणः) धन के (पते) रक्षक (इन्द्र) ऐश्वर्यकारक विद्वन् ! (देवयन्तः) दिव्य विद्वानों की कामना करते हुए हम लोग जिस(त्वा) आपकी (ईमहे) याचना करते हैं जिस आप को (सुदानवः) सुन्दर दान देने वाले (मरुतः) मनुष्य (उप, प्र, यन्तु) समीप से प्रयत्न के साथ प्राप्त हों सो आप (उत्, तिष्ठ) उठिये और (सचा) सत्य के सम्बन्ध से (प्राशूः) उत्तम भोग करनेहारे (भव) हूजिये ॥५६॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जो लोग विद्या की कामना करते हुए आपका आश्रय लेवें उनके अर्थ विद्या देने के लिए आप उद्यत हूजिये ॥५६॥

प्रनूनमित्यस्य कण्व ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। विराट् बृहती छन्दः।

मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्मिन्) जिस परमात्मा में (इन्द्रः) बिजुली वा सूर्य्य (वरुणः) जल वा चन्द्रमा (मित्रः) प्राण वा अन्य अपानादि वायु (अर्यमा) सूत्रात्मा वायु (देवाः) ये सब उत्तम गुण वाले (ओकांसि) निवासों को (चक्रिरे) किये हुए हैं वह (ब्रह्मणः) वेदविद्या का (पतिः) रक्षक जगदीश्वर (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय पदार्थों में श्रेष्ठ (मन्त्रम्) वेदरूप मन्त्रभाग को (नूनम्) निश्चय कर (प्र, वदति) अच्छे प्रकार कहता है ऐसा तुम जानो ॥५७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा में कार्यकारणरूप सब जगत् जीव वसते हैं तथा जो सब जीवों के हितसाधक वेद का उपदेश करता हुआ उसी की तुम लोग भक्ति, सेवा, उपासना करो ॥५७॥

ब्रह्मणस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः।

धैवतः स्वरः ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥

य इमा विश्वा विश्वकर्म्मा यो नः पिता

अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ॥५८॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणः) ब्रह्माण्ड के (पते) रक्षक ईश्वर ! (देवाः) विद्वान् लोग (विदथे) प्रकट करने योग्य व्यवहार में (यत्) जिसकी रक्षा वा उपदेश करते हैं और जिसको (सुवीराः) सुन्दर उत्तम वीर पुरुष हम लोग (बृहत्) बड़ा श्रेष्ठ (वदेम) कहें उस (अस्य) इस (सूक्तस्य) अच्छे प्रकार कहने योग्य वचन के (त्वम्) आप (यन्ता) नियमकर्त्ता हूजिये (च) और (तनयम्) विद्या का शुद्ध विचार करनेहारे पुत्रवत् प्रियपुरुष को (बोधि) बोध कराइये तथा (तत्) उस (भद्रम्) कल्याणकारी (विश्वम्) सब जीवमात्र को (जिन्व) तृप्त कीजिये ॥ ५८ ॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम करने वाले हूजिये हमारे सन्तानों को विद्यायुक्त कीजिये सब जगत् की यथावत् रक्षा, न्याययुक्त धर्म, उत्तम शिक्षा और परस्पर प्रीति उत्पन्न कीजिये ॥ ५८ ॥

इस अध्याय में मन का लक्षण, शिक्षा, विद्या की इच्छा, विद्वानों का सङ्ग, कन्याओं का प्रबोध, चेतनता, विद्वानों का लक्षण, रक्षा की प्रार्थना, बल ऐश्वर्य की इच्छा, सोम ओषधि का लक्षण, शुभ कर्म की इच्छा, परमेश्वर और सूर्य का वर्णन, अपनी रक्षा, प्रातःकाल का उठना, पुरुषार्थ से ऋद्धि और सिद्धि पाना, ईश्वर के जगत् का रचना, महाराजाओं का वर्णन, अश्वि के गुणों का कथन, अवस्था का बढ़ाना, विद्वान् और प्राणों का लक्षण और ईश्वर का कर्त्तव्य कहा है। इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

अब चौतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

卐 अथ पञ्चत्रिंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

अपेत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः । पितरो देवताः । पूर्वस्य पिपीलिकामध्या-गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । द्युभिरित्युत्तरस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पैंतीसवें अध्याय का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में व्यवहार और जीव की गति विषय को कहा है—

अपे॒तो य॑न्तु प॒णयो॒ऽसु॑म्ना देवपी॒यव॑: । अ॒स्य लो॒कः सु॒ताव॑तः ।
द्यु॒भि॒रहो॑भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्वव॒सान॑मस्मै ॥१॥

पदार्थ—जो (देवपीयवः) विद्वानों के द्वेषी (पणयः) व्यवहारी लोग दूसरों के लिये (असुम्ना) दुःखों को देते हैं वे (इतः) यहां से (अप, यन्तु) दूर जावें (लोकः) देखने योग्य (यमः) सब का नियन्ता परमात्मा (द्युभिः) प्रकाश-मान (अहोभिः) दिन (अक्तुभिः) और रात्रियों के साथ (अस्य) इस (सुतावत) वेद वा विद्वानों से प्रेरित प्रशस्त कर्मों वाले जनों के सम्बन्धी (अस्मै) इस मनुष्य के लिये (व्यक्तम्) प्रसिद्ध (अवसानम्) अवकाश को (ददातु) देवे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो लोग आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वानों से द्वेष करते वे शीघ्र ही दुःख को प्राप्त होते हैं, जो जीव शरीर छोड़ के जाते हैं उनके लिये यथायोग्य अवकाश देकर उनके कर्मानुसार परमेश्वर सुख दुःख फल देता है ॥ १ ॥

सविता तयित्यस्य आदित्या देवा ऋषयः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स॒वि॒ता ते॒ शरी॑रेभ्यः पृथि॒व्यां लो॒कमि॑च्छतु ।
तस्मै॑ युज्यन्तामु॒स्रिया॑: ॥२॥

पदार्थ—हे जीव ! (सविता) परमात्मा जिस (ते) तेरे (शरीरेभ्यः) जन्मजन्मान्तरों के शरीरों के लिये (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष वा भूमि में (लोकम्) कर्मों के अनुकूल सुख दुःख के साधन प्रापक स्थान को (इच्छतु) चाहे (तस्मै) उस तेरे लिये (उस्रियाः) प्रकाशरूप किरण (युज्यन्ताम्) अर्थात् उपयोगी हों ॥२॥

भावार्थ—हे जीवो ! जो जगदीश्वर तुम्हारे लिये सुख चाहता है और किरणों के द्वारा लोकलोकान्तर को पहुँचाता है वही तुम लोगों को न्यायकारी मानना चाहिये ॥ २ ॥

वायुरित्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः । सविता देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

जीवों की कर्म गति का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वा॒युः पु॑नातु स॒वि॒ता पु॑नात्व॒ग्नेर्भ्राज॑सा॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च॑सा ।
विमु॑च्यन्तामु॒स्रिया॑: ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (वायुः) पवन (अग्नेः) बिजुली की (भ्राजसा) दीप्ति से (सूर्यस्य) सूर्य के (वर्चसा) तेज से जिन हम लोगों को (पुनातु) पवित्र करे (सविता) सूर्य (पुनातु) पवित्र करे (उस्रियाः) किरण (मुच्यन्ताम्) छोड़े ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब जीव शरीरों को छोड़ के विद्युत् सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं तब किरण उनको छोड़ देती हैं ॥ ३ ॥

अश्वत्थ इत्यस्य आदित्या देवा ऋषयः । वायुः सविता देवते । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒श्व॒त्थे वो॑ नि॒षद॑नं प॒र्णे वो॑ वस॒तिष्कृ॒ता ।
गो॒भाज॒ इत्किला॑सथ॒ यत्स॒नव॑थ॒ पूरु॑षम् ॥४॥

पदार्थ—हे जीवो ! जिस जगदीश्वर ने (अश्वत्थे) कल ठहरेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार में (वः) तुम लोगों की (निषदनम्) स्थिति की (पर्णे) पत्ते के तुल्य चञ्चल जीवन में (वः) तुम्हारा (वसतिः) निवास (कृता) किया (यत्) जिस (पुरुषम्) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को (किल) ही (सनवथ) सेवन करो उसके साथ (गोभाजः) पृथिवी वाणी इन्द्रिय वा किरणों का सेवन करने वाले (इत्) ही तुम लोग प्रयत्न के साथ धर्म में स्थिर (असथ) होओ ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अनित्य संसार में नित्य शरीरों और पदार्थों को प्राप्त हो के क्षणभंगुर जीवन में धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हों ॥४॥

सवितेत्यस्यादित्या देवा वा ऋषयः । वायुसवितारौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कन्या क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स॒वि॒ता ते॒ शरी॑राणि मा॒तुरु॒पस्थ॒ आ व॑पतु ।
तस्मै॑ पृथिवि॒ शं भ॑व ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (पृथिवी) भूमि के तुल्य सहनशील कन्या ! तू जिस (ते) तेरे (शरीराणि) आश्रयों को (मातुः) माता के तुल्य मान्य देने वाली पृथिवी के (उपस्थे) समीप में (सविता) उत्पत्ति करने वाला पिता (आ, वपतु) स्थापित करे सो तू (तस्मै) उस पिता के लिये (शम्) सुखकारिणी (भव) हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे कन्याओ ! तुम को उचित है कि विवाह के पश्चात् भी माता और पिता में प्रीति न छोड़ो क्योंकि उन्हीं दोनों से तुम्हारे शरीर उत्पन्न हुए और पाले गये हैं ॥ ५ ॥

प्रजापतावित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्र॒जाप॑तौ त्वा दे॒वता॑यामु॒पोद॑के लो॒के नि द॑धाम्यसौ ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे जीव ! जो (असौ) यह लोक (नः) हमारे (अघम्) पाप को (अप, शोशुचत्) शीघ्र सुखा देवे उस (प्रजापतौ) प्रजा के रक्षक (देवतायाम्) पूजनीय परमेश्वर में तथा (उपोदके) उपगत समीपस्थ उदक जिसमें हो (लोके) दर्शनीय स्थान में (त्वा) आप को (निदधामि) निरन्तर धारण करता हूँ ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर उपासना किया हुआ पापाचरण से पृथक् कराता है उसी में भक्ति करने के लिये तुम को मैं स्थिर करता हूँ जिस से सदैव तुम लोग श्रेष्ठ सुख के देखने को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

परमित्यस्य सङ्कुसुक ऋषिः । यमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

परं॑ मृत्यो॒ अनु॒ परे॑हि॒ पन्थां॒ यस्ते॒ अ॒न्य इत॑रो देव॒याना॑त् ।
चक्षु॑ष्मते शृण्व॒ते ते॑ ब्रवीमि॒ मा नः॑ प्र॒जाᳪं री॑रिषो॒ मोत वी॒रान् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (यः) जो (ते) तेरा (देवयानात्) जिस मार्ग से विद्वान् लोग चलते उससे (इतरः) भिन्न (अन्यः) और मार्ग है उस (पन्थाम्) मार्ग को (मृत्यो) मृत्यु (परा, इहि) दूर जावे जिस कारण तू (परम्) उत्तम देवमार्ग को (अनु) अनुकूलता से प्राप्त हो इसी से (चक्षुष्मते) उत्तम नेत्रवाले (शृण्वते) सुनते हुए (ते) तेरे लिये (ब्रवीमि) उपदेश करता हूँ जैसे मृत्यु (नः) हमारी प्रजा को न मारे और वीर पुरुषों को भी न मारे वैसे तू (प्रजाम्) सन्तानादि को (मा, रीरिषः) मत मार वा विषयादि से नष्ट मत कर (उत) और (वीरान्) विद्या और शरीर के बल से युक्त वीर पुरुषों को (मा) मत नष्ट कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जीवन पर्यन्त विद्वानों के मार्ग से चल के उत्तम अवस्था को प्राप्त हों और ब्रह्मचर्य के विना स्वयंवर विवाह करके कभी न्यून अवस्था की प्रजा सन्तानों को न उत्पन्न करें और न इन सन्तानों को ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से अलग रक्खें ॥ ७ ॥

शं वात इत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सृष्टि के पदार्थ मनुष्यों को कैसे सुखकारी हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

शं वा॒तः शᳪं हि ते॒ घृणि॒ः शं ते॑ भव॒न्त्विष्ट॑काः ।
शं ते॑ भवन्त्व॒ग्नय॒: पार्थि॑वासो॒ मा त्वा॒ऽभि शू॑शुचन् ॥८॥

पदार्थ—हे जीव ! (ते) तेरे लिये (वातः) वायु (शम्) सुखकारी हो (घृणिः) किरणयुक्त सूर्य (शम्, हि) सुखकारी हो (इष्टकाः) वेदी में चयन की हुई ईंटें तेरे लिये (शम्) सुखदायिनी (भवन्तु) हों (पार्थिवासः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (ते) तेरे लिये (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) होवें, ये सब (त्वा) तुझ को (मा, अभि शूशुचन्) सब ओर से शीघ्र शोककारी न हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे जीवो ! वैसे ही तुम को धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तना चाहिये जैसे जीने वा मरने के बाद भी तुम को सृष्टि के वायु आदि पदार्थ सुखकारी हों ।८।

कल्पन्तामित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । विश्वेदेवा देवताः । विराट् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

कल्पन्तांते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः ।
अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥९॥

पदार्थ—हे जीव (ते) तेरे लिये (दिशः) पूर्व आदि दिशा (शिवतमाः) अत्यन्त सुखकारिणी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (तुभ्यम्) तेरे लिये (आपः) प्राण वा जल अति सुखकारी हों (तुभ्यम्) तेरे लिये (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र अति सुखकारी (भवन्तु) होवें (तुभ्यम्) तेरे लिये (अन्तरिक्षम्) आकाश (शिवम्) कल्याणकारी हो और (ते) तेरे लिये (सर्वाः) सब (दिशः) ईशानादि विदिशा अत्यन्त कल्याणकारी (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो लोग अधर्म को छोड़कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं उनके लिये पृथिवी आदि सृष्टि के सब पदार्थ अत्यन्त मङ्गलकारी होते हैं ॥९॥

अश्मन्वतीत्यस्य सुचीक ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन लोग दुःख के पार होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अश्मन्वती रीयते सꣳ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥

पदार्थ—हे (सखायः) मित्रो ! जो (अश्मन्वती) बहुत मेघों वा पत्थरों वाली सृष्टि वा नदी प्रवाह से (रीयते) चलती है उसके साथ जैसे (वयम्) हम लोग (ये) जो (अत्र) इस जगत् में वा समय में (अशिवाः) अकल्याणकारी (असन्) हैं उनको (जहीमः) छोड़ते हैं तथा (शिवान्) सुखकारी (वाजान्) अत्युत्तम अन्नादि के भागों को (अभि, उत्, तरेम) सब ओर से पार करें अर्थात् भोग चुकें वैसे तुम लोग (संरभध्वम्) सम्यक् आरम्भ करो (उत्तिष्ठत) उद्यत होओ और (प्रतरत) दुःखों का उल्लङ्घन करो ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बड़ी नौका से समुद्र के जैसे पार हों वैसे अशुभ आचरणों और दुष्ट जनों के पार हो प्रयत्न के साथ उद्यमी होके मङ्गलकारी आचरण करें वे दुःखसागर के सहज से पार होवें ॥ १० ॥

अपाघमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । आपो देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य पवित्र करनेवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अपाघमप किल्विषमप कृत्यामपो रपः ।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ॥११॥

पदार्थ—हे (अपामार्ग) अपामार्ग ओषधि जैसे रोगों को दूर करती वैसे पापों को दूर करने वाले सज्जन पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्मत्) हमारे निकट से (अघम्) पाप को (अप, सुव) दूर कीजिये (किल्विषम्) मन की मलिनता को आप दूर कीजिये (कृत्याम्) दुष्टक्रिया को (अप) दूर कीजिये (रपः) बाह्य इन्द्रियों के चञ्चलता रूप अपराध को (अपो) दूर कीजिये और (दुःष्वप्न्यम्) बुरे प्रकार की निद्रा में होने वाले बुरे विचार को (अप) दूर कीजिये ॥११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य जैसे अपामार्ग आदि ओषधियां रोगों को निवृत्त कर प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे आप सब दोषों से पृथक् होके अन्य मनुष्यों को अशुभ आचरण से अलग कर शुद्ध होते और दूसरों को करते हैं वे ही मनुष्यादि को पवित्र करने वाले हैं ॥ ११ ॥

सुमित्रिया न इत्यस्यादित्या देवा ऋषयः । आपो देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (आपः) प्राण वा जल तथा (ओषधयः) सोमादि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्रों के तुल्य हितकारिणी (सन्तु) होवें तुम्हारे लिये भी वैसी हों (यः) जो (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करता (च) और (यम्) जिस दुष्टाचारी से (वयम्) हम लोग (द्विष्मः) अप्रीति करें (तस्मै) उसके लिये वे पदार्थ (दुर्मित्रियाः) शत्रुओं के तुल्य दुःखदायी (सन्तु) होवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो राग द्वेष आदि दोषों को छोड़ कर सब में अपने आत्मा के तुल्य वर्त्ताव करते हैं उन धर्मात्माओं के लिये सब जल ओषधि आदि पदार्थ सुखकारी होते और जो स्वार्थ में प्रीति तथा दूसरों से द्वेष करने वाले हैं उन अधर्मियों के लिये ये सब उक्त पदार्थ दुःखदायी होते हैं मनुष्यों को चाहियें कि धर्मात्माओं के साथ प्रीति और दुष्टों के साथ निरन्तर अप्रीति करें परन्तु उन दुष्टों का भी चित्त से सदा कल्याण ही चाहें ॥ १२ ॥

अनड्वाहमित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । कृषीबला देवताः । स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन मनुष्य कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये ।
स न इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (वह्निः) शीघ्र पहुँचाने वाला अग्नि (नः, देवेभ्यः) हम विद्वानों के लिये (सन्तरणः) सम्यक् मार्गों से पार करने वाला होता है उस (सौरभेयम्) सुरा गौ के सन्तान (अनड्वाहम्) गाड़ी आदि को खींचने वाले बैल के तुल्य वर्त्तमान अग्नि के हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (अन्वारभामहे) यान बना के उनमें प्राणियों को स्थिर करें (सः) वह आपके लिये (इन्द्र, इव) बिजुली के तुल्य (भव) होवें ॥१३॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली आदि अग्नि की विद्या से यान बनाने आदि काय्यों के करने का अभ्यास करते हैं वे अति बली बैलों से खेती करने वालों के समान काय्यों को सिद्ध कर सकते और विद्युत् अग्नि के तुल्य शीघ्र इधर उधर जा सकते हैं ॥१३॥

उद्वयन्तमेत्यस्यादित्या देवा ऋषयः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन मोक्ष को पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (तमसः) अन्धकार से परे (स्वः) स्वयं प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान (देवत्रा) विद्वानों वा प्रकाशमय सूर्य्यादि पदार्थों में (देवम्) विजयादि लाभ के देने वाले (ज्योतिः) स्वयं प्रकाशमयस्वरूप (उत्तमम्) सब से बड़े (उत्तरम्) दुःखों से पार करने वाले (सूर्य्यम्) अन्तर्यामी रूप से अपनी व्याप्ति कर सब चराचर के स्वामी परमात्मा को (पश्यन्तः) ज्ञान दृष्टि से देखते हुए (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कृष्टता के साथ जानें उसी को तुम लोग भी जानो ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य को देखते हुए दीर्घावस्था वाले धर्मात्मा जन सुख को प्राप्त होते वैसे ही धर्मात्मा योगीजन महादेव सब के प्रकाशक जन्ममृत्यु के क्लेश आदि से पृथक् वर्त्तमान सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को साक्षात् जान मोक्ष को पाकर निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥ १४ ॥

इममित्यस्य संकसुक ऋषिः । ईश्वरो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥१५॥

पदार्थ—मैं परमेश्वर (एषाम्) इन जीवों के (एतम्) परिश्रम से प्राप्त किये (अर्थम्) द्रव्य को (अपरः) अन्य कोई (मा) नहीं (नु) शीघ्र (गात्) प्राप्त कर लेवे इस प्रकार (इमम्) इस (जीवेभ्यः) जीवों के लिये (परिधिम्) मर्यादा को (दधामि) व्यवस्थित करता हूँ इस प्रकार आचरण करते हुए आप लोग (पुरूचीः) बहुत वर्षों के सम्बन्धी (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं भर (जीवन्तु) जीवो (पर्वतेन) ज्ञान वा ब्रह्मचर्यादि से (मृत्युम्) मृत्यु को (अन्तः, दधताम्) दबाओ अर्थात् दूर करो ॥१५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग परमेश्वर ने नियत किया कि धर्म का आचरण करना और अधर्म का आचरण छोड़ना चाहिये, इस मर्यादा को उल्लङ्घन नहीं करते अन्याय से दूसरे के पदार्थों को नहीं लेते वे नीरोग होकर सौ वर्ष तक जी सकते हैं और ईश्वराज्ञाविरोधी नहीं । जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ कर धर्म का आचरण करते हैं उनको मृत्यु मध्य में नहीं दबाता ॥१५॥

अग्न इत्यस्यादित्या देवा ऋषयः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कौन मनुष्य दीर्घ अवस्था वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वन् ! आप (आयूंषि) अन्नादि पदार्थों वा अवस्थाओं को (पवसे) पवित्र करने (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) बल (च) और (इषम्) विज्ञान को (आ, सुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये तथा (दुच्छुनाम्) कुत्तों के तुल्य दुष्ट हिंसक प्राणियों को (आरे) दूर वा समीप में (बाधस्व) ताड़ना विशेष दीजिये ॥१६॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और सङ्ग छोड़ के परमेश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् की सेवा करते हैं वे धनधान्य से युक्त हुए दीर्घ अवस्था वाले होते हैं ॥१६॥

आयुष्मानित्यस्य वैखानस ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥१७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी राजन् ! जैसे (हविषा) घृतादि से (वृधानः) बढ़ा हुआ (घृतप्रतीकः) जल को प्रसिद्ध करने वाला (घृतयोनिः) प्रदीप्त तेज जिसका कारण वा घर है वह अग्नि बढ़ाता है वैसे (आयुष्मान्) बहुत अवस्था वाले आप (एधि) हूजिये (मधु) मधुर (चारु) सुन्दर (गव्यम्) गौ के (घृतम्) घी को (पीत्वा) पी के (पुत्रम्) पुत्र की (पितेव) पिता जैसे वैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इमान्) इन प्रजास्थ मनुष्यों की (अभि) प्रत्यक्ष (रक्षतात्) रक्षा कीजिये ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यादि रूप से अग्नि बाहर भीतर रह कर सब की रक्षा करता है वैसे ही राजा पिता के तुल्य वर्त्ताव करता हुआ पुत्र के समान इन प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करे ॥१७॥

परीम इत्यस्य भरद्वाजः शिरिम्बिठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ२ऽआ दधर्षति ॥१८॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! जो (इमे) ये तुम लोग (गाम्) वाणी वा पृथिवी का (परि, अनेषत) स्वीकार करो (अग्निम्) अग्नि को (परि, अहृषत) सब ओर से हरो अर्थात् कार्य में लाओ। इन (देवेषु) विद्वानों में (श्रवः) अन्न को (अक्रत) करो इस प्रकार के आप लोगों को (कः) कौन (आ, दधर्षति) धमका सकता है ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष पृथिवी के समान धीर अग्नि के तुल्य तेजस्वी अन्न के समान अवस्थावर्द्धक होते हुए धर्म से प्रजा की रक्षा करते हैं वे अतुल राजलक्ष्मी को पाते हैं ॥१८॥

क्रव्यादमित्यस्य दमन ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥१९॥

पदार्थ—(प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानता हुआ मैं (क्रव्यादम्) कच्चे मांस को खाने और (अग्निम्) अग्नि के तुल्य दूसरों को दुःख से तपाने वाले जिस दुष्ट को (दूरम्) दूर (प्र हिणोमि) पहुँचाता और जिन (रिप्रवाहः) पाप उठाने वाले दुष्टों को दूर पहुँचाता हूँ वह और वे सब पापी (यमराज्यम्) न्यायाधीश राजा के न्यायालय में (गच्छतु) जावें और (इह) इस जगत् में (इतरः) दूसरा (अयम्) यह (जातवेदाः) धर्मात्मा विद्वान् जन (देवेभ्यः) धार्मिक विद्वानों (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य विज्ञान को (एव) ही (वहतु) प्राप्त होवे ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे न्यायाधीश राजपुरुषो! तुम लोग दुष्टाचारी जनों को सम्यक् ताड़ना देकर प्राणों से भी छुड़ा के और श्रेष्ठ का सत्कार करके इस सृष्टि में साम्राज्य अर्थात् चक्रवर्त्ती राज्य करो ॥१९॥

वह वपामित्यस्यादित्या देवा ऋषयः। जातवेदा देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब पितृ लोगों का सेवन विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराके।
मेदसः कुल्या उप तान्त्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सं नमन्तां स्वाहा ॥२०॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान को प्राप्त हुए जन आप (यत्र) जहाँ (एतान्) इन (पराके) दूर (निहितान्) स्थित पितृजनों को (वेत्थ) जानते हो वहां (पितृभ्यः) जनक वा विद्या शिक्षा देने वाले सज्जन पितरों से (वपाम्) खेती होने के योग्य भूमि को (वह) प्राप्त हूजिये जैसे (मेदसः) उत्तम (कुल्याः) जल के प्रवाह से युक्त नदी वा नहरें (तान्) उन सज्जनों को (उप, स्रवन्तु) निकट प्राप्त हों वैसे (स्वाहा) सत्यक्रिया से (एषाम्) इन लोगों की (आशिषः) इच्छा (सत्याः) यथार्थ (सम्, नमन्ताम्) सम्यक् प्राप्त होवें ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो दूर रहने वाले पितृ और विद्वानों को बुलाकर सत्कार करते हैं जैसे बाग बगीचों के वृक्षादि को जल वायु बढ़ाते वैसे उनकी इच्छा सत्य हुई सब ओर से बढ़ती हैं ॥२०॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। पृथिवी देवता। निचृद् गायत्री अप न इति प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कुलीन स्त्री कैसी होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम् ॥२१॥

पदार्थ—हे (पृथिवि) भूमि के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री ! तू जैसे (अनृक्षरा) कण्टक आदि से रहित (निवेशनी) बैठने का आधार भूमि (स्योना) सुख करनेवाली होती वैसे (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख को (यच्छ) दे जैसे न्यायाधीश (नः) हमारे (अघम्) पाप को (अप, शोशुचत्) शीघ्र दूर करे वा शुद्ध करे वैसे तू अपराध को दूर कर ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करने वाली क्रूरता आदि दोषों से अलग बहुत प्रशंसित दूसरों के दोषों का निवारण करनेहारी है वही घर के कार्य्यों में योग्य होती है ॥२१॥

अस्मादित्यस्यादित्या देवा ऋषयः। अग्निर्देवता। स्वराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥२२॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्मात्) इस लोक से अर्थात् वर्त्तमान मनुष्यों से (अधि) सर्वोपरि (जातः) प्रसिद्ध विराजमान (असि) हैं इससे (अयम्) यह पुत्र (त्वत्) आप से (पुनः) पीछे (असौ) विशेष नाम वाला (स्वाहा) सत्य क्रिया से (लोकाय) देखने योग्य (स्वर्गाय) विशेष सुख भोगने के लिये (जायताम्) प्रकट समर्थ होवे ॥२२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि इस जगत् में मनुष्यों का शरीर धारण कर विद्या, उत्तम शिक्षा, अच्छा स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिये प्रयत्न करो और यही मनुष्यजन्म की सफलता है ऐसा जानो ॥२२॥

इस अध्याय में व्यवहार, जीव की गति, जन्म, मरण, सत्य, आशीर्वाद, अग्नि और सत्य इच्छा आदि का व्याख्यान होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

अथ षट्त्रिंशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दु॒रि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

ऋचमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छत्तीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के संग से क्या होता है इस विषय को कहते हैं—

ऋचं॒ वाचं॒ प्र प॑द्ये॒ मनो॒ यजुः॒ प्र प॑द्ये॒
साम॑ प्रा॒णं प्र प॑द्ये॒ चक्षुः॒ श्रोत्रं॒ प्र प॑द्ये ।
वागोजः॑ स॒हौजो॒ मयि॑ प्राणापा॒नौ ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (मयि) मेरे आत्मा में (प्राणापानौ) प्राण और अपान ऊपर नीचे श्वास दृढ़ हों मेरी (वाक्) वाणी (ओजः) मानस बल को प्राप्त हो उस वाणी और उन श्वासों के (सह) साथ मैं (ओजः) शरीर बल को प्राप्त होऊं (ऋचम्) ऋग्वेद रूप (वाचम्) वाणी को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (मनः) मनन करनेवाले अन्तःकरण के तुल्य (यजुः) यजुर्वेद को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (प्राणम्) प्राण की क्रिया अर्थात् योगाभ्यासादिक उपासना के साधक (साम) सामवेद को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (चक्षुः) उत्तम नेत्र और (श्रोत्रम्) श्रेष्ठ कान को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग इन सब को प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! तुम लोगों के सङ्ग से मेरी ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसनीय वाणी, यजुर्वेद के समान मन, सामवेद के सदृश प्राण और सत्रह तत्त्वों से युक्त लिङ्ग शरीर स्वस्थ, सब उपद्रवों से रहित और समर्थ होवे ॥१॥

यन्मे छिद्रमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ईश्वर प्रार्थना विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यन्मे॒ छि॒द्रं चक्षु॑षो॒ हृद॑यस्य॒ मन॑सो॒ वाति॑तृण्णं॒ बृह॒स्पति॑र्मे॒ तद्द॑धातु ।
शं नो॑ भवतु॒ भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॑ ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की वा (हृदयस्य) अन्तःकरण की (छिद्रम्) न्यूनता (वा) वा (मनसः) मन की (अतितृण्णम्) व्याकुलता है (तत्) उस को (बृहस्पतिः) बड़े आकाशादि का पालक परमेश्वर (मे) मेरे लिये (दधातु) पुष्ट वा पूर्ण करे (यः) जो (भुवनस्य) सब संसार का (पतिः) रक्षक है वह (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी (भवतु) होवे ॥२॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और आज्ञापालन से अहिंसा धर्म्म को स्वीकार कर जितेन्द्रियता को सिद्ध करें ॥२॥

भूर्भुवः स्वरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । दैवी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

भूर्भुवः॒ स्वः॑ । तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (भूः) कर्मकाण्ड की विद्या (भुवः) उपासना काण्ड की विद्या और (स्वः) ज्ञानकाण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़के (यः) जो (नः) हमारी (धियः) धारणावती बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (देवस्य) कामना के योग्य (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के (तत्) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष (भर्गः) सब दुःखों के नाशक तेजस्वरूप का(धीमहि) ध्यान करें वैसे तुम लोग भी इसका ध्यान करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य कर्म उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म अनैश्वर्य और दुःख रूप मलों को छुड़ा के धर्म ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं उन को अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है ॥३॥

कया न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कया॑ नश्चि॒त्र आ भु॑वदू॒ती स॒दावृ॑धः॒ सखा॑ ।
कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता ॥ ४ ॥

पदार्थ—वह (सदावृधः) सदा बढ़ने वाला अर्थात् कभी न्यूनता को नहीं प्राप्त हो (चित्रः) आश्चर्यरूप गुण कर्म स्वभावों से युक्त परमेश्वर (नः) हम लोगों का (कया) किस (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (सखा) मित्र (आ, भुवत्) होवे तथा (कया) किस (वृता) वर्त्तमान (शचिष्ठया) अत्यन्त उत्तम बुद्धि से हम को शुभ गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे ॥४॥

भावार्थ—हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हम को प्रेरणा करता है कि जिस के सहाय से ही हम लोग धर्म अर्थ काम और मोक्षों के सिद्ध करने को समर्थ हो सकते हैं ॥४॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मंहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः ।
दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (मदानाम्) आनन्दों के बीच (मंहिष्ठः) अत्यन्त बड़ा हुआ (कः) सुखस्वरूप (सत्यः) विद्यमान पदार्थों में श्रेष्ठतम प्रजा का रक्षक परमेश्वर (अन्धसः) अन्नादि पदार्थ से (त्वाम्) तुझ को (मत्सत्) आनन्दित करता और (आरुजे) दुःखनाशक तेरे लिये (चित्) भी (दृढा) दृढ (वसु) धनों को देता है ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्नादि और सत्य के जताने से धनादि पदार्थ देके सब को आनन्दित करता है उस सुखस्वरूप परमात्मा की ही तुम लोग नित्य उपासना किया करो ॥५॥

अभी षु ण इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अ॒भी षु णः॒ सखी॑नामवि॒ता ज॑रितॄ॒णाम् । श॒तम्भ॑वास्यू॒तिभिः॑ ॥६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (शतम्) असंख्य ऐश्वर्य देते हुए (अभि, ऊतिभिः) सब ओर से प्रवृत्त रक्षादि क्रियाओं से (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्रों और (जरितॄणाम्) सत्य स्तुति करने वालों के (अविता) रक्षा करने वाले (सु, भवासि) सुन्दर प्रकार हूजिये इस से आप हम को सत्कार करने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो रागद्वेष किन्हीं से वैरभाव न रखने अर्थात् सबसे मित्रता रखने वाले सब मित्र मनुष्यों को असंख्य ऐश्वर्य और अधिकतर विज्ञान देके सब ओर से रक्षा करता है उसी परमेश्वर की नित्य सेवा किया करो ॥६॥

कया त्वमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । इन्द्रो देवता । वर्द्धमाना गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कया॒ त्वं न॑ ऊ॒त्याभि प्र म॑न्दसे वृषन् । कया॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥७॥

पदार्थ—हे (वृषन्) सब ओर से सुखों को वर्षाने वाले ईश्वर (त्वम्) आप (कया) किस (ऊत्या) रक्षण आदि क्रिया से (नः) हम को (अभि, प्र, मन्दसे) सब ओर से आनन्दित करते और (कया) किस रीति से (स्तोतृभ्यः) आपकी प्रशंसा करने वाले मनुष्यों के लिये सुख को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥७॥

भावार्थ—हे भगवन् परमात्मन् ! जिस युक्ति से आप धर्मात्माओं को आनन्दित करते उनकी सब ओर से रक्षा करते हैं उस युक्ति को हम को जताइये ॥७॥

इन्द्र इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । इन्द्रो देवता । द्विपाद्विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इन्द्रो॒ विश्व॑स्य राजति । शं नो॑ अस्तु द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजुली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं उन आप की कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिये (शम्) सुख होवे ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे जगदीश्वर ! जिससे आप सर्वत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य पश्वादि को सुख चाहने वाले हैं इससे सब को उपासना करने योग्य हैं ॥८॥

शन्न इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को अपने [और] दूसरों के लिये सुख की चाहना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शन्नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शन्नो॑ भवत्वर्य॒मा ।

शन्न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॒ शन्नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (नः) हमारे लिये (मित्रः) प्राण के तुल्य प्रिय मित्र (शम्) सुखकारी (भवतु) हो (वरुणः) जल के तुल्य शान्ति देने वाला जन (शम्) सुखकारी हो (अर्यमा) पदार्थों के स्वामी वा वैश्यों को मानने वाला न्यायाधीश (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (बृहस्पतिः) महती वेदरूप वाणी का रक्षक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (उरुक्रमः) संसार की रचना में बहुत शीघ्रता करने वाला (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी होवे वैसे हम लोगों के लिये भी होवे ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अपने लिये सुख चाहें वैसे दूसरों के लिये भी और जैसे आप सत्सङ्ग करना चाहें वैसे इस में अन्य लोगों को भी प्रेरणा किया करें ॥९॥

शन्नो वात इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । वातादयो देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

शन्नो॒ वातः॑ पवता॒ᳪ शन्न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑ ।

शन्नः॒ कनि॑क्रद॒द्दे॒वः प॒र्जन्यो॑ अ॒भि व॑र्षतु ॥१०॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! वा विद्वान् पुरुष ! जैसे (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्तम गुण युक्त विद्युत्रूप अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (अभि, वर्षतु) सब ओर से वर्षा करे वैसे हमको शिक्षा कीजिये ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस प्रकार से वायु सूर्य्य विजुली और मेघ सब को सुखकारी हों वैसा अनुष्ठान किया करो ॥१०॥

अहानि शमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अहा॑नि॒ शं भव॑न्तु नः॒ शᳪ रात्रीः॒ प्रति॑ धीयताम् ।

शन्न॑ इन्द्राग्नी भव॑ताम॒वोभिः॒ शन्न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।

शन्न॑ इन्द्रापू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः ॥११॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा विद्वान् जन ! जैसे (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों (रात्रीः) रातें (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हमको धारण करें (इन्द्राग्नी) विजुली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिनसे प्राप्त हुआ वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों (वाजसातौ) अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथिवी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी होवें और (इन्द्रासोमा) बिजुली और ओषधियां (शम्) सुखकारिणी हों वैसे हम को आप अनुकूल शिक्षा करें ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो ईश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् लोगों की शिक्षा में आप लोग प्रवृत्त रहो तो दिन रात तुम्हारे भूमि आदि सब पदार्थ सुखकारी होवें ॥११॥

शन्नो देवीरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखों से युक्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ ।

शंयोर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! जैसे (अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिये (पीतये) पीने के अर्थ (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हमको (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभि, स्रवन्तु) सब ओर से करें वैसे उपदेश करो ॥१२॥

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञादि से जलादि पदार्थों को शुद्ध सेवन करते हैं उन पर सुखरूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है ॥१२॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पतिव्रता स्त्री कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स्यो॒ना पृ॑थिवि नो भवानृक्ष॒रा नि॒वेश॑नी ।

यच्छा॑ नः॒ शर्म॑ स॒प्रथाः॑ ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्रि ! जैसे (अनृक्षरा) कांटे गढ़े आदि से रहित (निवेशनी) नित्य स्थिर पदार्थों को स्थापन करनेहारी (पृथिवी) भूमि (नः) हमारे लिये होती है वैसे तू हो वह पृथिवी (सप्रथाः) विस्तार के साथ वर्त्तमान (नः) हमारे लिये (शर्म) स्थान देवे वैसे (स्योना) सुख करनेहारी तू (नः) हमारे लिये घर के सुख को (यच्छ) दे ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब प्राणियों को सुख ऐश्वर्य देनेवाली पृथिवी वर्त्तमान है वैसे ही विदुषी पतिव्रता स्त्री पति आदि को आनन्द देनेवाली होती है ॥१३॥

आप इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आपो॒ हि ष्ठा म॑यो॒भुव॒स्ता न॑ ऊ॒र्जे द॑धातन ।

म॒हे रणा॑य॒ चक्ष॑से ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (आपः) जलों के तुल्य शान्तिशील विदुषी श्रेष्ठ स्त्रियो ! जैसे (मयोभुवः) सुख उत्पन्न करनेहारे जल (हि) जिस कारण (नः) हम को (महे) बड़े (रणाय, चक्षसे) प्रसिद्ध संग्राम के लिये वा (ऊर्जे) बल पराक्रम के अर्थ धारण वा पोषण करें वैसे इनको तुम लोग धारण करो और प्यारी (स्थ) होओ ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां सब ओर से सब को सुखी करतीं वैसे जलादि पदार्थ सब को सुखकारी होते हैं ऐसा जानो ॥१४॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यो वः॑ शि॒वत॑मो॒ रस॒स्तस्य॑ भाजयते॒ह नः॑ । उ॒श॒तीरि॑व मा॒तरः॑ ॥१५॥

पदार्थ—हे श्रेष्ठ स्त्रियो ! (यः) जो (वः) तुम्हारा (शिवतमः) अतिशय कल्याणकारी (रसः) आनन्दवर्द्धक स्नेहरूप रस है (तस्य) उस का (इह) इस जगत् में (नः) हम को (उशतीरिव, मातरः) पुत्रों की कामना करनेवाली माताओं के तुल्य (भाजयत) सेवा कराओ ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो होम आदि से जल शुद्ध किये जावें तो ये माता जैसे सन्तानों वा पतिव्रता स्त्रियां अपने पतियों को सुखी करती हैं वैसे सब प्राणियों को सुखी करते हैं ॥१५॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

तस्मा॒ अरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ ।

आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे तुम लोग (नः) हम को (आपः) जलों के तुल्य शान्त (जनयथ) प्रकट करो वैसे (वः) तुम को हम लोग शान्त प्रकट करें (च) और तुम लोग (यस्य) जिस पति के (क्षयाय) निवास के लिये (जिन्वथ) उस को तृप्त करो (तस्मै) उसके लिये हम लोग (अरम्) पूर्ण सामर्थ्य युक्त (गमाम) प्राप्त होवें ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री पुरुषों को योग्य है कि परस्पर आनन्द के लिये जल के तुल्य सरलता से वर्त्तें और शुभ आचरणों के साथ परस्पर सुशोभित ही रहें ॥१६॥

द्यौरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिक्शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे प्रयत्न करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्यौः शान्ति॑र॒न्तरि॑क्ष॒ᳪ शान्तिः॑ पृथि॒वी

शान्ति॒रापः॒ शान्ति॒रोष॑धयः॒ शान्तिः॑ ।

वन॒स्पत॑यः॒ शान्ति॒र्विश्वे॑ दे॒वाः शान्ति॒र्ब्रह्म॒ शान्तिः॒ सर्व॒ᳪ

शान्तिः॒ शान्ति॑रे॒व शान्तिः॒ सा मा॒ शान्ति॑रेधि ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (शान्तिः, द्यौः) प्रकाशयुक्त पदार्थ शान्तिकारक (अन्तरिक्षम्) दोनों लोकों के बीच का आकाश (शान्तिः) शान्तिकारी (पृथिवी) भूमि (शान्तिः) सुखकारी निरुपद्रव (आपः) जल वा प्राण (शान्तिः) शान्ति-

दायी (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियां (शान्तिः) सुखदायी (वनस्पतयः) वट आदि वनस्पति (शान्तिः) शान्तिकारक (विश्वे, देवाः) सब विद्वान् लोग (शान्तिः) उपद्रवनिवारक (ब्रह्म) परमेश्वर वा वेद (शान्तिः) सुखदायी (सर्वम्) सम्पूर्ण वस्तु (शान्तिरेव) शान्ति ही (शान्तिः) शान्ति (मा) मुझ को (एधि) प्राप्त होवें (सा) वह (शान्तिः) शान्ति तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ।१७।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे प्रकाश आदि पदार्थ शान्ति करने वाले होवें वैसे तुम लोग प्रयत्न करो ॥१७॥

दृत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिग् जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य धर्मात्मा हो सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१८॥

पदार्थ—हे (दृते) अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस से (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझ को (सम्, ईक्षन्ताम्) सम्यक् देखें (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणियों को (समीक्षे) सम्यक् देखूं इस प्रकार सब हम लोग परस्पर (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षामहे) देखें इस विषय में हम को (दृꣳह) दृढ़ कीजिये ॥१८॥

भावार्थ—वे ही धर्मात्मा जन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों को मानें किसी से भी द्वेष न करें और मित्र के सदृश सब का सदा सत्कार करें ।१८।

दृते दृꣳहेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दृते दृꣳह मा ।
ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम् ॥१९॥

पदार्थ—हे (दृते) समग्र मोह के आवरण का नाश करनेहारे उपदेशक विद्वन् वा परमेश्वर ! जिस से मैं (ते) आप के (संदृशि) सम्यक् देखने वा ज्ञान में (ज्योक्) निरन्तर (जीव्यासम्) जीवें (ते) आप के (संदृशि) समान दृष्टि विषय में (ज्योक्) निरन्तर (जीव्यासम्) जीवन व्यतीत करें उस जीवन विषय में (मा) मुझ को (दृꣳह) दृढ़ कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ - मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर की आज्ञा पालने और युक्त आहार विहार से सौ वर्ष तक जीवन का उपाय करें ॥ १९ ॥

नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर का उपासना विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव ॥२०॥

पदार्थ—हे भगवन् ईश्वर ! (हरसे) पाप हरने वाले (शोचिषे) प्रकाशक (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार तथा (अर्चिषे) स्तुति के योग्य (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) प्राप्त होवे (ते) आपकी (हेतयः) वज्र के तुल्य अमिट व्यवस्था (अस्मत्) हम से (अन्यान्) भिन्न अन्यायी शत्रुओं को (तपन्तु) दुःख देवें आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पावकः) पवित्रकर्त्ता (शिवः) कल्याणकारी (भव) हूजिये ॥ २० ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग आप के शुभ गुण कर्म स्वभावों के तुल्य अपने गुण कर्म स्वभाव करने के लिये आप को नमस्कार करते हैं और यह निश्चित जानते हैं कि अधर्मियों को आप की शिक्षा पीड़ा और धर्मात्माओं को आनन्दित करती है इस मङ्गलस्वरूप आप की ही हम लोग उपासना करते हैं ॥ २० ॥

नमस्त इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अनुष्टप छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥२१॥

पदार्थ—हे (भगवन्) अनन्त ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! (यतः) जिस कारण आप हमारे लिये (स्वः) सुख देने के अर्थ (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हैं इससे (विद्युते) बिजुली के समान अभिव्याप्त (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (स्तनयित्नवे) अधिकतर गर्जने वाले विद्युत् के तुल्य दुष्टों को भय देने वाले (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो और सब की सब प्रकार रक्षा करने हारे (ते) तेरे लिये (नमः) निरन्तर नमस्कार करें ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस कारण ईश्वर हमारे लिये सदा आनन्द के अर्थ सब साधन उपसाधनों को देता है इस से हम को सेवा करने योग्य है ॥ २१ ॥

यतोयत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥

पदार्थ—हे भगवन् ईश्वर ! आप अपने कृपाकटाक्ष से (यतोयतः) जिस जिस स्थान से (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) उस उस से (नः) हम को (अभयम्) भयरहित (कुरु) कीजिये (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं से और (नः) हमारे (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं से (शम्) सुख और (अभयम्) निर्भय (कुरु) कीजिये ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप जिस कारण सब में अभिव्याप्त हैं इस से हम को और दूसरों को सब कालों और सब देशों में सब प्राणियों से निर्भय कीजिये ॥ २२ ॥

सुमित्रियेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सोमो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कैसे पदार्थ हितकारी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ये (आपः) प्राण वा जल (ओषधयः) जो आदि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्र के समान वर्त्तमान (सन्तु) होवें वे ही (यः) जो अधर्मी (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करें (च) और (यम्) जिससे (वयम्) हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उस के लिये (दुर्मित्रियाः) शत्रु के तुल्य विरुद्ध (सन्तु) होवें ॥२३॥

भावार्थ—जैसे अनुकूलता से जीते हुए इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते वैसे जलादि पदार्थ भी देशकाल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुःखदायी होते हैं ॥ २३ ॥

तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना का विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम
शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२४॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! आप जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र के तुल्य सब के दिखाने वाले (पुरस्तात्) पूर्वकाल अर्थात् अनादि काल से (उत्, चरत्) उत्कृष्टता के साथ सब के ज्ञाता हैं (तत्) उस चेतन ब्रह्म आप को (शतम्, शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) देखें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) प्राणों को धारण करें जीवें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (शृणुयाम) शास्त्रों वा मङ्गल वचनों को सुनें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हों (च) और (शतात्, शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें जीवें सुनें पढ़ें उपदेश करें और अदीन रहें ॥२४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप की कृपा और आपके विज्ञान से आप की रचना को देखते हुए आप के साथ युक्त नीरोग और सावधान हुए हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें सत्य शास्त्रों और आप के गुणों को सुनें वेदादि को पढ़ावें सत्य का उपदेश करें कभी किसी वस्तु के विना पराधीन न हों सदैव स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें ॥२४॥

इस अध्याय में परमेश्वर की प्रार्थना, सब के सुख का भान, आपस में मित्रता करने की आवश्यकता, दिनचर्य्या का शोधन, धर्म का लक्षण, अवस्था का बढ़ाना और परमेश्वर का जानना कहा है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह छत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

॥ अथ सप्तत्रिंशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न ऽआ सुव ॥१॥

देवेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सविता देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब सैंतीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इस के पहिले मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आ ददे नारिरसि ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस कारण आप (**नारिः**) नायक (**असि**) हैं इस से (**सवितुः**) जगत् के उत्पादक (**देवस्य**) समस्त सुख के दाता (**प्रसवे**) उत्पन्न हुए जगत् में (**अश्विनोः**) अध्यापक और उपदेशक के (**बाहुभ्याम्**) बल पराक्रम से (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्ता जन के (**हस्ताभ्याम्**) हाथों से (**त्वा**) आप को (**आ, ददे**) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उत्तम विद्वानों को प्राप्त होके उन से विद्या शिक्षा ग्रहण कर इस सृष्टि में नायक हो ॥ १ ॥

युञ्जत इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अब योगाभ्यास का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**वयुनावित्**) उत्कृष्ट ज्ञानों में प्रवीण (**एकः**) अद्वितीय जगदीश्वर सब को (**वि, दधे**) रचता जिस (**सवितुः**) सर्वान्तर्यामी (**देवस्य**) समग्र जगत् के प्रकाशक ईश्वर की यह (**मही**) बड़ी (**परिष्टुतिः**) सब ओर से स्तुति प्रशंसा है (**होत्राः**) शुभगुणग्रहीता (**विप्राः**) अनेक प्रकार की बुद्धियों में व्याप्त बुद्धिमान् योगीजन जिस (**बृहतः**) सब से बड़े (**विपश्चितः**) अनन्त विद्यावाले (**विप्रस्य**) विशेषकर सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर के बीच (**मनः**) संकल्प विकल्प रूप मन को (**युञ्जते**) समाहित करते (**उत**) और (**धियः**) बुद्धि वा कर्मों को (**युञ्जते**) युक्त करते हैं (**इत्**) उसी की तुम लोग उपासना किया करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो योगीजनों को ध्यान करने योग्य जिस की प्रशंसा के हेतु सूर्य्य आदि दृष्टान्त वर्त्तमान हैं जो सर्वज्ञ असहायी सच्चिदानन्दस्वरूप है जिसके लिये सब धन्यवाद देने योग्य हैं उसी को इष्टदेव तुम लोग मानो ॥ २ ॥

देवीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब यज्ञ विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥३॥

पदार्थ—(**देवी**) उत्तम गुणों से युक्त (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि के तुल्य वर्त्तमान अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियो ! (**अद्य**) इस समय (**पृथिव्याः**) पृथिवी के बीच (**देवयजने**) विद्वानों के यज्ञस्थल में (**वाम्**) तुम दोनों के (**मखस्य**) यज्ञ के (**शिरः**) उत्तम अवयव को मैं (**राध्यासम्**) सम्यक् सिद्ध करूं (**मखस्य**) यज्ञ के (**शीर्ष्णे**) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये (**त्वा**) तुझ को और (**मखाय**) यज्ञ के लिये (**त्वा**) तुझ को सम्यक् सिद्ध करूं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! इस जगत् में जैसे सूर्य भूमि उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान हैं वैसे आप लोग सब से उत्तम वर्त्तो जिस से सब सङ्गतियों का आश्रय यज्ञ पूर्ण होवे ॥३॥

देव्य इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः पञ्चमः स्वरः ॥

अब विदुषी स्त्री कैसी होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य
शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥४॥

पदार्थ—हे (**प्रथमजाः**) पहिले से हुई (**वम्र्यः**) थोड़ी अवस्था वाली (**देव्यः**) तेजस्विनी विदुषी स्त्रियो ! (**भूतस्य**) उत्पन्न सिद्ध हुए (**मखस्य**) यज्ञ की सम्बन्धिनी (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**देवयजने**) उस स्थान में जहां विद्वान् लोग सङ्गति करते हैं (**अद्य**) आज (**वः**) तुम लोगों को (**शिरः**) शिर के तुल्य मैं (**राध्यासम्**) सम्यक् सिद्ध किया करूं (**मखस्य**) यज्ञ का निर्माण करने वाली (**त्वा**) तुझ को और (**मखाय, शीर्ष्णे**) शिर के तुल्य वर्त्तमान यज्ञ के लिये (**त्वा**) तुझ को सम्यक् उद्यत वा सिद्ध करूं ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जब तक स्त्रियां विदुषी नहीं होतीं तब तक उत्तम शिक्षा भी नहीं बढ़ती है ॥४॥

इयतीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अध्यापक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इयत्यग्रऽआसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! मैं (**अग्रे**) पहिले (**मखाय**) सत्कार रूप यज्ञ के लिये (**त्वा**) तुझ को (**मखस्य**) सङ्गतिकरण की (**शीर्ष्णे**) उत्तमता के लिये (**त्वा**) तुझ को (**राध्यासम्**) सिद्ध करूं जिस (**ते**) आप के (**मखस्य**) यज्ञ का (**शिरः**) उत्तम गुण (**आसीत्**) है उस आप को (**अद्य**) आज (**पृथिव्याः**) भूमि के बीच (**इयति**) इतने (**देवयजने**) विद्वानों के पूजने में सम्यक् सिद्ध होऊं ॥५॥

भावार्थ—वे ही अध्यापक श्रेष्ठ हैं जो पृथिवी के बीच सब को उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त करने को समर्थ हैं ॥५॥

इन्द्रस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रस्यौजः स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्ययुक्त पुरुष के (**ओजः**) पराक्रम को (**राध्यासम्**) सिद्ध करूं वैसे (**अद्य**) आज (**पृथिव्याः**) भूमि के (**देवयजने**) उस स्थान में जहां विद्वानों का पूजन होता हो (**शिरः**) उत्तम अवयव के समान (**वः**) तुम लोगों को सिद्ध करूं (**शीर्ष्णे**) शिर सम्बन्धी (**मखाय**) धर्मात्माओं के सत्कार के निमित्त वचन के लिये (**त्वा**) तुझ को (**मखस्य**) प्रिय आचरणरूप व्यवहार के सम्बन्धी (**त्वा**) आप को सिद्ध करूं (**शीर्ष्णे**) उत्तम गुणों के प्रचारक (**मखाय**) शिल्पयज्ञ के विधान के लिये (**त्वा**) आपको (**मखस्य**) सत्याचरण रूप व्यवहार के सम्बन्धी (**त्वा**) आपको सिद्ध करूं (**शीर्ष्णे**) उत्तम (**मखाय**) विज्ञान की प्रकटता के लिये (**त्वा**) आप को और (**मखस्य**) विद्या को बढ़ाने हारे व्यवहार के सम्बन्धी (**त्वा**) आप को सिद्ध करूं । वैसे तुम लोग भी पराक्रमी (**स्थ**) होओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य धर्मयुक्त कार्यों को करते हैं वे सब के शिरोमणि होते हैं ॥६॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्य्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (**वीरम्**) सब दुःखों को हटाने वाले (**नर्य्यम्**) मनुष्यों में उत्तम (**पङ्क्तिराधसम्**) समुदायों को सिद्ध करने वाले (**यज्ञम्**) सुख प्राप्ति के हेतु जन को (**देवाः**) विद्वान् लोग (**नः**) हम को (**नयन्तु**) प्राप्त करें

(ब्रह्मणः, पतिः) धन का रक्षक जन (प्र, एतु) प्रकर्षता से प्राप्त हो (सूनृता) सत्य बोलना आदि सुशीलता वाली (देवी) विदुषी स्त्री (अच्छ , प्र, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे उस (त्वा) तुझ को (मखाय) विद्यावृद्धि के लिये (मखस्य) सुख रक्षा के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को (मखाय) धर्माचरण निमित्त के लिये (त्वा) आप के (मखस्य) धर्मरक्षा के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को (मखाय) सब सुख करने वाले के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) सब सुख बढ़ाने वाले के सम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम सुखदायी जन के लिये (त्वा) आपका आश्रय करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य और जो स्त्रियां स्वयं विद्यादि गुणों को पाकर अन्यों को प्राप्त कराके विद्या सुख और धर्म की वृद्धि के लिये अधिक सुशिक्षित जनों को विद्वान् करते हैं वे पुरुष और स्त्रियां निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

मखस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग विद्वान् के साथ कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस कारण आप (मखाय) ब्रह्मचर्य आश्रम रूप यज्ञ के (शिरः) शिर के तुल्य (असि) हैं इस से (मखाय) विद्या ग्रहण के अनुष्ठान के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) ज्ञान सम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम व्यवहार के लिये (त्वा) आप को जिस कारण आप (मखस्य) विचार रूप यज्ञ के (शिरः) उत्तम अवयव के समान (असि) है इस से (मखाय) गृहस्थों के व्यवहार के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को जिस कारण आप (मखस्य) गृहाश्रम के (शिरः) उत्तम अवयव के समान (असि) हैं इस से (मखाय) गृहस्थों के कार्यों को संगत करने के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम शिर के समान अवयव के लिये (त्वा) आप को सेवन करें। इस से (मखाय) उत्तम व्यवहार की सिद्धि के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) सत् व्यवहार की सिद्धि सम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान होने के लिये (त्वा) आप को (मखाय) योगाभ्यास के लिये (त्वा) आपको (मखस्य) साङ्गोपाङ्ग योग के (शीर्ष्णे) सर्वोपरि वर्त्तमान विषय के लिये (त्वा) आप को (मखाय) ऐश्वर्य देने वाले के लिये (त्वा) आप को (मखाय) ऐश्वर्य देने वाले के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) ऐश्वर्य देने वाले के (शीर्ष्णे) सर्वोत्तम कार्य के लिये (त्वा) आपको हम लोग सेवन करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो लोग सत्कार करने में उत्तम हैं वे दूसरों को भी सत्कारी बना के मस्तक के तुल्य उत्तम अवयवों वाले हों ॥ ८ ॥

अश्वस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । विद्वान् देवता । पूर्वस्योत्तरस्य च अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कौन मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे मैं (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (देवयजने) विद्वानों के यज्ञस्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) अग्नि आदि के (शक्ना) दुर्गन्ध के निवारण में समर्थ धूम आदि से (त्वा) तुझ को (मखाय) वायु की शुद्धि करने के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) शोधक पुरुष के (शीर्ष्णे) शिर रोग की निवृत्ति के अर्थ (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूँ । (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच विद्वानों के (देवयजने) यज्ञस्थल में (वृष्णः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (शक्ना) लेंडी लीद से (त्वा) तुझ को (मखाय) पृथिव्यादि के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) तत्त्वबोध के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (मखाय) यज्ञसिद्धि के लिये (त्वा) तुझको (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूँ (पृथिव्याः) भूमि के बीच (देवयजने) विद्वानों की पूजास्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) शीघ्रगामी अग्नि के (शक्ना) तेज आदि से (त्वा) आप को (मखाय) उपयोग के लिये (त्वा) तुझको (मखस्य) उपयुक्त कार्य के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (मखाय) यश के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आप को और (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे पुनरुक्ति अधिकता जताने के अर्थ हैं। जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का सम्प्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं ॥९॥

ऋजव इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कौन बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ऋजवे) सरल स्वभाव वाले (त्वा) आप को (मखाय) विद्वानों के सत्कार के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को (साधवे) परोपकार को सिद्ध करने वाले के लिये (त्वा) आप को (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आपको (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) शिर के लिये (त्वा) आपको (सुक्षित्यै) उत्तम भूमि के लिये (त्वा) आप को (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्थापित करते हैं ॥१०॥

भावार्थ—जो लोग विनय और सीधेपन से युक्त प्रयत्न के साथ सर्वोपकार रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

यमायेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सज्जन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे ।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि ।
अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (सविता) ऐश्वर्यकर्त्ता (देवः) दानशील पुरुष (मखाय) न्याय के अनुष्ठान के लिये (यमाय) नियम के अर्थ (त्वा) आपको (सूर्यस्य) प्रेरक ईश्वर सम्बन्धी (तपसे) धर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) आपको ग्रहण करे (पृथिव्याः) भूमि सम्बन्धी (त्वा) आप को (मध्वा) मधुरता से (अनक्तु) संयुक्त करे सो आप (संस्पृशः) सम्यक् स्पर्श से (पाहि) रक्षा कीजिये जिस कारण आप (अर्चिः) तेजस्वी (असि) हैं (शोचिः) अग्नि की लपट के तुल्य पवित्र (असि) हैं और (तपः) धर्म में श्रम करने हारे (असि) हैं इससे (त्वा) आपका सत्कार करें ॥११॥

भावार्थ—जो लोग यथार्थ व्यवहार से प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं वे दुःख के स्पर्श से अलग होकर तेजस्वी होते हैं और दुष्टों को दुःख देकर श्रेष्ठों को सुखी करते हैं ॥११॥

अनाधृष्टेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । पृथिवी देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः
पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः ।
सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः ।
विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दा
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥१२॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! तू (अनाधृष्टा) दूसरों से नहीं धमकाई हुई (पुरस्तात्) पूर्वदेश से (अग्नेः) अग्नि के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (आयुः) जीवन के हेतु अन्न को (दाः) दे (पुत्रवती) प्रशंसित पुत्रों वाली हुई (दक्षिणतः) दक्षिण देश से (इन्द्रस्य) बिजुली वा सूर्य्य के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (प्रजाम्) प्रजा सन्तान (दाः) दीजिये (सुषदा) जिस के सम्बन्ध में सुन्दर प्रकार स्थित हो ऐसी हुई (पश्चात्) पश्चिम से (देवस्य) प्रकाशमान (सवितुः) सूर्य्यमण्डल के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (चक्षुः) नेत्र दीजिये (आश्रुतिः) अच्छे प्रकार जिसका सुनना हो ऐसी हुई तू (उत्तरतः) उत्तर से (धातुः) धारणकर्त्ता वायु के (आधिपत्ये) मालिकपन में (मे) मेरे लिये (रायः)

धन की (पोषम्) पुष्टि को (दाः) दे (विधृतिः) अनेक प्रकार की धारणाओं वाली हुई (उपरिष्टात्) ऊपर से (बृहस्पते) बड़े बड़े पदार्थों के रक्षक सूत्रात्मा वायु के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (ओजः) बल (दाः) दे। जिस कारण (मनोः) मननशील अन्तःकरण की (अश्वा) व्यापिका (असि) है इससे (विश्वाभ्यः) सब (नाष्ट्राभ्यः) नष्टभ्रष्ट स्वभाव वाली व्यभिचारिणियों से (मा) मुझको (पाहि) रक्षित कर ॥१२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि जीवन को, जैसे बिजुली प्रजा को, जैसे सूर्य देखने को, धारणकर्त्ता ईश्वर लक्ष्मी और शोभा को और महाशयजन बल को देता है वैसे ही सुलक्षणा पत्नी सब सुखों को देती है उस की तुम रक्षा किया करो ॥१२॥

स्वाहेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

स्वाहा॑ म॒रुद्भिः॒ परि॑ श्रीयस्व दि॒वः स॒ꣳस्पृश॒स्पा॑हि ।

मधु॒ मधु॒ मधु॑ ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (स्वाहा) सत्क्रिया (मधु) कर्म (मधु) उपासना और (मधु) विज्ञान का (श्रीयस्व) सेवन कीजिये तथा (संस्पृशः) सम्यक स्पर्श करने वाली (दिवः) प्रकाशरूप बिजुली से हमारी (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥१३॥

भावार्थ—जो लोग पूर्ण विद्वानों के साथ कर्म उपासना और ज्ञान की विद्या तथा उत्तम क्रिया को ग्रहण कर सेवन करते हैं वे सब ओर से रक्षा को प्राप्त हुए बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

गर्भ इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

गर्भो॑ दे॒वानां॑ पि॒ता म॑ती॒नां पतिः॑ प्र॒जाना॑म् ।

सं दे॒वो दे॒वेन॑ सवि॒त्रा ग॑त॒ सꣳसूर्ये॑ण रोचते ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (देवानाम्) विद्वानों वा पृथिवी आदि तेंतीस देवों के (गर्भः) बीच स्थित व्याप्य (मतीनाम्) मननशील बुद्धिमान् मनुष्यों के (पिता) पिता के तुल्य (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पतिः) रक्षक स्वामी (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सवित्रा) उत्पत्ति के हेतु (देवेन , सूर्येण) प्रकाशक विद्वान् के साथ (सम्, रोचते) सम्यक् प्रकाशित होता है उसको तुम लोग (सम्, गत) सम्यक् प्राप्त होओ ॥१४॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जो सब का उत्पन्न करनेहारा पिता के तुल्य रक्षक प्रकाशक सूर्यादि पदार्थों का भी प्रकाशक सर्वत्र अभिव्याप्त जगदीश्वर है उसी पूर्ण परमात्मा की सदैव उपासना किया करें ॥१४॥

समग्निरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सम॒ग्निर॒ग्निना॑ गत॒ सं दैवे॑न सवि॒त्रा सꣳसूर्ये॑णारोचिष्ट ।

स्वाहा॒ सम॒ग्निस्तप॑सा गत॒ सं दै॒व्येन॑ सवि॒त्रा सꣳसूर्ये॑णारूरुचत ॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अग्निना) स्वयंप्रकाश जगदीश्वर से (अग्निः) प्रकाशक अग्नि (दैवेन) ईश्वरों ने बनाये (सवित्रा) प्रेरक (सूर्येण) सूर्य के साथ (सम् , अरोचिष्ट) सम्यक् प्रकाशित होता है उस परमात्मा को तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सम्, गत) सम्यक् जानो और जो (अग्निः) प्रकाशक ईश्वर (दैव्येन) पृथिवी आदि में हुए (सवित्रा) ऐश्वर्य का कारक (सूर्येण) प्रेरक (तपसा) धर्मानुष्ठान से (सम्, अरूरुचत) सम्यक् प्रकाशित होता है उसको तुम लोग (सम्, गत) सम्यक् प्राप्त होओ ॥१५॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के उत्पादक के उत्पादक सूर्य के सूर्य परमात्मा को विशेषकर जानें उन के लिये इस लोक परलोक के सुख सम्यक् प्राप्त होते हैं ॥१५॥

धर्त्तेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

ध॒र्त्ता दि॒वो वि भा॑ति॒ तप॑सस्पृथि॒व्यां ध॒र्त्ता दे॒वो दे॒वाना॒मम॑र्त्यस्तपो॒जाः ।

वाच॑म॒स्मे नि य॑च्छ देवा॒युव॑म् ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो (पृथिव्याम्) आकाश में (तपसः) सब को तपाने वाले (दिवः) प्रकाशमय सूर्य्य आदि का (धर्त्ता) धारणकर्ता जो (तपोजाः) तप से प्रकट होने वाला (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित (देवः) प्रकाशस्वरूप (देवानाम्) पृथिव्यादि तेंतीस देवों का (धर्त्ता) धारणकर्त्ता जगदीश्वर (वि, भाति) विशेषकर प्रकाशित होता है उसके विज्ञान में (अस्मे) हमारे लिये (देवायुवम्) दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि वा विद्वानों को सङ्गत करने वाली (वाचम्) वाणी को (नि, यच्छ) निरन्तर दीजिये ॥१६॥

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जो परमेश्वर सबका धर्त्ता प्रकाशक तप से विशेषकर जानने योग्य है उसको जानने वाली विद्या को हमारे लिये देओ ॥१६॥

अपश्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के उपासक कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अप॑श्यं गो॒पाम॑निपद्यमान॒मा च॒ परा॑ च प॒थिभि॒श्चर॑न्तम् ।

स स॒ध्रीचीः॒ स विषू॑चीर्वसा॑न॒ आ व॑रीवर्त्ति॒ भुव॑नेष्व॒न्तः ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं जिस (पथिभिः) शुद्ध ज्ञान के मार्गों से (आ, चरन्तम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (परा) पर भाग में भी प्राप्त होते हुए (अनिपद्यमानम्) अचल (गोपाम्) रक्षक जगदीश्वर को (अपश्यम्) देखूं (स, च) वह भी (सध्रीचीः) साथ वर्त्तमान दिशाओं (च) और (सः) वह (विषूचीः) व्याप्त उपदिशाओं को (वसानः) आच्छादित करनेवाला हुआ (भुवनेषु) लोक लोकान्तरों के (अन्तः) बीच (आ, वरीवर्त्ति) अच्छे प्रकार सब का आचरण करता वा वर्त्तमान है ॥१७॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब लोकों में अभिव्याप्त अन्तर्यामी रूप से प्राप्त अधर्मी अविद्वान् और अयोगी लोगों के न जानने योग्य परमात्मा को जानकर अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं वे सब धर्मयुक्त मार्गों को प्राप्त होकर शुद्ध होते हैं ॥१७॥

विश्वासामित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विश्वा॑सां भु॒वां प॑ते॒ विश्व॑स्य मनसस्पते

विश्व॑स्य वचसस्पते॒ सर्व॑स्य वचसस्पते ।

दे॒वश्रु॒त्त्वं दे॑व घर्म दे॒वो दे॒वान् पा॒ह्यत्र॒ प्रावी॒रनु॑ वां दे॒ववी॑तये ।

मधु॒ माध्वी॑भ्यां॒ मधु॒ माधू॑चीभ्याम् ॥१८॥

पदार्थ—हे (विश्वासाम्) सब (भुवाम्) पृथिवियों के (पते) स्वामिन् (विश्वस्य) सब (मनसः) संकल्प विकल्प आदि वृत्तियुक्त अन्तःकरण के (पते) रक्षक (विश्वस्य) समस्त (वचसः) वेदवाणी के (पते) पालक (सर्वस्य) संपूर्ण वचनमात्र के (पते) रक्षक (धर्म) प्रकाशक (देव) सब सुखों के दाता जगदीश्वर ! (देवश्रुत्) विद्वानों को सुनने हारे (देवः) रक्षक हुए (त्वम्) आप (अत्र) इस जगत् में (देवान्) धार्मिक विद्वानों की (पाहि) रक्षा कीजिये (माध्वीभ्याम्) मधुरादि गुणयुक्त विद्या और उत्तम शिक्षा के (मधु) मधुर विज्ञान को (प्र, अवीः) प्रकर्ष के साथ दीजिये (माधूचीभ्याम्) विष को विनाशने वाली मधुविद्या को प्राप्त होने वाले अध्यापक उपदेशकों के साथ (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये विद्वानों की (अनु) अनुकूल रक्षा कीजिये । इस प्रकार हे अध्यापक उपदेशको ! (वाम्) तुम्हारे लिये मैं उपदेश को करूं ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग सब देव आत्मा और मनों के स्वामी सब सुनने वाले सब के रक्षक परमात्मा को जान और उत्तम सुख को प्राप्त होकर दूसरों को सुख प्राप्त करो ॥ १८ ॥

हृदे त्वेत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

हृ॒दे त्वा॒ मन॑से त्वा दि॒वे त्वा॒ सूर्या॑य त्वा ।

ऊ॒र्ध्वो अ॑ध्व॒रं दि॒वि दे॒वेषु॑ धेहि ॥१९॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस (हृदे) हृदय की चेतनता के लिये (त्वा) आपको (मनसे) विज्ञानवान् अन्तःकरण होने के अर्थ (त्वा) आप को (दिवे) विद्या के प्रकाश वा विद्युत् विद्या की प्राप्ति के लिये (त्वा) आप को (सूर्याय) सूर्यादि लोकों के जानार्थ (त्वा) आपका हम लोग ध्यान करें सो (ऊर्ध्वः) सब से उत्कृष्ट आप (दिवि) उत्तम व्यवहार और (देवेषु) विद्वानों में (अध्वरम्) अहिंसामय यज्ञ का (धेहि) प्रचार कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्यभाव से आत्मा और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये और सृष्टिविद्या के अर्थ ईश्वर की उपासना करते हैं उनका वह कृपालु ईश्वर विद्या और धर्म के दान से सब दुःखों से उद्धार करता है ॥ १९ ॥

पिता न इत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवताः । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पि॒ता नो॑ऽसि पि॒ता नो॑ बोधि॒ नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हिꣳसीः ।

त्वष्टृ॑मन्तस्त्वा सपेम पु॒त्रान् प॒शून् मयि॑ धेहि

प्र॒जाम॒स्मासु॑ धेह्यरि॑ष्टा॒हꣳ स॒हप॑त्या भूयासम् ॥ २०॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (नः) हमारे (पिता) पिता के समान (असि) हैं (पिता) राजा के तुल्य रक्षक हुए (नः) हम को (बोधि) बोध कराइये (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे आप (मा) मुझ को (मा, हिंसीः) मत हिंसायुक्त कीजिये (त्वष्टृमन्तः) बहुत स्वच्छ प्रकाशरूप

पदार्थों वाले हम (त्वा) आप से (सपेम) सम्बन्ध करें ! आप (पुत्रान्) पवित्र गुण कर्म स्वभाव वाले सन्तानों को तथा (पशून्) गौ आदि पशुओं को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कीजिये तथा (अस्मासु) हम में (प्रजाम्) प्रजा को (धेहि) धारण कीजिये जिस से (अहम्) मैं (अरिष्टा) अहिंसित हुई (सहपत्या) पति के साथ (भूयासम्) होऊं ॥ २० ॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप हमारे पिता स्वामी बन्धु मित्र और रक्षक हैं इससे आपकी हम निरन्तर उपासना करते हैं । हे स्त्रियो ! तुम परमेश्वर ही की उपासना नित्य किया करो जिस से सब सुखों को प्राप्त होओ ॥ २० ॥

अहः केतुनेत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अहः केतुना जुषताᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा

रात्रिः केतुना जुषताᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥२१॥

पदार्थ—हे विद्वन् वा विदुषी स्त्रि ! आप (स्वाहा) सत्य क्रिया से (केतुना) उत्कृष्ट ज्ञान वा जागृत अवस्था से और (ज्योतिषा) सूर्यादि वा धर्मादि के प्रकाश से (अहः, सुज्योतिः) दिन और विद्या को (जुषताम्) सेवन कीजिये (स्वाहा) सत्य वाणी (केतुना) बुद्धि वा सुन्दर कर्म और (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) सुन्दर ज्योतियुक्त रात्रि हम को (जुषताम्) सेवन करे ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष दिन के सोने और रात्रि के अति जागने को छोड़ युक्त आहार विहार करनेहारे ईश्वर की उपासना में तत्पर होवें उन को दिन रात सुखकर वस्तु प्राप्त होती है इससे जैसे बुद्धि बढ़े वैसा अनुष्ठान करना चाहिये ।२१।

इस अध्याय में ईश्वर, योगी, सूर्य, पृथिवी, यज्ञ, सन्मार्ग, स्त्री, पति और पिता के तुल्य वर्त्तमान परमेश्वर का वर्णन तथा युक्त आहार विहार का अनुष्ठान कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह संतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

卐 अथाष्टात्रिंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न ऽआ सुव ॥ १॥

देवस्येत्यस्याथर्वण ऋषिः । सविता देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अड़तीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री को कैसी होना चाहिये इस विषय को कहा है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।

आ ददेऽदित्यै रास्नाऽसि ॥१॥

पदार्थ—हे विदुषि स्त्री ! जिस कारण तू (अदित्यै) नाशरहित नीति के लिये (रास्ना) दानशील (असि) है इससे (सवितुः) समस्त जगत् के उत्पादक (देवस्य) कामना के योग्य परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न होने वाले जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल पराक्रम के तुल्य बाहुओं से (पूष्णः) पोषक वायु के (हस्ताभ्याम्) गमन और धारण के समान हाथों से (त्वा) तुझ को (आ, ददे) ग्रहण करूं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे स्त्री ! जैसे सूर्य भूगोलों का, प्राण शरीर का और अध्यापक उपदेशक सत्य का ग्रहण करते हैं वैसे ही तुझ को मैं ग्रहण करता हूं तू निरन्तर अनुकूल सुख देने वाली हो ॥ १ ॥

इड इत्यस्याथर्वण ऋषिः । सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे विवाह करें इस विषय को अगले मंत्र में कहा है—

इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि । असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥२॥

पदार्थ—हे (इडे) सुशिक्षित वाणी के तुल्य स्त्रि ! तू मुझ को (एहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह तुझ को प्राप्त हो उस को तू (एहि) प्राप्त हो । हे (अदिते) अखण्डित आनन्द देने वाली ! तू अखण्डित आनन्द को (एहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह तुझ को अखण्डित आनन्द देवे उस को (एहि) प्राप्त हो । हे (सरस्वति) प्रशस्त विज्ञान युक्त स्त्रि ! तू विद्वान् को (एहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह सुशिक्षित हो उस को (एहि) प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—जब स्त्री पुरुष विवाह करने की इच्छा करें तब ब्रह्मचर्य और विद्या से स्त्री और पुरुष के धर्म और आचरण को जानकर ही करें ॥ २ ॥

अदित्या इत्यस्याथर्वण ऋषिः । पूषा देवता । भुरिक्साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः । पूषाऽसि घर्माय दीष्व ॥३॥

पदार्थ—हे कन्ये ! जो तू (अदित्यै) नित्य विज्ञान के (रास्ना) देने वाली (असि) है (इन्द्राण्यै) परमैश्वर्य करने वाली नीति के लिये (उष्णीषः) शिरोवेष्टन पगड़ी के तुल्य (पूषा) भूमि के सदृश पोषण करनेहारी (असि) है सो तू (घर्माय) प्रसिद्ध अप्रसिद्ध सुख देनेवाले यज्ञ के लिये (दीष्व) दान कर ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे स्त्रि ! जैसे पगड़ी आदि वस्त्र सुख देनेवाले होते हैं वैसे तू पति के लिये सुख देने वाली हो ॥ ३ ॥

अश्विभ्यामित्यस्याथर्वण ऋषिः । सरस्वती देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व ।

स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत् ॥४॥

पदार्थ—हे विदुषि स्त्रि ! तू (इन्द्रवत्) परम ऐश्वर्ययुक्त वस्तु को ग्रहण कर (स्वाहा) सत्यक्रिया से (अश्विभ्याम्) सूर्य्य चन्द्रमा के लिये (पिन्वस्व) तृप्त हो (इन्द्रवत्) चेतनता के गुणों से संयुक्त शरीर को पाकर (स्वाहा) सत्य-वाणी से (सरस्वत्यै) सुशिक्षित वाणी के लिये (पिन्वस्व) संतुष्ट हो (इन्द्रवत्) विद्युत् विद्या को जानकर (स्वाहा) सत्यता से (इन्द्राय) परमोत्तम ऐश्वर्य के लिये (पिन्वस्व) संतुष्ट हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष विद्युत् आदि विद्या से ऐश्वर्य की उन्नति करें वे सुख को भी प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

यस्त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वाग् देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः ।

येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः ।

उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥५॥

पदार्थ—हे (सरस्वति) बहुत विज्ञान वाली स्त्रि ! (यः) जो (ते) तेरा (शशयः) जिस के आश्रय से बालक सोवे वह (स्तनः) दूध का आधार थन तथा (यः) जो (मयोभूः) सुख सिद्ध करने हारा (यः) जो (रत्नधाः) उत्तम उत्तम गुणों का धारणकर्त्ता (वसुवित्) धनों को प्राप्त होने वाला और (यः) जो (सुदत्रः) सुन्दर दान देनेवाला पति कि (येन) जिसके आश्रय से (विश्वा) सब (वार्य्याणि) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (पुष्यसि) पुष्ट करती है (तम्) उसको (इह) इस संसार में वा घर में (धातवे) धारण करने वा दूध पिलाने को नियत (अकः) कर । उससे मैं (उरु) अधिकतर (अन्तरिक्षम्) आकाश का (अन्वेमि) अनुगामी होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो स्त्री न होवे तो बालकों की रक्षा होना भी कठिन होवे जिस स्त्री से पुरुष बहुत सुख और पुरुष से स्त्री भी अधिकतर आनन्द पावे वे ही दोनों आपस में विवाह करें ॥ ५ ॥

गायत्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी स्त्री पुरुष का कैसा सम्बन्ध हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिगृह्णाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् । स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! जैसे आप (**गायत्रम्**) गायत्री छन्द से प्रकाशित (**छन्दः**) स्वतन्त्र आनन्दकारक अर्थ के समान हृदय को प्रिय स्त्री को प्राप्त (**असि**) हैं (**त्रैष्टुभम्**) त्रिष्टुप् छन्द से व्याख्यात हुए (**छन्दः**) स्वतन्त्र अर्थमात्र के समान प्रशंसित पत्नी को प्राप्त हुए (**असि**) हैं वैसे मैं (**त्वा**) तुम को देख कर (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य भूमि से अति शोभायमान प्रिया स्त्री को (**परि, गृह्णामि**) सब ओर से स्वीकार करता हूँ और (**अन्तरिक्षेण**) हाथ में जल लेकर प्रतिज्ञा कराई हुई को (**उप, यच्छामि**) स्त्रीत्व के साथ ग्रहण करता हूँ । हे (**अश्विना**) प्राण अपान के तुल्य कार्यसाधक स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों भी वैसे ही वर्त्ता करो । हे (**वसवः**) पृथिवी वसुओं के तुल्य प्रथम कक्षा के विद्वानो ! तुम लोग (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**मधुनः, सारघस्य**) मक्खियों ने बनाये मधुरादि गुण युक्त शहद और (**घर्मम्**) सुख पहुँचाने वाले यज्ञ की (**पात**) रक्षा करो । (**सूर्यस्य**) सूर्य्य के (**वृष्टिवनये**) वर्षा का विभाग करने वाले (**रश्मये**) संशोधक किरण के लिये (**वाट्**) अच्छे प्रकार (**यजत**) सङ्गत होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शब्दों का अर्थों के साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध, सूर्य के साथ पृथिवी का, किरणों के साथ वर्षा का, यज्ञ के साथ यजमान और ऋत्विजों का सम्बन्ध है वैसे ही विवाहित स्त्रीपुरुषों का सम्बन्ध होवे ॥ ६ ॥

समुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वातो देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विवाह किये स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा । सरिराय त्वा वाताय स्वाहा । अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहाऽप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा । अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाऽशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥७॥

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! मैं (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**समुद्राय**) आकाश में चलने के अर्थ (**वाताय**) वायुविद्या वा वायु के शोधन के लिये (**त्वा**) तुझ को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**सरिराय**) जल के तथा (**वाताय**) घर के वायु के शोधने के लिये (**त्वा**) तुझ को (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**अनाधृष्याय**) भय और धमकाने से रहित होने के लिये (**वाताय**) ओषधिस्थ वायु के जानने को (**त्वा**) तुझ को (**स्वाहा**) सत्य वाणी वा क्रिया से (**अप्रतिधृष्याय**) नहीं धमकाने योग्यों के प्रति वर्त्तमान के अर्थ (**वाताय**) वायु के वेग की गति जानने के लिये (**त्वा**) तुझ को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**अवस्यवे**) अपनी रक्षा चाहने वाले के अर्थ तथा (**वाताय**) प्राणशक्ति को विशेष जानने के लिये (**त्वा**) तुझ को और (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**अशिमिदाय**) भोग्य अन्न जिस में स्नेह करने वाला है उस रस और (**वाताय**) उदान वायु के लिये (**त्वा**) तुझ को समीप स्वीकार करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र में से (उप, यच्छामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है । विवाह किये हुए स्त्री पुरुष सृष्टिविद्या की उन्नति के लिये प्रयत्न किया करें ॥ ७ ॥

इन्द्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । इन्द्रो देवता । अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वाऽऽदित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाऽभिमातिघ्ने स्वाहा । सवित्रे त्वऽऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥८॥

पदार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! मैं (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**वसुमते**) बहुत धनयुक्त (**इन्द्राय**) उत्तम ऐश्वर्य वाले सन्तान के अर्थ (**त्वा**) तुझ को (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया से (**आदित्यवते**) समस्त विद्याओं की पण्डिताई से युक्त (**रुद्रवते**) बहुत प्राणों के बल वाले (**इन्द्राय**) दुःखनाशक सन्तान के लिये (**त्वा**) तुझ को (**स्वाहा**) सत्य वाणी से (**अभिमातिघ्ने**) शत्रुओं को मारने वाले (**इन्द्राय**) उत्तम ऐश्वर्य देने वाले सन्तान के लिये (**त्वा**) तुझ को (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**सवित्रे**) सूर्यविद्या के ज्ञाता (**ऋभुमते**) अनेक बुद्धिमानों के साथी (**विभुमते**) विभु आकाशादि पदार्थों को जिसने जाना है (**वाजवते**) पुष्कल अन्नवाले सन्तान के अर्थ (**त्वा**) तुझ को और (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**बृहस्पतये**) बड़ी वेदरूप वाणी के रक्षक (**विश्वदेव्यावते**) समस्त विद्वानों के हितकारी पदार्थों वाले सन्तान के लिये (**त्वा**) तुझ को ग्रहण करता वा करती हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी (उप, यच्छामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है । जो स्त्री पुरुष पृथिवी आदि वसुओं और चैत्रादि महीनों से अपने ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे विघ्नों को नष्ट कर बुद्धिमान् सन्तानों को प्राप्त होकर सब की रक्षा करने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वायुर्देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! (**घर्मः**) यज्ञ के तुल्य प्रकाशमान मैं (**स्वाहा**) सत्यवाणी से (**अङ्गिरस्वते**) विद्युत् आदि विद्या जानने वाले (**यमाय**) न्यायाधीश के अर्थ (**पितृमते**) रक्षक ज्ञानी जनों से युक्त सन्तान के लिये (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**यज्ञाय**) यज्ञ के लिये और (**स्वाहा**) सत्यक्रिया से (**पित्रे**) रक्षक के लिये (**त्वा**) तुझ को स्वीकार करती वा करता हूँ ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी (उप, यच्छामि) पदों की अनुवृत्ति आती है जो स्त्री पुरुष प्राण के तुल्य न्याय, पितरों और विद्वानों का सेवन करें वे यज्ञ के तुल्य सब को सुखकारी होवें ॥९॥

अश्वा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह । स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥१०॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) अध्यापक उपदेशक लोगो ! तुम (**इह**) इस जगत् में (**स्वाहाकृतस्य**) सत्यक्रिया से सिद्ध हुए (**घर्मस्य, मधोः**) मधुरादि गुण युक्त यज्ञ के अवशिष्ट भाग को (**पिबतम्**) पिओ वैसे यह (**दक्षिणसत्**) वेदी से दक्षिण दिशा में बैठने वाला आचार्य्य (**विश्वाः**) सब (**आशाः**) दिशाओं तथा (**विश्वान्**) समस्त (**देवान्**) उत्तम गुणों वा विद्वानों का (**अयाट्**) सङ्ग वा सेवन पूजन करे ॥१०॥

भावार्थ—जैसे उपदेशक शिक्षा करें और अध्यापक पढ़ावें वैसे ही सब लोग ग्रहण करें ॥१०॥

दिवि धा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः । स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥११॥

पदार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! तू (**यजुर्भ्यः**) यज्ञ कराने हारे वा यजुर्वेद के विभागों से (**स्वाहा**) सत्य क्रिया के साथ (**अग्नये, यज्ञियाय**) यज्ञ कर्म के योग्य अग्नि के लिये (**दिवि**) सूर्यादि के प्रकाश में (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) सङ्ग करने योग्य गृहाश्रम व्यवहार के उपयोगी यज्ञ को (**शम्**) सुखपूर्वक (**धाः**) धारण कर (**दिवि**) विज्ञान के प्रकाश में (**इमम्**) इस परमार्थ के साधक संन्यास आश्रम के उपयोगी (**यज्ञम्**) विद्वानों के सङ्गरूप यज्ञ को सुखपूर्वक (**धाः**) धारण कर ॥११॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ समग्र विद्यायुक्त उत्तम शिक्षा को प्राप्त होकर वेद रीति से कर्मों का अनुष्ठान करें वे अतुल सुख को प्राप्त होवें ॥११॥

अश्विनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः । तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सुशिक्षित स्त्री पुरुषो ! तुम (**अहः**) प्रतिदिन (**दिवाभिः**) दिन रात वर्त्तमान (**ऊतिभिः**) रक्षादि क्रियाओं से (**तन्त्रायणे**) शिल्पविद्या के शास्त्रों को जानने वा प्राप्त होने के लिये (**हार्द्वानम्**) हृदय को प्राप्त हुए ज्ञानसम्बन्धी (**घर्मम्**) यज्ञ की (**पातम्**) रक्षा करो और (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य और आकाश के सम्बन्ध से शिल्पशास्त्रज्ञ पुरुष के लिये (**नमः**) अन्न को देओ ॥१२॥

भावार्थ—जैसे भूमि और सूर्य परस्पर उपकारी हुए साथ वर्त्तमान हैं वैसे मित्र भाव से युक्त स्त्री पुरुष निरन्तर वर्त्ता करें ॥१२॥

अपातामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमंस्साताम् ।
इहैव रातयः सन्तु ॥१३॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सुन्दर रीति से वर्त्तमान स्त्री पुरुषो ! तुम वायु और बिजुली के तुल्य (घर्मम्) गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान की (अपाताम्) रक्षा करो (द्यावापृथिवी) सूर्य्य भूमि के समान गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान का (अनु, अमंसाताम्) अनुमान किया करो जिससे कि (इह) इस गृहाश्रम में (रातयः) विद्यादिजन्य सुखों के दान (एव) ही (सन्तु) होवें ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु और बिजुली तथा सूर्य और भूमि साथ वर्त्त कर सुख देते हैं वैसे स्त्री पुरुष प्रीति के साथ वर्त्तमान हुए सब के लिये अतुल सुख देवें ॥१३॥

इषे पिन्वस्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिवी देवते । अतिशक्वरी छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व
क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ।
धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय
ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥१४॥

पदार्थ—हे (धर्म) सत्य के धारक (सुधर्म) सुन्दर धर्मयुक्त पुरुष वा स्त्री ! तू (अमेनि) हिंसा धर्म से रहित (असि) है जिससे (अस्मे) हमारे लिये (नृम्णानि) धनों को (धारय) धारण कर (ब्रह्म) वेद वा ब्राह्मण को (धारय) धारण कर (क्षत्रम्) क्षत्रिय वा राज्य को (धारय) धारण कर (विशम्) प्रजा को (धारय) धारण कर उसस (इषे) अन्नादि के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (ऊर्जे) बल आदि के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (ब्रह्मणे) वेद विज्ञान परमेश्वर वा वेदज्ञ ब्राह्मण के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (क्षत्राय) राज्य के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर और (द्यावापृथिवीभ्याम्) भूमि और सूर्य के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर ॥१४।

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष अहिंसक धर्मात्मा हुए आप ही धन, विद्या, राज्य और प्रजा को धारण करें वे अन्न, बल, विद्या और राज्य को पाकर भूमि और सूर्य के तुल्य प्रत्यक्ष सुख वाले होवें ॥१४॥

स्वाहा पूष्ण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । पूषादयो लिङ्गोक्ता देवताः ।
स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः ।
स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्वबर्हिभ्यो घर्मपावभ्यः स्वाहा
द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॥१५॥

पदार्थ—स्त्री पुरुषों को योग्य है कि (पूष्णे) पुष्टिकारक (शरसे) हिंसक के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया अर्थात् अधर्म से बचाने का उपाय (प्रतिरवेभ्यः) शब्द के प्रति शब्द कहनेहारों के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (ग्रावभ्यः) गर्जने वाले मेघों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (ऊर्ध्वबर्हिभ्यः) उत्तम कक्षा तक बढ़े हुए (घर्मपावभ्यः) यज्ञ से संसार को पवित्र करनेहारे (पितृभ्यः) रक्षक ऋतुओं के तुल्य वर्त्तमान सज्जनों के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य्य और आकाश के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया और (विश्वेभ्यः) पृथिव्यादि वा विद्वानों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी का सदा प्रयोग किया करें।१५।

भावार्थ—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि सत्य विज्ञान और सत्य क्रिया से ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे सब को पुष्टि और आनन्द होवे ॥१५॥

स्वाहा रुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । रुद्रादयो देवताः । भुरिगतिधृतिश्छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ।
अहः केतुना जुषताᳬं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।
रात्रिः केतुना जुषताᳬं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।
मधु हुतमिन्द्रतमेऽअग्नावश्याम ते देव घर्म
नमस्तेऽअस्तु मा मा हिᳬंसीः ॥१६॥

पदार्थ—हे स्त्रि वा पुरुष ! आप (केतुना) बुद्धि से (रुद्रहूतये) प्राण वा जीवों की स्तुति करने वाले (रुद्राय) जीव के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी से (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (ज्योतिः) प्रकाश को (स्वाहा) सत्यक्रिया से युक्त (ज्योतिषा) सत्य विद्या के उपदेश रूप प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) सुन्दर विद्यादि सद्गुणों के प्रकाश तथा (अहः) दिन को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (सम्, जुषताम्) सम्यक् सेवन करो (केतुना) संकेतरूप चिह्न और (ज्योतिषा) मननादि रूप प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) धर्मादि रूप सद्गुणों के प्रकाश और (रात्रिः) रात्रि को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (जुषताम्) सेवन करो । हे (घर्म) प्रकाशमान (देव) विद्वान् जन जिससे (ते) आप के लिये (इन्द्रतमे) अतिशय ऐश्वर्य के हेतु विद्युत्रूप (अग्नौ) अग्नि में (हुतम्) होम किये (मधु) मधुरादि गुणयुक्त घृतादि पदार्थ को घ्राण द्वारा (अश्याम) प्राप्त होवें (ते) आप के लिये (नमः) मन (अस्तु) प्राप्त हो आप (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसीः) मारिये ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि प्राण जीवन और समाज की रक्षा के लिये विज्ञान के साथ कर्म और दिन रात्रि का युक्ति से सेवन करें और प्रति दिन प्रातः सायंकाल में कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्ययुक्त घृत को अग्नि में होम कर वायु आदि की शुद्धि द्वारा नित्य आनन्दित होवें ॥१६॥

अभीममित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदतिशक्वरी छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः ।
उत श्रवसा पृथिवीᳬं सᳬं सीदस्व महाँ२ऽअसि रोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥१७॥

पदार्थ—हे (प्रशस्त) प्रशंसा को प्राप्त (मियेध्य) दुष्टों को दूर करनेहारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान तेजस्वी विद्वन् ! (महिमा) महागुणविशिष्ट (सप्रथाः) प्रसिद्ध उत्तम कीर्ति वाले (विप्रः) बुद्धिमान् आप (इमम्) इस (दिवम्) अविद्यादि गुणों के प्रकाश को (अभि, बभूव) तिरस्कृत करते हैं (उत) और (श्रवसा) सुनने वा अन्न के साथ (पृथिवीम्) भूमि पर (सम्, सीदस्व) सम्यक् बैठिये जिस कारण (देववीतमः) दिव्य गुणों वा विद्वानों को अतिशय कर प्राप्त होने वाले (महान्) महात्मा (असि) हैं जिस से (रोचस्व) सब ओर से प्रसन्न हूजिये और (अरुषम्) थोड़े लाल रङ्ग से युक्त इसी से (दर्शतम्) देखने योग्य (धूमम्) धुएं को होम द्वारा (वि, सृज) विशेष कर उत्पन्न कीजिये ॥१७।

भावार्थ—यही मनुष्यों की महिमा है जो ब्रह्मचर्य के साथ विद्या को प्राप्त हो सर्वत्र फैलाकर शुभ गुणों का प्रचार करके सृष्टिविद्या की उन्नति करते हैं ।१७।

यात इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याᳬं हविर्धाने ।
सा त आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ।
या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे ।
सा त आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ।
या ते घर्म पृथिव्याᳬं शुग्या जगत्याᳬं सदस्या ।
सा त आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ॥१८॥

भावार्थ—हे (घर्म) प्रकाशस्वरूप विद्वन् ! वा विदुषी स्त्रि ! (या) जो (ते) तेरी (गायत्र्याम्) पढ़ने वालों की रक्षक विद्या और (हविर्धाने) होमने योग्य पदार्थों के धारण में (शुक्) विचार की साधनरूप क्रिया और (या) जो (दिव्यः) दिव्य गुणों में हुई क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) सब ओर से बढ़े और (निः, स्त्यायताम्) निरन्तर संयुक्त होवे । हे (घर्म) दिन के तुल्य प्रकाशित विद्या वाले जन वा स्त्रि ! (या) जो (ते) तेरी (अन्तरिक्षे) आकाश विषय में (शुक्) सूर्य्य की दीप्ति के समान विमानादि की गमन क्रिया और (या) जो (आग्नीध्रे) अग्नि के आश्रय में तथा (त्रिष्टुभि) त्रिष्टुप्छन्द से निकले अर्थ में विचार रूप क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) बढ़े और (नि, स्त्यायताम्) निरन्तर संयुक्त होवे (तस्यै) उस क्रिया और (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी होवे । हे (घर्म) विजुली के प्रकाश के तुल्य वर्तमान स्त्रि वा पुरुष ! (या) जो (ते) तेरी (पृथिव्याम्) भूमि पर और (या) जो (सदस्या) सभा में हुई (जगत्याम्) चेतन प्रजायुक्त सृष्टि में (शुक्) प्रकाशयुक्त क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) बढ़े और (निः, स्त्यायताम्) निरन्तर सम्बद्ध होवे (तस्यै) उस क्रिया तथा (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी होवे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष दिव्य क्रिया शुद्ध उपासना और पवित्र विज्ञान को पाकर प्रकाशित होते हैं वे ही मनुष्यजन्म के फल से युक्त होते हैं औरों को भी वैसा ही करें ॥ १८ ॥

क्षत्रस्येत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदुपरिष्टाद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अब राजा और प्रजा क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि ।
विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥१९॥

पदार्थ—हे राजन् ! वा राणी ! आप (परस्पाय) जिस कर्म से दूसरों की रक्षा हो उस के लिये (क्षत्रस्य) क्षत्रिय कुल वा राज्य के तथा (ब्रह्मणः) वेदवित् ब्राह्मणकुल के सम्बन्धी (त्वा) आप के (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कीजिय जैसे (वयम्) हम लोग (नव्यसे) नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (धर्मणा) धर्म के साथ (अनुक्रामाम) अनुकूल चलें वैसे ही धर्म के साथ वर्त्तमान (त्वा) आपके अनुकूल (विशः) प्रजाजन चलें ॥ १९ ॥

भावार्थ—राजा और राजपुरुषों को योग्य है कि धर्म के साथ विद्वानों और प्रजाजनों की रक्षा करें। वैसे ही प्रजा और राजपुरुषों को चाहिये कि राजा की सदैव रक्षा करें इस प्रकार न्याय तथा विनय के साथ वर्त्तकर राजा और प्रजा नवीन नवीन ऐश्वर्य की उन्नति किया करें ॥ १९ ॥

चतुःस्रक्तिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः
स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः ।
अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (चतुःस्रक्तिः) चार कोने वाली (नाभिः) नाभि मध्य मार्ग के तुल्य निष्पक्ष (सप्रथाः) विस्तार के साथ वर्त्तमान सत्पुरुष (अन्यव्रतस्य) दूसरे सब जगत् की रक्षा करने स्वभाव वाले (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमात्मा की सेवा करता (सः) वह (सप्रथाः) विस्तृत कार्य्यों वाला (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयु से युक्त पुरुष (नः) हम लोगों को बोधित करे। (सः) वह (सप्रथाः) अधिक सुखी (सर्वायुः) समग्र अवस्था वाला पुरुष (नः) हम को ईश्वरसम्बन्धी विद्या का ग्रहण करावे जिससे हम लोग (द्वेषः) द्वेषी शत्रुओं को (अप, सश्चिम) दूर पहुँचावें और (ह्वरः) कुटिल जनों को (अप) पृथक् करें। वैसे तुम लोग भी करो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे रस को प्राप्त हुई नाभि रस को उत्पन्न कर शरीर के अवयवों को पुष्ट करती वैसे सेवन किये विद्वान् वा उपासना किया परमेश्वर द्वेष और कुटिलतादि दोषों को निवृत्त करा कर सब जीवों की रक्षा करते वा करता है उन विद्वानों और उस परमेश्वर की निरन्तर सेवा करनी चाहिये ॥ २० ॥

घर्मैतदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व ।
वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (घर्म) अत्यन्त पूजनीय सब ओर से प्रकाशमय जगदीश्वर वा विद्वन् ! जो (एतत्) यह (ते) आपका (पुरीषम्) व्याप्ति वा पालन है (तेन) उस से आप (वर्द्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (च) और दूसरों को बढ़ाइये। आप स्वयं (आ, प्यायस्व) पुष्ट हूजिये (च) और दूसरों को पुष्ट कीजिये, आप की कृपा वा शिक्षा से जैसे हम लोग (वर्द्धिषीमहि) पूर्ण वृद्धि को पावें (च) और वैसे ही दूसरों को बढ़ावें (च) और जैसे हम लोग (आ, प्यासिषीमहि) सब ओर से बढ़ें वैसे दूसरों को निरन्तर पुष्ट करें वैसे तुम लोग भी करो ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर ने सब की पुष्टि की है वैसे ही बढ़े हुए पुष्ट हम लोगों को चाहिये कि सब जीवों को बढ़ावें और पुष्ट करें ॥२१॥

अचिक्रददित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । परोष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सꣳ सूर्य्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वृषा) वर्षा का निमित्त (हरि) शीघ्र चलने वाला (महान्) सब से बड़ा (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ (मित्रः) मित्र के तुल्य (दर्शतः) देखने योग्य (सूर्येण) सूर्य के साथ (उदधिः, निधिः) जिस में पदार्थ रक्खे जाते तथा जिसमें जल इकट्ठे होते उस समुद्र वा आकाश में (सम्, दिद्युतत्) सम्यक् प्रकाशित होता है वही बिजुली रूप अग्नि सब को कार्य में लाने योग्य है ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे बैल वा घोड़े शब्द करते और जैसे मित्र मित्रों को तृप्त करता है वैसे ही सब लोकों के साथ वर्त्तमान विद्युत् रूप अग्नि सब को प्रकाशित करता है उस को जानो ॥२२॥

सुमित्रिया इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आपो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सज्जन और दुर्जनों का कर्त्तव्य विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै
सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (आपः) प्राण वा जल तथा (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्रों के तुल्य सुखदायी (सन्तु) होवें (यः) जो पक्षपाती अधर्मी (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करे (च) और (यम्) जिस दुष्ट से (वयम्) हम धर्मात्मा लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उसके लिये प्राण, जल वा ओषधियां (दुर्मित्रियाः) दुष्ट मित्रों के समान दुःखदायी (सन्तु) होवें ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य दूसरों के सुपथ्य ओषधि और प्राण के तुल्य रोग दूर करते हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं। और जो कुपथ्य दुष्ट ओषधि और मृत्यु के समान औरों को दुःख देते हैं उनको वार वार धिक्कार है ॥२३॥

उद्वयमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सविता देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसा पुरुष सुख को प्राप्त होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (उत्तरम्) सब पदार्थों से उत्तर भाग में वर्त्तमान (देवत्रा) दिव्य उत्तम पदार्थों में (देवम्) उत्तम गुणकर्म स्वभाव वाले (उत्तमम्) सब से श्रेष्ठ (ज्योतिः) सब के प्रकाशक (सूर्य्यम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप ईश्वर को (पश्यन्तः) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए (स्वः) सुख को (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कृष्टता के साथ प्राप्त होवें तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्युत् आदि विद्या को प्राप्त हो परमात्मा का साक्षात् देखें वे प्रकाशित हुए निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥२४॥

एध इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरो देवता । साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अग्नि के मिष से योगियों के कर्त्तव्य विषय को अगले मंत्र में कहा है—

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! जो आप हमारे आत्माओं में (एधः) प्रकाश करने वाले इन्धन के तुल्य प्रकाशक (असि) हैं (समित्) सम्यक् प्रदीप्त समिधा के समान (असि) हैं (तेजः) प्रकाशमय बिजुली के तुल्य सब विद्या के दिखाने वाले (असि) हैं सो आप (मयि) मुझ में (तेजः) तेज को (धेहि) धारण कीजिये आप को प्राप्त होकर हम लोग (एधिषीमहि) सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होवें ॥२५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ईंधन से और घी से अग्नि की ज्वाला बढ़ती है वैसे उपासना किये जगदीश्वर से योगियों के आत्मा प्रकाशित होते हैं ॥२५॥

यावतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्युत् के समान वर्त्तमान परमेश्वर ! (ते) आप की (यावती) जितनी (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि (च) और (यावत्) जितने बड़े (सप्त, सिन्धवः) सात समुद्र (वितस्थिरे) विशेषकर स्थित हैं (तावन्तम्) उतने (अक्षितम्) नाशरहित (ग्रहम्) ग्रहण के साधनरूप सामर्थ्य को (ऊर्जा) बल के साथ मैं (गृह्णामि) स्वीकार करता तथा उतने (अक्षितम्) नाशरहित सामर्थ्य को मैं (मयि) अपने में (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥२६॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि जहां तक हो सके वहां तक पृथिवी और बिजुली आदि के गुणों को ग्रहण कर अक्षय सुख को प्राप्त होवें ॥२६॥

मयि त्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या वस्तु सुख देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः ।
घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (विराजा) विशेषकर प्रकाशक (ज्योतिषा) प्रदीप्त ज्योति के (सह) साथ (त्रिशुक्) कोमल मध्यम और तीव्र दीप्तियों वाला (घर्मः) प्रताप (विराजति) विशेष प्रकाशित होता है वैसे (मयि) मुझ जीवात्मा में (बृहत्) बड़े (त्यत्) उस (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय (मयि) मुझ में (दक्षः) बल और (मयि) मुझ में (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म विशेषकर प्रकाशित होवे ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि विद्युत् और सूर्यरूप से तीन प्रकार का प्रकाश जगत् को प्रकाशित करता है वैसे उत्तम बल, कर्म, बुद्धि, धर्म से संचित धन, जीता गया इन्द्रिय महान् सुख को देता है ॥२७॥

पयस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड्धृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पय॑सो रेत॒ऽआभृ॑तं॒ तस्य॒ दोह॑मशीम॒ह्युत्त॑रामुत्तरा॒ᳬ समा॑म् ।
त्विषः॑ सं॒वृक् क्रत्वे॒ दक्ष॑स्य ते सुषु॒म्णस्य॑ ते सुषुम्णाग्निहु॒तः ।
इन्द्र॑पीतस्य प्र॒जाप॑ति भक्षि॒तस्य॒ मधु॑मत॒ऽ
उप॑हूत॒ऽउप॑हूतस्य भक्षयामि ॥२८॥

पदार्थ—हे (सुषुम्ण) शोभन सुखयुक्त जन ! जैसे आपने जिस (पयसः) जल वा दूध के (रेतः) पराक्रम को (आभृतम्) पुष्ट वा धारण किया (तस्य) उसकी (दोहम्) पूर्णता तथा (उत्तरामुत्तराम्) उत्तर उत्तर (समाम्) समय को (अशीमहि) प्राप्त होवें । उस (ते) आपकी (क्रत्वे) बुद्धि के लिये (त्विषः) प्रकाशित (दक्षस्य) बल के और (ते) आपकी पुष्टि वा धारण को प्राप्त होवें (सुषुम्णस्य) सुन्दर सुख देनेवाले (इन्द्रपीतस्य) सूर्य्य वा जीव ने ग्रहण किये (प्रजापतिभक्षितस्य) प्रजारक्षक ईश्वर ने सेवन वा जीव ने भोजन किये (उपहूतस्य) समीप लाये हुए दूध वा जल के दोषों को (संवृक्) सम्यक् अलग करने वाला (उपहूतः) समीप बुलाया गया और (अग्निहुतः) अग्नि में होम करनेवाला मैं भोजन वा सेवन करूं ॥२८॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सदा वीर्य बढ़ावें विद्यादि शुभ गुणों का धारण करें । प्रतिदिन सुख बढ़ावें जैसे अपना सुख चाहें वैसे औरों के लिये भी सुख की आकाङ्क्षा किया करें ॥२८॥

इस अध्याय में इस सृष्टि में शुभ गुणों का ग्रहण, अपना और दूसरों का पोषण, यज्ञ से जगत् के पदार्थों का शोधन, सर्वत्र सुखप्राप्ति का साधन, धर्म का अनुष्ठान, पुष्टि का बढ़ाना, ईश्वर के गुणों की व्याख्या, सब ओर से बल बढ़ाना और सुखभोग कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

卐 अथैकोनचत्वारिंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

स्वाहा प्राणेभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । प्राणादयो लिङ्गोक्ता देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उनतालीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्रों में अन्त्येष्टि-कर्म का विषय कहते हैं—

स्वाहा॑ प्रा॒णेभ्यः॒ साधि॑पतिकेभ्यः ।
पृ॒थि॒व्यै स्वाहा॒ऽग्नये॒ स्वाहा॒ऽन्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑
वा॒यवे॒ स्वाहा॑ । दि॒वे स्वाहा॒ सूर्या॑य॒ स्वाहा॑ ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि (साधिपतिकेभ्यः) इन्द्रियादि के अधिपति जीव के साथ वर्त्तमान (प्राणेभ्यः) जीवन के तुल्य प्राणों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (पृथिव्यै) भूमि के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (अग्नये) अग्नि के अर्थ (स्वाहा) सत्यक्रिया (अन्तरिक्षाय) आकाश में चलने के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (वायवे) वायु की प्राप्ति के अर्थ (स्वाहा) सत्यक्रिया (दिवे) विद्युत् की प्राप्ति के अर्थ (स्वाहा) सत्यवाणी और (सूर्य्याय) सूर्यमण्डल की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया को यथावत् संयुक्त करो ॥१॥

भावार्थ—इस अध्याय में अन्त्येष्टि कर्म जिस को नरमेध, पुरुषमेध और दाह कर्म भी कहते हैं । जब कोई मनुष्य मरे तब शरीर की बराबर तोल घी लेकर उस में प्रत्येक सेर में एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केसर और चन्दन आदि काष्ठों को यथायोग्य सम्हाल के जितने ऊर्ध्वबाहु पुरुष होवे उतनी लम्बी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी और इतनी ही गहरी एक बिलस्त नीचे तले में वेदी बनाकर उसमें नीचे से अधवर तक समिधा भरकर उस पर मुर्दे को धर कर फिर मुर्दे के इधर उधर और ऊपर से अच्छे प्रकार समिधा चुनकर वक्षःस्थल आदि में कपूर धर कपूर से अग्नि को जलाकर चिता में प्रवेश कर जब अग्नि जलने लगे तब इस अध्याय के स्वाहान्त मन्त्रों की बार बार आवृत्ति से घी का होम कर मुर्दे को सम्यक् जलावें इस प्रकार करने में दाह करने वालों को यज्ञकर्म के फल की प्राप्ति होवे । और मुर्दे को न कभी भूमि में गाड़ें, न वन में छोड़ें, न जल में डुबावें, बिना दाह किये सम्बन्धी लोग महापाप को प्राप्त होवें क्योंकि मुर्दे के बिगड़े शरीर से अधिक दुर्गन्ध बढ़ने के कारण चराचर जगत् में असंख्य रोगों की उत्पत्ति होती है इससे पूर्वोक्त विधि के साथ मुर्दे के दाह करने में ही कल्याण है अन्यथा नहीं ॥१॥

दिग्भ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । दिगादयो लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

दि॒ग्भ्यः स्वाहा॑ च॒न्द्राय॒ स्वाहा॒ नक्ष॑त्रेभ्यः॒ स्वाहा॒ऽद्भ्यः
स्वाहा॒ वरु॑णाय॒ स्वाहा॑ । नाभ्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ताय॒ स्वाहा॑ ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग शरीर के जलाने में (दिग्भ्यः) दिशाओं में हुतद्रव्य के पहुंचाने को (स्वाहा) सत्यक्रिया (चन्द्राय) चन्द्रलोक की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नक्षत्रेभ्यः) नक्षत्रलोकों के प्रकाश की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (अद्भ्यः) जलों में चलने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (वरुणाय) समुद्रादि में जाने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नाभ्यै) नाभि के जलने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया और (पूताय) पवित्र करने के लिए (स्वाहा) सत्यक्रिया को सम्यक् प्रयुक्त करो ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य लोग पूर्वोक्त विधि से शरीर जलाकर सब दिशाओं में शरीर के अवयवों को अग्निद्वारा पहुँचावें ॥२॥

वाच इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वागादयो लिङ्गोक्ता देवताः । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

वा॒चे स्वाहा॑ प्रा॒णाय॒ स्वाहा॑ ॒ ॒णाय स्वाहा॑ ।
चक्षु॑षे॒ स्वाहा॒ चक्षु॑षे॒ स्वाहा॒ श्रोत्रा॑य॒ स्वाहा॒ श्रोत्रा॑य॒ स्वाहा॑ ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग मरे हुए शरीर के (वाचे) वाणी इन्द्रिय सम्बन्धी होम के लिये (स्वाहा) सुन्दरक्रिया (प्राणाय) शरीर के अवयवों को जगत् के प्राणवायु में पहुँचाने को (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्राणाय)धनञ्जय वायु को प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (चक्षुषे) एक नेत्रगोलक के जलाने के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति (चक्षुषे) दूसरे नेत्रगोलक के जलाने को (स्वाहा) अच्छी आहुति (श्रोत्राय) एक कान के विभाग के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति (श्रोत्राय) दूसरे कान के विभाग के लिये (स्वाहा) यह शब्द कर घी की आहुति चिता में छोड़ो ॥३॥

भावार्थ—जो लोग सुगन्धित घृतादि सामग्री से मरे शरीर को जलावें वे पुण्यसेवी होते हैं ॥३॥

मनस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । श्रीर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मन॑सः॒ काम॒माकू॑तिं वा॒चः स॒त्यम॑शीय ।
प॒शू॒नाᳬ रू॒पमन्न॑स्य॒ रसो॒ यश॒ श्रीः श्र॑यतां॒ मयि॒ स्वाहा॑ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (स्वाहा) सत्यक्रिया से ऐसे आगे पीछे कहे प्रकार से मरे हुए शरीर को जला के (मनसः) अन्तःकरण और (वाचः) वाणी, के (सत्यम्) विद्यमानों में उत्तम (कामम्) इच्छापूर्त्ति (आकूतिम्) उत्साह, (पशूनाम्) गो आदि के (रूपम्) सुन्दर स्वरूप को (अशीय) प्राप्त होऊं जैसे (मयि) मुझ जीवात्मा में (अन्नस्य) खाने योग्य अन्नादि के (रसः) मधुरादि रस (यशः) कीर्त्ति (श्रीः) शोभा वा ऐश्वर्य (श्रयताम्) आश्रय करें वैसे ही तुम इसको प्राप्त होओ और ये तुम में आश्रय करें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सुन्दर विज्ञान उत्साह और सत्य वचनों से, मरे शरीरों को विधिपूर्वक जलाते हैं वे पशु प्रजा धन-धान्य आदि को पुरुषार्थ से पाते हैं ॥३॥

प्रजापतिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

प्र॒जाप॑तिः सम्भ्रि॒यमा॑णः स॒म्राट् सम्भृ॑तो वैश्वदे॒वः
सᳬस॒न्नो घ॒र्मः प्रवृ॑क्त॒स्तेज॒ उद्य॑त आश्वि॒नः
पय॑स्यानी॒यमा॑ने पौ॒ष्णो वि॑ष्य॒न्दमा॑ने मारु॒तः क्लथ॑न् ।

मैत्रः शरसि सन्ताप्यमाने वायव्यो
ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने (सम्भ्रियमाणः) सम्यक् पोषण वा धारण किया हुआ (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशमान (वैश्वदेवः) सब उत्तम जीव वा पदार्थों के सम्बन्धी (संसन्नः) सम्यक् प्राप्त होता हुआ (घर्मः) घाम रूप (तेजः) प्रकाश तथा (प्रवृक्तः) शरीर से पृथक् हुआ (उद्यतः) ऊपर को चलता हुआ (आश्विनः) प्राण अपान सम्बन्धी तेज (आनीयमाने) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (पयसि) जल में (पौष्णः) पृथिवी सम्बन्धी तेज (विष्यन्दमाने) विशेषकर प्राप्त हुए समय में (मारुतः) मनुष्यदेहसम्बन्धी तेज (क्लथन्) हिंसा करता हुआ (मैत्रः) मित्र प्राणसम्बन्धी तेज (सन्ताप्यमाने) विस्तार किये वा पालन किये (शरसि) तालाब में (वायव्यः) वायुसम्बन्धी तेज (ह्रियमाणः) हरण किया हुआ (आग्नेयः) अग्निदेवतासम्बन्धी तेज (हूयमानः) बुलाया हुआ (वाक) बोलने वाला (हुतः) शब्द किया तेज और (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जीव (सम्भृतः) सम्यक् पोषण वा धारण किया है उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥५॥

भावार्थ—जब यह जीव शरीर को छोड़ कर सब पृथिव्यादि पदार्थों में भ्रमण करता जहाँ तहाँ प्रवेश करता और इधर उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है तब ही सुप्रसिद्ध होता है ॥५॥

सवितेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सवितादयो देवताः । विराड्धृतिश्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयऽआदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमाः पञ्चमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे । मित्रो नवमे
वरुणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! इस जीव को (प्रथमे) शरीर छोड़ने के पहिले (अहन्) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीये) दूसरे दिन (अग्निः) अग्नि (तृतीये) तीसरे (वायुः) वायु (चतुर्थे) चौथे (आदित्यः) महीना (पञ्चमे) पांचवें (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (षष्ठे) छठे (ऋतुः) वसन्तादि ऋतु (सप्तमे) सातवें (मरुतः) मनुष्यादि प्राणि (अष्टमे) आठवें (बृहस्पतिः) बड़ों का रक्षक सूत्रात्मा वायु (नवमे) नवमें में (मित्रः) प्राण (दशमे) दशवें में (वरुणः) उदान (एकादशे) ग्यारहवें में (इन्द्रः) बिजुली और (द्वादशे) बारहवें दिन (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं तब सूर्य प्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न होते हैं तभी पुण्य पाप कर्म से सुख-दुःखरूप फलों को भोगते हैं ॥६॥

उग्रश्चेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । मरुतो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर कौन जीव किस गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।
सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मरण को प्राप्त हुआ जीव (स्वाहा) अपने कर्म से (उग्रः) तीव्र स्वभाव वाला (च) शान्त (भीमः) भयकारी (च) निर्भय (ध्वान्तः) अन्धकार को प्राप्त (च) प्रकाश को प्राप्त (धुनिः) कांपता (च) निष्कम्प (सासह्वान् शीघ्र सहनशील (च) न सहने वाला (अभियुग्वा) सब ओर से नियमधारी (च) सब से अलग और (विक्षेपः) विक्षेप को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जीव पापाचरणी हैं वे कठोर जो धर्मात्मा हैं वे शान्त जो भय देने वाले वे भीम शब्द वाच्य जो भय को प्राप्त हैं वे भीत शब्द वाच्य जो अभय देने वाले हैं वे निर्भय जो अविद्यायुक्त हैं वे अन्धकार से झंपे जो विद्वान् योगी हैं वे प्रकाशयुक्त । जो जितेन्द्रिय नहीं हैं वे चञ्चल जो जितेन्द्रिय हैं वे चञ्चलता रहित अपने अपने कर्मफलों को सहते भोगते संयुक्त विक्षेप को प्राप्त हुए इस जगत् में नित्य भ्रमण करते हैं ऐसा जानो ॥७॥

अग्निमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कौन मनुष्य दोनों जन्मों में सुख पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना ।
शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तः
पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो वे मरे हुए जीव (हृदयेन) हृदय रूप अवयव से (अग्निम्) अग्नि को (हृदयाग्रेण) हृदय के ऊपरले भाग से (अशनिम्) बिजुली को (कृत्स्नहृदयेन) सम्पूर्ण हृदय के अवयवों से (पशुपतिम्) पशुओं के रक्षक जगत् धारणकर्त्ता सब के जीवनहेतु परमेश्वर को (यक्ना) यकृत् रूप शरीर के अवयव से (भवम्) सर्वत्र होने वाले ईश्वर को (मतस्नाभ्याम्) हृदय के इधर उधर के अवयवों से (शर्वम्) विज्ञानयुक्त ईश्वर को (मन्युना) दुष्टाचारी और पाप के प्रति वर्त्तमान क्रोध से (ईशानम्) सब जगत् के स्वामी ईश्वर को (अन्तः-पर्शव्येन) भीतरली पसुरियों के अवयवों में हुए विज्ञान से (महादेवम्) महादेव (उग्रम्, देवम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाले प्रकाशमान ईश्वर को (वनिष्ठुना) आंत विशेष से (वसिष्ठहनुः) अत्यन्त वास के हेतु राजा के तुल्य ठोडी वाले जन को (कोश्याभ्याम्) पेट में हुए दो मांसपिण्डों से (शिङ्गीनि) जानने वा प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर के सब अङ्गों से धर्माचरण विद्याग्रहण सत्सङ्ग और जगदीश्वर की उपासना करते हैं वे वर्त्तमान और भविष्यत् जन्मों में सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

उग्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । उग्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिगष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

*मनुष्य लोग कैसे उग्र स्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है—*

उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं
प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा ।
भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य
यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥९॥

पदार्थ–हे मनुष्यो ! गर्भाशय में स्थित वा बाहर रहने वाले जीव (लोहितेन) शुद्ध रुधिर से (उग्रम्) तीव्र गुण (सौव्रत्येन) श्रेष्ठ कर्म से (मित्रम्) प्राण के तुल्य प्रिय (दौर्व्रत्येन) दुष्टाचरण से (रुद्रम्) रुलाने हारे (प्रक्रीडेन, इन्द्रम्) उत्तम क्रीडा से परम ऐश्वर्य वा बिजुली (बलेन) बल से (मरुतः) उत्तम मनुष्यों को (प्रमुदा) उत्तम आनन्द से (साध्यान्) साधने योग्य पदार्थों को (भवस्य) प्रशंसा को प्राप्त होने वाले के (कण्ठ्यम्) कण्ठ में हुए स्वर (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने हारे जन को (अन्तःपार्श्व्यम्) भीतर पसुरी में हुए (महादेवस्य) महादेव विद्वान् के (यकृत्) हृदय में स्थित लालपिण्ड (सर्वस्य) सुखप्रापक मनुष्य का (वनिष्ठुः) आंत विशेष (पशुपते) पशुओं के रक्षक पुरुष के (पुरीतत्) हृदय की नाड़ी को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे देहधारी रुधिर आदि से तेजस्वी स्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं वैसे ही गर्भाशय में भी प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

लोमभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । आकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

*मनुष्यों को भस्म होने तक शरीर का मन्त्रों से दाह करना चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—*

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा
लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा
मेदोभ्यः स्वाहा । माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा
स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः
स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा ।
रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि दाहकर्म में घी आदि से (लोमभ्यः) त्वचा के ऊपरले वालों के लिये (स्वाहा) इस शब्द का (लोमभ्यः) नख आदि के लिये (स्वाहा), त्वचे) शरीर की त्वचा जलाने को (स्वाहा), त्वचे) भीतरली त्वचा जलाने के लिये (स्वाहा), लोहिताय) रुधिर जलाने को (स्वाहा), लोहिताय) हृदयस्थ रुधिर पिण्ड के जलाने को (स्वाहा), मेदोभ्यः) चिकने धातुओं के जलाने को (स्वाहा), मेदोभ्यः) सब शरीर के अवयवों को आर्द्र करने वाले भागों के जलाने को (स्वाहा), मांसेभ्यः) बाहरले मांसों के जलाने को (स्वाहा), मांसेभ्यः) भीतरले मांसों के जलाने के लिये (स्वाहा), स्नावभ्यः) स्थूल नाड़ियों के जलाने को (स्वाहा), स्नावभ्यः) सूक्ष्म नाड़ियों के जलाने को (स्वाहा), अस्थभ्यः) शरीरस्थ कठिन अवयवों के जलाने के लिये (स्वाहा), अस्थभ्यः) सूक्ष्म अस्थिरूप अवयवों के जलाने को (स्वाहा), मज्जभ्यः) हाड़ों के भीतर के धातुओं के लिये (स्वाहा), मज्जभ्यः) उसके अन्तर्गत भाग के जलाने को (स्वाहा), रेतसे) वीर्य के जलाने को (स्वाहा) और (पायवे) गुदारूप अवयव के दाह के लिये (स्वाहा) इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जब तक लोम से लेकर वीर्य्य पर्यन्त उस मृत शरीर का भस्म न हो तब तक घी और इन्धन डाला करो ॥ १० ॥

आयासायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

*फिर मनुष्यों को जन्मान्तर में सुख के लिये क्या कर्त्तव्य है इस विषय
को अगले मन्त्र में कहा है—*

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा
वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा ।
शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (आयासाय) अच्छे प्रकार प्राप्त होने को (स्वाहा) इस शब्द का (प्रायासाय) जाने के लिये (स्वाहा, संयासाय) सम्यक् चलने के लिये (स्वाहा), वियासाय) विविध प्रकार वस्तुओं की प्राप्ति को (स्वाहा), उद्यासाय) ऊपर जाने के लिये (स्वाहा), शुचे) पवित्र के लिये (स्वाहा, शोचते) शुद्धि करने वाले के लिये (स्वाहा, शोचमानाय) विचार के प्रकाश के लिये (स्वाहा) और (शोकाय) जिस में शोक करते हैं उस के लिये (स्वाहा) इस शब्द का प्रयोग करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये पुरुषार्थ-सिद्धि के लिये सत्य वाणी, बुद्धि और क्रिया का अनुष्ठान करें जिस से देहान्तर और जन्मान्तर में मङ्गल हो ॥ ११ ॥

तपस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किन साधनों से सुख प्राप्त करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तप॑से॒ स्वाहा॒ तप्य॑ते॒ स्वाहा॒ तप्य॑मानाय॒ स्वाहा॑ त॒प्ताय॒ स्वाहा॑ घ॒र्माय॒ स्वाहा॑ । निष्कृ॑त्यै॒ स्वाहा॒ प्राय॑श्चित्यै॒ स्वाहा॑ भेष॒जाय॒ स्वाहा॑ ॥१२॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये (तपसे) प्रताप के लिये (स्वाहा, तप्यते) सन्ताप को प्राप्त होने वाले के लिये (स्वाहा), तप्यमानाय) ताप गर्मी को प्राप्त होने वाले के लिये (स्वाहा), तप्ताय) तपे हुए के लिये (स्वाहा), घर्माय) दिन के होने को (स्वाहा), निष्कृत्यै) निवारण के लिये (स्वाहा), प्रायश्चित्यै) पापनिवृत्ति के लिये (स्वाहा) और (भेषजाय) सुख के लिये (स्वाहा) इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि प्राणायाम आदि साधनों से सब किल्विष का निवारण करके सुख को स्वयं प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें ॥ १२ ॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

य॒माय॒ स्वाहाऽन्त॑काय॒ स्वाहा॑ मृ॒त्यवे॒ स्वाहा॑ । ब्रह्म॑णे॒ स्वाहा॑ ब्रह्महत्यायै॒ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳪ स्वाहा॑ ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यमाय) नियन्ता न्यायाधीश वा वायु के लिये (स्वाहा) इस शब्द का (अन्तकाय) नाशकर्त्ता काल के लिये (स्वाहा), मृत्यवे) प्राणत्याग कराने वाले समय के लिये (स्वाहा), ब्रह्मणे) बृहत्तम अति बड़े परमात्मा के लिये वा ब्राह्मण विद्वान् के लिये (स्वाहा), ब्रह्महत्यायै) ब्रह्म वेद वा ईश्वर वा विद्वान् की हत्या के निवारण के लिये (स्वाहा, विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों वा जलादि के लिये (स्वाहा) और (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य्य भूमि के शोधने के लिये (स्वाहा) इस शब्द का प्रयोग करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य न्यायव्यवस्था का पालन कर अल्पमृत्यु को निवारण कर ईश्वर और विद्वानों का सेवन कर ब्रह्महत्यादि दोषों को छुड़ा के सृष्टिविद्या को जान के अन्त्येष्टिकर्मविधि करते हैं वे सब के मङ्गल देने वाले होते हैं सब काल में इस प्रकार मृतकशरीर को जला के सब सुख की उन्नति करनी चाहिये ॥१३॥

इस अध्याय में अन्त्येष्टि कर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह उनतालीसवां अध्याय पूरा हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

卐 अथ चत्वारिंशाऽध्यायारम्भः 卐

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

ईशावास्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चालीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य ईश्वर को जानके क्या करें इस विषय को कहा है—

ई॒शा वा॒स्य॑मि॒दᳪ सर्वं॒ यत्किञ्च॒ जग॑त्यां॒ जग॑त् । तेन॑ त्य॒क्तेन॑ भुञ्जीथा॒ मा गृ॑धः॒ कस्य॑ स्वि॒द्धन॑म् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (यत्) जो (इदम्) प्रकृति से लेकर पृथिवीपर्य्यन्त (सर्वम्) सब (जगत्याम्) प्राप्त होने योग्य सृष्टि में (जगत्) चरप्राणीमात्र (ईशा) संपूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से (वास्यम्) आच्छादन करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है (तेन) उस (त्यक्तेन) त्याग किये हुए जगत् से (भुञ्जीथाः) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर किन्तु (कस्य, स्वित्) किसी के भी (धनम्) वस्तुमात्र की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हम को सदा सब ओर से देखता है यह जगत् ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है इस प्रकार व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा का निश्चय करके भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं किया चाहते वे धर्मात्मा होकर इस लोक के सुख और परलोक में मुक्तिरूप सुख को प्राप्त कर के सदा आनन्द में रहें । १॥

कुर्वन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब वेदोक्त कर्म की उत्तमता अगले मन्त्र में कहते हैं—

कु॒र्वन्ने॒वेह कर्मा॑णि जिजीवि॒षेच्छ॒तᳪ समाः॑ । ए॒वं त्वयि॒ नान्यथे॒तोऽस्ति॒ न कर्म॑ लिप्यते॒ नरे॑ ॥२॥

पदार्थ—मनुष्य (इह) इस संसार में (कर्माणि) धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीवन की इच्छा करे (एवम्) इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्त्तमान (त्वयि) तुझ (नरे) व्यवहारों को चलाने हारे जीवन के इच्छुक होते हुए (कर्म) अधर्मयुक्त अवैदिक काम्य कर्म (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता (इतः) इससे जो और प्रकार से (न, अस्ति) कर्म लगाने का अभाव नहीं होता है ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य आलस्य को छोड़ कर सब देखने हारे न्यायाधीश परमात्मा और करने योग्य उसकी आज्ञा को मानकर शुभ कर्मों [को करते हुए और अशुभ कर्मों] को छोड़ते हुए ब्रह्मचर्य के सेवने से विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से पराक्रम को बढ़ा कर अल्पमृत्यु को हटावें, युक्त आहार विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होवें । जैसे जैसे मनुष्य सुकर्मों में चेष्टा करते हैं वैसे वैसे ही पापकर्म से बुद्धि की निवृत्ति होनी और विद्या, अवस्था और सुशीलता बढ़ती है ॥२॥

असुर्य्या इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब आत्मा के हननकर्त्ता अर्थात् आत्मा को भूले हुए जन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अ॒सु॒र्य्या॒ नाम॒ ते लो॒का अ॒न्धेन॒ तम॒सावृ॑ताः । ताँस्ते प्रेत्या॒पि ग॑च्छन्ति॒ ये के चा॑त्म॒हनो॒ जनाः॑ ॥३॥

पदार्थ—जो (लोकाः) देखनेवाले लोग (अन्धेन) अन्धकाररूप (तमसा) ज्ञान का आवरण करनेहारे अज्ञान से (आवृताः) सब ओर से ढपे हुए (च) और (ये) जो (के) कोई (आत्महनः) आत्मा के विरुद्ध आचरण करने हारे (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे (असुर्य्याः) अपने प्राणपोषण में तत्पर अविद्यादि दोषयुक्त लोगों के सम्बन्धी उनके पापकर्म करनेवाले (नाम) प्रसिद्ध में होते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरने के पीछे (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुःख और अज्ञानरूप अन्धकार से युक्त भोगों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि हैं जो आत्मा में और जानते वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही हैं वे कभी अविद्यारूप दुःखसागर से पार हो आनन्द को नहीं प्राप्त हो सकते । और जो आत्मा मन वाणी और कर्म से निष्कपट एकसा आचरण करते हैं वे ही देव आर्य्य सौभाग्यवान् सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक और परलोक में अतुल सुख भोगते हैं ॥३॥

अनेजदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । ब्रह्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा जन ईश्वर को साक्षात् करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अने॑ज॒देकं॒ मन॑सो॒ जवी॑यो॒ नैन॑द्दे॒वा आ॑प्नुव॒न्पूर्व॒मर्ष॑त् । तद्धाव॑तो॒ऽन्यानत्ये॑ति॒ तिष्ठ॒त्तस्मि॑न्न॒पो मा॑त॒रिश्वा॑ दधाति ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो (एकम्) अद्वितीय (अनेजत्) नहीं कंपनेवाला अर्थात् अचल अपनी अवस्था से हटना कंपन कहाता है उससे रहित (मनसः) मन के वेग से भी (जवीयः) अति वेगवान् (पूर्वम्) सब से आगे (अर्षत्) चलता हुआ अर्थात् जहां कोई चलकर जावे वहां प्रथम ही सर्वत्र व्याप्ति से पहुँचता हुआ ब्रह्म है (एनत्) इस पूर्वोक्त ईश्वर को (देवाः) चक्षु आदि इन्द्रिय (न) नहीं (आप्नुवन्) प्राप्त होते (तत्) वह परब्रह्म अपने आप (तिष्ठत्) स्थिर हुआ अपनी अनन्तव्याप्ति से (धावतः) विषयों की ओर गिरते हुए (अन्यान्) आत्मा के स्वरूप से विलक्षण मन वाणी आदि इन्द्रियों का (अति, एति) उलङ्घन कर जाता है (तस्मिन्) उस सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर की स्थिरता में (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में प्राणों को धारण करने हारे वायु के तुल्य जीव (अपः) कर्म वा क्रिया को (दधाति) धारण करता है यह जानो ॥४॥

भावार्थ—ब्रह्म के अनन्त होने से जहां जहां मन जाता है वहां वहां प्रथम से ही अभिव्याप्त पहले से ही स्थिर ब्रह्म वर्त्तमान है उसका विज्ञान शुद्ध मन से होता

है चक्षु आदि इन्द्रियों और अविद्वानों से देखने योग्य नहीं है। वह आप निश्चल हुआ सब जीवों को नियम से चलाता और धारण करता है। उसके अतिसूक्ष्म इन्द्रियगम्य न होने के कारण धर्मात्मा विद्वान् योगी को ही उसका साक्षात् ज्ञान होता है अन्य को नहीं ॥४॥

तदेजतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

विद्वानों के निकट और अविद्वानों के ब्रह्म दूर है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (**तत्**) वह ब्रह्म (**एजति**) मूर्खों की दृष्टि से चलायमान होता (**तत्, न, एजति**) अपने स्वरूप से न चलायमान और न चलाया जाता (**तत्**) वह (**दूरे**) अधर्मात्मा अविद्वान् अयोगियों से दूर अर्थात् क्रोड़ों वर्ष में भी नहीं प्राप्त होता (**तत्**) वह (**उ**) ही (**अन्तिके**) धर्मात्मा विद्वान् योगियों के समीप (**तत्**) वह (**अस्य**) इस (**सर्वस्य**) सब जगत् वा जीवों के (**अन्तः**) भीतर (**उ**) और (**तत्**) वह (**अस्य, सर्वस्य**) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप जगत् के (**बाह्यतः**) बाहर भी वर्त्तमान है ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! वह ब्रह्म मूढ़ की दृष्टि में कम्पता जैसा है वह आप व्यापक होने से कभी नहीं चलायमान होता जो जन उसकी आज्ञा से विरुद्ध हैं वे इधर उधर भागते हुए भी उसको नहीं जानते और जो ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठान करनेवाले हैं वे अपने आत्मा में स्थित अतिनिकट ब्रह्म को प्राप्त होते हैं जो ब्रह्म सब प्रकृति आदि के बाहर भीतर अवयवों में अभिव्याप्त हो के अन्तर्यामिरूप से सब जीवों के सब पाप पुण्यरूप कर्मों को जानता हुआ यथार्थ फल देता है वही सब को ध्यान में रखना चाहिये और उसीसे सबको डरना चाहिये ॥५॥

यस्त्वित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (**यः**) जो विद्वान् जन (**आत्मन्**) परमात्मा के भीतर (**एव**) ही (**सर्वाणि**) सब (**भूतानि**) प्राणी अप्राणियों को (**अनु, पश्यति**) विद्या धर्म और योगाभ्यास करने पश्चात् ध्यानदृष्टि से देखता है (**तु**) और जो (**सर्वभूतेषु**) सब प्रकृत्यादि पदार्थों में (**आत्मानम्**) आत्मा को (**च**) भी देखता है वह विद्वान् (**ततः**) तिस पीछे (**न**) नहीं (**विचिकित्सति**) संशय को प्राप्त होता ऐसा तुम जानो ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो लोग सर्वव्यापी न्यायकारी सर्वज्ञ सनातन सब के आत्मा अन्तर्यामी सब के द्रष्टा परमात्मा को जान कर सुख दुःख हानि लाभों में अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को जानकर धार्मिक होते हैं वे ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥६॥

यस्मिन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब कौन अविद्यादि दोषों को त्यागते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (**यस्मिन्**) जिस परमात्मा, ज्ञान, विज्ञान वा धर्म में (**विजानतः**) विशेषकर ध्यानदृष्टि से देखते हुए को (**सर्वाणि**) सब (**भूतानि**) प्राणीमात्र (**आत्मा, एव**) अपने तुल्य ही सुख दुःखवाले (**अभूत्**) होते हैं (**तत्र**) उस परमात्मा आदि में (**एकत्वम्**) अद्वितीय भाव को (**अनु, पश्यतः**) अनुकूल योगाभ्यास से साक्षात् देखते हुए योगिजन को (**कः**) कौन (**मोहः**) मूढ़ावस्था और (**कः**) कौन (**शोकः**) शोक वा क्लेश होता है अर्थात् कुछ भी नहीं ॥७॥

भावार्थ—जो विद्वान् संन्यासी लोग परमात्मा के सहचारी प्राणिमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जानते हैं अर्थात् जैसे अपना हित चाहते वैसे ही अन्यों में भी वर्त्तते हैं एक अद्वितीय परमेश्वर के शरण को प्राप्त होते हैं उनको मोह शोक और लोभादि कदाचित् प्राप्त नहीं होते। और जो लोग अपने आत्मा को यथावत् जान कर परमात्मा को जानते हैं वे सुखी सदा होते हैं ॥७॥

स पर्य्यगादित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराड्जगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥

फिर परमेश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽ
र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो ब्रह्म (**शुक्रम्**) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (**अकायम्**) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (**अव्रणम्**) छिद्ररहित और नहीं छेद करने योग्य (**अस्नाविरम्**) नाड़ी आदि के साथ सम्बन्धरूप बन्धन से रहित (**शुद्धम्**) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और (**अपापविद्धम्**) जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता (**परि, अगात्**) सब ओर से व्याप्त है जो (**कविः**) सर्वज्ञ (**मनीषी**) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला (**परिभूः**) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और (**स्वयम्भूः**) और अनादि स्वरूप जिसकी संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (**शाश्वतीभ्यः**) सनातन अनादिस्वरूप अपने अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाशरहित (**समाभ्यः**) प्रजाओं के लिये (**याथातथ्यतः**) यथार्थ भाव से (**अर्थान्**) वेद द्वारा सब पदार्थों को (**व्यदधात्**) विशेषकर बनाता है वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने के योग्य है ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो अनन्त शक्तियुक्त अजन्मा निरन्तर सदा मुक्त न्यायकारी निर्मल सर्वज्ञ सब का साक्षी नियन्ता अनादिस्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को जानने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् न होवे और न धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो इसलिये इसी ब्रह्म की सदैव उपासना करो ॥ ८ ॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः: आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

कौन मनुष्य अन्धकार को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याꣳ रताः ॥९॥

पदार्थ—(**ये**) जो लोग परमेश्वर को छोड़ कर (**असम्भूतिम्**) अनादि अनुत्पन्न सत्व रज और तमोगुणमय प्रकृतिरूप जड़ वस्तु को (**उपासते**) उपास्यभाव से जानते हैं वे (**अन्धम्, तमः**) आवरण करने वाले अन्धकार को (**प्रविशन्ति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते और (**ये**) जो (**सम्भूत्याम्**) महत्तत्वादि स्वरूप से परिणाम को प्राप्त हुई सृष्टि में (**रताः**) रमण करते हैं (**ते**) वे (**उ**) वितर्क के साथ (**ततः**) उस से (**भूय इव**) अधिक जैसे वैसे (**तमः**) अविद्यारूप अन्धकार को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य समस्त जड़ जगत् के अनादि नित्य कारण को उपासना भाव से स्वीकार करते हैं वे अविद्या को प्राप्त होकर क्लेश को प्राप्त होते और जो उस कारण से उत्पन्न स्थूल सूक्ष्म कार्य्यकारणाख्य अनित्य संयोगजन्य कार्य्यजगत् को इष्ट उपास्य मानते हैं वे गाढ़ अविद्या को पाकर अधिकतर क्लेश को प्राप्त होते हैं इसलिये सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की ही सब सदा उपासना करें ॥९॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (**धीराणाम्**) मेधावि योगी विद्वानों से जो वचन (**शुश्रुम**) सुनते हैं (**ये**) जो वे लोग (**नः**) हमारे प्रति(**विचचक्षिरे**) व्याख्यानपूर्वक कहते हैं वे लोग (**सम्भवात्**) संयोग जन्य कार्य्य से (**अन्यत् एव**) और ही कार्य्य वा फल (**आहुः**) कहते (**असम्भवात्**) उत्पन्न नहीं होने वाले कारण से (**अन्यत्**) और (**आहुः**) कहते हैं (**इति**) इस बात को तुम भी सुनो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग कार्य्यकारण रूप वस्तु से भिन्न-भिन्न वक्ष्यमाण उपकार लेते और लिवाते हैं तथा उन कार्य्यकारण के गुणों को जानकर जनाते हैं। ऐसे ही तुम लोग भी निश्चय करो ॥ १० ॥

सम्भूतिमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को कार्य्यकारण से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (**यः**) जो विद्वान् (**सम्भूतिम्**) जिस में सब पदार्थ उत्पन्न होते उस कार्यरूप सृष्टि (**च**) और उसके गुण, कर्म स्वभावों को तथा (**विनाशम्**) जिसमें पदार्थ नष्ट होते उस कारणरूप जगत् (**च**) और उसके गुण कर्म, स्वभावों को (**सह**) एक साथ (**उभयम्**) दोनों (**तत्**) उन कार्य्य और कारण स्वरूपों को (**वेद**) जानता है वह विद्वान् (**विनाशेन**) नित्यस्वरूप जाने हुए कारण के साथ (**मृत्युम्**) शरीर छूटने के दुःख से (**तीर्त्वा**) पार होकर (**सम्भूत्या**) शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप उत्पन्न हुई कार्यरूप धर्म में प्रवृत्त कराने वाली सृष्टि के साथ (**अमृतम्**) मोक्षसुख को (**अश्नुते**) प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! कार्य्यकारणरूप वस्तु निरर्थक नहीं है किन्तु कार्य्यकारण के गुण कर्म और स्वभावों को जानकर धर्म आदि मोक्ष के साधनों में संयुक्त करके अपने शरीरादि कार्य्यकारण को नित्यत्व से जान के मरण का भय छोड़

कर मोक्ष की सिद्धि करो। इस प्रकार कार्य्यकारण से अन्य ही बल सिद्ध करना चाहिये। इन कार्य्यकारण का निषेध परमेश्वर के स्थान में जो उपासना उस प्रकरण में करना चाहिये ॥ ११ ॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

अब विद्या अविद्या की उपासना का फल कहते हैं—

अन्धंतमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासंते।

ततो भूयंऽइव ते तमो यऽउं विद्यायांᳬ रताः ॥१२॥

पदार्थ—(ये) जो मनुष्य (अविद्याम्) अनित्य में नित्य, अशुद्ध में शुद्ध दुःख में सुख और अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धिरूप अविद्या उस की अर्थात् ज्ञानादि गुणरहित कारणरूप परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धम्, तमः) दृष्टि के रोकने वाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को (प्र, विशन्ति) प्राप्त होते हैं और (ये) जो अपने आत्मा को पण्डित मानने वाले (विद्यायाम्) शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध में जानने मात्र अवैदिक आचरण में (रताः) रमण करते (ते) वे (उ) भी (ततः) उस से (भूय इव) अधिकतर (तमः) अज्ञानरूपी अन्धकार में प्रवेश करते हैं ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो जो चेतन ज्ञानादि गुणयुक्त वस्तु है वह जानने वाला, जो अविद्यारूप है वह जानने योग्य है और जो चेतन ब्रह्म तथा विद्वान् का आत्मा है वह उपासना के योग्य है जो इससे भिन्न है वह उपास्य नहीं है किन्तु उपकार लेने योग्य है। जो मनुष्य अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेशों से युक्त है वे परमेश्वर को छोड़ इससे भिन्न जड़ वस्तु की उपासना कर महान् दुःखसागर में डूबते हैं और जो शब्द अर्थ का अन्वयमात्र संस्कृत पढ़कर सत्यभाषण पक्षपातरहित न्याय का आचरण रूप धर्म नहीं करते अभिमान में आरूढ़ हुए विद्या का तिरस्कार कर अविद्या को ही मानते हैं वे अत्यन्त तमोगुणरूप दुःखसागर में निरन्तर पीड़ित होते हैं ॥१२॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब जड़ चेतन का भेद अगले मन्त्रों में कहा है—

अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽअन्यदाहुरविद्यायाः।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग (नः) हमारे लिये (विचचक्षिरे) व्याख्यापूर्वक कहते थे (विद्यायाः) पूर्वोक्त विद्या का (अन्यत्) अन्य ही कार्य वा फल (आहुः) कहते थे (अविद्यायाः) पूर्व मन्त्र से प्रतिपादन की अविद्या का (अन्यत्) अन्य फल (आहुः) कहते हैं इस प्रकार उन (धीराणाम्) आत्मज्ञानी विद्वानों से (तत्) उस वचन को हम लोग (शुश्रुम) सुनते थे ऐसा जानो ॥१२॥

भावार्थ—अज्ञानादि गुणयुक्त चेतन से जो उपयोग होने योग्य है वह अज्ञानयुक्त जड़ से कदापि नहीं और जो जड़ से प्रयोजन सिद्ध होता है वह चेतन से नहीं। सब मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग, योग, विज्ञान और धर्माचरण से इन दोनों का विवेक करके दोनों से उपयोग लेना चाहिए ॥१३॥

विद्यामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयᳬ सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥१४॥

पदार्थ—(यः) जो विद्वान् (विद्याम्) पूर्वोक्त विद्या (च) और उसके सम्बन्धी साधन उपसाधनों (अविद्याम्) पूर्व कही अविद्या (च) और इसके उपयोगी साधन समूह को और (तत्) उस ध्यानगम्य मर्म (उभयम्) इन दोनों को (सह) साथ ही (वेद) जानता है वह (अविद्यया) शरीरादि जड़ पदार्थसमूह से किये पुरुषार्थ से (मृत्युम्) मरणदुःख के भय को (तीर्त्वा) उल्लङ्घन कर (विद्यया) आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के संयोग में जो धर्म उससे उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शनरूप विद्या से (अमृतम्) नाशरहित अपने स्वरूप वा परमात्मा को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥१४॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या और अविद्या को उनके स्वरूप से जानकर इन के जड़ चेतन साधक हैं ऐसा निश्चय कर सब शरीरादि जड़ पदार्थ और चेतन आत्मा को धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये साथ ही प्रयोग करते हैं वे लौकिक दुःख को छोड़ परमार्थ के सुख को प्राप्त होते हैं जो जड़ प्रकृति आदि कारण वा शरीरादि कार्य्य न हों तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति और जीव कर्म उपासना और ज्ञान के करने को कैसे समर्थ हों। इससे न केवल जड़ न केवल चेतन से अथवा न केवल कर्म से तथा न केवल ज्ञान से कोई धर्मादि पदार्थों की सिद्धि करने में समर्थ होता है ॥१४॥

वायुरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब देहान्त के समय क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तᳬ शरीरम्।

ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतᳬ स्मर। १५॥

पदार्थ—हे (क्रतो) कर्म करने वाले जीव ! तू शरीर छूटते समय (ओ३म्) इस नामवाच्य ईश्वर को (स्मर) स्मरण कर (क्लिबे) अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर। इस संस्कार का (वायुः) धनञ्जयादिरूप वायु (अनिलम्) कारणरूप वायु को, कारण रूप वायु (अमृतम्) अविनाशी कारण को धारण करता (अथ) इस के अनन्तर (इदम्) यह (शरीरम्) नष्ट होने वाला सुखादि का आश्रय शरीर (भस्मान्तम्) अन्त में भस्म होने वाला होता है ऐसा जानो ॥१५॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जैसी मृत्यु समय में चित्त की वृत्ति होती है और शरीर से आत्मा का पृथक् होना होता है वैसे ही इस समय भी जानें। इस शरीर को जलाने पर्य्यन्त क्रिया करें। जलाने पश्चात् शरीर का कोई संस्कार न करें। वर्त्तमान समय में एक परमेश्वर ही की आज्ञा का पालन उपासना और अपने सामर्थ्य को बढ़ाया करें। किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता ऐसा मान कर धर्म में रुचि और अधर्म में अप्रीति किया करें ! १५॥

अग्ने नयेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

ईश्वर किन मनुष्यों पर कृपा करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ।१६॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्यस्वरूप (अग्ने) प्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर ! जिससे हम लोग (ते) आप के लिये (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नमउक्तिम्) सत्कारपूर्वक प्रशंसा का (विधेम) सेवन करें। इससे (विद्वान्) सबको जाननेवाले आप (अस्मत्) हम लोगों से कुटिलतारूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) पृथक् कीजिये (अस्मान्) हम जीवों को (राये) विज्ञान धन वा धन से हुए सुख के लिये (सुपथा) धर्मानुकूल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) प्रशस्त ज्ञानों को (नय) प्राप्त कीजिये ॥१६॥

भावार्थ—जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते और सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं उनको दयालु ईश्वर पापाचरणमार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चला के विज्ञान देकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिये समर्थ करता है इससे एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ किसी की उपासना कदापि न करें ॥१६॥

हिरण्मयेनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धार स्वर॥

अब अन्त में मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ।१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (हिरण्मयेन) ज्योतिःस्वरूप (पात्रेण) रक्षक मुझ से (सत्यस्य) अविनाशी यथार्थ कारण के (अपिहितम्) आच्छादित (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम अङ्ग का प्रकाश किया जाता (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) प्राण वा सूर्यमण्डल में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है (सः) वह (असौ) परोक्षरूप (अहम्) मैं (खम्) आकाश के तुल्य व्यापक (ब्रह्म) सब से गुण कर्म और स्वरूप करके अधिक हूं (ओ३म्) सब का रक्षक जो मैं उसका (ओ३म्) ऐसा नाम जानो ॥१७॥

भावार्थ—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! जो मैं यहां हूँ वही अन्यत्र सूर्य्यादि लोक में, जो अन्यस्थान सूर्य्यादि लोक में हूँ वही यहां हूँ सर्वत्र परिपूर्ण आकाश के तुल्य व्यापक मुझ से भिन्न कोई बड़ा नहीं मैं ही सब से बड़ा हूँ। मेरे सुलक्षणों से युक्त पुत्र के तुल्य प्राणों से प्यारा मेरा निज नाम "ओ३म्" यह है। प्रेम और सत्याचरण से शरण लेता उनको अन्तर्यामीरूप से मैं अविद्या का विनाश कर उसके आत्मा का प्रकाश करके शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला कर सत्यस्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए विज्ञान को दे और सब दुःखों से अलग करके मोक्षसुख को प्राप्त करता हूँ ॥ इति ॥१७॥

इस अध्याय में ईश्वर के गुणों का वर्णन, अधर्म त्याग का उपदेश, सब काल में सत् कर्म के अनुष्ठान की आवश्यकता, अधर्माचरण की निन्दा, परमेश्वर के अतिसूक्ष्म स्वरूप का वर्णन, विद्वान् को जानने योग्य का होना, अविद्वान् को अज्ञेयपन का होना, सर्वत्र आत्मा जान के अहिंसा धर्म की रक्षा, उससे मोह शोकादि का त्याग, ईश्वर का जन्मादि दोषरहित होना, वेदविद्या का उपदेश, कार्य्य कारण रूप जड़ जगत् की उपासना का निषेध, उन कार्य्य कारणों से मृत्यु का निवारण करके मोक्षादि सिद्धि करना, जड़ वस्तु की उपासना का निषेध, चेतन की उपासना की विधि, उन जड़चेतन दोनों के स्वरूप के जानने की आवश्यकता, शरीर के स्वभाव का वर्णन, समाधि से परमेश्वर को अपने आत्मा में धर के शरीर त्यागना, दाह के पश्चात् अन्य क्रिया के अनुष्ठान का निषेध, अधर्म के त्याग और धर्म के बढ़ाने के लिये परमेश्वर की प्रार्थना, ईश्वर के स्वरूप का वर्णन और सब नामों से "ओ३म्" इस नाम की उत्तमता का प्रतिपादन किया है। इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये।

यह चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

सामवेद

भाषा भाष्य
संपूर्ण

— भाष्यकार —

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

भाष्यकार की भूमिका

सामवेद चारों वेदों में एक है और इसका तृतीय स्थान है। वेद के चार विभाग विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान काण्ड के भेद से किये जाते हैं। ये चार काण्ड वस्तुतः चार विस्तृत विषय हैं जिनमें अन्य अनेक विषय संगृहीत हो जाते हैं। ऋक् शब्द स्तुत्यर्थक ऋच् धातु से बना है। इसका अर्थ पदार्थों का गुणवर्णन अर्थात् उनके सत्य स्वरूप का स्तवन है। ऋग्वेद गुण और गुणी के भेद से पदार्थों का स्तवन करता है। यजुः शब्द यज् देवपूजा, संगतिकरण और दान के अर्थ को देनेवाले धातु से निष्पन्न है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसकी सिद्धि के और भी प्रकार बताये गये हैं। इसके अर्थविस्तार में कर्म के विविध प्रकारों का सन्निवेश है। साम समन्वय और उपासना से सम्बद्ध है। साम पद की सिद्धि सा+अम और अस् क्षेपार्थक धातु से भी होती है। साम में जहां उपासना का उदात्तरूप है वहां उसका बहुत ही वैज्ञानिक ऊहापोह भी है। वह है समन्वय का प्रकार। यह समन्वय कर्म और ज्ञान का, कर्म और उपासना का, जगत् और ब्रह्म, लोक और परलोक आदि सभी का हो सकता है। जगत् की पहेली के साथ जीव और ब्रह्म के कार्यकलापों का जब तक समन्वय न किया जावे उपासना की सिद्धि हो नहीं सकती है। अथर्व महत्ता का द्योतक है और उसमें ज्ञान का सर्वोच्च प्रकार वर्णित है।

इन चारों वेदों को विद्या की दृष्टि से कभी कभी त्रयी भी कहा जाता है। त्रयी-विद्या का यह तात्पर्य कभी भी नहीं है कि वेद तीन ही हैं। वेद तो चार हैं परन्तु मंत्रों की रचना और उनकी परिभाषा के अनुसार वह त्रयी कहे जाते हैं। चारों ही वेदों के मंत्र तीन प्रकार के होते हैं। वे तीन प्रकार हैं ऋक्, यजुः और साम। मीमांसा आदि ग्रंथों में इनकी ऐसी ही परिभाषा की गई है। ये मंत्र के प्रकार हैं और इन से चारों ही वेदों का ग्रहण होता है।

सामवेद जैसा कहा जा चुका है उपासनात्मक है। इसके मंत्र गानमय हैं। ये गाये जाते हैं और इन गानों को सामगान कहा जाता है। गान भेद से सामवेद को सहस्रवर्त्मा अर्थात् सहस्र मार्गों वाला कहा जाता है। महाभाष्यकार ने इसके लिए सहस्रवर्त्मा पद का ही प्रयोग किया है। शबर स्वामी ने इसी आधार पर लिखा है कि सामवेद में गीति व गान के सहस्र उपाय हैं। ये गान प्रकार ही इस वेद की सर्वाधिक शाखा होने में कारण हैं। इनमें गान के प्रकारों पर विशेष पल्लवन जाता पाया है।

विश्व में एक प्रकार का साम पाया जाता है। वह साम ही समन्वय है। विश्व के समस्त प्रश्नों का एक मात्र समाधान जगन्नियन्ता भगवान हैं। उसकी प्राप्ति का साधन उपासना है। यह ज्ञान और कर्म के समन्वय का उदात्त-रूप है। सामवेद इस सम्बन्धी प्रक्रिया से सम्बन्ध रखता है। सामवेद में रथन्तर आदि अनेक प्रकार के सामों का वर्णन है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन सामों को जगत् के पदार्थों का वाचक मानकर उनके साथ इन का सम्बन्ध दिखलाया गया है। वेद के शब्दों का सृष्टि के पदार्थों के साथ सम्बन्ध है—यह इससे सुतराम् स्पष्ट है। जैसे जगत् के दार्शनिक विश्लेषण में कारणों का त्रिक है और त्रिक है ईश्वर, जीव एवं प्रकृति के रूप में। अनादि पदार्थों का ठीक उसी प्रकार ज्ञान और भाषा की मूल प्रेरणा में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का त्रिक है। सामवेद में वर्णित समन्वय और उपासना इसके समुन्नायक हैं। इसी दृष्टि से सामवेद का अध्ययन करना चाहिए।

सामवेद के प्रथम मंत्र का 'वीतये' पद ही बहुत उच्च विज्ञान का द्योतक है। समस्त लोक आदिम अवस्था में एक दूसरे से अत्यन्त समीप रहते हैं। अग्नि उन्हें पृथक् और दूर करता है। 'वीतये' से इसी धारणा की संपुष्टि होती है। ऐसे ज्ञान के आगार वेदों को लोग पढ़ें, जिससे सर्वत्र सुख शांति व्याप्त हो।

दिल्ली
दिनांक ३०-६-७३

वैद्यनाथ शास्त्री

॥ ओ३म् ॥

सामवेद भाषाभाष्यम्

पूर्वार्चिकः

आग्नेयं काण्डम् : : प्रथमोध्यायः

१—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३१२ ३२३१२ १ २र ३१२

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ईश्वर (आयाहि) प्राप्त हो (वीतये) ज्ञान के लिए (गृणानः) स्तुति किया गया ((हव्यदातये) उत्तम पदार्थों के देने के लिए (नि) निश्चय रूप से (होता) दाता (सत्सि) विद्यमान है (बर्हिषि) विश्व ब्रह्माण्ड में ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दाता तू विश्व ब्रह्माण्ड में व्यापक है । अतः स्तुति किया हुआ तू ज्ञान तथा उत्तम पदार्थों के देने के लिए हमें प्राप्त हो ॥१॥

२—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३२३१२३१२

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर ! (यज्ञानाम्) उत्तम व्यवहारों का (होता) दाता (विश्वेषाम्) सब (हितः) कल्याणकारी (देवेभिः) विद्वानों और दिव्य पदार्थों द्वारा (मानुषे जने) मनुष्य समाज पर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू समस्त उत्तम व्यवहारों का दाता तथा विद्वानों और दिव्य पदार्थों के द्वारा मनुष्य समाज पर उपकार करने वाला है ॥२॥

३—काण्वो मेधातिथिः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३॥

पदार्थ—(अग्निम्) ईश्वर को (दूतम्) पापियों को दण्ड देने वाले (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (होतारम्) दाता (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (अस्य) इस (यज्ञस्य) संसार यज्ञ के (सुक्रतुम्) उत्तम निर्माता ॥३॥

भावार्थ—हम पापियों के दण्ड देने वाले, दाता, सर्वज्ञ और इस संसाररूपी यज्ञ के उत्तम निर्माता परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥३॥

४—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

अग्निर्वृत्राणि जंघनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥४॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (वृत्राणि) अज्ञानों का (जंघनत्) नाश करता है (द्रविणस्युः) समस्त धनों का स्वामी (विपन्यया) विशिष्ट उपासना से (समिद्धः) साक्षात् किया हुआ (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (आहुतः) भलीभांति स्तुति किया हुआ ॥४॥

भावार्थ—उपासना से साक्षात् किया हुआ, स्तुत्य, शुद्धस्वरूप तथा समस्त धनों का स्वामी परमेश्वर अज्ञानान्धकारो का विनाश करता है ॥४॥

५—उशना । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथन्न वेद्यम् ॥५॥

पदार्थ—(प्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रिय (वः) तुझ (अतिथिम्) काल के बन्धन से रहित (स्तुषे) स्तुति करता हूँ (मित्रम्) मित्र के (इव) समान (प्रियम्) प्यारे (अग्ने) हे ईश्वर (रथम् न) सूर्य के समान (वेद्यम्) ज्ञातव्य ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त प्रिय, कालबन्धन-रहित, मित्र के समान प्यारे तथा सूर्य के समान जानने योग्य तुझ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ ॥५॥

६—सुदीतिपुरुमीढौ । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३१ २र १२ ३ २ ३ १ २र

त्वन्नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥६॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (नः) हमें (अग्ने) हे ईश्वर ! (महोभिः) महान् गुणों वा कर्मों से (पाहि) बचा (विश्वस्या) समस्त (अरातेः) अदानशीलता के भावों से (उत) तथा (द्विषः) द्वेष वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य के सम्पर्क से ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महान् गुणों और कर्मों द्वारा समस्त अदानशीलता के भावों और द्वेषी मनुष्य के सम्पर्क से हमें बचा ॥६॥

७—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धासि इन्दुभिः ॥७॥

पदार्थ—(एहि) प्राप्त हो (उ) निश्चय (सु ब्रवाणि) अच्छी प्रकार बोलूँ (ते) तेरी (अग्ने) हे परमेश्वर (इत्था) इस प्रकार (इतरा) मनुष्यों की वाणी से भिन्न (गिरः) वाणियों को (एभिः) इन सब (वर्धासि) बढ़ा (इन्दुभिः) यज्ञादिकों द्वारा ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मैं मानवी वाणी से भिन्न तेरी वेदमयी वाणी अथवा स्तुति को उत्तम रूप से बोलूँ । इस प्रकार तू मुझे प्राप्त हो और इन यज्ञादिकों के द्वारा मुझे बढ़ा ॥७॥

८—काण्वो वत्सः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ २ २र ३ १ २ ३१ २ २ ३ १ २ ३ २

आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वाङ्कामये गिरा ॥८॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (ते) तेरा (वत्सः) पुत्ररूप जीव (मनः) मनन योग्य ज्ञान को (यमत्) प्राप्त करता है (परमाच्चित्) परमप्रभु से (सधस्थात्) साथ रहने वाले अथवा समान स्थान में रहने वाले (अग्ने) हे ईश्वर (त्वाम्) तुझको (कामये) चाहता हूँ (गिरा) स्तुति से ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा पुत्ररूप जीव हृदय देश में साथ रहने वाले तुझ परम प्रभु से मननयोग्य ज्ञान को प्राप्त करता है । मैं भी स्तुति द्वारा तेरी कामना करता हूँ ॥८॥

९—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ २र३ १२ ३ १ २र ३ १ २

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥९॥

पदार्थ—(त्वाम्) तुझे (अग्ने) हे परमेश्वर (पुष्करादधि) हृदयाकाश में (अथर्वा) महान् अहिंसक योगी (निरमन्थत) प्राप्त करता है (मूर्ध्नः) मूर्त्त-पदार्थों के आधारभूत (विश्वस्य) संसार के (मध्य में) (वाघतः) मेधावीजन ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! महान् अहिंसाव्रती योगी तुझे हृदयाकाश मे प्राप्त करता है और मेधावीजन तुझे मूर्त पदार्थों के आधारभूत संसार के मध्य में देखते हैं ॥ ९ ॥

१०—वामदेवः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

अग्ने विवस्वदाभरास्मभ्यमूतये महे । देवो ह्यसि नो दृशे ॥१०॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (विवस्वत्) अज्ञान को दूर करने वाले ज्ञान को (आभर) भरपूर कर (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (ऊतये) रक्षा के लिए (महे) पूर्ण (देवः) देव (हि) निश्चय ही (असि) है (नः) हमारे (दृशे) दर्शनज्ञान के लिए ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर हमारी पूर्ण रक्षा के लिए हमें अज्ञान-निवारक ज्ञान दे । निश्चय तू हमारे ज्ञान के लिए है ॥१०॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

११—विरूपः । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ १ २ ३ १ २

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१॥

पदार्थ—(नमः) नमस्कार हो (अग्ने) हे परमेश्वर (ओजसे) बल के लिए (गृणन्ति) स्तुति करते हैं (देव) हे देव (कृष्टयः) मनुष्य (अमैः) बलों से (अमित्रम्) पाप को (अर्दय) नष्ट कर ॥१॥

भावार्थ—हे देव परमेश्वर ! तुझे नमस्कार है । मनुष्य जन बलप्राप्ति के लिए तेरी स्तुति करते हैं । हे प्रभो ! तू शक्तियों से पाप का नाश कर ॥२॥

१२—वामदेवः । गायत्री । अग्निः ।

३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ १ २ ३ २

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥२॥

पदार्थ—(दूतम्) दुःखनाशक (वः) तुझ (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (हव्यवाहम्) फलदाता (अमर्त्यम्) अमर (यजिष्ठम्) उपासनीय (ऋञ्जसे) स्तुति करता हूँ (गिरा) वेदवाणी से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मैं तुझ दुःखनाशक, सर्वज्ञ कर्मफलदाता और अमर प्रभु की वेदवाणी से स्तुति करता हूँ ॥२॥

१३—प्रयोगः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २र

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥३॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्वा) तेरे (जामयः) उत्पन्न (गिरः) स्तुतिरूपी वाणियां (देदिशतीः) निर्देश करती हुई (हविष्कृतः) ज्ञानकारिणी (वायोः) वायु के (अनीके) स्थान में (अस्थिरन्) स्थित हो जाती हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! की जाने वाली ज्ञानमयी स्तुतियां तेरा निर्देश कराती हुई वायुमण्डल में स्थित हो जाती हैं ॥३॥

१४—मधुच्छन्दाः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥४॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्वा) तेरे (अग्ने) हे परमेश्वर (दिवेदिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं प्रातः (धिया) बुद्धि से (वयम्) हम (नमः) नमस्कार (भरन्तः) करते हुए (एमसि) उपस्थित होते हैं ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्रतिदिन सायं प्रातः ज्ञानपूर्वक तुझे नमस्कार करते हुए हम तेरे समीप उपस्थित होते हैं ॥४॥

१५—शुनःशेपः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ।५।

पदार्थ—(**जराबोध**) स्तुति से ज्ञान पाने वाले (**तत्**) वह (**विविड्ढि**) कर (**विशेविशे**) प्रत्येक प्राणी के लिए (**यज्ञियाय**) पूजनीय (**स्तोमम्**) स्तुति (**रुद्राय**) परमेश्वर की (**दृशीकम्**) मनोहर ।

भावार्थ—हे स्तुति से ज्ञान पाने वाले विद्वन् ! तू प्रत्येक प्राणी के पूजनीय परमेश्वर की मनोहर स्तुति कर ॥५॥

१६—मेधातिथिः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
प्रति त्यञ्चारुमध्वरङ्गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६॥

पदार्थ—(**प्रति**) लक्ष्य कर (**त्यम्**) उस (**चारुम्**) सुन्दर (**अध्वरम्**) संसार रूपी यज्ञ को (**गोपीथाय**) पृथिवी तथा इन्द्रियादि पदार्थों की रक्षा के लिए (**प्रहूयसे**) पुकारा जाता है (**मरुद्भिः**) ज्ञानी जनों से (**अग्ने**) हे परमेश्वर ! (**आगहि**) प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू इस सुन्दर संसार यज्ञ को उद्देश्य में रख कर पृथिवी तथा इन्द्रियादि पदार्थों की रक्षा के लिये विद्वानों से पुकारा जाता है । हे भगवन्, तू हमें प्राप्त हो ॥ ६ ॥

१७— शुनःशेपः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वन्न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निन्नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७॥

पदार्थ—(**अश्वम् न**) सूर्य के समान (**त्वा**) तुझ (**वारवन्तम्**) अन्धकार निवारक की (**वन्दध्यै**) वन्दना करता हूँ (**अग्निम्**) परमेश्वर की (**नमोभिः**) नमस्कारों से (**सम्राजम्**) सम्राट् (**तम्**) उस (**अध्वराणाम्**) कल्याणकारी यज्ञों के ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सूर्यवत् प्रकाशमान तथा कल्याणकारी यज्ञों के सम्राट् तुझ महाप्रभु की मैं स्तुतियों से वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥

१८—प्रयोगः । गायत्री । अग्निः ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ ३ २१ २
ऑर्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥८॥

पदार्थ—(**और्वभृगुवत्**) पृथिवीस्थ विद्वान् के समान (**शुचिम्**) पवित्र (**अप्नवानवत्**) कर्मनिष्ठ के समान की (**आहुवे**) स्तुति करता हूँ । (**अग्निम्**) परमेश्वर की (**समुद्रवाससम्**) आकाशवत् व्यापक ॥८॥

भावार्थ—पृथिवीस्थ विद्वान् और कर्मनिष्ठों की भांति मैं भी आकाशवत् व्यापक पवित्र परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥

१९ – मेधातिथिः । गायत्री । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥९॥

पदार्थ—(**अग्निम्**) योगाग्नि को (**इन्धानः**) प्रदीप्त करता हुआ (**मनसा**) मन के साथ (**धियम्**) बुद्धि को (**सचेत**) संयुक्त करे (**मर्त्यः**) मनुष्य (**अग्निम्**) परमेश्वर को (**इन्धे**) प्रकाशित करे (अपने अन्दर) (**विवस्वभिः**) ज्ञानज्योतियों से ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य को चाहिये कि वह योग की अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ मन के साथ बुद्धि को संयुक्त करे और ज्ञानज्योतियों से अपने अन्दर परमेश्वर को प्रकाशित करे ॥ ९ ॥

२०—वत्सः । गायत्री । अग्निः ।

२उ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि ।१०।

पदार्थ—(**आत् इत्**) इस प्रकार (**प्रत्नस्य**) सनातन (**रेतसः**) कारण-रूप (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**पश्यन्ति**) देखते हैं (**वासरम्**) सर्वत्र फैले हुए (**परः**) परम (**यत्**) जो (**इध्यते**) प्रकाशमान हो रहा है (**दिवि**) सूर्य आदि चमकीले पदार्थों में ॥ १० ॥

भावार्थ—योगीजन इस प्रकार से सनातन और सब के कारण परमेश्वर की सर्वत्र फैली हुई इस परम ज्योति को देखते हैं जो कि चमकने वाले सूर्य आदि पदार्थों में भी प्रकाशमान हो रही है ॥ १० ॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

२१—प्रयोगः । गायत्री । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

पदार्थ—(**वृधन्तम्**) उन्नति देने वाले (**अध्वराणाम्**) यज्ञों के (**अग्निम्**) परमेश्वर की (**वः**) तुम लोग (**पुरूतमम्**) पूर्ण करने वाले (**अच्छा**) भली प्रकार (**नप्त्रे**) पौत्र के लिए (**सहस्वते**) बलशाली ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अपने उन्नतिदाता तथा यज्ञों के पूर्ण करने वाले परमेश्वर की बलशाली पुत्र-पौत्र आदि की प्राप्ति के लिए स्तुति करो ॥ १ ॥

२२—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ २ ३ २ १ २ ३१ २ ३ २
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्य३त्रिणम् । अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥२॥

पदार्थ—(**अग्निः**) परमेश्वर (**तिग्मेन**) प्रचण्ड (**शोचिषा**) तेज से (**यंसत्**) नियम में रखता है (**न्यत्रिणम्**) पाप करने वाले को (**अग्निः**) पर-मेश्वर (**नः**) हमें (**वंसते**) देता है (**रयिम्**) धन को ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर अपने प्रचण्ड तेज से पापियों को नियम में रखता है और परमेश्वर ही हमें धन देता है ॥ २ ॥

२३—वामदेवः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १२ ३ २ ३१ २
अग्ने मृड महां असि य आ देवयुञ्जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥३॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे ईश्वर (**मृड**) सुखी कर (**महान्**) बड़ा (**असि**) है (**अयः**) सर्वव्यापक (**आ**) भली भांति (**देवयुञ्जनम्**) दैवी संपत्तिसे युक्त मनुष्य (**इयेथ**) प्राप्त होता है (**बर्हिरासदम्**) ज्ञान में स्थित को ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू महान् और सर्वव्यापक है । तू दैवी संपत्ति से युक्त और ज्ञान में स्थित पुरुष को भली प्रकार सुखी करता है ॥ ३ ॥

२४—वसिष्ठः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥४॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे ईश्वर (**रक्ष**) रक्षा कर (**नः**) हमारी (**अंहसः**) पाप कर्म से (**प्रतिस्म**) ही (**तपिष्ठैः**) तपाने वाले तेजों से (**देव**) हे देव (**रीषतः**) हिंसा के विचारों को (**अजरः**) अजर (**दह**) भस्म करदे ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमात्म देव ! अजर, अमर तू हमें पाप से बचा और अपने तपाने वाले तेजों से हिंसा के बुरे विचारों को भस्म कर ॥ ४ ॥

२५—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १२ ३ १ २
अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥५॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर (**युङ्क्ष्वा**) योग से युक्त करता है (**हि**) निश्चय (**ये**) जो (**तव**) तुझे (**अश्वासः**) विद्वान् (**साधवः**) साधुजन (**अरम्**) पर्याप्त (**वहन्ति**) धारण करता है । (**आशवः**) कुशाग्रबुद्धि कर्मण्य ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो विद्वान् कर्मण्य साधुजन तुझे पर्याप्तरूप से अपने अन्दर धारण करते हैं उन्हें तू योग से युक्त करता है ॥ ५ ॥

२६—वसिष्ठः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २
नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमग्न आहुत ॥६॥

पदार्थ—(**नि**) निरन्तर (**त्वा**) तुझ (**नक्ष्य**) हे उपास्य देव (**विश्पते**) हे प्रजा के स्वामी (**द्युमन्तम्**) तेजस्वी (**धीमहे**) धारण करते हैं (**वयम्**) हम लोग (**सुवीरम्**) उत्तम शक्तिशाली (**अग्ने**) हे ईश्वर (**आहुत**) हे स्तुति योग्य ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे उपासनीय, प्राणिमात्र के स्वामी स्तुत्य परमेश्वर ! हम लोग तुझ तेजस्वी उत्तम बलशाली को धारण करते है ॥ ६ ॥

२७—विरूपः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥७॥

पदार्थ—(**अग्निः**) परमेश्वर (**मूर्द्धा**) सर्वोपरि (**दिवः**) द्युलोक का (**ककुत्**) महान् (**पतिः**) स्वामी (**पृथिव्याः**) पृथिवी लोक का (**अयम्**) यह (**अपां**) जलों के (**रेतांसि**) मूल कारणों को (**जिन्वति**) जानता या गति देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—वह परमेश्वर सर्वोपरि और द्यु तथा पृथिवी लोक का महान् स्वामी है । वह जल के मूल कारणों में गति देता है ॥ ७ ॥

२८—शुनःशेपः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥८॥

पदार्थ—(**इमम्**) इस (**ऊ सु**) पादपूरक (**त्वम्**) तु (**अस्माकम्**) हमारे (**सनिम्**) भजन करने योग्य (**गायत्रम्**) गायत्र साम को (**नव्यांसम्**) नये बोध देने वाले (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**देवेषु**) ज्ञानियों में (**प्रवोचः**) उपदेश करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही इस हमारे मनन योग्य नित्य नये-नये ज्ञानों के देने वाले गायत्र साम का विद्वानों में उपदेश देता है ॥ ८ ॥

२९—गोपवनः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
तन्त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥९॥

पदार्थ—(तम्) उस (त्वा) तुझे (गोपवनः) वेदवाणी का रक्षक विद्वान् (गिरा) वाणी से (जनिष्ठत्) प्रकट करता है (अग्ने) हे परमेश्वर (अङ्गिरः) हे सर्वव्यापक (सः) वह (पावक) पवित्रकर्त्ता (श्रुधी) सुन (हवम्) पुकार को ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! वेदवाणी का रक्षक विद्वान् तुझे वाणी से प्रकट करता है । हे पवित्रकर्त्ता ! तू हमारी पुकार सुन ॥ ९ ॥

३०—वामदेवः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २३ १ २ ३ १ ३
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (वाजपतिः) बलों का स्वामी (कविः) वेदकाव्य का कर्त्ता (अग्निः) परमेश्वर (हव्यानि) हवि पदार्थों में (अक्रमीत्) व्यापक हो रहा है (दधद्) धारण करता हुआ (रत्नानि) रत्नों को (दाशुषे) यजमान के लिए ॥ १० ॥

भावार्थ—यजमान के लिए रत्नों को धारण करता हुआ बलों का स्वामी, सर्वज्ञ परमेश्वर समस्त हव्य पदार्थों में व्यापक हो रहा है ॥ १० ॥

३१—कण्व । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११॥

पदार्थ— (उत्) उत्तम (उ) ही (त्यम्) उस (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (देवम्) देव को (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं (केतवः) ज्ञान (दृशे) देखने के लिए (विश्वाय) विश्व के (सूर्यम्) सर्व प्रकाशक परमात्मा ॥ ११ ॥

भावार्थ— ज्ञान उस सर्वज्ञ, प्रकाशक उत्तम परमात्मदेव को विश्व को देखने के लिए प्राप्त कराते हैं ॥ ११ ॥

३२—मेधातिथिः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥१२॥

पदार्थ—(कविम्) वेदों के कर्त्ता (अग्निम्) परमेश्वर की (उपस्तुहि) स्तुति कर (सत्यधर्माणम्) सत्यधर्मवाले या सत्य को धारण करने वाले (अध्वरे) यज्ञ में (देवम्) देव (अमीवचातनम्) अज्ञान के निवारक ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे स्तोता मनुष्य ! तू प्रत्येक यज्ञ में सर्वज्ञ, सत्यधर्मा, और अज्ञान निवारक परमेश्वर की स्तुति कर ॥ १२ ॥

३३—सिन्धुद्वीपः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१३॥

पदार्थ—(शम्) कल्याणकारी (नः) हमें (देवीः) दिव्य (अभिष्टये) अभीष्ट की सिद्धि के लिए (शम्) कल्याणकारी (नः) हमें (भवन्तु) हों (पीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिए (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) वर्षा करें (नः) हम पर ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी दिव्य विभूतियां हमारी इष्ट प्राप्ति के लिए हमें कल्याणकारी हों तथा आनन्द लाभ के लिए कल्याणकारी हों और हम पर सुख की सदा वृष्टि करें ॥ १३ ॥

३४—उशनाः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३१ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते । गोषाता यस्य ते गिरः ॥१४॥

पदार्थ—(कस्य) किसकी (नूनम्) निश्चय ही (परीणसि) अधिकतर (धियः) बुद्धियों को (जिन्वसि) पूर्ण करता है (सत्पते) हे सज्जनों के पालक (गोषाता) वेदवाणी का भजन करने वाली (यस्य) जिसकी (ते) तेरी (गिरः) वाणियां ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! तू किसकी बुद्धि को अधिकतर पूर्ण करता है ? उस पुरुष की जिसकी वाणियाँ वेदवाणियों से युक्त और तेरी स्तुति करने वाली हैं ॥ १४ ॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

३५—शंयुः । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रन्न शंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—(यज्ञायज्ञा) प्रत्येक यज्ञ में (वः) तुम (अग्नये) ईश्वर की (गिरागिरा) अनेक स्तुतियों के द्वारा (दक्षसे) बल की प्राप्ति के लिए (प्रप्र) अत्यन्त उत्तम ढङ्ग से (वयम्) हम लोग (अमृतम्) अमर (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (प्रियम्) प्यारे (मित्रन्न) मित्र के समान (शंसिषम्) कीर्तन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हम लोग बल की प्राप्ति के लिए प्रत्येक यज्ञ में अमर, सर्वज्ञ और मित्र के समान प्यारे परमेश्वर की अनेक प्रकार की स्तुतियों से प्रशंसा करते हैं ॥१॥

३६—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यूऽत द्वितीयया ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२॥

पदार्थ—(पाहि) रक्षा कर (नः) हमारी (अग्ने) हे ईश्वर (एकया) पहली (ऋग्वाणी से) (पाहि) रक्षा कर (उत) और (द्वितीयया) द्वितीय (यजु से) (पाहि) रक्षा कर (गोभिः) वाणियों से (तिसृभिः) तीन (ऊर्जां पते) हे ज्ञानों के स्वामी (पाहि) रक्षा कर (चतसृभिः) चार वाणियों से (वसो) हे अन्तर्यामी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे बलों के स्वामी अन्तर्यामी परमेश्वर ! तू ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद रूप इन चार वाणियों से हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

३७—शंयुः । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—(बृहद्भिः) महान् (अग्ने) हे परमेश्वर (अर्चिभिः) तेजों से (शुक्रेण) शुद्ध (देव) हे दाता (शोचिषा) तेज के साथ (भरद्वाजे) पूर्ण ज्ञानी पर (समिधानः) प्रकाशमान होता हुआ (यविष्ठ्य) हे बलवान् (रेवत्) हे धनवान् (पावक) हे शोधक (दीदिहि) प्रकाश कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे बलवान् धनवान् पवित्रकर्त्ता परमदेव परमेश्वर ! तू पवित्र तेज से प्रकाशमान होता हुआ पूर्ण ज्ञानी पुरुष पर महान् तेजों से प्रकाश कर ।३।

३८—वसिष्ठः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥४ ॥

पदार्थ—(त्वे) तेरे (अग्ने) हे परमेश्वर (स्वाहुत) हे उपास्य (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों (सूरयः) विद्वान् जन (यन्तारः) वशी (ये) जो (मघवानः) यज्ञ करने वाले (जनानाम्) मनुष्यों के (ऊर्वम्) समूह पर (दयन्त) दया करते हैं (गोनाम्) गाय आदिकों के ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे उपास्यदेव परमेश्वर ! जो यज्ञकर्त्ता और वशी विद्वान् मनुष्यों और गायों के समूह पर दया करते हैं, वे तेरे प्रिय होते हैं ॥ ४ ॥

३९—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ईश्वर (जरितः) हे स्तुति के योग्य (विश्पतिः) प्रजा का पालक (तपानः) तपाने वाला (देव) हे देव (रक्षसः) दुष्ट को (अप्रोषिवान्) सर्वदा विद्यमान (गृहपते) हे संसारगृह के स्वामी (महान्) महान् (असि) है (दिवस्पायुः) द्युलोक का रक्षक (दुरोणयुः) संसारगृह का निर्माता ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे संसार गृह के स्वामी स्तुत्य परमेश्वर ! तू प्रजा का पालक, दुष्टों को तपाने वाला, सर्वदा विद्यमान महान् द्युलोक का रक्षक तथा संसार गृह का निर्माता है ॥ ५ ॥

४०—प्रस्कण्वः । बृहती । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (विवस्वत्) विशेष सुखों का दाता (उषसः) प्रातःकाल का (चित्रम्) अद्भुत (राधः) धन स्फूर्तिरूप (अमर्त्य)

हे अविनाशी ! (आ दाशुषे) भली भाँति यजमान के लिये (जातवेदः) हे सर्वज्ञ ! (वहा) प्राप्त करा (त्वम्) तू (अद्या) आज (देवान्) मन के साथ दशों इन्द्रियों में (उषर्बुधः) प्रातःकाल में चेतना पाने वाली ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ ! अविनाशी ! परमेश्वर ! आज तू यजमान की इन्द्रियों में विशेष सुख देने वाली प्रातःकाल की स्फूर्ति प्रदान कर ॥ ६ ॥

४१—शंयुः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वन्नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नः) हमें (चित्रः) अद्भुत (ऊत्या) रक्षा के साथ (वसो) हे घट-घट वासी (राधांसि) धनों को (चोदय) प्राप्त करा (अस्य) इस (रायः) धन का (त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर (रथी) अधिष्ठाता (असि) है (विदा) प्राप्त करा (गाधम्) उत्तम पद (तुचे) सन्तान के लिए (तु) भी (नः) हमारी ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे घट घट वासी परमेश्वर ! तू अद्भुत गुण, कर्म और स्वभाव वाला है, हमें धन प्राप्त करा । क्योंकि तू धनों का अधिष्ठाता है । हे नाथ, हमारी सन्तान भी उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त करे ॥ ७ ॥

४२—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८॥

पदार्थ—(त्वमित्) तू ही (सप्रथा) व्यापक (असि) है (अग्ने) हे परमेश्वर ! (त्रातः) हे सर्वरक्षक (ऋतः) सत्यस्वरूप (कविः) वेदों का कर्ता (त्वाम्) तुझे (विप्रासः) ज्ञानी जन (समिधान) हे प्रकाशमान (दीदिवः) हे तेजस्वी (आ) भली भाँति (विवासन्ति) भजन करते हैं (वेधसः) बुद्धिमान् ॥८॥

भावार्थ—हे सर्वरक्षक प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू ही सत्यस्वरूप, वेदों का कर्ता और व्यापक है । अत्यन्त बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुष तेरा ही भजन करते हैं ॥८॥

४३—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शस्यम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥९॥

पदार्थ—(आ) भलीभाँति (नः) हमें (अग्ने) हे परमेश्वर ! (वयोवृधम्) आयु बढ़ाने वाले (रयिम्) धन को (पावक) हे पतितपावन ! (शंस्यम्) प्रशंसनीय (रास्वा) दे (च) और (नः) हमारी (उपमाते) हे सृष्टिकर्ता (पुरुस्पृहं) बहुतों से चाहने योग्य (सुनीती) अच्छी नीति से प्राप्त होने वाले (सुयशस्तरम्) यश का विस्तार करने वाले [यश बढ़ाने वाले] ॥९॥

भावार्थ—हे सृष्टिकर्ता पतितपावन परमेश्वर ! तू हमें हमारी अच्छी नीति से प्राप्त होने वाले, आयुवर्धक, प्रशंसा के योग्य, यश बढ़ाने वाले और बहुतों से चाहने योग्य धन प्रदान कर ॥९॥

४४—सोभरिः । बृहती । अग्निः ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
ये विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
२ ३ १ २र ३ १ १ ३ १ २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो (विश्वा) सारे (वसु) धनों को (दयते) देता है (होता) दाता (मन्द्रः) स्तुति के योग्य (जनानाम्) लोगों के लिए (मधोः) मधु के (न) समान (पात्रा) पात्रों के (प्रथमानि) मुख्य (अस्मै) इस (प्र) उत्तम (स्तोमा) स्तुति (यन्तु) प्राप्त हों (अग्नये) परमेश्वर के लिए ॥१०॥

भावार्थ—दाता और पूजनीय जो लोगों के लिए मधु से भरे पात्र के समान समस्त धनों को देता है, उस इस परमेश्वर को हमारी मुख्य स्तुतियाँ पहुँचें ॥१०॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

४५—वामदेवः वसिष्ठो वा । वृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

पदार्थ—(एना) इस (वः) तुम लोगों के लिए (अग्निम्) परमेश्वर को (नमसा) नमस्कार के द्वारा (ऊर्जः) बल के (नपातम्) रक्षक (आहुवे) आराधना करता हूँ (प्रियम्) प्यारे (चेतिष्ठम्) चेतन (अरतिं) स्वामी (स्वध्वरम्) कल्याणकारी (विश्वस्य) सारे संसार के (दूतम्) दुःखनिवारक (अमृतम्) अमर ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मैं तुम लोगों के लिए बलों के रक्षक, चेतन, सब के स्वामी, सारे संसार के दुःखनिवारक, कल्याणकारी और अजर अमर, प्यारे प्रभु की आराधना करता हूँ ॥१॥

४६—भर्गः । वृहती । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥२॥

पदार्थ—(शेषे) विराजमान हो रहा है (वनेषु) जलों में (मातृषु) अन्तरिक्ष (सं) सम्यक् (त्वा) तुझे (इन्धते) प्रकाशित करते हैं । (मर्तासः) मनुष्य (अतन्द्रः) सावधान (हव्यं) भोग्यपदार्थ को (वहसि) प्राप्त कराता है (हविष्कृतः) यजमान के (आदित्) ही (देवेषु) दिव्य शक्तियों में (राजसि) प्रकाशमान हो रहा है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जलों और अन्तरिक्ष आदि में विराजमान है, मनुष्य तुझे अपने अन्दर प्रकाशित करते हैं, तू समस्त दैवी शक्तियों में प्रकाशमान हो रहा है और तू ही यजमान के भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराता है ॥२॥

४७—सोभरिः । वृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ २
अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥३॥

पदार्थ—(अदर्शि) देखा जाता है (गातुवित्तमः) भक्त की भावना का ज्ञाता (यस्मिन्) जिसमें (व्रतानि) कर्म (आदधुः) धारण करते हैं (उप) समीप (उ) ही (सुजातम्) सुप्रसिद्ध (आर्यस्य) सदाचारी की (वर्धनम्) उन्नति करने वाले (अग्निम्) परमेश्वर को (नक्षन्तु) प्राप्त हों (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियाँ ॥३॥

भावार्थ—जिसमें ज्ञानीजन अपने कर्मों का समर्पण करते हैं और जो भक्त की भावना को जानने वाला कहा जाता है उस ही सदाचारी पुरुष को उन्नति देने वाले सुप्रसिद्ध परमेश्वर को हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हो ॥३॥

४८—मनुः वृहती । अग्निः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (उक्थे) प्रशंसनीय (पुरोहितः) पुरोहित है (ग्रावाणः) वायुएँ (बर्हिः) आसन हैं (अध्वरे) संसाररूपी यज्ञ में (ऋचा) वेद मन्त्र के द्वारा (यामि) याचना करता हूँ (मरुतः) ऋत्विक् (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्माण्ड के पालक (देवाः) जीवलोग (अवः) रक्षा (वरेण्यम्) उत्तम ॥४॥

भावार्थ—इस प्रशंसनीय संसार रूपी यज्ञ में अग्नि पुरोहित है, वायुएँ आसन हैं और जीव लोग ऋत्विज् हैं—ऐसा जानते हुए हे ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! मैं तुझ से रक्षा की याचना करता हूँ ॥४॥

४९—सुदीतिः पुरुमीळो वा । वृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३१ २
अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
३ २ ३१ २ ३ २उ ३ १ २ ३१ २ ३ २
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥५॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर की (ईडिष्व) स्तुति कर (अवसे) रक्षा के लिये (गाथाभिः) सामगानों के द्वारा (शीरशोचिषम्) व्यापक ज्योति वाले (अग्नि) परमेश्वर को (राये) सम्पदा के लिये (पुरुमीढ) हे धनवाले (श्रुतं) विख्यात (नरः) हे मनुष्यो (अग्निः) परमेश्वर (सुदीतये) दानी के लिये (छर्दिः) गृह के सदृश हो ॥५॥

भावार्थ—हे धनवाले पुरुष ! अपनी रक्षा के लिये सामगानों के द्वारा व्यापक ज्योति वाले प्रभु की स्तुति कर और सम्पदा की प्राप्ति के लिये भी उसी को स्मरण कर । हे मनुष्यो ! परमेश्वर ही दानी के लिये शरण है ॥५॥

५०—प्रस्कण्वः । वृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ५ १२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
१ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥६॥

पदार्थ—(श्रुधि) सुन (श्रुत्कर्ण) हे श्रवणशक्तियुक्त कानों वाले (वह्निभिः) संसार का वहन करने वाला (देवैः) दिव्यशक्तियों के (अग्ने) हे विद्वन् मनुष्य (सयावभिः) गतिशील (आसीदतु) स्थित है (बर्हिषि) आकाश में (मित्रः) सब का मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (प्रातर्यावभिः) प्रतिदिन कर्मयुक्त (अध्वरे) अप्रतिहत ॥६॥

भावार्थ—हे श्रवण शक्ति वाले पुरुष ! सुनो, सब का मित्र न्यायकारी परमेश्वर प्रतिदिन संयोग-वियोग करनेवाली, धारक, गतिशील दिव्य शक्तियों के साथ व्यापक आकाश में स्थित है ॥६॥

५१—सोभरिः । वृहती । अग्निः ।

१ २र ३ २ ३२उ ३ २ ३ १ २
प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।

१२ ३१२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥७॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम ढंग से (दैवोदासः) दिव्यगुणों का दाता (अग्निः) परमेश्वर (देवः) देव (इन्द्रः न) विद्युत् के समान (मज्मना) सामर्थ्य से (अनु) व्याप्त होकर (मातरं) अन्तरिक्ष में (पृथिवीं) पृथिवी में (विवावृते) वर्त्तमान है (तस्थौ) स्थित है (नाकस्य) सुख के (शर्मणि) धाम में ॥७॥

भावार्थ—दिव्य गुणों का दाता परमात्मदेव अपनी सामर्थ्य से विद्युत् के समान पृथिवी और अन्तरिक्ष में व्यापक होकर विद्यमान है और वह परम मोक्षधाम में स्थित है ॥७॥

५२—मेधातिमेध्यातिथी । वृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।

३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८॥

पदार्थ—(अध) नीचे (ज्मः) पृथिवी के (अध) नीचे (वा) अथवा (दिवः) द्युलोक से (बृहतः) महान् (रोचनाद्) प्रकाशमान (अधि) ऊपर (अया) व्याप्ति के द्वारा (वर्धस्व) फैला हुआ है (तन्वा) विस्तृत (गिरा) वेदवाणी से (मम) मेरे (जाता) उत्पन्न हुए पदार्थों को (सुक्रतो) उत्तम ज्ञान वाले (पृण) पालन करता है ॥८॥

भावार्थ—हे उत्तम ज्ञानवाले परमेश्वर ! तू पृथिवी के नीचे अथवा प्रकाशमान द्युलोक के नीचे अन्तरिक्ष और उसके ऊपर भी अपनी इस व्याप्ति के द्वारा फैला हुआ है। तू वेदवाणियों के द्वारा हमारे समस्त उत्तम पदार्थों की रक्षा करता है।८।

५३—विश्वामित्रः । वृहती । अग्निः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।

१ २र ३१ २ ३१ २३ २ ३२उ ३ १ २
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः ॥९॥

पदार्थ—(कायमानः) इकट्ठा करता हुआ (वना) जगत् के कारणों को (यत्) जो (त्वं) तू (मातॄः) जन्म देनेवाली (अजगन्) प्राप्त करता है (अपः) द्रव्यों को (न) नहीं (तत्) वह (ते) तेरा (अग्ने) हे परमेश्वर (प्रमृषे) जानता हूँ (निवर्तनं) स्थानविशेष (यत्) क्योंकि (दूरे सन्) दूर रहता हुआ भी (इह) यहाँ (आ, भुवः) विद्यमान है ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जगत् के कारण परमाणुओं को इकट्ठा करता हुआ तू जो जगत् का निर्माण करने वाले जल आदि द्रव्यों को बनाता है, उस तुझ प्रभु की मैं अपने कार्य से निवृत्ति अथवा स्थानविशेष नहीं समझता, क्योंकि तू दूर होता हुआ भी समीप वर्त्तमान हो रहा है ॥९॥

५४—कण्वः । वृहती । अग्निः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।

३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१०॥

पदार्थ—(नि) निश्चित (त्वाम्) तुझे (अग्ने) हे परमेश्वर ! (मनुः) ज्ञानी (दधे) धारण करता है (ज्योतिः) प्रकाश-स्वरूप (जनाय) प्रजा के लिए (शश्वते) सनातन (दीदेथ) प्रकाश दिया है (कण्वे) मेधावी पुरुष में (ऋतजातः) सत्य के साक्षात् होने वाले (उक्षितः) महान् (यम्) जिसको (नमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं (कृष्टयः) मनुष्य ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सनातन जीव के लिये प्रकाशस्वरूप तुझे ज्ञानी पुरुष निश्चित रूप से धारण करते हैं। जिसको मनुष्यमात्र नमस्कार करते हैं, सत्य से जाना गया वह तू ज्ञानी में प्रकाश देता है ॥१०॥

卐 पाँचवीं दशती समाप्त 卐

५५—वसिष्ठः । वृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

पदार्थ—(देवः) देव (वः) तुम्हारी (द्रविणोदाः) धनदाता (पूर्णाम्) भरी हुई (विवष्टु) चाहता है (आसिचम्) स्रुवा को (उद्वा) अथवा (सिञ्चध्वम्) सींचो (उपवा) अथवा (पृणध्वम्) तृप्त (आदित्) अनन्तर (बाद में) (देवः) देव (ओहते) प्राप्त कराता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! धनदाता, परमदेव परमेश्वर चाहता है कि तुम्हारी स्रुवा घी से पूर्ण रहा करे, अर्थात् तुम लोग अग्नि को घी से सींचो अथवा तृप्त करो, तो तुम्हारी उन्नति होगी ॥१॥

५६—कण्वः । वृहती । ब्रह्मणस्पतिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क२र ३ १ २
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २
अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (एतु) प्राप्त हो (ब्रह्मणस्पतिः) वेदों का स्वामी (प्र) उत्तम (देवी) दिव्य (सूनृता) वाणी (अच्छा) भली भाँति (वीरं) पुत्र को (नर्यं) मनुष्यमात्र के हित करने वाले (पंक्तिराधसं) समुदाय की सिद्धि करने वाले (देवा) विद्वान् लोग (यज्ञं) व्यवहार को अथवा यज्ञ को (नयन्तु) प्राप्त करावें ॥२॥

भावार्थ—वेदों का स्वामी परमेश्वर हमें प्राप्त होवे, दिव्यवाणी प्राप्त होवे, विद्वान् जन मनुष्यमात्र के हितकारी पुत्र और समुदाय की सिद्धि करने वाले व्यवहार की हमें प्राप्ति करावें ॥२॥

५७ – कण्वः । वृहती । अग्निः । यूपो वा ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥३॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वः) सर्वोपरि (ऊ) पादपूरक (षु) उत्तम (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (तिष्ठ) वर्त्तमान रह (देवः न) देव के समान (सविता) सूर्य (ऊर्ध्वः) उपरिस्थित (वाजस्य) अन्न का (सनिता) दाता (यत्) क्योंकि (अञ्जिभिः) ज्ञानी (वाघद्भिः) उपासकों के साथ (विह्वयामहे) आह्वान करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अन्न का दाता और सर्वोपरि विराजमान है। हमारी रक्षा के लिये तू उपरिस्थित सूर्यदेव के समान सदा वर्त्तमान रह, क्योंकि ज्ञानी उपासकों के साथ हम तेरी पुकार करते हैं ॥३॥

५८—सोभरिः । वृहती । अग्निः ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १२
प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (यः) जो (राये) परमधन के लिये (निनीषति) प्राप्त करना चाहता है (मर्तः) मनुष्य (यः) जो (ते) तेरी सेवा में (वसो) हे सब को बसाने वाले (दाशत्) अपने को समर्पण करता है। (सः) वह (वीरं) वीर पुत्र (धत्ते) प्राप्त करता है (अग्ने) हे परमेश्वर ! (उक्थशंसिनम्) वेदों का वक्ता (त्मना) अपनी शक्ति से (सहस्र-पोषिणम्) हजारों का पालन करने वाला है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब को बसाने वाले परमेश्वर ! जो मनुष्य उत्तम धन की प्राप्ति के लिये तुझे प्राप्त करना चाहता है और जो तेरी शरण में अपने को समर्पण करता है वह वेदों के वक्ता तथा हजारों का पालन पोषण करने वाले वीर पुत्र को प्राप्त करता है ॥४॥

५९—कण्वः । वृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ॥५॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम्हारे (यह्वं) महान (पुरूणाम्) सब (विशां) प्रजाओं के (देवयतीनाम्) परमात्मदेव की उपासना करने वाली (अग्निम्) परमेश्वर को (सूक्तेभिः) उत्तम प्रकार से कही हुई (वचोभिः) वेदवाणियों से (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (यं) जिस को (सं) सम्यक्

(इत्) ही (अन्यः) दूसरे ज्ञानी लोग (इन्धते) हृदय में प्रकाशित करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम देवोपासक प्रजाओं के महान्, प्रभु परमेश्वर की हम अच्छी प्रकार कही गई वेदवाणी से प्रार्थना करते हैं, उसी को दूसरे ज्ञानी जन भी हृदय में ध्यान करते हैं ॥५॥

६०—उत्कीलः श्रुतकीलो वा । बृहती । अग्निः ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥६॥

पदार्थ—(अयम्) यह (अग्निः) परमेश्वर (सुवीर्यस्य) सुन्दर शक्ति का (ईशे) अधिष्ठाता है (हि) निश्चय ही (सौभगस्य) सुन्दर भाग्य का (रायः) सारी सम्पदाओं का (ईशे) अधिष्ठाता है (स्वपत्यस्य) सुशील सन्तान का (गोमतः) जितेन्द्रिय (ईशे) अधिष्ठाता है (वृत्रहथानाम्) अज्ञान दूर करनेवालों का ॥६॥

भावार्थ—यह परमेश्वर, सुन्दर शक्ति, सुन्दर भाग्य, सारी सम्पदाएं, जितेन्द्रिय, सुशील सन्तान और अज्ञान दूर करनेवालों का अधिष्ठाता है ॥६॥

६१—वसिष्ठः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७॥

पदार्थ—(त्वं) तू (अग्ने) हे परमेश्वर ! (गृहपतिः) ब्रह्माण्ड का स्वामी (त्वं) तू (होता) होता (नः) हमारे (अध्वरे) संसार यज्ञ में (त्वं) तू (पोता) पवित्र करनेवाला (विश्ववार) हे सब के वरणीय देव (प्रचेता) महान् ज्ञानी (यक्षि) संगति लगाता है (यासि) प्राप्त कराता है (च) और (वार्यम्) उत्तम धन को ॥७॥

भावार्थ—हे सब के वरणीय देव परमेश्वर ! ब्रह्माण्ड का स्वामी तू हमारे संसार यज्ञ का होता है, पवित्रकर्ता और महान् ज्ञानी तू ही उत्तम धन अथवा गुणों की संगति और प्राप्ति कराता है ॥७॥

६२—विश्वामित्रः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३१२
अपांनपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥८॥

पदार्थ—(सखायः) परस्पर मित्र (त्वा) तेरी (ववृमहे) प्रार्थना करते हैं (देवं) देव (मर्तासः) मनुष्य (ऊतये) रक्षा के लिये (अपांनपातं) जल-प्राणादि पदार्थों की रक्षा करनेवाले (सुभगम्) भगवान् (सुदंससं) सुन्दर कर्मों वाले (सुप्रतूर्तिम्) तारनेवाले (अनेहसम्) पापों का नाश करनेवाले ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! परस्पर मित्र हम लोग, अपनी रक्षा के लिये, सुन्दर कर्मोंवाले, सारे जल तथा प्राणादि पदार्थों के रक्षक, तारने वाले, पापनाशक भगवान् और देवों के देव तेरी प्रार्थना करते हैं ॥८॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

६३—श्यावाश्ववामदेवौ । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३१ २ ३ १ २र ३१ २
आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
३ २ ३१ २र ३ १२ ३१ २ ३२ ३क २र
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥१॥

पदार्थ—(आजुहोता) भली प्रकार पुकारो (हविषा) ज्ञान से (मर्जयध्वम्) समझो (नि) निश्चित (होतारम्) दाता (गृहपतिं) ब्रह्माण्ड के पालक (दधिध्वम्) धारण करो (इडस्पदे) पूजा-मंदिर में (नमसा) नमस्कार के द्वारा (रातहव्यम्) दातव्यदाता (सपर्यत) उपासना करो (यजतम्) संगतिकर्ता, निर्माता (पस्त्यानाम्) शरीररूपी गृहों के ॥१॥

भावार्थ—हे उपासक लोगो ! उपासनागृह में ब्रह्माण्ड-रक्षक सब के दाता शरीरों के निर्माता दातव्य के देने वाले परमेश्वर को याद करो, आदर से धारण करो, ज्ञान से समझो तथा उसकी उपासना करो ॥१॥

६४—उपस्तुतः । जगती । अग्निः ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३१ २३ २ ३ १ २
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २र ३ २ १ २
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत् सद्यो महि दूत्यां३चरन् ॥२॥

पदार्थ—(चित्रः) अद्भुत (इत्) ही (शिशोः) प्रशंसनीय (तरुणस्य) सर्वदा तरुण अजर (वक्षथः) शक्ति (न) नहीं (यः) जो (मातरौ) माता-पिता के (अन्वेति) पीछे चलता है (धातवे) धारण-पोषण के लिये (अनूधा) दुग्धपान से रहित (अजीजनत्) उत्पन्न किया है (यत्) क्योंकि (अधाचित्) निश्चय ही (आववक्षत्) धारण करता है (महि) महान् (दूत्यं) दूत कर्म को (चरन्) करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—प्रशंसनीय सदा तरुण (अजर) परमेश्वर की शक्ति अद्भुत है जो कि वह अपने भरण-पोषण के लिये माता-पिता की आवश्यकता नहीं रखता, क्योंकि वह दुग्धपान करनेवाला नहीं है। वह दूत कर्म को करता हुआ, जो कुछ पैदा करता है, उसको धारण भी करता है ॥२॥

६५—बृहदुक्थः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
३१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
संवेशनस्तन्वे३चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥३॥

पदार्थ—(इदम्) यह स्थूल शरीर (ते) तेरा (एकम्) एक शरीर है (परः) दूसरा (उत्) भी (एकम्) एक कारणशरीर है (तृतीयेन) तीसरा (ज्योतिषा) ज्योति से (संविशस्व) सम्बन्ध कर (संवेशनः) प्रवेश करनेवाला (तन्वे) शरीर के लिये (चारु) उत्तम (एधि) हो (प्रियः) प्यारे (देवानाम्) देवों के (परमे) उत्तम (जनित्रे) जन्म में ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! तेरा यह एक प्रथम स्थूल शरीर है और दूसरा एक सूक्ष्म शरीर है, तू विद्वानों का उत्तम जन्म पाने के लिए श्रेष्ठ बन तथा तीसरी ज्योति परमेश्वर के साथ संगति कर ॥३॥

६६—कुत्सः । जगती । अग्निः ।

३२उ ३१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
३ २उ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सं सद्यग्ने सख्ये मा रिषाम वयं तव ॥४॥

पदार्थ—(इमं) इस (स्तोमम्) स्तोत्र को (अर्हते) पूज्य (जातवेदसे) सर्वज्ञ परमेश्वर के लिये (रथमिव) रमणीय वस्तु के समान अथवा रथ के समान (संमहेम) उच्चारण करते हैं (मनीषया) उत्तम बुद्धि से (भद्रा) कल्याण करने वाली (हि) निश्चय ही (नः) हम पर (प्रमतिः) अनुग्रह बुद्धि (अस्य) इसका (संसदि) सभा में (अग्ने) हे परमेश्वर (सख्ये) मित्रता में (मा) नहीं (रिषाम) दुःखी हों (वयम्) हम (तव) तेरी ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम उत्तम बुद्धि से पूज्य और सर्वज्ञ परमेश्वर का रथ के समान सुखकारी स्तोत्र से आह्वान करें, इस परमेश्वर की ज्ञान-शक्ति सभा में हमारे लिये कल्याणकारी हो। हे परमेश्वर ! तेरी मित्रता में रहते हुए हम दुःखी न होवें ॥४॥

६७—भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ २उ ३ २३ २
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥५॥

पदार्थ—(मूर्धानम्) धारक (दिवः) द्युलोक का (अरतिम्) स्वामी (पृथिव्याः) पृथिवी का (वैश्वानरम्) मनुष्यमात्र का हितकारी (ऋते) सत्य में (आतम्) प्रसिद्ध वा स्थित (अग्निम्) परमेश्वर को (कविम्) वेदकाव्य के कर्ता (सम्राजम्) सम्राट् (अतिथिम्) काल-बन्धन से रहित (जनानाम्) लोगों के (आसन्) मुख में (नः) हमारे लिए (पात्रम्) रक्षक (जनयन्त) प्रकट करते हैं (देवाः) विद्वान् लोग ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् लोग द्युलोक के धारक, पृथिवी के स्वामी, मनुष्यमात्र के हितकारी, सत्य में स्थित, वेदों के कर्ता, सबके सम्राट्, काल-बन्धन-रहित, हमारे रक्षक परमेश्वर को मुख में प्रकट करते हैं, अर्थात् उसकी स्तुति करते हैं ॥५॥

६८—भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
२ ३ १ २ ३१ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥६॥

पदार्थ—(वि) विविध प्रकार से (त्वत्) तुझसे (आपो, न) जलों के समान (पर्वतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) उपरिभाग से (उक्थेभिः) वेदमंत्रोंसहित (अग्ने) हे परमेश्वर (जनयन्त) प्रादुर्भूत होते हैं (देवाः) दिव्यशक्तियें (तम्) उस (त्वा) तुझे (गिरः) स्तुतियां (वाजयन्ति) प्राप्त करती हैं (आजिं) संग्राम के (न) समान (गिर्ववाहः) हे स्तुतियों के योग्य (जिग्युः) जीतते हैं (अश्वाः) घोड़े ॥६॥

भावार्थ—हे स्तुतियों के योग्य परमेश्वर ! मेघ के पृष्ठ से जलों के समान जिस तुझ से मन्त्रों के साथ समस्त दिव्य शक्तियां पैदा होती हैं उस तुझ महान् को स्तुतियां उसी प्रकार प्राप्त होतीं और प्राप्त करातीं हैं जैसे कि घोड़े संग्राम को प्राप्त करते और जीतते हैं ॥६॥

६९—वामदेवः। त्रिष्टुप्। अग्निः।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३२३ १२

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।

३ २ ३१२ ३ २३२३१२ ३१२

अग्निं पुरा तनयित्नो रचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥७॥

पदार्थ—(आ) भली भाँति (वः) तुम लोग (राजानम्) राजा (अध्वरस्य) अन्तरिक्ष के (रुद्रम्) भयंकर (होतारम्) दाता (सत्ययजम्) सत्य को प्राप्त कराने वाले (रोदस्योः) द्यु और पृथिवी के (अग्निम्) परमेश्वर को (पुरा) पूर्व (तनयित्नोः) विद्युत् से (अचित्तात्) आकस्मिक (हिरण्यरूपम्) ज्योतिःस्वरूप (अवसे) रक्षा के लिए (कृणुध्वम्) करो ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्तरिक्ष, द्यु और पृथिवीलोक के राजा, दाता, सत्य को प्राप्त करने वाले ज्योतिःस्वरूप तथा आकस्मिक गिरने वाले विद्युत् से भी भयंकर परमेश्वर को अपनी रक्षा का निमित्त बनाओ ॥७॥

७०—वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। अग्निः।

३२उ ३२३१ २र३२३१२३१२ ३१२

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन।

१२३१२ ३२३ १ २र३१२

नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥८॥

पदार्थ—(इन्धे) प्रकाशित होता (राजा) तेजस्वी (सम्) सम्यक् (अर्यः) स्वामी (नमोभिः) नमस्कारों के द्वारा (यस्य) जिसका (प्रतीकम्) स्वरूप (आहुतम्) परिपूर्ण है (घृतेन) प्रकाश से (नरः) मनुष्य (हव्येभिः) त्यागने योग्य पदार्थों के त्याग के द्वारा (ईडते) स्तुति करते हैं (सबाधः) उपासक लोग (आ) भली भांति (अग्निः) परमेश्वर (अग्रम्) पहले (उषसाम्) उषाकाल के (अशोचि) प्रकाश करता है ॥८॥

भावार्थ—जिस का स्वरूप तेज से परिपूर्ण है, सब का स्वामी तेजस्वी वह परमेश्वर नमस्कारों से प्रकाशित होता है। उपासक लोग त्याग से उस की स्तुति करते हैं। उषाओं के आगे वह ही प्रकाश कर रहा है ॥ ८ ॥

७१—त्रिशिराः। त्रिष्टुप्। अग्निः।

२ ३१२ ३१ २ ३१ २र ३१ २

प्र केतुना बृहता यात्याग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।

३ २३ १२ ३१ २र ३२३१२ ३१ २

दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (केतुना) ज्ञान से (बृहता) महान् (याति) व्यापक होता है (अग्निः) परमेश्वर (आ) भलीभाँति (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (वृषभः) मनोरथों को पूरा करनेवाला (रोरवीति) उपदेश करता है (दिवः) द्युलोक के (चित्) ही (अन्तात्) पर्यन्त (उपमाम्) समीप तक (उदानट्) व्यापता है (अपामुपस्थे) अन्तरिक्ष में (महिषः) महान् (ववर्ध) बढ़ा हुआ है ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनोरथों को पूरा करने वाला परमेश्वर द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक हो रहा है, वह अपने महान् ज्ञान से सूर्य के विषय में हमें उपदेश करता है। वह ही जनों के स्थान अन्तरिक्ष में एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त होकर उससे परे भी बढ़ा हुआ है ॥ ९ ॥

७२—वसिष्ठः। त्रिपाद् विराड् गायत्री। अग्निः।

३२उ ३ १२ ३२३१२ ३ २

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्।

३१२३१२ ३ २

दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर को (नरः) मनुष्य (दीधितिभिः) योग-नियमों और विधानों से (अरण्योः) दो अरणियों में (हस्तच्युतं) हाथ के बल से उत्पन्न किये हुए (जनयत) प्रकट करते हैं (प्रशस्तम्) स्तुति के योग्य (दूरेदृशम्) दूरस्थ पदार्थों को भी देखनेवाले (गृहपतिम्) ब्रह्माण्ड गृह के स्वामी (अथव्युम्) कल्याणकारी ॥ १० ॥

भावार्थ—योग नियमों और विधानों से मनुष्य लोग अरणियों में हाथ के बल से घिस कर उत्पन्न हुए अग्नि के समान दूर दूर के पदार्थों को भी देखने वाले ब्रह्माण्ड के स्वामी तथा कल्याणकारी परमेश्वर को आत्मा में प्रकट करते हैं ॥१०॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

७३—बुधगविष्ठिरौ। त्रिष्टुप्। अग्निः।

१२३ २ ३२३ १२३ १२ ३१२ ३२३ १२

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।

३ १२३२३२३१ २३ २ ३१२ ३ २३१२

यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

पदार्थ—(अबोधि)जाना जाता है (अग्निः) परमेश्वर (समिधा) योग से (जनानां) योगी जनों के (प्रति) और (धेनुम्) किरण (इव) समान (आयतीम्) आती हुई (उषासम्) प्रातःकाल के (यह्वा) महान् त्यागी मनुष्य के (इव) समान (प्र) उत्कृष्ट (वयाम्) सुख को (उज्जिहानाः) छोड़ते हुए (प्र) उत्तम (भानवः) प्रकाश (सस्रते) फैला है (नाकं) परमानन्द पद में (अच्छ) भली भांति ॥ १ ॥

भावार्थ—उषाकाल में आती हुई प्रकाश रेखाओं को लोगों के समान ज्ञानी जन के योग से परमेश्वर जाना जाता है। लौकिक सुखों को त्यागते हुए महान् विरक्तों के समान उस का प्रकाश परमानन्द पद में फैला हुआ है ॥ १ ॥

७४—वत्सप्रिः। त्रिष्टुप्। अग्निः।

२३१२ ३१ २ ३२३१ २र ३२३१२

प्र मूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम्।

१२ ३ २३१ २र ३१ २ ३ १ २र ३ २

नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(प्रमूर्जयन्तम्) पृथिवी को गति देने वाले (महाम्) महान् (विपोधाम्) ज्ञानियों के रक्षक (मूरैः) मूर्खों से (अमूरं) मूलरहित (पुरां) अज्ञान के गढ़ों का (दर्माणम्) ढाहने वाला (नयन्तम्) प्राप्त कराने वाला (गीर्भिः) वेदवाणियों के द्वारा (वना) प्रशंसनीय सुख को (धियं) ज्ञान को (धाः) धारण कर (हरिश्मश्रुं) तेजस्वी सूर्य के (न) समान (वर्मणा) रक्षा द्वारा (धनर्चिम्) धनों के स्वामी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू भूमि के चलाने वाले, महान्, बुद्धिमानों के रक्षक, मूर्खों के द्वारा न जानने योग्य मूलरहित वेद वाणी द्वारा ज्ञान और रक्षा द्वारा प्रशंसनीय सुख को प्राप्त कराने वाले सूर्य के समान धनों के स्वामी परमेश्वर को धारण कर ॥ २ ॥

७५—भरद्वाजः। त्रिष्टुप्। पूषा।

३१२ ३१ २३१२३ १ २र ३ १२३ १२

शुक्रन्ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।

२ ३ २ ३१ २र ३१२ ३२ ३१२

विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥३॥

पदार्थ—(शुक्रं) तेज (ते) तेरा (अन्यद्) अद्भुत है (यजतं) रचना (ते) तेरी (अन्यद्) अद्भुत है। (विषुरूपे) भिन्नरूप वाले (अहनी) रात-दिन (द्यौ इव) सूर्य के समान (असि) है (विश्वा) सारी (माया) बुद्धियों की (अवसि) रक्षा करता है (स्वधावन्) हे प्रकृति के स्वामी ! (भद्रा) कल्याण करने वाला (ते) तेरा (पूषन्) हे पालक ! (इह) इस लोक में (राति) दान (अस्तु) है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे प्रकृति के स्वामी परमेश्वर ! तेरा तेज अद्भुत है, तेरी रचना विचित्र है, तेरी सृष्टि में होने वाले दिनरात भिन्न रूप वाले हैं। तू सूर्य के समान है। तू सारे ज्ञानों की रक्षा करता है, तेरा दान हमारे लिए कल्याणकारी है ॥ ३ ॥

७६—विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्। अग्निः।

१ २ ३१२३१ २र ३१ २र

इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।

१ २ ३१ २र ३ २उ ३ १ २ ३१ २ ३२

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥४॥

पदार्थ—(इडाम्) पृथिवी को (पुरुदंसं) बहुत कर्मों को सिद्ध करनेवाली (सनिम्) दान को (गोः) गाय का (शश्वत्तमम्) चिरकाल तक (हवमानाय) मन, वचन और कर्म से करने वाले उपासक के लिए (साध) सिद्ध कर [दे] (स्यात्) हो (नः) हमारा (सूनुः) पुत्र और (तनयः) पौत्र (विजावा) वंश का विस्तार करने वाला (अग्ने) हे परमेश्वर ! (सा) वह (ते) तेरी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (भूतु) हो (अस्मे) हमारे लिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मन, वचन और कर्म से उपासना करने वाले को, बहुत कर्मों को सिद्ध करने वाली पृथिवी और गाएं बराबर दे। हे नाथ ! हमारे पुत्र और पौत्र वंश के विस्तार करने वाले हों। तेरी वह सुन्दर बुद्धि हमारे लिए हो ॥ ४ ॥

७७—वत्सप्रिः। त्रिष्टुप्। अग्निः।

१ २र ३२ ३१२३२ ३१ २ ३१२३२

प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते।

२३२३२ ३१ २र ३ २र ३१२३२

दधद्यो धायि सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥५॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (होता) दाता (जातः) प्रसिद्ध (नभोवित्) सुख प्राप्त कराने वाले (नृषद्मा) मनुष्यों में विराजमान (सीदत्) स्थित है (अपांविवर्ते) आकाश में (दधत्) धारण करता है (यः) जो (धायि) पालक (सुते) उत्पन्न जगत में (वयांसि) अन्नों का (यन्ता) नियम में रखने वाला (वसूनि) धनों को (विधते) दे (तनूपाः) शरीर का रक्षक ॥ ५ ॥

भावार्थ—दाता प्रसिद्ध महान् सुखों को प्राप्त कराने वाला मनुष्यों में विराजमान जो परमेश्वर आकाश में स्थित तथा संसार में समस्त अन्नादि पदार्थों को धारण करता है, वह हमारे शरीरों का रक्षक, सब का पालक, परमनियामक, प्रभु हमें धनादि दे ॥५॥

७८—वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्द द्वारावन्द माना विवष्टु ॥६॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सम्राजम्) स्वामी (असुरस्य) प्राण और मेघ के (प्रशस्तम्) प्रशंसनीय (पुंसः) पुरुष के (कृष्टीनां) मनुष्यों में (अनुमाद्यस्य) प्रशंसनीय (इन्द्रस्य) विद्युत् के (इव) समान (प्र) उत्तम (तवसः) महान् (कृतानि) कर्मों को (वन्दत्) सराहता है (वारा) कामना के योग्य (वन्दमाना) स्तुति किया गया (विवष्टु) कामना करे ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! मेघ और प्राण के स्वामी, प्रशस्त परमेश्वर की कामना कर । वन्दनीय और वरणीय वह मनुष्यों में प्रशंसनीय विद्युत् के समान तेजस्वी पुरुष के कर्मों की सराहना करता है ॥६॥

७९—विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥७॥

पदार्थ—(अरण्योः) आत्मा और प्रणव में (निहितः) निहित है (जातवेदाः) सर्वज्ञ (गर्भ इव) गर्भ के समान (सुभृतः) सावधानी से धारण किया हुआ (गर्भिणीभिः) गर्भिणी स्त्री के द्वारा । (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुति के योग्य (जागृवद्भिः) सावधान (हविष्मद्भिः) उपासक (मनुष्येभिः) मनुष्यों से (अग्निः) परमेश्वर ॥७॥

भावार्थ—गर्भिणी स्त्री के द्वारा सावधानी से सुरक्षित गर्भ के समान आत्मा और प्रणव में स्थित, सर्वज्ञ परमेश्वर सावधान, और साधन-सम्पन्न योगी जनों के द्वारा प्रतिदिन उपासना करने के योग्य है ॥७॥

८०—पायुः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अनु वह सहमूरान् क्रयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८॥

पदार्थ—(सनात्) सदा (अग्ने) हे परमेश्वर ! (मृणसि) दूर करता है (यातुधानान्) राक्षसी विचारों को (न) नहीं (त्वा) तुझे (रक्षांसि) बुरे विचार वाले (पृतनासु) संग्रामों में (जिग्युः) जीत सकते हैं । (अनुवह) नाश कर (सहमूरान्) सहज मूर्खों की मूर्खता को (क्रयादः) पापीलोग (मा) नहीं (ते) तेरे (हेत्या) दण्ड से (मुक्षत) मुक्त हों (दैव्यायाः) दिव्य ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सदा राक्षसी विचारों को दूर करता है, तुझे बुरे विचार वाले लोग संग्राम में नहीं जीत सकते, तू सहज मूर्खता के भावों को और पापियों को दण्ड देता है, वे तेरी दिव्य दण्ड नीति से नहीं बचते ॥८॥

卐 **अष्टमी दशती समाप्त** 卐

८१—गयः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! अति बलदायक (आभर) प्रदानकर (द्युम्नम्) यश और सम्पदायें (अस्मभ्यम्) हमें (अध्रिगो) हे सर्वव्यापक (प्र) उत्तम (नः) हमारे (राये) धन का (पनीयसे) प्रशंसनीय (रत्सि) दे (वाजाय) ज्ञान का (पन्थाम्) मार्ग ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! हमें अतिबलशाली धन और यश प्रदान कर । तू प्रशंसनीय धन और ज्ञान का मार्ग हमें दिखा ॥१॥

८२—वामदेवः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥२॥

पदार्थ—(यदि) अगर (वीरः) शरीरात्मबल से युक्त (अनुष्यात्) अनुभव करे (अग्नि) परमेश्वर का (इन्धीत) ध्यान करे (मर्त्यः) मनुष्य (आजुह्वत्) अग्निहोत्र करे (हव्यम्) उत्तम सामग्री का (आनुषक्) निरन्तर (बराबर) (शर्म) कल्याण का (भक्षीत) भोग करे (दैव्यम्) दैवी ॥२॥

भावार्थ—यदि उपासक मनुष्य परमेश्वर का अनुभव और ध्यान तथा यज्ञकर्म को करे तो वह उत्तम सुख का भोग करे ॥२॥

८३—भरद्वाजः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३१ २र
त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं छुक्र आततः ।

२ ३ ३उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३॥

पदार्थ—(त्वेषः) प्रकाश (ते) तेरा (धूमः) धूआं के समान (ऋण्वति) व्यापक होता है (दिवि) द्युलोक में (सम्) भली प्रकार (शुक्रः) शुद्ध (आततः) विस्तृत (सूरः न) सूर्य के समान (हि) निश्चित (द्युता) प्रकाश से (त्वं) तू (कृपा) सामर्थ्य से (पावक) हे पतितपावन (रोचसे) प्रकाशित हो रहा है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे पतित-पावन परमेश्वर ! शुद्ध और विस्तृत तेरा प्रकाश द्युलोक में धुआं के समान व्यापक है । हे प्रभो ! निश्चय ही अपने तेज से सूर्य के समान स्तुतियों से तेरा प्रकाश होता है ॥३॥

८४—भरद्वाजः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २र३१ २र ३ १ २र
त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥४॥

पदार्थ—(त्वं) तू (हि) निश्चय (क्षैतवत्) पृथिवी पर होने वाले (यशः) यश को (अग्ने) हे परमेश्वर (मित्रो न) सूर्य के समान (पत्यसे) प्रदान करता है (त्वं) तू (विचर्षणे) हे सब के साक्षी (श्रवः) अन्न को (वसो) हे सब के बसाने वाले (पुष्टिम् न) बल के समान (पुष्यसि) पुष्ट करता है ॥४॥

भावार्थ—हे सर्वसाक्षी अशरणशरण परमेश्वर ! तू सूर्य के समान हमें पृथिवीस्थ यश को प्रदान करता है, तथा बलदायक पदार्थ के समान हमारे लिये अन्नों को पुष्ट करता है ॥४॥

८५—सूक्तवाहः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रातरग्निं पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥५॥

पदार्थ—(प्रातः) प्रातःकाल (अग्निः) परमेश्वर (पुरुप्रियः) सर्वप्रिय (विशः) प्रजायें (स्तवेत) स्तुति की जाती हैं (अतिथिः) काल के बन्धन से रहित (विश्वे) सारे (यस्मिन्) जिसमें (अमर्त्ये) अमर (हव्यम्) भक्ति को (मर्तासः) मनुष्य (इन्धते) प्रकाशित करते हैं ॥५॥

भावार्थ—सारी मनुष्य-प्रजायें जिसमें अपनी भक्ति को प्रकाशित करती हैं उसी सर्वप्रिय, पूजनीय काल-बन्धन-रहित परमेश्वर की प्रातः वेला में स्तुति की जाती है ॥५॥

८६—वासूयवः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जो (वाहिष्ठम्) अत्यन्त निर्वाह की साधनभूत (तत्) वह (अग्नये) परमेश्वर के लिये (बृहत्) महान् (अर्च) समर्पित कर (विभावसो) हे ज्ञान-धन-भक्त (महिषीव) पृथिवी के समान (त्वद्रयिः) तुम्हारे धन (त्वद्वाजा) तुम्हारे अन्नों का (उदीरते) प्राप्त कराता है ॥६॥

भावार्थ—हे ज्ञानप्रकाशयुक्त भक्त ! तू अपने निर्वाह की साधनभूत महान् वस्तु को भी परमेश्वर में समर्पित कर । वह पृथिवी के समान तुम्हारे धन और अन्नों को प्राप्त कराता है ॥६॥

८७—गोपवनः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ १२ ३ १२ ३१२ ३२
विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
३२ ३२३१२३ २३२३ १ ३
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७॥

पदार्थ—(विशः विशः) समस्त मनुष्य प्रजाओं के (वः) तुम लोग (अतिथिम्) पूजनीय (वाजयन्तः) अन्न और ज्ञान की इच्छा करते हुए (पुरुप्रियं) सर्वप्रिय (अग्नि) परमेश्वर की (वः) अपने (दुर्यं) धाम (वचः) वाणी से (स्तुषे) स्तुति करता हूँ (शूषस्य) सुख के (मन्मभिः) मननों द्वारा ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्न तथा ज्ञान की इच्छा करते हुए सब प्रजाओं के पूजनीय तुम्हारे सुख के धाम परमेश्वर की मननों द्वारा स्तुति करो । मैं भी उसकी स्तुति करता हूँ ॥७॥

८८—पुरुः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३२उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
२ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ २
यं मित्रन्न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥८॥

पदार्थ—(बृहत्) अधिक (वयः) अवस्था (हि) निश्चय ही (भानवे) प्रकाश स्वरूप (अर्चः) समर्पण कर (देवाय) देव (अग्नये) परमेश्वर के लिए (यम्) जिसको (मित्रन्न) मित्र के समान (प्रशस्तये) स्तुति के द्वारा (मर्तासः) मनुष्य (दधिरे) धारण और ध्यान करते हैं (पुरः) आगे [प्रथम] ॥८॥

भावार्थ—हे उपासक ! तू उस प्रकाशस्वरूप परमदेव में अपने जीवन के बड़े भाग को समर्पण कर जिसको प्रियमित्र के समान मनुष्य लोग स्तुति करने के लिये अपने समक्ष करते हैं ॥८॥

८९—गोपवनः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्ष्ये बृहदनीक इध्यते ॥९॥

पदार्थ—(अगन्म) प्राप्त करें (वृत्रहन्तमं) अज्ञान के अत्यन्त नाशक (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ (अग्नि) परमेश्वर को (आनवम्) मनुष्यों के कल्याणकारी (यः) जो (स्म) पादपूरक (श्रुतर्वन्) प्रसिद्ध अग्नि में (आर्क्ष्ये) नक्षत्रसम्बन्धी (बृहदनीके) महान् तेज समूह में (इध्यते) प्रकाश कर रहा है ॥९॥

भावार्थ—जो अग्नि और नक्षत्र सम्बन्धी महान् तेज-समूह में प्रकाश कर रहा है उस अज्ञाननाशक मनुष्य मात्र के कल्याणकारी महान् प्रभु को हम प्राप्त करें ॥९॥

९०—वामदेवः, कश्यपो मनुर्वा, उभौ वा । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१०॥

पदार्थ—(जातः) जनक (परेण) परम-सूक्ष्म (धर्मणा) धर्म से (यत्) जिस कारण से (सवृद्भिः) सहवर्तिनी शक्तियों से (आभुवः) विद्यमान है (पिता) पिता (कश्यपस्य) ज्ञानी मनुष्य का (अग्निः) परमेश्वर (श्रद्धा) सत्य का धारक (कविः) कवि (माता) माता (मनुः) ज्ञानी ॥१०॥

भावार्थ—क्योंकि परमेश्वर सूक्ष्म गतियों से सबका उत्पादक होकर अपनी सहवर्तिनी शक्तियों के साथ विद्यमान है और ज्ञानी पुरुष का पिता है, अतः वही सत्य का धारक कवि ज्ञानी और सबकी माता है ॥१०॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

९१—अग्निः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(सोमं) सृष्टिकर्त्ता (राजानम्) प्रकाशस्वरूप (वरुणम्) सर्वमान्य (अग्निम्) परमेश्वर को (अन्वारभामहे) स्तुति करता हूँ (आदित्यम्) अविनाशी (विष्णुम्) व्यापक (सूर्यम्) सबको प्रेरणा करने वाले (ब्रह्माणम्) महान् (च) और (बृहस्पतिम्) वेदों के स्वामी ॥१॥

भावार्थ—सृष्टि-कर्त्ता प्रकाश-स्वरूप सब के पूज्य अविनाशी, व्यापक सब की प्रेरणा करने वाले महान् और वेदों के स्वामी परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ॥१॥

अथवा

सोम, राजा, वरुण, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति नामों वाले उस परमेश्वर को ही हम आरम्भ में स्मरण करते हैं ॥१॥

९२—वामदेवः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २र
इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्र भूर्जयो यथा पथो द्यामङ्गिरसो ययुः ॥२॥

पदार्थ—(इतः) यहां से (एते) ये (उदारुहन्) ऊर्ध्व गति पाते हैं (दिवः) द्युलोक के (पृष्ठानि) स्थानों को (आरुहन्) आरूढ़ होते हैं (प्र) उत्तम (भूर्जयः) पृथ्वी का जेता (यथा) जैसे (पथः) उत्तम मार्ग से (द्याम्) द्युलोक को (अङ्गिरसः) ज्ञानी लोग (ययुः) जाते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार पृथ्वी पर विजय करने वाला राजा उत्तममार्ग से (विज्ञानादि के द्वारा) आकाशपृष्ठ पर आरूढ़ हो जाता है, उसी प्रकार ये ज्ञानी जन इस लोक से अपने उत्तम कर्मों द्वारा सौर्यायणी आदि दशाओं को जाते हैं, और मोक्षयोग कर्म से उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥२॥

९३—वामदेवः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईडिष्वा हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

पदार्थ—(राये) धन के लिए (अग्ने) हे परमेश्वर (महे) महान् (त्वा) तुझ को (दानाय) दान के लिए (समिधीमहि) ध्यान में लाते हैं, (ईडिष्व) एश्वर्य युक्त कर (हि) निश्चय (महे) महान् (वृषन्) हे मनोरथों के सफल करने वाले (द्यावा) द्यु और पृथ्वी (होत्राय) यज्ञ के लिए (पृथ्वी) विस्तृत ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! महान् धन को प्राप्त करने के लिए हम तुझे ध्यान में लाते हैं । हे सुखों के वर्षक प्रभो ! तू महान् यज्ञ कर्म के लिए विस्तृत द्यु और पृथिवी लोक को ऐश्वर्ययुक्त कर ॥३॥

९४—सोमाहुतिः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ २ ३ २३२३ २३ २उ ३ २३२
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत् ।
२३ १ २३ १ २३२ ३१२
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४॥

पदार्थ—(दधन्वे) धारण करता है (वा) निश्चित ही (यत्) जो (ईम्) इसको (अनु) लक्ष्यकर (वोचत्) कहता है (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इस प्रकार (वेः) जानता है (उ) पादपूर्ति कर (तत्) सो (परि) सब प्रकार से (विश्वानि) सारे (काव्या) वेदों का (नेमिः) हाल (चक्रमिव) चक्के के समान (आभुवत्) व्यापता है ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस परमेश्वर को धारण करता अथवा 'यह ब्रह्म है' ऐसा उपदेश करता है या भली भांति जानता है, वह उसको तथा सारे वेदों को चक्रनेमि के समान अपने अधीन रखता है ॥४॥

९५—पायुः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३क२र
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम् ॥५॥

पदार्थ—(प्रति) सम्मुख (अग्ने) हे परमेश्वर ! (हरसा) अपने तेज से (हरः) तेज को (शृणाहि) नाश कर (विश्वतस्परि) सब प्रकार से (यातुधानस्य) दुःखदायी (रक्षसः) रोग के (बलम्) बल को (न्युब्ज) क्षीण कर (वीर्यम्) शक्ति को ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने तेज से दुःखदायी रोग के तेज का सब प्रकार से संहार कर तथा उसकी शक्ति और सामर्थ्य को भी भङ्ग कर ॥५॥

९६—प्रस्कण्वः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २३ २ ३ २
त्वमग्ने वसूंरिह रुद्रां आदित्यां उत ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यजा स्वध्वरञ्जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥६॥

पदार्थ—(त्वं) तू (अग्ने) हे परमेश्वर ! (वसून्) आठ वसुओं की (इह) इस संसार से (रुद्रान्) ग्यारह रुद्रों की (उत) और (यज) संगति लगाता है (आदित्यान्) बारह आदित्यों (स्वध्वरम्) यज्ञकर्त्ता (जनम्) मनुष्य (मनुजातम्) विद्वान् से उत्पन्न (घृतप्रुषम्) तेज से युक्त ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ८ वसुओं, ११ रुद्रों और १२ आदित्यों की यथायोग्य संगति लगाता है और तू ही यज्ञकर्त्ता विद्वान् से उत्पन्न तथा तेज से पूर्ण मनुष्य वर्ग को हमें प्रदान करता है ।।६।।

卐 दशमी दशती समाप्त 卐

९७—दीर्घतमा । उष्णिक् । अग्निः ।

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुरु त्वा दाशिवाँ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
३ १ २ ३२उ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ।।१।।

पदार्थ—(पुरु) पूर्ण (त्वा) तेरी (दाशिवान्) समर्पण करने वाला (वोचे) स्तुति करता हूँ (अरि) स्वामी (अग्ने) हे परमेश्वर (तव, स्वित्) तेरी ही (तोदस्य) कूप के (इव) समान (शरणे) शरण में (आ) भली भांति (महस्य) महान् ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर तू सबका स्वामी है। अतः पूर्णतया आत्मसमर्पण करने वाला मैं महान् कूप के सदृश तुझ प्रभु की शरण में स्थित होकर तुझे पुकारता हूँ ।१।

९८—विश्वामित्रः । उष्णिक् । अग्निः ।

१ २उ ३ २उ ३ १ २ ३२
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १२
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ।।२।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (होत्रे) सुखदाता (पूर्व्यं) सनातन (वचः) मन्त्ररूप वचनों को (अग्नये) परमेश्वर के लिये (भरता) उच्चारण करो (बृहत्) महान् या बृहत् सामरूप भी (विपाम्) ज्ञानी पुरुषों के (ज्योतींषि) तेजों को (बिभ्रते) धारण करने वाले (वेधसे) विद्वान् के (न) समान ।।२।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वेदपाठियों के तेज को धारण करने वाले विद्वान् के समान सब सुखों के दाता परमेश्वर की सनातन वेद वचन से स्तुति करो ।।२।।

९९—विश्वामित्रः । उष्णिक् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ।।३।।

पदार्थ—(अग्ने) हे तेजस्वी विद्वान् पुरुष (वाजस्य) अन्न बल और ज्ञान का (गोमतः) गौ आदि पशुओं से युक्त (ईशानः) स्वामी (सहसो यहो) हे साहसी के पुत्र ! (अस्मे) हमें (देहि) दे (जातवेदः) हे विज्ञान के जानने वाले (महि) महान् उत्तम (श्रवः) यश ।।३।।

भावार्थ—हे पराक्रमशील मनुष्य के पुत्र विज्ञानी पुरुष ! तू गौ आदि पशुओं से युक्त धन का स्वामी है। तू हमें विद्या का श्रवण करा ।।३।।

१००—विश्वामित्रः । उष्णिक् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३१ २
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्त्रिधः ।।४।।

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (यजिष्ठः) अत्यन्त पूजनीय (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ में (देवयते) उत्तम गुण चाहने वाले यजमान के लिए (देवान्) उत्तम विद्वान् पुरुषों को (यज) प्रदान कर या दे, (होता) कर्मफल दाता (मन्द्रः) स्तुति के योग्य (विराजसि) विराजमान है (अति) दबा कर (स्त्रिधः) दुःखदायी भावों को ।।४।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अत्यन्त पूजनीय, कर्म-फल-दाता और स्तुति के योग्य तथा दुःखदायी भावों को दबाकर सदा विराजमान है। तू कल्याणकारी यज्ञ में यजमान के लिए उत्तम विद्वानों को प्राप्त करा ।।४।।

१०१—त्रितः । उष्णिक् । सोमः ।

३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २र ३ २
जज्ञाना सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अयं ध्रुवो रयीणाञ्चिकेतदा ।।५।।

पदार्थ—(जज्ञानः) जानता हुआ (सप्तमातृभिः) सात छन्द या स्वरों से उत्पन्न मन्त्र अथवा गान से (मेधाम्) धारण करने वाली बुद्धि की (आशासत) आशा करता है (श्रिये) सम्पदा के लिए (अयम्) यह परमेश्वर (ध्रुवः) नित्य अविनाशी (रयीणाम्) सम्पदाओं को (चिकेतत्) ज्ञान करावे ।। ५ ।।

भावार्थ—नित्य अविनाशी परमेश्वर सम्पदायें प्राप्त करावें ऐसा जानता हुआ मनुष्य धन के लिए सात स्वरों और छन्दों से बने सामगान और मन्त्रों द्वारा उत्तम बुद्धि की याचना करता है ।। ५ ।।

१०२—इरिमिठिः । उष्णिक् । अदितिः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सा शान्ताता मयस्करदप स्त्रिधः ।।६।।

पदार्थ—(उत) और (स्या) वह (नः) हमारी (दिवा) दिन में (मतिः) ज्ञान करने के योग्य (अदितिः) परमेश्वर (ऊत्या) हमारी रक्षा के साधन के साथ (आगमत्) हमें प्राप्त हो (सा) वह (शान्ताता) शान्तिदायक (मयः करत्) सुखकारक (अप) दूर करे (स्त्रिधः) बुराइयाँ ।। ६ ।।

भावार्थ—जानने योग्य वह परमेश्वर हमारे रक्षा के साधनों के साथ दिव्य गुणों सहित हमें प्राप्त हो। शान्ति का दाता सुखकारी वह हमारी बुराइयां दूर करे ।। ६ ।।

१०३—विश्वमनाः । उष्णिक् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
ईडिष्वाहि प्रतीव्यां३ यजस्व जातवेदसम् ।
३ १ २ ३ १ २
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ।।७।।

पदार्थ—(ईडिष्व) स्तुति कर (हि) निश्चय ही (प्रतीव्यम्) सब के भीतर और बाहर विद्यमान (यजस्व) पूजा कर (जातवेदसम्) सर्वज्ञ की (चरिष्णुधूमम्) धूम्र निकलने वाले और (अगृभीतशोचिषम्) नहीं ग्रहण कर सकने के योग्य तेज वाले अग्नि के समान परमेश्वर की ।। ७ ।।

भावार्थ—हे जीव ! धूमयुक्त प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ और सर्व व्यापक परमेश्वर की स्तुति और पूजा कर ।। ७ ।।

१०४—विश्वमनाः । उष्णिक् । अग्निः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ।।८।।

पदार्थ—(न) नहीं (तस्य) उसका (मायया) छल से (चन) भी (रिपुः) शत्रु (ईशीत) कुछ बिगाड़ सकता है (मर्त्यः) मनुष्य (यः) जो (अग्नये) परमेश्वर की शरण में (ददाश) अपने को समर्पित करता है (हव्य-दातये) कर्मफलदाता ।। ८ ।।

भावार्थ—जो पुरुष कर्मफल-दाता परमेश्वर की शरण में अपने आपको समर्पित करता है, उसका मनुष्य-शत्रु कुछ नहीं बिगाड़ सकता है ।। ८ ।।

१०५—भरद्वाजः । उष्णिक् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अप त्यं वृजिन रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
१ २ ३ २ ३ २
दविष्टमस्य सत्पते कृधी सुगम् ।।९।।

पदार्थ—(अप) दूर कर (त्यम्) उस (वृजिनं) पापी को (रिपुम्) शत्रु (स्तेनम्) चोर (दुराध्यम्) दुःखदायी (दविष्ठम्) दूर (अस्य) भगा (सत्पते) हे सज्जनों के पालक (कृधी) कर (सुगम्) उत्तममार्ग पर चलने वाला ।। ९ ।।

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! पापी, चोर और दुःख देने वाले शत्रु मनुष्य को हमसे परे कर। उत्तम मार्ग पर चलने वाला बना ।। ९ ।।

१०६—विश्वमनाः । उष्णिक् । अग्निः ।

३क २र ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्ट्याग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ।।१०।।

पदार्थ—(श्रुष्टि) शीघ्र (अग्ने) हे परमेश्वर (नवस्य) नवीन (मे) मेरी (स्तोमस्य) स्तुति को (वीर) हे शक्तिमान् (विश्पते) हे सर्वरक्षक (नि) जड़ से (मायिनः) छली कपटी (तपसा) अपने तेज से (रक्षसः) मायामय विचारों को (दह) भस्म कर ।। १० ।।

भावार्थ—हे सर्वरक्षक और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! तू मेरा नवीन स्तोत्र आदि सामगान शीघ्र सुन, तथा अपने तेज से मायावी लोगों के बुरे विचारों को भस्म कर ।। १० ।।

卐 एकादशी दशती समाप्त 卐

१०७—प्रयोगः । ककुप् । अग्निः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने वृहते शुक्रशोचिषे।
३ १ २ ३ १ २
उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (मंहिष्ठाय) सबसे अधिक दानी के लिए (गायत) गुण गान करो (ऋताव्ने) यज्ञों के स्वामी (बृहते) महान् (शुक्रशोचिषे) प्रकाश स्वरूप (उपस्तुतासः) हे उपासना करने वालो ! (अग्नये) परमेश्वर के लिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे उपासना करने वालो ! महान् दानी, यज्ञों के स्वामी और तेज-स्वरूप परमेश्वर के उत्तम गुणों का गान करो ॥ १ ॥

१०८—सोभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
२ ३ २ ३ १ २र
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सः) वह (अग्ने) हे परमेश्वर (तव) तेरी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सुवीराभिः) वीर सन्तान देनेवाली (तरति) उन्नति करता है (वाजकर्मभिः) अन्न पैदा करने वाले (यस्य) जिसका (त्वम्) तू (सख्यम्) मित्रता (आविथ) प्राप्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिसको तेरी मित्रता प्राप्त होती है वह पुरुष अन्न पैदा करने वाली और सुन्दर वीर सन्तान देने वाली तेरी रक्षाओं से अपनी सब प्रकार की उन्नति करता है ॥ २ ॥

१०९—सोभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (गूर्धय) पूजा कर (स्वर्णरम्) सबके नेता (देवासः) विद्वान् पुरुष (देवम्) देव (अरतिम) सर्वज्ञ (दधन्विरे) धारण या ध्यान करते हैं। (देवत्रा) मनुष्यों को (हव्यम्) भोग्यवस्तु (ऊहिषे) तू देता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे जीव ! विद्वान् लोग जिस सर्वज्ञ देव का ध्यान करते हैं तू उस सब के नेता की पूजा कर । हे परमेश्वर ! तू मनुष्यों को भोग्य वस्तु देता है ॥३॥

११०—सोभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ २
मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
२ ३ १ २ ३ २
यः सुहोता स्वध्वरः ॥४॥

पदार्थ—(मा) नहीं (नः) हमारे (हृणीथाः) क्रोध करो (अतिथिम्) पूजनीय (वसुः) सब का बसाने वाला (अग्निः) परमेश्वर (पुरुप्रशस्तः) अत्यन्त प्रशंसनीय (एषः) प्राप्त करने के योग्य (यः) जो (सुहोता) दाता (स्वध्वरः) कल्याणकारी यज्ञों का स्वामी ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जो परमेश्वर उत्तमदाता कल्याणकारी यज्ञों का स्वामी सब का बसाने वाला तथा अत्यन्त प्रशंसनीय है उस हमारे पूजनीय देव के प्रति क्रोध या अनादर के भाव मत करो ॥४॥

१११—सोभरिः । ककुप् । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ ३ १ २ ३२
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः भद्रो अध्वरः ।
३ २ ३ १ २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥५॥

पदार्थ—(भद्रः) कल्याणकारी (नः) हमारा (अग्निः) परमेश्वर (आहुतः) भली भांति ध्यान किया हुआ (भद्रा) कल्याणकारी (रातिः) दान हो (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) यज्ञ हो (भद्रा) कल्याण करने वाली (उत) और (प्रशस्तयः) स्तुतियां हों ॥५॥

भावार्थ—परमेश्वर का ध्यान हमारा कल्याण करे । हमारे दान, यज्ञ और स्तुतियां भी कल्याण करें ॥५॥

११२—सोभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१ २ ३१ २३ १ २र ३ १२
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६॥

भावार्थ—(यजिष्ठं) अत्यन्त पूज्य (त्वा) तुझे (ववृमहे) भजते हैं (देवम्) देव (देवत्रा) देवों में (होतारम्) दाता (अमर्त्यम्) अविनाशी (अस्य) इस 'संसाररूप' (यज्ञस्य) यज्ञ को (सुक्रतुम्) भली भांति सफल करने वाले ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! देवों में देव, कर्म फल के दाता, अविनाशी, इस संसार रूप यज्ञ को सफल करने वाले तुझे हम भजते हैं ॥६॥

११३—सोभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
तदग्ने द्युम्नमाभर यत्सासाहा सदने कञ्चिदत्रिणम् ।
३ १ २र ३क २र
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७॥

पदार्थ—(तत्) उस (अग्ने) हे परमेश्वर (द्युम्नम्) तेज को (आभर) भरपूर कर (यत्) जो (सासाहा) दबावे (सदने) यज्ञ शाला में (कञ्चित्) किसी भी (अत्रिणम्) बुरे विचार को (मन्युं) क्रोध को भी (जनस्य) मनुष्य के (दूढ्यम्) दुःखदायक ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें ऐसा तेज प्रदान कर जिससे यज्ञशाला में यज्ञ करने के समय उत्पन्न होने वाले किसी बुरे विचार को तथा मनुष्य के दुःखदायी क्रोध को भी दबा सकें ॥७॥

११४—विश्वमनाः । ककुप् । अग्निः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
२उ ३ २उ ३ १ २
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥८॥

पदार्थ—(यद्वा) जब (उ) निश्चय ही (विश्पतिः) प्राणिमात्र की रक्षा करने वाले (शितः) उपासना किया हुआ (सुप्रीतः) प्रसन्न (मनुषः) मनुष्य के (विशे) सेवक के लिए (विश्वेत्) सम्पूर्ण (रक्षांसि) बुरे विचारों को (प्रति) सम्मुख (सेधति) दूर करता है ॥८॥

भावार्थ—प्राणिमात्र का रक्षक परमेश्वर मनुष्य के सेवक पर जब उपासना से प्रसन्न होता है तो वह उसके सारे बुरे विचारों को दूर भगाता है ॥८॥

卐

ऐन्द्र पर्व

द्वितीयोऽध्यायः

११५—शंयुः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ २उ ३ २ ३ १ २

तद्व सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१॥

पदार्थ—(तत्) उस (वः) तुम (गाय) गा (सुते) उत्पन्न जगत् में (सचा) साथ (पुरुहूताय) अत्यन्त प्रशंसा योग्य के लिये (सत्वने) सर्वदा वर्तमान (शम्) कल्याणकारी (यत्) जो (गवेन) वेदवाणी के समान (शाकिने) शक्तिमान् ॥१॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वाले ! तू सर्वपूज्य सर्वदा वर्तमान तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के लिए वेदवाणी की प्रशंसा के समान अपने कल्याणकारी स्तोत्र का गान कर ॥१॥

११६—श्रुतक । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (नूनं) निश्चित (शतक्रतो) हे अनेक ज्ञानवाले (इन्द्र) हे ईश्वर ! (द्युम्नितमः) अत्यन्त यशस्वी (मदः) आनन्दित है (तेन) उससे (नूनम्) निश्चित (मदे) उपासना में (मदेः) हमें आनन्दित कर ॥२॥

भावार्थ—हे असंख्य ज्ञान वाले ईश्वर ! अत्यन्त यशस्वी जो तेरा आनन्द है, उस आनन्द से हमें उपासना में आनन्दित कर ॥२॥

११७—हर्यतः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।

३ १ २र ३ १ २

उभा कर्णा हिरण्यया ॥३॥

पदार्थ—(गावः) सूर्य की किरणें (उप) समीप (वद) फैलती हैं या पड़ती हैं (अवटे) गढ (मही) पृथ्वी (यज्ञस्य) यज्ञ का (रप्सुदा) स्वरूप देने वाली (उभा) दोनों (कर्णा) सिरे (हिरण्यया) चमकीले ॥३॥

भावार्थ—सूर्य की किरणें पृथ्वी के ऊँचे नीचे सभी स्थानों पर पड़ती हैं। पृथ्वी यज्ञ का स्वरूप देने वाली है। उसके दोनों सिरे चमकीले हैं ॥३॥

११८—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।

२ ३ १ २ ३ १ २

अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥

पदार्थ—(अरम्) पर्याप्त 'पूर्ण' (अश्वाय) व्यापकता के लिए (गायत) गान करो (श्रुतकक्ष) हे उत्तम श्रेणी के मनुष्य ! (अरम्) पूर्ण (इन्द्रस्य) ईश्वर के (धाम्ने) स्वरूप के लिये ॥४॥

भावार्थ—हे उत्तम श्रेणी के मनुष्य ! ईश्वर की व्यापकता उसकी शक्ति और उस के स्वरूप का गुण गान कर ॥४॥

११९—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २र ३२ ३ २ ३ १ २

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।

१ २र ३ १ २

स वृषा वृषभो भुवत् ॥५॥

पदार्थ—(तम्) उस (इन्द्रम्) ईश्वर की (वाजयामसि) महिमा को गाते हैं (महे) महान् (वृत्राय) अज्ञान का (हन्तवे) नाश करने के लिए (स) वह (वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला (वृषभः) धन का दाता (भुवत्) हो ॥५॥

भावार्थ—हम महान् अज्ञान का नाश करने के लिए ईश्वर की महिमा का गान करते हैं। वह हमारी कामनाओं को पूर्ण करता है। वह हमें धन दे ॥५॥

१२०—देवजामयः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।

१ १२३ १ २र

त्वं सन् वृषन् वृषेदसि ॥ ६ ॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (इन्द्र) हे ईश्वर ! (बलात्) बल से (अधि) अधिक (सहसः) तेज से (जातः) प्रसिद्ध (ओजसः) धैर्य से (त्वम्) तू (सन्) विद्यमान है (वृषन्) हे सुखों की वर्षा करने वाले (वृषाइत्) तू कामनाओं की पूर्ति करने वाला (असि) है ॥६॥

भावार्थ—हे सुखों की वर्षा करने वाले ईश्वर ! तू बल तेज और धैर्य से प्रसिद्ध है। तू सदा विद्यमान रहता हुआ हमारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला ही है ॥६॥

१२१—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २३ २ ३ २

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥७॥

पदार्थ—(यज्ञः) परमेश्वर (इन्द्रम्) सूर्य का (अवर्धयत्) बढ़ाया (यत्) जो (भूमिम्) भूमि को (व्यवर्तयत्) घुमाता है (चक्राणः) करता हुआ (ओपशम्) सम्बन्ध को (दिवि) आकाश में ॥७॥

भावार्थ—यज्ञ परमेश्वर ने सूर्य को बढ़ाया जो कि आकाश में सम्बन्ध करता हुआ भूमि को घुमाता है ॥ ७ ॥

१२२—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ १ ३२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥८॥

पदार्थ—(यत्) यदि (इन्द्र) हे ईश्वर ! (अहम्) मैं (यथा) जैसा (त्वम्) तू है। (ईशीय) अधिष्ठाता हो जाऊँ (वस्वः) धन का (एक इत्) एक ही (स्तोता) स्तुति करने वाला (मे) मेरा (गोसखा) मित्र (स्यात्) हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे तू सारे ऐश्वर्य का एक ही अधिष्ठाता है, ऐसे ही यदि मैं भी हो जाऊं, तो मेरी स्तुति करने वाला गवादि धन से युक्त हो ! ॥ ८ ॥

१२३—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥९॥

पदार्थ—(पन्यम्पन्यम्) बार बार स्तुति करने योग्य (इत) ही (सोतारः) हे स्तुति करनेवालो ! (आधावत) शरण में जाओ (मद्याय) प्रशस्त धन के लिए (सोमम्) आनन्दस्वरूप ईश्वर की (वीराय) पुत्र के लिए (शूराय) शूर ॥९॥

भावार्थ—हे स्तुति करनेवालो ! धन के लिए और शूर पुत्र की प्राप्ति के लिए बार बार स्तुति करने योग्य आनन्दस्वरूप ईश्वर की ही शरण में जाओ ॥९॥

१२४—प्रियमेधः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ १ २

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥१०॥

पदार्थ—(इदम्) इस (वसो) हे बसानेवाले ईश्वर ! (सुतमन्धः) उत्पन्न हुए सोमतत्त्व को (पिब) पिला (सुपूर्णम्) पूरी (उत) और (अरम्) पूर्ण (अनाभयिन्) हे सदा निर्भय ! ईश्वर (ररिमा) हम समर्पण करते हैं (ते) तेरी सेवा में ॥ १० ॥

भावार्थ—हे सबको बसाने वाले परमेश्वर ! तू संसार में उत्पन्न होने वाले सोम को पूर्ण और पर्याप्त रूप से पिला। हे निर्भय ! हम अपने सर्वस्व को तुझ में समर्पण करते हैं ॥ १० ॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

१२५—सुतकक्षः श्रुतकक्षो वा गायत्री । इन्द्रः ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २

उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभ नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

पदार्थ—(उत्) ऊपर (ह) प्रसिद्ध (इत्) ही (अभि) सब प्रकार (श्रुतामघम्) विख्यात धनी (वृषभम्) याचक की मांग को पूर्ण करने वाले (नर्यापसम्) मनुष्य मात्र के हित करने वाले (अस्तारम्) उदार पुरुष को (एषि) उठाता है (सूर्य) हे सर्व प्रेरक ईश्वर ॥ १ ॥

भावार्थ—हे सर्व प्रेरक ईश्वर ! विख्यात धनी याचकों की मांग पूरी करने वाले मनुष्य मात्र के हितचिन्तक और उदार पुरुष को तू अवश्य उन्नत करता है ॥१॥

१२६—ऋषिछन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

२ ३ १ २र ३ १ ३ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र त वशे ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (अद्य) आज (कच्च) कुछ भी (वृत्रहन्) हे अज्ञान के नाश करने वाले ! (उदगा) उत्पन्न है (अभि) तेरे सामने (सूर्य) सब को प्रेरित करने वाले (सर्वम्) सब (तत्) वह (इन्द्र) हे ईश्वर ! (ते) तेरे (वशे) आधीन है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे सब को प्रेरणा करने वाले ! हे अज्ञान के नाश करने वाले ईश्वर ! जो कुछ भी उत्पन्न दिखाई देता है वह सब तेरे ही आधीन है ॥ २ ॥

१२७—भरद्वाजः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २र ३२३१२ ३२३१२ २३ २ ३२३१२
य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (आनयत्) लाता है (परावतः) दूर से (सुनीती) उत्तम नीति से (तुर्वशम्) समीप (यदुम्) मनुष्य को (इन्द्रः) परमेश्वर (सः) वह (नः) हमारा (युवा) अजर (सखा) मित्र ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर अज्ञान के कारण दूर भटकने वाले मनुष्य को अपनी उत्तम नीति से समीपवर्ती कर लेता है, वही हमारा अजर मित्र है ॥ ३ ॥

१२८—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ २३ १२३ १ २र
मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत ।
२ ३१२ ३२
त्वा युजा वनेम तत् ॥४॥

पदार्थ—(मा) नहीं (नः) हमारे (अभि) सन्मुख (इन्द्र) हे ईश्वर ! (आदिशः) दिशा से (सूरः) वीर (अक्तुषु) रात्रि या दिन में (आयमत्) नियंत्रण करे (त्वा) तेरी (युजा) योग कराने वाली भावना से (वनेम) भक्ति करे (तत्) उस कारण से ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिससे कि कोई भी वीर पुरुष रात या दिन में हमारे सन्मुख की दिशाओं पर नियंत्रण न कर सके अर्थात् हम जिधर चाहें चल सकें, हमारा आगा कोई न रोक सके, इस कारण हम तेरे से योग कराने वाली भावना के साथ तेरी भक्ति करते हैं ॥ ४ ॥

१२९—मधुच्छन्दाः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३२ ३२ ३१२ ३१२ १२ ३१२
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भरा ॥५॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (इन्द्र) हे ईश्वर ! (सानसिम्) निरन्तर सेवन करने योग्य (रयिम्) धन को (सजित्वानं) सदा विजय कराने वाले (सदासहम्) शत्रु के आक्रमण का सहन न करने का हेतु (वर्षिष्ठम्) बढ़ाने वाले (ऊतये) हमारी रक्षा के लिए (भर) पूर्ण कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! निरन्तर भोग करने योग्य, जिनसे हम शत्रु पर विजय पा सकें तथा उसके आक्रमण का सामना कर सकें, और जो हमको सदा उन्नत कर सकें, ऐसे धन के द्वारा हमारी रक्षा के लिए हमें पूर्ण कर ॥ ५ ॥

१३०—मधुच्छन्दाः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३१२ ३२उ ३१२ १२३१२३ १२
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) ईश्वर को (वयम्) हम लोग (महाधने) संग्राम में (इन्द्रम्) ईश्वर को (अर्भे) छोटे संग्राम या कार्यों में (हवामहे) पुकारते हैं (युजम्) सहायक (वृत्रेषु) अज्ञानों को दूर करने में (वज्रिणम्) निवारणास्त्र को धारण करने वाले ॥ ६ ॥

भावार्थ—हम छोटे या बड़े संग्रामों में सहायक, अज्ञानों के नाश करने वाले परमेश्वर को पुकारते हैं ॥ ६ ॥

१३१—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३१२३१ २र३१२ १२ ३ १२
अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥७॥

पदार्थ—(अपिबत्) भोग करता है (कद्रुवः) बुरी गतिवाला (सुतम्) संसार का (इन्द्रः) जीवात्मा (सहस्रबाह्वे) बहुत शक्ति पाने के लिए (तत्र) उसमें (आददिष्ट) ग्रहण करता है (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को ॥ ७ ॥

भावार्थ—बुरी भली गतियों वाला जीव संसार का उपभोग करता है, तथा आयु की वृद्धि के लिए पुरुषार्थ को ग्रहण करता है ॥ ७ ॥

१३२—वसिष्ठः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१२ ३२३१ २र ३२ १२
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा३स्य नो वसो ॥८॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (इन्द्र) हे ईश्वर ! (त्वायवः) तेरी कामना करने वाले हैं (अभि) सन्मुख (प्र) उत्तमता से (नोनुमः) बार बार नमस्कार करते हैं (वृषन्) हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले (विद्धी) जानता है (त्वा) तुझे (अस्य) इस संसार का (नः) हमारी (वसो) हे सब ऐश्वर्यों के स्वामी ॥८॥

भावार्थ—हे सुख के वर्षक इन्द्र ! तुम्हारी कामना करने वाले हम लोग तुमको नमस्कार करते हैं । तू हमारे इस संसार की सभी वस्तुओं को जानता है ॥८॥

१३३—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ २३२ ३१२ ३१ २३१२३२
आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
२३२ ३२ ३१२
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥९॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (घ) प्रसिद्ध (ये) जो लोग (अग्निम्) ईश्वर को (इन्धते) अपनी आत्मा में प्रकाशित करते हैं (स्तृणन्ति) विस्तार करते हैं (बर्हिः) ज्ञान का (आनुषक्) निरन्तर (येषां) जिनका (इन्द्रः) ईश्वर (युवा) अजर (सखा) मित्र ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिनका अजर परमेश्वर सखा है, और जो आत्मा में इसे ध्याते हैं वे अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ाते हैं ॥ ९ ॥

१३४—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २उ ३ २३ २३२ ३१२ ३१ २र
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
१२३१ २र
वसुस्पार्हं तदाभर ॥१०॥

पदार्थ—(भिन्धि) छिन्नभिन्न कर (विश्वा) सारे (अप) दूरकर (द्विषः) द्वेष की भावनाओं को (परिबाधः) सब विघ्न-बाधाओं तथा (जही) अन्त कर (मृधः) संग्रामों [लड़ाइयों] को (वसु) सम्पत्ति है (स्पार्हम्) स्पृहणीय (तत्) उसको (आभर) पूर्णकर ॥ १० ॥

भावार्थ—हे इन्द्र ! तू समस्त द्वेष की भावनाओं को नष्ट कर तथा मिटा समस्त विघ्न बाधाओं को । जो स्पृहणीय [इच्छा करने के योग्य] धन है वह हमें प्रदान कर ॥ १० ॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

१३५—कण्वो घौरः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१२ ३ २३१२३१ २र १ २र३१२
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामं चित्रमृञ्जते ॥१॥

पदार्थ—(इह) यहां के (इव) समान (शृण्वे) सुनता हूँ (एषाम्) इन पवनों के (कशाः) वाणियां (हस्तेषु) हाथों में हैं (यत्) जो (वदान्) बोलता है (नियामम्) मार्ग को (चित्रम्) अद्भुत (ऋञ्जते) सिद्ध करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—दूसरी जगह लोग जो कुछ बोलते हैं वह यहाँ ही [कान के पास के समान] सुनाई पड़ता है । [इससे मालूम होता है कि] वाणी इन पवनों के अधिकार में है । [यह शब्द एक] अद्भुत मार्ग सिद्ध करता है ॥ १ ॥

१३६—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१२ ३ १२ ३ १२ ३ १२
इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
३१२ ३१२ ३२
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥२॥

पदार्थ—(इमे) ये (त्वा) तुझको (विचक्षते) विशेष रुचि से देखते हैं (सखायः) मित्र (इन्द्र) परमेश्वर (सोमिनः) ऐश्वर्यशाली पुरुष (पुष्टावन्तः) घास के लिए पशुपालक (यथा) जैसे (पशुम्) पशु को ॥ २ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे पशुपालक [अपने उपकार के लिए] पशु को देखता है, ऐसे ही तुम्हारे मित्र ऐश्वर्यशाली लोग तुम को विशेष रुचि से देखते हैं ॥२॥

१३७—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३२३ २३ १ २ ३१२ ३ १२३ १२
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥३॥

पदार्थ—(सम्) भले प्रकार (अस्य) इसकी (मन्यवे) मनन के लिये (विशः) प्रजायें (विश्वा) सब (नमन्त) झुकती हैं (कृष्टयः) मनुष्य (समुद्राय) समुद्र के लिये (इव) समान (सिन्धवः) छोटी नदियें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की तरफ झुकती हैं, इसी प्रकार सारे मनुष्य मन या ज्ञान के लिये परमेश्वर की तरफ झुकते हैं ॥३॥

१३८—कुसीदी । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३१ २र३१ २र ३२ १ २३१२३१२
देवानामिदवो महत् तदावृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥४॥

पदार्थ—(देवानाम्) ईश्वर, सूर्य, विद्वान् (इत्) ही (अवः) रक्षा (महत्) बड़ी (तत्) उसको (वयम्) हम (आवृणीमहे) चाहते हैं (वृष्णाम्) सुख की वर्षा करने वाली (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ऊतये) रक्षा के लिये ॥४॥

भावार्थ—हमारे लिये सुख की वृष्टि करने वाले ईश्वर, सूर्य विद्वान् आदि देवों का जो महान् संरक्षण है, उसे हम अपनी रक्षा के लिये सदा स्वीकार करते हैं॥४॥

१३९—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २३ १२ ३१२ ३१२३१ २३२
सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥५॥

पदार्थ—(सोमानाम्) सोम विज्ञान के (स्वरणम्) प्रकाशक (कृणुहि) बना (ब्रह्मणस्पते) हे वेदवाणियों के स्वामी ! (कक्षीवन्तम्) सृष्टि का ज्ञाता (यः) जो (औशिजः) मेधावी का पुत्र ॥५॥

भावार्थ—हे वेदवाणियों के स्वामी परमेश्वर ! जो मेधावी का पुत्र है । ऐसे सोम विज्ञान के प्रकाशक पुरुष को समस्त सृष्टि विद्या का ज्ञाता बना ॥५॥

१४०—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३ १२ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ १ २

बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥६॥

पदार्थ—(बोधन्मना) मेरा अभिप्राय जानता है (इत्) ही (अस्तु) हो (नः) हमारी (वृत्रहा) अज्ञान नाशक (भूर्यासुतिः) आनन्दघन (शृणोतु) सुनता है (शक्रः) शक्तिमान् ईश्वर (आशिषम्) स्तुति ॥६॥

भावार्थ—अज्ञान का नाश करने वाला, आनन्द स्वरूप और शक्तिमान् ईश्वर हमारी स्तुति सुनता है और अभिप्राय को जानता है ॥६॥

१४१—श्यावाश्वः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥७॥

पदार्थ—(अद्य) आज (नः) हमारे लिये (देव) हे ईश्वर ! (सवितः) हे सब के उत्पादक ! (प्रजावत्) सन्तानयुक्त (सावीः) दे (सौभगम्) ऐश्वर्य [सम्पत्ति] (परासुव) दूरकर (दुःष्वप्न्यम्) क्लेश को ॥७॥

भावार्थ—हे सब के उत्पादक देव ईश्वर ! आप हमको सन्तानयुक्त सम्पत्ति दें और क्लेश को दूर करें ॥७॥

१४२—प्रगाथः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ १ २३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

क्वा३स्य वृषभो युवा तुवीग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥८॥

पदार्थ—(क्व) कहां है (स्य) वह (वृषभः) सुख का दाता (युवा) अजर (तुवीग्रीवः) विराट्स्वरूप (अनानतः) शक्तिशाली (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता (कः) कौन (तम्) उसकी (सपर्यति) भली भांति उपासना करता है ॥८॥

भावार्थ—विराट्रूप और महान् शक्तिशाली परमेश्वर कहां है ? अर्थात् सर्वत्र है । उसकी भली भांति उपासना कौन कर सकता है ? चारों वेदों का ज्ञाता पुरुष ॥८॥

१४३—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥९॥

पदार्थ—(उपह्वरे) गुफाओं में (गिरीणाम्) पर्वतों की (संगमे) संगम पर (च) और (नदीनाम्) नदियों के (धिया) विशेष ज्ञान से (विप्रः) मेधावी (अजायत) बनता है ॥९॥

भावार्थ—पर्वतों की गुफाओं में और नदियों के संगम पर विशेष कर्म [योगाभ्यास] करने से मनुष्य ज्ञानी बनता है ॥९॥

१४४—इरिमिठः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २

प्रसम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१०॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सम्राजम्) सम्राट् (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (इन्द्रम्) ईश्वर की (स्तोत) स्तुति करो (नव्यम्) स्तुत्य (गीर्भिः) वेदवाणियों से (नरम्) सुपथ पर चलाने वाले (नृषाहम्) मनुष्यों को नियम में रखने वाला (मंहिष्ठम्) महान् दाता ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मनुष्यमात्र के सम्राट् स्तुति करने के योग्य ईश्वर की वेदमन्त्रों से उत्तम स्तुति करो, वह मनुष्यमात्र को नियम में रखता है उसका दान महान् है और वह सबको सुपथ पर चलाता है ॥१०॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

१४५—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥१॥

पदार्थ—(अपात्) रक्षा करता है (शिप्री) कार्यकुशल (अन्धसः) अन्न की (सुदक्षस्य) उत्तम शक्तिशाली (प्रहोषिणः) संसार यज्ञ के होता (इन्दोः) परमेश्वर का (इन्द्रः) राजा (यवाशिरः) यवादि से युक्त ॥१॥

भावार्थ—व्यावहारिक पारमार्थिक सुख की प्राप्ति करने वाला राजा उत्तम शक्तिशाली तथा संसार यज्ञ के होता परमेश्वर के दिए हुए यवादि से युक्त अन्नादि पदार्थों की रक्षा और उपभोग करता है ॥१॥

१४६—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १२

इमा उ त्वा पुरुवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥२॥

पदार्थ—(इमा उ) ये (त्वा) तेरी (पुरुवसो) सब के निवास दाता (अभि) सब प्रकार (प्रनोनुवुः) स्तुति करती हैं । (गिरः) वेदवाणियां (गावः) गाएं (वत्सं न) बछड़ों को जैसे (धेनवः) दूध देने वाली ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर सब के निवासदाता ! जैसे दूध देने वाली गाएँ बछड़े के पास जाती हैं ऐसे ही ये हमारी स्तुतियां सब प्रकार से बारबार तेरी शरण में पहुंचती हैं ॥ २ ॥

१४७—गोतमः । गायत्री । इन्द्रः ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥

पदार्थ—(अत्र) इसमें (अह) निश्चित (अमन्वत) जानो (नाम) तेज (त्वष्टुः) सूर्य को (अपीच्यम्) प्रविष्ट हैं (इत्था) इस प्रकार (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के (गृहे) मण्डल में ॥३॥

भावार्थ—इस चन्द्रमण्डल में सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं । हे मनुष्यो ! ऐसा जानो ॥३॥

१४८—भरद्वाजः । गायत्री । इन्द्रः ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ १ २

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषा भुवत्सचा ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (इन्द्रः) सूर्य (अनयत्) पहुँचाता है (रितः) गति करने वाली (महीः) पृथ्वी पर (अपः) जलों को (वृषन्तमः) पूर्ण वर्षा करने वाला (तत्र) उसमें (पूषा) वायु (भुवत्) होता है (सचा) सहायक ॥४॥

भावार्थ—पूर्ण वर्षा करने वाला सूर्य, गति करने वाली पृथिवी पर जलों को बरसाता है । उसमें वायु सहायक होता है ॥४॥

१४९—बिन्दुः पूतदक्षो वा । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥५॥

पदार्थ—(गौः) पृथ्वी (धयति) ग्रहण करती है (मरुताम्) पवनों को (श्रवस्युः) अन्न उत्पन्न करने वाली (माता) प्राणियों की रक्षक (मघोनाम्) सूर्य आदि की (युक्ता) साथी (वह्नी) वहन करने वाली (रथानाम्) विविध यानों के ॥ ५ ॥

भावार्थ—इन्द्र आदि द्वारा की हुई वृष्टि को अन्नादि की दाता सूर्यादि की साथी रथादि यानों को धारण करने वाली पृथिवी माता पान करती है अथवा ग्रहण करती है ॥ ५ ॥

१५०—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥६॥

पदार्थ—(उप) समीप (नः) हमारे (हरिभिः) मनुष्यों के उपदेशों से (सुतम्) उत्पन्न ज्ञान को (याहि) प्राप्त करा (मदानां पते) आनन्दों के स्वामी (उप) समीप (नः) हमारे (हरिभिः) सूर्य, अग्नि द्वारा (सुतम्) भोग को ॥६॥

भावार्थ—हे आनन्दों के स्वामी परमेश्वर ! अपने विद्वानों के उपदेशों से अत्यन्त ज्ञान तथा सूर्य अग्नि आदि द्वारा उत्पन्न भोग को हमें प्राप्त करा ॥६॥

१५१—ऋषि छन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥७॥

पदार्थ—(इष्टा होत्रा) इष्ट आहुतियें (असृक्षत) छोड़ते हैं (इन्द्रम्) परमेश्वर का (वृधन्तः) उच्चारण करते हुए (अध्वरे) यज्ञ में (अच्छ) भली भांति (अवभृथम्) परिपूर्ण (ओजसा) तेज से ॥७॥

भावार्थ—यज्ञ में विद्वान् जन तेज से परिपूर्ण ईश्वर का उच्चारण करते हुए इष्टाहुतियों को छोड़ते हैं ॥७॥

१५२—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

३२उ ३ १ २र ३ २३ १ २ ३ १ २ ३१ २र

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥८॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (इत्) ही (हि) क्योंकि (पितुष्परि) द्युलोक के (मेधाम्) ज्ञान को (ऋतस्य) अग्नि के (जग्रह) अच्छी प्रकार धारण करता हूँ । (अहम्) मैं (सूर्य इव) सूर्य के समान (अजनि) पैदा करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—मैं परमेश्वर द्युलोक तथा अग्नि या सांसारिक नियम के पूर्ण ज्ञान को धारण करता हूँ । मैं ही सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश को पैदा करता हूँ ॥८॥

१५३—शुनःशेपः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥९॥

पदार्थ—(रेवतीः) धनवाली (नः) हमारे (सधमादे) प्रसन्न होने पर (इन्द्रे) परमेश्वर के (सन्तु) होती हैं (तुविवाजाः) अनेक बलवाली (क्षुमन्तः) अन्नयुक्त (याभिः) जिनसे (मदेम) प्रसन्न होते हैं ॥९॥

भावार्थ—परमेश्वर के प्रसन्न होने पर हमारे पास धन अन्न वल की वस्तुएं होती हैं, जिनसे हम सुखी होते हैं ॥६॥

१५४—शुनःशेपः वामदेवो वा । गायत्री इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २

सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् । देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥

पदार्थ—(सोमः) जीव (पूषा) परमेश्वर (च) और (चेततुः) जानते हैं (विश्वासाम्) सब (सुक्षितीनाम्) लोकों के (देवत्रा) देवों में (रथ्योः) समविषममार्ग में (हिता) कल्याणकारी ॥१०॥

भावार्थ—समस्त देवों के मध्य में ईश्वर और जीव दोनों जानते हैं, अर्थात् ज्ञान रखते हैं। ये दोनों सम विषम मार्ग में हितकारी हैं ॥१०॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

१५५—श्रुतकक्षः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठञ्चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थ—(पान्तम्) रक्षक (आ) सब प्रकार से (वः) तुम सब हे मनुष्यो! (अन्धसः) अन्न के (विश्वासाहम्) अनन्त शक्ति (शतक्रतुम्) अनन्त ज्ञान वाले (मंहिष्ठम्) पूज्य (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (इन्द्रम्) ईश्वर का (अभिप्रगायत) भली भांति गुणगान करो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्न के रक्षक अनन्त शक्ति और अनन्त ज्ञान वाले तथा मनुष्यों के पूज्य ईश्वर का गुण गान करो ॥१॥

१५६—वसिष्ठः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम लोग (इन्द्राय) ईश्वर के लिये (मादनम्) आनन्ददायक (हर्यश्वाय) मनुष्यों के आत्माओं में व्यापक (गायत) गान करो (सखायः) हे मित्रो ! (सोमपाव्ने) आनन्द के रक्षक के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! जो ईश्वर मनुष्य की आत्माओं में व्यापक है तथा आनन्द का स्रोत है उसका मीठे स्वर से गान करो ॥२॥

१५७—मेधातिथिप्रियमेधौ । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥३॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (त्वा) तेरी (तदिदर्था) एकमात्र तेरी ही भक्ति करने के लिए (इन्द्र) हे ईश्वर ! (त्वायन्तः) तेरी कामना करते हुए (सखायः) परस्पर मित्र [स्तुति करते हैं] (कण्वाः) मेधावी पुरुष भी (उक्थेभिः) विशेष मंत्रों से (जरन्ते) स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर! केवल तेरे ही भक्त, तेरी ही कामना करने वाले और परस्पर मित्र हम लोग तेरी स्तुति करते हैं। बुद्धिमान् लोग भी वेद मंत्रों से तेरी ही स्तुति करते हैं ॥३॥

१५८—श्रुतकक्षः । गायत्री इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव के लिए (मद्वने) सुख गुणयुक्त (सुतम्) संसार का (परिष्टोभन्तु) पूर्ण वर्णन करें (नः) हमारी (गिरः) वाणियाँ (अर्कम्) पूज्य परमेश्वर की (अर्चन्तु) पूजा करें (कारवः) कर्मयोगी पुरुष ॥४॥

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुष पूज्य परमेश्वर की स्तुति करें। हमारी वाणियां सुख गुण वाले जीव के लिए संसार का वर्णन करें ॥४॥

१५९—इरिम्बिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

अयन्त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

पदार्थ—(अयम्) यह (ते) तेरे लिए (इन्द्र) हे आत्मन् ! (सोमः) भोग्य पदार्थ (निपूतः) नितराम् पवित्र (अधि बर्हिषि) संसार में (एहि) आओ (ईम् अस्य) इसका (द्रवा) प्राप्त कर और (पिब) इसका उपभोग कर ॥५॥

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! तेरे लिए यह सोम पवित्र भोग्य पदार्थ संसार में उत्पन्न किया गया है तू इसे प्राप्त कर और इसका उपभोग कर ॥५॥

१६०—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥६॥

पदार्थ—(सुरूपकृत्नुं) सुन्दर रूप के बनाने वाले ईश्वर की (ऊतये) रक्षा के लिए (सुदुघाम्) दूध देने वाली गौ के (इव) समान (गोदुहे) गौ दुहने वाले के लिए (जुहूमसि) स्तुति करते हैं (द्यवि, द्यवि) प्रतिदिन ॥६॥

भावार्थ—गौ दुहने वाले के लिये गाय के समान सुन्दर रूपों को बनाने वाले परमेश्वर की हम प्रतिदिन स्तुति करते हैं ॥६॥

१६१—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७॥

पदार्थ—(अभि) भली प्रकार (त्वा) तेरे लिए (वृषभा) धर्म से प्रकाशमान जीवो ! (सुते) संसार में (सुतम्) सोमादि भोग्य वस्तु को (सृजामि) पैदा करता हूँ (पीतये) भोग के लिये (तृम्पा) तृप्त हो (व्यश्नुहि) प्राप्त करो (मदम्) सुख को ॥७॥

भावार्थ—हे धर्म से प्रकाशमान जीवो ! तुम्हारे भोग के लिए संसार में सोमादि भोग्यवस्तु उत्पन्न करता हूँ। तुम उनका भोग करो और आनन्द प्राप्त करो ॥७॥

१६२—कुसीदी । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३१ २ ३ २ १ २र ३ १ २

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्र) हे जीव ! (चमसेषु) चमस पात्रों में रखा हुआ (सोमः) सोमरस (चमूषु) ग्रह नामक पात्र में तैयार (ते) तेरे लिए (आसुतः) चलाया गया है (पिब) इसका पान कर (इत्) ही (अस्य) इसका (त्वं) तू (ईशिषे) स्वामी है ॥८॥

भावार्थ—हे जीव ! जो सोमरस तेरे लिए ग्रह नामक पात्रों में तैयार कर चमस नामक पात्रों में रखा हुआ है, तू इसका स्वामी है, इस लिए तू इसका पान कर ॥८॥

१६३—शुनःशेपः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३१ २

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥९॥

पदार्थ—(योगेयोगे) समय समय पर (तवस्तरम्) अति बलवान (वाजेवाजे) सम्पूर्ण संग्राम आदि समयों में (हवामहे) स्तुति करते हैं (सखायः) परस्पर मित्र हम लोग (इन्द्रम्) ईश्वर की (उतये) रक्षार्थ ॥९॥

भावार्थ—परस्पर मित्र हम लोग समय समय पर प्रत्येक संग्राम आदि समयों के अवसर पर अपनी रक्षा के लिए अति बलवान् ईश्वर की स्तुति करते हैं ॥९॥

१६४—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

२उ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१०॥

पदार्थ—(आ तु आ इत) आओ आओ (निषीदत) बैठो (इन्द्रम्) ईश्वर को (अभि) सन्मुख (प्रगायत) गुणगान करो (सखायः) हे मित्रो ! (स्तोमवाहसः) स्तुति की धारा बहाने वाले ॥१०॥

भावार्थ—हे स्तुति की धारा बहाने वाले मित्रो ! आओ, अवश्य, आओ, ईश्वर के सन्मुख बैठो तथा उसका गुण-गान करो ॥१०॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

१६५—विश्वामित्रो गाथिनः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २ ३१ २ २ ३ २ १ २

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) इस (हि) निश्चय से (अनु) पश्चात् (ओजसा) बल से (सुतम्) संसार (राधानां पते) हे धनों की रक्षा करने वाले (पिब) रक्षा करता है (तु) पुनः (अस्य) इसके (गिर्वणः) हे प्रार्थना योग्य ॥१॥

भावार्थ—हे प्रार्थना के योग्य धनो के स्वामी परमेश्वर ! यह संसार तेरे ओजसे रचा गया है। तू इसकी रक्षा करता है ॥१॥

१६६—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २र

महां इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२॥

पदार्थ—(महान्) अनन्त गुण वाला (इन्द्रः) ईश्वर (पुरः) आगे (च) और (नः) हमारे (महित्वम्) महत्ता (अस्तु) हो (वज्रिणे) न्यायरूपदण्डधारी के लिए (द्यौः न) विशाल सूर्य के प्रकाश के समान (प्रथिना) विस्तार से युक्त (शवः) बल ॥२॥

भावार्थ—ईश्वर महान् है, उसकी महिमा हमारे सामने है, द्युलोक के समान विस्तृत बल उस न्यायकारी के लिए ही है ॥२॥

१६७—कुसीदी । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २र ३ १ २र

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥३॥

पदार्थ—(आ) सन्मुख (तु) शीघ्र (नः) हमारे (इन्द्र) हे राजन् ! (द्युमन्तम्) अन्नादियुक्त (चित्रम्) पूज्य (ग्राभम्) ग्रहण के योग्य (संगृभाय) ले (महाहस्ती) प्रलम्बबाहु (दक्षिणेन) दाहिने हाथ से ॥३॥

भावार्थ—हे लम्बे बाहुओं वाले राजन् ! तू अन्नादि युक्त प्रशंसाओं के योग्य और ग्रहण के योग्य धन को हम देने के लिये दाहिने हाथ में ग्रहण कर ॥३॥

१६८—प्रियमेधः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि प्र गोपतिङ्गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥

पदार्थ—(अभि) सन्मुख (प्र) उत्तम (गोपतिम्) वेदों के स्वामी (गिरा) वेदमन्त्रों से (इन्द्रम्) ईश्वर की (अर्च) स्तुति कर (यथाविदे) उसके वास्तविक स्वरूप को जानने के लिये (सूनुम्) प्रेरणा करने वाला (सत्यस्य) सत्य का (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! यथावत् जानने के लिए वेदों और सज्जनों के पालक सत्य के प्रेरक ईश्वर की स्तुति कर ॥४॥

१६९—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥५॥

पदार्थ—(कया) सुखमयी (नः) हमारी (चित्रः) अद्भुत (आभुवत) होता है (ऊती) रक्षा के द्वारा (सदावृधः) सदा उन्नति करने वाला (सखा) मित्र (कया) सुखमयी (शचिष्ठया) बुद्धि से (वृता) युक्त हुआ ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अद्भुत और सदा उन्नति देने वाला तू सुखमयी रक्षा और बुद्धि से युक्त हो कर हमारा सखा होता है ॥५॥

१७०—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३१२

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥६॥

पदार्थ—(त्यम्) उस (वः) तुम लोगों के (सत्रासाहम्) सत्य से विजय करने वाले (विश्वासु) सब (गीर्षु) वाणियों में (आयतम्) व्याप्त (आच्यावयसि) स्वीकार करो (ऊतये) रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सदा सत्य से विजय करने वाले तुम सबकी वाणियों में व्याप्त परमेश्वर को रक्षा के लिए स्वीकार करो ॥६॥

१७१—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

३ २ ३१ २

सनिं मेधामयासिषम् ॥७॥

पदार्थ—(सदसस्पतिम्) लोकों के स्वामी (अद्भुतम्) अद्भुत (प्रियम्) प्रिय (इन्द्रस्य) जीव के (काम्यम्) चाहने योग्य से (सनिम्) भक्तिमयी (मेधाम्) बुद्धि की (अयासिषम्) याचना करता हूँ ॥७॥

भावार्थ—में लोकों के स्वामी अद्भुत प्रिय जीव के कमनीय प्रभु परमेश्वर से भक्तिमयी बुद्धि की याचना करता हूँ ॥७॥

१७२—वामदेवः । गायत्री । इन्द्र ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २

ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।

३ १ ३ ३ १ २

उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥८॥

पदार्थ—(ये) जो (ते) तेरे (पन्थाः) मार्ग (अधोदिवः) द्युलोक के नीचे (भुवः) पृथ्वी के (येभिः) जिनसे (अश्वम्) वायु को (ऐरयः) प्रेरित करता है (नः) हमारी (उत) ही (श्रोषन्तु) सुनते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे उन मार्गों के द्वारा जिनसे कि तू वायु को प्रेरणा देता है, भूमिस्थ मनुष्य लोग भी शब्द-सन्तान को सुनते हैं ॥८॥

१७३—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृडयासि नः ॥९॥

पदार्थ—(भद्रंभद्रं) कल्याण ही करने वाले (नः) हमको (आभर) दे (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) बल को (शतक्रतो) हे अनन्त ज्ञानवाले (यत्) जिससे (इन्द्र) हे ईश्वर (मृडयासि) सुखी करते हो (नः) हम लोगों को ॥९॥

भावार्थ—हे अनन्त ज्ञानवाले ईश्वर ! तुम जिससे हम लोगों को सुखी करते हो, एक मात्र कल्याण करने वाले ! अन्न और बल को हमें दो ॥९॥

१७४—बिन्दुः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

उत स्वराजो अश्विना ॥१०॥

पदार्थ—(अस्ति) है (सोमः) संसार (अयम्) यह (सुतः) उत्पन्न (पिबन्ति) इसका उपभोग करें (मरुतः) याज्ञिक (स्वराजः) प्रकाशमान (अश्विना) विद्वान् और उपदेशक ॥१०॥

भावार्थ—हे विद्वन् जीव ! यह संसार उत्पन्न किया हुआ है, प्रकाशात्मक याज्ञिक तथा विद्वान् और उपदेशक सभी इस का उपभोग करें ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

१७५—इन्द्रमातरो देवजामयः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । वन्वानासः सुवीर्यम् ॥१॥

पदार्थ—(ईङ्खयन्तीः) समझ से युक्त गति करनेवाला (अपस्युवः) कर्म की चाहवाली बुद्धियें (इन्द्रम्) ईश्वर को (जातम्) निमित्त कारण (उपासते) उपासना करती हैं (वन्वानासः) चाहनेवाले लोग (सुवीर्यम्) उत्तम बल को ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान से युक्त कर्म की चाह करने वाली बुद्धियाँ तथा उत्तम बल को चाहने वाले लोग निमित्त कारण परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥१॥

१७६—गोधा । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

नकि देवा इनीमसि नक्यायोपयामसि । मन्त्रश्रुत्यञ्चरामसि ॥२॥

पदार्थ—(नकि) न किसी को (देवाः) हे विद्वान् पुरुषो ! (इनिमसि) हिंसा करते हैं (नकि) न किसी को (आयोपयामसि) पथभ्रष्ट ही करते हैं (मंत्रश्रुत्यम्) वेदानुकूल (चरामसि) आचरण करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! हम न तो किसी की हिंसा करते हैं और न किसी को पथभ्रष्ट ही करते हैं, अपितु जैसा वेद कहता है उसी के अनुसार आचरण करते हैं ॥२॥

१७७—दध्यङ्ङाथर्वणः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तुहि देवं सवितारम् ॥३॥

पदार्थ—(दोषा) रात्रि (आगात्) आवे तो (बृहद्गाय) सामगायक (द्युमद्गामन्) प्रकाशमयीबुद्धिवाले (आथर्वण) हे अथर्ववेद के जानने वाले (स्तुहि) स्तुति कर (देवम्) देव की (सवितारम्) सब के उत्पादक ॥३॥

भावार्थ—हे सामगायक प्रकाशमय ज्ञानवाले अथर्ववेदज्ञ ! जब रात्रि आवे तो अर्थात् सन्ध्या समय में तुम सर्वस्रष्टा परमेश्वर की स्तुति करो ॥३॥

१७८—प्रस्कण्वः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।

३ २ २ ३ २

स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४॥

पदार्थ—(एषा उ) यह (उषा) उषा (अपूर्व्या) अपूर्व (व्युच्छति) अन्धकार को दूर कर रही है (प्रिया) प्यारी (दिवः) सूर्य की (स्तुषे) स्तुति करो (वाम्) तुम दोनों (अश्विनौ) हे अध्यापक और उपदेशक ॥४॥

भावार्थ—सूर्य की प्यारी अद्भुत यह उषा अन्धकार का नाश कर रही है, हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम परमेश्वर की स्तुति करो ॥४॥

१७९—गोतमः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १२ ३ १ २र

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्रः) सूर्य (दधीचः) वायु के (अस्थभिः) चञ्चलता से (वृत्राणि) मेघों को (अप्रतिष्कुतः) जिसके सम्मुख कोई नहीं ठहर सके (जघान) छिन्न-भिन्न करता है (नवतीर्नव) यथा नव संख्या ९० को मारती हैं ॥५॥

भावार्थ—सूर्य जिसके सामने कोई नहीं ठहर सकता, वह सूर्य वायु मेघों को इस प्रकार छिन्न-भिन्न करता है जैसे नव संख्या ९० को करती है ॥५॥

१८० — मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

उ ३ १ १　२र ३ १ २　३ १ २.

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।

३ २ २ ३ १　२र

महां अभिष्टिरोजसा ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे ईश्वर ! (इहि) प्राप्त हो (मत्सि) आनन्द देता है (अन्धसः) अन्न के (विश्वेभिः) सारे (सोमपर्वभिः) आनन्ददायक पदार्थों के अङ्गों के साथ (महान्) बहुत बड़ा (अभिष्टिः) अभीष्टज्ञान के दाता (ओजसा) बल से ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हमें प्राप्त हो, तू महान् और हमारे सब अभीष्ट फलों का दाता है, तू अन्नादि सब पदार्थों के सारे सामानों से हमें आनन्द देता है ॥६॥

१८१ — वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

१　२र　३ २ ३ २ ३ १ २

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

महान्महीभिरूतिभिः ॥७॥

पदार्थ—(आ) भलीप्रकार (तू) जल्दी (नः) हमारी ओर (इन्द्र) हे ईश्वर (वृत्रहन्) हे पापनाशक (अस्माकम्) हमारे (अर्धम्) समीप (आगहि) प्राप्त हो (महान्) तू महान् है (महीभिः) महान् (ऊतिभिः) रक्षा के साथ ॥७॥

भावार्थ—हे पापनाशक परमेश्वर ! महान् तू हमें प्राप्त हो, महान् रक्षाओं से हमारी रक्षा कर ! ॥७॥

१८२ — वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २　३२उ　३ १ २

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।

२ ३ १२ ३ १ २

इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥८॥

पदार्थ—(ओजः) बल (तत्) वह (अस्य) इसका (यत्) जिससे (समवर्तयत्) प्रवृत्त करता और समेटता है, (इन्द्रः) ईश्वर (चर्मेव) चमड़े के समान (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक को ॥८॥

भावार्थ—ईश्वर का वह बल प्रत्यक्ष चमक रहा है, जिससे वह चर्मवत् द्यु और पृथ्वी को फैलाता तथा समेटता है ॥८॥

१८३ — शुनः शेपः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २ ३ १ २　३ १ २　३ २　२ ३ १ २

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥९॥

पदार्थ—(अयम्) यह जीव (उ) पादपूरक (ते) तेरा (समतसि) निरन्तर प्राप्त होता है (कपोतः) कबूतर के (इव) समान (गर्भधिम्) कबूतरी के समान प्रकृति को (वचः) शिक्षावचन (तत्) उस (चित्) ही (न) नहीं (ओहसे) सुनता है ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तुम्हारी प्रजा यह जीव गर्भधारण करने वाली कबूतरी को कबूतर के समान, भोगों को गर्भ में धारण करने वाली प्रकृति को बार बार प्राप्त होता है, इस कारण शिक्षावचनों को नहीं सुनता ॥९॥

१८४ — उलः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २　३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे ॥

२ ३ १ २

प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१०॥

पदार्थ—(वातः) वायु (आवातु) पहुंचावें (भेषजम्) सेवन योग्य औषध (शम्भु) इस समय सुख देने वाला (मयोभु) कालान्तर में शान्तिदायक (नः) हमारे (हृदे) फेफड़े के लिये (प्र) उत्तम (नः) हमारी (आयूंषि) आयु को (तारिषत्) बढ़ावे ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! वायु हमारे फेफड़े के लिये सुख तथा शान्ति देने वाली ओषधि बने । वह हमारी आयु को भी बढ़ावे ॥१०॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

१८५ — कण्वः । गायत्री । इन्द्रः ।

१　२र ३ १ २　३ १ २　३ १ २ ३ २

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

२ ३　१ २　३ १२

न किः स दभ्यते जनः ॥१॥

पदार्थ—(यम्) जिसकी (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं । (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानी पुरुष (वरुणः) हितैषी (मित्रः) परमेश्वर (अर्यमा) न्यायकारी राजा (नकिः) किसी से नहीं (सः) वह (दभ्यते) मारा जा सकता (जनः) मनुष्य ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हितैषी, परमेश्वर, न्यायकारी राजा और उत्तम ज्ञानी पुरुष जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, कोई उसे हानि नहीं पहुंचा सकता है ।१।

१८६ — वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २उ　३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २　३　२ ३ १ २

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्या महोनाम् ॥२॥

पदार्थ—(गव्या उ) इन्द्रियों की इच्छा से (सु) सुन्दर (नः) हम (यथा) जैसे (पुरा) पहिले (अश्वया) मन की इच्छा से (उत) और (रथया) शरीर की इच्छा से (वरिवस्या) दे (महोनाम्) महान् धन की इच्छा से ॥ २ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू पहले के समान ही अब उत्तम इन्द्रिय, मन, शरीर तथा महान् धनों की प्राप्ति की इच्छा से परमेश्वर की प्रार्थना कर ॥ २ ॥

१८७ — वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २　३ १ २　३ १ २　३ १२　३ २ ३१ २ ३ १ २

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥३॥

पदार्थ—(इमाः) ये (ते) तेरी (इन्द्र) हे ईश्वर ! (पृश्नयः) किरणें (घृतम्) जल को (दुहते) बरसाती हैं (आशिरम्) दही के समान स्वच्छ (एनाम्) इस भूमि को (ऋतस्य) जल से (पिप्युषीः) बढ़ाने वाली ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तेरी रची हुई सूर्य की किरणें दही के समान स्वच्छ जल को बरसाती हैं । ये किरणें जल से पृथ्वी की फसल को पुष्ट कर बढ़ाती हैं ।३।

१८८ — श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २　३ १ २र　१ २र ३ १ २

अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभुवः ॥४॥

पदार्थ—(अया) ज्ञानयुक्त (धिया) कर्म (गव्यया) वेदवाणी सम्बन्धी (पुरुनामन्) हे बहुत नामवाले (पुरुष्टुत) सर्वोपास्य (यत्) जिस कारण (सोमे सोमे) सारे उत्पन्न पदार्थ में (आभुवः) विद्यमान ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे अनेकों नाम वाले और सर्वोपास्य परमेश्वर ! तू वेदज्ञान से युक्त सृष्टिकर्म के साथ सब उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान है, अतः उपास्य है ॥४॥

१८९ — मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १२　३ १ २　३ १ २　३ १ २　३ १ २

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥५॥

पदार्थ—(पावका) पवित्र करने वाली (नः) हमारी (सरस्वती) वाणी (वाजेभिः) अन्नों से युक्त (वाजिनीवती) बलवती हो । (यज्ञम्) परोपकार की (वष्टु) कामना (उपदेश) करने वाली हो (धियावसुः) बुद्धि से सारे संसार को वश में करने वाली ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हमारी वेदवाणी हृदय को पवित्र करने वाली, अन्न से बलवती और अपनी योग्यता से संसार को वश में करने वाली हो । वह परोपकार का उपदेश करे ॥ ५ ॥

१९० — वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १　२र ३ २उ　३　१ २　२ ३ २ ३ १ २

क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । स नो वसून्या भरत् ॥६॥

पदार्थ—(कः)कौन (इमम्) इस (नाहुषीषु) कर्म-बन्धन में बन्धी हुई मनुष्य प्रजाओं में (इन्द्रं) जीवको (सोमस्य) भोग्य पदार्थ से (तर्पयात्) तृप्त करता है (स) वह (नः) हमें (वसूनि) धन से (आभरत्) पूर्ण करता है ॥६॥

भावार्थ—प्रश्न—कर्म-बन्धन में बन्धी हुई मनुष्य प्रजाओं में वर्तमान जीव को भोग्य पदार्थ से कौन तृप्त करता है ?

उत्तर—वह परमेश्वर जो कि हमें धनधान्य से पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

१९१ — इरम्बिठिः काण्वः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २　३ २उ　३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २　२उ ३ १ २ ३ १ २

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एवं बर्हिः सदो मम ॥७॥

पदार्थ—(आयाहि) प्राप्त हो (सुषुम) धारण करते हैं (हि) निश्चय ही (ते) तेरी कृपा से (इन्द्र) हे ईश्वर ! (सोमम्) ज्ञान (पिबा) रक्षा कर (इमम्) इसको (आ) सब प्रकार से (इदम्) यह (बर्हिः) हृदयाकाश (सदः) विराजमान होवे (मम) मेरा ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू प्राप्त हो । हम तेरे इस ज्ञान को धारण करते हैं । तू रक्षा कर । हे प्रभो ! तू हमारे हृदयाकाश में स्थित हो ॥ ७ ॥

१९२ — सत्यधृतिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र　३ २ ३ १ २ ३ २　३　२ ३ १२

महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥८॥

पदार्थ—(महि) महान् (त्रीणाम्) तीनों के (अवः) रक्षण (अस्तु) हो (द्युक्षम्) तेजस्वी (मित्रस्य) मित्रका (अर्यम्णः) न्यायकारी का (दुराधर्षम्) किसी से नहीं दबने वाले (वरुणस्य) हितैषी का ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मित्र, न्यायकारी और हितैषी, इन तीनों की रक्षा हमारे लिये तेजस्वी, किसी से न दबने वाली और महान् हो ॥ ८ ॥

१९३—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ १ २

त्वावतः पुरुवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥९॥

पदार्थ—(त्वावतः) तेरे द्वारा रक्षित (पुरुवसो) हे समस्त सम्पदाओं के स्वामिन् (वयम्) हम (इन्द्रः) हे परमेश्वर ! (प्रणेतः) हे उपास्य (स्मसि) हैं (स्थातः) हे अधिष्ठाता (हरिणाम्) मनुष्यों के ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामिन् ! उपास्य तथा सब मनुष्यों के अधिष्ठाता परमेश्वर ! हम तेरे द्वारा रक्षित हैं ॥ ९ ॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

१९४—प्रगाथः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—(उत्) पादपूरक (त्वा) तुझे (मन्दन्तु) प्रसन्न करें (सोमाः) उत्तम विद्वान् जन (कृणुष्व) दे (राधः) सिद्धि (अद्रिवः) हे मेधादि के स्वामी (ब्रह्मद्विषः) वेदविरोधियों को (द्वेषभाव को) (अवजहि) दूर भगा ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम विद्वान् जन स्तुतियों से तुझे प्रसन्न करें । हे मेधादि के स्वामी ! तू उन्हें सिद्धि दे । हे भगवन् ! वेद-विरोधियों के विरोधभाव को दूर कर ॥ १ ॥

१९५—विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २र

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥२॥

पदार्थ—(गिर्वणः) हे स्तुत्य (पाहि) रक्षा कर (नः) हमारे (सुतं) सम्पादित ज्ञान की (मधोः) विज्ञान के (धाराभिः) धाराओं से (अज्यसे) प्राप्त किया जाता है (हे इन्द्र) ! हे परमेश्वर । (त्वादातम्) तेरे द्वारा दिया हुआ (इत्) ही (यशः) यश ॥ २ ॥

भावार्थ—हे स्तुत्य परमेश्वर, हमारे सम्पादित ज्ञान की रक्षा कर । तू ज्ञान की धाराओं से प्राप्त किया जाता है । हे परमेश्वर ! हमारा यश तुम्हारा ही दिया हुआ है ॥ २ ॥

१९६—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३२ २ ३ २ ३२उ ३ १ २

सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥३॥

पदार्थ—(सदा) सर्वदा (सब समय में) (वः) तुम लोगों को (इन्द्रः) ईश्वर (चर्कृषत्) करता है (आ) सब प्रकार से (उप) समीप (नु) शीघ्र (सपर्यन्) प्रेम करता हुआ (नः) हमारा (देवः) देव है (वृतः) ध्यान किया हुआ (शूरः) तेजस्वरूप (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर प्रेम से, तुम लोगों को सदा, अपने समीप ही देखता है । वह तेजस्वरूप तथा ध्यान करने योग्य एवं ऐश्वर्यवान् है, वह हमारा देव है ॥ ३ ॥

१९७—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥४॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तेरी शरण में (विशन्तु) पहुँचे (इन्दवः) उपासक जन (समुद्रम्) समुद्र में (इव) समान (सिन्धवः) छोटी नदियों के (न) नहीं (त्वाम्) तुमसे (इन्द्र) हे ईश्वर ! (अतिरिच्यते) कोई बढ़ कर है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे छोटी नदियां समुद्र में पहुँचती हैं, ऐसे ही उपासना करने वाले तेरी शरण में पहुँचें । हे ईश्वर ! (इस संसार में) तुम से बढ़कर कोई नहीं है ॥ ४ ॥

१९८—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) ईश्वर की (इत्) ही (गाथिनः) उद्गाता (बृहत्) बृहत् साम से (इन्द्रम्) ईश्वर की (अर्केभिः) ऋचाओं से (अर्किणः) ऋग्वेद के जानने वाले (इन्द्रः) ईश्वर की (वाणीः) यजुर्वेद के जानने वाले (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—साम के गाने वाले उद्गाता लोग, बृहत्साम से ईश्वर ही की स्तुति करते हैं । ऋग्वेद की ऋचाओं से तथा यजुर्वेद के मन्त्रों से भी ईश्वर ही के गुण गाते हैं ॥ ५ ॥

१९९—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रः) ईश्वर (इषे) अन्न को (ददातु) देवे (नः) हमें (ऋभुक्षणम्) महान् (ऋभुम्) मेधावी पुत्र (रयिम्) अन्य सम्पत्तियों को (वाजी) बलवान् (ददातु)देवें (वाजिनम्) बलवान् ॥१॥

भावार्थ—हे बलवान् ईश्वर ! हमें अन्न, अन्य सम्पत्ति और शक्तिशाली बुद्धिमान् पुत्र भी देवें ॥६॥

२००—गृत्समदः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २३ १ २र २उ ३ १ २र

इन्द्रो अंग महद्भयमभीषदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (अङ्ग) हे [मनुष्य] (महत्) महान् (भयम्) भय को (अभीषत्) डरा देता है (अपचुच्यवत्) दूर करता है (सः) वह (हि) क्योंकि (स्थिरः) स्थिर (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा ॥७॥

भावार्थ—हे बलवान् ईश्वर ! परमेश्वर महान् भय को भी भयभीत करता है और दूर करता है, क्योंकि वह नित्य और सर्वद्रष्टा है ॥७॥

२०१—भरद्वाजः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ ३ २उ ३ १ २

इमा उ त्वा सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । गावो वत्सन्न धेनवः ॥८॥

पदार्थ—(इमाः) ये (उ) ही (त्वा) तुझको (सुते सुते) प्रत्येक उत्तम भावना के समय (नक्षन्ते) प्राप्त करती हैं (गिर्वणः) हे उपास्य देव ! (गिरः) स्तुतियां (गावः) गायें (वत्सम्) बछड़े को (न) जैसे (धेनवः) दूध देने वाली ॥८॥

भावार्थ—हे उपास्य देव ईश्वर ! जैसे दूध देने वाली गायें अपने बछड़े के समीप पहुँचती हैं, ऐसे ही ये हमारी स्तुतियां प्रत्येक उत्तम भावना के समय में तेरे ही समीप पहुँचती हैं ॥८ ॥

२०२—भरद्वाजः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्रा) ईश्वर का (नु) सच्चा (पूषणा) पालन-पोषण कर्त्ता (वयम्) हम (सख्याय) मैत्री के लिये (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये तथा पालन के लिये भी (हुवेम) आह्वान करते हैं (वाजसातये) उत्तम सम्पत्ति के लिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हम पालन पोषण करने वाले ईश्वर को अपनी मैत्री, कल्याण और उत्तम सम्पत्ति के लिये पुकारते हैं ॥९॥

२०३—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र २ ३ २उ ३ २

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । न क्येवं यथा त्वम् ॥१०॥

पदार्थ—(नकि) नहीं कोई (इन्द्रः) हे ईश्वर (त्वत्) तुम से (उत्तरम्) श्रेष्ठ (न) नहीं (ज्यायः) महान् (अस्ति) है (वृत्रहन्) हे पापनाशक (नकि) कोई नहीं है (एवम्) ऐसा (यथा) जैसा (त्वम्) तू है ॥१०॥

भावार्थ—हे पापनाशक ईश्वर ! तुम से श्रेष्ठ और महान् कोई नहीं है । हे नाथ, तू जैसा है वैसा दूसरा कोई नहीं ॥१०॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

२०४—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २३ १ २

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—(तरणिम्) तारने वाले (वः) तुम सब (जनानाम्) मनुष्यों के (त्रदम्) रक्षक (वाजस्य) अन्न के (गोमतः) गौ आदि सम्पत्ति के सहित (समानम्) एक समान (प्रशंसिषम्) उत्तम स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर सब को तारने वाला है । वह अन्न तथा गोधन का समान रूप से रक्षक है । मैं उसकी स्तुति करता हूँ ॥१॥

२०५—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । सजोषा वृषभं पतिम् ॥२॥

पदार्थ—(असृग्रम्) स्तुति करता हूँ (इन्द्र) हे ईश्वर ! (ते) तेरी (गिरः) स्तुतियां (प्रतित्वाम्) तेरी शरण में (उदहासत) पहुँचें । (सजोषा) प्रेमसहित (वृषभम्) मनोरथ सफल करने वाले (पतिम्) सब के स्वामी ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मैं स्तुति करता हूँ । हमारी ये प्रेमपूर्ण स्तुतियां तेरी शरण में पहुँचे । तू कामनाओं को सफल करने वाला है । तू सब का स्वामी है ॥२॥

२०६—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २३ २ ३ २उ ३ १२
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥३॥

पदार्थ—(सुनीथः) प्रशंसनीय (घा) पादपूरक (स) वह (मर्त्यः) विद्वान्जन (यम्) जिसको (मरुतः) मनुष्य (यम्) जिसको (अर्यमा) परमेश्वर (मित्रः) मित्र (पान्तु) रक्षा करते हैं, (अद्रुहः) द्रोहरहित ॥३॥

भावार्थ—जिसकी परमेश्वर विद्वान् और द्रोह न करने वाले मित्र रक्षा करते हैं, वह मनुष्य प्रशंसनीय है ॥३॥

२०७—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र
यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (वीडौ) बल में (इन्द्र) हे ईश्वर ! (यत्) जो (स्थिरे) भूगर्भ में (यत्) जो (पर्शाने) पर्वत आदि में (पराभृतम्) रखा गया है (वसु) सम्पत्ति (स्पार्हम्) चाहने योग्य (तत्) उस को (आभर) दे ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमें वह बहुमूल्य सम्पत्ति दे जो बल में तथा पर्वतों के अन्दर विद्यमान है और जिसकी सब कामना करते हैं ॥४॥

२०८—सुकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्द्धं चर्षणीनाम् । आशिषे राधसे महे ॥५॥

पदार्थ—(श्रुतम्) विख्यात (वः) तुमको (वृत्रहन्तमम्) शत्रुओं का नाशक, (प्रशर्द्धं) उत्तम बल (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (आशिषे) चाहता हूँ (राधसे) धन की प्राप्ति के लिये (महे) महान् ॥५॥

भावार्थ—हे लोगो ! तुम मनुष्यों के महान् धन की प्राप्ति के लिए मैं, शत्रु-नाशक उत्तम बल तुम्हें प्राप्त हो, ऐसा चाहता हूँ ॥५॥

२०९—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३ १ २ ३ १२ ३ १२ १२ ३ १२
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरं शक्र परेमणि ॥६॥

पदार्थ—(अरम्) पर्याप्त (ते) वे (इन्द्र) हे ईश्वर ! (श्रवसे) यश का गान करने के लिये (गमेम) उपस्थित होते हैं (शूर) हे बलवान् (त्वावतः) तेरे चाहने वाले (अरम्) पर्याप्त (शक्र) हे शक्तिमन् (परेमणि) समाधि की सिद्धि में॥६॥

भावार्थ—हे सर्व शक्तिमन्, बलवान् परमेश्वर ! तुझको चाहने वाले हम लोग तुम्हारे यशोगान के लिये भली प्रकार उपस्थित होते हैं समाधि में भी उपस्थित होते हैं ॥ ६ ॥

२१०—विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १२ ३ १ २ ३ १२ १ २ १ २ ३ १ २
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७॥

पदार्थ—(धानावन्तम्) भूने हुए जवों वाले (करम्भिणम्) भूने जवके सत्तू में घी देकर उससे यज्ञ करने वाले (अपूपवन्तम्) गेहूँ के आटे से बने हुए हविष्ट से यज्ञ करने वाले को और (उक्थिनम्) स्तुति करने वाले को भी (इन्द्र) हे ईश्वर ! (प्रातः) प्रातःकाल (जुषस्व) प्रेम का पात्र बनावे (नः) हम लोगों को ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! प्रतिदिन उत्तम पदार्थों से यज्ञ करने वाले मनुष्य तेरे प्रेम के पात्र हों ॥ ७ ॥

२११—गोषूक्ती चाश्वसूक्ती च । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र ३ १ ३
अपां फेनेन नमुचेः शिरः इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥८॥

पदार्थ—(अपां) कर्मयोग के (फेनेन) विस्तार के द्वारा (नमुचेः) काम के (शिरः) मुख्यता को (इन्द्र) हे जीव ! (उदवर्तयः) तूने छिन्न भिन्न कर दिया है (विश्वाः) सारी (यत्) जब (अजयः) जीत लिए हो (स्पृधः) स्पर्धा करने वाली चित्त की वृत्तियों को ॥८॥

भावार्थ— हे जीव ! जब तुम कर्मयोग के साधन के द्वारा, स्पर्धा करने वाली सारी चित्त की वृत्तियों को वश में कर लेते हो, तो मन के स्वयं वश में हो जाने पर काम को भी वश में कर लेते हो ॥८॥

२१२—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १२
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९॥

पदार्थ—(इमे) ये (ते) तेरे लिये (इन्द्र) हे जीव ! (सोमाः) संसारी भोग्य पदार्थ (सुतासः) तैयार हैं (ये च) और जो (सोत्वा) तैयार होने वाले हैं (तेषाम्) उन्हीं से (मत्स्व) प्रसन्न हो (प्रभूवसो) हे पर्याप्त सम्पत्ति वाले ॥८॥

भावार्थ—हे पर्याप्त सम्पत्ति वाले जीवात्मन् ! तेरे लिये ये भोग्य पदार्थ तैयार हैं और जो तैयार होने वाले हैं, उन सब से तू प्रसन्न हो ॥९॥

२१३—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो। स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥१०॥

पदार्थ—(तुभ्यं) तेरी उपासना के लिये (सुतासः) तैयार हैं (सोमाः) विद्वान् (स्तीर्णम्) बिछाया हुआ है (बर्हिः) आसन (विभावसो) हे प्रकाशस्वरूप ! (स्तोतृभ्यः) भक्तों को (मृडय) सुखी कर (इन्द्र) हे ईश्वर ! ॥१०॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तेरी उपासना के लिये भक्त जन उपस्थित हैं, आसन बिछा हुआ है, तू स्तुति करने वालों को सुखी कर ! ॥१०॥

卐 दशमी दशती समाप्त 卐

२१४—शुनः शेपः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयंतः शतक्रतुम् ।
१ २ ३ १ २
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (वः) तुम लोगों में (इन्द्रम्) महात्मा (कृविं यथा) खेत को जैसे (वाजयन्तः) अन्न चाहने वाले (शतक्रतुम्) बहुत कर्म करने वाले (मंहिष्ठम्) अत्यन्त महान् (सिञ्चे) पुष्ट करता हूँ (इन्दुभिः) जलों से ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों में अनेक प्रकार के कर्म करने वाले महान् आत्मा को ज्ञान से पुष्ट करता हूँ जैसे अन्न चाहने वाले किसान जलसे खेत सींचते हैं ॥१॥

२१५—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २
अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥२॥

पदार्थ—(अतःचित्) इसी लिए (इन्द्र) हे ईश्वर ! (नः) हम लोगों को (उपायाहि) प्राप्त होवे, (शतवाजया) सैकड़ों बल वाले (इषा) विज्ञान के साथ (सहस्रवाजया) हजारों प्रकार के बलवाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सैकड़ों अथवा सहस्रों प्रकार के धन देने वाले विज्ञान के साथ हमें प्राप्त हो ॥२॥

२१६—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्विमातरम् ।
२ ३ १ २र
क उग्राः के हा शृण्विरे ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (बुन्दम्) शस्त्र [बन्दूक को] (वृत्रहा) योद्धा (ददे) उठाता है (जातः) शस्त्रविद्या में निपुण (पृच्छात्) पूछे (वि) विशेषरूप से (मातरम्) माता से [मातृभूमि की प्रजा से] (के) कौन (उग्राः) द्रोही (के) कौन (हा) प्रसिद्ध (शृण्विरे) सुने जाते हैं ॥३॥

भावार्थ—शस्त्र विद्या में चतुर योद्धा शस्त्र हाथ में लेकर माता (मातृभूमि की प्रजा) से पूछे कि कौन कौन देशद्रोही सुने जाते हैं ॥३॥

२१७—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २ ३१२ ३ १ २
बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
१ २ ३ २ ३ १ २
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—(बृबदुक्थम्) प्रशंसा के योग्य (हवामहे) आह्वान करते हैं (सृप्रकरस्नम्) लम्बे बाहुओं वाले (ऊतये) आत्म रक्षा के लिए (साधः) संग्राम का साधन (कृण्वन्तम्) तैयार करते जाने वाले (अवसे) प्रजा की रक्षा के लिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे वीर ! आप प्रशंसा के योग्य विशाल भुजाओं वाले और संग्राम के साधन तैयार करने वाले हैं । हम आपको अपने पालन और प्रजा की रक्षा के लिए पुकारते हैं ॥ ४॥

२१८—गोतमः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १२ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५॥

पदार्थ—(ऋजुः) सरल (नीती) नीति से (नः) हमें (वरुणः) राजा (मित्रः) मित्र (नयति) रास्ते पर चलाता है (विद्वान्) विद्वान् (अर्यमा) परमेश्वर (देवैः) विद्वानों के द्वारा (सजोषाः) प्रीतियुक्त ॥५॥

भावार्थ—परमेश्वर, प्रीतियुक्त विद्वान्, मित्र और राजा विद्वानों द्वारा सरल रीति से हमें रास्ते पर ले चलते हैं ।।५।।

२१९—ब्रह्मातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २

दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वथा तनत् ।।६।।

पदार्थ—(दूरात्) दूर से (इह इव) यहां के समान (अरुणप्सुः) अरुण रूपवाला (अशिश्वितत्) प्रकाशित करता है (यत्) जब (सतः) सत्ताधारी पदार्थों को (विभानुम्) ज्ञान किरण को (विश्वथा) सब तरफ (आतनत्) फैलाता है ।।६।।

भावार्थ—जब अरुणरूपवाला सूर्य पदार्थों को प्रकाशित करता है तो दूर रहते हुए भी समीप मालूम पड़ता है, ऐसे ही परमेश्वर अज्ञानियों की अपेक्षा दूर रहते हुए भी व्यापकता से समीप वर्त्तमान के समान ज्ञान का प्रकाश करता है ।।६।।

२२०—जमदग्नेर्विश्वामित्रस्य वा । गायत्री । मित्रावरुणौ ।

१ २ ३ १ २र

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।

२ ३ १ २

मध्वा रजांसि सुक्रतू ।। ७ ।।

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (नः) हमारे (मित्रावरुणा) परमेश्वर और विद्वान् (घृतैः) जलों से (गव्यूतिम्) दूर-दूर तक जैसे सींच देते हैं ऐसे ही (उक्षतम्) सींचें (शिक्षा दें)(मध्वा) ज्ञानवाणी से (रजांसि) लोकों (लोकों में रहने वालों) को (सुक्रतू) उत्तम बुद्धि वालो ।।७।।

भावार्थ—हे उत्तमज्ञानवाले परमेश्वर और विद्वान् ! जल से भूमि के समान ज्ञान से लोकों को सींच दो ।।७।।

२२१—प्रस्कण्वः हिरण्यस्तूपस्य वा । गायत्री । मरुतः ।

२३ २३२३ २३ १२ ३१२

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।

३ १२३१ २र

वाश्रा अभिज्ञु यातवे ।। ८ ।।

पदार्थ—(उत्) ऊपर (उ) पादपूरक (त्ये) वे (सूनवः) उत्पादक (गिरः) वाणी के (काष्ठा) दिशाओं को (यज्ञेषु) व्यापार में (अत्नत) गतिमान् करते हैं (वाश्रा) शब्द को सुनाने वाली (अभिज्ञुः) घुटने पर चलने वाले के समान (यातवे) चलने के लिए ।।८।।

भावार्थ—शब्द को सुनाने वाली वायुएं प्रत्येक दिशा में जाने के लिये अपने व्यापार में वैसे ही गतिमान हो जाती हैं जैसे बालक घुटने के बल पर चलता हुआ चारों तरफ दौड़ता है ।।८।।

२२२—मेधातिथिः । गायत्री । विष्णुः ।

३२उ ३१२ ३१ २र ३२

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

१२ ३२

समूढमस्य पांसुले ।। ९ ।।

पदार्थ—(इदम्) इस (विष्णुः) परमेश्वर ने (विचक्रमे) विविध प्रकार से रचा है (त्रेधा) तीन प्रकार से (निदधे) स्थापित किया है (पदम्) वस्तुजात को (समूढम्) छिपा हुआ है (अस्य) इसका (पांसुरे) आकाश में ।।९।।

भावार्थ—परमेश्वर ने इस जगत् को विविध प्रकार से रचा है। उसने समस्त वस्तुजात को पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यौ—इन तीनों लोकों में स्थापित किया है। इसका मुख्यपद व्यापकता आकाश में छिपी हुई है ।। ९ ।।

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

२२३—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिब ।।१।।

पदार्थ—(अतीहि) परित्याग कर दे (मन्युषाविणम्) क्रोध से सोमरस तैय्यार करने वाले को (सुषुवांसम्) अच्छे चलाने वाले को (उपेरय) प्रेरणा कर [काम करने को] (अस्य) इसके (रातौ) देने पर (सुतम्) सोम का (पिब) पान कर ।। १ ।।

भावार्थ—हे राजन् ! क्रोध से वस्तु तैय्यार करने वाले को परे करो। जो शान्त स्वभाव से तैय्यार करे उसे समीप रखो और उसके दिये पदार्थ को स्वीकार करो ।। १ ।।

२२४—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २ १ २र ३ १ २

कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ।।२।।

पदार्थ—(कदु) कुछ भी (प्रचेतसे) सर्वज्ञ (महे) महान् (वचः) स्तुति (देवाय) देव के लिये (शस्यते) की जाय (तत् इत् हि) वही (अस्य) स्तुति करने वाले को (वर्धनम्) उन्नत करने वाली होती है ।। २ ।।

भावार्थ—सर्वज्ञ महान् देव ईश्वर की थोड़ी भी स्तुति की जाय, तो वही स्तुति करने वाले की उन्नति का कारण बन जाती है ।। २ ।।

२२५—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।

१ २ ३ २ ३ १ २

न गायत्रं गीयमानम् ।।३।।

पदार्थ—(उक्थम्) स्तोत्र (च) और (न) नहीं (शस्यमानम्) कहे हुए (न) नहीं (अगो) अविद्वान् (रयिः) धनों का स्वामी (आ चिकेत) जानता है (न) नहीं (गायत्रम्) साम (गीयमानम्) गाए हुए ।। ३ ।।

भावार्थ—सब धनों का स्वामी परमेश्वर अविद्वान् के कहे गये स्तोत्र तथा गाये गये साम को नहीं जानता, ऐसा नहीं, अपितु जानता है ।। ३ ।।

२२६—विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।

१२ ३ २ ३ १ २

हरिवांत्सुतानां सखा ।।४।।

पदार्थ—(इन्द्रः) ईश्वर (उक्थेभिः) स्तोत्रों से (मन्दिष्ठः) अत्यन्त स्तुति के योग्य है (वाजानाम्) बलों का (वाजपतिः) स्वामी है (हरिवान्) ज्योतिस्वरूप (सुतानाम्) प्राणिमात्र का (सखा) मित्र है ।। ४ ।।

भावार्थ—ईश्वर स्तोत्रों से अत्यन्त स्तुति करने के योग्य है। वह बलों का स्वामी है। वह प्रकाशस्वरूप और प्राणिमात्र का मित्र है ।। ४ ।।

२२७—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १२ ३१ २र ३ १ २

आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः ।

३ १ २ ३ १ २

महां इव युवजानिः ।।५।।

पदार्थ—(आयाहि) ला (उप) समीप (नः) हमारे (सुतम्) ज्ञान को (वाजेभिः) ज्ञानवानों द्वारा (महान्) महान् (इव) जैसे (युवजानिः) सदाचारी स्त्री वाला (मा) नहीं (हृणीथाः) लज्जित कर ।। ५ ।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू उसी प्रकार से हमें अपने समीप कर तथा ज्ञान वालों के द्वारा हमारे ज्ञान को लज्जित मत होने दे, जैसा कि एक सदाचारी पति अपनी पत्नी को समीप करता है तथा लज्जा का विषय नहीं बनने देता ।। ५ ।।

२२८—दुर्मित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः ।

३ २ ३ २ ३ १ २

दीर्घं सुतं वाताप्याय ।।६।।

पदार्थ—(कदा) जब कभी (वसो) हे ऐश्वर्यशाली (स्तोत्रम् हर्यते) वेदप्रेमी के लिए (आ) सब प्रकार (अव) उपसर्ग (श्मशा) नहर (अरुधत्) रुक जावे (वाः) पानी (दीर्घम्) महान् (सुतम्) प्रजावर्ग को (वाताप्याय) जलप्रदान करने के लिये ।। ६ ।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् राजन्, जब कभी जल-वृष्टि रुक जावे तब वेदप्रेमी महान् प्रजा वर्ग को जल प्रदान करने के लिए नहर बनवाओ ।। ६ ।।

२२९—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २र

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूंरनु । तवेदं सख्यमस्तृतम् ।।७।।

पदार्थ—(ब्राह्मणात्) ब्रह्मवेत्ता के [सम्पर्क से] (राधसः) आराधना करने वाले (इन्द्र) हे जीव ! (पिब) उपभोग कर (सोमम्) सोमादि पदार्थ का (ऋतूंरनु) ऋतु के अनुसार (तव) तेरा (इदम्) यह (सख्यम्) सम्बन्ध (अस्तृतम्) चिरस्थायी ।। ७ ।।

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! तू आराधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता के सम्पर्क से ऋतुओं के अनुसार सोमादि पदार्थों का उपभोग कर ।। ७ ।।

२३०—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ।।८।।

पदार्थ—(वयम्) हम (घा) ही (ते) तेरे (अपि) भी (स्मसि) हैं (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (इन्द्र) हे ईश्वर। (गिर्वणः) हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य ! (त्वम्) तू (नः) हमें (जिन्व) तृप्त कर (सोमपाः) हे ऐश्वर्यशाली पदार्थों के रक्षक ।। ८ ।।

भावार्थ—हे मन्त्रों से स्तुति करने योग्य ! ऐश्वर्यशाली पदार्थों के रक्षक ईश्वर ! हम भी तेरी ही स्तुति करने वाले हैं। तू हमें तृप्त कर ।। ८ ।।

२३१—विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः ।

१ २ ३ १ २

सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥९॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (इन्द्र) हे ईश्वर (पृक्षु) संग्रामों में (कासुचित्) सम्पूर्ण (नृम्णम्) सुख को (तनूषु) शरीरों में (धेहि) दे (नः) हमारे (सत्राजित्) जीतने वाला है (उग्र) हे ओजस्वी ! (पौंस्यम्) बल को ॥९॥

भावार्थ—सब संग्रामों के समय में हमारे शरीरों में सुख और बल दे । हे ओजस्वी ! तू सदा जीतने वाला है ॥ ९ ॥

२३२—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ १ २

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥१०॥

पदार्थ—(एव) ही (हि) निश्चय (असि) है (वीरयुः) वीरों को चाहने वाला (एव) ही (शूरः) शक्तिमान् (उत) और (स्थिरः) नित्य (एव) ही (ते) तेरा (राध्यम्) आराधना के योग्य (मनः) मननशील ज्ञान है ।१०।

भावार्थ—हे ईश्वर ! वीर पुरुष तेरे प्यारे होते हैं । तू शक्तिमान् और नित्य है । तेरा ज्ञान चिन्तन करने के योग्य है ॥ १० ॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

तृतीयोऽध्यायः

२३३—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब ओर से (त्वा) तुमको (शूर) हे शक्तिमान् ! (नोनुमः) वारवार नमस्कार करते हैं (अदुग्धाः) बिना दोही गई (इव) समान (धेनवः) गायों के (ईशानम्) स्वामी (अस्य) बस (जगतः) जङ्गम संसार का (स्वर्दृशम्) सूर्य के समान सब का द्रष्टा (ईशानम्) स्वामी (इन्द्र) हे ईश्वर ! (तस्थुषः) स्थावर संसार का ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शक्तिमन् ईश्वर ! जैसे विना दोही हुई गायों का थन दूध से भरपूर रहता है, ऐसे ही प्रेम से भरपूर हृदय से हम चराचर संसार के स्वामी आपको वारवार नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

२३४—भरद्वाजः, शंयुर्वा भरद्वाजः । बृहती । इन्द्रः ।

१ १र ३ १ २र ३ १ २

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥२॥

पदार्थ—(त्वाम्) तेरी (इत्) ही (हवामहे) पुकार करते हैं (सातौ) प्राप्ति के निमित्त (वाजस्य) अन्न आदि सम्पत्ति को (कारवः) उपासक लोग ! (त्वाम्) तुमको (वृत्रेषु) उपद्रवों के अधिक होने पर (इन्द्र) हे ईश्वर ! (सत्पतिम्) तुम सब के स्वामी को (नरः) हम मनुष्य (त्वां) तेरा (काष्ठासु) संग्रामों में (अर्वतः) घुड़सवार भी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उपासक लोग अन्न आदि सम्पत्ति को पाने के लिए तुझे ही पुकारा करते हैं । हम मनुष्य उपद्रवों के बढ़ जाने पर तुझे ही पुकारते हैं तथा संग्रामों में घुड़सवार वीर भी रक्षक रूप से तेरी ही पुकार करते हैं ॥ २ ॥

२३५—वालखिल्या । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

१ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३॥

पदार्थ—(अभि) सम्मुख (प्र) उत्तम (वः) तुम सब (सुराधसम्) सुन्दर सिद्धिदाता (इन्द्रम्) ईश्वर की (अर्च) स्तुति करो (यथाविदे) उसके वास्तविक ज्ञान के लिए (यः) जो (जरितृभ्यः) उपासकों को (मघवा) नित्य-दानी है (पुरुवसु) असंख्य धनों वाले (सहस्रेणेव) हजारों प्रकार से (धन) (शिक्षति) देता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! तुम सब ईश्वर के वास्तविक ज्ञान के लिए उसकी स्तुति करो, जो सिद्धि देता है, जो बराबर दानी है, असंख्य धनों का स्वामी और उपासकों को हजारों प्रकार से सम्पत्ति देने वाला है ॥ ३ ॥

२३६—नोधा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २र

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥

पदार्थ—(तम्) उस (वः) तुम्हारे (दस्मम्) दुःख के निवारक (ऋतीषहम्) कामादि शत्रु के नाशक (वसोः) धन से (मन्दानम्) आनन्दित करने वाले (अन्धसः) अन्न आदि के (अभि) लक्षित कर (वत्सम्) बछड़े को (न) समान (स्वसरेषु) गोशाला में (धेनवः) गायों के (इन्द्रं) परमेश्वर की (गीर्भिः) वेदवाणियों से (नवामहे) नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! गोशालाओं में बछड़े को गाय के समान हम तुम्हारे दुःखनिवारक तथा अन्नादि से आनन्दित करने वाले कामादि शत्रुओं के नाशक परमेश्वर की वेद-वाणियों से स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

२३७—कलिप्रागाथः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५॥

पदार्थ—(तरोभिः) शीघ्रता के साथ (वः) तुमको (विद्वद्वसुम्) सम्पत्ति के दाता (इन्द्रम्) ईश्वर का (सबाधः) बाधाओं से बाधित हो (ऊतये) रक्षा के लिए (बृहत्) गुणों से महान् (गायन्तः) सामगान करते हुए (सुतसोमे) अमृतरस तैयार किये जाने वाले (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ में (हुवे) पुकारते हैं (भरम्) बचाने वाले (न) जैसे (कारिणम्) उपकारी वीर को ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे संग्रामों में अपनी रक्षा के लिए कोई उपकारी वीर को पुकारे, ऐसे ही बाधाओं के आने पर अपनी रक्षा के लिये अमृत रस तैयार किये जाने वाले कल्याणकारी यज्ञ में सम्पत्तिदाता, और गुणों से महान् तेरा इस साम के द्वारा गुणगान गाते हुए शीघ्र आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

२३८—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥६॥

पदार्थ—(तरणिः) शीघ्र साधन करने वाला पुरुष (इत्) ही (सिषासति) पाना चाहता है (वाजम्) बल को (पुरन्ध्या) बुद्धि की (युजा) सहायता से (आ) सब प्रकार से (वः) तुम (इन्द्रम्) ईश्वर को (पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे जाने वाले (नमे) अपनी ओर करता हूँ (गिरा) स्तुति से (नेमिम्) चक्के को (तष्टा इव) बढ़ई के समान (सुद्रुवम्) सुन्दर लकड़ी के ॥६॥

भावार्थ—शीघ्र मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाला पुरुष ही, बुद्धि की सहायता से योग बल पाना चाहता है । इसलिये हे ईश्वर ! जैसे बढ़ई अच्छी लकड़ी के चक्के को ढालू बना लेता है ऐसे ही बहुतों से पुकारे जाने वाले स्तुति के द्वारा अपने अनुकूल स्वीकृत करता हूँ ॥६॥

२३९—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधेऽस्मां अवन्तु ते धियः ॥७॥

पदार्थ—(पिब) रक्षा कर (सुतस्य) शुद्ध ज्ञान को (रसिनः) सरस (मत्स्वा) प्रसन्न कर (नः) हमें (इन्द्र) हे ईश्वर (गोमतः) जितेन्द्रिय पुरुषों को (आपिः) व्यापक तू (नः) हमें (बोधि) बोध करा दे (सधमाद्ये) आनन्द-

दायक योगयज्ञ में (वृधे) उन्नति के लिये (अस्माद्) हम लोगों को (अवन्तु) रक्षा करो (ते) तेरे (धियः) ज्ञान ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे सरस शुद्ध ज्ञान की रक्षा कर। संयमी लोगों को आनन्दित कर ! तू सर्वव्यापक है। हमारी उन्नति के लिये तू हमें ऐसा ज्ञान दे जिससे हम तेरे निकट आ सकें ॥७॥

२४०—भर्गः । बृहती । इन्द्रः ।

२र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्ठय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (हि) निश्चय ही (एहि) प्राप्त हो (चेरवे) सदाचार के (विदा) दे (भगम्) ऐश्वर्य (वसुत्तये) सम्पत्ति देने के लिये (उत्) भी (वावृषस्व) वृष्टि कर (मघवन्) हे दान करने वाले ! (गविष्ठये) इन्द्रियों की अत्यन्त भलाई के लिए (उत्) भी (इन्द्र) हे ईश्वर ! (अश्वम्) प्राण को (इष्टये) कल्याण के लिए ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू प्राप्त हो। सदाचार की रक्षा के लिए ही हमें सम्पत्ति दे। हे सब से बड़े दानी, इन्द्रियों की भलाई और हमारे कल्याण के लिए प्राण को पुष्ट कर ॥८॥

२४१—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमंसते ।

२ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥९॥

पदार्थ—(नहि) नहीं (वः) तुम में (चरमं च न) एक को भी (वसिष्ठः) मुख्यप्राण (परिमंसते) छोड़ कर चलता है (अस्माकम्) हमारे (अद्य) आज (मरुतः) सब प्राण (सुते) इसके सुसम्पन्न हो जाने पर (सचा) एक साथ (विश्वे) सब (पिबन्तु) पान करें (कामिनः) कामना करने वाले ॥९॥

भावार्थ—प्राण और मुख्य प्राण में से कोई एक को भी छोड़ कर नहीं चलता है बल्कि सब को साथ ले कर ही चलता है, आज कामना करने वाले हमारे सब प्राण एक साथ आनन्द रस का पान करें ॥९॥

२४२—प्रगाथः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र३१ २
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१०॥

पदार्थ—(माचित्) नहीं ही (अन्यत्) सत्य से विपरीत (विशंसत) उच्चारण करो (सखायः) हे मित्रो ! (मा रिषण्यत) हिंसा मत करो (इन्द्रमित्) ईश्वर की ही (स्तोता) स्तुति करो (वृषणम्) कामनाओं को पूर्ण करने वाले (सचा) एक साथ (सुते) जगत् में (मुहुः) बार बार (उक्था) वेदमन्त्रों का (च) और (शंसत) पाठ करो ॥१०॥

भावार्थ—हे मित्रो ! सत्य से विपरीत मत बोलो। किसी को दुःख मत दो। कामनाओं की पूर्ति करने वाले ईश्वर की सम्मिलित स्तुति करो, तथा जगत् में वेद-मन्त्रों का पाठ करो ॥१०॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

२४३—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥

पदार्थ—(नकिः) कोई नहीं (तम्) उसका (कर्मणा) किसी उपाय से (नशत्) नाश कर सकता है (यः) जो (चकार) कर लेता है (सदावृधम्) सर्वदा बढ़ाने वाले (इन्द्रं) ईश्वर को (न) राजा के समान (यज्ञैः) अनेक प्रकार की क्रियाओं से (विश्वगूर्तम्) स्तुति के योग्य (ऋभ्वसम्) महान् (अधृष्टम्) सब के ऊपर विराजमान (धृष्णुम्) सब का अधिष्ठाता (ओजसा) बल से ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष सर्वदा प्रोत्साहन देने वाले स्तुति के योग्य, महान्, सब के ऊपर विराजमान, संसार के अधिष्ठाता, ईश्वर को अपना स्वामी समझ कर अनेक प्रकार के कर्मों से अपने अनुकूल करता है इस संसार में उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ॥१॥

२४४—मेधातिथिः । मेध्यातिथिश्च । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरुवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो ईश्वर (ऋतेचित्) विनाशी (अभिश्रिषः) जोड़ने वाली औषध के (पुरा) पुरा पहले ही (जत्रुभ्यः) ग्रीवा—[गर्दन] आदि जोड़ों से (आतृदः) रक्त के प्रवाह के(सन्धाता) जोड़ने वाला है (सन्धिम्) जोड़ों को (मघवा) धनवान् (पुरुवसुः) घट घट वासी (निष्कर्ता) बनाता है (विह्रुतम्) विशेष रूप से टेढ़े मेढ़े को (पुनः) फिर ॥२॥

भावार्थ—सकल सम्पदाओं का स्वामी घट घट वासी परमेश्वर आरम्भ की अवस्था में गर्दन से लेकर रक्त पर्यन्त समस्त सन्धियों को रज्जु तथा जोड़ने के लौकिक साधन के विना ही जोड़ता है, और फिर शीघ्रता से समस्त शरीर को निष्पन्न(निर्मित) कर देता है।

नोट—यह मन्त्र गर्भावस्था की रचना और सृष्टयारम्भ काल की शरीर-रचना दोनों में ही घटता है ॥ २॥

२४५—ऋषि देवता छन्दांसि पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुम को (सहस्रम्) सहस्र (आ) सब प्रकार से (शतम्) सैकड़ों (रथे) रथ में (हिरण्यये) प्रकाशयुक्त,[चमकीले] (ब्रह्मयुजः) ब्रह्मज्ञानी (हरयः) मनुष्य (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (केशिनः) केशधारी (वहन्तु) प्राप्त करते हैं (सोमपीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सैकड़ों अथवा सहस्रों शरीररूपी रथ में युक्त अर्थात् शरीरी ब्रह्मज्ञानी केशधारी मनुष्य आनन्द प्राप्ति के लिए तुझे प्राप्त करते हैं ॥३॥

२४६—विश्वामित्रः । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥४॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (मन्द्रैः) आनन्ददायक (इन्द्र) सूर्य (हरिभिः) किरणों से (याहि) लोक को प्राप्त होता है (मयूररोमभिः) मयूर के रोम के समान अनेक रंग वाले (मा) नहीं (त्वा) उसको (केचित्) कोई [अन्धकार] (नियेमुः) रोक सकते (इत्) ही (न) समान (पाशिनः) व्याध के (अति) लाङ्घकर (धन्वा इव) धनुष् से जिस प्रकार (इहि) आता है ॥४॥

भावार्थ—मोर के आनन्द देने वाले पंखों के समान अनेक रंग वाली किरणों के द्वारा सूर्य लोक को प्राप्त होता है। जैसे बंधन हाथ में लिए व्याध पक्षियों को फसा लेते हैं, ऐसे ही उसको कोई अन्धकार आदि रोक नहीं सकते। वह धनुष् से धनुषधारी के समान सब रोकने वालों को लाङ्घकर प्राप्त होता है ॥४॥

२४७—गोतमः । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३२ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वमंग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ . ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥५॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (अङ्ग) हे प्यारे ! (प्रशंसिषः) अनेक प्रकार से प्रशंसा करता है (देवः) दानी तू (शविष्ठ) हे शक्तिमन् ! (मर्त्यम्) मनुष्य की (न) नहीं (त्वत्) तुम से (अन्यः) दूसरा (मघवन्) हे ऐश्वर्य्यवन् ! (अस्ति) है (मर्डिता) सुख देने वाला (इन्द्र) हे ईश्वर ! (ब्रवीमि) करता हूँ (ते) तेरी (वचः) स्तुति ॥५॥

भावार्थ—हे शक्तिमान् ! प्यारे प्रभो ! तू देव है। तू मनुष्य जाति की प्रशंसा करता है। हे ऐश्वर्यवान् ! तुझ से बढ़कर दूसरा कोई सुखदाता नहीं है। मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥५॥

२४८—नृमेधपुरुषमेधौ । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ १ २ ३ १ २
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥६॥

पदार्थ—(त्वं) तू (इन्द्र) हे ईश्वर ! (यशाः) यशस्वी (असि) है (ऋजीषी) समृद्धिशाली (शवसस्पतिः) बल के रक्षक (त्वं) तू (वृत्राणि)

अज्ञान रूप अन्धकार का (हंसि) नाश करता है (अप्रतीनि) कठिनाई से जिनका सामना किया जाए (एक इत्) विना किसी की सहायता के [अकेला] ही (पुरु) बहुत (अनुत्तः) किसी की प्रेरणा के बिना (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों को धारण करने वाला ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू यशस्वी है । तेरे में किसी कमी का अनुभव नहीं होता है और तू पूर्ण तथा वलों का स्वामी है । तू मनुष्यों को धारण करने वाला है । किसी की प्रेरणा के विना तू अकेला ही, जिनका सामना करना कठिन होता है, ऐसे ही बहुत अज्ञान रूप अन्धकार को नष्ट करता है ॥६॥

२४९—मेध्यातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र ३ २
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
१२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) ईश्वर की (इत्) ही (देवतातये) विद्वानों की उन्नति के लिए (इन्द्रम्) ईश्वर को (प्रयति) आरम्भ करने पर (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ के (इन्द्रम्) ईश्वर को (समीके) यज्ञ की समाप्ति पर (अथवा संग्राम में)(वनिनः) भजन करने वाले हम (हवामहे) पुकारते हैं (इन्द्रम्) ईश्वर को (धनस्य) सम्पत्ति की (सातये) प्राप्ति के लिये ॥७॥

भावार्थ—भजन करने वाले हम, विद्वानों की उन्नति के लिए, कल्याणकारी यज्ञ के प्रारम्भ तथा समाप्ति पर, और सम्पत्ति को पाने के लिए भी ईश्वर को ही पुकारते हैं ॥७॥

२५०—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥८॥

पदार्थ—(इमाः) ये (उ) तरफ (त्वा) तेरी (पुरुवसो) हे सकल सम्पत्ति के स्वामी ! (गिरः) वाणियां (वर्धन्तु) वर्णन करें (या) जो (मम) मेरी (पावकवर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) विद्वान् जन (अभिः) भले प्रकार (स्तोमैः) मन्त्रों से (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे सकल सम्पत्ति के स्वामी ईश्वर ! जो ये हमारी वाणियां हैं वे तेरा वर्णन करती हैं । अग्नि के समान तेजस्वी, पवित्र, विद्वान् जन मन्त्रों से तेरी स्तुति करते हैं ॥८॥

२५१—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
३ १ २ ३ १ २र ३२ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥९॥

पदार्थ—(उत्) ऊपर (उ) भी (त्ये) वे (मधुमत्तमा) अत्यन्त मधुर (गिरः) स्तुतियां (स्तोमासः) [बहिष्पवमान, आर्य स्तोत्र और मध्यन्दिन, पवमान] स्तोत्र रूप (ईरते) उच्चरित होती है (सत्राजितः) सदा विजयी (धनसा) सम्पत्तिशाली (अक्षितोतयः) अमिट रक्षा वाले (वाजयन्तः) वेगयुक्त हुए (रथा इव) रथ के समान ॥९॥

भावार्थ—जैसे सदा विजय करने वाले, सम्पत्तिशाली और भली भांति रक्षा करने वाले रथ वेग से चलते हैं, ऐसे ही ये हमारी मधुर [आर्य स्तोत्र आदि] वाणियां मुख से बाहर निकल कर चारों तरफ वेग से फैलती हैं ॥९॥

२५२—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २उ
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१०॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (गौरः) मृग (अपा) जल से (कृतम्) पूर्ण (तृष्यन्) प्यासा (एति) आता है (अव) रक्षा (ईरिणम्) विना घास के तैयार [पानी के घाट पर] (आपित्वे) मित्रता (नः) हमारी (प्रपित्वे) हो जाने पर (तूयम्) शीघ्र (आगहि) आओ (कण्वेषु) मेधावी पुरुषों के मध्य में विराजमान हो (सु) पूर्ण रूप से (सचा) एक साथ (पिब) परमानन्द का पान कर ॥१०॥

भावार्थ—हे जीव ! जैसे प्यासा मृग पानी से पूर्ण किन्तु घासरहित तालाब के तट पर जाता है, ऐसे ही मित्रता हो जाने पर मेधावी पुरुषों के मध्य शीघ्र और मिल कर अमृत रस का पान कर ॥१०॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

२५३—भर्गः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

पदार्थ—(शग्धि) दे [याचना करता हूँ] (सु) पूर्ण (शचीपते) हे देववाणी के स्वामी ! (इन्द्र) हे ईश्वर ! (विश्वाभिः) सारी (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (भगन्न) ऐश्वर्य के समान (हि) क्योंकि (त्वा) तुमको (यशसं) यशस्वी (वसुविदम्) सम्पत्ति के दाता (अनु) पीछे [पश्चात्] (शूर) हे शक्तिमान् [पराक्रमी] (चरामसि) अनुकूल आचरण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे पराक्रमी वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ! सारी रक्षाओं के साथ मेरे मनोरथ को पूर्ण कर, क्योंकि हम यशस्वी ऐश्वर्य के समान सम्पत्तिदाता तुझ प्रभु के अनुकूल आचरण करते हैं ॥१॥

२५४—रेभः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा असुरेभ्यः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥

पदार्थ—(या) जिन (इन्द्र) हे ईश्वर ! (भुजः) प्राणों को (आभर) पुष्ट करता है (स्वर्वान्) सुख के स्रोत (सोता) (असुरेभ्यः) पवनों में (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले को (इत्) ही (मघवन्) हे सम्पत्ति के स्वामी (अस्य) इनसे (वर्धय) बढा (ये च) और जो (त्वे) तेरी शरण में (वृक्तबर्हिषः) ज्ञानयज्ञ का आसन लगाये बैठे हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सम्पत्ति के स्वामी ईश्वर ! तू सुख के स्रोत, पवनों से जिन प्राणों को पुष्ट करता है, उन (प्राणों) से स्तुति करने वालों को बलवान् कर तथा जो तेरी शरण में ज्ञान की प्राप्ति के लिए उपस्थित हैं उनको भी बलवान् बना ॥२॥

२५५—जमदग्निः । बृहती । आदित्याः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क२र
प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (मित्राय) सब के मित्र (अर्यम्णे) न्यायकारी (सचथ्यम्) सम्बन्ध के योग्य (ऋतावसो) हे सत्य पर चलने वाले मनुष्य ! (वरूथ्ये) वर्णनीय (वरुणे) वरण करने योग्य विद्वान् में (छन्द्यं) वेद युक्त (स्तोत्रम्) स्तुति को (राजसु) विराजमान विद्वानों में (गायत) वर्णन कर ॥ ३॥

भावार्थ—हे सत्य में स्थित मनुष्य ! तू मित्र स्वरूप न्यायकारी परमेश्वर के लिए उपयुक्त तथा वर्णनीय विद्वान् और राजाओं में सम्बन्धित वेदमयी वाणी वा स्तोत्र का गान कर ॥३॥

२५६—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥४॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (त्वा) तुझको (पूर्वपीतये) पूर्ण रक्षा के लिए (इन्द्र) हे ईश्वर ! (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (आयवः) मनुष्य (समीचीनासः) योग्य (ऋभवः) मेधावी (समस्वरन्) स्तुति करते हैं (रुद्राः) पूर्ण ब्रह्मचारी (गृणन्त) स्तुति करते हैं (पूर्व्यम्) तुझ आदि पुरुष की ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! योग्य मनुष्य मेधावी और ब्रह्मचारी अपनी पूर्ण रक्षा के लिए तेरी स्तुति करते हैं और तुझ आदि पुरुष की प्रशंसा करते हैं ॥४॥

२५७—नृमेधपुरुमेधौ । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥५॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम लोग (इन्द्राय) ईश्वर के लिए (बृहते) महान् (मरुतः) हे स्तुति करने वालो ! (ब्रह्म) साम का (अर्चत) गान करो (वृत्रम्) पाप या अज्ञान को (हनति) नाश करे (वृत्रहा) अज्ञान के नाश करने वाला (शतक्रतुः) अनन्त ज्ञान वाला (वज्रेण) वज्र [शस्त्र] से (शतपर्वणा) सैंकड़ों धार वाले ॥५॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! तुम लोग महान् ईश्वर के लिए साम का गान करो । वह अनन्त ज्ञान वाला है । पापनाशक वह परमेश्वर सैंकड़ों धार वाले वज्र के समान दुर्गुण निवारक ज्ञान से पाप या अज्ञान का नाश करता है ॥५॥

२५८—ऋषिछन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

२१ २र ३ १ २ ३ १ २
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥६॥

पदार्थ—(बृहत्) साम (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (गायत) गाओ (मरुतः) हे ऋत्विग् गण (वृत्रहन्तमम्) अज्ञान का अत्यन्त नाश करने वाले (येन) जिसके द्वारा (ज्योतिः) ज्ञान को (अजनयन्) प्रकट करते हैं (ऋतावृधः) सत्य अथवा यज्ञ का विस्तार करने वाले (देवम्) दिव्य (देवाय) प्रकाश स्वरूप (जागृवि) जागृति देने वाली ॥६॥

भावार्थ—हे ऋत्विक्-गण, तुम लोग परमात्मदेव के लिए उस बृहत् साम का गान करो जिसके द्वारा सत्य का विस्तार करने वाले विद्वान् जन दिव्य पापनाशक तथा जागृति देने वाली ज्ञान ज्योति को हृदय में जगाते हैं ॥६॥

२५९—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शिक्षाणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे ईश्वर ! (क्रतुम्) ज्ञान को (नः) हमारे लिए (आभर) दे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिए (यथा) जैसे (शिक्ष) शिक्षा दे (नः) हमें (अस्मिन्) इस (पुरुहूत) हे सर्व पूज्य (यामनि) जीवन यात्रा में (जीवा) हम जीव (ज्योतिः) परम ज्योति को (अशीमहि) प्राप्त करें ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे पिता पुत्र को शिक्षा देता है ऐसे ही तू हमें ज्ञान दे । हे ईश्वर ! हमें शिक्षा दे कि हम अपनी जीवनयात्रा में ज्ञान को प्राप्त करें ॥७॥

२६०—रेभः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥८॥

पदार्थ—(मा) मत (नः) हम को (इन्द्र) हे ईश्वर ! (परावृणक्) परित्याग करो (भव) सहायक हो (सधमाद्ये) आनन्ददायक यज्ञ में । (त्वं) तू (नः) हमारी (ऊती) रक्षा है (त्वम्) तू (इत्) ही (नः) हमारे (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य है ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे आनन्ददायक यज्ञ में सहायक हो । हे ईश्वर ! तू ही हमारी रक्षा करने वाला और तू ही हमारे प्राप्त करने योग्य है । तू हमारा परित्याग मत कर ॥८॥

२६१—मेध्यातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥९॥

पदार्थ—(वयम्) हम (घ) प्रसिद्ध (त्वा) तुमको (सुतावन्तः) पुत्र आदि से सम्पन्न (आपो न) जल के समान (वृक्तबर्हिषः) आसन लगाये हुए (पवित्रस्य) शुद्धस्वरूप तेरे (प्रस्रवणेषु) नीचे स्थानों में (वृत्रहन्) हे पापनाशक ! (परि) सब प्रकार से (स्तोतारः) उपासक (आसते) उपासना करते हैं ॥९॥

भावार्थ—हे पापनाशक ! ईश्वर ! साधन से सम्पन्न तथा आसन जमाये हुए हम उपासक तेरी शरण में (उपस्थित होते हैं) नीची जगहों में जल जैसे चारों तरफ से द्वीप बनाते हैं, ऐसे ही तुझ शुद्धस्वरूप की उपासना करने वाले सब प्रकार से उपासना करते हैं ॥९॥

२६२—भरद्वाजः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
यदिन्द्र नहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१०॥

पदार्थ—(यत्) जो (इन्द्र) हे ईश्वर ! (नाहुषीषु) मानुषी (ओजः) बल (नृम्णम्) सम्पत्ति (च) और (कृष्टिषु) प्रजाओं में (यत्) जो (वा) अथवा (पञ्च क्षितीनाम्) योग की पांच भूमियों के (द्युम्नम्) यश है (आभर) दे (सत्रा) सत्य (विश्वानि) सब (पौंस्या) पुरुषार्थ ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मनुष्य प्रजाओं में जो बल तथा धन है, या योग की पाँच भूमियों में जो यश है, उनको और सच्चे पुरुषार्थों को भी हमें दे ॥१०॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

२६३—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१॥

पदार्थ—(सत्यम्) सत्य है कि (इत्था) इस प्रकार तू (वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला (इत्) ही (असि) है (वृषजूतिः) कामपूरक व्याप्तिवाला (नः) हमारे (अविता) रक्षक हो (वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला (हि) ही (उग्र) हे ओजस्वी (शृण्विषे) सुने जाते हो (परावति) दूर में (वृषा) वर्षा करनेवाला (उ) और (अर्वावति) समीप में भी (श्रुतः) सुने जाते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे ओजस्वी ! ईश्वर ! सत्य ही तू कामनाओं की वर्षा करने वाला है, कामना पूरक, व्याप्ति वाला तू हमारा रक्षक हो । तू अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला सुना जाता है । क्या दूर क्या समीप सब जगह तू कामनाओं की पूर्ति करने वाला प्रसिद्ध है ॥१॥

२६४—रेभः । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारण (शक्र) हे शक्तिमान् (असि) है (परावति) दूर (यत्) जिस कारण (अर्वावति) समीप (वृत्रहन्) हे अज्ञाननाशक ! (अतः) इसलिए (त्वा) तुझ को (गीर्भिः) स्तुतियों से (द्युगत्) शीघ्र (केशिभिः) जटाधारियों के साथ (इन्द्र) हे ईश्वर ! (सुतावान्) साधनसम्पन्न (आविवासति) पुकारता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे शक्तिमान् ! अज्ञाननाशक ईश्वर ! चूंकि तू अज्ञानियों से दूर तथा ज्ञानियों के समीप है, इस लिए साधनों वाले मनुष्य सन्तों के साथ वेदवाणियों द्वारा तेरा आह्वान करते हैं ॥२॥

२६५—वत्सः । पिपीलिकमध्या बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥३॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (वः) तू (वीरम्) बलवान् (अन्धसः) अन्न सम्बन्धी (मदेषु) आनन्दों में [मग्न हो] (गाय) गान कर (गिरा) स्तुति से (महा) उत्तम (विचेतसम्) विशेष ज्ञान वाले (इन्द्रम्) ईश्वर का (नाम) प्रसिद्ध (श्रुत्यम्) वैदिक (शाकिनं) शक्तिमान् (वचः) वचन (यथा) जैसे ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! तू अन्न सम्बन्धी आनन्द में मग्न होकर, वेद के वचन की स्तुति की भांति विशेष ज्ञानवाले शक्तिमान् ईश्वर की उत्तम वाणियों से स्तुति कर ॥ ३ ॥

२६६—भरद्वाजः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे ईश्वर ! (त्रिधातु) वात, कफ, पित्तयुक्त (शरणं) धाम (त्रिवरूथं) त्रिविध ताप के आश्रय (स्वस्तये) कल्याण के लिए (छर्दिः) शरीर (यच्छ) दे (मघवद्भ्यः) याज्ञिकों के लिए (मह्यं च) हमारे लिए भी (यावय) पृथक् कर (दिद्युम्) दिव्य (एभ्यः) इन ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे कल्याण के लिये त्रिधातु से बने तथा त्रिविध तापों के आश्रयभूत शरीर को हमसे पृथक् कर । तू हमें और इन उत्तम कर्म वालों के लिए मोक्ष नाम का दिव्य धाम प्रदान कर ॥४॥

२६७—नृमेधः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २र
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ॥५॥

पदार्थ—(श्रायन्त) आश्रय से रहने वाली (इव) समान (सूर्यं) सूर्य के (विश्वा) सकल (इत्) ही (इन्द्रस्य) ईश्वर के (भक्षत) विभाग करो। (वसूनि) धनों का (जाता उ) उत्पन्न हो चुके हुए (जनिमानि) उत्पन्न होने वाले (ओजसा) बल के सहित (भागं न) भाग के समान (प्रति दीधिम) धारण करते हैं ॥५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न हो चुके और जो होंगे बलसहित वे समस्त धन परमेश्वर के ही हैं । तुम लोग पिता की सम्पत्ति के भाग को पुत्र के समान उन धनों का भाग वैसे ही ग्रहण करो और हम भी उन्हें ही धारण करते हैं जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से उत्पन्न होकर उसी से प्रकाश भी लेती हैं ॥५॥

२६८—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
न सीमदेव आपतदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
१ २ ३ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एतग्वाचिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥६॥

पदार्थ—(न सीम्) नहीं इसको (अदेवः) ईश्वर से विमुख मनुष्य (आतत) पाता है (इषम्) ज्ञान को (दीर्घायो) हे दीर्घजीवी ! (मर्त्यः) मनुष्य (एतग्वा-चित) घोड़े वाला ही (यः) जो (एतशः) घोड़ों को (युयोजते) जोतता है (इन्द्रः) सूर्य (हरी) रात्रि और दिन (युयोजते) जोड़ता है ॥६॥

भावार्थ—हे जीव ! ईश्वर से विमुख मनुष्य इसके ज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकता । जो घोड़े वाला है वही घोड़ों को जोत सकता है, जैसे कि सूर्य रात्रि और दिन को जोड़ता है ॥६॥

२६९—नृमेधपुरुमेधौ । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम् ॥७॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (नः) हमारे (विश्वासु) सब (हव्यम्) आह्वान के योग्य (इन्द्रम्) ईश्वर को (समत्सु) सभाओं में [बाधाओं में] (भूषत) आश्रय मानो (उप) समीप (ब्रह्माणि) वेदत्रयी को (सवनानि) तीन सवन रूप [प्रातमध्यन्दिन तृतीय] (वृत्रहन्) हे पापनाशक ! (परमज्याः) हे सबसे महान् (ऋचीषम्) हे स्तुति के सदृश ॥७॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! प्रत्येक आपत्ति तथा बाधा के समय स्तुति के योग्य ईश्वर की शरण में जाओ । हे सबसे महान् ! स्तुति के योग्य !! पापनाशक प्रभो !!! तीन सवन रूप तीन वेदों (ऋग्, यजुः, साम) का उपदेश दो ॥७॥

२७०—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
३ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८॥

पदार्थ—(तव) तेरा (इत्) ही (इन्द्र) हे ईश्वर (अवमम्) साधारण (वसु) धन है (त्वं) तू (पुष्यसि) पुष्ट करता है (मध्यमम्) मध्य कोटि के धन को (सत्रा) सत्य ही (विश्वस्य) सम्पूर्ण (परमस्य) सब से श्रेष्ठ धन का (राजसि) स्वामी है (नकिः) कोई नहीं (त्वा) तुमको (गोषु) पृथिव्यादि लोकों में (वृण्वते) व्यापने से रोकता है ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उत्तम, मध्यम और साधारण इन तीन प्रकार के धनों का तू ही स्वामी है । क्योंकि तेरी व्यापकता में कोई रुकावट नहीं है ॥ ८ ॥

अथवा—हे परमेश्वर ! (अवमम्) अधस्थ पृथिवी लोक तेरा ही धन है तूही (मध्यम) अन्तरिक्ष लोक का पोषण करता है । तू (परम) द्युलोक का राजा है । व्यापक होने से पृथिव्यादि लोकों में तुझे कोई भी रोक नहीं सकता । अर्थात् सबमें व्याप्त है ॥८॥

२७१— भरतः मेधातिः मेध्यातिथिश्च, माधवः, प्रगाथः । बृहती । इन्द्रः ।

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९॥

पदार्थ—(क्व) कहां (इयेथ) व्यापक है (क्वेदसि) कहां पर है (पुरुत्रा) बहुतों में (चित्) ही (ते) तेरा (मनः) ज्ञान (अलर्षि) व्यापक है (युध्म) सर्वग (खजकृत्) हे ब्रह्माण्ड के कर्त्ता ! (पुरन्दर) शरीर बन्धन से रहित (प्र) उत्तम (गायत्रा) गानकुशल (अगासिषुः) गान करते हैं ॥९॥

भावार्थ—हे सर्वग (सर्वव्यापक) ब्रह्माण्ड के कर्त्ता ! शरीर-बन्धनरहित तू कहां व्यापक है ? और कहाँ पर है ? अर्थात् हे भगवान्! तुम्हारा ज्ञान सब पदार्थों में है, तू सर्वत्र व्यापक है । गानकुशल तेरा ही गान करते हैं ॥ ९ ॥

२७२—कलिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१०॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (एनम्) इसको (इदा) इस समय (ह्यः) गत दिन (अपीपेम) पुष्ट किये और करते हैं (इह) इस (वज्रिणम्) वज्रधारी को (तस्मै) उसके लिए (उ) ही (अद्य) आज (सवने) यज्ञ में (सुतम्) सोम (भरा) पूर्ण कर (नूनम्) निश्चित (भूषत) सुशोभित करो (श्रुते) कीर्ति के लिए ॥ १० ॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! हम लोगों ने इस यज्ञ में विद्वान् इन्द्र को कल पुष्ट किया था और इस समय भी पुष्ट करते हैं । आज भी उसी को अमृत रस दो और निश्चित ही अपनी कीर्ति के लिए इस को सुशोभित करो ॥१०॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

२७३—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (राजा) ईश्वर है (चर्षणीनां) मनुष्यों का (याता) प्राप्त होता है (रथेभिः) योग मार्गों से (अध्रिगुः) सहज व्यापक (विश्वासाम्) सारी (तरुता) तारने वाला है (पृतनानां) मनुष्य अधिकतर (ज्येष्ठम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (यः) जो (वृत्रहा) पापनाशक है (गृणे) उसकी स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—जो ईश्वर मनुष्यों का स्वामी है, जो योग साधन से प्राप्त होता है, जो व्यापक है तथा मनुष्य मात्र को तारने वाला है, उसकी अधिक से अधिक स्तुति करता हूँ ॥१॥

२७४—भर्गः । बृहती । इन्द्रः ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयङ्कृधि ।
१२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ ६उ ३ १ २र
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥२॥

पदार्थ—(यतः) जिससे (इन्द्र) हे ईश्वर (भयामहे) हम भयभीत होते हैं (ततः) उस से (नः) हम लोगों को (अभयं) अभय (कृधि) कर(मघवन्) हे ऐश्वर्य वाले ! (शग्धि) दे (तव) तेरे (तत्) उसे (नः) हमें (ऊतये) रक्षा के लिए (वि) विविध प्रकार से (द्विषः) द्वेषभावों को (वि) विविध प्रकार से, (मृधः) हिंसा के भावों को (जहि) नष्ट कर ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम जिससे डरते हैं, उससे हमें निर्भय बना ! प्रभो ! हमारी रक्षा के लिए तूने जो सम्पत्ति देनी है वह दे, तथा निरपराधों से द्वेष, और हिंसा के भावों का विनाश कर ॥२॥

२७५—इरिम्बिठिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्रप्सः पुरांभेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥३॥

पदार्थ—(वास्तोष्पते) हे संसार रूप गृह के स्वामी ! (ध्रुवा) दृढ़ (स्थूणां) स्तम्भ के समान स्तम्भ (सत्रम्) कवच के समान रक्षक (सोम्यानां) उत्तम कर्म करने वालों का (द्रप्सः) सर्वव्यापक (पुरां) संसारस्थ लोकों का (भेत्ता) प्रलयकर्ता (शश्वतीनां) प्रवाहरूप से स्थित (इन्द्रः) ईश्वर (मुनीनां) मुनियों का (सखा) मित्र है ॥३॥

भावार्थ—हे संसार गृह के स्वामी परमेश्वर ! तू समस्त संसार का दृढ़ स्तम्भ के समान स्तम्भ है, तू उत्तम कर्म करने वालों का कवच के समान रक्षक तथा प्रवाह रूप से आने वाले संसारस्थ लोगों का प्रलयकर्ता है । तू ही सर्वव्यापक और मुनियों का सखा है ॥३॥

२७६—जमदग्निः । बृहती । सूर्य्यः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बण्महाँ असि सूर्य्य बडादित्य महां असि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महां असि ॥४॥

पदार्थ—(बट्) सत्य (महान्) बड़ा (असि) है (सूर्य) हे सकल संसार के लोगों को कर्म करने की प्रेरणा करने वाले (बट्) सत्य ही (आदित्य) हे प्रकाश स्वरूप ! (महां) महान् (असि) है (महः) महान् (ते) तेरी (सतः) श्रेष्ठ की (महिमा) माहात्म्य (पनिष्टम) अत्यन्त स्तुति के योग्य है (अथवा) हे स्तुति के योग्य (मह्ना) अपनी महिमा से तू (देव) हे दाता (महान्) बड़ा (असि) है ॥४॥

भावार्थ—हे सब को कर्तव्य पालन करने की प्रेरणा करने वाले ईश्वर ! सत्य ही तू महान् है । हे प्रकाशस्वरूप ! सत्य ही तू सब से बड़ा है । तू महान् और श्रेष्ठ है । तेरी महिमा भी स्तुति के योग्य है । हे दाता ! तू अपनी ही बड़ाई से बड़ा है ॥४॥

२७७—देवातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अश्वी रथी सुरूप इद् गोमां यदिन्द्र ते सखा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५॥

पदार्थ—(अश्वी) घोड़ोंवाला (रथी) रथोंवाला (सुरूपः) सुन्दर रूपवान् (इत्) ही (गोमान्) गौ आदि सम्पत्तिवाला (अथवा) जितेन्द्रिय (यत्) जो (इन्द्र) हे ईश्वर ! (ते) तेरा (सखा) मित्र है (श्वात्रभाजा) शीघ्र भजन के योग्य (वयसा) युवा अवस्था से (सचते) युक्त होता है । (सदा) सर्वदा (चन्द्रैः) सोने से सुभूषित होकर (सभाम्) सभा में (उपयाति) जाता है ॥५॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जो राजा तेरा मित्र होता है, वह घोड़ों, रथों, सुन्दर रूपों और गौ आदि सम्पत्तियों से युक्त होकर शीघ्र भजन करने योग्य युवावस्था को पाता है। वह सर्वदा सोने के गहनों से सज कर सभा में जाता है ॥५॥

२७८—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३२
यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमिरुत स्युः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १२
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६॥

पदार्थ—(यत्) यद्यपि (द्यावः) द्युलोक (इन्द्र) हे ईश्वर ! (ते) तेरे (शतम्, शतम्) सैकड़ों (भूमिः) पृथिवी (उत) भी (स्युः) हों (न) नहीं (त्वा) तुमको (वज्रिन्) हे न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! (सहस्र) हजारों (सूर्याः) सूर्य (अनु) अच्छी तरह (न) नहीं (जातम्) प्रसिद्ध (अष्ट) पा सकते हैं (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक भी ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर, सैकड़ों द्युलोक और सैकड़ों पृथिवी इकट्ठी हों, तो भी ये सब तुम से न्यून हैं। हे न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! हजारों सूर्य भी तुमसे न्यून हैं और प्रसिद्ध द्युलोक और पृथिवीलोक भी इकट्ठे हों, तो भी तेरी महिमा के सामने तुच्छ हैं ॥६॥

२७९—देवातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २उ ३ २ ३क २ ३ २ ३ १ २
यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३१ २
सिमा पुरु नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्द्ध तुर्वशे ॥७॥

पदार्थ—(यत्) यद्यपि (इन्द्र) हे ईश्वर ! (प्राक्) पूर्व दिशा से (अपाक्) पश्चिम दिशा से (उदक्) उत्तर दिशा से (न्यक्) और दक्षिण दिशा से (वा) अथवा (हूयसे) पुकारे जाते हो (नृभिः) मनुष्यों से तथापि (सिमा) सब जगह (पुरु) बहुत (नृषूतः) मनुष्यों को स्तुतियों से प्रेरित (असि) हो (आनवे) मनुष्यों के (असि) हो (प्रशर्द्ध) हे बलवान् (तुर्वशे) समीप ही ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! यद्यपि पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सब तरफ से मनुष्य तुझे पुकारते हैं; हे बलवान् ! चाहे मनुष्य सब जगह स्तुतियों से तुझे बार-बार बुलाते हैं, तो भी तू तेरे समीपवर्ती मनुष्य के लिए समीप है ॥७॥

२८०—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ १ २र
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २र
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥८॥

पदार्थ—(कः) कौन (तम्) उस (इन्द्र) हे ईश्वर ! (त्वा) तुझको (वसो) हे व्यापक ! (आ) सब प्रकार से (मर्त्यः) मनुष्य (दधर्षति) तिरस्कृत कर सकता है। (श्रद्धा) श्रद्धा से (हि) ही (ते) आप से (मघवन्) हे ऐश्वर्य वाले ! (पार्ये) पार होने के (दिवि) दिन (वाजी) बलवान् (वाजम्) बल को (सिषासति) पाना चाहता है ॥८॥

भावार्थ—हे सर्व व्यापक ईश्वर ! कौन मनुष्य तेरा तिरस्कार कर सकता है? (कोई नहीं कर सकता)। हे ऐश्वर्य वाले ! बलवान् पुरुष पार होने के दिन (मृत्यु के समय) श्रद्धा से तुझ से ही बल पाना चाहता है ॥८॥

२८१—भरद्वाजः । बृहती । इन्द्राग्नी ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३१ २
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
३ १ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत्त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक ! उपदेशक ! (अपात्) पांवों से रहित (इयं) यह (पूर्वा) पूर्व (आगात्) आती है (पद्वतीभ्यः) पांवों वाली प्रजाओं से (हित्वा) छोड़कर (शिरः) शिर (जिह्वया) जिह्वा से (रारपत्) शब्द कराती हुई (चरत्) चलती हुई (त्रिंशत् पदानि) तीस मुहूर्तरूपी पदों को (न्यक्रमीत्) रखती है ॥९॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! बिना पैर की होती हुई भी यह उषा पांव वाली प्रजाओं से पूर्व आ जाती है और विचरती है। इस का अपना तो शिर नहीं है, परन्तु कुक्कुट आदि प्राणियों की जिह्वा से शब्द कराती हुई तीस मुहूर्तरूपी पदों को रखती है ॥९॥

२८२—वालखिल्यः । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आ शन्तम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे ईश्वर ! (नेदीयः) अत्यन्त समीप (आ, इत्, इहि) प्राप्त होवे (मितमेधाभिः) उत्तम बुद्धि सहित (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (आ) सब प्रकार (शन्तम) हे सुखस्वरूप (शन्तमाभिः) शान्तिदायक (अभिष्टिभिः) मनोवाञ्छित फलों के देने वाली (स्वापे) हे सुन्दर मित्र ! (स्वापिभिः) सुन्दर मित्रता से ॥१०॥

भावार्थ—हे सुखस्वरूप ! हे परम मित्र !! हे परमेश्वर !!! तू उत्तम बुद्धि, शान्ति देने वाले मनोवाञ्छित, फल और पूर्ण मित्रता स्थिर रखने वाली रक्षाओं सहित हमें प्राप्त हो ॥१०॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

२८३—नृमेधः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३१ ३ २ ३ १ २
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥१॥

पदार्थ—(इतः) यहां से (ऊती) पालन के लिए (वः) तुमको हे ईश्वर! (अजरम्) अजर (प्रहेतारम्) संसार को प्रेरणा देने वाले (अप्रहितम्) स्वतन्त्र (आशुम्) व्यापक (जेतारम्) सब से श्रेष्ठ (होतारं) सबके जानने वाले (रथीतमम्) महारथी [नेता] (अमूर्त्तम्) अमर (तुग्रिया, वृधम्) प्रकाश के बढ़ाने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम अपनी रक्षा के लिए अजर, अमर, स्वतन्त्र सब को प्रेरणा देने वाले, सबसे श्रेष्ठ, सर्वज्ञ, मनुष्य मात्र के नेता और प्रकाश के दाता, तुझे पुकारते हैं ॥१॥

२८४—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥२॥

पदार्थ—(मा) नहीं (उ षु) पादपूरक (त्वा) तुझको (वाघतः च न) मेधावी जन भी (आरे) दूर (अस्मत्) हम से (निरीरमन्) स्तुति करें। (आरात्तात्) समीप (वा) अथवा (सधमादम्) यज्ञ में (नः) हमारे (आगहि) प्राप्त हो (इह) इस (हृदय में) (वा) अथवा (सन्) विद्यमान होकर (उपश्रुधि) सुन ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मेधावी जन भी हम से दूर तेरी उपासना न करें अपितु हमारे समीप ही करें। तू भी व्यापक होने से समीपवर्ती होता हुआ हमारे यज्ञ में हमें प्राप्त हो, अथवा हमारे हृदय में विद्यमान हुआ हमारी प्रार्थना सुन ॥२॥

२८५—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २र ३ १ २र
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥३॥

पदार्थ—(सुनोत) तैयार करो (सोम पाव्ने) सोम पान करने वाले (सोमम्) सोम को (इन्द्राय) विद्वान् के लिए (वज्रिणे) अज्ञाननिवारक (पचता) पकावो (पक्तीः) पाकों को (अवसे) रक्षा के लिए (कृणुध्वम्) करो (इत्) ही (पृणन्) पालना में तत्पर (इत्) ही (पृणते) पूरा करता है (मयः) सुख से ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग सोमपायी तथा अज्ञाननिवारक विद्वान् के लिए सोम तैयार करो। अपनी रक्षा के लिए उसके निमित्त पाकों को पकाओ, सारे सत्कार कार्यों को करो। निश्चय ही पालन में तत्पर वह विद्वान् तुम्हें सुख देता है ॥३॥

२८६—शंयुः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (सत्राहा) सत्य से असत्य को मिटाता है (विचर्षणिः) संसार का साक्षी (इन्द्रम्) परमेश्वर को (तम्) उस (हूमहे) पुकारते हैं (वयम्) हम सब (सहस्रमन्यो) हे अनन्तज्ञान वाले ! (तुविनृम्ण) हे अत्यन्त बलवान् (सत्पते) हे सज्जनों के रक्षक (भवा) हो (समत्सु) संग्रामों में (नः) हमारी (वृधे) जय की वृद्धि करने के लिए ॥४॥

भावार्थ—जो ईश्वर सत्य से असत्य का नाश देखने वाला है और चर-अचर संसार का साक्षी है, उसे हम पुकारते हैं। हे अनन्त ज्ञान वाले ! बलवान् !! भले पुरुषों की रक्षा करने वाले ईश्वर !!! संग्रामों में हमें विजय दे ॥४॥

२८७—परुच्छेपः । बृहती । अश्विनौ ।

१ २ ३ २ ३ १ २
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २
मा वां रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥५॥

पदार्थ—(शचीभिः) शक्तियों से (नः) हमें (शचीवसू) कर्म को स्थान देने वाले (दिवानक्तम्) दिन और रात (दिशस्यतम्) देते हैं (मा) नहीं (वां) इन दोनों का (रातिः) दान (उपदसत्) कम होता है (कदाचन) कभी भी (अस्मद्रातिः) हमारा दान (कदाचन) कभी भी ॥५॥

भावार्थ—कर्म को स्थान देने वाले सूर्य और चन्द्र अपनी शक्तियों से हमें रात्रि और दिन प्रदान करते हैं, उनका यह दान सदा रहे, इसी प्रकार हमारा भी दान सदा बना रहे ॥५॥

२८८—वामदेवः । बृहती । वरुणः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥६॥

पदार्थ—(यदा कदा च) जब कभी (मीढुषे) कामनाओं की वर्षा करने वाले ईश्वर की (स्तोता) स्तुति करने वाला (जरेत) स्तुति करे (मर्त्यः) मनुष्य (आदित्) उसी समय (वन्देत) नमस्कार भी करे (वरुणम्) ईश्वर को (विपा) उसके विविध गुणों का वर्णन करने वाली (गिरा) वेदवाणी से (धर्त्तारम्) धारण करने वाले (विव्रतानाम्) विविध नियमों के ॥६॥

भावार्थ—स्तुतिशील मनुष्य, कामनाओं की वर्षा करने वाले ईश्वर की, जब कभी स्तुति करे, उसी समय अनेक नियमों के नियन्ता और विविध गुणों के वर्णन करने वाले ईश्वर को वेदमन्त्रों से नमस्कार भी करे ॥६॥

२८९—मेध्यातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २
पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यः संमिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥७॥

पदार्थ—(पाहि) बचा (गाः) इन्द्रियों को (अन्धसः) भोग्य पदार्थों के (मदे) मद में (इन्द्राय) ईश्वर को पाने के लिए (मेध्यातिथे) हे गृहस्थ ! (यः) जो (संमिश्लः) मिलाने वाला है (हर्योः) ऋग्वेद और सामवेद का (यः) जो (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप (इन्द्रः) ईश्वर (वज्री) न्यायरूप दण्ड को धारण करने वाला (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ॥७॥

भावार्थ—हे गृहस्थ पुरुष ! वेदज्ञान के देनेवाले, प्रकाशस्वरूप न्यायकारी परमात्मा को पाने के लिए भोग्य पदार्थों के जगत् में अपने आपको संयम में रख ॥७॥

२९०—भर्गः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८॥

पदार्थ—(उभयम्) दोनों [स्तुति प्रार्थना को] (शृणवत्) सुनें (च) भी (नः) हमारी (इन्द्रः) ईश्वर (अर्वाक्) प्रथम (इदम्) यह (वचः) स्तुति और प्रार्थनारूप वचन (सत्राच्या) सत्य का ज्ञान कराने वाली (मघवान्) सकल धनों का स्वामी (सोमपीतये) हमारे उत्तम पदार्थों की रक्षा के लिए (धिया) बुद्धि से (शविष्ठ) बलवान् (आगमत्) प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थ—ईश्वर शीघ्र हमारे इन दोनों—स्तुति और प्रार्थनारूप वचनों को सुनें । शक्तिमान् तथा समस्त धनों का स्वामी वह हमारे उत्तम पदार्थों की रक्षा के लिए सत्य ज्ञान करानेवाली बुद्धि से हमें प्राप्त होवे ॥८॥

२९१—प्रगाथः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥९॥

पदार्थ—(महे च) बड़ी धनराशि के (न) नहीं (त्वा) तेरा (अद्रिवः) हे दण्डधारी (परा) परे (शुल्काय) मूल्य से भी (दीयसे) परित्याग किया जा सकता (न) नहीं (सहस्राय) हजार रुपयों के बदले (न) नहीं (अयुताय) दश हजार के बदले (वज्रिवः) हे न्यायरूप दण्ड के धारण करनेवाले (न) नहीं (शताय) असंख्य धनराशि के बदले में ही (शतामघ) हे असंख्य धन वाले ! ॥९॥

भावार्थ—हे दण्डधारी ! हे न्यायरूप दण्ड के धारण करनेवाले !! हे असंख्य धनराशि के स्वामी !!! ईश्वर ! महान् से महान् धन ऐश्वर्य के बदले तेरा परित्याग नहीं किया जा सकता । न हजार के बदले, न दस हजार के बदले और न असंख्य धनभण्डार के बदले ॥९॥

२९२—प्रगाथः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१०॥

पदार्थ—(वस्यान्) वसुमत् (इन्द्र) हे ईश्वर ! (असि) है (मे) मेरे (पितुः) पिता से (उत) और (भ्रातुः) भाई से (अभुञ्जतः) रक्षा नहीं कर सकने वाले (माता) माता (च) और (मे) मुझे (छदयथः) रक्षा करता है (समा) समान (वसो) हे सब के बसाने वाले (वसुत्वनाय) निवास के लिये (राधसे) धन के लिए ॥१०॥

भावार्थ—हे सर्वसम्पत्ति के स्वामी परमेश्वर ! तू हमारे पिता और न रक्षा करने वाले भाई से भी अधिक मेरी रक्षा करने वाला है । तू मेरी माता है । मेरी रक्षा और ऋद्धि के लिये समान रूप से रक्षित करते हो ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

२९३—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

३१ २र ३ १ २ ३ १ २
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥१॥

पदार्थ—(इमे) ये (इन्द्राय) ऐश्वर्यशाली के लिए (सुन्विरे) सम्पन्न किए गये हैं (सोमासः) सोम (दध्याशिरः) दध्यादि से युक्त (तान्) उनको (आ) भली प्रकार से (मदाय) हर्ष के लिये (वज्रहस्त) हे शस्त्रधारी (पीतये) पीने के लिए (हरिभ्यां) हाव भाव से (याहि) प्राप्त हो (ओकः) गृह पर ॥१॥

भावार्थ—दही आदि से युक्त ये सोम ऐश्वर्यशाली राजा के लिए तैयार किये जाते हैं । हे शस्त्रधारी राजन् ! तू अपने हर्ष के लिये और उनको पीने के लिये हाव-भाव के साथ हमारे गृहों को प्राप्त हो ॥१॥

२९४—वामदेवः । विश्वामित्रो वा बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥२॥

पदार्थ—(इमे) ये (इन्द्र) हे ईश्वर ! (मदाय) सुख के लिये (ते) तेरे (सोमाः) सोमपदार्थ (चिकित्रे) चिकित्सा करते हैं, (उक्थिनः) स्तुति करने वाले के (मधोः) मधुरभाषी (पपानः) रक्षा करता हुआ (उप) समीप (नः) हमारे (गिरः) स्तुतियां (शृणु) सुन (रास्व) दे (स्तोत्राय) स्तुति के लिये (गिर्वणः) हे स्तुत्य ॥२॥

भावार्थ—हे स्तुतिवादियों से स्तुत्य परमेश्वर ! मधुरभाषी स्तोता के सुख के लिए सोम पदार्थ चिकित्सा करते हैं । तेरी स्तुति के लिये बोली गई हमारी वाणियों को तू सुन । हमारी रक्षा करता हुआ हमें हमारा अभीष्ट प्रदान कर ॥२॥

२९५—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
१ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुझे (सबर्दुघाम्) दूध देनेवाली (हुवे) पुकारता हूँ (गायत्रवेपसम्) प्रशस्त (इन्द्रम्) ईश्वर को (धेनुं) धेनु के समान (सुदुघाम्) सुख से दोहने योग्य (अन्याम्) विलक्षण (इषम्) चाहने योग्य (उरुधाराम्) अनेक प्रकार की धारा वाली (अरङ्कृतम्) पर्याप्त रूप से पूर्ण करने वाले ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पर्याप्त रूप से पूर्ण करने वाले तुझ ऐश्वर्यशाली को दुग्ध देनेवाली प्रशस्तगति विलक्षण, अनेक प्रकार की धारा वाली तथा चाहने योग्य धेनु के समान पुकारता हूँ ॥३॥

२९६—नोधा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।
१ २र ३ १ २र ३ २३ २ ३ १ २र
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥४॥

पदार्थ—(न) नहीं (त्वा) तेरी व्यापकता को (बृहन्तः) महान (अद्रयः) पर्वत (वरन्ते) रोक सकते (इन्द्र) हे ईश्वर ! (वीडवः) दृढ़ [मजबूत] (यत्) जब तू (शिक्षसि) देना चाहता है (स्तुवते) स्तुति करने वाले को (मावते) मेरे समान (वसु) सम्पत्ति (नकिः) कोई नहीं (तत्) उस धन के देने में (आमिनाति) बाधा कर सकता (ते) तुझे ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! महान् से महान् और मजबूत से मजबूत पर्वत भी तेरे लिये कोई रोक नहीं है । हे प्रभो ! जब तू मेरे समान स्तुति करने वाले को सम्पत्ति देना चाहता है तो उसे कोई भी रोक नहीं सकता ॥४॥

२९७—मेध्यातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २
अयं यः पुरो बिभिनत्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥५॥

पदार्थ—(कः) कौन (ईम्) इसको (वेद) जानता है (सुते) उत्पन्न जगत् में (सचा) साथ (पिबन्तम्) भोग करते हुए (कत्) कितनी (वयः) आयु को (दधे) धारण करता है (अयम्) यह (यः) जो (पुरः) समूहों का (बिभिनत्ति) नष्ट करता है (ओजसा) अपने तेज से (मन्दानः) आनन्दस्वरूप (शिप्री) द्यु और पृथिवी लोक का स्वामी (अन्धसः) अन्धकार के ॥५॥

भावार्थ—इस उत्पन्न जगत् में शरीर के साथ भोगों को भोगते हुए जीव को "वह कितनी आयु धारण करता है" यह कौन जान सकता है ?

उत्तर—जो आनन्दस्वरूप द्यु और पृथिवी लोक का स्वामी परमेश्वर अपने तेज से अन्धकार के खण्डों का भेदन करता है, वही जानता है ॥५॥

२९८—वामदेवः । बृहती । इन्द्रः ।

१२ ३ १२ ३२ ३ २३ १२ ३ १ २
यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जब (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (शासः) दण्डद्वारा शिक्षा देता है (अव्रतम्) नियम का पालन न करने वाले को (च्यावया) नीचे गिराता है (सदसः) लोक से (परि) सब प्रकार से (अस्माकम्) हमारे (अंशुं) ज्ञान-प्रकाश को (मघवन्) सब सम्पदाओं के स्वामी (पुरुस्पृहं) सर्वथा चाहने योग्य (वसव्ये) वासयोग्य शरीर में (अधि बर्हय) बढ़ा ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जब तू नियम को पालन न करने वाले को दण्ड द्वारा शिक्षा देता है तो उच्च स्थान 'लोक' से नीचे कर देता है । हे सकल सम्पदाओं के स्वामी भगवन् ! सर्वथा चाहने योग्य ज्ञान प्रकाश को हमारे निवास योग्य शरीर में बढ़ा ॥६॥

२९९—तौरश्रवाः । बृहती । बहवः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
२ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥७॥

पदार्थ—(त्वष्टा) सब दुखों का नाश करने वाला (नः) हमारे (दैव्यम्) वैदिक (वचः) वचन की (पर्जन्यः) मेघ के समान सब का उपकार करने वाला (ब्रह्मणस्पतिः) वेदों का स्वामी (पुत्रैः) पुत्रों और (भ्रातृभिः) भाइयों के साथ (अदितिः) अखण्डस्वरूप ईश्वर (नु) शीघ्र (पातु) रक्षा करे (नः) हमारे (दुष्टरं) नष्ट नहीं होने वाले (त्रामणम्) रक्षा के साधन (वचः) वचन भी ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब दुःखों का नाश करने वाला, मेघ के समान सब का उपकारक वेदों का स्वामी ईश्वर, वेद वचन तथा कभी नष्ट न होने वाले, और रक्षा के साधन, हमारे वचन की भी शीघ्र रक्षा करे । वही प्रभु हमारे पुत्रों और भाइयों का भी रक्षक हो ॥७॥

३००—वालखिल्याः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
२ ३१ २र २३ २उ ३ १ २ ३१ २
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८॥

पदार्थ—(कदाचन) कभी भी [तू] (स्तरीः) हिंसक किसी का विध्वंसक (न) नहीं (असि) हैं (इन्द्र) हे ईश्वर (सश्चसि) तू देता है इस जन्म में (दाशुषे) दान करने वाले यजमान को [कर्मफल] (उप-उप इन्नु) समीप ही समीप में ही (मघवन्) हे दान देने वाले ! (भूयः) दूसरे जन्म में (इन्नु) भी (ते) तेरा (दानम्) कर्मफलों का दान (देवस्य) जीव के साथ (पृच्यते) सम्बन्ध करता है ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हिंसक नहीं है, किन्तु परोपकार करने वाले को तू इस जन्म में भी और दूसरे जन्म में भी कर्मफल का दान अवश्य देता है ॥८॥

३०१—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥९॥

पदार्थ—(युङ्क्ष्वा) जोड़ता है (हि) निश्चय (वृत्रहन्तम) हे पाप के अत्यन्त विनाशक (हरी) अग्नि और वायु को (इन्द्र) हे ईश्वर ! (परावतः) दूर भाववाले (अर्वाचीनः) नूतन (मघवन्) हे प्रभो ! (सोमपीतये) संसार की रक्षा के लिये (उग्रः) तेजस्वी (ऋष्वेभिः) शक्तियों से (आगहि) प्राप्त हो ॥९॥

भावार्थ—हे पाप के अत्यन्त विनाशक ! सर्वशक्ति ! ! परम धनवान् ! ! ! परमेश्वर ! तू अपने गुणों से दूर भाववाले वायु और अग्नि को संसार की रक्षा के लिए जोड़ता है । हे प्रभो ! तू अपने महान् गुणों से सदा ही नूतन के समान हमें प्राप्त हो ॥९॥

३०२—नृमेधाः । बृहती । इन्द्रः ।

३ ३ १ २र ३ १ २
त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन् भूर्णयः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स इन्द्र स्तोमवाहसः इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१०॥

पदार्थ—(त्वाम्) तेरी (इदा) आज और (ह्यः) गत कल (नरः) स्तुति करने वाले (अपीप्यन्) स्तुति करते हैं ! (वज्रिन्) हे न्यायरूपदण्ड के धारण करने वाले ! (भूर्णयः) कर्मकाण्डी (सः) प्रसिद्ध (इन्द्र) हे ईश्वर ! (स्तोमवाहसः) आर्य स्तोत्र आदि के जानने वाले (इह) इस यज्ञ में (श्रुधि) सुन (उप) समीप से (स्वसरम्) मानस भवन में (आगहि) दर्शन दे ॥१०॥

भावार्थ—हे न्यायरूपदण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! कर्मकाण्डी और आर्य स्तोत्र आदि के जानने वाले स्तोता [स्तुति करने वाले] लोग सर्वदा तेरी ही स्तुति करते हैं । तू मेरे मानस भवन में दर्शन दे और यहां ही मेरी पुकार सुन ॥१०॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

३०३—वसिष्ठः । बृहती । उषाः ।

१२ ३ २ १ २ ३ २ ३ २
प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

पदार्थ—(प्रति उ अदर्शि) दीखता है (आयती) आती हुई (उच्छन्ती) दूर करती हुई (दुहिता) कन्या के समान (दिवः) सूर्य की (अप उ) दूर (मही) महान् (वृणुते) दूर करती है (चक्षुषा) तेज से (तमः) अन्धकार (ज्योतिः) प्रकाश (कृणोति) करती है (सूनरी) उषा ॥१॥

भावार्थ—अन्धकार को दूर करने वाली, प्राणिमात्र को राह दिखाने वाली सूर्य की कन्या उषा दिखाई देती है । वह अपने तेज से घने अन्धकार को दूर भगाती और प्रकाश भी करती है ॥१॥

३०४—वसिष्ठः । बृहती । अश्विनौ ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ॥२॥

पदार्थ—(इमा उ) ये (वां) तुम दोनों को (दिविष्टये) दिव्यगुण चाहनेवाले (उस्रा) ज्ञान को आश्रय देने वाले (हवन्ते) पुकारते हैं (अश्विनौ) हे अध्यापक ! और उपदेशक ! ! (अयं) यह (वाम्) तुम दोनों को (अह्व) आह्वान करता हूँ (अवसे) उद्देश्य के लिये (शचीवसू) हे अनेक ज्ञान और कर्मों को बसानेवाले (विशं विशं) प्रत्येक प्राणी के पास (हि) निश्चय ही (गच्छथः) जाते हो ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक ! और उपदेशक ! ! दिव्यगुण चाहने वाले सभी लोग ज्ञान को आश्रय देनेवाले तुम दोनों को पुकारते हैं । मैं भी तुम दोनों का आह्वान करता हूं । तुम लोग ज्ञान का उपदेश देने के लिये प्रजा प्रजा के पास जाते हो ॥२॥

३०५—अश्विनौ वैवस्वतौ, पौर आत्रेय इति माधवभरतयोः मतम् ।
बृहती । अश्विनौ ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
घ्नता वामश्मया क्षपमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३॥

पदार्थ—(कुष्ठः) कुष्ठरोगवाला (कः) कोई (वाम्) दोनों (अश्विनौ) भिषग् स्त्री पुरुष (तपानः) तप करता हुआ (देवा) दिव्य गुणों वाले (मर्त्यः) मनुष्य (घ्नता) अनेक रोगों के नाश करने वाले (वाम्) दोनों को (अश्मया) शक्तिवाले (क्षयमाणः) रोगों से क्षीण होता हुआ (अंशुना) ज्ञान से (इत्थम्) ऐसा (उ) ही (आवु) अनन्तर (अन्यथा) रोगमुक्त होता है ।।३।।

भावार्थ—हे भिषक् स्त्री और पुरुष !! कुष्ठयुक्त जब कोई मनुष्य ज्ञानयुक्त, रोग को निवारण करने वाले, शक्तिशाली तुमको प्राप्त होता है तब नियम पर चलता हुआ रोग से निवृत्त होकर "लौटता" है इसमें कोई सन्देह नहीं ।।३।।

३०६—प्रस्कण्वः । वृहती । अश्विनौ ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोतो दिविष्टिषु ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तमश्विना पिवतं तिरो अह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ।।४।।

पदार्थ—(अयं) यह (वां) तुम्हारे लिए (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर (सुतः) तैयार किया गया है (सोमः) भोग्य पदार्थ (दिविष्टिषु) यज्ञों में (तम्) उसको (अश्विना) हे विद्वान् स्त्रीपुरुषा ! (पिवतम्) सेवन करो (तिरः) अत्यन्त (अह्न्यम्) दैनिक (धत्तम्) प्राप्त करावो (रत्नानि) रत्नादि पदार्थ (दाशुषे) यजमान के लिए ।। ४ ।।

भावार्थ—हे विद्वान् स्त्री पुरुष! तुम्हारे लिए यज्ञों में यह दैनिक भोग पदार्थ तैयार किया गया है । तुम दोनों हमें भली भांति सेवन और यजमान के लिए उत्तम रत्नादि पदार्थ प्राप्त करावो ।। ४ ।।

३०७—*मेधातिथि मेध्यातिथिर्वा । प्रगाथः इति माधवभरतयोः । वृहती । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
भूर्णि मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ।।५ ।।

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुझको (सोमस्य) सोम के (गल्दया) उपभोग से (सदा) सदा (याचन्) याचना करता हुआ (अहं) मैं (ज्या) प्रशसनीय स्तुति से (भूर्णि) शक्ति धारण करनेवाले (मृगं) सिंह के समान (न) नहीं (सवनेषु) यज्ञों में (चुक्रुधं) क्रुद्ध करूँ (कः) कौन (ईशानं) स्वामी को (न) नहीं (याचिषत्) याचना करता है ।।५ ।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! स्तुति से सदा आप के वरदान की याचना करता हुआ मैं यज्ञों में सोम के उपभोग से सब में धारण करने वाले तुझको सिंह के समान क्रुद्ध न करूँ । कौन अपने स्वामी से याचना नहीं करता ।। ५ ।।

३०८—*देवातिथिः । वृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ।। ६ ।।

पदार्थ—(अध्वर्यो) हे संसारयज्ञ के सम्पादक (द्रावया) प्राप्त करा (त्वं) तू (सोमम्) आनन्द रस का (इन्द्रः) जीवात्मा (पिपासति) पीने की इच्छा करता है । (उप उ) समीप (नूनं) निश्चय (युयुजे) जोड़ता है (वृषणा) शक्तिशाली (हरी) प्राण-अपान को (आ च जगाम) उद्देश्य पर आ जाता है (वृत्रहा) विघ्नों का निवारक ।।६ ।।

भावार्थ—हे संसाररूप यज्ञ के सम्पादक परमेश्वर, तू आनन्द रस को प्राप्त करा । यह आत्मा उसका पान करना चाहता है । विघ्नों का नाशक यह शक्तिशाली प्राण और अपान को योग से जोड़ता है, तथा उद्देश्य पर आ जाता है ।। ६ ।।

३०९—*वसिष्ठः । वृहती । इन्द्रः ।*

३ २ ३ २उ ३२ ३ २ ३ १ २
अभीषतस्तदा भरेन्द्रज्यायः कनीयसः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरे भरे च हव्यः ।।७ ।।

पदार्थ—(अभीपतः) सब प्रकार से चाहते हुए मेरे (तत्) उस सम्पत्ति को (आभर) मुझे दे (इन्द्र!) हे ईश्वर ! (ज्यायः) श्रेष्ठ (बड़ा) तू (कनीयसः) और छोटे मुझे (पुरूवसुः) तू बहुत सम्पत्तियों का स्वामी है (हि) निश्चय (मघवन्) हे दाता ! (बभूविथ) हो (भरे भरे) प्रत्येक यज्ञ में (च) भी (हव्यः) तू ही आह्वान करने के योग्य है ।। ७ ।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अभिलाषा युक्त मुझ लघु जीव के जो श्रेष्ठ इष्ट पदार्थ हैं उन्हें दे । सकल सम्पदाओं का स्वामी तू प्रत्येक यज्ञ में पूजनीय है ।। ७ ।।

३१०—*वसिष्ठः । वृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २र
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ।।८।।

पदार्थ—(यत्) यदि (इन्द्र) हे ईश्वर ! (यावतः) जितने धन का (त्वम्) तू स्वामी है (एतावत्) इतने धन का (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी बन जाऊं तो (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले को (इत्) ही (दधिषे) पुष्ट करूं (रदावसो) हे दानदाता (न) नहीं (पापत्वाय) पाप कर्म के लिए (रंसिषम्) दूं ।।८।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! जितनी सम्पत्तियों का तू स्वामी है, यदि उतनी का मैं बन जाऊं तो उत्तमकार्य करने वालों का ही पोषण और पालन करूँ । हे मानदाता ! पाप कर्म के लिए मैं कभी दान न दूं ।।८।।

३११—*नृमेधाः । वृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ।।९।।

पदार्थ—(त्वं) तू (इन्द्र) हे ईश्वर ! (प्रतूर्तिषु) प्रत्येक सताये जाने के समयों में (अभि) सब प्रकार से अभिभव करते (विश्वा) सारी (स्पृधः)चढ़ाई के भावों का (असि) है (अशस्तिहा) तू अशान्ति पैदा करने वाले कामादि शत्रुओं का नाशक है (जनिता) संसार का उत्पादक है (वृत्रतूः) पापों का नाश करने वाला (असि) है (त्वं) तू (तूर्य्य) नाश कर (तरुष्यतः) हिंसक भावों का ।।९।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू संग्रामों में होने वाले समस्त चढ़ाई के भावों को दे । तू ही विघ्नों का नाशक तथा पापनिवारक है, हमारी हिंसक वृत्तियों को दूर कर ।।९।।

३१२—*नोधा । वृहती । इन्द्रः ।*

१ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ;
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ।।१०।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (यः) जो (रिरिक्षे) अतिरिक्त स्थित है (ओजसा) शक्ति से(दिवः) द्युलोक के (सदोभ्यः) स्थानों को (परि) व्याप्त कर (त्वा) तुझ को (न) नहीं (विव्याच) व्याप सकता है (रजः) लोक (इन्द्र) हे ईश्वर (पार्थिवम्) पार्थिव (अति) अत्यन्त (विश्वं) ब्रह्माण्ड का (ववक्षिथ) धारण करता है ।।१०।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू अपनी शक्ति से द्युलोक के सभी स्थानों में व्यापक होकर उससे भी पृथक् वर्त्तमान हो रहा है । पार्थिव लोक तेरी व्याप्ति को नहीं व्याप सकता । तू ही ब्रह्माण्ड को धारण करता ह ।।१०।।

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

३१३—*वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
असावि देवं गोऋजीकमन्धोन्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ।।२।।

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न किया है (देवम्) उतम (गोऋजीकम्) इन्द्रियों को सरलता देनेवाला (अन्धः अन्) नितरां (अस्मिन्) इस मे (इन्द्रः) आत्मा (जनुषा) जन्म से (उवोच) लग जाता है (बोधामसि) बोध करते हैं (त्वा) तुझको (हर्यश्व) ह अविनाशी और व्यापक (यज्ञैः) कर्मों से (बोधा) जानता है (नः) हमारे (स्तोमं) स्तोत्र को (अन्धसः) सोम के (मदेषु) सुखों में ।। १ ।।

भावार्थ—इन्द्रियों को सरलता देने वाले उत्तम अन्न को परमेश्वर ने उत्पन्न किया है । इसमें जीवात्मा की जन्म से प्रवृत्ति होती है । हे व्यापक परमेश्वर, हम उपासनादि कर्मों से तुझ को जानते हैं । सोम क आनन्दों में किए हुए स्तोत्र को तू जानता है ।।१।।

३१४—*वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ।। .।।

पदार्थ—(योनिः) स्थान [मञ्च] (त) तेरे लिए (इन्द्र) हे वीर ! (सदने) सभा में बैठने के लिए (अकारि) बना दिया गया है (तम्) उसका (आ) सब प्रकार (नृभिः) मनुष्यों के साथ (पुरुहूत) हे बहुतों से चाहने योग्य (प्रयाहि) प्राप्त कर (असः) होवे (यथा) जैसे (नः) हमारे (अविता) पालन करने वाले (वृधः) हमारी उन्नति करने वाला (चित्) भी (ददः) दे (वसूनि) अनेक प्रकार की सम्पत्तियों को (ममदः) प्रसन्न रहो (च) और (सोमैः) भोग्य पदार्थों द्वारा ।।२।।

भावार्थ—हे राष्ट्रपति ! सभा के स्थान में तेरा मञ्च बना दिया गया है । हे बहुमत प्राप्त करने वाले ! तू सहायक मनुष्यों के साथ उस मञ्च पर विराजमान हो, जिस प्रकार हमारी रक्षा और उन्नति कर सके, कर । हमें हमारी सम्पत्तियां दे और स्वयं भी भोग्य पदार्थों से तृप्त हो ।।२।।

३१५—गातुः, गृत्समद इति माधवभरतयोः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २३२३ १२३ २उ ३ १२ ३ १२ ३ १ २

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि, त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।

३ १ २ ३ १२ ३ २उ ३ २उ ३ २ ३ १ २३ २

महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः, सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥३॥

पदार्थ—(अदर्दः) छिन्नभिन्न करती है (उत्सम्) मेघ को (असृजः) खोल देती है (वि) विशेषरूप से (खानि) जल के मार्गों को (त्वम्) वह (अर्णवान्) जल संघातों को (बद्बधानान्) रुके हुए (अरम्णाः) गिराती है (महान्तम्) महान् (इन्द्र) बिजली (पर्वतम्) मेघ को (विवः) खोल देती है (यत्) जब (सृजत्) निकल चलती है (धारा) जल की धार (यत्) जब (दानवान्) रुकावट (अवहन्) दूर कर देती है तब ॥३॥

भावार्थ—बिजली मेघ को छिन्नभिन्न करती है। वह रुके हुए जल के मार्गों को साफ करती है जिससे जल बरसने लगता है।

वह जब महान् मेघ को तोड़मरोड़ कर रुकावट दूर कर देती है, तब जल की धारा बहने लगती है ॥३॥

३१६—पृथुर्वैन्यः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १२ ३ १२ ३ १२ ३ १२

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा, सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् ।

१ २ ३१ २र ३२उ ३ १ २ ३ १२

आ नो भर सुवितं यस्य कोना, तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥४॥

पदार्थ—(सुष्वाणासः) यज्ञ करते हुए (इन्द्र) हे ईश्वर (स्तुमसि) हम स्तुति करते हैं (त्वा) तेरी (सनिष्यन्तः) विभाजन करते हुए (तुविनृम्णः) हे अनन्तधनों के स्वामी (वाजम्) अन्न को (आ) सब प्रकार से (नः) हमें (भर) दे (सुवितम्) कल्याणकारी धन (यस्य) जो (कोना) शत्रुओं को (तना) पुत्र के साथ (त्मना) अपने (सह्याम) नीचा दिखावें (त्वोताः) तुझ से सुरक्षित रह कर ॥४॥

भावार्थ—हे अनन्त सम्पत्तियों के स्वामी ईश्वर ! यज्ञ करते हुए तथा अन्न का बंटवारा करते हुए हम तेरी स्तुति करते हैं। जो भी कल्याणकारी सम्पत्ति हो वही हमें दे। तेरी रक्षा के भरोसे हम लोग अपनी सन्तानों के साथ नीच शत्रुओं को नीचा दिखलावें ॥४॥

३१७—सप्तगुः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ २३१२ ३ १२ ३१२ ३१२

जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।

३ २उ ३ १२ ३ १२३१ २३१२र ३१२

विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥

पदार्थ—(जगृह्म) ग्रहण करते हैं (ते) तेरे (दक्षिणम्) दांये (इन्द्र) हे राजन् ! (हस्तम्) हाथ को [धामाश्रिता वयमिति भावः] (वसूयवः) सम्पत्ति पाने की इच्छा से युक्त (वसुपते-वसूनाम्) हे सम्पत्ति के स्वामी ! (विद्मा) हम जानते हैं (हि) जिस लिए (त्वा) तुझको (गोनाम्, गोपतिम्) गौ आदि पशुरूप सम्पत्ति के स्वामी (शूर) हे शक्तिमान् (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (चित्रम्) अद्भुत (वृषणम्) पोषणपालन वाले (रयिम्) धन को (दाः) दे ॥५॥

भावार्थ—हे हर प्रकार की सम्पत्तियों के स्वामी राजन् ! सम्पत्ति की कामना वाले हम लोग तेरी शरण में उपस्थित हैं। हे शक्तिमान् तुझको हम लोग गौ आदि पशुरूप सम्पत्ति का स्वामी जानते हैं। तू हमें अद्भुत और पालन-पोषण करने वाला धन देकर कृतार्थ कर ॥५॥

३१८—वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २३ २ ३ २

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) ईश्वर को (नरः) मनुष्य (नेमधिता) संग्राम या आपदाओं में (हवन्ते) पुकारते हैं (यत्) जो (पार्या) पार करने वाले (युनजते) युक्त होते हैं (धियः) बुद्धियों को (ताः) उन (शूरः) शक्तिमान् (नृषातो) यज्ञादि उत्तम काम में (श्रवसः) कीर्ति की (च) और (कामे) कामना में (आ) सब प्रकार से (गोमति, व्रजे) गोयुक्तशाला में (आभजा) भागी बना (त्वं) तू (नः) हमें ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य लोग संग्राम आदि के समय परमेश्वर को पुकारते हैं। जो आपदाओं से पार लगाने वाली बुद्धियां हैं उनको प्राप्त होते हैं। हे परमेश्वर ! शक्तिमान् तू यज्ञादि उत्तम कर्मों में, कीर्ति की कामना में तथा गायादि से युक्त गृहों में हमें भागी बना ॥६॥

३१९—गौरीवीतिः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रम्, प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ २ ३ १ २ ३ २

अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥७॥

पदार्थ—(वयः) पक्षियों के समान (सुपर्णाः) उत्तम परों वाले (उपसेदुः) उपस्थित होते हैं (इन्द्रम्) ईश्वर की शरण में (प्रियमेधा) बुद्धिमान् (ऋषयः) ऋषि लोग (नाधमानाः) याचना करते हुए (ध्वान्तम्) अज्ञानअन्धकार को (अपोर्णुहि) दूर कर (पूर्धि) पूर्ण कर (चक्षुः) ज्ञान की आंखें (मुमुग्धि) मुक्त कर दे (अस्मान्) हम लोगों को (निधया) बन्धन से (इव) समान (बद्धान्) बान्धे हुए के ॥७॥

भावार्थ—उत्तम पर वाले पक्षियों की भांति बुद्धिमान् ऋषिलोक याचना करते हुए परमेश्वर की शरण में उपस्थित होते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर ! अन्धकार को दूर कर, हमारे चक्षुओं को ज्ञान से पूर्ण कर और बेड़ी से बन्धे हुए के समान बन्धन में पड़े हुए हम लोगों को मुक्त कर ॥७॥

३२०—वेनः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं, हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं, यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥८॥

पदार्थ—(नाके) आनन्द स्वरूप में (सुपर्णम्) पक्षीरूप (यत्पतन्तम्) सब जगह व्यापक (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) चाहते हुए योगी पुरुष (अभ्यचक्षत) देखते हैं (त्वा) तुझको (हिरण्यपक्षम) प्रकाशस्वरूप (वरुणस्य) जीव के (दूतम्) दुःखनिवारक (यमस्य) सूर्य्य के (योनौ) मण्डल में भी (शकुनम्) शक्तिमान् (भुरण्युम्) व्यापक ॥८॥

भावार्थ—आनन्द में विराजमान व्यापक परमेश्वर को हृदय से चाहते हुए ज्ञानीजन साक्षात् करते है। वह परमेश्वर प्रकाशस्वरूप, जीव के दुःखों का निवारक, शक्तिमान्, सूर्य के मण्डल में भी स्थित तथा सर्वपालक है ॥८॥

३२१—नकुलः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥९॥

पदार्थ—(ब्रह्म) ब्रह्माण्ड (जज्ञानं) उत्पन्न होने वाले (प्रथमं) प्रथम (पुरस्तात्) प्रारम्भ काल में (विसीमतः) सीमा के साधन दिशाओं को (सुरुचः) अन्य प्रकाशों को (वेनः) परमेश्वर ने (आवः) विस्तृत किया (स) उसने (बुध्न्या) सूर्य से होने वाली दिशाओं और (उपमा) माप के साधन तथा (विष्ठाः) प्रकाशों को (सतः) वर्त्तमान (असतः) भविष्य में पैदा होने वाले भूतों के (योनिं) कारण प्रकृति को (विवः) विविध रूप से प्रकट किया ॥९॥

भावार्थ—सृष्टि के आरम्भ में प्रथम उत्पन्न होने वाले ब्रह्माण्ड (सौर मण्डल) को प्रकट किया। उसी ने अन्तरिक्ष में होने वाली इस सूर्य मण्डल के माप के साधन भूत तथा अपनी विशेषता से स्थित दिशाओं तथा सीमा में स्थित अन्य प्रकाशों को विस्तृत किया। इस प्रकार वर्तमान तथा असत् भविष्य में पैदा होने वाले भूतों के कारण भूत प्रकृति को उस परमेश्वर ने विविध रूप में प्रकट किया ॥९॥

३२२—सुहोत्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचाँस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥१०॥

पदार्थ—(अपूर्व्या) नवीन नवीन (पुरुतमानि) अधिक मात्रा में (अस्मै) इसके लिए (महे, वीराय) महान् शूर (तवसे) बलवान् (तुराय) क्षण मात्र में सब कुछ करने वाले (शंतमानि) शांति देने वाली (वचांसि) स्तुतियां (अस्मै) इस (स्थविराय) पुराण पुरुष परमेश्वर के लिए (तक्षुः) करते हैं उपासक ॥१०॥

भावार्थ—उपासना करने वाले पुरुष, सबसे बढ़कर शूर और बलवान्, क्षण मात्र में सब कुछ करने वाले, सबसे अधिक स्तुति करने के योग्य और न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले, इस सनातन पुरुष परमेश्वर की सुख-शांति देने वाली बहुत नयी नयी स्तुतियाँ करते हैं ॥ १० ॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

३२३—द्युतानः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठ दीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥१॥

पदार्थ—(अव) रोकने अर्थ में (द्रप्सः) रूप वाला (अंशुमतीम्) सौरमण्डल में (अतिष्ठत्) स्थित है (ईयानः) गतिशील (कृष्णः) आकर्षण करने वाला (दशभिः) दस (सहस्रैः) हजार (आवत्) रक्षित रखता है (तम्) उस (इन्द्रः) सूर्य (शच्या) शक्ति से (धमन्तम्) बहते हुए (अप) दूर (स्नीहितिम्) घातावघात करने वाले (नृमणाः) मनुष्यों के मनन का विषय (अध) नीचे (द्राः) प्रेरित करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—गतिशील लोकों का आकर्षण करने वाला तथा लोगों के मनन का विषय सूर्य दश सहस्र किरणों द्वारा नदी को प्राप्त होता हुआ स्थित हो रहा है। वह शक्ति से बहते हुए घातावघात करने वाले वायु को नीचे की तरफ प्रेरित करता है तथा रक्षित रखता है॥ १॥

३२४—द्युतानो मारुतः, तिरश्चीवांगिरसः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ [३ २उ ३ १ २
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि॥२॥

पदार्थ—(वृत्रस्य) पाप के (त्वा) तुझको (श्वसथात्) श्वास से (ईषमाणा) प्रभावित होकर (विश्वे) सब (देवा) इन्द्रियों ने (अजहुः) त्याग दिया (ये) जो (सखायः) मित्र थे केवल (मरुद्भिः) प्राण वायु से (इन्द्र) हे आत्मा (सख्यम्) मित्रता से (ते) तेरी (अस्तु) बनी रहे तो (अथ) बाद (इमाः) इन (विश्वाः) सब (पृतनाः) पाप की सेनाओं को (जयासि) जीतते हो॥ २॥

भावार्थ—हे जीवात्मा! जो इन्द्रियाँ तेरी मित्र होती हैं, वे भी पाप के श्वास से ही प्रभावित होकर तेरा साथ छोड़ देती हैं, केवल प्राण ही तेरे साथी होते हैं। जबसे ये साथ देते हैं तो पाप की सारी सेना को तू जीत लेता है॥ २॥

३२५—बृहदुक्थः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥३॥

पदार्थ—(विधुं) संसार के धारण करने वाले (दद्राणं) दूर करने वाले (समने) बुरी और अच्छी भावनाओं के संग्राम में (बहूनां) सारी (युवानं) अजर (सन्तम्) होते हुए (पलितः) वृद्ध (जगार) स्तुति करता है। (देवस्य) देव के (पश्य) देखो (काव्यं) कृति को (महित्वा) महत्त्व से पूर्ण (अद्या) आज (ममार) मर गया (सः) वह (ह्यः) गत दिन (समान) जीता है॥३॥

भावार्थ—वृद्ध मनुष्य, संसार के धारण करने वाले बुराई और भलाई के संग्राम में, बुराइयों को दूर भगाने वाले, अजर, विद्यमान परमेश्वर की स्तुति करता है। उस परम देव की महत्त्वपूर्ण कृति को देखो कि जो कल मर गया था आज फिर पैदा होता है अथवा जो कल जीवित था आज मरता है॥ ३॥

३२६—तिरश्चीः, द्युतानो वा। त्रिष्टुप्। इन्द्रः।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः॥४॥

पदार्थ—(त्वं) तू (ह) निश्चय ही (त्यत्) वह (सप्तभ्यः) सात इन्द्रियों के लिए (जायमानः) पैदा हुआ (अशत्रुभ्यः) मित्रस्वरूप (अभवः) होता है (शत्रुः) शत्रु (इन्द्र) हे जीव! (गूढे) गूढ़ (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी लोक को (अन्वविन्दः) प्राप्त होता है (विभुमद्भ्यः) ऐश्वर्यशाली (भुवनेभ्यः) लोकों के लिए (रणं) संग्राम को (धाः) धारण करता है॥ ४॥

भावार्थ—हे जीव! तू मित्ररूप सात इन्द्रियों के लिए उत्पन्न होकर भोगों में फंसा हुआ तू उनका शत्रु बन जाता है। तू अत्यन्त गूढ़ द्यु और पृथिवी लोक में भी कर्मानुसार प्राप्त होता है। तू ऐश्वर्यशाली लोकों की प्राप्ति के लिए जीवन-संग्राम को धारण करता है॥ ४॥

३२७—वामदेवः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम्।
३ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे॥५॥

पदार्थ—(मेडिम्) वाणी के (न) समान स्तुति के योग्य (वज्रिणम्) न्याय दण्ड का धारण करने वाले (भृष्टिमन्तम्) प्रकाशस्वरूप (पुरुधस्मानं) संसार का पोषण-पालन करनेवाले (वृषभम्) हमारी कामनाओं की पूर्ति करनेवाले (स्थिरप्स्नुम्) संसार का संहार करनेवाले (करोषि) करता है (अर्यः) मानुषी प्रजा का (तरुषीः) आपत्तियों को पार करने की इच्छा वाला मैं (इन्द्र) हे ईश्वर! (द्युक्षम्) तू ज्ञानस्वरूप (वृत्रहणम्) अज्ञान के नाश करनेवाले (गृणीषे) स्तुति करता हूँ॥ ५॥

भावार्थ—हे ईश्वर! तू सारी मनुष्य प्रजा को आपत्तियों को पार करने की शक्ति देता है। तेरी सेवा करने वाला मैं तेरी स्तुति करता हूँ। तू सरस्वती के समान स्तुति करने के योग्य और न्यायरूप दण्ड का धारण करने वाला है। तू प्रकाशस्वरूप और हमारी कामनाओं को सफल करने वाला है। तू संसार का पालन-पोषण और संहार करता है। तू ज्ञानस्वरूप है, इसी लिए हमारे अज्ञानों का नाश करता है॥५॥

३२८—वसिष्ठः। विराट्। इन्द्रः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।
१ २ ३ १ २र ३ २
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः॥६॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम सब (महे) महान् (महे वृधे) मनुष्यों को उन्नत करने वाले (भरध्वम्) धारण करो (प्रचेतसे) सब से अधिक उत्तम ज्ञान वाले (प्र) उत्तम (सुमतिम्) मनोहर स्तुति (कृणुध्वम्) करो। (विशः) मनुष्य प्रजाओं को (पूर्वीः) सनातन (प्रचर) अपना बना (चर्षणिप्राः) हे मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले ईश्वर!॥ ६॥

भावार्थ—हे श्रेष्ठ पुरुषो! तुम सब मनुष्यों को उन्नत करने वाले परमेश्वर को (हृदय में) अपने ज्ञान में धारण करो। उस सबसे बड़े ज्ञानी की मनोहर स्तुति करो। हे मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभो! अपनी मनुष्य प्रजाओं को अपना सेवक बना॥ ६॥

३२९—विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि॥७॥

पदार्थ—(शुनम्) व्यापक (हुवेम) हम स्तुति करते हैं (मघवानम्) ऐश्वर्यवाले (इन्द्रम्) ईश्वर की (अस्मिन्) इस (भरे) ज्ञानयज्ञ में (नृतमम्) सब के महान् नेता (वाजसातौ) बल प्राप्त करानेवाले (शृण्वन्तम्) हमारा आह्वान सुनने वाले (उग्रम्) ओजस्वी (ऊतये) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए [पाप और पुण्य के] (समत्सु) संग्राम में (घ्नन्तम्) नाश करने वाले (वृत्राणि) पापों को (संजितम्) सम्यक् अधीन करनेवाले (धनानि) सम्पत्तियों को॥ ७॥

भावार्थ—हम लोग बल को प्राप्त करानेवाले, ज्ञानयज्ञ में सम्मिलित होकर सुखों के दाता, ऐश्वर्यों के स्वामी, पुण्यों और पापों के संग्रामों में हमारी रक्षा और तृप्ति के लिए पापों के नाश करने वाले, और संसार की सारी सम्पत्तियों को अपने अधीन रखनेवाले ईश्वर को पुकारते हैं॥ ७॥

३३०—वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि॥८॥

पदार्थ—(उदु) उत्कृष्ट (ब्रह्माणि) स्तोत्रों का (ऐरत) उच्चारण करो (श्रवस्या) सुनने योग्य मनोहर (इन्द्रम्) परमेश्वर का (समर्ये) ज्ञानयज्ञ में (महया) सत्कार कर (वसिष्ठ) हे जितेन्द्रिय पुरुष! (आ) सब प्रकार से (यः) जिस ईश्वर ने (विश्वानि) अखिल ब्रह्माण्ड का (श्रवसा) अपनी कीर्ति से (ततान) विस्तार किया है (उपश्रोता) सुननेवाला हो (मे) मेरे (ईवतः) अशेष गुणों के प्रकाशक (वचांसि) स्तुतियों को॥ ८॥

भावार्थ—हे जितेन्द्रिय पुरुष! ज्ञानयज्ञ में उस ईश्वर की मनोहर स्तुति का उच्चारण और सत्कार कर, जिसने अपनी कीर्ति से युक्त सारे संसार का विस्तार किया है। उसके सारे गुणों के वर्णन करने वाले मेरे स्तोत्रों को वह अवश्य सुनें। वही मेरी कामना है॥ ८॥

३३१—गोरीवीतिः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात्।
३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु॥९॥

पदार्थ—(चक्रम्) सृष्टि-नियमचक्र (यत्) जो (अस्य) इस परमेश्वर का (अप्सु) लोकों में (आ) भली भांति (निषत्तं) विद्यमान है (उत) और (उ) पादपूरक (तत्) वह (अस्मै) इस संसार के लिए (मधु) जल को (इत्) ही (चच्छद्यात्) आच्छादित करता है। (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष में (अतिषितं) निगूढ़ हुआ (यत्) जो (ऊधः) रात्री (पयः) दूध और रस (गोषु) गायों में (अदधाः) धारण करता है (ओषधीषु) ओषधियों में॥ ९॥

भावार्थ—इस परमेश्वर का जो सृष्टि-नियम-चक्र है, वह समस्त लोकों में विद्यमान है, इस संसार के उपयोग के लिए जल को आच्छादित करता है अन्तरिक्ष में अत्यन्त निगूढ़ छिपा हुआ वह रात्रि, गायों, और ओषधियों, दुग्ध तथा रस को धारण करता है॥ ९॥

卐 **दशमी दशती समाप्त** 卐

३३२—अरिष्टनेमिः । त्रिष्टुप् । तार्क्ष्यः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

पदार्थ—(**त्यम्**) उस (**उ**) पादपूरक (**षु**) उत्तम (**वाजिनम्**) धन आदि के स्वामी (**देवजूतम्**) देवताओं से उपास्य (**सहोवानम्**) बल से युक्त (**तरुतारम्**) ताराओं के तारक (**रथानाम्**) रमणीय तारकाओं के (**अरिष्टनेमि**) अकुण्ठितशक्ति (**पृतनाजं**) बाधाओं के विजेता (**आशुं**) व्यापक (**स्वस्तये**) कल्याण के लिए (**तार्क्ष्यं**) ईश्वर को (**इह**) इस जगत् में (**आ हुवेम**) पुकारते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—उस धन आदि के दाता, विद्वानों द्वारा प्रसन्न किये हुए, रमणीय तारागणों के तारक, अकुण्ठितशक्ति, समस्त बाधाओं के विजेता, तथा व्यापक परमेश्वर को अपने कल्याण के लिए इस जगत् में हम पुकारते हैं ॥ १ ॥

३३३—गर्गः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—(**त्रातारम्**) पालन करनेवाले (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**अवितारं**) रक्षा करनेवाले (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**हवे हवे**) आह्वान के प्रत्येक अवसर पर (**सुहवं**) सुखपूर्वक पुकारने योग्य (**शूरम्**) बलवान् (**इन्द्रम्**) ईश्वर का (**हुवे**) आह्वान करता हूँ (**नु**) शीघ्र (**शक्रम्**) शक्तिमान् (**पुरुहूतम्**) बार बार प्रार्थना करने के योग्य (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**इदम्**) मेरे इस (**हविः**) स्तुति को (**मघवा**) महान् दानी (**वेतु**) जाने (**इन्द्रः**) ईश्वर ॥ २ ॥

भावार्थ—मैं पालन करनेवाले, प्रत्येक अवसर पर पुकारने के योग्य, बलवान् शक्तिमान् और बार बार प्रार्थना के योग्य ईश्वर की स्तुति करता हूँ। वह महान दानी ईश्वर मेरे इस यज्ञ स्तुति को जाने और स्वीकार करे ॥ २ ॥

३३४—विमदः, वसुकृद्वा । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां३ विव्रतानाम् ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधाभुवद्विसेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥३॥

पदार्थ—(**यजामहे**) सत्कार करते हैं (**इन्द्रं**) राजा का (**वज्रदक्षिणम्**) शस्त्र को धारण करने वाले (**हरीणाम्**) मनुष्यों के (**रथ्यं**) नेता (**विव्रतानाम्**) विविध कर्मों वाले (**प्र**) उत्तम (**श्मश्रुभिः**) रोमों से (**दोधुवत्**) कंपा देता है (**उर्ध्वधा**) सब से बड़ा (**भुवत्**) है (**वि**) विशेष (**सेनाभिः**) सेनाओं से (**भयमानः**) डराता हुआ (**राधसा**) सम्पत्ति से ॥३॥

भावार्थ—शस्त्र को धारण करने वाले, अनेक कर्मोंवाले मनुष्यों के नेता उस राजा का हम सत्कार करते हैं, जो सेना और धन से शत्रुओं को डराता हुआ दाढ़ियों के हिलाने से सब को कंपा देता है और सर्वोपरि स्थित होता है ॥३॥

३३५—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ २३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥४॥

पदार्थ—(**सत्राहणम्**) सत्य से असत्य का नाश करने वाला (**दाधृषिम्**) अधर्म को दूर भगानेवाले (**तुम्रम्**) अच्छे कार्य करने के लिए सब की प्रेरणा करने वाला (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**महाम्**) महान् (**अपारम्**) अनन्त (**वृषभम्**) कामनाओं को पूरा करनेवाला (**सुवज्रम्**) सुन्दर न्यायरूप दण्ड का धारी (**हन्ता**) नाश करने वाला (**यः**) जो (**वृत्रम्**) अज्ञान और अधर्म को (**सनिता**) दाता (**उत**) और (**वाजम्**) बल का (**दाता**) देने वाला (**मघानि**) सम्पत्तियों का (**मघवा**) ऐश्वर्यों का स्वामी (**सुराधाः**) उत्तम धन वाला ॥४॥

भावार्थ—हम लोग सत्य से असत्य को जीतनेवाले, अधर्म को दूर करने वाले, सब के प्रेरक, अपार और महान् सुख के दाता, उत्तम न्यायकारी उस इन्द्र की स्तुति करते हैं जो अज्ञान का निवारक सम्पत्ति का दाता, बल का दाता, धनों का दाता, उत्तम सम्पत्ति शाली तथा ऐश्वर्यों का स्वामी है ॥४॥

३३६—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभीष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥५॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**नः**) हमें (**वनुष्यन्**) दुःख देने की इच्छा करता हुआ (**अभिदाति**) हमें दास बनाता है (**मर्त्तः**) मनुष्य (**उगणा**) बहुत गुणवाली प्रजा को (**वा**) अथवा (**मन्यमानः**) अपने आप को मनाता हुआ [अभिमान्य] (**तुरः**) पीड़ा देता है (**क्षिधी**) नाश कर (**युधा**) संग्राम में (**शवसा**) बल से (**वा**) अथवा (**तम्**) उसका (**इन्द्र**) हे राजन् (**अभीष्याम**) सामना करते हैं (**वृषमणः**) हे कल्याणबुद्धि (**त्वोताः**) तुझ से सुरक्षित हुए ॥५॥

भावार्थ—हे ! राजन् जो अभिमानी, हिंसक मनुष्य हमें तथा उत्कृष्ट गुण वाली प्रजा को पीड़ा देता हुआ संमुख आता है, तू उसे नष्ट कर। तुम्हारी रक्षा में रहते हुए हम बल और युद्ध से उसको दबावें ॥५॥

३३७—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥६॥

पदार्थ—(**यम्**) जिसका (**वृत्रेषु**) उपद्रवों के समय में (**क्षितयः**) मनुष्य (**स्पर्धमानाः**) परस्पर एक दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले (**यम्**) जिस का (**युक्तेषु**) योगयुक्त अवस्था में (**तुरयन्तः**) योग के उपद्रवों को जीतने के लिए शीघ्रता करनेवाले (**हवन्ते**) आह्वान करते हैं (**यम्**) जिसका (**शूरसातौ**) संग्राम उपस्थित होने पर (**यम्**) जिसका (**अपामुपज्मन्**) जलों की आवश्यकता के समय पर (**यम्**) जिसकी (**विप्रासः**) ज्ञानी पुरुष (**वाजयन्ते**) स्तुति करते हैं (**सः**) वह (**इन्द्रः**) इन्द्र है ॥६॥

भावार्थ—इन्द्र कौन है ? उपद्रवों के उपस्थित होने पर आपस में एक दूसरे को जीतने की इच्छा करते हुए, मनुष्य जिसको पुकारते हैं, योग से युक्त होकर, योग के उपद्रवों को दूर करने की धुन में मग्न होकर योगी पुरुष जिसकी पुकार करते हैं, संग्रामों में वीर योद्धा जिसकी सहायता की आशा करते हैं, जल की आवश्यकता के समय किसान जिसको पुकारते हैं और ज्ञानी जन जिसकी स्तुति करते हैं, वही इन्द्र है ॥६॥

३३८—विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रापर्वतौ ।

१ २ ३ १ २र
इन्द्रापर्वता बृहता रथेन
३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा
१ २ ३ १ २र ३ १ २
वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७॥

पदार्थ—(**इन्द्रापर्वता**) विद्युत्, 'बिजली' और मेघ (**बृहता**) बड़े (**रथेन**) रथ के समान साधनरूप जल की वर्षा के द्वारा (**वामीः**) चाहने योग्य (**इषः**) अन्न आदि उत्तम-उत्तम भोग के पदार्थ (**आवहतम्**) हमें प्राप्त कराते हैं (**सुवीराः**) वीर सन्तानों वाले (**वीतम्**) प्राप्त करते हैं (**हव्यानि**) हवन की सामग्रियों को 'वायु के द्वारा' (**अध्वरेषु**) यज्ञों में दी गई (**देवाः**) दिव्य गुणोंवाले (**वर्धेथाम्**) बढ़ते हैं (**गीर्भिः**) गर्जन और कड़क रूपी वाणियों से (**इडया**) यज्ञीय अन्न से (**मदन्ता**) उन दोनों की तृप्ति होती है ॥७॥

भावार्थ—विद्युत् और मेघ बड़े रथ के समान वर्षा के द्वारा चाहने योग्य अन्न को प्राप्त कराते हैं। जिसमे हम उत्तम सन्तान वाले होते हैं, तीव्र गुण वाले पदार्थ यज्ञों में दी हुई आहुतियों को ग्रहण करें, तथा कड़क आदि से सस्यादियों को बढ़ावें मेघ और विद्युत् यज्ञीय 'आहुति दिए हुए' अन्न से शक्तिशाली होते हैं ॥७॥

३३९—रेणुः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात् ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विष्वक् तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्राय**) ईश्वर के लिए (**गिरः**) स्तुतियों (**अनिशितसर्गाः**) निरन्तर प्रारम्भ रहने वाली 'पूरी' (**अपः**) जल की वर्षा के लिए (**प्रैरयत्**) प्रेरणा करता है (**सगरस्य**) अन्तरिक्ष के (**बुध्नात्**) स्थान से (**यः**)जो ईश्वर (**अक्षेण**) धुरा से (**चक्रियौ**) चक्कों को (**इव**) जैसे (**शचीभिः**) अपने कर्मों से (**विष्वक्**) चारों तरफ से (**तस्तम्भ**) दृढ़ता से धारण कर रखता है (**पृथिवीम्**) भूमि को (**उत**) और (**द्याम्**) सूर्यलोक को ॥८॥

भावार्थ—जो ईश्वर आकाश से जलों की वर्षा की प्रेरणा करता है, जिसने धुरे से पहियों के समान अपने अनन्त कर्मों से भूमि और सूर्यलोक को चारों तरफ से स्थिर बना दिया है, उस ईश्वर के लिए बार बार स्तुतियाँ होवें ॥ ८ ॥

३४०—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २
प्र त्वा सखायः सख्या ववृत्यु -
३२ ३१२ ३१२
स्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः ।
३१२र३ १२ ३२ ३१ २र ३१ २र
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥९॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुझको (सखायः) उपासक लोग (सख्या) उपासना रूप मित्रता से (ववृत्युः) अपने अनुकूल करते हैं (तिरः) तू हमारे समीप ही है किन्तु अज्ञात है (पुरू अर्णवान्) विस्तृत आकाश में (चित्) ही (जगम्याः) तू सूक्ष्म गति से व्यापक हो रहा है (पितुर्न) पिता के समान (पातव्) रक्षा (आदधीत) करे (वेधाः) विधाता तू (अस्मिन् क्षये) इसी शरीर में (प्रतराम्) उत्तम (दीद्यानः) प्रकाशमान होता हुआ दीर्घायु दे ॥९॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उपासक लोग उपासना रूप मित्रता से तुझ को अपने अनुकूल करते हैं। हमारी अज्ञानता के कारण तू हमें दूर प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में तू विस्तृत ब्रह्माण्ड में व्यापक है। तू सृष्टिकर्ता है, इसलिए पिता के समान रक्षक है। तू स्वयं प्रकाशमान होता हुआ हमें दीर्घ जीवन प्रदान कर ॥९॥

३४१—गोतमः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः

२ ३ १ २ ३ २र १ २ ३ ३ १ २ ३२
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
३ १२ ३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ ३ १ २
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१०॥

पदार्थ—(कः) सुखस्वरूप (अद्य)इस समय (युङ्क्ते) जोड़ता है (धुरि) धुरे में (गाः) वाणी को (ऋतस्य) ज्ञान के (शिमीवतः) अनेक कर्मों वाली (भामिनो) अर्थ को प्रकाशित करने वाली(दुर्हृणायून्) न त्यागने योग्य (आसन्) मुख में (एषाम्) इनका (अप्सुवाहः) आकाश में स्थित (मयोभून्) सुखदायक (यः) जो (एषाम्) इनकी (भृत्याम्) पुष्टि को (ऋणधत्) करता है (स) वह (जीवात्) जीवन धारण करता है ॥१०॥

भावार्थ—सुखस्वरूप परमेश्वर ने अब भी ज्ञान के धुरे में कर्मभूमि, अर्थ का प्रकाश करने वाली, लोकों में प्रचलित सुखकारी दुर्हर वाणी को जो रखा है, जो इन वाणियों को तथा इन की भरण सामग्री को अपने मुख में रखता है वह जीवन प्राप्त करता है ॥१०॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

३४२—मधुच्छंदा । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

पदार्थ—(गायन्ति) गाते हैं (त्वा) तुझको (गायत्रिणः) उद्गाता (अर्चन्ति) स्तुति करते हैं (अर्कम्) पूज्य तेरी (अर्किणः) ऋग्वेद के जानने वाले (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी जन (त्वा) तुझको (शतक्रतो) हे अनन्त ज्ञानवाले (उत) उत्तम (वंशमिव) वंश के समान (येमिरे) तेरा कीर्त्तन करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! सामवेदी तेरा गान करते हैं, ऋग्वेदी तेरी स्तुति करते हैं। ब्रह्मज्ञानी तेरा कीर्तन करते हैं, जसे [कवि] किसी के वंश का ॥१॥

३४३—जेता । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३१ २ ३१२ ३ १२
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
३ १२ ३ २३ १२३ १२३ १२
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रं) ईश्वर को (विश्वाः) सब (अवीवृधन्) अधिक गान करते हैं (समुद्रव्यचसम्) आकाश के समान व्यापक (गिरः) स्तुतियां (रथीतमम्) नेता (रथीनाम्) नेताओं के (वाजानाम्) बलों के (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक (पतिम्) स्वामी ॥२॥

भावार्थ—सारी स्तुतियां आकाश के समान व्यापक, नेताओं के नेता, बलों के स्वामी और सज्जनों के रक्षक परमात्मा की स्तुति करती हैं ॥२॥

३४४—गोतमः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

३१२ ३१२३ २ ३१२ ३१२
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३क २र ३ १२ ३२ ३१२
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥३॥

पदार्थ—(इमम्) इस (इन्द्र) हे जीव ! (सुतं) उत्पन्न जगत् का (पिब) भोगकर (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ (अमर्त्यं) मृत्युरहित (मदम्) आनन्द का। (शुक्रस्य) शुद्धस्वरूप (त्वा) तुझको (अभ्यक्षरन्) सुख की वर्षा करें (धाराः) वेदवाणियां (ऋतस्य) परमेश्वर की (सादने) संसार में ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! इस उत्पन्न जगत् का भोग कर। पुनः नित्य ज्येष्ठ आनन्द का उपभोग कर। संसार में शुद्धस्वरूप परमेश्वर की वेदवाणियां तुझ पर सुख की वर्षा करें ॥३॥

३४५—अत्रिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३२उ ३ १ २
यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (इन्द्र) हे राजन् (चित्र) अद्भुत (मे) मेरे (इह) इस घर में (नास्ति) नहीं है (त्वादातम्) जिसका तू दाता है (अद्रिवः) हे न्याय-रूप दण्ड के धारण करनेवाले (राधः) सम्पत्ति को (तत्) उस (नः) हमारे लिए (विदद्वसः) हे धन के स्वामी ! (उभया, हस्त्या) दोनों हाथों से (आभर) दे ॥४॥

भावार्थ—हे अद्भुत सब सम्पत्ति के स्वामी, न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले, राजन् ! जिस सम्पत्ति का तू ही दाता है, तथा जो हमारे समीप नहीं है, उसे अपने दोनों हाथों से हमें दे ॥४॥

३४६—तिरश्चिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्य्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥५॥

पदार्थ—(श्रुधी) सुन (हवं) स्तुति [पुकार] (तिरश्च्या) अन्तर्हित भाव के ज्ञाता महा ज्ञानी को (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यः) जो (त्वा) तुझ [तेरी] (सपर्यति) पूजा करता है (सुवीर्य्यस्य) उत्तम बलवाले (गोमतः) गौ आदि से युक्त (रायः) धन (पूर्धि) दे (महान्) महान् (असि) है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महान् है, जो तेरी उपासना करता है उस महा-ज्ञानी की स्तुति को सुन, गौ आदि से युक्त उत्तम बलशाली धन दे ॥५॥

३४७—गोतमः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्य्यो न रश्मिभिः ॥६॥

पदार्थ—(असावि) तय्यार किया हुआ है (सोमः) सोम (इन्द्र) हे राजन् (ते) तेरे लिए (शविष्ठ) हे बलशाली (धृष्णो) शत्रुनाशक (आगहि) आ (आ) सब प्रकार से (त्वा) तेरी (पृणक्तु) पूर्ण करे (इन्द्रियम्) इन्द्रियों को (रजः) पृथिवी लोक को (सूर्य्यो, न) सूर्य के समान (रश्मिभिः) किरणों से ॥६॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली शत्रुनाशक राजन् ! तू, आ, तेरे लिए सोम तैयार है, जैसे अपनी किरणों से सूर्य पृथ्वी को पूर्ण करता है, वैसे ही तू अपनी इन्द्रियों को परिपूर्ण कर ॥६॥

३४८—नीपातिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (याहि) प्राप्त कर (हरिभिः) अज्ञाननिवारक ज्ञानों से (उप) समीप (कण्वस्य) मेधावी पुरुष के (सुष्टुतिम्) स्तुति को (दिवः) द्युलोक के (अमुष्य) इस (शासतः) शासन करने वाले (दिवं) दिव्य गुण को (यय) प्राप्त करूं (दिवावसो) हे उत्तम गुणों के आधार ॥७॥

भावार्थ—हे दिव्य गुणों के आधार परमेश्वर, अज्ञान-निवारक अपने ज्ञानों के द्वारा मेधावी पुरुष के समान हमारी स्तुति को अच्छी प्रकार स्वीकार कर। द्युलोक के शासक इस तुझ प्रभु के दिव्य गुणों को मैं प्राप्त करूं ॥७॥

३४९—तिरश्चिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२
आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २उ ३ १२
अभि त्वा समनूषत गोवो वत्सं न धेनवः ॥८॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (त्वा) तेरे (गिरः) स्तुतियां (रथीरिव) जैसे रथ का स्वामी रथ पर (अस्थुः) आश्रय में उपस्थित है (सुतेषु) यज्ञों में

(गिर्वणः) हे वेदमन्त्रों से स्तुति के योग्य ! (अभि) सब ओर से (त्वा) तेरी (समनूषत) स्तुति करते हैं [स्तावक] (वत्सं, न) बछड़े को (धेनवः) गायों के समान ॥८॥

भावार्थ—हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! प्रत्येक यज्ञ में हमारी स्तुतियाँ तेरे आश्रय में उसी तरह उपस्थित होती हैं जैसे रथ का स्वामी अपने रथ में। स्तुति करनेवाले भी तेरी स्तुति ऐसे ही करते हैं, जैसे गाय अपने बछड़े को हुँकार से बुलाती है ॥८॥

३५०—तिरश्चिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धराशीर्वान्ममत्तु ॥६॥

पदार्थ—हे स्तोता लोगो ! (एत, उ) आओ (नु) शीघ्र (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें। (शुद्धम्) शुद्धस्वरूप (शुद्धेन) पवित्र (साम्ना) साम गाने से (शुद्धैः) पवित्र (उक्थैः) स्तोत्रों से (वावृध्वांसम्) शक्ति में सब से महान् (शुद्धैः) हमारे पवित्र स्तोत्रों से (आशीर्वान्) आशीर्वाद देने वाला (ममत्तु) हम पर प्रसन्न होवे ॥६॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! शीघ्र आओ, हम एक साथ पवित्र सामगान से तथा पवित्र ऋग्वेद के स्तोत्रों से, अपनी शक्ति से महान् और शुद्धस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करें। वह हमारे पवित्र स्तोत्रों से प्रसन्न होकर हमें आशीर्वाद दें ॥६॥

३५१—शंयुः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो रयिं वो रयिंतमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
१ २ ३ १ २ र ३ १ २ ३ १ २
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो (रयिम्) धन को (वः) तुम लोगों को (रयिंतमः) सबसे उत्तम सम्पदा वाला (यः) जो (द्युम्नैः) यशों से (द्युम्नवत्तमः) अत्यन्त यशस्वी (सोमः) संसार (सुतः) उत्पन्न (सः) वह (इन्द्र) हे जीव ! (ते) तेरे लिये (अस्ति) है (स्वधापते) हे प्रकृति के भोक्ता ॥१०॥

भावार्थ—जो स्वयं सबसे उत्तम संपदाओं वाला और यशों से अत्यन्त यशस्वी है वह परमेश्वर तुम्हें धन प्रदान करे। हे प्रकृति के भोक्ता स्वामी जीव ! उत्पन्न हुआ यह संसार तेरे लिए हर्षकारी है ॥१०॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

चतुर्थोऽध्यायः

३५२—भरद्वाजः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नरः ॥१॥

पदार्थ—(अस्मै) इस (पिपीषते) पान करने की इच्छा वाले (विश्वानि) सम्पूर्ण देने योग्य वस्तुओं को (विदुषे) विद्वान् के लिए (भर) दे (अरङ्गमाय) विद्या का पारंगत (जग्मये) विज्ञान की वृद्धि के लिए (अपश्चाद्दध्वने) उत्तम व्यवहारों में आगे चलने वाले (नरः) नेता (प्रतिभरतु) तुझे भी ज्ञान दे ॥१॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष ! विज्ञान की उन्नति के लिए वेदविद्या में पारङ्गत [पूर्ण विद्वान्] उत्तम व्यवहारों में आगे चलने वाले अधिकारी विद्वान् को सम्पूर्ण देने योग्य वस्तु दे। विद्या का नेता विद्वान् भी तुझे ज्ञान दे ॥१॥

३५३—वामदेवः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
महान्तं पूर्विणेष्ठाम् उग्रं वचो अपावधीः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (नः)हमें (वयः) आयु (वयः, शयं) जीव (महान्तं) महत्तर (गह्वरेष्ठाम्) अन्तःकरणस्थ (महान्तं) महान् (पूर्विणेष्ठाम्) पूर्व जन्म से आने वाले (उग्रम्) कठोर (वचः) वचन को (अपावधीः) दूर कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें आयु, महान् जीव तथा अन्तःकरणस्थ पूर्व जन्म से आए बुद्धितत्त्व को ज्ञात करा। हमारे कठोर वचन को दूर कर ॥२॥

३५४—प्रियमेधा । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुवीकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वा) तुझ को (रथं यथा) रथ के समान (ऊतये) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए (सुम्नाय) सुख के लिए (आ वर्तयामसि) हम स्तुतियों से अपने अनुकूल करते हैं (तुवीकूर्मिम्) सृष्टि की रचना आदि अनेक कर्म करने वाले (ऋतीषहम्) हमारे शत्रुरूप बुरे विचारों को दबाने वाले (इन्द्रम्) ईश्वर को (शविष्ठ) अत्यन्त बलवान् (सत्पतिम्) सन्तों के पालक ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम रथ के समान अपनी तृप्ति, रक्षा और सुख के लिए सृष्टि की रचना आदि अनेक कर्मों के करने वाले हमारे बुरे विचारों को दबाने वाले अत्यन्त बलवान् और सन्तों के पालक तुझ को स्तुतियों के द्वारा अपने अनुकूल करते हैं ॥३॥

३५५—प्रगाथः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥४॥

पदार्थ—(स) वह ईश्वर (पूर्व्यः) प्रथम (महोनाम्) धनवानों (वेनः) ज्ञानवान् (क्रतुभिः) सब कर्मों के द्वारा (आनजे) प्राप्त होता है (यस्य) जिसके (द्वारा) द्वारा ही सारे उत्तम काम होते हैं (मनुः) सब का ज्ञाता (पिता) सब का पालन करने वाला, (देवेषु) विद्वानों में (धियः) ज्ञानों को (आनजे) देता है ॥४॥

भावार्थ—धनवानों का धनवान्, पूज्यों का पूज्य और ज्ञान का भण्डार वह ईश्वर ज्ञान और कर्म दोनों के द्वारा प्राप्त होता है। उसके द्वारा ही सारे उत्तम काम होते हैं। वह सर्वज्ञ तथा सब का पिता है। वही विद्वानों को ज्ञान देता है ॥४॥

३५६—श्यावाश्वः । अनुष्टुप् । मरुतः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥५॥

पदार्थ—(यदि) जिस प्रदेश में यज्ञ के लिए (वहन्ति) ले जाते हैं (आशवः) शीघ्र कार्यसाधन में तत्पर (भ्राजमानाः) ओजस्वी कर्मकाण्डी पुरुष (रथेषु) रथों पर (आ) सब प्रकार से (पिबन्तः) पान करते हुए (मदिरं) प्रसन्न करने वाले (मधु) सोमरस (तत्र) उस प्रदेश में [वर्षा के द्वारा] (श्रवांसि) विविध प्रकार के अन्नादि भोग के पदार्थ (कृण्वते) उत्पन्न करते हैं ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रदेश में यज्ञ करने के लिए शीघ्र कार्य करने में तत्पर और तेजस्वी कर्मकाण्डी पुरुष प्रसन्न करने वाले मधुर रस का पान करते हुए यज्ञ के साधन को रथों पर रख कर पहुंचाते हैं, उस प्रदेश में वर्षा के द्वारा विविध प्रकार के अन्नादि उत्पन्न होते हैं ॥५॥

३५७—शंयुः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥

पदार्थ—(त्यम् उ) उस (वः) तुझ (अप्रहणम्) उपासकों पर कृपा करने वाले (गृणीषे) स्तुति करता हूँ (शवसस्पतिम्) लोकों के स्वामी (इन्द्रम्)

ईश्वर को (**विश्वासाहम्**) हमारे सब प्रकार के शत्रुओं को दवाने वाले (**नरं**) उत्तम मार्ग पर चलानेवाले (**शचिष्ठम्**) शक्तिमान् (**विश्ववेदसम्**) सर्वज्ञ ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू भक्तों पर कृपा करनेवाला, बलों का एक मात्र स्वामी, हमें उत्तम मार्ग पर चलाने वाला, शक्तिमान् और सर्वज्ञ है। मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥६॥

३५८—*वामदेवः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
दधिकाव्णो श्रकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण श्रायूंषि तारिषत् ॥७॥

पदार्थ—(**दधिकाव्णः**) धर्म के धारण करनेवाले तथा संसार के संचालक (**अकारिषम्**) करें (**जिष्णोः**) संसार पर विजय प्राप्त करनेवाले (**अश्वस्य**) व्यापक (**वाजिनः**) बलवान् (**सुरभि**) सुगन्ध द्रव्य को (**नः**) हमारे (**मुखा**) मुख के साथ सब इन्द्रियों के कल्याण के लिए (**करत्**) करे (**प्र**) उत्तम (**नः**) हमारे (**आयूंषि**) जीवनों को (**तारिषत्**) बढ़ावें ॥७॥

भावार्थ—मैं धर्म को धारण कर संसार को अपने नियम से चलाने वाले, सबसे बढ़कर बलवान् और व्यापक परमात्मा की स्तुति करता हूँ कि वह ईश्वर मेरे सब अङ्गों के कल्याण के लिए सुगन्धित पदार्थ दे और मेरी आयु भी बढ़ावे ॥७॥

३५९—*जेता । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा श्रजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥८॥

पदार्थ—(**पुरां**) मिले हुए घने पदार्थों को (**भिन्दुः**) छिन्न-भिन्न करनेवाला (**युवा**) अपने गुणों से पदार्थों का मेल करानेवाला (**कविः**) दृश्य पदार्थों का अपनी किरणों से प्रकाश करने वाला (**अमितौजाः**) अनन्त प्रकाश वाला (**अजायत**) उत्पन्न होता है (**इन्द्रः**) सूर्य (**विश्वस्य**) सारे (**कर्मणः**) कार्यों का (**धर्ता**) अपने आकर्षण गुणों से धारण करनेवाला (**वज्री**) किरणरूप शस्त्रोंवाला (**पुरुष्टुतः**) अपने गुणों से स्तुति के योग्य ॥८॥

भावार्थ—सूर्य घने पदार्थ मेघों को छिन्न भिन्न करता है। वह प्रकाश करने वाला है, और अनेक पदार्थों का मेल कराता है। वह समस्त कार्यों का धारक किरण रूप शस्त्रों का धारण करने वाला तथा प्रशंसनीय है ॥८॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

३६०—*प्रियमेधः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१॥

पदार्थ—(**प्र प्र**) उत्कृष्ट (**वः**) तू (**त्रिष्टुभम्**) तीन लोक, तीनशरीरसम्बन्धि (**इषम्**) ज्ञान को (**वन्दद्वीराय**) वन्दना करनेवाले वीर (**इन्दवे**) ऐश्वर्यशाली (**धिया**) कर्म से (**वः**) तेरे (**मेधसातये**) यज्ञादि के लिए (**पुरन्ध्या**) ज्ञान से (**विवासति**) परिचर्य्या करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वन्दना करने वाले वीर तथा ऐश्वर्यशाली जीव के लिए, तीन लोक, तीन शरीर तथा नाम स्थान और जन्म को प्रदान करता है। जीव यज्ञादि करने के लिए तेरी परिचर्य्या करता है ॥१॥

३६१—*वामदेवः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २र ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥२॥

पदार्थ—(**कश्यपस्य**) सर्वज्ञ (**स्वर्विदः**) परमार्थ तत्त्व को जाननेवाले (**यौ**) जिन दोनों को (**आहुः**) कहते हैं (**सयुजौ**) साथ में संयुक्त (**इति**) ऐसा (**ययोः**) जिन दोनों के (**विश्वं**) सकल (**अपि**) भी (**व्रतं**) कर्म (**यज्ञं**) संसार (**धीराः**) धीर पुरुष (**निचाय्य**) निश्चय करके ॥२॥

भावार्थ—परमार्थ प्रकाश तत्त्व को जानने वाले धीर पुरुष, संसार यज्ञ को जानकर, सर्वद्रष्टा परमेश्वर के जिन दो को सहयोगी कहते हैं, जिन दोनों का कार्य यह सब संसार है, वे प्रकृति और जीव हैं ॥२॥

३६२—*प्रियमेधातिथिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो श्रर्चत ।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३क २र
श्रर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥३॥

पदार्थ—(**अर्चत**) स्तुति करो (**प्रार्चत**) उत्तम प्रकार से स्तुति करो (**नरः**) हे नेता लोगो ! (**प्रियमेधासः**) हे यज्ञ के प्रेमी पुरुषो ! (**अर्चत**) अवश्य स्तुति करो (**अर्चन्तु**) स्तुति करें (**पुत्रकाः**) हमारे पुत्र और पौत्र भी स्तुति करें (**उत**) और (**पुरम्**) हमारी कामनायें सफल करने वाले (**इत्**) ही की (**धृष्णु**) अनवरत या बिना दवे (**अर्चत**) स्तुति करो सब मिलकर ॥३॥

भावार्थ—हे नेता लोगो ! ईश्वर की स्तुति करो। हे यज्ञ के प्रेमी पुरुषो ! तुम लोग भी ईश्वर की स्तुति करो। हमारे पुत्र और पौत्र भी उसी की स्तुति करें। संसार के सब मनुष्य, हमारी कामनाओं को सफल बनाने तथा बुरी भावनाओं को दूर भगाने वाले ईश्वर की ही स्तुति करें ॥३॥

३६३—*मधुच्छन्दा । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिः षिधे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥४॥

पदार्थ—(**उक्थम्**) वेदमन्त्ररूप स्तोत्र (**इन्द्राय**) जीव के लिए (**शंस्यम्**) प्रशंसा के योग्य (**वर्धनम्**) विद्या आदि शुभ गुणों के बढ़ानेवाले (**पुरुनिःषिधे**) वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने और धर्मयुक्त कामों में विचारनेवाले (**शक्रः**) शक्तिमान् ईश्वर (**यथा**) जैसे कोई (**सुतेषु**) पुत्रों के विषय में (**नः**) हमारे (**रारणत्**) बार बार उपदेश करते है (**सख्येषु च**) मित्रों के विषय में भी ॥४॥

भावार्थ—जैसे हमारे मित्रों और पुत्रों को कोई परोपकारी पुरुष उपदेश करता है, ऐसे सर्वशक्तिमान् ईश्वर कामों में विचरने वाले जीव के लिए विद्यादि शुभ गुणों के बढ़ाने वाले प्रशंसा के योग्य वेदमन्त्रों का बार बार उपदेश करता है ॥४॥

३६४ - *प्रियमेधाः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥५॥

पदार्थ—(**विश्वानरस्य**) सारे संसार का नेतृत्व करनेवाले (**वः**) तुझको (**पतिम्**) स्वामी (**अनानतस्य**) न दबने वाले (**शवसः**) बल के (**एवैः**) ज्ञान और कर्म के द्वारा (**च**) और (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**ऊती**) रक्षा के लिए (**हुवे**) आह्वान करता हूँ (**रथानाम्**) शरीर की ॥५॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! संसार पर शासन करनेवाले और कभी न दबने वाले बल के स्वामी तुझ को सारी कामनाओं की पूर्ति तथा मनुष्यों के शरीरों की रक्षा के लिए पुकारता हूँ ॥ ५ ॥

३६५—*भरद्वाजः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
३ १ २र३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो श्रंहो न तरति ॥६॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**घा**) निश्चय (**यः**) जो (**ते**) तेरे (**दिवः**) सूर्य के समान (**नरः**) मनुष्य (**धिया**) ज्ञान से (**मर्तस्य**) मनुष्य के (**शमतः**) संयुक्त (**ऊती**) रक्षा के द्वारा (**स**) वह (**बृहतः**) महान् (**दिवः**) दिव्यस्वरूप (**द्विषः**) शत्रुओं को (**अंहः**) पाप के (**न**) समान (**तरति**) पार कर जाता है ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर, जो जो द्युलोक के नायक के समान दिव्यगुण का ग्राहक मनुष्य, आप के दिए ज्ञान के द्वारा पुरुष के अनुकूल व्यापार करता है, वह तुझ महान् दिव्य स्वरूप की रक्षा के द्वारा अपने शत्रुओं को पाप के समान लाँघ जाता है ॥६ ॥

३६६—*अत्रिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
श्रथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥७॥

पदार्थ—(**विभोः**) व्यापक (**ते**) तेरा (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**राधसः**) धन का (**विभ्वीः**) पर्याप्त (**रातिः**) दान (**शतक्रतो**) हे ज्ञान के भण्डार ! (**अथ**) इस लिये (**नः**) हमें (**विश्वचर्षणे**) हे संसार के साक्षी ! (**द्युम्नम्**) यशदायक धन (**सुदत्र**) हे सुन्दर दानी ! (**मंहय**) दे ॥७॥

भावार्थ—हे ज्ञान के भण्डार ! संसार के साक्षी ! सुन्दर दानी ! परमेश्वर! तू व्यापक है और तेरी सम्पत्ति का दान भी व्यापक है। इसलिए तू हमें यशदायक धन दे ॥७॥

३६७—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥८॥

पदार्थ—(वयः) पक्षी (चित्) ही (ते) उस (पतत्रिणः) पक्षोंवाले (द्विपात्) दो पांववाले मनुष्यादि (चतुष्पाद्) चार पांववाले पशु आदि (अर्जुनि) प्रकाशयुक्त (उषः) उषा (प्रारन्) विचरते हैं (ऋतून् अनु) ऋतुओं के अनुसार (दिवः) आकाशमण्डल के (अन्तेभ्यः) छोर से (परि) सब ओर ॥८॥

भावार्थ—जब प्रकाशमान उषा ऋतुओं के अनुसार आकाशमण्डल से प्रकाशित होती है, तब सारे पशु पक्षी तथा मनुष्यादि वर्ग कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं ॥८॥

३६८—वितः । अनुष्टुप् । विश्वेदेवाः ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।
१ २ ३ २उ ३ २३ २ ३ २ ३ १ २
कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥९॥

पदार्थ—(अमी) ये (ये) जो (देवाः) सूर्यादि लोक (स्थन) हैं (मध्ये) मध्य में (आरोचने) प्रकाशमान द्युलोक में (दिवः) परमेश्वर के (कत्) कहां (ऋतं) सत्यनियम (वः) उनका (कत्) कहां (अमृतं) कारणतत्त्व (काः) क्या (प्रत्ना) पुरातन (आहुतिः) प्रलय ॥९॥

भावार्थ—जो प्रकाशमान द्युलोक में स्थित दिव्यलोक हैं, उनका सत्य नियम कहां रहता है ? उनका कारण तत्त्व कहां है ? और उनका प्रलय कहां है ?

उत्तर—परमेश्वर और आकाश में ॥९॥

३६९—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
१ २र ३ २ ३ १ २
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥१०॥

पदार्थ—(ऋचं) ज्ञानकाण्ड रूप ऋग्वेद (साम) अमर होने का साधन उपासनाकाण्ड रूप सामवेद (यजामहे) अभ्यास करते हैं (याभ्याम्) जिन दोनों से (कर्माणि) जप, उपासना आदि सब काम (कृण्वते) किये जाते हैं तथा मानव समाज के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं (वि) विशेष रूप से (ते) ये दोनों (सदसि) सभा या यज्ञमण्डप में (राजतः) शोभा पाते हैं और (यज्ञम्) यज्ञ को (देवेषु) प्रत्येक देव के समीप (वक्षतः) पहुंचाते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हम ऋग्वेद और सामवेद का अभ्यास करते हैं । इन्हीं के द्वारा उत्तम काम किये जाते हैं । ये ही सभा और यज्ञमण्डप में शोभा पाते हैं । ये ही देवों का भाग उन तक पहुँचाते हैं ॥१०॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

३७०—रेभः । जगती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥

पदार्थ—(विश्वाः) सारी (पृतनाः) संग्राम में फैली हुई दुश्मन की सेना (अभिभूतरम्) जीतने में समर्थ (नरः) जनता (सजूः) संगठित होकर (ततक्षुः) शस्त्रादि से सुसज्जित करती हैं (इन्द्रम्) अध्यक्ष या शासन करने वाले को (जजनुः) चुनते हैं (च) भी (राजसे) राजभार ग्रहण करने के लिए (क्रत्वे) परोपकार के कार्यों को ठीक चलाने के लिए भी (वरे) श्रेष्ठ (पत्थर आदि से बने हुए) (स्थेमनि) चिरस्थायी सुरक्षित स्थान [किले] में विराजमान (आमुरीम्) शत्रु का संहार करने वाले (उग्रम्) तेजस्वी (ओजिष्ठम्) बलवान् (तरसम्) विजय प्राप्त करने की योग्यता वाले (तरस्विनम्) वेगवाले ॥१॥

भावार्थ—सारे मनुष्य मिलकर संग्रामस्थ सेना को जीतने वाले चिरस्थायी दुर्ग में स्थित शत्रु का संहार करने वाले, प्रचण्ड, ओजस्वी, तीव्र, बलशाली राजा भार चलाने के लिए चुनते हैं और सुसज्जित करते हैं ॥१॥

३७१—सुदेवः । जगती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन् यद्दस्युं नर्यम् विवेरपः ।
१ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥२॥

पदार्थ—(श्रत्) सत्य को (ते) तेरे (दधामि) धारण करता हूँ (प्रथमाय) प्रथम (मन्यवे) ज्ञान के लिए (अहन्) नाश करता है (यत्) जो (दस्युं) अकार्य को (नर्यम्) मनुष्यसम्बन्धि (विवेः) खोल देता है (अपः) जल को (उभे) दोनों (यत्) जिससे (त्वा) तेरी (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक (धावताम्) चलते हैं (अनु) अनुकूलता में (भ्यसात्) गति करते हैं (ते) तुम्हारे (शुष्मात्) बल से (पृथिवी) पृथिवी (चित्) भी (अद्रिवः) हे आदरणीय ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मैं तेरे ज्ञान के प्रति सत्यता को धारण करता हूँ या श्रद्धा रखता हूँ । तू मनुष्यसम्बन्धी शत्रु अकाल को नष्ट करता है । जलों को वर्षाता है । तेरे बल से भूमि भी डरती है तथा द्यु और पृथिवी तेरी अनुकूलता में चलते हैं ॥२॥

३७२—वामदेवः । जगती । इन्द्रः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २
समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथिर्जनानाम् ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन्तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥३॥

पदार्थ—(समेत) सम्मिलित होकर आओ (विश्वाः) सब (ओजसा) आत्मिक बल से (पतिम्) स्वामी (दिवः) द्युलोक के (यः) जो (एक इत्) एक ही (भूः) होता है (अतिथिः) पूज्य (जनानाम्) मनुष्यमात्र के (सः) वह (पूर्व्यः) सनातन है (नूतनम्) नवीन (विजिगीषन्तम्) अपनी इन्द्रियों पर विजय पाने की इच्छा करने वाले को (वर्तनीः) मार्ग (अनुवावृते) चलाता है (एक इत्) एक ही ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे उपासक पुरुषो ! तीनों लोकों के स्वामी परमेश्वर की स्तुति करने के लिये मिलकर आओ और स्तुति करो । केवल वही एक मनुष्यमात्र का पूज्य है । वह सनातन परमात्मा नए उपासक को इन्द्रियों पर विजय पाने वाले एक ही मार्ग पर चलाता है ॥३॥

३७३—सव्यः । जगती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥४॥

पदार्थ—(इमे) ये (ते) तेरे (इन्द्र) हे ईश्वर ! (ते) वे (वयम्) हम लोग (पुरुष्टुत) बहुतों से स्तुति के योग्य (ये) जो (त्वारभ्य) तेरे आधार पर ही (चरामसि) चलते हैं (प्रभूवसो) हे पर्याप्त सम्पत्तिवाले प्रभो ! (नहि) नहीं (त्वदन्यः) तुझ से भिन्न कोई (गिर्वणः) हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य पिता ! (गिरः) स्तुतियों को (सघत्) सह सकता है (क्षोणीरिव) भूमि के समान (प्रतिहर्य) स्वीकार कर (तत्) इसलिए (नः) हमारे (वचः) स्तुति वचन को ॥४॥

भावार्थ—हे सब सम्पत्तियों के स्वामी प्रभो ! हे वेद-मन्त्रों तथा बहुतों से स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! हम सब तेरे हैं और तेरे ही आश्रय से निर्भय होकर संसार में विचरते हैं । तुझ से भिन्न कोई भी हमारी स्तुतियों का पात्र नहीं । हे नाथ ! तू भूमि के समान सहनशील है, इसलिये हमारे साधारण स्तुति-वचन को स्वीकार कर ॥४॥

३७४—विश्वामित्रः । जगती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यामिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥५॥

पदार्थ—(चर्षणीधृतम्) मनुष्यमात्र के पालन-पोषण और धारण करने वाले (मघवानम्) सब से बढ़कर दानी (उक्थ्याम्) स्तुति करने के योग्य (इन्द्रम्) ईश्वर को (गिरः) वेदवाणियां (बृहतीः) ज्ञान और कर्म के द्वारा बढ़ी-चढ़ी (अभ्यनूषत) स्तुति करती हैं । (वावृधानम्) अपने गुणों से महान् (पुरुहूतं) बहुतों से आह्वान करने के योग्य (सुवृक्तिभिः) निर्दोष स्तुतियों से (अमर्त्यम्) नित्य (जरमाणम्) जिसकी स्तुति की जाती है (दिवे दिवे) प्रतिदिन ॥५॥

भावार्थ—ईश्वर मनुष्यमात्र का धारण तथा पालन-पोषण करने वाला, सबसे बड़ा दानी, अपने गुणों से महान्—नित्य समय पर स्तुति और उपासना के योग्य है । वेदवाणियां निर्दोष स्तुतियों के द्वारा उसी का प्रतिदिन वर्णन करती हैं ॥५॥

३७५—कृष्णः । जगती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परिष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥६॥

पदार्थ—(अच्छा) प्राप्त करने के लिए (वः) तुम्हारी (इन्द्रम्) ईश्वर को (मतयः) स्तुतियां (स्वयु॑वः) सुख देने वाली (सध्रीचीः) एक साथ (विश्वाः) सारी (उशतीः) पहुँचने की कामना वाली (अनूषत) स्तुति करते हैं (परिष्वजन्त) आश्रय में पहुँचती हैं (जनयः) पत्नियां (यथा) जैसे (पतिम्) पति को (मर्यम्) मनुष्य को जैसे (शुन्ध्युम्) शुद्ध करने वाले (मघवानम्) धनवान् को निर्धन जैसे (ऊतये) रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—पत्नियां जैसे अपने अपने पति के आश्रय में पहुँचती हैं, शुद्ध होने वाले जैसे शुद्धि करने वाले की शरण में जाते हैं और निर्धन अपनी रक्षा के लिए धनवान् का आश्रय लेते हैं, वैसे ही विशेष सुख की तथा परमात्म देव की प्राप्ति की कामना से की हुई हमारी सारी स्तुतियां उसी की शरण में पहुँचती हैं ॥६॥

३७६—*अङ्गिरा, सव्य इति भरतः । जगती । इन्द्रः ।*

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम् इन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३१ २र
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥७॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार (त्यं) उस (मेषम्) कामनाओं की वर्षा करने वाले (पुरुहूतम्) बहुत विद्वानों के द्वारा आह्वान के योग्य (ऋग्मियम्) ऋचाओं द्वारा स्तुति के योग्य (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गीर्भिः) पवित्र वेद की वाणियों से (मदता) स्तुति करो (वस्वः) धन का (अर्णवम्) अगाध समुद्र (यस्य) जिसका (द्यावः) द्यु लोक (न) नहीं (विचरन्ति) लङ्घन करता है (मानुषम्) मनुष्यों के हितकारक (भुजे) अपने पालन के लिए (मंहिष्ठम्) अत्यन्त महान् (अभि) सब प्रकार (विप्रम्) मेधावी की (अर्चत) स्तुति करो ॥७॥

भावार्थ—हे उपासना करने वालो ! बहुतों से पुकारे जाने योग्य, मन्त्रों द्वारा स्तुति के योग्य, कामनाओं की वर्षा करने वाले, सम्पत्तियों के अगाध समुद्र उस ईश्वर की स्तुति करो । सूर्यादि लोक उसके अधीन रहते हैं । वह मनुष्यों का हित करनेवाला और महान् है । अपनी रक्षा के लिए उस सर्वज्ञ ईश्वर की स्तुति करो ।७।

३७७—*सव्यः । जगती । इन्द्रः ।*

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकमीरते ।
२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथम् इन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥८॥

पदार्थ—(त्यम्) उस (सुमेषं) कामनाओं को उत्तमता से पूर्ण करनेवाले (महया) स्तुतियों से (स्वर्विदम्) सर्वज्ञ (शतं) सैंकड़ों (यस्य) जिसकी (सुभुवः) मनोहर स्तुतियां (साकम्) एक साथ (ईरते) बोली जाती हैं (अत्यं न) अश्व के समान (वाजम्) वेगवाले (हवनस्यदं) पुकार सुनने वाले (रथम्) रमणीय (आ) सब प्रकार (इन्द्रं) ईश्वर को (ववृत्याम्) अपनी तरफ करता हूँ (अवसे) रक्षा के लिए (सुवृक्तिभिः) निर्दोष स्तुतियों के द्वारा ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिसकी सैकड़ों स्तुतियां एक साथ बोली जाती हैं, ऐसे उस सर्वज्ञ प्रभु की हम स्तुति करते हैं । वेगवान् अश्व के समान मनोहर उस परमेश्वर को रक्षा के लिए स्तुतियों द्वारा अपनी तरफ फेरते हैं ॥ ८ ॥

३७८—*भरद्वाजः । जगती । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥९॥

पदार्थ—(घृतवती) पानी और तेजवाले (भुवनानां) संसार के (अभिश्रिया) आश्रय (उर्वी) अनेक अवयवों वाले (पृथ्वी) विस्तृत (मधुदुघे) साक्षात् और परम्परा से जल की वर्षा करने वाले (सुपेशसा) सुन्दर रूपवान् (द्यावापृथिवी) सूर्य्यलोक और पृथिवीलोक (वरुणस्य) वरणीय (धर्मणा) धारणशक्ति से (विष्कभिते) अपनी जगह से इधर उधर नहीं होते (अजरे) चिरस्थायी (भूरिरेतसा) जिनके द्वारा बहुत से काम होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—पानी और तेजवाले भुवनों के आश्रय, महान् विस्तृत जल को देने वाले, सुन्दर रूपवान्, अजीर्ण, शक्तिशाली द्यु और पृथिवी लोक वरणीय परमेश्वर और वायु के आधार पर थमे हुए हैं ॥ ९ ॥

३७९—*मान्धाता । महापङ्क्तिः । इन्द्रः ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१०॥

पदार्थ—(उभे) दोनों (यत्) जो (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (रोदसी) द्यु और पृथिवीलोक (आपप्राथ) विस्तृत किया (उषा इव) उषा के समान (महान्तं महीनां) महानों के भी महान् (त्वा) तुझ (सम्राजं) सम्राट् (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (देवी) वेदवाणी (जनित्री) उत्पन्न करने वाली (अजीजनत्) उत्पन्न करती है (भद्रा) मङ्गलकारिणी (जनित्री) पैदा करने वाली (अजीजनत्) पैदा करती है ॥ १० ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उषा के समान तुमने द्यु और पृथ्वीलोक को विस्तृत किया है । बड़ों में भी महान् मनुष्यों के सम्राट् तुझ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ । लोकों को पैदा करनेवाली वेदवाणी संसार को प्रकट करती है और कल्याणकारिणी वह प्रकट भी होती है ॥ १० ॥

३८०—*कुत्सः । जगती । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणम् मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥११॥

पदार्थ—(प्रमन्दिने) प्रशंसा के योग्य (पितुमद्) अन्नयुक्त (अर्चत) उच्चारण करो (वचः) सत्कार वचन (यः) जो (कृष्णगर्भा) कठिन स्वभाव-वाला (निरहन्) हनन करता है (ऋजिश्वना) अपनी शक्ति से (अवस्यवः) रक्षार्थी हम लोग (वृषणं) सुख के वर्षक (वज्रदक्षिणम्) वज्र को धारण करने वाले (मरुत्वन्तं) चांदी आदि से युक्त (सख्याय) मित्रता के लिए (हुवेमहि) पुकारते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम प्रशंसा के लिए योग्य राजा का अन्नादि सहित सत्कार करो । जो प्रचण्ड स्वभाववाला समस्त शत्रुओं को अपनी नीति से नष्ट करता है । रक्षार्थी हम लोग सुख के दाता, शस्त्रधारी, सुवर्णादि से युक्त, उसकी मैत्री के लिए उसे पुकारते हैं ॥ ११ ॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

३८१—*नारदः । उष्णिक् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३२ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! तू (सुतेषु) सुसम्पन्न होने पर (सोमेषु) सोम लता आदि मिश्रित यज्ञ के साधन के (क्रतुम्) यज्ञादि उत्तम काम को (पुनीषे) पवित्र करता है (उक्थ्यम्) गुण की दृष्टि से प्रशंसा के योग्य (विदे) प्राप्त करने के लिए (वृधस्य) उत्तम (दक्षस्य) बल को (महान्) बड़ा है (हि) क्योंकि (सः) वह यज्ञ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सोम लता आदि यज्ञ के साधनों के तैयार होने पर प्रशंसा के योग्य, परोपकारी, श्रेष्ठ काम को पवित्र करता है, क्योंकि उत्तम बल प्राप्त करने के लिए परोपकार एक महान् साधन है ॥ १ ॥

३८२—*गोषूक्ति वाश्वसूक्ती वा । उष्णिक् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥२॥

पदार्थ—(तमु) उसी के (अभि) सब प्रकार से (प्रगायत) गीत गाओ (पुरुहूतम्) बहुतों से जिसका आह्वान किया जाता है (पुरुष्टुतम्) बहुतों से जिसकी स्तुति की जाती है (इन्द्रम्) उस परमेश्वर की (गीर्भिः) वेदवाणियों से (तविषम्) महान् (आ विवासत) आज्ञापालन रूप सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग बहुतों से पुकारे जाने तथा स्तुति करने योग्य महान् उस परमेश्वर की ही मन्त्र द्वारा स्तुति करो । उस की आज्ञा का पालन करो ॥ २ ॥

३८३—*ऋषिछन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।*

२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ २
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
३ १२ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उस प्रसिद्ध (ते) तेरे (मदम्) शक्ति की (गृणीमसि) हम लोग स्तुति करते हैं (वृषणम्) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (पृक्षु) संग्रामों में (सासहिम्) साहस देने वाले (उ) पादपूरक (लोककृत्नुम्) संसार की रचना करनेवाले (अद्रिवः) हे मेघ और पर्वत आदि महान् सृष्टि की रचना करने वाले ! (हरिश्रियम्) सामवेद और ऋग्वेद के आश्रय ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे आदरणीय परमेश्वर ! कामनाओं की पूर्ति करनेवाले, संग्रामों में साहस देनेवाले, संसार की रचना करने वाले, साम और ऋक् के आश्रय, तेरी महान् शक्ति की हम प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

३८४—पर्वतः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।

१२ ३२३ १२३ १ २र

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥४॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**सोमम्**) अमृत (**इन्द्र**) हे जीव ! (**विष्णवि**) व्यापक परमेश्वर में है (**यद्वा**) अथवा जो (**घ**) प्रसिद्ध (**त्रिते**) वेदत्रयी में है (**आप्त्ये**) आप्त पुरुष [धर्म के साक्षात् करनेवाले] (**यद्वा**) अथवा जो (**मरुत्सु**) यज्ञादि परोपकार करनेवालों में है (**मन्दसे**) तृप्त होता है (**सम्**) सम्यक् (**इन्दुभिः**) परम ऐश्वर्य रूप इन सबों से ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे इन्द्रियों के स्वामी जीव ! जो आनन्दरस सर्वव्यापक परमात्मा में है, अथवा जो आनन्द, ज्ञान और कर्म, वेदत्रयी में है, आप्त [धर्म के साक्षात् करने वाले] पुरुष में है, अथवा जो आनन्द यज्ञादि परोपकार के कामों को करने वाले में है, तू उन सबों से तृप्त होता है ॥ ४ ॥

३८५—विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २

एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।

१२३ ३१ २र ३ १ २

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥५॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**मधोः**) मधु से भी (**मदिन्तरम्**) अत्यन्त आनन्द दायक (**सिञ्च**) यज्ञ के पात्र को पूरा कर (**अध्वर्यो**) ! हे कल्याणकारी यज्ञ के ऋत्विक् ! (**अन्धसः**) अन्न से तैयार (**एवाहि**) ऐसे ही (**वीर**) हे वीर अध्वर्यु ! (**स्तवते**) स्तुति की जाती है (**सदावृधः**) परोपकार के करनेवालों को सर्वदा बढ़ावा देने वाले परमात्मा की ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे यज्ञ आदि उत्तम काम करने वाले पुरुष ! अन्न से तैयार, मधु से भी अधिक आनन्द देने वाले, सोमरस को यज्ञ के लिए यज्ञ-पात्र में भर कर रखो। हे वीर ! यज्ञ आदि उत्तम काम करना ही सर्वदा उन्नत करने वाले परमात्मा की स्तुति कहा गया है ॥ ५ ॥

३८६—विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

१ २र ३ २

प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥६॥

पदार्थ—(**आ**) भलीभाँति (**इन्दुम्**) यज्ञ को (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिए (**सिञ्चत**) सम्पन्न करो (**पिबाति**) रक्षा करता है (**सोम्यं**) ऐश्वर्यकारी (**मधु**) ज्ञान की । (**प्र**) उत्तम (**राधांसि**) धनों को (**चोदयते**) देता है (**महित्वना**) महिमा से ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिए सब प्रकार से अपने यज्ञ को सम्पन्न कर ! वह ऐश्वर्यकारी ज्ञान की रक्षा करता है तथा अपनी महिमा से धनादि पदार्थों को देता है ॥ ६ ॥

३८७—विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।

३ १ २र ३ २उ ३ २

कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७॥

पदार्थ—(**एत**) आओ (**नु**) जल्द (**इन्द्रम्**) परमेश्वर की (**स्तवाम**) स्तुति करें (**सखायः**) हे मित्रो ! (**स्तोम्यम्**) स्तुति के योग्य (**नरम्**) हमारे नेता (**कृष्टीः**) उल्टे मार्ग पर चलनेवाली प्रजा को (**यः**) जो (**विश्वाः**) सारी (**अभ्यस्ति**) सीधी राह पर चलने को विवश करता है (**एक इत्**) केवल एकाकी वही ॥७॥

भावार्थ—हे मित्रो ! आओ, सम्मिलित होकर उस नेताओं के नेता और स्तुति के योग्य परमेश्वर की स्तुति करें, जो अकेला ही, उल्टे मार्ग पर चलने वाली सारी मनुष्य जनता को सीधी राह पर चलने के लिए विवश करता है ॥७॥

३८८—नृमेधः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्राय**) सारे ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर के लिए (**साम गायत**) साम का गान करो (**विप्राय**) ज्ञानस्वरूप (**बृहते**) महान् (**बृहत्**) बृहत्नामक (**ब्रह्मकृते**) वेदों के कर्त्ता (**विपश्चिते**) सर्वज्ञ (**पनस्यवे**) स्तुति के योग्य ॥८॥

भावार्थ—हे साम के गान करने वालो ! ज्ञान स्वरूप, महान्, वेदों के कर्त्ता, सर्वज्ञ, और स्तुति के योग्य, परमैश्वर्यशाली, परमेश्वर की प्राप्ति के लिए "बृहत्" नाम के साम का गान करो ॥८॥

३८९—गोतमः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥९॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**एक इत्**) एक ही (**विदयते**) विविध प्रकार से देता है (**वसु**) सम्पत्ति को(**मर्ताय**) मनुष्य को (**दाशुषे**) यजमान को (**ईशानः**) ईश्वर (**स्वामी**) संसार का अधिष्ठाता (**अप्रतिष्कुतः**) जिसके नियम के विरुद्ध एक शब्द भी कोई नहीं बोल सकता (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**अङ्ग**) शीघ्र ॥९॥

भावार्थ—जो ईश्वर संसार का स्वामी है, जिसके नियम के विरुद्ध किसी का कुछ नहीं चलता, जो बिना किसी की सहायता के अकेला ही परोपकारी पुरुष को, अनेक प्रकार से सम्पत्ति देता है उसी परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ॥९॥

३९०—विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१०॥

पदार्थ—(**सखायः**) हे मित्रो ! (**आशिषामहे**) हम लोग प्रार्थना करते हैं (**ब्रह्म**) वेद, सोना, मणि, माणिक्य, गो, अन्न आदि के लिए (**इन्द्राय**) ऐश्वर्यशाली परमात्मा की (**वज्रिणे**) न्यायरूप शस्त्र के धारण करनेवाले (**स्तुषे**) स्तुति करते हैं (**ऊषु**) भलीभाँति (**वः**) तुम्हारे (**नृतमाय**) सब से बढ़ कर नेता (**धृष्णवे**) बुराइयों के नाश करने वाले ॥१०॥

भावार्थ—हे मित्रो ! हम सब न्यायरूप शस्त्र के धारण करनेवाले परमात्मा की, वेदविद्या और सुवर्ण आदि सम्पत्तियों के लिए आशा के साथ प्रार्थना करते हैं। वह हम सबका सबसे बड़ा नेता और बुराइयों को दूर करने वाला है। हम उस की मनोहर स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

३९१—प्रगाथः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २र

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये । यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥१॥

पदार्थ—(**गृणे**) स्तुति करता हूँ (**तत्**) उस (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**ते**) तेरे (**शवः**) बल का (**उपमाम्**) सब के उपमारूप (**देवतातये**) इन्द्रियों और परमार्थ के कामों के लिए (**यत्**) क्योंकि (**हंसि**) नाश करता है (**वृत्रम्**) पाप का (**ओजसा**) बल से (**शचीपते**) हे कर्मों के स्वामी ॥ १ ॥

भावार्थ—हे सारे कर्मों के स्वामी परमेश्वर ! मैं इन्द्रियों में शक्ति तथा परोपकार के कामों को पूर्ण करने के लिए, जिस बल से तू पापों का नाश करता है, तेरे अनुपम बल की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

३९२—भरद्वाजः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र३ २३ १ २ ३ १ २

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।

३१ २र ३१ २र

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिस के (**त्यत्**) उस (**शंबरम्**) बल को (**मदे**) हर्ष में (**दिवोदासाय**) विज्ञानवेत्ता के लिए (**रन्धयन्**) रोक रखता है । (**अयं**) यह (**सः**) वह (**सोमः**) सोम (**इन्द्र**) हे विद्वन् ! (**ते**) तेरे लिए (**सुतः**) तैयार है (**पिब**) पान कर ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिसके हर्ष में तू विज्ञानवेत्ता के लिए अपने महान् बल को सुरक्षण में रोक रखता है, वह सोम औषध तेरे लिए तैयार है। तू पान कर ॥ २ ॥

३९३—नृमेधाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३२र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥३॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**नः**) हमें (**गधि**) प्राप्त हो (**प्रिय**) हे प्यारे (**सत्राजित्**) हे सत्य से असत्य पर विजय करने वाले ! (**अगोह्य**) हे सर्वदा प्रकाश स्वरूप ! (**गिरिर्न**) पर्वत के समान (**विश्वतः**) सब प्रकार से (**पृथुः**) महान् (**पतिः**) स्वामी (**दिवः**) द्युलोक का ॥ ३ ॥

भावार्थ—सत्य से असत्य पर सदा विजय प्राप्त करने वाले, सर्वदा प्रकाश स्वरूप ! प्यारे ईश्वर ! तू पर्वत के समान सब प्रकार से महान् तथा द्युलोक आदि का स्वामी है। तू हमें प्राप्त हो ॥ ३ ॥

३९४—पर्वतः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।

२ ३ २ ३ २र २ ३ १ २

येनाऽहंसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (सोमपातमः) संसार का अत्यन्त रक्षक (मदः) शक्ति (शविष्ठ) हे सर्वशक्तिमान् (चेतति) जानती है (येन) जिस के बल से (आहंसि) नाश करता है (अत्रिणं) पाप का (तम्) उसको (ईमहे) हम चाहते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! तेरी शक्ति को जिसे सब वस्तुएं जानती हैं, तथा जिसके बल से संसार का अत्यन्त रक्षक तू अज्ञता रूप पाप का विनाश करता है, हम चाहते हैं ॥ ४ ॥

३९५—*इरिम्बिठिः । उष्णिक् । इन्द्रः, आदित्यो वा ।*

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।

१ २ ३ १२

आदित्यासः समहसः कृणोतन ॥५॥

पदार्थ—(तुचे) सन्तान के लिए (तुनाय) पौत्र के लिए (तत्) वह (सु) सुन्दर (नः) हमारे (द्राघीयः) दीर्घ (आयुः) आयु (जीवसे) जीने के लिए (आदित्यासः) हे आदित्य विद्वान् जन (समहसः) सत्कार से युक्त (कृणोतन) करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—सत्कार से युक्त आदित्य विद्वान् हमारे पुत्र और पौत्रों को दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥ ५ ॥

३९६—*विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

१२ ३ १ २ ३ १ २

अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥

पदार्थ—(वेत्थाः) जानता है (हि) निश्चय (निर्ऋतीनां) उपद्रवों का (वज्रहस्त) हे शस्त्रपाणे ! (परिवृजम्) निवारण (अहरहः) प्रतिदिन (शुन्ध्युः) शोधक (परिपदामिव) पक्षियों के अड्डों के समान ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे शस्त्रपाणे राजन् ! तू पक्षियों के अड्डों के समान उपद्रवों का प्रतिदिन निवारण जानता ह ॥ ६ ॥

३९७—*इरिम्बिठिः । उष्णिक् । आदित्याः ।*

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२

अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥७॥

पदार्थ—(अप) दूर करो (अमीवाम्) रोग को (अप) दूर करो (स्रिधम्) हिंसा आदि अनर्थ करने वाले का (अप) दूर (सेधत) करो (दुर्मतिम्) दुर्बुद्धि पुरुष को (आदित्यासः) हे आदित्य ब्रह्मचारियो ! (युयोतन) दूर करो (नः) हमें (अंहसः) पाप से ॥ ७ ॥

भावार्थ—हम में न कोई रोग रहे, न हिंसा आदि अनर्थ करनेवाला पुरुष रहे, न पाप बुद्धिवाला मनुष्य रहे और न ही पाप रहे ॥ ७ ॥

३९८—*वसिष्ठः । विराट् । इन्द्रः ।*

२ ३ १२ ३ १२ ३ १२ ३१२ ३ १२

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥८॥

पदार्थ—(पिबा) पान कर (सोमं) सोम का (इन्द्र) हे वैद्य (मन्दतु) प्रसन्न करे (त्वा) तुझे (यम्) जिसको (ते) तेरे लिए (सुषाव) चुआता है (हर्यश्व) हरणशील इन्द्रियों वाले (अद्रिः) पाषाणखण्ड (सोतुः) चुआने वाले के (बाहुभ्यां) हाथों से (सुयतः) पकड़ा हुआ (न) समान (अर्वा) अश्व के ॥८॥

भावार्थ—हे हरणशील इन्द्रियों से युक्त भिषक् ! तू इस सोम का पान कर । जिसको कि तैयार कर्ता के हाथ से पकड़ा हुआ पाषाण खण्ड चुआता है । वह सोम तुझे वैसे ही हर्ष प्राप्त करावे जैसा कि शिक्षित अश्व यथाभिमत स्थान को प्राप्त करता है ॥८॥

卐 पाँचवी दशती समाप्त 卐

३९९—*सोभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।*

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

३ १ २ ३ १ २

युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

पदार्थ—(अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) विना नेता के (त्वं) तू (अनापिः) विना बन्धु (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (जनुषा) स्वभाव से (सनात्) सनातन (असि) है (युधा) व्याप्ति से (इत्) ही (आपित्वम्) मित्रभाव को (इच्छसे) चाहता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू स्वभाव से शत्रुरहित, विना नेता, तथा विना बन्धु बान्धव के है । तू सनातन है । व्यापक होने के कारण सब से सम्बन्ध रखता है ॥१॥

४००—*सोभरिः । विराट् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

सखाय इन्द्रमूतये ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (नः) हमें (इदम्, इदम्) नाना प्रकार की वस्तुएं (पुरा) पूर्व काल में पूर्व कल्प के समान (प्र) उत्कृष्ट (वस्यः) उत्तम-उत्तम (आनिनाय) प्रकट रूप में देता है (तम्) उसका (वः) उसी (स्तुषे) स्तुति करता हूँ (सखायः) हे मित्रो ! (इन्द्रम्) परमेश्वर की (ऊतये) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! जिससे पूर्व कल्प [पूर्व सृष्टि] के समान वर्तमान सृष्टि में हमें नाना प्रकार के उत्तम-उत्तम जीवन के साधन प्रदान किये हैं, मैं अपनी रक्षा के लिए उसी परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ॥२॥

४०१—*सोभरिः । ककुप् । मरुतः ।*

१२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः ।

३१ २

दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥३॥

पदार्थ—(आगन्ता) आओ (मा, रिषण्यत) किसी को दुःख मत दो अथवा किसी के साथ संग्राम मत करो (प्रस्थावानः) हे अपने शत्रुओं को जीतने के लिए प्रस्थान करने वालो ! (मा) मत (अपस्थात) जाओ (समन्यवः) एक समान विचार वाले आप लोग (दृढाचित्) बलवान् से बलवान् को भी (यमयिष्णवः) अपने नियम में रखने वाले हैं ॥३॥

भावार्थ—हे यज्ञादि परोपकार के करने वालो ! ऋत्विजो एवं वीरो! आओ किसी को कष्ट मत दो तथा किसी के साथ संग्राम मत करो । तुम लोग शत्रुओं पर विजय पाने के लिए प्रस्थान [कूच] करने वाले हो, किन्तु ऐसा न करो । यदि तुम लोगों का एक विचार [संगठन] हो तो बलवान् से बलवान् शत्रु पर भी विजय पाना और उसको अपने वश में रखना कठिन नहीं है ॥३॥

४०२—*सोभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।*

१ २३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १२

आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥४॥

पदार्थ—(आयाहि) आ (अयम्) यह उपस्थित है (इन्दवे) तेजस्वी के लिए (अश्वपते) हे घोड़े आदि पशुओं के स्वामी ! (गोपते) हे गौ आदि परोपकारी पशुओं के अधिष्ठाता (उर्वरापते) हे उपजाऊ भूमि के अधिपति ! (सोमम्) अमृत रस का (सोमपते) हे सोमरूप औषध के स्वामी (पिब) पान कर ॥४॥

भावार्थ—हे घोड़े आदि पशुओं के स्वामी ! हे गौ आदि उपकारी जीवों के स्वामी ! हे उपज से भरपूर भूमि के अधिष्ठाता ! पुरुष ! तेरे लिए यह सोमरस सुरक्षित है, तू इसका पान कर ॥४॥

४०३—*सोभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।

३ १ २र ३ १ २

संस्थे जनस्य गोमतः ॥५॥

पदार्थ—(त्वया) तेरी (ह, स्वित्) ही (युजा) सहायता से (वयम्) हम लोग (श्वसन्तं) क्रोधी शत्रु को (वृषभ) हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले प्रभो ! (प्रति, ब्रुवीमहि) प्रतिकार करते हैं [भगाते हैं] (संस्थे) युद्ध में (जनस्य) मनुष्य के (गोमतः) गौ आदि उपकारी पशुओं के स्वामी ॥५॥

भावार्थ—हे हमारी कामनाओं को सफल करने वाले प्रभो ! तेरी ही सहायता से हम लोग गौ आदि उपकारी पशुओं वाले मनुष्य के साथ संग्राम छिड़ने पर लड़ना तो दूर की बातें हैं, उस मनुष्य के विरुद्ध श्वास लेने वाले को भी मार भगाते हैं ॥५॥

४०४—*सोभरिः । ककुप् । मरुतः ।*

१ २ ३क २र ३ २ ३ १ २

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

रिहते ककुभो मिथः ॥६॥

पदार्थ—(गावः) ऋत्विक् लोग (चिद्, घ) निश्चय ही (समन्यवः) एक समान तेजस्वी (सजात्येन) समान जन्म द्वारा (मरुतः) मनुष्य मात्र (सबन्धवः) समानबन्धु (रिहते) विचरते हैं (ककुभः) दिशाओं में (मिथः) परस्पर ॥६॥

भावार्थ—समान तेज वाले, समान जन्म द्वारा समान बन्धुत्व वाले ऋत्विग् और मनुष्य लोग परस्पर प्रेम भाव से दिशाओं को विचरते हैं ॥६॥

४०५—नृमेधाः । ककुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
२ ३१ २ ३१२
आ वीरं पृतनासहम् ॥७॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (नः) हमें (इन्द्र) हे प्रभो (आभर) दे (ओजः) बल (नृम्णं) धन (शतक्रतो) हे अनन्त ज्ञान के भण्डार ! (विचर्षणे) हे ब्रह्माण्ड के स्वामी ! (आ) सब प्रकार से (वीरम्) वीरपुत्र (पृतनासहम्) विजयी ॥७॥

भावार्थ—हे अनन्त ज्ञान के भण्डार! हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के साक्षी परमेश्वर! तू हमें बल, धन और वीर पुत्र दे ॥७॥

४०६—नृमेधाः । ककुप् । इन्द्रः ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३१२ ३ १२
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
३२ ३ १ २ ३ १ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८॥

पदार्थ—(अधा) इस समय (हि) क्योंकि (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (गिर्वण) हे स्तुतियों के योग्य (उप) समीप (त्वा) तेरे (कामः) कामना से युक्त (ईमहे) याचना करते हैं । (ससृग्महे) संयुक्त होते हैं । (उदा) जल के साथ (इव) समान (ग्मन्त) जाते हुए (उदभिः) जलों से ॥८॥

भावार्थ—हे स्तुत्य परमेश्वर ! जल से जाते हुए, जैसे जल से होते हैं वैसे ही कामनाओं से युक्त हम लोग तेरे समीप याचना करते हैं और अपनी कामनाओं को सिद्ध करते हैं ॥८॥

४०७—सौभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
३ १ २र
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥९॥

पदार्थ—(सीदन्तः) बैठते हुए (ते) वे (वयो यथा) जैसे पक्षीगण (गोश्रीते) दुग्ध से मिश्रित (मधौ) मधुर (मदिरे) आनन्ददायक (विवक्षणे) वाक् शक्ति देनेवाले (अभि) लक्ष्यकर (त्वाम्) तुझे (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नोनुमः) नमस्कार करते हैं ॥९॥

भावार्थ—जिस प्रकार दुग्धादि युक्त आनन्ददायक पदार्थ पर पक्षी आदि टूटते हैं, उसी प्रकार हम हे परमेश्वर ! आपकी शरण में आकर उपासना करते हैं ॥९॥

४०८—सौभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
वज्रिं चित्रं हवामहे ॥१०॥

पदार्थ—(वयं) हम लोग (उ) पादपूरक (त्वाम्) तुझे (अपूर्व्य) हे अनादि (स्थूरं) कुठिले के (न) समान (कश्चित्) कोई (भरन्तः) भरता हुआ (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाला । (वज्रिन्) हे न्याय करने वाले ! (चित्रं) अद्भुत (हवामहे) पुकारते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे न्यायकारी ! अनादि परमेश्वर ! जैसे कोई मनुष्य कुठिले को अपनी रक्षार्थ गेहूँ आदि से भरता है, वैसे ही अपनी रक्षा चाहने वाले हम लोग आपको स्तुतियों से भर कर पुकारते हैं ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

४०९—गोतमः । पंक्तिः । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

पदार्थ—(स्वादोः) स्वादिष्ट (इत्था) इस प्रकार (विषूवतः) विस्तृत (मधोः) मधुर जल (पिबन्ति) पीती हैं (गौर्यः) सूर्य की किरणें (यः) जो (इन्द्रेण) सूर्य से (सयावरीः) निकलने वाली (वृष्णा) वर्षा करनेवाले (मदन्ति) शोभा पाती हैं जिस प्रकार (शोभथाः) शोभती हैं (वस्वीः) पृथ्वी का (अनु) बाद (स्वराज्यम्) अपना राज्य प्राप्त करने को ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! (सारी प्रजायें) धन-धान्य से पूर्ण पृथिवी पर प्रजा-तन्त्र-शासन होने पर उसी प्रकार तृप्त और प्रसन्न होती हैं, जिस प्रकार वर्षा करने वाले सूर्य के साथ चलनेवाली किरणें स्वादिष्ट और मधुर जल ग्रहण करती और लोगों को सुखी करती हैं ॥१॥

४१०—गोतमः । पंक्तिः । इन्द्रः ।

३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ।२॥

पदार्थ—(इत्था) इस प्रकार विधिपूर्वक (हि) क्योंकि (सोमे) आनन्द में मग्न होने पर (इत्) ही (मदः) स्तोता (ब्रह्म) स्तोत्र (चकार) करता है (वर्धनम्) उन्नति का कारण (शविष्ठ) बलवान् (वज्रिन्) शस्त्रधारी सभाध्यक्ष (ओजसा) बल से (पृथिव्याः) भूमि के (नि शशाः) पूर्णतया शासन कर (अहिम्) आक्रमण करनेवाले का (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (अनु) पीछे (स्वराज्यम्) अपना राज्य होने के ॥२॥

भावार्थ—हे बलवान् शस्त्रधारी योद्धा पुरुष ! अपने राज्य का स्वागत करता हुआ, काले सांप के समान आक्रमण करनेवाले भूमि के शत्रुओं का सत्यानाश कर, क्योंकि आनन्द में मग्न होकर स्तुति करनेवाले इसी प्रकार तेरी उन्नति का वर्णन करते हैं ॥२॥

४११—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) सेनापति (मदाय) अपने अनुयायियों की प्रसन्नता के लिए (वावृधे) स्वयं शक्ति-संचय कर बढ़ता है (शवसे) बल के लिए (नृभिः) सेना और प्रजाओं के साथ (वृत्रहा) शत्रु का नाश करनेवाला (तमित्) उसी को (महत्स्वाजिषु) बड़े बड़े संग्रामों में (ऊतिम्) रक्षा के लिए (अर्भे) छोटे संग्राम में भी (हवामहे) आह्वान करते हैं । (सः) वह (वाजेषु) संग्रामों में (प्र) उत्कृष्ट (नः) हमारी (अविषत्) रक्षा करे ॥३॥

भावार्थ—शत्रु का नाश करने में समर्थ जो सेनापति शक्ति और प्रसन्नता के लिए सेना और प्रजाओं से अपनी शक्ति का संचय कर स्वयं बढ़ता है, हम लोग बड़े तथा छोटे संग्रामों में अपने रक्षक रूप से उसी की पुकार करते हैं । वही हमारी रक्षा करने में समर्थ हो सकता है ॥३॥

४१२—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्य्यम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्मायया वधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे सभ्याध्यक्ष ! (तुभ्यमित्) तेरे ही लिए (अद्रिवः) मेघ अथवा पर्वत के समान दुर्ग से युक्त (अनुत्तम्) स्वाभाविक (वज्रिन्) हे शस्त्रा-स्त्रों वाले (वीर्य्यम्) सामर्थ्य से (यत्) जिस (ह) निश्चित (त्यम्) उस (मायिनम्) छली-कपटी (मृगम्) दूसरे का धन हरण करनेवाले (तम्) उसी को (मायया) बुद्धिमानी से (अवधीः) मारता है (अर्चन्, अनु, स्वराज्यम्) सत्कार-पूर्वक स्वराज्य का पालन करता हुआ ॥४॥

भावार्थ—हे मेघवाले ! पर्वत के समान स्वराज्य से सुशोभित ! शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सभ्याध्यक्ष! तू अपनी स्वाभाविक शक्ति से स्वराज्य का पालन करता हुआ सब छली-कपटी तथा दूसरों के धनों को छीनने वालों को बुद्धिमत्ता से मार डालता है, इसलिए तू ही अधिकारी होने के योग्य है ॥४॥

४१३—गोमतः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
इन्द्र नम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५॥

पदार्थ—(प्रेहि) जा (अभीहि) सम्मुख जा (धृष्णुहि) आक्रमण कर (न) नहीं (ते) तेरा (वज्रः) शस्त्र (नियंसते) रोका जा सकता है (इन्द्र) हे सभ्याध्यक्ष ! (नृम्णम्) शत्रुओं को नम्र करने वाला (हि) निश्चय (ते) तेरा (शवः) बल है । (हनः) नाश कर सूर्य के समान (वृत्रम्) मेघ को (जया) वर्षा करता है (अपः) जल की (अर्चन् अनु स्वराज्यम्) स्वराज्य का सत्कारपूर्वक पालन करता हुआ ॥५॥

भावार्थ—हे राष्ट्रपति ! कोई शत्रु तेरा शस्त्र नहीं रोक सकता। तेरा बल शत्रुओं को झुका देने वाला है। जैसे सूर्य मेघ को छिन्न-भिन्न कर जल की वर्षा करता है, ऐसे ही तू अपने शत्रुओं के सम्मुख जा, आक्रमण कर, तथा उनका नाश करके अपने राष्ट्र की रक्षा कर ॥५॥

४१४—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ १ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥६॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**उदीरते**) उत्पन्न होते हैं (**आजयः**) संग्राम तो (**धृष्णवे**) विजयी पुरुष को (**धीयते**) दिया जाता है (**धनम्**) धन (**युङ्क्ष्वा**) युक्त कर (**मदच्युता**) बहादुर (**हरी**) घोड़ों को और (**कम्**) किसी अन्यायी को (**हन**) मार और किसी उदार को (**वसौ**) धन की राशि पर (**दधः**) रख (**अस्मान्**) हमें (**इन्द्र**) हे सेनापति ! (**वसौ**) धन पर (**दधः**) अधिकारी बना ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सेनापति ! जब जब संग्राम होते हैं, तब तब वीर पुरुष ही धनों के अधिकारी होते हैं। तू बलवान् घोड़ों को अपने रथ में जोड़ और अन्यायियों को मारकर न्याय करने वालों को धन का अधिकारी बना ॥६॥

४१५—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥७॥

पदार्थ—(**अक्षन्**) शुभ गुणों को प्राप्त करो (**अमीमदन्त**) अत्यन्त प्रसन्न हो (**हि**) निश्चय (**अव, अधूषत**) दुःखों से छुड़ा (**प्रियाः**) प्यारा हो (**अस्तोषत**) प्रशंसा करो (**स्वभानवः**) अपने आप तेजस्वी (**विप्राः**) हे बुद्धिमान् पुरुषो ! (**नविष्ठया**) बिलकुल नवीन (**मती**) बुद्धि से (**योजानु**) जोड़। (**इन्द्र**) हे सभाध्यक्ष ! (**ते**) अपने (**हरी**) घोड़ों को ॥७॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष ! अपने घोड़ों को हमारे कल्याण के लिए जोड़िए। हे स्वयं तेजस्वी तथा बुद्धिमान् पुरुषो ! अत्यन्त नवीन ज्ञान से सब के प्रिय हूजिए, शास्त्रों की प्रशंसा कीजिए, और हमारे दुःखों को दूर कीजिए। शुभ गुणों की प्राप्ति से अपने आप अत्यन्त प्रसन्न रहिए ॥७॥

४१६—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा विन्द्र ते हरी ॥८॥

पदार्थ—(**उप**) समीप (**सु**) सुन्दर (**शृणुही**) सुन (**गिरः**) स्तुतियां (**मघवन्**) सकल सम्पदाओं के स्वामी ! (**मा**) नहीं (**अतथाः**) विपरीत (**कदा**) कब (**नः**) हमें (**सूनृतावतः**) सच्ची स्तुतियों वाला (**करः**) करता है (**अर्थयासे इत्**) याचना की जाती है (**योजा**) युक्त करता है (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**ते**) अपने (**हरी**) वायु और अग्नि को ॥८॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू हमारी स्तुतियों को सुन, कभी मेरे विपरीत न हो, हमें सत्यवक्ता बना। तेरी उपासना की जाती है। तू ही अग्नि और वायु को युक्त करता है ॥८॥

४१७—चितः । पङ्क्तिः । विश्वेदेवाः ।

३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २ ३ २
चन्द्रमा अप्स्वाऽ३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥

पदार्थ—(**चन्द्रमाः**) चन्द्रमा (**अप्स्वन्तरा**) व्यवस्थित है (**सुपर्णः**) उत्तम किरण वाला [क्रियावान्] (**धावते**) भ्रमण करता है (**दिवि**) सूर्य के प्रकाश में (**न**) नहीं (**वः**) तुम्हारे (**हिरण्यनेमयः**) चमकदमकवाली (**विद्युतः**) बिजली (**पदम्**) शिल्प की कारीगरी या अन्य उत्पादनों के कामों में (**विन्दन्ति**) प्राप्त होती हैं [अर्थात् तुम लोग बिजली का ठीक उपयोग नहीं करते] (**वित्तं**) जाने (**मे**) मुझ पदार्थविद्या को जाननेवाले की उत्तेजना से (**अस्य**) इस पूर्वोक्त विषय को (**रोदसी**) सूर्य और पृथिवी के समान शासन करनेवाले प्रजाजन ॥९॥

भावार्थ—हे सूर्य और पृथिवी के समान राजा और प्रजाजनो ! अन्तरिक्ष में सूर्य के प्रकाश में अच्छी किरणोंवाला चन्द्रमा अतिशीघ्रता से घूमता है। तुम लोग चमक-दमक वाली बिजली को अनेक वस्तुओं के बनाने में नहीं वर्त्तते। मुझ पदार्थ-विद्या के जाननेवाले से उत्साह पाकर ऊपर कहे विषय को जानो ॥९॥

४१८—अवस्युः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१०॥

पदार्थ—(**प्रति**) उपसर्ग (**प्रियतमम्**) अत्यन्त प्रिय (**रथम्**) रथ (**वृषणम्**) सुखदायक (**वसुवाहनम्**) धन देने के योग्य (**स्तोता**) स्तुति करने वाला (**वाम्**) तुम दोनों के (**अश्विनौ**) हे अध्यापक और उपदेशक (**ऋषिः**) मन्त्रद्रष्टा (**स्तोमेभिः**) स्तुति के द्वारा (**प्रतिभूषति**) सुशोभित करता है (**माध्वी**) मधु [ब्रह्म] की शिक्षा देनेवाले (**मम**) मेरे (**श्रुतम्**) सुनें (**हवम्**) आह्वान को ॥१०॥

भावार्थ—हे ब्रह्मविद्या की शिक्षा देनेवाले अध्यापक और उपदेशक ! जो स्तुति करनेवाला कवि प्रशंसा के द्वारा आप लोगों के अत्यन्त सुन्दर सुखदायक और धन ढोने वाले रथ को सुशोभित करता है उसकी और मेरी भी प्रार्थना आप सुनें ॥१०॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

४१९—वत्सः, वसुश्रुतः । पङ्क्तिः । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**ते**) तेरी (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**इधीमहि**) ध्यान करते हैं (**द्युमन्तम्**) प्रकाशस्वरूप (**देव**) हे देव ! (**अजरम्**) अजर(**यत्-ह**) जो कि (**स्या**) वह (**ते**) तेरी (**पनीयसी**) प्रशंसनीय (**समिद्**) दीप्ति (**दीदयति**) प्रकाशित करती है (**द्यवि**) आकाश में (**इषम्**) ज्ञान और अन्न (**स्तोतृभ्यः**) उपासकों के लिए (**आभर**) दे ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्मदेव ! प्रकाशस्वरूप, अजर, तुझे हम अपने ज्ञान में या आत्मा में प्रकाशित करते हैं। तेरी प्रशंसनीय समित्—दीप्ति द्युलोक में प्रकाशित करती है। हे भगवन् ! तू उपासकों के लिए अन्न और ज्ञान दे ॥१॥

४२०—विमदः । पङ्क्तिः । अग्निः ।

१ २र ३ १ २
अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥२॥

पदार्थ—(**आ, अग्निम्**) अग्रणी परमेश्वर की (**न**) इस समय (**स्ववृक्तिभिः**) दोषरहित स्तुतियों से (**होतारम्**) दाता (**त्वा**) तुझ (**वृणीमहे**) प्रार्थना करते हैं (**शीरं**) सर्वव्यापक (**पावकशोचिषम्**) पावक तेजस्वी (**वि**) विशेष (**वः**) तेरी (**मदे**) उपासना में (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**स्तीर्णबर्हिषम्**) बैठनेवाले को (**विवक्षसे**) निर्वाह का साधन देता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम इस समय निर्दोष स्तुतियों के द्वारा, सब के सामने विद्यमान दाता, सर्वव्यापक और पवित्र तेजवाले तेरी उपासना में विशेषरूप से प्रार्थना करते हैं। तू यज्ञ करनेवालों को निर्वाह का साधन देता है ॥२॥

४२१—सत्यश्रवाः । पङ्क्तिः । उषा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यथा चिन्नो अबोधय सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

पदार्थ—(**महे**) बड़ी (**नः**) हमें (**अद्य**) आज भी (**बोधय**) जगाती है (**उषा, उ**) उषादेवी (**राये**) सम्पत्ति का उपार्जन करने के लिये (**दिवित्मती**) प्रकाशवाली (**यथाचित्**) जैसे ही (**नः**) हमें (**अबोधयः**) सृष्टि के प्रारम्भ से जगाती आई है वैसे ही (**सत्यश्रवसि**) सत्यविद्या और कीर्त्ति के निमित्त (**वाय्ये**) तन्तु के समान सन्तति का विस्तार करने वाली स्त्री ! (**सुजाते**)सुन्दर कुल में उत्पन्न (**अश्वसूनृते**) सत्य और प्रिय बोलने वाली ॥३॥

भावार्थ—हे श्रेष्ठगुणोंवाली ! धागे के समान सन्तान का विस्तार करने वाली ! सत्य और मधुर बोलनेवाली कुलीन स्त्री ! मनुष्य जैसे चमकती हुई उषा देवी के उदय होने पर महान् धन के उपार्जन के लिये अपने अपने कामों में लग जाते हैं, ऐसे ही आज हमें तू भी सम्पत्ति, विद्या तथा सच्ची कीर्त्ति के लिये ज्ञान का प्रकाश दे ॥३॥

४२२—विमदः । पङ्क्तिः । सोमः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥४॥

पदार्थ—(भद्रम्) कल्याणकारक (नः) हमारा (अपि) भी (वातय) प्राप्त करा (मनः) संकल्प-विकल्प करने वाला मन (दक्षम्) बल को (उत) और (क्रतुम्) ज्ञान को भी (अथ) उसके बाद (ते) तेरी (सख्ये) मित्रता में लगा हुआ (अन्धसः) अन्न के दाता (वि) विशेष रूप से (वः) हम तेरे (मदे) आनन्द में (रणः) रमण करनेवाली (गावो न) गौओं के समान (यवसे) घास में क्योंकि (विवक्षसे) तू महान् है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे मन को कल्याणकारी तथा चतुरतायुक्त बना और ज्ञान प्राप्त करा। तेरी मित्रता तथा अन्न आदि के आनन्द में हम तुझे स्वीकार करते हैं, जिस प्रकार गौएँ घास में आनन्द प्राप्त करती हैं ॥ ४ ॥

४२३—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५॥

पदार्थ—(क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से (महान्) बड़ा (अनुष्वधं) अन्नादि की अनुकूलता से (भीमः) भयङ्कर (आ) सब प्रकार से (वावृते) संग्रह करता है (शवः) बल को (श्रिये) शोभा के लिये (ऋष्व) विद्वान् (उपाकयोः) समीप की सेनाओं में (नि) निश्चय (शिप्री) उत्तम मुखवाला (हरिवान्) उत्तम घोड़ोंवाला (दधे) धारण करता है (हस्तयोः) हाथों में (आयसम्) लोहे का ॥ ५ ॥

भावार्थ—अश्वादि से युक्त उत्तम मुखवाला भयङ्कर महान् ज्ञानी राजा कीर्ति के लिये अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार शक्ति का संग्रह करता है। संग्राम में उपस्थित हुई सेनाओं के मध्य में हाथों में लोहे का वज्र धारण करता है ॥ ५ ॥

४२४—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।

१ २र ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क २र ३ १ २

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥६॥

पदार्थ—(स घा) वही (तं) उस (वृषणं) कामनाओं की पूर्ति करने वाला (रथं) यान पर (अधितिष्ठाति) बैठता है (गोविदम्) भूमि प्राप्त कराने वाला (यः) जो (पात्रम्) रक्षा के निमित्त (हारियोजनम्) घोड़ों से युक्त (पूर्णं) सारी सामग्री से परिपूर्ण (इन्द्र) हे परम विद्याधन से युक्त (चिकेतति) जानता है (योजानु) शीघ्र जोड़ (इन्द्र) हे सेनापति ! (ते) अपने (हरी) बहादुर घोड़ों को ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सेनापति ! तू घोड़ों से युक्त सारी सामग्री वाले और रक्षा करने में समर्थ जिस रथ को जानता है उसी रथ में अपने घोड़ों को जोड़ दे। हे सेनापति ! कामनाओं को सफल करनेवाले और भूमि की विजय करानेवाले तेरे रथ में जो बैठेगा वह विजय क्यों न पायेगा ॥ ६ ॥

४२५—वसुश्रुतः । पङ्क्तिः । अग्निः ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

पदार्थ—(अग्नि) राजा (तं) उसे (मन्ये) मानता हूँ (यः) जो (वसु) प्रजा को निवास देनेवाला (अस्तं) आश्रयरूप (यं) जिसको (यन्ति) प्राप्त होते हैं (धेनवः) गौएँ (अस्तं) आश्रयरूप (अर्वन्तः) विद्वान् (आशवः) कुशाग्रबुद्धि (नित्यासः) सदा रहनेवाले (वाजिनः) घोड़े (इषं) धन से (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के लिये (आभर) भरपूर कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—मैं उसको ऐश्वर्यवान् राजा मानता हूँ जो सब प्रजा को निवास देनेवाला है, आश्रयरूप जिसको गौएँ प्राप्त होती हैं, कुशाग्रबुद्धि विद्वान् जिस आश्रय-रूप को प्राप्त होते हैं तथा जिस महाशरण को सदा रहनेवाले घोड़े प्राप्त होते हैं। हे राजन् ! वह तू स्तोताओं को धन से भरपूर कर ॥ ७ ॥

४२६—अंहोमुग्वामदेव्यः । विश्वेदेवाः । उपरिष्टाद् बृहती ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥८॥

पदार्थ—(न) नहीं (तं) उस (अंहः) पाप (न) नहीं (दुरितम्) पाप से उत्पन्न दुःख ही (देवासः) हे विद्वान् पुरुषो ! (अष्ट) प्राप्त हो सकता है (मर्त्यम्) मनुष्य को (सजोषसः) प्रेम से युक्त (यं) जिसके (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (मित्रः) परमेश्वर (अतिनयति) शासन करता है (वरुणः) हितैषी पुरुष (अति) दूर कर (द्विषः) द्वेष करने वालों को ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! जिस पुरुष को न्यायकारी परमेश्वर और हितैषी लोग ठीक रास्ते से ले चलते तथा उससे द्वेष करने वालों को दूर कर देते हैं, उस मनुष्य को न तो पाप लगता है और न पाप से होने वाले दुःख ही सताते हैं ॥ ८ ॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

४२७—ऋणत्रसदस्यूसहितावृषी । द्विपदा पङ्क्तिः । पवमानः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (प्रधन्व) वर्षा कर (इन्द्राय) जीव के लिए (सोम) हे परमेश्वर ! (स्वादुः) अनिर्वचनीय आनन्द रस वाले तू (मित्राय) मित्र के लिए (पूष्णे) पालन-पोषण करनेवाले तथा (भगाय) ऐश्वर्यशाली पुरुष के लिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! स्नेही, पालनपोषण करनेवाले और ऐश्वर्यशाली जीव को अपने आनन्द रस का पान करा ॥ १ ॥

४२८—ऋषिदेवते पूर्ववत् । पिपीलिकामध्या त्रिपदानुष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२॥

पदार्थ—(परि उ सु प्रधन्व) अच्छी प्रकार जा (वाजसातये) अन्न और जल की प्राप्ति के लिए (वृत्राणि) पापों को (परि सक्षणिः) दूर करनेवाला (द्विषः) कामादि शत्रुओं को (तरध्या) तरने के लिए (ऋणया) ऋणों को (ईरसे) प्रेरणा देता है (नः) हमारे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! धन और अन्न की प्राप्ति, कामादि शत्रुओं से तरने के लिए पापों का नाश करने वाला तू हमें पितृ, देव तथा ऋषि ऋण का ज्ञान कराता है और उनके उतारने की प्रेरणा देता है ॥ २ ॥

४२९—ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । द्विपदा पङ्क्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥३॥

पदार्थ—(पवस्व) व्यापक हो रहा है (सोम) हे परमेश्वर ! (महान्) सबसे बड़ा (समुद्रः) आकाश के समान (पिता) उत्पन्न और रक्षा करने वाला (देवानां) सब देवों का (विश्वा) सब (अभि) सर्वतः (धाम) स्थानों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आकाश के समान सर्वव्यापक और महान् है तू सब देवों का पिता है। तू सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विराजमान है ॥३॥

४३०—ऋषिच्छन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥४॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (सोम) हे परमेश्वर ! (महे) महान् (दक्षाय) बल के लिये (अश्वः न) अग्नि के समान (निक्तः) शुद्ध (वाजी) गतिशील (धनाय) सम्पत्ति के लिए ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध गतिशील अग्नि के समान महान् बल और धन की प्राप्ति के लिए पवित्र कर ॥४॥

४३१—ऋषिच्छन्दो देवतानि पूर्वोक्तानि ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५॥

पदार्थ—(इन्दुः) परमैश्वर्यवाला परमेश्वर (पविष्ट) पवित्र (चारुः) उत्तम (मदाय) आनन्द के लिए (अपामुपस्थे) अन्तरिक्ष में (कविः) सर्वज्ञ (भगाय) सम्पत्ति के लिए ॥५॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली, उत्तम गुण वाला तथा सर्वज्ञ परमेश्वर अन्तरिक्ष (आकाश) में विद्यमान है। वह ऐश्वर्य और आनन्द के लिए हमें पवित्र करे ॥५॥

४३२—ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । पिपीलिका मध्या त्रिपदानुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥६॥

पदार्थ—(अनु) पश्चात् (त्वा) तुझ (सुतम्) उत्पादक (सोम) हे आनन्दस्वरूप परमेश्वर (मदामसि) आनन्द का अनुभव करते हैं (महे) महान् (समर्यराज्ये) ज्ञानी जनों के राज्य [ज्ञानयज्ञानुष्ठान] में (वाजान्) अन्न और बलों को (पवमान) हे पवित्रकर्त्ता ! (अभिप्रगाहसे) हर प्रकार से प्रदान करता है ॥६॥

भावार्थ—हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! तुझ उत्पादक (सृष्टिकर्त्ता) के राज्य में तेरे साक्षात् होने के बाद हम आनन्द का अनुभव करते हैं। तू अन्न और बलों का दाता है ॥६॥

४३३—वसिष्ठः। मरुतः। द्विपदापङ्क्तिः।

२ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ १ २

क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥७॥

पदार्थ—(कः) कौन (ईं) इस (व्यक्ता) स्पष्ट (नरः) प्राप्त कराते हैं (सनीडा) समान स्थान में करने वाले (रुद्रस्य) परमेश्वर के (मर्या) मरणधर्मा मनुष्य (अथ) अर्थात् (स्वश्वाः) उत्तम विद्वान् ॥७॥

भावार्थ—कौन मरणधर्मा मनुष्य परमेश्वर की प्राप्ति के पथप्रदर्शक हैं ? समान रूप से संसारगृह में रहने वाले उत्तम विद्वान् जन ॥७॥

४३४—वामदेवः। त्रिपदापङ्क्तिः। अग्निः।

२३ २३२३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदि स्पृशम्। ऋध्यामा त ओहैः ॥८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (तम्) उस (अद्य) आज (अश्वं न) यज्ञाग्नि के समान (स्तोमैः) स्तोत्रों से (क्रतुम्न) बुद्धि के समान (भद्रं) कल्याण को (हृदिस्पृशम्) हृदयस्थ (ऋध्यामा) बढ़ाते हैं, (ते) तेरे (ओहैः) ज्ञान को प्राप्त कराने वाले ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे ज्ञान प्राप्त करानेवाले स्तोत्रों से हम यज्ञाग्नि के समान तथा बुद्धि के समान हृदयस्थ आनन्द को बढ़ाते हैं ॥८॥

४३५—वामदेवः। पुरउष्णिक्। वाजिनः।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः सवम्।

३ १ २

स्वर्गां अर्वन्तो जयत ॥९॥

पदार्थ—(आविः) आविर्भूत (मर्याः) मनुष्य (आ) सब प्रकार से (वाजं) अन्न को (वाजिनः) विद्वान् (अग्मन्) प्राप्त होते हैं (देवस्य) देव (सवितुः) सबके उत्पादक (सवम्) सृष्टिरचना के अनुसार (स्वर्गां) अनेक सुखों को (अर्वन्तः) पूर्णज्ञाता (जयत) लाभ करते हैं ॥९॥

भावार्थ—उत्पन्न हुए मरणधर्मा विद्वान् पुरुष सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की सृष्टि रचना के अनुसार सुख के साधन अन्न आदि को संसार में प्राप्त होते हैं। पुनः पूर्ण ज्ञाता होते हुए स्वर्ग सुखविशेष को प्राप्त करते हैं ॥९॥

४३६—ऐश्वर्यरयाधिष्टरायाः ऋषयः। द्विपदापङ्क्तिः। पवमानः।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १२३ २

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥१०॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (सोम) हे परमेश्वर ! (द्युम्नी) यश वाले (सुधारः) सुन्दर धारण करनेवाले (महान्) शक्ति से महान् (अवीनाम्) रक्षा करनेवालों के (अनु) पीछे (पूर्व्यः) सर्वप्रथम ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू यशस्वी, संसार को धारण करने वाला और महान् है। तू रक्षा करनेवालों का भी श्रेष्ठ रक्षक है, तू हमें पवित्र कर ॥१०॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

४३७—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१॥

पदार्थ—(विश्वतोदावन्) हे सब प्रकार से दान करने वाले ! (विश्वतो नः) सब प्रकार से हमें (आभर) परिपूर्ण कर (यम्) जिस (त्वा) तुझे (शविष्ठम्) अति बलवान् को (ईमहे) याचते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सब प्रकार से दान करने वाले दाता प्रभो ! तू अति बलवान् है, तुझी से याचना करते हैं। तू हमें सब प्रकार से परिपूर्ण कर ॥१॥

४३८—त्रसदस्युः। द्विपदा विराट्। इन्द्रः।

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥२॥

पदार्थ—(एष) यह (ब्रह्मा) सबसे महान् है (यः) जो (ऋत्वियः) ऋतु के अनुसार संसार के सारे कार्यों का संचालन करने की प्रसिद्धि वाला है (इन्द्रो नाम) ईश्वर नाम से (श्रुतः) संसार में विख्यात है (गृणे) उसकी स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो प्रत्येक ऋतु के अनुसार संसार के सारे कार्यों का संचालन करता है, वह सबसे महान् तथा ईश्वर नाम से प्रसिद्ध है। मैं उसकी स्तुति करता हूं ॥२॥

४३९—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्माणः) उपासना करने वाले लोग (इन्द्रं) परमेश्वर का (महयन्तः) पूजा करते हुए (अर्कैः) चारों वेदों से (अवर्धयन्) प्रसन्न करते हैं (अहये) सांप के समान पाप के (हन्तवा उ) नाश के लिए ॥३॥

भावार्थ—सांप के समान पाप के नाश के लिये चारों वेदों से परमेश्वर की पूजा करते हुए उपासक लोग उसको प्रसन्न करते हैं ॥३॥

४४०—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥४॥

पदार्थ—(अनवः) मनुष्य (ते) तेरे (रथम्) रथ को (अश्वाय) घोड़े के लिए (तक्षुः) बनाये हैं (त्वष्टा) परमात्मा ने (वज्रम्) शस्त्र का (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे गये विशेष पुरुष ! (द्युमन्तं) प्रकाशमान ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली सभाध्यक्ष ! बहुत लोग तुझे पुकारते हैं, कारीगरों ने तेरे घोड़ों के लिए योग्य रथ बनाये हैं। परमात्मा ने तेरे शस्त्र अचूक बनाये हैं (तू उनका उपयोग कर) ॥४॥

४४१—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥५॥

पदार्थ—(शं) कल्याणकारक (पदं) स्थान (मघं) धन (रयीषिणे) धन चाहने वाले संयमी पुरुष के लिए है (न) नहीं (कामं) कामना को (अव्रतः) अकर्मी (हिनोति) प्राप्त कर सकता है (न) नहीं (स्पृशत्) छू सकता (रयिम्) धन को ॥५॥

भावार्थ—कर्मों के विधिपूर्वक करने वालों के लिए कल्याणकारी पदवी और सम्पत्ति होती है, कर्महीन जन न कोई प्रतिष्ठा पाता है और न कोई सम्पत्ति ॥५॥

४४२—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। विश्वेदेवाः।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६॥

पदार्थ—(सदा) सर्वदा (गावः) चारों वेदों की वाणियां सूर्य की किरणें (शुचयः) पवित्र हैं (विश्वधायसः) संसार को धारण करने वाली हैं (सदा) सर्वदा (देवाः) देव (अरेपसः) पापरहित होते हैं ॥६॥

भावार्थ—जैसे चारों वेदों की वाणियां, भूमि पर का जल, सूर्य की किरणें और गौएँ सर्वदा पवित्र हैं तथा संसार को धारण करती हैं, ऐसे ही परमात्मा के भक्त भी सर्वदा परोपकारी और पापों से रहित होते हैं ॥६॥

४४३—संवर्तः। द्विपदाविराट्। उषा इन्द्रो वा।

१ २ ३ १ २ ३१ २र ३१ २र

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥७॥

पदार्थ—(आयाहि) जब आती हैं (वनसा सह) तेज के साथ (गावः) गौएँ (सचन्त) रहती हैं (वर्तनिं) गोशाला में (यत्) जो गौएँ (ऊधभिः) दूध से पूर्ण स्तनों वाली हैं ॥७॥

भावार्थ—जब उषादेवी प्रकाश करती हुई उदय होती है तब गोशाला में स्थित गौओं के स्तन दूध से भरे रहते हैं ॥७॥

[दूसरे पक्ष में] जिस समय सूर्य उदय होने लगता है उस समय उसकी किरणें तमाम फैलती हुई पूर्ण प्रकाश से युक्त होती हैं और अपने मार्ग पर दौड़ती हैं ॥७॥

४४४—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥८॥

पदार्थ—(क्षियन्तः) निवास करते हुए (प्रक्षे) घर में (मधुमति) भोग्य पदार्थों से युक्त (पुष्येम) पुष्ट करें (रयिम्) धन का भी (धीमहे) चिन्तन करें (ते) तेरा (इन्द्र) हे ईश्वर ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भोग के योग्य पदार्थों से युक्त अपने घरों में निवास करते हुए हम सम्पत्ति बढ़ायें और तेरा ध्यान या चिन्तन भी करें ॥८॥

४४५—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र

अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥९॥

पदार्थ—(अर्चन्ति) पूजा करते हैं (अर्कम्) पूजा करने के योग्य परमेश्वर की (मरुतः) विद्वान् लोग (स्वर्काः) मनोहर मन्त्रों से युक्त (आस्तोभति) स्तोत्रों से स्तुति करते हैं (श्रुतः) विख्यात (युवा) एक रस से विद्यमान (सः) वह (इन्द्रः) परमेश्वर ॥९॥

भावार्थ—मनोहर मन्त्रों से विद्वान् लोग पूजने योग्य परमेश्वर की पूजा करते हैं तथा स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। वह एक रस से विद्यमान परमेश्वर विख्यात है ॥८॥

४४६—त्रसदस्युः । द्विपदाविराट् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥१०॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**वः**) तुम लोग (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिये (**वृत्रहन्तमाय**) पापों के अत्यन्त नाश करनेवाले (**विप्राय**) बुद्धि के भण्डार (**गाथम्**) गान को (**गायत**) गाओ (**यम्**) जिस को प्रेम करता है (**जुजोषते**) स्वीकार करता है ॥१०॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! सर्वज्ञ और पापों के अत्यन्त निवारक परमेश्वर के लिए तुम जिस मन्त्र का गान करते हो, वह उसे स्वीकार करता है ॥१०॥

卐 दशमी दशती समाप्त 卐

४४७—पृषध्रः । द्विपदाविराट् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ॥१॥

पदार्थ—(**अचेति**) सब जानते हैं (**अग्निः**) परमेश्वर (**चिकितिः**) विश्व का ज्ञाता है (**हव्यवाड्**) कर्मफल तथा भोग्यों का दाता है (**न**) और (**सुमद्रथः**) शुद्ध ज्ञान ही उसका रथ है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा को सब जानते हैं और वह भी सब को जानता है। परमात्मा मनुष्यों को उन के भले और बुरे कर्मों के फल तथा भोग्य पदार्थों को देता है। शुद्ध ज्ञान ही भगवान् का रथ है ॥१॥

४४८—बन्ध्वादयः । द्विपदाविराट् । अग्निः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥२॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारे (**अन्तमः**) समीप है (**उत**) और (**त्राता**) रक्षक (**शिवः**) कल्याणकारक (**भुवः**) है (**वरूथ्यः**) भजन करने के योग्य है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे अत्यन्त समीप है और रक्षा करने वाला है। तू कल्याणकारक और भजन के योग्य है ॥२॥

४४९—सुबन्ध्वादयः । द्विपदाविराट् । भगः, अग्निः ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥३॥

पदार्थ—(**भगो न**) सूर्य के समान (**चित्रः**) अद्भुत (**अग्निः**) परमेश्वर (**महोनां**) धनवानों को (**दधाति**) देता है (**रत्नम्**) नाना प्रकार के देने योग्य रत्न ॥३॥

भावार्थ—सूर्य के समान अद्भुत परमेश्वर ही धनवानों को नाना प्रकार के रत्न आदि देता है ॥३॥

४५०—बन्ध्वादयः । द्विपदा विराट् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन्यदि वेह नूनम् ॥४॥

पदार्थ—(**विश्वस्य**) सब के (**प्रस्तोभ**) स्तुति के योग्य है (**पुरो वा सन्**) हमारे सम्मुख हो (**यदि वा**) अथवा (**इह**) हमारे अन्तःकरण में विराजमान (**नूनम्**) यह सत्य है ॥४॥

भावार्थ—हे पूज्य परमेश्वर ! तू जहाँ सब के पहले या आगे है, तो निश्चय ही इस संसार में भी विराजमान है ॥४॥

४५१—संवर्तः । द्विपदाविराट् । उषा ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्त्तनिं सुजातता ॥५॥

पदार्थ—(**उषा**) उषादेवी (**अप**) दूर (**स्वसुः**) रात्रि का (**तमः**) अन्धकार (**संवर्तयति**) दूर करती है (**वर्तनिम्**) मार्ग को (**सुजातता**) अपने प्रकाश से अपनी उत्पत्ति की विशेषता से ॥५॥

भावार्थ—उषादेवी उदय होकर रात्रि का अन्धकार नष्ट करती है और उत्पत्ति की विशेषता से मार्गों को दिखलाती है, यही उसकी महिमा है ॥५॥

४५२—भौवन आप्त्यः । द्विपदाविराट् । विश्वे देवाः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६॥

पदार्थ—(**इमा**) इन (**नु**) शीघ्र (**कम्**) सुख को (**सीषधेम**) सिद्ध करें (**भुवना**) सारा संसार (**इन्द्रश्च**) परमेश्वर भी (**विश्वे च**) और सब (**देवाः**) देव लोग भी ॥६॥

भावार्थ—परमेश्वर, सारा संसार, और सारे सूर्यादि देवता हमें शीघ्र सुखी करें ।६।

४५३—कवष ऐलूषः । द्विपदाविराट् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥७॥

पदार्थ—(**विस्रुतयः**) छोटे छोटे मार्ग (**यथा**) जैसे (**पथा**) राजमार्ग से निकलते हैं (**इन्द्र**) हे प्रभो ! (**त्वत्**) तुझसे (**यन्तु**) प्राप्त हों (**रातयः**) सारे दान ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जैसे राजमार्ग (बड़ी सड़क) से छोटी छोटी पगडंडियां निकलती हैं, ऐसे ही तुझ से अनेक प्रकार के दान हमें प्राप्त हों ॥७॥

४५४—भरद्वाजः । द्विपदाविराट् । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥

पदार्थ—(**अया**) इस स्तुति, प्रार्थना और उपासना के द्वारा (**वाजं**) अन्न और बल को (**देवहितम्**) परमेश्वर के दिये हुए (**सनेम**) प्राप्त करें (**मदेम**) प्रसन्न रहें (**शतहिमाः**) सौ वर्ष तक की आयु वाले हुए (**सुवीराः**) सुन्दर और सुशिक्षित पुत्र और पौत्रों से संयुक्त होकर ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस स्तुति, प्रार्थना और उपासना के द्वारा हम परमात्मा के दिये हुए अन्न और बल को प्राप्त करें तथा सुशिक्षित पुत्र और पौत्रों से युक्त हो कर सौ वर्ष तक प्रसन्न रहें ॥८॥

४५५—आत्रेयः । द्विपदा विराट् । विश्वेदेवाः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २
ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥९॥

पदार्थ—(**ऊर्जा**) बल से (**मित्रः**) सूर्य (**वरुणः**) जल (**पिन्वत**) दें (**इडाः**) अन्न आदि पदार्थ (**पीवरीं**) पर्याप्त (**इषम्**) विज्ञान (**कृणुही**) उत्पन्न कर (**नः**) हमारे लिये (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे लिये पर्याप्त ज्ञान दे, सूर्य और जल अपनी शक्ति से अन्न पैदा करें ॥९॥

४५६—वसिष्ठः । एकपदा गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २
इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१०॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) परमेश्वर (**विश्वस्य**) ब्रह्माण्ड का (**राजति**) शासन करता है ॥१०॥

भावार्थ—परमेश्वर सारे संसार का स्वामी है ॥१०॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

४५७—गृत्समदः । अष्टिः । इ[illegible]

१ २ ३ १ २र ३ २
त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म-
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं
२र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥

पदार्थ—(**त्रिकद्रुकेषु**) तीन प्रकार के शरीरों में (**महिषः**) महान् (**यवाशिरं**) भोगों को देनेवाले (**तुविशुष्मः**) अति बलवान् (**तृम्पत्**) तृप्त करता है (**सोमम्**) जीव को (**अपिबत्**) रक्षा करता है (**विष्णुना**) वायु के द्वारा (**सुतं**) उत्पन्न जगत् को (**यथावशम्**) यथेष्ट (**स**) वह (**ईं**) इसको (**ममाद**) आनन्दित करता है (**महि**) महान् (**कर्म**) कर्म (**कर्तवे**) करने के लिये (**महाम्**) महान् (**उरुं**) महान् (**सश्चद्**) प्राप्त होता है (**देवः**) देव (**देवम्**) देव (**सत्यः**) सत्य (**इन्दुः**) ऐश्वर्यशाली (**सत्यम्**) अविनाशी (**इन्द्रम्**) जीवको ।१।

भावार्थ—महान् शक्तिशाली जो तीनों शरीरों में विद्यमान सोम को सुखादि से तृप्त करता है, भोग के देने वाले संसार को वायु के द्वारा यथेष्ट रूपसे रक्षित करता है, और इस जीवको महान् कर्म करने के लिये आनन्दित करता है, वह अविनाशी परमेश्वर देव महान् देव जीवात्मा को प्राप्त होता है ॥१॥

४५८—गौराङ्गिरसः । अतिजगती । सूर्यः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ।२।

पदार्थ—(अयं) यह (सहस्रम्) हजारों (मानवः) मनुष्यसम्बन्धी (दृशः) दर्शनीय (कवीनाम्) बुद्धिमानों के (मतिः) मनन का विषय (ज्योतिः) ज्योति (विधर्म) सबको धारण करनेवाली (अर्णवः) महान् (समीचीः) सुन्दर (उषसः) उषाओं को (समैरयत्) प्रेरित करता है (अरेपसः) अन्धकाररहित (सचेतसः) ज्ञानीजन (स्वसरे) दिन में (मन्युमन्तः) ज्ञानवाले (चिताः) चेतन (गोः) प्रकाश से ॥ २ ॥

भावार्थ—यह सहस्रों मनुष्यों से सम्बन्धित दर्शनीय, बुद्धिमानों के मनन का विषय तथा सबको धारण करनेवाली ज्योति महान् सूर्य सुन्दर उषा को प्रेरित करता है। दिन में सूर्य से प्रकाश पाये हुए ज्ञानी तथा समस्त चेतनवर्ग अन्धकार से मुक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

४५९—परुच्छेपः। अत्यष्टिः। इन्द्रः।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २

हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (आयाहि) प्राप्त हो (नः) हमें (परावतः न) अज्ञान के कारण दूर वर्तमान हुओं के समान (अयं) यह (अच्छा) भली प्रकार (विदथानी) यज्ञों को (सइव) समान (सत्पतिः) सत्य का पालक (अस्ता) गृह को (राजेव) राजा के समान (सत्पतिः) सत्याचरण से युक्त (हवामहे) पुकारते हैं। (त्वा) तुझे (प्रयस्वन्तः) अन्नादि से युक्त (सुतेषु) भोग्य पदार्थों के सम्पन्न होने पर (पुत्रासः) पुत्र (न) समान (पितरं) पिता को (वाजसातये) अन्न का विभाजन करने के लिए (मंहिष्ठ) हे पूजनीय ! (वाजसातये) बल की प्राप्ति के लिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अज्ञानवश दूर वर्तमान हुओं के समान हम उपासकों को उसी प्रकार प्राप्त हों, जैसे यह सत्पति विद्वान् यज्ञों को प्राप्त होता है तथा सज्जनों का पालक राजा जैसे न्यायगृह को प्राप्त होता है, समस्त भोग्य पदार्थों के सम्पन्न होने पर अन्नादि से युक्त हम लोग बल प्राप्ति के लिए तुझ पूजनीय को वैसे पुकारते हैं जैसे कि पुत्र अन्न के विभाजन के लिए पिता को पुकारते हैं ॥ ३ ॥

४६०—रेभा। अतिजगती। इन्द्रः।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रादधानमप्रतिष्कुतं श्रवांसि भूरि।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥

पदार्थ—(तम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर का (जोहवीमि) बार-बार आह्वान करता हूँ (मघवानम्) दानी और धनवान् (उग्रम्) ओजस्वी (सत्रा) सर्वदा (दधानम्) धारण करने वाले (अप्रतिष्कुतम्) कभी भूल नहीं करने वाले (श्रवांसि) यश और अन्न (भूरि) बहुत (मंहिष्ठः) अतिपूज्य (गीर्भिः) स्तुतियों के द्वारा (आ) सब प्रकार से (च) और (यज्ञियः) उपासना के योग्य (ववर्त) प्राप्त हो (नः) हमें (विश्वा) सब (सुपथा) प्रशस्त मार्ग (राये) ऐश्वर्य के लिए (कृणोतु) करे (वज्री) न्यायरूप शस्त्र का धारण करने वाला ॥ ४ ॥

भावार्थ—कभी भी भूल न करने वाले, सबसे बड़े दानी और ओजस्वी परमेश्वर को बार-बार पुकारता हूँ। वह पूज्य और महान् है। स्तुतियों के द्वारा हम उसको प्राप्त करें। न्यायरूप शस्त्र को धारण करनेवाला वह हमारे धन के सारे मार्ग निर्विघ्न बना दे ॥ ४ ॥

४६१—परुच्छेपः। अतिशक्वरी। अत्यष्टिर्वा। विश्वेदेवाः।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु

२र ३ १ २ ३ १ २

त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवां अच्छा न धीतयः ॥५॥

पदार्थ—(अस्तु) हो (श्रौषट्) सत्य (पुरो) आगे (अग्निं) अग्नि और परमेश्वर को (धिया) ज्ञान और कर्म से (दधे) धारण करते हैं (आ) भली भाँति (नु) निश्चय ही (त्यत्) वह (शर्धः) बल को (दिव्यम्) दिव्य (वृणीमहे) प्राप्त करते हैं (इन्द्रवायू) विद्युत् और वायु (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (यत् ह) जो भी (क्राणा) कार्यों को सिद्ध करनेवाले (विवस्वते) सूर्य के लिए (नाभा) जगत् के मध्य में (सन्दाय) ध्यान को लगाकर (नव्यसे) नित्य नूतन (अध) अनन्तर (प्र नूनम्) निश्चय (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं (धीतयः) न धारण करने वाली शक्तियों के समान (धीतयः) सृष्टि के विधान (देवान्) देवों को (अच्छा) अच्छी प्रकार ॥ ५ ॥

भावार्थ—हम परमेश्वर को अपने ज्ञान और कर्म से आगे रखते हैं। उसके उस उत्तम दिव्य बल को स्वीकार करते हैं। जगत् के नाभि में स्थित नित्य नए सूर्य के विचार के लिए अपने ध्यान को लगाकर जब हम जगत् के समस्त कार्यों को सिद्ध करनेवाले विद्युत् और वायु को अपने ज्ञान में ग्रहण करते हैं तब धारण करनेवाली शक्तियों के समान सृष्टि के विधान (नियम) समस्त देवों को व्याप्त होकर स्थित हुए हमें ज्ञान में प्राप्त होते हैं, इस प्रकार यह कथन ठीक है ॥ ५ ॥

४६२—एवयामरुत्। अतिजगती। मरुतः।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्।

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥६॥

पदार्थ—(प्र) प्रकृष्ट (वः) तुम्हें (महे) बड़ाई के लिए (मतयः) बुद्धियाँ (यन्तु) प्राप्त हों (विष्णवे) यज्ञ के लिए (मरुत्वते) ऋत्विजों से युक्त (गिरिजा) वेदवाणी से उत्पन्न हुई (एवयामरुत्) हे ज्ञानयुक्त मनुष्य ! (प्रशर्धाय) उत्तम बल के लिए (प्रयज्यवे) उत्तम यज्ञसाधन के लिए (सुखादये) सुखपूर्वक भोग के लिए (तवसे) स्फूर्ति के लिए (भन्ददिष्टये) कल्याण सुख-संगत के लिए (धुनिव्रताय) अनेक व्यवहारों के लिए (शवसे) मानसबल के लिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे ज्ञानयुक्त मनुष्य ! बड़ाई, ऋत्विजों से युक्त यज्ञ, उत्तम बल, यज्ञ साधन, सुखपूर्वक भोग, स्फूर्ति, कल्याण, सुखसंगति, अनेक व्यवहारों तथा मानस बल के लिए वेदवाणी से उत्पन्न बुद्धियाँ तुम्हें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

४६३—अनानतः। अत्यष्टिः। सोमः।

३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—(अया) इस (रुचा) तेजसे (हरिण्या) रस का हरण करने वाले (पुनानः) पवित्र करता हुआ (विश्वा) समस्त (द्वेषांसि) द्वेषों को (तरति) नष्ट करता है (सयुग्वभिः) साथ जुड़े हुए ज्ञानों से (सूरः न) सूर्य के समान (सयुग्वभिः) जुड़ी हुई किरणों से (धारा) धारा से (पृष्ठस्य) द्युलोक के (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अरुषः) रूपवान् (हरिः) मनुष्य (विश्वा) सारे (यत्) जो (रूपा) रूपों को (ऋक्वभिः) ज्वालाओं रूप (सप्तास्येभिः) सात मुखों से (ऋक्वभिः) तेजों से (परियासि) व्यापता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! इस रस हरण करने वाली दीप्ति से जैसे सूर्य साथ जुड़ी किरणों से सब विरोधी अन्धकारों को नष्ट करता है, ऐसे ही पवित्रात्मा पुरुष द्वेषादि दुर्गुणों को साथ जुड़े ज्ञानों से नष्ट करता है और जैसे रूपवान अग्नि द्युलोक की तीव्र ज्योति धारा से दीप्त होता है और समस्त रूपों को सात प्रकार की ज्वालाओं रूप मुखों से व्यापता है, इसी प्रकार पवित्रात्मा पुरुष प्रशंसाओं से सर्वत्र व्याप्त होता है ॥७॥

४६४—नकुलः। अत्यष्टिः। सविता।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३

अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतु-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २

मर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम्।

३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि

१ २ ३ १ २ ३ १ २

हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥

पदार्थ—(अभि) सब ओर से (त्यम्) उस (देवम्) दान आदि गुणों वाले (सवितारम्) संसार के उत्पादक (ओण्योः) द्युलोक और पृथिवी लोक के अन्दर (कविक्रतुम्) बुद्धिपूर्वक जिसके सब काम हैं (अर्चामि) पूजा करता हूँ

(सत्यसवम्) सत्यज्ञान वाले (रत्नधाम्) सम्पूर्ण रत्नों के धारण करने वाले (अभिप्रियम्) सबके प्यारे (मतिम्) मनन करने योग्य (ऊर्ध्वा) ऊपर नीचे सब तरफ (यस्य) जिसकी (अमतिः) सबसे श्रेष्ठ (भाः) प्रकाश (अविद्युतत्) चमकता है (सवीमनि) आज्ञा में (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण हाथ में प्राप्त के समान (अमिमीत) बनाया है (सुक्रतुः) सुन्दर ज्ञान वाले (कृपा) कृपा से (स्वः) अपनी ॥ ८ ॥

भावार्थ—हाथ में सुवर्ण भूषण धारण कर सुन्दर यज्ञ करने वाला तथा पवित्र बुद्धि वाला मैं, जिसकी आज्ञा में प्रखर तेज ऊपर की तरफ प्रकाशित हो रहा है, जिसने अपनी कृपा से सकल ब्रह्माण्ड की रचना की है, द्युलोक और पृथिवी लोक में जिस के सारे काम बुद्धिपूर्वक देखे जाते हैं, सत्य ज्ञान वाले, सारे रत्नों के दाता, मनन करने के योग्य और संसार की प्रेरणा करने वाले उस प्यारे प्रभु की पूजा करता हूँ ॥ ८ ॥

४६५—परुच्छेपः । अत्यष्टिः । अग्निः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ९ ॥

पदार्थ—(अग्निम्) तेजस्वी (होतारम्) ग्रहण करने वाले (मन्ये) जानूं (दास्वन्तं) दानी (वसोः) ब्रह्मचारी का (सुनुम्) पुत्र (सहसः) बलवान् का (जातवदेसम्) विद्या में प्रसिद्ध (विप्रम्) बुद्धिमान् के (न) समान (जातवेदसम्) विद्या को प्रकट करने वाले (यः) जो (ऊर्ध्वया) उत्तम विद्या से (स्वध्वरः) कल्याणकारी सुन्दर यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले (देवः) मनोहर (देवाच्या) दिव्यशक्ति देने वाली (कृपा) कृपा से (घृतस्य) घी के (विभ्राष्टिम्) विविध पदार्थों को पकाने वाली अग्नि के समान (अनु) पीछे कामना करे (शुक्रशोचिषः) शुद्ध दीप्ति वाला (आजुह्वानस्य) होम करने के योग्य (सर्पिषः) प्राप्त करने के योग्य ॥९॥

भावार्थ—हे कन्ये ! जो पुरुष उत्तम विद्या से कल्याणकारी यज्ञ करने वाला हो, विद्वानों को प्राप्त होने वाली ईश्वर की कृपा से मनोहर हो, जो होम के लिये प्राप्त करने के योग्य शुद्ध पवित्र घी के साथ अनेक प्रकार के पदार्थों को पकाने वाली अग्नि के समान तेजस्वी हो, जो अग्नि के समान ग्रहण करने की योग्यता रखता हो, जो स्वयं दानी हो, जो बलवान् वसु ब्रह्मचारी का पुत्र हो, जो प्रसिद्ध विद्वान् पुरुष के समान अपनी विद्या को भी प्रकट करने की शक्ति रखता हो, मैं ऐसे पुरुष को ही पति स्वीकार करती हूँ, तू भी ऐसा ही कर ॥९॥

४६६—गृत्समदः । अतिशक्वरी । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१०॥

पदार्थ—(तव) तेरा (त्यत्) वह (नर्यम्) मनुष्यों का हितकारक (नृतः) हे सबको नचाने वाले (अपः) प्राणों को (इन्द्रः) हे जीव (प्रथमम्) पहला (पूर्व्यम्) पहले वालों ने किया हुआ (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर में (प्रवाच्यम्) प्रवचन करने के योग्य (कृतम्) कर दिया है (यः) जो (देवस्य) सब के प्रकाशक के (शवसा) बल से (प्रारिणाः) प्राप्त करता है (असुः) प्राण को (रिणन्) प्राप्त करता हुआ (अपः) जलों को (भुवः) तिरस्कार करता है (विश्वम्) सब (अभि) चारों तरफ से (अदेवम्) पापी को (ओजसा) अपनी शक्ति से (विदेत्) प्राप्त करावे (ऊर्जम्) बल को (शतक्रतुः) परमेश्वर (विदेत्) प्राप्त करावे (इषम्) अन्न को भी ॥१०॥

भावार्थ—हे प्रकृति से नाना प्रकार के काम लेने वाले जीव ! सब से प्रथम करने योग्य, परमेश्वर के विषय में वर्णन करने योग्य, मनुष्यों के हितकारी कर्म को तूने किया है। जिस परमेश्वर के बल से तूने प्राण धारण किया है तथा सारे असुरों को नीचा दिखाया है, वही सर्वज्ञ तुम्हें अन्न दे और बल दे ॥ १० ॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

पवमान पर्व

पञ्चमोऽध्यायः

४६७—अमहीयुः । पवमानः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

उच्चा ते जातमन्धसो दिविः सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ।१।

पदार्थ—(उच्चा) उत्तम (ते) तेरे (जातम्) उत्पन्न (अन्धसः) अन्न से (दिवि) मोक्षधाम में (सत्) विद्यमान (भूम्या) भूमिपर (आददे) प्राप्त करता है (उग्रं) अत्यंत (शर्म) सुख(महि) प्रचुर (श्रवः) कीर्ति ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पृथिवीस्थ मनुष्य तुम्हारे दिए हुए अन्न से उत्पन्न यश और सुख को तथा तुम्हारे उत्तम मोक्षधाम में विद्यमान सुख को भी प्राप्त करता है ॥१॥

४६८—मधुच्छन्दा । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥२॥

पदार्थ—(स्वादिष्ठया) सुस्वादु (मदिष्ठया) अति आनन्ददायक (पवस्व) बहता है (सोम) जल (धारया) धारा प्रवाह से (इन्द्राय) जीव के (पातवे) पीने के लिए (सुतः) उत्पन्न या निचोड़ा हुआ ॥२॥

भावार्थ—चुआया हुआ सोमरस, जीवात्मा के पीने के लिए, सुन्दर स्वादिष्ट और आनन्ददायक धार के रूप में टपकता है ॥२॥

४६९—भृगुर्वारुणिः, जमदग्निर्वा भार्गवः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३२ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥३॥

पदार्थ—(वृषा) सुख की वर्षा करने वाला (पवस्व) पवित्र कर अथवा प्रदान कर (धारया) वेदवाणी के द्वारा (मरुत्वते) प्राणधारण करनेवाले(च) और (मत्सरः) आनन्द का दाता (विश्वा) विश्व को (दधानः) धारण करता हुआ (ओजसा) शक्ति से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुखों की वृष्टि करने वाला आनन्ददाता तथा प्राणधारी जीव को अपनी शक्ति से सम्पूर्ण विश्व का धारण करता हुआ तू वेदवाणी से ज्ञान प्रदान कर या पवित्र कर ॥३॥

४७०—अहमीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (मदः) प्रसन्न करने या आनन्द देनेवाला (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ (तेन) उससे (पवस्व) पवित्र कर (अन्धसा) आनन्द या ज्ञान (देवावीः) विद्वानों की रक्षा करनेवाले (अघशंसहा) पापवृत्तियों का नाश करनेवाला ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! देवों का रक्षक और पापवृत्तियों का नाशक तू अपने आनन्द से हमें आनन्दित कर ॥४॥

४७१—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥५॥

पदार्थ—(तिस्रः) तीन (वाचः) वाणियां [ऋग्यजुसामरूप] (उदीरते) बोली जाती हैं (गावः) गायें (मिमन्ति) हुँकारती हैं (धेनवः) दूध देने वाली (हरिः) वायु (एति) बहती है (कनिक्रदत्) सनसनाती हुई ॥५॥

भावार्थ—वेदपाठी वेदों के तीनों प्रकार के मन्त्रों का पाठ करते हैं, जल्द की ब्यायी गाएं दुहने के लिए हुँकारती हैं, शीतल सुगन्ध मन्द वायु सन-सन करती हुई बहती है, अर्थात् सवेरा हो गया है ॥५॥

४७२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्राय) यजमान के लिए (इन्दो) सोमरस (मरुत्वते) ऋत्विजों से युक्त विराजमान (पवस्व) चूता है (मधुमत्तमः) अतिमधुर

(अर्कस्य) मन्त्र का (योनिम्) कारण परमात्मा को (आसदम्) प्राप्त करता हूँ ॥६॥

भावार्थ—अतिमधुर सोमरस ऋत्विजों के साथ यजमान के लिए चूता है । मैं मन्त्रों के रचने वाले परमात्मा को प्राप्त करता हूँ ॥६॥

४७३—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥७॥

पदार्थ—(असावि) चुआया गया है (अंशुः) सोम (मदाय) आनन्द के लिए (अप्सु) यज्ञ कर्मों में (दक्षः) शीघ्र (गिरिष्ठाः) पर्वत पर उत्पन्न होने वाला (श्येनो न) श्येन [बाज] पक्षी के समान (योनिम्) अपने स्थान [यज्ञ गृह] में (आसदत्) लाया जाता है ॥७॥

भावार्थ—पर्वतीय प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला, सोम, यज्ञों में आनन्द के लिए शीघ्र चुआया गया है । जैसे पक्षी अपने घोंसलों में आ जाते हैं, ऐसे ही सोमरस भी यज्ञगृह में लाया जाता है ॥७॥

४७४—दृढच्युतः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१२ ३१२ ३१ २ ३२३१२

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥८॥

पदार्थ—(पवस्व) ज्ञान दे (दक्षसाधनः) आत्मबल का साधन (देवेभ्यः) विद्वानों के (पीतये) रक्षा के लिए (हरेः) हे दुःखहारक (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के (वायवे) वायु के (मदः) आनन्ददाता ॥८॥

भावार्थ—हे दुःखहारक सोम परमेश्वर ! आत्मबल का साधन तथा आनन्ददाता तू विद्वानों, मनुष्यों तथा वायु की रक्षा के लिए हमें ज्ञान दे ॥८॥

४७५—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १२ ३ १ २

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥९॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानः) उपदेष्टा (गिरिष्ठाः) मेघ में व्यापक (पवित्रे) पवित्रात्मा में (सोमः) परमेश्वर (अक्षरत्) आनन्द की वर्षा करता है (मदेषु) उपासनाओं में (सर्वधा) सबका धारण करनेवाला (असि) है ॥९॥

भावार्थ—सर्वप्रकार उपदेष्टा, मेघ तथा पर्वतादि में व्यापक परमेश्वर पवित्र आत्मा में आनन्द की वर्षा करता है । हे परमेश्वर, तू उपासनाओं में सबका धारण करने वाला है ॥९॥

४७६—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (प्रिया) उत्तम (दिवः) दिव्यलोक अथवा दिव्य पदार्थों का (वयांसि) अवस्थाओं का (नप्त्योः) दिन और रात्रि में (हितः) कल्याणकारी (स्वानैः) उत्तम उपदेशों से युक्त (याति) पाता है (कविक्रतुः) बुद्धिमान् ॥ १० ॥

भावार्थ—दिव्य पदार्थों का उपदेश करनेवाला, रात्रि और दिन में भी हितकारी उत्तम उपदेशों से युक्त बुद्धिमान् पुरुष, उत्तम पद पाता है ॥ १० ॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

४७७—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

२ ३र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) विद्वान् जन (मदच्युतः) आनन्द का प्रवाह बहानेवाले हैं (श्रवसे) अन्न और कीर्ति के लिए (नः) हमारे (मघोनाम्) धनवानों के या दानी अथवा यजमानों के (सुता) जगत् में उत्पन्न हुए (विदथे) यज्ञशाला में (अक्रमुः) पहुँचते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जगत् में उत्पन्न हुए विद्वान् पुरुष, आनन्ददायक सोमरस हमारे यजमानों और धनवानों की कीर्ति तथा अन्न के लिये यज्ञशाला में पहुँचाये जाते हैं।१।

४७८—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ २ ॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) मनुष्य (विपश्चितः) विद्वान्, जन (अपः) जल जैसे (नयन्तः) ले जाते हैं (ऊर्मयः) तरंगों को (वनानि) वनों में (महिषा) भैंसे के (इव) समान ॥ २ ॥

भावार्थ—जलों की लहरों के समान और वनों के भैंसों के समान समूह बनाकर विद्वान् लोग सोमरस प्राप्त करते हुए लोगों के पास जाते हैं ॥ २ ॥

४७९—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली ! (वृषा) सुखों की वृष्टि करनेवाला (सुतः) निमित्त कारण या सृष्टिकर्त्ता (कृधी) कर (नः) हमारे (यशसः) यश के लिए (जने) जनता में (विश्वा) सारे (अप) दूर (द्विषः) द्वेषभावों को (जहि) दूर भगा ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! सुख की वृष्टि करनेवाला सृष्टिकर्त्ता तू जनता में हमें यशस्वी कर तथा हमारे समस्त काम क्रोधादि शत्रुओं को दूर भगा ॥ ३ ॥

४८०—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(वृषा) मनोवांछित फल के दाता (हि) निश्चय (असि) है (भानुना) अपने तेज से (द्युमन्तं) प्रकाशस्वरूप (त्वा) तुझे (हवामहे) आह्वान करते हैं (पवमान) हे पवित्र करनेवाले शान्तिस्वरूप परमात्मन् (स्वर्दृशम्) मोक्षरूप सुख विशेष के दिखाने वाले ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब को पवित्र करने वाले शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू मनोवांछित फलों का दाता है । तू अपने तेज से तेजस्वी और मोक्ष का दाता है । हम तुझे पुकारते हैं ॥ ४ ॥

४८१—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वं रथीरिव ॥ ५ ॥

पदार्थ—(इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (पविष्ट) पवित्र (चेतनः) चेतनस्वरूप (प्रियः) प्यारा (कवीनां) विद्वानों का (मतिः) पूजा के योग्य (सृजत्) उत्पन्न करता है (अश्वं) संसार को (रथीरिव) रथ के स्वामी के समान ॥ ५ ॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली, चेतनस्वरूप, सबका प्रिय तथा विद्वानों का माननीय परमेश्वर रथी के समान, गतिशील संसार को उत्पन्न करता है और व्याप्त करता है ॥ ५ ॥

४८२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(असृक्षत) उत्पन्न किए जाते हैं (वाजिनः) बलयुक्त (गव्या) गौ की इच्छा से (सोमासः) पुरुष (अश्वया) घोड़े की इच्छा से (शुक्रासः) पवित्र (वीरया) पुत्र की कामना से (आशवः) कर्मण्य ॥ ६ ॥

भावार्थ—बलयुक्त, शुद्ध तथा कर्मण्य पुरुष गाय, अश्व तथा पुत्र की इच्छा से संसार में उत्पन्न किए जाते हैं ॥ ६ ॥

४८३—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (देवः) दिव्यगुण वाला [आत्मा] (आयुषक्) जीवन [जिन्दगी] का सेवन करने वाला (इन्द्रम्) परमेश्वर की शरण में (गच्छतु) प्राप्त हो [जाय] (ते) तेरा (मदः) स्तोत्र (वायुम्) हवा में (आरोह) चढ़कर चल (धर्मणा) धारण करने वाले यन्त्र [यान] की सहायता से या प्राणायाम रूप धर्म से ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू नाना योनियों में भ्रमण करने वाला तथा मनुष्य की आयु का भी सेवन करनेवाला है । तू अपने को पवित्र कर । तेरा स्तोत्र परमेश्वर को मिले । तू यान या प्राणायाम के द्वारा वायु पर चढ़ (हवा में उड़ान ले) ॥ ७ ॥

४८४—अमहीयुः । पवमानः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ २ ३ २

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥

पदार्थ—(पवमानः) पवित्र करने वाले परमात्मा ने (अजीजनत्) उत्पन्न किया है (दिवः) द्युलोक के (चित्रं) विचित्र (तन्यतुम्) विद्युत् के (न) समान (ज्योतिः) प्रकाश (वैश्वानरं) सौर्य को (बृहत्) महान् ॥ ८ ॥

भावार्थ—पतितपावन परमात्मा ने द्युलोक की विचित्र वस्तु (बिजली) के समान महान् सूर्य के प्रकाश को उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥

४८५—असितः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानासः) सत्य का उपदेश करने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्यशाली (मदाय) आनन्द को (बर्हणा) महान् (गिरा) वाणी से (मधो) ज्ञान के (अर्षन्ति) प्राप्त करते हैं (धारया) धारण करने वाली ॥९॥

भावार्थ—सब प्रकार सत्य का उपदेश करने वाले ऐश्वर्यशाली विद्वान् महान् तथा ज्ञान को धारण करने वाली वाणी को आनन्द के लिए प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

४८६—असितः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१०॥

पदार्थ—(परि) सब तरफ से (प्रासिष्यदत्) उत्तमता से धार के साथ बहता है [पानी पर चलता है] (कविः) मेधावी [योगी] पुरुष (सिन्धोः) नदी के (ऊर्मौ) तरंग पर (अधिश्रितः) बैठकर या उसके आश्रय से (कारुम्) संसार के कर्त्ता को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहने के योग्य ॥१०॥

भावार्थ—बहुतों से चाहने योग्य, संसार के कर्त्ता परमेश्वर को धारण और उसका ध्यान करता हुआ मेधावी (योगी) पुरुष नदी की लहर पर बैठ कर, उसके साथ बड़ी सरलता से बहता है ॥१०॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

४८७—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गंपरिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१॥

पदार्थ—(उप उ) समीप (जातम्) उत्पन्न या प्रसिद्ध (अप्तुरम्) जल मिश्रित (गोभिः) दूध से (परिष्कृतम्) साफ किया हुआ और मिलाया हुआ (भंगम्) घुमाया गया [रसरूप से निकाला गया] (इन्दुम्) सोम को (देवाः) विद्वान् (अयासिषुः) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् जन घुमाए, दूध से साफ किए हुए और जल से मिलाए हुए प्रसिद्ध सोमरस को प्राप्त करते हैं ॥१॥

४८८—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥२॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करने वाला (अक्रमीत्) दबा लेता है (विश्वा) समस्त (मृधः) बाधाओं को (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा (शुम्भन्ति) शोभित करते हैं (विप्रं) सर्वज्ञ को (धीतिभिः) स्तुतियों से ॥२॥

भावार्थ—पवित्र कर्त्ता तथा सर्वद्रष्टा परमेश्वर समस्त बाधाओं को दबा देता है। उस महान् सर्वज्ञ को लोग स्तुतियों से सुशोभित करते हैं ॥२॥

४८९—यमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २

आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥३॥

पदार्थ—(आविशन्) प्रविष्ट होता हुआ (कलशं) शरीर में (सुतः) घुमाया हुआ (विश्वा) समस्त (अर्षन्) प्राप्त कराता हुआ (अभि) भली प्रकार (श्रियः) श्रियों को (इन्दुः) सोम (इन्द्राय) जीव के लिए (धीयते) शक्तिदाता होता है ॥३॥

भावार्थ—शरीर में प्रविष्ट होता हुआ सोमरस समस्त श्रियों को प्राप्त कराता हुआ जीव के लिए शक्तिदाता होता है ॥३॥

४९०—प्रभूवसुः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ १ २ ३ १ २

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥४॥

पदार्थ—(असर्जि) छोड़ दिया जाता है (रथ्यः) रथ में जोड़ने योग्य (यथा) जैसे (पवित्रे) पवित्र संसार में (चम्वोः) दो सेनाओं में (सुतः) उत्पन्न (कार्ष्मन्) संग्राम में (वाजी) घोड़ा (न्यक्रमीत्) चलता है ॥४॥

भावार्थ—जिस प्रकार रथ में जुता घोड़ा संग्राम में छोड़ा जाता है और सेनाओं के मध्य में भली भांति चलता है, उसी प्रकार जन्म धारण करनेवाला जीव पवित्र संसार में छोड़ दिया जाता है और वह क्रमानुसार द्यु और पृथिवी पर **विचरता है ॥४॥**

४९१—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥५॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (यत्) जो (गावः) चन्द्रमा की किरणों के (न) समान (भूर्णयः) भ्रमण करनेवाली (त्वेषा) चमकनेवाली (अयासः) गतिशील (अक्रमुः) फैलती हैं (घ्नन्तः) नाश करती हुई (कृष्णाम्) कृष्णरात्रि के (त्वचम्) अन्धकार को (अप) दूर ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रकार दीप्तिवाली तथा गमनशील किरणें कृष्णा रात्रि के तम को नष्ट करती हुई फैलती हैं, इसी प्रकार कर्मण्य विद्वान् जन अज्ञान का नाश करते हुए सर्वत्र विचरते हैं ॥५॥

४९२—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥६॥

पदार्थ—(अपघ्नन्) नाश करता हुआ (पवसे) पवित्र करता है (मृधः) हिंसावृत्तियों का (क्रतुवित्) संसार के सारे कर्मों के जाननेवाले (सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमेश्वर ! (मत्सरः) आनन्द के दाता (नुदस्व) प्रेरणा कर (अदेवयुम्) नास्तिक (जनम्) मनुष्य को ॥६॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू संसार के सब कर्मों का जानने वाला और आनन्द का दाता है। तू हिंसा करानेवाले भावों का नाश करता हुआ संसार को पवित्र करता है। हे नाथ ! आसुरी भावों को दूर करके दैवी भावों को भर दे ॥६॥

४९३—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥

पदार्थ—(अया) इस (पवस्व) पवित्र कर (धारया) धारा से (यया) जिससे (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) प्रकाश दिया है (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ (मानुषीः) मनुष्यों के (अपः) कर्मों की ॥७॥

भावार्थ—हे तेजस्वरूप परमेश्वर ! तू मनुष्यों के करने के कर्मों की प्रेरणा करता हुआ, उस पवित्र तेज की धारा से हमें पवित्र कर जिससे सूर्य को प्रकाशित किया है ॥७॥

४९४—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥८॥

पदार्थ—(सः) वह तू (पवस्व) पवित्र कर (यः) जो तूने (आविथ) रक्षा की है (इन्द्रम्) जीवात्मा की (वृत्राय) अज्ञान या पाप को (हन्तवे) नष्ट करने के लिए (वव्रिवांसम्) रोकने वाले (महीः) महान् (अपः) कर्मों को ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बड़े-बड़े उत्तम कर्मों में बाधा पहुंचाने वाले पाप या अज्ञान के नाश करने के लिए जीवात्मा की रक्षा करता है। इसलिये तू ही हमें पवित्र कर ॥८॥

४९५—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥९॥

पदार्थ—(अया) इस (वीती) ज्ञान से (परिस्रव) दे (यः) जो (ते) तेरा (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली ! (मदेषु) हमें आनन्दित करने पर (आ) सब प्रकार से (अवाहन्) नाश करता है (नवतीर्नव) आठ सौ दश प्रकार के बुरे विचारों का पापों का अथवा निन्यानवे प्रकार के बुरे भावों का नाश करता है ॥९॥

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्य के स्वामी परमेश्वर ! उसी आनन्दरस के साथ भक्तों और ज्ञानियों के हृदयों में दर्शन दो, जिस आनन्दरस के मद में मस्त होकर वह भक्त या ज्ञानी जन आठ सौ दश प्रकार के बुरे विचारों, भावों अथवा पापों का नाश करने में समर्थ हो ॥९॥

४९६—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥१०॥

पदार्थ—(परि) सब ओर से (द्युक्षं) दीप्तिमान् (सनद्) दे (रयिं) धन को (भरद्) दे (वाजं) अन्न को (नः) हमारे (अन्धसा) अन्न से (स्वानः) सत्योपदेष्टा (अर्ष) प्राप्त हो (पवित्रे) पवित्रात्मा में (आ) भली भांति ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर सत्योपदेष्टा ! तू हमें प्रकाशयुक्त धन दे, तथा देव अन्नादि से युक्त विशेष खाद्य पदार्थों को दे। हे प्रभो ! तू हमारी पवित्र आत्माओं में प्राप्त हो ॥१०॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

४९७—मेध्यातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २र

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥१॥

पदार्थ—(अचिक्रदद्) शब्द करता हुआ (वृषा) वर्षा का करने वाला (हरिः) वायु (महान्) महान् (मित्रः) अग्नि के (न) समान (दर्शतः) दर्शनीय (सं सूर्येण) सूर्य के साथ (दिद्युते) प्रकाशमान हो रहा है ॥१॥

भावार्थ—शब्द करता हुआ वृष्टिकारक महान् वायु दर्शनीय अग्नि के समान सूर्य के साथ प्रकाशमान हो रहा है ॥१॥

४९८—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (ते) तेरे (दक्षम्) बलवान् (मयोभुवम्) सुखकारी (वह्निम्) अग्नि को (अद्य) आज (आवृणीमहे) स्वीकार करते हैं (पान्तमा) रक्षक (पुरुस्पृहम्) विज्ञानवेत्ताओं से चाहने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान्, सुखदाता, रक्षक तथा विज्ञानवेत्ताओं से चाहने योग्य तेरे अग्नि पदार्थ को हम अपने ज्ञान में स्वीकार करते हैं ॥२॥

४९९—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं॑ सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥३॥

पदार्थ—(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु ! (अद्रिभिः) पाषाणों से (सुतम्) चुआये हुए (सोमम्) सोम को (पवित्रे) दशा पवित्र में (आनय) डाल (पुनाहि) पवित्र कर (इन्द्राय) यजमान के (पातवे) पीने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे अध्वर्यु ! पाषाणों से चुआये हुए सोम को दशा पवित्र में डाल यजमान के पीने के लिए पवित्र कर ॥३॥

५००—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥४॥

पदार्थ—(तरत्) तर जाता है (सः) वह (मन्दी) स्तुति करनेवाला (धावति) स्तुति करता है (धारा) धार से (सुतस्य)चुआए गए (अन्धसः) अन्नरूप सोम के (तरत्) अवश्य तर जाता है (सः) वह (मन्दी) स्तुति करनेवाला (धावति) अवश्य उत्तम गति पाता है ॥४॥

भावार्थ—जो पुरुष, अन्नरूप, सुन्दर चुआए गये सोमरस की धारा से यज्ञ करता हुआ परमेश्वर की स्तुति करता है, वह स्तुति करनेवाला अवश्य ही तर जाता है, अर्थात् उत्तम गति पाता है ॥४॥

५०१—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
आ पवस्व सहस्रिणं॑ रयिं॑ सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवां॑सि धारया ॥५॥

पदार्थ—(आ) सब ओर से (पवस्व) दे (सहस्रिणं) सहस्रों प्रकार का (रयिं) धन को (सोम) हे परमेश्वर ! (सुवीर्यम्) उत्तम बल (अस्मे) हमें (श्रवांसि) अन्न और यश (धारया) वेदवाणी के द्वारा ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें वेदज्ञान के द्वारा सहस्रों प्रकार का धन, उत्तम बल और अन्न तथा यश प्रदान कर ॥५॥

५०२—असितः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्य्यम् ॥६॥

पदार्थ—(अनु) अनुकूलता से (प्रत्नासः) ज्ञानवृद्ध (आयवः) मनुष्य (पदम्) ज्ञान को (अक्रमुः) प्राप्त करते हैं (नवीयः) नए-नए (रुचे) ज्ञानप्रकाश के लिए(सूर्यम्) कर्म में प्रवृत्त करानेवाले सोम को (जनन्त) उत्पन्न करता है ॥६॥

भावार्थ—ज्ञानवृद्ध मनुष्य नवीन-नवीन ज्ञान को क्रमशः प्राप्त करते हैं। वे ज्ञानप्रकाश के लिए कर्म तथा ज्ञान में प्रवृत्त करानेवाले सोमरस को ओषधियों से निकालते हैं ॥६॥

५०३—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ २ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ २
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन् योनौ वनेष्वा ॥७॥

पदार्थ—(अर्षा) प्राप्त हो (सोम) हे परमेश्वर ! (द्युमत्तमः) अत्यन्त प्रकाशस्वरूप (अभि) में (द्रोणानि) यज्ञों के विषय में (रोरुवत्) उपदेश करता हुआ (सीदन्) स्थित (योनौ) आकाश में (वनेषु) परमाणुओं में (आ) सब प्रकार से ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त प्रकाशस्वरूप तथा आकाश और परमाणुओं में विद्यमान तू यज्ञों के विषय में उपदेश करता हुआ हमें प्राप्त हो ॥७॥

५०४—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २
वृषा सोम द्युमां॑ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥८॥

पदार्थ—(वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (सोम) हे शान्तस्वरूप ईश्वर ! (द्युमान्) तू प्रकाशस्वरूप (असि) है (वृषा) तू जल की वर्षा का नियामक है (देव) हे दाता ! (वृषव्रतः) हमारी सारी अभिलाषाओं की पूर्ति करने का तेरा नियम है तू वृषा है (धर्माणि) धर्मों को (दध्रिषे) धारण करता है ।८।

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू हमारी कामनाओं को सफल करता है और प्रकाशस्वरूप है । हे दाता ! तू वर्षा को नियम में रखता हैं, इसलिए हमारी सब कामनाओं की पूर्ति करना तेरा व्रत है । तू इन सब कामों के करने में समर्थ है तथा मनुष्यों के सारे कार्यों को नियम से चलाता है ।।८।।

५०५—कश्यपः । सोमः गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥९॥

पदार्थ—(इषे) इच्छा की पूर्ति के लिए (पवस्व) ज्ञान दे (धारया) धारणा के द्वारा (मृज्यमानः) अन्वेषण किए जाने पर (मनीषिभिः) मननशील पुरुषों के द्वारा (इन्दो) हे परम ऐश्वर्यशाली (रुचा) अपने ज्ञानरूप प्रकाश से (गाः) हमारी वाणी और इन्द्रियों में (अभीहि) उत्तम क्रिया को करने के लिए प्रेरणा दे ॥९॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् ! मननशील पुरुष धारणा तथा ध्यान से तुम्हारी खोज करते हैं । तू उनकी इच्छा पूर्ति के लिए ज्ञान दे । हे नाथ ! अपने तेज से हमारी वाणी तथा इन्द्रियों में उत्तम शक्ति की प्रेरणा कर ॥९॥

५०६—असितः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २
मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्या वारेभिरस्मयुः ॥१०॥

पदार्थ—(मंद्रया) आनन्ददायक (सोम) हे परमेश्वर ! (धारया) वेदवाणी से (वृषा) सुख का वर्षक (पवस्व) प्राप्त हो (देवयुः) दिव्य गुणों का दाता (अव्याः) रक्षा कर (वारेभिः) उत्तम गुणों से (अस्मयुः) हमें उत्तम बनाने वाला ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमें उत्तम बनाने की कामनावाला, सुख का वर्षक तथा दिव्यगुणों का दाता तू वरणीय गुणों से हमारी रक्षा कर तथा आनन्ददायक वेदवाणी के द्वारा हमें प्राप्त हो ॥१०॥

५०७—कविः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २र
अया सोम सुकृत्यया महांत्सन्नभ्यवर्धथाः । मंदान इद्वृषायसे ॥११॥

पदार्थ—(अया) इस (सोम) हे परमेश्वर ! (सुकृत्यया) उत्तम कर्त्तव्य से युक्त (महान्) सबसे बड़ा (सन्) होता हुआ (अभ्यवर्धथाः) हमें उन्नत बनाता है (मन्दानः) स्वयं प्रसन्न होता हुआ (इत्) ही (वृषायसे) वर्षणशील मेघ के समान व्यवहार करता है ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्दस्वरूप महान् तू इस कर्त्तव्य युक्त वेदवाणी से हमें बढ़ाता है और स्वयं बरसाने वाले मेघ के समान सुखी करता है ॥११॥

५०८—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३२
अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१२॥

पदार्थ—(अयं) यह (विचर्षणिः) साक्षीरूप से सबका द्रष्टा (हितः) प्राणिमात्र का कल्याणकारक (पवमानः) पवित्र (सः) वह (चेतति) जानता है (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ (आप्यम्) कर्म के द्वारा होने या प्राप्त होने वाले (बृहत्) महान् ज्ञान को ॥१२॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का साक्षीरूप से द्रष्टा, प्राणिमात्र का कल्याण कारक, स्वयं पवित्र, कर्म से होनेवाले ज्ञान की प्रेरणा करनेवाला वह परमेश्वर सब को जानता है ॥१२॥

५०९—अयास्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३१ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवां॑ अयास्यः ॥१३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (नः) हमें (इन्दो) हे परम ऐश्वर्यशाली ! (महे) महान् (तुने) सम्पत्ति के लिए (ऊर्मिम् न) तरंग के समान (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है (अभि) लक्ष्य कर (देवान्) विद्वानों को (अयास्यः) प्राप्त करने के योग्य ॥१३॥

भावार्थ – हे परमेश्वर ! तू प्राप्त करने के योग्य है, हमें महान् सम्पत्ति प्रदान करने के लिए, जैसे लहर को धारण करने वाला समुद्र रत्नाकर कहलाता हुआ प्राप्त होता है वैसे ही, सारी सम्पत्तियों का धारण करने वाला तू भी विद्वानों को लक्ष्य कर प्राप्त होता है ॥१३॥

५१०—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१४॥

पदार्थ—(अपघ्नन्) नाश करता हुआ (पवते) पवित्र करता है (मृधः) बुराइयों का (अप) दूर (सोमः) आत्मा (अराव्णः) दुर्गुणों को (गच्छन्) प्राप्त होता हुआ (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (निष्कृतम्) मोक्ष को ॥१४॥

भावार्थ—आत्मा बुराइयों और दुर्गुणों को नाश करता हुआ अपने को पवित्र करता है और परमेश्वर के मोक्षधाम को प्राप्त करता है ॥१४॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

५११—वसिष्ठः । सोमः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (सोम) हे परमेश्वर ! (धारया) धारण शक्ति से (अपः) लोकों और जीवों को (वसानः) आच्छादित करता हुआ (अर्षसि) प्राप्त हो (आरत्नधा) समस्त रत्नों का दाता (योनिम्) कारण (ऋतस्य) सत्य के (सीदसि) स्थित है (उत्सः) कूप के समान (देवः) देव (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे लिए समस्त रत्नों का धारक या दाता, प्रकाशस्वरूप तथा कूप के समान गम्भीर तू वेदवाणी या अपनी धारण शक्ति से समस्त लोक और जीवों को पवित्र और आच्छादित करता हुआ हमें प्राप्त हो । महान् देव! तू सत्य के कारण अपने स्वरूप में स्थित है ॥१॥

५१२—ऋष्यादयः पूर्वोक्ताः ।

२ ३ १ २   ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।
३ १   २र ३ २   २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
दधन्वाꣳ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार (इतः) इसमें (षिञ्चत) रक्खो (सुतं) सुसम्पन्न अमृतरस (सोमः) सोमरस (यः) जो (उत्तमम्) श्रेष्ठ (हविः) होम की सामग्री है (दधन्वान्) संसार का उपकार कराने वाला है (यः) जो (नर्यः) मनुष्यमात्र का हित करने वाला है (अप्सु) यज्ञ आदि उत्तम कर्मों (अन्तरा) में (सुषाव) यजमान चुआता है (सोमम्) सोमरस को (अद्रिभिः) पत्थर के टुकड़ों से ॥२॥

भावार्थ—हे यज्ञ करने वालो ! चुआए हुए सोमरस को इस पात्र में रक्खो, यह यज्ञ की उत्तम सामग्री है । इससे संसार की रक्षा होती है, यह मनुष्यमात्र का हितकारक है । इसको यजमान या ऋत्विक् लोग यज्ञों के अवसरों पर पत्थरों के टुकड़ों से चुआते है ॥२॥

५१३—अत्रिः । सोमः । बृहती ।

१ २   ३ १   २र   ३ १   २र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (सोम) सोमरस (स्वानः) तैयार किया हुआ (अद्रिभिः) पाषाण के टुकड़ों द्वारा (तिरः) तिरस्कार करता हुआ (वाराणि) बालों को (अव्यया) भेड़ों के (जनो न) मनुष्य के समान (पुरि) नगर में (चम्वोः) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में (विशत्) प्रवेश करता है (हरिः) हरितवर्ण सोम करनेवाला परमेश्वर ! (सदः) सभा में (वनेषु) यज्ञों में (दध्रिषे) धारण किया जाता है ॥३॥

भावार्थ—पाषाणों से चुआया हुआ सोम, भेड़ के बालों (ऊनी कपड़े) से छन कर, द्यु और पृथिवीलोक में [illegible] वैसे ही प्रविष्ट होता है, जैसे कोई मनुष्य किसी नगर में । यह सोम सभा में और यज्ञों में उपयोग किया जाता है ॥३॥

५१४—अत्रिः । सोमः । बृहती ।

१ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
३ १ २र   ३ १   २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अꣳशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

पदार्थ—(प्र) उत्कृष्ट (सोम) हे परमेश्वर ! (देववीतये) विद्वान् और उपासना करनेवालों की तृप्ति के लिए (सिन्धुर्न) समुद्र के समान (अर्णसा) जल से (पिप्ये) भर कर परिपूर्ण होता है (अंशोः) सोम के (पयसा) रस से (मदिरः) आनन्ददायक (न) सम्प्रति (जागृविः) चेतनस्वरूप (अच्छ) प्राप्त होता है (कोशं) कोश को (मधुश्चुतम्) अमृतरस को टपकाने वाले ॥४॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! विद्वान् जनों की तृप्ति के लिए जैसे जल से समुद्र परिपूर्ण है, ऐसे ही तू आनन्द से परिपूर्ण और अगम है । हे नाथ ! तू सोमलता के रस के द्वारा आनन्ददायक और सदा सावधान है । तू हमें आनन्दमय कोश में प्राप्त हो ॥४॥

५१५—विश्वामित्रः । सोमः । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३२ ३२३ २ ३ १ २
सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १२ ३१२ ३ १ २
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥

पदार्थ—(सोम) सोम (उ) पादपूरक (ष्वाणः) निचोड़ा हुआ (सोतृभिः) यज्ञकर्त्ताओं द्वारा (अधि) में (ष्णुभिः) टुकड़ों से (अवीनाम्) पत्थरों के (अश्वया) शीघ्रगामिनी (इव) जैसे (हरिता) हरितवर्ण (याति) प्राप्त होता है (धारया) धारा से (मन्द्रया) आनन्दयुक्त (धारया) प्रवाह से (याति) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रकार यज्ञकर्त्ताओं द्वारा पाषाणखण्ड से निचोड़ा गया, सोमरस विशेष शीघ्रगामिनी हरितवर्ण की धारा के साथ पात्र को प्राप्त होता है वैसे परमेश्वर आनन्दायक धारा के साथ योगी पुरुष को प्राप्त होता है ॥५॥

५१६—जमदग्निः । सोमः । बृहती ।

२ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीꣳरति ताꣳ इहि ॥६॥

पदार्थ—(तव) तेरी (अहम्) मैं (सोम) हे परमेश्वर ! (रारण) आनन्द करता हूँ (सख्ये) मित्रता में (इन्दो !) हे परम ऐश्वर्यवान् (दिवे दिवे) प्रतिदिन (पुरूणि) बहुत शरीर आदि बाधक (बभ्रो) हे धारण और पोषण करने वाले (नि) निश्चित (चरन्ति) आचरण करते हैं (माम्) मेरी (अव) उपसर्ग (परिधीन्) हर प्रकार से अनेक बाधाओं को (तान्) उन (अति-इहि) दूरकर ॥६॥

भावार्थ—हे विश्व के पालन-पोषण करनेवाले, सकल ऐश्वर्य के स्वामी परमेश्वर ! मैं प्रतिदिन तेरी मित्रता में आनन्द करता हूँ । हे प्रभो ! अनेक प्रकार की बाधाएँ मुझे सताती हैं, तू उन्हें दूर कर ॥६॥

५१७—वसिष्ठः । सोमः । बृहती ।

३ १२   ३ १ २र
मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
३ २ ३१२ ३१२३२३१२ ३क २र
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७॥

पदार्थ—(मृज्यमानः) शुद्ध पवित्र हुआ (सुहस्त्या) हे हस्तकला में निपुण (समुद्रे) आकाश में (वाचम्) वाणी को (इन्वसि) प्रेरित करता है (रयिम्) धन को (पिशंगम्) सुवर्ण (बहुलम्) बहुत (पुरुस्पृहम्) अत्यन्त चाहने योग्य (पवमान) ज्ञाता (अभ्यर्षसि) प्राप्त करता और कराता है ॥७॥

भावार्थ—हे हस्तकला में निपुण पुरुष ! शुद्ध पवित्र हुआ तू आकाश में शब्द को प्रेरित करता है, अर्थात् विज्ञान द्वारा आकाश में शब्द का विस्तार करके सब के सुनने योग्य बनाता है । तू चाहने योग्य सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करता और कराता है ॥७॥

५१८—विश्वामित्रः । सोमः । बृहती ।

३१ २र   ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
३ १   २र ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८॥

पदार्थ—(अभिपवन्ते) हर प्रकार से पवित्र करते और निचोड़ते हैं (सोमासः) शान्तस्वभाव वाले (आयवः) मनुष्य (मद्यम्) आनन्द प्रदान करने वाले (मदम्) रस को (समुद्रस्य) हृदयरूप आकाश (अधि) में (विष्टपे) स्थान (मनीषिणः) विचारक (मत्सरासः) आनन्द में लीन (मदच्युतः) आनन्द की वर्षा करनेवाले ॥८॥

भावार्थ—विचारशील, स्वयं आनन्द में लीन और उपदेश के द्वारा आनन्द की वर्षा करनेवाले, शान्तस्वभाव के मनुष्य, हृदयरूप आकाश में आनन्ददायक अमृतरस का स्वयं अनुभव करते हैं तथा दूसरों को भी कराते हैं ॥८॥

५१९—काश्यपः । सोमः । बृहती ।

३ १ २३१२३२ ३२३ १२ ३२
पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
१ २र   ३ १ २ ३ १ २
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥९॥

पदार्थ—(पुनानः) स्वयं पवित्र और हमें पवित्र करनेवाला (सोम) हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! (जागृविः) सदा सावधान (अव्याः) रक्षा कर (वारैः) वरण के योग्य (प्रियः) प्रिय (त्वम्) तू (विप्रः) सबसे बढ़ कर ज्ञानी (अभवः) है (अङ्गिरस्तम) हे बुद्धिमानों से भी बढ़ कर बुद्धिमान् (मध्वा) मधुर आनन्द रस से (यज्ञम्) सारे संगत व्यवहार को (मिमिक्ष) सींचने की कृपा कर (नः) हमारे ॥९॥

भावार्थ—हे सबसे बड़े बुद्धिमान्! शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू सदा सावधान स्वयं पवित्र तथा हमें भी पवित्र करनेवाला, परमज्ञानी और हमारा प्यारा है । तू वरण करने के योग्य प्रिय अपने गुणों से हमारी रक्षा कर तथा अपने आनन्दरस से हमारे सारे उचित व्यवहारों को सींचदे ॥९॥

५२०—जमदग्निः । सोमः । बृहती ।

१ २   ३ २ ३ १ २ ३१२ ३ २
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
३ १ २   ३ १   २र   ३ १ २   ३ १ २
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१०॥

पदार्थ—(**इन्द्राय**) यजमान के लिये (**पवते**) चुआया जाता है (**मदः**) प्रसन्न करनेवाला (**सोमः**) सोमरस (**मरुत्वते**) ऋत्विजों से संयुक्त (**सुतः**) सुसम्पन्न (**सहस्रधारः**) अनेक धारा से बहनेवाला (**अत्यम्**) रक्षा करने के योग्य पुरुष को (**अर्षति**) प्राप्त होता है (**तम् ईम्**) इसको (**मृजन्ति**) शुद्ध करते हैं (**आयवः**) मनुष्य ॥१०॥

भावार्थ—अनेक धाराओं से बहनेवाला, आनन्ददायक सोमरस ऋत्विजों से युक्त यजमान के लिये चुआया जाता है। वह रक्षा के योग्य मनुष्यों को प्राप्त होता है। मनुष्य ही उसको पवित्र करते हैं ॥१०॥

५२१—*वसिष्ठः । सोमः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ ३ २

त्वँ समुद्रः प्रथमे विधर्म देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥११॥

पदार्थ—(**पवस्व**) प्राप्त हो (**वाजसातमः**) बल तथा अन्नों का दाता (**अभि**) लक्ष्य कर (**विश्वानि**) समस्त (**वार्या**) स्तोत्रों का (**त्वम्**) तू (**समुद्रः**) प्राणियों के सुखों का आगार (**प्रथमे**) मुख्य (**विधर्मे**) यज्ञों में (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**सोम**) हे परमेश्वर (**मत्सरः**) आनन्दस्वरूप ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्दस्वरूप धनों का दाता, सुखों का आधार तू विद्वानों के लिये उनके उत्तम स्तोत्रों को स्वीकार कर और उनके महान् ज्ञान यज्ञ में प्राप्त हो ॥ ११ ॥

५२२—*वसिष्ठः । सोमः । बृहती ।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र

मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयाँसि च ॥१२॥

पदार्थ—(**पवमाना**) पवित्र स्वभाववाले (**असृक्षत**) त्याग देते हैं (**पवित्रम्**) परमेश्वर को (**अति**) अत्यन्त (**धारया**) वेदवाणी से (**मरुत्वन्तः**) प्राणों को वश में रखनेवाले (**मत्सरा**) प्रसन्नचित्त (**इन्द्रिया**) इन्द्रिय रूप (**हया**) अश्वों को (**मेधाम्**) अन्तःकरण को (**अभिप्रयांसि च**) धन-धान्य आदिकों को—और ॥१२॥

भावार्थ—पवित्र स्वभाव, प्राणों को वश में रखनेवाले तथा प्रसन्नचित्त मनुष्य वेदवाणी से परमेश्वर को प्राप्त कर इन्द्रियरूपी अश्वों, अन्तःकरण तथा धन-धान्य आदि को त्याग देते हैं ॥ १२ ॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

५२३—*उशना । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्कृष्ट (**तु**) और (**द्रव**) चूता है (**परि**) सब प्रकार (**कोशम्**) घड़े में (**निषीद**) स्थिर होता है (**नृभिः**) यजमान या अध्वर्यु लोगों से (**पुनानः**) पवित्र किया गया (**अभि**) लक्ष्य कर (**वाजम्**) बल को (**अर्ष**) प्राप्त करता है (**अश्वन्न**) घोड़े के समान (**त्वा**) तुझ को (**वाजिनम्**) बलवान् और अन्नवान् (**मर्जयन्तः**) साफ करते हुए (**अच्छ**) भलीभांति (**बर्हिः**) यज्ञ में (**रशनाभिः**) रस्सों से बांध कर (**नयन्ति**) ले चलते हैं ॥१॥

भावार्थ—सोमरस चुआया जाता है और ऋत्विक् लोग उसको पवित्र कर घड़े में रखते हैं। उससे बल प्राप्त होता है, जैसे बलवान् घोड़े को रस्सों से बांध कर ले जाते हैं, ऐसे ही सोमरस को छान करके यज्ञ में भलीभांति ले जाते हैं ॥१॥

५२४—*वृषगणः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२॥

पदार्थ—(**प्र**) श्रेष्ठ (**काव्यम्**) वेद का (**उशना-इव**) काव्य बनाने की इच्छा करता हुआ कवि के समान (**ब्रुवाणः**) उपदेश करता हुआ (**देवः**) आदि देव परमात्मा (**देवानाम्**) सब देवों को (**जनिमा**) जन्म उत्पत्तियों को (**विवक्ति**) विवरण करता है [वर्णन करता है] (**महिव्रतः**) महान् संसार की रचना रूप कर्म का करनेवाला (**शुचिबन्धुः**) पवित्र तेजवाला (**पावकः**) शुद्ध [पवित्र] करनेवाला (**पदा**) देव के परमपद को (**वराहः**) उत्तम आहार [भोजन] करनेवाला मनुष्य (**अभ्येति**) प्राप्त करता है (**रेभन्**) स्तुति और उपासना करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—सृष्टि रचनारूप महान् कर्म करनेवाला, पवित्र तेजवाला और हमें पवित्र करनेवाला, परमदेव परमात्मा कविता रचने की इच्छा करता हुआ कवि के समान वेदरूप काव्य का उत्तम रीति से प्रवचन करता हुआ सब देवों की उत्पत्ति का वर्णन करता है। उत्तम शुद्ध भोजन करनेवाला मनुष्य स्तुति, प्रार्थना और उपासना के द्वारा परमपद को प्राप्त करता है ॥२॥

५२५—*पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३॥

पदार्थ—(**तिस्रः**) तीन प्रकार की (**वाचः**) वाणियों की (**ईरयति**) प्रेरणा करता है (**प्र**) उत्तम (**वह्निः**) आत्मा (**ऋतस्य**) सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का (**धीतिम्**) अनुष्ठान उपाय (**ब्रह्मणः**) ईश्वर के सम्बन्ध की (**मनीषाम्**) बुद्धि की प्रेरणा भी करता है (**गावः**) इन्द्रियाँ (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं (**गोपतिम्**) आत्मा को (**पृच्छमानाः**) चाहती हुई के समान (**सोमं**) आत्मा को (**यन्ति**) जनाती हैं (**मतयः**) सारी स्तुतियाँ (**वावशानाः**) उसी का वर्णन करती हुई ॥३॥

भावार्थ—आत्मा तीन प्रकार की वाणियों की, सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के उपाय की, और ईश्वर विषयक मननशील बुद्धि की प्रेरणा करती है। इन्द्रियाँ आत्मा को चाहती हुई सी प्राप्त होती है। सारी स्तुतियाँ आत्मा के वर्णन की कामना करती हुई आत्मा ही को प्राप्त होती हैं, अर्थात् उसी को जनाती हैं ॥३॥

५२६—*वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥

पदार्थ—(**अस्य**) इस (**प्रेषा**) प्रेरणा से (**हेमना**) प्रकाशमान (**पूयमानः**) पवित्र होता हुआ (**देवः**) विद्वान् जीव (**देवेभिः**) दिव्य गुणों से (**समपृक्त**) सम्पर्क करता है (**रसं**) रस को (**सुतः**) उत्पन्न (**पवित्रं**) परमेश्वर को (**पर्येति**) प्राप्त करता है (**रेभन्**) स्तुति करता हुआ (**मिता**) गिननेवाला (**इव**) जैसे (**सद्म**) गृह को (**पशुमन्ति**) पशुयुक्त (**होता**) बुलानेवाला ॥४॥

भावार्थ—इस वेद के सुवर्णवत् प्रकाशमान प्रेरणारूप ज्ञान से पवित्र होता हुआ उत्पन्न विद्वान् जीव दिव्य गुणों द्वारा आनन्द रस का सम्पर्क करता है, तथा स्तुति करता हुआ परमेश्वर को उसी प्रकार प्राप्त करता है जिस प्रकार गिननेवाला तथा बुलानेवाला पशुओं से युक्त गृह को प्राप्त होता है ॥४॥

५२७—*प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

जनिताऽग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥

पदार्थ—(**सोमः**) शान्तस्वरूप परमेश्वर (**पवते**) इन लोकों को व्यापन करता है (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**मतीनाम्**) नाना बुद्धियों और स्तुतियों को (**जनिता**) बनानेवाला (**दिवः**) द्युलोक और (**पृथिव्याः**) पृथिवीलोक को (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**अग्नेः**) अग्नि को (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**सूर्यस्य**) सूर्य को (**जनिता**) देह के साथ संयोग करा कर उत्पन्न करनेवाला (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा को (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**उत**) और (**विष्णोः**) विविध भांति के यज्ञ को ॥५॥

भावार्थ—नाना प्रकार की स्तुतियों और बुद्धियों को उत्पन्न करनेवाला, द्युलोक तथा पृथिवीलोक, अग्नि तथा सूर्य को उत्पन्न और नियमन करनेवाला, शरीर के साथ संयोगरूप में जीवात्मा और अनेक प्रकार के जीवोपकारक यज्ञों को भी उत्पन्न करनेवाला परमात्मा संसार के सारे लोकों को व्यापन करता है ॥५॥

५२८—*वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥६॥

पदार्थ—(**अभि**) सब तरह से (**त्रिपृष्ठं**) तीन वस्तु, लोक, वेद और विद्वान् अथवा पृथिवी आदि देवों वाले (**वृषणं**) कामनाओं की पूर्ति करनेवाले (**वयोधाम्**) अन्नादि पदार्थों के दाता अथवा यश के दाता (**अंगोषिणम्**) स्तुतिसमूह वाले परमेश्वर की (**अवावशन्त**) कामना करती हैं (**वाणीः**) स्तुतिरूप वाणियाँ (**वना**) जल को (**वसानः**) ग्रहण करता हुआ (**वरुणः**) परमेश्वर (**न**) समान (**सिन्धुः**) समुद्र के (**वि**) विविध प्रकार के

(रत्नधा) रत्नों को धारण करनेवाले (दधते) देता है (वार्याणि) चाहने योग्य सम्पत्ति ॥६॥

भावार्थ—वेद की वाणियाँ पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीनों के अधिष्ठाता, कामनाओं के सफल करनेवाले, अन्न तथा यश के दाता, सम्पूर्ण स्तुतियों के अधिकारी परमेश्वर की कामना करती और उसी के गुणों का गान करती हैं। जैसे जल को धारण करनेवाला समुद्र नाना प्रकार के रत्नों को धारण करता हुआ तथा उपार्जन करनेवालों को देता भी है, ऐसे ही परमेश्वर भी अनेक रत्नों को धारण करता तथा चाहने योग्य धनों को देता है ॥६॥

५२९—पराशरः। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥७॥

पदार्थ—(अक्रान्) अभिव्याप्त होता है (समुद्रः) जीवात्मा वा परमेश्वर (प्रथमे) श्रेष्ठ (विधर्मन्) विशेष धारण करने और पालन करने में (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (प्रजाः) अनेक शरीरधारी सृष्टि या सन्तान (भुवनस्य) ब्रह्माण्ड वा अपने प्रजावर्ग का (गोपा) रक्षक (वृषा) ज्ञान की वर्षा करने वाले (पवित्रे) शुद्ध सत्य रूप आत्मा में (अधिसानः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ सम्बन्ध करने वाले [परमात्म ईश्वरपक्ष में, जीवात्मा पक्ष में साक्षात्] (अव्ये) ज्ञान स्वरूप वा रक्षा के योग्य (बृहत्) महान् (सोमः) शान्तस्वरूप परमेश्वर वा जीव (वावृधे) अपनी कृपा से उत्पन्न करता वा बढ़ता है (स्वानः) जीवन ज्योति जगाता हुआ वा जीवन धारण करता हुआ (अद्रिः) पापियों को दण्ड देने वाला वा आदर के योग्य ॥७॥

भावार्थ—अपनी सन्तान और इन्द्रियों का आधार पवित्र धर्म से प्रजा (पुत्र-पौत्र) को उत्पन्न करने वाला, संसार के नियम का पालन करने वाला, रक्षा के योग्य तथा सच्चे आचरण करने वाले पर कृपा की वर्षा करने वाला, शब्द-स्पर्श आदि से सीधा सम्बन्ध रखने वाला, महान् जीवन धारण करने वाला, आदर के योग्य जीवात्मा अपनी शक्ति से उन्नति करता है ॥७॥

५३०—प्रस्कण्वः। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८॥

पदार्थ—(कनिक्रन्ति) जानता है [ज्ञान प्राप्त करता है] (हरिः) दुःखों का हरण करने वाला पुरुष (आ) सब प्रकार (सृज्यमानः) संयुक्त किया गया (सीदन्) स्थित होकर (वनस्य) जंगल के (जठरे) मध्य में (पुनानः) अपने को पवित्र करता हुआ (नृभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा (यतः) जिस प्रकार से (कृणुते) करता है (निर्णिजम्) शुद्ध (गाम्) स्तुति का (अतः) इस कारण (मतिं) स्तुति को (जनयत) करो (स्वधाभिः) अपनी शक्ति द्वारा ॥८॥

भावार्थ—दुःखों का हरण चाहनेवाला पुरुष विद्वान् मनुष्यों द्वारा उपासना कार्य में संयुक्त किया गया, अपने को स्वयं पवित्र करता हुआ जंगल के मध्य में बैठ कर ज्ञान प्राप्त करता है और वह जिस प्रकार से शुद्ध स्तुति का उच्चारण करता है, ऐसे ही हे मनुष्यो ! तुम भी अपनी शक्ति द्वारा किया करो ॥८॥

५३१—उशना। सोमः। त्रिष्टुप्।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥९॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह (ते) तेरा (मधुमान्) विज्ञानवान् (इन्द्र) हे जीव ! (सोमः) परमेश्वर (वृषा) सुख का वर्षक (वृष्णः) यज्ञ द्वारा वर्षा करने वाले (परि) सब ओर से (पवित्रे) अग्नि आदि पदार्थों में (अक्षाः) व्यापक हो रहा है। (सहस्रदाः) सहस्रों देने वाला (शतदा) सैकड़ों देनेवाला (भूरिदावा) बहुत देनेवाला (शश्वत्तमम्) सर्वदा वर्तमान (बर्हिः) आकाश में (आ) भलीभांति (वाजि) शक्तिमान् (अस्थात्) स्थित है ॥९॥

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! विज्ञानवान् वह यह परमेश्वर अग्नि आदि पदार्थों में स्थित तथा यज्ञ द्वारा वर्षा करने वाले तुझ जीव के लिए सुख की वृष्टि करनेवाला है। वह सर्वदा रहने वाले आकाश में व्यापक हो रहा है। वही सहस्रों, सैकड़ों तथा बहुत धनों का दाता बलवान् परमेश्वर सर्वत्र स्थित है ॥९॥

५३२—प्रतर्दनः। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
पवस्व सोम मधुमां ऋतावापो वसानो अधिसानो अव्ये।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१०॥

पदार्थ—(पवस्व) चूता है (सोम) सोमरस (मधुमान्) मधुर (ऋतावा) यज्ञ का साधन (अपः) जल का (वसानः) धारण करता हुआ (अधिसानः) ऊपर (अव्ये) ऊनी पवित्र (अव) उतरता है (द्रोणानि) घड़े (घृतवन्ति) जल से युक्त (अवरोह) रक्खा जाता है (मदिन्तमः) आनन्द-दायक (मत्सरः) प्रसन्नता का साधन (इन्द्रपानः) यजमान से पान करने योग्य ॥१०॥

भावार्थ—मधुर, यज्ञ का साधन, जलयुक्त, आनन्ददायक, प्रसन्नता का दाता, यजमान आदि के पीने योग्य सोम, ऊन के बने हुए दशा पवित्र में छनता है, पुनः कलश में रक्खा जाता है ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

५३३—प्रतर्दनः। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांत्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥

पदार्थ—(प्र) श्रेष्ठ (सेनानीः) सेनापति (शूरः) संग्राम में उत्साह करने वाला (अग्रे) आगे (रथानाम्) रथों के (गव्यन्) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले शत्रु के धनों की प्राप्ति की इच्छा करता हुआ (एति) आता है (हर्षते) प्रसन्न होती है (अस्य) इस सेनापति की (सेना) सेना (भद्रान्) कल्याणकारक (कृण्वन्) करता हुआ (इन्द्रहवान्) आत्मा की पुकारों को (सखिभ्यः) मित्र पक्ष वालों के लिये, मित्रों के लिये (आ) सब तरह (सोमः) सूर्य जैसे किरणों को विस्तृत कर देता है (वस्त्रा) शत्रु को विवश कर देने वाले (रभसानि) शीघ्रतापूर्वक आक्रमणों को (दत्ते) करता है ॥१॥

भावार्थ—शत्रु की भूमि और उस पर उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति पर विजय पाने की इच्छा करता हुआ, जनता की पुकारों को अपने सहायक राष्ट्रों के लिये कल्याणकारक सिद्ध करता हुआ, वीर सेनापति संग्राम में सबसे आगे आता है। उस समय उसकी सेना प्रसन्न होती है। तब सेनापति, जैसे सूर्य अपनी किरणों से संसार को ढक देता है, ऐसे ही शत्रु पर घातक आक्रमण करता है ॥१॥

५३४—पराशरः। सोमः। त्रिष्टुप्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पवमान पवसे धाम गोनां जनयंत्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (ते) तेरी (धाराः) वेदवाणियाँ (मधुमतीः) विज्ञानमयी (असृग्रम्) उत्पन्न होती हैं (वारं) आवरण को (यत्) जब (पूतः) पवित्र (अत्येषि) हटाता है (अव्यम्) प्रकृतिसम्बन्धी (पवमान) हे पवित्र करने वाले (पवसे) गतिमान् हो रहा है (धाम) पुञ्ज को (गोनाम्) किरणों के (जनयत्) उत्पन्न करता हुआ (सूर्यम्) सूर्य को (अपिन्वः) पूर्ण करता है (अर्कैः) प्रकाश से ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्र करनेवाले परमेश्वर ! पवित्र तू जब प्राकृतिक आवरण को कल्प के आदि में हटाता है, तब तेरी विज्ञानमयी वेदवाणियां तुझसे उत्पन्न होती हैं। तू किरणों के प्रकाशपुञ्ज को पैदा करता हुआ गतिशील होता है और प्रकाशसे सूर्य को भरपूर करता है ॥२॥

५३५—इन्द्रप्रभृतिः। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २र
प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमँ हिनोत महते धनाय।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥३॥

पदार्थ—(प्र गायत) अच्छी प्रकार गान करो (अभ्यर्च) भली प्रकार पूजा करो (देवान्) विद्वानों की (सोमं) परमेश्वर को (हिनोत) प्राप्त करो (महते धनाय) महान् धन के लिए (स्वादुः) स्वादु (पवताम्) छन कर बहे (अति) अत्यन्त (वारं) वाल में (अव्यम्) भेड़ के (आसीदतु) स्थिति पावे (कलशं) घड़े में (देवः) उत्तम (इन्दुः) सोम ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वानों का कीर्तन करो और उनका सत्कार करो, महान् धन की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की उपासना करो। स्वादु और उत्तम सोम-रस दशा पवित्र से छन कर द्रोणकलश में स्थिति पावे ॥३॥

५३६—वसिष्ठः। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजँ सनिषन्नयासीत्।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं गच्छन्नायुधा सँ शिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥४॥

पदार्थ —(प्र) उत्तम (हिन्वानः) प्रेरणा देता हुआ (जनिता) उत्पादक (रोदस्योः) द्यु और पृथिवी लोक को (रथः न) सूर्य के समान (वाजं) अन्न को (सनिषन्) देता हुआ (अयासीत्) प्राप्त कराता है (इन्द्रम्) विद्युत्, सूर्य और जीव को (गच्छन्) जानता हुआ (आयुधा) जलादिकों को (संशिशानः) सूक्ष्म करता हुआ (विश्वावसु) सकल सम्पदाओं को (हस्तयोः) हाथों में (आदधानः) देता हुआ ॥४॥

भावार्थ—द्यु और पृथिवी लोक का उत्पादक तथा उत्तम भावों की प्रेरणा देता हुआ परमेश्वर अन्न आदि को देता तथा सूर्य, विद्युत् और जीव को यथायोग्य जानता हुआ, जल आदि को सूक्ष्म करता हुआ हाथों के समान धारण और आकाश में लोकों को धारण करते हुए आदित्य के समान सकल सम्पदाओं को प्राप्त करता है ॥४॥

५३७—वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २र

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।

१ २ ३ २ ३ १ २   ३ २उ   ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५॥

पदार्थ—(तक्षत्) सूक्ष्म हो जाती है (यदि) जब (मनसः) मन की (वेनतः) कामना करनेवाले (वाक्) वाणी (ज्येष्ठस्य) ज्येष्ठ (धर्मन्) धर्म विषय में (द्युक्षोः) दीप्त तेजवाले (अनीके) प्रमुख (आत्) उसके बाद (ईम्) उस (आयन्) प्राप्त करते हैं (वरम्) वरणीय (आ) सब प्रकार से (वावशानः) कामना करनेवाले (जुष्टं) प्रेमपात्र (पतिं) पालक (कलशे) हृदय कलश (गावः) विद्वान् (इन्दुम्) परमेश्वर को ॥५॥

भावार्थ—जब कामनायुक्त ज्येष्ठ [श्रेष्ठ] प्रकाशशील मन की स्तुतिरूप वाणी प्रमुख उपासना रूप धर्म विषय में स्थिति पा लेती या सूक्ष्म हो जाती है, तब इस प्रीतिपात्र पालक तथा वरणीय परमेश्वर को कामना करनेवाले हृदय कलश में ज्ञानी जन प्राप्त करते हैं ॥५॥

५३८—नोधा । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३   १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।

२ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ २

हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६॥

पदार्थ—(साकमुक्षः) एक साथ सेचनादि व्यापार करनेवाली (मर्जयन्त) शुद्ध करती (स्वसारः) गतिशील (दश) दस (धीरस्य) धीर पुरुष की (धीतयः) अंगुलियां (धनुत्रीः) क्षेपणयुक्त (हरिः) हरित वर्णवाला (पर्यद्रवत्) फैलता है (जाः) उत्पन्न (सूर्यस्य) सूर्य के (द्रोणं) द्रोण कलश (ननक्षे) व्यापता है (अत्यः न) वायु के समान (वाजी) बलवान् ॥६॥

भावार्थ—एक साथ सेचन करनेवाली, गतिशील तथा उत्तम क्षेपणवाली वीर पुरुष की दश अंगुलियां सोम को शुद्ध करती हैं। पुनः हरित वर्ण वाला सोमरस वेगवान् वायु के समान सूर्य से उत्पन्न दिशा में (अर्थात् घड़े से सम्बन्ध रखनेवाली दिशाओं में) फैलता है और घड़े को गन्ध व्याप्त हो जाता है ॥६॥

५३९—कण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३   २ ३ २ ३ १   २र

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।

३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १   २र ३ १ २ ३   १ २

अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥७॥

पदार्थ—(अधि) में (यत्) जिस तरह (अस्मिन्) इसमें (वाजिनि) घोड़े पर (शुभ) शोभायमान (इव) समान (स्पर्धन्ते) स्पर्धा करते हैं (धियः) ज्ञानी जन (सूरे) सूर्य में (विशः) जन (न) समान (अपः) कर्म को (वृणानः) करता हुआ (पवते) प्राप्त करता है (कवीयान्) मेधावी पुरुष (व्रजम्) गोशाला को (न) समान (पशुवर्धनाय) पशुओं की वृद्धि के लिए (मन्म) मन को ॥७॥

भावार्थ—जैसे बलवान् घोड़े पर सवार, सूर्य में शोभायमान किरणें शोभा पाती हैं और स्पर्धा करती है, उसी प्रकार ज्ञानी जन इस परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्पर्धा करते हैं। जिस प्रकार चतुर गोपाल पशुओं की वृद्धि के लिए गोशाला में जाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कर्म को करता हुआ मेधावी पुरुष मन को प्राप्त होता और उसे शुद्ध करता है ॥७॥

५४०—मन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २   ३ १   २ ३   २ ३ २ ३   २ ३ २ ३ १ २

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

२   ३ २ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ २   ३ १ २ ३ १ २

हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥८॥

पदार्थ—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (वाजी) बलवान् (पवते) पवित्र करता है (गोन्योघाः) इन्द्रियों के समूहवाला (इन्द्रे) परमेश्वर में (सोमः) जीवात्मा (सहः) बल को (इन्वन्) प्राप्त होता हुआ (मदाय) आनन्द के लिए (हन्ति) हनन करता है (रक्षः) बुराई का (बाधते) संहार करता है (पर्यरातिम्) काम, क्रोधादि शत्रु का (वरिवस्कृण्वन्) आनन्दघन को प्राप्त करता हुआ (वृजनस्य) महान् बल का (राजा) राजा ॥८॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान्, बलवान् तथा इन्द्रिय समूहवाला यह जीवात्मा परमेश्वर में बल को प्राप्त होता हुआ अपने को पवित्र करता है। वह बुराई का हनन करता है, काम-क्रोध रूप शत्रु का संहार करता है तथा वरणीय आनन्दघन को प्राप्त करता हुआ महान् बल को प्राप्त होता है ॥८॥

५४१—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १   २   ३ १   २र   ३   १ २ ३ १ २ ३   १ २

अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।

३ २   ३   २ ३ २ ३   २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २

ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥९॥

पदार्थ—(अया) इस (पवा) मार्ग से (पवस्व) प्रदान कर (एना) इन (वसूनि) सम्पदाओं को (मांश्चत्व) अभिमान का नाश करनेवाला (इन्दो) ऐश्वर्यशील (सरसि) गतिशील मार्ग पर (प्रधन्व) प्रेरणा कर (चला) (ब्रध्नः) महान् (चित्) ही (यस्य) जिस तेरी (वातो न) वायु के समान (जूतिं) गति को (पुरुमेधाः) अनन्त ज्ञानवाला (तकवे) स्तुति करनेवाले के लिए (नरं) सन्तान को (धात्) देता है ॥९॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली, परमेश्वर ! अभिमान-नाशक, महान्, अत्यन्त ज्ञानवाला तू इस मार्ग से इन धनों को प्राप्त करा, अच्छे मार्ग पर चला, वेग को वायु के समान स्तुति करने वाले के लिए उत्तम मनुष्य दे ॥९॥

५४२—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १   २र   ३ १ २   ३ १   २र   ३ २

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।

१ २ ३ २ ३ १ २   ३ १   २र ३ २ ३ २   ३ १ २

अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०॥

पदार्थ—(महत्) महान् (तत्) उसका काम है (सोमः) शान्तस्वरूप परमेश्वर (महिषः) महान् (चकार) करता है (अपां) पंचभूतों (तत्त्वों) को (गर्भः) आधार होकर (अवृणीत) उनका अधिष्ठाता होता है (देवान्) इंद्रियों को (अदधात्) देता है (इन्द्रे) आत्मा में (पवमानः) विशेष ज्ञान की शक्ति से पवित्र करता हुआ (ओजः) अणिमा, महिमा आदि बल भी देता है (अजनयत्) उत्पन्न करता है (सूर्ये) सूर्य में (ज्योतिः) प्रकाश (इन्दुः) परम ऐश्वर्यशाली ॥१०॥

भावार्थ—परम ऐश्वर्यवाला परमात्मा महान् है। उसका कार्य भी महान् है। वह पाँच तत्त्वों का अधिष्ठाता और उनको उत्पन्न करनेवाला है। वह जीवों को इन्द्रियां और उन इन्द्रियों में बल देता है। सूर्य में प्रकाश भी वही देता है ॥१०॥

५४३—काश्यपः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २   ३   २ ३   २ ३ २   ३ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ २

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।

२ ३   १ २ ३   २ ३ २   ३   १ २ ३ २   ३ २   ३ १ २ ३ १ २

दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥११॥

पदार्थ—(असर्जि) छोड़े जाते हैं (वक्वा) नायक के द्वारा (रथ्ये) रथयुक्त (यथा) जैसे (आजौ) संग्राम में (धिया) बुद्धि से (मनोता) मन की संलग्नतायुक्त (प्रथमा) मुख्य (मनीषा) मन की स्वामिनी (दश) दस (स्वसारः) अंगुलियां (अधिसानो) पाषाण खण्ड में (अव्ये) दशा पवित्र में (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं (वह्निं) यज्ञ को पूरा करनेवाले (सदनेषु) स्थानों में ॥११॥

भावार्थ—जिस प्रकार रथयुक्त संग्राम में नायक के द्वारा उत्तम मन की संलग्नतायुक्त तथा मनीषी स्वामी की बुद्धि से घोड़े आदि छोड़े जाते हैं, उसी प्रकार सोम के निचोड़नेवाली दश अंगुलियां पाषाण खण्ड में तथा सोम के स्थानों में अच्छी प्रकार यज्ञ को पूरा करनेवाले सोम को शुद्ध करती हैं ॥११॥

५४४—प्रस्कण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २   ३   १ २ ३ १ २ ३ २ ३   १ २

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।

३   २ ३ १ २ ३ २ ३ १   २र   ३ २ ३ १ २

नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥१२॥

पदार्थ—(अपां) जलों के (इव) समान (इत्) ही (ऊर्मयः) लहरों के (तर्तुराणाः) शीघ्रता से चलनेवाली (प्र) उत्तम (मनीषा) स्तुतियाँ (ईरते) की जाती हैं (सोमं) परमेश्वर को (अच्छ) भलीप्रकार (नमस्यन्तीः) नमस्कार करती हुई (उप) समीप (च) और (यन्ति) प्राप्त होती हैं (सं) भलीभाँति (च) और (आ) भली प्रकार (च) भी (विशन्ति) प्राप्त कर लेती है (उशतीः) कामना करती हुई (उशन्तम्) वांच्छनीय ॥१२॥

भावार्थ—जल की शीघ्रगामिनी लहरों के समान कामना करती हुई, सब के चाहने योग्य परमेश्वर के प्रति नमस्कारमयी स्तुतियां सब भांति उस तक पहुँचती हैं और उसको प्राप्त करती हैं ॥१२॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

५४५—श्यावाश्विः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ ३ १ २
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
२३ १ २ ३ १ २ ३क २र
अप श्वानँ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—(पुरः) समूह को (जिती) जीतने के लिए (वः) तुम लोग (अन्धसः) अन्धकार के (सुताय) संसार के भोग के लिए (मादयित्नवे) सुख देने वाले (अप) दूर (श्वानं) कुत्ते के समान (श्नथिष्टन) दूर करो (सखायः) हे मित्रो ! (दीर्घजिह्व्यम्) जीभ की लोलुपता को ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अज्ञानान्धकार पर विजय पाने के लिए इंद्रिय लोलुपता को दूर भगा दो, जो सुख देने वाले विषयभोग के पीछे कुत्ते की तरह भागती है ॥१॥

५४६—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
१ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) यह (पूषा) हमें पुष्ट करनेवाला (रयिः) सम्पत्ति है (भगः) भजन करने के योग्य (सोमः) शान्तस्वरूप परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) व्यापक हो रहा है (पतिः) स्वामी है (विश्वस्य) विशाल (भूमनः) बहुत बड़े ऐश्वर्य का (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोकों को (उभे) दोनों ॥२॥

भावार्थ—पुष्ट करनेवाला, सम्पदाओं का भंडार, स्वयं पवित्र तथा संसार को पवित्र करनेवाला यह परमेश्वर सर्वव्यापक है, यह महान् ऐश्वर्य का स्वामी द्यु और पृथिवी लोकों को प्रकाशित करता है ॥२॥

५४७—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥३॥

पदार्थ—(सुतासः) तैयार किए गए (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुर (सोमाः) अनेक प्रकार के सोमरस (इन्द्राय) आत्मा के लिए (मन्दिनः) आनन्ददायक [सिद्ध हों] (पवित्रवन्तः) वे पवित्रतायुक्त (अक्षरन्) पात्र में चुआए जाएं (देवान्) देवों को (गच्छन्तु) प्राप्त हों (वः) इनका (मदाः) आनन्द ॥३॥

भावार्थ—अत्यन्त मधुर, आनन्ददायक निचोड़े और पवित्र किए गए अनेक प्रकार के सोमरस जीव के लाभार्थ पात्र में टपकते है । इनके आनन्द इंद्रियों और विद्वानों को प्राप्त हों ॥३॥

५४८—मनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥४॥

पदार्थ—(सोमाः) सौम्य स्वभाव वाले विद्वान् जन (पवन्ते) प्राप्त होते हैं (इन्दवः) तेजस्वी (अस्मभ्यं) हमें (गातुवित्तमाः) मार्ग दिखाने वाले (मित्राः) स्नेही (स्वानाः) स्वतन्त्र जीवन वाले (अरेपसः) पापों से रहित (स्वाध्यः) भली भांति ध्यान करने वाले (स्वर्विदः) स्वर्गीय सुखों को सिद्ध कराने वाले ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तेजस्वी, उत्तम मार्ग दिखाने वाले स्नेही, स्वतन्त्र जीवन वाले, पापों से रहित, भली भांति ध्यान करने वाले और हमारी सारी स्वर्गीय कामनाएं सिद्ध कराने वाले, विद्या और उम्र में बड़े विद्वान् पुरुष हमें प्राप्त हों ॥ ४ ॥

५४९—अम्बरीष-ऋजिश्वानौ । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नो वाजसातमँ रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नम् विभासहम् ॥५॥

पदार्थ—(अभी) सब प्रकार से (वाजसातमं) पर्याप्त बल प्रदान करने वाले (रयिं) धन को (अर्ष) दे (शतस्पृहम्) जिसको सैकड़ों लोग चाहें (इन्दो) ऐश्वर्यशाली (सहस्रभर्णसं) हजारों तरह पुष्ट करने वाले (नः) हमें (तुविद्युम्नं) बहुत यशदायक (विभासहम्) शत्रुओं को नीचा दिखाने वाले ॥५॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू पूर्ण बल प्रदान करने वाले, सैकड़ों लोगों को चाहने योग्य, हजारों प्रकार से पुष्ट करने वाले, यशदायक और शत्रुओं को भी नीचा दिखाने वाले धन हमें दे ॥५॥

५५०—रेभसूनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातँ रिहन्ति मातरः ॥६॥

पदार्थ—(अभी) सब प्रकार से (नवन्ते) झुकते हैं (अद्रुहः) द्रोह नहीं करने वाले (प्रियम्) प्यारे अमृत की ओर (इन्द्रस्य) आत्मा के (काम्यम्) कामना करने के योग्य (वत्सम्) बच्चे को जैसे (पूर्वे) पहली (आयुनि) अवस्था [उमर] में (जातम्) उत्पन्न हुए (रिहन्ति) प्यार करती हैं (मातरः) मातायें ॥६॥

भावार्थ—जिस प्रकार अपनी पहली संतानों को मातायें प्यार करती हैं, उसी प्रकार द्रोह न करने वाले मनुष्य कामना के योग्य उस प्यारे प्रभु की ओर झुकते हैं ॥६॥

५५१—रेभसूनुः । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥७॥

पदार्थ—(आ हर्यताय) दूसरे के अपकार में रत (धृष्णवे) धृष्ट (धनुः) धनुष को (तन्वन्ति) तानते है (पौंस्यम्) पुरुषार्थ के द्योतक (शुक्राः) वीर्यवान् (वियन्ति) लड़ते हैं (असुराय) दुष्ट (निर्णिजे) रूप की रक्षा के लिए (विपाम्) बुद्धिमानों के (अग्रे) आगे (महीयुवः) भूमि की कामना करने वाले ॥७॥

भावार्थ—वीर्यवान् पुरुष पराये के अपकार में रत, धृष्ट तथा आक्रमण करने वाले पुरुषार्थ के द्योतक धनुष को तानते हैं । भूमि की कामना वाले विद्वानों के आगे वर्तमान हुए रूप की रक्षा के लिये लड़ते हैं ॥७॥

५५२—ऋजिश्वाम्बरीषौ । सोमः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
परि त्यँ हर्यतँ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥८॥

पदार्थ—(परि) सब ओर से (त्यं) उस (हर्यतं) मनोहर (हरिं) हरण करने वाले (बभ्रुं) शुभ्रवर्ण (पुनन्ति) पवित्र करते हैं (वारेण) वितर्क आदि के विरुद्ध भावना करके (यः) जो (देवान्) देवों को (विश्वान्) सब (इत्) ही (परि) सब तरह (मदेन) आनन्द के (सह) साथ (गच्छति) प्राप्त करता है ॥८॥

भावार्थ—योगी पुरुष गुरु बनने के योग्य आत्मा को वितर्कों से विरुद्ध भावना से पवित्र करते हैं । आत्मा मनोहर और शुद्ध स्वरूप होती है । वह आनन्द के साथ सारी इन्द्रियों को प्राप्त होती है ॥८॥

५५३—प्रजापतिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
अप श्वानमराधसँ हता मखं न भृगवः ॥९॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सुन्वानाय) उत्तम कर्म करने वाले के (अन्धसः) अज्ञानान्धकार से (मर्तः) मनुष्य (न) नहीं (वष्ट) चाहता है (तत्) उस (वचः) वचन को (अपश्वानम्) निकृष्ट कुत्ते की वृत्तिवाले को (अराधसम्) न उपासना करने वाले को (हता) हटाओ (अमखम्) अपरोपकार के कार्य को [अनुत्तम कार्य को] (न) समान (भृगवः) ज्ञानीजन के ॥९॥

भावार्थ—अज्ञानान्धकार के कारण मनुष्य यज्ञ आदि उत्तम कर्म के करने वाले मनुष्य के वचन को नहीं सुनता । हे मनुष्य ! तू कुत्ते के समान वृत्तिवाले इस न उपासना करने वाले को उसी प्रकार दूर हटा जैसे ज्ञानीजन बुरे कार्यों को दूर हटाते हैं ॥९॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

५५४—कविः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विश्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थ—(**अभि**) समक्ष (**प्रियाणि**) प्रिय (**पवते**) पवित्र करता है (**चनोहितः**) अन्न को धारण करने वाला (**नामानि**) अनेक नामों को (**यह्वः**) महान् (**अधि**) अधिक (**येषु**) जिनमें (**वर्धते**) बढ़ता है (**आ**) सब प्रकार से (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**बृहतः**) महान् (**बृहन्**) वृद्धि करने वाला (**अधि**) ऊपर (**रथम्**) रथ पर (**विश्वञ्चम्**) चारों तरफ चलने वाले (**अरुहत्**) चढ़ता है (**विचक्षणः**) विश्व का द्रष्टा ॥१॥

भावार्थ—अन्न आदि भोग्य पदार्थों को धारण करने वाला, महान् वह आत्मा जिन प्यारे नामों को पवित्र करता है वह उन्हीं से उन्नति करता है । अनेक प्रकार से देखने वाला वह महान् सूर्य के भी प्रकाश रूप, रथ पर चढ़ता है, अर्थात् सौर्याविणी दशा को प्राप्त होता है ॥१॥

५५५—कविः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३२ ३ १ २
अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
१ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि चिदश्नाना इषयो अरातयो ऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥२॥

पदार्थ—(**अचोदसः**) बिना किसी प्रेरणा के (**नः**) हमें (**धन्वन्तु**) पहुँचावें (**इन्दवः**) परम ऐश्वर्यशाली (**प्र**) उत्तम (**स्वानासः**) उपदेश करने वाले (**बृहद्देवेषु**) महान् दिव्य गुणों में (**हरयः**) अज्ञाननाशक (**विचित्**) निर्गत (**अश्नानाः**) विषयवाले (**इषयः**) विषयेच्छावाले (**अरातयः**) दुःखदायी (**अर्यः**) कामादि शत्रु (**नः**) हमारे (**सन्तु**) हों (**सनिषन्तु**) विभक्त हों (**नः**) हमारे (**धियः**) ज्ञान और कर्म ॥२॥

भावार्थ—बिना प्रेरणायुक्त उपदेश करनेवाले, अज्ञाननिवारक तथा ऐश्वर्यवान् ज्ञानीजन हमें महान् दिव्य गुणों को प्राप्त करावें । हमारे दुःखदायी, विषयेच्छा वाले काम आदि शत्रु विषयरहित हों । हमारे ज्ञान और कर्म विभक्त हों ॥ २ ॥

५५६—कविः । सोमः । जगती ।

३उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२
एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥३॥

पदार्थ—(**एष**) यह (**प्र**) उत्तम (**कोशे**) आनन्दमय कोश में (**मधुमान्**) ज्ञानयुक्त (**अचिक्रदत्**) साक्षात् करता है (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा के (**वज्रः**) वर्जन करने हारे (**वपुषः**) शरीर के (**वपुष्टमः**) अत्यन्त रूपवान् (**अमृतस्य**) सत्य का (**सुदुघा**) सुन्दरता से दोहन करनेवाला (**घृतश्चुतः**) प्रकाशयुक्त (**वाश्राः**) शब्दमयी (**अर्षन्ति**) प्राप्त होती हैं (**पयसा**) ज्ञान के साथ (**धेनवः**) वेदवाणियें (**च**) और ॥ ३ ॥

भावार्थ—ज्ञान-विज्ञानयुक्त, दुर्गुणों का वर्जन करने हारा तथा अत्यन्त रूपवान् यह विद्वान् पुरुष जीवात्मा के शरीर के मध्यवर्ती आनन्दरूप कोश में पहुँचता है । सत्य का उत्तमता से दोहन करनेवाली प्रकाशयुक्त तथा शब्दमयी वेदवाणियां ज्ञान के साथ इस विद्वान् को प्राप्त होती हैं ॥३॥

५५७—ऋषिगणः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतँ सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥४॥

पदार्थ—(**प्रो**) उत्तम (**अयासीत्**) प्राप्त करता है (**इन्दुः**) परम ऐश्वर्यशाली जीवात्मा (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर का (**निष्कृतम्**) शुद्ध सम्पर्क (**सखा**) मित्र (**सख्युः**) प्रेमी जीव की (**न**) नहीं (**प्रमिनाति**) नाश करता है (**सङ्गिरम्**) स्तुति को (**मर्य इव**) मनुष्य के समान (**युवतिभिः**) युवतियों के साथ (**समर्षति**) संग करता है (**सोमः**) शान्तस्वरूप परमेश्वर (**कलशे**) कलश रूप जीवात्मा का (**शतयामना पथा**) सैकड़ों मार्गों से ॥४॥

भावार्थ—जीवात्मा परमात्मा के पवित्र सम्बन्ध को प्राप्त करता है, मित्र के समान प्रभु अपने मित्र जीव की स्तुति को व्यर्थ नहीं जाने देता । जैसे मनुष्य युवतियों से संग करता है, वैसे ही यह जीव अनेकों मार्गों से शरीर में कर्मानुसार प्राप्त होता है ॥५॥

५५८—कविः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजाँसि कृणुषे नदीष्वा ॥५॥

पदार्थ—(**धर्ता**) धारण करनेवाला (**दिवः**) द्युलोक का (**पवते**) व्यापक हो रहा है (**कृत्व्यः**) उत्पादक (**रसः**) आनन्दस्वरूप (**दक्षः**) शक्तिशाली (**देवानाम्**) देवों या दिव्य पदार्थों का (**अनुमाद्यः**) स्तुत्य (**नृभिः**) मनुष्यों द्वारा (**हरिः**) दुःखहर्ता (**सृजानः**) जगत् कर्त्ता (**अत्यः न**) वायु के समान (**सत्वभिः**) शक्तियों से (**वृथा**) बिना प्रयास (**पाजांसि**) बल को (**कृणुषे**) पैदा करता है (**नदीषु**) नदियों में (**आ**) भलीभांति ॥४॥

भावार्थ—प्राणधारी मनुष्यों द्वारा स्तुत्य तथा दिव्य पदार्थों का उत्पादक, द्युलोक का धारक, जगत् का कर्त्ता आनन्दस्वरूप, शक्तिशाली तथा दुःखहर्ता परमेश्वर वायु के समान व्यापक हो रहा है तथा नदी के प्रवाहों में बिना प्रयास ही बल पैदा कर देता है ॥५॥

५५९—खिगणः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥६॥

पदार्थ—(**वृषा**) वर्षक (**मतीनां**) ज्ञानों का (**पवते**) व्यापक हो रहा है (**विचक्षणः**) अत्यन्त ज्ञानी (**सोमः**) परमेश्वर (**अह्नाम्**) रात्रि का (**उषसाम्**) उषाओं का (**प्रतरीता**) प्रकाश करनेवाला (**दिवः**) द्यौ का (**प्राणाः**) पूर्ण करनेवाला (**सिन्धूनां**) नदियों का (**कलशां**) घट-घट में (**अचिक्रदत्**) उपदेश करता है (**इन्द्रस्य**) जीव के (**हार्द**) हृदय में (**आविशत्**) प्रविष्ट होता है (**मनीषिभिः**) स्तुतियों से ॥६॥

भावार्थ—ज्ञानों की वर्षा करनेवाला, अत्यन्त ज्ञानी, रात्रि, दिन और उषा का प्रकाशक, नदियों को वृष्टि द्वारा पूरा करनेवाला परमेश्वर घट-घट में व्यापक हो रहा है । वह जीव के हृदय में प्रकट होता है और स्तुतियों द्वारा उपदेश करता है ॥६॥

५६०—रेणुः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
३ २३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्द्धत ॥७॥

पदार्थ—(**त्रिः**) तीन अवस्थाओं में [उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में] (**अस्मै**) जीवात्मा के लिए (**सप्त**) सात [शिरस्थित] प्राण (**दुदुह्रिरे**) पूर्ण करते हैं (**सत्यां**) सच्चा (**आशिरं**) ज्ञान (**परमे**) सबसे बढ़ कर (**व्योमनि**) ज्ञानयज्ञ में (**चत्वारि**) चार (**अन्या**) अन्य (**भुवनानि**) अवस्थाएं [जागृतादि भी] (**निर्णिजे**) आत्मा के स्वरूप प्राप्ति के लिए होती हैं । (**चारूणि**) उनको उत्तम (**चक्रे**) बनाता है (**यत्**) जो (**ऋतैः**) यज्ञों से (**अवर्द्धत**) बढ़ाता है ॥७॥

भावार्थ—सिर के सात प्राण तीनों कालों में आत्मा के लिए, ज्ञानयज्ञ की अवस्था में सच्चे ज्ञान को पूर्ण करते हैं । आत्मा के मोक्ष तथा भिन्न भिन्न स्वरूप प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न चार अवस्थाएं बनाई गई हैं, वे सच्चे यज्ञों के द्वारा प्राप्त की जाती हैं ॥७॥

अथवा

पदार्थ—(**त्रिः**) तीन प्रकार [आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक] (**सप्त**) सात छन्दोंवाली (**धेनवः**) वेदवाणियां (**दुदुह्रिरे**) दोहन करती हैं (**सत्यां**) सच्चा (**आशिरं**) ज्ञान को (**परमे**) परमोत्कृष्ट (**व्योमनि**) आकाशवत् व्यापक ब्रह्म में (**चत्वारि**) चार [विज्ञान, कर्म, उपासना, ज्ञान] (**अन्या**) अन्य (**भुवनानि**) विषयों को (**निर्णिजे**) स्वरूप लाभ के लिए (**चारूणि**) सुन्दर (**चक्रे**) करता है (**यत्**) जब (**ऋतैः**) शिष्ट नियमों से [ज्ञान से] (**अवर्द्धत**) वृद्धि कर लेता है ॥७॥

भावार्थ—जब विद्वान् पुरुष सृष्टि के परमेश्वरीय नियमों और ज्ञान से अपने को उन्नत कर लेता है, तब सात प्रकार के छन्दों वाली वेदवाणियां इसको आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन विषयों में ज्ञानरूप दुग्ध से परिपूर्ण करती हैं और यह विद्वान् पुरुष महान् आकाशवत् व्यापक ब्रह्म के आश्रय में विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान को स्वरूप लाभ के लिए उत्तम बनाता है ॥७॥

५६१—वेनः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥८॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीवात्मा के लिए (सोम) हे शान्तस्वरूप प्रभो ! (सुषुतः) भलीभांति ध्यान किया हुआ (परिस्रव) ज्ञान का स्रोत खोल दे [कृपा कर] (अप) दूर (अमीवा) रोग (भवतु) हो (रक्षसा सह) राक्षसी विचार के साथ (मा) नहीं (ते) तेरे (रसस्य) रसका (मत्सत) आनन्द प्राप्त करते हैं (द्वयाविनः) वञ्चक [मन में कुछ, वाणी में कुछ और, करें कुछ और] (द्रविणस्वन्तः) ऐश्वर्यवाले (इह) इस ध्यानयज्ञ में (सन्तु) हों (इन्दवः) परम तेजवाले योगी जन ॥८॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमात्मा ! तू ध्यान किए जाने पर जीवात्मा के लिए ज्ञान का स्रोत खोल दे, बुरे विचारों के साथ रोग भी दूर हों। वञ्चक और कपटी आनन्द के भागी नहीं होते [किन्तु] इस ध्यानरूप यज्ञ में ज्ञानी जन ही सफल होते हैं ॥८॥

५६२—भरद्वाजो वसुः। सोमः। जगती।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २र
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥९॥

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न किया जाता है (सोमः) सूर्य (अरुषः) रूपवान् (वृषा) वृष्टिकर्त्ता (हरी) हरणशील (राजा) प्रकाशमान (इव) सम्प्रति (दस्मः) अन्धकार का विनाशक (अभि) सब ओर से (गाः) पृथिवी आदि पदार्थों को (अचिक्रदत्) विकल करता है (पुनानः) पवित्र करने हारा (वारम्) आवरण को (अत्येति) दूर करता है (अव्ययम्) मेघसम्बन्धी (श्येनः) आत्मा के (न) समान (योनिं) प्रकृति (घृतवन्तम्) प्रकाशयुक्त आकाश में (आसदत्) स्थित है ॥९॥

भावार्थ—रूपवान, जल की वर्षा करनेवाला, पवित्र करने हारा, हरणशील, अन्धकार का विनाशक तथा प्रकाशमान सूर्य परमेश्वर द्वारा उत्पन्न किया गया है, वह पृथिवी आदि पदार्थों को अपन प्रचण्ड धूप से विकल करता है। वह पार्वती अथवा मेघ सम्बन्धी आवरण को भी अतिक्रान्त कर लेता है और प्रकृति के घोंसले में स्थित आत्मा के समान वह प्रकाशयुक्त आकाशस्थान अर्थात् द्युलोक में स्थित है ॥९॥

५६३—वत्सप्रीः। सोमः। जगती।

२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१०॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (देवम्) देवों के देव को (अच्छा) लक्ष्य कर (मधुमन्तः) मधुर गुणवाले (इन्दवः) ऐश्वर्यवाले योगीजन (असिष्यदन्त) धीरे धीरे आगे बढ़ते हैं (गावः) किरणें (आ) सब प्रकार से (न) समान (धेनवः) रस खींचने वाली (बर्हिषदः) आसन पर बैठते हुए (वचनावन्तः) वेदमन्त्रों के पाठ के करनेवाले (ऊधभिः) स्तनों से (परिस्रुतम्) टपकने वाले दूध को (उस्रिया) गायें जैसे (निर्णिजं) शुद्ध (धिरे) धारण करती हैं ॥१०॥

भावार्थ—प्रेम में पगे हुए ज्ञानी पुरुष रस का हरण करनेवाली सूर्य की किरणों के समान परमेश्वर को प्राप्त होते हैं, आसन पर स्थित स्तुति करते हुए, वे परमेश्वर के आनन्द को उसी प्रकार धारण करते हैं जैसे गायें स्तन से चूने वाले पवित्र दूध को धारण किए रहती हैं ॥१०॥

५६४—वत्सप्रीः। सोमः। जगती।

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥११॥

पदार्थ—(अञ्जते) विवेचन करते हैं (व्यञ्जते) विशेष विचार करते हैं (समञ्जते) भलीभांति विचार करते हैं (क्रतुम्) संसार के करनेवाले का (रिहन्ति) आनन्द अनुभव करते हैं विद्वान् जन (मध्वा) ज्ञान के साथ (अभ्यञ्जते) तुलना करते हैं (सिन्धोः) सागर के (उच्छ्वासे) प्रवाह में (पतयन्तम्) बहने वाले (उक्षणम्) शक्तिशाली (हिरण्यपावाः) सुवर्ण अथवा तेज से पवित्र ज्ञानी लोग (पशुम्) पशु के समान ज्ञानी को (अप्सु) अज्ञातरूप जल में डूबे हुए को (गृभ्णते) निकाल लेते हैं ॥११॥

भावार्थ—विद्या के तेज से तेजस्वी उपासक जन जगत्-कर्त्ता परमेश्वर का विचार करते हैं, अनुभव करते हैं, उसको जानते हैं और ज्ञान के साथ उसको प्राप्त करते हैं। संसार सागर में गिरे हुए अज्ञानी पुरुष को ज्ञानी जन गिरने से बचाते हैं ॥११॥

५६५—पवित्रः। सोमः। जगती।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥१२॥

पदार्थ—(पवित्रं) पवित्रता (ते) तेरी (विततम्) विस्तृत है (ब्रह्मणस्पते) हे वेदों के स्वामी ईश्वर (प्रभुः) तू प्रभु [शक्तिमान् है] (गात्राणि) संसार के प्रत्येक अवयवों में (पर्येषि) व्यापक हो रहा है (विश्वतः) सब ओर से (अतप्ततनूः) तपस्या नहीं करनेवाला (न) नहीं (तत्) उस पवित्रता को (आमः) अपरिपक्वबुद्धि का मनुष्य (अश्नुते) पाता है (शृतासः) परिपक्व बुद्धि वाले (इत्) ही (वहन्तः) धारण करते हुए (तत्) उस पवित्रता को (आशत) पाते हैं ॥१२॥

भावार्थ—हे वेदों के स्वामी परमेश्वर ! तेरी पवित्रता विशाल है, तू शक्तिशाली है, तू घट-घट में भलीभांति व्यापक हो रहा है। जिसने तपस्या नहीं की और जो अपरिपक्व-बुद्धि है, वह तुझे नहीं पा सकता, किन्तु पक्की बुद्धि वाला ही तेरे पवित्र तेज को पा सकता है ॥१२॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

५६६—अग्निः। सोमः। उष्णिक्।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः। श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर को (अच्छ) लक्ष्य कर (सुताः) पुत्र (इमे) ये (वृषणम्) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (यन्तु) प्राप्त हों (हरयः) अज्ञान के हरण करनेवाले (श्रुष्टे) सुखपूर्वक (जातासः) उत्पन्न (इन्दवः) योग के ऐश्वर्य से युक्त (स्वर्विदः) सब जानने वाले ॥१॥

भावार्थ—अज्ञान को दूर करनेवाले, सुखपूर्वक उत्पन्न, सब तरह की जानकारी रखनेवाले, ये पुत्रस्वरूप, ज्ञानी पुरुष कामनाओं की वर्षा करनेवाले परमेश्वर को प्राप्त हों ॥१॥

५६७—चक्षुः। सोमः। उष्णिक्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥२॥

पदार्थ—(प्रधन्वा) आगे बढ़ (सोम) हे शान्त स्वभाव के ज्ञानी पुरुष (जागृविः) तू जागने वाला है (इन्द्राय) परमात्मा की प्राप्ति के लिए (इन्दो) हे परम ऐश्वर्यवाले (परिस्रव) सब प्रकार से आगे बढ़ (द्युमन्तम्) तेजोमय (स्वर्विदम्) सब सुखों को प्राप्त करानेवाला (शुष्मम्) बल को (आभर) प्राप्त कर ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप ऐश्वर्यशाली भक्त ! उत्तमता के साथ आगे बढ़। तू जाग कर परमात्मा का परिशीलन करने के लिये आगे बढ़ और हर प्रकार से आगे बढ़। तू सब सुखों को प्राप्त कराने वाले तेजोमय बल को पूर्ण कर ॥२॥

५६८—पर्वतनारदौ। सोमः। उष्णिक्।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥३॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (आनिषीदत) आकर बैठो (पुनानाय) पवित्र करनेवाले परमेश्वर के लिए (प्रगायत) उत्तम रीति से गान करो (शिशुं न) पुत्रों को जैसे (यज्ञैः) ज्ञानयज्ञों के द्वारा (परिभूषत) सुशोभित करो (श्रिये) अपने कल्याण के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे मित्रो ! आओ बैठो, तथा उस पवित्र परमात्मा की मनोहर स्तुति करो। अपने कल्याण के लिये जैसे मां बच्चे को प्यार करती है, वैसे ही ज्ञानयज्ञों के द्वारा परमात्मा को प्रसन्न करो ॥३॥

५६९—पर्वतनारदौ। सोमः। उष्णिक्।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥४॥

पदार्थ—(तम्) उस प्रभु को (वः) तुम लोग (सखायः) हे मित्रो ! (मदाय) आनन्द के लिए (पुनानम्) पवित्र (अभिगायत) हर प्रकार से गान करो (शिशुं न) जैसे पुत्र को (हव्यैः) अनेकविध दानों या त्यागों के द्वारा (स्वदयन्त) रुचिकर बनाओ (गूर्तिभिः) स्तुति वाक्यों के द्वारा ॥४॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग अपने आनन्द के लिये उस पवित्र परमेश्वर की भलीभांति स्तुति करो। जैसे सुन्दर वस्तुओं से बच्चों को प्रसन्न किया जाता है, वैसे ही मनोहर स्तुतियों से परमेश्वर को प्रसन्न करो ॥४॥

५७०—त्रितः । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥

पदार्थ—(**प्राणा**) प्राणाधार (**शिशुः**) प्रशंसनीय (**महीनां**) पृथिवी पर निवास करने वालों का (**हिन्वन्**) प्रेरित करता हुआ (**ऋतस्य**) सत्य के (**दीधितिम्**) प्रकाश को (**विश्वा**) सारे (**परि**) सब प्रकार से (**प्रिया**) उत्तम (**भुवध**) व्यापता है (**द्विता**) कार्य और कारण को ॥५॥

भावार्थ—भूमिस्थों का प्राणाधार तथा प्रशंसनीय परमेश्वर सत्य-ज्ञान की दीप्ति को प्रेरित करता हुआ समस्त उत्तम पदार्थों में व्यापक हो रहा है और वह कार्य तथा कारण रूप दोनों प्रकार के संसार में व्यापक है ॥५॥

५७१—मनुः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

२ ३ २ ३ १ २

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥६॥

पदार्थ—(**पवस्व**) प्राप्त होवे (**देववीतये**) विद्वानों की गति के लिये (**इन्दो**) हे परमेश्वर ! (**धाराभिः**) आनन्द की धाराओं से (**ओजसा**) अपने सामर्थ्य से (**आ**) भली भांति (**कलशं**) हृदयरूप कलश में (**मधुमान्**) मधुर आनन्द गुणवाला है (**सोम**) हे शान्तस्वरूप प्रभो ! (**नः**) हमारे (**सदः**) विराजमान होवे ॥६॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! आनन्द वाला तू विद्वानों की मुक्ति के लिये अपनी शक्ति से आनन्द युक्त कर, तू हमारे हृदयकलश में विराजमान है ॥६॥

५७२—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ २र ३ २ ३ १ २

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

पदार्थ—(**सोमः**) शान्तविचार वाला भक्तजन (**पुनानः**) यौगिक क्रिया से पवित्र किया जाता हुआ (**ऊर्मिणा**) ज्ञान प्रकाश से (**अव्यम्**) रक्षा करने के योग्य (**वारं**) पवित्रता की ओर (**विधावति**) विशेष रूप से दौड़ लगाता है (**अग्रे**) पहले (**वाचः**) स्तुतियों के (**पवमानः**) पवित्र (**कनिक्रदत्**) स्वयं बोलता है ॥७॥

भावार्थ—पवित्र और शान्त भक्त, ज्ञान प्रकाश से पवित्र किया जाता है, वह रक्षा करने में समर्थ पवित्रता की ओर दौड़ लगाता है, वह मन्त्र से स्तुति करने के पूर्व अपने अन्तःकरण के शब्द का प्रयोग करता है ॥७॥

५७३—द्वितः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तमता से (**पुनानाय**) पवित्र करनेवाले (**वेधसे**) विधाता (**सोमाय**) शान्तस्वरूप परमेश्वर की (**वचः**) स्तुति (**उच्यते**) की जाती है (**भृतिं न**) वेतन के समान (**भरा**) पूर्ण कर (**मतिभिः**) स्तुतियों से (**जुजोषते**) प्रार्थना स्वीकार करनेवाले ॥८॥

भावार्थ—हे उपासक ! हमारी प्रार्थना स्वीकार करने वाले, पवित्र विधाता शान्त-स्वरूप परमेश्वर की मनोहर स्तुति कर। जैसे वेतन पाने वालों को वेतन पूरा दिया जाता है वैसे ही उस परमेश्वर की भरपूर स्तुति कर ॥८॥

५७४—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ।९।

पदार्थ—(**गोमत्**) गौवाले (**नः**) हमें (**इन्दो**) हे परमेश्वर ! (**अश्ववत्**) घोड़ों वाले धन को (**सुतः**) उत्पादक (**सुदक्ष**) हे सुन्दर बलशाली (**धनिव**) दे (**शुचिं च**) और पवित्र (**वर्णम्**) रूप (**अधिगोषु**) इन्द्रियों में (**धारय**) दे ॥९॥

भावार्थ—हे सुन्दर बलवाले परमेश्वर ! सर्वोत्पादक तू हमें गाय और घोड़ों से युक्त धन दे। तू हमारी इन्द्रियों में पवित्र रूप भी दे ॥९॥

५७५—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥१०॥

पदार्थ—(**अस्मभ्यम्**) हमारे ज्ञान के लिए (**त्वा**) तेरी (**वसुविदम्**) धनदाता (**अभि**) भली भांति (**वाणीः**) वेद की वाणी (**अनूषत**) स्तुति करती है (**गोभिः**) वेद की वाणियों से (**ते**) तेरे (**वर्णम्**) स्वरूप को (**अभिवासयामसि**) पहचान करते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे ज्ञान के लिये वेदवाणियां तेरी स्तुति करती हैं। हमलोग वेदमन्त्रों से तेरे स्वरूप को जानते हैं ॥१०॥

५७६—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ॥

१ २ ३ १२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।

३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥११॥

पदार्थ—(**पवते**) पवित्र करता है (**हर्यतः**) चाहने योग्य है (**हरिः**) दुःखहर्त्ता (**अति**) लाङ्घकर (**ह्वरांसि**) कुटिलता का (**रंह्या**) तेजी से नाश करता है (**अभ्यर्ष**) देता है (**स्तोतृभ्यः**) भक्तों को (**वीरवत्**) पुत्रयुक्त (**यशः**) कीर्ति ॥११॥

भावार्थ—सब का प्यारा और दुःखहर्त्ता परमेश्वर हमें पवित्र करता है। वह हमारी कुटिलता का तेजी से नाश करता है। वह भक्तों को वीरपुत्र और कीर्ति देता है ॥११॥

५७७—द्वितः । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २

अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषतः ॥१२॥

पदार्थ—(**परि**) सब ओर से (**कोशं**) आनन्दमय कोश के (**मधुश्चुतं**) आनन्द को चुआने वाले (**सोमः**) परमेश्वर (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**अर्षति**) व्यापक हो रहा है (**अभि**) भली भांति (**वाणीः**) वचन (**ऋषीणां**) वेदों के (**सप्त**) सात छन्दों से युक्त (**अनूषत**) स्तुति करते हैं ॥१२॥

भावार्थ—आनन्दरस की वर्षा करनेवाले आनन्दमय कोश को पवित्र करता हुआ परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है। सात छन्दों से युक्त वेदों की वाणियां उसका गान करती हैं ॥१२॥

卐 दसवीं दशती समाप्त 卐

५७८—गौरिवीतिः । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

पदार्थ—(**पवस्व**) पवित्र कर (**मधुमत्तमः**) तू अतिशय गुणवाला है (**इन्द्राय**) जीव के लिए (**सोम**) परमेश्वर (**क्रतुवित्तमः**) तू सबसे अधिक हमारे कर्मों को जानता है (**मदः**) आनन्द (**महि**) तू महान है (**द्युक्षतमः**) तू तेजस्वरूप है (**मदः**) तू स्तुति करने के योग्य है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का स्रोत और सबसे अधिक हमारे कर्मों को जाननेवाला है। तू स्वयं आनन्दस्वरूप, महान् तेजस्वरूप है तथा स्तुति करने के योग्य है। तू जीवात्मा को पवित्र कर ॥१॥

५७९—ऊर्ध्वसद्मा । सोमः । ककुप् ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २र ३ १ २

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ।२।

पदार्थ—(**अभि**) भली प्रकार (**द्युम्नं**) उज्ज्वल (**बृहद्यशः**) महान् यश (**इषस्पते**) हे अन्नों के स्वामी ! (**दिदीहि**) दे (**देव**) हे देव (**देवयुम्**) दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाले (**वि**) विशेष रूप से (**मध्यमं**) मध्यवर्ती (**कोशं**) कोश से (**युव**) युक्त कर ॥२॥

भावार्थ—हे अन्नों के स्वामी परमात्मदेव ! तू हमें दिव्य गुणों को धारण कराने वाले उज्ज्वल यश को प्राप्त करा तथा मध्यवर्ती आनन्दमय कोश से युक्त कर ॥२॥

५८०—ऋजिश्वा । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

आ सोता परिषिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।

३ १ २ ३ १ २

वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**आसोत**) भली भांति स्तुति करो (**परिषिञ्चत**) सब तरह से अपनी श्रद्धाओं से सींचो (**अश्वं न**) अश्व के समान व्यापक शक्तिवाला (**स्तोमम्**) स्तुति के योग्य (**अप्तुरम्**) उत्तम कर्मों को प्रेरित करने वाला

(रजस्तुरम्) तेजों का प्रेरक (वनप्रक्षम्) जलों का प्रेरक (उदप्रुतम्) जल के समान ओत-प्रोत ॥३॥

भावार्थ—हे स्तुति करनेवाले मनुष्यो ! घोड़े के समान व्यापक शक्ति वाला प्रशंसा के योग्य, कर्मों, तेजों और जलों के प्रेरक तथा द्रव्य मात्र में जल के समान संसार भर में ओत-प्रोत उस परमात्मा की भली-भांति स्तुति करो, और अपनी श्रद्धाओं से सींचो ॥३॥

५८१—कृतयशाः । सोमः । ककुप् ।

३ १ २ १ १ १ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।
१ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(एतमु त्यं) इसी को (मदच्युतं) आनन्द की वर्षा करनेवाले (सहस्रधारं) विविध शब्दमयी वेदवाणियों वाले (वृषभं) कामनाओं की पूर्ति करनेवाले (दिवोदुहम्) हमारे लिये दिव्य पदार्थों को पूर्ण करने वाले (विश्वा) सारी (वसूनि) सम्पत्तियों को (बिभ्रतम्) धारण करनेवाले ॥४॥

भावार्थ—हम आनन्द की वर्षा करने वाले, विविध शब्दमयी वेदवाणियों वाले, शक्तिशाली, दिव्य गुणों के दाता, सारी सम्पदाओं के धारण करनेवाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥४॥

५८२—ऋणचयः । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
१ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥५॥

पदार्थ—(सः) वही (सुन्वे) स्तुति किया जाता है (यः) जो (वसूनां) भांति-भांति के रत्नों को (यः) जो (रायाम्) अनेक प्रकार के धनों को (आनेता) हमें देता है (यः) जो (इडानाम्) वेदवाणियों को (सोमः) ईश्वर (यः) जो (सुक्षितीनाम्) सुन्दर मनुष्यों को ॥५॥

भावार्थ—जो परमेश्वर, भांति-भांति के रत्नों, सम्पत्तियों, वेदवाणियों और सुन्दर मनुष्यजन्म का दाता है, हम उस की स्तुति करते हैं ॥५॥

५८३—शक्तिः । सोमः । ककुप् ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं ह्या३ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
३ १ २ ३ १ २
अमृतत्वाय घोषयन् ॥६॥

पदार्थ—(त्वं हि) तू ही (अङ्ग) हे प्रिय [प्यारे] (दैव्यम्) दिव्य विद्वानों के [उत्तम] (पवमान) हे प्रभो ! (जनिमानि) जन्मों को (द्युमत्तमः) प्रकाशकों का प्रकाशक (अमृतत्वाय) मोक्ष के लिए (घोषयन्) घोषणा करता हुआ विद्यमान है ॥६॥

भावार्थ—हे प्यारे प्रभो ! तू प्रकाशकों का भी प्रकाशक है । तू ही ज्ञानियों के जन्मों को मोक्ष के लिए वेदद्वारा बतलाता हुआ विद्यमान है ॥६॥

५८४—उरुः । सोमः । ककुप् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥७॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्य) वह (धारया) धारा से (सुतः) चलाया हुआ (अव्याः) भेड़ों के (वारेभिः) बालों से तैयार कपड़े से छन कर (पवते) टपकता है (मदिन्तमः) वह आनन्दायक है (क्रीडन्) इधर उधर छलकता हुआ (ऊर्मिः) लहर [तरंग] के (अपाम्) जल के (इव) समान ॥७॥

भावार्थ—आनन्ददायक निचोड़ा हुआ यह सोमरस ऊनी कपड़े से छन कर सहज ही टपकता है ॥७॥

५८५—ऋजिश्वा । सोमः । ककुप् ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज
१ ३ १ २ ३ १ २
ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥

पदार्थ—(यः) जो (उस्रियाः) फैलने वाली (अपियाः) अन्तरिक्षस्थ (अन्तरश्मनि) मेघ में (निः) निःशेष रूप से (गाः) किरणों को (अकृन्तत्) छिन्न-भिन्न करता है (ओजसा) शक्ति से (अभिव्रजं) समूह को (तत्निषे) विस्तार करता है (गव्यम्) गोसम्बन्धी (अश्व्यं) अश्वसम्बन्धी (वर्मी) कवचधारी के (इव) समान (धृष्ण) बुराइयों के दबाने वाले (अवारुज) दुर्गुणों को दूर कर ॥८॥

भावार्थ—जो फैलने वाली, अन्तरिक्ष तथा मेघ में विद्यमान सूर्य की किरणों को अपनी शक्ति से छिन्न-भिन्न कर देता है और गो तथा अश्व सम्बन्धी समुदाय को विस्तृत करता है ऐसा तू हे बुराइयों के धर्षक परमेश्वर वर्मी के समान पापों को नष्ट कर तथा हे शक्तिशालिन् ! तू कवचधारी के समान दुर्गुणों को दूर कर ॥८॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

आरण्यक पर्व

षष्ठोऽध्यायः

५८६—भारद्वाजः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
१ २र ३ १ २ ३ १२ २र
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) सभाध्यक्ष ! (ज्येष्ठम्) उत्तम (नः) हमें (आभर) दे (ओजिष्ठम्) अधिक बलदायक (पुपुरि) तृप्त करने वाला (श्रवः) अन्न और यश भी (वज्रहस्त) हे दण्डधारी ! (यत्) जिससे (दिधृक्षेम) धारण करने की इच्छा करते हैं (रोदसी उभे) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक के समान राजा-प्रजा-व्यवहार (सुशिप्र) हे सुन्दर नासिका वाले (पप्राः) पूर्ण करता है ॥१॥

भावार्थ—हे दण्डधारी सुन्दर नाकवाले सभाध्यक्ष ! जिससे तू दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक के समान राजा और प्रजा के व्यवहार को पूर्ण करता है, उस उत्तम, बलवान्, तृप्त करनेवाले धन और यश को हमें दे तथा जिस वस्तु को हम धारण करना चाहते हैं, वह भी दे ॥१॥

५८७—वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ ३ २ ३ १ २ ३ १र २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) ईश्वर (राजा) राजा (जगतः) चलने-फिरने वाले प्राणियों का (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (अधिक्षमा) पृथ्वी पर (विश्वरूपं) सारे रूपवान् पदार्थ (यत्) जो (अस्य) इसका है (ततः) उससे (ददाति) देता है (दाशुषे) दान [त्याग] करने वाले को (वसूनि) अनेक संपदाओं को (चोदत्) दे (राधः) धन (उपस्तुतम्) प्रशंसा के योग्य (चित्) और (अर्वाक्) सम्मुख ॥२॥

भावार्थ—ईश्वर, चलने-फिरने वाले प्राणियों और मनुष्यों का राजा है । पृथ्वी पर जो कुछ इसका रूपवान् पदार्थ है उससे दान करनेवाले को सम्पदाएँ देता है । वही हमारे सन्मुख प्रशंसा के योग्य धन दे ॥२॥

५८८—वामदेवः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३क २र १ २ ३ १ २ ३ २
यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिसका (इदम्) यह (रजोयुजः) तेजस्वी (तुजे) दाता (जने) पुरुष में (वनम्) चाहने योग्य (स्वः) सुख को (इन्द्रस्य) परमात्मा के (रन्त्यं) उत्तम (बृहत्) महान् ॥३॥

भावार्थ—तेजस्वी जिस ईश्वर का उत्तम, महान् और चाहने योग्य सुख दानी पुरुष के लिए वही सम्पत्तियों को देता है ॥३॥

५८९—शुनःशेपः । वरुणः । चतुष्पाज्जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥४॥

पदार्थ—(उत्) ऊपर (उत्तमं) उत्तम श्रेणी का (वरुण) हे ईश्वर ! (पाशम्) बन्धन को (अस्मत्) हमसे (अव) और (अधमम्) निचली श्रेणी का (वि) विशेष (मध्यमम्) मध्यम श्रेणी के (श्रथाय) ढीलाकर (अथ) तब (आदित्य) हे सूर्य के समान तेजस्वरूप ! (व्रते) आज्ञा में (वयं) हम लोग (तव) तेरी (अनागसः) विना अपराध के (अदितये) अखण्ड सुख के लिए (स्याम) होवें ॥४॥

भावार्थ—हे सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू हमारी रक्षा करता हुआ उत्तम, मध्यम और निकृष्ट इन तीन प्रकार के बन्धनों को ढीला कर दे जिससे हम निरपराधी होकर अखण्ड सुख के लिए तेरे नियमों का पालन करें ॥४॥

५९०—गृत्समदः । सोमः । चतुष्पाज्जगती

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

पदार्थ—(त्वया) तुझसे (वयं) हम (पवमानेन) पवित्र (सोम) हे प्रभो ! (भरे) जीवन संग्राम में (कृतम्) अपने कर्तव्य को (विचिनुयाम) विशेष रूप से चुनते हैं (शश्वत्) नित्य (तत्) उसको (नः) हमारे (मित्रः) सब का उपकार करने वाला (वरुणः) न्यायाधीश ! (मामहन्ताम्) उन्नत करें (अदितिः) तेजोमयी विद्या (सिन्धुः) अन्तरिक्ष (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) द्युलोक ॥५॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमात्मा ! तू पवित्र है । हम तेरी कृपा से, जीवन संग्राम में अपने नित्य कर्त्तव्य को चुनते हैं । तेरी दया से परोपकारी न्यायाधीश पवित्र तेजविद्या, अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोक हमे उन्नत बनावें ॥५॥

५९१—वामदेवः । विश्वेदेवाः । एकपाज्जगती ।

३ १ २र ३ २उ ३ २

इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥६॥

पदार्थ—(इमम्) इस (वृषणं) कामनाओं के पूर्ण करनेवाले (कृणुत) करो (एकम्) एक (इत्) ही (माम्) मुझको ॥६॥

भावार्थ—हे मित्र आदि महानुभावो ! आप सब मुझे अकेला ही [दूसरे की सहायता के बिना] अपने मनोरथों का पूर्ण करनेवाला बनावें ॥६॥

५९२—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परिस्रव ॥७॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे (इन्द्राय) राजा के लिए (यज्यवे) यज्ञकर्ता के लिए (वरुणाय) विद्वान् के लिए (मरुद्भ्यः) ऋत्विजों के लिए (वरिवोवित्) सकल सम्पत्तियों के दाता (परिस्रव) सुख की वर्षा कर ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सकल सम्पत्तियों के दाता तू हमारे राजा, उत्तम विद्वान्, ऋत्विज् और यज्ञ कर्त्ता यजमान के लिए सुख की वर्षा कर ॥७॥

५९३—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥८॥

पदार्थ—(एना) इन (विश्वानि) सारे (अर्यः) प्राप्त करते हुए (आ) सब तरफ से (द्युम्नानि) अन्नादि सम्पदायें और यश (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (सिषासन्तः) चाहते हुए (वनामहे) आपस में बांटते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम मनुष्यों के इन सारे अन्नों और यशों को प्राप्त करते हैं तथा आपस में बांटना चाहते हुए भली भांति बाँटते हैं (सम्मिलित होकर भोगते हैं) ॥८॥

५९४—आत्मा । अन्नम् । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥९॥

पदार्थ—(अहं) मैं (अस्मि) हूँ (प्रथमजा) आदिकारण (ऋतस्य) सृष्टि-नियम और सत्य ज्ञान का (पूर्वं) पहले (देवेभ्यः) मुक्त आत्माओं से (अमृतस्य) अमृत का (नाम) स्वरूप (यः) जो (मा) मेरा (ददाति) ज्ञान देता है (सः) वह (इत्) ही (एवं) इस प्रकार से (आवद्) रक्षा करता है (अहं) मैं (अन्नम्) अन्न नाम वाला हूँ मैं (अन्नम्) प्रलयकाल में संसार को अपने में ग्रहण करने वाला (अदन्तम्) अकेला खाने वाले को (अद्मि) खा जाता हूँ ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! प्रलय में सारे संसार को अपने अन्दर ग्रहण करने वाला मैं सत्य-ज्ञान तथा सृष्टि नियम का प्रवर्तक तथा मुक्तात्माओं से प्रथम ही अमृतस्वरूप हूँ । जो मेरा उपदेश करता है वही इस अमृत को पाता है । अन्नस्वरूप मैं एकाकी अन्नभोजी और एकाकी मेरे ज्ञान को रखनेवाले को मैं खा जाता हूँ, अर्थात् अमृत धाम का अधिकारी नहीं बनाता ॥९॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

५९५—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥१॥

पदार्थ—(कृष्णासु) काली (रोहिणीषु) लाल (च) और (परुष्णीषु) टेढ़ी (रुशत्) चमकवाला (पयः) जल (त्वं) तू (एतत्) यह (अधारयः) धारण करता है ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! काली, लाल और टेढ़ी नदियों के चमकते हुए जलों को तू ने धारण किया है ॥१॥

५९६—पवित्रः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥२॥

पदार्थ—(अरूरुचत्) सब पदार्थों को प्रकाशित करता है (उषसः) उषादेवी का (पृश्निः) प्रकाशक सूर्य (अग्रियः) मुख्य (उक्षा) मेघ (मिमेति) गर्जता है (भुवनेषु) संसार में (वाजयुः) अन्न की उत्पत्ति करनेवाला (मायाविनः) बुद्धिमान् पुरुष (ममिरे) उत्पन्न किए जाते हैं (अस्य) सोमरस की (मायया) बुद्धि से (नृचक्षसः) मनुष्यों को दिखाने वाली (पितरः) पालन करनेवाली सूर्य की किरणें (गर्भम्) जल का (आदधुः) संग्रह करती हैं ॥२॥

भावार्थ—सूर्य उषादेवी को प्रकाशित करता है । अन्न का उत्पादक मेघ गर्जता है । सोमरस द्वारा प्राप्त बुद्धि से पुरुष बुद्धिमान् होते हैं । मनुष्यों को दिखाने वाली सूर्य की किरणें वर्षा के लिए जल का संग्रह करती हैं ॥२॥

५९७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर ! (इत्) ही ने (हर्योः) अग्नि और वायु के (सचा) साथ (सम्मिश्ल) मिला हुआ है (आ) सब प्रकार से (वचोयुजा) वाणी का जोड़नेवाले (इन्द्रः) परमेश्वर ही (वज्री) न्यायरूप दण्डधारण करनेवाला है । (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप है ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर ही वाणी का प्रवर्तक और अग्नि तथा वायु के साथ सब प्रकार से मिला हुआ है । वही प्रकाशस्वरूप है ! और न्यायरूप दण्ड का धारण करने वाला है ॥३॥

५९८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वाजेषु) संग्रामों में (नः) हमारी (अव) रक्षा कर (सहस्रप्रधनेषु च) बड़े बड़े संग्रामों में भी (उग्रः) तू महाबली (उग्राभिः) परमतेजयुक्त (ऊतिभिः) रक्षाओं से ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महाबली है, तू छोटे और बड़े संग्रामों में भी प्रभावशाली रक्षाओं से हमारी रक्षा कर ॥४॥

५९९—प्रथः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥५॥

पदार्थ—(प्रथः) प्रथ (च) और (यस्य) जिसका (सप्रथः) सप्रथ (च) और (नाम) नाम है । (अनुष्टुभस्य) अनुष्टुप् आदि छन्दवाला (हविषः) वाणीरूप हविष का (यत्) जो (हविः) ग्रहणसामग्री (धातुः) विधाता (द्युतानात्) प्रकाशस्वरूप (सवितुः) संसार का उत्पादक (च) और (विष्णोः) परमात्मा से (रथन्तरम्) रथन्तर आदि नाम वाले सामों को (आजभार) संग्रह करता है ॥५॥

भावार्थ—अनुष्टुप् छन्द आदि हवि वाणी का प्रथ और सप्रथ नाम है और जो वाणीरूपी हवि है वही हवि विधान बनाने वाले प्रकाशस्वरूप, संसार के उत्पादक और व्यापक परमात्मा से रथन्तर आदि सामों को लाती है ॥५॥

६००—गृत्समदः । वायुः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ।६।

पदार्थ—(नियुत्वान्) आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध कराने वाला (वायो) हे परमेश्वर ! (आगहि) प्राप्त हो (अयं) यह मैं (शुक्रः) शुद्ध (अयामि) उपस्थित होता हूँ (ते) तेरी शरण में । (गन्तासि) तू प्राप्त होने वाला है (सुन्वतः) ध्यान करनेवाले के (गृहम्) हृदयरूप घर में ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू शरीर के साथ आत्मा का सम्बन्ध करनेवाला है । पवित्र होकर मैं तेरी शरण में उपस्थित होता हूँ । तू ध्यान करने वाले हृदय में प्राप्त होने वाला है ॥६॥

६०१—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥७॥

पदार्थ—(यत्) जब (जायथाः) उत्पन्न करना चाहता है (अपूर्व्य) हे अनादि ! (मघवन्) हे पूजनीय [पूजा के योग्य] (वृत्रहत्याय) प्रलयान्धकार को विनष्ट करने के लिए (तत्) तब (पृथिवीम्) पृथिवी लोक को (अप्रथयः) सुखसमृद्धि से विस्तृत करता है (तत्) और उसी समय (अस्तभ्नाः) धारण करता है (उत) और (दिवम्) द्युलोक को ॥७॥

भावार्थ—हे अनादि पूज्य परमेश्वर ! तू प्रलय के अन्धकार को विनष्ट करने के लिए पृथिवी और द्युलोक को उत्पन्न करता है, उनको विस्तृत करता है और उनको धारण करता है ॥७॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

६०२—वामदेवः । प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र

परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥१॥

पदार्थ—(मयि) मुझ में (वर्चः) ब्राह्म तेज (अथो) और (यज्ञस्य) यज्ञसम्बन्धी (यत्) जो (पयः) अन्न-दूध और जल आदि हैं (परमेष्ठी) परमपद में विराजमान (प्रजापतिः) प्राणिमात्र का पालन करने वाला परमात्मा (दिवि) द्युलोक में (द्यामिव) सूर्यादि दिव्य पदार्थों के समान (दृंहतु) बढ़ावें ॥१॥

भावार्थ—अपने परमपद में विराजमान प्राणिमात्र के रक्षक परमात्मा द्युलोक में सूर्य आदि प्रकाशमय पदार्थों के समान मेरे ब्रह्मतेज, कीर्ति, और यश से उत्पन्न होने वाले अन्न, दूध और जलादि पदार्थों को बढ़ावें ॥१॥

६०३—गोतमः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र २र ३ १ २

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् (ते) तेरी कृपा से प्राप्त (पयांसि) जल और दूध (सम्) सम्यक् (उ) और (यन्तु) प्राप्त हों (वाजाः) अन्न (सम्) भली भांति (वृष्ण्यानि) बलवर्धक हों (अभिमातिषाहः) कामादि शत्रुओं का नाश करनेवाला (आप्यायमानः) महान् से भी महान् तू है (अमृताय) मोक्षपद के लिए (सोम) हे शान्तिस्वरूप प्रभो ! (दिवि) द्युलोकपर्यन्त (श्रवांसि) कीर्ति (उत्तमानि) उत्तम (धिष्व) धारण कर, पहुँचा दे ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप प्रभो ! तू हमारे कामादि शत्रुओं का दमन करने वाला है । तेरी कृपा से सुखदायक जल, बलवर्धक अन्न प्राप्त हों । तू महान् से भी महान् है । हमें अमर बना । हमारी कीर्ति द्युलोक में पहुँच जाय ॥२॥

६०४—गोतमः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।

१ २र ३ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (इमाः) इन (ओषधीः) ओषधियों को (सोमः) हे परमेश्वर ! (विश्वाः) सारी (त्वम्) तू (अपः) जलों को (अजनयः) उत्पन्न किया है (त्वम्) तू (गाः) गौ आदि पशुओं को भी (त्वम्) तू ने (आतनोः) फैलाया है (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (त्वम्) तू ने (ज्योतिषा) ज्योति से (वि) अनेक प्रकार से (तमः) अन्धकार को (ववर्थ) छिन्न-भिन्न किया है ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तूने इन सारी ओषधियों को जलों और गायादि पशुओं को उत्पन्न किया है । तूने विशाल अन्तरिक्ष को फैलाया है । तूने ही प्रकाश से अन्धकार का नाश किया है ॥३॥

६०५—मधुच्छन्दा । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।४।

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर की (ईडे) स्तुति करता हूँ (पुरोहितम्) सब का धारण और पोषण करनेवाले (यज्ञस्य देवम्) संसार के देव (ऋत्विजम्) सब ऋतुओं में पूजा के योग्य (होतारं) संसार को अपने में लीन करने वाले (रत्नधातमम्) सुवर्ण, हीरा आदि रत्नों का धारण करनेवाले ॥४॥

भावार्थ—सबका पोषण करने वाले, संसार के एकमात्र देव, सब ऋतुओं में पूजा के योग्य, सब को अपने में लीन करनेवाले और असंख्य रत्नों के धारण करने वाले परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

६०६—वामदेवः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।

१ २ ३ १ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५॥

पदार्थ—(ते) तेरा (मन्वत) मानते हैं (प्रथमम्) मुख्य (नाम) ओंकारादि नाम (गोनाम्) वेदवाणियों में (त्रिः सप्त) इक्कीस गायत्री आदि छन्द (परमम्) उत्तम (नाम) अन्य नामों को (जानन्) जानते हुए (ताः) प्रजायें (जानतीः) जानती हुई (अभ्यनूषत) स्तुति करती हैं (क्षाः) पृथिवी पर निवास करने वाली (अरुणीः) प्रकाश से युक्त (यशसा) कीर्ति से युक्त (गावः) वाणियां ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! इक्कीस छन्दों को जानती हुई पृथिवी पर रहने वाली प्रजा तेरे नाम ओंकार को वाणियों में प्रथम मानती है और तेरी स्तुति करती है । यश से प्रकाशमान वाणियां संसार में प्रकट होती हैं ॥५॥

६०७—गृत्समदः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २

समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ।६।

पदार्थ—(सम्) सम्यक् (अन्या) दूसरे प्रकार के जल (यन्ति) ऊपर की ओर जाते हैं (उपयन्ति) जाते हैं (अन्याः) दूसरे जल (समानम्) एक समान होकर (ऊर्वम्) अधिकमात्रा में (नद्यस्पृणन्ति) नदी का रूप धारण करते हैं । (तम्) उसीके (शुचिम्) पवित्र (शुचयः) पवित्र (दीदिवांसम्) दीप्तियुक्त (अपांनपातम्) जल को न गिरने देने वाले सूर्यरूप अग्नि समीप (उपयन्ति) चले जाते हैं (आपः) जल ॥६॥

भावार्थ—एक प्रकार के जल ऊपर जाते हैं । दूसरे नीचे आते हैं । वे दोनों एक रूप होकर अग्निरूप सूर्य मंडल में जाते हैं । वहां से वर्षा होने पर नदी का रूप धारण करते हैं । पवित्र जल, तेजस्वी पवित्र, जलों को न गिरने देने वाले सूर्य के समीप जाते ही हैं ॥६॥

६०८—वामदेवः । रात्रिः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतूंत्समीत्संति ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥७॥

पदार्थ—(आ) सब ओर से (प्रागात्) आती है (भद्रा) सुख देनेवाली (युवतिः) अन्धकार को मिलादेनेवाली (अह्नः) दिन के (केतून्) चिह्नों को (समीत्संति) दूर करती है (अभूत्) होती है (भद्रा) सुख देनेवाली (निवेशनी) सुख से सुलाने वाली (विश्वस्य जगतः) सारे संसार को (रात्री) रात ॥७॥

भावार्थ—सुखदेनेवाली तथा अन्धकार को लाने वाली रात्रि आती है वह दिन के चिह्न को दूर करती और दिन में काम करनेवाले सारे प्राणियों को सुखपूर्वक सुलाती है ॥७॥

६०९—भरद्वाजः । वैश्वानरः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥८॥

पदार्थ—(**प्रक्षस्य**) सर्वव्यापक (**वृष्णो**) सुख की वर्षा करनेवाले (**अरुषस्य**) प्रकाशस्वरूप (**नू**) शीघ्र (**महः**) पूजापरक (**प्र**) उत्कृष्ट (**नः**) हमारा (**वचः**) वचन (**विदथा**) यज्ञ में (**जातवेदसे**) सर्वज्ञ (**वैश्वानराय**) सर्वनियन्ता के लिए (**मतिः**) बुद्धि (**नव्यसे**) नये (**शुचिः**) पवित्र (**सोमः**) सोम (**इव**) जैसे (**पवते**) प्राप्त होता है (**चारु**) उत्तम (**अग्नये**) अग्नि के लिए ॥८॥

भावार्थ—सर्वव्यापक, आनन्ददाता, प्रकाशस्वरूप, परमेश्वर के लिए हमारा पूजापरक वचन समर्थ होवे। नूतन अग्नि को जैसे सोम प्राप्त होता है वैसे हमारी पवित्रबुद्धि सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता प्रभु की प्राप्ति के लिए समर्थ होवे ॥८॥

६१०—*भरद्वाजः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्।*

२ ३ १ २र ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥९॥

पदार्थ—(**विश्वे**) सारे (**देवाः**) विद्वान् (**मम**) मेरे (**शृण्वन्तु**) सुनें (**यज्ञं**) श्रेष्ठ कर्म को (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) द्यु और पृथिवीलोक (**अपांनपात्**) शुभकर्मों का रक्षक (**च**) और (**मन्म**) उत्तम (**मा**) नहीं (**वो**) तुम लोगों के (**वचांसि**) वचनों को (**परिचक्ष्याणि**) निन्दा (**वोचम्**) बोलें (**सुम्नेषु**) सुखों में (**इत्**) ही (**वः**) तुम्हारे (**अन्तमा**) समीपवर्ती होकर (**मदेम**) सुखी हों ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! शुभ कर्मों का रक्षक तू, सारे विद्वान् जन तथा द्यु और भूमि के साथ वर्तमान राजा प्रजा हमारे यज्ञादि उत्तम कर्मों को सुनें। हम तुम्हारी निन्दा के वचन न बोलें। तुम्हारे समीपवर्ती होकर सुखों में सुखी हों ॥९॥

६११—*वामदेवः। लिङ्गोक्ताः। महापङ्क्तिः।*

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती यशो भगस्य विन्दतु यशो
३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मा प्रतिमुच्यताम् यशसा३स्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥१०॥

पदार्थ—(**यशः**) यश (**मा**) मुझको (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और भूमि (**यशः**) यश (**मा**) मुझे (**इन्द्रबृहस्पती**) राजा और विद्वान् (**भगस्य**) ऐश्वर्य की (**यशः**) कीर्ति (**विन्दतु**) प्राप्त हो (**यशः**) यश (**मा**) नहीं (**प्रतिमुच्यताम्**) छुटे (**यशसा**) यश से युक्त (**अस्याः**) इस (**संसदः**) सभा का (**अहम्**) मैं (**प्रवदिता**) प्रगल्भ वक्ता (**स्याम**) होऊं ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर आपकी कृपा से द्यु और पृथ्वी लोक हमारे यश के साधन बनें, राजा और विद्वान् मुझे कीर्ति प्राप्त करावें। ऐश्वर्य का यश भी हमें प्राप्त हो। यश मेरा साथ कभी न छोड़े। यश से युक्त हुआ मैं इस सभा का गंभीर वक्ता होऊं ॥१०॥

६१२—*हिरण्यस्तूपः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।*

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥११॥

पदार्थ—(**इन्द्रस्य**) सूर्य के (**नु**) शीघ्र (**वीर्याणि**) शक्ति का (**प्रवोचम्**) वर्णन करता हूँ (**यानि**) जिनको (**चकार**) किया या और करता है (**प्रथमानि**) प्रसिद्ध (**वज्री**) वज्रवाला (**अहिम्**) मेघ को (**अहन्**) छिन्न-भिन्न करता है (**अनु**) पश्चात् (**अपः**) जलों को (**ततर्द**) बहाता है (**प्रवक्षणाः**) बहने वाली नदियों को (**अभिनत्**) तोड़ डालता है (**पर्वतानाम्**) मेघों के ॥११॥

भावार्थ—मैं सूर्य की उन शक्तियों का वर्णन करता हूँ जिन्हें शक्तिशाली सूर्य प्रसिद्ध कर चुका है और कर रहा है। वह मेघ को छिन्न-भिन्न करता है, जल को बहाता है और मेघों की नदियां बनाता है ॥११॥

६१३—*विश्वामित्रः। अग्निः। त्रिष्टुप्।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥१२॥

पदार्थ—(**अग्निः**) अग्नि नाम वाला (**अस्मि**) हूँ (**जन्मना**) स्वभाव से (**जातवेदाः**) सर्वज्ञ (**घृतं**) प्रकाश (**मे**) मेरा (**चक्षुः**) चक्षु (**अमृतं**) अविनाशी आकाश या मोक्षपद (**मे**) मेरा (**आसन्**) मुख है (**त्रिधातुः**) त्रिलोक का धर्ता (**अर्कः**) पूजनीय (**रजसो विमानः**) लोकों का निर्माता (**अजस्रम्**) सदा रहनेवाली (**ज्योतिः**) ज्योति (**हविः**) हवि का नाम वाला (**अस्मि**) हूँ (**सर्वम्**) सर्व ॥१२॥

भावार्थ—योगी को प्रकाशित हुआ परमेश्वर कहता है—मैं अग्निनाम वाला स्वभाव से सर्वज्ञ हूँ, सम्पूर्ण प्रकाश मेरा चक्षु है, अविनाशी आकाश या मोक्षपद मेरा मुख है अथवा आकाश या मोक्षपद मेरे मुख में है। मैं सर्वपूज्य त्रिलोक का धर्ता और लोकों का निर्माता हूँ। मैं सदा वर्तमान यज्ञ तथा हविनाम वाला हूँ ॥१२॥

६१४—*विश्वामित्रः। अग्निः। त्रिष्टुप्।*

२ ३ २ ३ १ २र ३ १र २र ३ १ २र ३ १ २
पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥१३॥

पदार्थ—(**पाति**) रक्षा करता है (**अग्निः**) व्यापक ईश्वर (**विपः**) मेधावी (**अग्रम्**) मुख्य (**पदम्**) स्थान को (**वेः**) चलनेवाली पृथिवी के (**पाति**) रक्षा करता है (**यह्वः**) महान् (**चरणम्**) गति को (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**पाति**) रक्षा करता है (**नाभा**) केन्द्रस्थान अन्तरिक्ष में (**सप्तशीर्षाणम्**) सात मरुद्गणों की (**अग्निः**) परमेश्वर (**पाति**) रक्षा करता है (**देवानाम्**) देवताओं को (**उपमादम्**) प्रसन्न करनेवाले यज्ञ को (**ऋष्वः**) महान् ॥१३॥

भावार्थ—व्यापक, महान्, और मेधावी परमेश्वर घूमनेवाली पृथिवी के मुख्य स्थान की रक्षा करता है। वह सूर्य की गति की रक्षा करता है। महान् परमेश्वर, अन्तरिक्ष में सात प्रकार की वायुओं की रक्षा करता है। वह देवों को प्रसन्न करने वाले यज्ञ की भी रक्षा करता है ॥१३॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

६१५—*वामदेवः। अग्निः। पङ्क्तिः।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥१॥

पदार्थ—(**भ्राजन्ती**) चमकती हुई (**अग्ने**) हे व्यापक परमेश्वर (**समिधान**) हे तेजस्वरूप! (**दीदिवः**) हे सब से श्रेष्ठ! (**जिह्वा**) सात किरण रूप या सात काली कराली आदि रूप से वर्तमान जिह्वा (**अन्तःआसनि**) विशाल आकाश रूपी मुख में (**चरति**) चलती है (**स त्वम्**) वह तूने (**नः**) हमारे (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**पयसा**) जल या दुग्ध के साथ (**वसुवित्**) धनदाता (**वर्चः**) तेज (**दृशे**) देखने के लिए (**अदाः**) दिया है ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वश्रेष्ठ प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! तुम्हारे आकाशरूपी मुख में प्रकाश की ज्वालाएं सात किरणों या सात अर्चियों के रूप में चलती हैं। तूने हमारे देखने के लिए प्रकाश के साथ धन और वर्चस् भी दिया है ॥१॥

६१६—*वामदेवः। ऋतवः। पङ्क्तिः।*

३ १ २र ३ १ २र
वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२॥

पदार्थ—(**वसन्तः**) चैत्र और वैशाखमास वसन्त ऋतु (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) रमणीय हैं (**ग्रीष्मः**) ज्येष्ठ और आषाढ़ मास ग्रीष्म ऋतु (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) मनोहर है (**वर्षाणि**) श्रावण और भाद्रपदमास वर्षा ऋतु (**अनु**) उसके बाद होने वाली (**शरदः**) आश्विन और कार्तिक मास ऋतु (**हेमन्तः**) अग्रहण और पौष हेमन्त ऋतु (**शिशिरः**) माघ और फाल्गुन मास शिशिर ऋतु (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) रमणीय होता है ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर! तेरी व्यवस्था से वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतुएं अपने-अपने समय पर मनोहर होती हैं ॥२॥

६१७—*नारायणः। पुरुषः। अनुष्टुप्।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥३॥

पदार्थ—(**सहस्रशीर्षाः**) हम सबके सिर हैं जिसमें (**पुरुषः**) परमेश्वर (**सहस्राक्षः**) हम लोगों के सहस्र आंख हैं जिसमें (**सहस्रपात्**) हम सब के सहस्रों पैर हैं जिसमें (**सः**) वह (**भूमि**) भूमि से ले के प्रकृति पर्यन्त (**सर्वतः**) सब (**वृत्वा**) व्यापन करके (**अत्यतिष्ठत्**) बाहर भी स्थित हो रहा है, (**दशाङ्गुलम्**) दश अवयवों से युक्त ब्रह्माण्ड ॥३॥

भावार्थ—संसार के अनेक सिर, अनेकों आंखें, अनेकों पैर हैं जिसमें ऐसा वह व्यापक परमेश्वर पृथ्वी से ले के प्रकृति पर्यन्त को व्याप्त करके ब्रह्माण्ड से अतिरिक्त भी स्थित हैं ॥३॥

६१८—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ २ ३ १   २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
२ ३ २ ३क २र   ३ २ ३ २
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥४॥

पदार्थ—(**त्रिपात्**) तीन पाद जगत् से (**ऊर्ध्वः**) ऊपर भी (**उदैत्**) व्यापक हो रहा है (**पुरुषः**) परमेश्वर (**पादः**) एकपाद (**अस्य**) इसका (**इह**) संसार में (**अभवत्**) होता है (**पुनः**) फिर (**तथा**) उसकी सामर्थ्य से (**विश्वङ्**) समस्त विश्व (**व्यक्रामत्**) उत्पन्न होता है (**अशना-अनशने**) खानेवाले न खाने-वाले [जड़जंगम] (**अभि**) लेकर ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वर त्रिपाद जगत् से ऊपर व्यापक हो रहा है । यह संसार उसके एक पाद के समान है । उसकी सामर्थ्य से जड़-जंगम सहित समस्त जगत् उत्पन्न होता है ॥४॥

६१९—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ   ३ २ ३ २र   ३ १ २
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥५॥

पदार्थ—(**पुरुषः**) परमेश्वर (**एव**) ही (**इदम्**) यह (**सर्वम्**) सब (**यत्**) जो (**भूतम्**) भूत (**यत्**) जो (**च**) और (**भाव्यम्**) होनेवाले (**पादः**) पाद के समान (**अस्य**) इसके (**सर्वा**) सारे (**भूतानि**) पृथिव्यादिभूत(**त्रिपात्**) तीन पाद के समान (**अस्य**) इसका (**अमृतम्**) अमृत है (**दिवि**) आकाश में ॥५॥

भावार्थ—परमेश्वर ही भूत, भविष्यत्, वर्तमान जगत् को उत्पन्न करता है, सारा जगत् इसके पाद में है और तीन पाद इसका अपने स्वरूप में मोक्ष रूप से स्थित हैं ॥५॥

६२०—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

१ २   ३ २उ ३   १ २ ३ १ २
तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
३ १ २ ३ १   ३र ३ १ २र ३ १ २
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥६॥

पदार्थ—(**तावान्**) उतनी (**अस्य**) इसकी (**महिमा**) महिमा (**ततः**) उससे भी (**ज्यायान्**) बड़ा (**च**) और (**पूरुषः**) परमेश्वर (**उत**) और (**अमृतत्वस्य**) मोक्ष का (**ईशानः**) स्वामी (**यत्**) जिस कारण से (**अन्नेन**) उत्पन्न हुए जगत् आदि से (**अतिरोहति**) अतिरिक्त स्थित है ॥६॥

भावार्थ—उतनी तो परमेश्वर की महिमा है, परमेश्वर उससे भी महान् है । वह मोक्ष सुख का स्वामी है । इसलिए उत्पन्न हुए जगत् आदि से अतिरिक्त है ॥६॥

६२१—नारायणः । स्रष्टा । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
२ ३ १ २र   ३ १उ ३ १ २ ३ २
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥७॥

पदार्थ—(**ततः**) उस परमेश्वर से (**विराट्**) प्रकाशमान आकाशमण्डल (**अजायत**) पैदा हुआ (**विराजः**) विराट् का (**अधि**) अधिष्ठाता (**पूरुषः**) परमेश्वर (**सः**) वह (**जातः**) पैदा हुए के (**अत्यरिच्यत**) पृथक् होता है (**पश्चात्**) पश्चात् (**भूमिम्**) भूमि (**अथो**) अनन्तर (**पुरः**) लोकशरीरादि ॥७॥

भावार्थ—उस परमेश्वर से प्रकाशमान सौर मण्डल उत्पन्न हुआ । उसके पश्चात् भूमि को पैदा किया, तदनन्तर शरीरादिक हुए । विराट् का अधिष्ठाता परमेश्वर है और वह उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड से पृथक् वर्तमान है ॥७॥

६२२—वामदेवः । द्यावापृथिवी । उपरिष्टाज्ज्योतिः ।

१ २   ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १   २र
मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम् ।
१ २   ३ १ २   ३ १   २र   ३ १ २
द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥८॥

पदार्थ—(**मन्ये**) मानता हूँ (**वाम्**) तुम दोनों को (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक के समान माता और पिता (**सुभोजसौ**) भली भाँति पालन करने वाले (**ये**) जो (**अप्रथेथाम्**) फैले हुए हैं (**अमितं**) अपरिमित (**अभि**) सहित (**योजनम्**) योजनों तक (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवीलोक (**भवतं**) होते हैं (**स्योने**) सुख देनेवाले (**ते**) वे दोनों (**नः**) हमें (**मुञ्चतम्**) अलग रखें (**अंहसः**) पाप से ॥८॥

भावार्थ—जो द्यु और पृथिवीलोक योजनों तक फैले हुए हैं, उनके समान रक्षक माता और पिता भली भाँति रक्षा करनेवाले माने जाते हैं । वे सुख देते हैं और पाप से बचाते हैं ॥८॥

६२३—वामदेवः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
१ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
तन्त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥९॥

पदार्थ—(**हरी**) हरणशील (**ते**) उस (**इन्द्र**) सूर्य की (**श्मश्रूणि**) श्मश्रु के समान किरणें (**उत**) और (**ते**) उसके (**हरितौ**) बलवान् हैं (**हरी**) धारण और आकर्षण (**तम्**) उस (**त्वा**) तिस (**स्तुवन्ति**) तारीफ करते हैं (**कवयः**) विद्वान् (**पुरुषासः**) पुरुष (**वनर्गवः**) उत्तम वाणियोंवाले ॥९॥

भावार्थ—सूर्य की श्मश्रु के सदृश किरणें हरणशील हैं । उसके धारण और आकर्षण शक्तिशाली हैं । उत्तम वाणीवाले विद्वान् पुरुष उसकी प्रशंसा करते हैं ॥९॥

६२४—वामदेवः । आत्मा । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३   १ २
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा संसृजामसि ॥१०॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**वर्चः**) तेज (**हिरण्यस्य**) सुवर्ण का है (**यद्वा**) अथवा जो (**वर्चः**) तेज (**गवाम्**) सूर्य की किरणों का है (**उत**) और (**सत्यस्य**) सत्य (**ब्रह्मणः**) वेद और ईश्वर का जो (**वर्चः**) तेज है (**तेन**) उससे (**मा**) अपने को (**संसृजामसि**) संयुक्त करें ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सुवर्ण का तेज है, जो सूर्य की किरणों का तेज है और जो सत्य वेद तथा ईश्वर का तेज है उस तेज समुदाय से हम तुम्हें और अपने को तेजस्वी बनावें ॥१०॥

६२५—वामदेवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३क   १ ३ १ २
सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
२ ३ १ ३ १   २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥११॥

पदार्थ—(**सहः**) दमन करनेवाला (**तत्**) वह (**नः**) हमें (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**दद्धि**) दे (**ओजः**) बल (**ईशे**) स्वामी है (**हि**) क्योंकि (**अस्य**) इस (**महतः**) महान् बल के (**विरप्शिन्**) हे महान् ! (**क्रतुं न**) यश के समान (**नृम्णम्**) सम्पत्ति (**स्थविरम्**) स्थिर (**वाजम्**) बल (**च**) भी (**वृत्रेषु**) बाधाओं के विषय में (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**सहना**) हनन करने के योग्य (**कृधी**) करो (**नः**) हम लोगों को ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! काम-क्रोधादि शत्रुओं का दमन करने वाला बल हमें दे क्योंकि तू महान् बल का स्वामी है । हमें यश के समान सम्पत्ति और स्थिर बल भी दे । बाधाओं के उपस्थित होने पर अज्ञानादि शत्रुओं के नाश करने की शक्ति भी हमें दे ॥११॥

६२६—वामदेवः । गौः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।
३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २र   ३ २ ३ १ २
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणाः इह स्त ॥१२॥

पदार्थ—(**सहर्षभाः**) बैलों के साथ (**सहवत्साः**) बछड़ों के साथ (**उदेत**) प्राप्त हों (**विश्वारूपाणि**) अनेक रंगों को (**बिभ्रतीः**) धारण करती हुई (**द्व्यूध्नीः**) दोनों समय दूध देने वाली (**उरुः**) लम्बा (**पृथुः**) चौड़ा (**अयम्**) यह (**वः**) तुम गायों के लिए (**अस्तु**) हो (**लोकः**) संसार (**इमाः**) ये (**आपः**) जल (**सुप्रपाणः**) सुन्दर पीने के योग्य (**इह**) इस संसार में (**स्त**) होवें ॥१२॥

भावार्थ—अनेक रूपों वाली दोनों समय दूध देने वाली सांडों तथा बछड़ों के साथ गायें हमें प्राप्त हों । यह विस्तृत संसार गायों का हो । ये जल इनके सुखपूर्वक पीने के लिए हों । ऐसे स्थानों में गायें रखी जायें ॥१२॥

卐 **चौथी दशती समाप्त** 卐

६२७—वैखानसः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
३ १ २   ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर ! (**आयूंषि**) आयुओं को (**पवसे**) पवित्र करता है (**आसुव**) दे (**ऊर्जम्**) बल (**इषम्**) विज्ञान को (**च**) भी (**नः**) हमें (**आरे**) दूर (**बाधस्व**) भगा (**दुच्छुनाम्**) बुराइयों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! हमारी आयुओं की रक्षा कर। तू हमें विज्ञान और बल प्रदान कर और बुराइयों को हम से परे भगा ॥१॥

६२८—*विभ्राट्। सूर्यः। जगती।*

३ २ ३१ २ ३ २उ ३१२३१२ ३१२

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।

१ २र ३ १ २ ३१२३ १ २३ १ २ ३ १ २र

वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥२॥

पदार्थ—(विभ्राट्) विशेषरूप से प्रकाशमान (बृहत्) महान् (पिबतु) पान करे (सोम्यम्) सोमरस युक्त औषधियों के सम्बन्धी (मधु) मधुररस का (आयुः) जीवन का (दधत्) धारण करता हुआ (यज्ञपतौ) यजमान (अविह्रुतम्) निष्कंटक (वातजूतः) वायु के द्वारा प्रेरणा पाकर (यः) जो (अभिरक्षति) हर प्रकार से रक्षा करता है (त्मना) अपने आप (प्रजाः) प्रजाओं का (पिपर्ति) पालन करता है (बहुधा) अनेक प्रकार से (विराजति) प्रकाश करता है ॥२॥

भावार्थ—वायु से प्रेरणा पाने वाला सूर्य यजमान की निष्कंटक आयु को धारण करता हुआ सोम औषधि का रस ग्रहण कर खींच लेता है, प्राणिमात्र की रक्षा और पालन भी करता है और वह बहुत प्रकाश करता है ॥२॥

६२९—*कुत्सः। सूर्यः। त्रिष्टुप्।*

३ २ ३२३१२३१२३१२३२३ १२ ३ २

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।

२ ३१ २३ २ ३१२३१२३ १ २र ३१२

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३॥

पदार्थ—(चित्रम्) अद्भुत (देवानाम्) विद्वान् तथा दिव्य पदार्थों का (उद्गात्) उत्तमता से प्रकाशित होता है (अनीकम्) अद्भुत (चक्षुः) प्रकाश करनेवाला (मित्रस्य) सूर्य का (वरुणस्य) न्यायकारी आनन्ददाता का (अग्नेः) बिजली का (आप्रा) परिपूर्ण करता है (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक को (अन्तरिक्षम्) अंतरिक्ष लोक को (सूर्यः) सबका प्रेरक परमात्मा (आत्मा) सर्वव्यापक (जगतः) जंगम (तस्थुषः) स्थावर का ॥३॥

भावार्थ—स्थावर और जंगम संसार का आत्मा, सबका प्रेरक परमेश्वर विद्वानों और दिव्य पदार्थों का मित्र, न्यायकारी तथा अग्नि आदि तेज तत्त्वों का इन्द्रियातीत [जो इन्द्रियों का विषय नहीं] अद्भुत द्रष्टा है। वह हमारे हृदयों में प्रकाशित होता है। वह द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोकों को पूर्ण कर रहा है ॥३॥

६३०—*सार्पराज्ञी। सूर्यः। गायत्री।*

१ २र ३१२ ३१२३२ ३१२ ३१ २

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४॥

पदार्थ—(आ) हर प्रकार से (अयं) यह (गौः) भूगोल (पृश्निः) अन्तरिक्ष में (अक्रमीत्) घूमता है। (असदन्) प्राप्त करता हुआ (मातरं) माता के समान जल को (पुरः) आगे (पितरं) सूर्य को भी (प्रयन्) चलता हुआ ॥४॥

अथवा

पदार्थ—(आ) भली भांति (अयं) यह जीव (गौः) गतिशील (पृश्निः) सुखदुःखादि का स्पर्श करनेवाला (अक्रमीत्) घूमता है (असदन्) प्राप्त करता हुआ (मातरं) माता को (पुरः) आगे (पितरं) पिता को (च) भी। (प्रयन्) प्राप्त करता हुआ (स्वः) सुखपूर्वक रहनेवाला ॥४॥

भावार्थ—यह भूगोल सूर्य के चारों ओर घूमता है ॥४॥

अथवा

भावार्थ—सुख-दुःखादि का स्पर्श करनेवाला गतिशील यह जीवात्मा माता और पिता को प्राप्त करता हुआ सुखपूर्वक संसार में विचरता है ॥४॥

६३१—*सार्पराज्ञी। सूर्यः। गायत्री।*

३ १ २ ३२उ ३ १२ ३२ २र ३१ २र

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥५॥

पदार्थ—(अन्तः) संसार में (चरति) व्यापक हो रही है (रोचना) दीप्ति [प्रकाश] (अस्य) इस ईश्वर की (प्राणात्) प्राणन क्रिया से लेकर (अपानती) अपानन क्रिया तक का संचालन करती हुई। (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है (महिषः) महान् (दिवम्) सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ को ॥५॥

भावार्थ—प्राण और अपान आदि क्रियायों का संचालन करता हुआ इस परमात्मा का प्रकाश विश्व में व्यापक हो रहा है। महान् परमेश्वर सूर्य आदि प्रकाशक पदार्थों को प्रकाशित भी करता है ॥५॥

६३२—*सार्पराज्ञी। सूर्यः। गायत्री।*

३ २उ ३ १ २ ३ १ २३१ २ २ ३ २ ३२३ १ २

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥६॥

पदार्थ—(त्रिंशद्धाम) ३० मुहूर्त्त [२४ घण्टे] (विराजति) प्रकाश करता है। (वाक्) वेदवाणी (पतंगाय) परमात्मा के लिए (धीयते) धारण की जाती है (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन (अह) अच्छी प्रकार से (द्युभिः) ज्ञानरूप प्रकाशों से ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा तीस घड़ी [समस्त दिन-रात] अपने ज्ञानरूप प्रकाशों से अच्छी प्रकार प्रकाश करता है। वेद-मन्त्रों के द्वारा उसकी स्तुति की जाती है ॥६॥

६३३—*प्रस्कण्वः। सूर्यः। गायत्री।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे ॥७॥

पदार्थ—(अप) दूर होना (त्ये) वे (तायवः) चोर (यथा) जैसे (नक्षत्राः) तारे (यन्ति) छिप जाते हैं (अक्तुभिः) रात्रि के साथ (सूराय) सूर्य के लिए (विश्वचक्षसे) सबका प्रकाशक ॥७॥

भावार्थ—विश्व के प्रकाशक सूर्य के उदय होते ही चोर की भांति रात्रि के साथ तारे जैसे छिप जाते हैं, वैसे ही सबके साक्षी परमात्मा का ज्ञान होते ही हमारे कामादि शत्रु दूर हो जाते हैं ॥७॥

६३४—*प्रस्कण्वः। सूर्यः। गायत्री।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥८॥

पदार्थ—(अदृश्रन्) दिखलाई देते हैं (अस्य) इस परमात्मा के (केतवः) विज्ञानादिगुण (विरश्मयः) सर्वव्यापक (जनान्, अनु) प्राणिमात्र में (भ्राजन्तः) दीप्तियुक्त [प्रकाशमान] (अग्नयः यथा) अग्नि की भांति ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा के सर्वव्यापक विज्ञान आदि गुण प्रकाशमान अग्नि के समान प्राणिमात्र में दिखलाई देते हैं ॥८॥

६३५—*प्रस्कण्वः। सूर्यः। गायत्री।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमाभासि रोचनम् ॥९॥

पदार्थ—(तरणिः) संसार-सागर से पार करने वाला (विश्वदर्शतः) मुमुक्षुओं द्वारा साक्षात् करने के योग्य (ज्योतिष्कृत्) सूर्यादि का बनानेवाला तथा ज्ञान का प्रकाशक (असि) है (सूर्य) हे सब के प्रेरक परमात्मन्! (विश्वं) संसार को (आभासि) प्रकाशित करता है (रोचनम्) रुचिपूर्ण ॥९॥

भावार्थ—हे सृष्टि-कर्त्ता परमात्मन्! तू संसार सागर से पार करनेवाला है। तू योगियों द्वारा साक्षात् करने के योग्य है। तू सूर्यादि प्रकाशों को उत्पन्न करनेवाला है, तू रुचिपूर्ण संसार को बनाता है ॥९॥

६३६—*प्रस्कण्वः। सूर्यः। गायत्री।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।

३ २उ ३क २र ३ २

प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१०॥

पदार्थ—(प्रत्यङ्) उपासनीय (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (विशः) प्रजायें (प्रत्यङ्) पूज्य (उदेषि) साक्षात् होता है (मानुषान्) मनुष्यों को (प्रत्यङ्) भजनीय (विश्वं) सब (स्वः) सुख का (दृशे) देखने के लिए ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर! तू विद्वानों के उपासना योग्य तथा मनुष्य-प्रजाओं के हृदयों में पूज्य रूप से साक्षात् होता है। सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करने के लिए तू ही भजन के योग्य है ॥१०॥

६३७—*प्रस्कण्वः। सूर्यः। गायत्री।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि ॥११॥

पदार्थ—(येन) जिससे (पावक) हे पवित्र करनेवाले (चक्षसा) विज्ञान प्रकाश से (भुरण्यन्तं) धारण और पोषण करनेवाले लोकों (जनान्) मनुष्यों को (अनु) पश्चात् (त्वं) तू (वरुण) हे बुराइयों को दूर करनेवाले प्रभो (पश्यसि) देखता है ॥११॥

भावार्थ—हे पवित्र करनेवाले तथा बुराइयों को दूर करनेवाले प्रभो! आप जिस विज्ञान के प्रकाश से धारण-पोषण करते हुए इस संसार और मनुष्यों को भली भांति देखते हैं, उस से हमें युक्त कीजिए ॥११॥

६३८—*प्रस्कण्वः। सूर्यः। गायत्री।*

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २

उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१२॥

पदार्थ—(उत्) उपरिभाव (द्यां) प्रकाश को (एषि) प्राप्त होता है (रजः) लोकसमूह (पृथु) विस्तृत (अहा) दिन (मिमानः) व्यवस्था में करता हुआ (अक्तुभिः) रात्रि के साथ (पश्यन्) देखता हुआ (जन्मानि) अनेक जन्मों को (सूर्य) हे चराचर जगत् के आत्मा, परमात्मन् ॥१२॥

भावार्थ—हे चराचर जगत् के आत्मा परमात्मन्! तू द्युलोक और विस्तृत लोकसमूह तथा रात्रि के साथ दिन का विभाग करता हुआ, ऐसे ही हमारे अनेक जन्मों को देखता हुआ सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१२॥

६३९—*प्रस्कण्वः। सूर्यः। गायत्री।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र १ २ ३ १ २

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥१३॥

पदार्थ—(अयुक्त) जोड़ता है (सप्त) सात धातुओं को (शुन्ध्युवः) पवित्र करने वाली (सूरः) सब का प्रेरक (रथस्य) शरीर रूप रथ का (नप्त्यः) नहीं गिरने देनेवाली अर्थात् शरीर की रक्षा करनेवाली (ताभिः) उनके साथ (याति) जाता है (स्वयुक्तिभिः) अपने स्वाभाविक गुणों के साथ ॥१३॥

भावार्थ—सब का प्रेरक परमात्मा मानव शरीर की रक्षा करनेवाली सात धातुओं को शरीर के साथ जोड़ता है । उनसे तथा अपने स्वाभाविक ज्ञान आदि गुणों के साथ युक्त होकर जीवात्मा अपना व्यवहार सिद्ध करता है ॥१३॥

६४०—प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।

१ २ २ १ २ ३ २ ३ १ १ २ ३ १ २
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥१४।

पदार्थ—(सप्त) सात, ५ ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि (त्वा) तुझको (हरितः) ले चलनेवाली (रथे) शरीररूप रथ में (वहन्ति) ले चलती हैं (देव) दिव्य (सूर्य) हे जीव (शोचिष्केशं) प्रकाशमय (विचक्षण) हे बुद्धिमान् ॥१४॥

भावार्थ—हे बुद्धिमान् दिव्य गुण युक्त जीव ! शरीर में ले चलनेवाली सात इन्द्रियां प्रकाशमय तुझ को प्राप्त होती हैं ॥१४॥

卐 पाँचवी दशती समाप्त 卐

卐

महानाम्न्यार्चिकः

६४१—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । शक्वरी सोपसर्गा ।

३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।

१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीनांपते पूर्वीणां पुरूवसो ॥१॥

पदार्थ—(विदाः) जानता है (मघवन्) हे सब धनों के स्वामी परमेश्वर (विदाः) जानता है (गातुं) गन्तव्य स्थान [जाने की जगह] (अनुशंसिषः) ज्ञान करा (दिशः) मार्गों को (शिक्षा) दे (शचीनाम्पते) अनेक ज्ञानों के स्वामी (पूर्वीणां) सनातन (पुरूवसो) हे पर्याप्त धन वाले ॥१॥

भावार्थ—हे सनातन ज्ञान के स्वामी, पर्याप्त धन वाले परमेश्वर ! तू सर्वज्ञ है । सब के जाने के स्थान को जानता है । हमें मार्ग का ज्ञान करा, धन दे ॥१॥

६४२—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । शक्वरी सोपसर्गा ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ २
आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽ३र्न्नांशुः ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥ ॥

पदार्थ—(आभिः) इन (त्वं) तू (अभिष्टिभिः) प्रार्थनाओं से (स्वः) सूर्य के (न) समान (अंशुः) व्यापक (प्रचेतन) हे प्रकाशक (प्रचेतय) चेता (इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त परमेश्वर (द्युम्नाय) यश के लिए (नः) हमें (इषे) अन्न विज्ञान के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे चेतनस्वरूप परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू सूर्य के समान तेज से व्यापक है । हमारी इन अभीष्टसिद्धि की प्रार्थनाओं से प्रसन्न हो, हमें यश,विज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए चेता ॥२॥

६४३—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

३ २उ ३ २ ३ १ २२ १ २२ ३ २ ३
एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः । शविष्ट वज्रिन्नृञ्जसे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व ॥ ३॥

पदार्थ—(एव) निश्चित रूप से (हि) क्योंकि (शक्रः) शक्तिमान् (राये) धन के लिए (वाजाय) अन्न के लिए (वज्रिवः) हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले (शविष्ठ) हे अति बलवान् (वज्रिन्) हे दुष्टों के दमन करनेवाले (ऋञ्जसे) धनवान् बना (वज्रिन् ऋञ्जसे) हे दुष्टों के दमन करनेवाले हमें अवश्य धन पान की योग्यता दे । (मंहिष्ठ) हे अत्यन्त पूज्य (आयाहि) आ (पिब) स्वीकार कर (मत्स्व) हम पर प्रसन्न हो ॥३॥

भावार्थ—हे अति बलवान्, पूज्य, दुष्टों के संहार करनेवाले परमेश्वर ! तू निश्चय ही दुष्टों का दमन करने में शक्तिमान् है । इसलिए हमें धन और अन्न आदि सम्पत्तियां दे । हमें धन पाने की योग्यता अवश्य प्रदान कर । हमें प्राप्त हो, हमारी प्रार्थना स्वीकार कर और प्रसन्न हो ॥३॥

६४४—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विदा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशां अनु ।

१ २ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥४॥

पदार्थ—(विदा) प्राप्त करा (राये) धन के लिए (सुवीर्यं) उत्तम बल को (भवाः) बना (वाजानां पतिः) बलों के स्वामी (वशां) स्वाधीन (अनु) अनुकूल (मंहिष्ठ) हे अत्यन्त पूजनीय, (वज्रिन्) हे दुष्टों को दण्ड देने वाले (ऋञ्जसे) प्रसन्न करते हैं (यः) जो (शविष्ठः) अत्यन्त बलवान् (शूराणां) शूरवीरों में ॥४॥

भावार्थ—हे पूज्य, दुष्टों को दण्ड देनेवाले परमेश्वर ! तू बलवानों में परम बलवान् और सब बलों का स्वामी है । हम तुझे प्रसन्न करते हैं । तू हमें सम्पत्ति के लिए सुन्दर बल दे और स्वाधीन बना ॥४॥

६४५—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

१२ २२ ३ १ २ ३ २उ ३ २
यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न्न शोचिः ।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३२ २२
चिकित्वो अभि नो नय इन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो (मंहिष्ठः) महान् दानी (मघोनाम्) धनियों में (अंशुः न शोचिः) सूर्य के समान तेजस्वरूप (चिकित्वः) हे ज्ञानस्वरूप (अभि) सब ओर से (नः) हमें (नय) प्राप्त करा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (विदे) प्राप्त होता है (तमु) उसी की ही (स्तुहि) स्तुति कर ॥५॥

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! जो परमेश्वर धनवानों में महान् दानी, सूर्य के समान तेजस्वरूप और परम ऐश्वर्य वाला है, हमें उसे प्राप्त करा और उसी की ही स्तुति कर ॥६॥

६४६—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

२ ३ २ ३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३ १२
ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६॥

पदार्थ—(ईशे) शासन करता है (हि) क्योंकि (शक्रः) शक्तिमान् (तम्) उसे (ऊतये) रक्षा के लिए (हवामहे) पुकारते हैं (जेतारं) विजय करने वाले (अपराजितम्) न हारने वाले (सः) वह (नः) हमारे (स्वर्षत्) दूर करे (अति) अत्यन्त (द्विषः) द्वेष करनेवालों को (क्रतुः) यज्ञ (छन्दः) वेद (ऋतं) सत्य (बृहत्) महान् हो ॥६॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही सब पर शासन करता है । वह न हारने वाला और विजयी है । हम अपनी रक्षा के लिए उसको पुकारते हैं । वह हमारे शत्रुओं के द्वेषभाव को दूर करे । हमारा यज्ञ वेद और सत्य महान् हो ॥६॥

६४७—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स नः स्वर्षदति द्विषः । स नः स्वर्षदति द्विषः ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्रं) परमेश्वर को (धनस्य) सम्पदाओं की (सातये) प्राप्ति के लिए (हवामहे) पुकारते हैं (जेतारम्) विजयी (अपराजितम्) नहीं पराजित होने वाले (सः) वह (नः) हमारे (स्वर्षत्) दूर करे (अति) अत्यन्त (द्विषः) द्वेष करनेवालों को (सः) वह (नः) हमें (स्वर्षत्) दूर करे (अति) अत्यन्त (द्विषः) द्वेष करने वालों से ॥७॥

भावार्थ—सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए हम कभी न हारने वाले विजयी परमेश्वर को पुकारते हैं । वह हमारे शत्रुओं को हमसे परे करे तथा शत्रुओं से हमें दूर रखे ॥७॥

६४८—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २२
पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय । सुम्न आ धेहि नो वसो ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २
पूर्तिः शविष्ठ शस्यते । वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ॥८॥

पदार्थ—(पूर्व्यस्य) सनातन (यत्) जो (ते) तेरे (अद्रिवः) हे आदरणीय (अंशुः) प्रकाश (मदाय) आनन्द के लिए है (सुम्ने) सुख में (आधेहि) रख (नः) हमें (वसो) मोक्ष में हमें वास कराने वाले (पूर्तिः) पालन (शविष्ठ) हे बलशाली (शस्यते) प्रशंसा के योग्य है (वशी) सब को वश में रखने वाला (हि) निश्चय (शक्रः) शक्तिमान् (नूनम्) निश्चित रूप से (तम्) उस (नव्यम्) स्तुति के योग्य (संन्यसे) सम्यक् प्रकार से भजन करता हूँ ।।८।।

भावार्थ—हे आदर के योग्य परमेश्वर ! तू सनातन है। तेरा प्रकाश आनन्द देने वाला है। हे सर्वाधार, हमें सुखी बना। हे शक्तिमान् प्रभो ! तेरे पालन-पोषण प्रशंसनीय हैं। निश्चय ही तू सब को वश में रखने वाला है। मैं तेरा भजन करता हूँ ।।८।।

६४९—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

३ १र २र ३ १ २
प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै ।

२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ।।९ ।।

पदार्थ—(प्रभो) स्वामी है (जनस्य) जनता का (वृत्रहन्) अज्ञान-निवारक (सं) भली भांति (अर्येषु) श्रेष्ठ पुरुषों में (ब्रवावहै) हम दोनों गुरु-शिष्य संवाद करते हैं (शूरः) शक्तिमान् (यः) जो (गोषु) पृथिव्यादि में (गच्छति) व्यापक होकर विद्यमान हैं (सखा) वह मित्र हैं (सुशेवः) सुन्दर सुखों का दाता (अद्वयुः) अद्वितीय ।।९।।

भावार्थ—जो परमेश्वर जनता का स्वामी, अज्ञान का नाशक, सर्वशक्तिमान्, स्नेही, सुन्दर सुखों का दाता, अद्वितीय और गतिशील पृथिवी आदि पदार्थों में व्यापक होकर विद्यमान है, हम दोनों गुरु और शिष्य भद्र पुरुषों में उसका संवाद करें ।।९।।

६५०—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

३ २ १ ३ १ २ ३ १ २
एवाह्यो३ऽऽ३ऽ३ऽ३ व एवां ह्यग्ने । एवाहीन्द्र ।

३ १ २र ३ १ २र
एवा हि पूषन् एवा हि देवाः ।।१०।।

पदार्थ—(एव) ऐसा ही (हि) निश्चय (एव) ही (एवं) ऐसा ही (हि) निश्चय (अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (एव) ऐसा ही (हि) निश्चय (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले परमेश्वर (एवं) ऐसा ही (हि) निश्चय से (पूषन्) हे पालन करनेवाले परमेश्वर (एव) ऐसा ही (हि) निश्चय (देवाः) हे दिव्य-गुण युक्त परमेश्वर ! ।।१०।।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! हे पालन करने वाले पिता ! हे दिव्यगुणयुक्त ईश्वर ! तू जैसा वर्णन किया जाता है, वैसा ही है ।। १० ।।

卐 पूर्वार्चिक समाप्त 卐

卐

सामवेद भाषाभाष्ये उत्तरार्चिकः

प्रथमोऽध्यायः

६५१—असितः देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवां इयक्षते ।।१।।

पदार्थ—(उप) समीप (अस्मै) इस (गायता) गान करो (नरः) हे मनुष्यो (पवमानाय) पवित्रकारक (इन्दवे) ऐश्वर्यवाले परमेश्वर के लिए (अभि) सब प्रकार से (देवान्) महात्माओं को (इयक्षते) आत्मज्ञान प्रदान करने की इच्छा करनेवाले ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो, योगियों को आत्मज्ञान देनेवाले, पवित्रकारक, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का गान करो ।।१।।

६५२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ।।२।।

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (ते) तुझ (मधुना) कर्म से (पयः) ज्ञान को (अथर्वाणः) ज्ञानीजन (अशिश्रयुः) आश्रय लेते हैं। (देवं) दिव्य (देवाय) देव की प्राप्ति के लिए (देवयु) ईश्वर को प्राप्त कराने वाले ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर, ज्ञानीजन तुझ देव की प्राप्ति के लिए निष्काम कर्म के द्वारा तुझे प्राप्त करने वाले दिव्यज्ञान का आश्रय लेते हैं ।।२।।

६५३—वैखानसः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र १ २ ३ १ २
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ।।३।।

पदार्थ—(सः) वह तू (न) हमारे (पवस्व) दे (शं) कल्याण (गवे) गौ के लिए (शं) कल्याण (जनाय) सन्तान के लिए (शं) कल्याण (अर्वते) घोड़े के लिए (शं) कल्याण (राजन्) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (ओषधीभ्यः) रोगनिवारक द्रव्यों के लिए ।।३।।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर तू हमारे गाय, पुत्रादि, घोड़े और रोग-निवारक द्रव्यों को कल्याणकारी बना ।।३।।

६५४—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र
दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ।।१।।

पदार्थ—(दविद्युतत्या) अधिक प्रकाशवाली (रुचा) तेज से (परिष्टोभन्त्या) हर प्रकार से गुणों का वर्णन करनेवाली (कृपा) शक्ति से (सोमाः) सौम्य गुणवाले योगीजन (शुक्राः) पवित्र अन्तःकरण वाले (गवाशिरः) जितेन्द्रिय ।१।

भावार्थ— जितेन्द्रिय पवित्र अन्तःकरण वाले योगीजन ब्रह्म तेज तथा योग शक्ति से युक्त होते हैं ।।१।।

६५५—विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र
हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।

१ २ ३ १ २
सीदन्तो वनुषो यथा ।।२।।

पदार्थ—(हिन्वानः) प्रेरित होकर (हेतृभिः) सांसारिक दुःखों से (हितः) अपना हित चाहने वाला (आ) सब प्रकार से (वाजं) ज्ञान को (वाजी) ज्ञानी पुरुष (अक्रमीत्) चलता है (सीदन्तः) संग्राम में प्रवेश करनेवाले (वनुषः) योद्धा (यथा) जैसे ।।२।।

भावार्थ—संसार के दुःखों से दुःखी होकर ज्ञानी पुरुष अपने हित की दृष्टि से ज्ञान की ओर चलते हैं, जैसे कि योद्धा लोग युद्ध में प्रवेश करते हैं ।।२।।

६५६—इरमिठः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे । पवस्व सूर्यो दृशे ।।३।।

पदार्थ —(ऋधक्) समृद्धिकारक (सोम) हे शान्तस्वरूप परमेश्वर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (संजग्मानः) संगत होता हुआ (दिवा) प्रकाश के साथ (कवे) हे वेदरूपी काव्य के कर्त्ता (पवस्व) हमें पवित्र कर (सूर्यः) सूर्य (दृशे) देखने के लिए ।।३।।

भावार्थ—हे वेदज्ञान के दाता परमेश्वर ! तू हमारी उन्नति चाहनेवाला है। संसार के देखने के लिए प्रकाश से युक्त सूर्य की भाँति हमारे कल्याण के लिए हमें पवित्र कर ।।३।।

६५७—विश्वामित्रः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ।।१।।

पदार्थ—(पवमानस्य) पवित्रकारक (ते) तेरी (कवे) हे वेदरूप काव्य की रचना करनेवाले परमेश्वर (वाजिन्) ज्ञानवान् (सर्गाः) सृष्टि (असृक्षत) बनाई जाती है (अर्वन्तो न) यजमान के समान (श्रवस्यवः) अन्न और यश चाहने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानमय वेदों के प्रकाशक परमेश्वर, तू पवित्र है। तू उसी प्रकार से भांति-भांति की सृष्टि की रचना करता है जिस प्रकार धन और यश के चाहने वाला यजमान अनेक प्रकार के यश की रचना करता है ॥१॥

६५८—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

१ १ १२ १ २३१२३१२३१२ १२ ३१२

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥२॥

पदार्थ—(अच्छा) प्राप्त करने के लिए (कोशं) आनन्दमय कोश को (मधुश्चुतम्) अमृतवर्षा करनेवाले (असृग्रम्) खोलते हैं (वारे) वरण करने योग्य (अव्यये) नित्य परमेश्वर की शरण में [विद्यमान होकर] (अवावशन्त) कामना करते हैं (धीतयः) ज्ञानीजन ॥२॥

भावार्थ—प्राप्त करने योग्य नित्य परमेश्वर की शरण में उपस्थित होकर ज्ञानीजन अमृत की वर्षा करनेवाले आनन्दमय कोष को भली भांति खोलते हैं और ब्रह्मानन्द की कामना भी करते हैं ॥२॥

६५९—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

१ २३२उ ३२ ३२३ २३१२ १२३२३ २३२

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥३॥

पदार्थ—(अच्छा) भली-भांति (समुद्रं) ईश्वर को (इन्दवः) उपासक जन (अस्तं) गोशाला में (गावः) गौओं के (न) समान (धेनवः) दूध देने वाली (अग्मन्) प्राप्त करते हैं (ऋतस्य) सत्य ज्ञान [वेद] के (योनिम्) कारण (आ) सब प्रकार से ॥३॥

भावार्थ—भक्तजन सत्य के कारण परमेश्वर को भली भांति वैसे ही प्राप्त करते हैं जैसे कि दूध देनेवाली गौएँ गोशाला में चली जाती हैं ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

६६०—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

२३ १ २ ३१२ १२३१२ १ २र ३१२

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञान गुणयुक्त जीव (आयाहि) आ (वीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिए (गृणानः) स्तुति करते हुए (हव्यदातये) धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष का उपदेश देने के लिए (नि) निश्चित रूप से (होता) उत्तम गुणों का ग्रहण करने वाला (सत्सि) विराजमान होओ (बर्हिषि) ब्रह्म में ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानगुणयुक्त जीव ! धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का उपदेश देने के लिए [इस संसार में] आ। गुण-ग्राहक तू आनन्द की प्राप्ति के लिए स्तुति करता हुआ ब्रह्म की शरण में उपस्थित हो ॥१॥

६६१—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥२॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तुझको (समिद्भिः) शब्द और अर्थ के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले (अङ्गिरः) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (घृतेन) उत्तम विज्ञान के द्वारा (वर्द्धयामसि) प्रकाशित [प्रचार] करते हैं (बृहत्) महान् (शोच) पवित्र कर (यविष्ठ्य) हे अतिशय बलवान् ॥२॥

भावार्थ—हे अत्यन्त बलवान् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! शब्द और अर्थ के सम्बन्ध से होने वाले उत्तम विज्ञान के द्वारा तुझ ब्रह्म का हम प्रकाश करते हैं। तू महान् है, हमें पवित्र कर ॥२॥

६६२—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१२ ३२ ३२ ३१ २ ३ १२.३१२

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवासति । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(स) वह (नः) हमें (पृथुः) विशाल (श्रवाय्यं) कीर्तिकर (अच्छा) भली भांति (देव) हे देव (विवाससि) प्राप्त करा (बृहद्) महान् (अग्ने) प्रकाशस्वरूप (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप देव परमेश्वर, तू हमें विशाल कीर्ति फैलाने वाले, महान् और उत्तम पराक्रम को दे ॥३॥

६६३—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

१ २ ३१ २र २ ३ १२

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (नः) हमारे (मित्रावरुणौ) हे परमेश्वर, तेरी मित्र, वरुण शक्तियें (घृतैः) तेजों से (गव्यतिम्) जहां तक सूर्य की किरणों इन्द्रियों और पृथिवी का सम्बन्ध है वहां तक (उक्षतम्) तृप्त करें (मध्वा) सुखदायक फल से (रजांसि) सब लोकों को (सुक्रतू) उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम व्यवहार सिद्ध करनेवाली तेरी मित्र और वरुण शक्तियाँ अपने तेजों से सूर्य के प्रकाशमार्ग, इन्द्रियगोचर विषय और पृथिवी से सम्बन्ध रखने वाले स्थानों तक तथा सुखदायक फलों से लोक-लोकान्तरों को भी तृप्त करें ॥१॥

६६४—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥२॥

पदार्थ—(उरुशंसा) प्रशंसा के योग्य (नमोवृधा) ब्रह्म का प्रकाश करने वाले (मह्ना) भक्ति से (दक्षस्य) आत्मा के (राजथः) शोभित होते हैं (द्राघिष्ठाभिः) बड़ी गतियों से (शुचिव्रता) पवित्र क्रिया करने वाले प्राण और अपान ॥२॥

भावार्थ—प्रशंसा के योग्य परमेश्वर, प्रकाश करने वाले, पवित्र क्रियाओं वाले प्राण और अपान आत्मा की महिमा तथा अपनी लम्बी गतियों से शरीर में विराजमान हैं ॥२॥

६६५—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

३ २३१२ ३ १२३१२ ३१ २र

गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥३॥

पदार्थ—(गृणानः) स्तुति करते हुए (जमदग्निना) ज्ञान अग्नि से (योनौ) कारण में (ऋतस्य) वेदज्ञान (सीदतम्) विराजमान होते हैं (पातम्) पीते हैं (सोमम्) आनन्दरस (ऋतावृधौ) वेदज्ञान और ऋतम्भरा प्रज्ञा से प्रकाशमान ॥३॥

भावार्थ—स्तुति करते हुए वेदज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि से प्रकाशमान विद्वान् और योगीजन ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा वेदज्ञान के कारण परमेश्वर की शरण में स्थिति पाते हैं तथा आनन्दरस का पान भी करते हैं ॥३॥

६६६—*इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३२उ ३२३२३ १ २ ३२

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।

२३३१२३१२

एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (याहि) जा (सुषुमा) उत्पन्न किया है (इन्द्र) हे मुक्त पुरुष (ते) तेरे लिए (सोमम्) संसार को (पिब) स्वीकार कर (इमं) प्रत्यक्ष (आ) सब प्रकार से (इदं) इस (बर्हिः) मोक्षधाम को (सदः) प्राप्तकर (मम) मेरे ॥१॥

भावार्थ—हे मुक्त पुरुष ! तेरे लिए ही संसार को हमने बनाया है। तू जा इस संसार का भली भांति भोग कर। पश्चात् मेरे मोक्षधाम पर पहुँच जा ॥१॥

६६७—*इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३२३ २३१२ ३१ २ २३१२

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुझको (ब्रह्मयुजा) मंत्रोंवाले (हरी) ऋग्वेद और सामवेद (वहताम्) प्राप्त करावें (इन्द्र) हे परमेश्वर (केशिना) ज्ञान के प्रकाशक (उप) समीप (ब्रह्माणि) स्तोत्र (नः) हमारे (शृणु) सुन ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर मन्त्रमय, ज्ञान के प्रकाशक सामवेद और ऋग्वेद तुझे प्राप्त करावें। तू हमारी स्तुतियों को सुन ॥२॥

६६८—*इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३१ २ ३२ ३१२३१२ ३१२ ३१२

ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्माणः) वेद के जानने वाले (त्वा) तुझे (युजा) योग से (वयं) हम (सोमपाम्) संसार के रक्षक (इन्द्र) हे परमेश्वर (सोमिनः) ऐश्वर्य-वाले (सुतावन्तः) संसारी (हवामहे) पुकारते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! योगरूप ऐश्वर्यवाले वेद के ज्ञान से युक्त संसारी हमलोग योग-बल से तुझ लोक-पालक को पुकारते हैं ॥३॥

६६९—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३२३२र३ १२ ३ १ २ ३२३२

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) ज्ञानी और ईश्वर भक्त (आगतं) आते हैं (सुतं) संसार में (गीर्भिः) वेद वाणियों के द्वारा (नभः) सुख को (वरेण्यं) चाहने योग्य (अस्य) इस (पातं) रक्षा करते हैं। (धिया) कर्म और ज्ञान से (इषितौ) प्रोत्साहन पाये हुए ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म से प्रेरित हुए ज्ञानी और ईश्वरभक्त जन इस संसार में आते हैं और वेद-वाणियों के द्वारा वर्णन किए गए सुख की रक्षा करते हैं ॥१॥

६७०—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
३ १ २ ३ २ ३ २
अया पातमिमं सुतम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) प्राण और अपान (जरितुः) वृद्धावस्था में (सचा) सहायक हैं (यज्ञो) परमात्मा (जिगाति) उपदेश करता है (चेतनः) चेतनस्वरूप (अया) अपनी गति से (पातम्) रक्षा करते हैं (इमं) इस (सुतं) संसार को ॥२॥

भावार्थ—चेतनस्वरूप परमात्मा उपदेश करता है कि प्राण और अपान वृद्धावस्था में सहायक हैं तथा अपनी बाहरी गति से इस संसार की भी रक्षा करते हैं ॥२॥

६७१—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (अग्निं) ज्ञानमय (कविच्छदा) मेधावी पुरुषों की रक्षा करनेवाली (यज्ञस्य) परमात्मा की (जूत्या) प्रेम से (वृणे) स्वीकार करता हूँ (ता) वे दोनों शक्तियाँ (सोमस्य) ऐश्वर्य और ज्ञान से (तृम्पतां) तृप्त करें ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा की ऐश्वर्य और ज्ञानमय शक्तियों को हम प्रेम से अपनाते हैं। वे इस संसार में ऐश्वर्य और ज्ञान से हमें तृप्त करें ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्ड समाप्तः 卐

६७२—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ।१।

पदार्थ—(उच्चा) परे (ते) तेरा (जातं) प्रसिद्ध (अन्धसः) अज्ञान वा अन्धकार से (दिवि) ज्ञान वा प्रकाश में (सत्) वर्तमान (भूमी) पृथिवी पर रहने वाला ज्ञानी मनुष्य (उग्रं) श्रेष्ठ (शर्म) सुख (महि) महान् (श्रवः) यश ॥१॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू अज्ञान से परे और ज्ञान में स्थित है। हम संसारी जन तेरे ही प्रसिद्ध उत्तम सुख और महान् यश को प्राप्त करते हैं ॥१॥

६७३—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे (इन्द्राय) सभाध्यक्ष के लिए (यज्यवे) यज्ञ करने वाले यजमान के लिए (वरुणाय) न्याय करनेवाले के लिए (मरुद्भ्यः) उपासकों के लिए (वरिवः) सबसे श्रेष्ठ (वित्) ज्ञान का दाता (परिस्रव) ज्ञान का मार्ग खोल दे ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब से श्रेष्ठ और ज्ञानदाता है ! तू हमारे सभाध्यक्ष, यजमान, न्यायाधीश और भक्तजनों के लिए ज्ञान का मार्ग खोल दे ॥२॥

६७४—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् सिषासन्तो वनामहे ॥३॥

पदार्थ—(एना) इन (विश्वानि) सारे (अर्यः) प्राप्त करने वाले (आ) सब प्रकार से (द्युम्नानि) सम्पत्तियों को (मानुषाणाम्) मनुष्य सम्बन्धी (सिषासन्तः) भोग करने की इच्छा करते हुए (वनामहे) भजन करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मनुष्य सम्बन्धी सारी सम्पदाओं को प्राप्त करते और उनके भोग की इच्छा करते हुए हम तेरा भजन करते हैं ॥३॥

६७५—*अमहीयुः । सोमः । बृहती ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (सोम) हे परमेश्वर (धारया) वेदवाणी द्वारा (अपः) हमारे कर्मों को जल और अन्तरिक्ष को (वसानः) धारण करता हुआ (अर्षसि) व्यापक हो रहा है। (आ) सब प्रकार से (रत्नधा) रत्नों का धारण करने वाला (योनिम्) स्थान में (ऋतस्य) सत्य के (सीदसि) विद्यमान है (उत्सः) सरस (देवः) दाता (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू रत्नों का धारण करने वाला, सरस दाता और प्रकाशस्वरूप है। वेदवाणी से हमारे कर्मों को पवित्र करता तथा जल अन्तरिक्ष आदि को धारण करता हुआ व्यापक हो रहा है। तू अपने सत्य स्वरूप में स्थित है ॥१॥

६७६—*अमहीयुः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥२॥

पदार्थ—(दुहानः) दुहता हुआ (ऊधः) आनन्द के स्रोत परमात्मा से (दिव्यं) अलौकिक (मधु) स्वादिष्ट रस (प्रियं) प्यारे (प्रत्नं) सनातन (सधस्थं) साथ रहनेवाले (आसदत्) प्राप्त करता है (आपृच्छ्यं) पूछने योग्य (धरुणं) धारण करनेवाले परमेश्वर को (वाजी) ज्ञानी पुरुष (अर्षसि) प्राप्त होता है (नृभिः) योग सिखानेवाले नेताओं के साथ शिष्य (धौतः) शुद्ध अन्तःकरणवाला (विचक्षणः) बुद्धिमान् ॥२॥

भावार्थ—बुद्धिमान् पवित्र अन्तःकरणवाला योगी परमात्मा से अलौकिक, प्रसन्न करनेवाले पुराने, सदा एक साथ रहनेवाले मधुर रस का दोहन करता हुआ उसे प्राप्त करता है। प्रश्न के योग्य तथा संसार के धारण करने वाले परमात्मा को वृद्ध योगियों के साथ शिष्य प्राप्त करता है ॥२॥

६७७—*अमहीयुः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

पदार्थ—(प्र) प्रकर्ष (तु) शीघ्र (द्रव) जा (परि) हर प्रकार से (कोशं) आनन्दमय कोष को (निषीद) स्थिर हो (नृभिः) ज्ञानियों के द्वारा (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ (अभि) भली भांति (वाजं) ज्ञान (अर्ष) प्राप्त कर (अश्वं न) घोड़े के समान (त्वा) तुझको (वाजिनं) बलवान् (मर्जयन्तः) शुद्ध करते हुए (अच्छा) अच्छी तरह (बर्हिः) परमात्मा का (रशनाभिः) लगामों से (नयन्ति) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे जीव! तू शीघ्रता से आगे बढ़। आनन्दमय कोश में स्थित हो। योगियों के द्वारा पवित्र हुआ तू ज्ञान को अच्छी तरह प्राप्त कर। ज्ञानी जन तुझको पवित्र करने के लिए परमात्मा की शरण में ले जाते हैं जैसे बलवान् घोड़े को लगाम से पकड़ कर नहलाने के लिये ले जाते हैं ॥१॥

६७८—*अमहीयुः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥२॥

पदार्थ—(स्वायुधः) स्वाधीन (पवते) पवित्र करता है (देवः) दिव्य गुणयुक्त (इन्दुः) परमेश्वर (अशस्तिहा) बुराइयों का नाश करने वाला (वृजना) पापों से (रक्षमाणः) बचाने वाला (पिता) पालक (देवानां) सूर्य आदि दिव्य पदार्थ तथा विद्वानों का (जनिता) पैदा करनेवाला (सुदक्षः) बलदाता (विष्टम्भः) थामने वाला (दिवः) द्युलोक का (धरुणः) धारण करने वाला (पृथिव्याः) पृथिवी का ॥२॥

भावार्थ—स्वतंत्र, दुःखनाशक, पापों से बचानेवाला, रक्षक, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों तथा विद्वानों को उत्पन्न करनेवाला, बलदाता द्युलोक का थामने वाला, पृथिवी का धारक, परम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर हमें पवित्र करता है ॥२॥

६७९—*अमहीयुः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २
ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

पदार्थ—(ऋषिः) सूक्ष्मदर्शी या इन्द्रियातीत पदार्थों का ज्ञाता [ईश्वर, जीव, तथा प्रकृति आदि सूक्ष्म पदार्थों का जाननेवाला] (विप्रः) मेधावी (पुर एता) नेता (जनानां) सब लोगों का (ऋभुः) तेजस्वी (धीरः) धीर (उशना) सबका हित चाहनेवाला (काव्येन) वेदवाणी से (स चिद्) वही (विवेद) जानता है (निहितं) सुरक्षित (यत्) जो (आसां) इन (अपीच्यं) छिपा हुआ (गुह्यं)

रहस्यमय (नाम) औं नाम (गोनां) वेदवाणियों का ॥ ३॥

भावार्थ—सूक्ष्मदर्शी, जनता का नेता, तेजस्वी, धीर, सबका हित चाहने वाला मेधावी पुरुष इन वेदवाणियों में सुरक्षित तथा छिपा हुआ जो ओं नाम है उसे वेद द्वारा जानता है ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

६८०—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

१ २ ३ १ २ र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब ओर से (त्वा) तुझे (शूर) हे ज्ञानी (नोनुमः) बार बार नमस्कार करते हैं (अदुग्धाः) नहीं दुही हुई (इव) समान (धेनवः) दूध देने वाली गायें (ईशानम्) स्वामी (अस्य) इस (जगतः) गतिशील (स्वर्दृशम्) मोक्ष को दिखाने वाले (ईशानं) स्वामी (इन्द्र) हे जितेन्द्रिय (तस्थुषः) धर्मात्मा के ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानी और जितेन्द्रिय योगी ! तू इस संसार के विद्वान् और धर्मात्मा पुरुषों का स्वामी तथा मोक्ष धाम का दिखलाने वाला है। बछड़े को देखकर बोलती हुई गायों के समान वे तुझे बार बार नमस्कार करते हैं ॥१॥

६८१—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(न) नहीं (त्वावान्) तेरे समान (अन्यः) दूसरा (दिव्यः) द्युलोक में (न) नहीं (पार्थिवः) पृथिवी पर (न) नहीं है (जातः) उत्पन्न (न) नहीं (जनिष्यते) उत्पन्न होगा । (अश्वायन्तः) अश्वों की कामना वाले (मघवन्) हे सम्पदाओं के स्वामी (इन्द्र) परमेश्वर (वाजिनः) बलवान् (गव्यन्तः) गायों की कामना वाले (त्वा) तुझे (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सब सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तेरे समान न द्युलोक में कोई है और न पृथिवी पर । न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा । उत्तम घोड़े, गाय और बल की कामना करते हुए हम तुझे पुकारते हैं ॥२॥

६८२—वामदेवः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ १ २ २ ३ १ २ ३ २

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

पदार्थ—(कया) सुखदायक (नः) हमें (चित्रः) आश्चर्य गुण, कर्म और स्वभाव वाला (आ भुवत्) होता है (ऊति) रक्षण से (सदावृधः) सदा हमें उन्नत बनाने वाला (सखा) मित्र (कया) सुखदायक (शचिष्ठया) ज्ञान (वृता) वरण प्राप्त करने के योग्य ॥१॥

भावार्थ—हमें सर्वदा उन्नत बनाने वाला, आश्चर्यमय गुणवाला परमेश्वर सुखकारक रक्षा और प्राप्त करने योग्य सुखदायक ज्ञान के साथ हमारा मित्र होता है ॥१॥

६८३—वामदेवः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २३ १ २र ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

पदार्थ—(कः) सुखस्वरूप (त्वा:) तुझे (सत्यः) तीनों कालों में एकसा विद्यमान (मदानां) आनन्द वालों में (मंहिष्ठः) अत्यन्त महान् (मत्सत्) आनन्दित करता है (अन्धसः) अन्नादि भोग्य पदार्थों से (दृढा) दृढ (चित्) भी (आरुजे) दुःखनाश के लिए (वसु) मोक्ष रूप धन ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! सदा एकरस, आनन्द देने वालों में महान्, सुखस्वरूप परमेश्वर तुझे आनन्दित करता है और तेरे दुःख के नाश के लिए अन्न से प्राप्त होने वाले आनन्द से बढ़कर दृढ मोक्षरूप धन भी देता है ॥२॥

६८४—वामदेवः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३१२ ३१२

अभी षू णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतये ॥३॥

पदार्थ—(अभि) भली प्रकार (सु) सुन्दररूप से (नः) हमारा (सखीनां) मित्रों का (अविता) रक्षक (जरितृणां) सच्चे विद्वानों के (शतं) सैंकड़ों (भवासि) होता है (ऊतये) रक्षाओं से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी, मित्रों की तथा सच्चे विद्वानों की तू सैंकड़ों प्रकार की रक्षाओं से रक्षा करता है ॥३॥

६८५—नोधा । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उसको (वः) तुम्हारे (दस्मं) नाशक (ऋतीषहं) कामादि शत्रुओं को दमन करने वाला (वसोः) परमात्मा से (मन्दानम्) प्रसन्न (अन्धसः) अज्ञान का (अभि) लक्ष्यकर (वत्सं) बछड़े का (न) समान (स्वसरेषु) गोशालाओं में (धेनवः) गायें (इन्द्रं) ज्ञानी पुरुष को (गीर्भिः) वाणियों से (नवामहे) प्रसन्न करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मुमुक्षु लोगो ! तुम्हारे अज्ञान के नाशक, काम, क्रोध आदि शत्रुओं को दमन करनेवाले परमात्मा के आनन्द से आनन्दित ब्रह्मज्ञानी के प्रति आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों से उसी प्रकार प्रेम दर्शाते हैं जिस प्रकार गोशालाओं में गायें बछड़ों को अपनी आवाजों से प्रेम दर्शाती हैं ॥१॥

६८६—नोधाः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २ ३२३१२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥

पदार्थ—(द्युक्षम्) प्रकाशस्वरूप (सुदानुं) महान् दानी (तविषीभिः) शक्तियों से (आवृतं) आच्छादित (गिरिं न) मेघ के समान (पुरुभोजसम्) सर्वरक्षक (क्षुमन्तं) अन्नवाले (वाजं) ज्ञान को (शतिनं) सकड़ों (सहस्रिणं) हजारों वस्तुओं वाले (मक्षू) शीघ्र (गोमन्तम्) वेदमय (ईमहे) याचना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हम प्रकाशस्वरूप, महान् दानी, सर्वशक्तिमान्, मेघ के समान सब का पालन करने वाले परमेश्वर से अन्न प्राप्त करने वाले, सैंकड़ों और हजारों वस्तुओं की शिक्षा देनेवाले वेदमय ज्ञान की याचना करते हैं ॥२॥

६८७—कलिः प्रगाथः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

पदार्थ—(तरोभिः) बल से (वः) तुम लोग (विदद्वसुं) ज्ञान के निवास स्थान (इन्द्रं) परमेश्वर को (सबाधः) त्रिविध ताप के सताये हुए (ऊतये) रक्षा के लिए (बृहद्गायन्तः) भली भाँति भजन करते हुए (सुतसोमे) ज्ञान प्राप्ति के स्थान (अध्वरे) इस उत्पन्न जगत् में (हुवे) पुकारते हैं [विभक्तिव्यत्ययेन बहुत्वं] (भरं) भरण-पोषण करनेवाले (न) समान (कारिणम्) करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ज्ञान प्राप्ति के क्षेत्र इस संसार में त्रिविध ताप के सताये हुए भली भाँति भजन करनेवाले तुम और हम अपनी रक्षा के लिए पालन-पोषण करनेवाले ज्ञानदाता परमेश्वर को स्मरण करते हैं ॥१॥

६८८—कलिः प्रगाथः । इन्द्रः । बृहती ।

२उ ३ १ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ ३ २ ३क २र

य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—(न) नहीं (यं) जिसको (दुध्राः) उद्दण्ड (वरन्ते) स्वीकार करते हैं (न) न तो (स्थिराः) स्थिर लोग (मुरा) मनुष्य (मदेषु) अभिमान में (शिप्रं) ज्ञानस्वरूप (अन्धसः) अन्न आदि के (यः) जो (आदृत्या) आदर से (शशमानाय) विना गान के मन्त्रों से स्तुति करनेवाले (सुन्वते) ऐश्वर्य चाहनेवाले के लिए (दाता) दानी (जरित्रे) स्तुति करनेवाले स्तोता के लिये (उक्थ्यं) प्रशंसा करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—प्रशंसनीय ज्ञानस्वरूप परमात्मा को उद्दण्ड पुरुष नहीं जानते, और न धन के मद में चूर मनुष्य ही जान सकते हैं । वह परमेश्वर आदर से मंत्रों के द्वारा स्तुति करनेवाले, तथा ऐश्वर्य के प्रेमी के लिये मनचाहे फल का दाता है ॥२॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

६८९—पुष्कलोऽग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥

पदार्थ—(स्वादिष्ठया) अत्यन्त मधुर (मदिष्ठया) आनन्ददायक (पवस्व) पवित्र कर । हे परमेश्वर (धारया) वेदवाणी से (इन्द्राय) जीव के (पातवे) भोगनिमित्त (सुतः) उत्पन्न जगत् [संसार] ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर मधुर और आनन्ददायक वेदवाणी से हमें पवित्र कर। यह संसार जीव के भोग के लिए है ॥१॥

६९०—पुष्कलोऽग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२॥

पदार्थ—(रक्षोहा) बुराइयों का नाशक (विश्वचर्षणिः) विश्वद्रष्टा—संसार का द्रष्टा, भोग करनेवाला (योनि) परमेश्वर को (अयोहते) ज्ञान से प्राप्त (द्रोणे) मार्ग में [विचरता हुआ] (सधस्थं) हृदय में स्थित (आसदत्) प्राप्त करता है ॥२॥

भावार्थ—बुराइयों को दूर करनेवाला द्रष्टा [भोक्ता] जीव ज्ञान से प्राप्त मार्ग में विचरता हुआ हृदय में स्थित परमात्मा को प्राप्त करता है ॥२॥

६९१—पुष्कलोऽग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥

पदार्थ—(वरिवोधातमः) सम्पत्तियों का दाता (भुवः) हो (मंहिष्ठः) अत्यन्त महान् (वृत्रहन्तमः) अज्ञान का अत्यन्त नाशक अथवा अज्ञान निवारक (पर्षि) पूरा कर (राधः) धन (मघोनां) यज्ञ करनेवालों के लिये ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, तू सब सम्पदाओं का दाता, महान् तथा अज्ञान निवारक है। यज्ञ करनेवालों को धनादि से पूर्ण करता है ॥३॥

६९२—संहितः । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र हो जा (मधुमत्तमः) मधु विद्या का उत्तम ज्ञाता (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (सोम) हे आत्मज्ञानी (क्रतुवित्तमः) कर्मकुशल (मदः) स्तुति करनेवाला (महि) महान् (द्युक्षतमः) ज्ञान से अत्यन्त दीप्त (मदः) प्रसन्न ॥१॥

भावार्थ—हे आत्मज्ञानी पुरुष ! मधुविद्या का जानने वाला, कर्म करने में कुशल, स्तुति करनेवाला महान्, ज्ञान से दीप्त तथा प्रसन्न तू परमेश्वर की प्राप्ति के लिए पवित्र हो ॥१॥

६९३—संहितः । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) ईश्वर (ते) तुझ (पीत्वा) प्रवर्तक ज्ञान का पान कर (वृषभः) धर्मात्मा जीव (वृषायते) धर्म का आचरण करता है (अस्य) इस (पीत्वा) ज्ञान का पान करके (स्वर्विदः) सुखदाता (सः) वह (सुप्रकेतः) ब्रह्मज्ञानी (अभ्यक्रमीत्) पार कर जाता है (इषः) एषणाओं को (अच्छा) अच्छी तरह से (वाजं) संग्राम को (न) जैसे (एतशः) घोड़े ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! धर्मात्मा जीव तेरे ज्ञान का पान कर धर्म का आचरण करता है और वही ब्रह्मज्ञानी होकर निवृत्ति मार्ग पर चलकर ऐषणाओं को वैसे ही पार कर जाता है, जैसे कि घोड़े संग्राम में विजय पाते हैं ॥२॥

६९४—शफः । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रं) परमेश्वर को (अच्छ) भली भांति (सुता) संसार में उत्पन्न (इमे) ये (वृषणं) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (यन्तु) प्राप्त (हरयः) सारे मनुष्य (श्रुष्टेः) सुख की अवस्था में (जातासः) पैदा हुए [अर्थात् धनी] (इन्दवः) योगीजन (स्वर्विदः) ब्रह्मज्ञानी ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न ये मनुष्य तथा धनीजन परमात्मा को जानें। योगीजन उसका भजन करें तथा ब्रह्मज्ञानी उसे प्राप्त करें ॥१॥

६९५—शफः । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २
अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२॥

पदार्थ—(अयं) यह जीवात्मा (भराय) पालन-पोषण करने वाले (सानसिः) भक्ति करनेवाला (इन्द्राय) परमेश्वर को (पवते) प्राप्त करता है (सुतः) पुत्ररूप (सोमः) सौम्य स्वभाव वाला (जैत्रस्य) काम-क्रोधादि को जीतने के लिए (चेतति) जानता है (यथा) जैसे (विदे) ज्ञान की प्राप्ति के लिए चेतता है ॥२॥

भावार्थ—भक्ति करनेवाला पुत्ररूप यह जीव परमपिता परमात्मा को प्राप्त करता है। वह काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जीतने के लिए उसी तरह से चेतता है जिस तरह विद्या-प्राप्ति के लिए चेतता है ॥२॥

६९६—शफः । सोमः । उष्णिक् ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर (इत्) ही (इन्द्रः) जीवात्मा (मदेषु) आनन्द की अवस्थाओं में (आ) भली भांति (ग्राभं) ग्रहण करने के योग्य को (गृभ्णाति) ग्रहण करता है (सानसिम्) भक्ति के योग्य (वज्रं) निवारण करने वाले (वृषणं) आनन्द की वर्षा करनेवाले (भरत्) धारण करता है (सं) सम्यक् (अप्सुजित्) कर्म को जीतने वाला ॥३॥

भावार्थ—जीवात्मा आनन्द की अवस्थाओं में भजन तथा ग्रहण करने योग्य परमेश्वर को ग्रहण करता है। कर्म पर विजय प्राप्त करने वाला यह बुराइयों को दूर करने वाले तथा आनन्द की वर्षा करने वाले उस को धारण करता है ॥३॥

६९७—श्यावाश्वः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।

२ ३ १ २ १ २ ३ ३क २र
अपश्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—(पुरोजिती) पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए (वः) तुम लोग (अन्धसः) अज्ञान पर (सुताय) विज्ञान बल के लिए (मादयित्नवे) आनन्ददायक (अप) दूर करना (श्वानं) कुत्ते के समान लम्पटता (श्नथिष्टन) नष्ट करो (सखायः) हे मित्रो (दीर्घजिह्व्यम्) लम्बी जिह्वावाली ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग अज्ञान पर पूर्ण विजय तथा विज्ञान की प्राप्ति के लिए लम्बी जिह्वा वाले कुत्ते के समान विषय-भोग का परित्याग करो ॥१॥

६९८—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (धारया) वाणी (पावकया) पवित्र (परिप्रस्यन्दते) सर्वत्र व्यापक हो रहा है (सुतः) ज्ञात [जाना गया] (इन्दुः) परमात्मा (अश्वो न) विद्युत् के समान (कृत्व्यः) व्यवहारों की साधक ॥२॥

भावार्थ—पवित्र वेदवाणी के द्वारा जाना गया परमेश्वर सब व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली बिजली की भाँति सब जगह व्यापक हो रहा है ॥२॥

अथवा

पवित्र वेदवाणी के द्वारा सारे व्यवहारों का साधक ऐश्वर्यसम्पन्न जो ज्ञान बल पैदा होता है, वह बिजली की भांति सर्वत्र फैलता है ॥२॥

६९९—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥३॥

पदार्थ—(तं) उस (दुरोषम्) दुर्गुणों को भस्म करनेवाले (अभि) उद्देश्य बना कर (नरः) मनुष्य लोग (सोमं) परमात्मा को (विश्वाच्या) सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करनेवाली (धिया) बुद्धि से (यज्ञाय) यज्ञ के लिए (सन्तु) हो (अद्रयः) आदर युक्त ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य लोग सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाली बुद्धि के द्वारा दुर्गुणों को भस्म करने वाले परमात्मा को स्मरण करते हुए यज्ञ के लिए आदरयुक्त हों ॥३॥

७००—आन्धीगवः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विश्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब ओर से (प्रियाणि) प्रिय (पवते) पवित्र करता है (चनोहितः) ज्ञान से जाना जाने वाला [ज्ञान के द्वारा जिसका अनुमान होता है] (नामानि) संज्ञामात्र [प्रत्येक योनियों के हर एक नामों को] (यह्वः) महान् (अधि) में (येषु) जिन (वर्धते) उन्नति करता है (आ) भली भांति

(सूर्यस्य) परमेश्वर के (बृहतः) महान् (बृहत्) विशाल (अधि) में (रथं) रमणीय संसार (विश्वञ्चम्) भोग तथा मोक्ष देनेवाला (अरुहत्) प्राप्त करता है (विचक्षणः) द्रष्टा ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान से अनुमान करने के योग्य, महान्, द्रष्टा जीवात्मा अनेक योनियों को प्राप्त करता है। उनमें ही सुख-दुःख का अनुभव करता है। महान् परमेश्वर के दिए हुए भोग और मोक्ष के साधन संसार रूप विशाल रथ को प्राप्त करता है ॥१॥

७०१—आन्धीगवः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३ नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥२॥

पदार्थ—(ऋतस्य) सत्यज्ञान की (जिह्वा) वाणी (पवते) बहाती है (मधु) ज्ञान (प्रियं) हितकारक (वक्ता) उपदेश देने वाला (पतिः) स्वामी (धियः) बुद्धि का (अस्याः) इस (अदाभ्यः) हिंसा के योग्य नहीं (दधाति) धारण करता है (पुत्रः) परमात्मा (पित्रोः) पृथिवी और अन्तरिक्ष में (अपीच्यं) छिपा हुआ (नाम) को (तृतीयं) तीसरा (अधि) में (रोचनं) प्रकाशमान (दिवः) द्युलोक का ॥२॥

भावार्थ—वेद की वाणी हितकारी ज्ञान का उपदेश करती है। इसका उपदेश करनेवाला समस्त ज्ञान का स्वामी परमात्मा है। उसकी कोई हिंसा नहीं कर सकता। वही पृथिवी और अन्तरिक्ष में छिपे हुए प्रकाशमान तीसरे द्युलोक को भी भली भांति धारण करता है ॥२॥

७०२—आन्धीगवः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ट उषसो वि राजसि ॥३॥

पदार्थ—(अव) रक्षा (द्युतानः) तेजस्वी (कलशान्) अव्यक्त मधुर ध्वनियों को (अचिक्रदत्) करता है (नृभिः) मनुष्यों के द्वारा (येमाणः) स्तुति किया जाता हुआ (कोशे) कोश में (आ) सब प्रकार से (हिरण्यये) आनन्दमय (अभि) सब ओर (ऋतस्य) सत्य के (दोहनाः) दुहने वाले मनुष्य (अनूषत) स्तुति करते हैं (अधि) में (त्रिपृष्ठः) ऋग्यजु और साम रूप स्तोत्र वाले (उषसः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान (विराजसि) प्रकाशित करता है ॥३॥

भावार्थ—समाधि लगानेवाले योगी जन आनन्दमय कोश में प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का ध्यान करते हैं। वह अव्यक्त ध्वनि [अनहदनाद] का प्रकाश करता है। सत्य के दोहन करने वाले लोग सब प्रकार से स्तुति करते हैं। ऋग्, यजु, साम रूप स्तोत्रवाला वह तेज का प्रकाश करता है ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

७०३—अग्निः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
प्र प्रवयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—(यज्ञाः) यज्ञ (यज्ञा) वस्तुतः यज्ञ हों (वः) तुम्हारे (अग्नये) परमात्मा के लिए (गिरा) प्रार्थना (गिरा) यथार्थ में प्रार्थना हो (दक्षसे) पुत्रादि के लिए (प्र) उत्तमोत्तम (वयं) मैं (अमृतं) मुक्त पुरुष को (जातवेदसं) ज्ञानवान् (प्रियं) प्रिय (मित्रं) मित्र (न) समान (शंसिषम्) प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! [मुझ] परमेश्वर के लिये तुम्हारा यज्ञ यथार्थ यज्ञ हो। सन्तान के लिए तुम्हारी प्रार्थना वास्तव में प्रा.ना हो। मैं ब्रह्मज्ञानी मुक्त पुरुष स्नेही मित्र की भांति प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

७०४—अग्निः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥

पदार्थ—(ऊर्जः) बल की (नपातम्) रक्षा करने वाले की [स्तुति करते हैं]। (सः) वह (हिना) निश्चित ही (अयं) यह (अस्मयुः) हमारा हितकारी है (दाशेम) समर्पण करते हैं (हव्यदातये) कर्मफल के दाता के लिए (भुवत्) हो (वाजेषु) [जीवन] संग्रामों में (अविता) रक्षक (भुवत्) हो (वृधे) उन्नति के लिए (उत) और (त्राता) रक्षक (तनूनां) शरीरधारियों का ॥२॥

भावार्थ—हम बल के रक्षक परमात्मा की स्तुति करते हैं। वह निश्चय ही हमारा हितकारी है। उस फलदाता की सेवा में हम अपने सभी कर्मों का समर्पण करते हैं। वह संग्रामों में तथा उन्नति के लिए हमारा रक्षक हो ॥२॥

७०५—शाकमश्वः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः ॥१॥

पदार्थ—(एहि) आ (उ) वितर्क (सु) अच्छी तरह (ब्रवाणि) उपदेश करता हूँ (ते) तुझे (अग्ने) हे विद्यार्थी [अग्नि के समान प्रकाशमान] (इत्था) इस प्रकार (इतरा) वेद की (गिरः) वाणी का (एभिः) इन (वर्द्धासः) बढ़ता है (इन्दुभिः) ज्ञानों से ॥१॥

भावार्थ—हे अग्नि के समान तेजस्वी विद्यार्थी, तू आ। तुझे इन वेद की वाणियों का उपदेश करता हूँ। इन ज्ञानों से तू उन्नति कर ॥१॥

७०६—शाकमश्वः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३क २र ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ २ ३ १ २
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्र योनिं कृणवसे ॥२॥

पदार्थ—(यत्र) जहां (क्व च) कहीं (ते) तेरा (मनः) मनन योग्य ज्ञान (दक्षं) बलवान् (दधसे) रखता है (उत्तरं) श्रेष्ठ (तत्र) वहीं (योनिं) स्थान [घर] (कृणवसे) करता है ॥२॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! सबसे श्रेष्ठ और बलवान् अपना मनन करने योग्य ज्ञान तू जिस किसी व्यक्ति को देता है, उसके हृदय में तू ही घर कर जाता है ॥२॥

७०७—शाकमश्वः । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २
न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते । अथा दुवो वनवसे ॥३॥

पदार्थ—(नहि) नहीं (ते) तेरा (पूर्तं) पूर्ण करनेवाला तेज (अक्षिपद्) आँखों का नाश करनेवाला (भुवत्) हो (नेमानांपते) हे शरीरधारियों के स्वामी (अथ) किन्तु (दुवः) सेवा (वनवसे) स्वीकार कर ॥३॥

भावार्थ—हे शरीरधारियों के पालक परमेश्वर! तेरा तेज हमारी आँखों का नाश करने वाला न हो [तेरी ज्योति को हम देख सकें] तू हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ॥३॥

७०८—सौभरिः । इन्द्रः । ककुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यवमु त्वामपूर्व्यं स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रिं चित्रं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—(वयम्) हम (उ) ही (त्वाम्) तुझे (अपूर्व्यं) हे अनादि परमेश्वर (स्थूरं) सज्जन पुरुष का (न) समान (कच्चित्) किसी (भरन्तः) आश्रय चाहते हुए (अवस्यवः) रक्षाभिलाषी (वज्रिन्) हे दुःखनिवारक (चित्र) आश्चर्यमय गुण, कर्म, स्वभाववाले (हवामहे) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे दुःखनिवारक अनादि परमेश्वर! अपनी रक्षा चाहने वाले हम तुझ अद्भुत को ही आश्रय देनेवाले महापुरुष के समान पुकारते हैं ॥१॥

७०९—सौभरिः । इन्द्रः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

पदार्थ—(उप) उपासना करते हैं (त्वा) तेरी (कर्मन्) शुभ कर्मों के प्रारम्भ में (ऊतये) रक्षा के लिए (स) वह तू (नः) हमें (युवा) सुख का संयोग तथा दुःख का वियोग कराने वाला (उग्रः) तेजस्वी (चक्राम) प्राप्त होता है (यः) जो (धृषत्) दुष्टों का दमन करने वाला (त्वां) तेरा (इत्) ही (हि) निश्चय से (अवितार) रक्षक (ववृमहे) भजन करते हैं। (सखायः) प्रेमी (इन्द्र) हे परमेश्वर (सानसिम्) भजन करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! हम लोग अपनी रक्षा के लिए प्रत्येक शुभकर्म के प्रारम्भ में तेरी ही उपासना करते हैं। तू तेजस्वी दुष्टों का दमन करनेवाला तथा सुखों का संयोग और दुःखों का वियोग कराने वाला है। तू हमें प्राप्त हो। तुझ रक्षक और भजन करने के योग्य का ही हम भजन करते हैं ॥२॥

७१०—नृमेधः । इन्द्रः । ककुप् ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥१॥

पदार्थ—(अधा) तत्काल (हि) निश्चित (इन्द्र) हे जीव (गिर्वणः) वेदवाणियों द्वारा भक्ति करनेवाले (उप) समीप (त्वा) तेरे (काम) कामनाओं

को (ईमहे) जानता हूँ (ससृग्महे) पूर्ण करता हूँ (उदा इव) जल चाहनेवाले के समान (ग्मन्तः) प्राप्त करनेवाले (उदभिः) जलों से ॥१॥

भावार्थ—हे वेदवाणी के द्वारा भजन करने वाले जीव ! मैं तेरी कामनाओं को जानता हूँ और उन्हें तत्काल पूरी करता हूँ, जैसे प्यासे को जल देकर तृप्त किया जाता है ॥१॥

७११—नृमेधः । इन्द्रः । ककुप् ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
३ १ २ ३ १ २
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

पदार्थ—(वाः न) जल के समान (त्वा) तुझे (यव्याभिः) नदियों द्वारा (वर्धन्ति) उन्नत करते हैं (शूर) हे वीर (ब्रह्माणि) वेदत्रयी [ऋक् यजुः, साम और अथर्ववेद] (वावृध्वांसम्) उन्नत स्वभाववाले (चित्) ही (अद्रिवः) हे आदरणीय (दिवेदिवे) प्रति दिन ॥२॥

भावार्थ—हे वीर ! आदरणीय जीव, प्रतिदिन उन्नति करनेवाले तुझे चारों वेद नदियों के जल के समान बढ़ाते हैं ॥२॥

७१२—नृमेधः । इन्द्रः । ककुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।
३ १ २ ३ १ २
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥

पदार्थ—(युञ्जन्ति) जोड़े जाते हैं (हरी) ऋक् और साम (इषिरस्य) व्यापक परमेश्वर की (गाथया) वाणी के साथ (उरौ) विस्तृत (रथे) संसार में (उरुयुगे) लम्बे काल तक चलनेवाले (वचोयुजा) गायत्री छन्दों से युक्त (इन्द्रवाहा) परमानन्द की प्राप्ति करानेवाले (स्वर्विदा) सुखदाता ॥३॥

भावार्थ—गायत्री आदि छन्दों से युक्त, मोक्ष तथा स्वर्ग सुख के प्राप्त करने वाले ऋक् और साम व्यापक परमात्मा के लम्बे समय तक चलनेवाले विशाल संसार में भाषा के साथ जुड़कर व्यवहार में आते हैं ॥३॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके प्रथमोऽध्यायः ॥

卐 द्वितीयोऽध्यायः 卐

७१३—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थ—(पान्तम्) रक्षक (आ) सब प्रकार से (वः) तुमलोगों की (अन्धसः) अज्ञान से (इन्द्रं) ज्ञानी पुरुष की (अभि) भली भांति (प्रगायत) प्रशंसा करो (विश्वासाहं) सांसारिक विषयों पर विजय पानेवाला (शतक्रतुं) अनेकों ज्ञानोंवाले (मंहिष्ठं) महान् (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो, तुम लोग अज्ञान से रक्षा करनेवाले सांसारिक विषयों से रहित अनेक ज्ञानोंवाले और मनुष्यों में महान् ज्ञानी पुरुष की प्रशंसा करो ॥१॥

७१४—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ २ ३ १ २
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२॥

पदार्थ—(पुरुहूतं) बहुतों से पुकारे जाने वाले (पुरुष्टुतं) अनेक प्रकार से स्तुति करने के योग्य (गाथान्यं) वेद ज्ञान के दाता (सनश्रुतम्) सनातन परमेश्वर को (इन्द्रः) इन्द्र (इति) ऐसा (ब्रवीतन) कहो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सबके उपास्य, वेद ज्ञान के दाता, सनातन परमेश्वर को इन्द्र समझो ॥२॥

७१५—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (इत्) ही (नः) हमें (महोनां) धनयुक्त (दाता) देनेवाला है (वाजानां) विविध ज्ञानों का (नृतुः) कर्मफल के अनुसार नचानेवाला (महान्) अनन्त (अभिज्ञु) घुटने टेक कर चलनेवालों के रूप में (आयमत्) हमें नियम में रखता है ॥३॥

भावार्थ—धनयुक्त ज्ञानों का देनेवाला, कर्मानुसार नचाने वाला अनन्त परमेश्वर ही हमें घुटने टेककर चलने वालों के रूप में नियम में रखता है ॥३॥

७१६—वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम सब (इन्द्राय) ज्ञानीपुरुष का (मादनं) प्रसन्नकारक (हर्यश्वाय) ऋग्वेद और सामवेद के ज्ञानी (गायत) गान करो (सखायः) हे मित्रो (सोमपाव्ने) आत्मबल के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो, तुम लोग ज्ञान और उपासना के धनी आत्मबल के रक्षक ज्ञानी का सन्मान करो ॥१॥

७१७—वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥२॥

पदार्थ—(शंसेत्) करे (उक्थं) स्तुति (सुदानवे) कल्याणकारक दानी के लिए (उत) और (द्युक्षं) मनोहर (यथा) जैसे (नरः) नेता लोग (चकृमा) हम करें (सत्यराधसे) सत्य के धनी परमात्मा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे नेता जन सत्य के धनी कल्याणकारी परमात्मा की मनोहर स्तुति करते हैं, वैसे ही हम लोग भी किया करें ॥२॥

७१८—वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ १२
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (वाजयुः) अन्न और ज्ञान का देनेवाला (त्वं) तू (गव्युः) गौ आदि पशुओं का दाता (शतक्रतो) हे सर्वज्ञ ! (त्वं) तू (हिरण्ययुः) सुवर्ण आदि सम्पदाओं को प्राप्त करानेवाला है (वसो) हे सर्वाधार ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ, सर्वाधार परमेश्वर ! तू हमें अन्न, ज्ञान, गाय आदि पशु तथा सुवर्ण आदि सम्पदायें देनेवाला है ॥३॥

७१९—मेधातिथिः प्रियमेधो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१॥

पदार्थ—(वयं) हम (उ) और (त्वा) तू (तदिदर्थाः) परमेश्वर की प्राप्तिरूप एक प्रयोजनवाले हैं (इन्द्र) हे ज्ञानी पुरुष (त्वायन्तः) तेरी समता की कामनावाले (सखायः) परस्पर मित्र (कण्वाः) मेधावी जन (उक्थेभिः) स्तोत्रों से (जरन्ते) स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानीपुरुष ! हम और तू भी परमेश्वर को ही प्राप्त करना चाहते हैं । तेरी समता की इच्छा करते हुए परस्पर मित्र मेधावी जन भी उसी के स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥१॥

७२०—मेधातिथिः, प्रियमेधो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥२॥

पदार्थ—(न घ इम्) नहीं ही (अन्यत्) दूसरे की (आ पपन) स्तुति करता हूँ (वज्रिन्) हे दुःखनिवारक परमेश्वर (अपसः) शुभ कर्म (नविष्टौ) प्रारम्भ में (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमैः) वेद मन्त्रों से (चिकेत) चिन्तन करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे दुःखनिवारक परमेश्वर ! मैं दूसरे की उपासना नहीं करता । अपने प्रत्येक शुभ कर्म के आदि में मन्त्रों से तेरा ही चिन्तन करता हूँ ॥२॥

७२१—मेधातिथिः, प्रियमेधो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३॥

पदार्थ—(इच्छन्ति) चाहते हैं (देवाः) विद्वान् जन (सुन्वन्तं) संसार के उत्पादक परमेश्वर को (न) नहीं (स्वप्नाय) आलस्य (स्पृहयन्ति) चाहते हैं (यन्ति) प्राप्त करते हैं (प्र) उत्तम (मादं) हर्ष (अतन्द्राः) आलस्य रहित ।३।

भावार्थ—विद्वान् जन सृष्टिकर्ता परमेश्वर की प्राप्ति की इच्छा करते हैं । वे इस विषय में आलस्य नहीं करते । सावधानी से ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं ॥३॥

७२२—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रायः) जीव के लिए (मद्वने) सुख गुणवाले (सुतं) उत्पन्न संसार का (परि) सब तरह से (ष्टोभन्तु) वर्णन करती हैं (नः) हमारी (गिरः) वेदवाणी (अर्कं) मन्त्र को (अर्चन्तु) प्राप्त करते हैं (कारवः) कर्मयोगी पुरुष ॥१॥

भावार्थ—हमारी दी हुई वेदवाणी सुख गुणवाले जीव के लिए संसार का ज्ञान कराती हैं । कर्मयोगी पुरुष ही मन्त्रों को प्राप्त करता है ॥१॥

७२३—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिसमें (विश्वा) सारे (अधिश्रियः) मनुष्य (रणन्ति) रमते हैं (सप्त संसदः) सात ऋत्विज् (इन्द्रं) परमेश्वर को (सुते) स्तुतिरूप यज्ञ में (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस स्तुतिरूप यज्ञ में सात ऋत्विक् पुरुष विचरते हैं, उसमें हम परमेश्वर को पुकारते हैं ॥२॥

७२४—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥

पदार्थ—(त्रिकद्रुकेषु) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयवाले उत्पन्न पदार्थों में [व्यापक] (चेतनं) चेतन स्वरूप (देवासः) विद्वान् लोग (यज्ञं) परमेश्वर को (अत्नत) प्राप्त करने को निरन्तर प्रयत्न करते हैं। (तं इत्) उसीकी तरफ (वर्धन्तु) बढ़ें (नः) हमारी (गिरः) वाणियां ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय वाले संसारी पदार्थों में व्यापक चेतन स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। हमारी वाणियाँ उसीकी तरफ बढ़ें ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

७२५—इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥१॥

पदार्थ—(अयं) यह (ते) तेरा (इन्द्र) हे परमेश्वर! (सोमः) सच्चा न्याय (निपूतः) अति पवित्र है [पक्षपात रहित है,] (अधिर्बर्हिषि) संसार में (ऐहि) व्यापक है (ईम्) इसमें (अस्य) इसको (द्रव) गति देता है (पिब) रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! इस संसार में तेरा न्याय पक्षपात-रहित है। तू इसमें व्यापक है, गति देता और रक्षा भी करता है ॥१॥

७२६—इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥२॥

पदार्थ—(शाचिगो) हे शक्तिशालिनी वेदवाणी के स्वामी (शाचि पूजन) हे प्रसिद्ध पूजन के योग्य (अयं) यह प्रत्यक्ष (रणाय) उपदेश के करने के लिए है (ते) तेरे (सुतः) संसार (आखण्डल) हे दुर्गुणों के दमन करनेवाले परमेश्वर (प्रहूयसे) उत्तम स्तुतियों से पुकारा जाता है ॥२॥

भावार्थ—हे दुर्गुणों के निवारक! हे शक्तिशालिनी वेदवाणी के स्वामी! हे पूजनीय परमेश्वर! यह संसार तेरे उपदेश के लिए है। उत्तम स्तुतियों से हम तुझे ही स्मरण करते हैं ॥२॥

७२७—इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २र ३ १ २र
यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्याः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (शृङ्गवृषो णपात्) सूर्यादि लोक को धारण करनेवाले (प्रणपात्) सर्वरक्षक (कुण्डपाय्यः) यज्ञ (नि) पूर्णरूप से (अस्मिन्) इसमें (दध्रे) धारण करते हैं (आ) भली भांति (मनः) मन को ।३।

भावार्थ—हे सूर्यलोक के धारण करनेवाले परमेश्वर! तू सर्वरक्षक है। तेरे यज्ञ मे हम अपना मन लगाते हैं ॥३॥

७२८—कण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥१॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (तू) शीघ्र (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (क्षुमन्तं) अन्नयुक्त (चित्रं) अनेक प्रकार के (ग्राभं) ग्रहण करने योग्य सम्पदाओं का (संगृभाय) संग्रह करा (महाहस्ती) तू सबका धारण करने वाला है (दक्षिणेन) उदार भाव से ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, तू सब का धारण करनेवाला है। अपने भाव से हमें प्रशंसा और ग्रहण करने के योग्य अनेक प्रकार का धनसंग्रह करा ॥१॥

७२९—कण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मि तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥२॥

पदार्थ—(विद्मा) जानते हैं (हि) निश्चितरूप से (त्वा) तुझे (तुविकूर्मि) सब कर्मों के निमित्त (तुविदेष्णं) महान् दाता (तुवीमघम्) अनन्त संपदाओं वाले (तुविमात्रं) सर्वव्यापक (अवोभिः) रक्षाओं से युक्त ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू सारे कर्मों का संपादक, महान् दाता, अनन्त संपदाओं वाला, सर्वव्यापक तथा अनेक प्रकार की रक्षाओं से युक्त है। हम तुझे जानते हैं ॥२॥

७३०—कण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
न हि त्वा शूर देवा न मर्त्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥३॥

पदार्थ—(न हि) नहीं (त्वा) तुझे (शूर) हे शक्तिमान् (देवा) विद्वान् लोग या दिव्यशक्तियां (मर्तासः) मनुष्य लोग (दित्सन्तं) देने की इच्छा करनेवाले (भीमं) भयंकर (न) समान (गां) प्रखर किरण को (वारयन्ते) रोक सकते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! देने की इच्छा करते हुए तुझे दिव्य शक्तियां, विद्वान् पुरुष और मनुष्य भी नहीं रोक सकते, जैसे सूर्य की अत्यन्त तेज किरणों को कोई नहीं रोक सकता ॥३॥

७३१—विशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥१॥

पदार्थ—(अभि) भली भांति (त्वा) तेरे (वृषभा) हे धर्म का आचरण करनेवाले (सुते) संसार में (सुतं) भोग्य पदार्थ को (सृजामि) पैदा करता हूं (पीतये) भोग या रक्षा के लिए (तृम्प) तृप्त हो (व्यश्नुहि) उपभोग कर (मदं) आनन्द ॥१॥

भावार्थ—हे धर्म का आचरण करने वाले जीव! मैं [परमेश्वर] संसार में तेरे भोग के लिए भोग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता हूं। तू उनका उपभोग करके तृप्त हो और आनन्द को प्राप्त कर ॥१॥

७३२—विशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ।२।

पदार्थ—(मा) नहीं (त्वा) तुझे (मूराः) मूढ लोग (अविष्यवः) केवल पेट पूजा में ही लगे हुए (मा) न तो (उपहस्वानः) तेरा उपहास करनेवाले [नास्तिक] (आ) सब प्रकार से (दभन्) हानि पहुँचा सकते हैं (मा कीं) न तो (ब्रह्मद्विषं) वेद से द्वेष करनेवाले को (वनः) अपना भागी नहीं करते हो ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! पेट पालन में ही तत्पर मूढ लोग तुझे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकते और न तेरा उपहास करने वाले नास्तिक पुरुष ही। तू वेदज्ञान के द्वेषी को अपना भागी नहीं बनाता ॥२॥

७३३—विशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥३॥

पदार्थ—(इह) इस संसार में (त्वा) तुझे (गोपरीणसं) वेदवाणी के विविध ज्ञानवाले (महे) बड़ी (मन्दन्तु) कामना करते हैं (राधसे) धन-प्राप्ति के लिए (सरः) वेदवाणी (गौरः) विद्वान् (यथा) जिस प्रकार (पिब) रक्षा कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! इस संसार में हम सब लोग बड़ी सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए तुझ वेद के ज्ञानवाले की ही कामना करते हैं। जिस प्रकार विद्वान् वेदवाणी की रक्षा करता है, वैसे ही तू हमारी रक्षा कर ॥३॥

७३४—प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥१॥

पदार्थ—(इदं) इस (वसो) हे शरीर में वास करनेवाले जीव (सुतं) अन्तःकरण में प्रकट होने वाले ज्ञान को (अन्धः) अन्धकार या अज्ञान से (पिबा) पी या रक्षा कर (सुपूर्णं) पूर्ण (उत्) परे (अरं) पर्याप्त रूपसे (अनाभयिन्) संसार के भयों से रहित (ररिमा) देता हूं (ते) तुझे ॥१॥

भावार्थ—हे संसार के भयों से रहित जीव! तुझे मैं अन्धकार से परे और पूर्ण इस अन्तःकरण में प्रकट होनेवाले योगज ज्ञान को देता हूँ। तू इसका पर्याप्त-रूप से पान कर ॥१॥

७३५—प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
नृभिर्धौ तः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२॥

पदार्थ—(नृभिः) मनुष्यों द्वारा (धौतः) प्राप्त किया हुआ (सुतः) उत्पन्न संसार (अश्नैः) भोक्ता=भोग करनेवाले (अव्याः) प्रकृति से (वारैः) वरणीय [अर्थात् युक्त] (परिपूतः) निवास से पवित्र किया हुआ (अश्वः) घोड़े के (न) समान (निक्तः) धोये हुए (नदीषु) नदियों में ॥२॥

भावार्थ—हे जीव! भोक्ता तथा जीवन्मुक्त पुरुषों से युक्त और पवित्र हुआ यह प्रकृति का कार्य संसार, नदी में नहलाये गये घोड़े के समान तुम्हारे भोग के लिए सामने विद्यमान है ॥२॥

७३६—प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिंत्सधमादे ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उस (ते) तुम्हारे (यवं) यव आदि अन्न का (यथा) यथावत् (गोभिः) वेदमन्त्रों द्वारा (स्वादु) स्वाद के योग्य (अकर्म) बनाते हैं (श्रीणन्तः) आश्रय लेते हुए या सेवन करते हुए (इन्द्र) हे परमेश्वर (त्वा) तुझे (अस्मिन्) इस संसार में (सधमाद) सुख के स्थान ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश ! सुख के स्थान तेरे इस संसार में हम लोग यव आदि अन्नों को स्वाद योग्य बनाकर उनका सेवन करते हैं और वेदमन्त्रों से तुझे स्मरण करते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

७३७—*विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ १ २
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥१॥

पदार्थ—(इदं) यह (हि) निश्चय रूप से (अनु) अनुकूलता के साथ (ओजसा) पराक्रम से [युक्त] (सुतं) औषधि आदि के रस को (राधानां पते) समस्त संपदाओं के स्वामी (पिबा) रक्षा कर (त्वा) तू (अस्य) इसकी (गिर्वणः) हे वेदमन्त्रों द्वारा भजन के योग्य ॥१॥

भावार्थ—हे समस्त सम्पदाओं के स्वामी, मन्त्रों द्वारा पूजनीय परमेश्वर ! तू हमें बल देनेवाले इन औषधि आदि रसों की रक्षा कर ॥१॥

७३८—*विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३क २र १ २
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्य ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरे (अनु) उद्देश्य में रख कर (स्वधां) धारण-पोषण (असत्) वर्तमान है (सुते) सब मूर्तिमान् पदार्थों में (नियच्छ) नियम में रखता है (तन्वं) [व्याप्ति] व्यापकता को (स) वह परमात्मा (त्वा) तुझे (ममत्तु) आनन्दित करता है (सोम्य) हे सौम्य स्वभाववाले ॥२॥

अथवा

(यः) जो परमेश्वर (ते) तेरे (अनु) साथ (स्वधां) प्रकृति के (असत्) अनादि रूप से विद्यमान है (सुते) संसार में (नियच्छ) नियम से रखता है (तन्वं) व्याप्ति-व्यापकता को (स) वह (त्वा) तुझे (ममत्तु) आनन्दित करता है (सोम्य) हे सौम्य स्वभाववाले ॥२॥

भावार्थ—हे सौम्य स्वभाववाले पुरुष ! जो परमेश्वर तेरे धारण-पोषण को करने के लिए सारे मूर्तिमान् पदार्थों में नियमपूर्वक व्यापक हो रहा है वही तुझे आनन्दित भी करता है ॥२॥

अथवा

हे सौम्य जीव ! जो परमेश्वर तेरे और प्रकृति के साथ अनादि रूप से विद्यमान है और संसार को नियम में रखते हुए व्यापक हो रहा है वही तुझे आनन्दित भी करता है ॥२॥

७३९—*विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसा ॥३॥

पदार्थ—(प्र) भली प्रकार (ते) तेरे (अश्नोतु) व्यापक हो रहा है (कुक्ष्योः) दोनों पार्श्व [बगल] में (प्र) भली-भांति (इन्द्र) हे जीव (ब्रह्मणा) ज्ञान के साथ (शिरः) मस्तिष्क में (प्र) अच्छी प्रकार (बाहू) हाथों में (शूर) हे शक्तिशाली (राधसा) समृद्धि के साथ ॥३॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली जीव ! परमेश्वर तेरे दोनों पार्श्वों में व्यापक हो रहा है । वही ज्ञान के साथ तेरे मस्तिष्क और समृद्धि के साथ बाहुओं में भी व्यापक हो रहा है ॥३॥

७४०—*मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।*

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥१॥

पदार्थ—(आ तु एता) अच्छी तरह प्राप्त करो (निषीदत) बैठो (इन्द्र) अज्ञान के नाशक ज्ञानी पुरुष के (अभि) सन्मुख (प्रगायत) सन्मान करो (सखायः) हे सखा जीवो (स्तोमवाहसः) वेदज्ञान के प्राप्त करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाले सखा जीवो ! तुम अज्ञानाशक ज्ञानी को प्राप्त करो, उससे सत्संग करो और उसका सन्मान करो ॥१॥

७४१—*मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२॥

पदार्थ—(पुरूतमं) सब दुष्टों को दुःख देनेवाले (पुरूणां) सब (ईशानं) स्वामी (वार्याणां) वरन करने योग्य गुणों के (इन्द्रं) परमेश्वर को (सोमे) गृहस्थ आश्रम में (सचा) सम्मिलित हुए (सुते) अन्य आश्रमों में प्रसिद्ध ॥२॥

भावार्थ—सब आश्रमों में प्रसिद्ध गृहस्थाश्रम में रहते हुए हम सब दुःखों के दमन करनेवाले, वरण करने योग्य गुणों के स्वामी परमेश्वर का भजन करते हैं ॥२॥

७४२—*मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २र
स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या । गमद्वाजेभिरा स नः ॥३॥

पदार्थ—(सः) परमेश्वर (घ) ही (नः) हमें (योगे) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति से (आ भुवत्) हमारे चारों तरफ होता है [सहायक होता है] (सः) वह ही (राये) धनादि की प्राप्ति के लिए (सः) वह (पुरन्ध्या) कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के निर्णय कराने वाली बुद्धि की प्राप्ति में (गमद्) प्राप्त होता है और जानता है (वाजेभिः) ज्ञानद्वारा (आ) सब प्रकार (सः) वह (नः) हमें ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर ही हमें अप्राप्त की प्राप्ति में सहायक होता है । वही धन और कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य के निर्णय करानेवाली बुद्धि की प्राप्ति में हमारा सहायक है । वह हमें अपने ज्ञान से अपनाता है ॥३॥

७४३—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥१॥

पदार्थ—(योगेयोगे) हर एक शुभ कार्यों में (तवस्तरं) बलयुक्त (वाजे वाजे) हर एक जीवन संग्राम में (हवामहे) स्वीकार करते हैं (सखायः) सखा भाव वाले (इन्द्रं) ज्ञानी पुरुष को (ऊतये) कल्याण के लिए ॥१॥

भावार्थ—सखा भाव को प्राप्त हुए हम लोग कल्याण के लिए अपने हर एक प्राप्ति के कार्य तथा जीवन संग्राम में ज्ञानी पुरुष को स्वीकार करते हैं ॥१॥

७४४—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥२॥

पदार्थ—(अनु) अनुकूलता से (प्रत्नस्य) सनातन (ओकसः) प्रकृतिरूप गृह के (हुवे) उपासना करते आये हैं । (तुविप्रतिं) सर्वरक्षक (नरं) नेता (यं) जिस (ते) तुझ परमात्मा की (पूर्वं) आदि कारण (पिता) पिता आचार्य आदि (हुवे) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—सनातन प्रकृति के नेता, सर्वरक्षक, आदि कारण जिस तुझ परमात्मा की उपासना हमारे पिता आचार्य करते आये हैं उस तुझ का मैं भी भजन करता हूं ॥२॥

७४५—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्त्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (घ) निश्चय ही (गमत्) प्राप्त होता है (यदि) अगर [जबकि] (श्रवत्) सुन लेता है (सहस्त्रिणीभिः) हजारों प्रकार की (ऊतिभिः) रक्षाओं से (वाजेभिः) विविध ज्ञानों से (उप) उपयोगी रूप से (नः) हमारी (हवम्) प्रार्थना को ॥३॥

भावार्थ—जब कि परमेश्वर हमारी प्रार्थनाओं को सुन लेता है, तब निश्चय ही हमें सहस्रों प्रकार की रक्षाओं तथा विविध ज्ञानों के साथ प्राप्त होता है ॥३॥

७४६—*नारदः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३क २र
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे मुमुक्षु पुरुष (सुतेषु) हो जाने पर (सोमेषु) शास्त्रबोधों के (क्रतुं) ज्ञान वा कर्म को (पुनीषे) पवित्र करो (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (विदे) प्राप्ति के लिए (वृधस्य) बढ़े हुए (दक्षस्य) आत्मबल की (महान्) बड़ा (हि) क्योंकि (सः) वह [ज्ञान कर्म] ॥१॥

भावार्थ—हे मुमुक्षु पुरुष ! तू शास्त्रबोध हो जाने पर अपने ज्ञान और कर्म को पवित्र कर । क्योंकि वह बढ़े हुए आत्मबल की प्राप्ति के लिए महान् साधन है ॥१॥

७४७—*नारदः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह परमेश्वर (प्रथमे) विस्तृत (व्योमनि) आकाश में (देवानां) प्रकृति-परमाणु और जीवों के (सदने) ठहरने के स्थान (वृधः) व्यापक (सुपारः) सब को अच्छी तरह पार लगाने वाला (सुश्रवस्तमः) अत्यन्त यशवाला (समप्सुजित्) सब देवों के स्वामी को ॥२॥

भावार्थ—प्रकृति तथा जीवों के ठहरने के स्थान विस्तृत आकाश में व्यापक वह परमेश्वर अच्छी तरह से सबका पार लगाने वाला और अत्यन्त यशवाला है । उस सब दिव्यगुण वाले पदार्थों के स्वामी की हम उपासना करते हैं ॥२ ।

७४८—नारदः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३॥

पदार्थ—(तमु) उस (हुवे) पुकारते हैं (वाजसातये) ज्ञान की प्राप्ति के लिए (इन्द्रं) परमेश्वर को (भराय) पालनपोषण के लिए (शुष्मिणं) शक्तिमान् (भवा) होता है (नः) हमारे (सुम्ने) सुख के लिए (अन्तमः) समीपवर्ती (सखा) मित्र के समान (वृधे) हमारी वृद्धि के लिए ॥३॥

भावार्थ—जो हमारी सुख प्राप्ति और वृद्धि के लिए समीपवर्ती सखा के समान है, उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को हम ज्ञानप्राप्ति और अपनी रक्षा के निमित्त पुकारते हैं ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

७४९—वामदेवः । अग्निः । प्रगाथः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

पदार्थ—(एना) इस तरह (वो) तुम्हारे (अग्नि) आत्मज्ञानी को (नमसा) आदर के साथ (ऊर्जः) ज्ञानबल के (नपातं) रक्षक (आहुवे) पास बुलाता हूँ या ग्रहण करता हूँ (प्रियं) प्रिय (चेतिष्ठं) ज्ञानयुक्त (अरतिं) विषयों में न फंसनेवाले (स्वध्वरं) यज्ञ के करनेवाले (विश्वस्य) संसार के (दूतम्) दुःख को नाश करनेवाले (अमृतं) जीवनमुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारे ज्ञान की रक्षा करने वाले, प्रिय, ज्ञानवान्, विषयों में न फंसनेवाले, यज्ञकर्ता, संसार के दुःख को दूर करने वाले तथा जीवनमुक्त आत्मज्ञानी पुरुष को मैं आदर से अपने समीप बुलाता हूँ ॥१॥

७५०—वामदेवः । अग्निः । प्रगाथः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥

पदार्थ—(सः) यह (योजते) युक्त है (अरुषा) तेज से (विश्वभोजसा) विश्व की रक्षा करनेवाले (सः) वह (दुद्रवत्) सबको गति देता है (स्वाहुतः) अच्छी प्रकार से स्तुति किया जानेवाला (सुब्रह्मा) वेदज्ञान वाला (यज्ञः) उपास्य (सुशमी) अच्छे कर्मवाला (वसूनां) विद्वानों के (देवं) देव (राधः) धन (जनानां) प्रजा के ॥२॥

भावार्थ—वह परमेश्वर विश्व की पालना करनेवाले तेज से युक्त है । वह ही सब पदार्थों को गति दे रहा है । वह वेदज्ञान का स्वामी, पुकारने योग्य, उपास्य तथा अच्छे गुणकर्म स्वभाव वाला है । विद्वानों तथा समस्त प्रजा के एकमात्र धन उस देव की हम स्तुति करते हैं ॥२॥

७५१—वसिष्ठः । उषाः । बृहती ।

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ १ २
प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः । अपो
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

पदार्थ—(प्रति) प्रत्येक दिन (उ) निश्चय से ही (अदर्शि) दिखाई पड़ती है (आयती) प्राप्त होती हुई (उच्छन्ती) दूर करती हुई (दुहिता) दूर में स्थित (दिवः) सूर्य की (अप) दूर निश्चित रूप से (मही) महान् गुणों वाली (वृणु) निवारण करती है (चक्षुषा) आंख के (तमः) अन्धकार को (ज्योतिः) प्रकाश (कृणोति) करती है (सूनरी) लोगों को मार्ग दिखानेवाली ॥१॥

भावार्थ—प्राप्त होती हुई सूर्य की दूरस्थ किरणें दुर्गन्ध आदि का निवारण करती हुई दिखाई पड़ती हैं । बड़े गुणों वाली तथा लोगों को मार्ग दिखाने वाले वे आंख के तम को दूर करती और प्रकाश करती हैं ॥१॥

७५२—वसिष्ठः । उषाः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट रूप से (उस्रियाः) किरणों से युक्त (सृजते) बनाता है (सूर्यः) हे परमात्मा (सचा) प्रसंग से (उद्यन्) उदित होनेवाले (नक्षत्रं) नक्षत्र को (अर्चिवत्) प्रकाश युक्त (तव) तेरे (उषः) हे उषा के समान कामना करने के योग्य (व्युषि) प्रकाश में (सूर्यस्य) सूर्य के (च) और (सं) भली-भांति (भक्तेन) अन्न आदि भोगों से (गमेमहि) युक्त होवें ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, तू ही किरणों से युक्त उषा और उदित होनेवाले प्रकाशमय नक्षत्रों को बनाता है । हे उषा के समान कामना के योग्य ! तुम्हारे और सूर्य के प्रकाश में हम अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करें ॥२॥

७५३—वसिष्ठः । अश्विनौ । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥

पदार्थ—(इमाः) ये (उ) निश्चय ही (वां) आप दोनों को (दिविष्टयः) उत्तमकर्मों को चाहनेवाले (उस्रा) तेजयुक्त (हवन्ते) स्वीकार करते हैं (अश्विना) हे अध्यापक और उपदेशक (अयं) यह (वां) आप दोनों को (अह्वे) पुकारता हूँ (अवसे) ज्ञान रक्षा के लिए (शचीवसू) ज्ञान के निवास स्थान [ज्ञान के भण्डार] (विशं विशं) हर एक स्त्रीपुरुष को (हि) इसलिए (गच्छथः) ज्ञान दीजिए ॥१॥

भावार्थ—हे तेजयुक्त तथा ज्ञान के भण्डार अध्यापक और उपदेशक ! ये उत्तम कर्मों की इच्छा करने वाले आपको ही स्वीकार करते हैं । मैं भी आप दोनों को ज्ञान की रक्षा के लिए पुकारता हूँ । अतः आप हर एक स्त्रीपुरुष को ज्ञान प्रदान कीजिए ॥१॥

७५४—वसिष्ठः । अश्विनौ । बृहती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥

पदार्थ—(युवम्) आप दोनों (चित्रं) अद्भुत (ददथुः) देते हैं (भोजनं) रक्षा के साधन (नरा) सब के नेता (चोदेथां) प्रेरणा करते हैं (सूनृतावते) सत्यवादी होने के लिए (अर्वाक्) सन्मुख (रथम्) संसार को (समनसा) एक समान मनवाले (नियच्छतम्) नियम में रखते हैं (पिबतम्) रक्षा करते हैं (सोम्यं) ऐश्वर्यसम्बन्धी (मधु) विज्ञान की ॥२॥

भावार्थ—हे समान विचारवाले सबके नेता, अध्यापक और उपदेशक ! आप लोग अद्भुत रक्षा के साधन देते हैं और सत्यवादी होने के लिए प्रेरणा करते हैं । आप ही संसार को नियम में चलाते हैं तथा ऐश्वर्य देनेवाले विज्ञान की रक्षा करते हैं ॥२॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

७५५—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर के (प्रत्नां) सनातन (अनु) अनुकूलता से (द्युतं) तेजस्वी (शुक्रं) शुद्ध (दुदुह्रे) दोहन करते हैं (अह्रयः) ज्ञानीजन (पयः) ज्ञान को (सहस्रसाम्) असंख्य कार्यों के साधक (ऋषिं) बोध कराने वाले ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानीजन परमेश्वर के सनातन, शुद्ध, तेजस्वी असंख्य कार्यों के साधक और बोध कराने वाले ज्ञान का दोहन करते हैं ॥१॥

७५६—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२॥

पदार्थ—(अयं) यह परमेश्वर (सूर्य इव) सूर्य के समान (उपदृग्) उपद्रष्टा (अयं) यह (सरांसि) वाणियों को (धावति) पवित्र करता है (सप्त) भूः आदि सात लोकों में (प्रवते) व्यापक है (आदिवम्) द्यौ लोक से अतिरिक्त भी ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य के समान सब का द्रष्टा है । यह हमारी वाणियों को पवित्र करता है । यही भू आदि सात लोकों और द्युलोक आदि से परे भी व्यापक है ॥२॥

७५७—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र
अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

पदार्थ—(अयं) यह (विश्वानि) सकल (तिष्ठति) वर्तमान है (पुनानः)

पवित्र करता हुआ (भुवना) लोकों के (उपरि) ऊपर (सोमः) परमेश्वर (देवः) प्रकाशस्वरूप (न) समान (सूर्यः) सूर्य के ॥३॥

भावार्थ—सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप परमेश्वर सारे लोकों को पवित्र करता हुआ उनके ऊपर विराजमान है ॥३॥

७५८—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३१ २ ३ २   १ २ ३ १ २
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह परमेश्वर (प्रत्नेन) पुराने (जन्मना) नाम और कर्म से (देवः) प्रकाशस्वरूप (देवेभ्यः) सब देवों में (सुतः) प्रसिद्ध (हरिः) अज्ञान को नाश करनेवाला (पवित्रे) उत्तम गुण कर्म स्वभाववाले को (अर्षति) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थ—अपने सनातन नाम और कर्म के द्वारा सब देवों में प्रसिद्ध, अज्ञान का नाश करनेवाला परमात्म देव पवित्र आत्माओं को प्राप्त होता है ॥१॥

७५९—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २र
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह जीव (प्रत्नेन) सनातन (मन्मना) ज्ञानवान् (देवः) देव (देवेभ्यः)समस्त देवों के(परि) परे वर्तमान (कविः) मेधावी (विप्रेण) परमेश्वर के द्वारा (वावृधे) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—यह बुद्धिमान् देवस्वरूप जीव सनातन, ज्ञानमय तथा समस्त देवों से परे विद्यमान परमेश्वर के द्वारा अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ॥२॥

७६०—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १   २र ३ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे । क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥३॥

पदार्थ—(दुहानः) परिपूर्ण करता हुआ (प्रत्नं) सनातन (इत्) ही (पयः) ज्ञान को (पवित्रे) पवित्र आत्मा में (परिषिच्यसे) भली भांति सिंचन करता है (क्रन्दं) नामों का उच्चारण करता हुआ (देवान्) देवों को (अजीजनः) उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू सनातन वेदज्ञान को भली-भांति पूर्ण करता हुआ पवित्र आत्माओं में उसका उपदेश करता है और उस के द्वारा नामों का उच्चारण करता हुआ समस्त दिव्य पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥३॥

७६१—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   १ २   ३ २ ३ २
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे । पवमान विदा रयिम् ॥१॥

पदार्थ—(उपशिक्षा) शिक्षा दे (अपतस्थुषः) विपरीत मार्ग पर चलने-वाले मनुष्यों को (भियसम्) भय (आधेहि) दे (शत्रवे) शत्रु को (पवमान) हे पवित्रकर्ता परमेश्वर (विदा) प्राप्त करा (रयिम्) सम्पत्ति को ॥१॥

भावार्थ—हे पतितपावन परमेश्वर ! हम में से कुपथ पर चलने वाले मनुष्यों को शिक्षा दे और शत्रुता करने वाले को भय दे। हमें सम्पदायें प्राप्त करा ॥१॥

७६२—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १   २र   १ २ ३ १ २
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (सुजातं) जनक (अप्तुरं) शुभ कर्मों का प्रेरक (गोभिः) वेदवाणियों से (भङ्गं) बुराइयों को दूर करने वाले (परिष्कृतं) सुशोभित (इन्दुं) परमेश्वर का (देवा) विद्वान् जन (अयासिषुः) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानीजन सृष्टिकर्त्ता, शुभकर्मों के प्रेरक, दुर्गुणनिवारक तथा वेदवाणी से युक्त परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥२॥

७६३—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २र
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥३॥

पदार्थ—(उप) समीप (अस्मै) इस (गायता) गान करो (नरः) हे मनुष्यो (पवमानाय) पवित्रकारक (इन्दवे) परम ऐश्वर्यवान् (अभि) सब प्रकार से (देवान्) देवों को (इयक्षते) यज्ञादि से तृप्त करनेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! देवों को यज्ञादि से तृप्त करनेवाले, पवित्रकारक, परमैश्वर्यवान् विद्वान् का आदर करो ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

७६४—*श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।*

१   २र   ३ २ ३ १ २   ३ १ २   १ २   ३ १ २
प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) शान्तस्वभाव पुरुष (विपश्चितः) बुद्धिमान् (अपः) परमेश्वर को (नयन्ते) प्राप्त करते हैं (ऊर्मयः) तरंगें (वनानि) जलों को (महिषा) महान् (इव) जैसे ॥१॥

भावार्थ—महान् तरंगें जिस प्रकार जलों को प्राप्त करती हैं वैसे ही विद्वान् पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥१॥

७६५—*श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।*

३ १   २र   ३ १ २ ३ २ ३ २ ३   १ २   २ ३ १ २
अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥

पदार्थ—(अभि) लक्ष्य कर (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों को (बभ्रवः) दीप्त (शुक्राः) शुद्ध पुरुष (ऋतस्य) परमेश्वर की (धारया) वाणी के द्वारा (वाजं) ज्ञान को (गोमन्तं) प्रकाशमय (अक्षरन्) प्राप्त करते हैं ॥ २॥

भावार्थ—तेजस्वी और पवित्र पुरुष अपने गन्तव्य पथ को लक्ष्य कर परमेश्वर की वेदवाणी के द्वारा प्रकाशमय ज्ञान को प्राप्त करते हैं ॥२॥

७६६—*श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।*

३ १   २र ३ २ ३ १ २   ३ १ २   १ २   ३ १ २
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥३॥

पदार्थ—(सुताः) उत्पन्न (इन्द्राय) विद्युद्विद्या के लिए (वायवे) वायुविज्ञान के लिए (वरुणाय) जलविज्ञान के लिए (मरुद्भ्यः) सुवर्ण खनिज पदार्थों के लिए (सोमाः) शास्त्रीय ज्ञान (अर्षन्तु) अग्रसर हों (विष्णवे) यज्ञ तथा व्यापक परमेश्वर के लिए ॥३॥

भावार्थ—हमारे शास्त्रीय विचार विद्युत्, वायु, जल, सुवर्ण आदि खनिज पदार्थ तथा यज्ञ और व्यापक परमेश्वर के ज्ञान के लिए हों ॥३॥

७६७—*सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।*

१ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

३ १   २र   ३ १   २र ३ २ ३ १ २   ३ १ २
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोम) हे जीव (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (सिन्धुः) समुद्र के (न) समान (पिप्ये) पूर्ण किया जाता है (अर्णसा) जल से (अंशोः) व्यापक [परमेश्वर] के (पयसा) ज्ञान से (मदिरः) प्रसन्न (न) और (जागृविः) चेतन स्वरूप (अच्छा) प्राप्त कर (कोशं) कोश को (मधुश्चुतम्) आनन्दमय ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! तू दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए, जल से समुद्र की भांति व्यापक परमेश्वर के ज्ञान से परिपूर्ण होता है। प्रसन्न और चेतन स्वरूप होता हुआ आनन्दमय कोश को प्राप्त कर ॥१॥

७६८—*सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।*

१ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ २ ३ १   २र
आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।

१ २   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १   २र
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (हर्यतः) अज्ञाननाशक (अर्जुनः) प्रकाशमान (अत्के) व्यक्त संसार में (अव्यत) व्यापक होकर विद्यमान है (प्रियः) प्यारे (सूनुः न) सूर्य के समान (मर्ज्यः) शुद्धिकारक (तं) उस परमेश्वर को (ईम्) निश्चय ही (हिन्वन्ति) प्राप्त करते हैं (अपसः) निष्काम कर्म करनेवाले (यथा) जैसे (रथं) नौका आदि को (नदीषु) नदियों में (आ) सब प्रकार से (गभस्त्योः) हाथों के द्वारा ॥२॥

भावार्थ—अज्ञान का नाश करनेवाला, भक्तजनों का प्यारा प्रभु प्रकाशमान और शुद्धिकारक सूर्य के समान व्यक्त संसार में व्यापक हो रहा है। पार जाने वाला हाथों के द्वारा नदियों में नौका के समान, निष्काम कर्म करनेवाले [संसार सागर को पार करने के लिए] परमेश्वर का सहारा लेते है ॥२॥

७६९—*श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।*

१ [२र   ३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ १ २
प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) उत्पन्न संसारी पदार्थ (मदच्युतः) आनन्ददायक (श्रवसे) यश के लिए (नः) हमारे (मघोनां) यज्ञ करनेवाले (सुताः) प्रसिद्ध (विदथे) संसार में (अक्रमुः) प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—संसार में प्रसिद्ध आनन्ददायक सांसारिक पदार्थ हम यज्ञ करने-वालों को कीर्ति के लिए प्राप्त होते हैं ॥१॥

७७०—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २२ ३ १ २२ ३ २ २ ३ १ २२
आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ।।२।।

पदार्थ—(आत्) निरन्तर (ईं) यह (हंसः) जीव (यथा) जैसे (गणं) इन्द्रिय समूह को (विश्वस्य) सारे संसार की (अवीवशत्) वश में करता है (मतिं) बुद्धि को (अत्यो न) आकाश के समान (गोभिः) शब्दों के द्वारा (अज्यते) जाना जाता है ।।२।।

भावार्थ—परमेश्वर इन्द्रियों को जीव के समान, सारे संसार की बुद्धि को निरन्तर वश में करता है । शब्द द्वारा आकाश के समान वेदवाणी के द्वारा उसी का अनुमान होता है ।।२।।

७७१—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २ ३ १ २ ३ १ २
आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ।।३।।

पदार्थ—(आत्) निरन्तर (ईं) इस (त्रितस्य) तीनों कालों में विद्यमान परमेश्वर की (योषणः) संयोजक और विभाजक शक्तियां (हरिं) वायु को (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं (अद्रिभिः) मेघों से युक्त (इन्दुं) चन्द्रमा को (इन्द्राय) जीव की (पीतये) रक्षा के लिए ।।३।।

भावार्थ—तीनों कालों में विद्यमान परमेश्वर की संयोजक और विभाजक शक्तियां मेघों से युक्त वायु तथा चन्द्र को भी जीवात्मा की रक्षा के लिए चलाती हैं ।।३।।

७७२—श्यावाश्वः । सोमः । उष्णिक् ।

१ १ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
अया पवस्व देवयु रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोर्धारा असृक्षत ।।१।।

पदार्थ—(अया) इस वेदवाणी से (पवस्व) हमें पवित्र कर (देवयुः) तू संसार की दिव्य शक्तियों का संयोजक है (रेभन्) ज्ञान का उपदेश करता हुआ (पवित्रं) पवित्रात्मा को (पर्येषि) प्राप्त होता है (विश्वतः) सब प्रकार से (मधोः) आनन्द की (धाराः) धाराएँ (असृक्षत) बहाता है ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दिव्य शक्तियों का संयोजक है । तू वेदों का उपदेश करता हुआ पवित्र आत्माओं को सब प्रकार से प्राप्त होता है और आनन्द की धाराएँ बहाता है । अतः हमें वेदवाणी के द्वारा पवित्र कर ।।१।।

७७३—प्रजापतिः । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ।।२।।

पदार्थ—(पवते) पवित्र करता है (हर्यतः) मोक्ष की इच्छा करनेवाला (हरिः) ज्ञानी पुरुष (अति) परित्याग कर (ह्वरांसि) कुटिलता को (रंह्या) शीघ्रता से (अभ्यर्षन्) प्राप्त करता हुआ (स्तोतृभ्यः) ईश्वर की उपासना करनेवालों से (वीरवत्) वीरता युक्त (यशः) यश को ।।२।।

भावार्थ—मोक्ष की इच्छा करनेवाला ज्ञानी पुरुष ईश्वर भक्तों से वीरतायुक्त यश को प्राप्त करता हुआ कुटिलताओं को शीघ्रता से छोड़ देता है ।।२।।

७७४—अम्बरीषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२
प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।

२ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २२
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ।।३।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सुन्वानाय) सृष्टिकर्त्ता [परमेश्वर की] (अन्धसः) अज्ञान से (मर्तः) मनुष्य (न) नहीं (वष्ट) चाहता (तद्) प्रसिद्ध (वचः) वेदवाणी (अप) अलग (श्वानम्) कुत्ते के समान (अराधसं) भगवान् की भक्ति नहीं करनेवाले को (हत) दूर करो (मखं) सकाम कर्म के (न) समान (भृगवः) ब्रह्मज्ञानी जन ।।३।।

भावार्थ—हे विद्वान् जन ! जो मनुष्य अज्ञान से सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की प्रसिद्ध वेदवाणी को नहीं मानता है और भगवान् की भक्ति नहीं करता उस कुत्ते के स्वभाव वाले पेटपोषक मनुष्य का परित्याग कर दो । जैसे ब्रह्मज्ञानी सकाम कर्म का परित्याग कर देता है ।।३।।

द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।।

卐

तृतीयोऽध्यायः

७७५—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ।।१।।

पदार्थ—(पवस्व) ज्ञान कराता है (वाचः) ऋग्, यजुः, साम, अथर्वरूप वाणियों का (अग्रियः) सबसे प्रथम विद्यमान (सोम) हे परमेश्वर ! (चित्राभिः) नाना प्रकार की (ऊतिभिः) रक्षाओं से [युक्त] (अभि) लक्ष्य कर (विश्वानि) सारे (काव्या) काव्यों को ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू नाना प्रकार की रक्षाओं से युक्त और सबसे प्रथम विद्यमान है । तू ही समस्त काव्यों से परिपूर्ण वेदवाणियों का उपदेश करता है ।।१।।

७७६—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २ १२
त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्षणे ।।२।।

पदार्थ—(त्वं) तू (समुद्रिया) आकाशीयों (अपः) क्रियाओं को (अग्रियः) आदिकारण (वाचः) वेदवाणियों की (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ (पवस्व) पवित्र कर (विश्वचर्षणे) हे विश्व के साथी ।।२।।

भावार्थ—हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर ! तू आदिकारण है । आकाशीय क्रियाओं और वेदवाणियों की प्रेरणा करता हुआ हमें पवित्र कर ।।२।।

७७७—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ ३ १ २२ ३ १ २ १२ ३ १ २
तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ।।३।।

पदार्थ—(तुभ्यं) तेरी (इमाः) ये (भुवना) लोकलोकान्तर (कवे) हे सर्वज्ञ (महिम्ने) महिमा से (सोम) हे परमेश्वर (तस्थिरे) स्थित हैं (तुभ्यं) तुझे ही (धावन्ति) प्राप्त होती हैं (धेनवः) वाणियां ।।३।।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तेरी महिमा [सामर्थ्य] से सारे लोकलोकान्तर स्थित हैं । हमारी स्तुतियां तुझे ही प्राप्त होती हैं ।।३।।

७७८—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २ ३ २ ३ १ २
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ।।१।।

पदार्थ—(पवस्व) हमें पवित्र कर (इन्दो) हे परमेश्वर (वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (सुतः) संसार का उत्पादक (कृधी) कर (नः) हमें (यशसः) यशस्वी (जने) जनता में (विश्वा) सारे (अप) पृथक् (द्विषः) धर्म से द्वेष करनेवालों को (जहि) दूर कर ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब कामनाओं की वर्षा करनेवाला और सृष्टिकर्त्ता है । तू हमें पवित्र कर । जनता में यशस्वी बना । धर्म से द्वेष करनेवालों को हमसे परे कर ।।१।।

७७९—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ १२ ३ १ २ ३ २
यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः । तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।।२।।

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) तेरे (सख्ये) मित्रता में (वयं) हम (सासह्याम) दूरभगाते (पृतन्यतः) काम-क्रोधादि शत्रुओं को (तव) तेरे (इन्दो) हे परमेश्वर ! (द्युम्ने) यश में (उत्तमे) सबसे श्रेष्ठ ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी मित्रता और उत्तम यश में रहते हुए हम, काम, क्रोध आदि शत्रुओं को दूर भगाते हैं ।।२।।

७८०—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १२ ३ २
या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ।।३।।

पदार्थ—(या) जो (ते) तेरी (भीमानि) भयानक (आयुधा) विनाशकारी शक्तियां (तिग्मानि) अत्यन्त तीक्ष्ण [असह्य] (सन्ति) हैं (धूर्वणे) हिंसकों के वध के लिए (रक्षा) रक्षा कर (समस्य) सब (नः) हमारी (निदः) निन्दाओं से ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त हिंसकों के विनाश के लिए जो तेरी अत्यन्त तीक्ष्ण और भयदायिनी विनाशकारिणी शक्तियाँ हैं उनके द्वारा हिंसा करने की सारी निन्दाओं से हमें बचा ।।३।।

७८१—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) ज्ञान की वर्षा करनेवाला (सोम) हे ज्ञानी पुरुष (द्युमां) तेजस्वी (असि) है (वृषा) बलिष्ठ (देव) पूज्य (वृषव्रतः) धर्म के व्रती (वृषा) सुखकारी (धर्माणि) धर्मों को (दध्रिषे) धारण करता है ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! ज्ञान की वर्षा करनेवाला तू तेजस्वी है। हे पूज्य ! स्वयं बलवान् तू धर्म का व्रत धारण करनेवाला तथा सुखकारी है। तू ही सत्य आदि धर्मों को धारण करता है ॥१॥

७८२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २र
वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः । स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थ—(वृष्णः) आनन्द की वर्षा करनेवाले (ते) तेरा (वृष्ण्यं) बल की वर्षा करनेवाला (शवः) बल (वृषा) ज्ञान की वर्षा करनेवाला (वनं) भजन (वृषा) सुख की वर्षा करनेवाला (सुतः) संसार (सः) वह (त्वं) तू (वृषन्) हे सकल कामनाओं की वर्षा करनेवाले (वृषा) धर्म की वर्षा करनेवाला (इत्) ही (असि) है ॥२॥

भावार्थ—हे सकल कामनाओं की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तेरा बल आनन्द की वर्षा करनेवाला है। तेरा भजन ज्ञान का दान करने वाला है। तेरा संसार सुखदायक है। तू स्वयं धर्म की वर्षा करनेवाला ही है ॥२॥

७८३—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र १ २ ३ १ २र
अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्द्रो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थ—(अश्वः) महान् विद्वान् के समान (चक्रदः) वेदों का उपदेश करता है (वृषा) मनोरथों की वर्षा करनेवाला (सम्) सम्यक् (गाः) गौ आदि पशुओं को (इन्दो) हे परमेश्वर (सम्) सम्यक् प्रकार (अर्वतः) घोड़ों को (वि) विशेष रूप से (नः) हमारे (राये) संपदा के लिए (दुरः) द्वारों को (वृधि) बढ़ा ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महान् विद्वान् के समान वेदों का उपदेश करता है। सकल मनोरथों की वर्षा करनेवाला तू हमें गाय और घोड़े आदि पशुओं को दे तथा हमारे धन-प्राप्ति के द्वारों को भी खोल दे ॥३॥

७८४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) ज्ञान की वर्षा करनेवाला (हि) निश्चित (असि) है (भानुना) कान्ति से (द्युमन्तं) चमकने वाले (त्वा) तुझे (हवामहे) आदरपूर्वक बुलाते हैं (पवमान) हे पवित्रात्मा (स्वर्दृशम्) सुखस्वरूप परमात्मा का साक्षात् करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे पवित्रात्मा ज्ञानी पुरुष ! तू निश्चित ही ज्ञान की वर्षा करने वाला है। अपने तेज से प्रकाशमान, और सुखस्वरूप परमेश्वर का साक्षात् करानेवाले तुझको हम आदर से बुलाते हैं ॥१॥

७८५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः । द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जबकि (अद्भिः) निष्काम कर्मों से (परिषिच्यसे) संयुक्त होता है (मर्मृज्यमानः) पवित्र किया हुआ (आयुभिः) ज्ञानी मनुष्यों द्वारा (द्रोणे) गन्तव्य मार्ग में (सधस्थं) सर्वदा साथ विद्यमान परमेश्वर को (अश्नुषे) प्राप्त करता है ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! तू ज्ञानी मनुष्यों द्वारा पवित्र किया जाता हुआ जब निष्काम कर्मों को करता है, तब गन्तव्य मार्ग पर आरूढ होकर सर्वदा साथ में विद्यमान परमेश्वर को प्राप्त करता है ॥२॥

७८६—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (पवस्व) प्राप्त करा (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम को (मन्दमानः) आनन्दित करता हुआ (स्वायुध) हे मनुष्यमात्र के रक्षक (इह) इसी जन्म में (उ) निश्चय ही (सु) अच्छी तरह (इन्दो) हे परमेश्वर (आगहि) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यमात्र के रक्षक परमेश्वर ! तू हमें आनन्दित करता हुआ उत्तम पराक्रम प्रदान कर और तू हमें निश्चित रूप से इसी जन्म में प्राप्त हो ॥३॥

७८७—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥१॥

पदार्थ—(पवमानस्य) पवित्र करनेवाले (ते) तेरी (वयं) हम लोग (पवित्रं) पवित्र (अभ्युन्दतः) आनन्द रस से सब को सींचनेवाले (सखित्वं) मित्रता को (आवृणीमहे) सब प्रकार से वरण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—आनन्दरस से सबको सींचने तथा पवित्र करनेवाले परमेश्वर ! आप की विशुद्ध मित्रता को हम लोग चाहते हैं ॥१॥

७८८—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
ये ते पवित्रमूर्मयो ऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (ते) तेरे पवित्र ज्ञान का (ऊर्मयः) अपार ज्ञान की लहरें (अभिक्षरन्ति) टपकाती हैं (धारया) शब्द के द्वारा (तेभिः) उनसे (नः) हमें (सोम) हे परमेश्वर (मृडय) सुखी कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे अगाध ज्ञान की जो लहरें शब्द के द्वारा पवित्र ज्ञान को भली प्रकार टपकाती हैं, उनसे हमें सुखी कर ॥२॥

७८९—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह तू (नः) हमें (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आभर) भरपूर कर (रयिं) धनसे (वीरवतीम्) वीर पुत्र आदि से युक्त (इषं) विज्ञान से (ईशानः) स्वामी (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) सम्पूर्ण चराचर का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पवित्रकारक और चराचर का स्वामी है। तू हमें वीर पुत्रादि युक्त धन और विज्ञान से भरपूर कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

७९०—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्निं) आत्मा को (दूतं) बुराइयों को दूर करानेवाले (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (होतारं) ग्रहण करनेवाले (विश्ववेदसं) संसार को प्राप्त होनेवाले (अस्य) इस (यज्ञस्य) उपासनारूप यज्ञ के (सुक्रतुं) अच्छी तरह करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—बुराइयों को दूर करनेवाले, सब पदार्थों के ग्रहण करनेवाले, संसार को प्राप्त होनेवाले तथा इस उपासनारूप यज्ञ के कर्त्ता आत्मा को हम स्वीकार करते हैं ॥१॥

७९१—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्निं) प्रकाशस्वरूप (अग्निं) परमेश्वर को (हवीमभिः) उपासनाओं के द्वारा (सदा) सर्वदा (हवन्त) स्मरण करो (विश्पतिम्) समस्त प्रजाओं के पालक (हव्यवाहं) भोग्य वस्तुओं के दाता (पुरुप्रियं) सर्वप्रिय ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम प्रकाशस्वरूप, प्रजाओं के पालक, भोग्य वस्तुओं के दाता तथा सर्वप्रिय परमेश्वर को उपासनाओं द्वारा सदा स्मरण करो ॥२॥

७९२—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (देवान्) दिव्य गुणों को (इह) ज्ञानयज्ञ में (आवह) प्राप्त करो (जज्ञानः) सबका जनक (वृक्तबर्हिषे) उपासक के लिए (असि) है (होता) सब वस्तुओं का दाता (नः) हमारा (ईड्यः) उपास्य देव ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सृष्टिकर्त्ता तथा सब कुछ देनेवाला तू हमारा उपास्य देव है। तू इस उपासना रूप यज्ञ में उपासक को दिव्यगुणों से युक्त कर ॥३॥

७९३—मेधातिथिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ॥१॥

पदार्थ—(मित्रं) प्राण (वयं) हम (हवामहे) ग्रहण करते हैं (वरुणं) अपान को (सोमपीतये) शरीर की रक्षा के लिए (या) जो दोनों (जाता) उत्पन्न हुए (पूतदक्षसा) पवित्र पराक्रम प्रदान करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हम पवित्र पराक्रम प्रदान करनेवाले प्रसिद्ध प्राण और अपान को शरीर की रक्षा के लिए ग्रहण करते हैं ॥१॥

७९४—मेधातिथिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥२॥

पदार्थ—(ऋतेन) सत्य नियम से (यौ) जो दोनों (ऋतावृधौ) जल को बढ़ानेवाले (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमेश्वर के (ज्योतिषः) प्रकाश के (पती) रक्षक (तौ) उन दोनों (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण अर्थात् प्राण और उदानरूप दो वायुओं को (हुवे) प्रयोग में लाता हूँ ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियम से जल को बढ़ानेवाले तथा प्रकाश के रक्षक मित्र और वरुण [प्राण और उदान] वायुओं को मैं प्रयोग में लाता हूँ ॥२॥

७९५—मेधातिथिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१२ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १२ ३ १२
वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥३॥

पदार्थ—(वरुणः) वायु (प्र) प्रकृष्टरूप से (अविता) रक्षक (भुवत्) होती है। (मित्रः) सूर्य (विश्वाभिः) सारी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (करताम्) करते हैं (नः) हमें (सुराधसः) संपदाओं से युक्त ॥३॥

भावार्थ—सूर्य और वायु सारी रक्षाओं से हमारे रक्षक होते हैं और हमें संपदाओं से युक्त करते हैं ॥३॥

७९६—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३१ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २ २३ १ २
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रं) आत्मा को (इत्) ही (गाथिनः) सामवेदी लोग (बृहत्) सामगानों से (इन्द्रं) आत्मा को ही (अर्केभिः) ऋचाओं से (अर्किणः) ऋग्वेदी लोग (इन्द्रं) आत्मा को (वाणीः) यजु के मंत्रों से (अनूषत) वर्णन करते हैं ॥१॥

भावार्थ—सामवेदी, ऋग्वेदी तथा यजुर्वेदी लोग साम, ऋक् तथा यजुः मन्त्रों द्वारा आत्मा का वर्णन करते हैं ॥१॥

७९७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२३ २उ ३ २३१२ ३ १ २३१२ १२३ १ २३१२
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) जीवात्मा (इत्) ही (हर्योः) प्राण और जाठराग्नि को (सचा) एकसाथ (सम्मिश्लः) मिलाने वाला है (आ) भली भांति (वचोयुजा) वाणी को जोड़नेवाले (इन्द्रः) जीवात्मा (वज्री) कामादि शत्रुओं को दूर करनेवाला (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ॥२॥

भावार्थ—जीवात्मा ही वाणी को जोड़नेवाले प्राण और जाठराग्नि को एक साथ मिलानेवाला है। वह कामादि शत्रुओं को दूर करनेवाला और प्रकाश स्वरूप है ॥२॥

७९८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे वीर पुरुष (वाजेषु) संग्रामों में (नः) हमारी (अव) रक्षा कर (सहस्रप्रधनेषु) लोकयात्रा के संग्रामों में (च) भी (उग्र) हे अत्यन्त बलशाली (उग्राभिः) प्रचण्ड (ऊतिभिः) रक्षाओं से ॥३॥

भावार्थ—हे अत्यन्त बलशाली वीर पुरुष ! संग्रामों और लोक यात्राओं में प्रचण्ड रक्षा के साधनों से हमारी रक्षा कर ॥३॥

७९९—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २३२३१२३ १ २र ३ २ २उ ३ १ २
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर ने (दीर्घाय) दूर दूर तक (चक्षसे) देखने के लिए (आ) अच्छी तरह (सूर्यं) सूर्य को (रोहयत्) उत्पन्न किया (दिवि) द्युलोक में (वि) विशेषरूप से (गोभिः) किरणों से (अद्रि) मेघ को (ऐरयत्) प्रेरित करता है ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वर ने दूर दूर तक लोगों के देखने के लिए आकाश मण्डल में सूर्य को उत्पन्न किया । सूर्य अपनी किरणों से मेघ को प्रेरित करता है ॥४॥

८००—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१२३ १ २र३१ २३१ २र ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रे) विद्वान् पुरुष की सेवा में (अग्ना) और परमेश्वर की शरण में (नमः) नमस्कार (बृहत्) पर्याप्त (सुवृक्ति) मनोहर स्तुति का (एरयामहे) प्रयोग करते हैं (धिया) बुद्धि से युक्त (धेना) वाणी को (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहने वाले ॥१॥

भावार्थ—अपनी रक्षा चाहनेवाले हम विद्वान् पुरुष की सेवा में तथा परमेश्वर की शरण में पर्याप्त नमस्कार और स्तुतियों का प्रयोग करते हैं ॥१॥

८०१—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३१२ ३२ ३ १ २
ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये॥२॥

पदार्थ—(ता) उन दोनों [विद्वान् और परमेश्वर] की (हि) निश्चित-रूप से (शश्वन्तः) बहुत से (ईडते) स्तुति करते हैं (इत्था) इस प्रकार से (विप्रासः) मेधावी जन (ऊतये) रक्षा के लिए (सबाधः) बाधा से युक्त (वाजसातये) ज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—बाधाओं के आ पड़ने पर मेधावी जन इस प्रकार से अपनी रक्षा, ज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए विद्वान् पुरुष और परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥२॥

८०२—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३१ २३२३ १२ ३१२ ३ १ २
ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥३॥

पदार्थ—(ता) उन (वां) तुम दोनों की (गीर्भिः) वेदवाणियों के द्वारा (विपन्युवः) ज्ञानी (प्रयस्वन्तः) प्रयत्नशील (हवामहे) स्तुति करते हैं (मेधसाता) यज्ञसिद्धि के विषय में (सनिष्यवः) तुम्हारे भजन की इच्छा करने-वाले ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष और परमेश्वर ! प्रयत्नशील, तुम्हारी भक्ति चाहनेवाले, तथा ज्ञानी हम लोग यज्ञ की सिद्धि के लिए तुम दोनों की स्तुति करते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

८०३—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) कामनाओं की वृष्टि करनेवाला (पवस्व) पवित्र कर (धारया) वेदवाणी से (मरुत्वते) यज्ञ के लिए (च) और (मत्सरः) आनन्ददाता (विश्वा) समस्त लोकों को (दधानः) धारण करता हुआ (ओजसा) अपनी शक्ति से ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपनी शक्ति से सारे संसार को धारण करता हुआ, आनन्ददायक है तथा हमारी कामनाओं को सफल करता है । तू यज्ञ की सिद्धि के लिए वेदवाणी से हमें पवित्र कर ॥१॥

८०४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३ऽपवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥२॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तुझे (धर्त्तारं) धारण करनेवाले (ओण्योः) द्यु और पृथिवीलोक (पवमान) हे पवित्र करनेवाले [सोम] (स्वर्दृशम्) सब के साक्षी (हिन्वे) प्राप्त करता हूँ (वाजेषु) संग्रामों में (वाजिनं) बलवान् ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक परमेश्वर ! द्यु और पृथिवीलोक के धारण करने-वाले, सबके साक्षी तथा बलवान् तुझे मैं संग्राम में प्राप्त करूँ ॥२॥

८०५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥३॥

पदार्थ—(अया) ज्ञान से पूर्ण (चित्तः) चेतनस्वरूप (विपा) विशेष रूप से संसार की रक्षा करनेवाली (अनया) इस (हरिः) अज्ञान के हरण करने-वाला (पवस्व) [हमें] पवित्र कर (धारया) वेदवाणी से (युजं) योग की (वाजेषु) जीवन-संग्रामों में (चोदय) प्रेरणा कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू चेतनस्वरूप और अज्ञाननाशक है । तू ज्ञानपूर्ण तथा विशेषरूप से संसार की रक्षा करनेवाली वेदवाणी के द्वारा हमें पवित्र कर और जीवन संग्रामों में युक्त होने की प्रेरणा कर ॥३॥

८०६—उपमन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२३ १ २ ३१२ ३ २ ३१२ ३ २३२
वृषा शोणो अभि कनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
१२ ३१ २र ३ १ २३१२ ३ २३२
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) ज्ञान की वर्षा करनेवाला (शोणः) विद्वान् जैसे (अभि) लक्ष्यकर (कनिक्रदत्) उपदेश करता है (गाः) वेदवाणियों का [वैसे ही] (नदयन्) अव्यक्त रूप से [ज्ञान का] उपदेश करता हुआ (एषि) व्यापक हो रहा है (पृथिवी) पृथिवीलोक में (उत) और (द्यां) द्युलोक में (इन्द्रस्य) सेनापति के (इव) समान (वग्नुः) वाणी के (आशृण्वे) भली-भाँति सुनता हूँ (आजौ) संग्राम में (प्रचोदयन्) प्रेरणा करता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है (वाचं) वाणी का (आ) भली भांति (इमाम्) इस ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! ज्ञान की वर्षा करनेवाला ज्ञानी जिस प्रकार वेदों का उपदेश करता है, उसी प्रकार वेदज्ञान का अव्यक्त रूप से उपदेश करता हुआ तू पृथिवी तथा द्युलोक में व्यापक हो रहा है । तू जिस वेदवाणी का उपदेश करता

हुआ हमें प्राप्त होता है, उसको हम संग्राम में सेनापति की आज्ञा के समान मानते हैं ।।१।।

८०७—उपमन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ र ३ १ २

पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ।।२।।

पदार्थ—(**रसाय्यः**) भक्तिरस से परिपूर्ण (**पयसा**) ज्ञान से (**पिन्वमानः**) सिंचन किया जाता हुआ (**ईरयन्**) प्रेरणा करता हुआ (**एषि**) प्राप्त होता है (**मधुमन्तं**) विज्ञानमय (**अंशुम्**) प्रकाश को (**पवमानः**) पवित्र स्वभाव (**सन्तनिम्**) विस्तार (**एषि**) प्राप्त करता है (**कृण्वन्**) करता हुआ (**इन्द्राय**) परमात्मा को (**सोम**) हे ज्ञानी पुरुष (**परिषिच्यमानः**) भली भांति भरपूर किया हुआ ।।२।।

भावार्थ—हे पवित्रस्वभाव ज्ञानी पुरुष ! तू भक्तिरस से परिपूर्ण तथा ज्ञान से सिंचन किये गये विज्ञानमय प्रकाश को प्रेरणा करता हुआ प्राप्त होता है । तू संपूर्ण गुणों से भरपूर शुभ कर्मों का विस्तार करता हुआ परमेश्वर को प्राप्त करता है ।।२।।

८०८—उपमन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ।।३।।

पदार्थ— (**एवा**) इस प्रकार (**पवस्व**) पवित्र कर (**मदिरः**) आनन्द दाता (**मदाय**) आनन्द के लिए (**उदग्राभस्य**) मेघ को (**नमयन्**) वर्षा के लिए प्रेरित करता हुआ (**वधस्नुं**) ताडन से टपकनेवाले (**परि**) सब प्रकार से (**वर्ण**) वरण करने योग्य [गुण] को (**भरमाणः**) धारण करता हुआ (**रुशन्तं**) प्रकाशमान (**गव्युः**) हमारे लिए गाय आदि का देनेवाला (**नः**) हमें (**अर्ष**) प्राप्त हो (**परि**) सब प्रकार (**सोम**) हे परमेश्वर (**सिक्तः**) आनन्द की वर्षा करनेवाला ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का दाता है । तू सूर्य की किरणों से छिन्न-भिन्न होकर वर्षते हुए मेघ को प्रेरित करता हुआ आनन्द के लिए हमें पवित्र कर । प्रकाशमान वर्णन करने योग्य गुण को धारण करता हुआ, गाय आदि पशुओं का दाता तथा सुख की वर्षा करने वाला तू हमें प्राप्त हो ।।३।।

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

८०९—शंयुः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ।।१।।

पदार्थ—(**त्वां**) तुझे (**इत्**) ही (**हि**) जिस कारण (**हवामहे**) पुकारते हैं (**सातौ**) प्राप्ति में (**वाजस्य**) शास्त्रबोध (**कारवः**) उद्योगी पुरुष (**त्वां**) तुझे (**वृत्रेषु**) दुःखों में (**इन्द्र**) हे आचार्य देव (**सत्पतिं**) सज्जनों के रक्षक (**नरः**) मनुष्य (**त्वां**) तुझे (**काष्ठासु**) प्रत्येक दिशाओं में (**अर्वतः**) अज्ञान के निवारण के लिए ।।१।।

भावार्थ—हे आचार्य देव ! ज्ञान की चिन्ता करनेवाले हम शास्त्रबोध के लिए तुझे ही पुकारते हैं । मनुष्य दुःखों में भी सबके रक्षक रूप से तुझे ही पुकारते हैं । प्रत्येक दिशा में लोग अज्ञान का निवारण तुझ से ही चाहते हैं ।।१।।

८१०—शंयुः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।

१ २र ३क २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ।।२।।

पदार्थ—(**सः**) वह (**त्वं**) तू (**नः**) हमें (**चित्र**) हे अद्भुत (**वज्रहस्त**) तथा योग्य कर्मफल दाता (**धृष्णुया**) दुष्टों का दमन करनेवाला (**महः**) महान् (**स्तवानः**) स्तुति किये जाते हुए (**अद्रिवः**) हे आदरणीय (**गां**) गाय (**अश्वं**) घोड़ा (**रथ्यं**) रथवाहक [रथ ढोने वाले] (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**संकिर**) दे (**सत्रा**) सदा (**वाजं**) अन्न आदि संपत्ति के (**न**) समान (**जिग्युषे**) विजयी पुरुष के लिए ।।२।।

भावार्थ—हे आश्चर्यमय, यथायोग्य कर्मफल दाता, आदरणीय परमेश्वर ! तू महान्, स्तुति के योग्य तथा दुष्टों का दमन करने वाला है । तू विजयी पुरुष के लिए अन्नादि संपत्तियों के समान हमें सदा गौ और घोड़े आदि वाहन साधनों को प्रदान कर ।।२।।

८११—प्रस्कण्वः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसु सहस्रेणेव शिक्षति ।।१।।

पदार्थ—(**अभि**) सब प्रकार से (**प्र**) उत्कृष्ट (**वः**) तुमलोग (**सुराधसं**) सुन्दर धनवान् (**इन्द्रं**) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (**अर्च**) सत्कार करो (**यथाविदे**) यथार्थ लाभ के लिए (**यः**) जो (**जरितृभ्यः**) धर्मात्माओं के लिए (**मघवा**) यश करनेवाला (**पुरूवसुः**) बहुतों को शरण देनेवाला (**सहस्रेण इव**) हजारों प्रकार से (**शिक्षति**) देता है ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग यथार्थ लाभ के लिए उस धनी पुरुष का आदर करो जोकि यज्ञ कर्त्ता, बहुतों को शरण देन वाला तथा धर्मात्माओं को सहस्रों प्रकार से धन प्रदान करता है ।।१।।

८१२—प्रस्कण्वः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ।।२।।

पदार्थ—(**शतानीका**) सेनाओं के (**इव**) जैसे (**प्रजिगाति**) वीरता से जीतता है (**धृष्णुया**) आक्रमण करनेवाला (**हन्ति**) नाश करता है (**वृत्राणि**) पापरूप विघ्नों को (**दाशुषे**) यजमान के लिए (**गिरेः**) पर्वत से (**इव**) समान (**प्र**) उत्तम (**रसाः**) जल [के] (**अस्य**) इस परमेश्वर के (**पिन्विरे**) बहते हैं (**दत्राणि**)दान (**पुरुभोजसः**) असंख्य धनवाले ।।२।।

भावार्थ—जैसे वीर पुरुष सैंकड़ों सेनाओं पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार परमेश्वर यजमान के पाप रूप विघ्नों को नष्ट करता है । असंख्य धनवाले परमात्मा के दान पर्वत से जल के स्रोत के समान बहते हैं ।।२।।

८१३—नृमेधाः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ १ २

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ।।१।।

पदार्थ—(**त्वां**) तुझे (**इदा**) आज (**ह्यः**) गत दिवस (**नरः**) मनुष्य (**अपीप्यन्**) सत्कार से पुष्ट करते हैं (**वज्रिन्**) हे अविद्यानिवारक (**भूर्णयः**) भरण-पोषण करनेवाले [गृहस्थ] (**सः**) वह (**इन्द्रः**) हे ज्ञानीपुरुष (**स्तोमवाहसः**) स्तोत्रों को जाननेवाले (**इह**) इस विषय में (**श्रुधि**) हमारी प्रार्थना सुनो (**उप**) समीप (**स्वसरं**) गृह पर (**आगहि**) आओ ।।१।।

भावार्थ—हे अविद्यानिवारक, ज्ञानी पुरुष ! भरण-पोषण करनेवाले सर्वदा तेरा सत्कार करते हैं । तू मुझ स्तोत्रों को जाननेवाले की प्रार्थना सुन और मेरे गृह को आगमन से पवित्र कर ।।१।।

८१४—नृमेधाः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ।।२।।

पदार्थ—(**मत्स्वा**) प्रसन्न हो (**सुशिप्रिन्**) हे व्यापक (**हरिवः**) हे ऋक् और साम वाले (**तं**) उस तुझे (**ईमहे**) प्रार्थना करते हैं (**त्वया**) तुझ से (**भूषन्ति**) सुशोभित होते हैं (**वेधसः**) बुद्धिमान् लोग (**तव**) तेरे (**श्रवांसि**) यश (**उपमानि**) उपमा है (**उक्थ्य**) हे प्रशंसनीय (**सुतेषु**) पुत्रतुल्य जीवों पर (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**गिर्वणः**) हे वेदवाणियों से भजन करने के योग्य ।।२।।

भावार्थ—हे सर्वव्यापक उपास्य, भजन करने योग्य, तथा ऋक् और वाणियों के देनेवाले परमेश्वर ! तुझ से ही विद्वान् लोग सुशोभित होते हैं । तेरी कीर्ति उपमा रूप है [न कि उपमेय] । हम तेरी प्रार्थना करते हैं । तू हम पर प्रसन्न हो ।।२।।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

८१५—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ।।१।।

पदार्थ—(**यः**) जो (**ते**) तेरा (**मदः**) आनन्ददायक [ज्ञान गुण] (**वरेण्यः**) श्रेष्ठ (**तेन**) उससे (**पवस्व**) पवित्र कर (**अन्धसा**) अज्ञान अन्धकार से परे (**देवावीः**) परमेश्वर को प्राप्त करानेवाला (**अघशंसहा**) पापों का निवारक ।।१।।

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! श्रेष्ठ, परमेश्वर को प्राप्त करानेवाला पापनाशक तथा हर्षकारी जो तेरा ज्ञान गुण है, अज्ञान अन्धकार से दूर रहनेवाले उस ज्ञान के द्वारा हमें पवित्र कर ।।१।।

८१६—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १२ ३ १ २

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवे दिवे । गोषातिरश्वसा असि ।।२।।

पदार्थ—(जघ्निः) नाश करनेवाला (वृत्रम्) अज्ञान का (अमित्रियम्) दुःखकारी (सस्निः) साधक (वाजं) अन्न आदि का (दिवे दिवे) प्रति दिन (गोषातिः) गौओं के दाता (अश्वसा) अश्व आदि पशुओं का देनेवाला (असि) है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दुःखदायी अज्ञान का नाशक तथा प्रति दिन अन्नादि पदार्थों का दाता है। तू ही गाय और घोड़े आदि पशुओं का भी देनेवाला है ॥२॥

८१७—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २　३ १ २　३ २ ३ २ ३ १ २
सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
१ २ ३ २उ　१ २
सीद च्छ्येनो न योनिमा ॥३॥

पदार्थ—(सम्मिश्लः) मिलानेवाला (अरुषः) कल्याणकारी (भुवः) हो (सूपस्थाभिः) सुन्दर उपासनावाली (न) समान (धेनुभिः) वाणियों के (सीदन्) स्थित होता हुआ (श्येनः) आत्मा की (न) भांति (योनिं) प्रकृति में (आ) भली प्रकार ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रकृति में आत्मा के समान स्थित होकर तथा उपासना योग्य वेदवाणियों के समान सब कुछ प्राप्त करानेवाला होता हुआ हमारा कल्याणकारी हो ॥३॥

८१८—नहुषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २　३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २　३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥१॥

पदार्थ—(अयं) यह (पूषा) पोषक (रयिः) विद्या का दाता (भगः) ऐश्वर्य वाला (सोमः) विद्वान् पुरुष (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) विचरता है (पतिः) पालक (विश्वस्य) सारे (भूमनः) प्राणियों का (व्यख्यत्) व्याख्यान करता है (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक का (उभे) दोनों ॥१॥

भावार्थ—सबका पोषक, विद्या का दाता, तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष संसार को पवित्र करता हुआ विचरता है। प्राणिमात्र की रक्षा चाहनेवाला यह द्यु और पृथिवी लोक के सारे पदार्थों का ज्ञान कराता है ॥१॥

८१९—नहुषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २　१ २ ३ १ २ ३ १ २
समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
१ २　१ १ २र　३ १ २
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् प्रकार (उ) निश्चित (प्रियाः) मनोहर (अनूषत) वर्णन करती हैं (गावः) वाणियां (मदाय) हमारे आनन्द के लिए (घृष्वयः) ज्ञान का प्रकाश करनेवाली (सोमासः) विद्वान् जन (कृण्वते) करते हैं (पथः) मोक्षपथ का (पवमानासः) पवित्रात्मा (इन्दवः) विद्यारूप ऐश्वर्यवाले ॥२॥

भावार्थ—मनोहर तथा ज्ञान का प्रकाश करनेवाली वेदवाणियां हमारे आनन्द के लिए परमेश्वर का वर्णन करती हैं। पवित्रात्मा, ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष मोक्ष मार्ग का प्रदर्शन करते हैं ॥२॥

८२०—नहुषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१　२र ३ १ २र ३ १ २　३ १ २
य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
१ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो वेद का प्रकाश (ओजिष्ठः) अत्यन्त बलवर्धक है (तं) उसे (आभर) हमें पूर्ण कर (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (श्रवाय्यं) सुनने के योग्य (यः) जो (पञ्चचर्षणीः) पांच प्रकार [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा पांचवां निषाद] के मनुष्यों को (अभि) लक्ष्य कर वर्तमान है (रयिं) धन को (येन) जिसके द्वारा (वनामहे) भागी होते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! जो तेरा वेद का प्रकाश अत्यन्त बलवर्धक तथा पांच प्रकार के मनुष्यों को सदा प्राप्त होता है और जिससे हम धन के भागी होते हैं, श्रवण करने योग्य उससे हमें प्रकाशित कर ॥३॥

८२१—सिकतानिवावरीः । सोमः । जगती ।

१ २　३ १ २　३ २उ　३ १ २　३ १ २र ३ २
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
३ १　२र　३ १ २　३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) इन्द्रियों में शक्तिदेने वाला (मतीनां) ज्ञान आदि का (पवते) संसार को पवित्र करता है (विचक्षणः) द्रष्टा (सोमः) जीवात्मा (अह्नां) दिनों का (प्रतरीता) विस्तार करनेवाला (उषसां) उषा कालों का (दिवः) द्यु लोक का (प्राणा) जीवन देनेवाला (सिन्धूनां) नाड़ियों में (कलशान्) ६४ कलाओं का (अचिक्रदत्) उपदेश करता है (इन्द्रस्य) परमेश्वर की दी हुई (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रविष्ट होता हुआ (मनीषिभिः) मन की सारी शक्तियों के साथ ॥१॥

भावार्थ—इन्द्रियों में शक्ति देनेवाला, ज्ञान आदि का विस्तार करनेवाला, दिन, उषाकाल तथा द्यु आदि लोक का द्रष्टा नाड़ियों में जीवन देनेवाला जीवात्मा मन की सारी शक्तियों के साथ हृदय में प्रविष्ट होता हुआ संसार को पवित्र करता है, और परमेश्वर की दी हुई ६४ कलाओं का उपदेश करता है ॥१॥

८२२—सिकतानिवावरीः । सोमः । जगती ।

३　१ २　३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां असिष्यदत् ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २　३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥२॥

पदार्थ—(मनीषिभिः) मननशील (पवते) पवित्र करता है (पूर्व्यः) सनातन (कविः) सर्वज्ञ (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (यतः) यम आदि साधनों से प्राप्त (परि) सब ओर से (कोशान्) आनन्दमय कोश आदिकों को (असिष्यदत्) सिंचन करता है (त्रितस्य) तीन [स्थूल, सूक्ष्म और कारण] शरीरों में स्थित (नाम) प्रसिद्धि को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (मधु) आनन्द को (क्षरन्) वर्षा करता है। (इन्द्रस्य) जीव के (वायुं) प्राण शक्ति को (सख्याय) सब की मित्रता के लिए (वर्धयन्) बढ़ाता है ॥२॥

भावार्थ—मननशील मनुष्यों के द्वारा यम, नियम आदि साधनों से प्राप्त, सनातन तथा सर्वज्ञ परमेश्वर आनन्दमय आदि कोशों को सींचता है। तीनों शरीरों में निवास करनेवाले जीवात्मा की प्रसिद्धि को उत्पन्न करता, संसार से मित्रता के लिए जीवन शक्ति को बढ़ाता तथा आनन्द की वर्षा करता हुआ सबको पवित्र करता है ॥२॥

८२३—पृश्नयोऽजाः । सोमः । बृहती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २　३ १　२र　३ २
अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
३ २उ　३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३　१ २　३ २
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥३॥

पदार्थ—(अयं) यह (पुनानः) हमें पवित्र करता हुआ (उषसः) प्रातःकालों को (आरोचयत्) प्रकाशित करता है (अयं) यह (सिन्धुभ्यः) सागरों से (अभवद्) होता है (उ) निश्चय ही (लोककृत्) द्वीपों का कर्त्ता (अयं) यह (त्रिःसप्त) अर्थात् एक मन, दश इन्द्रियां और दश प्राण इनको (दुदुहानः) अत्यन्त पूर्ण करता हुआ (आशिरं) भोग्य पदार्थों से (सोमः) परमेश्वर (हृदे) हृदय को (पवते) पवित्र करता है (चारु) अच्छी तरह से (मत्सरः) आनन्द-दाता ॥३॥

भावार्थ—हमें पवित्र करता हुआ परमेश्वर निरन्तर प्रातः कालों को प्रकाशित करता है। वह सागरों के द्वारा द्वीपों का निर्माण करता है। वह भोग्य पदार्थों से हमारे एक मन दश इन्द्रियां तथा दश प्राणों को तृप्त करता तथा हृदय को पवित्र करता है ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

८२४—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १　२र　३ २ ३ १ २र ३ २ ३　२　३ २ ३ २ ३ १ २
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥१॥

पदार्थ—(एवा) निश्चय ही (हि) क्योंकि (असि) है (वीरयुः) वीर पुत्रों की कामना करनेवाला (एवा) निश्चय ही (शूरः) बलवान् (उत) और (स्थिरः) नित्य (एवा) निश्चय ही (ते) तेरा (राध्यं) प्रशंसनीय (मनः) मन शक्ति ॥१॥

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! तू वीरपुत्रों की कामना करनेवाला, बलवान् और नित्य है। तेरा मन भी प्रशंसनीय ही है ॥१॥

८२५—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २　३ १ २　३ १ २　१ २　३ १ २
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥२॥

पदार्थ—(एवा) निश्चय ही (रातिः) दान (तुवीमघ) हे सम्पूर्ण संपदाओं के स्वामी (विश्वेभिः) समस्त (धायि) ग्रहण किया जाता है। (धातृभिः) प्राणिमात्र के द्वारा (अध) और (चिद्) निश्चय ही (इन्द्र) हे परमेश्वर (नः) हमारा (सचा) सहायक हो ॥२॥

भावार्थ—हे सारी सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तेरा दान प्राणिमात्र के ग्रहण करने योग्य है। तू हमारा सहायक हो ॥२॥

८२६—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

२उ ३१२ ३१ २र १२३१२ १२

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते। मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥

पदार्थ—(मा) नहीं (उ) निश्चय ही (सु) अच्छी तरह से (ब्रह्मा) चतुर्वेदज्ञाता विद्वान् (इव) समान (तन्द्रयुः) कुटुम्ब का धारक करनेवाला (भुवः) होता है (वाजानां पते) हे धनों के स्वामी (मत्स्व) सुखी करता है (सुतस्य) उत्पन्न संसार को (गोमतः) गाय आदि पशुओं से युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे समस्त संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू कुटुम्बधारी नहीं है। तू चारों वेदों के ज्ञाता विद्वान् की भांति गाय आदि पशुओं से युक्त संसार को सुखी करता है ॥३॥

८२७—जेता । इन्द्रः अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३१२ ३१२

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।

३१२ ३२३ १२३ १२३१२

रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रं) ज्ञानी पुरुष को (विश्वा) सकल (अवीवृधन्) बढ़ाती हैं (समुद्रव्यचसं) ब्रह्मवित् भक्त (गिरः) वेदवाणियां (रथीतमम्) महारथी (रथीनां) रथी लोगों में (वाजानां) ज्ञानरूप धनों के (सत्पतिं) सज्जनों का रक्षक (पतिम्) स्वामी ॥१॥

भावार्थ—समस्त वेदवाणियां ब्रह्मवित्, रथियों में महारथी, ज्ञानधनों के स्वामी तथा सज्जनों के पालक ज्ञानी पुरुष को बढ़ाती हैं ॥१॥

८२८—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३२३ १२

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।

२३१ २र ३ १२३१२

त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२॥

पदार्थ—(सख्ये) मित्रता में (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (वाजिनः) धन धान्य से युक्त (मा) नहीं (भेम) भय करते हैं (शवसस्पते) हे सब बलों के स्वामी (त्वां) तुझे (अभि) लक्ष्य में रखकर (प्र) उत्तम रूप से (नोनुमः) बार बार नमस्कार करते हैं (जेतारम्) विश्वविजयी (अपराजितं) कभी पराजय को नहीं प्राप्त होनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे समस्त बलों के स्वामी परमेश्वर ! तेरी मित्रता में विचरते हुए तथा धन-धान्य से पूर्ण हम लोग किसी से भी भयभीत नहीं होते। कभी न हारनेवाले तुझ विजयी को हम बार बार नमस्कार करते हैं ॥२॥

८२९—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३१ २र ३२३१ २र ३१२

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यंत्यूतयः।

३१ २र ३१२ ३२ ३१२३२

यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥३॥

पदार्थ—(पूर्वीः) सनातन (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (रातयः) दान (न) नहीं (विदस्यन्ति) कम होते हैं (ऊतयः) रक्षायें (यदा) जब (वाजस्य) अन्न आदि के (गोमतः) गाय आदि पशुओं के देनेवाले (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिए (मंहते) देता है (मघम्) धन को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर जब उपासकों को गाय आदि पशुओं से युक्त अन्न आदि धनों को प्रदान करता है, तो उसके सनातन दान और रक्षाओं में किसी प्रकार की कमी नहीं आती ॥३॥

卐 तृतीयोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

चतुर्थोऽध्यायः

८३०—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३१२ ३१२ ३२ ३१२३१२ १ २३१२र

एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः। विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥

पदार्थ—(एते) ये (असृग्रम्) विहित हैं (इन्दवः) यज्ञ (तिरः) दुःख से पार लगानेवाले (पवित्रं) पवित्र कर्म को (आशवः) शुभ गुणों से युक्त (विश्वानि) संपूर्ण (अभि) लक्ष्य में रखकर (सौभगा) सुवर्ण आदि संपदाओं को ।१।

भावार्थ—सब शुभ गुणों से युक्त यज्ञ, दुःखों से पार लगानेवाले पवित्र निष्काम कर्म और समस्त संपदाओं की प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाते हैं ॥१॥

८३१—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २३२३ २३१२ ३१२ १२ ३२३ १२

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः। त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥२॥

पदार्थ—(विघ्नन्तः) नाश करते हुए (दुरिता) बुराइयों को (पुरु) बहुत (सुगा) सुगम (तोकाय) पुत्र-पौत्रादि के लिए (वाजिनः) अन्न और बल से युक्त (त्मना) स्वयं (कृण्वन्तः) प्रदान करते हुए (अर्वतः) अश्व आदि पशुओं को ।२।

भावार्थ—अन्न और बल के देनेवाले यज्ञ सुगम होते हैं। ये पुत्र, पौत्र आदिकों के विघ्न को दूर करते हैं तथा घोड़े आदि पशुओं को प्रदान करते हैं ॥२॥

८३२—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३१२३ २३क २र ३२ १२३१ २३१२

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्। इडामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥

पदार्थ—(कृण्वन्तः) करते हुए (वरिवः) अत्यन्त रक्षा (गवे) वेदवाणी की (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होते हैं (सुष्टुतिम्) प्रशंसा को (इडाम्) भाषा ज्ञान (अस्मभ्यं) हमें (संयतम्) दृढ़ ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग वेदवाणी की दृढ़ रक्षा करते हुए तथा हम लोगों को भाषा का ज्ञान कराते हुए प्रशंसा के पात्र होते हैं ॥३॥

८३३—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१२ ३१ २र ३१२ ३१२

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि। अन्तरिक्षेण यातवे ॥१॥

पदार्थ—(राजा) तेजस्वरूप (मेधाभिः) धारणावाली बुद्धियों द्वारा (ईयते) आगे बढ़ता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (मनो अधि) परमेश्वर की शरण में (अन्तरिक्षेण) अक्षय ब्रह्म ज्ञान के द्वारा (यातवे) जाने के लिए ॥१॥

भावार्थ—शुद्ध, तेजस्वी जीवात्मा अक्षय ब्रह्म ज्ञान के द्वारा परमात्मा की शरण में जाने के लिए स्थिर बुद्धि के सहारे आगे बढ़ता है ॥१॥

८३४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २३ १२३१ २र ३ २३१२

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर। सुष्वाणो देववीतये ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (नः) हमें (सोम) हे परमेश्वर (सहः) सहनशक्ति (जुवः) कर्मण्यता [क्रियाशीलता] (रूपं) रूप (न) और (वर्चसे) तेज के लिए (भर) दे (सुष्वाणः) सृष्टिकर्ता (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टिकर्ता है। हमें दिव्य गुणों की प्राप्ति और तेज के लिए सहनशक्ति, कर्मण्यता और रूप प्रदान कर ॥२॥

८३५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २३२३२३ १ २ २३१२ ३१२

आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम्। वहा भगत्तिमूतये ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (नः) हमें (इन्दो) हे परमेश्वर (शतग्विनं) सैंकड़ों शक्तियोंवाली (गवां) इन्द्रियों की (पोषं) पुष्टि को (स्वश्व्यं) राष्ट्र का सुन्दर संघटन (वहा) प्राप्त करा (भगत्तिं) मान-प्रतिष्ठा को (ऊतये) रक्षा के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमें रक्षा के लिए इन्द्रियों में सैंकड़ों प्रकार के बल से युक्त पुष्टि, राष्ट्र का संघटन तथा मान-प्रतिष्ठा प्रदान कर ॥३॥

८३६—कविः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२ ३१२ ३१२ ३२३ १२ ३१२

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः। चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तुझे (नृम्णानि) धनों और बलों को

(बिभ्रतं) धारण करनेवाले (सधस्थेषु) सब जगह [व्यापक] (महो दिवः) महान् आकाश के (चारुं) आनन्दस्वरूप (सुकृत्यया) सुकर्म से (ईमहे) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त धन और बल के धारण करनेवाले अनन्त आकाश में स्थित सारे लोक-लोकान्तरों में व्यापक तथा आनन्दस्वरूप तुझे सुकर्म के द्वारा हम प्राप्त करते हैं ॥१॥

८३७—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥

पदार्थ—(संवृक्तधृष्णुं) बुराइयों का दूर करनेवाला, दुष्टों का दलन करनेवाला (उक्थ्यं) स्तुति के योग्य (महामहिव्रतं) महान् नियमों का नियन्ता (मदं) आनन्ददाता (शतं पुरः) सैंकड़ों लोक-लोकान्तरों का (रुरुक्षणिम्) नाश [प्रलय] करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दुष्टों का दलन करनेवाले, स्तुति के योग्य, महान् नियमों के संचालक, आनन्ददाता तथा सैंकड़ों लोक-लोकान्तरों का प्रलय करनेवाले तुझे हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

८३८—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ १ २ ३क २र३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥३॥

पदार्थ—(अतः) इस कारण से (त्वा) तुझे (रयिः) धन और धन के चाहने वाले (अभि) सब ओर से (अयत्) प्राप्त करता है (राजानं) प्रकाशस्वरूप (सुक्रतो) हे उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता (दिवः) आकाश में स्थित सब लोक-लोकान्तरों का (सुपर्णः) भली भांति रक्षा करनेवाला (अव्यथी) त्रिविध ताप [आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक] से रहित (भरत्) धारण करता है ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तमकर्मों के अधिष्ठाता परमेश्वर ! तू तीन तापों से रहित, सबका भली प्रकार से रक्षक तथा आकाश में स्थित सब लोक-लोकान्तरों को धारण करता है, अतः धन तथा धन की कामना करनेवाला पुरुष तुझ प्रकाशस्वरूप को प्राप्त करता है ॥३॥

८३९—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ।४।

पदार्थ—(अधा) अनन्तर (हिन्वानः) इन्द्रियों की शक्ति से बढ़ाता हुआ (इन्द्रियं) इन्द्रियों को (ज्यायः) सब से श्रेष्ठ (महित्वं) महिमा को (आनशे) प्राप्त होता है (अभिष्टिकृत्) अभीष्ट फल का दाता (विचर्षणिः) विश्व का साक्षी ।४।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अभीष्ट फल का दाता और विश्व का साक्षी है । तू हमारी इन्द्रियों में शक्ति का संचार करता हुआ महान् महिमा से युक्त है ।।४॥

८४०—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विर्भरत् ॥५॥

पदार्थ—(विश्वस्मा) सारे (इत्) ही (स्वर्दृशे) आनन्द प्राप्त करने के लिए (साधारणं) एकसमान (रजस्तुरं) लोक-लोकान्तरों की प्रेरणा करने वाले (गोपाम्) रक्षक (ऋतस्य) सत्य नियम के (विः) एक देह से दूसरे में जानेवाला जीव (भरत्) धारण करता है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जीव सारे सुखों की प्राप्ति में एक मात्र कारण, लोक-लोकान्तरों की प्रेरणा करनेवाले तथा सत्य नियम के रक्षक तुझे ही धारण करता है ॥५॥

८४१—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ।१।

पदार्थ—(इषे) विज्ञान के लिए (पवस्व) अपने को पवित्र कर (धारया) वेदवाणी से (मृज्यमानः) शुद्ध किया हुआ (मनीषिभिः) मेधावी पुरुषों के द्वारा (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (रुचा) प्रकाश के साथ (अभि) सब ओर से (गाः) इन्द्रियों को (इहि) व्याप्त कर ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली पुरुष ! तू विज्ञान की प्राप्ति के लिए मेधावी पुरुषों के द्वारा शुद्ध किया जाता हुआ वेदवाणी से अपने को पवित्र कर तथा अपने प्रकाश से इन्द्रियों को व्याप्त कर ॥१॥

८४२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥२॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (वरिवः) सम्पदाएँ (कृधि) कर (ऊर्जं) बल (जनाय) सब के लिए (गिर्वणः) हे स्तुति के योग्य (हरे) हे अज्ञाननाशक (सृजानः) उत्पन्न करता हुआ (आशिरं) भोग्य पदार्थों को ॥२॥

भावार्थ—हे स्तुति के योग्य, तथा अज्ञाननाशक परमेश्वर ! तू भोग्य पदार्थों को उत्पन्न तथा हमें पवित्र करता हुआ सब के लिए धन और बल दे ॥२॥

८४३—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ।३।

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (देववीतये) विद्वानों के ज्ञान के लिए (इन्द्रस्य) जीव के (याहि) प्राप्त हो (निष्कृतम्) निस्तार (द्युतानः) प्रकाशित करता हुआ (वाजिभिः) अग्नि, वायु और सूर्य के द्वारा (हितः) हितकारी ।३।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वानों के ज्ञान के लिए, पवित्र करता हुआ, अग्नि वायु और सूर्य के द्वारा प्रकाश का करनेवाला तथा सबका हितकारी तू जीव का निस्तार कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

८४४—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निना) परमेश्वर के द्वारा (अग्निः) भौतिक अग्नि [आग] (समिध्यते) सम्यक् प्रकार से प्रकाशित होती है (कविः) तीक्ष्ण तेजवाला (गृहपतिः) घर का अधिष्ठाता (युवा) सब पदार्थों का संयोग और विभाग करनेवाला (हव्यवाड्) होम की हवि का सब जगह विस्तार करनेवाला (जुह्वास्यः) ज्वालारूप मुखवाला ॥१॥

भावार्थ—तीक्ष्ण तेजवाला, घर का अधिष्ठाता, सब पदार्थों का संयोग तथा विभाग करनेवाला, होम का सब जगह विस्तार करनेवाला तथा ज्वालारूप मुखवाला अग्नि (आग) परमेश्वर के द्वारा प्रकाशित होता है ॥१॥

८४५—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (त्वां) तुझे (अग्ने) हे परमेश्वर (हविष्पतिः) यजमान (दूतं) ज्ञान के दाता (देव) हे देव (सपर्यति) उपासना करता है (तस्य स्म) उसका (प्र) उत्तम (अविता) रक्षक (भव) हो ॥२॥

भावार्थ—हे सब के प्रकाशक परमेश्वर ! जो उपासक ज्ञानदाता तेरी उपासना करता है, तू उसका रक्षक हो ॥२॥

८४६—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृडय ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (अग्निं) यज्ञ की अग्नि को (देववीतये) दिव्य सुख की प्राप्ति के लिए (हविष्मान्) यजमान (आविवासति) प्रज्वलित करता है (तस्मै) उसको (पावक) हे पवित्रकारक परमेश्वर (मृडय) सुखी कर ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक परमेश्वर ! जो यजमान दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित कर यज्ञ करता है, तू उसे सुखी कर ॥३॥

८४७—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥१॥

पदार्थ—(मित्रं) प्राण को (हुवे) व्यवहार में लाता हूँ (पूतदक्षं) पवित्र करने में समर्थ (वरुणं) उदान वायु को (च) और (रिशादसं) जंग लगाने वाले [धातुओं में] (धियं) कर्म (घृताचीं) जल के निर्माण करनेवाले (साधन्ता) सिद्ध करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—मैं जल के उत्पन्न करने वाले, कर्म के साधक तथा पवित्र करने वाले प्राण वायु और धातुओं में जंग लगाने वाले उदान वायु को व्यवहार में लाता हूँ ॥१॥

८४८—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ १ २ ३ १ २
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥२॥

पदार्थ—(ऋतेन) परमेश्वर के द्वारा (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु (ऋतावृधौ) जल को बढ़ानेवाले (ऋतस्पृशा) सत्य नियम में बंधे हुए (क्रतुं) संसार में (बृहन्तं) विशाल (आशाथे) व्यापक हो रहे हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर की शक्ति द्वारा, जल के बढ़ानेवाले, तथा सत्यनियम में बंधे हुए प्राण और उदान वायुएं विशाल संसार में व्यापक हो रही हैं ॥२॥

८४९—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥३॥

पदार्थ—(**कवी**) सारे व्यवहारों के साधक (**नः**) हमारे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु (**तुविजाता**) अनेक कारणों से उत्पन्न होनेवाले (**उरुक्षया**) बहुतों में निवास करनेवाले (**दक्षं**) बल (**दधाते**) धारण करते हैं (**अपसं**) कर्म को ॥३॥

भावार्थ—सारे व्यवहारों के साधक, अनेक कारणों से उत्पन्न, तथा बहुतों में निवास करने वाले प्राण और उदान वायु हमारे बल और कर्म को धारण करते हैं ॥३॥

८५०—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्रेण**) परमेश्वर के साथ (**सं**) सम्यक् प्रकार से (**हि**) क्योंकि (**दृक्षसे**) देखाजाता है (**संजग्मानः**) संयुक्त [मोक्षावस्था में] (**अबिभ्युषा**) नित्यनिर्भय (**मन्दू**) आनन्दित (**समानवर्चसा**) समान तेजवाले [मुक्ति अवस्था में जीव का परमात्मा से सादृश्य होता है] ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! तू मोक्षावस्था में नित्य निर्भय परमेश्वर के साथ मेल करने से आनन्दित और उसके समान तेजवाला बन जाता है ॥१॥

८५१—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

३ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥२॥

पदार्थ—(**आत् अह**) अनन्तर (**स्वधां अनु**) प्रकृति के अनुसरण करनेवाले (**पुनः**) फिर (**गर्भत्वं**) जन्म (**एरिरे**) प्राप्त करते हैं (**दधाना**) धारण करते हुए (**नाम**) को (**यज्ञियम्**) यज्ञ करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! यज्ञ करने के योग्य नाम को धारण करते हुए मनुष्य मोक्ष के बाद प्रकृति का अनुसरण करते हुए वार वार फिर जन्म ग्रहण करते हैं ॥२॥

८५२—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३' १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥३॥

पदार्थ—(**वीळुचिद्**) दृढ़ भी (**आरुजत्नुभिः**) शरीर के मलों को छिन्न-भिन्न करनेवाले (**गुहाचिद्**) हृदय देश में स्थित (**इन्द्र**) हे जीवात्मन् (**वह्निभिः**) वहन करनेवाले प्राण वायुओं के द्वारा (**अविन्दः**) प्राप्त करता है (**उस्रियाः**) प्रकाश की रेखाओं को (**अनु**) अनुसरण करना ॥३॥

भावार्थ—हे जीव! दृढ़ अन्तःकरण में विराजमान रहकर तू मलों को छिन्न-भिन्न करनेवाले वायुओं के द्वारा [प्राणायाम की साधना कर] प्रकाश की रेखाओं को प्राप्त करता है ॥३॥

८५३—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ २र

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥१॥

पदार्थ—(**ता**) उन दोनों की (**हुवे**) स्तुति करता हूँ (**ययोः**) जिनके अधिष्ठातृत्व में (**इदं**) [प्रत्यक्ष] (**पप्ने**) हरा-भरा होता है (**विश्वं**) सारा संसार (**पुराकृतं**) सृष्टि के प्रारंभ में उत्पन्न किया हुआ (**इन्द्राग्नी**) जीव और परमेश्वर (**न**) नहीं (**मर्धतः**) विनष्ट होने देते ॥१॥

भावार्थ—जिनके अधिष्ठातृत्व में सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न किया हुआ यह संसार हरा-भरा हो रहा है और जो इसको विनष्ट नहीं होने देते (अर्थात् प्रवाह रूप से स्थित रखते हैं) उन जीव और ईश्वर की मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

८५४—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥२॥

पदार्थ—(**उग्राः**) अत्यन्त बलवान् (**विघनिना**) विनाश करने वाले (**मृधः**) सारे दुर्गुणों का (**इन्द्राग्नी**) जीव तथा ईश्वर को (**हवामहे**) प्राप्त करना चाहते हैं (**ता**) वे दोनों (**नः**) हमें (**मृळात**) सुखी करते हैं (**ईदृशे**) ऐसे संसार में ॥२॥

भावार्थ—अत्यन्त बलवान् सारे दुर्गुणों को दूर करनेवाले जीव और ईश्वर को हम प्राप्त करना चाहते हैं । ऐसे वे दोनों हमें सुखी करते हैं ॥२॥

८५५—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती । हथो विश्वा अप द्विषः ॥३॥

पदार्थ—(**हथः**) नाश करते हैं (**वृत्राणि**) सारे उपद्रवों को (**आर्या**) उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव वाले (**हथः**) नाश करते हैं (**दासानि**) पराधीनता को (**सत्पती**) पदार्थ मात्र के स्वामी (**हथः**) नाश करते हैं (**विश्वा**) सब (**अप**) दूर करना (**द्विषः**) काम-क्रोधादि शत्रुओं को ॥३॥

भावार्थ—पदार्थ मात्र के स्वामी, उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव वाले जीव और परमेश्वर सारे उपद्रवों पराधीनताओं तथा काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयःखण्डः समाप्तः 卐

८५६—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥१॥

पदार्थ—(**अभि**) सब प्रकार से (**सोमासः**) शान्त स्वभाव वाले **योगी** जन (**आयवः**) ज्ञानवान् (**पवन्ते**) प्राप्त करते हैं (**मद्यं**) तृप्त करनेवाले (**मदं**) आनन्द को (**समुद्रस्य**) परमेश्वर के (**अधि विष्टपे**) मोक्षधाम रूप परम **पद** में (**मनीषिणः**) मननशील (**मत्सरासः**) प्रसन्नतायुक्त (**मदच्युतः**) आनन्द **की** वर्षा करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानवान्, प्रसन्न स्वभाव, आनन्द की वर्षा करनेवाले तथा **मनन**-शील योगीजन परमेश्वर के मोक्षधाम रूप परम पद में तृप्त करने वाले आनन्द **को** प्राप्त करते हैं ॥१॥

८५७—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥२॥

पदार्थ—(**तरत्**) पार करता है (**समुद्रं**) संसार सागर को (**पवमानः**) पवित्रात्मा (**ऊर्मिणा**) तत्व ज्ञान से (**राजा**) तेजस्वी (**देव**) दिव्य शक्तिवाला (**ऋतं**) गतिमान् (**बृहत्**) विशाल (**अर्षा**) प्राप्त करता है (**मित्रस्य**) प्राण **के** (**वरुणस्य**) अपान के (**धर्मणा**) धर्म [प्राणायाम] से (**प्र**) उत्तम (**हिन्वानः**) प्रेरित हुआ (**ऋतं**) परमेश्वर को (**बृहत्**) सब से महान् ॥२॥

भावार्थ—पवित्रात्मा, तेजस्वी, दिव्य शक्तियों से युक्त ज्ञानी पुरुष **तत्व**-ज्ञान के द्वारा विशाल संसार सागर को तर जाता है । वही प्राण और **अपान** की गति (प्राणायाम के) द्वारा प्रेरित होकर सब से महान् परब्रह्म को **प्राप्त** कर लेता है ॥२॥

८५८—सप्तर्षयः । सोमः । विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र

नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो । राजा देवः समुद्रयः ॥४॥

पदार्थ—(**नृभिः**) नेता योगियों के द्वारा (**येमाणः**) नियम में स्थित (**हर्यतः**) प्रेम का पात्र (**विचक्षणः**) बुद्धिमान् (**राजा**) तेजस्वी (**देव**) देवस्वरूप (**समुद्रयः**) परमेश्वर को प्राप्त करने का अधिकारी ॥३॥

भावार्थ—योगियों के बतलाये हुए यमनियम आदि का पालन करने **वाला** प्रेम का पात्र, बुद्धिमान्, तेजस्वी तथा देवस्वरूप भक्त पुरुष परमेश्वर को प्राप्त **करने** का अधिकारी होता है ॥३॥

८५९—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर् ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥१॥

पदार्थ—(**तिस्रः**) तीन (**वाचः**) ऋग्यजु, सामरूप वाणियों को (**ईरयति**) प्रेरणा करता है (**प्र**) उत्तम (**वह्निः**) परमेश्वर (**ऋतस्य**) सत्य नियम **का** (**धीतिं**) धारण करनेवाली को (**ब्रह्मणः**) ब्रह्माण्ड के (**मनीषां**) ज्ञान को (**गावः**) वेदवाणियां (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं (**गोपतिं**) वेद के रक्षक (**पृच्छमानाः**) पूछती हुई-सी (**सोमं**) विद्वान् को (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं (**मतयः**) अनेक प्रकार **के** ज्ञान (**वावशानाः**) कामना करते हुए से ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर ऋग्, यजु तथा साम रूप तीन प्रकार की वाणियों **की** प्रेरणा करता है । वे वाणियां सत्य-नियम को धारण करनेवाली तथा ब्रह्माण्ड **का** ज्ञान करानेवाली होती हैं । ये पूछती हुई-सी तथा इनमें रहने वाला अनेक प्रकार **का** ज्ञान कामना करता हुआ-सा वेद-रक्षक विद्वान् को प्राप्त होता है ॥१॥

८६०—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥२॥

पदार्थ—(सोमं) परमेश्वर को (गावः) वेदवाणियां (धेनवः) प्रसन्न करनेवाली (वावशानाः) कामना करती हुई-सी (सोमं) परमेश्वर को (विप्राः) ज्ञानीजन (मतिभिः) बुद्धियों द्वारा (पृच्छमानाः) प्रश्न तथा उत्तर रूप से पूछते हुए [या विचार-विनिमय-करते हुए] (सोमः) परमेश्वर (सुतः) सम्यक् ध्यान किया गया (अश्नुते) प्राप्त किया जाता है (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (सोमे) परमेश्वर के विषय में (अर्काः) मंत्र (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् आदि छन्दोंवाले (संनवन्ते) सम्यक् प्रकार से वर्णन करने में असमर्थ हो जाते हैं ।।२।।

भावार्थ—कामना करती हुई-सी प्रश्न करने वाली वेदवाणियां परमेश्वर का वर्णन करती हैं । बुद्धियों द्वारा विचार-विनिमय करते हुए ज्ञानी जन परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं । पवित्रकारक तथा ध्यान किया हुआ परमेश्वर योगीजनों द्वारा प्राप्त किया जाता है । केवल वाणीमय मंत्र उसका पूरा वर्णन नहीं कर सकते हैं ।२।

८६१—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ।।३।।

पदार्थ—(एवा) निश्चय ही (नः) हमें (सोम) हे परमेश्वर (परिषिच्यमानः) सब प्रकार से आनन्द का सेचन करता हुआ (आपवस्व) प्रदान कर (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (स्वस्ति) कल्याण (इन्द्रं) जीवात्मा में (आविश) प्रविष्ट हो (बृहता) महान् (मदेन) आनन्द के साथ (वर्धय) बढ़ा (वाचम्) वाक् शक्ति को (जनया) उत्पन्न कर (पुरन्धिम्) शारीरिक बल को ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सब प्रकार से सुख की वर्षा तथा पवित्र करता हुआ तू हमें कल्याण प्रदान कर । महान् आनन्द के साथ आत्मा में प्रविष्ट हो, तू वाक् शक्ति को बढ़ा और शरीर में बल दे ।।३।।

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

८६२—पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ २

यद्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।।१।।

पदार्थ—(यत्) जो (द्यावः) द्युलोक (इन्द्र) हे जीवात्मन् (ते) तेरे उपयोग के लिए (शतं) सैकड़ों (शत) सैकड़ों (भूमीः) भूमियां (उत) और (स्युः) हैं (न) नहीं (त्वा) तेरे लिए (वज्रिन्) हे अज्ञान के निवारण करनेवाले (सहस्रं) सहस्रों (सूर्याः) सूर्य लोक (अनु) अनुसरण (न) नहीं (जातं) संसार के उत्पादक का (अष्ट) लीन हो (रोदसी) रुलाने वाले [छोड़ते समय दुःख देते हैं और रुलाते हैं] ।।१।।

भावार्थ—हे अज्ञान-निवारक जीवात्मन् ! जिस कारण कि रुलानेवाले सैकड़ों द्युलोक, भूमियां तथा सहस्रों सूर्य भी (उनमें जन्म धारण कर) तेरे उपयोग के लिए नहीं हैं, इस कारण तू सृष्टिकर्ता परमेश्वर का अनुसरण कर ।।१।।

८६३—पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रि चित्राभिरूतिभिः ।।२।।

पदार्थ—(आपप्राथ) व्यापक हो रहा है (महिना) महत्व से (वृष्ण्या) पुरुषार्थयुक्त कर्मों में (वृषन्) हे अभिमत फलों की वर्षा करनेवाले (विश्वा) सारे (शविष्ठ) हे सर्वशक्तिमान् (शवसा) बल से (अस्मान) हम लोगों की (अव) रक्षा कर (मघवन्) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी (गोमति) गर्जन और विद्युत्-पात से युक्त (व्रजे) मेघ के उपस्थित होने पर (वज्रिन्) हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले (चित्राभिः) आश्चर्यमयी (ऊतिभिः) रक्षाओं से ।।२।।

भावार्थ—हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले, सकल कामनाओं को सफल करने वाले, सर्वशक्तिमान् तथा समस्त संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू अपनी महान् शक्ति से सारे पुरुषार्थ-युक्त कर्मों में व्यापक हो रहा है । तू विद्युत्-पतन आदि दैवी आपत्तियों से हमें बचा ।।२।।

८६४—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ।।१।।

पदार्थ—(वयं) हम (घ) प्रसिद्ध (त्वा) तुझे (सुतावन्तः) पुत्र आदि कुटुम्बों वाले (आपो न) जल की भांति (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ करने वाले (पवित्रस्य) यज्ञ आदि पवित्र कर्म के (प्रस्रवणेषु) जलवाले प्रदेशों में (वृत्रहन्) हे बुराइयों को दूर करनेवाले (परि) सर्व प्रकार (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (आसते) शरण में उपस्थित होते हैं ।।१।।

भावार्थ—हे बुराइयों को दूर करनेवाले विद्वान् ! पुत्रादि कुटुम्बों से युक्त स्तुति तथा यज्ञ करनेवाले हमलोग यज्ञ आदि पवित्र कर्मों की सिद्धि के लिए तेरी शरण में उपस्थित होते हैं, जैसे पानी जलवाले प्रदशों में पहुँच जाते हैं ।।१।।

८६५—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

कदा सुतं तृषाण ओक आगम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ।।२।।

पदार्थ—(स्वरन्ति) स्तुति करते हैं (त्वा) तेरी (सुते) उत्पन्न संसार में (नरः) मनुष्य (वसो) हे सबको बसानेवाले (निरेके) शंकारहित व्यवहार से युक्त (उक्थिनः) स्तुति करनेवाले (कदा) कब (सुतं) पुत्र स्वरूप को (तृषाणः) प्यासा (ओकः) घर को (आगमः) प्राप्त होवे (इन्द्र) हे परमेश्वर (स्वब्दी) अच्छे कर्मों के देनेवाले (इव) समान (वंसगः) धर्मात्मा को प्राप्त होनेवाले ।२।

भावार्थ—हे सब को शरण देनेवाले परमेश्वर, निर्भय व्यवहार वाले इस संसार में स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करनेवाले तेरी स्तुति करते हैं कि हे नाथ ! प्यासा मनुष्य घर के समान उत्तम कर्म का ज्ञान कराने वाला तथा धर्मात्माओं को प्राप्त होने वाला तू पुत्ररूप हमें कब दर्शन देगा ।।२।।

८६६—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।

३ १ २ ३ १ २र

पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ।।३।।

पदार्थ—(कण्वेभिः) मेधावियों के लिए (धृष्णो) सबसे महान् (आधृषद्) अभय (वाजं) सम्पत्ति (दर्षि) देता है (सहस्रिणं) पुष्कल (पिशङ्गरूपं) सुवर्णरूप (मघवन्) सकल संपदाओं के स्वामी (विचर्षणे) सबके साक्षी (मक्षू) शीघ्र (गोमन्तं) गाय आदि पशुओंवाले (ईमहे) प्राप्त करना चाहते हैं ।।३।।

भावार्थ—हे सबसे महान्, सबके साक्षी तथा सकल संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू अभय है । मेधावी पुरुषों के लिए पुष्कल सुवर्णरूप तथा गाय आदि पशुओं को देनेवाली संपदाएँ दे ।।३।।

८६७—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ।।१।।

पदार्थ—(तरणिः) शीघ्र कार्य करनेवाला (इत्) ही (सिषासति) विभाजन करता है (वाज) खाद्य पदार्थ को (पुरन्ध्या) बुद्धि के द्वारा (युजा) सहायक (आ) सब प्रकार से (वः) तुम लोग (इन्द्रं) सेनापति को (पुरुहूतं) बहुतों से चाहने योग्य (नमे) आदर करता हूँ (गिरा) वाणी से (नेमिं) चक्के की पुट्ठी को (तष्टेव) बढ़ई के समान (सुद्रुवम्) सुगमता से चलने योग्य ।।१।।

भावार्थ—चतुर सेनापति बुद्धिमत्ता के साथ खाद्य पदार्थ का विभाजन करता है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को सर्वप्रिय सेनापति का आदर करने के लिए सुगमता के साथ चलने के लिए चक्के की पुट्ठी को बढ़ई के समान नम्र होने की प्रेरणा करता हूँ ।।१।।

८६८—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ।।२।।

पदार्थ—(न) नहीं (दुष्टुतिः) निन्दा (द्रविणोदेषु) धनदाताओं के विषय में (शस्यते) अच्छी (न) नहीं (स्रेधन्तं) हिंसक को (रयिः) संपत्ति (नशत्) प्राप्त होती है (सुशक्तिः) उत्तम सामर्थ्य (इत्) भी (मघवन्) हे संपूर्ण संपदाओं के स्वामी (तुभ्यं) तेरी (मावते) मेरे जैसे के लिए (देष्णं) दान (यत्) जो (पार्ये) अनन्त (दिवि) आकाश में ।।२।।

भावार्थ—धनदाताओं की निन्दा ठीक नहीं । दूसरों को हानि पहुँचाने वाले मनुष्य को धन प्राप्त नहीं होता । हे परमेश्वर ! अनन्त आकाश में स्थित हमारे जैसों को देने योग्य जो तेरे वायु, जल तथा आकाश आदि पदार्थ विद्यमान हैं, उनमें तेरी ही शक्ति है ।।२।।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

८६९—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥१॥

पदार्थ—(तिस्रः) तीन (वाचः) वाणियों को (उदीरते) उच्चारण करते हैं (गावः) ये वाणियां (मिमन्ति) उपदेश करती हैं (धेनवः) आनन्द रस का पान करानेवाली (हरिः) दुःखहर्त्ता (एति) प्राप्त होता है (कनिक्रदत्) अनाहत नाद करता हुआ ॥१॥

भावार्थ—लोग चारों वेदों की तीन प्रकार की वाणियों का उच्चारण करते हैं । आनन्द रस का पान करानेवाली वे वाणियां हमें उपदेश देती हैं । जिस के द्वारा दुःखहर्त्ता परमेश्वर अनाहत नाद करता हुआ प्राप्त होता है ॥१॥

८७०—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार (ब्रह्मीः) वेद की स्तुतियां (अनूषत) प्रशंसा करती हैं (यह्वीः) महान् (ऋतस्य) परमेश्वर की (मातरः) मातायें (मर्जयन्तीः) पवित्र करती हुई (दिवः) प्रकाशस्वरूप (शिशुं) बालक को ॥२॥

भावार्थ—बालक को पवित्र करती हुई, माताओं के समान महान् वेदवाणियां प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की प्रशंसा करती हैं ॥२॥

८७१—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥३॥

पदार्थ—(रायः) धन के (समुद्रान्) समुद्रों को (चतुरः) चार (अस्मभ्यं) हमें (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) सब प्रकार से (आ) भली भांति (पवस्व) प्रदान कर (सहस्रिणः) हजारों प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मणिमुक्ता आदि रत्नों से पूर्ण समुद्र पर्यन्त पृथिवी का राज हमें प्रदान कर ॥३॥

८७२—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥१॥

पदार्थ—(सुतासः) संसार में उत्पन्न हुए (मधुमत्तमाः) ब्रह्मज्ञानी (सोमाः) पुरुष (इन्द्राय) परमेश्वर को (मन्दिनः) हर्ष से युक्त (पवित्रवन्तः) पवित्रात्मा (अक्षरन्) वर्षा करते हैं (देवान्) दिव्यगुणों की (गच्छन्तु) प्राप्त हों (वः) तुम लोगों को (मदाः) आनन्द ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ब्रह्मज्ञानी, प्रसन्न, संसार में उत्पन्न हुए पवित्रात्मा पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करें और उनका आनन्द तुम्हारे लिए दिव्य गुणों की वर्षा करे ॥१॥

८७३—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥२॥

पदार्थ—(इन्दुः) जीव (इंद्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (पवते) अपने को पवित्र करता है (इति) इस प्रकार (देवासः) ज्ञानीजन (अब्रुवन्) उपदेश करते हैं । (वाचस्पतिः) समस्त वेद-वाणियों का स्वामी परमेश्वर (मखस्यते) अपना सारा कार्य यज्ञरूप से करता है (विश्वस्य) सारी (ईशानः) स्वामी (ओजसः) शक्तियों का ॥२॥

भावार्थ—जीव परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्वयं पवित्र होता है, ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं । सारी शक्तियों का स्वामी तथा वेदवाणियों का दाता परमेश्वर अपना सारा सृष्टि-रचना आदि कार्य यज्ञरूप में करता है ॥२॥

८७४—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवे दिवे ॥३॥

पदार्थ—(सहस्रधारः) बहुत प्रकार की वेदरूपवाणियों वाला (पवते) संसारी पदार्थों को गति दे रहा है (समुद्रः) आकाश के समान व्यापक (वाचमीङ्खयः) स्तुतियों का प्रेरक (सोमः) परमेश्वर (पतिः) स्वामी (रयीणां) सारी संपदाओं का (सखा) मित्र (इन्द्रस्य) जीव का (दिवे दिवे) प्रतिदिन ॥३॥

भावार्थ—वेद-वाणियों का स्वामी, आकाश के समान व्यापक, स्तुतियों का प्रेरक, समस्त संपदाओं की रक्षा करनेवाला तथा जीवात्मा का मित्र परमेश्वर प्रति दिन सबको गति देता है ॥३॥

८७५—पवित्रः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥१॥

पदार्थ—(पवित्रं) पवित्र शक्ति (ते) तेरी (विततं) महान् है (ब्रह्मणस्पते) वेदज्ञान के रक्षक (प्रभुः) समर्थ (गात्राणि) तीन [स्थूल, सूक्ष्म और कारण] शरीरों को (पर्येति) प्राप्त करता है (विश्वतः) सब प्रकार से (अतप्ततनूः) तपस्या न करनेवाला (न) नहीं (तत्) उस मेरे पवित्र स्वरूप को (आमः) कच्ची बुद्धिवाला (अश्नुते) प्राप्त कर सकता है (शृतासः) पक्की बुद्धिवाले (इत्) ही (वहन्तः) तपस्या करते हुए (सं) सम्यक् (तद्) उसे [तेरे स्वरूप को] (आसत) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञान के रक्षक जीव ! तेरी पवित्र शक्ति महान् है । स्वयं शक्तिशाली तू स्थूल, तथा कारण शरीरों को प्राप्त करता है । तपस्या को न करनेवाला कच्ची बुद्धि से युक्त तेरी उस पवित्र शक्ति को नहीं पा सकता, किन्तु पक्की बुद्धिवाले तपस्वी ही उसे पा सकते हैं ॥१॥

८७६—पवित्रः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधिरोहन्ति तेजसा ॥२॥

पदार्थ—(तपोः) तपःस्वरूप (पवित्रं) पवित्र शक्ति (विततं) विस्तृत है (दिवस्पदे) मोक्षरूप परमधाम अथवा द्यु आदि लोकों में (अर्चन्तः) उपासना करती हुई (अस्य) इस की (तन्तवः) प्रजायें (व्यस्थिरन्) व्यवस्था करती हैं (अवन्ति) रक्षा करती हैं (अस्य) इस की (पवितारं) उपासक की (आशवः) व्यापक शक्तियां (दिवः) सूर्य के (पृष्ठं) पृष्ठ या पीठ भाग पर (अधिरोहन्ति) चढ़ती हैं (तेजसा) तेज से ॥२॥

भावार्थ—उपासना करनेवाली प्रजायें तपःस्वरूप परमेश्वर की महान् पवित्र शक्ति का मोक्षरूप परमधाम में निश्चय करती हैं । परमेश्वर की व्यापक शक्तियां भक्त की रक्षा करती हैं तथा अपने तेज से सूर्यलोक का भी नियन्त्रण करती हैं ॥२॥

८७७—पवित्रः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥३॥

पदार्थ—(अरूरुचत्) प्रकाशित करता है (उषसः) किरणों को (पृश्निः) सूर्य (अग्रियः) ग्रहों में श्रेष्ठ (उक्षा) महान् (मिमेति) फेंकते हैं (भुवनेषु) लोकों में (वाजयुः) अन्न आदि का देनेवाला (मायाविनो) सकल ज्ञान के आधार (ममिरे) रचे हुए हैं (अस्य) इस परमेश्वर के (मायया) ज्ञान से (नृचक्षसः) सबके प्रकाशक (पितरः) सूर्य की किरणें (गर्भं) गर्भ के समान (आदधुः) जल को धारण करती हैं ॥३॥

भावार्थ—सबसे महान्, अन्न का देनेवाला तथा सब ग्रहों में श्रेष्ठ सूर्य प्रकाशित होता है और सारे लोकों में अपनी किरणों को फेंकता है । सब का प्रकाश करनेवाली किरणें गर्भ की भांति जल को धारण करती हैं । ये सब सर्वज्ञ परमेश्वर के ज्ञान से ही रचे गए हैं ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

८७८—सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (मंहिष्ठाय) अत्यन्त महान् (गायत) गुणगान करो (ऋताव्ने) यज्ञकर्त्ता (बृहते) बड़े (शुक्रशोचिषे) ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी (उपस्तुतासः) उपस्थित शिष्य गण (अग्नये) आचार्य का ॥१॥

भावार्थ—हे उपस्थित हुए शिष्य गण ! तुम लोग सबसे महान्, यज्ञकर्त्ता तथा ब्रह्मचर्य व्रत के धनी आचार्य का गुणगान करो ॥१॥

८७९—सोभरिः । अग्निः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥२॥

पदार्थ—(प्रावंसते) सर्व प्रकार से देता है (मघवा) समस्त संपदाओं का स्वामी (वीरवद्) पुत्र आदि से युक्त (यशः) यश को (समिद्धः) तेजस्वरूप (द्युम्नी) यशस्वी (आहुतः) सब प्रकार से ध्यान किया हुआ (कुवित्) बहुत (नः) हमें (अस्य) इसका (सुमतिः) उत्तम ज्ञान (भवीयसी) हमें प्राप्त होने वाला (अच्छा) भली भांति (वाजेभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ (आगमत्) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थ—समस्त संपदाओं का स्वामी, तेजस्वरूप, यशस्वी तथा अच्छी प्रकार से ध्यान किया हुआ परमेश्वर हमें पुत्र आदि से युक्त यश प्रदान करता है। इसका उत्तम ज्ञान अन्न आदि के साथ हमें प्राप्त हो ॥२॥

८८०—गोसूक्तयश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्रः। उष्णिक्।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम्।
३ १ २ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥१॥

पदार्थ—(तं) उस (ते) तेरे (मदं) हर्ष की (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं (वृषणं) कामनाओं को सिद्ध करनेवाले (पृक्षु) संग्रामों में (सासहिं) पशुओं का पराजय करने (उ लोककृत्नुं) विजय से नवीन लोकों पर अधिकार करनेवाला (अद्रिवः) हे शस्त्रधारी (हरिश्रियम्) अश्व आदि की शक्तियों से सुशोभित ॥१॥

भावार्थ—हे सकल शस्त्रों से सुसज्जित सेनापते! सारी कामनाओं को सिद्ध करने वाली, संग्रामों में साहस दिलाने वाली, विजय द्वारा नवीन स्थानों पर अधिकार करने वाली तथा घोड़े आदि शक्तियों से सुशोभित तेरी विजय से उत्पन्न हुई प्रसन्नता की हम प्रशंसा करते हैं ॥१॥

८८१—गोसूक्तयश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्रः। उष्णिक्।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥२॥

पदार्थ—(येन) जिस कारण (ज्योतींषि) प्रकाशों को (आयवे) मनुष्य के लिए (मनवे) मननशील (च) और (विवेदिथ) प्राप्त कराता है (मन्दानः) आनन्दस्वरूप (अस्य) इस उपासक के (बर्हिषः) मानस ज्ञान यज्ञ में (विराजसि) विराजमान है ॥२॥

भावार्थ—हे आनन्दस्वरूप परमेश्वर! जिससे तू मननशील मनुष्य को प्रकाश देता है और उसके मानस-ज्ञान-यज्ञ में विराजमान रहता है उस शक्ति से हमें सुख प्रदान कर ॥२॥

८८२—गोसूक्तयश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्रः। उष्णिक्।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषपत्नीरपो जया दिवे दिवे ॥३॥

पदार्थ—(तत्) उस शक्ति की (अद्याचित्) आज भी (ते) तेरी (उक्थिनः) स्तुति करने वाले (अनुष्टुवन्ति) स्तुति करते हैं (पूर्वथा) पहले कल्प के समान (वृषपत्नीः) धर्म जिसका रक्षक है ऐसे (अपः) कर्मों को (जय) उन्नत कर (दिवे दिवे) प्रति दिन ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! पूर्व कल्प के समान आज भी उपासक लोग तेरी शक्ति की स्तुति करते हैं। तू हमारे धार्मिक कर्मों को प्रतिदिन उन्नत कर ॥३॥

८८३—तिरश्ची। इन्द्रः। अनुष्टुप्।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महां असि ॥१॥

पदार्थ—(श्रुधी) सुन (हवं) प्रार्थना (तिरश्च्याः) छोटे से छोटे व्यक्ति की (इन्द्र) हे राजन् (यः) जो (त्वा) तेरी (सपर्यति) सेवा करता है (सुवीर्यस्य) सुन्दर शक्ति वाले (गोमतः) गाय आदि पशुओं वाले (रायः) धन से (पूर्धिः) भरपूर करता है (महां असि) बड़ा है ॥१॥

भावार्थ—हे राजन्! तू महान् है। जो तेरी सेवा करता है, उस छोटे से छोटे व्यक्ति की पुकार को सुन तथा शक्तिदायक गौ आदि पशुओं से युक्त धन से उसे भरपूर कर ॥१॥

८८४—तिरश्ची। इन्द्रः। अनुष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत्।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो उपासक (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (नवीयसीं) मनोहर (गिरं) स्तुति (मन्द्रां) आनन्द देने वाली (अजीजनत्) करता है (चिकित्विन्मनसं) इन्द्रियातीत विषय को दिखाने वाली (धियं) बुद्धि को (प्रत्नां) सनातन (ऋतस्य) सत्य को (पिप्युषीम्) पुष्ट करने वाली ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! जो उपासक तेरी आनन्द देने वाली मनोहर स्तुति करता है, तू उसे इन्द्रियातीत विषय को दिखाने वाली, सनातन तथा सत्य को पुष्ट करने वाली बुद्धि प्रदान करता है ॥२॥

८८५—तिरश्ची। इन्द्रः। अनुष्टुप्।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (उ) हि (स्तवाम) स्तुति करते हैं (यं) जिसके उद्देश्य से (गिरः) वेदवाणियां (इन्द्रं) परमेश्वर को (उक्थ्यानि) स्तुतियों को (वावृधे) बढ़ाती हैं (पुरूणि) बहुत (अस्य) इसके (पौंस्या) पराक्रमों को (सिषासन्तः) आराधना करने की इच्छा करते हुए (वनामहे) भजन करते हैं ॥३॥

भावार्थ—जिसके उद्देश्य से वेदवाणियां स्तुतियों का विस्तार करती हैं, हम उस परमेश्वर की स्तुति करते हैं। इसके अनेक प्रकार के पराक्रमों की इच्छा से भजन करते हैं ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

चतुर्थः अध्यायः समाप्तः

卐

पञ्चमोऽध्यायः

८८६—अकृष्टा माषाः। सोमः। जगती।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ १ २ ३ १ २
प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (ते) तेरी (आश्विनीः) व्यापक (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (धेनवः) वाणियां (दिव्या) दिव्य गुणों से युक्त (असृग्रन्) उत्पन्न होती हैं (पयसा) ज्ञान के साथ (धरीमणि) धारण करने वाली आत्मा में (प्र) उत्तम (अन्तरिक्षात्) अन्तःकरण में होने वाले ज्ञान से (स्थाविरीः) स्थूलरूप (ते) वे (असृक्षत) रचना करते हैं (ये) जो (त्वा) तेरे लिए (मृजन्ति) अपने को पवित्र करते हैं (ऋषिषाण) हे ऋषियों द्वारा भजन करने के योग्य (वेधसः) मन्त्रद्रष्टा ॥१॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप, ऋषियों द्वारा भजन किये जाने योग्य परमेश्वर! व्यापक तथा दिव्य गुण वाली तेरी वेदरूपी वाणियां ज्ञान के साथ धारण करने वाले अन्तःकरण में प्रकट होती हैं। तदनन्तर तेरी प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करने वाले मन्त्रद्रष्टा लोग अपने अन्तःकरण के द्वारा उन्हें स्थूल रूप में प्रकट करते हैं ॥१॥

८८७—अकृष्टा मापाः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परियन्ति केतवः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥२॥

पदार्थ—(**उभयतः**) व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार से (**पवमानस्य**) शुद्धस्वरूप परमेश्वर की (**रश्मयः**) किरणें (**ध्रुवस्य**) नित्य (**सतः**) सत्स्वरूप (**परियन्ति**) व्यापक हो रही हैं (**केतवः**) ज्ञानमय (**यदी**) जो (**पवित्रे**) पवित्र कर्म से स्थित हो (**अधिमृज्यते**) शुद्ध होता है (**हरिः**) मनुष्य (**सत्ता**) विराजमान (**नियोनौ**) एकमात्र निमित्त कारण परमेश्वर की शरण में (**कलशेषु**) शरीरों में (**सीदति**) स्थित हो जाता है ॥२॥

भावार्थ—शुद्ध, नित्य और सत्स्वरूप परमेश्वर की ज्ञानरूप किरणें व्यवहार और परमार्थ रूप से व्यापक हो रही हैं। यदि मनुष्य पवित्र कर्मों में वर्तमान रह कर शुद्ध होता है तो वह शरीर धारण करता हुआ भी परमेश्वर में स्थित हो जाता है ॥२॥

८८८—अकृष्टा माषाः । सोमः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥३॥

पदार्थ—(**विश्वा**) सारे (**धामानि**) नाम, स्थान और जन्मों को (**विश्वचक्ष**) हे सब के साक्षी (**ऋभ्वसः**) महान् (**प्रभो**) समर्थ (**ते**) तेरी (**सतः**) सत्स्वरूप (**परियन्ति**) व्यापक हो रही हैं (**केतवः**) किरणें (**व्यानशी**) सर्वव्यापक तू (**पवसे**) पवित्र करता है (**सोम**) हे प्रभो (**धर्मणा**) अपनी स्वाभाविक शक्ति से (**पतिः**) रक्षक (**विश्वस्य**) सारे (**भुवनस्य**) संसार का (**राजसि**) राजा है ॥३॥

भावार्थ—हे सब के साक्षी परमेश्वर, सत्स्वरूप तथा सर्व शक्तिमान् ! तेरी महान् महिमा सारे नाम, जन्म और स्थानों में व्यापक हो रही है। हे प्रभो, सारे संसार का स्वामी तथा सर्वव्यापक तू अपनी शक्ति से सब को पवित्र करता हुआ शासन कर रहा है ॥३॥

८८९—अमहीयुः : सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ २ ३ २

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१॥

पदार्थ—(**पवमानः**) पदार्थों को पवित्र करने वाला (**अजीजनत्**) उत्पन्न करता है (**दिवः**) द्युलोक-सम्बन्धी (**चित्रं**) विचित्र (**न**) समान (**तन्यतुं**) विद्युत् के (**ज्योतिः**) तेज को (**वैश्वानर**) अग्निमय (**बृहत्**) महान् ॥१॥

भावार्थ—सब पदार्थों को पवित्र करने वाला सूर्य द्युलोक सम्बन्धी विचित्र विद्युत् के समान महान् अग्निमय तेज को उत्पन्न करता है ॥१॥

८९०—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २उ ३ १ २

पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥२॥

पदार्थ—(**पवमान**) हे शुद्धस्वरूप (**रसः**) रस (**तव**) तेरा (**मदः**) आनन्ददायक (**राजन्**) हे प्रकाशस्वरूप (**अदुच्छुनः**) निर्दोष (**वि**) विशेष (**वारं**) अनेक वार प्राप्त होने वाले जगत् की (**अव्यम्**) प्रकृति से उत्पन्न (**अर्षति**) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा तेजस्वी परमेश्वर ! तेरा निर्दोष आनन्द रस अनेक वार प्राप्त होने वाले प्राकृत जगत् को प्राप्त होता है ॥२॥

८९१—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३क २र ३ २

पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥३॥

पदार्थ—(**पवमानस्य**) शुद्धस्वरूप (**ते**) तेरा (**रसः**) आनन्द रस (**दक्षः**) बलवान् (**विराजति**) विराज रहा है (**द्युमान्**) तेजोयुक्त (**ज्योतिः**) प्रकाश की (**विश्वं**) सारे (**स्वः**) सुख को (**दृशे**) दिखाने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेजोयुक्त बलवान् तेरा आनन्द रस प्रकाश तथा सारे सुखों को दिखाने के लिए विराजमान हो रहा है ॥३॥

८९२—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**यत्**) जो (**गावः**) जल की (**न**) तरह (**भूर्णयः**) शीघ्र लाभकारी (**त्वेषा**) सूर्य की किरणें (**अयासः**) गतिशील (**अक्रमुः**) पृथिवी पर आती हैं (**घ्नन्तः**) नाश करती हुई (**कृष्णां**) काली (**अप**) दूर करना (**त्वचम्**) चर्मरोग को ॥१॥

भावार्थ—शीघ्र लाभकारी तेज गतिवाली सूर्य की किरणें चर्मरोग का नाश करती हुई जल के समान पृथिवी पर फैलती हैं ॥१॥

८९३—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २

सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ॥२॥

पदार्थ—(**सुवितस्य**) सृष्टिकर्त्ता का (**वनामहे**) भजन करते हैं (**अतिसेतुं**) मर्यादा तोड़ने वाले (**दुराय्यं**) कठिनाई से परास्त होने वाले (**साह्याम**) तिरस्कार करते हैं (**दस्युं**) नीच कार्य करने वाले (**अव्रतम्**) अकर्मी ॥२॥

भावार्थ—हम सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का भजन करते हैं। मर्यादा तोड़ने, कठिनाई से परास्त होने वाले तथा अकर्मी नीच कर्मचारी का तिरस्कार करते हैं ॥२॥

८९४—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

पदार्थ—(**शृण्वे**) सुनता हूँ (**वृष्टेः**) वर्षा के (**इव**) समान (**स्वनः**) शब्द के (**पवमानस्य**) शुद्धस्वरूप (**शुष्मिणः**) शक्तिशाली की (**चरन्ति**) विचरती हैं (**विद्युतः**) बिजलियाँ (**दिवि**) अन्तरिक्ष में ॥३॥

भावार्थ—मैं वर्षा की ध्वनि के समान शुद्धस्वरूप तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की स्तुति को सुनता हूँ। उसी की व्यवस्था से अन्तरिक्ष में बिजलियां चमकती हैं ॥ ३ ॥

८९५—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ [illegible] ३ १ २ [illegible] १ २ ३ १ २

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्ववत्सोम वीरवत् ॥४॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**पवस्व**) प्रदान कर (**महीं**) महान् (**इषं**) अन्न आदि भोग्य पदार्थ को (**गोमत्**) गाय आदि पशुओं से युक्त (**इन्दो**) हे सर्वेश्वर (**हिरण्यवत्**) सुवर्ण से युक्त (**अश्ववत्**) घोड़े से युक्त (**सोम**) हे परमेश्वर (**वीरवत्**) पुत्र आदि से युक्त ॥४॥

भावार्थ—हे सर्वेश्वर सर्वाधार परमेश्वर ! तू हमें गाय, घोड़े, सुवर्ण तथा वीर पुत्र आदि से युक्त पर्याप्त अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रदान कर ॥४॥

८९६—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५॥

पदार्थ—(**पवस्व**) व्यापक हो रहा है (**विश्वचर्षणे**) हे सब के साक्षी (**आ**) सब प्रकार से (**मही**) महान् (**रोदसी**) द्यु और पृथिवीलोक को (**पृण**) सुखी करता है (**उषाः**) प्रभात कालों को (**सूर्यः**) सूर्य (**न**) समान (**रश्मिभिः**) किरणों से ॥५॥

भावार्थ—हे सबके साक्षी परमेश्वर ! तू उषा को अपनी किरणों से सूर्य के समान महान् द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक होकर सुखी करता है ॥५॥

८९७—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥

पदार्थ—(**परि**) सब प्रकार से (**नः**) हमारा (**शर्मयन्त्या**) कल्याणकारी (**धारया**) वेदवाणी से (**सोम**) हे परमेश्वर (**विश्वतः**) भली भांति (**सरा**) सुखी कर (**रसा**) पृथिवी के (**इव**) समान (**विष्टपम्**) लोक को ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पृथ्वी के समान हमारा कल्याण करनेवाली वेदवाणी से लोक को भली भांति सुखी कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

८९८—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥१॥

पदार्थ—(**आशुः**) शीघ्रकारी (**अर्ष**) ज्ञान देता है (**बृहन्मते**) हे महान् ज्ञानी (**परि**) सब प्रकार से (**प्रियेण**) प्रेममय (**धाम्ना**) स्वरूप से (**यत्र**) जिस तेरे विषय में (**देवाः**) विद्वान् लोग (**इति**) इस प्रकार (**ब्रुवन्**) कहते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! शीघ्रकारी तू अपने प्रेममय स्वरूप से ज्ञान देता है। तेरे विषय में ऐसा ही विद्वान् लोग कहते हैं ॥१॥

८९९—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—(**परिष्कृण्वन्**) पवित्र करता हुआ (**अनिष्कृतं**) अपवित्र को (**जनाय**) जनता के लिए (**यातयन्**) प्राप्त कराता हुआ (**इषः**) अन्न आदि

सम्पदाओं को (वृष्टिं) वर्षा को (दिवः) द्युलोक से (परिस्रव) बरसा ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू अपवित्र को पवित्र करता हुआ तथा जनता के लिए अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्रदान करता हुआ द्युलोक से वर्षा को प्रेरित कर ॥२॥

९००—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २र

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥३॥

पदार्थ—(अयं) यह (सः) वह (यः) जो (दिवस्परि) द्युलोक में (रघुयामा) सूक्ष्म गतिवाला (पवित्रे) पवित्र ब्रह्माण्ड में (आ) भली भांति (सिन्धोः) सागर की (ऊर्मा) तरंग में (व्यक्षरत्) अनेक प्रकार से संचालन करता है ॥३॥

भावार्थ—सूक्ष्म गतिवाला जो परमेश्वर द्युलोक से सिन्धु की गहरी धार पर्यन्त सारे संसार में भली प्रकार व्याप्त हो रहा है, वही सबका संचालन करता है ॥३॥

९०१—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥४॥

पदार्थ—(सुतः) सब का उत्पादक (एति) व्यापक हो रहा है (पवित्रे) अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत्, तथा चन्द्र आदि में (त्विषिं) प्रकाश को (दधानः) पुष्ट करता हुआ (ओजसा) ओजःशक्ति से (विचक्षाणः) सब को देखता हुआ (विरोचयन्) तथा सबको प्रकाशित करता हुआ ॥४॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता अपने पराक्रम से प्रकाश को पुष्ट करता हुआ, सब का साक्षी तथा प्रकाशक परमेश्वर समस्त पदार्थों में व्यापक हो रहा है ॥४॥

९०२—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

आ विवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (विवासन्) विशेष रूप से निवास देता हुआ (परावतः) पुराने (अथो) अथवा (अर्वावतः) नये [सब पदार्थों को] (सुतः) उत्पन्न करनेवाला (इन्द्राय) जीवात्मा के लिए (सिच्यते) सींचा जाता है (मधु) आनन्दरस ॥५॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर पुराने अथवा नये सभी पदार्थों को स्थान देता हुआ जीवात्मा के लिए आनन्दरस को सींचता है ॥५॥

९०३—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६॥

पदार्थ—(समीचीनाः) उपासक लोग (अनूषत) स्तुति करते हैं (हरिं) अज्ञान नाशक (हिन्वन्ति) प्रेम दर्शाते है (अद्रिभिः) आदरणीय [स्तुतियों] से (इन्दुं) ऐश्वर्यशाली के लिए (इन्द्राय) जीव को (पीतये) रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—उपासक लोग स्तुति करते हैं तथा जीवात्मा की रक्षा के निमित्त अज्ञाननाशक तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर के प्रति आदरणीय स्तुतियों से प्रेम दर्शाते हैं ॥६॥

९०४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥१॥

पदार्थ—(हिन्वन्ति) प्राप्त होते हैं (सूरम्) सूर्य को (उस्रयः) गमनशील (स्वसारः) स्वयं फैलनेवाले (जामयः) जल (पतिं) पालक (महां) महान् (इन्दुं) परमेश्वर को (महीयुवः) महत्त्व चाहनेवाले ॥१॥

भावार्थ—गमनशील, अपने आप फैलनेवाले जल सूर्य को प्राप्त होते हैं और महत्त्व चाहनेवाले भक्त जन महान् परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥१॥

९०५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २

पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्या विश ॥२॥

पदार्थ—(पवमान) हे शुद्धस्वरूप (रुचारुचा) सारी शक्ति से (देव) हे देव (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (विश्वा) समस्त (वसूनि) संपदाएं (आविश) प्राप्त करा ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमात्मदेव ! सृष्टिकर्त्ता तू विद्वानों के लिए अपनी शक्ति से सारी संपदाएँ प्रदान कर ॥२॥

९०६—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (सुष्टुतिं) प्रशंसनीय (वृष्टिं) वर्षा (देवेभ्यः) सारे दिव्य पदार्थों के (दुवः) लाभ के लिये (इषे) अन्न के निमित्त (पवस्व) कर (संयतं) नियमित ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू सारे दिव्य पदार्थों के लाभ तथा अन्न के निमित्त प्रशंसनीय और नियमित वर्षा कर ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

९०७—सुतंभरः । अग्निः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २. ३ १ २र ३ २ ३ १ २

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥

पदार्थ—(जनस्य) प्रजा का (गोपाः) रक्षक (अजनिष्ट) उत्पन्न करता है (जागृविः) सदा सावधान (अग्निः) परमेश्वर (सुदक्षः) शोभन पराक्रम-वाला (सुविताय) कल्याण के लिए (नव्यसे) नवीन (घृतप्रतीकः) जल आदि पदार्थ जिसका अनुमान कराते हैं वह (बृहता) महान् (दिविस्पृशा) दिव्य गुणों से युक्त शक्ति से (द्युमत्) प्रकाशस्वरूप (वि) विशेष रूप से (भाति) प्रकाश कर रहा है (भरतेभ्यः) मनुष्यों के लिए (शुचिः) शुद्धस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—प्रजा की रक्षा करनेवाला, सदा सावधान, तथा शोभन पराक्रम वाला परमेश्वर नित्य नये कल्याण के लिए संसार को पैदा करता है। जल आदि (जगत् गत) पदार्थों से उसका अनुमान होता है। वह शुद्ध एवं प्रकाशस्वरूप है। वह अपनी महान् दिव्य शक्तियों से मनुष्य मात्र को प्रकाश देता है ॥१॥

९०८—सुतंभरः । अग्निः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दं च्छिश्रियाणं वने वने ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमंगिरः ॥२॥

पदार्थ—(त्वां) तुझे (अग्ने) हे परमेश्वर (अङ्गिरसः) विद्वान् लोग (गुहाहितं) अन्तःकरण में निहित [स्थित] (अन्वविदन्) प्राप्त करते हैं (शिश्रियाणं) व्यापक रूप से विद्यमान (वने वने) प्रत्येक कारण द्रव्य में (सः) वह तू (जायसे) उत्पन्न करता है (मथ्यमानः) ध्यान से अन्वेषण किया हुआ (सहः) बल (महत्) महान् (त्वां) तुझे (आहुः) कहते हैं [ज्ञानी लोग] (सहसः) बल का (पुत्रं) सबका रक्षक (अङ्गिरः) हे सर्वान्तर्यामी [सब सृष्टि के अंगी पदार्थों में रमण करने वाला] ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वान् लोग सबके हृदय-देश में स्थित तथा प्रत्येक कारण द्रव्य में व्यापक तुझे प्राप्त करते हैं। हे सर्वान्तर्यामिन्, ध्यान के द्वारा अन्वेषण किया गया तू सब बलों से बड़े बल, आत्मबल को उत्पन्न करता है। ज्ञानी लोग तुझे सबका रक्षक कहते हैं ॥२॥

९०९—सुतंभरः । अग्निः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थ—(यज्ञस्य) ज्ञानयज्ञ के (केतुं) जतानेवाले (प्रथमं) आदि कारण (पुरोहितं) सबके हितकारी (अग्निं) परमेश्वर को (नरः) उपासक मनुष्य (त्रिषधस्थे) तीन शरीरों [स्थूल,सूक्ष्म, और कारण] में स्थित आत्मा में (समिन्धते) साक्षात् करते हैं (इन्द्रेण) जीवात्मा के साथ (देवैः) देवों [पृथिव्यादि ३३ देव] के साथ (सरथं) प्रकृति अथवा संसाररूप रथ पर विद्यमान (सः) वह परमेश्वर (बर्हिषि) हृदयरूप आकाश में (सीदन्) विराजमान होता हुआ (नि) निश्चय (होता) कर्मफलों का दाता (यजथाय) साक्षात्कार किए जाने के लिए (सुक्रतुः) महान् ज्ञानी ॥३॥

भावार्थ—उपासक मनुष्य ज्ञान-यज्ञ के जताने वाले, आदि-कारण, सबके हितकारी तथा जीवात्मा और सब (तैंतीस) देव के साथ प्रकृति रूप रथ पर विद्यमान परमेश्वर का जीवात्मा में साक्षात्कार करते हैं। कर्मफलदाता, महान् ज्ञानी वह हृदयाकाश में स्थित होता हुआ साक्षात् किए जाने के योग्य होता है ॥३॥

९१०—गृत्समदः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र २उ ३ १ २ ३ १ २

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥१॥

पदार्थ—(अयं) यह (वां) इन दोनों (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के द्वारा (सुतः) उत्पन्न होता है (सोमः) सोमलता आदि वनस्पति (ऋतावृधा) जल को बढ़ानेवाले (मम) मेरे (इत) ही (इह) इस संसार में (श्रुतं) सुनाते हैं (सुनने के योग्य करते हैं) (हवम्) शब्द को ॥१॥

भावार्थ—जल को बढ़ानेवाले प्राण और उदान के द्वारा ये सोमलता आदि

वनस्पति उत्पन्न होते हैं। इस संसार में वे दोनों हमारे शब्द को सबके सुनने योग्य बनाते हैं ॥१॥

६११—गृत्समदः। मित्रावरुणौ। गायत्री।

१ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आशाते ॥२॥

पदार्थ—(**राजानौ**) प्रकाशमान (**अनभिद्रुहा**) परस्पर एक दूसरे को हानि न पहुँचानेवाले (**ध्रुवे**) निश्चित (**सदसि**) स्थान (**उत्तमे**) श्रेष्ठ (**सहस्रस्थूणे**) अनेक स्तम्भों वाले [संसार में] (**आशाते**) व्यापक होते हैं ॥२॥

भावार्थ—परस्पर हानि न पहुँचाने वाले प्रकाशमान प्राण और उदान वायुएँ सनातन असंख्य स्तम्भों वाले तथा उत्तम संसार रूप स्थान में व्यापक होते हैं ॥२॥

६१२—गृत्समदः। मित्रावरुणौ। गायत्री।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ १ २ ३ १ २

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती। सचेते अनवह्वरम् ॥३॥

पदार्थ—(**तौ**) वे दोनों (**सम्राजौ**) भूगोलादि में विराजमान (**घृतासुती**) जल के उत्पन्न करने वाले (**आदित्या**) प्रकृति से पैदा होनेवाले (**दानुनस्पती**) सारे व्यवहारों के रक्षक (**सचेते**) नाथ रहते हैं (**अनवह्वरम्**) सरलता से ॥३॥

भावार्थ—भूगोल आदि में विराजमान, जल को उत्पन्न करनेवाले, प्रकृति से उत्पन्न तथा सारे व्यवहारों के रक्षक प्राण और उदान सरलता से साथ मिल जाते हैं ॥३॥

६१३—गोतमः। इन्द्रः। गायत्री।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २२

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) परमेश्वर (**दधीचः**) वाणी की (**अस्थभिः**) समिधाओं [शब्द, अर्थ और ज्ञानरूप] (**वृत्राणि**) अज्ञानों को (**अप्रतिष्कुतः**) एकरस (**जघान**) नाश करता है (**नवतेः**) नव के पहाड़े पर्यन्त नब्बे [९०] को (**नव**) नव के समान ॥१॥

भावार्थ—सदा एकरस परमेश्वर वेदवाणी की समिधाओं से नब्बे पर्यन्त नव के पहाड़े की संख्याओं के नव के समान अज्ञान का नाश करता है ॥१॥

६१४—गोतमः। इन्द्रः। गायत्री।

३ १ २२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति ॥२॥

पदार्थ—(**इच्छन्**) चाहता हुआ (**अश्वस्य**) अग्नि के (**यत्**) जो (**शिरः**) श्रेष्ठभाग विद्युत् (**पर्वतेषु**) मेघों में (**अपश्रितम्**) छिपी हुई (**तत्**) उसको (**विदत्**) प्राप्त करता है (**शर्यणावति**) अन्तरिक्ष में ॥२॥

भावार्थ—वैज्ञानिक पुरुष मेघों में छिपी हुई अग्नि के श्रेष्ठभाग बिजली को जानने की इच्छा करता हुआ अन्तरिक्ष में प्राप्त करता है ॥२॥

६१५—गोतमः। इन्द्रः। गायत्री।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २२ १ २ ३ १ २ ३ २

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥

पदार्थ—(**अत्र**) इस जगत् में (**अह**) प्रसिद्ध (**गोः**) पृथिवी के (**अमन्वत**) मानते हैं (**नाम**) नाम को (**त्वष्टुः**) सूर्य के (**अपीच्यं**) छिपे हुए (**इत्था**) इस प्रकार (**चन्द्रमसः**) चन्द्रमा के (**गृहे**) मण्डल में ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग पृथिवी, सूर्य और चन्द्रमा के मण्डल में ईश्वर का ही नाम अन्तर्निहित है, ऐसा मानते हैं ॥३॥

६१६—वसिष्ठः। इन्द्राग्नी। गायत्री।

३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः। अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥१॥

पदार्थ—(**इयं**) यह (**वाम्**) तुम दोनों के लिए (**अस्य**) इस (**मन्मनः**) मेरे मन की (**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**पूर्व्यस्तुतिः**) मुख्यस्तुति (**अभ्राद्**) मेघ से (**वृष्टिः**) वृष्टि के (**इव**) समान (**अजनि**) उत्पन्न होती है ॥१॥

भावार्थ—हे मुक्त जीव और परमेश्वर! मेरे मन से ये आप लोगों की स्तुतियां मेघ से वृष्टि के समान स्वभावतः उत्पन्न होती हैं ॥१॥

६१७—वसिष्ठः। इन्द्राग्नी। गायत्री।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः। ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

पदार्थ—(**शृणुतं**) सुनते हैं (**जरितुः**) स्तुति करनेवाले की (**हवं**) पुकार को (**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**वनतं**) स्वीकार करते हैं (**गिरः**) स्तुतियां (**ईशाना**) स्वामी (**पिप्यतं**) पूर्ण करते हैं (**धियः**) कर्मों को ॥२॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर! तुम दोनों स्तुति करनेवाले की पुकार को सुनते हो, स्तुतियां स्वीकार करते हो तथा कर्मों को पूर्ण करते हो ॥२॥

६१८—वसिष्ठः। इन्द्राग्नी। गायत्री।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ १ २ ३ २

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये। मा नो रीरधतं निदे ॥३॥

पदार्थ—(**मा**) नहीं (**पापत्वाय**) पापाचरण की (**नः**) हमारे द्वारा (**नरा**) हे नेता (**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**मा**) नहीं (**अभिशस्तये**) हिंसा की (**मा**) नहीं (**नः**) हमारे द्वारा (**अरीरधत**) सिद्ध होने दें (**निदे**) निन्दा की ॥३॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर! आप दोनों हमारे द्वारा पापाचरण, हिंसा और निन्दा की सिद्धि न होने दें ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

६१९—दृढच्युतः। सोमः। गायत्री।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे। मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१॥

पदार्थ—(**पवस्व**) व्यापक होता है (**दक्षसाधनः**) बलदाता (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए (**पीतये**) रक्षा के लिए (**हरे**) हे दुःख के हर्त्ता (**मरुद्भ्यः**) ऋत्विजों के लिए (**वायवे**) वायु के लिये (**मदः**) आनन्दकारी ॥१॥

भावार्थ—हे दुःखहर्त्ता परमेश्वर! बलदाता तथा आनन्दकारी तू विद्वान्, ऋत्विज् तथा वायु आदि की रक्षा के लिए सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१॥

६२०—दृढच्युतः। सोमः। गायत्री।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २२ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः। पवमानो अदाभ्यः ॥२॥

पदार्थ—(**सं**) सम्यक् (**देवैः**) जीवों के (**शोभते**) सुशोभित होता है (**वृषा**) सुखों की वर्षा करनेवाला (**कविः**) वेदज्ञान का दाता (**योनौ**) जगत्-कारण प्रकृति पर (**अधि**) अधिष्ठाता रूप से (**प्रियः**) प्रिय (**पवमानः**) पवित्र-कर्त्ता (**अदाभ्यः**) नित्य ॥२॥

भावार्थ—सुखों की वर्षा करनेवाला, वेदज्ञान का दाता, प्रिय, पवित्रकर्त्ता तथा नित्य परमेश्वर जीवों के साथ जगत् के कारण प्रकृति पर अधिष्ठाता होता हुआ विराजमान है ॥२॥

६२१—दृढच्युतः। सोमः। गायत्री।

१ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २ १ २ ३ २ २२

पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत्। धर्मणा वायुमारुहः ॥३॥

पदार्थ—(**पवमान**) हे पवित्रात्मा (**धिया**) कर्म के द्वारा (**हितः**) हितकारी (**अभि**) उद्देश्य से (**योनिं**) आदिकारण परमेश्वर के (**कनिक्रदत्**) उपदेश करता हुआ (**धर्मणा**) धर्म से (**वायुं**) वायु पर (**आरुहः**) चढ़ता है ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष! कर्म के द्वारा सब का हितकारी तू परमात्मा को लक्ष्य में रखकर उपदेश करता हुआ धर्म से वायु पर चढ़ता है, अर्थात् उन्नत होता है ॥३॥

६२२—सप्तर्षयः। सोमः। बृहती।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ २२ ३ १ २

पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीं रति तां इहि ॥१॥

पदार्थ—(**तव**) तेरी (**अहं**) मैं (**सोम**) हे विद्वान् पुरुष (**रारण**) आनन्द करता हूँ (**सख्ये**) मित्रता में (**इन्दो**) विद्या के धनी (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**पुरूणि**) बहुत [विघ्ने] (**बभ्रो**) हे पोषण करनेवाले (**नि चरन्ति**) बाधा रूप से उपस्थित होते हैं (**मां**) मुझे (**अव**) उलटे (**परिधीन्**) आवरणों को (**अति**) अतिक्रमण (**तां**) उनका (**इहि**) कर ॥१॥

भावार्थ—हे पोषण करनेवाले विद्या के धनी विद्वान् पुरुष! मैं प्रतिदिन तेरी मित्रता में सुखी रहता हूँ। कई बाधाएं मेरे सामने उपस्थित होती हैं। तू उन आवरणों को दूर कर ॥१॥

६२३—सप्तर्षयः। सोमः। बृहती।

२ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि।

३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२॥

पदार्थ—(**तव**) तेरे (**अहं**) मैं (**नक्तम्**) रात्रि में (**उत**) और (**सोम**) हे परमेश्वर (**ते**) तेरे [ज्ञान] का (**दिवा**) दिन में (**दुहानः**) दोहन करता हुआ (**बभ्रो**) हे विश्वम्भर (**ऊधनि**) समीप (**घृणा**) तेज से (**तपन्तं**) तपते हुए (**अति**) अत्यन्त (**सूर्यं**) सूर्य को (**परः**) सबसे परे स्थित (**शकुना**) पक्षियों के (**इव**) समान (**पप्तिम**) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे विश्वम्भर परमेश्वर ! तू सबसे परे है। रात और दिन तेरे ज्ञान का दोहन करता हुआ मैं तेरे समीप तेज से अत्यन्त तपते हुए सूर्य को पक्षी विशेष की भांति पहुँचता हूँ ॥२॥

९२४—बृहन्मतिः । सोमः । बृहती ।

१ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ।१।

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करनेवाला (अक्रमीत्) पार करता है (अभि) सब प्रकार से (विश्वा) सारे (मृधः) सांसारिक संग्रामों को (विचर्षणिः) विशेष ज्ञानी को (धीतिभिः) प्रशंसाओं से ॥१॥

भावार्थ—इस संसार को पवित्र करनेवाला जो विशेष ज्ञानी पुरुष सारे संसारी संग्रामों को पार करता है, उस मेधावी को सब लोग प्रशंसाओं से सुशोभित करते हैं ॥१॥

९२५—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (योनिम्) निमित्त कारण परमेश्वर को (अरुणः) तेजस्वी (रुहत्) प्राप्त करने के लिए ऊपर उठता है (गमत्) प्राप्त होता है (इन्द्रः) परमेश्वर (वृषा) कामनाओं को सफल करने वाला (सुतम्) पुत्र रूप (ध्रुवे) निश्चित वा दृढ़ (सदसि) मोक्ष धाम में (सीदतु) स्थित होता है ॥२॥

भावार्थ—तेजस्वी विद्वान् पुरुष निमित्त कारण परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए ऊपर उठता है। कामनाओं को सफल करनेवाला परमेश्वर पुत्र रूप में उसे प्राप्त होता है। तदनन्तर वह विद्वान् पुरुष मोक्ष धाम में विराजमान होता है ॥२॥

९२६—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

पदार्थ—(नु) शीघ्र (नः) हमारी (रयिं) संपदाएं (महां) महान् (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (अस्मभ्यम्) हमें (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) सब प्रकार से (आपवस्व) प्राप्त करा (सहस्रिणं) असंख्य ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू हमें हमारी असंख्य और महान् संपदाएं सब ओर से प्राप्त करा ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डःसमाप्तः 卐

९२७—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

२ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
१ २ ३ २ १ २ ३ १ २
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥

पदार्थ—(पिबा) रक्षा करता है (सोमं) विद्वान् को (इन्द्र) हे परमेश्वर (मन्दतु) स्तुति करें (त्वा) तेरी (यं) जिस (ते) तेरे लिए (सुषाव) यज्ञादि करता है (हर्यश्व) हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक (अद्रिः) आदरणीय (सोतुः) हांकनेवाले के (बाहुभ्याम्) हाथों से (सुयतः) नियन्त्रित (न) समान (अर्वा) घोड़े के ॥१॥

भावार्थ—हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक परमेश्वर ! तू जिस विद्वान् पुरुष की रक्षा करता है वह तेरी स्तुति करता है और हांकनेवाले के हाथों से नियन्त्रित अश्व के समान तेरी प्राप्ति के लिए यज्ञादि शुभकर्मों को करता है ॥१॥

९२८—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
३ २र
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (मदः) स्तुति करनेवाला (युज्यः) योग्य (चारुः) सुन्दर (अस्ति) है (येन) जिसके द्वारा (वृत्राणि) अज्ञानों को (हर्यश्व) हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक (हंसि) नष्ट करता है (स) वह (त्वां) तुझे (इन्द्र) हे परमेश्वर (प्रभूवसो) सबको वास देनेवाले (ममत्तु) प्रसन्न करे ॥२॥

भावार्थ—हे अज्ञाननाशक, सर्वव्यापक तथा सबको वसानेवाले परमेश्वर ! योग्य तथा सुन्दर जो व्यक्ति तेरी स्तुति करनेवाला है, जिसके द्वारा तू सब जनता के अज्ञानों का नाश करता है, वह तुझे स्तुतियों से प्रसन्न करे ॥२॥

९२९—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
३ १ २र ३ १ २
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥

पदार्थ—(बोधा) जानता है (सु) अच्छी तरह (मे) मेरी (मघवन्) हे सम्पूर्ण यज्ञों के स्वामी (वाचं) वाणी को (आ) सब प्रकार से (इमां) इस (यां) जिसको (ते) तेरे विषय की (वसिष्ठः) महान् विद्वान् (अर्चति) करता है (प्रशस्ति) स्तुति को (इमा) इन (ब्रह्म) वेद द्वारा की जानेवाली स्तुतियों को (सधमादे) उपासना (जुषस्व) स्वीकार करते हो ॥३॥

भावार्थ—हे सकल यज्ञों के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् पुरुष तेरे विषय की जो स्तुति करता है उसको और इस मेरी प्रार्थना को भी तू भली भांति जानता है। तू उपासनागृह में की हुई वैदिक स्तुतियों को स्वीकार करता है ॥३॥

९३०—रेभः । इन्द्रः । अतिजगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥

पदार्थ—(विश्वाः) सारे (पृतनाः) संग्रामों को (अभिभूतरं) अभिभव करने वाली (नरः) मनुष्य लोग (सजूः) एक साथ (ततक्षुः) तीक्ष्ण करते हैं (इन्द्रं) विद्युत् को (जजनुः) उत्पन्न करते हैं (च) और (राजसे) प्रकाश के लिए (क्रत्वे) क्रियाओं के साधन के लिये (वरे)श्रेष्ठ (स्थेमनि) स्थिर स्थान में (आमुरीम्) सामने मारने वाली (उत) तथा (उग्रं) स्वभाव से तेज (ओजिष्ठं) अत्यन्त बलवान् (तरसं) चंचल (तरस्विनम्) वेग युक्त ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य लोग एकत्र होकर श्रेष्ठ क्रियाओं की सिद्धि के लिए स्थिर स्थान में सारे संग्रामों को नीचा दिखाने वाली, सब तरफ से मारने वाली, स्वभाव से तेज, बलवान्, चंचल तथा वेगवाली विद्युत् को तीव्र करते हैं और प्रकाश के लिए उत्पन्न करते हैं ॥१॥

९३१—रेभः । इन्द्रः । उपरिष्टात् बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥२॥

पदार्थ—(नेमिं) दुष्टों के लिए वज्ररूप (नमन्ति)नमस्कार करते हैं (चक्षसा) स्तुति से (मेषं) वेदों का उपदेश करनेवाले (विप्राः) ज्ञानीजन (अभिस्वरे) स्तुतिमय यज्ञ में (सुदीतयः) तेजस्वी (वः) तुम लोग (अद्रुहः) द्रोहरहित (अपि) भी (कर्णे) कान में (तरस्विनः) कर्त्तव्यपालन में तत्पर (सं) सम्यक् (ऋक्वभिः) मन्त्रों से ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मेधावी जन स्तुति के द्वारा उपासनारूप यज्ञ में दुष्टों के लिए वज्ररूप तथा वेदों का उपदेश करनेवाले परमेश्वर को नमस्कार करते हैं। तेजस्वी किसी से द्रोह न करनेवाले और कर्त्तव्यपालन में तत्पर तुम लोग भी मन्त्रों से उसकी स्तुति कर्णगोचर करो ॥२॥

९३२—रेभः । इन्द्रः । उपरिष्टाद् बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥३॥

पदार्थ—(सम) सम्यक् (उ) निश्चित(रेभासः) उपासक (अस्वरन्) स्तुति करते हैं (इन्द्रं) परमेश्वर की (सोमस्य) शरीर और आत्मबल का (पीतये) रक्षा के लिए (स्वःपति) सब सुखों का स्वामी (यत् ई) जिस कारण से (वृधे) हमारी उन्नति के लिए (धृतव्रतः) नियमों का धारण करनेवाला (हि) निश्चय ही (ओजसा) शक्ति से (सम्) सम्यक् प्रकार से (ऊतिभिः) रक्षाओं से ॥३॥

भावार्थ—क्योंकि वह सारे सुखों का स्वामी, हमारी उन्नति के लिए सब नियमों का धारण करने वाला तथा सारी शक्ति और रक्षाओं से युक्त है, इसलिए उपासक लोग शरीर और आत्मबल की रक्षा के लिये उस परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं ॥३॥

९३३—पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः ।

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (राजा) राजा है (चर्षणीनां) मनुष्यों का (याता) चढ़ाई करने वाला (रथेभिः) रथों से (अध्रिगुः) स्वतन्त्र (विश्वासां) सारे (तरुता) पार करने वाला (पृतनानां) संग्रामों को (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ को (यः) जो (वृत्रहा) विघ्नों का हनन करने वाला (गृणे) स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—स्वतंत्र जो शासक मनुष्यों का राजा, रथ आदि यानों से शत्रु पर चढ़ाई करने वाला, सारे संग्रामों को पार करने वाला तथा विघ्नों का संहारकर्त्ता है उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

९३४—पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

हस्तेन वज्रः प्रतिधायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्द्रम्**) शासन करने वाले (**तं**) उसको (**शुम्भ**) सुशोभित कर (**पुरुहन्मद्**) हे बहुतों के संहार करने वाले सेनापति (**अवसे**) रक्षा के लिए (**यस्य**) जिसका (**द्विता**) दो प्रकार से (**विधर्त्तरि**) अनेक प्रकार से धारण करने वाले ब्रह्माण्ड में (**हस्तेन**) हाथ से (**वज्रः**) शस्त्र को (**प्रतिधायि**) धारण किया है (**दर्शतः**) दर्शन के योग्य (**महान्**) बड़ा (**देवः**) उत्तम गुण वाला (**न**) समान (**सूर्यः**) सूर्य के ॥२॥

भावार्थ—हे बहुतों का संहार करने वाले सेनापते ! तू उस इन्द्र को सुशोभित कर जिसने प्रजा की रक्षा के लिए हस्त से शस्त्र धारण किया है तथा संसार में दर्शनीय, महान् देव सूर्य के समान रक्षा और तेज को धारण कर वर्तमान है ॥२॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

९३५—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१॥

पदार्थ—(**परि**) सब प्रकार से (**प्रिया**) प्रिय (**दिवः**) विज्ञानवान् के लिए (**कविः**) वेदरूपी काव्य का करने वाला (**वयांसि**) आयुओं को (**नप्त्योः**) द्युलोक और पृथिवी लोक की (**हितः**) हितकारी (**स्वानैः**) वेद के शब्दों द्वारा (**याति**) ज्ञान कराता है (**कविक्रतुः**) महान् ज्ञानी ॥१॥

भावार्थ—संसार का कल्याण करने वाला, महान् ज्ञानी तथा वेदरूपी काव्य का कर्त्ता परमेश्वर विज्ञानी पुरुष को द्यु और पृथिवी लोक में स्थित सभी पदार्थों की आयुओं का वेदों के द्वारा ज्ञान कराता है ॥१॥

९३६—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥२॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**सूनुः**) सृष्टिकर्त्ता (**मातरा**) रक्षा करने वाले (**शुचिः**) शुद्धस्वरूप (**जातः**) उत्पन्न मात्र की (**जाते**) उत्पन्न हुए (**अरोचयत्**) प्रकाशित करता है (**महान्**) सबसे बड़ा (**मही**) द्यु और पृथिवी लोकों को (**ऋतावृधा**) सत्य नियम से बढ़ने वाले ॥२॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता शुद्धस्वरूप महान् परमेश्वर उत्पन्नमात्र की माता तथा स्वयं उत्पन्न और सत्य नियम पर बढ़ने वाले और द्यु और पृथिवी लोक को प्रकाशित करता है ॥२॥

९३७—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्ष पनिष्टये ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**प्र**) उत्तम (**क्षयाय**) आश्रय चाहने वाले (**पन्यसे**) व्यवहार करने वाले (**जनाय**) जन के लिए (**जुष्टः**) भक्ति द्वारा सेवित (**अद्रुहः**) द्रोह न करने वाला (**वीति**) ज्ञानप्राप्ति के लिए (**अर्ष**) प्राप्त होता है (**पनिष्टये**) स्तुति की सिद्धि के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्रीतिपूर्वक सेवित तू निवास और सम्पूर्ण व्यवहार की सिद्धि चाहने वाले तथा द्रोहरहित मनुष्य को स्तुति और ज्ञान की सिद्धि के लिए प्राप्त होता है ॥१॥

९३८—शक्तिः । सोमः । ककुप् ।

२ ३क १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥१॥

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**हि**) निश्चय (**अङ्ग**) शीघ्र (**दैव्य**) हे दिव्य गुणसम्पन्न (**पवमान**) हे पवित्रात्मा (**जनिमानि**) अनेक जन्मों को (**द्युमत्तमः**) तेजस्वी (**अमृतत्वाय**) मोक्ष की प्राप्ति के लिए (**घोषयन्**) बतलाता हुआ ॥१॥

भावार्थ—हे दिव्य गुणसम्पन्न पवित्रात्मा योगिन् ! तेजस्वी तू अपने पूर्व जन्मों को योग द्वारा प्रकट करता हुआ शीघ्र ही मोक्षप्राप्ति के लिए समर्थ होता है ॥१॥

९३९—ऊरुः । सोमः । सतोबृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥२॥

पदार्थ—(**येन**) जिस [परमेश्वर] से (**नवग्वा**) नवीन किरणों वाला (**दध्यङ्**) सूर्य (**अपोर्णुते**) अपने प्रकाश का विस्तार करता है (**येन**) जिससे (**विप्रासः**) मेधावी जन (**आपिरे**) बल प्राप्त करते हैं (**देवानां**) ज्ञानियों के (**सुम्ने**) सुख में स्थित (**अमृतस्य**) मोक्ष का (**चारुणः**) उत्तम (**येन**) जिससे (**श्रवांसि**) यश (**आशत**) प्राप्त करते हैं । वह हमारी रक्षा करे ॥२॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर की शक्ति से नवीन किरणों वाला सूर्य अपने प्रकाश का विस्तार करता है तथा जिसकी कृपा से दिव्य सुख में विद्यमान ज्ञानी लोग शक्ति का संचय करते हैं तथा जिसकी दया से उत्तम मोक्ष का यश प्राप्त करते हैं, वह परमेश्वर हमारी रक्षा करे ॥२॥

९४०—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१॥

पदार्थ—(**सोमः**) परमेश्वर (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**ऊर्मिणा**) प्रकाश से (**अव्यं**) प्रकृति से उत्पन्न (**वारं**) आवरण [अज्ञानान्धकार] को (**वि धावति**) शुद्ध कर देता है (**अग्रे**) सृष्टि के आदि में (**वाचः**) वेदवाणी का (**पवमानः**) शुद्धस्वरूप (**कनिक्रदत्**) उपदेश करता हुआ है ॥१॥

भावार्थ—सबको पवित्र करने वाला शुद्धस्वरूप परमेश्वर सृष्टि के आदि में वेदवाणी का उपदेश करता हुआ ज्ञान के प्रकाश से प्रकृति से उत्पन्न हुए आवरण—अज्ञान को धो देता है ॥१॥

९४१—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥२॥

पदार्थ—(**धीभिः**) ज्ञान तथा कर्म के द्वारा (**मृजन्ति**) अपने को पवित्र करते हैं (**वाजिन**) ज्ञानवान् (**वने**) कारणरूप [परमाणुओं के] वन में (**क्रीडन्तं**) क्रीडा करने वाले (**अत्यविम्**) प्रकृति से परे (**अभि**) उद्देश्य में रखकर (**त्रिपृष्ठं**) तीन प्रकारों [उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय] वाले नाना लोकों वाले (**मतयः**) मेधावी जन (**समस्वरन्**) सम्यक् प्रकार से स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—मेधावीजन ज्ञानवान् कारण वन में क्रीडा करने वाले प्रकृति से परे तथा उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय से युक्त नाना लोकों के स्वामी परमेश्वर की स्तुति करते हुए अपने को पवित्र करते हैं ॥२॥

९४२—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

असर्जि कलशां अभि मीढ्वान् सप्तिर्न वाजयुः ।

३ १ २र ३ १ २

पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥३॥

पदार्थ—(**असर्जि**) उत्पन्न करता है [रचता है] (**कलशान्**) विभूति वालों का (**अभि**) सब प्रकार से (**मीढ्वान्**) बलवान् (**सप्तिः**) वायु के (**न**) समान (**वाजयुः**) अन्न आदि का दाता (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**वाचं**) वाणी को (**जनयन्**) उत्पन्न कराता हुआ (**असिष्यदत्**) आनन्द का स्रोत बहाता है ॥३॥

भावार्थ—वायु के समान बलवान्, अन्न आदि का दाता तथा सबको पवित्र करने वाला परमेश्वर वेदवाणी को उत्पन्न करता हुआ विभूति वाले पदार्थों को रचता और आनन्द की धारा बहाता है ॥३॥

९४३—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥१॥

पदार्थ—(**सोमः**) आत्मा (**पवते**) गति करता है (**जनिता**) प्रकाशक (**मतीनां**) अनेक बुद्धियों का अथवा प्रकाश करनेवाली इन्द्रियों का (**जनिता**) प्रकाशक (**दिवो**) दिव्य गुणयुक्त या विषयों का प्रकाश करने वाली इन्द्रियों का (**पृथिव्याः**) बाह्य ज्ञान का विस्तार करनेवाली या विस्तृत विषयोंवाली इन्द्रियों का (**जनिता**) प्रकाशक (**अग्नेः**) गतिकर्मवाली इन्द्रियों का (**जनिता**) प्रकाशक (**सूर्यस्य**) विषयों में प्रेरणा करनेवाली या प्रेरित होनेवाली (**जनिता**) प्रकाशक (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यशाली इन्द्रियों का (**जनिता**) प्रकाशक (**विष्णोः**) विषयों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियों का ॥१॥

भावार्थ—विषय ज्ञान का प्रकाश करनेवाली, पदार्थों की पोषक, बाह्यज्ञान का विस्तार करनेवाली, गतिशील, विषयों में प्रेरित होनेवाली, ऐश्वर्यशाली तथा विषयों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियों का प्रकाशक जीवात्मा गति प्रदान करता है ॥१॥

९४४—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥२॥

पदार्थ—(ब्रह्मा) महान् ज्ञानी या बड़ा है (देवानां) समस्त दिव्य पदार्थों में (पदवीः) पथ-प्रदर्शक (कवीनां) मेधावियों का (ऋषिः) वेद के अर्थ का ज्ञाता (विप्राणां) वेद-ज्ञाताओं में (महिषः) महान् (मृगाणां) अन्वेषण कर्त्ताओं में (श्येनः) महान् ज्ञाता (गृध्राणां) ज्ञान गुणवालों में (स्वधितिः) पोषण करनेवाला (वनानां) भक्ति करनेवालों का (सोमः) परमेश्वर (पवित्रम्) समस्त सूर्य, अग्नि आदि पदार्थों से (अत्येति) परे है (रेभन्) स्तुति किया जाता हुआ ।।२।।

भावार्थ—सकल दिव्य पदार्थों का महान् ज्ञानी, बुद्धिमानों का पथप्रदर्शक वेदज्ञाताओं का ऋषि, खोज करनेवालों में सबसे महान्, ज्ञान गुण वालों में महान् ज्ञाता तथा भक्तों का पालक स्तुति योग्य परमेश्वर सूर्य आदि समस्त पदार्थों से परे है ।।२।।

९४५—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः स्तोमान् पवमानो मनीषाः ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ।।३।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (अवीविपत्) प्रेरित करता है (वाचः) वाणियों को (ऊर्मि) लहर के (न) समान (सिन्धुः) समुद्र (गिरःस्तोमान्) स्तुति-समूहों को (पवमानः) शुद्धस्वरूप (मनीषाः) बुद्धियों को (अन्तः) अन्तर्यामी रूप से (पश्यन्) साक्षी (वृजना) चलने फिरने के व्यवहार के योग्य (इमा) इन (अवराणि) पृथिवी आदि कार्य द्रव्यों का (आतिष्ठति) अधिष्ठाता हो रहा है (वृषभः) कामनाओं को पूर्ण करनेवाला (गोषु) सूर्य आदि सकल पदार्थों को (जानन्) जानता हुआ ।।३।।

भावार्थ—शुद्धस्वरूप, सारी कामनाओं को सफल करनेवाला परमेश्वर लहर को समुद्र के समान वाणियां, स्तुति-समूह तथा ज्ञानों को प्रेरित करता है तथा अन्तर्यामी रूप से सूर्य आदि लोकों का साक्षी वह इन व्यवहार के साधक पृथिवी आदि कार्य द्रव्यों का अधिष्ठाता हो रहा है ।।३।।

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

९४६—प्रयोगोऽग्निरादयश्च । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ।।१।।

पदार्थ—(अग्निं) आचार्य के समीप (वः) तुम लोग (वृधन्तम्) बढ़ानेवाले (अध्वराणां) अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञों के (पुरूतमम्) महान् विद्वान् (अच्छा) अच्छी तरह से (नप्त्रे) पुत्र-पौत्र आदि का (सहस्वते) वीर और विद्वान् बनाने के लिए ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अपने पुत्र, पौत्र आदि को बलवान् विद्वान् बनाने के लिए शिक्षा यज्ञ की वृद्धि करनेवाले महान् विद्वान् आचार्य की सेवा में उपस्थित होओ ।।१।।

९४७—प्रयोगोऽग्निरादयश्च । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ।।२।।

पदार्थ—(अयं) यह (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारे (आ भुवत्) कर्त्ता होता है (त्वष्टा) बढ़ई के (रूपा) रूपों का (इव) समान (तक्ष्या) काष्ठों के (अस्य) इसके (क्रत्वा) ज्ञान से (यशस्वतः) यशस्वी होते हैं ।।२।।

भावार्थ—जिस प्रकार काष्ठों के विविध रूपों को बढ़ई बनाता है उसी प्रकार परमेश्वर हमारे नाना रूपों को बनाता है। उसी के ज्ञान से हम यशस्वी होते हैं ।।२।।

९४८—प्रयोगोऽग्निरादयश्च । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ २उ ३ १ २

अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ।।३।।

पदार्थ—(अयं) यह (विश्वाः) सारी (अभि) सब प्रकार से (श्रियः) संपदाओं का (अग्निः) परमेश्वर (देवेषु) उत्तम गुणवाले मनुष्यों में (पत्यते) सम्पादन करता है (आ) सब प्रकार से (वाजैः) भोग्य पदार्थों के साथ (उप) समीप (नः) हमें (गमत्) प्राप्त हो ।।३।।

भावार्थ—परमेश्वर उत्तम गुणवालों को सारी संपदाएँ प्रदान करता है। वह हमें सकल भोग्य पदार्थों के साथ प्राप्त हो ।।३।।

९४९—गोतमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ।।१।।

पदार्थ—(इमम्) इस (इन्द्र) हे परमेश्वर (सुतं) पुत्ररूप जीव की (पिब) रक्षा कर (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ (अमर्त्यं) अमर (मदम्) आनन्द के भोक्ता (शुक्रस्य) शुद्ध (त्वा) तुझे (अभि) लक्ष्य कर (अक्षरन्) प्राप्त होती हैं (धाराः) वाणियाँ (ऋतस्य) यज्ञ के (सादने) स्थान में ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू श्रेष्ठ, अमर तथा सुख का उपभोग करनेवाले इस पुत्ररूप जीव की रक्षा कर। पवित्र यज्ञ के स्थान में वेदवाणियां तेरे ही उद्देश्य से की जाती हैं ।।१।।

९५०—गोतमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नकिष्टवद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।

२ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

नकिष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ।।२।।

पदार्थ—(नकिः) न कोई (त्वत्) तुझ से बढ़कर (रथीतरः) महारथी (हरी) वायु और अग्नि को (यत्) जिस कारण (इन्द्र) हे परमेश्वर (यच्छसे) नियम में रखता है (नकिः) कोई नहीं (त्वा अनु) तेरे समान (मज्मना) बल में (नकिः) कोई नहीं (स्वश्व) हे व्यापक (आनशे) प्राप्त कर सकता है ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि तू वायु और अग्नि को नियम में रखता है, इस कारण तुझ से बढ़कर कोई महारथी नहीं। तेरे समान भी कोई नहीं। हे व्यापक प्रभो ! तुझे शक्ति में भी कोई नहीं पा सकता ।।२।।

९५१—प्रयोगोऽग्निरादयश्च । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ १ २

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ।।३।।

पदार्थ—(इन्द्राय) परमेश्वर की (नूनम्) निश्चित ही (अर्चत) पूजा करो (उक्थानि) स्तोत्रों का (च) और (ब्रवीतन) उच्चारण करो (सुताः) पुत्र स्वरूप (अमत्सुः) आनन्द लाभ करते हैं (इन्दवः) विद्वान् जन (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ को (नमस्यता) नमस्कार करो (सहः) सबसे अधिक बलवान् ।।३।।

भावार्थ—हे मनुष्यो । तुम लोग निश्चित ही परमेश्वर की पूजा करो और उसके लिए स्तोत्रों का उच्चारण करो । पुत्रस्वरूप विद्वान् जन जिसमें आनन्द लाभ करते हैं। सबसे श्रेष्ठ तथा उस प्रभु को नमस्कार करो ।।३।।

९५२—ऋषिर्देवता छन्दश्च विचारणीयानि ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २

पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ।।१।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (जुषस्व) स्वीकार कर (प्र) उत्तम (वहा) प्राप्त करा (याहि) प्राप्त हो (शूर) हे सबसे अधिक बलवान् (हरिह) हे अज्ञान-नाशक (पिबा) रक्षा कर (सुतस्य) उत्पन्न (मतिः) मेधावी के (न) समान (मधोः) विज्ञान का (चकानः) तृप्त करनेवाला होता है (चारुः) शोभन (मदाय) आनन्द के लिए ।।१।।

भावार्थ—हे सबसे बढ़कर बलवान्, तथा अज्ञाननाशक, परमेश्वर ! आनन्द से तृप्ति करनेवाला तथा शोभन तू हमारी प्रार्थना स्वीकार कर हमें ज्ञान दे और प्राप्त हो। मेधावी पुरुष के समान आनन्द की प्राप्ति के लिए हमारे उत्पन्न हुए ज्ञान की रक्षा कर ।।१।।

९५३—ऋषिदेवतादयो विचारणीयाः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।

३ २ ३ २ ३ २क १ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य सुतस्य स्वा३र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ।।२।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (जठरं) उत्पन्न जगत् को (नव्यं न) नये के समान (पृणस्व) व्यापकता से पूर्ण करता है (मधोः) उपासना की (दिवः न) विद्युत् के समान (अस्य) इस (सुतस्य) पुत्ररूप भक्त (स्वः न) सूर्य के समान (उप) समीप (त्वा) तेरे (मदाः) हर्षदायक (सुवाचः) मनोहर स्तुतियां (अस्थुः) उपस्थित हों ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सूर्य के समान तू अपनी व्यापकता से उत्पन्न जगत् को नये की भांति पूर्ण करता है। इस पुत्ररूप भक्त की उपासना सम्बन्धी हर्षकारी स्तुतियाँ विद्युत् के समान तेरी सेवा में उपस्थित हों ।।२।।

९५४—ऋषिछन्दो देवतादयो विचारणीयाः ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

बिभेद बलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ।।३।।

पदार्थ—(इन्द्रः) शासन करनेवाला (तुराषाट्) हिंसकों का नाश करनेवाला (मित्रो न) सूर्य के समान (जघान) नाश करता है (वृत्रं) मेघ को (यतिः न) संन्यासी के समान (बिभेद) छिन्नभिन्न करता है (बलं) इन्द्रियों के बल को (भृगुः न) वीतराग के समान (शत्रून्) काम-क्रोध आदि शत्रुओं को (ससाहे) तिरस्कार करता है (मदे) आनन्द में (सोमस्य) परमेश्वर के ॥३॥

भावार्थ—हिंसकों का नाश करनेवाला राजा परमेश्वर के आनन्द में विद्यमान होकर मेघ को सूर्य के समान, इन्द्रिय-बल को संन्यासी के समान तथा काम-क्रोधादि शत्रुओं को वीतराग के समान अपने शत्रुओं का तिरस्कार करता है ॥३॥

सप्तमः खण्डः समाप्तः

卐 पंचमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

षष्ठोऽध्यायः

९५५—त्रय ऋषिगणाः । सोमः । जगती ।

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।

२ ३ १ २   ३ २उ   ३ २ ३ १ २ ३ १   २र
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उपगिरेम आसते ॥

पदार्थ—(गोवित्) गाय आदि पशुओं का प्राप्त करानेवाला (पवस्व) पवित्र कर (वसुवित्) धन का दाता (हिरण्यवित्) सुवर्ण या प्रकाश का दाता (रेतोधाः) जल आदि का धारण करनेवाला (इन्दो) हे परम ऐश्वर्यवाले (भुवनेषु) लोकों में (अर्पितः) व्यापक (त्वं) तू (सुवीरः) अत्यन्त बलवान् (असि) है (सोम) हे परमेश्वर (विश्वविद्) सबका साक्षी (तं) उस (त्वा) तेरी (नरः) मनुष्य (उप) समीप (गिरा) स्तुति से (इमे) ये (आसते) उपस्थित होते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् ! परमेश्वर तू गौ आदि पशुओं, धन तथा सुवर्ण आदि का दाता है । जल आदि द्रव्यों का धारण करनेवाला तू लोकों में व्यापक है । तू ही सब से बढ़कर बलवान् और विश्व का साक्षी है । ये मनुष्य स्तुित के द्वारा तेरी शरण में उपस्थित होते हैं । तू उन तथा हम सबको पवित्र कर ॥१॥

९५६—त्रय ऋषिगणाः । सोमः । जगती ।

२ ३ १ २   ३ २ ३ १,२   ३ १   २र
त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।

१ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १   २ ३ १ २   ३ १ २
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भवनेषु जीवसे ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नृचक्षाः) मनुष्यमात्र का साक्षी (असि) है (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) सब प्रकार से (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (वृषभ) हे कामनाओं की वर्षा करनेवाले (ता) उन [प्रजाओं] में (विधावसि) व्यापक हो रहा है (सः) वह (नः) हमें (पवस्व) पवित्र कर (वसुमत्) वास करने वाला (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि संपदाओं का स्वामी (वयं) हम (स्याम) होवें (भुवनेषु) लोकों में (जीवसे) जीने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा सकल कामनाओं की वर्षा करने वाले परमेश्वर ! तू मनुष्यमात्र का साक्षी है । तू सारी प्रजाओं में व्यापक हो रहा है । तू ही सबको शरण देनेवाला तथा सारी संपदाओं का स्वामी है । हमें पवित्र कर । तेरी कृपा से हम संसार में जीने योग्य हों ॥२॥

९५७—त्रय ऋषिगणाः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २ ३क २र
ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।

१ २   ३ १ २   ३ २उ ३ १ २ ३ १   २   ३ १ २
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥

पदार्थ—(ईशानः) सबका स्वामी (इमा) इन (भुवनानि) लोकों में (ईयसे) व्यापक हो रहा है (युजानः) युक्त करता हुआ (इन्दो) हे ऐश्वर्यवान् (हरितः) विविध रंगों वाले (सुपर्ण्यः) सूर्य आदि के किरणों को (ताः) वे (ते) तेरी (क्षरन्तु) वर्षा करें (मधुमत्) मधुर गुणवाले (घृतं) घृत के समान पुष्टिकारक (पयः) जल (तव) तेरे (व्रते) नियम में (सोम) हे परमेश्वर (तिष्ठन्तु) स्थिर रहें (कृष्टयः) मनुष्य ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू सबका स्वामी है । तू ही भांति भांति के रंगवाली सूर्य और चन्द्र आदि की किरणों को जोड़ता हुआ इन लोकों में व्यापक हो रहा है । तेरी शक्ति से वे [किरणें] मधुर गुणवाले और घी के समान पुष्टिकारक जल की वर्षा करती हैं । सारे मनुष्य सदा तेरे नियम में स्थिर रहें ॥३॥

९५८—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३ १ २   १ २ ३ २ ३ १ २
पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥१॥

पदार्थ—(पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (विश्ववित्) हे सर्वज्ञ (प्र) उत्तम (ते) तेरी (सर्गाः) सृष्टियें (असृक्षत) उत्पन्न की जाती हैं (सूर्यस्य) सूर्य की (इव) समान (न) इस समय भी (रश्मयः) किरणों के ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तुझ शुद्धस्वरूप की सृष्टियां सूर्य की किरणों के समान अब भी रची जाती हैं ॥१॥

९५९—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
केतुं कृण्वं दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥२॥

पदार्थ—(केतुं) सृष्टि-रचनारूप कर्म को (कृण्वन्) करता हुआ (दिवः परि) द्युलोक से परे (विश्वा) अन्य सारे (रूपा) रूपों में (अभ्यर्षसि) व्यापक हो रहा है (समुद्रः) सब प्राणियों को सुख देनेवाला (सोम) हे परमेश्वर (पिन्वसे) सब का पोषण करता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्राणिमात्र को आनन्द देनेवाला तू सृष्टि-रचना रूप कर्म को करता हुआ द्युलोक से भी परे तथा अन्य सब रूपों में व्यापक होता हुआ पोषण कर रहा है ॥२॥

९६०—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३   १ २र   ३ १ २ ३ १ २   १ २ ३ १   २र
जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । क्रन्दं देवो न सूर्यः ॥३॥

पदार्थ—(जज्ञानः) प्रकट होते हुए (वाचं) वेदवाणी को (इष्यसि) प्रेरित करता है (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (विधर्मणि) विशेष धर्मयुक्त अन्तःकरण में (क्रन्दं) अव्यक्त शब्द करता हुआ (देवः) देव (न) समान (सूर्यः) सूर्य ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! उदय को प्राप्त सूर्य देव के समान तेजस्वी तू विशेष धर्मयुक्त अन्तःकरण में अव्यक्त रूप से वेदवाणी की प्रेरणा करता है ॥३॥

९६१—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१   २र   ३ १ २   ३ १ २   ३   २ ३ १ २
प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) विद्वान् जन (अधन्विषुः) ज्ञान प्राप्त करते हैं (पवमानासः) पवित्रात्मा (इन्दवः) योग के ऐश्वर्यवाले (श्रीणानाः) आश्रय लेते हुए (अप्सु) परमेश्वर में (वृञ्जते) मुक्त हो जाते हैं ॥१॥

भावार्थ—पवित्रात्मा योगरूप ऐश्वर्यवाले विद्वान् जन ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा परमेश्वर में आश्रय लेते हुए मुक्त हो जाते हैं ॥१॥

९६२—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १   २र   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २   ३   ३   २र
अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥२॥

पदार्थ—(अभि) भली भाँति (गावः) गमनशील (अधन्विषुः) ज्ञान प्राप्त करते हैं (आपो न) जल के समान (प्रवता) नीचे की तरफ (यतीः) जानेवाले (पुनानाः) पवित्रात्मा (इन्द्रम्) परमेश्वर को (आशत) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—गमनशील ज्ञानी पुरुष नीचे की तरफ जानेवाले जल के समान ज्ञान की प्राप्ति के लिए वेग से अभिमुख होते हैं और पवित्र हुए परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥२॥

९६३—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (पवमान) हे पवित्रात्मन् (धन्वसि) प्राप्त करता है (सोम) हे विद्वान् पुरुष (इन्द्राय) परमेश्वर को (मादनः) स्तुति करनेवाला (नृभिः) मनुष्यों के द्वारा (यतः) संयमी (विनीयसे) विनयपूर्वक प्राप्त किया जाता है ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष ! तुझ स्तुति करनेवाले और संयमी को मनुष्य विनयपूर्वक प्राप्त करते हैं । तू परमेश्वर को प्राप्त करता है ॥३॥

९६४—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥

पदार्थ—(इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (यत्) जब (अद्रिभिः) आदरणीय पुरुषों के द्वारा (सुतः) संसार में उत्पन्न हुआ (पवित्रं) पवित्र आत्मा [विद्वान्] को (परिदीयसे) दिया जाता है (अरं) पर्याप्त होता है (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (धाम्ने) मोक्ष धाम के लिए ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! संसार में उत्पन्न हुआ तू जब आदरणीय पुरुषों के द्वारा पवित्रात्मा विद्वान् की शरण में दिया जाता है तो परमेश्वर के मोक्षधाम में जाने के लिए समर्थ होता है ॥४॥

९६५—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥५॥

पदार्थ—(त्वं) तू (सोम) हे परमेश्वर (नृमादनः) मनुष्यमात्र को आनन्दित करनेवाला (पवस्व) पवित्र कर (चर्षणीधृतिः) मनुष्यमात्र का धारण करनेवाला (सस्निः) शुद्धस्वरूप (यः) जो (अनुमाद्यः) स्तुति के योग्य है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू मनुष्य मात्र को आनन्दित तथा धारण करने वाला शुद्धस्वरूप तथा स्तुति के योग्य है । तू हमें पवित्र कर ॥५॥

९६६—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥६॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (वृत्रहन्तम) हे अज्ञानों का अत्यन्त नाश करनेवाला (उक्थेभिः) स्तुतियों से (अनुमाद्यः) स्तुति के योग्य (शुचिः) शुद्धस्वरूप (पावकः) पवित्र करने वाला (अद्भुतः) अद्वितीय ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अज्ञानों का अत्यन्त नाश करने वाला, स्तोत्रों से स्तुति के योग्य शुद्धस्वरूप, पवित्र करने वाला तथा अद्वितीय तू हमें पवित्र कर ॥६॥

९६७—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरघशंसहा ॥७॥

पदार्थ—(शुचिः) शुद्धस्वरूप (पावकः) सबका पवित्र करने वाला (उच्यते) कहा जाता है (सोमः) परमेश्वर (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (सः) वह (मधुमान्) ज्ञानवान् (देवावीः) सारे दिव्य पदार्थों की रक्षा करने वाला (अघशंसहा) पाप प्रवृत्ति वालों का नाशक ॥७॥

भावार्थ—वह परमेश्वर शुद्धस्वरूप, सबको पवित्र करने वाला सृष्टिकर्त्ता, विज्ञानवान्, सकल दिव्य शक्तियों का रक्षक तथा पापियों का संहारक कहा जाता है ॥७॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

९६८—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (कविः) मेधावी पुरुष (देववीतये) उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिए (अव्याः) प्रकृति के (वारेभिः) आवरणों से (अव्यत) युक्त होता है (साह्वान्) दबाने वाला (विश्वाः) सारे (अभि) अभिभवपूर्वक (स्पृधः) हिंसकों को ॥१॥

भावार्थ—शत्रुओं को दबाने वाला तथा बुद्धिमान् पुरुष उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिए प्रकृति के आवरणों से युक्त होता है । वह हिंसकों तथा स्पर्धाकारियों को दबाता है ॥१॥

९६९—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (हि ष्मा) ही (जरितृभ्यः) स्तोताओं को (वाजम्) अन्न (गोमन्तम्) पृथिवी आदि से युक्त (इन्वति) देता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (सहस्रिणम्) सहस्रों प्रकार के ॥२॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर स्तुति करने वालों को सहस्रों प्रकार के पृथिवी आदि से युक्त अन्न आदि पदार्थों को देता है ॥२॥

९७०—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥३॥

पदार्थ—(परि) सब तरह से (विश्वानि) सारे ज्ञानों को (चेतसा) चेतना शक्ति से (मृज्यसे) पवित्र करता है (पवसे) जानता है (मती) ज्ञान के द्वारा (सः) वह (नः) हमें (सोम) हे परमेश्वर (श्रवः) कीर्ति तथा धन (विदः) प्राप्त करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू समस्त लोकों को अपनी चेतना शक्ति से पवित्र करता है अपने ज्ञान के द्वारा सबको जानता है । तू ही हमें धन और यश देता है ॥३॥

९७१—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३क २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

पदार्थ—(अभि अर्ष) प्राप्त करा (बृहत्) महान् (यशः) यश (मघवद्भ्यः) यज्ञ करने वालों का (ध्रुवम्) स्थायी (रयिम्) धन (इषम्) ज्ञान (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों का (आभर) पूर्ण कर ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू यज्ञकर्त्ताओं और भक्तों को महान् यश प्रदान कर तथा स्थायी धन और ज्ञान को दे ॥४॥

९७२—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥

पदार्थ—(त्वं) तू (राजेव) राजा के समान (सुव्रतः) शोभन नियमों वाला (गिरः) वेदवाणियों में (सोम) हे परमेश्वर (विवेशिथ) ओत प्रोत है (पुनानः) पवित्र कारक (वह्ने) हे संसार को वहन करने वाले (अद्भुत) हे अद्वितीय ॥५॥

भावार्थ—हे संसार के वहन करनेवाले अद्वितीय परमेश्वर ! तू सबको पवित्र करने वाला राजा के समान व्रतधारी है । तू वेदवाणियों में ओत-प्रोत है ॥५॥

९७३—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥

पदार्थ—(स) वह (वह्निः) नेता (अप्सु) अन्तरिक्ष में (दुष्टरः) अजेय (मृज्यमानः) शुद्ध करता हुआ (गभस्त्योः) दो प्रकार की किरणों में (सोमः) परमेश्वर (चमूषु) द्यौ, पृथिवी तथा अन्य लोकों में (सीदति) स्थित है ॥६॥

भावार्थ—नेता, अजेय, शुद्धकारक परमेश्वर अन्तरिक्ष, किरण, द्यु तथा पृथिवी आदि लोकों में स्थित है ॥६॥

९७४—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७॥

पदार्थ—(क्रीडुः) मनुष्यादि प्राणियों को क्रीड़ा कराने वाला (मखो न) यज्ञ के समान (मंहयुः) पूजनीय (पवित्रम्) पवित्र आत्मा को (सोम) हे परमेश्वर (गच्छसि) प्राप्त होता है (दधत्) धारण करता हुआ (स्तोत्रे) भक्त के लिए (सुवीर्यम्) आत्मिक बल को ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब प्राणियों को क्रमानुसार नचाने वाला तथा यज्ञ के समान पूजनीय है । तू स्तोता को आत्मिक शक्ति देता हुआ पवित्र आत्मा को प्राप्त होता है ॥७॥

९७५—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ १ २ ३ १ २

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परिस्रव । विश्वा च सोम सौभगा ॥१॥

पदार्थ—(यवं यवं) प्रभूत यव (नः) हमें (अन्धसा) अन्य अन्नों से (पुष्टं पुष्टं) अत्यन्त पुष्टिकारक (परिस्रव) प्रदान कर (विश्वा) सारे (च) और (सोम) हे परमेश्वर (सौभगा) धन धान्य को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें अन्य उत्तम अन्नों के साथ पुष्टिकारक यव आदि सारी सम्पत्तियां प्रदान कर ॥१॥

९७६—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्यशाली (**यथा**) जिस प्रकार (**तव**) तेरी (**स्तवः**) स्तुति है (**यथा**) जिस प्रकार (**ते**) तेरा (**जातम्**) उत्पन्न संसार रूप कार्य है (**अन्धसः**) अन्न के सम्बन्ध से (**नि**) निश्चित (**बर्हिषि**) आकाश में (**प्रिये**) आनन्ददायक (**सदः**) स्थित है ।।२।।

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर ! जिस प्रकार अन्नादि के उत्पादक होने के कारण तेरी स्तुति की जाती है और जिस प्रकार तेरा उत्पन्न किया हुआ यह सारा संसार है उसी प्रकार तू [अपने उसी स्वरूप से] आनन्द के स्थान आकाश में सदा वर्तमान है ।।२।।

९७७—*अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ।।३।।

पदार्थ—(**उत**) और (**नः**) हमें (**गोवित्**) इन्द्रियाँ प्रदान करने वाला (**अश्ववित्**) प्राणों का दाता (**पवस्व**) पवित्र करता है (**सोम**) हे परमेश्वर (**अन्धसा**) अन्न से (**मक्षूतमेभिः**) निरन्तर होने वाले (**अहभिः**) दिनों से ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! इन्द्रिय और प्राणों का दाता तू अन्न तथा निरन्तर होने वाले दिनों से हमें पवित्र करता है ।।३।।

९७८—*अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १२३१२ १२

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ।।४।।

पदार्थ—(**यः**) जो (**जिनाति**) सब पर विजय प्राप्त करता है (**न**) नहीं (**जीयते**) पराजित होता है (**हन्ति**) नाश करता है (**शत्रुम्**) न्याय-विरोधियों का (**अभीत्य**) सब प्रकार से प्राप्त होकर (**सः**) वह (**पवस्व**) पवित्र कर (**सहस्रजित्**) हे असंख्यों पर विजय प्राप्त करने वाले ।।४।।

भावार्थ—हे असंख्यों पर विजय प्राप्त करने वाले परमेश्वर ! जो तू सब का विजयी, किन्तु स्वयं न पराजित होने वाला तथा अन्यायियों का सब प्रकार से विनाशकर्त्ता है, वह तू हमें पवित्र कर ।।४।।

९७९—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ।।१।।

पदार्थ—(**याः**) जो (**ते**) तेरी (**धाराः**) वेदवाणियां (**मधुश्चुतः**) ब्रह्मज्ञान का प्रवाह बहाने वाली (**असृग्रम्**) प्रकट होती हैं (**इन्दो**) हे परम ऐश्वर्य वाले (**ऊतय**) रक्षा के लिए (**ताभिः**) उनके साथ (**पवित्रं**) पवित्र आत्मा में (**आसदः**) विराजमान है ।।१।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! ब्रह्मज्ञान का प्रवाह बहाने वाली जो तेरी वेदवाणियां प्रकट होती हैं, उनके साथ रक्षा करने के लिए तू पवित्र आत्मा में विराजमान है ।।१।।

९८०—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । सीदन्नृतस्य योनिमा ।।२।।

पदार्थ—(**सः** (वह (**अर्ष**) प्राप्त हो (**इन्द्राय**) जीव की (**पीतये**) रक्षा के लिए (**तिरः**) तिरस्कार करता हुआ (**वाराणि**) आवरणों को (**अव्यया**) प्रकृति सम्बन्धी (**सीदन्**) स्थित होता हुआ (**ऋतस्य**) सत्य के (**योनिम्**) स्थान में (**आ**) सब प्रकार से ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सत्य के स्थान में विराजमान तू प्रकृति के आवरणों को दूर करता हुआ जीव की रक्षा के लिए प्राप्त हो ।।२।।

९८१—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद् घृतं पयः ।।३।।

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**सोम**) हे परमेश्वर (**परिस्रव**) प्रदान कर (**स्वादिष्ठः**) अत्यन्त मनोहर (**अंगिरोभ्यः**) विद्वानों के लिए (**वरिवोवित्**) धनदाता (**घृतं**) प्रकाश (**पयः**) ज्ञान को ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त मनोहर तथा धनदाता तू ज्ञानियों को प्रकाश और ज्ञान प्रदान कर ।।३।।

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

९८२—*अरुणः । अग्निः । जगती ।*

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ।।

पदार्थ—(**तव**) तेरी (**श्रियः**) विभूतियां (**वर्ष्यस्या**) वर्षाकाल में होने वाली (**इव**) समान (**विद्युतः**) बिजली के (**अग्नेः**) अग्रणी (**चिकित्रे**) जानी जाती हैं (**उषसा**) प्रातःकालों के (**इव**) समान (**एतयः**) प्रकाशों का (**यत्**) जिस कारण से (**ओषधीः**) यव आदि को (**अभिसृष्टः**) प्रेरित होकर (**वनानि**) वनों को (**च**) और (**परि**) सब प्रकार से (**स्वयं**) अपने आप (**चिनुषे**) समेटता है (**अन्नम्**) पृथिवी आदि को (**आसनि**) अपने मुख में ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि हमारे कर्म से प्रेरित हुआ तू यव आदि अन्न, ओषधि, वन तथा पृथिवी आदि को अपने कारण रूप मुख में अपने आप समेटता है इसलिए तेरी विभूतियाँ वर्षाकाल की विद्युत् और उषा काल के प्रकाश के समान जान पड़ती हैं ।।१।।

९८३—*अरुणः । अग्निः । जगती ।*

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।

१ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ ते यतन्ते रथ्योऽ३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ।।२।।

पदार्थ—(**वातोपजूतः**) वायु के समान गति वाला (**इषितः**) नित्य इच्छा गुण से युक्त (**वशां**) कान्तिमान् पदार्थों (**अनु**) में (**तृषु**) शीघ्र (**यत्**) जिस कारण (**अन्ना**) अन्न [प्रकृति का कार्य जगत् आदि] में (**वेविषद्**) व्यापक होता हुआ (**वितिष्ठसे**) स्थित है (**आ**) भलीभांति (**ते**) तेरी (**यतन्ते**) प्रयत्नशील हो रही हैं (**रथ्यः**) रथी के (**यथा**) समान (**पृथक्**) अलग-अलग (**शर्धांसि**) शक्तियाँ (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**अजरस्य**) अजर (**धक्षतः**) दुर्गुणों को भस्म करने वाले ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि वायु के समान वेगवाला तथा नित्य इच्छा गुणवाला तू कान्तिमान् प्रकृति के सभी कार्य द्रव्यों में व्यापक होकर स्थित है इस लिए सब दुर्गुणों को भस्म करनेवाले तुझ अजर की शक्तियाँ रथी के समान पृथक्-पृथक् प्रयत्नशील हो रही हैं ।।२।।

९८४—*अरुणः । अग्निः । जगती ।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम् ।

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ।।३।।

पदार्थ—(**मेधाकारं**) बुद्धि को उत्पन्न करनेवाले (**विदथस्य**) यज्ञ आदि व्यवहार के (**प्रसाधनम्**) सिद्ध करनेवाले (**अग्निम्**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (**होतारं**) विज्ञान के दाता (**परिभूतरं**) सर्वव्यापक (**मतिम्**) ज्ञानी [मेधावी] (**त्वां**) तुझे (**अर्भस्य**) थोड़ी (**हविषः**) उपादेय भक्ति के (**समानमित्**) समान ही (**त्वां**) तुझे (**महो**) महान् (**वृणते**) भक्ति करते हैं (**न**) नहीं (**अन्यं**) दूसरे को (**त्वत्**) तुझसे भिन्न ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भक्त लोग बुद्धि के उत्पन्न करनेवाले, यज्ञ के साधक विज्ञानदाता, सर्वव्यापक, ज्ञानी तथा छोटी और बड़ी भक्ति के समान रूप से स्वीकार करने वाले तुझ प्रकाशस्वरूप की प्रार्थनोपासना करते हैं, तुझ से अन्य की नहीं ।।६।।

९८५—*उरुचक्री । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ २

पूरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ।।१।।

पदार्थ—(**पुरूरुणा**) बहुत (**चित्**) ही (**हि**) क्योंकि (**अस्ति**) है (**अवः**) रक्षा (**नूनम्**) निश्चित रूप से (**वां**) तुम दोनों की (**वरुण**) हे उपदेशक (**मित्र**) हे अध्यापक (**वंसि**) स्वीकार करते हैं (**वां**) तुम दोनों की (**सुमतिं**) उत्तम बुद्धि को ।।१।।

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम दोनों का संरक्षण निश्चित ही है । तुम्हारी उत्तम बुद्धि को हम स्वीकार करते हैं ।।१।।

९८६—*उरुचक्रिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ।।२।।

पदार्थ— (**ता**) उन (**वां**) तुम दोनों की (**सम्यक्**) सब प्रकार से (**अद्रुह्वाणा**) द्रोह न करनेवाले (**इषम्**) ज्ञान (**अश्याम**) प्राप्त करते हैं (**धाम**) नाम (**न**) और (**वयं**) हम (**वां**) तुम दोनों के (**मित्रा**) मित्र (**स्याम**) हों ।।२।।

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! द्रोह न करने वाले आप दोनों की हम भली भाँति प्रशंसा करते हैं । तुम्हारी कृपा से हम ज्ञान और नाम को प्राप्त करते हैं । हम तुम लोगों के मित्र हों ।। २।।

९८७—*उरुचक्रिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । साह्याम दस्यूं तनूभिः ।।३।।

पदार्थ—(**पातं**) रक्षा करो (**नो**) हमारी (**मित्रा**) हे अध्यापक और उपदेशक (**पायुभिः**) रक्षा के उपायों से (**उत**) और (**त्रायेथाम्**) रक्षा करें (**सुत्रात्रा**) सुन्दर रक्षण से (**साह्याम**) तिरस्कार करते हैं (**दस्यून्**) शत्रुओं का (**तनूभिः**) नीतियों के द्वारा ॥३॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप रक्षा के साधनों से हमारी रक्षा करें और उत्तम रक्षणों से हमारा त्राण करें। तुम्हारी उपदिष्ट नीति से हम शत्रुओं का तिरस्कार करते हैं ॥३॥

९८८—*कुरुसुतिः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१२३ १२ ३२ ३ १ २र १२ ३२ ३२

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥१॥

पदार्थ—(**उत्तिष्ठन्**) उठाता या धारण करता हुआ (**ओजसा**) बल के साथ (**पीत्वा**) रक्षा करके (**शिप्रे**) सुख देनेवाले द्यु और पृथिवी लोक को (**अवेपयः**) हिला देता है (**सोमम्**) जीव की (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**चमूसुतम्**) द्यु और पृथिवी का उत्पादक ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बल के साथ धारण करता हुआ द्यु और पृथिवी लोक में पैदा हुए जीव की रक्षा करके द्यु और पृथिवी लोक को कम्पन अर्थात् गति देकर चलाता है ॥१॥

९८९—*कुरुसुतिः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१२ ३१२ ३१ २र २३ १२३१२

अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥२॥

पदार्थ—(**अनु**) उद्देश्य से (**त्वा**) तेरे (**रोदसी**) द्यु और पृथिवीलोक (**उभे**) दोनों (**स्पर्धमान**) हे सब से बढ़-चढ़ कर होने की इच्छावाले (**अददेतां**) हरे भरे होते हैं (**इन्द्र**) हे जीव ! (**यद्**) जब (**दस्युहा**) दुष्टों का दलन करने वाला (**भवः**) हो ॥२॥

भावार्थ—हे उन्नति चाहने वाले जीव ! क्योंकि तेरे ही उद्देश्य से द्युलोक और पृथिवी हरे-भरे हो रहे हैं, इसलिए तू काम-क्रोधादि शत्रुओं का नाश कर ॥२॥

९९०—*कुरुसुतिः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१२३ १२ ३१ २र ३१२ २३१२३क २र

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् । इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥३॥

पदार्थ—(**वाचम्**) वेदवाणी को (**अष्टापदीम्**) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात रूप चार प्रकार के पद तथा विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान आदि मिलाकर आठ प्रकारवाली (**नवस्रक्ति**) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्दः छः प्रकार की विद्या और ऋग्, यजु, सामरूप मंत्र व्यवस्था से सब प्रकार की रचनाओं वाली (**ऋतावृधम्**) सत्य को बढ़ानेवाली (**इन्द्रात्**) परमेश्वर से (**परि**) सब प्रकार से (**तन्वं**) विस्तारवाली (**ममे**) प्राप्त कर उच्चारण करते हैं ॥३॥

भावार्थ—मैं आठ पदों और नव प्रकार की रचनाओं वाली तथा सत्य को बढ़ानेवाली विस्तारमयी वेदवाणी को परमेश्वर से प्राप्त कर उच्चारण करता हूँ ॥३॥

९९१—*भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३२३२ १ २र १२ ३२

इन्द्राग्नी युवामिमेऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**युवां**) तुम दोनों की (**इमे**) ये (**अभि**) सब प्रकार से (**स्तोमाः**) स्तोत्र (**अनूषत**) प्रशंसा करते हैं (**पिबतम्**) रक्षा करते हो (**शम्भुवा**) हे सुख के देनेवाले (**सुतम्**) उत्पन्न संसार की ॥१॥

भावार्थ—हे सुख देनेवाले जीव और परमेश्वर ! ये स्तोत्र तुम दोनों की प्रशंसा करते हैं। तुम लोग इस उत्पन्न संसार की रक्षा करते हो ॥१॥

९९२—*भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३१२३१२ ३१२ १२३ २३ १ २

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरागतम् ॥२॥

पदार्थ—(**याः**) जो (**वां**) तुम दोनों की (**सन्ति**) हैं (**पुरुस्पृहः**) बहुतों से चाहने योग्य (**नियुतः**) निश्चित शक्तियें (**दाशुषे**) त्यागी के लिए (**नरा**) नेता (**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**ताभिः**) उनके साथ (**आगतम्**) प्राप्त होते हो ॥२॥

भावार्थ—हे सब के नेता जीव और परमेश्वर ! त्यागी पुरुष के लिए बहुतों से चाहने योग्य तुम दोनों की शक्तियाँ हैं उनके साथ तुम हमें प्राप्त होते हो ॥२॥

९९३—*भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३२३१ २र ३२ १२ ३ १२

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—(**ताभिः**) उन शक्तियों के साथ (**आगच्छतम्**) प्राप्त होओ (**नरा**) हे नेता (**उप**) समीप (**इदं**) इस (**सवनं**) यज्ञ में (**सुतम्**) किये जानेवाले (**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**सोमपीतये**) सोम का पान तथा रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—हे नेता जीव ! तू सोम के पान के लिए और नेता परमेश्वर तू सोम की रक्षा के लिए किये जाने वाले इस यज्ञ में अपनी शक्तियों के साथ प्राप्त हो ॥६॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

९९४—*भृगुर्जमदग्निश्च । सोमः । गायत्री ।*

१२ ३१२३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३२३ २

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥१॥

पदार्थ—(**अर्ष**) प्राप्त कर (**सोम**) हे विद्वान् पुरुष (**द्युमत्तमः**) अत्यन्त तेजस्वी (**अभि**) सब प्रकार से (**द्रोणानि**) गन्तव्य मार्गों को (**रोरुवत्**) उपदेश करता हुआ (**सीदन्**) स्थित (**योनौ**) संसार के निमित्त कारण परमात्मा में (**वनेषु**) भक्ति आदि के विषय में (**आ**) भलीभांति ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! अत्यन्त तेजस्वी तू भक्ति के विषय में उपदेश करता हुआ संसार के निमित्त कारण परमेश्वर में स्थित होकर अपने गन्तव्य मार्ग पर चलता जा ॥१॥

९९५—*भृगुर्जमदग्निश्च । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २र ३२३१२ ३१२ १ २ ३ १ २

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥२॥

पदार्थ—(**अप्सा**) कर्मयोगी (**इन्द्राय**) जीव के ज्ञान के लिए (**वायवे**) वायु के ज्ञान के लिए (**वरुणाय**) जल के ज्ञान के लिए (**मरुद्भ्यः**) सुवर्ण आदि संपदाओं के लिए (**सोमाः**) विद्वान् पुरुष (**अर्षन्तु**) उद्योग करें (**विष्णवे**) व्यापक परमेश्वर के लिये ॥२॥

भावार्थ—कर्मयोगी विद्वान् जन जीव, वायु, जल, स्वर्ण आदि संपदायें तथा परमेश्वर के ज्ञान और प्राप्ति के लिए उद्योगशील होवें ॥२॥

९९६—*भृगुर्जमदग्निश्च । सोमः । गायत्री ।*

१२३१२ ३१२३१२ ३ १ २ १ २ ३ १ २

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

पदार्थ—(**इषम्**) अन्न को (**तोकाय**) सन्तान के लिए (**नः**) हमारे (**दधत्**) धारण करता हुआ (**अस्मभ्यं**) हमारे लिए (**सोम**) हे परमेश्वर (**विश्वतः**) सब प्रकार (**आपवस्व**) प्रदान कर (**सहस्रिणम्**) सहस्रों प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी सन्तान और हमारे लिए हजारों प्रकार की अन्न आदि संपदायें धारण करता हुआ प्रदान कर ॥६॥

९९७—*सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।*

१२ ३२ ३२३२३ २३१२

सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।

१२ ३१२ ३१२ ३१२ ३ १२

अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥१॥

पदार्थ—(**सोमः**) परमेश्वर (**उ**) प्रसिद्ध है (**स्वानः**) चुआया हुआ (**सोतृभिः**) चुआने वालों के द्वारा (**अधि**) पर (**स्नुभिः**) बालों के द्वारा (**अवीनां**) भेड़ों के(**अश्वया**) व्यापक के (**इव**) समान (**हरिता**) हरे रंगवाली (**याति**) निकलता है (**धारया**) प्रवाह से (**मन्द्रया**) आनन्ददायक(**याति**) प्राप्त होता है (**धारया**) वेदवाणी के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर, यजमानों के द्वारा भेड़ के बालों पर छाने गये सोमरस की हरी धारा के समान, आनन्ददायक वेदवाणी के द्वारा प्राप्त होता है ॥१॥

९९८—*सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।*

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।

३ २उ ३१२ ३ १ २र

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥२॥

पदार्थ—(**अनूपे**) वायु में (**गोमान्**) वेदवाणियों का स्वामी (**गोभिः**) वेदवाणियों द्वारा (**अक्षाः**) आनन्द की वर्षा करता है (**सोमः**) परमेश्वर (**दुग्धाभिः**) अनेक सृष्टियों में यूँ ही जानेवाली (**अक्षाः**) गति देता है (**समुद्रं**) समुद्र को (**न**) समान (**संवरणानि**) जल (**अग्मन्**) प्राप्त होते हैं (**मन्दी**) आनन्द चाहनेवाला (**मदाय**) आनन्द के लिए (**तोशते**) संतुष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—वेदवाणियों का स्वामी परमेश्वर प्रत्येक सृष्टि में दुही जाने वाली वेदवाणियों द्वारा आनन्द की वर्षा करता है और वही वायु में गति भी देता है। जिस प्रकार जल समुद्र को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार विद्वान् जीव परमेश्वर को प्राप्त करते हैं। आनन्द की इच्छा करने वाला सुख की प्राप्ति के लिए परमेश्वर को संतुष्ट करता है ॥२॥

९९९—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र
यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो (सोम) हे परमेश्वर (चित्रम्) अनेक प्रकार का (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (दिव्यं) दिव्य गुण वाला (पार्थिवं) पृथिवी से उत्पन्न सुवर्ण आदि (वसु) धन है उसे (नः) हमें (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आभर) प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ – हे परमेश्वर ! अनेक प्रकार का, प्रशंसनीय तथा उत्तम गुण वाला पृथिवी से उत्पन्न सुवर्ण आदि जो धन है उसे हमें पवित्र करता हुआ तू प्रदान कर ॥१॥

१०००—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २उ ३ १ २
वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन् योनिमासदः ॥२॥

पदार्थ—(वृषा) सुखों की वर्षा करने वाला (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आयूंषि) जीवनों को (स्तनयन्) उपदेश करता हुआ (अधिबर्हिषि) हृदय रूप आकाश में (हरिः) अज्ञान का हरण करने वाला (सन्) होता हुआ (योनिम्) प्रकृतिरूप कारण में (आ सदः) वर्तमान है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुखों की वर्षा करने वाला तथा अज्ञान का निवारक होता हुआ तू हमारे जीवनों को पवित्र कर हृदय में उपदेश करता हुआ कारण प्रकृति में स्थित है ॥२॥

१००१—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥३॥

पदार्थ—(युवम्) तुम दोनों (हि) निश्चित (स्थः) हो (स्वःपती) सुखों के स्वामी (इन्द्रः) विद्वान् (च) और (सोम) हे परमेश्वर (गोपती) वेदवाणियों के रक्षक (ईशाना) शक्तिमान् (पिप्यतं) पूर्ण करो (धियः) बुद्धियों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू और विद्वान् पुरुष दोनों सुखों के स्वामी, शक्तिमान् तथा वेदवाणियों के रक्षक हो । अतः हमारी बुद्धियों को पूर्ण करो ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१००२—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (मदाय) आनन्द के लिए (वावृधे) बढ़ा-चढ़ा हुआ है [सब से अधिक बढ़-चढ़ कर है] (शवसे) बल के लिए (वृत्रहा) अज्ञाननाशक (नृभिः) मनुष्यों से (तम्) उसको (इत्) ही (महत्सु) बड़े (आजिषु) संग्रामों में (ऊतिम्) रक्षा के लिए (अर्भे) छोटे (हवामहे) पुकारते हैं (स) वह (वाजेषु) संग्रामों में (प्र) भली भांति (नः) हमारी (अविषत्) रक्षा करे ॥१॥

भावार्थ—अज्ञाननाशक परमेश्वर सब से बढ़-चढ़ कर है । आनन्द और शक्ति की प्राप्ति के लिए लोग उसकी स्तुति करते हैं । हम बड़े और छोटे संग्रामों में अपनी रक्षा के लिए उसे ही पुकारते हैं । वह संग्रामों में हमारी रक्षा करे ॥१॥

१००३—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ ३
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादविः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥

पदार्थ—(असि) है (हि) निश्चित ही (वीर) हे सब से बलवान् (सेन्यः) सेनाओं का हितकारी (असि) है (भूरि) बहुत (परादविः) महान् दानी (असि) है (दभ्रस्य) छोटे का (चिद्) भी (वृधः) बढ़ाने वाला (यजमानाय) यजमान के लिए (शिक्षसि) देता है (सुन्वते) यज्ञ करने वाले (भूरि) बहुत (ते) तेरा (वसु) धन ॥२॥

भावार्थ—हे सब से बढ़कर शक्तिशाली परमेश्वर ! तू सेनाओं का हितकारी तथा बहुत बड़ा दानी है । तू छोटों को भी बढ़ाने वाला है । तेरा धन अपार है । तू यज्ञ करने वाले यजमान को धन आदि पदार्थ देता है ॥२॥

१००४—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥

पदार्थ—(यद्) जब (उदीरते) उत्पन्न होते हैं (आजयः) संग्राम (धृष्णवे) विजयी पुरुष के लिए (धीयते) धारण किया जाता है (धनम्) धन (युङ्क्ष्वा) जोड़ता है (मदच्युतो) आनन्द बहाने वाले (हरी) ऋक् और साम को (कं) सुख को (हनः) प्राप्त करा (कं) सुखी को (वसौ) धन में (दधः) रख (अस्मान्) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (वसौ) धन में (दधः) रख ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जब संग्राम होते हैं तब तो केवल विजयी को ही धन मिलता है । तू आनन्द की वर्षा करने वाले ऋक् और साम को जोड़ता है । तू सुख प्राप्त करा । सुखी को धन में रख । हमें संपदायें दे ॥३॥

१००५—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

पदार्थ—(स्वादोः) आनन्दजनक (इत्था) इस प्रकार से (विषूवतः) व्यापक [विस्तृत] (मधोः) विज्ञान की (पिबन्ति) रक्षा करती हैं (गौर्यः) वेदवाणियां (याः) जो (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (सयावरीः) समान काल से रहने वाली (वृष्णा) कामनाओं की वर्षा करने वाले (मदन्ति) स्तुति [वर्णन] करती हैं (शोभथा) शोभन होता है (वस्वीः) सकल पदार्थों का वर्णन करने वाली (अनु) अनुसार ही (स्वराज्यं) सुख का राज्य ॥१॥

भावार्थ—कामनाओं की वर्षा करने वाले परमेश्वर के साथ समान काल से रहने वाली जो वेदवाणियां उसकी प्रशंसा करती हैं तथा आनन्ददायक और व्यापक विज्ञान की रक्षा करती हैं उन के अनुसार ही सुख का राज्य सुशोभित होता है ॥१॥

१००६—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

३ १ २र ३ २ १ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२॥

पदार्थ—(ताः) उनके (अस्य) इस (पृशनायुवः) ज्ञान का स्पर्श करने वाली (सोमं) विद्वान् को (श्रीणन्ति) परिपक्व करती हैं (पृश्नयः) अनेक प्रकार के छन्दों वाली (प्रियाः) प्रिय (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (धेनवः) वेदवाणियां (वज्रं) पंचदश स्तोम आदि स्तुतियों और सामों की (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती हैं (सायकं) दुःख का अन्त करने वाले (वस्वीः) समस्त पदार्थों का ज्ञान कराने वाली उनके (अनु) अनुसार (स्वराज्यं) सुख का राज्य होता है ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान का प्रकाश करने वाली, अनेक प्रकार के छन्दों से युक्त तथा मनोहर परमेश्वर की दी हुई जो वेदवाणियां विद्वान् को परिपक्व करती हैं तथा दुःख का अन्त करने वाले पंचदश स्तोम आदि स्तोत्रों और साम की प्रेरणा करती हैं उनके अनुसार ही यथार्थ स्वराज्य होता है ॥२॥

१००७—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥

पदार्थ—(ताः) वे (अस्य) इस (नमसा) नमस्कार के साथ (सहः) पराक्रम की (सपर्यन्ति) प्रशंसा करती हैं (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान वाले (व्रतानि) नियमों या कर्मों का (अस्य) इसके (सश्चिरे) बताती हैं [ज्ञान करवाती हैं] (पुरूणि) बहुत (पूर्वचित्तये) प्रथम ज्ञान के लिए (वस्वीः) समस्त पदार्थों का ज्ञान करवाती (अनु) अनुसार (स्वराज्यम्) स्वराज्य होता है ॥३॥

भावार्थ—वे वेदवाणियां उत्तम ज्ञानवाले, परमेश्वर के पराक्रम की आदर के साथ प्रशंसा करती हैं । सब से प्रथम ज्ञान के लिए वे इस परमेश्वर के अनेक नियमों को जानती हैं । उनके अनुसार ही स्वराज्य की प्राप्ति होती है ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१००८—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ ३ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥१॥

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न किया जाता है (अंशुः) प्रकाश वाला (मदाय) आनन्द के लिए (अप्सु) कर्मों में (दक्षः) कुशल (गिरिष्ठाः) वेदवाणी में स्थिति रखने वाला (श्येनो न) आत्मा के समान (योनिम्) निमित्त कारण ब्रह्म में (आसदत्) स्थिति पाता है ॥१॥

भावार्थ—कर्मयोगी, वेदवाणी में विचरने वाला तथा तेजस्वी विद्वान् संसार के सुख के लिए उत्पन्न किया जाता है। वह आत्मा के समान निमित्त कारण परमेश्वर में स्थिति पाता है ॥१॥

१००९—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३१२ ३२३१ २र३२ १२ ३२३१ १२
शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥२॥

पदार्थ—(शुभ्रम्) तेजस्वी (अन्धः) रात्रि-दिन (देववातम्) विद्वानों से प्राप्त किये जाने वाले (अप्सु) शुभ कर्मों में (धौतम्) ज्ञात (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (सुतम्) संसार के उत्पादक (स्वदन्ति) आनन्द लेते हैं (गावः) स्तोता लोग (पयोभिः) ज्ञानों द्वारा ॥२॥

भावार्थ—स्तोता लोग ज्ञान के द्वारा ज्योतिःस्वरूप, विद्वानों से प्राप्त किये जाने वाले, प्रत्येक शुभ कर्म में मनुष्यों द्वारा स्मरण किये गये तथा सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का आनन्द लेते हैं ॥२॥

१०१०—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

९ ३२३१ २र३१२ ३१२ २३१२ ३१२
आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय । मधो रसं सधमादे ॥३॥

पदार्थ—(आत्) अनन्तर (ईम्) इस (अश्वं) अग्नि के (न) समान (हेतारम्) गतिशील (अशूशुभन्) सुशोभित करते हैं (अमृताय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (मधोः) ज्ञान का (रसः) आस्वाद [आनन्द] लेने वाले (सधमादे) ज्ञान यज्ञ में ॥३॥

भावार्थ—ज्ञानीजन अग्नि के समान गतिशील तथा ज्ञान का आनन्द उठाने वाले विद्वान् पुरुष को परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ज्ञानयज्ञ में सारी शक्तियों से सुशोभित करते हैं ॥३॥

१०११—ऊर्ध्वसद्मा । सोमः । ककुप् ।

१२ ३२ ३२उ३१२ ३१२ ३२ १ २र३१ २
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥१॥

पदार्थ—(अभि) उद्देश्य में रख कर (द्युम्नं) अन्न के (बृहत्) महान् (यशः) सूर्य को (इषस्पते) हे अन्न और ज्ञान के स्वामी (दिदीहि) प्रकाशित करता है (देव) हे देव (देवयुम्) दिव्य गुणों से युक्त करने वाले (वि) विशेष रूप से (कोशम्) मेघ को (मध्यमम्) मध्यम स्थान में रहने वाले (युव) छोड़ता है ॥१॥

भावार्थ—हे अन्न आदि के स्वामी परमात्म देव ! हमारे अन्न की उत्पत्ति को उद्देश्य में रख कर तू दिव्य गुणों से युक्त करनेवाले महान् सूर्य को प्रकाशित करता है तथा आकाश में होनेवाले मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करता है ॥१॥

१०१२—कृतयशाः । सोमः । सतोबृहती ।

१ २ ३क २र ३२ ३२उ ३२३ १२
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
३२ ३१२ ३२३२उ३ १२ ३ १२
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपोजिन्वन् गविष्टये धियः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (वच्यस्व) प्राप्त हो (सुदक्ष) हे सुन्दर बलवान् (चम्वोः) द्यु और पृथिवी लोक का (सुतः) उत्पादक (विशां) प्रजाओं का (वह्निः) अग्नि के (न) समान (विश्पतिः) प्रजा का स्वामी (वृष्टिं) वर्षा को (दिवः) आकाश से (पवस्व) प्रेरित कर (रीतिम्) प्रकार को (अपः) कर्मों के (जिन्वन्) प्रेरित करता हुआ (गविष्टये) स्तोताओं के इष्ट के लिए (धियः) बुद्धियों को ॥२॥

भावार्थ—हे बलशाली परमेश्वर ! तू द्यु और पृथिवी लोक का उत्पादक तथा अग्नि के समान समस्त प्रजाओं का रक्षक है। तू हमें प्राप्त हो। स्तुति करने वालों के कल्याण के लिए कर्म की रीति और बुद्धियों की प्रेरणा करता हुआ आकाश से वृष्टि की प्रेरणा कर ॥२॥

१०१३—त्रितः । सोमः । उष्णिक् ।

३१ २र३१२ ३२ ३२३ १२
प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
२ ३१२ ३१ २३१२ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१॥

पदार्थ—(प्राणा) जीवन का संचार करनेवाला (शिशुः) पुत्रस्वरूप (महीनां) वेदवाणियों का (हिन्वन्) जानता हुआ (ऋतस्य) परमेश्वर के (दीधितिम्) विधान को (विश्वा) सारी (परि) सब प्रकार से (प्रिया) प्रिय वस्तुओं का (भुवत्) तिरस्कार करता है (अध) अनन्तर (द्विता) ज्ञान और वैराग्य के दो प्रकार से ॥१॥

भावार्थ—सब में जीवन फूंकनेवाला तथा वेदवाणियों का पुत्रस्वरूप विद्वान् पुरुष परमेश्वर के विधान को जानता हुआ सारी प्रिय चित्त को विचलित करनेवाली वस्तुओं का ज्ञान और वैराग्य से तिरस्कार करता है ॥१॥

१०१४—त्रितः । सोमः । उष्णिक् ।

१२३१२ ३ २ १२३१ २र ३२
उप त्रितस्य पाष्यो३ रभक्त यद् गुहा पदम् ।
३१२ ३१ २र ३१२३२
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्रितस्य) मेधावी जीव के (पाष्योः) ज्ञान और कर्म के [हेतुभूत] (अभक्त) भागी बनता है (यत्) जो (गुहा) अन्तःकरण में [स्थित] (पदम्) स्वरूप को (यज्ञस्य) परमेश्वर के (सप्तधामभिः) सप्त छन्दों से बंधे हुए ज्ञानों से (अध) अनन्तर (प्रियं) प्रिय ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म के कारण मेधावी जीव के अन्तःकरण में स्थित परमेश्वर के परमप्रिय पद को विद्वान् सात छन्दों में बंधे वेदज्ञान के द्वारा जानता है ॥२॥

१०१५—त्रितः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २३२ ३ १२ ३१ २र ३२
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरयद्रयिम् ।
१ २ ३ १२३ २ ३१२
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थ—(त्रीणि) तीन (त्रितस्य) तीन सभ्यों से युक्त जीव के (धारया) वेदवाणी द्वारा (पृष्ठेषु) नाना लोकों में (ऐरयत्) प्रेरित करता है (रयिम्) धन को (मिमीते) उपदेश करता है (अस्य) इस (योजना) बन्धनों को (वि) विशेष (सुक्रतुः) उत्तम ज्ञानवाला ॥३॥

भावार्थ—उत्तम ज्ञान से युक्त परमेश्वर नाना लोकों में धन आदि को प्रेरित करता है। वह अपनी वेदवाणी से इस तीन तापों से युक्त जीव के तीनों बन्धनों को ज्ञात करा देता है ॥३॥

१०१६—रेभः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१२३१२ ३२३ १२ ३२
पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
१२ ३ १ २ ३२ ३१२
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर [अपने को] (वाजसातये) विज्ञान की प्राप्ति के लिए (पवित्रे) पवित्र [मानव शरीर] में (धारया) वेदवाणी से (सुतः) उत्पन्न (इन्द्राय) आत्मा के लिए (सोम) हे पुरुष (विष्णवे) परमेश्वर प्राप्ति के लिए (मधुमत्तरः) कर्म में प्रवीण ॥१॥

भावार्थ—हे पुरुष ! कर्म में प्रवीण तथा इस पवित्र मानव शरीर में उत्पन्न तू विज्ञान, आत्मज्ञान, परमात्मा तथा दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए अपने वेदवाणी से पवित्र कर ॥१॥

१०१७—रेभः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३२३ १२ ३१२ ३१२
त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
३२ ३२उ ३२३ १२ ३ १२
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥२॥

पदार्थ—(त्वां) तेरी (रिहन्ति) पूजा करती हैं (धीतयः) स्तुतियां (हरिम्) अज्ञान के हरण करनेवाले (पवित्रे) पवित्र (अद्रुहः) द्रोहरहित (वत्सं) बच्चे को (जातम्) उत्पन्न (न) समान (मातरः) माताएँ (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (विधर्मणि) विशेष धर्मरूप यज्ञ में ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! द्रोहरहित स्तुतियां पवित्र यज्ञ में उत्पन्न बच्चे को माताओं के समान, अज्ञाननाशक तेरी पूजा करती हैं ॥२॥

१०१८—रेभः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३१ २र
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
१२ ३१२ ३ १२ ३२
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (द्यां) द्युलोक को (च) और (महिव्रत) हे महाव्रतवाले (पृथिवीं) पृथिवी को (च) और (अति) अत्यन्त (जभ्रिषे) धारण करता है (प्रति) हमारे प्रति (द्रापिम्) देय वस्तु को (अमुञ्चथाः) दे (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (महित्वना) अपनी महिमा से ॥३॥

भावार्थ—हे महाव्रती शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू अपनी महिमा से द्यु और पृथिवी लोक को धारण करता है । तू हमें देने योग्य वस्तु दे ॥३॥

१०१९—मन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्य्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१॥

पदार्थ—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (वाजी) ज्ञानवान् (पवते) पवित्र करता है (गोन्योघा) इन्द्रियों के समुदायवाला (इन्द्रे) परमेश्वर में (सोमः) जीवात्मा (सहः) शक्ति को (इन्वन्) जानता हुआ (मदाय) आनन्द के लिए (हन्ति) नाश करता है (रक्षः) दुर्गुणरूप राक्षस का (बाधते) बाधा पहुँचाता है (अरातिम्) काम-क्रोध आदि शत्रुओं को (वरिवः) ज्ञान-धन को (कृण्वन्) करता हुआ (वृजनस्य) बल का (राजा) स्वामी ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानवान्, इन्द्रिय समुदाय से युक्त बल का स्वामी तथा ऐश्वर्यवान् जीवात्मा परमेश्वर में शक्ति को जानता हुआ आनन्द की प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करता है । वह ज्ञानरूपी धन को प्राप्त करता हुआ दुर्गुण राक्षस का विनाश करता है और काम आदि शत्रुओं को बाधा पहुँचाता है ॥१॥

१०२०—मन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अध धारया मध्वा पृचनास्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥२॥

पदार्थ—(अध) अनन्तर (धारया) वाणी से (मध्वा) मधुर (पृचानः) सम्बद्ध करता हुआ (तिरः) प्राप्त (रोम) सामों को (पवते) पवित्र करता है (अद्रिदुग्धः) मेघ आदि को पूरा करनेवाला (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (इन्द्रस्य) जीव के (सख्यं) मित्र भाव को (जुषाणः) प्रसन्नता से स्वीकार करता हुआ (देवः) देव (देवस्य) उत्तम गुण युक्त (मत्सरः) आनन्दस्वरूप (मदाय) आनन्द के लिए ॥२॥

भावार्थ—मेघ आदि की पूर्ति करने वाला, आनन्दस्वरूप ऐश्वर्यशाली तथा जीव की मित्रता को स्वीकार करने वाला परमेश्वरदेव जीव के आनन्द के लिए मधुर वाणी के साथ अपने ज्ञान में प्राप्त सामों को सम्बद्ध करता हुआ उसे पवित्र करता है ॥२॥

१०२१—मन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवांत्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥३॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार (व्रतानि) कर्मों को (पवते) पवित्र करता है (पुनानः) पवित्र करता हुआ (देवः) देव (देवान्) इन्द्रियों को (स्वेन) अपने (रसेन) रस से (पृञ्चन्) संयुक्त करता हुआ (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (धर्माणि) धर्मों को (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार (वसानः) धारण करता हुआ (दश) दश (क्षिपः) अंगुलियों को (अव्यत) रख देता है (सानो) ऊँचे शिखिर पर (अव्ये) प्रकृति के ॥३॥

भावार्थ—इन्द्रियों को अपने रस से संयुक्त और पवित्र करता हुआ तथा ऋतु के अनुसार धर्मों को धारण करता हुआ ऐश्वर्यवान् जीव अपने अनेक कर्मों को पवित्र करता है और प्रकृति के उच्च शिखर पर अपनी दश अंगुलियों को रख देता है अर्थात् अधिकार पा लेता है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१०२२—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली-भाँति (ते) तेरा (अग्ने) हे परमेश्वर! (इधीमहि) ध्यान करते हैं (द्युमन्तं) प्रकाशस्वरूप (देव) हे देव (अजरम्) अजर (यत्) जो (ह) निश्चय से (स्या) वह (ते) तेरा दिया हुआ (पनीयसी) प्रशंसनीय (समित्) प्रकाश (दीदयति) दीप्त करती है (द्यवि) द्युलोक में (इषम्) अन्न को (स्तोतृभ्यः) स्तोता लोगों के लिए (आभर) भरपूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्म देव! हम तुझ प्रकाशस्वरूप और अजर अमर का ध्यान करते हैं। जो तेरा प्रशंसनीय प्रकाश द्युलोक में प्रदीप्त हो रहा है उसके द्वारा स्तोताओं के लिए तू अन्न आदि को प्रदान कर ॥१॥

१०२३—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (ते) तेरी (अग्ने) हे परमेश्वर (ऋचा) मंत्र से (हविः) स्तुति (शुक्रस्य) शुद्धस्वरूप (ज्योतिष्पते) सूर्य आदि प्रकाशों के पालक (सुश्चन्द्र) हे आनन्ददाता (दस्म) हे बुराइयों के दूर करनेवाले (विश्पते) हे प्रजाओं के स्वामी (हव्यवाट्) हे कर्मफल दाता (तुभ्यं) तेरे लिए (हूयते) स्तुति की जाती है (इषम्) ज्ञान को (स्तोतृभ्यः) भक्तों के लिए (आभर) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे सूर्य आदि ज्योतियों के स्वामी, आनन्ददाता, दुर्गुण-निवारक प्रजा के स्वामी तथा कर्मफल देनेवाले परमेश्वर ! तुझ शुद्धस्वरूप के मन्त्र द्वारा तेरे लिए स्तुति की जाती है । तू भक्तों को ज्ञान प्रदान कर ॥२॥

१०२४—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २
ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली-भांति (उभे) दोनों (सुश्चन्द्र) हे आह्लादक (विश्पते) प्रजा के स्वामी (दर्वी) होम के पात्र (श्रीणीषे) पकाते हैं (आसनि) अग्नि के मुख में (उतो) और (नः) हम लोगों को (उत्पुपूर्याः) उत्तम प्रकार से पूर्ण कर (उक्थेषु) सामों में (शवसस्पते) हे बल के रक्षक (इषम्) अन्न आदि को (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिए (आभर) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक प्रजाओं के स्वामी तथा शोभन आह्लादक परमेश्वर ! दो प्रकार के होम पात्रों द्वारा अग्नि के मुख में हम हवन करते हैं । स्तुतियों के विषय में हमें ज्ञान की पूर्णता प्रदान कर । स्तुतिकर्त्ताओं को धन, ज्ञान आदि प्रदान कर ॥३॥

१०२५—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव के लिए (साम) साम (गायत) गाओ (विप्राय) विद्वान् (बृहते) महान् (बृहत्) बृहत् नामवाले (ब्रह्मकृते) ब्रह्मदर्शी (विपश्चिते) मेधावी (पनस्यवे) उपासक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ब्रह्मदर्शी, मेधावी, उपासक तथा महान् विद्वान् जीव के लिए बृहत् नामक साम का गान करो ॥१॥

१०२६—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ।२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अभिभूः) सबसे बड़ा (असि) है (त्वम्) तू (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) प्रकाशित करता है (विश्वकर्मा) सृष्टिकर्त्ता (विश्वदेवः) सबका देव (महान्) महान् (असि) है ।२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सर्वशक्तिमान् है । तू सूर्य को प्रकाश देता है । तू ही सृष्टिकर्त्ता सबका देव तथा महान् है ॥२॥

१०२७—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ १२ ३ २ ३ २
विभ्राजं ज्योतिषा स्व३रगच्छो रोचनं दिवः ।

३ १ २ ३ १ २
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३॥

पदार्थ—(विभ्राजन्) प्रकाशित करता हुआ (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (स्वः) सूर्य को (अगच्छः) होता है (रोचनम्) प्रकाशक (दिवः) द्युलोक के (देवाः) विद्वान् लोग (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (सख्याय) मित्रता के लिए (येमिरे) यत्न करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने तेज से सूर्यलोक को प्रकाशित करता हुआ द्युलोक को भी प्रकाश देता है । विद्वान् लोग तेरी मित्रता के लिए यत्न करते हैं ।३॥

१०२८—गोतमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वां पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१॥

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न किया जाता है (सोमः) शरीर और आत्मबल (इन्द्र) हे परमेश्वर (ते) तेरी प्राप्ति के लिए (शविष्ठ) हे सर्वशक्तिमान् (धृष्णो) दुष्टों का दमन करनेवाले (आगहि) प्राप्त हो (आ) भली भांति (त्वा) तू (पृणक्तु) परिपूर्ण कर (इन्द्रियम्) हमारी इन्द्रिय को (रजः) अन्तरिक्ष को (सूर्यो न) सूर्य के समान (रश्मिभिः) किरणों के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान्, दुष्टों का दमन करनेवाले परमेश्वर ! तेरी प्राप्ति के लिए शरीर और आत्मबल पैदा किया जाता है। तू प्राप्त हो। तू हमारी इन्द्रियों को प्रकाश से पूर्ण कर जैसे सूर्य अपनी किरणों से लोक को भर देता है।१।

१०२९—गोतमः। इन्द्रः। अनुष्टुप्।

१ २ ३१२३ २ ३१२ ३१२

आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।

३ २३२३ २३१२ ३१२

अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥२॥

पदार्थ—(आतिष्ठ) स्थित हो (वृत्रहन्) हे बुराइयों को दूर करनेवाले (रथम्) शरीर रूपी रथ में (युक्ता) जोड़े गए हैं (ते) तेरे लिए ही (ब्रह्मणा) परमेश्वर के द्वारा (हरी) वायु और विद्युत् (अर्वाचीनं) नवीन (सु) सुन्दर (ते) तेरे (मनः) मन को (ग्रावा) मेघ के साथ युक्त (कृणोतु) करे (वग्नुना) वेदवाणी से ॥२॥

भावार्थ—हे बुराइयों को दूर करनेवाले जीव ! तू शरीर रूप रथ में विराजमान हो। तेरे लिए ही परमेश्वर ने मेघ के साथ वायु और विद्युत् को जोड़ा है। वह तेरे मन को वेदवाणी के द्वारा नवीन करे ॥२॥

१०३०—गोतमः। इन्द्रः। अनुष्टुप्।

२ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।

१ २ ३ १ २र३ २ ३ १ २

ऋषीणां सुष्टुतिरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रं) परमेश्वर को (इत्) ही (हरी) ऋक् और साम (वहतः) [प्राप्त कराते हैं] पहुँचाते हैं (अप्रतिधृष्टशवसम्) सर्वशक्तिमान् (ऋषीणां) ऋषियों की (सुष्टुतीः) मनोहर स्तुतियों में (यज्ञम्) यज्ञ में (च) और (मानुषाणाम्) मनुष्यों के ॥३॥

भावार्थ—ऋक् और साम ऋषियों की स्तुतियों तथा मनुष्यों के यज्ञ में सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ज्ञान कराते हैं ॥३॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 षष्ठोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

सप्तमोऽध्यायः

१०३१—आकृष्टामाषाः सिकतानिवावरी च। सोमः। जगती।

१ २३१२ ३१२३२ ३२ ३१२ ३२३१२

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः।

१२३ १२ ३१२३क२र३ १२ ३१२ ३१ २र

दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१॥

पदार्थ—(ज्योतिः) प्रकाशक (यज्ञस्य) संसार रूप यज्ञ का (पवते) वर्षा करता है (मधु) ज्ञान को (प्रियम्) प्यारे (पिता) रक्षक (देवानाम्) देवों का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (विभूवसुः) महान् ऐश्वर्यवाला (दधाति) धारण करता है (रत्नम्) धनादि को (स्वधयोः) द्यु और पृथिवीलोक में (अपीच्यम्) छिपे हुए (मदिन्तमः) अत्यन्त आनन्ददायक (मत्सरः) प्रसन्न करनेवाला (इन्द्रियः) आत्मा का हितकारक (रसः) एक रस ॥१॥

भावार्थ—संसार रूप यज्ञ का प्रकाशक, देवों का रक्षक और उत्पादक, महान् ऐश्वर्यवाला अत्यन्त आनन्द का दाता, प्रसन्नता देनेवाला, आत्मा का हितकारी तथा एकरस परमेश्वर प्रियज्ञान की वर्षा करता है। वही द्यु और पृथिवीलोक में छिपे नाना प्रकार के धनों को धारण करता है ॥१॥

१०३२—आकृष्टामाषाः सिकतानिवावरी च। सोमः। जगती।

३ १ २ ३१२३क२र ३१२३२ ३१२ ३२

अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः।

१२ ३२३१२ ३१ २ ३ १२ ३१२

हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥२॥

पदार्थ—(अभिक्रन्दन्) उपदेश करता हुआ (कलशम्) आनन्दमय कोश में (वाजी) शक्तिशाली (अर्षति) व्यापक हो रहा है (पतिः) पालक (दिवः) सूर्य आदि का (शतधारः) अनेक प्रकार से धारण करनेवाला (विचक्षणः) सबका साक्षी (हरिः) मनुष्य (मित्रस्य) परमेश्वर के (सदनेषु) लोकों में (सीदति) विराजता है (मर्मृजानः) अपने को शुद्ध पवित्र करता हुआ (अविभिः) प्रकृतिसम्बन्धी (सिन्धुभिः) बहाव से (वृषा) सामर्थ्ययुक्त ॥२॥

भावार्थ—शक्तिशाली सूर्य आदि का रक्षक, संसार को अनेक प्रकार से धारण करनेवाला तथा सर्वसाक्षी परमेश्वर जीव को उपदेश करता हुआ आनन्दमय कोश में व्यापक हो रहा है। सामर्थ्ययुक्त मनुष्य प्रकृति के बहाव से अपने को पवित्र करता हुआ परमेश्वर के उत्पन्न किए हुए लोकों में विराजमान होता है ॥२॥

१०३३—आकृष्टामाषाः सिकतानिवावरीच। सोमः। जगती।

२३ १ २३१२ ३ १२३१२ ३१ २र

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रेवाचो अग्रियो गोषु गच्छसि।

२३१२ ३१२र ३२ ३१२

अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥३॥

पदार्थ—(अग्रे) पूर्व या आगे (सिन्धूनां) समुद्रों के (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अर्षसि) वर्तमान रहता है (अग्रे) आगे (वाचः) वाणी के (अग्रियः) प्रथम ही विद्यमान (गोषु) सूर्य की किरणों में (गच्छसि) व्यापक हो रहा है (अग्रे) पहले (वाजस्य) अन्न आदि के (भजसे) विभाग करता है (महद्धनं) महान् धन का (स्वायुधः) अच्छी प्रकार मनुष्यमात्र का पोषण करनेवाला (सोतृभिः) यज्ञ करनेवालों से युक्त (सोम) हे परमेश्वर (सूयसे) उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू शुद्धस्वरूप, सबसे प्रथम विद्यमान तथा मनुष्यमात्र का भलीप्रकार रक्षक है। तू समुद्रों और वाणियों के पूर्व ही विद्यमान रहता है। सूर्य की किरणों में तू ही व्यापक है। अन्न आदि के उत्पन्न होने के पूर्व विद्यमान हुआ तू अनेक यजमानों से युक्त महान् धनों को पैदा करता और विभाग करता है ॥३॥

१०३४—कश्यपः। सोमः। गायत्री।

१२ ३ २३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया। शुक्रासो वीरयाशवः ॥१॥

पदार्थ—(असृक्षत) उत्पन्न किए जाते हैं (प्र) उत्तम (वाजिनः) ज्ञानवान् (गव्या) वेदज्ञान की इच्छा से (सोमासः) पुरुष (अश्वया) व्यापक (शुक्रासः) तेजस्वी (वीरया) बलवती (आशवः) कुशाग्र बुद्धि ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानी, तेजस्वी तथा कुशाग्र बुद्धि पुरुष व्यापक तथा बलवती वेदज्ञान की इच्छायुक्त पैदा किये जाते हैं ॥१॥

१०३५—कश्यपः। सोमः। गायत्री।

३ १ २ ३१ २३ १२ ३१२ १२३ १ २३१२

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः। पवन्ते वारे अव्यये ॥२॥

पदार्थ—(शुम्भमानाः) सुशोभित (ऋतायुभिः) परमेश्वरप्रदत्त आयुओं से (मृज्यमानाः) शुद्ध किये गये (गभस्त्योः) ग्रहण और त्याग से (पवन्ते) विचरते हैं (वारे) वरण करने योग्य (अव्यये) अविनाशी परमेश्वर में ॥२॥

भावार्थ—ईश्वर प्रदत्त आयुओं से सुशोभित तथा ज्ञान, ग्रहण और त्याग से पवित्र विद्वान् पुरुष भक्ति योग्य परमेश्वर में विचरते हैं ॥२॥

१०३६—कश्यपः। सोमः। गायत्री।

१ २र३२३ २३१२ ३ २ ३ १२ १२ ३ १२र

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा। पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥३॥

पदार्थ (ते) वे (विश्वाः) सारे (दाशुषे) त्यागी पुरुष के लिए (वसु) अग्नि का (सोमा) विद्वान् (दिव्यानि) दिव्य लोकसम्बन्धी (पार्थिवा) पृथिवी की (पवन्ताम्) ज्ञान कराते हैं (आन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्ष की ॥३॥

भावार्थ—वे विद्वान् पुरुष यज्ञकर्त्ता को द्युलोक, पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष की सारी अग्नि का ज्ञान कराते हैं ॥३॥

१०३७—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३१ २र
पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥१॥

पदार्थ—(**पवस्व**) पवित्र करता है (**देववीः**) देवों का उत्पन्न करनेवाला (**अति**) अत्यन्त (**पवित्रं**) पवित्रस्वरूप (**सोम**) हे परमेश्वर (**रंह्या**) वेग से (**इन्दुम्**) जीवात्मा में (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यशाली (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (**विश**) व्यापक है ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! देवों का उत्पन्न करनेवाला तथा कामनाओं को सफल बनानेवाला तू शुद्धस्वरूप जीवात्मा को पवित्र करता हुआ उसमें व्यापक है ॥१॥

१०३८—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३२३ २३१२ ३१२ १ २र ३ १ २
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२॥

पदार्थ—(**आवच्यस्व**) भली भांति प्राप्त करा (**महि**) पर्याप्त (**प्सरः**) भोग्य पदार्थ (**वृषा**) मनोरथ को सफल करनेवाला (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यवान् (**द्युम्नवत्तमः**) अत्यन्त यशस्वी (**आ**) भली भांति (**योनिम्**) अपने कारणस्वरूप में (**धर्णसिः**) जगत् का धारणकर्त्ता (**सदः**) विद्यमान है ॥२॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! मनोरथ को सफल करनेवाला अत्यन्त यशस्वी तथा जगत् का धारणकर्त्ता तू प्रभूत भोग्य पदार्थ हमें प्राप्त कराता है और तू अपने कारणस्वरूप में स्थित है ॥२॥

१०३९—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

१२ ३२उ ३१ २ ३१२३१२ ३१ २ ३१२
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थ—(**अधुक्षत**) पूर्ण करती है (**प्रियम्**) प्रियकारी (**मधु**) आनन्द को (**धाराः**) वाणियें (**सुतस्य**) सृष्टिकर्त्ता (**वेधसः**) विधाता की (**अपो**) जलों को (**वसिष्ट**) बसाता है (**सुक्रतुः**) सुन्दर कर्मवाला ॥३॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता विधाता परमेश्वर की वेदरूप वाणियां प्रिय आनन्द को पूरित करती हैं। सुन्दर कार्योंवाला वह परमेश्वर जलों को निवास देता है ॥३॥

१०४०—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

३१ २ ३१ २र ३ १ २ १ २र ३ १२
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४॥

पदार्थ—(**महान्तम्**) जल को (**त्वा**) तू (**महीः**) महान् (**अनु**) पश्चात् (**आपः**) जल (**अर्षन्ति**) प्राप्त होते हैं (**सिन्धवः**) गतिशील (**यत्**) जब (**गोभिः**) सूर्य की किरणों से (**वासयिष्यसे**) आच्छादित करता है ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जब अन्तरिक्षस्थ जल को सूर्य की किरणों से आच्छादित करता है तब जल की महावृष्टि होती है ॥४॥

१०४१—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३१ २ ३ २ ३१२ ३२ १ २३१२ ३२
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५॥

पदार्थ—(**समुद्रः**) प्राणिमात्र को आनन्द देनेवाला (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**मामृजे**) शुद्ध करता है (**विष्टम्भः**) सबका स्तम्भरूप (**धरुणः**) धारक (**दिवः**) द्युलोक का (**सोमः**) परमेश्वर (**पवित्रे**) जल और वायु दोनों को (**अस्मयुः**) हमारे कल्याण की कामना करनेवाला ॥५॥

भावार्थ—प्राणिमात्र के आनन्द का स्थान, लोकों का स्तम्भरूप, द्युलोक धारक तथा हमारे कल्याण की कामना करनेवाला परमेश्वर अन्तरिक्ष में जल और वायु को पवित्र करता है ॥५॥

१०४२—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ २३१२३२३ १ २र३२ १ २र
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥६॥

पदार्थ—(**अचिक्रदत्**) उपदेश करता है (**वृषा**) कामनाओं को सफल करनेवाला (**हरिः**) अज्ञान का हरणकर्त्ता (**महान्**) महान् (**मित्रो न**) मित्र के समान (**दर्शतः**) साक्षात् करने के योग्य (**सं**) सम्यक् (**सूर्येण**) सूर्य के द्वारा (**दिद्युते**) प्रकाशित कर रहा है ॥६॥

भावार्थ—हमारी कामनाओं को सफल करनेवाला, अज्ञाननाशक तथा साक्षात्कार के योग्य महान् परमेश्वर मित्र के समान हमारे हृदय में हित का उपदेश करता है और सूर्य के द्वारा लोक को प्रकाशित कर रहा है ॥६॥

१०४३—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

१२ ३१२ ३१२ ३१२ २ ३१२३ १२
गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७॥

पदार्थ—(**गिरः**) वाणियां (**ते**) तेरी (**इन्दो**) ऐश्वर्यवान् (**ओजसा**) शक्ति से (**मर्मृज्यन्ते**) शुद्ध की जाती हैं (**अपस्युवः**) कर्म और ज्ञान का प्रकाश करनेवाली (**याभिः**) जिनके द्वारा (**मदाय**) स्तुति के लिए (**शुम्भसे**) सुशोभित होता है ॥७॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! कर्म और ज्ञान का प्रकाश करनेवाली तेरी वेदवाणियां तेरी शक्ति से स्तुति के लिए शुद्ध की जाती हैं जिन के द्वारा तू सुशोभित होता है ॥७॥

१०४४—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १२३१२ ३१२ २३१२ ३२
तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ॥८॥

पदार्थ—(**तं**) उस (**त्वा**) तुझे (**मदाय**) आनन्द के लिए (**घृष्वये**) बुरी वासनाओं का दलन करनेवाले (**लोककृत्नुम्**) सृष्टिकर्त्ता (**ईमहे**) प्रार्थना करते हैं (**तव**) तेरी (**प्रशस्तये**) स्तुति के लिए (**महे**) महान् ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बुरी वासनाओं को दूर करनेवाले आनन्द के लिए तथा तेरी स्तुति के लिए तुझे स्वीकार करते हैं ॥८॥

१०४५—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

३१ २ ३१ २ ३१२३२३२ ३ २३१२ ३२
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥९॥

पदार्थ—(**गोषा**) गाय का दाता (**इन्दो**) हे परम ऐश्वर्यशाले (**नृषा**) मनुष्यों का दाता (**असि**) है (**अश्वसा**) घोड़ों का दाता (**वाजसा**) अन्न आदि का दाता (**उत**) और (**आत्मा**) आत्मा (**यज्ञस्य**) संसार रूप यज्ञ का (**पूर्व्यः**) सनातन ॥९॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर । तू गौओं, मनुष्यों, घोड़ों तथा अन्नों का दाता है । तू ही संसाररूप यज्ञ का सनातन आत्मा है ॥९॥

१०४६—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

३ १२ ३१ २र ३१२ ३१२ ३१ २
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥१०॥

पदार्थ—(**अस्मभ्यम्**) हमारी (**इन्दो**) हे परमैश्वर्यवान् (**इन्द्रियम्**) इन्द्रिय को (**मधोः**) ज्ञान की (**पवस्व**) पवित्र कर (**धारया**) धार से (**पर्जन्यः**) मेघ के (**वृष्टिमान्**) वर्षा करनेवाले (**इव**) समान ॥१०॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों को वर्षा करनेवाले मेघ के समान ज्ञान की धारा से पवित्र कर ॥१०॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

१०४७—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३१२३१२ ३२३१२ १२ ३ १२
सना च सोम जेषि च पवमान महिश्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१॥

पदार्थ—(**सना**) सनातन (**च**) और (**सोम**) हे परमेश्वर (**जेषि**) जीतता है (**च**) भी (**पवमान**) हे शुद्धस्वरूप (**महिश्रवः**) सकल संपदाओं के स्वामी (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमारा (**वस्यसः**) कल्याण (**कृधि**) कर ॥१॥

भावार्थ—हे सकल संपदाओं के स्वामी तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू सनातन है और अजेय है । हमारा कल्याण कर ॥१॥

१०४८—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

२३ २ ३ २३ २क १ २ ३१२ १२३ १२
सना ज्योतिः सना स्व३र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ।२।

पदार्थ—(**सना**) सनातन (**ज्योतिः**) प्रकाश (**सना**) सनातन (**स्वः**) सुख (**विश्वा**) सारे (**च**) और सौभाग्य भी (**अथ**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) शरण (**कृधि**) दे ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तेरी ज्योति, सुख और सारे सौभाग्य सनातन हैं तू हमें शरण दे ॥२॥

१०४९—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३१२३२उ३१२ ३१२ १२ ३ १२
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३॥

पदार्थ—(**सना**) प्रदान कर (**दक्षम्**) बल को (**उत**) और (**क्रतुम्**) बुद्धि को (**अप**) दूर (**सोम**) हे परमेश्वर (**मृधः**) दुर्गुणरूप शत्रुओं को (**जहि**) मार भगा (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) धनाढ्य (**कृधि**) कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें बल और बुद्धि प्रदान कर । हमारे दुर्गुणों को हमसे दूर भगा । हमें धनाढ्य बना ॥३॥

१०५०—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

१२ ३२३२३१ २३१२ १२ ३ १२
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४॥

पदार्थ—(पवीतारः) हे विद्वानो (पुनीतन) पवित्र करो (सोमम्) वायु को (इन्द्राय) जीव के (पातवे) रक्षा के लिए (अथा) अनन्तर (नः) हमें (वस्यसः) उत्तम (कृधि) बना ॥४॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जीव की रक्षा के लिए यज्ञ आदि के द्वारा वायु को पवित्र करो और हमें उत्तम बनाओ ॥४॥

१०५१— *हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥

पदार्थ—(त्वं) तू (सूर्ये) सूर्यसंबन्धी विद्युत् के विषय का (आ भज) भागी बना (तव) अपने (क्रत्वा) ज्ञान के द्वारा (तव) तेरी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अथा) अनन्तर (नः) हमें (वस्यसः) श्रेष्ठ (कृधि) कर ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अपने ज्ञान तथा रक्षा के द्वारा हमें सारे विद्युत् के ज्ञान का भागी बना और हमें श्रेष्ठ गुणवाला कर ॥५॥

१०५२—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥

पदार्थ—(तव) तेरे (क्रत्वाः) ज्ञान के द्वारा (तव) तेरी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (ज्योक्) चिरकाल तक (पश्येम) देखें, समझें (सूर्यम्) सूर्य को (अथा) अनन्तर (नः) हमें (वस्यसः) योग्य (कृधि) बना ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तेरे ज्ञान और रक्षाओं के द्वारा चिरकाल तक सूर्य को देखें और उसका ज्ञान प्राप्त करें । तू हमें योग्य बना ॥६॥

१०५३—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

१क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥

पदार्थ—(अभ्यर्ष) प्राप्त करा (स्वायुध) मनुष्यों के उत्तम रक्षक (सोम) हे परमेश्वर (द्विबर्हसम्) द्यु और पृथिवी लोक में फैले हुए (रयिम्) धन को (अथा) अनन्तर (नः) हमें (वस्यसः) उन्नत (कृधि) कर ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यों के रक्षक परमेश्वर ! तू हमें द्युलोक तथा पृथिवी पर फैले हुए धन को प्राप्त करा और हमें उन्नत कर ॥७॥

१०५४—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

अभ्य३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥

पदार्थ—(अभ्यर्ष) प्राप्त हो (अनपच्युतः) अविनाशी (वाजिन्) हे बलवान् (समत्सु) संग्रामों में (सासहिः) शत्रुओं को अभिभव करने की शक्ति देने वाला (अथा) अनन्तर (नः) हमें (वस्यसः) शरण में आये का रक्षक (कृधि) बना ॥८॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अविनाशी तथा संग्रामों में जीतने का साहस देने वाला तू हमें प्राप्त हो और शरण में आए हुए का रक्षक बना ॥८॥

१०५५—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥

पदार्थ— (त्वां) तुझे (यज्ञैः) स्तोत्रों से (अवीवृधन्) स्तुति करते हैं (पवमान) हे शुद्ध स्वरूप (विधर्मणि) विशेष धर्मवाले ज्ञानयज्ञ में (अथा) अनन्तर (नः) हमें (वस्यसः) सुखी (कृधि) कर ॥९॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! विशेष धर्मकार्य में स्तोत्रों के द्वारा तेरी स्तुति करते हैं । तू हमें सुखी बना ॥९॥

१०५६—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥

पदार्थ—(रयिम्) धन को [सम्पदाएं] (नः) हमें (चित्रम्) बहुत प्रकार के (अश्विनम्) विस्तृत (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (विश्वायुम्) दीर्घायु करने वाले (आभर) प्रदान कर (अथा) अनन्तर (नः) हमें (वस्यसः) सफल मनोरथ (कृधि) कर ॥१०॥

भावार्थ—हे सकल संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू हमें अनेक प्रकार के विस्तृत और दीर्घायु देने वाले धन को प्रदान कर तथा हमें सफल मनोरथ बना ॥१०॥

१०५७—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥१॥

पदार्थ—(तरत्) तर जाता है (सः) वह (मन्दी) स्तुति करने वाला (धावति) उत्तम गति पाता है (धारा) वेदवाणी से (सुतस्य) स्तुति किये गये या वर्णित किए गये (अन्धसः) अज्ञान से (तरत्) तरता है (सः) वह (मन्दी) स्तोता (धावति) उत्तम गति पाता है ॥१॥

भावार्थ—वेदवाणी द्वारा वर्णन किये गये परमेश्वर की स्तुति करने वाला अज्ञान से पार हो जाता है और अवश्य उत्तम गति को पाता है ॥१॥

१०५८—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥२॥

पदार्थ—(उस्रा) देनेवाला (वेद) प्राप्त होता है (वसूनां) सम्पदाओं का (मर्तस्य) मनुष्य की (देवी) परमेश्वर (अवसः) रक्षाओं को (तरत्) [पाप से] पार हो जाता है (सः) वह (मन्दी) उपासक (धावति) उत्तम गति पाता है ॥२॥

भावार्थ—धन का दाता परमेश्वर जिस पुरुष की रक्षा को स्वयं प्राप्त होता है वह स्तुति करता हुआ पुरुष पाप से तर जाता है और उत्तम गति पाता है ॥२॥

१०५९—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥३॥

पदार्थ—(ध्वस्रयोः) ध्वंस करनेवाले (पुरुषन्त्यो) बहुत पदार्थों के विभाग करनेवाले (आ) भली भांति (सहस्राणि) हजारों प्रकार के ज्ञान (दद्महे) ग्रहण करते हैं, (तरत्) तर जाता है (सः) वह (मन्दी) स्तोता (धावति) उत्तम गति पाता है ॥३॥

भावार्थ—हम अनेकों पदार्थों को नष्ट करनेवाले तथा अनेकों का विभाग करनेवाले परमेश्वर और सूर्य के सहस्रों प्रकार के ज्ञान, सुख आदि को ग्रहण करते हैं । जो स्तुति करता है वह पाप से तर जाता है और उत्तम गति प्राप्त करता है ॥३॥

१०६०—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥४॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (ययोः) जिन दोनों (त्रिंशतं) तीन सौ [सैकड़ों] (तना) धनों का (सहस्राणि) हजारों (च) और (दद्महे) ग्रहण करते हैं (तरत्) तर जाता है (स) वह (मन्दी) स्तुति करनेवाला (धावति) उत्तम गति पाता है ॥४॥

भावार्थ—जिन परमेश्वर और सूर्य के द्वारा सैकड़ों और सहस्रों प्रकार की सम्पदाएं हमें प्राप्त होती हैं । परमेश्वर की स्तुति करनेवाला तर जाता है और उत्तम गति पाता है ॥४॥

१०६१—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

३१ २र ३ १ २र ३२ ३१ २ ३ १ २

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥१॥

पदार्थ—(एते) ये (सोमाः) विद्वान् (असृक्षत) उत्पन्न किए जाते हैं (गृणानाः) स्तुति करनेवाले (श्रवसे) यश के लिए (महे) महान् (मदिन्तमस्य) आनन्ददाता परमेश्वर की (धारया) स्तुति के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—स्तुतियों से परमेश्वर की भक्ति करनेवाले विद्वान् पुरुष महान् यश के लाभ के लिए उत्पन्न किए जाते हैं ॥१॥

१०६२—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (गव्यानि) गोदुग्ध आदि (वीतये) भोग के लिए (नृम्णा) धन (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षसि) देता है (सनद्वाजः) सदा अन्नदाता तू (परिस्रव) दया कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें पवित्र करता हुआ हमारे भोग के लिए गोदुग्ध आदि धन प्रदान करता है । सदा अन्न का दाता तू हम पर दया कर ॥२॥

१०६३—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (नः) हमें (गोमतीः) इन्द्रियों को प्रकाश देनेवाला (इषः) ज्ञान को (विश्वा) संपूर्ण (अर्ष) प्राप्त करा (परिष्टुभः) प्रशंसनीय (गृणानः) स्तुति किया हुआ (जमदग्निना) आहिताग्नि ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! निरन्तर यज्ञ करनेवाले हमारे द्वारा प्रार्थित तू हमें इन्द्रियों का हितकारी और प्रशंसनीय सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान कर ॥३॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१०६४—*कुत्सः । अग्निः । जगती ।*

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।

३ २उ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २र ३ १ २र

भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१॥

पदार्थ—(इमम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्र का (अर्हते) पूजनीय (जातवेदसे) वेद के उत्पादक परमेश्वर के लिए (रथमिव) ज्ञान के समान (संमहेम) सम्मान करते हैं (मनीषया) उत्तम बुद्धि से (भद्रा) कल्याणकारी (हि) निश्चित रूप से (नः) हमारी (प्रमतिः) उत्तम बुद्धि (अस्य) इसके (संसदि) भजन रूप सत्संग में (अग्ने) हे परमेश्वर ! (सख्ये) मित्रता में (मा) नहीं (रिषाम) किसी से दुःख पाएँ (वयं) हम (तव) तेरी ॥१॥

भावार्थ—हम पूजनीय वेदोत्पादक परमेश्वर के लिए ज्ञान के समान इस स्तोत्र का बुद्धि से सम्मान करते हैं। निश्चित रूप से इसके भजन में हमारी बुद्धि कल्याणकारिणी होती है। हे परमेश्वर ! तेरी मित्रता में हमें किसी से दुःख न होवे ॥१॥

१०६५—*कुत्सः । अग्निः । जगती ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र

जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२॥

पदार्थ—(भराम) प्रज्वलित करते हैं (इध्मं) अग्नि को (कृणवामा) उसमें डालते हैं (हवींषि) सामग्री को (ते) तेरी प्राप्ति के उद्देश्य से (चितयन्तः) चिन्तन करते हुए (पर्वणा, पर्वणा) परिपूर्ण साधनों से (वयम्) हम (जीवातवे) जीवन धारण के लिए (प्रतरां) उत्तम (साधय) सिद्ध कर (धियः) बुद्धियों को (अग्ने) हे परमेश्वर (सख्ये) मित्रता में (मा) नहीं (रिषामा) किसी को दुःख देवें (वयम्) हम (तव) तेरी ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पूर्ण साधनों से तेरी प्राप्ति की चिन्ता करते हुए अग्नि को प्रज्वलित करते हैं और उसमें आहुति प्रदान करते हैं। तू हमारे जीवन के लिए हमें उत्तम बुद्धि प्रदान कर। तेरी मित्रता में रहते हुए हम किसी को दुःख न देवें ॥२॥

१०६६—*कुत्सः । अग्निः । जगती ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २क १ २र ३ १ २र ३ १ २र

त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्यु३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

पदार्थ—(शकेम) समर्थ हों (त्वा) तेरी (समिधम्) प्रकाशस्वरूप (साधय) सिद्ध कर (धियः) कर्म और ज्ञान को (त्वे) तेरे सहारे पर (देवाः) देवगण (हविः) हवि को (अदन्ति) ग्रहण करते हैं (आहुतम्) अग्नि में होम की गई (त्वं) तू (आदित्यां) आदित्यसंज्ञक विद्वानों को (आवह) प्राप्त करा (तान्) उन्हें (हि) निश्चितरूप से (उश्मसि) चाहते हैं (अग्ने) हे परमेश्वर (सख्ये) मित्रता में (मा) नहीं (रिषामा) हम किसी का हानि पहुँचाएं तथा किसी को हम से हानि न पहुंचे ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तुझ प्रकाशस्वरूप की उपासना करने में समर्थ होवें। तू हमारी बुद्धि और कर्म को उत्तम प्रेरणा दे। तेरे सहारे पर अग्नि में दी गई हवि को देवगण ग्रहण करते हैं। तू आदित्य विद्वानों को उत्पन्न कर। निश्चय ही हम उनकी कामना करते हैं। तेरी मित्रता में हम से किसी को या किसी से हम को हानि न पहुँचे ॥३॥

१०६७—*वसिष्ठः । आदित्याः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥१॥

पदार्थ—(प्रति) उद्देश्य से (वां) तुम दोनों के (सूरे) सूर्य के (उदिते) उदय होने पर (मित्रं) सबके मित्र (गृणीषे) स्तुति करता हूँ (वरुणम्) वरण करने के योग्य (अर्यमणम्) न्यायकारी (रिशादसम्) बुराइयों का हनन करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम्हारे कल्याण के उद्देश्य से मैं सब के मित्र, वरण करने योग्य तथा बुराइयों को दूर करनेवाले न्यायकारी परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ॥१॥

१०६८—*वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥२॥

पदार्थ—(राया) धनसहित (हिरण्यया) रमणीय (मतिः) स्तुति (इयं) यह (अवृकाय) अखण्डित (शवसे) बल के लिए (इयं) यह (विप्राः) हे मेधावी पुरुषो, (मेधसातये) बुद्धि की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! यह परमेश्वर की स्तुति रमणीय धनसहित अखण्डित बल तथा बुद्धि के लिए हो ॥२॥

१०६९—*वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २क २र

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥३॥

पदार्थ—(ते) तेरे (स्याम) [भक्त] हों (देव) हे देव (वरुण) हे वरण करने के योग्य (ते) तेरे (मित्र) हे सबके मित्र (सूरिभिः) विद्वानों के (सह) सहित (इषं) ज्ञान (स्वः) सुख (धीमहि) धारण करें ॥३॥

भावार्थ—हे वरणीय तथा सबके मित्र परमात्म देव ! हम विद्वानों के साथ तेरे भक्त हों तथा तेरे ज्ञान और सुख को धारण करें ॥३॥

१०७०—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २र

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥१॥

पदार्थ—(भिन्धि) विनाश कर (विश्वा) सारे (अप) पृथक् (द्विषः) द्वेषों का (परि) सब प्रकार से (बाधः) बाधा पहुँचानेवाली (जहि) हनन कर (मृधः) हिंसक वृत्तियों को (वसु) विद्याधन (स्पार्हं) चाहने योग्य (तद्) उसे (आभर) भरपूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! सारे द्वेषों का विनाश कर। बाधा पहुँचाने वाली हिंसक वृत्तियों को दूर भगा। चाहने योग्य जो ज्ञान धन है उसे प्रदान कर ॥१॥

१०७१—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) तेरे (विश्वम्) सकल जगत् (आनुषक्) निरन्तर (भूरेः) पर्याप्त (दत्तस्य) दिये हुए को (वेदति) जानता है (वसु) धन (स्पार्हं) चाहने योग्य (तत्) वह (आभर) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे दिए हुए जिस पर्याप्त धन को सारा संसार जानता है, चाहने योग्य उस धन को हमें प्रदान कर ॥२॥

१०७२—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र

यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो (वीडो) बल में (इन्द्र) हे सेनापते (यत्) जो (स्थिरे) पृथिवी में (यत्) जो (पर्शाने) विचारशील (पराभृतम्) सुरक्षित (वसु) धन (स्पार्हं) चाहने योग्य (तत्) उसे (आ भर) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे सेनापते ! जो धन बल में, पृथिवी और विचारशील मनुष्य में सुरक्षित है उस चाहने योग्य धन को हमें प्रदान कर ॥३॥

१०७३—*श्यावाश्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥१॥

पदार्थ—(यज्ञस्य) संसार रूप यज्ञ के (हि) निश्चित रूप से (स्थः) हैं (ऋत्विजा) ऋत्विग् (सस्नी) निपुण (वाजेषु) ज्ञानों में (कर्मसु) कर्मों में (इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (तस्य) उसका (बोधतम्) बोध कराओ ॥१॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! आप दोनों जिस संसाररूप यज्ञ के ऋत्विज हैं तथा जिसके ज्ञान और कर्म में निपुण हैं, उस संसार का हमें ज्ञान करावें ॥१॥

१०७४—*श्यावाश्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२॥

पदार्थ—(तोशासा) सन्तुष्ट करनेवाले (रथयावाना) संसाररूप रथ पर विराजमान हुए (वृत्रहणा) बुराइयों के दूर करनेवाले (अपराजिता) किसी से भी न हारनेवाले (इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (तस्य) संसार को (बोधतम्) जानते हो ॥२॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! सब को सन्तुष्ट करनेवाले, संसाररूप रथ पर विराजमान हुए, बुराइयों के निवारक तथा किसी से भी न पराजित होने वाले तुम दोनों संसार को जानते हो ॥२॥

१०७५—*श्यावाश्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३॥

पदार्थ—(इदं) इस (वां) तुम दोनों के (मदिरं) प्रसन्नता देनेवाले (मधु) ज्ञान को (अधुक्षत्) दुहते हैं (अद्रिभिः) अखण्डव्रतों से (नरः) मनुष्य (इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (तस्य) उसका (बोधतम्) बोध कराओ ॥३॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! ज्ञानी मनुष्य दृढ़ व्रतों से तुम्हारे इस आनन्ददायक ज्ञान को दुहते हैं। आप दोनों उसका हमें बोध कराएँ ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१०७६—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव के लिए (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (मरुत्वते) धनादि से युक्त (पवस्व) उपदेश कर (मधुमत्तमः) अत्यन्त ज्ञानवाला (अर्कस्य) पूजनीय परमेश्वर के (योनिम्) मोक्ष धाम में (आसदम्) स्थित होऊँ ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष ! अत्यन्त ज्ञानी तू धनादि से युक्त पुरुष के लिए उपदेश प्रदान कर। मैं पूजनीय परमेश्वर के मोक्ष धाम में स्थित होऊँ ॥१॥

१०७७—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।

१ २ ३ १ २

सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तुझे (विप्राः) मेधावी पुरुष (वचोविदः) वेदज्ञ (परिष्कृण्वन्ति) परिचर्या करते हैं [उपासना करते हैं] (धर्णसिम्) सबके धारण करनेवाले (सं) सम्यक् (त्वा) तेरे उद्देश्य से (मृजन्ति) अपने को पवित्र करते हैं (आयवः) मनुष्य लोग ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मेधावी वेदज्ञ लोग तुझ सर्वाधिकार की उपासना करते हैं। मनुष्य लोग तेरे ही उद्देश्य से अपने आप को शुद्ध पवित्र करते हैं ॥२॥

१०७८—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥३॥

पदार्थ—(रसं) आनन्द रस को (ते) तेरे (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (पिबन्तु) पान करें (वरुणः) श्रेष्ठ (कवे) हे वेद-काव्य के कर्त्ता (पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (मरुतः) ऋत्विग् लोग ॥३॥

भावार्थ—हे वेद के कर्त्ता परमेश्वर ! उपकारी, न्यायकारी, श्रेष्ठ पुरुष और ऋत्विग् लोग तुझ शुद्धस्वरूप के आनन्द रस का पान करें ॥३॥

१०७९—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २र

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥१॥

पदार्थ—(मृज्यमानः) पवित्र किया हुआ (सुहस्त्या) हे सिद्धहस्त (समुद्रे) मन में (वाचम्) वाणी की (इन्वसि) प्रेरणा करता है (रयिं) धन को (पिशङ्गं) सुवर्णमय (बहुलं) अधिक (पुरुस्पृहं) बहुतों से चाहने योग्य (पवमान) हे पवित्र स्वभाववाले (अभ्यर्षसि) प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ—हे सिद्धहस्त तथा पवित्र स्वभाव विद्वान् पुरुष ! पवित्र किया हुआ तू सबके मन में वाणी की प्रेरणा करता है तथा बहुतों से चाहने योग्य सुवर्णमय प्रचुर धन को प्राप्त करता है ॥१॥

१०८०—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करनेवाला (वारे) वरण करने योग्य (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अव्यये) नित्य (वृषः) सबके मनोरथों को सफल करनेवाला (अचिक्रदत्) विविध प्रकार से गति देता है। (वने) प्रकृतिरूप वन में (देवानां) जीवों के (सोम) हे परमेश्वर (पवमान) शुद्धस्वरूप (निष्कृतं) कर्मफल को (गोभिः) तेज से (अञ्जानः) व्यापक होता हुआ (अर्षसि) प्राप्त कराता है ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! पवित्रकारक तथा सबके मनोरथों को सफल करनेवाला तू वरण करने योग्य नित्य प्रकृतिरूपी कारण वन में अपने तेज से व्यापक होता हुआ विविध प्रकार की गति दे रहा है। तू जीवों के कर्म का फल प्रदान करता है ॥२॥

१०८१—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।

१ २ ३ १ २

समादित्येभिरख्यत ॥३॥

पदार्थ—(एतम्) इस (उ) पाद-पूरण (त्यं) उसको (दश) दश (क्षिपः) दुःखों को दूर फेंकनेवाले यम तथा नियम (मृजन्ति) पवित्र करते हैं (सिन्धुमातरम्) परमेश्वर है माता जिसकी (सं) सम्यक् (आदित्येभिः) बारह मासों से (अख्यत) संगत होता है ॥३॥

भावार्थ—दश यम और नियम परमेश्वर की रक्षा में रहनेवाले विद्वान् को शुद्ध कर देते हैं। वह बारह मास प्रशंसा का पात्र होता है ॥३॥

१०८२—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २र ३ १ २

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥१॥

पदार्थ—(सं) सम्यक् (इन्द्रेण) विद्युत् के साथ (उत) और (वायुना) वायु के साथ (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (एति) व्यापक है (पवित्रे) पवित्र संसार में (आ) भली भाँति (सं) सम्यक् (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ ॥१॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर विद्युत्, वायु और सूर्य की किरणों के साथ पवित्र जगत् में व्यापक हो रहा है ॥१॥

१०८३—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमें (भगाय) ऐश्वर्यशाली (वायवे) व्यापक (पूष्णे) पालन करनेवाले (पवस्व) पवित्र कर (मधुमान्) ज्ञानवान् (चारुः) शोभन (मित्रे) मित्र (वरुणे) वरण के योग्य (च) और ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! शोभन ज्ञानवान् तू ऐश्वर्यशाली, व्यापक पालनकर्त्ता, मित्र तथा वरण करने योग्य परमेश्वर की प्राप्ति के लिए हमें पवित्र कर ॥२॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१०८४—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥

पदार्थ—(रेवतीः) धन को देनेवाली (नः) हमें (सधमादे) समान सुख के स्थान (इन्द्रे) परमेश्वर में (सन्तु) हों (तुविवाजाः) ज्ञान का बोध करानेवाली (क्षुमन्तः) अन्नवाले (याभिः) जिनके द्वारा (मदेम) हर्ष प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अन्न आदि से युक्त हम लोग समान सुख के दाता परमेश्वर में स्थित हुए जिन स्तुतियों से हर्षित होते हैं वे हमें धनदात्री और ज्ञान का बोध करानेवाली होवें ॥१॥

१०८५—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।

३ २उ ३ २ ३क २र

ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भलीभाँति (घ) अवश्य (त्वावान्) अनुपम (त्मना) अपने आप (युक्तः) हम पर कृपा से युक्त (स्तोतृभ्यः) हम भक्तों के लिए (धृष्णो) शक्तिमान् परमेश्वर (ईयानः) प्रार्थना किया हुआ (ऋणोः) संचालन कर (अक्षं न) नाभि के समान (चक्र्योः) रथ के चक्रों को ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अनुपम, स्वयं कृपा से युक्त तथा प्रार्थना किया हुआ तू हम भक्तों का रथ के चक्रों को रथ नाभि के समान सब तरफ से संचालन कर ॥२॥

१०८६—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २र

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (यद्) जो (दुवः) सेवा [उपासना] (शतक्रतो) हे अनन्तकर्मन् (आ) भली भाँति (कामं) इच्छा को (जरितृणाम्) स्तुति करनेवालों की (ऋणोः) पूरा कर (अक्षं न) आत्मा के समान (शचीभिः) कर्मों के द्वारा ॥३॥

भावार्थ—हे अनन्त कर्मवाले परमेश्वर! उपासना से उपासकों की कामनाओं को कर्म के द्वारा आत्मा के समान पूर्ण कर ॥३॥

१०८७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥१॥

पदार्थ—(सुरूपकृत्नुम्) विद्या से सुशोभित कर देनेवाले (ऊतये) विद्या की प्राप्ति के लिए (सुदुघाम्) सुखपूर्वक दुही जानेवाली के (इव) समान (गोदुहे) दोहन करने वाले के लिए (जुहूमसि) पुकारते हैं (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन ॥१॥

भावार्थ—हम विद्या से सुशोभित करनेवाले विद्वान् को विद्या प्राप्ति के लिए सुख से दुही जाने वाली गाय को दुहने वाले के समान प्रतिदिन सन्मान करते हैं ॥१॥

१०८८—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (नः) हमारे (सवना) यज्ञों में (आगहि) व्यापक हो रहा है (सोमस्य) संसार की (सोमपाः) हे संसार के रक्षक (पिब) रक्षा कर (गोदा) इन्द्रियों का दाता (इत्) ही (रेवतः) जीव का (मदः) सुखकारी ॥२॥

भावार्थ—हे संसार के रक्षक परमेश्वर ! तू हमारे यज्ञों में व्यापक हो रहा है। तू ही संसार की रक्षा करता है। तू जीव का इन्द्रियदाता और सुखी करनेवाला है ॥२॥

१०८९—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥

पदार्थ—(अथ) अनन्तर (ते) तेरे (अन्तमानां) समीप की (विद्याम) जानें (सुमतीनां) शोभन बुद्धियों को (मा) न (नः) हमें (अतिख्यः) वञ्चित कर (आगहि) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तेरी समीपवर्ती उत्तम बुद्धियों को जानें। तू हमें उनसे वंचित न कर। तू हमें प्राप्त हो ॥३॥

१०९०—मान्धाता । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महान्तं त्वां महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।

३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥

पदार्थ—(उभे) दोनों (यत्) जो (इन्द्र) सूर्य (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी को (आपप्राथ) प्रकाश से पूर्ण करता है (उषा इव) उषा के समान (महान्तं) सबसे महान् (त्वा) इसको (महीनां) पृथिव्यादि लोकों में (सम्राजम्) प्रकाश देने वाला (चर्षणीनां) देखने वाले मनुष्यों को (देवी) परमेश्वर (जनित्री) उत्पन्न करने वाला (अजीजनत्) उत्पन्न करता है (भद्रा) कल्याणकारी (जनित्री) उत्पादक (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—सूर्य द्युलोक और पृथिवी को उषा के समान अपने प्रकाश से पूर्ण करता है। वह पृथिवी आदि लोकों से भी बड़ा है और देखने वालों को प्रकाश देने-वाला है। कल्याणकारी सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ही उसका उत्पादक है ॥१॥

१०९१—मान्धाता । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यमः ।

३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥

पदार्थ—(दीर्घं) बड़ा (हि) निश्चय ही (अंकुशं) अंकुश (यथा) जैसे (शक्ति) सामर्थ्य को (बिभर्षि) धारण करता है (मन्तुमः) हे ज्ञानिन् (पूर्वेण) अगले (मघवन्) हे सारी संपदाओं के स्वामी (पदा) पावों से [पक्ष में व्याप्ति से] (वयाम्) वृक्ष की शाखा को (अजः) बकरा (यथा) जैसे (यमः) अपने अधिकार में करता है (देवी) दिव्य गुणयुक्त (जनित्री) उत्पादक (अजीजनत्) उत्पन्न करता है (भद्रा) कल्याणकारी (जनित्री) उत्पन्न करनेवाला (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥२॥

भावार्थ—हे ज्ञान तथा सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! कल्याणकारी दिव्य गुणयुक्त सर्वोत्पादक तू अंकुश के समान महान् शक्ति को धारण करता है। तू समस्त लोकों को पैदा करता है और जिस प्रकार अगले पाँव से बकरा शाखा को पकड़ लेता है उसी प्रकार तू अपनी व्याप्ति से उनकी व्यवस्था करता है ॥२॥

१०९२—मान्धाता । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

१ २ ३ १ २र ३ २
अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ।

३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥

पदार्थ—(अव) नीचे (स्म) पादपूरक (दुर्हणायतः) दुःखपूर्वक हरण करनेवाले (मर्त्तस्य) मनुष्य के (तनुहि) गिरा (स्थिरम्) शक्ति को (अधस्पदं) पैरों तले (तम्) उस (ईम्) पादपूरक (कृधि) कर (यः) जो (अस्मान्) हमें (अभिदासति) दास बनाता है। (देवी) दिव्यगुण युक्त (जनित्री) उत्पादक (अजीजनत्) पैदा करता है (भद्रा) कल्याणकारी (जनित्री) उत्पादक (अजीजनत्) जीवन देता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दुःखपूर्वक हरण करनेवाले मनुष्य की शक्ति को नीचे गिरा। जो हमें दास बनाता है और हम यदि किसी को दास बनाते हैं तो उन्हें कुचल दे। दिव्य गुणयुक्त सर्वोत्पादक तू सबको उत्पन्न करता है और जीवन प्रदान करता है ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१०९३—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानः) सबके हृदय में उपदेश करता हुआ (गिरिष्ठाः) वाणी में स्थित (पवित्रे) इस पवित्र संसार में (सोमः) परमेश्वर (अक्षरत्) संचालन करता है (मदेषु) स्तुति विषय में (सर्वधा) सबका धारणकर्त्ता (असि) है ॥१॥

भावार्थ—अन्तःकरण में उपदेश करनेवाला, वाणी पर विराजमान परमेश्वर पवित्र संसार का संचालन करता है। हे परमेश्वर ! तू स्तोत्रों में सब कुछ धारण करता है ॥१॥

१०९४—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

२उ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (विप्रः) मेधावी (त्वं) तू (कविः) वेदकाव्य का कर्त्ता (मधु) आनन्द का दाता (प्रजातम्) उत्पन्न (अन्धसः) अन्न से (मदेषु) आनन्दों में (सर्वधा) सबको धारण करनेवाला (असि) है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मेधावी तथा वेद-काव्य का कर्त्ता है। तू आनन्द में सबको धारण करता है। तू ही अन्न से उत्पन्न सुख को प्रदान करता है ॥२॥

१०९५—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि॥३॥

पदार्थ—(त्वे) तुझ में (विश्वे) सब (सजोषसः) समान प्रेम के साथ (देवासः) विद्वान् लोग (पीतिम्) आनन्द को (आशत) प्राप्त करते हैं (मदेषु) अपने स्तोत्रों में (सर्वधा) सारे ज्ञानों का धारण करनेवाला (असि) है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तेरी शरण में एक समान प्रेम वाले सब विद्वान् लोग आनन्द पाते हैं। तू अपने स्तोत्रों में सबको धारण करता है ॥३॥

१०९६—ऋणंचयः । सोमः । यवमध्या गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।

२ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह (सुन्वे) उत्पन्न करता है (यः) जो (वसूनाम्) वस्तुओं को (यः) जो (रायाम्) धनों को (आनेता) प्राप्त करानेवाला है (यः) जो (इळानाम्) वाणियों का (सोमः) परमेश्वर (यः सुक्षितीनाम्) जो सुन्दर भू-भागों का ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर आठ वस्तुओं, वेदवाणियों, सुन्दर भू-भागों तथा धनों का प्राप्त करानेवाला है वही जगत् को रचता है ॥१॥

१०९७—ऋणंचयः । सोमः । सतो बृहती ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) तेरे (इन्द्रः) आत्मज्ञानी (पिबात्) पान करता है (यस्य) जिसके (मरुतः) उपासक लोग (यस्य) जिसके (अर्यमणा) न्यायकारी (भगः) भाग्यवान् (आ) भली भांति (येन) जिससे (मित्रावरुणा) हितैषी और श्रेष्ठ पुरुष को [सहायक] (करामहे) करते हैं (आ) सब प्रकार से (इन्द्रम्) आत्मा को (अवसे) रक्षा के लिए (महे) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस तेरे आनन्द का आत्मज्ञानी, उपासक, न्यायकारी और भाग्यशाली पुरुष भी पान करते हैं और जिस तेरी कृपा से हम

अपनी महान् रक्षा के लिए हितैषी और श्रेष्ठ पुरुष को अपना सहायक बनाते हैं, उस तुझे हम स्तुति से प्रसन्न करते हैं ॥२॥

१०९८—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उसको (वः) तुम लोग (सखायः) हे मित्रो (मदाय) आनन्द के लिए (पुनानम्) सबके पवित्रकर्ता (अभि) सब प्रकार से (गायत) भजन करो (शिशुन्न) प्राण वायु के समान (हव्यैः) हवनों के द्वारा (स्वदयन्त) अच्छी तरह ग्रहण करो (गूर्तिभिः) स्तुतियों से ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग आनन्द प्राप्ति के लिए सबके पवित्रकर्त्ता परमेश्वर का भजन करो । हवन के द्वारा प्राण वायु के समान स्तुतियों से उसे ग्रहण करो ॥१॥

१०९९—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।

१ १ २२ ३ २ ३ १ २
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२॥

पदार्थ—(सं) सम्यक् प्रकार (वत्सः) बच्चे के (इव) समान (मातृभिः) माताओं द्वारा (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (हिन्वानः) जाना हुआ (अज्यते) ज्ञात होता है (देवावीः) देवों के रक्षक (मदः) आनन्ददाता (मतिभिः) विद्वानों के द्वारा (परिष्कृतः) सुशोभित ॥२॥

भावार्थ—विद्वानों द्वारा ज्ञात, सुशोभित देवों का रक्षक, आनन्ददाता तथा सकल ऐश्वर्योंवाला परमेश्वर माताओं द्वारा बच्चे के समान भली भांति जाना जाता है ॥२॥

११००—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

३१ २र२ १२३ १ २र ३१२
अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।

३२ ३२ ३ १२ १२
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥३॥

पदार्थ—(अयं) यह (दक्षाय) वृद्धि के लिए (साधनः) परम साधन (अयं) यह (शर्धाय) बल के लिए (वीतये) ज्ञान के लिए (अयं) यह (देवेभ्यः) सब देवों के लिए (मधुमत्तरः) अतिशय आनन्ददायक (सुतः) सृष्टिकर्त्ता ॥३॥

भावार्थ—सब देवों के लिए आनन्द का दाता और सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर हमारे वृद्धि बल और ज्ञान का परम साधन है ॥३॥

११०१—मनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १२३ १ २ ३१२
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।

३ २ ३१२३१२ ३क २र ३१२
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थ—(सोमाः) परमेश्वर (पवन्ते) व्यापक हो रहा है (इन्दवः) सर्वैश्वर्ययुक्त (अस्मभ्य) हमारे लिए (गातुवित्तमाः) उत्तम पथ-प्रदर्शक (मित्राः) स्नेही (स्वानाः) जीवनदाता (अरेपसः) पापरहित (स्वाध्यः) चिन्तन करने के योग्य (स्वर्विदः) सर्वज्ञ [सुखदाता] ॥१॥

भावार्थ—सकल ऐश्वर्यवान्, हमारा पथ-प्रदर्शक, स्नेही जीवनदाता, निष्पाप चिन्तन करने के योग्य तथा सर्वज्ञ परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१॥

११०२—मनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥२॥

पदार्थ—(ते) वह (पूतासः) पवित्र (विपश्चितः) ज्ञानवान् (सोमासः) परमेश्वर (दध्याशिरः) जगत् को धारण करता हुआ आश्रय (सूरासः) सूर्य के (न) समान (दर्शतासः) साक्षात् करने के योग्य (जिगत्नवः) व्यापक (ध्रुवा) नित्य (घृते) प्रकाश में ॥२॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप, ज्ञानवान्, सर्वाधार, व्यापक तथा नित्य परमेश्वर सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश में साक्षात् करने के योग्य है ॥२॥

११०३—मनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥३॥

पदार्थ—(सुष्वाणासः) शोभन सत्योपदेष्टा (वि) विशेष (अद्रिभिः) आदर से (चिताना) विचारा जानेवाला (गोः) पृथिवी के (अधित्वचि) पृष्ठ पर (इषम्) अन्न और ज्ञान को (अस्मभ्यं) हमें (अभितः) सब तरफ से (समस्वरन्) प्रदान करता है (वसुविदः) सारी सम्पदाओं का दाता ॥३॥

भावार्थ—सुन्दर सत्योपदेष्टा पृथिवी पर आदर और अटूट श्रद्धा के द्वारा जानने के योग्य तथा सकल सम्पदाओं का दाता परमेश्वर हमें सब तरफ से अन्न और ज्ञान प्रदान करता है ॥३॥

११०४—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस (पवा) गति से (पवस्व) प्राप्त कर (एना) इन (वसूनि) धनों को (मांश्चत्वे) अश्व पर (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (सरसि) जल पर (प्रधन्व) चल (ब्रध्नश्चित्) अत्यन्त महान् (यस्य) जिसका (वातः न) वायु के समान (जूतिम्) वेग को (पुरुमेधाः) बहुत ज्ञानवान् (चित्) ही (तकवे) गमन के लिए (नरं) मनुष्य को (धात्) धारण करे ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली पुरुष ! महान् और ज्ञानवान् तू अश्व और जल पर गमन कर । इस गति से समस्त धनों को प्राप्त कर । वायु के समान जिसकी गति को तू प्राप्त करता है उस नेता परमेश्वर को धारण कर ॥१॥

११०५—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥२॥

पदार्थ—(उत) और (नः) हमें (एना) इस (पवया) पावन शक्ति से (पवस्व) पवित्र कर (अधि) में (श्रुते) शास्त्र में (श्रवाय्यस्य) श्रवण करने योग्य (तीर्थे) पार लगानेवाले (षष्टिं) साठ (सहस्रा) हजार (नैगुतः) सूक्ष्मातिसूक्ष्म [रहस्यमय] (वसूनि) धनों का (वृक्षं न) वृक्ष के समान (पक्वं) पके हुए फलोंवाले (धूनवत्) हिलाकर (रणाय) जीवन संग्राम में विजय के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है । अपनी पावन शक्ति से श्रवण करने योग्य अपने पार लगानेवाले वेदरूप शास्त्र में हमें पवित्र कर । तू पके हुए फलवाले वृक्ष के समान हमें साठ सहस्र [अनेक प्रकार का] धन प्रदान कर ॥२॥

११०६—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥३॥

पदार्थ—(महि) द्यु और पृथिवीलोक (इमे) ये (अस्य) इसके (वृषनामा) वर्षा करनेवाले और स्थान या संज्ञावाले (शूषे) सुख को देनेवाले (मांश्चत्वे) अनुभूति के साधन (वा) अथवा (पृशने) चर्मेन्द्रिय (वा) अथवा (वधत्रे) बल की रक्षा करनेवाले (अस्वापयत्) शक्ति हीन कर देता है (निगुतः) सूक्ष्मातिसूक्ष्म (स्नेहयच्च) और नष्ट कर देता है (अप) दूर (अमित्रान्) काम-क्रोध आदि रोगों को (अपाचितः) दूर करता है (अचेतः) जड़ता या मूर्खता को ॥३॥

भावार्थ—वर्षावाले और स्थानरूप ये परमेश्वर के द्युलोक और पृथिवी सुख देनेवाले हैं । सूक्ष्मरूप यह परमेश्वर बाह्यज्ञान की अनुभूति के साधन बल की रक्षा करनेवाले चर्मेन्द्रिय में स्थित रोग और काम, क्रोधादिकों को शक्तिहीन करके नष्ट कर देता है । वह मूर्खता को दूर भगाता है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

११०७—बन्धुः, सुबन्धुः । श्रुतबन्धुः, विप्रबन्धुश्च । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे आचार्य (त्वं) तू (नः) हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (उत) और (त्राता) रक्षा करनेवाला है (शिवः) कल्याण करनेवाला (भुवः) होता है (वरूथ्यः) श्रेष्ठ ॥१॥

भावार्थ—हे आचार्य देव ! तू हमारे अत्यन्त समीप, रक्षक, कल्याणकारी तथा श्रेष्ठ है ॥१॥

११०८—वन्धुः, सुबन्धुः, सुतबन्धुः, विप्रबन्धुश्च । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२॥

पदार्थ—(**वसुः**) वसानेवाला (**अग्निः**) परमेश्वर (**वसुश्रवाः**) कीर्ति-धन से सम्पन्न (**अच्छा**) साक्षात् (**नक्षिः**) प्राप्त होता है (**द्युमत्तमः**) प्रकाशों का प्रकाशक (**रयिं**) सम्पदा (**दाः**) देता है ॥२॥

भावार्थ—सबको निवास देनेवाला, यशस्वी और प्रकाशकों का भी प्रकाशक परमेश्वर हमें ज्ञान से प्राप्त होता है और धन प्रदान करता है ॥२॥

११०९—वन्धुः, सुबन्धुः, सुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३॥

पदार्थ—(**तं**) उस (**त्वा**) तेरी (**शोचिष्ठ**) हे प्रकाशस्वरूप (**दीदिवः**) हे तेजस्वी (**सुम्नाय**) सुख के लिए (**नूनम्**) निश्चयरूप से (**ईमहे**) याचना करते हैं (**सखिभ्यः**) मित्र आदि के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप तथा तेजस्वी परमेश्वर ! मित्रों के सुख के लिए हम निश्चय तेरी याचना करते हैं ॥३॥

१११०—भुवनः, साधनो वा । विश्वेदेवाः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

पदार्थ—(**इमा**) इन सब (**नु**) शीघ्र (**कं**) सुख (**भुवना**) लोकों का (**सीषधेम**) सिद्ध करें (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**विश्वे**) सारे (**च**) भी (**देवाः**) विद्वान् तथा दिव्य शक्तियां ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर और समस्त विद्वान् आदि दिव्य शक्तियां लोकों का कल्याण करें ॥१॥

११११—भुवनः, साधनो वा । विश्वेदेवाः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३क १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

यज्ञं च नस्तन्वञ्च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥२॥

पदार्थ—(**यज्ञं**) यज्ञ को (**च**) और (**नः**) हमारे (**तन्वं**) शरीर को (**च**) और (**प्रजां**) सन्तान को (**च**) और (**आदित्यैः**) विद्वान् सूर्य और संवत्सर के [साथ] (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**सह**) साथ (**सीषधातु**) सिद्ध करें ।२।

भावार्थ—परमेश्वर विद्वान्, सूर्य, संवत्सर आदि के साथ हमारे यज्ञ, शरीर और सन्तति की उन्नति और रक्षा कर ॥२॥

१११२—भुवनः, साधनो वा । विश्वेदेवाः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥३॥

पदार्थ—(**आदित्यैः**) सूर्यादियों से (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**सगणः**) समस्त पदार्थ समुदाय से युक्त (**मरुद्भिः**) वायु तथा सुवर्ण आदिकों से (**अस्मभ्यं**) हमारे लिए (**भेषजा**) औषधि (**करत्**) करे ॥३॥

भावार्थ—समस्त पदार्थ समुदाय से युक्त परमेश्वर सूर्य आदि तथा सुवर्ण और वायु आदि के द्वारा हमारे रोगों का निवारण करे या औषध करने का ज्ञान दे ॥३॥

१११३—वामदेवः । इन्द्रः । द्विपदा विराट् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायता यं जुजोषते ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**वः**) तुम लोग (**इन्द्राय**) आत्मा के लिए (**वृत्रहन्तमाय**) बुरी वृत्तियों से दूर रहनेवाले, (**विप्राय**) ज्ञानों के ज्ञाता, (**गाथम्**) प्रशंसा (**गायत**) करो (**यम्**) जिसको (**जुजोषते**) स्वीकार करता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वज्जन ! आप लोग बुरी वृत्तियों से दूर रहनेवाले, ज्ञान गुणसम्पन्न जीव की प्रशस्ति करो । जिसको प्रभु चाहता है उसे स्वीकार करता है ॥१॥

१११४—वामदेवः । इन्द्रः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र

अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—(**अर्चन्ति**) आदर करते हैं (**अर्कम्**) आदर योग्य (**मरुतः**) मनुष्य जन (**स्वर्काः**) प्रशंसा वचनों से युक्त (**आ स्तोभति**) प्रशस्ति करते हैं (**श्रुतः**) विख्यात (**युवा**) युक्त (**सः**) वह (**इन्द्रः**) योगी ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वज्जन ! प्रशंसा वचनों से युक्त मनुष्यजन योगयुक्त, ऐश्वर्य-शाली आदरणीय उस योगी का आदर करते हैं जो योगैश्वर्य सम्पन्न और गुणों से प्रसिद्ध था ॥२॥

१११५—वामदेवः । इन्द्रः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥३॥

पदार्थ—(**क्षियन्तः**) निवास करते हुए (**प्रक्षे**) गृहसम शरीर में (**मधुमति**) विद्या और योग से युक्त (**पुष्येम**) पुष्ट करें (**रयिम्**) आत्मिक धन को (**धीमहे**) धारण करें (**ते**) तुझे (**इन्द्र**) हे ईश्वर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्या और योगबल से युक्त शरीर में रहते हुए हम आत्मिक धन को पुष्ट करें और तुझ को धारण करें ॥३॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 सप्तमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

अष्टमोऽध्यायः

१११६—वृषगणः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) श्रेष्ठता से (**काव्यं**) त्रयी विद्या [चारों वेद] को (**उशना इव**) धर्मात्मा के समान (**ब्रुवाणः**) प्रवचन करता हुआ (**देवः**) देव (**देवानां**) सारे दिव्य इन्द्रियादि पदार्थों की (**जनिमा**) उत्पत्ति को (**विवक्ति**) वर्णन करता है (**महिव्रतः**) महान् व्रत वाला (**शुचिबन्धुः**) तेजस्वी (**पावकः**) दुर्गुणों का शोधक (**पदा**) उत्तम गतियों से (**वराहः**) सात्त्विक आहार वाला (**अभ्येति**) प्राप्त होता है (**रेभन्**) उपदेश करता हुआ । १॥

भावार्थ—महान् व्रतधारी, तेजस्वी, दुर्गुणों का शोधक, सात्विक आहारवाला तथा दिव्यगुण विद्वान् पुरुष धर्मात्मा के समान त्रयी विद्या का प्रवचन करता हुआ इन्द्रियादि तथा सूर्य आदि पदार्थों की उत्पत्ति का वर्णन करता है । वह उपदेश देता हुआ उत्तम गतियों को प्राप्त करता है ॥१॥

१११७—वृषगणः । सोमः । त्रिष्टुप्

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥२॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम रूप से (**हंसासः**) आत्मज्ञानी (**तृपलाः**) शीघ्र-कारी (**वग्नुं**) वेदवाणी रूप (**अच्छा**) अच्छी तरह (**अमात्**) संसार भय से (**अस्तं**) गृह (**वृषगणा**) धर्म की व्याख्या या लक्षण करनेवाले (**अयासुः**) जाते हैं (**अङ्गोषिणं**) स्तुति के योग्य (**पवमानं**) शुद्धस्वरूप (**सखायः**) सखा भागवाले (**दुर्मर्षम्**) किसी से न दावए जाने योग्य शक्तिशाली (**वाणम्**) वेदवाणी का (**प्रवदन्ति**) वर्णन करते हैं (**साकम्**) साथ साथ ॥२॥

भावार्थ—शीघ्र गतिवाले, धर्म का लक्षण और व्याख्यान करनेवाले तथा परस्पर मित्र आत्मज्ञानी लोग संसार भय से लोक की रक्षा के लिए वेदवाणी रूप गृह को अच्छी तरह प्राप्त होते हैं । वे स्तुति के योग्य, शुद्धस्वरूप, शक्तिशाली परमेश्वर तथा वेद का साथ साथ वर्णन करते हैं ॥२॥

११११८—वृषगणः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २र
स योजत उरुगायस्य जूर्ति वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥३॥

पदार्थ—(स) वह (योजते) जोड़ता है (उरुगायस्य) प्रशंसनीय [आत्मा की] (जूर्ति) गति को (वृथा) अनायास (क्रीडन्तम्) क्रीडा करते हुए (मिमते) मापती हैं (न) नहीं (गावः) इन्द्रियां (परीणसं) बहुत प्रकार के तेज को (कृणुते) उत्पन्न करता है (तिग्मशृङ्गः) महान् तेजस्वी (दिवा) दिन में (हरिः) अज्ञाननिवारक (ददृशे) जाना जाता है (नक्तं) रात्रि में (ऋज्रः) प्रकाशस्वरूप ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर आत्मा की गति का योग कराता है । वृथा क्रीडा में फंसे उसे इन्द्रियां नहीं माप सकतीं । महान् तेजस्वी अज्ञान-निवारक प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर विविध तेजों को उत्पन्न करता है और दिन-रात मनुष्यों के अनुभव में आता है ॥३॥

१११६—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥४॥

पदार्थ—(प्र) उत्तमरूप से (स्वानासः) परस्पर प्रश्नोत्तर करनेवाले (रथा इव) यतियों के समान (अर्वन्तो न) प्रशस्त ज्ञानवान् के समान (श्रवस्यवः) यश की चाहना करनेवाले (सोमासः) पुरुष (राये) ऋद्धि-सिद्धि आदि धन के लिए (अक्रमुः) पराक्रम करते हैं ॥४॥

भावार्थ—यश की कामना करनेवाले और परस्पर आत्मज्ञानविषयक प्रश्नोत्तर करते हुए, यती और प्रशस्तज्ञान वाले के समान ऋद्धि और सिद्धि के लिए पराक्रम करते हैं ॥४॥

११२०—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥५॥

पदार्थ—(हिन्वानासः) प्रेरित (रथा इव) रथ के समान (दधन्विरे) धारण किये जाते हैं (गभस्त्योः) हाथों में (भरासः) भार (कारिणाम्) काम करनेवालों के (इव) समान ॥५॥

भावार्थ—प्रेरित रथ तथा काम करनेवालों के भार के समान सांसारिक भोग्य पदार्थों को परमेश्वर ने हमारे हाथों में दे रखा है ॥५॥

११२१—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६॥

पदार्थ—(राजानः) राजाओं के (न) समान (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं से (सोमासः) पृथिवी से लेकर प्रकृति जीव तथा ईश्वर पर्यन्त समस्त पदार्थ(गोभिः) वेदवाणियों के द्वारा (अंजते) वर्णन किये जाते हैं (यज्ञः) यज्ञ के (न) समान (सप्तधातृभिः) सात छन्दों द्वारा ॥६॥

भावार्थ—प्रशंसा वचनों से राजाओं के समान तथा सात छन्दों से यज्ञ के समान पृथिवी आदि से लेकर प्रकृति जीव तथा परमेश्वर पर्यन्त पदार्थ वेदवाणियों से वर्णन किये जाते हैं ॥६॥

११२२—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥७॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानासः) उपदेश करते हुए (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिए (बर्हणा) महान् (गिरा) वाणी से (मधोः) ज्ञान की (अर्षन्ति) परिपूर्ण करते हैं (धारया) धारा से ॥७॥

भावार्थ—महान् वेदवाणी द्वारा उपदेश करते हुए ऐश्वर्यवान् पुरुष सुख-प्राप्ति के लिए ज्ञान की धारा से लोक को तृप्त करते हैं ॥७॥

११२३—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥८॥

पदार्थ—(आपानासः) व्यापक अनुभववाले (विवस्वतः) परमेश्वर के (जिन्वन्तः) जानते हुए (उषसः) प्रकाशस्वरूप (भगम्) ऐश्वर्य को (सूराः) सुर (अण्वं) सूक्ष्म (वितन्वते) विस्तार करते हैं ॥८॥

भावार्थ—व्यापक अनुभव वाले सुर विद्वान् पुरुष जानते हुए प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के सूक्ष्म ऐश्वर्य का प्रचार द्वारा विस्तार करते हैं ॥८॥

११२४—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥९॥

पदार्थ—(अप) पृथक् (द्वारा) मार्ग (मतीनां) स्तुतियों के (प्रत्नाः) पुराने (ऋण्वन्ति) खोलते हैं (कारवः) करनेवाले कुशल (वृष्णः) सुखों की वर्षा करनेवाले (हरसे) प्रकाश के लिए (आयवः) मनुष्य ॥९॥

भावार्थ—स्तुति करनेवाले मनुष्य सुखों की वर्षा करने वाले परमेश्वर के प्रकाश के लिए उपासना के सनातन द्वार को खोल देते हैं ॥९॥

११२५—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥१०॥

पदार्थ—(समीचीनासः) उत्तम गुणवाले (आशत) व्यापक हो रहे हैं (होतारः) ऋत्विग् (सप्तजानयः) सातजन (पदं) परम पद को (एकस्य) एक के (पिप्रतः) याचना करते हुए ॥१०॥

भावार्थ—उत्तम गुणवाले सात ऋत्विक् जन अद्वितीय परमेश्वर के परम पद की याचना करते हुए यज्ञ में स्थित होते हैं ॥१०॥

११२६—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
नाभा नाभिं न आददे चक्षुषा सूर्यं दृशे । कवेरपत्यमा दुहे ॥११॥

पदार्थ—(नाभा) नाभि में, देश में (नाभि) परमेश्वर को (नः) अपने (आ ददे) ग्रहण करता हूं (चक्षुषा) आंख से (सूर्यं) सूर्य के समान (दृशे) देखने के लिए (कवेः) वेद काव्य के कर्त्ता (अपत्यं) सन्ततिरूप संसारी प्राणियों को (आ दुहे) पूरा करता हूं ॥११॥

भावार्थ—मैं आंख से सूर्य के समान प्रकाश को देखने के लिए अपने नाभि-प्रदेश में धारणा द्वारा परमेश्वर को ग्रहण करता हूं । वेद के कर्त्ता परमेश्वर के सन्ततिरूप संसार के समस्त प्राणियों को सुख से पूर्ण करता हूं ॥११॥

११२७—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥१२॥

पदार्थ—(अभि) भली भांति (प्रियं) प्यारे (दिवः) प्रकाशस्वरूप के (पदं) परमपद (अध्वर्युभिः) उपासकों द्वारा (गुहा) अन्तःकरण में (हितम्) धारणा द्वारा जाने गये (सूरः) विद्वान् पुरुष (पश्यति) देखता है (चक्षसा) ज्ञान की आंख से ॥१२॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष उपासकों द्वारा हृदय में धारणा द्वारा जाने गए प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के प्यारे परमपद को ज्ञान की आंख से देखता है ॥१२॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

११२८—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजना ॥१॥

पदार्थ—(असृग्रम्) उत्पन्न किये जाते हैं (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् (पथा) मार्ग से (धर्मन्) धर्म में (ऋतस्य) परमेश्वर के द्वारा निर्धारित (सुश्रियः) शोभा वाले (विदाना) जानते हुए (अस्य) इस संसार की (योजना) विधान ॥१॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली धर्म में सुशोभित इस ससार के विधान को जाननेवाले विद्वान् जन परमेश्वर के द्वारा निर्धारित मार्ग से रचे जाते हैं ॥१॥

११२९—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविःषु वन्द्यः ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तमरूप से (धाराः) वाणियों को (मधोः) विधान की (अग्रियः) प्रथम (महीः) महान् (अपः) कर्मों को (विगाहते) मिलाता है (हविः) ग्रहण करने योग्य (हविःषु) ग्रहण करने योग्यों में (वन्द्यः) स्तुति करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—पूज्यों का पूज्य परमेश्वर विस्तृत कर्मों और ज्ञान की मूल वाणियों को सृष्टि के आदि में मिलाता है ॥२॥

११३०—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (युजा) युक्तियुक्त (वाचः) वाणियों को (अग्रियः) प्रथम विद्यमान (वृषा) कामनाओं को सफल करने वाला (उ) पादपूरक (अचिक्रदत्) उपदेश करता है (वने) जल के विषय में

(सद्म) गृह आदि (अभि) विषय में (सत्यः) सत्यस्वरूप (अध्वरः) कल्याणकारी ॥३॥

भावार्थ—सर्वप्रथम विद्यमान, सत्यस्वरूप, कल्याणकारी और मनोरथों को पूर्ण करनेवाला परमेश्वर जल और गृह निर्माण आदि के विषय में युक्तियुक्त वाणियों का उपदेश करता है ॥३॥

११३१—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १र ३ १ २

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥४॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (यत्) जब (काव्या) वेदरूप काव्यों को (कविः) कवि (नृम्णा) धन और बलों को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) प्राप्त करता है (स्वः) सुख को (वाजी) ज्ञानवान् (सिषासति) भागी होता है ॥४॥

भावार्थ—कवि पुरुष जब अपने बल और धन को पवित्र करता हुआ वेदमय काव्य को प्राप्त करता है तब वह परमज्ञानी हुआ सुख पाता है ॥४॥

११३२—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५॥

पदार्थ—(पवमानः) शुद्धस्वरूप (अभि) भली भांति (स्पृधः) विघ्न करने वालों को (विशः) प्रजा के (राजा) के (इव) समान (सीदति) दमन करता है (यत्) जब (ईम्) इस (ऋण्वन्ति) जान लेते हैं (वेधसः) बुद्धिमान् पुरुष ॥५॥

भावार्थ—जब ज्ञानी पुरुष परमेश्वर को जान लेते हैं तब वह शुद्धस्वरूप विघ्नों को दूर करता है जैसे राजा प्रजा के विघ्नों को दूर करता है ॥५॥

११३३—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६॥

पदार्थ—(अव्याः) प्रकृति के (वारे) आवरण में (परि) सब प्रकार से (प्रियः) प्यारा (हरिः) अज्ञानहर्त्ता (वनेषु) विभागयुक्त पदार्थों में (सीदति) विराजमान है (रेभः) स्तोता (वनुष्यते) भजन करता है (मती) स्तुति द्वारा ॥६॥

भावार्थ—प्यारा अज्ञानहर्त्ता परमेश्वर प्रकृति के आवरण तथा समस्त विभागयुक्त पदार्थों में विराजमान हो रहा है। स्तोता स्तुतियों द्वारा उसका भजन करता है ॥६॥

११३४—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥

पदार्थ—(सः) वह (वायुं) वायु को (इन्द्रं) विद्युत् को (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा को (साकं) साथ (मदेन) सुख के (गच्छति) जान लेता है (रणा) व्यवहार करता है (यः) जो (अस्य) इसके (धर्मणा) धर्म से ॥७॥

भावार्थ—जो इस परमेश्वर के बतलाए धर्म-मार्ग से चलता है वह सुख-पूर्वक वायु, विद्युत् चन्द्र, और सूर्य का ज्ञान कर लेता है ॥७॥

११३५—जमदग्नि-असित-देवला । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

पदार्थ—(आ) भली प्रकार (मित्रे) वायु में (वरुणे) जल में (भगे) सूर्य में (मधोः) आनन्दस्वरूप की (पवन्ते) व्यापक हो रही हैं (ऊर्मयः) प्रकाश की लहरें (विदानाः) जानते हुए (अस्य) इसको (शक्मभिः) कर्म और शक्तियों से युक्त हो जाते हैं ॥८॥

भावार्थ—आनन्दस्वरूप परमेश्वर के प्रकाश की लहरें वायु, जल तथा सूर्य आदि में व्यापक हो रही हैं। जो पुरुष इस प्रभु को जान लेते हैं वे शक्ति और कर्म से युक्त हो जाते हैं ॥८॥

११३६—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥

पदार्थ—(अस्मभ्यम्) हमें (रोदसी) हे दण्ड से दुष्टों को रुलानेवाले (रयिं) जल को (मध्वः) आनन्दप्रद (वाजस्य) ज्ञान की (सातये) प्राप्ति के लिए (श्रवः) यश (वसूनि) धनों को (संजितम्) दे ॥९॥

भावार्थ—हे दुष्टों को रुलानेवाले परमेश्वर और राजन् ! आप दोनों हमें आनन्दकारी ज्ञान के प्राप्त करने के लिए यश, जल तथा समस्त सम्पदाएँ प्रदान करें ॥९॥

११३७—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (दक्षं) पराक्रम को (मयोभुवम्) सुख को देनेवाले (वह्निम्) सब कुछ प्राप्त करानेवाले (अद्या) आज (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (पान्तम्) रक्षा करनेवाले (आ) भली प्रकार (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहने योग्य ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम आज सुखदाता, सब कुछ प्रदान करनेवाले, रक्षक तथा अनेकों से चाहने योग्य तेरे पराक्रम को स्वीकार करते हैं ॥१०॥

११३८—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (मन्द्रम्) आनन्ददाता (आ) भली प्रकार (वरेण्यम्) वरण करने योग्य (आ) भली प्रकार (विप्रम्) मेधावी (आ) भली भांति (मनीषिणम्) सबके मनों के ज्ञाता (पान्तम्) रक्षक (आ) भली भांति (पुरुस्पृहम्) सबसे चाहने योग्य ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम आनन्ददाता, वरण के योग्य, मेधावी, सबके मनों में रमनेवाले, रक्षक तथा सबके द्वारा चाहने योग्य तुझ को स्वीकार करते हैं ॥११॥

११३९—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (रयिम्) परम धनरूप (आ) भली भांति (सुचेतुनम्) उत्तम ज्ञानी (आ) भली प्रकार (सुक्रतो) हे उत्तम कर्मवाले (तनूषु) आत्माओं में [व्यापक] (आ) भली भांति (पान्तम्) रक्षक (आ) अच्छी तरह (पुरुस्पृहम्) अनेकों से चाहने योग्य ॥१२॥

भावार्थ—हे उत्तम कर्मवाले परमेश्वर ! हम भक्तों के परम धन, उत्तम ज्ञानी, आत्माओं में व्यापक, रक्षक तथा सर्वपूज्य तुझको स्वीकार करते हैं ॥१२॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

११४०—भरद्वाजः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ २ ३ २

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥

पदार्थ—(मूर्धानम्) मस्तकरूप, उन्नत भाग (दिवः) द्युलोक के (अरतिं) अपनी व्यापकता से धारण करनेवाले (पृथिव्याः) पृथिवी लोक के (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हित के साधनभूत (ऋते) सत्य के नियम में (आ) भली भांति (जातम्) उत्पन्न हुए (अग्निम्) अग्नि को (कविम्) तीक्ष्ण तेजवाले (सम्राजम्) प्रकाशमान (अतिथिम्) सदा गतिशील (जनानाम्) लोगों के (आसन्) मुखरूप (नः) हमारे लिए (पात्रम्) रक्षक (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं (देवाः) परमेश्वर, सूर्य और वायु आदि दिव्य शक्तियां ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य तथा वायु देव द्युलोक के मस्तकरूप, पृथिवी को व्याप्त होकर धारण करनेवाले, सबके हित के साधनभूत, सत्य नियम में उत्पन्न हुए, तीक्ष्ण तेजवाले, प्रकाशमान, निरन्तर गतिशील, प्राकृतिक देवों के मुखरूप तथा लोगों के रक्षक अग्नि को उत्पन्न करते हैं ॥१॥

११४१—भरद्वाजः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥२॥

पदार्थ—(त्वां) तेरी (विश्वे) समस्त (अमृत) हे अमर (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए (शिशुं न) बच्चे के समान (देवाः) विद्वान् लोग (अभि) भली प्रकार (संनवन्ते) स्तुति करते हैं (तव) तेरे (क्रतुभिः) ज्ञानों से (अमृतत्वम्) मोक्ष को (आयन्) प्राप्त करते हैं (वैश्वानर) हे समस्त मनुष्यों के हितकारी (यत्) जो (पित्रोः) द्यु और पृथिवीलोक के (अदीदेः) प्रकाशित करता है ॥२॥

भावार्थ—हे अजर, अमर तथा सर्वहितकारक परमेश्वर ! तू द्यु और पृथिवी लोक को प्रकाशित करता है। सारे विद्वान् पुरुष उत्पन्न शिशु के समान तेरी प्रशंसा करते हैं और तुम्हारे ज्ञानों से मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥२॥

११४२—भरद्वाजः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २२

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥३॥

पदार्थ—(**नाभिं**) नाभिरूप [मूल आधार] (**यज्ञानां**) यज्ञों के (**सदनं**) स्थान (**रयीणां**) धनों के (**महाम्**) महान् (**आहावम्**) स्तुति किए जानेवाले (**अभि**) भली भांति (**संनवन्त**) स्तुति करते हैं (**वैश्वानरं**) सबके हितसाधक (**रथ्यम्**) रथ को सिद्ध करनेवाले (**अध्वराणाम्**) अन्तरिक्ष आदि लोकों के (**यज्ञस्य**) यज्ञ के (**केतुं**) प्रकाशक ध्वजारूप (**जनयन्त**) प्रकट करते हैं (**देवाः**) विद्वान् लोग ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् जन यज्ञों के मूल आधार, समस्त धनों के एकमात्र स्थान, महान् तथा स्तुत्य परमेश्वर की स्तुति करते हैं और अन्तरिक्ष आदि लोक तथा यज्ञ के प्रकाशक, रथ के साधक, समस्त व्यवहारों में हितकारक भौतिक अग्नि को ज्ञान द्वारा प्रकट करते हैं ॥३॥

११४३—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम प्रकार से (**वः**) तुम लोग (**मित्राय**) परमेश्वर के लिए (**गायत**) प्रशंसा करो (**वरुणाय**) जीव के लिए (**विपा**) विस्तृत (**गिरा**) वेदवाणी से (**महिक्षत्रौ**) महाबली (**ऋतं**) सत्य (**बृहत्**) महान् ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग परमेश्वर और जीव की विस्तृत वेदवाणी द्वारा प्रशंसा करो । महाबली वे दोनों सत्यस्वरूप और महान् हैं ॥१॥

११४४—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥२॥

पदार्थ—(**सम्राजा**) अच्छी तरह प्रकाशमान (**या**) जो (**घृतयोनी**) प्रकाश के आश्रय (**मित्रः**) परमेश्वर (**च**) और (**उभा**) दोनों (**वरुणः**) वरुण (**च**) और (**देवाः**) देव (**देवेषु**) तैंतीस देवों में (**प्रशस्ता**) श्रेष्ठ [प्रशंसनीय] ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर और जीवात्म देव, तेजस्वी, प्रकाश के आश्रय तथा तैंतीस देवों में प्रशंसनीय हैं उनकी तुम लोग प्रशंसा करो ॥२॥

११४५—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ १२ ३ २ ३ १ २

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥३॥

पदार्थ—(**ता**) वे दोनों (**नः**) हमारे लिए (**शक्तं**) समर्थ हैं (**पार्थिवस्य**) पृथ्वीसम्बन्धी (**महः**) महान् (**रायः**) संपदाएँ (**दिव्यस्य**) उत्तम द्युलोकसंबन्धी (**महि**) महान् (**वां**) तुम दोनों का (**क्षत्रं**) बल (**देवेषु**) तैंतीस देवों में ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर पृथ्वी लोकसम्बन्धी तथा दिव्य संपदाओं के देने में और जीव उनका उपभोग करने में समर्थ है। हे परमेश्वर और जीव ! तुम्हारा बल अन्य देवों में महान् है ॥३॥

११४६—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**आयाहि**) हमें प्राप्त हो (**चित्रभानो**) हे अनिर्वचनीय प्रकाश वाले (**सुताः**) उत्पन्न (**इमे**) ये संसारी प्राणी (**त्वायवः**) तुम्हारे मिलने की इच्छावाले (**अण्वीभिः**) सूक्ष्म तन्मात्राओं से (**तना**) विस्तारित (**पूतासः**) पवित्र ॥१॥

भावार्थ—हे अद्भुत प्रकाशवाले परमेश्वर ! तू हमें प्राप्त हो । सूक्ष्म पंच तन्मात्राओं से शरीर के विस्तार को प्राप्त हुए पवित्र तथा उत्पन्न ये संसारी प्राणी तेरी प्राप्ति के इच्छुक हैं ॥१॥

११४७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**आयाहि**) प्राप्त हो (**धिया**) उत्तम बुद्धि से (**इषितः**) जाने गये (**विप्रजूतः**) मेधावी पुरुषों को प्राप्त होनेवाले (**सुतावतः**) पदार्थ विद्या के ज्ञाता (**उप**) समीप (**ब्रह्माणि**) ब्राह्मणि [ब्रह्मवित्] (**वाघतः**) ऋत्विजों को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम बुद्धि से जानने योग्य तथा मेधावियों को प्राप्त होनेवाला तू पदार्थविद्या के ज्ञाता ब्रह्मवित् ऋत्विजों को प्राप्त हो ॥२॥

११४८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रा याहि तूतुजानः उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**आयाहि**) भली भांति जानता है (**तूतुजानः**) शीघ्र गतिवाला (**उप**) समीप (**ब्रह्माणि**) स्तुतियों को (**हरिवः**) अज्ञान आदि के हर्त्ता (**सुते**) उत्पन्न संसार में (**दधिष्व**) धारण करता है (**नः**) हमारे लिए (**चनः**) अन्न आदि पदार्थों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शीघ्रगति वाला, अज्ञान नाशक तू हमारी स्तुतियों को जानता है और संसार में हमारे लिए अन्न आदि को धारण करता है ॥३॥

११४९—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१॥

पदार्थ—(**तम्**) उसकी (**ईडिष्व**) स्तुति कर (**यः**) जो (**अर्चिषा**) अपने तेज से (**वना**) जगत् के कारण पदार्थों को (**विश्वा**) सारे (**परिष्वजत्**) व्याप्त करता है (**कृष्णा**) आकर्षण धारणवाले अग्नि, सूर्य तथा पृथ्वी आदि को (**कृणोति**) रचता है (**जिह्वया**) वाणी वेदवाणी के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जो परमेश्वर अपने तेज से जगत् के समस्त मूल कारण पदार्थों को व्यापन कर रहा है तथा वेदवाणी के द्वारा धारण, आकर्षणवाले अग्नि, 'सूर्य' पृथिवी आदि को रचता है, तू उसकी स्तुति कर ॥१॥

११५०—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥२॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**इद्धे**) प्रदीप्त अग्नि में (**आ विवासति**) भली भांति करता है (**सुम्नम्**) यज्ञ को (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (**मर्त्यः**) मनुष्य (**द्युम्नाय**) यश के लिए (**सुतरा**) सुख से पार करने योग्य (**अपः**) कर्म ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रदीप्त अग्नि में भली भांति यज्ञ करता है, वह परम यश के लिए पार लगानेवाले कर्मों को कर रहा है ॥२॥

११५१—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥३॥

पदार्थ—(**ता**) वे दोनों [तुम] (**नः**) हमें (**वाजवतीः**) बल देनेवाली (**इषः**) अन्न तथा विज्ञान (**आशून्**) शीघ्रगामी (**पिपृतम्**) प्रदान करें (**अर्वतः**) घोड़ों को (**आ**) भली भांति (**इन्द्रं**) विद्युत् (**अग्निम्**) सुवर्ण आदि धन को (**वोढवे**) प्राप्त करने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और राजन् ! आप दोनों विद्युत् और सुवर्ण आदि की प्राप्ति के लिए हमें बलशाली अन्न और विज्ञान तथा शीघ्रगामी अश्व आदि प्रदान करें ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

११५२—सिकतानिवावरी । इन्द्रः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम प्रकार से (**उ**) वितर्क (**अयासीद्**) प्राप्त करता है (**इन्दुः**) ऐश्वर्यवान् (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर के दिए (**निष्कृतम्**) कर्मफल को (**सखा**) मित्ररूप (**सख्युः**) मित्र के (**न**) नहीं (**प्रमिनाति**) माप कर सकता है (**सङ्गिरम्**) वेदवाणी को (**मर्य इव**) मनुष्य के समान (**युवतिभिः**) युवतियों के साथ (**समर्षति**) संसक्त होता है (**सोमः**) जीव (**कलशे**) संसार में (**शतयामना**) सैकड़ों (**पथा**) मार्ग से ॥१॥

भावार्थ—मित्ररूप ऐश्वर्यशाली जीव सर्वमित्र परमेश्वर के द्वारा दिए गए कर्मफल को प्राप्त करता है। वह परमेश्वर की वेदवाणी को माप नहीं सकता । युवती के साथ मनुष्य के समान वह सैकड़ों मार्गों से संसार में विचरता है ॥१॥

११५३—सिकतानिवावरी । इन्द्रः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥२॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम प्रकार से (**वः**) तुम्हारी (**धियः**) बुद्धियाँ (**मन्द्रयुवः**) वाणी से युक्त (**विपन्युवः**) हे मेधावी (**पनस्युवः**) स्तुति करनेवाले (**संवरणेषु**) उपासना गृहों में (**अक्रमुः**) विस्तृत होती हैं। (**हरिं**) अज्ञान का हरण करने वाले (**क्रीडन्तम्**) सृष्टि की क्रीड़ा करने वाले (**अभ्यनूषत**) स्तुति करते हैं (**अभि**) सब

प्रकार से (स्तुभः) स्तोता (धेनवः) वेदवाणियां (पयसा) ज्ञान से युक्त (इत्) ही (अशिश्रयुः) आश्रय लेती हैं ॥२॥

भावार्थ—हे वाणी से युक्त स्तुति करने वाले मेधावीगण ! आप लोगों की बुद्धियां उपासना गृहों में विस्तृत होती हैं। स्तोता लोग अज्ञान-नाशक सृष्टि की क्रीड़ा करनेवाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं तथा वेदवाणियां ज्ञान के साथ उस परमेश्वर में आश्रय लेती हैं ॥२॥

११५४—*सिकतानिवावरी । इन्द्रः । जगती ।*

१ २   ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २   ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (नः) हमें (सोम) हे सृष्टिकर्ता (संयतं) संगृहीत (पिप्युषीम्) वृद्धि करनेवाले (इषम्) अन्न को (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (पवस्व) प्रदान कर (पवमान) हे सर्वव्यापक (ऊर्मिणा) बोध के साथ (या) जो(नः) हमारे लिए (दोहते) पूर्ण करता है (त्रिः) तीन बार (अह्न्) दिन में (असश्चुषी) विना बाधा के (क्षुमद्) अन्नवाला (वाजवत्) ज्ञानयुक्त (मधुमत्) आनन्ददायक (सुवीर्यं) पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ! सर्वव्यापक तू हमें उस संगृहीत, वृद्धि करनेवाले अन्न को ज्ञान के साथ प्रदान कर जो कि अन्नवाले, ज्ञानयुक्त, आनन्द पराक्रम को हमारे लिए दिन के तीनों भागों में विना बाधा के पूरा करता है ॥३॥

११५५—पुरुहन्मः । इन्द्रः । वृहती ।

२ ३ १ २र   ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
२ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्त्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥

पदार्थ—(न किः) कोई नहीं (तं) उसको (कर्मणा) कर्म के द्वारा (नशत्) नाश करता है (यः) जो (चकार) करता है (सदावृधम्) सर्वदा उन्नत करनेवाले (इन्द्रम्) आत्मा को (न) इस अवस्था में (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (विश्वगूर्त्तम्) सब में प्रशंसनीय (ऋभ्वसम्) महान् (अधृष्टम्) न दवाये जाने योग्य (धृष्णुम्) दवानेवाला (ओजसा) तेज से ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य सबके प्रशंसा योग्य, महान्, न दवायी जानेवाली तथा अपने तेज से अन्यों को दवानेवाली आत्मशक्ति को यज्ञ और कर्मों द्वारा सदा उन्नत करता है, उसका कोई कुछ विगाड़ नहीं सकता ॥१॥

११५६—*पुरुहन्मा । इन्द्रः । वृहती ।*

१ २ ३ १ २र   ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
२ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥२॥

पदार्थ—(अषाढम्) अपराध को क्षमा न करनेवाला (उग्रम्) महान् शक्तिशाली (पृतनासु) संग्रामों में (सासहिं) साहस देनेवाले (यस्मिन्) जिस में (महीः) महान् (उरुज्रयः) वेगवती (सं) सम्यक् (धेनवः) वेदवाणियां (जायमाने) उत्पत्ति करनेवाले (अनोनवुः) स्तुति करती हैं (द्यावः) द्युलोक-सम्वन्धी (क्षामीः) पृथिवीलोकवाले प्राणी (अनोनवुः) स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उत्पत्तिकर्त्ता जिस परमेश्वर की महान् वेगवती वेदवाणियां प्रशंसा करती हैं तथा द्यु और पृथिवी लोकस्थ प्राणी जिसकी स्तुति करते हैं, तुम लोग अपराध को न क्षमा करनेवाले, महाशक्तिशाली और संग्रामों में साहस देनेवाले प्रभु की स्तुति करो ॥२॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

११५७—*नारदः । सोमः । उष्णिक् ।*

१ २ ३ १   २र   ३ २ ३ १ २
सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत ।
२ ३ २ ३ १   २र   ३ २
शिशुं न यज्ञैः परिभूषत श्रिये ॥१॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो (आ) भली भांति (निषीदत) वैठो (पुनानाय) पवित्रात्मा की (प्रगायत) प्रशंसा करो (शिशुं न) बच्चे के समान (यज्ञैः) पांच महायज्ञों से (परिभूषत) प्रसन्न करो (श्रिये) अपनी शोभा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! समीप वैठो और पवित्र आत्मा विद्वान् पुरुष की प्रशंसा करो तथा अपने कल्याण के लिए उसे बच्चे के समान पांच यज्ञों से प्रसन्न करो ॥१॥

११५८—नारदः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ २उ   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
३ २क १ २ ३ १   २र
देवाव्यं३ मदमभि द्विशवसम् ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् प्रकार (ई) इस (वत्सं न) बच्चे के समान (मातृभिः) माताओं से (सृजत) मेल करो (गयसाधनम्) धन आदि के साधक (देवाव्यम्) दिव्य पदार्थों के रक्षक (मदम्) आनन्ददाता (अभि) सब प्रकार से (द्विशवसम्) सबसे द्विगुण बलवाला अथवा सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश करने रूप दो बलोंवाला ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! समस्त धनों के दाता, सब देवों के रक्षक, आनन्द-दाता और द्विगुण बलवाले परमेश्वर के साथ मेल करो। जैसे मातायें बच्चे के साथ मेल करती हैं ॥२॥

११५९—*नारदः । सोमः । उष्णिक् ।*

३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३   १ २   ३ १ २
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
१ २ ३ २ ३   १ २   ३   १ २
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥३॥

पदार्थ—(पुनाता) पवित्र करो (दक्षसाधनम्) समस्त बलों के साधनभूत (यथा) जैसे (शर्धाय) बल के लिए (वीतये) ज्ञान के लिए (यथा) जिस प्रकार (मित्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (वरुणाय) जीव के ज्ञान के लिए (शन्तमम्) सुखकारक ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग बल के साधक, सुख गुण वाले आत्मा को उस तरह पवित्र करो जिस प्रकार से बल, ज्ञान, परमेश्वर तथा आत्मा की प्राप्ति हो सके ॥३॥

११६०—*अग्नयः धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा ।*

२ ३क २र   ३ १ २   ३ २ ३ २ ३. २उ   ३ १ २
प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारास्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तमरूप से (वाजी) बलवान् (अक्षाः) व्याप्त कर रहा है (सहस्रधारः) असंख्य वाणियोंवाले (तिरः) दबाकर (पवित्रं) अग्नि, सूर्य आदि को (वि) विशेषरूप से (वारम्) वरण करने योग्य (अव्यम्) प्रकृति के विकार [प्राकृतिक] ॥१॥

भावार्थ—बलवान् और असंख्य वाणियों वाला परमेश्वर वरण के योग्य प्राकृतिक अग्नि तथा सूर्य आदि को दबाकर व्याप्त कर रहा है ॥१॥

११६१—*अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा ।*

२ ३क २र   ३ १ २   ३ १ २ ३ १   २र   ३ २
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (वाजी) बलवान् (अक्षाः) संचालन कर रहा है (सहस्ररेताः) सहस्रों प्रकार की सामर्थ्य वाला (अद्भिः) कर्मों के द्वारा (मृजानः) शुद्ध करने वाला (गोभिः) वेदवाणियों से (श्रीणानः) परिपक्व करनेवाला ॥२॥

भावार्थ—बलवान्, अनन्तशक्तिवाला अपने पवित्र कर्मों द्वारा सबका शुद्ध कर्त्ता तथा वेदवाणियों से सबको परिपक्व करनेवाला परमेश्वर सबका संचालन कर रहा है ॥२॥

११६२—*अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा ।*

१ २   ३ १ २   ३ १   २र ३ १   २र   ३ २
प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोम) हे जीव (याहि) जा (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (कुक्षा) शरण में (नृभिः) नेताओं द्वारा (येमानः) नियम चलाया हुआ (अद्रिभिः) आदरणीय (सुतः) उत्पन्न हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे जीव! संसार में पैदा हुआ तथा आदरणीय नेताओं से नियम पर चलाया गया तू परमेश्वर की शरण में जा ! ॥३॥

११६३—*भृगुः । सोमः । गायत्री ।*

१   २र   ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २   २ ३ १   २ ३ १ २
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो (सोमासः) प्राणी (परावति) दूर देश में (ये) जो (अर्वावति) समीप देश में (सुन्विरे) उत्पन्न हुए हैं (ये) जो (वा)अथवा (अदः) इस (शर्यणावति) पृथ्वी पर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! जो प्राणी हमसे दूर, समीप देश या इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए हैं, वे सब हमारा कल्याण करें ॥१॥

११६४—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२३१ २३१ २र ३ २र २३१२ ३१२
य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (आर्जीकेषु) सरलस्वभाववाले (कृत्वसु) निर्मित योनियों में (ये) जो (मध्ये) मध्य मे (पस्त्यानाम्) गृहों के (ये) जो (वा) अथवा (जनेषु) जनों में (पंचसु) पांच ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो प्राणी सरल स्वभाववाली योनियों में हैं जो गृहस्थ हैं अथवा जो पंचजनों में हैं [चारोंवर्ण पांचवां निपाद] वे हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥२॥

११६५—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३२उ ३१२ ३२३१२ ३ २ ३२३१२
ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥३॥

पदार्थ—(ते) वे (नः) हमारे लिए (वृष्टि) सुख की वर्षा (दिवस्परि) द्युलोक पर्यन्त (पवन्ताम्) प्राप्त करावे (आ) भली भांति (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम (स्वानाः) स्वयं प्राणशक्तिवाले बलवान् (देवासः) विद्वान् (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो बलवान्, विद्वान् तथा ऐश्वर्यवान् पुरुष हैं वे हमारे लिए द्युलोकपर्यन्त सुख की वर्षा करें तथा उत्तम पराक्रम प्रदान करें ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

११६६—वत्सः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३१२ ३१२ २३ १ २ ३ २
आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (ते) तेरा (वत्सः) बुद्धि (मनः) मन को (यमत्) नियम में रखता है (परमात्) परम (चित्) ही (सधस्थात्) समान स्थान से (अग्ने) हे विद्वान् (त्वां) तुझे (कामये) चाहता हूँ (गिरा) प्रार्थना से ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष! तेरी बुद्धि परमपद रूप स्थान में मन को नियन्त्रित करती है। मैं प्रार्थनापूर्वक तेरी कामना करता हूँ ॥१॥

११६७—वत्सः । अग्निः । गायत्री ।

१ २उ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १२३२ ३१२
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(पुरुत्रा) सब जगह (हि) निश्चय (सदृङ्) समदर्शी (असि) है (दिशः) दिशाओं को (विश्वा) सारी (अनु) लक्ष्यकर (प्रभुः) स्वामी (समत्सु) जीवन संग्रामों में (त्वा) तुझे (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सर्वत्र समदर्शी तथा समस्त दिशाओं का स्वामी है। हम जीवन-संग्रामों में तेरी ही पुकार करते हैं ॥२॥

११६८—वत्सः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ १२ ३१२
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥३॥

पदार्थ—(समत्सु) जीवन-संग्रामों में (अग्निम्) परमेश्वर को (अवसे) रक्षा के लिए (वाजयन्तः) बल की कामना करते हुए (हवामहे) पुकारते हैं (वाजेषु) संग्रामों में (चित्रराधसम्) नाना प्रकार के धन की याचना करने योग्य ॥३॥

भावार्थ—बल की कामना करते हुए हम संग्रामों में अनेक प्रकार के धनवाले परमेश्वर को, जीवन-संग्राम में अपनी रक्षा के लिए पुकारते हैं ॥३॥

११६९—नृमेधः । इन्द्रः । विराडुष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।

१ ३ १ २ ३ १ २
आ वीरं पृतनासहम् ॥१॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (आभर) भरपूर कर (ओजः) बल (नृम्णम्) धन से (शतक्रतो) हे सैकड़ों यज्ञोंवाले (विचर्षणे) हे प्रजा के साक्षी (आ) भली भांति (वीरं) बलवान् (पृतनासहम्) संग्राम का जीतने वाला ॥१॥

भावार्थ—हे सैकड़ों यज्ञों के करने वाले तथा सब के साक्षी राजन् ! तू हमारे लिए बल, धन तथा संग्राम जीतने वाले बलवान् प्रदान कर ॥१॥

११७०—नृमेधः । इन्द्रः । विराडुष्णिक् ।

१ २र ३ १ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

१ २ ३ १ २
अथा ते सुम्नमीमहे ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (हि) निश्चय (नः) हमारा (पिता) पिता (वसो) हे सबको निवास देनेवाले (त्वं) तू (माता) माता (शतक्रतो) हे सैकड़ों यज्ञों के स्वामी (बभूविथ) है (अथ) अनन्तर (ते) तेरे (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) चाहते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सबके निवासदाता तथा असंख्य यज्ञों के स्वामी परमेश्वर ! तू ही हमारा पिता और माता है। हम तेरे सुख की याचना करते हैं ॥२॥

११७१—नृमेधः । इन्द्रः । विराड् उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वां) तेरी (शुष्मिन्) हे बलशाली (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे गए (वाजयन्तम्) सत्य-असत्य के ज्ञान करानेवाले (उपब्रुवे) स्तुति करता हूँ (सहस्कृत) हे बलदाता (सः) वह तू (नः) हमें (रास्व) दे (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे बलशाली, बहुतों से पुकारने योग्य तथा बलदाता परमेश्वर ! मैं तुझ सत्य और असत्य का ज्ञान करानेवाले की स्तुति करता हूँ। तू हमें उत्तम पराक्रम दे ॥३॥

११७२—अत्रिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ १ २
यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो (इन्द्र) हे राजन् (चित्र) हे अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाले (मे) मेरे पास (इह) यहाँ (न) नहीं (अस्ति) है (त्वादातम्) तेरे देने योग्य (अद्रिवः) हे दण्डधारी (राधः) धन को (तत्) वह (नः) हमें (विदद्वसो) हे सारी संपदाओं वाले (उभया) दोनों (हस्त्या) हाथों से (आ भर) प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ—हे दण्डधारी, समस्त संपदाओं वाले तथा अद्भुत गुण, कर्म, स्वभावयुक्त राजन् ! तेरे देने योग्य जो वस्तु मेरे पास नहीं, वह मुझे दोनों हाथों से प्रदान कर ॥१॥

११७३—अत्रिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (मन्यसे) मानता है (वरेण्यम्) उत्तम (इन्द्र) हे परमेश्वर (द्युक्षं) अन्न (तत्) वह (आ भर) दे, (विद्याम) प्राप्त करें (तस्य) उस (ते) तेरे (वयं) हम (अकूपारस्य) अच्छी तरह से भरणपोषण करनेवाले (दावनः) दान को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस अन्न को तू उत्तम मानता है वह हमें प्रदान कर। हम तेरे उस अच्छी तरह भरण-पोषण करनेवाले दान को प्राप्त करें ॥२॥

११७४—अत्रिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यत्ते दिक्ष प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो (ते) तेरा (दिक्षु) दिशाओं में (प्रारध्यं) आराधना के योग्य (मनः) ज्ञान (अस्ति) है (श्रुतं) प्रसिद्ध (बृहत्) महान् (तेन) उससे (दृढा चित्) दृढ (अद्रिवः) हे आदरणीय (आ) भली भांति (वाजं) ज्ञान को (दर्षि) देता है (सातये) भक्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे आदरणीय परमेश्वर! दिशाओं में विख्यात, आराधना के योग्य तथा महान् जो तेरा ज्ञान है उसके द्वारा भक्ति के लिए संशयरहित ज्ञान को हमें प्रदान कर ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

卐 अष्टमोऽध्यायः समाप्तः 卐

नवमोऽध्यायः

११७५—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२३१२ ३२३ १२३१२३१२
शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
३२३१ २र ३१ २र ३२३१२३१२
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१॥

पदार्थ—(शिशुं) शिशुरूप प्रशंसनीय (जज्ञानं) उत्पन्न हुए (हर्यतं) मनोहर (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं (विप्रम्) मेधावी (मरुतः) ऋत्विग् लोग वेद के ज्ञाता (गणेन) वेद की वाणी से (कविः) उत्तम बुद्धि वाला (गीर्भिः) स्तुतियों द्वारा (काव्येन) वेदरूपी काव्य से (कविः) क्रान्तप्रज्ञ मेधावी (सन्) हुआ (सोमः) आत्मा (पवित्रम्) अग्नि, वायु, सूर्य आदि को (अत्येति) अतिक्रमण [लंघन] कर जाता है (रेभन्) परमेश्वर की अर्चना करते हुए ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुए, पुत्रवत् प्रशंसनीय, ज्ञानगुण युक्त जीव को वेदज्ञानी लोग वेद की वाणी से सुशोभित कर पवित्र करते हैं। वह उत्तम बुद्धि वाला जीव स्तुतियों तथा वेदरूप काव्य के द्वारा अत्यन्त ज्ञानवान् होकर परमात्मा की अर्चना करता हुआ संसार के अग्नि, वायु तथा सूर्य आदि पदार्थों को पार कर जाता है ॥१॥

११७६—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२३ १२३२ ३२३१२ ३१ २३२
ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
३२३१२ ३१ २र३ १२३२३१२ ३२
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनुराजति ष्टुप् ॥२॥

पदार्थ—(ऋषिमनाः) सर्वज्ञतायुक्त ज्ञान वाला (यः) जो (ऋषिकृत्) ऋषियों को उत्पन्न करने वाला (स्वर्षाः) आनन्दस्वरूप (सहस्रनीथः) सबसे स्तुति किया जाने योग्य (पदवीः) पथप्रदर्शक (कवीनां) ज्ञानियों का (तृतीयं) तीसरे (धामः) स्थान या लोक को (महिषः) महान् (सिषासन्) विभक्त करता हुआ (सोमः) परमेश्वर (विराजम्) प्रकाशमान अग्नि या सूर्य को (अनुराजति) प्रकाशित करता है (स्तुप्) धारण कर्त्ता ॥२॥

भावार्थ—सर्वज्ञ, ऋषियों का उत्पादक, आनन्दस्वरूप, सबकी उपासना के योग्य, ज्ञानियों का पथप्रदर्शक, महान् तथा सबका धारण करने वाला परमेश्वर द्यु लोक का विभाग करता हुआ सौर अग्नि को प्रकाशित करता है ॥२॥

११७७—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३१२३२३१२ ३२३१ २र ३ १२
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
३२३१ २र ३२ ३२३१२ ३१२
अपामूर्मि सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३॥

पदार्थ—(चमूषत्) द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक (श्येनः) ज्ञानी (शकुनः) समर्थ (विभृत्वा) सबका भरण-पोषण करने वाला (गोविन्दुः) सूर्य, पृथिवी तथा वेदवाणी आदि का ज्ञाता (द्रप्से) भूगोल पर (आयुधानि) जलों को धारण करता हुआ (अपां) जलों के (ऊर्मिम्) प्रेरक (सचमानः) संयुक्त या सम्बन्ध करता हुआ (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (तुरीयम्) चतुर्थ (धाम) मोक्ष धाम को (महिषः) महान् (विवक्ति) बताता है ॥३॥

भावार्थ—द्यु तथा पृथिवी आदि लोकों में व्यापक, ज्ञानी, सर्वशक्तिमान्, सब का धारण-पोषण करने वाला तथा सूर्य आदि का ज्ञाता महान् परमेश्वर भूगोल पर जलों को धारण करता है। जल की वर्षा करने वाले अन्तरिक्ष को सम्बद्ध करता है तथा मोक्षधाम का उपदेश करता है ॥३॥

११७८—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३२ ३१ २र३१२ १२ ३क २र
एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥

पदार्थ—(एते) ये (सोमाः) परमेश्वर और विद्वान् लोग (अभि) सब ओर से (प्रियम्) प्रिय (इन्द्रस्य) जीव की (कामम्) कामना को (अक्षरन्) बरसाते हैं (वर्धन्तः) बढ़ाते हुए (अस्य) इसके (वीर्यम्) पराक्रम को ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर तथा विद्वान् जन जीव के पराक्रम को बढ़ाते हुए इसकी प्रिय कामना की वृष्टि करते हैं ॥१॥

११७९—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ १२ ३२३ १२ ३२३१ २ १२ ३१२
पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥२॥

पदार्थ—(पुनानासः) पवित्र करने वाले (चमूषदः) द्यु और पृथिवी लोक के ज्ञाता (गच्छन्तः) जानते हुए (वायुम्) वायु को (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा को (ते) वे (नः) हमें (धत्त) धारण कराओ (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम को ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्र करने वाले तथा द्यु और पृथिवी आदि के ज्ञाता परमेश्वर और विद्वान् लोग ! आप वायु, सूर्य और चन्द्रमा आदि सभी को जानने वाले हो। आप हमें उत्तम बल धारण कराएँ ॥२॥

११८०—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१ २र ३२३ १२३१२
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) परमेश्वर की (सोम) हे पुरुष (राधसे) आराधना के लिए (पुनानः) पवित्र हुआ (हार्दि) हृदय स्थान में होने वाले मन को (चोदय) प्रेरित कर (देवानाम्) देवों के (योनिम्) परम पद में (आ सदम्) स्थित होता हूँ ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! पवित्र हुआ तू परमेश्वर की आराधना के लिए अपने मन को प्रेरित कर। मैं देवों के परम पद में स्थित होता हूँ ॥३॥

११८१—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३१२ ३२३१२ ३ १२३२३१२ २३१२
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥

पदार्थ—(मृजन्ति) शुद्ध करती हैं (त्वा) तुझे (दश) दश यम-नियम (क्षिपः) अज्ञानमल को दूर फेंकने वाले (हिन्वन्ति) प्राप्त होती हैं (सप्त) सात स्थानों में [नाभिचक्र, हृदयपुण्डरीक, मूर्धज्योतिः, नासिकाग्र, जिह्वाग्र, तालग्र तथा ज्ञान मात्र से बाह्यविषय] होने वाली (धीतयः) धारणाएँ (अनु) अनुकूल बना कर (विप्राः) ज्ञानीजन (अमादिषुः) प्रसन्न होते हैं ॥४॥

भावार्थ—हे आत्मशक्ते ! दश यम-नियम तुम्हारे अविद्या आदि मलों को दूर करते हैं तथा सात स्थानों में होने वाली धारणाएँ तुझे प्राप्त होती हैं। तुझे अनुकूल कर लेने पर ज्ञानीजन प्रसन्न होते हैं ॥४॥

११८२—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३१२ ३१२३१ २३१ २र ३क २र १ २र
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥

पदार्थ—(देवेभ्यः) देवों के (त्वा) तुझे (मदाय) प्रसन्नता के लिए (कं) सुखस्वरूप (सृजानम्) उत्पन्न करने वाले (अति) अत्यन्त (मेष्यः) भेड़ आदि पशुओं को (सं) सम्यक् (गोभिः) स्तुतिरूप वेदवाणियों से (वासयामसि) आच्छादित करते हैं ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तुम से विद्वानों तथा दिव्यशक्तियों की प्रसन्नता के लिये भेड़ आदि को अधिक रूप में उत्पन्न करने वाले आनन्दस्वरूप तुझे हम स्तुतियों से स्मरण करते हैं ॥५॥

११८३—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ २३२३ १ २र ३१ २र २३१२
पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥६॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (कलशेषु) शरीरों को (आ) भली भांति (वस्त्राणि) वस्त्र आदि को (अरुषः) प्रकाशस्वरूप (हरिः) अज्ञान-नाशक (परि) सब ओर से (गव्यानि) पृथिवी, सूर्य तथा इनके विकार सोना, चांदी, अन्न, ओषधि आदि समस्त पदार्थों को (अव्यत) प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थ—शरीरों को पवित्र करता हुआ प्रकाशस्वरूप तथा अज्ञान-निवारक परमेश्वर सोना, चांदी, अन्न, ओषधि तथा वस्त्र आदि पदार्थों को हमें प्रदान करता है ॥६॥

११८४—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३२३१२ ३२उ ३२३ १२ २३ १२३१२
मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥७॥

पदार्थ—(मघोनः) यज्ञ करनेवाले (आपवस्य) भली भांति पवित्र कर (नः) हमें (जहि) नष्ट कर (विश्वा) सारे (अप) बुरी तरह (द्विषः) द्वेषों को (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (सखायम्) सखाभूत जीवात्मा में (आविश) प्रविष्ट हो ॥७॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू यज्ञ करनेवाले हम लोगों को पवित्र कर। हमारे सारे द्वेषों को विनष्ट कर। मित्रस्वरूप आत्मा में व्यापक हो ॥७॥

११८५—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥८॥

पदार्थ—(नृचक्षस) मनुष्यमात्र के कर्मों के साक्षी (त्वा) तुझे (वयम्) हम लोग (इन्द्रपीतं) जीवात्माओं की रक्षा करनेवाले (स्वर्विदम्) सूर्य आदि पदार्थों के ज्ञाता (भक्षीमहि) भागी बनें (प्रजां) प्रजा के (इषम्) अन्न के ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग मनुष्यों के कर्मों के साक्षी, आत्माओं के रक्षक तथा सर्वज्ञ तुझ परमेश्वर की स्तुति करते हुए सन्तान तथा अन्नादि के भागी बनें ॥८॥

११८६—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ १ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
वृष्टिं दिवः परिस्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥९॥

पदार्थ—(वृष्टिं) वर्षा को (दिवः) द्युलोक से (परिस्रव) बरसा (द्युम्नं) अन्न तथा धन (पृथिव्या अधि) पृथिवी में (सहः) बल (नः) हमें (सोम) हे परमेश्वर (पृत्सु) संग्रामों में (धाः) धारण करा ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू द्युलोक से वर्षा कर । पृथिवी में अन्न तथा धन दे और संग्रामों में हमें बल प्रदान कर ॥९॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

११८७—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ—(सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) प्राप्त कराता है (सहस्रधारः) सर्वाधार (अत्यविः) प्रकृति के परे रहनेवाला (वायोः) गतिशील (इन्द्रस्य) जीव के (निष्कृतम्) कर्मफल को ॥१॥

भावार्थ—पवित्रकारक, सर्वाधार तथा प्रकृति से परे स्थित परमेश्वर अनेकों योनियों में आने जानेवाले जीव के कर्मफलों को देता है ॥१॥

११८८—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥२॥

पदार्थ—(पवमानम्) शुद्धस्वरूप (अवस्यवः) रक्षा की कामना करनेवाले (विप्रम्) मेधावी (अभि) भली भांति (प्रगायत) भजन करो (सुष्वाणं) जगत्कर्त्ता (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे रक्षा की कामनावालो ! तुम लोग दिव्यगुणों को प्राप्ति के लिए शुद्धस्वरूप, सर्वज्ञ तथा निमित्त कारण परमेश्वर का भजन करो ॥२॥

११८९—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥३॥

पदार्थ—पवन्ते) पवित्र करते हैं (वाजसातये) ज्ञान की प्राप्ति के लिए (सोमाः) विद्वान् लोग (सहस्रपाजसः) सर्व प्रकार के बल से युक्त (गृणानाः) स्तुति करनेवाले (देववीतये) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—अनेक प्रकार के बल से युक्त भक्त विद्वान् लोग ज्ञान और परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करते हैं ॥३॥

११९०—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्य्यम् ॥४॥

पदार्थ—(उत) और (नः) हमें (वाजसातये) जीवन संग्राम के लिए (पवस्व) प्रदान कर (बृहतीः) महान् (इषः) अन्न और विज्ञानों का (द्युमद्) दीप्तिमान् (इन्दो) हे ऐश्वर्यवान् (सुवीर्यं) सुन्दर पराक्रम को ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू जीवन संग्राम के लिए हमें महान् अन्न, विज्ञान तथा दीप्तिमान् पराक्रम प्रदान कर ॥४॥

११९१—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २ ३ १ २
अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥५॥

पदार्थ—(अत्याः) अश्व (हियाना) प्रेरित (न) समान (हेतृभिः) संग्राम करने वाले वीरों से (असृग्रम्) पैदा किए जाते हैं (वाजसातये) संग्राम जीतने के लिए (वि) विशेषरूप से (वारम्) आवरण को (अव्यम्) प्रकृति सम्बन्धी (आशवः) शीघ्रगामी ॥५॥

भावार्थ—संग्राम जीतने के लिए सवारों द्वारा प्रेरित किए गए शीघ्रगामी घोड़ों के समान जीव लोग प्राकृतिक आवरण को जीतने के लिए संसार में उत्पन्न किए जाते हैं ॥५॥

११९२—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥६॥

पदार्थ—(ते) वे (नः) हमें (सहस्रिणम्) बहुत प्रकार वाला (रयिम्) धन (पवन्ताम्) प्राप्त करावें (आ) भली भांति (सुवीर्यम्) उत्तम बल को (स्वाना) सत्योपदेष्टा (देवासः) दिव्य गुणवाले (इन्दवः) ऐश्वर्यशाली ॥६॥

भावार्थ—सत्योपदेष्टा दिव्य गुणवाले ऐश्वर्यशाली परमेश्वर और विद्वान् पुरुष हमें सहस्रों प्रकार का धन और उत्तम बल प्रदान करें ॥६॥

११९३—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥७॥

पदार्थ—(वाश्राः) शब्द करती हुई (अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् (अभि) भली प्रकार से (वत्सं) बच्चे को (न) समान (मातरः) माता के (दधन्विरे) धारण करते हैं (गभस्त्योः) दोनों हाथों में ॥७॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली भक्तजन बच्चे को शब्द करती हुई माताओं के समान परमेश्वर को प्राप्त करते हैं । उसके द्वारा दिए हुए सांसारिक भोग को अपने दोनों हाथों में धारण करते हैं ॥७॥

११९४—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥८॥

पदार्थ—(जुष्टः) प्रीतियुक्त (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (मत्सरः) प्रसन्नतायुक्त (पवमानः) पवित्रकारी (कनिक्रदत्) जानता हुआ (विश्वाः) समस्त (अप) दूर करना (द्विषः) द्वेषों को (जहि) विनष्ट कर ॥८॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! परमेश्वर के प्रति प्रेमयुक्त, प्रसन्न तथा पवित्रकारी स्वभाववाला तू जानता हुआ हमारे समस्त द्वेषों को विनष्ट कर ॥८॥

११९५—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥९॥

पदार्थ—(अपघ्नन्तः) दूर करते हुए (अराव्णः) धर्मकार्य के विघ्नों को (पवमानाः) पवित्रकारक (स्वर्दृशः) सुख के दिखाने वाले (योनौ) मूल कारण परमेश्वर में (ऋतस्य) सत्य के (सीदत) स्थित होवो ॥९॥

भावार्थ—हे पवित्र कारक स्वभाव वाले विद्वान् जन ! सुख प्राप्त कराने वाले आप लोग धर्म कार्य के विघ्नों को दूर करते हुए सत्य के मूल कारण परमेश्वर में स्थिति प्राप्त करो ॥९॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

११९६—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्त धारया । इन्द्राय मधुमत्तमा ॥१॥

पदार्थ—(सोमाः) आत्माएँ (असृग्रम्) उत्पन्न की जाती हैं (इन्दवः) ऐश्वर्यवाली (सुताः) पुत्रस्वरूप (ऋतस्य) सत्यज्ञान की (धारया) वाणी से (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (मधुमत्तमाः) उत्तम ज्ञानवाली ॥१॥

भावार्थ—ऐश्वर्ययुक्त, पुत्रस्वरूप तथा उत्तम ज्ञान वाली आत्मायें वेदवाणी द्वारा परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए संसार में उत्पन्न की जाती हैं ॥१॥

११९७—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (विप्राः) मेधावीजन (अनूषत) स्तुति करते हैं (गावः) गायें (वत्सं) बछड़े के (न) समान (धेनवः) दुग्ध देने वाली (इन्द्रं) परमेश्वर का (सोमस्य) आनन्द रस का (पीतये) पान करने के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष बछड़े को दूध देने वाली गायों के समान आनन्द रस के पान के लिए परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥२॥

११९८—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २ ३ १ २र ३ २
मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—(मदच्युत्) आनन्द बहाने वाले (क्षेति) निवास करता है (सादने) स्थान में (सिन्धोः) नदी के (ऊर्मा) प्रवाह में (विपश्चित्) ज्ञानी (सोमः) परमेश्वर (गौरी अधि) वाणियों में (श्रितः) स्थित ॥३॥

भावार्थ—आनन्ददाता, सर्वज्ञ तथा प्रत्येक की वाणी में स्थित परमेश्वर नदी की लहरों तथा स्थानों में निवास कर रहा है ॥३॥

११९९—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १२ २ ३ २ ३१२ ३ २
दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

पदार्थ—(दिवः) द्युलोक की (नाभा) नाभि में [मध्य में] (विचक्षणः) सबका साक्षी (अव्याः) प्रकृति के (वारे) परदे में (महीयते) महत्ता प्रकट कर रहा है (सोमः) परमेश्वर (यः) जो (सुक्रतुः) उत्तम कर्म वाला (कविः) वेद रूप काव्य का निर्माता ॥४॥

भावार्थ—सबका साक्षी, उत्तम कर्मकर्त्ता तथा वेद काव्य का रचने वाला परमेश्वर द्युलोक के मध्य तथा प्रकृति के परदे में भी अपनी महानता को प्रकट कर रहा है ॥४॥

१२००—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३२३ २३ २ ३२३१२ २उ ३ १२
यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो (सोमः) परमेश्वर (कलशेषु) सबके शरीरों में (आः) व्यापक होकर स्थित है (अन्तः) मध्य में (पवित्रे) अग्नि, वायु तथा सूर्य आदि में (आहितः) व्याप्त है (तम्) उसे (इन्दुः) ज्ञानी आत्मा (परिषस्वजे) मिल जाता है ॥५॥

भावार्थ—जो परमेश्वर प्रत्येक शरीर में तथा अग्नि वायु और सूर्य आदि पदार्थों में व्यापक हो रहा है उसको ज्ञानी जीव प्राप्त करता है ॥५॥

१२०१—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम रूप से (वाचम्) वाणी को (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (इष्यति) गति देता है (समुद्रस्य) आकाश की (अधिविष्टपि) सूर्य में (जिन्वन्) व्याप्त करता हुआ (कोशं) कोश को (मधुश्चुतम्) आनन्द को बहाने वाले ॥६॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर सूर्य लोक तथा आनन्दमय कोश में व्यापक होता हुआ आकाश के शब्द को गति प्रदान करता है ॥६॥

१२०२—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दु घाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ॥७॥

पदार्थ—(नित्यस्तोत्रः) निरन्तर किया जाने वाला (वनस्पतिः) लोकों का पालक (धेनाम्) वेद वाणी को (अन्तः) अन्तःकरण या मध्य (सबर्दु घाम्) सुख को दोहन करने वाली (हिन्वानः) प्रेरित करता हुआ (मानुषा) मनुष्यों में (युजा) योगद्वारा ॥७॥

भावार्थ—नित्य स्तुति किया जाने वाला तथा समस्त लोकों का स्वामी परमेश्वर समाधि द्वारा मनुष्यों को वेद का ज्ञान प्रदान करता है ॥७॥

१२०३—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (धारय) धारण कर (रयिम्) धन को (सहस्रवर्चसम्) अनेकों प्रकार के तेज वाले (अस्मे) हम में (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (स्वाभुवम्) उत्तम भूमि वाले ॥८॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य संपन्न तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू हमें अनेकों प्रकार के तेजों से युक्त तथा भूमि वाला धन धारण करा ॥८॥

१२०४—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २
अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥९॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (प्रिया) प्रिय वस्तुओं को (दिवः) द्युलोक से (कविः) वेद काव्य का कर्त्ता (विप्रः) मेधावी (सः) वह (धारया) वेद वाणी द्वारा (सुतः) जगत् कर्त्ता (सोमः) परमेश्वर (हिन्वे) बढ़ता है (परावतः) दूर स्थान में ॥९॥

भावार्थ—वेद काव्य का करने वाला, मेधावी तथा वेद ज्ञान द्वारा जगत् का उत्पादक परमेश्वर द्युलोक और उस से दूर के स्थान पृथिवी आदि में भी प्रिय वस्तुओं को पैदा करता है ॥९॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१२०५—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २३१२ ३ २ ३१२ ३२
उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥

पदार्थ—(उत्) ऊपर (शुष्मासः) प्रचण्ड शक्ति (ईरते) प्रकट होती है (सिन्धोः) नदी के (ऊर्मेः) लहर से (इव) समान (स्वनः) शब्द के (वाणस्य) वाणी की (चोदय) प्रेरित करता है (पविम्) शब्द शक्ति को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी प्रचण्ड शक्तियां नदी की लहर से उत्पन्न शब्द के समान उनसे ही स्वयं प्रकट हो रही हैं । तू वाणी की शब्दोच्चारण शक्ति को प्रेरणा देता है ॥१॥

१२०६—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

३ २३१२ ३१ २र ३१२ २उ ३२३१२
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥२॥

पदार्थ—(प्रसवे) सृष्टि काल में (ते) तेरी (उदीरते) प्रकट होती हैं (तिस्रः) तीन [ऋक्, यजु तथा साम] (वाचः) वाणियाँ (मखस्युवः) संसार यज्ञ के करने की इच्छा वाले (यत्) जो (अव्ये) प्रकृतिमय (एषि) व्यापक होता है (सानवि) शिखर में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू प्रकृति के उच्च शिखर में व्यापक है । सृष्टि काल में संसार यज्ञ के कर्त्ता तेरी ऋक्, यजु और साम रूप वाणियां प्रकट होती हैं ॥२॥

१२०७—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
अव्या वारैः परि प्रियम् हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥३॥

पदार्थ—(अव्या) प्रकृति के (वारैः) बाल सदृश लोकों से (परि) सब प्रकार से (प्रियम्) प्रिय (हरिम्) दुःख हर्त्ता (हिन्वन्ति) जानते है (अद्रिभिः) मेघ तथा पर्वतों से (पवमानं) शुद्धस्वरूप (मधुश्चुतम्) आनन्ददाता ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग प्रिय, दुःखों के हर्त्ता, शुद्धस्वरूप तथा आनन्ददाता परमेश्वर का प्रकृति के लोकों तथा मेघ पर्वत आदि से अनुमान करते हैं ॥३॥

१२०८—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥

पदार्थ—(आपवस्व) पवित्र कर (मदिन्तम) हे सुखदाता (पवित्रं) अग्नि आदि संसार के पदार्थ को (धारया) धारण शक्ति से (कवे) हे ज्ञानमय (अर्कस्य) मन्त्र के (योनिम्) कारण में (आसदम्) स्थित होऊँ ॥४॥

भावार्थ—हे सुखदाता तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू अपनी धारण शक्ति से संसार के अग्नि आदि पदार्थों को पवित्र कर । मैं मन्त्रों के निमित्तकारण तुझ में स्थित होऊँ ॥४॥

१२०९—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । एन्द्रस्य जठरं विश ॥५॥

पदार्थ—(सः) वह (पवस्व) पवित्र कर (मदिन्तम) हे हर्षदायक (गोभिः) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकों से (अंजानः) अपनी महिमा को जनाता हुआ (अक्तुभिः) रात्रियों द्वारा (आ) भली भांति (इन्द्रस्य) जीव के (जठरं) मध्य (विश) प्रविष्ट है ॥५॥

भावार्थ—हे परम हर्ष के दाता परमेश्वर ! पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा रात्रियों आदि द्वारा अपनी महिमा को प्रकट करता हुआ तू जीव के मध्य में व्यापक है ॥५॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१२१०—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस (वीती) मार्ग से (परिस्रव) चल (यः) जो (ते) तेरे (इन्दो) हे ऐश्वर्य वाले (मदेषु) स्तुतियों में (आ) भली भांति (अवाहन्) पार करता है (नवतीः नव) ९९ प्रकार के विघ्नों को ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य सम्पन्न विद्वान् पुरुष ! तू इस ज्ञान मार्ग से चल जो कि तेरी स्तुतियों में निन्यानवे के चक्कर से पार लगाता है ॥१॥

१२११—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ २ ३ १२३१२ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२॥

पदार्थ—(पुरःसद्यः) अत्यन्त शीघ्र (इत्थाधिये) सत्य कर्म वाले (दिवोदासाय) दिव्यगुणों के दाता या प्रकाश के दाता के लिए (शंबरम्) सुख चाहने वाले (अध) मंगल कामना से (त्यं) उस (तुर्वशम्) समीपस्थ (यदुम्) मनुष्य को ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सत्य कर्म वाले तथा प्रकाश के दाता परमेश्वर की प्राप्ति के लिए सुख चाहने वाले पुरुष को शीघ्र ही मंगल कामना से उस प्रभु के समीपस्थ कर ॥२॥

१२१२—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१२ १ १२ ३ १ २र ३ १२ १२ ३ २ ३ १ २
परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार (नः) हमें (अश्वम्) बल (अश्वावत्) बल के दाता (गोमत्) गाय आदि से युक्त (इन्दो) हे ऐश्वर्यवान् (हिरण्यवत्) स्वर्णयुक्त (क्षरा) बरसा (सहस्रिणीः) सहस्रों प्रकार के (इषः) ज्ञानों को ॥३॥

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर ! बल का दाता तू हमें गाय तथा सोना आदि प्राप्त कराने वाला बल और सहस्रों प्रकार के ज्ञान प्रदान कर ।३।

१२१३—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ १२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ—(अपघ्नन्) दूर फेंकता हुआ (पवते) पवित्र करता है (मृधः) पापों को (अप) निवारण करता है (सोमः) परमेश्वर (अराव्णः) दान आदि के विघ्नों को (गच्छन्) प्राप्त करता हुआ (इन्द्रस्य) जीव के (निष्कृतम्) विस्तार को ॥१॥

भावार्थ—धर्म के विघ्नों और पापों को दूर करता हुआ तथा जीव का विस्तार करता हुआ परमेश्वर संसार को पवित्र करता है ॥१॥

१२१४—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२॥

पदार्थ—(महः) तेज (नः) हमें (रायः) धन (आभर) प्रदान कर (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (जही) नष्ट कर (मृधः) हिंसक मनोवृत्तियों का (रास्व) दे (इन्दो) परम ऐश्वर्यवान् (वीरवत्) वीरों से युक्त (यशः) यश को ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा सकल ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर ! तू हमें तेज तथा धनों को प्रदान कर । पापों को दूर कर । हे प्रभो ! हमें वीरों से युक्त यश दे ॥२॥

१२१५—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमामिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥३॥

पदार्थ—(न) नहीं (त्वा) तुझे (शतं) सौ (चन) भी (ह्रुतः) हरण करने वाले (राधः) धन को (दित्सन्तम्) देने की इच्छा करते हुए (आमिनन्) हानि पहुँचा सकते हैं (यत्) जब (पुनानः) पवित्र करता हुआ (मखस्यसे) संसार रूप यज्ञ को करना चाहता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सब का पवित्र कर्त्ता तू जब संसार रूप यज्ञ को रचता है तो धन प्रदान करने की इच्छा करने वाले तुझे सैंकड़ों धनापहरण करने वाले लोग हानि नहीं पहुँचा सकते ॥३॥

१२१६—*निध्रुविः* । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस (पवस्व) पवित्र कर (धारया) वाणी से (यया) जिसके द्वारा (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) प्रकाशित करता है (हिन्वानः) प्रेरित करता हुआ (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धी (अपः) कर्मों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जिस वेदवाणी से मनुष्यों के कर्मों की प्ररणा करता हुआ सूर्य को प्रकाशित करता है उससे हमें पवित्र कर ॥१॥

१२१७—*निध्रुविः* । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥२॥

पदार्थ—(अयुक्त) जोड़ रक्खा है (सूरः) वीर (एतशं) घोड़े के समान वेग को (पवमानः) व्यापक (मनो अधि) मन में (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्ग से (यातवे) सर्वत्र जाने के लिए ॥२॥

भावार्थ—बलशाली तथा व्यापक परमेश्वर ने आकाश मार्ग से सर्वत्र जाने आने के लिये मन में घोड़े के समान वेग को जोड़ रक्खा है ॥२॥

१२१८—*निध्रुविः* । सोमः । गायत्री ।

३ २उ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥३॥

पदार्थ—(उत) अपि च [और भी] (त्या) उन (हरितः) दिशाओं या हरणशील किरणों को (रथे) सूर्य में (सूरः) बलवान् (अयुक्त) जोड़ता है (यातवे) ज्ञान कराने के लिये (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (इन्द्रः) यह इन्द्र है (इति) ऐसा (ब्रुवन्) कहता हुआ ॥३॥

भावार्थ—बलवान् तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर 'यह सूर्य है' ऐसा उच्चारण करता हुआ लोगों के ज्ञान के लिये किरणों और दिशाओं को सूर्य मण्डल में जोड़ता है ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१२१९—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर को (वः) तुम लोग (देवम्) देव (अग्निभिः) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम में होने वाली अग्नियों से (सजोषाः) समान भाव से सेवन करने वाले (यजिष्ठं) परमपूजनीय (दूतम्) दुःखों का निवारक (अध्वरे) यज्ञ में (कृणुध्वम्) बनाओ (यः) जो (मर्त्येषु) मरण धर्म वालों में (निध्रुविः) ध्रुव= नित्य है (ऋतावा) सत्य धर्म वाला (तपुः) दुष्टों को तपाने वाला (मूर्धा) सर्वोत्तम (घृतान्नः) प्रकाशक और प्रलय कर्त्ता (पावकः) व्यापक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तीनों आश्रमों की अग्नियों से युक्त तुम लोग उस परम पूजनीय परमात्मदेव को अपने यज्ञ में दुःख निवारक समझो जो कि विनाशी पदार्थों में नित्य, सत्य धर्म वाला, सर्वोत्तम, सृष्टि का प्रकाशक प्रलयकर्त्ता तथा सर्व-व्यापक है ॥१॥

१२२०—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२॥

पदार्थ—(प्रोथद्) समर्थ होता हुआ [पर्याप्त] (अश्वः) विद्युत् के (न) समान (यवसे) संयोग वियोग के लिये (अविष्यन्) रक्षा करता हुआ (यदा) जब (महः) महान् (संवरणात्) आवरण से (व्यस्थात्) विशेष रूप से स्थित होता है । (आत्) अनन्तर (अस्य) इसके (वातः) वायु (अनु) पीछे (वाति) बहती है (शोचिः) तेज के (अध) अनन्तर (स्म) पादपूरक (ते) तव (व्रजनम्) व्यापकता (कृष्णं) खींचने वाली (अस्ति) है ॥२॥

भावार्थ—संयोग वियोग के लिये पर्याप्त होती हुई विद्युत् के समान महान् आवरण से रक्षा करता हुआ परमेश्वर सर्वत्र स्थित है । इसके तेज के पीछे वायु बहती है । हे परमेश्वर तेरी व्यापकता सब लोकों का आकर्षण करने वाली है ॥२॥

१२२१—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥

पदार्थ—(उत्) तथा (यस्य) जिस (ते) तेरा (नवजातस्य) नये-नये पदार्थों को पैदा करने वाले (वृष्णः) सुख की वर्षा करने वाले (अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप (चरन्ति) विचरती हैं (अजराः) अजर अमर (इधानाः) प्रकाशकारी शक्तियां (अच्छा) प्रति (द्याम्) द्युलोक के (अरुषः) प्रकाशक (धूमः) कम्पन देने वाला (एषि) व्याप्त करता है (सं) सम्यक् (दूतः) शुभ गुण का प्राप्त कराने वाला (अग्ने) हे परमेश्वर (ईयसे) गतिमान् कर रहा है (हि) निश्चय ही (देवान्) समस्त देवों को ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! नवीन-नवीन पदार्थों के उत्पादक तथा सुख की वर्षा करने वाले जिस तेरी अजर अमर प्रकाशमयी शक्तियां सर्वत्र विचरती हैं, वह प्रकाशक, पदार्थों में कम्पन देने वाला तथा शुभ गुण दाता तू द्युलोक में भी व्यापक है । तू समस्त देवों को गतिमान् कर रहा है ॥३॥

१२२२—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उस (इन्द्रं) आत्मा को (वाजयामसि) बलवान् करते हैं (महे) महान् (वृत्राय) दुर्गुणों के (हन्तवे) नाश के लिये (सः) वह (वृषा) बलवान् (वृषभः) धर्म से प्रकाशमान होवे ॥१॥

भावार्थ—हम बुराइयों के नाश करने के लिये आत्मशक्ति को बलवान् करते हैं । वह बलवती और धर्मात्मा होवे ।१।

१२२३—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (सः) वह (दामने) देने के लिए (कृतः) समर्थ है (ओजिष्ठः) ओजस्वी (सः) वह (बले) बल में (हितः) हितकारी (द्युम्नी) यशस्वी (श्लोकी) वेदवाणियों का स्वामी (सः) वह (सोम्यः) सौम्यगुण वाला है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सब कुछ देने में समर्थ है। वह ओजस्वी तथा बल में हितकारी है। वह यशस्वी, वेद वाणी का स्वामी और सौम्य स्वभाव वाला है ॥२॥

१२२४—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥३॥

पदार्थ—(गिरा) वेद वाणी द्वारा (वज्रः) वज्र के (न) समान (सम्भृतः) धारण किया हुआ (सबलः) बलवान् (अनपच्युतः) न डिगने वाला (ववक्षे) धारण करता है (उग्रः) तीव्र (अस्तृतः) न दबाया जाने वाला ॥३॥

भावार्थ—वेद वाणी द्वारा धारण किया हुआ, वज्र के समान बलवान, न डिगने वाला, तेजस्वी तथा किसी से न दबाया जाने वाला परमेश्वर संपूर्ण जगत् को धारण करता है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१२२५—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥१॥

पदार्थ—(अध्वर्यो) वेदज्ञ (अद्रिभिः) आदरणीयों द्वारा (सुतम्) उत्पन्न किये गये (सोमम्) पुरुष को (पवित्रे) परमेश्वर की शरण में (आनय) ला (पुनाहि) पवित्र कर (इन्द्राय) विद्वान् की ((पातवे) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञ ! तू आदरणीय व्यक्तियों की सन्तान इस पुरुष को विद्वान् की रक्षा के लिए पवित्र कर और परमेश्वर की शरण में ला ॥१॥

१२२६—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र १ २ ३ १ २

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत । पवमानस्य मरुतः ॥२॥

पदार्थ—(तव) तेरे (त्ये) वे (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (अन्धसः) अन्न का (देवाः) विद्वान् लोग (मधोः) मधुर (व्याशत) उपभोग करते हैं (पवमानस्य) शुद्ध स्वरूप (मरुतः) ऋत्विग् लोग ॥२॥

भावार्थ—हे सकल संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् और याज्ञिक लोग तुझ शुद्ध स्वरूप के द्वारा दिये हुए मधुर अन्न का उपभोग करते हैं ॥२॥

१२२७—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥३॥

पदार्थ—(दिवः) परमेश्वर के (पीयूषम्) अमृत (उत्तमम्) उत्तम (सोमम्) बोध को (इन्द्राय) जीव के लिए (वज्रिणे) दुर्गुणों की वर्जनशक्ति-युक्त (सुनोत) उत्पन्न कर (मधुमत्तमम्) मधुविद्या से अत्यन्त युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् जन ! आप लोग अमृतरूप, उत्तम तथा मधु विद्या से संपन्न ब्रह्मज्ञान, दुर्गुणों को निवारण करने वाली शक्ति से युक्त जीव के लिए उत्पन्न करो ॥३॥

१२२८—कविः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥१॥

पदार्थ—(धर्ता) धारणकर्त्ता (दिवः) दिव्यगुण का (पवते) पवित्र करता है (कृत्व्यः) कर्मयोगी (रसः) सरल (दक्षः) निपुण (देवानाम्) विद्वानों में (अनुमाद्यः) प्रशंसनीय (नृभिः) मनुष्यों से (हरिः) अज्ञान का निवारण करने वाला (सृजानः) छोड़ता हुआ (अत्यो न) घोड़े के समान (सत्वभिः) प्राणियों के साथ (वृथा) बिना प्रयत्न के (पाजांसि) बलों को (कृणुषे) उत्पन्न करता है (नदीषु) नाड़ी रूप नदियों में (आ) भली भांति ॥१॥

भावार्थ—दिव्य गुणों का धारण करने वाला, कर्मयोगी, सरल विद्वानों में दक्ष, मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय, अज्ञाननिवारक तथा प्राणियों के साथ वैर भाव को छोड़ता हुआ विद्वान् पुरुष अश्व के समान अपनी नाड़ियों में बलों को उत्पन्न कर लेता है ॥१॥

१२२९—कविः । सोमः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २ ३ १ २र

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्व३ः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥

पदार्थ—(शूरः) बलवान् के (न) समान (धत्ते) धारण करता है (आयुधा) शस्त्रों को (गभस्त्योः) दोनों हाथों में (स्वः) द्युलोक का (सिषासन्) विभाग करता हुआ (रथिरः) महारथी (गविष्टिषु) सूर्य की किरणों की संगतियों में (इन्द्रस्य) जीव के (शुष्मं) बल को (ईरयन्) प्रेरित करता हुआ (अपस्युभिः) कर्म करने की इच्छा करनेवाले (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (हिन्वानः) जाना जाता हुआ (अज्यते) प्राप्त किया जाता है (मनीषिभिः) मनस्वी लोगों से ॥१॥

भावार्थ—जिस प्रकार महारथी योद्धा अपने हाथों में अस्त्र-शस्त्र को धारण करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यशाली परमेश्वर द्युलोक का विभाग करता हुआ उसे किरणों की संगति में धारण करता है। वह जीव के बल को प्रेरणा देने वाला है। कर्मयोगी मनस्वी लोग उसे जान कर प्राप्त करते हैं ॥२॥

१२३०—कविः । सोमः । जगती ।

१ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) जीव के [अथवा जीवों के] (सोम) हे परमेश्वर (पवमानः) शुद्ध (ऊर्मिणा) प्रकाश से (तविष्यमाणः) स्तुति किया जाने वाला (जठरेषु) मध्यों में [अथवा मध्य में] (आ) भली भांति (विश) व्यापक हो रहा है (प्र) उत्तम रूप से (नः) हमारे लिए (पिन्व) पूर्ण कर (विद्युत्) बिजली (अभ्रा) मेघों के (इव) समान (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (धिया) कर्म से (नः) हमारे (वाजान्) अन्न आदि को (उप) समीप (माहि) उत्पन्न कर (शश्वतः) बहुत प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध स्वरूप तथा स्तुति किया जाने वाला तू अपने प्रकाश के द्वारा जीव के मध्य में व्यापक हो रहा है। तू हमारे लिए मेघों की विद्युत् के समान द्यु और पृथिवी लोक को भरपूर कर तथा अपने पवित्र रचना कर्म से हमारे समीप विविध प्रकार के अन्नों को उत्पन्न कर ॥३॥

१२३१—देवातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

पदार्थ—(यत्) यद्यपि (इन्द्र) हे जीव (प्राग्) उत्तम गति वाला (अपाग्) अधम गति वाला (उदङ्) ऊपर के लोकों में जाने वाला (न्यक्) नीचे के लोकों में होने वाला (वा) और (हूयसे) कहा जाता है (नृभिः) ज्ञान मार्ग के नेताओं से (सिमा) सब (पुरू) बहुत (नृषूतः) मनुष्य योनि में उत्पन्न किया गया (असि) है (अनवे) मनुष्य के लिए (असि) है (प्रशर्ध) हे उत्तम बल वाले (तुर्वशे) समीप में स्थित ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम बलवाले जीव ! तू उत्तम, अधम योनि तथा ऊपर नीचे सभी लोकों में कर्मानुसार उत्पन्न होने वाला है ऐसा ज्ञानमार्ग पर चलने वाले बतलाते हैं। मनुष्य योनि में पैदा हुआ तू सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। मनुष्य के ज्ञान के लिए तू समीप है ॥१॥

१२३२—देवातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

पदार्थ—(यद्) यद्यपि (रुमे) रमण योग्य में (रुशमे) हिंसक में (श्यावके) ज्ञानी में (कृपे) समर्थ में (इन्द्र) हे परमेश्वर (मादयसे) प्रसन्न होता है (सचा) समान भाव से (कण्वासः) मेधावी जन (त्वा) तुझे (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (ब्रह्मवाहसे) वेद के वाहक (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् (आयच्छन्ति) ढूंढ लेते हैं (आगहि) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान परमेश्वर ! तू यद्यपि रमण योग्य, हिंसक ज्ञानी तथा सामर्थ्य वाले पर समान रूप से प्रसन्न होता है, परन्तु वेद के ज्ञाता ज्ञानी जन तुझे स्तोत्रों से ढूँढते हैं और तू उन्हें प्राप्त होता है ॥२॥

१२३३—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१॥

पदार्थ—(उभयं) दोनों [लौकिक तथा पारमार्थिक] (शृणवत्) सुनें (च) और (नः) हमारे ((इन्द्रः) विद्वान् (अर्वाग्) सामने हुआ (इदं) यह (वचः) वचन को (सत्राच्या) यज्ञ कराने वाली (मघवान्) यज्ञकर्त्ता

(सोमपीतये) संसार की रक्षा के लिए (धिया) बुद्धि या कर्म से (शविष्ट) बलशाली (आगमत्) प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थ—शक्तिशाली तथा याज्ञिक विद्वान् सामने होकर हमारे लौकिक तथा पारलौकिक वचन को सुनें, तथा यज्ञसम्बन्धी कर्म से संसार की रक्षा के लिए हमें प्राप्त हों ॥१॥

१२३४—भर्गः । इन्द्रः । वृहती ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२॥

पदार्थ—(तं) उस (हि) क्योंकि (स्वराजम्) स्वयं प्रकाशमान (वृषभम्) सुखों की वर्षा करने वाले (तं) व्यापक (ओजसा) तेजसे (धिषणे) द्यु और पृथिवी लोक (निष्टतक्षतुः) प्रकट करते हैं (उत) और (उपमानाम्) उपमाभूत आकाश आदि का (प्रथमः) आदि कारण (निषीदसि) व्यापक हो रहा है (सोमकामं) संसार रचना की इच्छा वाला (हि) निश्चय (ते) तेरा (मनः) ज्ञान है ॥२॥

भावार्थ—स्वप्रकाशस्वरूप तथा सुखों की वर्षा करनेवाले उस व्यापक परमेश्वर की महिमा को अपने ओज से द्यु और पृथिवी लोक प्रकट कर रहे हैं। हे परमेश्वर ! तू उपमाभूत आकाश आदि का आदिकारण तथा सब में व्यापक हो रहा है। तेरा ज्ञान सृष्टिरचना की इच्छा वाला है ॥२॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

१२३५—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमारोह धर्मणा ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (देव) हे देव (आयुषक्) आयु के दाता (इन्द्रम्) जीव का (गच्छतु) प्राप्त होवे (ते) तेरा (मदः) आनन्द (वायुम्) वायु को (आरोह) चढ़ता है (धर्मणा) अपनी सर्वाधारता और सर्वशक्तित्व से ।२।

भावार्थ—हे परमात्म देव ! तू आयु का दाता है। हमें पवित्र कर। तेरा आनन्द जीव को प्राप्त होवे। तू अपनी सर्वशक्तिमत्ता से वायु पर भी नियंत्रण रखता है ॥१॥

१२३६—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । इन्दो समुद्रमाविश ॥२॥

पदार्थ—(पवमान) हे पवित्र स्वरूप (नि) संपूर्ण रूप से (तोशसे) देता है (रयिम्) धन (सोम) हे परमेश्वर (श्रवाय्यम्) प्रशंसनीय (इन्दो) हे सर्वेश्वर (समुद्रम्) आकाश में (आविश) व्यापक हो रहा है ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वेश्वर तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू हमें प्रशंसनीय धन प्रदान करता है। तू आकाश में व्यापक हो रहा है ॥२॥

१२३७—निध्रुविः । सोमः । गायत्री

३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥३॥

पदार्थ—(अपघ्नन्) नाश करता हुआ (पवसे) पवित्र करता है। (मृधः) हिंसक वृत्तियों को (क्रतुवित्) यज्ञ के ज्ञाता (सोम) हे विद्वान् (मत्सरः) सुख से युक्त (नुदस्व) ज्ञान से प्रेरित कर (अदेवयुम्) परमेश्वर की उपासना न करने वाले (जनम्) मनुष्य को ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! यज्ञ का ज्ञाता, तथा सुखयुक्त तू हिंसक वृत्तियों को दूर करता हुआ सब को पवित्र करता है। तू परमेश्वर की उपासना न करने वालों को उपासना की तरफ प्रेरित कर ॥३॥

१२३८—अम्बरीषः । सोम. । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥१॥

पदार्थ—(अभी) सब प्रकार से (नः) हमें (वाजसातमम्) अन्न को देने वाले (रयिम्) धन को (अर्ष) प्रदान कर (शतस्पृहम्) सैकड़ों से चाहने योग्य (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (सहस्रभर्णसं) सहस्रों का भरण-पोषण करने वाले (तुविद्युम्नं) बहुत यशदायक (विभासहम्) शत्रुओं को नीचा दिखाने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली राजन् ! तू हमें अन्न के देने वाले, सैकड़ों से चाहने योग्य, हजारों का भरण-पोषण करनेवाले, बहुत यशदायक तथा शत्रुओं के दबानेवाले धन को प्रदान कर ॥१॥

१२३९—अम्बरीषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
१ २र ३ १ २र ३ १ २
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥२॥

पदार्थ—(वयम्) हम (ते) तेरे (अस्य) इस (राधसः) धन के (वसोः) निवास देने वाले (वसो) हे शरणदाता (पुरुस्पृहः) बहुतों से चाहने योग्य (नि) निरन्तर (नेदिष्ठतमा) अत्यन्त समीपवर्त्ती (इषः) ज्ञान के (स्याम) हों (सुम्ने) सुख में (ते) तेरे (अध्रिगो) हे अचल ॥२॥

भावार्थ—हे ध्रुव तथा शरणदाता परमेश्वर ! हम तेरे इस लोक के धन, तुझ में निवास देने वाले, बहुतों से चाहने योग्य ज्ञान तथा तेरे परम आनन्द के निरन्तर समीपवर्त्ती होवें ॥२॥

१२४०—अम्बरीषः । सोम । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥३॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्यः) वह (स्वानाः) स्वयं चित्स्वरूप (अक्षरत्) संचालन करता है (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (अव्ये) प्रकृति के कार्य में (मदच्युतः) आनन्द का स्रोत बहाने वाला (धारा) वाणी के साथ (यः) जो (ऊर्ध्वः) सब से मुख्य (अध्वरे) यज्ञ में (भ्राजा न) दीप्ति के समान (याति) व्यापक हो रहा है (गव्ययुः) पृथिवी आदि को रचने वाला ॥३॥

भावार्थ—स्वयंचेतन, आनन्ददाता, पृथिवी आदि का कर्त्ता, सर्वश्रेष्ठ तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर प्रकृति के कार्य को संसार में संचालन करता है। वह दीप्ति के समान वेद वाणी के साथ यज्ञ में व्यापक हो रहा है ॥३॥

१२४१—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥

पदार्थ—(पवस्व) गति देता है (सोम) हे जीव ! (महान्) बड़ा (समुद्रः) जिस में प्राणी सुख पाते हैं (पिता) रक्षक (देवानाम्) इन्द्रियों के (विश्वा) समस्त (अभि) में (धाम) स्थानों में ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! महान्, प्राणियों के सुख का आश्रय तथा शरीर का रक्षक तू इन्द्रियों के समस्त गोलकों में गति देता है ॥१॥

१२४२—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥

पदार्थ—(शुक्रः) शुद्धस्वरूप (पवस्व) दे (देवेभ्यः) देवों के लिए (सोम) हे परमेश्वर (दिवे) द्युलोक के लिए (पृथिव्यै) पृथिवी लोक के लिए (शं) सुख (च) और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्धस्वरूप तू विद्वान्, तथा प्रजा के लिए पृथिवी और द्युलोक आदि में सुख प्रदान कर ॥२॥

१२४३—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
दिवो धर्त्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥३॥

पदार्थ—(दिवः) द्युलोक का (धर्त्ता) धारणकर्ता (असि) है (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (पीयूषः) अमृतरूप (सत्ये) त्रिकाल सत्य प्रकृति में (विधर्मन्) विविध धर्मवाली (वाजी) शक्तिमान् (पवस्व) व्यापक है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्धस्वरूप, अमृत तथा सर्वशक्तिमान् तू द्युलोक का धारण करने वाला है। तू त्रिकाल सत्य विविध धर्मोंवाली प्रकृति में व्यापक है ॥३॥

卐 अष्टमः खण्डः समाप्तः 卐

१२४४—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र
प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥१॥

पदार्थ—(प्रेष्ठ) अत्यन्त प्रिय (वो) तुम्हारे (अतिथिम्) अतिथि की (स्तुषे) प्रशंसा करता हूं (मित्रमिव) मित्र के समान (प्रियम्) प्रिय (अग्ने) हे विद्वन् (रथं) सूर्य के (न) समान (वेद्यम्) प्राप्त होने योग्य ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! मैं प्रिय मित्र के समान तुम्हारे अत्यन्त प्रिय अतिथि की प्राप्त होने योग्य सूर्य के समान प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

१२४५—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २र ३ २
कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥२॥

पदार्थ—(कविम्) कवि के (इव) समान (प्रशंस्यं) प्रशंसनीय (यं) जिसको (देवासः) विद्वान् लोग (इति) ऐसा (द्विता) दो प्रकार का [आत्मा तथा परमात्मा] (नि) सपूर्णतया (मर्त्येषु) मरणधर्मा लोगों में (आदधुः) स्वीकार करते हैं ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी लोग कवि के समान प्रशंसनीय परमात्मा और आत्मा के भेद से दो प्रकार की आत्माओं को मरणधर्माओं में स्थित स्वीकार करते हैं ॥२॥

१२४६—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २र
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄं: पाहि शृणुही गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (यविष्ठ) अजर (दाशुषः) उपकारी (नॄन्) मनुष्य की (पाहि) रक्षा करता है (शृणुही) सुनता है (गिरः) स्तुतियों को (रक्षा) रक्षा करता है (तोकम्) पुत्र को (उत) और (त्मना) स्वयम् ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अजर अमर तू उपकारी मनुष्यों की रक्षा करता है । उनकी स्तुतियों को सुनता है तथा संतति का स्वयं ही पालन करता है ॥३॥

१२४७—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य। गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (इन्द्र) हे परमेश्वर (नः) हमें (गधि) प्राप्त हो (प्रिय) हे भक्तों के प्यारे (सत्राजित्) हे सत्य के द्वारा जीतने वाले (अगोह्य) हे न छिपाये जाने वाले (गिरिः) मेघ के (न) समान (विश्वतः) सब तरफ से (पृथुः) विशाल (पतिः) स्वामी (दिवः) द्युलोक का ॥१॥

भावार्थ—हे भक्तों के प्यारे, सत्य द्वारा सब के विजयी यथा स्वयंप्रकाश परमेश्वर ! तू विशाल मेघ के समान द्युलोक का पति है । तू हमें प्राप्त हो ॥१॥

१२४८—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (हि) निश्चय (सत्य) हे सत्य स्वरूप (सोमपाः) संसार के पालक (उभे) दोनों (बभूथ) वश में रखता है (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (इन्द्र) हे परमेश्वर (सुन्वतः) यज्ञकर्त्ता की (वृधः) उन्नति करने वाला (पतिः) रक्षक (दिवः) सूर्य लोक का ॥२॥

भावार्थ—हे सत्यस्वरूप परमेश्वर ! संसार का रक्षक तू निश्चय से द्यु और पृथिवी लोक को अपने वश में रखता है । तू यजमान की उन्नति करने वाला तथा सूर्यलोक का पालक है ॥२॥

१२४९—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्त्ता पुरामसि ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (हि) निश्चय (शश्वतीनाम्) प्रवाहरूप अनादि (इन्द्र) हे परमेश्वर (धर्त्ता) धारणकर्त्ता (पुराम्) लोकों का (असि) है (हन्ता) नाश करने वाला (दस्योः) अनावृष्टि या दुष्कर्मकारियों की (मनोः) आयु का (वृधः) बढ़ाने वाला (पतिः) पालक (दिवः) वृष्टि का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रवाहरूप से अनादि हुए लोक लोकान्तरों का स्वामी है । तू अनावृष्टि का नाशक, आयु का वर्धक और वृष्टि की रक्षा करने वाला है ॥३॥

१२५०—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥१॥

पदार्थ—(पुराम्) लोकों का (भिन्दुः) भेदन=प्रलय करने वाला (युवा) अजर (कविः) ज्ञानी (अमितौजाः) अनन्तशक्ति वाला (अजायत) प्रलय करता है । (इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्य) सब के (कर्मणः) कर्मका (धर्त्ता) धारण करने वाला (वज्री) दण्डधारी (पुरुष्टुतः) सब के द्वारा उपासना किया गया ।१।

भावार्थ—लोकों को छिन्न-भिन्न करनेवाला अजर, ज्ञानी, अनन्तशक्तिशाला, सब के कर्म का धारण कर्त्ता, न्यायकारी तथा सब के द्वारा उपास्य परमेश्वर समस्त जगत् का प्रलय करता है ॥१॥

१२५१—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।

२ ३ १ २र ३ १ २
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (वलस्य) मेघ के (गोमत) सूर्य की किरणों से युक्त (अपावः) खोलता है (अद्रिवः) हे मेघों के स्वामी (बिलम्) जलद्वार को (त्वां) तुझ में (देवाः) विद्वान् जन (अबिभ्युषः) भय या उपद्रव से रहित (तुज्यमानासः) शीघ्रकारी (आविषुः) प्रविष्ट होते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मेघों के स्वामी परमेश्वर ! तू सूर्य किरणों से युक्त मेघ के जलद्वार को खोल कर वृष्टि करता है । भयरहित तथा शीघ्रगतिवाले विद्वान्जन तुझ में लीन हो जाते हैं ॥२॥

१२५२—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर की (ईशानम्) शासन करनेवाले (ओजसा) बल से (अभि) सब प्रकार से (स्तोमैः) स्तोत्रों से (अनूषत) स्तुति करो (सहस्रं) हजारों (यस्य) जिसके (रातयः) दान हैं (उत) और (वा) अथवा (सन्ति) हैं (भूयसीः) अधिक भी ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अनन्त बल से शासन करनेवाले परमेश्वर की स्तोत्रों से स्तुति करो । उसके दान सहस्र तथा उस से भी अधिक हैं ॥३॥

卐 नवमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 नवमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

दशमोऽध्यायः

१२५३—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥१॥

पदार्थ—(अक्रान्) लांघता है (समुद्रः) प्राणियों को सुख देने वाला (प्रथमे) उत्तम (विधर्मन्) आकाश में (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (प्रजाः) अन्न, बारह महीनों तथा सूर्य से उत्पन्न होनेवाले पदार्थों को (भुवनस्य) भुवन का (गोपाः) पालक (वृषा) वर्षा करनेवाला (पवित्रे) शहर की रक्षा करनेवाले (अधि) ऊपर (सानोः) शिखर के (अव्ये) पृथिवीसम्बन्धी (बृहत्) महान् (सोमः) सूर्य (वावृधे) बढ़ता है (स्वानः) उत्पन्न हुआ (अद्रिः) अभेद्य ॥१॥

भावार्थ—प्राणियों को आनन्द देनेवाला, भुवन का पालक, अन्न, बारह मास तथा ऋतु वनस्पति आदि उत्पत्तिवाली वस्तुओं को उत्पन्न करता हुआ, वृष्टि का करनेवाला, प्रतिदिन उदय होता हुआ, अभेद्य तथा महान् सूर्य शब्द को अपने में सुरक्षित रखनेवाले उत्तम आकाश में किरणों से फैलता है और पृथिवी के शिखर पर वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१॥

१२५४—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २३२ ३२३१२ ३ १ २ ३१२र ३१२
मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
२ ३ २३ १२३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥२॥

पदार्थ—(मत्सि) सुखमय करता है (वायुम्) वायु को (इष्टये) यज्ञ के लिए (राधसे) धन के लिए (नः) हमारे (मत्सि) सुखमय करता है (मित्रावरुणा) प्राण और अपान को (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (मत्सि) सुखमय करता है (शर्धः) बल को (मारुतं) वायु सम्बन्धी (मत्सि) सुखमय करता है (देवान्) इन्द्रियगण तथा विद्वानों को (मत्सि) सुखमय करता है (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी लोक को (देव) हे देव (सोम) हे परमेश्वर ॥२॥

भावार्थ—हे परमात्म देव ! सब को पवित्र करता हुआ तू हमारे यज्ञ और धन की सिद्धि के लिए वायु, प्राण, अपान, वायुओं के बल, इन्द्रियगण, विद्वान् तथा द्यु और पृथिवी लोक को सुखमय करता है ॥२॥

१२५५—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
१२३२ ३१२ ३ १ २र ३२३ २ ३ १ २
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥

पदार्थ—(महत्) महान् (तत्) वह (महिषः) महान् (चकार) करता है (अपां) कर्मों का (यत्) जो (गर्भः) ग्रहण करनेवाला (अवृणीत) स्वीकार करता है (देवान्) इन्द्रियों को (अदधात्) धारण करता है (इन्द्रे) मन में (पवमानः) शुद्ध (ओजः) बल को (अजनयत्) उत्पन्न करता है (ज्योतिः) प्रकाश को (सूर्ये) शरीरस्थ प्राण में (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् ॥३॥

भावार्थ—महान् कर्मों का धारण करनेवाला, शुद्ध तथा ऐश्वर्यवान् जीव महान् कार्यों को करता है। वह इन्द्रियों को ग्रहण करता है। वही मन के अन्दर बल और प्राण में जीवन शक्ति प्रदान करता है ॥३॥

१२५६—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) देव (अमर्त्यः) अमर (पर्णवीः) पक्षी के (इव) समान (दीयते) जाता है [प्राप्त होता है] (अभि) लक्ष्य करके (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों को (आसदम्) स्थिति के परम आश्रय को ॥१॥

भावार्थ—यह अमर जीव अपने गन्तव्य पथों को लक्ष्य में रख कर पक्षी की तरह सब के परम आश्रय परमेश्वर को प्राप्त होता है ॥१॥

१२५७—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो विगाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह (विप्रैः) मेधावी पुरुषों द्वारा (अभिष्टुतः) उपासना किया गया (अपः) कर्मों और ज्ञानों को (देवः) परमात्मा (विगाहते) मिलाता है (दधद्) धारण करता हुआ (रत्नानि) रत्नों को (दाशुषे) दानी के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी जनों से उपासना किया गया वह परमेश्वर दानी पुरुष के लिए विविध रत्नों को देता हुआ ज्ञान और कर्म की संगति लगाता है ॥२॥

१२५८—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥३॥

पदार्थ—(एषः) यह (विश्वानि) सारी (वार्या) उत्तम वस्तुओं को (शूरः) सर्व शक्तिमान् (यन्) प्राप्त करता हुआ (इव) सा (सत्वभिः) बलों से (पवमानः) शुद्धस्वरूप (सिषासति) बांटने की इच्छा करता है ॥३॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर अपनी शक्तियों से सारी उत्तम वस्तुओं को प्राप्त करता हुआ भक्तों को बांटने की इच्छा करता है ॥३॥

१२५९—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥४॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) देव (रथर्यति) प्राप्त होता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (दिशस्यति) प्रदान करता है (आविष्कृणोति) प्रकट करता है (वग्वनुम्) शब्द और अर्थ को ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वरदेव हमें प्राप्त होता है। वह देने योग्य सभी वस्तुयें प्रदान करता है। शब्द तथा अर्थ को वही प्रकट करता है ॥४॥

१२६०—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) दिव्य (विपन्युभिः) ज्ञानी जनों से (पवमानः) शुद्ध (ऋतायुभिः) सत्य को चाहने वाले (हरिः) अज्ञान का हरण करने वाला (वाजाय) ज्ञान की प्राप्ति के लिए (मृज्यते) शुद्ध किया जाता है ॥५॥

भावार्थ—अज्ञान का निवारक, शुद्ध तथा दिव्य आत्मा सत्य की खोज करने वाले ज्ञानीजनों से ज्ञान-प्राप्ति के लिए अविद्यादि मलों को दूर कर के पवित्र किया जाता है ॥५॥

१२६१—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) देव (विपा) वेदवाणी द्वारा (कृतः) सृष्टिकर्त्ता (अति) अत्यन्त (ह्वरांसि) कुटिलताओं को (धावति) शुद्ध करता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अदाभ्यः) न दबाया जाने योग्य ॥६॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता, शुद्धस्वरूप, तथा न दबाये जाने योग्य परमात्मा वेदवाणी द्वारा समस्त कुटिलताओं को दूर करता है ॥६॥

१२६२—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥

पदार्थ—(एषः) यह (दिवं) द्युलोक को (विधावति) व्याप्त करता है (तिरः) प्राप्त होकर (रजांसि) लोकों को (धारया) वाणी द्वारा (पवमानः) शुद्धस्वरूप (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ ॥७॥

भावार्थ—वेदवाणी द्वारा सबको उपदेश करता हुआ शुद्ध स्वरूप परमेश्वर प्राप्त होकर द्यु तथा अन्य सभी लोकों में व्यापक हो रहा है ॥७॥

१२६३—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ ३ २
एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥८॥

पदार्थ—(एषः) यह (दिवं) द्युलोक को (व्यासरत्) विस्तृत करता है (तिरः) प्राप्त हो कर (रजांसि) लोकों को (अस्तृतः) किसी से न दबाया जाने वाला (पवमानः) शुद्धस्वरूप (स्वध्वरः) सृष्टि-रचनारूप उत्तम यज्ञ का करने वाला ॥८॥

भावार्थ—किसी से न दबाया जाने योग्य, शुद्धस्वरूप, संसार यज्ञ का कर्त्ता परमेश्वर व्याप्त होकर द्यु और अन्य लोकों का विस्तार करता है ॥८॥

१२६४—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरि पवित्रे अर्षति ॥९॥

पदार्थ—(एषः) यह (प्रत्नेन) प्रवाह रूप से अनादि काल से चले आये (जन्मना) जन्म से (देवः) देव (देवेभ्यः) दिव्यगुणों के लिए (सुतः) उत्पन्न किया गया (हरिः) अविद्या आदि का दूर करने वाला (पवित्रे) परम पवित्र (अर्षति) पहुँचता है ॥९॥

भावार्थ—अनादि प्रवाह से प्राप्त हुए जन्म से दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए उत्पन्न हुआ आत्मा रूपी देव अपने अविद्या आदि क्लेशों का नाश करता हुआ परमपवित्र परमेश्वर तक पहुँच जाता है ॥९॥

१२६५—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥१०॥

पदार्थ—(एषः) यह (उ) ही (स्यः) वह (पुरुव्रतः) अनेकों कर्मों वाला (जज्ञानः) उत्पन्न होता हुआ (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (इषः) ज्ञानों को (धारया) वेदवाणी से (पवते) पवित्र करता है (सुतः) पुत्रस्वरूप ॥१०॥

भावार्थ—विविध कर्मों वाला, पुत्रस्वरूप तथा बार बार उत्पन्न होता हुआ यह जीव ज्ञानों को उत्पन्न करता हुआ अपने को वेदवाणी से पवित्र करता है ॥१०॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१२६६—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (धिया) बुद्धि से (याति) पहुँच जाता है (अण्व्या) सूक्ष्म (शूरः) योद्धा (रथेभिः) रथों से (आशुभिः) वेग से चलते (गच्छन्) जानता हुआ (इन्द्रस्य) जीव के (निष्कृतम्) समस्त कर्मों को ॥१॥

भावार्थ—जीव के समस्त कर्मों को जानता हुआ परमेश्वर अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उसी प्रकार समस्त स्थानों पर तत्काल पहुँच जाता है जिस प्रकार कि शीघ्रगामी रथों से योद्धा अपने युद्धस्थान पर शीघ्र पहुँचता है ॥१॥

१२६७—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३२३१२ ३२३१२ २३१२३ १२

एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशत ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह (पुरू) बहुत (धिया) ज्ञान से (अयते) गति करता है अथवा (धियायते) कर्म की इच्छा करता है (बृहते) बड़े (देवतातये) संसार यज्ञ के लिए (यत्र) जिसमें (अमृतासः) अमर [नित्य] जीव लोग (आशत) व्याप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर महान् सृष्टि रचनारूप यज्ञ को करने के लिए अपने ज्ञान से विविध प्रकार का प्रयत्न करता है । इस संसाररूप यज्ञ में अनेकों नित्य जीव स्थिति पाते हैं ॥२॥

१२६८—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३१२ ३२३२३१२३१२ ३ २३१ २र

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥३॥

पदार्थ—(एतम्) इस (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (मर्ज्यम्) शुद्ध करने योग्य (उप) समीप (द्रोणेषु) गन्तव्य मार्गों के विषय में (आयवः) मनुष्य लोग (प्रचक्राणम्) उत्पन्न करने वाले (महीः) महान् (इषः) ज्ञानों को ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य लोग गन्तव्य पथों के विषय में महान् ज्ञानों को उत्पन्न करनेवाले शुद्ध करने योग्य इस आत्मा को शुद्ध करते हैं ॥३॥

१२६९—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३२३१ २र ३ २ ३ १२ ३२ १२३ २३ १२

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥४॥

पदार्थ—(एषः) यह (हितः) सबका धारण कर्त्ता (वि) विशेष रूप से (नीयते) प्राप्त किया जाता है (अन्तः) अन्तःकरण में (शुन्ध्यावता) शुद्धियुक्त (पथा) मार्ग से (यदि) जब (तुञ्जन्ति) अर्पण करते हैं (भूर्णयः) ज्ञान से भरपूर हुए ॥४॥

भावार्थ—जब ज्ञान से भरपूर पुरुष अपने कर्मों को इसमें समर्पण कर देते हैं तब यह सर्वाधार परमेश्वर शुद्धियुक्त पथ से अन्तःकरण में प्राप्त किया जाता है ।४।

१२७०—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३२३ १२ ३२ ३१ २३१२ २३ १२३ १२

एष रश्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (रश्मिभिः) सूर्य, प्रकाश तथा सुवर्ण हैं जिनमें उनसे युक्त (ईयते) जाना जाता है [अनुमान द्वारा] (वाजी) शक्तिशाली (शुभ्रेभिः) शोभायुक्त (अंशुभिः) सृष्टि के तत्त्वावयवों द्वारा (पतिः) स्वामी (सिन्धूनाम्) समुद्रों का (भवन्) होता हुआ ॥५॥

भावार्थ—समुद्रों का स्वामी होता हुआ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सूर्य आदि से युक्त शोभायमान सृष्टि के तत्त्व अवयवों से अनुमान किया जाता है ॥५॥

१२७१—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३ १२३ १२ ३२क १२ ३ १ २र ३ १ २

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (शृङ्गाणि) अग्नियों को (दोधुवत्) कम्पन देता है (शिशीते) तीक्ष्ण करता है (यूथ्यः) यूथों का स्वामी (वृषा) सुख की वृष्टि करने वाला (नृम्णा) धनों को (दधानः) धारण करता हुआ (ओजसा) बल से ॥६॥

भावार्थ—समस्त पदार्थ समूहों का स्वामी तथा सुख की वर्षा करने वाला परमेश्वर बल से धनों को धारण करता हुआ अग्नियों में कंपन देता है और उन्हें तीक्ष्ण करता है ॥६॥

१२७२—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३१ २र ३ ३१ २र २३१२

एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥७॥

पदार्थ—(एषः) यह (वसूनि) कार्य-कारण द्रव्यों का (पिब्दनः) पीस डालने योग्य (परुषा) प्रकाश वाले (ययिवान्) पार करता हुआ (अति) अतिक्रमण करके (अव) पृथक् रूप से (शादेषु) तृण-वनस्पति आदि में (गच्छति) व्यापक हो रहा है ॥७॥

भावार्थ—विघ्नों को पीस डालने वाला परमेश्वर प्रकाशवाले सृष्टि के कार्य और कारण पदार्थों को लांघ कर पार स्थित होता हुआ तृण तथा वनस्पति आदि सभी में पृथक् होता हुआ व्यापक है ॥७॥

१२७३—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३२३२उ ३ २३१२ ३ १२ ३ २३१२

एतमुत्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८॥

पदार्थ—(एतम्) इस (उ) पादपूरक (त्यं) उस (दश) दस (क्षिपः) इन्द्रियां (हरिम्) विषयों का हरण करनेवाले (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं (यातवे) विषयों की तरफ जाने के लिए (स्वायुधम्) शोभन प्राणों को धारण करने वाले (मदिन्तमम्) अत्यन्त सुखी ॥८॥

भावार्थ—विषय के ग्रहण करने वाले, प्राणधारी तथा सुखी इस जीव को दश इन्द्रियां विषयों की तरफ जाने के लिए प्रेरित करती हैं ॥८॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१२७४—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३२३ २उ ३ २उ ३ १२

एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।

२ ३ १२ ३१२

गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (उ) पादपूरक (स्यः) वह (वृषा) कामनाओं की वृष्टि करने वाला (रथः) जानने वाला (अव्याः) प्रकृति के (वारेभिः) आवरणों से [युक्त को] (अव्यत) व्याप्त करता है (गच्छन्) जानता हुआ (वाजं) ज्ञान को (सहस्रिणम्) सहस्रों प्रकार के ॥१॥

भावार्थ—मनोरथों की वृष्टि करने वाला तथा सर्वज्ञाता परमेश्वर सहस्रों प्रकार के ज्ञानों को जानता हुआ प्रकृति के आवरणों से युक्त जगत् को व्याप्त करता है ॥१॥

१२७५—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३२३२३।१२३ १२ ३ १ २ २ ३ १ ३ १ २

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

पदार्थ—(एतम्) इस (त्रितस्य) ज्ञान से पूर्ण अथवा तीनों स्थानों पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ में स्थित परमेश्वर की (योषणः) मिश्रण और वियोगकारी शक्तियां (हरिम्) हरे-भरे (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं (अद्रिभिः) मेघ आदि से युक्त (इन्दुम्) ऐश्वर्य के साधन (इन्द्राय) जीव के (पीतये) भोग के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान के परिपूर्ण तीनों लोकों में व्याप्त परमेश्वर की संयोग और वियोगकारिणी शक्तियां हरे-भरे तथा ऐश्वर्य के साधनभूत इस संसार को जीव के लिए बढ़ाती हैं ॥२॥

१२७६—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३ २ ३ २उ ३१ २ १ २ ३२उ ३ १ २

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छं जारो न योषितम् ॥३॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह (मानुषीषु) मानवी (आ) अच्छी भांति (श्येनः) आत्मा के (न) समान (विक्षु) प्रजाओं में (सीदति) व्यापक होकर स्थित है (गच्छन्) प्राप्त होता हुआ (जारः) आदित्य के (न) समान (योषितम्) सेवन करने योग्य को [उषा को] ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर जीवात्मा के समान तथा सेवनीय उषा काल को प्राप्त होते हुए आदित्य के समान समस्त मानवी प्रजा में स्थित है ॥३॥

१२७७—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३२उ ३ १ २र ३१ २र २उ ३२३१२

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥४॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह (मद्यः) आनन्ददाता (रसः) स्नेह रखनेवाला (अवचष्टे) देखता और उपदेश करता है (दिवः) द्यु आदि लोकों को (शिशुः) प्रशंसनीय (यः) जो (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (वारम्) वरण करने योग्य में (आविशत्) प्रविष्ट हो रहा है ॥४॥

भावार्थ—जो द्यु आदि लोकों का द्रष्टा और उपदेष्टा है तथा वरण करने योग्य वस्तु में व्यापक हो रहा है वह आनन्ददाता, भक्त से स्नेह रखनेवाला, प्रशंसनीय तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर है ॥४॥

१२७८—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३२उ ३१२ ३१ २र ३२ २३ १ २३२ ३२

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन्योनिमभिप्रियम् ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह (पीतये) पान करने के लिये (सुतः) उत्पन्न हुआ (हरिः) अज्ञान का हरण करनेवाला (अर्षति) प्राप्त होता है (धर्णसिः)

धारण करनेवाला (क्रन्दन्) स्तुति करता हुआ (योनिम्) परमेश्वर को (अभि) भली प्रकार (प्रियम्) प्यारे ॥५॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुआ, अज्ञान का निवारक तथा सत्य गुणों का धारण करनेवाला विद्वान् पुरुष स्तुति करता हुआ आनन्द रस को पान करने के लिये प्यारे प्रभु को प्राप्त करता है ॥५॥

१२७९—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२३१२ ३ १२ ३ १२ २ ३१२३१ २

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥६॥

पदार्थ—(एतम्) इस (त्यम्) उस (हरितः) अंगुलियाँ [अथवा उपलक्षण से इन्द्रियाँ] (दश) दश (मर्मृज्यन्ते) अलंकृत करती हैं (अपस्युवः) कर्म की इच्छा करनेवाली (याभिः) जिन से (मदाय) सुख के लिए (शुम्भते) सुशोभित होता है ॥६॥

भावार्थ—इस जीव को, कर्म को सिद्ध करनेवाली दश अंगुलियां (अथवा इन्द्रियां) अलंकृत करती हैं जिनके द्वारा यह लौकिक सुख की प्राप्ति के लिए सुशोभित होता है ॥६॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१२८०—प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२ ३१ २र ३१ २र३१२

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।

२३२ ३ १ २

अव्यं वारं वि धावति ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (वाजी) शक्तिशाली (हितः) धारण किया जाने वाला (नृभिः) ज्ञानमार्ग के प्रदर्शकों से (विश्ववित्) सर्वज्ञ (मनसः) मनन शक्ति का (पतिः) स्वामी (अव्यं) प्रकृतिसम्बन्धी (वारम्) आवरण को (विधावति) शुद्ध पवित्र करता है ॥१॥

भावार्थ—शक्तिशाली, ज्ञानमार्ग के नेताओं से जानने योग्य सर्वज्ञ तथा मनन शक्ति का स्वामी परमेश्वर प्रकृतिसम्बन्धी आवरण को शुद्ध पवित्र करता है ॥१॥

१२८१—प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।

१२३१२ ३ १२ ३१२३२ २ ३ १२ ३२

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह (पवित्र) वेदमन्त्र में (अक्षरत्) प्राप्त होता है (सोमः) परमेश्वर (देवेभ्यः) क्रीडा करनेवाले जीवों के लिए (सुतः) उत्पन्न करनेवाला (विश्वा) सारे (धामानि) नाम, जन्म तथा स्थानों में (आविशन्) व्यापक होता हुआ ॥२॥

भावार्थ—संसार में क्रीडा करनेवाले जीवों के लिए समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर सारे नाम, जन्म और स्थानों में व्यापक होता हुआ वेदमन्त्र के मनन में हमें प्राप्त होता है ॥२॥

१२८२—प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।

१२३१२ १२ ३ २३१२ ३ १२३१२

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) देव (शुभायते) शुभ करता है (अधि) अधिष्ठाता रूप से (योनौ) मूल कारण प्रकृति में (अमर्त्यः) अजर अमर (वृत्रहा) अज्ञान का नाशक (देववीतमः) समस्त देवों में व्यापक ॥३॥

भावार्थ—अज्ञान का नाश करनेवाला, समस्त देवों में व्यापक, अजर तथा अमर यह परमात्मदेव मूल कारण प्रकृति में अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर सब का शुभ कल्याण करता है ॥३॥

१२८३—प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।

१२उ ३ १२ ३१२३ १२३२ ३१ २र

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

पदार्थ—(एषः) यह (वृषा) बलवान् (कनिक्रदत्) स्तुति करता हुआ (दशभिः) दश (जामिभिः) गतिशील [इन्द्रियों] द्वारा (यतः) बंधा हुआ (अभि) भली प्रकार (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों पर (धावति) चलता है ॥४॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म की साधनभूत दश इन्द्रियों से बंधा हुआ यह बलवान् जीव स्तुति करता हुआ अपने गन्तव्य मार्गों पर चलता है ॥४॥

१२८४—प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३१२ ३२३१ २ ३१२ ३१ २र

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अधि द्यवि) द्युलोक में (पवित्रे) पवित्र (मत्सरः) आनन्द देनेवाला (मदः) स्वयं आनन्दस्वरूप ॥५॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप, आनन्द का दाता तथा आनन्दस्वरूप परमेश्वर पवित्र द्युलोक में सूर्य को प्रकाशित करता है ॥५॥

१२८५—प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३१२ ३१ २ १२३१ २र

एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता । पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (सूर्येण) सूर्य से (हासते) हर्ष युक्त कर रहा है (संवसानः) आच्छादित करता हुआ (विवस्वता) प्रकाशमान (पतिः) स्वामी (वाचः) वेदवाणी का (अदाभ्यः) न दबाए जाने योग्य ॥६॥

भावार्थ—वेदवाणी का स्वामी तथा किसी से न दबाए जाने योग्य परमेश्वर प्रकाशमान सूर्य से त्रिलोकी को आच्छादित करता हुआ सबको हर्षित कर रहा है ।६।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१२८६—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

१२३२३१२ ३२३ १२ ३ २उ ३ १२

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (कविः) मेधावी (अभिष्टुतः) स्तुति किया हुआ (पवित्रे) पवित्र आत्मा में (अधि) अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर (तोशते) संतुष्ट करता है (पुनानः) पवित्र करता हुआ (घ्नन्) नष्ट करता हुआ (अप) दूर (द्विषः) द्वेष आदि शत्रुओं को ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानी, स्तुति किया हुआ तथा पवित्र करनेवाला परमेश्वर काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करता हुआ पवित्र आत्मा में अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर उसे संतुष्ट करता है ॥१॥

१२८७—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३१२ ३१ २र ३१२ ३१२

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (वायवे) बन्धन से छुड़ानेवाले (स्वर्जित्) स्वर्ग सुख को जीतने वाला (परि) सब प्रकार से (षिच्यते) सींचा जाता है [ज्ञान की धारा से] (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (दक्षसाधनः) बल का साधक ॥२॥

भावार्थ—स्वर्ग सुख को जीतने वाला, आत्मबल का साधक जीव बंधन से छुड़ाने वाले परमेश्वर की प्राप्ति के लिए पवित्र अन्तःकरण में ज्ञानियों द्वारा ज्ञानधारा से सींचा जाता है ॥२॥

१२८८—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

३२उ ३१२ ३२३१ २र३२

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।

२ ३१२ ३२

सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

पदार्थ—(एषः) यह (नृभिः) मनुष्यों से (नीयते) प्राप्त किया जाता है (दिवः) द्युलोक के (मूर्धा) मस्तक के समान श्रेष्ठ (वृषा) शक्तिशाली (सुतः) सब का उत्पन्न करने वाला (सोमः) परमेश्वर (वनेषु) उपासनाओं में (विश्ववित्) सर्वज्ञ ॥३॥

भावार्थ—द्युलोक के मस्तक के समान, शक्तिशाली, सबका उत्पन्न करने वाला तथा सर्वज्ञ परमेश्वर मनुष्यों द्वारा उपासनाओं में प्राप्त किया जाता है ॥३॥

१२८९—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

३२३१२ ३१२ ३२ १२ ३१ २र

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥

पदार्थ—(एषः)यह (गव्युः) पृथिवी, सूर्य तथा वाणी का दाता (अचिक्रदत्) उपदेश करता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (हिरण्ययुः) स्वर्ण का दाता (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (सत्राजित्) सर्वदा विजयी (अस्तृतः) किसी से न दबाए जाने योग्य ॥४॥

भावार्थ—पृथिवी, सूर्य तथा वेदवाणी का दाता, शुद्धस्वरूप, सुवर्ण का देने वाला, सदा विजयी किसी से न दबाया जाने वाला तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमें उपदेश करता है ॥४॥

१२९०—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

३२३क २र ३ १२३२३१२ ३ २उ३२३ १

एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (शुष्मी) सर्वशक्तिमान् (असिष्यदत्) व्यापक हो रहा है (अन्तरिक्षे) आकाश में (वृषा) सुख की वर्षा करनेवाला (हरिः) अज्ञान का हर्त्ता (पुनानः) पवित्र करता हुआ (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (इन्द्रम्) जीवात्मा को (आ) भली भांति ॥५॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान्, सुख की वर्षा करने वाला, अज्ञानहर्त्ता तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर जीवात्मा को पवित्र करता हुआ आकाश में व्यापक हो रहा है ॥५॥

१२९१—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।

३ १ २ ३ २

देवावीरघशंसहा ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (शुष्मी) सर्वशक्तिमान् (अदाभ्यः) न मारे जाने योग्य (सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) व्यापक हो रहा है (देवावीः) देवों की रक्षा करने वाला (अघशंसहा) पाप की प्रशंसा करने वालों का दण्डदाता ॥६॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान्, अहिंसनीय, देवों का रक्षक तथा पापियों को दण्ड देने वाला परमेश्वर सबको पवित्र करता हुआ व्यापक हो रहा है ॥६॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१२९२—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३२ ३२ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (पीतये) रक्षा के लिए (वृषा) मनोरथों की वर्षा करने वाला (सोमः) परमेश्वर (पवित्रे) विद्युत् में (अर्षति) गति दे रहा है (विघ्नन्) विनाश करता हुआ (रक्षांसि) विघ्नों का (देवयुः) देवों को संयुक्त करने वाला ॥१॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता मनोरथों को पूर्ण करने वाला तथा समस्त देवों को उन के गुण और क्रियाओं से युक्त करने वाला परमेश्वर हमारी रक्षा के लिए विघ्नों का निवारण करता हुआ विद्युत् में गति दे रहा है ॥१॥

१२९३—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (पवित्रे) रश्मिसमूह में (विचक्षणः) साक्षी (हरिः) तापहर्त्ता (अर्षति) गति दे रहा है (धर्णसिः) सर्वाधार (अभि) विषय में (योनिम्) जल तथा आकाश के (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—सबका साक्षी, तापहर्त्ता, तथा सर्वाधार परमेश्वर आकाश और जल के विषय में उपदेश करता हुआ किरणसमूह में गति प्रदान कर रहा है ॥२॥

१२९४—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

स वाजी रोचने दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (वाजी) बलवान् (रोचनम्) प्रकाशक (दिवः) द्युलोक का (पवमानः) व्यापक (वि) विशेष रूप से (धावति) व्याप्त करता है (रक्षोहा) दुर्गुणों का नाशक (वरम्) वरणीय (अव्ययम्) प्रकृति और जीव को ॥३॥

भावार्थ—बलवान्, द्युलोक का प्रकाशक, व्यापक तथा दुर्गुणों का नाश करने वाला परमेश्वर वरण करने योग्य जीव और प्रकृति में व्यापक है ॥३॥

१२९५—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह (त्रितस्य) पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक [तीन स्थानों-में] विद्यमान वायु के (अधि सानवि) उच्च प्रदेश में (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (जामिभिः) जलों से (सूर्यम्) सूर्य को (सह) साथ ॥४॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर तीनों लोकों में विद्यमान वायु के उच्च प्रदेश में अन्तरिक्षस्थ जलों के साथ सूर्य को प्रकाशित करता है ॥४॥

१२९६—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥

पदार्थ—(सः) वह (वृत्रहा) दुर्गुणों का दूर करनेवाला (वृषा) मनोरथों की वृष्टि करनेवाला (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (वरिवोविद्) सम्पत्ति का प्राप्त कराने वाला (अदाभ्यः) न मारे जाने योग्य (सोमः) परमेश्वर (वाजं) अन्न के (इव) समान (असरत्) व्याप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—दुर्गुणों के निवारक, मनोरथों को पूर्ण करनेवाला, सृष्टिकर्त्ता, सम्पदाओं का दाता तथा अहिंसनीय परमेश्वर समस्त पदार्थों में उसी प्रकार व्याप्त हो रहा है जिस प्रकार खानेवाले की नस-नस में अन्न व्याप्त होता है ॥५॥

१२९७—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

स देवः कविनेषितो ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥६॥

पदार्थ—(सः) वह (देवः) देव (कविना) विद्वान् के द्वारा (इषितः) प्रेरित किया हुआ (अभि) पर (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों (धावति) चलता है (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (इन्द्राय) परमेश्वर की (मंहयन्) पूजा करता हुआ ॥६॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् जीवात्मदेव विद्वान् के द्वारा प्रेरित किया गया परमेश्वर की भक्ति करता हुआ गन्तव्य मार्गों पर चलता है ॥६॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१२९८—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ । पवमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (पावमानीः) पवित्र करनेवाली वेदवाणियों को (अध्येति) अध्ययन करता है (ऋषिभिः) साक्षात्कार करनेवाले ऋषियों से (संभृतम्) धारण किए जानेवाले (रसम्) आनन्द का (सर्वं) सब (सः) वह (पूतम्) पवित्र हुए (अश्नाति) भोगता है (स्वदितं) खाने योग्य वस्तु को (मातरिश्वना) वायु के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष वेदवाणियों का अध्ययन करता है वह मंत्रद्रष्टाओं के द्वारा धारण किए जानेवाले आनन्द और वायु से पवित्र किये गये सब खाद्य वस्तुओं का उपभोग करता है ॥१॥

१२९९—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥२॥

पदार्थ—(पावमानीः) परमेश्वर के ज्ञानवाली (यः) जो (अध्येति) अध्ययन करता है (ऋषिभिः) मंत्रद्रष्टाओं द्वारा (संभृतम्) धारण किए जानेवाले (रसम्) साररूप (तस्मै) उसके लिए (सरस्वती) ज्ञान-विज्ञानयुक्त वाणी (दुहे) पूर्ण करती है (क्षीरम्) दुग्ध को (सर्पिः) घृत को (मधु) मधु (उदकम्) जल को ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुष मंत्रद्रष्टाओं द्वारा हृदय में धारण किए जानेवाली वेदवाणियों का स्वाध्याय करता है उसके लिये ज्ञान-विज्ञान को देनेवाली वेदवाणी दुग्ध, घृत, मधु तथा जल आदि पदार्थों को पूरा करती है ॥२॥

१३००—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥३॥

पदार्थ—(पावमानीः) जीव और परमेश्वर का ज्ञान करानेवाली वेदवाणियाँ (स्वस्त्ययनीः) कल्याणकारिणी (सुदुघा) ज्ञान का उत्तम रूप से दोहन करानेवाला (हि) निश्चय ही (घृतश्चुतः) तेज को फैलानेवाली (ऋषिभिः) ज्ञानियों द्वारा (संभृतम्) धारण किया जानेवाला (रसः) सार है (ब्रह्मणेषु) वेद के ज्ञाताओं में (अमृतम्) अमरत्व मोक्षानन्द (हितम्) स्थापित हो जाता है ॥३॥

भावार्थ—जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान देनेवाली वेदवाणियाँ कल्याणकारिणी, ज्ञान का दोहन करानेवाली तथा तेज देनेवाली हैं। ये ज्ञानियों द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य सार हैं। इन के द्वारा वेद के ज्ञाताओं में अमरत्व स्थापित हो जाता है ॥३॥

१३०१—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥४॥

पदार्थ—(पावमानीः) पवित्र वेदवाणियां (दधन्तु) धारण कराती हैं (नः) हमें (इमम्) यह (लोकम्) लोक (अथो) अथवा अनन्तर (अमुम्) पर [उस] (कामान्) मनोरथों को (समर्धयन्तु) सफल करती हैं (नः) हमारे (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (देवैः) समस्त देवों से (समाहृताः) संयुक्त हुई ॥४॥

भावार्थ—समस्त देवों के ज्ञान से युक्त दिव्यगुणवाली वेदवाणियां हमें यह लोक और इसके अनन्तर परलोक प्राप्त कराती हैं। वे हमारे मनोरथों को सफल करती हैं ॥४॥

१३०२—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥५॥

पदार्थ—(येन) जिस (देवाः) विद्वान् लोग(पवित्रेण) मंत्र से (आत्मानं) अपने को (पुनते) पवित्र करते हैं (सदा) सदा (तेन) उस (सहस्रधारेण) बहुत प्रकार के शब्द हैं जिसमें (पावमानीः) वेदवाणियां (नः) हमें (पुनन्तु) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् जन जिन वेदमंत्रों से अपने को सदा पवित्र करते हैं उन सहस्रों प्रकार से युक्त वेदमंत्रों से वेदवाणियां हमें पवित्र करें ॥५॥

१३०३—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा। पावमान्यध्येतृस्तुतिः। अनुष्टुप्।

३ २ ३ १२३१२ ३२
पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
१ २ ३१ २ ३१२
पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥६॥

पदार्थ—(पावमानीः) पवित्र वेदवाणियां (स्वस्त्ययनीः) कल्याणकारिणी (ताभिः) उनके द्वारा (गच्छति) प्राप्त करता है (नान्दनम्) पुत्र आदि समृद्धियों को (पुण्यान्) पवित्र (भक्षान्) खाद्य सामग्री को [च] और (भक्षयति) खाता है (अमृतत्वं) मोक्ष को (च) और (गच्छति) प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थ—वेदवाणियां कल्याणकारिणी हैं। उनके द्वारा मनुष्य पुत्र आदि समृद्धियों को प्राप्त करता, पवित्र खाद्यसामग्री का सेवन करता और अन्त में मोक्ष का लाभ करता है ॥६॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

१३०४—वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१२ ३१ २र ३ १ २ ३ २ ३२३ १२३ १ २३ २
अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
३ १२३१२ ३२३१ २ ३ १२ ३१ २
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१॥

पदार्थ—(अगन्म) प्राप्त होवें (महा) महान् (नमसा) नमस्कार या स्तुति से (यविष्ठम्) अजर अमर (यः) जो (दीदाय) प्रकाशित करता है (समिद्धः) प्रकाशयुक्त (स्वे) अपने (दुरोणे) गृहरूप संसार में (चित्रभानुम्) अद्भुत प्रकाशवाले (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक के (अन्तः) मध्य में (उर्वी) महान् (स्वाहुतम्) अच्छी प्रकार स्तुति किये गये (विश्वतः) सब ओर से (प्रत्यञ्चम्) सर्वव्यापक ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशस्वरूप जो परमेश्वर अपने व्यापकता के स्थान संसार में समस्त प्रकाशमान पदार्थों को प्रकाशित कर रहा है वह अद्भुत प्रकाशवाला तथा महान् द्यु और पृथिवी लोक के मध्य सब ओर से व्यापक है। स्तुति किये गये उस महान् प्रभु को हम प्राप्त होवें ॥१॥

१३०५—वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २३२३ २ ३ १२
समह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
१ २ ३१२३ २३१ २३२३१ २ ३१२
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (मह्ना) महिमा से (विश्वा) सारे (दुरितानि) दुर्गुणों को (साह्वान्) दूर करता हुआ (अग्निः) परमेश्वर (स्तवे) स्तुति किया जाता है (दमे) उपासना गृह में (आ) भली भाँति (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों में व्यापक (सः) वह (नः) हमारे (रक्षिषद्) बचावे (दुरितात्) दुर्गुण से (अवद्यात्) निन्दनीय (अस्मान्) हमें (गृणतः) स्तुति करने वाले (उत) और (नः) हमें (मघोनः) यज्ञ करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—अपनी महिमा से सारे दुर्गुणों को दबा देने वाला, तथा सर्वव्यापक परमेश्वर उपासना गृह में स्तुति से स्मरण किया जाता है। वह हम उपासक तथा यज्ञ करनेवालों को हमारे दुर्गुणों से बचाता है ॥२॥

१३०६—वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३१२
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (वरुणः) वरण करने योग्य (उत) और (मित्रः) मित्र (अग्ने) हे परमेश्वर (त्वां) तेरा (वर्धन्ति) वर्णन करते हैं (मतिभिः) स्तुतियों से (वसिष्ठाः) ज्ञान में निवास करने वाले लोग (त्वे) तुझ में (वसु) धन (सुषणनानि) अच्छे प्रकार विभाजित (सन्तु) होते हैं (यूयम्) तू (पात) रक्षाकर (स्वस्तिभिः) सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वरुण और मित्र है। ज्ञानी पुरुष स्तुतियों से तेरा वर्णन करते हैं। समस्त धन तेरे आश्रय में ही अच्छी प्रकार विभाजित होते हैं। तू सुखों द्वारा हमारी सदा रक्षा कर ॥३॥

१३०७—वत्सः। इन्द्रः। गायत्री।

१ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥

पदार्थ—(महान्) महान् (इन्द्रः) परमेश्वर (यः) जो (ओजसा) बल से (पर्जन्यः) मेघ के (वृष्टिमान्) बरसने वाले (इव) समान (स्तोमैः) स्तुतियों द्वारा (वत्सस्य) स्तोता की (वावृधे) वर्णन किया जाता है ॥१॥

भावार्थ—बरसने वाले मेघ के समान अपने बल से महान् परमेश्वर स्तुति करनेवाले की स्तुतियों द्वारा वर्णन किया जाता है ॥१॥

१३०८—वत्सः। इन्द्रः। गायत्री।

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधा ॥२॥

पदार्थ—(कण्वाः) ज्ञानीजन (इन्द्रम्) परमेश्वर को (यत्) जब (अक्रत) बना लेते हैं [कर लेते हैं] (स्तोमैः) स्तुतियों से (यज्ञस्य) यज्ञ का (साधनम्) साधन (जामि) अतिरिक्त (ब्रुवते) कहते हैं (आयुधा) यज्ञनिमित्त जल आदि को।२।

भावार्थ - ज्ञानी जन जब परमेश्वर को स्तुतियों द्वारा यज्ञ का साधन बना लेते हैं तो जल आदि साधनों को अतिरिक्त समझते हैं ॥२॥

१३०९—वत्सः। इन्द्रः। गायत्री।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥३॥

पदार्थ—(प्रजाम्) प्रजा को (ऋतस्य) सत्यस्वरूप (पिप्रतः) पूर्ण करती हुई (प्र) उत्तमरूप से (यत्) जिस कारण से (भरन्त) पोषण करती हैं (वह्नयः) अग्नियां (विप्राः) मेधावी लोग (ऋतस्य) यज्ञ के (वाहसा) वहन करने वाले मंत्र से ॥३॥

भावार्थ—यज्ञ की अग्नियाँ सत्यस्वरूप परमेश्वर की प्रजा को धन-धान्य से पूर्ण करती हुई पुष्ट करती हैं इसलिए मेधावी जन यज्ञ के मंत्रों से उन्हें [अग्नियों को] यज्ञ के लिए प्रचलित करते हैं ॥३॥

卐 अष्टमः खण्डः समाप्तः 卐

१३१०—शतं वैखानसाः। सोमः। गायत्री।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत। जीरा अजिरशोचिषः ॥१॥

पदार्थ—(पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (जिघ्नतः) गतिमान करते हुए (हरेः) दुःखों के हरण करनेवाले (चन्द्राः) चन्द्र आदि सुखकारक पदार्थ (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं (जीरा) शीघ्र गति (अजिरशोचिषः) तीव्र प्रकाशवाले ॥१॥

भावार्थ—शीघ्र गतिवाले चन्द्र आदि सुखकारी पदार्थ शुद्धस्वरूप, सब को गति देनेवाले, दुःखों के हर्त्ता तथा तीव्र प्रकाशवाले परमेश्वर के निमित्त से उत्पन्न होते हैं ॥१॥

१३११—शतं वैखानसाः। सोमः। गायत्री।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः। हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२॥

पदार्थ—(पवमानः) शुद्धस्वरूप (रथीतमः) महाबली (शुभ्रेभिः) तेजों से (शुभ्रशस्तमः) अत्यन्त प्रकाशमान (हरिश्चन्द्रः) तापहर्त्ता तथा आनन्ददाता (मरुद्गणः) वायुओं के समूहवाला ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर शुद्धस्वरूप, महाबली, तेजों से अत्यन्त प्रकाशमान, ताप का हरण करनेवाला, आनन्द का दाता तथा वायु-समूहों का स्वामी है ॥२॥

१३१२—शतं वैखानसाः। सोमः। गायत्री।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(पवमान) हे शुद्धस्वरूप (व्यश्नुहि) व्याप्त करता है (रश्मिभिः) प्रकाशों से (वाजसातमः) अन्न आदि के अत्यन्त दाता (दधत्) धारण करते हुए (स्तोत्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! अन्न आदि का महान् दाता तू स्तुति वाले को उत्तम पराक्रम देता हुआ प्रकाशों से जगत् को व्याप्त करता है ॥३॥

१३१३—सप्तर्षयः। सोमः। विराड्बृहती।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।
३ १ २र ३ २क २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब ओर से (इतः) इस संसार में (सिञ्चत) सेचन करो (सुतम्) सृष्टिकर्ता (सोमः) परमेश्वर (यः) जो (उत्तम) उत्तम (हविः) जल को (दधन्वान्) धारण करता हुआ (यः) जो (नर्यः) मनुष्य-

मात्र का हितकारी (अप्सु) अन्तरिक्ष में (अन्तः) मध्य (आ) भली भांति (सुषाव) उत्पन्न करता है (सोमम्) वायु को (अद्रिभिः) मेघों के साथ ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अपनी स्तुतियों से इस संसार में उस सृष्टि-कर्त्ता परमेश्वर को सींचो जोकि मनुष्यों का हितकारी है तथा उत्तम जल को धारण करता हुआ अन्तरिक्ष के मध्य में बादलों से युक्त वायु को उत्पन्न करता है ॥१॥

१३१४—सप्तर्षयः । सोमः । भुरिग् बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम ॥२॥

पदार्थ—(नूनम्) निश्चय ही (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अविभिः) भेड़ों से (परिस्रव) वृष्टि कर (अदब्धः) अहिंसनीय (सुरभिन्तरः) सब सुगंधियों में उत्तम सुगन्ध (सुते) उत्पन्न संसार में (चित्) पादपूरक (त्वा) तेरी (अप्सु) आकाश आदि में (मदामः) स्तुति करते हैं (अन्धसा) अन्न से (श्रीणन्त.) युक्त होते हुए (गोभिः) गौओं से (उत्तरम्) ऊपर स्थित ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पवित्र करता हुआ, न मारा जाने योग्य, तथा सब सुगन्धों की परम सुगन्ध तू इस उत्पन्न संसार में सुख की वर्षा कर। भेड़ों, गायों तथा अन्न से युक्त हुए हम लोग आकाशादि लोकों पर अधिष्ठाता रूप से स्थित तुझ प्रभु की स्तुति करते हैं ॥२॥

१३१५—सप्तर्षयः । सोमः । पिपीलिका मध्या गायत्री ।

१२ ३१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

परिस्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानः) सत्योपदेष्टा (चक्षसे) साक्षात्कार के लिए (देवमादनः) विद्वानों को तृप्त करनेवाला (क्रतुः) सृष्टि यज्ञ का कर्त्ता (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (विचक्षणः) ज्ञानी ॥३॥

भावार्थ—सत्योपदेष्टा, विद्वानों की सुख से तृप्ति करनेवाला, सृष्टि रूप यज्ञ का कर्त्ता, ऐश्वर्यशाली तथा महान् ज्ञानी परमेश्वर साक्षात्कार करने के लिए सब प्रकार से जाना जाता है ॥३॥

१३१६—वसुः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २र

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।

२ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥१॥

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न होता है (सोमः) जीव (अरुषः) प्रकाशमान (वृषाः) बलवान् (हरिः) विषयों में विचरन वाला (राजा इव) राजा के समान (दस्मः) दर्शनीय (अभि) लक्ष्य करके (गाः) इन्द्रियों को (अचिक्रदत्) विविध प्रकार की गति करता है (पुनानः) पवित्र होता हुआ (वारम्) आवरण को (अत्येषि) लांघ जाता है (अव्ययं) प्रकृतिमय (श्येनः) बाज् पक्षी के (न) समान (योनिम्) परमेश्वर में (घृतवन्तम्) प्रकाश वाले (आसदत्) स्थित होता है ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशमान, बलवान्, विषयों में विचरने वाला तथा राजा के समान दर्शनीय जीव उत्पन्न होता है। वह इन्द्रियों की तरफ अनेक प्रकार की गति करता है। पवित्र हुआ वह प्राकृतिक आवरण को लांघ जाता है तथा बाज् पक्षी के समान झट प्रकाशमय परमेश्वर में स्थित हो जाता है ॥१॥

१३१७—वसुः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

स्वसार आपो अभि गाः उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥२॥

पदार्थ—(पर्जन्यः) मेघ के समान (पिता) रक्षक (महिषस्य) आत्मा का (पर्णिनः) पत्ते के समान चंचल जीवन वाले (नाभा) मध्य में (पृथिव्याः) पृथिवी के (गिरिषु) मेघों तथा पर्वतों में (क्षयं) निवास (दधे) धारण करता है (स्वसारः) अच्छी तरह फेंके जाने की क्रिया वाला (आपः) जल (अभि) ओर (गाः) सूर्य की किरणों की (उदासरन्) जाता है (सम्) सम्यक् (ग्रावभिः) मेघों के साथ (वसते) आच्छादित करते हैं (वीते) व्याप्त (अध्वरे) अन्तरिक्ष को ॥२॥

भावार्थ—मेघ के समान पत्रवत् चंचल जीवन को धारण करने वाले जीव का रक्षक परमेश्वर पृथिवी के मध्य और पर्वत तथा मेघों में निवास कर रहा है। उसकी क्रिया से फेंका गया जल सूर्य की किरणों को प्राप्त होता है तथा मेघों के साथ व्यापक अन्तरिक्ष को आच्छादित करता है ॥२॥

१३१८—वसुः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अप सेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ।३।

पदार्थ—(कविः) वेद काव्य का कर्त्ता (वेधस्या) बुद्धि के साथ (पर्येषि) व्याप्त हो रहा है (माहिनम्) पृथिवी को (अत्यः) वायु के (न) समान (मृष्टः) शुद्ध (अभि) सब प्रकार (वाजम्) पराक्रम को (अर्षसि) प्राप्त कराता है (अपसेधन्) दूर करता हुआ (दुरिता) दुर्गुणों को (सोम) हे परमेश्वर (नः) हमारे (मृड) सुखी कर (घृता) जलों को (वसानः) आच्छादन करता हुआ (परि) सब प्रकार (यासि) प्राप्त होता है (निर्णिजम्) शुद्ध पवित्र पुरुष को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! वेदकाव्य का कर्त्ता तू अपने ज्ञान के साथ पृथिवी में व्याप्त हो रहा है। शुद्ध वायु की भांति तू पराक्रम प्राप्त करता है। हमारे दुर्गुणों को दूर करता हुआ तू हमें सुखी कर। जल को व्याप्त करता हुआ तू शुद्ध पवित्र व्यक्ति को प्राप्त होता है ॥३॥

卐 **नवमः खण्डः समाप्तः** 卐

१३१९—नृमेधः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २र

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

१२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥१॥

पदार्थ—(श्रायन्तः) आश्रित हुए (इव) पादपूरक (सूर्यम्) लोक को कर्म में प्रेरित करने वाले (विश्वा, इत्) समस्त, ही परमेश्वर के (भक्षत) बांटने की इच्छा रखते हुए (वसूनि) धन, पशु, और भूमि को (जातः) उत्पन्न हुए (जनिमानि) उत्पन्न होने वाले (ओजसा) पुरुषार्थ से (प्रति) प्रत्येक (भागम्) भाग को (न) अनु (दीधिमः) समझें ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर के दिये धन, पशु और भूमि को बांटने की इच्छा करते हुए हम आश्रित होकर प्रभु की उपासना करते हैं। उसके विभाजन से मिले हुए प्रत्येक भाग को हम पुरुषार्थ से अपना भाग समझें ॥१॥

१३२०—नृमेधः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२॥

पदार्थ—(अलर्षिरातिम्) निष्पाप तथा पर्याप्त दान वाले (वसुदाम्) धन, भूमि तथा पशुओं के दाता (उपस्तुहि) उपासना करो (भद्राः) कल्याण करने वाले (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (रातयः) दान हैं (यः) जो (अस्य) इसकी (कामं) कामनाको (विधतः) परिचर्या [पूजा—आराधना] करने वाले (न) नहीं (रोषति) नष्ट करता (मनः) मन को (दानाय) दान के लिए (चोदयन्) प्रेरित करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! परमेश्वर के दान कल्याणकारी हैं। वह भक्त के मन को दान देने की प्रेरणा करता हुआ उसकी कामना को पूरा करता है। तू निष्पाप और पर्याप्त दान करने वाले, पशु, भूमि तथा धन के दाता परमेश्वर की उपासना कर ॥२॥

१३२१—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

१२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र

मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥

पदार्थ—(यतः) जिससे (इन्द्र) हे राजन् (भयामहे) हम डरते हैं (ततः) उस से (नः) हमें (अभय) निर्भय (कृधि) कर (मघवन्) हे धनों के स्वामी (शग्धि) समर्थ होता है (तव) तू (तत्) वह (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (वि) विशिष्ट (द्विषः) द्वेषियों को (वि) विविध प्रकार से (मृधः) शत्रुओं को (जहि) नष्ट कर ॥१॥

भावार्थ—हे धनों के स्वामी राजन् ! हम जिससे डरते हैं उससे हमें निर्भय कर। तू हमारी रक्षा में समर्थ है। हमारे द्वेषियों और शत्रुओं को नष्ट कर ॥१॥

१३२२—भर्गः । इन्द्रः । बृहती

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (हि) निश्चय (राधसस्पते) हे धनों के स्वामिन् (राधसः) धन के (महः) महान् (क्षयस्य) निवास स्थान का (विधर्ता) विशेष रूप से धारण कर्ता (तम्) उस (त्वा) तुझे (वयम्) हम (मघवन्) हे यज्ञों के स्वामी (इन्द्र) परमेश्वर (गिर्वणः) हे स्तुतियों से स्तुति करने योग्य (सुतावन्तः) संसारी (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे धनों तथा यज्ञों के स्वामी उपास्य परमेश्वर ! तू महान् धन और निवास स्थान ब्रह्माण्ड का धारण करने वाला है। संसारी हम लोग तुझे पुकारते हैं ॥२॥

卐 दशमः खण्डः समाप्तः 卐

१३२३—भरद्वाजः। सोमः। गायत्री।

१ २ ३२३१ २र १२ १२ ३१२
त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे। पवस्व मंहयद्रयिः ॥१॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सोम) हे परमेश्वर (धारयुः) वेदमंत्रों की चाहना करता (असि) है (मन्द्रः) आनन्ददाता (ओजिष्ठः) ओजस्वी (अध्वरे) यज्ञ में (पवस्व) पवित्र कर (मंहयद्रयिः) धन का देने वाला ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वेद की कामनावाला, आनन्ददाता, ओजस्वी तथा धन का देनेवाला है। हे प्रभु, तू यज्ञ में हमें पवित्र कर ॥१॥

१३२४—भरद्वाजः। सोमः। गायत्री।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ २ १ २र
त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः। इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (मदिन्तमः) आनन्द दाता (दधन्वान्) धारणकर्त्ता (मत्सरिन्तमः) हर्ष का दाता (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (सत्राजित्) सदा जीतने वाला (अस्तृतः) न मारा जाने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टिकर्त्ता, आनन्ददाता, सबका धारणकर्त्ता, हर्ष का देनेवाला, ऐश्वर्यवान्, सदा विजयी तथा किसी से न मारा जानेवाला है ॥२॥

१३२५—भरद्वाजः। सोमः। गायत्री।

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सुष्वाणः) सृष्टि करता हुआ (अद्रिभिः) नित्य शक्तियों द्वारा (अभ्यर्ष) व्यापक होता है (कनिक्रदत्) विविध प्रकार की गतियों को करता हुआ (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (शुष्मम्) बल को (आभर) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर अपनी नित्य शक्तियों से जगत् को पैदा करने वाला तू विविध प्रकार की गतियों को करता हुआ व्यापक हो रहा है। तू हमें प्रकाश से युक्त बल प्रदान कर ॥३॥

१३२६—मनुः। सोमः। उष्णिक्।

१२ ३१२३ २३ १२३१२
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा।

२३२३१२
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (धाराभिः) वेदवाणियों से (ओजसा) तेज से (आ) भली प्रकार (कलशम्) कलाओं से युक्त को (मधुमान्) विज्ञानवाले (सोम) हे विद्वान् (नः) हमें (सदः) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् पुरुष ! विज्ञानवान् तू दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए हमें वेदवाणियों और तेज से पवित्र कर ! तू कलाओं से युक्त अपनी आत्मा को प्राप्त कर ॥१॥

१३२७—मनुः। सोमः। उष्णिक्।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥२॥

पदार्थ—(तव) तेरे (द्रप्सा) आनन्द गुण (उदप्रुतः) रस को बहाने वाले (इन्द्रम्) जीव को (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिए (वावृधुः) बढ़ाते हैं (त्वां) तुझे (देवासः) ज्ञानी पुरुष (अमृताय) मोक्ष प्राप्ति के लिए (कम्) सुख स्वरूप को (पपुः) पान करते हैं [प्राप्त करते हैं] ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भक्ति-रस को बहाने वाले तेरे आनन्द गुण जीव को आनन्द-प्राप्ति के लिए आगे बढ़ाते हैं। ज्ञानीजन मोक्ष सिद्धि के लिए तुझ सुख-स्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥२॥

१३२८—मनुः। सोमः। उष्णिक्।

१ २ ३ १ २ ३ २
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।

३ १ २ ३ १ २
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली प्रकार (नः) हमें (सुतासः) हे संसार में उत्पन्न (इन्दवः) हे ऐश्वर्यवान् (पुनानाः) हे पवित्र हुए (धावत) प्राप्त कराओ (रयिम्) परमेश्वर का (वृष्टिद्यावः) सुख की वृष्टि और ज्ञान प्रकाश को करनेवाले (रीत्यापः) नीति और कर्म का विस्तार करनेवाले (स्वर्विदः) स्वर्ग को प्राप्त करानेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे संसार में उत्पन्न हुए, ऐश्वर्यशाली तथा पवित्र हुए ज्ञानी पुरुषो ! सुख की वृष्टि और ज्ञान का प्रकाश करनेवाले, नीति और कर्मों का विस्तार करनेवाले तथा स्वर्ग प्राप्त करानेवाले आप लोग हमें परमेश्वरी की प्राप्ति कराओ ॥३॥

१३२९—अम्बरीष ऋजिश्वा च। सोमः। अनुष्टुप्।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।

२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (त्यं) उस (हर्यतम्) कमनीय (हरिम्) अज्ञान को हटानेवाले (बभ्रुम्) शोभन (पुनन्ति) पवित्र करते हैं (वारेण) वरण करने योग्य गुण से (यः) जो (देवान्) परमेश्वर, जीव तथा अन्य दिव्य पदार्थों को (विश्वान्) समस्त (इत्) हि (परि) अच्छी तरह से (मदेन) आनन्द के (सह) साथ (गच्छति) जान लेता है ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् जन कमनीय, अज्ञान का हरण करनेवाले, तथा शोभायमान इस पुरुष को श्रेष्ठ गुणों से भली प्रकार पवित्र करते हैं। पवित्र हुआ वह परमेश्वर, जीव तथा अन्य समस्त देवों को आनन्दपूर्वक जान लेता है ॥१॥

१३३०—अम्बरीष ऋजिश्वा च। सोमः। अनुष्टुप्।

२उ ३ १२ ३ १२ ३ १२
द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम्।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥२॥

पदार्थ—(द्विः) दो गुणा (यं) जिसको (पञ्च) पांच (स्वयशसम्) स्वयं यशस्वी (सखायः) मित्रता रखनेवाली (अद्रिसंहतम्) अभेद्य शक्तियों से युक्त (प्रियम्) प्यारे (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (काम्यम्) चाहने योग्य (प्रस्नापयन्ते) नहलाती हैं (ऊर्मयः) [विषयों के] प्रकाशवाली ॥२॥

भावार्थ—मित्रता रखनेवाली, विषयों की प्रकाशक दश इन्द्रियां स्वयं यशस्वी अभेद्य शक्तियों से युक्त परमेश्वर के प्रिय तथा सब के चाहने योग्य जीव को संसार-सागर में स्नान कराती हैं ॥२॥

१३३१—अम्बरीष ऋजिश्वा च। सोमः। अनुष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।

१२३१२ ३ १२ ३१२
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव की (सोम) हे परमेश्वर (पातवे) रक्षा करने के लिये (वृत्रघ्ने) बुराइयों को दूर करनेवाले (परि) भली प्रकार (सिच्यसे) सींचा जाता है (नरे) मनुष्य के (च) और (दक्षिणावते) यज्ञ की दक्षिणा देने वाले (वीराय) वीर (सदनासदे) यज्ञ में स्थित ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बुराइयों को दूर करनेवाले जीव तथा दक्षिणा देनेवाले, वीर और यज्ञकर्त्ता यजमान की रक्षा के लिये हमारे भक्तिरस से सिक्त किया जाता है ॥३॥

१३३२—अग्नयो धिष्ण्याः। सोमः। द्विपदा पङ्क्तिः।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) गतिशील हो (सोम) हे आत्मन् (महे) महान् (दक्षाय) आत्मबल के लिये (अश्वः) घोड़े के (न) समान (निक्तः) धुलकर स्वच्छ हुआ (वाजी) बलवान् (धनाय) मोक्षरूप धन के लिये ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! धुलकर स्वच्छ हुए अश्व के समान अविद्या आदि दोषों से धुलकर साफ हुआ बलवान् तू महान् आत्मबल तथा मोक्षरूप धन की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हो ॥१॥

१३३३—अग्नयो धिष्ण्याः। सोमः। द्विपदा पङ्क्तिः।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम रूप से (ते) वे (सोतारः) सामर्थ्यवाले (रसम्) स्नेह करनेवाले [रागी] (मदाय) आनन्दप्राप्ति के लिये (पुनन्ति) पवित्र करते हैं (सोमम्) आत्मा को (महे) महान् (द्युम्नाय) यश के लिये ॥२॥

भावार्थ—सामर्थ्य वाले भक्त लोग आनन्द और महान् यश की प्राप्ति के लिये संसार के पदार्थों से स्नेह करनेवाले आत्मा को पवित्र करते हैं ॥२॥

१३३४—*अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा पङ्क्तिः ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥३॥

पदार्थ—(शिशुम्) प्रसंशनीय (जज्ञानं) उत्पन्न हुए (हरिम्) बुराइयों का हरण करनेवाले (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (पवित्रे) पवित्र कर्म में (सोमम्) आत्मा को (देवेभ्यः) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (इन्दुम्) ऐश्वर्यशाली ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् जन दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये प्रशंसनीय संसार में उत्पन्न होनेवाले दुर्गुणों के निवारक तथा ऐश्वर्यशाली आत्मा को पवित्र कर्म में शुद्ध करते हैं ॥३॥

१३३५—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उपो ष जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१॥

पदार्थ—(उप) समीप (उ) पादपूरक (सु) उत्तम रूप से (जातम्) उत्पन्न हुए (अप्तुरम्) कर्मों को प्रेरणा देनेवाले (गोभिः) वेदवाणियों से (भङ्गम्) दुर्गुणों को नष्ट करनेवाले अथवा दुःखों के भञ्जक (परिष्कृतम्) सुशोभित (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् (देवाः) दिव्य शक्तियां और गुण (अयासिषुः) प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—उत्तमरूप से उत्पन्न हुए, शुभकर्मों को प्रेरणा देनेवाले, दुःखों के भंजक, वेदवाणियों से सुशोभित तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् को दिव्य शक्ति और गुण प्राप्त होते हैं ॥१॥

१३३६—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥२॥

पदार्थ—(तम्) उस (इत्) ही (वर्धन्तु) वर्णन करती हैं (नः) हमारी (गिरः) वाणियां (वत्सम्) बच्चे को (सं) सम्यक् (शिश्वरीः) माताओं के (इव) समान (यः) जो (इन्द्रस्य) जीव के (हृदं सनिः) हृदय में पृथक् स्थित है ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार माता बच्चे की प्रशंसा करती है, उसी प्रकार हमारी वाणियां उस परमेश्वर की प्रशंसा करती हैं जो कि जीव के हृदय में पृथक् होता हुआ स्थित है ॥२॥

१३३७—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥

पदार्थ—(अर्ष) प्राप्त करा (नः) हमारी (सोम) हे परमेश्वर (शं) सुख (गवे) इन्द्रियों के लिये (धुक्षस्व) परिपूर्ण कर (पिप्युषीम्) पालन-पोषण करनेवाले (इषम्) अन्न को (वर्ध) बढ़ा (समुद्रम्) सुख के सागर को (उक्थ्य) हे प्रशंसनीय ॥३॥

भावार्थ—हे प्रशंसनीय परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों को सुख प्राप्त करा । तू हमें हमारे पालन-पोषण में समर्थ अन्न से परिपूर्ण कर । हे प्रभो ! तू संसार में सुख का सागर बहा दे ॥३॥

卐 **एकादशः खण्डः समाप्तः** 卐

१३३८—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (घा) निश्चय (ये) जो (अग्निम्) आत्मा का (इन्धते) प्रकाश करते हैं [साक्षात् करते हैं] (स्तृणन्ति) विस्तार करते हैं (बर्हिः) ज्ञान यज्ञ का (आनुषक्) निरन्तर (येषाम्) जिनके (इन्द्रः) परमेश्वर (युवा) अजर (सखा) मित्र है ॥१॥

भावार्थ—जो लोग निश्चित रूप से आत्मा का साक्षात्कार करते तथा जिनका अजर अमर परमेश्वर ही मित्र है वे निरन्तर ज्ञान-यज्ञ का विस्तार करते हैं ॥१॥

१३३९—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ २ ३ १ २

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२॥

पदार्थ—(बृहत्) महान् (इत्) ही (इध्मः) आत्मा (एषाम्) इनके (भूरि) बहुत (शस्त्रम्) स्तुति (पृथुः) विस्तृत (स्वरुः) अपना वचन (येषाम्) जिनके (इन्द्रः) परमेश्वर (युवा) अजर अमर (सखा) मित्र है ॥२॥

भावार्थ—जिनका अजर अमर परमेश्वर सखा है। इनकी आत्मा महान्, स्तुति पर्याप्त और वाक् शक्ति विस्तृत होती है ॥२॥

१३४०—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३॥

पदार्थ—(अयुद्धः) न युद्ध करनेवाला (इत्) भी (युधावृतम्) योधाओं से युक्त शत्रु को (शूरः) वीर (आजति) परास्त करता है (सत्वभिः) अपने बलों से (येषाम्) जिनका (इन्द्रः) परमेश्वर (युवा) अजर अमर (सखा) सहायक है ॥३॥

भावार्थ—जिसका अजर अमर परमेश्वर सहायक है वह युद्ध न करनेवाला भी वीर अपने बल से योद्धाओं से युक्त शत्रु को परास्त करता है ॥३॥

१३४१—*गोतमः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (एक इत्) अकेला ही [विना किसी की सहायता के] (विदयते) देता है (वसु) धन को (मर्त्ताय) मनुष्य के लिए (दाशुषे) त्यागी (ईशान) स्वामी (अप्रतिष्कुतः) किसी से विरोध न किया जानेवाला (इन्द्रः) दाता पुरुष (अंग) हे लोगो ! ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! धन का स्वामी तथा किसी से न विरोध किया जानेवाला वह दानी पुरुष अकेला ही त्यागी मनुष्य को पर्याप्त धन प्रदान करता है ॥१॥

१३४२—*गोतमः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (चित्) कोई भी (त्वा) तेरी (बहुभ्यः आ) बहुतों में (सुतावान्) संसारी पुरुष (आविवासति) उपासना करता है (उग्रम्) महान् (तत्) वह (पत्यते) देता है (शवः) बल (इन्द्रः) परमेश्वर (अंग) हे लोगो ! ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बहुतों में जो कोई संसारी पुरुष तेरी उपासना करता है उसे तू महान् बल प्रदान करता है ॥२॥

१३४३—*गोतमः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

कदा नः शुश्रुवद्गिरः इन्द्रो अङ्ग ॥३॥

पदार्थ—(कदा) कब (मर्तम्) मनुष्य को (अराधसम्) आराधना नहीं करनेवाले (पदा) एक पांव से (क्षुम्पम्) खुम्ब के [कुकुरमुत्ता] (इव) समान (स्फुरत्) नष्ट करेगा (कदा) कब (नः) हमारी (शुश्रुवत्) सुनेगा (गिरः) स्तुतियां (इन्द्रः) परमेश्वर [राजा] (अंग) हे लोगो ! ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! तू उपासना न करने वाले मनुष्य को एक पैर से खुम्ब (कुकुरमुत्ते) के समान कब कुचल देगा। हे परमेश्वर, तू हमारी स्तुतियों को कब सुनेगा ॥३॥

१३४४—*मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

१ १ २ ३ २ ३ १ २

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

पदार्थ—(गायन्ति) गाते हैं (त्वा) तुझे (गायत्रिणः) भूलोकवासी मनुष्य (अर्चन्ति) पूजते हैं (अर्कम्) पूज्य (अर्किणः) परमेश्वर की उपासना करनेवाले (ब्रह्माणः) वेद के जाननेवाले (त्वा) तुझे (शतक्रतो) हे विविध कर्मों के करनेवाले (उत्) उत्कृष्ट (वंशमिव) कुल के समान (येमिरे) उन्नत करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे विविध कर्मों के करनेवाले आत्मन् ! भूलोक पर रहनेवाले मनुष्य तेरा वर्णन करते हैं। तुझ पूजनीय शक्ति का ही परमेश्वर के उपासक भी सत्कार करते हैं। वेद के जाननेवाले लोग वंश के समान तुझे उन्नत करते हैं ॥१॥

१३४५—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ उ ३ १ १ २र ३ १ २र ३ १ २

यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।

१ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जब (सानोः) एक कर्म की सिद्धि हो जाने से (सानु) दूसरे कर्म को (आरुहः) आरम्भ करता है (भूरि) बहुत (अस्पष्ट) स्पर्श करता हुआ (कर्त्वम्) करने के लिये (तत्) तब (इन्द्रः) परमेश्वर (अर्थम्) प्रयोजन को (चेतति) भली भांति जानता है (यूथेन) सुख देनेवाले पदार्थ समूह के साथ (वृष्णिः) मनोरथों की वर्षा करनेवाला (एजति) प्राप्त कराता है ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जब तू अनेक कर्मों को करता हुआ एक की सिद्धि के पश्चात् दूसरों का प्रारम्भ करता है तब सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि करनेवाला परमेश्वर तेरे प्रयोजन को जानता है और सुख देनेवाले पदार्थों के समूह के साथ उसे पूरा करता है ॥२॥

१३४६—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

युंक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

१ २ ३ १ २र

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥

पदार्थ—(युंक्ष्वा) युक्त करता है (हि) निश्चय (केशिना) सूर्य और वायु को (हरी) आकर्षण और धारणवाले (वृषणा) वर्षा के निमित्त (कक्ष्यप्रा) अपनी अपनी कक्षाओं के पदार्थों को पूर्ण करनेवाले (अथा) अनन्तर (नः) हमारी (इन्द्र) हे परमेश्वर (सोमपाः) उत्तम पदार्थों के रक्षक (गिराम्) वाणियों की (उपश्रुतिम्) श्रवण (चर) कर ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तम पदार्थों के रक्षक परमेश्वर ! तू धारण और आकर्षण वाले, वृष्टि कर्त्ता तथा अपनी कक्षा के पदार्थों को पूरा करानेवाले सूर्य और वायु को युक्त करता है । तू हमारी स्तुति सुन ॥३॥

卐 द्वादशः खण्डः समाप्तः 卐

卐 दशमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

एकादशोऽध्यायः

१३४७—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—(सुसमिद्धः) सम्यक् प्रकार से प्रकाशित (नः) हमें (आवह) प्राप्त करा (देवान्) दिव्य पदार्थों को (अग्ने) हे परमेश्वर (हविष्मते) यजमान के लिए (होतः) हे दाता (पावक) हे पवित्र कर्त्ता (यक्षि) उपासना करता हूँ (च) और ॥१॥

भावार्थ—हे दाता, तथा पवित्र कर्त्ता परमेश्वर प्रकाशस्वरूप ! तू यजमानों को दिव्य पदार्थ प्राप्त कराता है । हम तेरी उपासना करते हैं ॥१॥

१३४८—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुह्यूतये ॥२॥

पदार्थ—(मधुमन्तम्) ज्ञान और कर्मयुक्त (तनूनपात्) शरीर आदि का रक्षक (यज्ञम्) यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे (कवे) हे ज्ञानमय (अद्या) आज (कृणुहि) कर (ऊतये) रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे ज्ञानमय परमेश्वर ! शरीर आदि का रक्षक तू कर्म और ज्ञान से युक्त विद्वानों के मध्य किये गए हमारे यज्ञ को रक्षा के लिए समर्थ कर ॥२॥

१३४९—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३॥

पदार्थ—(नराशंसम्) मनुष्यों से स्तुति किया जानेवाला (इह) इस संसार में (प्रियम्) प्रिय [प्यारे] (अस्मिन्) इस (यज्ञे) उपासना यज्ञ में (उपह्वये) पुकारते हैं (मधुजिह्वं) विज्ञानयुक्त वेद-वाणीवाले (हविष्कृतम्) समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करनेवाले ॥३॥

भावार्थ—मैं संसार में इस अपने उपासना यज्ञ में सब मनुष्यों के उपास्य, प्रिय, विज्ञानमयी वेदवाणीवाले तथा समस्त भोग्य पदार्थों के उत्पत्तिकर्त्ता परमेश्वर को पुकारता हूँ ॥३॥

१३५०—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (सुखतमे) अति सुखदायक (रथे) संसार रूप रथ में (देवान्) तैंतीस देवों को (ईडितः) पूजित (आवह) प्राप्त कराता (असि) है (होता) सबका ग्रहणकर्त्ता (मनुः) मननीय (हितः) हितकारक ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वपूज्य तू अत्यन्त सुखदायक संसार रथ में तैंतीस देवों को यथास्थान प्राप्त कराता है । तू सब पदार्थों का ग्रहण करनेवाला सबका हितकारक और मनन करने योग्य है ॥४॥

१३५१—वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।

२ १ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (अद्य) आज (सूरे) सूर्य के (उदिते) उदय होने पर (अनागाः) निर्दोष (मित्रः) स्नेही (अर्यमा) न्यायकारी (सुवाति) उत्पन्न करता है (सविता) सकल जगत् का उत्पादक (भगः) ऐश्वर्यशाली ॥१॥

भावार्थ—सूर्य के उदय होने पर आज निर्दोष, सबका मित्र, न्यायकारी तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर जो कुछ उत्पन्न करता है वह हमें सुखकर हो ॥१॥

१३५२—वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

सु प्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥२॥

पदार्थ—(सुप्रावीः) उत्तम रूप से रक्षक (अस्तु) होवे (सक्षयः) [स्थान में व्यापक] स्थान से युक्त (प्र) उत्कृष्ट (नु) शीघ्र (यामन्) संसार में (सुदानवः) अच्छे गुणों के दाता लोग (ये) जो (नः) हमें (अंहः) पाप को (अतिपिप्रति) पार कराते हैं ॥२॥

भावार्थ—जो सुगुणदाता इस संसार में हमें पापों से शीघ्र बचाते हैं उनका सर्वव्यापक सर्वाधार परमेश्वर रक्षक होवे ॥२॥

१३५३—वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (स्वराजः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (अदितिः) नित्य परमेश्वर (अदब्धस्य) कल्याणकारी (व्रतस्य) नियम के (ये) जो (महो) महान् (राजानः) राजा (ईशते) समर्थ होते हैं ॥३॥

भावार्थ—महान् प्रकाशमान तथा कल्याणकारी नियम के शासक आदित्य तथा नित्य परमेश्वर सामर्थ्यवाले हैं ॥३॥

१३५४—प्रगाथः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उत्त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्तम रूप से (त्वा) तुझे (मदन्तु) प्रसन्न करें (सोमाः) विद्वान् लोग (कृणुष्व) सम्पन्न कर (राधः) धन (अद्रिवः) आदरणीय (अव) पृथक् (ब्रह्मद्विषः) विद्वानों से द्रोह करनेवालों को (जहि) दूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वान् लोग तुझे उत्तमता से प्रसन्न करें। आदर के योग्य तू हमें धन दे । विद्वानों से द्वेष करनेवालों को दूर भगा ॥१॥

१३५५—प्रगाथः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २र

पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥

पदार्थ—(पदा) ज्ञान से (पणीन्) केवल व्यापारबुद्धिवाले धनी (अराधसः) शुभ कर्म में धन न देनेवाले कञ्जूस को (नि) निश्चय (बाधस्व) ठीक रास्ते पर ला (महान्) सबसे बड़ा (असि) है (न हि) नहीं (त्वा) तेरा (कश्चन) कोई भी (प्रति) प्रतिनिधि [बराबरी करनेवाला] ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दान आदि से रहित केवल धन कमानेवाले व्यापारियों को अपने ज्ञान से ठीक मार्ग पर लगा । तू सब से बड़ा है । तेरे समान कोई नहीं ॥२॥

१३५६—प्रगाथः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र २उ ३ १ २
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (ईशिषे) स्वामी होता है (सुतानाम्) उत्पन्न पदार्थों का (इन्द्र) हे परमेश्वर (त्वम्) तू (असुतानाम्) उत्पन्न नहीं होनेवाले जो प्रकृति आदि अथवा भविष्य में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों का (त्वम्) तू (राजा) स्वामी (जनानाम्) प्राणिमात्र का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू उत्पन्न होनेवाले कार्य और उत्पन्न न होनेवाले कारण जीव प्रकृति आदि का स्वामी है । तू प्राणिमात्र का राजा है ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१३५७—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (जागृविः) एकरस ज्ञान तथा प्रयत्नवाला (विप्रः) सर्वज्ञ (ऋतम्) नियमसूत्र को (मतीनाम्) बुद्धियों के (सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (असदत्) व्यापक होता है (चमूषु) द्यौ, पृथिवी आदि लोकों में (सपन्ति) पूजा करते हैं (यम्) जिसकी (मिथुनासः) नर नारी (निकामाः) अत्यन्त कामनावाले (अध्वर्यवः) याज्ञिक लोग (रथिरासः) महारथी (सुहस्ताः) कार्यकुशल [सिद्धहस्त] ॥१॥

भावार्थ—एकरस क्रियावाला, सर्वज्ञ तथा सबकी बुद्धियों के नियमसूत्र को पवित्र करनेवाला परमेश्वर द्यु, पृथिवी आदि सभी लोकों में व्यापक हो रहा है । अत्यन्त कामनावाले सब नर-नारी, याज्ञिक, महारथी तथा सिद्धहस्त लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१॥

१३५८—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
प्रियाचिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (पुनानः) पवित्र करनेवाला (उप) समीप (सूरे) सूर्य में (दधानः) धारण या पुष्ट करता हुआ (आ) भली भांति (उभे) दोनों (अप्राः) पूर्ण करता है (रोदसी) द्यु और पृथिवीलोक को (वि) विशेष (सः) वह (आवः) विस्तार करता है (प्रिया) प्रिय (चित्) हि (यस्य) जिसकी (प्रियसासः) अत्यन्त प्रेम का पात्र है (ऊती) रक्षा (सतः) विद्यमान (धनम्) सम्पत् (कारिणे न) काम करनेवाले के समान (प्रयंसत्) प्रदान करे ॥२॥

भावार्थ—सबको पवित्र करनेवाला और सूर्य में तेज-पुंज को धारण करता हुआ परमेश्वर द्युलोक और पृथिवी में व्यापक हो रहा है । वह संसार का विशेष रूप से विस्तार करता है । सदा विद्यमान और सबको प्रिय, जिसकी रक्षा हमारा अत्यन्त कल्याण करनेवाली है, वह सेवक के समान हमें धन प्रदान करे ॥२॥

१३५९—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (वर्धिता) सबको उन्नत करनेवाला (वर्धनः) उपदेश करनेवाला (पूयमानः) जाना जाता हुआ (सोमः) परमेश्वर (मीढ्वान्) वर्षा करने वाला (अभि) सब प्रकार से (नः) हमें (ज्योतिषा) प्रकाश से (आवीत्) रक्षा करता है (यत्र) जिसके विषय में (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्णज्ञानी (पितरः) बुद्धिमान् पुरुष (पदज्ञाः) पद, वाक्य और प्रमाण के जाननेवाले (स्वर्विदः) सुख प्राप्त करनेवाले (अभि) उद्देश्य से (गाः) इन्द्रियों को (अद्रिम्) पर्वत की (इष्णन्) इच्छा करते थे ॥३॥

भावार्थ—जिसके विषय में (ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से) पद, वाक्य और प्रमाण (व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय) के जाननेवाले, सुख प्राप्त करनेवाले हमारे पूर्णज्ञानी पूर्वज इन्द्रियों को वश में करने के उद्देश्य से पर्वत आदि एकान्त स्थानों की कामना करते थे, सबको समुन्नत करनेवाला हमें बुरे भले का उपदेष्टा, वृष्टि का कर्त्ता और जाना जाने योग्य वह परमेश्वर अपने प्रकाश से हमारी रक्षा करता है ॥३॥

१३६०—प्रगाथः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१॥

पदार्थ—(मा) नहीं (चित्) ही (अन्यत्) दूसरे की (विशंसत) स्तुति करो (सखायः) हे मित्रो, (मा) नहीं (रिषण्यत) हिंसा करो (इन्द्रम्) आत्मा की (इत्) ही (स्तोत) प्रशंसा करो (वृषणम्) सुख की वर्षा करनेवाले (सचा) एकत्र होकर (सुते) उत्पन्न संसार में (मुहुः) बार-बार (उक्था) स्तोत्रों का (च) और (शंसत) गान करो ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! किसी दूसरे की उपासना तथा किसी प्राणी की हिंसा मत करो। इस संसार में इकट्ठे होकर सुख की वर्षा करनेवाले आत्मा की प्रशंसा तथा स्तोत्रों का ज्ञान करो ॥१॥

१३६१—प्रगाथः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विद्वेषिणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

पदार्थ—(अवक्रक्षिणम्) खींचनेवाले (वृषभम्) यथा बैल के समान (जुवम्) शीघ्रकारी (गाम् न) पृथिवी के समान (चर्षणीसहम्) मनुष्यों के भार का सहन (विद्वेषिणम्) द्वेष न करनेवाले (संवननम्) सम्यक् भजन योग्य (उभयंकरम्) दुष्टों को दण्ड और सज्जनों की रक्षा करनेवाले (मंहिष्ठम्) महान् दानी (उभयाविनम्) लोक-परलोक दोनों की रक्षा करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग बैल के समान सूर्य आदि लोकों में खींच कर क्रिया देनेवाले, शीघ्रकारी, पृथिवी के समान मनुष्यों के भार को सहन करनेवाले, द्वेषरहित, उपासनीय, दुष्टों के दण्डदाता और सज्जनों के रक्षक इस लोक और परलोक के पालक तथा महान् दानी इन्द्र की स्तुति करो ॥२॥

१३६२—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (उ) निश्चय (त्ये) वे (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुर (गिरः) स्तुतियाँ (स्तोमासः) स्तोत्ररूप (ईरते) उच्चारण करते हैं (सत्राजितः) सच्ची विजय करानेवाले (धनसा) धन प्राप्त करने के साधन (अक्षितोतयः) अक्षय रक्षावाला (वाजयन्तः) संग्राम के साधन (रथा इव) रथ के समान ॥१॥

भावार्थ—सच्ची विजय करानेवाले, धनप्राप्ति के साधन, अक्षय रक्षा से युक्त तथा संग्राम के अधिकरण रथ के समान अत्यन्त मधुर स्तोत्र रूप हमारी वाणियाँ परमेश्वर को उच्चारण करती हैं ॥१॥

१३६३—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२॥

पदार्थ—(कण्वाः इव) मेधावी पुरुषों के समान (भृगवः) तपस्वी (सूर्या इव) सूर्य की किरणों के समान (विश्वम्) संसार को (इत्) ही (धीतम्) ध्यानमात्र से [लिप्सा से नहीं] (आशत) भोगते हैं (इन्द्रम्) परमेश्वर का (स्तोमेभिः) स्तोत्रों के द्वारा (महयन्त) पूजा करते हुए (आयवः) मनुष्य (प्रियमेधसः) उत्तम बुद्धि से प्रेम करनेवाले (अस्वरन्) नाम का उच्चारण करते हैं ॥२॥

भावार्थ—तपस्वी लोग, ज्ञानीजनों के तथा सूर्य की किरणों के समान ध्यानमात्र से लिप्सारहित होकर संसार का भोग करते हैं, बुद्धि से प्रेम रखनेवाले मनुष्य स्तोत्रों से पूजा करते हुए परमेश्वर के नाम का उच्चारण करते हैं ॥२॥

१३६४—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोमः । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार (उ) निश्चय (प्रधन्व) दूर कर (वाजसातये) अन्न की प्राप्ति के लिए (परि) सब प्रकार से (वृत्राणि) बुराइयों को (सक्षणिः) सहनशील (द्विषः) शत्रुओं को (तरध्या) पार करने के लिए

(ऋणया) तीनों प्रकार के ऋणों से नैऋण्य करनेवाले (नः) हमें (ईरसे) प्रेरित करता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! तीनों ऋणों से छुड़ानेवाला तथा सहनशील तू सुन्दर अन्न की प्राप्ति के लिए बाधाओं को दूर करता है। तू हमें शत्रुओं से पार पाने के लिए प्रेरणा देता है ॥१॥

१३६५—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोमः । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥२॥

पदार्थ—(अजीजनः) उत्पन्न किया है (हि) निश्चय (पवमान) हे सर्वव्यापक (सूर्यम्) सूर्य को (विधारे) धारण करनेवाले अन्तरिक्ष के ऊपर (शक्मना) शक्ति से (पयः) जल के (गोजीरा) किरणों की गति के स्थान (रंहमाणः) गति देता हुआ (पुरन्ध्या) द्युलोक और पृथिवीलोक में ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! किरणों की गति के आधार द्यु और पृथिवी लोक में गति उत्पन्न करनेवाले तूने अपनी शक्ति से जल को धारण करनेवाले अन्तरिक्ष लोक के ऊपर भाग में सूर्य को उत्पन्न किया है ॥२॥

१३६६—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोमः । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
अनु हि त्वा सुतं सोममदामसि महे समर्यराज्ये ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥३॥

पदार्थ—(अनु) पश्चात् (हि) निश्चय (त्वा) तेरे (सुतम्) उत्पन्न (सोम) हे विद्वान् (मदामसि) प्रसन्न होते हैं (महे) महान् (सम्) सम्यक् (अर्यराज्ये) परमेश्वर के राज्य में (वाजान्) बलों को (अभि) उद्देश्य में रख कर (पवमान) हे पवित्र स्वभाव (प्रगाहसे) संग्रह करता है ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रस्वरूप विद्वान् ! महान् ईश्वर के राज्य में उत्पन्न तेरे साथ हम प्रसन्नता अनुभव करते हैं। तू बलों का संग्रह करता है ॥३॥

१३६७—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार (प्रधन्व) प्राप्त कर (इन्द्राय) परमेश्वर को (सोम) हे विद्वान् पुरुष (स्वादुः) आनन्द रस का स्वाद लेनेवाला (मित्राय) सबके मित्र (पूष्णे) पालन-पोषण करनेवाले (भगाय) ऐश्वर्यशाली ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आनन्द रस का अनुभव करनेवाला तू सबके मित्र, पालन-पोषण करनेवाले तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर को प्राप्त कर ॥१॥

१३६८—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

१ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥२॥

पदार्थ—(एव) निश्चय (अमृताय) अमरत्व के लिए (महे) महान् (क्षयाय) निवास के लिए (सः) वह (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (अर्ष) प्रयत्न कर (दिव्यः) दिव्य गुणवाला (पीयूषः) अमृत ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! शुद्धस्वभाव उत्तम गुणोंवाला तथा अमर मोक्ष धाम की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न कर ॥२॥

१३६९—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) आत्मा (ते) तेरे (सोम) हे परमेश्वर (सुतस्य) उत्पन्न संसार का (पेयात्) उपभोग करें (क्रत्वे) ज्ञान के लिए (दक्षाय) बल के लिए (विश्वे) सारे (च) और (देवाः) विद्वान् जन ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! ज्ञान और बल की प्राप्ति के लिए ही जीवात्मा और सारे विद्वान् तेरे संसार का उपभोग करें ॥३॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१३७०—हिरण्यस्तूपः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
तन्तुं ततं परिसर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥१॥

पदार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (इव) समान (रश्मयः) किरणों के (द्रावयित्नवः) बर्फ द्रवीभूत करनेवाली (मत्सरासः) हर्षप्रद (प्रसुतः) उत्पन्न करनेवाले (साकम्) साथ (ईरते) गतिमान हो रहे हैं (तन्तुं) अन्तर्यामिसूत्र (ततं) व्याप्त [विस्तृत] (परि) पर (सर्गासः) रचे गए (आशवः) फैले हुए (न) नहीं (इन्द्रात् ऋते) परमेश्वर के विना (पवते) चलता है (धाम) लोक (किंचन) कोई भी ॥१॥

भावार्थ—द्रवीभूत करनेवाली सूर्य की किरणों के समान, हर्षप्रद, अन्य पदार्थों को उत्पत्ति देनेवाले, फैले हुए रचे गए संसार के सब लोक-लोकान्तर व्यापक विस्तृत ब्रह्मरूप सूत्र पर एक साथ गति कर रहे हैं। उस परमेश्वर के विना कोई भी लोक गति नहीं कर सकता ॥१॥

१३७१—हिरण्यस्तूपः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (उ) निश्चय (मतिः) बुद्धि (पृच्यते) संयुक्त होती है (सिच्यते) सींचा जाता है (मधु) ब्रह्मज्ञान (मन्द्राजनी) वाणी की (चोदते) प्रेरणा की जाती है (अन्तरासनि) मुख में (पवमानः) पवित्र कर्त्ता (सन्तनिः) विस्तार करनेवाला (सुन्वताम्) यज्ञ करनेवालों का (मधुमान्) ज्ञानवान् (द्रप्सः) कमनीय [कामना करने के योग्य] (परि) सब प्रकार से (वारम्) वरण करने योग्य पुरुष को (अर्षति) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—बुद्धि का सम्बन्ध जीव के साथ होता है। ब्रह्मज्ञान जीव के हृदय में दिया जाता है। वाणी का व्यापार मुख में हुआ करता है। यज्ञ करनेवालों को बढ़ानेवाले के समान शुद्धस्वरूप, ज्ञानवान् तथा कामना करने योग्य परमेश्वर उत्तम गुणवाले ज्ञानी पुरुष को ही प्राप्त होता है ॥२॥

१३७२—हिरण्यस्तूपः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३॥

पदार्थ—(उक्षा) महान् शक्तिवाला (मिमेति) मांगता है (प्रतियन्ति) प्राप्त होती हैं (धनवः) वाणियां (देवस्य) देव [परमेश्वर] की (देवीः) दिव्य-शक्तियां (उपयन्ति) प्राप्त कराती हैं (निष्कृतम्) निस्तार को (अत्यक्रमीद्) अतिक्रमण करता है (अर्जुनम्) रूप को (वारम्) आवरण को (अव्ययम्) प्राकृतिक (अत्कं) वायु के (न) समान (निक्तं) बलवान् (परि) सब प्रकार (सोमः) जीव [आत्मा] (अव्यत) सुरक्षित हो जाता है ॥३॥

भावार्थ—महान् शक्तिवाला जीव (परमेश्वर से) याचना करता है। उसको वेदवाणियां प्राप्त होती हैं तथा परमात्मदेव की दिव्य शक्तियां उसके निस्तार को प्राप्त कराती हैं। वह संसार के नाम, रूप तथा नित्यप्रकृति के आवरण को बलवान् वायु के समान पार कर सुरक्षित हो जाता है ॥३॥

१३७३—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
दूरे दृशं गृहपतिमथव्युम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम्) अग्नि और परमेश्वर को (नरः) हे मनुष्यो (दीधितिभिः) धारणा आदि उपायों से (अरण्योः) दो अरणियों में [शरीर और आत्मा तथा ज्ञान और कर्मरूप अरणियों में] (हस्तच्युतम्) हाथ से पैदा किये जानेवाले अथवा धारण और आकर्षण को देनेवाले (जनयत) प्रकट करो (प्रशस्तम्) प्रशंसनीय (दूरेदृशम्) दूर से दिखाई पड़नेवाला वा सूक्ष्मदर्शी (गृहपतिम्) घर के रक्षक वा संसार के स्वामी (अथव्युम्) अगम्य [ज्ञान द्वारा जानने के योग्य] ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग धारण और आकर्षण के सम्पादक, प्रशंसनीय सूक्ष्मदर्शी, संसार के स्वामी तथा ज्ञान-गम्य परमेश्वर को प्रशस्त, दूर तक दिखाई पड़नेवाले, घर के रक्षक, गतिशील तथा दो अरणियों में हाथ के द्वारा संघर्षण से उत्पन्न होनेवाले अग्नि के समान शरीर और आत्मा रूप अरणियों, योग आदि विधानों से प्रकट करो ॥१॥

१३७४—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २उ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२॥

पदार्थ—(तम्) उस (अग्निम्) परमेश्वर को (अस्ते) उत्तम स्थान में (वसवः) विद्वान् भक्त (न्यृण्वन्) ध्यान से प्राप्त करते हैं (सुप्रतिचक्षम्) साक्षात् करने योग्य (अवसे) रक्षा के लिए (कुतश्चित्) किसी भी भय से (दक्षाय्यः)

पूजनीय (यः) जो (इमे) संसार गृह में (आस) है (नित्यः) अविनाशी [नित्य] ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् भक्त किसी भी भय से रक्षा पाने के लिए साक्षात् करने योग्य उस परमेश्वर को उत्तम स्थान में ध्यान से प्राप्त करते हैं जो कि संसार में पूजनीय और अविनाशी है ॥२॥

१३७५—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३क २र

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २

त्वां शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (इद्धः) प्रकाशस्वरूप (अग्ने) हे परमेश्वर (दीदिहि) प्रकाशित कर (पुरः) आगे (नः) हमें (अजस्रया) नित्य (सूर्म्या) ज्ञान प्रकाश से (यविष्ठ) हे अजर (त्वाम्) तुझे (शश्वन्तः) सनातन (उपयन्ति) प्राप्त करते हैं (वाजाः) ज्ञानीजन ॥३॥

भावार्थ—हे अजर अमर परमेश्वर ! प्रकाशस्वरूप तू अपने नित्य ज्ञान-प्रकाश से हमें प्रकाशित कर । निरन्तर अभ्यासवाले ज्ञानीजन तुझे प्राप्त करते हैं ॥३॥

१३७६—सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यो आत्मा वा । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (अयम) यह (गौः) ज्ञानवान् (पृश्निः) तेज से परिपूर्ण (अक्रमीत्) लांघकर स्थित होता है (असदन्) व्यापक हो रहा है (मातरम्) पृथिवी को (पुरः) आगे (पितरम्) सूर्य को (च) और (प्रयन्) गति देता हुआ (स्वः) सुखस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—तेज से परिपूर्ण, सुखस्वरूप तथा ज्ञानवान् परमेश्वर प्रत्यक्ष ही पृथिवी और सूर्य को गति देता हुआ उनमें व्यापक होकर उनके परे स्थित हो रहा है ॥१॥

१३७७—सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यात्मा वा । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ २र ३ १ २र

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥२॥

पदार्थ—(अन्तः) शरीर के मध्य (चरति) विचरती है (रोचना) दीप्तिः [प्रकाश] (अस्य) इसके (प्राणात्) ऊपर प्राण से (अपानती) नीचे स्थानों में प्राण को ग्रहण करती हुई (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है (महिषः) महान् शक्ति-वाला (दिवम्) यश को ॥२॥

भावार्थ—नाड़ियों में प्राण और अपान का संचार करती हुई इस आत्मा की दीप्ति शरीर में विचरती है । महान् शक्तिवाला यह यश को प्रकाशित करता है ॥२॥

१३७८—सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यात्मा वा । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ १ २

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥३॥

पदार्थ—(त्रिंशद्धाम) तीस घड़ी [बारह घण्टे] (विराजति) विराजमान होता है (वाक्) वेदवाणी (पतंगाय) गतिशील [आत्मा के लिए] (धीयते) धारण की जाती है (प्रति) सम्मुख (वस्तोः) दिन के (अह) निश्चय (द्युभिः) सूर्य के तेजों से ॥३॥

भावार्थ—आत्मा दिन के बारह घण्टे निश्चय ही सूर्य के तेजों के साथ शरीर में विराजमान रहता है । गतिशील उस आत्मा के लिए वेद वाणियां धारण की जाती हैं ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

卐

द्वादशोऽध्यायः

१३७९—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

उपप्रयन्तो अध्वरं मंत्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१॥

पदार्थ—(उपप्रयन्तः) अनुष्ठान करते हुए (अध्वरम्) यज्ञ का (मंत्रम्) मन्त्र को (वोचेम) बोलें (अग्नये) परमेश्वर के लिए (आरे) दूर (अस्मे) हम (च) और (शृण्वते) श्रवण करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—यज्ञ को करते हुए हम लोग दूर और समीप की बातों को सुनने वाले परमेश्वर के लिए स्तुति मन्त्रों का उच्चारण करें ॥१॥

१३८०—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (स्नीहितीषु) परस्पर प्रेम करनेवाली (पूर्व्यः) सनातन (सञ्जग्मानासु) सुसंगत [संघटित] (कृष्टिषु) मनुष्य-प्रजाओं में (अरक्षत्) रक्षा करता है (दाशुषे) त्यागी के लिए (गयम्) धन और प्राण की ॥२॥

भावार्थ—जो सनातन परमेश्वर परस्पर स्नेह करनेवाली, तथा संघटित प्रजाओं में त्यागी पुरुष के धन और प्राण की रक्षा करता है उसकी हम स्तुति करें ।२।

१३८१—वसिष्ठः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे (वेदः) धन की (अमात्यम्) मंत्री की (अग्निः) परमेश्वर (रक्षतु) रक्षा करे (शन्तमः) कल्याणदाता (उत) और (अस्मान्) हमें (पातु) बचावे (अंहसः) पाप से ॥३॥

भावार्थ—शान्ति के दाता परमेश्वर हमारे धन और जन की रक्षा करें तथा हमें पाप से बचावें ॥३॥

१३८२—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥४॥

पदार्थ—(उत) और (ब्रुवन्तु) स्तुति करें (जन्तवः) मनुष्य (उत्) उत्तम (अग्निः) परमेश्वर (वृत्रहा) अज्ञान नाशक (अजनि) उत्पन्न करता है (धनञ्जयः) धन का प्राप्त करनेवाला (रणे रणे) संग्रामों में ॥४॥

भावार्थ—संग्रामों में धन को प्राप्त करनेवाला, तथा अज्ञाननाशक जो परमेश्वर सबको उत्पन्न करता है, मनुष्यों को उसकी स्तुति करनी चाहिए ॥४॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१३८३—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे आत्मन् (युङ्क्ष्व) युक्त कर (हि) निश्चय रूप से (ये) जो (तव) तेरी (अश्वासः) इन्द्रियां (देव) हे देव (साधवः) सकल व्यवहार को सिद्ध करनेवाली (अरम्) पर्याप्त रूप से (वहन्ति) वहन करती हैं (आशवः) विषयों को शीघ्र ग्रहण करने वाली ॥१॥

भावार्थ—हे आत्मदेव ! सकल व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली, तथा विषयों को शीघ्र ग्रहण करनेवाली जो तेरी इन्द्रियां तेरे शरीर को पर्याप्त रूप से वहन करती हैं तू उन्हें अपने वश में कर ॥१॥

१३८४—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २र

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥२॥

पदार्थ—(अच्छा) अच्छी प्रकार से (नः) हमें (याहि) प्राप्त हो (आवह) प्राप्त करा (अभि) सब प्रकार से (प्रयांसि) अन्नों को (वीतये) भक्षण के लिए (आ) भली भांति (देवान्) देवों को (सोमपीतये) संसार की रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें अच्छी तरह प्राप्त हो । तू भोजन के लिए अन्न को और संसार की रक्षा के लिए देवों को प्राप्त करा ॥२॥

१३८५—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा विभाह्यजर ॥३॥

पदार्थ—(उत्) उत्तम रूप से (अग्ने) हे परमेश्वर (भारत) भरण पोषण करने वाले (द्युमत्) दीप्तिमान (अजस्रेण) नित्य [तेज से] (दविद्युतत्) तेजस्वी (शोच) प्रकाशित हो (विभाहि) प्रकाशित कर (अजर) हे अमर ॥३॥

भावार्थ—हे अजर, अमर तथा सकल संसार के भरण-पोषण करनेवाले परमेश्वर ! तू तेजस्वी है । अपने नित्य तेजसे प्रकाशित हो और हमें प्रकाश दे ॥३॥

१३८६—प्रजापतिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१॥

पदार्थ—(प्र सुन्वानाय) उत्तम प्रेरणा देनेवाले (अन्धसः) अज्ञान से (मर्त्तः) मनुष्य (न) नहीं (वष्ट) सुने या माने (तत्) वह (वचः) बात को (अप) दूर (श्वानम्) कुत्ते के समान (अराधसम्) उपासना आदि न करनेवाले

को (हत) दूर करो (अमखम्) यज्ञ न करनेवाले को (न) समान (भृगवः) ज्ञानी तपस्वियों के ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अज्ञान से जो मनुष्य सदा प्रेरणा देनेवाले विद्वान् की बात को न सुने उस अधर्मी तथा कुत्ते के समान व्यक्ति को उसी प्रकार दूर करो जिस प्रकार विद्वान् तपस्वी यज्ञ आदि कर्म न करनेवाले को दूर भगाते हैं ।।१।।

१३८७—*प्रजापतिः । सोमः । अनुष्टुप् ।*

२ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३क २र
आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
१२ ३१ २र ३१ २र ३१२
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ।।२।।

पदार्थ—(आ) भली भांति (जामि) सृष्टि का उत्पन्न करनेवाला (अत्के) वायु में (अव्यत) व्यापक है (भुजे) गोद में (न) यथा (पुत्रः) पुत्र के (ओण्योः) माता-पिता के (सरत्) जाता है (जारः) सूर्य के (न) यथा (योषणाम्) पृथिवी (वरः) वर के (न) यथा (योनिम्) परम पद को (आसीदम्) प्राप्त होता हूँ ।।२।।

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर वायु में व्यापक है। जिस प्रकार पुत्र माता की गोद को, सूर्य पृथिवी को तथा वर कन्या को प्राप्त करता है उसी प्रकार मैं परमपद [मोक्ष धाम] को प्राप्त करता हूँ ।।२।।

१३८८—*प्रजापतिः । सोमः । अनुष्टुप् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ।।३।।

पदार्थ—(सः) वह (वीरः) बलशाली (दक्षसाधनः) बल का साधन (वि) विशेष रूप से (यः) जो (तस्तम्भ) थाम रखता है (रोदसी) द्यु और पृथ्वी लोक को (हरिः) अज्ञान-नाशक (पवित्रे) अग्नि, वायु आदि में (अव्यत) व्यापक हो रहा है (वेधाः न) विद्वान् के समान (योनिम्) निमित्तकारण को (आसदम्) प्राप्त करता हूँ ।।३।।

भावार्थ—बलशाली, बल का साधन तथा अज्ञान-नाशक जो परमेश्वर द्यु और पृथिवी लोक को थामे हुए है वह अग्नि और वायु आदि में भी व्यापक हो रहा है। मैं उस निमित्त कारण प्रभु को ज्ञानी के समान प्राप्त करता हूँ ।।३।।

१३८९—*सोभरिः । इन्द्रः । ककुप् ।*

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ।।१।।

पदार्थ—(अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) नेता के विना [स्वयं नेता है] (त्वम्) तू (अनापिः) विना भाई-बन्धु के (इन्द्र) हे परमेश्वर (जनुषा) उत्पन्न जगत् के प्रारम्भ से (सनात्) सनातन (असि) है (युधा इत्) हमारे उद्योग से (आपित्वम्) बन्धुता (इच्छसे) चाहता है ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टि के आदि से ही शत्रुरहित, स्वयं नेता बन्धुबांधव से रहित तथा सनातन है। तू हमारे उद्योग से हमारी मित्रता स्वीकार करता है ।।१।।

१३९०—*सोभरिः । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ।।२।।

पदार्थ—(नकिः) कभी नहीं (रेवन्तम्) केवल धनवान् या धन में मस्त को (सख्याय) मित्रता के लिए (विन्दसे) प्राप्त करता है (पीयन्ति) हानि कर सकते हैं (ते) तेरी (सुराश्वः) मद्य पीनेवाले (यत्) जब (आकृणोषि) अपनाता है (नदनुं) स्तुति करनेवाले भक्त को (समूहसि) भली भांति संपन्न करता है (आत् इत) तब (पिता इव) पिता के समान (हूयसे) कहा जाता है ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू धन में ही मस्त को अपना मित्र नहीं बनाता। शराबी लोग तुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। जब तू स्तुति करनेवाले को अपनाता तथा भलीभांति ज्ञान-सम्पन्न करता है तब तू मित्र के समान कहा जाता है ।।२।।

१३९१—*मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ।।१।।

पदार्थ—(आ) पर्यन्त (त्वा) तुझे (सहस्रं) सहस्रों [स्थानों में] (आशतं) सैकड़ों (युक्ता) जुड़ी हुई (रथे) शरीररूप रथ में (हिरण्यये) ज्योतिर्मय (ब्रह्मयुजः) प्राणों से युक्त (हरयः) विषयों की तरफ ले जाने वाली इन्द्रियाँ (इन्द्र) हे जीव (केशिनः) प्रकाशयुक्त (वहन्तु) प्राप्त कराती हैं (सोमपीतये) संसार के भोग के लिए ।।१।।

भावार्थ—हे जीव ! ज्योतिर्मय शरीररूपी रथ में जुड़ी हुई, प्राणों से युक्त तथा प्रकाशमान इन्द्रियां संसार का उपभोग करने के लिए तुझे सैंकड़ों अथवा सहस्रों स्थानों को प्राप्त कराती हैं ।।१।।

१३९२—*मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्रः । बृहती ।*

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ।।२।।

पदार्थ—(आ) भली-भांति (त्वा) तुझे (रथे) रमणीय संसार में (हिरण्यये) ज्योतिर्मय (हरी) सूर्य और चन्द्र (मयूरशेप्या) मोर की पूँछ के समान चमकने वाले (शितिपृष्ठा) कृष्णवर्णपीठवाले (वहताम्) जनाते हैं (मध्वः) विज्ञान के ज्ञाता (अन्धसः) अज्ञान से (विवक्षणस्य) कहने योग्य (पीतये) रक्षा के लिए ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्रकाशमान इस संसार में मोर की पूँछ के समान चमकनेवाले तथा कृष्ण वर्ण के पीठ वाले सूर्य और चन्द्र कहने योग्य विज्ञान की अज्ञान से रक्षा करने के लिए तेरा ज्ञान कराते हैं ।।२।।

१३९३—*मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्रः । बृहती ।*

१ ३ २क १ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा त्व३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ।।

पदार्थ—(पिब) रक्षा करता है (तु) पादपूरक (अस्य) इस (गिर्वणः) हे स्तुति-योग्य ! (सुतस्य) उत्पन्न संसार की (पूर्वपा इव) वायु के समान (परिष्कृतस्य) सुसज्जित (रसिनः) अन्न-जल से परिपूर्ण (इयम्) यह (आसुतिः) उत्पत्ति [जन्म] (चारुः) शोभन (मदाय) आनन्द-प्राप्ति के लिए (पत्यते) समर्थ होती है ।।३।।

भावार्थ—हे भजन करने के योग्य परमेश्वर ! तू वायु के समान सुसज्जित तथा अन्न-जल से पूर्ण इस संसार की रक्षा करता है। इसकी यह शोभन उत्पत्ति आनन्द प्राप्ति के लिए समर्थ है अथवा यह हमारा उत्तम जन्म परमानन्द प्राप्ति में समर्थ है ।।३।।

१३९४—*ऋजिश्वा । सोमः । ककुप् ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ।।१।।

पदार्थ—(आसोत) ऐश्वर्ययुक्त करो (परिषिञ्चत) ज्ञान से परिपूर्ण करो (अश्वं न) घोड़े के समान (स्तोमम्) प्रशंसनीय (अप्तुरम्) प्राणों का प्रेरणा करनेवाले (रजस्तुरम्) प्रकाश का प्रेरक (वनप्रक्षम्) इन्द्रियों का संचालक (उदप्रुतम्) कर्मानुसार जल में भी जलीय जन्तुओं के रूप में जाने वाले ।।१।।

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग अश्व के समान वेगवाले, प्रशंसनीय प्राण और प्रकाश के प्रेरक, इन्द्रियों के संचालक तथा कर्मानुसार जल में भी जाने वाले आत्मा को ऐश्वर्ययुक्त और ज्ञान से परिपूर्ण करो ।।१।।

१३९५—*ऊर्ध्वसद्मा । सोमः । सतोबृहती ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ।।२।।

पदार्थ—(सहस्रधारम्) अनेक प्रकार की वाणियोंवाले (वृषभम्) सकल मनोरथों को पूरा करनेवाले (पयोदुहम्) ज्ञान का दोहन करनेवाले (प्रियम्) प्रिय (देवाय) दिव्य [देव] (जन्मने) जन्म के लिए (ऋतेन) सत्य नियम से (यः) जो (ऋतजातः) सत्य नियम के उत्पादक (विवावृधे) बढ़ाता है (राजा) प्रकाशस्वरूप (देवः) देव (ऋतम्) ज्ञान को (बृहत्) महान् ।।२।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सत्य नियम का उत्पादक, प्रकाशस्वरूप जो परमात्मदेव सत्य नियम से महान् ज्ञान को बढ़ाता है उस विविध वेद की वाणियोंवाले, मनोरथ के सफल करनेवाले, ज्ञान के दाता तथा परमप्रिय परमेश्वर को देव जन्म की प्राप्ति के लिए भजो ।।२।।

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१३९६—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
अग्निर्वृत्राणि जंघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ।।१।।

पदार्थ—(अग्निः) आत्मा (वृत्राणि) अज्ञान के आवरण को (जंघनत्) नाश करता है (द्रविणस्युः) परमात्मबल की इच्छा करने वाला (विपन्यया) स्तुति द्वारा (समिद्धः) तेजस्वी [ज्ञान से प्रकाशमान] (शुक्रः) शुद्ध (आहुतः) भली भांति ग्रहण किया हुआ ॥१॥

भावार्थ—परमात्मबल की इच्छा करनेवाला, ज्ञान से प्रकाशमान, शुद्ध तथा भली भांति ग्रहण किया गया आत्मा स्तुति द्वारा अज्ञान के आवरण को दूर करता है ॥१॥

१३९७—*भरद्वाजः। अग्निः। गायत्री।*

१ २ ३ २ ३२ ३१ २ ३ २ ३ १२ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥

पदार्थ—(गर्भे) गर्भ में (मातुः) पृथिवी के (पितुः) पिता का (पिता) पिता (विदिद्युतानः) प्रकाशमान (अक्षरे) अविनाशी प्रकृति और जीव में (सीदन्) व्यापक होता हुआ (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) स्थान में ॥२॥

भावार्थ—पिता का भी पिता परमेश्वर पृथ्वी के गर्भ, प्रकृति तथा जीव में व्यापक होता हुआ सत्य के स्थान में स्थित है ॥२॥

१३९८—*भरद्वाजः। अग्निः। गायत्री।*

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे। अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्म) अन्न और जल (प्रजावत्) पुत्र आदि से युक्त (आभर) प्रदान कर (जातवेदः) हे सर्वव्यापक (विचर्षणे) हे सबके द्रष्टा (अग्ने) हे परमेश्वर (यत्) जो (दीदयत्) प्रकाशित होता है (दिवि) सूर्य के प्रकाश में ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक तथा सर्वसाक्षी परमेश्वर! तू हमें पुत्र आदि से युक्त वह अन्न जल प्रदान कर जो सूर्य के प्रकाश में होनेवाला है ॥३॥

१३९९—*वसिष्ठः। सोमः। त्रिष्टुप्।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर की (प्रेषा) प्रेरणा से (हेमना) जल आदि के द्वारा (पूयमानः) बाहरी पवित्रता करता हुआ (देवः) देव (देवेभिः) इन्द्रियों के साथ (समपृक्त) सम्पर्क कराता है (रसम्) रस आदि का (सुतः) उत्पन्न (पवित्रम्) परम पावन पद का (पर्येति) प्राप्त करता है (रेभन्) स्तुति करता हुआ (मिता) निर्मित (इव) समान (सद्म) गृह (पशुमन्ति) पशुओं से युक्त (होता) यजमान ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुआ जीव इन्द्रियों से रस आदि का अनुभव करता है। परमेश्वर की प्रेरणा से जल के द्वारा बाह्य शुद्धि करता हुआ वह स्तुति के द्वारा पशुओं से युक्त गृह को यजमान के समान परम पावन पद को प्राप्त करता है ॥१॥

१४००—*वसिष्ठः। सोमः। त्रिष्टुप्।*

३ १ २र ३ २क १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

भद्रा वस्त्रा समन्या३वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन्।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

पदार्थ—(भद्रा) कल्याणकारक (वस्त्रा) तेजों को (समन्या) शान्तिदायक (वसानः) धारण करता हुआ (महान्) महान् (कविः) मेधावी (निवचनानि) वेदवचनों का (शंसन्) उपदेश करता हुआ (आवच्यस्व) व्यापक हो रहा है (चम्वोः) द्युलोक और पृथिवी में (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा (जागृविः) सर्वदा सावधान (देववीतौ) जीव के ज्ञान में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! कल्याणकारक, शान्तिदायक तेजों को धारण करता हुआ, महान्, मेधावी, सर्वद्रष्टा, सदा सावधान तथा पवित्रकर्त्ता तू जीव के ज्ञान में वेदवचनों का उपदेश करता हुआ द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक हो रहा है ॥२॥

१४०१—*वसिष्ठः। सोमः। त्रिष्टुप्।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् प्रकार (उ) ही (प्रियः) प्रिय (मृज्यते) पवित्र होता है (सानो) शिखर पर (अव्ये) प्रकृतिमय (यशस्तरः) अति यशस्वी (यशसां) यशवालों में (क्षैतः) पृथिवी पर उत्पन्न (अस्मे) हमारे लिये (अभिस्वर) उपदेश कर (धन्वा) परमेश्वर के विषय में (पूयमानः) पवित्र हुआ (यूयम्) तू (पात) रक्षा कर (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (सदा) सदा (नः) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वन्! यशस्वियों में अतियशस्वी, प्रिय तथा पृथिवी पर उत्पन्न हुआ तू प्रकृति के शिखर पर हमारे लिये पवित्र होता है और पवित्र हुआ तू हमें परमेश्वर का ज्ञान दे तथा कल्याण के साथ हमारी रक्षा करा ॥३॥

१४०२—*तिरश्चिः। इन्द्रः। अनुष्टुप्।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥१॥

पदार्थ—(एत) आओ (उ) हि (इन्द्रम्) आत्मा का (स्तवाम) गुणगान करें (शुद्धं) शुद्ध (शुद्धेन) पवित्र (साम्ना) साम से (शुद्धः) पवित्र (उक्थैः) स्तोत्रों से (वावृध्वांसम्) निर्दोष (शुद्धैः) पवित्रकारक गुणों से (आशीर्वान्) पूर्ण कामनाओंवाला (ममत्तु) प्रसन्न करे ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! आओ, पवित्र साम और स्तोत्रों से निर्दोष आत्मा का गुणगान करें। पूर्ण कामनाओं वाला वह अपने पवित्र गुणों से हमें प्रसन्न करे ॥१॥

१४०३—*तिरश्चिः। इन्द्रः। अनुष्टुप्।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः।

३ २ ३ १ २र ३ १ २

शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (शुद्धः) शुद्धस्वरूप (नः) हमें (आगहि) प्राप्त हो (शुद्धः) पतितपावन (शुद्धाभिः) पवित्र (ऊतिभिः) रक्षाओं से (शुद्धः) पापरहित (रयिम्) धन (निधारय) धारण करा (शुद्धः) निर्लेप (ममद्धि) प्रसन्न हो (सोम्य) हे शान्तस्वभाव! ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वभाव परमेश्वर! तू शुद्ध, पतितपावन, पापरहित तथा निर्लेप है। हे भगवन्! हमें प्राप्त हो और पवित्र रक्षाओं से हमारी रक्षा कर। हे प्रभो! प्रसन्न हो और धन प्रदान कर ॥२॥

१४०४—*तिरश्चिः। इन्द्रः। अनुष्टुप्।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (शुद्धः) शुद्ध (हि) ही (नः) हमें (रयिम्) धन (शुद्धः) पतितपावन (रत्नानि) रत्नों को (दाशुषे) यजमान के लिये (शुद्धः) पापरहित (वृत्राणि) बुराइयों का (जिघ्नसे) नाश करता है (शुद्धः) परमपवित्र (वाजम्) अन्न बल को (सिषाससि) देता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! शुद्ध तू हमें धन प्रदान कर। पतितपावन तू यजमान को रत्न आदि दे। पापरहित तू पापों का नाश कर। परम पवित्र तू अन्न और बल दे ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१४०५—*सुतंभरः। अग्निः। गायत्री।*

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः। देवस्य द्रविणस्यवः ॥१॥

पदार्थ—(अग्नेः) परमेश्वर के (स्तोमम्) स्तोत्र को (मनामहे) उच्चारण करते हैं (सिध्रम्) पुरुषार्थसाधक (अद्य) आज (दिविस्पृशः) आकाश में व्यापक (देवस्य) देव के (द्रविणस्यवः) धन की कामना करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—धन की कामना करनेवाले हम लोग आज आकाश में व्यापक परमात्मदेव के पुरुषार्थसाधक स्तोत्र का उच्चारण करते हैं ॥१॥

१४०६—*सुतंभरः। अग्निः। गायत्री।*

३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा। स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (जुषत) स्वीकार करे (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियों को (होता) संसार का ग्रहण करनेवाला (यः) जो (मानुषेषु) मनुष्यों में (आ) भली प्रकार (सः) वह (यक्षत्) देता है (दैव्यम्) श्रेष्ठ (जनम्) पुरुष को ॥२॥

भावार्थ—संसार का ग्रहण करनेवाला जो परमेश्वर मनुष्यों में विराजमान है वह हमारी स्तुति सुने और हमें श्रेष्ठ जन देवे ॥२॥

१४०७—*सुतंभरः। अग्निः। गायत्री।*

१२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर (सप्रथाः) सबसे महान् (असि) है (जुष्टः) सबका प्रेमपात्र (होता) सृष्टिरूप यज्ञ का कर्त्ता (वरेण्यः) श्रेष्ठ (त्वया) तेरे द्वारा (यज्ञं) यज्ञ का (वितन्वते) विस्तार करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब के प्रेम का पात्र, सृष्टिकर्त्ता, श्रेष्ठ तथा अत्यन्त महान् है। तेरे द्वारा ही विद्वान् लोग यज्ञ का विस्तार करते हैं ॥३॥

१४०८—*वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशंत वाणीः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वना वसानो वरुणो न सिन्धूर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (त्रिपृष्ठम्) तीन जानने के योग्य [जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति] अवस्थाओंवाले, (वृषणम्) बलवान् (वयोधाम्) आयु तथा सौंदर्य आदि अनेक अवस्थाओं को धारण करनेवाले (अङ्गोषिणम्) शरीर के (अवावशन्त) वर्णन करती हैं (वाणीः) वेदवाणियाँ (वना) प्रकाशों को (वसानः) धारण करनेवाला (वरुणः) अग्नि के (न) समान (सिन्धुः) ज्ञान, गमन, प्राप्ति तथा मोक्षवाला (वि) विशेष (रत्नधा) रत्नों को धारण करनेवाला (दयते) रक्षा करता है (वार्याणि) उत्तम गुणोंवाला ॥१॥

भावार्थ—वेदवाणियां जानने योग्य जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति रूप तीन अवस्थाओं वाले, बलवान्, कुमार, यौवन, वृद्धावस्था और आयु को धारण करनेवाले शरीर के अंग-अंग में विद्यमान जीव का वर्णन करती हैं। तेज को धारण करनेवाले, सुवर्ण आदि रत्नों के दाता अग्नि के समान ज्ञान, गमन, प्राप्ति तथा मोक्षादि धर्मवाला वह जीव उत्तम गुणों की रक्षा करता है ॥१॥

१४०९—*वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥२॥

पदार्थ—(शूरग्रामः) वीरों के समूहवाला, (सर्ववीरः) बहुत वीरोंवाले (सहावान्) सहनशील (जेता) जीतनेवाला (पवस्व) प्राप्त कर (सनिता) दाता (धनानि) धनों के (तिग्मायुधः) तेज शस्त्रोंवाला (क्षिप्रधन्वा) वेगवान् धनुष को धारण करनेवाला (समत्सु) संग्रामों में (असाढः) सहन न किया जानेवाला (साह्वान्) तिरस्कार करनेवाले (पृतनासु) सेनाओं में (शत्रून्) शत्रुओं को ।२।

भावार्थ—हे सेनापति ! शूरों के समूह से युक्त, बहुत वीरों वाला, सहनशील विजयी, धनों का दाता तेज शस्त्रधारी, वेगवान् धनुष से युक्त संग्रामों में न सहा जाने वाला तथा सेनाओं के मध्य में शत्रुओं को दबाता हुआ तू परमेश्वर को प्राप्त कर ॥२॥

१४१०—*वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।

३ १ २र ३ २ ३ २क १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

अप: सिषासन्नुषसः स्वऽ३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् । ३॥

पदार्थ—(उरुगव्यूतिः) महान् वेदवाणियों के समूहवाला (अभयानि) अभयों को (कृण्वन्) करता हुआ (समीचीने) सुख से सुसंगत (आपवस्व) पवित्र कर (पुरन्धी) द्यु और पृथिवीलोक को (अपः) जलों को (सिषासन्) विभाजन करता हुआ (उषसः) उषा का (स्वः) सूर्य का (गोः) किरणों का (संचिक्रदः) उपदेश करता है (महः) महान् (अस्मभ्यं) हमें (वाजान्) ज्ञानों का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विस्तृत वेदवाणियों का आधार तू निर्भयता देता हुआ सुख से सुसंगत द्यु और पृथिवी लोक को पवित्र कर। हे प्रभो ! जल, प्रभात, सूर्य तथा किरणों का विभाग करता हुआ तू हमें महान् ज्ञानों का उपदेश कर ॥३॥

१४११—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।१।

पदार्थ—(त्वम्) तू (इन्द्र) हे राजन् (यशाः) यशस्वी (असि) है (ऋजीषी) सरल नीतिवाला (शवसस्पतिः) बल का स्वामी (त्वं) तू (वृत्राणि) विघ्नों का (हंसि) नष्ट करता है (अप्रतीनि) कठिनता से प्रतीकारयोग्य (एक इत्) अकेला ही (पुरु) बहुत (अनुत्तः) स्वतन्त्र (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों का धारण करनेवाला ॥१॥

भावार्थ—हे राजन् ! तू यशस्वी, सीधी नीतिवाला, बल का स्वामी और मनुष्यों का धारण कर्त्ता है। तू स्वतन्त्र अकेला ही अनेकों महान् विघ्नों का नाश करता है ॥१॥

१४१२—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नुवन् ॥

पदार्थ—(तम्) उस (उ) ही (त्वा) तुझे (नूनम्) निश्चय (असुर) हे प्राणदाता (प्रचेतसम्) सर्वज्ञ (राधः) धन को (भागम् इव) दाय-भाग के समान (ईमहे) मांगते हैं (मही) महान् (इव) समान (कृत्तिः) यश के (शरणा) शरण (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (प्र) उत्तम रूप से (ते) तेरा (सुम्ना) आनन्द (न) हमें (अश्नुवन्) प्राप्त हों ॥२॥

भावार्थ—हे प्राणदाता परमेश्वर ! हम तुझ सर्वज्ञ से दाय भाग के समान धन की याचना करते हैं। तेरी महान् शरण आकाश में व्यापक यश के समान है तेरे सुख हमें प्राप्त हों ॥२॥

१४१३—*सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

पदार्थ—(यजिष्ठम्) यज्ञ करनेवाले (त्वा) तुझे (ववृमहे) वरण करते हैं (देवम्) देव (देवत्रा) इन्द्रियों में (होतारम्) दान करनेवाले (अमर्त्यम्) अविनाशी [अमर] (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञ के (सुक्रतुम्) उत्तम कर्म करनेवाले ॥ १ ॥

भावार्थ—हे जीव ! विविध यज्ञों के कर्त्ता, इन्द्रियों के परमदेव दानी अविनाशी तथा इस संसाररूप यज्ञ में उत्तम कर्मों का विस्तार करनेवाले तेरा हम वरण करते हैं ॥१॥

१४१४—*सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥२॥

पदार्थ—(अपां) जल तथा अन्तरिक्ष आदि का (नपातम्) धारण करने वाले (सुभगम्) ऐश्वर्यशाली (सुदीदितिम्) प्रकाशस्वरूप (अग्निम्) परमेश्वर की (श्रेष्ठशोचिषम्) उत्तम तेजवाले (सः) वह (नः) हमारे (मित्रस्य) प्राण के लिये (वरुणस्य) अपान के लिये (अपां) जीवों के लिये (आ) भली भाँति (सुम्नं) सुख को (यक्षते) देता है (दिवि) स्वर्ग में [होनेवाले सुख को] ॥२॥

भावार्थ—जल तथा आकाश आदि को धारण करनेवाले, ऐश्वर्यशाली, प्रकाशस्वरूप तथा उत्तम तेजवाले परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं। वह हमारे प्राण, अपान और जीवों के लिये सुख प्रदान करता है तथा वही स्वर्ग सुख भी देता है ॥२॥

卐 **चतुर्थः खण्डः समाप्तः** 卐

१४१५—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २ ३ १ २

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥१॥

पदार्थ—(यम्) जिस (अग्ने) हे परमेश्वर (पृत्सु) संग्रामों में (मर्त्यम्) मनुष्य की (अवाः) रक्षा करता है (वाजेषु) जीवन संघर्षों में (यम्) जिसको (जुनाः) प्रेरणा करता है (सः) वह (यन्ता) वश में रखनेवाला (शश्वतीः) सनातन (इषः) प्रजाओं को ॥१॥

भावार्थ – हे परमेश्वर ! तू जिस मनुष्य की संग्रामों में रक्षा करता है तथा जिसको संग्रामों में प्रेरित करता है वही सनातन प्रजा को वश में करता है ॥१॥

१४१६—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥२॥

पदार्थ—(नकिः) मर्यादा की रक्षा करनेवाला (अस्य) इसका (सहन्त्य) हे अत्यन्त सहनशील (पर्येता) परिपूर्ण करनेवाला (कयस्य) विजय करनेवाले के (चित्) ही (वाजः) संग्राम (अस्ति) है (श्रवाय्यः) यश का देनेवाला ॥२॥

भावार्थ—हे अत्यन्त सहनशील परमेश्वर ! धर्म मर्यादा की रक्षा करनेवाला तू जिसका संग्राम यशदायक होता है उस विजयी पुरुष की कामना को परिपूर्ण करता है ॥२॥

१४१७—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (वाजम्) संग्राम को (विश्वचर्षणिः) सबका साक्षी (अर्वद्भिः) घोड़ों के द्वारा (अस्तु) हो (तरुता) पार करनेवाला (विप्रेभिः) ज्ञानियों द्वारा (अस्तु) होवे (सनिता) [ज्ञान का] दाता हो ॥३॥

भावार्थ—सर्वसाक्षी परमेश्वर घोड़ों द्वारा संग्राम को पार लगावे तथा ज्ञानियों द्वारा हमें ज्ञानदाता होवे ॥३॥

१४१८—*नोधाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १२३ २३१२ ३२३१२

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।

२ ३१२३ १ २र ३१२ ३ २ ३२३ २

हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१॥

पदार्थ—(साकमुक्षः) एक साथ वृद्धि करनेवाले (मर्जयन्त) शुद्ध करते हैं (स्वसारः) अज्ञानादि मलों को दूर फेंकनेवाले (दश) पाँच यम तथा पांच नियम रूप (धीरस्य) मेधावी ध्यानी के (धीतयः) कर्म (धनुत्रीः) उत्तम प्रेरणा करने वाले (हरिः) अज्ञान का नाशक (पर्यद्रवत्) फैलाता है (जाः) उत्पन्न हुई किरणों को (सूर्यस्य) सूर्य की (द्रोणम्) गन्तव्य मार्ग को (ननक्षे) व्याप्त करता है (अत्यः) व्यापक (न) समान (वाजी) अग्नि के ॥१॥

भावार्थ—एक साथ वृद्धिदाता, अविद्या आदि मलों को दूर फेंकनेवाले समाधि आदि योग के अंगों की तरफ प्रेरणा के साधन ध्यानी, मेधावी पुरुष दश यम-नियम आदि कर्म आत्मा को पवित्र करते हैं । अज्ञान का नाशक परमेश्वर सूर्य की किरणों का विस्तार करता है । वह व्यापनशील अग्नि के समान सूर्य की किरणों के गन्तव्य मार्ग में व्यापक है ॥१॥

१४१९—*नोधाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

२ ३२३१ २र ३१ २र ३१२ ३२

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।

२ ३१ २र ३१ २३१ २र ३१२३१२

मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् (मातृभिः) माताओं के द्वारा (न) जिस प्रकार (शिशुः) बालक (वावशानः) कामना करनेवाला (वृषा) बलवान् (दधन्वे) समझा जाता है (पुरुवारः) बहुत उत्तम कर्मोंवाला (अद्भिः) परमेश्वर के द्वारा (मर्यः) मर्यादा में रहनेवाला पुरुष (न) समान (योषाम्) युवती (अभि) उद्देश्य में रखकर (निष्कृतम्) कर्मफल को (यन्) प्राप्त करता हुआ (संगच्छते) संयुक्त होता है (कलशे) शरीर में (उस्रियाभिः) अपने तेजों से ॥२॥

भावार्थ—माताओं से जिस प्रकार शिशु समझा जाता है उसी प्रकार कामनाओं को करनेवाला, बलवान् तथा उत्तम कर्मोंवाला जीव परमेश्वर के द्वारा जाना जाता है । मर्यादा में रहनेवाला पुरुष जिस प्रकार युवती स्त्री को प्राप्त करता है उसी प्रकार जीव कर्मफल के अनुसार अपने तेजों के साथ शरीर में संयुक्त होता है ॥२॥

१४२०—*नोधाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३१ २र३२३१ २३२३१२ ३२

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।

३२३ २३१२ ३२३१२ ३ १२३२ ३ २

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभिश्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तः ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (प्रपिप्ये) पूर्ण करता है (ऊधः) स्तन को (अघ्न्यायाः) गाय के (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (धाराभिः) वेदवाणियों से (सचता) संयुक्त करता है (सुमेधाः) उत्तम ज्ञानवाला (मूर्धानं) सूर्य को (गावः) किरणें (पयसा) जल से (चमूषु) द्यौः, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में (अभिश्रीणन्ति) आच्छादित करती हैं (वसुभिः) वस्त्रों से (न) समान (निक्तः) धोये हुए ॥३॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली तथा उत्तम ज्ञानी परमेश्वर, गाय के स्तन को दुग्ध से पूर्ण करता है तथा हमें वेदवाणियों के साथ जोड़ता है । द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर वर्तमान किरणें धवल वस्त्र के समान जल से सूर्य को आच्छादित करती हैं ॥३॥

१४२१—*मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।*

१२ ३१२३२३१ २ ३१२

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।

३१२ ३१२ ३२ १२ ३१२

आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्मां अवन्तु ते धियः ॥१॥

पदार्थ—(पिबा) उपभोगकर (सुतस्य) उत्पन्न जगत् का (रसिनः) सुखदायी (मत्स्व) प्रसन्नकर (नः) हमें (इन्द्रः) हे विद्वान् पुरुष (गोमतः) गौ आदि से युक्त (आपिः) बन्धु (नः) हमें (बोधिः) बोध करा (सधमाद्ये) समान रूप से आनन्ददाता के विषय में (वृधे) उन्नति के लिए (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) तेरे (धियः) ज्ञान और कर्म ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सुखदायी संसार का उपभोग कर । गौ आदि से सम्पन्न हम लोगों को प्रसन्न कर । तू हमारा बन्धु है । हमारी उन्नति के लिए समान आनन्ददाता परमेश्वर के विषय में ज्ञान करा । तेरे ज्ञान और कर्म हमारी रक्षा करें ॥१॥

१४२२—*मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।*

३१२ ३२३१२३१ २र ३१२

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।

३ ९३१२ ३१२ ३१२ ३१२

अस्मां चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥२॥

पदार्थ—(भूयाम) हों (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति में (वाजिनः) बलवान् और ज्ञानवान् (वयं) हम (मा) नहीं (नः) हमारा (स्तः) नाशकर (अभिमातये) रोग के लिए (अस्मान्) हमारी (चित्राभिः) आश्चर्यमयी (अवतात्) रक्षाकर (अभिष्टिः) मनोरथों से (आ) भली प्रकार (नः) हमें (सुम्नेषु) सुखों में (यामय) रख ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान् तथा ज्ञानवान् तेरी सुमति में रहें । तू रोगों से हमें बचा । विचित्र मनोरथों के द्वारा हमारी रक्षा कर । तू हमें सुख में रख ॥२॥

१४२३—*रेणुः । सोमः । जगती ।*

१२ ३२३१२ ३२३१२ ३१२

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।

३२ ३१ २र ३२३ १२ ३२३१२र

चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥

पदार्थ—(त्रिः) त्रयीविद्याः—ऋक्, यजु तथा साम (अस्मै) इस जीव के लिए (सप्त) सात (धेनवः) वाणियां सात छन्द (दुदुह्रिरे) दोहन करती हैं (सत्यम्) सत्य (आशिरम्) परिपक्व ज्ञानरूप दुग्ध को (परमे) परमोत्कृष्ट (व्योमनि) व्यापक परमेश्वर में [स्थिति प्राप्त करने के लिए] (चत्वारि) चार प्रकार के (अन्या) अन्य (भुवनानि) कर्म—प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (निर्णिजे) पवित्र करने के लिए (चारूणि) उत्तम (चक्रे) करता है (यत्) जब (ऋतैः) सत्य विद्याओं से (अवर्धत) सम्पन्न होकर उन्नत होता है ॥१॥

भावार्थ—परमोत्कृष्ट पद व्यापक परमेश्वर में स्थिति पाने के लिए इस जीव को त्रयी विद्या और सात प्रकार की वाणियां ज्ञान का दोहन करती हैं । जब यह जीव सत्य विद्याओं से उन्नत हो जाता है तब आत्मशुद्धि के लिए चार उत्तम कर्म प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि को करता है ॥१॥

१४२४—*रेणुः । सोमः । जगती ।*

१ २र ३१२३१२ ३२उ ३१२३१ २

स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।

१२ ३२३२३१२ ३१२३२३१२३ १२३२

तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (भक्षमाणः) विभाजन करता हुआ (अमृतस्य) अमृत—अविनाशी सुख का (चारुणः) उत्तम (उभे) दोनों (द्यावा) द्यु और पृथिवी लोक को (काव्येन) वेदवाणी काव्य से (विशश्रथे) पूर्ण करता है (तेजिष्ठाः) तेजस्वी (अपः) कर्मों की (मंहना) महिमा से (परिव्यत) रक्षा करता है (यदी) जब (देवस्य) परमेश्वर के (श्रवसा) यश और ज्ञान से (सदः) परम पद को (विदुः) जानते हैं ॥२॥

भावार्थ—जब विद्वान् जन वेदज्ञान से उस देव के परम पद को प्राप्त कर लेते हैं तब वह अविनाशी पुरुष उत्तम सुख का वितरण करता हुआ द्यु और पृथिवी को परिपूर्ण कर देता है । अपनी महिमा से तेजस्वी और उत्तम कर्मों की रक्षा करता है ॥२॥

१४२५—*रेणुः । सोमः । जगती ।*

१२ ३१२र३१ २ ३१२३१

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।

१२३ १२३क २र ३१ २र ३१२

येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

पदार्थ—(ते) वे (अस्य) इसके (सन्तु) हों (केतवः) ज्ञान (अमृत्यवः) अमर (अदाभ्यासः) नाशरहित (जनुषी) जन्मों में (यैः) जिन से (नृम्णा) बल (देव्या) इन्द्रिय व्यवहार (च) और (पुनते) पवित्र होता है (आदित्) अनन्तर (राजानम्) प्रकाशस्वरूप (मनना) ज्ञान (अगृभ्णत) ग्रहण कराते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! तेरा ज्ञान सदा नाशरहित होवे । जिससे इस जन्म और दूसरे जन्म में तेरे इन्द्रिय-व्यवहार तथा बल पवित्र होते हैं । अन्त में यह ज्ञान ही सबके सम्राट् परमेश्वर को प्राप्त कराते हैं ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

१४२६—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३क २र ३ २ २ ३ १ २र ३१२

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभिमित्रावरुणा पूयमानः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१॥

पदार्थ—(अभि) उद्देश्य से (वायुम्) वायु के (वीति) गति प्रदान करने के लिए (अर्ष) प्राप्त कर (गृणानः) स्तुति किया हुआ (अभि) उद्देश्य से (मित्रावरुणा) प्राण, अपान या सूर्य और चन्द्रमा के (पूयमानः) स्वयं पवित्र और अन्यों को पवित्र करनेवाला (अभि) उद्देश्य से (नरम्) नेता (धीजवनं) बुद्धि से प्रेरणा पानेवाले (रथेष्ठाम्) शरीरधारी (इन्द्रं) जीव को (वृषणं) बलवान् (वज्रबाहुम्) शस्त्रधारी ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! स्तुति किया जानेवाला, स्वयं पवित्र और दूसरों को भी पवित्र करने हारा तू गति देने के लिए वायु, सूर्य, चन्द्रमा, मनुष्य सामान्य तथा बुद्धिजीवी शरीर आदि और शस्त्रधारक जीव आदि में व्यापक है ॥१॥

१४२७—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (वस्त्रा) वस्त्रों को (सुवसनानि) पहनने योग्य (अर्ष) प्राप्त करा (अभि) उद्देश्य से (धेनूः) गौएँ (सुदुघा) दूध देने वाली (पूयमानः) सबको पवित्र करता हुआ (अभि) भली भांति (चन्द्रा) चांदी (भर्तवे) भरण-पोषण करने के योग्य (नः) हमें (हिरण्या) सुवर्ण (अभि) भली भांति (अश्वान्) घोड़ों को (रथिनः) रथ के योग्य (देव) हे देव (सोम) हे परमेश्वर ॥२॥

भावार्थ—हे परमदेव परमेश्वर ! पवित्रस्वरूप तू हमें पहनने योग्य वस्त्र, दूध देनेवाली गौएँ, भरण-पोषण के लिए उपयोगी चांदी और सुवर्ण आदि तथा रथ के योग्य घोड़े प्रदान कर ॥२॥

१४२८—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १२ ३ १ २

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वाः पार्थिवा पूयमानः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २

अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥३॥

पदार्थ—(अभि) भली भांति (नः) हमें (अर्ष) प्रदान कर (दिव्या) सर्वोत्तम (वसूनि) धन (अभि) भली भांति (विश्वाः) सारे (पार्थिवा) पृथिवी में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ (पूयमानः) सबको पवित्र करनेवाला (अभि) भली भांति (येन) जिससे (द्रविणम्) संपदाओं को (अश्नवाम) भोग सकें ऐसा (आर्षेयं) वेदज्ञान को (जमदग्निवत्) आंख के समान (नः) हमें ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सबका पवित्र करनेवाला तू हमें उत्तम धन प्रदान कर । सारे पार्थिव पदार्थों को दे और वह चक्षु के समान वैदिक ज्योति कि जिससे हम सकल सम्पदाओं का भोग कर सकें ॥३॥

१४२९—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (जायथाः) प्रयत्न करता है या सन्नद्ध होता है (अपूर्व्य) हे अनादि (मघवन्) हे सब सम्पदाओं के स्वामिन् (वृत्रहत्याय) प्रलयकालिक अन्धकार के नाश के लिए (तत्) तब (पृथिवीम्) पृथिवी को (अप्रथयः) फैलाता है (तत्) उसी समय (अस्तभ्नः) स्थापित करता है (दिवम्) द्युलोक को (उत) और ॥१॥

भावार्थ—हे अनादि, अनन्त और सकल संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! जब तू प्रलयकालिक अन्धकार के हटाने के लिए प्रयत्नशील होता है तब पृथिवी का विस्तार और द्युलोक की रचना करता है ॥१॥

१४३०—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र

तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥२॥

पदार्थ—(तत्) उसी समय (ते) तेरा (यज्ञः) संसाररूप यज्ञ (अजायत) उत्पन्न होता है (तत्) उसी समय (अर्कः) सूर्य (उत) भी (हस्कृतिः) प्रकाश का कर्त्ता (तत्) उसी समय (विश्वम्) संसार को (अभिभूः) दबा कर स्थित (असि) होता है (यत्) जो (जातं) उत्पन्न हुआ है (यत्) जो (च) और (जन्त्वम्) होगा ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उसी समय तेरा संसाररूप यज्ञ उत्पन्न होता है । दिन का उत्पादक सूर्य भी उसी समय उत्पन्न होता है । तू जो कुछ भी पैदा हुआ है और होनेवाला है उस सबको दबा कर स्थित हो रहा है ॥२॥

१४३१—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

धर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥३॥

पदार्थ—(आमासु) कच्ची ओषधियों आदि द्रव्यों में (पक्वम्) पके हुए रस को (ऐरय) प्रेरणा करता है (आ) भली भांति (सूर्यम्) सूर्य को (रोहयः) स्थापित किया है (दिवि) द्युलोक में (घर्मम्) यज्ञ के (न) समान (सामम्) दुःखनिवारक (तपत) तपो (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (जुष्टम्) प्रसन्नता देनेवाले (गिर्वणसे) स्तुति करने योग्य (बृहत्) बृहत् साम ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू कच्ची ओषधियों में पक्के रस का संचार करता है और सूर्य को द्युलोक में स्थापित करता है । हे विद्वानो ! तुम कल्याणकारी यज्ञ के समान साम स्तुतियों के साथ तपस्या करो तथा स्तुति योग्य उस परमेश्वर के लिए प्रसन्नता के साधन बृहत् साम का गान करो ॥३॥

१४३२—अगस्त्यः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

१ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१॥

पदार्थ—(मत्सि) तृप्त करता है (अपायि) पी लिया है (ते) तेरा (महः) महान् (पात्रस्य) पात्र के (इव) समान (हरिवः) हे सर्वशक्तिमन् (मत्सरः) प्रसन्न करनेवाला (मदः) आनन्दरस (वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (ते) तेरा (वृष्णः) बलवान् (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (वाजी) बलदायक (सहस्रसातमः) असंख्य संपदाओं का दाता ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! महान् पात्र के समान तेरा प्रसन्न करनेवाला आनन्द रस जिसने पान कर लिया है वह उसको तृप्त करता है । सकल कामनाओं को पूरा करनेवाला ऐश्वर्यशाली वह आनन्दरस हमारे लिए बलदायक और असंख्य संपदाओं को दाता है ॥१॥

१४३३—अगस्त्यः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

सहावां इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (नः) हमें (ते) तेरा (गन्तु) प्राप्त हो (मत्सरः) आनन्ददायक (वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (मदः) आनन्द (वरेण्यः) श्रेष्ठ (सहावान्) सहायक (इन्द्र) हे परमेश्वर (सानसिः) सेवन करने के योग्य (पृतनाषाट्) काम-क्रोधादि शत्रुओं का दहन करनेवाला (अमर्त्यः) अमर है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्ददायक, सकल मनोरथों का पूरक सर्वथा सहायक, सेवनीय, कामादि शत्रुओं का विघातक तेरा नित्य आनन्द हमें प्राप्त हो ।२।

१४३४—अगस्त्यः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २

सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (हि) निश्चय से (शूरः) शक्तिशाली (सनिता) दाता (चोदयः) प्रेरित करता है (मनुषः) मनुष्य के (रथम्) शरीर को (सहावान्) दबाता है (दस्युम्) बुरे भाव को (अव्रतम्) कर्मरहित (ओषः) नष्टकर (पात्रम् न) पात्र के समान (शोचिषा) तेज से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वशक्तिमान् और महान् दाता तू मनुष्यों को शरीर प्रदान करता है तथा अपने तेज से शुभकर्म विघातक बुरे भाव को दबाता हुआ उसी तरह नष्ट करता है जैसे अग्नि तपाने से पात्र के मल को नष्ट करती है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

卐 द्वादशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

त्रयोदशोऽध्यायः

१४३५—कविः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मि दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) प्रदान कर (वृष्टिम्) वर्षा (आ) भली भांति (सु) सुन्दर (अपाम्) जलों की (ऊर्मिम्) तरंग [धारा] (दिवः) द्युलोक से (परि) सब प्रकार से (अयक्ष्माः) नीरोगकारी (बृहतीः) पर्याप्त (इषः) अन्नों को भी ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे कल्याणार्थ आकाशमण्डल से जल की धाराबद्ध वृष्टि कर और हमें नीरोगता देनेवाले अन्न आदि पदार्थ प्रदान कर ॥१॥

१४३६—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ २
तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥

पदार्थ—(तया) उस (पवस्व) पवित्र कर (धारया) वेदवाणी से (यया) जिससे (गावः) ऋत्विग् लोग (इह) इसमें (आगमन्) सब कर्म को जानते हैं (जन्यासः) जनता का हित करनेवाली (उप) समीप (नः) हमारे (गृहम्) यज्ञशाला में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें उस वेदवाणी से पवित्र कर जिसके द्वारा ऋत्विज् लोग यज्ञशाला में समस्त कर्मों को जान कर करते हैं ॥२॥

१४३७—कविः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३॥

पदार्थ—(घृतम्) तेज को (पवस्व) प्रदान कर (धारया) वेदवाणी के द्वारा (यज्ञेषु) उत्तम यज्ञादि कर्मों में (देववीतमः) विद्वानों के अत्यन्त समीप (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (वृष्टिम्) वर्षा को (आपव) कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ज्ञानियों के अत्यन्त समीप है । यज्ञों में हमारे लिए वेदज्ञान द्वारा तेज प्रदान कर और हम पर आनन्द की वर्षा कर ॥३॥

१४३८—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३क १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सः नः ऊर्जे व्या३व्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे (ऊर्जे) बल के लिए (वि) विशेषरूप से (अव्ययम्) अविनाशी (पवित्रम्) पतितपावन (धाव) प्राप्त करा (धारया) वेदवाणी के द्वारा (देवासः) विद्वान् सूक्ष्मदर्शी पुरुष (शृणवन्) सुनते हैं (हि) निश्चय (कम्) आनन्दस्वरूप ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे आत्मिक बल की वृष्टि के लिए अपने अविनाशी और पवित्र तेज को वेदवाणी द्वारा प्राप्त करा । क्योंकि हे भगवन्, विद्वान् जन ही तुझ आनन्दस्वरूप को जान-सुन सकते हैं ॥४॥

१४३९—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥५॥

पदार्थ—(पवमानः) सर्वव्यापक (असिष्यदत्) वर्षा करता है (रक्षांसि) घातक भावों को (अपजंघनत्) नष्ट करता हुआ (प्रत्नवत्) पूर्वकल्प के समान (रोचयन्) प्रकाशित करता हुआ (रुचः) सूर्य आदि तेजों को ॥५॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर पूर्वकल्प के समान घातक भावों का नाश तथा सूर्य आदि तेजों का प्रकाश करता हुआ वृष्टि करता है ॥५॥

१४४०—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१॥

पदार्थ—(प्रति) ओर (अस्मै) इसके लिए (पिपीषते) रक्षा करनेवाले (विश्वानि) सब कुछ (विदुषे) जाननेवाले (भर) भरपूर कर (अरङ्गमाय) पर्याप्त गतिशील (जग्मये) संग्रामों में जाने वाले (अपश्चादध्वने) सदा अग्रगामी (नरः) नेता ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग प्रजा की रक्षा की इच्छा करनेवाले, सब विषयों के ज्ञाता, संग्रामों में जाने तथा सर्वदा अग्रगामी रहनेवाले इस सेनापति के लिए सारी आवश्यक वस्तुएँ भरपूर कर रखो ॥१॥

१४४१—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (ईम्) पादपूरक (एनम्) इसको (प्रत्येतन) प्रतीत करो (सोमेभिः) ऐश्वर्यों के साथ (सोमपातमम्) धन के अत्यन्त रक्षक (अमत्रेभिः) पात्रों के साथ (ऋजीषिणम्) धन-संग्रह करनेवाले (इन्द्रम्) सभाध्यक्ष को (सुतेभिः) सुसम्पन्न (इन्दुभिः) सोम से ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्य धनों के साथ अनेक धनों की रक्षा करनेवाले धन-संग्रह करने में समर्थ इस सभाध्यक्ष का नाना प्रकार के पुष्टिदायक खाद्य पदार्थों से भरे हुए पात्रों से स्वागत करो ॥२॥

१४४२—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३॥

पदार्थ—(यदी) यदि (सुतेभिः) सुसम्पन्न (इन्दुभिः) आनन्ददायक (सोमेभिः) ऐश्वर्यों से (प्रतिभूषत) सुशोभित करो (वेद) जानता है (विश्वस्य) सबके (मेधिरः) बुद्धिमान् (धृषत्) धर्म के द्रोहियों को दबानेवाला (तन्तम्) उन उनको (इत्) ही (आ) भली भांति (ईषते) प्राप्त करता है ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग सुसम्पन्न और सुखदायी ऐश्वर्यों से सभाध्यक्ष को सुशोभित करो तो वह बुद्धिमान् तथा धर्म-द्रोहियों को दबानेवाला सब विषयों को जानकर उनको यथायोग्य तुम्हारे लिए उपस्थित करेगा ॥३॥

१४४३—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥४॥

पदार्थ—(अस्मै अस्मै) इस इसके लिए (इत्) ही (अन्धसः) अन्न के (अध्वर्यो) हे अहिंसा के पक्षपाती (प्र भर) पूर्ण कर (सुतम्) रस को (कुवित्) बहुत (समस्य) सब (जेन्यस्य) शत्रु की (शर्धतः) उत्साही (अभिशस्तेः) हिंसा से (अवस्वरत्) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थ—हे अहिंसा के पक्षपाती पुरुष ! इन इन सभा-सेनाध्यक्षों के लिए अन्न के सारभूत रस को प्रदान करो । ये लोग जयशील, उत्साही, शत्रु की ओर से किए जानेवाले आक्रमणों से बचाते हैं ॥४॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१४४४—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥१॥

पदार्थ—(बभ्रवे) पालन-पोषण करनेवाले (नु) पादपूरक (स्वतवसे) स्वयं बलवान् (अरुणाय) तेजस्वी (दिविस्पृशे) द्युलोक पर्यन्त व्यापक (सोमाय) परमेश्वर के लिए (गाथम्) सामगान (अर्चत) करो ॥१॥

भावार्थ—हे उपासको ! तुम लोग पालन-पोषण करनेवाले, स्वयं बलशाली, तेजस्वी तथा सर्वव्यापक परमेश्वर का साम मन्त्र से गुणगान करो ॥१॥

१४४५—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥२॥

पदार्थ—(हस्तच्युतेभिः) हस्त नक्षत्र से च्युत हुए [बरसते हुए] (अद्रिभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमलता आदि ओषधियां तथा फसली पौदों को (पुनीतन) पवित्र कर (मधौ) वसन्त ऋतु में (मधु) मधुरता, शोभा, (आधावत) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हस्त नक्षत्र में बरसने वाले मेघों से उत्पन्न हुई सोमलता आदि ओषधियों तथा फसली पौदों को पुष्ट करता है तथा वसन्त ऋतु में शोभा और मधुरता प्रदान करता है ॥२॥

१४४६—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥३॥

पदार्थ—(नमसा) अन्न और जल से (इत्) ही (उपसीदत) सेवा करो (दध्ना) इन्द्रियों से (अभिश्रीणीतन) परिपक्व करो (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् आत्मा को (इन्द्रे) परमेश्वर की शरण में (दधातन) धारण करो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ऐश्वर्यवान् आत्मा को अन्न-जल से तृप्त तथा इन्द्रियों से परिपक्व करो । उसे परमेश्वर की शरण में पहुंचाओ ॥३॥

१४४७—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥४॥

पदार्थ—(अमित्रहा) अज्ञान और रोग आदियों का नाश करनेवाला (विचर्षणिः) सबका साक्षी (पवस्व) प्राप्त करा (सोम) हे परमेश्वर (शं) सुख (गवे) इन्द्रियों के लिए (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (अनुकामकृत्) सफल मनोरथ करनेवाला ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अज्ञान और रोगादि शत्रुओं का नाशकर्त्ता, सबका साक्षी तथा विद्वानों को सफलमनोरथ करनेवाला है । तू हमारी इन्द्रियों को शान्ति दे ॥४॥

१४४८—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्राय) परमेश्वर के (सोम) हे आत्मन् (पातवे) पान करने के लिए (मदाय) आनन्द को (परिषिच्यसे) सब प्रकार से सींचा जाता है (मनश्चित्) मन में चेतना देनेवाला (मनसस्पतिः) मन का स्वामी ॥५॥

भावार्थ—हे आत्मन् ! मन में चेतनता देनेवाला तथा उसका स्वामी तू परमेश्वर के आनन्द का पान करने के लिए सब प्रकार से ज्ञान द्वारा सींचा जाता है ॥५॥

१४४९—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६॥

पदार्थ—(पवमान) हे पवित्रकारक (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम (रयिम्) धन को (सोम) हे विद्वान् (रिरीहि) दे (नः) हमें (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (नः) हमें (युजा) युक्त कर ॥६॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष ! तू हमें उत्तम पराक्रम तथा ज्ञान धन प्रदान कर । तू हमें परमेश्वर के साथ युक्त करा ॥६॥

१४५०—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २
उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्तम (ह) प्रसिद्ध (इत्) ही (अभि) सब प्रकार से (श्रुतामघं) प्रसिद्ध धनी (वृषभम्) बलवान् को (नर्यापसम्) मनुष्यों का उपकार करनेवाले कर्म से युक्त (अस्तारम्) दानी को (एषि) प्राप्त होता है (सूर्य) हे सूर्य के समान तेजस्वी [इन्द्र=विद्वान् पुरुष] ॥१॥

भावार्थ—हे सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! तू प्रसिद्ध धनी, बलवान् मनुष्यों का उपकार करनेवाले तथा दानी आदि सभी को प्राप्त होता है ॥१॥

१४५१—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र १ २ ३ १ २
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२॥

पदार्थ—(नव) नव संख्या (यः) जो (नवतिं) नव्वे [९०] के समान (पुरः) संघातों का (बिभेद) छिन्न-भिन्न करता है (बाह्वोजसा) विरोधी किरणों के तेज बल से (अहिं) मेघ को (च) भी (वृत्रहा) अन्धकार का नाशक (अवधीत्) नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—जो अन्धकार का नाश करनेवाला सूर्य नव्वे (९०) को नव संख्या के समान विरोधी किरणों के तेजोबल से मेघस्थ जल-संघातों को छिन्न-भिन्न करता है वही मेघ को भी नष्ट करता है ॥२॥

१४५२—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारा (इन्द्रः) परमेश्वर (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र (अश्वावत्) अश्वयुक्त (गोमद्) गौओं से युक्त (यवमत्) यव आदि धान्यों से युक्त (ऊरुधारेव) गाय के दुग्ध की धारा के समान (दोहते) देता है ॥३॥

भावार्थ—हमारा मित्र, कल्याणकारक वह परमेश्वर दूध की धार के समान गौ, घोड़े और यव आदि धान्यों से युक्त धन को हमें प्रदान करता है ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१४५३—विभ्राट् । सूर्यः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥१॥

पदार्थ—(विभ्राट्) प्रकाशस्वरूप (बृहत्) महान् (पिबतु) रक्षा करे (सोम्यं) ओषधियों में होनेवाले (मधु) रस को (आयुः) आयु को (दधत्) धारण करे (यज्ञपतौ) यजमान में (अविह्रुतम्) उपद्रवरहित (वातजूतः) वायु का प्रेरक (यः) जो (अभिरक्षति) भली भांति रक्षा करता है (त्मना) स्वयं (प्रजाः) प्रजा का (पिपर्ति) पूर्ण करता है (बहुधा) बहुत प्रकार से (विराजति) विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशस्वरूप, महान् तथा वायु को प्रेरणा देनेवाला जो परमेश्वर स्वयं प्रजा की अनेक प्रकार से पूर्ति और रक्षा करता है तथा सब में विराजमान हो रहा है वह ओषधियों के रस की रक्षा करे तथा यजमान को दीर्घायु दे ॥१॥

१४५४—विभ्राट् । सूर्यः । जगती ।

३ २ ३ १ २र २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

पदार्थ—(विभ्राट्) तेजस्वी (बृहत्) महान् (सुभृतं) सबको धारण करनेवाले [सर्वाधार] (वाजसातमं) अन्न, ज्ञान और बल का दाता (धर्मन्) धर्म पर (दिवः) द्युलोक के (धरुणे) धारक (सत्यम्) अविनाशी (अर्पितम्) स्थित (अमित्रहा) रोग आदि का नाशक (वृत्रहा) अज्ञाननाशक (दस्युहन्तमं) विघ्ननाशक (ज्योतिः) परम ज्योति (जज्ञे) जाना जाता है (असुरहा) आसुरी वृत्तियों का विघातक (सपत्नहा) कामादि शत्रुओं का नाशक ॥२॥

भावार्थ—तेजस्वी, महान्, सर्वाधार, बल और ज्ञान का दाता, द्युलोक को धारण करनेवाले धर्म पर स्थित, अविनाशी, रोग, अज्ञान, आसुरी वृत्ति, कामादि शत्रु तथा नाना विघ्नों का नाश करनेवाला परम ज्योति परमेश्वर विद्वानों से जाना जाता है ॥२॥

१४५५—विभ्राट् । सूर्यः । जगती ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

पदार्थ—(इदं) यह (श्रेष्ठं) श्रेष्ठ (ज्योतिषां) प्रकाशों का भी (ज्योतिः) प्रकाशक (उत्तमं) उत्तम (विश्वजित्) विश्व पर विजय करनेवाला (धनजित्) धन पर विजय करनेवाला (उच्यते) कहा जाता है (बृहत्) महान् (विश्वभ्राट्) विश्व का प्रकाशक (भ्राजः) तेजस्वी (महि) महान् (सूर्यः) परमेश्वर (दृशे) देखने के लिए (उरु) महान् (पप्रथे) विस्तार करता है (सहः) अज्ञाननाशक (ओजः) तेज का (अच्युतम्) अविनाशी ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर श्रेष्ठ, प्रकाशकों का प्रकाशक परमज्योति कहा जाता है । विश्व पर विजय पानेवाला, धन का जेता, विश्व का प्रकाशक तथा महान् वह देखने के लिए अज्ञान-नाशक, अविनाशी तथा महान् तेज का विस्तार करता है ॥३॥

१४५६—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे विद्वान् (क्रतुम्) ज्ञान (नः) हमें (आभर) दे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिए (यथा) जैसे (शिक्षा) शिक्षा दे (नः) हमें (अस्मिन्) इस (पुरुहूत) हे बहुतों से अभिमन्त्रित किए जानेवाले (यामनि) यज्ञ में (जीवाः) साधारण जीव [साधारण जन] (ज्योतिः) परम ज्योति को (अशीमहि) प्राप्त करें ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वप्रिय विद्वान् पुरुष ! तू हमें ज्ञान से परिपूर्ण कर । पुत्रों को पिता के समान हमें शिक्षा दे । साधारण जन इस यज्ञ में तेरी कृपा से परम ज्योति को प्राप्त करें ॥१॥

१४५७—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासोऽवक्रमुः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२॥

पदार्थ—(**मा**) नहीं (**नः**) हमें (**अज्ञाता**) अज्ञात (**वृजना**) उपद्रवी (**दुराध्यः**) हठी (**मा**) नहीं (**अशिवासः**) अभद्र (**अवक्रमुः**) आक्रमण करें (**त्वया**) तुझ से (**वयं**) हम (**प्रवतः**) नम्र (**शश्वतीः**) सनातन (**अपः**) कर्मों को (**अति**) अतिक्रमण (**शूर**) हे शूर (**तरामसि**) तरते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अज्ञात, उपद्रवी, दुराग्रही तथा अभद्र लोग हमें कभी न सतावें । नम्र हम लोग तेरी कृपा से पुराने कर्म-बन्धनों को पार कर जावें ॥२॥

१४५८—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥३॥

पदार्थ—(**अद्य अद्य**) आज (**श्वः श्वः**) कल (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**त्रास्व**) रक्षा करता है (**परे च**) परसों भी (**नः**) हमारी (**विश्वा**) सारे (**च**) और (**नः**) हम (**जरितृन्**) भक्तों की (**सत्पते**) हे सज्जनों के पालक ! (**अहा**) प्रतिदिन (**दिवा**) दिन में (**नक्तं**) रात्रि (**च**) और (**रक्षिषः**) रक्षा करता है ॥३॥

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! तू आज, कल तथा परसों हमारी रक्षा करता है । प्रति दिन हम भक्तों की तू रात-दिन रक्षा करता है ॥३॥

१४५९—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥४॥

पदार्थ—(**प्रभंगी**) प्रलय करनेवाला (**शूरः**) सर्व शक्तिमान् (**मघवा**) यज्ञों का स्वामी (**तुवीमघः**) सम्पदाओं का स्वामी (**संमिश्लः**) सर्वव्यापक (**वीर्याय**) बल के लिए (**कम्**) सुखस्वरूप (**उभा**) दोनों (**ते**) तेरी (**बाहू**) मित्र और वरुण=प्राण और उदान शक्तियां (**वृषणा**) वृष्टि करनेवाली (**शतक्रतो**) हे सर्वज्ञ (**नि**) निश्चय (**या**) जो (**वज्रं**) जल को (**मिमिक्षतुः**) बरसाती हैं ॥४॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू प्रलयकर्त्ता, सर्वशक्तिमान् सकल यज्ञ और संपूर्ण सम्पदाओं का स्वामी, सर्वव्यापक तथा पराक्रम के लिए सुखस्वरूप है । वर्षा करनेवाली तेरी प्राण और उदान शक्तियां जल बरसाती हैं ॥४॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१४६०—वसिष्ठः । सरस्वान् । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—(**जनीयन्तः**) कलत्र चाहते हुए (**नु**) आज (**अग्रवः**) उपासक (**पुत्रीयन्तः**) पुत्रों की इच्छा करनेवाले (**सुदानवः**) उत्तम दानी (**सरस्वन्तम्**) वाणी के स्वामी परमेश्वर को (**हवामहे**) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थ—स्त्री-पुत्रों को चाहते हुए, उत्तम दानी हम उपासक परमेश्वर को स्मरण करते हैं ॥१॥

१४६१—भरद्वाजः । सरस्वती । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१॥

पदार्थ—(**उत**) और (**नः**) हमारा (**प्रिया**) कल्याण करनेवाला (**प्रियासु**) कल्याण करनेवालियों में (**सप्तस्वसा**) सात छन्दों वाली (**सुजुष्टा**) भली भांति अभ्यास की हुई (**सरस्वती**) वेदवाणी (**स्तोम्या**) प्रशंसा के योग्य (**भूत्**) हो ॥१॥

भावार्थ—अत्यन्त कल्याणकारिणी, सात छन्दों से युक्त और अभ्यास की गई वेदवाणी प्रशंसा के योग्य हो ॥१॥

१४६२—विश्वामित्रः । सविता । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥

पदार्थ—(**तत्**) वह (**सवितुः**) सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का (**वरेण्यं**) श्रेष्ठ (**भर्गः**) तेज (**देवस्य**) देव का (**धीमहि**) धारण करते हैं (**धियः**) बुद्धियों को (**यः**) जो (**नः**) हमारी (**प्रचोदयात्**) प्रेरित करता है ॥१॥

भावार्थ—जो हमारी बुद्धियों को सदा सत्कर्मों में प्रेरित करता है उस सृष्टिकर्त्ता परमात्मदेव के श्रेष्ठ तेज को हम धारण करते हैं ॥१॥

१४६३—मेधातिथिः । ब्रह्मणस्पतिः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥२॥

पदार्थ—(**सोमानां**) अध्ययनाध्यापन यज्ञों के (**स्वरणम्**) वक्ता (**कृणुहि**) कर (**ब्रह्मणस्पते**) हे वेद विद्या के रक्षक विद्वन् (**कक्षीवन्तम्**) अनेक विद्याओं का ज्ञाता (**यः**) जो (**औशिजः**) मेधावी का पुत्र ॥२॥

भावार्थ—हे वेदविद्या के रक्षक विद्वन् ! तू मेधावी का पुत्र है, अतः तू हमें अध्यापन-अध्ययन आदि यज्ञों का वक्ता तथा अनेक विद्याओं का ज्ञाता बना ॥२॥

१४६४—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २३२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वान् (**आयूंषि**) आयुओं को (**पवसे**) प्राप्त कराता है (**आसुव**) प्रदान कर (**ऊर्जम्**) बल (**इषम्**) ज्ञान को (**च**) और (**नः**) हमें (**आरे**) दूर (**बाधस्व**) भगा (**दुच्छुनाम्**) दुर्गुणों को ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू हमें आयु प्राप्त कराता है । तू हमें बल और ज्ञान प्रदान कर तथा हमारे दुर्गुणों को दूर कर ॥३॥

१४६५—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।

१ २ ३ २ ३ १ २

महि वां क्षत्रं देवेषु ॥१॥

पदार्थ—(**ता**) वे दोनों (**नः**) हमारे (**शक्तं**) समर्थ हैं (**पार्थिवस्य**) [स्थूल] पार्थिव शरीरवाले (**महः**) महान् (**रायः**) धन के (**दिव्यस्य**) इन्द्रिय सम्बन्धी सूक्ष्म शरीर का (**महि**) महान् (**वां**) अथवा (**क्षत्रम्**) बल (**देवेषु**) इन्द्रियों में ॥१॥

भावार्थ—प्राण और अपान दोनों हमारे स्थूल और सूक्ष्म शरीर-सम्बन्धी महान् सम्पत्ति के स्थिर करने में समर्थ हैं । हमारी इन्द्रियों में इनका बल महान् है ॥१॥

१४६६—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्द्धेते ॥२॥

पदार्थ—(**ऋतम्**) ज्ञान का (**ऋतेन**) सत्य नियम से (**सपन्ता**) सम्पर्क रखते हुए (**इषिरं**) कमनीय (**दक्षम्**) बल को (**आशाते**) अधिष्ठातारूप से व्याप्त करते हैं (**अद्रुहौ**) द्रोहरहित (**देवौ**) देव (**वर्द्धेते**) बढ़ाते हैं ॥२॥

भावार्थ—सत्य नियम से ज्ञान का सम्पर्क रखनेवाले, द्रोहरहित, परमेश्वर और जीवात्मदेव कमनीय बल के अधिष्ठाता और बढ़ाने वाले हैं ॥२॥

१४६७—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३क २र ३२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥३॥

पदार्थ—(**वृष्टिद्यावा**) द्युलोक से वृष्टि के द्वारा (**रीत्यापा**) जल देनेवाले (**इषः**) अन्न के (**पती**) पालक (**दानुमत्याः**) दान करने योग्य (**बृहन्तं**) महान् (**गर्तम्**) आकाश को (**आशाते**) व्याप्त करते हैं ॥३॥

भावार्थ—वर्षा द्वारा जल देनेवाले, दानयोग्य, अन्न के पालक प्राण और उदान महान् अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं ॥३॥

१४६८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥१॥

पदार्थ—(**युञ्जन्ति**) युक्त होते हैं (**ब्रध्नम्**) महान् (**अरुषम्**) मर्म की रक्षा करनेवाले [तेजस्वी] (**चरन्तम्**) व्यापक (**परि**) सब प्रकार से (**तस्थुषः**) स्थावरों का (**रोचन्ते**) प्रकाशमान होते हैं (**रोचना**) ज्ञानयुक्त (**दिवि**) उत्तम ज्ञान प्रकाश में ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानयुक्त जो लोग महान्, तेजस्वी तथा स्थावर और जंगमों में व्यापक परमेश्वर से युक्त होते हैं वे विज्ञान के प्रकाश में प्रकाशित होते हैं ॥१॥

१४६९—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२॥

पदार्थ—(**युञ्जन्ति**) युक्त करते हैं (**अस्य**) इस जीव के (**काम्या**) कमनीय (**हरी**) हरणशील (**विपक्षसा**) विविध प्रकार से ग्रहण किए गए (**रथे**)

रथ में (शोणा) लाल रंग के (घृष्णू) बलवान् (नृवाहसा) मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार लोग कमनीय, विविध प्रकार से ग्रहण किए गए, बलवान्, लाल रंग के तथा मनुष्यों को एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाने में समर्थ घोड़ों को रथ में जोड़ते हैं वैसे ही जीव अपने को परमेश्वर में युक्त करें ।२।

१४७०—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २　　३ १ २　२ ३ १ २
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥३॥

पदार्थ—(केतुं) ज्ञान को (कृण्वन्) करते हुए (अकेतवे) अज्ञानी के लिए (पेशः) स्वर्ण आदि को (मर्याः) हे मनुष्यो (अपेशसे) निर्धन के लिए (समुषद्भिः) इसकी कामना करनेवाले विद्वानों के साथ (अजायथाः) सुखी होओ ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अज्ञानी के लिए ज्ञान का प्रकाश तथा निर्धन के लिए स्वर्ण आदि सम्पत्ति को देनेवाले परमेश्वर के उपासक विद्वानों के साथ सुखी होओ ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१४७१—उशनाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १　२र ३ १ २　३ १ २　३ १ २
अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
२ ३ १ २ ३ १　२र ३ २उ　३ १ २ ३ १ २ ३　१ २
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१॥

पदार्थ—(अयं) यह (सोमः) जीव (इन्द्र) हे परमेश्वर (तुभ्यं) तेरी प्राप्ति के लिए (सुन्वे) जन्म ग्रहण करता है (तुभ्यं) तेरे लिए ही (पवते) पवित्र होता है (त्वम्) तू (अस्य) इसकी (पाहि) रक्षा कर (त्वं) तू (ह) ही (यं) जिसको (चकृषे) ज्ञानसंपन्न करता है (त्वं) तू (ववृषे) चुनता है (इन्दुं) ऐश्वर्यवान् (मदाय) आनन्द के लिए (युज्याय) योग के लिए (सोमम्) जीव को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जिस ऐश्वर्यशाली जीव को आनन्द और योग के लिए ज्ञानसंपन्न करता तथा चुन लेता है वह संसार में तेरी प्राप्ति के लिये जन्म ग्रहण करता और तेरे ही लिए पवित्र होता है । तू इसकी रक्षा कर ॥१॥

१४७२—उशनाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २　　३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २
स ईं रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
२ ३　१ २　३क २र ३ १ २　३ १ २　३ १ २
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (ईं) इसको (रथो न) रथ के समान (भुरिषाड्) भार सहने वाले (अयोजि) युक्त करता है (महः) महान् (पुरूणि) बहुत (सातये) देने के लिए (वसूनि) धनों को (आत् ईम्) इसके बाद (विश्वा) सारे (नहुष्याणि) मनुष्य-सम्बन्धी (जाता) सृष्टियां [प्रजा] (स्वर्षाता) सुखदाता (वने) भजनीय [परमेश्वर की शरण में] (ऊर्ध्वा) उन्नति (नवन्त) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—महान् परमेश्वर भार सहन करनेवाले रथ के समान पर्याप्त धन देने के लिए उस जीव को युक्त करता है । भजन के योग्य सुखदायक परमेश्वर की शरण में सारी मनुष्य प्रजा उन्नति लाभ करती है ॥२॥

१४७३—उशनाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २उ　३ १　२र　३ १ २　　३ २र　३ २
शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २　　३ १ २　　३ २उ　　३ २
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण् न यज्ञः ॥३॥

पदार्थ—(शुष्मी) बलवान् (शर्धः) बल के (न) समान (मारुतं) वायु-सम्बन्धी (पवस्व) पवित्र कर (अनभिशस्ता) अनिन्दित (दिव्या) द्युलोक में होनेवाली [दिव्य] (यथा) समान (विट्) प्रजा के (आपः) जल के समान (मक्षू) शीघ्र (सुमतिः) शोभन मतिवाला (भव) है (नः) हमारे लिए (सहस्राप्साः) अनेक वेशवाला (पृतनाषाड्) सेनापति के (न) समान (यज्ञः) पूज्य ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वायु के बल के समान बलवान् द्युलोक की प्रजा सूर्य आदि के समान पवित्र है । तू हमें जल के समान पवित्र कर तथा हमारा सुमति-दाता हो । तू अनेक वेशधारी सेनापति के समान पूजनीय है ॥३॥

१४७४—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २　३ २ ३ २ ३ १ २　३ २　३ २ ३ १ २ ३　१ २
त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥१॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (अग्ने) हे विद्वन् (यज्ञानां) श्रेष्ठ कर्मों का (होता) कर्त्ता (विश्वेषाम्) सारे (हितः) कल्याणकारी (देवेभिः) उत्तम गुणों द्वारा (मानुषे) मनुष्य (जने) समाज में ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सारे शुभ कर्मों का कर्त्ता तथा अपने उत्तम गुणों से मनुष्य समाज का हितकारी है ॥१॥

१४७५—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २　३ २　२ ३ १ २ ३ १ २
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमें (मन्द्राभिः) आनन्ददायक विद्या से युक्त (अध्वरे) कल्याणकारी व्यवहार में (जिह्वाभिः) वाणियों से (यजा) संगत कर (महः) महान् (आ) भली भांति (देवान्) उत्तम गुणों को (वक्षि) प्राप्त करा (यक्षि) दे (च) और ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू कल्याणकारी व्यवहार में हमें आनन्ददायक वाक् शक्तियों से युक्त कर । हमें उत्तम गुण प्रदान कर ॥२॥

१४७६—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३　१ २ ३ १ २　३ १ २ ३ १ २　१ २ ३ १ २
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३॥

पदार्थ—(वेत्था) जानता है (हि) निश्चय (वेधः) हे विधाता (अध्वनः) बड़े मार्गों को (पथः) छोटे मार्गों को (च) और (देव) हे देव (अञ्जसा) ठीक ठीक (अग्ने) हे परमेश्वर (यज्ञेषु) सांसारिक तथा पारमार्थिक व्यवहारों में (सुक्रतो) हे उत्तम कर्मवाले ॥३॥

भावार्थ—हे विधाता, उत्तम कर्मवाले परमात्मदेव ! तू लौकिक तथा पारमार्थिक व्यवहारों के ऊँचे नीचे मार्गों को ठीक-ठीक जानता है । अतः हमें उत्तम मार्ग पर चला ॥३॥

१४७७—देवश्रवाः, देववातो वा । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १　२र ३ १ २　३ १ २　३ १ २　३ १ २
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥१॥

पदार्थ—(होता) कर्मफल दाता (देवः) देव (अमर्त्यः) अविनाशी (पुरस्ताद्) प्रथम (एति) विद्यमान होता है (मायया) बुद्धि से (विदथानि) विविध प्रकार के ज्ञानों को (चोदयन्) प्रेरणा करता हुआ ॥१॥

भावार्थ—कर्मफल दाता, सबका देव परमेश्वर अनेक प्रकार के विज्ञानों की प्रेरणा करता हुआ अपनी ज्ञानशक्ति के साथ सृष्टि के आरम्भ से भी पहले विद्यमान रहता है ॥१॥

१४७८—देवश्रवा देववातो वा । अग्निः । गायत्री ।

३ १　२र　　३ २ ३ १ २　　१ २ ३ २ ३ १ २
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥२॥

पदार्थ—(वाजी) ज्ञानवान् और बलवान् (वाजेषु) संग्रामों में (धीयते) नियुक्त किया जाता है (अध्वरेषु) कल्याणकारी यज्ञों में (प्रणीयते) नेता होता है क्योंकि (विप्रः) ज्ञानी (यज्ञस्य) यज्ञ आदि उत्तम व्यवहारों का (साधनः) साधन [सिद्ध करनेवाला] होता है ॥२॥

भावार्थ—बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष संग्रामों तथा कल्याणकारी यज्ञों का नेता होता है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ही उत्तम और व्यावहारिक कार्यों को सिद्ध कर सकता है ॥२॥

१४७९—देवश्रवा देववातो वा । अग्निः । गायत्री ।

३ १　२३　१ २　३ २ ३　२ ३ १ २
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।
१ २　३ २ ३ १ २
दक्षस्य पितरं तना ॥३॥

पदार्थ—(धिया) ज्ञान से (चक्रे) करता है (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ (भूतानां) प्राणिमात्र का (गर्भम्) गर्भ (आदधे) धारण करता है (दक्षस्य) बल का (पितरम्) उत्पादक (तना) संपदायें ॥३॥

भावार्थ—सब से श्रेष्ठ परमेश्वर प्राणिमात्र के गर्भ को धारण करता और सबके लिए बल देनेवाली सम्पदायें उत्पन्न करता है ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१४८०—हर्यतः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २　३ २ ३ १ २　३ १ २
आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।
३ १ २　३ २
रसा दधीत वृषभम् ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (सुते) संसार में (सिञ्चत) सींचो (श्रियम्) राजलक्ष्मी को (रोदस्योः) द्युलोक और पृथिवी में (अभिश्रियम्) कीर्ति फैलानेवाली (रसा) हे आनन्द देनेवाले मनुष्य (दधीत) धारण करो (वृषभम्) सकल कामनाओं के सफल करनेवाले को ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस संसार में यश देनेवाली राजलक्ष्मी को प्राप्त कर पूर्ण करो तथा सकल कामनाओं को सफल करनेवाले परमेश्वर का ध्यान भी करो ।१।

१४८१—हर्यतः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २क २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ते जानत स्वमोक्यँ३सं वत्सासो न मातृभिः ।
३ १ २ ३ १ २
मिथो नसन्त जामिभिः ।।२।।

पदार्थ—(ते) तुम सब (जानत) जानो (स्वम्) अपना (ओक्यम्) आश्रय (सम्) सम्यक् (वत्सासः) बच्चों के (न) समान (मातृभिः) माताओं के साथ (मिथः) परस्पर (नसन्त) इकट्ठे होओ (जामिभिः) कुटुम्बियों के साथ ।२।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग माताओं के साथ बच्चों के समान अपने कुटुम्बियों के साथ परस्पर मिलो और अपना आश्रय परमेश्वर को जानो ।।२।।

१४८२—हर्यतः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २उ ३क २र
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ।।३।।

पदार्थ—(उप) समीप (स्रक्वेषु) घरों में (बप्सतः) उपभोग करनेवाले (कृण्वते) करते हैं (धरुणम्) धारण करनेवाले (दिवि) अन्तरिक्ष में (इन्द्रे) सब सम्पदाओं के स्वामी (अग्ना) परमेश्वर मे (नमः) नमस्कार (स्वः) सुख का ।।३।।

भावार्थ—गृहों में रहकर जीवनदाता सुखों का उपभोग करते हुए पुरुष सब संपदाओं के स्वामी परमेश्वर को नमस्कार करते हैं ।।३।।

१४८३—बृहद्दिवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ १ ३ २ ३ १ २
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ।।१।।

पदार्थ—(तत्) परमेश्वर (इत्) ही (आस) व्यापक हो रहा है (भुवनेषु) लोकों में (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ अनादि (यतः) जिस निमित्त कारण से (जज्ञे) उत्पन्न हुआ (उग्रः) तेजस्वी (त्वेषनृम्णः) दीप्तबलवाला (सद्यः) शीघ्र (जज्ञानः) उत्पन्न [उदय] (निरिणाति) नष्ट करता है (शत्रून्) मनुष्यों को दुःख देनेवाले रोग तथा कृमियों को (अनु) अनुकूलता से (यं) जिसकी (विश्वे) सारे (मदन्ति) सुखी होते हैं (ऊमाः) प्राणी ।।१।।

भावार्थ—सर्व श्रेष्ठ तथा अनादि परमेश्वर लोकों में व्यापक हो रहा है। उस निमित्तकारण से ही महान् तेजबलवाला सूर्य उत्पन्न हुआ। वह सूर्य उदय होता हुआ प्राणियों को पीडा देनेवाले रोग तथा कृमियों का विनाश करता है । उसकी अनुकूलता से सारे प्राणी सुखी होते हैं।।१।।

१४८४—बृहद्दिवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वावृधानः शवसा भूर्योजा शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ।।२।।

पदार्थ—(वावृधाना) बढ़ाता हुआ (शवसा) बल से (भूर्योजा) अत्यन्त बलशाली (शत्रुः) विघ्नों का नाश करनेवाला (दासाय) शुभकर्मों के विघातक पापी के लिए (भियसं) भय (दधाति) धारण करता है (अव्यनत्) स्थावर (च) और (व्यनत्) जङ्गम (च) भी (सस्नि) पवित्र (सं) सम्यक् (ते) तेरी (नवन्त) जाते हैं (प्रभृता) शास्त्र विज्ञान से भरे हुए लोग (मदेषु) स्तुतियों में ।।२।।

भावार्थ—अत्यन्त बलशाली तथा विघ्नों का निवारक परमेश्वर अपनी शक्ति से जगत् को बढ़ाता हुआ पापी को भय देता है। वह स्थावर तथा जंगम सभी को पवित्र करता है। हे परमेश्वर ! शास्त्रज्ञान से पूर्ण लोग तेरी ही स्तुतियों में सम्मिलित होते हैं ।।२।।

१४८५—बृहद्दिवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ।।३।।

पदार्थ—(त्वे) तुझ में (क्रतुम्) कर्म को (वृञ्जन्ति) समाप्त करते हैं (विश्वे) सारे (द्विः) दूसरे [गृहस्थ आश्रमवाले] (यत्) जब (एते) ये (त्रिः) तीसरे [वानप्रस्थ आश्रमवाले] अथवा पुत्र का जन्म होने से तीन (भवन्ति) होते हैं (ऊमाः) प्राणी (स्वादोः) स्वादु से (स्वादीयः) स्वादिष्ट (स्वादुना) स्वादु सामग्री से (सृजा) रचता है (सम्) सम्यक् (अदः) यह (सुमधु) उत्तम रस (मधुना) जल से (अभियोधीः) मिलाता है ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सारे प्राणी गृहस्थी या वानप्रस्थी होने पर अपने कर्मों को तुझ में ही समर्पण करते हैं। तू अत्यन्त स्वादवाली वस्तु को स्वाद के कारण भूत सामग्री से तथा उत्तम रस को जल से उत्पन्न करता है ।।३।।

१४८६—गृत्समदः । इन्द्रः । अष्टिः ।

१२ ३ १ २र ३ २
त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म-
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
स ई ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं
२र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।१।।

पदार्थ— (त्रिकद्रुकेषु) तीन=उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय धर्मवाले पदार्थों में (महिषः) महान् (यवाशिरम्) यव दुग्ध आदि से युक्त (तुविशुष्मः) महान् बलशाली (तृम्पत्) तृप्त होता हुआ (सोमम्) सोम आदि ओषधि को (अपिबत्) पान करता है (विष्णुना) परमेश्वर तथा वायु द्वारा (सुतं) उत्पादित (यथावशम्) इच्छानुकूल (सः) वह (ईम्) पदपूरक (ममाद) हर्ष से युक्त होता है (महिकर्म) महान् कर्म (कर्त्तवे) करने के लिए (महाव्) महान् (उरुम्) बहुत महान् (सः) वह (एनम्) इसको (सश्चत्) प्राप्त होता है (देवः) देव (देवं) देव (सत्यः) सत्यस्वरूप (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (सत्यम्) सत्यस्वरूप (इन्द्रम्) परमेश्वर को ।१।

भावार्थ—महान् तथा अत्यन्त बलशाली आत्मा उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय वाले लोकों में परमेश्वर अथवा वायु के द्वारा उत्पादित यव तथा दुग्ध आदि से मिले सोम आदि भोग्य पदार्थ का अपनी इच्छानुकूल पान करता है। तृप्त होता हुआ वह महान् कर्मों के करने में हर्षित होता है। सत् तथा ऐश्वर्यवान् वह आत्मदेव महान्, सर्वव्यापक तथा सत्यस्वरूप इस परमात्मदेव को प्राप्त करता है ।।१।।

१४८७—गृत्समदः । इन्द्रः । अष्टिः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
३ २ ३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।२।।

पदार्थ—(साकम्) साथ (जातः) उत्पन्न (क्रतुना) ज्ञान तथा कर्म के (साकम्) साथ (ओजसा) बल के (ववक्षिथः) वहन करता है (साकम्) साथ (वृद्धः) बढ़ा हुआ (वीर्यैः) पराक्रमों के (सासहिः) दबानेवाला (मृधः) हिंसक वृत्तियों को (विचर्षणिः) द्रष्टा (दाता) देनेवाला (राधः) धन को (स्तुवते) प्रशंसा करता है (काम्यम्) चाहने योग्य (वसु) सुख के बसानेवाले (प्रचेतनः) चेतनस्वरूप (सः) वह (एनम्) इस (सश्चद्) प्राप्त होता है (देवः) देव (देवम्) देव (सत्यः) अविनाशी (इन्दुः) जीव के (सत्यम्) त्रिकाल सत्य (इन्द्रम्) परमेश्वर को ।।२।।

भावार्थ—चेतनस्वरूप, ज्ञान और कर्म के साथ उत्पन्न, पराक्रम के साथ बढ़ा हुआ, हिंसक वृत्तियों को दबानेवाला, द्रष्टा तथा दाता जो बल से इस शरीर को धारण कर रहा है तथा कामना करने योग्य, सुखकारक संसारी धन की प्रशंसा करता है वह अविनाशी जीव सत्यस्वरूप परमात्मदेव को प्राप्त करता है ।।२।।

१४८८—गृत्समदः । इन्द्रः । अष्टिः ।

२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा
२र ३ २ ३ १ २
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।३।।

पदार्थ—(अध) अनन्तर (त्विषीमान्) प्रकाशस्वरूप (अभि) सब ओर से (ओजसा) बल से (क्रिविं) कूप के समान (युधा) व्यापकता या गति शक्ति से (अभवत्) है (आ) भली भांति (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को

(अपृणत्) पूर्ण करता है (अस्य) इसके (मज्मना) बल से (प्रवावृधे) बढ़ता है (अधत्त) धारण करता है (अन्यं) दूसरे को (जठरे) मध्य में (प्र) उत्तम रूप से (ईम्) इससे (अरिच्यत्) अतिरिक्त [पृथक्] रहता है (प्रचेतय) जानता है (सः) वह (एनम्) इसको (सश्चत्) संयुक्त करता है (देवः) देव (देवं) दिव्य (सत्यः) अविनाशी (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (सत्यम्) अविनाशी (इन्द्रम्) जीव को ॥३॥

भावार्थ—जो प्रकाशस्वरूप तथा अपने तेज से सब तेजों को दबा लेता है, जो अपनी व्यापकता से कूप के समान द्यु और पृथिवी लोक के गर्त्त को पूर्ण करता है, जिसकी महिमा से सारा जगत् बढ़ता है, जो अपने मध्य में सब पदार्थों को धारण करता तथा स्वयं उनसे पृथक् रहता है, जो सबको जानता तथा अविनाशी जीव को शरीर से युक्त करता है वह सत्यस्वरूप अविनाशी देव परमेश्वर है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

卐 त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

चतुर्दशोऽध्यायः

१४८९—*प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (प्र) उत्तम (गोपतिम्) इन्द्रियों के स्वामी (गिरा) वेदवाणी द्वारा (इन्द्रम्) जीव की (अर्चत्) प्रशंसा करो (यथा विदे) यथावत् जानने के लिये (सूनुम्) पुत्र स्वरूप (सत्यस्य) परमेश्वर के (सत्पतिम्) सद्गुण के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! तू इन्द्रियों के स्वामी, परमेश्वर के पुत्ररूप तथा सद्गुणों के पालक जीव को यथावत् जानने के लिये वेदमन्त्र से प्रशंसा कर ॥१॥

१४९०—*प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ ' १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि सन्नवामहे ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भाँति (हरयः) सूर्य की किरणें (ससृज्रिरे) उत्पन्न की गई हैं (अरुषीः) प्रकाशमान (अधि) अधिकार करके (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (यत्र) जिस (अभि सन्नवामहे) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस अन्तरिक्षलोक में सूर्य की किरणें उत्पन्न की गयी हैं उस पर योग-सिद्धियों से अधिकार करके हम परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥२॥

१४९१—*प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (गावः) वेदवाणियाँ (आशिरम्) आश्रयण करने योग्य (दुदुह्रे) दोहन करती हैं (वज्रिणे) न्यायकारी (मधु) विज्ञान को (यत्) जो (सीम्) दूर तक (उपह्वरे) समीप में (विदत्) विद्यमान है ॥३॥

भावार्थ—वेदवाणियाँ न्यायकारी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए उस ज्ञान का प्रकाश करती हैं जो सर्वत्र विद्यमान है ॥३॥

१४९२—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली प्रकार (नः) हमारे (विश्वासु) सारे (हव्यम्) पुकारने योग्य (इन्द्रम्) विद्या, ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष को (समत्सु) बाधा के समयों में (भूषत) अलंकृत करो (उप) समीप (ब्रह्माणि) वेदाध्ययन (सवनानि) यज्ञ समयों में (वृत्रहन्) हे अज्ञाननाशक (परमज्याः) हे काम, क्रोधादि शत्रुओं के नाशक (ऋचीषम) हे प्रशंसनीय ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग सारे विघ्नकालों में विद्वान् पुरुष की सेवा करो। हे अज्ञाननाशक, काम-क्रोधादि को दूर करनेवाले तथा प्रशंसनीय विद्वन् ! आप हमारे वेदाध्ययन और यज्ञ समयों में उपस्थित रहो ॥१॥

१४९३—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (दाता) देनेवाला (प्रथमः) प्रथम (राधसाम्) धनों का (असि) है (सत्यः) सत्यस्वरूप (ईशानकृत्) ऐश्वर्यशाली करनेवाला (तुविद्युम्नस्य) बहुत धन और अन्न के (युज्या) जोड़ने योग्य कार्यों को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (पुत्रस्य) पुत्र के (शवसः) बल के (महः) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू धनों आदि का दाता है । तू ही सत्यस्वरूप तथा भक्त को ऐश्वर्यशाली बनानेवाला है। तेरी कृपा से हम बहुत धन, अन्न, पुत्र तथा बल के प्राप्त करानेवाले कार्यों को स्वीकार करते हैं ॥२॥

१४९४—*त्रसदस्युः । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २र

प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥१॥

पदार्थ—(प्रत्नम्) सनातन (पीयूषम्) अमृतमय (पूर्व्यम्) आदि (यद्) जो (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (महः) महान् (गाहाद्) गम्भीर (दिवः) परमेश्वर से (आनिरधुक्षत) भली प्रकार दोहन करो (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अभि) भली प्रकार (जायमानम्) उत्पन्न हुए (समस्वरन्) प्रशंसा करते हैं ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् लोग, सनातन अपूर्व प्रशंसनीय तथा अमृतरूप आनन्द और ऐश्वर्य को अति गंभीर तथा महान् परमेश्वर से दोहन करते हैं। उत्पन्न हुए उस आनन्द और परमेश्वर की प्रशंसा करते हैं ॥१॥

१४९५—*त्रसदस्युः । सोमः । बृहती ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र

आदीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।

३ १ २र ३ १ २

दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ॥२॥

पदार्थ—(आत्) अनन्तर (ईम्) इस (केचित्) कई योगीजन (पश्यमानासः) साक्षात्कार करते हुए (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य (वसुरुचः) आत्मप्रकाश वाले (दिव्याः) दिव्यगुणयुक्त (अभ्यनूषत) उपासना करते हैं (दिवः) द्युलोक के (न) नहीं (वारम्) अन्धकार [आवरण] को (सविता) सूर्य (व्यूर्णुते) हटाता है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर का साक्षात् करनेवाले, आत्मप्रकाश से युक्त तथा दिव्य विभूतियों वाले योगीजन सूर्य के उदय होने के पूर्व प्राप्त करने योग्य परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥२॥

१४९६—*त्रसदस्युः । सोमः । बृहती ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥३॥

पदार्थ—(अध) अनन्तर (यत्) जो (इमे) ये (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक में (इमा) इन (च) और (विश्वा) सारे (भुवना) लोकों में (अभि) व्यापक होकर (मज्मना) बल के साथ (यूथे) समूह में (न) समान (निष्ठाः) स्थित (वृषभः) बैल के (विराजसि) विराजमान हैं ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! क्योंकि तू गो-समूह में स्थित वृषभ के समान इन द्यु और पृथिवी लोक तथा सारे भुवनों में व्यापक होकर विराजमान है, अतः उपासनीय है ॥३॥

१४९७—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २

अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥१॥

पदार्थ—(इमम्) इस (ऊ) वितर्क (सु) उत्तम रूप से (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारे लिए (सनिम्) सेवनीय (गायत्रम्) सम्पूर्ण लोकों का (नव्यांसम्) नये नये ज्ञान के साधन (अग्ने) हे परमेश्वर (देवेषु) विद्वानों में (प्रवोचः) उपदेश करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे ग्रहण करने योग्य तथा नये नये ज्ञान के साधनभूत संपूर्ण लोकों का विद्वानों को उपदेश करता है ॥१॥

१४९८—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥२॥

पदार्थ—(विभक्ता) वितरण करनेवाला (असि) है (चित्रभानो) हे अद्भुत ज्ञानप्रकाश वाले (सिन्धोः) नदी के (ऊर्मा) प्रवाहशाली नहर के (उपाके) तट पर (आ) समान (सद्यः) तत्काल (दाशुषे) त्यागी के लिए (क्षरसि) वृष्टि करता है ॥२॥

भावार्थ—हे अद्भुत ज्ञान-प्रकाशवाले परमेश्वर ! तू धन का वितरण करने वाला है। नदी के किनारे से नहरों के समान तू दानी पुरुष के लिए धन की वृष्टि करता है ॥२॥

१४९९—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३१ २र ३१२

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।

२ ३ २ ३ १ २

शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥३॥

पदार्थ— (आ) भली प्रकार (नः) हमें (भज) सेवन कराता है (परमेषु) उत्कृष्ट (आ) भली प्रकार (वाजेषु) भोगों में (मध्यमेषु) मध्यमों में (शिक्षा) उपदेश करता है (वस्वः) धन का (अन्तमस्य) समीपवर्ती पृथिवी लोक के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें उत्कृष्ट तथा मध्यम श्रेणी के भोगों को प्राप्त कराता है। तू ही पृथिवीलोक-सम्बन्धी धन का उपदेश भी करता है ॥३॥

१५००—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २उ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥१॥

पदार्थ—(अहं) मैं विद्वान् जीव (इत्) ही (हि) निश्चय (पितुः) रक्षक (परि) सब प्रकार से (मेधाम्) वुद्धि को ऋतस्य परमेश्वर की (जग्रह) धारण किया है (अह) मैं (सूर्य इव) सूर्य के समान (अजनि) हो गया हूँ ॥१॥

भावार्थ—(समाधि दशा में हुआ विद्वान् जीव कहता है)—मैंने सबके रक्षक परमेश्वर की वुद्धि को धारण कर लिया है। मैं सूर्य के समान तेजस्वी हो गया हूँ।१।

१५०१—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।

२उ ३ २ ३ २ ३ २

येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (प्रत्नेन) प्रवाह रूप से होनेवाले अनादिकालिक (जन्मना) जन्म से (गिरः) वेदवाणियों को (शुम्भामि) अलंकृत करता हूँ (कण्ववत्) मेधावी की भांति (येन) जिससे (इन्द्रः) परमेश्वर (शुष्मम्) वल (इत्) ही (दधे) मुझ में धारण कराता है ॥२॥

भावार्थ—मैं मेधावी पुरुष की भांति प्रवाह रूप से अनादि जन्म से वेदवाणी को अलंकृत करता हूँ जिससे परमेश्वर मुझ में बल धारण कराता है ॥२॥

१५०२—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३२ १ २र ३ १ २

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्द्धस्व सुष्टुतः ॥३॥

पदार्थ—(ये) जो (त्वाम्) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (न) नहीं (तुष्टुवुः) स्तुति करते (ऋषयः) मंत्रद्रष्टा (ये) जो (च) और (तुष्टुवुः) स्तुति करते हैं (मम) मेरी (इत्) ही (वर्धस्व) वृद्धि कर (सुष्टुतः) अच्छी प्रकार स्तुति किया हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो लोग तेरी स्तुति नहीं करते और जो मंत्रद्रष्टा लोग तेरी स्तुति करते हैं उनके मध्य वर्तमान हमारे द्वारा स्तुति किया हुआ तू हमारी वृद्धि कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१५०३—अग्निः । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३२३ १२

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जेषि ब्रह्म सहस्कृत ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (विश्वेभिः) नाना प्रकार की (अग्निभिः) अग्नियों से (जेषि) इच्छा करता है (ब्रह्म) ब्रह्माण्ड [के जानने] की (सहस्कृत) हे जल के निर्माता (ये) जो (देवत्रा) देवों में [पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में] (ये) जो (आयुषु) मनुष्यों में [अर्थात् जाठर अग्नि] (तेभिः) उनसे (नः) हमारी (महया) श्रेष्ठ करता है (गिरः) वाणियों को ॥१॥

भावार्थ—हे जल के निर्माता परमेश्वर ! तू नाना प्रकार की अग्नियों के द्वारा हमें ब्रह्माण्ड के जानने की इच्छा कराता है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा मनुष्यों में रहनेवाली अग्नि से हमारी वाणी को शक्ति देता है ॥१॥

१५०४—अग्निः । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।

१२ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सः) वह (विश्वेभिः) नाना प्रकार की (अग्निभिः) अग्नियों के द्वारा (अग्निः) परमेश्वर (सः) प्रसिद्ध (यस्य) जिसकी (वाजिनः) ऋतुएँ [होती हैं] (तनये) पुत्र (तोके) प्रपौत्र आदि (अस्मत्) हम में (आ) भली प्रकार (सम्यङ्) समीचीन (वाजैः) पराक्रमों से (परीवृतः) युक्त ॥२॥

भावार्थ—जिसकी नाना प्रकार की अग्नियों द्वारा ऋतुएँ पैदा होती हैं, अनन्य पराक्रमों से युक्त वह प्रसिद्ध परमेश्वर हमें तथा हमारे पुत्र पौत्र आदि को प्राप्त होवे ॥२॥

१५०५—अग्निः । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (नः) हमारे (अग्ने) हे परमेश्वर (अग्निभिः) अग्नियों द्वारा (ब्रह्म) अन्न जल (यज्ञम्) यज्ञ (च) और (वर्धय) बढ़ाता है (त्वम्) तू (नः) हमें (देवतातये) यज्ञ के लिए (रायः) धनों के (दानाय) दान के लिए (चोदय) प्रेरणा करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अग्नियों द्वारा हमारे अन्न, जल तथा यज्ञ की वृद्धि करता है। तू ही हमें यज्ञ करने तथा धन का दान देने की प्रेरणा करता है ।३।

१५०६—त्रसदस्युः । सोमः । ऊर्ध्वं वृहती ।

१ २ ३ २ ३१२ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।

१ २र ३क २र

स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥१॥

पदार्थ—(त्वे) तुझ में (सोम) हे परमेश्वर (प्रथमा) मुख्य (वृक्तबर्हिषः) ऋत्विग् लोग (महे) महान् (वाजाय) अन्न के लिए (श्रवसे) यश के लिए (धियम्) बुद्धि को (दधुः) धारण करते हैं (सः) वह (त्वम्) तू (नः) हमें (वीर) हे सर्वशक्तिमन् (वीर्याय) बल और पराक्रम के लिए (चोदय) प्रेरणा दे ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! मुख्य ऋत्विग् जन अन्न तथा महान् यश की प्राप्ति के लिए तेरे आश्रय में अपनी मति रखते हैं। तू हमें बल और पराक्रम प्राप्ति की प्रेरणा कर ॥१॥

१५०७—त्रसदस्युः । सोमः । ऊर्ध्वं वृहती ।

३क २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कञ्चिज्जनपानमक्षितम् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥२॥

पदार्थ—(अभ्यभि) भली भांति (हि) निश्चय (श्रवसा) यश और धन से (ततर्दिथ) विस्तृत करता है (उत्सम्) कूप के (न) समान (जनपानम्) लोगों के पानी पीने के लिए उपयोगी (अक्षितम्) क्षीण न होने वाला (शर्याभिः) अंगुलियों से (न) समान (भरमाणः) भरनेवाले के (गभस्त्योः) हाथों की ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू लोगों के पानी पीने के योग्य, न क्षीण होनेवाले कूप के समान तथा हाथ से जल भरनेवाले के समान धन और यश से सबको भरपूर कर देता है ॥२॥

१५०८—त्रसदस्युः । सोमः । वृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥३॥

पदार्थ—(अजीजनः) उत्पन्न करता है (अमृत) हे अविनाशी (मर्त्याय) मरणधर्म जीव के लिए (कम्) सुख को (ऋतस्य) जल के (धर्मन्) धारक अन्तरिक्ष में (अमृतस्य) सदा रहनेवाले (चारुणः) कल्याणकारी (सदा) सर्वदा (असरः) व्यापक हो रहा है (वाजम्) अन्न आदि (अच्छा) भली प्रकार (सनिष्यदत्) वितरण करता हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे अविनाशी तथा नित्य परमेश्वर ! तू मरणधर्मा प्राणी के लिए सुख उत्पन्न करता है। अन्नादि को प्रदान करता हुआ सदा रहनेवाले तथा कल्याणकारी जल के धारक अन्तरिक्ष में व्यापक हो रहा है ॥३॥

१५०९—*विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

१ २र ३ २

प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (इन्दुम्) यज्ञ की (इन्द्राय) परमेश्वर के निमित्त (सिञ्चत) योजना करो (पिबाति) रक्षा करता है (सोम्यम्) ऐश्वर्य-साधक (मधु) विज्ञान की (प्र) उत्तमरूप से (राधांसि) धनों की (चोदयते) प्रेरणा करता है (महित्वना) अपनी महिमा से ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग परमेश्वर के निमित्त यज्ञ का संपादन करो। यह ऐश्वर्य के साधन विज्ञान की रक्षा करता है तथा अपनी महिमा से धन-प्राप्ति की प्रेरणा देता है ॥१॥

१५१०—*विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीपता से (उ) पादपूरक (हरीणां) मनुष्यों के (पतिम्) पालक (राधः) धन का (पृञ्चन्तम्) सम्पर्क कराते हुए (अब्रवम्) स्तुति करते हैं (नूनं) निश्चय ही (श्रुधि) सुन (स्तुवतः) स्तुति करनेवाले (अश्व्यस्य) विद्वान् की ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मनुष्यों के पालक तथा धन को देनेवाले तुझ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ। तू स्तुति करनेवाले मुझ विद्वान् की टेर सुन ॥२॥

१५११—*विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

१ ३क २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

न ह्यांऽग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

न की राया नैवथा न भन्दना ॥३॥

पदार्थ—(न हि) नहीं (अंग) हे (पुरा) पहले (च) और (न) नहीं (जज्ञे) पैदा हुआ (वीरतरः) अधिक वीर (त्वत्) तुझ से (न किः) न तो (राया) धन से (न) नहीं (एवथा) रक्षा से (न) नहीं (भन्दना) स्तुति से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! कोई भी तुझ से प्रथम नहीं=अर्थात् तू अनादि है कोई तुझसे अधिक वीर तीनों कालों में न हुआ, न है और न होगा। धन-रक्षा तथा स्तुति द्वारा भी कोई तुझसे बढ़कर या तेरे समान नहीं ॥३॥

१५१२—*प्रियमेधः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २र

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥१॥

पदार्थ—(नदम्) उपदेष्टा (वः) तुम लोग (ओदतीनाम्) उषाओं का (नदं) उपदेष्टा (योयुवतीनाम्) संयोजक शक्तियों [या चन्द्र किरणों] का (पतिम्) पालक (वः) तुम्हारा (अघ्न्यानाम्) गौओं का (धेनूनाम्) वेदवाणियों का (इषुध्यति) याचना करो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उषा तथा संयोजक शक्तियें किरणों आदि के उपदेष्टा और गौओं, वेदवाणियों तथा अपने पालक परमेश्वर की प्रार्थना करो ।१।

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५१३—*वसिष्ठः । अग्निः । बृहती ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

पदार्थ—(देवः) दिव्य गुणयुक्त (वः) तुम्हारी (द्रविणोदाः) अग्नि (पूर्णाम्) भरी हुई (विवष्टु) चाहती है (आसिचम्) स्रुवा को (उत्) उत्कृष्ट (वा) और (सिचध्वम्) सींचो (उप) समीप (पृणध्वम्) भरो (आत्) अनन्तर (इत्) ही (वः) तुम्हें (देवः) परमेश्वर (ओहते) प्राप्त कराता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! प्रदीप्त यज्ञ की अग्नि में तुम्हारी घी से भरी स्रुवा पड़नी चाहिए। तुम लोग स्रुवा को घी से भरपूर करो और अग्नि को घी से सींचो। तदनन्तर परमेश्वर तुम्हारे अभीष्ट को प्राप्त करायेगा ॥१॥

१५१४—*वसिष्ठः । अग्निः । बृहती ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥

पदार्थ—(तम्) उस (होतारम्) दाता (अध्वरस्य) कल्याणकारी यज्ञ का (प्रचेतसम्) उत्तम बुद्धिवाले (वह्निम्) वाहक=वहन करनेवाला (देवाः) विद्वान् जन (अकृण्वत) बनाते हैं (दधाति) धारण करता है (रत्नम्) रत्न आदि (विधते) उपासक के लिए (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को (अग्निः) परमेश्वर (जनाय) मनुष्य के लिए (दाशुषे) दानी ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् जन उस श्रेष्ठ ज्ञानवाले, तथा दाता परमेश्वर को कल्याणकारी यज्ञ का वहन करनेवाला स्वीकार करते हैं जो कि उपासक तथा दानी पुरुष को रत्न तथा उत्तम पराक्रम आदि प्रदान करता है ॥२॥

१५१५—*सोभरिः । अग्निः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उपो षु जातमार्यस्य वर्द्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥१॥

पदार्थ—(अदर्शि) दिखाई पड़ता है [जाना जाता है] (गातुवित्तमः) पृथिवी का अत्यन्त ज्ञाता (यस्मिन्) जिसके आश्रय में (व्रतानि) नियमों को (आदधुः) धारण करते हैं (उप) समीप (उ) निश्चय (सु) उत्तम (जातम्) प्रसिद्ध (आर्यस्य) श्रेष्ठाचारी के (वर्द्धनम्) बढ़ानेवाले (अग्निम्) विद्वान् को (नक्षन्तु) प्राप्त हो (नः) हमारी (गिरः) प्रशंसा की वाणियां ॥१॥

भावार्थ—जो पृथिवी आदि लोकों का ज्ञाता है, जिसके आश्रय में लोग नियम आदि का धारण करते हैं उस सुप्रसिद्ध श्रेष्ठाचारी की वृद्धि करनेवाले विद्वान् पुरुष को हमारे प्रशंसा के वाक्य प्राप्त हों ॥१॥

१५१६—*सोभरिः । अग्निः । बृहती ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥२॥

पदार्थ—(यस्मात्) जिससे (रेजन्त) कांपते हैं (कृष्टयः) मनुष्य (चर्कृत्यानि) सृष्टि के कर्त्तव्य कर्मों को (कृण्वतः) करते हुए (सहस्रसाम्) सहस्रों प्रकार के धनों के दाता (मेधसातौ) यज्ञ में (इव) पादपूरक (त्मना) स्वयं (अग्निम्) परमेश्वर को (धीभिः) बुद्धियों तथा कर्मों द्वारा (नमस्यत) नमस्कार करो ॥२॥

भावार्थ—हे लोगो ! मनुष्य सृष्टि के कर्त्तव्य कर्मों को करनेवाले जिस परमेश्वर से डरते हैं उस सहस्रों प्रकार के धनों के दाता परम प्रभु को यज्ञ में अपने कर्म और ज्ञान से नमस्कार करो ॥२॥

१५१७—*सोभरिः । अग्निः । बृहती ।*

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (दैवोदासः) सूर्यसम्बन्धी (अग्निः) अग्नि (देवः) प्रकाशमान (इन्द्रः न) विद्युत् के समान (मज्मना) बल से (अनु) तरफ (मातरम्) माता (पृथिवीं) पृथिवी की (विवावृते) आती है (तस्थौ) स्थित होती है (नाकस्य) अन्तरिक्ष के (शर्मणि) अवकाश में ॥३॥

भावार्थ—सूर्यसम्बन्धी प्रकाशमान अग्नि विद्युत् के समान अपने बल के साथ समस्त प्राणियों की माता पृथिवी पर आती है। वह अन्तरिक्ष के पोल में भी स्थित है ॥३॥

१५१८—*शतं वैखानसाः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषञ्च नः ।

३ १ २ ३ १ २

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वन् (आयूंषि) आयुओं को (पवसे) पवित्र कर (आसुव) प्राप्त करा (ऊर्जम्) बल (इषम्) ज्ञान को (च) और (नः) हमारे (आरे) दूर (बाधस्व) हटा (दुच्छुनाम्) दुर्गुणों को ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! तू हमारी आयुओं को पवित्र कर। हमें बल और ज्ञान दे। हमारे दुर्गुणों को दूर हटा ॥१॥

१५१९—शतं वैखानसाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (ऋषिः) सर्वव्यापक और सर्वद्रष्टा (पवमानः) शुद्धस्वरूप (पांचजन्यः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद [अवर्ण] के द्वारा उपास्य (पुरोहितः) सृष्टि के पदार्थों की रचना से पूर्व धारण करनेवाला (तम्) उसकी (ईमहे) प्रार्थना करते हैं (महागयम्) महाशक्तिशाली ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी, शुद्धस्वरूप सृष्टि के पदार्थों की रचना से पूर्व धारण करनेवाला तथा पांचों जनों का उपास्य है। उस सर्वशक्तिमान् की हम उपासना करते हैं ॥२॥

१५२०—शतं वैखानसाः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २३ २र ३ १ २
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिम् मयि पोषम् ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (पवस्व) प्राप्त करा (स्वपाः) उत्तम कर्म-वाला (अस्मे) हमें (वर्चः) अन्न (सुवीर्यम्) उत्तम बल (दधत्) धारण करा (रयिम्) धन को (मयि) मुझे (पोषम्) पुष्टि को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम कर्मवाला तू हमें अन्न तथा उत्तम बल दे। तू हमें धन तथा पुष्टि धारण करा ॥३॥

१५२१—वसूयवः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (पावक) शुद्धस्वरूप (रोचिषा) ज्ञान-प्रकाश से (मंद्रया) आनन्दकारी (देव) हे देव (जिह्वया) वेदवाणी से (आ) भली प्रकार (देवान्) तैंतीस देवों को (वक्षि) धारण करता है (यक्षि) संगत करता है (च) और ॥१॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमात्म देव ! तू अपने तेज तथा आनन्ददायिनी वेदवाणी से तैंतीस देवों को धारण और संगत करता है ॥१॥

१५२२—वसूयवः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवां आ वीतये वह ॥२॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तेरी (घृतस्नो) हे प्रकाश के प्रेरक वा उत्पादक (ईमहे) प्रार्थना करते हैं (चित्रभानो) अद्भुत प्रकाशवाले (स्वर्दृशम्) सुख के दिलानेवाले (देवान्) विद्वानों को (आ) भली भांति (वीतये) ज्ञान-प्राप्ति के लिए (वह) प्राप्त करा ॥२॥

भावार्थ—हे प्रकाश के उत्पादक तथा अद्भुत प्रकाशवाले परमेश्वर ! हम तुझ सुख दाता की प्रार्थना करते हैं। तू ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें विद्वानों को प्राप्त करा ॥२॥

१५२३—वसूयवः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३॥

पदार्थ—(वीतिहोत्रम्) प्राप्ति ग्रहण करनेवाले=सर्वव्यापक (त्वा) तुझे (कवे) हे सर्वज्ञ (द्युमन्तम्) प्रकाशस्वरूप (समिधीमहि) प्रकाशित करते हैं (अग्ने) हे परमेश्वर (बृहन्तम्) महान् (अध्वरे) हृदयाकाश में ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! हम तुझ सर्वव्यापक, प्रकाशस्वरूप तथा महान् प्रभु को अपने हृदयाकाश में समाधिबल से प्रकाशित करते हैं ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५२४—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्र भर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥१॥

पदार्थ—(अव) रक्षाकर (नः) हमारी (अग्ने) हे परमेश्वर (ऊतिभिः) रक्षाओं से (गायत्रस्य) गायत्री द्वारा कहे गये ज्ञान के (प्रभर्मणि) संपादन में (विश्वासु) सारे (धीषु) कर्मों में (वन्द्य) हे वन्दनीय ॥१॥

भावार्थ—हे समस्त कर्मों में स्तुति किये जाने योग्य परमेश्वर ! तू अपने रक्षा साधनों से गायत्री द्वारा प्रतिपादित ज्ञान के संपदान में हमारी रक्षा कर ॥१॥

१५२५—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (नः) हमें (अग्ने) हे परमेश्वर (रयिम्) धन को (भर) भरपूर कर (सत्रासाहम्) सदा ही दारिद्रय हरण करनेवाले (वरेण्यम्) वरण करने योग्य (विश्वासु) सारे (पृत्सु) संग्रामों में (दुष्टरम्) शत्रुओं से न तरा जानेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें दरिद्रता को सदा दूर करनेवाले, चाहने योग्य तथा समस्त संग्रामों में शत्रुओं द्वारा न समाप्त किये जाने योग्य धन से भरपूर कर ॥२॥

१५२६—गोतमः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (नः) हमें (अग्ने) हे परमेश्वर (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान से [युक्त] (रयिम्) धन को (विश्वायुपोषसम्) समस्त मनुष्यों का पोषण करनेवाले (मार्डीकम्) सुख के साधन (धेहि) धारण करा (जीवसे) जीविका के [जीवन के] लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमें जीविका के लिए उत्तम ज्ञान से युक्त, समस्त मनुष्यों का पोषण करनेवाला तथा सुख का हेतुभूत धन प्रदान कर ॥३॥

१५२७—केतुः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम्) आत्मा और परमात्मा को (हिन्वन्तु) जाने (नः) हमारे (धियः) बुद्धियां (सप्तिम्) अश्व के (आशुम्) शीघ्रगामी (इव) समान (आजिषु) संग्रामों में (तेन) उससे (जेष्म) जीतें (धनम्) वृद्धि देनेवाले (धनम्) धन को ॥१॥

भावार्थ—हमारी बुद्धियां संग्राम में शीघ्रगामी अश्व को योद्धा के समान आत्मा और परमात्मा को जानें। इस ज्ञान से हम वृद्धि करने वाले धन को जीतें ॥१॥

१५२८—केतुः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥२॥

पदार्थ—(यया) जिस (गाः) वेदवाणियों को (आकरामहै) प्राप्त करें (सेनया) विघ्नों का निवारण करनेवाली (अग्ने) हे परमेश्वर (तव) तेरी (ऊत्या) रक्षा से (तां) उसे (नः) हमें (हिन्व) प्रेरित कर (मघत्तये) धन प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विघ्नों को दूर करनेवाली जिस तेरी रक्षा से हम वेदवाणियों को प्राप्त करते हैं उसकी हमें उत्तम धन की प्राप्ति के लिए प्रेरणा दे ॥२॥

१५२९—केतुः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
अग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्‌धि खं वर्तया पविम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (अग्ने) हे परमेश्वर (स्थूरम्) स्थूल (रयिम्) धन को (भर) भरपूर कर (पृथु) विशाल (गोमन्तम्) गौओं से युक्त (अश्विनम्) घोड़ों से युक्त (अङ्‌धि) प्रकाशित करता है (खं) आकाश को (वर्तय) प्रवृत्त करता है (पविम्) वाणी को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आकाश को तेज से प्रकाशित करता है। तू वाणी को अपने कर्म में प्रवृत्त करता है। तू हमें गौ तथा अश्व आदि से युक्त विशाल और विस्तृत धन प्रदान कर ॥३॥

१५३०—केतुः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (नक्षत्रम्) नक्षत्र को (अजरम्) न जीर्ण हुए (आ) भली भांति (सूर्यम्) सूर्य को (रोहयः) स्थापित किया (दिवि) द्युलोक में (दधत्) धारण करते हुए (ज्योतिः) प्रकाश (जनेभ्यः) समस्त प्राणियों के लिए ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त प्राणियों के लिए प्रकाश को धारण करते हुए तूने न जीर्ण होनेवाले सूर्य और नक्षत्र को द्युलोक में स्थापित किया है ॥४॥

१५३१—केतुः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ १ २उ ३ १ २
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (केतुः) ज्ञाता (विशाम्) प्रजाओं का (असि) है (प्रेष्ठः) अत्यन्त प्रिय (श्रेष्ठः) अत्यन्त महान् (उपस्थसत्) सबके समीप स्थित (बोध) जना [ज्ञान दे] (स्तोत्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (वयः) आयु (दधत्) धारण करते हुए ।।५।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू श्रेष्ठ, भक्तों का अत्यन्त प्रिय, समस्त प्रजा का ज्ञाता तथा सर्वव्यापक होने से सबके समीप उपस्थित है ! तू स्तुति करनेवाले को जीवन प्रदान करते हुए बोध दे ।।५।।

१५३२—*विरूपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३२
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
३ १ २र
अपां रेतांसि जिन्वति ।। १ ।।

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि (मूर्धा) मूर्तवस्तुओं को धारण करनेवाला (दिवः) द्युलोक का (ककुत्) महान् (पतिः) रक्षक (पृथिव्याः) पृथिवी का (अयम्) यह (अपां) जलों के (रेतांसि) परमाणुओं को (जिन्वति) गति देता है ।। १ ।।

भावार्थ—यह प्रसिद्ध अग्नि मूर्त्त पदार्थों को धारण करने वाला, द्यु तथा पृथिवी लोक का महान् रक्षक है। यह जल के परमाणुओं को गति देता है ।। १ ।।

१५३३—*विरूपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोता स्यां तव शर्मणि ।। २ ।।

पदार्थ—(ईशिषे) स्वामी होता है (वार्यस्य) वरणीय (हि) निश्चय (दात्रस्य) देने योग्य धन का (अग्ने) हे परमेश्वर (स्वः पतिः) सुख का रक्षक (स्तोता) भक्त (स्याम्) होऊँ (तव) तेरा (शर्मणि) सुख प्राप्ति के निमित्त ।२।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुख का रक्षक तू वरणीय तथा देने योग्य धन का स्वामी है । तेरी स्तुति करनेवाला मैं सुख में रहूँ ।।२।।

१५३४—*विरूपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ।।३।।

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (अग्ने) हे परमेश्वर (शुचयः) पवित्र (तव) तेरे (शुक्राः) शुद्ध (भ्राजन्तः) प्रकाशमान हुए (ईरते) प्रेरित करते हैं (तव) तेरे (ज्योतींषि) सूर्य तथा नक्षत्र आदि को (अर्चयः) तेजः प्रकाश ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध पवित्र तथा प्रकाशमान तेरे प्रकाशपुंज सूर्य तथा नक्षत्र आदि को प्रकाशित करते हैं ।।३।।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

卐 चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

पञ्चदशोऽध्यायः

१५३५—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३क २र २ ३ १ २ ३ २
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ।।१।।

पदार्थ—(कः) कौन (ते) तेरे (जामिः) बन्धु (जनानाम्) जनों का (अग्ने) हे परमेश्वर (कः) कौन (दाश्वध्वरः) तेरे निमित्त यज्ञ करनेवाला (कः) सुखस्वरूप (ह) निश्चय (कस्मिन्) किस में (असि) है (श्रितः) आश्रय लिए हुए ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे जनों का बन्धु कौन है । तेरे निमित्त यज्ञ करनेवाला कौन है । सुखस्वरूप तू किसमें आश्रय ले रहा है ।।१।।

१५३६—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ।।२।।

पदार्थ—(त्वं) तू (जामिः) बन्धु (जनानाम्) जनों का (अग्ने) हे परमेश्वर (मित्रः) मित्र (असि) है (प्रियः) प्रिय (सखा) सखा (सखिभ्यः) मित्रता रखनेवाले के लिए (ईड्यः) पूजनीय ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही जनों का बन्धु, तथा प्रिय मित्र है । तुझ से मित्रता करनेवालों का तू हितकारी तथा पूज्य है ।।२।।

१५३७—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ ९र
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।।३।।

पदार्थ—(यज) संगत कर (नः) हमारे लिए (मित्रावरुणा) प्राण और अपान को (यजा) संगत कर (देवान्) अन्य अग्नि आदि देवों को (ऋतं) जल को (बृहत्) महान् (अग्ने) हे परमेश्वर (यक्षि) संगत कर (स्वं) स्वकीय (दमम्) गृह समस्त संसार को ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्राण, अपान, अग्नि आदि अन्य देव, महान् जल, तथा उसमें व्यापक होने से अपने गृहरूप समस्त संसार को हमारे उपयोग के लिए संगत कर ।।३।।

१५३८—*देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३क २र ३ १ २र ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ।।१।।

पदार्थ—(ईडेन्यः) स्तोताओं से स्तुति किया जाने योग्य (नमस्यः) सबका नमस्करणीय (तिरः) तिरस्कार करनेवाला (तमांसि) अज्ञान अन्धकारों को (दर्शतः) सत्य मार्ग दिखानेवाला (सम्) सम्यक् (अग्निः) परमेश्वर (इध्यते) समाधि से प्रकाशित किया जाता है (वृषा) कामनाओं की पूर्ति करनेवाला ।।१।।

भावार्थ—सब से स्तुत्य तथा नमस्कार करने योग्य, अज्ञानान्धकार का नाशक, सत्य पथ प्रदर्शक और मनोरथ को पूरा करनेवाला परमेश्वर योग समाधि द्वारा हृदय में साक्षात् किया जाता है ।।१।।

१५३९—*देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ।।२।।

पदार्थ—(वृषा) मनोरथों को पूरा करनेवाला (उ) पादपूरक (अग्निः) परमेश्वर (समिध्यते) हृदय में प्रकाशित होता है (अश्वः) विद्युत् के (न) समान (देववाहनः) समस्त देवों का धारक (तम्) उसकी (हविष्मन्तः) श्रद्धावाले भक्त (ईडते) भक्ति करते हैं ।।२।।

भावार्थ—कामनाओं की पूर्ति करनेवाला तैंतीस देवों का धारक परमेश्वर विद्युत् के समान हृदय देश में प्रकाशित होता है। उसकी श्रद्धालु भक्त लोग उपासना करते हैं ।।२।।

१५४०—*देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ।।३।।

पदार्थ—(वृषणं) मनोरथों को पूरा करनेवाले (त्वा) तेरा (वयं) हम (वृषन्) हे सर्वशक्तिमान् (वृषणः) शक्तिशाली (समिधीमहि) ध्यान करते हैं (अग्ने) हे परमेश्वर (दीद्यतं) प्रकाशमान (बृहत्) अत्यन्त ।।३।।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! शक्तिशाली हम लोग अत्यन्त तेजस्वी तथा मनोरथों को पूरा करनेवाले तुझ प्रभु का ध्यान करते हैं ॥३॥

१५४१—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (ते) तेरा (बृहन्तः) महान् (अर्चयः) प्रकाश (समिधानस्य) ध्यान किया गया (दीदिवः) हे प्रकाशस्वरूप (अग्ने) हे परमेश्वर (शुक्रासः) शुद्ध (ईरते) व्यापक है ॥१॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू ध्यान के योग्य है । तेरा शुद्ध और महान् प्रकाश सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१॥

१५४२—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २क १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उप त्वा जुह्वो३मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्वा) तेरे निमित्त (जुह्वः) स्रुवाएँ (मम) मेरी (घृताचीः) घी से भरी (यन्तु) अग्नि में पड़ती रहें (हर्यत) हे कमनीय (अग्ने) परमेश्वर (हव्याः) स्तुतियों को (जुषस्व) स्वीकार कर (नः) हमारी ॥२॥

भावार्थ—हे कामना करने योग्य परमेश्वर ! तेरे निमित्त हमारी घी से भरी स्रुवाएँ अग्नि में पड़ती रहें । तू हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर ॥२॥

१५४३—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २
मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥३॥

पदार्थ—(मन्द्रम्) आनन्ददाता (होतारम्) दाता (ऋत्विजम्) ऋतुओं को पैदा करनेवाले (चित्रभानुम्) अद्भुत प्रकाशवाले (विभावसुम्) प्रकाश के धनी (अग्निम्) परमेश्वर की (ईडे) स्तुति करता हूँ (सः) वह (उ) अवश्य (श्रवत्) सुने ॥३॥

भावार्थ—मैं आनन्द तथा कर्मफलदाता, ऋतुओं के उत्पादक, अद्भुत प्रकाशवाले तथा तेजस्वी परमेश्वर की उपासना करता हूँ । वह हमारी स्तुति सुनें ॥३॥

१५४४—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २क २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥१॥

पदार्थ—(पाहि) रक्षाकर (नः) हमारी (अग्ने) हे परमेश्वर (एकया) ऋग्वेद की वाणी से (पाहि) रक्षाकर (उत) और (द्वितीयया) दूसरे यजुर्वेद की वाणी से (पाहि) रक्षाकर (गीर्भिः तिसृभिः) तीनों वाणियों से (ऊर्जाम्पते) हे बलों के स्वामी (पाहि) रक्षाकर (चतसृभिः) चारों वेदवाणियों से (वसो) हे सबको निवास देनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे बलों के स्वामी, तथा सबको निवास देनेवाले परमेश्वर ! तू चारों प्रकार की वेदवाणियों के द्वारा हमारी रक्षाकर ॥१॥

१५४५—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥२॥

पदार्थ—(पाहि) रक्षा कर (विश्वस्मात्) सारे (रक्षसः) बुरी प्रवृत्तियों वालों से (अराव्णः) दान न देनेवाले से (प्र) उत्तम (स्म) पादपूरक (वाजेषु) संग्रामों में (नः) हमारी (अव) रक्षा कर (त्वाम्) तुझे (इत्) ही (नेदिष्ठम्) अत्यन्त समीप (आपिम्) बन्धु (देवतातये) यज्ञ के लिए (नक्षामहे) प्राप्त करते हैं (वृधे) उन्नति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू समस्त बुरी वृत्तियोंवाले मनुष्य और दान न देनेवाले से हमें बचा । संग्रामों में हमारी रक्षा कर । क्योंकि यज्ञ और हमारी उन्नति के लिए अत्यन्त निकट बन्धु तू ही है । तुझे ही हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१५४६—त्रितः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १
चिकिद्वि भाति भासः बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

पदार्थ—(इनः) स्वामी [ईश्वर] (राजन्) हे प्रकाशस्वरूप (अरतिः) सर्वव्यापक (समिद्धः) तेजस्वी (रौद्रः) दुष्टों को भय देनेवाला (दक्षाय) बल तथा धन का (सुषुमान्) उत्पादक (अदर्शि) साक्षात् किया जाता है (चिकित्) सर्वज्ञ (विभाति) विराजमान है ((भासा) अपने तेज से (बृहता) महान् (असिक्नीम्) रात्रि को (एति) प्राप्त कराता है (रुशतीम्) प्रकाश को (अपाजन्) दूर करता हुआ ॥१॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! सबका स्वामी, सर्वव्यापक तेजस्वी, दुष्टों को दण्ड देनेवाला, बल तथा धन का उत्पादक और सर्वज्ञ तू योगियों से साक्षात्कार किया जाता है । तू महान् प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है तथा रात्रि के अन्धकार को प्राप्त कराता है ॥१॥

१५४७—त्रितः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

पदार्थ—(कृष्णाम्) काली (यत्) जब (एनीम्) आनेवाली रात्रि को (अभि) भली भाँति (वर्पसा) अपने तेज से (भूत्) दबा लेता है तब (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (योषाम्) स्त्रीरूप उषा को (बृहतः) महान् (पितुः) पालक [सूर्य से] (जाम्) उत्पन्न (ऊर्ध्वम्) ऊपर (भानुम्) प्रकाश को (सूर्यस्य) सूर्य के (स्तभायन्) थांभता हुआ (दिवः) द्युलोक की (वसुभिः) संपदाओं से (अरतिः) सर्वव्यापक (विभाति) प्रकाशित करता है ॥२॥

भावार्थ—जब सर्वव्यापक परमेश्वर महान् सूर्य से उत्पन्न स्त्री के समान उषा को प्रकाशित करता हुआ रात्रि को अपने तेज से दबा देता है तब सूर्य के प्रकाश को ऊपर स्थापित करता हुआ द्युलोक की प्रकाशक संपदाओं से समस्त जगत् को प्रकाशित करता है ॥२॥

१५४८—त्रितः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३उ २र ३ २
भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥

पदार्थ—(भद्रः) कल्याणकारी (भद्रया) कल्याणकारिणी भक्ति के द्वारा (सचमानः) भजन किया गया (आगात्) प्राप्त होता है (स्वसारम्) रात्रि को (जारः) सूर्य [जैसे] (अभ्येति) प्राप्त करता है (पश्चात्) पीछे (सुप्रकेतैः) उत्तम ज्ञानों से युक्त (द्युभिः) तेजों से (अग्निः) परमेश्वर (वितिष्ठन्) अचल रूप से स्थित होकर (उशद्भिः) कमनीय (वर्णैः) वर्णों [प्रकाशों से] (रामम्) रात्रि के अन्धकार को (अस्थात्) स्थित हो रहा है ॥३॥

भावार्थ—कल्याणकारिणी भक्ति द्वारा भजन किया हुआ परमेश्वर अपने उत्तम ज्ञान रूप प्रकाशों से भक्त के हृदय में स्थित होता हुआ वैसे ही प्राप्त होता है जिस प्रकार कि सूर्य रात्रि के पीछे चलता है । वह चन्द्र और नक्षत्रों के कमनीय प्रकाशों के साथ रात्रि के अन्धकार में स्थित हो रहा है ॥३॥

१५४९—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥१॥

पदार्थ—(कया) सुखमयी [स्तुति से] (ते) तेरी (अग्ने) हे परमेश्वर (अङ्गिरः) हे सृष्टि के अङ्गीभूत समस्त पदार्थों और जीवों में रमनेवाले अर्थात् हे सर्वव्यापक (ऊर्जः) बल (नपात्) हे रक्षक (उप) समीप (स्तुतिम्) उपासना को (वराय) श्रेष्ठ (देव) हे देव (मन्यवे) मनन के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक तथा सर्वव्यापक परमेश्वर देव ! हम सुखमयी स्तुति से उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिए तेरी स्तुति करें ॥१॥

१५५०—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥२॥

पदार्थ—(दाशेम) त्याग करें (कस्य) सुखस्वरूप (मनसा) मन से (यज्ञस्य) पूजनीय (सहसो यहो) हे बल के प्राप्त करानेवाले और स्तुति योग्य (कदु) कब (वोचे) बोलूँ (इदम्) यह (नमः) नमस्कार ॥२॥

भावार्थ—हे बल के प्राप्त करानेवाले और उपासनीय परमेश्वर ! सुखस्वरूप तथा पूजनीय तुझ देव के लिए कब नमस्कार करें और तुझ में कर्मफल का कब अर्पण करें (अर्थात् सर्वदा नमस्कार करें) ॥२॥

१५५१—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥३॥

पदार्थ—(अधा) अनन्तर (त्वम् हि) तू ही (नः) हमारी (करः) करता है (विश्वाः) सारी (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (सुक्षितीः) प्रजायें (वाजद्रविणसः) बल और धनयुक्त (गिरः) वाणियों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही हमारी वाणियों और प्रजा को बल और धन युक्त करता है ॥३॥

१५५२—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

१२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (आयाहि) प्राप्त होता है (अग्निभि) तीन प्रकार की यज्ञ की अग्नियों के द्वारा (होतारम्) कर्म फलदाता (त्वा) तेरी (वृणीमहे) स्तुति करते हैं (आ) भली भाँति (त्वा) तुझे (अनक्तु) प्राप्त करें (प्रयता) प्रयत्न से की जानेवाली (हविष्मती) यज्ञ की सामग्री से युक्त भक्ति (यजिष्ठम्)पूज्य (बर्हिः) कर्म का (आसदे) अनुष्ठान करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें यज्ञ की तीन अग्नियों द्वारा प्राप्त होता है। तुझ कर्म फलदाता की मैं स्तुति करता हूँ। उत्तम कर्म का मैं तेरे लिए अनुष्ठान करता हूँ। यत्नपूर्वक की गई हमारी भक्ति तुझे प्राप्त हो ॥१॥

१५५३—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥२॥

पदार्थ—(अच्छा) अच्छी तरह (हि) क्योंकि (त्वा) तुझे प्राप्त करने के लिए (सहसः) बल के (सूनो) हे उत्पादक (अङ्गिरः) हे शरीरधारी=जीवों को सुख देनेवाले (स्रुचः) स्रुवाएँ (चरन्ति) चलती हैं (अध्वरे) यज्ञ में (ऊर्जो नपातम्) बल के रक्षक (घृतकेशम्) प्रकाशरूप केशवाले (ईमहे) स्तुति करता हूँ (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप को (यज्ञेषु) श्रेष्ठ कर्मों में (पूर्व्यम्) सनातन ॥२॥

भावार्थ—हे बल के उत्पादक, सब जीवों के सुखदाता परमेश्वर हमारे यज्ञादि कर्म तुझे प्राप्त करने के लिए होते हैं। हम बल के रक्षक प्रकाशरूप केशवाले तुझ स्वप्रकाशस्वरूप देव की स्तुति करते हैं ॥२॥

१५५४—पुरुमीढः । अग्निः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१॥

पदार्थ—(अच्छा) अच्छी तरह (नः) हमारी (शीरशोचिषम्) व्यापक प्रकाश वाले (गिरः) स्तुतियाँ (दर्शतम्) भजन के योग्य या साक्षात्कार के योग्य (यन्तु) प्राप्त हों (अच्छा) अच्छी तरह (यज्ञासः) श्रेष्ठ कर्म (नमसा) नमस्कार के साथ (पुरुवसुम्) सकल सम्पदाओंवाले (पुरुप्रशस्तम्) अत्यन्त स्तुति के योग्य (ऊतये) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हमारी स्तुतियाँ व्यापक प्रकाशवाले और साक्षात्कार के योग्य परमेश्वर को प्राप्त हों। हमारे श्रेष्ठ कर्म भी नमस्कार के साथ सबके आश्रयदाता प्रभु को प्राप्त हों ॥१॥

१५५५—पुरुमीढः । अग्निः । बृहती ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।

१ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥२॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर को (सूनुम्) उत्पन्न करनेवाले (सहसः) बल के (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (दानाय) दान के लिए (वार्याणाम्) उत्तम पदार्थों के (द्विता) दो गुणों वाला (यः) जो (अभूत्) होता है (अमृतः) अमर (मर्त्येषु) मरणधर्मवालों में (आ) भली भाँति (होता) कर्मफलदाता (मन्द्रतमः) अत्यन्त सुखदायक (विशि) प्रजा में ॥२॥

भावार्थ—कर्मफलदाता जो मनुष्यों में अमररूप से तथा सारी प्रजा में आनन्द स्वरूप से दो प्रकार के गुणों से उत्तम सदा विराजमान है, उस साहस के उत्पादक और सर्वज्ञ परमेश्वर की उत्तम पदार्थों को उसके दान द्वारा प्राप्त करने के लिए स्तुति करता हूँ ॥२॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५५६—विश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अदाभ्यः पुर एता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥१॥

पदार्थ—(अदाभ्यः) न तिरस्कार करने योग्य (पुरः एता) नेता (विशाम्) प्रजाओं का (अग्निः) परमेश्वर (मानुषीणाम्) मानुषी (तूर्णी) आलस्यादि दोषों से रहित (रथः) आनन्द का दाता (सदा) सर्वदा (नवः) एकरस ॥१॥

भावार्थ—मानुषी प्रजा का एकमात्र नेता, आलस्यादि दोषों से रहित, आनन्ददाता तथा एकरस परमेश्वर कभी भी तिरस्कार करने योग्य नहीं है ॥१॥

१५५७—विश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १२ ३ १ २

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (प्रयांसि) अन्नों को (वाहसा) सब सुखों को प्राप्त करानेवाले से (दाश्वान्) दानी (अश्नोति) पाता है (मर्त्यः) मनुष्य (क्षयम्) वास स्थान को (पावकशोचिषः) पवित्र प्रकाशवाले से ॥२॥

भावार्थ—दानी मनुष्य सब सुखों को प्राप्त करानेवाले तथा पवित्र प्रकाश युक्त परमेश्वर से अन्न और आश्रय प्राप्त करता है ॥२॥

१५५८—विश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥३॥

पदार्थ—(साह्वान्) अभिभव करनेवाला (विश्वा) सारे (अभियुजः) प्रतिकूल विचारों का (क्रतुः) पालक (देवानाम्) सब देवों का (अमृक्तः) अतिरस्करणीय (अग्निः) परमेश्वर (तुविश्रवस्तमः) अत्यन्त यशवाला है ॥३॥

भावार्थ—सारे प्रतिकूल विचारों को दूर भगानेवाला, देवों का पालक तथा अतिस्करणीय परमेश्वर अत्यन्त यशस्वी है ॥३॥

१५५९—सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।

३ २ ३ १ २र

भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१॥

पदार्थ—(भद्रः) कल्याणकारक (नः) हमारा (अग्निः) विद्वान् पुरुष (आहुतः) उत्तम पद पर प्रतिष्ठित (भद्रा) कल्याणदायक (रातिः) दान (सुभग) हे उत्तम ऐश्वर्यवाले (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) यज्ञ (भद्राः) कल्याण करनेवाली हों (उत) और (प्रशस्तयः) स्तुतियाँ ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम ऐश्वर्यवाले परमेश्वर ! उत्तम स्थान पर स्थित विद्वान् हमारा कल्याण करें तथा हमारे यज्ञ, दान, और स्तुतियाँ सभी कल्याणकारी सिद्ध हों ॥१॥

१५६०—सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥२॥

पदार्थ—(भद्रं) कल्याणकारक (मनः) मन (कृणुष्व) कर (वृत्रतूर्ये) पाप को नष्ट करने में (येन) जिससे (समत्सु) पाप और पुण्य के संग्रामों में (सासहिः) पाप को दबा सकनेवाला (अव) नीचे (स्थिराः) दृढ (तनुहि) कर (भूरि) बहुत (शर्धताम्) कामक्रोधादि शत्रुओं को (वनेम) भजन करते हैं (ते) तेरा (अभिष्टये) अपने कल्याण के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मेरे मन को उत्तम कर जिससे मैं अज्ञान के विनाश करने और पाप-पुण्य के संग्रामों में पाप को दबाने में समर्थ होऊं। हमारे काम, क्रोधादि शत्रुओं की सेना को तो नीचे दबा। हम अपने कल्याण के लिए तेरा भजन करते हैं ॥२॥

१५६१—गोतमः । अग्निः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।

३ १२ ३ २ ३ १ २

अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (वाजस्य) अन्न का (गोमतः) जो धनयुक्त (ईशानः) स्वामी (सहसोयहो) हे बल को प्राप्त करने वाले और स्तुति योग्य (अस्मे) हमें (देहि) दे (जातवेदः) हे सर्वव्यापक (महि) महान् (श्रवः) अन्न और यश ॥१॥

भावार्थ—हे बल के दाता और स्तुत्य, सर्वव्यापक परमेश्वर ! तू गो धन युक्त अन्न का स्वामी है। हमें प्रचुर अन्न और यश प्रदान कर ॥१॥

१५६२—गोतमः । अग्निः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा।
३ २ ३ १ २
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (इधानः) प्रकाशित करता हुआ (वसुः) लोगों को बसानेवाला (कविः) मेधावी (अग्निः) परमेश्वर (ईडेन्यः) स्तुत्य है (गिरा) स्तुति से (रेवत्) धनयुक्त अन्न (अस्मभ्यम्) हमें (पुर्वणीक) हे अत्यन्त सुख के भण्डार (दीदिहि) दे ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ज्ञान का प्रकाशक, लोगों को बसानेवाला, मेधावी और स्तुति से उपासना करने योग्य है। हे सुख के भण्डार प्रभो ! तू हमें धन प्रदान कर ॥२॥

१५६३—गोतमः । अग्निः । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३॥

पदार्थ—(क्षपः) नाशकर (राजन्) हे प्रकाशस्वरूप (उत) या (त्मना) स्वयं (अग्ने) हे परमेश्वर (वस्तः) दिन (उत) और (उषसः) रात्रि में (सः) वह (तिग्मजम्भ) हे तेजोमुख (रक्षसः) हानिकारक भावों को (दह) भस्माकर (प्रति) प्रत्यक्ष ही ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप तथा तेजोरूप मुखवाले परमेश्वर ! तू अन्य विद्वानों द्वारा या स्वयं रात्रि और दिन के हमारे पापों को नाशकर और हानिकारक भावों को भस्म कर ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५६४—गोपवनः । अग्निः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१॥

पदार्थ—(विशः विशः) प्रजामात्र के (वः) तुम लोग (अतिथिम्) अतिथि=पूजनीय को (वाजयन्तः) ज्ञान की कामना करते हुए (पुरुप्रियम्) सर्व प्रिय (अग्निम्) परमेश्वर को (वः) तुम लोगों के (दुर्यम्) आश्रय (वचः) वचन का (स्तुषे) स्तुति करता हूँ (शूषस्य) बल के साधक (मन्मभिः) मनन योग्य वचनों से ॥१॥

भावार्थ—हे उपासक लोगो ! ज्ञान की कामना करते हुए तुम लोग प्रत्येक प्रजा के पूजनीय, सर्वप्रिय और अपने स्तुति वचनों के एक मात्र आश्रय परमेश्वर की बल के साधक मनोहर वचनों से स्तुति करो, मैं भी करता हूँ ॥१॥

१५६५—गोपवनः । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १ ३ ३ २उ ३ १ २
यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्।
३ १ २ ३ १ २
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥२॥

पदार्थ—(यम्) जिसकी (जनासः) लोग (हविष्मन्तः) यज्ञ करनेवाले (मित्रम् न) मित्र के समान (सर्पिरासुतिम्) सर्पणशील जल आदि पदार्थों के उत्पादक (प्रशंसन्ति) स्तुति करते हैं (प्रशस्तिभिः) मनोहर स्तोत्रों से ॥२॥

भावार्थ—यज्ञ करनेवाले लोग सर्पणशील जल आदि पदार्थों के निर्माता जिस जिस परमेश्वर की मित्र के समान प्रशस्तियों से प्रशंसा करते हैं मैं उसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१५६६—गोपवनः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३॥

पदार्थ—(पन्यांसम्) स्तुति के योग्य (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (यः) जो (देवताति) यज्ञ में (उद्यता) तैयार (हव्यानि) हवियों को [वायु द्वारा] (ऐरयत्) प्रेरित करता है (दिवि) द्युलोक में ॥३॥

भावार्थ—जो यज्ञ में छोड़ी गई हवियों को वायु के द्वारा द्युलोक में पहुँचाता है उस उपास्य और सर्वज्ञ परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ ॥३॥

१५६७—भरद्वाजः वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहम् कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥१॥

पदार्थ—(समिद्धम्) प्रकाशित (अग्निम्) परमेश्वर को (समिधा) तीव्र तेज से (गिरा) वेदवाणी से (गृणे) स्तुति करता हूँ (शुचिम्) शुद्धस्वरूप (पावकम्) पवित्रस्वभाव (पुरः) आगे (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ में (ध्रुवम्) नित्य (विप्रम्) ज्ञानी (होतारम्) कर्मफलदाता (पुरुवारम्) बहुतों के उपास्य (अद्रुहम्) किसी से द्रोह न करनेवाले (कविम्) सर्वज्ञ (सुम्नैः) स्तोत्रों से (ईमहे) भजन करते हैं (जातवेदसम्) सर्वव्यापक ॥१॥

भावार्थ—अत्यन्त प्रकाश से प्रकाशित, शुद्धस्वरूप, पवित्रकर्त्ता तथा नित्य परमेश्वर को अपने यज्ञों में स्तुति द्वारा पूर्व स्मरण करता हूँ। उस ही ज्ञानी, कर्मफलदाता, उपास्य, सबकी अनुकूलतावाले सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक की स्तोत्रों से उपासना करता हूँ ॥१॥

१५६८—भरद्वाजः वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २र १ २र
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवासश्च मर्त्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥२॥

पदार्थ—(त्वाम्) तुझे (दूतम्) सुखदाता या दुर्गुण-निवारक (अग्ने) हे परमेश्वर (अमृतम्) अमर (युगे युगे) हर समय पर (हव्यवाहम्) योग्य सामग्री को प्राप्त कराने वाले (दधिरे) धारण करते हैं (पायुम्) रक्षक (ईड्यम्) स्तुति के योग्य (देवासः) विद्वान् जन (च) और (मर्त्तासः) मनुष्य (च) और (जागृविम्) सर्वदा सावधान (विभुम्) व्यापक (विश्पतिम्) प्रजा के स्वामी (नमसा) नमस्कार से (निषेदिरे) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वान् मनुष्यजन हर समयों में अविनाशी, रक्षक, उपासनीय, हमारे भोग्य सामग्री के प्राप्त करानेवाले, सुखदाता वा दुर्गुण-निवारक सर्वदा सावधान, सर्वव्यापक, समस्त सृष्टिगत प्रजा के स्वामी तुझ प्रभु को मनसे धारण करते और नमस्कारों के साथ तेरी उपासना करते हैं ॥२॥

१५६९—भरद्वाजो वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विभूषन्नग्न उभयाँ अनुव्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहे ऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥३॥

पदार्थ—(विभूषन्) सुशोभित करता हुआ (अग्ने) हे परमेश्वर (उभयान्) जड़-जंगम दोनों प्रकार के संसार को (अनुव्रता) जगत् रचनाकर्म और नियम के अनुसार (दूतः) दुःखनिवारक (देवानाम्) विद्वानों के (रजसी) द्यु और पृथिवीलोक में (समीयसे) व्यापक हो रहा है (यत्) जिससे (ते) तेरे (धीतिम्) कर्म (सुमतिम्) ज्ञान को (आवृणीमहे) स्वीकार करते हैं (अध) अनन्तर (स्म) पादपूरक (त्रिवरूथः) तीनों लोकों में व्यापक अथवा तीनों लोक हैं जिसमें (शिवः) कल्याणकारी (भव) होवे ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वानों का दुःखहर्त्ता तू जड़ तथा जंगम दोनों प्रकार के जगत् को अपनी सृष्टि-रचना, कर्म और नियम के अनुसार सुशोभित करता हुआ द्यु और पृथिवीलोक में व्यापक हो रहा है। हम तेरे ज्ञान और कर्म को धारण करते हैं। अतः हे प्रभो त्रिलोकीनाथ ! तू हमारा कल्याण कर ॥३॥

१५७०—प्रयोगः अग्निः यविष्ठः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।
३ १ २र
वायोरनीके अस्थिरन् ॥१॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्वा) तेरे (जामयः) ज्ञानमयी (गिरः) स्तुतियां या वाणियां (देदिशतीः) बार बार उपदेश करती हुई (हविष्कृतः) यजमान की (वायोः) वायु के (अनीके) मण्डल में (अस्थिरन्) स्थिर होती हैं ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा उपदेश करती हुई ज्ञानमयी यजमान की वाणियां या स्तुतियां वायुमंडल में स्थित हो जाती हैं ॥१॥

१५७१—प्रयोगः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ २
यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम्। आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिसका (त्रिधातु) सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों धातुएँ (अवृतम्) खुली (बर्हि) अन्तरिक्ष (तस्थौ) सदा स्थिर हैं (असन्दिनम्) नहीं बंधा हुआ (आपः) जल (चित्) भी (निदधा) स्थापित है (पदम्) अपने स्थान पर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस तेरी सामर्थ्य से सत्त्व, रजस् और तमस् सृष्टिकाल में बिना रुकावट प्रवृत्त हैं, अन्तरिक्ष सर्वत्र स्थित है तथा जल अपने स्थान पर स्थापित है वह तू सबका उपास्य है ॥२॥

१५७२—प्रयोगः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥३॥

पदार्थ—(पदम्) परम पद (देवस्य) देव का (मीढुषः) सकल मनोरथों की वर्षा करनेवाले (अनाधृष्टाभिः) बाधारहित (ऊतिभिः) रक्षाओं से (भद्रा) कल्याण करनेवाली है (सूर्य इव) सूर्य के समान (उपदृक्) देखने के साधन द्वितीय नेत्ररूप ॥३॥

भावार्थ—सकल मनोरथों को देनेवाले परमात्मदेव का परमस्वरूप बाधारहित रक्षादि गुणों से सम्पन्न है । उसकी कृपा लोक के देखने के साधन द्वितीय नेत्ररूप सूर्य के समान कल्याणकारी है ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

卐 पंचदशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

षोडशोऽध्यायः

१५७३—मेध्यातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
१ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (त्वा) तेरी (पूर्वपीतये) प्रथम ज्ञान की रक्षा के लिए (इन्द्र) हे आचार्य (स्तोमेभिः) मन्त्रों से (आयवः) मनुष्य (समीचीनासः) योग्य (ऋभवः) मेधावी (समस्वरन्) प्रशंसा करते हैं (रुद्राः) रुद्र ब्रह्मचारी (गृणन्त) प्रशंसा करते हैं (पूर्व्यम्) वृद्ध ॥१॥

भावार्थ—हे आचार्य ! योग्य बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वज्ञान की रक्षा के लिए तुझ वृद्ध की सब प्रकार से प्रशंसा करते हैं रुद्र ब्रह्मचारी भी तेरी सराहना करते हैं ॥१॥

१५७४—मेध्यातिथि । इन्द्र । बृहती

३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२॥

पदार्थ—(अस्य) इस (इत्) ही (इन्द्रः) परमेश्वर (वावृधे) बढ़ाता है (वृष्ण्यं) वीर्य (शवः) बल (मदे) आनन्द में (सुतस्य) पुत्ररूप (विष्णवि) व्यापक (अद्य) आज (तम्) उसकी (अस्य) इसकी (महिमानम्) महिमा की (आयवः) मनुष्य (अनुष्टुवन्ति) स्तुति करते हैं (पूर्वथा) पहले के समान ही ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर व्यापक आनन्द में विराजमान पुत्ररूप यजमान के बल-वीर्य को बढ़ाता है । आज भी मनुष्य पहले के समान ही उसकी महिमा का गान करते हैं ॥२॥

१५७५—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
१ २ ३२३ १ २
इन्द्राग्नी इष आ वृणे॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वाम्) तुम दोनों की (अर्चन्ति) पूजा करते हैं (उक्थिनः) ऋग्वेदी (नीथाविदः) सामगान के ज्ञाता (जरितारः) उद्गाता (इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (इषः) विज्ञानों को (आवृणे) चाहता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! ऋग्वेदी और सामवेदी स्तुति करने-वाले तुम्हारी पूजा और प्रशंसा करते हैं । मैं तुम्हारे विज्ञान की चाहना करता हूँ ॥१॥

१५७६—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (नवतिम्) नव्वे [९०] (पुरः) पुरी को (दासपत्नीः) दूषित मनोवृत्ति से सुरक्षित (अधूनुतम्) कंपाते हो (साकम्) साथ (एकेन) एक ही (कर्मणा) कर्म से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! तुम दोनों दूषित मनोवृत्ति से पालित नव्वे पुरी को एक ही सम्मिलित कर्म से कंपित करते हो ॥२॥

१५७७—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ १ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २
इन्द्राग्नी अपसस्पर्यु प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३अनु ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (अपसः) कर्म का (परि) भली भांति (उप) समीप (प्र) उत्तम (यन्ति) प्राप्त करते हैं (धीतयः) कर्म-योगी पुरुष (ऋतस्य) सत्य के (पथ्या) मार्ग का (अनु) लक्ष्य कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! कर्मयोगी पुरुष सत्य मार्ग पर चलने के लिए उत्तम कर्मों का अनुष्ठान करते हैं ॥३॥

१५७८—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (तविषाणि) बल (वां) तुम दोनों का (सधस्थानि) एक साथ (प्रयांसि) उत्तम विज्ञान (युवोः) तुम दोनों (अप्तूर्यं) कर्म की प्रेरणा कर (हितम्) एक साथ स्थित है ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! तुम दोनों में बल, विज्ञान तथा कर्मों की प्रेरणा एक साथ होते हैं ॥४॥

१५७९—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २क १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

पदार्थ—(शग्धि) सिद्ध कर (उ) वितर्क (सु) उत्तम (शचीपते) हे वाणी के स्वामी (इन्द्र) विद्वन् (विश्वाभिः) सारी (ऊतिभिः) रक्षा के साधनों से (भगं न) भगवान् के समान (हि) निश्चित (त्वा) तेरे (यशसं) यशस्वी (वसुविदम्) धन प्राप्त करनेवाले (अनु) अनुकूल (शूर) हे अज्ञाननाशक (चरामसि) आचरण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे वाणियों के स्वामी अज्ञाननाशक विद्वन्! तू सारे रक्षा के साधनों से हमारा इष्ट सिद्ध कर ! परमेश्वर के समान यशस्वी तथा तुझ धनदाता के अनु-कूल हम आचरण करते हैं ॥१॥

१५८०—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
न किर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदाभर ॥२॥

पदार्थ—(पौरः) पूर्ण करनेवाला (अश्वस्य) महत्तत्त्व का (पुरुकृत्) अधिक शक्ति पैदा करनेवाला (गवाम्) इन्द्रियों में (उत्सः) कूप के समान सब को तृप्त करनेवाला (देव) हे देव (हिरण्ययः) ज्योतिः स्वरूप (न किः) नहीं (हि) निश्चय (दानं) दान (परिमर्धिषत्) विनष्ट होता है (त्वे) तेरा (यद्-यद्) जो जो (यामि) चाहता हूँ (तद्) वह (आभर) पूर्ण कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमात्मदेव ! तू हमारे बुद्धितत्त्व का पूर्णकर्त्ता, इन्द्रियों में शक्ति का दाता, कूप के समान तृप्ति करनेवाला तथा ज्योतिःस्वरूप है । तेरे दान का कभी नाश नहीं होता । हे भगवन् ! मैं जो जो चाहूँ उसे पूर्ण कर ॥२॥

१५८१—भर्गः। इन्द्रः। बृहती।

२उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥१॥

पदार्थ—(त्वं) तू (हि) निश्चय (एहि) आ (चेरवे) सेवक के लिए (विदा) दे (भगं) धन (वसुत्तये) धन देने के लिए (उत्) उत्तमता से (वावृषस्व) धन की अत्यन्त वर्षा कर (मघवन्) हे धनवान् (गविष्टये) गौ चाहनेवाले (उत्) अथवा (इन्द्र) हे राजन् (अश्वमिष्टये) अश्व चाहनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे धनवान् राजन्! तू धन प्रदान करने के लिए आ, और प्रदान कर। गौ और अश्व चाहनेवाले मेरे लिए बार बार धन की वर्षा कर ॥१॥

१५८२—भर्गः। इन्द्रः। बृहती।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्वं पूरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (पुरू) बहुत (सहस्राणि) हजारों (शतानि) सैकड़ों (च) और (यूथा) पशुओं का समुदाय (दानाय) दान के लिए (मंहसे) देता है (आ) भली भांति (पुरन्दरम्) बुराइयों को दूर करनेवाले (चकृम) करें (विप्रवचसः) विद्वानों के वचनवाले हम (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गायन्तः) गुणगान करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू सैकड़ों सहस्रों पशुओं का समुदाय दान करने के लिए हमें प्रदान करता है। ज्ञानी के वचनवाले हम तेरा गान करते हुए बुराइयों को दूर करनेवाले तुझ इन्द्र का अपनी रक्षार्थ साक्षात् करें ॥२॥

१५८३—सौभरिः। अग्निः। बृहती।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (विश्वा) सारे (दयते) देता है (वसु) धन (होता) यज्ञकर्त्ता (मन्द्रः) सबको प्रसन्न करनेवाला (जनानाम्) जनता के लिए (मधोः) मधु का (न) समान (पात्रा) पात्र (प्रथमानि) प्रथम (अस्मै) इस (प्र) उत्तम (स्तोमा) स्तोत्र (यन्तु) प्राप्त हों (अग्नये) विद्वान् के लिए ॥१॥

भावार्थ—यज्ञकर्त्ता और सबको प्रसन्न करनेवाला जो विद्वान् पुरुष जनता को सकल सम्पदाएँ प्रदान करता है उसके लिए मधु के मुख्य पात्र के समान हमारा प्रशंसा वचन प्राप्त हो ॥१॥

१५८४—सौभरिः। अग्निः। बृहती।

२ ३ २ ३ २ २क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥२॥

पदार्थ—(अश्वं न) अश्व के समान (गीर्भिः) स्तुतियों से (रथ्यं) रथ के योग्य (सुदानवः) उत्तमदानी यजमान (मर्मृज्यन्ते) उपासना करते हैं (देवयवः) दिव्य गुणों की कामना करनेवाले (उभे) दोनों (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र (दस्म) हे साक्षात्कार करने योग्य (विश्पते) प्रजापालक (पर्षि) प्रदान कर (राधः) धन (मघोनाम्) यज्ञ करनेवालों को ॥२॥

भावार्थ—हे दर्शन करने योग्य और सकल प्रजा के पालक परमेश्वर! दिव्य गुणों को चाहनेवाले सुन्दर दानी यजमान रथ के योग्य अश्व के समान स्तुतियों से तेरी उपासना करते हैं। तू यज्ञ करने करनेवालों को पुत्र और पौत्र दोनों सम्पदाएँ देता है ॥२॥

卐 प्रथमः खण्ड समाप्तः 卐

१५८५—शुनःशेपः। वरुणः। गायत्री।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके ॥१॥

पदार्थ—(इमम्) इस (मे) मेरे (वरुण) हे परमेश्वर (श्रुधि) सुन (हवम्) पुकार को (अद्य) आज (च) और (मृडय) सुखी कर (त्वाम्) तेरी (अवस्युः) अपनी रक्षा चाहनेवाला मैं (आचके) स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! अपनी रक्षा चाहनेवाला मैं तेरी स्तुति करता हूँ। आज तू मेरी पुकार सुन तथा मुझे सुखी कर ॥१॥

१५८६—सुकक्षः। इन्द्रः। गायत्री।

२ ३ १ ९ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—(कया) सुखमयी (त्वं) तू (नः) हमें (ऊत्या) रक्षा से (अभिप्रमन्दसे) आनन्दित करती है (वृषन्) हे सकल मनोरथों को सफल करनेवाले (कया) सुखमयी कृपा से (स्तोतृभ्यः) भक्तों को (आ भर) परिपूर्ण कर ॥१॥

भावार्थ—हे सकल मनोरथों को पूरा करनेवाले परमेश्वर! तू सुखमयी रक्षा से हमें आनन्दित कर और सुखमयी कृपा से भक्तों को भरपूर कर ॥१॥

१५८७—मेधातिथिः। इन्द्रः। बृहती।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
१ २ ३ २ ३ १ ९ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) विद्वान् पुरुष को (इत्) ही (देवतातये) यज्ञ के लिए (इन्द्रम्) ईश्वर को (प्रयति) प्रारम्भ होने पर (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ के (इन्द्रम्) सेनापति को (समीके) संग्राम में (वनिनः) भजन करनेवाले (हवामहे) पुकारते हैं (इन्द्रम्) धनवान् को (धनस्य) धन की (सातये) प्राप्ति के लिए ॥१॥

भावार्थ—हम श्रद्धालु जन यज्ञ के प्रारम्भ में परमेश्वर की, यज्ञ के लिए विद्वान् की, संग्राम में सेनापति की तथा धन की प्राप्ति के लिए धनवान् की पुकार करते हैं ॥१॥

१५८८—मेधातिथिः। इन्द्रः। बृहती।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छवः इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर ने (मह्ना) अपनी महिमा से (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (पप्रथत्) विस्तार किया है (शवः) बल का (इन्द्रः) परमेश्वर (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (इन्द्रे) परमेश्वर में (ह) निश्चय (विश्वा) सारे (भुवनानि) भुवन (येमिरे) नियन्त्रित हो रहे हैं (इन्द्रे) परमेश्वर में (स्वानासः) मन्त्रों का उच्चारण किए जानेवाले (इन्दवः) यज्ञ आश्रित हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर अपनी महिमा से द्युलोक और पृथिवी में बल का विस्तार करता है। उसी ने सूर्य को प्रकाशमान किया है। सारे लोक उसी में नियन्त्रित हैं. मंत्रों से युक्त यज्ञ उसी में आश्रित हैं ॥२॥

१५८९—विश्वकर्मा। विश्वकर्मा। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २क १ २र
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वां३स्वा हि ते।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥३॥

पदार्थ—(विश्वकर्मन्) हे सृष्टिकर्त्ता (हविषा) अपनी शक्ति से (वावृधानः) संसार का विस्तार करता हुआ (स्वयम्) अपने आप (यजस्व) यज्ञ करता है (तन्वां) विस्तृत ब्रह्माण्ड में (स्वाहिते) स्वयं स्थापित (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त होते हैं (अन्ये) वही जाननेवाले (अभितः) हर प्रकार से (जनासः) मनुष्य (इह) इस विषय में (अस्माकं) हमारा (मघवा) परमेश्वर (सूरिः) ज्ञानप्रदर्शक (अस्तु) है ॥३॥

भावार्थ—हे सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर! अपनी शक्ति से संसार का विस्तार करता हुआ तू स्वयं स्थापित विराट्रूप ब्रह्माण्ड में अपने आप यज्ञ करता है। न जाननेवाले मनुष्य सृष्टि में मोह को प्राप्त होते हैं। इस विषय में तू ही हमें ज्ञान का उपदेश करनेवाला है ॥३॥

१५९०—अनानतः। सोमः। अत्यष्टिः।

३ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस (रुचा) तेजसे (हरिण्या) अंधकार का हरण करनेवाले (पुनानः) पवित्र करता हुआ (विश्वा) सारे (द्वेषांसि) द्वेषों को

(तरति) नष्ट करता है (सयुग्वभिः) परस्पर संयुक्त (सूरः) सूर्य के (न) समान (सयुग्वभिः) किरणों से (धारा) वाणी (पृष्ठस्य) जगत् को धारण करनेवाले की (रोचते) प्रकाशित होती है (पुनानः) जानता हुआ (अरुषः) तेजस्वी (हरिः) अज्ञान का हरण करनेवाला (विश्वा) सारे (यत्) जो (रूपा) सूर्य, चन्द्र आदि रूपों को (परियासि) व्यापक होता है स्तुति के योग्य (सप्तास्येभिः) सात छन्दोंवाले (ऋक्वभिः) ऋग्वेदादियों से ॥१॥

भावार्थ—पवित्रकारक परमेश्वर अज्ञाननाशक अपने प्रकाश से, अन्धकार को परस्पर संयुक्त किरणों से सूर्य के समान, सारे द्वेषों का नाश करता है। जगदाधार उस प्रभु की वाणी प्रकाशित होती है। सर्वज्ञ, तेजस्वी तथा अज्ञानहर्त्ता वह प्रशंसनीय सात छन्दोंवाले ऋग्वेदादियों के ज्ञान के सारे रूपों में रम रहा है ॥१॥

१५६१—*अनानतः । सोमः । अत्यष्टिः ।*

१ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभि-

३ २उ   ३ १ २   ३ १   २र
र्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १२
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २   ३ १ २र
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥२॥

पदार्थ—(प्राचीम्) प्रकाशवाली (अनु) पश्चात् (प्र) उत्तम (दिशम्) दिशा को (याति) जाता है (चेकितत्) जानता हुआ (सम्) सम्यक् (रश्मिभिः) ज्ञानकिरणों से (यतते) उपाय करता है (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) सूर्य के समान (दैव्यः) देवों में गण्यमान (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) शरीरवाला (अग्मन्) प्राप्त होते हैं (उक्थानि) प्रशंसाएँ (पौंस्या) पुरुषसम्बन्धी (इन्द्रम्) राजा को (जैत्राय) जय प्राप्ति के लिए (हर्षयन्) प्रसन्न करते हैं (वज्रः) वज्र [शस्त्र] भी (यत्) जब (भवथः) होते हैं (अनपच्युता) तेज (समत्सु) संग्रामों में (अनपच्युता) अमोघ ॥२॥

भावार्थ—जब संग्रामों में तेज और अमोघ शस्त्र होते हैं तो विजय में विश्वास करता हुआ दर्शनीय और साधन-सम्पन्न सेनापति दर्शनीय, देवों में गिना जानेवाला, किरणों से सूर्य के समान विजय की दिशा में प्रस्थान तथा यत्न करता है। राजा को विजय प्राप्त करने के लिए प्रसन्न करता हुआ पौरुष-प्रकाशक प्रशंसा वचनों को पाता है ॥२॥

१५६२—*अनानतः । सोमः । अत्यष्टिः ।*

२ ३ १ २ ३ १   २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभि-

३ १   २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
र्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।

३ २ ३ २उ   ३ ३ ३ १ २   ३ १ २
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमाना वयो दधे ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (ह) निश्चय ही (त्यत्) उस (पणीनाम्) व्यापार करनेवालों को (विदः) देता है (वसु) धन (सम्) सम्यक् (मातृभिः) मान करने योग्य (मर्जयसि) पवित्र करता है (स्वे) अपने (आ) भली भांति (दमे) दुःखों का दमन करनेवाले (ऋतस्य) सत्य के (धीतिभिः) विधानों से (दमे) मोक्षरूप परमपद में (परावतः) दूर से सुनाई पड़नेवाले (न) समान (साम) साम के (तत्) उस (यत्र) जिसमें (रणन्ति) आनन्द पाते हैं (धीतयः) ध्यान करनेवाले (त्रिधातुभिः) तीन धातुओं से [सत्व, रजः, तमस्] [कफ, वात, पित्त] (अरुषीभिः) प्रकाशवाले (वयो) अवस्था को (दधे) धारण करता है (रोचमानः) प्रकाशमान (वयः) हमारी आयु को (दधे) धारण करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही व्यापारियों को धन देता है। तू सन्मान के योग्य सत्य के विधानों से दुःख को हटानेवाले अपने मोक्ष धाम में आत्माओं को पवित्र करता है। जिसमें ध्यानी लोग आनन्दलाभ करते हैं, वह तेरा पद दूर से सुनाई पड़नेवाले साम के समान मनोहर है। हे प्रभो प्रकाशस्वरूप ! तू तेजस्वी सुवर्ण तत्त्व रजस् तमस् धातुओं से हमारे शरीर की स्थिति तथा कफ, वात, पित्त तीन धातुओं से हमारी आयु को धारण करता है ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५६३—*भरद्वाजः । पूषा । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्यूतये ॥१॥

पदार्थ—(उत) और (नः) हमें (गोषणिम्) गाय देनेवाली (धियम्) बुद्धि (अश्वसाम्) घोड़े देनेवाली (वाजसाम्) अन्न देने वाली (उत) और (नृवत्) उत्तम सन्तान देने वाली (कृणु) दे (हि) निश्चय (ऊतये) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें रक्षा के लिए गाय, घोड़े, अन्न तथा उत्तम सन्तान देनेवाली बुद्धि प्रदान कर ॥१॥

१५६४—*गोतमः । मरुद्गणः । गायत्री ।*

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २र ३ १ २
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥२॥

पदार्थ—(शशमानस्य) सत्कार करनेवाले [प्रशंसा करनेवाले] (वा) ही (नरः) हे नेताओ (स्वेदस्य) यज्ञ करने से परिश्रान्त (सत्यशवसः) सत्य बल वाले (विदा) प्राप्त करा (कामस्य) कामना को (वेनतः) चाहनेवाले यजमान की ॥२॥

भावार्थ—हे सत्य बलवाले, यज्ञ के वहन करनेवाले ऋत्विजो ! आप लोग सत्कार करनेवाले, तथा यज्ञ करने से श्रान्त यजमान की कामना को पूरा करो ॥२॥

१५६५—*ऋजिश्वा । विश्वेदेवाः । गायत्री ।*

१ २   ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १   ३   १ २
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥३॥

पदार्थ—(उप) समीप (नः) हमारे (सूनवः) पुत्र आदि (गिरः) वाणियां (शृण्वन्तु) सुनें (अमृतस्य) अविनाशी परमेश्वर की (ये) जो (सुमृडीकाः) सुख देनेवाले (भवन्तु) होवें (नः) हमें ॥३॥

भावार्थ—हमारे पुत्र अविनाशी परमेश्वर की वाणी सुनें और हमें सुखी करें ॥ ३ ॥

१५६६—*अजमीढः । द्यावापृथिव्यौ । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   २ ३ २ ३ १ २
प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वाम्) इन दोनों (महि) द्युलोक और पृथिवी की (द्यवी) चमकीले (अभि) सब प्रकार से (उप) समीप (स्तुतिम्) प्रशंसा को (भरामहे) करते हैं (शुची) पवित्र (उप) समीप (प्रशस्तये) प्रशंसा के लिए [गुणकथन के लिए] ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर के गुणगान के लिए इन दोनों द्यु और पृथिवी लोकों की हम प्रशंसा करते हैं ॥१॥

१५६७—*अजमीढः । द्यावापृथिव्यौ । गायत्री ।*

३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ २
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥२॥

पदार्थ—(पुनाने) पवित्र करनेवाले (तन्वा) अपने विस्तार से (मिथः) परस्पर (स्वेन) अपने (दक्षेण) बल से (राजथः) विराजमान हैं (ऊह्याथे) धारण करते हैं (सनात्) सदा से (ऋतम्) परमेश्वर की सामर्थ्य को ॥२॥

भावार्थ—अपने विस्तार से सबको पवित्र करते हुए द्यु और पृथिवीलोक परस्पर एक दूसरे को धारण करते हुए अपनी शक्ति से विराजमान हैं। वे सदा परमेश्वर की सामर्थ्य को धारण करते हैं ॥२॥

१५६८—*अजमीढः । द्यावापृथिवी । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ २   १ २ ३ १   २र
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं निषेदथुः ॥३॥

पदार्थ—(मही) महा द्युलोक और पृथिवी (मित्रस्य) सूर्य के दिन-रात के विभाग रूप कार्य को (साधथः) सिद्ध करती हैं (तरन्ती) तैरती हुई (पिप्रती) पूर्णता प्रकट करती हुई (ऋतम्) सृष्टिनियम पर (परि) सब प्रकार से (यज्ञम्) परमेश्वर का (निषेदथुः) आश्रय लेती हैं ॥३॥

भावार्थ—सृष्टिनियम पर चलती और उसकी पूर्णता प्रकट करती हुई द्यु और पृथिवी सूर्य से होनेवाले रात्रि-दिन के विभाग का सम्पादन करती हैं तथा परमेश्वर के आश्रय पर स्थित हैं ॥३॥

१५६९—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २   १ ३ १ २
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (उ) पादपूरक (ते) तेरे लिए (समतसि) निरन्तर आता-जाता है (कपोतः) कबूतर के (इव) समान (गर्भधिम्) कबूतरी को (वचः) वचन को (तत् चित्) इसी कारण से (नः) हमारे पूज्य परमेश्वर के (ओहसे) प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! यह प्रत्यक्ष संसार तेरे उपभोग के लिए है। कबूतरी को कबूतर के समान तू वार-वार यहां सदा आता-जाता है। इसी लिए सबके पूज्य परमेश्वर के वचन को सुनता है ॥१॥

१६००—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १२ ३ १ २
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥२॥

पदार्थ—(स्तोत्रम्) स्तुति (राधानांपते) हे सम्पदाओं के स्वामी (गिर्वाहः) हे वेदवाणियों से स्तुति योग्य (वीर) हे सर्वशक्तिमन् (यस्य) जिस (ते) तेरी (विभूतिः) महिमा (अस्तु) है (सूनृता) उषा ॥२॥

भावार्थ—हे सारी सम्पदाओं के स्वामी, भजनीय तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! यह तेरी स्तुति है । उषा का प्रभाव तेरी ही विभूति है ॥२॥

१६०१—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २र २ ३ १ २
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥३॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वः) सर्वप्रथम (तिष्ठ) रहता है (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (अस्मिन्) इस (वाजे) जीवन संग्राम में (शतक्रतो) हे सर्वज्ञ (सम्) सम्यक् (अन्येषु) अन्य कार्यों में (ब्रवावहै) तेरी स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू इस जीवनसंग्राम में हमारी रक्षा के लिए सर्वप्रथम विद्यमान है । अन्य सभी कार्यों में भी हम तेरी ही स्तुति करते हैं ॥३॥

१६०२—*हर्यतः । इन्द्रः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥१॥

पदार्थ—(गावः) हे स्तुति करनेवालो (उपवद) उपदेश करो (अवटे) संसार रूप कूप में पड़े हुए हम लोगों को (मही) पृथिवी (यज्ञस्य) पूजनीय (रप्सुदा) स्वरूप का स्मरण दिलाती है (उभौ) दोनों (कर्णौ) सिरे (हिरण्यया) ज्योति से युक्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे उपासको ! तुम लोग हमको, जो संसार-कूप में पड़े हुए हैं, बचने का उपदेश दो । यह पृथ्वी पूज्य परमेश्वर के स्वरूप को स्मरण कराती है । इसके दोनों सिर ज्योति से युक्त होते हैं ॥१॥

१६०३—*हर्यतः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवटस्य विसर्जने ॥२॥

पदार्थ—(अभ्यारमित्) उपभोग करते हैं (अद्रयः) आदरणीय उपासक (निषिक्तम्) सेचन किया हुआ (पुष्करे) हृदयकमल में (मधु) आनन्दरस का (अवटस्य) संसाररूप कूप के (विसर्जने) समाप्ति पर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! संसाररूप कूप की भोग-सम्पादन से समाप्ति हो जाने पर आदरणीय उपासक लोग हृदयकमलों में सिंचे हुए आनन्दरस का उपभोग करते हैं ॥२॥

१६०४—*हर्यतः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनवारमक्षितम् ॥३॥

पदार्थ—(सिञ्चन्ति) पूर्ण करते हैं (नमसा) अन्न से (अवटम्) कोठिला [अन्न रखने का] को (उच्चाचक्रम्) ऊपर गोल (परिज्मानम्) एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के योग्य (नीचीनवारम्) नीचे द्वारवाले (अक्षितम्) न टूटा हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी कृपा से कृषक लोग ऊपर गोलाकार, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने योग्य, नीचे द्वारवाले तथा न टूटे हुए कोठिले को अन्न से भरते हैं ॥३॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१६०५—*देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥१॥

पदार्थ—(मा) नहीं (भेम) भयभीत हों (श्रमिष्म) पीड़ित (उग्रस्य) बलवान् (सख्ये) मित्रता में (तव) मेरी (महत्) महान् (ते) तेरा (वृष्णः) कामनाओं को वर्षानेवाले (अभिचक्ष्यम्) प्रशंसनीय (कृतम) कार्य को (पश्येम) देखें (तुर्वशम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अधिकारी (यदुम्) मनुष्यों को ।१।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान् तुझ देव की मित्रता में हम किसी से भयभीत और पीड़ित न हों । कामनाओं की वर्षा करनेवाले तेरा कर्म महान् और प्रशंसनीय है । हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अधिकारी पुरुष को देखें ॥१॥

१६०६—*देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥२॥

पदार्थ—(सव्याम्) बाईं (अनु) पश्चात् (स्फिग्यम्) कटिप्रदेश को (वावसे) निवास करता है (वृषा) बलवान् (न) नहीं (दानः) दान (अस्य) परमेश्वर का (रोषति) दुःखदायी होता है (मध्वा) मधुरता से (संपृक्ताः) भरी हुई (सारघेण) सुस्वादु (धेनवः) गौएँ हैं (तूयम्) शीघ्र (एहि), आ (द्रवा) शीघ्रता कर (पिब) पान कर ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! बलवान् तू बाएं कटि-प्रदेश अर्थात् गर्भ से आता है । परमेश्वर का दान सुखदायी होता है । स्वादु तथा मधुर दूधवाली गौएँ संसार में हैं । तू आ और उनके दुग्ध का उपभोग कर ॥२॥

१६०७—*मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।*

३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१॥

पदार्थ—(इमा) ये (उ) पादपूर्ति (त्वा) तेरी (पुरूवसो) हे सर्वाश्रय (गिरः) स्तुतियां (वर्धन्तु) प्रशंसा करें (याः) जो (मम) मेरी (पावकवर्णाः) तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (अभि) भली भांति (स्तोमैः) स्तोत्रों से (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वाश्रय परमेश्वर ! हमारी स्तुतियां तेरी प्रशंसा करें । तेजस्वी, और पवित्र विद्वान् भी स्तोत्रों से तेरी स्तुति करें ॥१॥

१६०८—*मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सहस्रम्) असंख्य (ऋषिभिः) तत्त्व ज्ञानियों के (सहस्कृत) समान (समुद्र इव) समुद्र के समान (पप्रथे) गम्भीर और विस्तृत हो रहा है (सत्यः) सत्यस्वरूप (सः) वह (अस्य) इसकी (महिमा) महिमा (गृणे) स्तुति करता हूँ । (शवः) बल (यज्ञेषु) यज्ञों में (विप्रराज्ये) ज्ञानियों के राज्य में ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सत्यस्वरूप तथा असंख्य तत्त्वज्ञानियों के समान अतीन्द्रियार्थ द्रष्टा है । उसकी महिमा तथा बल समुद्र के समान गम्भीर और विस्तृत हो रहे हैं । ज्ञानियों के राज्य में विद्यमान यज्ञों में इसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१६०९—*उरुष्ठिगुः । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥१॥

पदार्थ—(यस्य) जिसका (अयम्) यह (विश्वः) सारा (आर्यः) आर्यवर्ग (दासः) सेवक (शेवधिपा) वेदनिधि का रक्षक (अरिः) प्राप्त करनेवाला (तिरश्चिद्) छिपा हुआ भी (अर्ये) स्वामी (रुशमे) नियन्ता (पवीरवि) वाणी के पिता परमेश्वर में (तुभ्य इत्) तुझ आप के लिए ही (सः) वह (अज्यते) प्रकट किया जाता है, (रयिः) विद्या धन ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! जिसका यह सारा आर्यवर्ग सेवक और वेदविद्या का रक्षक तथा प्राप्त करनेवाला है, सबके स्वामी, नियन्ता तथा वाणी के पिता उस परमेश्वर में छिपा हुआ वह वेदविद्याधन तेरे ही लिए प्रकट होता है ॥१॥

१६१०—*उरुष्टिगुः । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥२॥

पदार्थ—(तुरण्यवः) शीघ्रकारी (मधुमन्तम्) ज्ञान-विज्ञान से युक्त (घृतश्चुतम्) प्रकाश का विस्तार करनेवाले (विप्रासः) मेधावीजन (अर्कम्) पूजनीय (आनृचुः) पूजा करते हैं (अस्मे) हमारे लिए (रयिः) संपदा का (पप्रथे) विस्तार होवे (वृष्ण्यम्) सुख की वृष्टि करनेवाला (शवः) बल (अस्मे) हमारे लिए (स्वानासः) उपदेश करनेवाले (इन्दवः) विद्वान् योगीजन ॥२॥

भावार्थ—कर्म-कुशल विद्वान् लोग ज्ञान विज्ञानसे युक्त, प्रकाश करनेवाले तथा पूजनीय परमेश्वर की पूजा करते हैं । इस लिए कि हमारे लिए धन तथा सुख के

देनेवाले बल का विस्तार हो, हमें उपदेश करनेवाले विद्वान् प्राप्त हों ॥२॥

१६११—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३१२ ३१२
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
१२ ३२३२१ १२
शुचिञ्च वर्णमधि गोषु धारय ॥१॥

पदार्थ—(गोमत्) गौ से युक्त (नः) हमें (इन्दो) हे ऐश्वर्यवन् (अश्ववत्) घोड़े से युक्त (सुतः) संसार में उत्पन्न (सुदक्ष) हे व्यवहारकुशल (धनिव) प्राप्त करा (शुचिम्) पवित्र (च) और (वर्णम्) अक्षर को (अधि) में (गोषु) वाणियों में (धारय) धारण करा ॥१॥

भावार्थ—हे व्यवहार-कुशल तथा ऐश्वर्यवन् विद्वान् पुरुष ! संसार में उत्पन्न हुआ तू हमें गौओं तथा घोड़ों से युक्त धन प्राप्त करा तथा हमारी वाणियों में पवित्र अक्षर को धारण करा ॥१॥

१६१२—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३१२३१२ १२३१२३१२३१२
स नो हरीणाम्पत इन्दो देव प्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्या रुचे भव ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे (हरीणाम्पते) मनुष्यमात्र के स्वामी (इन्दो) हे ऐश्वर्यवन् (देव) देव (प्सरस्तमः) अत्यन्त प्रकाशस्वरूप (सखा) मित्र के (इव) समान (सख्ये) मित्र के लिए (नर्यः) मनुष्यमात्र का कल्याण करनेवाला (रुचे) प्रकाश के लिए (भव) हो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यमात्र के स्वामी तथा ऐश्वर्यशाली परमात्मदेव ! प्रकाशस्वरूप तथा सबका कल्याण करनेवाला तू मित्र को मित्र के समान हमारे ज्ञानप्रकाश के लिये हो ॥२॥

१६१३—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१२३ २३१ २र३१ २३१२
सनेमि त्वमस्मदा अदेवङ्कञ्चिदत्रिणम् ।
१ १ २३२३ २ ३ १२१२
साह्वां इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥३॥

पदार्थ—(सनेमि) मित्रता (त्वम्) तू (अस्मद्) हमारे लिए (आ) [वह] प्रदान कर (अदेवम्) बुरी वृत्तिवाले [राक्षस स्वभाव वाले] (कञ्चित्) किसी (अत्रिणम्) बुरे आचरणवाले (साह्वान्) दबानेवाला (इन्दो) हे ऐश्वर्यवन् (परि) सब ओर से (बाधः) बाधाओं को (अप) [गमय] दूर कर (द्वयुम्) मन तथा वाणी में भिन्न-भिन्न भाव रखनेवाले [दुरात्मा] ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! दुष्टों को दमन करनेवाला तू हमें अपनी मित्रता प्रदान कर । नास्तिक, बुरे आचरणवाले, दुरात्मा तथा अन्य बाधाओं को हमसे दूर भगा ॥३॥

१६१४—अत्रिः । सोमः । जगती ।

१ २३क २र ३१२ ३१२ ३ २ ३क २र
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाऽभ्यञ्जते ।
१ २ ३२३१३ ३१२ ३२ ३२३१२
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥१॥

पदार्थ—(अञ्जते) इच्छा करते हैं (व्यञ्जते) पवित्र होते हैं (समञ्जते) साक्षात् करते हैं (क्रतुम्) ज्ञान का (रिहन्ति) आस्वादन करते हैं (मध्वा) आत्मज्ञान से (अभ्यञ्जते) संपन्न होते हैं (सिन्धोः) परमेश्वर के (उच्छ्वासे) उच्च स्थान [परम पद] में (पतयन्तम्) जानेवाले (उक्षणम्) बलवान् (हिरण्यपावाः) तप्त सुवर्ण के समान मलरहित (पशुम्) द्रष्टा जीव को (अप्सु) कर्मों में (गृभ्णते) ग्रहण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—तप्त स्वर्ण के समान अविद्या आदि मल से रहित योगीजन इच्छा करते हैं और पवित्र होते हैं । तदनन्तर साक्षात्कार करते हैं फिर ज्ञान का आस्वादन करते हैं फिर आत्मज्ञान से संपन्न होकर परमेश्वर के परमपद को प्राप्त करते हुए बलवान्, द्रष्टा जीव को अपने कर्मों से ग्रहण करते हैं ॥१॥

१६१५—अत्रिः । सोमः । जगती ।

३ २३१२ ३१ २र
विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
२३२३१ २र ३ २३२३ १२र ३ २ ३ १ २
अहिर्न जूर्णामतिसर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥२॥

पदार्थ—(विपश्चिते) मेधावी (पवमानाय) पवित्र स्वभाव (गायत) प्रशंसा करो (मही) महान् (न) समान (धारा) वेदवाणी के (अति) अत्यन्त (अन्धः) अज्ञानान्धकार को (अर्षति) नष्ट करता है (अहिः) सर्प के (न) समान (जूर्णाम्) पुरानी (अतिसर्पति) छोड़ देता है (त्वचम्) केंचुल (अत्यः) वायु के (न) समान (क्रीडन्) खेलता हुआ (असरद्) स्वतन्त्र विचरता है (वृषा) शक्तिशाली (हरिः) अज्ञानहर्त्ता ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग मेधावी तथा पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष का गुणगान करो । यह महान् वेदवाणी के समान अज्ञान का नाश करता है । केंचुली को सर्प के समान शरीर की ममता का परित्याग कर बलवान् तथा अज्ञानहर्त्ता वह वायु के समान स्वतन्त्र विचरता है ॥२॥

१६१६—अत्रिः । सोमः । जगती ।

३ १ २र ३२३२३ १२३१२
अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नाम्भुवनेष्वर्पितः ।
१२३१२ ३१२ ३२ ३१२ ३ २ ३क २र
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥३॥

पदार्थ—(अग्रेगः) सबसे आगे रहने वाला (राजा) प्रकाशस्वरूप (आप्यः) प्राप्त करने के योग्य (स्तविष्यते) भजा जाता है (विमानः) निर्माण करने वाला (अह्नाम्) दिनों का (भुवनेषु) लोकों में (अर्पितः) व्यापक (हरिः) दुःखहर्त्ता (घृतस्नु) प्रकाशदाता (सुदृशीकः) साक्षात् के योग्य (अर्णवः) अपार (ज्योतीरथः) ग्रहों का [गति देनेवाला] चलानेवाला (पवते) प्रदान करता है (रायः) संपदाएँ (ओक्यः) आश्रयदाता ॥३॥

भावार्थ—भक्त लोग सबसे आगे रहनेवाले, प्रकाशस्वरूप, प्राप्त करने योग्य दिन-रात का निर्माण करनेवाला, लोकों में व्यापक, दुःखहर्त्ता, प्रकाशदाता, साक्षात् करने के योग्य, अपार, ग्रहों को चलानेवाला तथा आश्रयदाता परमेश्वर का भजन करते हैं । वह संपदाएँ देता है ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

卐 षोडशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

सप्तदशोऽध्यायः

१६१७—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १२३२३२३१ २र १ २
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धा सहसो यहो ॥१॥

पदार्थ—(विश्वेभिः) सारे (अग्ने) हे विद्वन् (अग्निभिः) आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिण अग्नियों द्वारा (इमम्) इस (यज्ञम्) परमेश्वर को (इदम्) इस (वचः) वेद-वचन को (चनः) अन्न को (धाः) धारण कर (सहसः) बल के (यहो) पुत्र-धनी ॥१॥

भावार्थ—हे बल के पुत्र ! [अर्थात् आत्मबल के धनी] तू गार्हपत्यादि सारी अग्नियों द्वारा परमेश्वर वेद-वचन तथा अन्न को धारण कर ॥१॥

१६१८—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३१२३१२३१२ १ २र ३ २
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्व इद्धूयते हविः ॥२॥

पदार्थ—(यत् चित् हि) यद्यपि (शश्वता) सनातन (तना) विस्तृत यज्ञ से (देवं देवम्) प्रत्येक देव के नाम से (यजामहे) यज्ञ करते हैं किन्तु (त्वे) तेरे निमित्त (इत्) ही (हूयते) दी जाती है (हविः) हवि ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! यद्यपि सनातन यज्ञ क्रिया से प्रत्येक देव के नाम से यज्ञ किया जाता है तथापि हवन तेरे निमित्त ही होता है ॥२॥

१६१९—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३॥

पदार्थ—(प्रियः) प्रिय (नः) हमारा (अस्तु) हो (विश्पतिः) संसारी प्रजाओं का स्वामी (होता) दाता (मन्द्रः) प्रसन्न (वरेण्यः) श्रेष्ठ (प्रियाः) प्यारे (स्वग्नयः) यज्ञ करनेवाले (वयम्) हम लोग ॥३॥

भावार्थ—हे भक्त लोगो ! संसार का पालक, दाता, नित्यप्रसन्न तथा श्रेष्ठ परमेश्वर हमारा प्रिय हो और यज्ञकर्त्ता हम लोग भी उसके प्यारे बनें ॥३॥

१६२०—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर को (वः) तुम लोगों के लिए (विश्वतः) सब ओर से (परि) ऊपर विद्यमान (हवामहे) पुकारते हैं (जनेभ्यः) जनों से (अस्माकम्) हमारा (अस्तु) हो (केवलः) सदा मुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारे कल्याण के लिए, परमेश्वर को जो समस्त जनों से उत्तम पदवाला है पुकारते हैं । सदा मुक्त वह हमारा कल्याणकारी हो ॥१॥

१६२१—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे लिए (वृषन्) हे वृष्टिकर्त्ता (अमुम्) इस (चरुम्) मेघ को (सत्रादावन्) हे सत्य के दाता (अपावृधि) खोल दे (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (अप्रतिष्कुतः) सदा सावधान ॥२॥

भावार्थ—हे सत्य के दाता तथा वृष्टि करनेवाले परमेश्वर ! हमारे कल्याण के लिए सदा सावधान तू हमारे लाभ के लिए अर्थ-वृष्टि कर ॥२॥

१६२२—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ १
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥३॥

पदार्थ—(वृषा) बैल के (यूथा) गो-समूहों को (इव) समान (वंसगः) सत् असत् का विवेक करनेवाले को प्राप्त होने वाला (कृष्टीः) मनुष्यों को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है (ओजसा) बल से (ईशानः) स्वामी (अप्रतिष्कुतः) सदा सावधान ॥३॥

भावार्थ—गो-समूहों को वृषभ के समान, सत्-असत् के विवेकी को प्राप्त होनेवाला तथा सदा सावधान परमेश्वर बल के साथ मनुष्यों को प्राप्त होता है ॥३॥

१६२३—शंयुः । अग्निः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ १ ३ २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥१॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नः) हमारे लिए (चित्रः) दर्शन के योग्य (ऊत्या) रक्षा के साथ (वसो) बसनेवाले (राधांसि) विद्याधनों को (चोदय) प्रेरित कर (अस्य) इस (रायः) धन का (त्वम्) तू (अग्ने) हे विद्वन् (रथीः) रथी (असि) है (विदा) प्राप्त करा (गाधम्) प्रतिष्ठा को (तुचे) सन्तान के लिए (तु) पदपूरण (नः) हमारी ॥१॥

भावार्थ—हे सद्गुणों को निवास देनेवाले विद्वन् ! दर्शनीय तू हमें रक्षा के साथ विद्या आदि सम्पत्तियां दे । तू इस धन का नेता है । हमारी सन्तान को प्रतिष्ठा दे ॥१॥

१६२४—शंयुः । अग्निः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥२॥

पदार्थ—(पर्षि) रक्षा करता है (तोकम्) पुत्र की (तनयम्) पौत्र की (पर्तृभिः) रक्षा के साधनों से (त्वम्) तू (अदब्धैः) अनिवार्य (अप्रयुत्वभिः) एक साथ रहनेवाले (अग्ने) हे परमेश्वर (हेडांसि) प्रकोपों को (दैव्या) दैवी (युयोधि) दूर कर (नः) हमारे (अदेवानि) आसुरी (ह्वरांसि) कुटिलताओं को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अनिवार्य तथा एक साथ होनेवाले रक्षा के साधनों से हमारे पुत्र और पौत्रों की रक्षा करता है । तू हमारे दैवी प्रकोप तथा आसुरी कुटिलताओं को दूर कर ॥२॥

१६२५—वसिष्ठः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २
किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।

१ २र ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा वर्पो अस्मदपगूह एतद् यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥१॥

पदार्थ—(किमित्) क्या है (ते) तेरा (विष्णो) हे सर्वव्यापक परमेश्वर (परिचक्षि) प्रसिद्ध (नाम) नाम (प्र) उत्तम (यत्) जो (ववक्षे) बतलाता है (शिपिविष्टः) पदार्थमात्र में प्रविष्ट (अस्मि) हूँ (मा) मत (वर्पः) स्वरूप को (अस्मद्) हमसे (अपगूह) छिपा (एतत्) यह (यत्) जो (अन्यरूपः) दूसरे स्वरूप वाला (समिथे) संसार संग्राम में (बभूथ) है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा प्रसिद्ध नाम क्या यही है जो तू बतलाता है कि सर्वव्यापक हूँ । हे भगवन् ! अपने उस स्वरूप को हमसे मत छिपा जो कि संसार संग्राम में विराजमान है ॥१॥

१६२६—वसिष्ठः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
तन्त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (तत्) उस (ते) तेरे (अद्य) आज (शिपिविष्ट) हे सर्वव्यापक (हव्यम्) पुकारने योग्य (अर्यः) स्वामी (शंसामि) प्रशंसा करता हूँ (वयुनानि) ज्ञातव्य ज्ञानों को (विद्वान्) जानता हुआ (तम्) उस (त्वा) तेरी (गृणामि) स्तुति करता हूँ (तवसम्) महान् (अतव्यान्) तुच्छ (क्षयन्तम्) विराजमान होनेवाले (अस्य) इस (रजसः) संसार [लोक] के (पराके) परे ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! धन-धान्य का स्वामी मैं समस्त ज्ञान-विज्ञानों को जानता हुआ आज तेरे प्रशस्य ओम् नाम की प्रशंसा करता हूँ । अल्पज्ञ मैं इस लोक से परे स्थित तुझ महान् की स्तुति करता हूँ ॥२॥

१६२७—वसिष्ठः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।

१ २ ३ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—(वषट्) कर्त्तव्य कर्म को (ते) तेरे निमित्त (विष्णो) हे परमेश्वर (आसे) सन्मुख (आकृणोमि) करता हूँ । (तत्) वह (मे) मेरा (जुषस्व) स्वीकार कर (शिपिविष्ट) हे सर्वव्यापक (हव्यम्) उपासना को (वर्धन्तु) स्तुति करें (त्वा) तेरी (सुष्टुतयः) मनोहर स्तुतियुक्त (गिरः) वाणियां (मे) मेरी (यूयम्) तू (पात) रक्षा कर (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (सदा) सर्वदा (नः) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! सन्मुख स्थित मैं तेरे निमित्त कर्त्तव्य कर्म को करता हूँ । तू मेरी भक्ति स्वीकार कर, मेरी स्तुतियुक्त वाणियां तेरी स्तुति करें । तू कल्याण के साथ हमारी सदा रक्षा कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१६२८—वामदेवः । वायुः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्र दिविष्टिषु ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥

पदार्थ—(वायो) हे परमेश्वर (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (अयामि) प्राप्त करता हूँ (ते) तेरे (मध्वः) ज्ञान का (अग्रम्) प्रथम (दिविष्टिषु) दिव्य गुणों की इच्छा में होने पर (आयाहि) व्यापक हो रहा है (सोमपीतये) संसार की रक्षा के लिए (स्पार्हः) स्पृहणीय [चाहने योग्य] (देव) हे देव (नियुत्वता) वायु के साथ ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्म देव ! दिव्य गुणों की इच्छाएँ होने पर मैं तेरे ज्ञान को प्रथम प्राप्त करता हूँ । शुद्धस्वरूप तथा चाहने योग्य तू संसार की रक्षा के लिए वायु के साथ व्यापक है ॥१॥

१६२९—वामदेवः । इन्द्रवायू । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानाम्पीतिमर्हथः ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३क २र
युवा हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) जीवात्मा (च) और (वायो) हे परमेश्वर (एषाम्) इन (सोमानाम्) उत्पन्न पदार्थों की (पीतिम्) रक्षा के (अर्हथः) योग्य हो (युवाम्) तुम दोनों को (हि) ही (यन्ति) प्राप्त करते हैं (इन्दवः) योगीजन (निम्नम्) नीची जगह को (आपः) जल के (न) समान (सध्र्यक्) साथ ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू और जीव दोनों इन उत्पन्न संसारी पदार्थों की रक्षा में समर्थ हो । नीचे स्थान को जल के समान योगीजन तुम दोनों को ही प्राप्त करते हैं ॥२॥

१६३०—वामदेवः । इन्द्रवायू । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नियुत्वन्ता न ऊतये आ यातं सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—(वायो) हे परमेश्वर (इन्द्रः) जीव (च) और (शुष्मिणा) बलवान् (सरथम्) समानरूप से प्रकृति-रथ पर विराजमान (शवसस्पती) बल के रक्षक (नियुत्वन्ता) समर्थ [प्रभु स्वामी] (नः) हमारे (ऊतये) रक्षा के लिए (आयातम्) प्राप्त होओ (सोमपीतये) ऐश्वर्य के पालन के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू और जीवात्मा दोनों ही बलवान् बल के रक्षक तथा समर्थ हो । तुम दोनों हमारी ओर ऐश्वर्य की रक्षा के लिए संसार रूप रथ पर एक साथ रहते हुए प्राप्त हों ॥३॥

१६३१—रेभसूनू । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्रगाहसे ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥१॥

पदार्थ—(अध) पश्चात् (क्षपाः) अज्ञानराशियों को (परिष्कृत) पवित्र किया गया (वाजान्) ज्ञानों का (अभि) भली भांति (प्रगाहसे) अवगाहन करता है (यदी) जब (विवस्वतः) परमेश्वर के (धियः) ज्ञान (हरिम्) हरणशील [व्यवहारों का हरण करनेवाला] (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं (यातवे) जानने के लिए ॥१॥

भावार्थ—जब परमेश्वर के ज्ञान व्यवहार कुशल तुझ को निज स्वरूप के जानने के लिए प्रेरणा करते हैं तब हे जीव ! तू अज्ञान रात्रि को पार कर पवित्र हुआ भली भांति ज्ञान का अवगाहन करता है ॥१॥

१६३२—रेभसूनू । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनञ्च सूरयः ॥२॥

पदार्थ—(तम्) उस (अस्य) इस (मर्जयामसि) प्राप्त करते हैं (मदः) आनन्द को (यः) जो (इन्द्रपातमः) जीव के अत्यन्त पान करने के योग्य है (यम्) जिसकी (गावः) स्तोता (आसभिः) मुखों से (दधुः) धारण करते अर्थात् प्रशंसा करते हैं (पुरा) पहले के समान (नूनम्) निश्चित (च) ही (सूरयः) ज्ञानी लोग ॥२॥

भावार्थ—इस परमेश्वर को, जो आनन्द जीव के अत्यन्त पान करने के योग्य है, जिसकी उपासक और विद्वान् लोग पहले और अब भी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते आए हैं उसे हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

१६३३—रेभसूनू । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३क २र

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (गाथया) वेदवाणी (पुराण्या) सनातन (पुनानम्) पवित्र करनेवाले (अभ्यनूषत) स्तुति करते हैं । (उतो) तथा (कृपन्त) समर्थ करती हैं (धीतयो) ज्ञान (देवानाम्) देवों के (नाम) नाम को (बिभ्रतीः) धारण करनेवाली ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वान् पवित्रकर्त्ता परमेश्वर की सनातन वेदवाणी से स्तुति करते हैं तथा देवों के नाम को धारण करनेवाले ज्ञान उनको समर्थ बनाते हैं ।३।

१६३४—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अश्वन्न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निन्नमोभिः ।

३ १ २ ३ १ २

सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१॥

पदार्थ—(अश्वम्) अश्व के (न) समान (त्वा) तेरी (वारवन्तम्) अज्ञान को दूर करनेवाले (वन्दध्या) वन्दना करते हैं (अग्निम्) तेजस्वी (नमोभिः) नमस्कार के द्वारा (सम्राजम्) सम्राट् (तम्) उस (अध्वराणाम्) कल्याणकारी यज्ञ के ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! हम अश्व के समान बलवान्, अज्ञान के निवारक तथा यज्ञों के सम्राट् तुझ तेजस्वी की नमस्कारों से वन्दना करते हैं ॥१॥

१६३५—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (घा) ही (नः) हमारे लिए (सूनुः) सृष्टिकर्त्ता (शवसा) अपनी शक्ति से (पृथुप्रगामा) बहुत उत्कृष्ट गतिवाला (सुशेवः) उत्तम सुखवाला ((मीढ्वान्) मनोरथों की वर्षा करनेवाला (अस्माकम्) हमारा (बभूयात्) होवे ॥२॥

भावार्थ—सृष्टिकर्ता, अपनी शक्ति से सर्वत्र विराजमान होनेवाला यह परमेश्वर हमारे लिए उत्तम सुखदाता तथा हमारे मनोरथों को पूरा करनेवाला होवे।२।

१६३६—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारी (दूरात्) दूर से (आसात्) समीप से (च) और (नि) सम्पूर्ण रूप से (मर्त्यात्) मनुष्य से (अघायोः) पापी (पाहि) रक्षा कर (सदमित्) सर्वदा ही (विश्वायुः) विश्वव्यापी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वव्यापक तू दूर तथा समीप अर्थात् सर्वत्र पापी मनुष्य से सदा ही हमारी रक्षा कर ॥३॥

१६३७—नृमेधः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (इन्द्र) हे सेनापते (प्रतूर्तिषु) संग्रामों में (अभि) भली भांति (विश्वाः) सारी (असि) तू (स्पृधः) लड़नेवालों (अशस्तिहा) विपत्ति का नाशक (जनिता) उत्पादक (वृत्रतूः) शत्रु का नाशक (असि) है (त्वम्) तू (तूर्य) हे शत्रु-घातक (तरुष्यतः) बाधा पहुँचाने वाले का ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! तू संग्रामों में सारी शत्रु-सेनाओं को परास्त करता है । हे विघ्न करनेवालों के विघातक ! तू प्रजा की विपदा को दूर करनेवाला तथा शत्रुओं की विपदाओं का उत्पादक और शत्रुनाशक है ॥१॥

१६३८—नृमेधः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ ३ १ २

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुन्न मातरा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥२॥

पदार्थ—(अनु) पीछे (ते) तेरे (शुष्मम्) बल के (तुरयन्तम्) शत्रुनाशक (ईयतुः) चलते हैं (क्षोणी) द्यु और पृथिवीलोक (शिशुम्) बच्चे को (न) समान (मातरा) माता के । (विश्वाः) समस्त (ते) तेरे (स्पृधः) पाप करनेवाले [स्पर्धा करनेवाले] (श्नथयन्त) ढीले पड़ जाते हैं (मन्यवे) क्रोध के लिए (वृत्रं) पाप को (यत्) क्योंकि (इन्द्र) हे परमेश्वर (तूर्वसि) नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बच्चे को माता के समान द्यु और पृथिवीलोक तेरे बल के पीछे चलते हैं । क्योंकि तू पाप का विनाश करता है इसलिए सारे पाप करनेवाले तेरे क्रोध से ढीले पड़ जाते हैं ॥२॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१६३९—गोपूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यज्ञ इन्द्रमवर्धयत् यद्भूमिं व्यवर्त्तयत् । चक्राण ओपशन्दिवि ॥१॥

पदार्थ—(यज्ञः) परमेश्वर (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयत्) बड़ा बनाया (यत्) जो कि (भूमिम्) भूगोल को (व्यवर्त्तयत्) घुमाता है (चक्राणः) करता हुआ (ओपशम्) अत्यन्त सम्बद्ध (दिवि) आकाश में ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सूर्य को बड़ा बनाया जो कि पृथ्वी को आकाश में अत्यन्त नियन्त्रित करता हुआ घुमाता है ॥१॥

१६४०—गोपूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्रः । गायत्री ।

२ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २र ३ २

व्य३न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥२॥

पदार्थ—(वि) विशेष (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (अतिरत्) फैलाता है (मदे) दी हुई गति में (सोमस्य) परमेश्वर की (रोचना) प्रकाश-किरणों को (इन्द्रः) सूर्य (यत्) जो कि (अभिनत्) छिन्न-भिन्न करता है (वलम्) मेघ को ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियन्त्रण में सूर्य अन्तरिक्ष में प्रकाश को फैलाता है तथा मेघ को छिन्न-भिन्न करता है ॥२॥

१६४१—गोपूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चन्नुनुदे वलम् ॥३॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (गाः) वेदवाणियों को (आजत्) देता है (अङ्गिरोभ्यः) सृष्टि और विद्या के सिद्धान्त को जाननेवालों के लिए (आविष्कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (गुहा) बुद्धि में (सतीः) स्थित (अर्वाञ्चम्) नीचे (नुनुदे) हटाता है (बलम्) अज्ञान के आवरण को ॥३॥

भावार्थ—बुद्धि में छिपी वेदवाणियों को प्रकट करते हुए, परमेश्वर विद्या के सिद्धान्त को जाननेवालों के लिए प्रदान करता है और अज्ञानावरण को दूर करता है ॥३॥

१६४२—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २   १ २   ३ १ २

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥१॥

पदार्थ—(त्यम्) उस (उ) पादपूरक (वः) तुम्हारी (सत्रासाहम्) सत्य के द्वारा दबानेवाले (विश्वासु) सारी (गीर्षु) स्तुतियों में (आयतम्) विराजमान (आच्यावयसि) प्राप्त कर (ऊतये) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे भक्त ! तू सत्य के द्वारा सबको वश में करनेवाले, सारी स्तुतियों में विराजमान उस परमेश्वर को अपनी रक्षा के लिए प्राप्त कर ॥१॥

१६४३—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १   २र ३ १ २   ३ १ २र   १ २ ३ १ २

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥२॥

पदार्थ—(युध्मम्) व्यापक (सन्तम्) सत्स्वरूप (अनर्वाणम्) स्वतन्त्र (सोमपाम्) संसार के रक्षक (अनपच्युतम्) सदा परिपूर्ण (नरम्) नेता (अवार्यक्रतुम्) अमोघ कर्मवाले ॥२॥

भावार्थ—हे भक्त ! तू अपनी रक्षा के लिए सर्वव्यापक, सत्स्वरूप, स्वतन्त्र, संसार के रक्षक, सदा पूर्ण, पथप्रदर्शक तथा अमोघ कर्मवाले परमेश्वर का भजन कर ॥ २ ॥

१६४४—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २   ३ २र   ३ २ ३ १ २   १ २ ३ २ ३ १ २

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वां ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥३॥

पदार्थ—(शिक्षा) दे (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (रायः) संपदाएँ (आ) भली भांति (पुरु) बहुतायत से (विद्वान्) जानता हुआ (ऋचीषम) हे दर्शनीय (अव) रक्षा कर (नः) हमारी (पार्ये) परिपूर्ण होने पर भी (धने) धन के ॥३॥

भावार्थ—हे साक्षात्कार के योग्य परमेश्वर ! तू सर्वज्ञ है । हमें अधिकता से संपदाएँ प्रदान कर तथा पूर्ण धन हो जाने पर भी हमारी रक्षा कर ॥३॥

१६४५—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ १ २ ३ १   २र

तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।

१ २   ३ २ ३   १ २उ

वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥१॥

पदार्थ—(तव) तेरा (त्यत्) वह (इन्द्रियम्) धन (बृहत्) महान् है । (तव) तेरी (दक्षम्) बल को (उत) और (क्रतुम्) कर्म और ज्ञान को (वज्रम्) शस्त्र को (शिशाति) प्रदान करती है (धिषणा) वेदवाणी (वरेण्यम्) श्रेष्ठ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा धन अपार है । तेरी वेदवाणी श्रेष्ठ बल, विद्या, और शस्त्र प्रदान करती है ॥१॥

१६४६—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३   १ २   ३ १ २   ३ १ २   २र ३ १ २

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्द्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२॥

पदार्थ—(तव) तेरे (द्यौः) द्युलोक (इन्द्र) (पौंस्यम्) पराक्रम का (पृथिवी) पृथिवी (वर्धति) वर्णा करती है (श्रवः) यश का (त्वाम्) तुझे (आपः) जल (पर्वतासः) मेघ (च) और (हिन्विरे) जनाते है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! द्युलोक तेरे पराक्रम और भूलोक तेरे यश का वर्णन करते हैं । जल और मेघ आदि तुझे ही जना रहे हैं ॥२॥

१६४७—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१   २र ३ १   २र ३ १ २   ३ १ २

त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।

१   २र ३ २ ३ १ २

त्वां शर्द्धो मदत्यनुमारुतम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वाम्) तेरी (विष्णुः) शिल्पविद्या में निपुण मनुष्य (बृहत्) महान् (क्षयः) आश्रय (मित्रः) स्नेही (गृणाति) स्तुति करता है (वरुणः) विद्वान् अध्यापक (त्वाम्) तेरी (शर्द्धः) बल (मदति) अर्चना करता है (अनु) अनुकूलता से (मारुतम्) ऋत्विज् सम्बन्धी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सबका महान् आश्रय है । शिल्पी, स्नेही, तथा विद्वान् अध्यापक तेरी स्तुति करते हैं । ऋत्विजों की शक्ति तेरी ही पूजा करती है ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१६४८—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   १ २ ३ १ २

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रं मर्दय ॥१॥

पदार्थ—(नमः) नमस्कार (ते) तेरे लिए (अग्ने) हे विद्वन् (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिए (गृणन्ति) करते हैं (देव) हे देव (कृष्टयः) मनुष्य लोग (अमैः) बलों से (अमित्रम्) बुराई को (मर्दय) मर्दन करदे ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् देव ! मनुष्य बल की प्राप्ति के लिए तुझे नमस्कार करते हैं । तू बलों से बुराइयों को नष्ट कर ॥१॥

१६४९—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २उ   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २   १ २ ३ १ २

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२॥

पदार्थ—(कुवित्) बहुत (सु) सुन्दर (नः) हमें (गविष्टये) इन्द्रियों के कल्याण के लिए (अग्ने) हे परमेश्वर (संवेषिषः) देता है (रयिम्) धन को (उरुकृत्) बड़ा बनानेवाला (उरु) बड़ा (नः) हमें (कृधि) कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों के कल्याण के लिए पर्याप्त धन हमें प्रदान कर । तू महान् बनानेवाला है । अतः हमें महान् बना ॥२॥

१६५०—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २   ३१ २र   ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २

मा नो अग्ने महाधने परावर्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥३॥

पदार्थ—(मा) मत (नः) हमें (अग्ने) हे परमेश्वर (महाधने) जीवन संग्राम में (परावर्क्) पृथक् मत फेंको (भारभृत्) बोझा ढोनेवाले के (यथा) समान (सम्) सम्यक् (वर्गम्) कामादि शत्रु वर्ग को (सम्) एक साथ (रयिम्) धन (जय) जिता तथा प्राप्त करा ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू भार को ढोनेवाले के समान हमें जीवन संग्राम में परे मत कर । तू हमारे काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जिता तथा धन की प्राप्ति करा ॥ ३ ॥

१६५१—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३ २ ३ १   २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥१॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् (अस्य) इसके (मन्यवे) क्रोध के लिए (विशः) प्रजा (विश्वाः) सारी (नमन्त) नम्र होते हैं (कृष्टयः) मनुष्य (समुद्राय) समुद्र के लिए (इव) समान (सिन्धवः) नदियों के ॥१॥

भावार्थ—समुद्र में नदियों के समान सारी मनुष्य प्रजा राजा के क्रोध से नम्र हो जाती है ॥१॥

१६५२—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   १ २   ३ १ २

वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना । वज्रेण शतपर्वणा ॥२॥

पदार्थ—(वि) विशेष (चित्) ही (वृत्रस्य) मेघ के (दोधतः) गर्जना से कंपायमान करनेवाले (शिरः) शिर को (बिभेद) छिन्न-भिन्न करता है (वृष्णिना) वर्षा करानेवाले (वज्रेण) किरणसमूह से (शतपर्वणा) सैंकड़ों कर्म वाले ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर गर्जना से कंपानेवाले मेघ के उच्च शिखर को वर्षा करानेवाले तथा सैंकड़ों कर्मों को सिद्ध करनेवाले सूर्य किरणों के समूह द्वारा छिन्न-भिन्न करता है ॥२॥

१६५३—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २   ३ २उ   ३ १ २   २ ३ १ २ ३ १ २

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥३॥

पदार्थ—(ओजः) पराक्रम (तत्) वह (अस्य) इसका (तित्विषे) अत्यन्त प्रकाशित होता है (उभे) दोनों (यत्) जिससे (समवर्तयत्) फैलाता और समेटता है । (इन्द्रः) परमेश्वर (चर्म) चमड़े के (इव) समान (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर का वह पराक्रम अत्यन्त प्रकाशमान हो रहा है, जिससे कि वह द्यु और पृथिवी लोक को चमड़े के समान सृष्टिकाल में फैलाता और प्रलयकाल में समेट लेता है ॥३॥

१६५४—शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥१॥

पदार्थ—(सुमन्मा) मनोहर (वस्वी) दूर तक बसी हुई (रन्ती) रमणीय (सूनरी) उषा ॥१॥

भावार्थ—मनोहर, दूर तक छाई हुई तथा रमणीय उषा परमेश्वर तथा उसके सृष्टि-नियम को स्मरण कराती है ॥१॥

१६५५—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ २ ३ १ २र

सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि । ताविमा उप सर्पतः ॥२॥

पदार्थ—(सरूप) हे एकरस (वृषन्) हे सुख की वर्षा करनेवाले (आगहि) प्राप्त हो । (इमौ) ये दोनों (भद्रौ) कल्याण करनेवाले (धुर्यौ) ज्ञान और कर्म के भार को वहन करनेवाले (अभि) अच्छी प्रकार (तौ) वे दोनों (इमौ) ये (उपसर्पतः) तेरे समीप जाते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे एकरस तथा सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तू सबका कल्याणकारी तथा ज्ञान और कर्म के भार को वहन करनेवाले ज्ञानी और ध्यानी को प्राप्त हो । ये तेरे समीप पहुँचें ॥२॥

१६५६—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति । शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥३॥

पदार्थ—(नि) निश्चय (इव) पादपूरक (शीर्षाणि) मस्तिष्कों को (मृढ्वम्) ठीक रखो (मध्ये) मध्य (आपस्य) परमेश्वर के (तिष्ठति) स्थित होता है (शृङ्गेभिः) इन्द्रियों की ज्योतियों से (दश) दश (दिशन्) बतलाता हुआ [प्रकट करता हुआ] ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष जीवन्मुक्त हुआ दश इन्द्रियों की ज्योति में से सारे व्यवहारों का निर्देश करता हुआ परमेश्वर में स्थित होता है । अतः हे मनुष्य, तुम अपने मस्तिष्कों को उत्तम बनाओ ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

卐 सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः 卐

अष्टादशोऽध्यायः

१६५७—*मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥१॥

पदार्थ—(पन्यम्) प्रशंसनीय (पन्यम्) प्रशंसा योग्य (इत्) ही (स्तोतारः) भक्त लोगो (आधावत) पवित्र करो या जानो (मद्याय) आनन्ददायक (सोमम्) आत्मा को (वीराय) शक्तिमान् (शूराय) प्रतापी ॥१॥

भावार्थ—हे भक्तो ! तुम लोग आनन्ददाता, शक्तिमान् तथा प्रतापी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रशंसनीय अपनी आत्मा को जानो और पवित्र करो ॥१॥

१६५८—*मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (इह) इस उपासना यज्ञ में (हरी) ऋक् और साम (ब्रह्मयुजा) मन्त्रवाले (शग्मा) कल्याणकारी (वक्षतः) प्राप्त कराते हैं (सखायम्) सर्वमित्र (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गीर्भिः) स्तुतियों से (गिर्वणसम्) भजन करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—मन्त्रों से युक्त तथा कल्याणकारी ऋक् और साम सबके मित्र, स्तुतियों से उपास्य परमेश्वर को इस उपासना यज्ञ में प्राप्त कराते हैं ॥२॥

१६५९—*मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥३॥

पदार्थ—(पाता) रक्षक (वृत्रहा) पाप-नाशक (सुतम्) संसार का (आ) भली भांति (घा) पादपूरक (गमत्) प्राप्त हो (आरे) समीप और दूर में (अस्मत्) हमसे [नियमते] नियन्त्रण करता है (शतमूतिः) सैकड़ों रक्षाओं वाले ॥३॥

भावार्थ—पालन कर्त्ता, पाप-नाशक तथा सैकड़ों प्रकार की रक्षाओं से युक्त वह परमेश्वर हमें प्राप्त हो जो कि हमारे समीप तथा दूरवर्त्ती जगत् का नियंत्रण करता है ॥३॥

१६६०—*श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (त्वा) तुझ में (विशन्तु) आश्रय पावें (इन्दवः) यज्ञ (समुद्रम्) समुद्र में (इव) समान (सिन्धवः) नदियों के (न) नहीं (त्वाम्) तुझ से (इन्द्र) हे परमेश्वर (अतिरिच्यते) अतिरिक्त होता है [पृथक् होता है] ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समुद्र में नदियों के समान सारे यज्ञ तुझ में आश्रय पावें । हे सर्वव्यापक ! कोई भी तुझ से पृथक् नहीं रह सकता ॥१॥

१६६१—*श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥

पदार्थ—(विव्यक्थ) व्यापक हो रहा है (महिना) महिमा से (वृषन्) हे सुख की वर्षा करनेवाले (भक्षम्) भक्ष्य पदार्थ में (सोमस्य) संसार के (जागृवे) सर्वदा सावधान (यः) जो (इन्द्र) हे परमेश्वर (जठरेषु) मध्य में (ते) तेरे ॥२॥

भावार्थ—हे सदा सावधान तथा सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तू अपने मध्य में स्थित संसार के समस्त भोग्य पदार्थों में व्यापक हो रहा है ॥२॥

१६६२—*श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥३॥

पदार्थ—(अरम्) समर्थ (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (कुक्षये) गोद के लिए (सोमः) आत्मा (भवतु) हो (वृत्रहन्) हे पापनाशक (अरम्) पर्याप्त (धामभ्यः) तीनों लोकों के लिए (इन्दवः) यज्ञ ॥३॥

भावार्थ—हे पापनाशक परमेश्वर ! आत्मा तेरी गोद में बैठने के लिए समर्थ हो तथा यज्ञादि कर्म तीनों लोकों की प्राप्ति के लिए पर्याप्त होवें ॥३॥

१६६३—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१॥

पदार्थ—(जराबोध) हे स्तुति का बोध करानेवाले (तत्) उस (विविड्ढि) कर (विशेविशे) प्रजामात्र के लिए (यज्ञियाय) पूज्य (स्तोमम्) प्रशंसा वचन (रुद्राय) ग्यारहवें रुद्र आत्मा के लिए (दृशीकम्) मनोहर ॥१॥

भावार्थ—हे स्तुति का ज्ञान करानेवाले विद्वन् ! प्रजामात्र के लिए पूज्य जीव की मनोहर प्रशंसा कर ॥१॥

१६६४—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमें (महान्) महान् (अनिमानः) अपरिच्छिन्न=सर्वव्यापक (धूमकेतुः) दुष्टों का दलन करनेवाला (पुरुः) महान् (चन्द्रः) आनन्ददाता (धिये) ज्ञान के लिए (वाजाय) अन्न के लिए (हिन्वतु) प्रेरित करे ॥२॥

भावार्थ—महान्, सर्वव्यापक, दुष्टों का दलन करनेवाला तथा आनन्ददाता परमेश्वर हमें बुद्धि और अन्न की प्राप्ति के लिए प्रेरणा करे ॥२॥

१६६५—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (रेवान्) धनवान् की (इव) भांति (विश्पतिः) प्रजा का स्वामी (दैव्यः) विद्वानों का हितकारी (केतुः) वेद का ज्ञान देनेवाला (शृणोतु) सुने (नः) हमारी (उक्थैः) स्तुतियों द्वारा (अग्निः) परमेश्वर (बृहद्भानुः) महान् प्रकाशवाला ॥३॥

भावार्थ—प्रजा का पालक, विद्वानों का हितकारी, वेद का उपदेश करनेवाला तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर धनी पुरुष के समान स्तुतियों के द्वारा हमारी सुने ॥३॥

१६६६—शंयुः । इन्द्रः । गायत्री ।

१२ ३१ २र ३२३१२ २उ ३२३१२

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१॥

पदार्थ—(तत्) उस (वः) तुम लोग (गाय) गान करो (सुते) संसार में (सचा) सत्य से (पुरुहूताय) बहुतों से आह्वान किया जानेवाला (सत्वने) धनदाता (शम्) सुखदायी (यत्) जो (गवे) वेदवाणी के (न) समान (शाकिने) शक्तिशाली ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग बहुतों से पुकारे जानेवाले, धनदाता तथा शक्तिमान् विद्वान् के लिए वेदवाणी के समान कल्याणकारी स्तोत्र का सत्यता के साथ गान करो ॥१॥

१६६७—शंयुः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २३१२ ३१ २र३१२ २३२३२३१२

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥२॥

पदार्थ—(न) नहीं (घ) ही (वसुः) सर्वव्यापक (नियमते) रोकता है (दानम्) दान को (वाजस्य) ज्ञान का (गोमतः) वेदविद्यायुक्त (यत्) जब (सीम्) सर्वथा (उपश्रवद्) सुन लेता है (गिरः) स्तुतियों को ॥२॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर जब हमारी स्तुतियों को सर्वथा सुन लेता है तो हमारे लिए वह विद्यायुक्त विज्ञान के दान को नहीं रोकता ॥२॥

१६६८—शंयुः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३१ २र ३१ २र १२३१२

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥३॥

पदार्थ—(कुवित्सस्य) अत्यन्त भजन करनेवाले [जीव] के (प्र) उत्तम (हि) निश्चय (व्रजम्) शरीर रूप बाड़े में (गोमन्तम्) इन्द्रिययुक्त (दस्युहा) पापनाशक (अगमत्) व्यापक हो रहा है (शचीभिः) प्रज्ञाओं द्वारा (अपः) दूर (नः) हमारे [अज्ञान को] (वरत्) करे ॥३॥

भावार्थ—जो पापनाशक परमेश्वर अत्यन्त भक्ति करनेवाले जीव के इन्द्रिय युक्त शरीर में व्यापक हो रहा है वह ज्ञानों से हमारे अज्ञान को दूर करे ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१६६९—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

३ २उ ३१२ ३१ २र ३२ १२ ३२

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) इस जगत् को (विष्णुः) सूर्य (विचक्रमे) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है (त्रेधा) तीन स्थानों में [पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में] (निदधे) धारण करता है (पदम्) किरण को (समूढम्) छिपी हुई है (अस्य) इसका (पांसुले) अन्तरिक्ष में ॥१॥

भावार्थ—सूर्य इस दृश्यमान जगत् को प्रकाशित करता है। वह अपनी किरणों को पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक तीनों स्थानों में फैलाता है। उसकी इस प्रकार की किरण अन्तरिक्ष में छिपी हुई दृष्टिगोचर नहीं होती है ॥१॥

१६७०—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

१२ ३१ २र ३१ २३१ २र २३१२ ३१२

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥२॥

पदार्थ—(त्रीणि) तीन (पदा) पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यु लोकों में (विचक्रमे) व्यापक हो रहा है (विष्णुः) परमेश्वर (गोपाः) रक्षक (अदाभ्यः) अविनाशी (अतः) इसलिए (धर्माणि) अपने सब धर्मों को (धारयन्) धारण करता हुआ विद्यमान है ॥२॥

भावार्थ—अविनाशी तथा सर्वरक्षक परमेश्वर तीनों लोकों में व्यापक होता हुआ अपने गुणोंसहित विद्यमान है ॥२॥

१६७१—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

२ ३१२ ३ १२३१२ ३२ १२३ २३ १२

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥

पदार्थ—(विष्णोः) परमेश्वर के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो (यतः) जिससे (व्रतानि) नियमों को (पस्पशे) प्राप्त होता है (इन्द्रस्य) जीव का (युज्यः) घनिष्ठ (सखा) मित्र है ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उस परमेश्वर के सृष्टि-रचना आदि कर्मों को देखो जिससे विद्वान् नियमों को धारण करता है तथा जो जीव का घनिष्ठ मित्र है ॥३॥

१६७२—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

१ २र ३२३१ २र ३१२ ३२३ २३१२

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥४॥

पदार्थ—(तत्) उस (विष्णोः) परमेश्वर के (परमम्) परम (पदम्) मोक्षरूप पद को (सदा) सर्वदा (पश्यन्ति) देखते हैं (सूरयः) ज्ञानी (दिवि) आकाश में (इव) समान (चक्षुः) नेत्र (आततम्) फैले हुए ॥४॥

भावार्थ—विद्वान् जन आकाश में फैले हुए पदार्थों को नेत्र के समान परमेश्वर के परम मोक्षपद को सदा देखते हैं ॥४॥

१६७३—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

१ २र ३१२ ३२३१२ २ ३१२३२३२

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५॥

पदार्थ—(तत्) उस (विप्रासः) मेधावीजन (विपन्यवः) भजन करने वाले (जागृवांसः) सदा सावधान (समिन्धते) प्राप्त करते हैं (विष्णोः) परमेश्वर का (यत्) जो (परमम्) परम (पदम्) स्वरूप ॥५॥

भावार्थ—भजन करनेवाले तथा सदा सावधान मेधावीजन परमेश्वर के उत्तम स्वरूप को प्राप्त करते हैं ॥५॥

१६७४—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३२३१२ ३२ ३ २उ १ १२

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानवि ॥६॥

पदार्थ—(अतः) इसलिए (देवाः) दिव्य पदार्थ (अवन्तु) रक्षा करते हैं (नः) हमारी (यतः) क्योंकि (विष्णुः) परमेश्वर (विचक्रमे) व्यापक हो रहा है (पृथिव्याः) पृथिवी से लेकर (अधिसानवि) ऊँचे द्युलोक आदि में ॥६॥

भावार्थ—चूँकि परमेश्वर पृथिवी से लेकर उच्च द्युलोकादि पर्यन्त व्यापक हो रहा है, अतः सारे दिव्य पदार्थ हमारी रक्षा करते हैं ॥६॥

१६७५—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३१२३ २उ ३१ २र

मोषु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्निरीरमन् ।

३१२ ३१२३१२३२३ १ २र

आरात्ताद्वा सधमादं न आगहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१॥

पदार्थ—(मा उ) नहीं (सु) उत्तम (त्वा) तुझे (वाघतः) मेधावी पुरुष (चन) भी (आरे) दूर (अस्मत्) हम से (निरीरमन्) आनन्दित करें (आरात्तात्) दूर से (वा) अथवा (सधमादम्) समीप (नः) हमारे (आगहि) आओ (इह) यहां (वा) अथवा (सन्) विद्यमान हुआ (उपश्रुधि) सुनो ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! मेधावीजन हमसे दूर रह कर तुझे आनन्दित न करें। तू दूर से हमारे समीप आ और यहां विद्यमान रहते हुए हमारी सुन ॥१॥

१६७६—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

३१ २र ३१२३ २उ ३ २३२उ ३१२

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सु ते सचा मधौ न मक्ष आसते ।

२३१२ ३ १२ ३२३२३२उ ३१२

इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥

पदार्थ—(इमे) ये (हि) निश्चय (ते) वे (ब्रह्मकृतः) स्तुति करनेवाले (सुते) उत्पन्न संसार में (सचा) साथ (मधौ) मधुपर (नः) समान (मक्षः) मधुमक्खियों के (आसते) बैठता है (इन्द्रे) परमेश्वर में (कामम्) कामना को (जरितारः) स्तोता लोग (वसूयवः) धन चाहने वाले (रथे) रथपर (न) समान (पादम्) पाँव को (आदधुः) रखते हैं ॥२॥

भावार्थ—ये स्तुति करनेवाले इस संसार में मधु पर मधुमक्खियों के समान एक साथ बैठे हैं। जिस प्रकार धन चाहनेवाले रथ पर पांव रखते हैं, उसी प्रकार स्तोता लोग परमेश्वर में अपनी कामना को रख देते हैं ॥२॥

१६७७—आयुः । इन्द्रः । बृहती ।

१२ ३ १२ ३१ २र

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

३२३१ २ ३१२ ३२३१२

पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१॥

पदार्थ—(अस्तावि) स्तुति किया जाता है (मन्म) मनन योग्य (पूर्व्यम्) सनातन (ब्रह्म) वेदमन्त्र को (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (वोचत) बोलो (पूर्वीः) पुरातन (ऋतस्य) ज्ञान की (बृहतीः) साम-स्तोत्रों को (अनूषत) उच्चारण करो (स्तोतुः) स्तोता की (मेधाः) बुद्धि को (असृक्षत) देता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उपास्य है उस परमेश्वर की पुरातन तथा मनन योग्य वेदमन्त्र से स्तुति करो। उसकी सेवा में ज्ञान के पुरातन भण्डार सामों का उच्चारण करो। वह स्तुति करनेवालों को बुद्धि देता है ॥१॥

१६७८—आयुः । इन्द्रः । बृहती ।

२उ ३१२ ३१२३ २ ३२उ ३१२

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।

२३२ ३ १२३१ २उ ३ २ ३१२

सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् (इन्द्रः) परमेश्वर (रायः) संपदाएँ (बृहतीः) महान् (अधूनुत) दे रखा है (सम्) सम्यक् (क्षोणीः) द्यु और पृथिवीलोक को (सं) सम्यक् (सूर्यम्) सूर्य को (सम्) सम्यक् (शुक्रासः) तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (सम्) सम्यक् (गवाशिरः) वेदवाणी का आश्रय करनेवाले (सोमाः) विद्वान् जन (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अमन्दिषुः) स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ने हमारे लाभार्थ महान् संपदाएँ, द्युलोक, पृथिवी तथा सूर्य को दे रखा है। तेजस्वी, पवित्र और वेदवाणी का आश्रयण करनेवाले विद्वान् जन उसकी स्तुति करते हैं ॥२॥

१६७९—*अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।*

१ १　१ १२　१ १　२र
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
१ १ १ १ १　३ १२　३ १२
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राय) ऐश्वर्यशाली (सोम) हे विद्वन् (पातवे) रक्षा करने के लिए (वृत्रघ्ने) बुराइयों को दूर करनेवाले (परिषिच्यसे) भली प्रकार धनादि से पूर्ण किया जाता है (नरे) मनुष्य के लिए (च) और (दक्षिणावते) दक्षिणा देनेवाले (वीराय) वीर (सदनासदे) यज्ञ करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू ऐश्वर्यशाली, बुराइयों को दूर करनेवाले, दक्षिणावाला, वीर तथा यज्ञकर्त्ता पुरुष की रक्षा के लिए धनादि से परिपूर्ण किया जाता है ॥१॥

१६८०—*अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।*

१ २　३ १२३२३१ २३१ २
तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
१ २ ३ १ २　३ १ २　१ २
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥२॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (सखायः) हे मित्रो ! (पुरूरुचम्) तेजस्वी (वयम्) हम लोग (यूयम्) तुम लोग (च) और (सूरयः) विद्वान् लोग (अश्याम) प्राप्त होवें (वाजगन्ध्यम्) ज्ञानरूप गन्ध से युक्त (सनेम) भजन करें (वाजपस्त्यम्) सकल संपदाओं के आश्रय ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! विद्वान् तुम लोग और हम ज्ञानवान् तेजस्वी तथा सकल सम्पदाओं के आश्रय उस परमेश्वर को प्राप्त होवें और उस का भजन करें ॥२॥

१६८१—*अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।*

२३ १ २३१ २र ३ १२　३ १२
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
२ ३ १२उ　३ १२उ ३ १२　३१　२र
यो देवान्विश्वां इत्परि मदेन सह गच्छति ॥३॥

पदार्थ—(परि) सब ओर से (त्यम्) उसको (हर्यतम्) कमनीय (हरिम्) मनुष्य को (बभ्रुम्) भरण के योग्य (पुनन्ति) पवित्र करते हैं (वारेण) उत्तम गुण के साथ (यः) जो (देवान्) विद्वान् और अतिथियों की (विश्वान्) सम्पूर्ण (इत्) ही (परि) भली प्रकार (मदेन) प्रसन्नता के (सह) साथ (गच्छति) सेवा के लिए प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थ—जो प्रसन्नता के साथ विद्वान् और अतिथियों की सेवा करता है उस कमनीय तथा भरण के योग्य मनुष्य को संसार के सभी उत्तम पदार्थ अपने उत्तम गुण के सहित प्राप्त होते हैं ॥३॥

१६८२—*वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २र　३ १　२र
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
३ १२ २र　३ १ २ ३ २ ३ १　२र
श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१॥

पदार्थ—(कः) कौन (तम्) उस (इन्द्र) हे राजन् (त्वा) तुझे (वसो) हे आश्रयदाता (आ) भली भाँति (मर्त्यः) मनुष्य (दधर्षति) तिरस्कृत कर सकता है (श्रद्धा) अनुराग (हि) ही (ते) तेरे (मघवन्) हे धन से युक्त (पार्ये) आपत्ति से पार लगानेवाले (दिवि) दिन में (वाजी) बलवान् (वाजम्) बल को (सिषासति) प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ—हे आश्रयदाता राजन् ! कौन मनुष्य तेरा तिरस्कार कर सकता है। हे धनवान् ! बलवान् पुरुष आपत्ति के दिन में रक्षा के लिए श्रद्धा से ही तेरे बल की सहायता प्राप्त कर सकता है ॥१॥

१६८३—*वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।*

३ १२　३ १ २　३ १ २र　३ १ २र
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
१ ३ १ २　१ २ ३ १ २　३ २
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥२॥

पदार्थ—(मघोनः) यज्ञ करनेवाले (स्म) पादपूरक (वृत्रहत्येषु) बुराइयों के निवारक यज्ञों में (चोदय) प्रेरित कर (ये) जो (ददति) देते हैं (प्रिया) प्यारे (वसु) धन को (तव) तेरी (प्रणीती) वेदशिक्षा से (हर्यश्व) हे दुःखहर्ता तथा सर्वव्यापक (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (विश्वा) समस्त (तरेम) पार होवें (दुरिता) दुर्गुणों या बाधाओं से ॥२॥

भावार्थ—हे दुःखहर्त्ता तथा सर्वव्यापक परमेश्वर ! जो लोग उत्तम धन का दान करते हैं उनको यज्ञकर्त्ता दुर्गुणनिवारक यज्ञों में प्रवृत्त कर। तेरी शिक्षा से विद्वानों के साथ हम सारे दुःखों को पार कर लें ॥२॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१६८४—*विश्वमनाः । सोमः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३　१ २३ १२
एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
१ २उ ३ १ २र　३ १२
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (इत्) ही (उ) पादपूरक (मधोः) मधुर (मदिन्तरम्) आनन्ददायक (सिञ्च) सेचन करो (अध्वर्यो) हे याज्ञिक (अन्धसः) सोम के (एवाहि) ऐसे ही (वीरः) वीर (स्तवते) प्रशंसा पाता है (सदावृधः) सर्वदा उन्नति करनेवाला ॥१॥

भावार्थ—हे याज्ञिक पुरुष ! तू मधुर सोम के आनन्ददायक अंश से यज्ञ कर। समर्थ तथा सदा उन्नति करनेवाला विद्वान् ऐसे ही प्रशंसित होता है ॥१॥

१६८५—*विश्वमनाः । सोमः । उष्णिक् ।*

१२　[illegible]३ १ २　३ १२　१२ ३ १२३ २ ३ १ २
इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (स्थातः) अधिष्ठाता (हरीणाम्) मनुष्यादि प्राणी वर्ग के (नकिः) कोई नहीं (ते) तेरी (पूर्व्यस्तुतिम्) सनातन स्तुति को (उदानंश) पा सकता है (शवसा) बल से (न) नहीं (भन्दना) वन्दना को ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यादि प्राणीवर्ग के अधिष्ठाता परमेश्वर, तेरी सनातन कीर्त्ति तथा वन्दना को कोई भी बल से नहीं पा सकता है ॥२॥

१६८६—*विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २　३ १ ३　१ २　३ १ २　३ १ २
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उस (वः) तुम्हारे (वाजानाम्) अन्नों के (पतिम्) पालक (अहूमहि) पुकारते हैं (श्रवस्यवः) धन और यश को चाहनेवाले (अप्रायुभिः) अपूर्व (यज्ञेभिः) यज्ञों से (वावृधेन्यम्) सबको बढ़ानेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अन्न और यश की कामनावाले हम लोग तुम्हारे पूज्य अन्नों के स्वामी अपूर्व यज्ञों से सबको बढ़ानेवाले परमेश्वर को पुकारते हैं ॥३॥

१६८७—*सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

१ २　३क २र　३ १ २ ३ १ २ ३ १ २　३　२ ३ १ २
तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (गूर्धय) प्रशंसा कर (स्वर्णरम्) सबके नेता (देवासः) विद्वान् लोग (देवम्) पूज्य (अरतिम्) स्वामी (दधन्विरे) धारण करते हैं (देवत्रा) विद्वानों को (हव्यम्) विज्ञान (ऊहिषे) प्राप्त कराता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! विद्वान् लोग सबके नेता और स्वामी जिस पूज्य विद्वान् को प्राप्त करते हैं उसकी प्रशंसा कर। हे विद्वन् ! तू विज्ञानियों को विज्ञान का उपदेश करता है ॥१॥

१६८८—*सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

१ २　३ १ २　३ १ २　३ १ २
विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
३ १ २र　३ १ २　३ १२३ २ ३ १ २
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥२॥

पदार्थ—(विभूतरातिम्) महान् दानी (विप्र) मेधावी (चित्रशोचिषम्) अद्भुत प्रकाशवाले (अग्निम्) परमेश्वर की (ईडिष्व) स्तुति कर (यन्तुरम्) सबके नियन्ता (अस्य) इस (मेधस्य) यज्ञ के (सोम्यस्य) संसार रचना सम्बन्धी (सोभरे) हे उत्तम भरणपोषण करनेवाले (प्र) उत्तम (ईम्) इस (अध्वराय) यज्ञ के लिए (पूर्व्यम्) सनातन ॥२॥

भावार्थ—हे उत्तम भरण पोषण करनेवाले मेधावी पुरुष ! तू कल्याणकारी यज्ञ की सिद्धि के लिए संसार रचना सम्बन्धी यज्ञ के नियन्ता महान् दानी, अद्भुत प्रकाशवाले तथा सनातन परमेश्वर की स्तुति कर ॥२॥

१६८९—अद्रिः सप्तर्षयो वा । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (सोम) हे विद्वन् (स्वानः) उपदेश करता हुआ (अद्रिभिः) आदरणीय वेदमंत्रों द्वारा (तिरः) तिरस्कार करता हुआ (वाराणि) आवरणों को (अव्यया) प्राकृतिक (जनः) मनुष्य के (न) समान (पुरि) नगर में (चम्वोः) दो सेनाओं के मध्यवर्ती (विशत्) प्रवेश करता है (हरिः) सेनापति (सदः) स्थान में (वनेषु) वनों में (दधिषे) ध्यान करता है ॥१॥

भावार्थ—जैसे सेनापति नगरी में मनुष्य के समान दो सेनाओं के मध्यवर्ती स्थान में प्रवेश करता है वैसे हे विद्वन्! तू आदरणीय वेदमंत्रों से उपदेश करता हुआ प्रकृति के आवरणों को दूर करके परमेश्वर के ध्यान के लिए वनों में प्रवेश करता है ॥१॥

१६९०—अद्रिः सप्तर्षयो वा । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (मामृजे) सुशोभित किया जाता है (तिरः) तिरस्कार करता हुआ (अण्वानि) सूक्ष्म परमाणुओं के विकारों को (मेष्यः) चढ़ाई करनेवालों का हितकारक (मीढ्वान्) बलवान् (सप्तिः) अश्व के (न) समान (वाजयुः) आत्मबल और कामना करनेवाला (अनुमाद्यः) आनन्दित किया जाने योग्य (पवमानः) पवित्र (मनीषिभिः) मननशील (सोमः) विद्वान् (विप्रेभिः) ज्ञानियों से (ऋक्वभिः) स्तुति करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—आत्मबल चाहनेवाले मननशील, तथा भक्त ज्ञानियों द्वारा आनन्दित किया जाने योग्य, पवित्र तथा प्राकृतिक पदार्थों को त्यागता हुआ विद्वान्, चढ़ाई करने वालों के सहायक तथा बलवान् अश्व के समान सुशोभित किया जाता है ॥२॥

१६९१—कलिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (एनम्) इस (इदा) इस समय (ह्यः) गत दिन (अपीपेम) बढ़ाते हैं (इह) यहां (वज्रिणम्) शस्त्रधारी (तस्मा) उसके लिए (उ) ही (अद्य) आज (सवने) सग्राम में (सुतम्) उत्तम पदार्थ से (भरा) भरपूर कर (नूनम्) निश्चय (भूषत) सुशोभित कर (श्रुते) कीर्ति के लिए ॥१॥

भावार्थ—हम इस शस्त्रधारी राजा की प्रतिदिन वृद्धि चाहते हैं। हे परमेश्वर! तू संग्राम में इसे उत्तम पदार्थ से भरपूर कर। हे प्रजाजन ! तुम इसे यज्ञ के लिए अवश्य सुशोभित करो ॥१॥

१६९२—कलिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
२उ ३ १ २ ३क २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सेमं नः स्तोमञ्जुजुषाण आगहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२॥

पदार्थ—(वृकः) आदित्य, चन्द्र, चोर, भेडिया, विद्युत् आदि (चित्) भी (अस्य) इसके (वारणः) निवारण, हरण, (उरामथिः) बहुतों को मथने या दुःख देने वाला (आ) भली भांति (वयुनेषु) प्रज्ञान में (भूषति) विद्यमान है (सः) वह (इमम्) इस (नः) हमारे (स्तोमम्) स्तुति को (जुजुषाणः) स्वीकार करता हुआ (आगहि) प्राप्त हो (इन्द्र) हे परमेश्वर (प्र) प्रकृष्ट (चित्रया) अद्भुत (धिया) बुद्धि के साथ।२।

भावार्थ—रोगनिवारक, बहुतों को मथन करनेवाले आदित्य, चन्द्र, विद्युत् तथा धनापहारक चोर आदि सभी जिसके ज्ञान में विद्यमान हैं, वह तू हमारी स्तुति को स्वीकार करता हुआ अद्भुत बुद्धि के साथ हमें प्राप्त हो ॥२॥

१६९३—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३क २र
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (रोचना) प्रकाशक (दिवः) दिव्य गुण के (परि) सब प्रकार से (वाजेषु) विद्या और विज्ञान द्वारा होने वाले कार्यों में (भूषथ) सुशोभित करते हो (तत्) उसे (वाम्) तुम दोनों का (चेति) प्रकट करता (प्र) उत्तमता से (वीर्यम्) सामर्थ्य ॥१॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! दिव्य गुणों के प्रकाशक तुम दोनों विद्या तथा विज्ञान के द्वारा होने वाले कार्यों में हमें सुशोभित करते हो। तुम दोनों का सामर्थ्य ही इस बात को प्रकट करता है ॥१॥

१६९४—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १२ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्रयन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३अनु ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक और उपदेशक ! (अपसः) कर्म का (परि) सब प्रकार से (उप) समीप (प्रयन्ति) प्राप्त करें (धीतयः) कर्मेन्द्रियां (ऋतस्य) सत्य के (पथ्या) मार्ग के (अनु) अनुकूल ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! आपकी शिक्षा से हमारी कर्मेन्द्रियां सत्य मार्ग के अनुकूल चलती हुई उत्तम कर्म करें ॥२॥

१६९५—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ९ ३ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक तथा उपदेशक (तविषाणि) बल (वां) तुम दोनों के (सधस्थानि) एक स्थान वाले हैं (प्रयांसि) कामना के योग्य (च) और (युवोः) तुम दोनों का (अप्तूर्यम्) शीघ्र कर्मानुष्ठान (हितम्) कल्याणकारी है ॥३॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम दोनों के बल संयुक्त और कामना के योग्य हैं। तुम्हारा कर्मानुष्ठान हितकारी है ॥३॥

१६९६—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१॥

पदार्थ—(कः) प्रजापति परमेश्वर (ईम्) इसको (वेद) जानता है (सुते) उत्पन्न संसार में (सचा) शरीर और इन्द्रियों के साथ (पिबन्तम्) उपभोग करते हुए (कत्) कितनी (वयः) आयु (दधे) धारण करता है (अयम्) यह (यः) जो (पुरः) नगरी या समूह को (विभिनति) भेदन करता है (ओजसा) अपने ओज से (मन्दानः) सुखस्वरूप (शिप्री) द्यौ और पृथिवी लोक का स्वामी (अन्धसः) अन्धकार की ॥१॥

भावार्थ—वह इस संसार में इन्द्रिय और शरीर के साथ उसका उपभोग करने वाला जीव कितनी आयु धारण करता है इसको वह प्रजापति परमेश्वर ही जानता है। जो द्यु और पृथिवीलोक का स्वामी, आनन्दस्वरूप तथा अपने तेज से अज्ञानान्धकार के समूह को छिन्न-भिन्न करनेवाला है ॥१॥

१६९७—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥२॥

पदार्थ—(दाना) मद जल से (मृगः) जंगली [या घूमता हुआ] (न) यथा (वारणः) हाथी (पुरुत्रा) बहुत स्थानों में (चरथम्) जाना-आना (दधे) करता है (नकिः) कोई नहीं (त्वा) तुझे (नियमत्) रोक सकता है [या नियन्त्रित कर सकता है] (आ) भली भांति (सुते) संसार में (गमः) प्राप्त हो (महान्) महान् (चरसि) व्यापक है (ओजसा) अपनी शक्ति से ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार मद से मस्त हुआ जंगली हाथी निरंकुश होकर सब स्थानों में घूमता है, उसी प्रकार हे परमेश्वर ! महान् तू अपनी शक्ति से सर्वत्र व्यापक हो रहा है संसार में कोई भी तुझे रोक नहीं सकता ॥२॥

१६९८—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३१ ३ ३ १ २ ३ १ २
यः उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (उग्रः) बलवान् (सन्) सज्जन (अनिष्टृतः) शत्रु जिससे पार नहीं पाते (स्थिरः) दृढ़ (रणाय) संग्राम के लिए (संस्कृतः) अलंकृत (यदि) जो (स्तोतुः) वन्दी [प्रशंसा पाठ करने वाले] (मघवा) ऐश्वर्यशाली (शृणवत्) सुने (हवम्) प्रकार को (न) नहीं (इन्द्रः) राजा (योषति) संग्राम से पृथक् जाता है (आगमत्) आता है ॥३॥

भावार्थ—जो बलवान्, सज्जन, शत्रुओं से पराजित न होनेवाला, दृढ़, संग्राम के लिए सदा सुसज्जित तथा धनवान् राजा है वह यदि प्रशंसा पाठ करनेवाले वन्दी के वचन सुनता है तो युद्ध से मुख न मोड़ कर मैदान में आता है ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१६९९—*निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।*

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ १
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

पदार्थ—(पवमानाः) पवित्र (असृक्षत) उत्पन्न किए जाते हैं (सोमाः) विद्वान् जन (शुक्रासः) उज्ज्वल चरित्रवाले (इन्दवः) विद्या आदि ऐश्वर्यसम्पन्न (अभि) उद्देश्य से (विश्वानि) सम्पूर्ण (काव्या) काव्यों के ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर उज्ज्वल चरित्रवाले, विद्या-विनय-सम्पन्न तथा पवित्र आत्मा विद्वानों को समस्त वेदादि काव्यों की रक्षा के उद्देश्य से उत्पन्न करता है ॥१॥

१७००—*निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२॥

पदार्थ—(पवमाना) भिन्न योनियों में जानेवाले (दिवः परि) द्युलोक पर्यन्त या उससे परे भी (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से लेकर (असृक्षत) उत्पन्न किए जाते हैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधिसानवि) पृष्ठ पर ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ने भिन्न-भिन्न योनियों में जानेवाले जीवों को पृथिवी के पृष्ठ पर तथा अन्तरिक्ष और द्युलोक पर्यन्त उत्पन्न किया है ॥२॥

१७०१—*निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥

पदार्थ—(पवमानासः) गतिशील (आशवः) शीघ्रगामी (शुभ्राः) प्रकाशवाले (असृग्रम्) उत्पन्न किए जाते हैं (इन्दवः) जल (घ्नन्तः) नष्ट करते हुए (विश्वा) सम्पूर्ण (अप) दूर (द्विषः) रोगादि दुःखों को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर चर मनुष्यादि, शीघ्रगामी वायु आदि, प्रकाशवाले चन्द्र आदि जल तथा रोगनिवारक औषधि आदि सभी पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥३॥

१७०२—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥१॥

पदार्थ—(तोशा) विघ्नों के बाधक (वृत्रहणा) पापनाशक (हुवे) आह्वान करता हूँ (सजित्वाना) जयशील [प्रबल] (अपराजिता) न हारनेवाले (इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और विद्वान् (वाजसातमा) ज्ञानदाता ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और विद्वन् ! विघ्नों के निवारक, पापनाशक, प्रबल, न हारनेवाले तथा ज्ञान के दाता आप दोनों का मैं आह्वान करता हूँ ॥१॥

१७०३—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वाम्) तुम दोनों का (अर्चन्ति) सत्कार करते हैं (उक्थिनः) साम-गायक (नीथाविदः) विनयशील (जरितारः) ईश्वर भक्त (इन्द्राग्नी) हे आचार्य और उपदेशक (इषः) ज्ञान को (आवृणे) स्वीकार करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—हे आचार्य और उपदेशक महानुभावो, साम-गायक, विनयी और ईश्वरभक्त आप लोगों का आदर करते हैं। मैं भी आप दोनों के ज्ञान को चाहता हूँ ॥२॥

१७०४—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १· २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे सभाध्यक्ष और सेनापते (नवतिम्) नव्वे [९०] (पुरः) नगरों को (दासपत्नीः) शत्रुओं से रक्षित (अधूनुतम्) कम्पित कर देते हो (साकम्) साथ (एकेन) एक (कर्मणा) कर्म उपाय या नीति से ॥३॥

भावार्थ—हे सभा और सेना के अध्यक्षो ! तुम दोनों एक ही नीति से शत्रुओं से रक्षित नव्वे (९०) नगरों को कम्पायमान कर देते हो ॥३॥

१७०५—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥१॥

पदार्थ—(उप) सामीप्य (त्वा) तेरे लिए (रण्वसंदृशम्) स्तुति के योग्य (प्रयस्वन्तः) अन्न आदि की कामना करते हुए (सहस्कृत) हे बल के उत्पादक (अग्ने) परमेश्वर (ससृज्महे) उच्चारण करते हैं (गिरः) स्तुतियों का ॥१॥

भावार्थ—हे बल के उत्पादक परमेश्वर ! अन्न आदि की कामनावाले हम स्तुति योग्य तुझ प्रभु की स्तुति करते हैं ॥१॥

१७०६—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २
उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (छायाम्) छाया के (इव) समान (घृणे) प्रकाशमान (अगन्म) प्राप्त करें (शर्म) आश्रय, शरण को (ते) तेरे (वयम्) हम लोग (अग्ने) हे परमेश्वर (हिरण्यसंदृशः) सूर्यवत्प्रकाशमान ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग छाया के समान सूर्यवत् प्रकाशमान तथा तेजस्वी तुझ प्रभु की शरण को प्राप्त करें ॥२॥

१७०७—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (उग्रः) प्रचण्ड (इव) समान (शर्यहा) बाणधारी के (तिग्मशृङ्गः) अग्नि के (न) समान (वंसगः) सब पदार्थों का विभाग करनेवाले(अग्ने) हे परमेश्वर (पुरः) संसार के लोकलोकान्तर रूप नगरियों को (रुरोजिथ) प्रलयकाल में छिन्न-भिन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रचण्ड धनुर्धर के तथा पदार्थों का विभाग करनेवाले अग्नि के समान प्रलयकाल में संसार को छिन्न-भिन्न करता है ॥३॥

१७०८—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥१॥

पदार्थ—(ऋतावानम्) सत्यज्ञानवाले (वैश्वानरम्) मनुष्यमात्र के हितकारी (ऋतस्य) सच्चे (ज्योतिषः) प्रकाश के (पतिम्) रक्षक (अजस्रम्) सदा (घर्मम्) प्रकाशस्वरूप (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हम सत्य ज्ञानवाले, मनुष्यमात्र के हितकारी, सच्ची ज्योति के रक्षक तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सदा प्रार्थना करते हैं ॥१॥

१७०९—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २र ३ २
य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् । ऋतूनुत्सृजसे वशी ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (इदं) प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत् का (प्रतिपप्रथे) विस्तार करता है (यज्ञस्य) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप व्यवहार का (स्वः) फलरूप सुख को (उत्तिरन्) प्रदान करता हुआ (ऋतून्) छः ऋतुओं को (उत्सृजते) उत्पन्न करता है (वशी) सबको वश में रखनेवाला ॥२॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सबको वश में रखनेवाला है वही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सुखरूप फल को प्रदान करता हुआ इस संसार का विस्तार तथा ऋतुओं को उत्पन्न करता है ॥२॥

१७१०—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥३॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (प्रियेषु) प्रिय (धामसु) लोकों में (कामः) कामना योग्य (भूतस्य) भूत (भव्यस्य) भविष्यकाल का (सम्राड्) सम्राट् (एकः) एकमात्र (विराजति) विराजमान है ॥३॥

भावार्थ—जो कुछ हो चुका और जो कुछ होनेवाला है, उसका एक मात्र सम्राट् कमनीय परमेश्वर समस्त लोकों में विराजमान है ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

卐 अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

एकोनविंशोऽध्यायः

१७११—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २३२३१२३१ २ ३२क २ ३१ २र
अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वां३स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) जीव आत्मा (प्रत्नेन) सनातन अनादि प्रवाह से होनेवाले (जन्मना) जन्म से (शुम्भानः) सुशोभित करता हुआ (तन्वाम्) शरीर को (स्वाम्) अपने (कविः) मेधावी (विप्रेण) परमेश्वर द्वारा (वावृधे) बढ़ाया जाता है ॥१॥

भावार्थ—मेधावी जीव अनादि प्रवाह से होनेवाले जन्म में अपने शरीर को सुशोभित करता हुआ परमेश्वर के द्वारा बढ़ाया जाता है ॥१॥

१७१२—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र३१२३१ २३१२ ३ २ ३१ २३२
ऊर्जो न पातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥२॥

पदार्थ—(ऊर्जः) बल की (नपातम्) रक्षा करनेवाले (आहुवे) आह्वान करता हूँ (अग्निम्) परमेश्वर का (पावकशोचिषम्) पवित्रकारक तेज से युक्त (अस्मिन्) इस (यज्ञे) उपासना यज्ञ में (स्वध्वरे) उत्तम कल्याणकारी ॥२॥

भावार्थ—मैं बल के रक्षक तथा पवित्रकारक तेज वाले परमेश्वर का इस कल्याणकारी उपासना यज्ञ में आह्वान करता हूँ ॥२॥

१७१३—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र३१२ ३१२ ३१ २र ३१२
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे कल्याणार्थ (मित्रमहः) मित्रों से पूजनीय (त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर (शुक्रेण) पवित्र (शोचिषा) तेज से (देवैः) सारे देवों के साथ [संपूर्ण दिव्य शक्तियों या गुणों के साथ] (आसत्सि) विराजमान है (बर्हिषि) आकाश में ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मित्रों का पूज्य तू हमारे कल्याणार्थ पवित्र तेज तथा दिव्य शक्तियों के साथ आकाश में विराजमान है ॥३॥

१७१४—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२३१२ ३१२३ १२ ३२३ १२३१२
उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (ते) तेरे (शुष्मासः) बल (अस्थुः) स्थित हैं (रक्षः) विघ्नों या दुर्गुणों को (भिन्दन्तः) छिन्न-भिन्न करते हुए (अद्रिवः) आदरणीयों के स्वामी (नुदस्व) दूर कर (याः) जो (परि) सब प्रकार के (स्पृधः) स्पर्धा करनेवाली वृत्तियाँ ॥१॥

भावार्थ—हे आदरणीयों के भी स्वामी परमेश्वर ! तेरे बल बुरी भावनाओं को छिन्न-भिन्न करते हुए सर्वोपरि विराजमान हैं । तू बुरे स्पर्धावाली मनोवृत्तियों को दूर कर ॥१॥

१७१५—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३१२३१ २र ३१ २र३२ २३१२ ३२
अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥

पदार्थ—(अया) इस (निजघ्निः) विघ्ननिवारक (ओजसा) शक्ति से (रथसंगे) रथ के साथ (धने) धन के लिए (हिते) कल्याणकारी (स्तवै) स्तुति करता हूँ (अबिभ्युषा) निर्भय (हृदा) मन से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपनी शक्ति से ही विघ्नों का नाश करनेवाला है । मैं रथ आदि वस्तुओं सहित कल्याणकारी धन के लिए निर्भय मन से तेरी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१७१६—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२३२उ३१२ ३क२र ३१ २र ३१२
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर के (व्रतानि) नियमों को (नाधृषे) अखण्ड हैं (पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (दूढ्या) दुर्बुद्धि से (रुज) मानमर्दन कर (यः) जो (त्वा) तुझसे (पृतन्यति) संग्राम करना चाहे ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! तू शुद्धस्वरूप परमेश्वर के नियमों को अखण्डनीय जानता हुआ तुझ पर वृथा चढ़ाई करनेवाले का मान मर्दन कर ॥३॥

१७१७—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१३१२३१२ ३१२ २३१२ ३२
तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥

पदार्थ—(तम्) उसको (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं (मदच्युतम्) सुख को देनेवाले (हरिम्) अज्ञानहर्त्ता (नदीषु) नदी के समान प्रवाहवाली चित्त-वृत्तियों के विषय में (वाजिनम्) बलवान् वेगवान् (इन्दुम्) ज्ञानैश्वर्यशाली (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (मत्सरम्) प्रसन्न ॥४॥

भावार्थ—योगीजन सुख की वर्षा करनेवाले, अज्ञानहर्त्ता, चित्तवृत्तियों के विषय में बलवान्, प्रसन्न तथा ज्ञान, ऐश्वर्यवाले विद्वान् पुरुष को परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं ॥४॥

१७१८—विश्वामित्रः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३१२३ १२ ३२ ३१२
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

२ १ २३१३२उ ३२उ ३१२३ १२
मा त्वा केचिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (मन्द्रैः) सुखदायक (इन्द्र) हे परमेश्वर (हरिभिः) किरणों के साथ (याहि) व्यापक हो रहा है (मयूररोमभिः) मोर के पंख के समान चित्र-विचित्र रंगोंवाली (मा) नहीं (त्वा) तुझे (केचित्) कोई (नियेमुः) बांध सकते हैं (इत्) ही (न) समान (पाशिनः) पाश या बन्धनवाले के (अति) अतिक्रमण (धन्वा) आकाश के (इव) समान (तान्) उन सबको (इहि) स्थित करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मयूर के पंख के समान चित्र-विचित्र रंगोंवाली सुखदायक सूर्यकिरणों के साथ आकाश मण्डल में व्यापक हो रहा है तथा आकाश के समान सबको अतिक्रमण करके स्थित है ॥१॥

१७१९—विश्वामित्रः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १२ ३२३२३२३२३२
वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।

२ ३१२३१२ ३१ २र३१२ ३२
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥२॥

पदार्थ—(वृत्रखादः) आवरण का विनाशक (वलम्) मेघ का (रुजः) छिन्न-भिन्न करनेवाला (पुराम्) संघात द्रव्यों का, लोकों का (दर्मः) विदारण कर्त्ता (अपामजः) जलों की वृष्टि करनेवाला (स्थाता) स्थापन करनेवाला (रथस्य) सूर्य का (हर्योः) वायु और अग्नि का (अभिस्वरे) ध्वनिवाले आकाश मण्डल में (इन्द्रः) परमेश्वर (दृढाचित्) दृढ़तापूर्वक (आरुजः) भली भांति बाधाओं का विनाशक ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर आवरण का विनाशक, मेघ का छिन्न-भिन्न करनेवाला संघात द्रव्यों का या लोकों का विदारक, सूर्य, वायु तथा अग्नि का अन्तरिक्ष में दृढ़तापूर्वक स्थापन करनेवाला तथा बाधाओं का दूर करनेवाला है ॥२॥

१७२०—विश्वामित्रः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १२३१२३१२ ३ १ २
गम्भीराँ उदधींरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।

१२३१ २र ३१२ ३२३ १
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥

पदार्थ—(गम्भीरान्) अगाध (उदधीन्) समुद्रों को (इव) समान (क्रतुम्) ज्ञान और कर्म को (पुष्यसि) पुष्ट करता है (गाः) वेदवाणी को (इव) समान (प्र) उत्तम रक्षक विद्वान् के (यवसम्) घास को (धेनवः) गौओं को (यथा) जैसे (ह्रदं) समुद्र को (कुल्याः) नदियों के (इव) समान (आशत) प्राप्त होती हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अगाध समुद्रों को मेघजल के समान तथा वेदवाणी को विद्वान् के समान हमारे ज्ञान, कर्म और यज्ञ को पुष्ट करता है । हे भगवन्, जिस प्रकार गौएँ घास को तथा नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे ही ज्ञानी जन तुझे प्राप्त करते हैं ॥३॥

१७२१—देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथम् ।

१२ ३२ ३२३२उ ३१ २र
यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

३ १२ ३२उ ३१ २३१२३२उ ३१२
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमागहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जिस प्रकार (गौरः) मृग (अपाकृतम्) जलयुक्त (तृष्यन्) प्यासा हुआ (एति) जाता है (अव) सर्वथा (इरिणम्) ऊषर भूमि को (आपित्वे) मित्रता (नः) हम (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (तूयम्) शीघ्र (आगहि) प्राप्त होता है (कण्वेषु) मेधावी पुरुषों में (सु) उत्तम (सचा) अपने साथवाले विज्ञान से (पिब) रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस प्रकार प्यासा मृग जलयुक्त ऊषर भूमि को प्राप्त होता है उसी प्रकार मित्रता प्राप्त होने पर तू हम मेधावियों को शीघ्र प्राप्त होता है और अपने से संयुक्त ज्ञान से रक्षा करता है ॥१॥

१७२२—देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथम् ।

१२ ३१२ ३१२ ३२
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।

३२ ३१२ ३२३२उ ३१२ ३१२
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतम् ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥२॥

पदार्थ—(मन्दन्तु) स्तुति करते हैं (त्वा) तेरी (मघवन्) हे धनों के स्वामी (इन्द्र) हे परमेश्वर (इन्दवः) विद्वान् जन (राधोदेयाय) धन देने के लिए

(सुन्वते) यज्ञ करनेवाले के लिए (आ) भली भांति (अमुष्य) इसके (सोमम्) पदार्थ की (आ अपिवः) रक्षा करता है (चमूसुतम्) द्यु और पृथिवीलोक में उत्पन्न (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ (तत्) इस कारण (दधिषे) धारण करता है (सहः) बल को ॥२॥

भावार्थ—हे धनों के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् लोग यज्ञ करनेवाले को धन देने के लिए तेरी स्तुति करते हैं। तू इस यज्ञकर्त्ता के लिए द्यु और पृथिवीलोक में उत्पन्न पदार्थ की रक्षा करता है। इस लिए हे भगवन् ! तू श्रेष्ठ बल का धारण करनेवाला है ॥२॥

१७२३—*गोतमः। इन्द्रः। बृहती।*

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (अङ्ग) हे (प्रशंसिषः) प्रशंसा करता है (देवः) देव (शविष्ठ) हे शक्तिशाली (मर्त्यम्) मनुष्य की (न) नहीं (त्वदन्यः) तुझ से भिन्न (मघवन्) हे विद्या धन से युक्त (अस्ति) है (मर्डिता) सुखदाता (इन्द्र) हे विद्वन् (ब्रवीमि) कहता हूँ (ते) तेरे लिए (वचः) प्रशंसायुक्त वचन ॥१॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली तथा विद्याधन से युक्त विद्वन् ! देवस्वरूप तू मनुष्य की प्रशंसा करता है। "तुझ से भिन्न सुखदाता और कोई नहीं" यह प्रशंसावचन तेरे लिए कहता हूँ ॥१॥

१७२४—*गोतमः। इन्द्रः। बृहती।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणीभ्य आ ॥२॥

पदार्थ—(मा) नहीं (ते) तेरे (राधांसि) धनादि पदार्थ (मा) नहीं (ते) तेरी (ऊतयः) रक्षाएँ (वसो) हे सबको निवास देनेवाले (अस्मान्) हम लोगों को (कदाचन) कभी भी (आ दभन्) विनष्ट करें (विश्वा) सम्पूर्ण (च) और (नः) हमें (उपमिमीहि) प्रदान कर (मानुष) हे मनुष्यों के हितकारी (वसूनि) धनों को (चर्षणीभ्यः) मनुष्यों के लिए (आ) भली भांति ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वाश्रय तथा मनुष्यमात्र के हितकारी परमेश्वर ! तेरे धनादि पदार्थ तथा रक्षाएँ हमें कभी भी विनष्ट न करें। हे भगवन् ! तू हमें मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण धनों को प्रदान कर ॥२॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१७२५—*वामदेवः। उषाः। गायत्री।*

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २
प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः। दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥

पदार्थ—(प्रति) तरफ (स्या) वह (सूनरी) उषा (जनी) उत्पन्न होनेवाली (व्युच्छन्ती) अन्धकार को दूर करती हुई (परि) समाप्ति पर (स्वसुः) बहिन रात्रि के (दिवः) आदित्य की (अदर्शि) दिखलाई पड़ती है (दुहिता) पुत्री ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे विधान से उत्पन्न हुई, तथा अन्धकार को दूर करनेवाली आदित्य की पुत्रीरूप उषा [प्रभातकाल] रात्रि की समाप्ति पर दिखलाई पड़ती है ॥१॥

१७२६—*वामदेवः। उषाः। गायत्री।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी। सखा भूदश्विनोरुषाः ॥२॥

पदार्थ—(अश्वा) विद्युत् से (इव) समान (चित्रा) चित्र-विचित्र (अरुषी) प्रकाशमयी (माता) जन्म देनेवाली (गवाम्) किरणों को (ऋतावरी) परमेश्वर को स्मरण दिलानेवाली (सखा) साथ रहनेवाली (अभूत्) होती है (अश्विनोः) द्यु और पृथिवी लोक के (उषाः) प्रभात ॥२॥

भावार्थ—विद्युत् के समान चित्र-विचित्र, प्रकाशमयी, किरणों को उत्पन्न करने तथा परमेश्वर को स्मरण करानेवाली उषावेला द्यु और पृथिवी लोक में उपस्थित होती है ॥२॥

१७२७—*वामदेवः। उषाः। गायत्री।*

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि। उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (सखा) साथी (असि) है (अश्विनोः) द्यु और पृथिवी लोक की (उत) और (माता) उत्पन्न करनेवाली (गवाम्) किरणों को (उत) और (उषः) उषावेला (वस्वः) समस्त प्राणियों पर (ईशिषे) प्रभाव डालती है ॥३॥

भावार्थ—उषावेला द्यु और पृथिवी लोक की साथी, किरणों को उत्पन्न करने वाली है। वह परमेश्वर की कृपा से प्राणिमात्र पर अपना प्रभाव डालती है ॥३॥

१७२८—*प्रस्कण्वः। अश्विनौ। गायत्री।*

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २
एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥

पदार्थ—(एषा) यह (उ) पादपूरक (उषाः) प्रभातवेला (अपूर्व्या) अद्भुत (व्युच्छति) अन्धकार को दूर करती है (प्रिया) सबके प्रीति की हेतु (दिवः) परमेश्वर के (स्तुषे) गुणगान करता हूँ (वाम्) तुम दोनों का (अश्विना) हे सूर्य और चन्द्र के समान अध्यापक तथा उपदेशक (बृहत्) पर्याप्त रूप से ॥१॥

भावार्थ—अद्भुत तथा सबकी प्रगति की हेतु यह उषावेला परमेश्वर के प्रभाव से अन्धकार को नाश करती है। हे अध्यापक और उपदेशक ! मैं तुम लोगों के गुणगान करता हूँ ॥१॥

१७२९—*प्रस्कण्वः। अश्विनौ। गायत्री।*

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्। धिया देवा वसुविदा ॥२॥

पदार्थ—(या) जो दोनों (दस्रा) दुःख दूर करनेवाले (सिन्धुमातरा) परमेश्वर है माता जिनकी (मनोतरा) मन से तारनेवाले (रयीणाम्) धनों के (धिया) ज्ञान और कर्म से (देवा) दाता (वसुविदा) समस्त पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता ॥२॥

भावार्थ—जो दुःख के दूर करनेवाले, अपने ज्ञान और कर्म से मन के साथ हमें पार लगानेवाले, ज्ञानधनों के दाता तथा पृथिवी आदि सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञाता अध्यापक और उपदेशक हैं उन दोनों महानुभावों का हम गुणगान करते हैं ॥२॥

१७३०—*प्रस्कण्वः। अश्विनौ। गायत्री।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥

पदार्थ—(वच्यन्ते) उपदेश करें (वाम्) तुम दोनों को (ककुहासः) महान् विद्वान् लोग (जूर्णायाम्) वृद्धावस्था में (अधिविष्टपि) अन्तरिक्ष में (यत्) जो (वाम्) तुम्हारा (रथः) विमान (विभिः) पक्षियों के साथ (पतात्) उड़े ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ानेवाले ! जब वृद्ध, अनुभवी, महान् विद्वान् तुम्हें शिल्पविद्या का उपदेश करते हैं तब तुम्हारे द्वारा निर्माण किया गया रथ पक्षियों के साथ अन्तरिक्ष में उड़ता है ॥३॥

१७३१—*गोतमः। उषाः। उष्णिक्।*

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१॥

पदार्थ—(उषः) हे उषा के समान पवित्र स्त्री (तत्) उस (चित्रम्) विचित्र सौभाग्य को (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (आभर) धारण कर (वाजिनीवति) हे अन्न आदि का यथायोग्य संचय करनेवाली (येन) जिससे (तोकम्) पुत्र (च) और (तनयम्) पौत्र को (च) भी (धामहे) धारण करें ॥१॥

भावार्थ—हे धन आदि का संचय करनेवाली उषा के तुल्य पवित्राचरण युक्त स्त्री ! तू हमें वह सौभाग्य दे जिससे कि हम पुत्र और पौत्र को भी धारण कर सकें ॥१॥

१७३२—*गोतमः। उषाः। उष्णिक्।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि। रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥२॥

पदार्थ—(उषः) हे उषा के समान उज्ज्वल चरित्रवाली विदुषी (अद्य) आज (इह) इस संसार में (गोमति) हे गौ से युक्त (अश्वावति) हे अश्वोंवाली (विभावरि) हे ज्ञान प्रकाशवाली (रेवत्) धन-धान्य सम्पन्न (अस्मे) हमें (व्युच्छ) अन्धकार से दूर रख (सूनृतावति) हे सत्यज्ञानवाली ॥२॥

भावार्थ—हे गौ तथा अश्व आदि से युक्त उत्तम प्रकाशवाली तथा सत्य ज्ञान की स्वामिनि विदुषि देवि ! तू हमें धन-धान्य से सम्पन्न करती हुई अज्ञानान्धकार से दूर हटा ॥२॥

१७३३—गोतमः। उषाः। उष्णिक्।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥३॥

पदार्थ—(युङ्क्ष्व) युक्तकर (हि) निश्चय से (वाजनीवति) हे उत्तम कर्मवाली (अश्वान्) किरणों को (अद्य) आज (अरुणान्) लाल (उषः) हे उषा के समान विज्ञान प्रकाशवाली विदुषी ! (अथा) अनन्तर (नः) हमें (विश्वा) सारे (सौभगानि) सौभाग्यों को (आवह) प्राप्त करा ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तम कर्मवाली विदुषि देवि ! जिस प्रकार प्रातः उषा लाल किरणों को युक्त करती है वैसे ही तू हमें सकल सौभाग्यों को आज प्राप्त करा ॥३॥

१७३४—गोतमः। अश्विनौ। उष्णिक्।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अश्विना वर्त्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत्।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१॥

पदार्थ—(अश्विना) हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ाने वालो (वर्त्तिः) मार्ग (अस्मत्) हमारे लिए (आ) सब प्रकार से (गोमत्) गौ से युक्त (दस्रा) कला-कौशल के विघ्नों के निवारक (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि से युक्त (अर्वाक्) सन्मुख (रथम्) विमान आदि (समनसा) समान मनवाले (नियच्छतम्) दो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ानेवाले ! शिल्पज्ञान के विघ्नों को दूर करने तथा समान मनवाले तुम लोग हमारे लिये गौ और सुवर्ण आदि की प्राप्ति का मार्ग दिखलाओ तथा हमें विमान आदि साधन भी प्रदान करो ॥१॥

१७३५—गोतमः। अश्विनौ। उष्णिक्।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी।
३ १ २ ३ १ २
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (इह) इस संसार में (मयोभुवा) सुख की भावना को जागृत करनेवाले (दस्रा) सम्पूर्ण दुःखों को दूर करनेवाले (हिरण्यवर्तनी) प्रकाशवाले (उषर्बुधः) प्रातःकाल का ज्ञान करानेवाली सूर्य की किरणों को (वहन्तु) प्राप्त करें तथा करावें (सोमपीतये) शान्तिदायक और पौष्टिक पदार्थों के उपभोग के लिए ॥२॥

भावार्थ—सुख की भावना को जगानेवाले, दुःखनाशक और प्रकाशस्वरूप अग्नि तथा वायु देव इस संसार में मनुष्यों के शान्तिदायक तथा पुष्टिकारक पदार्थों के भोग के लिए सूर्य की किरणों को प्राप्त करें ॥२॥

१७३६—गोतमः। अश्विनौ। उष्णिक्।

२ ३ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।
२ ३ १ २ ३ २
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥३॥

पदार्थ—(यौ) जो दोनों (इत्था) इस प्रकार (श्लोकम्) उत्तमवाणी को (आ) सब प्रकार से (दिवः) सूर्य के (ज्योतिः) प्रकाश को (जनाय) जनता के लिए (चक्रथुः) सिद्ध करते हैं (आ) सब प्रकार से (नः) हमें (ऊर्जम्) बल को (वहतम्) प्राप्त करावें (अश्विना) अग्नि तथा वायु (युवम्) तुम दोनों [यहां पर ये दोनों निरुक्त नियम से हो जायेंगे क्योंकि निरुक्त के नियम से जड़ पदार्थों के लिए प्रयुक्त मध्यम पुरुष प्रथम पुरुष में परिवर्तित हो जाता है] ॥३॥

भावार्थ—जो वायु और अग्नि जनता के लिए सूर्य का प्रकाश करते हैं वे उत्तम बल और वाणी को प्राप्त कराते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१७३७—वसुश्रुतः। अग्निः। पंक्तिः।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर का (तम्) उस (मन्ये) मनन करता हूँ (यः) जो (वसुः) सबको आश्रयदाता तथा सब में बसनेवाला (अस्तं) आश्रयरूप (यं) जिसको (यन्ति) प्राप्त करती हैं (धेनवः) वेदवाणियां (अस्तम्) आश्रय रूप को (अर्वन्तः) ज्ञानीजन (आशवः) शीघ्रकारी (अस्तम्) आश्रय को (नित्यासः) निरन्तर कर्मानुष्ठानवाले (वाजिनः) यजमान (इषम्) अन्न को (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिए (आभर) भरपूर करता है ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सबका बसानेवाला है तथा स्वयं सबमें बसने वाला है जिसके आश्रय से वेदवाणियाँ रहती हैं, विद्वज्जन और यजमान लोग जिसको ज्ञान से प्राप्त करते हैं और जो स्तुति करने वालों को धन, अन्न आदि देता है उस प्रभु का मैं मनन करता हूँ ॥१॥

१७३८—वसुश्रुतः। अग्निः। पंक्तिः।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।
३ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्य्यमिषं स्तोतृभ्य आभर ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (हि) ही (वाजिनम्) अश्व आदि का (विशे) मनुष्य के लिए (ददाति) देता है (विश्वचर्षणिः) सबका साक्षी (अग्निः) परमेश्वर (राये) संपदा को (स्वाभुवम्) स्वाभाविक (सुप्रीतः) प्रसन्न हुआ (याति) प्राप्त कराता है (वार्यम्) श्रेष्ठ (इषम्) विज्ञान को (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिए (आभर) देता है ॥२॥

भावार्थ—सर्वसाक्षी परमेश्वर मनुष्य को अश्व आदि देता है। प्रसन्न हुआ वह स्वाभाविक तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करता है। वह ही उपासकों को ज्ञान से भरपूर करता है ॥२॥

१७३९—वसुश्रुतः। अग्निः। पंक्तिः।

२ ३१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आभर ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (अग्निः) परमेश्वर (यः) जो (वसुः) सर्वव्यापक (गृणे) उपासना किया जाता है (सं) सम्यक् (यम्) जिसका (आयन्ति) ज्ञान कराती है (धेनवः) वेदवाणियां (सम्) भली भांति (अर्वन्तः) मनुष्य (रघुद्रुवः) थोड़ा जानने वाले (सं) सम्यक् (सुजातासः) प्रसिद्ध (सूरयः) ज्ञानीजन (इषम्) इच्छा को (स्तोतृभ्यः) उपासकों की (आभर) पूरा करता है ॥३॥

भावार्थ—जो सर्वव्यापक है, जिसको वेदवाणी वर्णन करती है, अल्पज्ञानी मनुष्य भी जिसका आश्रय लेते हैं जिसको प्रसिद्ध ज्ञानीजन प्राप्त करते हैं तथा जो उपासकों की इच्छा की पूर्ति करता है, वह परमेश्वर उपासना करने योग्य है ॥३॥

१७४०—सत्यश्रवाः वत्सो वा। उषाः। पंक्तिः।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यथाचिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

पदार्थ—(महे) महान् (नः) हमें (अद्य) आज (बोधय) जगा दे (उषः) प्रातः काल के समान (राये) संपदा के लिए (दिवित्मती) प्रकाशवाली (यथाचित्) जैसे भी हो (नः) हमें (सत्यश्रवसि) सच्ची कीर्त्तिवाले (वाय्ये) सन्तान का विस्तार करनेवाले (सुजाते) उत्तम जन्म तथा (अश्वसूनृते) महान् सत्यवादी मुझ पर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जैसा कि पूर्व सृष्टि में तूने हमें चेताया उसी प्रकार प्रातःकाल के समान महान् संपदा के लिए अब भी हमें जगा। हे प्रभो ! सच्ची कीर्ति से युक्त, सन्तान का विस्तार करने वाले, उत्तम जन्मधारी तथा महान् सत्यवादी मुझ पर कृपा कर ॥१॥

१७४१—सत्यश्रवाः वत्सो वा। उषाः। पंक्तिः।

१ २ ३१ २ ३१ २र
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

पदार्थ—(या) जो (सुनीथे) उत्तम गतिवाले (शौचद्रथे) प्रकाश ज्ञान में (व्यौच्छः) बसाया है (दुहितः) कन्या के समान (दिवः) सूर्य की (सा) वह (व्युच्छ) प्रकाश कर (सहीयसि) सहनशील (सत्यश्रवसि) सच्चाई का श्रवण करनेवाले (वाय्ये) जानने योग्य (सुजाते) उत्तम जन्मवाले महान् वेदवाणी वाले ॥२॥

भावार्थ—हे विदुषी स्त्री ! तू सूर्य की कन्यारूप उषा के समान उत्तम गतिवाले ज्ञान में हमें बसाती है। तू सहनशील, सच्चे श्रोता, जानने योग्य, उत्तम जन्मवाले तथा वेदवाणी के विश्वासी मुझ में प्रकाश कर ॥२॥

१७४२—सत्यश्रवाः वत्सो वा । उषाः । पंक्तिः ।

१ २ ३२ ३ १२ ३क २र
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
२उ ३ १२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

पदार्थ—(सा) वह (नः) हमको (अद्य) आज (आभरद्वसुः) धन-धान्य से परिपूर्ण करने वाला (व्युच्छ) प्रकाशकर (दुहितः) कन्या के समान (दिवः) द्युलोक की (यः) जो (व्यौच्छः) ज्ञान प्रकाश किया है (सहीयसि) सहनशील (सत्यश्रवसि) सत्य व्यवहार से अन्न प्राप्त करने वाले (वाय्ये) शिल्पी के पुत्र (सुजाते) उत्तम विद्या जन्मवाले (अश्वसूनृते) महान् ज्ञान से युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सारी संपदाओं से परिपूर्ण करने वाले जिसे तूने सहनशील, सच्चे व्यवहार से जीवन निर्वाह करनेवाले, शिल्पी, उत्तम शिक्षायुक्त तथा महान् ज्ञान वाले मुझ पर सदा ज्ञान प्रकाश किया है, वह तू आज भी प्रभातकाल की रेखा के समान मेरे लिए ज्ञान का प्रकाश कर ॥३॥

१७४३—अवस्युः । अश्विनौ । पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विना वृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

पदार्थ—(प्रति) ओर (प्रियतमम्) अत्यन्त प्रिय (रथम्) ज्ञान की (वृषणम्) सुखदायी (वसुवाहनम्) धन प्राप्त कराने के योग्य (स्तोता) स्तुति करनेवाला (वाम्) तुम दोनों को (अश्विनौ) हे अध्यापक और उपदेशक लोगो (ऋषिः) मन्त्रों के साक्षात् द्रष्टा (स्तोमेभिः) प्रशंसा-वचनों से (भूषति) सुशोभित करता है (प्रति) ओर (माध्वी) ब्रह्मज्ञान के जाननेवाले (मम) मेरी (श्रुतम्) सुनें (हवम्) पुकार को ॥१॥

भावार्थ—हे ब्रह्मविद्या के जाननेवाले अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जो स्तुति करनेवाला ज्ञाता पुरुष तुम दोनों के अत्यन्त प्रिय, सुखदायक तथा धन प्राप्त करने के साधन ज्ञान की प्रशंसा सूचक वाक्यों से प्रशंसा करता है उसकी और मेरी पुकार को आप सुनें ॥१॥

१७४४—अवस्युः वत्सो वा । अश्विनौ । पंक्तिः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १२
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥

पदार्थ—(अति) पार कर (आयातम्) आवें (अश्विना) हे शिल्पविद्या के जानने वालो (तिरः) पार (विश्वाः) सारी विद्याएँ (अहम्) मैंने (सना) सदा (दस्रा) दुःख दूर करनेवाले (हिरण्यवर्तनी) सुवर्ण का व्यवहार करनेवाले (सुषुम्णा) सुखयुक्त (सिन्धुवाहसा) परमेश्वर को प्राप्त करानेवाले (माध्वी) ब्रह्मविद्या के ज्ञाता (मम) मेरे (श्रुतम्) सुनें (हवम्) पुकार को ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! मैंने समस्त विद्याओं को आपसे पढ़ा है। सदा हमारे दुःख को दूर करनेवाले हिरण्य आदि का प्रयोग बतानेवाले, परमेश्वर तक पहुँचानेवाले मधुविद्या के ज्ञाता आप लोग मेरी पुकार सुनें और मुझे संसार-सागर से पार लगावें ॥२॥

१७४५—अवस्युर्वत्सो वा । अश्विनौ । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १२
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (नः) हमारे (रत्नानि) अनेक रत्नों को (बिभ्रतौ) धारण करनेवालो (अश्विना) हे भूगर्भ-विद्या के वेत्ता स्त्री-पुरुषो ! (गच्छतम्) प्राप्त होओ (युवम्) तुम दोनों (रुद्रा) ब्रह्मचर्य-सम्पन्न (हिरण्यवर्तनी) सुवर्ण आदि धातुओं को निकालनेवाले (जुषाणा) प्रीति करनेवाले (वाजिनीवसू) विज्ञानक्रिया को निवास देनेवाले (माध्वी) मधुर स्वभाव (मम) मेरी (हवम्) प्रार्थना को (श्रुतम्) सुनें ॥३॥

भावार्थ—हे भूगर्भ-विद्या के ज्ञाता स्त्री-पुरुषो ! ब्रह्मचर्य-सम्पन्न स्वर्ण आदि धातुओं के अन्वेषक, सबके प्रेमपात्र, विज्ञान क्रिया के भण्डार, मधुर स्वभाव से युक्त तथा अनेक रत्नों को धारण करनेवाले आप दोनों हमारे पास आवें और हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१७४६—बुधगविष्ठिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१॥

पदार्थ—(अबोधि) जाना जाता है (अग्निः) परमेश्वर (समिधा) प्रकाशक ज्ञान से (जनानाम्) मनुष्यों के (प्रति) प्रति (धेनुम्) वाणी के (इव) समान (आयतीम्) आती हुई (उषासम्) प्रातःवेला (यह्वाः) बड़े वृक्षों के (इव) समान (प्र) उत्कृष्ट (वयाम्) शाखा को (उज्जिहानाः) ऊपर को फैलाते हुए (प्र) उत्तम (भानवः) प्रकाश (सस्रते) प्राप्त कराते हैं (नाकम्) मोक्षरूप परमपद को (अच्छ) भली प्रकार ॥१॥

भावार्थ—प्रतिदिन की होनेवाली प्रातःवेला में स्मरण की जानेवाली वेदवाणी के समान परमेश्वर मनुष्यों के ध्यान, मनन आदि कार्यों से जाना जाता है। ऊपर की ओर अपनी शाखाओं को फैलानेवाले वृक्षों के समान परमेश्वर के प्रकाश परम पद को प्राप्त कराते हैं ॥१॥

१७४७—बुधगविष्ठिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अबोधि होता यजथाय देवान् ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥

पदार्थ—(अबोधि) ज्ञान में आता है, जाना जाता है (होता) कर्मफलदाता (यजथाय) प्राप्त कराने के लिए (देवान्) दिव्यगुणों को (ऊर्ध्वः) सबके ऊपर (अग्निः) परमेश्वर (सुमनाः) अच्छी प्रकार मनन के योग्य (प्रातः) सर्वव्यापक [होकर] (अस्थात्) स्थित है (समिद्धस्य) प्रकाशस्वरूप उसके (रुशत्) दीप्यमान (अदर्शि) देखा जाता है, प्रकट है (पाजः) बल (महान्) महान् (देवः) देव (तमसः) अज्ञान अन्धकार से (निरमोचि) छुड़ाता है ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए परमेश्वर का ज्ञान करता है। सर्वोपरि विराजमान, मनन योग्य वह परमेश्वर सर्वव्यापक होकर स्थित है। उस प्रकाशस्वरूप का बल सर्वत्र प्रकाशमान देखा जाता है। वह ही महान् देव अज्ञान अन्धकार से हमें बचाता है ॥२॥

१७४८—बुधगविष्ठिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
१ ३र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयंत्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जब (ईम्) यह (गणस्य) वेदवाणी के (रशनाम्) धागे, सूत्र या तन्तु को (अजीगः) अपने अन्दर समेट लेता है (शुचिः) शुद्धस्वरूप (अङ्क्ते) प्रकट करता है प्रकाशित करता है (शुचिभिः) पवित्र (गोभिः) पृथिवी, अन्तरिक्ष, आदित्य तथा विद्वान् आदि अन्य प्राणियों के साथ (अग्निः) परमेश्वर (दक्षिणा) ज्ञानक्रिया (युज्यते) संसार में युक्त होती है (वाजयन्ती) सदसत्, आत्म-अनात्म का ज्ञान करानेवाली (उत्तानाम्) सर्वत्र फैले हुए (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि विराजमान (अधयत्) ग्रहण कर लेता है (जुहूभिः) ग्रहणशक्तियों से ॥३॥

भावार्थ—जब प्रलय का समय आता है तब शुद्धस्वरूप परमेश्वर वेदवाणी के फैले हुए तन्तु को समेट लेता है और सृष्टि का समय आने पर पृथिवी, अन्तरिक्ष, सूर्य तथा विद्वान् आदि की उत्पत्ति के साथ पुनः प्रकट करता है, सद्-असद्, आत्म-अनात्म का बोध करानेवाली ज्ञान-क्रिया संसार में पुनः प्रवृत्त हो जाती है। तदनन्तर सर्वोपरि विराजमान वह परमेश्वर इस फैले हुए वाक्-तन्तु को पुनः समेटता है और समय आने पर पुनः प्रकट करता है ॥३॥

१७४९—कुत्सः । उषा । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ठ विभ्वा ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
यथा प्रसूता सवितुः सवायँवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) यह (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (ज्योतिषाम्) ज्योतियों की (ज्योतिः) ज्योति (आगात्) व्यापक हो रहा है (चित्रः) अद्भुत (प्रकेतः) उत्तम ज्ञानवाला (अजनिष्ठ) उत्पन्न करता है (विभ्वा) सर्वव्यापक शक्ति या प्रकृति से (यथा) जैसे (प्रसूता) उत्पन्न (सवितुः) सूर्य की (सवाय एव) प्रकाशित होने के लिए ही (रात्रि) रात्रि (उषसे) उषा के लिए (योनिम्) आकाश को (आरैक्) रिक्त कर देती है ॥१॥

भावार्थ—यह श्रेष्ठ तथा ज्योतियों की परम ज्योति उषा के समान प्रकाशमान परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है। अद्भुत तथा सर्वज्ञ वह अपनी व्यापक शक्ति प्रकृति से संसार के समस्त पदार्थों का उसी प्रकार निर्माण करता है

जिस प्रकार रात्रि सूर्य के उदय के लिए उषा को आकाश में स्थान प्रदान करती है ॥१॥

१७५०—कुत्सः । उषा । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२ ३२३१२ ३ १ २र

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।

३ १२ ३१२ ३२उ ३ १२ ३२

समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥२॥

पदार्थ—(रुशद्वत्सा) चमकीले सूर्यरूप बछड़ेवाली (रुशती) प्रकाशयुक्त (श्वेत्या) शुभ्र (आगात्) उदय होती है (आरैक् उ) परित्याग कर देती है (कृष्णा) रात्रि (सदनानि) स्थानों को (अस्याः) इसके (समानबन्धू) साथ-साथ बंधी हुई (अमृते) प्रवाह से अनादि (अनूची) अवर्णनीय (द्यावा) प्रकाशमान हुई (वर्णम्) जगत् के प्रकाशक को (चरतः) प्राप्त कराती है (आमिनाने) परस्पर एक दूसरे को नष्ट करती हुई ॥२॥

भावार्थ—चमकीले सूर्यरूप बछड़ेवाली, स्वयं चमकती हुई तथा शुभ्र वर्णवाली उषा उदय होती है। रात्रि इसके स्थानों का परित्याग कर देती है। साथ-साथ बंधी हुई, प्रवाह से होनेवाली तथा अवर्णनीय शोभावाली ये दोनों रात्रि और उषा परस्पर एक दूसरे को नष्ट करती हुई जगत् को प्रकाश प्राप्त कराती हैं ॥२॥

१७५१—कुत्सः । उषा । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १२ ३२उ ३ १२ ३१२

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।

१२ ३१२ ३२३२ ३२३१२ ३ १२

न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३॥

पदार्थ—(समानः) एक समान (अध्वा) मार्ग है (स्वस्रोः) दोनों बहिनरूप का (अनन्तः) आकाश (तम्) उसको (अन्यान्या) एक एक करके (चरतः) गति करती हैं (देवशिष्टे) परमेश्वर के शासन में चलनेवाली (नः) नहीं (मेथेते) नाश करती हैं (न) नहीं (तस्थतुः) रुकती हैं (सुमेके) नियम में नियुक्त (नक्तोषासा) रात्रि और उषा (समनसा) समान प्रशंसावाली (विरूपे) भिन्न-भिन्न रूपोंवाली ॥३॥

भावार्थ—रात्रि और उषारूप दोनों बहिनों का आकाश समान मार्ग है। उसी पर ये दोनों एक एक करके विचरती हैं। परमेश्वर के नियम में चलनेवाली समानरूप से प्रशंसनीय तथा भिन्न-भिन्न रूपोंवाली ये दोनों कभी हानि नहीं पहुँचातीं और न रुकती हैं अर्थात् निरन्तर आती रहती हैं ॥३॥

१७५२—अत्रिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३२३२३१२३ २र ३१ २र

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।

३१२ ३१२३१२ ३१ ३१ २र

अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (भाति) शोभा पाती है (अग्निः) यज्ञ की अग्निः (उषसाम्) प्रातःवेलाओं की (अनीकम्) मुख्यरूप (विप्राणाम्) मेधावियों की (देवयाः) परमेश्वर की कामनावाली (वाचः) स्तुतियां (अस्थुः) बोली जाती हैं (अर्वाञ्चा) एक साथ चलनेवाले (नूनम्) निश्चित (रथ्या) विमानों के अधिकारी (इह) इस [गृहस्थाश्रम में] (यातम्) आवें (पीपिवांसम्) घृतपूर्ण (अश्विना) हे स्त्री और पुरुष (घर्मम्) यज्ञ का (अच्छ) अच्छी तरह अनुष्ठान करो ॥१॥

भावार्थ—हे विमानों के स्वामी स्त्री और पुरुष ! प्रातः वेलाओं की मुख्य यज्ञाग्नि प्रज्वलित है। ज्ञानीजन परमेश्वर को प्राप्त करानेवाली स्तुतियां करते हैं तुम लोग इस गृहस्थ आश्रम में यज्ञ को पूरा करने के लिए आओ ॥१॥

१७५३—अत्रिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१२३१ २र ३२३१२ ३२३१२र ३२

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।

१२ ३२३१२ ३१२र ३२३१२

दिवाभिपित्वेऽवसा गमिष्ठा प्रत्यवर्त्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥

पदार्थ—(न) नहीं (संस्कृतम्) संस्कार किये हुए को (प्रमिमीतः) नष्ट करते हो (गमिष्ठा) जानेवाले हो (अन्ति) समीप में (नूनम्) निश्चय ही (अश्विना) हे वैद्य स्त्री और पुरुष (उपस्तुत) प्रशंसा पाते हो (इह) इस विषय में (दिवाभिपित्वे) प्रातः काल में (अवसा) रक्षा के साथ (आगमिष्ठा) आनेवाले हो (प्रति) प्रति (अवर्तिम्) पीडायुक्त या संदिग्ध जीवनवाले के (दाशुषे) त्यागी मनुष्य के लिए (शम्भविष्ठा) कल्याणकारी हो ॥२॥

भावार्थ—हे वैद्य स्त्री-पुरुषो ! आप लोग पवित्र रहनेवालों के रक्षक और समीप आनेवाले हो। इस विषय में आप लोगों की सब प्रशंसा करते हैं। आप रोगी के पास सभी रक्षा की औषधियों के साथ प्रातःकाल भी पहुँचते हो और दानी पुरुष के लिए कल्याण करनेवाले हो ॥२॥

१७५४—अत्रिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

३१२ ३२३१ २र ३१२३१२३१२

उतायातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।

२३२३१२३१२ ३१ २र ३२३१ २र

दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (आयातम्) आवें (संगवे) इन्द्रियों के अच्छी अवस्था में रहने के समय (प्रातः) प्रातःकाल (अह्नः) दिन के समय (मध्यन्दिने) मध्याह्न काल (उदिता) प्रखर [तेज] किरणों के समय सूर्य के (दिवा) दिन में (नक्तम्) रात्रि में (अवसा) रक्षा के साधन [औषधि] के साथ (शन्तमेन) कल्याणकारक (न) नहीं (इदानीम्) इस समय (पीतिः) पान (अश्विना) वैद्य स्त्री-पुरुषो (ततान) करते हैं विस्तार करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे वैद्य स्त्री-पुरुषो ! आप स्वाभाविक नियम से इन्द्रियादि को स्वस्थ रखने के लिए प्रातःकाल मध्याह्न आदि वेलाओं में दिन-रात हर समय बुलाने पर रक्षा करनेवाली औषधियों के साथ रोगी के घर आओ, परन्तु रोगी के गृह पर कुछ भी मत खाओ-पीओ ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१७५५—गोतमः । उषाः । जगती ।

३२३२ ३१२३१२ ३२३२३१२ ३१२

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।

३ १ २र ३२३ २३१ २र ३१२

निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थ—(एताः) ये (उ) और वे (उषसः) (त्याः) प्रातःवेलाएँ (केतुम्) ज्ञान को (अक्रत) कराती हैं (पूर्वे) पूर्व [पहले] (अर्धे) आधे में (रजसः) भूगोल के (भानुम्) सूर्य के प्रकाश को (अंजते) फैलाती हैं (निष्कृण्वानाः) करती हुई (आयुधानि) शस्त्रों को (इव) समान (धृष्णवः) प्रगल्भ शस्त्रधारी के (प्रति) और (गावः) गमनशील (अरुषीः) लालिमायुक्त (यन्ति) प्राप्ति होती हैं (मातरः) दिन की माताएँ ॥१॥

भावार्थ—गतिशील, लालिमायुक्त तथा दिन को उत्पन्न करनेवाली प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उषाएँ ज्ञान कराती हैं। आयुधों को प्रगल्भ योद्धा के समान दिनों को उत्पन्न करती हुई भूगोल के पूर्व अर्ध में सूर्य के प्रकाश को फैलाती हैं और हमें प्रतिदिन देखने में आती हैं ॥१॥

१७५६—गोतमः । उषाः । जगती ।

१२ ३२ ३२३१२ ३२३१२३१२

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।

१२३१२३१२ ३२३१२ ३१ २र

अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

पदार्थ—(उदपप्तन्) ऊपर उठती हैं (अरुणा) लालिमायुक्त (भानवः) सूर्य की किरणें (वृथा) व्यर्थ सी [अनायास] (स्वायुजः) परस्पर युक्त (अरुषीः) प्रकाशमान (गाः) पृथिवी के साथ (अयुक्षत) युक्त होती हैं (अक्रन्) करती हैं (उषासः) उषाकाल की किरणें (वयुनानि) प्रशंसनीय कार्य या कान्तियों को (पूर्वथा) पहले दिन के समान (रुशन्तम्) तेजस्वी (भानुम्) सूर्य का (अरुषीः) लालिमायुक्त (अशिश्रयुः) आश्रय करती हैं ॥२॥

भावार्थ—लालिमायुक्त सूर्य की किरणें अनायास ही नियम से ऊपर नीचे आदि दिशाओं में फैलती हैं। लालिमायुक्त वे सब पदार्थों से युक्त होती हुई पृथिवी के साथ संबद्ध होती हैं। पूर्व दिन की भाँति उषा की अरुण किरणें आज भी अपने प्रशंसनीय कार्य को करती हैं। वे प्रकाशमान सूर्य का आश्रय लेती हैं ॥२॥

१७५७—गोतमः । उषाः । जगती ।

१२३ १२३२३२३ १२ ३२३१२३१२३१२

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।

२३१२ ३१२३१२३२उ ३ १२ ३२

इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—(अर्चन्ति) व्याप लेती हैं (नारीः) प्राणिमात्र की नेत्री (अपसः) जल के (न) समान (विष्टिभिः) तेजों से (समानेन) एक समान के (योजनेन) योग के द्वारा (आ परावतः) दूर तक (इषम्) ज्ञान को (वहन्ती) प्राप्त कराती हुई (सुकृते) धर्मात्मा (सुदानवे) उत्तम दानी (विश्वा इत अह) संपूर्ण भोग्य पदार्थों को (यजमानाय) यजमान के लिए (सुन्वते) उत्पन्न करती हैं ॥३॥

भावार्थ—सब को मार्ग दिखानेवाली उषाएँ जल के समान एक ही मार्ग से अपने तेजों के द्वारा भूगोल के भाग में प्रति दिन फैल जाती हैं। वे धर्मात्मा तथा दानी यजमान को ज्ञान कराती हुई समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करती हैं ॥३॥

१७५८—दीर्घतमाः । अश्विनौ । जगती ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ ३क २ ३ २ ३क २र ३ १ २

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युऽषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।

१ २ ३ २ ३ १२३२३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ॥१॥

पदार्थ—(अबोधि) जागृत होता है (अग्निः) तेज तत्त्व का (ज्मः) पृथिवी पर (उदेति) उदय होता है (सूर्यः) सूर्य (वि) विशेषतः (उषाः) उषा (चन्द्रा) आनन्द देनेवाली (मही) बड़ी (आवः) रक्षा करती है (अर्चिषा) अपने तेज से (अयुक्षाताम्) जोड़ते हैं (अश्विना) आप्त अध्यापक और उपदेशक (यातवे) जाने के लिए (रथम्) विमान को (प्रासावीत्) भली भांति उत्पन्न करता है (देवः) परमात्मदेव (सविता) सृष्टिकर्त्ता (जगत्) संसार को (पृथक्) पृथक् पृथक् ॥१॥

भावार्थ—अग्नि प्रदीप्त होता है। सूर्य पृथिवी पर उदय होता है। सुखकारिणी महान् उषा भी समय पर अपने तेज से फैलती है। अध्यापक और उपदेशक रथ को अपने कार्यों के लिए युक्त करते हैं। विधाता ने संसार को विभाग के साथ रचा है ॥१॥

१७५९—दीर्घतमाः । अश्विनौ । जगती ।

२३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जब (युञ्जाथे) जोड़ते हैं (वृषणम्) शत्रुओं की शक्ति को रोकनेवाले (अश्विना) सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष (रथम्) विमान को (घृतेन) घृत आदि (नः) हमारे (मधुना) मधुर पदार्थों से (क्षत्रम्) राष्ट्र को (उक्षतम्) भरपूर करते हैं (अस्माकम्) हमारे (ब्रह्म) अन्न और तेज को (पृतनासु) सेनाओं में (जिन्वतम्) भर दो (वयम्) हम लोग (धना) धनों को (शूरसाता) संग्रामों में (भजेमहि) प्राप्त करें ॥२॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष ! जब आप लोग शत्रु से सामना करनेवाले विमान को जोड़ते हैं तो घृत तथा मधुर पदार्थों आदि से राष्ट्र को परिपूर्ण कर देते हैं। हमारी सेनाओं को अन्न आदि से ऐसा निश्चिन्त कर दो कि हम लोग संग्राम में धन को प्राप्त करें ॥२॥

१७६०—दीर्घतमाः । अश्विनौ । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शन्न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

पदार्थ—(अर्वाङ्) नीचे प्रदेश में [भूमि पर] चलनेवाला (त्रिचक्रः) तीन चक्रवाले (मधुवाहनः) जल में चलनेवाले (जीराश्वः) तेज घोड़ोंवाले (रथः) विमान (अश्विनोः) शिल्पी और वैज्ञानिक के (यातु) चले (सुष्टुतः) प्रशंसित (त्रिबन्धुरः) तीन बन्धनवाला (मघवा) परमेश्वर (विश्वसौभगः) सारे सौभाग्यों का दाता (शम्) कल्याण (नः) हमारे (आवक्षत्) करे (द्विपदे) दो पांववाले (चतुष्पदे) चार पांववाले पशु आदि के लिए ॥३॥

भावार्थ—तीन चक्रोंवाला, तीन बन्धनों से युक्त, तेज घोड़ों से चलने वाला, जलगामी तथा स्थल-गतिवाला, शिल्पी और वैज्ञानिक का रथ चले। प्रशंसित तथा सारे सौभाग्यों का दाता परमेश्वर हमारे जन तथा पशु आदि का कल्याण करे ॥३॥

१७६१—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्कृष्ट (ते) तेरी (धाराः) वाणियां (असश्चतः) अलग अलग (दिवः) द्युलोक से (न) समान (यन्ति) प्राप्त कराती या जनती हैं (वृष्टयः) वृष्टि के (अच्छा) अच्छी तरह (वाजम्) ज्ञान को (सहस्रिणम्) विविध प्रकारवाले ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पृथक्-पृथक् वर्तमान तेरी वेदमयी वाणियां आकाश की वृष्टि के समान विविध प्रकार के ज्ञानों को प्राप्त कराती हैं ॥१॥

१७६२—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।

१ २ ३ १ २र

हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (प्रियाणि) प्रिय (काव्या) वेद वचनों का (विश्वा) सारे (चक्षाणः) उपदेश करता हुआ (अर्षति) व्यापक हो रहा है (हरिः) अज्ञानहर्त्ता (तुञ्जानः) प्रेरणा देता हुआ (आयुधा) आयु को धारण करनेवाले कर्मों को ॥२॥

भावार्थ—अज्ञानहर्त्ता परमेश्वर सारे वेद-वचनों का उपदेश तथा आयु प्राप्त करानेवाले कर्मों की प्रेरणा करता हुआ सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥२॥

१७६३—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (मर्मृजानः) स्वयं पवित्र करता हुआ (आयुभिः) आयुओं [जीवन] से (इभः) हाथी (राजा) राजा के (इव) समान (सुव्रतः) प्रशस्तकर्मा (श्येनः) आत्मा के (न) समान (वंसु) संसार में (सीदति) विराजमान है ॥३॥

भावार्थ—जीवनों द्वारा सबको पवित्र करता हुआ, प्रशस्तकर्मा परमेश्वर गजराज के समान तथा आत्मा के समान संसार में विराजमान है ॥३॥

१७६४—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमें (विश्वा) सारे (दिवः) मोक्ष का (वसु) धन (उत) और (पृथिव्याः) पृथिवी का (अधि) ऐश्वर्य के साथ (पुनानः) पवित्र करता हुआ (इन्दो) हे ऐश्वर्यशालिन् (आभर) परिपूर्ण कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशालिन् परमेश्वर ! तू पवित्र करता हुआ हमें इहलोक और परलोक की सम्पदा प्रदान कर ॥४॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 एकोनविंशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

विंशोऽध्यायः

१७६५—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसः । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (अस्य) इसकी (धाराः) वेदमयी वाणियां (अक्षरन्) वर्षा करती हैं (वृष्णः) सकल सुखदाता (सुतस्य) उत्पादक (ओजसः) बल के (देवान्) संसार की दिव्य वस्तुओं को (अनु) अनुकूलता के साथ (प्रभूषत) सुशोभित करनेवाला ॥१॥

भावार्थ—संसार की दिव्य वस्तुओं को विभूषित करनेवाले, सुखदाता, तथा बल के उत्पादक इस परमेश्वर की वेदमयी वाणियां ज्ञान की वर्षा करती हैं ॥१॥

१७६६—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३क २र

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—(सप्तिम्) सर्वव्यापक (मृजन्ति) अपने को शुद्ध करते हैं (वेधसः) मेधावीजन (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (कारवः) कर्मण्य (गिरा) वेदवाणी से (उ) पादपूरक (ज्योतिः) ज्ञानज्योति को (जज्ञानम्) उत्पन्न करनेवाले (उक्थ्यम्) स्तुत्य उपास्य ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानज्योति को उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक तथा स्तुति करने योग्य परमेश्वर की वेदवाणी द्वारा स्तुति करते हुए कर्मण्य विद्वान् लोग अपने को पवित्र करते हैं ॥२॥

१७६७—नृमेधः। सोमः। गायत्री।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो। वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥

पदार्थ—(सुषहा) अभिभव करनेवाले (सोमः) हे परमेश्वर (तानि) वे (ते) तेरे (पुनानाय) पवित्रकर्त्ता (प्रभूवसो) हे शक्तिमन् (वर्धा) बढ़ा (समुद्रम्) सुख के सागर को (उक्थ्य) हे स्तुत्य ॥३॥

भावार्थ—हे शक्तिमन् तथा स्तुत्य परमेश्वर! पवित्र करनेवाले तुभ प्रभु के तेज सब तेजों को दबानेवाले हैं। तू संसार में सुख का सागर बढ़ा दे ॥३॥

१७६८—प्रियमेधः वामदेवो वा। इन्द्रः। पंक्तिः।

३ २ ३ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥१॥

पदार्थ—(एष) यह (ब्रह्मा) चारों वेदों का उपदेष्टा (यः) जो (ऋत्वियः) ऋतुओं में यज्ञ करनेवाला (इन्द्रः) परमेश्वर (नाम) नाम से (श्रुतः) विख्यात है (गृणे) उसकी स्तुति करता हूं ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर ऋतुओं के अनुसार पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला इन्द्र नाम से विख्यात है, उस चारों वेदों के उपदेष्टा की मैं स्तुति करता हूं ॥१॥

१७६९—प्रियमेधो वामदेवो वा। इन्द्रः। पंक्तिः।

१ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥२॥

पदार्थ—(त्वाम्) तुझ को (इत्) ही (शवसस्पते) हे बलों के स्वामी (यन्ति) प्राप्त होती हैं (गिरः) वाणियां (न) समान (संयतः) संयमी पुरुष के ॥२॥

भावार्थ—हे बलों के स्वामी परमेश्वर! संयमी पुरुषों के समान हमारी स्तुतियां तुम्हें ही प्राप्त होती हैं ॥२॥

१७७०—प्रियमेधो वामदेवो वा। इन्द्रः। पंक्तिः।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥३॥

पदार्थ—(विस्रुतयः) पगदण्डियां (यथा) जैसे (पथा) बड़ी सड़क से (इन्द्रः) हे राजन् (त्वत्) तुझ से (यन्तु) प्राप्त हों (रातयः) सब प्रकार के दान ॥३॥

भावार्थ—हे राजन्! बड़ी सड़कों से पगदण्डियों के समान तुझसे अनेक प्रकार के दान प्राप्त होते हैं ॥३॥

१७७१—प्रियमेधः। इन्द्रः। अनुष्टुप्।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (त्वा) तुझे (रथम्) रथ को (यथा) जसे (ऊतये) रक्षा के लिए (वर्तयामसि) अपनी ओर घुमाता हूँ (तुविकूर्मिम्) बहुत कार्य करनेवाले (ऋतीषहम्) हिंसक भावों को दबानेवाले (इन्द्रम्) अविद्या के नाशक विद्वान् को (शविष्ठ) हे बलशाली (सत्पतिम्) सत्य के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली विद्वन्! अनेक सुखों की सिद्धि के लिए रथ के समान अपनी रक्षा के लिए हमलोग अनेक क्रियाओं में कुशल, हिंसक भावों को दबानेवाले तथा सत्य के रक्षक आपको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं ॥१॥

१७७२—प्रियमेधः। इन्द्रः। गायत्री।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २
तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते। आपप्राथ महित्वना ॥२॥

पदार्थ—(तुविशुष्म) हे अतिबलवन्, (तुविक्रतो) हे महान् ज्ञानिन् (शचीवो) हे असंख्य कर्मों के संपादक (विश्वया) विश्वव्यापक (मते) हे मतिमान् (आपप्राथ) ओत-प्रोत या विस्तारयुक्त है (महित्वना) महिमा से ॥२॥

भावार्थ—हे अति बलवान् महान् ज्ञानी असंख्य कर्मों के संपादक और मतिमान् परमेश्वर! तू अपनी विश्वव्यापक महत्ता से संसार में ओत-प्रोत है ॥२॥

१७७३—प्रियमेधः। इन्द्रः। गायत्री।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः। हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) तेरी (महिना) महत्ता से (महः) महान् (परि) सब प्रकार से (ज्मायन्तम्) पृथिवी पर व्यापक (ईयतुः) ग्रहण करती है (हस्ता) ग्रहण और धारण शक्तियां (वज्रम्) पराक्रम को (हिरण्ययम्) प्रकाशमय ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तुझ महान् की ग्रहण और त्याग शक्तियां महत्ता से पृथिवी पर व्यापक तेरे प्रकाशमय पराक्रम को धारण करती हैं ॥३॥

१७७४—दीर्घतमाः। अग्निः। विराट्।

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र १ २
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३नार्वा।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सूरो न रुरुक्वां छतात्मा ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (यः) जो (पुरम्) शरीर को या संसार को (नार्मिणीम्) क्रीडा-विलास आदि के साधनभूत (अदीदेत्) प्रकाशित करता है (अत्यः) वायु (कविः) दूरदर्शी (नभन्यः) आकाशवर्ती (अर्वा) सदा गतिशील (सूरः) सूर्य के (न) समान (रुरुक्वान्) प्रकाशस्वरूप (शतात्मा) अनेक पदार्थों में व्यापक ॥१॥

भावार्थ—सर्वज्ञ, आकाश में स्थित वायु के समान गतिशील सूर्य के समान तेजस्वी और सब पदार्थों में व्यापक परमेश्वर ही भोग-साधन संसार या मनुष्यों के शरीर को बनाता है ॥१॥

१७७५—दीर्घतमाः। अग्निः। विराट्।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि द्विजन्मा त्रीरोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात्।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (द्विजन्मा) दो प्रकार [अर्थात् जंगम और जड़] जगत् के स्वामी (त्रिः) तीन (रोचनानि) प्रकाशक सूर्य, अग्नि और विद्युत् (विश्वा) सारे (रजांसि) लोकों को (शुशुचानः) प्रकाशित करता हुआ (अस्थात्) स्थित है (होता) सबका धारणकर्त्ता (यजिष्ठः) पूजनीय (अपाम्) जलों के (सधस्थे) स्थान [आकाश] में ॥२॥

भावार्थ—जड़ और जंगम दोनों प्रकार के जगत् का स्वामी, सर्वाधार तथा पूजनीय परमेश्वर अग्नि सूर्य तथा विद्युत्, और समस्त लोकों को प्रकाशित करता हुआ जलों के स्थान आकाश में स्थित है ॥२॥

१७७६—दीर्घतमाः। अग्निः। विराट्।

२ ३उ ३ २ ३ २ १ २ ३१ २र ३ २
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या।

२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मर्त्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥३॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सः) वह (होता) उत्तम गुणों का दाता (यः) जो (द्विजन्मा) दो प्रकार के जगत् का स्वामी (विश्वा) समस्त (दधे) धारण करता है (वार्याणि) श्रेष्ठ पदार्थों और गुणों का (श्रवस्या) कीर्ति कर (मर्तः) मनुष्य (यः) जो (अस्मै) इस के लिए (सुतुकः) उत्तम विद्यावृद्ध (ददाश) त्यागता है ॥३॥

भावार्थ—जो उत्तम गुणों का दाता और जड़ जंगम जगत् का स्वामी है वही परमेश्वर समस्त कीर्तिकर गुणों को धारण करता है। जो मनुष्य विद्यावृद्ध है वह सदा इस परमेश्वर में अनेक कर्मों का समर्पण करता है ॥३॥

१७७७—वामदेवः। अग्निः। पदपंक्तिः।

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्।

३ १ २ ३ १ २
ऋध्यामा त ओहैः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (तम्) उसको (अद्य) आज (अश्वं) व्यापक अग्नि के (न) समान (स्तोमैः) स्तुतियों से (क्रतुम्) कर्म के (न) समान (भद्रं) कल्याणकारी (हृदिस्पृशम्) हृदयदेश में विराजमान (ऋध्यामा) स्तुति करते हैं (ते) तेरे (ओहैः) ज्ञान और सुख प्राप्त कराने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! व्यापक अग्नि के समान सर्वव्यापक तथा कल्याणकारी कर्म के समान फलदाता, हृदय देश में विद्यमान तुझे हम ज्ञान और सुख के दाता वचनों से स्मरण करते हैं ॥१॥

१७७८—वामदेवः। अग्निः। पदपंक्तिः।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२॥

पदार्थ—(अधा हि) निश्चय ही (अग्ने) हे परमेश्वर (क्रतोः) यज्ञ के (भद्रस्य) कल्याणकारी (दक्षस्य) बल के (साधोः) उत्तम (रथीः) रथवत् वहन-धारण करनेवाले=महारथी (ऋतस्य) ज्ञान और सृष्टिनियम के (बृहतः) महान् (बभूथ) हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! निश्चय तू ही कल्याणकारक बल, उत्तम ज्ञान और सृष्टि नियम, तथा इस महान् संसारी यज्ञ का महारथी है ॥२॥

१७७९—वामदेवः । अग्निः । पदपंक्तिः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३क १ २र
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्वर्ण ज्योतिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

पदार्थ—(एभिः) इन (नः) हमारी (अर्कैः) स्तुतियों से (भवा) हो (नः) हमारे (अर्वाक्) सम्मुख (स्वः) सूर्य के (न) समान (ज्योतिः) प्रकाश-स्वरूप (अग्ने) हे परमेश्वर (विश्वेभिः) सारे (सुमनाः) भली भांति जानने के योग्य (अनीकैः) तेजों से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप तथा जानने योग्य तू हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न हो अपने तेजों से अज्ञान का पट खोल और हमारे साक्षात्कार में आ ॥३॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

१७८०—प्रस्कण्वः । अग्निः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे जीव (विवस्वत्) विशेष चमकनेवाले या वास देनेवाले (उषसः) उषा का (चित्रम्) अद्भुत (राधः) ज्ञान धन (अमर्त्य) हे अमर (आ) भली भांति (दाशुषे) यजमान के लिए (जातवेदः) हे ज्ञानी (वहा) प्राप्त करा (त्वम्) तू (अद्या) आज (देवान्) इन्द्रियों को (उषर्बुधः) प्रातःकाल जागनेवाली ॥१॥

भावार्थ—हे विज्ञानी अमर जीव ! तू उषा काल के समान प्रकाशमान प्रकाश को बसानेवाला अद्भुत ज्ञान-धन दानी पुरुष को प्राप्त करा तथा प्रातःकाल जागने वाली इन्द्रियों को ज्ञान करा ॥१॥

१७८१—प्रस्कण्वः । अग्निः । बृहती ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२॥

पदार्थ—(जुष्टः) प्रसन्न हुआ (हि) ही (दूतः) दुर्गुणों के निवारक (असि) है (हव्यवाहनः) देने योग्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाला (अग्ने) हे परमेश्वर (रथीः) नेता (अध्वराणाम्) कल्याणकारी यज्ञों का (सजूः) मनुष्यों को प्यार करनेवाला (अश्विभ्याम्) सूर्य और चन्द्र द्वारा (उषसा) उषा काल के द्वारा (सुवीर्यम्) बलवर्धक (अस्मे) हमें (धेहि) दे (श्रवः) अन्न और यश (बृहत्) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही दुर्गुणों का निवारक कल्याणकारी यज्ञों का नेता तथा सबसे मैत्री रखता है । तू सदा प्रीति से सेवनीय है । तू सूर्य, चन्द्र और उषा के द्वारा पर्याप्त अन्न देता है ॥२॥

१७८२—बृहदुक्थ्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ ३ २ १ २
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥१॥

पदार्थ—(विधुम्) ज्ञाता (दद्राणम्) दुष्ट भावों का दमन करनेवाले (समने) संसाररूपी संग्राम में (बहूनाम्) बहुतों के (युवानम्) सदा युवा (सन्तम्) सत्यस्वरूप (पलितः) ज्ञान-वृद्ध (जगार) उपदेश करता है (देवस्य) देव के (पश्य) देखो (काव्यम्) गति को (महित्वा) महत्ता से युक्त (अद्य) आज (ममार) मरा (सः) वह (ह्यः) गत दिन अर्थात् कल (समान) जीवित था ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानवृद्ध संसार संग्राम में सब का ज्ञाता, दुष्ट भावों के दमन करने वाले, सदा युवा तथा सत्यस्वरूप परमेश्वर का उपदेश करता है । हे मनुष्य ! उस देव के इस महत्त्व से युक्त कार्य को देखो कि कल जो जीवित था आज वही मौत के मुख में हुआ ॥१॥

१७८३—बृहदुक्थ्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥२॥

पदार्थ—(शाक्मना) अपनी शक्ति से (शाकः) शक्तिमान् (अरुणः) अग्नि के समान तेजस्वी (सुपर्णः) उत्तम रक्षक (आ) भली भांति (यः) जो (महः) महान् (शूरः) बलवान् (सनातः) सनातन (अनीडः) स्थान विशेष पर न रहने वाला [सर्वत्र रहनेवाला] (यत्) जो कुछ (चिकेत) चाहता है वा सोचता है (सत्यम्) सत्य (इत्) ही (तत्) वह (न) नहीं (मोघम्) व्यर्थ (वसु) सम्पदा को (स्पार्हम्) चाहने योग्य (उत) और (जेता) विजयी (उत) और (दाता) देनेवाला ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर महान् बलशाली, सनातन, सर्वव्यापक, अपनी शक्ति से सर्वशक्तिमान्, अग्निवत् तेजस्वी, तथा उत्तम रक्षक है । वह जो कुछ सोचता है वह सत्य ही होता है, व्यर्थ नहीं । वह सब पर विजयी और स्पृहणीय धन का दाता है ॥२॥

१७८४—बृहदुक्थ्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुद जायन्त देवाः ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (एभिः) इनके द्वारा (ददे) देता है (वृष्ण्या) बलवान् (पौंस्यानि) पौरुषों को (येभिः) जिनसे (औक्षत्) सींचता है (वृत्रहत्याय) पाप को नष्ट करने के लिए (वज्री) न्यायरूप दण्ड का धारण करनेवाला (ये) जो (कर्मणः) कर्म के (क्रियमाणस्य) किए जाने वाले (मह्नः) महत्त्व से (ऋतेकर्मम्) सच्चे व्यवहार में (उदजायन्त) उन्नत करते हैं (देवाः) विद्वान् जन ॥३॥

भावार्थ—न्यायदण्ड का धारण करनेवाला परमेश्वर, जिनके द्वारा पाप दूर करने का उपाय करता है तथा जो वे विद्वान् लोग किए जानेवाले कर्म के महत्त्व से संसार के सच्चे व्यवहारों में विजय प्राप्त करते हैं उन विद्वानों के द्वारा ही परमेश्वर का श्रेष्ठ पौरुष धारण किया जा सकता है ॥३॥

१७८५—बिन्दुः पूतदक्षो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥१॥

पदार्थ—(अस्ति) है (सोमः) संसार (अयम्) यह (सुतः) उत्पन्न (पिबन्ति) भोगते हैं (अस्य) इसको (मरुतः) ऋत्विज् लोग (उत) और (स्वराजः) स्वयं तेजस्वी (अश्विना) वैद्य या वैज्ञानिक स्त्री-पुरुष भी ॥१॥

भावार्थ—यह जगत् उत्पन्न है । स्वयं तेजस्वी ऋत्विज् तथा वैज्ञानिक स्त्री-पुरुष इसका उपभोग करते हैं ॥१॥

१७८६—बिन्दुः पूतदक्षो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥२॥

पदार्थ—(पिबन्ति) पान करते हैं (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (तना) विस्तृत (पूतस्य) पवित्र (वरुणः) वरणयोग्य (त्रिषधस्थस्य) त्रिलोकीनाथ (जावतः) उत्पादक ॥२॥

भावार्थ—मित्र, न्यायकारी, तथा वरणीय व्यक्ति सदा पवित्र त्रिलोकीनाथ सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के आनन्द का पान करते हैं ॥२॥

१७८७—बिन्दुः पूतदक्षो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥३॥

पदार्थ—(उत उ) और (नु) शीघ्र (अस्य) इसके (जोषम्) प्रेम को (आ) भली भांति (इन्द्रः) आत्मा (सुतस्य) सृष्टिकर्त्ता (गोमतः) गौ आदि के स्वामी (प्रातः) प्रातःकाल में (होता) यज्ञ करनेवाले के (इव) समान (मत्सति) आनन्दित होता है ॥३॥

भावार्थ—ज्ञानी जीवात्मा गौ आदि के स्वामी तथा सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के प्रेमरस को पान कर प्रातःकाल के यज्ञकर्त्ता के समान प्रसन्न होता है ॥३॥

१७८८—जमदग्निः । सूर्यः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥१॥

पदार्थ—(बट्) सत्य (महान्) बड़ा (असि) है (सूर्य) हे परमेश्वर (बट्) सत्य ही (आदित्य) आदित्य (महान्) महान् (असि) है (महः) महान् (ते) तेरी (सतः) नित्य (महिमा) महिमा की (पनिष्टम) स्तुति करते हैं (मह्ना) महत्त्व से (देव) हे देव (महान्) बड़ा (असि) है ॥१॥

भावार्थ—हे सबके प्रेरक परमेश्वर ! तू सत्य ही महान् है । तू ही आदित्य नाम वाला है । हे देव ! तुझ नित्य प्रभु की महिमा को हम महत्त्व देते हैं । तू अपनी महत्ता से ही महान् है ॥१॥

१७८९—जमदग्निः । सूर्यः । बृहती ।

१ २३ १२ ३ १ २ ३ १२ ३ १२
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
३ २ ३ १२ ३क २र ३ १ २ ३ २उ ३ १२
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥२॥

पदार्थ—(बट्) सत्य ही (सूर्य) हे परमेश्वर (श्रवसा) यश से (महान्) महान् (असि) है (सत्रा) सत्य से (देव) हे देव (महान्) महान् (असि) है (मह्ना) महिमा से (देवानाम्) समस्त दिव्य शक्तियों का (असुर्यः) बुरे विचारों का नाश करनेवाला (पुरोहितः) पूर्वकर्त्ता (विभु) व्यापक (ज्योतिः) ज्योति (अदाभ्यम्) न दवाये जाने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने यश से महान् है । हे देव तू सत्य से महान् है । बुरे विचारों का विनाशक तू सारे देवों का धारण करनेवाला है । तेरी व्यापक ज्योति अमिट है ॥२॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१७९०—सुकक्षः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥१॥

पदार्थ—(उप) समीप (नः) हमें (हरिभिः) अज्ञान का हरण करने वाली शक्तियों से (सुतम्) उत्पन्न ज्ञान को (याहि) प्राप्त करा (मदानां पते) हे सुखों के स्वामी (उप) समीप (नः) हमारे (हरिभिः) इन्द्रिय, अन्तःकरणों और प्राणों के द्वारा (सुतम्) उत्पन्न भोग को ॥१॥

भावार्थ—हे निखिल सुखों के स्वामिन् परमेश्वर ! तू अपनी अज्ञाननिवारक शक्तियों द्वारा उत्पन्न ज्ञान को हमें प्राप्त करा और इन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरणों द्वारा उत्पन्न संसारी भोग को हमारे समीप ला ॥१॥

१७९१—सुकक्षः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ ३ ३ २
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ॥२॥

पदार्थ—(द्विता) दो प्रकार से (यः) जो (वृत्रहन्तमः) पाप और अज्ञानों का नाशक है (विदे) जानूँ (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली (शतक्रतुः) असंख्य ज्ञान और कर्मवाला (उप) समीप (नः) हमारे (हरिभिः) पुरुषार्थी मनुष्यों द्वारा (सुतम्) उत्पन्न किए गए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो तू ऐश्वर्यशाली, अनेक प्रकार के कर्म और ज्ञान वाला तथा अपने ज्ञान और कर्म से अज्ञान और पाप का नाशक है उस तुझ को मैं जानूँ और प्राप्त होऊँ । तू पुरुषार्थी मनुष्यों द्वारा उत्पन्न किए गए भोग को हमें प्राप्त करा ॥२॥

१७९२—सुकक्षः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू ही (वृत्रहन्) हे पापनाशक (एषाम्) इन (सोमानाम्) जीव तथा संसारी पदार्थों का (पाता) रक्षक (उप) समीप (नः) हमें (हरिभिः) विद्वानों द्वारा (सुतम्) उत्पन्न किए गए ज्ञान-विज्ञान को ॥३॥

भावार्थ—हे अज्ञान और पाप का नाश करनेवाले परमेश्वर ! तू ही समस्त जीव तथा संसारी पदार्थों का रक्षक है । हमें विद्वान् मनुष्यों द्वारा ढूँढे हुए ज्ञान को प्राप्त करा ॥३॥

१७९३—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ १ २ ३ १ २
प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम लोग (महे) महान् (महेवृधे) महान् ज्ञानों को बढ़ानेवाले (भरध्वम्) भरपूर करो (प्रचेतसे) उत्तम ज्ञान के लिए (प्र) उत्कृष्ट (सुमतिम्) प्रशंसा (कृणुध्वम्) करो (विशः) प्रजाएँ (पूर्वीः) सनातन (प्रचर) प्राप्त कर (चर्षणिप्राः) मनुष्यमात्र का पालक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग महान् ज्ञान की वृद्धि करनेवाले विद्वान् को धन-धान्य से परिपूर्ण करो तथा उसकी प्रशंसा करो । हे विद्वन् ! मनुष्यमात्र का कल्याणकारी तू सनातनी प्रजाओं में प्रचार कर ॥१॥

१७९४—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

३ १२ ३ १२ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २
उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥२॥

पदार्थ—(उरुव्यचसे) वाणियों के स्वामी (महिने) महान् (सुवृक्तिम्) स्तुति को (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (ब्रह्मः) ब्रह्मज्ञान को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं (विप्राः) मेधावी जन (तस्य) उसके (व्रतानि) नियमों को (न) नहीं (मिनन्ति) तोड़ते (धीराः) धीर लोग भी ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानीजन वेदवाणियों के स्वामी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्तुतियां करते हुए ब्रह्मज्ञान का उत्पादन करते हैं । धीर पुरुष उस भगवान् के नियम को नहीं तोड़ते ॥२॥

१७९५—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

१ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
१ २ ३ २ ३ २
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर को (वाणीः) वेदवाणियाँ (अनुत्तमन्युम्) अबाधित ज्ञानवाले (एव) ही (सत्रा) सत्य से (राजानम्) जगद्-राजा (दधिरे) धारण करती है (सहध्यै) दुर्गुणों को दबाने के लिए मनुष्य, सूर्य, अग्नि तथा वायु आदि पदार्थों में व्यापक के लिए (बर्हय) बढ़ा (सम्) सम्यक् (आपीन्) बन्धु-बान्धवों को ॥३॥

भावार्थ—वेदवाणियां सत्य के द्वारा दुर्गुणों को दबाने के लिए अबाधित ज्ञान वाले और जगत् के राजा परमेश्वर को धारण करती हैं । हे मनुष्य ! तू मनुष्य तथा सूर्य, अग्नि आदि पदार्थों में व्यापक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने बन्धु-बान्धवों को आगे बढ़ा ॥३॥

१७९६—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दिधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (इन्द्र) हे शासक पुरुष ! (यावतः) जितना (त्वम्) तू (एतावत्) इतने को (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी हो जाऊँ (स्तोतारम्) अर्थी को (इत्) ही (दधिषे) पुष्ट करूँ (रदावसो) हे धनदाता (न) नहीं (पापत्वाय) पाप कर्म के लिए (रंसिषम्) रमण न करें अर्थात् इन्द्रियाराम न बनें ॥१॥

भावार्थ—हे शासक पुरुष ! जितने पर तू शासन करता है उतनों पर मैं भी शासन करूँ तथा अर्थी (कामना करनेवाले) को ही पालूँ पोषूँ । हे दानी पुरुष ! मैं पाप कर्म के लिए कभी न विचरूँ, अर्थात् इन्द्रियाराम न होऊँ ॥१॥

१७९७—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥२॥

पदार्थ—(शिक्षेयम्) देता हूँ (इत्) ही (महयते) पूजा करनेवाले को (दिवे दिवे) प्रतिदिन (रायः) सम्पदाएं (आ) सभी ओर से (कुहचिद्विदे) कहीं पर भी रहनेवाले के लिए (न हि) नहीं (त्वत्) तुझ से (अन्यत्) दूसरा (मघवन्) हे सकल सम्पदाओं के स्वामी (नः) हमारा (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य या बन्धु (वस्यः) सच्चा (पिता) पिता (च) भी (न) नहीं ॥२॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! मैं किसी भी जगह पर रहनेवाले तेरे पूजक को ही धन दूँ । हे प्रभो ! तुझसे बढ़कर सच्चा पिता और भ्राता हमारा अन्य कोई नहीं है ॥२॥

१७९८—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

३ १ २र २ ३उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥१॥

पदार्थ—(श्रुधीः) सुन (हवम्) पुकार को (विपिपानस्य) आनन्द का बार-बार पान करनेवाले की (अद्रेः) आदरणीय (बोध) जगा दे (विप्रस्य) मेधावी की (अर्चतः) पूजा करनेवाले (मनीषाम्) बुद्धि को (कृष्व) कर (दुवांसि) नमस्कारों को (अन्तमा) अपना समीपवर्ती (सचा) सत्कर्म समवाय के साथ (इमा) इन ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का अत्यन्त पान करनेवाले आदरणीय व्यक्ति की पुकार को सुन । पूजा करनेवाले मेधावी की बुद्धि को जागृत कर । तू हमारी इन सेवाओं को सत्कर्म समुदाय के साथ समीपवर्त्ती कर ॥१॥

१७९९—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

१ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
१ २ ३ १ २
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥२॥

पदार्थ—(न) नहीं (ते) तेरी (गिरः) वेदवाणियों को (अपिमृष्ये) परित्याग करता हूँ (तुरस्य) पाप नाश करनेवाले (न) नहीं (सुष्टुतिम्) मनोहर स्तुति को (असुर्यस्य) बल को (विद्वान्) जानता हुआ (सदा) सदा (ते) तेरा (नाम) नाम (स्वयशः) हे स्वयं यशस्वी (विवक्मि) बोलता हूँ ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे बल को जानता हुआ मैं पापनाशक तुझ प्रभु की वेदवाणियों तथा स्तुतियों का परित्याग नहीं करता । हे स्वयं महान् यशस्विन् ! मैं सदा तेरा नाम लेता हूँ ॥२॥

१८००—वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
मारे अस्मन्मघवं ज्योक्कः ॥३॥

पदार्थ—(भूरि) बहुत (हि) ही (ते) तेरे लिए (सवना) यज्ञ (मानुषेषु) मनुष्यों में (भूरि) बहुत (मनीषी) बुद्धिमान् (हवते) स्तुति करता है (त्वामित्) तेरी ही (मा) नहीं (आरे) समीप (अस्मत्) हमसे या हमारे (मघवन्) हे सकल सम्पदाओं के स्वामिन् (ज्योक्) चिरकाल तक (कः) कर ॥३॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! मनुष्य आपके नियम के अनुसार बहुत यज्ञ करते हैं । बुद्धिमान् पुरुष तेरी ही स्तुति करते हैं । हे प्रभो ! तू सदा हमारे समीप रह, हमें अपने से दूर मत कर ॥३॥

卐 **तृतीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१८०१—सुदासः । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

१ २ ३१ २र ३१२
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
३ १ २ ३ १ २
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्-
३ १ २ ३ २उ ३ १ २
यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्कृष्ट (सु) उत्तम (अस्मै) इसके (पुरोरथम्) आदित्य के आगे रहनेवाले (इन्द्राय) परमेश्वर के (शूषम्) बल की (अर्चत्) पूजा करो (अभीके) समीप में (चित्) ही (उ) और (लोककृत्) संसार का रचयिता (सङ्गे) साथ में (समत्सु) संग्रामों में (वृत्रहा) विघ्ननिवारक (अस्माकम्) हमारे (बोधि) जानता है (चोदिता) प्रेरणा देनेवाला (नभन्ताम्) नष्ट हों (अन्यकेषाम्) शत्रुओं के (ज्याकाः) प्रत्यंचाएँ [धनुष की डोर] (अधिधन्वसु) धनुष पर ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग आदित्य तथा उसकी किरणों के भी आगे रहनेवाले परमेश्वर के बल की पूजा करो । विघ्नों का निवारक तथा संसार का रचयिता वह ही हमारे सभी, साथ में तथा संग्रामों में भी विद्यमान है । वह हमारे सभी भावों को जानता है और प्रेरणा देनेवाला है । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा [डोरी] खण्डित हो जावे और किसी को हानि न पहुंचावे ॥१॥

१८०२—सुदासः । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
तन्त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सिन्धून्) समुद्र तथा नदियों का (अवासृजः) निर्माण करता है (अधराचः) नीचे पृथिवी तल पर रहनेवाले (अहन्) छिन्न-भिन्न करके बरसाता है (अहिम्) मेघ को (अशत्रुः) शत्रुरहित (इन्द्र) हे परमेश्वर (जज्ञिषे) उत्पन्न करता है (विश्वम्) समस्त (वार्यम्) जल से जीवनवाले उत्तम पदार्थ का (पुष्यसि) पुष्ट करता है (तम्) उस (त्वा) तेरी (परिष्वजामहे) उपासना करते हैं (नभन्ताम्) खण्डित हों (अन्यकेषाम्) काम आदि शत्रुओं की (ज्याकाः) प्रत्यंचाएं (अधिधन्वसु) धनुष् पर ही ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू शत्रु-रहित है । तू मेघ को छिन्न-भिन्न करके पृथिवी तल पर विद्यमान समुद्र और नदियों का निर्माण करता है । तू जल से जीवनवाली समस्त वस्तुओं को उत्पन्न और पुष्ट करता है । हम तुझ परमेश्वर की उपासना करते हैं । हे भगवन् ! काम आदि शत्रुओं की प्रत्यंचा धनुष् पर ही नष्ट हो, अर्थात् उनकी शक्ति क्षीण हो जावे ॥२॥

१८०३—सुदासः । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

पदार्थ—(वि) विशेष (सु) उत्तम (विश्वा) समस्त (अरातयः) शत्रु (अर्यः) विघ्नकारी (नशन्त) नष्ट हों (नः) हमारी (धियः) बुद्धि (अस्ता) फेंकने वाला (असि) है (शत्रवे) शत्रु के लिए (वधम्) शस्त्र को (यः) जो (नः) हमें (जिघांसति) बिना अपराध मारना चाहता है (या) जो (ते) तेरी (रातिः) कृपा (ददिः) देनेवाली है (वसु) धन की (नभन्ताम्) नष्ट हों (अन्यकेषाम्) तुच्छ विचारवालों की (ज्याकाः) प्रत्यंचाएँ (अधिधन्वसु) मनुष्य पर ही ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी बुद्धि के विघातक काम, क्रोधादि सारे शत्रु नष्ट हो जायें । जो हमें विघ्न पहुंचाना चाहता है उसको दण्ड देता है । तेरी कृपा हमें धन देनेवाली है । हे परमेश्वर नीच विचार वालों की धनुष की डोरी धनुष पर ही नष्ट होवे जिससे कि किसी को हानि न हो ॥३॥

१८०४—मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥१॥

पदार्थ—(रेवान्) धनवान् (इत्) ही (रेवतः) धनवान् का (स्तोता) प्रशंसा करनेवाला (स्यात्) होता है (त्वावतः) तेरे समान (मघोनः) धनी (प्र) उत्कृष्ट (इत्) ही (उ) वितर्क (हरिवः) हे अज्ञान के हरण करनेवाली शक्तियों के स्वामी (सुतस्य) ऐश्वर्ययुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे अज्ञाननिवारक शक्तियों के स्वामी परमेश्वर ! जब धनवान् की प्रशंसा करनेवाला धनिक हो जाता है तो तुझ जैसे ऐश्वर्यशाली महान् धनी की स्तुति करनेवाले की तो कथा ही क्या ! ॥१॥

१८०५—मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥२॥

पदार्थ—(उक्थम्) स्तोत्र को (च) और (न) सम्प्रति (शस्यमानम्) पढ़े गये (न) संप्रति (अगोः) अस्पष्टवाणीवाले के अथवा वेद को न जाननेवाले के (रयिः) धनदाता (आचिकेत) जानता है (न) सम्प्रति (गायत्रम्) गायत्र साम को (गीयमानम्) गाये गए ॥२॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर अस्पष्ट वाणीवाले अथवा वेदानभिज्ञ के गाये गये स्तोत्र तथा गाये गए साम को भी वर्तमान में ही सुनता है ॥२॥

१८०६—मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।
१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥३॥

पदार्थ—(मा) मत (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (पीयत्नवे) हिंसक के लिए (मा) मत (शर्धते) मखौल उडाने वा अपमान करने वाले के लिए (परादाः) परित्याग कर [डाल] (शिक्षा) शिक्षा दे (शचीवः) हे वेदोपदेष्टा, विश्वकर्मन् तथा सर्वज्ञ (शचीभिः) अपनी वेदवाणी, ज्ञान तथा कर्म से ॥३॥

भावार्थ—हे वेदोपदेष्टा, विश्वकर्मन् तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू हिंसक तथा अपमान करनेवाले के लिए हमें मत छोड़, अपितु अपने ज्ञान, वेद-वाणी तथा कर्मों से हमें शिक्षा दे ॥३॥

१८०७—नीपातिथिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (इन्द्र) हे जीव (याहि) प्राप्त हो (हरिभिः) अज्ञान का हरण करनेवाले ज्ञानों और गुणों द्वारा (उप) समीप (कण्वस्य) मेधावी की (सुष्टुतिम्) प्रशंसा को (दिवः) द्युलोक के (अमुष्य) इस (शासतः) शासन करनेवाले (दिवम्) दिव्य मोक्षधाम को (यय) जा (दिवावसो) हे दिव्य गुणों के धाम ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम गुणोंवाले जीव ! तू अज्ञाननिवारक ज्ञान गुणों से मेधावी की पदवी या प्रशंसा को प्राप्त हो और द्युलोक का शासन करनेवाले परमेश्वर के दिव्य मोक्षधाम को जा ॥१॥

१८०८—नीपातिथिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अत्रा विनेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥

पदार्थ—(अत्र) इस संसार में (वि) विशेष (नेमिः) चक्र (एषां) इन प्राण और इन्द्रियों का (उराम्) भेड़ को (न) समान (धूनुते) कंपायमान करता है (वृकः) भेड़िया के (दिवः) परमेश्वर के (अमुष्य) इस (शासतः) शासनकर्त्ता (दिवम्) आनन्द को (यय) प्राप्त कर (दिवावसो) उत्तम आनन्द की कामना करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे सुख की कामना करनेवाले जीव ! इन प्राण तथा इन्द्रियों का चक्र तुझे इस संसार में भेड़ को भेड़िए के समान कम्पायमान करता है, अतः तू शासनकर्त्ता परमेश्वर के आनन्द को प्राप्त कर ॥२॥

१८०९—नीपातिथिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
सा त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (त्वा) तुझे (ग्रावा) विद्वान् (वदन्) उत्तम बातों को बताता हुआ (इह) इस संसार में (सोमी) ऐश्वर्यवान् (घोषेण) वेदवाणी के द्वारा (वक्षतु) उपदेश करे (दिवः) परमेश्वर के (अमुष्य) इस (शासतः) शासनकर्त्ता (दिवम्) मोक्षधाम को (यय) प्राप्त हो (दिवावसो) हे सुखाभिलाषी ॥३॥

भावार्थ—हे सुखाभिलाषी जीव ! ऐश्वर्यवान् विद्वान् तुझे उत्तम बातें बताता हुआ इस संसार में वेदवाणी द्वारा उपदेश करे । तू शासनकर्त्ता परमेश्वर के उत्तम मोक्षधाम को प्राप्त हो ॥३॥

१८१०—जमदग्निः । सोमः । द्विपदा गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (सोम) हे परमेश्वर (मन्दयन्) आनन्दित करता हुआ (इन्द्राय) जीव को (मधुमत्तमः) अत्यन्त आनन्द युक्त ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्द का भण्डार तू जीव को आनन्दित करता हुआ पवित्र कर ॥१॥

१८११—जमदग्निः । सोमः । द्विपदा गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥२॥

पदार्थ—(ते) वे (सुतासः) परमेश्वर के पुत्ररूप अथवा संसार में उत्पन्न (विपश्चितः) मेधावी पुरुष (शुक्राः) शुद्धस्वरूप (वायुम्) वायुविद्या को (असृक्षत) प्रकट करते है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तुम्हारी कृपा से संसार में उत्पन्न, और शुद्ध पवित्र विद्वान् जन वायुविद्या को प्रकट करते हैं ॥२॥

१८१२—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥३॥

पदार्थ—(असृग्रन्) उत्पन्न किये जाते हैं (देववीतये) परमेश्वर के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए (वाजयन्तः) संग्राम के साधन (रथाः) रथ के (इव) समान ॥३॥

भावार्थ—संग्राम के साधन रथ के समान विद्वान् जन परमेश्वर के ज्ञान की प्राप्ति के लिए संसार में उत्पन्न किये जाते हैं ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१८१३—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर को (होतारम्) कर्मफलदाता (मन्ये) मानता हूँ (दास्वन्तम्) महान् दानी (वसोः) धन के (सूनुम्) उत्पादक (सहसः) बल के (जातवेदसम्) उत्पन्न सृष्टिपदार्थों के ज्ञाता (विप्रम्) मेधावी के (न) समान (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता तथा उनमें व्यापक या वेद को उत्पन्न करनेवाले (यः) जो (ऊर्ध्वया) सर्वोपरि विद्यमान (स्वध्वरः) संसार-रूप यज्ञ का कर्त्ता (देवः) देव (देवाच्या) समस्त देवों = दिव्य पदार्थों को प्राप्त हुई (कृपा) सामर्थ्य से (घृतस्य) तेज के (विभ्राष्टिम्) प्रकाशक (अनु) [अनुमानतः] पश्चात् (शुक्रशोचिषः) शुद्ध तेजवाले (आजुह्वानस्य) प्रशंसनीय (सर्पिषः) व्यापनशील ॥१॥

भावार्थ—संसार रूप यज्ञ का कर्त्ता देव जो सर्वोपरि तथा समस्त देवों के ऊपर सामर्थ्य के साथ विद्यमान तथा पवित्र तेजवाले, प्रशंसनीय तथा व्यापनशील तेज का प्रकाश है, मैं उस कर्मफलदाता महान् दानी, बल और सम्पदाओं के उत्पन्न करनेवाले, सृष्टिगत पदार्थों के ज्ञाता विद्वान् के समान सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा वेद-प्रकाशक परमेश्वर का अनुमान करता हूँ ॥१॥

१८१४—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
१ २ ३ १ २र ३ २
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥

पदार्थ—(यजिष्ठम्) अत्यन्त पूज्य (त्वा) तुझे (यजमानाः) उपासना करनेवाले (हुवेम) पुकारते हैं (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ (अङ्गिरसाम्) सृष्टिविद्या के ज्ञाताओं में (विप्र) सर्वज्ञ (मन्मभिः) मननशील (विप्रेभिः) ज्ञानियों द्वारा (शुक्र) हे शुद्धस्वरूप (मन्मभिः) मन्त्रों से (परिज्मानम्) सर्वव्यापक (इव) समान (द्याम्) आकाश के समान (होतारम्) यथायोग्य फलदाता (चर्षणीनाम्) मनुष्यों को (शोचिष्केशम्) प्रकाशस्वरूप (वृषणम्) सकल कामनाओं को सफल करनेवाले (यम्) जिसमें (इमाः) यह (विशः) प्रजाएँ (प्रावन्तु) रक्षा को प्राप्त करती हैं (जूतये) अभिमत फल प्राप्ति के लिए (विशः) आश्रय पानेवाली ।२।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ और शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! संसार में आश्रय देनेवाली ये सारी प्रजाएँ अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए आकाश के समान व्यापक मनुष्यों को यथायोग्य कर्मफल देनेवाले, सारी कामनाओं के पूर्तिकर्ता और तेजस्वरूप तुझ देव के आश्रय में रक्षा पाती हैं । हम उपासक लोग मननशील विद्वानों द्वारा मन्त्रों से स्तुति किये जाने वाले सृष्टिविद्या के जाननेवालों में श्रेष्ठ तुझ को ही पुकारते हैं ॥२॥

१८१५—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
वीडुचिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (हि) ही (पुरुचित्) बहुत ही (ओजसा) बल से (विरुक्मता) तेजस्वी (दीद्यानः) प्रकाशमान (भवति) होता है (द्रुहन्तरः) द्रोहियों को काटनेवाले (परशुः) फावड़े के (न) समान (द्रुहन्तरः) प्रलयकर्त्ता (वीडु) दृढ़ (चित्) भी (यस्य) जिसके (समृतौ) संग से (श्रुवत्) सुनाई देता है (वना इव) जल के समान (यत्) जो (स्थिरम्) स्थिर (निष्षहमाणः) अन्य विरोधी शक्तियों का अभिभव करता हुआ (यमते) व्यवस्था करता है (न) नहीं (अयते) चलायमान होता है (धन्वासहा) धनुषधारी के (न) समान (अयते) स्थिर रहता है ॥३॥

भावार्थ—वह परमेश्वर ही अपने तेजस्वी बल से अत्यन्त प्रकाशमान होता हुआ द्रोहियों को काटनेवाले फावड़े [कुल्हाड़े] के समान संसार का प्रलयकारी होता है । जिसकी संगति से बहुत दिनों तक स्थिर रहनेवाले और दृढ़ द्रोह भी पानी के समान बह जाते हैं । समस्त विरोधी शक्तियों को दबाता हुआ वह सबका नियंत्रण करता है । वह कभी चलायमान नहीं होता, किन्तु धनुर्धर के समान दृढ़तापूर्वक सर्वत्र विराजमान है ॥३॥

१८१६—अग्निः । अग्निः । विष्टारपंक्तिः ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर (**तव**) तेरा (**श्रवः**) यशदायक (**वयः**) अन्न (**महि**) अत्यन्त (**भ्राजन्ते**) शोभित हो रहा है (**अर्चयः**) दीप्तियां (**विभावसो**) हे प्रकाशस्वरूप (**बृहद्भानो**) हे अत्यन्त तेजस्वी (**शवसा**) बल से (**वाजम्**) अन्न को (**उक्थ्यम्**) उत्तम (**दधासि**) धारण करता है (**दाशुषे**) यजमान को (**कवे**) हे वेदों के प्रकाशक ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा प्रशस्त अन्न महान् है। हे प्रकाशस्वरूप ! तेरी दीप्तियां अत्यन्त शोभा पाती हैं। हे अत्यन्त तेजस्वी तथा वेदों के प्रकाशक ! तू अपनी शक्ति से यजमान को उत्तम अन्न प्रदान करता है ॥१॥

१८१७—*अग्निः । अग्निः । सतोबृहती ।*

३ १२ ३१२३१२ ३१२ ३१२
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
१२३१२३२३१२ ३२३१२ ३२
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२॥

पदार्थ—(**पावकवर्चाः**) पवित्रकारक तेजवाला (**शुक्रवर्चाः**) शुद्ध तेजवाला (**अनूनवर्चाः**) पूर्ण तेजवाला (**उदियर्षि**) उदीयमान हो रहा है (**भानुना**) अपनी दीप्तियों से (**पुत्रः**) पुत्र के समान (**मातरा**) माता को (**विचरन्**) सब जगह विराजमान रहता हुआ (**उपावसि**) सबकी रक्षा करता है (**पृणक्षि**) संयुक्त करता है (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**उभे**) दोनों ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पवित्रकारी, शुद्ध और सर्वत्र परिपूर्ण तेजवाला तू अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है। माता को पुत्र के समान तू सर्वत्र विराजमान होकर सबकी रक्षा करता है। द्यु और पृथिवी लोक को तू ही जोड़ता है ॥२॥

१८१८—*अग्निः । अग्निः । सतोबृहती ।*

१ २ ३ २३१२ ३१२३२
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
२उ ३ १२३१२ ३१२ ३१२
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३॥

पदार्थ—(**ऊर्जःनपात्**) हे बल के रक्षक (**जातवेदः**) हे सर्वज्ञ (**सुशस्तिभिः**) मनोहर स्तुतियों से (**मन्दस्व**) प्रसन्न हो (**धीतिभिः**) धारणा ध्यानादि से (**हितः**) कल्याणकारक (**त्वे**) तुझ में (**इषः**) विज्ञानों को (**सम् दधुः**) धारण करते हैं (**भूरिवर्पसः**) अनेक रूप (**चित्रोतयः**) अद्भुत रक्षा के साधनवाले (**वामजाताः**) उत्तम जन्म पाये हुए ॥३॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! कल्याणकारी तू हमारी मनोहर स्तुति तथा ध्यान, धारणा आदि द्वारा हम पर प्रसन्न हो। अनेकों उत्तम रक्षा के साधन तथा उत्तम जन्मवाले विद्वान् जन तुझ में ही विज्ञानों को धारण करते हैं ॥३॥

१८१९—*अग्निः । अग्निः । सतोबृहती ।*

३ १ २ ३१२३१ २र
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
१२३२३१२३ १ २ ३१२ ३१ २र
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४॥

पदार्थ–(**इरज्यन्**) स्वामी होता हुआ (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**प्रथयस्व**) विस्तार कर (**जन्तुभिः**) मनुष्यादि सहित (**अस्मे**) हमारे (**रायः**) धन का (**अमर्त्य**) हे अजर अमर (**सः**) वह (**दर्शतस्य**) दर्शनीय (**वपुषः**) रूपों को (**विराजसि**) प्रकाशित करता है (**पृणक्षि**) पालन करता है (**दर्शतम्**) दर्शनीय (**क्रतुम्**) संसाररूप यज्ञ को ॥४॥

भावार्थ—हे अजर अमर परमेश्वर ! तू सबका स्वामी होता हुआ मनुष्यादि के साथ हमारे धन का विस्तार कर। तू सृष्टिकाल में दर्शनीय रूपों को प्रकाशित करता है तथा दर्शनीय संसार का पालन करता है ॥४॥

१८२०—*अग्निः । अग्निः । उपरिष्टाज्ज्योतिः ।*

३ १२ ३२३१२ ३ १२३१२ ३२
इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
३ २ ३१२ ३१२३२र ३१२ ३२ ३२
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५॥

पदार्थ—(**इष्कर्त्तारम्**) ज्ञान करानेवाले (**अध्वरस्य**) कल्याणकारी यज्ञ के (**प्रचेतसम्**) महान् ज्ञानी (**क्षयन्तम्**) स्वामी होता हुआ (**राधसः**) धन का (**महः**) महान् (**रातिम्**) दाता (**वामस्य**) चाहने योग्य वस्तु के (**सुभगाम्**) सौभाग्ययुक्त (**महीम्**) श्रेष्ठ (**इषम्**) ज्ञान को (**दधासि**) धारण करता है (**सानसिम्**) विभाग करने योग्य या भोगने योग्य (**रयिम्**) धन को ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! कल्याणकारी यज्ञ का ज्ञान करानेवाले महान् ज्ञानी, श्रेष्ठ धनों के स्वामी तथा उत्तम वस्तु के दाता तुझ देव की हम स्तुति करते हैं। तू हमें सौभाग्यशाली श्रेष्ठ ज्ञान और भोग करने योग्य धन को देता है ॥५॥

१८२१—*अग्निः । अग्निः । विराट् त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ २ ३१२ ३२ ३ १२ ३१ २र
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
१ २ ३१२ ३२उ ३१२ ३२
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६॥

पदार्थ—(**ऋतावानम्**) सत्य नियम के आश्रय (**महिषम्**) महान् (**विश्वदर्शतम्**) सब के साक्षी (**अग्निम्**) परमेश्वर को (**सुम्नाय**) सुख के लिए (**दधिरे**) धारण करते हैं (**पुरः**) आगे (**जनाः**) मनुष्य लोग (**श्रुतकर्णम्**) कानों में श्रवण शक्ति देने वाले (**सप्रथस्तमम्**) अत्यन्त प्रसिद्ध (**त्वा**) तुझे (**गिरा**) स्तुति से (**दैव्यम्**) दिव्य शक्तिवाले (**मानुषा**) मानुषी (**युगा**) जोड़े ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य लोग सत्य नियम के आधार, महान् और सबके साक्षी परमेश्वर को सुख की प्राप्ति के लिए आगे धारण करते हैं। हे परमेश्वर ! मनुष्य जोड़े कर्णों में श्रवण शक्ति देनेवाले, अत्यन्त प्रसिद्ध तथा दिव्य शक्तिवाले तुझ देव को स्तुति से स्मरण करते हैं ॥६॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१८२२—*सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

१ २ २र३ २ ३१२ ३ १२ ३ १२
प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
२ ३ २ ३ १ २र
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**सः**) वह (**अग्ने**) हे विद्वन् (**तव**) तेरी (**ऊतिभिः**) रक्षाओं द्वारा (**सुवीराभिः**) वीर देनेवाली (**तरति**) तर जाता है (**वाजकर्मभिः**) ज्ञान और कर्मवाली (**यस्य**) जिसके (**त्व**) तू (**सख्यम्**) मित्रभाव को (**आविथ**) प्राप्त हो जाता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! तू जिसके मित्रभाव को प्राप्त हो जाता है वह पुत्रादि सहित ज्ञान और कर्म से युक्त तेरी रचनाओं के द्वारा तर जाता है ॥१॥

१८२३—*सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

१२३ १ २र ३२ ३ २३ १ २ ३ १ २
तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
२ ३१ २३१२ ३ २ ३ १ २र
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥२॥

पदार्थ—(**तव**) तेरा [उत्पन्न किया हुआ] (**द्रप्सः**) आदित्य (**नीलवान्**) नील आदि रंगों का कारण (**वाशः**) कमनीय (**ऋत्वियः**) ऋतुओं का उत्पादक (**इन्धानः**) प्रदीप्त होता हुआ (**सिष्णो**) हे सुख की वर्षा करनेवाले (**आददे**) समस्त रसादिकों को ग्रहण करता है। (**त्वम्**) तू (**महीनाम्**) महान् (**उषसाम्**) उषा कालों का (**प्रियः**) प्रिय देव (**असि**) है (**क्षपः**) रात्रि के (**वस्तुषु**) पदार्थों में (**राजसि**) राज्य करता है ॥२॥

भावार्थ—हे सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! नील आदि वर्णों का कारणभूत, कमनीय ऋतुओं का उत्पादक, तथा प्रकाशमान तुम्हारा उत्पन्न किया हुआ सूर्य समस्त रसों को ग्रहण करता है। तू प्रातः वेलाओं का उपासनीय देव है तथा रात्रि की समस्त वस्तुओं का स्वामी है ॥२॥

१८२४—*अरुणः । अग्निः । जगती ।*

१ २र ३१२३२३१ २र३ १ २ ३१२
तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
१ २र ३२ ३१२ ३२३ १२ १२ ३ १२
तामित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥१॥

पदार्थ—(**तम्**) उसको (**ओषधीः**) ओषधियाँ (**दधिरे**) धारण करती हैं (**गर्भम्**) गर्भ को (**ऋत्वियम्**) प्रत्येक ऋतुओं के अनुसार विद्यमान (**तम्**) उसको (**आपः**) जल (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनयन्त**) प्रकट करते हैं (**मातरः**) रक्षा के साधन (**तम् इत्**) उसे ही (**समानम्**) समान रूप से (**वनित्**) वनस्पति (**च**) और (**वीरुधः**) लताएँ (**अन्तर्वतीः**) गर्भवती (**च**) भी (**सुवते**) उत्पन्न करती है (**च**) और (**विश्वहा**) सर्व रोग दूर करनेवाली ॥१॥

भावार्थ—ओषधियां ऋतु के अनुसार अग्नि को गर्भरूप से धारण करती हैं। सबकी रक्षा के साधन जल उसे प्रकट करते हैं। वनस्पति और रोग-निवारक गर्भवती लतायें भी उसे उत्पन्न करती हैं ॥१॥

१८२५—*अग्निः प्रजापतिर्वा । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिषीव वि जायते ॥१॥

पदार्थ—(**अग्निः**) परमेश्वर (**इन्द्राय**) जीव को (**पवते**) व्यापन कर रहा है (**दिवि**) तेजस्वी पदार्थों अथवा द्युलोक में (**शुक्रः**) शुद्धस्वरूप (**विराजति**)

विराजमान है (महिषी) भैंस के (इव) समान (विजायते) विविध भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर जीव में व्यापक हो रहा है। वह भी द्युलोक आदि में भी विराजमान है। जिस प्रकार भैंस दुग्ध आदि पदार्थों को उत्पन्न करती है उसी प्रकार परमेश्वर जीव के लिए विविध भोगों को उत्पन्न करता है ॥१॥

१८२६—*अवत्सारः। विश्वेदेवाः। विराट् त्रिष्टुप्।*

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।

१ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (जागार) जागता है अर्थात् सत्-असत् का विवेक रखता है (तम्) उसको (ऋचः) ऋचाएं (कामयन्ते) चाहती=प्राप्त होती हैं (यः) जो (जागार) जागता है (तम् उ) उसी को (सामानि) साम (यन्ति) प्राप्त होते हैं (यः) जो (जागार) जागता है (तम्) उसको (अयम्) यह (सोमः) परमेश्वर (आह) कहता है कि (तव) तेरी (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (सख्ये) मित्रता में (न्योकाः) नियत आश्रय ॥१॥

भावार्थ—जो सद्-असद् का ज्ञान रखता है उसे ऋचायें प्राप्त होती हैं। उसी को साम भी प्राप्त होते हैं। उसी को सर्वाधार परमेश्वर भी कहता है कि मैं तेरी मित्रता में हूँ ॥१॥

१८२७—*अवत्सारः। विश्वेदेवाः। विराट् त्रिष्टुप्।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) विद्वान् (जागार) सद्-असद् का विवेक रखता है (तम्) उसको ऋचायें प्राप्त होती हैं (अग्निः) विद्वान् (जागार) जागता है (तम् उ) उसी को (सामानि) साम (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अग्निः) विद्वान् (जागार) प्रबुद्ध है (तम्) उसको (अयम्) यह (सोमः) परमेश्वर (आह) कहता है कि (तव) तेरी (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (सख्ये) मित्रता में (न्योकाः) सर्वाश्रय ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् सद्-असद् का विवेक रखता है, अतः उसको ऋचाएँ प्राप्त होती हैं। उसी को साम भी प्राप्त होते हैं तथा उसी को सर्वाधार परमेश्वर कहता है कि मैं तेरी मित्रता में हूँ ॥२॥

१८२८—*मृगः। अग्निः। गायत्री।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः।

३ १ २र ३ १ २

युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥१॥

पदार्थ—(नमः) नमस्कार (सखिभ्यः) मित्रों के लिए (पूर्वसद्भ्यः) पूर्ववर्ती (नमः) नमस्कार (साकंनिषेभ्यः) साथ बैठे हुओं को (युञ्जे) प्रयोग करता हूँ (वाचम्) वाणी का (शतपदीम्) असंख्य पदोंवाली ॥१॥

भावार्थ—पूर्व से स्थित मित्रों तथा साथ बैठे हुए लोगों को मेरा नमस्कार हो। मैं परमेश्वर की स्तुति के लिए सैकड़ों पदोंवाली वेदवाणी का प्रयोग करता हूँ ॥१॥

१८२९—*मृगः। अग्निः। गायत्री।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि। गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥२॥

पदार्थ—(युञ्जे) प्रयोग करता हूँ (वाचम्) वाणी का (शतपदीम्) सैकड़ों पदोंवाली (गाये) गान करता हूँ (सहस्रवर्तनि) सहस्र प्रकार से गान किये जानेवाले (गायत्रं) गायत्र साम (त्रैष्टुभं) त्रैष्टुभ साम (जगत्) जागत साम ।२।

भावार्थ—मैं असंख्य पदोंवाली वाणी का परमेश्वर की स्तुति के लिए प्रयोग करता हूँ। विविध प्रकार से गाये जानेवाले गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत साम का गान करता हूँ ॥२॥

१८३०—*मृगः। अग्निः। गायत्री।*

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता।

३ १ २र ३ २

देवा ओकांसि चक्रिरे ॥३॥

पदार्थ—(गायत्रम्) गायत्र साम (त्रैष्टुभम्) त्रैष्टुभ साम (जगत्) जागत साम (विश्वा) अनेक (रूपाणि) प्रकारों को (संभृता) धारण किये हुए हैं (देवाः) विद्वान् लोग (ओकांसि) आश्रय (चक्रिरे) लेते हैं ॥३॥

भावार्थ—गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत साम नाना प्रकारों को धारण करनेवाले हैं उन्हीं प्रकारों का विद्वान् लोग आश्रय लेते हैं ॥३॥

१८३१—*वत्सप्रीः। अग्निः। गायत्री।*

१ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रोज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (ज्योतिः) परम ज्योति है (ज्योतिः) प्रकाश वाला (अग्निः) अग्निः (इन्द्रः) जीव (ज्योतिः) प्रकाशवाला है (ज्योतिः) ज्योति है (इन्द्रः) विद्युत् (सूर्यः) सूर्य (ज्योतिः) ज्योतिवाला है (ज्योतिः) ज्योतिवाली (सूर्यः) किरणें हैं ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर, जीव, अग्नि, विद्युत्, सूर्य तथा किरणें ज्योतियुक्त [तेजस्वी] पदार्थ हैं ॥१॥

१८३२—*वत्सप्रीः। अग्निः। गायत्री।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाह्यंहसः ॥२॥

पदार्थ—(पुनः) फिर (ऊर्जा) बल से (निवर्तस्व) पूर्ण कर (पुनः) फिर (अग्ने) हे परमेश्वर (इषा) अन्न और ज्ञान से (आयुषा) जीवन से (पुनः) फिर (नः) हमें (पाहि) बचा (अंहसः) पाप से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें बार बार बल, ज्ञान, अन्न और जीवन से पूर्ण कर तथा पाप से बचा ॥२॥

१८३३—*वत्सप्रीः। अग्निः। गायत्री।*

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥३॥

पदार्थ—(सह) साथ (रय्या) धन के (निवर्तस्व) युक्त करो (अग्ने) हे परमेश्वर (पिन्वस्व) पूर्णकर (धारया) वेदवाणी से (विश्वप्स्न्या) व्यापक (विश्वतस्परि) संसार में ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू इस संसार में हमें संपदा से युक्त कर तथा व्यापक वेदवाणी के ज्ञान से परिपूर्ण कर ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१८३४—*गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ। इन्द्रः। गायत्री।*

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।

३ २ ३ १ २

स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (इन्द्र) हे विद्वन् (अहं) मैं (यथा) जैसे (त्वम्) तू (ईशीय) स्वामी होता है (वस्वः) विद्याधन का (एकः) एक (इत्) ही (स्तोता) प्रशंसा करनेवाला (मे) मेरी (गोसखा) वाणी का मित्र [विद्वान्] (स्यात्) हो जाता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू जिस प्रकार विद्याधन का एकमात्र स्वामी है, उसी प्रकार यदि मैं भी हो जाऊं तो मेरी प्रशंसा करनेवाला विद्वान् हो सकता है फिर आप का तो कहना ही क्या ॥१॥

१८३५—*गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ। इन्द्रः। गायत्री।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र ३ २

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥

पदार्थ—(शिक्षेयम्) शिक्षा दूं (अस्मै) इस (दित्सेयम्) देने की इच्छा करूँ (शचीपते) हे वेदवाणी के स्वामी (मनीषिणे) मननशील पुरुष को (यत्) जबकि (अहम्) मैं (गोपतिः) वाणी का स्वामी विद्वान् (स्याम्) हो जाऊँ ।२।

भावार्थ—हे वेदवाणी के स्वामी परमेश्वर ! तेरी कृपा से यदि मैं विद्या का स्वामी होऊँ तो मननशील पुरुष को विद्यादान की इच्छा करूँ और शिक्षित बनाऊँ ॥२॥

१८३६—*गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ। इन्द्रः। गायत्री।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

पदार्थ—(धेनुः) वेदवाणी (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (सूनृता) सत्यरूप (यजमानाय) यजमान के लिए (सुन्वते) यज्ञ करनेवाले (गाम्) विद्या (अश्वम्) व्यापक और शीघ्रता से होनेवाले बोध को (पिप्युषी) वृद्धि करनेवाली (दुहे) परिपूर्ण करती है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उन्नति देनेवाली तेरी सत्य वेदवाणी यज्ञ करनेवाले यजमान के लिए विद्या तथा शीघ्र होनेवाले व्यापक ज्ञान को परिपूर्ण करती है ॥३॥

१८३७—*त्रिशिराः सिन्धुद्वीपो वा। आपः। गायत्री।*

२ ३ १ ३ २र २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥१॥

पदार्थ—(आपः) परमेश्वर (हि) निश्चय (स्थाः) है (मयोभुवः) सुखदाता (ताः) वह (नः) हमें (ऊर्जे) बल को (दधातन) धारण करता है (महे) महान् (रणाय) रमणीय (चक्षसे) ज्ञान को ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर अवश्य ही सुखदाता है। वह हमें बल और महान् उत्तम ज्ञान देता है ॥१॥

१८३८—त्रिशिराः सिन्धुद्वीपो वा। आपः। गायत्री।

२ ३१२३२३१२ ३१२ ३१२ ३१२

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (वः) तुम्हारा (शिवतमः) अत्यन्त कल्याणकारक (रसः) आनन्द रस है (तस्य) उसका (भाजयत) भागी बना (इह) इस संसार में (नः) हमें (उशतीः) पुत्र का कल्याण चाहनेवाली (इव) समान (मातरः) माताओं के ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो तुम्हारा अत्यन्त कल्याणकारी आनन्दरस है उसका, पुत्र का कल्याण चाहनेवाली माताओं के समान, हमें भागी बना ॥२॥

१८३९—त्रिशिराः सिन्धुद्वीपो वा। आपः। गायत्री।

२ ३ १२ ३ २१ १२३ १ २

तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

१ २ ३ १२

आपो जनयथा च नः ॥३॥

पदार्थ—(तस्मै) उसको (अरम्) पर्याप्त (गमाम) प्राप्त करें (वः) तुम्हारे (यस्य) जिसके (क्षयाय) ऐश्वर्य के लिए (जिन्वथ) प्रेरणा करता है (आपः) हे परमेश्वर (जनयथ) उत्पन्न करता है (च) और (नः) हमें ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने जिस ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हमें प्रेरणा देता और उत्पन्न करता है उसकी प्राप्ति के लिए हम समर्थ हों ॥३॥

१८४०—उल्वः। वायुः। गायत्री।

२ ३ १ २ ३१२३१२३१२३२ २३ १२

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१॥

पदार्थ—(वातः) व्यापक परमेश्वर (आवातु) प्राप्त करावे (भेषजम्) औषधि को (शम्भु) कल्याणकारी (मयोभु) सुखदायक (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिए (प्र) उत्तम (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (तारिषत्) तार दे ॥१॥

भावार्थ—व्यापक परमेश्वर हमारे हृदय के स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारी और सुखदायी औषधि प्रदान करे। वह हमें दीर्घायु करे ॥१॥

१८४१—उल्वः। वायुः। गायत्री।

३१२ ३१२ १२३ ३२३१२ १२ ३१२

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा। स नो जीवातवे कृधि ॥२॥

पदार्थ—(उत) और (वात) हे सर्वव्यापक (पिता असि) पिता है (नः) हमारा (उत) और (भ्राता) भाई (उत) और (नः) हमारा (सखा) मित्र है (सः) वह (नः) हमें (जीवातवे) दीर्घ जीवन के लिए (कृधि) कर=योग्य कर ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! तू हमारा पिता, भ्राता तथा सखा है। तू हमें दीर्घ जीवन दे ॥२॥

१८४२—उल्वः। वायुः। गायत्री।

२३१२ ३२२३१२३१२ १२ ३१२

यददो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा। तस्य नो धेहि जीवसे ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो (अदः) यह (वात) हे सर्वव्यापक (ते) तेरे (गृहे) गृह में (अमृतम्) अमरत्व (निहितम्) रखा है (गुहा) बुद्धिरूप=ज्ञानरूप (तस्य) उसे (नः) हमें (धेहि) धारण करा (जीवसे) जीवन के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! तेरे ज्ञानगेह में जो अमरत्व रखा हुआ है उसे हमें जीवन के लिए धारण करा ॥३॥

१८४३—सुपर्णः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

३ २ ३२ ३ १२ ३१२ ३२३ २३१२ ३२

अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः।

१२ ३१२३१ २र३१२३१ २र ३१२

सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥१॥

पदार्थ—(अभि) भली प्रकार (वाजी) बलवान् (विश्वरूपः) समस्त रूपों का उत्पादक (जनित्रम्) कारण को (हिरण्ययम्) तेजोमय (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (अत्कम्) सर्वत्र विद्यमान [हर एक कार्य में व्याप्त] (सुपर्णः) संसार का रक्षक (सूर्यस्य) सूर्य के (भानुम्) प्रकाश को (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार या हर एक ऋतु में (वसानः) धारण करता हुआ (परि) सब प्रकार से (स्वयम्) अपने आप (मेधम्) यज्ञ को (ऋज्रः) शान्तस्वरूप (जजान) उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान्, समस्तरूपों का उत्पादक, संसार का रक्षक तथा शान्तस्वरूप परमेश्वर तेजोमय तथा हर एक कार्य द्रव्य में विद्यमान प्रकृति रूप कारण को धारण करता है। वह ऋतुओं के अनुसार सूर्य के प्रकाश को धारण करता हुआ अपने आप यज्ञ को उत्पन्न करता है ॥१॥

१८४४—सुपर्णः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

३१ २र ३१२३१२ ३२उ ३ २२३१२

अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्सं बभूव।

३१२३ १२३२३ १२३१२ ३ २ ३ १२३१२

अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥२॥

पदार्थ—(अप्सु) जलों में (रेतः) कारणरूप (शिश्रिये) आश्रित है (विश्वरूपम्) अनेक रूपोंवाला (तेजः) तेज (पृथिव्यामधि) पृथिवी पर (यत्) जो (संबभूव) उत्पन्न होता है (अन्तरिक्षे) आकाश में (स्वं महिमानम्) अपनी महिमा को (मिमानः) प्रकाशित करता हुआ (कनिक्रन्ति) सिद्ध करता है (वृष्णः) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (अश्वस्य) व्यापक (रेतः) कारणरूप ॥२॥

भावार्थ—सकल कामनाओं के सफल करनेवाले व्यापक परमेश्वर का जो कारणरूप तेज तत्त्व जल में और पृथिवी पर प्रकट होता है, आकाश में अपनी महिमा को प्रकाशित करता हुआ वह स्वयं अपने आप को सिद्ध करता है ॥२॥

१८४५—सुपर्णः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

३२३२३१ २३१ २र ३ १२ ३ २ ३१ २

अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार।

३ १ २३१२३१२३२११ २र ३१२

सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्त्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥३॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सहस्रा) हजारों (परि) सब प्रकार से (युक्ता) योग युक्तों को (वसानः) अपनी शरण में निवास देता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य के (भानुम्) प्रकाश को (यज्ञः) उपासनीय देव (दाधार) धारण करता है (सहस्रदाः) सहस्रों का दाता (शतदाः) सैकड़ों वस्तुओं का दाता (भूरिदावा) असंख्यों धनों का दाता (धर्त्ता) धारक (दिवः) द्युलोक का (भुवनस्य) लोक की (विश्पतिः) प्रजा का पालक ॥३॥

भावार्थ—सहस्रों योगियों को अपने आश्रम में निवास देता हुआ, सैकड़ों, सहस्रों तथा असंख्य प्रकार की वस्तुओं का दाता, द्युलोक का धारक तथा भवन की प्रजा का पालक उपासना के योग्य परमेश्वर सूर्य के प्रकाश के समान तेज को धारण करता है ॥३॥

१८४६—वेनः। वेनः। त्रिष्टुप्।

१२ ३२उ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।

१२ ३१२ ३२३२३ १२ ३१२३२

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥१॥

पदार्थ—(नाके) मोक्ष सुख में (सुपर्णम्) गतिशील (उप) समीप (यत्) जिस कारण (पतन्तम्) जाते हुए (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) कामना करनेवाले (अभ्यचक्षत) देखते हैं (त्वा) तुझे (हिरण्यपक्षम्) तेजोमय पक्षवाले (वरुणस्य) भजन करने के योग्य (दूतम्) दूत (यमस्य) संसार के व्यवस्थापक (योनौ) स्थान (शकुनम्) पक्षी के समान (भुरण्युम्) भरण-पोषण करने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे आत्मन् ! जिस कारण गतिशील, सबके भजन योग्य संसार के व्यवस्थापक परमेश्वर के मोक्ष धाम में जाते हुए दूत तेजोमय पक्षवाले पक्षिरूप और अपना भरण-पोषण करने वाले तुझे हृदय से चाहते हुए ज्ञानीजन तेरा साक्षात् करते हैं। इसलिए तुझे प्राप्त करते हैं ॥१॥

१८४७—वेनः। वेनः। त्रिष्टुप्।

३ १२ ३२उ ३ १२ ३ २ ३१ २र३ १ २

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधिनाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि।

१२३१ २ ३३२ १ २र ३१२

वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥२॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वः) सबसे श्रेष्ठ (गन्धर्वः) वेदवाणी से जानने योग्य (अधिनाके) अपने परम सुखरूप पद में (अस्थात्) स्थित है (प्रत्यङ्) सबके प्रत्यक्ष (चित्रा) अद्भुत (बिभ्रद्) धारण करता हुआ (अस्य) अपने [बनाए] (आयुधानि) जलों को (वसानः) धारण करता हुआ (अत्कम्) व्याप्त वायु (सुरभिम्) श्रेष्ठ (दृशे) दर्शन के लिए (कम्) सुखस्वरूप (स्वः) सूर्य के (न) समान (नाम) नाम को (जनत) प्रगट करता है (प्रियाणि) मनोहर ।२।

भावार्थ—सबसे महान्, वेदों द्वारा गाने योग्य, सबके प्रत्यक्ष में ही अद्भुत जलों को धारण करता हुआ परमेश्वर अपने सुखस्वरूप परम पद में विराजमान है। सुखदायी तथा महान् वायु को धारण करता हुआ वह सबके देखने के लिए सूर्य के समान संसार के प्रिय नाम-रूपों को प्रगट करता है ॥२॥

१८४८—वेनः । वेनः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २३२३१ १२३२३ १२ ३ १२३ १२

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।

३२ ३१२३१२ २२३१२ ३१२ ३१ २

भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥३॥

पदार्थ—(द्रप्सः) कमनीय (समुद्रम्) अगाध शक्तिवाले परमेश्वर को (अभि) भली भांति (यत्) जब (जिगाति) प्राप्त करता है (पश्यन्) देखता हुआ (गृध्रस्य) दूरदर्शी के (चक्षसा) तेज से (विधर्मन्) विविध प्रकार के धर्मों में स्थित (भानुः) सूर्य के समान (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) तेज से (चकानः) तेजस्वी होता हुआ (तृतीये) तीसरे (चक्रे) करता है (रजसि) लोक में (प्रियाणि) प्रिय कार्यों को ॥३॥

भावार्थ—विविध धर्मों में स्थित, कमनीय, जीवात्मा दूरदर्शी तेज से देखता हुआ जब परमेश्वर को प्राप्त करता है तो सूर्य के समान अपने पवित्र तेज से प्रकाशित होता हुआ तृतीय अवस्थारूप लोक में प्रिय कामों को करता है ॥३॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 विंशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

एकविंशोऽध्यायः

१८४९—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १२र ३ २

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।

३ १ २ ३१२३२ ३१ २र ३ १ २र

सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

पदार्थ—(आशुः) व्यापक (शिशानः) भयदाता (वृषभः) विद्युत् के (न) समान (भीमः) भयानक (घनाघनः) दण्डनीयों को दण्ड देनेवाला (क्षोभणः) क्षोभ उत्पन्न करने वाला (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (संक्रन्दनः) रुलानेवाला (अनिमिषः) आलस्यरहित (एकवीरः) एकमात्र शक्तिशाली (शतं सेनाः) सैंकड़ों सेनाओं को (साकम्) एक साथ ही (अजयत्) जीतने में समर्थ है (इन्द्रः) परमेश्वर ॥१॥

भावार्थ—सर्वत्र व्यापक, भयदायक, विद्युत् के समान भयानक, दण्डनीयों को दण्डदाता, दुष्टों में क्षोभ पैदा करने और बुरे मनुष्यों को रुलानेवाला तथा अद्वितीय शक्तिशाली परमेश्वर एक साथ सैंकड़ों सेनाओं को जीतने में समर्थ है ॥१॥

१८५०—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३१२३ १ २ ३१२ ३१२३१२

सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।

१ २र ३ १२३ १२ ३ १२ ३ १ २

तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

पदार्थ—(सङ्क्रन्दनेन) रुलानेवाले (अनिमिषेण) आलस्यरहित (जिष्णुना) जयशील (युत्कारेण) युद्ध करने वाले (दुश्च्यवनेन) अविचलित (धृष्णुना) शत्रुओं के घर्षण करने वाले (तत्) उसे (इन्द्रेण) सेनापति से (जयत) जीतो (तत्) उस शत्रु सेना को (सहध्वम्) दबाओ (युध) हे युद्ध करने वाले (नरः) मनुष्यो (इषुहस्तेन) धनुषवाण को हाथ में लेने वाले (वृष्णा) शस्त्रों की वर्षा करने वाला ॥२॥

भावार्थ—हे युद्ध करने वाले मनुष्यो ! तुम लोग शत्रुओं को रुलानेवाले, आलस्यरहित, विजयी, योद्धा, अविचल घर्षणशील, वाणधारी तथा वाणों की वर्षा करनेवाले सेनापति के साथ दुश्मन की सेना को दबाओ और जीतो ॥२॥

१८५१—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २र १२३ १२३१ २र ३२उ ३१ २३१२

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।

३१ २ ३१ २३ २ १२ ३ १२ ३१ २

संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यू३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (इषुहस्तैः) हाथों में वाण धारण करने वालों के द्वारा (सः) वह (निषंगिभिः) खड्गधारियों द्वारा (वशी) प्रजा को वश में रखने वाला (संस्रष्टा) एक होकर युद्ध करनेवाला (सः) वह (युधः) योद्धा (इन्द्रः) सेनापति (गणेन) समूह के साथ (संसृष्टजित्) एक मत से संग्राम करने वालों को जीतने वाला (सोमपाः) सोम को पान करनेवाला (बाहुशर्धी) बाहुबलवाला (उग्रधन्वा) प्रचण्ड धनुर्धर (प्रतिहिताभिः) शत्रुओं पर फैंकी गई शक्तियों से (अस्ता) शत्रुओं का संहारकारी ॥३॥

भावार्थ—वाणधारी तथा खड्गधारियों द्वारा सबको वश में करनेवाला, सैन्यगण के साथ संग्रामकारी योद्धा, एक मत होकर लड़नेवाले शत्रुओं के विजेता, सोमपान करनेवाला, बाहुबल से युक्त तथा प्रचण्ड धनुर्धर वह सेनापति शत्रुओं पर छोड़ी गई शक्तियों द्वारा शत्रुओं का संहारकर्त्ता है ॥३॥

१८५२—अप्रतिरथः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२ ३१२ ३१ २र ३१२

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।

३ १ २र ३२३ १ २र३ १२ ३ १ २र

प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥१॥

पदार्थ—(बृहस्पते) हे सेनाओं के स्वामी (परदीया) चढ़ाई कर (रथेन) रथ से (रक्षोहा) दुष्टों का विघातक (अमित्रान्) शत्रुओं को (अपबाधमानः) नष्ट करता हुआ (प्रभञ्जन्) छिन्न-भिन्न करता हुआ सेनाओं को (प्रमृणः) बुरी तरह नाश कर (युधा) युद्ध से (जयन्) जीतता हुआ (अस्माकम्) हमारे (एधि) हो (अविता) रक्षक (रथानाम्) यानों का ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! दुष्टों का विघातक तू रथ से शत्रुओं पर चढ़ाई कर। शत्रुओं को बाधा पहुँचाता हुआ सेनाओं का नाश करके, युद्ध से उन्हें जीत कर विनष्ट कर। तू हमारे रथों का रक्षक हो ॥१॥

१८५३—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र३१२३१२ ३१ २र ३२

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।

३ १२ ३१२ ३१ २र ३२३१२ ३२

अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥२॥

पदार्थ—(बलविज्ञायः) शत्रु की शक्ति का ज्ञाता, (स्थविरः) महान् (प्रवीरः) वीरों से युक्त (सहस्वान्) शत्रुओं को दबानेवाला (वाजी) बलवान् (सहमानः) शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाला (उग्रः) तेजस्वी (अभिवीरः) वीर सहायकों से युक्त (अभिसत्वा) शक्तिशाली (सहोजा) प्रभावशाली (जैत्रम्) जयनशील (रथम्) रथ पर (इन्द्र) हे सेनापते (आतिष्ठ) स्थित हो (गोवित्) प्रशंसा वचन प्राप्त करनेवाला ॥२॥

भावार्थ—हे सेनापते ! शत्रुओं को शक्ति का ज्ञाता गुणों से महान्, वीर, शत्रु का दबाने तथा तिरस्कार करनेवाला बलवान्, सहायक वीरों से युक्त, शक्तिशाली, ओजस्वी तथा प्रशंसा का पात्र तू विजय करानेवाले रथ पर स्थित हो ॥२॥

१८५४—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १२ ३२३१२ ३ १२३१२ ३२३१२

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।

३१२ ३ १२ ३१ २ ३२३१२

इमं सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥३॥

पदार्थ—(गोत्रभिदम्) पर्वत को भी तोड़ देनेवाले (गोविदम्) पृथिवी की प्राप्ति करनेवाले (वज्रबाहुम्) शस्त्रधारी (जयन्तम्) जीतनेवाले (अज्म) संग्राम को (प्रमृणन्तम्) नष्ट करते हुए (ओजसा) बल से (इमम्) इस (सजाता) हे साथ ही प्रसिद्धि पानेवाले (अनु) अनुकरण करते हुए (वीरयध्वम्) युद्ध करो (इन्द्रम्) इन्द्र का (सखायः) हे मित्रो (अनुसंरभध्वम्) अनुशासन मानो ॥३॥

भावार्थ—हे सहायक मित्रो ! तुम लोग पहाड़ों को भी तोड़नेवाले, पृथिवी को प्राप्त करनेवाले, शस्त्रधारी, शत्रुविजेता तथा अपनी शक्ति से शत्रुओं के

संहारक इस सेनापति का अनुशासन मानो और उसका अनुकरण करते हुए युद्ध करो ॥३॥

१८५५—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।

१ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥१॥

पदार्थ—(अभि) भली भांति (गोत्राणि) मेघों को (सहसा) अपनी शक्ति से (गाहमानः) विलोडन करता हुआ (अदयः) अहिंसक (वीरः) बलवान् (शतमन्युः) सैकड़ों प्रकार के ज्ञान से युक्त (इन्द्रः) परमेश्वर (दुश्च्यवनः) न विचलित होने वाला (पृतनाषाड्) दुष्ट मनुष्यों को न्याय से दबानेवाला (अयुध्यः) जिससे कोई युद्ध न कर सके (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं की (अवतु) रक्षा करे (प्र) उत्तमता से (युत्सु) युद्धों में ॥१॥

भावार्थ—अपनी शक्ति से मेघों का विलोडन करता हुआ, अहिंसक, बलवान्, सर्वज्ञ, अविचल, दुष्टों का तिरस्कार करनेवाला तथा किसी से प्रहार न किए जाने योग्य परमेश्वर संग्रामों में हमारी सेना की रक्षा करे ॥१॥

१८५६—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ १ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।

१ १ २ ३ १ २र १ ३ १ २ ३ १ २

देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली सेनापति (आसाम्) इनका (नेता) नेता (बृहस्पतिः) वेदज्ञ (दक्षिणा) दाहिनी तरफ (यज्ञः) यज्ञभावना (पुरः) पूर्व में (एतु) हो (सोमः) ऐश्वर्यशक्ति (देवसेनानाम्) विद्वानों की सेनाओं के (अभि) भली भांति (भञ्जतीनाम्) मानमर्दन करनेवाली (जयन्तीनाम्) विजय प्राप्त करती हुई (मरुतः) वायु के समान बलवान् योद्धा (यन्तु) जावें (अग्रम्) आगे ॥२॥

भावार्थ—शत्रुओं का मानमर्दन करनेवाली, जयनशील इन विद्वानों की सेनाओं का ऐश्वर्यशाली सेनापति नायक हो। वेदज्ञ और यज्ञभावना दाईं तरफ तथा ऐश्वर्य-शक्ति पूर्व तरफ हो। वायु के समान बलवान् योद्धा इनके आगे रहें। २॥

१८५७—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।

१ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) सेनापति का (वृष्णः) शक्तिशाली (वरुणस्य) चुने हुए (राज्ञः) राजा का (आदित्यानाम्) ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य द्वारा वेद पढ़े विद्वानों का (मरुताम्) योद्धाओं का (शर्धः) बल (उग्रम्) उग्र होवे (महामनसाम्) अत्यन्त मनस्वियों का (भुवनच्यवानाम्) संसार को हिलानेवाले (घोषः) महान् जयघोष (देवानाम्) विद्वानों के (जयताम्) विजय करते हुए (उदस्थात्) उठें ॥३॥

भावार्थ—शक्तिशाली सेनापति, चुने हुए राजा, आदित्य संज्ञक विद्वान् तथा योद्धाओं का बल प्रचण्ड हो। संसार को हिलानेवाले, जयशील तथा महामना विद्वानों का जयघोष गूँज उठे ॥३॥

१८५८—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (हर्षय) प्रसन्न कर (मघवन्) हे सकल सम्पदाओं के स्वामी (आयुधानि) शस्त्रों को (उत) और (सत्वनाम्) सैनिकों के (मामकानाम्) मेरे (मनांसि) मनों को (उत्) उत्कृष्ट (वृत्रहन्) हे पापनाशक (वाजिनाम्) घोड़ों के (वाजिनानि) वेगों को (उत्) उन्नत (रथानाम्) रथों के (जयताम्) विजय करानेवाले (यन्तु) उठे (घोषाः) ध्वनि ॥१॥

भावार्थ—हे पापनाशक सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! हमारे सैनिकों के शस्त्र को तीक्ष्ण और उनके मन को प्रसन्न कर, अश्वों के वेग बढ़ें तथा जय करानेवाले रथों की ध्वनि उठे ॥१॥

१८५९—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।

१ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥२॥

पदार्थ—(अस्माकम्) हमारा (इन्द्रः) परमेश्वर (समृतेषु) शत्रु सेना के उपस्थित होने पर (ध्वजेषु) ध्वजाधारी (अस्माकम्) हमारे (याः) जो (इषवः) वाण (ताः) वे (जयन्तु) विजय प्राप्त करें (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर सैनिक (उत्तरे) श्रेष्ठ (भवन्तु) हों (अस्मान्) हमें (उ) पादपूरक (देवाः) हे वैज्ञानिको (अवत) रक्षा करो (हवेषु) संग्रामों में ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ध्वजायुक्त शत्रुसेनाओं से संपर्क पड़ने पर हमारा रक्षक होवे। हमारे वाण विजयी हों। हमारे वीर सैनिक योग्य सिद्ध हों। हे वैज्ञानिको ! तुम संग्रामों में हमारी रक्षा करो ॥२॥

१८६०—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २

तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥३॥

पदार्थ—(असौ) यह (या) जो (सेना) सेना (मरुतः) हे सैनिको (परेषाम्) शत्रुओं की (अभ्येति) आती है (नः) हमारी ओर (ओजसा) बल से (स्पर्धमाना) स्पर्द्धा करती हुई (तां) उसको (गूहत) ढक दो (तमसा) अन्धकार से (अपव्रतेन) काम बन्द कर देने वाले (यथा) जैसे कि (एतेषाम्) इन में से (अन्यः) एक दूसरा (अन्यम्) एक दूसरे को (न) नहीं (जानात्) जाने ॥३॥

भावार्थ—हे सैनिको ! तुम लोग बल से स्पर्द्धा करती हुई हमारी तरफ आनेवाली शत्रुसेना को लड़ाई का काम न करने देनेवाले अन्धकार से उस प्रकार ढक दो कि इनमें से एक दूसरा एक दूसरे को न जान सके ॥३॥

१८६१—अप्रतिरथः । अप्वा । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१॥

पदार्थ—(अमीषाम्) इन शत्रुओं के (चित्तम्) चित्त का (प्रतिलोभयन्ती) अचेत करती हुई (गृहाण) ग्रहण करती है (अङ्गानि) अङ्गों को (अप्वे) व्याधि (परेहि) दूर हटती है (निर्दह) जलाती है (हृत्सु) हृदयों को (शोकैः) शोकों से (अन्धेन) घोर (अमित्राः) शत्रु लोग (तमसा) अन्धकार से (सचन्ताम्) संयुक्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—संग्राम में अस्त्रों द्वारा छोड़ी गई व्याधि इन शत्रुओं के चित्त को अचेत करती हुई अङ्गों को जकड़ लेती है, दूर हटती और समीप जाती तथा हृदयों को शोक से जलाती है। इससे शत्रु लोग घोर अन्धकार में पड़ जाते हैं ॥१॥

१८६२—अप्रतिरथः । इन्द्रो मरुतो वा । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥२॥

पदार्थ—(प्रेत) जाओ (जयत) विजय प्राप्त करो (नरः) हे मनुष्यो (इन्द्रः) परमेश्वर (वः) तुम्हारा (शर्म) कल्याण (यच्छतु) प्रदान करे (उग्राः) प्रचण्ड (वः) तुम्हारी (सन्तु) हों (बाहवः) भुजाएँ (अनाधृष्याः) न धर्षण किये जानेवाले (यथा) जैसे (असथ) होवो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम संग्राम में जाओ और विजय प्राप्त करो। परमेश्वर तुम्हारा कल्याण करे। जिस प्रकार तुम लोग किसी से तिरस्कार के अयोग्य हो वैसी ही तुम्हारी भुजाएँ भी प्रचण्ड हों ॥२॥

१८६३—वायुः । इषुः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥३॥

पदार्थ—(अवसृष्टाः) छोड़ा हुआ (परापत) शत्रुओं के पास जाता है (शरव्ये) हिंसा करने के योग्य (ब्रह्मसंशिते) धनुर्वेद ज्ञाताओं से तीक्ष्ण किया हुआ (गच्छ) जाता है (अमित्रान्) शत्रुओं के पास (प्रपद्यस्व) प्राप्त होता है (मा) नहीं (अमीषाम्) इनको (कंच) किसी को (न) नहीं (उच्छिषः) बाकी रखता है ॥३॥

भावार्थ—मारनेवाला वाण धनुर्वेद के ज्ञाताओं द्वारा तेज किया हुआ छोड़ा जाकर दूर दूर जाता है, शत्रुओं को प्राप्त होता है तथा इनमें किसी को शेष नहीं छोड़ता, अर्थात् सबका उच्छेद कर देता है ॥३॥

१८६४—पायुः । इन्द्रः संग्रामाशीर्वा । त्रिष्टुप् ।

३ १ २३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कङ्काः सुपर्णा अनुयन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥१॥

पदार्थ—(कङ्काः) मांस खानेवाले गृद्ध आदि (सुपर्णाः) अच्छे परोंवाले (अनुयन्तु) पीछे लगें (एनान्) इनके (गृध्राणाम्) गृध्रों का (अन्नम्) भोजन-भक्ष्य (असौ) यह (अस्तु) हो (सेना) शत्रुसेना (मा) मत (एषाम्) इनमें (मोचि) छोड़ें (अघहारः) पापी (च) भी (न) नहीं (इन्द्र) हे सेनापते (वयांसि) चील, कौवे (एनान्) इन (अनुसंयन्तु) टूटें (सर्वान्) सब पर ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! अच्छे परों वाले मांसाद पक्षी इन शत्रुओं के पीछे पड़ें । यह शत्रुसेना गृध्रों का भोजन बने । इन शत्रुओं में कोई भी न बचे । पापी न बचने पावे । इन सब पर चील-कौवे मंडराएँ ॥१।

१८६५—पायुः । इन्द्राग्नी । अनुष्टुप् ।

१ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २
अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥२॥

पदार्थ—(अमित्रसेनाम्) शत्रु की सेना को (मघवन्) अनेक सम्पदाओं को उत्पन्न करनेवाली (अस्मान्) हम से (शत्रुयतीम्) शत्रुता करनेवाली (अभि) भली भाँति (उभौ) ये दोनों (ताम्) उसको (इन्द्र) विद्युत् (वृत्रहन्) अन्धकार का नाश करनेवाली (अग्निः) अग्नि (च) और (दहतम्) जलाते हैं (प्रति) प्रतिकूलतापूर्वक ॥२॥

भावार्थ—संग्राम में प्रयुक्त हुए अन्धकारनाशक, अनेक ऐश्वर्यों के उत्पादक विद्युत् और अग्नि हम लोगों से शत्रुता करनेवाली शत्रुसेना को जला देते हैं ॥२॥

१८६६—पायुः । संग्रामाशीः, ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च । पंक्तिः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु । विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥३।

पदार्थ—(यत्र) जिस संग्राम में (बाणाः) बाण (संपतन्ति) गिरते हैं (कुमाराः) बालकों के (विशिखाः) शिखाधारी (इव) समान (तत्र) वहाँ (नः) हमारा (ब्रह्मणस्पतिः) विद्वान् (अदितिः) परमेश्वर (शर्म) कल्याण (यच्छतु) करे (विश्वाहा) सर्वदा (शर्म) कल्याण (यच्छतु) करे ॥३॥

भावार्थ—जिस संग्राम में शिखाधारी कुमारों के समान चंचल बाण गिरते हैं वहां पर परमेश्वर सर्वदा हमारा कल्याण करे और विज्ञानवेत्ता विद्वान् हमारा कल्याण करे ॥३॥

१८६७—अप्रतिरथः शासो वा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
वि रक्षो विमृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१॥

पदार्थ—(वि) विशेष (रक्षः) राक्षसी प्रवृत्ति का (वि) विशेष (मृधः) हिंसक मनोवृत्ति का (जहि) नाश कर (वि) विशेष (वृत्रस्य) अज्ञान का (हनुः) मुख (रुज) बन्द कर (वि) विशेष (मन्युम्) क्रोध का (इन्द्र) हे परमेश्वर (वृत्रहन्) हे अज्ञाननिवारक (अमित्रस्य) शत्रु के (अभिदासतः) दासता को देनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे अज्ञाननिवारक परमेश्वर ! तू राक्षसी प्रवृत्ति तथा हिंसक मनोवृत्ति का विनाश कर । अज्ञान के मुख को बन्द कर और दासता में डालनेवाले या शुभ कर्मों का विनाश करनेवाले शत्रुओं के क्रोध को विनष्ट कर ॥१॥

१८६८—अप्रतिरथः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२॥

पदार्थ—(वि) विशेष (नः) हमारे (इन्द्र) हे परमेश्वर (मृधः) हिंसक भावों को (जहि) नष्ट कर (नीचा) नीचे (यच्छ) नियन्त्रित कर (पृतन्यतः) व्यर्थ लड़ाई और विवाद करनेवाले को (यः) जो (अस्मान्) हमें (अभिदासति) शुभ कर्मों से दूर हटाता है (अधरं) नीच (तमः) अन्धकार को (गमय) प्राप्त करा ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे हिंसक भावों को नष्ट कर, व्यर्थ लड़ाई और विवाद करनेवालों को दबाकर नियन्त्रित कर तथा हमें शुभ करने से दूर हटानेवालों को नीचे श्रेणी की अन्धकारमयी योनि प्राप्त करा ॥२॥

१८६९—अप्रतिरथः । इन्द्रः । जगती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) वीर पुरुष के (बाहू) दोनों भुजायें (स्थविरौ) स्थूल (युवानौ) युवा (अनाधृष्यौ) न धर्षण किये जाने योग्य (सुप्रतीकौ) सुन्दर (असह्यौ) असह्य=न सहन के योग्य (तौ) उन्हें (युञ्जीत) उपयोग करे या करता है (प्रथमौ) पूर्ववर्ति (योगे) अवसर के (आगते) आ जाने पर (याभ्याम्) जिनसे (जितम्) जीता जाता है (असुराणाम्) असुरों का (सहः) बल (महत्) महान् ॥३॥

भावार्थ—जिनसे असुरों का महान् बल जीता जाता है उन स्थूल, तरुण, दुर्धर्ष, सुन्दर, असह्य, तथा प्रथम ही कार्य में लाये जाने वाले वीर पुरुष के दोनों बाहुओं को वह अवसर आ जाने पर उपयोग में लावे ॥३॥

१८७०—अप्रतिरथः । सोमो वरुणश्च । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥

पदार्थ—(मर्माणि) मर्मस्थानों को (ते) तेरे (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढकता हूँ (सोमः) शान्त गुणवाला (त्वा) तुझे (राजा) राजा (अमृतेन) रोगनिवारक औषध से (अनुवस्ताम्) ढक देवे (उरोः) महान् से भी (वरीयः) महान् ऐश्वर्य को (वरुणः) परमेश्वर (ते) तुझे (कृणोतु) देवे (जयन्तम्) विजय करते हुए (त्वा) तुझे (अनु) पश्चात् (देवाः) विद्वान् (मदन्तु) प्रशंसा करें ॥१॥

भावार्थ—हे वीर पुरुष ! तेरे मर्मस्थलों को मैं कवच से ढकता हूँ । शान्त गुणवाला राजा रोगनिवारक औषध से तुझे ढक दे । परमेश्वर तुझे महान् से महान् यश और धन प्रदान करे । विद्वान् लोग तुझे विजयशील की प्रशंसा करें ॥१॥

१८७१—अप्रतिरथः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २
अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम् ॥२॥

पदार्थ—(अन्धा) अन्धे (अमित्रा) हे शत्रुओं (भवत) होओ (अशीर्षाणः) बिना शिर के (अहयः) सर्प के समान (तेषाम्) उन (वः) तुम लोगों में (अग्निनुन्नानाम्) अग्नि से जलाए गये (इन्द्रः) वीर पुरुष (हन्तु) नाश करे (वरंवरम्) हर एक बलवान् का ॥२॥

भावार्थ हे शत्रुओ ! तुम लोग बिना शिर के सांप के समान युद्ध में [गैस से] अन्धे हो जाओ । वीर पुरुष अग्नि से जलाए गये तुम लोगों में हर एक बलवान् को मारे ॥२॥

१८७२—अप्रतिरथः । विश्वेदेवाः । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति ।

३१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (नः) हमें (स्वः) आत्मीय (अरणः) संग्राम न करनेवाला (यः) जो (च) और (निष्ठ्यः) दूर रहनेवाला (जिघांसति) मारना चाहता है (देवाः) विद्वान् जन (तम्) उसे (सर्वे) सब (धूर्वन्तु) नष्ट करें (ब्रह्म) परमेश्वर (वर्म) कवच [रक्षक] (मम) हमारे (अन्तरम्) समीप (शर्म) सुख [कल्याण] (वर्म) कवच (मम) मेरा (अन्तरम्) समीपी ॥३॥

भावार्थ—जो अपना होता हुआ भी संग्राम न करनेवाला होकर दूरवर्ती बन हमें मारना चाहता हो, सब विद्वान् लोग उसको दण्ड दें । परमेश्वर और सुख हमारे समीपी कवच अर्थात् रक्षक हों ॥३॥

१८७३—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २र ३ १ २र
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥१॥

पदार्थ—(**मृगः**) सिंह के (**न**) समान (**भीमः**) दुष्टों के लिए भयंकर (**कुचरः**) पृथिवी पर विचरनेवाला (**गिरिष्ठाः**) पर्वतों पर रहनेवाले (**परावतः**) दूर तक (**आगजन्थ**) व्यापक होता है (**परस्याः**) प्रकृति से (**सृकम्**) गतिशील (**संशाय**) तेज कर (**पविम्**) ज्ञानशस्त्र को (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**तिग्मम्**) तीक्ष्ण (**वि**) विशेष (**शत्रून्**) कामक्रोधादि शत्रुओं को (**ताढि**) नष्ट कर (**वि**) विशेष (**मृधः**) हिंसक वृत्तियों को (**नुदस्व**) दूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पृथिवी पर विचरनेवाले, पर्वतीय सिंह के समान दुष्टों के लिए भयंकर है । तू प्रकृति से परे भी व्यापक है । हे नाथ ! तू तीक्ष्ण तथा गतिशील ज्ञानशस्त्र को तेज कर । तू हमारे कामक्रोध आदि शत्रुओं का हनन कर तथा हिंसक वृत्तियों को दूर भगा ॥१॥

१८७४—अप्रतिरथो राहूगणो गौतमो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

१ १ ९र १ १ २ ३ १ २
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२॥

पदार्थ—(**भद्रं**) कल्याणकारी (**कर्णेभिः**) कानों से (**शृणुयाम**) सुनें (**देवाः**) हे परमेश्वर और विद्वान् जन (**भद्रं**) कल्याणकारी (**पश्येम**) देखें (**अक्षभिः**) आंखों से (**यजत्राः**) पूज्य (**स्थिरैः**) दृढ (**अंगैः**) अङ्गों से युक्त (**तुष्टुवांसः**) स्तुति करनेवाले (**तनूभिः**) शरीरों से (**व्यशेमहि**) प्राप्त करें (**देवहितम्**) दिव्य कर्म तथा उपासना आदि के लिए प्राप्त (**यत्**) जो (**आयुः**) जीवन ॥२॥

भावार्थ—हे पूजनीय परमेश्वर और विद्वान् जन ! स्तुति करनेवाले हम अपने कानों से कल्याणकारक वचन सुनें, आंखों से कल्याणकारी वस्तुएं देखें तथा दृढ़ अगों वाले शरीर से ज्ञानप्राप्ति तथा उपासना आदि दिव्य कर्मों के लिए दिए हुए जीवन का उपभोग करें ॥२॥

१८७५—अप्रतिरथः राहूगणो गौतमो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

३ २ ३ २ ३ १ २
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥३॥

पदार्थ—(**स्वस्ति**) सुखदायक (**नः**) हमारे लिए (**वृद्धश्रवाः**) महान् यशस्वी (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**स्वस्ति**) कल्याणकारक (**नः**) हमारा (**पूषा**) पोषक (**विश्ववेदाः**) चारों वेदों का ज्ञाता (**स्वस्ति**) कल्याणकारी (**नः**) हमें (**तार्क्ष्यः**) अश्व के समान (**अरिष्टनेमिः**) सुख प्राप्त करानेवाला (**स्वस्ति**) कल्याण (**नः**) हमें (**बृहस्पतिः**) महत्तत्त्व आदि के स्वामी (**दधातु**) दे । परमेश्वर (**स्वस्ति**) सुख (**नः**) हमारा (**बृहस्पतिः**) बड़ों का भी स्वामी (**दधातु**) करे ॥३॥

भावार्थ—महान् यशस्वी परमेश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हो । वेदों का स्वामी और सबका पोषक वह हमारा कल्याण करे । अश्व के समान सुख प्राप्त कराने वाला वह हमारा कल्याण करे । महत्तत्त्व आदिकों का स्वामी वह हमें सुख दे । बड़ों का भी स्वामी परमेश्वर हमारा अवश्य कल्याण करे ॥३॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

卐 **एकविंशोऽध्यायः समाप्तः** 卐

इति सामवेद-संहिता ॥

卐

प्रकाशकः-

दयानन्द - संस्थान

नई दिल्ली-५

ओ३म्
ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥
दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५
दयानन्द संस्थान

प्रकाशकः-

दयानन्द-संस्थान

नई दिल्ली-५